जीवन के झरोखे (लघुकथा, प्रेरक प्रसंग भाग-१)

जिन्दगी गुजर रही है इम्तिहानों के दौर से, इक जख्म भरा नहीं कि दूसरा तैयार पाया।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकीम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, ताडीवाला रोड, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल

* भागवतकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९ मो. ९३७१११६६८३

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

शहर नवलगढ़ धन्य हो गया, धन्य वहाँ की माटी।
धन्य धन्य राजस्थान, धन्य धन्य है वहाँ की शेखावाटी॥
अपने लिये तो सभी जीते है, परहित में जीना ही जीना है।
दर्द बँटाएँ जो औरों का ऐसा वह नर पौत्र अंशय अनमोल नगीना है॥

* मूल्य - आपकी ज्ञानवृद्धि

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपुर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

८) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपुर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

९) श्रीमती गीता जयप्रकाश गोयल
बिल्डिंग ९ए, ११ वां मजला, गंगा सॅटेलाईट,
वानवडी, पुणे- ४११०४० मो. ९८६०००००२२२
फोन नं. ऑ. २६१४०२५१ घर- २६८३७४३४

१०) शंकरलाल रिणवाँ
धानूका आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रमण रेती,
वृंदावन- २८११२१ (यू.पी.) मोबाईल -०९७५६२५८२४२
फोन नं. ०५६५-३२९०८०४, २५४००७५, २५४०७३१

११) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

१२) श्री बनवारीलाल अगरवाल
१६-११-७४१/डी/३६, मूसारामबाग,
हैद्राबाद- ५०००३६ मो. ९४२४६३५४९१९

१३) श्री किरण अग्रवाल
कुसुम बंगलो, आकाशगंगा सोसायटी,
कृष्णचरन अपार्टमेंटस् के सामने, काठे गल्ली,
द्वारका, नासिक- ४२२००१
फो. (०२५३) ८०४६३३, २५९५१०४, मो. ९८५०३०४०६१

१४) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१५) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१६) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
उत्तम टाऊनस्केपस्, फ्लॅट नं. (ए-१)-१०२,
सिरीन हॉस्पिटल के सामने, येरवडा, पुणे- ४११००६
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१७) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

१८) बनवारीलाल जाजोदिया
रघुमणि, डी-३४, एचआयजी कॉलनी,
शॉपिंग कॉम्प्लेक्स के पीछे, आग्रा-मुंबई रोड,
इंदौर- ४५२००१ (म.प्र.)
फो. २५५९४५१ मो. ९३००५६९४७१

१९) श्रीकांत रामस्वरूप मोरारका
नानसा गेट, स्टेशन नवलगढ़- ३३३०४२
जिल्हा- झुनझुनु (राजस्थान) मो. ९४१४३१५७३०

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल, ३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) श्री राजेश अग्रवाल

अष्ट विनायक

शास्त्रों के अनुसार भगवान गणेश प्रथम पूज्य देवता है। भगवान गणेश विघ्नहर्ता व बुद्धिदाता माने जाते है। इसीलिये गणेश पूजा किसी भी काम की पवित्र व अच्छे भावों के साथ शुभ व मंगल शुरुआत कार्य के दौरान भी विघ्नों से रक्षा और अच्छा फल देनेवाले मानी गई हैं। भगवान गणेश का नाम जीवन में कर्म और अच्छाइयों को अपनाने की प्रेरणा देता है। सांसारिक जीवन में भी जरूरतों व कामनाओं को पूरा करने के लिये व्यक्ति हर दिन की बेहतर शुरूआत के साथ अपने कामों में मनचाही सफलता या फलों की कामना करता है। गणेश मंत्र बोलकर गणेश पूजा की जाती है। बुधवार या चतुर्थी को गणेश पूजा फल प्राप्ति के लिये अचूक है। शनिवार के दिन की पूजा शनि दोष दूर करता है।

भगवान श्री गणेश जलतत्व के देवता माने जाते है। उनकी उपस्थिति सर्वत्र है। जगत की रचना पंचतत्वों से हुयी है। मानव जीवन जल के बिना संभव नहीं। जल के बिना गति, प्रगति कुछ भी असंभव है। इसीतरह भगवान गणेश के बिना कोई कार्य संभव नहीं। यही कारण है कि गणेश की मंगलमूर्ति के रूप में प्रथम पूजा की जाती है। हिंदू धर्मग्रंथों में सृष्टि रचनेवाले ब्रह्मा ने भविष्यवाणी की थी कि हर युग में भगवान गणेश अलग-अलग रूप में अवतरित होंगे। सत्ययुग में विनायक के रूप में, त्रेता युग में मयूरेश्वर, द्वापर युग में गजानन और कलियुग में धूम्रकेतू नाम से अवतार लेंगे। गणेश के आठ स्वरूप अष्टविनायक के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्वयंभू प्रतिमाएं हैं। यह स्वयं प्रकट हुई है, इनका स्वरूप प्राकृतिक है। हर एक प्रतिमा का स्वरूप एक-दूसरे से अलग है। यह अष्टविनायक गणपति कहलाते है।

पहला गणपति मोरगांव में है। मोरगांव में या मोरेश्वर या मयूरेश्वर नाम से जाना जाता है। कराह नदी के किनारे स्थित है यह क्षेत्र भूस्वानंद के नाम से भी जाना जाता है। जिसका अर्थ है सुख समृद्ध की भूमि। इस क्षेत्र का आकार मोर के समान है। बीते काल में यहां बहुत मोर पाये जाते थे इस कारण भी इस क्षेत्र का नाम मोरगांव पड़ा।

दूसरा गणपति पाली स्थित सिद्धटेक में सिद्धिविनायक नाम से है। सिद्धटेक महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में कर्जत तहसील में भीम नदी के किनारे स्थित एक छोटा सा गांव है। यहां सिद्धटेक पर्वत था जहांपर विष्णुने तपद्वारा सिद्धि प्राप्त की।

तीसरा गणपति पाली स्थित बल्लाळेश्वर है। अष्टविनायक गणेश में बल्लाळेश्वर गणेश ही एकमात्र ऐसे गणेश माने जाते है जिनका नाम भक्त के नाम पर प्रसिद्ध है। गणेश की प्रतिमा को ब्राह्मण की वेशभूषा पहनायी जाती है।

चौथा गणपति महाड़ स्थित वरदविनायक। वरदविनायक गणेश का मंदिर महाराष्ट्र के रायगढ़ जिले के कोल्हापुर तालुका में एक सुंदर पर्वतीय गांव महाड़ में है। भक्तों की ऐसी श्रद्धा है की यहां वरदविनायक गणेश अपने नाम के समान ही सारी कामनाओं को पूरा होने का वरदान देते है। प्राचीन काल में यह स्थान भद्रक नाम से भी जाना जाता है।

पाँचवा थेऊर स्थित चिंतामणि। गणेश का मंदिर महाराष्ट्र के पुणे जिले के हवेली तालुका में थेऊर नामक गांव में है। यहां गणेश चिंतामणि के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात यह गणेश सारी चिंताओं को हर लेते हैं और मन को शांति प्रदान करते है।

छठा लेण्याद्रि स्थित गिरिजात्मज। यह मंदिर उत्तरी पुणे के लेण्याद्री गांव में स्थित है। यह कुकदी नदी के किनारे बसा है। गणेश पुराण अनुसार इस स्थान का जीरनापुर या लेखन पर्वत था। गिरिजात्मज का अर्थ माता पार्वती के पुत्र। अष्टविनायक में यह एकमात्र मंदिर है जो ऊंची पहाड़ी पर बुद्ध गुफा मंदिर में स्थित है।

सातवां ओझर स्थित विघ्नेश्वर। यह मंदिर कुकदेश्वर नदी के किनारे ओझर नामक स्थान पर स्थित है। विघ्नेश्वर दैत्य को मारने के कारण ही इनका नाम विघ्नेश्वर विनायक हुआ। कहते हैं यहां भगवान श्री गणेश सभी विघ्नों को नष्ट करनेवाले माने जाते है। आठवां रांजणगाव स्थित महागणपति। इस गणपति को सबसे दिव्य और शक्तिशाली स्वरूप माना जाता है। यह अष्टभुजा, दशभुजा या द्वादशभुजावाले माने जाते हैं। त्रिपुरासुर दैत्य को मारने के लिए गणपति ने यह रूप धारण किया। इसलिए इनका नाम त्रिपुरदेव महागणपति नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसतरह यह अष्टविनायक पूजे जाते है।

HHH(३)HHH

भूमिका

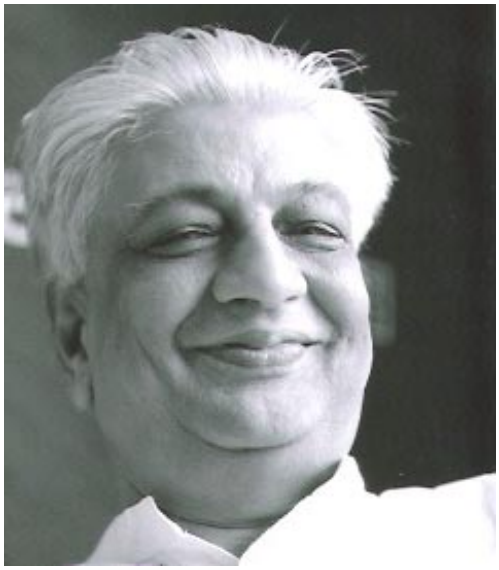

बालक हो, युवा हो अथवा वृद्ध हो, सबकी कहानियाँ सुननेमें स्वाभाविक रुचि रहती है। समाजके उत्थान और पतनमें कहानियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सन्तोंके मुखसे नि:सृत कहानियाँ जहाँ समाजमें अमृत (सद्गुण-सदाचार) की गङ्गा बहाती हैं, वहीं सांसारिक उपन्यास, सिनेमा, टेलीविजन आदिके द्वारा प्रसारित कहानियाँ समाजमें विष (दुर्गुण-दुराचार) की सरिता बहाती हैं। बालककी प्रथम गुरु माँ भी कहानियोंके माध्यमसे ही उसके कोमल हृदयमें अच्छे संस्कार जागृत् करती है, जो उसके भावी जीवनको उन्नत बनानेमें सहायक होते हैं। यह दुनिया एक खूबसूरत किताब है, लेकिन जो इसे पढ़ नहीं सकता उसके लिये बेकार है।

पारमार्थिक विषयको सरलतासे समझनेमें भी कहानियाँ बहुत सहायक होती हैं। पौराणिक कहानियों (कथाओं) का भी यही तात्पर्य है कि पारमार्थिक विषय सरलतासे समझमें आ जाय। कठिन-से-कठिन पारमार्थिक बातोंको भी कहानियोंके सहारे सुगमतापूर्वक़ समझकर जीवनमें उतारा जा सकता है। कहानियोंके द्वारा मित्रसम्मित अथवा कान्तासम्मित उपदेश प्राप्त होता है, जो मनुष्यको स्वभावत: प्रिय होता है। बिना ग्रंथ के ईश्वर भी मौन है, न्याय निद्रित है, विज्ञान स्तब्ध है और सभी वस्तुएं पूर्ण अंधकार में है।

जिन्होंने अपनी वास्तविक उन्नति कर ली है, जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्वका अनुभव हो चुका है, जिन्होंने अपने दु:ख, सन्ताप, अशान्ति आदिको मिटा दिया है, ऐसे सन्त-महात्माओंकी बात मान लेनी चाहिये; क्योंकि उनकी बुद्धिका नतीजा अच्छा हुआ है। जैसे, किसीने व्यापारमें बहुत धन कमाया हो तो वह जैसा कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें लाभ क्यों नहीं होगा ? ऐसे ही हम सन्त-महात्माओंकी बात मानेंगे तो हमारेको भी अवश्य लाभ होगा। उनकी बात समझमें न आये तो भी मान लेनी चाहिये। हमने आजतक अपनी समझसे काम किया तो कितना लाभ लिया है ? अपनी बुद्धिसे अबतक हमने कितनी उन्नति की है ?

लघुकथायें गागर में सागर की तरह होती हैं, जिनमें छोटे पर्दे पर बड़ी बात कहीं जाती है। इन कथाओं की दृष्टि पैनी, लेखनी सशक्त और भाषा संयत है इसलिये हर लघुकथा अनूठी बनी है, गिरते नैतिक मूल्यों ने इन्हें झकझोरा है। जीवन के हर एक कोने में इन्हें झाँककर देखा जा सकता है और हर बार सोचने के लिये विवश होना पड़ता है। इसके अधिकांश कहानियां एक दर्पण के समान है जिसमें स्वयं का स्तर, आचरण नजर आता है। इसकी कहानियाँ रोचक और शिक्षाप्रद है।

मैंने कहानियों के माध्यम से हर क्षेत्र को छुआ है। इसमें अध्यात्म, राजनीति, इतिहास, शिक्षा, द्वंद्व, रोचक कहानियाँ इत्यादि का संग्रह कर एक उपयोगी ग्रंथ बनाया है जो पाठशाला के हर विद्यार्थी के लिये उपयोगी है। इससे प्राप्त शिक्षासे जीवन जीने की कला सिखने को मिलती है। विद्यार्थियों के लिये मनोरंजन के रूप में हितोपदेश कहानियाँ है जो समय-समय पर उदाहरण के समय पेश की जा सकती है। मैंने इस ग्रंथ की रचना इस उदाहरण को सामने रखकर की कि आदमी तो चले जाता है पर कृत्य व कृति ही जिंदा रहती है।

आपका - महेन्द्रकुमार पाटोदिया

प्रार्थना

आराधक की लगन के सम्मुख सभी को आत्मसमर्पण करना पड़ता है। असहाय अवस्था में प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जीवन में प्रार्थना एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसकी शक्ति में हर धर्म व संस्कृति का विश्वास है। प्रार्थना सभी धर्मों में होती हैं। हिंदू गीता पढ़ता है, मुसलमान कुरान। बौद्ध धम्मपद पढ़ता है, तो जैन आगम। सिख गुरुग्रंथ साहिब पढ़ता है, तो क्रिश्चियन बाइबिल। नाम, रूप, शब्द, सिद्धांत, शास्त्र और संस्कृति की भिन्नताओं के बावजूद साध्य सबका एक है- भीतर का बदलाव, स्वर्ग की पहचान। दिल से की गई प्रार्थनाएँ अवश्य ही फलीभूत होती है पर प्रार्थनाओं के साथ प्रयत्न भी जरूरी है।

इस्लाम में एक कहावत है- सौ दवा, एक हवा, सौ हवा, एक दुआ। जो काम दुआ, यानी प्रार्थना से हो सकता है, वह अन्य किसी शक्ति से संभव नहीं है। कहते हैं, एक बार हुमायूं गंभीर रूप से बीमार पड़ा। बचने की आशा क्षीण होने लगी। तब बाबर ने इबादत की, हे अल्लाह। मैं अपनी जान तेरे चरणों में भेंट कर रहा हूं। मुझे उठा ले, पर इसके बदले मेरे बेटे हुमायूं की जान बख्श दे। कहते हैं कि इस प्रार्थना के बाद हुमायूं धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया और बाबर का स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया। आखिर उसका देहांत हो गया। इस प्रकार की अनेक घटनाएं सुनी जाती हैं, जिनमें प्रार्थना का प्रभाव झलकता है।

ब्रिटेन और अमेरिका में तो आजकल चिकित्सा जगत में प्रार्थना का बड़ा प्रचलन है। वहां के आम आदमी को ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े चिकित्सकों को और वैज्ञानिकों को भी यह विश्वास है कि जिन रोगों की चिकित्सा में आज की चिकित्सा विज्ञान असफल है, ऐसे असाध्य रोग भी प्रार्थना से ठीक हो जाते हैं।

भारतीय प्रार्थना पद्धति और पाश्चात्य पद्धति में अंतर यह है कि भारत में प्रार्थना का महत्व समर्पण, निष्ठा, आस्था और निष्कामता में है। हम ईश्वर से केवल आरोग्य ही नहीं मांगते, परंतु अपने विकारों के शमन और कर्मों से आत्मा की मुक्ति की भी प्रार्थना करते हैं। यहां निष्काम प्रार्थना का अधिक महत्व है, पश्चिम में सकाम प्रार्थना का प्रचलन है। वहां प्रार्थना को भी एक चिकित्सा विधि मानकर चलते हैं।

प्रार्थना भावनात्मक चेतना का अहसास है। इसे हम धर्म, जाति, संप्रदाय, देश, काल, भाषा की सीमाओं में नही बांध सकते। यह हर उस व्यक्ति का स्वभाव है, जो स्वयं द्वारा स्वयं को पाने का पुरुषार्थ करता है। प्रार्थना है तो व्यक्तित्व है, आदर्श है, उद्देश्य है, विचार है, कर्म है, पहचान है, अन्यथा संस्कारों की भीड़ में भटकता एक निरुद्देश्य मनुष्य का चेहरा है जो जीता है मगर जीने का अर्थ नहीं जानता।

जो प्रार्थना संकट के समय की जाती है, विपत्ति के समय उसमें जो तीव्रता का वेग प्रकट होता है, वह सामान्य स्थिति में नहीं दीखता। वहां प्रार्थना एक विशेष समय में सहायता की पुकार बन जाती है। यद्यपि भावना भी इसी प्रकार का परिणाम लाने में समर्थ है। भावना के द्वारा भी हम अपनी शक्तियों का उद्दीपन कर लेते हैं, परंतु प्रार्थना में कुछ विलक्षण ढंग से वह तीव्रता के साथ प्रकट होता है, अत: यहां प्रार्थना भावना से बिल्कुल स्वतंत्र दिशा पकड़ लेती है।

जब हम सामान्य रूप में विश्व मंगल के लिए, दुष्टों की दुर्बुद्धि में सुधार के लिए अपने अंत:करण से प्रार्थना करते हैं, तो वह केवल मुख से उच्चारण करने का विधि विधान मात्र है। उसमें भी वही चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न होता है और विघ्न बाधाएं शांत होती हैं। इसलिए प्रार्थना के दो रूप हो जाते हैं- एक व्यक्तिगत, दूसरा सामूहिक।

जब व्यक्ति के जीवन पर संकट आता है, तब व्यक्ति स्वयं उसके निवारण के लिए प्रार्थना की भाषा में अपनी हृदय तरंगों को उत्सर्जित करता है, जब कभी समूह पर या संघ पर संकट आता है, तब सामूहिक प्रार्थनाएं की जाती हैं। उन सामूहिक प्रार्थनाओं से भी वातावरण शुद्ध होता है, शुभ और पवित्र वातावरण निर्मित होता है।

चाहे जितनी भी पीड़ा हो मन में भी हो व्यथा अपार। संकटपर संकट भी आवे, टूटे नहीं धैर्यका तार।।
यही प्रार्थना है, प्रभो। तुमपर ही है मेरा भार अपार। छूटे नाते रिश्ते सारे छूटे कुल, छूटे परिवार।।
सब छूटे तो छूटे प्रभुवर। तुम ना छोड़ना प्राणाधार। नहीं चाहिए धन या वैभव, नहीं चाहिए पद अधिकार।।
यही चाह है पाऊँ प्रभुवर, सदा तुम्हारा अनुपम प्यार।।

प्रार्थना का यही अर्थ है- अपने हृदय को खोल के रख देना। अगर तुम प्रार्थना में भी शास्त्र को दोहरा रहे हो तो वह ठीक नहीं है। इसलिए छोटे बच्चों की प्रार्थना ज्यादा कारगर होती है और संत जब प्रार्थना करते हैं तो उनकी प्रार्थना भी छोटे बच्चों-सी हो जाती है। एक छोटे बच्चे की मां उससे कह रही थी, क्योंकि वह आया अपने कमरे में, सीधा बिस्तर में छलांग लगा के दुलाई के अन्दर हो गया। उसकी मां ने कहा कि तूने प्रार्थना नहीं की। उस बच्चे ने कहा, ऐसी ठंड़ी रात में और इतनी देर हो गई है, परमात्मा को उठाना क्या ठीक होगा? यह जो बच्चा है इसकी प्रार्थना की इसे कोई जरूरत नहीं। यह जो भाव है कि इतनी रात गये। देर हो गई है, क्योंकि किसी उत्सव में गया था और अंधेरी रात और सर्द रात और ऐसे वक्त में परमात्मा को उठाना? हो गई प्रार्थना। यह भाव काफी है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा तो एक बहाना है आपके भाव को पूरा कर देने का। परमात्मा तो एक शब्द है, सहारा है। पूरा अस्तित्व परमात्मा है।

प्रार्थना परमात्मा के प्रति अंतर की सघन एवं व्याकुल पुकार है। भजन इस आर्त्त पुकार की अभिव्यक्ति है। प्रार्थना शांत, निस्पंद मानसरोवर है तो भजन इस झील से निकलने वाली जलधाराएँ हैं, जिनकी हर बूँद में नृत्य की थिरकन होती है। अंतत: सरोवर भी सूर्य की रश्मियों के संग आकाश में खो जाता है और नदी भी समुद्र में गिरकर, सूर्य किरणों पर चढ़कर व्योम में विलीन हो जाती है। प्रार्थना की भी मंजिल वही है, जो भजन की है, परंतु मार्ग अलग है, द्वार अनेक हैं।

प्रार्थना बीज है, भजन वृक्ष; प्रार्थना कली, भजन पुष्प; प्रार्थना सद्चिंतन है, भजन सद्कर्म। प्रार्थना में प्रभु के प्रति गहन आत्मीयता, तीव्र तड़पन है तो सही, पर शांत एवं निष्कंप। प्रार्थना का यह निष्कंप स्वरूप भगवान महावीर, तथागत बुद्ध, श्री अरविंद, रमण महर्षि आदि संत, अवतारी पुरुषों में परिलक्षित होता है। प्रभु के प्रति इनका प्रेम गहन शांति में उठा या फैला था एवं विस्तार पाया था। शांति नीरव तो होती है, परंतु निष्क्रिय नहीं। प्रार्थना इसी शांति एवं नीरवता में ही गतिमान होती है। इन संत-महात्माओं के भीतर जब यह प्रेम का प्रवाह सँभला हुआ उमड़ने लगा तो भजन बन गया।

व्यक्ति ईश्वर को याद करता है पर उसने अगर प्रार्थना नहीं की तो उस शक्ति पुंज तक नहीं पहुंच सकता। प्रार्थना यानी ईश्वर से अपना सीधा-सम्बन्ध जोड़ना। प्रार्थना का अर्थ है विराट शक्ति से जोड़ना। प्रार्थना एक धार्मिक क्रिया नहीं है एक जीवनशैली है। अखिल ब्रह्माण्ड की विराट शक्ति से जुड़ने का नाम प्रार्थना है। प्रार्थना व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों भी हो सकती है। प्रार्थना ऊर्जा प्राप्त करने की शक्ति है। ईश्वर से जिस भावना से प्रार्थना से कि जाती है ईश्वर भी उसी रूप में उसे स्वीकार करता है इसके लिये हृदय का पवित्र होना नितान्त जरूरी है। प्रार्थना और कुछ नहीं सिर्फ ईश्वर से बातें करना है। ईश्वर आपको जानता है वह यह भी जानता है कि आपके हृदय का व्यवहार कैसा है। सच्चे मन से परेश्वर से की गयी प्रार्थना वह स्वीकारता है तथा फल भी प्रदान करता है। समस्या समाधान में भी लाभ मिलता है। जब हमारी समस्याओं में हमें कोई मार्ग नहीं सूझता और हम सच्चे मन से ईश्वर से प्रार्थना करें तो हमें स्वत: मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

प्रार्थना प्राणों से करने पर कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना में प्राणों का संलग्न होना जरूरी है। फल मिलने तक अपने मन को शांत रखना चाहिए। अगर प्रार्थना का फल नहीं मिले तो यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि प्रार्थना प्रभु को स्वीकार नहीं हुई। प्रार्थना का फल तो अवश्य मिलेगा पर समय आनेपर। जैसे जमीन में आज ही बीज डाला और आज ही खाद्य डाली इसका अर्थ यह नहीं कि फल भी आज ही मिल जाएं। बीज को वृक्ष बनने में और वृक्ष पर फल लगने में समय लगता ही है। हर प्रार्थना के साथ किसी चमत्कारी की उम्मीद करना गलत है। सिर्फ प्रार्थना करनी चाहिए फल प्रभु पर छोड़ दे। ईश्वर से प्रार्थना करो, पर अपनी पतवार चलाते रहो।

जब हम अपने आप कुछ कर पाने में असमर्थ होते है तो किसी उच्चशक्ति का आवाहन करते है। जब हम अपने आपको उस सर्वशक्तिमान को समर्पित कर अपने तुच्छ अहंकार को नष्ट करते है उसीका नाम प्रार्थना है। ब्रह्माण्ड एक सुव्यवस्थित प्रणाली है, अव्यवस्थित नहीं है। किसी भी व्यक्ति को धर्म और ईश्वर में विश्वास हो या ना हो वह इतना अवश्य जानता है कि कोई एक न एक परम शक्ति अवश्य है जो इस ब्रह्माण्ड को संचालित करती है, निर्देशित करती है। हम अपने आपको उस परम शक्ति से जोड़ने, पहचानने का प्रयत्न करते है वह प्रार्थना के माध्यम से ही हो सकता है। प्रार्थना में नमन, स्मरण, कीर्तन, याचन और अर्पण होता है।

हम भगवान के पास जाते है या उनसे कुछ चाहते है तो हमे अपने अंदर विनय का भाव लाना होगा। हम भगवान के पास अपना अहंकार लेकर जाते है इसमें बुद्धि का अहंकार सबसे खतरनाक है। धन, शक्ति और सुंदरता का अहंकार तो जल्दी समाप्त हो जाता है पर बुद्धि का अहंकार आसानी से नहीं मिटता। हम अपनी बुद्धिमत्ता को लेकर लम्बे समय तक भ्रम में बने रहते हैं। भगवान का स्मरण अर्थात् अपने मन और मस्तिष्क में भगवान को स्थापित करना। भगवान कोई मूर्ति, शक्ति या प्रतीक नहीं है बल्कि वास्तविकता है। उस परम शक्ति के पास प्रार्थना करने से वह आपको सुनेगी। किसी की गुणों का ज्ञान होना और उसका बखान करना ही कीर्तन है। अपने आप में समर्पण का भाव लाने का नाम कीर्तन है। जब हम किसी का आदर तथा प्रशंसा करते है हमारे अंत:करण में उसके प्रति समर्पण का भाव पैदा होता है। हममें ईश्वर का भाव तभी जागृत होता है जब हम प्रेम के दरवाजे पर अपने अहम् को उसके सामने समर्पित कर देते है। ईश्वर को मन मस्तिष्क में स्थापित कर उसका गुणगान कर आशीर्वाद की याचना करते है ऐसी परिस्थिति में वस्तुओं की याचना करने से कोई लाभ नहीं। वह तो अपने आपसे अमीर या प्रभुत्वशाली मनुष्य से भी कर सकते है। इसलिये ईश्वर से ज्ञान और विवेक, सन्मार्ग की याचना करनी चाहिए। याचना करने के बदले हमें कुछ अर्पण करना चाहिए। बहुत कम लोग प्रार्थना के प्रभाव या महत्व को जानते है। प्रार्थना के माध्यम से या तो हम अपने जीवन की शिकायत करते है या इच्छाओं की मांग प्रस्तुत करते है। मनुष्य में अनंत इच्छाएं होती है और उन्हें पूरा करने की क्षमता भी। लेकिन स्वयं अपने ही द्वारा बनायी हुई सीमाओं के कारण अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं करते। प्रार्थना हमारी परिस्थितियां नहीं बदलती वह हमें बदलती है। संत हमें अपनी वाणी से शब्द, काव्य और उपदेशों से यही समझाकर गये है।

यह संसार जहां तक कल्पना कर सकता है उससे अधिक वस्तुओं का निर्माण या प्राप्ति प्रार्थना द्वारा संभव है। विश्वास के साथ की गयी प्रार्थना तो बीमार लोगों को भी ठीक कर देती है। हजारों लोग वैवाहिक, व्यापारिक, मानसिक और शारीरिक समस्याएं प्रार्थना के माध्यम से सुलझाते है। प्रार्थना से बीमारी का उपचार भी संभव है। प्रार्थना एक पूरक चिकित्सा की भूमिका निभाती है। कही बार चिकित्सकों से कहते सुना गया है अब इनको दवा की जरूरत नहीं दुवा की जरूरत है। कई बार दुवायें ही दवा का काम कर जाती है। किसी पर तेज दवाएं असर करे या न करे पर सच्चे दिल से की गयी प्रार्थना कारगार साबित होती है। हम जब भी किसी चित परिचित व्यक्ति को कष्ट में देखते है तो तत्काल उसके कष्ट निवारण के लिये प्रार्थना करते है। प्रार्थना जीवन का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। अत: जिसके लिये भी प्रार्थना की जाएगी वह हमारा मित्र हो जाएगा। उसके लिए मनमें भी प्रेम उत्पन्न होगा। प्रेम का अर्थ है शत्रुता की समाप्ति और मित्रता का प्रारंभ। हम जिसके लिए प्रार्थना करेंगे उसका अहित कभी नहीं चाहेंगे। प्रार्थना करनेवाले का अपना हृदय भी संवर जाता है। प्रार्थना एक अमोघ अस्त्र है और अपने उद्धार के लिये भी आवश्यक है। मन में सात्विक भाव उठते है। प्रार्थना हमारे शत्रु से भी प्रेम करने की योग्यता उत्पन्न करती है। जीवन की एक विडंबना है कि हम सबकी भलाई, सबकी समृद्धि चाहते तो हैं लेकिन अपने से कम। हम कभी भी दूसरों को बेहतर बनने की प्रार्थना नहीं करते।

HHH(७)HHH

माता-पिता

माँ की थपकी में शैशव पलता है, बाहों के झूले में प्यार मचलता है।
मां की लोरी में अमृत मिलता है, माँ की आंखों में गुलशन खिलता है।।

माँ घर का गौरव तो पिता घर का अस्तित्व होते हैं। माँ के पास अश्रुधारा तो पिता के पास संयम होता है। दोनों समय का भोजन माँ बनाती है तो जीवन भर भोजन की व्यवस्था करनेवाले पिता को हम सहज ही भूल जाते हैं। कभी लगी जो ठोकर या चोट तो ओ माँ मुँह से निकलता है। लेकिन रास्ता पार करते कोई ट्रक पास आकर ब्रेक लगाये तो बाप रे, मुँह से निकलता है। क्योंकि छोटे-छोटे संकटों के लिए माँ है पर बड़े संकट आने पर पिता ही याद आते हैं। पिता एक वटवृक्ष है जिसकी शीतल छाँव में संपूर्ण परिवार सुख से रहता है। माँ की सबसे बड़ी दौलत संतान होती है।

माता-पिता देव समान नहीं वरन् साक्षात् भगवान हैं। वे न केवल जन्म देते हैं बल्कि जीवन भी देते हैं। संतान को संस्कार तथा नैतिक मूल्यों जैसे पुष्पों से अलंकृत भी करते हैं। मां का स्वरूप ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश है। वह ब्रह्मा बनकर रचती है, विष्णु बनकर पालन करती है और महेश बनकर बुराईयों का संहार भी करती है। तो क्या संतान का धर्म नहीं होता कि वह उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहे। मां-बाप को सामंजस्य करने के लिए न कहें वरन् स्वयं उनके साथ सामंजस्य करें। किसी के द्वारा थोड़ी सी सहायता या सम्मान के बदले हम धन्यवाद कहते हैं। पर जिस मां ने नौ माह पेट में पाला-पोसा व वेदना को सही और दुनिया में आने का अवसर दिया उसे ताउम्र भी धन्यवाद दें तो भी कम है। यदि वे न चाहते तो यह सुंदर दुनिया देखने का अवसर ही नहीं मिलता। हमें श्रवण जैसे पुत्र बनकर माता-पिता की सेवा करनी चाहिए न की बोझ समझकर उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ना चाहिए। हम जो बीज बोएंगे भविष्य में वही फल हमारे बच्चे हमें उपहार में देंगे। बदकिस्मत वे नहीं जिनके मां-बाप नहीं होते, बल्कि वे बदकिस्मत हैं जो अपने मां-बाप की कदर नहीं करते।

माँ हमारी पहली शिक्षक होती हैं वही हमें जिंदगी के बारे में अच्छा-बुरा बताती है। बेटी से मां का रिश्ता बहुत ही खास होता है क्योंकि पुत्री भी माँ के भीतर हमेशा अपना ही प्रतिरूप देखती हैं। बेटी के बचपन और उसकी जवानी में ही माँ अपना बचपन और जवानी ढूंढती है। उसकी ख्वाहिश में ही अपनी ख्वाहिश को मिला देती है। माँ बेटी के इस अजीज रिश्ते में प्यार और अपनापन है इस रिश्ते में सबकुछ होता है। माँ-बेटी के इस अनमोल रिश्ते में बेटी चाहे तो माँ से बहुत कुछ सीख सकती है। माँ उसके सामने अपने जीवन का उदाहरण रखकर सबकुछ सिखाती है। माँ सिखाती है मनुष्य चाहे तो कौनसा काम वो नहीं कर सकता वैसे भी कोई प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता। आप चाहे तो अपने कर्मों से बड़ा पहाड़ भी लांघ सकते है। इसलिये कोई भी बड़े काम को लेकर डरना नहीं चाहिए।

माँ ही वो पहली शख्स है कि जो बेटी को बताती है कि वो गलत काम नहीं करे जिससे उसके परिवार को समाज के सामने शर्मिंदा होना पड़े। माँ ही उसे समझाती है कि एक स्त्री होना कितनी अच्छी बात है क्योंकि स्त्री ही ईश्वर की सबसे सुन्दर और खूबसूरत रचना है। इसलिये कभी भी स्त्री होने और अपने शरीर पर दु:खी होने के बारे में नहीं सोचना चाहिए बल्कि अपने पर नाज करना सिखना चाहिए, क्षमा करना सिखना चाहिए, किसी पर क्रोधित नहीं होना। माँ का दिल कितना बड़ा होता है। हम चाहे लाख गलतियां कर लें पर वो हमसे कभी खफा नहीं होती। बल्कि हमेशा हमें माफ कर देती है। इसलिये माँ से क्षमा का व्यवहार करना सीखे और किसीके लिये भी अपने मन में भेदभाव नहीं रखना चाहिए। माँ ही

आपसे बेइंतेहा प्यार करती है। बेटी चाहे कितनी भी उदास हो उसमें आशा की लौ मां ही जलाती है और प्यार की बात सिर्फ माँ ही कर सकती है। माँ के कारण ही बेटी के अंदर दया, करूणा जैसे भाव आते है जाने-अनजाने में भी यही सब वो माँ से सिखती है। माँ ही हर स्थिति में घर को कुशल तरीके से चलाती है। पुत्री को हमेशा माता का अनुकरण करना चाहिए और घर की स्थिति को सम्भालने का हुनर सिखना चाहिए। कम खर्च में घर को अच्छी तरह चलाना, बचत करना अच्छी और कुशल गृहिणी के गुण है।

आजकल अधिकतर माता-पिता या परिजन अपनी अधूरी ख्वाहिशों और उम्मीदों का बोझ बच्चों के कंधोंपर डालकर उन्हें पूरा कराना चाहते है। अपने सपनों को साकार करने के लिए कोई भी जुगत करने से पीछे नहीं रहते। माँ ने ही विश्व के निर्माण में सबसे अधिक संघर्ष किया और सबसे अधिक कष्ट उठाएं। माँ के दिल से ममता की सरिता बहती है। माँ वात्सल्य का सागर है। माँ तो केवल माँ होती है, माँ से बढ़कर इस दुनिया में कोई चीज कहां होती है। रेती के कण गिने जा सकते है पर माँ की ममता नही। माँ बनना जीवन का सबसे बड़ा असाधारण अनुभव है। माँ का कोई विकल्प नहीं है। गर्वमयी माँ की आकृति बर्बस आँखों में उतर जाती है। माँ शक्तिरूपी पथ प्रदान करती है। सत्कर्मों के लिये प्रेरित करती है। अपने आपमें एक विभूति होती है, ज्योति है ऐसे माँ से जीवन पथ मिलता है, पाथेय मिलता है और स्नेहांचल की शीतल छाया मिलती है। माँ काम करती है इतने जमाने में, सदियां लगेगी उन्हें भुलाने में। माँ सृष्टि की मूलाधार, सनातन संस्कृति आधार स्तम्भ, मानव की प्रथम गुरु, नर-नारायण की जननी, स्नेह और वात्सल्य की आगार होती है।

माँ की सागर से भी अधिक गहराई, आसमान से भी अधिक असीमता, धरती से भी अधिक मां की सहनशीलता, सत्यम् शिवम सुंदर के ईश्वरीय रूप को दर्शाता है। माँ ममतापूर्ण, श्रद्धा व सामंजस्य की प्रतिमूर्ति, वात्सल्य का सागर, सृष्टि के अनंत गुणों की आगार, पृथ्वी की सी सहिष्णुता, सूर्य जैसा तेज, समुद्रसी गंभीरता, चंद्रमा की सी शीतलता, वज्र की सी शक्ति, हिमालय की सी मानसिक उच्चता, प्रकृति की कोमलता, गंगा समदृश्य पवित्रता तथा आसमान जैसी विशालता की प्रतिमूर्ति होती है। माँ ब्रह्म की पहली ज्योति है। नर व नारायण की जननी है। माँ सृष्टि का आरंभ है, आदिशक्ति है। सृष्टि की मूलाधार- सृष्टि का संतुलन नारी की मातृसत्ता पर ही निर्भर करता है। भारतीय संस्कृति आधारशिला है जैसी माता वैसी ही संतान, जैसी भूमि वैसी उपज। माँ संतति परंपरा की जननी है, मानवता की जननी है- मातृ धारा को प्रवाहित करती है, समग्र मानव जाति की मानवता एक मां पर टिकी हुई है। माँ से जग बना है जग से मां नहीं। मां रचती है रची नहीं जाती। भगवान को पृथ्वी पर अवतरित करनेवाली मां अदिति, देवहुति, यशोदा, कौसल्या, त्रिशला व अनुसूया। सदा सर्वदा सर्व हितकारिणी मां अपनी संतति के कल्याणार्थ अपने प्राणों का भी मोह त्याग देती है। माँ के लिये उसकी संतान आशा है, भविष्य है, स्वप्न है, साक्षात प्रभु है और बच्चे के लिये माँ भगवान होती है। विपत्ति आनेपर देवता तक भी मां दुर्गा की शरण में आते हैं। मां की गोद बच्चे की पहली गोद होती है। पहला पायदान मां ही देती है। माँ का संबंध नैसर्गिक है- शिशु मां का ही विस्तार है। माँ विपदा हरनेवाली है, विपदा आनेपर माँ बच्चे की ढाल बन जाती है। माँ से ही बच्चे का भावनात्मक विकास होता है। मां का ममत्व, मातृत्व अनश्वर है मां का प्यार कभी बूढा नहीं होता। माँ के चरणों में स्वर्ग का द्वार है। मां नैतिक संस्कारों की बुनियाद है। मां बच्चे की मनोभावना बखुबी समझती है। सार्वभौमिक, सार्वकालिक विश्व जन्या हितैषिणी मां की झोली में भगवान ने वरदान ही वरदान भरे हैं। उसके विशाल हृदय में स्नेह के फूल भरे हुए है। माँ की सकुनभरी ठंडी हथेली सिर पर रखने पर बच्चे को अनंत शांति, सुकून व निश्चिंतता प्राप्त होती है। माँ के स्नेहांचल की शीतल

छाया से श्रात क्लांत चिति संसार विश्राम करता है। माँ ममता की प्रतिमूर्ती, प्रेम की साकार मूर्ति, करुणामयी, वात्सल्यमयी, शक्ति सौंदर्यमयी माँ, श्री, चिति, मान्या, पूज्या, आराधभक्ति, माता श्रद्धा, प्रेम द्रवी भूता विश्वातीत होती है।

एक समय था जब मातृदेवो भव, पितृदेवो भव भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र माना जाता था। उस समय समझा जाता था कि माता-पिता के लिए जितना भी करो, कम है। परंतु स्पर्धा के इस युग में सब कुछ बदल गया है। समय इतना बदल गया है कि माता-पिता के प्रति सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही समझी जाने लगी है कि वृद्ध हो जाने पर जितनी जल्दी हो उन्हें वृद्धाश्रम में भेज दिया जाए। अनेक लोगों के भाग्य में तो यह भी बदा नहीं होता। घर में रखा जाता है, पर उनके साथ नौकर से भी बदतर सुलूक किया जाता है। बेचारे मां-बाप को तो बिना वेतन लिए नौकर से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है, क्योंकि जीवन के संध्याकाल में उनके शरीर में न ताकत होती है और न ही सम्मान और स्वाभिमान के साथ जीने के लिए उनकी जेब में पर्याप्त पैसा होता है। शरीर में थोड़ी ताकत और जेब में जैसे-तैसे जिंदगी बसर करने लायक पैसा हो तो भी संतान के प्रति उनका मोह अकृतघ्न संतान के साथ इस कदर बांध कर रखता है कि जिल्लतभरी जिंदगी से बाहर निकल पाना उनके लिए सहज संभव नहीं हो पाता है। मां-बाप जीवनभर बच्चों की इच्छा-अपेक्षा पूर्ण करने के लिए स्वयं की इच्छा-अपेक्षा को भुला देते हैं। हर संकट में वे मजबूती से बच्चों के साथ खड़े रहते हैं। उन्हें सफल और आत्मनिर्भर बनाने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। रात-दिन वे ईश्वर से अपने बच्चों के कल्याण के लिए प्रार्थना करते हैं। वही बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो मां-बाप को निराधार छोड़ देने में उन्हें तो देर लगती है, न लज्जा। वृद्धों को सेवानिवृत्ति के बाद मिली अपनी संपूर्ण संपत्ति बच्चों के नाम नहीं कर देनी चाहिए। आज के समय में हर बात में स्पर्धा बढ़ी है, इसलिए बच्चे अधिक से अधिक सफल होने के लिए और अपनी ऊँची महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए अधिकाधिक संपत्ति के पीछे भाग रहे हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों को मां-बाप की संपत्ति की आवश्यकता क्या है? इसे बजाए वृद्धों को अपने पैसे का उपयोग करके बच्चों के आनंद के खातिर मारी गई अपनी इच्छा आकांक्षा और अपने स्वप्न पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए और अपना जीवन आत्मनिर्भर बनाना चाहिए। अब वह युग नहीं रहा जब बच्चे माता-पिता को देवतुल्य मानते थे और अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा कर उनका आशीर्वाद लेना सबसे बड़ा धर्म मानते थे। उस समय परस्पर विश्वास, प्रेम और आत्मीयता थी। अब युग बदल गया है। अब वृद्ध मां-बांप बच्चों के लिए बाधा स्वरूप और बोझ बन गए हैं।

अब बदले हुए समय को ध्यान में रखते हुए निवृत्ति के बाद मिलनेवाली जीवनभर की पूंजी बच्चों के हाथ में सौंप देना उचित नहीं क्योंकि गरज निकल जाने पर वे दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल कर फेंक नहीं देंगे, इसका क्या भरोसा?

हम अपने बच्चों के भविष्य के लिए रात-दिन हाड़ तोड कर कमाते हैं और उन्हें सभी सुविधाएं देते है। बिना कष्ट के सारी सुविधाएं मिल जाने से आज की युवा पीढ़ी बिगड़ गई है। वैलेंटाईन डे, फ्रेंडशिप डे, मदर्स डे और न जाने कौन-कौन से डे आयोजित कर असली रिश्तों को बाजारू बना दिया गया है। आज की पीढ़ी के लिए संयम, त्याग, सुविचार और आचार का आदान प्रदान आवश्यक है। युवा पीढ़ी को भी यह समझने की आवश्यकता है कि कल वे भी वृद्ध होंगे। वृद्ध माता-पिता को उचित सम्मान मिले और उनकी देख-भाल हो, इसके लिए कानून बनाए जाने की आवश्यकता है और जो बच्चे अपने माता-पिता की उचित देखभाल में कोताही करें उन्हें कानूनन दोषी करार देते हुए दंडित किया जाना भी उतना ही जरूरी है।

हर मौसम बदलते है दुनिया के रंग लेकर। लेकिन माँ नहीं बदलती, किसी का वक्त देखकर।।

HHH(१०)HHH

प्रेरक प्रसंग

१) सबसे बड़ी साधना - महर्षि वेदव्यास विश्व कल्याण की दृष्टि से अपने गहन गंभीर चिंतन को बोलकर लिखाते जाते थे और गणेश एकाग्रचित्त होकर लिखते जाते थे। महर्षि वेदव्यास धाराप्रवाह बोलते और गणेश शांत होकर धैर्यपूर्वक लिखते जाते यह क्रम बहुत समय तक निरंतर चलता रहा। महाभारत का अंतिम श्लोक पूर्ण हुआ। महाभारत का लेखन पूरा हुआ। गणेश ने अंतिम भोजपत्र पर इति लिखकर उस अनुष्ठान का समापन किया। गणेशजी की अनवरत चलने वाली लेखनी को विश्राम मिला। इस अभूतपूर्व कार्य की संपन्नता पर दोनों ने हर्ष और संतोष व्यक्त किया। महर्षि वेदव्यास और गणेश दोनों के मुख मंडल उस सारस्वत साधना के निर्विघ्न पूर्ण होने के संतोष से चमक रहे थे। सहसा महर्षि वेद व्यास ने कहा, गणेशजी, मैं आपके परिश्रम की हृदय से सराहना करता हूं। उस परिश्रम के बल पर ही तो मेरा चिंतन सार्थक बना। पर आपका मौन उससे भी अधिक वंदनीय है। इतने लंबे समय तक हम लोग साथ-साथ रहे। इस अवधि में मैं निरंतर बोलता रहा, किंतु आपके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला और अब भी आप मौन हैं। गणेश ने विनम्र स्वर में कहा, महर्षि, दीपक की लौ का आधार तेल होता है। जितना तेल होता है, उतनी ही लौ प्रखर या क्षीण होती है। महर्षि, मानव हो या दानव प्राणशक्ति सबमें होती है, किसी में कम किसी में अधिक, किंतु असीम प्राणशक्ति किसी में नहीं होती। थोड़ा रुककर उन्होंने आगे कहा, इस प्राणशक्ति को कितना संचित करना है, कितना उसका व्यय करना है, वह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। महर्षि वेद व्यास उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे। गणेश ने कहा, महर्षि जो इस शक्ति को दुरुपयोग से बचा लेते हैं, वे जीवन में सफल होते है। सिद्धि को प्राप्त करने का मूल आधार वाणी का संयम है। जो लोग अपनी वाणी का संयम नहीं कर पाते, वे अनर्गल बोलते हैं। अर्थहीन शब्द विग्रह और द्वेष को जन्म देते है। वाणी का असंयम हमारी प्राणशक्ति को चूसता रहता है। वह व्यक्ति को खोखला कर देता है। इसीसे मैं मौन की साधना को सबसे बड़ी साधना मानता हूं। इसलिए मैं मौन का उपासक हूँ। आपकी वाणी के ओज को धारण करने के लिए यह मौन आवश्यक था। वाणी को सरस्वती माना गया है, लेकिन वाणी के संयम को ही सबसे बड़ा संयम भी कहा गया है। इसीलिए मैंने मौन रह कर इस महान ग्रंथ को लिख पाने की साधना पूरी की है। गणेश के ये वचन सुनकर महर्षि वेदव्यास की आंखें डबडबा आईं। जीवन के एक परम तत्व का उद्‌घाटन हो गया।

२) आधा महाभारत- महाभारत युद्ध का पहला दिन था, दोनों सेनाएं संग्राम के लिए आमने-सामने आ डटीं। युद्ध शुरू होने को ही था कि युधिष्ठिर रथ से उतरकर कौरवों की सेना में घुस गए और जाकर गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म आदि वरिष्ठजनों को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लिया। इधर चिंतित अर्जुन ने कृष्ण से पूछा, भगवन। युधिष्ठिर यह क्या कर रहे हैं ? इस पर कृष्ण बोले, अर्जुन। संघर्ष के पहले युधिष्ठिर के गुरुजनों के प्रति अपना आदर व्यक्त करने से उनकी सद्‌भावनाएं हमारे पक्ष में आ गई हैं। उस ओर की सेना के पास अब केवल उनका शारीरिक पुरुषार्थ ही रह गया है। आधा महाभारत शेष रहा, उसे जीतने के लिए अब तुम सब युद्ध प्रारंभ करो।

३) गुणों को ग्रहण करो- द्वापर युग की बात है। श्रीकृष्ण पांडवों सहित एक मार्ग से गुजर रहे थे। वहां एक जगह उन्हें एक रोगी कुत्ता दिखाई दिया। उस कुत्ते के शरीर पर कीड़े लगे हुए थे और मक्खियां भिनभिना रही थीं। कुत्ते के आसपास सारे मार्ग पर दुर्गंध आ रही थी। उसे देखकर सभी पांडवों ने नाक-भौंह सिकोड़ ली। सभी उससे दूर हटकर चलने लगे। श्रीकृष्ण सबसे पीछे थे। उन्होंने कुत्ते को देखते ही कहा, इसके दांत कितने सुंदर हैं ? उनके मुख से ये शब्द सुनकर सभी

पांडव बहुत शर्मिंदा हुए। सज्जन सदा बुराई में भी अच्छाई देखते हैं। हमें भी व्यक्ति में गुणों को देखना चाहिए और अवगुणों को छोड़ देना चाहिए। किसी भी व्यक्ति में कितने ही अवगुण क्यों न हों, फिर भी उसमें कोई न कोई गुण अवश्य छिपा होता है। हमें उसके गुणों को ग्रहण करना चाहिए और अवगुणों की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए।

४) पश्चाताप- महाभारत का प्रसंग है। एक राजा अपनी रानियों सहित वन भ्रमण के लिए गया। रानी ने वन में एक सुंदर हिरण को देखकर राजा से आग्रह किया कि वह उस हिरण को मार लाए। राजा को उदास मन से रानी का आग्रह मानना पड़ा और उस तरफ एक तीर छोड़ा। तीर लगने के बाद वह हिरण भागता एक तालाब के पास पहुंचा। राजा के वहां पहुंचने पर हिरण ने राजा से पूछा, तुम यहां कैसे पहुंचे ? राजा ने कहा कि मैं आपके खून के टपकों के सहारे यहां आया हूं। हिरण ने एक लंबा सांस छोड़ते हुए कहा, शरीर में खून सबसे प्रिय होता है। जब इस खून ने ही मेरा साथ नहीं दिया तो रानी भी परलोक में आपका साथ नहीं देगी। राजा को बहुत पश्चाताप हुआ और हिरण की तब अपने पुत्र की तरह देखभाल की और रानी को डांटा।

५) रिश्तों से मोह- महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद गांधारी को जब अपने पुत्रों की युद्धभूमि में वीरगति पाने की खबर मिली, तो वह सिहर उठी। उसके लिए यह खबर हृदय विदारक थी। खबर सुनकर वह बहुत व्याकुल हो गई। वह विगत कई दिनों से अपने पुत्रों को नहीं देख पाई थी। अब वह अपने मृत पुत्रों को देखने को अधीर हो गई। इस खबर के संदेशवाहक कोई और नहीं स्वयं श्रीकृष्ण थे। उन्होंने गांधारी को युद्धभूमि में जाने से रोकने की बहुत कोशिश की, पर वह नहीं मानी। अधीर गांधारी ने मृत पुत्रों के दर्शनार्थ अपनी आंखों की पट्टी भी खोल दी। वीरान युद्धस्थल में रक्त से सनी अपने पुत्रों व संबंधियों की लाशों देख वह क्रंदन करते हुए हाहाकार कर उठी। वह लाशों को देख इतनी दुखी हुई कि उसने जीवन पर्यंत वहीं रहकर प्राण देने का निर्णय कर लिया। श्रीकृष्ण ने उनसे घर वापस चलने का बहुत आग्रह किया। उन्होंने गांधारी को समझाया- मात, पृथ्वी लोक में मानवीय जीवन संबंध तो केवल प्राण जीवित रहने तक ही हैं। प्राण पखेरू उड़ते ही सब खत्म हो जाता है। रिश्तों से मोह केवल भ्रम है।

गांधारी श्रीकृष्ण की बात न मानकर, वहीं अकेली रोती- बिलखती, भूखी-प्यासी बैठी रही। कई दिन बीत गए। आंसू भी कब तक साथ देते। गला सूख गया, आंखे पथराने लगी, शरीर शिथिल पड़ने लगा और भूख की अग्नि भी ज्वलंत हो उठी। गांधारी निरीह आंखों से इधर-उधर देख रही थी। तभी उसकी नजर एक पेड़ पर पड़ी जिसमें फल लगे हुए थे। पेड़ ऊंचा था। गांधारी की भूख इतनी असहनीय हो उठी थी कि वह लाशों के ढेर पर चढ़कर फल तोड़ने की कोशिश करने लगी। तभी कृष्ण घूमते हुए वहां पहुंचे। गांधारी को इस तरह लाशों पर चढ़कर फल तोड़ने की कोशिश करते देख बोले- माते, मैंने पहले ही आपको कहा था कि रिश्तों से मोह उनके जीवित रहने तक ही है। आप अपनी जिद छोड़ घर चलकर भोजन कीजिए। गांधारी को जीवन का मर्म समझ आ गया था। वह श्रीकृष्ण के साथ महल लौट आई।

६) कर्म का प्रतिफल- यह प्रसंग महाभारत के द्रोपदी चीरहरण का है। जुए में हारे हुए पांचों पाण्डव सिर नीचा किए बैठे थे। दुर्योधन की आज्ञा से दु:शासन द्रोपदी को घसीटते हुए भरी सभा में लेकर आए जहां अबला की भरी सभा में लाज लूटी जाने वाली थी। द्रोपदी ने सहायतार्थ सभी से दु:खी मन से प्रार्थना की किन्तु कोई आगे नहीं आया। अन्त में उसने कृष्ण को पुकारा। कृष्ण आए और बोले- देवी यदि तुमने किसी को दान में वस्त्र दिया हो तो याद करो। द्रोपदी बोली- देव, एक बार मैं पानी भरने तालाब गई थी वहां तपस्वी साधु की लंगोटी पानी में बह गई थी। मैंने उन्हें अपनी साड़ी का आधा भाग फाड़कर दे दिया था। कृष्ण बोले- द्रोपदी, तुम अब चिंता मत करो। तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। दु:शासन आदि सभी साड़ी खींच थक कर बैठ गए। इस प्रकार दान कर्म के प्रतिफल स्वरूप ही द्रोपदी की रक्षा हो सकी।

७) सुख की अनुभूति- पांडव अपनी पत्नी द्रोपदी सहित वन में अज्ञातवास कर रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा एक दिन किसी तरह पता लगाकर द्रोपदी से मिलने पहुंची।

उन्होंने देखा कि द्रोपदी अभावग्रस्त जीवन बिताते हुए प्रसन्न एवं संतुष्ट हैं। बातचीत के दौरान द्रोपदी ने कहा, अज्ञातवास व कष्टों का समय बहुत आनंदपूर्वक बीत रहा है। हमारे भाग्य में जो लिखा है, उसे खुशी-खुशी बिताने में ही कल्याण है।

सत्यभामा ने कहा, हमें महलों में रहकर जिस आनंद की अनुभूति नहीं हो रही, उसे तुम यहां कैसे प्राप्त कर रही हो ? हमें भी तो उन साधनों या उपायों से अवगत कराओ ?

द्रोपदी मुस्कराईं तथा बोलीं, भाभी, जो खुशी-खुशी कष्ट उठाने को तत्पर रहता है, उसे सदा सुख मिलता है। दुख के समय को सहज भाव से बिता देने वाले को दुख की अनुभूति कभी नहीं होती है। इसी कारण मैं सदैव अपने को सुखी मानकर आनंदमय रहती हूं। सत्यभामा द्रोपदी को प्रणाम कर आनंदपूर्वक लौट गईं।

८) गुरु भक्त अरुणि- धौम्य ऋषि के आश्रम में राजा हो या रंक सभी के बच्चे पढ़ते थे। सभी के लिए एक ही शिक्षण पद्धति थी। सभी के साथ समान बर्ताव किया जाता था। किसी के विशेष आरक्षण देने की नीति नहीं थी। उन बच्चों में एक अरुणि भी था। एक दिन ऐसी मूसलाधार वर्षा शुरू हुई कि रुकने को न आई। बारिश को लगातार बढ़ता देख धौम्य ऋषि को चिंता हुई कि कहीं बारिश में आश्रम के खेतों की मेड़ न टूट जाएं। उन्होंने अरुणि को कहा कि एक बार वह जाकर देखे कि कहीं कोई मेड़ टूटी तो नहीं है और अगर ऐसा हो तो तुरन्त उसकी मरम्मत कर दे। अपने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर खेतों की ओर चला गया। वहां पहुंचकर उसने देखा कि बारिश के पानी के तेज प्रवाह के कारण एक मेड़ टूट चुकी थी। पानी का बहाव इतना तेज था कि मिट्टी आदि सब बहाए लिए जा रहा था। अरुणि ने मेड़ को ठीक करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु कुछ न हो सका। वह मेड़ पर नई मिट्टी रखता तो पानी का बहाव उसे तुरंत बहा ले जाता। सूर्य छिप रहा था। थोड़ी ही देर में चारों तरफ अंधेरा छा गया। गुरु की आज्ञा थी, पानी को रोकना था। दृढ़ निश्चयी गुरु भक्त बालक अंतत: पानी को रोकने के लिए खुद ही मेड़ के टूटे हुए भाग पर लेट गया।

प्रात:काल गुरु को शिष्य की याद आई और तुरन्त उसे देखने के लिए खेतों की ओर चल दिए। वहां जाकर देखा कि अरुणि मेड़ के टूटे भाग पर बेहोश पड़ा हुआ है। ठंड से उसके हाथ पैर फूल गए थे, शरीर कांप रहा था। गुरु जी को अपने शिष्य को इस हाल में देख असह्य वेदना हुई। वह उसे उठाकर आश्रम ले गए। आग जला कर उसकी ठंड को दूर किया तब अरुणि की चेतना जागृत हुई। गुरुजी के पूछने पर उसने उन्हें सारी बात बताई। गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया। अब वह उनका सबसे प्रिय शिष्य बन गया था। बाद में अरुणि अनेक विद्याओं में पारंगत हुआ, मगर यह उसकी गुरु भक्ति है, जिसे हम आज भी याद करते हैं।

९) सबसे बड़ा भक्त कौन ?- अर्जुन को सबसे बड़ा भक्त होने का गर्व हो गया था। जब श्रीकृष्ण को इस बात का भान हुआ तो, वे अर्जुन को लेकर देशाटन पर निकल पड़े। उन्होंने रास्ते में एक ऐसे ब्राह्मण को देखा, जो आंखें मूंदे बैठा हुआ सूखी घास खा रहा था। जबकि आस-पास हरी घास भी थी। अर्जुन से रहा नहीं गया, उसने भगवान श्रीकृष्ण से उस ब्राह्मण द्वारा सूखी घास खाने के बारे में पूछा। इस पर कृष्ण ने कहा कि सूखी घास में चैतन्य भाव लुप्त हो जाता है। अर्जुन की दृष्टि ब्राह्मण की कमर में लटक रही तलवार पर पड़ी। फिर अर्जुन ने प्रश्न किया। कृष्ण ने कहा कि तुम स्वयं ही ब्राह्मण से पूछ क्यों नहीं लेते। तब अर्जुन ने ब्राह्मण से पूछा कि हिंसा का सबसे बड़ा प्रतीक तलवार आपके पास क्यों है ? ब्राह्मण ने कहा कि इससे मुझे चार लोगों को काटकर समाप्त करना है। अर्जुन ने पूछा किस-किसको ? ब्राह्मण ने कहा सबसे पहले उस दुष्ट नारद को जो न दिन देखे न रात, जब चाहे गाते बजाते आये और मेरे भगवान को जगा दे। दूसरा दुष्ट प्रह्लाद, वह तो पूरा पाजी है। उसने तो

मेरे भगवान की मक्खन जैसी कोमल देह को कठोर स्तम्भ के भीतर से निकलने को बाध्य कर दिया। तीसरी वह दुष्ट द्रौपदी है, जिसकी इतनी हिम्मत की जब मेरे भगवान भोजन करने बैठे तभी उनको बुलाया और उन्हें भोजन नहीं करने दिया और चौथा वह अर्जुन जिसका इतना दुस्साहस की मेरे प्रभु को उसने अपना सारथी ही बना डाला, उसको तो मैं किसी भी स्थिति में नहीं छोडूंगा। ब्राह्मण की भक्ति भाव की गहराई को देखकर अर्जुन का सबसे बड़ा भक्त होने का गर्व चूर-चूर हो गया।

१०) माँ का दर्द - महाभारत का युद्ध चल रहा था। दोनों पक्ष एक दूसरे का संहार करने में प्राणपण से जुटे थे। एक दिन द्रोपदी के सोते हुए पांच पुत्रों को द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा ने मार डाला। पाण्डव क्रोध में पागल हो गए। वे पकड़कर अश्वत्थामा को ले आए तथा द्रोपदी के सामने मारने लगे।

द्रोपदी ममता के दर्द को झेल रही थी। उसमें विवेक जाग्रत हो गया। वह बोली पुत्र के मरने पर माता को कितना दु:ख होता है यह मैं जानती हूँ। अश्वत्थामा के मरने पर भी मेरे पुत्र जीवित नहीं होंगे। गुरु ऋण और गुरुमाता के स्नेहोपकार का स्मरण कर इसे छोड़ दो। द्रोपदी के विशाल हृदय का आज भी स्मरण किया जाता है।

११) अन्न काअसर- महाभारत का युद्ध अंतिम दौर में था। महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की सम्मति से रानी द्रौपदी तथा अपने भाइयों के साथ शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह के समीप आए। भीष्म पितामह शरशैया पर लेटे थे। युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ उनके चरणों के समीप बैठे उनका धर्मोपदेश सुन रहे थे।

युधिष्ठिर के निवेदन करने पर भीष्म पितामह उन्हें उपदेश देने लगे। इसी बीच रानी द्रौपदी को हंसी आ गई। बड़ों के बीच कुलवधू का इस तरह हंसना भीष्म पितामह को अच्छा नहीं लगा। उपदेश बीच में रोककर उन्होंने पूछा, बेटी, तू हंसी क्यों? द्रौपदी ने कहा, मुझसे भूल हो गई पितामह, क्षमा करें। लेकिन पितामह को संतोष नहीं हुआ। वह बोले, कोई भी शीलवती कुलवधू गुरुजनों के सम्मुख अकारण नहीं हंसती। संकोच छोड़कर तू अपने हंसने का कारण बता। द्रौपदी वहां उपस्थित हुई और बोली, पितामह मेरी भी एक शंका है। बोलो बेटी, भीष्म ने स्नेहपूर्वक कहा। पितामह। मैं पहले ही क्षमा याचना कर लेती हूं। प्रश्न जरा टेढ़ा है। बेटी, जो पूछना है निर्भय होकर पूछो। भीष्म बोले।

द्रौपदी हाथ जोड़कर बोली, यह बहुत ही अभद्रता की बात है, पर आप आज्ञा देते हैं तो कहनी ही पड़ेगी। आप अभी धर्म को ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं किंतु जब मेरा चीरहरण हो रहा था तब आपका यह धर्मज्ञान, विवेक कहां चला गया था? उस समय सभा में आप और न जाने कितने योद्धा बैठे थे। मैं कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए आप लोगों से रो-रोकर प्रार्थना कर रही थी, मगर किसी ने मेरी रक्षा नहीं की। भरी सभा में मेरा अपमान पूरे कुल का अपमान था। एक अबला के चीर हरण का दृश्य आप अपनी आंखों से किस प्रकार देख सके थे ? यह सुनकर पांडव चौंक उठे। भीष्म गंभीर हो गए। यह प्रश्न उनके सम्मुख पहली बार नहीं आया था। जिस समय यह घटना घटी थी उस समय भी यही प्रश्न उनके सम्मुख था। उसके बाद जब कभी उन्हें इस घटना का स्मरण होता, तो वह प्रश्न रूप में ही उनके सामने रहता। आज द्रौपदी ने स्पष्ट पूछ लिया था। मुझे लगा कि उसी घटना के बाद आपको धर्म का ज्ञान हुआ। मन में यह बात आते ही मुझे हंसी आ गई। आप मुझे क्षमा करें।

इस पर पितामह ने कहा, तुम्हारा प्रश्न सही है। बेटी, मुझे धर्मज्ञान तो उस समय भी था, परंतु दुर्योधन का अन्यायपूर्ण अन्न खाने से मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी और पौरुष जवाब दे चुका था, इसी से मैं उस सभा में ठीक निर्णय करने में असमर्थ हो गया था। परंतु अब अर्जुन के बाणों के लगने से मेरे शरीर का सारा रक्त निकल गया है और मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई है। भीष्म बोले, बेटी, तुम ठीक कहती हो। असल में बात यह है कि मैं उस समय दुर्योधन का पाप से पूर्ण अन्न खा रहा था।

वही पाप मेरे मन और मस्तिष्क में समाया हुआ था। मैं देख रहा था कि यह अत्याचार हो रहा है, अधर्म हो रहा है, लेकिन उसको रोक नहीं सका। मैं चाहता था कि ऐसा न हो, किंतु मना करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं रह गया था।

लेकिन आज सहसा यह ज्ञान कैसे प्रकट हो रहा है ? द्रौपदी ने बीच में ही कहा। बेटी, आज अर्जुन के बाणों ने मेरा वह सारा रक्त बाहर निकाल दिया है जिसमें दुर्योधन के पाप के अन्न का प्रभाव था। अब तो मैं रक्तविहीन प्राणी हूं, इसलिए मेरा विवेक आज सजग है। मेरे शरीर से पाप के अन्न से बना रक्त निकल गया है।

इससे इस समय मैं धर्म के तत्वों को समझ रहा हूं और उसका विवेचन कर रहा हूं। इसके बाद द्रौपदी के पास कुछ कहने को नहीं रहा। इस उत्तर से वह संतुष्ट हो गई।

१२) भविष्य को पहचान- एक बार राजा जन्मेजय ने महर्षि शुकदेव से पूछा, महर्षि, किसी मनुष्य के भले-बुरे भविष्य को कैसे जाना जाये ?

महर्षि ने उत्तर दिया, जिसके विचार अधोगामी और आचरण निकृष्ट कोटि के होने लगें, समझना चाहिए कि उसके दुर्दिन समीप हैं। श्रेष्ठ गुणों को अपनाने के लिए अपने को सुधारने के वास्ते जो लोग प्रयत्न कर रहे हों समझना चाहिए कि उनका भविष्य जल्द ही उज्ज्वल होगा।

१३) सही विजय- महाभारत चल रहा था। कौरव-पाण्डवों के बीच भयंकर युद्ध चल रहा था। कर्ण और अर्जुन के बीच भयंकर बाणवर्षा चल रही थी। अवसर पाकर एक भयंकर सर्प कर्ण के तूणीर में घुस गया। कर्ण ने बाण निकाला तो स्पर्श कुछ अनोखा लगा। उसने सर्प को देखा और आश्चर्य से पूछा, तुम यहां किस प्रकार आए ? सर्प ने कहा, अर्जुन ने एक बार खाण्डव वन में आग लगा दी थी। उसमें मेरी माता जल गईं। तभी से मेरे मन में प्रतिशोध जल रहा है और इस ताक में था कि कोई अवसर मिले और मैं अर्जुन के प्राण हरण करूं। आप मुझे तीर के स्थान पर चला दें। मैं जाते ही अर्जुन को डंस लूंगा। आपका शत्रु मर जायेगा और मेरा प्रतिशोध शान्त हो जायेगा। कर्ण ने कहा, अनैतिक उपाय से सफलता पाने का मेरा तनिक भी विचार नहीं है। सर्प देव आप वापस लौट जायें।

१४) द्रोण और द्रुपद- दोनों गुरुकुल में साथ-साथ पढ़ते थे। द्रुपद राजकुमार और द्रोण निर्धन ब्राह्मणके पुत्र थे। दोनों की मित्रता हो गई। द्रुपद ने कहा- जब मैं राजा बनूंगा तो आपका बड़ा सत्कार करूँगा। कालान्तरमें द्रुपद राजा हो गये। द्रोणाचार्य निर्धनतामें जीवन-यापन करते हुए तप करने लगे। कृपाचार्यकी बहिन कृपीके साथ इनका ब्याह हो गया। अश्वत्थामा नामक एक पुत्र हुआ। शास्त्र और शास्त्रोंके अद्वितीय ज्ञाता होते हुए भी इतने निर्धन थे कि एक गाय भी इनके पास न थी। अश्वत्थामा ने ऋषि बालकों के मुख से दूध की महिमा सुनी तो आकर माता से मचल गया कि मैं- तो दूध पीऊँगा। माताने बहुत समझाया पर बालक न माना तब उसने चावलके आटेको घोलकर दिया और कहा- लो, यह दूध है, इसे पीलो। इससे पहले बालकने कभी दूध नहीं पिया था। अत: आटेके जलको पीकर प्रसन्नता से नाचता हुआ आकर दूसरे बालकों से कहने लगा कि- मैं दूध पीकर आया हूँ। बच्चोंने तिरस्कार करके कहा कि- तुम्हारे यहाँ गाय तो है ही नहीं, फिर दूध कहाँसे पिया ? अश्वत्थामा रोने लगा। इससे द्रोणाचार्यको बड़ा दु:ख हुआ। तब उन्हें मित्र द्रुपदकी याद आई। वे द्रुपदके राज-दरबारमें पहुँचे और मित्र-मित्र कहकर मिलना चाहा। राजमद से भरे द्रुपदने सहपाठीका तिरस्कार किया। सदाचारको भुलाकर बोला- रे दरिद्र ब्राह्मण। गुरुकुलकी बातको भूल जा। मैत्री बराबर वालोंसे होती है। तू निर्धन ब्राह्मण, मैं राजा, मेरी-तेरी मित्रता कैसी। तुझे सीधा लेना हो तो यज्ञशालामें जाकर ले ले। नहीं तो अपने घर की राह पकड़। द्रुपदने अहमारवश तिरस्कार किया।

दैवयोगसे ब्राह्मण इस अपमानको सहन न कर सका। उसने सहिष्णुतारूप सदाचार का त्याग कर दिया। इस अपमानको सुधापानके समान मानकर सह लेना चाहिए था। सम्मानको विषके समान मानकर उसे पीनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिए थी। असहिष्णुतासे द्रोणाचार्य भीष्मपितामहके पास जाकर उनके आश्रित रहकर राजपुत्रोंको पढ़ाने लगे। जबकि कुलपतिके यहाँ न जाकर गुरुकुलमें निवास कर छात्रोंको पढ़ाना चाहिए। ऐसा प्राचीन नियम है। द्रोणाचार्य प्रतिक्रियाशील हो गये, अपने अपमानको भूले नहीं। द्रुपदसे बदला लेने के लिए उन्होंने अपने शिष्यों से यही दक्षिणा माँगी कि तुम द्रुपदको जीवित पकड़कर लाओ। गुरुकी आज्ञा मानना शिष्यका कर्त्तव्य है, अनुचित, उचित का विचार आवश्यक नहीं है। आज्ञा गुरुणों ह्यविचारणीया। कौरव-पाण्डव सेना लेकर गये और परास्त कर पकड़ लाये। तब द्रोणाचार्यने व्यङ्गके स्वरमें कहा- राजन्। मैं आपसे मित्रता करना चाहता हूँ। लज्जित द्रुपदने कहा- ब्रह्मन्। अब तो मैं आपका बन्दी हूँ, मित्रता की क्या बात ? आचार्य द्रोणने उन्हें क्षमा नहीं किया। उनको आधे राज्यसे वंचित कर दिया। यह ब्राह्मण सदाचारके विरुद्ध हुआ।

द्रुपदने भी क्षमा नहीं किया, वह मारणतन्त्रका प्रयोग कर बदला लेने के विचार से सैकड़ों ब्राह्मणोंके पास गया। किसीने स्वीकार नहीं किया। तब अतमें कर्मकाण्डमें प्रवीण शफ्के पास जाकर उसने अपनी बात कही। बहुत बड़ी दक्षिणाके लोभमें भी शफतैयार नहीं हुए। आग्रहको देखकर उन्होंने अपने भाई लिखितके पास राजा को भेजा। लिखितने द्रुपदका आग्रह स्वीकार कर दक्षिणाके लोभसे ब्राह्मणोचित सदाचारको त्याग कर अभिचार (मारण) यज्ञ कराया। उसीसे दृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुइे जिसने द्रोणाचार्य का वध किया। उसी यज्ञसे द्रौपदी उत्पन्न हुई, जो महाभारतका कारण बनीं। सदाचार के परित्याग से महान् युद्ध हुआ। एक महान् आचार्य के सदाचार त्यागने पर असंख्य प्राणियोंका संहार तथा स्वयंका भी वध हुआ। एक तपस्वी ऋषिकी तरह प्राण त्यागकर द्रोणाचार्यने उत्तम लोकको प्राप्त किया। सब कुछ भगवदिच्छासे हुआ। परन्तु सदाचार के त्याग का कुपरिणाम प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है अत: सन्तको सदाचार की रक्षा करनी चाहिए।

१५) श्रीयुधिष्ठिर- एकबार चातुर्मास्यमें धर्मराजजीने नित्य दस हजार साधु-ब्राह्मणोंकी सेवाका व्रत लिया। अभिमान रहित विशुद्ध सेवाको देखकर एकदिन श्रीशुकदेवजी आकर पंगतमें बैठ गये तो बिना बजाये घण्टा अपने-आप बजने लगा। युधिष्ठिरजीने श्रीकृष्णसे पूछा तो उन्होंने बताया कि तुम्हारे प्रेम को देखकर बिना बुलाये श्रीशुकदेवजी आ गये हैं, तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो गया। उनके पास मत जाना, नहीं तो चले जायेंगे। आत्माराम होनेसे दस हजार ऋषियोंके समान अकेले शुकदेवजी हैं। वहाँ की चरण-रज सिर पर धारण कर लो।

१६) तुलाधार- श्रीजाजलि ऋषिने समुद्र तट पर एक वटवृक्षके नीचे खड़े होकर तपस्या की। दीर्घकाल तक ध्यान लगाये, सर्दी, गर्मी, वर्षा सहन करते, केवल वायु पीते रहे। वे इस प्रकार खड़े रहे कि पक्षियोंने उन्हें ठूंठ समझकर उनकी जटामें घोंसला बना लिया और अण्डे दे दिये। उन अण्डोंके फूटने पर जो शावक निकले, वे वहीं पले, बढ़े और उड़ गये। जाजलिकी समाधि खुली, इच्छा करते ही इन्हें समस्त भूगोल, खगोलका ज्ञान प्रत्यक्षके समान हो रहा था। एकदिन एक बगुलीने, इनके ऊपर बीट कर दिया इन्होंने क्रोधसे उसकी ओर देखा तो वह भस्म होकर गिर गई। अब इन्हें अपने तप-तेज का बड़ा भारी अहंकार हो गया कि मेरे समान तपस्वी-ज्ञानी कोई नहीं है। आकाशवाणी ने सावधान किया कि जाजलि। तुम्हारा गर्व उचित नहीं है। इस पर भी इन्हें बोध न हुआ।

एकदिन ये किसी नगरमें भिक्षार्थ गये। वहाँ एक पतिव्रता अपने पतिकी सेवामें संलग्न थी। इन्होंने उसके द्वार पर पहुँचकर आवाज लगाई- भिक्षां देहि। पतिव्रता ने कहा- महात्मन। प्रतीक्षा कीजिये, मैं अभी पति-सेवासे निवृत्त होकर भिक्षा देती हूँ। जाजलिने अपना अपमान समझकर क्रोध किया, तब वह बोली- आप भिक्षा लीजिये और जाइये। मैं बगुली

नहीं हूँ जो आपके क्रोधसे भस्म हो जाऊँ। आश्चर्यचकित होकर ऋषिने उससे पूछा- देवि। इस बातको तुमने कैसे जाना? उसने कहा- मुझे पति सेवासे अवकाश नहीं है, तुम काशीमें जाकर तुलाधार वैश्यसे पूछो। ऋषि तुलाधारके पास आये, उस समय वे घी तोल रहे थे उन्होंने जाजलिको देखते ही कहा- आप बगुली को भस्म करके अहमार में चूर पतिव्रताके भेजे मेरे पास आये हैं, यदि दो घड़ी तक आप रूकें तो अवकाश पाकर सब बात बता सकता हूँ, अन्यथा आप धर्मव्याधके पास जाकर पूछ लीजिये। ऋषि धर्मव्याधके पास पहुँचे, उस समय वह माँस तोल रहा था। उसने झट उठकर दण्डवत्प्रणाम किया और कहा- आप पतिव्रताके भेजे तुलाधारके पास होकर मेरे पास आये हैं, तो सुनिये, शास्त्रका तात्पर्य यह है कि जिसका जो धर्म है, उसे कर्त्तव्य समझकर वह उसका पालन करे और मनसा-वाचा-कर्मणा सब कुछ भगवानको अर्पण करे तो उसका योग सिद्ध हो जाता है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। उस पतिव्रता, तुलाधार एवं हमने भी उक्त धर्मका पालन करके सर्वज्ञताकी सिद्धि प्राप्त की है, परन्तु अहंकारका लेश नहीं है। अब तुलाधारको अवकाश है, आप उनके पास जाइये।

जाजलि तुलाधारके पास आये तुलाधारने ऋषिको प्रणाम किया, स्वागत-सत्कार करके आसन पर बैठाया। इसके बाद तप और अहमारकी बात बताकर वे बोले- आप आज्ञा करें, मैं आपकी क्या सेवा करूं ? ऋषिने कहा- आपको यह ज्ञान कैसे हुआ, आपने कितने दिन तप किया। तुलाधार बोले- अपने वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए किसी का अहित न करना, सबमें भगवानको देखना, दीन-दु:खियोंकी सहायता करना, ग्राहकों को ईश्वर-तुल्य मानकर उनके साथ व्यवहार करना, बस यही मैं जानता हूं। इसी धर्मका पालन करने से मुझे सब कुछ ज्ञान है। मैं घर छोड़कर अन्यत्र कहीं तप करने नहीं गया। अहमारका नाश ही सब साधनोंका उत्तम फल है। धर्मव्याध बिना हिंसाके कुलका धर्म मानकर माँसका व्यापार करता है एवं प्राणीमात्रसे अपने प्रभुको देखता है। इसी प्रकार वह पतिव्रता अपने पतिको परमेश्वर मानकर उसकी सेवामें तल्लीन रहती है अत: उसे भी वास्तविक तत्वका बोध है। इस उपदेशको सुनकर ऋषिका गर्व नष्ट हो गया। वे अपने साधन-भजनमें लग गये। देखत कौ तुलाधार इस वाक्यसे यही ध्वनि निकलती है कि महाभारत के तुलाधारने ही प्रेमा-भक्ति के रसका आस्वादन करने के लिए पुन: जन्म लिया।

१७) ज्ञान की खोज- जाजलि नाम का एक ब्राह्मण था। इसके लिए वह जगह-जगह भटकता फिरा, अनेक साधु-महात्माओं के पीछे दौड़ता रहा, पर उसे कोई ऐसा ज्ञानी नहीं मिला, जिसे अपना गुरु बना कर वह आश्वस्त महसूस कर सके। अपनी खोज से उसे निराशा महसूस होने लगी कि अचानक एक दिन उसकी मुलाकात एक नए साधु से हुई। जिज्ञासावश उससे भी जाजलि ने किसी सच्चे गुरु का पता बताने को कहा, जो उसे सही राह दिखा सके। साधु ने उसे सलाह दी कि वह उसी नगर के तुलाधार वैश्य के पास जाए। उसी से उसे ज्ञान मिलेगा। जाजलि पहले तो साधु को अविश्वास से देखता रहा, उसे लगा कि शायद साधु उसका मजाक बना रहा है। लेकिन उसके मुख पर गंभीरता देखकर जाजलि ने उसकी सलाह आजमाने का इरादा किया। वह तुरंत ही साधु से विदा लेकर तुलाधार वैश्य की तलाश में निकल पड़ा। तुलाधार के पास पहुंचकर उसने अपनी इच्छा प्रकट की और निवेदन किया कि मुझे ऐसा ज्ञान दीजिए जिससे मेरा जीवन सुधर जाए। तुलाधार ने विस्मय से उसकी ओर देखा, फिर बोला, भैया मैं तो कोई ज्ञानी पंडित नहीं हूं जो सच्ची राह दिखा सकूं। पर हां, वह रास्ता जरूर बता सकता हूं, जिस राह स्वयं चलता हूं। सच पूछो तो मैं हमेशा अपनी इस तराजू से मार्गदर्शन पाता हूं। इसकी डंडी हमेशा अपनी इस तराजू से मार्गदर्शन पाता हूं। इसकी डंडी हमेशा सीधी रखनी है, न ऊंची, न नीची। जाजलि ने अनुभव किया कि शायद यही कारण है कि दुकान पर आनेवाली सभी लोगों के लिए तुलाधार हर छोटे-बड़े, अमीर-गरीब के लिए अपना कार्य-व्यवहार हमेशा एक समान रखता है। जाजलि को समझ में आ गया कि

हम जो कुछ कर्म करते हैं, उसका सीधा परिणाम हमारे मन पर होता है। कर्मयोगी की साधना और जप उसके कर्म में ही निहित होता है। उसी से उसकी चित्त शुद्धि होती है। और निर्मल मन पर ज्ञान का प्रभाव पड़ता है। जाजलि जिस उदेश्य को लेकर तुलाधार के पास गया था, उसकी पूर्ति हो गई। उसे ज्ञान मिल गया।

१८) विदुर- श्रीविदुरजी धर्मनीतिकी बात कहते थे, इससे दुर्योधनने इनको पाण्डवोंका पक्षपाती मानकर भरी सभामें इनका तिरस्कार किया। साधु-स्वभावसे सहर्ष इन्होंने उस दरबारका त्याग किया। धनुष-बाण, मुकुट और राजवस्त्र, राजद्वार पर रखकर वनको चले गये। धनुषको इसलिए त्यागा कि पास रखने पर ये लोग यही समझेंगे कि विदुर पाण्डवोंके पक्षसे लड़ेंगे। कौरव पक्षके त्याग का कारण यह कि इन्हें श्रीकृष्ण छोड़ चुके हैं, अत: ये हैं तो चक्रवर्ती परन्तु मृतकके तुल्य हैं। इनके गृह में कुशल नहीं है अत: इनका त्याग किया। पुन: अब हम वनों और तीर्थोंमें विचरेंगे उसके अनुरूप वेश रहना चाहिए। अस्त्र-शस्त्र राजा या बधिकके चिन्ह हैं, अत: त्याग किया। उसी प्रकार श्रीकरमैतीजीने विचारा कि जब तक शरीर पर आभूषण रहेंगे, तब तक दुष्ट-विमुख इन्हें लेनेकी इच्छा करेंगे, इनके न रहने पर मेरी ओर नहीं देखें। पुन: आभूषण कामके आयुध हैं, वह काम है तो विश्वविजयी और चक्रवर्ती परन्तु भक्तोंकी दृष्टिमें मृतक तुल्य है, फिर भी उससे सम्बन्धित ये आभूषण त्याज्य हैं। वैराग्यमें श्रृंगारके स्वांग की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार आश्रमके अनुरूप वेशभूषा उचित समझकर आभूषणोंका त्याग किया।

१९) खरिया खुरपा रीति- महाभारत की कथा है- एकबार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्रमें बहुतसे धार्मिक लोग एकत्र हुए। सभीने स्नान एवं यथाशक्ति दान किया। कड़ी धूपमें कुछ यात्रियोंके समूह पर बादलने छाया कर रक्खी थी। वे जिधर भी जाते उन पर बादलकी शीतल छाया रहती। सभी लोग परस्पर विचार करने लगे कि हम सभी पुण्यवान हैं अथवा हम सभीमें से कोई एक पुण्यवान है, जिसके प्रभावसे सभी पर छाया है। परीक्षाके निमित्त समूहमें से एक-एक करके चलने लगे। उनमें एक घसियारा था। जब वह चला तो उसके ऊपर छाया करते हुए बादल भी उसके साथ चले। तब सभीने पूछा कि- बताओ, आपने कौन-सा पुण्य-दान किया है। घसियारेने कहा- मेरे पास कुछ था ही नहीं, केवल घास खोदने-बाँधने के लिए खुरपा-खरिया थी। इसीसे मैं जीविका चलाता था और घर-धन आदि कुछ भी मेरे पास नहीं था। मैंने तो केवल खरिया खुरपाका ही दान किया है। सभीने समझ लिया कि इसने अपना सर्वस्व दान किया है और इसे दानका अहंकार नहीं है अत: यही श्रेष्ठ दानी है। जिसने अपने सम्पूर्ण राजकोष आदिका दान किया था वह श्रेष्ठ प्रमाणित नहीं हुआ क्योंकि उसे अपने दानका अहंकार बना रह गया था। श्रीहरिवंशजी भी इसी प्रकार प्रभु प्रीत्यर्थ अपना सर्वस्व दान करके उसको भगवदर्पण करते थे और उसका अहंकार नहीं रखते थे। इसीसे भगवान सर्वदा इनके साथ रहते थे।

२०) काल करे सौ आज कर- महाराज युधिष्ठिर के द्वार पर कोई ब्राह्मण याचना करने के लिए आया। युधिष्ठिर उस समय राज्य कार्य में व्यस्त थे, अत: उन्होंने ब्राह्मण देवता से कह दिया कि वे दूसरे दिन पधारें। तब उनको अभीष्ट वस्तु प्रदान की जायेगी। ब्राह्मण विवश होकर चला गया। किन्तु भीमसेन सभा से उठे और द्वार पर रखी दुन्दुभि बजाने लगे। असमय में इस प्रकार दुन्दुभि का स्वर सुनकर महाराज ने पूछा- आज इस समय ये मंगल वाद्य क्यों बजा रहे हैं ? सेवक ने जाकर पता लगाया और बोला- महाराज। भीमसेन जी ने इसकी आज्ञा दी है। वे स्वयं ही दुन्दुभि बजा रहे हैं। महाराज ने भीमसेन जी को बुलवा कर जानना चाहा तो वे कहने लगे- महाराज। आपने काल को जीत लिया है, इससे बढ़कर मंगल का समय और कौन सा होगा ? यह सुनकर युधिष्ठिर चकित हुए। मैंने काल को जीत लिया ? भीमसेन बोला- महाराज। सारा संसार जानता है कि कभी हंसी में भी आपके मुख से असत्य बात नहीं निकलती। आप ने याचक ब्राह्मण देवता को

अभीष्ट दान कल देने के लिए कहा है, इसलिए कम से कम कल तक तो काल पर आपका अधिकार अवश्य होगा ही। युधिष्ठिर को अपनी भूल का भास हो गया। कहने लगे- भैया भीम। तुमने आज मेरी आंखे खोल दी है। पुण्य कार्य तत्काल करना चाहिए। उसे पीछे के लिए टालना महान भूल है। उन ब्राह्मण देवता को ढूंढकर तुरन्त बुलवाओ। ब्राह्मण देवता की खोज की गई और फिर उन्हें दान प्रदान किया गया।

२१) हस्तिनापुर राज्य के महामंत्री विदुर धर्मनिष्ठ एवं दूरदर्शी महापुरुष थे। महाराज धृतराष्ट्र समय-समय पर उनका मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते थे। विदुर निर्भीकता के साथ उन्हें सारी बात कहते और सलाह देते। संयोग ऐसा था कि विदुर की सलाह टालने पर धृतराष्ट्र को कष्ट उठाना पड़ता था, इसलिए वह प्राय: उनकी बात टालते नहीं थे।

जब दुर्योधन धर्मविरुद्ध और मर्यादाहीन आचरण करने लगा तो विदुर चिंतित हो उठे। उन्हें कौरवों के अनिष्ट की आशंका सताने लगी। उन्होंने इस संबंध में महाराज को सचेत करने का फैसला किया। विदुर ने धृतराष्ट्र से निवेदन किया, राजन, हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि संपूर्ण कुल के हित के लिए एक व्यक्ति का त्याग, ग्राम हित के लिए कुल का त्याग, देश हित के लिए ग्राम का त्याग तथा आत्मकल्याण के लिए भूमंडल का त्याग ही धर्म है। आपको कुल और राज्य के हित में अपने पुत्र का त्याग करना होगा। धृतराष्ट्र ने यह सलाह नहीं मानी, परिणामस्वरूप महाभारत हुआ।

२२) प्रोत्साहन- महाभारत का युद्ध हो रहा था। एक ओर अर्जुन थे, जिनके सारथी थे श्रीकृष्ण। दूसरी ओर थे कर्ण और उनका सारथी शल्य। कृष्ण ने कर्ण के सारथी से कहा, तुम हमारे विरुद्ध जरूर लड़ना पर मेरी एक बात मानना। जब भी प्रहार करे तब कहना- यह भी कोई प्रहार होता है, तुम प्रहार करना जानते ही नहीं, बस इन वाक्यों को दोहराते रहना। सारथी शल्य ने कृष्ण की बात स्वीकार कर ली। युद्ध आरंभ हुआ। कर्ण के प्रत्येक प्रहार पर शल्य कहता- यह भी कोई प्रहार है? तुम प्रहार करना जानते ही नहीं। उधर, अर्जुन के प्रत्येक प्रहार पर कृष्ण कहते है- वाह कैसा प्रहार किया है। वाह। क्या निशाना साधा है। प्रत्येक बार कर्ण हतोत्साहित होता। इससे कर्ण का बल क्षीण होता गया। उसकी शक्ति टूट गई और वह शक्तिहीन हो गया। अर्जुन की शक्ति बढ़ती गई और पांडव पहले से अधिक शक्तिशाली हो गए। इसलिए प्रोत्साहन मन के लिए अमृत है, जबकि हतोत्साहित मन पराजय की पहली सीढ़ी है।

२३) दान की महिमा- महाराज युधिष्ठिर ने एक दिन ऋषि व्यास से पूछा, हे महामुनि, दान और तपस्या में किसका फल अधिक सुखद है ? व्यास बोले, हे राजन्, दान से बढ़कर श्रेष्ठ कोई कार्य नहीं। धन प्राप्ति के लिए मनुष्य प्राणों का मोह त्याग दुष्कर कठिन कार्य करता है। अपनी मान-मर्यादा भुलाकर धन कमाता है। कष्ट से कमाए धन का ही दान संसार में सर्वश्रेष्ठ है। शुद्ध अंत:करण से सुपात्र को थोड़ा दान भी अनंत सुखदायी और फलदायी है।

हे मुनिश्रेष्ठ, वह कैसे, कृपया विस्तार से बताएं। महाराज युधिष्ठिर ने निवेदन किया। वेद व्यास ने कहा, हे राजन् महर्षि मुद्गल ने एक द्रोण (साढ़े पंद्रह सेर) धान का शुद्ध मन से दान कर महान अमर पद प्राप्त कर लिया था। मुद्गल भिक्षाटन से पंद्रह दिनों में एक द्रोण धान एकत्र करते थे और उसी से यज्ञ करते थे लेकिन ऋषि दुर्वासा को प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा पर दान देने के कारण वे परिवार सहित भूखे रह जाते थे। पर इतने पर भी दुर्वासा ने मुद्गल को सदा शांत और निर्मल चित्त पाया। उनके माथे पर कभी निराशा या क्रोध की रेखा नहीं पड़ी। ऋषि दुर्वासा ने मुद्गल की दान महिमा से प्रसन्न होकर कहा- हे ऋषि इंद्रिय विजय, धैर्य, दान और दया तुम में पूर्णरूप से विद्यमान है। तुमने अपने शुभ दान और कर्म से तीनों लोकों को जीत लिया है। इसके बाद देवदूतों ने जब ऋषि मुद्गल को प्रणाम कर उनसे स्वर्ग चलने का आग्रह किया तो उन्होंने पूछा, स्वर्ग में क्या है ? देवदूतों ने कहा, स्वर्ग में हर तरह की सुख-सुविधा है। वहां इच्छा मात्र से

सब कुछ प्राप्त हो जाता है। पर मुद्गल ऋषि ने सोचा कि स्वर्ग में नया शुभ कर्म नहीं किया जा सकता और ऐश्वर्य का सुखद समय भी शुभ कर्मों के फलों का अंत होने पर एक दिन अवश्य समाप्त होगा। यह सोचकर उन्होंने स्वर्ग जाने से भी इनकार कर दिया और जनकल्याण में लगे रहे। इस कथा से युधिष्ठिर बहुत प्रभावित हुए।

२४) कर्म फल- एक बार विदुर ने मैत्रेय से पूछा, महाराज। सभी प्राणी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। सभी सुख की प्राप्ति और दुख से निवृत्ति चाहते हैं। लेकिन फिर भी दुख बिना बुलाए आ जाता है और सुख चाहने पर भी टिका नहीं रहता। यह संसार विपरीत फल वाला क्यों है ? मैत्रेय ने कहा, देखो विदुर कोई भी कर्म फल दिए बिना तो शांत होता नहीं। कर्म फल देता ही है। लेकिन जैसा फल चाहिए उसके लायक कर्म भी करना होगा। सांसारिक लोग कर्म किसी और प्रकार के करते हैं, पर फल की इच्छा कुछ और रखते हैं। जैसे हम धन का अर्जन करते हैं, उससे हमें धन मिलता है। उस धन का हम संचय करते हैं, उससे धन संचित होता है। लेकिन संचय का भी कोई न कोई फल निकलेगा- वह नष्ठ हो सकता है, चोरी हो सकता है, उसका सदुपयोग हो सकता है, अकारथ हो सकता है। सांसारिक लोग एक ही फल की आशा करते हैं, इसीलिए उन्हें दुख होता है।

२५) युधिष्ठिर का यज्ञ- कुरुक्षेत्र युद्ध में विजय पाने की खुशी में पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया। दूर-दूर से हजारों लोग आए। बड़े पैमाने पर दान दिया गया। यज्ञ समाप्त होने पर चारों तरफ पांडवों की जय-जयकार हो रही थी। तभी एक नेवला आया। उसका आधा शरीर सुनहरा था और आधा भूरा। वह यज्ञ भूमि पर इधर-उधर लौटने लगा। उसने कहा, तुम लोग झूठ कहते हो कि इससे वैभवशाली यज्ञ कभी नहीं हुआ। यह यज्ञ तो कुछ भी नहीं है। लोगों ने कहा, क्या कहते हो, ऐसा महान यज्ञ तो आज तक संसार में हुआ ही नहीं।

नेवले ने कहा, यज्ञ तो वह था जहां लोटने से मेरा आधा शरीर सुनहरा हो गया था। लोगों के पूछने पर उसने बताया, एक गांव में एक गरीब ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू के साथ रहता था। कथा कहने से जो थोड़ा बहुत मिलता था, उसी में सब मिल जुल कर खाते थे। एक बार वहां अकाल पड़ गया। कई दिन तक परिवार में किसी को अन्न नहीं मिला। कुछ दिनों बाद उसके घर में कुछ आटा आया। ब्राह्मणी ने उसकी रोटी बनाई और खाने के लिए उसे चार भागों में बांटा। किंतु जैसे ही वे भोजन करने बैठे, दरवाजे पर एक अतिथि आ गया। ब्राह्मण ने अपने हिस्से की रोटी अतिथि के सामने रख दी, मगर उसे खाने के बाद भी अतिथि की भूख नहीं मिटी। तब ब्राह्मणी ने अपने हिस्से की रोटी उसे दे दी। इससे भी उसका पेट नहीं भरा तो बेटे और पुत्रवधू ने भी अपने-अपने हिस्से की रोटी दे दी। अतिथि सारी रोटी खाकर आशीष देता हुआ चला गया। उस रात भी वे चारों भूखे रह गए। उस अन्न के कुछ कण जमीन पर गिरे पड़े थे। मैं उन कणों पर लोटने लगा तो जहां तक मेरे शरीर से उन कणों का स्पर्श हुआ, मेरा शरीर सुनहरा हो गया। तब से मैं सारी दुनिया में घूमता फिरता हूं कि वैसा ही यज्ञ कहीं और हो, लेकिन वैसा कहीं देखने को नहीं मिला इसलिए मेरा आधा शरीर आज तक भूरा ही रह गया है। उसका आशय समझ युधिष्ठिर लज्जित हो गए।

२६) अनुपम क्षमा- महाभारत का एक प्रसंग है। द्रौपदी के पांचों पुत्र एक दिन रात को सो रहे थे। अचानक पांडवों के गुरुपुत्र अश्वत्थामा वहां आये और उन्होंने उन पांचों को मौत के घाट उतार दिया। पांडवों ने यह देखा तो बड़ी चोट पहुंची। अर्जुन ने अश्वत्थामा को पकड़ लिया और द्रौपदी के सामने पेश किया। अपने पुत्रों के संहार से द्रौपदी बहुत व्यथित हुइ। क्रोधित भी। पर जब उसने अश्वत्थामा को अपने सम्मुख देखा तो अनायास उसके अंतर में मां की ममता उमड़ आई। उसका क्रोध शान्त हो गया। आर्द्र स्वर में अर्जुन से बोली, आर्य, इनको छोड़ दो। इनके प्राण लेने से मुझे

क्या मिलेगा ? यह सुनकर अर्जुन चकित रह गये। बोले, पांचाली, यह तुम क्या कह रही। द्रोपदी ने अर्जुन का वाक्य पूरा नहीं होने दिया, हां, आर्य, मैं ठीक ही कह रही हूं। यह आपके गुरुपुत्र हैं। जिस तरह मैं अपने पांचों पुत्रों की मृत्यु से शोक-सागर में डूबी हुई हूं, उसी प्रकार इनके मरने से गुरु-पत्नी आहत हो जायंगी। मेरे बेटे तो गये सो गये, अब लौटकर आनेवाले नहीं हैं। मेरा मन नहीं चाहता कि मैं अपनी ही तरह किसी दूसरी मां को संतप्त करूं। मैं इन्हें क्षमा करती हूं। आप लोग भी ऐसा ही करें। बात अप्रत्याशित थी। पांडवों ने द्रौपदी की ओर देखा। मातृ-प्रेम से उसका चेहरा दीप्त हो रहा था। पांडवों का क्रोध क्षणभर में गल गया। उन्होंने अश्वत्थामा को छोड़ दिया। द्रोपदी के इस व्यवहार से अश्वत्थामा पानी-पानी हो गये और लज्जा से सिर झुकाये वहां से चले गये।

२७) संकल्प- हस्तिनापुर के राजा सारथी अधिरथ के बेटे थे- वसु और शोण। उन्हें लेकर उनके पिता गुरु द्रोण के अखाड़े में गए और कहा, गुरुवर मैं अपने दोनों बेटों को आपके चरणों में डालना चाहता हूं। वे भी राजकुमारों के साथ युद्ध विद्या सीखना चाहते हैं। गुरु द्रोण बोले, क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है कि यहां राजकुमार ही युद्ध विद्या सीख सकते हैं। अधिरथ लौट आए। अधिरथ ने अपने दोनों बेटों के नाम कापालिक के अखाड़े में लिख दिया। वहां रहकर दोनों भाई युद्ध विद्या सीखने लगे। जब सब लोग सो जाते तब वे बाहर निकल कर निशाना लगाते। एक वर्ष पूरा होने पर एक बार गुरु द्रोण राजकुमारों की अंतिम परीक्षा ले रहे थे।

अखाड़े में धृतराष्ट्र और भीष्म पिता भी उपस्थित थे। बसु और शोण भी उसे देखने के लिए आए। द्रोण ने कहा, अब अर्जुन शब्दभेदी बाण चलाएगा। उसकी आंख पर पट्टी बांध दी गई और कुछ दूरी पर एक कुत्ता बांधा गया। जैसे ही कुत्ते को एक नुकीला अस्त्र चुभाया गया, वह भौंकने लगा। उसके भौंकते ही अर्जुन का बाण उसके मुंह में घुस गया और उसका भौंकना बंद हो गया। द्रोण ने ज्यों ही उसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित किया, पीछे से एक आवाज आई। ठहरो, एक बच्चा बोला, मैं सूत पुत्र बसु वह सब कौशल, करतब करके दिखा सकता हूं जो अर्जुन ने किया है। मुझे भी अवसर मिलना चाहिए महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा, बसु को अवसर दिया जाए। गुरु द्रोण ने मना किया, पर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। अर्जुन की तरह उसकी आंख पर भी पट्टी बांधी गई। एक कुत्ता बांधा गया। कुत्ते के भौंकने के एक क्षण पहले ही एक मंजुल आवाज बसु ने सुनी और उसका सूची बाण छूट गया। कुत्ता भौंकता रहा। लोगबाग बसु पर कटाक्ष करने लगे। द्रोण ने कहा, आज का महान धनुर्धर अर्जुन है।

उसी समय धृतराष्ट्र ने घोषणा की, आज का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बसु है, अर्जुन नहीं। द्रोण ने कहा- वह कैसे? उन्होंने कहा, मैं यहां से देख रहा था कि सामने के पेड़ पर एक चिड़िया अपने बच्चे की चोंच में चारा डाल रही है। उसकी आवाज और कुत्ते की आवाज एक साथ हुई। चिड़िया की आवाज सुनते ही बसु ने तीर चला दिया और उसका तीर चिड़िया की चोंच में अब भी है और चिड़िया की आवाज बंद हो गयी। यह लक्ष्य भेद अर्जुन के लक्ष्य भेद से भी कठिन है। धृतराष्ट्र ने बसु से पूछा, तुम्हारा गुरु कौन है। उसने कहा, मेरे गुरु मेरे पिता हैं, जिन्होंने द्रोण के इनकार के बाद कहा था, निष्ठा, संकल्प और इच्छाशक्ति किसी में है तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। बस मैंने उसी समय उसे गुरु मंत्र मान लिया था। बसु ने कहा, गुरु हमारे पिताजी है और निडर बनानेवाली मेरी मां।

२८) अहंकार- महाभारत समाप्त हो चुका था। कृष्ण रथ को युद्धभूमि से बाहर ला रहे थे। रथ में बैठा अर्जुन विजय पर फूला नहीं समा रहा था। भीष्म, द्रोण तथा कर्ण जैसे सेनापतियों तथा अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश असाधारण बात थी। अर्जुन को लगा, यह उसके बाहुबल का प्रताप है। कृष्ण उसके मन की बात ताड़ गये। युद्धक्षेत्र से बाहर आने पर

कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वह रथ से उतर जाये। परंतु गर्वोन्मत अर्जुन बोला कि पहले सारथी रथ से उतरता है, उसके पश्चात योद्धा।

कृष्ण ने बार-बार अर्जुन से अनुरोध किया कि वह रथ से उतर जाये, परंतु अर्जुन नहीं माना। क्रुद्ध होकर कृष्ण ने अर्जुन को रथ से उतरने का आदेश दिया। अर्जुन उतर गया, तत्पश्चात् कृष्ण जब रथ से उतरे तो रथ में आग लग गयी। देखते ही देखते रथ सिर्फ राख का ढेर रह गया।

अर्जुन ने कृष्ण से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा- तुम विजयी होकर भी भीष्मादि के बाणों की क्षमता नहीं समझते। भीष्म, द्रोण, कर्णादि के अग्निबाणों से यह रथ पहले ही जर्जर हो चुका था। अगर पहले मैं रथ से उतरता तो तुम रथ के साथ ही भस्म हो जाते और इस विजय का कोई अर्थ न रहता।

२९) द्रौपदी की शंका- दुर्योधन की सभा में चीरहरण की घटना के बाद कृतज्ञतावश द्रौपदी ने कृष्ण का धन्यवाद किया और कहा- प्रभु, लज्जा की रक्षा करने के लिए मैं आपकी आभारी हूँ। लेकिन मेरी इस शंका का समाधान करें कि जब दु:शासन मेरा अपमान कर रहा था, तब आपने आने में इतनी देर क्यों की ? आपको और जल्दी आना चाहिए था।

भगवान कृष्ण ने कहा, द्रौपदी, यह बताओ कि तुमने मुझे क्या कह कर पुकारा था ? द्रौपदी ने कहा- मैंने पुकार की थी- हे गोविंद। हे द्वारिकावासी। हे गोपियों के प्रिय। मेरी रक्षा करो। कृष्ण बोले- द्रौपदी, मैं तो इसी सभा में उपस्थित था, लेकिन तुमने मुझे घट-घट वासी कृष्ण न कहकर द्वारिकावासी पुकारा था। इसलिए मुझे पहले द्वारिका जाकर तब यहाँ आना पड़ा। परिणामस्वरूप आने में देर हो गयी। द्रौपदी समझ गयी कि भगवान् तो घट-घट में व्याप्त हैं। किसी स्थान विशेष में उनका निवास नहीं है।

३०) धर्मनिष्ठ- वनवास भोगते हुए पांडव द्वैत वन पहुंचे। प्यास लगने पर सरोवर पहुंचने पर यक्ष द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर न दे पाने पर कोई भी भाई वापस न लौटा तब युधिष्ठिर पहुंचे। यक्ष युधिष्ठिर के उत्तर सुनकर प्रसन्न होकर उन्हें जल पीने को कहता है। साथ ही कहता है कि अपने मृतक भाइयों में से किसी एक के लिए वह जीवनदान मांग सकता है। युधिष्ठिर नकुल को जीवित करने को कहता है। तब यक्ष चकित होते हुए कहता है कि तुम भीम और अर्जुन जैसे योद्धाओं को जीवित करने को क्यों नहीं कह रहे हो ? ये लोग तो संकट में तुम्हारा साथ देने में समर्थ हो सकेंगे।

युधिष्ठिर कहता है कि नकुल के जीवित न होने से माद्री का वंश नष्ट हो जाएगा। उसे स्वयं राज्य सत्ता का कोई लोभ नहीं है। यक्ष कहता है, युधिष्ठिर तुम सच में कितने धर्मनिष्ठ हो। तुम्हारे भीतर जरा भी स्वार्थ नहीं है। मैं तुम्हारे सभी भाइयों को जीवित किए देता हूं। यक्ष युधिष्ठिर के सभी भाइयों को जीवित कर देता है।

३१) विनम्र स्वभाव- भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े थे। कौरव व पांडव उन्हें घेरकर खड़े थे। भीष्म पितामह सभी की ओर देखते हुए बोले, अब आप सब से विदा लेने का समय आ गया है। मेरे पास कुछ ही समय शेष है। यह सुनकर वहां उपस्थित सभी लोग रुआंसे हो गए। धर्मराज युधिष्ठिर उनके चरणों में बैठते हुए बोले, पितामह, आपसे निवेदन है कि आप हमें कुछ ऐसी उपयोगी शिक्षा दें, जो हमारे भावी जीवन के लिए लाभदायक हो। भीष्म पितामह बोले, मैं तुम्हें एक नदी की कहानी सुनाता हूँ जिसमें जीवन का सार छिपा है। एक दिन समुद्र ने नदी से प्रश्न किया- तुम बड़े-बड़े पेड़ों को अपने प्रवाह में ले आती हो, लेकिन क्या कारण है कि छोटी सी घास, कोमल बेलों व नरम पौधों को अपने साथ बहाकर नहीं ला पाती। नदी जब अपने साथ बड़े-बड़े पेड़ों को ला सकती है तो उसके लिए घास के तिनकों व नरम पौधों को बहाकर लाना तो बहुत सहज होना चाहिए। समुद्र की बात सुनकर नदी मुस्कराती हुई बोली- जब-जब मेरे पानी का बहाव आता है तब-तब

बेलें, घास के तिनके व नरम पौधे झुक जाते हैं और मुझे रास्ता दे देते हैं, लेकिन वृक्ष अपनी कठोरता के कारण झुकने को तैयार नहीं होते। वे सीधे खड़े रहते हें, ऐसे में मेरा तेज बहाव उन्हें तोड़कर अपने साथ बहा लाता है। मैं बैलों, घास के तिनकों और छोटे पौधों के विनम्र स्वभाव को पसंद करती हूं और उनके आगे झुक जाती हूँ। लेकिन बड़े पेड़ों का अहंकार मुझे पसंद नहीं, इसलिए मैं उन्हें दंडित करती हूं। नदी के जवाब से समुद्र संतुष्ट हो गया। शायद आप सब भी इस कहानी में छिपे हुए जीवन का सार समझ गए होंगे कि व्यक्ति को हमेाश विनम्र रहना चाहिए। विनम्रता के साथ ही अपने जीवन के मार्ग पर बढ़ना चाहिए। यही सफलता का मूल मंत्र है। यह कहकर भीष्म पितामह ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

३२) विजय का उपाय- कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पांडव दोनों दल युद्ध के लिए खड़े थे। वीरों ने धनुष चढ़ा लिए। युद्ध प्रारंभ होने में क्षणों की ही देर थी। सहसा धर्मराज युधिष्ठिर अपना कवच और अस्त्र-शस्त्र उतार कर रथ से उतर कर पैदल ही कौरवों की सेना के बीच मौजूद भीष्म पितामह की ओर चल दिए। उधर कौरव दल में कोलाहल मच गया। लेकिन अविचलित युधिष्ठिर सीधे भीष्म के पास पहुंचे और उन्हें प्रणाम कर बोले- पितामह, हम आपके साथ युद्ध करने को विवश हैं। इसके लिए आप हमें अपनी आज्ञा और आशीर्वाद दें।

भीष्म बोले, भरत श्रेष्ठ, यदि तुम इस प्रकार आकर मुझसे युद्ध की अनुमति नहीं मांगते तो मैं तुम्हें अवश्य पराजय का शाप दे देता। अब तुम विजय प्राप्त करो। जाओ, युद्ध करो। तब युधिष्ठिर ने पूछा, आप तो अजेय हैं, फिर आपको हम लोग इस संग्राम में किस प्रकार जीत सकते हैं? पितामह ने उन्हें दूसरे समय आकर यह बात पूछने को कहा। युधिष्ठिर वहां से धर्मराज द्रोणाचार्य के पास पहुंचे और उन्हें प्रणाम करके उनसे भी युद्ध के लिए अनुमति मांगी। आचार्य द्रोण ने भी वही बातें कह कर आशीर्वाद दिया, परंतु जब युधिष्ठिर ने उनसे उनकी पराजय का उपाय पूछा, तब आचार्य ने स्पष्ट बता दिया- मेरे हाथ में शस्त्र रहते मुझे कोई मार नहीं सकता। परंतु मेरा स्वभाव है कि किसी विश्वसनीय व्यक्ति के मुख से युद्ध में कोई अप्रिय समाचार सुनने पर मैं धनुष रख कर ध्यानस्थ हो जाता हूँ। उस समय मुझे मारा जा सकता है। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य को प्रणाम कर कृपाचार्य के पास पहुंचे। उन्हें भी प्रणाम कर युद्ध की अनुमति मांगी। पर अपने कुलगुरु से युधिष्ठिर उनकी मृत्यु का उपाय नहीं पूछ सके। यह दारुण बात पूछते-पूछते दुख के मारे वे अचेत हो गए। कृपाचार्य ने उनका तात्पर्य समझ लिया और बोले- राजन्, मैं अवध्य हूं, किसी के भी द्वारा मैं मारा नहीं जा सकता। परंतु वचन देता हूं कि नित्य तुम्हारी विजय के लिए प्रार्थना करूंगा और युद्ध में तुम्हारी विजय का बाधक नहीं बनूंगा।

३३) गुण का महत्त्व- धर्मराज युधिष्ठिर विद्वानों का बहुत आदर-सत्कार करते थे। एक बार उनसे दो विद्वान एक साथ मिलने आए। एक विद्वान बहुत ही सजा-संवरा था। उसने एकदम स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था, मस्तक पर चंदन का तिलक लगाया था, सिर पर पगड़ी तथा गले में रुद्राक्ष की माला धारण कर रखी थी। उसने माला फेरते हुए महल में प्रवेश किया। दूसरा विद्वान साधारण वेशभूषा में था। धर्मराज सजे-संवरे विद्वान से अधिक प्रभावित हुए, इसलिए वार्तालाप के लिए उसे ही प्राथमिकता दी। विचार-विनिमय के बाद धर्मराज ने कोषाध्यक्ष को निर्देश दिया कि उस विद्वान को उचित संख्या में स्वर्ण मुद्राएं देकर सम्मानपूर्वक विदा किया जाए। उसके बाद साधारण वस्त्रधारी दूसरे ब्राह्मण की बारी आई। धर्मराज की ओर से वार्ता अत्यंत साधारण तरीके से प्रारंभ हुई, पर धीरे-धीरे उन्हें चर्चा में आनंद आने लगा और वह विचार-विनिमय में इतने खो गए कि कितना समय निकल गया, उन्हें पता ही नहीं चला। इस वार्ता में शास्त्रों के कठिन विषयों पर भी विचार-विमर्श हुए। अंत में धर्मराज ने स्वयं अपने हाथ से विद्वान को स्वर्णमुद्राएं दीं तथा राजभवन के द्वार तक आकर विदा किया। वायुपुत्र भीम को, जो पास ही खड़े थे, धर्मराज के दोनों विद्वानों से व्यवहार का तरीका समझ में

नहीं आया। उन्होंने पूछा, माननीय, यह क्या? प्रथम विद्वान का आरंभ में सम्मान तथा दूसरे का अंत में। कृपया इसके मर्म को समझाएं। धर्मराज मुस्कराए, फिर बोले, प्रथम विद्वान ने वस्त्रों से प्रभावित करना चाहा। कुछ देर के लिए वह सफल भी रहा इसलिए वह मुझसे प्राथमिक लाभ ले गया। पर विद्वता तो वस्त्रों में नहीं, मस्तिष्क में वास करती है। वह उतना विद्वान न निकला, जितना उसका दिखावा था। दूसरा विद्वान बड़ा मनीषी सिद्ध हुआ। उसने अपना ज्ञान ऊपरी आडंबर से नहीं, विचार-विमर्श से दर्शाया। वह मेरे अनुमान से कहीं अधिक तत्ववेत्ता निकला। इसलिए मैंने उसका अंत में अधिक सम्मान कर अपनी त्रुटि को सुधारना आवश्यक समझा।

३४) झूठा अभिमान- चक्रवर्ती सम्राट भरत ने दिग्विजय करने के बाद सोचा की वे समस्त भूमंडल के प्रथम चक्रवर्ती हैं। कम से कम वे ऐसे प्रथम चक्रवर्ती है, जो वृषभाचल पर पहुंच सके हैं। भरत उस पर्वत के शिखर पर अपना नाम अंकित करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि वृषभाचल पर उनका अकेला नाम खुदा होगा।

शिखर पर पहुंचकर भरत के पैर ठिठक गए। उन्होंने ऊपर से नीचे तक पर्वत के शिखर को देखा। वे शिखर की चारों दिशाओं में गए। शिखर पर इतने चक्रवर्ती राजाओं के नाम अंकित थे कि उन्हें एक नाम और लिखा जा सके, इतनी जगह भी नहीं दिखाई दी। भरत का मन खिन्न हो गया। उन्हें लगा कि उनका अभिमान कितना झूठा था। आखिर उन्होंने हारकर वृषभाचल के शिखर पर खुदा एक नाम मिटवा दिया। नाम मिटने से खाली हुई जगह पर अपना नाम अंकित किया। लौटते हुए चक्रवर्ती भरत को उनके राजपुरोहित ने कहा- राजन्, आपने नाम मिटाकर नाम लिखने की परंपरा प्रारंभ कर दी है। अब बहुत संभव है कि आनेवाले समय में कोई और चक्रवर्ती राजा आपका नाम मिटाकर अपना नाम लिख दे। भरत को समझ में आ गया कि अच्छे काम करने से नाम चलता है। पत्थर पर खुदवाने से नाम एक न एक दिन जरूर मिटता है। भरत ने प्रजा का अच्छा पालन किया। उनके सुराज्य की इतनी प्रसिद्धि फैली कि भरत के नाम से इस देश का नाम ही भारत हो गया।

३५) दान का महत्व - जब कर्ण घायल अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुए, तो स्वर्ग में जाकर उन्हें भूख-प्यास का अनुभव हुआ। तब उन्होंने वहां भोजन और पानी मांगा। लेकिन धर्मराज ने उन्हें खाने के लिए और पीने के लिए स्वर्ण (सोना) दिया और कहा- तुमने जीवन भर स्वर्ण ही दान किया है, इसलिए स्वर्ण ही खाओ-पीओ। तब कर्ण ने धर्मराज से कहा- मुझे आश्विन मास के पंद्रह दिन दीजिए। मैं धरती पर जाना चाहता हूं। धर्मराज ने अर्धमृत्यु को प्राप्त कर्ण की इच्छा को मानते हुए उसे धरती पर भेज दिया। कर्ण ने धरती पर आकर पंद्रह दिनों तक लोगों को अन्न-जल का भरपूर दान किया और अपना परलोक सुधारा। हमारे जीवन में अन्न-जल के दान का बड़ा ही महत्व है। पितृ पक्ष में दान केवल ब्राह्मणों को देने की परंपरा है। इसीलिए ब्राह्मणों को श्राद्ध के दिनों में भोजन कराया जाता है। माना जाता है कि ब्राह्मण ब्रह्म का सीधा प्रतिनिधि है।

३६) भीम का अहंकार- वनवास के समय पांडव द्रौपदी के साथ जंगल में विचरण कर रहे थे। जंगल में एक अजूबे फूल की महक आ रही थी। ऐसी महक जिसे कभी महसूस नहीं किया गया था। द्रौपदी ने कहा, भीम क्या तुम इस फूल को ला सकते हो? भीम ने गदा उठाई और उस तरफ चल पड़े जिधर से सुगंध आ रही थी। जंगल घना था। रास्ता बनाने के लिए भीम सामने आ रहे सभी पेड़ों और चट्टानों को ध्वस्त करते जा रहे थे। पशु-पक्षियों को भी मारते जा रहे थे। उसी समय आकाश मार्ग से हनुमान कहीं जा रहे थे। भीम के पागलपन को देखकर वे समझ गए कि उन्हें अपने बल का अहंकार हो गया है। इस समय यदि वह अहंकार नहीं तोड़ा गया, तो प्राणियों का भी विनाश होगा और जंगल का भी।

हनुमान नीचे उतरे और वहीं रास्ते के बीच में लेट गए। अपने सामने राह रोककर एक बूढ़े बंदर को लेटा देख भीम आगबबूला होकर बोले, ऐ बूढ़े बंदर। तू नहीं जानता कि मैं कौन हूं। रास्ता छोड़कर भाग यहां से, नहीं तो गदा के एक ही

वार से तुझे गोलोक भेज दूँगा। यह सुनकर हनुमान बोले, तुम कोई भी हो लेकिन मैं बलहीन और बूढ़ा हूं। उठ नहीं सकता। या तो तुम घूम कर चले जाओ या मुझे लांघ कर चले जाओ। और यदि लांघना नहीं चाहते तो मेरी पूंछ सरका कर किनारे करके चले जाओ। भीम गदा से उसकी पूंछ हटाने लगे, लेकिन पूंछ टस से मस नहीं हुई, उलटे गदा पूंछ में फंस गई। गदा छुड़ाने के लिए भीम ने अपना पूरा जोर लगा दिया, लेकिन गदा पूंछ से नहीं छूटी। भीम समझ गए कि यह कोई साधारण बंदर नहीं है। उनका अहंकार चूर हो गया। वे समझ गए कि ये कोई महावीर देवता हैं। वे हाथ जोड़कर क्षमा मांगने लगे। हनुमान उठकर अपने असली रूप में भीम के सामने खड़े हो गए। उन्होंने भीम को समझाया, तुम्हारा अहंकार देखकर मुझे नीचे आना पड़ा। अपने बल का उपयोग सत्य मार्ग पर चलने में करो भीम।

३७) धर्म का अर्थ -एक बार एक यदुपंथी ने श्रीकृष्ण से पूछा- हे कृष्ण। युधिष्ठिर तो आपके ही बताए हुए रास्ते पर चलते हैं फिर आप उन्हें धर्मराज क्यों कहते है? धर्मराज कहलाने लायक उनमें ऐसी कोई खूबी तो दिखती नहीं। श्रीकृष्ण ने कहा, युधिष्ठिर अपना काम दो तरह से करते हैं। एक प्रत्यक्ष रूप से और दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष रूप से वह जो काम करते हैं, उसे हम आप देखते हैं। आप कह सकते हैं कि मेरे बताए रास्ते पर चलने वाला कर्म प्रत्यक्ष है। लेकिन कुछ काम वह अप्रत्यक्ष रूप से अपने मन से भी करते हैं। उनके अप्रत्यक्ष कार्यों के कारण ही उन्हें धर्मराज का पद मिला हुआ है। उस व्यक्ति ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं प्रभु। श्रीकृष्ण ने बताया, महाभारत का युद्ध हो रहा था। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई थी। युद्ध के बाद जब सभी योद्धा अपने-अपने शिबिरों में आराम करने चले जाते थे, युधिष्ठिर सायंकाल वेश बदल कर एक सेवक के रूप में चुपचाप रणभूमि में चले जाते थे। उनके भाई इस रहस्य का पता करने के लिए एक दिन उनके पीछे-पीछे चले गए। वहां जाने पर पांडव पुत्रों ने देखा कि उनके बड़े भाई घायलों की मरहमपट्टी कर रहे हैं। यह देखकर भाइयों को आश्चर्य हुआ और दुख भी। सहदेव ने पूछा कि वह चोरी-चोरी अपना वेश बदल कर ऐसा तुच्छ काम क्यों करते हैं। इस पर युधिष्ठिर ने कहा कि वेश मैं इसलिए बदलता हूं कि घायलों में कई कौरव पक्ष के भी हैं। यदि मैं प्रकट रूप से जाता तो संकोच में वे अपना कष्ट हमें नहीं बताते। इस प्रकार मैं सच्ची सेवा के अधिकार से वंचित रह जाता।

सेवा ही असली धर्म है सहदेव। यह कथा सुनाकर कृष्ण बोले, ऐसा काम युधिष्ठिर के सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता था। इस घटना को सुनने के बाद से ही मैं उन्हें धर्मराज कहने लगा। धर्म और परमार्थ अन्योन्याश्रित है। उनका यह काम सभी धर्मों से ऊपर है। इसी से युधिष्ठिर धर्मराज कहलाते हैं। सद्भाव जिनके अंदर कूट-कूट कर भरा हो, उनसे सेवाधर्म निबाहे बिना रहा ही नहीं जाता। इसी कारण युधिष्ठिर को धर्म रूप में शीर्षस्थान दिया जाता है।

३८) सेवा का सुख - युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। उन्होंने अनेक लोगों को इसमें शामिल होने के लिए न्योता भेजा। इसमें भाग लेने के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। इतने लोगों की देखभाल के लिए पाण्डवों समेत अनेक व्यक्ति उनकी सेवा में जुटे हुए थे। श्रीकृष्ण भी यज्ञ में आए। उन्होंने देखा कि अनेक लोगों की भारी भीड़ यज्ञ में शामिल होने को व्याकुल है। वह युधिष्ठिर के पास गए। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का अभिवादन किया और उन्हें एक सर्वश्रेष्ठ आसन पर बैठने को कहा। युधिष्ठिर का आमंत्रण पाकर श्रीकृष्ण बोले, इतने बड़े यज्ञ में सेवा का अवसर मिला है। भला मैं इसे व्यर्थ कैसे जाने दे सकता हूं? सभी लोग अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार काम कर रहे हैं। इसलिए मुझे भी काम करना चाहिए। इस पर युधिष्ठिर बोले, भगवन। काम करने के लिए अनेक लोग हैं फिर आप क्यों कष्ट उठाएं। वैसे भी आपके लायक यहां पर कोई भी काम नहीं है। यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, सेवा करने के लिए यह नहीं देखा जाता कि उसका स्तर क्या है? वह तो हृदय से की जाती है और तभी सेवा का उद्देश्य भी सार्थक हो पाता है। इसलिए आप न भी बताएं तो कोई बात नहीं। मैं अपने

अनुरूप काम स्वयं ढूंढ लूंगा। यह कहकर श्रीकृष्ण इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने देखा कि अनेक लोग भोजन कर रहे हैं। वह बोले, मुझे काम मिल गया। मैं जूठी पत्तलें उठाऊंगा। यह कहकर वह पत्तलें उठाने के लिए चल दिए। युधिष्ठिर यह देखकर दंग रह गए। सबने उनके सेवा भाव की सराहना की।

३९) एक दिन राजा भोज और पंडित माघाजी दोनों घूमते हुए नगर से काफी दूर चले गए। लौटते समय नगर का रास्ता भूल गए। राजा भोज ने माघाजी से कहा- किसी से रास्ता पूछना चाहिए। माघाजी ने कहा- राजन्, खेत में एक बुढ़िया दिखाई दे रही है। वहां चलें। जरूर वह रास्ता बता देगी। दोनों वहां पहुंचे। उन्होंने पूछा- माताजी। यह रास्ता कहां जाता है। बुढ़िया ने कहा- भाई साहब। मार्ग तो यही रहेगा, यह कहीं नहीं जाएगा। रास्ते से लोग अपने इच्छित स्थल पर जाते हैं। रास्ता कहीं नहीं जाता। पहले मुझे बताएं, आप हैं कौन? माघाजी बोला- हम दोनों बटाऊ (राहगीर) हैं। बुढ़िया बोली- संसार में बटाऊ तो दो ही हैं- सूरज और चन्द्रमा। फिर आप कौन हैं? माघजी ने जवाब दिया- माताजी, मान लो हम मेहमान हैं। बुढ़िया बोली- आप मेहमान तो नहीं है। मेहमान तो संसार में दो ही हैं- पैसा और जवानी। जो आते हैं और चले जाते हैं। इतने में राजा भोज बोले- हम तो राजा हैं। बुढ़िया बोली- आप कौन से राजा हैं? राजा तो दो हैं- पहला इन्द्र राजा और दूसरा यमराज। माघजी बोले- हम बड़े भारी लोग हैं। बुढ़िया बोली- दुनिया में भारी तो धरती और दूसरी है नारी। जो हर हालात में दुनिया का बोझ झेलने की ताकत रखते हैं। अब बताएं तो सही कि आप कौन हैं? माघजी बोले- माताजी। हम तो सीधे-सादे हैं। बुढ़िया बोली- सीधे-सादे तो दुनिया में दो हैं- शीलवान और दूसरा संतोषी। मेरी समझ में नहीं आ रहा आप कौन हैं? माघजी झुंझलाकर बोले- हम तो चोर हैं। बुढ़िया बोली- आप कौन से चोर हैं? चोर तो दो ही हैं- एक कृतघ्न और दूसरा चुगलखोर। बताइए इन दोनों में आप कौन हैं? माघजी फिर बोले- हम तो परदेसी हैं। बुढ़िया बोली- दुनिया में परदेसी दो हैं- एक वन और दूसरा जीव। आप दोनों में कौन हैं? माघजी बोले- हम तो चतुर हैं। बुढ़िया बोली- आप कौन से चतुर हैं? चतुर तो वास्तव में दो हैं- एक धनवान और दूसरी मैं। बताइए आप कौन हैं? घबराकर माघजी बोले- हम कौन हैं, हम नहीं जानते। तुम जानती हो वह बता दो। बुढ़िया बोली- हां, मैं समझ गई आप कौन हैं। आप एक तो राजा भोज हैं, दूसरे पंडित माघजी है। राजा भोज और पंडित माघजी दोनों बुढ़िया के तीखे सवालों से बहुत प्रभावित हुए। बुढ़िया ने उन्हें पानी पिलाया और फिर नगर का रास्ता बताया। राजा भोज ने बुढ़िया को सोने की मोहर भेंट की और दरबार में आने का न्यौता दिया।

४०) ज्ञान की पवित्रता- याज और उपयाज सगे भाई थे। गुरु विश्वासु के आश्रम में अध्ययन के बाद दोनों भाई यज्ञ के लिए लकड़ी लाने जंगल चले जाते थे। एक दिन दोनों भाई लकड़ी लेकर लौट रहे थे। उपयाज ने देखा कि याज बहुत पीछे है और लकड़ी का बंडल नीचे रख कर वह किसी के बाग से आम तोड़कर खा रहा था। उपयाज उसके पास जाकर बोला, बगैर मालिक की आज्ञा लिए फल तोड़कर खाना चोरी है। याज ने कहा, मुझे भूख लगी थी। भूख मिटाने के लिए फल तोड़कर खाना चोरी नहीं है। कुछ समय के बाद आश्रम में उपायज कुछ गरीब बालकों को खीर खिला रहा था। उसी समय याज वहां आया और बालकों के सामने से खीर उठाकर खाने लगा। उपयाज ने कहा, बालकों के सामने से खीर उठाकर खाना उचित नहीं था। याज ने कहा, अन्न खाने के लिए होता है। उपयाज चुप हो गया। बाद में दोनों भाइयों का अलग-अलग आश्रम बन गया और दोनों महर्षि हो गए। एक दिन पांचाल नरेश द्रुपद ने महर्षि उपयाज के पास आकर कहा, आप के यज्ञ से ही मेरी इच्छा पूरी होगी। आप वचन दीजिए कि आप मेरी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगे। महर्षि बोले, राजन् मैं वह सब कार्य करूंगा जो धर्म सम्मत होगा। द्रुपद ने कहा, महर्षि मुझे एक ऐसा पुत्र चाहिए जो द्रोण का वध कर सके। महर्षि उपायज ने कहा, यह धर्म के विरुद्ध है। ऐसा यज्ञ मुझसे सम्पन्न नहीं हो सकता। द्रुपद ने कहा, इस काम के बदले

मैं आप के आश्रम को दस हजार स्वर्ण मुद्राएं दान दूंगा। महर्षि बोले, मैं ज्ञान बांटता हूं राजन्। विद्या विनिमय का साधन नहीं बन सकती। द्रुपद ने कहा, दूसरा कौन है जो ऐसा यज्ञ करा सकता है। उपयाज ने कहा, आप मेरे भाई याज के पास चले जाइए। वह आप का कार्य कर देगा। द्रुपद ने कहा, याज आप का भाई है। जो काम आपके लिए निषिद्ध है, वही काम वह कैसे करेगा। महर्षि ने उसके बीते दिनों की याद दिलाते हुए कहा, उसके लिए ज्ञान की पवित्रता का कोई महत्त्व नहीं है।

४१) श्रेष्ठ कौन- आचार्य द्रोणाचार्य धनुष पूजन के बाद अपने आसन की ओर बढ़ रहे थें उसी समय उनका पुत्र अश्वत्थामा अकड़ता हुआ उनके आसन के समीप आकर खड़ा हो गया। आचार्य ने सोचा, जरूर कोई अशोभनीय बात है। उन्होंने पूछा, पुत्र कुछ कहना है? अश्वत्थामा ने कहा, पूरे आर्यावर्त में आज आप सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है और कहते हैं कि मुझे आपने समस्त विद्या दे दी है।

द्रोण ने कहा, वत्स, यह सत्य है। मैंने सभी अमोघ अस्त्रों के प्रयोग की शिक्षा तुम्हें दी है। अश्वत्थामा ने कहा, लेकिन ब्रह्मशिखर विद्या के पूर्ण ज्ञान से तो मैं अब भी अनभिज्ञ हूँ जबकि अर्जुन यह विद्या पूरी तरह जानता है। जब तक ब्रह्म शिखर विद्या मुझे प्राप्त नहीं होती है तब तक आर्यावर्त में मैं अजेय नहीं हो सकता।

द्रोण सोचने लगे कि उन्होंने अश्वत्थामा को सभी राजकुमारों के बराबर शिक्षा दी है। उसे शिक्षा देनेमें कभी लापरवाही नहीं की है, फिर भी उसके मन में संशय क्यों उत्पन्न हो रहा है। उन्होंने कहा, पुत्र, तुम भलीभांति जानते हो कि तुमसे बढ़कर मेरे लिए इस संसार में कोई भी नहीं है। तुम बेवजह संदेह कर रहे हो। मैंने वे सभी विद्याएं तुम्हें भी दी हैं, जो अर्जुन को दी गई हैं। अश्वत्थामा ने कहा, समस्या यही है पिताजी आप कहते हैं कि आपने अर्जुन के बराबर सभी विद्याएं दी हैं, फिर भी मैं अर्जुन के सामने बौना ठहरता हूं। द्रोण ने कहा, पुत्र धनुर्धारी या अन्य शस्त्रधारी को श्रेष्ठता प्रदान करनेवाले तत्व शस्त्र या विद्या नहीं होते। ये सब तो उपकरण मात्र हैं। श्रेष्ठता तो उसके मन में रहनेवाले अभय के कारण प्राप्त होती है। अश्वत्थामा ने कहा, क्या आप कहना चाहते हैं कि मैं कायर हूँ? द्रोण ने कहा, तुम्हारे मन में अर्जुन की श्रेष्ठता के प्रति ईर्ष्या का भाव है। यही हीन भाव तुम्हारा भय है पुत्र। भयभीत आदमी के हाथ में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हथियार या विद्या देने पर भी वह निरर्थक ही सिद्ध होती है।

४२) बुरा व्यक्ति और अच्छा व्यक्ति- दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों के गुरु द्रोणाचार्य थे। जब उनकी शिक्षा पूरी हो गयी तो सभी परीक्षाओं के बाद गुरु ने उनके चरित्र विकास की स्थिति के आकलन के लिए एक अलग से परीक्षा ली, गुरु द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को पहले अपने पास बुलाया और कहा, जाओ, एक अच्छे व्यक्ति को तलाश कर मेरे पास लाओ। दुर्योधन के जाने के बाद उन्होंने युधिष्ठिर को बुलाया और कहा, जाओ, एक बुरे व्यक्ति को तलाश कर लाओ। दुर्योधन ने गुरुदेव से शिकायत की कि आपने किस काम में लगा दिया, दुनिया में कोई भला आदमी भी हो सकता है ? मैं सवेरे से शाम तक भटकता रहा, मुझे तो एक भी भला आदमी नजर नहीं आया, जिसे आपके पास लाता।

गुरुदेव ने युधिष्ठिर की तरफ दृष्टिपात किया क्योंकि वे भी खाली हाथ लौटे थे। युधिष्ठिर ने कहा कि गुरुदेव, मैंने लोगों से बुरे व्यक्ति के बारे में पूछताछ की, मुझे लोगों ने कई नाम बताए जिन्हें बुरा आदमी कहा जा सकता है। लेकिन जब मैं उनसे मिला तो मुझे आभास हुआ कि उनमें तो तमाम गुण मौजूद हैं। मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जो संपूर्ण रूप से बुरा हो, इसलिए गुरुदेव, मैं किसी को भी आपके पास लाने में असमर्थ रहा।

४३) ब्राह्मण- नहुष ने प्रश्न किया, ब्राह्मण कौन है ?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, दान, धर्म, क्षमा, दया, शील एवं अहिंसा के गुणों से जो भी विभूषित हो, वही ब्राह्मण होता है ?

नहुष ने फिर कहा, यदि यही गुण ब्राह्मण की पहचान है, तो ये सारे गुण किसी शूद्र में भी हो सकते हैं तो क्या तुम उस

शूद्र को भी ब्राह्मण मान लोगे ?

युधिष्ठिर ने कहा, जो भी व्यक्ति इन सारे गुणों से युक्त हो, वह शूद्र जाति में जनमा हो, तो भी वह ब्राह्मण ही है, किन्तु यदि कोई जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी इन गुणों से हीन हो तो वह वाास्तव में शूद्र ही है। चरित्र ही व्यक्ति की जाति का आधार है। उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति ही ब्राह्मण है, फिर वह किसी भी कुल का क्यों न हो ?

४४) नारद का दु:ख - एक दिन नारद मुनि अत्यंत उदास मुद्रा में बैठे थे। सनकादिक ने उनसे उनकी व्यथा जाननी चाही। पूछा, हमेशा हँसते रहनेवाले आप आज उदास कैसे हैं? नारद बोले, मुझे अपने देश की चिंता सता रही है। जरा भारत भूमि की ओर देखो। धर्म का विनाश हो रहा है। अधर्म पनप रहा है। लोग भूखे मर रहे हैं और व्यापारी धन बटोरकर तिजोरियाँ भर रहे हैं। भाई-भाई को लूटने की युक्ति कर रहा है। उफ, भ्रष्टाचार से तो तौबा। सनकादिक को नारदजी की बात सही लगी।

४५) **कंस और हंस -** कंस को ज्योतिषियों ने बताया था कि तुम्हारी बहन का आठवाँ पुत्र तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा। कंस ने इसीलिए अपनी बहन देवकी को कारागार में डाल दिया। छह बालकों को उसमे जनमते ही मार डाला था। इस वक्त वह सातवें का संहार करने जा रहा था। राजमहल से निकलकर वह बाग में आया। बाग में एक बेहद सुंदर फव्वारेवाला सरोवर था। सरोवर में हंस-हंसिनी का एक जोड़ा रहता था। जैसे ही वह फव्वारे के पास पहुँचा, हंस ने हंसिनी से कहा, अब मोती चुगने का शौक रहने दो। हंसिनी हंस की बात समझी नहीं। बोली, महाराज कंस का राज्य है। मोतियों की क्या कमी। मोती जैसे अन्न के दानों का भंडार तो भरा पड़ा है। हंस पुन: हँसा, जो राजा मानवों की हत्या करता है और वो भी बाल-हत्या। वहाँ धन-धान्य क्या रहेगा। कंस ने अपनी निंदा सुनी तो क्रोधित हो उठा, मेरे ही अन्न-जल पर जीनेवाले की यह हिम्मत। उसने तुरंत हंस की गरदन काट दी। हंसिनी चीत्कार कर उठी। इसके बाद कंस कारागार पहुँचा। उसने सातवें बच्चे को उठाया और पत्थर पर पटकने के लिए उछाला। परंतु पत्थर पर टकराने से पूर्व ही वह बच्ची आसमान में यह कहती हुई उड़ गई कि तुम्हारी बहन की आठवीं संतान तुम्हारा काल होगा। यह मत भूलो कि ईश्वर न्यायी है।

४६) परीक्षा - मनु महाराज की पुत्री का नाम देवहूति था। वह बड़ी सौम्य और ज्ञानी थी। बड़ी हुई तो मनु महाराज को उसके ब्याह की चिंता हुई। तभी एक दिन नारदजी ने सुझाव दिया, कदर्म ऋषि से बढ़कर योग्य वर तुम्हें अपनी कन्या के लिए दूजा नहीं मिलेगा। मनु महाराज को भी बात जँच गई। वे पत्नी शतरूपा तथा कन्या देवहूति के साथ कदर्म ऋषि के आश्रम पहुँचे। कर्दम ऋषि तीक्ष्ण बुद्धिवाले ऋषि थे। उनके आगमन का अभिप्राय समझ गए। परखना था उन्हें देवहूति को। अत: उन्होंने मेहमानों के लिए तीन आसन बिछाए और बैठने के लिए कहा। मनु महाराज बैठ गए और शतरूपा भी बैठ गई। किंतु देवहूति के मन में विचार आया- पिता और माता के समक्ष भावी पति खड़ा है तब वह कैसे बैठे? फिर कर्दम ऋषि ने अपने बैठने के लिए तो आसन बिछाया ही नहीं है। साथ ही उन्होंने तीनों को आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया है। उसे टालना भी अनुचित है। उसने एक उपाय सोचा। अपना एक हाथ आसन पर रख वह जमीन पर बैठ गई। देवहूति के इस चातुर्य पर कर्दम ऋषि रीझ गए और उन्होंने उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। हर मुश्किल का एक हल होता है।

४७) प्रेम की परीक्षा- एक दिन रुक्मिणी ने कृष्ण से पूछा- राधा में ऐसा क्या है जो आप मुझे भूलकर उसके पीछे बेचैन रहते हैं? कृष्ण ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया- समय आने पर बता दूंगा। बहुत दिनों बाद जब उन्हें लगा कि रुक्मिणी अपना प्रश्न भूल गई है तो वह सिर दर्द का बहाना बना चादर ओढ़ कर लेट गये।

देवर्षि नारद खीज से गए थे, तीनों लोकों में राधा की स्तुति जो हो रही थी। वे स्वयं भी कृष्ण से कितना प्रेम करते हैं। इसी मानसिकता संताप को मन में छिपो वे कृष्ण के पास पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि कृष्ण भयंकर सिरदर्द से कराह रहे हैं। देवर्षि के हृदय में टीस उठी। पूछा- भगवन्, क्या इस वेदना का कोई उपचार नहीं ? क्या मेरे हृदय के रक्त से यह शांत नही हो सकती। कृष्ण ने उत्तर दिया, मुझे रक्त की आवश्यकता नहीं। यदि मेरा कोई भक्त अपना चरणोदक पिला दे तो यह वेदना शांत हो सकती है। यदि रुक्मिणी अपना चरणोदक पिला दे, तो शायद लाभ हो सकता है।

नारद ने मन में सोचा- भक्त का चरणोदक भगवान के श्रीमुख में। अखिर रुक्मिणी के पास जाकर उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। रुक्मिणीजी बोली- नहीं-नहीं देवर्षि मैं यह पाप नहीं कर सकती। मगर रुक्मिणी ने अपने पांव की धूल देने से इनकार कर दिया और कहा ऐसा करने से मैं सात जन्मों तक नरक में पड़ी रहूंगी।

नारद ने लौटकर रुक्मिणी की असहमति कृष्ण के पास व्यक्त कर दी। तब कृष्ण ने उन्हें राधा के पास भेजा। राधा ने सुना तो तत्क्षण एक पात्र में जल भर कर लाकर उसमें अपने दोनों पैर डुबो दिए और नारद से बोली- देवर्षि इसे तत्काल कृष्ण के पास ले जाइए। मैं जानती हूं कि इससे मुझे रौरव नर्क मिलेगा, किंतु अपने प्रियतम के सुख के लिए मैं अनंत युगों तक यातना भोगने के लिए तैयार हूं। राधा ने एक क्षण का विलंब किये बगैर अपने पांव की धूल दे दी। नारद ने पूछा- राधा। क्या तुम्हें नरक में जाने से डर नहीं लगता ?

राधा ने व्याकुल होकर उत्तर दिया- प्रभु। आप देर न करें यथाशीघ्र यह धूल लेकर जायें। कृष्ण दर्द से बेचैन होंगे। मैं सत्तर जन्मों तक नरक में पड़े रहने को तैयार हूं यदि कृष्ण का दर्द ठीक हो जाये। मेरे नरक में नहीं जाने से ज्यादा जरूरी कृष्ण का ठीक होना है। कृष्ण का सुखी होना ही मेरे लिए सुखद है। और देवर्षि समझ गए कि तीनों लोकों में राधा के ही प्रेम की स्तुति क्यों हो रही है।

४८) शक्ति की सीमा- श्रीकृष्ण ने जब शिशुपाल का वध किया तो अर्जुन ने आश्चर्य से पूछा, आप पहले भी तो इसे मार सकते थे, यह तो सदैव आपका अपमान करता आया था।

श्रीकृष्ण ने गंभीरता के साथ उत्तर दिया- धनंजय, मैं तुम्हारा प्रश्न समझता हूं। आज की तरह कभी भी मैं उसका संहार कर सकता था, किंतु मेरे सम्मुख सदैव एक प्रश्न रहा है कि क्या बल का धर्म सदैव दंड ही देना है, क्षमा या सहन करना नहीं है ? क्षमा तो बलवान ही कर सकता है और सहन भी वही करेगा जिसके पास सहनशक्ति होगी। अब तक मैं अपनी इन्हीं शक्तियों की परीक्षा कर रहा था।

४९) संकीर्णता- उत्तंग मुनि अमृतपान की अभिलाषा में घोर तपस्या में बैठ गए। उनसे प्रभावित होकर इंद्र प्रकट हुए। उन्होंने पूछा, मुनिवर, क्या चाहते हो। मुनि ने कहा, मैं अमृतपान का आकांक्षी हूं। देवराज मेरी आकांक्षा पूर्ण कराने का वरदान दें। इंद्र ने कहा, आप सद्मार्ग पर चलते हुए तपस्यारत रहें। शीघ्र ही आपको भगवान स्वयं अमृतपान कराने आएंगे। उत्तंग मुनि तीर्थयात्रा पर निकले। प्यास के मारे गला सूखने लगा। अचानक एक व्यक्ति वहां आया। उसने जल पात्र सामने कर कहा, जल ग्रहण कीजिए मुनिवर। उत्तंग मुनि ने उसे पहचान लिया कि यह चांडाल है। उन्होंने जल ग्रहण करने से इनकार कर दिया। वह वापस लौट आए। घिसटते हुए वह कुछ दूर पहुंचे और नदी के पानी से प्यास बुझाई। उन्हें रात के समय इंद्र ने दर्शन दिए तथा कहा, मुनिवर तुम्हें साक्षात भगवान चांडाल के रूप में अमृतपान कराने आए थे। तुम्हारी संकीर्ण सोच ने अमृतपान से तुम्हें वंचित कर दिया। अपनी सोच को उदार बनाने के लिए पुन: तप करो। तब तुम्हें अमृतपान का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।

५०) प्रणाम से मिली दीर्घायु- प्राचीन काल में मृकण्ड नाम के एक विख्यात ऋषि थे। वन में उनके एक पुत्र हुआ। ऋषि दम्पति द्वारा श्रेष्ठ संस्कार मिलने से वह बालक पांच वर्ष की अल्प आयु में गुणवान हो गया। एक दिन किसी सिद्ध ज्ञानी ने उस बालक की ओर देखा और बहुत देर तक ठहर कर उसके जीवन के विषय में विचार किया। जब बालक के पिता ने पूछा कि मेरे पुत्र की कितनी आयु है? इस पर सिद्ध बोले कि इसके जीवन के अब केवल छ: मास और शेष रह गए है। उस बालक की आयु केवल पांच वर्ष छ: मास ही थी। उस सिद्ध ज्ञानी की बात सुनकर बालक के पिता ने बालक का उपनयन संस्कार कर दिया और उससे कहा- बेटा। तुम जिस किसी मुनि को देखो, उन्हें प्रणाम करो। पिता के कहने पर बालक ने मुनियों, सिद्ध पुरुषों एवं अपने से बड़ों को प्रणाम करना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे पांच महीने, पच्चीस दिन और व्यतीत हो गए। उसी समय सप्तऋषि उस मार्ग से पधारे। बालक ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। सप्तर्षियों ने उस बालक को दीर्घायु होने का आशिर्वाद दिया। इतना कहने के बाद जब उन्होंने उसकी आयु पर विचार किया तब पांच ही दिन की आयु शेष जानकर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। वे उस बालक को लेकर ब्रह्माजी के पास गए। बालक ने ब्रह्माजी के चरणों मे प्रणाम किया। ब्रह्माजी ने भी उसे चिरायु होने का आशीर्वाद दिया।

पितामह का वचन सुनकर ऋषियों को बडी प्रसन्नता हुई, तत्पश्चात ब्रह्माजी ने उनसे पूछा आप लोग किस काम से यहां आए हैं तथा यह बालक कौन है ? ऋषियों ने कहा- यह बालक मृकण्डु का पुत्र है, इसी आयु क्षीण हो चुकी है। इसका सबको प्रणाम करने का स्वभाव हो गया है। एक दिन हम लोग उधर से जा निकले। यह बालक पृथ्वी पर घूम रहा था। हमने इसकी ओर देखा तो इसने हम सबको प्रणाम किया। उस समय हम लोगों के मुख से बालक के प्रति चिरायु होने का आशीर्वाद निकल गया। आप भी इसे चिरंजीव होने का वरदान दे चुके हैं, अत: इस बालक को बचाइये। ब्रह्मा बोले, यह बालक मार्कण्डेय, आयु में मेरे समान होगा। यह कल्प के आदि और अन्त में भी श्रेष्ठ मुनियों से घिरा हुआ सदा जीवित रहेगा। इस प्रकार सप्तर्षियों ने ब्रह्मा से वरदान दिलवाकर उस बालक को पुन: पृथ्वी पर भेज दिया।

५१) दस गुरुओं से शिक्षा- एक बार महाराज यदु ने ऋषि दत्तात्रेय से पूछा, हे महर्षि, आप सभी विद्याओं में निपुण हैं। कृपया बतलाने का कष्ट करें कि आप इतने निर्लिप्त कैसे रहते हैं ? आपके ऐसे कौन से ज्ञानी गुरु हैं, जिनसे आपने यह महान गुण सीखा।

ऋषि दत्तात्रेय ने बड़ी ही गंभीरतापूर्वक कहा, हे राजन, मेरे गुरुओं ने मुझे ऐसी ही दस शिक्षाएं दी हैं, जिनसे मेरी बुद्धि सदा जाग्रत और निर्मल रहती है। यह सुनना था कि राजा ने विनयपूर्वक उन गुरुओं के नाम और उनकी शिक्षाओं का मर्म जानने की इच्छा प्रकट की। ऋषि दत्तात्रेय ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहा- मेरे प्रथम गुरु का नाम है पृथ्वी, जिसने मुझे दैविक, भौतिक और अन्य समस्त विपत्तियों को सहन करके अविचल रहने की शिक्षा दी है। मेरे दूसरे गुरु का नाम है वायु। प्राणवायु रूप, रस, गंध आदि की वासना से अलिप्त रहकर केवल आहार मात्र ग्रहण करता है। मेरे तीसरे गुरु का नाम है आकाश, जो जल, वायु तेज आदि से व्याप्त होने पर भी उनसे अलग रहता है। मेरे चौथे गुरु हैं जल, जिससे मैंने स्वच्छ और स्नेहशील होना सीखा है। पांचवें गुरु का नाम है अग्नि, जिससे मैंने सीखा है कि सत्पुरुष को सदा समरूप, तेजस्वी और निर्मत्सर होना चाहिए और न किसी से द्वेष और न किसी से विशेष स्नेह होना चाहिए। मेरे छठे गुरु हैं सूर्य, जो पृथ्वी को बिना किसी भेदभाव के प्रकाश देते हैं। यह समत्व भाव का आदर्श मैंने सूर्य से सीखा है। मेरे सातवें गुरु का नाम है चन्द्रमा, जिसकी कलाएं प्रतिमाह घटती-बढ़ती रहती हैं, लेकिन वह अपनी सहज शीतलता का त्याग नहीं करता। सुख-दु:ख में भी अपने सद्गुणों को नहीं त्यागने की शिक्षा मैंने चन्द्रमा से ली है। मेरे आठवें गुरु हैं समुद्र, जिनसे मैंने

मानसिक संतुलन की शिक्षा ली है। मेरे नौवें गुरु हैं भ्रमर, जो विभिन्न पुष्पों से रस ग्रहण करता रहता है। मेरे अन्तिम और दसवें गुरु हैं बच्चे, जो सबसे स्नेह करते हैं। मैंने ईर्ष्या, द्वेष और अभिमान आदि दुर्भावनाओं से मुक्त रहकर सरलतापूर्वक जीवन यापन करना बच्चों से सीखा है।

५२) क्षमाशील हृदय - एक बार महर्षि दुर्वासा ने नाराज होकर अपने तपोबल से प्राप्त शक्ति कृत्या द्वारा भक्त अम्बरीष को मारना चाहा। भगवान के सुदर्शन चक्र से रक्षित अम्बरीष को कृत्या नहीं मार सकी, उलटे सुदर्शन ने कृत्या को जलाकर राख कर दिया। इसके बाद भीषण सुदर्शन चक्र दुर्वासा ऋषि की ओर चला। दुर्वासा भयभीत होकर प्राण रक्षा को तपोबल से पृथ्वी, पाताल, आकाश, स्वर्ग, ब्रह्मलोक, कैलाश आदि लोकों की ओर इधर-उधर भागने लगे। पर नारायण का विरोधी होने के कारण उन्हें कहीं भी आश्रय नहीं मिला। अन्त में दुर्वासा ने बैकुंठ में पहुंच कर भगवान विष्णु के चरणों में गिरकर कहा- हे समदर्शी, मुझ पर दया करो और अपने इस सुदर्शन चक्र से मेरे प्राणों की रक्षा करो।

विष्णु ने सांत्वना देते हुए कहा, हे ऋषिवर, दूसरों का बुरा चाहने वालों का सदा अमंगल होता है। यदि आपको अपने प्राणों की रक्षा करनी है तो उसी भक्त अम्बरीष की शरण में जाइए। दुर्वासा बैकुंठ से लौटकर अम्बरीष के पास पहुंचे और उसके चरणों में गिरकर बोले, हे महाराज अम्बरीष, मुझे क्षमा करें।

ऋषि दुर्वासा को चरणों पर पड़ा देख भक्त महाराज अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र से विनय कर कहा, यदि मैंने कभी कोई दान, यज्ञ या धर्म पालन किया हो तो हे अभिमंत्रित चक्र, तुम उसी के पुण्य प्रताप का हनन कर अपने क्रोध को शांत करो और ऋषि दुर्वासा के जीवन हरण का निश्चय छोड़ दो।

अम्बरीष की प्रार्थना सुन कर सुदर्शन चक्र तत्काल लौट गया। ऋषि दुर्वासा महाराज अम्बरीष से बोले, आज मैंने भगवान के प्रेमी भक्तों का महत्व देखा। आप घोर अपमान करने वालों का भी मंगल कर रहे हैं। महाराज। आप सच्चे भक्त हैं। आपका क्षमाशील हृदय करुणा से भरा है। आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है। मेरे समस्त अपराधों को भुला कर मेरी प्राण रक्षा कर जीवनदान दिया है। आप धन्य हैं। हे महान क्षमाशील। मैं आपको नमन करता हूं।

महाराज अम्बरीष ने बड़े आदर सत्कार से ऋषि दुर्वासा को साथ बैठा भोजन कराया और उन्हें उचित आदर-सम्मान के साथ विदा किया।

५३) शाश्वत तो केवल ईश्वर है- जड़ भरत तमाम सांसारिक सुखों का त्याग करके इक्षुमति नदी के तट पर रहकर साधना करने लगे थे। एक दिन कच्छ का राजा रहूगण पालकी में बैठकर कपिल महामुनि के सत्संग के लिए रवाना हुआ और इक्षुमति नदी के तट पर विश्राम के लिए रुका। उसी बीच पालकी ढोनेवाला एक कहार भाग गया। राजा के मंत्री ने तटपर बैठे भरत को देखा, तो उन्हें पालकी उठाने में लगा दिया। भरत अहंकार से कोसों दूर थे। वह पालकी ढोने लगे। कदम आगे बढ़ाते समय वह इस बात का ध्यान रखते कि चींटी आदि पैरों से न कुचल जाएं। चींटी या कीड़े देखते ही वह कूदकर पांव आगे बढ़ा देते थे। बार-बार कूदने से पालकी का संतुलन बिगड़ने लगा। राजा रहूगण ने क्रोध में भरकर कहा, अरे पालकी ढोनेवाले, तू हट्टा-कट्टा है, फिर भी जीवित होते हुए मृत समान चल रहा है। मेरे शरीर का वजन भी नही संभाल पा रहा है। तू कूद-कूदकर क्यों चल रहा है ?

भरत बोले, राजन, आपने कहा कि मैं जीवित नहीं, मृत समान चल रहा हूं। परंतु मुझे तो समस्त जगत ही मृत लगता है। आप भी मुझे मृत दिखाई देते है। सत्य व शाश्वत तो केवल ईश्वर ही है। मैं परमात्मा का अंश हूं। चींटी में भी ईश्वर को देख रहा हूं, इसीलिए चींटी और कीड़ों को बचाते हुए कूद-कूदकर चल रहा हूं। राजा समझ गया कि कहार की जगह पालकी

ढोनेवाला साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु कोई तत्वज्ञानी महापुरुष है। वह पालकी से उतरकर भरत जी के चरणों में झुक गया।

५४) दत्तात्रेय के सामने प्रश्न था कि वह किसी तरह अपना ध्यान प्रभु में लगाएं। एक बार वह भिक्षा लेने एक जगह गए। वहां एक लड़की ऊखल में चावल कूट रही थी। एक हाथ में मूसल लेकर वह चावल कूटती जाती और दूसरे हाथ से ऊखल में पड़े चावल को चलाती जाती थी। इतने में उसका छोटा भाई रोता हुआ वहां आया। लड़की ने चावल कूटना जारी रखा और मीठी-मीठी बातें कर उसे चुप करा दिया। वह एक हाथ से चावल कूटती, दूसरे से चावल चलाती और मुंह से भाई को बहलाती भी रही, पर क्या मजाल कि उसके दूसरे हाथ को मूसल से कोई चोट पहुंचे। दत्तात्रेय ने सोचा कि काम करते हुए भी लड़की मूसल पर ध्यान जमाए हुए है। इसी तरह कर्म करते हुए भी परमात्मा पर ध्यान लगाया जा सकता है।

५५) महर्षि का त्याग- वृत्रासुर के अत्याचारों से तीनों लोक कांपने लगे थे। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। उसने देवताओं की हत्या कर असुरों का राज्य स्थापित करने की योजना बनाई। उसके अत्याचारों से घबरा कर ऋषि-मुनि और साधु-संत जंगलों-पहाड़ों मं जाकर छुपने लगे। उसके अत्याचारों से भयभीत होकर देवराज इन्द्र अपने गणों को लेकर भगवान शिव के पास गए और कहा, हे तीनों लोकों के स्वामी। आपकी शक्ति पाकर वृत्रासुर का अत्याचार बढ़ता जा रहा है। वह ऋषियों-मुनियों की हत्या कर रहा है। उसे रोकिए, नहीं तो पूरी धरती ज्ञानियों-ध्यानियों और संतों से खाली हो जाएगी। असुरों और देवताओं में हमेशा युद्ध होते रहते थे। वृत्रासुर नामक राक्षस ने देवताओं को बहुत परेशान कर रखा था। उसे किसी भी प्रकार मार पाना असंभव हो रहा था।

भगवान शिव ने कहा, देवराज इन्द्र, मैं अपने हर भक्त को कष्ट में अथवा संकट में देखकर अपने हृदय में कष्ट महसूस करता हूं। लेकिन वृत्रासुर के अत्याचारों को मैं भी नहीं रोक सकता। उसकी मृत्यु किसी ऐसे ऋषि की हड्डियों से बने धनुष से ही हो सकती है, जो ब्रह्मशास्त्र का ज्ञाता हो। यह शस्त्र महामुनि दधीचि की हड्डियों से बन सकता है। सभी देवता ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने उन्हें बताया कि किसी तपस्वी की अस्थि से बने वज्र द्वारा ही वृत्रासुर मारा जाएगा। उस समय ऋषि दधिची ही सबसे श्रेष्ठ तपस्वी थे।

आप लोग दधीचि के पास ही जाकर उनसे प्रार्थना करें कि वह अपना शरीर दान कर दें। लेकिन प्रभु, कोई अपना शरीर कैसे त्याग सकता है ? यह तो बहुत कठिन काम है, देवराज इन्द्र ने कहा। भगवान शिव बोले, और कोई उपाय नहीं है देवराज। देवराज अपने गणों को लेकर दधीचि के पास गए और कहा, मुनिवर। हमारी रक्षा कीजिए।

इंद्र आदि सभी देव मिलकर ऋषि आश्रम में गए और उन्हें अपना प्रयोजन बताया। महर्षि बोले, नि:संकोच कहें देवराज। मेरे लिए क्या आदेश है ? देवराज इन्द्र ने बताया, हे मुनिवर वृत्रासुर के अत्याचारों से तीनों लोकों में त्राहि-त्राहि मची हुई है।

भगवान शिव ने बताया कि उसकी मौत आपकी हड्डियों से बने शस्त्र से ही हो सकती है। यदि आप अपने प्राण त्याग कर अपना शरीर हमें दे दें तो उन हड्डियों से विश्वकर्मा से वज्र तैयार करवा कर उस पापी असुर का संहार किया जा सकता है। दधिची इंद्र द्वारा पूर्व में सताए जाने की बातों को भूलकर सहर्ष अपनी अस्थियां दान देने के लिए तैयार हो गए। दधिची ने कहा परमार्थ कार्य हेतु यदि मेरा शरीर काम आए तो प्रसन्नतापूर्वक ले जाओ। इस पर महर्षि दधीचि ने कहा, हे देवराज। यदि मेरे शरीर से आप सबों की रक्षा और किसी राक्षस का अंत हो सकता है, तो मैं अपना शरीर सहर्ष त्यागने को तैयार हूँ। यह कहकर ऋषि दधिची ने योगबल द्वारा अपने शरीर का परित्याग कर दिया। उनकी अस्थियों से वज्र बनाकर महापराक्रमी दुष्ट वृत्रासुर का अन्त किया गया। और जन कल्याण के लिए उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

वृत्रासुर को मारने के लिए देवताओं ने महर्षि दधीचि की हड्डियों से वज्र तैयार करवाया था। इसके लिए महर्षि दधीचि को समय से पहले ही अपना शरीर त्यागना पड़ा था। उनकी अस्थियों से वज्र बनाकर महापराक्रमी दुष्ट वृत्रासुर का अन्त किया गया। कहा जाता है कि महर्षि दधीचि की अस्थियां वज्र से भी अधिक शक्तिशाली थीं। महर्षि दधीचि का पुत्र पिप्पलाद उस समय बहुत छोटा था। दधीचि के पुत्र पिप्पलाद अपने पिता की असामयिक मृत्यु के कारण अत्यंत क्षुब्ध थे।

बडे होने पर जब उसे यह बात मालूम हुई कि देवताओं ने अपने स्वार्थ के लिए उसके पिता को शरीर त्यागने को कहा तो उसे बहुत क्रोध आया। देवताओं के संहार के लिए उसने भगवान शिव की तपस्या आरम्भ कर दी। वह घोर तपस्या में लीन हो गए। उनकी इस साधना से आखिरकार शिवजी प्रसन्न हुए।

पिप्पलाद की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव प्रकट हुए और बोले- बेटा, वर मांगो। पिप्पलाद ने कहा- यदि आप सचमुच मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपना तीसरा नेत्र खोलकर सभी देवताओं को भस्म कर दें। शिवजी ने तथास्तु कहकर अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। उनके ऐसा करते ही भीषण अग्नि से संपूर्ण सृष्टि जलने लगी। पिप्पलाद की बात सुनकर भगवान शिव बोले- मैं यह कर तो सकता हूं, लेकिन सोचने की बात यह है कि इससे विनाश होगा। तुम्हारे हाथ इंद्र हैं, नेत्र सूर्य हैं और मन चन्द्रमा हैं। तुम्हारे अन्य अंग-प्रत्यंग भी अन्य देवताओं के रूप हैं। यदि तुम इनको नष्ट कर दोगे तो तुम्हारा शरीर कैसे रहेगा। दूसरों का बुरा चाहने में अपना भी बुरा होता है। तुम्हारे पिता ने दूसरों के कल्याण के लिए अपना शरीर त्याग दिया। फिर तुम उनके पुत्र होकर दूसरों का बुरा क्यों चाहते हो ? जरा सोचो, दूसरों के कल्याण में ही तुम्हारा कल्याण है। पिप्पलाद की समझ में बात आ गई। वह शिव के चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने भगवान शंकर से कहा, हे प्रभु मुझे क्षमा कीजिए। मुझसे बहुत बड़ी भूल हुइ है। मैंने अपने पिता की मृत्यु के बारे में गलत तरीके से सोच रहा था। मेरे पिता ने एक महान लक्ष्य के लिए अपना शरीर त्यागा है। मैं भी उनकी तरह दूसरों के कल्याण की कामना करूंगा। मैं अपना अनुरोध वापस लेता हूं। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण दूसरों को कष्ट पहुंचे। पिप्पलाद के ऐसा कहते ही भगवान शंकर का तीसरा नेत्र बंद हो गया।

५६) महर्षि का त्याग- महर्षि दधीचि बचपन से ही परोपकारी और साहसी थे। एक बार एक पेड़ पर एक सांप चढ़ गया। उस पर तोते का एक परिवार रहता था। सांप ने तोते के एक बच्चे को पकड़ लिया। बच्चा फड़फड़ाने लगा। बच्चे की मृत्यु को नजदीक देख तोता और तोती बिलखने लगे। पेड़ के नीचे तमाशबीनों की भीड़ जुट गई थी। उनमें से किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि कोई तोते के बच्चे को बचाने के लिए सामने आए। थोड़ी ही दूरी पर दधीचि खेल रहे थे। शोरगुल सुन कर वह भी वहां आ गए। उन्होंने देखा कि सांप के मुंह में तोते का बच्चा फड़फड़ा रहा है। उन्होंने आव देखा न ताव फौरन पेड़ पर चढ़ने लगे। लोगों में खलबली मच गई। कइयों ने एक साथ कहा, दधीचि, पेड़ पर मत चढ़ो, उतर आओ। जहरीला सांप तुम्हें काट लेगा। एक पक्षी के बच्चे के लिए तुम क्यों अपनी जान जोखिम में डाल रहे हो ?

दधीचि ने कहा, वह पक्षी का बच्चा है तो क्या हुआ, है तो वह भी एक माता-पिता की संतान। उसकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। वह सांप की परवाह न करते हुए पेड़ पर चढ़ गए और सांप के मुंह से तोते के बच्चे को छुड़ा कर उड़ा दिया। तोता और तोती बच्चे को जीवित पाकर चहचहा उठे। इसके पहले कि सांप दधीचि को डसता, उन्होंने पेड़ के नीचे छलांग लगा दी। उन्हें काफी चोट आई। किसी ने उनसे पूछा, दधीचि, क्या तुम्हें सांप से डर नहीं लगा जो तुम पेड़ पर चढ़ गए। दधीचि ने कहा, डरना है तो गलत काम से डरो। अच्छे काम के लिए किसका डर। अच्छा करनेवाले की रक्षा तो भगवान खुद करते है। यदि आप के बच्चे पर इसी तरह का संकट आया होता तो क्या आप लोग इसी तरह तमाशा देखते रहते ?

दधीचि की यह भावना आगे चलकर और भी मजबूत होती गई। जनकल्याण तथा पापियों के नाश के लिए उन्होंने अपना शरीर तक त्याग दिया था। उनकी हड्डियों से बने अस्त्र से राक्षसों का संहार हुआ।

५७) श्रीकृष्ण- महर्षि दुर्वासाने द्वारिका में जाकर कहा- मुझे अपने घर में कौन ठहराता है ? मुझे वही ठहराये जो मेरा सब कुछ सह सके। भगवान श्रीकृष्णने उन्हें अपने महल में ठहराया। ऋषि कभी हँसते, कभी रोते, कभी घर की वस्तुओंमें अग्नि लगा देते, कभी हजारों मनुष्योंके भोजनको अकेले ही खा जाते और कभी बालक की तरह थोड़े में ही तृप्त हो जाते। वे एकदिन बोले- खीर लाओ। श्रीकृष्ण तुरन्त खीर ले आये। थोड़ी-सी खाकर बोले- अब इसे अपने सारे शरीर में पोत लो। श्रीकृष्णने ऐसा ही किया। ऋषिने पास खड़ी रुक्मिणीजी से कहा- तुम भी चुपड़ लो। इसके बाद बोले- रथ मँगाओ। तुरन्त ही रथ आ गया। घोड़े थक जायेंगे अत: इन्हें खोल दो, रुक्मिणी रथमें जुत जाय। ऐसा कहने पर खीर से लिपटी रुक्मिणीजी रथ में जुत गयीं। दुर्वासाजी चाबुक लेकर रथ पर बैठ गये। मुनिकी इच्छानुसार राजमार्ग पर रथ चला। वे सटासट चाबुक फटकारते रहे रुक्मिणीदेवी पर। इसके बाद वे रथ से उतर कर भागे। श्रीकृष्ण पीछे-पीछे दौड़े और नम्रता से कहने लगे कि- भगवन्। प्रसन्न होइये। दुर्वासाजी खड़े हो गये और पानी-पानी होकर बोले- गोविन्द। तुम धन्य हो, तुम्हारे बिना मेरा आतिथ्य कौन कर सकता है। ऐसा कहकर अनेकों आशीर्वाद देकर ऋषि चले गये।

५८) मुद्गल मुनि- ये कुरुक्षेत्र निवासी महान् तपस्वी गृहस्थ ब्राह्मण थे। उनके पत्नी तथा एक पुत्र था। शिलोञ्छवृत्ति से निर्वाह करते थे। अमावस्या तथा पूर्णिमा को एकत्र अन्न से इष्टीकृत यज्ञ, दर्श तथा पौर्णमास श्राद्ध करके अतिथि-सेवा के बाद बचे अन्नसे तपस्वी परिवार पेटकी ज्वाला को शान्त कर लेता था। नित्य भोजन की व्यवस्था नहीं होती थी। इनके तप, त्याग और अतिथि-सेवा की प्रशंसा सुनकर एक पूर्णिमा को श्रीदुर्वासाजी इनके यहाँ पहुँचे। मद्गलजीने इनका आतिथ्य किया। दुर्वासाजी ने भोजन किया और बचे-खुचेको अपने शरीरमें लपेट लिया और चले गये किन्तु ब्राह्मण परिवार भूखा रह गया। सब अपने भजन-साधन में लगे रहे भोजन की चिन्ता नहीं। अब प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाके दिन दुर्वासाजी आते और सम्पूर्ण अन्न सफाचट कर जाते। पूरे तीन महीने तक मुद्गल परिवार ने उपवास किया पर प्रसन्न रहा। ऐसे तपोधनको लेनेके लिए स्वर्ग से विमान आया पर इन्हें स्वर्ग की कामना ही न थी। विमान निराश लौट गया। अन्त में ये परमपद के अधिकारी और भगवान के कृपापात्र हुए। श्रीपयहारीजी महापुरुष थे अत: आदर्श आतिथ्य कर सके।

निराश होकर अतिथि जब द्वार पर से लौटता है तो वह अपना पाप दे जाता है और आश्रमीका पुण्य ले जाता है।

५९) अनुभवजन्य ज्ञान- दत्तात्रेय आत्मज्ञान सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए कितने ही विद्वानों के पास गये पर उनका समग्र समाधान न हो सका। इस पर वे प्रजापति के पास पहुंचे और ऐसा उपाय पूछने लगे जिससे उनको संतोष हो सके। प्रजापति ने कहा- दूसरों से पूछने पर यह प्रयोजन सिद्ध न होगा। अपने इर्द-गिर्द जो घटनाक्रम हो, उसी से निष्कर्ष निकालों और अनुभव के आधार पर उसे अपनाओ। इस सूत्र को लेकर दत्तात्रेय चल पड़े। उन्होंने मकड़ी को देखा जो स्वयं ही जाल बुनती, स्वयं ही उसमें फंसती और जब मौज में आती तब उस धागे को लपेटकर मुंह में निगलती। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य स्वयं ही मायाजाल बुनता और उसमें फंसकर त्रास पाता है। पर जब उसका विवेक जागता है तो समूचे जंजाल को समेटकर स्वतंत्र हो जाता है। इसी प्रकार उन्होंने अनेक प्राणियों की गतिविधियां देखी और उस उदाहरण के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए अपना समाधान किया। ऐसी चौबीस घटनाओं से उनका आत्मज्ञान पूरा हो गया। यह मार्ग दूसरों के लिए भी है। अनुभवजन्य ज्ञान ही प्रत्यक्ष निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है।

६०) क्रोध का आकार- एक बार तीन मित्र-वासुदेव, बलदेव और सात्यकि घोड़ों पर सवार होकर जंगल में वन विहार

के लिये घूमने निकले, पर जल्दी ही वे रास्ता भटक गए और एक सघन वन में जा फँसे। उन्हें एक पेड़ के नीचे रात बिताने को मजबूर होना पड़ा। चारों तरफ गहन अंधेरा था। बीच-बीच में खतरनाक जानवरों की आवाजें भी सुनाई दे रही थीं। जंगल बहुत घना और खतरनाक था। उसमें अनेक हिंसक जानवर रहते थे। इसलिए तय किया गया कि सब मिल कर बारी-बारी से पहरा देंगे।

तीनों ने एक-एक प्रहर पहरा देने का निश्चय किया, ताकि सुरक्षा होती रहे और दो साथी सोते रह सकें। सबसे पहले सात्यकि को पहरा देना था। कृष्ण और बलराम सोने चले गए। उसी समय एक भयानक राक्षस आया और सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि बहुत बलवान थे। राक्षस के आक्रमण से उन्हें बड़ा गुस्सा आया। क्रोध में आकर उन्होंने भी पूरे बल के साथ उस राक्षस पर आक्रमण कर दिया। मगर सात्यकि को जितना अधिक क्रोध आता, उस राक्षस का आकार उतना ही बड़ा हो जाता। कुछ देर के बाद राक्षस अदृश्य हो गया। सात्यकि ने उसके कटु वचनों का वैसा ही उत्तर दिया और घूंसे का जवाब लात से देता रहा। बड़ी देर तक मल्ल युद्ध होता रहा। पूरे प्रहर हुए मल्ल युद्ध में सात्यकि को कई जगह चोटों आईं। पर उसने साथियों से इसकी चर्चा न कर सो जाना ही उचित समझा।

जब बलदेव की बारी आई तो उसे भी पिशाच ने चुनौती दी और गर्मागर्म उत्तर देनेवाले बलदेव की भी वही दुर्गति हुई जो सात्यकि की हुई थी। लेकिन उस समय वह भी चुप रहे।

अंत में वासुदेव की बारी आई। उसे भी चुनौती मिली। वह हंसते हुए लड़ता रहा और कहता रहा, बड़े मजेदार आदमी हो तुम। नींद और आलस्य से बचाने के लिए कैसा मजाक कर रहे हो। पिशाच का बल घटता गया। अंत में वह झींगुर जैसा छोटा रह गया। तब वासुदेव ने उसे दुपट्टे के एक छोर में बांध कर रख लिया। सुबह हुई तो बलराम और सात्यकि को घायल देखकर कृष्ण ने पूछा, यह सब कैसे हुआ। तुम दोनों तो बहुत शक्तिशाली हो, तुम्हें किसने घायल कर दिया? दोनों ने रात की घटना बताई।

प्रात: नित्यकर्म से निपट कर जब चलने की तैयारी होने लगी तब सात्यकि और बलदेव ने पिशाच के साथ मल्लयुद्ध होने की घटना सुनाई और चोटों के निशान भी दिखाए। इस पर वासुदेव हंसा, फिर उसने पिशाच को दुपट्टे के एक छोर से निकालकर हथेली पर रख दिया। कृष्ण ने दुपट्टे को खोल कर वह मच्छर दिखाते हुए कहा, यह रहा तुम्हारा राक्षस। सत्य यह है कि क्रोध ही राक्षस है। जितना क्रोध करोगे, राक्षस उतना ही शक्तिशाली होता जाएगा और तुम्हें नुकसान पहुंचाएगा। असल में अपने आप में राक्षस कुछ नहीं है।

सात्यकि और बलदेव के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अपने साथियों को वासुदेव ने बताया, वह पिशाच और कोई नहीं, बल्कि हमारे भीतर का क्रोध था। अगर हम उसी के अनुरूप आचरण करते हैं तो वह बढ़ता जाता है। और अगर उसकी उपेक्षा करते हैं तो वह दुर्बल और छोटा होता जाता है। उसे परास्त करने के लिए धैर्य और संयम की जरूरत है।

६१) दान अभिमान से नहीं उदारता से करो- राजा जानुश्रुति अपने समय के महान दानी थे। एक शाम वह महल की छत पर विश्राम कर रहे थे, तभी सफेद हंसों का जोडा आपस में बात करता आकाश-मार्ग से गुजरा। हंस कह रहा था, अरी अंधी, क्या तुझे राजा जानुश्रुति के शरीर से निकल रहा यश प्रकाश नहीं दीख पड़ता ? बचकर चल, नहीं तो इसमें झुलस जाएगी। हंसिनी मुस्कराई, प्रिय मुझे आतंकित क्यों करते हो ? क्या राजा के समस्त दानों, सत्कार्यों में यश-लिप्सा विहित नहीं है, जबकि संत रैक्व एकांत साधना में लीन है ? जानुश्रुति के हृदय में हंसों की बातचीत कांटे की तरह चुभी। उन्होंने सैनिकों को संत रैक्व का पता लगाने का आदेश दिया। बहुत खोजने पर किसी एकांत स्थान में वह संत अपनी गाड़ी के

नीचे बैठा मिला। जानुश्रुति राजसी वैभव से अनेक रथ, घोड़े, गौ, सोने की मुद्राएं लेकर रैक्व के पास पहुंचे। रैक्व ने बहुमूल्य भेटों को अस्वीकार करते हुए विरक्त स्वर में कहा, मित्र, यह सब और शत-सहस्त्र राज्य भी ज्ञान के सामने तुच्छ है। ज्ञान का व्यापार नहीं होता। राजा शर्मिंदा हो लौट गए। कुछ दिन बाद वह खाली हाथ, जिज्ञासु की तरह रैक्व के पास पहुंचे। रैक्व ने राजा की जिज्ञासा देखकर उपदेश किया, दान करो, किन्तु अभिमान से नहीं उदारता से, अहं से नही, उन्मुक्त भाव से दान करो, यश लिप्सा से नहीं। राजा जानुश्रुति को बोध हुआ। वह दार्शनिक रैक्व को प्रणाम कर संतुष्ट हो राजधानी लौट गए।

६२) खुद को दु:ख देना भी धर्म है- शिबि अपनी त्याग बुद्धि के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनकी त्याग भावना तात्कालिक और अस्थायी है या उनके स्वभाव का स्थायी गुण, इसकी परीक्षा करने के लिए इन्द्र और अग्नि ने एक योजना बनायी।

एक बार राजा शिवि के राजधर्म की परीक्षा लेने के उद्देश्य से देवराज इन्द्र ने बाज का और अग्नि देव ने कबूतर का रूप धारण किया। उशीनगर देश के राजा शिबि एक दिन अपनी राजसभा में बैठे थे। उसी समय एक कबूतर उड़ता हुआ आया और राजा की गोद में गिरकर उनके कपड़ों में छिपने लगा। कबूरत बहुत डरा जान पड़ता था। राजा ने उसके ऊपर प्रेम से हाथ फेरा और उसे पुचकारा। कबूतर से थोड़े पीछे ही एक बाज उड़ता आया और वह राजा के सामने बैठ गया। कबूतर को अपना आहार बनाने के लिए बाज ने उसका शिकार करने के लिए पीछा किया। कबूतर तेजी से उड़ता हुआ राजा शिबि के चरणों में जा पड़ा और बोला, मेरी रक्षा कीजिए। शिबि ने उसे रक्षा का आश्वासन दिया। पीछे-पीछे बाज भी आ पहुँचा।

बाज ने महाराज से कबूतर उसे सौंप देने की याचना की। बाज बोला- मैं बहुत भूखा हूँ। आप मेरा भोजन छीनकर मेरे प्राण क्यों लेते हैं ? उसने शिबि से कहा, महाराज। मैं इस कबूतर का पीछा करता आ रहा हूं और इसे अपना आहार बना कर अपनी भूख मिटाना चाहता हूं, यह मेरा भक्ष्य है। आप इसकी रक्षा न करें।

शिबि ने कहा, हे पक्षीराज। यह शरणागत है, इसलिए इसे मैं तुम्हें नहीं सौंप सकता। यदि मैंने इसे तुम्हें सौंप दिया तो तुम इसे मार कर खा जाओगे, जबकि राजा का धर्म ही प्रजा की रक्षा करना है। शिबि ने बाज से कहा, मैंने इस पक्षी को अभय प्रदान किया है। इसे कोई मारे यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं करूँगा। बाज ने पुन: निवेदन किया, महाराज मैं बहुत दिनों का भूखा हूँ, यदि मुझे मेरा आहार नहीं मिला तो मैं क्षुधा की पीड़ा से मर जाऊंगा, फिर, आपके प्रजापालन धर्म का निर्वाह कैसे हो पाएगा ?

राजा शिबि बोले- तुम्हारा काम तो किसी भी मांस से चल सकता है। तुम्हारे लिए यह कबूतर ही मारा जाए, इसकी क्या आवश्यकता है। तुम्हें कितना मांस चाहिए ? तुम्हें अपनी भूख मिटाने के लिए मांस चाहिए, सो मैं तुम्हें अपने शरीर से इस कबूतर के वजन के बराबर मांस काटकर देता हूं।

बाज कहने लगा- महाराज। कबूतर मरे या दूसरा कोई प्राणी मरे, मांस तो किसी को मारने से ही मिलेगा। यदि आप चाहें तो इस कबूतर के बराबर अपने शरीर का मांस ही दे दें। दानी शिबि ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा ने विचार किया और बोले- मैं दूसरे किसी प्राणी को नहीं मारूँगा। अपना मांस ही मैं तुम्हे दूँगा। एक पलड़े में कबूतर को बैठाया गया और दूसरे पलड़ें में महाराज अपने शरीर के एक-एक अंग रखते गए।

उन्होंने एक तराजू मंगवायी और उसके एक पलड़े में कबूतर को रख दिया। दूसरे पलड़े में महाराज शिबि अपने शरीर से मांस काटकर डालने लगे। काफी मांस काट डाला किंतु कबूतर वाला पलड़ा तनिक भी नहीं हिला और अंत में महाराज शिबि स्वयं उस पलड़े पर जा बैठे और बाज से बोले, मेरा पूरा शरीर तुम्हारे सामने है, आओ भोजन करो।

तराजू पर राजा स्वयं अपना मांस तलवार से काट-काट कर चढ़ाते गए, परन्तु देव लीला से कबूतर का वजन बढ़ता

गया। जब शिबि मांसहीन हो गए, तब वे स्वयं तराजू पर चढ़ गए। आखिर में राजा खुद पलड़े में बैठ गए। बाज से बोले- तुम मेरी इस देह को खाकर अपनी भूख मिटा लो। महाराज जिस पलड़े पर थे, वह पलड़ा इस बार भारी होकर भूमि पर टिक गया था और कबूतर का पलड़ा ऊपर उठ गया था। लेकिन उसी समय सबने देखा कि बाज तो साक्षात देवराज इन्द्र के रूप में प्रकट हो गया है और कबूतर बने अग्नि देवता भी अपने मूल रूप में खड़े हैं। अग्नि देवताने कहा- महाराज। आप इतने बड़े धर्मात्मा हैं कि आपकी बराबरी मैं तो क्या, विश्व में कोई भी नहीं कर सकता।

इन्द्र ने महाराज का शरीर पहले के समान ठीक कर दिया और बोले- आपके धर्म की परीक्षा लेने के लिए हम लोगों ने यह बाज और कबूतर का रूप बनाया था। आपका यश सदा अमर रहेगा। दोनों पक्षी बने देवता महाराज की प्रशंसा करके और उन्हें आशीर्वाद देकर अंतर्ध्यान हो गए।

महाराज शिबि की त्याग बुद्धि को स्वीकार करते हुए अग्नि और इन्द्र अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हुए और महाराज शिबि को भी उठा कर खड़ा कर दिया। उन्होंने शिबि की त्याग भावना की बड़ी प्रशंसा की, आशीर्वाद दिया और फिर चले गए। शिबि की इसीलिए प्रशंसा की जाती है कि उन्होंने प्रजा और शरणागत बनें जीवों के हितों की रक्षा के लिए अपने जीवन का भी मोह नहीं किया। वस्तुत: यही राजधर्म है।

ऐसे कई सच्चे उदाहरण हमारे चारों ओर बिखरे पड़े हैं, जो हमारी संस्कृति और धर्म की महानता व व्यापकता दर्शाते हैं। हमारा दर्शन अद्वितीय और अतुलनीय है। स्वयं कष्ट उठाकर भी शरणागत और प्राणीमात्र की भलाई चाहने वाली संस्कृति और कहाँ मिलेगी। वहीं ऐसा राजा भी कहाँ मिलेगा, जो नाइंसाफी नहीं हो जाए, इसलिए स्वयं को ही भोजन हेतु समर्पित कर दे। त्याग से मनुष्य लाभ प्राप्त करता है। महाराज शिबि ने अपने शरीर को सहर्ष समर्पित कर दिया। अग्नि और इन्द्र ने उनकी कितनी कठोर परीक्षा ली।

६३) पवित्र शब्दों का प्रभाव- एक बार सौभरि ऋषि अपने आश्रम में वेद मत्रों का पठन-पाठन कर रहे थे। मंत्र का अर्थ था: पवित्रता के शब्द हमारे घर, आँगन और सभी जगहों पर भ्रमण करने से हर उस व्यक्ति को छूते हैं, जो उनके प्रभाव क्षेत्र में आता है। शब्द अदृश्य, किन्तु शक्तिशाली हैं।

एक बार उनके आश्रम में उज्वांक केतु दैत्य आ गया। वहाँ तो वेद मंत्रों का सदैव अध्ययन, गायन और मंथन होता था। सो दैत्य की प्रवृत्ति में अंतर्द्वंद्व आ गया और वह अंधकार से प्रकाश में आ गया। पवित्र शब्दों के कवच में आकर दैत्य का मन बदल गया और ऋषि चरणों में ही रहने लगा। सौभरि ऋषि ने बारह वर्ष के अनुष्ठान किये और उससे कराये। फलत: वह उज्वांक केतु दैत्य भी ऋषि बन गया और वृक्ष के झरे हुए सूखे पत्तों की भाँति कुमार्ग त्याग कर बाद में साकल्य मुनि के नाम से विख्यात हुआ। यह था पवित्र वाणी से उच्चारित पवित्र शब्दों का प्रभाव, जिसने पूरा जीवन बदल कर दैत्य को ऋषि बना दिया था।

६४) शुकदेव की दीक्षा- ऋषि वेदव्यास के पुत्र शुकदेव महाज्ञानी थे, संयम की मूर्ति थे। उनके हृदय में ज्ञान की लौ गर्भ से ही आलोकित हो उठी थी। कहीं मायावी संसार में आकर वह अपना ज्ञान खो न दें, यह सोच उनको भयभीत करने लगी और उन्होंने जन्म न लेने का प्रण कर लिया। जब देवलोक में यह बात पहुंची तो देवताओं को भी चिंता होने लगी। शुकदेव को गर्भ से बाहर लाने के लिए उन्होंने ब्रह्माजी से प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने कुछ समय के लिए सांसारिक माया को अपनी शक्ति से अदृश्य कर दिया। शुकदेव ने धरती पर जन्म लिया पर उनकी दिव्यात्मा को ब्रह्माजी भी भ्रमित न कर सके। अत: शुकदेव कपटी मायाजाल से बचने के लिए पांच साल के शैशव काल में ही जंगलों की ओर प्रस्थान कर गए।

और इस तरह उन्होंने त्याग और तपश्चर्या का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया।

शुकदेव को उनके पिता ने परामर्श दिया कि वे महाराज जनक की शरण में जाकर दीक्षा ग्रहण करें। व्यास मुनि ने अपने बेटे शुक को अच्छी शिक्षा-दीक्षा और सत्य ज्ञान देकर अंतिम दीक्षा के लिए राजा जनक के पास भेजा।

राजा जनक को पहले ही मालूम हो गया था कि व्यास पुत्र शुक उनके पास अंतिम ज्ञान लेने आ रहे हैं। शुक आकर राजभवन के द्वार पर निर्विकार भाव से खड़े हो गए। नगर के स्त्री-पुरुषों के चारों ओर वैभव इठला रहा था, पर इसका उनके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जब वह महल की ड्योढ़ी पर पहुंचे तो द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया। वह धूप में बहुत समय तक खड़े रहे, लेकिन इसका भी उन पर कोई असर नहीं हुआ। राजभवन के प्रहरियों ने शुक की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। काफी देर खड़े रहने के बाद उनके लिए द्वार के बाहर एक आसन डाल दिया गयां उस पर वह बैठ गए। किसी ने नहीं पूछा कि वे कहां से आए हैं, कहां जाना है, क्या काम है। लेकिन शुक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्हें न क्रोध आया और न ही प्रसन्नता हुई। वे निर्विकार भाव से वहां इत्मीनान से बैठे रहे। तीन दिनों के बाद एक मंत्री आया और शुक को राजभवन के भीतर ले गया।

आठ दिनों तक उन्हें राजमहल की सभी सुख-सुविधाएं मिलीं, लेकिन शुक में तब भी कोई बदलाव नहीं आया। उन्हें राजा जनक के दरबार में लाया गया। उनके सम्मान में संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया गया। वहां छाया में वह आत्म-चिंतन में लीन हो गये। इसके पश्चात उन्हें बड़े ही सुहावने उद्यान में ले जाया गया, बढिया भोजन कराया गया और रात को सोने के लिए आरामदेह पलंग दिया गया। पर शुकदेव ब्राह्म मुहूर्त में उठे और ध्यान में डूब गये। नगर और महल का सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त लुभावना था। नगर की सजावट, नागरिकों का रहन-सहन, महल की भव्यता, सबकुछ अद्भुत था, लेकिन शुकदेव उस ऐश्वर्य के बीच ऐसे रहे, जैसे जल में कमल रहता है। जैसे पहले थे वैसे अब भी थे।

पिता के परामर्श से शुकदेव महाराज जनक के दरबार जा पहुंचे और महाराज से दीक्षा प्रदान करने का अनुरोध किया। अगले दिन उन्हें राजा जनक के सामने उपस्थित किया गया। राजा को सारी चीज की जानकारी थी। महाराज जनक ने दीक्षा देने से पहले शुकदेव की परीक्षा लेते हुए उनके हाथ में दूध से भरा एक कटोरा दिया और उनसे कहा कि इस कटोरे को हाथ में लेकर मिथिला नगर घूमकर आओ। लेकिन ध्यान रहे कटोरे से दूध की एक भी बूंद छलकने न पाए। शुक ने दूध भरा कटोरा ले लिया और सात बार परिक्रमा कर आए, लेकिन एक बूंद भी नहीं छलका। दूध का कटोरा लेकर शुक सम्राट के पास आए।

शुकदेव ने आज्ञा मान ली और दूध के कटोरे को बिना छलकाए मिथिला घूमकर वापस आ गए। यह देखकर महाराज जनक बहुत खुश हुए और उन्होंने शुकदेव से पूछा कि उन्होंने मिथिला घूमते हुए क्या-क्या देखा ? शुकदेव बोले, महाराज, मैं मिथिला पूरा घूम लेने पर भी कुछ नहीं देख पाया, क्योंकि मेरा पूरा ध्यान दूध के कटोरे पर था कि वह किसी भी तरह छलक न सके।

राजा जनक ने कहा, वत्स तुम्हारी शिक्षा पूरी हो चुकी है। तुम परीक्षा में सफल हुए। तुम्हें जो शिक्षा तुम्हारे पिता मुनि व्यास ने दी है और जो तुमने स्वयं सीखा है, वह पर्याप्त है। तुमने अपनी इंद्रियों, मोह, क्रोध, अहंकार सभी विकारों को जीत लिया है। एकचित्त होकर तुमने अनुकूल और प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में रहना सीख लिया है। वास्तव में कोई गुरु किसी को सिखाता नहीं है, हम सबको अपने-आप सीखना पड़ता है। गुरु तो केवल संकेत देता है। जनक ने कहा, यही एकाग्रता योग है। इसे जीवन भर साधते रहो, यही मेरी दीक्षा है। शुक बोले- मैंने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं जिससे आपको मेरा आकलन करने का अवसर मिलता। जनक बोले- तुमने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि मोह-माया, क्रोध, लोभ, अहंकार और सुख-दुख आदि सभी विकारों पर तुमने विजय प्राप्त कर ली है। मन की एकाग्रता ही अंतिम

दीक्षा है। मुझे विश्वास है कि तुम भी अपने पिता की तरह समाज की सेवा अच्छी तरह करोगे।

उन्होंने शुकदेव की पूजा-अर्चना की, उन्हें ऊंचे आसन पर आसीन किया और स्वयं उनके सामने धरती पर बैठ गये। विनत होकर उन्होंने कहा, महाराज, आप दुनिया की मोह-माया से मुक्त हैं, सुख से परे हैं। आप अनन्त ज्ञान के भण्डार हैं। लेकिन आपको अपने ज्ञान और महानता का भान नहीं है। इसी से आप अपने अन्तर में कोई कमी पा रहे हैं। जनक के इतना कहते ही शुकदेव ने अपने स्वरूप को पहचान लिया, उन्हें आत्मज्ञान हो गया। वत्स, अब तुम घर जाओ। तुमने अपने मन को वश में करने की शक्ति पा ली है, यही सत्य ज्ञान है।

६५) मीमांसा- वेदव्यास राजा जनक के सामने बैठे गूढ़ तत्वों की मीमांसा कर रहे थे। एकाग्रचित्त जनक उपदेशों को ग्रहण कर रहे थे, तभी सहसा कोलाहल मच गया- राजभवन में आग लग गयी थी। अग्निदेव भयावह जिह्वा लपलपाते कोषागार, भाण्डारागार और आयुधागार को निगलते हुए अब राजा के सभागार तक आ पहुंचे थे। परिचारक तथा कंचुकी बार-बार आकर राजा को चेता चुके थे, किन्तु राजा उसी तल्लीनता के साथ एकाग्र मन से महर्षि का उपदेशामृत ग्रहण करते रहे।

आग एकदम सिर पर आयी देख महर्षि की शिष्य-मंडली भी जान बचाने के लिए भागदौड़ करने लगी, किन्तु दोनों ज्ञानी चर्चा में लीन बैठे रहे। सहसा महर्षि व्यास ने पूछा, राजन। तुम्हारी सम्पूर्ण वैभव-सम्पदा और राज्य इस भीषण आग से नष्ट होते जा रहे हैं, तुम उसके शमन को कोई उपाय क्यों नहीं करते ?

राजा जनक ने शांत स्वर में कहा, महर्षि मेरा इस संसार में क्या है ? फिर जो मेरा नहीं है, उसके जाने का शोक ही क्यों करूं ? आप मीमांसा करते रहें भगवन।

६६) सच्ची साधना - देशव्रत अपनी वृद्ध माता को छोड़कर एक मठ में चला गया और वहां साधना करने लगा। एक दिन प्रात:काल उसने स्नान करके अपना अंगोछा सूखने के लिए जमीन पर डाल दिया और वहीं आसन बिछाकर ध्यानमग्न हो गया। जैसे ही वह ध्यान मुद्रा से उठा, उसने देखा कि एक कौवा उसके अंगोछे को लेकर उड़ा जा रहा है। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने अपनी एक सिद्धि का प्रयोग किया और अपनी आंखों से अंगारे बरसाने लगा। कौवा तत्काल भस्म हो गया। देशव्रत अपनी इस उपलब्धि पर फूला न समाया। अहंकार से भरा वह भिक्षाटन के लिए निकला।

उसने एक दरवाजे पर जाकर आवाज लगाई। उस घर के भीतर से लोगों की आवाजें तो आ रही थीं, पर कोई बाहर नहीं आ रहा था। उसने फिर पुकारा तो अंदर से एक स्त्री ने कहा, स्वामीजी, अभी अपने पति की सेवा में लगी हूं। कुछ ही क्षणों में आ रही हूं। अहंकारी देशव्रत ने चिल्लाकर कहा, दुष्टे, तुझे नहीं मालूम इस अवज्ञा का क्या परिणाम हो सकता है। तभी उस महिला ने बाहर आकर कहा, मैं जानती हूं। आप मुझे शाप देंगे, पर मैं कौवा नहीं कि भस्म हो जाऊंगी। अपनी वृद्ध मां को छोड़कर साधना करनेवाले साधु, आप मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाएंगे। देशव्रत को झटका लगा। उसने पूछा, आप कौन हैं? आप किसकी साधना करती हैं?

महिला ने जवाब दिया, मैं जिस गृहस्थ धर्म में हूं उस धर्म की साधना पूर्णतया समर्पित होकर करती हूं। आप चाहें तो इसे ही मेरी सिद्धि कह सकते हैं। इसी से मुझे मुक्ति मिली है। देशव्रत का सिर लज्जा से झुक गया। वह भिक्षा लिए बगैर ही अपने घर की ओर चल पड़ा। वह सोच रहा था, मैंने न तो गृहस्थ धर्म की साधना की और न ही साधु धर्म की। दोनों से भ्रष्ट होकर मैं कुछ तांत्रिक सिद्धियों को ही सब कुछ समझ बैठा। उस दिन से वह अपनी मां की सेवा में लग गया।

६७) वास्तविक ज्ञान - शूरसेन प्रदेश में चित्रकेतु नामक राजा थे। उनकी अनेक रानियां थीं, किंतु कोई संतान नहीं थी।एक दिन महर्षि अंगिरा राजभवन में पधारे। नरेश को संतान के लिए लालायित देख उन्होंने एक यज्ञ कराया, पर जाते

समय कह गए, महाराज, आप पिता बनेंगे किंतु आपका पुत्र आपके हर्ष तथा शोक दोनों का कारण बनेगा। महारानी कृतद्युति गर्भवती हुई। समय पर उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ। राज्यभर में महोत्सव मनाया गया। राजा पुत्र के स्नेहवश बड़ी रानी के भवन में अधिक समय बिताने लगे। फल यह हुआ कि दूसरी रानियां कुढ़ने लगीं। उनकी ईर्ष्या इतनी बढ़ी कि उन्होंने उस अबोध शिशु को विष दे दिया। बालक मर गया। राजा विलाप करने लगे। तभी वहां महर्षि अंगिरा के साथ देवर्षि नारद पधारे। महर्षि ने राजा से कहा, राजन, तुम पर प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे पास इसलिए आया था कि तुम्हें ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखा दूं, किंतु तुम्हारे चित्त में उस समय प्रबल पुत्रेच्छा देखकर मैंने तुम्हें पुत्र दिया। अब तुमने पुत्र-वियोग के दुख का अनुभव कर लिया। यह संसार इसी प्रकार दुखमय है। चित्रकेतु अभी शोकमग्न थे। वह समझ नहीं सके। देवर्षि नारद ने ताड़ लिया कि इनका मोह ऐसे दूर नहीं होगा। उन्होंने अपनी दिव्यशक्ति से बालक की जीवात्मा को आमंत्रित किया। जीवात्मा के आ जाने पर उन्होंने कहा, देखो, ये तुम्हारे माता-पिता अत्यंत दुखी हो रहे हैं। तुम अपने शरीर में फिर प्रवेश करके इन्हें सुखी करो और राजसुख भोगो। उस जीवात्मा ने कहा, देवर्षि, ये मेरे किस जन्म के माता-पिता हैं? जीव का तो कोई माता-पिता या भाई-बंधु है नहीं। अनेक बार मैं इनका पिता, ये मेरे मित्र या शत्रु रहे हैं। ये सब संबंध तो शरीर के हैं। शरीर के छूटने के साथ ही सब संबंध छूट जाते हैं। जीवात्मा यह कहकर चली गई। राजा चित्रकेतु का मोह उसकी बातों को सुनकर नष्ट हो चुका था। नारद ने उन्हें भगवान शेष की आराधना का उपदेश किया, जिसके प्रभाव से कुछ काल में ही उन्हें शेषनाग के दर्शन हुए।

६८) बाहुबली - राजा ऋषभदेव नहीं चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद विरासत के लिए संतानों में झगड़ा हो। पुत्र दो-चार होते तो भी कोई समस्या नहीं थी, वे सौ पुत्रों के पिता थे। इसलिए उन्होंने व्यवस्था कर दी कि ज्येष्ठ पुत्र भरत हो राजगद्दी दी जाए और शेष निन्यानवे पुत्र संन्यासी हो जाएँ। पिता की आज्ञा मानकर ९८ पुत्रों ने तो संन्यास ले लिया, लेकिन बाहुबली ने नहीं मानी। वह भरत के मुकाबले खड़ा हो गया। विवाद बढ़ा तो तय हुआ कि दोनों अपनी-अपनी योग्यता के प्रमाण प्रस्तुत करने लगे। राजनीति, धर्म, अर्थ और शस्त्र ज्ञान की प्रतियोगिताएँ हुई। भरत पराजित हुआ और बाहुबली को निर्णायकों ने श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया। भरत के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह किसी भी तरह बाहुबली को नीचा दिखाने, परास्त करने का प्रयत्न करने लगा। राज्य के लोभ में आकर भरत ने एक बार बाहुबली पर प्राणघातक प्रहार कर दिया। बाहुबली भी किसी से कम न था, जैसा उसका नाम वैसा ही उसमें शक्ति थी। उस तेजस्वी ने प्रहार को रोकने के लिए जैसे ही हाथ उठाया, लोग समझ गए कि भरत का अंत आ गया है। वह बाहुबली की एक मुष्टिका में ही धराशायी हो जाएगा। बाहुबली में विवेक की किरणें अभी भी थीं जो उसके मस्तिष्क को ज्ञान से आलोकित कर रही थीं। उसमें जोश और होश दोनों ही थे। उसने सोचा यदि मेरा भाई राज्य के लोभ में विवेक शून्य तथा अधम बन सकता है तो मैं उसका प्रतिद्वंद्वी क्यों बनूँ? दूसरे ही क्षण उठा हुआ हाथ वापस आ गया। बाहुबली ने महत्वाकांक्षा को त्याग कर भरत को राजगद्दी सौंप दी और स्वयं लोगों की सेवा के लिए चल पड़ा।

६९) पूजा करने का ढंग - भगवान श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा के मन में एक दिन एक विचित्र विचार आया। उन्होंने तय किया कि वह भगवान श्रीकृष्ण को अपने गहनों से तौलेंगी। श्रीकृष्ण ने जब यह बात सुनी तो बस मुस्कुराए, बोले कुछ नहीं। सत्यभामा ने भगवान को तराजू के पलड़े पर बिठा दिया। दूसरे पलड़े पर वह अपने गहने रखने लगीं। भला सत्यभामा के पास गहनों की क्या कमी थी। लेकिन श्रीकृष्ण का पलड़ा लगातार भारी ही रहा। अपने सारे गहने रखने के बाद भी भगवान का पलड़ा नहीं उठा तो वह हारकर बैठ गईं। तभी रुक्मिणी आ गईं। सत्यभामा ने उन्हें सारी बात बताई। रुक्मिणी तुरंत पूजा का सामान उठा लाईं। उन्होंने भगवान की पूजा की। जिस पात्र में भगवान का चरणोदक था, उसे

उठाकर उन्होंने गहनों वाले पलड़ों पर रख दिया। देखते ही देखते भगवान का पलड़ा हल्का पड़ गया। ढेर सारे गहनों से जो बात नहीं बनी, वह चरणोदक के छोटे से पात्र से बन गई। सत्यभामा यह सब आश्चर्य से देखती रहीं। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा कैसे हुआ। तभी वहां नारद मुनि आ पहुंचे। उन्होंने समझाया, भगवान की पूजा में महत्व सोने-चांदी के गहनों का नहीं, भावना का होता है। रुक्मिणी की भक्ति और प्रेम की भावना भगवान के चरणोदक में समा गई। भक्ति और प्रेम से भारी दुनिया में कोई वस्तु नहीं है। भगवान की पूजा भक्ति-भाव से की जाती है, सोने-चांदी से नहीं। पूजा करने का ठीक ढंग भगवान से मिला देता है। सत्यभामा उनकी बात समझ गईं।

७०) ब्रह्मा का साक्षात्कार- बृहस्पति के पुत्र कच को ब्रह्म विद्या प्राप्त करने की इच्छा हुई। इसके लिए वह जंगल में तप करने लगा। कई वर्ष बीत गए। एक दिन बृहस्पति उसे देखने जंगल गए। वहां उन्होंने कुछ दिनों तक कच के तप को देखा। वह सीमित आहार लेता था। तप से उसका शरीर क्षीण हो गया था। बृहस्पति ने पूछा, तुमने तप में क्या पाया है ? कच बोला, पिताजी, मैंने सारे सुख त्याग दिए हैं फिर भी मुझे शांति नहीं मिली। बृहस्पति ने कहा, बेटा, तूने तप के सच्चे मार्ग को अभी जाना ही नहीं। सर्वत्याग करो, तब तप सफल होगा। अब कच ने हर प्रकार के भोजन और वस्त्र छोड़ दिए। कुछ वर्षों के बाद पुन: बृहस्पति कच से मिलने गए। तब भी कच का यही उत्तर था कि सब कुछ छोड़ देने के बाद भी शांति नहीं मिली। बृहस्पति ने कहां, सर्वत्याग का अर्थ कपड़े उतार देना नहीं है। सर्वत्याग का अर्थ आहार छोड़ देना भी नहीं है। तुम बाहरी तप कर रहे हो मगर भीतर का तप नहीं हो रहा है। उन्होंने फिर पूछा, तुम किसलिए तप कर रहे हो? कच ने कहा, ब्रह्मा का साक्षात्कार करने के लिए। तब बृहस्पति ने कहा, दो व्यक्ति आमने-सामने बैठे हों, उन दोनों के बीच में यदि कोई आवरण आ जाए या बाधक चीजें आ जाएं तो दोनों का साक्षात्कार नहीं हो पाएगा। सर्वत्याग के लिए अहंकार को भी छोड़ना पड़ता है। तुम्हें ब्रह्मा का साक्षात्कार करने का लोभ तो है ही। यह सोचना भी अहं है कि मैं यह कर रहा हूं, मैं वह कर रहा हूं, मैंने ऐसा किया है, मैंने वैसा किया है। ब्रह्मा को पाने के लिए अहं का त्याग करना होगा। तुम्हें अपनी साधना का ही अहंकार है। ब्रह्मा के साक्षात्कार में यह गर्व भी बाधक है। इस पर कच समाधिस्थ हो गया। अब उसका अहंकार छूटा और मन से यह भाव भी खत्म हो गया कि यह मैं हूं और यह प्राणी जगत है। ऐसा होते ही उसे ब्रह्मा का साक्षात्कार हो गया।

७१) जनक का जवाब - मिथिला के राजा जनक से उनके एक मंत्री ने पूछा, महाराज, आप तो देहधारी हैं, फिर आपको विदेह अर्थात बिना शरीर के क्यों कहा जाता है? राजा जनक बोले, मैं तुम्हें इसका जवाब कुछ दिनों में दूंगा। कुछ दिनों बाद उन्होंने घोषणा करवा दी कि हमारे मंत्री से भयंकर अपराध हो गया है, जिस कारण उन्हें एक सप्ताह बाद मुत्युदंड दिया जाएगा। फिर उन्होंने उस मंत्री को बुलाया। मंत्री भय से कांपता उनके पास पहुंचा। जनक ने उसके आगे प्रेम से छत्तीस प्रकार के व्यंजन रखे और खाने को कहा। मंत्री भूखा होने पर भी मन से भोजन नहीं कर पाया, न ही उसे स्वाद का पता चला। भोजन के बाद जनक ने कहा, तुमने यह नहीं बताया कि भोजन कैसा बना था, किसी में कुछ कमी तो नहीं थी? मंत्री रोते हुए बोला, महाराज, एक सप्ताह बाद तो मेरी मौत होने वाली है। मुझे मौत के सिवाय कुछ सूझ ही नहीं रहा है। मैंने तो यह भी ध्यान नहीं दिया कि भोजन में क्या-क्या था? जनक बोले, यही तुम्हारे प्रश्न का जवाब है। जिस तरह एक सप्ताह बाद आनेवाली मौत के भय से तुम खाना खाते समय देह होते हुए भी विदेही हो गए थे। उसी तरह मैं हर समय अपने सामने मौत को देखता हूं। हर वक्त मौत को दिमाग में रखते हुए सभी कुछ उपभोग करते हुए भी उनसे अलग रहता हूं। मेरे अंदर उन वस्तुओं का मोह नहीं जागता। इसलिए सब मुझे विदेह कहते हैं। तुम्हें मृत्युदंड नहीं दिया जाएगा। तुम्हें जवाब देने के लिए मैंने यह नाटक रचा था।

७२) प्रतिभा की चमक - ऋषि अंगिरा के शिष्यों में एक था उदयन। वह काफी प्रतिभाशाली था पर उसमें विनम्रता की कमी थी। वह हर समय अपने गुणों का बखान करता और अपने सहपाठियों पर रोब जमाता था। ऋषि ने सोचा कि समय रहते इसे न समझाया गया तो यह लक्ष्य से भटक जाएगा। एक बार सर्दी की रात में सत्संग चल रहा था। बीच में अंगीठी में कोयले दहक रहे थे। एक तरफ ऋषि बैठे थे और दूसरी तरफ शिष्य। ऋषि बोले, कैसी सुंदर अंगीठी दहक रही है। इसका श्रेय इसमें दहक रहे कोयलों को है। सभी ने सहमति में सिर हिलाया। ऋषि ने कहा, देखो वो सबसे बड़ा कोयला सबसे तेजस्वी है। इसे निकालकर मेरे पास रख दो ताकि इसके तेज का निकट से लाभ उठा सकूं। उदयन ने चिमटे से पकड़कर वह तेज भरा अंगारा ऋषि के पास रख दिया। लेकिन जल्दी ही उसकी चमक फीकी पड़ने लगी। उस पर राख की परतें आ गईं और वह तेजस्वी अंगारा काला कोयला भर रह गया। ऋषि ने समझाया, देखो, तुम चाहे जितने तेजस्वी हो, पर इस कोयले जैसी भूल मत कर बैठना। यह कोयला अंगीठी में सबके साथ रहता तो अंत तक तेजस्वी बना रहता और सबको गर्मी देता रहता। पर अब तो इसकी चमक नहीं रही। अब हम इसकी तेजस्विता का लाभ नहीं उठा सकेंगे। परिवार वह अंगीठी है जिसमें प्रतिभाएं संयुक्त रूप से तपती हैं। व्यक्तिगत प्रतिभा का अहंकार न टिकता है, न फलित होता है। परिवार के साथ रहने में ही वास्तविक बल है। उदयन को अपनी भूल का अहसास हो गया।

७३) सच्ची मानवता- एक बार लालबहादुर शास्त्री ने बिहार के कुछ लोगों को प्रधानमंत्री निवास पर मिलने का समय दिया। संयोग से उसी दिन एक विदेशी अतिथि के सम्मान में एक कार्यक्रम का आयोजन हो गया और शास्त्रीजी को वहां जाना पड़ा। वहां से लौटने में उन्हें विलंब हो गया। बिहार से आए हुए लोग उनकी प्रतीक्षा में बैठै रहे। काफी समय बीत गया। आखिरकार निराश होकर वे लोग वहां से चल दिए। उनके जाने के कुछ देर शास्त्रीजी लौट आये। आते ही उन्होने सचिव से पूछा बिहार से कुछ लोग मुझसे मिलने आनेवाले थे, क्या वे आ चुके है। सचिव बोला- वे आए तो थे लेकिन आपकी प्रतिक्षा करने के बाद अभी-अभी यहां से निकल गए। यह सुनकर शास्त्रीजी परेशान हो गए। उन्होंने सचिव से पूछा, कुछ मालूम है कि वे लोग कहां गए हैं? सचिव ने कहा, वे कह रहे थे कि सामने के स्टॉप से बस पकड़नी है। शास्त्रीजी तुरंत बस स्टॉप की ओर लपके। यह देखकर सचिव बोला, श्रीमान् आप यह क्या कर रहे हैं? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? इस पर शास्त्रीजी बोले, कोई यह जानेगा कि प्रधानमंत्री ने अपने निवास पर बुलाकर अपने अतिथियों को वापस लौटा दिया है तो क्या कहेगा? इस पर सचिव बोला, तो ठीक है, मैं उन्हें बस-स्टॉप से बुला लाता हूं। शास्त्रीजी बोले- नहीं, अब तो मुझे ही जाना पड़ेगा। मुझे विलंब के लिए उनसे क्षमा भी मांगनी है और क्षमा मांगने का इससे अच्छा तरीका और क्या होगा कि मैं खुद बस-स्टॉप पर जाकर उन्हें बुला लाऊं। इसके बाद शास्त्रीजी तेजी से बस-स्टॉप पर पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां पर बिहार से आए उनके अतिथि मुंह लटकाए खड़े थे। शास्त्रीजी ने उनसे क्षमा मांगी और उन्हें वापस ले लाए। अतिथियों में से एक ने कहा, दिल्ली में वैसे तो बहुत कुछ देखा, लेकिन हम यह कभी नहीं भूलेंगे कि हमारे प्रधानमंत्री के भीतर सच्ची मानवता है।

७४) लक्ष्मी का आगमन- देवता चिर काल से अनुरोध करते रहे कि लक्ष्मी असुरों के यहां न रहें, देवलोक में निवास करें। परंतु उनकी प्रार्थना अनसुनी होती रही। लक्ष्मी ने असुरों के इलाके को छोड़ा भी नहीं। एक दिन अनायास ही लक्ष्मी देवलोक में आ गईं। देवता प्रसन्न भी थे और चकित भी। उन्होंने सत्कारपूर्वक उन्हें बिठाया। परंतु साथ ही असमंजस भी व्यक्त किया वे असुरों को छोड़कर यहां क्यों चली आईं। लक्ष्मीजी ने कहा- सुर और असुर होने का पाप-पुण्य भगवान देखते हैं। मेरा काम पराक्रम, संयम एवं सहयोग की जांच-पड़ताल करना है। जब तक असुर पराक्रमी और संयमी रहे,

एक-दूसरे के सहयोगी रहे, मैं भी उनके साथ रही। अब वे बदल गए हैं। आलस्य और दुर्व्यसन अपनाने लगे हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरा निर्वाह कैसे हो सकता था।

७५) उपवास की महत्ता- एक बार देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार मृत्यु लोक में आए। उन्होंने वेश बदलकर वाग्भट्ट से पूछा- वैद्यराज, मुझे ऐसी औषधि बतलाएं जो न जमीन से उत्पन्न हुई न आकाश से। पथ्य है, किन्तु उसमें कोई रस नहीं है और सब शास्त्रों द्वारा सफल है। वागभट्ट थोड़ी देर शांत भाव से सोचते रहे। फिर अश्विनी कुमार से बोले- उपवास ही सबसे बड़ी औषधि है। यह न भूमि से उत्पन्न हुई है और न आकाश से। पथ्य और रस विसर्जित है। सब शास्त्रों द्वारा सफल हैं, यही एक रामबाण औषधि हैं जो शरीर के साथ-साथ मन को भी स्वस्थ बनाती हैं।

७६) दुराचरण का फल- गणेश के शाप से इंद्र के स्वर्ग से पतित हो जाने के बाद शिव के परामर्श पर देवताओं ने सदाचारी, संयमी और महान शिवभक्त पृथ्वी निवासी राजा नहुष को स्वर्ग का राजा बनाया, परंतु कुछ ही दिनों में वह स्वर्ग के ऐश्वर्य साधनों में फंस कुमार्ग की ओर बढ़ने लगा। सदाचार का त्याग करके वह स्वर्ग के भोग विलास में लिप्त हो गया। उसकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई कि उसने इंद्र की पत्नी पर भी कुदृष्टि डाली। उसे इतना अभिमान हो गया कि एक दिन उसने पूज्य सप्तऋषियों को अपनी पालकी उठवाने का आदेश दे दिया। सप्तऋषियों को नहुष के इस अहंकारपूर्ण आचरण पर क्रोध आ गया और उन्होंने उसे सर्प बन जाने और रौरव नरक में जाने का शाप दे दिया। देखते ही देखते राजा सर्प बन, स्वर्ग से पतित हो गया। ऐश्वर्य साधनों और सत्ता का दुरुपयोग करने वाले एक न एक दिन सदैव अपने मुंह पर कालिख लगा लेते हैं।

७७) मेरी मां से सुनी हुई कहानी- जब मैं ४ साल का था रात को मां के पास कुछ समय के लिये था। मैंने कहानी कहने की जिद की तब मां ने सुनाया, एक छोटा सा गांव था गोपालगढ़ उसमे मां और उसका १ छोटा बेटा रहता था घर में सिर्फ वही थे। पैदल जानेवाला वही एक लड़का था रास्ते में जंगल पड़ता था। मां दिन में मजदूरी करती जिससे काम चल जाता। एक दिन लड़का मां से बोला मैं अकेला जंगल में से होकर जाता हूं मुझे डर लगता है। मां ने कहा बेटे डरने का क्या बात है। जंगल में एक तेरा भाई रहता है गोपाल नाम है। आते जाते आवाज दे लिया कर वह मिल लिया करेगा। डर बिल्कुल नहीं है।

लड़का रोज आते जाते आवाज मारता गोपाल भैया- गोपाल भैया- लेकिन वह कभी नहीं बोला, एक दिन शाम को देर हो गई उसको थोड़ा डर भी लगा। उसने जोर जोर से आवाज लगानी शुरू की। भैया मुझे डर लगता है तुम आ जाओ। वास्तव में उतनी सी ही उम्र का लड़का आ गया। दोनों हंसते हंसते चले गये। जंगल खत्म होने पर गोपाल ने कहा तुम चले जाओ मैं जा रहा हूं। तुम जब भी आवाज दोगे मैं आ जाया करूंगा।

एक दिन गुरुजी ने कहा कल श्राद्ध है अपने अपने घर से एक एक लोटा/गिलास दूध लेकर आना। लड़के ने अपनी मां से कहा- मां का जी भर आया उसके पास दूध कहां। फिर मां ने कहा- तुम्हारे गोपाल भैया से मंगा लेना। उसके पास बहुत गाये हैं। बोला गिलास। मां ने जवाब दिया। वह गिलास भी दे देगा। लड़के ने जंगल में पहुंच कर बहुत आवाज दी। गोपाल भैया। एक छोटे से गिलास में दूध लेकर आया और उसे देकर जंगल तक छोड़ आया। स्कूल पहुंच कर सब बच्चे अपना अपना दूध दे रहे थे। बड़ा भगोना पड़ा था उसमें डाल रहे थे। लड़के ने भी गुरुजी गुरुजी कई बार कहा। गुरुजी ने धमकाया एक छोटा सा गिलास लेकर आया है और बीच में तंग कर रहा है। गुरुजी ने दुत्कार कर कहा- डाल दे इसमें वह गिलास डालता गया डालता गया गिलास खाली ही नहीं हुआ। भगोना भर गया और जो बर्तन बाल्टी गुरुजी के पास थी सारी भर गई बड़ा अचम्भा हुआ गुरुजी ने सारी बात पूछी लड़के ने बतादी। गुरुजी ने कहा मैं तेरे साथ चलूं तो तेरे गोपाल से मुझे भी मिला देगा क्या ? लड़का भोला और शुद्ध हृदय का था उसने गुरुजी को साथ लेकर मिलाने के लिये चला गया।

जंगल में जाकर बहुत आवाज लगाई। गोपाल भैया आ गया। लड़के ने खुश होकर कहा- गुरुजी यह मेरा गोपाल भैया आ गया। लेकिन गुरुजी को दिखाई नहीं दे रहा था। फिर लड़के ने रोते हुए कहा- तो गुरुजी ने भी देख लिया। गोपाल भैया भी चला गया। गुरुजी और लड़का अपनी पाठशाला में आ गये। उस दिन से गुरुजी उस पर ध्यान ही नहीं देते थे अब ध्यानपूर्वक पढ़ाने लगे। प्रेम से पुकारो तो भगवान भी आ जाते हैं। जितने किए कुटुम्ब हित, जो करते हरि हेत। हरि मिलते कबके अहो, रे मन अब भी चेत।।

७८) सच्ची जीत- राजा मुचकुंद विश्वविजय अभियान पर निकले और अपने शौर्य व पराक्रम के बल पर पृथ्वी के अधिकतर हिस्से पर अधिकार कर लिया। मुचकुंद ने कुबेर के राज्य की बहुत ख्याति सुनी थी। उनकी इच्छा हुई कि उसे भी जीतें। उन्होंने कुबेर के राज्य पर आक्रमण कर दिया मगर कुबेर की सेना ने मुचकुंद की सेना के छक्के छुड़ा दिए। बुरी तरह से पराजित मुचकुंद अपने गुरु वशिष्ठ के पास पहुंचे और कहा, आप जैसे सर्व शक्तिमान गुरु के होते हुए मुझे कुबेर के हाथों पराजित होना पड़ा है, मेरी सहायता करें।

वशिष्ठ ने मंत्र के बल पर कुबेर की सेना को शक्तिहीन बना दिया। जब कुबेर को इसका पता चला तो वह सीधे मुचकुंद के पास गए और बोले, वशिष्ठ जी महान ज्ञानी और तपस्वी ऋषि हैं। मेरी सेना को शक्तिहीन बनाने के लिए उन्हें कष्ट देने की क्या आवश्यकता थी। मैं बिना युद्ध किए ही अपना समस्त राज्य आपको समर्पित करता हूँ। मुचकुंद पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा। वह लज्जित होते हुए बोले, पृथ्वी को जीत लेने की तुच्छ लालसा ने मेरा विवेक छीन लिया था। पृथ्वी को युद्ध से जीतने से अच्छा है उसे जनकल्याण करके जीतना।

७९) मृत्यु पर विजय- उद्दालक निर्विकल्प समाधि में जाने को बहुत उत्सुक थे, लेकिन वे जा नही पाए, क्योंकि निर्विकल्प समाधि में जाया जा सकता है अप्रयास के द्वारा और वे उसके लिए प्रयास कर रहे थे। दूसरे शब्दों में वे उल्टी गति में जा रहे थे, इसलिए प्रयत्न करते-करते थक गए। तब उन्होंने अनशन करने की बात सोची और एक वृक्ष के नीचे बैठकर अनशन करने लगे। उस वृक्ष पर बैठे एक तोते ने महर्षि से पूछा- आप यह क्या कर रहे हैं ?

महर्षि ने उत्तर दिया- शरीर छोड़ने के लिए अनशन कर रहा हूं। तोता बोला- जो स्वयं छूटने वाला है, उसे आप क्या छोड़ेंगे। जो मरणशील है, उसे आप क्या मारेंगे। आपका शौर्य तभी दिखाई पड़ेगा जब आप अमृत के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे। महर्षि की आंखे खुल गईं। उन्होंने अमृततत्व की तरफ ध्यान केन्द्रित किया और निर्विकल्प समाधि की ओर अग्रसर हो गए।

८०) सच्चा ज्ञान- महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने बारह वर्ष गुरुकुल में रहकर वेद शास्त्रों का अध्ययन किया। जब वह घर लौटा तो उसे यह मिथ्या अभिमान हो गया कि वह अपने पिता से भी बड़ा ज्ञानी है। इसी मिथ्या अभिमान के कारण उसने परंपरा के अनुसार अपने पिता को प्रणाम तक नहीं किया। महर्षि उद्दलक समझ गए कि पुत्र को अभिमान हो गया है, जबकि विद्या से विनम्रता आनी चाहिए। इसलिए उद्दालक ने सोचा कि पुत्र का अभिमान नष्ट कर उसे सद्बुद्धि देनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने अपने पुत्र से कहा- बेटे, मैं यह जान गया हूँ कि तुम बहुत बड़े विद्वान बन गए हो। लेकिन फिर भी तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। मुझे बताओ कि वह कौन सी वस्तु है, जिसका ज्ञान प्राप्त करने से सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। श्वेतकेतु ने बहुत सोचा, लेकिन उस प्रश्न का उत्तन न दे सका। क्षणभर में ही उसका अभिमान नष्ट हो गया। पिता के चरणों में गिरते हुए उसने कहा, मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता, कृपया आप ही बता दीजिए। तब उद्दालक ऋषि ने कहा- जिस तरह मिट्टी को जान लेने से मिट्टी से बनी सभी वस्तुओं और सोने को जान लेने से सोने से बनी सभी वस्तुओं को ज्ञान हो जाता है, उसी तरह आत्मा को जान लेने से जीवन के सभी पहलुओं का

ज्ञान हो जाता है। इसका कारण यह है कि वह आत्मा ही है जो सब प्राणियों में एक समान रहती है।

८१) जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन रहता है- महर्षि उद्दालक ने उन गुरुकुल प्रवीण छात्रों को बुलाया और परीक्षा लेने के लिए उनके आहारों को एक-एक मास के लिए बदल दिया। अवधि पूरी होने पर सभी को बुलाया गया और उनकी स्थिति जांची गई।

जिसे एक महीने भूखा रखा गया था, वह सब कुछ भूल गया। आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा था। स्मृति जवाब दे रही थी। जिसने तामसिक वस्तुएं खाईं, उसकी चंचलता बढ़ गई और पढ़ने से मन उचट गया। जिसके आहार में मादक द्रव्यों का समावेश था, उसने अध्ययन में अरुचि दिखाई और घर लौटने की आज्ञा मांगने लगा। इसी प्रकार किसी को झगड़ालू, किसी को शांत, किसी को सौम्य, किसी को उद्धत पाया गया। अध्ययन पर भी इस बदली मन:स्थिति का वैसा ही प्रभाव पड़ रहा था। प्रस्तुत परिवर्तन का रहस्य बताते हुए उद्दालक ने छात्रों से कहा- अन्न से ही बुद्धि और चित्त बनता है। जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बनता है। जितना विद्या को महत्व दिया जाता है उतना ही अनुकूल आहार पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

८२) एक बार उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उनसे शरीर और आत्मा के संबंध में प्रश्न किया। उद्दालक ने श्वेतकेतु से नमक की डली मंगाई और उसे पानी भरे एक बर्तन में गिरा दिया। दूसरे दिन उसने अपने पुत्र से वह नमक मांगा। श्वेतकेतु पानी का वह पात्र ले आया। नमक पानी में मिला हुआ था। उद्दालक ने श्वेतकेतु को ऊपर से एक घूंट पानी पीने का आदेश दिया। जल पीने पर उद्दालक ने पूछा, जल का स्वाद कैसा है ? श्वेतकेतु ने कहा, नमकीन है।

उद्दालक ने फिर कहा, ऊपर से पानी गिराकर बीच भाग में से पीओ। पुत्र ने जवाब दिया, मध्य भाग में भी नमकीन है। उद्दालक ने कहा, तो अब एकदम नीचे का जल लो। पुत्र ने जवाब दिया, यह तो सारा ही नमकीन है। इस पर उद्दालक ने बताया, न दीखते हुए भी जैसे नमक पानी में घुल गया है, वैसे ही आत्मा शरीर में रमी हुई है।

८३) अहंकार से मुक्ति- ऋषि आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को विद्यार्जन के लिए एक अन्य ऋषि के आश्रम में भेजा। गुरुजी ने शिक्षा पूर्ण होने पर कहा, वत्स, तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा विधि-विधान से पूर्ण हो गई। अब तुम ऋषि आरुणि के पास लौट जाओ। गुरुजी के चरण-स्पर्श कर श्वेतकेतु अपने पिता के पास पहुंचा और बोला, मैंने चारों वेदों और छह शास्त्रों का अध्ययन कर समस्त ज्ञान अर्जित कर लिया है। अब आपका क्या आदेश है ? ऋषि आरुणि को उसकी बातों में अहंकार का आभास हुआ। उन्होंने श्वेतकेतु से कहा, वत्स, तुम्हारा ब्रह्मचर्याश्रम पूरा हो गया। अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो।

श्वेतकेतु ने कहा, पर पिताजी गृहस्थाश्रम के लिए तो धन की आवश्यकता होती है। ऋषि बोले, पुत्र मैं धन अर्जित करने में तुम्हारी सहायता नहीं करूंगा। इस पर गर्व से श्वेतकेतु ने कहा, मैं वेदों का ज्ञाता विद्वान हूं। स्वयं धन अर्जित कर लूंगा। आरुणि ने कहा, अपने को अहंकार से बचाना। श्वेतकेतु पिता से आशीर्वाद लेकर धन अर्जित करने राजा प्रवाहण जैवलि की राजसभा में उपस्थित हुआ। राजा ने पूछा, आप धनार्जन की कामना से पधारे हैं, धन अर्जित कैसे करेंगे ? श्वेतकेतु ने जवाब दिया, हे राजन्, मैं आपकी सभा में उपस्थित विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर धन अर्जित करूंगा। राजा प्रवाहण जैवलि स्वयं बहुत बड़ा ज्ञानी था। उसने श्वेतकेतु के अहंकार को भांप कर कहा, आप मेरे कोषागार से इच्छित धन प्राप्त कर लें। श्वेतकेतु ने कहा, नहीं, मैं शास्त्रार्थ कर ही धन प्राप्त करूंगा। राजा ने कहा, यदि तुमने मेरे तीन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दिए तो तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम भविष्य में किसी से शास्त्रार्थ नहीं करोगे। राजा ने प्रश्न पूछे, श्वेतकेतु उनके उत्तर नहीं दे सका। उसका अहंकार चूर-चूर हो गया। उसने कभी शास्त्रार्थ न करने की प्रतिज्ञा की। राजा प्रवाहण जैवलि ने श्वेतकेतु की प्रतिज्ञा से प्रसन्न होकर उसे पांच सौ गायें और ढेरों स्वर्णमुद्राएं देकर सम्मानित

किया। फिर अपनी सभा के एक ब्राह्मण की कन्या से उसका विवाह कराकर उसे गृहस्थाश्रम में बांध दिया।

८४) खुद की पहचान - उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को एक प्रसिद्ध ऋषि के पास पढ़ने भेजा। श्वेतकेतु की दृष्टि में उसके पिता उद्दालक बहुत बड़े विद्वान थे। वह चाहता था कि वह अपने पिता से ही शिक्षा ग्रहण करे पर उद्दालक ने समझाया, गुरु पिता से ऊपर होता है, इसलिए तुम्हें शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरु के पास ही जाना चाहिए। श्वेतकेतु गुरु के पास गया। वहां बारह वर्ष पढ़ने के बाद जब वह अपने घर आया तो उसे लगा कि अपने पिता उद्दालक से भी उसे बहुत अधिक ज्ञान हो गया है। उसके व्यवहार में अहं अधिक व नम्रता कम थी। विद्वान उद्दालक श्वेतकेतु की मनोवृत्ति भांप गए। उन्होंने श्वेतकेतु को बुलाया और पूछा, श्वेतकेतु तुमने क्या-क्या पढ़ा? हमको बताओ। श्वेतकेतु बताने लगा, मैंने व्याकरण पढ़ा, शास्त्र पढ़ा, उपनिषदों को पढ़ा। इस प्रकार उसने एक बड़ी सूची प्रस्तुत कर दी। सूची पूरी होने के बाद उद्दालक ने पूछा, श्वेतकेतु क्या तुमने वह पढ़ा जिसको पढ़ने के बाद और कुछ पढ़ने के लिए शेष नहीं रहता? क्या तुमने वह देखा जिसको देखने के बाद और कुछ देखने के लिए है ही नहीं? क्या तुमने वह सुना जिसको सुनने के बाद और सुनने के लिए कुछ बचता नहीं? श्वेतकेतु अचंभे में पड़ गया। उसने कहा, क्या है वह? मैं नहीं जानता हूं। मैंने वह पढ़ा नहीं। न सुना, न देखा न प्रयत्न किया। वह क्या है? उद्दालक बोले, जाओ फिर से अपने गुरुजी के पास जाओ। उनसे कहो कि वह तुम्हें सिखाएं। जाओ वह पढ़कर आओ। श्वेतकेतु गुरु के पास गया। गुरुजी बोले, वह तुम्हारे पिताजी के पास ही है, उनसे ही वह ले लो। श्वेतकेतु घर लौट आया। अब वह अपने को बदला हुआ सा अनुभव कर रहा था। उसका अहं खत्म हो गया था। व्यवहार में पूर्ण नम्रता थी। वह शांत था। एक दिन उद्दालक ने उसे बुलाया और कहा, श्वेतकेतु वह तुम हो। श्वेतकेतु जीवन का अभिप्राय समझ गया था। वह जान गया कि अपने आपको जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता।

८५) उद्दालक ने विश्वजीत यज्ञ किया और दक्षिणा में वृद्ध और कृशकाय गायें दान कीं। पुत्र नचिकेता इस दान को समझ न सका और उसने अपने पिता से पूछा, आपने मुझे किसे दान में दिया? नचिकेता के इस संकेत को न समझ उद्दालक ने क्रोध में कहा, जा मैंने तुझे मृत्यु के देवता को दान में दिया। नचिकेता यमलोक गया। कठिन परीक्षा के पश्चात यम प्रसन्न हुए और तीन वर मांगने को कहा। नचिकेता ने पिता के क्रोध को शांत करने, अग्निविद्या का रहस्य और आत्मतत्व संबंधी ज्ञान का वरदान मांगा। यम ने कई प्रलोभन देकर नचिकेता को परखा किंतु वह विचलित नहीं हुआ और आत्मतत्व संबंधी ज्ञान लेकर ही संतुष्ट हुआ। इसके बाद से अग्निविद्या का नाम नचिकेता के नाम पर पड़ा और यम-नचिकेता का वह संवाद कठोपनिषद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

८६) अहंकार- यह एक पौराणिक कथा है। कुबेर तीनों लोकों में सबसे धनी थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि हमारे पास इतनी संपत्ति है, लेकिन कम ही लोगों को इसकी जानकारी है। इसलिए उन्होंने अपनी संपत्ति का प्रदर्शन करने के लिए एक भव्य भोज का आयोजन करने की बात सोची। उसमें तीनों लोकों के सभी देवताओं को आमंत्रित किया गया। भगवान शिव उनके इष्ट देवता थे, इसलिए उनका आशीर्वाद लेने वह कैलाश पहुंचे और कहा, प्रभो। आज मैं तीनों लोकों में सबसे धनवान हूं, यह सब आपकी कृपा का फल है। अपने निवास पर एक भोज का आयोजन करने जा रहा हूँ, कृपया आप परिवार सहित भोज में पधारने की कृपा करें।

उन्होंने भगवान शंकर से कहा, मैं एक ऐसा भोज आयोजित करना चाहता हूं, जिसमें समस्त देवगण, यक्ष, गंधर्व आदि शामिल हों। भोज ऐसा हो जैसा आज तक देवलोक में कभी न हुआ हो। उसी के लिए आपको निमंत्रण देने तथा आपका आशीर्वाद पाने आया हूं। आप परिवार सहित भोज में पधारें।

भगवान शिव कुबेर के मन का अहंकार ताड़ गए, बोले, वत्स। मैं बूढ़ा हो चला हूँ, कहीं बाहर नहीं जाता। कुबेर गिड़गिड़ाने लगे, भगवन। आपके बगैर तो मेरा सारा आयोजन बेकार चला जाएगा। तब शिवजी ने कहा, मैं और पार्वती तो नहीं आ सकेंगे। एक उपाय है। मैं अपने छोटे बेटे गणपति को तुम्हारे भोज में जाने को कह दूंगा। कुबेर संतुष्ट होकर लौट आए। नियत समय पर कुबेर ने भव्य भोज का आयोजन किया। तीनों लोकों के देवता पहुंच चुके थे। भोज के दिन शिवशंकर ने गणेश को बुलाकर कहा- गणेश। कुबेर दूसरे के धन को अपना समझकर इठला रहे हैं। जाओ जरा उनके नेत्र खोल दो। लंबोदर भोजनस्थल पर जा पहुंचे। अंत में गणपति आए और आते ही कहा, मुझको बहुत तेज भूख लगी है। भोजन कहां है। गणपति क्रोधित हो गए। बोले- मुझे भूख लगी है। मेरे लिए भोजन लाओ। कुबेर ने सोचा कि गजानन नाराज हो गए तो ठीक नहीं होगा। उन्होंने रसोइयों को खाना परोसने की आज्ञा दी। भोजन परोसा गया। कुबेर उन्हें ले गए भोजन से सजे कमरे में। सोने की थाली में भोजन परोसा गया। क्षण भर में ही परोसा गया सारा भोजन खत्म हो गया। दोबारा खाना परोसा गया, उसे भी खा गए। बार-बार खाना परोसा जाता और क्षण भर में गणेश जी उसे चट कर जाते। थोड़ी ही देर में हजारों लोगों के लिए बना भोजन खत्म हो गया, लेकिन गणपति का पेट नहीं भरा।

गणेश ने फटकारा। परोसने वालों की संख्या बढ़ाओ। थाली में भोजन खत्म नहीं होना चाहिए।

परोसने वाले शीघ्र ही थकने लगे। गणेश खाते जा रहे थे। रसोईघर में बने तमाम पकवान समाप्त होने को आए। कुबेर के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। अभी तो सारे अतिथियों को खिलाना बाकी था। उनको क्या खिलाऊंगा ? गणेश क्रोधित होकर खड़े हो गए। बोले, एक मुझ अकेले को पेट भर नहीं खिला सके और कहते थे कि ऐसा विशाल भोज करूंगा, जो कभी देवलोक में नहीं हुआ ? न्यौता दे दिया देवों, गंधर्वों और यक्षों को। मैं भूखा बिल्कुल नहीं जाऊंगा। तुम्हारे भंडार में देखता हूं, क्या बचा है।

यह कहकर गणेश भंडार में पहुंच गए। वहां जो मिला, वह भी खा गए। गणपति को भूख कहां सहन थी। वे कुबेर की ओर लपके। बोले- देवों के कोषाध्यक्ष होकर भी एक अतिथि का पेट न भर सके। अब मैं तुम्हें सबक सिखाऊंगा। वे रसोईघर में पहुंचे और वहां रखा सारा कच्चा सामान भी खा गए, तब भी भूख नहीं मिटी। कुबेर प्राण बचाकर भागे। वह भागते-भागते कैलाश पहुंचे। बोले- हे भोले शंकर। मुझे गणेश से बचाएं। तभी वहां गणेश भी पहुंच गए। बोले, पिताजी। आपने किस दरिद्र के यहां भेज दिया। मुझ अकेले को पेट भर नहीं खिला सका।

जब सब कुछ खत्म हो गया तो गणपति ने कुबेर से कहा, जब तुम्हारे पास मुझे खिलाने के लिए कुछ था ही नहीं तो तुमने मुझे न्यौता क्यों दिया था ? शिवजी समझ गए। बोले- जाओ, अंदर तुम्हारी माता खाना बना रही है। गणेश के जाते ही कुबेर को जैसे प्राणदान मिला। शिवजी ने समझाया- कुबेर। तुम देवकोष के मालिक नहीं सिर्फ संरक्षक हो। पद के मद में तुम्हें दूसरों की संपत्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए था। मैंने गणेश को इसलिए भेजा था, जिससे तुम्हें सबक मिल जाए।

कुबेर का अहंकार चूर-चूर हो गया। कुबेर लज्जित हो, धरती की ओर देखने लगे।

८७) भक्त- भगवान शिव को चिंता में डूबा देख पार्वती जी ने इसका कारण पूछा। शिव बोले, मेरे भक्त कम होते जा रहे हैं। पार्वती हंसने लगी व बोली, मुझे तो भक्तों की भीड़ ही भीड़ दिखाई दे रही है जो पवित्र स्नान को जा रहे हैं। शिव बोले, वे मेरे भक्त नहीं हैं। मेरा तो उनमें एक ही भक्त है। चलो तुम्हें भी दिखाता हूं। दोनों अपाहिज बनकर एक तरफ बैठ गये लेकिन किसी ने उन पर ध्यान न दिया। शिव बोले, मेरा भक्त सामने आ रहा है। पार्वती उससे बोलीं, बेटा, दो दिन से भूखे हैं, क्या कुछ खाने को मिलेगा ? वह व्यक्ति बोला, हां मां जी। अभी प्रबंध करता हूं। वह खाना लेकर आया व दोनों को प्यार से खिलाया लेकिन

उसका स्नान का समय निकल गया। पार्वती बोलीं, तुम्हारा स्नान रह गया। तुम्हें कष्ट दिया। वह रोने लगा, बोला, आप भी मेरे माता-पिता समान ही हैं माता-पिता भूखे हों तो ऐसे स्नान से भी क्या लाभ ? अब मुझे स्नान न करने का कोई दुख नहीं बल्कि मन में अजीब-सी खुशी महसूस हो रही है। यदि कोई अपने घर-परिवार को कष्ट में छोड़कर दिखावटी भक्ति करता है तो वह सबसे बड़ा पाखंडी है। मेरा असली स्नान तो हो गया। पार्वती शिव से बोलीं, हां प्रभु, आप सत्य कह रहे थे। ये मेरी आंखों का भ्रम ही था जो सभी को आपका भक्त समझ बैठी। दीन दुखी की सहायता से बढ़कर कोई तीर्थ, स्नान या पूजा संसार में नहीं।

८८) मन की दुर्बलता- एक बार पार्वतीजी ने देखा कि एक वृद्ध दम्पति अपने पुत्र के साथ भिक्षा मांग रहे हैं। पार्वती का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने शिवजी से निवेदन किया प्रभु। आपकी ही बनायी दुनिया में कैसे-कैसे गरीब लोग हैं ? इनकी सहायता कीजिए। शिवजी ने कहा देवी। मैं इन्हें प्रसन्न नहीं कर सकता क्योंकि ये सभी अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण ही दु:खी हैं। पार्वतीजी के बहुत कहने पर शिव ने वृद्ध दम्पति के सामने प्रकट होकर वरदान मांगने को कहा। वृद्धा ने कहा देव। मुझे तो आप बीस वर्ष की जवान कन्या बना दें। वृद्धा की अभी भी आसक्ति काम-वासना में थी। शिव ने कहा- तथास्तु। यह देख वृद्ध ने नाराज होते हुए बोला दुष्ट पत्नी। मुझे पता था अपने आसक्तियुक्त आचरण के कारण मुझे इस अवस्था में तू छोड़कर जाएगी। भगवान शिव ने कहा- आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? आप भी वरदान माँग लें। मन में पत्नी के प्रति विद्वेष की भावना लिए वृद्ध ने वरदान माँगा- भगवन। इसे सूअरी बना दें। भगवान ने कहा तथास्तु। वह सूअरी बन गयी। बच्चे ने अपनी माँ की स्थिति देखी तो रोने लगा। शिव ने उससे भी कहा- वत्स। तू भी वरदान मांग ले। लड़के ने कहा- भगवन। आप तो बस मेरी माँ ही वापस कर दें। तथास्तु कहने के साथ ही सभी पूर्ववत हो गए। यह देख पार्वती ने शिव से कहा प्रभु आपसे सत्य कहा था। अच्छा वरदान मांगते कैसे ? मन की दुर्बलता ही बाहर आयी।

८९) सृष्टि की मां- भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय ने एक दिन बिल्ली के शरीर पर अपने नाखून से खरोंच मार दी। घर जाकर उन्होंने देखा कि उनकी मां पार्वती जी के गाल पर खरोंच का निशान था। उन्होंने पूछा, मां आपके गाल पर खरोंच का यह निशान क्यों है ?

मां बोली, तुमने ही तो अपने नाखून से इसे बनाया है बेटा।

कार्तिकेय ने आश्चर्य से पूछा, मैंने ? मां, मुझे तो याद नहीं कि मैंने कभी ऐसा किया हो।

तुमने आज एक बिल्ली से ऐसा नहीं किया था क्या ? मां ने पूछा।

हां मां। किन्तु वह निशान आपके गाल पर कैसे आ गया है ?

मां बोली, बेटे सारी सृष्टि मैं ही हूं। मेरे बिना संसार में और कुछ है ही नहीं। यदि तुम किसी पर हिंसा करते हो तो मुझ पर ही हिंसा करते हो।

९०) एक बुढ़िया थी। वह बड़ी गरीब थी। उसको आंखोंसे सूझता नहीं था। उसके एक लड़का था। उसका विवाह नहीं हुआ था। वह बहुत चाहती थी कि मेरे बेटेका विवाह हो जाय उसके एक पुत्र हो जाय। मैं जीते-जी नाती (पौत्र) खेलाऊँ। मेरी आंखोंमें रोशनी आ जाय। मेरी गरीबी मिट जाय, आदि। इन सभी मनोरथोंको लेकर उसने भगवान शिवकी आराधना की। उसने सुन रक्खा था, कि शिवजी आशुतोष हैं और अवढर दानी हैं। मन चाहा वरदान देनेवाले हैं अत: उसने बड़े भावसे श्रीशिवजीकी उपासना की। अपने विरदको चरितार्थ करते हुए शिवजीने शीघ्र ही उस पर प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया और बोले- तू एक वरदान चाहे जो भी मुझसे माँग ले। दूसरे वरदानका नाम नहीं लेना। बुढ़िया सहम गई। उसके मनमें तो मनोरथों का भण्डार भरा पड़ा था। वह बड़े असमंजस में पड़ गई। बोली महाराज। यदि आज्ञा हो तो मैं अपने गुरुजीसे पूछ आऊँ कि मैं एक वरदान

कौन-सा मांगू। शिवजी ने स्वीकृति दे दी। बुढ़िया दौड़ी श्रीगुरुजीके पास गई। अपनी समस्या सुनाई। गुरुजी ने सबका सामंजस्य बैठते हुए उसको सिखाया कि तुम शिवजीसे जाकर कहो कि मुझे यह वर दीजिये कि मैं अपने बेटाके बेटेको सोनेकी कटोरोमें दूध-भात खाते आँख भर देखूं। बुढ़ियाने आकर शिवजीसे यही वर माँगा। शिवजी हँस गये। बोले- तू तो मुझसे भी चालाक निकली। एक ही वरमें अनेक वर तूने माँग लिए बुढ़ियाने कहा- महाराज। इसमें मेरी कोई चालाकी नहीं है, यह तो श्रीगुरुकी कृपा है। गुरु कृपासे क्या नहीं हो सकता है। शिवजीने एवमस्तु कहा। बुढ़ियाने एक वरमें ही अपने समस्त मनोरथ पूर्ण कर लिए। अपनी दीर्घायु नेत्र-ज्योति, बेटाका विवाह, पौत्रका जन्म एवं अपार धनराशि ये सभी बातें एक साथ प्राप्त हो गई। माँगने वाला यदि मूर्ख होता है तो अनेक वर पाकर भी उसका एक भी मनोरथ पूर्ण नहीं होता है।

९१) शिव और विष्णु भक्त- एकबार भगवान शमर और विष्णु ये दोनों सन्त रूप धारणकर साथ-साथ पृथ्वी पर विचरने आये। विचार हुआ कि चलो किसी भक्त के घर चलकर उसका स्वागत-सत्कार स्वीकार करें और उसे कृतार्थ करें। शमरजीने कहा इसी नगरमें चलो, हमारा एक बडा-भारी भक्त है, नित्य जल चढ़ाता है, पूजा करता है मैंने भी उसे बहुत सम्पत्ति दे रक्खी है, वह बड़ा-भारी भक्त व्यापारी है। देखो, सामने गद्दी पर त्रिपुण्ड लगाये बैठा है। हजारों बोरी गेहूँ-चीनी आदिकी लगी हैं। दोनोंने गद्दीके सामने जाकर सीताराम-राधेश्याम की कई आवाजें लगाईं पर सेठजीकी ध्यान बही पर से नहीं हटा। जब इन दोनोंने आवाज ऊँची की। तब सेठजीने कहा-कहो, क्या बात है, क्यों कान फोड़े डाल रहे हो। दोनोंने कहा- हम भूखे हैं, कुछ भोजनका प्रबन्ध करो। सेठजीने कहा हमारे पास भोजनका कोई भी प्रबन्ध नहीं है, यह कहते हुए अपने मुनीमसे कहा इन्हें एक सेर बेझर देकर यहाँसे भगाओ। यह सुनकर दोनों वहाँसे चल दिये। शमरजीने कहा यह पहले बड़ा गरीब था। मेरी सेवा करते-करते सेठ बन गया पर इसमें अब अहमार आ गया अत: अतिथिकी सेवामें भाव नहीं है। अब यह फिरसे कङ्गाल हो जायगा।

विष्णु भगवानने कहा- आपके भक्तको देख लिया, अब हमारे भक्तके यहाँ चलो। दोनों एक गरीब बुढ़ियाके यहाँ पहुँचे। उसके एक पुत्र था और कोई परिवारमें नहीं था। घर टूट-फूटकर गिर गया था। सामान भी कुछ विशेष घरमें नहीं था। घरमें एक चक्की थी, बुढ़िया चक्की पीसकर अपना और अपने पुत्रका पालन करती दोनों सन्तोंको अपने घरमें आया देखकर बुढ़ियाने दण्डवत किया और बालकसे दण्डवत कराया। हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। लड़के ने जल लाकर हाथ-पैर धुलाये। दोनों सन्त आसन पर बैठे और बोले माताजी। भूख लगी है, कुछ भोजनका प्रबन्ध हो सके तो करो। बुढ़ियाने कहा हाँ, महाराज। अभी करती हूँ, आप लोग विराजिये। घरमें अन्नका दाना न था, उधार मिलनेकी आशा न थी। बुढ़ियाने उपाय सोच लिया। चक्कीके ऊपरका पाट लड़के को दिया और कहा- ये महात्मा लोग देख न पावें, तू इसको बेचकर आटा-दाल ले आ। पीछेसे दीवाल पार करते समय चक्कीका पाट गिर गया और नीचे पत्थर पर गिरते ही उसके कई टुकड़े हो गये। उदास और भयभीत बालकने यह बात मातासे कही, तो उसे सुनकर बुढ़िया हताश या रूष्ट नहीं हुई। उसने चक्कीके नीचेका पाट खोदकर दिया और कहा- जल्दीसे सामान ले आ। इस बार लड़का सावधानीसे चक्कीके पाटको ले गया और बेचकर आटा-दाल आदि लाया। बुढ़ियाने बड़े प्रेमसे भोजन बनाकर दोनोंको पवाया। भुक्तावशिष्ट खाकर मैया-बेटा बड़े प्रसन्न हुए। इन विष्णु भक्तोंके भाव पर रीझकर शंकरजीने कहा- तुम्हें जो वरदान चाहिए, वह माँग लो। बुढ़ियाने कहा- महाराज। आपकी सेवा-भक्तिमें बाधा न हो, वही जो कुछ उचित समझो सो कृपा करके दे दो। शंकरजीने अपनी झोली दे दी और कहा- इसमें से पत्थरके टुकड़ोंको बेच-बेचकर घर बनाओ, बेटेका ब्याह करो और अतिथि साधु-सन्तोंकी सेवा करो। दोनों अपने-अपने भक्तों की भक्ति पर आश्चर्य करते हुए स्वधाम गये। बुढ़ियाका लोक-परलोक सुधर गया। सन्त-सेवामें भाव था, वस्तुके अभावमें टेक न छोड़ने पर भगवत्-कृपा प्राप्त हुई।

९२) चित्रकार की उदारता- इग्लैण्ड की रॉयल अकादमी के हॉल को चित्रों से सजाने की योजना बनाई गई। इसके लिए देश-विदेश के चित्रकारों को अपने श्रेष्ठतम चित्र भेजने को कहा गया। कुछ ही दिनों में अकादमी के पास चित्रों का ढेर लग गया। अकादमी की विशेषज्ञ समिति इन चित्रों का अवलोकन करती और अच्छे चित्र छांटकर हॉल की दीवार पर लगा देती। अंत में चित्र लगाने के सारे स्थान भर गए, लेकिन छांटे गए सुंदर चित्रों में से एक बचा रह गया। इसे एक युवा चित्रकार ने बनाया था। चित्र में नयापन था और रंगों का बेहतरीन इस्तेमाल किया गया था। विशेषज्ञ समिति के एक सदस्य ने चित्र की बारीकियों पर ध्यान देते हुए कहा, चित्र तो वाकई खूबसूरत है, मगर इसे लगाने के लिए हमारे पास कोई जगह ही नहीं बची है, इसलिए इसे ससम्मान वापस कर दिया जाए। इंग्लैण्ड के विख्यात चित्रकार टर्नर भी विशेषज्ञ समिति के सदस्य थे। उन्होंने कहा, अभी जगह भरी नहीं है। अब भी एक स्थान बचा हुआ है, जहां यह चित्र लगाया जा सकता है। समिति के सदस्य उन्हें आश्चर्य से देखने लगे। टर्नर उठे और उन्होंने अपना चित्र उतार कर उसकी जगह उस युवा चित्रकार की पेंटिंग लगा दी। हालांकि टर्नर का चित्र उस युवा चित्रकार की पेंटिंग स से बहुत अच्छा था। टर्नर ने कहा, युवा चित्रकार को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, क्योंकि इससे दुनिया को एक महान कलाकार मिलने की राह खुलती है। युवा चित्रकार को इस सच्चाई का पता बहुत बाद में चला। काफी प्रसिद्ध होने के बाद भी वह आजीवन अपनी सफलता का श्रेय टर्नर को ही देता रहा।

९३) ब्राह्मण और धोबी- पुराने जमाने की बात है। एक दिन शंकर और पार्वती विमान में बैठकर आकाश-मार्ग से कहीं जा रहे थे। नीचे निगाह गई तो देखा, दो आदमी बुरी तरह आपस में झगड़ रहे हैं। उनमें एक धोबी था, दूसरा ब्राह्मण। धोबी ब्राह्मण को बुरा-भला कह रहा था, तरह-तरह की गालियां दे रहा था। बेचारा ब्राह्मण, जो शिव का परम भक्त था, चुपचाप सुन रहा था। उसकी चुप्पी पर धोबी को और भी ताव आ रहा था। अंत में उसने कहा, ब्राह्मण के बच्चे, तूने समझ क्या रखा है। मैं आज तेरी ऐसी खबर लूंगा कि तूझे छठी का दूध याद आ जायगा। इतना कहकर उसने बाहें चढ़ाई और ब्राह्मण को मारने के लिए बढ़ा। यह देखकर पार्वती को ब्राह्मण पर दया आ गई। उन्होंने शंकरजी से कहा, स्वामी, आप अपने भक्त की सहायता कीजिये। धोबी बड़ा क्रूर है। वह मानेगा नहीं। शंकर बोले, पार्वती, यह इनका आपसी मामला है। हम बेकार क्यों बीच में पड़े। पर पार्वती नहीं मानी। विवश होकर शंकर ने विमान नीचे उतारने के लिए चालक को संकेत किया। विमान नीचे उतरने लगा। इतने वे देखते क्या हैं कि ब्राह्मण को भी क्रोध आ गया और वह दांत पीसकर धोबी को गंदी-गंदी गालियां देने लगा। तब धोबी ने आगे बढ़कर उसके एक मुक्का जमा दिया। ब्राह्मण ने दो जमा दिये। यह देखकर पार्वती ने शंकर से कहा, महाराज, अब मदद के लिए नीचे जाने की आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण जबतक ब्राह्मण था, वह आपकी सहायता का अधिकारी था। अब तो वह भी धोबी बन गया। दोनों एक ही जात के हो गये। चलिये, हम आगे चलें। इसके बाद शंकर और पार्वती अपने रास्ते पर बढ़ गये।

९४) शिवजी और साढ़ेसाती - शिवजी के पास एक दिन शनिदेव आए और बोले- भगवान। अब आपकी राशि पर साढ़ेसाती के साथ मैं आनेवाला हूं। शिवजी ने कहा- तुम साढ़ेसात सौ साल भी मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। जब चाहो तब मेरी कुंडली में अपना प्रभाव दिखा देना मुझे तुम्हारा कोई डर नहीं है। शनिदेव चले गए लेकिन शिवजी ने शनिदेव की चुनौती स्वीकार कर ली। शिवाजी ने सोचा मैं गुफा में जाकर साढ़े सात वर्ष तक निरंतर तपस्या और साधना में लग जाऊंगा, फिर देखें शनिदेव मेरा क्या बिगाड़ते हैं? शिवजी ने साढ़ेसात वर्ष तक एकांत में साधना की। भूखे-प्यासे तपस्या करते रहे। साढ़ेसाती पूरा होने पर शनि आए तो शंकरजी ने कहा- शनिदेव तुमने मेरा क्या बिगड़ लिया? शनिदेव ने हंसकर कहा- भगवन्, भला इससे अधिक कष्ट क्या दे सकता था कि आप पूरे साढ़े सात साल भूखे और प्यासे रहे।

९५) सेवा का फल - शंकर को प्राप्त करने के लिए पार्वती ने घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर ने उन्हें दर्शन दिये और उनकी इच्छा पूरी करके अंतर्धान हो गये। अपनी मनोकामना के पूर्ण होने पर पार्वती के आनंद का ठिकाना न रहा। वह अपने आश्रम के बाहर एक शिला पर बैठकर विचारों में डूब गई। तभी उन्हें किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। पार्वती शिला से उठकर उस ओर बढ़ीं, जिधर से वह आर्तनाद आ रहा था। वहां पहुंचकर देखती क्या हैं कि सरोवर में एक बच्चे को ग्राह ने पकड़ लिया है और वह बालक चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, मुझे बचाओ। मुझे यह ग्राह खा जायगा। मैं अपने माता-पिता की अकेली संतान हूं। मैं नहीं रहूंगा तो मेरे माता-पिता भी नहीं रहेंगे। पार्वती का दिल यह सुनकर व्यथित हो उठा। उन्होंने ग्राह से कहा, इस बालक को छोड़ दो। ग्राह बोला, संध्या के समय जो यहां आता है, उसे मैं अपना भोजन बना लेता हूं। पार्वती ने आग्रह भरे स्वर में कहा, मैंने हिमालय के शिखर पर कठोर तप किया है। उसी के बल पर कहती हूं कि इसे छोड़ दो। ग्राह बोला, तुम उस तप को मुझे अर्पित कर दो, तो मैं इसे मुक्त कर दूंगा। पार्वती ने पुलकित होकर कहा, यह क्या, मैं जीवन भर के सारे तप तुम्हें अर्पित करती हूं। ग्राह ने बालक को छोड़ दिया। बोला, देवी, तुम्हारी दीन-सेवा से मैं बहुत संतुष्ट हूं। तुम्हारी तपस्या को भी लौटाये देता हूं। पार्वती ने कहा, मैंने जो कुछ किया है, सोच-समझकर किया है। मैं तप को वापस नहीं ले सकती। तप की क्या है, फिर कर लूंगी। ग्राह यह सुनकर अंतर्धान हो गया। पार्वती फिर से तप करने की सोचने लगीं। तभी शंकर प्रकट हो गये। बोले, तुम्हें तप करने की जरूरत नहीं है। अपना तप तुमने मुझे ही दिया था। मैं ही तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ग्राह बनकर आया था। तुम्हारा तप अब अनंत गुना अक्षय हो गया।

९६) लक्ष्मी का निवासस्थान- जीवन का आदर्श है प्रेम। एक बार इन्द्र कहीं जा रहे थे तो उन्हें रास्ते में लक्ष्मी बैठी दिखाई दी। तब इन्द्र ने लक्ष्मी से पूछा- आजकल आप कहाँ विराजती है ? तो लक्ष्मी ने कहा, आजकल का प्रश्न क्यों ? मैं तो जहाँ रहती हूं, वहीं सदा रहती हूं। मैं ऐसी भगोड़ी नहीं कि कभी कहीं और कभी कहीं रहूं। अस्तु हमेशा रहने की जगह यदि पूछो तो बतला दूं। इन्द्र ने मुस्कराकर कहा- यह तो और भी अच्छी बात है। बता दीजिए। तब लक्ष्मी ने कहा- मैं वहाँ रहती हूं जहाँ प्रेम का अखण्ड राज्य है, जिस परिवार एवं समाज में आपस में कलह नहीं है। मैं उन लोगों के पास रहती हूं जो लोग प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर काम करते हैं। एक दूसरे के सहकारी बनकर जहाँ लोग अपनी जीवन-यात्रा की तैयारी करते हैं, जहाँ आपस में संगठन है और जो एक-दूसरे के लिए अपने स्वार्थ को न्यौंछावर कर देने को तैयार रहते हैं, अपनी इच्छाओं को भी कुचलने के लिए तैयार रहते हैं, जहाँ प्रेम की जीवनदायिनी धाराएं निरंतर बहती रहती हैं, जहाँ कलह, घृणा और द्वेष नहीं हेाता, मैं उसी जगह निवास करती हूं। बड़े-बड़े परिवारों को देखा है, जहाँ लक्ष्मी के ठाठ लगे रहते थे। किन्तु जब उन परिवारों में मनमुटाव आया, क्रोध की आग जलने लगी, बैरभाव पैदा हो गया तो वह वैभव और आनन्द बना नहीं रह पाया। धीरे-धीरे वह क्षीण होने लगा और लक्ष्मी रूठ कर चल दी।

दीपावली की आधी रात बीत चुकी थी। लक्ष्मीजी अपने वाहन पर सवार उपयुक्त पात्र को वरदान देने निकल पड़ीं। एक झोपड़ी का दरवाजा बंद था। भीतर-बाहर अंधेरा पसरा हुआ देखकर विस्मय के साथ लक्ष्मीजी ने पूछा, दिवाली की रात भी अंधेरा ? यह एक गरीब मजदूर का घर है। दिन भर कठोर श्रम करने के बाद भी उसके परिवार का गुजारा नहीं हो पाता। इसलिए आपका स्वागत नहीं कर पाया बेचारा।

उल्लू ने स्थिति स्पष्ट की तो लक्ष्मीजी ने आगे बढ़ने का इशारा किया। कुछ दूर चलने के बाद एक घर के आगे केवल एक दीया टिमटिमाता हुआ देखकर वे ठिठकीं। आशय समझकर उल्लू बोला, यह एक ईमानदार शासकीय कर्मचारी का घर है। ऊपर की कमाई को हाथ लगाना भी पाप समझता है, इसलिए इसका परिवार गरीबी और अभाव से त्रस्त रहता है।

अपनी क्षमता अनुसार ही लक्ष्मीजी की खामोशी का अर्थ समझकर उल्लू आगे बढ़ लिया। तभी उनकी नजर विद्युत रोशनी से जगमगाते एक भव्य, आलीशान भवन पर पड़ी। वहां आतिशबाजी से आसमान तक गूंज रहा था। दर्जनों देशी-विदेशी कारों की लाइन लगी हुई थी। अच्छा खासा शोर मचा हुआ है। लक्ष्मीजी को खोया हुआ सा जानकर उल्लू बताने लगा- यह एक हवाला और घोटालेबाज का महल है, देवी। इसके पास अपार संपत्ति व काला धन है। सुनकर लक्ष्मीजी बोलीं- तुम मुझे यहीं उतार दो।

उल्लू खड़ा-खड़ा लक्ष्मीजी को भीतर जाते हुए देखता रहा।

देवता चिर काल से अनुरोध करते रहे कि लक्ष्मी असुरों के यहां न रहें, देवलोक में निवास करें। परंतु उनकी प्रार्थना अनसुनी होती रही। लक्ष्मी ने असुरों के इलाके को छोड़ा ही नहीं। एक दिन अनायास ही लक्ष्मी देवलोक में आ गईं। देवता प्रसन्न भी थे और चकित भी। उन्होंने सत्कारपूर्वक उन्हें बिठाया। परंतु साथ ही असमंजस भी व्यक्त किया वे असुरों को छोड़कर यहां क्यों चली आईं। लक्ष्मी जी ने कहा, सुर और असुर होने का पुण्य-पाप भगवान देखते हैं। मेरा काम पराक्रम, संयम एवं सहयोग की जांच-पड़ताल करना है। जब तक असुर पराक्रमी और संयमी रहे, एक दूसरे के सहयोगी रहे, मैं भी उनके साथ रही। अब वे बदल गए हैं। अहम्मन्यता, आलस्य और दुर्व्यसन अपनाने लगे हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरा निर्वाह कैसे हो सकता था।

९७) अंदर झाँकने की फुर्सत- लक्ष्मी जी के मना करने पर भी जब विष्णु भगवान पृथ्वी पर जाने लगे तो लक्ष्मी ने कहा- मनुष्य धूर्त न निकले तो ही लौट कर आना अन्यथा उसके बीच रहना।

विष्णु तुनक कर चल दिये। धरती निवासियों ने सुना कि विष्णु आ रहे हैं, तो भीड़ की भीड़ इकट्ठी हो गयी। विष्णु द्वारा पूछे गये धर्म-कर्म के पालन का प्रश्न उपेक्षित कर अपनी मन:कामना पूर्ति का आग्रह करने लगे। इनकी लोभ-लिप्सा पर विष्णु क्रोधित थे। वे उठे और बद्रीनाथ पर्वत में जा छिपे। वहाँ उनके आगमन का समाचार मिला तो हजारों की संख्या वहाँ भी जुट गयी। वे भी अपनी मन:कामना पूर्ति ही चाहते थे। वहाँ से भी दु:खी होकर विष्णु समुद्र के बीच बसी द्वारिका में जम गये। इस पर विष्णु अदृश्य हो गये पर लज्जावश लक्ष्मीजी के पास नहीं गये। चिंतित होकर उन्होंने नारद से पूछा, यह कैसे लोग हैं, जो लालच की रट लगाते रहते हैं या कर्त्तव्यपालन की उपेक्षा करते हैं। कोई ऐसी जगह बताओ जहाँ मैं चैन से रह सकूँ।

आप मनुष्यों के हृदय में बस जाइए जो बहिर्मुखी होंगे, उनकी दृष्टि भीतर तक न पहुँचेगी और आत्मदर्शी एवं विवेकी आपको तुरंत ढूँढ़ लेंगे। तब से ईश्वर मन में रहते हैं, पर अंदर झाँकने की फुर्सत किसे हैं ?

९८) काम-धंधा- लक्ष्मी मइया पृथ्वी भ्रमण पर निकलीं। भाग-दौड़ में अस्त-व्यस्त प्राणियों को उन्होंने देखा और मन ही मन खुश हुईं कि हर प्राणी रात-दिन उन्हें ही पाने की उधेड़बुन में लगा है। तभी उनकी नजर एक दीन-हीन भिखारी पर पड़ गई जो राम के नाम पर सड़क पर भीख मांग रहा था। मइया के अहम् को कुछ ठेस लगी। उन्होंने सोचा कि कैसा मूर्ख है, कामना धन की करता है और दुहाई राम नाम की दे रहा है। चलो, इसको भी काम-धंधे से लगा दें।

धन-वर्षा करती लक्ष्मीजी अपने वास्तविक रूप में उस भिखारी के सामने प्रकट हो गईं। बोली- हे दुखी भिखारी, अब राम नाम छोड़। तेरी हालत देख मैं द्रवित हूं, अपनी झोली फैला और मालामाल हो जा। क्षमा करें, मइया असली भक्त तो मैं केवल आपका ही हूं। राम का नाम तो चलन है तो भुना रहा हूं। लक्ष्मीजी को भिखारी की बात मजेदार लगी। उन्होंने और भी खुश होते हुए पूछा- तो राम नाम क्या अब मोक्ष का साधन नहीं रहा ? कहां मां, वह तो सत्ता की सीढ़ी हो गया। फिर किसका नाम। उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की। मां, मोक्ष तो बाद की बात है, पहले सद्गति मिल जाए, वह बहुत है। शव

का संस्कार होने में ही हजारों लग जाते हैं और आपकी कृपा न हो तो वह भी मुश्किल हो जाता है... मां, अब आप प्रसन्न ही हैं तो सड़क पर नहीं, गरीब की कुटिया पर पधारकर ही उसे धन्य कीजिए। भावविभोर लक्ष्मीजी उसके साथ कुटिया पर पहुंची तो उसके ठाठ-बाट से हतप्रभ रह गईं। अपने सुन्दर फ्रेम जड़े फोटो के आगे घी का दीप जलते भी उन्होंने देखा। अरे तुम तो अच्छे भले, खाते-पीते आदमी हो। फिर यह भीख मांगना ? यह तो धंधा है, मां। धंधे में नाटक तो करना ही पड़ता है। रही भीख, तो सारा देश यही कर रहा है। फर्क यह है कि मैं भिखारी बनकर भीख मांगता हूं।

कोई लाटरी तो कोई बांड्स तो कोई कल्पवृक्ष उगा-उगाकर ग्लेमराइज कर रहा है भीख को वत्स, तेरा धंधा इसी तरह खूब फले-फूले का आशीष दे गद्‌गद् भावसे लक्ष्मीजी अंतर्ध्यान हो गईं।

९९) लक्ष्मीजी को कैसे रोके? - एक नगर में एक मंदिर बहुत प्रसिद्ध था। लोग जब नगर से कहीं बाहर यात्रा पर निकलते तो अच्छी और सुखद यात्रा के लिए उस मंदिर में भगवान के दर्शन करके जाते थे। दर्शन का समय नियत होते हुए भी कुछ भेंट दे देने पर पुजारी, जब चाहे वक्त-बेवक्त, भगवान के पट खोल देता था। लोगों ने इसकी शिकायत राजा से की। राजा ने पुजारी को बुलाकर पूछा तुम्हारी इस तरह की शिकायत आई है, क्या बात है? पुजारी साफ मुकर गया। बोला, अन्नदाता, जांच करवा लें, भला ऐसी बात हो कैसे सकती है? राजा ने भी सच्चाई की तह में जाने का फैसला किया। एक दिन खुद राजा भेष बदलकर मुंह अंधेर पुजारी के पास पहुंचा और बोला मुझे ठाकुरजी के दर्शन कराओ। पुजारी बोला, अभी तो ठाकुरजी का शयनकाल है, किसी तरह भी दर्शन संभव नहीं है। पुजारीजी, मेरा तो इसी समय नगर से विदा होने का मुहूर्त है, वह बिगड़ जाएगा और दर्शन किए बिना मैं जा नहीं सकता। तुम्हारा चाहे जो हो, मेरे पास तो इसका कोई विकल्प नहीं है। तुम्हीं कहो, असमय भगवान के पट कैसे खुल सकते हैं? व्यापारी बने हुए राजा ने एक मेहर निकालकर पुजारी के हाथ पर रखी और कहा, भाई, चाहे जैसे हो मुझे दर्शन करा दो। पुजारी ने चट पट खोल दिए। दर्शन करके वह व्यापारी चला गया। दूसरे दिन पुजारीजी दरबार में तलब किए गए। राजा ने पूछा, क्यों पुजारी जी, अब तो तुम भगवान के पट असमय नहीं खोलते हो? नहीं अन्नदाता, कैसे खोल सकता हूं। राजा ने कहा, देखो सच्ची बात कहना, नहीं तो इसका बहुत बड़ा दंड मिलेगा। पुजारी सहमा। राजा के चेहरे की ओर गैर से देखने लगा। पुजारी सोचने लगा- कल रात स्वयं राजा ही तो नहीं थे? हो न हो, यही थे। अब तो पुजारी के प्राण सूख गए। लेकिन था वह हाजिर जवाब। बोला, अन्नदाता, यों तो राजा, सेठ सेनापति या दुनियाका कोई तुर्रम खां क्यों न आ जाए, मैं पट नहीं खोलता। लेकिन अन्नदाता, जब साक्षात लक्ष्मी जी आ जाती है जब मैं लाचार हो जाता हूं। राजा ने मुस्कराकर कहा, अच्छा जाओ, इस बार तो माफ किए जाते हो, फिर कभी शिकायत आई तो सजा मिलेगी।

१००) नारद और ब्राह्मण- एकबार श्रीनारदजीने पृथ्वी पर विचरते हुए एक ब्राह्मण परिवारको अन्न-वस्त्रके अभावमें बहुत दु:खी देखा। एक ब्राह्मण था। परिवारमें उसकी पत्नी एवं एक पुत्र था। कुल तीन प्राणी थे। ब्राह्मण बड़ा गरीब था।

दयावश भगवानके पास आकर प्रार्थना की कि- प्रभो। कृपा करके उस ब्राह्मणका दु:ख दूर कर दीजिये। भगवान ने कहा कि उसके भाग्यमें सुख भोग नहीं है अत: देने पर भी उसको नहीं मिल सकता है। नारदजीने कहा- मैं कैसे मानूं ? हमें तो लगता है कि आप उसे कुछ देना नहीं चाहते है। भगवानने मुस्कराकर कहा- तो आपही मेरी ओरसे उन तीनों प्राणियोंको अलग-अलग तीन वरदान देकर सुखी कर दीजिये। भगवदाज्ञानुसार नारदजी पहले विप्र-पत्नीके पास पहुँचे और बोले कि- तुम मुझसे इच्छित एक वरदान माँग लो और सुखी हो जाओ। उसकी गरीबी पर तरस आया तो श्रीनारदजीने एकदिन उसकी ब्राह्मणीसे कहा- तुम अपने मनके अनुकूल एक वरदान जो चाहो सो मुझसे माँग लो। नारदजीने सोचा था- यह

गरीब है, माँगेगी तो धन माँगेगी। आज इसे अपार धन देकर सदाके लिए इसकी गरीबी दूर कर दूंगा।

उसने कहा- भगवन्। आप मुझे ऐसा वरदान दें कि मैं संसारकी सभी स्त्रियोंमें सबसे अधिक रूपवती हो जाऊँ। नारदजीने माथा ठोका। एवमस्तु कहकर उसके दुर्भाग्यको कोसते हुए, चले गये। ब्राह्मणी दिव्य सौन्दर्यवती हो गई। उसके घरके समीपसे होकर राजाकी सवारी निकली। उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर राजा जबरदस्ती उसे अपने महलमें ले गया।

इससे ब्राह्मणको बहुत दु:ख हुआ। इसी बीच इनकी दरिद्रता मिटानेके विचारसे पुन: श्रीनारदजीने आकर ब्राह्मणसे कहा- तुम मुझसे कोई एक अभीष्ट वरदान माँग लो, जिससे तुम्हारा दु:ख दूर हो जाय। ब्राह्मणने क्रुद्ध होकर श्रीनारदजीसे यह वर माँगा कि मेरी ब्राह्मणी, जो सुन्दरी बनकर राजमहलमें रह रही है वह शूकरमुखी हो जाय। श्रीनारदजी लाचार एवमस्तु कहकर चलते बने। ब्राह्मणी तत्काल कुरूपा हो गई। राजाने महलमें जाकर ब्राह्मणीको जब शूकरमुखी देखा तो तुरन्त उसे ब्राह्मणके घर भेज दिया। वह जहाँ-तहाँ भटकती रही। पुन: श्रीनारदजी उनके पुत्रके पास गये और बोले कि-मैंने तो तुम लोगोंकी गरीबी, दु:खदीनता दूर करनेके लिए दो बार अवसर दिया, तुम्हारी माता और पिताको मनचाहा वर माँगनेका, परन्तु दुर्भाग्यवश मेरे दोनों वरदान व्यर्थ हो गये। तुम कोई एक वरदान माँग लो। लड़केने हाथ जोड़कर कहा- नारदजी। आप मुझे यही वर दीजिये कि मेरी मैया जैसी पहले थी वैसी ही होकर घर आ जाय।

नारदजीके तथास्तु कहते ही ब्राह्मणी जैसी पहले थी, वैसी ही हो गई। तीन वरदानोंको पाकर भी इनका दरिद्र दूर नहीं हुआ। इसलिए कि इन्होंने पूर्वजन्ममें दान-पुण्य नहीं किया था। नारदजीकी समझमें आ गया कि भगवानने ठीक ही कहा था। पुन: इस जन्ममें इन्होंने भक्त-भगवन्तकी कृपा भी प्राप्त नहीं की थी, नहीं तो बिना वरदानके ही देवर्षि इन्हें अपने आशीर्वादसे सुखी कर देते।

श्रीनारदजीने झुंझलाकर एवमस्तु कहा और उन तीनोंकी मूर्खता और मन्दभाग्यताको कोसते हुए चले गये। ब्राह्मणी फिर पूर्व रूपको प्राप्त होकर घर पर आ गई। आपने देखा; तीन वरदानोंका अवसर मिलने पर भी वे सब ज्योंके त्यों ही रह गये। बुढ़ियाने एक ही वरदानमें अपना सब सुधार लिया। इसी प्रकार श्रीतुलसीदासजीने भी एक ही वरदानमें सबका दर्शन माँग लिया।

१०१) शाप वरदान बना- नारद को एक जगह टिककर बैठने की आदत नहीं थी। उनका एक स्थान पर बैठकर पूजा-पाठ करने में भी मन नहीं लगता था। बाल्यावस्था से ही वे लोगों की समस्याओं को सुनने तथा उन्हें समाधान देने के लिए तत्पर रहते। भगवान विष्णु जब भी आते नारद पूजा स्थली से नदारद मिलते। एक दिन विष्णु ने क्रुध होकर उन्हें शाप दिया कि तुम्हें भविष्य में ढाई घड़ी से अधिक बैठने की सुविधा नहीं मिलेगी। नारदजी ने अपने लिए इसे वरदान माना तथा जन सेवा के लिए निकल पडे।

१०२) विश्वास की शक्ति- एक बार नारदजी एक पर्वत से गुजर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक विशाल वट वृक्ष के नीचे एक तपस्वी तप कर रहा है। उनके दिव्य प्रभाव से वह जाग गया और उसने उन्हें प्रणाम करके पूछा कि उसे प्रभु के दर्शन कब होंगे। नारदजी ने पहले तो कुछ कहने से इनकार किया, फिर बार-बार आग्रह करने पर बताया कि इस वटवृक्ष पर जितनी छोटी-बड़ी टहनियां हैं उतने ही वर्ष उसे और लगेंगे। नारदजी की बात सुनकर तपस्वी बेहद निराश हुआ। उसने सोचा कि इतने वर्ष उसने घर-गृहस्थी में रहकर भक्ति की होती और पुण्य कमाए होते तो उसे ज्यादा फल मिलते। वह बोला, मैं बेकार ही तप करने आ गया। नारदजी उसे हैरान-परेशान देखकर वहां से चले गए।

आगे जाकर संयोग से वह एक ऐसे जंगल में पहुंचे, जहां एक और तपस्वी तप कर रहा था। वह एक प्राचीन और अनंत पत्तों से भरे हुए पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। नारदजी को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और उसने भी प्रभु दर्शन में

लगनेवाले समय के बारे में पूछा। नारदजी ने उसे भी टालना चाहा मगर उसने बार-बार अनुरोध किया। इस पर नारदजी ने कहा कि इस वृक्ष पर जितने पत्ते हैं उतने ही वर्ष अभी और लगेंगे। हाथ जोड़कर खड़े उस तपस्वी ने जैसे ही यह सुना, वह खुशी से झूम उठा और बार-बार यह कहकर नृत्य करने लगा कि प्रभु उसे दर्शन देंगे। उसके रोम-रोम से हर्ष की तरंगे उठ रही थीं। नारदजी मन ही मन सोच रहे थे कि इन दोनों तपस्वियों में कितना अंतर है। एक को अपने तप पर ही संदेह है। वह मोह से अभी तक उबर नहीं सका और दूसरे को ईश्वर पर इतना विश्वास है कि वह वर्षों प्रतीक्षा के लिए तैयार है। तभी वहां अचानक अलौकिक प्रकाश फैल गया और प्रभु प्रकट होकर बोले, वत्स। नारद ने जो कुछ बताया वह सही था पर तुम्हारी श्रद्धा और विश्वास में इतनी गहराई है कि मुझे अभी और यहीं प्रकट होना पड़ा।

१०३) मोक्ष और जीवन- एक बार नारद ने सोचा कि पृथ्वी पर मोक्ष की इच्छुक आत्माओं को विष्णुलोक लाकर उन्हें मोक्ष प्रदान करवा दिया जाए। इसकी अनुमति लेने वह विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु उनकी बात सुनकर मुस्कराए और बोले, नारद, तुम्हारा विचार तो अति उत्तम है पर मुझे नहीं लगता कि कोई आत्मा मोक्ष लेना चाहेगी। नारद को आश्चर्य हुआ कि कोई भला मोक्ष लेने से इन्कार क्यों करेगा। उन्होंने कहा, प्रभु आप आत्माओं को यहां लाने की अनुमति तो दें फिर देखते हैं कि कोई कैसे मोक्ष नहीं लेता। भगवान विष्णु ने अनुमति दे दी। नारद तत्काल पृथ्वीलोक जा पहुंचे और जितने भी भक्तगण या तपस्वी थे उनसे मिलने लगे। पर कोई भी मोक्ष लेने को तैयार नहीं हुआ। साम-दाम-दंड भेद तो क्या, उनकी दिव्य-सत्संग सुधा भी लोगों को इसके लिए तैयार नहीं कर पाई। निराश होकर नारद एक सेठ के पास पहुंचे और उसे मोक्ष लेने को कहा। सेठ ने शर्त रखी कि जब उसके बेटे का विवाह हो जाएगा तो वह मोक्ष ले लेगा। नारद मान गए। जल्दी ही सेठ के पुत्र का विवाह संपन्न हो गया। लेकिन अब सेठ ने एक नई शर्त जोड़ दी और कहा कि जब उसका बेटा व्यवसाय संभाल लेगा तो वह मोक्ष ले सकता है। ऐसा भी हो गया लेकिन सेठ ने फिर मोक्ष लेने से इनकार कर दिया। अब वह कहने लगा कि जब वह दादा बन जाएगा तब मोक्ष लेगा। उसकी यह बात भी पूरी हो गई। उसका पोता काफी बड़ा भी हो गया पर सेठ मोक्ष को किसी न किसी बहाने टालता रहा। इस बीच उसकी मृत्यु हो गई। नारद ने दिव्यदृष्टि से देखा कि वह शूकर की योनि में पैदा हुआ है। वहां पहुंचकर उन्होंने सेठ को मोक्ष की याद दिलाई। शूकर बने सेठ ने कहा, नारद जी मोक्ष तो मैं लूंगा पर अब मैं कीचड़ में रहने का आदी हो गया हूं। क्या विष्णुलोक में कीचड़ मिलेगा?

नारदजी दौड़े हुए विष्णु के पास पहुंचे और उन्होंने अपनी गलती के लिए क्षमायाचना की।

१०४) कोई व्यक्ति मार्ग में जा रहाथा, बीच में नारदजी मिल गये। उस व्यक्ति ने नारदजी से पूछा- महाराज, ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों में से जल्दी कौन प्रसन्न होते हैं?

नारदजी ने कह दिया, जल्दी प्रसन्न होते हैं ब्रह्मा जी। ब्रह्मा जी के वैसे मंदिर कम ही होते हैं। तो भगत चला गया पुष्कर में। दुनियाँ में एक ही मंदिर है ब्रह्मा का, वो है पुष्कर में। उस भगत ने वहाँ जाकर बहुत तपस्या की तीन महीने तब ब्रह्माजी की । ब्रह्मा खुश हो गये, प्रकट होकर बोले, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम वर माँगो। जो वर माँगोगे मिलेगा।

भगत बोला- बस आपके दर्शन मिल गये, अब क्या माँगू? ब्रह्माजी बोले- तो क्या वर शंकर ही दे सकते हैं, क्या विष्णु ही दे सकते हैं। हम विधाता हैं, हमसे वर माँगो और तुमने तीन महीना मेरी तपस्या की है, सो वर भी तीन माँगो। भगतजी तो कलयुगी थे- बोले, पहला वर ये दे दो, मेरा मकान बन जाय, दूसरा वर ये दे दो कि मेरी शादी हो जाय। तीसरा वर ये दे दो कि जब चाहूँ तब तीन वरदान और माँग लूँ। ब्रह्मा ने ठीक है, ऐसा ही होगा।

भगत के मकान बन गया, शादी हो गयी। सुन्दर बंगला बना हुआ है। रात्रि में सो रहा था। वर्षा आयी और मकान का सारा

रंग धुल गया। वहीं से पुकारा, हे ब्रह्मा जी। ब्रह्माजी आये, बोले- क्या बात है? बोला- पहला वर ये दे दो कि वर्षा बन्द हो जाय, दूसरा वर ये दे दो कि मेरे मकान पर कभी वर्षा नहीं गिरे, तीसरा वर ये दो कि जब चाहूँ तीन वर और माँग लूँ?

ब्रह्मा ने सोचा, ये कैसा भगत है? ठीक है, चले गये। भगत जी को सर्दी जुकाम हो गया- हे ब्रह्माजी। ब्रह्मा आये, बाले क्या है? पहला वर ये दे दो कि मेरी खाँसी ठीक हो जाय, दूसरा वर ये दे दो कि कोई शारीरिक कष्ट न हो, तीसरा वर ये दो, जब चाहूँ तीन वर फिर माँग लूँ? अब तो कोई भी कष्ट हो तो आओ ब्रह्मा। ऊपर से कहते हैं, ऐसे ही वर थोड़े ही माँग रहे हैं। तीन महीना भजन किया है। रोते-रोते विधाता नारायण के पास गये। नारायण मुस्कराकर बोले- क्या हुआ? बोले- इस भगत से पीछा छुड़ाओ मेरा। तीन महीना भजन क्या कर लिया? अपना दास बना लिया मुझे।

भगवान ने कहा- हे विधाता जी। इन कलयुग के भक्तों को वर देने से पहले जरा ठोक-पीटकर देख लिया करो। ये सवा रूपया चढ़ायेंगे, तो बदले में सवा लाख माँगेंगे। ब्रह्मा ने कहा- अब ध्यान रखूँगा, अभी तो बचाओ। भगवान ने इशारा किया सरस्वती देवी को, जाओ भगत जी की जिह्वा पर बैठ जाओ। सरस्वती देवी जिह्वा पर बैठ गयीं। भगत बोला- हे ब्रह्माजी बोले क्या बात है? बोला पहला वर ये दे दो कि मुझे वैराग्य हो जाय, दूसरा वर ये दे दो कि मेरी कृष्ण चरणों में प्रीति हो जाये और तीसरा वर ये दो कि संसार से मेरी मुक्ति हो जाय। ब्रह्मा बोले- तुम मुक्ति ले लो, चाहे भुक्ति, मेरा पीछा छोड़ो।

१०५) भक्त का अहंकार - एक बार देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से पूछा, भगवन आपका सबसे बड़ा भक्त कौन है। भगवान विष्णु नारद के मन की बात समझ गए। उन्होंने कहा, अमुक गांव का अमुक किसान हमारा सबसे प्रिय भक्त है। भगवान विष्णु का उत्तर सुनकर नारदजी को निराशा हुई। वह बोले, भगवन आपका प्रिय भक्त तो मैं भी हूं फिर सबसे प्रिय क्यों नहीं। भगवान विष्णु ने कहा, तुम उस किसान के यहाँ जाकर उसकी दिन भर की दिनचर्या देखकर मुझे आकर बताओ फिर मैं बताऊंगा। नारद उस विष्णु भक्त किसान के घर पहुंचे। उन्होंने देखा कि किसान ने सुबह उठ कर कुछ देर भगवान विष्णु का स्मरण किया फिर रूखी सूखी रोटी खाकर हल बैल लेकर खेत जोतने चला गया। शाम को लौटा तो बैलों को चारा पानी दिया। उसके बाद थोड़ी देर के लिए भगवान का नाम लिया और रात को खाना खाकर सो गया। एक दिन उस किसान के घर रह कर नारद जी भगवान विष्णु के पास आए और उसकी आंखों देखी दिनचर्या के बारे में बताया। अंत में नारद ने कहा, प्रभु उसके पास तो आपका नाम लेने का समय भी नहीं है फिर वह आपका सबसे प्रिय भक्त कैसे बन गया। मैं तो दिन रात आपका नाम जपने के सिवाय कोई काम करता ही नहीं फिर भला वह किसान कैसे आपका सबसे प्रिय भक्त बन गया। भगवान विष्णु ने उस बात को टालते हुए नारद को एक लबालब भरा अमृत कलश देते हुए कहा, देवर्षि तुम इस कलश को लेकर त्रैलोक्य की परिक्रमा करो। लेकिन यह ध्यान रखना कि इसकी एक बूंद भी छलकने न पाए। यदि एक बूंद भी नीचे गिरी तो तुम्हारा अब तक का किया गया सारा पुण्य खत्म हो जाएगा। नारद अमृत कलश लेकर तीनों लोकों की यात्रा पर निकल गए और यात्रा पूरी करके भगवान विष्णु को कलश देते हुए कहा, प्रभु कलश से एक बूंद भी अमृत नहीं छलकने पाई। भगवान विष्णु ने कहा- नारद, परिक्रमा के दौरान तुमने कितनी बार मेरा नाम स्मरण किया था। भगवान विष्णु ने हंसकर कहा, जब तुम परिक्रमा के दौरान एक बार भी अपना ध्यान कलश से हटा कर मेरा स्मरण नहीं कर सके जब कि वह किसान अपने सभी काम करते हुए भी कम से कम दो बार नियमित रूप से मेरा स्मरण करना नहीं भूलता तो वह सबसे बड़ा भक्त हुआ या आप। सबसे प्रिय भक्त वो होता है जो अपना कर्म करते हुए प्रेम से मेरा स्मरण भी करता है। नारद जी को सबसे प्रिय भक्त होने का अहंकार खत्म हो गया।

एक पौराणिक कथा है। एक बार नारद जी ने भगवान विष्णु से पूछा, हे अंतर्यामी। समूचे मृत्युलोक में ऐसा कौन सा व्यक्ति

है जो आपको सबसे प्रिय लगता है। इस पर भगवान विष्णु बोले, यूं तो मुझे वे सभी लोग अच्छे लगते हैं जो अपने काम को ही अपनी पूजा मानते हैं। लेकिन धर्मपुरी गांव का निर्मल किसान मुझे सबसे प्रिय लगता है। वह बड़े यत्न से अपने खेतों में हल चलाता है, बीज बोता है और फसल के पकने और बिकने के बाद अपने इष्ट को इन सब बातों का धन्यवाद देता है।

तब नारद ने पूछा, क्या मैं उसकी परीक्षा ले सकता हूँ? हाँ, बड़े शौक से, विष्णु बोले। नारद ने उस किसान की दिनचर्या की निगरानी शुरू कर दी। वह किसान सुबह अपने खेतों पर जाता है और हल चलाने से पहले अपने इष्ट को याद करता है। सांझ पड़े जब घर लौटता है तो अपने ढोर-डंगरों की सुध लेता है और फिर रात को सोते समय एक बार अपने इष्ट की स्तुति करता है। यह सब देखकर नारद फिर विष्णु के पास पहुँचे और कहा, नारायण। वह किसान तो केवल दो ही बार आपका नाम लेता है। मैं तो दिन-रात आपके नाम का जाप करता हूं। विष्णु मुस्कराए और बोले, बेशक तुम मेरे परम भक्त हो। पर मैं तुम्हें पानी की यह गगरी देता हूं। इसकी पेंदी में एक छेद है। उस छेद पर अपना अंगूठा रखकर जरा पृथ्वी के चक्कर तो लगा आओ। पर याद रखना, छेद से पानी की एक भी बूंद जमीन पर नहीं गिरनी चाहिए।

नारद उस गगरी को लेकर चक्कर तो लगा आए, पर ध्यान इसी में लगा रहा कि पानी कहीं छेद से बाहर न गिर जाए। जब लौटे तो भगवान विष्णु ने पूछा, इस बीच तुमने कितनी बार अपने इष्ट का नाम लिया? नारद बोले, एक बार भी नहीं। करता भी कैसे? सारा ध्यान तो उस छेद वाली गगरी में लगा था।

तुम्हारा मन गगरी में था और तुमने अपने इष्ट को एक बार भी याद नहीं किया। लेकिन वह किसान अपने जीवन के सभी कर्त्तव्य पूरा करता हुआ अपने इष्ट को दो बार याद कर लेता है। नारद को अपनी भूल का एहसास हुआ।

१०६) टिटहरी- एक समय तट पर रक्खे टिटहरीके अण्डे समुद्रकी लहरमें बह गये। टिटहरीने प्रण कर लिया कि मैं समुद्रको सुखा दूंगी। समुद्र में से चोंच-भर जल लाकर बाहर और बाहर से चोंच भर रेत लाकर समुद्र में डालने लगी। यह देखकर श्रीनारदजीने पूछा- तो उसने बताया कि इसने मेरे अण्डे बहाये हैं अत: मैं इसे सुखा दूंगी। श्रीनारदजीने कहा- अनन्त जलराशि समुद्र तुम्हारे सुखाये कैसे सूखेगा। उसने कहा- मैं बार-बार जन्म लेकर इस उद्यमको करूँगी और इसे सुखाकर रहूँगी। उसके साहसको देखकर नारदजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने जाकर गरुड़से कहा- तुम्हारी जाति का एक छोटा पक्षी कष्टमें है। तुम जाकर उसकी सहायता करो। तब गरुड़जीने आकर समुद्रसे कहा- तुम इसके अण्डे लाकर शीघ्र ही दे दो अन्यथा मैं अपने पंखोंकी वायुसे तुम्हें सुखा दूंगा। गरुड़जीको कुपित जानकर समुद्रने लाकर अण्डे दे दिये। इस दृढ़तासे जो सेवा आरम्भ करता है। उसे प्रभु-कृपासे सिद्धि-मनकी एकाग्रता प्राप्त होती है।

१०७) श्रद्धा और भक्ति- लोमश ऋषि परम तपस्वी तथा विद्वान थे। जब वह प्रवचन करते तो सभी श्रोता तन्मय होकर उनका प्रवचन सुनते और लाभान्वित होते। एक दिन वह प्रवचन कर रहे थे। श्रोताओं में चपल स्वभाव का एक व्यक्ति बैठा था, जो बार-बार ऋषि से प्रश्न पूछ कर प्रवचन में बाधा डाल रहा था। कभी पूछता, क्या आपने भगवान के दर्शन किए हैं, तो कभी पूछता, हम उनके दर्शन कैसे कर सकते हैं? इससे ऋषि की एकाग्रता भंग हो रही थी। बार-बार व्यवधान पड़ने से आखिरकार ऋषि का धैर्य जवाब दे गया। उन्होंने उस व्यक्ति से कह दिया, कौवे की तरह कांव-कांव कर रहा है, शायद पहले जन्म में कौवा था और अगले जन्म में भी कौवा ही होगा। ऋषि ने क्रोध में शाप तो दे दिया, लेकिन बाद में उन्हें अपनी भूल का अहसास हुआ और बहुत दुख हुआ। उन्होंने देखा कि इतना भयंकर शाप सुनकर भी वह व्यक्ति शांत बैठा प्रवचन सुन रहा है। उनको इस बात का आश्चर्य हुआ तो उन्होंने पूछ ही लिया, मेरे शाप से तुम्हें चिंता नहीं हुई? कौवे की योनि तो निम्न मानी गई है। इस तरह का शाप सुनकर भी तुम विचलित नहीं हुए। आखिर बात क्या है, इसका

रहस्य क्या है? उसने हाथ जोड़कर कहा, इसमें आश्चर्य और रहस्य जैसी कोई बात नहीं है। जो होता है प्रभु की इच्छा से होता है, फिर मैं क्यों चिंता करूँ? यदि मैं कौवा बना तो उसमें भी मेरा भला होगा। आप जैसे ऋषि एवं परम तपस्वी ने कुछ सोचकर ही यह शाप दिया होगा। लोमश ऋषि उसका यह श्रद्धा भाव देखकर चकित रह गए। उन्होंने कहा, अब मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम कौवे के रूप में जहां रहोगे उस क्षेत्र में दूर-दूर तक कलियुग का प्रभाव नहीं पड़ेगा। तुम भक्त पक्षी के रूप में अमरता प्राप्त करोगे। पुराणों के अनुसार वह व्यक्ति अगले जन्म में काकभुशुंडि बना जिसने गरुड़ को रामकथा सुनाई।

१०८) गुरु और शिष्य- एक बार संत श्रीरामचंद्र डोंगरे महाराज भागवत कथा का प्रवचन करने काशी गए। कथा की समाप्ति के बाद उन्होंने वहां के प्रमुख मंदिरों के दर्शन का कार्यक्रम बनाया। एक मंदिर में जब वह पहुंचे तो उसके पुजारी भक्तों को प्रवचन सुना रहे थे। वह कह रहे थे, योग्य शिष्य वह होता है जो अपने गुरु के आदर्शों को आगे बढ़ाता है। डोंगरे जी महाराज पहचान गए कि यह तो उनका शिष्य है। वह एक कोने में बैठ गए। प्रवचन के बाद जब भक्तों की भीड़ छंट गई तो पुजारी की निगाह डोंगरे महाराज पर पड़ी। गुरु को सामने देखकर वह भावविभोर हो गए। हड़बड़ाहट में अपनी गद्दी से उठकर वह आने ही वाले थे कि डोंगरे जी ने रोक दिया। वह स्वयं आसन के पास गए और अपने पुजारी शिष्य का चरण स्पर्श करने लगे। शिष्य ने पीछे हटकर कहा, गुरुवर, आप क्या कर रहे हैं। आप मुझ जैसे एक तुच्छ पुजारी के पांव छुएं, यह शोभा नहीं देता। यह गुरु-शिष्य परंपरा के विपरीत आचरण है। डोंगरे जी ने कहा, वत्स, यह मेरा धर्म है। आप जैसा शिष्य पाकर मैं धन्य हुआ हूं। अभी आप अपने भक्तों को समझा रहे थे कि योग्य शिष्य से ही गुरु की गरिमा बढ़ती है। जिस शिष्य से गुरु की गरिमा बढ़ती हो, उस शिष्य का स्थान गुरु से कम नहीं है। उसका चरण स्पर्श करना किसी भी तरह गुरु-शिष्य परंपरा के विपरीत नहीं है बल्कि इस परंपरा में एक कड़ी और जुड़ गई। कथा स्थल पर व्यास गद्दी पर बैठे होने के कारण आप मेरा चरण स्पर्श करें यह उचित है लेकिन मंदिर के दर्शन के लिए आनेवाले प्रत्येक भक्त का धर्म है कि वह पुजारी का सम्मान करे। पुजारी के नाते आप अभिनंदनीय हैं। मैं यहां एक भक्त के रूप में उपस्थित हूँ इसलिए भी मुझे आपका चरण स्पर्श करना मेरा धर्म है। उनका पुजारी शिष्य हतप्रभ रह गया।

१०९) पक्षी से प्रेरणा- वानर सेना बीच रास्ते में विशाल समुद्र को देख कर घबरा गई, लंका पर आक्रमण करने का स्वप्न टूटता देख उसमें निराशा पनपने लगी। सेना नायक प्रश्नवाचक दृष्टि से भगवान राम की ओर देखने लगे। भगवान राम को एक पक्षी दिखाई दिया, जो बार-बार अपनी चोंच में पानी भर कर लाता और उसे रेत में डाल देता। उसी प्रकार वह चोंच में रेत भर कर ले जाता और उसे समुद्र के पानी में डाल देता। भगवान राम ने उस पक्षी के साहस और लगन को देखकर अपने सैनिकों से कहा- इस पक्षी को देखो जो बार-बार एक चोंच भर कर पानी ले जाकर रेत में डाल रहा है और रेत ले जाकर समुद्र में डाल रहा है। वह शायद किसी बात पर समुद्र से रुष्ट है। इसलिए वह समुद्र को सुखाने का प्रयास कर रहा है। जब एक छोटा-सा पक्षी समुद्र पर विजय पाने का साहस रखता है तो तुम तो वीर हो और तुम्हारे सामने इस पक्षी की शक्ति कुछ भी नहीं है। वानर सैनिकों ने राम की बात मानकर पक्षी से प्रेरणा ली और नल और नील की सहायता से दूर-दूर से पत्थर लाकर समुद्र के जल में लाकर डालने शुरू किए। जिससे पुल का निर्माण हुआ और लंका पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

११०) नित्य सत्संग क्यों ? - गोस्वामी तुलसीदासजी काशी में रहकर साधना कर रहे थे। कुछ तीर्थयात्री काशी आए, तो उन्हें किसी ने गोस्वामीजी के विषय में जानकारी दी, तो तीर्थयात्री गोस्वामीजी के सत्संग के लिए उनके पास जा पहुंचे। कुछ प्रश्नों का जवाब देने के बाद गोस्वामीजी ने भगवान श्रीराम तथा हनुमानजी की भक्ति के महत्व पर प्रकाश डाला। उनमें से एक तीर्थयात्री ने पूछा, यदि भक्ति में मन न लगे, तो क्या करें ? तुलसीदासजी बोले, नित्य सत्संग की आदत डालो। जिज्ञासु ने पूछा, नित्य सत्संग से क्या लाभ होगा ?

गोस्वामीजी ने बताया, जिस प्रकार सद्गृहस्थ के लिए यह जरूरी है कि वह प्रतिदिन सोकर उठते ही झाडू लगाकर अपने आस-पास का कूड़ा-कचरा साफ करे, स्नान करके शरीर को शुद्ध करे, भगवान का ध्यान करके मन को पवित्र करे, उसी तरह प्रतिदिन किसी साधु-पुरुष का सत्संग करने से चित्त भक्ति की ओर प्रवृत्त होने लगता है। सत्संग तथा पूजा-पाठ के लिए प्रतिदिन समय निकालना आवश्यक है। तुलसीदासजी ने जिज्ञासा का समाधान कर दिया।

१११) आचरण का महत्व- बात उन दिनों की है जब भगवान श्रीराम अपने १४ वर्षों के वनवास के दौरान चित्रकूट में थे। भगवान राम एवं माता सीता कुटिया के बाहर बैठे थे। लक्ष्मणजी उनके चरणों में बैठे थे। तभी रामजी ने कहा- लखन, हमारे और सीता के मध्य एक झगड़ा है। तुम ही न्याय करो। लक्ष्मण ने कहा, भगवन् आप दोनों अपने झगड़े में मुझे न घसीटें। आप दोनों स्वयं ही समझ लें। नहीं लखन, तुम तो बैरागी हो। निर्भय होकर कहो कि किसके चरण सुन्दर है ? राम के चरण दिखाकर लक्ष्मणजी ने कहा, माता, इन चरणों से आपके चरण सुन्दर है। इतना कहकर लक्ष्मण चुप हो गये। सीता जी खुश हो गयी। इस पर लक्ष्मण जी ने कहा, माता, अधिक खुश मत होना। भगवान राम के चरण हैं, तभी आपके चरणों की कीमत है। इनके चरण न हों तो आपके चरण सुन्दर नहीं लग सकते। रामजी खुश हो गये अर्थात भगवान राम की विजय। तब लक्ष्मण जी ने कहा, आप दोनों को खुश होने की जरूरत नहीं है। आप दोनों के चरणों के अलावा भी एक चरण है जिसके कारण ही आपके चरणों की पूजा होती है। अर्थात आचरण की कोई कीमत नहीं। महाराज, आपके चरण सुन्दर हैं तो उसका कारण आपका महान आचरण है।

११२) नलकुबेर का शाप- रावण लंका के पर्वतीय क्षेत्र के बागों में भ्रमण कर रहा था। अचानक उसने अप्सराओं में श्रेष्ठ रंभा को उधर से गुजरते देखा। उसके दिव्य सौंदर्य को देखकर रावण मोहित हो गया। उसने रंभा का हाथ पकड़ लिया। रंभा ने विनम्रता से कहा, राजन, मैं आपके राज्य की बेटी हूं। आप राजा होने के कारण मेरे पिता समान हैं। मैं आपके भाई कुबेर के पुत्र नलकुबेर की प्रेयसी हूं। इस रिश्ते से आपकी पुत्रवधू हूं। मुझ पर गलत दृष्टि डालना धर्म विरुद्ध है।

कामोन्माद में अंधे हो चुके रावण पर इन शब्दों का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह रंभा से दुराचार कर बैठा। रंभा ने नलकुबेर के पास पहुंचकर आपबीती सुना दी। नलकुबेर ने उसी समय हाथ में जल लेकर शाप दिया, अपने राज्य की किसी भी महिला पर कुदृष्टि डालनेवाले राजा का सर्वनाश हो जाए। किसी महिला के साथ दुर्व्यवहार करने के पाप के कारण एक दिन रावण तथा उसके पूरे वंश का समूल नाश होगा। कुछ ही दिनों बाद सीता जी का अपहरण रावण के नाश का कारण बना।

११३) प्रभाव- किसी व्यक्ति ने एक महात्मा से पूछा- महात्माजी। इस रामायण को सही माना जाये या गलत ? महात्माजी ने कहा वत्स। जब रामायण की रचना हुई थी तब मैं नही था। रामजी वन विचरण कर रहे थे तब भी मेरा अता-पता नहीं था। इसलिए मैं बता नही सकता कि रामायण सही हैं या गलत। मैं तो सिर्फ इतना बता सकता हूँ कि इसके अध्ययन एवं शिक्षा से मैं सुधरकर इस स्थिति में हूँ, चाहो तो तुम भी इसका प्रयोग कर सकते हो।

११४) जीत और हार- विश्वामित्र एक वीर राजा, महाज्ञानी, मगर क्रोधी, अभिमानी और प्रभु के परम भक्त थे। एक बार वह अपनी सेना सहित महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुंचे। दोपहर का समय था। मुनि वशिष्ठ ने राजा का स्वागत किया। थोड़ी ही देर में भोजन तैयार हो गया। विश्वामित्र ने भोजन किया और प्रसन्न होते हुए कहा, हे मुनिश्रेष्ठ। इतना स्वादिष्ट भोजन इतनी जल्दी कैसे तैयार हो गया ? वशिष्ठ बोले, राजन, यह सब तो नंदिनी की कृपा है।

तो फिर नंदिनी को आप हमें दे दो मुनिवर। विश्वामित्र ने कहा। नहीं राजन, ऐसा नहीं हो सकता, वशिष्ठ ने कहा। विश्वामित्र को क्रोध आ गया, गुस्से में बोले, नहीं दोगे तो हम छीन कर ले जाएंगे। उन्होंने अपने सैनिकों से कहा कि

नंदिनी को जबरन हांक कर ले चलो।

जैसे ही विश्वामित्र के सैनिक आगे बढ़े, आश्रम के शिष्य उनके विरोध में खड़े हो गए। दोनों तरफ से संघर्ष शुरू हो गया। इस लड़ाई में विश्वामित्र के सैनिकों को पीछे हटना पड़ा। हार से कुपित होकर विश्वामित्र तप पर बैठ गए। उनके तप से प्रसन्न होकर एक दिन भगवान शंकर प्रकट हुए और बोले, राजन। वर मांगो। विश्वामत्र ने कहा, प्रभु। मुझे शत्रु विजय का वरदान दीजिए।

तथास्तु कहकर प्रभु लोप हो गए। विश्वामित्र ने बदले की भावना से एक बार फिर वशिष्ठ के आश्रम पर धावा बोल दिया। लेकिन इस बार भी उन्हें सफलता नहीं मिली। विश्वामित्र फिर से तपस्या पर बैठे। इस बार उनकी तपस्या खत्म ही नहीं हो रही थी। आखिर में ब्रह्मदेव विश्वामित्र के पास गए और कहा, मुनिश्रेष्ठ। आपकी आराधना पूरी हो गई। विश्वामित्र ने कहा, प्रभु मेरी इच्छा है कि मुझे सारे वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो और मुनि वशिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहें। तभी वशिष्ठ वहाँ उपस्थित हो गए और बोले, हे मुनिश्रेष्ठ। ब्रह्मर्षि तो आप हैं ही, आप जैसा महान ज्ञानी इस संसार में कोई दूसरा नहीं है। हार तो आप के अंदर बैठे राजदंभ, क्रोध, अहंकार, अन्याय और बदले की भावना की हुई थी।

११५) अहिल्या का उद्धार- एक दिन मुनि महानंद ने अपने गुरु से पूछा, गुरुदेव, क्या श्री रामचंद्र जी के विषय में यह कथन सही है कि उन्होंने ऋषि गौतम की शापित पत्नी अहिल्या को अपने चरण कमलों की ठोकर मारकर उनका उद्धार किया था ? इस पर गुरु मुस्कराए, फिर बोले, वत्स। यह तो जनश्रुति है, सत्य नहीं। राम जैसे मर्यादा पुरुष क्या किसी स्त्री को अपने पैर से ठोकर मार सकते थे ? ठोकर मारना तो दूर, राम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इस कथा के प्रतीकार्थ को समझने की जरूरत है। श्रीराम पृथ्वी विज्ञान के ज्ञाता थे। उन्होंने इसी ज्ञान का प्रयोग कर प्रजा के उत्थान का प्रयास किया था। लेकिन यह कथा दूसरे ही रूप में प्रचलित हो गई। वत्स महानंद, यहां अहिल्या का अर्थ पृथ्वी है, ऐसी भूमि जो उपजाऊ तो हो परंतु उसमें अन्न उत्पन्न नहीं किया जा रहा हो। यानी जो भूमि वज्र तुल्य पड़ी हो। वस्तुत: वज्र तुल्य बेकार पड़ी पृथ्वी को अहिल्या कहा जाता है। गुरुजी ने स्पष्ट करते हुए कहा, हे महानंद। प्रभु श्रीरामचंद्र सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या त्याग कर वनवास जाते हुए जब निषाद राज्य सीमा में पहुंचे तो निषादराज ने तीनों का हार्दिक स्वागत करते हुए श्रीरामचंद्र से प्रार्थना की, महाराज, मेरे योग्य कोई सेवा हो तो कृपया आदेश दें।

श्रीरामचंद्र ने स्वागत से विभोर होकर निषादराज से कहा, हे प्रिय बंधु निषादराज। यह जो बेकार पड़ी कृषि योग्य भूमि है इसे उपजाऊ बनाओ, इसके लिए अपने कृषकों को आदेश दो कि वे इस वज्र तुल्य भूमि को पानी और खाद देकर, जोतकर उपजाऊ बनाएं तथा इसमें अन्न उत्पन्न करें। निषादराज ने रामचंद्रजी का आदेश स्वीकार किया। निषाद राज्य के किसानों और श्रमिकों ने अत्यंत मेहनत से काम किया और देखते ही देखते वह भूमि लहलहा उठी। तो इस तरह रामचंद्र के कहने पर उस वज्र तुल्य पृथ्वी को उपजाऊ बनाकर उसका उद्धार किया गया। यही अहिल्या पृथ्वी का वास्तविक उद्धार है। महानंद एक आख्यान की इस व्याख्या से संतुष्ट हुए। उन्होंने कहा, इस कथा में निहित इस संदेश को जन-जन तक फैलाने की आवश्यकता है।

११६) लंका या स्वदेश- लंका विजय के बाद श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, लक्ष्मण, जाओ और विभीषण का विधिपूर्वक राजतिलक कराकर लौट आओ।

लक्ष्मण नगरी में गए। वहां की शोभा निराली थी। हरे-भरे छायादार वृक्ष, सुन्दर बाग बगीचे, पक्षियों का कलरव, धवल प्रपात, गगनचुम्बी भवन, इन सबको देखकर लक्ष्मण मुग्ध हो गए।

विभीषण को गद्दी पर बिठाकर लक्ष्मण जब राम के पास आए तो बोले, भगवन् लंका ने मेरा मन चुरा लिया है। यह तो स्वर्ग जैसी नगरी है। आज्ञा हो तो मैं यहीं रह जाऊं।

राम ने उसकी बात सुनी। फिर गंभीर होकर बोले, लक्ष्मण, इसमें कोई संदेह नहीं है कि लंका का सौंदर्य अनोखा है, लेकिन याद रखो, लंका नगरी कितनी ही सुन्दर हो, समृद्ध हो, वैभव युक्त हो, पर यह अयोध्या की बराबरी नहीं कर सकती। जहां मनुष्य जन्म लेता है, उस मिट्टी की सुगंध ही कुछ और होती है।

११७) अर्जुन-हनुमान का गर्व खंडन- एक बार हनुमान को अभिमान अहंकार हुआ मेरे जैसा राम कार्य करनेवाला और कोई न हुआ और न होगा। रामदूत इसी कारण से बना।

उधर अर्जुन को भी अहंकार हुआ पूर्ण ब्रह्म मेरे बिना कार्य नहीं करते। भगवान कृष्ण ने दोनों में घमंडता देखी और सोचा इनका अभिऊान चूर-चूर करूं। उन दिनों हनुमान पुल के पास ही राम नाम जपते थे। कृष्ण बोले अर्जुन रामेश्वरम् यात्रा को चले भगवान कृष्ण अर्जुन का रामेश्वरम् जाना। अर्जुन से कहा पुल देख आवो। अर्जुन पुल के पास गया देखा एक बड़ा वानर राम नाम जप कर रहा है।

अर्जुन ने पूछा हे बन्दर तुम्हारा नाम क्या है- हंसकर हनुमान बोला- जिसके बल प्रताप से राम ने शिला पुल बनाया। अर्जुन बोला राम ने व्यर्थ ही पत्थरों का पुल बनाने में कष्ट उठाया। अरे वह तो बड़े धनुषधारी थे। बाणों का चार सौ कोस लम्बा बत्तीस कोस चौड़ा पुल बना लेते फिर उन्होंने बाणों का पुल क्यों नहीं बनाया। हनुमानजी बोले मेरी ताकत बल बोझा देखा- रामजी ने सोचा पुल टूट जावेगा। इसीलिए बाणों का पुल नहीं बनाया। अर्जुन बोला- अरे वानर तेरे जैसे बन्दर के बोझ से यदि पुल टूट जाय तो धनुषधारी बनने से क्या लाभ। देख मैं बाणों का पुल बनाता हूं। तू उस पर नाच, कूद यदि तेरे बोझ से टूट गया तो मैं चिता में भस्म हो जाऊंगा और नहीं टूटा तो फिर हनुमानजी ने कहा यदि मेरे बोझ से न टूटा तो मैं तेरी ध्वजा में रहूंगा।

अर्जुन बोला- ठीक है मंत्र शक्ति से क्षण मात्र में पुल बन गया उतना पर्वताकार हनुमानजी ने पुल पर पैर रखा पुल टूट कर समुद्र में गया। अर्जुन अपने वचनानुसार ज्वलित अग्नि में प्रवेश करना चाहता ही था इतने में दस वर्ष का तेजस्वी ब्रह्मचारी आया और बोला क्या है। हनुमानजी ने सारी बात बतलाई।

ब्रह्मचारी बोला किसके सामने बात हुई अब मेरे सामने पुल बने तुम तोड़ो तो सही है पुल बना हनुमान वही पर्वताकार रूप बना और सारे पुल पर नाचे कुछे पुल हिला भी नहीं दोनों ने पुल के नीचे देखा राम और कृष्ण दोनों किनारे कन्धा लगाये हैं। हनुमान समुद्र में कूद पड़े फिर कृष्ण जी ने कहा देखों हर जीव ईश्वर के बल पर कार्य करता है। अभिमान क्यों। लीलाधारी भगवान ने दोनों का अभिमान चूर-चूर कर दिया। दोनों की मैत्री हो गई। हनुमान उस दिन से अर्जुन की रथ की ध्वजा पर बैठे हैं। यदि भगवान ऐसा नहीं करते तो महाभारत युद्ध में कर्ण के बाणों से अर्जुन का रथ उड़कर न जाने कहां जाता।

लीलाधारी भगवान की लीलाओं को भगवान ही समझते हैं।

लेकिन किसी किसी जगह आता है हनुमानजी जब पुल पर कूद रहे थे समुद्र में खून की लहर सी दोनों तरफ देखी तब मालूम हुआ भगवान राम और कृष्ण कछुवा बनकर दोनों तरफ नीचे लगे हैं लेकिन उनका सारा शरीर छिल गया और खून बहने लगा।

११८) विचारों की उपयोगिता - एक राजा इस बात से परेशान रहता था कि धर्म और दर्शन को लेकर विचारकों में आपसी सहमति क्यों नहीं बनती। उसने विभिन्न धर्मों के उपदेशकों को बुलाया और सबको कारागार में डालते हुए कहा, जब तक आप सब एकमत नहीं हो जाते, एक विचारवाले नहीं हो जाते, तब तक यहीं रहना पड़ेगा। जब यह बात एक विद्वान आचार्य ने सुनी तो वह राजा के पास गए। राजा ने आचार्य से पूछा, महाराज, आपने मेरा नगर देखा है? आचार्य

बोले, हां राजन, मैंने नगर का अवलोकन किया है। राजा ने फिर पूछा, वह कैसा लगा? आचार्य ने कहा, नगर सुंदर है, किंतु अव्यवस्थित है। राजा ने आश्चर्य से पूछा, कैसी अव्यवस्था? आचार्य बोले, बाजार अच्छे नहीं हैं। उसमें सैकड़ों दुकानें हैं। क्या आवश्यकता है इतनी दुकानों की? क्या सब दुकानों को एक कर बड़ी दुकान नहीं बनाई जा सकती थी? जब एक ही बड़ी दुकान होगी तो वह बाजार सुंदर दिखने लगेगा। इस पर राजा ने कहा, यह बात अव्यावहारिक है। आप व्यवहार की दुनिया को नहीं जानते। मनुष्य के जीवन को चलाने के लिए सैकड़ों चीजें चाहिए। किसी को आटा चाहिए, किसी को नमक और किसी को चावल। किसी को सोना चाहिए तो किसी को चांदी। फिर भला सबकी आवश्यकताएं एक ही दुकान पूरी कर सके, यह कैसे संभव है? एक दुकान में इतनी चीजें कैसे रखी जा सकती हैं? कैसे इन्हें बेचा जा सकता है? दुकानें अलग-अलग होने से यह दुविधा नहीं रहती। सबकी आवश्यकताएं पूरी होती हैं और कोई अव्यवस्था नहीं होती। इस पर आचार्य बोले, राजन, आपका कथन बिल्कुल सही है। आप सर्वशक्तिसंपन्न हैं, फिर भी जब आप सभी दुकानों को एक नहीं कर सकते और उन्हें एक करने की आवश्यकता नहीं मानते तो विभिन्न विचारों की दुकान एक कैसे हो सकती है? वे अलग-अलग हैं और उन सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है। राजा को बात समझ में आ गई। उसने तत्काल सभी धर्म उपदेशकों को मुक्त कर दिया।

११९) कल कभी नहीं आता - राम-रावण युद्ध समाप्त हो चुका था। रावण मृत्यु शय्यापर पड़ा अंतिम सांसें गिन रहा था। तभी उसने देखा कि लक्ष्मण उसकी ओर चले आ रहे हैं। लक्ष्मण उसके निकट आए और बोले, मेरे भाई श्रीराम आपसे ज्ञान की बातें सीखना चाहते हैं। आश्चर्य में भरकर रावण बोला, तुम्हारे भाई सर्वज्ञ हैं। मैं उन्हें क्या सिखा पाऊंगा और फिर मैं तो उठकर चल भी नहीं सकता। मैं उनके पास कैसे पहुंचा पाऊंगा। लक्ष्मण ने कहा, आप इसकी चिंता न करें। मैं श्रीराम को यहां लेकर आ जाऊंगा। श्रीराम आए। उनसे रावण ने विनम्रतापूर्वक कहा, हे सूर्यवंश के गौरव। मेरा प्रणाम स्वीकार करें। मैं राक्षस हूं, मैं आपको क्या सिखा पाऊंगा। राम ने कहा, यह सच है कि तुम राक्षस हो, परंतु यह भी सच है कि तुम एक शक्तिशाली और बुद्धिमान शासक रहे हो। तुम्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान है। मैं यह ज्ञान तुमसे प्राप्त करना चाहता हूं। रावण ने उन्हें उपदेश देना शुरू किया, अच्छे कार्यों को कभी नहीं टालना चाहिए। हो सकता है कि टालने के कारण उन कार्यों को करने का कभी अवसर ही न आए। मैंने सोचा था कि नरक का मार्ग बंद करवा दूंगा, ताकि किसी को परलोक में दु:ख न भोगने पड़े। दूसरा काम समुद्र के खारे पानी को निकाल कर उसे दूध से भर देने का था। तीसरा काम धरती से स्वर्ग तक सीढ़ी बनाने का था, जिससे पापी-पुण्यात्मा सभी स्वर्ग तक पहुंच सकें। इतना कहकर रावण रुका। मृत्यु निकट होने के कारण उसकी बोलने की शक्ति कम होती जा रही थी। हांफते हुए वह बोला, इन तीनों कार्यों को मैं कल पर टालता रहा और कल तो कभी आता नहीं। मैं इन कर सकनेवाले कार्यों को कभी कर नहीं पाया। रावण फिर थोड़ा ठहरकर बोला, अच्छे कार्यों को टालना जितना बुरा है, बुरे कार्यों को टालना उतना ही अच्छा। मां सीता का हरण करने में मैंने तत्परता दिखाई, लेकिन वह मुझे टाल देना चाहिए था।

१२०) नीति विहीनता का दुष्परिणाम- रामायण में एक बड़ा ही बोधप्रद प्रसंग आता है। यह पता चल जाने पर कि सीता लंका में रावण की अशोक वाटिका में बंदिनी हैं, श्रीराम लंका-विजय करके उन्हें मुक्त कराने के लिए अपनी सेना लेकर उस ओर कूच करते हैं, लेकिन बीच में सागर आ जाता है। उसे पार करने के लिए सेतु का निर्माण किया जाता है। अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब पुल बनाने में जुट जाते हैं। नल-नील उस कला में निष्णात हैं। वे पत्थरों को जमाते हैं। एक गिलहरी बालू के कण उठा-उठाकर लाती है। वानरों की सेना बड़ी तत्परता से सहायता करती है। हनुमान की स्फूर्ति तो देखते ही बनती है। वह बिजली की गति से पत्थर उठाकर लाते हैं और उन पर राम का नाम लिखकर पानी

में डाल देते हैं। पत्थर एक-दूसरे से जुड़कर पुल को आगे बढ़ाते हैं। श्रीराम सबको काम में संलग्न देखकर स्वयं आगे आते हैं और उनका हाथ बंटाने के लिए पत्थर उठाकर लाते हैं। लेकिन यह क्या? पानी में डाले उनके पत्थर तैरते नहीं, डूब जाते हैं। राम अवाक् होकर देखने लगते हैं। उनकी निगाह हनुमान पर जाती है। उनके पत्थर तो बराबर पानी पर तैर रहे थे। श्रीराम ने विस्मित होकर पूछा, हनुमान, यह माजरा क्या है कि तुम्हारे पत्थर पानी पर तैर रहे हैं और मेरे पत्थर पानी में डूब रहे हैं? स्वामी की ओर देखकर हनुमान बोले, प्रभो, इसमें कोई रहस्य नहीं है। तब? ऐसा क्यों हो रहा है? हनुमान कुछ देर मौन रहे, फिर भाव-विह्वल होकर बोले, स्वामी, जो आपके हाथ से छूटेगा, वह बिना डूबे नहीं रहेगा। इस प्रसंग का प्रतीकात्मक अर्थ है श्रीराम जो नीति के मार्ग को छोड़ता है, उसका पतन अवश्यम्भावी है।

१२१) त्याग का तप - जब मेघनाद के शक्ति बाण से लक्ष्मण मूर्छित हो गए, तो विभीषण की राय पर हनुमान सुषेन वैद्य को ले आए। वैद्य जी ने हिमालय से संजीवनी बूटी लाने की सलाह दी, पर यह शर्त भी रखी कि अगर सूर्योदय से पहले लक्ष्मण को संजीवनी नहीं पिलाई गई तो वह जिंदा नहीं बचेंगे। यह काम हनुमान को सौंपा गया। जब हनुमान पूरे धवल गिरि को उठाए अयोध्या से गुजर रहे थे, तो उन पर भरत की दृष्टि पड़ गई। भरत ने सोचा कि राम की अनुपस्थिति में कोई राक्षस अनिष्ट करने की मंशा से राज्य के ऊपर मंडरा रहा है। उन्होंने धनुष-बाण उठाया और हनुमान पर निशाना साध दिया। बाण लगते ही हनुमान धरती पर आ गिरे और कुछ क्षणों के लिए अचेत हो गए। भरत को बहुत ग्लानि हुई। कुशल क्षेम पूछने के बाद भरत ने कहा, आपको सूर्योदय से पहले लंका पहुंचना है और दूरी बहुत ज्यादा है। मेरे बाण पर बैठ जाइए, इससे आप तुरंत ही राम के पास पहुंच जाएंगे। हनुमान ने कहा, राम का नाम लेने में जितनी देर लगती है, उतने ही समय में मैं लंका पहुंच जाऊंगा। इस बीच सभी रानियां भी आ गईं। दुखद समाचार सुनने के बाद कौशल्या ने राम के लिए संदेश दिया कि चाहे जो हो जाए, अगर लक्ष्मण जीवित न बचा तो तुम भी कभी अयोध्या मत आना। इसके बाद कैकेयी ने कहा, राम। वन में भटकते-भटकते बहुत दिन बीत गए हैं। अब तुम अयोध्या लौट आओ, अब मैं भरत को तुम्हारी जगह युद्ध के लिए भेज रही हूं। सुमित्रा से रहा नहीं गया। वह बोलीं, लक्ष्मण के प्राण नहीं बचे तो कोई बात नहीं। तुम चिंता मत करना। उसका एक भाई शत्रुघ्न है, जल्दी से स्थिति के बारे में बताओ ताकि मैं तुम्हारी सेवा में उसे भेज सकूं। उनकी बातें सुनकर हनुमान ने सोचा कि जहां एक-दूसरे के लिए त्याग की ऐसी भावना हो, वहां सभी संकट स्वत: कट जाएंगे।

१२२) गुरु दक्षिणा- एक बार अयोध्या के राजा रघु ने अपना एक यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी। उनके पास अपने इस्तेमाल के लायक कुछ ही सामान बचा रह गया। उन्हीं के राज्य में वरतन्तु नाम के एक बहुत बड़े विद्वान रहते थे। उनका एक मेधावी शिष्य था कौत्स। कौत्स जब अपना अध्ययन पूरा कर घर जाने लगा, तो ऋषि वरतन्तु से बोला, हे गुरुवर, विदा होने से पहले मुझसे कुछ गुरु दक्षिणा तो लीजिए। गुरु ने कहा कि उन्हें उसकी कृतज्ञता के अतिरिक्त अन्य कोई दक्षिणा नहीं चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि वह उनके द्वारा दी गई शिक्षा के अनुरूप आचरण करे तथा इस प्रकार गुरु को सम्मान दिलवाए, तो वही पर्याप्त है।

किंतु शिष्य आग्रह करने लगा कि वह उससे गुरु दक्षिणा अवश्य लें। अपनी किसी भी इच्छा या आवश्यकता का संकेत दें या जो भी धन अथवा भेंट स्वीकार करना चाहते हों, वह बताएँ। उसके आग्रह से गुरु कुपित हो गए। उन्हें लगा कि शिष्य को अभिमान हो गया है। इसलिए उससे छुटकारा पाने के लिए एक असंभव धनराशि बताई। गुरु ने कहा, तुमने मुझसे सोलह विद्याएं सीखी हैं, तो मेरे लिए सोलह लाख स्वर्ण मुद्राएँ लाओ।

जो आज्ञा गुरुवर। कह कर उसने आचार्य को प्रणाम किया और गुरु दक्षिणा की व्यवस्था के लिए आश्रम से बाहर आ

गया। उसने सोचा कि राजा रघु के लिए तो यह दान मामूली बात है, इसलिए वह सीधे उन्हीं के पास गया और उन्हें अपनी समस्या बताई।

कौत्स को इस बात की जरा भी भनक नहीं थी कि राजा रघु अपना सब कुछ दान कर चुके हैं और अब उनके पास कुछ भी नहीं बचा है। गुरु की बात सुनकर शिष्य धन संग्रह के लिए निकल पड़ा। सबसे पहले वह राजा रघु के ही पास गया और उनसे वचन लिया कि वह उसकी सभी इच्छाएं पूर्ण करेंगे। फिर उसने राजा के समक्ष सोलह लाख स्वर्ण मुद्राओं की प्रार्थना रखी। इतनी बड़ी मांग सुनकर रघु व्याकुल हो गए। यद्यपि वह राजा थे, किंतु उस समय इतनी स्वर्ण मुद्राएं उनके पास भी नहीं थी।

फिर भी उसकी बात सुनकर राजा ने कहा, कोई चिंता नहीं। इंतजाम हो जाएगा।

एक तरफ खजाना खाली था तो दूसरी तरफ वचन पूरा करने का प्रश्न था।

किंतु अपने वचन पर दृढ़ रहने के लिए वे धन के देव कुबेर के पास गए। अंतत: राजा रघु ने कुबेर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। लेकिन कुबेर को जैसे ही इस हमले की योजना का पता चला, भय से उसने रातों रात पहले ही राजा रघु का खजाना सोने-चांदी की मुद्राओं से भर दिया।

और वहां से अपरिमित स्वर्ण मुद्राएं ले आए। उन्होंने याचना करने आए उस शिष्य से कहा कि यह सब ले जाओ और अपने गुरु को दे दो। जो शेष बचे उसे अपने पास रख लेना।

राजा ने सारा धन लाकर कौत्स के हवाले कर दिया। वह धन बहुत ज्यादा था, लेकिन कौत्स ने सोलह लाख स्वर्ण मुद्राएँ लेकर सारा धन वहीं छोड़ दिया। किंतु शिष्य ने उस अपरिमित ढेर में से उतनी ही मुद्राएं उठाईं, जितनी उसे दक्षिणा के रूप में देनी थी, उनसे एक भी मुद्रा अधिक नहीं ली।

राजा ने कहा, वत्स। यह सारा धन तुम्हारे ही लिए है, इसे ले जाओ। कौत्स बोला, राजन मुझे गुरु दक्षिणा के लिए जितने धन की जरूरत थी, मैंने उतना ले लिया है। ज्यादा लेकर क्या करूंगा। बचा हुआ धन वहीं पड़ा रहा, उसे किसी ने हाथ नहीं लगाया।

१२३) सुधार का रास्ता- अयोध्या के राजा सागर के पास कुछ लोग फरियाद लेकर आए। उन्होंने बताया कि राजकुमार असमंजस प्रतिदिन सरयू नदी के तट पर जाते हैं और वहां खेल रहे छोटे बच्चों को उठा कर नदी में फेंक देते हैं। जब डूबते बच्चे रोते हैं तो राजकुमार किसी को बचाने के लिए भी नहीं जाने देते और अट्टहास करते रहते हैं। इस खेल में कई बच्चे अपनी जान गंवा चुके हैं। राजा बोले, आप लोग तीन दिनों के बाद उसी स्थान पर आइए, जहां राजकुमार यह क्रूर अपराध करते हैं।

तीन दिनों के बाद सभी लोग सरयू नदी के तट पर एकत्र हुए। राजा सागर भी असमंजस को लेकर वहां पहुंचे। थोड़ी देर तक राजा उफनती धारा को देखते रहे। तभी वहां कोहराम मच गया। लोगों ने देखा कि राजा ने नदी में छलांग लगा दी। डूबते हुए पिता को बचाने के लिए राजकुमार सब लोगों से मिन्नतें कर रहा था, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। तभी एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति झटपट नदी में कूद गया और राजा को खींच कर बाहर ले आया। राजा ने उससे पूछा, क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं है जो मुझे बचाने के लिए अपने प्राण दांव पर लगा दिए। वह व्यक्ति बोला, राजन, आप तो हमारे न्यायप्रिय राजा हैं, यदि आप की जगह किसी दूसरे सज्जन व्यक्ति की जान खतरे में होती तो उसे बचाने के लिए भी मैं इसी तरह प्रयास करता। राजकुमार असमंजस को उत्तर मिल चुका था। उसने सभी लोगों से क्षमा मांगी और भविष्य में अपने पिता की तरह प्रजा की सेवा करने का प्रण किया नदी मे छलांग लगानेवाले व्यक्ति ने राजा से पूछा, आप अपने पुत्र के अपराध की सजा स्वयं

को क्यों दे रहे थे। राजा ने कहा, किसी भी व्यक्ति को एक बार सुधरने का मौका दिया जाना चाहिए। असमंजस को सुधारने का इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं था। उसे यह तो पता चल गया कि प्राणों का मूल्य क्या होता है।

१२४) मनुष्य की अपूर्णता - सृष्टि की रचना करनेवाले ब्रह्माजी स्वर्ग में आराम फरमा रहे थे। अचानक उनके मन में सृष्टि की रचना करने की इच्छा पैदा हुई। उन्होंने अपने सहयोगियों से व्यापक विचार-विमर्श करने के बाद अपनी इस इच्छा पर अमल करना शुरू किया। उन्होंने सृष्टि रचने के क्रम में सबसे पहले एक कुत्ता बनाया। ब्रह्माजी ने कुछ दिन बीतने के बाद कुत्ते को अपने पास बुलाया और उससे उसकी जीवनचर्या के बारे में पूछा। कुत्ते ने अपनी समझ के अनुसार अपनी दिनचर्या बताई। इसके बाद ब्रह्माजी ने कुत्ते से पूछा- संसार में रहने के लिए तुझे कुछ अभाव तो नहीं हो रहा है? कुत्ते ने रोनी सूरत बनाते हुए जवाब दिया- भगवन्। मुझे तो सब अभाव ही अभाव दिखाई देते हैं। मेरे पास न वस्त्र, न आहार, न घर और न ही इनका उत्पादन करने की क्षमता है। कुत्ते का जवाब सुनकर ब्रह्माजी बहुत पछताए। उन्होंने नए सिरे से फिर सृष्टि की रचना शुरू की और एक बैल बनाया। अपना जीवन क्रम पूर्ण करने के बाद जब बैल दुखी होकर बोला- भगवन। आपने भी मुझे क्या बनाया, खाने के लिए सूखी घास मिलेगी, हाथ-पैर में कोई अंतर नहीं, सींग और ऊपर से लगा दिए। यह भोंडा शरीर लेकर मैं कहाँ जाऊं? बैल के जवाब से ब्रह्माजी को बहुत दुख हुआ। तब ब्रह्माजी ने एक सर्वांग सुंदर शरीरधारी मनुष्य पैदा किया। कुछ दिनों बाद उससे भी ब्रह्माजी ने पूछा- वत्स, तुझे अपने आप में कोई अपूर्णता तो नहीं दिखाई देती? थोड़ा ठिठककर नवनिर्मित मनुष्य ने अनुभव के आधार पर कहा- भगवन्। आपने मेरे लिए ऐसी कोई चीज नहीं बनाई, जिसे मैं प्रगति या समृद्धि कहकर संतोष कर सकूँ और आराम से जीवन बिता सकूँ। ब्रह्माजी गंभीर होकर बोले- वत्स, मैंने तुझे हृदय दिया, आत्मा दी और अपार क्षमता वाला उत्कृष्ट शरीर भी दिया। अब भी यदि तुम अपने आपको अपूर्ण मानते हो तो कोई भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता।

१२५) ब्रह्माजी के थैले- इस संसार को बनानेवाले ब्रह्माजी ने एक बार मनुष्य को अपने पास बुलाकर पूछा- तुम क्या चाहते हो? मनुष्य ने कहा- मैं उन्नति करना चाहता हूँ, सुख-शांति चाहता हूँ और चाहता हूँ कि सब लोग मेरी प्रशंसा करें। ब्रह्माजी ने मनुष्य को दो थैले देते हुए कहा- इन थैलों को लो। इनमें से एक थैले में तुम्हारे पड़ोसी की बुराइयाँ भरी हैं, उसे पीठ पर लाद लो। उसे सदा बंद रखना। न तुम देखना, न दूसरे को दिखाना। दूसरे थैले में तुम्हारे दोष भरे हैं। उसे सामने लटका लो और बार-बार खोलकर देखा करो।

मनुष्य ने तुरंत दोनों थैले उठा लिये, पर एक भूल कर बैठा। उसने अपनी बुराइयों का थैला पीठ पर लाद लिया और अपने पड़ोसी की बुराइयों से भरा थैला अपने सामने लटका लिया। उसका मुँह खोलकर वह उसे देखता और दूसरे को भी दिखाता। इससे उसने जो वरदान माँगे थे, वे भी उल्टे हो गये, वह अवनति करने लगा। उसे दु:ख और अशांति मिलने लगी।

१२६) वशिष्ठजी - इक्ष्वाकु वंशमें कल्माषपाद नामके एक राजा थे। एक दिन महाराज सुदास के पुत्र राजकुमार कल्माषपाद शिकार से लौट रहे थे। वन मार्ग सँकरा था, उसमें एक ही मनुष्य चल सकता था। उसी मार्गसे वशिष्ठजीके सबसे बड़े पुत्र शक्ति मुनि आ रहे थे। राजा ने कहा तुम पीछे हट जाओ, मेरे लिए रास्ता छोड़ दो। शक्ति ने कहा- धर्मके अनुसार क्षत्रियका कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मणके लिए मार्ग छोड़ दे, दोनोंमें कहा- सुनी हो गई। राजाने चाबुक चला दिया। मुनिने अन्याय समझकर राजाको शाप दे दिया कि तू राक्षस हो जा। राजकुमार कल्माषपाद तत्काल राक्षस बन गया, लेकिन राक्षस में बदलते ही वह शक्ति मुनि सहित ऋषि वशिष्ठ के अन्य सभी पुत्रों का भी भक्षण कर गया।

राजा राक्षस भावको प्राप्त कर बोला कि तुमने अनुचित शाप दिया है अत: मैं अपना राक्षसपना तुमसे ही प्रारम्भ करता हूँ।

ऐसा कहकर कल्माषपाद शक्ति मुनिको मारकर खा गया। उसके बाद वशिष्ठजीके जितने पुत्र थे, सभीको उसने खा लिया इसमें उसका राक्षसपना तो कारण था ही, इसके अतिरिक्त विश्वामित्रने भी पहले द्वेषका स्मरण करके किमर नामके राक्षस को आज्ञा दी थी कि तू कल्माषपादके शरीर में प्रवेश कर जा, इसीसे राजा ऐसे नीच कर्म में प्रवृत्त हुआ। विश्वामित्र की प्रेरणा से हुए कल्माषपादके इस पाप कर्म को वशिष्ठजी ने जाना। प्रतीकारकी सामर्थ्य होते हुए भी उन्होंने क्षमा किया, बदला नहीं लिया।

उस समय शक्ति मुनि की पत्नी गर्भवती थीं। उनके गर्भ में १२ वर्ष तक रहने के पश्चात पाराशर मुनि का जन्म हुआ। अपनी घोर तपस्या, संयम और साधना से उन्होंने शीघ्र ही ऋषि की पदवी प्राप्त कर ली।

एकबार वनसे वशिष्ठजी अपने आश्रमकी ओर लौट रहे थे। इसी समय ऐसा जान पड़ा कि मानो उनके पीछे-पीछे कोई वेदाध्ययन करता हुआ चलता है। वशिष्ठजी ने पूछा- मेरे पीछे-पीछे कौन चल रहा है ? आवाज आयी कि- मैं आपकी पुत्रवधू शक्ति पत्नी अदृश्यन्ती हूँ, आपका पौत्र मेरे गर्भमें है, वह बारह वर्षसे गर्भमें ही वेदाध्ययन कर रहा है।

यह सुनकर वशिष्ठजी को बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे वंश का उच्छेद नहीं हुआ है। यही सोचते आ रहे थे कि निर्जन वनमें कल्माषपादसे उनकी भेंट हो गई। वह वशिष्ठजी को खाने दौड़ा। अदृश्यन्ती भी डर गई। वशिष्ठजीने कहा- बेटी डरो मत। इसके बाद उन्होंने जलको हाथमें लेकर उसके ऊपर डाला। वह तुरन्त शापसे मुक्त हो गया। बारह वर्ष बाद शापसे छूटकर वह होशमें आकर बोला- महाराज। मैं सुदासका पुत्र कल्माषपाद आपका यजमान हूँ। आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करूँ। वशिष्ठजी ने कहा- तुम अपने राज्य की देखभाल करो, अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। राजा ने प्रतिज्ञा करके कहा कि ऐसा ही करूँगा। क्षमाशील वशिष्ठजीने अयोध्यामें आकर इसी पुत्रघाती राजाको अपने कृपा-प्रसादसे पुत्रवान बनाया। अदृश्यन्ती के गर्भसे पराशरजी का जन्म हुआ।

बड़े होने पर जब इन्हें यह मालूम हुआ कि मेरे पिता को राजा राक्षसने खा डाला था, तब उन्होंने क्रोधवश राजाओं पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया। यह जानकर वशिष्ठजीने इन्हें समझाया कि तुम क्षमा करो। पराशरजीने अपने निश्चय को छोड़ दिया। फिर राक्षसोंके विनाश के लिए घोर यज्ञ आरम्भ कर दिया तब फिर पुलस्त्यजीके साथ आकर वशिष्ठजीने पराशरजीको समझाया कि- क्षमा ही परमधर्म है। तुम्हारे सभी पूर्वज क्षमाकी मूर्ति हैं। इस प्रकार का उपदेश पाकर पराशरजीने भी क्षमा को स्वीकार किया अत: महान् तेजस्वी हुए।

दूसरी ओर महर्षि वशिष्ठ ने राजकुमार कल्माषपाद को भी क्षमादान देकर अपनी योग शक्ति से उन्हें राक्षस शरीर के श्राप से मुक्त कर दिया। जब ऋषि पाराशर को कल्माषपाद द्वारा राक्षस रूप में अपने पिता तथा अन्य पूर्वजों के भक्षण करने का रहस्य ज्ञात हुआ, तो वे अत्यंत क्रोधित हो गए और प्रतिशोध लेने पर उतारू हो गए। तुम क्रोध और प्रतिशोध की भावना त्यागकर क्षमाशील बनो। यही ऋषितुल्य आचरण होगा। पाराशर ने कल्माषपाद को क्षमा कर दिया।

१२७) वशिष्ठ शिष्यों को वेदाध्ययन करा रहे थे, तभी आश्रम में परशुराम पधारे। वशिष्ठ ने आदर के साथ कहा, पधारिए राजऋषि, कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ? परशुराम को अपने लिए राजऋषि संबोधन तुच्छ लगा, उन्होंने सोचा कि वशिष्ठ ने मुझे ऋषिराज (ऋषियों का राजा) न कहकर मेरा अपमान किया है, कभी इसका बदला अवश्य लूँगा। यह सोचकर परशुराम बिना सत्कार स्वीकार किए ही वापस चले गए। कुछ समय बाद अपने सैनिकों को लेकर वे वशिष्ठ को सबक सिखाने आए। जब आश्रम के निकट पहुंचे, तो उनके कानों में आवाज पड़ी। एक विद्यार्थी वशिष्ठ से पूछ रहा था, उस दिन आपने परशुराम को राजऋषि कहा, ऋषिराज क्यों नहीं ? वशिष्ठ ने समझाया, वास्तव में परशुराम महाज्ञानी और बहुत बड़े तपस्वी हैं, परन्तु वे बात-बात पर क्रोध कर बैठते हैं। क्रोध सिर्फ राजाओं का ही आभूषण है, इसी कारण

मैंने उन्हें राजऋषि कहा। यदि उनका क्रोध नष्ट हो जाए तो वे अवश्य ही ऋषिराज की पदवी के योग्य हैं। सुनकर परशुराम का सिर लज्जा से झुक गया।

१२८) विश्वामित्र- ऋषिगण ऋचाओं की रचना कर रहे थे। एक दिन राजा विश्वरथ मुनि अगस्त के पास गए। लाख प्रयत्न करने पर भी विश्वरथ को मंत्रों के दर्शन नहीं हो रहे थे। कारण पूछने पर अगस्त मुनि विश्वरथ को रात्रि में अपनी कुटी में ले गए और अंधेरे में अपना कमंडल ढूंढने लगे। विश्वरथ ने उनसे कहा, विश्वरथ। तुम भी अपने मन को प्रकाशित करो, तभी मंत्रदर्शन का लाभ मिलेगा। अगले दिन राजा विश्वरथ ने अपना राजपाट त्याग दिया और प्रभु का स्मरण करने लगे। विश्वरथ आगे जाकर विश्वामित्र नाम से प्रसिद्ध हुए।

१२९) क्रोध का कलंक- विश्वामित्र अत्यंत क्रोधी स्वभाव के थे। उन्हें इस बात का दुख सताता रहता था कि ऋषि वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं मानते। एक दिन उन्होंने सोचा, आज मैं वशिष्ठ को मारकर ही रहूंगा। तब फिर कोई मुझे ब्रह्मर्षि की जगह राजर्षि कहने वाला नहीं रहेगा। वह एक तलवार लेकर उस वृक्ष पर जा बैठे जिसके नीचे महर्षि वशिष्ठ अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। थोड़ी देर के बाद वशिष्ठ अपने शिष्यों के साथ उस वृक्ष के नीचे आ बैठे। पूर्णिमा का चांद निकल आया। विश्वामित्र ने सोचा कि छात्रों के जाते ही वह वशिष्ठ को मार डालेंगे। तभी एक छात्र बोल उठा, कितना सलोना चांद है। कितनी सुंदरता है उसके भीतर। वशिष्ठ बोले, यदि तुम ऋषि विश्वामित्र को देखो तो इस चांद को भूल जाओगे। यह चांद सुंदर अवश्य है, पर ऋषि विश्वामित्र इससे भी ज्यादा सुंदर हैं। यदि उनके भीतर क्रोध न हो तो वह सूर्य की भांति चमक उठें।

छात्र बोला, गुरुदेव ऐसा आप कह रहे हैं, पर वह तो आपके शत्रु हैं। सदैव आपकी निंदा करते रहते हैं। वशिष्ठ ने कहा, जानता हूं, मगर मैं इन बातों पर ध्यान नहीं देता। सच तो यह है कि वह मुझसे ज्यादा विद्वान हैं। उन्होंने मुझसे ज्यादा तप किया है। तुम्हें नहीं मालूम मैं उनका कितना सम्मान करता हूं।

पेड़ पर बैठे विश्वामित्र यह सुनकर हैरान रह गए। वह पश्चाताप से भर उठे। वह वशिष्ठ को मारना चाहते थे पर वशिष्ठ तो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। वह उसी समय पेड़ से कूदे। उन्होंने तलवार फेंकी और वशिष्ठ के चरणों में गिरकर बोले, मुझे क्षमा करें ऋषिवर। वशिष्ठ ने उन्हें उठाते हुए कहा, उठिए ब्रह्मर्षि। विश्वामित्र ने आश्चर्य से कहा, ब्रह्मर्षि। आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा ? पर आप तो मुझे ब्रह्मर्षि का दर्जा देते नहीं। आप तो सदैव मुझे राजर्षि कहते हैं। वशिष्ठ ने कहा, आज से आप ब्रह्मर्षि हुए। आप ने अपने क्रोध पर विजय पा ली है। आप में एकमात्र दोष यही था, अब उसे भी आपने दूर कर लिया। यह कहकर वशिष्ठ ने विश्वामित्र को गले लगा लिया।

१३०) तपस्या बड़ी है या सत्संग- एक बार इस विषय पर वशिष्ठ और विश्वामित्र में विवाद हो गया। निर्णय के लिए दोनों शेष भगवान के पास पहुँचे। दोनों की बात सुनकर शेषजी ने कहा, मेरे सिर पर सम्पूर्ण पृथ्वी का भार है। आप दोनों में से कोई इस भार को कुछ देर के लिए उठा ले तो मैं आपका विवाद निपटा दूँ। विश्वामित्र को अपनी तपस्या का अभिमान था। उन्होंने दस हजार वर्षों की तपस्या का फल देकर पृथ्वी को उठाना चाहा परन्तु न उठा सके। तब वशिष्ठ ने अपने सत्संग का आधे क्षण का फल देकर पृथ्वी को सहज ही उठा लिया। विश्वामित्र ने शेषनाग से पूछा, इतनी देर हो गयी, आपने निर्णय क्यों नहीं सुनाया ? तब शेष भगवान् ने कहा, ऋषिवर, निर्णय तो हो गया।

जब आधे क्षण के सत्संग की बराबरी दस हजार वर्षों की तपस्या से नहीं हो सकी, तो आप ही सोच लीजिए कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है।

१३१) धर्म की रक्षा- लोपामुद्रा विदर्भ देश की कन्या थीं। राजकुमारी होकर भी उन्होंने अगस्त्य मुनि से विवाह किया था। वह मुनि के हर कार्य में सहयोग करती थीं। वे खुद न सिर्फ अपने और अपने पति के लिए बल्कि आश्रम में रहनेवाले

अगस्त्य के सभी शिष्यों के लिए अपने हाथ से खाना पकाती थीं। एक बार उनके आश्रम में आसपास से कई ऋषि मुनि आए। वे काफी परेशान थे। जब लोपामुद्रा ने उनसे उनके कष्ट का कारण पूछा तो उन्होंने कहा, देवी, राक्षस इलविन सी साधु संतों और यहां की सामान्य जनता पर भी बहुत अत्याचार कर रहा है। हमें उससे बचाइए। मुनि पत्नी ने भरोसा दिया कि उनकी रक्षा अवश्य होगी। शाम को लोपामुद्रा मुनि से बोली, मैं अब इस जीवन के कष्ट सहते हुए ऊब गई हूं। क्या आप मेरे लिए कुछ सुख के साधनों का प्रबंध नहीं कर सकते ?

मुनि अपनी पत्नी की इच्छा पूरी करने के लिए आसपास के कई राजाओं के पास गए और उनसे कुछ धन देने के लिए कहा। लेकिन सभी राजाओं ने एक ही बात कही कि उनके पास धन नहीं है। जो कुछ भी था, वह इलविन राक्षस ने छीन लिया है। अगस्त्य ने कहा, हमें इस राक्षस का वध करना पड़ेगा। उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया। पहले तो इलविन ने सोचा कि आश्रमों में रहनेवाले साधु संत उसका मुकाबला क्या करेंगे। लेकिन अगस्त्य मुनि के साथ धर्म का कवच था इसलिए उसको परास्त करने में मुनि को जरा भी देर नहीं लगी। उन्होंने उसका सारा धन छीन लिया और उन सब राजाओं में बांट दिया जिनका कोष लूटा गया था, जो बचा उसे उन्होंने अपनी पत्नी लोपामुद्रा को सौंप दिया। धन पाकर मुनि पत्नी बोलीं, स्वामी यह सब लेकर मैं क्या करूंगी। महर्षि ने कहा, तुमने ही तो सुख के साधनों की बात की थी। इस पर लोपामुद्रा ने जवाब दिया, स्वामी, मैं ऐसा नहीं कहती तो आप उस राक्षस का नाश कैसे करते। मैं जानती थी कि आप ही उस राक्षस का नाश कर सकते हैं। वह हो गया। अब इस धन को निर्धनों की सेवा में लगा दीजिए।

१३२) सर्वश्रेष्ठ- इंद्र ने एक विशाल महल बनवाने की योजना बनाई। उन्होंने विश्वकर्मा को भवन बनाने के लिए कहा। विश्वकर्मा ने अपनी संपूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुए अत्यंत सुंदर महल तैयार कर दिया। इंद्र बहुत पुलकित हुए। गर्व से उनका सिर तन गया। उन्होंने नारद को बुलाकर अपना महल दिखाते हुए पूछा- आप सारे ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाते रहते हैं। क्या ऐसा महल कहीं देखा है? नारद ने कहा कि इसके बारे में ठीक जानकारी तो लोमश ऋषि ही दे सकते हैं। क्योंकि उनकी उम्र एक हजार वर्ष से अधिक है। इंद्र नारद को लेकर लोमश ऋषि के पास गए। लोमश से इंद्र ने वही सवाल दोहराया- ऋषिवर, क्या मेरे नए महल जैसा कोई भव्य महल अतीत में आपने कभी देखा है ? लोमश ने उत्तर दिया- इंद्र, अतीत के अनेक इंद्रों के महल देखे हैं। एक से एक खूबसूरत और गगनचुम्बी उनके सामने तुम्हारा यह महल फीका है। संसार में कुछ भी अंतिम और अद्वितीय नहीं है। इसलिए सर्वश्रेष्ठ का अहंकार पालना मूर्खता है।

१३३) किसानों का संकल्प- किसी कारणवश इंद्र क्रुद्ध हो गए। उन्होंने घोषणा कर दी, अब बारह वर्ष तक बरसात नहीं होगी। घोषणा सुन जनता मायूस हो गई। फिर भी बारिश के मौसम में किसान हल और बैलों को लेकर खेतों में गए, भूमि को साफ किया, हल जोते। इंद्र समझ नहीं सके कि उनकी स्पष्ट घोषणा के बावजूद ये खेती क्यों कर रहे हैं। वेश बदलकर इंद्र नीचे आए। किसान इकट्ठा हो गए। इंद्र ने पूछा, क्या तुमने इंद्र की यह घोषणा नहीं सुनी कि बारह वर्ष तक बारिश नहीं होगी? लोगों ने कहा, हां, सुनी है। इंद्र बोले, फिर यह व्यर्थ का प्रयत्न क्यों कर रहे हो? क्यों भूमि को साफ कर रहे हो? क्यों बैलों को कष्ट दे रहे हो? क्यों बुआई की तैयारी कर रहे हो? वर्षा तो होगी नहीं।

किसान बोले, वर्षा हो या नहीं, हम तो भूमि की सफाई करेंगे और हल भी चलाएंगे। यदि हम यह प्रयास छोड़ दें तो हमारी भावी पीढ़ी बिल्कुल बेकार हो जाएगी और कृषि करना भूल जाएगी। फिर बारह वर्ष के बाद हमारे बच्चे क्या खाएंगे। हम यह कार्य प्रतिवर्ष बराबर करते रहेंगे। मेघ बरसें या नहीं बरसें, यह उनकी इच्छा है, मगर हम अपना धंधा नहीं छोड़ेंगे, कृषि करते चले जाएंगे। ऐसा करते-करते एक दिन अवश्य बारिश भी होगी और खेती भी। किसानों के दृढ़ संकल्प के सामने इंद्र भी झुक गए।

१३४) कृति और अनुकृति - एक बार देवराज इंद्र चमस नामक पात्र में सोम रस का आनंद ले रहे थे। चमस बहुत आकर्षक और सुंदर था। इंद्र ने अग्नि से कहा, इसी तरह के तीन चमस और बनवा दो। अग्नि ने कहा, इसके निर्माता ऋषि त्वष्टा अब इस दुनिया में नहीं हैं। उनके तीन प्रिय शिष्य पृथ्वी पर रहते हैं। शायद वे बनाना जानते हों। अग्निदेव पृथ्वी पर आकर त्वष्टा के शिष्यों-ऋभुगण, विमब्वन और वाज से मिले तथा चमस का नमूना दिखाते हुए कहा, देवराज की इच्छा है कि आप लोग इसी तरह के तीन चमस और बना दे। ऋभुगण ने कहा, इतना सुंदर चमस बनाने की क्षमता तो गुरुदेव त्वष्टा के अलावा और किसी में नहीं है। उन्होंने हम तीनों को इसे बनाने का हुनर सिखाया जरूर, मगर हम लोग बनाएंगे नहीं। अग्निदेव ने पूछा, ऐसा क्यों भला? ऋभुगुण ने कहा, हम कोई और सुंदर पात्र बना देंगे, पर इस चमस का निर्माण हमारे गुरु ने किया है। इस तरह का दूसरा चमस तैयार करने का मतलब है गुरु की बराबरी करना। ऐसी घृष्टता हम नहीं कर सकते। अग्नि ने कहा, मगर देवराज की इच्छा है कि आप चमस बनाएं। उनकी इच्छा पूरी होगी तो वह आप की समस्त इच्छाओं की पूर्ति करेंगे। ऋभुगण ने कहा, पर हमारी इच्छा किसी और की रचना की नकल उतारने में अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करने की नहीं है, हमारी निष्ठा गुरु त्वष्टा से सीखी कला को आगे बढ़ाने और नई कृति गढ़ने में है। जब त्वष्टा का कोई भी शिष्य चमस बनाने के लिए तैयार नहीं हुआ तो निराश होकर अग्नि देवलोक चले गए और सारी बातें इंद्र को बताईं। तब इंद्र स्वयं पृथ्वी पर आए और ऋभुगुण से धमकी भरे लहजे में कहा, आप को चमस बनाना ही होगा, नहीं तो आप का सर्वनाश हो जाएगा। ऋभुगण ने कहा, सृष्टि का नियम है, एक कृति का एक ही निर्माता होता है। हमारा चमस बनाना ही सर्वनाश होगा। इसलिए आप हमें विवश न करें। देवराज इंद्र निरुत्तर होकर वापस लौट आए।

१३५) बिना परिश्रम के फल नहीं मिलता है- ऋग्वेद में कहा गया है कि बिना स्वयं परिश्रम किए देवों की मैत्री नहीं मिलती। बताते हैं कि एक महान संत की प्रार्थना, भक्ति व साधना से देवराज इंद्र इतने प्रसन्न हुए कि उनके मन में यह भाव आया कि संत की दरिद्रता दूर की जाए। अत: वे उन महात्मा के पास पहुंचे और उन्हें पारसमणि देकर बोले कि हे महात्मन, इस मणि के रहते आपको कभी धन का अभाव नहीं रहेगा। आपको जब भी आवश्यकता हो इस मणि का लोहे से स्पर्श कराकर चाहे जितना सोना बना सकते हैं, धन का अभाव न रहने पर आप तन्मयता से ईश्वर आराधना कर सकेंगे।

महात्मा ने इंद्र का सत्कार किया और मणि को झोपड़ी के एक कोने में रख देने के लिए कहा। कुछ समय पश्चात इंद्र महात्मा की कुटिया के पास गुजरे और उनकी इच्छा हुई कि महात्मा के हाल-चाल देखें। कुटिया में पहुंचने पर इंद्र को कहीं भी वैभव दिखाई नहीं दिया। उन्होंने महात्मा को पारसमणि का स्मरण कराया तो संत इतना ही बोले, आपके आग्रह के कारण मैंने मणि लेने से इनकार नहीं किया, लेकिन बिना परिश्रम की संपदा मेरे किसी काम की नहीं है- देवराज। आप इसे वापस ले जाइए। इंद्र ऐसे विरक्त संत को अपलक देखते गए और उनका अभिवादन करके स्वर्ग चल गए।

१३६) मातृ-पितृ भक्ति का महत्व - पुंडलिक नामक एक ईश्वर भक्त रहता था। एक बार उसके वृद्ध माता-पिता ने तीर्थयात्रा की इच्छा व्यक्त की। पुंडलिक माता-पिता और पत्नी को साथ लेकर तीर्थयात्रा पर चल दिया। वृद्धावस्था के कारण माता-पिता कुछ मील चलने में ही थक गए। पुंडलिक ने सोचा, माता-पिता को साथ लेकर काशी क्षेत्र के पावन तीर्थों तक पहुंचना संभव नहीं होगा। उसने माता-पिता को दिंडिर वन में भीमा नदी के तट पर एक आश्रम में छोड़ दिया और पत्नी के साथ तीर्थयात्रा के लिए आगे बढ़ गया। काशी क्षेत्र के कुक्कट द्विज के आश्रम में पुंडलिक पत्नी सहित विश्राम के लिए रुका। रात के समय पुंडलिक को अनुभूति हुई कि तीर्थ स्वरूप गंगा-यमुना और सरस्वती आदि देवियां आपस में बातें कर रही हैं कि कुछ व्यक्ति अपने वृद्ध माता-पिता की उपेक्षा करके, उन्हें बेसहारा छोड़कर तीर्थों के सेवन

एवं पवित्र नदियों में स्नान के सहारे पुण्य अर्जित करने का सपना देखते हैं। लेकिन वे मूर्ख यह नहीं जानते कि माता-पिता तो साक्षात् तीर्थ हैं। अब साक्षात् तीर्थ के हृदय में वेदना भरकर काशी आदि तीर्थों से पुण्य कैसे मिल सकता है? पुंडलिक अपनी यात्रा अधूरी छोड़कर माता-पिता के पास लौट आए और उनसे क्षमा मांगी तथा आजीवन उनकी सेवा में तन-मन से लगे रहे। इस अनूठी मातृ-पितृ भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने पुंडलिक को दर्शन दिया और उन्हें अपने धाम में स्थान दिया। कहा जाता है कि जब भक्त पुंडलिक की भी भक्ति से प्रसन्न होकर विठ्ठल भगवान उसे दर्शन देने आए और उसे आवाज दी- पुंडलिक मैं आ गया हूं। उस समय अपने माता-पिता की सेवा में व्यस्त पुंडलिक ने भगवान के खड़े रहने के लिए २ ईंटें बाहर डाल दीं। विठ्ठल २१ युगों तक उन ईंटों पर खड़े रहे। भक्त ने भगवान को प्रतीक्षा करवा दी। संतान की कर्त्तव्यनिष्ठा इसी में है कि वह अपने माता-पिता की आज्ञा मानें और उनकी हर प्रकार सेवा सुश्रुषा करे तथा उन्हें किसी भी प्रकार क्लेष न होने दे। इतिहास गवाह है कि श्रवणकुमार की मातृ-पितृ भक्ति कितनी अटूट थी। इसी प्रकार भगवान राम ने पिता दशरथ की आज्ञा मानकर १४ साल के लिए वन गमन किया था।

१३७) न्याय - पाप और पुण्य का लेखा-जोखा करनेवाले भगवान चित्रगुप्त के समक्ष दो व्यक्तियों को दूतों ने प्रस्तुत किया। दूतों ने दोनों का परिचय देते हुए कहा देव। यह पहला मनुष्य नगर का सेठ है। इसे कोई कमी नहीं है। इसने खूब पैसा कमया और समाज के हित के लिए धर्मशाला, कुआँ, मन्दिर और विद्यालय आदि का निर्माण कराया। दूसरा व्यक्ति एक निर्धन है, इसे दो समय की रोटी भी नसीब नही थी। एक दिन जब यह भोजन कर रहा था तब एक भूखा कुत्ता आया। इसने स्वयं भोजन न कर सारी रोटियाँ कुत्ते को दे दीं। स्वयं भूखे रहकर कुत्ते की क्षुधापूर्ति की। आप ही इन दोनों के कर्म फल का निर्णय करें। काफी देर सोचकर चित्रगुप्त जी ने कहा- धनवान सेठ को नरक में तथा गरीब को स्वर्ग का अधिकारी बनाया जाए। इस विचित्र न्याय को सुनकर दूत आश्चर्य में पड़ गए। आश्चर्य का निराकरण करते हुए चित्रगुप्त ने कहा- धनी सेठ ने लोगों का शोषण करके समाज हित किया है जबकि गरीब ने अपनी मेहनत की कमाई का दान किया है। अत: मेरा न्याय सर्वथा उचित है।

१३८) तल्लीनता- वाचस्पति पंडित द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र की टीका भामती के विषय में माना जाता है कि बिना भामती के ब्रह्मसूत्र ठीक-ठीक समझा नहीं जा सकता। भामती वाचस्पति पंडित के संपूर्ण जीवन की साधना है। सब कुछ बिसार कर कैसे जीवन के दैनंदिन प्रयोजन सधते हैं, स्नान-ध्यान, भोजन-पान आदि की व्यवस्था कैसे हो पाती है, यह सब बिसार कर अध्ययन-मनन-लेखन करते।

पंडित वाचस्पति ने जब भामती टीका लिखकर एक प्रभात वेला में पूर्ण की, तो उन्हें होश आया। उन्होंने देखा कि वय: संपन्ना महिला दीप में उजाला रखने के लिए तेल डालकर चली जा रही है। पंडित ने विचारा-संभवत: नित्य ऐसा होगा। कौन है यह उपकारिणी नारी ? पंडित ने स्त्री से पूछा। उत्तर मिला- मैं आपकी परिणीता हूँ महाराज। पंडित धक् रह गये। हाँ, उनका विवाह तो हुआ था, एक स्वप्न-जैसा व्यवहार। उनका अध्ययनोन्मुख मानस कभी पत्नी के विषय में कुछ सोच ही नहीं पाया। पत्नी क्यों होती हैं ? विवाह क्यों ? वंश-बेल बढ़े। संतान हो। पर अब ? अब तो उमरिया बीत गयी। बड़ा अपराध हुआ, वंश के प्रति, पत्नी के प्रति। पूछने पर पंडित ने जाना कि पत्नी का नाम भामती है। जीवन की साधना को पंडित ने नाम दिया- भामती। आज वे दोनों पति-पत्नी उसी से जाने जाते हैं। वही उनकी संतान है।

१३९) सत्यव्रत झूठ नहीं बोला- उतथ्य नामक ब्राह्मण संकट में भी झूठ नहीं बोलता था, इसलिए सत्यव्रत कहलाता था। एक दिन वह कुटिया के बाहर बैठे थे कि एक भयभीत सूअर भागता हुआ आया और झाड़ियों में छिप गया। पीछे-पीछे शिकारी आया और उतथ्य से बोला, मेरा परिवार भूखा है, कृपया बतायें कि सूअर कहाँ गया। वह यहीं से गया है और

मुझे विश्वास है आप जैसा सत्यव्रत झूठ नहीं बोलेगा। धर्म संकट में पड़े उतथ्य ने कहा- या पश्यति न सा ब्रूते सा न पश्यति, अहो व्याध स्वकार्यार्थी कि पृच्छसि पुन: पुन: हे शिकारी, जो आँख देख सकती है, वह बोल नहीं पाती और जो वाणी बोल सकती है, उसने देखा ही नहीं। फिर अपने काम को साधने के स्वार्थवश बार-बार क्यों पूछ रहे हो ?

१४०) राजा का कर्त्तव्य - एक समय अयोध्या में परीक्षित के पुत्र शल का राज्य था। एक दिन वह शिकार करने वन में गया। एक सुंदर हिरन को देख उसने सारथी से उसका पीछा करने को कहा। सारथी ने रथ की रफ्तार तेज कर दी। फिर भी हिरन हाथ नहीं आया। सारथी बोला, महाराज, यदि रथ में वामी घोड़े जुते हों, तब हिरन को पकड़ सकते हैं। राजा ने पूछा, वामी घोड़े कहां मिलेंगे? सारथी ने कहा, वामी घोड़े वामदेव ऋषि के पास हैं। राजा ने तुरंत उसे ऋषि के आश्रम चलने को कहा, राजा ने ऋषि से वामी घोड़े देने की प्रार्थना की। ऋषि ने घोड़े दे दिए और कहा, हिरन को पकड़कर घोड़े वापस कर देना। राजा ने हामी भरी। एक महीना बीत गया। वामदेव ने अपने शिष्य आत्रेय को राजा के पास भेजा। राजा ने शिष्य से कहा, रत्न के समान ये घोड़े राजा के योग्य है। ब्राह्मण के लिए ऐसे घोड़े रखना व्यर्थ है। शिष्य के खाली हाथ लौटने पर ऋषि स्वयं राजा के पास गए पर राजा ने घोड़े वापस नहीं किए। राजा ने घोड़े के बदले ऋषि को दो बैल देने चाहे, मगर वामदेव नहीं माने। फिर राजा ने उन्हें अच्छी नस्ल के चार घोड़े और हीरे भेंट करने चाहे, पर वामदेव ने मना कर दिया। तब राजा ने कहा, मैं घोड़े वापस नहीं करूंगा। ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने हुंकार भरी। तुरंत चार राक्षस उत्पन्न हो गए जिन्होंने त्रिशूल से राजा को मार दिया। शल की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई दल राजा बना। उससे भी वामदेव ने घोड़े मांगे। दल ने घोड़े वापस करने की बजाय विक्ष-बुझा बाण ऋषि की छाती में मारा। मगर बाण ऋषि को न लगा, वह रनिवास में जाकर राजा के दस वर्षीय पुत्र श्येनजित को लगा। उसकी मृत्यु हो गई। क्रोध में अंधे होकर राजा ने दूसरा बाण छोड़ा। वह उलटे राजा की ओर बढ़ा। राजा डर गया। उसने अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी। ऋषि ने कहा, राजा का काम न्याय करना है। अगर राजा स्वयं अन्याय करने लगे तो वह प्रजा का पालन कैसे करेगा।

१४१) एक राजा- एक राजाने घोषणा की कि मेरे नगरमें एक हाट लगाई जाय और उसमें यदि किसी व्यापारी का माल नहीं बिकेगा तो सायं को मैं खरीद लूंगा। एकदिन एक लोहार एक शनैश्चरकी मूर्ति बनाकर लाया। उसे किसीने नहीं खरीदा तो सायं को राजाने उसे खरीद लिया। मन्त्रियोंने मना किया कि इसे आप न खरीदें, क्योंकि जहाँ शनैश्चर रहता है, वहाँसे लक्ष्मी चली जाती है। राजाने नहीं माना, सत्य की रक्षाके लिए खरीदा। राजा रातको जब भोजन करके सोया तो लक्ष्मीने आकर राजासे कहा- राजन्। तुम्हारे यहाँ शनैश्चर आ गया है, इसलिए मैं जा रही हूँ। राजाने कहा- आप सहर्ष चली जायँ। फिर धर्म आया और राजासे बोला कि- मैं भी जा रहा हूँ। राजाने उसे भी जाने की सम्मति दे दी। अन्तमें सत्य आया और राजासे बोला- तुम्हारे यहाँ शनैश्चर आ गया है, इसलिए मैं नही रह सकता, मैं भी जा रहा हूँ। तब राजाने उठकर सत्यके पैर पकड़ लिए और कहा कि- मैंने वचनोंकी सत्यता को निभानेके लिचए ही शनिदेवको खरीदा है, नहीं तो मेरी सत्यता चली जाती। फिर आप क्यों और कैसे जायेंगे। मैंने तो आपको अपनाया है। सत्यने सोचकर कहा- राजन्। सचमुच तुम मेरे सच्चे उपासक हो अत: मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। सत्यके रुकने पर धर्म और लक्ष्मीको वापस आना पड़ा। अत: सिद्ध है कि सत्यतामें धर्म और लक्ष्मीका स्थिर वास है।

१४२) सत्य की जगह- पुराने जमाने की बात है। सत्यदेव काफी धर्मनिष्ठ राजा थे। वह हर समय लोगों की भलाई में लगे रहते थे। वे सत्य धर्म के कठोर उपासक थे और सत्य को ही सर्वस्व समझते थे। सत्य के लिए वे अपना सब कुछ छोड़ देने को भी तत्पर रहते थे। एक दिन प्रात: उठकर वह सूर्य को प्रणाम कर ही रहे थे कि उन्होंने एक सुन्दरी को राजमहल से बाहर जाते देखा। राजा के पूछने पर सुन्दरी ने कहा, मैं लक्ष्मी हूँ, बहुत समय तक तुम्हारे यहां रह चुकी,

लेकिन अब मैं जा रही हूँ। सुन्दरी के पीछे-पीछे एक व्यक्ति भी दरवाजे से बाहर निकला। राजा के पूछने पर उसने बताया मैं दान हूं। जब लक्ष्मी ही यहां से जा रही हैं तो तुम दान कहां से दोगे, इसलिए मैं भी जा रहा हूँ। कुछ क्षणों के बाद तीसरा व्यक्ति महल से बाहर निकला। राजा के पूछने पर उसने बताया, मैं सदाचार हूं। जब लक्ष्मी और दान ही नही रहेंगे तो मैं यहां रहकर क्या करूँगा, इसलिए मैं भी जा रहा हूँ। चौथा व्यक्ति भी बाहर जाने लगा तो पूछने पर उसने बताया, मैं यश हूं। जब लक्ष्मी, दान और सदाचार सभी जा रहे हैं तो मेरा यहां क्या काम, इसलिए मैं भी जा रहा हूँ। अंत में पांचवां व्यक्ति बाहर जाने लगा तो राजा ने पूछा, आप कौन है? वह बोला, मैं सत्य हूं। जब ये चारों यहां नहीं रहेंगे तो मैं भी नहीं रह सकता, इसलिए मैं भी जा रहा हूँ। इस बार राजा सत्यदेव पांचवें व्यक्ति के चरणों में हाथ जोड़कर गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे, भगवान, मैं तो आपका अनन्य भक्त हूँ। दिन-रात आपकी आराधना करता हूं। लोग मुझे सत्यदेव कहते हैं, ये चारों जाएं तो जाएं मुझे दुख नहीं, लेकिन मैं आपको जाने नहीं दूंगा, चाहे मेरे प्राण चले जाएं। राजा की सत्य के प्रति गहरी निष्ठा देखकर पांचवां व्यक्ति मुस्कराते हुए अंदर जाने लगा तो लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश भी महल में लौट आए। राजा की सत्य के प्रति आस्था और भी बढ़ गई।

१४३) अमेरिका प्रवास के दौरान एक दिन स्वामी रामतीर्थ जिन सज्जन के यहाँ भोजन करने गये, उनके द्वार पर लिखा हुआ था- God is no where अर्थात भगवान कहीं नही है। स्वामी जी ने देखते ही Where से W हटाकर No के साथ जोड दिया। अब परिवर्तन के पश्चात् लेख का रूप हो गया- God is now here अर्थात भगवान अब यहाँ हैं। उक्त सज्जन को समझाते हुए स्वामी जी ने कहा- भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। हृदय में इसकी अनुभूति कीजिये।

परमात्मा ने पहले चार प्राणी बनाये- एक आदमी, एक बैल, एक कुत्ता, और एक घुग्घू। चारों के लिए चालीस-चालीस वर्ष की आयु निर्धारित कर दी। बैल बोला, इतनी उम्र चलाना मेरे वश की बात नहीं। तब कितनी उम्र चला सकोगे तुम? परमात्मा ने पूछा। बैल ने कहा, बीस वर्ष। आदमी बोला, लाओ इसका बीस वर्ष मुझे दे दो। परमात्मा ने बीस वर्ष आदमी को दे दिये। अब आदमी की आयु ६० साल की हो गई। कुत्ता बोला, महाराज, ४० वर्ष तक पेट भरने के लिए दर-दर भटकना मेरे वश की बात नहीं। मुझे तो केवल १२ वर्ष की उम्र ही ठीक है। आदमी ने उसके २८ वर्ष भी ले लिये। इसी प्रकार घुग्घू ने भी २० वर्ष की उम्र मांगी। बाकी २० वर्ष उससे भी आदमी ने ही ले लिये। आदमी की उम्र एक सौ आठ साल हो गई। चालीस वर्ष तो आदमी की अपनी ही अवस्था है। फिर बीस वर्ष वह बैल की तरह दिन-रात तृष्णा से भटकता रहता है। साठ वर्ष के बाद वह थक जाता है, पर जीभ में बल आ जाता है। तो किसी को गाली देता है तो किसी को ललकारता है, भौंकता है। उसके बाद उम्र घुग्घू की है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। फिर वह बैठा-बैठा देखा करता है। न कुछ कह सकता है और न सुन सकता है।

१४४) एक ही बात- स्वामी रामतीर्थ उन दिनों एक बुढ़िया के यहां रह रहे थे। वे अपना भोजन स्वयं बनाते थे। वे अभी- अभी भ्रमण और भाषणों से लौटे ही थे। आकर अपने भोजन की तैयारी में जुट गये। भोजन पकाकर निवृत्त हुए ही थे कि आसपास के कुछ बच्चे उनके पास आकर उछल-कूद करने लगे। स्वामी जी उनके साथ इतने आनंद विभोर हो उठे कि अपनी सारी रोटियां इन बच्चों में बांट दीं। यह देखकर बुढ़िया हतप्रभ रह गई, यह क्या स्वामी जी। आपने सारी रोटियां इन बच्चों में बांट दीं, अब आप क्या खाएंगे ? स्वामी जी मुस्कुराने लगे, माई। रोटी तो पेट की आग को शांत करनेवाली चीज हैं। इस पेट में न सही, उस पेट में सही। एक ही तो बात है। सचमुच <u>देने का आनंद लेने के आनंद से बड़ा है</u>।

१४५) जीभ और मन का द्वंद्व- स्वामी रामतीर्थ एक बार कॉलेज से घर जा रहे थे कि रास्ते में उन्होंने एक व्यक्ति को रसीले नींबू बेचते पाया। यह देख उनके मुंह में पानी आ गया। उनकी जीभ ने कहा- खरीद लो, हर्ज क्या है ? रामतीर्थ ने

सोचा, जो चीज सुंदर दिखाई दे उसे खरीद ही लेना चाहिए। उन्होंने नींबुओं को हाथ लगाकर देखा। वे सचमुच रसदार मालूम हो रहे थे। उन्होंने सोचा- यह जिह्वा क्यों पीछे पड़ी है, कुछ समझ में नहीं आता। वे आगे बढ़ गए। किंतु जीभ भला इतनी आसानी से हार कब मानने वाली थी। वह फिर बोली- जब तुमने नींबुओं को रसदार पा ही लिया, तो उनका स्वाद लेने में क्या हर्ज था। एक तो लेना था। वह फिर लौट आए। नीबू वाला भी हैरान था कि यह बाबू बड़ा विचित्र दिखार्द देता है। आता है फिर चला जाता है, फिर आता है, फिर चला जाता है। आखिरकार वह बोल ही पड़ा- साहब लेना है तो ले लीजिए, इस तरह बार-बार क्यों आ-जा रहे हैं ?

स्वामी रामतीर्थ ने इस बार दो नींबू खरीद ही लिए। घर आते ही उन्होंने पत्नी से चाकू मांगा और एक नींबू काटा। मगर ज्यों ही वे एक फांक को चूसने के लिए मुंह तक लाए कि अंदर से आवाज आई- वाह रामतीर्थ, तू भी इस जिव्हा का दास हो गया, एक अदनी सी जिव्हा का दास। वह तुझे आदेश दे रही है और तू उसका पालन करता जा रहा है। जिव्हा तेरी है या तू जिव्हा का है। तब तक पत्नी भी वहां आ गई। उसने देखा कि पति ने उससे चाकू मंगवाया, नीबू काटा मगर नीबू ज्यों का त्यों पड़ा है। वह बोली- नीबू चूसते-चूसते रुक कैसे गए ?

जिव्हा फिर बोली- बड़े मूर्ख हो, काटकर भी चखते नहीं हो। रामतीर्थ तुरंत उठे और उन्होंने कटे और साबुत दोनों नींबुओं को उठाकर अपनी पत्नी के हवाले कर दिया। फिर प्रसन्नता से चिल्ला उठे- मैं जीत गया। इंद्रियों को मैं भी वश में कर सकता हूं।

१४६) स्वामी रामतीर्थ का राष्ट्र प्रेम- स्वामी रामतीर्थ लाहौर में श्रद्धालुजनों से बातचीत कर रहे थे। उन्होंने कहा, हमें भगवान की भक्ति के लिए साधना अवश्य करनी चाहिए। साथ ही, जिस देश के खेतों से उत्पन्न अनाज खाकर, जिसका पानी पीकर हम जीवित हैं, उसकी समृद्धि तथा रक्षा के दायित्व का, राष्ट्र धर्म का पालन अवश्य करना चाहिए।

एक श्रद्धालु ने पूछा, आप विदेशों में धर्मप्रचार करके लौटे हैं। आपको तो न केवल भारत, अपितु समस्त संसार के कल्याण के लिए प्रयास करना चाहिए। केवल भारत की सेवा की प्रेरणा क्यों देते हैं ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया, मैंने जिस पावन-दिव्य भूमि में जन्म लिया है, एक पुत्र के नाते उसी को समृद्ध व सुखी बनाना मेरा पावन कर्त्तव्य है। इसीलिए मैं अपने शरीर को साकार भारत मानता हूं। भारत की समस्त भूमि मेरा शरीर है। मेरी आत्मा सारे भारत की आत्मा है। कश्मीर मेरा सिर है। कन्याकुमारी मेरे पैर है, असम और गुजरात मेरी भुजाएं हैं। भारत का गुणगान करते-करते स्वामी जी भावविभोर हो उठे।

१४७) जापान में भारत के विख्यात तत्वचिंतक स्वामी रामतीर्थ रेल से यात्रा कर रहे थे। वह एक स्टेशन पर उतरकर प्लैटफॉर्म पर चक्कर लगा रहे थे और बहुत परेशान थे। एक जापानी, भारतीय साधु की परेशानी से चिंतित हो उठा। उसने उनके करीब आकर पूछा, महोदय, क्या बात है ? आप इतने परेशान क्यों हैं ?

स्वामी रामतीर्थ बोले, यह कैसा देश है जहां खाने के लिए फल खरीदना चाहो, तो मिलते नहीं।

जापानी यात्रा ने घड़ी देखी। ट्रेन छूटने में कुछ समय शेष था। वह स्वामीजी से बोला, महाशय मैं अभी आता हूं। फिर कुछ ही मिनट में जापानी यात्री फलों से भरी टोकरी ले आया और स्वामीजी को सौंप दी। रामतीर्थ प्रसन्न हुए और बटुआ निकालकर पूछा, इनकी कीमत कितनी है ?

जापानी यात्री ने कहा, कुछ नहीं, केवल इतना ही कि कभी भविष्य में यह बात मत कहिएगा कि हमारे देश में फल नहीं मिलते। जापानी यात्री का स्वाभिमान देखकर स्वामीजी अभिभूत खड़े थे।

१४८) आत्मविश्वास- बी.ए. की परीक्षा में उस युवक ने परीक्षक को चकित कर दिया। प्रश्नपत्र में परीक्षार्थियों के लिए नोट लगा था, तेरह में से कोई नौ प्रश्न हल कीजिए। उस विद्यार्थी ने उत्तर पुस्तिका के मुख्य मुख पृष्ठ पर सूचना लिख दी, तेरह में से कोई नौ उत्तर देख लीजिए। उनमें से न तो एक भी गलत था और न इतनी गुंजाइश थी कि आधा नंबर भी कहीं से काटा जाये। जून माह में परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ। वह युवक अपने प्रांत में प्रथम रहा। वह परीक्षार्थी युवक था तीर्थराम। देश-विदेश में लोग उन्हें स्वामी रामतीर्थ के नाम से जानते है।

१४९) श्रद्धाजागरण - स्वामी रामतीर्थ सेनफ्रांसिस्को बंदरगाह पर जहाज के डेक पर इधर-उधर टहल रहे थे। स्वामीजी को अनूठे भारतीय साधु के वेश में देखकर एक अमरीकन यात्री उनके पास आया और उनसे बोला- स्वामीजी क्या आप यहां उतरेंगे ? आपका सामान कहां है ? स्वामीजी ने अपने थैले की पुस्तकों और अपने वस्त्रों की ओर इशारा करते हुए कहा कि मेरे साथ बस यही समान है। अमरीकी ने पूछा- आप धन कहां रखते हैं ? स्वामीजी ने कहा, मेरे पास रुपया-पैसा नहीं है, मैं वैसा धन नहीं रखता। स्वामीजी का यह उत्तर सुनकर पश्चिम की भौतिकता में पले हुए अमरीकी को अधिक आश्चर्य हुआ। उसने उनकी ओर देखकर कहा- फिर आपका निर्वहन किस प्रकार होता है ? स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा, मैं प्राणिमात्र से प्रेम करता हूं। मैं जब प्यासा होता हूं कोई पानी पिला देता है। भूखा होता हूं तो कोई रोटी खिला देता है। अमरीकन की ऐसी त्यागी से कभी भेंट नहीं हुई थी। उसका आश्चर्य और भी बढ़ गया। उसने आश्चर्य से स्वामी रामतीर्थ की ओर देखते हुए कहा, स्वामीजी, अमरीका में आपका कोई परिचित मित्र है ? हां एक है और मुस्कराते हुए स्वामीजी ने उस अमरीकन के कंधे पर हाथ रख दिया। वह अमरीकन, स्वामीजी के व्यवहार से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने स्वामी रामतीर्थ को अपना अतिथि बना लिया। वह अमरीकी यात्री और कोई नहीं, डॉक्टर एल्बर्ट हिलर थे।

१५०) हाथ का कल्याण- एक दिन स्वामी रामतीर्थ से उनके शिष्य ने पूछा- हाथ का कल्याण किसमें है ? स्वामीजी बोले- हाथ का कल्याण इसी में है कि वह समस्त शरीर के हित में जुड़ा रखे किसी भी अंग को अभाव या कष्ट हो तो उसके निराकरण का उपाय करे। यदि हाथ अपना यह कर्त्तव्य, धर्म छोड़ दे और कलाई तक ही अपने को सीमित कर ले तो वह स्वयं भी नष्ट होगा और सारे शरीर को नष्ट करेगा। शिष्य ने स्वामीजी को मन ही मन नमन किया।

१५१) दिल की दरिद्रता- स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये थे। उनका प्रवचन सुनकर वहां के लोगों ने पूछा- आप आध्यात्मिकता की बात करते हैं। इसका मतलब भारत आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है, फिर भी वह इतना गरीब क्यों हैं? स्वामी जी ने उल्टे उनसे ही पूछा- हमारा भारत इतना गरीब क्यों है, यह तो मैं बतला दूंगा लेकिन पहले आप यह बताओ कि आपके पास धन की अधिकता होने के बावजूद आपके दिल की दरिद्रता क्यों नहीं मिटती ? आपके यहां पति कमाता है, पत्नी कमाती है, बच्चे भी कमाते है, फिर भी जैसे बूढ़ी गायों और बैलों को गोशाला में भेज दिया जाता है, उसी तरह आप अपने मां-बाप को ओल्डएज होम (सरकारी अनाथाश्रम) में क्यों भेज देते हो ? आपके दिल इतने दरिद्र क्यों हैं ? श्रोताओं के पास कोई जवाब नहीं था।

१५२) असली प्रेत- एक बार स्वामी रामतीर्थ हिमालय क्षेत्र में साधना करने पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक गुफा के पास सैकड़ों लोग बैठे हैं। स्वामी जी ने एक साधु से पूछा, ये क्या कर रहे हैं ? साधु ने बताया, इस गुफा के बारे में प्रसिद्ध है कि इसमें एक प्रेत रहता है। जो कोई इसमें प्रवेश करता है, वह उसे खा जाता है। इसलिए लोग पूजा-पाठ कर रहे हैं ताकि प्रेत भाग जाए। स्वामीजी बोले, प्रेत इस तरह नहीं भागेगा। उनके कहने पर लकड़ी इकट्ठा करके आग जलाई गई। मशालें जलाकर ढोल-नगाड़े बजाते हुए लोग गुफा में घुसे। सबने देखा कि भेड़िये, बाघ आदि हिंसक पशु रोशनी से भयभीत होकर भाग रहे हैं। कुछ नर

कंकाल भी दिखाई पड़े। जिन लोगों ने गुफा में घुसने का प्रयास किया था, उन्हें इन पशुओं ने अपना शिकार बना डाला था। उस युक्ति से पूरी गुफा का अंधकार दूर हो गया और हिंसक पशु गुफा छोड़कर भाग गए। स्वामीजी ने कहा, अज्ञान और अंधकार तो स्वयं प्रेत हैं। इस गुफा के अंदर दीपक जलाया करो। उसके बाद वह गुफा साधना का केन्द्र बन गई।

१५३) जीवन और मृत्यु- स्वामी रामतीर्थ यूरोप जा रहे थे जहाज में उनके साथ एक नब्बे वर्ष का वृद्ध भी सफर कर रहा था। स्वामी राम ने देखा कि वह वृद्ध, जिसके हाथ-पैर साथ नहीं दे रहे, आंखें भी कमजोर हो चुकी हैं, हाथ में कागज-कलम लिए चीनी जैसी कठिन भाषा सीखने का प्रयास कर रहा है। स्वामी राम उसे सुबह से शाम तक तल्लीनता से इस कार्य जुटा देखते रहे। जब उनसे नहीं रहा गया, तो वे पूछ ही बैठे- क्षमा करें, इस उम्र में इस भाषा को सीख रहे हैं। कब आप इसे सीख पाएंगे ? और यदि सीख भी गए तो इसका उपयोग कब करेंगे ?

वृद्ध ने रामतीर्थ की ओर देख कर पूछा- तुम्हारी उम्र कितनी है ?

रामतीर्थ ने कहा- तीस के आसपास।

वृद्ध हँसा और बोला- अब समझ में आया हिन्दुस्तान इतना कमजोर ओर पिछड़ा क्यों है ? वहां लोग जीवन जीने से पहले ही मौत की बात सोचते हैं। मैं तो ईश्वर से यही मांगता हूं कि मौत के समय भी कुछ सीखता जाऊं। मौत तो आएगी ही। जीवन नित नए ज्ञान का अनुभव ही है।

१५४) स्वामी रामतीर्थ लाहोर के एक कालेज में प्राध्यापक थे। उन्होंने एक दिन कक्षा में ब्लैक बोर्ड पर एक लकीर खींची और छात्रों से कहा, इस लकीर को छोटा करो।

स्वामीजी ने एक छात्र को बुलाया और कहा, इस लकीर को छोटा करो।

वह बालक लकीर को एक ओर से मिटाने का प्रयास करने लगा तो स्वामी ने उसे रोक कर कहा, मैंने ऐसा करने को नहीं कहा। बिना मिटाए उसे छोटा करना है।

छात्र सोच में पड़ गये कि बिना मिटाए कैसे छोटा किया जाए। स्वामी जी छात्रों के चिंतित चेहरे देख रहे थे। इतने में एक छात्र उठा और चाक लेकर उस लकीर के ऊपर एक बड़ी लकीर खींच दी।

स्वामीजी प्रसन्न हो उठे और कहा, बिल्कुल ठीक है। अब हमारी खींची हुई लकीर छोटी हो गई। किसी को मिटा कर महान बनने की कोशिश मत करो। जो सबको अक्षुण रखकर महान बनाता है, वही महान है।

१५५) उन दिनों स्वामी रामतीर्थ सैन फ्रांसिस्को गए हुए थे। वहां शास्ता पर्वतीय चोटी पर पहुंचने के लिए एक प्रतियोगिता के लिए युवा दल को जाते देख स्वामीजी भी उनके साथ हो गए ताकि पर्वतीय चोटी का आनंद ले सकें। स्वामीजी सबसे पहले वहां पहुंच गए। निर्णायक मंडल ने उन्हें ही विजेता घोषित कर दिया और पुरस्कार के लिए आमंत्रित किया। स्वामी जी ने पुरस्कार लौटाते हुए कहा, इसका असली हकदार वह युवक है जो ठीक मेरे बाद पहुंचा था। उसने इसके लिए तैयारी की होगी पर मैं तो बस ऐसे ही प्रकृति का आनंद लेने चला आया था।

१५६) शांति की खोज- उन दिनों स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गए हुए थे। वहां उनके प्रवचन की हर ओर धूम थी। अमेरिकी नागरिक उनसे अपनी परेशानियों के हल पूछने आते और खुशी खुशी वहां से जाते थे। एक दिन एक अमेरिकी महिला उनके पास पहुंची और बोली, स्वामी जी, मेरा सब कुछ लुट गया। मुझे अब इस जीवन में कभी शांति नहीं मिल सकती। कृपया मेरे चित्त को शांत करने का उपाय बताएं। स्वामी जी ने कहा, माता। पहले आप अपने दुख का कारण तो बताएं। महिला रोती हुई बोली, मेरा इकलौता पुत्र काल के गाल में समा गया है। अब मैं क्या करूँ? वह जोर-जोर से

विलाप करने लगी। स्वामीजी ने उसे सांत्वना दी और अगले दिन उसके दुख को दूर करने का वादा किया। अगले दिन महिला फिर पहुंची। उसने कहा, स्वामीजी, आपने मुझसे वादा किया था कि आज आप मेरी समस्या का समाधान करेंगे। स्वामीजी बोले, बिल्कुल, मैं अवश्य आपकी समस्या दूर करूंगा। इसके बाद उन्होंने एक छोटे से बालक को आवाज देकर बुलाया और उसका हाथ महिला के हाथ में सौंपते हुए कहा, यह लो अपना बेटा। आपको संतान चाहिए और इसे माता-पिता। आप इसके साथ बेटे जैसा व्यवहार करना, फिर देखना आपके सारे दु:ख दर्द कैसे दूर हो जाते हैं। उस महिला को इसकी आशा न थी। वह बोली, स्वामीजी, भला यह कैसे संभव है? मैं इसे अपना पुत्र कैसे मान लूं? पता नहीं यह कौन है? इसमें तो मेरा अंश मात्र भी नहीं है। उसकी बात सुनकर स्वामी जी गंभीर होकर बोले, ऐसे सोचेंगी तो न कभी आपका दु:ख-दर्द दूर होगा न ही जीवन में शांति मिल सकेगी। आत्मीयता का विस्तार करना सीखें। औरों में भी अपना रूप देखें। इस बच्चे में अपना बेटा देखें। जीवन जरूर बदलेगा। जीवन में सुख और शांति आएगी। वह अमेरिकी महिला स्वामी रामतीर्थ की बातें सुनकर दंग रह गई। उसे अपनी गलती का अहसास हो गया। वह अनाथ बच्चे को प्रेम से अपने साथ ले गई।

१५७) शिक्षा का उपयोग- तीर्थराम ने गुजरावाला (पंजाब) के मिशन कॉलेज से एमए की उपाधि प्राप्त की, तो उनकी असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर कॉलेज के प्रधानाचार्य ने उन्हें अपने कमरे में बुलाकर पूछा, क्या मैं आपका नाम आईसीएस की परीक्षा में बैठने वाले छात्रों की सूची में दर्ज करवा दूं ? छात्र तीर्थराम ने उत्तर दिया, महोदय, मैंने आपके आशीर्वाद तथा अपने कठोर परिश्रम से ज्ञान जैसा अमूल्य धन प्राप्त किया है। मैं उसका उपयोग एक आईसीएस बनकर झूठे-सच्चे मुकदमे सुनने या फैसला देने में नहीं करना चाहता। मैंने आईसीएस बनने के लिए मेहनत नहीं की है। अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग मैं अपने देश की सेवा, अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार में करके ही अपना जीवन सार्थक समझूंगा।

प्रधानाचार्य एक युवा छात्र के मुख से ऐसे उत्तम विचार सुनकर दंग रह गए। उस छात्र ने आगे चलकर पूरे संसार में महान आध्यात्मिक विभूति स्वामी रामतीर्थ के रूप में ख्याति अर्जित की।

१५८) वाणी की शक्ति- एक महिला अपने बच्चे को लेकर रामकृष्ण परमहंस के पास आयी और कहने लगी- महात्मन, मेरा बेटा मिठाई बहुत खाता है जिसके कारण इसका स्वास्थ्य खराब हो रहा है। यह आपका कहना मानेगा। उन्होंने उसे एक सप्ताह बाद आने के लिए कहा। वह एक सप्ताह बाद पुन: अपने बच्चे को लेकर उनके पास गई। बच्चे को परमहंस ने समझाया तथा बच्चा मान गया और उसने मिठाई खाना छोड़ दिया। यह देखकर महिला ने पूछा, महात्मन, समझाना तो सरल था फिर आपने मुझे एक सप्ताह बाद क्यों बुलाया। परमहंस ने कहा- देवी, मैं भी मीठा बहुत खाता था। इसलिए मैंने बालक को नहीं समझाया। मीठे को त्याग कर ही मैंने आज इस बच्चे को मिठाई नहीं खाने की शिक्षा दी है।

१५९) स्वामी रामकृष्ण बगीचे में बैठे ईश्वर चिंतन में लीन थे। इतने में ही डॉ. महेंद्रनाथ सरकार उधर आए और उन्होंने स्वामीजी को बाग का माली समझकर फूल तोड़ लाने को कहा। स्वामीजी मान-अपमान से परे निर्मल स्थिति में थे, उन्होंने तत्काल फूल तोड़कर डॉक्टर साहब को दे दिए। दूसरे दिन ये डॉक्टर साहब स्वामीजी को देखने आए, तब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई और वह उनके निरभिमान आचरण पर द्रवित हो गए। वस्तुत: महान व्यक्तियों की पहचान उनके अभिमान शून्य विनययुक्त स्वभाव से ही की जाती है।

१६०) रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी शारदामणि महिलाओं का अलग सत्संग चलाती थी। उनमें अधिकांश धार्मिक प्रकृति की और संभ्रांत घरों की महिलाएं आती थीं। सत्संग में एक ऐसी महिला भी आने लगी, जो कुछ बदनाम थी। इससे अन्य महिलाएं नाक-भौं सिकोड़ने लगीं और उसे न आने देने के लिए माताजी से आग्रह करने लगीं। इस पर माताजी ने

कहा- सत्संग गंगा है। वह गंदगी से अशुद्ध नहीं होती। जरा सी मलिनता से ही जो अशुद्ध हो जाए वह गंगा कैसी ?

१६१) साधना- रामकृष्ण परमहंस से एक श्रद्धालु ने पूछा आप तो पहुंचे हुए योगी हैं, फिर भी आप रोजाना ध्यान करते हैं। परमहंस ने अपना कमंडल हाथ में लेते हुए कहा, इसे मैं रोजाना घिसकर साफ करता हूं इसलिए यह इतना चमक रहा है। यदि इसे एक बार साफ कर दिया जाए और दोबारा नहीं, तो यह इतना स्वच्छ नहीं रह सकता। इसी तरह जब तक शरीर का बंधन है, तब तक अंतरात्मा की ज्योति को विविध प्रकार की साधना से शुद्ध और निर्मल बनाने का प्रयास करते रहना आवश्यक है।

१६२) रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सैंकड़ों युवक उनसे मिलने के लिए आते रहते थे। एक बार एक नवयुवक ने रामकृष्ण परमहंस से प्रार्थना की, महात्मन, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और दीक्षा दीजिए। रामकृष्ण ने युवक की परेशान आंखों में झांकते हुए कहा, तुम्हारे परिवार में कितने सदस्य हैं युवक। क्या तुम अकेले हो ?

युवक ने उत्तर दिया, घर में मेरे अलावा सिर्फ मेरी बूढ़ी मां है। परमहंस थोड़े चिंतित हो गए। परमहंस को पहले तो थोड़ा क्रोध आया, लेकिन उन्होंने युवक से फिर पूछा, तुम गुरुमंत्र लेकर साधु क्यों बनना चाहते हो ? युवक बोला, मैं इस मोहमाया और ऊंच-नीच से भरे संसार को छोड़कर मुक्ति चाहता हूं। इस पर परमहंस ने समझाते हुए कहा, अपनी बूढ़ी मां को असहाय छोड़कर तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। तुम्हारी सच्ची मुक्ति तो इसी में है कि तुम पूरी शक्ति से अपनी बूढ़ी और असहाय मां की सेवा करो। इसी में तुम्हारा कल्याण हैं। मुक्ति कहीं बाजार में नहीं हैं। सेवा के द्वारा आंतरिक संतोष हासिल करना ही मुक्ति है। जीवन का सच्चा मर्म यही है।

१६३) बड़ा कौन ? - स्वामी रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर मंदिर में स्वामी तोतापुरी के साथ बैठे चर्चा कर रहे थे। उन्होंने कहा, भक्ति में सबसे बड़ी बाधा अहंकार है। प्राय: हर व्यक्ति अपने को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करता है। कुछ लोग दूसरों की प्रशंसा और सुख से दुखी होते रहते हैं।

तोतापुरी बोले, अहंकार और ईर्ष्या तो अब संत महात्माओं पर भी हावी होने लगे हैं। वास्तव में अहंकार ही अनेक व्याधियों का कारण बन रहा है। एक बार स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में इस बात पर विवाद छिड़ गया कि उन दोनों में बड़ा कौन है।

इसी बीच उन्हें कमरे के बाहर से दो व्यक्तियों के लड़ने की आवाजें सुनाई दीं। परमहंस जी उठे तथा बाहर जाकर देखा कि उनके दो साधु वेशधारी शिष्य ही आपस में हममें से बड़ा कौन है, इस बात पर झगड़ा कर रहे हैं। जब दोनों आपस में फैसला नहीं कर पाये तो वे परमहंस के पास पहुंचे। उन्होंने अपनी समस्या गुरु के सामने रखी और कहा, आप ही तय कीजिए कि हममें बड़ा कौन है ? परमहंस जी समझ गए कि इन दोनों का अहं इन्हें लड़ा रहा है।

परमहंस उनकी बात सुनकर मुस्कुराए और कहा, बस इतनी सी बात पर उलझ रहे हो तुम दोनों? अरे, जो दूसरे को अपने से बड़ा समझता है वही वास्तव में बड़ा होता है। वही श्रेष्ठ है। गुरुदेव की बात सुनकर दोनों शिष्यों को अपनी गलती का एहसास हो गया। वे बड़े लज्जित हुए।

१६४) मुक्ति- रामकृष्ण परमहंस ने एक दिन विवेकानंद से पूछा, तुम्हें मुक्ति चाहिए ?

विवेकानंद ने तुरंत जवाब दिया, नहीं, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए।

परमहंस को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा- मुक्ति ऐसी चीज है, जिसकी कामना मानव मात्र करता है, चाहे वह गृहस्थी हो या संन्यासी, क्या कारण है कि तुम मुक्ति नहीं चाहते हो।

विवेकानंद ने अपनी भावना अभिव्यक्त करते हुए कहा- जब तक मेरे करोड़ों भारतवासी भाई-बहनों को मुक्ति नहीं मिल

जाती, तब तक मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। जब भारत के नागरिकों की मुक्ति के लिए पंक्ति लगेगी तो विवेकानंद उस पंक्ति का अंतिम व्यक्ति होगा। यह सुनकर परमहंस ने उन्हें गले से लगा लिया।

१६५) कृतज्ञता के आंसू- स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य दुर्गावरण नाग काली की उपासना के बाद अपना समय गरीबों व बीमारों की सेवा में लगातार अत्यंत प्रसन्नता अनुभव करते थे। वह रोगियों को नि:शुल्क दवा देते और अपने हाथों से उनकी सेवा करते थे। कोलकाता में प्लेग का प्रकोप हुआ। नाग महाशय प्लेग से प्रभावित क्षेत्र में पहुंच जाते। झोपड़ियों में जाकर रोगियों को दवा देते, उनके शरीर की सफाई करते। एक दिन वह एक झोपड़ी में गए तो प्लेग से प्रभावित एक मरणासन्न वृद्ध बोला, डॉक्टर साहेब, मैं अब चल नहीं सकता। मैं बच नही पाऊंगा। अंतिम समय है, मेरी इच्छा है कि अंतिम क्षण मेरे मुंह में गंगाजल की पावन बूंदे तो पड़ ही जाएं, गंगामैया के दर्शन भी हो जाएं। नाग समझ गए कि वास्तव में अब इस वृद्ध का अंतिम समय आ गया है। उन्होंने वृद्ध को कंधे पर उठाया और एक किलोमीटर दूर गंगा किनारे तक ले गए। उन्होंने उसे गंगा जल पिलाया और गोद में सिर रख कर बैठ गए। कुछ देर बाद उसका निधन हो गया। अंतिम सांस लेने से पूर्व वृद्ध की आंखों से बह रहे आंसू नाग महाशय के प्रति कृतज्ञता के परिचायक थे।

१६६) अहंकार और छुआछूत- एक बार रामकृष्ण परमहंस नगा गुरु तोतापुरी जी के साथ अध्यात्म चर्चा कर रहे थे। जाड़े का मौसम था, शाम हो चली थी। पास में ही धूनी जल रही थी। उसी समय बाग का माली वहां आ पहुंचा और उस आग से अपनी चिलम भरने लगा। तोतापुरी जी ने जब यह देखा तो उन्हें गुस्सा आ गया। उन्होंने माली को केवल डांटा ही नहीं, उसे दो-चार तमाचे भी जड़ दिए। यह देखकर रामकृष्ण परमहंस को हंसी आ गई। उन्हें हँसता देख तोतापुरी और नाराज हो गए। उन्होंने कहा, इस अस्पृश्य नौकर ने अग्नि को स्पर्श करने की धृष्टता की है, जिसका मैंने उसे दंड दिया और तुम हंस रहे हो। रामकृष्ण परमहंस बोले, मेरे लिये आश्चर्य का विषय है कि कोई वस्तु स्पर्श करने मात्र से अपवित्र हो जाती है। साथ ही आपके ब्रह्मवाद की वास्तविकता का ज्ञान भी आज मुझे हो गया है। अभी-अभी आपने एको ब्रह्म द्वितीय नास्ति का पक्ष लेकर दलीलें दी कि संसार एक ब्रह्म के प्रकाश प्रतिबिंब के सिवा और कुछ नहीं है। दूसरी ओर केवल अग्नि को स्पर्श करने के कारण ही आपने इस नौकर को दंडित कर दिया है। मैं इसमें आपका दोष नहीं मानता। असल में यह तो आपके अंदर के अहंकार की निष्पत्ति है जिसे जीत पाना सरल नहीं है। यह सुनकर तोतापुरी जी लज्जित हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे भविष्य में अस्पृश्यता का भाव नही रखेंगे।

१६७) निष्ठा का उदाहरण- यह उस समय की बात है जब यह विदित हो गया था कि श्रीरामकृष्ण परमहंस के गले में नासूर था। एक दिन तर्क चूड़ामणि पण्डित शशधर उनके पास आकर बोले- यदि आप एकाग्र होकर बोले, रोग चला जा। रोग चला जा। तो निश्चय ही रोग चला जाएगा। श्रीरामकृष्ण बोले- आप विद्वान होकर भी मुझे ऐसी सम्मति देते हैं। जो मन सच्चिदानन्दमयी मां का स्मरण करने के लिए मुझे मिला है, उसे वहां से हटाकर मैं अपने हाड़-मांस के इस पिंजरे में लगाऊं यह संभव नहीं है। उनके शिष्यों को इससे संतोष नहीं हुआ। उन्होंने योजना बनाई और एक दिन सब मिलकर उनसे आग्रह पूर्वक विनय करने लगे- महाराज, आप मां से प्रार्थना कीजिए कि वे आपका रोग मिटा दें। मैं ऐसी मूर्खता क्यों करूं ? मां दयामयी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं। उन्हें मेरे कल्याण के लिए जो उचित लगता है, वह तो वे कर ही रही हैं। उनकी व्यवस्था में हाथ डालने का यह छिछोरापन तो मुझ से नहीं होगा। रामकृष्ण परमहंस ने कहा, मैंने जीवन भर देना ही जाना है। माता को भी समर्पण किया। मांगने की आवश्यकता ही नहीं हुई। अब जीवन की संध्या में कुछ बची हुई साँसों के लिए दानियों में से नाम कटाकर याचकों में क्यों गणना कराऊं। यह कष्ट सहकर उस असंतुलन की भरपाई कर

रहा हूं, जो पीड़ितों को कष्टमुक्त करने के लिए पेशगी खर्च किया था।

यह कहकर उन्होंने अपने शिष्यों को शांत कर दिया। शरीर व्याधि का घर है। व्याधि शान्ति का उपाय औषधि है। किंतु नासूर को आज तक भी असाध्य माना जाता है तो फिर जो असाध्य है, उसके लिए व्यर्थ का परिश्रम आदि करना बुद्धिमत्ता नहीं है।

१६८) छोटी सी बात- विवेकानंद जब भी कहीं बाहर जाते, रामकृष्ण परमहंस से आज्ञा लेना नहीं भूलते थे। उनकी मौत के बाद जब वह पहली बार अमेरिका जाने लगे तो उनकी पत्नी शारदा से आज्ञा लेने उनके पास गए। उन्होंने शारदा से कहा, मुझे भारतीय संस्कृति, धर्म और यहां के रीति रिवाजों के प्रचार के लिए अमेरिका जाना है। आपका आशीर्वाद चाहिए ताकि मैं वहां अपने मकसद में सफल होऊं। शारदा ने विवेकानंद को ऊपर से नीचे तक देखा फिर कहा, सोच कर बताऊंगी। विवेकानंद दुविधा में पड़ गए कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा।

विवेकानंद ने फिर कहा, माते, मैं केवल आपका आशीर्वाद मांगने आया हूं। आपका शुभ आशीर्वाद चाहिए। शारदा ने फिर कहा, सोच कर कहूंगी। विवेकानंद सोच में पड़ गए कि वह आशीर्वाद तो सिर्फ शिष्टाचारवश मांगने आए थे, आखिर उसमें क्या अड़चन है। क्या मां नहीं चाहतीं कि मैं अमेरिका जाऊं। इतने में शारदा बोलीं, वह सामने जो छुरी पड़ी हुई है, उसे उठा लाओ। विवेकानंद छुरी उठा लाए और शारदा के हाथ में थमा दिया। छुरी लेकर शारदा हंसी और कहने लगी, जाओ, तुम्हारा मंगल होगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। विवेकानंद ने कहा, मां, छुरी उठाने और आपके आशीर्वाद में क्या कोई संबंध है ? शारदा ने कहा, हां, संबंध है। मैं देखना चाहती थी कि तुम छुरी मुझे किस तरह देते हो। मूठ तुम पकड़ते हो कि फलक। तुमने छुरी का फलक अपने हाथ में पकड़ा और लकड़ी की मूठ मेरे हाथ में पकड़ाई। आमतौर पर शायद ही कोई फलक को पकड़ कर मूठ दूसरे की तरफ करता होगा। तुम्हारे मन में इतनी छोटी बात का भी ध्यान है कि कहीं फलक पकड़ने से मेरा हाथ न कट जाए। जब दूसरों की पीड़ा का इतना खयाल है तुम्हारे मन में, तो तुम्हारे रास्ते में कोई रोड़ा आएगा ही नहीं। जिस व्यक्ति में अपनी सुरक्षा की चिंता नहीं, दूसरे की सुरक्षा की चिंता हो, उसका हमेशा मंगल ही होता है।

१६९) सीख- नदी किनारे टहल रहे थे रामकृष्ण परमहंस। एक साधु उनके पास आया। बोला, महाराज, आप मुझे अपना गुरु मान लो। परमहंस ने कहा, अच्छा। लेकिन क्यों ? साधु बोला, इसलिए कि मैं नदी को तैर कर नहीं, बल्कि पैदल पार कर सकता हूं। परमहंस ने कहा, भई वाह। यह तो सचमुच कमाल है। लेकिन यह तो बताओ कि इस कमाल को करने में तुम्हें कितनी तपस्या करनी पड़ी ? साधु चहक उठा, महाराज, नदी पर पैदल चलने के लिए मैंने १४ साल तपस्या की है। परमहंस बोले, कमाल की बात है तुमने इतनी सी नदी को पार करने में अपने जीवन के १४ साल बर्बाद कर दिए। यह काम तो एक धेले में भी हो सकता था। साधु परेशान हो गया, वो कैसे महाराज ? सीधी सी बात है। किसी नाव वाले को एक धेला देते। वह तुम्हें नदी पार करा देता। परमहंस की बात सुनकर उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। वह परमहंस के चरणों में गिर पड़ा और उन्हें अपना गुरु मान लिया।

१७०) सन्देश- स्वामी रामकृष्ण के देहावसान के बाद शिष्यगण बहुत ही दु:खी हुए। उन्हें अन्त:करण से दु:खी देख विवेकानन्द ने समझाते हुए कहा- मित्रों। गुरुदेव ने हमें कोई सम्पत्ति तो दी नहीं है। मात्र एक सन्देश देकर गए हैं कि हमें किस प्रकार संयमित जीवन जीकर लोकमंगल का कार्य करना है। हमें उनके इस संदेश को ही जन-जन तक पहुँचाना है। इसीसे हम अपनी संस्कृति को पुन: जाग्रत कर साधन एकत्र कर लेंगे। आज उसी सन्देश का जादू है जो रामकृष्ण मिशन के नाम से जाना जाता है।

१७१) करुणा की प्रतिमूर्ति- रामकृष्ण परमहंस करुणा और स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। एक बार मथुरा बाबू नामक एक सज्जन उनसे मिलने आए और उन्होंने प्रस्ताव रखा, आइए आपको नाव में घुमा लाएं। नदी पार करके वे लोग रानीघाट के पास कलाई घटा में गरीबों की बस्ती में पहुंचे तो वहां के लोगों की दीन दशा देखकर परमहंस रो पड़े। परमहंस मां काली के परम भक्त थे। वे मां काली का नाम लेकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे- मां, तेरे रहते इतने बेटे-बेटियां भूखे, नंगे और दुःखी ? मां, तेरे संसार में इतना दुःख ? मथुरा बाबू परमहंस का मन जानते थे। अकेले ही शहर लौटे। बाजार से गरीबों के लिए वस्त्र और भोजन सामग्री खरीदकर फिर उसी बस्ती में लौटे। परमहंस अब भी मां को पुकारकर रो रहे थे। जब मथुरा बाबू ने सभी को अन्न और वस्त्र दे दिए, तब कहीं जाकर परमहंस शांत हुए और निर्विकार भाव से दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोले- मां एक तू ही।

१७२) अपना पता - एक बार रामकृष्ण परमहंस के पास एक श्रीमंत आकर बोले, सुना है आपके पास मां आती हैं, आप उनसे बातें भी करते हैं। रामकृष्ण बोले, हां... आती हैं... जिस तरह से तुम मेरे साथ बातें कर रहे हो, उसी प्रकार मैं उनके साथ भी बातें करता हूं।

मां कब आती हैं? श्रीमंत ने पूछा। उनका आगमन तय नहीं होता, जब उनकी इच्छा होती है तब आ जाती हैं, फकीरों और भगवान के आने का कोई समय होता है क्या ? रामकृष्ण सहज भाव से बोले। श्रीमंत बोला, स्वामीजी मेरा एक काम करना, इस बार जब मां आएं तो कहना कि मेरे पास भी पधारें। आप तो जानते ही हैं कि मैं बहुत व्यस्त रहता हूं, इसलिए यहां बैठ कर प्रतीक्षा नहीं कर सकूंगा। रामकृष्ण बोले, ठीक है, अगली बार मां जब भी मुझे मिलेंगी तो अवश्य कहूंगा, मगर वह तुम्हें मिलने के लिए कहां आएंगी?

उस श्रीमंत ने रामकृष्ण को अपना विजिटिंग कार्ड बढ़ाया। रामकृष्ण बोले, नहीं, नहीं, मुझे तुम्हारी कोठी का नहीं, तुम्हारा पता चाहिए, बस वह दे दो। श्रीमंत उलझन में फंस गया, बोला, मेरा पता का मतलब?

हां, तुम्हारा पता, तुम कौन हो? मां को तो तुम्हारा पता देना पड़ेगा, तभी तो वो जा पाएंगी।

रामकृष्ण ने परिचय पत्र वापस लौटा दिया और कहा, ये पता तो आपकी कोठी, ऑफिस और फैक्ट्री के हैं। मां वहां थोड़े ही जाएंगी। वे तो तुम्हारे पास जाएंगी, इसलिए अपना पता बताओ। श्रीमंत को फिर भी समझ में नहीं आया, मेरा पता का मतलब? तब रामकृष्ण ने समझाया, तुम्हारे पते का मतलब है, तुम्हारे देह के भीतर जो आत्मा बैठी है, उसका पता। जिस दिन तुमको उसका पता मिल जाएगा, उस दिन मां बिना बुलाए तुम्हारे पास आ जाएंगी।

अचानक श्रीमंत को सब कुछ समझ में आ गया। वह रामकृष्ण के चरणों पर गिर कर रोने लगा, उसका सारा अहंकार पिघल गया। उस दिन से वह अपना सही ठिकाना ढूंढने के लिए एक साधक की तरह जीवन बिताने लगा।

१७३) परीक्षा- उन दिनों स्वामी विवेकानंद नरेन्द्र कहलाते थे, तब रामकृष्ण परमहंस का उन पर असीम स्नेह था, पर एक बार उन्होंने नरेन्द्र से बोलना बंद कर दिया। जब भी नरेन्द्र उनके सम्मुख जाते, वह मुंह फेर लेते लेकिन नरेन्द्र उन्हें रोजाना प्रणाम करते और थोड़ी देर उनके पास बैठते। कुछ दिनों बाद रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र से पूछा, मैं जब तुमसे बात नहीं करता, फिर भी प्रतिदिन तुम मेरे पास आते हो और मेरा आदर करते हो।

स्वामी विवेकानन्द बोले, आपके प्रति मुझे बड़ा प्रेम है इसलिए दर्शन करने चला आता हूं। यह सुनकर परमहंस जी का मन भर आया और नरेन्द्र को छाती से लगा लिया और बोले।

अरे पगले मैं तो तेरी परीक्षा ले रहा था कि तू उपेक्षा भी सह सकता है कि नहीं।

१७४) टका-माटी- स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुयायियों में धनी-निर्धन दोनों तरह के लोग थे। एक बार एक धनी

भक्त ने परमहंस को धन-दौलत अर्पित करने की प्रार्थना की। भक्त को यह समझाने के लिए कि वह टके को माटी का ढेला समझते हैं परमहंस जी, टका-माटी का खेल दिखाने लगे। टका-यानी, रुपए का सिक्का और माटी यानी, मिट्टी के ढेले। दोनों को लेकर वे उछालते रहे, जिसका प्रतीकात्मक अर्थ सुस्पष्ट था कि माटी और टके में कोई अंतर नहीं। वे अक्सर कहा करते थे उतना ही धन-संग्रह करिए, जितने से आपकी आवश्यकता पूरी हो जाएं। बाकी, कमाये धन को गरीबों-अनाथों में बांट दो।

१७५) महाभोगी- रामकृष्ण परमहंस के पास एक दिन आदमी आया उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला, आप महात्यागी हैं।

रामकृष्ण ने कहा- गलत बात, महात्यागी तू है, हम तो, भोगी हैं। भक्त ने कहा, क्या कहते हैं परमहंस देव, आप और भोगी और त्यागी मैं ?

रामकृष्ण ने कहा, तूने परमात्मा को त्यागा है। तू कैसा भोगी ? हम परम धन जुटा रहे हैं। लोग हमें त्यागी कहते हैं। गलत कहते हैं। हम महाभोग से लीन हैं- समाधि को भोग स्वर्ग बरस रहा है। तुम कंकड़-पत्थर बीन रहे हो और तुम्हें लोग भोगी कहते हैं ? क्या खाक भोग है तुम्हारा।

१७६) बुराई से मुक्ति- एक बार रामकृष्ण परमहंस के पास एक शराबी पहुंचा। उसने प्रार्थना की, गुरुदेव, मुझे शराब पीने की बुरी आदत लग गई है। मैं पिछले पंद्रह-बीस दिनों से इसे छोड़ने की कोशिश कर रहा हूं, पर क्या बताऊं वह छूट नहीं रही। कृपया मेरी सहायता करें। मुझे शराब छोड़ने का कोई तरीका बताएं। रामकृष्ण परमहंस ने कहा, ठीक है। तुम कल मेरे पास आना। मैं अवश्य ही शराब छुड़ाने का कोई रास्ता बताऊंगा। शराबी प्रसन्न हो गया। उसे लगा परमहंस अवश्य कोई दवा देंगे या मंत्र बल से उसे इस लत से छुटकारा दिला देंगे। उस दिन उसने यह सोचकर खूब शराब पी कि आज आखिरी दिन है।

वह दूसरे दिन परमहंस के पास पहुंचा। उस समय परमहंस एक कमरे में बैठे थे जिसका दरवाजा अंदर से बंद था। उसके पहुंचते ही अंदर से परमहंस की आवाज आई, बचाओ-बचाओ। शराबी घबरा गया। वह समझ नहीं सका कि आखिर हुआ क्या है। थोड़ी देर बाद फिर परमहंस ने पुकारा, अरे भाई। अंदर आओ, मुझे बचाओ। किसी तरह अंदर आ जाओ। शराबी ने समझा कि जरूर परमहंस किसी संकट में फंस गए हैं। उसने दरवाजे को जोर से धक्का दिया। दरवाजा खुल गया। शराबी अंदर का दृश्य देखकर दंग रह गया। परमहंस जी ने एक खंभे को जोर से पकड़ रखा था और चिल्ला रहे थे। शराबी ने कहा, गुरुदेव आप स्वयं ही इस खंभे से चिपके हुए हैं और बचाओ बचाओ चिल्ला रहे हैं। आप चाहते तो इससे स्वयं ही अलग हो सकते थे। पर आपने ऐसा क्यों नहीं किया ? इसके लिए आप मुझे क्यों पुकार रहे थे ?

इस पर परमहंस ने तपाक से कहा, तुमने भी तो स्वयं ही शराब की आदत लगा रखी है। तुम स्वयं भी तो इसे छोड़ सकते हो। मुझे क्यों छुड़ाने के लिए कह रहे हो ? शराबी बात समझ गया। उसने तत्काल ही अपनी बुराई छोड़ने का निर्णय किया।

१७७) बहन की सीख - उस छात्र की प्रतिभा के सभी कायल थे। गणित, विज्ञान व इतिहास आदि सभी विषयों पर उसकी समान गति थी लेकिन साहित्य में उसकी प्रतिभा का निखार कुछ विशेष ही था। पर अपनी विशेषताओं के साथ उसमें एक छोटा सा दोष भी था। विद्यालय में कहानी प्रतियोगिता आयोजित की गई। इसके लिए एक महीने का समय था। प्रतियोगिता की सूचना देते समय साहित्य के अध्यापक ने उसे चेताया था- अर्नेस्ट, तुम साहित्य लेखन में सर्वश्रेष्ठ हो पर तुम्हें समय का ध्यान रखना है। जी सर- यह कहकर वह अपने विचारों में खो गया। उसके साथियों व अध्यापकों को विश्वास था कि पुरस्कार उसे ही मिलेगा। अर्नेस्ट को हैरानी थी कि कहानी तो दो घंटे में लिखी जा सकती है, फिर एक

महीना क्यों। उसने प्रतियोगिता पर विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रतियोगिता के लिए जब एक दिन बाकी रह गया, उसने आनन-फानन में एक कहानी लिखी और संयोजक के पास जमा करा दी। जिस दिन पुरस्कार की घोषणा होनी थी, उस दिन अर्नेस्ट बड़े उत्साह के साथ विद्यालय पहुंचा। परिणाम की घोषणा हुई, लेकिन कहानी लेखन का प्रथम पुरस्कार उसे नहीं, किसी और को दिया गया। उसे आश्चर्य हुआ और वह फूट-फूट कर रो पड़ा। बड़ी हन ने स्थिति भांप ली। वह बोली- अगर तुम अपनी हार पर रो रहे हो तो उसका कोई मतलब नहीं है। इसके लिए तुम खुद जिम्मेदार हो। तुमने वक्त का मोल पहचानने में बड़ी भूल की है। महीने भर का काम कहीं एक दिन में किया जाता है। तुम अपनी किसी रचना को जितना मांजोगे वह उतनी अच्छी होती जाएगी। इसलिए उसे भरपूर समय देना चाहिए। यदि सचमुच तुझमें पराजय की पीड़ा है तो इसे आगे बढ़ने की पहली सीढ़ी मान ले। बहन की सीख ने अर्नेस्ट की आंखें खोल दीं। भविष्य ने उसे विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे के नाम से पहचाना।

१७८) अध्यात्म और जीवन- स्वामी रामकृष्ण परमहंस के समय दक्षिणेश्वर में प्रताप हाजरा नामक एक सज्जन रहते थे। उन्होंने अपना जीवन साधुओं जैसा बना रखा था। वह कभी-कभी स्वामी रामकृष्ण परमहंस से मिलने आते और उनके सत्संग का लाभ लेते थे। एक बार वह स्वामी जी के साथ कोलकाता गए। जब वहां से लौटे, तो अपनी धोती वहीं एक भक्त के घर भूल आए। स्वामीजी को जब पता चला कि हाजरा जी वहां कुछ भूल आए हैं तो उन्होंने हाजरा जी से कहा, ऐसे भुलक्कड़ स्वभाव के कारण तो तुम कभी-कभी भगवान को भी भूल जाते होंगे। जो प्रतिदिन के सांसारिक कार्यों में असावधान है, वह अध्यात्म के क्षेत्र में सावधान होगा, इसमें संदेह है। हाजरा जी स्वामी जी के कहने का अर्थ समझ नहीं सके। उन्होंने सफाई देते हुए कहा, क्या बताऊं महाराज, भगवान के भजन में लीन होने के कारण मुझे कुछ याद ही नहीं रहता। भगवान से मेरी इतनी प्रीत है कि संसार में क्या हो रहा है, इसकी तरफ कभी ध्यान ही नहीं जाता। उनकी आत्मप्रशंसा सुन स्वामीजी आश्चर्यचकित रह गए। वह बोले, हाजरा तू धन्य है, जो थोड़े से जाप से ही इतना ऊपर पहुंच गया है कि सांसारिक विषयों की याद ही नहीं रहती और एक मैं तुच्छ प्राणी हूं जो दिन-रात भगवान के चरणों में ही ध्यान दिए रहता हूं, फिर भी आज तक न कभी अपना बटुआ कहीं भूला और न ही धोती। स्वामीजी की बात सुनकर हाजरा जी को अपनी भूल का अहसास हो गया। वह स्वामीजी के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे।

१७९) श्रम के रूपए- श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में दुर्गाचरण नाग के घर की स्थिति अच्छी नहीं थी। उनके पिता साधारण सी नौकरी करते थे और स्वयं नाग महाशय होम्योपैथिक चिकित्सा करते थै। नाग महाशय के अधिकांश रोगी निर्धन होते थे, इसलिए नाग महाशय को कभी-कभी औषधि के साथ-साथ उन लोगों के पथ्य के लिए भी पैसे देने पड़ जाते थे। यह संयोग ही था कि नाग महाशय के पिता जिनके यहां नौकरी करते थे, उस परिवार की एक महिला को नाग महाशय ने कष्ट साध्य रोग से मुक्त किया था। परिवार धन-धान्य संपन्न था उन लोगों ने नाग महाशय को कुछ धन देना चाहा था किंतु नाग महाशय ने केवल उनसे बीस रुपए ही लिए। उनके पिता को जब इस विषय में ज्ञात हुआ वे सुनकर अपना असंतोष व्यक्त करने लगे। उनका समाधान करते हुए नाग महाशय ने कहा- पिताजी, मैं सात दिन उनके पास गया। इस प्रकार मेरी फीस के चौदह रुपए हुए। मैंने उनको जो औषधि दी वह लगभग छ: रुपयों की थी। इस प्रकार मेरे हक के तो बीस रुपए ही बनते थे, वही मैंने उनसे लिए। हक से अधिक लेना तो पाप है। मैं यह पाप कैसे कर सकता था? ऐसे पुत्र को पिता समझाए भी तो कैसे समझाए।

१८०) सबसे बड़ा कर्म - स्वामी विवेकानंद और उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस बैठे थे। विवेकानंद ने अपने मन की बात कही, मेरे मन में तपस्या की चाहत जगी है। लेकिन मैं तपस्या किसी साधारण स्थल पर न करके हिमालय की शांत

कंदराओं में करना चाहता हूं। वहां तपस्या में न विघ्न-बाधाएं आएंगी और न ही कभी मेरी एकाग्रता भंग होगी। इस बारे में आपका क्या कहना है? इस पर परमहंस मुस्कराते हुए बोले, जब तुमने निश्चय कर ही लिया है तो मेरी राय क्यों पूछ रहे हो? यह सुनकर विवेकानंद बोले, गुरुजी, अभी मेरे जीवन की शुरुआत है। मैं गलत फैसले भी ले सकता हूं। इसलिए तो आपसे मार्गदर्शन चाहता हूं। विवेकानंद की इस बात पर परमहंस बोले, यदि मेरा मार्गदर्शन चाहते हो तो वह मैं अवश्य दूंगा। मैं यह कहूंगा कि हमारे क्षेत्र के लोग भूख से तड़प रहे हैं, रोगों से ग्रस्त हैं। चारों ओर अशिक्षा एवं अज्ञान का अंधेरा छाया हुआ है। यहां लोग रोते-रोते चिल्लाते रहें और तुम हिमालय की किसी गुफा में तपस्या में, समाधि में निमग्न रहो, क्या इसे तुम्हारी आत्मा स्वीकार करेगी? रामकृष्ण परमहंस के इन शब्दों ने स्वामी विवेकानंद की आत्मा को झकझोर डाला। उनकी दृष्टि ही बदल गई। उन्होंने उसी समय संकल्प किया कि वह अपना जीवन गरीबों की सेवा एवं शिक्षा का प्रचार कर अज्ञान को दूर करने में लगाएंगे। वह परमहंस का आशीर्वाद लेकर चले आए। आजीवन वह मानव सेवा के कार्य में लगे रहे।

१८१) भक्ति की शक्ति - सच्चे मन और पूर्ण समर्पण से की गई भक्ति में इतनी शक्ति है कि भगवान को भक्त की बात मानने पर विवश होना ही पड़ता है। भक्ति की शक्ति का ऐसा ही एक वाकया परमहंस रामकृष्णजी के जीवन से जुड़ा हुआ है। परमहंसजी मां काली के परम उपासक थे। मां से प्रेममय बातें, उनकी महिमा का गुणगान उनकी दिनचर्या में शामिल था। एक बार वह हुगली नदी के गंगाघाट पर मंदिर में भजन गा रहे थे। गाते-गाते पता नहीं क्या हुआ कि उनकी गर्दन में बल पड़ गया। भजन रुक गया। परमहंसजी की आंखों से आंसू बहने लगे। इसी अवस्था में वह भोलेपन से मां से गिला करने लगे, मां, मैं प्रतिदिन झूम-झूमकर आपको भजन सुनाता हूँ। आज मैं अस्वस्थ हूं, अगर आज भी आपने मेरा भजन सुनना है, तो आपको दूसरी दिशा में आना होगा। कहते हैं, परमहंसजी की प्रार्थना से ही मां की प्रतिमा उस दिशा में घूम गई, जिधर परमहंसजी मुंह करके बैठे थे।

१८२) ईश्वर की खोज - एक बार रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों के साथ नौका विहार के लिए निकले। नाव थोड़ा ही आगे बढ़ी थी कि एक शिष्य ने कहा, गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि जब-जब पृथ्वी पर पाप का बोझ असहनीय हो जाता है तब-तब वे धर्म के उत्थान तथा पाप के नाश के लिए अवतार लेते हैं। आज पृथ्वी पर पाप की पराकाष्ठा है पर भगवान कभी दर्शन नहीं देते। मैंने कई बार प्रयत्न किए पर उनके दर्शन नहीं हुए। अरे भगवान हों, तब तो दर्शन दें। रामकृष्ण ने तभी दूसरे शिष्यों से कहा कि वे प्रश्नकर्ता को नदी में धकेल दें। शिष्यगण पहले तो चौंके पर उन्होंने अपने गुरु के आदेश के पालन किया। वह शिष्य नदी में गिर गया। वह तैरना नहीं जानता था। वह किसी तरह हाथ-पैर मारने लगा। भारी प्रयत्नों के बाद वह नाव के करीब आने में सफल रहा। तब रामकृष्ण ने शिष्यों से कहा कि वे उस शिष्य को नाव पर चढ़ने में मदद करें। वह शिष्य नाव पर आ गया। कुछ तो क्रोध के कारण और कुछ थकान के कारण वह बुरी तरह हांफ रहा था। जब वह सामान्य हुआ तो रामकृष्ण ने हंसकर कहा, पुत्र, क्रोध न करो। मैं तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा था। तुमने अपने को बचाने के लिए भरसक प्रयत्न किए तभी तुम बच सके। क्या तुमने कभी ईश्वर को पाने के लिए इस तरह जान लड़ाकर प्रयास किया? पहले ढंग से प्रयास करो फिर उसके होने न होने के बारे में निष्कर्ष निकालो। शिष्य को उसका उत्तर मिल गया। उसने रामकृष्ण से क्षमा मांगी।

१८३) सहयोग की भावना - एक दिन स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास एक धनी व्यक्ति हजारों स्वर्ण मुद्राएं लेकर आया और उन्हें देने लगा और बोला, इसे स्वीकार करें। यह सारा धन आप परोपकार के काम में लगा दें। परमहंस नाराज होकर बोले, मुझे इन स्वर्ण मुद्राओं से क्या काम? परमहंस ने मुस्कराते हुए कहा, यदि मैं तुम्हारा यह धन ले लूंगा तो मेरा मन उसमें

रम जाएगा और मेरी मानसिक शांति भंग हो जाएगी। इन्हें किसी गरीब व जरूरतमंद को दे दो। किंतु धनी व्यक्ति अपने धन का अभिमान दिखाते हुए वहीं खड़ा रहा। सेठ ने कहा- महाराज, आप तो परमहंस है। आपका मन तो उस तेल बिंदु के समान है जो कंचन-कामिनी के महासमुद्र में स्थित होकर भी उससे अलग रहता है। परमहंस बोले, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि अच्छे से अच्छा तेल भी लंबे समय तक पानी के संपर्क में रहकर अशुद्ध हो जाता है और उसमें से दुर्गंध आने लगती है।

स्वामीजी उसे पकड़कर गंगा-तट पर ले आए और बोले, यदि तुम्हें मुद्राएं मुझे ही देनी हैं तो इन्हें गंगा को समर्पित कर दो। स्वामीजी का जवाब सुनकर वह व्यक्ति दु:खी मन से एक-एक मुद्रा निकालकर गंगा में फेंकता रहा। उसे इस कार्य में काफी समय लग रहा था। कुछ देर बाद परमहंस वहां पर आए और उन्होंने उस व्यक्ति से स्वर्ण मुद्राओं की पोटली लेकर गंगा में फेंक दी और कहा, इन स्वर्ण मुद्राओं को एक साथ न फेंककर तुमने जिस तरह उन्हें गिन-गिन कर फेंका, उससे दो बातें स्पष्ट हो गईं। एक तो यह कि स्वर्ण मुद्राओं से तुम्हें बेहद लगाव था और दूसरा यह कि जिस जगह तुम मात्र एक कदम उठाकर पहुंच सकते थे, वहां पहुंचने के लिए तुमने बेकार में हजारों कदम उठाए। इसका अर्थ यह है कि तुम सच्चे मन से मुझे यह नहीं दे रहे थे। तुम मुझे ये मुद्राएं देकर स्वयं को दूसरों की नजर में श्रेष्ठ साबित करना चाहते थे। व्यक्ति को नि:स्वार्थ भाव से मदद करनी चाहिए। अगर तुम्हारे भीतर मदद करने का सच्चा भाव है तो लाचार लोगों की सेवा करो। सेठ निरुत्तर हो गया। उस व्यक्ति ने स्वामी जी से क्षमा मांगी और परोपकार के कार्य में जुट गया।

१८४) एक बार रामकृष्ण परमहंस को एक सेठ ने एक दुशाला भेंट की। पांच-सात दिनों के बाद सेठ फिर आया तो उसने देखा कि दुशाला नीचे बिछी हुई है। सेठ को बुरा लगा। वह बोला, यह बहुत कीमती दुशाला है। यह ओढ़ी जाती है, बिछाई नहीं जाती। परमहंस ने कहा, मेरे लिए तो बस मेरा भगवान मूल्यवान है। फिर उन्होंने पास में जलती आग में दुशाला डाल दी। वह जल गई। परमहंस ने कहा, तुमने कहा था कि तुम्हारी दुशाला बहुत मूल्यवान है। कहां है यह मूल्यवान? अग्नि ने तो इसे जला दिया। क्या मूल्य रह गया इसका?

१८५) दान- स्वामी विवेकानंद से प्रभावित होकर भारत में स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने आई भगिनी निवेदिता ने बंगाल में अनाथ बालिकाओं के लिए एक आश्रम खोला। ब्रिटिश सरकार से उन्हें परहेज था, इसलिए भारतीयों से ही धन इकट्ठा कर वह अपना आश्रम चलाती थीं।

एक बार वे किसी अमीर सेठ के पास चंदा मांगने गईं, जो बेहद कंजूस था। सेठ ने इनकार कर दिया, लेकिन भगिनी ने हार नहीं मानी और वहीं रुककर बार-बार चंदे की मांग करती रहीं। अंतत: क्रोध में अपना संतुलन खोते हुए कंजूस सेठ ने भगिनी को थप्पड़ मार दिया। वह थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रहीं, फिर बोलीं, यह तो आपने मुझे दिया, अब इन अनाथ बालिकाओं के लिए भी तो कुछ दीजिए। सेठ को हाथ चलाने का पहले से ही पछतावा हो रहा था, भगिनी की बातों से वह आत्मग्लानि से भर गया। अपने पाप के परिहार के लिए वह घर से चंदे की रकम ले आया और अपने बर्ताव के लिए माफी मांगते हुए भगिनी को रकम सौंप दी। सेवा कार्य के लिए ऐसी निष्ठा और निरहंकारिता के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

१८६) क्या मांगा ?- स्वामी विवेकानंद के पिता किसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो गए। स्वामी जी भी उन्हें देखने अपने घर गए। एक संबंधी ने कहा, तुम्हें तो काली मां का साक्षात्कार हो चुका है। उनसे प्रार्थना कर इन्हें रोग से छुटकारा दिला सकते हो। स्वामी जी मंदिर में वापस लौटे। उन्होंने गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस से प्रार्थना की, आप काली मां से प्रार्थना कर पिताजी को रोगमुक्त कराने की कृपा करें। परमहंस जी ने कहा, तू स्वयं काली मां से प्रार्थना कर। विवेकानंद जी काली के विग्रह के समक्ष पहुंचे। ध्यान लगाकर बैठ गए। उन्होंने पहले की तरह प्रार्थना की, मां मुझे शक्ति दो, ज्ञान दो,

दरिद्रनारायण की सेवा करने का सामर्थ्य दो।

वह अपने पिता को रोगमुक्त करने की प्रार्थना नहीं कर पाए। परमहंस जी ने उन्हें तीन बार अंदर कमरे में भेजा, किंतु हर बार वह भक्ति व विवेक मांग कर ही वापस लौट आए। परमहंस जी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, वत्स, मैं जानता था कि तुम मां से कोई सांसारिक वस्तु मांग ही नहीं सकते। तुम्हारा जन्म ही भक्ति और दरिद्रनारायण की सेवा के लिए हुआ है।

१८७) वाणी का अपव्यय- अमेरिका में स्वामी विवेकानंद रेल से सफर कर रहे थे। उनके पास बैठे दो युवक स्वामीजी को अंग्रेजी में लगातार अपशब्द कह रहे थे और उनका उपहास उड़ा रहे थे। स्वामीजी उनकी बातों को अनसुना कर एक किताब पढ़ने में मशगूल रहे। गंतव्य आने पर विवेकानंद ने जब कुली को अंग्रेजी में सामान उठाने को कहा तो युवक घबरा गए। वे समझ रहे थे कि वे जिस व्यक्ति की हंसी उड़ा रहे थे, उसे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं होगा।

कुछ-कुछ विस्मित उनमें से एक युवक स्वामीजी के पास आकर बोला- आप अंग्रेजी जानते हैं, फिर भी इतनी देर तक हमारी आलोचना सुनते रहे और उस पर कुछ नहीं कहा ? ऐसा क्यों ? हम आपका मजाक उड़ा रहे थे।

विवेकानंद बोले- अपशब्द कहने पर वाणी का व्यर्थ अपव्यय होता है और ऊर्जा नष्ट होती है और मैं ऊर्जा नष्ट नहीं करना चाहता था।

१८८) पापी का उद्धार- ईसा मसीह ने एक वेश्या का भोजन का निमंत्रण स्वीकार किया और उसके घर चल पड़े। उनके शिष्य भी साथ थे। चारों ओर कानाफूसी होने लगी। यह कैसा भगवान का बेटा है जो एक पापिनी के घर बेझिझक चला जा रहा है। शिष्यों में धनाढ्य और मुखर सिमोन से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया, उद्धार करना है तो सज्जन ही क्या कम हैं जो आप दुर्जनों के घर जाते हैं और बदनामी सहते हैं। ईसा ने पलटकर पूछा, सिमोन, यदि तुम चिकित्सक होते तो जुकाम पीड़ित या किसी हथियार से घायल व्यक्ति में किसे प्राथमिकता देते? सिमोन ने कहा कि वह घायल व्यक्ति का पहले इलाज करता। इस पर ईसा बोले, इसी तरह मैं अधिक पापी को कम पापी से पहले सुधारना चाहता हूँ। हमें पापी से नहीं, पाप से घृणा करनी चाहिए। हम ही यदि पापी लोगों को गले नहीं लगाएंगे तो उन्हें सुधरने का मौका कहां से मिलेगा। सभी शिष्यों को यह बात समझ में आ गई। वे उत्साहपूर्वक वेश्या के घर भोजन करने चले।

१८९) स्वामी विवेकानन्द ने अपने बिरजानंद और प्रकाशनानंद नामक दो शिष्यों को धर्म प्रचार के कार्य के लिए पूर्व बंगाल जाने का निर्देश दिया। दोनों शिष्य इसके लिए तैयार नहीं थे। कुछ समय और स्वामीजी के सानिध्य में रह कर वे अपने ज्ञान और साधना को परवान चढ़ाना चाहते थे। दोनों बोले- आपकी आज्ञा सिर आंखों पर, लेकिन स्वामीजी हमें लगता है कि हम खुद अभी भी अज्ञानी हैं। लोगों को हम क्या बताएंगे ? विवेकानंद ने उनसे कहा- जाकर लोगों को यही बता दो कि तुम कुछ नहीं जानते। यह सबसे बड़ा पाठ होगा। जो अपनी मुक्ति की कामना करता है उसे कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। चिंता हमेशा दूसरे की मुक्ति की करो। यही संन्यासी का लक्षण है।

१९०) श्रद्धा और विश्वास- एकबार स्वामी विवेकानंद विदेश यात्रा पर गए हुए थे। भ्रमण के दौरान उनकी मुलाकात एक संत से हुई जो अपने इलाके में काफी प्रसिद्ध थे। संत का बहुत बड़ा आश्रम था। उस आश्रम में कई शिष्य थे और संत के कमरे के बाहर उनकी बड़ी फोटो लगी हुई थी। संत के साथ विवेकानंद कई मुद्दों पर चर्चा करने लगे। बातचीत के दौरान विदेशी संत ने कहा, स्वामीजी आपके देश में कितना आडंबर है कि वहां के लोग पत्थर की मूर्ति की पूजा करते हैं। जब भगवान कण-कण में हैं तो फिर पत्थर की मूर्ति की पूजा क्यों ? इसे ढकोसला ही तो कहा जाएगा।

स्वामी विवेकानंद कुछ देर तक कुछ सोचते रहे। उनके अगल-बगल बैठकर संत के शिष्य दोनों की बातें सुन रहे थे।

अचानक स्वामी जी ने एक शिष्य से कहा, क्या तमाशा बना रखा है। आपके गुरु आपके सामने बैठे हैं फिर भी उनकी फोटो यहां रखी हुई है। इसे फेंको यहां से। और जैसे ही स्वामी जी ने फोटो फेंकने के लिए उस पर हाथ लगाया, उनके बगल में खड़ा एक शिष्य उनका हाथ पकड़कर बोला, आपने हमारे गुरु का अपमान किया है। क्या आपके देश में संतों का इसी तरह अपमान किया जाता है ?

विवेकानंद जी मुस्कराकर बोले, नहीं, हमारे देश में संतों की उपासना की जाती है। उनके चरण रज को लोग अमृत समझकर पीते हैं। मैं तो आपके गुरु के प्रश्न का जवाब दे रहा था। फिर वह संत से बोले, देख लिया आपने, आपके शिष्य आपकी फोटो का अनादर होते देखना नहीं चाहते क्योंकि आपकी फोटो में इन लोगों की श्रद्धा है जबकि सच यह है कि यह फोटो आपकी आकृति है। लेकिन इसमें आप दिखाई पड़ते हैं। उसी तरह भगवान कण-कण में विराजमान हैं लेकिन जो लोग मूर्ति पूजा करते हैं, उन्हें भगवान उसी में दिखाई पड़ते हैं। यह श्रद्धा ओर विश्वास है कि हमारे यहां के लोग भगवान को कहीं भी खोज लेते हैं पत्थर की मूर्ति में और पीपल के पेड़ में भी। इस पर संत और उनके शिष्य निरुत्तर हो गए।

१९१) स्वामी विवेकानन्द से एक बार एक जापानी ने पूछा, भारत में गीता, रामायण, वेद, उपनिषद का इतना ऊँचा दर्शन है, फिर भी वहाँ के लोग पराधीन और निर्धन क्यों हैं ? इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया, बंदूक बहुत अच्छी होते हुए भी यदि कोई उसे चलाना न जाने तो उसे सैनिक का ओहदा नहीं मिल सकता है। इसी प्रकार भारत का दर्शन तो ऊँचा है, पर भारतीय उसे व्यवहार में लाना नहीं जानते। यही कारण है कि भारत में वेद-उपनिषद का इतना ऊंचा दर्शन होने के बावजूद वहाँ के लोग पराधीन और निर्धन है।

१९२) पाप और पुण्य- कोलकाता में एक बार प्लेग फैला। असंख्य लोग इसकी चपेट में आ गए। रोगियों की सेवा करनेवालों को यह भय सता रहा था कि कहीं वे भी इसकी चपेट में न आ जाएं। लेकिन विवेकानंद इससे जरा भी विचलित न थे। वह अपने शिष्यों के साथ रोगियों की सेवा में लगे रहे। वह सड़कों और नालियों की सफाई का काम भी नि:संकोच करते थे। उन्हें यह सब करते देख धर्मभीरू पंडितों से रहा न गया। वे एक दिन स्वामी जी से बोले, आप यह ठीक नहीं कर रहे हैं। आप तो यह भलीभांति जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को उसके पापों का फल भोगना पड़ता है। जिन्होंने अपने जीवन में पाप किए हैं, वही प्लेग से पीडित हो रहे हैं। भगवान उन्हें उनके पापों का दंड दे रहे हैं। आप उनकी सेवा कर भगवान के कार्य में व्यर्थ ही बाधक क्यों बन रहे हैं ?

यह सुन स्वामी जी ने उत्तर दिया, इसमें कोई शंका नहीं कि बुरे कर्म करने वाले को ही कष्ट सहना पड़ता है किन्तु कष्ट पाने वाले को जो कष्ट से मुक्त कराते हों उन्हें क्या पुण्य प्राप्त न होगा ? जिस प्रकार रोगियों के भाग्य में कष्ट पाना लिखा हुआ है उसी प्रकार हमारे भाग्य में उन्हें कष्टों से मुक्ति दिलाकर पुण्य प्राप्त करना लिखा हुआ है। इस प्रकार हम पुण्य प्राप्त कर रहे हैं न कि ईश्वर के कार्य मं बाधा डाल रहे हैं। यह सुनकर सारे पंडित चुपचाप खिसक गए।

१९३) शब्द महिमा- स्वामी विवेकानन्द अपने प्रवचन में भगवान के नाम की महत्ता बता रहे थे। एक तार्किक बोला शब्दों में क्या रखा है, उन्हें रटने से क्या लाभ ? विवेकानन्द ने उन्हें सप्रमाण समझाने के उद्देश्य से मूर्ख, जाहिल, नीच आदि अपशब्दों से सम्बोधित किया। तार्किक आग बबूला होकर बोला, आप जैसे संन्यासी के मुंह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते। आपके वचनों से मुझे बहुत चोट लगी है। स्वामीजी हंसते हुए बोले भाई। वे तो शब्द मात्र थे। शब्दों में क्या रखा है? मैंने कोई पत्थर तो नहीं मारे थे। सुननेवालों का समाधान हो गया कि जब अपशब्द क्रोध का कारण बन सकते हैं तो प्रिय शब्द आशीर्वाद नहीं दिलवा सकते क्या ?

१९४) अच्छा और सच्चा पाठक- एक बार स्वामी विवेकानंद मेरठ आए। वह अपने शिष्य अखंडानंद से लाइब्रेरी से पुस्तकें मंगवाते। रात में पढ़ते और सुबह वापस कर देते। एक बार विवेकानंद ने प्रसिद्ध विचारक एवं दार्शनिक सर जॉन लबाक की पुस्तक पढ़ने के लिए मंगाई। उन्होंने एक ही दिन में पूरी पुस्तक पढ़ ली। दूसरे दिन अखंडानंद जी बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ने के लिए ले जाते थे एवं दूसरे दिन पुन: जमा करवा देते थे। रोज-रोज किताबें निकालने और रखने से लाइब्रेरियन को तकलीफ होती थी।

लाइब्रेरियन ने अखंडानंद से पूछा- महाशय, आप पुस्तकें पढ़ते हैं या सिर्फ उनके पन्ने उलटकर ही वापस कर देते हैं ? अखंडानंद मुस्कुरा कर रह गए। जब यह बात स्वामी विवेकानंद को पता चली, तब वे स्वयं पुस्तकालय गए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक लाइब्रेरियन से कहा, अखंडानंद प्रतिदिन मेरे लिए पुस्तक लातें हैं। मैं पुस्तकें पूरी की पूरी पढ़कर दूसरे दिन उन्हें जमा कराने के लिए भेज देता हूं। क्या आपको कोई आपत्ति हैं ? लाइब्रेरियन बोला, स्वामी जी सर जॉन लबाक जैसे गहन तत्व चिंतक की पुस्तक एक ही दिन में कैसे पढ़ी जा सकती हैं ? विवेकानंद जी बोले, मैंने एक ही दिन में पूरी पुस्तक पढ़ डाली है फिर भी आपको संदेह हो तो पुस्तक में से चाहे जिस विषय पर मुझसे कोई प्रश्न पूछ सकते है। लाइब्रेरियन विवेकानंद से सर जॉन लबाक की पुस्तक में से एक के बाद एक प्रश्न पूछने लगा, विवेकानंद ने सभी प्रश्नों के उत्तर तो दिए ही साथ ही यह भी बताया कि प्रश्न का उत्तर पुस्तक में कहां, किस पृष्ठ पर हैं? लाइब्रेरियन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह विवेकानंद से क्षमा मांगने लगा। उसने ऐसी स्मरण शक्ति का रहस्य पूछा। विवेकानंद ने कहा, पढ़ने के लिए जरूरी है मन की एकाग्रता।

१९५) क्रोध क्यों करूँ ? - बात बहुत पुरानी है। स्वामी विवेकानन्द कलकत्ता से रेल से जगन्नाथपुरी जा रहे थे। जिस डिब्बे में वे बैठे थे उसी में दो अंग्रेज अफसर भी थे। उन्होंने स्वामीजी के गेरुआ लिबास को देखकर भारतीय संत महात्माओं के बारे में अंग्रेजी भाषा में फूहड़ टिप्पणियाँ करनी शुरु कर दीं और उनकी खिल्ली उड़ा रहे थे। स्वामी जी यह सब सुनकर भी चुपचाप बैठे थे। तभी गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी और स्वामी जी ने टिकट चेकर से अंग्रेजी में कुछ बातचीत की।

टिकट चेकर डिब्बे में आया तो स्वामी जी ने उससे अंग्रेजी में बातें की। दोनों अंग्रेज स्वामी जी को बेपढ़ा-लिखा साधु समझ रहे थे। उन्हें फर्राटेदार अंग्रेजी में बोलता देखकर वे दंग रह गए। गाड़ी चलने पर उनमें से एक ने कहा, अरे, आप अंग्रेजी जानते हैं। तब तो आप हमारी बातें समझ रहे होंगे। फिर भी आपने हमारी बात का बुरा क्यों नहीं माना ? उनमें से एक ने स्वामी जी से पूछा, स्वामी जी हम आपके बारे में वे भारतीय साधुओं के बारे में आलोचना कर रहे थे। आपको क्रोध क्यों नहीं आया ? आप चुप क्यों रहे? स्वामी विवेकानन्द जी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, ऐसी बातें मैं पहले भी कई बार सुन चुका हूं। मैं इस तरह की बेकार बातों पर ध्यान नहीं देता। आप जैसे नासमझ लोग प्राय: मुझे मिलते रहते हैं, जो हिंदू धर्म के रहस्य से अनजान होने के कारण अनर्गल आरोप लगाते रहते हैं। ऐसे नासमझ लोगों की बातों को मैं गंभीरतापूर्वक नहीं लेता हूँ। नासमझ लोगों पर क्रोध कर मैं अपनी शांति खराब नहीं करना चाहता। दोनों अंग्रेज स्वामी जी की बातों को सुनकर चुप हो गए।

१९६) मन की भावना- स्वामी विवेकानंद अपने शिष्यों के साथ पैदल भ्रमण को निकले। निर्माणाधीन मंदिर के पास उनकी दृष्टि तीन मजदूरों पर पड़ी। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पहले से पूछा- क्यों भाई, क्या कर रहे हो ?

उसने उत्तर दिया- गधे की तरह जुटे हुए हैं। देख नहीं रहे हो। दिनभर काम करने पर थोड़ा-बहुत मिल पाता है, पर इतने के लिए ठेकेदार मानो जान निकाल लेता है।

यही प्रश्न दूसरे से करने पर वह बोला- मंदिर बन रहा है। हमारी तो किस्मत में यही था कि मजूरी करें, सो कर रहे हैं।

तीसरे ने भाव भरे हृदय से उत्तर दिया- भगवान का घर बन रहा है। मुझे तो प्रसन्नता है कि मेरी पसीने की कुछ बूंदें भी इसमें लग रही हैं। जो भी मिलता है, उसी में मुझे खुशी है। गुजारा भी चल जाता है और प्रभु का काम भी हुआ जा रहा है।

स्वामीजी ने शिष्यों से कहा- यह अंतर है तीनों के काम करने के ढंग में। मंदिर तीनों बना रहे हैं, पर एक गधे की तरह मजदूरी में, दूसरा यंत्रवत भाग्य के नाम पर दुहाई देता हुआ व तीसरा समर्पण भाव से काम में जुटा है। यही अंतर इनके काम की गुणवत्ता में भी देखा जा सकता है। क्या कार्य किया जा रहा है, यह महत्वपूर्ण नहीं, उसे किस उद्देश्य से एवं किस भावना से किया जा रहा है, यह मायने रखते है।

१९७) निरुत्तर- स्वामी विवेकानंद को एक अंग्रेज ने बातचीत के क्रम में व्यंग्य करते हुए कहा, हिन्दू पत्थर को भगवान मान कर पूजा करते हैं, यह कैसा अन्धविश्वास है ? एक दिन स्वामीजी उसके घर पहुँचे और दीवार पर टँगी तस्वीर को दिखा कर चिढ़ाते हुए कहा, यह कागज का टुकड़ा क्यों टाँगे हुए हो ? इसे हटा दो।

वह अंग्रेज चकित होते हुए बोला, यह आप क्या बक रहे हो ? यह तो मेरे पिता की तस्वीर है।

स्वामी विवेकानंद ने पहले के ही अंदाज में कहा, यह कागज आपके पिता कैसे हो सकते हैं ?

उसने स्पष्ट करते हुए कहा, स्वामीजी, यह कागज नहीं, इसमें छपा फोटो मेरे पिताजी का है।

स्वामीजी ने समझाते हुए कहा, बंधु, यही न समझने की बात है, हिन्दू भी पत्थर को नहीं, बल्कि उसमें प्रतिष्ठापित भगवान् को पूजते हैं।

१९८) नींव मजबूत है- स्वामी विवेकानन्द लंदन के बड़े गिरजे घर में भाषण देने हेतु मंच पर पहुंचे। तभी एक अंग्रेज ने उनका ध्यान एक ओर आकृष्ट कराया। वे यह देखकर हतप्रभ रह गए कि गिरजा घर में ईसा मसीह के चित्र के नीचे अनेक धर्म ग्रंथ रखे हैं, लेकिन सबसे नीचे गीता रखी है। स्वामीजी उस अंग्रेज की ओर मुखातिब होकर कहने लगे, नींव मजबूत है।

१९९) पावन तीर्थ- स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों का भ्रमण किया। भ्रमण करते हुए उन्हें काफी वर्ष बीत गये। देश की याद जब स्वामीजी को विह्वल करने लगी, तो उन्होंने भारत लौटने का निर्णय किया। तब एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा, स्वामीजी। पाश्चात्य देशों में इतने साल गुजारने के बाद अब भारतवर्ष आपको कैसा लगेगा ?

भावुक होकर स्वामीजी ने उत्तर दिया, पाश्चात्य देशों में आने के पूर्व मैं भारत से प्यार करता था, पर अब तो भारत की हवा और मिट्टी तक मेरे लिए पवित्र है। भारतवर्ष अब मेरे लिए परम पावन तीर्थ है।

२००) जेन्टलमैन- स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गए, एक दिन वह वहां की एक भीड़भाड़ वाली सड़क पर चल रहे थे। इसी बीच एक अमेरिकन दम्पति उनके पास से गुजरे। उस समय स्वामी जी बिना सिला गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे, जो अमेरिकी दंपत्ति को कुछ अटपटा लगा। तभी महिला ने अपने पति से कहा, यह आदमी कोई जेन्टलमैन नहीं दिखता।

स्वामी विवेकानन्द ने उनकी यह बात सुन ली, वह उस दम्पत्ति के करीब गए और बड़े ही शांत भाव से कहा, मैडम, क्षमा कीजिए, आपके देश में टेलर किसी आदमी को जेन्टलमैन बनाता है, मगर मेरे देश में करेक्टर (चरित्र) आदमी को जेन्टलमैन बनाता है।

२०१) हंस और उल्लू- एक बार स्वामी विवेकानंद अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में व्याख्यान दे रहे थें उसमें बड़ी संख्या में छात्र, अध्यापक और विभिन्न विषयों के विद्वान मौजूद थे, जो बड़ी उत्सुकता से स्वामीजी को सुन रहे थे। स्वामीजी के भाषण का मुख्य विषय था- भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्म का रहस्य।

स्वामीजी ने कहा कि भारतीय संस्कृति तथा धर्म के सभी तत्वों का वैज्ञानिक महत्व भी है, इसलिए संस्कृति तथा

अध्यात्म को वैज्ञानिकता से जोड़ कर देखा जाता है। यह सुनकर एक अमेरिकी व्यक्ति उनके भाषण में दखल देते हुए बीच में उठकर बोला, वास्तव में आपकी संस्कृति महान है तभी तो आपके यहां देवी लक्ष्मी का वाहन उल्लू बताया गया है, जिसे दिन में दिखाई भी नहीं देता। अब जरा बताइए कि उल्लू का देवी लक्ष्मी का वाहन बताने के पीछे क्या वैज्ञानिक तर्क है?

उस व्यक्ति का प्रश्न सुनकर स्वामीजी अत्यंत सहजतापूर्वक बोले, पश्चिमी देशों की तरह भारत में धन को ही सब कुछ नहीं माना गया है। इसलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने चेतावनी दी है कि लक्ष्मी रूपी धन के असीमित मात्रा में पास आते ही मनुष्य आंखें होते हुए भी उल्लू की तरह अंधा हो जाता है। इसी का संकेत देने के लिए लक्ष्मी का वाहन उल्लू बताया गया है और इसके पीछे यही वैज्ञानिक तर्क है। स्वामीजी के इस जवाब पर सभी वाह-वाह कर उठे।

इसके बाद स्वामी जी फिर बोले, सरस्वती ज्ञान और विज्ञान की प्रतीक है। यह मानव का विवेक जागृत करनेवाली देवी है इसलिए सरस्वती का वाहन हंस बताया गया है, जो नीर-क्षीर विवेक का प्रतीक है। इसलिए अब आप यह भलीभांति समझ गए होंगे कि संस्कृति व धर्म के सभी तत्वों के पीछे वैज्ञानिक तर्क छिपे हुए हैं। वहां उपस्थित सभी लोगों के साथ ही वह व्यक्ति भी देवी-देवताओं के वाहनों की यह अवधारणा सुनकर स्वामी जी के प्रति नतमस्तक हो गया और उस दिन से भारतीय संस्कृति का प्रशंसक बन गया।

२०२) सम्मोहन की शक्ति - स्वामी विवेकानंद विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने हेतु अमेरिका के शिकागो शहर गए। स्प्रिंग फील्ड के खुले मैदान में उनका प्रवचन हो रहा था। तभी कुछ श्रोताओं ने श्रीकृष्ण लीला, जिसमें बांसुरी की मधुर ध्वनि पर गोपियों के बेसुध होने का वर्णन है, पर सवाल उठाया व स्वामीजी से पूछा कि क्या यह संभव है? विवेकानंद मुस्कुराए और कुछ कदम पीछे गए। ओजस्वी प्रवचन का प्रवाह इतना सम्मोहित करनेवाला था कि श्रोता भी दो कदम पीछे हट गए। प्रवचन चलता रहा, विवेकानंद रोचक प्रसंग सुनाते-सुनाते कुछ पीछे हट जाते। श्रोता इतने मंत्रमुग्ध थे कि वे भी उनका अनुसरण करते रहे और पीछे जाते रहे। चार घंटे बाद जब प्रवचन समाप्त हुआ, तो विवेकानंद ने लोगों को बतलाया कि वे अपने वास्तविक स्थान से आधा मील दूर पहुंच चुके हैं और उन्हें पता भी नहीं चला। स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए कहा, मुझ जैसे साधारण मनुष्य की वाणी से आप इतने सम्मोहित हो गए कि आपको अपनी वस्तुस्थिति का ध्यान ही न रहा, तो त्रिलोक को मधुर वाणी से मोहित करने वाले जगदीश्वर श्रीकृष्ण के बारे में इस प्रकार के आक्षेप कहां तक उचित हैं?

२०३) वास्तविक ज्ञान- एक बार स्वामी विवेकानंद अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के साथ आश्रम में शास्त्रों पर चर्चा कर रहे थे। चर्चा के दौरान परमहंस ने कहा, तुम्हारी याददाश्त बहुत तेज है। तुम एक बार जिस चीज को पढ़ लेते हो वह तुम्हें कंठस्थ हो जाता है। अपनी प्रशंसा सुनकर विवेकानंद बोले, मगर गुरुवर, एक बात समझ में नहीं आती कि बहुत से संत, विद्वान और पुजारी वेद-पुराणों का अध्ययन करते पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं फिर भी उनका ज्ञान अधूरा रह जाता है। उन्हें ज्ञान लाभ क्यों नहीं मिलता?

बहुत से पंडित आदि अनेक वेद शास्त्रों का स्वाध्याय व पाठ करते है और इसी प्रक्रिया में संपूर्ण जीवन लगा देते है। इतना करने पर भी उन्हें ज्ञान क्यों नहीं हो पाता ?

परमहंस ने कुछ सोच कर कहा, मेरे साथ चलो आश्रम के बाहर। मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर वहीं दूंगा। दोनों बाहर आ गए। परमहंस ने कहा, यहां तुम्हें कौन सी चीज सबसे अच्छी लग रही हैं। परमहंस ने फिर कहा, देखो, बहुत ऊंचाई पर आकाश में कुछ चील और गिद्ध उड़ रहे हैं। क्या बता सकते हो, उन्हें यहां की कौन सी चीज अच्छी लगती होगी? परमहंस ने हंसते हुए सरल स्वभाव में बोले, तुमने देखा होगा कि चील गिद्ध जैसे पक्षी काफी ऊँचाई पर उड़ते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि पृथ्वी

पर पड़े सड़े मांस या मरे हुए पशुओं पर रहती है। उन्हें आकाश से विचरते हुए पृथ्वी की सुंदर चीजें नहीं दिखाई देती।

विवेकानंद को चुप देख परमहंस ने कहा, जिन्हें तुम सुंदर समझते हो, वे ही दूसरों के लिए असुंदर हो सकती है और जिसे तुम घृणित मानते हो वही दूसरों के लिए प्रिय हो सकती है। यही प्रकृति का नियम है। आकाश में उड़ रहे चील और गिद्धों की दृष्टि आश्रम के सजीव वातावरण पर नहीं बल्कि अपने लिए अधिक से अधिक सुख-सुविधा जुटाने पर टिकी होती है। जिनका मन हमेशा सुविधाओं में लगा रहेगा उनका ज्ञान भी अधूरा ही रहेगा। ज्ञान तो इंद्रियों को वश में रखकर एकाग्र चित्त से मनन और अध्ययन करने से मिलता है।

ऐसे ही वेद-शास्त्रों एवं ग्रंथों के पाठ और स्वाध्याय का लाभ कैसे होगा, जबकि उनका मन हमेशा सांसारिक वस्तुओं और सुख वैभव की ओर लगा रहता है। विवेकानंद को उनके प्रश्न का उत्तर मिल गया।

२०४) साहसी बालक - कलकत्ता की एक सड़क पर घोड़ागाड़ी दौड़ी जा रही थी। उस घोड़ागाड़ी में एक स्त्री अपने बच्चे के पास बैठी हुई थी। अचानक घोड़ा बिदक गया। कोचवान छिटककर दूर जा गिरा। घोड़ागाड़ी में बैठी स्त्री सहायता के लिए चीख-पुकार मचाने लगी। वह कलकत्ता की भीड़ भरी सड़क थी और उस समय भी लोगों के टक-के-टट सड़कों के दोनों ओर जुड़े थे। पर किसीकी भी इतनी हिम्मत नहीं हुई कि आगे बढ़कर घोड़े को काबू कर ले। तभी अचानक भीड़ को तेजी से चीरता बारह-तेरह वर्ष का एक लड़का सड़क पर आया और उछलकर घोड़े की पीठ पर बैठने की कोशिश करने लगा। पर घोड़े ने उसे गिरा दिया। उसके हाथ, पैर, घुटने रगड़ खाकर बुरी तरह छिल गए। वह खून से लथपथ हो उठा, फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने बार-बार कोशिश की और अंत में उसे सफलता मिली। वह छलाँग मारकर घोड़े पर सवार हो गया और उसे काबू करने में सफल हो गया। तब कहीं घोड़ागाड़ी पर बैठी स्त्री और बच्चे की जान में जान आई। क्या तुम जानते हो, यह साहसी बालक कौन था? यह था नरेंद्र, जो बड़ा होकर स्वामी विवेकानंद के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। साहस प्रगति की निशानी है।

२०५) परोपकार का पाठ - स्वामी विवेकानंद ने आम आदमी का दुख-दर्द जानने के लिए देश-भ्रमण किया। उनके साथ उनके कई शिष्य भी थे। स्वामी जी ने भारत भर में इधर-उधर घूमते हुए तरह-तरह के लोगों से भेंट की। कभी वह किसी भिखारी के पास रुक जाते तो कभी किसी दुखी परिवार के साथ। उन्होंने राजाओं का अतिथि बनकर भी देखा और मंत्रियों से भी बातचीत की। वह जिससे भी मिलते, उसके जीवन के बारे में पूछते और उसे उलझनों से निकालने की कोशिश करते। वह सबको मानव सेवा में जुट जाने का संदेश देते थे। एक बार एक सेठ से उन्होंने कहा, मित्र एक पेड़ पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी फल खा रहा है और दूसरा फल खाने वाले को देख रहा है। जानते हो, खाने वाला पक्षी कौन है- जीव। और देखनेवाला कौन है- ईश्वर। तुम यह क्यों सोचते हो कि तुम्हारे कार्यों को कोई नहीं देख रहा है। परमात्मा की पूर्ण दृष्टि सब पर रहती है। तुम अकेले मत खाओ। दूसरों को खिलाकर खाओ। उस समय वह सेठ कुछ समझ नहीं सका, लेकिन जब वह घर पहुंचा तो उसे स्वामी जी की बात याद आई। वह अपनी मेज पर खाना खाने जा रहा था कि उसके कान में पड़ोसी की आवाज आई। वह चौंक गया। वह पड़ोसी के घर की ओर दौड़ा। पता चला कि कि दो दिनों से उसके बच्चे भूखे है। उसकी पत्नी बच्चों को दिलासा दे रही थी। वह समझ गया कि स्वामी जी के कहने का मतलब क्या था। उसने पड़ोसी के घर अन्न-वस्त्र आदि भेजे और उससे क्षमा मांगी। दूसरे दिन जब वह स्वामी जी से मिला तो उसके भीतर गहरा संतोष था। स्वामी जी ने उसे देखते ही कहा, मित्र, तुमने जो कुछ किया है उससे ईश्वर संतुष्ट है। तुम्हारा कल्याण हो। सेठ विवेकानंद के चरणों पर गिर पड़ा। उसने अपने आंसुओं से उनके पांव भिगो दिए। विवेकानंद ने इसी तरह अनेक लोगों की जीवन दृष्टि बदल दी थी।

२०६) ध्यान की गहराई - बात उस समय की है जब स्वामी विवेकानंद शिकागो के व्याख्यान के बाद अमेरिका में प्रसिद्ध हो चले थे। वहां वह घूम-घूमकर वेदांत दर्शन पर प्रवचन दिया करते थे। इस सिलसिले में उन्हें अमेरिका के उन अंदरूनी इलाकों में भी जाना होता था, जहां धर्मांध और संकीर्ण विचारधारा वाले लोग रहते थे। एक बार स्वामीजी को ऐसे ही एक कस्बे में व्याख्यान के लिए बुलाया गया था। एक खुले मैदान में लकड़ी के बक्सों को जमाकर मंच तैयार किया गया था। स्वामीजी ने उस पर खड़े होकर वेदांत, योग और ध्यान पर व्याख्यान देना शुरू किया। बाहर से गुजरनेवाले लोग भी उनकी बातें सुनने लगे जिनमें कुछ चरवाहे भी थे। थोड़ी देर में ही उनमें से कुछ ने बंदूकें निकालीं और स्वामीजी की ओर निशाना दागने लगे। कोई गोली उनके कान के पास से गुजरती तो कोई पांव के पास से। नीचे रखे कुछ बक्से तो छलनी हो गए थे। लेकिन इस सबके बावजूद स्वामीजी का व्याख्यान पहले की तरह धाराप्रवाह चलता रहा। न वह थमे न उनकी आवाज कांपी। अब चरवाहे भी वहां ठहर गए। व्याख्यान के बाद वे स्वामीजी से बोले, आपके जैसा व्यक्ति हमने पहले नहीं देखा। हमारी गोलीबारी के बीच आपका भाषण ऐसे चलता रहा जैसे कुछ हुआ ही न हो। अगर हमारा निशाना चूकता तो आपकी जान आफत में पड़ सकती थी। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि जब वह व्याख्यान दे रहे थे, तब उन्हें बाहरी वातावरण का ज्ञान ही न था। उनका सारा चित्त वेदांत और ध्यान की उन गहराइयों में डूबा हुआ था। वे चरवाहे उनके प्रति नतमस्तक हो गए।

२०७) धर्म का सार- यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका में थे। वहां कई महत्त्वपूर्ण जगहों पर उन्होंने व्याख्यान दिए। उनके व्याख्यानों का वहां जबर्दस्त असर हुआ। लोग स्वामीजी को सुनने और उनसे धर्म के विषय में अधिक अधिक से जानने को उत्सुक हो उठे। उनके धर्म संबंधी विचारों से प्रभावित होकर एक दिन एक अमेरिकी प्रोफेसर उनके पास पहुंचे। उन्होंने स्वामी जी को प्रणाम कर कहा, स्वामीजी, आप मुझे अपने हिंदू धर्म में दीक्षित करने की कृपा करें। इस पर स्वामी जी बोले, मैं यहां धर्म प्रचार के लिए आया हूं न कि धर्म परिवर्तन के लिए। मैं अमेरिकी धर्म-प्रचारकों को यह संदेश देने आया हूं कि वे धर्म परिवर्तन के अभियान को बंद कर प्रत्येक धर्म के लोगों को बेहतर इंसान बनाने का प्रयास करें। यही धर्म की सार्थकता है। यही सभी धर्मों का मकसद भी है। हिंदू संस्कृति विश्व बंधुत्व का संदेश देती है, मानवता का सबसे बड़ा धर्म मानती है। वह प्रोफेसर उनकी बातों से अभिभूत हो गए और बोले, स्वामीजी कृपया इस बारे में और विस्तार से कहिए। प्रोफेसर की यह बात सुनकर स्वामीजी ने कहा, महाशय, इस पृथ्वी पर सबसे पहले मानव का आगमन हुआ था। उस समय कहीं कोई धर्म, जाति या भाषा न थी। मानव ने अपनी सुविधानुसार अपनी-अपनी भाषाओं, धर्म तथा जाति का निर्माण किया और अपने मुख्य उद्देश्य से भटक गया। यही कारण है कि समाज में तरह-तरह की विसंगतियां आ गई हैं। लोग आपस में विभाजित नजर आते हैं। इसलिए मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूं कि तुम अपना धर्म पालन करते हुए अच्छे ईसाई बनो। हर धर्म का सार मानवता के गुणों को विकसित करने में है इसलिए तुम भारत के ऋषियों-मुनियों के शाश्वत संदेशों का लाभ उठाओ और उन्हें अपने जीवन में उतारो। वह प्रोफेसर मंत्रमुग्ध यह सब सुन रहे थे। स्वामीजी के प्रति उनकी आस्था और बढ़ गई।

२०८) वेदांत का मर्म- उन दिनों स्वामी विवेकानंद पैरिस में थे। वहां इटालियन डचेस (राजकुमारी) ने उनसे अनुरोध किया कि वह उन्हें आसपास के इलाके में घुमाना चाहती हैं। दोनों घोड़ागाड़ी से घूमने निकले। चलते हुए वे शहर से बाहर आ गए। कोचवान ने एक जगह गाड़ी रोकी और सड़क किनारे के एक पार्क में चला गया। वहां एक बूढ़ी नौकरानी एक लड़का-लड़की का हाथ पकड़ कर बैठी थी। कोचवान ने उन बच्चों को प्यार किया। बच्चों से कुछ देर बात करने के बाद वह फिर से घोड़ागाड़ी चलाने लगा। डचेस को यह सब थोड़ा अजीब लगा। उन दिनों वहां अमीर-गरीब के बीच बड़ा कठोर विभाजन था।

वे बच्चे अभिजात लग रहे थे और कोचवान का इस तरह उन्हें प्यार करना डचेस को खटका। डचेस ने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। कोचवान ने डचेस से कहा, वे मेरे बच्चे हैं। मैं पैरिस के सबसे बड़े बैंक का मैनेजर था। मैंने इतना घाटा उठाया कि उसे चुकाने में कई साल लग जाएंगे। अपनी पत्नी और बच्चों को मैंने इस जगह पर एक किराए के मकान में रखा है। एक बूढ़ी औरत उनकी देखभाल करती है। कुछ रकम जुटाकर मैंने यह घोड़ागाड़ी ले ली और अब इसे चलाकर अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूं। कर्ज चुका देने के बाद मैं फिर से एक बैंक खोलूंगा और उसे विकसित करूंगा। उसका आत्मविश्वास देखकर विवेकानंद बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने डचेस से कहा, इसे वेदांत का मर्म मालूम है। अपनी हैसियत से गिरने के बाद भी अपने व्यक्तित्व और कर्म पर उसकी आस्था डिगी नहीं है। यह अपने मकसद में अवश्य सफल होगा।

२०९) निर्भीक बालक- एक बगीचे में कुछ लड़के आंखमिचौनी खेल रहे थे। एक लड़का वहां एक आम के पेड़ पर चढ़कर घने पत्तों में छिप गया। बाग के माली को चिन्ता हुई कि वह पेड़ से आम न तोड़ ले और उस लड़के को देखकर कहीं दूसरे बच्चे भी पेड़ पर चढ़ गए तो सब कुछ बर्बाद कर देंगे। बच्चों को डराने के लिए उसने कहा, बच्चो। इस पेड़ के पास न जाओ, क्योंकि वहां एक ब्रह्मराक्षस रहता है, जो लड़कों को कच्चा चबाकर खा जाता है।

माली की बात सुन नरेन्द्र नामक एक बालक ने पूछा, ब्रह्मराक्षस कैसा होता है। माली ने उत्तर दिया, किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु के कारण वह राक्षस का रूप धारण कर लेता है। वह बहुत ही भयानक होता है। इस बात से डरकर सब बच्चे अपने घरों की ओर भाग गए, परन्तु नरेन्द्र वहीं डटा रहा। उसने माली से पूछा, क्या उसने ब्रह्मराक्षस को कभी अपनी आखों से देखा है ? नहीं, परन्तु मैंने सुन रखा है। माली ने जवाब दिया।

नरेन्द्र ने फिर प्रश्न किया, वह व्यक्ति कौन था और कैसे मरा जो अब ब्रह्मराक्षस बन कर तंग कर रहा है। क्या वह पेड़ के फल भी खा जाता है ? माली कुछ सकपका कर बोला, तुम्हारी बात का उत्तर तो केवल भगवान दे सकता है या फिर स्वयं ब्रह्मराक्षस। यह कहकर वह अपनी कुटिया में चला गया। जब नरेन्द रात घिरने तक घर नहीं पहुंचा, तो उसके परिवार वालों को चिन्ता हुई। उन्होंने दूसरे बच्चों से नरेन्द्र के बारे में पूछा। तब वे बगीचे की ओर गए और आवाज लगाई, नरेन्द्र कहां हो?

आवाज आई, मैं इस पेड़ पर हूं।

इस अन्धेरी रात में तुम पेड़ पर क्या कर रहे हो ?

नरेन्द्र बोला, मैं ब्रह्मराक्षस का इन्तजार कर रहा हूं। मैं उसे देखना चाहता हूं। मैं जानना चाहता हूं कि वह मनुष्यों को क्यों सताता और खाता है ?

यही निडर बालक जो बाल्य काल में इतना जिज्ञासु था, बड़ा होकर विवेकानन्द के नाम से प्रख्यात हुआ।

२१०) दूसरे के कष्ट को पहचानो- एक बार कलकत्ता के कुछ छात्रगण वहां का किला फोर्ट विलियम देखने के लिए गए हुए थे। सहसा उनके साथी के शरीर में पीड़ा होने लगी। वह तुरंत सीढ़ियों पर बैठ गया। किसी ने उससे इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि उसके शरीर में बेहद वेदना सी हो रही है। उसके साथी उसकी इस बात पर विश्वास ही नहीं करते थे। उनका मानना था कि वह अभी तो उनके साथ ठीक-ठाक चल रहा था, हंस-खेल रहा था, फिर सहसा यह वेदना कैसी। इसलिए उसकी खिल्ली उड़ाते हुए वे किले पर चढ़ गए और उसे वहीं पर अकेला छोड़ दिया। ऊपर पहुंचने पर एक विद्यार्थी को संदेह हुआ कि कहीं उसे वास्तव में पीड़ा ही न हो रही हो। वह वहां से लौट आया। नीचे आकर उसने देखा कि वह विद्यार्थी मूर्छित पड़ा है। उसने उसके शरीर को स्पर्श किया तो देखा कि उसका शरीर तप रहा है। तब तक अन्य विद्यार्थी भी

वहां आ गए थे। किसी ने दौड़कर एक गाड़ी मंगाई। उसमें डाल कर उसको उसके घर पहुंचा दिया। फिर उसकी चिकित्सा होती रही। उसकी खिल्ली उड़ानेवाले छात्रों को बेहद खेद हुआ। जो विद्यार्थी रुग्ण था उस का नाम तो ज्ञात नहीं, किंतु जिसने उसको गाड़ी पर रखा था उसका नाम था नरेंद्र। जिसे संसार ने स्वामी विवेकानंद के नाम से जाना।

२११) यह कैसा आशीर्वाद ?- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने युवावस्था तक का समय निर्धनता के साथ व्यतीत किया। अनेक कष्ट झेलने के बाद जब उनकी ५० रु. मासिक की नौकरी लगी तो रिश्तेदारों ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि भगवान की दया से तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो गए। हमारी शुभकामनाएं है कि तुम सुख से रहते हुए आनन्द प्राप्त करो।

विद्यासागर बोले कि आपने मुझे आशीर्वाद दिया है या अभिशाप ? आपको कहना चाहिए था कि अपने बुरे दिनों को भूल मत जाना बेटा। दु:ख और अभावों से ग्रस्त लोगों का मार्गदर्शन करना। इसके बाद ईश्वरचंद्र विद्यासागर आजीवन गिरे हुए को उठाने तथा उठे हुए को आगे बढ़ाने में लगे रहे।

२१२)) विद्वान की शोभा - सन १८४४ की बात है जब ईश्वर चन्द्र विद्यासागर अपनी विद्वता, विनम्रता, परोपकार और सेवा भावना के लिए काफी लोकप्रिय थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्कृत भाषा के पंडित थे। उनकी ख्याति का कारण केवल उनका ज्ञान नहीं था, अपितु सदाचार भी था। वे अपनी विनम्रता, परोपकार, सत्यनिष्ठा आदि सद्गुणों के कारण सभी के प्रिय बन गए थे। एक बार कोलकाता के संस्कृत कॉलेज में व्याकरण पढ़ाने के लिए एक शिक्षक की आवश्यकता पड़ी। विद्यासागर संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। कॉलेज प्रबंधन ने सोचा कि उनसे बेहतर पात्र इस पद के लिए और कौन हो सकता है। उसने सीधे उन्हें नियुक्ति पत्र भिजवा दिया। प्रबंधन ने लिखा, आपसे अनुरोध किया जाता है कि आप संस्कृत अध्यापक का पद ग्रहण करें, इससे कॉलेज गौरवान्वित होगा और आपका आभारी रहेगा। इस पद के लिए विद्यासागर जी को अच्छे खासे वेतन का भी प्रस्ताव दिया गया था। विद्यासागर जहां कार्यरत थे वहां उनको पचास रुपए मासिक मिलते थे और इस नये स्थान का वेतन नब्बे रुपए था।

लेकिन विद्यासागर ने यह प्रस्ताव ठुकराते हुए जवाब दिया, आपको व्याकरण पढ़ाने वाले शिक्षक की आवश्यकता है। मेरे विचार से मेरे मित्र तारक वाचस्पति मुझसे अधिक विद्वान हैं। उनका चयन इस पद के लिए ज्यादा उपयुक्त रहेगा। आप उनकी नियुक्ति कर सकेंगे तो मुझे इस बात का संतोष रहेगा कि आपने योग्यतम व्यक्ति का चयन किया है। मुझे यह भी संतुष्टि रहेगी कि विद्यार्थियों को एक योग्य शिक्षक की प्रतिभा का लाभ मिलेगा। मेरा उस पद पर आना वाचस्पति की योग्यता का अपमान करना होगा।

यह पत्र पढ़कर कॉलेज की प्रबंधन समिति के सदस्य उनसे बेहद प्रभावित हुए। वे इस बात पर चर्चा करने लगे कि विद्यासागर जी का हृदय सचमुच कितना विशाल है। उन्हें अहं छू तक नहीं गया है। यही है असली बड़प्पन। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रस्ताव को कॉलेज की प्रबंध समिति ने खुशी से मान लिया। इसकी सूचना उन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को भी दी।

विद्यासागर जी के सुझाव पर तारक वाचस्पति की नियुक्ति की गई। मित्र की नियुक्ति पर विद्यासागर जी अत्यंत प्रसन्न हुए। कुछ दिनों बाद वाचस्पति को इस बात का पता चल गया कि उनकी नियुक्ति विद्यासागर जी के कारण हुई है। वह उनका आभार प्रकट करने उनके घर पहुंचे। दोनों मित्र आपस में गले मिले। वाचस्पति ने कहा, ईश्वर चंद्र, यह वाकई खुशी की बात है कि आज भी तुम्हारे जैसे विनम्र विद्वान हैं जो परोपकार का अवसर चूकते नहीं। विद्यासागर, तुम मनुष्य नहीं अपितु मनुष्य वेश में साक्षात देवता हो।

२१३) समानता का व्यवहार - एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर से मिलने उनका एक मित्र आया। वह काफी धनवान था और उनका प्रशंसक भी। उसने रास्ते में देखा कि विद्यासार जी एक छोटी सी दुकान के भीतर एक खाट पर बैठे बड़े मजे से बातें करने में व्यस्त हैं। उसने अपनी गाड़ी रोक ली और विद्यासागर जी को पुकारा। विद्यासागर अपने उस मित्र को देखते ही झट दुकान से निकल आए और उसे गले लगा लिया। फिर कुशलक्षेम पूछने लगे। दोनों बाते करते हुए आगे बढ़े। कुछ दूर चलने के बाद उस धनवान मित्र ने कहा, तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिए। तुम इस तरह छोटे लोगों के साथ क्यों बैठते हो ?

तो फिर तुम क्यों छोटे लोगों के साथ बैठते हो ? विद्यासागर ने मुस्कराते हुए अपनी ओर इशारा किया। मित्र ने उनकी बात पर खीझते हुए कहा, तुम तो मेरे मित्र हो और मित्रता में कोई अमीर-गरीब नहीं होता। विद्यासागर मुस्करा कर बोले, यही तो तुम्हें मैं समझाना चाहता हूँ कि मित्रों में कोई छोटा-बढा, अमीर या गरीब नहीं होता। जिस तरह तुम मेरे मित्र हो, उसी तरह वह भी मेरा मित्र है जिसके साथ मैं वहां बैठा हुआ था।

२१४) जैसे को तैसा- एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक अंग्रेज अधिकारी से मिलने गए। अंग्रेज अधिकारी न तो खड़ा हुआ, न ही उसने उन्हें बैठने को कहा। वह मेज पर दोनों पैर पसारकर बातें करता रहा। ईश्वरचंद्र उससे बातचीत कर चुपचाप लौट आये। कुछ दिनों बाद उसी अधिकारी को किसी काम के सिलसिले में उनसे मिलने के लिए उनके कार्यालय आना पड़ा। ईश्वरचंद्र ने भी उसी प्रकार पैर मेज पर रख लिए। उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। अंग्रेज ने उनके इस व्यवहार की उच्चाधिकारियों से शिकायत की। ऐसे व्यवहार के बारे में पूछे जाने पर ईश्वरचंद्र ने अफसोस करते हुए कहा- ओह। मैंने सोचा आप लोग इसी तरह से अतिथि सत्कार करते होंगे। मैं जब इनसे मिला था, तो इन्होंने मुझे ऐसी ही सीख दी थी, यह सुनकर अंग्रेज अधिकारी को अपनी गलती का अहसास हो गया।

२१५) गहने और मां का कर्ज - एक बालक नित्य विद्यालय पढ़ने जाता था। घर में उसकी माता थी। माँ अपने बेटे पर प्राण न्योछावर किए रहती थी, उसकी हर माँग पूरी करने में आनंद का अनुभव करती। पुत्र भी पढ़ने-लिखने में बड़ा तेज और परिश्रमी था। खेल के समय खेलता, लेकिन पढ़ने के समय का ध्यान रखता। १९ वीं शताब्दी की बात है। बंगाल के मेदिनीपुर जिले के एक वीर सिंह गांव के एक मकान में मां और बेटे के बीच वार्तालाप चल रहा था। ईश्वरचंद्र के मन में सवाल उठा कि गांव में सभी महिलाएं अच्छे-अच्छे गहने पहनती हैं, लेकिन उनकी मां कभी कोई गहना क्यों नहीं पहनती। एक दिन उन्होंने मां से बड़े प्यार से पूछा, मां, तुम्हें कौन-कौन से गहने अच्छे लगते हैं? बेटे ने कहा- मां। मेरी बहुत इच्छा है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ गहने बनवाऊँ।

एक दिन ईश्वरचंद्र विद्यासागर कहीं बाहर जाने को थे, तभी कोई याचक आ गया। वह देखने में बड़ा दीन-हीन लग रहा था। विद्यासागर भीतर गए और उन्होंने अपनी मां से कहा, मां, एक जरूरतमंद आदमी बाहर खड़ा है। हमें उसकी सहायता करनी चाहिए। मां ने कहा, तुम्हें तो मालूम है कि हमारे पास एक भी पैसा नहीं है। एक दिन दरवाजे पर किसी ने माई- ओ माई। पुकारते हुए आवाज लगाई तो बालक हाथ में पुस्तक पकड़े हुए द्वार पर गया, देखा कि एक फटेहाल बुढ़िया काँपते हाथ फैलाए खड़ी थी। उसने कहा, बेटा। कुछ भीख दे दे। बुढ़िया के मुँह से बेटा सुनकर वह भावुक हो गया। और माँ से आकर कहने लगा, माँ। एक बेचारी गरीब माँ मुझे बेटा कहकर कुछ माँग रही है। उस समय घर में कुछ खाने की चीज थी नहीं। इसलिए माँ ने कहा, बेटा। रोटी-भात तो कुछ बचा नहीं है, चाहे तो चावल दे दो। पर बालक हठ करते हुए कहा- माँ। चावल से क्या होगा?

विद्यासागर मां के कंगन की ओर देखते हुए बोले, मां, तुम यह कंगन मुझे दे दो। बड़ा होकर मैं तुम्हारा कर्ज उतार दूंगा।

मां हंसती हुई बोली, क्यों पूछ रहे हो बेटा? ईश्वर चंद्र ने कहा, जब मैं बड़ा होऊंगा न, तो तुम्हारे लिए ढेर सारे गहने बनवाऊँगा। माँ ने बालक का मन रखने के लिए सच में ही सोने का अपना वह कंगन कलाई से उतारा और कहा, लो, दे दो। बालक खुशी-खुशी वह कंगन उस भिखारिन को दे आया। भिखारिन को तो मानो एक खजाना ही मिल गया। कंगन बेचकर उसने परिवार के बच्चों के लिए अनाज, कपड़े आदि जुटा लिए। उसका पति अंधा था। उधर वह बालक पढ़-लिखकर बड़ा विद्वान हुआ, काफी नाम कमाया। एक दिन वह माँ से बोला, माँ। तुम अपने हाथ का नाप दे दो, मैं कंगन बनवा दूँ। उसे बचपन का अपना वचन याद था। पर माता ने कहा, उसकी चिंता छोड़। मैं इतनी बूढ़ी हो गई हूँ कि अब मुझे कंगन शोभा नहीं देंगे। यह सुनकर मां ने कहा, बेटा, मुझे बहुत सारे गहने तो नहीं चाहिए मगर तुम बनवा सको तो मेरे लिए तीन गहने अवश्य बनवाना। ईश्वरचंद्र ने पूछा, बताओ न मां, वे तीन गहने कौन-कौन हैं। मां बोली, बेटा, पहला गहना यह है कि तुम बड़े होकर गांव में एक स्कूल बनवाना। यहां एक भी स्कूल नहीं है। गांव के बच्चों को पढ़ने के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है। दूसरा गहना यह होगा कि गांव में एक दवाखाना बनवाना और तीसरा गहना यह होगा कि तुम यहां के अनाथ और गरीब बच्चों के लिए भोजन की व्यवस्था करना। मुझे यही गहने सबसे प्रिय हैं।

मां ने उत्तर दिया- बेटा। देश के अनेक लोग अज्ञान के गड्ढे में पड़े हैं। उनमें ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए जितने हो सके विद्यालय खुलवाओ। इस गांव में अच्छा स्कूल नहीं है, सो तुम यहां एक अच्छे विद्यालय की स्थापना कर दो। देश के अनेक भाई-बहन दवा के अभाव में बिना मौत के मर जाते हैं, उनके लिए अस्पताल खुलवाओ। बेरोजगारों के लिए रोजी-रोटी का प्रबंध करो। और गरीब तथा अनाथ बच्चों के रहने और खाने की व्यवस्था कर दो। यही मेरे लिए गहनों के समान हैं।

बेटे की आंखों से अश्रुधारा बह निकली और वह मां के चरणों में गिर पड़ा। उस मां का नाम था भगवती देवी और उनका बेटा था- पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, जो केवल उनका ही नहीं बल्कि पूरे देश का सपूत था। मां की यह बात सुनकर विद्यासागर ने समाज सेवा का संकल्प ले लिया। बड़े होने पर उन्होंने सबसे पहले मां के नाम पर भगवती देवी विद्यालय की स्थापना की, फिर एक दवाखाना बनवाया और ऐसी व्यवस्था की कि गांव के गरीब और अनाथ बच्चे कभी भूखा न सोएं। उनके काम की प्रशंसा सुनकर एक दिन एक विद्वान उनके योगदान की सराहना करने आए। उन्होंने कहा, तुम्हारी समझ बहुत अच्छी है जो ऐसा काम कर रहे हो। ईश्वरचंद्र ने कहा, यह मेरी समझ नहीं है। यह तो बचपन में मां की दी हुई शिक्षा का फल है। वीरसिंह नामक गांव में उनका स्थापित किया हुआ भगवती विद्यालय आज भी उन अमूल्य गहनों की कथा सुना रहा है।

२१६) स्वावलम्बन- बंगाल के एक छोटे से स्टेशन पर रेल खड़ी हुई। एक सुंदर धुले वस्त्र धारण किए युवक ने गाड़ी से उतर कर पुकारना आरम्भ किया- कुली। कुली। युवक के पास कोई विशेष सामान नहीं था, केवल एक छोटी सी अटैची थी। किंतु देहात के छोटे स्टेशनों पर कुली नहीं होते हैं। तभी साधारण से वस्त्र पहने एक अधेड़ व्यक्ति उस युवक के पास आया तो उस युवक ने समझा वह कुली है तो उससे कहने लगा- तुम लोग बड़े सुस्त होते हो। इसे उठाओ और ले चलो। उसने अपनी अटैची की ओर संकेत किया। उस व्यक्ति ने अटैची उठाई और चुपचाप उस युवक के पीछे-पीछे चल पड़ा। घर पहुंचकर युवक ने पेटी रखवाई और मजदूरी देने लगा तो उस व्यक्ति ने कहा धन्यवाद। इसकी आवश्यकता नहीं है। क्यों ? युवक ने आश्चर्य से पूछा। अधेड़ व्यक्ति कुछ कहे उसके पूर्व ही उस घर के भीतर से युवक के बड़े भाई निकले और उन्होंने उन अधेड़ व्यक्ति को प्रणाम किया। तब उस युवक को विदित हुआ कि वह जिस व्यक्ति से अटैची उठवा कर लाया है, वह अन्य कोई नहीं श्री ईश्वरचंद विद्यासागगर हैं। युवक उनके पैरों पर गिर पड़ा। विद्यासागर बोले- मेरे देशवासी व्यर्थ का अभिमान छोड़ दें और समझ लें कि अपने हाथों अपना काम करना गौरव की बात है। वे स्वावलम्बी बनें, यही मेरी मजदूरी है।

२१७) उदारता और सहायता- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कलकत्ता में पढ़ाते थे। वेतन का उतना ही अंश घर-परिवार पर खर्च करते जितने में औसत स्तर का गुजारा चल जाता। शेष भाग वे जरूरतमंदों की सहायता पर खर्च कर देते। आजीवन उनका यही व्रत रहा। सन १८८५ में बंगाल में भीषण अकाल और महामारी का कहर टूट पड़ा था। लोग दाने-दाने को तरसने लगे। एक दिन ईश्वरचंद विद्यासागर बाजार में चले जा रहे थे। भयंकर अकाल में एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर के पास एक अत्यंत कमजोर बालक भीख मांगने आया।

एक हताश युवक ने भिखारी की तरह उनसे एक पैसा मांगा। विद्यासागर दानी तो थे, पर सत्पात्र की परीक्षा लिए बिना किसी की ठगी में न आते। उन्होंने युवक से हट्टे-कट्टे होते हुए भी भीख मांगने का कारण पूछा।

बालक दुखी मन से बोला- श्रीमान, क्यों मेरा उपहास कर रहे हैं। मैं बहुत भूखा हूं और कष्ट में हूं। कुछ सहायता कर सकते हैं तो करें। उस व्यक्ति ने कहा- मैं तुमसे हंसी-ठट्ठा नहीं कर रहा। तुम बताओ तो सही। बालक बोला- मुझे भूख लगी है। दो पैसे की खाने की सामगी खरीद लूंगा और दो पैसे मां को दे दूंगा।

सारी स्थिति जानने पर उन्हें ठीक लगा, तो एक पैसा दे दिया और पूछा कि अगर ज्यादा मिल जाए तो क्या करोगे ? युवक ने कहा कि तब सामान खरीदकर गलियों में फेरी लगाने लगूंगा और अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊंगा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने कहा- और यदि मैं तुम्हें चार आने दूं तो ? बच्चे ने कहा- मैं दो आने अपने दो दिन के खाने के लिए खर्च करूंगा और बाकी दो आने के आम खरीदकर चार आने में बेचकर अपने तथा अपनी मां के जीवन की रक्षा करूंगा। फिर मुझे किसी के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ेंगे। उस व्यक्ति ने फिर पूछा- अगर दो आने दूं ? अब बालक को लगने लगा कि वह व्यक्ति सचमुच उसका मजाक उड़ा रहा है और वह चलने को हुआ। उसी समय उस व्यक्ति ने बालक को हाथ पकड़ लिया और आत्मीयता से बोला- बताओ दो आने का क्या करोगे? बच्चे ने कहा- मैं दो आने अपने दो दिन के खाने के लिए खर्च करूंगा और बाकी दो आने के आम खरीदकर चार आने में बेचकर अपने तथा अपनी मां के जीवन की रक्षा करूंगा। फिर मुझे किसी के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ेंगे। बालक की आंखों में आंसू भर आए। बोला- एक आने का चावल लूंगा और शेष मां को दे दूंगा। मां की प्राणरक्षा हो जाएगी। तब उस व्यक्ति ने उस बालक को एक रुपया दिया।

बच्चे में स्वावलंबन की भावना देखकर विद्यासार ने बच्चे की हथेली पर एक रुपया रख दिया। बड़ा होकर यह बालक एक सफल व्यापारी बना।

एक दिन विद्यासागर उसी रास्ते से गुजर रहे थे कि एक व्यक्ति अपनी दुकान से उतरा और उनके चरणों पर गिर पड़ा। विद्यासागर उसे पहचान नहीं पाए। तब उस दुकानदार ने अपना परिचय देते हुए कहा, मैं वही व्यक्ति हूं, जिसे आपने एक रुपया दिया था। उस रुपये से मैंने छोटा व्यापार शुरू कर दिया। काम दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। कुछ दिन में मैं बड़ा व्यापारी बन गया। यह दुकान और व्यापार उस एक रुपये की पूंजी का ही चमत्कार है, जो आपने मुझे दिया था। लेकिन वह व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाया। युवक की आंखों में आंसू छलक पड़े। वह बोला- श्रीमान, मैं वही बालक हूं जिसे आपने दो वर्ष पूर्व एक पैसा मांगने पर एक रुपया दिया था। उसी एक रुपये से मैं यह दुकान खड़ी कर पाया।

यह सुनकर विद्यासागर बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा- जिस प्रकार तुमने सहायता प्राप्त करके तरक्की की, उसी प्रकार दूसरे जरूरतमंदों को मदद देते रहना। सिर्फ उपकार लेकर ही निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए, उसे दूसरे लोगों तक भी पहुंचाना चाहिए। समर्थ होने की स्थिति में खुद भी उदारता बरतनी चाहिए। व्यापारी ने वैसा ही करते रहने का वचन दिया। उस व्यक्ति ने प्यार से युवक को सीने से लगाते हुए कहा- बेटे, यह सफलता तुम्हें मेरे एक रुपये के कारण नहीं, बल्कि तुम्हारी अपनी लगन

और परिश्रम से मिली है। वह युवक कोई और नहीं, उदारता और विद्वता की प्रतिमूर्ति ईश्वरचंद्र विद्यासागर थे।

२१८) आत्मनिर्भरता की सीख- यह उन दिनों की बात है, जब ईश्वरचंद्र विद्यासागर इंग्लैंड गए थे। उनकी विद्वता की चर्चा वहां भी पहुंच चुकी थी और लोग उनके विचार सुनने को उत्सुक रहते थे। वहां की कई संस्थाएं उन्हें आमंत्रित करना चाहती थीं। एक बार एक सभा में उन्हें अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया। विद्यासागर समय के बेहद पाबंद थे, इसलिए तय वक्त पर वहां पहुंच गए। लेकिन वहां पहुंच कर वह भौचके रह गए। उन्होंने देखा कि सारे आयोजक बाहर ही खड़े हैं और आपस में कुछ चर्चा कर रहे हैं। वे थोड़ा परेशान लग रहे थे। विद्यासागर को देखकर वे थोड़ा झेंप गए। पूछने पर उन आयोजकों ने बताया कि सफाई कर्मचारी के न पहुंच पाने के कारण सभा भवन की सफाई नहीं हो सकी है, इसलिए कार्यक्रम शुरू करने में विलंब हो रहा है। सफाई कर्मचारी के आने के बाद ही कार्यक्रम शुरू हो सकेगा।

विद्यासागर ने पूछा, अगर सफाई कर्मचारी नहीं आया तो क्या कार्यक्रम नहीं होगा ? किसी के पास इसका जवाब न था। सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। विद्यासागर ने झट पास रखा झाड़ू उठाया और सफाई का काम शुरू कर दिया। उन्हें ऐसा करते देख सभी हैरत में पड़ गए। आखिरकार सब इस काम में जुट गए और देखते ही देखते पूरा सभा भवन साफ हो गया। अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए विद्यासागर ने कहा, कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता। छोटा या या बड़ा होता है मन। यदि आपके मन में उच्च विचार हैं तो आपको किसी भी तरह का कार्य करने में संकोच नहीं होगा। हर इंसान को स्वावलंबी होना चाहिए। हम किसी पर निर्भर रहें, यह उचित नहीं। हमें आत्मनिर्भर बनना चाहिए। आत्मनिर्भरता की भावना से ही किसी राष्ट्र का सही मायने में विकास हो सकता है। उनकी इन बातों का वहां उपस्थित लोगों पर गहरा असर पड़ा और उन्होंने विद्यासागर के सामने ही स्वावलंबी होने और अपना काम स्वयं करने की शपथ ली।

२०९) पवित्र झूठ- ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक करुणामय और परोपकारी व्यक्ति थे। एक बार उन्हें पता चला कि जयराज नामक दानवीर, परोपकारी, दयालु, सज्जन की मृत्यु हो गयी और उसकी स्त्री के पास दाह संस्कार हेतु पैसे तक नहीं है।

विद्यासागर जयराज को जानते तक नहीं थे। बस पूछताछ करके उसके घर पहुँच गये। जयराज के मृत शरीर के पास रोती-बिलखती महिला को ढाढ़स बँधाते हुए विद्यासागर ने कहा, भाभी, जय बाबू से मैंने कुछ दिन पूर्व कर्ज लिया था, मैं कुछ रुपये लेकर आ ही रहा था कि यह दु:खद समाचार मिला। कृपा करके ये रुपये लीजिए, बाकी मैं धीरे-धीरे चुका दूँगा। जयराज की विधवा ने सधन्यवाद वह राशि ले ली।

भविष्य में भी विद्यासागर जयराज के परिवार के लिए कुछ रुपये भेजते रहे। कुछ वर्षों बाद जयराज की विधवा को वास्तविकता का पता चला तो वह उनके पैरों पर गिरकर रोने लगी और कहा, आप हमारे लिये इतना बड़ा झूठ बोले, हम इसको कैसे चुका पायेंगे। विद्यासागर बोले, यदि झूठ पवित्र हो तो बोलने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। ऐसे थे ईश्वरचंद्र जो जीवन में पहली बार झूठ बोले- सिर्फ इंसानियत के लिए।

२१०) पिता की मूर्ति- ईश्वर चन्द्र विद्यासागर सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। उन्होंने देखा कि उनका नौकर वहीं सीढ़ियों पर ही सो रहा है। एक पत्र उसके हाथ में था। विद्यासागर जी ने धीरे-धीरे उसके पास जाकर पत्र हाथ से निकाला और पढ़ने लगे। पढ़ने के पश्चात् वे अपने कमरे में गए वहां से पंखा लाकर नौकर के ऊपर हवा करने लगे।

इसी बीच उनके एक मित्र वहां आ गए। उस दृश्य को देखकर चकित होकर बोले- आपने तो कमाल कर दिया। सात आठ रुपया मासिक पाने वाले एक दास पर आप स्वयं हवा कर रहे हैं।

विद्यासागर बोले- मेरे पिताजी भी इतना ही रुपया मासिक पाते थे। एक रेहड़ी वाले ने उन्हें पानी पिलाया था और हवा

की थी। मैं तो भाई, इस महानुभाव में अपने स्वर्गीय पिता जी की मूर्ति ही देख रहा हूं।

२११) आशीर्वाद- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अभाव और निर्धनता के बीच पढ़ाई कर ५० रुपये मासिक के नौकर हो गये। उनकी सफलता पर उनके कई सम्बन्धी उन्हें आशीर्वाद देने पहुंचे, बोले- भगवान की दया से तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो गए। अब आराम से रहो और चैन का जीवन बिताओ। ईश्वर चन्द्र जी के नेत्र भर आए, बोले- आपने यह आशीर्वाद दिया या अभिशाप ? जिस अध्यवसाय के बल पर मैं उस भीषण परिस्थिति से निकल कर आया, उसे ही त्यागकर मुझे अकर्मण्य बनने की सलाह दे रहे हैं। आपको कहना तो यह चाहिए था कि जिस गरीबी और अभाव का कष्ट तुमने स्वत: अनुभव किया है, परिस्थिति बदलते ही उसे भुला मत देना। अपने श्रम और सामर्थ्य से अभावग्रस्तों के अवरुद्ध मार्ग साफ करना। जिन्हें जीवन का कुछ आभास ही नहीं, वे उपेक्षा बरतें, मद में भूल रहें, मैं कैसे यह अपराध कर सकता हूं ?

२१२) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को एक आदमी मिला। वह रोता-रोता चला जा रहा था। विद्यासागर जी ने पूछा- क्यों रो रहे हो ?

आज मेरा घर जो मेरे पूर्वजों की विरासत है, नीलाम हो जाएगा। मुझ पर २३०० रुपए का कर्ज है रोने वाले ने बताया।

विद्यासागर जी ने उसका नाम- पता पूछा और कचहरी जाकर चुपचाप रुपए जमा करवा दिए। जब नियत समय के बहुत बाद तक भी डिगरी करने वाला नहीं पहुंचा तो वह आदमी कचहरी जा पहुंचा।

कचहरी पहुंचने पर पता चला कि किसी ने रुपए तो जमा कर दिए। वह हैरान। उसका माथा ठनका- हो न हो, रुपए उस बंगाली ने जमा करवाए होंगे जो रास्ते में मिला था। उसने विद्यासागर जी को ढूंढ लिया।

विद्यासागर जी ने कहा- मैंने यदि तुम्हारे साथ उपकार किया है तो बदले में इतना सा उपकार मेरे लिए भी करो। वह यह कि इस बात का जिक्र किसी से मत करना।

२१३) अतिथि का आदर- ईश्वरचंद्र विद्यासागर के मन में प्राणिमात्र के प्रति अपार करुणा को देखकर लोग उन्हें करुणा के सागर कहकर बुलाते थे। श्री ईश्वरचंद विद्यासागर उस समय कलकत्ता के एक सुदुर क्षेत्र में रहते थे। विद्यासागर जरूरतमंद लोगों की सहायता का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे। वह इसे सहज मानवीय कर्त्तव्य के रूप में देखते थे। उन दिनों वह कोलकाता के नजदीक एक कस्बे में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त थे। एक बार मौसम अचानक बिगड़ गया और ठंड काफी बढ़ गई। शाम से ही बूंदाबांदी भी हो रही थी। रात होते-होते बारिश एकदम तेज हो गई। ईश्वरचंद्र रोज की तरह अध्ययन में लगे थे, तभी किसी ने उनका दरवाजा खटखटाया। आवश्यकतावश एक व्यक्ति उनको ढूंढता हुआ उनके घर पहुंचा।

विद्यासागर ने एक अजनबी को दरवाजे पर खड़ा देखा। अपनत्व भाव से उस घर के भीतर बुलाया और उसे अपने नए कपड़े देकर भीगे वस्त्र बदलने को कहा। वह कई दिनों से विद्यासागरजी की तलाश में था। विद्यासागरजी उसे जानते भी नहीं थे। उसकी रामकथा सुनकर उन्होंने कहा- देखिए, भोजन तैयार है, पहले आप भोजन कर लें, फिर बात होगी।

वह अतिथि उनके इस प्रेम भरे व्यवहार को देखकर भर्राये गले से बोला, मैं इस कस्बे में नया हूं। यहां मैं अपने एक मित्र से मिलने आया था। जब मैं उसके घर पहुंचा तो पूछने पर पता चला कि वह कहीं बाहर गया हुआ है। यह सुनकर मैं निरुपाय हो गया। मैंने कोई लोगों से रातभर के लिए शरण मांगी, लेकिन सभी ने मुझे संदेह की दृष्टि से देखकर दुत्कार दिया। आप पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने मुझे सहारा दिया। आगुन्तक बहुत ही निर्धन था, जिसे संसार में कोई नहीं पूछता था, उसके साथ यही होता आया था। विद्यासागरजी जैसे महान व्यक्ति की उदारता देखकर उसकी आंखों से आंसू निकल आए। विद्यासागर ने कहा, अरे भाई, तुम तो मेरे अतिथि थे। हमारे शास्त्रों में भी तो कहा गया है कि अतिथि देवो भव। मैंने

तो सिर्फ अपना कर्त्तव्य निभाया है। यह कहकर ईश्वरचंद्र ने उस अतिथि के सोने के लिए बिस्तर व भोजन की व्यवस्था की। फिर अपने हाथ से अंगीठी जलाकर उसके कमरे में रख दी।

विद्यासागर बोले- आप रोते क्यों हैं ? मैंने तो तुम्हें केवल भोजन के लिए कहा है, इसमें मुझ से कोई भूल हो गई हो तो मैं क्षमा चाहता हूं। मेरे यहां भोजन न कर सकें तो आप स्वयं भोजन बना लीजिए, उसकी व्यवस्था तुरंत हो जाएगी। वह बोला- मुझे तो आपकी दयालुता ने रुलाया है। इन दिनों मैं बहुत भटका हूं, कई दिनों से मुझे कुछ नहीं मिला है। किसीने मुझे बैठने के लिए भी नहीं कहा, किंतु आप... विद्यासागरजी को अपनी प्रशंसा सुनने का अभ्यास तो था ही नहीं। उन्होंने कहा- इसमें विशेष क्या हो गया ? अपने घर पर कोई अतिथि आए तो उसका सत्कार करना तो सभी का कर्त्तव्य है। आप झटपट चलकर भोजन कर लीजिए।

उसके भोजन कर चुकने के उपरांत ही विद्यासागरजी ने उसके आने के प्रयोजन के बारे में पूछताछ की।

सुबह जब वह अतिथि ईश्वरचंद्र से विदा लेने आया तो वह हंसकर बोले, कहिए अतिथि देवता। रात को ठीक ढंग से नींद तो आई? अतिथि उनके सद्व्यवहार को मन ही मन नमन करते हुए बोला, असली देवता तो आप हैं, जिसने मुझे विपदाग्रस्त देखकर मदद की। पूरी जिंदगी उस व्यक्ति के मन में विद्यासागर की करुणामय छवि बसी रही।

२१४) सहयोग की भावना - एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर के पास किसी व्यक्ति ने अपने सेवक को किसी काम से भेजा। विद्यासागर ने देखा कि मकान के नीचे कोई वृद्ध व्यक्ति खड़ा हुआ है। वह हांफ रहा था। वह ऊपर आने में असमर्थ दिख रहा था। विद्यासागर उस व्यक्ति के पीने के लिए पानी लेकर आए। दोबारा फिर ऊपर जाकर हाथ का पंखा लाकर स्वयं ही उसे झलने लगे। यह देखकर विद्यासागर के एक मित्र ने कहा, आपको यह पता होना चाहिए कि जिसको आप पानी पिला रहे हो और पंखा कर रहे हो, वह एक मामूली नौकर है। यह सुनकर विद्यासागर बोले, ठीक है यह सेवक है, पर है तो इंसान ही। वह अपने बचपन की बात सुनाने लगे मेरे पिताजी एक बार बाजार में चक्कर खाकर गिर पड़े। वहां चना जोर गरम बेचनेवाला एक व्यक्ति अपना काम छोड़कर तुरंत पानी ले आया। उसने पिताजी के मुंह पर पानी के छींटे मारे और फिर दौड़कर एक पंखा लाया और झलने लगा। वह पिताजी की सेवा करते हुए अपना सामान तक भूल गया था। उसे केवल मेरे पिताजी की चिंता थी। पिताजी थोड़ी देर में संभले और ऊठकर बैठ गए तथा उन्होंने उस व्यक्ति को धन्यवाद दिया। इस घटना से मैं इतना प्रभावित हुआ कि किसी भी व्यक्ति को सहयोग करना और उसे सहायता पहुंचाना मैंने अपना धर्म मान लिया। मेरे लिए इस बात का कोई महत्व नहीं है कि कोई व्यक्ति निम्न जाति का है अथवा उच्च जाति का। छोटा है या बड़ा। मैं सबको बराबर मानता हूं और सबकी समान भाव से सेवा करता हूँ।

२१५) संघर्ष की राह - बालक ईश्वरचंद्र के पिता को तीन रुपये मासिक वेतन मिलता था। परिवार बड़ा था इसलिए घर का खर्च चलना मुश्किल था। ऐसी स्थिति में बालक ईश्वरचंद्र की पढ़ाई का प्रबंध कैसा होता। ईश्वरचंद्र ने अपने पिता की विवशता को देखकर अपनी पढ़ाई के लिए रास्ता खुद ही निकाल लिया। उसने गांव के उन लड़कों को अपना मित्र बनाया, जो पढ़ने जाते थे। उनकी पुस्तकों के सहारे उसने अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक दिन कोयले से जमीन पर लिख कर उसने अपने पिता को दिखाया। पिता ने ईश्वरचंद्र की विद्या के प्रति लगन देखकर तंगी का जीवन जीते हुए भी उसे गांव की पाठशाला में भर्ती करा दिया। स्कूल की सभी परीक्षाओं में ईश्वरचंद्र ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। आगे की पढ़ाई के लिए फिर आर्थिक तंगी आड़े आ रही थी। ईश्वरचंद्र ने फिर स्वयं अपनी राह बनाई और आगे पढ़ने के लिए माता-पिता से केवल आशीर्वाद भर मांगा। उसने कहा, आप मुझे किसी विद्यालय में भर्ती करा दें। फिर मैं आपसे किसी प्रकार का खर्च नहीं मांगूंगा।

ईश्वरचंद्र का कोलकाता के एक संस्कृत विद्यालय में दाखिला करा दिया गया। विद्यालय में ईश्वरचंद्र ने अपनी लगन और प्रतिभा से शिक्षकों को प्रसन्न कर लिया। उसकी फीस माफ हो गई। ईश्वरचंद्र के मित्रों ने किताबें उपलब्ध करा दीं। फिर उसने अपना खर्च पूरा करने के लिए मजदूरी शुरू कर दी। ऐसी स्थिति में भी उसने इतना परिश्रम किया कि उन्नीस वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते वह व्याकरण, साहित्य, स्मृति तथा वेदशास्त्र में निपुण हो गया। जिसके लिए पढ़ना ही कठिन था वह एक बड़ा विद्वान बन गया। आगे चलकर यही बालक ईश्वरचंद्र विद्यासागर के नाम से विख्यात हुआ।

२१६) मनुष्यता पर विश्वास- ईश्वर चंद विद्यासागर उन दिनों कोलकाता के निकट एक कस्बे में नौकरी करते थे। एक रात जोर की बारिश हो रही थी। विद्यासागर किवाड़ बंद किए अंदर बैठे थे। इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया। विद्यासागर ने उठकर दरवाजा खोला तो देखा कि पानी से सराबोर एक आदमी बाहर खड़ा ठंड से कांप रहा है।

विद्यासागर ने बिना कुछ पूछे ही उसे अंदर बुला लिया। विद्यासागर के प्यार भरे शब्दों को सुनकर उस आदमी की आंखें भर आईं। वह अंदर जाकर बैठ गया। उसने कहा, मैं कई घरों में गया, लेकिन किसी ने भी मुझे जगह नहीं दी। मैं इस कस्बे में नया हूं। मेरा मित्र यहीं रहता है। मैं उसी से मिलने यहां पर आया हुआ था, पर जब वहां पहुंचा तो देखा कि दरवाजे पर ताला लटका हुआ है। पता लगा कि वह कहीं गया हुआ है। आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है।

विद्यासागर ने कहा, उपकार, कैसा उपकार? मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। अतिथि का सत्कार करना हम सबका परम कर्त्तव्य ही नहीं, हमारा परम धर्म भी है। अतिथि तो देवता होते हैं। विद्यासागर ने देखा कि अतिथि अब भी ठंड से कांप रहा है। उन्होंने अतिथि से कपड़े बदलने का आग्रह किया और उसे अपने नए कपड़े पहनने के लिए दे दिए।

कुछ देर बाद उस व्यक्ति ने पूछा, एक बात बताएं। आपने मुझ पर भरोसा कैसे कर लिया? हो सकता है मैं झूठ कह रहा हूँ या गलत इंसान हूं। विद्यासागर ने मुस्कराते हुए कहा, आपका इंसान होना ही काफी है। मेरे लिए हर मनुष्य बराबर है। मुझे मनुष्यता पर पूरा विश्वास है। अगर कोई गलत रास्ते पर चला भी गया है तो उसे सही रास्ते पर लाया जा सकता है। मैं इसी भरोसे के सहारे जीता हूं। वह व्यक्ति उनके प्रति नतमस्तक हो उठा और उस दिन से उनका शिष्य बन गया।

२१७) प्रेम का बीज- आचार्य-रामानुज के पास एक युवक आया और बोला, मैं आपके चरणों में दीक्षित होना चाहता हूं। कृपया मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। आचार्य ने प्रश्न किया, तुम्हारा किसी से प्रेम है ? युवक ने उत्तर दिया, एकदम नहीं। आचार्य ने फिर पूछा, क्या तुम्हारा अपने घर के किसी सदस्य से भी कोई लगाव नहीं है ? नहीं बिल्कुल नहीं। मैं तो सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में आया हूं। युवक के इस जवाब पर आचार्य मुस्कराए और बोले, तब तो हमारी तुम्हारी नहीं बनेगी। मैं तुम्हें कोई शिक्षा दे ही नहीं पाऊंगा ? युवक ने आश्चर्य से पूछा, क्यों महाराज ? रामानुज बोले, अगर तुम्हारा किसी से लगाव होता या तुम्हें किसी से थोड़ा भी प्रेम होता तो मैं उस प्रेम को एक विराट स्वरूप दे सकता था। प्रेम का बीज तो होना चाहिए। मैं उस बीज को वृक्ष में बदल सकता था। पर तुम्हारे भीतर तो बीज ही नहीं है और बगैर बीज के वृक्ष उगाने की क्षमता मुझमें नहीं है।

युवक ने आचार्य का आशय समझ लिया। उसने उन्हें प्रणाम कर कहा, आपने मेरी आंखे खोल दी है। मैं अपने घर जा रहा हूं। अपने लोगों से स्नेह किए बगैर परम तत्व के प्रति भी प्रेम नहीं हो सकता।

२१८) मानवता का कल्याण - बात उस समय की है जब रामानुजाचार्य आश्रम में रहकर विद्याध्ययन कर रहे थे। वह अपने गुरु के सबसे प्रिय शिष्यों में थे। इसका कारण यह था कि वह कभी गुरु की आज्ञा की अवहेलना नहीं करते थे। एक दिन रामानुजाचार्य को उनके गुरु ने अष्टाक्षर नारायण मंत्र का ज्ञान देते हुए कहा कि यह जिसके कानों में पड़ता है वह

पापमुक्त होकर सीधे वैकुंठ जाता है। गुरु ने यह भी कहा कि यह गुप्त मंत्र है जिसे किसी अयोग्य को कभी भी नहीं सुनाना। उन्होंने बार-बार उन्हें मंत्र को गुप्त रखने का आदेश दिया। रामानुजाचार्य ने उस समय बात मान तो ली लेकिन उनके मन में इसे लेकर सवाल उठने लगा था। उनके भीतर यह मंथन शुरू हो गया कि क्यों नहीं मंत्र समस्त प्राणियों को सुनाया जाए ताकि वे भी पापमुक्त हो सकें। आखिर एक ही व्यक्ति क्यों पापमुक्त हो। लेकिन यह गुरु की आज्ञा का उल्लंघन था। रात हो गई लेकिन रामानुजाचार्य का द्वंद्व जारी रहा। आखिर रात के तीसरे पहर वह आश्रम की छत पर चढ़कर उस मंत्र के बोल चिल्लाने लगे। सारे लोग जाग गए। गुरु ने डांटते हुए पूछा, यह क्या कर रहा है? रामानुजाचार्य बोले, गुरुदेव मैं आपकी आज्ञा भंग कर महापापी भले हो जाऊं लेकिन मुझे खुशी है कि आसपास के सारे प्राणी यह मंत्र सुन वैकुंठ जाएंगे। गुरु ने उन्हें गले लगा लिया और बोले तेरे मन में विश्व कल्याण की भावना है इसलिए तू आज्ञा भंग करके भी मेरा सच्चा शिष्य है। आज मैं आश्वस्त हुआ कि तेरे माध्यम से मानवता के कल्याण का मेरा स्वप्न पूरा होगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

२१९) समानता का संदेश - स्वामी रामानुजाचार्य शारीरिक रूपसे काफी कमजोर थे। वह प्रतिदिन गंगा स्नान करने के बाद ही कोई दूसरा काम करते थे। मगर घाट की ऊंची सीढ़ियों पर चढ़ने-उतरने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती थी। इसलिए वह जाते समय एक ब्राह्मण की सहायता लेते थे और स्नान करके लौटते समय निम्न जाति के एक व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखकर ऊपर आते थे।

वृद्धावस्था के कारण उन्हें किसी के सहारे की जरूरत है, यह बात तो सभी समझते थे, पर जाते समय किसी ऊंची जाति के व्यक्ति और लौटते समय अछूत समझे जाने वाले शख्स का सहारा वह क्यों लेते है, यह बात सबकी समझ से परे थी। लेकिन उनसे इस बारे में पूछने का साहस किसी को नहीं था। कुछ लोगों को यह बात बड़ी अखरती थी खासकर उन्हें जो अपने को धर्म का ठेकेदार समझते थे और ऊंच-नीच के भाव को फैलाते रहते थे। उनके इस व्यवहार को वहां के साधु संत उचित नहीं मानते थे, मगर उनसे कुछ कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। एक बार एक शिष्य ने कहा, एक दिन एक पंडित से रहा नहीं गया, उसने रामानुजाचार्य से इस बारे में पूछ ही लिया। इतना ही नहीं उसने यह भी कह दिया कि उनका यह व्यवहार नीति के विपरीत है। स्वामीजी, आपके स्नान का क्या लाभ। आप स्नान करने जाते समय तो एक ब्राह्मण की मदद लेते हैं और स्नान के बाद शुद्ध होकर लौटते समय निम्न जाति के व्यक्ति के कंधे का सहारा लेते हैं। स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा, वत्स, यह तुम्हारा भ्रम है। स्नान से तो केवल मेरे ऊपरी शरीर का मैल धुलता है। शरीर के अंदर का मैल वैसा का वैसा ही जमा रहता है। वह तो उस व्यक्ति के साथ आने पर ही धुलता है जिसे तुम लोग निम्न जाति का कहते हो।

यह सुनकर रामानुजाचार्य बोले- भाई। मैं तो शरीर और मन दोनों का स्नान करता हूं। गंगाघाट पर ब्राह्मण का सहारा लेकर आता हूं और शरीर का स्नान करता हूं, परंतु तब मन का स्नान नहीं होता क्योंकि श्रेष्ठता का भाव पानी से नहीं मिटता, वह तो स्नान कर उस व्यक्ति का सहारा लेने पर ही मिटता है जिसे आप लोग अछूत और न जाने क्या-क्या कहते हैं।

शिष्य ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं स्वामीजी। रामानुजाचार्य ने कहा, वत्स, मैं मनुष्य और मनुष्य के बीच अंतर नहीं करता। मेरे लिए हर जाति या संप्रदाय बराबर है। ईश्वर ने हर मनुष्य को बराबर बनाया है। सबके साथ समान आचरण ही धर्म है। मैं सबको यही सीख देने के लिए ऐसा करता हूं। मैं तो उस निम्न जाति के व्यक्ति को गले लगाकर मनुष्य की समानता का संदेश देना चाहता हूं। इससे मेरा मन शुद्ध होता है। दूसरों से बड़ा होने का भाव अहंकार है जो मनुष्य की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। जब तक मन का अहंकार नहीं धुलता, तब तक मनुष्य कभी शुद्ध होता ही नहीं। वत्स, कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। मन का भाव ही हमें छोटा बड़ा बनाता है। छोटे-बड़े होने के अहंकार को दूर करना ही मेरा लक्ष्य है।

उसके बाद शिष्य भी स्वामी जी के रास्ते पर चलने लगा।

२२०) एकदा - एक दिन शठकोप स्वामी अपने प्रिय शिष्य रामानुजाचार्य से नाराज हो गए। इसका कारण यह था कि रामानुज ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया था। असल में स्वामीजी ने रामानुज को कुछ गूढ़ मंत्र बताए थे और कहा था कि वह इन्हें किसी और को न बताएं। मगए एक शिष्य ने रामानुजाचार्य को उन मंत्रों को साधारण व्यक्तियों को बताते हुए सुन लिया। वह दौड़कर आया और उसने रामानुज की चुगली शठकोप स्वामी से कर दी। स्वामीजी ने आवेश में आकर रामानुज को तुरंत बुलाया। रामानुज सहज भाव से गुरु के सामने आए और बोले, क्या आज्ञा है गुरुदेव? स्वामी जी बोले, क्यों रे दुष्ट। मैंने तुझे मना किया था कि मंत्र किसी को न बताना और तूने लोगों में उनका प्रचार करना आरंभ कर दिया। इस पर रामानुज ने कहा, हां गुरुदेव। यह सत्य है कि मैंने रहस्यमय मंत्रों का प्रचार आम लोगों में किया है। यह सुनकर स्वामीजी आगबबूला हो गए और गुस्से से बोले, पापी, तूने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर घोर अपराध किया है। रामानुज ने उत्तर दिया, गुरुजी मैंने आपकी आज्ञा का उल्लंघन अवश्य किया है, किंतु अपराध नहीं। स्वामीजी और क्रोधित हुए और बोले, दुष्ट, कुतर्क करता है। मेरी आज्ञा न मानना अपराध ही तो हुआ। गुरुजी का गुस्सा बढ़ते देख रामानुज बोले, गुरुजी, लोगों में मंत्रों का प्रचार करने में मेरा उद्देश्य आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं, अपितु लोक-कल्याण की भावना थी। असंख्य मानव नाना प्रकार की पीड़ाओं से जहां पीड़ित हो, वहां मैं रहस्यमय मंत्रों का बल व आधार पाकर केवल अपना ही स्वार्थ और लाभ सोचूं तो यह मेरे और मेरे गुरु दोनों की प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। इसलिए मैंने सभी के कल्याण को ध्यान में रखते हुए उन मंत्रों का प्रचार किया, ताकि वे दु:खी लोग पीड़ा से मुक्ति पा सकें। यह सुनकर शठकोप स्वामी का क्रोध शांत हो गया और उन्होंने रामानुजाचार्य को गले से लगा लिया।

२२१) चैतन्य महाप्रभु के विचार- चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन अभियान की पूरे बंगाल में धूम मची हुई थी। उनकी दिव्य लीलाओं तथा शास्त्रार्थों के कारण अनेक विद्वान और असंख्य वनवासी, भील आदि भी मदिरा-मांस त्यागकर वैष्णव धर्म में दीक्षित हो रहे थे। उनके चमत्कारों की कथाएं भी चारों ओर फैलने लगी थी। एक दिन एक विद्वान चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के लिए पहुंचे। रघुनाथ दास, रामानंद तथा दामोदर आदि भक्तजनों के साथ बैठकर वह श्रीकृष्ण तत्व पर बातचीत कर रहे थे। एक विद्वान ने एक पुस्तक की पांडुलिपि अपने थैले से निकाली तथा बोले, महाप्रभु, मैंने आपके जीवन पर एक संस्कृत नाटक लिखा है। मैं आपको यह भेंट करने आया हूं। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, पंडितराज, यदि आपने मेरी जगह भगवान श्रीकृष्ण की पावन व अलौकिक लीलाओं पर लेखनी चलाई होती, तो कितना अच्छा होता। श्रीकृष्ण ही मेरे सर्वस्व हैं। आप इसे आदरपूर्वक वापस ले जाए तथा अपनी लेखनी का उपयोग श्री कृष्ण भक्ति के प्रचार-प्रसार में करके अपना लोक-परलोक सार्थक करें। विद्वान चैतन्य महाप्रभु का मुख देखते रह गए।

२२२) चैतन्य महाप्रभु का त्याग- अपने-आरंभिक जीवन में चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में रहते हुए निमाई बाबू के नाम से ही जाने जाते थे। सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने संस्कृत व्याकरण की शिक्षा पूर्ण कर न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन किया और उस पर एक ग्रन्थ लिखने लगे। उन्ही दिनों उनके सहपाठी पं. रघुनाथ भी न्याय पर दाधिती नामक व्याख्या ग्रन्थ लिख रहे थे, जो इस विषय का प्रख्यात ग्रंथ माना जाता है। पं. रघुनाथ नितान्त निर्धन थे। पं. रघुनाथ को विदित हुआ कि निमाई भी न्याय पर कोई ग्रंथ लिख रहे हैं। उन्होंने उस ग्रंथ को देखने की इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन निमाई अपना ग्रंथ साथ ले आए और पाठशाला के मार्ग में दोनों साथी जब नाव पर बैठे तो निमाई अपना ग्रंथ सुनाने लगे। उस ग्रंथ को सुनने पर पं. रघुनाथ को बड़ा दु:ख हुआ। उनके नेत्रों से आंसू टपक पड़े। निमाई पढ़ने में तल्लीन थे। सहसा उन्होंने सिर उठाया

तो देखा कि साथी की आंखों से आंसू टपक रहे हैं। वे बोले- भैया, तुम रो क्यों रहे हो ? रघुनाथ ने सरल भाव से कहा- मैं इस अभिलाषा से एक ग्रंथ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाए और मेरे दुर्दिन दूर हों। किंतु अब मेरी आशा नष्ट हो गई है। तुम्हारे इस ग्रंथ के सम्मुख मेरे ग्रंथ को कौन पूछेगा ? पंडित जी बोले, मित्र, मैंने बरसों तक घोर तपस्या के बाद न्याय पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा था। सोचा था कि यह अपने ढंग का बेजोड़ ग्रंथ होगा। इससे मुझे यश मिलेगा और कुछ धन भी प्राप्त हो जाएगा। पर इस विषय पर तुम्हारा ग्रंथ इतना समर्थ है कि मेरे ग्रंथ को तो कोई पूछेगा ही नहीं। इसका सारा महत्व समाप्त हो गया। भला सूर्य के आगे दीपक की क्या बिसात।

बस इतनी सी बात के लिए आप इतने सन्तप्त हो रहे हैं ? यह कहकर निमाई बालकों की भांति खुल कर हंसे और बोले- यह पुस्तक तो बहुत ही बुरी है, इसने मेरे मित्र को इतना कष्ट दिया है। रघुनाथ उनके कुछ कहने का अभिप्राय समझ पाएं, इससे पूर्व ही निमाई ने अपने ग्रंथ को उठाकर गंगाजी के प्रवाह को अर्पित कर दिया। उसके पन्ने भगवती भागीरथी की लहरों पर बिखर कर तैरने लगे। रघुनाथ के मुख से दो क्षण तो एक भी शब्द नहीं निकला और फिर वे निमाई के पैरों पर गिर पड़े। किंतु निमाई ने उनको बीच में ही पकड़ कर अपनी विशाल भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। बाद में जिसने भी सुना उसने उनकी मित्रता की प्रशंसा करते हुए कहा, जहां दूसरे की इच्छा पूर्ण करने में अपनी खुशी ढूंढ ली जाए, वही सच्ची मित्रता होती है।

२२३) एक बार भगवान चैतन्य महाप्रभु जब श्रीवास आंगन में नृत्य कीर्तन में रत रहते थे तो उनके लिए श्रीवास पंडित के यहां काम करनेवाली प्रतिदिन जल लेकर आती थी, यह सोचकर कि कभी न कभी भगवान कृपा करेंगे ही। उसकी सेवा कोई विशेष नहीं थी, पर अटल धैर्य था उसका कि कभी न कभी तो भगवान की दया दृष्टि होगी ही। धैर्य होगा तो उत्साह भी रहेगा ही। अंतत: भगवान महाप्रभु को एक बार गर्मी लगने लगी और उन्होंने स्नान करने की इच्छा प्रकट की। वहीं श्रीवास आंगन में भक्तों ने मिलकर उन्हें स्नान कराया। सारा का सारा जल श्रीवास की उसी सेविका द्वारा लाया हुआ था।

अत: धैर्य से ही भगवान मिलते हैं। धैर्य से ही जीवन में सुख आता है। धैर्य धरने से ही विश्वास जागता है। अगर आप में विश्वास है कि भगवान कृपा अवश्य करेंगे तो भगवान भी पीछे नहीं रहेंगे।

२२४) भगवान व उनके भक्त बहुत कृपालु हैं। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु जब बनारस में थे, उन्होंने अपने एक सेवक को कहा कि कृपया बाहर जाएं और वहां एक वैष्णव खड़े हैं, उन्हें अंदर ले आएं। सेवक आश्रम से बाहर गया, लेकिन कुछ ही समय में भीतर आ गया। उसने बताया कि बाहर तो कोई वैष्णव नहीं है।

श्री महाप्रभु ने कहा कि नहीं नहीं, वे बाहर ही हैं। सेवक फिर गया और वापस आकर बोला कि बाहर कोई वैष्णव नहीं है, हां कुछ दूर एक दरवेश मुस्लिम फकीर बैठा है। श्री महाप्रभु ने उस दरवेश को ही बुलाकर लाने के लिए कहा। जब वह अंदर आया तो महाप्रभु ने उसे आलिंगन कर समीप बिठा लिया। वह दरवेश कोई और नहीं, प्रसिद्ध संत श्री सनातन गोस्वामी थे, जिन्होंने वृंदावन के प्रसिद्ध विग्रह श्री मदनमोहन जी की स्थापना की थी।

अपनी इस लीला से श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें समझाया कि भक्त को पहचानना आना चाहिए। भक्त का वेष धारण कर लेने मात्र से कोई भक्त नहीं हो सकता।

२२५) पुण्डरीक विद्यानिधि का- ये महाप्रभु गौराङ्गके पार्षद थे। दर्शनार्थ नवद्वीप आये, पर महाप्रभु के पास न जाकर एक भक्त के यहाँ ठहरे। महाप्रभुजीने अपने पार्षदों से कहा- आज कोई परम रसिक महाभागवत पधारे हैं। लोगों ने ढूंढा पर वे न मिले। तब स्वयं महाप्रभुजी सभी भक्तों को साथ लेकर जहाँ ठहरे थे वहाँ पहुँच गये। लोगोंने उनके राजसी वेष को देखा। बहुत मूल्यवान् वस्त्र, इत्रकी सुगन्ध, बालोंमें फुलेल, मुख में पान ऐसा श्रृङ्गार देखकर लोगों ने उन्हें रजोगुणी समझा।

उनके भावको प्रकट करने के लिए महाप्रभुजीने श्रीभागवत का श्लोक गान करने की आज्ञा दी। जिसे सुनते ही पुण्डरीक विद्यानिधि में अष्टसात्विक भावोंका उदय हो गया, वे पलंग से नीचे गिर पड़े, शरीर पसीने से लथपथ हो गया। रजमें लोटने लगे। यह देखकर सभी ने उन्हें परम अनुरागी सन्त जाना। गदाधरदास ने भी उन्हें रजोगुणी माना था। अब उनके प्रेमको देखकर प्रभावित हुए उन्होंने अपने अपराध के प्रायश्चित्त में विद्यानिधिजी की शिष्यता स्वीकार की।

२२६) महान सेवक गोपबंधु दास- उड़ीसा के महान समाजसेवी गोपबंधु दास सेवा की साकार मूर्ति थे। वह संकट के समय अपने साथियों के साथ सेवा कार्यों में जुट जाते थे। एक बार पुरी जिले में कुशभद्रा नदी में बाढ़ से सैकड़ों गांव पानी से घिर गए। गोपबंधु ने पत्नी से कहा, मैं आज ही बाढ़ से घिरे लोगों की सहायता के लिए जा रहा हूँ। पत्नी तथा अन्य परिजनों ने कहा, आपके सेवा कार्यों में व्यस्त रहने के कारण समय पर दवा न मिलने से एक पुत्र काल का ग्रास बन चुका है। दूसरे बेटे को भी मृत्युशैया पर छोड़कर जाना उचित नहीं है। गोपबंधु ने जवाब दिया, मैं यहां रहकर केवल एक बेटे की सेवा कर सकता हूं। उधर गांवों में पहुंचकर न जाने कितनी माताओं के बेटों की जान बचा सकूंगा। आप सब लोग इसकी देखभाल करो। वह टोली के साथ गांवों में पहुंचे और अनेक परिवारों को बाढ़ से बचाने के बाद वापस लौटे, तो पता चला कि उनका इकलौता बेटा भी नहीं रहा। तब आंखों में आंसू भरकर बोले, अनेक माताओं के बेटों को बचाने में सफलता मिल ही गई।

२२७) एक बार तथागत बुद्ध वैशाली पहुंचे। समाचार सुनकर वहां की प्रसिद्ध नृत्यांगना आम्रपाली भी उनके दर्शन के लिए आईं। तथागत एक वृक्ष की छाया में बैठे थे और हजारों भक्त उनके उपदेश सुन रहे थे। उपदेश समाप्त होने पर आम्रपाली ने नतमस्तक होकर तथागत को अपने यहाँ अगले दिन भोजन पर आमंत्रित किया। वह बोलीं, भगवन। आपके चरण कमलों से इस दासी की कुटिया पवित्र हो जाएगी। तथागत ने आम्रपाली की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वहां उपस्थित राजकुमारों को यह अखरा। उन्होंने कहा, यह वेश्या है, आपके चरणों के योग्य नहीं है। आपके लिए राजमहल प्रस्तुत है। तथागत ने कहा, तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अंतर है ? तथागत समदृष्टि है।

मार्ग में खुशी से दीवानी आम्रपाली से राजकुमारों ने कहा, आम्रपाली। हम तुझे एक लाख स्वर्ण देंगे, तू तथागत को कल के भोजन के लिए हमारे यहां होने दे। आम्रपाली ने उतर दिया, आर्य पुत्रों। यह नहीं हो सकता। यदि आप समस्त साम्राज्य भी मुझे देते, तो भी मैं इस निमंत्रण को तुम्हें नहीं बेच सकती। यह सौभाग्य बेचने या अदला-बदली करने की चीज नहीं है। आम्रपाली ने बुद्ध के प्रति अनुपम श्रद्धा दिखाई और भोजन के बाद अपने उपवन को बुद्ध संघ के लिए समर्पित कर दिया। वह खुद भी भिक्षुणी हो गई।

२२८) आदत- भगवान बुद्ध के पास एक ग्वाला आया और बोला, मुझे आप बौद्ध भिक्षु बना लें। बुद्ध ने उसे एक गहरी दृष्टि से देखा और पूछा, क्यों तुम गांव के मार्ग पर खड़े होकर आने-जाने वाले पशु गिनते रहते हो ?

ग्वाले ने कहा, हां सत्य है, गांव के प्रत्येक व्यक्ति के पशुओं की गिनती मेरे पास है।

बुद्ध ने मुस्करा कर कहा, तुम्हारे घर में कितने पशु हैं ?

ग्वाला सकपकाया और बोला इसका तो मैंने कभी ख्याल ही नहीं किया। बुद्ध बोले- तुम साधु बनकर भी दूसरों के दोष ही गिनते रहोगे, अपने नहीं। क्योंकि तुम आदत से लाचार हो।

२२९) सही उम्र- तथागत बुद्ध ने एक व्यक्ति से पूछा- तुम्हारी अवस्था क्या है ? उसने कहा साठ वर्ष। नहीं। बुद्ध ने रोक दिया। वह झेंपा और बोला- भन्ते, मैं आपकी वाणी पर संदेह नहीं कर सकता और अपनी स्मरण शक्ति पर भी मुझे पूरा विश्वास है। अत: सत्य बताने की कृपा करें ? बुद्ध ने कहा तुम्हारी उम्र एक वर्ष है।

वह विस्मय में पड़ गया। सोचने लगा- सिर के बाल सफेद हो गए, मुंह के दांत गिर गए हैं। पौत्र दस वर्ष का है। ऐसी स्थिति में मेरी आयु एक वर्ष कैसे हुई ? बुद्ध ने विस्तार से बताया। आयुष्यमान, वास्तव में तुम्हारे उनसठ वर्ष निरर्थक बीते हैं। उनका तुमने जरा भी लाभ नहीं उठाया। एक वर्ष से तुम धर्म और सदाचार की साधना में रत हो। अत: तुम्हारी उम्र एक वर्ष की ही है।

२३०) कृतज्ञता- भगवान बुद्ध ने जिस वृक्ष के नीचे साधना कर बोध प्राप्त किया था, उसके प्रति वे अत्यंत ममता तथा श्रद्धाभाव रखते थे। जब भी वे उधर से गुजरते, बोधि वृक्ष को नमन करना नहीं भूलते थे।

एक दिन एक नये शिष्य ने उन्हें बोधि वृक्ष को नमन करते देखकर पूछा- प्रभु आप एक जड़ वस्तु को नमन क्यों करते हैं? तथागत ने उत्तर दिया, जिस किसी वस्तु से मानव को लाभ या प्रेरणा प्राप्त होती है, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना उसका नैतिक धर्म है। सूर्य, चंद्रमा, नदी, पेड़-पौधे इन सभी उपकारों के कृतज्ञता व्यक्त करना हम सबका कर्त्तव्य है। शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

२३१) श्रावास्ति नगर में वक्कलि नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने जब भगवान बुद्ध के चेहरे को देखा, तो उसकी आभा और तेज से बेहद प्रभावित हुआ। उनकी तेजस्वी और सौम्य छवि ने उसे इस कदर प्रभावित किया कि उसने तुरंत दीक्षा ले ली। लेकिन भिक्षु बनने के बाद भी वक्कलि का ध्यान भिक्षु धर्म पालन में नहीं लगता था, उनकी नजर बुद्ध के चेहरे पर ही टिकी रहती थी। बुद्ध के ध्यान में जब यह बात आई, तब उन्होंने उसे बुलाकर पूछा। वक्कलि ने उन्हें सच बात बता दी। इस पर बुद्ध ने उसे समझाया, मेरे चेहरे की आभा और तेज क्षणभंगुर है। इसका अंत अवश्यंभावी है। जो क्षणिक है उस पर अपना ध्यान लगाकर, जीवन के मूल उद्देश्य को भुलाने में कहां की बुद्धिमानी है ? तुम धर्म के सौंदर्य पर ध्यान दो। वह मेरे चेहरे से कहीं ज्यादा दिव्य और सुन्दर है। एक बार उसे देख लोगे तो जान जाओगे कि उससे ज्यादा आनंद देनेवाला और कल्याणकारी रूप इस दुनिया में किसी का नहीं है। इस मर्म को जिस दिन समझ लोगे, उसी दिन तुम भवसागर के बंधनों और आकर्षणों से मुक्त हो जाओगे।

२३२) पानी मांगा जाति नहीं- तथागत गौतम बुद्ध के प्रधान सेवक शिष्य आनंद कहीं चले जा रहे थे। गर्मियों के दिन थे। उन्हें जोर की प्यास लगी। देखा एक कुंए से कोई कन्या पानी निकाल रही है। आनंद आगे बढ़ गए और पीने के लिए पानी मांगा। पानी निकालने वाली मातंग कन्या एक भीलनी थी। सकुचाकर बोली, मैं अछूत हूं, मेरे हाथ का पानी पिओगे? मैंने पानी मांगा है, जाति नहीं मांगी।

आनंद का उत्तर मातंग कन्या के हृदय को छू गया। उसने आनंद को पानी दिया। फिर वह आनंद के पीछे चल पड़ी। आनंद का अनुसरण करती हुई वह तथागत के पास पहुंची। तथागत ने उसे अपनी अमृतवाणी से शांति और ज्ञान का दान दिया।

२३३) वृद्धा का त्याग- एक बार बुद्ध वर्षाकाल में श्रावस्ती में जाकर ठहरे। एक दिन एक वृद्धा विहार में पहुंची और उसने व्यवस्थापक से कहा कि कुछ भिक्षु उसके यहां भोजन करने चलें। लेकिन तब तक विहार के सभी भिक्षु कहीं न कहीं भोजन करने जा चुके थे। सिर्फ तथागत ही बचे थे। बुढ़िया को निराश देखकर उन्होंने स्वयं उसके यहां चलना स्वीकार किया। वह उन्हें अपने घर ले गई और अच्छी तरह से भोजन कराया। उसी समय कौशल के राजा प्रसेनजित ने बुद्ध के लिए राजसी भोजन और एक हजार स्वर्ण मुद्राएं भेजी। लेकिन बुद्ध बुढ़िया के रुखे-सूखे भोजन से ही संतुष्ट थे। उन्होंने वे स्वर्ण मुद्राएं रखी नहीं बल्कि बुढ़िया को दे दिया जिसने उन्हें गरीबों में बांट दिया। जब लोगों ने पूछा तो उसने कहा तथागत ने मेरे यहां भोजन करके मुझे सम्मान दिया। अब मेरी जिम्मेदारी है कि मैं अपने त्याग से उन्हें प्रसन्न करूं।

२३४) ज्ञान के अनुसार- भगवान बुद्ध की धर्म-सभा में एक व्यक्ति प्रतिदिन आया करता था और पूरे समय बैठ कर

उनके प्रवचन सुना करता था। उसका यह क्रम कई महीनों तक चलता रहा, पंतु उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। बुद्ध बार-बार समझाते, लोभ, द्वेष और मोह पाप के मूल हैं। इन्हें त्यागो। पर वह बेचारा इन बुराइयों से बचना तो दूर, उनमें और फंसता जाता था। बुद्ध कहते थे, जो क्रोध करता है, उससे क्रोध करने वाले का अपना ही अहित होता है। पर जो क्रोध का जवाब क्रोध से नहीं देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है। परंतु उस व्यक्ति का उग्र स्वभाव और उग्रतर होता जा रहा था। वह अपने ही स्वभाव से तंग आ गया। अंतत: वह बुद्ध के पास गया और उन्हें प्रणाम करके बोला, भंते। मैं कई महीने से आपके प्रवचन बराबर सुन रहा हूं, मुझे वे बहुत सुंदर लगते हैं, लेकिन उनका जरा भी असर मुझ पर नहीं पड़ा। बुद्ध ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और कहा, अच्छा, कहां के रहने वाले हो ? श्रावस्ती का।

यहां राजगृह से तुम्हारी श्रावस्ती नगरी कितनी दूर है ?

उसने बता दिया।

कैसे जाते हो वहां ? बुद्ध ने पूछा।

सवारी से। उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

कितना समय लगता है ? बुद्ध ने अगला सवाल किया।

इतना, उसने कुछ हिसाब लगाकर बता दिया।

तब बुद्ध बोले, अब यह बताओ कि क्या वहां बैठे-बैठे राजगृह पहुंच गए ?

वह व्यक्ति झुंझालकर बोला, यह कैसे हो सकता है, यहां पहुँचने के लिए तो चलना पड़ता है। इस पर बुद्ध ने बड़े प्यार से समझाया, तुमने सही कहा। चलने पर ही मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। इसी तरह अच्छी बातों का असर भी तभी पड़ता है, जब उन पर अमल किया जाए। ज्ञान के अनुसार कर्म न होने पर वह व्यर्थ हो जाता है।

२३५) सांसारिक खीर- एक बात तथागत एक गांव में दीक्षा दे रहे थे। सुनने वालों में गांव का एक धनी सेठ भी था। सभी को दीक्षित होते देख धनी सेठ ने सोचा, यदि मैंने दीक्षा न ली तो नीच कहलाऊंगा, अत: बेमन से उसने महात्मा बुद्ध को दीक्षा देने के लिए कहा और अपने घर खाने पर बुलाया। भगवान बुद्ध ने न्योता स्वीकार कर लिया और समय पर एक पात्र में गोबर भरकर सेठ के घर पहुंचे। उन्होंने सेठ से कहा- भोजन इस पात्र में डाल दो। धनी सेठ ने भोजन में खीर व अन्य पकवान बनाए थे। असमंजस में सेठ बोला- मैं इस गोबर भरे पात्र में भोजन कतई नहीं डालूंगा।

इस पर महात्मा बुद्ध बोले- सेठजी, इसी प्रकार तुम्हारे मन में भी गोबर समान विषय विकार और अहंकार भरा हुआ है, अत: मैं तुम्हें दीक्षा या ज्ञान कदापि नहीं दे सकता। पहले तुम अपने पात्र को साफ करो, तभी मैं ज्ञान के पकवान तुम्हें दे सकूंगा।

२३६) लोकमंगल की कामना- बुद्ध का अन्तकाल निकट था। वह अस्वस्थ थे तथा किसी से भी नहीं मिल रहे थे। इसी समय सुभद्र वहां आए और बुद्ध के शिष्यों से आग्रह करने लगे कि मुझे उनसे मिलने दें, मुझे उनसे भावी परिस्थितियों के बारे में चर्चा करनी है। शिष्यों ने अपनी विवशता बताई। तथागत बुद्ध ने उनकी यह बात सुन ली और उन्होंने सुभद्र को अंदर बुलाया और आनंद से कहा- अस्वस्थता की स्थिति में भी यदि मैं लोकमंगल की भावना से आए इस सुभद्र से नहीं मिलूंगा तो अपने नाम को सार्थक कैसे कर सकूंगा ? सुभद्र की तथागत से इस भाव भरी भेंट का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह अपना सबकुछ समर्पण कर भिक्षु बन गए और उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

२३७) रूप-वैभव- एक बार मथुरा की परम सुंदर वेश्या वासवदत्ता ने बौद्ध भिक्षु उपगुप्त के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर अपने रूप-वैभव की मदिरा से उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहा और कहने लगी- तारुण्य रसपान का यही समय है। काषाय-

परिधान का त्याग करके जीवन के परम सुख प्राप्त करो। तरुण। मेरी कामना की तृप्ति करके जीवन सफल बनाइये। इस पर उपगुप्त ने कहा, मुझे धर्म शिक्षा चाहिए। काम शिक्षा का समय अब नहीं रहा। भगवान तथागत तुम्हारा कल्याण करें और उसके रूप-मद की उपेक्षा करके आगे चल पड़े।

वासवदत्ता विस्मित हो उठी। जिस रूप-रस के लिए सैकड़ों धनिक उसके दरवाजे पर नाक रगड़ते हैं उसकी उपेक्षा कर दी और सोचने लगी कि भिक्षु की निर्धनता उसे यहां तक नहीं ला सकती और कहा- मुझे धन नहीं चाहिए भिक्षु। मेरे पास अपार संपत्ति व दास-दासियां हैं। मुझे अपना प्रेम प्रदान करके कृतार्थ करें। इस पर उपगुप्त ने कहा- देवी। यह प्रेम नहीं, काम है, ये जीवन दान नहीं, आत्मविनाश है। इससे जीवन में वास्तविक श्रेय का उदय नहीं हो सकता।

२३८) बौद्ध साहित्य में एक कथा है कि एक बार तथागत बोधि की खोज में भटक-भटककर हिम्मत हार चुके थे। चलते-चलते एक झील किनारे विश्राम के लिए कुछ क्षण रुके। वहां एक गिलहरी पर दृष्टि पड़ी। वह बार-बार पानी के पास जाती, अपनी पूंछ उसमें डुबाती और फिर आकर रेत पर उसे झटक देती। नन्ही गिलहरी यह क्या कर रही हो ? सिद्धार्थ ने पूछा। इस झील को सुखा रही हूं- गिलहरी ने कहा। तुम से यह काम असंभव है, भले ही तुम हजार वर्ष जियो, और करोड़ों अरबों बार अपनी पूंछ पानी में डूबा कर झटको। अच्छा तुम ऐसा मानते हो ? पर मैं तो किसी काम को असंभव नहीं मानती, जब तक जीऊंगी अपना काम करती रहूंगी- गिलहरी बोली। सिद्धार्थ के हृदय में एक प्रकाश फैल गया। उन्होंने संकल्प लिया- जब तक बोधि नहीं प्राप्त करूं, मैं भी कपिलवस्तु की ओर नहीं लौटूंगा।

२३९) एक बार भगवान बुद्ध कौशाम्बी आए। वहां के धूर्तजनों ने मिलकर एक मंडली बनाई और तथागत का तिरस्कार करने की ठानी। उन्हें बहुत अपशब्द कहे। आनंद ने कहा- अन्यत्र चलना चाहिए। यहां के लोग बड़े अभद्र है। तथागत ने पूछा- यदि वहां भी ऐसा ही हुआ तो ? आनंद बोले- तब अन्यत्र चलेंगे। प्रश्नोत्तर की यह श्रृंखला बहुत देर तक चलती रही और आनंद अन्यत्र, अन्यत्र की रट लगाए रहे। तथागत ने कहा- यह उचित नहीं। हमें इनसे संवाद करना चाहिए। अगर हम यहां से चले गए तो इनकी बातों को ठीक समझ लिया जाएगा। तथागत ने बातचीत कर धूर्तों की मंडली को सत्य की राह दिखाई और तब अगले दिन गांव छोड़ आगे बढ़ गए।

२४०) गौतमी का आत्मबोध- गौतमी नामक एक स्त्री का एकमात्र पुत्र स्वर्ग सिधार गया। गौतमी बहुत ही दु:खी हुई और वह रोने लगी। रोते-रोते उसे भगवान बुद्ध का ध्यान आया और वह अपने पुत्र का पार्थिव शरीर लेकर बुद्ध के पास पहुंच गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि भगवान बुद्ध उसके पुत्र को जीवन दान देंगे। बुद्ध ने उसे ढ़ाढस बंधाते हुए कहा माता ऐसे घर से थोड़ा जल मांग कर लाओ जिस घर में कोई मौत नहीं हुई हो। मैं मंत्रोच्चारित कर तुम्हारे बेटे के पार्थिव शरीर पर डालूंगा और वह पुन: जीवित हो जाएगा। पुत्र पाने की लालसा से गौतमी घर-घर जाकर जल मांगने लगी। सुबह से शाम हो गई कहीं कोई ऐसा घर नहीं मिला जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। निराश होकर गौतमी वापस आ गई। बुद्ध ने कहा- माता, आपने देखा यह शास्वत नियम है आज नहीं तो कल सभी को मरना है फिर मोह कैसा ? गौतमी को आत्मबोध हुआ और वह पुत्र का दाह संस्कार कर वापस घर आ गई।

२४१) भगवान बुद्ध एक प्रवचन दे रहे थे। प्रवचन सुनने के लिए बैठे व्यक्तियों में से एक व्यक्ति बार-बार नींद के झोंके ले रहा था। तथागत ने उस ऊंघते हुए व्यक्ति से पूछा, वत्स। सो रहे हो ?

नहीं भगवन। हड़बड़ा कर उठते हुए उसने उत्तर दिया। प्रवचन फिर शुरु हो गया और वही श्रोता फिर पहले की तरह ही ऊंघने लगा। भगवान बुद्ध ने कई बार उसे जगाया। परन्तु वह नहीं भगवन कहता और फिर सो जाता। कुछ समय के बाद

तथागत ने पूछा, वत्स जीवित हो।

नहीं भगवन, श्रोता ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध मुस्कराए, फिर गम्भीर होकर बोले, वत्स, निद्रा में तुम्हारे मुख से सही उत्तर निकल गया। जो निद्रा में है, वह मृतक समान है।

२४२) शिष्य की परीक्षा- भगवान बुद्ध के हजारों शिष्य थे। उनमें से एक था आर्यमान। आर्यमान जब धर्म प्रचार के लिए जाने लगा तो बुद्ध ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। बुद्ध ने आर्यमान को बुला कर कहा- तुम धर्म प्रचार के लिए दूसरे देश में जा रहे हो। वहां कोई प्रमादी तुम्हें अपशब्द कहे तो तुम क्या सोचोगे ? आर्यमान ने कहा- मैं समझूँगा कि चलो इस अज्ञानी व्यक्ति ने अपशब्द ही तो कहे। मुझ पर प्रहार तो नहीं किया। अगर कोई प्रहार करेगा तब ? तब मैं सोचूंगा कि तुझ पर सिर्फ प्रहार ही तो किया है, जान से तो नहीं मारा। लेकिन अगर कोई जान से ही मारने लगे तब ? भगवान के इस प्रश्न पर आर्यमान थोड़ी देर खामोश रहा, फिर बोला- तब मैं समझूँगा कि वे मुझे जान से ही तो मार रहे है। वे मेरी आत्मा और मेरे विचारों का तो कुछ नहीं बिगाड़ पाएंगे। आर्यमान का यह उत्तर सुनकर बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने उस योग्य शिष्य को आशीर्वाद देकर समारोहपूर्वक विदा किया।

२४३) अछूत कौन- एक बार वैशाली के बाहर धर्म प्रचार के लिए जाते हुए भगवान बुद्ध ने देखा कि कुछ सैनिक तेजी से भागती हुई एक लड़की का पीछा कर रहे हैं। वह डरी हुई लड़की एक कुएं के पास आ कर खड़ी हो गई। वह हांफ रही थी और प्यासी भी थी। बुद्ध ने उस बालिका को अपने पास बुलाया और कहा कि वह उनके लिए कुएं से पानी निकाले, स्वयं भी पिये और उन्हें भी पिलाए। इतनी देर में सैनिक भी वहां पहुंच गए। बुद्ध ने उन सैनिकों को हाथ के संकेत से रुकने को कहा। उनकी बात पर वह कन्या कुछ झेंपती हुई बोली- महाराज। मैं एक अछूत कन्या हूं। मेरे कुएं से पानी निकालने पर जल दूषित हो जाएगा। बुद्ध ने उससे फिर कहा- पुत्री, बहुत जोर की प्यास लगी है, पहले तुम पानी पिलाओ।

इतने में वैशाली के राजा भी वहां आ पहुंचे। उन्होंने बुद्ध के पांव छूकर प्रणाम किया और सोने के बर्तन में केवड़े और गुलाब का सुगन्धित पानी पेश किया। महात्मा ने उसे लेने से मना कर दिया। बुद्ध ने एक बार फिर बालिका से अपनी बात कही। इस बार बालिका ने साहस बटोर कर कुएं से पानी निकालकर स्वयं पिया और भगवान बुद्ध को भी पिलाया। पानी पीने के बाद बुद्ध ने बालिका से भय का कारण पूछा। कन्या ने बताया- मुझे संयोग से राजा के दरबार में गाने का अवसर मिला था। राजा ने मेरा गीत सुन मुझे अपने गले की माला पुरस्कार में दी। लेकिन उन्हें किसी ने बता दिया कि मैं एक अछूत कन्या हूं। यह जानते ही उन्होंने अपने सिपाहियों को मुझे कैदखाने में डालने की आज्ञा दे दी। मैं किसी तरह उनसे बचकर यहां तक पहुंची हूं। इस पर बुद्ध ने राजा से कहा, सुनो राजन। यह कन्या अछूत नहीं है, आप अछूत हैं। जिस बालिका के मधुर कंठ से निकले गीत का आपने आनन्द उठाया, उसे पुरस्कार दिया, वह अछूत हो ही नहीं सकती। महात्मा बुद्ध के सामने राजा लज्जित ही हो सकते थे।

२४४) मिलिंद और नागसेन- मिलिंद नामक राजा ने एक बार दूत भेजकर बौद्ध संन्यासी नागसेन को अपने दरबार में बुलाया। लेकिन नागसेन ने दरबार में आने से इनकार करते हुए कहलवाया, कह दो राजा से कि नागसेन कोई है ही नहीं। आऊंगा तो अवश्य, लेकिन सम्राट से कह देना कि भिक्षु नागसेन जैसा कोई व्यक्ति नहीं है। दूत चौंका, पर चुप रहा। उसने सम्राट से भी वही बात कही। सम्राट को भी आश्चर्य हुआ।

राजा को नागसेन का जवाब उद्दंडता से भरा हुआ लगा। वह सैनिकों को भेजकर नागसेन को जबरदस्ती उठवाकर राजमहल ले आया। नागसेन जब दरबार में पहुंचा तब राजा ने उससे कहा, नियत समय पर सम्राट ने भिक्षु को लेने के लिए रथ भेजा।

नगर द्वार पर सम्राट ने कहा, भिक्षु नागसेन, हम आपका स्वागत करते हैं। नागसेन बोले, स्वागत स्वीकार है, किंतु भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं। सम्राट ने पूछा, पूरा देश जानता है कि आप भिक्षु नागसेन हैं। नागसेन ने कहा यह लोगों का भ्रम है सम्राट। राजा मिलिंद ने पूछा, आप भिक्षु नागसेन नहीं है तो फिर कौन है ? नागसेन ने कहा- राजन, अगर सचमुच इस प्रश्न का उत्तर चाहते हो तो पहले अपने रथ से घोड़ों को अलग करवाओ।

भिक्षु ने रथ की ओर संकेत कर कहा, क्या यह रथ है ? सम्राट ने कहा, हां, यह रथ है। भिक्षु ने रथ से घोड़े निकलवा दिए फिर पूछा, क्या ये घोड़े रथ हैं ? राजा ने सैनिकों से कहकर घोड़े अलग करवाए। इसी तरह नागसेन ने एक एक कर रथ का छत्र, दोनों पहिए और यहां तक कि धुरी में लगी हुई कीलें भी अलग करवा दीं। फिर नागसेन ने एक पहिया उठा कर राजा से पूछा- बताओ, क्या यह रथ है?

राजा ने कहा- नहीं। तब नागसेन ने बारी-बारी से दूसरी चीजों को उठाकर पूछा- क्या यह रथ है ? राजा हर बार नहीं-नहीं में जवाब देता रहा। आखिर में नागसेन ने राजा से कहा- जिस तरह यहाँ तुम्हारा रथ नहीं है, उसी तरह नागसेन भी नहीं है। अंत में नागसेन ने पूछा, फिर रथ कहां गया ? सम्राट को इसका उत्तर नहीं सूझा। नागसेन ने कहा, रथ का अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। वह कई तंत्रों से बना एक ढांचा मात्र है। उसी तरह यह शरीर पांच तत्वों और अनंत शक्तियों का एक जोड़ है। वह दिखाई पड़ता है, फिर विलीन हो जाता है। हमारा अहंकार हमें भ्रमित करता है कि हम भिक्षु हैं और आप सम्राट। यह शरीर रथ के समान एक सामूहिक ढांचा है, जिस पर हमारा अधिकार नहीं है। इसलिए हमें अपने कर्म पर ध्यान देना चाहिए, पदवी पर नहीं।

राजा मिलिंद नागसेन का उत्तर पाकर हक्का बक्का रह गया। अपनी उद्दंडता के लिए उसने नागसेन से माफी मांगी और सम्मान के साथ उसे वापस भिजवा दिया। नागसेन के जाने के बाद एक दरबारी ने राजा से पूछा- महाराज। नागसेन से आपने माफी क्यों मांगी? उसे जाने क्यों दिया ? राजा ने बताया- नागसेन ने मुझे रथ के माध्यम से बताया कि पुर्जों में चीज होती है, लेकिन पुर्जे चीज नहीं होते। मैंने उसके शरीर को उठा कर मंगाया, लेकिन नागसेन को नहीं। नागसेन अगर कभी आएगा, तो अपनी मर्जी से आएगा। जबरदस्ती तो मैं उसका बस शरीर उठा कर ला सकता हूं। इसीलिए मैंने अपनी गलती के लिए उसे माफी मांगी और उसे विदा किया।

२४५) सबसे बड़ा दान - धर्मचक्र प्रवर्तन का समय था। भगवान बुद्ध की देख-रेख में श्रद्धांजलि-यज्ञ चल रहा था। आवश्यकताओं को देखते हुए सभी दान कर रहे थे। सायंकालीन समय में दान की राशि का लेखा-जोखा चल रहा था कि किसने सबसे ज्यादा धन दिया है। तथागत बोले अमुक वृद्धा ने अधिक दान दिया है। शिष्यों ने पूछा- कैसे ? तथागत ने कहा- सभी ने अपनी धन सम्पदा का थोड़ा सा अंश ही दान दिया है जबकि इस वृद्धा ने अपना सब कुछ सौंप दिया है। उसके पास मात्र यह जल का ही पात्र था।

२४६) आँखें खुली रखो- तथागत बुद्ध का संदेश सुनने के लिए जनता बैठी थी। संदेश समाप्त हो जाने के बाद एक धनिक पुत्र ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए बुद्ध से कहा- भगवन्। आप जैसा तपस्वी तथा ज्ञानी व्यक्ति न हुआ था और न ही होगा। तथागत क्रोधित होकर बोले वत्स। क्या तुमने इतना अध्ययन कर लिया है कि अब तक कितने सन्त महापुरुष हुए हैं और भविष्य भी जान चुके हो कि आगे और कोई नहीं होगा ? बात समाप्त करते हुए बुद्ध बोले- हमेशा आँखे खुली रखो। जो जैसा है उसे वैसा ही महत्व दो। तुलना मत करो।

२४७) पग-पग पर काँटे - भगवान बुद्ध का एक शिष्य बहुत दूर से पैदल चल कर आया। पांव कांटों से बिंधे हुए थे।

शिष्य ने गुरु से कहा- गुरुदेव। ये दुनिया बड़ी खराब है। इसमें तो पग-पग पर काँटे ही काँटे है। गुरुदेव ने कहा पाँवों में खडाऊ पहन लो। दुनिया में काँटे दूर करना सम्भव नही है। वास्तव में अपने स्वभाव में सज्जनता और सहिष्णुता को धारण करना ही खडाऊ पहनना है। यह शिक्षण ही वास्तविक सत्संग है।

२४८) भगवान बुद्ध शिष्यों के साथ भ्रमण कर रहे थे। एक स्थान पर विशाल शिला थी। एक शिष्य ने उसे देखा और रुककर कुछ सोचने लगा। तथागत ने आकर पूछा, क्या हुआ वत्स। किस सोच में डूब गए ? शिष्य बोला देख रहा हूं कि यह कितनी विशाल और मजबूत शिला है। इससे बड़ा भला कौन हो सकता है, जो इसको पराजित कर दे। बुद्ध ने कहा, लोहा यह काम कर सकता है। लोहे में पत्थर से कई गुना अधिक शक्ति होती है, तभी तो वह पत्थर को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है। शिष्य ने कहा, यदि पत्थर से शक्तिशाली लोहा है, तो लोहे से शक्तिशाली कौन है ? वह अग्नि है, बुद्ध ने उत्तर दिया। अग्नि लोहे को गला देती है, उसका वर्तमान नष्ट कर देती है।

शिष्य की जिज्ञासा और बढ़ी, अग्नि से भी शक्तिशाली कोई हो सकता है ? उसने पूछा। बुद्ध बोले, हाँ, क्यों नहीं। जल अग्नि के ताप को भी ठंडा कर देता है। तो इसका अर्थ है कि जल सबसे शक्तिशाली है। शिष्य ने कहा। तथागत बोले, नहीं। प्रबल जलधारा को भी मोड़ देने और विशाल सागर की लहरों को भी आलोड़ित कर देने की शक्ति वायु में है। इसलिए जल से शक्तिशाली वायु है। और तुम जानते हो कि वायु संसार के प्रत्येक जीव के लिए अनिवार्य है। वायु ही जीवन है। शिष्य ने कहा, समझ गया तथागत, इसका मतलब है कि वायु ही सर्वश्रेष्ठ और सर्व शक्तिशाली है ? नहीं वत्स। बुद्ध ने कहा, मनुष्य के मन की शक्ति सबसे बड़ी है, क्योंकि वह इस शक्ति द्वारा वायु को भी वश में कर लेता है। यदि वह मन में ठान ले तो पर्वत को भी खोदकर फेंक सकता है, नदी की धारा बदल सकता है, वायु के प्रवाह को अपने अनुकूल कर सकता है।

२४९) सच्चा उपदेश- महात्मा बुद्ध का एक शिष्य एक दिन उनके पास पहुंचा और बोला, आज मैंने एक भिखारी को बुलाकर बहुत देर तक उसे धर्म की शिक्षा दी, प्रेरक उपदेश दिये, परन्तु उस मूर्ख ने मेरी बातों पर कोई गौर नहीं किया।

शिष्य की बात सुनकर बुद्ध ने उससे भिखारी को बुला लाने को कहा। जब भिखारी दीनहीन अवस्था में आया तो बुद्ध ने उसे पेट भर खाना खिलाकर प्रेमपूर्वक विदा कर दिया। इस पर उनके शिष्य ने आश्चर्य से पूछा, आपने उसे बिना कोई उपदेश दिये भेज दिया ?

इस पर बुद्ध बोले, आज उसके लिए भोजन ही उपदेश था, उसे प्रवचन से ज्यादा अन्न की जरूरत थी। यही सच्चा उपदेश है। यह सुनकर उनका शिष्य निरूत्तर हो गया।

२५०) नगर पिता- महामाहन को वैशाली नगर में अपने सद्गुणों और वरिष्ठता के कारण नगर पिता की उपाधि मिली हुई थी। वह इसे एक उत्तरदायित्व समझकर भलीभांति निभा रहे थे। एक दिन उस नगर पर शत्रु राज्य ने चढ़ाई कर दी। शत्रु की सेना बालकों, स्त्रियों और वृद्धों को भी सताने लगी। अत्यंत वृद्ध और अशक्त होते हुए भी महामाहन दुश्मनों के बीच आए और ललकार कर बोले, तुम्हें कुटिल नीति के कारण भले ही सफलता मिल गई है, पर अपने को विजेता समझने की भूल न करो। नगर की एक भी स्त्री, बालक या वृद्ध का बाल तक बांका नहीं होना चाहिए।

शत्रु राजा ने बूढ़े महामाहन की यह मांग अनसुनी कर दी। संयोग से वह महामाहन का दूर का संबंधी था, इसलिए उसके प्रति उदारता दिखाते हुए उसने कहा, मैं आपकी और आपके परिवार की रक्षा का वचन दे सकता हूं। इसके अलावा मुझे किसी और से कुछ लेना-देना नहीं है। महामाहन केवल अपनी सलामती नहीं चाहते थे। वह नगर पिता की हैसियत से अपना कर्त्तव्य निभाना चाहते थे। जब नगर के हजारों स्त्री-पुरुष कष्ट में हों, तब अकेले अपने कुटुंब को बचाने का उनके

लिए कोई अर्थ नहीं था। उन्हें अपने प्राणों की चिंता न थी। उनका नगर धर्म उन्हें पुकार रहा था। आक्रमणकारी राजा को उन्होंने खूब समझाया, खूब प्रार्थना की। अंत में राजा थोड़ा पिघला और बोला, महामाहन, आप इतना कह रहे हैं तो आपकी बात मान लेता हूं। लेकिन मेरी एक शर्त है। आप नदी में डुबकी मारें। आपके ऊपर आने से पहले जितने नागरिक जितनी सम्पत्ति लेकर भाग जाना चाहें भाग सकते हैं। देखता हूं आप कब तक नदी में रहते हैं। राजा की यह कठोर शर्त महामाहन मान गए। उन्होंने नदी में डुबकी लगाई और तली में पहुंचकर एक पेड़ की जड़ से चिपट गए। घंटों बीत जाने पर भी महामाहन ऊपर न आए। अंत में खोज करने पर महामाहन का शरीर वृक्ष की जड़ के साथ जकड़ा पाया गया। उन्होंने नगर की रक्षा के लिए अपना शरीर त्याग दिया था। इस तरह नगर पिता की उपाधि को उन्होंने सार्थक किया।

२५१) एक वृद्धा भगवान बुद्ध के पास आई और बोली, मेरी इकलौती पौत्री का निधन हो गया है। समझ में नहीं आ रहा कि मैं उस नन्ही गुड़िया के बिना कैसे रह पाऊंगी। बुद्ध ने कहा, प्रतिदिन लड़कियां जन्म लेती रहती हैं मैं तुम्हें किसी से कहकर एक नवजात पुत्री दिलवा दूंगा। यह सुनकर वह बोली, भगवन, यदि मैं गोद लूंगी तो लड़के को। लड़की को गोद लेकर क्या करूंगी ? बुद्ध बोले, तुम नन्ही सी गुड़िया के लिए दुखी हो रही थी, अब लड़के की चाह क्यों ? तुम स्वयं महिला हो, फिर भी लड़की को हीन क्यों समझती हो ? यह सुनकर वृद्धा लज्जित हो गई।

२५२) कुलपति कौन- बात पुरानी है। बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हो चुका था। एक बड़े बौद्ध संघाराम के लिए योग्य कुलपति की नियुक्ति विद्वानों के लिए चर्चा का विषय बनी हुई थी। आचार्य के चयन के लिए विद्या विवेक के धनी मौदगल्यायन का चयन किया गया। कुलपति पद के लिए तीन सद्पात्र उम्मीदवार थे। उनमें से एक का चयन करना था। तीनों को प्रवास पर भेजा गया। आचार्य मौदगल्यायन उनकी परीक्षा लेने के लिए जंगल में पहले ही पहुंच गए थे। उन्होंने मार्ग में कांटे बिछा दिए। संध्या तक तीनों विद्वान भी निर्धारित गंतव्य के निकट पहुंच गए। कांटे देखकर तीनों ठिठके। एक आचार्य ने अपना रास्ता बदल लिया। दूसरे आचार्य ने कूदकर रास्ता पार कर लिया। तीसरे आचार्य कांटे बीनने लगे ताकि आनेवालों का मार्ग निष्कंटक बने। भले ही अपने गंतव्य तक देर से पहुंचे। परीक्षक मौद्गल्यायन झाड़ी में छिपे सब देख रहे थे। उन्होंने कांटे बीननेवाले आचार्य को कुलपति घोषित कर दिया। परीक्षक ने कहा कि संघाराम में सत्यप्रवृत्तियों की परम्परा वही डाल सकेगा जो स्वयं सबका ध्यान रखे और अपने आचरण से प्रेरणा उभारने की क्षमता रखता हो।

२५३) समय का निदान- कौशाम्बी नरेश की महारानी भगवान बुद्ध से घृणा करती थीं। एक बार जब भगवान बुद्ध कौशाम्बी आए तो महारानी ने उन्हें परेशान और अपमानित करने के लिए कुछ विरोधियों को उनके पीछे लगा दिया। आनन्द जो हमेशा ही उनके साथ रहते थे, उनके प्रति इस प्रकार की दुर्व्यवहार देखकर बहुत दुखी हुए। परेशान होकर आनन्द ने भगवान बुद्ध से कहा- भगवन्। ये लोग हमारा अपमान करते हैं। क्यों न इस शहर को छोड़कर कहीं और चल दें ? भगवान बुद्ध ने आनन्द से प्रश्न किया- कहां जाएं ? किसी दूसरे शहर में आनन्द ने जवाब दिया। अगर वहां भी लोगों ने ऐसा ही अपमानजनक व्यवहार किया तो ? भगवान बुद्ध ने सवाल किया। तो फिर वहां से भी किसी दूसरे शहर चलेंगे आनन्द ने कहा। और अगर वहां भी लोग यों ही अपमान करेंगे फिर ? तो फिर कहीं और... आनन्द ने सुझाव दिया। नहीं आनंद तथागत ने गंभीर होकर कहा- ऐसा सोचना ठीक नहीं हैं। जहां कोई मुश्किल पैदा हो, कठिनाइयां आएं, वहीं डटकर उनका मुकाबला करना चाहिए। वहीं उनका समाधान किया जाना चाहिए। जब वे हट जाएं तभी उस स्थान को छोड़ना चाहिए। मुश्किलों को वहीं छोड़कर आगे बढ़ना पलायन है, किसी समस्या का हल नहीं।

२५४) अमरता की शर्त- महात्मा बुद्ध एक बार अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में शिष्यों ने एक छोटे व

मजबूत से पौधे की तरफ इशारा करते हुए पूछा, गुरुजी इस पौधे की उम्र क्या हैं ? बुद्ध ने बताया, इस की उम्र अंतहीन है, यह अमर वृक्ष है। तभी एक शिष्य ने उस पौधे को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया ओर बोला, लेकिन मैंने तो उसे एक पल में समाप्त कर दिया। बुद्ध बिना कुछ कहे मुसकराए और आगे बढ़ गए। महीनों बाद बुद्ध उसी रास्ते से फिर लौटे। उस पौधे को अब भी जीवित और हराभरा देख कर शिष्यों ने गुरुजी से माफी मांगते हुए पूछा, तथागत, आप को इसकी अमरता का पता कैसे चला ? बुद्ध ने कहा, मैं इस नन्हें से पौधे की जीवित रहने की इच्छा को पहले से जानता हूं। यह जीने की तीव्र इच्छा ही जीवन और अमरता की पहली शर्त है।

२५५) उड़िया बाबा की सद्प्रेरणा- महान उड़िया बाबा श्री हरिबाबा बौद्ध आश्रम में भक्तजनों के बीच बैठे हुए थे। एक व्यक्ति उनके पास पहुंचा तथा बोला, बाबा, आश्रम में रहनेवाले अमुक व्यक्ति को आप बहुत स्नेह करते हैं, उसे कभी दूध दिलवाते हैं, तो कभी फल, जबकि वह व्यक्ति अनेक दुर्गुणों से युक्त है। हम उसे आश्रम से निकालने के बारे में सोच रहे हैं। यह सुनते ही बाबा बोले, जब सृष्टि के मालिक भगवान ने ही उसके दुर्गुणों को जानते हुए उसे संसार से नहीं निकाला, तो हम उसे इस छोटे-से आश्रम से निकालने वाले कौन होते हैं ? कुछ क्षण रुककर बाबा ने कहा, भइया, ऐसा कौन है, जिसमें दुर्गुण नहीं हैं ? क्या तुम अपने को पूरी तरह सद्गुणी मानते हो? फूल के साथ कांटे भी तो होते हैं। वह यहां सत्संग में रहते-रहते ठीक हो जाएगा।

जब बाबा के इन शब्दों का पता उस व्यक्ति को चला तो वह चकित रह गया। उसने तत्काल अपने दुर्गुणों को त्यागने का संकल्प ले लिया। उस व्यक्ति के जीवन में बदलाव देखकर सभी हतप्रभ थे।

२५६) राजा का संदेह- कोशल नरेश धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति थे। उनकी पत्नी भी एक धर्मपरायण महिला थीं। एक बार बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद को कोशल नरेश ने अपने महल में आमंत्रित किया। आनंद का उपदेश सुनकर कोशल नरेश बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने आनंद से अनुरोध किया कि वे अपना उपदेश प्रजाजन को भी दें। इस बीच कोशल नरेश को किसी आवश्यक कार्य से नगर छोड़कर जाना पड़ा। जाते हुए उन्होंने आनंद से कहा कि वह कुछ दिन और कोशल में ठहरने का कष्ट करें। आनंद कुछ दिन रुके रहे। जब वह विदा लेने लगे तो महारानी ने उन्हें ढेरों वस्त्र उपहार में दिए। आनंद वे वस्त्र लेकर वापस चले गए। जब कोशल नरेश लौटे तो उन्हें महारानी ने सब कुछ बताया। कोशल नरेश को यह बात थोड़ी अटपटी लगी। उन्हें समझ में नहीं आया कि आखिर आनंद ने वे वस्त्र स्वीकार कैसे कर लिए। वह बुद्ध के उपदेश से परिचित थे। उन्हें पता था कि बुद्ध अपने शिष्यों से यह संकल्प करवाते थे कि वे तीन से ज्यादा वस्त्र नहीं रखेंगे।

कोशल नरेश ने यह बात किसी से नहीं बताई, लेकिन उनके मन में यह सवाल रह-रहकर उठ रहा था। कुछ दिनों बाद वह जैतवन पहुंचे। उन्होंने सोचा कि यहां आनंद से भेंट भी हो जाएगी और वह अपने मन की शंका का समाधान भी कर लेंगे। जब वह बौद्ध विहार पहुंचे तो उन्होंने न तो आनंद को, न ही भिक्षुओं को नए कपड़े पहने देखा। कोशल नरेश समझ नहीं पा रहे थे कि यह बात कैसे पूछी जाए। फिर उन्होंने घुमा-फिराकर प्रश्न किया, महारानी ने जो वस्त्र दिए वे आपने धारण नहीं किए। इस पर आनंद मुस्कुराए और बोले, ऐसा हम कैसे कर सकते हैं। फिर उन्होंने महाराज को पास की एक बस्ती में चलने को कहा। कोशल नरेश ने वहां पहुंचकर देखा कि सारे ग्रामीण नए कपड़ों में थे। अपनी शंका के लिए कोशल नरेश ने मन ही मन पश्चाताप करते हुए आनंद को नमन किया और लौट आए।

२५७) एक बार भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्द ने उनसे पूछा, प्रभु, उपदेश देते समय आप तो उच्च आसन पर बैठते हैं पर श्रोताओं को नीचे बैठना पड़ता है। क्या यह गुरु-शिष्य में भेद की स्थिति नहीं उत्पन्न करता ? बुद्ध मुस्कुराए फिर

उन्होंने पूछा, क्या तुमने झरने का जल पिया है ? आनन्द ने कहा, हां अनेक बार।

बुद्ध बोले, तुमने देखा होगा कि जल सदैव ऊपर से नीचे की ओर गिरता है। पथिक को नीचे रहकर ही जल पीना पड़ता है। मान लो तुम किसी पहाड़ी पर खड़े हो और वहां से बह रही किसी नदी का जल पीने की इच्छा करोगे तो क्या नदी तुम्हारी इच्छा पूरी करेगी ? नहीं न। वत्स, नीचे रहकर ही किसी वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है।

२५८) मनुष्यता में विश्वास- एक बौद्ध भिक्षुक किसी गांव से गुजर रहे थे। उनसे किसी व्यक्ति ने पूछा, आप जा तो रहे हैं, पर क्या आपके पास खाने-पीने का प्रबंध है ? कुछ रुपये-पैसे पास में हैं क्या ? भिक्षुक ने सहज भाव से कहा, रुपये-पैसे तो पास में हैं नहीं और रखकर भी करना क्या है ? सिक्के तो संसार में बिखरे पड़े हैं। जहां पहुंचेंगे वहीं बिखरे मिलेंगे। वह व्यक्ति बोला, सिक्के कैसे मिलेंगे? भिक्षुक ने कहा, मुझे मनुष्य की पवित्रता में, उसकी उदारता में विश्वास है और इसी भरोसे के बल पर मैं दुनिया भर में घूमूंगा और जहां भी जाऊंगा मनुष्य रूपी सिक्के बिखरे मिलेंगे। उस व्यक्ति ने कहा, क्या सचमुच आपको ऐसा विश्वास है ? भिक्षुक बोले, हां, नि:संदेह मुझे विश्वास है कि मनुष्य अपने विचारों में पवित्र और उदार होता है और मैं जहां भी जाऊंगा मुझे मनुष्य की उदारता का वरदान मिलेगा। किसी भी धर्म का मूलाधार है मनुष्यता में विश्वास। मैं इसी भावना के साथ निकला हूं और इसका निरंतर प्रसार करना चाहता हूं।

२५९) दो उपदेश- भगवान बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। तभी एक किसान वहां आया। उसने पहले उस पेड़ को प्रणाम किया फिर बुद्ध के सामने झुका। बुद्ध ने जब इसका कारण पूछा तो उसने बताया, यह हमारे गांव की परिपाटी है। हम सब इस पेड़ में गहरी आस्था रखते हैं। बुद्ध ने कहा, इस परंपरा को आगे भी जारी रखना। बुद्ध के एक शिष्य को यह अच्छा नहीं लगा। उसने पूछा, आपने उस ग्रामीण के अंधविश्वास को बढ़ावा क्यों दिया ? जबकि ऐसा ही करने पर आपने अग्निदत्त के प्रति अप्रसन्नता दिखाई थी। बुद्ध बोले, इस भोले किसान ने सच्चे मन से अपना सिर झुकाया है जबकि अग्निदत्त में अहंकार झलक रहा था। अग्निदत्त को विद्वता का अहंकार है। मैं दो व्यक्तियों को एक जैसा उपदेश नहीं देता क्योंकि हर व्यक्ति की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। संसार विद्वता तो अर्जित कर रहा है पर अपनी सरलता छोड़ता जा रहा है जबकि उसकी भी रक्षा की जानी चाहिए।

२६०) सच्चा दान- बुद्ध ने मगध की राजधानी में उपदेश देने के बाद लौटने का निश्चय किया तो अनेक उपासक उन्हें भेंट देने आए। बुद्ध एक पेड़ के नीचे हर किसी का उपहार स्वीकार कर रहे थे। सम्राट बिम्बसार ने अनेक बहुमूल्य वस्तुएं प्रदान की। सेठ-साहूकार भी कीमती चीजें लेकर आए थे। बुद्ध अपना दाहिना हाथ फैलाकर भेंट स्वीकार कर रहे थे। एक वृद्ध महिला आधा फल लेकर आई और बोली, भगवन, मेरे पास आपको देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं तो बहुत गरीब हूं। मुझे जब मालूम पड़ा कि आप भेंट स्वीकार करनेवाले है, तब तक मैं आधा फल खा चुकी थी। बस आधा बचा है। वह आपको देना चाहती हूं। बुद्ध यह सुनते ही आसन से उतरे और उन्होंने अपने दोनों हाथ फैलाकर बुढ़िया का आधा फल स्वीकार किया। यह देखकर वहां उपस्थित लोग आश्चर्य में पड़ गए। बिम्बसार ने इसका कारण पूछा तो बुद्ध ने शांत भाव से उत्तर दिया, आप सब ने अपनी बहुमूल्य संपत्ति का एक अंश मात्र दान में दिया है। उसमें दान देने का अहंकार भी शामिल है। पर इस वृद्धा ने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया, किंतु इसके मुख पर कितनी करुणा तथा नम्रता है। बुद्ध की इस बात पर सबका सिर झुक गया।

२६१) महात्मा बुद्ध काशी के एक सम्पन्न किसान के पास गए और उससे भिक्षा मांगी। किसान ने व्यंग से उनकी ओर देखते हुए कहा, मैं परिश्रम से खेत जोतता-बोता हूं तब जो फसल होती है उससे उदर पूर्ति करता हूं। पर आप तो बगैर

खेती किए भोजन पाना चाहते हैं।

मैं भी तो किसान हूं। खेती करता हूं। बुद्ध ने शांत भाव से उत्तर दिया। खेती। किसान ने आश्चर्य से कहा। बुद्ध बोले, हां, वत्स मैं आत्मा की खेती करता हूं। ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूं। उसे तपस्या के जल से सींचता हूं। मेरी इस खेती से अमरता की फसल लहराती है। किसान लज्जित हो गया।

२६२) कर्म ही धर्म है- एक बार एक गरीब किसान के आग्रह पर गौतम बुद्ध उसके गांव गए। गांव पहुंचने पर वहां के लोग उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़े, लेकिन उसी दिन बुद्ध को गांव बुलाने वाले किसान के बैलों की जोड़ी कहीं खो गई। किसान अब दुविधा में फंस गया कि वह महात्मा का प्रवचन सुनने जाए या बैलों को खोजे। काफी सोचने के बाद उसने अपने बैलों को खोजने का निश्चय किया। घंटों भटकने के बाद, उसे अपने बैल मिल गए। थकान होने से वह घर आते ही भोजन करके सो गया। अगले दिन वह संकोच के साथ बुद्ध के पास गया। बुद्ध उसकी परेशानी समझ गए और बोले, मेरी नजर में यह किसान ही मेरा सच्चा अनुयायी है। उसने उपदेशों से अधिक कर्म को महत्व दिया। अगर कल यह अपने बैलों को खोजने न जाता और यहां आकर मेरा प्रवचन सुनता तो इसे मेरी कही हुई बातें समझ में नहीं आती, क्योंकि इसका मन कहीं और भटक रहा होता। इसने कर्म को महत्व देकर सराहनीय कार्य किया है।

२६३) संगठन में शक्ति- भगवान बुद्ध का अन्त समय आ चुका था। सभी शिष्य एकत्र हो चुके थे। अपने शिष्यों के लिए उनका अन्तिम संदेश था- हे मित्रों, जब तक तुम सभी संयमी होकर मित्रभाव से रहोगे, मिल-बांट कर खाओगे और धर्म की राह पर मिलकर चलोगे तब तक बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी तुम नहीं हारोगे। लेकिन जिस दिन तुम संगठित न होकर बिखर कर रहने लगोगे हमेशा पराजित होओगे संगठन में शक्ति होती है।

२६४) संयम की सीख- गौतम बुद्ध भ्रमण करते हुए एक गांव में पहुंचे। उस गांव का प्रमुख बुद्ध को पसंद नहीं करता था। वह नहीं चाहता था कि लोग बुद्ध की बातें सुनें। उसे जैसे ही पता चला कि बुद्ध अपने शिष्यों के साथ गांव में आ रहे हैं, उसने लोगों को आदेश दिया कि वे अपने दरवाजे बंद रखें और बुद्ध को भिक्षा न दें। वह स्वयं दरवाजे बंद कर घर के चबूतरे पर बैठ गया। बुद्ध इस बात से अवगत थे। वह मुस्कराते हुए ग्राम प्रमुख के घर के सामने खड़े हो और उन्होंने भिक्षा की मांग की।

ग्राम प्रमुख आगबबूला होता हुआ उठा और बोला, अरे मुस्टंडे संन्यासी, भागो यहां से। काम धंधा कुछ करते नहीं और भीख मांग कर पेट भरते हो। क्यों अपना और नौजवान शिष्यों का जीवन नष्ट कर रहे हो। कुछ कष्ट उठाओ काम करो और पेट भरो। भागो यहां से। बुद्ध स्थिर खड़े सब कुछ सुनते रहे, फिर बोले, महोदय, मेरी एक शंका है। क्या उसका निवारण करेंगे ?

क्या शंका है ? ग्राम प्रमुख ने तेज स्वर में पूछा। बुद्ध बोले, महोदय, आपके घर में आकर कोई कुछ मांगता है। आप उस पर दया करके कुछ पदार्थ थाली में रखकर लाते हैं और वह उसे स्वीकार किए बिना ही चला जाता है, तो बताइए कि आप उस थाली और उसमें रखे पदार्थ का क्या करेंगे ? उसने कहा, मैं उसे वापस अपने घर में रख लूंगा, कोई नष्ट थोड़े ही करूंगा। बुद्ध मुस्कराते हुए बोले, महोदय, उस दशा में आपका सामान आपके पास ही रहा न। वह बुद्ध की बात समझ नहीं पाया, इसलिए उसने उनसे अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा। बुद्ध ने समझाते हुए कहा, आपके घर आकर मैंने भिक्षा मांगी और आपने उसके उत्तर में हमें गालियां दीं और भला बुरा कहा। आपने हमें भिक्षा में अपशब्द दिए जो हमें स्वीकार्य नहीं। इसलिए यह आपके पास ही रह गया, जैसा कि आप स्वयं स्वीकार कर चुके हैं। ग्राम प्रमुख को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने उनसे क्षमा याचना की।

२६५) शब्द नहीं- एक दिन महात्मा बुद्ध शांत भाव से बैठे थे कि अचानक एक व्यक्ति अपने नथुने फुलाकर बड़े गुस्से

में आया और उसने उन्हें नफरत से देखते हुए उनके मुंह पर थूक दिया। यह देखकर आसपास मौजूद बुद्ध के शिष्य क्रोधित होकर उस आदमी को मारने दौड़े। महात्मा बुद्ध ने उन्हें अपने बांये हाथ के इशारे से रोक दिया और दायें हाथ से अपनी चादर से मुंह यूं पोंछ लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर उन्होंने उस गुस्सैल व्यक्ति से पूछा, आपको और कुछ कहना है ? वह आदमी झेंपकर तत्काल वहां से चला गया। बुद्ध के परम शिष्य आनन्द ने उनसे पूछा, भगवन्, वह व्यक्ति आपका इतना घोर अपमान करके चला गया फिर भी आपने उससे कुछ नहीं कहा। महात्मा बुद्ध मौन रह गए। अगले दिन सुबह-सुबह वही व्यक्ति फिर महात्मा बुद्ध के पास आया और उनके चरणों में गिर गया। उसकी आंखों से आंसू की धारा बह निकली। महात्मा बुद्ध ने पास खड़े आनन्द से कहा, देखा आनन्द। कल भी इस व्यक्ति को शब्द नहीं मिल रहे थे और अब भी इसकी वही अवस्था है। पर अब न तो यह कल वाला आदमी रह गया है और न ही मैं वही हूं।

२६६) आनन्द अकसर देखता था कि महात्मा बुद्ध रात में जिस करवट सोते थे उसी करवट सुबह उठते थे। उसने सोचा कि इसमें जरूर कोई न कोई राज होगा। इसलिए एक दिन उसने मौका देखकर विनयपूर्वक उनसे करवट न बदलने का कारण पूछा। बुद्ध मुस्कराए और बोले, आनन्द। करवट न बदलने के मुख्य रूप से तीन कारण हैं। पहला तो यह कि इससे पीछे उपस्थित चींटी और कोई अन्य जीव दबने से बच जाता है। दूसरा, मैं इस बात का ध्यान रखता हूं कि कहीं नींद में भी अचेतन न हो जाऊं। तीसरा, यदि मेरे मन में कोई इच्छा नहीं है, मेरा मन शांत है और मैं निश्चिंत हूं तो फिर करवट बदलने का कोई कारण नहीं है। आनन्द को समझ आ गया कि महात्मा बुद्ध अचेतन और चेतन में साम्य स्थापित कर चुके हैं।

२६७) एक बार गौतम बुद्ध कोसल जनपद में पधारे। रात्रि को प्रवचन के बाद एक शिष्य ने प्रश्न किया, भंते, यहां जब भी कोई आता है तो वह अपने मत का प्रचार कर दूसरे के मत का खंडन करता है। तब हम संशय में पड़ जाते हैं कि किसका कथन सही है और किसका गलत। बुद्ध ने कहा, तुम्हारे चित्त का इस प्रकार विचलित होना स्वाभाविक है। वस्तुत: संशय ही ज्ञान का जनक है। किसी बात को तुम इसलिए सत्य मत मानो कि यह तुम्हारी श्रुति है। तुम इसलिए भी सत्य मत मानो कि तुम उसे सदा से सत्य मानते आए हो। ऐसा तो है ही- यह कहकर भी किसी बात को सत्य मत मानो। किसी बात को केवल इसलिए सत्य मत मानो कि पिटक में उसका अनुमोदन किया गया है। किसी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी बात को भी सत्य मत मानो। जब तक तुम्हारा विवेक न कहे, किसी बात को सत्य मत मानो।

२६८) दुख के बीज- एक दिन तथागत बुद्ध किसी गांव में ठहरे हुए थे। कुछ उपासक उनके सामने बैठे थे। जीवन के विविध प्रसंगों पर चर्चा चल रही थी। उपासक बुद्ध से कुछ न कुछ प्रश्न पूछ रहे थे और बुद्ध उनक उत्तर दे रहे थे। कुछ देर बाद बुद्ध ने गौर किया कि एक उपासक एकदम चुप है। वह कुछ बोल नहीं रहा। उसके चेहरे पर उदासी झलक रही थी। तथागत ने उससे पूछा, क्या बात है ? आप इतने उदास क्यों हो ? उपासक बोला, मैं बहुत दुखी हूं, लेकिन दुख के निवारण की कोई युक्ति नहीं सूझ रही। तथागत पूछने लगे, क्या दुख है ? उपासक ने कोई जवाब नहीं दिया। फिर तथागत ने कुछ सोचकर कहा, दुख की तह में देखो। उपासक पूछने लगा, वह कैसे तथागत ?

बुद्ध बोले, जाओ जंगल से कुछ अंकुरित पौधे उखाड़कर ले आओ, जिनकी दो-चार पत्तियां ही उगी हों, लेकिन ध्यान रखना, पौधे अलग-अलग किस्म के हों।

उपासक कुछ समझ न सका पर बुद्ध की आज्ञा का पालन करने के लिए वह जंगल से अलग-अलग किस्म के कुछ पौधे उखाड़कर ले आया और उन्हें तथागत को सौंप दिया। तथागत ने एक पौधा उसके हाथ में पकड़ाया और उसकी एक पत्ती फाडकर पूछने लगे, यह किस वनस्पति का पौधा है ? उपासक ने कहा, भगवन, मालूम नहीं, ये पत्तियां अभी ठीक

से विकसित नहीं हुई हैं। अभी इनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। बुद्ध बोले, इस पौधे की गुठली देखो। उपासक गुठली हाथ में लेते हुए कहने लगा, यह तो निमोली है। फिर तथागत ने दूसरे पौधे की गुठली हाथ में पकड़े हुए पूछा, यह किसकी है?

उपासक बोला, यह बेर है। बुद्ध ने तीसरे पौधे की गुठली पकड़ते हुए पूछा, यह किसकी है ? उपासक ने जवाब दिया, यह जामुन है। यह सिलसिला कुछ देर तक चला। बुद्ध ने सभी बीजों के बारे में उस व्यक्ति से पूछा और वह उनके नाम बताता रहा।

फिर बुद्ध बोले, ऐसे ही हर दुख के बीज होते हैं। कोई भी दुख बिना बीज के नहीं उगता। दुख के बीज पहचानो फिर उसकी दवा कोई ना कोई बता ही देगा। यह सुनते ही उपासक ने बुद्ध के चरणों में माथा टेक दिया।

२६९) बुद्ध और बच्चे- महात्मा बुद्ध किसी उपवन में विश्राम कर रहे थे। तभी बच्चों का एक झुंड आया और पेड़ पर पत्थर मारकर आम गिराने लगा। एक पत्थर बुद्ध के सिर पर लगा और उससे खून बहने लगा। बुद्ध की आंखों में आंसू आ गए। बच्चों ने देखा तो भयभीत हो गए। उन्हें लगा कि अब बुद्ध उन्हें भला-बुरा कहेंगे। बच्चों ने उनके चरण पकड़ लिए और उनसे क्षमायाचना करने लगे। उनमें से एक ने कहा, हमसे भारी भूल हो गई है। हमने आपको मारकर रुला दिया। इस पर बुद्ध ने कहा, बच्चों, मैं इसलिए दुखी हूं कि तुमने आम के पेड़ पर पत्थर मारा तो पेड़ ने बदले में तुम्हें मीठे फल दिए, लेकिन मुझे मारने पर मैं तुम्हें सिर्फ भय ही दे सका।

२७०) कौशाम्बी का एक विद्वान शास्त्रार्थ में जीत हासिल कर अभिमान से भर उठा। उसके बाद से वह एक मशाल लेकर चलने लगा। जब लोग उसके इस विचित्र आचरण के बारे में पूछते तो वह उत्तर देता, संसार इतना अंधकारपूर्ण है कि जहां तक हो सके उसे रोशनी दिखाने के लिए मैं यह मशाल लेकर चलता हूं। एक दिन एक बौद्ध भिक्षु ने यह सुना तो उसने कहा, मित्र, यदि तुम्हारी आंखें दिन के सर्वव्याप्त प्रकाश को नहीं देख पातीं तो इसमें दुनिया का नहीं तुम्हारा दोष है। तुम असल अंधकार को देख ही नहीं पा रहे हो। वह इस मशाल से दूर नहीं होगा।

क्या मतलब ? विद्वान ने पूछा। भिक्षु ने उत्तर दिया, लोगों के भीतर से अशिक्षा और अज्ञान का अंधकार दूर करने की आवश्यकता है और यह काम तुम उन्हें अपना ज्ञान देकर कर सकते हो। इस तरह दिन में भी मशाल लेकर चलने से तुम तेल और अपना ज्ञान दोनों व्यर्थ नष्ट कर रहे हो।

२७१) एक सिक्का- बहुत पहले चीन में चांग चू नामक प्रदेश में वहाँ के एक महन्त ने भगवान बुद्ध की एक मूर्ति बनवाने के लिए अपने शिष्यों को धन इकट्ठा करने हेतु घर-घर भेजा। इसी प्रक्रिया में एक शिष्य को एक तिन-नू नाम की बालिका मिली। उसके पास मात्र एक सिक्का था। श्रद्धावश उसने अपने सिक्के को दान करना चाहा। मगर महंत के शिष्य ने एक सिक्का को अति तुच्छ समझकर लेने से इनकार कर दिया। तत्पश्चात् कुछ दिनों के बाद जब काफी मात्रा में धन इकट्ठा हो गया, तब मूर्ति-निर्माण आरंभ हुआ। परंतु बार-बार के प्रयास के बावजूद मूर्ति सुन्दर ढंग से पूर्ण नहीं हो पाती थीं। इस पर महंत को संदेह हुआ।

महंत के आदेशानुसार सभी शिष्यों ने बारी-बारी से अपने-अपने वृत्तान्त सुनाये। एक के वृत्तान्त में तिन-नू प्रसंग आया। इससे महंत को झटका लगा। तुरन्त महंत के आज्ञानुसार वह शिष्य उस बालिका के पास गया और क्षमा माँगते हुए उस सिक्के को सहर्ष ले लिया। कहा जाता है, धातुओं के घोल में उस सिक्के को मिला देने पर सहज ही एक सुन्दरतम मूर्ति का निर्माण हो गया।

२७२) निर्झर-मन- निर्वाण से छह माह पूर्व एक दिन बुद्ध आनन्द के साथ एक मार्ग से गुजरे। मार्ग में चलते-चलते बुद्ध थक गये थे। वे एक पेड़ के नीचे बैठ गये सहसा बुद्ध को प्यास लगी। उन्होंने आनन्द से कहा, कहीं से थोड़ा जल

लाकर दो ताकि मैं अपनी प्यास बुझा सकूं। रास्ते में हमने एक झरना देखा था, तुम वहां से जल भर कर ले आओ। आनन्द जब पहुँचा तो उसी समय एक बैलगाड़ी पानी में से होकर निकली। पानी गँदला हो गया। ऐसा गँदला पानी देखकर उसने अन्यत्र से पानी ले जाना उचित समझा। अत: आनन्द बुद्ध को बताकर पानी की खोज में कहीं और जाने लगा।

आनन्द गए और लौट कर कहा, झरना गंदला हो गया है, अत: मैं जल नहीं लाया। बुद्ध ने आनन्द को पुन: वहां भेजते हुए कहा, तुम वहीं जल ले आओ। उतावली नहीं करो। झरने से ही पानी ले आओ।

वह जब तक दुबारा वहाँ पहुँचा, तब तक गँदला पानी बह चुका था। चौथी बार जब आनंद पहुंचे तो नदी का पानी शीशे की तरह चमक रहा था। गंदगी का नामोनिशान नहीं था। आनन्द ने प्रसन्नतापूर्वक कमंडल भरा और पानी ले आया।

आनन्द ने झरने के पास लौट कर देखा, अब पानी साफ था। बुद्ध को पानी देते हुए आनन्द ने कहा, मुझे एक गहरा संदेश आपने दे दिया है- जैसे गंदला झरना पुन: निर्मल हो जाता है, वैसे ही मन भी गंदलेपन से उबर जाता है। धूल के कुछ कण बचे भी रह जाएं, तो थोड़ी प्रतीक्षा के बाद वे भी बैठ जाते हैं। मैं किनारे बैठकर साक्षी होना सीख गया। तथागत ने कहा- आनन्द, प्रकृति को देखो, परिस्थिति को नहीं। परिस्थिति बदल जाती है, किन्तु प्रकृति स्थिर रहती है। इसी तरह यदि श्रेष्ठता सुसंस्कारित है, सद्‌गुणों का समुच्चय है, तो बहिरंग में दृश्यमान मलिनता सामयिक है। प्रकृति निश्चय रूप से प्रबल है। वह जोर मारेगी और श्रेष्ठता स्वत: स्फूर्त उभर कर आ जायेगी। बुद्ध ने कहा, जीवन को भी विचारों की बैलगाड़ियां प्रतिदिन गंदा करती हैं और हम भागने लगते हैं। गंदा पानी साफ नहीं किया जा सकता, पर इंतजार जरूर किया जा सकता है कि पानी में हर चीज धीरे-धीरे नीचे यानी नेपथ्य में चली जाती है। हमें भागना नहीं चाहिए, यदि भागने की बजाय नदी के स्वच्छ होने की प्रतीक्षा करें तो जीवन सार्थक हो जाएगा। इंतजार कर लेंगे, तो सब कुछ स्वस्छ हो जाएगा।

२७३) मोक्ष की चाह- एक बार गौतम बुद्ध से एक युवक ने पूछा, भंते, क्या हर किसी को मोक्ष मिल सकता है ? बुद्ध ने कहा, मिल सकता है। इस पर युवक बोला, तो मिल क्यों नहीं जाता ? बुद्ध ने उसे दूसरे दिन सुबह आने को कहा। जब प्रात:काल युवक आया तो बुद्ध ने कहा, तुम नगर में जाओ और हर तरह के लोगों से मिलो। सबसे पूछो कि वे क्या चाहते हैं। शाम में लौटकर युवक बुद्ध के पास आया और बोला, कोई धन, कोई संतान, कोई स्त्री तो कोई स्वास्थ्य चाहता है। इस पर बुद्ध ने पूछा क्या कोई मोक्ष भी चाहता है ? युवक ने उत्तर दिया, नहीं, कोई भी नहीं। बुद्ध बोले, जो मोक्ष की इच्छा ही नहीं रखेगा, उसे वह भला कैसे मिल सकता है ? और मोक्ष की इच्छा ही पर्याप्त नहीं है। उसे प्राप्त करने के लिए आस्थापूर्वक ज्ञान, ध्यान और प्रयत्न भी आवश्यक है। जिसको जिसकी चाह नहीं उसे वह राह कैसे मिल सकती है ?

२७४) सच्चा सारथी- आलवी के एक भिक्षु ने कुटी बनाने के लिए एक पेड़ को काटना शुरू किया। उस पेड़ पर अपने पुत्र के साथ एक देव कन्या रहती थी। उसने भिक्षु से कहा- भन्ते। इस पेड़ को न काटो, मेरा घर नष्ट न करें।

किन्तु भिक्षु नहीं माना। देव कन्या ने अपने पुत्र को पेड़ की शाखा पर रख दिया, ताकि उसे देखकर भिक्षु पेड़ नहीं काट सके।

भिक्षु उठाई हुई कुल्हाड़ी को नहीं रोक सका और उससे देव कन्या के पुत्र की बांह कट गई। देव कन्या को बहुत दु:ख हुआ। उसने उस भिक्षु को जान से मारने के लिए हाथ उठाया, किन्तु फिर लोक निंदा के डर से उसे नहीं मार कर रोती हुई तथागत के पास गई और वंदना कर एक ओर खड़ी हो गई।

तथागत ने उसके रोने का कारण पूछा। उससे सारी बात कह सुनाई तब तथागत ने साधु। साधु। देवते तूने बहुत अच्छा किया जो कि चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भांति रोक लिया। कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा-

यो वे उप्पतितं क्रोधं रथं भन्तं व धारये। तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो।।

जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भांति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं, दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले है।

२७५) सत्य विराट है- बुद्ध शिष्य संघ के साथ एक वृक्ष की छाया में आंखें मूंदे चिंतनलीन थे। थोड़ी देर में उन्होंने आंखें खोली और प्रमुख शिष्य आनन्द को आदेश दिया, वृक्षों के नीचे जो सूखी पत्तियां बिखरी हैं उन्हें एकत्रित कर लाओ।

आनन्द दोनों हाथों के सम्पुट में पत्तियां भर लाए। बुद्ध ने सस्मित पूछा, क्या सारी पत्तियां आ गईं ?

नहीं भन्ते। ये तो थोड़ी सी पत्तियां आई हैं बहुत सारी वृक्षों के नीचे फैली पड़ी हैं।

बुद्ध ने कहा, कुछ समझे। मैंने जो तुम्हें सत्य दिया है, वह इन पत्तियों के समान थोड़ा सा है। अनन्त सत्य तो पत्तियों की तरह संसार में बिखरा पड़ा है। सत्य को कभी आग्रह में मत बांधना।

२७६) पांच वर्ष का बूढ़ा- बुद्ध के संघ में एक बूढ़ा भिक्षु रहता था। एक दिन बुद्ध ने उससे पूछा कि मित्र तेरी उम्र क्या है?

भिक्षु ने कहा- आप भली-भांति जानते हैं, फिर भी मेरी उम्र पूछते हैं ? मेरी उम्र पांच वर्ष है।

बुद्ध बहुत हैरान हुए और कहने लगे- मजाक करते हो ? - सिर्फ पांच वर्ष। ७५ वर्ष से कम तो तुम्हारी उम्र क्या होगी। पांच वर्ष कैसे कहते हो ? बूढ़े भिक्षु ने कहा- हां, ७० वर्ष भी जिया हूं, लेकिन उन्हें जीने के वर्ष नहीं कह सकता। उसे जीवन कैसे कहूं। पिछले पांच वर्ष से जीवन को जाना है, इसलिए पांच वर्ष की उम्र गिनता हूं।

२७७) गौतम बुद्ध के एक शिष्य पूर्ण ने सीमाप्रांत में धर्म प्रचार करने की अनुमति मांगी। बुद्ध ने कहा, उस प्रांत के लोग अत्यंत कठोर तथा क्रूर हैं। वे तुम्हें गाली देंगे। पूर्ण ने कहा, मैं समझूंगा वे भले लोग हैं कि वे मुझे थप्पड-घूंसे नहीं मारते। बुद्ध बोले, यदि वे तुम्हें थप्पड-घूंसे मारने लगे तो। पूर्ण ने कहा, वे शस्त्र-प्रहार नहीं करेंगे इस कारण मैं उन्हें दयालु मानूंगा। इस पर बुद्ध बोले, यदि वे शस्त्र प्रहार करें तो ? पूर्ण ने फिर उसी तरह जवाब दिया, अगर वे मुझे मार नहीं देंगे तो मुझे इसमें उनकी कृपा ही दिखेगी। बुद्ध बोले, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि वे तुम्हारा वध नहीं करेंगे। पूर्ण ने उत्तर दिया, यह शरीर रोगों का घर है। आत्मघात पाप है इसलिए जीवन धारण करना पड़ता है। मुझे मारकर वे मेरे ऊपर कृपा ही करेंगे। बुद्ध प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे धर्मप्रचार की अनुमति देते हुए कहा, जो किसी दशा में दोष नहीं देखता वहीं सच्चा साधु है।

२७८) सबसे बड़ा प्रमाण- राजपथ से जा रहे गौतम बुद्ध ने देखा कि एक तालाब के नजदीक एक भिक्षुक स्नान के बाद छहों दिशाओं की ओर हाथ जोड़े प्रणाम कर रहा है। बुद्धदेव ने उससे पूछा, महाशय। आपने अभी छहों दिशाओं को प्रणाम किया। क्या आप मुझे बता सकेंगे कि इसका क्या अभिप्राय है? यह तो मुझे नहीं मालूम। उस भिक्षुक ने उत्तर दिया। बुद्ध ने कहा- जब मूल उद्देश्य जानते नहीं, तो पूजा-पाठ औरा जाप का क्या महत्त्व है? वह भिक्षुक बोला, भन्ते। आप ही बताएं कि छहों दिशाओं को प्रणाम करने का क्या प्रयोजन है?

तथागत बोले, मात-पिता अथवा घर का मुखिया पूर्व दिशा है। आचार्य और गुरु दक्षिण दिशा है। पत्नी तथा पुत्र-पुत्रियां पश्चिम दिशा और इष्ट-मित्र उत्तर दिशा है। रहा ऊंची और नीची दिशा का सवाल तो ऊंची दिशा विद्वान पंडित लोग है। सेवक और अपने नीचे काम करनेवाले कार्यकर्ता नीची दिशा हैं। इन छहों दिशाओं को किया गया प्रणाम सबसे महान प्रणाम होता है?

भिक्षुक ने पूछा- यह तो ठीक है, भन्ते। मगर सेवक को प्रणाम करने का क्या प्रयोजन है? सेवक तो हमें प्रणाम करते हैं

बुद्धदेव ने कहा, सेवक भी मनुष्य हैं और हम भी मनुष्य हैं। जब वे हमारी सेवा करते हैं तो हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनकी सेवा के बदले उनके प्रति स्नेह-वात्सल्य और सम्मान प्रकट करें। बुद्धदेव के उत्तर से वह भिक्षुक संतुष्ट हो

गया और उसने श्रद्धावनत होकर कहा- आज आपने मुझे सही दिशा का ज्ञान प्रदान किया है।

२७९) मुक्ति का मार्ग- गौतम बुद्ध ने २९ वर्ष की आयु में दुखों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय ढूंढने के लिए अपने परिवार और गृहस्थ जीवन को छोड़ दिया। निरंतन चिंतन-मनन के बाद ३५ वर्ष की आयु में उन्होंने इसका रास्ता खोज भी लिया। ४५ वर्ष तक उन्होंने लगातार अपने विचारों का प्रचार किया।

जब उनका अंत समय आया, वह एक वृक्ष के नीचे लेट गए और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय उनका केवल एक ही शिष्य उनके पास था, आनंद। आनंद ही लंबे समय से बुद्ध की सेवा कर रहा था। आनंद ने सोचा कि बुद्ध का अंत समय निकट है। अगर यह बात पास के गांव में रहनेवाले बुद्ध के शिष्यों को न बताई जाए तो वे नाराज होंगे। आनंद के यह बताने पर लोग बुद्ध का दर्शन करने उस वृक्ष के पास पहुंचने लगे। आसपास के इलाकों में इस बात की चर्चा फैल गई।

एक व्यक्ति अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए काफी उत्सुक था। वह भोलाभाला ग्रामीण था और दुनियादारी को ढंग से नहीं जानता था, फिर भी उसके मन में एक जिज्ञासा थी, जिसे लेकर वह परेशान था। बुद्ध ने उसे जीते जी मुक्ति पाने का मार्ग बताने की प्रार्थना की। बुद्ध ने ग्रामीण से कहा, जीते जी जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो जीवन में तीन बातें याद रखो और इन बातों पर अमल भी करो। सब लोग ध्यान से सुनने लगे।

बुद्ध ने कहा, पहली बात है पापों से, जहां तक संभव हो, बचो। दूसरी बात है जीवन में जितने भी पुण्य कर्म कर सकते हो, करो एवं तीसरी बात है अपना मन, चित्त निर्मल रखो। ये शब्द कहते ही बुद्ध ने अपने प्राण त्याग दिए। बुद्ध की इन तीन शिक्षाओं को अपनाकर ग्रामीणों ने जीते जी मुक्ति का मार्ग पाया। ये तीन शिक्षाएं मानवता के लिए अमूल्य देन है।

२८०) त्याग में सुख- भगवान बुद्ध के पास सम्राट श्रेणिक आए और पूछा, भंते, हमारे राजकुमार, जिन्हें बहुत अच्छा भोजन मिलता है, जिन्हें हर तरह की सुविधाएं हैं, जो बड़े आवास में रहते हैं, जिनके साथ नौकर-चाकरों की पूरी फौज है, फिर भी वे प्रसन्न नहीं रहते। और आपके ये भिक्षु जो पदयात्रा करते हैं, निरंतर भ्रमण करते हैं, खाने को जैसा मिल जाता है, खा लेता हैं। रहने को जो कुटिया मिल जाए, वहां रह लेते हैं, फिर भी इनके चेहरे पर हमेशा इतनी प्रसन्नता रहती है। इसका कारण क्या है? भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, प्रसन्नता खोजनी हो तो अकिंचन (जिसके पास कुछ भी न हो) में खोजो। श्रेणिक को अपने प्रश्न का समाधान मिल गया।

२८१) अक्षय भिक्षापात्र- घोर अकाल पड़ा था। लोग दाने-दाने के लिए तरस रहे थे। बुद्ध से जनता का कष्ट देखा नहीं गया। उन्होंने नागरिकों को एकत्र किया। नगर के सभी संपन्न व्यक्ति जब उपस्थित हो गए, तब तथागत ने उनसे प्रजा की पीड़ा दूर करने का कुछ प्रबंध करने को कहा। नगर के सबसे बड़े व्यापारी की ओर बुद्ध ने देखा। व्यापारी बोला, मैं अपना सारा संचित धन और अन्न देने को प्रस्तुत हूं, किंतु वह इतना नहीं है कि उससे पूरी प्रजा के लिए एक सप्ताह के भोजन का प्रबंध हो सके। नगर सेठ ने निवेदन किया, आज्ञा दें तो मैं अपना संपूर्ण कोष लुटा सकता हूँ किंतु प्रजा को दस दिन भी उससे भोजन मिलेगा या नहीं इसमें संदेह है। स्वयं नरेश ने भी अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। सभा मौन हो गई। सबने सिर झुका लिए। तभी सभा में सबसे पीछे खड़ी मैले-कुचैले वस्त्रोंवाली एक भिखारिन ने हाथ जोड़कर कहा प्रभु आज्ञा दें तो मैं अकाल पीड़ितों को भोजन दूंगी। सभी की दृष्टि उसकी ओर उठ गई। किसी ने क्रोधपूर्वक पूछा, तेरे यहां क्या खजाना गड़ा है कि तू सबको भोजन देगी? लेकिन तथागत उसे देखकर प्रसन्न हो गए। वह जानते थे कि नगरसेठ, व्यापारी और नरेश के मिले-जुले प्रयासों से जो काम नहीं हो सकता, वह सच्चे हृदय से सेवा के लिए तत्पर जनसेवक से हो सकता है। वह महिला गरीब भले ही थी लेकिन उसका साहस और संकट से लड़ने की आकांक्षा अनूठी थी। सभा में

उपस्थित लोगों की शंकाओं एवं संशय की परवाह किए बिना उस स्त्री ने कहा, मैं तो भगवान की कृपा के भरोसे प्रयास करूंगी। मेरा कर्त्तव्य बस प्रयास करना है। मेरा कोष तो आप सबके घर में हैं। आपकी उदारता से ही मेरा भिक्षापात्र अक्षय बनेगा। सचमुच उस भिखारिणी का भिक्षापात्र अक्षय पात्र बन गया। वह जहां भिक्षा लेने गई, लोगों ने उसके लिए अपने भंडार खोल दिए। जब तक खेतों में अन्न पैदा नहीं हुआ, भिखारिणी प्रजा को भोजन देती रही।

२८२) परीक्षा का दौर- गौतम बुद्ध के मठ में आनेवाले लोग उनके सत्संग का लाभ उठाते हुए अपार शांति पाते थे। सुरम्य वन के एकांत में बने मठ में आने-जानेवाला हर व्यक्ति उनसे अपनी समस्याओं का समाधान पाकर तनावमुक्त होकर वापस जाता था। एक दिन एक गृहस्थ बुद्ध की सभा में आया और प्रवचन समाप्त होने के बाद भी बैठा रहा। बुद्ध ने भांप लिया कि वह किसी गहरे तनाव में है। उन्होंने पूछा, वत्स, तुम अभी तक गए नहीं। क्या किसी परेशानी में हो? गृहस्थ ने कहा, प्रभु, एक चिंता हो तो बताऊं। सिर से पांव तक चिंताओं का बोझ लदा हुआ है। समझ में नहीं आता, क्या करूँ? बुद्ध पीतल का अपना कमंडल उठाते हुए बोले, आओ नदी किनारे चलें वहीं बात करेंगे। नदी के तट पर बैठकर बुद्ध मंडल मांजने लगे। वह जितना मांजते, कमंडल उतना ही चमकता। बुद्ध ने कहा, जानते हो, मैं इसे क्यों रगड़ रहा हूं। गृहस्थ ने कहा, इसे और निखारने के लिए। बुद्ध बोले, बिल्कुल ठीक। ईश्वर भी जिन्हें प्रेम करता है, उन्हें रगड़-रगड़कर निखारता और चमकाता जाता है। इस क्रिया में कुछ मूढ़मति घबरा जाते हैं और अपने कर्त्तव्यों से डिगने लगते हैं। लेकिन ज्ञानवान अपने आसपास सकारात्मक वातावरण निर्मित कर लेते हैं। दुनिया में तुम ही अकेले नहीं हो जो इस तरह की परीक्षाओं से गुजर रहे हो। इन परेशानियों को परीक्षाओं की तरह लोगे तो कष्ट कम होगा। जाओ इनका सामना करो। बुद्ध की बातों से गृहस्थ को बड़ी राहत मिली। उसे अपनी समस्या का हल मिल गया था।

२८३) शिष्य की इच्छा- एक बार बुद्ध के एक शिष्य ने कहा, मेरा मन करता है कि आपकी तरह मेरे भी अनेक शिष्य हों और सभी मुझे आपके जैसा ही मान-सम्मान दें। क्या यह संभव है? बुद्ध बोले, पुत्र, इस दुनिया में कर्मठ, एकाग्र और सहृदय व्यक्ति के लिए सब कुछ संभव है। यदि तुम साधना करोगे तो एक दिन बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर सकते हो। शिष्य बोला, क्या वह उपलब्धि मैं शीघ्र नहीं प्राप्त कर सकता? शिष्य की इस बात पर बुद्ध एक तख्त पर खड़े हो गए और बोले, पुत्र मुझे इस तख्त से ऊपर वाले तख्त पर पहुंचना है। मुझे उठाकर तुम उस तख्त तक पहुंचा दो। बुद्ध की इस बात पर शिष्य सोच में पड़ गया। उसने कहा, मैं तो स्वयं नीचे खड़ा हूं फिर आपको ऊपर वाले तख्त तक कैसे पहुंचा सकता हूं। इसके लिए पहले मुझे उस तख्त तक पहुंचना होगा। बुद्ध ने इस पर मुस्कराते हुए कहा, यही तो मैं तुम्हें बताना चाहता हूं। किसी को अपना शिष्य बनाकर ऊपर उठाने से पहले तुम्हारा उस उच्च स्तर पर होना आवश्यक है तभी तुम अपने मार्गदर्शन व अनुभव से दूसरों को ऊपर उठा सकते हो।

२८४) मनुष्य के प्रकार- प्रवचन के उपरान्त एक जिज्ञासु राजा ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किया, महाराज, आपने अभी-अभी कहा कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं, कृपया समझाएँ? भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, मनुष्य चार प्रकार के होते हैं- एक, तिमिर से तिमिर में जानेवाला; दूसरा, तिमिर से ज्योति की ओर जानेवाला; तीसरा, ज्योति से तिमिर की ओर जानेवाला; और चौथा, ज्योति से ज्योति में जानेवाला। राजन्, यदि कोई मनुष्य चाण्डाल, निषाद आदि हीन कुल में जन्म ले और जन्मभर दुष्कर्म करने में बिताये, तो उसे मैं तिमिर से तिमिर में जानेवाला कहता हूँ। यदि कोई मनुष्य हीन कुल में जन्म ले तथा खाने-पीने की तकलीफ होने पर भी मन-वचन-कर्म से सत्कर्म का आचरण करे, तो मैं ऐसे मनुष्य को तिमिर से ज्योति में जानेवाला कहता हूँ। यदि कोई मनुष्य महाकुल में जन्म ले, खाने-पीने की कमी न हो, शरीर भी रूपवान और बलवान हो, किन्तु मन,

वचन तथा काया से वह दुराचारी हो, तो मैं उसे ज्योति से तिमिर में जानेवाला कहता हूँ। किन्तु जो मनुष्य अच्छे कुल में जन्म लेकर सदैव सदाचरण की साधना करता हो, तो मैं उसे ज्योति से ज्योति में जानेवाला मनुष्य मानता हूँ।

२८५) लोभ और त्याग- गौतम बुद्ध के एक अनुयायी ने अपनी सारी धन-दौलत लोकोपयोगी कार्यों में लगा दी और संयम का जीवन जीना शुरु कर दिया। वह हर वक्त प्रत्येक व्यक्ति की सहायता के लिए तैयार रहते। हर ओर उनके सत्कार्यों की चर्चा होने लगी। एक दिन कुछ लोग उनके पास आए। उनमें से एक व्यक्ति बोला, महानुभाव, आपका त्याग प्रशंसनीय है। आपकी सेवाओं को लेकर समाज आपका कृतज्ञ है। हम सब लोग सार्वजनिक रूप से आपका अभिनंदन कर आपको दानवीर तथा मानव-रत्न के अलंकरण से विभूषित करना चाहते हैं। हम आपके पास यह निवेदन करने आए हैं कि आप सहर्ष हमें इसकी सहमति दें ताकि हम अपने कार्य को खुशी-खुशी निर्विघ्न संपन्न कर सके। उस व्यक्ति की बात सुनकर बुद्ध के अनुयायी ने मुस्कुराते हुए कहा, आप सब लोगों ने मुझे जितना आदर व सम्मान दिया है इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। किंतु मैंने कोई त्याग नहीं किया है। मेरे जिन गुणों का आप आदर कर रहे हैं, उन्होंने तो मुझे लाभ ही लाभ दिया है। ठीक उसी तरह जिस तरह बैंक में रुपये जमा करना त्याग नहीं, ब्याज का लाभ है। आप सभी जानते हैं की दुकानदार ग्राहक को कोई वस्तु देकर त्याग नहीं करता बल्कि अपना लाभ कमाता है। उसी तरह मैंने भी अपने व्यक्तित्व से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़कर अपने स्वभाव में अहिंसा, परोपकार, क्षमा, सत्य, दया आदि जैसे सद्‌गुण को स्थान दिया है। इस तरह देखा जाए तो मैंने छोड़ा कम पाया ज्यादा। मुझे तो लाभ ही मिला। मैंने अतिरिक्त तो कुछ किया नहीं। यह सुनकर सब उनके प्रति नतमस्तक हो गए।

२८६) सबसे बड़ी साधना- नगर सेठ का पुत्र था मेघ। बुद्ध के प्रवचनों से प्रभावित होकर उसने भी प्रवज्या ग्रहण करने का फैसला किया। बुद्ध ने उसे अपने निर्णय पर ठीक से सोच लेने को कहा, लेकिन वह अपने फैसले पर दृढ़ रहा। वह बौद्ध विहार में रहने लगा। वह अपने साथ सुख-सुविधाओं की चीजें लेता आया था। बुद्ध ने एक दिन विहार के वरिष्ठ भिक्षु को मेघ की सुख-सुविधाएं कम करने को कहा। मेघ को अब मोटा भोजन और मोटा बिस्तर दिया जाने लगा। उसे सेवा के कड़े काम भी दिए गए। धीरे-धीरे मेघ की प्रसन्नता को ग्रहण लगने लगा। वह खिन्न सा रहने लगा। उसने इससे पहले कभी रूखा-सूखा अन्न नहीं खाया था। वह हमेशा आरामदेह बिस्तर पर सोता था। जब से वह इन सुविधाओं से वंचित हुआ, उसका उत्साह कम होने लगा। उसे लगा कि उसकी शांति छिन गई है। उसके मन में विचार उठने लगा कि कहीं मैंने गलत मार्ग का चुनाव तो नहीं कर लिया। ऐसा तो नहीं कि बाद में मुझे पछताना पड़ेगा। उसने बुद्ध के पास जाकर कहा, भगवन, मेरे मन में भौतिक इच्छाएं फिर से पैदा हो रही हं, आप मुझे विशेष साधना बताएं। इस पर बुद्ध ने कहा, मन को स्थिर रखना ही सबसे बड़ी साधना है। बेहतर यही है कि तुम अपने चित्त को वश में करने का प्रयत्न करो। यह स्थिरता आराम की स्थिति में उपलब्ध होनेवाली जड़ता नहीं है। इसमें जीवन का प्रवाह है। हर परिस्थिति के साथ सामंजस्य बनाने की क्षमता है। बुद्ध की बात सुनकर मेघ उनके समक्ष नतमस्तक हो गया।

२८७) आत्मकल्याण का रास्ता- बुद्ध अपने सभी भिक्षुओं का व्यक्तिगत रूप से ख्याल रखते थे। वह इस बात को लेकर सचेत रहते थे कि किसी को कभी कोई कठिनाई न हो। एक बार उन्होंने गौर किया कि एक भिक्षुक कई दिनों से नजर नहीं आ रहा है। उसके बारे में कोई चर्चा भी सुनने को नहीं मिल रही थी। बुद्ध को उसकी चिंता हुई। उन्होंने भिक्षु भदंत से उसके बारे में पूछा। भदंत ने दबी आवाज में कहा, वह अतिसा से पीड़ित है। यह सुनते ही बुद्ध, आनंद को साथ लेकर उस भिक्षु को देखने चल पड़े। बुद्ध ने देखा कि बीमार भिक्षु अपनी कुटिया में बेसुध पड़ा है। उसका शरीर गंदा हो

चुका था, क्योंकि किसी ने उसकी परिचर्या नहीं की थी। बुद्ध ने पूछा, क्या तुम्हें देखने कोई नहीं आया? भिक्षु बोला वे सब साधनाओं में व्यस्त हैं इसलिए मेरे पास नहीं आ सके। कुछ देर मौन रहकर बुद्ध ने आनंद से कहा, आनंद। जल ले आओ। हम इस भाई की सेवा करेंगे। आनंद तुरंत कलश में जल ले आया। बुद्ध ने जल से बीमार भिक्षु का शरीर साफ किया। शाम में सभी भिक्षुगण संध्या वंदन के लिए जमा हुए। बुद्ध ने पूछा, उसे क्या कष्ट है? उत्तर मिला, उस भाई को अतिसार है। बुद्ध ने फिर पूछा, उसकी देखभाल कौन कर रहा है? सब भिक्षु चुप हो गए। कुछ देर तक प्रार्थना सभा में सन्नाटा छाया रहा। फिर बुद्ध बोले, मैं जानता हूं। अप सबको आत्म कल्याण की चिंता है। पर क्या किसी पीड़ित को कष्ट में छोड़कर आत्मकल्याण की बात सोचना अच्छी बात है? स्मरण रहे, योग साधना से आत्मकल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक मानवता की पीड़ा आप के हृदय में शूल बनकर नहीं चुभती। इसलिए निष्काम भाव से सेवा करें। यही सच्ची साधना है।

२८८) मन की साधना- चतुर्मास का समय निकट आया तो भिक्षु सुशांत ने बुद्ध से आग्रह किया, प्रभु, मैं नगरवधू सोमलता के सान्निध्य में अपना चतुर्मास व्यतीत करना चाहता हूं। कृपया इसकी आज्ञा प्रदान करें। यह सुनकर बुद्ध मुस्कराए। वह समझ गए कि यह वहां जाकर मन को साधकर सच्चा साधक होना चाहता है। लेकिन अन्य भिक्षुओं ने इस पर आपत्ति जताई। उन्हें संदेह था कि सुशांत कहीं अपने पथ से विचलित न हो जाए। पर बुद्ध ने भिक्षुओं के विरोध के बावजूद उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, जाओ और आगे बढ़कर आना। सुशांत सोमलता के पास पहुंचा। वहां सब उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गए। लेकिन सुशांत अपने संकल्प पर अडिग था। इधर सोमलता के घुंघरुओं की आवाज गूंजती और उधर सुशांत अपनी साधना में लीन रहता। सोमलता सुशांत को रिझाने का प्रयास करती, मगर वह निर्लिप्त था। एक मास गुजर गया मगर सोमलता सुशांत को डिगा न सकी। हां, उससे थोड़ी सहानुभूति अवश्य होने लगी। उसने दूसरों को भी साधना के क्षणों में शांत रहने को कह दिया। चौथा मास आते-आते सुशांत ने अपने मन पर नियंत्रण पा लिया था। वह सोमलता या अन्य सुन्दरियों की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता था। संगीत उसे बुद्ध-वाणी की तरह लगता था और नृत्यालय देवालय की तरह। चार मास पूर्ण हुए और सुशांत अपने मठ की ओर वापस चला तो सबने आश्चर्य से देखा- भिक्षुणी बनी सोमलता उसके पीछे-पीछे अपना सर्वस्व त्याग कर जा रही थी। सोमलता अपने रूप-रंग से सुशांत को रिझा न सकी, मगर सुशांत के तप का प्रभाव सोमलता पर दिख रहा था। सुशांत वास्तव में आगे बढ़ गया था।

२८९) संयम का पाठ- बुद्ध के पास उनका एक शिष्य आया और बौखलाए स्वर में बोला, जमींदार राम सिंह ने मेरा अपमान किया है। आप अभी चलें। उसे सबक सिखाना होगा। बुद्ध बोले, प्रियवर, सच्चे बौद्ध का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं होती। तुम इस बात को भुला दो। जब प्रसंग भुला दोगे तो अपमान कहां बचा रहेगा। शिष्य ने कहा, उसने आपके प्रति भी अपशब्दों का प्रयोग किया था। आप चलिए तो सही। आपको देखते ही वह शर्मिंदा हो जाएगा और क्षमा मांग लेगा। इससे मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। बुद्ध कुछ विचार कर बोले, अच्छा यदि ऐसी बात है तो मै अवश्य ही रामजी के पास चलकर उसे समझाने का प्रयास करूंगा। शिष्य ने आतुर होकर कहा, चलिए, नहीं तो रात घिर आएगी। बुद्ध ने कहा, रात घिरेगी तो क्या। रात के पश्चात दिन भी तो आएगा। यदि तुम वहां चलना आवश्यक ही समझते हो तो मुझे कल याद दिलाना। कल चलेंगे। दूसरे दिन बात आई गई हो गई। शिष्य अपने काम में लग गया और बुद्ध अपनी साधना में लीन हो गए। दोपहर होने पर भी शिष्य ने बुद्ध से कुछ नहीं कहा तो बुद्ध ने स्वयं ही शिष्य से पूछा, आज रामजी के पास चलना है? शिष्य ने कहा, नहीं मैने जब घटना पर फिर से विचार किया तो मुझे इस बात का आभास हुआ कि भूल मेरी ही थी। अब रामजी के पास चलने की कोई जरूरत नहीं है। बुद्ध ने मुस्कराकर कहा, अगर हम तुरंत प्रतिक्रिया देने से बचें तो

हमारे भीतर की कटुता समाप्त हो जाती है। शिष्य बुद्ध का आशय समझ उनके प्रति नतमस्तक हो गया।

२९०) सुख का रहस्य- एक बार नगर के प्रसिद्ध सेठ बुद्ध के दर्शन के लिए पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि बुद्ध के चारों ओर अनेक भिक्षुक प्रसन्नता और उत्साह से भरे मस्ती में भजन कर रहे थे। उन सभी के चेहरे अलौकिक व दिव्य तेज से चमक रहे थे। उन्हें देखकर सेठ ने कहा, इन भिक्षुकों की दिनचर्या काफी कठिन और कष्टसाध्य है। कभी भोजन मिला तो कभी वह भी नहीं। आप लोग पैदल यात्रा करते हैं, जमीन पर सोते हैं, सादा पहनते हैं। फिर भी सबके चेहरे पर एक अद्‌भुत संतोष है। जबकि हम लोग सुस्वादु भोजन करते हैं, आरामदेह बिछावन पर सोते हैं। फिर भी हमारे चेहरे रूखे और निस्तेज हैं। ऐसा क्यों? सेठ का प्रश्न सुनकर बुद्ध बोले, भिक्षुगण कल की चिंता नहीं करते। वे हर स्थिति में संतुष्ट रहने के अभ्यासी हैं। इसलिए चिंता उनके मन-मस्तिष्क पर कभी हावी नहीं रहती जबकि क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत गृहस्थ लोग हमेशा निस्तेज व रूखे नजर आते हैं।

२९१) भूल का सुधार- बुद्ध सारनाथ के एकांत जंगल में कुछ शिष्यों के साथ बैठे थे। तभी कहीं से शोर सुनाई पड़ा। बुद्ध ने आनंद को यह पता लगाने को कहा कि बात क्या है। आनंद ने थोड़ी देर बाद आकर बताया कि कुछ भिक्षु पेड़ के नीचे बैठकर बातचीत और हंसी मजाक कर रहे हैं। बुद्ध क्रोध में उन भिक्षुओं के पास जाकर बोले, क्या आप लोगों को नहीं मालूम कि भिक्षुओं को शांत रहना चाहिए। आप लोगों ने भिक्षु जीवन की मर्यादा का उल्लंघन किया है इसलिए आप इसी समय संघ छोड़ दें। वे भिक्षु नए थे और हाल ही में संघ में आए थे। उन्होंने बुद्ध से क्षमा मांगी मगर बुद्ध ने उन्हें माफ नहीं किया। सभी भिक्षु वहां से निकल पड़े। रास्ते में उन्हें कुछ संत मिले जो बुद्ध से मिलने आ रहे थे। जब उन्हें सारा किस्सा मालूम हुआ तो वे असमंजस में पड़ गए। एक संत ने बुद्ध से कहा, इन्हें निकालने के पहले क्या आपने यह सोचा कि यहां से जाने के बाद ये लोग क्या करेंगे। किस रास्ते पर जाएंगे। यदि इन्होंने गलत रास्ता पकड़ लिया तो किस पर दोष जाएगा। बौद्ध धर्म तो गलत रास्ते पर चलनेवालों को सही मार्ग दिखाता है। इन्हें सुधरने का एक मौका तो मिलना ही चाहिए। बुद्ध को अपनी गलती का अहसास हो गया। वह सभी भिक्षुओं से अपनी भूल के लिए माफी मांगने लगे। बुद्ध को ऐसा करते देखकर भिक्षु सकते में आ गए। एक ने कहा, प्रभु आप से कोई भूल नहीं हुई। गलती तो हमारी थी। बुद्ध ने कहा, नहीं, आपकी गलती नहीं थी। गलत मैं था। गलती किसी से भी हो सकती है। अपनी भूल को स्वीकार करना ही भूल का सुधार है।

२९२) बड़प्पन का अर्थ - एक राज्य में बुद्ध प्रवचन करने पहुंचे। वहां के लोग बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि उन्हें बुद्ध के दर्शन का सौभाग्य मिलेगा। राज्य का मंत्री बहुत ही नेक व ईमानदार था। उसने राजा से कहा, महाराज। आपको बुद्ध का स्वागत करने स्वयं जाना चाहिए। इस पर राजा ने गुस्से से भड़क कर कहा, मैं क्यों जाऊं। बुद्ध एक भिक्षु हैं। उन्हें आना होगा तो वह स्वयं महल में मुझसे मिलने आएंगे। भिक्षु के सामने मेरा इस तरह झुकना उचित नहीं होगा। विद्वान मंत्री को राजा का यह रवैया अच्छा नहीं लगा। उसने उसी समय पद छोड़ने का निर्णय किया। उसने त्यागपत्र में लिखा, मैं आपके जैसे छोटे आदमी की अधीनता में काम नहीं कर सकता। आपमें बड़प्पन नहीं है। राजा ने त्यागपत्र पढ़कर मंत्री को बुलाया और कहा, तुमने त्यागपत्र गलतफहमी में लिखा है। मैं बड़प्पन के कारण ही तो बुद्ध के स्वागत के लिए नहीं जा रहा हूं। आखिर मैं इतना बड़ा सम्राट हूं। राजा की बात सुनकर मंत्री बोला, अकड़ और घमंड बड़प्पन नहीं है। आप शायद भूल रहे हैं कि बुद्ध भी कभी महान सम्राट थे। उन्होंने अध्यात्म की प्राप्ति हेतु और अपने जन्म को सार्थक सिद्ध करने के उद्देश्य से ही स्वेच्छा व प्रसन्नता से राजसी वैभव त्यागकर भिक्षु का पात्र ग्रहण किया है। भिक्षु का पात्र साम्राज्य से कहीं श्रेष्ठ है। आप तो भगवान बुद्ध से बहुत पीछे हैं क्योंकि वह सम्राट होने के बाद भिक्षु बने हैं। सम्राट होने पर भी उनके

मन में दया, विनम्रता और करुणा थी। वास्तव में इंसानियत के गुणों से विभूषित मनुष्य ही उच्च अध्यात्म व ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। तभी तो बुद्ध अपने कार्य में सफल हो पाए। मंत्री की बातें सुनकर राजा का गर्व चूर-चूर हो गया और वह उसी समय मंत्री के साथ भगवान बुद्ध का स्वागत करने के लिए गया और उसने उनके चरणों में गिरकर उनसे दीक्षा देने का अनुरोध किया। बुद्ध ने राजा को सहर्ष गले लगाकर उसे दीक्षा देना स्वीकार कर लिया।

२९३) बुद्ध की सीख - एक बार गौतम बुद्ध घूमते हुए एक नदी के किनारे पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि एक मछुआरा जाल बिछाता और उसमें मछलियां फंसने पर उन्हें किनारे रख दोबारा जाल डाल देता। मछलियां पानी के बिना तड़पती हुई मर जातीं। बुद्ध यह देखकर द्रवित हो गए और मछुआरे के पास जाकर बोले, भैया, तुम इन निर्दोष मछलियों को क्यों पकड़ रहे हो? मछुआरा बुद्ध की ओर देखकर बोला, महाराज, मैं इन्हें पकड़कर बाजार में बेचूंगा और धन कमाऊंगा। बुद्ध बोले, तुम मुझसे इनके दाम ले लो और इन मछलियों को छोड़ दो। मछुआरा यह सुनकर खुश हो गया और उसने बुद्ध से उन मछलियों का मूल्य लेकर मछलियां बुद्ध को सौंप दीं। बुद्ध ने जल्दी से वे सभी तड़पती हुई मछलियां वापस नदी में डाल दीं। यह देखकर मछुआरा दंग रह गया और बोला, महाराज, आपने तो मुझसे मछलियां खरीदी थीं। फिर आपने इन्हें वापस पानी में क्यों डाल दिया? यह सुनकर बुद्ध ने कहा, ये मैंने तुमसे इसलिए खरीदी हैं ताकि इनको दोबारा जीवन दे सकूं। किसी की हत्या करना पाप है। यदि मैं तुम्हारा ही गला घोंटने लगूं तो तुम्हें कैसा लगेगा? यह सुनकर मछुआरा हैरानी से बुद्ध की ओर देखने लगा। बुद्ध बोले, जिस तरह मानव को हवा और पानी मिलना बंद हो जाए तो वह तड़प-तड़प कर मर जाएगा उसी तरह मछलियां भी यदि पानी से बाहर आ जाएं तो तड़प-तड़प कर मर जाती हैं। उनमें भी सांस है। उनको तड़पते देखकर तुम कठोर कैसे रह सकते हो? बुद्ध की बातें सुनकर मछुआरा लज्जित हो गया और बोला, महाराज, आज आपने मेरी आंखें खोल दीं। अभी तक मुझे यह काम उचित लगता था पर अब लगता है कि इससे भी अच्छे काम करके मैं अपनी आजीविका चला सकता हूं। मैं चित्र भी बनाता हूं। आज से मैं चित्रकला से ही अपनी आजीविका कमाऊंगा। इसके बाद वह वहां से चला गया और कुछ ही समय में प्रसिद्ध चित्रकार बन गया।

२९४) गुरु की पहचान - बौद्ध भिक्षु बोधिधर्म अपने कुछ शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए एक गांव में पहुंचे। लोग उनका बहुत आदर करते थे। बोधिधर्म व उनके शिष्यों का ग्रामीणों ने हार्दिक सत्कार किया और फिर उनके पवित्र वचन सुनने के लिए उनके आसपास एकत्रित हो गए। बोधिधर्म लोगों को धर्म और आचरण की बातें सरल भाषा में समझाने लगे। लोग भावविभोर होकर उनको सुन रहे थे। तभी वहां एक व्यक्ति आया और अचानक खड़ा होकर बोधिधर्म को अपशब्द कहने लगा। उसे रोकने का बहुत प्रयास किया, पर वह नहीं माना। लोगों ने कहा- महाराज। यह व्यक्ति कितना उद्दंड है, निरर्थक ही आपको भला-बुरा कह रहा है। बोधिधर्म उस व्यक्ति के इस आचरण पर जरा भी क्रोधित नहीं हुए और लोगों से बोले- यह भविष्य में मेरा सबसे बड़ा भक्त बननेवाला है। लोगों ने पूछा- कैसे? बोधिधर्म ने उत्तर दिया- कोई कुम्हार के यहां घड़ा लेने जाता है तो घड़े को बजाकर देखता है कि वह फूटा हुआ तो नहीं है। जब एक-दो रुपये के घड़े की कोई इतनी परख कर सकता है तो भला जिसे गुरु मानना है उसे दस-बीस गालियां दिए बिना कैसे पहचानेगा? पहले वह परीक्षा लेगा कि गुरु में आक्रोश व धैर्य का भाव कितना है। यह जानने के बाद ही तो वह गुरु को अपनाएगा, इसलिए यह व्यक्ति मुझे निरर्थक ही अपशब्द नहीं कह रहा है। गुरु की गुरुता तभी स्वीकारी जाती है, जबकि उसमें सदाचरण के सभी लक्षण मौजूद हों। बोधिधर्म को अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति वास्तव में आगे चलकर उनका सबसे बड़ा भक्त बना।

२९५) मनुष्यता में विश्वास - एक बौद्ध भिक्षुक किसी गांव से गुजर रहे थे। उनसे किसी व्यक्ति ने पूछा, आप जा तो

रहे हैं, पर क्या आपके पास खाने-पीने का प्रबंध है? कुछ रुपये-पैसे पास में है क्या? भिक्षुक ने सहज भाव से कहा, रुपये-पैसे तो पास में है नहीं और रखकर भी करना क्या है? सिक्के तो संसार में बिखरे पड़े हैं। जहां पहुंचेंगे वही बिखरे मिलेंगे। वह व्यक्ति बोला, सिक्के कैसे मिलेंगे? भिक्षुक ने कहा, मुझे मनुष्य की पवित्रता में, उसकी उदारता में विश्वास है और इसी भरोसे के बल पर मैं दुनिया भर में घूमूंगा और जहां भी जाऊंगा मनुष्य रूपी सिक्के बिखरे मिलेंगे। उस व्यक्ति ने कहा, क्या सचमुच आपको ऐसा विश्वास है? भिक्षुक बोले, हां, नि:संदेह मुझे विश्वास है कि मनुष्य अपने विचारों में पवित्र और उदार होता है और मैं जहां भी जाऊंगा मुझे मनुष्य की उदारता का वरदान मिलेगा। किसी भी धर्म का मूलाधार है मनुष्यता में विश्वास। मैं इसी भावना के साथ निकला हूं और इसका निरंतर प्रयास करना चाहता हूं।

२९६) साधनहीन सज्जन महत्वहीन नहीं - एक बार गौतम बुद्ध उस नगर में पहुंचे जहां वे कुछ साल पहले भी लोगों को उपदेश दे चुके थे। उन्होंने देखा कि जो नगर सेठ कभी अग्रिम पंक्ति में विराजमान रहते थे, वही सबसे पीछे बैठे हुए हैं। उन्होंने सेठ को आगे बुलाते हुए एक भक्त से इसका कारण पूछा। भक्त ने बताया कि वे अब धनहीन और साधनहीन हो गए है। इन्होंने दान-पुण्य भी बंद कर दिया है। इसलिए अब इन्हें पीछे बैठाया जाता है। तब बुद्ध ने सभा को संबोधित करते हुए कहा, इनके धनहीन होने में इनका क्या दोष। जिस तरह सूर्य के अस्त होने से उसके गुणधर्म में कोई कमी नहीं आती, उसी तरह सज्जनों को साधनहीन होने से महत्वहीन नहीं समझ लेना चाहिए। नगरवासी यह सुन लज्जित हो उठे। अगले दिन से सेठजी को फिर अग्रिम पंक्ति में बिठाया जाने लगा।

२९७) राजा की प्रशंसा - लगभग डेढ़ हजार साल पहले बोधिधर्म नामक एक भिक्षु चीन की यात्रा पर गया। वहां का राजा वू बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। उसने बहुत से मंदिर व मूर्तियां बनवाई हुई थीं। लोग राजा वू की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। जब वू को पता चला कि भारत से कोई बौद्ध भिक्षु आए हैं, तो वह मिलने पहुंचा। उसने बोधिधर्म से पूछा, हे बोधि, मैंने इतने मंदिर बनवाए, मूर्तियां बनवाईं, धर्म के लिए अथाह पैसा बहाया, लेकिन मुझे यह सब करने से क्या मिलेगा? राजा वू का प्रश्न सुनकर बोधिधर्म मुस्कुराते हुए बोले, कुछ भी नहीं। सुनकर राजा चकित रह गया। उसने सोचा था कि उसे खूब वाहवाही मिलेगी। अभी तक जिन भिक्षुओं से भी उसकी बातचीत हुई थी, सभी ने उसकी मुक्त कंठ से सराहना की थी और उसकी दान भावना को सराहा था। वू ने बोधिधर्म का जवाब सुनकर पूछा, ऐसा क्यों? मैं धार्मिक व्यक्ति हूं। खुले हाथोंसे दान करता हूं। मंदिरों व धार्मिक कार्यों के लिए धन देने में किसी भी बाधा की परवाह नहीं करता। फिर आपने ऐसा क्यों कहा? उसकी बात पर बोधिधर्म बोले, इसलिए क्योंकि यह सब कुछ तुमने अपनी प्रशंसा व स्वार्थ के ध्येय से किया है, श्रद्धावश नहीं किया। श्रद्धावश किया होता तो मन में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि मुझे क्या मिलेगा। राजा ने पूछा, तब मुझे क्या करना चाहिए? बोधिधर्म ने समझाया, अपने मन से पूछो कि क्या तुम अपनी प्रजा की प्रसन्नता के लिए व्याकुल रहते हो, उनकी मदद को आतुर रहते हो। भला ईश्वर को मंदिरों या मूर्तियों का क्या मोह? सच्चे मन से याद करो तो एक निर्धन-लाचार में भी नारायण के दर्शन हो सकते हैं। ईश्वर तो कण-कण में है, उसे रूप देने की क्या आवश्यकता? मात्र ईश्वर का गुणगान करने से ही तुम धार्मिक सिद्ध नहीं हो जाते। बोधिधर्म की बातें सुनकर राजा वू की आंखें खुल गईं और उसने मंदिर बनवाने की जगह सच्चे दिल से प्रजा की सेवा करनी आरंभ कर दी।

२९८) मन के हारे हार - कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ जो आगे चलकर गौतम बुद्ध हुए और जिन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की, गृह त्यागकर निकले, तो बोध की खोज में काफी भटके। आखिर उनकी हिम्मत टूटने लगी। उनके मन में यह विचार बार-बार उठने लगा कि क्यों न वापस राजमहल चला जाए और अंत में एक दिन वे कपिलवस्तु की ओर लौट

ही पड़े। चलते-चलते राह में उन्हें प्यास लगी। सामने ही एक झील थी। वे उसके किनारे गए, तभी उनकी दृष्टि एक गिलहरी पर पड़ी। गिलहरी कोई-दुर्लभ जीव नहीं किंतु उस गिलहरी की चेष्टाओं ने सिद्धार्थ का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। बात यह थी कि वह गिलहरी बार-बार पानी के पास जाती, अपनी पूँछ उसमें डुबोती और उसे निकालकर रेत पर झटक देती। सिद्धार्थ से न रहा गया। वे पूछ ही बैठे, नन्ही गिलहरी, यह क्या कर रही हो तुम? इस झील को सुखा रही हूँ, उसने उत्तर दिया। यह काम तो तुमसे कभी न हो पाएगा, सिद्धार्थ बोले, भले ही तुम हजार बरस जियो और करोड़ों-अरबों बार अपनी पूँछ पानी में डुबोकर झटको किंतु झील को सुखाना तुम्हारे बस की बात नहीं। तुम्हीं ऐसा मानो, मैं नहीं मानती। मैं तो यह जानती हूँ कि मन में जिस कार्य को करने का निश्चय किया, उस पर अटल रहने से वह हो ही जाता है। मैं तो अपना काम करती रहूँगी और वह अपनी पूँछ डुबोने झील की ओर चल पड़ी। गिलहरी की बात सिद्धार्थ के हृदय में गड़ गई। उन्हें अपने मन की निर्बलता महसूस हुई। वे वापस लौटे और फिर तप में रत हो गए।

२९९) बुद्ध का संदेश - एक बार श्रावस्ती में भयंकर अकाल पड़ा। कई लोग भूख से तड़पकर मर गए। सबसे चिंताजनक स्थिति उन माताओं की थी, जिनकी गोद में दुधमुंहे बच्चे थे और उनके घर के पुरुष काल के गाल में समा चुके थे। बुद्ध को जब यह पता चला तो वे चिंतित हो गए। उन्होंने तत्काल धनवान लोगों की एक सभा बुलवाई और उनसे कहा, आप इन माताओं और इनके बच्चों की रक्षा करें। वहां उपस्थित लोग बोले, हमारे पास अनाज तो है, पर वह एक वर्ष ही चल पाएगा। इसमें से हमने दूसरों को अन्न दिया तो हमारा परिवार भूखों मर जाएगा। दूसरे घर का दीया जलाना भी तभी अच्छा लगता है जब अपने घर का दीया जल रहा हो। इस पर बुद्ध गंभीर होकर बोले, आप लोग अपने स्वार्थ से ऊपर नहीं उठ पा रहे। क्या आपको विश्वास है कि आपके सदस्य की मृत्यु केवल अन्न न मिलने के कारण ही हो सकती है? क्या वे कोई अन्य रोग या दुर्घटना से बचे रहेंगे? क्या आप इस बात के प्रति पूरी तरह आश्वस्त हैं कि एक साल में इन पीड़ित व्यक्तियों के अलावा कोई और काल का ग्रास नहीं बनेगा? आपको भविष्य के बारे में सब कुछ कैसे पता? यह सुनकर सभी ने अपने सिर नीचे कर लिए। इसके बाद बुद्ध बोले, भाइयो, आपदाओं से मिलकर ही निपटा जाता है। यदि आज आप इनकी मिलकर सहायता करेंगे, तो अकाल जैसी इस विपत्ति से मुक्ति संभव है। किंतु यदि आप इनकी मदद नहीं करेंगे तो जीवन भर कोई आपकी सहायता करने को भी तैयार नहीं होगा। याद रखिए, विपत्ति में पड़े लोगों की सहायता करना ही सबसे बड़ा धर्म है। यह सुनकर श्रावस्ती के सभी सेठों और व्यापारियों ने अपने अनाज के भंडार खोल दिए। वे स्वयं भूखे लोगों में अन्न बांटने लगे। कुछ ही समय बाद सब लोगों के प्रयास से अकाल जैसी विपत्ति पर विजय पा ली गई और सब सुखपूर्वक रहने लगे।

३००) उस शहर के लोग - एक बार गौतम बुद्ध ने कुछ शिष्यों के साथ किसी शहर में डेरा जमाया। जब शिष्य शहर के भीतर घूमने निकले तो लोगों ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। वे क्रोध में भरकर बुद्ध के पास लौटे। बुद्ध ने पूछा, क्या बात है? आप सब तनाव में क्यों हैं। उनका एक शिष्य बोला, हमें यहां से तुरंत चलना वहां चाहिए, जहां हमारा आदर हो। यहां तो लोग दुर्व्यवहार के सिवा कुछ जानते ही नहीं। बुद्ध मुस्कराकर बोले, क्या किसी और जगह पर तुम सद्व्यवहार की अपेक्षा करते हो? दूसरा शिष्य बोला, कम से कम यहां से तो भले लोग ही होंगे। बुद्ध बोले, किसी स्थान को केवल इसलिए छोड़ना गलत है कि वहां के लोग दुर्व्यवहार करते हैं। हम तो संत हैं। हमें चाहिए कि उस स्थान को तब तक न छोड़ें जब तक वहां के हर व्यक्ति को सुधार न डालें। वे हमारे अच्छा व्यवहार करने पर सौ बार दुर्व्यवहार करेंगे। लेकिन कब तक? आखिर उन्हें सुधरना ही होगा और उत्तम प्राणी बनने का प्रयास करना ही होगा। तब बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने पूछा, उत्तम व्यक्ति कौन होता है? बुद्ध बोले, व्यक्ति ठीक उसी तरह होता है जिस प्रकार युद्ध में बढ़ता हुआ हाथी चारों ओर के तीर सहते हुए भी

आगे चलता जाता है। शिष्यों ने उस शहर से जाने का इरादा त्याग दिया।

३०१) ज्ञान की परंपरा - एक बार बुद्ध ने मिथिला में आम के एक बगीचे में डेरा डाला था। शाम का समय था। बुद्ध मंद-मंद मुस्करा रहे थे। पास बैठे आनंद ने इसका कारण पूछा तो बुद्ध ने कहा, मुझे यहां के राजा मखादेव की कथा याद आ रही है। वह बहुत ही दयालु, धार्मिक और बुद्धिमान था। प्रजा उसके कार्यों से बहुत खुश थी। एक दिन उसने अपने बेटे से कहा- अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैं संन्यास धारण कर कल्याण मार्ग की खोज में निकलूंगा। मेरे बाद तुम्हें ही राज्य का शासन देखना है। एक बात और, मेरी यह संन्यास वृत्ति मेरे ही तक सीमित न रहे। मैं चाहता हूं कि मेरी तरह मेरे वंशज भी प्रजा के हित में काम करते हुए मेरी तरह संन्यास धारण करके ज्ञान की खोज में निकलें। तुम भी जब बूढ़े हो जाओ तो अपने बेटे को शासन का भार सौंपकर संन्यास धारण कर लेना। बेटे ने कहा- आप की इच्छा अवश्य पूरी होगी। मखादेव के बाद कई पीढ़ियों तक यह सिलसिला चला। राज्य में सुख-शांति बनी रही। मगर जब कलारजनक राजा बना तो यह क्रम टूट गया। वह लोभी और अत्याचारी था। वह अंतिम समय तक राजा बना रहा। इस तरह कुल की प्रथा समाप्त हो गई और विदा हो गई राज्य की खुशहाली। आनंद मैं यही सोचकर हंस रहा था कि पता नहीं मेरे बाद भी मेरे दिखाए गए मार्ग पर हमारे भिक्षु चलेंगे या नहीं। कहीं तुम्हारे बाद इस कल्याणकारी मार्ग की इतिश्री न हो जाए। आनंद ने कहा, आपने जो रास्ता दिखाया है वह कभी अवरुद्ध नहीं होगा। बुद्ध ने कहा, मैं भी यही चाहता हूं। ज्ञान चलायमान है। इसका मार्ग हमेशा चलता रहे इसी में मानवता का हित है। जिस दिन इसका रास्ता रुक जाएगा, समाज नष्ट हो जाएगा। इसलिए सभी को अपना दायित्व अगली पीढ़ी को सौंप कर उसके रास्ते से हट जाना चाहिए और ज्ञान के नए-नए क्षेत्रों की खोज में समय बिताना चाहिए।

३०२) सखा उपदेश- महात्मा बुद्ध का एक शिष्य एक दिन उनके पास पहुंचा और बोला, आज मैंने एक भिखारी को बुलाकर बहुत देर तक उसे धर्म की शिक्षा दी, प्रेरक उपदेश दिए पर उस मूर्ख ने मेरी बातों पर गौर ही नहीं किया। शिष्य की बात सुनकर बुद्ध मुस्कराए, फिर भिखारी को बुलाकर लाने को कहा। जब भिखारी दीन-हीन अवस्था में आया तो बुद्ध ने उसे भरपेट खाना खिलाया और प्रेमपूर्वक विदा कर दिया। इस पर शिष्य ने पूछा, आपने उसे बिना कोई उपदेश दिए क्यों भेज दिया? बुद्ध ने जवाब दिया, आज उसके लिए भोजन ही उपदेश था। उसे प्रवचन से ज्यादा अन्न की जरूरत थी। यही सच्चा उपदेश है। यह सुनकर शिष्य निरुत्तर हो गया।

३०३) भिक्षु और नर्तकी - किसी नगर में एक भिक्षु आया। वह भजन गाता हुआ अपनी धुन में चला जा रहा था। तभी नगर की सबसे सुंदर नर्तकी ने उसे देखा। वह उस पर मोहित हो गई। वह दौड़कर उसके पास पहुंची। उसने उसे अपने घर आने का निमंत्रण दिया। भिक्षु ने कहा, जरूर आऊंगा, पर अभी नहीं। अभी तुम समर्थ हो, तुम्हारे पास सब कुछ है। तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है। लेकिन इतना भरोसा रखना कि जिस दिन तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी, उस दिन मैं तुम्हारे पास जरूर आऊंगा। यह सुनकर नर्तकी नाराज हो गई। पहली बार किसीने उसकी बात को नकारा था। उसने कहा, यह कहकर तुमने मेरा अपमान किया है। मेरे हजारों चाहनेवाले हैं। मुझे तुम्हारी जरूरत कभी नहीं पड़ेगी। भिक्षु मुस्कराकर वहां से चला गया। बीस साल गुजर गए। नर्तकी का धन और यौवन दोनों खत्म हो गया। उसे कोढ़ हो गया। उसका शरीर गलने लगा। लोगों ने उसे शहर से बाहर निकाल दिया। एक दिन वह भूखी-प्यासी एक पेड़ के पास बैठी अपनी किस्मत को कोस रही थी कि अचानक किसी ने उसके सामने ठंडे जल से भरा बर्तन रख दिया। पानी पीकर उसके जाते प्राण लौट आए। नर्तकी ने पूछा, तुम कौन हो? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, मैं वही भिक्षु हूं, जिसे तुमने बीस साल पहले अपने घर आने का निमंत्रण दिया था। उस समय तुम्हें मेरी जरूरत नहीं थी। लेकिन आज जब कोई तुम्हें पहचानने को तैयार नहीं है, मैं तुम्हें पहचानता हूं। नर्तकी को

अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने भिक्षु से हाथ जोड़कर क्षमा मांगी।

३०४) सच्चा यज्ञोपवीत- जब गुरु नानक नौ वर्ष के थे, तब उनके माता-पिता ने उनके यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन किया। कुल पुरोहित नानक को जनेऊ पहनाने लगे तो नानक ने पूछा पंडित जी। इन धागों से क्या लाभ है ?

इससे तन-मन और आत्मा पवित्र रहती है। पुरोहित ने कहा।

गुरु नानकदेव कर्मकांडों के निर्वहन की अपेक्षा उसमें निहित सद्प्रेरणाओं को अपनाने में विश्वास रखते थे। उन्होंने सूत के औपचारिक जनेऊ को पहनने से इंकार करते हुए गोपाल पंडित से कहा था- मुझे तो वह यज्ञोपवीत चाहिए जो संतोषरुपी कपास के सूत से बनाया तथा सत्य से बटा गया हो। ऐसा यज्ञोपवीत न तो टूटेगा, न मैला होगा और न जलेगा। वास्तव में ऐसा जनेऊ मरणोपरांत भी आत्मा के साथ रहते हैं।

नानक बोले, पंडित जी। दया की कपास, संतोष का धागा, संयम की गांठ बनाइए और उसे सत्य से बांटिए। वह आत्मा का सच्चा जनेऊ होगा। यदि आपके पास ऐसा जनेऊ है तो मुझे दीजिए। वह न टूटेगा, न जलेगा, न अपवित्र और न ही गुम होगा। आप इन चार दमड़ी के धागों को जनेऊ कहते हो, जो मृत्यु के साथ छूट जाता है और आत्मा अकेली चली जाती है।

जनेऊ हिन्दू धर्म की पवित्र निशानी है। इसे पहनना परम आवश्यक है। कुल पुरोहित ने समझाया।

पंडित जी। हिन्दू धर्म की पवित्र निशानी तो नि:स्वार्थ समाज सेवा है। जिसमें दया, क्षमा, विद्या, धैर्य, त्याग, प्रेम और संतोष नहीं वह कैसा धर्म है ?

पंडित जी ज्ञानी बालक नानक की अलौकिक प्रतिभा से चमत्कृत होकर घर लौट गए।

३०५) बाबा का उपदेश- एक दिन कुछ जिज्ञासु गुरु नानकदेवजी महाराज के पास पहुंचे उन्होंने उनके चरणों में बैठकर पूछा, बाबा, भगवान की पूजा का कोई सरल साधन बताने की कृपा करें।

नानकदेवजी मुस्कुराए, तथा बोले, सबसे पहले अपने जीवन को सरल, सात्विक बनाओ। हृदय में गरीबों व असहायों के लिए दया-भावना रखो। सेवा के लिए तत्पर रहो। भगवान को हमेशा याद रखो। मन को ईश्वर में लीन कर लो। भगवान स्वत: प्रसन्न हो जाएंगे।

बाबा ने उन्हें विस्तार से समझाते हुए बताया कि जो व्यक्ति असत्य और छल-कपट त्यागकर सत नाम का सहारा लेते हैं, वे सदैव शांति और आनंदमय जीवन पाते हैं। ईश्वर का गुणगान करने वालों पर ईश्वर की दया बरसने लगती है। वे भक्ति का ऐसा खजाना पा लेते हैं, जो कभी समाप्त नहीं होता है। जिज्ञासुओं की मनोकामना पूरी हुई। उन्होंने धर्म के नाम पर व्यर्थ के आडंबरों को छोड़कर सबसे पहले अपने जीवन को पवित्र बनाने का संकल्प ले लिया।

३०६) अंजलि भर जल- घटना उस समय की है जब गंगा नदी के किनारे एक पंडा अपने श्रद्धालु भक्तों से उनके मरे हुए पुरखों का तर्पण करवा रहा था। वे अंजलि में जल भरकर छोड़ते जा रहे थे। एक बार यात्रा करते हुए गुरुनानक देव जी हरिद्वार पहुंचे। संयोग से उसी समय वहां गुरुनानक भी स्नान कर रहे थे। उन्हें व्यर्थ के ढोंग से बहुत चिढ़ थी। वहां उन्होंने कुछ लोगों को हाथों में गंगाजल भरकर सूर्य की ओर अर्पण करते देखा। पूछने पर पता चला कि इस क्रिया द्वारा वे अपने पूर्वजों को जल अर्पित कर रहे हैं।

वे विपरीत दिशा की ओर अंजलि भर-भर कर जल छोड़ रहे थे। गुरुनानक देव जी ने भी अपने हाथों में जल भरा ओर पश्चिम की ओर उलट दिया। यह देखकर पंडे से रहा नहीं गया। उसने चिढ़ते हुए उनसे पूछा कि वे ये क्या कर रहे है। नानकजी ने बड़ी शालीनता और शांतिपूर्वक उत्तर दिया, पंडितजी, मैं अपने खेत सीच रहा हूं। पंडे ने क्रोधित होते हुए

पूछा- यहाँ जल छोड़ने से पानी खेत में कैसे पहुंच सकता है ? पंडित का यह प्रश्न सुनकर नानक बोले- जब तुम्हारे अनुसार इन सीधे-सादे लोगों द्वारा धरती पर छोड़ा गया अंजलि जल इनके पुरखों तक पहुंच सकता है, तो मेरे द्वारा विपरीत दिशा में छोड़ा गया अंजलि जल मेरे खेत में क्यों नही पहुंच सकता। गुरु नानक की इस तर्कपूर्ण बात को सुनकर पंडा शर्म से पानी-पानी हो गया और वहां से चुपचाप खिसक गया। लोगों को सत्य का अनुभव हुआ और वे गुरु चरणों में नतमस्तक होकर उनसे सच्चा ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना करने लगे।

३०७) पवित्र हाथ- एक बार की बात है सिखों के दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह कुछ नवयुवकों को उपदेश दे रहे थे। नवयुवक जिज्ञासावश उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछ रहे थे और गुरु उनके प्रश्नों का यथोचित उत्तर दे रहे थे। जब गुरुजी का प्रश्नों का उत्तर देते-देते गला सूखने लगा तो उन्होंने कहा- तुम में से कोई मुझे अपने पवित्र हाथों से पानी पिलाए। मुझे बहुत तेज प्यास लग रही है। इस पर एक सुन्दर युवक तुरन्त उठा और अन्दर जाकर लोटे में शीतल जल ले आया। जब वह लोटे से गिलास में पानी उड़ेलने लगा तो गुरुजीकी निगाह उसके हाथों पर पड़ी। गुरुजी ने उससे पूछा- क्यों युवक, तुम्हारे हाथ इतने सुन्दर और कोमल कैसे हैं ? और क्या ये पवित्र भी हैं ? इस पर युवक ने उत्साहित होकर जवाब दिया- गुरुजी मैं सेठ का पुत्र हूं, मेरे घर में कई नौकर-चाकर हैं। मैं ऐसा कोई काम नहीं करता जो मेरे हाथ खराब कर दे। मैं इनका बहुत ध्यान रखता हूं, इसीलिए ये सुंदर हैं। मैं इन्हें गंदगी से भी दूर रखता हूं, अत: आप इन्हें पवित्र भी कह सकते हैं।

यह सुनकर गुरुजी गंभीर स्वर में बोले- युवक, मैं यह पानी नहीं पी सकूंगा, क्योंकि यह अपवित्र हाथों से लाया गया है। इस पर युवक ने दुखी स्वर में पूछा- ऐसा क्यों गुरुजी ?

गुरुजी बोले- पवित्र हाथ वे होते हैं जो दूसरों की सेवा और श्रम करते हैं। जनता के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। लेकिन तुमने कभी कोई मेहनत का काम किया ही नहीं है। अत: मेरे लिए तुम्हारे हाथ अपवित्र हैं।

गुरुजी की बात सुन युवक की आंखें खुल गईं। वह गुरुदेव के चरणों में झुककर बोला- आज से मैं अपने सारे काम स्वयं किया करूंगा और कुछ न कुछ ऐसा कार्य करूंगा जो जनहित के लिए हो। गुरुदेव मुस्करा कर बोले- जिस दिन तुम ऐसा करोगे, मैं सहर्ष तुम्हारे हाथों का पानी पी लूंगा।

३०८) सांकेतिक भाषा- एक बार गुरुनानक एक ऐसे गांव में पहुंचे जो गुरुओं और सूफियों का केंद्र था। नानकजी के जगह मांगने पर सूफियों के गुरु ने दूध से लबालब कटोरा उनके पास भेज दिया। नानक ने चमेली का एक फूल तोड़कर उस कटोरे में डाल दिया तथा वापस भेज दिया। कटोरा लाने वाले ने जब ज्ञानियों की सांकेतिक भाषा का मर्म जाना तो हैरान रह गया। सूफियों के गुरु ने खबर भेजी थी कि इस गांव में बहुत ज्ञानी हैं। अब यहां औरों के लिए गुंजाइश नहीं है, गुरुनानकको कहा- मुझसे आपको कोई असुविधा नहीं होगी। यहां आया हूं, बोझ नहीं बनूंगा, फूल की तरह तैर जाऊंगा गुरुनानक को सहर्ष जगह दे दी गई।

३०९) बेड़ियाँ- गुरु गोविंदसिंह को बाल्यावस्था से ही अपना लक्ष्य पता था। बचपन में मां ने उन्हें सोने के कंगन पहना दिए। थोड़ी देर बाद मां ने देखा तो बालक के एक हाथ का कंगन गायब था। पूछने पर वह माता को नदी किनारे ले गया तथा दूसरा कंगन भी नदी में डाल दिया। मां को संबोधित करते हुए बालक गोविंदसिंह बोले कि मुझे पिताजी व गुरुनानक के रास्ते पर चलना है। आपने यदि मोहमाया की बेड़ियों में बांध दिया तो मैं काम कैसे कर पाऊंगा। तीन-चार वर्षीय बालक के मुख से यह वचन सुनकर माता हतप्रभ रह गई।

३१०) प्रायश्चित- पंजाब में सज्जन नाम का एक डाकू था। लोगों को लूटने का उसका एक अलग ही तरीका था।

उसने हिन्दुओं के लिए अनेक मंदिर बनवाए और मुसलमानों के लिए मस्जिदें। इस तरह उसने अपनी एक अच्छी छवि बना रखी थी। लोग उस पर विश्वास करके उसका आतिथ्य स्वीकार करते थे। रात में जब लोग सो जाते तो सज्जन उन्हें मारकर उनके रुपये-पैसे लूट लिया करता था। इस बात की खबर गुरु नानक को लगी तो वह उसके घर चले गए। सज्जन ने गुरु जी का खूब स्वागत-सत्कार किया और अपने द्वारा बिछाए गए बिछावन पर सोने को कहा। गुरु नानक मुस्कराए। फिर उन्होंने कहा, मैं यहां कैसे चैन से सो सकता हूं। पवित्र स्थानों पर भी शिकारी पक्षी उड़ते रहते हैं और जीवों को खा जाते हैं। सज्जन को पता चल गया कि गुरु नानक ने उसकी मंशा समझ ली है। उसने लज्जित होकर क्षमा मांगी। नानक ने कहा, तुम्हें ईश्वर ही क्षमा कर सकता है और वह उन्हीं को क्षमा करता है जो अपने पाप का प्रायश्चित करते हैं। इस पर सज्जन ने कहा, मैंने अनेक लोगों को मारा और लूटा है। मैं कैसे प्रायश्चित करूं कि भगवान मुझे क्षमा कर दें। नानक बोले, जो तुम्हारे पास है उसे गरीबों में बांट दो। सज्जन ने ऐसा ही किया। वह अपने नाम के अनुरूप वास्तव में सज्जन बन गया।

३११) योग्य वर- सिक्खों के चौथे गुरु रामदासजी के माता-पिता का निधन उस समय हुआ जब वे सात साल के थे। बचपन में जेठाजी (गुरु रामदासजी) को नानी मां का प्यार मिला। नानी भी निर्धन थीं अत: उन्हें उबले हुए चने गांव में घूम-घूमकर बेचने पड़े। जेठाजी छोले बेचते हुए गुरु अमरदासजी के आश्रम के निकट आ बैठते। छोले बेचने के साथ-साथ वे गुरुजी की वाणी ध्यान से सुनते। छोले बेचने के बाद जो समय मिलता उसे संगत की सेवा में लगाते। निर्धन बालक जेठा के पास सेवाभावना, आज्ञापालन तथा परोपकार की विशाल पूंजी थी। एक बार आश्रम में सेवा करते हुए जेठा पर गुरु अमरदास की दृष्टि चली गई। उनके आकर्षक व्यक्तित्व और सद्गुणों से वे अत्यधिक प्रभावित हुए। गुरु अमरदास जी ने अपनी पुत्री भानी का विवाह जेठाजी से किया। गुरुजी की दृष्टि में उनसे सम्पन्न कोई और नहीं था।

३१२) राम का खेत- एक बार बचपन में गुरु नानक देव को चिड़ियों से फसल की रखवाली करने के लिए खेत पर भेजा गया। वहाँ पहुँचने पर नानक देव ने देखा, बहुतसारी चिड़ियाएँ निर्भय होकर दाना चुगने में मशगूल थी। वे मगन होकर वह दृश्य देखने लगे। फिर उन्हें लगा, सारा संसार तो ईश्वर से व्याप्त है, इसलिए मिलजुल कर ही भोग करना चाहिए। धरती के अन्न पर किसी एक का हक कैसे हो सकता है, वह तो सबका है। उस पर हक जमाने का हमारा ही लोभ पाप है। उन्हें उन चिड़ियों में ज्योति स्वरूप ईश्वर के दर्शन होने लगे- विष्णु गरुड़ पर बैठे हुए, लक्ष्मी उल्लू पर सवार, सरस्वती हंस वाहिनी, कामदेव अपने तोते पर और शंकर पुत्र स्कन्द मयूर पर विराजमान। इस प्रकार वे कण-कण में ईश्वर के प्रकाश को देख फूले नहीं समाए। गुरुनानक वहीं बैठ गए और चिड़ियों को दाना चुगते देख उन्हें भगाया नहीं, बल्कि खुश हो गाने लगे- राम की चिड़िया राम का खेत। खा लो चिड़िया भर-भर पेट।

३१३) अनोखा आशीर्वाद - एक बार गुरु नानक देव जी अपने शिष्यों के साथ एक गांव में आए। उस गांव के लोगों ने उनका भव्य स्वागत किया तथा एक कुटिया में उनके रहने की व्यवस्था कर दी। गुरु नानक देव जी उन गांववासियों की सेवा से बेहद प्रभावित हुए। जब वह गांव से रवाना हुए तो उन्होंने गांववालों को आशीष देते हुए कहा, तुम सब खेत में गेहूं के दानों की तरह चारों ओर बिखर जाओ। यह सुनकर उनके साथ चल रहे शिष्य भौंचक रह गए पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। यात्रा करते हुए अगले दिन गुरु नानक देव जी अपने शिष्यों के साथ दूसरे गांव में पहुंचे। वहां के लोगों ने उनका जरा भी मान-सम्मान नहीं किया। उन लोगों ने उनका बहुत तिरस्कार किया व अनेक प्रकार के अपशब्द कहे। गुरु नानक देव जी दूसरे दिन जब उस गांव से विदा होने लगे तो उन्होंने गांव वालों को आशीर्वाद देते हुए कहा, तुम कुएं के मेंढ़क की तरह आबाद रहो। यह सुनकर गुरुनानक देव जी के शिष्यों ने पूछा, गुरुजी, जिन गांववालों ने आपका अत्यंत आदर-सत्कार किया उनको तो आपने

बिखर जाने के लिए कहा और जिन लोगों ने आपका तिरस्कार किया आपकी आलोचना की, उन्हें आपने सदा आबाद रहने का आशीर्वाद दिया। हम आपके इन वचनों का मर्म नहीं समझ पाए हैं। कृपया हमें विस्तार से समझाने की कृपा करें।

गुरुनानक जी ने अपने शिष्यों की मन:स्थिति को समझकर उन्हें विनम्रतापूर्वक समझाते हुए कहा, बच्चो, सज्जन और भले लोग बिखर कर जहां भी जाएंगे वहां वे उत्तम वातवरण का ही निर्माण करेंगे। प्रेम और सद्भावना का विस्तार करेंगे। हर जगह ज्ञान का दीप जलाएंगे, जबकि दुर्जन प्राणी जहां भी जाएंगे, केवल दुर्जनता ही फैलाएंगे। वातावरण को दूषित करेंगे। इसलिए ऐसे लोगों का एक ही जगह रहना उचित होगा।

गुरुदेव बोले, दुर्जनों को तो एक ही जगह बंधे रहना शुभ है ताकि उनके अवगुण उस गांव तक ही सीमित रहें और सज्जन लोग उजड़ेंगे तो वे जहां भी जाएंगे, सज्जनता के बल पर उत्तम संस्कार बिखेर देंगे। इन सेवाभावी लोगों का व्यवहार उन अमूल्य गुणों से भरपूर है, जिनकी संसार को जरूरत है। स्वयं जीएं और दूसरों को ससम्मान जीने दें।

शिष्यों ने गुरु नानक देव जी के इस अनोखे आशीर्वाद के आगे सिर झुका लिया।

३१४) सम्मान - चीन के राजा क्वांग का प्रधानमंत्री था सुन शू। एक बार राजा ने उसे पद से हटा दिया। कुछ दिनों बाद उसे फिर प्रधानमंत्री बना दिया। उसे हटाने और वापस बुलाने का यह क्रम तीन बार चला। लेकिन राजा ने अनुभव किया कि इसका सुन शू पर कोई खास असर नहीं पड़ा। वह न प्रसन्न हुआ, न दुखी। जब राजा ने इसका कारण पूछा तो सुन शू ने कहा, जब मुझे प्रधानमंत्री का पद दिया गया तब मैंने सोचा कि सम्मान को अस्वीकार करना उचित नहीं है। जब मैं पदच्युत किया गया तब मैंने सोचा कि जहां आवश्यकता नही है वहां चिपके रहना बेकार है। फिर प्रश्न उठा कि यह सम्मान किसका है, मेरा या पद का। यदि पद का है तो उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है और यदि मेरा है तो चाहे पद रहे या नहीं, उससे क्या फर्क पड़ता है।

३१५) सब अकाल पुरुष की संतान- गुरु नानकदेव हिन्दू-मुस्लिम में भेद नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में सब अकाल पुरुष की सन्तान थे। नानक की मान्यता थी कि आज न तो सच्चे हिन्दू- दिखाई देते हैं और न ही सच्चे मुसलमान। एक बार सुलतानपुर के काजी से वार्तालाप करते हुए गुरुजी बोले मैं न हिन्दू हूँ और न मुसलमान। वैसे मैं हिन्दू भी हूँ तथा मुसलमान भी। काजी बोले, यदि आप हिन्दू-मुस्लिम में भेद नहीं समझते तो चलिए हमारे साथ नमाज पढ़िए। नानकदेव काजी के साथ चल दिए। काजी ने नवाब को भी अपने साथ ले लिया। यह समाचार बिजली की तरह शहर में फैल गया। निश्चित समय पर सब लोग नमाज पढ़ने के लिए पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। नानकदेव भी उनमें सम्मिलित थे। जब सारे नमाजी सजदे में झुके तो नानक भी झुके और फिर पालथी मारकर बैठे गए। नमाज खत्म होने पर नानक को आँखें मूंदे हुए बैठ देखकर नवाब क्रोधित हुआ। काजी की दृष्टि में यह जघन्य अपराध था। सबको क्रोधित देखकर गुरुजी बोले, यहां कोई नमाजी था ही नहीं जिनके साथ मैं नमाज पढ़ता। सब अपनी-अपनी उधेड़बुन में मग्न थे। तुम्हें झूठ बोलना शोभा नहीं देता काजी ने कहा। काजी साहब। क्यों गुस्सा करते हो। आप नमाज पढ़ते समय नई ब्याही घोड़ी एवं उसके बच्चे के बारे में सोच रहे थे। गुरुजी ने सहजता से उत्तर दिया। काजी की नजरें अपराध बोध के कारण झुक गईं। नवाब से उन्होंने कहा कि आप भी कहां नमाज अदा कर रहे थे। आपका मन तो काबुल में घोड़ों की खरीददारी कर रहा था। नवाब का सिर भी शर्म से झुक गया। नानकदेव का कहना था कि पूजा दिखाने की नहीं मन को ईश्वर से जोड़ने की विद्या है।

३१६) विनम्रता- गुरुनानक देव ने अपने पंथ के उत्तराधिकारी के रूप में परिवार के सदस्यों में से किसी का चयन नहीं किया। लहणा नामक उनके शिष्य (गुरु अंगददेव) केवल गुरु आज्ञा की प्रतीक्षा करते थे। गुरु आज्ञा पालन करना उनके जीवन का लक्ष्य था। उन्होंने लंगर-व्यवस्था से लेकर वे सब कार्य किए जिनका निर्देश नानकदेव ने दिया। गुरुजी ने मन

ही मन में भाई लहणा (गुरु अंगददेव) को अपना वारिस चुन लिया था पर वे उन्हें सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे।

गुरु अंगददेव गुरुनानक के उत्तराधिकारी थे। उनके पुत्र भी गुरु गद्दी पर अधिकार मानते थे लेकिन गुरु अंगददेव ने अपने योग्यतम शिष्य अमरदास की भलीभांति परीक्षा लेकर उन्हें गुरु गद्दी सौंप दी। गुरुजी के निर्णय पर पुत्रों को बड़ा क्रोध आया। कड़ाके की सर्दी थी। आधी रात को गुरुजी ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि कपड़े मैले हो गए हैं तुम इन्हें नदी में धोकर लाओ। सुबह मैं पहनूंगा। पुत्र सुनकर हैरान हो गए। बर्फीली हवा और आधी रात में घर से निकलने की कल्पना करना कठिन था। गुरुजी के पुत्र बोले कि अभी तो हमें नींद आ रही है सुबह आपके कपड़े धो लाएंगे।

गुरु अंगददेव की आज्ञा से गुरु अमरदासजी गोयंदवाल में रहकर धर्मोपदेश कर रहे थे। अंगददेव के पुत्र दासू और दातू गोयंदवाल पहुंचे और संगत की परवाह किए बिना अमरदासजी को अपशब्द कहने लगे। कहते हैं दातू ने गुरुजी के सीने में लात मारकर कहां इस गद्दी का सही उत्तराधिकारी तो मैं हूँ। गद्दी से नीचे उतरो।

गुरु अमरदास ने गुरु पुत्रों के अपशब्दों पर ध्यान नहीं दिया। दातू के पैर दबाते हुए बोले कि वृद्ध की कठोर हड्डियों से आपके पांव में चोट आ गई होगी। लाइए दबा दूं। सारी संगत गुरुजी की विनम्रता पर जय जयकार कर उठी।

३१७) जगा देते हैं संत मोहमयी नींद से- एक बड़ी रियासत का राजा दुराचारी था। उसे खूब सारा धन इकट्ठा करके बहुत बड़ा सम्राट बनाने की इच्छा थी। धन कैसे आए, कहां से आए, किस तरीके से आए- इसीमें दिन-रात दिमाग उलझा रहता था और अपनी प्रजा से ज्यादा से ज्यादा धन पाने की लालच में नए-नए कर लगाता। गुरु नानकदेव ने लोगों को सही दिशा देने के लिए लम्बी यात्राएं कीं। वे एक बार मक्का की यात्रा करने के बाद बगदाद पहुँचे। लोगों ने उन्हें बताया कि एक खलीफा गरीबों का अमानवीय तरीके से शोषण करता है तथा धन एकत्र कर रहा है। नानकदेव जी लाहौर में एक करोड़पति सेठ दुलीचन्द के यहां भोजन पर गए। सेठ दुलीचन्द ने नानकदेव जी के भोजन के लिए हजारों रुपये खर्च कर दिए। जब नानकदेव जी सेठ के यहां पहुंचे तो वहां का वातावरण स्वादिष्ट व्यंजनों की सुगन्ध से महक रहा था।

खलीफा को सही रास्ते पर लाने के लिए उन्होंने योजना बनाई। भाई मरदाने की सहायता से गुरुजी ने खलीफा के आवागमन वाले रास्ते को चुना।

विश्व भ्रमण करते एक बार गुरु नानक देव जी बगदाद पहुंचे। वहां के अन्यायी शासक ने प्रजा पर अत्याचार करके अपार धन-संपत्ति जमा की। वहां की प्रजा बहुत दुखी व असहाय थी। एक पेड़ के नीचे कंकड़ पत्थर का ढेर लगा दिया तथा उनकी गिनती करने लगे।

एक दिन गुरु नानक उस रियासत में पहुंचते हैं, और राजा को सबक सिखाने हेतु महल में जाते हैं। राजमहल में प्रवेश करने से पहले उन्होंने कुछ कंकड़-पत्थर बीनकर अपनी दोनों मुठ्ठियों में भर लेते हैं। नानक जी शाही महल के बाहर, एक बहुत सारे कंकड़-पत्थर का ढेर लगा, उसके पास बैठ गये और प्रभु गान करने लगे। नानक देव के आगमन की सूचना सुन सम्राट स्वयं उन्हें लेने आया।

राजा को गुरु नानकदेव के आगमन की सूचना दरबारियों से प्राप्त हुई तो राजा स्वयं आगवानी करने के लिए अपना सिंहासन छोड़कर महल के प्रवेशद्वार पर आ गया। राजा उन्हें आदरपूर्वक महल में ले जाकर एक उच्च आसन पर बिठाता है तथा सेवा-भाव के लिए अनुनय-विनय करता है। नानकजी जैसे ही दरबार में पहुंचते हैं, वैसे ही नाच-रंग बंद हो गया तथा माहौल एकदम से बदल गया। नानकजी आसन पर बैठे ही रहे थे, कि उनकी मुट्ठी से दो-तीन कंकड़ छिटक कर फर्श पर गिर पड़े, जानबूझकर गिराए थे वे कंकड़। राजा को आश्चर्य हुआ उन कंकड़ों को देखकर कि एक इतना महान संत

और बच्चों की तरह हाथ में कंकड़-पत्थर लिए हुए हैं। आश्चर्य चकित होते हुए राजा ने पूछ ही लिया- गुरुदेव। ये कंकड़-पत्थर आपने किस लिए इकट्ठे कर रखे हैं, कृपया बतायें, क्योंकि यह बात मेरी समझ से बाहर है ?

कंकर-पत्थर के पास बैठा देख बादशाह ने कहा- महाराज यह सब किसलिए ? नानक देव ने कहा- मृत्यु के समय यह सब मैं परमात्मा को उपहार में दूंगा। गुरुजी बोले जब मैं मरूंगा तो इन्हें अपने साथ ले जाऊंगा। जब नानकदेव जी को खर्चे का पता चला तो उन्होंने सेठ को बुलाकर कहा, इस सुई को संभालकर रखो और मुझे परलोक में लौटा देना।

नानकजी मुस्कराते हुए कहते हैं- राजन्। मरने के बाद मैं इन्हें अपने साथ ले जाऊंगा और ईश्वर को नजराना पेश करूंगा। राजा बड़े जोर से ठहाका मार कर हंसता है और कहता है आप जैसा परम ज्ञानी भी, मरने के बाद कुछ ले जाने के बारे में सोचता है। यह जानकर मुझे खूब आश्चर्य होता है और हंसने की इच्छा हो रही है। क्या आप यह भूल गए कि परलोक जानेवाली आत्मा कंकड़-पत्थर तो दूर, अपने साथ एक कण भी नहीं ले जा सकती ? आपकी नादानी और अज्ञानता पर मुझे तरस आता है।

सेठ नानकदेव जी बात सुनकर परेशान हो उठा और बोला, गुरुजी यह तो मेरे लिए संभव नहीं है।

राजा नानक का ऐसा जवाब सुनकर जोरों से हंसा और बोला- अरे नानक, मैंने तो सुना था तू बड़ा ज्ञानी है, पर तुझे इतना भी पता नहीं कि कयामत के दिन रूहें अपने साथ कंकड़ का ढेर क्या, सुई तक नहीं ले जा सकतीं।

सम्राट हंसकर बोला- अरे नानक, मैं समझता था कि तू बड़ा विवेकी, ज्ञानी व खुदा का बंदा है पर तुझे तो इतना भी ज्ञान नहीं, मरते समय रूहें अपने साथ, इतने सारे कंकर पत्थर तो क्या, एक सुई भी नहीं लें जा सकती।

अब गुरु नानकदेवजी खूब जोर से ठहाका लगाकर हंसते हैं क्योंकि राजा को ज्ञान भरी बातों से ही तो सिखाना है। कांटे से कांटा निकलता है, मूर्ख को समझाने के लिए मूर्ख बनना ही पड़ता है। नानक ने कहा- राजन। यह तरकीब मैं आपसे ही पूछने आया हूं। आप अपनी प्रजा को लूटकर जो धन इकट्ठा कर रहे हैं, उसे अवश्य ही अपने साथ ले जाएंगे। खलीफा के आश्चर्य व्यक्त करने पर नानक ने कहा जिस प्रकार आप अपनी सम्पत्ति को अपने साथ ले जाएंगे उसी तरह मैं भी पत्थरों को ले जाऊंगा।

गुरु नानक देवजी ने व्यंग्यपूर्वक कहा- राजन अविवेकी, अज्ञानी मैं नहीं तू है। शायद तू यह नहीं जानता कि जो संपत्ति तूने प्रजा को लूट-लूट कर अर्जित की है उसमें से थोड़ी-सी भी तू साथ ले जायेगा तो मैं इस ढेर को भी अपने साथ ले जाऊंगा। नानकदेव जी ने तुरन्त जवाब दिया, जब तेरे साथ परलोक में एक सुई साथ नहीं जा सकती तो तू जोड़े हुए इतने धन को क्या अपने साथ ले जाएगा।

शासक के ज्ञान नेत्र खुल गये, उसने गुरुनानक देव के पैर पकड़ लिये और प्रजा पर अत्याचार न करने की शपथ खा, परोपकार का मार्ग अपना लिया।

अगर ले जाने का तरीका मुझे भी बता दें, तो मेरा यह उपहार भी पहुंच जायेगा। राजा को जैसे किसी ने नींद से जगा दिया। वह लज्जित होकर नानकदेवजी के चरणों में गिर पड़ा और बोला- गुरुदेव। आपने मेरी आंखें खोल दीं। आज मुझे समझ में आ गया कि धन किसी के साथ नहीं जाता। मैं अब प्रजा की भलाई करूंगा और धन का लोभ त्याग दूंगा। राजा मोहमयी नींद से जागकर सारा इकट्ठा किया धन प्रजा के हित में लगा देता है।

छोड़कर संसार जब तू जायेगा, तेरी कमर में न धेला रहेगा। किस काम का ऊंचा महल ? जो तूने बनाया है।

रथ-हाथियों के झुंड भी, किस काम आएंगे ? मुट्ठी बांधे आया जगत में, खाली हाथ चले जाएगा।

छोड़कर संसार जब तू जाएगा, कोई न साथी साथ निभायेगा। राजा नानक का इशारा समझ गया और उसी दिन से उसने जनता का उत्पीड़न बंद कर धन जमा करना छोड़ दिया। खलीफा को यथार्थ बोध हो गया। गुरुजी से प्रभावित होकर उसने अपनी सम्पत्ति गरीबों में बांट दी।

समझें हम इस सच्चाई को। ऐसे संत कीं, ऐसे सद्गुरु की तलाश करें जो हमें मोहमयी नींद से जगा दे। कोई तो चाहिए उठानेवाला ? और सच्चे संत ही जगा सकते हैं। हमारी निद्रा को भगा सकते हैं। जागना बहुत जरूरी है।

३१७ ए) उन दिनों गुरुनानक देव लाहौर गए थे। वहां यह नियम था कि जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक संपत्ति होती थी, वह अपने घर के ऊपर उतने ही झंडे लगाता था। दुनीचंद नामक व्यक्ति उस समय लाहौर में सबसे अधिक धनी एवं समृद्ध था। उसके पास लगभग २० करोड़ की संपत्ति थी। उसके घर की छत पर रंग-बिरंगे बीस झंडे लहरा रहे थे। दुनीचंद सेठ भी एक दिन गुरु नानक के दर्शन करने के लिए उनके पास आया और नतमस्तक होकर गुरुदेव से बोला, महाराज। आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?

गुरुनानक ने उसे एक सूई देकर कहा, दुनीचंद। इस सूई को ले जाओ और मुझे अगले जन्म में वापस कर देना। दुनीचंद अपनी धन-संपत्ति के अभिमान में गुरुदेव का अभिप्राय नहीं समझा और सूई लेकर लौट आया। कुछ ही समय बाद चिंतन के क्षणों में उसे विचार आया कि वह सूई लेकर घर आया था। वह उस सूई को अगले जन्म में वापस कैसे करेगा ? मर कर अपने साथ तो ले नहीं जा सकता। गुरुदेव ने अवश्य ही किसी विशेष अभिप्राय से मुझे सूई दी है। वह उसी समय वापस आश्रम में लौटा और गुरुदेव को प्रणाम किया तथा कहा- महाराज। आपने जो सूई दी है, वह मैं अगले जन्म में कैसे लौटा सकता हूं ? भला मरने के बाद भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपने साथ ले जा सकता है क्या ? आप अपनी यह सूई वापस ले लीजिए।

गुरुदेव दुनीचंद की बात सुनकर मुस्कराए और बोले, दुनीचंद। यदि तुम छोटी सी सूई भी मरने के बाद अपने साथ नहीं ले जा पाओगे तो इतनी सारी दौलत जो तुमने इकट्ठी कर रखी है, कैसे साथ ले जा सकोगे ? गुरुदेव की बात से दुनीचंद की आंखें खुल गईं। उसे सच्ची सीख मिल गई थी। उसने उसी क्षण अपनी सारी धन-संपत्ति अभावग्रस्त लोगों की सहायता में लगाने का निर्णय कर लिया।

नानकदेव जी की बात सुनकर सेठ उनके पैरों में लोट गया और उसने अपना सारा धन गरीबों में बांट दिया।

३१८) खुदा के बंदे- एक बार गुरु नानक सुलतानपुर के नवाब के घर पहुंचे। नवाब ने नानक का दिल खोलकर स्वागत किया, फिर धर्म पर चर्चा होने लगी। नवाब ने कहा, आप तो हिंदू-मुसलमान में कोई फर्क नहीं समझते। नानक ने कहा, हुजूर, देने वाला एक है और लेने वाला एक, तो फर्क कैसे करूं। नवाब ने कहा, तो आज आप भी मेरे साथ नमाज अदा करने चलें।

दोनों मस्जिद पहुंचे। नवाब साहब नमाज अदा करने लगे, लेकिन नानक ध्यानमग्न एक ही मुद्रा में वहीं खड़े के खड़े रह गए। सारा गांव यह सब देखने को जमा था। नमाज खत्म होने के बाद नवाब साहब ने कहा, आपने तो नमाज अदा की ही नहीं। मैं देख रहा था कि आप खड़े हुए मुझे देख रहे थे।

नानक ने कहा, हुजूर, गुस्ताखी माफ हो तो आप से एक बात कहूं। नवाब ने कहा, हां-हां जरूर कहिए। नानक ने कहा, हुजूर, जब आप नमाज अदा कर रहे थे, तब मेरा मन तो अपने स्वामी पर लगा हुआ था। उस समय मुझे अपने स्वामी के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। न आप दिख रहे थे और न ही आप की नमाज अदा करने की मुद्रा। लेकिन आप तो सर्वशक्तिमान एकमात्र स्वामी अल्लाह में अपना चित्त लगाए हुए थे, फिर आप ने मुझे कैसे देख लिया कि मैं नमाज

अदा कर रहा हूं या नहीं। नवाब समझ गए कि नानक क्या कहना चाह रहे हैं। उन्होंने कहा, आप ठीक कहते हैं। मेरा ध्यान अल्लाह पर कम, आपको देखने में ज्यादा था। खुदा की इबादत करना और खुदा में चित्त लगाना अलग-अलग बातें हैं। यह हमारी कमजोरी है कि हम इबादत करने आते हैं, खुदा में चित्त लगाने नहीं।

नानक ने कहा, हुजूर, हम सब एक खुदा के बंदे हैं। हम चाहे उसे देख पाएं या नहीं, वह सब कुछ देख रहा है। हम चाहे मंदिर जाएं या मस्जिद, खुदा तो हर जगह विराजमान है। बस उसे पाने के लिए दृढ़ मन से उस पर चित्त लगाने की जरूरत है।

३१९) कर्म और भाग्य - एक बार गुरु नानक किसी गांव में अपने एक भक्त के यहां प्रवचन करने जा रहे थे। रास्ते में एक किसान धान के अपने खेत के पास प्रसन्नचित्त बैठा था। गुरु नानक ने उससे कहा, भगवान की कृपा से इस बार बहुत अच्छी फसल हुई है। किसान बोला, इसमें भगवान की कृपा कहां से आ गई। यह तो मेरी मेहनत और सूझबूझ का फल है। मैंने कड़ी मेहनत करके बारिश में भीग कर खेतों की जुताई की, कुदाल से खोद-खोद कर खर पतवार निकाले। समय पर खाद, और पानी दिया, तब जाकर अच्छी पैदावार हुई है। यदि मैं मेहनत नहीं करता तो फसल अच्छी कैसे होती। गुरु नानक ने कुछ नहीं कहा और चुपचाप आगे बढ़ गए। कई साल बाद फिर वह उसी गांव में प्रवचन करने आए। इस बार भी वही किसान अपने खेत के पास मुंह लटकाए बैठा था। किसान को उदास देख कर गुरु नानक ने पूछा, भइया, इतना उदास क्यों हो? किसान ने कहा, क्या बताऊं। सूखे ने सारी मेहनत, सारा खर्च बर्बाद कर दिया। भगवान ने मुझे तबाह कर दिया। गुरु नानक ने कहा, भइया, यह सब भगवान की माया है। वह कभी देता है तो कभी ले लेता है। इस पर किसान बोला, आप जख्म पर नमक क्यों छिड़क रहे हैं। गुरु नानक ने जवाब दिया, आपको याद होगा कि जब मैं पिछली बार आया था तो आपकी अच्छी फसल देखकर मैंने कहा था कि यह भगवान की कृपा है। उस समय आपने कहा था कि इसमें भगवान की कृपा कहां से आ गई। यह तो मेरी मेहनत का फल है। अब आप कह रहे हो कि भगवान ने तबाह कर दिया। अच्छे कार्य का श्रेय आप स्वयं लो और बुरे कामों का दोष भगवान पर डाल दो, यह उचित नहीं है। सफलता के लिए भगवान की कृपा और परिश्रम दोनों चाहिए। किसान को गुरु नानक की बात का मर्म समझ में आ गया। उसकी उदासी दूर हो गई।

३२०) संकल्प - एक बार नानक काशी के पास एक गांव में प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन के बीच में उन्होंने कहा, सफलता के लिए प्रत्येक व्यक्ति को आशावादी होना चाहिए। प्रवचन खत्म होने के बाद एक भक्त ने पूछा, गुरुजी, क्या किसी चीज की आशा करना ही सफलता की कुंजी है। नानक ने कहा, नहीं, केवल आशा करने से कुछ नहीं मिलता। मगर आशा रखनेवाला मनुष्य ही कर्मशील होता है। लेकिन उस आदमी की समझ में ये बातें नहीं आ रही थी। उसने कहा, गुरुजी, आप की गूढ़ बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। उस समय खेतों में गेहूं की कटाई हो रही थी। तेज गर्मी पड़ रही थी। नानक ने कहा, चलो मेरे साथ। तुम्हारे प्रश्न का जवाब वही दूंगा। नानक उस आदमी को अपने साथ लेकर खेतों की तरफ चले गए। उन्होंने देखा कि एक खेत में दो भाई गेहूं की कटाई कर रहे थे। बड़ा भाई तेजी से कटाई करता आगे था दूसरा भाई पीछे था। नानक उस आदमी के साथ वहीं एक आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। दोपहर हो गई थी। छोटा भाई बोला, भइया, आज तो पूरी कटाई हो नहीं पाएगी। अभी बहुत बाकी है, कल सुबह आकर काट लेंगे। बड़े भाई ने कहा, अब ज्यादा कहां बचा है। देखता नहीं, थोड़ा ही तो रह गया है। इन दो कतारों को काट लेंगे तो बाकी बारह कतारें रह जाएगी। इतना तो आराम से काट लेंगे। कल पर क्यों टालता है। बड़े भाई की बात सुनकर छोटा भाई जोश में आ गया और उसका हाथ भी तेजी से चलने लगा। थोड़ी देर में पूरा खेत कट गया। खेत कटने के बाद नानक वहां से चलने लगे तो भक्त ने कहा, मेरे प्रश्न का उत्तर तो शेष है। नानक ने कहा, तुम्हारे प्रश्न का जवाब तो उन दोनों भाइयों ने दे दिया जो खेत में गेहूं

काट रहे थे। बड़ा भाई आशावादी था, तभी तो कटाई पूरी हुई। भक्त को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

३२१) सच्चा सेवक - गुरु गोविंद सिंह और मुगलों में युद्ध छिड़ा था। गुरु गोविंद सिंह ने अपने विश्वासपात्र सेवक भाई कन्हैया को सैनिकों को पानी पिलाने का कार्य सौंपा हुआ था। कन्हैया मशक में पानी भर कर कंधे पर लटका लेता और दिन भर घूम-घूम कर सैनिकों को पानी पिलाता। वह घायल सैनिकों की सहायता भी करता। उस समय उसे यह दिखाई नहीं देता था कि कौन सिख सैनिक है और कौन मुगल सैनिक। एक दिन किसी ने गुरु गोविंद सिंह से कहा, आपने कन्हैया को प्यासे सिख सैनिकों को पानी पिलाने का काम सौंपा हुआ है लेकिन वह तो घायल मुगल सैनिकों को भी पानी पिलाकर उनके जीवन की रक्षा करता है। इसके कारण हमारे सैनिक प्यासे रह जाते हैं।

गुरु गोविंद सिंह ने कन्हैया को बुलाया और कहा, मैंने सुना है कि तुम युद्धस्थल में मुगल सेना को भी पानी पिलाते हो। क्या यह सच है? कन्हैया ने उत्तर दिया, हां हुजूर। गुरु बोले, लेकिन वे हमारे दुश्मन हैं। हम उनसे लड़ रहे हैं।

कन्हैया ने कहा, यह ठीक है कि वे हमारे दुश्मन हैं लेकिन आप ही ने तो सभी इंसानों को एक नजर से देखने को कहा है। मैं तो आप की ही शिक्षा का पालन कर रहा हूं। युद्धस्थल में घायल सैनिक बस सैनिक होते हैं। कोई शत्रु या मित्र नहीं और मुगल या सिख भी नहीं होते। घायल सैनिकों को पानी पिलाना नेक काम है। नेक काम में मजहब और जाति की दीवार नहीं होती। मैंने शत्रु की सेना को शत्रु की सेना ही समझा है। मगर घायल सैनिक एक मजबूर आदमी है। उसकी मदद करना धर्म है।

गुरु गोविंद सिंह कन्हैया की पीठ थपथपाते हुए बोले, कन्हैया, तुमने वह काम किया है जिसे हम चाहते थे। तुम ठीक कहते हो कि युद्ध भूमि में घायल सभी सैनिक होते हैं, कोई मुगल या सिख नहीं होता। मैंने जिस विश्वास से यह काम तुम्हें सौंपा था, तुमने उसे ईमानदारी से निभाया है। तू वास्तव में मेरा सच्चा सेवक है।

३२२) किताबों से दोस्ती- बात उन दिनों की है जब पंडित जवाहर लाल नेहरू उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। एक दिन वे कांग्रेस कमेटी के किसी काम से लखनऊ गए और अपने मित्र मोहन लाल सक्सेना के यहां ठहरे। पंडित नेहरू को किताबों से बहुत लगाव था। वे पढ़ते थे और साथियों को भी पढ़ने के लिए दिया करते थे। संयोगवश उनके मित्र सक्सेना जी को भी पढ़ने का बहुत शौक था। एक दिन उत्सुकतावश पंडित जी सक्सेना जी की अलमारी देखने लगे। वहां जाकर उन्होंने देखा कि पुस्तकें उलट-पुलट पड़ी हुई हैं, उन पर धूल जमी हुई और उनमें से कुछ फटी भी हैं। पंडित जी पुस्तकों को बहुत ही सावधानी से संभाल कर रखते थे। उन्हें सक्सेना जी की बिखरी हुई पुस्तकें देखकर अच्छा नहीं लगा। वह पुस्तकों को व्यवस्थित करने में लग गए। तभी उनकी नजर एक किताब पर पड़ी जिसकी हालत जर्जर हो रही थी। उन्होंने पुस्तक को ध्यान से देखा तो उसे पहचान गए। वह पुस्तक उन्हीं की थी जो उन्होंने कुछ दिन पहले सक्सेना जी को पढ़ने के लिए दी थी। पुस्तक की हालत देखकर उन्हें काफी दुख पहुंचा। वह अफसोस के साथ अलमारी की सफाई करते रहे। कुछ ही देर में उन्होंने पूरी अलमारी साफ की फिर उसमें सभी पुस्तकों को व्यवस्थित कर दिया। मित्र उनके पास आए तो वह गुस्से से बोले, सक्सेना, क्या तुम नहीं मानते कि पुस्तकें जीवित वस्तुएं हैं। इनका हमेशा आदर करना चाहिए। इनका अनादर करना अनुचित है, बहुत ही अनुचित। पंडित जी की बात सुनकर सक्सेना जी को अत्यंत ग्लानि हुई और वह अपनी गलती स्वीकार करते हुए बोले, आप ठीक कहते हैं। मैं भविष्य में इस बात का ध्यान रखूंगा। इस पर पंडित जी मुस्करा कर बोले, इस बात का नहीं, पुस्तकों का ध्यान रखूंगा।

३२३) स्वभाव की झलक - एक बार गुरुनानक देव किसी शहर में पहुंचे। वहां उनका प्रवचन सुनने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। हर वर्ग, जाति और धर्म के लोगों ने उनके उपदेश का लाभ उठाया। एक स्त्री ने गुरुनानक से प्रार्थना की,

महाराज, आप हमारे घर पधारकर हमें सेवा का अवसर दें। उसके बार-बार प्रार्थना करने पर नानक देव उसके घर गए। उस स्त्री ने उनका स्नेहपूर्वक स्वागत किया। उनके पास बैठकर उनके लिए एक कटोरे में हंडिया से दूध डालने लगीं दूध की सारी मलाई कटोरे में गिर गई। यह देख उसके मुंह से निकला, अरे-अरे। फिर दूध में चीनी डालकर उसने कटोरा नानक देव के सामने रख दिया। गुरुनानक यह सब बड़े ध्यान से देख रहे थे। लेकिन उन्होंने यह जताया कि उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वह पास में रखे दूध से अनजान होकर उस स्त्री को उपदेश देने लगे। उन्होंने उसकी जिज्ञासाओं का समाधान किया। उन्हें सुनते हुए भी वह स्त्री देख रही थी कि गुरुनानक दूध पीते हैं या नहीं। उसने सोचा कि शायद दूध गरम होगा, इसलिए वह पी नहीं रहे हैं। किंतु उपदेश समाप्त होने पर भी जब उन्होंने दूध की ओर ध्यान नहीं दिया, तो वह बोली, महाराज दूध पी लीजिए। तब नानक देव बोले, इसमें क्या-क्या मिलाया है? स्त्री ने सहजता से उत्तर दिया, केवल चीनी। गुरु नानक बोले, नहीं इसमें एक चीज और है, इसलिए इसे मैं नहीं पी सकता। स्त्री ने कहा, मैंने तो इसमें और कोई चीज नहीं मिलाई है। गुरु नानक बोले, नहीं, इसमें एक चीज और मिलाई है और वह है अरे-अरे। इसी कारण मैं इसे नहीं पी सकता। यह सुन स्त्री को बहुत पश्चाताप हुआ। उसने अपने मन में उठे क्षणिक लोभ के लिए उनसे क्षमा मांगी। नानक देव ने स्त्री को क्षमा करते हुए समझाया, हमारा हर छोटा-बड़ा आचरण हमारे मन की स्थितियों को बयान करता है। हमारा व्यवहार ही हमारे व्यक्तित्व का आईना होता है।

३२४) अहंकार का दमन - गुरुनानक ने अपने भ्रमण के दौरान एक गांव में डेरा लगाया। वहां उन्होंने ग्रामवासियों को समानता व भाईचारे का पाठ पढ़ाया। गांव में एक धनी जमींदार था। उसने गुरुनानक को अपने यहां भोजन करने का निमंत्रण भेजा। गुरुजी ने उसके संदेशवाहक से कहा, भाई, मैं किसी के घर जाकर भोजन नहीं करता। कोई भक्त मुझे जो रूखा-सूखा भेज दे वही मेरे लिए पर्याप्त रहता है और हां, आज के भोजन के लिए मैं एक भक्त को स्वीकृति दे चुका हूं। संदेशवाहक ने जब सारी बात जमींदार को बताई तो वह क्रोध से तिलमिला उठा। उसने सोचा, मैं जमींदार हूं। मेरे रहते गुरुजी किसी और का भोजन कैसे स्वीकार कर सकते है। उसने तुरंत अपनी पत्नी से कहा कि वह स्वादिष्ट पकवान तैयार करे। जब भोजन तैयार हो गया तो वह खुद भोजन लेकर गुरुजी के पास पहुंचा। संयोग से तभी वह निर्धन व्यक्ति मोटी-मोटी रोटियां और चटनी लेकर पहुंचा, जिसे नानक ने भोजन लाने की स्वीकृति दी थी। गुरुनानक निर्धन का खाना प्रेम से खाने लगे। जमींदार ने इसे अपना अपमान समझा। वह बोला, गुरुजी, आप मेरे स्वादिष्ट भोजन को स्वीकार कीजिए। इसकी रूखी-सुखी रोटियों में क्या रखा है? इस पर गुरुनानक ने कहा, इन सूखी रोटियों में प्रेम और स्नेह का मीठापन है। इस पर जमींदार बोले, मेरी पूरियां भी बेहद नरम और मीठी हैं। गुरुनानक ने कहा, नहीं प्यारे भाई, तुम्हारी पूरियों में क्रोध और अहंकार की कड़वाहट है। इन्हें मैं नहीं खा सकता। यह सुनकर जमींदार का अहंकार चूर-चूर हो गया।

३२५) आत्म संयम- भगवान महावीर आत्मसंयम की साधना में उन दिनों लीन थे। उन्हें परेशान करने के लिए संगम नामक एक दुष्ट पीछे पड़ा हुआ था। आए दिन वह उन्हें दुखी करने के लिए कुछ न कुछ कुचक्र रचता रहता था।

एक दिन उसने खौलता हुआ दूध भगवान महावीर के ऊपर उलट दिया। वे तब भी अविचल भाव से अपनी साधना करते रहे। यह देखकर संगम पिघला। वह अपने कुकृत्यों पर आंसू बहाता क्षमा मांगता हुआ रोने लगा।

उसे रोता देखकर भगवान की आंखे नम हो गईं। वे बोले- तात इन कुकृत्यों का दुष्परिणाम तुम्हारे लिए कितना कष्टकारक है, यही सोचकर मुझे दुख हो रहा है। दूध से जलने पर उठे हुए फफोले देखकर नहीं।

३२६) बडा सत्य- एक बार भगवान महावीर यात्रा पर थे। रास्ते में एक ग्रामीण से उनकी भेंट हुई। ग्रामीण ने उनके चरणों में झुककर प्रणाम किया। उत्तर में भगवान महावीर ने भी उसके चरणों की तरफ हाथ बढ़ा दिए। महावीर की इस

विनयशीलता से ग्रामीण सकपका गया और बोला- मैंने तो आपके चरणों में इसलिए प्रणाम किया क्योंकि आप तपस्या के शिखर हैं, लेकिन मैं तो कुछ भी नहीं। फिर आप मेरे पैरों की ओर क्यों झुके ? महावीर बोले- तुम्हारे अंदर जो पवित्र आत्मा है वह तुम्हारे व्यवहार में मुझे दिखाई पड़ी। मैंने उसी को नमन किया। मेरे तप से तुम्हारे भीतर छिपा श्रद्धा का सत्य ज्यादा बड़ा है।

३२७) जैन मुनि के विचार- जैन मुनि शांतिसागरजी महाराज अत्यंत विरक्त संत थे। वह कहा करते थे कि साधुओं को भी समाज का कोई न कोई कार्य अवश्य करना चाहिए, तभी वे समाज से भोजन ग्रहण करने के अधिकारी होंगे। मुनिजी प्रवचन कर लोगों को आदर्श तथा सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देते थे। एक बार वह पदयात्रा करते हुए कर्नाटक के एनापुर गांव पहुंचे। वहां के लोग उनके सत्संग के लिए आने लगे। अगले दिन मुनिजी अचानक एक गृहस्थ के मकान पर जा पहुंचे। वह आर्थिक दृष्टि से दीन-हीन था। उसने मुनिजी को आदर के साथ बैठाया तथा तुरंत पड़ोस के एक धनी व्यक्ति के यहां से भोजन लाकर उन्हें दिया। मुनि श्री इस बात को भांप गए। वह बोले, साधु को किसी और घर से लाकर भोजन नहीं देना चाहिए। उसे वही भोजन देना चाहिए, जो घर में बना है। मैं स्वादिष्ट भोजन के लिए साधु थोड़े ही बना हूं। उन्होंने उसी के घर बनाई गई खिचड़ी ग्रहण की। गांव के सभी लोग मुनि श्री के इस प्रेम को देखकर गदगद हो गए।

३२८) अप्पदीपो भव- यह एक कम्बोडियाई बौद्ध कथा है। कम्बोज के सम्राट तिड मिड की राजसभा में एक बौद्ध भिक्षु आया और सम्राट से कहने लगा- महाराज। मैं त्रिपिटकाचार्य हूं। पन्द्रह वर्ष तक सारे बौद्ध जगत का तीर्थाटन कर मैंने धर्म के गूढ़ तत्वों का रहस्य प्राप्त किया है। मेरी भावना है कि कम्बोज का शासन भगवान तथागत के आदेशों के अनुसार चले और मैं राज्य का धर्मगुरु बनूं।

धर्मज्ञ सम्राट भिक्षु की कामना जान मुस्कराकर बोले- आपकी सदिच्छा मंगलमयी है, किन्तु अभी आप धर्मग्रन्थों का एक बार पुन: पारायण कीजिए। उनकी बात सुनकर भिक्षु का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। पर क्रोध को भीतर ही दबाए वह वहां से लौट आया। भिक्षु एक वर्ष बाद पुन: सम्राट की सभा में उपस्थित हुआ और बोला- मैंने सब ग्रन्थ दोबारा पढ़ डाले हैं, अब राजगुरु का पद मुझे मिलना चाहिए। सम्राट ने मुस्कराकर कहा- भदन्त। एक बार और पढ़ लीजिए। भिक्षु क्रोध में तमतमा उठा, पर वह चुपचाप लौटकर नदी के एक शांत तट पर चला गया। उसने शांति के लिए सांध्य प्रार्थना की और ग्रन्थ लेकर बैठ गया।

पढ़ते-पढ़ते उन्हीं ग्रन्थों के शब्द नई-नई अर्थ चेतना लेकर उसके अंतस में जागने लगे। वह उन्हीं के रहस्यों में खो गया। एक वर्ष बीत जाने पर भी वह सम्राट की सभा में नहीं पहुंचा, तो सम्राट तिड मिड स्वयं उसके चरणों में पहुंचे। देखा, वह तो तन-मन की सुधि भूले बस अंतर्साधना में लीन है। सम्राट ने प्रार्थना की- भगवन। चलिए। धर्माचार्य का आसन सुशोभित कीजिए। भिक्षु की समस्त आकांक्षाएं समाप्त हो चुकी थीं। वह मंद स्वर में बोला- राजन। सद्धर्म उपदेश का नहीं, आचरण का विषय है। उपदेश में निरा अहंकार है, आचरण में आनंद है।

भगवान महावीर का एक ही वाक्य मेरे हृदय को प्रकाशित कर गया है- अप्पदीपो भव, स्वयं अपने दीपक बनो। जब दृष्टि बाहर से मुड़कर भीतर चली जाती है, तो अपने आप में सब कुछ पा लेती है।

३२९) होनी और पुरुषार्थ - भगवान महावीर और कुम्हार- पुत्र के बीच बातचीत चल रही थी। महावीर ने कहा, पुरुषार्थ तथा पराक्रम से मानव का उत्थान होता है। ये मनुष्य की ऐसी विशेषताएं हैं, जिन्होंने उसे विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी मंजिल पाने की श्रेष्ठता दी है, जिसने उसके लिए असंभव को भी संभव कर दिया है।

किंतु कुम्हार-पुत्र ने उनकी बात से असहमति जताते हुए कहा, समय आने पर जो होना होता है वही होकर रहता है।

कुछ करने या न करने से कुछ नहीं होता है होनी होकर रहती है। उस पर पुरुषार्थ का, बल का कोई असर नहीं होता। आदमी कैसी-कैसी दुर्घटनाओं में अनचाहे ही मारा जाता है। क्यों नहीं तब उसका पुरुषार्थ उसे नहीं बचा पाता ?

यह सुनकर भगवान महावीर ने पास ही में पड़ी लाठी उठाई। कुम्हार के बनाए घड़े पास ही में रखे थे। मिट्टी के उन घड़ों की ओर इशारा कर उन्होंने पूछा, ये पात्र कैसे बनते हैं ?

कुम्हार के पुत्र ने उनके बनने की विधि विस्तार से समझाई।

महावीर ने फिर पूछा, यानी किसी व्यक्ति के प्रयत्न से ही इनका निर्माण हुआ है।

कुम्हार- पुत्र ने फिर इससे असहमत होते हुए होनी की दुहाई दी। तब महावीर ने उससे पूछा, किसी आदमी ने हाथ में लकड़ी लेकर इन सब पात्रों को अगर तोड़ दिया तब तुम क्या करोगे ? कुम्हार-पुत्र बोला, मैं उसके हाथ-पैर तोड़ दूंगा।

इस पर महावीर ने मुस्कराते हुए कहा, क्यों उसके हाथ-पैर तोड़ोगे ? क्यों नहीं मानोगे कि यही होनी थी और वह हो गई। लकड़ी का मिट्टी से संयोग हुआ और बर्तन टूट गए। क्या यह होनी नहीं है ? तुम्हारे मत से तो यही होना चाहिए।

सुन कर कुम्हार पुत्र को पुरुषार्थ के महत्व का बोध हुआ। भगवान महावीर ने उसे श्रावक बनाया और संसार में आदर्श उपस्थित करने की सलाह दी।

३३०) यश से दूर रहें साधु- जैन मुनि श्री सुदर्शनलालजी महाराज प्रकांड विद्वान तथा परम त्यागी संत थे। वह पदयात्रा करते हुए गावों में पहुंचते तथा लोगों को दुर्व्यसन त्यागने का संकल्प दिलाते। लाखों व्यक्तियों को उन्होंने दुर्व्यसनों से मुक्त कर सरल, सात्विक जीवन जीने तथा सेवा कार्यों में तत्पर रहने की प्रेरणा दी।

एक दिन दिल्ली में प्रवास के समय उनके भक्त ज्ञानचंद जैन उनके पास पहुंचे। उन्होंने कहा, महाराज, हरियाणा सरकार के एक मंत्री ने आपके गुरुदेव मुनि मदनलालजी महाराज के नाम पर कॉलेज की स्थापना की घोषणा की है। मैं उसके लिए कुछ लाख रुपए देना चाहता हूँ। मुनि सुदर्शनलाल जी ने उत्तर दिया, संतों व मुनियों के जीवित रहते उनके नाम पर कोई संस्थान या मृत्यु के बाद भी कोई संस्थान या स्मारक नहीं बनना चाहिए। जो साधु अपने नाम पर संस्थान या स्मारक बनवाते हैं, वे धर्मविरुद्ध कार्य करते हैं। साधु-संतों को कभी भी नाम व यश के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। सभी भक्तजन मुनिजी की त्याग भावना देखकर उनके समक्ष नतमस्तक हो गए।

३३१) अद्‌भुत चोरी- एक जैन गुरु रयोकान, किसी पहाड़ी की तलहटी में बनी कुटिया में सादा जीवन बिताते थे। एक शाम उनकी कुटिया में चोर आया, लेकिन उसने देखा की वहां चुराने लायक कुछ नहीं था। चोर लौटने लगा तो रयोकान ने उलट कर तुरंत उसे पकड़ लिया। तुम बड़ी दूर से इतनी तकलीफ उठाकर यहां आए हो, रयोकान ने कहा, मैं नहीं चाहता कि तुम खाली हाथ वापस लौटो, मेहरबानी करके तुम मेरे कपड़े ले जाओ, बतौर उपहार।

चोर इस अद्‌भुत प्रस्ताव से बिल्कुल घबरा गया। बस जल्दी से उसने रयोकान के कपड़े लिए और भाग गया।

अब रयोकान अपनी कुटिया में निर्वस्त्र बैठा आकाश में चांद को निहार रहा था, बेचारा वह अपने आप बुदबुदाया, काश मैं उसे यह सुंदर चांद दे सकता।

३३२) निद्रा और जागरण- एक बार भगवान महावीर किसी नगर में पधारे। वहां उनसे मिलने जयन्ती नामक एक विदुषी पहुंची। उसने भगवान महावीर को प्रणाम करके एक प्रश्न किया, भगवन् कृपया बताएं कि एक व्यक्ति का सोना ज्यादा अच्छा है या जागना ? इस पर भगवान ने कहा, दोनों ही अच्छे है। जयन्ती को यह बात समझ में नहीं आई। उसने अपनी दुविधा व्यक्त करते हुए कहा, भला दोनों विपरीत बातें अच्छी कैसे हो सकती है ? इसे स्पष्ट करते हुए भगवान

महावीर ने कहा, जयन्ती, जो लोग अधर्मी होते हैं उनका सोना ही अच्छा है, क्योंकि वे जब तक सोते रहेंगे तब तक वे अधर्म का काम भी नहीं करेंगे। इस कारण समाज में अधर्म कम होगा। पर जो धार्मिक लोग हैं उनका जागना ही अच्छा है, क्योंकि जगे रहकर वे सद्कर्म ही करेंगे। इससे मानवता को लाभ पहुंचेगा। इसीलिए मैंने कहा कि सोना भी अच्छा है और जागना भी। जयन्ती को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। उसने भगवान महावीर को प्रणाम कर विदा लीं।

३३३) महावीर का संकल्प- महावीर भ्रमण करते हुए एक दिन मोराक सन्निवेश में पधारे और दूरज्जंतकं नाम के ऋषि के आश्रम में कुलपति के आग्रह पर पर्णकुटी में रहने लगे। वर्षा के अभाव में जीव-जन्तु त्रस्त थे। गायें आकर वहाँ की झोपड़ियों की घास खींच-खींच कर खा जातीं जिन्हें उसमें रहनेवाले भगा देते। जब ये गायें महावीर की पर्णकुटी की घास खाने लगीं तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। इस पर कुलपति ने कहा- राजकुमार, पक्षी तक अपने घोंसले की सुरक्षा करते हैं, जबकि आप तो राजपुत्र हैं। महावीर को समस्त, प्राणिमात्र के प्रति दया व सहानुभूति थी। पशुओं का भूखा रहना उन्हें सहन नहीं था, अत: उन्होंने उस आश्रम को त्याग कर निम्न प्रतिज्ञा की- अप्रीतिकारक स्थानों पर कभी नहीं रहूँगा, सदा ध्यानस्थ रहकर मौन रहूँगा। हाथ में ही भोजन करूँगा व गृहस्थों का कभी विनय नहीं करूँगा। आचारांग के अनुसार उन्होंने कभी भी पर पात्र में भोजन नहीं किया।

३३४) भगवान महावीर ध्यान में लीन थे। एक ग्वाला अपने बैलों-सहित वहां पहुंचा। महावीर से बोला- मैं गाय दुहकर गांव से अभी आता हूं। ये बैल देखते रहना।

उत्तर की प्रतीा किए बिना ही वह चला गया। महावीर तो ध्यान में लीन थे। उन्हें ग्वाले की बात या बैलों की निगरानी से क्या प्रयोजन।

थोड़ी देर बाद ग्वाला लौटा। उसने देखा बैल वहां नहीं है। उसे महावीर पर बड़ा क्रोध आया। जब वह बैलों की बात कहकर गया था तो महावीर ने क्यों नहीं ध्यान रखा ? भला-बुरा कहता हुआ वह बैलों की तलाश में निकल गया।

बैलों को खोजते-खोजते थककर वह वापस महावीर के निकट आया। बैल महावीर के पास बैठे थे। वह क्रोध से आगबबूला हो गया। बैलों को बांधनेवाली रस्सी से महावीर पर प्रहार करने के लिए टूट पड़ा। पर महावीर शांत रहे। इन्द्र ने उसे बताया मूर्ख, तू यह नहीं जानता कि ये तो वैशाली के राजकुमार महावीर हैं, जो अभी कुछ ही दिन पूर्व संन्यासी बने हैं। इन्हें तुम्हारे बैलों से क्या प्रयोजन ?

३३५) आत्मशक्ति - भगवान महावीर कहीं जा रहे थे, साथ में उनका शिष्य था, गोशालक। उसने रास्ता चलते हुए अचानक एक छोटे से पौधे के पास खड़े होकर महावीर से कहा- गुरुदेव, यह बताइए कि इस पौधे पर फूल आएगा या नहीं?

महावीर पौधे के पास कुछ देर खामोश खड़े रहे, फिर बोले- हां गोशालक। इस पर फूल आएगा।

गोशालक ने पौधा उखाड़कर, एक तरफ फेंकते हुए कहा- अब फूल कैसे आएगा ?

महावीर मुस्कुरा कर आगे चल दिए। जिस गांव में पहुंचना था, पहुंचे। लेकिन सात दिनों तक इतनी वर्षा हुई कि उन्हें गांव में ही रुकना पड़ा। सात दिन के बाद जब उसी रास्ते से लौटे तो गोशालक ने देखा उस पौधे पर एक बहुत बड़ा फूल खिला है। यह कैसे हुआ? गोशालक हैरान खड़ा रह गया।

महावीर ने कहा- उस दिन, जब मैं खामोश, इसे देखता रहा था, तो यही देखता रहा कि इसमें आत्मशक्ति कितनी है ? क्या जीने की और फूल को जन्म देने की शक्ति है, इसमें ? देखा शक्ति है, इसलिए कहा था कि इस पौधे पर फूल आएगा। तूने उखाड़ कर फेंक दिया, लेकिन वर्षा के पानी से जब मिट्टी बह कर इसके पास आई, तो इसने मिट्टी में जड़ पकड़ ली

और देखो यह जी रहा है, खिल रहा है, महक रहा है।

३३६) कल की चिंता- एक शहर में धर्मदत्त नामक सेठ रहता था। अपार संपत्ति का स्वामी होने के बावजूद वह हमेशा उदास रहा करता था। उसे अपनी भावी पीढ़ी की चिंता सताती रहती थी।

एक बार भगवान महावीर उस शहर में आए। गंगा के तट पर उनका प्रवचन हो रहा था। धर्मदत्त भी वहां पहुंचा। वह पहली कतार में बैठकर प्रवचन सुन रहा था, लेकिन उसका मन कहीं और था। प्रवचन के बाद भगवान महावीर ने उसकी उदासी का कारण पूछा तो सेठ ने कहा, प्रभु, मुझे किसी चीज की कमी नहीं है। मेरे पास इतनी दौलत है कि मेरी सात पीढ़ियां आराम से खा-पी सकें। लेकिन मुझे चिंता है कि मेरी आठवीं पीढ़ी का गुजर-बसर कैसे होगा?

भगवान महावीर ने कहा, तुम्हारी चिंता मैं दूर कर देता हूं। तुम्हें इतनी दौलत दे दूंगा कि तुम्हारी आठवीं पीढ़ी सुख से रहेगी। इसके लिए तुम्हें एक काम करना होगा। यहां एक आश्रम के पीछे झोपड़ी में एक मजदूर का परिवार रहता है। तुम उससे कहो कि वह अपनी आवश्यकता का आटा अपने पास रखकर बाकी तुम्हें दे दे। सेठ वहां गया और उसने वैसा ही कहा। मजदूर की पत्नी घर के अंदर से एक हंडिया ले आई और उसे देते हुए बोली, ले जाओ भाई। मेरे पास इतना ही आटा है। सेठ ने कहा, नहीं, नहीं, तुम अपनी जरूरत का आटा रख लो, जो बचे उसे दो। मजदूर की पत्नी बोली, अगर मैंने अपनी जरूरत का आटा रख लिया तो तुम्हें क्या दूंगी। मुझे जिसने आज दिया है वह कल भी देगा।

सेठ खाली हाथ लौट आया और उसने भगवान महावीर को सारी बात बताई। भगवान महावीर बोले, सेठ, एक वह मजदूर स्त्री है, जिसे कल की भी चिंता नहीं है और एक तुम हो कि अपनी आठवीं पीढ़ी की चिंता में अपने को गला रहे हो। क्या तुम्हारी आगामी पीढ़ी अपाहिज, काहिल और निकम्मी होगी कि जिसके लिए तुम चिंतित हो। उस दिन से सेठ ने चिंता छोड़ दी।

३३७) सच्चा दान- यह घटना उस समय की है, जब पाटन स्थित जैनियों के तीर्थस्थल का जीर्णोद्धार किया जा रहा था। इस कार्य में काफी खर्च आनेवाला था, इसलिए लोगों में दान देने की होड़ सी लग गई थी। कई सेठ और अमीर लोग पुण्य अर्जित करने के लिए खुले हाथों से दान दे रहे थे। कुछ ही समय बाद दानियों की सूची भी जारी की जानी थी। यह जानकर ऐसे सेठ, जिनकी समाज में धाक थी, अपना नाम सूची में ऊपर रखने के लिए जानबूझकर ज्यादा से ज्यादा धन दे रहे थे। ऐसे सेठ सोच रहे थे कि उनका नाम सबसे ऊपर देखकर सभी लोग उनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो जाएंगे और समाज में उनकी वाहवाही होगी। दान की पूर्ति होने के बाद राज्य के महामंत्री ने तीर्थ के जीर्णोद्धार में योगदान करनेवालों की सूची में सबसे पहला नाम भीमा नामक मजदूर का घोषित किया, जिसने अपनी कमाई के सात पैसे दान किए थे। नगर सेठ ने सबसे पहले भीमा मजदूर का नाम लिए जाने पर आक्रोश व्यक्त किया। महामंत्री उन्हें शांत करते हुए बोले, राजा, मैंने तथा आप लोगों ने अपनी-अपनी कमाई का कुछ भाग ही इस कार्य के लिए दान दिया, जबकि भीमा ने कई दिनों की अपनी मजदूरी के बदले मिले सात पैसे दान में दिए। क्या उसके खून पसीने से पैदा सात पैसे के आगे आपका धन कहीं ठहर पाता है? महामंत्री के मुंह से यह सुनकर वहां उपस्थित सभी संपन्न लोग शर्मिंदा हो गए और आत्मग्लानि से भर उठे। एक सेठ भीमा मजदूर के सामने नतमस्तक होकर बोला, हां भैया, वास्तव में असली दानी तो तुम ही हो, हम सब तो झूठा यश व सम्मान पाने की खातिर दान कर रहे थे किंतु तुमने श्रद्धा की भावना से दान दिया। इसलिए हमारा दान सचमुच तुम्हारे दान के आगे कहीं नहीं ठहरता। पूरे राज्य में भीमा मजदूर के योगदान की चर्चा फैल गई।

३३८) नियम का सम्मान- उन दिनों मद्रास (आज का चेन्नई) में एक शानदार मछली घर बनाया गया था। धीरे-धीरे इसकी चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। बड़ी संख्या में लोग इसे देखने आने लगे। उसकी देखभाल बड़ी कक्षा के विद्यार्थी

किया करते थे। मछली घर को देखने के लिए प्रवेश शुल्क निर्धारित था। हर किसी को टिकट लेना पड़ता था। एक दिन हैदराबाद के निजाम सपरिवार आए। निजाम को लगा कि देश के शासक वर्ग से जुड़े होने के कारण वे खास व्यक्ति हैं। उन्हें टिकट लेने की क्या जरूरत। वह बिना टिकट लिए आगे बढ़ने लगे तो मछली घर के व्यवस्थापकों व कर्मचारियों ने सोचा कि ये इतने बड़े आदमी हैं। इनका आना ही बड़ी बात है। अब इनसे क्या शुल्क लिया जाए। यह सोचकर सब अपने-अपने काम में मशगूल रहे। किसी ने उनसे टिकट लेने को नहीं कहा। जब निजाम आगे बढ़े तो बुद्धिमान व परिश्रमी छात्र माधवराव ने उनके सामने आकर कहा, महोदय, यहां प्रवेश शुल्क निर्धारित है। बिना पैसे दिए मछली घर के अंदर जाना मना है। यह सुनते ही निजाम कुछ शर्मिंदा होकर अपने निजी सचिव की ओर देखने लगे। सचिव ने इशारा पाते ही सभी के लिए टिकट खरीदे। उनके जाने के बाद अधिकारीगण चिंतित हुए। एक बोला, यदि हम उनसे रुपये नहीं लेते तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ता। दूसरा बोला, हां, ऐसा भी नहीं था कि उनके प्रवेश शुल्क न लेने से हमें भारी आर्थिक हानि होती। सभी अपनी-अपनी राय देते रहे। कुछ देर बाद माधवराव बोले, प्रश्न रुपये लेने का नहीं है। प्रश्न तो नियम के पालन का है। नियम का पालन सभी के लिए जरूरी है। बड़े व्यक्तियों का तो विशेष फर्ज बनता है कि वे नियम का सम्मान करने में आगे रहें ताकि सामान्य जन भी उनका अनुकरण करें। अगर विशिष्ट लोग ही नियम तोड़ेंगे तो आम आदमी से उनके पालन की उम्मीद कैसे की जा सकती है? यह जवाब सुनकर सभी चुप हो गए।

३३९) सच्चे श्रोता- राजा जनक को महर्षि याज्ञवल्क्य उपदेश दिया करते थे। जब तक जनक सभा में नहीं आते, वह अपना उपदेश आरंभ नहीं करते थे। इससे कुछ लोगों को यह भ्रम हो गया कि महर्षि अपनी सभा में राजाओं को अधिक मान देते हैं, सामान्य जन को कम। पर महर्षि की दृष्टि में कोई भेदभाव नहीं था। एक दिन जब सभा चल रही थी, अचानक शोर सुनाई पड़ा कि मिथिला में आग लग गई है। यह सुनते ही भगदड़ मच गई। जब श्रोताजन भागने लगे तो महर्षि ने पूछा, ये क्या हो रहा है ? लोग बोले, मिथिला में आग लग गई है, यदि हम यहीं बैठे रहे तो हमारे घर-बार सब जल कर स्वाहा हो जाएंगे। तब महर्षि ने कहा, जनक भी तो बैठे हुए हैं, उनकी तो पूरी मिथिला नगरी ही है। सुनकर भागने वाले ठिठक गए। तब याज्ञवल्क्य बोले, वस्तुत: चिंता घर-बार की नहीं थी। जो मेरी बात ध्यान से नहीं सुन रहे थे, उनके कानों में तो आग लगने की आवाज पड़ी, किन्तु जनक के कानों में यह आवाज नहीं पड़ी क्योंकि उनका पूरा ध्यान उस चर्चा में ही लगा हुआ था। इसीलिए मैं जनक के बिना प्रवचन नहीं करता।

३४०) गृहस्थी का बहाना- एक बार राजा जनक के आध्यात्मिक उपदेश से सभासद बड़े प्रभावित हुए। सभी ने उनके धार्मिक जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इतने में एक सज्जन बोले- राजन मुझे गृहस्थी ने इस तरह बांध रखा है कि धर्म कार्य के लिए समय नहीं निकाल पाता हूं। यह सुनकर सभी चुप हो गए।

राजा जनक अचानक बोले- सज्जनों, मैं उठना चाहता हूं, किंतु सिंहासन ने मुझे पकड़ रखा है इसलिए मैं उठ नहीं पा रहा हूं। यह सुनकर वही सज्जन कहने लगे- श्रीमान यह कैसे संभव हो सकता है कि सिंहासन किसी को पकड़ ले।

राजा जनक बोले- फिर यह कैसे संभव है कि गृहस्थी ने आपको पकड़ रखा है। गृहस्थी से आप मोहविष्ट हैं और बहाना बनाते हैं कि गृहस्थी ने आपको पकड़ रखा है। राजा जनक के इस तर्क से उन सज्जन को समाधान मिल गया।

३४१) देह रहते विदेह क्यों- महाराजा जनक के एक मंत्री ने उनसे एक दिन पूछा, महाराज। आप देहधारी होकर भी विदेह क्यों कहे जाते हैं ? जनक ने उत्तर दिया कि वे इसका जवाब कुछ दिनों के पश्चात देंगे। एक दिन राजा ने एक दूत को प्रात: बुलाकर उससे कहा, जाओ, शहर में ढिंढोरा पीट आओ कि मंत्री के हाथों अपराध होने के कारण उसे ४ बजे

शाम को सूली दी जायेगी। साथ ही मंत्री को उसी दिन सुबह १० बजे भोजन का निमंत्रण भी दिया। मंत्री नियत समय भोजन के लिए पहुँचा। राजा ने नानाप्रकार के पदार्थ बनवाये, किन्तु उसमें जान-बूझकर नमक बिलकुल भी न डाला था। मंत्री का ध्यान सूली की तरफ था। उससे वे सारे पदार्थ खाये नही जा रहे थे, किन्तु बेचारा मजबूर था। भोजन के पश्चात महाराजा जनक ने उससे प्रश्न किया किसी चीज में नमक की कमी तो न थी ? मंत्री ने डरते हुए जवाब दिया, महाराज, मौत के भय के कारण मुझे भोजन का कुछ भी स्वाद मालूम न हुआ। मैं यह न समझ सका कि कौन-सी चीज मीठी थी, कौन-सी खट्टी और कौन-सी फीकी। तब राजा जनक ने कहा, मंत्रीजी, भोजन करते समय आपको मालूम हो गया था कि कुछ ही घंटों में आपको सूली दी जाने वाली है, अत: आप देह के होते हुए भी विदेह हो गये थे। फिर मैं तो अपनी देह के अस्तित्व पर क्षण भर के लिए भी विश्वास नहीं करता। इसलिए यदि लोग मुझे विदेह कहें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

३४२) अंत:करण मार्गदर्शक होता है - उपनिषद् में एक कथा आती है। महर्षि याज्ञवल्क्य के पास महाराजा जनक बैठे थे। मनुष्य के अंत:करण को ही उसका सबसे विश्वसनीय मार्गदर्शक व पथ प्रदर्शक माना गया है। राजा जनक ने अपनी सभा में विद्वानों से प्रश्न किया कि वह कौन सी ज्योति है जो मनुष्य को प्रेरणा देती है और भटकाव से बचाती है ? महर्षि, मेरे मन में एक शंका है। हम जो कुछ देखते हैं, वह किसकी ज्योति से देखते हैं ? महर्षि ने कहा, यह क्या बच्चोंवाली बात कहते हैं आप ? प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि हम जो कुछ देखते हैं, वह सूर्य की ज्योति के कारण देखते हैं। याज्ञवल्क्य ने बताया कि सूर्य की ज्योति।

अगला प्रश्न उठा कि सूर्य अस्त हो जाए तो... ? याज्ञवल्क्य बोले कि चंद्रमा की ज्योति।

जनक ने कहा, जब चन्द्रमा भी न हो, नक्षत्र भी न हों, अमावस के बादलों से भरी अंधेरी रात हो, तब ?

फिर सवाल उठा कि यदि ये दोनों अस्त हों तो ? तो अग्नि के आश्रय से, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। और यदि अग्नि भी जलकर शांत हो जाए तो... ? जनक की जिज्ञासा थी। तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि वाक् द्वारा अर्थात एक-दूसरे को आवाज लगाकर। महर्षि ने कहा, तब हम शब्दों की ज्योति से देखते हैं। विशाल वन है। चहुँ ओर अँधेरा है। पथिक मार्ग भूल गया है। वह आवाज देता है- मुझे मार्ग दिखाओ। तब दूसरा व्यक्ति दूर खड़ा हुआ उस शब्द को सुनकर कहता है- इधर आओ, मैं मार्ग पर खड़ा हूँ। और वह व्यक्ति शब्द के प्रकाश से मार्ग पर पहुँच जाता है।

यह उत्तर मिल जाने के बाद फिर प्रश्न उठा, यदि कोई मायावी शक्ति द्वारा वाक् शांत कर दे तो ? और जब शब्द भी न हो, तब हम किस ज्योति से देखते हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य बोले, तो फिर मनुष्य अपने अंत:करण की ज्योति द्वारा ही मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है। आत्म ज्योति का आश्रय किसी भी व्यक्ति के जीवन में नया आयाम जोड़ देता है। अंत:करण की यही ज्योति हमें पहले गुरु और फिर गोविंद से परिचित कराती है। हम आत्मा की ज्योति से देखते हैं। आत्मा की ज्योति से ही सारे कार्य होते हैं।

३४३) वेदना की अनुभूति- राजा जनक जब मानव शरीर त्यागकर यमदूतों के साथ बैकुंठ धाम की ओर जा रहे थे तो उन्होंने रास्ते में नरक में यातनाएं झेलते जीवों को देखा। उन्हें तड़पता देख वह द्रवित हो उठे। उन्होंने यमदूतों से पूछा, इन्हें किस कारण इतनी यातनाएं दी जा रही हैं ? यमदूतों ने कहा, यह इनके बुरे कर्मों का फल है। जब तक इनके कर्मों का पूरा लेखाजोखा नहीं हो जाता, इन्हें नरक में ही रहना होगा। जनक बोले, क्या कोई उपाय है जिससे इन्हें नरक से मुक्ति मिल सके? यमदूतोंने कहा, हां, उपाय तो है। जनक ने तपाक से कहा मुझे शीघ्र बताएं।

यमदूतों ने बताया, यदि कोई धर्मात्मा अपने कर्मों का फल इनके नाम कर दे तो संभव है इन जीवों के नरक से बंधन कट

जाएं। राजा जनक ने तब अपने जीवनपर्यंत किए नेक कर्मों एवं जप-तप से अपने नाम अर्जित समस्त पुण्य उन जीवों के नाम अर्पित कर दिए। उन जीवों का नरक से छुटकारा हो गया। धर्मराज ने उन जीवों को अपने पापों का प्रायश्चित करने तथा धर्मार्थ कार्य करने के लिए पृथ्वी लोक में मनुष्य योनि में भेज दिया, ताकि वे नेक कर्म करके बैकुंठ धाम का द्वार खोज सकें।

३४४) विद्वता पर विश्वास- एक बार मिथिला नरेश राजा जनक ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। इस अवसर पर उन्होंने देश के सभी विद्वानों को बुलाया। कई दिनों तक वहां विभिन्न विषयों पर चर्चा होती रही, बौद्धिक विमर्श चलता रहा। एक दिन राजा जनक ने सभा में एक हजार गायें लाकर खड़ी कर दीं और कहा- आप में से जो भी अपने को सर्वश्रेष्ठ विद्वान समझता हो, वह इन गायों को ले जाए।

सभी एक दूसरे को देख रहे थे। किसी एक व्यक्ति के लिए अपने आप को सर्वश्रेष्ठ साबित करना कठिन काम था, जबकि वहां एक से बढ़कर एक विद्वान उपस्थित थे। सवाल यह था कि अपने आप कौन कहे कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। काफी देर हो गई, लेकिन एक भी विद्वान अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित नहीं कर सका। राजा जनक स्वयं चिंतित हो रहे थे कि इन गौओं को ले जानेवाला कोई भी योग्य विद्वान इस सभा में नहीं है। उन्होंने कहा, क्या आप लोगों में एक भी ऐसा विद्वान नहीं है जो अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता हो।

चारों तरफ सन्नाटा पसरा था। सहसा याज्ञवल्क्य उठकर खड़े हुए और उन्होंने अपने शिष्य समीक से कहा कि इन गायों को हांक कर ले जाओ और अपने आश्रम में बांध दो। उनका इतना कहना था कि वहां उपस्थित लोगों में खलबली मच गई। चूंकि वहां उपस्थित विद्वत मंडली में वह आयु में सबसे छोटे थे, इसलिए कोई उनके इस दावे को सहन नहीं कर सका। लोगों ने राजा जनक से कहा, महाराज यह कल का बच्चा सर्वश्रेष्ठ विद्वान कैसे हो सकता है। यह हम सबका अपमान है।

महर्षि याज्ञवल्क्य बोले, मैं मानता हूं कि मैं कल का बच्चा हूं और मुझसे अधिक श्रेष्ठ विद्वान यहां बैठे होंगे। वे ज्ञानी हैं, विद्वान हैं लेकिन उनमें आत्मविश्वास की कमी है। इसलिए वे अपने आप को सर्वश्रेष्ठ कहते हुए डरते हैं। यही डर उनके लिए कमजोरी बन रहा है। <u>जिसे अपनी विद्वता पर विश्वास ही नहीं है, वह ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी है</u>। राजा जनक ने निर्णय दिया, इन गायों को ले जाने का अधिकार याज्ञवल्क्य को ही है।

३४५) जनक की सीख- शुकदेव राजा जनक के यहां ज्ञान प्राप्त करने के लिए आए। जनक को ऊंचे सिंहासन पर बैठे देख सोचने लगे कि माया में लिप्त यह राजा उन्हें क्या ज्ञान देगा ? तभी खबर आई कि महल में आग लग गई है। राजा जनक यह सुनकर किंचित भी नहीं घबराए। वह उसी तरह प्रसन्न बैठे रहे, पर शुकदेव चिंतित हो गए। जनक ने पूछा, महल में आग लगने से आपको चिंता क्यों हो गई है ? शुकदेव जी ने उत्तर दिया, मेरा दंड और कमंडल द्वार पर ही रखा है। कहीं वे जल न जाएं। इस पर राजा ने कहा, मुझे महल के जलने की भी चिंता नहीं है और आपको दंड और कमंडल की चिंता हो गई। इसका कारण समझे ? यही कि मैं राज्य करता हुआ और महल में रहता हुआ भी इनसे तटस्थ रहता हूं। मैं इनको अपना नहीं मान्ता और आप दंड-कमंडल को अपना मानते हैं। मेरा ज्ञान और शिक्षा यही है कि जिस प्रकार मैं निर्लिप्त रहता हूं, उसी प्रकार आप भी तटस्थ रहें। संसार के किसी भी पदार्थ को अपना मत समझें, न किसी पदार्थ से अपना स्थायी संबंध मानें, बल्कि यह समझें कि आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है और समस्त पदार्थ नाशवान हैं।

३४६) स्वप्न का रहस्य- एक बार राजा जनक दोपहर के भोजन के उपरान्त विश्राम कर रहे थे। उनकी आंख लग गई। तब राजा जनक ने एक विचित्र स्वप्न देखा। वे युद्ध में हार गए हैं। शत्रु राजा ने उन्हें पकड़ने के लिए सैनिकों को छोड़ा हुआ है। राजा जनक दुर्गम पहाडों और जंगलों में भटकते फिर रहे हैं। इसी बीच उन्हें जोरों की भूख लगी। उन्होंने

देखा कि एक गांव में भिखारियों को भोजन बांटा जा रहा था।

उन्होंने देखा कि मिथिला को लूट लिया गया है और वह भिखारी बने भूख-प्यास से बेहाल जंगल में भटक रहे हैं। वे भटकते हुए एक ऐसे नगर में पहुंचे, जहां भूखों को खिचड़ी बांटी जा रही थी। जनक भी कतार में खड़े हो गए। लेकिन जब उनकी बारी आई तो खिचड़ी समाप्त हो गई। बांटने वाले ने कहा, पतीले के पेंदे में लगा हुआ खुरचन है। कहो तो वह दे दूं। जनक के पास कोई चारा नहीं था। वह खुरचन लेने के लिए तैयार हो गए। बांटने वाले ने जनक को पत्तल पर खुरचन दे दी। तभी कहीं से उड़ती हुई एक चील आ पहुंची। उसने पत्तल पर झपट्टा मारा तो खुरचन जमीन पर गिर गई। तभी जनक की आंखें खुल गईं। सपने से वह काफी भयभीत हुए। सोचने लगे- मैं तो खा-पीकर सोया था। मुझे तो जरा भी भूख नहीं है। मैं सोने के पलंग पर सोया हूं। मिथिला का राजा हूं। फिर सपने में लुटा-पिटा भिखारी क्यों बना ? मुझे भूख ने व्याकुल क्यों किया? इन दोनों में सच क्या है ? मेरा भिखारी होना या राजा होना ? आखिर इस स्वप्न का रहस्य क्या है, इसका संकेत क्या है ? वह अपनी जिज्ञासा लेकर ऋषि अष्टावक्र के पास पहुंचे। अष्टावक्र ने इसका रहस्य समझाते हुए कहा, राजन, दोनों में एक भी सत्य नहीं है। बस तुम ही सत्य हो। स्वप्न में तुम भिखारी थे, मगर जागने पर तुम्हारा भिखारी होना नहीं रहा। स्वप्न में तुम्हारा राजा होना नहीं रहा, लेकिन भिखारी होने में भी तुम थे और राजा होने में भी तुम ही थे। जो मिथ्या है, वह रहता नहीं और जो सत्य है वह कभी मिटता नहीं। सत्य तीनों काल में रहता है। स्वप्न और संसार एक ही है। स्वप्न में संसार रहता है और संसार भी स्वप्न है। इसलिए न वह सच था और न यह सच है। सबसे बड़ा सत्य है कि तुम हो। तुम्हारा होना सबसे बड़ा सच है। बाकी तुम्हारे दूसरे रूपों का कोई मतलब नहीं है। हे राजन। न तो जागृत अवस्था सत्य है न सुप्तावस्था इन सभी अवस्थाओं का अनुभव कराने वाला परमेश्वर ही सत्य है।

३४७) सनातन सत्य- एक हुए थे अष्टवक्र मुनि, शरीर नष्ट, काया काली और टांगे टेढ़ी। उम्र थी केवल १२ वर्ष। फिर भी राजा जनक जैसे बुद्धिमान, विशालकाय पुरुष, मिथिला जैसे विशाल राज्य के स्वामी उनके श्री चरणों में प्रणाम करके प्रश्न करते हैं। भगवन। संसार का दुख कैसे मिटे ? संसार का मतलब क्या है ?

जो सरकता है, यह संसार जो रखने वाली चीज है, जो सरकने वाली देह है, जो सरकने वाला मन है अर्थात जो सरकने वाले संबंध है, उनका आकर्षण कैसे मिटे ? सबका उपयोग करना एक बात है और उनके आकर्षण में फंसकर मर जाना, जन्म-मरण के चक्कर में पड़ना दूसरी बात है, राजा जनक बुद्धिमान और पुण्यात्मा थे, तभी तो अष्टवक्र मुनि जैसे महापुरुष के श्रीचरणों में नतमस्तक होकर उन्होंने यह प्रश्न किया। फिर तो मुनि ने उन्हें सनातन सत्य के अमृत का पान कराया।

राजा जनक जानते थे कि यह राजा पहले अपना नहीं था। बाद में भी अपना नहीं रहेगा। किंतु यह परमात्मा तो पहले मैं अपना था। अभी भी अपना है और इस देह के नष्ट हो जाने के बाद भी अपना ही रहेगा।

३४८) एक मुर्गा अपने दड़बे के बाहर भोजन की तलाश में भटक रहा था। उसे बहुत तेज भूख लगी थी, लेकिन खाने को कुछ हाथ ही नहीं आ रहा था। वह भगवान से प्रार्थना करने लगा कि हे भगवान, जल्दी से मुझे कुछ खाने के दो वर्ना मैं भूख से मर जाऊंगा। इसके बाद वह फिर से भोजन की तलाश में लग गया। कुछ ही दूर पर उसे रेत में एक चमकती हुई चीज दिखाई दी। वह एक बेशकीमती मोती था। उसने जल्दी से उसे अपनी चोंच में उठा लिया, लेकिन उसका कोई स्वाद न पाकर उसे वापस थूक दिया। तभी मोती का मालिक वहां आ पहुंचा। उसने मुर्गे को धन्यवाद दिया और कहा कि अगर तुम इस बेशकीमती मोती को निगल जाते तो आज मेरा काफी नुकसान हो जाता। मुर्गे ने बुरा सा मुंह बनाया कि यह तुम्हारे लिए बेशकीमती होगा। लेकिन मेरे लिए इस वक्त मक्का का एक दाना, इस मोती से ज्यादा कीमती है। मोती मालिक ने उसे तसल्ली दी और कहा कि तुम चिंता मत करो, तुम्हारी वजह से मुझे मेरा मोती वापस मिला है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें पेट भरकर मक्का के दाने खिलाऊंगा। सार- चीजों की कीमत उनकी

तात्कालिक उपयोगिता से पता चलती है।

३४९) मनुष्य की पहचान- यह उस समय की बात है, जब कबीर दास की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी थी। लोग बड़ी संख्या में उनसे मिलने आते थे। एक दिन जब वह कपड़ा बुन रहे थे, उनके पास कई सेठ आए और बोले, अब आप साधारण व्यक्ति नहीं रहे। जब साधारण व्यक्ति थे तब तो आपका कपड़ा बुनना ठीक था। पर अब आप की चर्चा संत के रूप में होती है। आपको फटे-पुराने कपड़े पहने हुए देख हमें शर्म महसूस होती है। फिर आपको अपने हाथ से कपड़ा बुनने की आवश्यकता ही क्या है। अब हम लोग आपकी हर जरूरत को पूरा करेंगे। आप के लिए एक भव्य आश्रम बना देंगे। कबीर ने कहा, आप लोगों को देखकर मुझे शर्म आती है। पहले मैं अपने लिए कपड़ा बुनता था, मगर अब गरीब लोगों के लिए बुनता हूं। मेरी देखादेखी और लोग भी यह काम करेंगे। मनुष्य को अपनी पहचान नहीं खोनी चाहिए। आज आप उस समय हमारी मदद करने आए हैं जब मुझे आपकी सहायता की जरूरत नहीं है। आप उनकी सहायता करें जिन्हें आपकी जरूरत है। आप देखते होंगे कि काशी के घाट पर कितने लोग भूखे सोते है। उन्हें देखकर आपको शर्म महसूस नहीं होती होगी। क्योंकि आप हमारी मदद करने नहीं अपना प्रचार पाने के लिए यहां आए हैं। यह सुनकर सभी सेठ शर्मिंदा हो गए और उन्होंने माफी मांगी। उन्होंने वचन दिया कि वे हर रोज काशी के घाट पर गरीबों को खाना खिलाएंगे। तब से शुरू हुई वह परंपरा काशी में आज भी जारी है।

३५०) सच्चा ज्ञानी- एक दिन एक संन्यासी राजा जनक के दरबार में पहुंचा। उसने जनक से सवाल किया, राजन, आप तो हर समय सुरा, सुंदरी और दरबारियों से घिरे रहते हो। इनते ऐश्वर्य के बीच रहकर भी आप अपने को आत्मज्ञानी कैसे कहते हो ?

राजा जनक ने मुस्कराकर कहा, आपको इस प्रश्न का उत्तर रात में राज दरबार में मिलेगा। रात में राजा के आदेश से नृत्य का आयोजन किया गया। कई रूपसी नृत्यांगनाएं इसमें शामिल हुईं। जब कार्यक्रम शुरू हुआ तो राजा जनक ने संन्यासी को तेल से भरा एक कटोरा दिया और कहा, आपको यह कटोरा लेकर दरबार के सात चक्कर लगाने हैं। यदि एक बूंद भी गिरा तो हमारे सैनिक आपकी गर्दन काट देंगे।

संन्यासी की हालत खराब हो गई। उसे लेने के देने पड़ गए। वह पश्चाताप करने लगा कि आखिर जनक से यह सवाल ही क्यों किया। फिर भी उसके पास कोई रास्ता न था। वह साहस करके किसी तरह परिक्रमा करने लगा। चारों तरफ हंसी-खुशी का माहौल था। घुंघरू की आवाज आ रही थी। वहां खड़े सैनिक नर्तकियों की मुद्राओं और सौंदर्य का वर्णन कर रहे थे। पर संन्यासी एकदम सचेत होकर चल रहा था। मौत उसके सिर पर नाच रही थी। जब संन्यासी ने सात चक्कर पूरे कर लिए तो जनक ने पूछा, महात्माजी, अब बताइए कि आपने दरबार में क्या-क्या देखा ?

महाराज मैं क्या देखता। मुझे तो कुछ दिखा ही नहीं। मैं तो मौत के झूले में झूल रहा था। संन्यासी हांफता हुआ बोला।

इस पर जनक ने उसे समझाते हुए कहा, अब आपको सब कुछ समझ में आ गया होगा। जब आपका ध्यान कहीं और हो तो आसपास की चीजों पर नजर नहीं जाती। आपका मन कहीं और लगा हो तो आप अपने आसपास की चीजों से निर्लिप्त हो जाते हैं। मैं ऐश्वर्य के बीच जरूर रहता हूं पर मेरा ध्यान परमात्मा में लगा रहता है। मैं सब कुछ भोगते हुए भी हर चीज से ऊपर हूं। शायद इसीलिए विदेह कहलाता हूं। संन्यासी राजा जनक को प्रणाम कर चल पड़ा।

३५१) असली ज्ञानी- सुलभा परम विदुषी थीं। वह अपना सारा समय ईश्वर की आराधना में बिताती थीं। लोग उनसे बहुत प्रभावित थे और उनका आदर करते थे। एक दिन उन्हें पता चला कि महाराजा जनक एक सिद्ध पुरुष हैं और संतों तथा ज्ञानियों का बहुत सम्मान करते हैं। वह उनसे मिलने पहुंच गईं।

महाराजा जनक ने उनका स्वागत-सत्कार किया, फिर बातचीत के बाद भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद एक बार फिर विभिन्न प्रसंगों पर चर्चा चलने लगी। अचानक जनक ने सवाल किया, आपने विवाह क्यों नहीं किया? मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि गृहस्थ जीवन ज्ञानार्जन या भक्ति में बाधा डालता है। अब मुझे ही देखो। मैं तो गृहस्थ होते हुए भी गृहस्थी से मोह नहीं करता। राजा होते हुए भी राजसत्ता से विरक्त रहता हूं। मैं तो अग्नि और चंदन को समान मानता हूं। जनक के ऐसा कहने पर सुलभा ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस मुस्कराती रहीं।

जनक फिर बोले, आप तो स्वयं परम विदुषी और ज्ञानी हैं। आप ही बताइए न वास्तव में ज्ञानी कौन होता है? जनक के इस प्रश्न पर सुलभा सहजता से बोलीं- महाराज, जहां तक मैं सोचती हूं ज्ञानी व्यक्ति कभी आत्मप्रशंसा नहीं करता। वह कम बोलता है तथा मौन को महत्व देता है। वह इस तथ्य के प्रति विरक्त होता है कि वह राजा है या रंक, गृहस्थ है या संन्यासी। ज्ञानी इन सबसे बेपरवाह रहता है। वह अपनी स्थिति को लेकर सचेत नहीं रहता। महाराज जनक समझ गए कि सुलभा का इशारा क्या है। उन्हें खयाल आया कि अभी थोड़ी ही देर पहले वह आत्मप्रशंसा में लीन थे। वह लज्जित हो गए। उन्होंने कहा, सुलभा, असली ज्ञानी तो आप हैं। आज आपने मेरी आंखें खोल दीं। आगे से इन बातों का ध्यान रखते हुए मैं अपनी वाणी पर संयम रखूंगा। यह मेरा सौभाग्य है कि आज आप आईं और आपने मुझे एक नई दृष्टि दी। सुलभा उन्हें आशीर्वाद देकर चली गईं।

३५२) जनक की परीक्षा - महाराज जनक के राज्य में एक तपस्वी रहता था। एक बार किसी बात को लेकर जनक उससे नाराज हो गए। उन्होंने उसे अपने राज्य से बाहर चले जाने की आज्ञा दी। इस आज्ञा को सुनकर तपस्वी ने जनक से पूछा, महाराज, मुझे बता दीजिए कि आपका राज्य कहां तक हैं क्योंकि तब मुझे आपके राज्य से निकल जाने का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकेगा। महाराज जनक स्वभावत: विरक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे। तपस्वी के इस प्रश्न को सुनकर वह सोच में पड़ गए। पहले तो संपूर्ण पृथ्वी पर ही उन्हें अपना राज्य तथा अधिकार दिखा। फिर मिथिला नगरी पर वह अधिकार दिखने लगा। आत्मज्ञान के झोंके में पुन: उनका अधिकार घटकर प्रजा पर, फिर अपने शरीर में आ गया और अंत में कहीं भी उन्हें अपने अधिकार का भान नहीं हुआ। उन्होंने तपस्वी को अपनी स्थिति समझाई और कहा, मेरा किसी वस्तु पर भी अधिकार नहीं है। आपकी जहां रहने की इच्छा हो, वहीं रहें और जो इच्छा हो, भोजन करें। इस बात पर तपस्वी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, महाराज, आप इतने बड़े राज्य को अपने अधिकार में रखते हुए किस तरह सब वस्तुओं से तटस्थ हो गए हैं और क्या समझकर पहले पृथ्वी पर अधिकार की बात सोच रहे थे? जनक ने कहा, संसार के सब पदार्थ नश्वर हैं। शास्त्रानुसार न कोई अधिकार ही सिद्ध होता है और न कोई अधिकार-योग्य वस्तु ही। अतएव मैं किसी वस्तु को अपना कैसे समझूं? अब जिस बुद्धि से सारे विश्व पर अपना अधिकार समझता हूं, उसे सुनिए। मैं अपने संतोष के लिए कुछ भी न कर देवता, पितर, भूत और अतिथि-सेवा के लिए करता हूं। अतएव पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश और अपने मन पर भी मेरा अधिकार है। जनक के इन वचनों के साथ ही तपस्वी ने अपना चोला बदल दिया। बोला, महाराज, मैं धर्म हूं। आपकी परीक्षा के लिए तपस्वी वेश में आपके राज्य में रहा हूं। अब समझ गया कि आप सत्वगुणरूप नेमियुक्त ब्रह्मप्रतिरूप चक्र के संचालक हैं।

३५३) राजा की उदारता - राजा जनक को राजमार्ग पर आना था, इसलिए उसे खाली कराया जा रहा था। सैनिक इस कार्य में तत्परता से जुटे थे। संयोगवश उस समय वहां से ऋषि अष्टावक्र गुजर रहे थे। जब सैनिकों ने उन्हें राजमार्ग से हटने को कहा तो उन्होंने साफ मना कर दिया। जब सैनिक उनसे इसके लिए प्रार्थना करने लगे तो वह बोले, मेरी बात राजा तक पहुंचा देना कि अपनी सुविधा के लिए वह यह बहुत गलत काम कर रहे हैं। राजा का कार्य प्रजा को सुख-सुविधा देना है

कष्ट देना नहीं। एक विद्वान व न्यायप्रिय राजा होते हुए उन्हें यह कार्य शोभा नहीं देता। उनकी यह बात सुनते ही उन्हें बंदी बना लिया गया और राजा जनक के सामने पेश किया गया। जनक ने अष्टावक्र की पूरी बात सुनी। फिर उन्होंने राजदरबार में उपस्थित लोगों से कहा, हम ऋषिवर के साहस की प्रशंसा करते हैं। इन्होंने हमारे गलत कार्य की जानकारी देकर हम पर उपकार किया है। ये अपराधी नहीं हैं। बल्कि इन्होंने तो हमें सचाई की राह दिखाई है। यह एक साहसी सत्पुरुष हैं। इसलिए इन्हें दंड नहीं बल्कि पुरस्कार मिलना चाहिए। हम ऋषिवर के अनुसार अपने आचरण में सुधार लाने को तैयार हैं। भविष्य में हमसे ऐसी गलती दोबारा न हो इसलिए हम आज से इन्हें राजगुरु का पद सौंपते हैं। आगे से ये राजकाज से संबंधित प्रमुख कार्यों के बारे में हमें सलाह देंगे। मैं उम्मीद करता हूँ कि भविष्य में भी राजगुरु केवल सचाई और न्याय पक्ष का ही समर्थन करेंगे। इसके बाद उन्होंने अष्टावक्र को प्रणाम किया। अष्टावक्र ने उन्हें गले से लगा लिया।

३५४) तीर्थयात्रा का अर्थ- एक बार संत तुकाराम से मिलने उनके गांव के कुछ लोग आए। उन लोगों ने तुकाराम जी के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उनसे प्रार्थना की, हम तीर्थयात्रा के लिए जा रहे हैं। आप भी हमारे साथ चलने की कृपा करें। तुकाराम जी ने उनके साथ जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की और एक गठरी पकड़ाते हुए कहा, इसमें कुछ ककड़ियां हैं। तुम जिन तीर्थ स्थानों पर जाना, वहां इन्हें नदी या तालाब में डुबा-डुबा कर स्नान कराना फिर वापस ले आना। इससे उनके तीर्थयात्रा न करने की थोड़ी बहुत भरपाई हो जाएगी। तीर्थयात्रा के दौरान उन लोगों ने वैसा ही किया। वे भगवान का स्मरण करते हुए हर नदी में स्नान करते और पोटली में बंधी ककड़ियों को भी नहलाते। कुछ समय के बाद वे अपने गांव आ पहुंचे। वे तुकाराम जी के पास गए और ककड़ियों की पोटली उन्हें दे दी। उन्होंने तुकाराम को पोटली वापस करते हुए कहा कि इसे उन्होंने सभी तीर्थों में घुमाया और पवित्र नदियों में स्नान कराया।

तुकाराम जी ने उन सबको दूसरे दिन भोजन के लिए अपने घर आमंत्रित किया।

तुकाराम जी ने उन ककड़ियों की सब्जी बनाई और परोसा। भोजन करने के बाद सब एक स्थान पर बैठ गए। उनसे तुकाराम जी ने पूछा, आप लोगों ने ककड़ियों को इतने तीर्थ स्थलों पर स्नान करवाया। उनके कड़वेपन में कोई परिवर्तन हुआ क्या? उन लोगों ने उत्तर दिया, नहीं महाराज, ककड़ियों के कड़वेपन में काई अंतर नहीं आया, वो तो वैसी की वैसी रहीं जैसी पहले थीं। तुकाराम जी उन्हें समझाते हुए बोले, इतने तीर्थ स्थलों पर स्नान करके और इतने मंदिरों में जाकर भी ककड़ियां कड़वी ही रहीं। उन्होंने अपने कड़वेपन का सहज गुण त्यागा नहीं। इसी प्रकार आप लोग भी तीर्थयात्रा करने के बाद भी वैसे के वैसे बने रहते हैं, आप में कोई परिवर्तन नहीं आता। जब आपके दुर्गुण छूटते ही नहीं तो सारी तीर्थयात्रा व्यर्थ है। तीर्थयात्रा से मनुष्य की बुद्धि का विकास होना चाहिए। हमारे मन में परिवर्तन लाने, उसे शुद्ध और निर्मल बनाने के लिए ही तीर्थयात्राएं रखी गई हैं। यह कोई विनोद यात्रा नहीं है।

३५५) दो गन्ने - महाराष्ट्र के संत तुकाराम प्रेम और दया की जीती जागती तस्वीर थे। उन्होंने सारा जीवन दीन-दु:खियों के लिए अर्पित्त कर दिया था। एक समय ऐसा आया कि उन्हें भूखों मरने की नौबत आ गई। उनकी पत्नी बोली- जाओ, खेत से गन्ने ही तोड़ कर ले आओ। गन्नों के गट्ठर से कम से कम आज का दिन तो निकल ही जाएगा।

संत तुकाराम पत्नी की बात मानकर खेत की ओर चल दिए। गन्ने तोड़कर उन्होंने गट्ठर बांधा। उन्हें लेकर घर की ओर चल दिए। रास्ते में लोग गन्ना मांगने लगे। संत तुकाराम ने एक-एक करके सारे गन्ने लोगों में बांट दिए। सिर्फ एक गन्ना अब उनके हाथ में रह गया था। उसे लेकर व घर पहुंचे। घर की माली हालत बेहद खस्ता थी। खाने को दाना नहीं था और फिर उनकी पत्नी जीजाबाई बड़े कठोर स्वभाव की थी।

संत तुकाराम की पत्नी ने जब देखा कि उनके पति के हाथ में सिर्फ एक गन्ना है, तो वह क्रोध से आग बबूला हो गई। पत्नी ने उनके हाथ से गन्ना लेकर उन्हें पीटना शुरू किया। पीटते-पीटते जब गन्ना टूट गया, तब कहीं पत्नी का क्रोध शांत हुआ। जब गन्ने के दो टुकड़े हो गए, तो हंसते हुए बोला- देखो, तुम्हारे गुस्से से एक अच्छा काम हो गया। अब तो गन्ना एक से दो हो गया है एक तुम चूस लो, एक मैं चूस लूंगा।

तुकाराम की पत्नी मुस्करा पड़ी और उनकी सहज विनोदप्रियता से वातावरण आनंदमय हो गया। क्रोध का उत्स किसी भी घटना को देखने के दृष्टिकोण में हैं अगर दृष्टिकोण नकारात्मक नहीं है तो किसी व्यक्ति को क्रोध आ ही नहीं सकता जैसे तुकाराम को नहीं आया।

क्रोध के दावानल के आगे क्षमा और प्रेम के अगाध सागर को लहलहाता देखकर संत तुकाराम की पत्नी ने पश्चाताप से अपना माथा पीट लिया। संत तुकाराम ने बड़े प्रेम से पत्नी के आंसू पोंछे और उसे चुप किया।

३५६) सच्चा ज्ञान- रंगुजी कई गुरुओं के पास गए पर उन्हें संतोष न मिला। भटकते-भटकते वह एक दिन संत तुकाराम के पास पहुंचे और उनके शिष्य बन गए। दो तीन वर्षों तक गुरुजी ने उनसे कुछ भी नहीं कहा। वे अन्य शिष्यों से भी कुछ नहीं कहते थे। संत तुकाराम हर समय विठोबा के ध्यान में ही तल्लीन रहते थे। रंगुजी ऊब गए। उन्होंने सोचा कि यहां भी उन्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। वह समर्थ रामदास के पास चले आए और बोले, मेरे जीवन का उद्धार हो, इसके लिए मुझे प्रेरणा दीजिए। इस पर समर्थ रामदास ने कहा, रंगुजी तुम तो संत तुकाराम के पास रहते थे। उन्हें छोड़कर यहां क्यों आए हो ? रंगुजी बोले, मुझे वहां अच्छा नहीं लगा, मैंने ३ वर्ष वहां निकाले, पर मेरा तो कुछ भी कल्याण नहीं हुआ। संत तुकाराम ने मुझे कुछ भी नहीं बताया। वे तो सारे दिन विठोबा का भजन करते रहते हैं, शिष्यों की तरफ देखते भी नहीं। रामदास ने कहा, यही उनका उपदेश है। सतत भक्ति करते हुए वह यही उपदेश दे रहे हैं कि तू भगवान का भजन कर। प्रमाद मत कर। रंगुजी बोले, मुझे अब वहां नहीं जाना है। मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूं। आप मुझे अपना शिष्य बना लें और मेरे उद्धार का मार्ग बताएं। इस पर रामदास ने कहा, तुम संत तुकाराम के शिष्य हो। उनकी स्वीकृति के बिना मैं तुम्हें अपना शिष्य कैसे बना सकता हूं। रंगुजी बोले, ठीक है, मैं उनकी स्वीकृति लेकर अभी आता हूं। वह स्वीकृति लेने तुकाराम के पास पहुंचे। तुकाराम ने कहा, दीपक में तेल नहीं है तो माचिस जलाने से भी क्या होगा ? आखिर तेल होना चाहिए न। फूटे घड़े में जैसे पानी नहीं रह सकता है वैसे ही अज्ञानी पुरुष भी ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकता है। ज्ञान तो चिंतन, मनन और स्वाध्याय से ही हो सकता है। सबके पास अपना-अपना मत है। लेना या न लेना तो ग्राहक का काम है। रंगुजी को सब कुछ समझ में आ गया।

३५७) पुण्डलीक माता-पिता का अनन्य भक्त था। उसकी इस भक्ति से भगवान प्रसन्न हुए और उसे दर्शन देने पहुंचे। उस समय पुण्डलीक के माता-पिता उसकी जंघाओं पर सिर टेककर सो रहे थे।

भगवान को देख पुण्डलीक ने कहा, प्रभु, इस समय मेरे माता-पिता आराम से सो रहे है। मैं उनके आराम में विघ्न पैदा कर आपकी सेवा नहीं कर सकता। कृपया मुझे क्षमा करें। आप फिर कभी पधारें।

पुण्डलीक भगवान से बोला- भगवन्, आप स्वयं मुझे दर्शन देने के लिए आए हैं यह मैं समझता हूं, पर मैं भी- सिद्धान्त को माननेवाला हूं। आप ही अकेले भगवान् हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। मेरे लिए तो आप भी भगवान् हैं और ये माता-पिता भी। इनकी सेवा में लगे रहने के कारण मैं आपकी ओर ध्यान नहीं दे सकता, इसके लिए क्षमा कीजिए। इतना कहकर उसने भगवान् के खड़े रहने के लिए एक ईंट सरका दी और स्वयं उसी सेवा-कार्य में निमग्न हो रहा। पुण्डलीक के इस उत्तर से भगवान अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया। तुकाराम इस प्रसंग को लेकर बड़े कुतूहल से, विनोदपूर्वक

कहते हैं- तू कैसा पागल प्रेमी है कि तूने विठ्ठल को खड़ा रखा ? तू कैसा ढीठ है कि तूने विठ्ठल के लिए ईंट सरका दी ?

३५८) सर्वव्यापी ईश्वर- यह घटना उस समय की है जब संत ज्ञानेश्वर किशोरावस्था में थे। एक बार जब वे अपने भाई-बहनों के साथ गांव गए तो उन्होंने देखा कि उनके पिता को संन्यासाश्रम छोड़, गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लेने पर पुरातनपंथी पण्डित उन्हें धिक्कार रहे हैं और उन्हें जाति से बाहर कर दिया है। वे अपनी सफाई देते इससे पूर्व एक व्यक्ति भैंसे को पीटता हुआ उधर से निकला। पण्डितों ने आश्चर्य से देखा कि पीटने के निशान उनकी पीठ पर भी उभर गए हैं। उन्होंने जब निशान के बारे में पूछा तो ज्ञानेश्वर बोले कि ईश्वर सर्वव्यापी है। पण्डितों ने चुनौती दी कि तब वेद मंत्रों का उच्चारण भैंसे से कराएं। ज्ञानेश्वर ने भैंसे की ओर मुख करते हुए वेदमंत्र बोलने का निवेदन किया। भैंसे के मुंह से वेद मंत्र निकलने लगे। यह देखकर ईश्वर की सर्वव्यापी सत्ता को मानते हुए पण्डितों ने ज्ञानेश्वर से क्षमा मांगी।

३५९) ईश्वर की अवहेलना- एक बार संत ज्ञानेश्वर प्रात:काल नदी तट पर पहुंचे। वह टहलते हुए नदी के सौंदर्य का सुख ले रहे थे कि तभी उन्हें बचाओ बचाओ का स्वर सुनाई पड़ा। उन्होंने देखा कि थोड़ी दूर पर एक किशोर नदी के गहरे पानी में बहा जा रहा था, वही बचाने के लिए चिल्ला रहा था। संत ज्ञानेश्वर तत्काल नदी में कूद पड़े और लड़के को बाहर निकाल लाए। तभी उनकी नजर एक भगवा वस्त्रधारी साधु पर पड़ी, जो नदी किनारे आसन लगाए बैठा था। नदी के पास हुए शोरगुल का उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ा था। संत ज्ञानेश्वर उसके पास पहुंचे और विनम्रतापूर्वक बोले, बाबा, क्या गहन ध्यान में लीन होने के कारण आपने इसकी पुकार नहीं सुनी ?

साधु ने कहा, मैंने आवाज सुनी थी और उसे डूबते भी देखा था पर ध्यान भंग करने का पाप मैं मोल नहीं लेना चाहता था। इसलिए उसे अनदेखा करके ध्यान लगाने का प्रयास करता रहा। संत ज्ञानेश्वर बोले, ध्यान और पूजापाठ का उद्देश्य प्राणी मात्र में प्रभु के दर्शन करना है। किसी के प्राण संकट में पड़े हों और हम आंखे बंद किए बैठे रहें, यह तो ईश्वर की अवहेलना है। साधु लज्जित हो गया।

३६०) नामदेव की पीड़ा- नामदेव के बाल्यकाल की घटना है। एक बार उनकी धोती पर रक्त लगा हुआ देखकर उनकी माता जी ने पूछा- नामू। यह तेरी धोती पर खून कैसा ? कुछ नहीं मां। वह तो मैंने पैर को कुल्हाड़ी से छील कर देखा था। मां ने पैर पर से धोती को ऊपर किया तो देखा कि लड़के के पैर का मांस छिला हुआ है। किन्तु नामदेव को इसकी चिन्ता ही नहीं थी, ऐसे चल रहा था मानो कुछ हुआ ही न हो। किन्तु मां को तो चिन्ता होती ही है। उसने फिर पूछा- नामू। तू तो बड़ा मूर्ख है, कोई क्या अपने पैर पर भी कुल्हाड़ी चलाया करता है ? पैर यदि टूट जाता तो तू लंगड़ा नहीं हो जाता ? यदि यही घाव पक कर बड़ा हो गया तो पैर को कटवाने तक की नौबत भी आ सकती है। मां। तब तो पेड़ को भी कुल्हाड़ी से चोट लगनी चाहिए। उस दिन तुम्हारे कहने पर मैंने पलास के पेड़ पर कुल्हाड़ी चला कर मैं उसकी छाल उतार लाया था। उसी समय मेरे मन में आया था कि अपने पैर की भी छाल उतार कर देखता हूं। कैसा अनुभव होता है। पलास के पेड को कुछ हुआ होगा, यही जानने के लिए मैंने ऐसा किया मां। तब मां को स्मरण हो आया कि एक दो दिन पूर्व उसने काढ़े के लिए पलास की छाल उतार कर लाने के लिए नामदेव को कहा था। बेटे की बात सुनकर मां को रोना आ गया। कहने लगी- बेटा नामू। मालूम होता है कि तू बहुत बड़ा साधु होगा। पेड़ों में और दूसरे जीव जन्तुओं में भी मनुष्य जैसा ही जीव है। अपने चोट लगने पर दुख होता है, वैसा ही उनके भी होता है। यह बात तो ठीक ही है। और हुआ भी वैसा ही। बड़े होने पर वही नामू महाराष्ट्र में सन्त नामदेव के नाम से बहुत प्रख्यात हुए।

३६१) असली धन- भक्त शिरोमणि नामदेव पंढरपुर में रहकर भक्ति साधना के साथ-साथ असहाय लोगों की सेवा किया करते थे। पंढरपुर का एक सेठ नामदेवजी के प्रवचनों से प्रभावित होकर उनके घर गया, तो घर की दयनीय हालत

देखकर उसे बहुत दुख हुआ। वह सेठ प्राय: हर महीने अपने शरीर के वजन के बराबर खाद्यान्न तथा अन्य चीजें ब्राह्मणों, याचकों को दान किया करता था। इस बार उसने नामदेवजी को अपने घर बुलवाया। सेठ ने तुलादान कर अपने सेवक से कहा, यह खाद्यान्न घृत तथा मुद्राएं नामदेवजी के घर पहुंचा दो। नामदेवजी ने तत्काल कहा, सेठजी, क्या आपने मुझे भिक्षुक समझा है ? मैं गरीब कदापि नहीं हूं। मेरे पास तो वह अनूठा दिव्य धन है, जो संसार में किसी के पास नहीं होगा। सेठ बोला, वह धन आपने कहां छिपा रखा है ? नामदेवजी ने उत्तर दिया, यह तुलसीदल तथा भगवान विठ्ठल का नाम मेरे लिए दिव्य धन है। यह खर्च करने से कभी कम नहीं होता। सेठ तत्काल उनके चरणों में झुक गया।

३६२) भगवन्नाम महिमा- महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सन्त एवं भक्त श्री नामदेव जी महाराज हुए हैं। उनकी धर्मपत्नी श्रीजनाबाई भी पति की तरह बड़ी भक्त एवं निरन्तर विठ्ठल-विठ्ठल का कीर्तन किया करती थीं। अपनी कुटिया में ही गाय के गोबर से कण्डे (उपले) बनाकर उन्हें बेचकर जो कुछ प्राप्त हो जाता था उसीसे अपना जीवन निर्वाह किया करती थीं। कण्डे बनाते समय भी कीर्तन चलता रहता था। एक दिन पड़ोसी द्वारा कण्डे चुरा लिये जाने के कारण उन्हें सारे दिन निराहार ही रहना पड़ा। पंचों को जब इस बात का पता लगा तो पूछा गया कि कण्डे तो सभी एक जैसे ही होते हैं, तुम्हारे कण्डों की कोई विशेष पहचान भी है क्या ? तो श्रीजनाबाई ने विश्वासपूर्वक बताया कि मेरे द्वारा बनाये हुए कण्डों में विठ्ठल-विठ्ठल की ध्वनि अवश्य सुनायी देगी। जाँच करने पर यह बात सत्य निकली एवं चोरी किये हुए कण्डे भी पड़ोसी से बरामद हो गये।

आजकल का वैज्ञानिक इस बात को सत्य माने या न माने, किन्तु यह बात शास्त्रसम्मत एवं सुनिश्चित है कि भगवन्नाम महिमा का वर्णन करने में भगवान् स्वयं भी असमर्थ हैं।

३६३) आंखें होते हुए भी अंधा- एक आदमी कहीं जा रहा था। उसे वहां पहुंचने की जल्दी थी। इसलिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था। सोच रहा था कि समय पर वहां पहुंच नहीं पायगा और उसका जाना बेकार हो जायगा। वह अपने विचारों में खोया था। अचानक उसे किसी चीज की ठोकर लगी, उसका संतुलन बिगड़ गया और वह गिर पड़ा। निगाह उठाकर उसने देखा, एक खोपड़ी पड़ी थी। उस आदमी को बड़ा गुस्सा आया। देर हो जाने से वैसे ही उसका मन खिन्न हो रहा था। अब गिर जाने से उसके पैर में चोट आ गई और चलना उसके लिए मुश्किल हो गया। उसने दांत पीसते हुए कहा, अरी, दुष्ट, सताने के लिए क्या मैं ही रह गया था? उसी समय कहीं से आवाज आई; अरे ओ नादान, तू इसे क्यों दोष दे रहा है? क्यों इस पर क्रोधित हो रहा है? इसके तो आंखें नहीं हैं, जो तुझे देख लेतीं, लेकिन तेरे तो आंखें हैं? तू ही बता कि जिसकी आंखें हैं, उसको देखना चाहिए, या जिसके आंखें नहीं हैं, उसे?

३६४) श्री एकनाथ- एकनाथजीकी साधुता की ख्याति सर्वत्र फैल रही थी, उससे ईर्ष्यालु जल रहे थे। एकबार एक गरीब ब्राह्मण अपनी कन्याके विवाहके लिए धनकी याचना करता हुआ आया। एक ईर्ष्यालुने कहा कि हम तुम्हें दो सौ रुपये देंगे यदि तुम एकनाथको अपने व्यवहारसे कुपित कर दो। ब्राह्मण तैयार हो गया। एकनाथजीके घरमें पहुँचकर वह उसी अवस्थामें कपड़े-जूते पहने सीधा एकनाथजीके पूजा-गृहमें चला गया और उसी भेषमें जाकर एकनाथकी जंघा पर बैठ गया। कोई भी अपरिचित व्यक्तिके इस प्रकारके व्यवहारसे क्रोधित हो उठे। किन्तु एकनाथजी साधारण व्यक्ति तो थे नहीं। उन्होंने उसको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन दिया और कहा- आपका मेरे प्रति प्रेम-भाव विलक्षण है। सच्चा-प्रेम किसी भी मर्यादाको नहीं मानता। यही सच्चे-प्रेमका लक्षण है। इन शब्दोंके साथ एकनाथजीने उसके स्नान और रहनेकी व्यवस्था की। उनके लिए ये अतिथि भगवान थे। इनके शांतिपूर्ण व्यवहारसे ब्राह्मण मन ही मन खिन्न हुआ। फिर उसने कई अशिष्ट व्यवहार किये पर उसे सफलता न मिली। अन्तमें उसने अमोघ उपाय सोचा।

एकदिन भोजनके लिए एकनाथजी उस ब्राह्मणके साथ बैठे। एकनाथजीकी साध्वी पत्नी परोसगारी करने लगी। जैसे ही वह ब्राह्मणदेवकी थालीमें सामान परोसने के लिए झुकीं, वैसे ही ब्राह्मणदेव उचककर उसकी पीठ पर जा विराजे। सन्त एकनाथजीने अपनी पत्नीसे कहा- सावधान। ब्राह्मण गिरकर चोट न खा जायँ। पत्नीने कहा- आप निश्चिन्त रहें। मुझे अपने पुत्र हरि पण्डितको पीठ पर बैठाकर काम करनेका पूरा अभ्यास है। मैं अपने इस बालकको गिरने न दूंगी। दम्पतिके शब्दोंको सुनकर ब्राह्मणदेव लज्जित हो गये। सन्त एकनाथके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। साथ ही उन्होंने अपने असभ्य व्यवहारका सच्चा कारण भी बतलाया। इनामके रुपये न मिलेंगे इस दु:ख को भी प्रकट किया। एकनाथजीने कहा- यह सब आपने पहलेसे क्यों नहीं कहा ? यदि मेरे क्रोधसे आपको लाभ होता जानता तो मैं अवश्य ही क्रोध प्रकट कर देता। इसके बाद ब्राह्मणकी कन्याके विवाहार्थ श्रीएकनाथजीने पर्याप्त रूपमें आर्थिक सहायता दी। सभीमें, अतिथि एवं ब्राह्मणमें विशेष भक्ति थी अत: रुष्ट न हुए। इसी प्रकार श्रीभगवन्तमुदितजी भी ब्रजवासियों पर रुष्ट न हुए। प्रभु परीक्षा ले रहे हैं। उन्होंने ही माखन और चीर चुराकर इन्हें चोरी सिखाई है। फिर तो ब्रजनाथ और ब्रजवासियो की लीला चाहे जैसी हो परमानन्ददायिनी है।

३६५) उदारता- एक बार संत एकनाथ तीर्थयात्रा पर निकले। संत एकनाथ ने प्रयाग पहुंचकर त्रिवेणी में स्नान किया। उनके साथ कुछ और भी संत थे। गर्मी के दिन थे। महात्मा एकनाथ कुछ साधु-संन्यासियों के साथ रामेश्वरम् की ओर जा रहे थे। उनके कंधे पर कांवर थी। सब संतों ने निर्णय लिया कि इस त्रिवेणी से जल लेकर रामेश्वरम में चढ़ाएंगे। सबने अपनी-अपनी कावर में त्रिवेणी का पवित्र जल भरा और सामूहिक रूप से रामेश्वरम की यात्रा पर निकल पड़े। वह त्रिवेणी से गंगाजल की कांवर भर कर रामेश्वर भगवान के मंदिर में चढ़ाने का संकल्प लिए चले जा रहे थे। रास्ता लगभग कट चुका था और वह मंदिर के समीप पहुंचने ही वाले थे। गर्मी के दिन थे। मीलों तक पानी नहीं मिलता था। संत एकनाथ ने देखा कि एक गधा प्यास से तड़पकर मृतप्राय हो गया है। रास्ते में उन्हें एक गधा मिला। वह बहुत प्यासा था। उसकी हालत देखकर संत एकनाथ को दया आ गई। एकनाथ से रहा नहीं गया। उन्होंने अपनी कांवर से जल लेकर गधे की प्यास बुझाई। त्रिवेणी का गंगाजल पीकर तृप्त हुआ गधा नवजीवन प्राप्त कर उठ बैठा और प्रसन्न होकर चला गया।

तब तक पीछे से कुछ अन्य तीर्थयात्री भी वहां आ गए थे। एकनाथ के साथियों में से एक ने कहा, तुम्हारी यह यात्रा विफल हो गई। एक गधे का उच्छिष्ट जल अब भगवान को चढ़ाने योग्य नहीं रहा। एकनाथ द्वारा गधे को पानी पिलाना दूसरे संतों को अच्छा नही लगा। उन्होंने एकनाथ से कहा कि वे रामेश्वरम जाकर तीर्थजल चढ़ाने के पुण्य से वंचित हो गए। शिष्यों ने देखा तो बोले- यह आपने क्या कर दिया, अब भगवान का अभिषेक कैसे होगा? एकनाथजी ने परम तृप्ति के आवेश में कहा- अरे क्या तुमने नहीं देखा, स्वयं देवाधिदेव रामेश्वर (शिव) ही तो गधे के रूप में यहां आए थे। कितने कृपालु हैं वे। स्वयं ही आ गए और हमें वहां तक जाने का कष्ट नहीं दिया। मैं समझता हूं कि मेरी यात्रा सफल हो गई है। चराचर तथा कण-कण में व्याप्त भगवान ने आगे बढ़कर मेरी सेवा स्वीकार कर ली है। ईश्वर तो सब जीवों में व्याप्त है। मैने अपने कावर से एक प्यासे जीव को पानी पिला दिया। उसकी प्राण रक्षा की। रामेश्वर जाने का पुण्य मुझे इसी से मिल गया। मैं रामेश्वरम् को ही जल अर्पित कर रहा हूँ, क्योंकि वे सभी जीवों में निवास करते हैं। सभी साथी निरुत्तर हो गये।

३६६) शाश्वत सत्य- एक बार बाढ़ आने के कारण गाँव में महामारी फैली और कई लोग मरने लगे। तो संत एकनाथ के मुख से निकला- मुझे पता था कि यह तो होगा ही। गांववासियों ने समझा, एकनाथ को सब मालूम था फिर भी हमें सूचित नहीं किया। उन्हें गांव से निकाल दिया गया। मन में कोई विषाद लिए बिना एकनाथ पत्नी व पुत्र को गांव में ही छोड़कर जंगल की ओर चले गए और वहीं साधना करने लगे। कुछ दिन बाद गांव में फिर महामारी फैली और संत एकनाथ

का पुत्र परलोक सिधार गया। गांववासी जंगल में गए व पुत्र विछोह का समाचार सुनाया। एकनाथ के मुख से फिर यही निकला, मुझे पता था कि यह तो होगा ही। यहाँ जो आता है, वह जाता है। क्योंकि यहां हर प्राणी नाशवान है। फिर दुख कैसा ? गांववासियों ने अब उनकी बात का मर्म समझा। वे उन्हें आदरपूर्वक पुन: लेकर गांव गए।

३६७) जीवन की सार्थकता - संत एकनाथ को किसी गांव में एक आदमी मिला, जिसने कहा, आपका जीवन कितना सुंदर और शांत है। हम लोगों का जीव न लड़ाई-झगड़ा और ईर्ष्या से भरा रहता है। हम आपके जैसा जीवन जी सकें, उसके लिए क्या उपाय है? एकनाथ बोले, यह सब रहने दो, मैं तुम्हें एक बात बताता हूं। तुम्हारी मृत्यु समीप है। बस आठ दिन तुम्हारे जीवन में शेष बचे हैं। वह आदमी बहुत घबराया। भागता हुआ घर पहुंचा। उसने अपने पड़ोसियों से कहा, मित्रों, मैं आपसे झगड़ता रहा। उसके लिए मुझे क्षमा करें, अब आठ दिनों में मैं मरनेवाला हूं। उसने अपनी पत्नी से कहा, मैंने नाहक तुम्हें कष्ट दिए, कड़वे वचन बोले। मुझे क्षमा कर दो, क्योंकि अब मैं मरनेवाला हूं। अपने बच्चों को छाती से लगाया और बोला, मैंने तुम्हारे साथ मारपीट की, अब मैं जानेवाला हूं। मुझे सीने से लगाने दो। गांव में जिनके साथ लड़ाई झगड़े किए थे, उन सभी के पास गया और सबसे माफी मांगी, सबके पैर छुए। आठ दिन बाद एकनाथ जी उस व्यक्ति के घर पधारे। उस व्यक्ति ने उनके पैरों में गिरकर पूछा, मेरा समय आ गया है क्या? एकनाथ जी बोले यह तो प्रभु जानें, पर तुम्हारे ये आठ दिन कैसे गुजरे? कितनों से झगड़ा किया, कितनों का अपमान किया? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, कैसा झगड़ा और कैसी लड़ाई, मुझे तो आंखों के सामने बस मौत दिखाई दे रही थी। सबसे क्षमा मांगता रहा, गई गुजरी भूलने को कहता रहा। लड़ने-झगड़ने का तो समय ही नहीं रहा। एकनाथ बोले, इन आठ दिनों में जिस बात को ध्यान में रखकर तुमने सबके साथ बर्ताव किया, उस बात को मैं हर क्षण अपने सामने रखता हूं। इस देह का गुलाम न बनो। सभी से मीठा बोलो, सभी के प्रति प्रेम रखो। जो खुद के पास है, उसमें से दूसरों को दो। तुम्हारा जीवन सफल एवं सार्थक हो जाएगा।

३६८) निर्भीकता- महात्मा ज्योतिबा फुले एक महान समाज सुधारक होने के साथ-साथ अत्यंत निर्भीक व्यक्ति भी थे। १८८९ में इंग्लैंड की रानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक ऑफ कनॉट जब भारत आए थे तो पुणे में भी उनका स्वागत किया गया। इस सभा में महात्मा फुले भी आमंत्रित किए गए थे, लेकिन जब वे पहुंचे तो उनकी दशा बड़ी विचित्र थी। शरीर पर फटे वस्त्र, पैरों में फटे जूते तथा फटी पगड़ी। एक गरीब किसान की वेशभूषा में वे आए थे। सभा शुरू हुई। सबने ड्यूक की प्रशंसा में भाषण दिए।

जब महात्मा फुले का नंबर आया तो उन्होंने कहा- ड्यूक ऑफ कनॉट महोदय, आपके स्वागत के लिए यहां अच्छी वेशभूषा में आए भारत के लोग भारत के सच्चे प्रतिनिधि नहीं है। इन्हें देखकर आप यह अनुमान मत लगाना कि भारत की परिस्थिति ठीक है। रानी की सारी व्यवस्था अच्छी है। पर यहां की प्रजा की अवस्था कैसी हो गई, यह मेरी वेशभूषा से आपको ज्ञात हो जाएगा। लोगों की ऐसी दीन-हीन अवस्था के बारे में आप रानी से अवश्य कहिएगा। उनकी निर्भीकता ने ही महात्मा को एक महान समाज सुधारक बनाया।

३६९) श्रेष्ठ भजन- स्वामी परमानन्द नामक संन्यासी महाराष्ट्र के पूना जिले में हुए थे। उनका नित्य का नियम था रात्रि में भजन पूजन तथा माला जपना। प्रात:काल अपने झोले में खुरपी डालकर जाते और पौधे रोपा करते थे। धीरे-धीरे सारे क्षेत्र में हरियाली छा गई। व्यक्तियों के पूछने पर बताते कि यह तो सबसे बड़ा भजन है जिसके कारण प्रत्यक्ष रूप से हम सभी अपने क्षेत्र में स्वर्ग जैसी हरियाली प्रत्येक दिन देखते है।

३७०) सेवा की मूर्ति- महर्षि केशव कर्वे ने जब विधवाओं की दुर्दशा देखी, तो उनका हृदय हाहाकार कर उठा।

उन्होंने अपना जीवन विधवाओं को शिक्षित एवं आत्मनिर्भर बनाने के पुनीत कार्य में लगाने का दृढ़ संकल्प लेकर हिंगणे (पुणे) में आश्रम की स्थापना की।

वह विधवा महिलाओं व अनाथों की स्वयं सेवा करते थे। उन्हें पढ़ाते थे। सिलाई व अन्य काम सिखाते थे। उनके पुत्र रघुनाथ कर्वे के उपनयन संस्कार का समय आया। उनकी माता ने संस्कार के लिए ३०० रुपये जोड़े थे। महर्षि कर्वे ने कहा, मां, ये तमाम अनाथ विधवाएं मेरी पुत्री के समान हैं। मैं इन रुपयों को संस्कार पर खर्च न करके उनके कल्याण में लगाऊंगा। भगवान इससे बहुत खुश होंगे। कर्वे जी ने केवल १५ रुपये खर्च करके पुत्र का उपनयन संस्कार करवाया। शेष राशि विधवा आश्रम को दान दे दी। कुछ दिनों में महाराष्ट्र के अनेक नगरों में उनकी प्रेरणा से अनाथ व विधवा आश्रमों, विद्यालयों की स्थापना की गई। भारत सरकार ने विधवा कल्याण तथा शिक्षा प्रसार के उनके कार्यों को देखते हुए उन्हें भारत रत्न से सम्मानित किया।

३७१) रास्ते की रुकावट- विद्यार्थियों की एक टोली पढ़ने के लिए रोजाना अपने गाँव से ६-७ मील दूर दूसरे गाँव जाती थी। एक दिन जाते-जाते अचानक विद्यार्थियों को लगा कि उनमें एक विद्यार्थी कम है। ढूँढ़ने पर पता चला कि वह पीछे रह गया है। उसे एक विद्यार्थी ने पुकारा, तुम वहाँ क्या कर रहे हो? उस विद्यार्थी ने वही से उत्तर दिया, ठहरो, मैं अभी आता हूं। यह कहकर उसने धरती में गड़े एक खूँटे को पकड़ा। जोर से हिलाया, उखाड़ा और एक ओर फेंक दिया फिर टोली में आ मिला। उसके एक साथी ने पूछा, तुमने वह खूँटा क्यों उखाड़ा इसे तो किसी ने खेत की हद जताने के लिए गाड़ा था। इस पर विद्यार्थी बोला, लेकिन वह बीच रास्ते में गड़ा हुआ था। चलने में रुकावट डालता था। जो खूँटा रास्ते की रुकावट बने, उस खूँटे को उखाड़ फेंकना चाहिए। वह विद्यार्थी और कोई नहीं, बल्कि लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे।

३७२) एक मेंढक और चूहे में बहुत गहरी दोस्ती थी। चूहा तालाब के किनारे एक पेड़ की जड़ में रहता था और मेंढक तालाब के भीतर। दोनों ने अपने-अपने एक-एक पैर को एक रस्सी से जोड़ा हुआ था। जब चूहे का मेंढक से मिलने का मन होता तो वह रस्सी खींच देता और जब मेंढक को उसकी याद आती तो वह रस्सी खींचकर उसे बुला लेता था। एक दिन मेंढक चूहे से मिलकर लौट रहा था तो वह भूल गया कि चूहे का पैर उसके पैर से बंधा है और वह पानी में बहुत भीतर तक चला गया। उसके पैर से बंधा चूहा भी पानी के भीतर चला गया और डूबकर मर गया। जब उसका शव पानी की सतह पर तैर रहा था तो एक बाज की नजर उस पर पड़ी। उसने झपट्टा मारकर उसे उठा लिया और आसमान में उड़ चला, तभी उसने देखा कि चूहे के साथ मेंढक भी बंधा हुआ है। उसे बहुत खुशी हुई और उसने दोनों को खाकर अपनी भूख मिटा ली। सार - असमानता वाली मित्रता में बहुत सावधानी बरतने की जरूरत पड़ती है।

३७३) अनुपम निष्पक्षता- महाराष्ट्र में रामशास्त्री का नाम बड़ा प्रसिद्ध रहा है। वे प्रकाण्ड पण्डित थे। पेशवा के दरबार में उनको प्रमुख स्थान प्राप्त था और उसके साथ ही उन्हें दानाध्यक्ष का पद भी दिया हुआ था। एक बार शास्त्री जी दक्षिणा दे रहे थे कि उनके सामने ही उनके कोई निकट के भाई भी दक्षिणा प्राप्तकर्ताओं में सम्मिलित थे। नाना फड़नवीस समीप ही बैठे थे। उन्होंने कहा- मैं समझता हूं कि आप अपने बन्धु को बीस रुपये दक्षिणा दें। मेरे भाई कोई विशेष नही साधारण ही विद्वान है। अत: अन्य ब्राह्मणों को जो रुपया दक्षिणा दी जा रही है, वही इनके लिए भी उचित होगी। नाना। मेरे भाई होने के नाते जो कुछ इन्हें देना होगा वह मैं स्वयं अपने पास से दूंगा। दानाध्यक्ष रामशास्त्री के यहां भाई-भतीजे के प्रति किसी प्रकार के पक्षपात की गुंजाइश नही है। नाना फड़नवीस यह सुनकर मौन बैठे रहे। रामशास्त्री ने अपने भाई को भी दक्षिणास्वरूप दो रुपये दिये और दरबार का कार्य सम्पन्न होने पर भाई को साथ लेकर अपने निवास की ओर चल दिये।

वहां जाकर उनका यथोचित आदर सत्कार किया।

३७४) सच्चा आभूषण- श्रीराम शास्त्री नामक कुलीन ब्राह्मण थे। श्रीराम शास्त्री की न्यायप्रियता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे पेशवा माधवराव के गुरु, मंत्री और राजा के प्रधान न्यायाधीश थे। दरबार के सबसे उच्च पद पर रहते हुए भी उनका रहन-सहन एक साधारण नागरिक की तरह था। उनकी पत्नी अपने हाथ से खाना बनाती थीं और उनका पहनावा भी एकदम साधारण होता था। उनके पास कोई आभूषण नहीं था।

एक बार किसी अवसर पर वह राजभवन में गई हुई थीं। राजगुरु की पत्नी को एकदम साधारण रूप में देखकर रानी चकित रह गईं। रानी को लगा कि शास्त्री जी अपनी पत्नी का खयाल नहीं रखते। रानी ने गुरु पत्नी की इस दशा से महाराज की निंदा होना स्वाभाविक है। समारोह खत्म होने के बाद रानी ने राजगुरु की पत्नी को कीमती साड़ी पहनाई और कई तरह के आभूषणों से अलंकृत करके उन्होंने पालकी में बैठा कर विदा किया।

रामशास्त्री को पहले से ही इस बात का पला चल गया था। पालकी जब राम शास्त्री के दरवाजे पर पहुंची तो घर का दरवाजा बंद था। कहारों ने बहुत देर तक दरवाजा खटखटाया, लेकिन दरवाजा नहीं खुला। कहारों के आवाज देने पर अंदर से किसी ने कहा, तुम लोग भटक कर इस दरवाजे पर आ गए हो। कहारों ने द्वार पर जाकर किवाड़ खटखटाए। शास्त्री जी आए, किवाड़ खोले, किन्तु यह कहकर बन्द कर दिए, भाई यह बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत देवी कोई और है, आप लोग भूल से यहां आ गए।

उधर राम शास्त्री की पत्नी समझ गई कि दरवाजा उनके लिए बंद हो गया है और तब तक नहीं खुलेगा जब तक वह अपनी पुरानी वेशभूषा में नहीं आ जातीं। उन्होंने कहारों से कहा, पालकी राजमहल लेकर चलो। राजभवन पहुंच कर उन्होंने अपने सारे आभूषण और वस्त्र उतार कर अपनी पुरानी साड़ी पहन ली, फिर उन्होंने रानी से कहा, रानी साहिबा आप इन आभूषणों और इस कीमती साड़ी को रख लीजिए। इन वस्त्रों और आभूषणों ने तो मेरे लिए मेरे घर का द्वार ही बंद करा दिया। इसके बाद वह पुराने कपड़े में पैदल ही घर लौट आई। इस बार दरवाजा पहले से ही खुला था। राम शास्त्री दरवाजे पर खड़े थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, बहुमूल्य आभूषण या तो राजपुरुषों को शोभा देते हैं या मूर्ख उन्हें पहन कर अपनी अज्ञानता को छिपाने का प्रयास करते हैं। हम लोगों को यह शोभा नहीं देता। हमारा आभूषण तो सादगी है। स्वागत करते हुए शास्त्रीजी बोले, भद्रे। ब्राह्मण तो अन्यों को मर्यादा पालन सिखाता है। उसकी असली संपत्ति सादगी ही है।

३७५) न्याय का सम्मान- उस समय माधव राव मराठा राज्य के पेशवा थे और राम शास्त्री प्रधान न्यायाधीश। न्याधीश की नियुक्ति पेशवा करते थे, लेकिन रामशास्त्री के कामकाज में वह कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे। एक बार मराठा राज्य के वफादार और पेशवा के करीबी सरदार बिसाजी पंत लेले ने अंग्रेजों का एक जहाज लूट लिया। फिरंगियों ने इसकी शिकायत राम शास्त्री से की। उन्होंने लेले को न्यायालय के सामने हाजिर होने का आदेश दिया, लेकिन लेले हाजिर नहीं हुए। तब शास्त्री ने आदेश दिया कि उन्हें गिरफ्तार कर हाजिर किया जाए। फिरंगियों की शिकायत पर अपने एक वरिष्ठ सरदार को इतना कठोर दंड देने से राज्य में हड़कंप मच गया। कई सरदारों ने राम शास्त्री की शिकायत माधव राव से की। उन्होंने पूरी बात सुनने के बाद कहा, हम अवश्य शास्त्रीजी से बात करेंगे। पेशवा के बुलावे पर राम शास्त्री पेशवा के पास हाजिर हुए। माधव राव ने पूछा, आपने लेले को इतना कठोर दंड क्यों दिया ?

श्रीमंत। अदालत के सामने कोई दोस्त या दुश्मन नहीं होता। वहां सब बराबर होते हैं। लेले ने जो अपराध किया है उसी का दंड उन्हें दिया गया है। शास्त्रीजी ने कहा।

क्या यह मराठा राज्य के हित में होगा कि फिरंगियों की शिकायत पर हम अपने ही सरदार को दंडित करें ? माधव राव ने पूछा। शास्त्रीजी ने कहा, पेशवा के पास अपराधी को माफ करने का अधिकार है। आप चाहेंगे तो लेले का दंड माफ हो सकता है, लेकिन उस समय न्याय की कुर्सी पर राम शास्त्री नहीं, कोई दूसरा बैठा होगा। माधव राव ने कहा, शास्त्रीजी, आपके रहते मराठा राज्य पूरी तरह सुरक्षित है। पेशवा को कभी अपमानित नहीं होना पड़ेगा। तब शास्त्रीजी ने कहा, यह ठीक है कि लेले को फिरंगियों की शिकायत पर दंडित किया गया है, लेकिन राज्य में यदि न्याय के प्रति विश्वास नहीं रहेगा और न्यायालय की अवमानना होगी तो राज्य की शासन व्यवस्था को चरमराते देर नहीं लगेगी।

३७६) आत्मा का भोजन- आचार्य अत्रे नामक एक महापुरुष थे। एक बार वे बीमार पडे। उनकी चारपाई की बगल में ढेर सारी किताबें रखी हुई थी। उस अस्वस्थता की स्थिति में भी वे अध्ययन करते थे। उनके मित्र उनके पास आये और पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। अत्रेजी ने कहा मेरा शरीर जरूर बीमार है किन्तु आत्मा तो स्वस्थ है उसे भोजन क्यों न दूं।

३७७) प्रेम ही ईश्वर है- एक बार परम ज्ञानी रघुनाथ परचुरे शास्त्री ईश्वर की खोज में भटकते हुए हिमालय की छांव में गंगा किनारे बनी एक कुटी में आ पहुंचे। वहां उनकी मुलाकात महायोगी आचार्य सत्यव्रत से हुई, जिन्होंने उनका परिचय पूछा तो वह बोले, आचार्यवर मेरा नाम महामहोपाध्याय महापंडित रघुनाथ परचुरे शास्त्री विद्यावाचस्पति विद्या वारिधि है। इस पर आचार्य सत्यव्रत हंसते हुए बोले, वत्स रघुनाथ, ज्ञान तो मनुष्य को निर्भर बनाता है, पर लगता है तुम्हारे ज्ञान ने तुम्हें लघु बना दिया है। आचार्य का इशारा उनकी उपाधियों और सिर पर लदी पोथियों की ओर था। शास्त्री ने पूछा आचार्यवर, परमात्मा को पाने के लिए क्या करूं ? आचार्य बोले, सबसे पहले इस भार को उतार कर अलग रखो। अब इसे हाथ भी न लगाना, यद्यपि यह कठिन है। यह कर सको तो बताओ क्या तुम प्रेम से परिचित हो ? क्या तुम्हारे चरण प्रेम के पथ पर चले हैं ? पं. रघुनाथ हैरान होकर सुनते जा रहे थे। आचार्य ने कहा, मैं कहता हूं परमात्मा को छोड़ो, प्रेम को पाओ। मंदिर को भूलो हृदय को खोजो, क्योंकि वह तो वहीं है। इसलिए तुम पहले प्रेम के मंदिर में प्रवेश करो, प्रेम को जीओ और जानो। इसके बाद आना, फिर मैं तुम्हें परमात्मा तक ले जाने का आश्वासन देता हूं। पं. रघुनाथ इन बातों से बेहद प्रभावित हुए। वह अपने ज्ञान की गठरी वहीं छोड़कर लौट गए। इस घटना को कई वर्ष बीत गए। आचार्य अति वृद्ध हो गए। वह रघुनाथ की प्रतीक्षा करते रहे, पर वह नहीं लौटे। उन्हें लगा रघुनाथ उनकी बातों से घबरा गए हैं। अंतत: आचार्य स्वयं उन्हें खोजने निकल पड़े। कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमने के बाद उन्होंने उन्हें एक गांव में विभोर होकर एक कुष्ठ रोगी की सेवा करते हुए पाया। आचार्य ने पूछा, तुम आए नहीं। क्या तुम्हें परमात्मा से नहीं मिलना ? रघुनाथ ने कहा, बिल्कुल नहीं। जिस क्षण मैंने प्रेम को पाया उसी क्षणी से सभी प्राणियों में से उसे ही निहार रहा हूं। मैं जान गया कि प्रेम ही ईश्वर है। आचार्य ने प्रसन्न होकर रघुनाथ को आशीर्वाद दिया।

३७८) संत- शिरडी के साईबाबा त्यागी और पहुंचे हुए संत थे। आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न बाबा करुणा और संवेदना की प्रतिमूर्ति थे। उनसे किसी का कष्ट देखा नहीं जाता था। वे तथा सम्भव उपचार करते तथा भक्तों के कष्ट अपने ऊपर ले लेते थे। उनके पास से कोई भूखा नहीं जाता। वे स्वयं भी भक्तों के लिए हांडी चढ़ाते थे। दीन-दु:खियों की सेवा करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनका सम्पूर्ण जीवन सेवा-साधना में व्यतीत हुआ।

३७९) प्रपंचों से मुक्ति- महान संत गोरखनाथ ने घोर तपस्या तथा साधना के बल पर अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं। वह चाहते थे कि जन-कल्याण के लिए ये सिद्धियां किसी सुयोग्य संत को सौंप दी जाएं।

एक दिन गोरखनाथजी काशी में गंगा तट पर बैठे हुए थे। उन्होंने एक दंडी संन्यासी को गंगा में अपना दंड प्रवाहित करते

हुए देखा। संत उनके पास पहुंचे तथा बोले- महात्मन, मैं आप जैसे योग्य संत की तलाश में था, जिन्हें साधना से प्राप्त सिद्धियां अर्पित कर सकूं। कृपया ये सिद्धियां स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। संन्यासी ने बाबा गोरखनाथ के समक्ष दोनों हाथ पसार दिए। बाबा ने उन्हें सिद्धियां अर्पित कर दी। संन्यासी ने दोनों हाथों की अंजुलियां गंगा की ओर कर कहा- मां गंगे, मैं बड़े भाग्य से सांसारिक प्रपंचों से मुक्ति पा सका हूं। इन सिद्धियों को भी तुम्हें समर्पित करता हूं। गुरु गोरखनाथ संन्यासी की विरक्ति देखकर हतप्रभ रह गए। वह बोले- महात्मन, वास्तव में सच्चे संन्यासी तो आप हैं, जिन्हें दुर्लभ सिद्धियां भी आकर्षित नहीं कर पाईं तथा उन्हें जल में अर्पित करने में एक क्षण नहीं लगने दिया।

३८०) अद्‌भुत अभियान- यह घटना उस समय की है, जब सौराष्ट्र में एक बार भीषण तूफान आया। तूफान से समूचे क्षेत्र को तहस-नहस कर दिया। बड़ी संख्या में वृक्ष गिर गए, घरों को भारी नुकसान पहुंचा। एक गांव का प्रसिद्ध मंदिर भी इसकी चपेट में आ गया। उस मंदिर को हुए भारी नुकसान को देखकर गांव के लोग अत्यंत चिंतित हो गए। वे एक साथ आध्यात्मिक विभूति श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले जी के पास पहुंचे। उन्होंने आठवले जी को अपनी चिंता से अवगत कराया और कहा कि गांव के मंदिर का निर्माण किया जाना चाहिए और आठवले जी इसकी अगुआई करें। गांववासियों की बात सुनकर आठवले जी बोले, एक ही मंदिर क्यों बनाते हो? प्रत्येक घर में मंदिर की स्थापना करो। आठवले जी का जवाब सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित होकर बोले, एक मंदिर बनाने के लिए तो हमारे पास धन नहीं है और आप हर घर में मंदिर बनाने के लिए कह रहे हैं। भला हर घर में मंदिर कैसे बनाया जा सकता है? आठवले जी गांववासियों को समझाते हुए बोले, प्रत्येक घर में आम का पेड़ लगाओ। गांव के नष्ट हुए मंदिर के आसपास भी आम के पेड़ लगाओ। जब पेड़ उगने लगें तो उन पर जल चढ़ाओ, दीप जलाओ, उनकी पूजा करो। फिर देखना कैसा चमत्कार होता है। आठवले जी की बात पर गांववासियों ने गंभीरता से विचार किया और देखते ही देखते घर-घर में पेड़ लगाए जाने लगे। कुछ साल बाद पूरा गांव ही आम के बाग में बदल गया। उन पेड़ों में खूब आम फले जिन्हें बेचकर काफी धन प्राप्त हुआ। उसी धन से गांव में अमृतालय मंदिर की स्थापना की गई। मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह में स्वयं श्री आठवले जी उपस्थित थे। उनके इस अद्‌भुत अभियान ने पूरे गांव को एक सूत्र में बांध दिया। फिर पूरे गांव में आठवले जी ने स्वाध्याय की लहर फैलाई। उनके एकता स्वाध्याय अभियान के कारण गांव समृद्ध, शिक्षित व संस्कृत बन गया।

३८१) सच्ची सेवा - गाड़गे महाराज सच्चे निष्काम कर्मयोगी थे। उनके कपड़े फटे-चीथड़े होते थे तथा एक लकड़ी, फटी-पुरानी चादर तथा मिट्टी का एक छोटा बर्तन, यही उनकी संपत्ति थी। उनका बर्तन मिट्टी का होने के कारण ही लोगों ने उनका नाम गाड़गे रख दिया था। पौष मास में अमरावती के समीपस्थ ऋषमोचन नामक ग्राम में बड़ा मेला लगा। तब हजारों दर्शनार्थी वहाँ एकत्रित हुए। मेले में लोग स्वच्छता का खयाल नहीं करते, फलस्वरूप दोने पत्तलों के कूड़े, रसोई के लिए प्रयोग किए गए मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े तथा हर प्रकार की गँदगी जहाँ-तहाँ पड़ी थी और लोगों का उस ओर बिलकुल ध्यान नहीं था। पर युवा गाड़गे महाराज नदी की ऊँची कगार को काटकर स्नानार्थियों के लिए राह बनाने में जुट गए। इतना ही नहीं, हाथ में झाड़ू ले वे अकेले गंदगी की सफाई करने लगे। दर्शनार्थियों के मन में कौतूहल के साथ-साथ उनके प्रति आदरभाव जागृत हुआ किंतु किसी की भी इच्छा न हुई कि उनका साथ दे। इतने में उनकी माता की दृष्टि उन पर पड़ी, तो उसने उन्हें घर चलने को कहा। गाड़गे महाराज बोले माँ, अपने आसपास का मानव संसार ही भगवान का प्रत्यक्ष रूप है। इन कोटि लोगों की यथाशक्ति सेवा करना ही ईश्वर की सच्ची आराधना हो सकती है। सुगंधित फूल-पत्तों को पत्थर की मूर्ति पर चढ़ाने की अपेक्षा अपने आसपास विद्यमान चलती-फिरती दुनिया की सेवा तथा भूखों के लिए रोटी

की व्यवस्था करने में ही जीवन की सार्थकता है। ऐसे फूल-पत्तों से तो हमारी झाडू श्रेष्ठ है, पर यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती और यह सुन माता का हृदय गदगद हो उठा।

३८२) कानून का पालन- नागपुर की घटना है। कृष्ण माधव घटाटे गुरुजी मा. स. गोलवलकर को कार में कही ले जा रहे थे। कार पटवर्धन मैदान के निकट चौराहे के पास पहुँची। यह चौराहा काफी छोटा है। उस समय चौराहे पर यातायात पुलिस नहीं थी। इसलिए कृष्ण माधव घटाटे ने चौराहे का चक्कर न लगाते हुए कार को दायीं ओर मोड़ना चाहा। इस पर गुरुजी एकदम नाराज हो उठे और कृष्ण माधव घटाटे को पुन: चौराहे का चक्कर लगाकर ही कार दायीं ओर घुमाने को विवश किया। उन्होंने कहा, कानून का पालन न करना भीरुता है। पुलिस की अनुपस्थिति में कानून तोड़ना कोई साहस की बात नहीं है। हमें कोई देख रहा है अथवा नहीं इसकी चिंता न करते हुए, हमें व्यक्तिगत अथवा सामाजिक कानूनों का पालन करना ही चाहिए, फिर इसमें हमें कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े।

३८३) सत्य का आग्रह- काशी में विद्याध्ययन कर रहा एक छात्र, एक दिन एक दूकान से ताला खरीदने गया। एक ताले की कीमत पूछने पर दुकानदार ने उसकी कीमत दस आने बताई। लड़के ने देखा ताला बहुत हल्का है। वह दुकानदार से बोला- श्रीमान, ताले की कीमत तो तीन आने लगती है, पर आप कहते हैं तो आपकी बात ही सच माननी पड़ेगी। यह कहकर उसने दस आने चुकाए और वहां से ताला लेकर चला आया। लड़का प्रतिदिन उसी दुकान के सामने से होकर घूमने के लिए निकला करता और दुकानदार को नमस्कार जरूर करता। एक दिन दुकानदार स्वयं ही उससे बोल पड़ा- बेटा, तुम्हारे अहिंसक सत्याग्रह के सम्मुख मैं नतमस्तक हूं, ताला सचमुच ही तीन आने का था। यह लो अपने सात आने। यह बालक और कोई नहीं विनोबा जी थे, जो जीवनपर्यंत सत्य के मार्ग पर चले।

३८४) खुद को बदलो- एक बार विनोबा भावे से मिलने एक महिला आई। वह काफी परेशान लग रही थी। उसने विनोबा जी को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके कहा, मेरा जीवन तो नरक हो गया है। मैं बहुत दुखी हूं। जीवन में कोई उम्मीद नहीं नजर आती। विनोबा जी ने उससे उसके दुख का कारण पूछा तो उसने बताया, मेरा पति रोज रात को शराब पीकर घर लौटता है। आते ही अनाप-शनाप बोलने लगता है। मैं उसे इस हालत में देखकर अपने पर काबू नहीं रख पाती। गुस्से में मैं भी उसे बहुत भला-बुरा कहती हूं।

विनोबा जी ने पहले कुछ सोचा फिर पूछा, तुम्हारे भला-बुरा कहने से क्या उसमें कुछ सुधार आया उस महिला ने कहा, नहीं, मामला और गड़बड़ हो गया है। मैं जब उसे डांटती हूं तो वह और भड़क जाता है और मुझे पीटने लग जाता है। घर में अजीब माहौल बन गया है। बच्चों पर न जाने इसका क्या असर पड़ता होगा। न जाने मेरे पड़ोसी क्या सोचते होंगे। मैं तो उसे समझा-समझाकर थक गईं एक बात और, मैंने उसकी शराब छुड़ाने के लिए व्रत रखना शुरू कर दिया है। मैं रोज उपवास करती हूं। सोचती हूं, शायद इसका कोई सकारात्मक परिणाम निकले। इस पर विनोबा जी ने पूछा, उपवास करने से तुम्हारे क्रोध में कोई फर्क आया या पति को शराब पीकर आया देख तुम्हें अब भी उसी तरह गुस्सा आता है ? महिला ने कहा, उसके शराब पीने पर या उसे उस हालत में देखकर मुझे अब भी गुस्सा आता है। मेरे व्रत रखने से अब तक तो कोई खास फर्क नहीं पड़ा।

तब विनोबा जी ने कहा, अगर हालात बदलने हों तो पहले तुम्हें अपने आप को बदलना होगा। गुस्सा करके तुमने देख लिया। उससे कुछ हासिल नहीं हो रहा है। इसका कारण है कि तुमने अपने को अंदर से नहीं बदला। तुम्हें अपने मन को बदलाव के लिए तैयार करना होगा और यह दृढ़ इच्छाशक्ति से ही संभव है। व्रत रख लेने भर से बदलाव नहीं आते। दूसरों में बदलाव लाने के लिए पहले तुम्हें खुद को बदलना होगा।

३८५) बुरी आदत से छुटकारा- बात उन दिनों की है जब आचार्य विनोबा भावे पवनार आश्रम में चिंतन, मनन एवं लेखन के कार्यों में व्यस्त थे। उनसे मिलने तरह-तरह के लोग आते और अपनी समस्याओं का बयान करते। विनोबा जी उन्हें कोई न कोई रास्ता जरूर बताते थे। एक दिन एक शराबी उनके पास आया और बोला, बाबा। मैं शराब के नशे में जकड़ा हुआ हूं। इसके कारण न केवल मेरा व्यक्तिगत जीवन, बल्कि मेरा पूर परिवार तबाह हो रहा है। मैं शराब से मुक्ति चाहता हूं। आप कोई मार्ग बताए। विनोबा जी ने कहा, जब तुम शराब से मुक्ति चाहते हो तो शराब छोड़ दो। उस व्यक्ति ने कहा, क्या करूं, बहुत कोशिश की पर छूटती ही नहीं है बाबा। आप ही कोई तरकीब बताएं। विनोबा जी कुछ क्षण शांत रह कर सोचने लगे फिर बोले, कल शाम को चार बजे मेरी कुटिया में आना। आकर मुझे बाहर से पुकारना, शायद कोई तरकीब निकल जाए।

वह व्यक्ति नियत समय पर आश्रम पहुंचा और विनोबा जी की कुटिया के बाहर उनका नाम लेकर पुकारने लगा। विनोबा जी कुटिया के भीतर से ही चिल्लाए, मैं बाहर कैसे आऊं। यह खंभा मुझे जकड़े हुए हैं। शराबी व्यक्ति ने सोचा भला खंभा विनोबा जी को कैसे जकड़ सकता है। उसने अंदर झांका तो देखा कि विनोबा जी स्वयं ही खंभे को जकड़े हुए थे। शराबी मुस्कुराकर बोला- बाबा। खंभा आपको जकड़े हुए है, या आप खम्भे को जकड़े हुए है। यह सुनते ही विनोबा जी ने ठहाका लगाकर कहा, जो हाल मेरा है, वही हाल तुम्हारा भी है। तुम भी शराब को नहीं छोड़ना चाहते और कहते हो कि शराब छूटती नहीं। जब तक तुम्हारी स्वयं की इच्छा शक्ति जाग्रत नहीं होगी तब तक कोई रास्ता नहीं निकलेगा। जैसे मैं खंभे को जकड़े हुए हूं वैसे ही शराब तुमको जकड़े हुए रहेगी।

धन्य हो बाबा। मैंने तो इस तरह से सोचा ही नहीं था। अब मैं इसे छोड़कर रहूंगा। इसके बाद उस व्यक्ति ने कभी शराब को हाथ नहीं लगाया।

३८६) प्रशंसा और अहंकार- महापुरुष चले जाते हैं मगर उनके जीवन की कई कथाओं से आने वाली पीढ़ियां प्रेरणा लेती रहती हैं। संत विनोबा भारत के उन महापुरुषों में से है, जिन्होंने अपना समूचा जीवन नि:स्वार्थ भाव से राष्ट्रसेवा के लिए समर्पित कर दिया। विनोबा ने भारत को सदैव नयी दिशा दी। उन्हें बचपन में विनायक नाम से जाना जाता था।

ऐसी ही एक कथा संत विनोबा भावे को लेकर है। कहते हैं कि एक बार जब संत विनोबा भावे को महात्मा गांधी का पत्र प्राप्त हुआ, तो उन्होंने पत्र पढ़कर उसे फाड़ दिया।

यह देखकर आश्रम के छात्रों को बड़ी हैरानी हुई क्योंकि सभी जानते थे कि विनोबा जी गांधीजी के पत्र संभालकर रखते थे। वे सोच भी नहीं सकते थे कि विनोबा भावे गांधीजी के पत्र के साथ ऐसा सलूक करेंगे।

उनके द्वारा इस तरह पत्र फाड़ दिए जाने पर आश्रम के छात्रों को बहुत आश्चर्य हुआ। उनकी जिज्ञासा को देखते हुए विनोबा भावे ने कहा- मैंने पत्र इसलिए फाड़ दिया, क्योंकि इसमें एक बहुत बड़ा झूठ लिखा गया है।

विनोबा भावे की बात सुनकर सभी अचरज में थे। सत्य और अहिंसा की प्रतिमूर्ति माने जाने वाले महात्मा गांधी भला झूठ क्यों लिखेंगे। छात्रों ने फिर जिज्ञासा व्यक्त की तो संत विनोबा भावे ने खुलासा करते हुए कहा- यह सच है कि गांधीजी झूठ नहीं लिखते। पर उन्होंने इस पत्र में मेरी प्रशंसा करते हुए मुझे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कहा है। मैं जानता हूं कि इस विराट विश्व में मुझसे श्रेष्ठ असंख्य लोग हैं। मुझे डर लगा कि उनका यह पत्र मुझमें अहंकार पैदा कर सकता है और यह मेरी प्रगति में बाधक ही हो सकता है। इसीलिए मैंने यह पत्र फाड़ दिया।

३८७) संस्कार- महात्मा गांधी ने एक बार उनके पिता को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने उनके लिए विनोबा शब्द लिखा और तभी से वे विनोबा के नाम से मशहूर हुए। विनोबा को सेवा, संस्कार और त्याग की भावनाएं अपनी मां से विरासत के रूप में मिली थी।

एक बार पड़ोस में कोई बीमार हो गया तब उनकी मां पड़ोसी के यहां जाती और सेवा सुश्रुषा करती एवं उनके यहां खाना भी बनातीं। एक दिन विनोबा ने अपनी मां से कहा, मां आप कितनी मतलबी हैं कि स्वयं के घर का खाना पहले तैयार करती है, फिर पड़ोसी के घर खाना बनाने जाती है। मां ने जवाब दिया, विनायक। तू समझता नहीं है, यदि पड़ोसी के लिए खाना पहले तैयार कर दिया तो भोजन ठंडा हो जाएगा इसलिए मैं वहां खाना यहां के पश्चात तैयार करने जाती हूँ। मां की इस बात ने विनोबा को अत्यधिक प्रभावित किया।

३८८) भूमि का दान- संत विनोबा भावे अपने भूदान आंदोलन का प्रचार करते हुए अलीगढ़ के पिसावा गांव में पधारे। राजा श्यौदान सिंह ने भव्य जनसभा में उनका श्रद्धापूर्वक स्वागत किया। विनोबा ने उनसे अनुरोध किया, राजा साहब, आप मुझे गोद ले लें। यह सुनकर सभी हंस पड़े। राजा साहब मुस्कराते हुए बोले, मुझे स्वीकार है। धन्यवाद व्यक्त करते हुए फिर विनोबाजी ने कहा, पिताजी, अब आप मुझे अलग कर दीजिए। मैं आपका तीसरा पुत्र हूं, इसलिए केवल भूमि का छठवां हिस्सा दे दीजिए। सभी चकित रह गए, पर राजा साहब भी वचन के पक्के थे। उन्होंने तत्काल दो हजार बीघा भूमि उन्हें दे दी। विनोबाजी ने यह जमीन भूमिहीनों में बांट दी।

३८९) सीखने की उम्र- यह घटना उस समय की है जब देश गुलाम था। महाराष्ट्र के एक गांव की पाठशाला का निरीक्षण करने के लिए वहां के निरीक्षक पहुंचे। उनका नाम था विनायक। वहां के शिक्षक बच्चों को अंग्रेजी और मराठी में पढ़ा रहे थे। उन्होंने एक शिक्षक से पूछा, आप लोग बच्चों को अंग्रेजी और मराठी पढ़ाते हो यह तो अच्छी बात है, लेकिन हिंदी को हमने राष्ट्रभाषा माना है। देश के कोने-कोने में हिंदी पढ़ी और बोली जाती है। यदि आप अपने बच्चों को हिंदी नहीं पढ़ाएंगे तो यहां के बच्चे पिछड़ जाएंगे। आप उन्हें हिंदी में भी पढ़ाया करें।

शिक्षक बोला, सर। हमें हिंदी आती ही नहीं तो हम पढ़ाएँ कैसे। विनायक बोले, हिंदी सीखना तो बहुत आसान है। आप थोड़ी हिंदी सीख लीजिए। लेकिन शिक्षक नई भाषा सीखने को तैयार नहीं था। अधेड़ उम्र का शिक्षक बोला, सर। आप जो कह रहे हैं वह तो ठीक है लेकिन इस उम्र में हमसे अब कोई नई भाषा नहीं सीखी जाएगी। इस समय मुझे जो कुछ आता है, उससे ही जितनी चाहे काम ले लें। आप चाहे तो छह घंटे के बजा आठ घंटे काम करा लें लेकिन नई पढ़ाई न कराएँ। इस पर विनायक ने समझाया, कोई २० वर्ष का हो या ८० का, अगर उसमें कुछ नया सीखने की इच्छा मर गई है तो वह बूढ़ा ही नहीं निर्जीव है। यही मानसिकता देश की गुलामी का कारण है। शिक्षक पर इसका गहरा असर पड़ा और उसने कुछ ही दिनों में हिंदी सीख ली। जानते हैं वह विनायक कौन थे। वह थे विनोबा भावे। उनका बचपन का नाम विनायक था। बाद में महात्मा गांधी ने उनका नाम विनोबा भावे रखा था। वह किसी को उपदेश ही नहीं देते थे, बल्कि खुद भी उसका पालन करते थे। उन्होंने अंतिम समय तक कुछ न कुछ सीखते रहे और ४६ साल की आयु में उन्होंने इस्लाम को समझने के लिए अरबी भाषा की पढ़ाई करके कुरान शरीफ का अध्ययन किया। यहीं नहीं, सभी धर्मों को समझने के लिए उन्होंने १६ भाषाओं का अध्ययन किया था।

३९०) एक उद्‌बोधक पत्र- भूदान के दिनों की बात है। विनोबा भूमिहीन लोगों के लिए भूमि प्राप्त करने के हेतु देश भर में पदयात्रा कर रहे थे। अचानक बिहार में उन्हें बुखार आ गया और लगातार चलता रहा। मैं भूदान में उनके साथ था, लेकिन कुछ समय के लिए दिल्ली आया था। अखबारों में विनोबा की अस्वस्थता का समाचार पढ़ा, तो उन्हें पत्र लिखा। विनोबा ने जो उत्तर दिया, वह अद्‌भुत था। उन्होंने लिखा- आपका पत्र मिला। मेरा स्वास्थ्य पहले से ठीक है। चिंता का कोई कारण नहीं। मनुष्य जब शरीर के साथ अनाचार करता है, तो प्रकृति गुरु शिक्षा देती ही है। पत्र के आगे के पैरे में

उन्होंने जो लिखा, वह तो और भी अद्‌भुत था- आपके पत्र में अनायास मेरा ध्यान तार के पते पर गया- सत्साहित्य। मैं उसके लिए आपको बधाई देता हूं। सस्ता साहित्य हवा में उड़ जाएगा, सत्साहित्य अमर रहेगा।

३९१) गुरु निष्ठा- आचार्य विनोबा भावे का परमधाम आश्रम गांधीजी के सेवाग्राम आश्रम के निकट था, लेकिन विनोबाजी गांधीजी के परम भक्त होते हुए भी कभी उनके पास नहीं जाते थे। यदि कभी जाना ही पड़ता तो खड़े-खड़े बात करके लौट आते।

एक दिन किसी ने उनसे पूछा, आप गांधीजी के पास क्यों नहीं जाया करते ?

विनोबा ने उनकी बात सुनकर कहा, किसके पास जाने को कहते हैं ? अरे, मैं तो हमेशा उनके पास ही रहता हूं।

३९२) बेकार के हथियार- आचार्य विनोबा भावे अपने ज्ञान और सद्विचारों के कारण समाज के हर वर्ग में लोकप्रिय थे। लोग दूर-दूर से उनसे अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते और संतुष्ट होकर जाते। हर विषय पर विनोबा भावे के विचार इतने सरल और स्पष्ट होते कि वे सुननेवाले के हृदय में सीधे उतर जाते थे। उनके शिष्यों में कई विदेशी भी शामिल थे। एक बार आचार्य विनोबा भावे पदयात्रा करते अजमेर पहुंचे। वहां उन्हें एक अमेरिकी पर्यटक मिला जो उनसे काफी प्रभावित था। उस अमेरिकी ने विनोबा भावे के साथ कुछ दिन बिताए और उनसे कई विषयों पर चर्चा की। विदा लेते वक्त उसने कहा, मैंने आपसे और आपके देश से काफी कुछ सीखा और अब मैं अपने मुल्क वापस जा रहा हूं। अपने देशवासियों को मैं आपकी ओर से क्या संदेश दूं, जिससे उन्हें लाभ पहुंचे? विनोबा जी कुछ क्षण के लिए गंभीर हो गए फिर बोले, मैं क्या संदेश दे सकता हूँ। मैं तो बहुत छोटा आदमी हूं और आपका देश तो बहुत ही बड़ा है। इतने बड़े देश को कोई कैसे उपदेश दे सकता है? लेकिन अमेरिकी पर्यटक नहीं माना। जब उसने काफी जिद की तो विनोबा बोले, अपने देशवासियों से कहना कि वे अपने कारखानों में साल में तीन सौ पैंसठ दिन काम करके खूब हथियार बनाएं, क्योंकि तुम्हारे आयुध कारखानों और नागरिकों को काम चाहिए। काम नहीं होगा, तो बेरोजगारी फैलेगी। किंतु जितने भी हथियार बनाए जाएं उन्हें तीन सौं पैंसठवें दिन समुद्र में फेंक दिया जाए। विनोबा जी की बात का मर्म समझकर अमेरिकी पर्यटक का सिर शर्म से झुक गया।

३९३) भाषण का मूल्य - यह घटना १९४५ की है। सेवाग्राम में चर्खा संघ विद्यालय का उद्‌घाटन विनोबा भावे जी को करना था। मई का महीना था। भीषण गर्मी पड़ रही थी। विनोबा जी का आश्रम सेवाश्रम से दस मील दूर था। आयोजकों ने विनोबा जी को लाने के लिए एक तांगा भेजा। साथ में एक कार्यकर्ता था।

विनोबा जी उस कार्यकर्ता से बोले, तांगे को लौटा दो, मैं पैदल ही चला जाऊंगा। मेरे भाषण से किसी को क्या फायदा होगा, वह तो भगवान ही जाने, लेकिन तात्कालिक लाभ इस घोड़े को मिलना चाहिए जो इस भीषण गर्मी में हमें दस मील खींचकर ले जाने के लिए आया है। मैं चाहता हूं इस घोड़े को कष्ट न हो। आज के मेरे भाषण का इतना मूल्य काफी है। ऐसा करके मुझे संतोष होगा। यह कहकर उन्होंने तांगे को लौटा दिया और पैदल ही चल पड़े। यह देख कार्यकर्ता भौचके रह गये।

३९४) राष्ट्र की बुनियाद - यह उन दिनों की बात है जब विनोबा भावे बिहार की यात्रा पर निकले हुए थे। एक जगह एक छात्र उनसे मिलने आया। वह उन्हें प्रणाम कर उनके पास बैठ गया। वह चुपचाप बैठा रहा और विनोबा जी को देखता रहा। विनोबा जी और लोगों से बात कर रहे थे फिर थोड़ी देर बाद उनका ध्यान उसकी ओर गया। उन्होंने उसकी ओर कागज का एक बड़ा सा टुकड़ा बढ़ाते हुए कहा, इसे जोड़ कर भारत का एक नक्शा बनाओ। कागज के उस टुकड़े को लेकर उसने नक्शा बनाने का प्रयास तो किया, लेकिन वह सही नक्शा नहीं बना सका। तभी पास बैठा एक उत्साही युवक विनोबा भावे से बोला, बाबा, आदेश हो तो मैं इस टुकड़े को जोड़कर भारत का नक्शा बना दूं। विनोबा भावे ने कहा, फिर

देरी किस बात की। उन्होंने उसे नक्शा बनाने की अनुमति दे दी। अनुमति मिलते ही उसने उसी क्षण कागज के उस टुकड़े को जोड़कर भारत का नक्शा बना दिया। विनोबा जी ने उस नक्शे को देख कर पूछा, भैया, तुमने इतनी जल्दी इस टुकड़े को किस तरह जोड़ दिया कि एक सुंदर सा नक्शा बन गया? युवक ने उत्तर दिया, बाबा, इस टुकड़े के पीछे जहां एक ओर भारत का नक्शा है तो दूसरी ओर एक आदमी का चित्र भी है। मैंने आदमी के उस चित्र को जोड़ा तो भारत का नक्शा अपने आप बन गया। विनोबा जी ने कहा, भैया, तुमने अनजाने में ही एक बड़ी बात कह दी है। इस बात को गांठ बांध लो कि यदि हमें इस विशाल देश को जोड़ना है तो पहले यहां बसनेवाले लोगों को जोड़ना होगा। देश का हरेक आदमी यदि आपस में जुड़ जाएगा तो अपना यह देश भी अपने आप जुड़ कर महान बन जाएगा। इसलिए आपस के भेदभाव को दूर करना जरूरी है। हर तरह की असमानता को मिटाना होगा। वह छात्र विनोबा भावे के मर्म को समझ गया।

३९५) ज्यादा प्यार- ईसा ने देखा कि एक गड़रिए ने बड़े प्यार से एक छोटी भेड़ को अपने कंधे से उतारा, उसे स्नान कराया, उसके बाल सुखाए और फिर हरी-मुलायम घास खाने को दी। जब भेड़ उस घास को खा रही थी, तब गड़रिए की खुशी देखते बनती थी। ईसा गड़रिए के पास ही बैठे विश्राम कर रहे थे। उन्होंने प्रसन्नचित्त गड़रिए को देखकर पूछा, तुम इतना खुश क्यों हो रहे हो?

गड़रिए ने कहा- महात्मन। यह भेड़ जंगल में प्राय: हमेशा भटक जाती है। मेरे पास सौ भेड़ें हैं, वे सब सीधे घर आती हैं। इसीलिए इसे इतना प्यार देता हूँ कि यह फिर कहीं न भटके। यह सुनकर ईसा ने अपने शिष्यों से कहा, सुनो अपने भटके हुए भाइयों के साथ हमें भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा यह गड़रिया अपनी नन्ही भेड़ के साथ करता है। जो लोग अपनी राह से भटक गए हैं, उन्हें प्यार ही वापस रास्ते पर ला सकता है।

३९६) इंसान की सेवा- एक व्यापारी कुछ अत्यंत मूल्यवान वस्तुएँ खरीदकर उनको ईसा को समर्पित करने के लिए ले गया। उसने विनम्र शब्दों में कहा, प्रभु यह चीज बड़ी कीमती है। मैंने बड़ी कठिनाई से जुटाई है। आप इसे ग्रहण करके मुझे उपकृत कीजिए।

ईसा ने नजर उठाकर कहा, मैं इस भेंट को नहीं ले सकता। यह चोरी के पैसे से खरीदी गई है। व्यापारी विस्मित होकर बोला, नहीं प्रभु। यह आप कैसे कहते हैं ? मैंने तो इसे अपनी कमाई के पैसे से खरीदा है। ईसा बोले, यदि तुम्हारा पड़ोसी भूखा और नंगा है और तुम्हारी तिजोरी भरी है, तो वह पैसा चोरी का ही है। तुमने उसे उन जरूरतमंदों से चुराया है, जो इसके अभाव में लाचार और मजबूर होकर कष्ट उठा रहे हैं। अपनी इस भेंट को ले जाओ और इसे बेचकर जो पैसा अए, उसे भूखों को भोजन और नंगों को कपड़ा देने में खर्च करो। व्यापरी ने अनुनय करते हुए कहा, प्रभु मेरे पास अभी बहुत धन है। आप जो आदेश दे रहे हैं, मैं उसका पालन भी अवश्य करूंगा, परंतु आप इस भेंट को तो ले लीजिए। इस आग्रह पर ईसा बोले, जो जरूरतमंदों की सहायता करता है, वह मुझे सबसे कीमती भेंट देता है। ईसा की बात व्यापारी को समझ में आ गई और वह निर्धन लोगों की सेवा में जुट गया।

३९७) एक दिन यीशु शिष्य याकूब ने जनसभा को संबोधित कर कहा- विश्वास यदि कर्मरहित होता है तो वह मृत्यु तुल्य है। वह कैसे महाशय, कृपया स्पष्ट करें। एक श्रद्धालु ने पूछा।

जब इब्राहीम के पुत्र इसहाक को वेदी पर चढ़ाया गया तो वह कर्म से धार्मिक था। इब्राहिम ने परमेश्वर का विश्वास किया। मानव केवल विश्वास से ही नहीं, कर्म से धर्मी हो सकता है। जैसे शरीर आत्मा बिना मृत है, वैसे ही विश्वास भी बिना कर्म के व्यर्थ है। कर्महीन विश्वास कभी किसी का उद्धार नहीं कर सकता।

३९८) सुधार- एक बार ईसा मसीह अपने कुछ शिष्यों को लेकर अल्फियरना नाम के व्यक्ति के यहां भोजन करने गये। अल्फियरना ने अपने कई मित्रों को भी निमंत्रित किया था, जो उकी तरह ही बदनाम और बुरे थे।

इसकी खबर जब ईसा मसीह के अन्य शिष्यों को मिली तो उन्होंने इसका विरोध करते हुए शिकायत की आपको अल्फियरना के घर भोजन करने कभी नहीं जाना चाहिए था।

ईसा मसीह ने उन शिष्यों को समझाया- आप ही लोग बतलाइये कि चिकित्सक रोगियों के घर जाता है या स्वस्थ लोगों के घर?

रोगियों के घर जाता हैं सभी ने एक स्वर में कहा।

फिर बुरे लोगों के बीच जाकर उन्हें सुधारने में आप लोग मुझे क्यों रोकते हैं और विरोध क्यों करते है ?

इस प्रश्न पर सभी चुप थे।

३९९) सबसे बड़ा विश्वास- एक बार भयंकर तूफान से गेलीलो झील का पानी बांसों ऊपर उछलने लगा। झील में जो नावें चल रही थीं, वे बुरी तरह डगमगाने लगीं। लहरों का पानी था कि जैसे नावों को निगल जाना चाहता था। बार-बार पानी नावों की दीवार से टकराता और भीतर छलक आता। ऐसे में नावों के यात्री डर के मारे थरथराने लगे थे।

लेकिन ऐसी ही एक नाव में एक व्यक्ति तूफान और उसके खतरों से बेखबर एक कोने में निर्द्वद्व सोया हुआ था। तूफान तेज हुआ तो उसके साथियों ने उसे जगाया। जागने के बाद उसने ध्यान से तूफान का मुआयना किया और फिर अपने साथियों से बोला- आखिर इसमें डरने की बात क्या है। तूफान तो आते ही रहते हैं, नावें भी डूब जाती हैं और मनुष्य भी मरते ही रहते हैं। इस सबमें ऐसी नई बात क्या है, जो आप लोग इतना घबरा रहे हैं।

सभी उस व्यक्ति की बातें सुनकर अवाक रह गए। वह व्यक्ति फिर बोला- विश्वास की शक्ति तूफान से बहुत बड़ी है। तुम विश्वास क्यों नहीं करते कि यह तूफान क्षण भर बाद बंद हो जाएगा। भयभीत यात्रियों के उत्तर के प्रतीक्षा किए बगैर उस अलमस्त ने अपनी आंखें बंद कीं और अपने भीतर की झील में उतर गया। पूरी शक्ति के साथ उसने कहा- शांत हो जाओ मूर्ख। और सचमुच तूफान थम गया। कुछ इस तरह कि जैसे किसी शैतान बच्चे को उसके पिता ने जोरदार डांट लगा दी हो। नावें हिलना बंद हो गईं। यात्रियों ने चैन की सांस ली।

अब वे उस अलमस्त व्यक्ति को ध्यान से देख रहे थे। वह व्यक्ति कोई और नहीं, जीसस क्राइस्ट थे। वे साथियों के मुकाबिल होकर बोल रहे थे- दोस्तो, विश्वास बहुत बड़ी चीज है। तुमने गलती यह की कि तूफान को विश्वास से भी बड़ा मान लिया। आज के बाद दोबारा कभी तूफान में फंसों तो अपने विश्वास का आसरा लो, तुम्हें कुछ नहीं होगा।

४००) ईसा मसीह अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। रात में एक जगह रुके तो देखा कि उनके पास केवल पांच रोटियां थीं। सवाल उठा कि रोटियां कैसे पूरी पड़ेंगी। ईसा मसीह ने उनके छोटे-छोटे टुकड़े करके एक पात्र में डाल दिए। सभी लोगों ने एक-एक टुकड़ा निकालकर खाया। सबको बराबर भोजन मिला और सबके पेट भर गए। शिष्यों ने गुरु को आश्चर्य से देखा। तब यीशू ने उन्हें कहा- जहां सद्भाव हो वहां ऐसा ही संतोष भी आ जाता है।

४०१) धैर्य- एक बार यीशु मसीह अपने कुछ चेलों के साथ एक गाँव से गुजर रहे थे। रास्ते में एक जगह आठ-दस छोटे-छोटे गड्ढे खुदे देखकर एक चेले ने यीशु मसीह से इन गड्ढों के बारे में पूछा। जवाब में उन्होंने कहा, किसी व्यक्ति ने पानी की तलाश में इतने गड्ढे खोदे हैं। एक गड्ढे में पानी न मिलने पर दूसरा खोदा और दूसरे में न मिलने पर तीसरा। इसी तरह एक के बाद एक इतने गड्ढों को खोदने के बावजूद उसे जब पानी नहीं मिला तो थक-हारकर बैठ गया। उस आदमी

में धैर्य का अभाव था। उस व्यक्ति ने इतने गड्ढे खोदने में जितना श्रम तथा समय लगाया, उतना अगर एक ही गड्ढा खोदने में लगाता तो उसे पानी अवश्य मिलता।

उन्होंने चेलों से कहा, मनुष्य को चाहिए कि कोई भी काम तन-मन-धन से करने के साथ-साथ धैर्य भी रखे तो उसे परिश्रम के फल की प्राप्ति जरूर होगी।

४०२) मन की सफाई- शमीन यहूदी धनी किन्तु धर्मात्मा भी थे। उन्होंने ईसा को अपने यहां आमंत्रित किया। उनकी श्रद्धा-पोषणार्थ ईसा ने आतिथ्य स्वीकार कर लिया। उसी गांव की मेरी नामक वेश्या ने भी ईसा को अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दिया। ईसा ने सहजभाव से स्वीकार कर उसे भी कृतार्थ किया। मेरी के यहां ईसा का भोजन करना शिष्यमण्डली में चर्चा का विषय बन गया। वे मेरी के यहां उनका आतिथ्य ग्रहण करना अनुचित ठहराने लगे। ईसा तक बात पहुंचने पर उन्होंने शिष्यों को समझाया- प्रायश्चित करनेवाला पवित्र है। दुष्टता पर अड़े रहनेवाला पापी है। मन बदलने पर व्यक्ति वैसा नहीं रहता। मेरी ने अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर लिया। ईसा ने पुन: इस प्रसंग का स्मरण करते हुए शिष्यों से कहा कि यदि बुहारी गन्दगी तक न पहुंचे तो सफाई कैसे होगी ?

४०३) अपना-पराया- ईसा मसीह अपने भक्तों के साथ सत्संग एवं परामर्श में व्यस्त थे। ईसा के परिवारजन उनसे मिलने आए। लोगों ने कहा प्रभु। क्या आप-अपने परिवारवालों की ओर ध्यान नहीं देंगे ? ईसा मसीह ने कहा संसार में मेरा अपना पराया कोई भी नहीं है। मैं तो समस्त संसार को ही अपना परिवार मानता हूँ और इसी बात को ध्यान में रखकर सारे कार्य करता हूँ। तुम भी यही आदर्श अपनाओ। अपने-पराये का भेद मिट जायेगा।

४०४) स्वर्ग का अधिकारी- एक बार ईसा मसीह के पास एक धनवान व्यक्ति आया। उसने निवेदन किया, प्रभु, मैं आपके बताए रास्ते पर चलता हूँ। प्रतिदिन प्रार्थना करता हूं। लोगों की सेवा करता हूं। मुझे स्वर्ग भेज दीजिए। ईसा मसीह ने पूछा, क्या वास्तव में तुम मेरी शिक्षाओं का पालन करते हो? क्या मेरे प्रत्येक आदेश को मानने के लिए तैयार हो? धनवान व्यक्ति बोला, हां प्रभु मैं आपका हर आदेश मानने को तैयार हूं।

ईसा मसीह ने कहा, यदि तुम मेरा हर आदेश मानने को तैयार हो तो मुझे अपनी तिजोरियों की चाबियां सौंप दो। यह सुनकर वह धनवान व्यक्ति हक्का-बक्का रह गया। उसने कहा, मैं भला तिजोरियों की चाबी कैसे दे सकता हूं। उन्हीं में तो मेरी सारी जमा-पूंजी है। उनके बिना तो मैं सेवा के कार्य भी नहीं कर सकता। इस पर ईसा मसीह बोले, पुत्र, अपने लोभ को छिपाने के लिए सेवा की आड़ मत लो। सेवा भावना और परोपकार के लिए धन संजोने की नहीं मन संजोने की जरूरत है। तुम अभी भी लोभ में बंधे हुए हो। कोई भी व्यक्ति जो काम, क्रोध और मद में जकड़ा है कभी भी स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता। स्वर्ग प्राप्ति के लिए इन बंधनों से मुक्त होना जरूरी है। यह सुनकर धनवान व्यक्ति लज्जित हो गया।

४०५) सेवा का अर्थ- ऐसा माना जाता है कि ईसा मसीह शर्मीले स्वभाव के थे। उन्हें सभाओं आदि में जाना अच्छा नहीं लगता था। बार-बार अनुरोध करने पर वह एक सभा में जाने के लिए राजी हो गए। उन्होंने सोचा कि वहां वह अपने विरोधियों के प्रश्नों के उत्तर देकर उनके संदेहों को दूर करेंगे। सभा में पहुंचने पर उन्होंने देखा कि एक आदमी दर्द से कराह रहा है। ईसा मसीह उसके पास जाकर उसकी सेवा करने लग गए। उनके विरोधियों ने सोचा कि ईसा मसीह जानबूझकर उसके उपचार में लग गए हैं ताकि सभा की कार्यवाही से बच सकें। उनमें से एक ने व्यंग्य करते हुए कहा, आए थे तुम शास्त्रार्थ करने, करने लगे हकीम का काम। ईसा मसीह ने कहा, प्रिय बंधुओं, इससे पहले कि मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दूं, कृपया आप लोग बताइए कि अगर एक व्यक्ति के पास एक ही भेड़ हो और वही कुएं में गिर जाए तो वह व्यक्ति क्या करेगा? सारा काम छोड़कर

उस भेड़ को निकालने का प्रयास करेगा या नहीं? वहां उपस्थित सभी लोगों ने सहमति में सिर हिलाया। ईसा मसीह ने फिर कहना शुरू किया, मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य है संसार के पीड़ितों एवं दुखियों की सेवा करना। इसे ही मैं ईश्वर सेवा समझता हूं। ईश्वर ने मुझे इस संसार में ऐसे लोगों की सेवा के लिए ही भेजा है। प्रवचन, व्याख्यान और शास्त्रार्थ तो चलते ही रहेंगे। मन में किसी असहाय और दुखी के प्रति सहानुभूति नहीं है तो यह सब निरर्थक है, प्रपंच है। ये मेरे मुख्य उद्देश्य- मानव सेवा से दूर हैं, इसलिए बेकार हैं। यह सुनकर ईसा मसीह के सारे विरोधियों ने सिर झुका लिया।

४०६) संत का संदेश - ईसा मसीह अपने निकट आनेवाले हर छोटे-बड़े इंसान पर समान रूप से प्रेम बरसाते थे। एक दिन वह अनेक दुखी-पीड़ित लोगों से मिल रहे थे, तभी उनके कुछ विरोधी वहां आ पहुंचे। उन्हें ईसा मसीह का यह आचरण नागवार गुजरा। उन्होंने ईसा मसीह की इस बात के लिए आलोचना शुरू कर दी कि वे हर भूखे-नंगे व्यक्ति को भी गले लगा रहे हैं, जबकि उन्हें इन जैसे गंदे लोगों से दूर ही रहना चाहिए। फिर वे चिल्ला-चिल्लाकर ईसा मसीह को भला-बुरा कहने लगे। ईसा मसीह ने उन्हें शांत रहने और अपनी बात एक-एक कर रखने का अनुरोध किया। उनमें से एक बोला- आप हममें और इन पतितों में कोई फर्क ही नहीं समझते। आप सबसे एक जैसा व्यवहार करते हैं। हमें बस आपसे यही शिकायत है। ईसा मसीह ने शांत भाव से कहा, बस यही बात। चलो तुम्हें वैद्य के पास ले चलते हैं। तुम्हारी जांच करा देते हैं। बाकी बातें बाद में करेंगे। यह सुनकर विरोधी बोला, मगर मैं तो ठीकठाक हूं। वैद्य-हकीम की आवश्यकता तो रोगियों को होती है। ईसा मसीह बोले, हां ठीक कह रहे हो। मैं भी वैद्य की तरह राह भटके लोगों को राह दिखाता हूं। ऐसा तो कोई भी हो सकता है- छोटा या बड़ा। वैद्य भी इस बात का ख्याल नहीं करते कि कौन व्यक्ति उनके पास आया है। मेरे लिए भी यह मायने नहीं रखता। मैं तुम लोगों के प्रति उतना ही स्नेह रखता हूँ जितना और लोगों से। फिर तुम्हें शिकायत नहीं होनी चाहिए। इस बात से उनके विरोधी शर्मिंदा होकर वहां से चले गए।

४०७) दान - एक बार प्रभु यीशू एक धर्म स्थल में बैठे हुए थे। उन्होंने देखा कि नगर के धनी भक्तजन पास में रखे दान-पात्र में सिक्के व आभूषण-गहने डालते और उनकी ओर गर्व से देखकर चरणों में बैठ जाते। इसी बीच एक दरिद्र सी दिखाई देनेवाली महिला आई और दान पात्र में दो सिक्के डालकर चुपचाप वहां से चली गई। उसने प्रभु यीशू की तरफ देखा भी नहीं।

प्रभु यीशू ने सामने बैठे शिष्यों से पूछा तुम्हारी निगाह में सबसे बड़ा दानी कौन है? एक शिष्य ने उत्तर दिया- जो सबसे ज्यादा धन देता है, वही बड़ा दानी होता है।

प्रभु यीशू ने कहा, तुम्हारी सोच गलत है। जो धनी है, जिनके पास जरूरत से ज्यादा धन है, वे ज्यादा धन दान में देते हैं तो इसमें खास बात क्या है। असली दानी तो वह महिला थी जिसने गरीब होते हुए भी अपनी दिन भर की मजदूरी से प्राप्त सिक्के ही दान पात्र में डाल दिए और घमण्ड से किसी की ओर देखा भी नहीं। चुपचाप सिक्के डालकर चली गई।

४०८) प्रसिद्ध दार्शनिक कनफ्यूशियस एक बार घूमते हुए छोटे से राज्य में पहुंच गए। वहां के राज प्रमुख ने उनकी ख्याति के अनुसार उनका सत्कार किया। उसी समय एक दरबारी तीन पिंजरे लेकर पहुंचा। एक पिंजरे में चूहा, दूसरे में बिल्ली तथा तीसरे में बाज था। तीनों पिंजरों में उनका भोजन रखा हुआ था, लेकिन कोई भी भोजन नहीं खा रहा था। वे सभी एक-दूसरे को देख रहे थे। राज प्रमुख को बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे भोजन पर ध्यान न देकर एक-दूसरे को क्यों देख रहे थे। कनफ्यूशियस ने उन्हें बताया कि ये तीनों जीव भयग्रस्त हैं। चूहे को बिल्ली से भय है, बिल्ली को बाज से भय है और बाज इस बात से भयभीत है कि कहीं ये दोनों बचकर न निकल जाएं। अत: वह भी इस भय के कारण कुछ नहीं खा रहा है।

४०९) सम्राट कौन- चीन के महान दार्शनिक कंफ्यूशियस एक दिन एकांत में बैठे चिंतन कर रहे थे। तभी उधर से चीन के सम्राट गुजरे। अपनी ही धुन में बैठे कंफ्यूशियस ने सम्राट की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। यह बात सम्राट को बड़ी नागवार गुजरी। वे संत के पास गए और उनसे पूछा तुम कौन हो? मैं सम्राट हूं, संत ने कहा। सम्राट को यह सुनकर गुस्सा भी आया पर साथ ही आश्चर्य भी। अत: उसने क्रोध को दबाते हुए कहा, सम्राट तो मैं हूं। देखो मेरे पास सेना है, सेवक है व धन है। तुम्हारे पास तो कुछ भी नहीं है। संत कंफ्यूशियस ने नम्रता पूर्वक कहा, देखिए सेना उसको चाहिए जिसके पास शत्रु हो पर मेरा कोई शत्रु नहीं है, इसलिए सेना की आवश्यकता मुझे नहीं है। सेवक उसको चाहिए जो आलसी हो और अपना काम करने की ताकत न रखता हो। मैं न तो कमजोर हूं और न ही आलसी व कामचोर, अत: सेवक की कोई जरूरत नहीं। रही धन दौलत, तो भाई यह उसको चाहिए जो गरीब हो, दरिद्र हो। संत की यह बात सुन सम्राट ने साश्चर्य पूछा पर आपका धन तो दिखलाई नहीं पड़ता। संत ने हंसकर कहा, भाई। मेरे पास संतोष है। ये सोना, चांदी मेरे लिए व्यर्थ है। अत: तुम ही बताओ की सम्राट कौन है? संत की बात सुन सम्राट नतमस्तक हो गया और उनके चरणों में गिर पड़ा।

४१०) महान आत्मा- एक बार चीन का सम्राट कन्फ्यूशियस के पास आया और बोला, मैं किसी महान आत्मा का साक्षात्कार करना चाहता हूं। इस पर कन्फ्यूशियस ने कहा, सम्राट, आपके पास अपार वैभव है। लोग आपको पूजते हैं। आप तो स्वयं महान आत्मा हैं। सम्राट ने कहा, क्षमा करें, मैं ऐसा नहीं मानता। मैं वास्तविक महान आत्मा के दर्शन करना चाहता हूं, इसलिए तो आपके पास आया हूं। तब कन्फ्यूशियस के एक शिष्य ने कहा, सम्राट आप कैसी बात कर रहे हैं। आप तो एक महान आत्मा के सामने खड़े हैं। फिर आपके समझ दुविधा कैसी। कन्फ्यूशियस से बढ़कर कोई और महान आत्मा है क्या ?

कन्फ्यूशियस मुस्कराए और राजा से बोले, इसकी बातों पर मत जाइए। जब आपने ठान ही लिया है तो चलिए आपको महान आत्मा के दर्शन करा दूं। कन्फ्यूशियस सम्राट को एक झोपड़ी के पास ले गए। उसके सामने एक बुढ़िया वृक्ष लगा रही थी। कन्फ्यूशियस ने पूछा, माता, आज तुम फिर पेड़ लगाने का प्रयत्न कर रही हो। अब तो मृत्यु निकट है। क्या तुम इनके फल खा पाओगी ? वृद्धा ने कहा, इतना भी नहीं जानते। मैं मर जाऊंगी, लेकिन पूरी दुनिया तो नहीं मरेगी न। मैं अपने बारे में नहीं सोचती। मेरे बाद की पीढ़ी इसके फल खाएगी। यह सुनते ही सम्राट ने कन्फ्यूशियस से कहा, मैं आपका आभारी हूं। आपने मुझे महान आत्मा के दर्शन करा दिए।

४११) जनता का विश्वास - महान संत कन्फ्यूशियस से परामर्श लेने व उनसे अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाने के लिए अनेक लोग उनके पास आते रहते थे। एक बार कुछ राजनेता राजनीति के संदर्भ में कुछ प्रश्नों का उत्तर जानने व राजनीति पर विचार-विमर्श करने के लिए आए। चर्चा चल ही रही थी कि उनमें से एक राजनेता ने पूछा, कृपया बताएं, सच्चे अर्थों में एक आदर्श व अच्छा शासक कौन हो सकता है? प्रश्न सुनकर कन्फ्यूशियस बोले, महानुभाव, जिसके पास जनता के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त साधन हों, देश की रक्षा के लिए पर्याप्त सेना और शस्त्रास्त्र हों तथा जिस पर जनता का पूर्ण विश्वास हो, वही वास्तव में एक अच्छा व आदर्श शासक साबित हो सकता है। राजनेता बोले, लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण क्या है? इस पर कन्फ्यूशियस बोले, इनमें सबसे महत्वपूर्ण जनता का विश्वास है। राजनेता इससे पूर्णतया सहमत हो गए।

४१२) परीक्षा- यूरोप में एक सन्त हुए हैं- सुकरात। वे जितने सन्तस्वभाव के थे उनकी पत्नी उतनी ही कर्कशा थी।

उसका नाम था अंटीपी। वह नित्य ही उसके हिसाब से निष्क्रिय, अकर्मण्य सुकरात के साथ झगडा ही किया करती थी। वह बात-बात पर रुष्ट हो जाती थी और सुकरात को भला-बुरा कहा करती थी। सुकरात चुपचाप सुन लिया करते थे। किन्तु उनके इस मौन के कारण उसका पारा और भी चढ़ जाया करता था। इसी प्रकार वह एक दिन किसी बात पर उन पर

रुष्ट होकर उन्हें भला-बुरा कह रही थी। इसी वजह से सुकरात के पास आने वाले लोग बहुत हैरान होते।

लेकिन सुकरात हर परिस्थिति में शांत और स्थिर रहते। उनकी पत्नी बोलती रहती और वे चुपचाप मुस्कराते रहते। उनकी पत्नी को सुकरात की पढ़ने की आदत से खास तौर से चिढ़ थी। सुकरात जब भी कोई पुस्तक उठाते वह बड़बड़ाने लगती, आग लगे इन किताबों को। अगर तुम्हें हर समय इनके साथ रहना है तो मेरे साथ विवाह क्यों किया ? एक दिन वह अपने कुछ शिष्यों के साथ घर आए तो उनकी पत्नी किसी बात को लेकर भुनभुनाने लगी। सुकरात शांत बैठे रहे। सुकरात ने इस ओर कोई ध्यान न दिया और अपने शिष्यों से बातचीत करते रहे। सुकरात की चुप्पी ने उन्हें और आगबबूला कर दिया। इस पर उनकी पत्नी का पारा और भी चढ़ गया और वह ऊंची आवाज में सुकरात को अपशब्द कहने लगी। इसका भी सुकरात पर कोई असर नहीं हुआ। सुकरात के कुछ शिष्य और मित्र भी यह सब देख रहे थे। वे पहले भी देखते ही रहते थे। जब सुकरात ने पत्नी की किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया तो वह और भी बिगड़ गई।

तब पत्नी ने क्रुद्ध होकर मकान के बाहर पड़ा कीचड़ सुकरात के सिर पर डाल दिया। सुकरात जोर से हंसे और बोले, तुमने आज एक पुरानी कहावत झुठला दी। कहा जाता है कि जो गरजते हैं, वह बरसते नहीं, पर आज देखा की जो गरजते हैं वह बरसते भी हैं। पास ही पानी से भरा कोई बर्तन रखा था, उसने उसे उठाया और सुकरात के ऊपर उंडेल दिया। सुकरात के शिष्यों ने सोचा कि अब तो सुकरात अवश्य क्रोधित हो उठेंगे।

किंतु सुकरात हँसकर बोले, देवी, आज तो तुमने पुरानी कहावत झुठला दी। कहते हैं कि गरजनेवाले बादल बरसते नहीं, पर आज देख लिया कि गरजनेवाले बरसते भी हैं। बहुत गर्जना के बाद कुछ वर्षा तो होनी चाहिए थी न। उनके एक शिष्य को सुकरात का यह अपमान बरदाश्त न हुआ। वह क्रोध से चिल्लाकर बोला, यह स्त्री तो दुष्ट है। आपके योग्य नहीं है। उनके एक मित्र ने उनकी ऐसी दुर्दशा होती देखकर कहा- ऐसी कर्कशा नारी को तो छड़ी से ही ठीक करना चाहिए। सुकरात हंसकर बोले- गरजने के बाद तो बादल बरसते ही हैं और आप चाहते हैं कि हम दोनों झगड़ें और आप तमाशा देखें ? सुकरात बोले, नहीं, यह मेरे ही योग्य है, क्योंकि यह ठोकर लगा-लगाकर देखती रहती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का। इसके बार-बार उत्तेजित करने से मुझे यह भी पता चलता रहता है कि मुझमें सहनशक्ति है या नहीं।

इस शान्त पुरुष के सम्मुख वह मित्र बेचारा लज्जित सा हो गया।

एक दिन एक व्यक्ति ने सुकरात से प्रश्न किया, आपके व आपकी पत्नी में स्वभावानुसार जमीन-आसमान का अंतर है। ऐसी पत्नी के साथ जीने से तो मरना अच्छा है। बेहतर होगा आप अपनी पत्नी को तलाक दे दें। सुकरात ने उत्तर दिया, इसमें तलाक लेने की तो कोई बात ही नहीं है। वह बोलती रहती है और मैं सुनता रहता हूं। एक प्रकार से यह मेरा मनोरंजन ही है। उसके स्वभाव से मैं संयम रखने में समर्थ हूं। सहिष्णुता एवं धीरज का यह असाधारण नमुना था।

सुकरात बोले, ऐसा न कहो। वह योग्य है। ऐसा करके वह मेरा बुरा नहीं बल्कि भला ही कर रही है। पत्नी ने ये शब्द सुने तो झट वह उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली, आप तो देवता हैं। मैंने आपको पहचानने में भूल की। मुझे क्षमा कर दीजिए। उसके बाद उनकी पत्नी का व्यवहार बदल गया।

४१३) एक युवक ने सुकरात से कामयाबी का रहस्य पूछा। सुकरात ने उस युवक को अगले दिन नदी तट पर आने को कहा। दूसरे दिन दोनों मिले। सुकरात ने युवक को नदी में उतरने को कहा। यह आदेश पाकर युवक नदी में उतरता चला गया। जैसे ही पानी युवक के गले तक आया सुकरात ने नौजवान का सिर पानी में डुबो दिया। वह कुछ देर तक सुकरात का हाथ हटाने के लिए जूझता रहा लेकिन वह सुकरात का भारी-भरकम हाथ हटा नहीं पाया। युवक का शरीर नीला पड़ने लगा।

तभी सुकरात ने अपना हाथ हटा लिया। बाहर आकर नौजवान ने सबसे पहले जोर की सांस ली फिर वह ईश्वर को याद करने लगा। सुकरात ने पूछा, जब तुम पानी के अंदर थे तो तुम्हें किस चीज की सबसे ज्यादा आवश्यकता थी ? युवक बोला, हवा की। सुकरात ने कहा, कामयाबी का यही राज है। आप जो कुछ भी हासिल करना चाहें उसके लिए जबर्दस्त छटपटाहट होनी चाहिए। तभी व्यक्ति जीवन में सफलता की सीढ़ियां चढ़ता जाता है।

४१४) सबसे बड़ा ज्ञानी- एक जिज्ञासु भक्त यूनान में एक संत के पास पहुंचा। उसने कहा, महाराज मेरा कल्याण कैसे हो, कोई उपाय बताएँ। संत ने कहा, मैं तो भगवान का भजन करने वाला साधारण साधु हूँ। सुकरात इस देश के सबसे बड़े ज्ञानी हैं। तुम उनके पास जाओ, वही तुम्हें उपाय बता सकते हैं।

वह व्यक्ति सुकरात के पास पहुंचा और बोला कि मुझे पता है कि आप सबसे बड़े ज्ञानी हैं। अत: शरण में आया हूँ। मेरे उद्धार का कोई उपाय बताएँ। सुकरात ने उत्तर दिया, भैया मैं ज्ञानी नहीं हूं। जिन महात्मा ने तुम्हें मेरे पास भेजा है, असली ज्ञानी तो वहीं है।

जिज्ञासु पुन: उन संत के पास पहुंचा। उन्होंने उसे फिर सुकरात के पास भेज दिया। सुकरात ने इस बार कहा, भैया सबसे बड़ा ज्ञानी तो क्या, मैं तो साधारण ज्ञानी भी नहीं हूं। सच पूछो तो मैं अज्ञानी हूं। तुम पुन: उन साधु के पास जाओ तथा मैंने जो जवाब दिया है उससे उन्हें अवगत कराओ।

इस बार साधु ने जिज्ञासु से कहा, वत्स सुकरात जैसे महान व्यक्ति का यह कहना है कि मैं अज्ञानी हूं। उनके सबसे बड़ा ज्ञानी होने का परिचायक है। ज्ञानी होने के बावजूद जिसे अहंकार नहीं छू पाया है, वही तो असली और सबसे बड़ा ज्ञानी होता है।

४१५) सत्यनिष्ठ सुकरात- सुकरात को जब जहर पिलाया जा रहा था, तब लोगों ने सोचा कि वह बहुत दुखी होंगे, पर सुकरात ने इसे सहजता से लिया। उनके सामने दो प्रस्ताव रखे गए। पहला प्रस्ताव यह था कि वह एथेंस छोड़कर चले जाएं। इस पर सुकरात ने कहा, जिस एथेंस में जन्मा, पला वहीं मरूंगा। जिस भूमि पर मैंने हजारों व्यक्तियों को सत्य की रोशनी दी, हजारों बंद आंखों को खोला, उसे छोड़कर जाने की बजाय मैं जहर पीकर मर जाना अच्छा समझूंगा। यहां मरने से आनेवाली पीढ़ियां कहेंगी कि मैं ऐसे लोगों द्वारा मारा गया जो सुसंस्कारित एवं सभ्य थे। जब इस प्रस्ताव को सुकरात ने ठुकरा दिया तो दूसरा प्रस्ताव यह रखा गया कि वह भले ही एथेंस में रहे, लेकिन सत्य बोलना बंद कर दें। यह सुनते ही सुकरात जोर से हंसे और बोले, यह तो मेरे लिए और भी असंभव है। यह तो ऐसा ही है कि कोई पक्षियों से कहे कि गीत मत गाओ, चांद और सितारों से कहे कि प्रकाश मत दो। यह तो उनका स्वाभाविक कार्य है। वे तो सदैव वैसा करेंगे।

आखिरकार सुकरात ने दोनों शर्तें मानने से इनकार कर दिया। तब उनसे कहा गया कि उनकी मृत्यु निकट है। इस पर उन्होंने कहा, जीवन और मृत्यु के बारे में तो केवल भगवान जानता है, जो हमारा और तुम्हारा मालिक है।

अपने जीवन के अंत का फैसला सुनकर भी सुकरात के चेहरे पर चिंता की लकीर नहीं आई। वह निश्चिंत होकर अपना धर्म संदेश हमेशा की तरह शिष्यों में बांटने में लगे रहे। यह देखकर शिष्य हतप्रभ थे। वह समझ नहीं पा रहे थे कि सुकरात इस तरह निश्चिंत कैसे है। जीवन का अंत होने से एक दिन पूर्व की रात सुकरात आपने दूर-दूर से अंतिम दर्शन करने आए शिष्यों से घिरे बैठे थे। वह अपने शिष्यों को धर्म का उपदेश दे रहे थे और शिष्य उनका उपदेश तन्मयता से सुन रहे थे। कहीं गम का कोई माहौल नहीं था। सुकरात स्वयं दुनियावी आकर्षण से निर्लिप्त थे और उस रात उनके चेहरे पर अनूठा दिव्य तेज चमक रहा था। आत्मा की अमरता का उपदेश देनेवाली वाणी और अधिक प्रभावशाली हो गई थी। उन्होंने शिष्यों से कहा, सत्य पर सदैव अटल रहना चाहिए। मृत्यु का खौफ केवल अज्ञानियों को सताता है। सुकरात के उपदेशों

का उनके शिष्यों पर व्यापक प्रभाव था, फिर भी जब सुकरात अपना उपदेश समाप्त कर चुके तो एक शिष्य ने पूछा, मृत्यु के बाद आपकी अंत्येष्टि किस प्रकार की जाए? यह सुनकर सुकरात का चेहरा तमतमा गया। बोले, आत्मा रहित मिट्टी बने शरीर को ठिकाने लगाने के विषय में सोचने की क्या जरूरत है? कुछ क्षण मौन रहकर उन्होंने कहा, मारेंगे वे और गाड़ोगे तुम। वे अक्लमंदी से मारेंगे और तुम समझदारी से मेरे आत्महीन शरीर को गाड़ोगे। लगता है अब तक मैंने जो समझाया वह व्यर्थ हो गया। मूर्ख, आत्मा अमर है और यह शरीर नश्वर है। आत्मा को कौन मार सकता है। कौन गाड़ सकता है। तमाम शिष्य सुकरात के मुख से आत्मा व शरीर की यह व्याख्या सुनकर उनके समक्ष नतमस्तक हो उठे। मृत्यु की पूर्व रात्रि किसी शोक या गम की रात न होकर मृत्यु के महोत्सव की रात्रि बन गई थी।

सुकरात को जहर पिला दिया गया। उनका भौतिक शरीर तो यूनान की धरती में विलीन हो गया, पर उनके द्वारा दी गई सत्य की ज्योति हमेशा जगमगाती रहेगी।

४१६) विष का प्याला- यूनान के महान दार्शनिक सुकरात कैदखाने में भी अपने शिष्यों से घिरे बैठे थे और ईश्वर, जीव, आत्मा तथा सत्यासत्य की मीमांसा में व्यस्त थे जैसे वह कैदखाना न होकर कोई शास्त्रार्थ करने की जगह हो।

सुकरात को प्राणदंड की सजा सुनाई जा चुकी थी और उन्हें विष का प्याला पिलाकर मार डालने का आदेश था। यह बात सर्वविदित थी फिर भी नित्य की भांति सुकरात अपने शिष्यों को तर्क द्वारा आत्मा आदि के बारे में तत्व ज्ञान प्रदान कर रहे थे।

बीच में उन्हें लगा कि कैदखाने का संतरी बार-बार निकट आता है। शायद कुछ कहना चाहता है तो उन्होंने अपने एक शिष्य क्रीटो से कहा, उससे पूछो, क्या चाहता है ?

क्रीटो ने संतरी से बात की तो पता चला कि बात करने से कैदी के रक्त में गर्मी बढ़ जाती है, उसके कारण विष का असर जल्दी नहीं होता। उस हालत में दो प्याले विष देना पड़ सकता है। इसलिए वह चाहता है कि सुकरात ज्यादा बातें नहीं करें।

सुकरात के पूछने पर क्रीटो ने संतरी का कथन स्पष्ट बता दिया। सुनकर सुकरात पर कोई असर नहीं पड़ा। वह उसी व्यस्तता में क्रीटो से कहने लगे, तो संतरी से कह दो कि वह दो प्याले विष तैयार कर रखे।

वह फिर उसी आनन्द, निर्भयता एवं तल्लीनता से तत्व-ज्ञान की चर्चा में निमग्न हो गए।

४१७) सत्य के लिए - महान विचारक सुकरात जब लोगों को सच्ची बात बताते तो सत्ताधारी उनसे नाराज होते थे। उन्होंने सुकरात पर आरोप लगाया कि वह नास्तिक हैं और युवकों को शासन के विरुद्ध भड़का रहे हैं। उन्हें कैद कर लिया गया। एक दिन उनके कुछ शिष्य जेल में उनसे मिलने आए। उन्होंने कहा, गुरुवर, हमने आपको जेल से निकालने की एक योजना बनाई है। किसी भी दिन उसे अंजाम दिया जा सकता है। इस पर सुकरात ने पूछा, क्या मेरे ऊपर लगा अभियोग हटा लिया गया है? शिष्य बोले, नहीं। हम जेल अधिकारियों की आंखों में धूल झोंककर आपको निकाल लेंगे। इस पर सुकरात बोले, नहीं वत्स, ऐसी भूल मत करना। वह तो मेरी भयानक मृत्यु होगी। क्या तुम मेरा ऐसा घृणित अंत चाहते हो? मुझे अकाल मृत्यु के हाथों क्यों सौंपना चाहते हो? शिष्य निरुत्तर होकर चले गए। न्यायालय ने सुकरात को मृत्युदंड दिया।

४१८) सुकरात के तीन छोटे प्रश्न - सुकरात एक बार वे बाजार से गुजर रहे थे तो रास्ते में उनकी मुलाकात एक परिचित व्यक्ति से हुई। उन सज्जन ने सुकरात को रोककर कुछ बताना शुरू किया। वह कहने लगा कि क्या आप जानते हैं कि कल आपका मित्र आपके बारे में क्या कह रहा था?

सुकरात ने उस व्यक्ति की बात को वहीं रोकते हुए कहा- सुनो, भले व्यक्ति। मेरे मित्र ने मेरे बारे में क्या कहा यह बताने से पहले तुम मेरे तीन छोटे प्रश्नों का उत्तर दो। उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा- तीन छोटे प्रश्न।

सुकरात ने कहा- हां, तीन छोटे प्रश्न। पहला प्रश्न तो यह कि क्या तुम मुझे जो कुछ भी बताने जा रहे हो वह पूरी तरह सही है?

उस आदमी ने जवाब दिया- नहीं, मैंने अभी-अभी यह बात सुनी है।

सुकरात ने कहा- कोई बात नहीं, इसका मतलब यह कि तुम्हें नहीं पता कि तुम जो कहने जा रहे हो वह सच है या नहीं।

अब मेरे दूसरे प्रश्न का जवाब दो कि क्या जो कुछ तुम मुझे बताने जा रहे हो वह मेरे लिए अच्छा है? आदमी ने तुरंत कहा- नहीं, बल्कि इसका ठीक उल्टा है। सुकरात बोले- ठीक है। अब मेरे आखिरी प्रश्न का और जवाब दो कि जो कुछ तुम मुझे बताने जा रहे हो वह मेरे किसी काम का है भी या नहीं।

व्यक्ति बोला- नहीं, उस बात में आपके काम आने जैसा तो कुछ भी नहीं है। तीनों प्रश्न पूछने के बाद सुकरात बोले- ऐसी बात जो सच नहीं है, जिसमें मेरे बारे में कुछ भी अच्छा नहीं है और जिसकी मेरे लिए कोई उपयोगिता नहीं है, उसे सुनने से क्या फायदा। और सुनो, ऐसी बातें करने से भी क्या फायदा।

४१९) विवेक की शक्ति - एक दिन महान दार्शनिक सुकरात अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। किसी गंभीर विषय पर चर्चा चल रही थी। तभी एक ज्योतिषी वहां आ पहुंचा। वह चेहरा देखकर चरित्र बताने के लिए मशहूर था। वह गौर से सुकरात को देखते हुए उनके शिष्यों से बोला, तुम लोगों ने इस व्यक्ति को अपना गुरु बनाया है, इसका सम्मान करते हो, लेकिन इसका चरित्र गंदा है। इसके नथुनों की बनावट बता रही है कि यह क्रोधी है। यह सुनते ही सुकरात के शिष्य ज्योतिषी को मारने दौड़े पर सुकरात ने उन्हें फौरन रोक दिया और कहा, ये विद्वान हैं, इन्हें बोलने दो। इस पर ज्योतिषी तेज आवाज में बोला, मैं सत्य को छिपाकर सत्य का अपमान नहीं करना चाहता। इस व्यक्ति के सिर की बनावट से पता चलता है कि यह अत्यधिक लालची है और ठोड़ी बताती है कि यह सनकी है। इसके होठों से मालूम होता है कि यह देशद्रोही निकलेगा। सुकरात मुस्कराते रहे। उन्होंने उस व्यक्ति को उपहार देकर आदर के साथ विदा किया। एक शिष्य से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया, गुरुदेव, वह आदमी लगातार बकवास करता रहा, फिर भी आपने उसे इतना सम्मान दिया। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। सुकरात गंभीर होकर बोले, उस व्यक्ति ने बकवास नहीं की बल्कि उसने सत्य कहा और सत्य की तरफ से मुंह मोड़ना बुरी बात है। यह सुनकर सारे शिष्य हैरत भरी नजरों से सुकरात को देखने लगे। एक शिष्य ने पूछा, यानी आप वैसे ही हैं, जैसा उसने बताया है? सुकरात बिना संकोच के बोले, हां, उसने जो कहा है, वह सत्य है। मुझमें भी कई अवगुण हैं लेकिन। सारे शिष्य एक साथ बोले, लेकिन क्या गुरुदेव? शिष्यों को समझाते हुए सुकरात ने कहा, क्रोधावेग में उससे एक चूक हो गई। शिष्यों ने पूछा कैसी चूक? सुकरात बोले, उसने मेरे विवेक पर ध्यान नहीं दिया जिसकी शक्ति से मैं अपने सभी दुर्गुणों को कैद करके रखता हूं।

४२०) संसार- एक दृष्टिहीन व्यक्ति ने सुकरात से पूछा, क्या मेरी आंखों की रोशनी वापिस आ सकती है ? सुकरात कहा, हां आ सकती है ? पर आप कौन-सी रोशनी प्राप्त करना चाहते हैं ? उस आदमी ने सहज भाव से उत्तर दिया, जिससे मैं यह संसार देख सकूं। इस पर सुकरात ने कहा, इस संसार को क्या देखोगे ? जो भी इसे देखता है, अंधा हो जाता है। इस पर उस आदमी को बेहद आश्चर्य हुआ। उसे सुकरात की बातों पर विश्वास नहीं हो पा रहा था। उसने तो सुना था कि संसार बहुत सुंदर है। उसने थोड़ा सकुचाते हुए सुकरात से कहा, मैंने तो सुना है कि सांसर बहुत सुंदर है। इस पर सुकरात मुस्कराए और बोले, तुमने ठीक ही सुना है कि संसार वाकई बहुत सुंदर है, लेकिन सिर्फ सुनने में, देखने में नहीं। उस

व्यक्ति ने जिज्ञासावश पूछा, वह कैसे ? सुकरात ने जवाब दिया, तुम बाहर से अंधे हो, अंदर से नहीं। मगर यह संसार तो अंदर से अंधा है, इसीलिए यहां रोज मारकाट मची रहती है। चारों तरफ अनीति का बोलबाला है। इसलिए तुम उन लोगों से अच्छे हो जिनके पास बाहर की दृष्टि तो है पर अंदर की नहीं। हो सकता है तुम्हारे पास बाहर की रोशनी आ जाए तो इस दुनिया की चकाचौंध तुम्हें अंदर से अंधा बना दे। सुकरात की बातें उसे समझ में नहीं आईं, इसलिए उसने इन बातों को विस्तार से स्पष्ट करने का अनुरोध किया। सुकरात ने समझाते हुए कहा, मेरे भाई, बाहर की नजर से केवल संसार दिखता है जिसमें अनेक पापकर्म रोज होते हैं। परंतु अंदर की दृष्टि से लोक-परलोक, सृष्टि-स्त्रष्टा सब दिखाई देते हैं, प्रकृति का रहस्य और मनुष्य जन्म का उद्देश्य समझ में आता है। इससे मनुष्य भटक नहीं पाता और सत्य के रास्ते पर चलता है। यह संसार तो नश्वर है, इसे प्राप्त करने से क्या लाभ ? अब सुकरात की बातें उस व्यक्ति को समझ में आ गईं। उसने आंख पाने की इच्छा त्याग दी और प्रभु की आराधना में लीन हो गया।

४२१) नफरत की आग - एक बार प्रख्यात दार्शनिक सुकरात अपने प्रशंसकों से घिरे बैठै थे। तभी उनका एक पुराना अनुयायी सूदन वहां आया और पीछे की ओर चुपचाप बैठ गया। सुकरात की नजर उस पर पड़ी तो वह आश्चर्यचकित होकर बोले- अरे सूदन तुम इतने कमजोर और सुस्त क्यों दिख रहे हो? सूदन तनिक आवेश में बोला- गुरुदेव मेरा प्रतिद्वंद्वी हर क्षेत्र में प्रगति कर रहा है। वह हर स्तर पर मुझसे आगे निकला जा रहा है। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर पा रहा। उसके प्रति नफरत की आग मुझे झुलसा रही है। आप ही बताएं मैं क्या करूं? सुकरात उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले- प्रिय बंधु, अपने प्रतिद्वंद्वी के प्रति नफरत पालने में तुम जितनी शक्ति और समय नष्ट कर रहे हो, वह किसी और को नहीं, तुम्हें ही पतन की ओर ले जा रहा है। जरा बताओ नफरत की इस आग में तुम क्या और निखर गए हो या आगे बढ़ गए हो? नफरत की आग शत्रु तक पहुंचे या नहीं स्वामी को ही सबसे पहले जलाती है। एक दिन ऐसा आता है कि नफरत करनेवाला खुद ही कमजोर और हारा हुआ नजर आता है जैसा कि तुम अभी नजर आ रहे हो। क्या तुमने पहले ही अपने प्रतिद्वंद्वी से हार मान ली है? इससे तो अच्छा होता कि तुम भी उससे आगे निकलने के लिए प्रयास करते। तुमने गंभीरता से प्रयास किया होता तो अब तक तुम कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल कर चुके होते। सूदन को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने उसी वक्त अपने मन से घृणा का भाव निकाल फेंकने का वचन दिया।

४२२) हँसी का संदेश- चीन में तीन संन्यासी थे। वे आम संन्यासियों से हर मामले में अलग थे। वे गंभीर रहने की बजाय हर समय हंसते रहते थे। वे कौन थे, कहां से आए थे, कोई नहीं जानता था। कोई उनका नाम पूछता तो वे बताते नहीं थे। जब लोग उनसे पूछते कि तुम कौन हो तो वे एक दूसरे को देखकर हंसने लग जाते। कोई सवाल पूछता तो इतनी जोर से हंसते कि पूछने वाला सकपका जाता या फिर वह भी उनके साथ हंसने लग जाता। धीरे-धीरे उनकी हंसी पूरे माहौल में फैल जाती। वे तीनों हंसनेवाले संन्यासी के तौर पर मशहूर हो गए। जब भी कोई पूछता कि आप हमारे सवालों पर हंसते क्यों हो तो एक कहता कि तुम इतनी गंभीरता से पूछते हो कि तुम्हें दिया गया कोई भी जवाब खतरनाक ही होगा। दूसरा कहता कि हम तो जिंदगी को गंभीर नहीं समझते। गंभीरता का मतलब है कि इस संसार में कुछ सार है। लेकिन हमें तो वह निस्सार नजर आता है। वह तो एक खेल है। हमें तो उन लोगों से दिक्कत होती है जो उसे गंभीर समझते है। इसलिए हम हंसने लगते हैं कि देखो ये कितने नासमझ हैं। ये जिंदगी को गंभीर समझते हैं। इस संसार को खेल की तरह जीकर देखो। जब उनमें से एक की मौत हो गई तो दोनों उसे हंसते-गाते जलाने ले गए। और ज्यों ही उसकी चिता में आग लगाई चारों तरफ पटाखे जलने लगे। इस तरह उसने मरते-मरते लोगों को हंसी-खुशी का संदेश दिया।

४२३) दान स्वीकार नहीं - चीन में लीत्सु नामक एक संत रहते थे। वह इतने गरीब थे कि कई बार उन्हें तथा उनकी पत्नी को भूखे पेट सो जाना पड़ता था। फिर भी लीत्सु ने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। मेहनत से वह जो कुछ कमाते उसी से अपना गुजारा करते। विद्वता, सादगी, ईमानदारी और सरलता की वजह से उनका नाम दूर तक फैल गया। लोग काफी दूर से उनके दर्शन करने तथा उपदेश सुनने आते थे। धीरे-धीरे शुंग प्रांत के राजा तक भी लीत्सु की चर्चा पहुंची। उन्होंने अपने मंत्री से उनके बारे में जानना चाहा तो मंत्री ने कहा- राजन्, वे एक महान संत हैं लेकिन गरीबी के दिन गुजार रहे हैं, कृपया उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करें। राजा ने फौरन आदेश दिया कि धन-धान्य से भरी एक गाड़ी लीत्सु की कुटिया पर पहुंचा दी जाए। धन-धान्य से भरी गाड़ी देख लीत्सु की पत्नी की आंखें खुशी से छलछला आई। उसने सोचा कि अब हमारे बुरे दिन फिर गए। अब भूखे पेट नहीं सोना पड़ेगा। गाड़ी के साथ आए दूत ने लीत्सु से विनम्रतापूर्वक कहा- हे संत, हमारे राजा ने आपके लिए दान भेजा है। कृपया इसे ग्रहण करें। लीत्सु ने सहज भाव से जवाब दिया- राजा के साथ मेरा कोई परिचय नहीं है। मैंने उन्हें आज तक देखा नहीं और न ही उन्होंने मुझे देखा। फिर भी सुनी सुनाई बातों पर उन्होंने मेरे लिए दान भेज दिया। आज तो सुनी-सुनाई बातों पर दान भेजा है, लेकिन कल इसी आधार पर वे मेरे शत्रु भी बन सकते हैं। फिर <u>जो आनंद संतोष और मेहनत की कमाई खाने में मिलता है, वह दान से मिली वस्तु में कहां</u>? लीत्सु की पत्नी उनकी बात सुनकर उनके आगे श्रद्धा से नत-मस्तक हो गई।

४२४) अमरत्व क्या है ? - एक बार एक व्यक्ति ने संत इमर्सन से प्रश्न किया जब शाश्वत नियम है कि मृत्यु को सभी प्राप्त होते है आप भी एक दिन मृत्यु के भागी बनेंगे फिर क्यों आप रात-दिन स्वाध्याय में लगे रहते हैं ?

सन्त इमर्सन ने संक्षिप्त में उत्तर दिया क्योंकि ज्ञान में घुलकर एकाकार हो जाना ही अमरत्व है। सन्त पुन: विचारों के सागर में ध्यानस्थ हो गए।

४२५) मानवता की सेवा- संत फ्रांसिस युवावस्था से ही परोपकार और दुखियों की सेवा में लगे रहते थे। उनके पिता कपड़े की दुकान करते थे। फ्रांसिस को भी दुकान में उनका हाथ बंटाना होता था। वे मौका लगते ही दुकान से कपड़े उठाकर गरीबों को दे देते थे। एक बार एक अनाथ आश्रम को उन्होंने कपड़े की पूरी गांठ ही दे दी। जब उनके पिता के एक मित्र को इसका पता चला तो वह बहुत खिन्न हुए। वह तुरंत फ्रांसिस के पिता के पास पहुंचे। उनकी शिकायत करते हुए उन्होंने कहा, तुम्हारा बेटा तो दुकान का दीवाला निकाल देगा। वह जिसे चाहे उसे कपड़े की गांठ निकालकर सौंप देता है या नगदी दे देता है। उनके पिता ने उन्हें डांट लगाई और चेतावनी दी, यदि आगे से धन दौलत या कपड़ा लुटाया तो मैं तुम्हें अपनी संपत्ति से बेदखल कर दूंगा। फ्रांसिस ने उत्तर दिया, पिताजी, मैं ऐसी संपत्ति लेकर क्या करूंगा जो दीन-दुखियों के काम न आ सके। वैसे भी मैंने तो मानवता की सेवा का व्रत ले रखा है। यह कहकर उन्होंने तत्काल घर छोड़ दिया ओर पूरी तरह पीड़ितों-उपेक्षितों की सेवा में लग गए।

४२६) प्याली में सत्य- यूनानी संत आगस्टिनस एक सुबह काला सागर के तट पर अकेले ही घूमने निकले। तब सूर्योदय हो रहा था। रात भर जागने से उनकी आंखें थकी मादी थीं। सत्य की खोज में वे अपना सारा सुखचैन खो बैठे थे। परमात्मा को पाने के विचार में उन्हें पता ही नहीं चलता था कि दिन और रात कब बीत जाते थे। शास्त्र, शब्द और विचार के बोझ तले ही वे दब गए थे। सागर के किनारे उन्होंने एक बालक को खड़ा देखा, जिसके हाथ में छोटी सी प्याली थी और वह किसी चिंता में डूबा हुआ था। आगस्टिनस ने बच्चे से पूछा- बेटे तुम यहां क्या कर रहे हो ? बच्चे ने आगस्टिनस की ओर देखा और कहा- पहले आप बताएं कि आप यहां क्या कर रहे हैं ? संभव है जो मेरी चिंता है वही आपकी भी हो।

लेकिन आपकी प्याली कहां है ? आगस्टिनस की समझ में कुछ नहीं आया। प्याली की बात सुनकर उन्हें हंसी भी आई। प्रकटत: उन्होंने कहा- मैं सत्य की खोज में हूं और उसी के कारण चिंतित हूं। बच्चा बोला मेरी चिंता का कारण यह है कि मै इस प्याली को सागर में भरकर घर ले जाना चाहता हूँ, लेकिन सागर है कि प्याली में नहीं आ रहा है। आगस्टिनस ने सुना तो उन्हें अपनी बुद्धि की प्याली भी दिखाई दी और सत्य का सागर भी। वे हंसने ले और बच्चे से बोले- मित्र सचमुच हम दोनों बालक ही हैं, क्योंकि बालक ही सागर को प्याली में भरना चाहते हैं और किसी न किसी सागर तट पर अपनी-अपनी प्यालियां लिए खड़े हैं। आगस्टिनस आगे बढ़े और सोचने लगे कि वस्तुत: संसार के सभी लोग किसी न किसी रूप में सागर तट पर अपनी-अपनी प्यालियां लिए खड़े हैं। वे दूसरों को देखते हैं जिनके पास बड़ी प्यालियां हैं। लेकिन प्याली बड़ी हो या छोटी इससे फर्क क्या पड़ता है। सागर तो उसी को मिलता है, जो अपनी प्याली भरकर घर ले जाने की बजाय उसे सागर में ही छोड़ दे।

४२७) एक बार संत प्रायमेन के पास एक व्यक्ति आया और बोला, महाशय, मेरा भाई दुष्ट प्रवृत्ति का है। वह मुझसे जला-भुना रहता है। मैं उसे माफ करता हूं मगर उसका उस पर कुछ असर नहीं होता, बल्कि वह मुझ पर और नाराज होता है। ऐसा क्यों ? प्रायमेन ने पूछा- सच-सच बताओ, क्या तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आता कि तुमने कोई गुनाह नहीं किया है और यह तुम्हें नाहक ही कोस रहा है। चूंकि मजहब कहता है कि नासमझों को माफ करो, क्या इसी कारण तुम उसे माफ करते हो ? उस व्यक्ति ने जब हामी भरी तो संत ने समझाया तुम उसे सच्चे दिल से माफ नहीं करते। वह समझता है कि तुम्हारी माफी सच्ची नहीं है।

४२८) एक रात यहूदी संत जुशिया ने सपने में देखा कि वह स्वर्ग पहुंच गई है। सुंदर वृक्षों और फूलों से स्वर्ग सुशोभित था। जुशिया ने देखा कि वहां अत्यंत आकर्षक मंदिर बने हुए हैं। उसे आश्चर्य हुआ कि आखिर यहां मंदिर की क्या जरूरत है ? संत स्वर्ग में आकर प्रार्थना क्यों करते हैं ? अब स्वर्ग के बाद उन्हें क्या पाना है ? उसने पास खड़े एक देवदूत के सामने अपनी जिज्ञासा रखी। उसने कहा, संत की प्रार्थना में ही स्वर्ग निहित है। स्वर्ग तो यहां है ही नहीं। तुम यह भ्रम दूर कर लो कि संत स्वर्ग जाता है। दरअसल संत जहां जाता है वहां स्वर्ग बन जाता है।

४२९) सभ्यता- फ्रांस का राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन अपने अंगरक्षकों और उच्चाधिकारियों के साथ पेरिस नगर में कहीं जा रहा था। मार्ग में एक भिक्षुक ने अपने सिर से टोपी उतारकर और सिर नवाकर उसका अभिवादन किया। उसके उत्तर में हेनरी ने भी अपनी टोपी उतारकर और सिर झुकाकर उसके अभिवादन का उत्तर दिया। राजा को इस प्रकार एक भिक्षुक के प्रति सिर झुकाकर अभिवादन करते देखकर एक अधिकारी ने कहा- श्रीमान, किसी भिक्षुक का आप इस प्रकार टोपी उतारकर सिर नवाकर अभिवादन करें, क्या यह उचित है ? हेनरी ने बड़ी सरलता से उस अधिकारी को समझाया- तो क्या तुम समझते हो कि फ्रांस का नरेश एक भिक्षुक जितना भी सभ्य नहीं होना चाहिए ? कम से कम मैं तो ऐसा सिद्ध नहीं करना चाहता।

४३०) सच्चा ज्ञानी- यूनान में यह पुराकथा प्रचलित है कि एक बार वहाँ की राजधानी एथेंस में विद्या की देवी डेंफी ने अपनी पूजा करने आए भक्तों के सामने सुबह-सुबह घोषणा की, शहर में एक महान ज्ञानी आए हैं। उनके चरणों की धूल से राजधानी पवित्र हो गई है। जाओ, तुम सब उनका अभिवादन करो और उनसे आशीर्वाद लो। भक्तजन उस महान ज्ञानी को खोजने चल दिए। राह में उन्होंने और लोगों को भी यह जानकारी दी और एक काफिला चल पड़ा। बहुत खोज करने पर पता चला कि पारसी धर्म के संस्थापक जरथुस्त्र राजधानी आए हैं। भक्त वहां पहुंचे और उन्होंने उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा, यह हम सब का सौभाग्य है कि संसार का सबसे बड़ा ज्ञानी आज हमारे शहर में है। यह सुनकर जरथुस्त्र ने पूछा कि लोगों को उनके आने का पता कैसे चला। लोगों ने बताया कि उन्हें विद्या की देवी ने यह जानकारी दी है।

तब जरथुस्त्र ने कहा, आप लोगों को यह भ्रम कैसे हो गया। मैं तो ज्ञानी नहीं हूं। विद्या की देवी ने किसी और के बारे में कहा होगा। जाइए फिर से पता कीजिए और मुझे भी उनके बारे में बताइए। मैं भी उनके दर्शन का लाभ उठाऊंगा। भक्त दौड़े हुए देवी के पास पहुंचे। देवी ने उनकी बात सुनकर कहा, देखो, वह मनुष्य सिर्फ ज्ञानी ही नहीं, कितना महान भी है, जो इतना ज्ञान रखने के बावजूद खुद को ज्ञानी नहीं मानता। तुम लोग फिर उनके पास जाओ। भक्त फिर उनके पास पहुंचे। उनमें से एक ने कहा, विद्या की देवी ने आप ही के पास भेजा है। जरथुस्त्र बोले, तुम लोगों ने मेरे पास आने में देर कर दी। दो दिनों पहले आकर कहते तो मैं तुम्हारा धन्यवाद स्वीकार कर लेता, क्योंकि दो दिन पहले तक मैं अपने आपको ज्ञानी मानता था। लेकिन अब मुझे पता चला है कि यह दुनिया मुझसे भी ज्यादा ज्ञानियों से भरी हुई है। मैं खुद ऐसे ज्ञानियों को ढूंढकर उनसे बहुत कुछ सीखना चाहता हूं। कृपया इस काम में आप मेरी मदद करें।

४३१) पुराना कपड़ा- संत अफ्रायत की जन्मभूमि फारस थी, पर वह सीरिया में जा बसे थे। वे नगर के बाहर एक गुफा में रहते और परमात्मा की प्रार्थना करते। उनके पास बस एक चटाई थी और एक मोटा कपड़ा, जिसे वह हरदम पहने रहते थे। एक दिन वह गुफा के बाहर बैठे थे कि फारस में नियुक्त एक राजदूत उनसे मिलने आया। वह जानता था कि संत फारस के हैं, इसलिए वह वहां से उनके लिए एक सुंदर कपड़ा ले आया था। संत को कपड़ा भेंट करते हुए उसने कहा, यह वस्त्र आपके देश का बना है कृपया इसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। संत बोले, मित्र एक बात बताओ। मान लो तुम्हारे घर पर कोई एक पुराना सेवक हो, जिसने तुम्हारी खूब सेवा की हो, क्या उसके बूढ़े होने पर तुम उसे घर से निकाल दोगे ? राजदूत ने कहा, हरगिज नहीं। इस पर संत बोले कि बस मैं भी अपने साथी इस पुराने कपड़े को हटाने के बारे में सोच नहीं सकता। इसी मोटे वस्त्र ने वर्षों धूप-सर्दी से मेरी रक्षा की है। यह जब तक मेरा साथ देगा, मैं इसे अपने साथ रखूंगा। तुम अपना यह कपड़ा ले जाओ।

४३२) अरस्तू की सीख- एक बार एक विद्वान यूनान के दार्शनिक अरस्तू से मिलने गए। उन्होंने अरस्तू से पूछा, मैं आपके गुरु से मिलना चाहता हूं। अरस्तू ने कहा, आप हमारे गुरु से मिल नहीं सकते। विद्वान ने कहा, क्या अब वह इस दुनिया में नहीं हैं ? अरस्तू ने कहा, हमारे गुरु कभी नहीं मरते। विद्वान को अरस्तू की पहेली समझ में नहीं आ रही थी। उन्होंने कहा, आपकी बात मैं समझ नहीं पा रहा हूं। अरस्तू ने मुस्कराकर कहा, दुनिया के सभी मूर्ख हमारे गुरु हैं और दुनिया में मूर्ख कभी मरते नहीं। विद्वान अरस्तू की बात सुनकर हतप्रभ रह गए। उन्होंने मन ही मन सोचा कि अरस्तु जरूर पागल हो गए है। भला इतने महान व्यक्ति का गुरु कोई मूर्ख कैसे हो सकता है। फिर भी उन्होंने साहस करके कहा, लोग ज्ञान की खोज में गुरुकुल से लेकर विद्वानों और आचार्यों तक की शरण में जाते हैं। मूर्ख की शरण में जाते हुए मैंने किसी को नहीं देखा।

अरस्तू ने कहा, आप इसे नहीं समझेंगे। दरअसल मैं हर समय यह मनन करता हूं कि किसी व्यक्ति को उसके किस अवगुण के कारण मूर्ख समझा जाता है। मैं आत्मनिरीक्षण करता हूं कि कहीं यह अवगुण मेरे अंदर तो नहीं है। यदि मेरे भीतर है तो उसे दूर करने की कोशिश करता हूं। यदि दुनिया में मूर्ख नहीं होते तो मैं आज कुछ भी नहीं होता। अब आप ही बताइए कि मेरा गुरु कौन हुआ- मूर्ख या विद्वान। विद्वान हमें क्या सिखाएगा। वह तो खुद ही विद्वता के अहंकार से दबा होता है।

अरस्तू की यह बात सुनकर विद्वान का अहंकार चूर-चूर हो गया। वह बोले, मैं तो आप से कुछ सीखने के लिए इतनी दूर से आया था, लेकिन जितनी उम्मीद लेकर आया था, उससे कहीं ज्यादा सीख लेकर जा रहा हूं। अरस्तू ने कहा, सीखने की कोई सीमा नहीं होती, कोई उम्र नहीं होती और न ही किसी गुरु की जरूरत पड़ती है। इसके लिए तो आत्मचिंतन और आत्मप्रेरणा की आवश्यकता पड़ती है।

४३३) सत्य की खोज- लाओत्से जब वृद्ध हो गए तो एक दिन उन्होंने अज्ञातवास पर जाने का निश्चय किया। उनके इस फैसले ने सबको चौंका दिया। कुछ लोगों ने उन्हें इस निर्णय पर पुनर्विचार करने को कहा पर वह तैयार नहीं हुए। प्रस्थान करने से पूर्व सम्राट ने उनसे कहा, आपने जो साधना की है और जो अनुभव प्राप्त किए हैं, जो सत्य पाया है, उन सबके बारे में पहले हमें बताएं, फिर यहां से प्रस्थान करें। लाओत्से ने कहा, मैंने जो कुछ भी पाया है और जो कुछ अनुभव हासिल किया है, वह बता नहीं सकता। मैं असमर्थ हूं। सम्राट को लगा कि वह टाल रहे हैं। उसने बहुत दबाव डाला पर लाओत्से बिना कुछ कहे वहां से चले गए। सम्राट को इसकी सूचना मिली तो उसने अपनी सभी सीमा चौकियों पर सूचित कर दिया कि लाओत्से अपने देश की सीमाओं से बाहर निकल न पाएं। जहां भी वह मिलें, उन्हें पकड़ लिया जाए और उनसे उनके अनुभव लिखवाए जाएं। लाओत्से बचकर निकलना चाहते थे पर एक चौकी पर उन्हें पकड़ लिया गया। वहां नियुक्त राज कर्मचारी ने कहा, आप जा सकते हैं, हमें कोई एतराज नहीं, पर जाने से पहले वह सब कुछ लिख दीजिए, जो आपने जीवन में पाया है और अनुभव किया है। लाओत्से ने कहा, यही सबसे बड़ी मुश्किल है। सत्य को कभी कहा नहीं जा सकता। सत्य को ज्यों ही कहा तो वह असत्य हो जाएगा। राजपुरुष ने कहा, मैं कुछ नहीं जानता। यदि मैंने आपको यहां से यूं ही जाने दिया तो मुझे मौत की सजा हो जाएगी। मुझे बचाने के लिए ही आप कुछ-न-कुछ लिख दीजिए। विवश होकर लाओत्से को लिखना पड़ा और उन्होंने जो कुछ लिखा, उसका पहला वाक्य था, सत्य को कहा नहीं जा सकता। जब सम्राट ने इसे पढ़ा तो वह हैरत में पड़ गया। उसे अहसास हो गया कि सत्य की खोज का कार्य इतना आसान नहीं है।

४३४) सेवा का संदेश- बहुत पुरानी कथा है। मिस्र में सेरापियो नामक एक संत रहते थे। दूसरों की सेाव करना ही उनके जीवन का एकमात्र मकसद था। उनके शरीर पर हमेशा मोटे कपड़े का एक चोगा होता था। जरूरत पड़ने पर दीन-दुखियों की सहायता के लिए वह उसे भी बेच दिया करते थे। सेरापिंयों में सेवा भावना इतनी प्रबल थी कि कई बार वह स्वयं को भी एक निश्चित अवधि के लिए बेचकर गरीबों को आर्थिक मदद पहुंचाते थे। उनका यह आचरण सबके लिए आश्चर्य का विषय था। एक बार उनकी अपने घनिष्ठ मित्र से भेंट हुई। उन्हें बिल्कुल फटेहाल देखकर वह चकित रह गया। उसने प्रश्न किया, भाई, आपको नंगा और भूखा रहने के लिए कौन विवश करता है? संत ने उत्तर दिया गरीब और असहाय लोगों की दशा देखकर मुझसे रहा नहीं जाता। मेरी धर्म पुस्तक का आदेश है कि दीन-दुखियों की सेवा के लिए अपनी सारी वस्तुएं बेच डालो। मैंने ईश्वर की आज्ञा के पालन को ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाया है। मित्र ने पूछा, पर आपकी धर्म पुस्तक कहाँ है? संत बोले, मैंने असहायों की सहायता के लिए उसे भी बेच दिया है। जो पुस्तक सेवा के लिए सारे सामान बेच देने का आदेश देती है, जरूरत पड़ने पर उसको भी बेचा जा सकता है। इसके दो लाभ हैं, पहला जिसके हाथों में ऐसी दिव्य पुस्तक पड़ेगी, उसकी त्याग-वृत्ति निखर उठेगी और दूसरा, पुस्तक के बदले जो पैसे मिलेंगे उनसे जरूरतमंदों की सेवा भी हो सकेगी। उनकी बात सुनकर मित्र सोच में पड़ गया और कुछ ही दिनों बाद उसने भी सेरापियों की राह पकड़ ली।

४३५) सार्थक जिंदगी - एक उत्साही युवक ने जन सेवा को ही अपने जीवन का मकसद बना लिया था। वह कहता था, दुनिया में एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो दूसरों के सहारे के बिना जीने की कल्पना नहीं कर सकता। ऐसे लोगों का दुख दूर करने और उनके साथ अपना सुख बांटने में जो संतुष्टि मिलती है, वह अपने स्वार्थों का पीछा करने में नहीं। एक बार वह युवक सख्त बीमार पड़ गया। जांच के बाद डॉक्टरों ने बताया कि वह छह महीने से ज्यादा नहीं जी सकेगा। उस युवक ने जब यह सुना तो वह दुखी होने की बजाय बोला, मुझे छह महीने तक जीने की मोहलत मिली है। मैं इसका सदुपयोग करूंगा। मरते समय मुझे कम से कम यह संतोष तो रहेगा कि मैंने सार्थक जिंदगी जी। वह एक आश्रम में रहकर विकलांग

बच्चों को पढ़ाने-लिखाने लगा। यह काम करते हुए छह महीने बीत गए और उसे पता भी नहीं चला। वह युवक जेन एडम्स था जो नब्बे वर्षों तक जीवित रहा। वह आश्रम आज भी जेन एडम्स आश्रम के नाम से मशहूर है।

४३६) मन पर विजय - मिलारेपा एक तिब्बती संत थे। अपने तप और साधना से उन्होंने अनेक सिद्धियां प्राप्त कर रखी थी। आत्मज्ञान होने पर वह सिद्धियों को तुच्छ समझने लगे। वह इनके प्रदर्शन पर विश्वास नहीं करते थे। एक दिन उनके पास एक युवक आया और अपनी स्वार्थपूर्ण सेवा सुश्रुषा से मिलारेपा को प्रसन्न करने का यत्न करने लगा। आखिर मिलारेपा ने उस युवक से कुछ मांगने को कहा। युवक बोला, मुझे ऐसा सामर्थ्य दीजिए कि मैं जो चाहे कर सकूं। मिलारेपा ने उसे एक गोपनीय मंत्र देकर उसका जप करने को कहा। वह युवक मिलारेपा को धन्यवाद दिए बगैर शीघ्रता से वहां से जाने लगा। तभी कुछ ही दूरी पर जाने पर उसे एक विचार आया और वह वापस संत के पास गया और बोला, महाशय। इस मंत्र को जपने की कुछ विधि व निषेध भी होगा, वो बताइए। मिलारेपा बोले, इस मंत्र का जप करते हुए बस एक बात का ध्यान रखना कि बंदर का स्मरण न आए। वह युवक वहां से वापस जाकर मंत्र जप की तैयारी करने लगा। लेकिन जप करते हुए उसे बंदर के ही विचार आने लगे। आंख बंद करे, तो बंदर, आंख खोले, तो बंदर दिखाई देने लगे। जैसे चिढ़ा रहे हों। वह जितना विचारों को दबाने का प्रयत्न करता, उतना ही विचार उसे परेशान करते, वह सोचने लगा कि ऐसे विचार उसके मन में पहले कभी नहीं आए। आखिर हारकर वह मिलारेपा के पास पहुंचा और अपनी समस्या बताई। मिलारेपा ने कहा, मन से संघर्ष करोगे, तो हारोगे ही, बस सहज भाव से ही मन पर विजय पाई जा सकती है।

४३७) सत्य वचन - यह उस समय की बात है जब रोमन सम्राट के अत्याचारों से वहां की जनता में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। सम्राट के अत्याचारों का विरोध करने का साहस किसी ने किया भी तो उसको मौत की सजा सुना दी जाती थी। लेकिन वहां के एक संत थे बाजिल। वह एक संत के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। एक कुटिया में रहते थे और सादा जीवन व्यतीत करते थे। वही एक आदमी थे जो सम्राट के अत्याचारों को खुल कर विरोध करते थे, लेकिन सम्राट उनके खिलाफ कोई कड़ा कदम उठाने का साहस नहीं कर पाते थे। एक दिन सम्राट ने अपने दूत को संत बाजिल के पास भेज कर कहलवाया कि वह हमारा विरोध करना बंद कर दें। इसके बदले उन्हें राज्य की तरफ से इतनी संपत्ति दी जाएगी कि वे जिंदगी भर आराम से गुजर बसर कर सकते हैं। दूत संत के पास गया और सम्राट के आदेश को सुना कर कहा, महाराज इससे अच्छा अवसर नहीं आएगा। अकेले चना भाड़ नहीं फोड़ता। अकलमंदी इसी में है कि आप सम्राट का विरोध करना छोड़ दें और सुख की जिंदगी जिएं। यदि आपने विरोध करना नहीं छोड़ दिया तो मेरी आत्मा मर जाएगी। एक संन्यासी और देश का एक नागरिक होने के कारण मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सम्राट को सही रास्ते पर लाने का प्रयास तक करता रहूं, जब तक मेरी सांसें चल रही हैं। मुझे उम्मीद है कि एक दिन सम्राट अवश्य सुधरेंगे। सम्राट से जाकर कहना कि बाजिल उनके उदार प्रस्ताव को मानने को तैयार नहीं है। जो राजा संतों और विद्वानों की चेतावनी को अनसुना करता है, उसका सर्वनाश निश्चित है। दूत की बातों का सम्राट पर इतना गहरा असर हुआ कि वह स्वयं संत बाजिल से मिलने गए और अपने अत्याचारों के लिए माफी मांगी।

४३८) कान का पक्का - शेमल्क प्रसिद्ध यहूदी संत थे। उनकी योग्यता को देखकर राजा ने उन्हें एक जिले का कार्यभार सौंप दिया। संत बोले, मैं परसों से कार्यभार संभालूंगा। कल पूरा दिन मैं अकेले आराधना करूंगा। यह सुनकर उनके एक शिष्य ने सोचा, गुरुजी अकेले में आराधना क्यों करना चाहते हैं? यह सोचकर वह उनके पीछे लग गया और छिपकर संत की प्रार्थना सुनने लगा। संत बोल रहे थे, हे परम पिता परमेश्वर। जितनी पवित्रता तुम में है, उतनी ही मुझ में है। सचमुच मैं तेरा ही अवतार हूं। मैं किसी भी प्रकार से तुम से कम नहीं हूं। मैं राज्य के इस जिले का महान रखवाला हूं, महान न्यायाधीश हूं।

शिष्य से आगे सुना न गया और वह तुरंत संत के सामने आ खड़ा हुआ और बोला, बस-बस। बहुत हुआ। मैं अपनी प्रशंसा नहीं कर रहा था। मैं तो केवल अपने कान पक्के कर रहा हूं। शिष्य ने जब इसका मतलब पूछा तो संत बोले, मुझे जिले की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया है। अब हर जगह और क्षण मेरी अति प्रशंसा होने वाली है, चारों ओर चापलूसों की भीड़ जमनेवाली है। इसलिए अपनी प्रशंसा के लिए सुने जाने वाले इन शब्दों को मैं खुद ही बोल-बोलकर कान पक्के करना चाहता हूं ताकि मैं इन शब्दों पर विश्वास न कर अपने कार्य को उचित ढंग से कर सकूं। यह सुनकर शिष्य उनके चरणों में झुक गया।

४३९) न्याय का रास्ता - यहूदी धर्मगुरु वूल्फ अत्यंत परोपकारी और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनके सामने जो भी मामला निपटाने के लिए लाया जाता, वे बड़ी शांति से दोनों पक्षों को सुनकर उचित निर्णय देते थे। इसलिए जनता के बीच वे लोकप्रिय थे और लोग उन्हें निष्पक्ष न्यायकर्ता के रूप में काफी सम्मान देते थे। एक बार वूल्फ के घर से चांदी का एक बर्तन चोरी हो गया। वूल्फ की पत्नी ने यह बात उन्हें बताई। वूल्फ ने पत्नी से जानना चाहा कि उसे किस पर संदेह है? पत्नी ने अपने घर की नौकरानी पर शक जाहिर किया क्योंकि वही दिन भर उनके घर में रहकर सभी कार्य करती थी। जब वूल्फ ने नौकरानी से सच्चाई जाननी चाही तो उसने स्वयं को निर्दोष बताया। वूल्फ की पत्नी को नौकरानी की बातें पर विश्वास नहीं था, इसलिए वह धर्म न्यायालय से न्याय पाने के लिए घर से जाने लगी। तब वूल्फ भी अपना धर्माचार्य का चोगा पहनकर चलने के लिए तैयार होने लगे। यह देख उनकी पत्नी ने कहा- आप क्यों तैयार होने लगे? आपको मेरे साथ चलने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय में क्या और कैसे बोला जाता है, यह मै। बखूबी जानती हूं। वूल्फ ने उत्तर दिया- तुम तो सब कुछ जानती हो, लेकिन यह अनपढ़ भोली-भाली नौकरानी कुछ नहीं जानती। मैं इसके पक्ष में न्यायालय जा रहा हूं ताकि इसे न्याय मिल सके। समाज के अंतिम व्यक्ति तक न्याय निष्पक्ष व पूर्णरूप से पहुंचाना चाहिए, तभी दूध का दूध और पानी का पानी होता है। यह सुनकर पत्नी ने नौकरारी के खिलाफ आरोप वापस ले लिया।

४४०) सत्य की राह- जब मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म में प्रचलित रूढ़ियों के विरोध में आवाज उठाई तो एक खास तबके ने उन्हें और उनके सहयोगियों को तरह-तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। इससे उकताकर एक दिन मार्टिन लूथर के एक शिष्य ने उनसे कहा, तब तो हद हो गई है, अब आप एक शाप देकर इन सब लोगों को जलाकर खाक कर दीजिए। मार्टिन लूथर ने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है? शिष्य बोला, आपकी प्रार्थना तो भगवान सुनते हैं। उन्हें प्रार्थना में कह दें कि इन सब पर बिजली गिरे। मार्टिन लूथर ने कहा, यदि मैं भी ऐसा ही विचार करने लगूं तो मुझमें और उनमें क्या अंतर रह जाएगा? यह सुनकर शिष्य सोच में पड़ गया। उसने फिर कहा, लेकिन इन लोगों का अविवेक, अन्याय और नासमझी तो देखिए। आप जैसे सात्विक सज्जन और परोपकारी संत को ये न जाने क्या-क्या कहते हैं। मार्टिन लूथर बोले उसे देखना हमारा काम नहीं है। हमें तो अपने ढंग से असत्य और विकृतियों को उखाड़ फेंकने का काम करना है। शेष सारा काम ईश्वर को स्वयं देखना है। शिष्य फिर भी संतुष्ट न हुआ। उसने पुन: विनम्रता से कहा, आप अपनी शक्ति आजमा कर ही उन्हें क्यों नहीं बदल देते? आप तो सर्वसमर्थ हैं। इस पर मार्टिन लूथर ने कहा, यदि राग और द्वेष, रोग और दोष अंत:करण से न घटे तो गुरु उसमें किस प्रकार सहायक बन सकते हैं। मेरा काम है पाप का विसर्जन कर सत्य और शुभ का नवसर्जन करना। दूसरों को जो करना हो, करें। अपना काम तो अपने रास्ते पर दृढ़तापूर्वक चलना है।

४४१) संत की सीख - एंथेस में सोलन नामक एक विद्वान संत रहते थे। उनकी विद्वता तथा त्याग से सभी प्रभावित रहते थे। अनेक व्यक्ति उनसे अपनी समस्या के समाधान कराते थे। सोलन विभिन्न स्थानों पर घूमते रहते थे। एक दिन भ्रमण करते-करते वे लीड़िया नामक देश में जा पहुंचे। वहां के राज कारूं को संत सोलन के आगमन का पता चला।

उसने उनके काफी चर्चे सुन रखे थे। उसने आदरपूर्वक सोलन को अपने महल में बुलवाया। संत राजा के महल में आए। कुछ देर बातें करने के बाद राजा कारूं अभिमानपूर्वक संत सोलन से बोला, महाराज, आपने मेरा देश और महल तो देख ही लिया। यह देखकर आपको क्या लगता है? भला इस दुनिया में कोई मुझसे ज्यादा सुखी और संपन्न हो सकता है? राजा के अभिमान भरे शब्दों को सुनकर संत सोलन सहज भाव से बोले, संसार में सुखी उसी को कहा जा सकता है जिसका अंत सुखमय हो। संत का यह कथन कारूं को अच्छा नहीं लगा। संत वहां से चले गए। कुछ समय बाद कारूं ने फारस राज्य पर आक्रमण कर दिया। लेकिन वहां के राजा साइरस ने उसे हराकर गिरफ्तार कर लिया। जब राजा कारूं को साइरस के सामने प्रस्तुत किया गया तो उसने कारूं को जीवित जला डालने की सजा सुना डाली। अब कारूं को संत सोलन के कहे शब्द याद आए कि जिसका अंत सुखमय है वही सुखी है। जब उसे प्राणदंड के लिए ले जाया जाने लगा तो वह हाय सोलन, हाय सोलन करके रोने लगा। राजा साइरस संत सोलन का बहुत बड़ा भक्त था। जब उसने कारूं के मुंह से संत सोलन का नाम सुना तो दंग रह गया। उसने कारूं से पूछा, तुम संत सोलन का नाम क्यों ले रहे हो? इस पर कारूं बोला, मैं उनके कथन को याद कर अपनी वाणी को उनके नाम से पवित्र कर रहा हूं। यह सुनकर साइरस ने कारूं को तुरंत आजाद कर दिया। राजा कारूं संत सोलन का भक्त बन गया।

४४२) सच्ची भक्ति- संत राबिया के पास दो व्यक्ति पहुंचे। राबिया ने उनमें से एक से पूछा- भाई, तू खुदा की इबादत किसलिए करता है ? उसने जवाब दिया- नरक के भयानक कष्टों से बचने के लिए। तब राबिया ने दूसरे से भी यही सवाल पूछा। उसने कहा- स्वर्ग बहुत ही सुंदर है। वहां तरह-तरह के भोग, सुख और आराम हैं। मैं उन्हें ही पाने के लिए इबादत करता हूं।

इस पर राबिया ने कहा- नासमझ लोग ही डर या लालच से इबादत करते हैं। न करने से तो यह भी अच्छा है, परंतु मान लो अगर स्वर्ग-नरक न होते तो क्या तुम मालिक की बंदगी ही न करते ? सच्ची भक्ति तो वही है जो डर या लालच के बिना की जाती है।

४४३) सत्य की खोज- राबिया नसरी एक बहुत प्रसिद्ध साध्वी हुई हैं। उनके आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति के चर्चे आज तक जनजीवन में पढ़े और सुने जाते हैं। एक बार वे अनेक संतों के साथ आध्यात्मिक चर्चा में लीन थी। वहां बैठे एक संत का कहना था कि अध्यात्म के लिए जरूरी नहीं कि संगीत का सहारा लिया ही जाए, जबकि राबिया का मानना था कि ऊपर वाले को याद करने के लिए यह जरूरी न सही, लेकिन एक बेहतर तरीका है। इससे उस सर्वशक्तिमान से आत्मिक तौर पर जुड़ने में सहूलियत होती है। असल में संगीत हमें एकाग्रता देता है जो ईश्वरोपासना के लिए आवश्यक तत्व है। कुछ ही देर में वहां हसर बसरी नाम के एक संत आ पहुंचे। एक बार हसन बसरी को क्या सूझा कि उन्होंने दरिया पर मुसल्ला बिछाया और राबिया से कहा, आओ, यहां नमाज पढ़ें, यहां नमाज में किसी तरह का खलल नहीं पड़ेगा।

उन्होंने कहा, बहन राबिया। क्यों न हम झील के पानी पर बैठकर खुदा की बात करें। ऐसा कहा जाता है कि हसन बसरी पानी पर आराम से चल सकते थे। दरअसल हसन को पानी पर चलने की सिद्धि प्राप्त हुई थी और इसी का प्रदर्शन करने को वह उतावले थे।

राबिया नसरी उनके इशारे को समझ गईं और बोली, हसन भैया। हम खुदा का जिक्र आसमान में उड़ते हुए करें तो कैसा रहे? राबिया नसरी को आकाश में उड़ने का कमाल हासिल था। राबिया ने हवा में मुसल्ला बिछाकर कहा, आओ, यहां नमाज पढ़ें। हसन का मुसल्ला पानी पर तैर रहा था और राबिया का हवा में। देखकर हसन को कुछ कमतरी का अहसास होने लगा, हसन

को समझ में आ गया कि राबिया उन पर कटाक्ष कर रही हैं। अपनी पोल खुलती देख वह खीजकर रह गए।

फिर राबिया ने हसर बसरी से कहा, भैया। जो काम तुम कर सकते हो, वो तो एक छोटी-सी मछली भी कर सकती है और जो मैं कर सकती हूं उसे एक मामूली मक्खी भी कर लेती है लेकिन सत्य इस करिश्मेबाजी से कोसों दूर है। उसे तो विनम्र होकर खोजना पड़ता है। जो नम्र है वही सत्य का सच्चा अन्वेषी है। मगर उस चमत्कार से भी बड़ी कोई चीज है, जिसे हमें विनम्रता से खोजना चाहिए। हमें अपनी ताकत का प्रदर्शन नहीं बल्कि उसका व्यापक जनसमुदाय के हित में प्रयोग करना चाहिए।

४४४) एक बार राबिया की कुटिया में दो फकीर आए। उन्हें बहुत भूख लगी थी। वे पहुंचे तब राबिया के घर में दो ही रोटियां थीं। इतने में एक और फकीर आया तो राबिया ने वे रोटियां उसे दे दीं। थोड़ी देर बाद कोई दासी एक थाली लाई, जिसमें रोटियां थीं। राबिया ने रोटियां गिनीं तो वे अठारह थीं। राबिया ने कहा कि ये रोटियां मेरे काम की नहीं और उन्हें वापस कर दिया। थोड़ी देर बाद एक दूसरी दासी बीस रोटियों का थाल लेकर आई, तो उसे राबिया ने स्वीकार किया और मेहमानों से कहा, आपको भूख लगी होगी, लीजिए भोजन कीजिए। फकीरों ने भोजन किया, फिर फुरसत में उन्होंने राबिया से पूछा, आपने ऐसा क्यों किया ? तो राबिया बोली, आप थककर आए थे, भूखे थे। दो रोटियां आपके किस काम की। भगवान एक का दस देता है। सो मैंने मांगने आए फकीर को वे रोटियां दान में दे दीं। कायदे से मुझे अब बीस रोटियां मिलनी चाहिए थीं, लेकिन पहली दासी जो रोटियां लाई थी वे केवल अठारह थीं। हिसाब गड़बड़ था। इसलिए मैंने वे लौटा दीं तो फिर बीस रोटियां आईं। राबिया का विश्वास देखकर दोनों फकीर धन्य हुए।

४४५) **ईश्वर प्रेम से विशालता-** भक्तिमति राबिया के नाम से उस समय कोई भी उपस्थित नहीं था। ज्ञानानुरागी अनेक संत-साधक उनके सत्संग में आकर धार्मिक लाभ लेते थे। एक बार एक संत ने राबिया के धर्म ग्रंथ का अध्ययन करना चाहा। अनुमति लेकर पढ़ते हुए वे बीच में रुक गए। धर्म ग्रन्थ में एक पंक्ति कटी हुई थी। संत ने पाठ रोककर राबिया से कहा कि यह ग्रंथ तो खंडित हो गया है। किसी ने इसे नष्ट कर दिया है। अब दूसरा ग्रंथ लेना होगा। राबिया का धर्मग्रंथ सुरक्षित रहता था अत: संत ने पूछा कि किसने यह धृष्टता की? मैंने जबसे ईश्वर से प्रेम किया तबसे मेरे मन में घृणा-भाव समाप्त हो गया। मेरा संकुचित दृष्टिकोण विशाल हृदय में परिवर्तित हो गया। यदि शैतान भी आकर खड़ा हो जाए तो उससे भी मैं प्रेम करूंगी।

४४६) **संतोषधन-** बात बहुत पुरानी है। बसरा नगर के बाहर एक कुटिया में राबिया नाम की तपस्विनी रहती थी। वह बड़े दु:ख से जीवन बिता रही थी। कभी कभी एक महात्मा उससे कुटिया में मिलने जाया करते थे। एक दिन बसरा नगर का एक धनी व्यक्ति राबिया की कुटिया के द्वार पर बैठा रो रहा था। महात्मा ने उससे रोने का कारण पूछा तो धनी व्यक्ति बोला, राबिया, सच्चाई की राह पर चलकर हम लोगों का बड़ा कल्याण करती है और स्वयं बड़े दुख से जीवन व्यतीत कर रही है। कभी खाना मिलता है, कभी नहीं मिलता। काफी कमजोर हो गई है। अगर वह इस दुनिया से चली गई तो हम सब अनाथ हो जाएंगे। धनी व्यक्ति ने महात्मा से अनुरोध किया वह सोने की मोहरों से भरी थैली राबिया को दें। वह उनकी बात को नहीं टालेगी। महात्मा ने थैली ले ली और राबिया से कहा, आपके ईश्वर प्रेम पर हम सबको गर्व है। आपका शरीर बना रहेगा तो आप की पूजा भी चलती रहेगी। अपने शरीर की रक्षा के लिए यह सोने की मोहरों से भरी हुई थैली ले लो। राबिया ने मोहरों से भरी थैली लेने से मना कर दिया और कहा खुदा मेरा मालिक और रक्षक है। वह तो बुरे से बुरे लोगों को खाना देकर उनके शरीर की रक्षा करता है फिर वह मुझे खाना देकर मेरे शरीर की रक्षा क्यों नहीं करेगा। महात्मा जी ने राबिया को थैली लेने के लिए कई बार कहा पर राबिया ने थैली लेने से साफ मना कर दिया। राबिया के संतोष को देखकर महात्मा और

धनी आदमी दोनों ही उनके चरणों पर गिर पड़े और उससे क्षमा भी मांगी।

४४७) संत और इन्सान- प्रसिद्ध महिला सूफी संत राबिया अपने पूजा स्थल पर एक तरफ जल-कलश और दूसरी तरफ एक जलता अंगारा रखती थीं। लोग इन पूजा प्रतीकों का रहस्य पूछते, तो वे कहती, मैं अपनी अकांक्षाओं को पानी में डुबोना चाहती हूं और अहंकार को जलाना चाहती हूं, ताकि पतन के इन दोनों अबोधों से पीछा छुड़वा कर ईश्वर तक पहुंच सकूं।

इस पर एक विद्वान पुरुष ने उनसे पूछा आप तो संत हैं, सिद्ध हैं, आप में अब दोष कहां रह गए, जिन्हें आप डुबोना, जलाना चाहती हैं।

राबिया बोलीं, जिस दिन अपने आपको त्रुटिहीन मान लूंगी, उस दिन संत तो क्या साधारण इन्सान भी नहीं रह जाऊंगी। एक महान संत और साधारण इन्सान में इसी दृष्टिकोण का फर्क है।

४४८) विरोधी की पहचान- एक बार सूफी संत राबिया जंगल में कही चली जा रही थी। रास्ते में तालाब के किनारे उन्होंने हरियाली देखी और पक्षियों की चहचहाहट सुनी तो ठहर गईं। उनके बैठते ही कई पक्षी आकर उनके सिर और कंधों पर बैठ गए। जिन्हें जगह नहीं मिली वे उनके पैरों के आसपास मंडराने लगे। राबिया बड़े प्रेम से उन पर हाथ फेरती और कहती, अभी दाना तो खाया नहीं होगा ? लो मैं तुम्हें दाना खिलाती हूँ। यह कहकर उन्होंने झोले से अनाज निकाला और प्रेम से खिलाना शुरू कर दिया। वह पूरी तरह उन परिंदों के साथ खो गईं। संयोग से पास के गांव के एक-दो लोग वहां से गुजर रहे थे। वे यह अद्‌भुत दृश्य देखकर दंग रह गए। गांव पहुंचकर उन्होंने लोगों को इसके बारे में बताया। राबिया की यह अनोखी दास्तान पास के गांव में रह रहे फकीर हसन बसरी ने भी सुनी। वह सोच में पड़ गए। उन्होंने सोचा क्यों न राबिया से मिलकर इसका राज जानू। वह भी राबिया के पास पहुंचे। ज्यों ही वह राबिया के करीब आए सारे पक्षी एक-एक कर उड़ गए। हसन बसरी ने कहा, राबिया, मैं तो बड़ी हसरत के साथ तुम्हारे पास आया था। लेकिन तुमने तो सारे परिंदे उड़ा दिए। मेरी दिली इच्छा थी कि वे मेरे जिस्म पर भी खेलें। लगता है तुम्हें मेरा यहां आना गवारा नहीं हुआ। राबिया ने पूछा, पहले यह बताओ कि तुम खाते क्या हो ? बसरी बोले, मैं गांव में रहता हूं। यहां बकरे वगैरह का गोश्त तो नहीं खा सकता, अलबत्ता परिंदों का मांस खा लेता हूं। राबिया बोली, बस आगे न बोलो। परिंदे बेजुबान जरूर है, मगर वे तुम्हारी आहट पहचानते हैं। खुदा की इस दुनिया का हर जानदार प्राणी अपने को नुकसान पहुंचानेवाले को बखूबी जानता है। तुम्हारे आने की आहट सुनकर ही सारे परिंदे उड़-उड़कर अपने घोंसलों में चले गए। तुम्हारा आना मुझे तो गवारा था, पर पक्षियों को नहीं। यह सुनकर बसरी लज्जित हो गए।

४४९) मां की इच्छा- क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की बहादुरी और कर्मठता से अंग्रेज शासक भयभीत रहते थे। एक बार उन्हें गोरखपुर की जेल में रखा गया था। उस दौरान उन्हें फांसी दी जानेवाली थी। एक दिन उनके मां-पिता जेल में उनसे मिलने आए। बिस्मिल ने आगे बढ़कर पिता की चरण धूलि सिर से लगाई। फिर वह अपनी मां से लिपट गए। कुछ देर तक लिपटे रहे। उनकी आंखें भर आईं। इस बात को उनकी मां ने महसूस कर लिया। मां ने उनकी पीठ थपथपाकर कहा, अरे, मेरा बहादुर बेटा रो रहा है क्या? ऐसा कैसे हो सकता है। तुम्हें किस बात का डर है? मां की बात सुनकर रामप्रसाद मुस्कराए और बोले, मां, तुम भी अच्छी तरह जानती हो कि ये आंसू मृत्यु के भय से नहीं बह रहे। मैं तो किसी घड़ी मौत को गले लगाने के लिए तैयार हूं। ये आंसू तो तुम्हारी जैसी प्यारी मां को देखकर आ गए। पता नहीं अगले जन्म में मुझे इतनी स्नेहशील मां मिलेगी कि नहीं। मां ने कहा, बेटे, बहादुरों को ऐसी ही मां मिलती है। मैं तो खुद भगवान से यह प्रार्थना करके आई हूं कि मुझे हर जन्म में तेरे जैसा बहादुर बेटा मिले।

४५०) प्रेम को जानो - एक बार संत राबिया एक धार्मिक पुस्तक पढ़ रही थी। पुस्तक में एक जगह लिखा था, शैतान से घृणा करो, प्रेम नहीं। राबिया ने वह लाइन काट दी। कुछ दिन बाद उससे मिलने एक संत आए। वह उस पुस्तक को पढ़ने लगे। उन्होंने कटा हुआ वाक्य देख कर सोचा कि किसी नासमझ ने उसे काटा होगा। उसे धर्म का ज्ञान नहीं होगा। उन्होंने राबिया को वह पंक्ति दिखाकर कहा, जिसने यह पंक्ति काटी है वह जरूर नास्तिक होगा।

राबिया ने कहा, इसे तो मैंने ही काटा है। संत ने अधीरता से कहा, तुम इतनी महान संत होकर यह कैसे कह सकती हो कि शैतान से घृणा मत करो। शैतान तो इंसान का दुश्मन होता है। इस पर राबिया ने कहा, पहले मैं भी यही सोचती थी कि शैतान से घृणा करो। लेकिन उस समय मैं प्रेम को समझ नहीं सकी थी। लेकिन जब से मैं प्रेम को समझी, तब से बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं कि घृणा किससे करूं। मेरी नजर में घृणा लायक कोई नहीं है।

संत ने पूछा, क्या तुम यह कहना चाहती हो कि जो हमसे घृणा करते हैं, हम उनसे प्रेम करें। राबिया बोली, प्रेम किया नहीं जाता। प्रेम तो मन के भीतर अपने आप अंकुरित होनेवाली भावना है। प्रेम के अंकुरित होने पर मन के अंदर घृणा के लिए कोई जगह नहीं होगी। हम सबकी एक ही तकलीफ है। हम सोचते हैं कि हमसे कोई प्रेम नहीं करता। यह कोई नहीं सोचता कि प्रेम दूसरों से लेने की चीज नहीं है, यह देने की चीज है। हम प्रेम देते हैं। यदि शैतान से प्रेम करोगे तो वह भी प्रेम का हाथ बढ़ाएगा।

संत ने कहा, अब समझा, राबिया। तुमने उस पंक्ति को काटकर ठीक ही किया है। दरअसल हमारे ही मन के अंदर प्रेम करने का अहंकार भरा है। इसलिए हम प्रेम नहीं करते, प्रेम करने का नाटक करते हैं। यही कारण है कि संसार में नफरत और द्वेष फैलता नजर आता है।

४५१) सुख की खोज - सूफी संत राबिया एक शाम अपने दरवाजे पर कुछ खोजने लगी। उसे ऐसा करते देख पड़ोस के कुछ लोग भी इकट्ठे हो गए। उन्होंने पूछा, राबिया, बताओ तुम क्या खोज रही हो? उसने कहा, मेरी सूई गिर गई है, वही ढूंढ रही हूं। वे लोग भी सूई खोजने में राबिया की मदद करने लगे। तभी किसी ने पूछा, राबिया ठीक-ठीक बताओ कि सूई गिरी कहां है हम वही खोजेंगे। राबिया ने कहा, सूई तो मेरे घर के भीतर गिरी है। इस पर एक आदमी ने हंसते हुए कहा, जब वह भीतर गिरी है तो उसे बाहर क्यों ढूंढ रही हो? राबिया ने कहा, सूई घर के भीतर ही गिरी है। लेकिन मैं गरीब हूं। मेरे पास दीया नहीं है, घर के भीतर अंधेरा हो गया है। इसलिए जहां रोशनी है वहां खोज रही हूं। लोगों ने कहा, बात तो ठीक है कि जहां अंधेरा है वहां खोजने में दिक्कत आएगी। लेकिन जो चीज जहां खोई है वही मिलेगी न। राबिया ने कहा, मैं क्या करूं, तुम्हीं बताओ भले लोगों। एक आदमी ने कहा, पास पड़ोस से लालटेन उधार मांग लो। रोशनी भीतर ले जाओ। चलो, हम लोग भी वही उसे खोजते हैं। इस पर राबिया हंसने लगी। फिर बोली, न तो मेरी सूई गुम हो गई है, न मुझे खोजनी है। मैंने तो तुम्हें समझाने के लिए यह करतब किया है। मैं तुम्हें यह याद दिलाना चाहती थी कि अगर तुम्हारे भीतर रोशनी नहीं है तो पास-पड़ोस में किसी से मांग लेने से वह नहीं आ आएगी। उसे तुम्हें खुद अपने भीतर पैदा करना होगा। जिस सुख को तुम बाहर खोज रहे हो, वह बाहर नहीं, भीतर खोया है। वह भीतर ही मिलेगा। अभी तो तुम भी मेरी तरह बाहर सुख को ढूंढ रहे हो। लोग राबिया की बात समझ गए और उसे प्रणाम करके अपने-अपने काम में लग गए।

४५२) संत की उदारता - राबिया एक धनवान व्यक्ति की गुलाम थी। वह गुलामी करने को मजबूर थी क्योंकि उसके माता-पिता बचपन में ही मर गए थे। उन दिनों गुलामों के साथ काफी खराब बर्ताव किया जाता था। उन्हें बुरी तरह प्रताड़ित किया जाता था। एक अंधेरी रात को राबिया के मालिक ने देखा कि जहां सब झोपड़ियों में अंधेरा था, वहीं एक झोपड़ी में से प्रकाश झलक रहा था। मालिक उस झोपड़ी के पास गया तो देखा कि राबिया प्रार्थना कर रही है। वह ईश्वर

से कह रही थी- ऐ परवरदिगार, मेरे मालिक पर रहम करना। उन्होंने हम जैसे सैकड़ों गुलामों को पनाह दे रखी है। उन्हीं की वजह से हम गरीबों का जीवन चल रहा है। मेरे मालिक के खजाने में हमेशा बढ़ोतरी करना। उसका घर खुशियों से भर देना। राबिया के शब्दों को सुनकर मालिक के मन में तूफान सा उठा। वह सोचने लगा कि यह कोई साधारण महिला नहीं है। यह जरूर कोई खास शख्सियत है। मालिक इस बात के लिए पश्चाताप करने लगा कि वह राबिया के साथ बुरा बर्ताव करता है जबकि वह तो उसकी भलाई के लिए प्रार्थना कर रही है। मालिक ने राबिया से कहा- तुम गुलाम नहीं रह सकती। तुम इस धरती का चमत्कार हो। यह कहकर उसने अपनी जेब से कुछ दीनारें निकालीं और राबिया को देते हुए कहा- राबिया, आज के बाद से तुम आजाद हो। इस पर राबिया ने कहा- एक शर्त पर मैं इस आजादी को मंजूर करूंगी कि आप और गुलामों को भी आजाद कर दें। मालिक ने अपने सभी गुलामों को आजाद कर दिया। बाद में राबिया महान संत के रूप में विश्वविख्यात हुईं।

४५३) तीन नसीहतें - एक बार सालेह आमरी नामक संत ने संत राबिया से सवाल किया, आपने एक महान संत का दर्जा कैसे पाया है? संत राबिया बोलीं, अपनी सारी चीजों को खुदा की चाह में डुबा दिया और खुदा को पाया इबादत से। संत सालेह ने फिर पूछा- क्या मुझे भी ऐसा दर्जा मिल सकता है। बेशक, तुम्हें कुछ नसीहतें लेनी होंगी, तभी तुम यह दर्जा हासिल कर सकोगे, राबिया ने जवाब दिया। फिर उन्होंने एक मोमबत्ती, सुई और बाल लाकर संत को दिए और कहा- मोम यह नसीहत देता है कि खुद को जलाकर दूसरों को रोशनी दो। सुई की खासियत यह है कि वह खुद तो निर्वस्त्र रहती है, लेकिन दूसरों को कपड़े सीकर देती है। यह बाल, नसीहत देता है कि उसकी तरह लचीले यानी नम्र बनो। इन तीनों के समान बनकर इंसानियत की खिदमत में खुद को लगा दोगे, तो निश्चय ही संत के दर्जे को हासिल करने के काबिल हो जाओगे।

४५४) एक बार विख्यात सूफी संत अबू हसन संत राबिया की कुटिया में पहुंचे। उन्होंने देखा कि राबिया आंखें बंद किए ईश्वर की आराधना में लीन हैं। उन्होंने राबिया का ध्यान न तोड़ने का निश्चय किया और चुपचाप उन्हें सुनते रहे। राबिया ने ईश्वर से कहा, यदि मैं नरक के भय से आपको याद करती हूं तो आप मुझे नरक की आग में जला डालें। यदि मैं स्वर्ग के लालच में आपको याद करती हूं तो कृपया मेरे लिए स्वर्ग के द्वार बंद कर दें। लेकिन मैं सत्य में आपकी प्रीति एवं प्राप्ति के लिए पूजा-उपासना करती हूँ तो आप मुझे अपनी कृपा से वंचित कदापि न रखें। अबू हंसन चुपचाप बैठै राबिया की प्रार्थना सुन रहे थे। वह राबिया के भक्ति भाव से बेहद प्रभावित हुए और उनके प्रति नतमस्तक हो उठे।

४५५) नश्वर जीवन - एक बार सूफी संत बायजीद यात्रा पर निकले। उन्होंने अपने झोले में एक पैसा रख लिया। बायजीद को झोले में एक पैसा रखते हुए उनके एक धनी शिष्य ने देख लिया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, बाबा, इतनी लंबी यात्रा में एक पैसे से क्या होगा। फिर उसने उन्हें एक थैली थमाते हुए कहा, आप यह थैली रख लीजिए, इसमें कुछ अशर्फियां हैं। ये अशर्फियां आपकी यात्रा के लिए पर्याप्त होंगी। शिष्य की बात सुनकर बायजीद पहले तो मुस्कराए फिर बोले, मैंने यह पैसा आज के खाने के लिए रख लिया है और तुम्हारे कहने से मैं यह अशर्फियां भी ले लूंगा, लेकिन तुम मुझे पहले यह आश्वासन दो कि मैं इन अशर्फियों का इस्तेमाल करने के लिए लंबे समय तक जिंदा रहूंगा। इस पर शिष्य बोला- बाबा, मैं भला यह आश्वासन कैसे दे सकता हूं, क्योंकि जीवन तो किसी के हाथ में नहीं है। यह तो खुदा ही बता सकता है कि कौन कब तक जीवित रहेगा, मैं कैसे बता सकता हूं। इस पर बायजीद बोले- बेटा, जब कल का कोई भरोसा ही नहीं है तो कल का इंतजाम कैसा? यह जीवन तो नश्वर है। बायजीद के ऐसा कहते ही पास से गुजर रहे राहगीरों की भीड़ में से एक बूढ़ा निकलकर उनके पास आया और हंसते हुए बोला, अरे भले मानस, जब आजके दिन का भरोसा है, तो फिर कल के भरोसे में क्या दिक्कत है? जब तुम अपने पास एक पैसा रख सकते हो तो अशर्फियां रख लेने में क्या

हर्ज है। क्योंकि जीवन का भरोसा तो तब भी नहीं है। बूढ़े की बात सुनकर बायजीद कुछ सोचने लगे। सभी राहगीर उत्सुकतावश यह देखने को रुक गए कि बायजीद क्या जवाब देते हैं। बायजीद ने अपने झोले से पैसा निकालकर वहीं गिरा दिया। सब भौंचक रह गए। पैसा गिराने के साथ ही बायजीद को आत्मिक संतुष्टि का अनुभव हुआ और उनका यह विश्वास और मजबूत हुआ कि जीवन नश्वर है। उनका धनी शिष्य अशर्फियों की थैली लिए ठगा सा उन्हें देखता रहा। बायजीद मुस्कराते हुए आगे बढ़ गए।

४५६) सबसे बड़ी भूल- सूफी फकीर बायजीद एक गांव से गुजर रहे थे। उनका एक साधु मित्र भी उस गांव में रहता था। मित्र से मुलाकात करने हेतु फकीर ने दरवाजा खटखटाया और सोचने लगा, चलो थक भी गया हूं। आधी रात हो गई है, रात्रि विश्राम करके प्रात: चला जाऊंगा। द्वार खटखटाने पर आवाज आई, कौन है ? फकीर ने सोचा आवाज से पहचान लिया होगा, कहा, मैं। भीतर से कोई उत्तर नहीं आया। तब फकीर बायजीद ने बार-बार दस्तक दी, पर कोई उत्तन न आया और न ही द्वार खुला। तब फकीर ने द्वार पर दस्तक देकर जोर से आवाज देकर कहा, मित्र। मेरे वास्ते दरवाजा खोलो। भीतर से आवाज आई, यह कौन नासमझ है जो स्वयं को मैं कहता है, क्योंकि मैं कहने का अधिकार परमात्मा के सिवाय किसी और को नहीं है। फकीर बायजीद को अपनी भूल का अहसास हो गया कि प्रभु के द्वार पर मैं का ही ताला है। मैं मिटा तो प्रभु प्रकट हुए। वास्तव में मैं पन की भूल जो सुधार लेता है, वह जीवन के सत्य को समझ जाता है। मानव में सबसे बड़ी भूल मैं का होना ही है।

४५७) जीवन का रहस्य - एक बार सूफी संत बायजीद से उनके एक साधक मित्र ने कहा, आजकल मुझे विचारों का प्रवाह बहुत परेशान करता है। मैं समझ नहीं पा रहा कि मुझे किस दिशा में बढ़ना चाहिए? इस पर बायजीद ने उत्तर दिया, इस मामले में मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता। हां, फकीर समद तुम्हारी सहायता जरूर कर सकते हैं। तुम उनके पास जाओ और उनकी पूरी दिनचर्या को गौर से देखो। शायद तुम्हें उससे ही कोई राह मिल जाएगी। सूफी फकीर समद एक सराय में चौकीदारी का काम करते थे। जब साधक वहां पहुंचा तो उन्हें देखकर हैरान रह गया। उनकी दिनचर्या में उसे कोई खास बात नजर नहीं आई। उसे वह बेहद साधारण इंसान नजर आए। उनमें ज्ञान का कोई लक्षण नहीं दिखा। वह एकदम सरल व्यक्ति थे। एक शिशु की तरह निर्दोष जीवन था उनका। साधक को काफी निराशा हुई। पर चूंकि उन्हें बायजीद ने भेजा था सो वह उनकी दिनचर्या पर नजर रखने लगा। फकीर समद रात को सोने से पहले सराय के सारे बर्तन धोते थे। सुबह उठकर भी वह उन्हीं बर्तनों को मांजते थे। जब साधक ने उनसे पूछा तो समद ने बताया, सोने से पहले बर्तनों की गंदगी हटाने के लिए उन्हें मांजता हूं। रात भर में उन पर धूल जम जाती है इसलिए सुबह उन्हें धोना जरूरी हो जाता है। लेकिन इसमें साधक को कोई खास बात नजर नहीं आई जिससे वह प्रभावित हो सके। निराश होकर वह बायजीद के पास वापस आ गया। जब बायजीद ने पूछा तो उसने अपने मन की बात कह दी। सारी बात सुनकर बायजीद मुस्कराए फिर बोले, निश्चय ही तुम्हारी दृष्टि प्रशंसनीय है। काम की सारी बातें तुमने देखी और सुनी हैं और पूछकर भी आए हो लेकिन तुमने उन्हें समझा नहीं है। समझदारी की बात यह है कि तुम भी फकीर समद की तरह अपने मन को रात को सोने से पहले मांजो और सुबह उसे धो डालो। मन के दर्पण को जिसने साफ करना सीख लिया समझो उसने जीवन का रहस्य पा लिया।

४५८) सबका ईश्वर एक- यूरोप के एक प्राचीन नगर के एक छोर पर इब्राहीम अपनी बीवी और बच्चों के साथ रहता था। हालांकि वह गरीब था, मगर धर्मात्मा और उदार था। नगर आने-जाने वाले यात्री उसके यहां अकसर ठहरा करते थे। इब्राहीम उनकी मुनासिब मेहमाननवाजी करता था। जब यात्री परिवार वालों के साथ भोजन करने बैठते, तब इब्राहीम खाने

से पहले एक प्रार्थना करता। उसके मेहमान भी प्रार्थना में शामिल होते। रोज की भांति हजरत इब्राहिम अपने तंबू के दरवाजे पर बैठे थे।

यह क्रम कुछ अरसे तक चलता रहा। इब्राहीम को इसमें बड़ा आनन्द मिलता, मगर साथ ही उसे अभिमान होने लगा कि वह बड़ा पुण्यात्मा है और उसका धर्म ही दुनिया का सबसे बड़ा धर्म है। एक दिन एक थका-मांदा बूढ़ा लकड़ी टेकता हुआ इब्राहीम के घर आया। इब्राहीम ने उसका स्वागत किया और आराम से बैठाया। थोड़ी देर के बाद बूढ़ा बोला- बेटा, मैं बड़ी दूर से आया हूं, बहुत भूखा हूं। इब्राहीम उठा और खाना ले आया। खाना शुरू करने से पहले उसने प्रार्थना पढ़ी। इब्राहीम ने देखा कि वह बूढ़ा उसके साथ प्रार्थना में शामिल नहीं हुआ। न ईश्वर को धन्यवाद दिया, बल्कि खाने पर टूट पड़ा।

उसने पूछा- तुमने साथ में प्रार्थना क्यों नहीं पढ़ी ? बूढ़े ने जवाब दिया- हम अग्नि की पूजा करते है और किसी खुदा को नहीं मानता। यह सुनकर इब्राहीम भड़क उठा। उसने चिल्लाकर कहा- अगर तुम्हें मेरे ईश्वर में विश्वास नहीं है और तुम मेरी प्रार्थना नहीं पढ़ सकते तो तुम इसी वक्त मेरे घर से निकल जाओ।

इब्राहीम ने बिना खाना खिलाए बूढ़े को घर से निकाल दिया। ज्यों ही उसने ऐसा किया कमरे में ज्योति फैली और एक फरिश्ता प्रकट हुआ और इब्राहीम से बोला- यह तुमने क्या किया ? ईश्वर इस गरीब बूढ़े का सौ वर्ष से भरण-पोषण करता रहा है, मगर तुम धर्मात्मा बनने पर भी उसे सिर्फ इसलिए खाना न खिला सके कि वह दूसरे धर्म को मानता है। ईश्वर बोले- इब्राहीम यह दुनिया तुम नहीं, मैं चलाता हूँ। ईश्वर की बात सुनकर इब्राहीम को अपनी भूल का एहसास हुआ और उन्होंने अपनी करनी के लिए ईश्वर से क्षमा माँगी। दुनिया में कितने ही धर्म हों, लेकिन ईश्वर एक है और वह सबका पिता है। यह कहकर फरिश्ता गायब हो गया। इब्राहीम को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। वह बूढ़े के पीछे भागा और उसे वापस घर बुला लाया।

४५९) साधु का स्वभाव- एक बार एक व्यक्ति अकाल से पीड़ित अपने प्रांत को छोड़ सपरिवार दूसरे प्रांत पहुंचा। एक बगीचे के मालिक ने उसकी भलीभांति परख कर आमों के वृक्षों की रखवाली हेतु नियुक्त कर दिया। जिस इमानदारी और श्रम से वह बगीचे का ध्यान रखता था, उससे मालिक भी संतुष्ट था। रखवाली करनेवाले ने उसी काम में वर्षों गुजार दिय। जितना मिलता उसी में संतुष्ट रहता। जो भी बचता वह आस-पास बस्ती में रहनेवाले गरीबों में बांट देता। वह बराबर कहता- मैं भी इसी स्थिति से आया था। अब जितना संभव हो सकता है करता रहूंगा। तुम लोग भी स्वावलंबी बनो, यही मेरी कामना है।

वही संत इब्राहिम थे। वे भ्रमण करते हुए बगीचे में ठहरे थे। बगीचे के मालिक ने उन्हें बगीचे की रखवाली का काम सौंप दिया। भक्ति व चिंतन के लिए एकांत शांत वातावरण देखकर संत ने वह काम स्वीकार कर लिया। उन्हें मालिक की ओर से निश्चित समय पर वेतन मिलता था। उसी से वे काम चलाते थे, बगीचे के फलों को वह छूते तक न थे। उनका संत स्वभाव उन्हें चोरी से रोके रहा। वे जानते थे कि न दी हुई वस्तु ग्रहण करना अनुचित कार्य हैं। एक बार बगीचे का मालिक अपने मित्रों के साथ वहां आया और इब्राहिम को आम लाने की आज्ञा दी। इब्राहिम को कुछ आम तोड़कर लाने के लिए कहा गया। वे आम लेकर आए व मालिक को दे दिए। आम चुसने पर जब खट्टे निकले तब मालिक ने कहा, इतने दिन बगीचे में रहते हो गए पर तुम्हें यह भी पहचान नहीं कि कौन सा आम खट्टा है और कौन सा मीठा ? इब्राहिम ने कहा, मुझे बगीचे की रखवाली का काम सौंपा गया था। फल चखने का नहीं। मैं तो रखवाली करनेवाला नौकर हूं। किसी दूसरे को इसका एक फल भी चोरी करने नहीं देता तो स्वयं बिना किसी अधिकार के फल कैसे चख सकता हूं ?

बिना आपकी आज्ञा के मैं कैसे फल चख सकता था और बिना चखे खट्टे-मीठे का पता कैसे चलता ? मालिक ने गद्‌गद्‌ भाव से कहा- ईमानदार तो मैंने बहुत देखे हैं, पर तुझ जैसा कर्म निष्ठ, निर्लोभी मैंने पहली बार ही देखा है। उत्तराध्ययन

सूत्र में ठीक कहा है, साधु वही हैं जो दांत कुरेदने का तिनका भी बिना दिया न ले।

४६०) समर्पण- अरब देशों में पहले गुलाम प्रथा प्रचलित थी। निर्धन लोग स्वयं बिकते अथवा अपने किसी व्यक्ति को बेच देते थे, वही गुलाम कहलाता था। इब्राहिम अर्थात् हजरत इब्राहीम जिन दिनों बलख के बादशाह थे, उन्होंने एक गुलाम खरीदा। काम की तलाश में वह गुलाम राजा के पास आया और काम मांगा। बादशाह इब्राहीम ने उससे उसका नाम पूछा तो उसने कहा मैं तो सेवक हूं हुजूर। किसी भी नाम से मुझे पुकारें वही मेरा नाम होगा। गुलाम ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया। राजा ने पुन: पूछा- तुम क्या खाआगे और क्या पहनोगे ? सेवक का जवाब था- मालिक, जो देंगे वही खाऊंगा और पहनुंगा। अंत में राजा ने पूछा- यह बताओ की क्या क्या करोगे ? सेवक ने उत्तर में कहा आप मालिक हैं जो कराएंगे वही करुंगा। राजा परेशान होकर बोले, आखिर तुम मुझसे चाहते क्या हो ? सेवक ने मासूमियत व भोलेपन से कहा- मालिक दास की भी कोई अपनी इच्छा होती है ? वह तो मालिक के प्रति समर्पण भाव रखता है। इतना सुनते ही राजा की आंखे खुल गई। वह गद्दी से उतरा और उस युवक को अपने गले लगा कर उसे अपना गुरु बनाते हुए कहा- मैंने आज तक भगवान से मांगकर अपनी निकृष्ठता सिद्ध की है। उसकी महानता के लाभ का पाठ तो तुमने पढ़ाया है। कालान्तर में यही बादशाह इब्राहीम सन्त इब्राहीम कहलाया।

४६१) सम्राट और फकीर- सम्राट इब्राहिम के महल के सामने एक फकीर आया और सम्राट के महल में घुसने लगा। उसने द्वारपाल से कहा, इस सराय में मुझे दो-चार दिन रहने दो। पहरेदारों ने उसे वहां से हटाने का प्रयास किया। द्वारपाल ने कहा, तुम पागल हो क्या। देखते नहीं यह सम्राट का महल है। तुम्हें यह सराय दिखाई पड़ रहा है। वह फकीर बोला- अच्छा, राजा का महल है लेकिन मुझे तो लगता है कि धर्मशाला है। उसने एक नहीं सुनी और पांव पसारे लेटा रहा। पहरेदारों ने यह भी बताया कि यह राजमहल है, विश्राम करना हो तो किसी धर्मशाला में जाकर करो। तुम झूठ कह रहे हो? मैं सच कह रहा हूं, यह धर्मशाला है। दोनों में विवाद हो गया।

फकीर ने कहा- यह समझ का फेर है। मुझे तो यह सराय ही लगता है। इस बात को लेकर द्वारपाल और फकीर में तकरार होने लगी। जब संन्यासी नहीं माना तो उसे बंदीखाने में भेज दिया। साधु को अपनी बात पर अडिग देख प्रहरी थोड़ा घबरा गया। राजा के पास पहुंचा और बोला- महाराज। आज तो एक बहुत बड़ा विवाद हो गया है। एक साधु अड़ गया है कि मैं तो भीतर जाऊंगा। साधु बड़ा बलवान और तेजस्वी है। हम क्या करें? राजा स्वयं आया, देखा- संन्यासी बड़ा तेजस्वी, त्यागी लग रहा है। राजा ने कहा- महाराज। क्या बात है?

महल के अंदर सम्राट इब्राहिम दोनों की बातें सुन रहा था। वह बाहर आया और फकीर को अंदर ले गया। फकीर बोला, हुजूर, मैं उससे कह रहा था कि इस सराय में मुझे दो-चार दिन ठहरने दो, लेकिन वह बार-बार रट लगाए जा रहा था कि यह सराय नहीं महल है।

सम्राट इब्राहिम ने कहा, वह ठीक कह रहा था। दूसरे दिन राजा के सामने दरबार में उसे उपस्थित किया गया। राजा ने कहा- संन्यासी के लिए झूठ बोलना उचित नहीं है। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि यह मेरा राजमहल है ? इसे तुम धर्मशाला कैसे कहते हो ? यह हमारा महल है। फकीर हंसने लगा। उसने कहां, तुम्हारा महल। फकीर बोला- राजन ? यह महल नहीं, धर्मशाला है। राजा आश्चर्य में डूब गया। राजा कुछ बोला ही नहीं कि संन्यासी पूछ बैठा- महल और धर्मशाला में क्या अंतर है ? राजा ने कहा- महल सदा रहने के लिए होता है और धर्मशाला थोड़े समय विश्राम करने के लिए। लेकिन कुछ वर्षों पहले मैं यहां आया था तो एक दूसरा आदमी यही कह रहा था। राजन। तुम जिस महल में रहते हो वह किसने

बनाया था ? सम्राट ने कहां, हां, वह मेरे पिता थे। अब नहीं रहे। सन्यासी बोला- वे इसमें कितने वर्ष रहे ? राजा बोला- पांच वर्ष। उसके बाद ? अब मैं रहता हूं।

फकीर ने फिर कहा, उसके पहले भी मैं यहां आया था, तब एक तीसरा आदमी यही दावा कर रहा था। सम्राट ने कहां, हां, वे मेरे पिता के पिता थे, यानी मेरे दादाजी। वह भी अब इस दुनिया में नहीं है। सन्यासी बोला- क्या तुम इसमें सदा रहोगे?

फकीर कहने लगा, सम्राट फिर तो मैं जो कहता हूँ, ठीक ही कहता हूँ कि यह महल नहीं है, सराय है। एक न एक दिन तो आप को भी इस दुनिया से जाना ही होगा। आप के जाने पर कोई चौथा कहेगा कि यह मेरा महल है। यही समझ का फेर है। यह आपका अहंकार है कि आप इसे अपना महल बता रहे हैं। यहां न तो कोई मेरा है न तेरा, सब अपने कर्मों का फल है। यह सुनते ही राजा की आंखें खुल गईं। उसने सोचा-संन्यासी का कहना बिल्कुल ठीक है। यह जिंदगी थोड़े दिनों की मुसाफिरी है और जिसे आज तक मैं महल समझता रहा हूं वह भी विश्राम करने के लिए धर्मशाला है।

सम्राट इब्राहिम को सब कुछ समझ में आ गया। उसने फकीर से कहा, तुम ठीक कह रहे हो भाई, अब तुम जब तक चाहो यहां रहो, मैं चला यहां से। इब्राहिम ने महल छोड़ दिया। बाद में वही महान सूफी संत इब्राहिम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

४६२) सेवा और धर्म- एक बार इब्राहिम एक काफिले के साथ तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। काफिले में दर्जनों यात्री थे। बीच रास्ते में काफिले का एक अनजान व्यक्ति बीमार पड़ गया। इब्राहिम उसे जानते नहीं थे मगर उसे बीमार देखकर तत्काल उसकी सेवा करने लगे। इब्राहिम की सारी जमा पूंजी खर्च हो गई पर वह व्यक्ति ठीक नहीं हुआ। एक दिन वह बेहोश हो गया। उसकी हालत देखकर इब्राहिम घबरा गए। उनके पास एक पैसा नहीं था औ वे उसे लावारिस छोड़ कर जाना भी नहीं चाहते थे। उन्हें जब कुछ और नहीं सूझा तो उन्होंने उसका खच्चर बेच दिया और उस पैसे से उसकी दवाई और खाने-पीने की व्यवस्था की। एक-दो दिन में उसे होश आया। इब्राहिम ने उससे कहा, भाई, माफ करना। तुम्हारी बेहोशी की हालत में मैंने तुम्हारा खच्चर बेच दिया और उस पैसे से तुम्हारी दवाई और खाने-पीने की व्यवस्था की। वह यात्री रोने लगा। बोला, मैं बहुत कमजोर हो गया हूं। खच्चर के बिना मैं आगे कैसे जाऊंगा। मुझसे तो अब एक कदम नहीं चला जा रहा है। इब्राहिम बोले, तुम चिंता क्यों करते हो भाई। मैं तुम्हारे साथ हूँ और तब तक रहूंगा जब तक तुम्हें मंजिल तक पहुंचा नहीं देता। उसने पूछा, मगर तुम करोगे क्या। तुम्हारे पास तो खच्चर भी नहीं है। इब्राहिम ने कहा, चिंता मत करो। उस दिन से इब्राहिम उसे अपने कंधे पर बैठाकर ले जाने लगे। एक दिन काफिले के एक आदमी ने पूछा, इब्राहिम, यह तुम्हारा कौन लगता है जो तुम इसकी इतनी सेवा कर रहे हो। इब्राहिम ने कहा, यह मेरा कोई नहीं है। यह भी आप ही की तरह काफिले का एक सहयात्री है। उसे बीमारी की हालत में मैं अकेला छोड़कर नहीं जा सकता। उसकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य ही नहीं धर्म भी है। अशक्त की सेवा करने से बड़ी तीर्थयात्रा और कोई नहीं है। यह सुनकर वह आदमी भी इब्राहिम के साथ उस बीमार यात्री की सेवा में जुट गया।

४६३) सच्चा साधु- हजरत इब्राहीम एक बार एक साधु के पास बैठे थे। उन्होंने साधु से पूछा- सच्चे साधु का क्या लक्षण है ? मिला तो खा लिया, न मिला तो सन्तो, कर लिया। साधु ने उत्तर दिया। हजरत बोले- यह काम तो हर कुत्ता करता है। साधु ने उनसे कहा- तो फिर आप ही अच्छे साधु का लक्षण बता दीजिए। इब्राहीम बोले- मिला तो बांटकर खा लिया और न मिला तो उसे प्रभु की कृपा मानकर प्रसन्न हो गया कि परमात्मा ने उसे तपस्या का सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया है और तपस्या में लीन हो गया।

४६४) सुख का रहस्य- एक दिन शेख सादी कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक भिखारी को देखा जो आनंदमग्न बैठा था। शेख सादी ने सोचा- मैं तो १ चिंतक और विचारक हूं फिर भी दिन भर उदास रहता हूं। यह तो एक भिखारी है जो अभाव में जी रहा है। न तो इसके पास मकान है, न इसे भरपेट खाना मिलता है, ऊपर से यह विकलांग भी है फिर यह कैसे इतना खुश है? उनसे रहा नहीं गया उन्होंने भिखारी से पूछ ही लिया, तुम अभावों के बीच भी खुश कैसे रहते हो ? भिखारी ने जवाब दिया, मैं अभाव को नहीं देखता। सोचता हूं पैर नहीं तो क्या हुआ, ईश्वर ने मुझे दिमाग तो अच्छा दिया है। मैं दिमाग और दूसरे अंगों को देखकर प्रसन्न रहता हूं। तब मुझे पैरों का अभाव नहीं खटकता। शेख सादी को सुख का रहस्य समझ में आ गया।

४६५) बचपन में एक बार शेख सादी अपने पिता के साथ मक्का जा रहे थे। पिता-पुत्र जिस दल के साथ जा रहे थे वह आधी रात में उठकर प्रार्थना अवश्य करता था। एक दिन आधी रात को सादी और उनके पिता ने प्रार्थना की, लेकिन दल के अन्य सदस्य गहरी नींद में सोए रहे। सादी ने अपने पिता से कहा, ये लोग कितने आलसी हैं। न उठते हैं न प्रार्थना करते हैं। यह सुनकर सादी के पिता ने कठोर स्वर में कहा, सादी बेटा, तू भी न उठता तो अच्छा होता। उठकर किसी की निंदा करने से तो सोना ही ठीक है।

४६६) प्रभु का दर्शन- एक बार एक आदमी संत सादिक के पास गया। सादिक बहुत पहुंचे हुए व्यक्ति थे। उस आदमी ने उनसे कहा, मुझे अल्लाताला से मिलवा दीजिये। संत बोले, तुम्हें मालूम नहीं कि मूसा से कहा गया था कि तू मुझे नहीं देख सकता। वह आदमी बोला, जानता हूं, लेकिन एक शख्स यह भी तो कहता है कि मेरे दिल ने परवरदिगार को देखा। एक दूसरा आदमी कहता है कि मैं अपने उस ईश्वर की उपासना करूंगा, जिसको मैं देख सकूं। उसकी यह गर्वोक्ति सुनकर संत ने कहा, इसके हाथ-पैर बांधकर नदी में डाल दो। यही किया गया। नदी में गिरते ही पानी ने उसे ऊपर उछाल दिया। फिर वह नीचे चला गया। कई बार ऐसा हुआ। उसने चिल्लाकर मदद मांगी, पर किसी ने मदद न दी। अंत में निराश होकर उसने कहा- या अल्लाह। उसके इतना कहते ही संत ने उसे बाहर निकलवा लिया। पूछा, क्या तूने अल्लाह को देखा ? वह बोला, जबतक मैं दूसरों को पुकारता रहा तबतक मैं परदे में रहा। लेकिन आखिर में निराश होकर जब मैंने अल्लाह से फरियाद की तो मेरे दिल में एक सूराख-सा खुला। संत ने कहा, देख, जबतक तू दूसरों को पुकारता रहा, झूठा था। अब तू उस सूराख की हिफाजत कर, जिससे तुझे ईश्वर का दर्शन होगा। किसी ने ठीक ही कहा है, प्रभु का दर्शन कष्ट में होता है।

४६७) संयम और सिद्धि- मिश्र में जुन्नैद नाम के एक सिद्ध पुरुष हुए हैं। प्रसिद्ध मुस्लिम संत यूसुफ हुसैन अपनी युवावस्था के दौरान उनसे दीक्षा लेने पहुंचे। एक दिन जुन्नैद ने यूसुफ को एक छोटा सा बक्स देकर कहा, क्या तुम इस बक्से को मेरे एक मित्र के पास पहुंचा सकोगे ? यूसुफ ने तुरंत हामी भरी और नाम पता लेकर वह उसे पहुंचाने निकल पड़े। बक्स बंद था और उसके अंदर से रुक-रुककर कुछ आवाजें आ रही थीं। यूसुफ को जिज्ञासा हुई कि आखिर इस बक्स के अंदर है क्या ? वह अपने को रोक न सके और जिज्ञासा वश उन्होंने बक्स खोल ही दिया। बक्स खोलना था कि उसमें से एक चूहा निकल कर भाग गया यूसुफ बहुत पछताए, लेकिन अब क्या हो सकता था। जब वे वापस लौटकर आए तो जुन्नैद ने कहा- यूसुफ यह तुम्हारी परीक्षा थी कि तुम परम ज्ञान के अधिकारी हो या नहीं। मैंने एक छोटा चूहा तुम्हें सौंपा और तुम उसे सुरक्षित नहीं रख पाए तो आखिर अपने हृदय में परमात्मा को कैसे सुरक्षित रख पाओगे। उसके लिए तो बड़ा संयम चाहिए। बिना संयम के सिद्धि दुर्लभ है।

४६८) संत जुन्नैद के चरणों में किसी ने पांच सौ स्वर्ण अशर्फियां लाकर भेंट कीं। जुन्नैद ने भेंट कर्ता से पूछा, इस धन के अतिरिक्त और भी धन है तुम्हारे पास।

उस व्यक्ति ने प्रसन्नता से कहा, यह तो कुछ भी नहीं मेरे पास अनगिनत अशर्फियां हैं।

जुन्नैद ने फिर पूछा- क्या तुम्हें और भी सम्पदा की आकांक्षा है ?

उस व्यक्ति ने कहा- निश्चय ही इतने धन से क्या हो सकता है ?

जुन्नैद ने उस दीन दरिद्र की तरफ दया से देखा और कहा, तब इन पांच सौ अशर्फियों को तुम्हीं रखो, क्योंकि तुम्हें मेरी बजाय इनकी ज्यादा जरूरत है।

जुन्नैद के कपड़े जगह-जगह से फटे थे पास ही भिक्षापात्र रखा था लेकिन उनके फटे कपड़ों के भीतर से जो झांक रहा था उसके समक्ष कुबेर की शान कुछ भी न थी और सोलोमन के खजाने बरौनक थे।

४६९) ईश्वर का रूप - एक बार फकीर जुन्नैद कई लोगों के साथ बैठकर बातचीत कर रहे थे। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, बाबा, क्या ईश्वर सचमुच है? ईश्वर है तो दिखाई क्यों नहीं देता ? जुन्नैद बोले, हां भाई, ईश्वर सचमुच है और वह हर जगह मौजूद है। इस पर वह व्यक्ति बोला, यदि ईश्वर हर जगह मौजूद है तो वह हमें दिखाई क्यों नहीं देता? फकीर ने कहा, ईश्वर कोई वस्तु तो है नहीं, वह तो हमें मार्गदर्शन देनेवाला, हमारी मदद करनेवाला एक फरिश्ता है और उसे हम कई बार नेक व दयालु इंसानों के रूप में देख भी पाते हैं। ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। वह अनुभूति है, उसे देखने का कोई उपाय नहीं है। हां उसे अनुभव अवश्य किया जा सकता है। इस पर भी वह व्यक्ति संतुष्ट नहीं हुआ और बोला, ये बातें तो हम सदियों से सुनते आ रहे हैं। लेकिन कभी तो ईश्वर की झलक मिलती। यह कहकर जैसे ही वह वहां से जाने लगा वैसे ही फकीर जुन्नैद ने आवाज दी, जरा रुको। उसके रुकते ही उन्होंने एक नुकीला पत्थर अपने पैर में मार लिया। पत्थर लगते ही वहां से खून की धारा बह निकली। वह व्यक्ति घबराकर बोला, बाबा, आपने यह क्या किया? आपको तो बहुत तकलीफ हो रही होगी।

इस पर जुन्नैद बोले, देखो बेटा, जैसे मेरे पैर में खून की धारा बहते देख तुमने महसूस किया कि मुझे पीड़ा हो रही होगी, वैसे ही हम ईश्वर को भी मन से महसूस करते हैं। पीड़ा भी तो महसूस ही की जाती है। क्या वास्तव में पीड़ा का कोई रूप है? नहीं न। वह तो प्रत्येक व्यक्ति के अंदर चोट लगने पर अलग-अलग तरह से उभरती है। उसी तरह ईश्वर भी लोगों के भीतर अलग-अलग रूप में महसूस किया जाता है। ऐसे ही ईश्वर दिखता नहीं परंतु है। उसे देखने के लिए बाहर नहीं खोजा जा सकता। वह खोजनेवाले के भीतर ही बैठा होता है, उसे खोजना नहीं जानना जरूरी है।

४७०) एक बार एक व्यक्ति सूफी संत शेख फरीद के पास आया और उनसे सोने की एक थैली दान में लेने का अनुरोध करने लगा। लेकिन फरीद ने थैली लेने से इनकार कर दिया और कहा, मैं किसी गरीब का दान स्वीकार नहीं करता। उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, महाराज, मैं गरीब कहां हूं। मैं तो इस इलाके का सबसे अमीर आदमी हूं। आप यह धन स्वीकार करें। शेख फरीद मुस्करा कर बोले, ठीक है, तुम बड़े अमीर हो। मेरे एक सवाल का जवाब दो। इतना धन होने के बाद भी क्या तुम और धन नहीं चाहते? वह व्यक्ति बोला, हां मेरे मन में और धन कमाने की इच्छा है। संत ने कहा, सबसे बड़ा गरीब तो वही है, जो अपार धन होने के बावजूद और धन की कामना करे। अमीर वह है जो धन न होने के बावजूद धन पाने की लालसा न पाले।

४७१) एक बार बाबा फरीद से एक व्यक्ति ने पूछा, उस्ताद जी, परमात्मा को कैसे पाएं? उस वक्त फरीद खेत में धान रोपने का काम कर रहे थे। उन्होंने उस व्यक्ति की बातों पर ध्यान नहीं दिया और चुपचाप अपने काम में जुटे रहे। फरीद को चुप देखकर उस व्यक्ति को लगा कि शायद उन्होंने उसकी बात नहीं सुनी है। वह बोला, आपने शायद मेरी बात सुनी नहीं। कृपया बताएं कि हम रब को कैसे पा सकते हैं? फरीद बोले, बता तो दिया। जो मैं अभी कर रहा हूं, रब को पाने का भी वही तरीका है। धान की इस पौध की तरह जो मन इधर-उधर भटक रहा है उसे उखाड़कर परमात्मा के ध्यान में लगा

देना है। यही रब को पाने का सबसे आसान उपाय है।

४७२) मृत्यु का भय- एक व्यक्ति चाहकर भी अपने दुर्गुणों पर काबू नहीं कर पा रहा था। एक बार उसके गांव में संत फरीद आए। उसने उनसे अपनी परेशानी बताई। फरीद ने कहा, दृढ़ संकल्प से ही दुर्गुण छूटते हैं। यदि तुम इच्छाशक्ति मजबूत कर लोगे तो तुम्हें अपने दोषों से मुक्ति मिल जाएगी। वह व्यक्ति प्रयास करके थक गया मगर उसे सफलता नहीं मिली। वह फिर फरीद के पास गया। फरीद ने पहले उसके माथे की रेखाएं देखने का नाटक किया, फिर बोले, अरे तुम्हारी जिंदगी के चालीस दिन ही शेष हैं। अगर इन बचे दिनों में तुमने दुर्गुण त्याग दिए तो तुम्हें सद्‌बुद्धि मिल जाएगी। यह सुनकर वह आदमी परेशान हो गया। वह किसी तरह घर पहुंचा और व्यसनों की बात तो दूर, खाना-पीना तक भूल गया। वह हर पल ईश्वर को याद करता रहा। उसने एक भी गलत कार्य नहीं किया। चालीस दिन बीतने पर वह फरीद के पास पहुंचा। उन्होंने पूछा, इतने दिनों में तुमने कितने गलत कार्य किए ? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, मैं क्या करता। मैं तो हर पल ईश्वर को याद करता रहा। संत फरीद मुस्कराते हुए बोले, जाओ अब तुम पूरी तरह सुरक्षित हो। तुम अच्छे इंसान बन गए हो। जो व्यक्ति हर समय मृत्यु को ध्यान रखकर जीवनयापन करता है वह भला इंसान बन जाता है।

४७३) तेरा तुझको सौंपा क्या लागे मेरा- सूफी फकीर हफीज महाकवि भी था। उसने एक गीत लिखा। गीत, ऐसा लगता है कि अपनी प्रेयसी के लिए लिखा है। गीत मैं उसने कहा कि तेरी ठोड़ी पर जो तिल का निशान है, उसके लिए मन होता है बुखारा दे दूं, कि समरकंद। उस समय समरकंद और बुखारा का मालिक तैमूरलंग था। जब उसके कान में यह गीत पड़ा तो वह बहुत नाराज हो गया और बोला-मालिक मैं हूं, यह देनेवाला कौन है ?

उसने हफीज को पकड़ कर बुलाया। उसने कहा कि हद हो गई। पहली बात यह है कि किस स्त्री की ढोड़ी पर तिल है, यह इस योग्य नहीं कि तुम बुखारा और समरकंद दे दो। दूसरी बात यह कि बुखारा-समरकंद तुम्होर बाप के हैं, जो तुम दे रहे हो ? ये मेरे हैं। मैं अभी जिंदा हूं। तुमने मुझसे पूछे बिना यह कविता कैसे लिखी ?

हफीज हंसने लगा इस मूढ़ता पर। उसने कहा- सुनो, पहले तो जिसके तिल की बात है, बुखारा-समरकंद उसी के हैं। तुम नाहक बीच में उपद्रव कर रहे हो। तुम आज हो, कल न रहोगे। सूफी फकीर परमात्मा को प्रेयसी के रूप में देखते हैं। हफीज ने आगे कहा- दूसरी बात, उसी की चीज उसी को लौटा देने में क्या लगता है। हफीज की यह बात सुनकर तैमूरलंग भी हैरान रह गया।

४७४) लकड़ी का टुकड़ा - शेख शिबली अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। सर्दी का मौसम था। आग जल रही थी। अचानक उनका ध्यान चूल्में में जलती हुई लकड़ियों के उपर पड़े एक लकड़ी के टुकड़े पर गया जो धीरे-धीरे सुलग रहा था। लकड़ी गीली थी, इसलिए आग की तपिश से पानी की कुछ बूंदे इकट्ठी होकर उसके कोने से टपका रही थीं। कुछ देर सोचने के बाद शेख शिबली ने अपने शिष्यों से कहा- तुम सब दावा करते हो कि तुम्हारे अंदर परमात्मा के लिए गहरा प्रेम और भक्ति है, पर क्या कभी सचमुच की आग में जले हो ? मुझे तुम्हारी आंखों में न कोई तड़प और न ही वेदना के आंसू दिखाई देते हैं। इस लकड़ी की तड़पन को देखो, यह किस तरह जल रही है। इसके कोनों से गिरती हुई जल की बूंदों को देखकर लगता है कि आंसू गिर रहे हैं। तुम्हें लकड़ी के इस मामूली टुकड़े से कुछ सीखना चाहिए।

४७५) स्वस्थ मन- हजरत अकरम अपने काफिले के साथ एक जंगल से गुजर रहे थे। दोपहर हुई। हजरत ने सुरक्षित स्थान पर पड़ाव डाला। खाना बनाने की तैयारियां शुरू हुई। ईंधन चाहिए था। आस-पास झाड़ियां नहीं थीं। लकड़ियों का मिलना मुश्किल था। कुछ सोच-विचार कर हजरत ने सभी साथियों को आदेश दिया। इधर-उधर जाओ और लकड़ियों

के छोटे-छोटे टुकड़े, तिनके वगैरह इकट्ठे कर लाओ। सभी सदस्य जंगल में यहां-वहां लकड़ियां बटोरने लगे। फिर लौटे और अपनी-अपनी बटोरी लकड़ियां हजरत के सामने डाल दीं। लकड़ियों का ढेर लग गया। ढेर की ओर संकेत करते हुए हजरत अकरम बोले। देखो ध्यानपूर्वक खोजने से लकड़ियों का ढेर लग गया है। इसी प्रकार अगर व्यक्ति अपनी छोटी-मोटी भूलों पर गौर करें तो वे ढेर सारी नजर आएंगी। जैसे इन लकड़ियों को जलाकर हम भोजन तैयार कर सकते हैं उसी प्रकार अपनी भूलों को नष्ट कर हम अपने मन को स्वस्थ और उज्जल बना सकते हैं।

४७६) ईमानदारी- शाह अशरफ अली पहुँचे हुए संत थे। एक बार वे सहारनपुर से रेलगाडी द्वारा लखनऊ के लिए चले। सहारनपुर रेलवे स्टेशन पर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि सामान तुलवा लें और अधिक होने पर उसका किराया अदा कर दें। उस समय गाड़ी का गार्ड भी पास ही खडा थां यह सुनते ही बोला, सामान तुलवाने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं साथ चल रहा हूं।

शाह अशरफ अली ने चकित होकर पूछा, तुम कहां तक जाओगे ?

मैं बरेली तक जा रहा हूं, परन्तु सामान की आप चिन्ता न करें, गार्ड ने कहा।

मगर मुझे तो और आगे जाना है, शाह बोले।

मैं दूसरे गार्ड से कह दूंगा। वह लखनऊ तक आपके साथ जाएगा।

फिर आगे क्या होगा ?

आप लखनऊ तक जा रहे हैं। वह भी आपके साथ जाएगा, गार्ड ने जवाब दिया।

बरखुरदार। मेरा सफर बहुत लम्बा है, शाह अशरफ अली बोले।

तो क्या आप लखनऊ से भी आगे जा रहे है ? गार्ड ने जिज्ञासा से पूछा।

अभी तो केवल लखनऊ तक जा रहा हूं, परन्तु जिन्दगी का सफर बहुत लम्बा है। वह खुदा के पास जाकर समाप्त होगा। वहां पर अधिक सामान का किराया न देने के अपराध से मुझे कौन बचायेगा ? संत ने कहा।

गार्ड बड़ा लज्जित हुआ। शाह अशरफ अली के शिष्यों ने सामान तुलवाया तथा अधिक सामान के पैसे अदा कर दिए।

४७७) संगे-पारस- हजरत शैख मौलाना एक आलिम बा अमल सूफी गुजरे हैं। हजरत खिज्र अलैहिस्सलाम को उनसे बेहद मुहब्बम थी। अक्सर उनके यहां आया जाया करते थे। एक बार हजरत खिज्र अलैहिस्सलाम ने उन्हें एक पत्थर बतौर हदिया (भेंट) दिया। कुछ दिनों बाद हजरत पैगम्बर खिज्र (अ.) वहां आये और सूफी से उस पत्थर के बारे में पूछा। सूफी ने बताया कि उसे तो एक बच्चे ने कुएं में फेंक दिया। खिज्र (अ.) ने फरमाया, वह कोई मामूली पत्थर नहीं था। संगे पारस था। जिस चीज को भी उससे मस (घिसना) किया जाता, सोना बन जाती। उस पत्थर को पाकर तुम्हारी औलाद को दुनिया की कोई जरूरत बाकी न रहती। सूफी ने फरमाया, हुजूर। बारगाहे इलाही में बस मेरी यही दुआ है कि मेरी औलाद के पास अखलाके (आचरण) संगे पारस हो जिससे दुनिया को उनकी जरूरत महसूस हो।

४७८) संत की कीमत- तुर्कों और इरानियों के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था। तुर्कों की निरंतर पराजय होती जा रही थी। एक दिन ईरान के सूफी संत फरीदुद्दीन अत्तार तुर्कों के हाथ पड़ गए। तुर्कों ने जासूसी का अभियोग लगा कर उन्हें फांसी की सजा दे दी। एक ईरानी रईस ने संत के प्राणों के बदले उनके वजन के बराबर हीरे-जवाहरात देने की पेशकश की। अनेक लोगों ने अपने जीवन की पेशकश की, पर तुर्कों ने उनकी एक न सुनी।

आखिरकार ईरान के शाह ने तुर्क सुलतान से प्रार्थना की, आप संत को छोड़ने के एवज में राज्य ले लें, पर संत को छोड़

दें। सुलतान ने आश्चर्य से पूछा, क्या आप एक आदमी के लिए अपना पूरा राज्य देने को तैयार हैं, जिसे हम लड़कर भी न ले सके ? शाह ने उत्तर दिया, राज्य तो नश्वर है, किंतु संत अविनाशी हैं। यदि हमने संत खो दिया तो ईरान हमेशा के लिए कलंकित हो जाएगा। सुलतान ने कहा, जिस देश में संतों का इतना सम्मान हो उसे कोई नहीं जीत सकता और उसने फरीदुद्दीन को मुक्त कर दिया।

४७९) एक मौलवी साहब मिर्जा गालिब के अतिरिक्त किसी अन्य का कलाम सुनना पसन्द नहीं करते थे। कुछ शायर मौलवी साहब के पास पहुंचे और उनसे मिर्जा गालिब का कलाम सुनाने की फर्मायश की।

मौलवी साहब करने लगे, अरे भाई नहीं मानते हो तो एक शेर सुनिए। सिरहाने मीर के आहिस्ता बोलो, अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

लोगों ने कहा- वाह, मौलवी साहब ये शेर तो मीर का है, आप मिर्जा गालिब का फरमा रहे हैं।

अरे भाई कुछ समझा भी करो जब मीर साहब रोते-रोते सो गए तो शेर क्या कहते वह तो मिर्जा गालिब उनके पास तशरीफ फरमा रहे थे, तब ही उन्होंने ये शेर लिख दिया। मौलवी साहब ने हंसकर कहा।

४८०) अल्लाह ताला- एक रात मजाज साहब किसी मुशायरे से अपने दोस्तों के साथ लौट रहे थे। रास्ते में एक गोदाम में बहुत बड़ा अलीगढ़ी ताला लटक रहा था। जिसे देखकर उनके साथी चौंक गए। एक दोस्त ने मजाज साहब से कहा मजाज साहब। जरा देखिए, कितना जबरदस्त ताला है।

मजाज साहब थोड़ी देर ताले को देखते रहे फिर बोले, माशा अल्लाह इसे आप ताला कहते हैं। यह ताला तो ताला है, लेकिन असली ताला तो अल्लाह ताला है।

४८१) बुलबुले हिन्द- ख्वाजा अल्ताफ हुसैन हाली मिर्जा असद उल्लाह खां गालिब के सबसे चहेते शिष्यों में से थे। कहने को तो यहां तक कहा जाता है कि यदि हाली के गालिब के कलाम को जिस खूबी से छांट छांट कर संग्रह किया और उसे उजागर किया उसीसे गालिब, गालिब हुए।

जब मिर्जा गालिब का निधन हुआ तो कुछ लोग हाली से उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए उनके पास गए। पहले तो वह काफी देर तक कुछ नहीं बोले, मगर, कुछ देर बाद रोते हुए और अपने को पीटते हुए हाली ने कहा- बुलबुले हिन्द मर गया हाय हाय। जिसकी थी हर एक बात में एक बात।

४८२) महाकवि मिर्जा असद उल्लाह खां गालिब बादशाह बहादुरशाह जफर के अभिन्न मित्रों में से थे। एक दिन दोनों लाल किले के बाग में टहलते हुए बातें कर रहे थे। गालिब बार-बार आगे बढ़कर पीछे देखते। जब उन्होंने कई बार ऐसा किया तो बहादुरशाह ने गालिब से पूछा, आप बार-बार पीछे मुड़ कर क्या देख रहे हैं।

गालिब ने कहा, जहांपनाह सुनता हूं अल्लाह ने दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा है मैं बार-बार इन आमों को घूर-घूर कर यह देख रहा हूं कि क्या अल्लाह ने किसी आम पर असद उल्लाह खां गालिब भी लिखा है।

बादशाह गालिब का आशय समझ गये। जब गालिब घर पहुंचे तो उन्होंने देखा कि आमों की एक टोकरी रखी है, जिस पर असद उल्लाह खां गालिब के नाम की पर्ची चिपकी हुई है।

४८३) सदा बहार- उर्दू के महान कवि मिर्जा असद उल्लाह खां गालिब को अपने दु:खों का कभी गम नहीं हुआ; वह अपनी गरीबी पर दूसरों को मजाक उड़ाने का अवसर नहीं देकर स्वयं परिहास करते थे।

एक बार पत्नी ने झुंझलाकर छप्पर पर उगी घास दिखलाई तो उन्होंने मुस्कराते हुए एक शेर पढ़ दिया- उग रहा है दरो

दीवार पर सब्जा गालिब, मैं बियाबां में हूं और घर में बहार आई है।

४८४) कौन है जरूरतमंद - एक दिन फकीर खोजा बीच चौराहे पर बैठे थे। तभी एक युवक दौड़ता हुआ आया। वह हांफता हुआ बोला- मैं दूर के एक गांव से आया हूं। मैंने आपका बहुत नाम सुना है। मैं आपका शागिर्द बनना चाहता हूं। खोजा हंसकर बोले- तो तुम मेरा शागिर्द बनना चाहते हो। ठीक है बना लूंगा, लेकिन केवल आज के लिए। युवक तैयार हो गया। खोजा ने कहा- तुम यहीं मेरे पास बैठ जाओ। युवक बैठ गया। दिन बीतने लगा। खोजा को इस तरह बैठे देख कई लोग वहां आए और उनसे तरह-तरह के सवाल करने लगे। पर खोजा ने किसी का कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बैठे रहे। शाम हो गई। अंधेरा घिर आया। एक वृद्ध व्यक्ति सिर पर समान उठाए खोजा के पास आया। उसने खोजा से किसी का पता पूछा। खोजा ने तत्काल उसका सामान उतारकर अपने सिर पर रख लिया और उसे उसके पते पर पहुंचा आए। युवक यह देखकर दंग रह गया। उसने खोजा से पूछा- क्या यह कोई फकीर थे जो आपने इनकी इतनी सहायता की? खोजा बोले- नहीं, मैं तो इन्हें जानता भी नहीं था। लेकिन दिन भर जितने लोग आए उनमें यही एकमात्र जरूरतमंद थे। बाकी लोगों ने केवल अपने स्वार्थ की बातें कीं। केवल अपने मतलब के सवाल पूछते रहे। किसी में दूसरे के लिए हमदर्दी की भावना तक नहीं थी। सब अपने बारे में सोच रहे थे, दुनिया के बारे में कोई नहीं सोच रहा था। सच्चे जरूरतमंद की ही सहायता करनी चाहिए। युवक ने खोजा की इस बात को मूल मंत्र की तरह स्वीकार किया।

४८५) मेरे लिए दुआ करो - संत रब्बी इसाक के शिष्य थे- रब्बी नहमन। एक दिन नहमन ने अध्ययन पूरा करने के बाद इसाक से अपने लिए दुआ करने को कहा। रब्बी इसाक ने जवाब में एक कहानी सुनानी शुरू की- एक व्यक्ति किसी रेगिस्तान में यात्रा कर रहा था। उसके पास भोजन समाप्त हो गया, तभी उसे वहां एक पेड़ दिखाई दिया जिस पर पके हुए फल लगे थे। उसने उस पेड़ के मीठे और रसीले फल खाए और वहीं छांव में आराम करने लगा। नींद से उठकर उसने पेड़ के नीचे एक श्रोते से पानी पिया। उसने बेहतर महसूस किया और बोला- मैंने जीवन में ऐसे मधुर फल नहीं खाएं। जब मेरे प्राण संकट में थे तब इस पेड़ ने मुझे भोजन और आराम करने के लिए आश्रय दिया। मैं कैसे इसे शुक्रिया कहूं। इसे क्या दुआएं दूं? तभी रब्बी इसाक नहमन से बोले- क्या उस आदमी को यह दुआ करनी चाहिए कि उस पेड़ के फल और मीठे हों? यह मूर्खता होगी क्योंकि उसके फल वह पहले ही चख चुका है। यदि यह दुआ दे कि तुम और अधिक छांवदार बनो तो वह पहले ही उसकी छांव में आराम कर चुका है और यदि वह यह कहे कि तुम्हारी जड़ों के पास श्रोता बना रहे, तो वह भी मौजूद है। रब्बी नहमन ने पूछा- आप ही बताएं उस पेड़ को क्या हुआ दी जानी चाहिए? रब्बी इसाक ने कहा- यह दुआ करनी चाहिए कि सभी पेड़ इसी के समान कल्याणकारी बनें और यही बात तुम पर भी लागू होती है। मैं तुम्हें ज्ञान की दुआ दूं तो वह तुम्हारे पास मौजूद है। धन भी तुम्हारे पास है।

४८६) सच्ची आध्यात्मिकता- एक व्यक्ति किसी फकीर के पास साधना सीखने गया। फकीर की चारों ओर बहुत ख्याति थी। उनके आशीर्वाद से बीमार स्वस्थ हो जाते थे और लोगों की परेशानियां दूर हो जाती थीं। दूर-दूर से पीड़ित लोग उनके यहां आते, दुआएं मांगते और प्रसन्न होकर जाते। जब वह आदमी संत के पास पहुंचा तो देखा कि फकीर एक टोकरी में से दाना निकालकर पक्षियों को चुगा रहे थे। उन्हें चुगते देखकर वे बच्चों की तरह खुश हो उठते थे। इस तरह लंबा समय बीत गया। न फकीर ने उस व्यक्ति की ओर देखा और न दाना चुगाना ही बंद किया। आनेवाला परेशान हो गया। वह फकीर की ओर बढ़ा। उसे सामने देखते ही फकीर ने टोकरी उसके हाथों में थमा दी और कहा, अब तुम पक्षियों के साथ आनंद का अनुभव करो। वह व्यक्ति सोचने लगा, कहां तो मैं इनसे आध्यात्मिक साधना का रहस्य जानने आया

हूं और ये हैं कि मुझे पक्षियों को दाना चुगाने को कह रहे हैं। फकीर ने उसके मन की बात पढ़ ली।

४८७) मेहनत की रोटी- एक बार हातिमताई से उनके एक मित्र ने प्रश्न किया- मैं तो आपको ही महान् व्यक्ति समझता हूं, मगर क्या आपको भी कभी कोई महान् व्यक्ति दिखाई दिया है ?

हां। हातिमताई ने कहा- एक बार मैंने सारे नगरवासियों को भोज का आमंत्रण दिया था। सभी नगरवासी भोज में शामिल हुए। नगर का कोई व्यक्ति बाकि तो नहीं रहा, इस इरादे से जब मैंने शहर का चक्कर लगाया तो रास्ते में मुझे एक लक़ड़हारा एक पेड़ काटता हुआ दिखाई दिया। मैंने उससे पूछा- हातिम ने आप सबको भोज का न्यौता दिया है। क्या तुम वहां हो आए? उसने जवाब दिया- नहीं मैं मेहनत की रोटी खाता हूं। दूसरों की भलाई का बोझ ढोना मैं पसंद नहीं करता।

इतना कह हातिमताई ने मित्र से कहा- मित्र, मैं तो उस लकड़हारे को सबसे बड़ा मानता हूं। दान देकर खुद को बड़ा समझने की बजाए मेहनत की कमाई खानेवाला ही वास्तव में बड़ा होता है।

४८८) जबल के बेटे मुआज को सूबेदार बनाकर यमन भेजा जा रहा था। चलते वक्त मुहम्मद साहब ने मुआज से पूछा- अपने सूबे की हुकूमत में किस बात को प्रमाण मानकर फैसले करोगे। मुआज ने जवाब दिया- कुरान के हुक्म को। लेकिन अगर कुरान में वहां ठीक बैठने वाला हुक्म न मिले तो- मुहम्मद साहब ने अगला प्रश्न किया। तब मै पैगम्बर की मिसाल को सामने रखकर चलूंगा- मुआज ने उत्तर दिया। और अगर पैगंबर की मिसाल में भी ठीक बैठने वाली चीज तुम्हें न मिले तो ?

तब मैं अपनी अक्ल से काम लूंगा। इस जवाब से मुहम्मद साहब खुश हो गए और उन्होंने मुआज को खुशी-खुशी सूबेदार बनाकर यमन भेज दिया।

४८९) सबसे बड़ा परमार्थ - एक बार की बात है सन्त सुलेमान घूमते हुए ऐसी जगह पहुँच गए जहाँ मात्र वेश्याएं रहा करती थी। उस स्थान पर व्यक्ति मात्र अपनी वासनापूर्ति के लिए ही आया करते थे। वेश्याओं ने समझा कि यह भी इसी हेतु आए है अत: एक ने संकेत द्वारा उन्हें अपने पास बुलाया। वे बिना किसी दुर्भावना के उसके पास गए। दोनों ने अपना-अपना परिचय दिया। सन्तहृदय रो पडा। हे भगवान तेरी ऐसी सुन्दर सृष्टि में यह क्या ? रास्ता भटकने के कारण ये मलिन हो गन्दे कार्य करने लगी है। वेश्या पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा कि वह साध्वी बन गई। उसका अनुगमन करते हुए सारी वेश्यायें साधना की राह पर चल पड़ी। वेश्यावृत्ति द्वारा अर्जित धन से एक सुन्दर बगीचा, रास्ता, मठ और नारीनिकेतन का निर्माण हुआ। <u>पिछडे एवं गिरे हुओं को ऊपर उठाना ही सबसे बड़ा परमार्थ है</u>।

४९०) बहरा हातिम- एक संत थे। लोग उन्हें बहरा हातिम कहते थे पर वास्तव में वह बहरे नहीं थे। एक दिन वह कुछ लोगों के साथ बैठे थे इतने में एक मक्खी मकड़ी के जाले में फंस गई और छुटकारा पाने के लिए भिनभिनाने लगी। हातिम के मुंह से निकल पड़ा, ऐ लोभ की मारी। अब क्यों भिनभिना रही है ? हर जगह शक्कर और शहद नहीं होता। अकसर कोनों में जाल बिछे रहते हैं।

एक आदमी से रहा न गया, उसने पूछा, महाराज, मक्खी की भिनभिनाहट आपने कैसे सुन ली ? यह तो हमें भी सुनाई नहीं दी। तभी दूसरे आदमी ने कहा, तो क्या आप बहरे नहीं हैं ? लोग तो आपको बहरा समझते हैं। हातिम बोले, झूठी बातें सुनने की बजाय बहरा होना कहीं अच्छा है। यदि मैं बात-बात पर उन्हें जवाब देता तो मेरे संगी-साथी मेरे अवगुणों को छिपाते और मेरे गुणों का गान करते रहते। इस तरह मैं अपने आप को बहुत अच्छा आदमी समझने लगता। इससे बुरी बात और क्या होती। इसी कारण मैं अपने आप को बहरा प्रकट करता हूं। शायद इस बहरेपन की आड़ में मेरे कई अवगुण दूर हो जाएंगे। क्योंकि मेरे साथी मुझे बहरा समझकर मेरी अच्छाई-बुराई बिना लाग-लपेट के साफ-साफ कह देते हैं।

४९१) दुनिया का मालिक- मशहूर सूफी संत उमर अपने पास आने वाले हर व्यक्ति की किसी न किसी रूप में परीक्षा लेते थे। वे ऐसे प्रश्न करते कि सामनेवाला उलझन में पड़ जाता लेकिन उमर खुद ही उसका समाधान भी कर देते थे। एक बार वह जंगल की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक चरवाहा मिला, जो बकरियां चरा रहा था। उमर उसके पास गए और बोले, एक बकरी मुझे दे दो। चरवाहे ने कहा कि वह उन्हें बकरी नहीं दे सकता क्योंकि उसका मालिक नाराज हो जाएगा। तब उमर ने कहा, अरे इतनी बकरियां हैं, एक कम हो भी गईं तो मालिक को थोड़े ही पता चलेगा। चरवाहा बोला, मेरा मालिक तो यहां नहीं है लेकिन जो सारी दुनिया का मालिक है, वह तो हमें देख रहा है। उसके विश्वास को मैं नहीं तोड़ सकता। मुझे माफ करें। मैं आपको बकरी नहीं दे सकता।

उमर उससे बेहद प्रभावित हुए। वह उसके साथ उसके मालिक के पास पहुंचे। चरवाहा गुलाम था। उमर ने उसके मालिक से कहा तुमने इस नेक बंदे को गुलाम बनाकर गुनाह किया है। मालिक को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने चरवाहे को आजाद कर दिया और उसे ढेर सारे उपहार भी दिए।

४९२) जिगर मुरादाबादी- उर्दू के प्रसिद्ध शायर जिगर मुरादाबादी की पुस्तक आतिशे गुल की छपाई हो चुकी थी। सिद्दीक हसन आई.सी.एस. जिगर साहब के मित्र थे। उन्होंने सोचा कि यदि पचास पुस्तकों पर शायर के हस्ताक्षर करा लिये जाये तो वे पुस्तकें ज्यादा मूल्य पर बिक जायेंगी।

एक दिन जब जिगर मुरादाबादी अच्छे मूड में थे सिद्दीक हसन ने उनसे कहा कि कुछ पुस्तकों पर हस्ताक्षर कर दीजिए।

क्या करोगे। जिगर साहब ने पूछा।

करूंगा क्या। जहां और पुस्तकें बिकेंगी, इन्हें भी बेच दूंगा और शायर के हस्ताक्षर के कारण वे अधिक मूल्य पर बिक जायेंगी। सिद्दीक हसन ने उत्तर दिया।

यह सुनकर जिगर साहब मुस्करा दिये और कहने लगे- मैं अपने हस्ताक्षर बेचूं ? नहीं। सिद्दीक हसन ने बहुत प्रयास किया मगर स्वाभिमानी जिगर मुरादाबादी ने पुस्तकों पर हस्ताक्षर नहीं किये।

४९३) दरबारी शायर- निजाम हैदराबाद ने फायज बनारस को अपना दरबारी शायब बनाने का विचार किया। उन्होंने इस आशय का एक पत्र लिखकर अपने एक विशेष दूत के हाथों फायज साहब के पास बनारस भेजा। शायर फायज मदनमोहन मालवीय डा. भगवानदास और शाद अजीमाबादी के मित्रों में से थे। निजाम के पत्र के जवाब में फायज ने दूत को पत्र देकर वापस हैदराबाद भेज दिया।

जब निजाम ने शायर का जवाब पढ़ा तो पहले तो उनके चेहरे पर कुछ शिकन आई, लेकिन बाद में वह मुस्करा दिए। निजाम के मीर मुंशी ने भरे दरबार में इस पत्र को पढ़कर सुनाया तो शायर की हिम्मत और साहस पर दरबार स्तब्ध रह गया। फायज का उत्तर था।

नजर कर इनकलाब-ए-आलम-ए-वौरंग पर फायज, पलट दें ताज-ए-शाही को तो कासा है गदाई का।

इसका अर्थ है ऐ निजाम तू जमाने के इनकलाब पर दृष्टि डाल तू क्या किसीको दरबारी शायर बनाएगा तू तो खुद जब दरबार से उठता है और अपने ताज को अपने हाथों में लिए होता है तो उस समय तेरी स्थिति उस फकीर की भांति होती है, जो अपने हाथों में खुला कटोरा लेकर चलता है।

४९४) पानी पीना है- एक बार एक पक्षी मूसा साहब के पास आया और आकर कहने लगा- महाराज प्यास लगी है, पानी पीना है। मूसा साहब कहने लगे- तेरे पास तो मान सरोवर झील भरी है, उड़ जा, पानी पीआ वहां से। तब परिन्दे ने

कहा, मूसा साहिब-मैं अपने मालिक के दीदार कर रहा हूं। यदि मैं पानी पीने चला गया तो उसके दीदार से वंचित हो जाऊंगा। बिछोह हो जाएगा मेरा। आप तो ताकत के मालिक हो, ऐसे कीजिए अपनी निगाहें करम से यहीं चश्मा बहा दीजिए। मैं यहीं से चोंच भर-भर के पानी पी लूंगा। आपके खजाने में तो कुछ कमी नहीं आएगी, और मेरा मेरे मालिक से मिलना रहेगा। मूसा साहब मुस्कराए, हंस पड़े- तू पानी पीने नहीं जा रहा, बिछोह के दुख से, प्यासा मर रहा है। मैं भी तो उस मालिक के साथ लौ लगा कर बैठा हुआ हूं। उस जोत के साथ, आंख के साथ आंख मिला कर बैठा हुआ हूं। जब तक चश्मा बनाऊंगा, यहां लाऊंगा, मेरा भी तो उससे बिछोह हो जाएगा। मेरा भी तो हाल वैसा ही हो जाएगा। सो मैंने पानी के लिए चश्मा नहीं बनाया। पर वह परिंदा अपनी जिद्द पर रहा और मूसा अपनी जिद पर। पर कहते हैं कि संत-महात्मा दयालु व कृपालु होते हैं। मूसा ने एक ही करमे-निगाह डाली कि वहां रहमत का चश्मा बह निकला। उस पंछी ने पानी पिया। उस अमृत के दो घूंट अपनी चोंच में भरे। अब वह पक्षी, पक्षी न रहा, फरिश्ता बन गया।

यह चश्मे का अमृत आप रोज पीते हो, पर हम उसकी कदर नहीं करते। हम उसको जानते नहीं।

४९५) ताकतवर कौन- पैगंबर साहब अपने शिष्यों के बीच बैठे हुए थे। वह उनकी जिज्ञासाओं का समाधान कर रहे थे। बीच-बीच में स्वयं भी उनसे प्रश्न करने लगते थे।

उन्होंने शिष्यों से पूछा, तुम लोगे किसे मजबूत और ताकतवर मानते हो ? एक शिष्य ने कहा, जो दूसरे से शारीरिक दृष्टि से ताकतवर होता है। जो दूसरे को जमीन पर पटक दे। उसे पछाड़ दे, वही ताकतवर होता है।

पैगंबर साहब बोले, किसी को नीचा दिखानेवाला या किसी को जमीन पर पटक देने वाला कभी ताकतवर नहीं होता। असली ताकतवर वह है, जो गुस्से की हालत में अपने को संभालने की क्षमता रखता हो।

कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, दूसरे को पटक देने वाला नहीं, बल्कि, किसी गिरते आदमी को उठाने वाला ताकतवर होता है। किसी को नीचा दिखाने के लिए ताकत का उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। किसी को सताने के लिए ताकत का उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। ताकत का इस्तेमाल गलत कामों में नहीं, बल्कि हमेशा अच्छे कामों में ही होना चाहिए।

४९६) धन का उपभोग अनुचित- एक बार हजरत मोहम्मद साहब अपनी बेटी से मिलने उसके घर गए। उन्होंने देखा कि साधन सम्पन्न बेटी गहनों से सुसज्जित है। वैभव का प्रदर्शन में उपयोग हो रहा है। हजरत यह देखकर वापस लौटने लगे। बेटी ने दुखी होकर लौटने का कारण पूछा तो मोहम्मद साहब बोले हमें गरीबों की तरह रहना चाहिए तथा धन को भलाई के कार्यों में खर्च करना चाहिए। बेटी के ऊपर पिता की बातों का गहरा असर हुआ और उसने अपना सबकुछ जनहित के लिए दान कर दिया।

४९७) सीख- इस्लाम धर्म के प्रवर्त्तक मोहम्मद साहब अपने कुछ साथियों के साथ जा रहे थे कि सामने से एक शराबी आ गया और उनका रास्ता रोक कर पूछने लगा, तुमने हमें शराब पीने से क्यों मना किया ?

यह एक घृणित कार्य है, मोहम्मद साहब ने कहा।

अच्छा यह बताओ, क्या अंगूर खाना हराम है ? नहीं। क्या ज्वार-मक्का खाना हराम है ? नीं।

जब इनका खाना-पीना हराम नहीं है तो फिर इनको मिलाकर बनायी गयी शराब पीना क्यों हराम है ? शराबी ने तेज स्वर में पूछा।

मोहम्मद साहब एक पल चुप रहे फिर उन्होंने शराबी से पूछा, यदि एक मुट्ठी मिट्टी तुम्हें मारूं तो चोट लगेगी ? नहीं।

अगर मैं तुम्हारे ऊपर एक गिलास पानी फेंक कर मारू तो तुम्हें चोट लगेगी ? नहीं।

अगर इन चीजों को पका कर इसकी ईंट बनायी जाए और फिर मारी जाए तब तो तुम्हें चोट लगेगी न ? हां जरूर लगेगी।

बस, उसी तरह शराब बनाकर पीने से इंसान के दिल में चोट लगती है।

मोहम्मद साहब ने शराबी को समझाया। शराबी की समझ में मोहम्मद साहब की बात आ गई और उसने उस दिन से शराब पीना छोड़ दिया।

४९८) जरूरत- सूफी संत शेख निजामुद्दीन औलिया के जीवन के कुछ ही दिन बचे थे। एक भक्त ने फरमाया कि अल्लाह अपने विशिष्ट भक्तों को यह अनुमति देता है कि वे यदि चाहें तो संसार में कुछ दिन और रह लें। यदि आप भी कुछ दिन की मोहलत ले लें, तो हजारों के लिए लाभ और कल्याण का सिलसिला जारी रहे। भक्त का विश्वास नहीं तोड़ना चाहते थे, इसलिए फरमाया, मैंने स्वप्न में पैगम्बर मुहम्मद साहब को देखा है। वे फरमाते हैं- निजाम। तेरी मुझे बहुत जरूरत है। इसलिए मुझे वहाँ जाना ही होगा।

४९९) एक दिन मोहम्मद साहब के पास एक हट्टा-कट्टा पर भूख से पीड़ित और फटेहाल भिखारी आया। उस भिखारी ने मोहम्मद साहब से कुछ दान देने की गुजारिश की। पहले तो मोहम्मद साहब को उस पर क्रोध आया। फिर उन्होंने उस भिखारी की ओर देखा और पूछा, इस समय तुम्हारे पास क्या है ?

भिखारी ने निराशा भरे स्वर में कहा, अब तो मेरे पास सिर्फ एक कम्बल और बर्तन हैं। मुहम्मद साहब ने इन्हें बिकवाकर उसे आटा और एक कुल्हाड़ी खरीद दी और उससे कहा, सुनो आज के लिए यह आटा तुम्हारी भूख मिटा देगा और कल से तुम इस कुल्हाड़ी का प्रयोग कर लकड़ियां काटकर अपनी आजीविका चलाना।

भिखारी ने ऐसा ही किया और अब उस कुल्हाड़ी की मदद से आत्मनिर्भर बन चुका था। वह मन ही मन मोहम्मद साहब के महादान का धन्यवाद कर रहा था।

५००) अति भली नहीं- एक बार की बात है। हजरत मुहम्मद की बीवी के पास तीन व्यक्ति आए और उनसे हजरत मुहम्मद के नमाज, रोजा और दूसरे अहवाल के बारे में पूछा। जब उन्हें हजरत मुहम्मद की इबादत (नमाज, रोजा) की मात्रा कम आंकी। उनमें से एक ने कहा कि हजरत मुहम्मद तो नबी हैं, हमारी और उनकी क्या तुलना ? लेकिन मैं दिन-रात नमाज पढ़ता रहूंगा और किसी भी वक्त सोऊंगा नहीं।

इस पर दूसरे ने कहा- मैंने तय किया है कि आज से हर रोज रोजा रखूंगा और किसी भी दिन बगैर रोजा नहीं रहूंगा।

तब तीसरे ने भी बढ़-चढ़कर कहा- मैं जीवन भर शादी नहीं करूंगा। कुंआरा ही रहूंगा, ताकि सारा समय अल्लाह की इबादत में लगा सकूँ।

जब हजरत मुहम्मद को उनकी इस प्रकार की प्रतिज्ञा का इल्म हुआ तो उन्होंने कहा कि मैं नमाज भी पढ़ता हूं और सोता भी हूं। रोजा रखता भी हूं और कभी-कभी नहीं भी रखता। और मैंने शादियां भी कर रखी हैं। याद रखो, जिसने मेरे तरीके का उल्लंघन किया, वह मेरे दीन पर नहीं है। उन्होंने अपनी बात को तफसील से समझाते हुए कहा, धार्मिक ऐतबार से भी इबादत में किसी रीति-रिवाज की अति जायज नहीं है। नेक बंदों को हमेशा मध्यम मार्ग पर चलना चाहिए, यही जीवन में सफलता की सीढ़ी है।

दूध से बढ़कर पौष्टिक पेय और क्या हो सकता है ? मगर आप उसे हद से ज्यादा पी लेंगे तो पेट अवश्य खराब हो जाएगा। हजरत ने समझाया कि यह प्रकृति कभी नष्ट नहीं होती, क्यों ? इसलिए कि उसके अंदर और उसकी हर वस्तु में संतुलन पाया जाता है, अति का नाम व निशान तक नहीं पाया जाता।

५०१) **सच्चा प्रेम-** मुहम्मद पैगम्बर ने एक बिल्ली पाल रखी थी, जिसका नाम उन्होंने रखा था मुएजा। उस पर उनका दिलोजान से प्रेम था। एक बार उनके नमाज का वक्त हुआ, तो वे अपनी चटाई लाने गये। देखा कि उनकी बिल्ली चटाई पर सोयी हुई है। उनके सामने समस्या उपस्थित हुई। नमाज पढ़ने के लिए चटाई लेकर जाना था, मगर उस पर मुएजा सोयी हुई थी और यदि उसे ले जाएँ तो उसकी निद्रा भंग हो जाएगी। उन्हें एक तरकीब सूझी। वे एक चाकू लेकर आये और जितने हिस्से पर वह बिल्ली सोयी थी, उतना हिस्सा काटकर शेष चटाई को लेकर वे नमाज के लिए मस्जिद गये।

५०२) गुअरिफ सुशानी नामक एक दरवेश था। एक बार एक व्यक्ति धर्म ज्ञान की चाह में उनके पास आया। सुशानी ने कहा, भाई, यदि तू मुसलमान है तो ईसाइयों के पास जा। अगर सुन्नी है तो ईरान जा। मतलब यह कि तू जिस धर्म को मानता है उसके विरोधी के पास जाकर रह। विरोधी के मुंह से उसके धर्म की बातें सुनते-सुनते तुझमें इतनी सहनशक्ति आ जाएगी कि तुझे किसी भी बात का दुख न होगा। तभी तुझे सच्ची शांति मिलेगी और खुदा के बंदों में तू जगह पा सकता है।

५०३) बात उन दिनों की है जब बगदाद में संत फलीज की खूब धूम थी। लोग उनके ईश्वर और धर्म संबंधी विचार से बहुत अधिक प्रभावित थे। लोग उनसे दूर-दूर से मिलने आते थे। संत उनसे मिलते और उनकी जिज्ञासा शांत करते। जब बगदाद के खलीफा हारून अल रशीद ने संत की चर्चा सुनी तो वह उनसे मिलने को उत्सुक हो उठे। एक दिन वह अपने एक खास वजीर के साथ संत के दर्शन करने जा पहुंचे। खलीफा संत की बातों से बेहद प्रभावित हुए। धर्म चर्चा के बाद जब वह वहां से चलने लगे तो उन्होंने एक हजार दीनार की थैली संत के चरणों में रख दी। संत ने मुस्कराकर थैली लौटाते हुए कहा, जहांपनाह, मैंने आपको जन्नत तक जाने का रास्ता बताया। बदले में आप मुझे दोजख की राह पर क्यों धकेल रहे हैं?

५०४) **शिक्षा-** एक बार एक युवती भटकती हुई, थकी हारी सी, सन्त हुसैन के पास आई। वह बिना घूंघट किये निर्लज्ज की भांति उनके समीप बैठकर अपने पति की प्रेम शून्यता और उसकी निर्ममता की शिकायत सी करने लगी। सन्त ने उससे कहा- पहले तुम तो अपने कपडे संभाल लो, मुंह तो ढक लो, फिर जो कहना हो कहो। अरब देशों में परदे का रिवाज है, वह आज भी वैसा ही प्रचलित है। युवती ने असन्तुष्ट होकर कहा- अरे, मैं तो भगवान के बनाये हुऐ एक नश्वर प्राणी के प्रेम में इतनी उन्मत्त हो गई हूं कि मुझे अपने तन-मन की भी सुधि नहीं रही है। मैं उसे ढूंढने के लिए बाजार में निकल आई हूं। परन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि आप प्रभु-प्रेमी कहला कर भी मेरे मुख की सुधि नहीं रख सके। सन्त हुसैन को इस उत्तर ने चकित कर दिया। इसे भगवान की दी हुई शिक्षा समझ कर वे अत्यधिक तन्मयता से भगवान् के भजन में लग गये।

५०५) **बड़ों की जिम्मेदारिया-** एक शराबी नशे में चूर दलदल के पास खड़ा था। हसन उधर से निकल रहे थे। उन्होंने देखा कि शराबी कभी भी दलदल में गिर सकता था। हसन बोले, बेअकल। जरा संभल, नहीं तो ऐसा फंसेगा जो कभी नहीं निकल पायेगा। शराबी हसन को पहचान गया। हंसकर बोला अपनी गलती की सजा तो मैं अकेला भुगतूंगा पर आपने गलतियां की तो अपने साथ शागिर्दों को भी ले डूबेंगे। <u>समझदारी की जिम्मेदारियां भी बड़ी होती है। लोग उनसे ज्यादा अपेक्षा रखते हैं</u>।

५०६) **संतों का गुण-** सूफी संत हसन एक दिन स्नान करने गुसलखाने में गये। उन्होंने अपने कपडे बाहर टांग दिये। जब वह स्नानघर के बाहर आये तो देखा, कपडे गायब हैं। वह सोचने लगे कि कपड़े कहां गये ? उन्होंने टांगे तो वही थे। जब वह सोच में खड़े थे तो देखते क्या हैं कि उनके कपडे लेकर एक आदमी चला आ रहा है। पास आकर बोला, माफ करिये, मैं चोर हूं। आपके कपड़ों को देखकर मेरा जी ललचा आया और मैं इन्हें उठाकर ले गया। लेकिन थोड़ी दूर जाते ही मुझे लगा कि मेरे हाथ बेकार हो गये हैं। मैं उल्टे पांव लौट पड़ा। मैं अब क्या करूं ? मेरे हाथ काम नहीं कर रहे हैं। हसन

को यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ। एक छोटे-से अपराध के लिए उसे कितनी बड़ी सजा मिल गई। फिर सबसे अधिक दु:ख उनको इस बात का था कि ऐसा उनके कारण हुआ। उन्होंने न केवल उस चोर को क्षमा किया, बल्कि ईश्वर से प्रार्थना की कि उसके हाथ जल्दी-से-जल्दी अच्छे हो जाये। संतों का यही गुण होता है कि वे दूसरे के दु:ख-दर्द को देख नहीं सकते।

५०७) बादशाह औरंगजेब ने सूफी संत शाह लतीफ के पास दूत भेजकर उन्हें कुछ भूमि देने की पेशकश की और दर्शन के लिए आने की स्वीकृति मांगी। शाह लतीफ ने दूत से कहा, मुझे जमीन की क्या जरूरत है। बादशाह से कहना कि मैं उन्हें लिखकर जवाब दूंगा। शाह लतीफ ने लिखा, खुदा के बंदों का ख्याल है कि फकीर को बादशाही ड्योढ़ी पर पैर नहीं रखना चाहिए। खुदा ने मेहरबानी करके तुमको जमीन का एक टुकड़ा दिया है। यदि तुमने मुझे कुछ दे दिया तो तुम्हारे पास क्या बचेगा। मेरे गुरु कहा करते थे कि जिस व्यक्ति का नाम बादशाह के कागजात में दर्ज हो जाता है, उसका नाम खुदा के कागजात से कट जाता है। मैं तुम्हारी जागीर स्वीकार करके या दरबार में हाजिरी लगाकर खुदा के कागजात से अपना नाम क्यों कटवाऊं।

५०८) बगदाद का बादशाह हारून-अल-रशीद ने प्रजा पर नमक कर लगाया। नगर में डौंडी पिटवाई कि हर नागरिक को अपनी आय की पच्चीस प्रतिशत राशि नमक-कर के रूप में बादशाह के खजाने में जमा करनी होगी। नगर में हाहाकार मच गया, पर बादशाह के आदेशों का उल्लंघन करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। दूसरे ही दिन एक गरीब किसान बादशाह के पास आया और उसने विनम्र शब्दों में कहा, जहांपनाह, धृष्टता क्षमा करें, यदि आप नमक-कर लगाने का प्रयोजन बता सकें, तो मेरा समाधान हो सकता है। अवश्य-बादशाह बोले, सुनो, मेरी प्रजा मेरे बच्चों जैसी है। मैं तुम सबकी रक्षा एक पिता के समान करता हूं। तुम पर जब भी कोई आपदा आती है, तो मैं चिंतित हो जाता हूं। तुम्हारी भूख दूर करने के लिए तुम्हारे भोजन की व्यवस्था करता हूं। यानी तुम्हारी सुख-सुविधा का मैं बराबर ख्याल करता हूं। इन सब बातों के लिए पैसों की आवश्यकता होती है या नहीं? बस इसीलिए मैं तुमसे अल्प मात्रा में नमक-कर ले रहा हूं। किसान बोला- जहांपनाह, आप ठीक कहते हैं। मुझे विश्वास हो गया है कि आप तो यह कर लगा रहे है, वह हमारी भलाई के लिए ही है। मुझे भी इससे सीख मिल गई है।

अब मैं भी इसका प्रयोग अपने घर में करूंगा। वह कैसे? बादशाह ने पूछा तो किसान ने जवाब दिया- गरीबपरवर, मैंने एक कुत्ता पाल रखा है। मुझे उसका बराबर ख्याल रहता है। जब भी उसे चोट वगैरह लगती है, मैं अपने बच्चे की तरह उसकी सेवा-सुश्रूषा करता हूं। भूख लगती है तो उसे रोटी देता हूं। पर जब कल सुबह उसे भूख लगेगी और वह मेरे तलूवे चाटेगा, तो मैं उससे कहूंगा- मेरे बेटे, तू भूखा है इसका मुझे एहसास है। ठहर, मैं इसका इन्तजाम करता हूं। फिर एक छुरी लाकर उससे उसकी पूंछ का एक छोटा टुकड़ा काटकर उसके सामने रखूंगा और कहूंगा- मेरे बेटे, मैं तेरी रक्षा अपने बच्चों की तरह करता हूं। मुझे तेरी भलाई का हमेशा ख्याल रहता है, इसीलिए तेरी पूंछ का एक छोटा-सा टुकड़ा काटकर तुझे दिया है। तू इसे खा और संतुष्ट हो जा। यह सुनते ही बादशाह को अपनी गलती महसूस हुई और उसने दूसरे दिन ही नमक- कर उठा लिया।

५०९) बादशाह और संत - एक बादशाह सूफी संत मियां मीर से मिलने पहुंचा। उस समय संत की कुटिया के बाहर एक फकीर खड़ा था। बादशाह ने फकीर से कहा- हमें संत से मिलना है। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ। फकीर अंदर चला गया। संत ने फकीर से पूछा- बादशाह किस हाल में है? फकीर बोला- लाव-लश्कर के साथ कई ऊंटों पर हीरे-जवाहरात लादकर लाया है। संत ने बादशाह को लौटा देने को कहा। बादशाह लौट तो गया लेकिन राजधानी नहीं गया। उसने लाव-लश्कर वापस भेज दिया पर खुद फकीर का वेश बनाकर संत की कुटिया के पास ही रहने लगा। कुछ समय बाद वह फिर संत से मिलने गया लेकिन एक बार फिर उसे लौटा दिया गया। इस बार संत ने उसे संदेश दिया कि वह रावी

के तट पर रह रहे एक वैरागी की सेवा करे। दो साल तक बादशाह वैरागी की सेवा में जुटा रहा। दो साल में बादशाह का चेहरा एकदम काला पड़ गया। उस पर झुर्रियां पड़ गईं। एक दिन वैरागी ने उससे कहा- आप संत मियां मिर से मिलने आए हैं न? आप उनके दर्शन कर आइए। इस बार बादशाह को संत ने अंदर अपने पास बुला लिया। संत के पास पहुंचकर बादशाह ने पूछा- आपने मुझे दो बार लौटा क्यों दिया था? इस पर संत ने जवाब दिया- पहली बार तुम बादशाही रौब गांठने आए थे। दूसरी बार तुमने बादशाही का चोला तो उतार दिया था लेकिन घमंड नहीं गया। जैसे अमीरी-गरीबी में वैर है वैसे ही अमीरी और फकीरी में वैर है। उसके बाद बादशाह हमेशा के लिए फकीर बन गया।

५१०) खुदा के साथ - बात उस समय की है जब उमर खैयाम अपने साथियों और शार्गिदों के साथ गांव-गांव, शहर-शहर घूमा करते थे। एक दिन वे अपने एक शागिर्द के साथ घने जंगल से गुजर रहे थे। चलते-चलते नमाज का वक्त हो गया। दोनों नमाज अदा करने बैठ गए। तभी शेर की जोरदार दहाड़ सुनाई दी। शागिर्द घबरा गया और नमाज अधूरी छोड़कर एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। परंतु उमर बिना विचलित हुए अपनी नमाज अदा करते रहे। कुछ देर बाद शेर वहां आया। उसने उमर को देखा और सिर झुकाकर हट गया। फिर धीरे-धीरे वापस चला गया। शागिर्द को जब विश्वास हो गया कि शेर दूर चला गया है, तब वह पेड़ से उतरा। उमर ने बड़े आराम से अपनी नमाज खत्म की और दोनों फिर अपनी यात्रा पर चल दिए। थोड़ी देर बाद शागिर्द को जोरदार थप्पड़ मारने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने पलटकर उमर को देखा और पूछा- आपने अपने ही गाल पर थप्पड़ क्यों मारा? उमर बोले- मेरे गाल पर एक मच्छर बैठा था, जिसने मुझे काट लिया। उसे मारने के लिए मैंने चांटा मारा। शागिर्द ने मजाक किया- जब शेर आया, तो आप बिना डरे नमाज पढ़ते रहे और जब आपके साथ मैं भी हूं, तब एक मच्छर से आपको इतनी परेशानी हो गई? उमर हंसकर बोले- अलग-अलग हालात में व्यवहार भी बदल जाता है। उस समय मैं खुदा के साथ था और इस समय मैं इंसान के साथ हूं। खुदा के साथ होने पर सच्चे भक्त को किसी बात की न खबर होती है और न ही चिंता। यह सुनकर शागिर्द अवाक रह गया।

५११) खोटा सिक्का- निजामुद्दीन औलिया के एक शिष्य उन्हीं की तरह त्यागी और सादगी पसंद थे। वे सब्जी उबाल कर बेचते थे और अपनी जीविका चलाते थे। गांव वाले श्रद्धवाश सस्ती सब्जियां दे जाते और उन्हें वे उबाल कर ग्राहकों को खिलाते। सुबह-शाम प्रवचन भी करते। उम्र बढ़ने के साथ उनकी आंखों की रोशनी काफी कम हो गई। लोग उनके ढाबे में खा-पीकर खोटे सिक्के उन्हें दे जाते। उन्हें पता था कि लोग उनकी आंखों की कमजोरी का फायदा उठाकर उन्हें खोटे सिक्के दे रहे है। लेकिन वे किसी से शिकायत नहीं करते। वे उन खोटे सिक्कों को एक घड़े में भरते जाते। यह सिलसिला चलता रहा। एक दिन उनके जीवन का अंतिम क्षण आ पहुंचा। उन्होंने ईश्वर से अंतिम प्रार्थना करते हुए कहा- हे ईश्वर, मैं सारी जिन्दगी लोगों से खोटे सिक्के लेता रहा हूं। अब मेरे जैसा खोटा सिक्का भी तेरे पास आ रहा है। उम्मीद है, तू भी इस खोटे सिक्के को स्वीकार कर लेगा। इस प्रार्थना के थोड़ी देर बाद उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

५१२) शेख की जूतियां- सूफी संत शेख निजामुद्दीन औलिया के खानकाह (आश्रम) का नियम था कि जो चढ़ावा आता था, उसे जरूरतमंद लोगों में बांट दिया जाता था। एक दिन सुबह होते ही एक यात्री फकीर आया, तब तक दुर्भाग्यवश कुछ चढ़ावा नहीं आ सका था। शेख ने उस फकीर को अपनी जूतियां निकाल कर दे दीं। रास्ते में फकीर को अमीर खुसरो मिल गए। उन्होंने शेख की जूतियों को पहचान लिया। उन्होंने अपने पास की सारी रकम देकर जूतियों को खरीद लिया। जब खुसरो शेख के पास पहुंचे तो शेख जूतियों को एकटक निहारते रहे। खुसरो ने कहा- रकम देकर मैंने जूतियां तो ले लीं, लेकिन इनका मोल मैं नहीं चुका सका।

५१३) सबसे बड़ी सेवा- अबू उसमान हैरी नामक के एक संत थे। खुरासान में रहते थे। दूर-दूर तक उनका नाम था। लोग बड़ी श्रद्धा से उनके पास आते थे और उनके सात्विक जीवन और उपदेशों से लाभ उठाते थे। एक बार एब आदमी हज करने के विचार से घर से निकला। रास्तें में अबू उसमान हैरी की जगह पड़ती थी। उसने सोचा कि थोड़ा रुककर संत के दर्शन करता चलूं। यह सोचकर वह उनके निवास पर पहुंचा और उनको सलाम किया, लेकिन संत ने उसके सलाम का जवाब नहीं दिया। इस बात से वह आदमी बड़ा दु:खी हुआ। वह कितनी श्रद्धा से उनके पास आया था और उन्होंने उसका अभिवादन भी स्वीकार नहीं किया। यह क्या हुआ? वह सोच में पड़ा हैरान हो रहा था कि संत ने कहा, मां को नाराज करके हज करना अच्छा नहीं। अब उसे ध्यान आया कि उसकी मां को उसकी जरूरत थी और वह उसे रोकती रही थी। जब वह नहीं माना तो वह नाराज भी हो उठी थी। उसकी नाराजगी की चिन्ता न करके वह घर से चल पड़ा था। संत की बात सुनकर वह उल्टे पैरों लौट गया आर जबतक उसकी मां जीवित रही, उनकी सेवा करता रहा। मां का देहान्त हो जाने के बाद जब वह उन संत के पास पहुंचा, तो उन्होंने बड़े प्यार और आत्मीयता से उसका स्वागत किया और उसे अपना आशीर्वाद दिया।

५१४) सबसे बड़ा धन- अहमद नामक एक फकीर थे। उनका ज्यादातर वक्त इबादत या लोगों की मदद में बीतता था। वह लोगों की समस्याओं का समाधान चुटकियों में कर देते थे। वह जो उपाय बताते या तरीके सुझाते, लोग उन पर आंख मूंदकर अमल करते थे। एक दिन उनके पड़ोस में रहनेवाले व्यापारी बहराम के घर से रोने-धोने व शोर-शराबे की आवाजें सुनाई पड़ीं। यह सुनते ही अहमद को पता चला कि बहराम जब खरीदा गया माल ऊँटों पर लादकर घर ला रहा था तो रास्ते में डाकुओं ने उसका सारा सामान लूट लिया। अपनी सारी संपत्ति लुट जाने के कारण वह पागल सा हो गया और आत्महत्या करने जा रहा था। ऐन मौके पर कुछ लोगों ने आकर उसे आत्महत्या जैसा घृणित कार्य करने से बचा लिया। खुदकुशी न कर पाने के कारण वह आवेश में बिना सोचे-समझे रो-रो कर बोले जा रहा था, कंगाल होकर जीने का क्या मतलब है। मैं आखिर क्यों जिंदा रहूं? अहमद को सामने खड़ा देखकर उसे थोड़ी राहत मिली। अहमद ने उसके पास आकर पूछा, बहराम, जब तुम पैदा हुए थे, तो क्या वह धन तुम्हारे पास था जो लुटेरों ने लूट लिया? यह सुनकर बहराम बोला, नहीं, मैंने बड़ा होने पर अपनी मेहनत से वह दौलत इकट्ठा की थी। इस पर अहमद बोले, क्या लुटेरों ने मेहनत करनेवाले तुम्हारे हाथ-पैरों को भी लूट लिया? बहराम बोला- नहीं। इस पर अहमद ने कहा, तुमने तो किसी को नहीं लूटा। तुम्हारी असली दौलत यानी तुम्हारे हाथ-पैर सही सलामत हैं और फिर तुम्हारे दिल में रहम है। इनसे बढ़कर कोई और धन नहीं है। फिर तुम अपने आप को कंगाल कैसे बता रहे हो? अहमद के इन शब्दों को सुनकर बहराम का सारा दु:ख-दर्द दूर हो गया। उसने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि वह मरने की बात सोच रहा था। अगले ही दिन से वह पूरी लगन के साथ व्यापार में जुट गया।

५१५) सफलता का रहस्य- चंद्रगुप्त मौर्य के सेनापति व राजनीतिक गुरु चाणक्य ने कहा है कि जिस तरह बांबी के भीतर सांप मर जाता है, ठीक उसी प्रकार अपने दिल की हर बात या भेद हर किसी को बता देने वाले मनुष्य का नाश भी जल्दी ही हो जाता है।

इसलिए यदि कोई मनुष्य अपनी भलाई चाहता है तो उसे चाहिये कि वह अपने मन की हर बात हर किसी को न बताये। यही सफलता का सबसे बड़ा गुरुमंत्र है। जिस मनुष्य ने इसे अपने मन में गांठ बांधकर रख लिया है वह जीवन में अवश्य ही सफलता प्राप्त करेगा।

५१६) भिखारी की सीख- चंद्रगुप्त मौर्य दोपहर में वेश बदलकर नगर का निरीक्षण करने के लिए निकले। धूप व गर्मी से वह बेहाल थे। एक जगह घना वृक्ष देखकर वह उसके नीचे बैठ गए। उन्हीं के ठीक सामने पेड़ के नीचे एक भिखारी

फटेहाल, चिथड़ों में बैठा प्रसन्न कुछ गुनगुना रहा था। तभी वहां एक और भिखारी आया और चंद्रगुप्त से बोला, भगवान के नाम पर कुछ दे दो। मैं दो दिन से भूखा हूं। चंद्रगुप्त बोले, भाग यहां से, हट्टा कट्टा होने पर भी हाथ फैलाता है। भिखारी डांट खाकर सामने बैठे भिखारी के पास गया और उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा। उस भिखारी ने अपनी पोटली खोली और उसमें से एक सिक्का निकालते हुए बोला, जा इस समय मेरे पास यही है। इसीसे खरीद कर कुछ खा ले। दूसरा भिखारी पहले भिखारी को आशीष देता हुआ चला गया और पहला भिखारी भी गुनगुनाने लगा। उन्हें संदेह हुआ कि कहीं यह कोई विदेशी गुप्तचर न हो। वह उसके पास जा पहुंचे और उसके बारे में पूछने लगे। भिखारी बोला, मैं भिखारी हूं और मेरा नाम कालीचरण है। चंद्रगुप्त बोले, पर तुम्हारे चेहरे पर भिखारियों जैसी दीनता नहीं बल्कि राजाओं जैसी चमक है। भिखारी मुस्कराते हुए बोला, असल में मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहता, सदा दूसरों के लिए कुछ करता रहता हूं। इससे मुझे सुख मिलता है, यही मेरे चेहरे पर चमक का राज है। चंद्रगुप्त इस सीख को अपने जीवन में उतारने का संकल्प लिए चल पड़े।

५१७) रूप और गुण- बहुत पुराने समय की यह कहानी है। एक बार मगध के सम्राट राजा चन्द्रगुप्त अपने साहस, शौर्य और न्यायप्रियता के लिए पूरे संसार में प्रसिद्ध हैं। सम्राट चंद्रगुप्त देखने में सुंदर और गोरे थे, जबकि चाणक्य काले और कुरूप। एक बार सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने महल में विद्वान महामंत्री विष्णुगुप्त चाणक्य को आमंत्रित किया हुआ था महल में महारानी भी उपस्थित थीं। महामंत्री चाणक्य के आने पर उन्हें उचित आसन दिया गया।

पाटिलपुत्र के दरबार में वे अपने प्रमुख अमात्यों के साथ राजकाज की बात कर रहे थे। उनको अपने लिए एक सेवक की आवश्यकता थी। एक बार दोनों में नीति संबंधी बहस हो रही थी। बहस के दौरान चंद्रगुप्त चाणक्य के किसी भी प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे पा रहे थे। वह समझ गए कि चाणक्य से मुकाबला करना कठिन है। सम्राट ने कहा- गुरुदेव, क्षमा करें एक बात कहूँ? चाणक्य ने कहा- आप तो सम्राट हैं क्षमा माँगने की क्या बात है, आप कुछ भी कह सकते हैं। विलक्षण प्रतिभा के धनी चाणक्य सुंदर नहीं थे। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से मजाक करते हुए कहा- मंत्रीवर, आप जितने ज्ञान सम्पन्न और बुद्धिमान हैं उतने ही सुन्दर होते तो बात ही कुछ और होती। इसलिए उन्होंने अचानक प्रसंग बदलते हुए कहा, राज्य के सभी लोग आपके पांडित्य, विद्वता और सूझबूझ का लोहा मानते हैं। लेकिन यदि भगवान ने आपको सौंदर्य प्रदान किया होता तो विश्व में आपका कोई विकल्प नहीं होता। महारानी बोली- महाराज, आदमी की पूजा उसके रूप से नहीं, गुण और बुद्धि से होती है। राजा ने कहा- ऐसा कोई उदाहरण है, जहाँ गुण के सामने रूप की कोई अहमियत न हो? भरी सभा में चाणक्य ने उस समय कुछ कहना उपयुक्त नहीं समझा। चाणक्य बोला- आप पहले शीतल जल पीकर शांत हो लें, फिर बातें करेंगे।

उसने अपने गुरु मंत्री चाणक्य से कहा कि वह एक योग्य व्यक्ति को राजा के सामने पेश किया। राजा ने उस व्यक्ति को अपना सेवक बना तो लिया, पर बाद में उसने मंत्री से कहा, वैसे तो यह आदमी ठीक है पर इसका रंगरूप अच्छा नहीं है। चाणक्य समझ गए कि चंद्रगुप्त को अपने सौंदर्य का अभिमान हो गया है। चाणक्य ने सोचा कि इसका जवाब दिया जाए। चंद्रगुप्त को हमेशा पीने के लिए पानी स्वर्ण पात्र में दिया जाता था। एक बार गर्मी के मौसम में राजा ने उसे सेवक को पानी लाने को कहा। चाणक्य ने एक सेवक से मिट्टी के बर्तन और स्वर्ण पात्र दोनों में अलग अलग जल लाने को कहा। सेवक ने दोनों पात्रों में जल भर कर चौकी पर रख दिया। थोड़ी देर बाद चंद्रगुप्त को प्यास लगी।

चाणक्य ने मिट्टी के बर्तनवाला जल पीने के लिए बढ़ा दिया। पानी पीने के बाद चंद्रगुप्त ने पूछा, क्या आज स्वर्ण पात्र में जल नहीं है? चाणक्य ने कहा, क्षमा करें। भूल से आपको मिट्टी के बर्तनवाला पात्र पेश कर दिया गया। उन्होंने तुरंत स्वर्ण पात्र का जल पीने के लिए दिया। चंद्रगुप्त ने उसे भी पीया। वह सेवक सोने के पात्र में पानी लेकर आया पर राजा ने

जब पानी का घूंट पिया तो पानी पीने में थोड़ा गर्म लगा। राजा ने कुल्ला करके पानी फेंक दिया। राजा बोला, इतना गर्म पानी, वह भी गर्मी के इस मौसम में, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है।

चाणक्य ने पूछा, राजन् इन दोनों पात्रों के जल में सबसे मीठा और ठंडा कौन था? चंद्रगुप्त ने कहा, मिट्टी के पात्र का जल बहुत मीठा और ठंडा था। अब हमेशा उसी पात्र में मुझे जल दिया जाए। मंत्री यह सब देख रहा था। मंत्री ने उस सेवक को मिट्टी के पात्र में पानी लाने को कहा। गर्मी के मारे सभी को प्यास लगी थी। सभी ने मिट्टी के घड़े का ठंडा पानी पिया।

राजा ने यह पानी पीकर तृप्ति का अनुभव किया। किसी ने सोने के घड़े में रखे पानी को हाथ नहीं लगाया। मंत्री ने राजा से पूछा, महाराज, सोने के पात्र का पानी आपको अच्छा नहीं लगा। लेकिन मिट्टी के पात्र का पानी क्यों अच्छा लगा? पहले जो पानी दिया था वह ज्यादा शीतल और सुस्वादु था या दूसरा वाला? सोने का घड़ा तो मिट्टी के घड़े की बजाय ज्यादा सुन्दर और कीमती था।

राजा मौन रहा। इस पर मंत्री ने कहा, महाराज, बाहर को नहीं, भीतर को देखें। सोने का पात्र सुंदर, मूल्यवान और अच्छा है, किंतु शीतलता प्रदान करने का गुण इसमें नहीं है। मिट्टी का पात्र अत्यन्त साधारण है, लेकिन इसमें ठंडा बना देने की क्षमता है। सारी दुनिया जानती है कि मिट्टी का घड़ा देखने में सुंदर नहीं है, परंतु उसका शीतल सुस्वादु जल पीकर मन तृप्त हो जाता है।

चाणक्य मुस्करा कर बोले, राजन् जिस प्रकार मिट्टी के पात्र का जल स्वर्ण पात्र के जल से अधिक शीतल और मीठा होता है, उसी तरह शरीर के सुंदर या असुंदर होने से ज्ञान और विद्या में कोई अंतर नहीं आता।

कोरे रंगरूप को न देखकर, गुण को देखें। राजा ने कहा- महत्त्व सुन्दरता का नहीं ठंडे पानी का है। मिट्टी के घड़े में पानी ठंडा है। चाणक्य ने जवाब दिया- राजन महत्त्व सुन्दरता का नहीं गुणों का होता है। इसलिए मैं सुन्दर नहीं होने के बावजूद अपनी बुद्धि से आप सबको संतुष्ट रखता हूं। राजा चन्द्रगुप्त चाणक्य के जवाब के सामने निरुत्तर थे। वे समझ गए कि कल की बात का जवाब चाणक्य ने आज बड़ी चतुराई से दिया है। आप ही बताइए रूप बड़ा या गुण-बुद्धि। सम्राट ने गुरुदेव को प्रणाम करते हुए क्षमा माँगी और महारानी को भी पहेली सुलझाने का धन्यवाद दिया।

राजा को बात समझ में आ गई। उस दिन से उसका नजरिया बदल गया। सुंदरता या कुरूपता से ज्ञान का आकलन करना उचित नहीं होता। चंद्रगुप्त उनका आशय समझ गए। उन्होंने चाणक्य से क्षमा मांगी। वह व्यक्ति के रंगरूप को न देखकर उसके स्वभाव और आचरण को देखने लगा। मानव का आकलन उसके शारीरिक सौंदर्य से नहीं उसके आंतरिक गुणों से करना चाहिए।

५१८) चाणक्य- बालक चाणक्य के आगे के दांतों की आकृति कुछ अजीब-सी थी। एक दिन उनकी माता उनके मुख की ओर देखकर उदास होकर रोने लगी। चाणक्य ने इसका कारण पूछा तो माता बोली- बेटा, तेरे दांतों की आकृति ऐसी है कि तू बड़ा होकर राजा बनेगा।

चाणक्य ने कहा- मां, इससे तो तुझे प्रसन्न होना चाहिए। तू रो क्यों रही है ?

माता ने कहा- बेटा, बड़ा होकर जब तू राजा बन जाएगा तो हमको भुला देगा। हमें तेरे वियोग में तड़पना पड़ेगा।

बालक चाणक्य ने आव देखा न ताव, तुरन्त एक पत्थर उठा कर अपने आगे के दो दांत तोड़ दिए और बोला- मां, अब मैं राजा नहीं बनूंगा और हमेशा तेरे साथ रहूंगा।

५१९) नैतिक जवाबदेही- पाटलिपुत्र पहुंचकर यूनानी दूत मेगास्थनीज ने आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट करने का समय मांगा तो आचार्य ने उसे शाम में अपनी कुटिया पर आकर मिलने को कहा। नियम कार्यक्रम के अनुसार मेगास्थनीज

आचार्य की नगर की सीमा से बाहर स्थित कुटिया पर जा पहुंचा। शाम ढलने ही वाली थी। अंधेरा छाने लगा था। मेगास्थनीज ने बाहर से ही देखा कि आचार्य अपने आसन पर बैठे कुछ काम करने में लगे हुए हैं। प्रकाश की व्यवस्था के लिए वहीं रखी एक तिपाई पर दीया जल रहा था। मेगास्थनीज जैसे ही प्रवेश द्वार के निकट पहुंचा, आचार्य ने उसे भीतर आकर आसन ग्रहण करने का संकेत किया और स्वयं अपने कार्य में तल्लीन रहे। कुछ पल यूं ही बीत गए। तब आचार्य ने अपना कार्य समाप्त किया, पत्रांक आदि समेट कर एक ओर रखे और उस दीपक को, जो उस समय प्रकाशमान था, बुझा दिया और पास ही रखा एक अन्य दीप जला लिया। फिर आचार्य ने मेगास्थनीज से हालचाल पूछा। मेगास्थनीज आचार्य के व्यवहार को देखकर आश्चर्यचकित था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि जब एक दीपक जल ही रहा था और उपयुक्त प्रकाश भी दे रहा था तो आचार्य ने उसे बुझाकर दूसरा दीपक क्यों जलाया? उससे रहा नहीं गया। थोड़ी देर की बातचीत के बाद उसने आचार्य से इसका कारण पूछ ही लिया। आचार्य ने सहजता से कहा, तुम जब यहां आए, तब मैं जो काम कर रहा था, वह राज्य व्यवस्था से संबंधित था और तब जो दीपक जल रहा था, उसका खर्च शासन तंत्र उठाता है। लेकिन अब चूंकि वह कार्य समाप्त हो गया इसलिए मैंने वह दीपक बुझा दिया। अभी जो दीपक मैंने जला रखा है, उसके खर्च का वहन मैं अपनी आय से करता हूं। मैं अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए राज्य के संसाधन का दुरुपयोग कैसे कर सकता हूँ। मेगास्थनीज ने नैतिक जवाबदेही का ऐसा उदाहरण कहीं और नहीं देखा था। वह समझ गया कि मौर्य शासन का भविष्य उज्ज्वल है।

५२०) सबसे बड़ी बाधा- एक बार राजा चंद्रगुप्त ने विद्वानों की सभा बुलाई। दूर-दूर से विद्वान आए। कई दिनों तक शास्त्रार्थ चला। इसमें भारवि को विजेता घोषित किया गया। राजा चंद्रगुप्त ने उनका यथोचित सम्मान किया और परंपरा के अनुसार उन्हें हाथी पर बिठाकर चंवर डोलाते हुए घर छोड़ने गए। उन्हें देखकर उनके माता-पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन भारवि ने अपनी मां का तो अभिवादन किया पर पिता के प्रति ठंडा रवैया अपनाया। पिता ने सभा के बारे में कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अनमने तरीके से बात की। उनके इस व्यवहार से उनके माता-पिता को दुख पहुंचा। भारवि को अपनी विद्वता का घमंड हो गया था। राजा ने उन्हें जो सम्मान दिया, उससे वह अपने आप को विशिष्ठ समझने लगे थे। उन्हें लगने लगा कि उनके सामने उनके पिता भी कुछ नहीं है। लेकिन उनका यह नशा कुछ दिनों बाद टूट गया। तब उन्होंने पिता से सामान्य दिनों की तरह संवाद करना चाहा पर उनके व्यवहार से आहत पिता ने उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। भारवि ने अपने को उपेक्षित महसूस किया। फिर उन्होंने अपनी मां से कारण जानना चाहा तो मां ने उत्तर दिया, पुत्र तुमने अपने व्यवहार से अपने पिता को दुख पहुंचाया है तुम यह कैसे भूल गए कि आज तुम जहां तक पहुंचे हो, वहां पहुंचने में उनकी कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जब तुम शास्त्रार्थ के लिए गए थे तो उन दिनों तुम्हारी विजय के लिए तुम्हारे पिताजी ने विशेष साधना की। उन दिनों वह केवल जल पीकर रहे। आज जिस ज्ञान के बल पर तुम सर्वश्रेष्ठ घोषित हुए हो, वह उन्हीं का दिया हुआ हैं। क्या तुम उनका ऋण कभी चुका सकते हो? भारवि अत्यंत लज्जित हुए। वह दौड़कर अपने पिता के पास गए और चरणों में गिर पड़े। पिताजी ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और कहा, पुत्र भारवि, ज्ञान की प्राप्ति में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। अच्छा है तुमने समय रहते इस बाधा को पहचान लिया और इसे दूर भी कर लिया।

५२१) बुराई की जड़ - एक बार मगध के महामंत्री चाणक्य राजकाज संबंधी परामर्श के लिए सम्राट चंद्रगुप्त से मिलने जा रहे थे। रास्ते में उनके पांव में कांटा चुभ गया। उनके मुंह से चीख निकल गई। उन्होंने झुककर उस कंटीले पौधे को देखा फिर कुल्हाड़ी मंगवाई और अपने हाथों से उस पौधे को उखाड़ कर फेंक दिया। उखाड़ कर फेंकने के बाद उन्होंने उस पौधे की जड़ों को भी जमीन से निकाला और उन्हें जला दिया। इसके बाद उन्होंने अपने शिष्यों से छाछ मंगवाकर उसे उस

स्थान पर डाल दिया ताकि पुन: पौधा पनप कर अपने कांटों से किसी राहगीर को पीड़ा न पहुंचा सके। यह देखकर एक शिष्य जिज्ञासावश बोला, गुरुजी, आपने मात्र एक कंटीले पौधे को निकालने के लिए इतनी मेहनत क्यों की? यदि आप हमें आदेश देते तो हम तुरंत यह कर देते। शिष्य की बात सुनकर चाणक्य मुस्करा कर बोले, मैंने तुम सबको सीख देनेके लिए ही यह कार्य स्वयं किया है। इस कार्य के माध्यम से मैं तुम सबको यह बताना चाहता हूं कि जब तक बुराई की जड़ को खत्म न किया जाए तब तक वह पूरी तरह खत्म नहीं होती और गाहे-बगाहे अपनी चपेट में किसी न किसी को ले ही लेती है। इसलिए केवल बुराई को दूर करने की नहीं बल्कि उसकी जड़ को काटने की आवश्यकता है ताकि वह फिर क़भी पनप ही न सके। यदि तुम बुराई की जड़ काट दोगे तो तुम्हारा जीवन अपने आप सहज व शांतिपूर्ण हो जायगा। शिष्य चाणक्य की इस बात से सहमत हो गए।

५२२) आचार्य की परीक्षा - आचार्य विष्णु गुप्त, जो बाद में चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, उन दिनों तक्षशिला में पढ़ाते थे। वे सैद्धांतिक की तुलना में व्यावहारिक ज्ञान देना ज्यादा महत्वपूर्ण मानते थे। उनका मानना था कि व्यावहारिक ज्ञान के माध्यम से ही शिष्यों का व्यक्तित्व समग्र विकास पाता है। गुरुकुल का एक सत्र पूर्ण होने के पश्चात आचार्य अपने शिष्यों की अंतिम परीक्षा लेते थे। ऐसे ही एक सत्र पूर्ण होने पर आचार्य विष्णु गुप्त ने शिष्यों को बांस की टोकरियां देते हुए कहा- इनमें नदी से जल भर लाओ। उससे गुरुकुल की सफाई करनी है। शिष्य आचार्य की आज्ञा सुनकर चकरा गए कि बांस की टोकरी में जल भरकर लाना असंभव है। मगर सभी ने नदी पर जाकर प्रयास किया। बांस की टोकरियों में जल भरने से वह छिद्रों में से रिस जाता। आखिर एक शिष्य को छोड़कर सभी लौट आए। उस शिष्य के मन में आचार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा थी और वह यह सोचकर बार-बार जल भरता कि गुरुदेव ने सोच-समझकर ही ऐसी आज्ञा दी होगी। शाम तक वह जल भरने का प्रयास करता रहा। बांस की टोकरी के सुबह से शाम तक जल में रहने के कारण बांस की तीतियां फूल गईं और छिद्र बंद हो गए। आखिर शाम को वह टोकरी में जल भरकर आचार्य के पास लौटा। तब आचार्य ने अन्य शिष्यों से कहा- मैंने तुम्हें दुरूह कार्य सौंपा था किंतु विवेक, धैर्य, लगन व निरंतर प्रयास से यह संभव था। कड़े परिश्रम और लगन से असंभव दिखाई देने वाला कार्य भी संभव हो जाता है, इसलिए हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

५२३) कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अभिमान से भर गया था। उसी दौरान बौद्ध भिक्षु आचार्य उपगुप्त पाटलिपुत्र पधारे। चांदनी रात में सम्राट उनसे मिलने गया। आचार्य का अभिवादन करते हुए अशोक ने कहा, दुनिया का सबसे शक्तिशाली शासक सम्राट अशोक आपको प्रणाम करता है। आचार्य ने आकाश की तरफ देखते हुए कहा, राजन, यह आकाशगंगा देख रहे हो ? क्या तुम जानते हो, इसमें छोटे-छोटे दिखने वाले तारों में से कुछ का आकार हमें दिखाई पड़ने वाले सूर्य से भी हजारों गुना बड़ा होता है।

अशोक ने सहमति में सिर हिलाया। तब आचार्य ने कहा, और तुम यह भी मानोगे कि जिस राज्य पर तुमने विजय प्राप्त की है वह इस पृथ्वी का एक बहुत छोटा सा टुकड़ा मात्र है। तो फिर अभिमान किस बात का ? कहते हैं, इसी घटना के बाद अशोक ने राज्य विजय की जगह धम्मविजय को अपनाने का संकल्प किया।

५२४) साधक का समर्पण- कलिंग के युद्ध का विनाशकारी दृश्य देख सम्राट अशोक का मन घृणा से भर गया। उन्होंने कभी तलवार न उठाने की प्रतिज्ञा की। वहीं उन्होंने युद्ध के पश्चात् धर्म चक्र प्रवर्तन का मानस बना लिया। वे एक सच्चे साधक बन चुके थे। दिन-रात उसी कार्य में लगे रहते। उनकी दो सन्तानें थी- पुत्र महेन्द्र तथा कन्या संघमित्रा। वैभव के साथ-साथ उन्होंने अपनी दोनो सन्तानों को भी धर्म प्रचार हेतु दीक्षित किया। उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया और उसके संदेश के प्रचार के लिए अपनी पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा। परन्तु वहां अन्य धर्मों के लोग उसके शत्रु हो गए

और उन्होंने संघमित्रा को मार डालने का निश्चय किया। इसके लिए उनमें से एक युवक एक रात संघमित्रा की हत्या करने के इरादे से जब आया तो उस समय संघमित्रा आंगन में एक दीपक के प्रकाश में गाय के समीप बैठी थी। वह युवक पीछे से आकर संघमित्रा पर छुरे से वार करने ही जा रहा था कि अचानक वह ठिठक गया। उसके हाथ से छुरा छूटकर गिर गया। संघमित्रा अपने वस्त्र को फाड़कर उस घायल गाय के घाव को साफ कर रही थी। यह दृश्य देखते ही युवक का पत्थर दिल पिघल गया और वह वापस लौट गया।

पुत्री ने सिंहल द्वीप जाकर सम्पूर्ण सिंहल द्वीप को बुद्ध अनुयायी बनाया तथा पुत्र ने सम्पूर्ण मलाया देश को दीक्षित किया। इस प्रकार पूरे परिवार ने ही तन, मन, धन से धर्म कार्य किया।

५२५) मूर्ति का संदेश- एक बार सम्राट अशोक को किसी मूर्तिकार ने एक अद्‌भुत मूर्ति दी। वह मूर्ति थी तो एक सिपाही की, लेकिन उसमें एक संत का अक्स भी देखा जा सकता था। उसके हाथ में नंगी तलवार थी, जिसकी चमक मूर्ति के आधे चेहरे पर पड़ रही थी। वह आधा चेहरा ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे अर्जुन का चेहरा हो। मूर्ति के दूसरे हाथ में एक दीया था। दीये की चमक चेहरे के दूसरे हिस्से पर पड़ रही थी। वह दूसरा हिस्सा ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे बुद्ध का चेहरा हो, शांति और करुणा से भरा हुआ। एक ही मूर्ति में दो तरह के चेहरों ने अशोक को उलझन में डाल दिया। उसकी समझ में नहीं आया कि मूर्तिकार ने यह मूर्ति आखिर क्यों बनाई और उसे उपहारस्वरूप क्यों दी। उसने कई लोगों से इसके बारे में राय ली। लोगों ने इसके बारे में तरह-तरह की राय व्यक्त की पर अशोक किसी से संतुष्ट नहीं हुआ।

अशोक ने इस गुत्थी को सुलझाने के लिए एक महात्मा को बुलाया। महात्मा ने मूर्ति देख कर कहा, यह अद्‌भुत मूर्ति है। यह बहुत कुछ कहती है। दुनिया को इस मूर्ति के तरह के शासक की जरूरत है। अशोक ने कहा, किस तरह के शासक की ? महात्मा ने कहा, दुनिया को एक ऐसा सम्राट चाहिए जो तलवार की तरह अडिग हों, तलवार की तरह ओज से भरा हुआ हों। वह समय पड़ने पर तलवार बन जाए, लेकिन उस राजा के भीतर इंसानियत का जज्बा भी हो। उसके मन में शांति और करुणा का दीपक भी जल रहा हो। इस तरह के आदमी के हाथ में तलवार खतरनाक नहीं होती। उसके हाथ में तलवार भी मंगलकारी सिद्ध होगी, लेकिन जिसके मन में क्रोध और अहंकार होगा, उसके हाथ में तलवार क्या, एक छोटा सा कंकड़ भी खतरनाक हो सकता है। अशोक ने कहा, वह मूर्तिकार वास्तव में महान है। उसने इस मूर्ति के माध्यम से एक महत्वपूर्ण संदेश दिया है। काश हर शासक इसे समझने की कोशिश करे।

५२६) राजा भोज की पहचान पहले एक कंजूस शासक के रूप में थी। अपने खजाने से जरूरतमंदों की सहायता करने से वह बचते थे। एक बार वह कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक साधु मिला। वह रथ रुकवाकर नीचे उतरे। साधु ने उन्हें देखते ही हाथों से अपनी आंखें बंद कर लीं। यह देखकर भोज ने पूछा, आपने नेत्र बंद क्यों कर लिए, मैं तो आपसे आशीर्वाद चाहता हूं।

साधु ने कहा, कहा गया है कि सवेरे-सवेरे किसी कृपण का मुंह देखना अशुभ होता है। आप किसी को दान नहीं देते, किसी की सहायता नहीं करते। इसलिए मैंने आपका मुंह देखना ठीक नहीं समझा। यह सुनकर राजा की आंखें खुल गईं। उन्होंने उसी दिन से पीड़ितों और जरूरतमंदों को दान देना शुरू कर दिया।

५२७) वास्तविक अपराधी- राजा भोज के राज्य में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके परिवार में उसके अलावा उसकी पत्नी और मां थी। आजीविका का साधन बेहद सीमित था। वह कहीं से कुछ मांगकर लाता तो सबको भोजन मिलता। एक दिन वह खाली हाथ घर लौटा और पत्नी से बोला, आज मुझे कहीं से कुछ नहीं मिला। इधर-उधर भटकने

के कारण मैं काफी थक गया हूँ और मुझे भूख भी लगी है। जल्दी कुछ खाने को लाओ।

यह सुनते ही पत्नी आगबबूला हो गई और बोली, मेरे पास है ही क्या जो आपको दूं ? इस पर ब्राह्मण ने कहा, मैं नित्य जो लाता हूं वह तुम्हें देता हूँ। एक कुशल गृहिणी का कर्त्तव्य है कि वह घर में आई वस्तु में से कुछ बचाकर रखे, ताकि कभी भूखा न रहना पड़े। इस पर ब्राह्मणी ने जवाब दिया, क्या कभी आप इतना अन्न लाए जो बचाया जा सके। आज तक आप जो लाए उससे कभी हमारा पेट भरा क्या ? समझ में नहीं आता कि जो लोग अपनी पत्नी को भरपेट खिला नहीं सकते वे विवाह ही क्यों करते हैं। इस पर दोनों में बहस छिड़ गई और बात बढ़ती गई। क्रोधित होकर ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को पीट डाला। मामला राजा भोज के पास पहुंचा।

राजा ने ब्राह्मण से पूछा, क्या तुमने अपनी पत्नी को पीटा। अगर हां तो क्यों ?

इस पर ब्राह्मण ने कहा, हां महाराज, पीटा। इसके लिए मैं बेहद लज्जित हूं। इसका मुझे बहुत पश्चाताप है। क्या करूं। मैं अपने परिवार के लोगों को संतुष्ट नहीं रख पाता। आप जो चाहें मुझे दंड दीजिए।

राजा ने कुछ सोचकर अपना निर्णय सुनाया, इस ब्राह्मण को एक हजार स्वर्णमुद्राएं दी जाएं। वहां उपस्थित लोग आश्चर्य में पड़ गए। राजा ने फिर कहा, दंड उसी को देना चाहिए जिसका अपराध हो। इस व्यक्ति को जिस अपराध के लिए यहां उपस्थित किया गया है वह है दरिद्रता। दंड दरिद्रता को दिया जाना चाहिए न कि इस व्यक्ति को। मैंने दरिद्रता को ही समाप्त कर दिया। हां, अगर इसकी जगह कोई संपन्न व्यक्ति ऐसा करता तो मैं उसे कठोर दंड देता।

५२८) एक बार राजा भोज ने अपने दरबारियों से पूछा, पृथ्वी कब रोती है और कब प्रसन्न होती है ? वहां उपस्थित किसी भी व्यक्ति को उसका उत्तर नहीं सूझा। तभी महाकवि कालिदास अपनी जगह से उठे और बोले, यूं तो पृथ्वी वृक्ष की तरह क्षमाशील है। जैसे पेड़ अपने को काटनेवाले पर कुपित नहीं होता या सिंचित करनेवाले पर हर्षित नहीं होता, उसी तरह पृथ्वी सज्जन और दुर्जन का बोझ समान रूप से उठाती है। पर आपके प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जब पापी और हिंसक लोग पृथ्वी पर चलते हैं तो वह रोती है और जब सबकी समृद्धि की कामना करनेवाले, दूसरों के दुख से द्रवित होनेवाले सज्जन व्यक्तियों को वह देखती है तो खुश होती है। उसकी यह प्रसन्नता प्रकृति के सुहावने वातावरण के रूप में देखी जा सकती है, जो मानव मन में काव्य के बीज अंकुरित कर देती है। राजा भोज ने इस उत्तर से प्रसन्न होकर कालिदास को गले लगा लिया।

५२९) त्रिया हठ- राजा भोज की रानी और कवि कालिदास की पत्नी दोनों की आपस में बड़ी दोस्ती थी। रोजाना दोनों का मिलना जुलना हो जाता था। एक दिन रानी ने उससे कहा- बहन। राजा को मैंने इतना वश में कर रखा है कि मेरी हर आज्ञा का पालन राजा को करना ही पड़ता है। मैं जैसा चाहूं वैसा काम करवा सकती हूँ। क्या तुम्हारे पति कवि कालिदास भी तुम्हारे वश में हैं? उसने कहा- जैसे आपके पति आपके वश में हैं, वैसे ही मेरे पति भी मेरे वश में हैं। कालिदास की पत्नी ने पलटकर जवाब दिया। रानी ने कहा- आज इस बात की परीक्षा करें कि किसका पति किसके वश में है। तुम अपने पति कालिदास का आज सिरमुंडन कर दिखा देना।

कालिदास की पत्नी ने कहा- बहन। आप राजा को गधा बनाकर उसके ऊपर चढ़कर दिखाना। कालिदास की पत्नी ने घर आकर अपने पति से कहा- पतिदेव। आज आपको सिर मुंडवाना है। कालिदास की इच्छा न होते हुए भी स्त्री हठ की पालना तो करनी ही पड़ी। सिर मुंडवा कर कालिदास ने पत्नी से पूछा- प्रिये। इतना हठ पकड़ने में क्या कोई कारण था? पत्नी ने वे सारी बातें, जो रानी के साथ हुई थी, बता दीं।

इधर ज्यों ही राजा भोज राजमहल में आए त्योंही महारानी विकराल रूप धारण कर बोली- पतिदेव आपको गधा बनना पड़ेगा, मैं आप पर सवारी भी करूंगी। राजा समझ गया, पर महारानी का हठ अजेय था। आखिर राजा ने सोचा महलों में कौन देखता है। जैसा रानी ने कहा था, वैसे ही राजा को करना पड़ा।

दूसरे दिन कवि कालिदास जैसे ही राज्यसभा में पहुंचे वैसे ही राजा भोज ने उसे मुंडित देख पूछा- कालिदास कविश्रेष्ठ, कस्मिन पर्वणि मुण्डनम्।

कविश्रेष्ठ कालिदास, आपने किस पर्व के उपलक्ष में सिर को मुड़ाया है। वह पलटवार कर बोला- राजानो गर्दभायन्ते, तस्मिन् पर्वणि मुंडनम्।

राजन्, रात्रि में राजा जिस उपलक्ष में गधे बने थे, उसी पर्व के उपलक्ष में मैंने सिर मुंडाया है। राजा अवाक् रह गए। सिर नीचे झुक गया और धीरे से बोले- त्रिया हठ राज हठ से भी बड़ा होता है।

५३०) कालिदास की कविता- एक दिन राजा भोज ने कवि कालिदास से कहा- हे कविराज। जब मैं यमराज का अतिथि बन जाऊंगा, तब आप मेरी याद में कैसी कविता बनाएंगे? वह श्लोक अभी पढ़कर सुना दीजिए। यह सुनते ही कालिदास दु:खी हो गए। इस बात को मानने से उन्होंने इन्कार कर दिया। वे अपनी पत्नी विलासवती के साथ धारा नगरी को छोड़कर शिला नगरी में आ गए। वहां आनंद से रहने लगे। इधरराजा भोज कालिदास के बिना दु:खी हो गए। वे कालिदास की खोज करने लगे। कालिदास को खोजते हुए राजा भोज योगी के भेष में शिलानगरी में जा पहुंचे। वहां भ्रमण करते हुए अचानक कालिदास से राजा भोज की भेंट हो गई। कालिदास ने पूछा- हे योगीराज। आप कहां रहते हैं? योगी ने कहा- मेरा निवास-स्थान है धारा नगरी। कवि कालिदास ने पूछा- धारा नगरी में राज भोज सकुशल हैं? योगी ने जवाब दिया- मैं क्या कहूं, कहने जैसी बात नहीं है। राजा भोज का अचानक स्वर्गवास हो गया है। यह सुनते ही कवि कालिदास दु:ख होकर धरती पर गिर पड़े और रोते हुए बोले-

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती। पण्डिता: खण्डिता: सवे, भोज राजे दिवंगते।।

यानी आज राजा भोज के स्वर्गवासी होने से धारा नगरी व सरस्वती निराधार हो गई है। सारे विद्वान पंडित खंडित हो गए हैं। यह कहते ही कालिदास बेहोश होने लगे। बेहोश होते देख योगी ने कहा- नहीं- नहीं मैं तो मजाक कर रहा था। आंसू पोछते हुए कालिदास बोले-

अद्य धारा सदाधारा, सदालम्बी सरस्वती। पण्डिता: मण्डिता: सर्वे, भोज राजे भुवंगते।।

यानी भोज राजा के होने से धारा नगरी व सरस्वती आधारमयी है और सारे विद्वान पंडित मण्डित यानी सम्मानित हो रहे हैं। योगी के भेष में राजा भोज कवि कालिदास का अपने प्रति अनन्य प्रेम देखकर प्रसन्न हुए और उनकी अनूठी काव्य प्रतिभा को सराहा।

५३१) एक बार धारा नगरी के राजा भोज के मन में एक विचार आया- इतने धर्मगुरु और इतने सम्प्रदाय हैं, इन सबकी क्या जरूरत है? जब एक धर्म का ही उपदेश देना है तो सभी सम्प्रदायों को एक हो जाना चाहिए। राजा ने यह बात धर्मगुरुओं से कही। धर्मगुरुओं ने कहा- सभी सम्प्रदायों का एक होना असंभव है। राजा ने ऐसा नहीं करने पर सभी धर्मगुरुओं को कारावास में डाल दिया। सन्त सुराचार्य ने यह बात सुनी। वे राजा भोज के पास गए और धर्मगुरुओं को कारावास में डालने की पूरी घटना जानी। सुराचार्य से बातचीत के दौरान राजा भोज ने पूछा- महाराज, धारानगरी कैसी लगी? आचार्य बोले- धारानगरी बहुत सुंदर है, पर अलग-अलग दुकानें हैं, उन पर अलग-अलग तरह का सामान है। यह

अच्छा नहीं लगता। यदि इस नगरी में एक ही तरह के सामान की दुकानें होती तो अच्छा रहता। इसी तरह आपके राज-बगीचे में अलग-अलग फूलों की जगह एक जैसे फूल होते तो अच्छे लगते। राजा बोला- गुरुदेव, आप नहीं जानते, लोगों को कितनी-कितनी वस्तुएं चाहिए? लोगों की अलग-अलग जरूरतें होती हैं। एक तरह के सामान की दुकान से कैसे काम चलेगा? वैसे ही बगीचे में एक जैसे फूल भला कैसे उसकी सुन्दरता बढ़ा सकते हैं। अलग-अलग रंगों के फूलों और सुगन्धों से बगीचा अच्छा लगता है। सुराचार्य बोले- राजन्, तुम एकसे सामान की दुकानों का बाजार और एक रंग के फूलों के बगीचे को असंभव मानते हो तो फिर विचारों के ग्राहक क्या अलग-अलग नहीं हैं? अलग-अलग विचार हैं और अलग-अलग ग्राहक। इस स्थिति में विचारों का एक हो जाना कैसे संभव हो सकता है? कोई भक्तियोग में रस लेगा, कोई कर्मयोग में और कोई ज्ञानयोग में रस लेगा। सबको एक कैसे किया जा सकता है। एक सम्प्रदाय से कैसे काम चल जाएगा? आचार्य की बात राजा के गले उतर गई और उसने सभी धर्माचार्यों को मुक्त कर दिया।

५३२) जब चूर-चूर हुआ महाकवि कालिदास का घमंड - एक बार महाकवि कालिदास के मन में यह घमंड पैदा हो गया कि वे सभी विद्वानों में श्रेष्ठ हैं। राज दरबार में स्वयं की प्रतिभा के विषय में गर्वोक्ति करने पर उनके एक समकालीन कवि ने चुनौती दी कि उन्हें तभी सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाएगा, जबकि वे उसे पराजित कर दें। कई दिनों तक कालिदास गहन चिंतन में डूब रहे। अंत में वे अपने प्रतिद्वंद्वी कवि को हराने पैदल चल पड़े। मार्ग में उन्हें जोरों की प्यास लगी। तभी उन्हें एक कुएं से पानी खींचती पनिहारिनें दिखीं। कालिदास ने उनसे पानी पिलाने का आग्रह किया। पनिहारिनों ने उनसे पूछा- आप कौन हैं? कालिदास ने उत्तर दिया- मैं बलवान हूँ। पनिहारिनें बोलीं- अन्न और जल ही प्राणियों को शक्ति देते हैं। अत: वे ही असली बलवान हैं। तुममें कौन सा बल है? कालिदास निरुत्तर लौट आए। कुछ दिनों बाद दूसरे मार्ग से अपने गंतव्य की ओर चले। फिर उन्हें प्यास लगी। एक पनिहारिन के परिचय पूछने पर कालिदास बोले मैं एक निर्बल आदमी हूं। पनिहारिन ने हंसकर कहा- तुम निर्बल कैसे हो? निर्बल तो गाय व स्त्री होती हैं। कालिदास मौन हो पुन: लौट आए। तीसरी बार वे मार्ग भटक गए। जंगल में बनी एक झोपड़ी में जा पहुंचे। वहां एक वृद्धा मिली। उसके द्वारा परिचय पूछने पर कालिदास बोले- मैं एक मुसाफिर हूं। वृद्धा ने कहा- तुम कैसे मुसाफिर हो? असली मुसाफिर तो सूरज और चांद हैं, जो कभी नहीं थकते। कालिदास फिर निरुत्तर हो गए और उनका सारा अहंकार समाप्त हो गया। वे अपने निवास पर लौट गए। वस्तुत: श्रेष्ठता का अस्तित्व वहां होता है, जब व्यक्ति के आचरण की प्रशंसा शेष समाज करे।

महाकवि कालिदास को अपने श्रेष्ठ होने का अभिमान हो गया। लेकिन जब मार्ग में कुछ पनिहारिनों से उनका वास्ता पड़ा और वे उनके सवालों का जवाब नहीं दे सके तो उनका घमंड चूर-चूर हो गया।

५३३) युवक की ईमानदारी - एक बार राजा भोज अपने दरबार में बैठे थे, तभी द्वारपाल ने आकर सूचना दी, महाराज। एक दुबला-पतला, अत्यंत निर्धन युवक आपसे मिलना चाहता है। हमने उससे पूछने की बहुत कोशिश की कि आखिर वह आपसे क्यों मिलना चाहता है, पर वह कुछ नहीं बता रहा। वह बस आपसे मिलने की रट लगाए हुए है। राजा भोज ने उस निर्धन युवक को बुलाने की अनुमति दे दी। वह युवक अंदर आया और राजा को नमस्कार कर बोला, महाराज, मेरी मां की तबीयत बहुत खराब है। इसलिए मैं मदद के लिए आपके पास चला आया। भोज ने यह सुनकर कहा, तुम्हारी मां का इलाज होना ही चाहिए। उन्होने अपने खजांची से उस निर्धन युवक को एक हजार स्वर्ण मुद्राएं देने को कहा। युवक बोला, क्षमा करिए, मां की चिकित्सा के लिए पचास स्वर्ण मुद्राएं ही पर्याप्त हैं। मां के स्वस्थ होने पर मैं कोई न कोई काम अवश्य ढूंढ लूंगा। युवक की यह बात सुनकर राजा भोज समेत वहां उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए। भोज बोले, युवक, मैं

तुम्हें स्वेच्छा से एक हजार स्वर्ण मुद्राएं दे रहा हूं किंतु तुम उन्हें लेने से इनकार क्यों कर रहे हो? युवक ने उत्तर दिया, महाराज, मैं लेने से इनकार नहीं कर रहा किंतु इस समय मुझे वास्तव में मात्र पचास स्वर्ण मुद्राओं की आवश्यकता है। फिर मैं अधिक क्यों लूं? राजकोष का धन भी तो हमारा ही है और यदि हम उसे व्यर्थ बर्बाद करेंगे तो अन्य जरूरतमंद व्यक्तियों को आगे धन नहीं मिल पाएगा और संभव है कि आगे चलकर आप जैसे नेक व दयालु राजा भी न हों। इसलिए हर व्यक्ति को राजकोष से उतनी ही सहायता लेनी चाहिए जितनी उसे सचमुच आवश्यकता हो। युवक की बात सुनकर राजा भोज समेत सभी लोग उसकी मुक्त कंठ से सराहना करने लगे। भोज ने उस युवक को अपने राजदरबार में नियुक्त कर दिया और बोले, राज्य को तुम जैसे होनहार व ईमानदार व्यक्तियों की ही आवश्यकता है।

५३४) हक की रोटी - राजा भोज अपनी न्यायप्रियता के साथ विद्वानों का आदर करने के लिए भी जाने जाते थे। वे अकसर विद्वानों का आदर करने के लिए भी जाने जाते थे। वे अकसर विद्वानों और दरबारियों से भिन्न-भिन्न विषयोंपर चर्चा करते रहते। एक बार उनके राज्य के सबसे बड़े विद्वान उनके दरबार में आए। एक दिन वे दोनों खाने की मेज पर बैठे, तभी भोज के मन में एक सवाल उठा। उन्होंने विद्वान से पूछा, कृपया बताएं कि हक की रोटी कैसी होती है। उनके इस सवाल पर विद्वान ने कहा, इसका जवाब मैं आपको दूं इससे अच्छा है कि आप इसे अपने नगर में ही रहने वाली एक वृद्धा से पूछें। आप उनसे हक की रोटी मांग भी सकते हैं। आपके प्रश्न का सटीक जवाब आपको मिल जाएगा। भोज उस वृद्धा के पास पहुंचे और बोले, माता मुझे हक की रोटी दें। वृद्धा ने कहा, राजन् मेरे पास बस एक रोटी है, पर उसमें आधी हक की है और आधी बेहक की। भोज ने पूछा, भला ऐसा कैसे? वृद्धा ने कहा, एक दिन मैं शाम के समय चरखा काट रही थी। अंधेरा हो चला था। इतने में रास्ते से गाने वालों की मंडली निकली। उन लोगों ने मशालें भी जला रखी थीं। मशालों की रोशनी में मैं चरखा कातती रही। मैंने उस रोशनी में आधी पूनी काती जबकि आधी पहले की थी। उस पूनी को बेचकर मैंने आटा खरीदा, फिर रोटी बनाई। इसलिए आधी रोटी हक की है और आधी बेहक की। इस आधी रोटी पर तो उस मंडली का हक है। भोज समझ गए कि कई बार हम जिसे अपना मानते हैं उस पर दूसरों का हक होता है। वे उस दिन से उस विद्वान के मुरीद बन गए।

५३५) मन का राजा - राजा भोज वन में शिकार करने गए लेकिन घूमते हुए अपने सैनिकों से बिछुड़ गए और अकेले पड़ गए। वह एक वृक्ष के नीचे बैठकर सुस्ताने लगे। तभी उनके सामने से एक लकड़हारा सिर पर बोझा उठाए गुजरा। वह अपनी धुन में मस्त था। उसने राजा भोज को देखा पर प्रणाम करना तो दूर, तुरंत मुंह फेरकर जाने लगा। भोज को उसके व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने लकड़हारे को रोककर पूछा, तुम कौन हो? लकड़हारे ने कहा, मैं अपने मन का राजा हूं। भोज ने पूछा, अगर तुम राजा हो तो तुम्हारी आमदनी भी बहुत होगी। कितना कमाते हो? लकड़हारा बोला, मैं छह स्वर्ण मुद्राएं रोज कमाता हूं और आनंद से रहता हूं। भोज ने पूछा, तुम इन मुद्राओं को खर्च कैसे करते हो? लकड़हारे ने उत्तर दिया, मैं प्रतिदिन एक मुद्रा अपने ऋणदाता को देता हूं। वह हैं मेरे माता पिता। उन्होंने मुझे पाल पोस कर बड़ा किया, मेरे लिये हर कष्ट सहा। दूसरी मुद्रा मैं अपने ग्राहक असामी को देता हूं, वह हैं मेरे बालक। मैं उन्हें यह ऋण इसलिए देता हूं ताकि मेरे बूढ़े हो जाने पर वह मुझे इसे लौटाएं। तीसरी मुद्रा मैं अपने मंत्री को देता हूं। भला पत्नी से अच्छा मंत्री कौन हो सकता है, जो राजा को उचित सलाह देता है, सुख-दु:ख का साथी होता है। चौथी मुद्रा मैं खजाने में देता हूं। पांचवी मुद्रा का उपयोग स्वयं के खाने पीने पर खर्च करता हूं क्योंकि मैं अथक परिश्रम करता हूं। छठी मुद्रा मैं अतिथि सत्कार के लिए सुरक्षित रखता हूं, क्योंकि अतिथि कभी भी किसी भी समय आ सकता है। उसका सत्कार करना हमारा परम धर्म है। राजा भोज सोचने लगे, मेरे पास तो लाखों मुद्राएं है पर जीवन के आनंद से वंचित हूं। लकड़हारा जाने लगा

तो बोला, राजन् मैं पहचान गया था कि तुम राजा भोज हो पर मुझे तुमसे क्या सरोकार। भोज दंग रह गए।

५३६) लोककथा- राजा भोज के राज्य में संस्कृत भाषा का बड़ा प्रचार था। उनके दरबार में संस्कृत के पंडित की कमी नही थी। राजा भोज को संस्कृत में कविता करना अच्छा लगता था। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में राजा भोज का अपूर्व योगदान माना जाता है।

एक दिन राजा भोज स्नान के लिए तैयार हो रहे थे। दासी स्नान की प्रसाधन सामग्री लेकर आ रही थी। राजा के पास जाने के लिए उतावली उस दासी के हाथ से अचानक सोने का घड़ा गिर पड़ा यह दृश्य देखकर राजा राज सभा में आते हैं। अनेक प्रकांड विद्वानों से कक्ष खचाखच भरा हुआ था। राजा भोज ने कवि कालिदास को सम्बोधित करते हुए कहा- हे कविराज, मैं एक समस्या (एक पंक्ति देकर पूरी कविता लिखवाना जिसके अन्त में वही पंक्ति आती है) दे रहा हूं। इस समस्या की पूर्ति होनी चाहिए। राजा ने समस्या पढ़ते हुए कहा- टटं ट टंटं टट टं टटं टम्। कवि कालिदास की काव्य प्रतिभा अनूठी थी। उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा गहराई से सोचा व अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते हुए उस समस्या की पूर्ति ऐसे की- राजाभिषेके मदविह्वलाया, हस्ताच्चूतो हेम घटो युवतय:, सोपान मार्गे प्रकटोति शब्दं, टटं ट टंटं टट टटं टम्। यानि राजा को स्नान कराने के लिए उतावली दासी के हाथ से गिरा हुआ का कलश सीढ़ियों से गिरता हुआ आवाज कर रहा है- टटं ट टंटं टट टं टटं टम् यह सुनते ही राजा भोज के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा। मन ही मन सोचने लगे- कालिदास जैसा कवि संसार में विरले ही मिलेगा। जो इतनी जटिल समस्या को इतनी आसानी से लिख सकता है।

५३७) कालिदास की कला - एक पंडित ने राजा भोज से मिलने के लिए प्रस्थान किया। वह बहुत दरिद्र था। राजा को भेंट करने के लिए कपड़े में गन्ने के कुछ खण्ड (टुकड़े) बांधकर ले लिए। कुछ देर विश्राम के लिए वह जंगल में से गया। उधर से आ रहे एक ठग ने उसे देखा। उसने सोचा- राजा के पास यह पुरस्कार के लिए गन्ने के टुकड़े लेकर जा रहा है। उसने कपड़े से गन्ने के टुकड़े निकाल लिए और उसकी जगह लकड़ियां बांध दी। पंडित सोकर उठा। वह कपड़े में बंधी लकड़ियों को लेकर राजा के महल की ओर चल पड़ा। दरबार में पहुंचकर भेंट करने की इच्छा से जब कपड़े को खोला तो उसमें लकड़ियां देखकर स्तब्ध रह गया। वह बहुत चिंतित हो गया। महाकवि कालिदास समझ गए- इस व्यक्ति के साथ किसी ने छल किया है। महाकवि ने तुरंत स्थिति को संभालते हुए कहा- महाराज, आज जैसा उपहार आया है, वैसा कभी किसी ने भेंट नहीं किया। बड़ा अद्भुत उपहार है। राजा ने पूछा- कैसे? कालीदास ने कहा- **दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यदुमैर्भूषितं, दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुन: स्वर्णभू: । दग्धो लोकसुखो हरेण मदन: किं तेन युक्तं कृतं, दारिद्र्यं तापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि ।।** खाण्डव वन को अर्जुन ने जला दिया, सोने की लंका को हनुमान ने जला दिया और कामदेव को शंकर ने जला दिया, लेकिन इस दरिद्रता को, जो सबको जलाती है, कोई जला नहीं सका। यह विप्र इस दरिद्रता को जलाने के लिए ईंधन भेंट कर रहा है। इसे जलाने में आप ही समर्थ हैं।

५३८) बड़ा बनने का उपाय- रूस के शासक एलेक्जेंडर सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार को परखने के लिए एक दिन साधारण वेश में घर से निकले। रास्ते में खड़े वरदीधारी पुलिस दरोगा से उन्होंने पूछा, बिरकिट गांव की ओर कौन-सा रास्ता जाता है ? दरोगा नशे में धुत्त था। क्रोध में बोला, अरे, चल, आगे बढ़। मैं अफसर हूं, रास्ता बताना मेरा काम नहीं।

शासक ने पूछा, आप किस पद पर हैं ? दरोगा ने कहा, क्या आंखें नहीं हैं ? मेरी वरदी नहीं देखता कि मैं पुलिस अफसर हूं ? तू बता कि तू कौन है ? एलेक्जेंडर ने जवाब दिया, मैं भी सरकारी आदमी हूं। यह सुनकर वह सकपकाया। पूछा, क्या सैनिक अफसर हैं ?

नहीं, उस पद से बड़ा हूं।

क्या मंत्री हैं ? उसने फिर प्रश्न किया। उत्तर मिला, इस पद से भी बड़ा हूं। दरोगा का नशा काफूर होने लगा। उसने ध्यान से देखा कि उसके देश का राजा एलेक्जेंडर सामने खड़ा है। वह पैरों पर गिर पड़ा।

राजा ने उसे उठाते हुए कहा, यदि बड़ा बनना चाहते हो, तो पहले अहंकार को त्यागकर विनम्र बनो।

५३९) सोने की रोटी- सिकन्दर विश्वविजेता बनने की महत्वाकांक्षा लेकर निकला था। उसमें असाधारण प्रतिभा और योग्यता थी। सिकन्दर ने विजय के उन्माद में न जाने कितने नगरों और गाँवों को रौंद डाला। उसने निर्ममतापूर्वक नरसंहार किया, अपार धन-सम्पदा लूटी और अपने सैनिकों को मालामाल कर दिया। एक बार उसने एक ऐसे नगर पर चढ़ाई की, जहां केवल स्त्रियां और बच्चे थे। सारे पुरुष पहले ही युद्ध में मारे जा चुके थे। स्त्रियां असहाय थीं। उनके पास आत्मरक्षा का कोई साधन नहीं था। सिकन्दर सोच में पड़ गया। शस्त्रहीन स्त्रियों से कैसे युद्ध किया जाए, यही बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। उसके साथ गिने-चुने सैनिक थे, विशाल सेना पीछे आ रही थी।

दोपहर होने पर सिकन्दर को भूख लगी। उसने एक घर के सामने अपना घोड़ा रोका। कई बार पीटने के बाद दरवाजा खुला और एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई बाहर आई। सिकन्दर बोला, घर में कुछ खाना हो तो ले आओ, मुझे भूख लगी है। बुढ़िया भीतर गई और कपड़े में ढका हुआ एक थाल लेकर आई। उसने थाल को सिकन्दर के आगे बढ़ा दिया। कपड़ा हटाने पर सिकन्दर ने देखा कि उसमें सोने के कुछ पुराने गहने थे। वह झुंझला उठा और क्रोधित होकर बोला- यह क्या लाई है बुढ़िया? क्या मैं इन सोने के गहनों को खाऊंगा ? मैंने तुझसे रोटियां मांगी थी। इस पर बुढ़िया बोली, तू सिकंदर है न ? तेरा नाम मैंने बहुत सुना था, आज तुझे देख भी लिया। मैंने यह भी सुना था कि सोना ही तेरा भोजन है। इसी भोजन की तलाश में तू यहां आया है। सोना और धन लूटकर तू बेगुनाह लोगों को मौत के घाट उतार रहा है। अगर तेरी भूख रोटियों से मिटती तो क्या तेरे देश में रोटियां नहीं थीं ? फिर दूसरों की रोटियां छीनने की जरूरत तुझे क्यों पड़ी ?

सिकन्दर उस बुढ़िया का मुंह देखता रह गया। उसने बुढ़िया से माफी मांगी और सेना को वापस लौटने का आदेश दिया। तब बुढ़िया ने उसे बड़े स्नेह से रोटी खिलाई। सिकंदर ने एक बार फिर उसे धन्यवाद दिया और वापस लौट गया।

५४०) खुद पर भरोसा- सिकंदर पराक्रमी राजा था और वह पराक्रमी राजाओं का बहुत आदर करता था। अपने महल के पास उसने एक सुंदर बगीचा बनवाया था, जिसमें कई पराक्रमी वीरों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों की मूर्तियां थीं। सभी मूर्तियों को बगीचे में पेड़-पौधों के बीच करीने से स्थापित किया हुआ था। एक बार एक विदेशी मेहमान को सिकंदर अपना बगीचा दिखाने ले गया। पूरा बगीचा घूमने के बाद मेहमान ने पूछा, इसमें आपकी मूर्ति कहीं नहीं है, ऐसा क्यों ?

सिकंदर ने कहा, मूर्ति देखकर लोग पूछें कि यह मूर्ति किसकी है, इससे बेहतर यह होगा कि लोग मुझसे पूछें कि यहां सिकंदर की मूर्ति क्यों नहीं है ?

सिकंदर का जवाब सुनकर विदेशी मेहमान बहुत प्रभावित हुआं जिसे अपने बाहुबल पर इतना विश्वास हो कि उसे याद करने के लिए किसी मूर्ति की जरूरत न पड़े, ऐसा ही राजा था सिकंदर।

५४१) विश्वविजेता की परीक्षा- सिकंदर जब विश्व विजय के बाद एथेंस लौटा तो नगरवासियों ने उसके स्वागत के लिए एक भव्य समारोह का आयोजन किया। सिकंदर के लिए एक ऊंचा मंच बनाया गया। उस पर उसके साथ उसके प्रमुख योद्धा विराजमान हुए। शहर के सारे लोग समारोह देखने के लिए उमड़ पड़े। समारोह के दौरान अचानक एक वृद्धा मंच पर चढ़ने लगी तो सिपाहियों ने उसे रोका। सिकंदर ने यह देख लिया और बुढ़िया को अपने पास बुला लिया। बुढ़िया

बोले, बेटा, मैंने सुना है तू दुनिया जीतकर आया है। मुझे विश्वास नहीं होता। मैं तेरी परीक्षा लेना चाहती हूं। सिकंदर तो घमंड में चूर था बोला, हां-हां, ले लो परीक्षा।

बुढ़िया के हाथ में एक रूमाल था। उसने एक गांठ लगाई और सिकंदर से बोली, इसे खोल दे। सिकंदर ने आव देखा न ताव झट से तलवार उठाई और रूमाल में लगी गांठ पर चला दी। बुढ़िया ने सिकंदर का हाथ थाम लिया और बोली, रुक जा, मैं समझ गई, तूने दुनिया को जीता नहीं काटा है। अरे मूर्ख, तू इतना भी नहीं जानता कि गांठें काटी नहीं खोली जाती हैं। बुढ़िया की इस बात पर सिकंदर लज्जित हो गया।

५४२) महान भारत- विश्व विजेता सिकंदर अपनी विजय के मद में चूर था। भारत में उसने संतों की महत्ता व उनसे प्राप्त सिद्धियों के विषय में खूब सुना था। जहां उसका डेरा लगा था उसके समीप एक साधु की झोपड़ी थी। उनकी ख्याति सुनकर वह पहुंचा उसके चेहरे के तेज से सिकंदर बड़ा प्रभावित हुआ पर देखा कि उसके तन पर वस्त्र नहीं हैं न ही रहने को उचित स्थान और न खाने की समुचित व्यवस्था।

धन व विजय के मद में सिकंदर बोल उठा, महात्मन, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। महात्मा ने तत्काल कहा, तू मेरी क्या सहायता कर सकता है, मेरा तो एकमात्र, आश्रयदाता व अन्नदाता व तन रक्षक परमपिता परमात्मा है। गर मुझ पर कृपा करनी है तो बस इतना कर कि मेरे लिये धूप छोड़ दे जिसके मार्ग में तू खड़ा है। संत की निस्पृहता से प्रभावित सिकंदर लौट गया और भारत की महानता को नतमस्तक हो गया।

५४३) विश्वास का फल- सिकंदर अपने दल-बल के साथ फारस देश पर चढ़ाई करने जा रहा था। कुछ दूर चलने के बाद रास्ते में उसकी तबीयत खराब हो गई। देखते ही देखते बीमारी काफी बढ़ गई। उसकी दशा चिंताजनक होने लगी। उसके सेनानायक और सैनिकों में बेचैनी फैल गई। सिकंदर के साथ कई नामी हकीम भी थे, लेकिन यह सोचकर कि अब वह नहीं बचेगा, किसी ने उसे दवा नहीं दी। उन्हें लगता था कि अगर दवा पीने के बाद सिकंदर की मौत हुई तो लोग उस हकीम को ही जिम्मेदार ठहराएंगे, जो दवा देगा। इसलिए कोई संकट मोल लेने के लिए तैयार न था। लेकिन एक यूनानी हकीम फिलिप से सिकंदर का दुख देखा न गया। वह अनुभवी चिकित्सक था और सिकंदर का विश्वासपात्र भी। अपनी परवाह किए बिना उसने सिकंदर से कहा, मैं अभी आपके लिए दवा तैयार करके लाता हूं। इतना कहकर वह दूसरे कक्ष में चला गया।

इसी बीच सिकंदर को अपने एक उच्चाधिकारी का गुप्त संदेश मिला कि फारस के बादशाह ने उसे दवा के बहाने जहर देने का षड्यंत्र रचा है और इसके लिए फिलिप को आधा राज्य देने और अपनी राजकुमारी से विवाह कराने का वचन दिया है। संदेश पढ़कर सिकंदर ने उसे अपने तकिए के नीचे रख दिया। थोड़ी देर बाद फिलिप दवा का प्याला लिए आया। सिकंदर ने बिना किसी संशय के प्याला मुंह से लगा लिया और दूसरे हाथ से वह संदेश निकालकर फिलिप को पकड़ा दिया। पत्र पढ़कर फिलिप घबरा गया। उसने कहा, मालिक मैंने तो आपको बेहतरीन दवा दी है। आगे देखिए क्या होता है। दवा ने सचमुच चमत्कारी प्रभाव दिखाया। कुछ ही देर में सिकंदर की दशा में सुधार आने लगा। ठीक होने पर उसने फिलिप को गले लिया और कहा, मेरे प्राणदाता चिंता मत करो। अगर मुझे तुम पर तनिक भी संदेह होता तो मैं वह दवा ही न पीता। मैंने विश्वास किया और उसका अच्छा फल पाया। <u>विश्वास से बड़ी कोई चीज नहीं होती। सफलता का यही मूल मंत्र है। सिकंदर के सारे हकीम और सैनिक हतप्रभ रह गए</u>।

५४४) एक बार सिकंदर किसी कारण से अपने सेनापति से नाराज हो गया। उसने उसे सूबेदार बना दिया। सिकंदर ने सोचा कि इतना छोटा पद पाकर सेनापति अपमानित महसूस करेगा और घुल-घुलकर मर जाएगा। एक दिन उसने

सेनापति को बुलाया। सेनापति को पहले से कहीं ज्यादा स्वस्थ और प्रसन्न देखकर सिकंदर हैरान रह गया। उसने पूछा, तुम इतना खुश कैसे दिखाई दे रहे हो ? उसने जवाब दिया, पहले जब मैं सेनापति था तो सैनिक मुझसे बात करने से कतराते थे। मैं भी पद की मर्यादा का ध्यान रखकर उनसे संवाद करने से बचता था। पर अब कोई संकोच नहीं रहा। मैं उनसे खुलकर बात करता हूं। वे अब भी मेरा सम्मान करते हैं और हम एक-दूसरे की सेवा में लगे रहते हैं। मैं समझ गया हूं कि सम्मान पद से नहीं मिलता, बल्कि अपने स्वभाव से मिलता है। जिसमें थोड़ी भी मानवीयता होगी उसे सारी दुनिया आदर और स्नेह देगी। मैं पहले भी संतुष्ट था और आज भी हूं क्योंकि मेरे लिए मानवता सबसे बड़ी चीज है। सिकंदर इस जवाब से बेहद प्रभावित हुआ। उसे अपने फैसले पर पश्चाताप हुआ और उसने उसे फिर से अपना सेनापति बना लिया।

५४५) सिकंदर को उसके गुरु अरस्तु की सीख- सिकंदर जब भारत से बेबीलोन लौट रहा था तब उसकी मृत्यु हो गयी। सेनापति सेल्यूकस उसकी लाश लेकर बेबीलोन पहुँचा। वहाँ की जनता ने जब उसकी मृत्यु का समाचार सुना तो बहुत दु:खी हुई। उनका दु:ख देखकर सेल्यूकस ने सिंकदर के गुरु अरस्तु से दु:खी जनता को शांत करने के लिए कहा। अरस्तू बोले- मैं जानता था, देवताओं संतों और ऋषि-मुनियों के देश भारत पहुंचकर मेरा प्यारा शिष्य सिकंदर हार जायेगा। मैंने उससे कहा था कि वह विश्वविजय का सपना लेकर भारत कभी न जाय। यदि जाय तो वहां के ऋषि-मुनियों और संतों से ज्ञान की संपत्ति लेकर लौटे। वह भारत को लूटने, उस पर कब्जा करने, सोना-चांदी तथा जवाहरातों का भंडार लाने का विचार त्याग दे, पर उसने मेरी एक न सुनी और उसकी दुर्गति हुई।

५४६) तसला और कटोरा - गांधीजी बड़ौदा जेल में थे, तब सुपरिंटेंडेंट मेजर मार्टिन ने उनके लिए कुछ आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध करवाना आरंभ किया। गांधीजी ने सुपरिंटेंडेंट से पूछा, ये सारी वस्तुएँ किसके लिए आ रही हैं? सुपरिंटेंडेंट ने उत्तर दिया, आपके लिए। मैंने सरकार को लिखा था कि इतने महान पुरुष पर तीन सौ रुपए महीने खर्च होने चाहिए। गांधीजी ने कहा, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। किंतु मेरा मासिक व्यय पैंतीस रुपए से अधिक नहीं होगा। यदि मैं स्वस्थ होता तो खाना भी सी क्लास का खाता। गांधीजी के आग्रह पर वे सारी वस्तुएँ वापस कर दी गई। उनके स्थान पर वही तसला और कटोरा आ गया, जो सामान्य कैदी को दिया जाता था। <u>महान पुरुष कभी अपने को साधारण लोगों से अलग नहीं समझते</u>।

५४७) पद की निष्ठा- सिकंदर का सेनापति अपनी योग्यता और निष्ठा के लिए प्रसिद्ध था। सिकंदर उसके काम करने के तरीके से बहुत प्रसन्न रहता था। मगर एक बार एक छोटी सी गलती पर वह उससे बेहद नाराज हो गया और उसे सेनापति के पद से हटा कर सूबेदार बना दिया। यह सेना का सबसे छोटा ओहदा था। लेकिन सेनापति ने इस पर कोई नाराजगी नहीं दिखाई और उसने इस निर्णय को भी सहजता से स्वीकार किया। सूबेदार के पद पर भी वह पहले की तरह निष्ठा और समर्पण से कार्य करने लगा। कुछ समय बाद उसे किसी काम से सिकंदर के सामने उपस्थित होना पड़ा। सिकंदर ने उससे पूछा, तुम सेनापति से सूबेदार हो गए, मगर मैं तुम्हें पहले की तरह ही खुश और उत्साहित देखता हूं। बात क्या है? सूबेदार ने कहा, श्रीमान, मैं तो पहले से और ज्यादा सुखी हूं। पहले तो सैनिक और सेना के छोटे अधिकारी मुझसे डरते थे, किंतु अब वे मुझसे स्नेह करते हैं और हर बात में मुझसे राय लेते हैं। सही मायनों में उनकी सेवा का अवसर तो मुझे अब मिला है। इसके बाद सिकंदर ने प्रश्न किया, लेकिन बड़े पद से हटने पर तुम्हें अपमान नहीं महसूस होता? तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि सब तुम पर मन ही मन हंसते होंगे। यह सुनकर सूबेदार मुस्कराया और बोला, श्रीमान बताएं, सम्मान पद में है या मानवता में? उच्च पद पाकर कोई अहंकार में चूर हो जाए और दूसरों को सताए तो वह निंदनीय ही है। सम्मान तो दूसरों की सेवा करने, ईमानदार होने, नम्र व्यवहार करने और कर्त्तव्यनिष्ठ रहने में है। ऐसा जो करता है वह सुखी

और संतुष्ट रहता है। भले ही वह अदना सैनिक हो या सेनापति। इतना कह सूबेदार ने सिकंदर से विदा ली। सिकंदर सूबेदार के साथ अपने व्यवहार और उसके व्यवहार के बारे में रातभर सोचता रहा। अगले ही दिन उसने सूबेदार को बुलाया, उससे क्षमा मांगी और उसे फिर सेनापति बना दिया।

५४८) सिकंदर को सबक- बात उस समय की है कि जब सिकंदर विश्व को जीतने के अभियान पर निकला था। अपनी सेनाओं के साथ एक-एक कर उसने कई शहर रौंद डाले। उसे सफलता मिलती गई, उसका आत्मविश्वास बढ़ता गया। एक बार किसी नगर में लड़ते-लड़ते जब वह थक गया तो एक घर के सामने उसने घोड़ा रोका। दरवाजा खटखटाने पर एक बुढ़िया ने दरवाजा खोला। सिकंदर ने कहा, मुझे जोर की भूख लगी है। खाना दो। बुढ़िया ने सिकंदर को पहचान लिया और अंदर चली गई। कुछ देर बाद वह एक थाल लेकर आई जिस पर कपड़ा ढका था। सिकंदर ने कपड़ा हटाया तो देखा, खाने की जगह जेवर रखे हैं। उसने कहा, मैंने खाना मांगा था। जेवर तो मैं खा नहीं सकता। इस पर बुढ़िया बोली, तुम्हारी भूख रोटियों से मिट जाती तो तुम यहां क्यों आते। तुम्हारे देश में तो रोटियां हैं ही। तुम्हें तो सोने की भूख है। बुढ़िया की बात सुनकर सिकंदर बिना लड़े वापस चला गया। जाते-जाते उसने नगर के मुख्य रास्ते पर शिलालेख लगवाया जिस पर लिखा था, अज्ञानी सिकंदर को इस नगर की महान नारी ने अच्छा सबक सिखाया।

५४९) एक बार ऐसा हुआ कि सिकंदर के हिंदुस्तान से लौटते वक्त उसके फौजी पड़ाव में एक डाकू ने डाका डाल दिया। रात में सैनिक सोए थे। वह सामान लूटकर ले गया। सिकंदर बहुत हैरान हुआ। उसने कहा हद हो गई। सुबह वह डाकू पकड़कर लाया गया। सिकंदर ने कहा, तुम कैसे बदतमीज हो, कैसे अनैतिक व्यक्ति हो? उस डाकू ने कहा, नहीं, ऐसा व्यवहार न करें। जैसा एक बड़ा भाई छोटे भाई के साथ व्यवहार करता है, वैसा व्यवहार करें। सिकंदर ने कहा, तू मेरा छोटा भाई कैसे? उसने कहा, तुम बड़े डाकू हो, तुम्हें दुनिया मानती है, हम छोटे डाकू हैं, हमें मानती नहीं। हम जरा कमजोर हैं, शक्तिहीन हैं, छोटे-मोटे डाके डालते हैं। तुम बड़े डाके डालते हो, तुम बादशाह हो। तुम भी वही करते हो, हम भी वही करते हैं।

५५०) कीमती किताब - एक बार सिकंदर के पास एक सैनिक अधिकारी आया और उसने एक सुन्दर स्वर्णजड़ित पेटी पेश की। सिकंदर के पूछने पर अधिकारी ने यह बताया कि उसे पेटी ईरान में लूट के दौरान मिली। सिकंदर उस पेटी की नक्काशी देख बेहद प्रभावित हुआ और उसने अपने दरबारियों से पूछा कि पेटी में कौन-सी कीमती और खूबसूरत चीज रखी जाए। एक दरबारी ने हीरे और जवाहरात रखने का सुझाव दिया, तो दूसरे ने कीमती वस्त्र रखने का। किसी ने खजाने की चाबियों का गुच्छा रखने की, तो किसी ने गोपनीय पत्रों को रखने की सलाह भी दी। सिकंदर को एक भी सुझाव सही नहीं लगा।

कौन-सी चीज है, जिसने उसके जीवन को प्रेरणा दी है। उसके अन्तर्मन ने कहा- सिकन्दर। तुम्हें जो गौरव और ख्याति मिली है, वह न तो रुपयों-पैसों से मिली है और ना सारे मुल्क को जीतने की वजह से। फिर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसने उसके जीवन को नई दिशा दी है? अकस्मात् उसे ख्याल आया कि पौरुष, पराक्रम और साहस का मार्ग दिखाने वाली एक किताब उसे मिली थी। उस किताब को पढ़कर ही उसे अपने में छिपी शक्ति का ज्ञान हुआ। उसी की वजह से ही आज वह विश्व-विजयी बन पाया है। सिकन्दर ने आदेश दिया, इस पेटी में महाकवि होमर लिखित महाकाव्य इलियड रखो। यह मेरे लिए सबसे कीमती और बेहतरीन चीज है।

५५१) मानव धर्म - यह घटना उस समय की है जब सिकंदर और पोरस में युद्ध चल रहा था। एक रात सिकंदर के कुछ सैनिकों ने उसके शिबिर में आकर सूचना दी कि एक साधु उनकी सेना के घायल सैनिकों का जड़ी-बूटियों द्वारा

इलाज कर रहा है। उसके इलाज से जख्मी सैनिक कुछ ही समय में स्वस्थ हो रहे हैं। यह सुनकर सिकंदर हैरान रह गया। उसने भारतीय साधुओं के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। जब उसने इस साधु के बारे में सुना तो उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएं पैदा होने लगीं। उसे लगा इसमें कहीं कोई षडयंत्र न हो। वह ठीक से सो न सका। सुबह होते ही दुभाषिए को लेकर वह साधु के पास पहुंचा। उसने अपने दुभाषिए की सहायता से साधु से पूछा, तुम कौन हो? साधु ने उत्तर दिया, मैं भगवान का एक सेवक हूं। सिकंदर बोला, लेकिन तुम शत्रुओं की सेवा क्यों कर रहे हो? साधु ने कहा, मेरी दृष्टि में शत्रु-मित्र बराबर हैं। मैं मात्र प्राणियों की सेवा कर रहा हूं। सिकंदर ने कहा, मैं तुम्हारी बात नहीं समझा।

साधु ने इधर-उधर देखा। वहां उसे एक मरी हुई चींटी नजर आई। उसने उसे उठाया और सिकंदर से पूछा, क्या तुम इसे जीवित कर सकते हो? सिकंदर ने उत्तर दिया, नहीं। साधु बोला, जब तुम एक चींटी तक को प्राणदान नहीं दे सकते तो फिर अनगिनत मनुष्यों के प्राण लेने का तुम्हें क्या अधिकार है? सिकंदर को कोई उत्तर नहीं सूझा। उसने सिर झुका लिया। उसके सिर झुकाते ही साधु ने कहा, मैं एक मानव हूं और मानव धर्म का पालन कर रहा हूं। मानव धर्म का पालन प्राणियों की सेवा करने में है, उनके प्राण हरने में नहीं। तुम प्राण लेना जानते हो, प्राण देना नहीं। यह कैसी विरता है तुम्हारी? मेरी बात मानो और दूसरों के प्राण लेना बंद करो। युद्ध बंद कर अपने देश लौट जाओ। सिकंदर शर्मिंदा होकर चुपचाप अपने शिबिर में लौट आया।

५५२) सिकंदर और अरस्तू का संवाद - विश्व विजय का स्वप्न देखनेवाले सिकंदर और उनके गुरु अरस्तू एक बार घने जंगल में कहीं जा रहे थे। रास्ते में उफनता हुआ एक बरसाती नाला पड़ा।

अरस्तू और सिकंदर इस बात पर एकमत न हो सके कि पहले कौन नाला पार करे। उस पर वह रास्ता अनजान था, नाले की गहराई से दोनों नावाकिफ थे। कुछ देर विचार करने के बाद सिकंदर इस बात पर ठान बैठे कि नाला तो पहले वह स्वयं ही पार करेंगे। कुछ देर के बाद विवाद के बाद अरस्तू ने सिकन्दर की बात मान ली। पर बाद में वे इस बात पर नाराज हो गए कि तुमने मेरी अवज्ञा की तो क्यों की। इस पर सिकंदर ने एक ही बात कही, मेरे मान्यवर गुरु जी, मेरे कर्त्तव्य ने ही मुझे ऐसा करने को प्रेरित किया। क्योंकि अरस्तू रहेगा तो हजारों सिकंदर तैयार कर लेगा। पर सिकंदर तो एक भी अरस्तू नहीं बना सकता। गुरु शिष्य के इस उत्तर पर मुस्कुरा कर निरुत्तर हो गए।

५५३) सच्ची वीरता- एक बार महाराज शिवाजी अपने शिविर में बैठे सेनापति की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी हाथ में एक ग्रंथ लिए सेनापति माधव महाराज शिवाजी के पास पहुंचे। उनके पीछे-पीछे एक डोला भी लाया गया। सेनापति ने प्रसन्न मुद्रा में शिवाजी को बताया कि मुगल सेना दूर तक खदेड़ दी गई है। बेचारा राजा बहलोल जान बचाकर भाग गया है।

इस पर शिवाजी ने डोले की ओर इशारा करते हुए सेनापति से पूछा- लेकिन यह क्या है ? इस पर हंसते हुए सेनापति ने कहा, इसमें स्वर्ग की परी कहलाने वाली बहलोल की बेगम गौहरबानू है, जो आपके लिए जीत के तोहफे के रूप में लाई गई है। ये देखिए, मैं उनका धर्मग्रंथ कुरान शरीफ भी उठा लाया, अब हम इन दोनों को अपमानित कर उनसे प्रतिशोध ले सकते हैं। शिवाजी ने आगे बढ़कर सेनापति माधव के हाथों से कुरान लेकर उसे चूम लिया और डोले के पास जाकर बहलोल की बेगम को बाहर आने को कहा। बेगम गौहरबानू को देख कर शिवाजी ने कहा- आप बेहद खूबसूरत हैं। काश, मेरा जन्म आपके पुत्र के रूप में होता, तो मैं भी इतना सुन्दर होता।

फिर शिवाजी सेनापति की ओर पलटे और उसे फटकारते हुए कहा बोले- यह वीरता नहीं है कि अबलाओं पर प्रहार किया जाए और उनका सतीत्व लूटा जाए और धर्मग्रंथों की होली जलाई जाए। किसी के धर्म को अपमानित करना बहुत बड़ी

कायरता और नीचता है। एक सच्चा वीर कभी स्त्री या धर्मग्रंथ को अपमानित करके खुश नहीं हो सकता। उसी समय उन्होंने एक अधिकारी को आदेश दिया कि पूरे सम्मान के साथ बेगम और कुरान शरीफ को राजा बहलोल खां को सौंप दिया जाए। शिवाजी के आदेश का तुरंत पालन किया गया।

अपनी बेगम गौहरबानू व कुरान शरीफ को सही हालत में पाकर व महाराज शिवाजी की उदारता को देखकर राजा बहलोल मन ही मन महाराज शिवाजी की सच्ची वीरता के सामने नतमस्तक हो गए।

५५४) किसान का बड़प्पन- एक बार पेशवा बाजीराव ने मालवा पर हमला किया। जीत तो हासिल हो गई, पर सैनिकों का भोजन समाप्त हो गया। पेशवा ने अपने एक सरदार को पास के गांव से अनाज लाने का हुक्म दिया। सरदार कुछ सैनिक लेकर चल पड़ा, लेकिन काफी देर तक उन्हें अनाज नहीं मिला, क्योंकि युद्ध के कारण आसपास के खेत भी नष्ट हो गए थे। तभी सरदार को एक किसान मिला। सरदार ने उससे कहा, हम बाजीराव के सैनिक हैं, हमें अनाज चाहिए। चलो, कोई अच्छा सा खेत दिखाओ। किसान उन सैनिकों को लेकर चला। थोड़ी दूर जाने पर ही सैनिकों को एक अच्छी फसल वाला खेत मिला। सरदार ने कहा, हम इस खेत से फसल काट लेते हैं। तभी किसान बोला, आप मेरे साथ चलिए, इससे भी अच्छा खेत आगे है। थोड़ी दूर जाने पर किसान ने सैनिकों से कहा, इस खेत से चाहे जितनी फसल काट लो। इसमें पहले खेत से कुछ कम फसलें थीं। सैनिक किसान पर भड़के, हमें धोखा देता है। हमें यहां क्यों लाया है ? इस पर किसान ने कहा, यह खेत मेरा है। वह खेत दूसरे का था। दूसरे के खेत से फसल कटवाने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। आप मेरे खेत से चाहे जितनी फसल काट लें। सैनिक किसान के समक्ष नतमस्तक हो गए।

५५५) समर्थजीके सेवक का- समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी वृद्ध हो गये थे। उनके मुखमें एक भी दाँत नहीं था। परन्तु पान-प्रसादमें आपकी निष्ठा थी, अब उन्हें पनवट्टे में कूटकर पान दिया जाता था। एकदिन पानमें चूना अधिक हो गया। उसे खानेसे श्रीसमर्थजीके मुखमें छाले हो गये। वे परम सहिष्णु थे अत: कुछ बोले नहीं, किन्तु जिस सेवककी पान देनेकी सेवा थी, उसे बड़ा दु:ख हुआ। गुरुदेवको पुन: ऐसा कष्ट नहीं होना चाहिए। सोचते-सोचते उसने एक उपाय सोच लिया। अब वह पानको पहले अपने मुख में रखकर चबाता, उसके बाद श्रीसमर्थजी को दे देता। इस प्रकार उसकी सेवा चलती रही। एकदिन किसीने देख लिया तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसने छत्रपति शिवाजी से जाकर कहा। क्रोधमें भरे शिवाजी श्रीसमर्थजी के समीप आये और उन्होंने गुरुदेव को ताम्बूल देने वाले सेवक की अशिष्टता बतलायी, तो गुरुदेव श्रीसमर्थ ऐसे भोरे बन गये कि जैसे कुछ जानते ही न हों। उन्हें सेवककी निष्ठाका पूरा पता था। उन्होंने उस सेवकको बुलवाया। छत्रपति शिवाजी उससे बोले- तुम जिस पनबट्टेमें पान कूटकर गुरुदेवको देते हो, उसे ले आओ। सेवक चला गया और थोड़ी देर में लौटकर आया तो उसके हाथमें रक्त से सना थाल था और वह स्वयं रक्तसे लथपथ था। वह अपना पूरा जबड़ा काटकर थाल में रखकर लाया था। थाल रखकर वह श्रीगुरु-चरणों में गिर पड़ा और दिव्य-देह प्राप्तकर भगवान श्रीराम की सेवा में उपस्थित हो गया। शिवाजी सिर झुकाये आँखों से आँसुओं की धारा बहा रहे थे। गुरु-भक्ति और सेवा-धर्म का आदर्श प्रकट हुआ। सेवक कसौटी पर खरा उतरा।

५५६) अम्बादास कल्याण- अनेक शिष्योंके साथ समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी यात्रा करते हुए मध्याह्नके समय एक विशाल कूपके समीप एक सघन वृक्षकी छाया में विश्राम करने लगे। अचानक उनके मनमें कुछ विचार आया और उन्होंने अपने शिष्यों में से अम्बादासको समीप बुलाया। वृक्ष की एक शाखा कूपके ऊपर थी। उसकी ओर संकेत करके पूछा- तुम इस शाखाको काट सकते हो? अम्बादासने हाथ जोड़कर कहा- आपकी आज्ञा होने पर अवश्य काट सकता हूँ।

श्रीसमर्थजी बोले- तब कुल्हाड़ी लेकर वृक्ष पर चढ़ जाओ और शाखाको काट दो। इसके पत्ते गिरकर कूपके जलको खराब करते होंगे। शाखाको उसके मूलसे ही काटना है। इस आज्ञाको सुनकर दूसरे शिष्य कभी समर्थजीका मुख, कभी अम्बादासका मुख और कभी उस शाखाकी ओर देखने लगे। वह शाखा जिस मोटी शाखासे निकली थी, वह तो सीधी ऊपर गई थी। वहाँ दूसरी कोई शाखा नहीं थी, जिस पर खड़े होकर कोई उस शाखाको काट सके। शाखाको मूलसे-फूटनेके स्थानसे काटने का अर्थ था कि उसी शाखा पर खड़े होकर उसे काटा जाय। पैर टिकाने को और कोई स्थान था ही नहीं। उसी शाखा पर खड़े होकर उसे काटने पर तो काटनेवाला शाखाके साथ कूपमें गिरेगा। उसके प्राण बचनेकी सम्भावना नहीं है।

अम्बादासने यह सब न देखा हो, ऐसी बात नहीं थी। लेकिन आज्ञा मिलते ही उन्होंने धोती कसकर बाँध ली और कुल्हाड़ी मारना शुरू कर दिया। तब श्रीसमर्थजीने ऊपर देखकर अम्बादासको डराने, उनकी परीक्षा लेनेके लिए कहा- मूर्ख। डाल काटते ही तू तो कूपमें गिर जायगा और मर जायगा। अम्बादासने कहा- आपकी कृपा मुझे भवसागरसे पार करनेमें समर्थ है। इस कूपकी क्या गिनती, मैं तो आपकी कृपासे सुरक्षित हूँ। श्रीसमर्थ ने आज्ञा दे दी कि- इतनी श्रद्धा है तो अपना काम करो। जब शाखा आधीसे कुछ अधिक कट गई, तभी टूटकर अम्बादासके साथ कूपमें गिर गयी। सभी शिष्य व्याकुल हो गये। श्रीसमर्थजी शान्त बैठे थे। गुरुमें जिसकी इतनी श्रद्धा है, उसका अमङ्गल कैसे हो सकता है। अम्बादासके शरीरमें कहीं भी चोट नहीं आई और कूपमें उन्हें अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रजीका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ तो वे विभोर हो गये, उन्हें कूपसे निकाला गया। बाहर आते ही वे श्रीगुरु-चरणोंमें गिर पड़े और बोले- हे प्रभो। आपकी कृपासे मेरा कल्याण हो गया। श्रीसमर्थजी ने कहा- कल्याण तो तेरा, तेरी श्रद्धाने किया, अब तू कल्याणरूप हो गया। तभीसे अम्बादासजी का नाम कल्याण हो गया। गुरु वचनोंमें प्रीतिके कारण श्रीमथुरादासजी भी कल्याणरूप थे। तभी तो वेषधारी ठग चेटकी सरीखे लोगों का कल्याण कर से।

५५७) समर्थ और दिलेलखान- महाराष्ट्र के सन्त श्रीजयराम स्वामी अपने आश्रममें नित्य रातको उच्च-स्वरसे श्रीराम जय राम जय जय राम इस मन्त्रका कीर्तन करते थे। मिरजका अधिकारी दिलेलखान नित्य रातमें गश्त लगाने जाता तो कीर्तन सुनकर उसका सिर दर्द करने लगता। हिन्दू फकीरोंको कष्ट देनेका उसका स्वभाव था। एकदिन वह कीर्तनमें पहुँच गया। और पूछा कीर्तनसे क्या लाभ होता है ? स्वामीजी ने कहा- यह प्रेमी सन्तों का स्वभाव है, साधन और साधु-मार्ग है। साधु-मार्ग पर चलने से श्रीरामजीके दर्शन प्राप्त होते हैं। अधिकारी दिलेलखानने दूसरे दिन बड़े सबेरे ही दूत भेजकर जयराम स्वामीको बुलवाकर कहा- साधु जिस रास्तेसे जाय, मैं भी चलनेको तैयार हूँ। मुझे आप अपने रामका दर्शन कराइये। नहीं तो झूठ बोलनेके अपराध में आपको कठोर दण्ड भुगतना पड़ेगा। जाइये, कल तक सोच-विचारकर व्यवस्था कीजिये। जयराम स्वामी बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। उसी समय नदीके किनारे पहुँचे, जहाँ समर्थ स्वामी रामदासजी नित्य-नियम कर रहे थे। सारी दुर्घटना सुनाकर उनसे प्रार्थनाकी कि इस समटसे किसी प्रकार मुझे छुड़ाइये। समर्थजीने खानके पास सूचना भेज दी, कि आज ही नित्य-नियमसे निवृत्त होकर हम लोग चल रहे हैं, तुम भी साथ-साथ चलना, तुम्हें आज ही श्रीरामजीके दर्शन हो जायेंगे। यथा-समय खान तैयार होकर आ गया। समर्थ और जयराम स्वामी निवृत्त होकर चल पड़े। खान भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ दूर चलने के बाद मिरजका किला आ गया। किलेकी दीवालमें कुछ छेद बने थे, जो भीतरसे बन्दूकोंका वार करनेके लिए थे। समर्थजी झट सूक्ष्म रूप बनाकर छेदके रास्तेसे भीतर घुस गये। भीतरसे बोले- जयराम स्वामी। तुम भी आ जाओ। वे भी भीतर चले गये। फिर समर्थजीने खानसे कहा- खान तुम भी जल्दी इसी रास्ते से आ जाओ। साधु-सन्त इसी रास्ते से आये हैं। देखो, ये श्रीरामचन्द्रजी खड़े हैं, आकर दर्शन करो। खान अपनी मूर्खता और दुष्टता से लज्जित हुआ। उसने समर्थजी से क्षमा माँगी और भविष्यमें इस

प्रकार किसी साधुसे छेड़-छाड़ न करनेका वचन दिया। समर्थने समझाया कि- साधु-मार्ग पर साधुकी कृपासे चला जा सकता है और साधु-कृपा साधुकी सेवासे प्राप्त होती है। श्रीनाभाजी कहते हैं- काहि पै यह बनि आवै। नृतक नारायणदासकी-सी निष्ठा, कीर्तन और नृत्य किससे बन सकता है। अर्थात सबसे नहीं बन सकता है।

५५८) अन्नदाता- एक बार शिवाजी एक किला बनवा रहे थे। वहां मजदूर काम कर रहे थे। शिवजी के मन में विचार आया कि इन सबका अन्नदाता मैं हूँ। मेरे बिना ये सब भूखों मर जाएंगे। गुरु रामदास पास ही खड़े थे। वे शिवाजी के मन के भज्ञव को समझ गए थे। बोले- शिवा। जरा इस शिला को तुड़वाओ, शिला टूटने पर बीच में से एक कीड़ा निकला। समर्थ रामदास ने पूछा- शिवा कहो, इस कीड़े को कौन भोजन देता है ? यह सुनते ही शिवाजी निरुत्तर हो गए और अपनी भूल के लिए गुरु रामदास से माफी मांगी।

५५९) कर्त्तव्य का पालन- यह घटना उस समय की है, जब शिवाजी के एक किले को दुश्मनों ने घेर लिया था। दुर्ग के प्रत्येक पहरेदार को आदेश था कि चाहे कोई भी कुछ क्यों न कहे लेकिन सूर्यास्त के बाद दुर्ग के दरवाजे को हरगिज न खोला जाए। शिवाजी दुश्मनों के एक दल को ढेर करने के बाद आधी रात के समय दुर्ग के पिछले दरवाजे पर पहुंचे और उन्होंने द्वारपाल से दरवाजा खोलने का आग्रह किया। दुश्मन की चिंता व तनाव के कारण वह द्वारपाल शिवाजी को पहचान नहीं पाया और उन्हें दुश्मन का ही कोई साथी समझकर बोला, चाहे आप कुछ भी कहिए किंतु रात के समय दुर्ग के दरवाजे कतई नहीं खुलेंगे। सूर्यास्त के बाद द्वार नहीं खुलेगा।

शिवाजी के भरसक प्रयत्न करने पर भी द्वारपाल ने दरवाजा नहीं खोला। शिवाजी के सामने कोई और रास्ता नहीं था। उन्हें दुर्ग के बाहर एक कोने में छिपकर रात बितानी पड़ी। सवेरे दरवाजा खुलने पर शिवाजी ने उस द्वारपाल को दरबार में आने का आदेश दिया। द्वारपाल भय से थर-थर कांप रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि शिवाजी को न पहचान पाने और दुर्ग का दरवाजा न खोलने के कारण उसे अवश्य कड़ी सजा मिलेगी। वह सिर झुकाए शिवाजी के सामने जा पहुंचा। शिवाजी ने सबके सामने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, मैं रात को दुर्ग का दरवाजा न खोलने के आदेश का सख्ती से पालन करने के लिए तुमसे प्रसन्न हूं। आज से मैं तुम्हें अपना अंगरक्षक नियुक्त करता हूँ। मुझे तुम जैसे कर्तव्यनिष्ठ रक्षकों की ही आवश्यकता है। शिवाजी का यह निर्णय सुनकर द्वारपाल उनके प्रति नतमस्तक हो गया। शिवाजी इसकी कर्तव्यनिष्ठा और निर्भीकता से बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने उसे अंगरक्षक बना लिया।

५६०) गुरु का संदेश- छत्रपति शिवाजी ने अपने पराक्रम से अनेक लड़ाइयां जीतीं। इससे उनके मन में थोड़ा अभिमान आ गया। कई बार उनका यह अभिमान औरों के सामने भी झलक पड़ता। एक दिन शिवाजी के महल में उनके गुरु समर्थ रामदास पधारे। शिवाजी वैसे तो रामदास का काफी आदर करते थे लेकिन उनके सामने भी उनका अभिमान व्यक्त हो ही गया, गुरुजी अब मैं लाखों लोगों का रक्षक और पालक हूं। मुझे उनके सुख-दुख और भोजन-वस्त्र आदि की काफी चिंता करनी पड़ती है। रामदास समझ गए कि उनके शिष्य के मन में राजा होने का अभिमान हो गया है इस अभिमान को तोड़ने के लिए उन्होंने एक तरकीब सोची। शाम को शिवाजी के साथ भ्रमण करते हुए रामदास ने अचानक उन्हें एक बड़ा पत्थर दिखाते हुए कहा, शिवा, जरा इस पत्थर को तोड़कर तो देखो। शिवाजी ने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए तत्काल वह पत्थर तोड़ डाला। किंतु यह क्या, पत्थर के बीच से एक जीवित मेंढक एक पतंगे को मुंह में दबाए बैठा था। इसे देखकर शिवाजी चकित रह गए। समर्थ रामदास ने पूछा, पत्थर के बीच बैठे इस मेंढ़क को कौन हवा-पानी दे रहा है? इसका पालक कौन है? कहीं इसके पालन की जिम्मेदारी भी तुम्हारे कंधों पर तो नहीं आ पड़ी है? शिवाजी गुरु

की बात का मर्म समझकर लज्जित हो गए। गुरु ने उन्हें समझाया, पालक तो सबका एक ही है और वह परम पिता परमेश्वर। इसलिए उस पर विश्वास रखकर कार्य करो। तुम्हें सफलता अवश्य ही मिलेगी।

५६१) शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास को एक किसान ने पीट दिया। मामला शिवाजी के सामने आया। समर्थ रामदास बोले, इसने मुझे पीटा है, इसलिए दंड मैं दूंगा। शिवाजी बोले, आपकी जैसी मर्जी। रामदास ने कहा, इसे पांच बीघा जमीन दे दो। सब सोचने लगे कि भला यह कौन सा दंड हुआ। समर्थ रामदास ने कहा, बेचारा गरीब है। यदि गरीब नहीं होता तो एक गन्ने के टुकड़े के लिए मुझे नहीं पीटता। इसे जमीन दे दो फिर यह किसी को नहीं पीटेगा।

५६२) कवि का स्वाभिमान - महाकवि भूषण छत्रपति शिवाजी के दरबारी कवि थे। उन्होंने शिवाजी के व्यक्तित्व का गुणगान करने के लिए कई अद्‌भुत कविताएं लिखी थीं। एक बार दूसरे किसी राज्य के राजा शिवाजी के दरबार में पधारे। वह शिवाजी की प्रशंसा में भूषण की ओजस्वी कविता सुनकर भाव-विभोर हो गए और भूषण से बोले, आप इसी तरह हमारी प्रशंसा में भी कुछ लिखिए। भूषण ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों के बाद वह उस राजा की प्रशंसा में एक काव्य ग्रंथ लिख कर उनके पास ले गए। दरबार में उन्होंने उसके कुछ अंशों का पाठ किया। सभी वाह-वाह कर उठे। राजा ने प्रसन्न होकर महाकवि भूषण को तीन लाख स्वर्ण मुद्राएं देते हुए कहा, एक काव्य के लिए आपको इतनी ज्यादा स्वर्ण मुद्राएं देनेवाला इस देश में कोई दूसरा राजा नहीं मिलेगा।

भूषण को यह सुनकर आघात लगा। उन्होंने सोचा कि इस राजा को अपनी संपत्ति का अहंकार हो गया है, इसीलिए इसको एक कवि के स्वाभिमान की परवाह नहीं है। भूषण यह सोचते हुए कुछ देर मौन रहे। राजा ने समझा कि शायद भूषण को स्वर्ण मुद्राएं कम लग रही हैं। उन्होंने कहा, महाकवि जी, क्या आपको और स्वर्ण मुद्राएं चाहिए। हम आपके पाठ से बहुत खुश हैं। आप को यदि ये कम लगती हैं तो हम आपको और मुद्राएं दे सकते हैं।

भूषण ने स्वर्ण मुद्राओं से भरी थैली राजा को लौटाते हुए कहा, राजन् इतनी बड़ी कीमत को वापस करने वाला भी इस देश में कोई कवि खोजने पर नहीं मिलेगा। आप ने कवि की वाणी की कद्र नहीं की, उसे पैसे से तौल कर कविता और कवि का अपमान किया है, इसलिए आपकी दी हुई मुद्राएं मुझे मिट्टी के समान लग रही हैं। उसके बाद राजा ने बहुत अनुनय-विनय की, लेकिन भूषण स्वर्ण मुद्राएं लेने को तैयार नहीं हुए और राजदरबार से लौट आए। भूषण का स्वाभिमान देख राजा का अहंकार चूर चूर हो गया।

५६३) महानता की कसौटी - उन दिनों शिवाजी मुगल सेना से बचने के लिए वेश बदलकर रहते थे। इसी क्रम में एक दिन वह एक दरिद्र ब्राह्मण विनायक देव के घर रुके। विनायक अपनी मां के साथ रहता था। वह भिक्षाटन कर अपना जीवनयापन करता था। अति निर्धनता के बावजूद उसने शिवाजी का यथाशक्ति स्वागत-सत्कार किया। शिवाजी को उसके कारण किसी तरह का कष्ट न हो इस बात का वह पूरा ध्यान रखता था। एक दिन जब वह भिक्षाटन के लिए निकला तो सुबह से शाम हो गई परंतु उसके पास बहुत ही कम अन्न एकत्रित हो पाया। वह घर गया और उसने भोजन बनाकर शिवाजी और अपनी मां को खिला दिया और स्वयं भूखा ही रहा। जब इस बात का शिवाजी को पता लगा तो उन्हें अपने आश्रयदाता की यह दरिद्रता भीतर तक चुभ गई। शिवाजी ने उसी समय विनायक की दरिद्रता दूर करने का एक उपाय सोचा। उन्होंने एक पत्र वहां के मुगल सूबेदार को भिजवाया। पत्र में लिखा था कि शिवाजी इस ब्राह्मण के घर रुके है। वह उन्हें पकड़ लें और इस सूचना के लिए इस ब्राह्मण को दो हजार अशर्फियां दे दीं और शिवाजी को गिरफ्तार कर लिया। बाद में तानाजी से यह सुनकर कि उसके अतिथि और कोई नहीं स्वयं शिवाजी महाराज थे, विनायक छाती पीट-पीटकर रोने लगा और मूर्छित हो गया। तब

तानाजी ने उसे सांत्वना दी और बीच मार्ग में ही सूबेदार से संघर्ष कर शिवाजी को मुक्त करा लिया।

५६४) नि:स्पृहता - महाराष्ट्र सिरमौर छत्रपति शिवाजी के एक वीर सेनापति ने कल्याण का किला जीता। काफी अस्त्र-शस्त्र के अलावा अटूट सम्पत्ति भी उसके हाथ लगी। एक सैनिक ने एक मुगल किलेदार की परम सुन्दर बहू उसके समक्ष पेश की। वह सेनापति उस नवयौवना के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया और उसने उसे शिवाजी को नजराने के रूप में भेंट करने की ठानी। उस सुन्दरी को एक पालकी में बिठाकर वह शिवाजी के पास पहुँचा। शिवाजी उस समय अपने सेनापतियों के साथ शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। वह सेनापति उन्हें प्रणाम कर बोला, महाराज। कल्याण में प्राप्त एक सुन्दर चीज आपको भेंट कर रहा हूँ और उसने उस पालकी की ओर इंगित किया। शिवाजी ने ज्योंही पालकी का परदा हटाया, उन्हें एक खूबसूरत मुगल नवयौवना के दर्शन हुए। उनकी शीश लज्जा से झुक गया और उनके मुख से निम्न उद्‌गार निकले, काश। हमारी माताजी भी इतनी खूबसूरत होतीं, तो मैं भी खूबसूरत होता। फिर उस सेनापति को डाँटते हुए बोले, तुम मेरे साथ रहकर भी मेरे स्वभाव को न जान सके? शिवाजी दूसरों की बहू-बेटियों को अपनी माता की तरह मानता है। जाओ इसे ससम्मान इसके घर लौटा आओ।

५६५) काल पर विजय- महाराष्ट्र के संत रामदास स्वामी काशी आए हुए थे। वह एक मंदिर में ठहर गए। शिष्य को भिक्षा मांगने भेज दिया। युवा शिष्य ने एक मकान के सामने भिक्षा की गुहार लगाई। अंदर से गंगा भट्ट भिक्षा लेकर बाहर आए। वह काशी के जाने-माने ज्योतिषाचार्य थे। युवक को देखते ही बोले, तेरे माथे की रेखाएं बता रही हैं कि आज शाम चार बजे तेरी मृत्यु हो जाएगी। यह सुनते ही युवक भय से ग्रस्त हो गया। उसने गुरुदेव स्वामी रामदास को भविष्यवाणी से अवगत कराया। स्वामी बोले, भगवान श्रीराम के पावन नाम का चिंतन करो। किसी वृद्धजन की चरण सेवा में लग जाओ। काल आकर भी वापस लौट जाएगा।

शिष्य ने ऐसा ही किया और मृत्यु का समय बीत गया। अगले दिन शिष्य पुन: गंगा भट्ट के घर भिक्षा मांगने पहुंचा। ज्योतिषाचार्य हक्के-बक्के रह गए। उन्होंने स्वामी जी के पास पहुंचकर कहा, आज से आपके नाम के साथ समर्थ गुरु की पदवी लगाई जाएगी। वास्तव में वृद्धजनों की सेवा तथा राम नाम के सामने काल पराजित हो जाता है।

५६६) बचपन में एक बार नेपोलियन अपनी छोटी बहन के साथ खेल रहा था। तभी उसकी बहन राह चलती एक लड़की से टकरा गई। लड़की के सिर पर फलों की टोकरी थी। सारे फल गिरकर खराब हो गए। लड़की रोने लगी। नेपोलियन की बहन ने कहा, चलो घर भाग चलें। इस पर नेपोलियन ने कहा, एक तो तुमने उस लड़की का नुकसान कर दिया अब उसकी मदद करने की बजाय भाग जाना चाहती हो। नेपोलियन उस लड़की को अपने घर ले गया और अपनी मां से बोला, मां मुझसे इस लड़की की फलों की टोकरी गिर गई है। मां ने कहा, ठीक है। मैं इसे पैसे दे देती हूं। अब तुम्हें तीन महीने तक जेब खर्च नहीं मिलेगा। इस पर नेपोलियन की बहन बोली, नहीं मां, गलती मुझसे हुई है, इसलिए मेरा जेब खर्च बंद करो। मां ने खुश होकर लड़की के फलों का मूल्य चुका दिया।

५६७) राष्ट्रीयकरण- नेपोलियन बोनापार्ट, के सम्मान में एक समारोह का आयोजन किया गया था। दर्शकों में से एक महिला पर नेपोलियन की नजर टिकी रह गई। वह हीरे जवाहरात से लदी हुई थी। नेपोलियन ने अपने सहायक से पूछा इस महिला का पति क्या काम करता है।

सहायक ने पता करके बताया कि, इस महिला का पति तंबाकू का बड़ा व्यापारी है।

अगले दिन नेपोलियन ने आदेश जारी कराया- तंबाकू के व्यापार का तुरन्त राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये।

५६८) ममता का खिंचाव- नेपोलियन बोनापार्ट के आदेशानुसार फ्रांसीसी तट पर सभी अंग्रेजी जहाजों को पकड़ रखा था। उन्हीं में १७ वर्ष का एक नाविक लेनार्ड भी था। दूसरे दिन इंग्लैण्ड से आया एक और लड़का पकड़ा गया। जब उसे लेनार्ड वाले कटघरे में बंद किया गया तब उसने एक पत्र लेनार्ड को दिया जिसमें लिखा था- मां बहुत बीमार है। शायद ही बच सकेगी। उसकी आखरी तमन्ना लेनार्ड को देखने की है। लेनार्ड तड़प उठा। उसी रात वह जेल की सीखचें चौड़े कर भाग निकला पर थोड़ी दूर जा पाया था कि पकड़ा गया। अबकी बार उसके साथ और सख्ती की गई। पांवों में बेड़ियां डाल दी गईं। लेनार्ड को अपनी मां की याद बहुत सताने लगी। उसने इस बार भी अथक परिश्रम करके धीरे-धीरे बेडियां काट डालीं। वह फिर भागा और फिर पकड़ा गया। हिम्मत करके लेनार्ड तीसरे बार भी भागा, पर दुर्भाग्यवश पकड़ा गया। अगले ही दिन दौरे पर नेपोलियन आया। जेल अधिकारी ने नेपोलियन से लेनार्ड के भागने का जिक्र किया। नेपोलियन में उत्सुकता जागी। लेनार्ड को पेश किया गया। नेपोलियन ने पूछा- लडके ऐसी कौन-सी वजह है, जो तुझे बार-बार भागनेकी हिम्मत बंधाती है? लेनार्ड आंखों में आंसू भरकर बोला, श्रीमान्। मेरी मां मर रही है, मरने से पहले वह मुझे देखना चाहती है। नेपोलियन ने अपनी जेब से सोने का सिक्का निकाल कर लेनार्ड को दिया और फिर जेल के अफसर से बोला- इसे जाने दो, इसको मां की ममता खींच रही है, मेरे जैसे सौ नेपोलियन भी इसे रोक नहीं पाएंगे।

५६९) एक सच्चा नायक- नेपोलियन अपने सैनिकों के साथ मार्सेली से लियॉन की ओर जा रहे थे। वह शहर से बाहर निकले ही थे कि उन्होंने देखा, उन्हीं के एक सेनापति मरचेरा ने करीब छह हजार सैनिकों को लेकर उनका मार्ग रोक रखा है। उसके तेवर बगावती थे। उस समय नेपोलियन के पास इतनी सेना थी कि वह अपनी बाकी सेनापति का सामना आसानी से कर सकते थे, मगर उन्होंने कहा, मैं अपने ही देशवासियों का रक्त नहीं बहाना चाहता। वह घोड़े पर चढ़कर अकेले मरचेरा की सेना की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने घोड़ा भी छोड़ दिया और पैदल ही आगे बढ़े। शत्रु सेना से बीस कदम पहले वह रुक गए। मरचेरा ने नेपोलियन को लक्ष्य कर अपनी सेना को गोली चलाने की आज्ञा दी। एक उंगली हिलती और फ्रांस का भाग्य बदल जाता, किंतु कोई उंगली नहीं हिली। मरचेरा की आज्ञा पर किसी सैनिक ने ध्यान नहीं दिया। नेपोलियन बोले, सैनिकों, तुममें से कोई अपने सम्राट की हत्या करना चाहे तो अपनी इच्छा पूरी कर ले। मैं यहां अकेला खड़ा हूं। कोई कुछ नहीं बोला। सैनिकों ने बंदूकें नीचे गिरा दीं और नेपोलियन की जय-जयकार करने लगे। नेपोलियन ने एक बूढ़े सैनिक से कहा, तुमने मुझे मारने के लिए बंदूक उठाई थी? सैनिक की आंखें भर आई। उसने अपनी बंदूक दिखाई। उसमें गोली थी ही नहीं। पूरी सेना ने बंदूकों में केवल आवाज करने के लिए बारूद भर रखी थी। नेपोलियन समझ गए कि संकट में आगे रहनेवाले नायक से उसके लोग बेपनाह प्यार करते हैं।

५७०) देश की आत्मा - एक बार सम्राट नेपोलियन छुट्टी बिताने पैरिस से काफी दूर एक छोटे शहर में अपने एक मित्र के यहां आए। मित्र ने उन्हें वहां की कई रमणीक जगहें दिखाईं लेकिन नेपोलियन को कोई जगह पसंद नहीं आ रही थी। उन्होंने कहा, मैं अपने देश की असली जिंदगी देखने के लिए निजी यात्रा पर यहां आया हूं। आप मुझे वह जगह दिखाइए जहां देश की आत्मा बसती है। मैं देखना चाहता हूं कि हमारे देश के किसान और मजदूर किस हाल में हैं। मित्र उन्हें लेकर शहर से बहुत दूर एक कस्बे में गया। नेपोलियन ने देखा कि खेत में फसल लहलहा रही है। मजदूर खेत में काम कर रहे हैं। वह बहुत खुश हुए। एक दिन वह एक संकरी गली से गुजर रहे थे कि सामने से एक किसान सिर पर भारी बोझ लेकर आता दिखा। गली इतनी पतली थी कि किसान बगल से निकल नहीं सकता था और न ही मुड़ सकता था। वह पसोपेश में पड़ कर खड़ा हो गया। उसे इस तरह खड़ा देख नेपोलियन के मित्र ने क्रोध में काह, तुम्हें दिखाई नहीं देता? अंधा है क्या? जल्दी से वापस जाओ। किसान

बोझ लेकर मुड़ ही रहा था कि उसका एक पैर किसी चीज में फंस गया और वह लड़खड़ाने लगा। वह बोझ सहित गिरने ही वाला था कि नेपोलियन ने दौड़कर उसे सहारा दिया और कहा, तुम्हें वापस लौटने की जरूरत नहीं है। तुम आराम से निकल जाओ। किसान को जगह देने के लिए नेपोलियन अपने मित्र के साथ पीछे लौट कर दूसरी गली में खड़े हो गए। किसान के जाने के बाद मित्र ने कहा, एक अदने किसान के लिए हमें अपना मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए था। हमें देखकर लोग क्या सोचेंगे। नेपोलियन ने कहा, दोस्त, किसानों की मेहनत से ही देश तरक्की करता है। उन्हीं की मेहनत के कारण हम लोग भरपूर सुख भोगते हैं। उनका तिरस्कार देश की उपेक्षा के बराबर है। मित्र का सिर लज्जा से झुक गया।

५७१) संभव- यह घटना उस समय की है, जब नेपोलियन की सेना आल्प्स पहाड़ के सामने खड़ी थी। नेपोलियन उससे होकर गुजरने के लिए रास्ता ढूंढ रहा था। साहस और धैर्य का धनी चार्ल्स लूई नैपोलियन बोनापार्ट विजय अभियान के लिए निकला था। उसे मार्ग में आल्प्स पहाड़ मिला, जिसे पार करना कठिन था। एक दिन वह मार्ग खोजते-खोजते पहाड़ की तलहटी में चला गया। वहां उसे एक घर नजर आया। वहीं तलहटी में एक बुढ़िया रहती थी। वह घर के पास पहुंचा और उसने दरवाजा खटखटाया। एक बुढ़िया बाहर आई। बुढ़िया नेपोलियन को नहीं पहचानती थीं किंतु अतिथि जानकर उसने उसकी काफी आवभगत की। नेपोलियन ने बातों ही बातों में बुढ़िया से आल्प्स को पार करने का रास्ता जानने की कोशिश की।

उसने पहले तलहटी में खड़े होकर पहाड़ की दुर्गमता का अंदाजा लगाया फिर सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। पास में ही एक बुढ़िया लकड़ी काट रही थी। नैपोलियन ने उससे रास्ता पूछा। उसने छूटते ही कहा, मूर्ख, कितने आदमी इसे पार करने की कोशिश में अपनी जान गँवा चुके हैं, इसलिए ऐसा दुस्साहस मत कर। मूर्ख, तेरे जैसे कितने ही इस दुर्गम पहाड़ पर चढ़ने व मार्ग ढूंढने के प्रयास में जान गंवा बैठे हैं। बेमौत मत मर, वापस लौट जा। उसने कहा, क्यों जान दे रहे हो? तुम्हारे जैसे कितने आए और मुंह की खाकर यहीं रह गए। यह सुनते ही नेपोलियन ने झट अपने गले से हीरे का हार उतारकर बुढ़िया को पहना दिया और कहा, आपने मेरा उत्साह दोगुना किया है। मैं भी और लोगों की तरह मरना चाहता हूँ। अगर बच गया तो मेरी जय-जयकार करना। नैपोलियन ने बुढ़िया से कहा, माता, खतरे से आगाह करने के लिए मैं आपका आभारी हूँ, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसे पार करके रहूँगा। नेपोलियन मुस्कराते हुए बोला, माताजी, आपने पहाड़ के लिए मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों के बारे में आगाह करके मेरा हौसला और उत्साह बढ़ा दिया है। अब मैं बेहद सतर्कता एवं होशियारी से कार्य करूंगा।

बुढ़िया को आश्वस्त करनेवाला वह व्यक्ति असाधारण लगा, अत: उसने उसकी हिम्मत को बढ़ाते हुए कहा, बेटे, साहसी के लिए कुछ भी असंभव नहीं होता है। इस पर बुढ़िया बोली, तुम पहले ऐसे इंसान हो जो मेरी बात सुनकर हताश नहीं हुआ। जो सच्चे मन से कुछ करने की ठान लेता है, वह हारता नहीं। नेपोलियन की बातें सुनकर बुढ़िया हैरान रह गई। उसने मन ही मन सोचा कि जोखिम को इस तरह चुनौती देनेवाला कोई असाधारण व्यक्ति ही हो सकता है। यह सोचकर वह नेपोलियन को आशीर्वाद देते हुए बोली, बेटा, हिम्मती व साहसी के लिए इस संसार में कोई भी काम असंभव नहीं है। तुम अपने साहस व हिम्मत से अवश्य अपने अभियान में सफलता प्राप्त करोगे।

इसके बाद नेपोलियन वहां से चला गया। बुढ़िया की बात को ध्यान में रखते हुए नेपोलियन ने अत्यन्त सावधानी व हिम्मत के साथ आल्प्स पर चढ़ने का मार्ग तलाशना शुरू कर दिया और आखिर अपने साहस व मेहनत के कारण एक दिन उसने पहाड़ को पार करने में सफलता पा ही ली। अपने जीवन के आखिरी क्षण तक नेपोलियन ने उस बुढ़िया को याद

रखा और दोहराता रहा कि हिम्मती व साहसी के लिए कोई भी काम असंभव नहीं है। बुढ़िया का यह वाक्य नैपोलियन के लिए कवच बन गया। उसे हर कठिनाई में यह वाक्य स्मरण हो आता था।

५७२) सेवा का संकल्प - यह घटना उस समय की है जब इटली अपने एक पड़ोसी देश के साथ युद्ध लड़ रहा था। एक युवक एक पहाड़ी की चोटी पर बैठा हुआ दूरबीन से युद्ध का दृश्य देख रहा था। युद्ध में कुछ सैनिक मर चुके थे और कुछ अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहे थे। सैनिकों की दयनीय दशा देखकर वह युवक अत्यंत द्रवित हो गया और उसकी आंखों से आंसू बह निकले। दरअसल वह युवक सम्राट नेपोलियन से मिलने पैरिस गया था, किंतु जब उसे पता चला कि सम्राट मोर्चे पर गए हुए हैं तो वह उनसे मिलने मोर्चे की ओर ही चल पड़ा था। किंतु मोर्चे का दृश्य देखकर वह सम्राट से मिलने की बात बिल्कुल ही भूल बैठा। तभी उसे सूचना मिली कि घायल सैनिक गिरजाघर में हैं तो वह तुरंत उनकी सहायता के लिए वहां जा पहुंचा और उनकी सेवा में लग गया। इस बीच युद्ध समाप्त हो गया।

अब उसके मन में यही बात कौंध रही थी कि कुछ भी हो, घायलों की सेवा के लिए एक ऐसा दल होना चाहिए जो तुरंत मौके पर पहुंचकर उनकी सहायता कर उन्हें नया जीवन प्रदान करे। उसने इस विचार को अंजाम देने के लिए घायलों की सेवा करनेवालों का एक ऐसा दल तैयार किया। इसके बाद उसने अपने अथक प्रयासों से इस दल को एक अंतरराष्ट्रीय संस्था के रूप में मान्यता दिलवा दी।

अब वर्तमान में जब कहीं युद्ध छिड़ता है तो उस संस्था के सदस्य तुरंत घायल सैनिकों की सेवा में जुट जाते हैं। वे सदस्य तटस्थ माने जाते हैं और एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनते हैं जिस पर एक विशेष चिन्ह बना रहता है। उस संस्था का नाम रेडक्रॉस है, जिसका संस्थापक यही युवक था। इस युवक का नाम जीन हेनरी दूना था जो जिनेवा के एक मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुआ था। प्रत्येक वर्ष जीन हेनरी के जन्मदिन ८ मई को रेडक्रॉस दिवस मनाया जाता है।

५७३) देश की आत्मा- यह घटना उस समय की है जब फ्रांस दुनिया का सबसे ताकतवर देश था। वहां के सम्राट नेपोलियन एक बार यात्रा पर निकले। चूंकि यह उनका निजी सफर था, इसलिए वह अपनी एक महिला दोस्त के यहां ठहरे। महिला दोस्त ने नेपोलियन को कई रमणीक जगहें दिखाईं। एक दिन नेपोलियन ने कहा, मैडम, आप हमें अपने देश की खूबसूरती तो दिखा रही हैं, लेकिन यहां की असली जिंदगी भी तो दिखाओ, हमें वहां ले चलो जहां कमजोर वर्ग के लोग रहते हैं।

नेपोलियन जब फ्रांस का सम्राट बन गया तो एक दिन वह एक महिला के साथ पेरिस में घूमने के लिए निकला। किसी स्थान पर वे एक संकरे मार्ग से आगे बढ़ रहे थे। महिला नेपोलियन से कुछ पग आगे चल रही थी।

महिला दोस्त नेपोलियन को पुराना पैरिस शहर घुमाने ले गई। वहां भी भारत की तरह संकरी गलियों में लोग रहते थे। एक ऊबड़-खाबड़, संकरी गली में दोनों जा रहे थे कि सामने से एक मजदूर सिर पर बोझ लिए आ निकला। गली इतनी ज्यादा पतली थी कि सामने से निकलना मुश्लि था। महिला दोस्त को यह बुरा लगा। उच्च कुल, धन और पद का उसे गर्व तो था ही, सबसे बड़ी बात यह थी कि इस समय वह सबसे ताकतवर देश के सम्राट के साथ चल रही थी। संकरी गली में आगे में एक मजदूर बहुत बड़ा बोझ लिये हुए आ रहा था। महिला को तो अपने उच्च कुल, धन और पद का भी गर्व था और गर्व की सबसे बडी बात यह भी थी कि इस समय बादशाह के साथ चल रही थी। किसी मजदूर के लिए मार्ग छोड़ देना तो उसकी शान के विरुद्ध होता। इसलिए वह बड़ी शान से उस संकरी गली में भी बीच में इस प्रकार चली जा रही थी कि मानो उसने उस भार-वाहक को देखा ही न हो। उसे क्रोध आ गया। वह गुस्से में बोली, दिखाई नहीं देता। तू अंधा है क्या? जल्दी वापस जाओ।

उस गली में इतनी जगह भी नहीं थी कि वह मजदूर बोझ सहित आसानी से पीछे लौटता। वह किसी तरह घूमने का प्रयास कर ही रहा था कि तभी नेपोलियन तेजी से उस मजदूर के पास गए और बोले, भई रुक जाओ। और वह अपनी दोस्त का हाथ पकड़ कर उसे किनारे ले गए और मजदूर से कहा, अब तुम आराम से निकल जाओ। मजदूर आगे निकल गया। अपनी झेंप मिटाने के लिए महिला दोस्त बोली, सम्राट, एक अदने से मजदूर के लिए हम लोगों का इस तरह रास्ता छोड़ देना ठीक नहीं था। यहां के लोग क्या समझेंगे। नेपोलियन बोले, मैडम, मजदूर देश की आत्मा होते हैं। उनकी मेहनत से ही देश तरक्की करता है। उनका सम्मान करना तो हमारा कर्तव्य बनता है। उनका तिरस्कार देश की उपेक्षा के बराबर है।

नेपोलियन ने यह देख लिया थां वह पग आगे बढ़ा कर महिला के पास पहुंचा और स्वयं मार्ग के एक ओर होकर उसने महिला का हाथ खींच कर उसे एक और करते हुए कहा- मैडम। भार को सम्मान दो। जिन के सिर पर भार है, चाहे वह भारी गट्ठर हो या हल्का, वे सम्माननीय हैं। नेपोलियन ने एक वाक्य में इस तथ्य को उजागर कर दिया। महिला की समझ में यह बात आ गई कि फ्रांस की तरक्की का राज क्या है।

५७४) कर्त्तव्य की राह- मेवाड़ के महाराजा संग्राम सिंह के दो बेटे थे- विक्रमादित्य और उदय सिंह। संग्राम सिंह की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ होने के कारण विक्रमादित्य को सिंहासन पर बैठाया गया, लेकिन अयोग्य और आलसी होने के कारण उसे गद्दी से उतार दिया गया। उदय सिंह अभी छोटा था, लेकिन सिंहासन खाली न रहे इसलिए उसका राज्याभिषेक कर दिया गया और राजकाज चलाने के लिए दासी पुत्र बनवीर को उसका संरक्षक बनाया गया। कुछ समय बाद बनवीर के मन में लालच आ गया। उसने सोचा कि अगर विक्रमादित्य और उदय सिंह को रास्ते से हटा दिया जाए तो वह मेवाड़ का महाराज बन जाएगा। उसने पहले विक्रमादित्य की हत्या कर दी। उसके बाद वह उदय सिंह की हत्या करने के लिए उसके निवास पर पहुंचा। विक्रमादित्य की हत्या होते एक नौकर ने देखा था। वह तुरंत उदय सिंह की धाय पन्ना के पास पहुंचा और उसे सारा किस्सा कह सुनाया। पन्ना धाय घबरा गई। उसे किसी भी हाल में उदय सिंह की रक्षा करनी थी। पन्ना का बेटा भी उदय की ही आयु का था। उसने तुरंत उदय को उठाया और नौकर को उसे देकर कहा कि वह उदय को नदी तट पर ले जाए। नौकर चला गया। इसके बाद पन्ना ने अपने बेटे चंदन को उदय के राजसी कपड़े पहना कर उसी के पलंग पर लिटा दिया। उसी समय बनवीर वहां आ गया। उसने पन्ना से पूछा, उदय कहां है ? पन्ना ने अपने बेटे चंदन की तरफ इशारा किया। बनवीर ने उसकी हत्या कर दी। उसके जाने के बाद पन्ना अपने बेटे का शव लेकर उस जगह पहुंची, जहां उदय सिंह सुरक्षित पहुंच गया था। उसने अपने बेटे को नदी में प्रवाहित किया। नौकर ने पन्ना से पूछा, आपने अपने बेटे की बलि देकर एक राजकुमार को क्यों बचाया ? पन्ना बोली, ऐसी कौन मां होगी जिसे पुत्र मोह नहीं होगा, लेकिन मेरे लिए अपनी मातृभूमि के प्रति मेरा कर्त्तव्य ज्यादा महत्वपूर्ण है। मेवाड़ बनवीर जैसे दुष्ट और लालची के हाथ में सुरक्षित नहीं रह सकता है। उसकी रक्षा उदय सिंह ही कर सकता है, मेरा बेटा नहीं।

५७५) न्याय ही धर्म है- लाहौर में आयोजित दरबार में महाराज रणजीतसिंह जी का तिलक समारोह हो रहा था। जब उन्हें महाराजा शब्द से संबोधित किया गया तो उन्होंने कहा, मैं राजा नहीं सबका सेवक हूँ। उन्होंने हीरे जड़ित ताज पहनने से भी इनकार कर दिया। परंपरानुसार उनके नाम पर महाराजा रणजीत सिंह सिक्का चलाने का अवसर आया। उन्होंने कहा, यह सिक्का मेरे नाम पर नहीं गुरु पर चलाया जाना चाहिए। और पहली बार नानकशाही सिक्का चलाया गया। महाराजा रणजीतसिंह ने न्याय को सर्वोपरि धर्म घोषित कर प्रत्येक नागरिक को निष्पक्ष न्याय और आवश्यक सुविधाएँ दिए जाने का आदेश जारी किया।

५७६) रणजीतसिंह की दयालुता- एक समय की बात है कि पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह कही जा रहे थे। वे घोडे पर सवार थे कि मार्ग में कही से अकस्मात एक ढेला आकर उनसे लग गया। महाराज को बडी तकलीफ हुई। सिपाहियों ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो एक बुढ़िया के अलावा और कोई नजर नहीं आया। उनके सिपाही दौडे और एक बुढ़िया को लाकर उनके सम्मुख खड़ा कर दिया। बुढ़िया तो पहले ही भय के मारे कांपने लगी थी, सिपाहियों को देखकर उसका डर और भी बढ़ गया। उसने हाथ जोडकर कहा- महाराज। मेरा बच्चा तीन दिन से भूखा पडा है, कही खाने को नहीं मिला। सामने के पेड पर पका बेर फल देखकर मैंने उसको तोडने के लिए ढेला मारा था कि वह चूक कर आपको लग गया। ढेला निशाने पर लगता तो फल टूट जाता और उसे खिलाकर मैं भूख से मरते अपने बच्चे के प्राण बचा लेती। पर मेरे अभाग्य से आप बीच में आ गये। ढेला आप को लग गया। मैं निर्दोष हूं सरकार। मैने ढेला आपको नहीं मारा था। मुझे क्षमा कर दीजिए। महाराज रणजीतसिंह ने बुढ़िया की बात बडे ध्यान से सुनी और फिर अपने आदमियों से कहा- बुढ़िया को एक हजार रुपये और उसके साथ खाने-पीने का सामान देकर उसको उसके घर सम्मानपूर्वक पहुंचा दो। लोगों ने कहा- सरकार। यह आप क्या कर रहे हैं ? इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिए। आप तो उसे पुरस्कार दे रहे हैं।

रणजीतसिंह बोले- भाई। जब बिना प्राणों का और बिना बुद्धि का वृक्ष ढेला मारने पर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूं। मुझे तो उससे कुछ अधिक ही देना चाहिए। रणजीतसिंह की दयालुता के अनेक उदाहरण प्रचलित हैं।

५७७) आंख की लाज- मथुरा के कवि मान पंजाब केसरी महाराणा रणजीत सिंह की गुण ग्राहकता से प्रभावित हो उनसे मिलने लाहौर पहुंचे लेकिन दरबार में उन तक पहुंच पाना बहुत कठिन था। अंतत: एक अधिकारी ने उन्हें इस शर्त पर दरबार में पेश करवाना स्वीकार किया कि वह अपनी कविता में महाराज के एक आंख होने का जिक्र अवश्य करेंगे। मान कवि ने इस चुनौती को स्वीकारा। अगले दिन दरबार में महाराज को आशीर्वाद देने के बाद पहला दोहा यह सुनाया-

औरन के द्वै-द्वै भई, वे अंखियां केहि काज ? तेरी एकहि आंख में, कोटि आंख की लाज। महाराज ने उन्हें अच्छी विदाई दी।

५७८) अतीत को याद रखो- राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की वेशभूषा बहुत सादी थी। मामूली दर्जी जैसा कुर्ता सिल सकता है, वैसा कुर्ता वे पहनते थे। धोती भी खादी की होती थी। जैसी पोशाक, वैसा ही सादा उनका जीवन भी था। उन्होंने कभी किसी पद की लालसा नहीं की। उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष पद हासिल हुआ, लेकिन उसे भी उन्होंने त्याग दिया। उसके बाद उन्हें उड़ीसा का राज्यपाल बनने का प्रस्ताव मिला, लेकिन उसे भी उन्होंने ठुकरा दिया। देश में जब पदों के लिए होड़ मची थी और इसके चलते राष्ट्रीय संस्थाएं कमजोर पड़ने लगी थीं, उस दौर में राजर्षि टंडल का जीवन सबके लिए मिसाल बन गया था। इसकी क्या वजह थी ? उनका जीवन दर्शन क्या था, इसकी बानगी १९५० में कांग्रेस के नासिक अधिवेशन में उनके विदाई भाषण में मिलती है।

टंडनजी ने अपने भाषण में कहा- एक राजा भटककर घने जंगल में पहुंच गया। वहां भयानक जानवरों से उसकी रक्षा करने और सकुशल घर पहुंचाने का काम एक गड़रिए ने किया। राजा उस गड़रिए की बहादुरी, अक्लमंदी और हाजिर जवाबी से बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसे अपना दीवान बना लिया। इतना बड़ा पद पाकर भी गड़रिया अपने अतीत को नहीं भूला। वह रोज सुबह एक कोठरी में जाता, वहां रखे अपने पुराने कपड़े देखता और उसके बाद ही दूसरे कामों में लगता। उससे ईर्ष्या करनेवाले दरबारियों ने राजा से शिकायत की- दीवान ने लूट मचा रखी है, लूट का माल वह एक कोठरी में रखता है। राजा ने दीवान को बुलाकर पूछताछ की। दीवान उसे कोठरी में ले गया, अपने कपड़े पहने और बांसुरी

हाथ में लेकर बोला- महाराज, आपका दीवान बनकर अपना अतीत न भूलूं इसलिए रोज नसीहत लेता था। अब मैं चला। इतना कहकर वह जंगल को लौट गया।

यह कहानी सुनाकर टंडनजी ने कहा- जैसे उस दीवान ने अपनी गरीबी से सीख ली थी, वैसे ही हम सबको लेनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि मेरा देश और देशवासी आजादी की लड़ाई में अपनी कुर्बानी को कभी न भूलें।

५७९) नेकी के लिये झूठ- अब्दाली से हुए युद्ध में मराठा सेनापति महादजी सिंधिया बुरी तरह घायल हो गये। घायल मराठा सेनापति को राणे नाम के एक भिश्ती ने अपने बैल पर लादा और युद्ध मैदान से दूर ले चला, तभी उन्हें घोड़ों के दौड़ने की आवाज सुनायी दी। राणे खान ने महादजी सिंधिया को पास के ही झुरमुट में छिपा दिया। थोड़ी ही देर में घुड़सवार सैनिकों ने राणे खान को घेर लिया और उससे मराठा सेनापति के विषय में पूछा। राणे खान ने मना कर दिया कि उसने महादजी सिंधिया को नहीं देख। एक सैनिक ने राणे खान के गले पर तलवार लगाते हुए कहा, तू झूठ बोल रहा है, सही-सही बता वरना तेरी गर्दन उड़ा दूँगा। राणे खान ने आसमान की तरफ देखते हुए कहा, अल्लाह कसम, भाई, मैंने सेनापति को नहीं देखा। सैनिक वहाँ से चले गये और राणे खान वापस झुरमुट में गया। महादजी सिंधिया ने राणे खान से पूछा, तुमने एक मुसलमान होते हुए अल्लाह की झूठी कसम क्यों खाई ? राणे खान ने कहा, महाराज, मेरे झूठ बोलने से आपकी जान बच गयी थी, अत: अल्लाह भी मुझे माफ कर देगा, क्योंकि मैं नेकी के लिए झूठ बोला हूँ।

५८०) निर्णय की दृढ़ता- एमोन डि वैलेरा के माता-पिता अमेरिका में आकर रहने लगे थे। कुछ बड़ा होने पर डि वैलेरा ने देखा कि उनका अपना देश आयरलैण्ड परतंत्र है। अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए डि वैलेरा ने एक सशस्त्र दस्ते का गठन किया और स्वयं उसके सेनापति बन गये। ब्रिटिश सरकार द्वारा पकड़े जाने पर उन्हें मृत्यु-दंड किया गया।

फाँसी के तख्ते पर झूलने से पूर्व डि वैलेरा सिगरेट पी रहे थे। उसी समय उन्हें क्षमादान की सूचना दी गयी। सूचना मिलने पर डि वैलेरा ने कहा, मैंने इस सिगरेट को अपने जीवन की अंतिम सिगरेट समझा था। इस कारण अब यह अंतिम ही रहेगी। इसके बाद उन्होंने फिर कभी सिगरेट नहीं पी। एमोन डि वैलेरा आयरलैण्ड के प्रथम राष्ट्रपति बने। निर्णय की परिपक्वता और कर्मठता व्यक्ति को महान् बना देती है।

५८१) जीवन की सार्थकता- राजा विक्रमादित्य अत्यंत पराक्रमी, न्यायप्रिय, ईमानदार एवं दयालु शासक थे। एक बार वह अपने गुरु के दर्शन करने उनके आश्रम पहुंचे। आश्रम में उन्होंने गुरुजी से अपनी कई जिज्ञासाओं का समाधान पाया। जब वह वहां से चलने लगे तो उन्होंने गुरुजी से कहा, गुरुजी, मुझे कोई ऐसा प्रेरक वाक्य बताइए जो महामंत्र बनकर न केवल मेरा बल्कि मेरे उत्तराधिकारियों का भी मार्गदर्शन करता रहे। गुरुजी ने उन्हें एक श्लोक लिखकर दिया जिसका आशय यह था कि मनुष्य को दिन व्यतीत हो जाने के बाद कुछ समय निकालकर यह चिंतन अवश्य करना चाहिए कि आज का व्यतीत होनेवाला समय पशुवत गुजरा या सत्कर्मों में बीता क्योंकि बिना कार्य, समाजसेवा, परोपकार आदि के तो पशु भी अपना गुजारा प्रतिदिन करते हैं, जबकि मनुष्य का कर्त्तव्य तो अपने जीवन को सार्थक करना है। इस श्लोक का राजा विक्रमादित्य पर इतना असर पड़ा कि उन्होंने इसे अपने सिंहासन पर अंकित करवा दिया। अब वह रोज रात को यह विचार करते कि उनका दिन सद्कार्य में बीता या नहीं। एक दिन अति व्यस्तता के कारण वह किसी की मदद अथवा परोपकार का कार्य नहीं कर पाए। रात को सोते समय दिन के कार्यों का स्मरण करने पर उन्हें याद आया कि आज उनके हाथ से कोई धर्म कार्य नहीं हो पाया। वह बेचैन हो उठे। उन्होंने सोने की कोशिश की पर उन्हें नींद नहीं आई। आखिरकार वह उठकर बाहर निकल गए। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक गरीब आदमी ठंड से सिकुड़ता हुआ सर्दी से बचने

की कोशिश कर रहा है। उन्होंने उसे अपनी दुशाला ओढ़ाई और वापस राजमहल आ गए। उन्हें इस बात का अहसास हुआ कि आज का दिन अच्छा बीता। उन्होंने सोचा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति नेक कार्य, सद्भावना व परोपकार को अपनी दिनचर्या में शामिल कर ले तो उसका जीवन सार्थक हो जाएगा। यह सोचकर उन्हें नींद आ गई।

५८२) जब ब्राह्मण ने राज्य का परित्याग कर दिया - एक समय की बात है। राजा विक्रमादित्य के राज्य में एक सदाचारी और संतोषी ब्राह्मण रहता था। वह निर्धन था और यही निर्धनता उसके घर में विवाद पैदा करती थी। उसकी पत्नी असंतुष्ट थी और चाहती थी कि ब्राह्मण अधिकाधिक धन कमाए। अंततोगत्वा पत्नी के दबाव में आकर ब्राह्मण धन प्राप्ति के लिए घर से निकला। मार्ग में एक महात्मा से उसकी भेंट हुई। महात्मा ने ब्राह्मण को चिंतित देखा तो कारण पूछा। ब्राह्मण ने उन्हें अपना किस्सा कह सुनाया। महात्मा ने उसकी समस्या के समाधान का आश्वासन दिया। उन्होंने राजा विक्रमादित्य के नाम यह पत्र लिखा कि तुम्हारी इच्छापूर्ति का समय आ गया है। अपना राज्य इस ब्राह्मण को देकर मेरे पास चले आओ। ब्राह्मण से पत्र पाकर विक्रमादित्य खुशी-खुशी उसे राज्य सौंपने की तैयारी करने लगे। जब ब्राह्मण ने विक्रमादित्य को राज्य सुख का त्याग करने के लिए इतना उत्सुक देखा तो सोचा कि जब राजा ही राज त्यागकर योगी के पास जाने में आनंदित हैं तो अवश्य ही योगी के पास इससे भी बढ़ा सुख है। वह पुन: महात्मा के पास पहुंचा और बोला- राजा तो आपके पास आने को व्यग्र हैं। जरूर आपके पास राज्य से भी महत्वपूर्ण कुछ है। मुझे वही दीजिए। महात्मा ने उसे योग क्रिया बताई, जिससे वह तपस्वी बन गया और उसे मोक्ष प्राप्त हुआ।

धन कमाने की कामना से पंडितजी जब गए तो उन्होंने देखा कि राजा विक्रमादित्य अपना राज्य पंडित को सौंपकर खुद संन्यास लेना चाहते हैं। तब पंडित को समझ में आया कि सच्चा सुख राज्य में नहीं, मोक्ष में है।

५८३) कीमती दाने- एक बार सम्राट विक्रमादित्य अपने मंत्री के साथ कहीं जा रहे थे। उनके आगे-आगे एक किसान बैलगाड़ी पर धान की बोरियां रखकर अपने घर जा रहा था। उसकी किसी बोरी में कहीं छेद था, जिससे धान के कुछ दाने रास्ते में गिरते जा रहे थे। सम्राट ने दान देखकर कहा, रथ रोको। रास्ते में हीरे बिखरे हैं। मंत्री ने चारों तरफ देखा, फिर बोला, महाराज, यहां तो कहीं हीरे दिखाई नहीं पड़ते। आपको भ्रम हुआ है। लेकिन सम्राट रथ से उतरे और धान के एक-एक दाने को चुन-चुन कर अपने साफे में रखने लगे। मंत्री को आश्चर्य हुआ। उसने कहा, राजन् हमारे खाद्य भंडार अनाज से भरे पड़े हैं। राज्य में अनाज की कोई कमी नहीं है। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?

विक्रमादित्य बोले, यह धान का दाना नहीं, हीरे के कण हैं। यदि हम एक-एक दाने का अनादर करने लगेंगे तो एक दिन वह समय भी आ सकता है जब हमारे खाद्य भंडार खाली हो जाएं। मंत्री बोला, महाराज, लेकिन एक-एक दाने से कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। इतने अनाज तो किसान के खेत में गिर कर सड़ जाते हैं। विक्रमादित्य बोले, ये धान के दाने नहीं अन्नपूर्णा हैं। अन्नपूर्णा को पैरों के तले इसी तरह रौंदा गया तो एक दिन हम अन्न को तरस जाएंगे।

जिस तरह एक-एक बूंद से समुद्र भरता है, उसी तरह एक-एक दाने के संरक्षण से ही हमारे अन्न के भंडार भरते हैं। मंत्री और सम्राट की बातचीत किसान के कानों में पड़ी। वह अपनी बैलगाड़ी रोककर सम्राट के पास आया और बोला, राजन् हम किसान हैं और अन्न से ही हमारी पहचान है लेकिन हम अनाज का मूल्य नहीं समझते क्योंकि हमारी सोच अपने परिवार तक सिमटी हुई है। लेकिन आप राज्य की जनता की भूख की पीड़ा समझते हैं, इसलिए आपको एक-एक दाने की कीमत मालूम है। किसान ने सम्राट से क्षमा मांगी।

५८४) साहस और संकल्प- मगध सम्राट कुमारगुप्त का पुत्र स्कंदगुप्त जब किशोर ही था, तब उसे पता चला कि हूण बार-बार भारत पर आक्रमण करते हैं और युद्ध के नियमों के विपरीत छल का सहारा लेकर भारी नुकसान पहुंचाते हैं। स्कंदगुप्त से देश का अपमान देखा न गया। उसने पिता से आग्रह किया कि उसे हूणों पर आक्रमण की आज्ञा दी जाए। पिता बड़े असमंजस में थे क्योंकि एक तो स्कंदगुप्त अभी किशोर ही था, शारीरिक बल और युद्ध कौशल की दृष्टि से उसे अभी बच्चा ही कहा जा सकता था। दूसरे, हूणों का क्षेत्र बहुत दूर था। हिमाच्छादित पहाड़ों की चोटियां पार कर के वहां जाना होता था। ऐसे दुर्गम मार्ग को पार करना सेना के लिए भी कठिन था, फिर हूण युद्ध में धोखे से ही काम लेते थे। ऐसी स्थिति में उसे आक्रमण की आज्ञा कैसे दी जाए? लेकिन कुमारगुप्त अपने पुत्र की देशभक्ति और साहस देखकर झुक गए। उन्होंने उसे चढ़ाई की आज्ञा दे दी। स्कंदगुप्त दो लाख सैनिक लेकर चल पड़ा। पंजाब से आगे बढ़कर हिमाच्छादित चोटियों को पार करती हुई उसकी सेना हूणों के इलाके में पहुंची और इस वीरता के साथ लड़ी कि शत्रुओं के छक्के छूट गए। उन्हें परास्त होना पड़ा। इस तरह स्कंदगुप्त ने आज के ईरान और अफगानिस्तान तक अपना राज्य कायम किया। इस विजय अभियान के बाद जब स्कंदगुप्त भारत लौटा तो उसके स्वागत में मगध से पांच कोस तक मार्ग सजाए गए और पूरे देश में विजयोत्सव मनाया गया। सबने स्वीकार किया कि साहस और संकल्प से कोई भी कठिन लड़ाई जीती जा सकती है।

५८५) न्याय की तुला- इंग्लैण्ड की बात है। वहां उस समय चतुर्थ हैनरी राज्य करता था। पांचवां हैनरी युवराज के पद पर था। एक बार युवराज का नौकर किसी अपराध में पकड़ा गया और युवराज के उसे छुड़ाने का प्रयत्न करने पर भी उसको दण्डित कर दिया। इस पर युवराज क्रुद्ध होकर अदालत गया, लेकिन न्यायाधीश ने कहा, अगर आप नौकर को छुड़ाना ही चाहते हैं तो सम्राट से क्षमा की प्रार्थना कीजिये। मैं इसे नहीं छोड़ सकता। यह सुनकर युवराज आग-बबूला हो गया और अपराधी को जबरदस्ती छुड़वाने के लिए आगे बढ़ा। उसकी इस हरकत पर न्यायाधीश ने उसे अदालत से बाहर निकल जाने का आदेश दिया। अब तो युवराज आपे से बाहर हो गया। वह न्यायाधीश की कुर्सी की ओर झपटा। लेकिन कुछ कदम बढ़ने पर सहसा रूक गया। न्यायाधीश बड़ी गंभीर और कठोर मुद्रा में उसकी ओर देख रहा था। उसने कहा, युवराज, मैं न्याय के आसन पर बैठा हूं। अत: न्याय की मर्यादा की रक्षा करना मेरा धर्म है। आपको भविष्य में जिस प्रजा पर शासन करना है, वह काननू का आदर करे, इसके लिए आपको स्वयं वैसा आचरण करना चाहिए। आपने कानून का उल्लंघन किया है और अदालत की तौहीन की है, इसलिए मैं आपको कैद की सजा देता हूं। अब युवराज को होश आया। उसे अपने किये पर पश्चाताप हुआ और बिना आपत्ति किये वह जेल चला गया। जब सम्राट को इसका पता चला, तो उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने कहा, कानून की रक्षा करनेवाला ऐसा न्यायाधीश जिस राज्य में है, वह वास्तव में सुखी है और वह राजा भी सुखी है, जिसका पुत्र कानून की अवहेलना करने पर दण्ड भरने के लिए जेल चला जाता है।

५८६) आसान काम- कोलंबस जब अपने साथी नाविकों के दल को लेकर अटलांटिक महासागर में उतरा तो बहुत कम लोगों को आशा थी कि वह जीवित लौट सकेगा। उसके साथियों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया पर वह निडरता से आगे बढ़ता गया। उसने विघ्न-बाधाओं की परवाह नहीं की और आखिरकार अमेरिका को खोजकर सकुशल स्पेन वापस आ गया। स्पेन में उसका भव्य स्वागत हुआ और वह अपने देश के खास व्यक्तियों में गिना जाने लगा। लेकिन उसके कुछ साथी उसकी सफलता से ईर्ष्या करने लगे। वे किसी न किसी बहाने उसका मजाक उड़ाते रहते। हमेशा उससे कहते, अमेरिका को खोज निकालना कोई कठिन काम नहीं है। यह तो कोई भी कर सकता है। अटलांटिक सागर में पश्चिम की ओर चले गए और खोज हो गई। कोलंबस यह सब चुपचाप सुनता रहता। एक दिन जब यह चर्चा चली तो उसने कहा, दोस्तों,

संसार में कोई काम कठिन नहीं है। जरा आप उस उबले अंडे को ही मेज पर खडा करके दिखा दीजिए। सभी ने अंडे को सीधा खडा करने की कोशिश की लेकिन सफल न हो सके। अंत में कोलंबस ने अंडे के चौड़े हिस्से को पिचका कर खड़ा कर दिया और बोला, देखिए, ऐसा करना कितना आसान है। सभी साथी शर्म से पानी-पानी हो गए।

५८७) जीने की इच्छा - उन दिनों अमेरिका एक युद्ध में फंसा हुआ था। एक अमेरिकी फौजी केन का हेलिकॉप्टर एक रॉकेट से टकरा गया। केन बुरी तरह घायल हो गया। उसकी जान बचाने के लिए डॉक्टर ने काफी मेहनत की। उसके दोनों पैर काट दिए गए, उससकी दोनों आँखों की रोशनी चली गई व हाथ की एक उंगली भी काट दी गई। जिस डॉक्टर ने उसका ऑपरेशन किया था, वह उसकी दयनीय हालत देखकर बहुत परेशान हो गया और उसी के बारे में सोचता रहा।

कई साल बीत गए मगर वह केन को नहीं भूल पाया। आखिरकार वर्षों बाद किसी तरह उसका पता ढूंढकर वह उससे मिलने जा ही पहुंचा। केन अपनी व्हील चेयर स्वयं चला कर डॉक्टर से मिलने आया। वह थोड़ा नाटा और गठीला दिख रहा था। वह अब दो बेटियों का पिता बन चुका था। अपनी कहानी सुनाते हुए केन बोला, ऑपरेशन के बाद जिस दिन मुझे पता चला कि मेरे अधिकारी मुझे घर वापस भेज रहे हैं, उस दिन मेरा बीसवां जन्मदिन था। मैं जान चुका था कि मेरे शरीर की क्या दशा है पर मैं जीवित रहना चाहता था। ईश्वर के इस सुंदर संसार में मैं उसकी इच्छा से आया था और उसके इच्छानुसार ही जीवन व्यतीत करना चाहता था।

उसके बाद की कहानी उसकी पत्नी थेरेसा ने सुनाई, इनके युद्ध से लौट कर आने के बाद मैं इनसे पहली बार एक संगीत कार्यक्रम में मिली। इनका यह गुण मुझे अद्‌भुत लगा कि यह किसी भी परिस्थिति में ईश्वर को याद करके हंस सकते हैं। इनके इसी गुण से प्रभावित होकर मैंने इनसे विवाह किया। विवाह के बाद इन्होंने तैरना सीख लिया और साथ ही हाईस्कूल की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। अब यह युद्ध से संबंधित पुस्तकें पढ़ने में बहुत रुचि लेते हैं। इसके साथ ही इन्होंने लकड़ी का काम सीख लिया। डॉक्टर केन की जिंदादिली व विपरीत परिस्थितियों में भी हार न मानने की उसकी क्षमता पर हैरान रह गया।

५८८) याचक- रहीम जहांगीर के समय में दरिद्र हो गए थे। लड़ाई में धोखा देने के अपराध-आरोप में इनकी सारी जागीर-सम्पत्ति जब्त कर ली गई। इन्हें जेल में डाल दिया। जेल से छूटे तो याचक पहुंचने लगे इनके पास। पर उन पर तो दरिद्रता का साया था।

एक दीन हीन याचक रहीम के पास पहुंचा और आर्थिक सहायता के लिए गुहार करने लगा। रहीम ने उसे एक दोहा लिखकर दिया और कहा इसे रींवा नरेश को जाकर दे दो। दोहा यों था- चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस। जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देस। और रहीम के इस दोहा-संस्तुति-सिफारिश पर रीवां नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपए दान देकर ससम्मान विदा किया।

५८९) दार्शनिक का साहस- यह घटना उस समय की है, जब तैमूरलंग लोगों को पकड़कर अपना गुलाम बनाता फिरता था। वह उन्हें बेचने के लिए खुद ही मोलभाव भी करता था। लोग तैमूरलंग के अत्याचारों से परेशान थे और उससे बचने के लिए इधर-उधर भागते रहते थे। जैसे ही तैमूरलंग बाहर निकलता वैसे ही लोगों को पकड़कर गुलाम बनाने के लिए निकला। उसे देखते ही हर ओर शोर मच गया। लोग इधर-उधर भागने लगे। तैमूरलंग के सैनिकों ने लूटपाट शुरू कर दी। इसी दौरान उसके सैनिकों ने अनेक लोगों को दबोच लिया और पकड़कर अपने साथ ले आए। उन्हीं लोगों में तुर्किस्तान के दार्शनिक कवि अहमदी भी थे। तैमूरलंग ने दार्शनिक अहमदी की तरफ देखते हुए एक व्यक्ति की ओर इशारा किया और कहा, आप तो कवि हैं, आपको इंसान की परख है। बताओ, पास में खड़े इस व्यक्ति की क्या कीमत

होगी? दार्शनिक अहमदी ने व्यक्ति को देखा और निर्भीकता से तैमूरलंग से बोले, यह शख्स काफी समझदार व शिक्षित मालूम पड़ता है, इसलिए इसकी कीमत चार हजार अशर्फी से कम नहीं हो सकती। यह सुनकर तैमूरलंग ने और भी व्यक्तियों की कीमत अहमदी से पूछी, अच्छा बताओ, मेरी कीमत क्या होगी? तैमूरलंग का यह प्रश्न सुनकर उसके सभी सैनिक चौंक गए। वह सोचने लगे कि आखिर तैमूरलंग ने ऐसा क्यों पूछा। कहीं वह विक्षिप्त तो नहीं हो गया। दार्शनिक अहमदी ने प्रश्न सुनकर तैमूरलंग की ओर देखा और निर्भीकता से बोले, दो अशर्फी। यह सुनकर गुस्से में गरजता हुआ तैमूर बोला, बेवकूफ, इतनी कीमत तो मेरी जूतियों की है। मेरी इतनी बेइज्जती। इतने पैसों की तो मेरी चादर है। इस पर अहमदी बोले, बिल्कुल ठीक। यह कीमत मैंने तुम्हारी चादर की ही बताई है। तुम्हारे जैसे अत्याचारी शासक के लिए कोई एक धेला भी खर्च नहीं करेगा। जो शासक जनता की कोई कीमत न समझे उसकी खुद की कीमत कुछ नहीं होती।

तैमूरलंग दार्शनिक अहमदी की निर्भीकता देखकर दंग रह गया और उसने उसी क्षण उन्हें बंधन मुक्त कर दिया।

५९०) विनोद प्रियता- प्रखर मार्क्सवादी संसद सदस्य एस. ए. डांगे केवल मार्क्सवाद के ही पंडित नहीं थे बल्कि संस्कृत साहित्य और इतिहास के भी पूर्ण ज्ञाता थे। वे संसद में गंभीर मुद्दों पर बात करते हुए भी अपनी विनोदशील वृत्ति से अपने तर्कों को नया मोड़ दे देते थे और बोझिल वातावरण को खुशनुमा बना देते थे।

एक दिन संसद में भूमि पर बहस चल रही थी। बहस में हिस्सा लेते हुए संस्कृत के विद्वान चल्लाकांत भट्टाचार्य ने तर्क दिया- राजा दुष्यंत ने कहा था कि किसान उपज का चौथाई हिस्सा राजा को दे।

डांगे को यह हिस्सा कुछ ज्यादा लगा। उन्होंने अपने ज्ञान को अपनी विनोदप्रियता में रंगते हुए कहा- मेरे मित्र ने अभी दुष्यंत की बात का प्रमाण दिया। दुष्यंत कैसा था ? एक लंपट राजा जिसने ऋषि रक्षिता शकुंतला को फुसलाया और गर्भावस्था में उसे त्याग दिया। ऐसे आदमी की बात का क्या ठिकाना।

कालिदास से बहुत पहले अमूक स्मृति में लिखा है कि किसान उपज का दसवां हिस्सा राज्य को दे।

५९१) यह कैसा दान - पेशवा माधव राव अपनी दानप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। वह अपने जन्मदिन पर निर्धनों को धन, अन्न, वस्त्र और भूमि का दान किया करते थे। उनसे दान लेने बहुत दूर-दूर से लोग आया करते थे। उनके दरवाजे से कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। हर किसी को उसकी मनचाही वस्तु अवश्य प्राप्त होती थी। एक बार उनके जन्म दिन पर एक बालक आया। वह देखने से ही बड़ा प्रतिभाशाली लगता था। उसकी चाल-ढाल में आत्मविश्वास झलक रहा था। उसने पेशवा को प्रणाम कर कहा- मैं यहां एक विशेष प्रयोजन से आया हूं। मुझे कुछ और नहीं बस ज्ञान का दान चाहिए। यह सुनकर वहां उपस्थित लोग चौंक गए। उन्हें समझ में नहीं आया कि इसका मतलब क्या है? आखिर यह बालक चाहता क्या है? पेशवा ने मुस्कराकर पूछा- केवल ज्ञान दान क्यों? कोई और वस्तु क्यों नहीं? इस पर वह बालक बोला- मैंने देखा है कि जिन्हें दान में धन मिला उनका धन एक दिन समाप्त हो गया। कपड़े भी पुराने हो गए, फट गए। जिन्हें भूमि मिली वह भी निरर्थक हो गई। ज्ञान ही वह वस्तु है जो कभी समाप्त नहीं होती। ज्ञान हमेशा स्थिर रहता है। इसके सहारे व्यक्ति कुछ और भी प्राप्त कर सकता है। मैं अनाथ और निर्धन होने के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाया। यदि आप मेरी शिक्षा की व्यवस्था करा दें तो मैं आपका आजीवन ऋणी रहूंगा। उसकी बात सुनकर पेशवा बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने उसके अध्ययन की व्यवस्था करा दी। वह बालक था राम शास्त्री, जो आगे चलकर प्रसिद्ध न्यायाधीश बना।

५९२) न्याय का सम्मान- इंग्लैंड के मुख्य न्यायाधीश के सामने सम्राट एडवर्ड सप्तम अपराधी के रूप में खड़े थे। सम्राट ने स्वयं अपने अपराध का विवरण देते हुए न्यायाधीश से न्याय की मांग की। न्यायाधीश को समझ में नहीं आया

कि अपने सम्राट को क्या सजा दी जाए, मगर बिना कुछ व्यवस्था दिए भी स्थिति को टाला नहीं जा सकता था। उसने सोच-विचार के बाद निर्णय दिया, चूंकि मामला सम्राट का है इसलिए इसकी न्याय प्रक्रिया भी विशेष होनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि मामले को उन सब न्यायालयों को भेजा जाए जो सम्राट की शासन-सीमा में आते हैं। फिर सभी न्यायाधीशों के बहुमत को ही उचित ठहराया जाए। सम्राट समझ गए कि न्यायाधीश ने चतुराई से अपनी बला दूसरे के सिर मढ़ दी है, लेकिन मुख्य न्यायाधीश के निर्णय को भला चुनौती कौन देता। जिन-जिन देशों में एडवर्ड सप्तम का शासन फैला था उन-उन देशों के न्यायालयों में वह अभियोग न्याय के लिए भेज दिया गया। निश्चित समय में अदालतों ने अपना निर्णय इंग्लैंड भेज दिया किंतु उन सभी फैसलों में सम्राट को क्षमा किया गया था, हालांकि तर्क और दांव-पेच भिन्न थे। हां मद्रास हाई कोर्ट के न्यायाधीश सर टी. मुथ्थुस्वामी ने अपना निर्णय लिखा, हमें सबसे पहले तो यह बात भूलनी होगी कि फैसला सम्राट के अभियोग का है। कानून की नजर में न कोई सम्राट होता है और न भिखारी। न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि फैसला ऐसे दिया जाए कि वह उदाहरण बन सके। सम्राट का ताज उतार कर एक करोड़ सिक्कों में उन्हें नंगे सिर वाला दिखाया जाए और सिक्कों को पूरे साम्राज्य में फैला दिया जाए। सम्राट की शोभा भी इसी में है कि वह फैसले से स्वयं को अपमानित न महसूस कर इसे सहर्ष शिरोधार्य करें। सम्राट ने सर मुथ्थुस्वामी का फैसला मान लिया। टकसाल में एक करोड़ मुद्राएं ढाली गईं और साम्राज्य भर में चालू की गई।

५९३) स्वामी भक्ति- औरंगजेब ने शाहजहाँ के निजी हकीम मुकर्रम खाँ को बुलवाया। औरंगजेब को मालूम था कि शाहजहाँ हकीम साहब पर इतना विश्वास करता है कि उनके हाथ की दी हुई दवा पहले किसी गुलाम को नहीं खिलायी जाती। औरंगजेब ने हकीम साहब से दो टूक बात की- उन्हें शाहजहाँ को जहर देना होगा। हकीम मुकर्रम खाँ सुनकर जड़वत् हो गये। औरंगजेब के प्रस्ताव से इनकार करने का परिणाम उन्हें मालूम था। लिहाजा मान गये। औरंगजेब खुश हुआ।

औरंगजेब ने एक तेज जहर हकीम मुकर्रम खाँ की हवेली पर भेजा। हकीम साहब आँखें बंद करके सोचने लगे। वे अपने अतीत में झाँक रहे थे। उन्होंने मुसल्ला बिछाया, नमाज पढ़ी। नमाज पढ़कर अपने हाथ शरीर पर फेरे और बुदबुदाये- या रब, मेरी हरेक रग में नमकीन खून दौड़ रहा है और यह नमक बादशाह सलामत का है। यह कहकर हकीम मुकर्रम खाँ ने औरंगजेब का भेजा हुआ जहर एक ही साँस में पी डाला।

५९४) शहंशाह कौन - सम्राट औरंगजेब सारे सामंतों को हटाकर समूचे देश का शासन अपने हाथ में लेना चाहते थे। जब उसने वर्षों की लड़ाई के बाद अपने आखिरी सामंत प्रतिद्वंदी गोलकोंडा के सुल्तान को हराकर उसके राज्य को दिल्ली का एक सूबा बना दिया, तो उसे खूब बधाईयां दी गईं। परंतु उसकी शहजादी बिल्कुल मौन रही। कारण पूछने पर वह बोली- अब तक तो आप शहंशाह थे, पर आज से महज सुल्तान रह गए। भला आपको बधाई कैसे दूं ?

५९५) दर्पण और अभिमान- बादशाह औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा बहुत खूबसूरत थी। उसके पास चीन का एक बहुत ही सुंदर दर्पण था। सर्दी के दिन थे, वह प्रात:काल छत पर बैठी हुई धूप सेक रही थी। उसने बाल संवारने के लिए दासी को यह चीनी दर्पण लाने को कहा दासी ने दर्पण हाथ में लिया और अपने मुंह को देखने लगी। एकाएक उसके हाथ से दर्पण छूट गया और फर्श पर गिर कर चूर-चूर हो गया। दासी भय से कांप उठी। उसे लगा अब जेबुन्निसा उसे नहीं छोड़ेगी। घबराई हुई वह लड़खड़ाते हुए कदमों से जेबुन्निसा के पास पहुंची और उसके चरणों में गिरकर आंसू बहाने लगी। मगर जेबुन्निसा ने उसे ढांढस बंधाते हुए कहा- तू क्यों रो री हैं ? अच्छा ही हुआ विलासिता का एक साधन नष्ट हुआ। उस दर्पण के कारण मुझे अपने सौंदर्य पर गरूर होने लगा था। अब दर्पण टूट गया है तो शायद मेरा अभिमान भी टूट जाए।

५९६) दया का फल - एक बार एक शिकारी शिकार के उद्देश्य से जंगल में विचरण कर रहा था कि तभी उसके सामने एक हरिणी को अपने बच्चे के साथ खेलते हुए देख लिया। हरिणी और उसके बच्चे ने भी शिकारी को देख लिया था, इसलिए हरिणी तो कुलांचे भर कर वहां से भाग गयी किंतु बच्चा नहीं भाग सका। उसे शिकारी ने पकड़ लिया। शिकारी जब बच्चे को लेकर चला तो हरिणी भी जंगल से बाहर निकल कर उसके साथ-साथ चलने लगी। शिकारी को पता नहीं था, किंतु आगे जाने पर जब उसने एक बार पीछे मुड़ कर देखा तो उसको विदित हो गया कि हरिणी भी पीछे-पीछे आ रही है। उसने देखा कि हरिणी की आंखों से आंसुओं की धार बह रही है। शिकारी अपने गांव के समीप पहुंच गया था, फिर भी हरिणी उसी प्रकार आंसू बहाती चली आ रही थी। शिकारी को दया आ गयी। उसने बच्चे को छोड़ दिया। बच्चा छूटते ही मां के पास पहुंच गया। हरिणी एक प्रकार से मूक आशीर्वाद देती हुई बच्चे के साथ कुलांचे भरती हुई वन की ओर दौड़ गई। रात को शिकारी ने स्वप्न में किसी को कहते सुना- इस दया के फलस्वरूप तुम्हें राज्य प्राप्त होगा। कहते हैं कि आगे चलकर वही शिकारी गजनी का सुलतान बना था।

५९७) एक बार बादशाह हुमायूं अपने सिपहसालार बहराम खां से कुछ सलाम मशविरा कर रहे थे। बहराम खां नजर नीची किए बड़े ध्यान से बादशाह की बात सुन रहे थे। बादशाह को वहम हो गया कि बहराम खां ऊंध रहे हैं। शायद वे उनकी बात पर तवज्जोह नहीं दे रहे हैं। बादशाह ने पूछा- क्यों ऊंध रहे हो बहराम खां? बहराम खां ने कहा- नहीं जहांपनाह। मैं पूरे ध्यान से हुजूर की बात सुन रहा हूं। बादशाह ने पूछा फिर तुम्हारी नजर नीचे क्यों है। बहराम खां ने कहा- जहांपनाह। तीन लोगों से बात करते समय नजर झुका कर रखनी चाहिए। बादशाह ने पूछा- वे तीन लोग कौन है। बहराम खां ने कहा- जब औलिया फकीर सामने हो तो मन को संयमित रखने के लिए नजर झुकानी चाहिए। जब राजा या अधिकारी से बात करते हैं तब भी नजरें झुकी होनी चाहिए। शहंशाह ने पूछा- तीसरा व्यक्ति कौन जिसके सामने नजरें झुकी होनी चाहिए। बहराम खां ने कहा- जब आप महिलाओं से बात करें तब भी नजर का संयम रखना चाहिए। इसलिए आप मेरी नजर नीची होने से यह न समझें कि मैं नींद ले रहा हूं। आपके सम्मान में झुकी नजर को समझने की कृपा करें। बहराम खां की बात सुनकर बादशाह को लगा कि इन तीन लोगों के सामने नजर झुका कर बात करना अच्छे आदमी की पहचान है।

५९८) शीतल का स्वाभिमान- शीतल राजपूताने का चारण था, विद्वान, हाजिरजवाब और स्वाभिमानी था। एक बार उसे बादशाह अकबर के दरबार में जाना पड़ा। शीतल का सिर आज तक केवल महाराणा प्रताप के सामने ही झुका था। अकबर के सामने उसका सिर झुका नहीं। तुरंत अकबर मे इस बात का कटाक्ष किया। कहा, मैंने तो सुना था कि राजपूताने के चारण बड़े विद्वान होते हैं। लेकिन शायद वे राज सभा की रीत नहीं जानते। दरबार के नियम के अनुसार दरबार में प्रवेश करने पर तुमने अभिवादन न करके शिष्टाचार का पालन नहीं किया, लगता है कि तुम एक अनपढ़ और अशिष्ट व्यक्ति हो। कोई और होता तो बादशाह अकबर के ये शब्द सुनकर शायद डर जाता। लेकिन शीतल डरा नहीं। बड़ी सहजता से वह बोला, जहांपनाह। धृष्टता क्षमा करें। भला मेरी क्या मजाल कि मैं आपका अभिवादन न करूँ, बात यह है हुजूर कि मेरे सिर पर बंधी पगड़ी महाराणा प्रताप से मुझे भेंट में मिली है। आप तो जानते है, महाराणा प्रताप दुश्मन के सामने कभी झुके नहीं। अब आप ही बताइए, महाराणा की पगड़ी को क्या मुझे झुकाना चाहिए ? इसीलिए मैंने आपका अभिवादन नहीं किया। इतना कह कर उसने पगड़ी उतार कर अपने हाथ में ले ली और सिर नवा दिया।

५९९) बादशाहों का बादशाह- एक बार संगीत के जादूगर तानसेन से बादशाह अकबर ने पूछा, क्या तुम से भी अच्छा गाने वाला इस दुनिया में कोई है ? पृथ्वी पर तुझ जैसा कोई नहीं है ? तानसेन ने कहा, हां जहांपनाह, मैं अपने गुरु स्वामी

हरिदास के चरणों की धूल भी नहीं हूं। कभी मुझे भी उनका संगीत सुनाओ। बस फिर क्या था अकबर के मन में स्वामीजी के दर्शन करने की उत्कंठा जागी।

इस पर तानसेन ने गंभीर होकर कहा, हुजूर। वह किसी के सामने गाते नहीं हैं। क्यों ? अकबर ने आश्चर्य से पूछा। हुजूर वह अपनी मर्जी के मालिक हैं। मेरे गुरु संत हरिदास न तो किसी के बुलाने से आते हैं और न किसी के कहने से गाते हैं। वह तो प्रभु का स्मरण करते हुए तान छेड़ते हैं।

अकबर के मन में एक टीस सी उठी। उनका संगीत सुनने की उसकी इच्छा तीव्र हो गई। उसने कहा, तानसेन, कोई रास्ता निकालो। हमें उनका संगीत सुने बिना चैन नहीं मिलेगा।

आखिर तानसेन ने एक तरकीब सोची। हारकर तानसेन को उन्हें अपने गुरु के आश्रम वृंदावन ले जाना पड़ा। वह अकबर को लेकर उनके आश्रम में जा पहुंचा। अकबर तानसेन का सेवक बनकर कंधे पर तम्बूरा उठाकर हरिदास जी के दर्शन करने चल दिया। अकबर स्वामीजी से राग सुनना चाहता था पर आग्रह करने का साहस नहीं था।

उसने बादशाह को पेड़ के पीछे छिपा दिया। हरिदास उस समय समाधिस्थ थे। तानसेन उनके चरणों में गिर पड़ा। कौन, तानसेन। गुरुजी ने आंखें खोलकर कहा, कहो कैसे हो ? स्वास्थ्य ठीक है ? कैसे आना हुआ ? सम्राट अकबर के आग्रह पर तानसेन ने अपने गुरु स्वामी हरिदास के संगीत का आयोजन किया। स्वामी हरिदास के श्री चरणों में प्रणाम करके तानसेन ने मेघ-मल्हार गाना शुरू तो किया पर थोड़ा भ्रष्ट करके। पर स्वामीजी ऐसे भ्रष्ट राग को सुन नहीं सके। आश्रम पहुंचकर उन्होंने बादशाह को कुटिया के बाहर ही खड़ा रहने का इशारा किया और स्वयं अंदर पहुंचकर एक राग को जानबूझ कर गलत गाने लगे।

गुरुजी। कुछ भूल हो रही है। अभी देखते हैं सुनाओ। गुरुजी के ऐसा कहने पर तानसेन ने तानपूरा उठाया और स्वर निकाला। एक स्थान पर जानबूझकर उसने गलत स्वर विन्यास किया। गुरुजी ने वहीं रोक दिया। तानसेन ने कहा, गुरुजी यहीं भूल हो रही है। गुरुजी ने तानपूरा उसके हाथ से लिया और फिर उसमें उंगलियां चलाने लगे। उन्होंने ऐसे स्वर निकाले कि उड़ते पंछी ठहर गए। उनके साज-संगीत से अकबर बेहद प्रभावित हुआ। कुछ क्षण गाकर गुरुजी ने पूछा, समझे तानसेन ? तभी हरिदास ने उन्हें टोका और खुद तानपूरा लेकर उसे सही ढंग से गाने लगे। बाहर खड़े बादशाह गुरु हरिदास की मीठी आवाज सुनकर मंत्रमुग्ध हो गए।

हां गुरुजी, अब मैं गाता हूं। तानसेन ने तानपूरा लेकर वही राग सुना दिया। गुरुजी ने प्रसन्न होकर कहा, ठीक है। अब भूलना नहीं। इतने बड़े गायक को शोभा नहीं देतीं इस प्रकार की भूलें। तानसेन उठा और उन्हें दंडवत प्रणाम कर आश्रम से बाहर निकल पड़ा। बाहर आकर उसने देखा कि बादशाह सलामत मूर्छित से बैठे हैं। अकबर का हृदय आनन्द-रस से लबालब भर गया।

बाद में लौटकर जब अकबर ने तानसेन को सुना तो उन्हें निराशा हुई। गुरु हरिदास की तुलना में उन्हें तानसेन का गायन फीका लगा। उसके बाद से उन्हें तानसेन के गायन में हमेशा कमी नजर आने लगी। एक दिन उन्होंने तानसेन से कहा, क्या बात है तानसेन? मुझे तुम्हारे गायन में अब वह रस नहीं मिलता जो पहले मिलता था। जबकि तुम्हारे गुरु का गायन सुनकर मैं आनंदविभोर हो गया था। आखिर दोनों में क्या फर्क हैं?

बादशाह की बात पर तानसेन बोले, हुजूर, मैं गाता हूं हिंदुस्तान के बादशाह को खुश करने के लिए, जबकि मेरे गुरु गाते हैं परमात्मा को खुश करने के लिए। इसलिए उनके दिल से निकले स्वर हर किसी की आत्मा को झंकृत करने की क्षमता

रखते हैं। जबकि गुरुजी उसके लिए गाते हैं जो बादशाहों का बादशाह है।

अब उससे रहा नहीं गया। उसने स्वामीजी के श्रीचरणों में झुककर प्रणाम किया और अपना परिचय दे दिया। तब स्वामी हरिदास ने तानसेन से बस इतना ही कहा- अरे, तू इसे यहां क्यों ले आया ? ऐसी बातों से विघ्न उत्पन्न होता है।

६००) जो स्वयं भिखारी हो- अकबर के विषय में यह प्रचलित है कि विद्वानों, साधु-सन्तों और फकीरों का आदर सम्मान किया करता था। यह भी प्रचलित है कि उसके यहां देश के विभिन्न भागों से विद्वान् और सन्त आया ही करते थे। किसी साधु-सन्त को उसके पास पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होती थी, ऐसा भी कहा जाता है। एक बार एक फकीर उसके पास पहुंचा। अकबर ने उसका आदर-सत्कार किया और फिर वह फकीर से आगमन का कारण जानना चाह ही रहा था कि तभी नमाज की अजां सुनाई दे गई। अकबर ने फकीर से आज्ञा लेकर समीप बिछे जाये नमाज पर आकर नमाज पढ़नी आरम्भ की। नमाज पूरी होने पर उसने कहना आरम्भ किया। पाक परवरदिगार। मुझ पर रहम कर। मेरी फौज को कामयाबी दे। मेरा खजाना कभी खाली न होने देना। मेरे शरीर को भी तन्दुरुस्त रखना। आदि-आदि। फकीर ने अकबर के मुख से इस प्रकार याचना के वाक्य सुने तो वह वहां से उठकर चल दिया। अकबर तब तक नमाज पढ़ चुका था, फकीर को जाता देख उसने सेवक से बुलाने को कहा। फकीर जब दोबारा उसके पास आया तो वह बोला- आप चले क्यों जा रहे हैं, मेरे लायक जो भी खिदमत हो फरमाइये। मैं तुझ से कुछ मांगने आया था। किन्तु मैं तो यह देखकर हैरान रह गया कि तू तो खुद ही कंगाल है। तू भी तो किसी से मांगता ही है। जिस से तू मांगता है, उसी से मैं भी मांग लूंगा। जो खुद ही भिखारी हो वह किसी और को क्या देगा ? यह कहकर फकीर अपने रास्ते चला गया।

६०१) बीरबल और केशवदास- ओरछा निवासी श्रीकेशवदास कविने रसिक प्रिया नामक ग्रन्थकी रचना की और उसे ओरछा नरेशको समर्पित किया। जिसे देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने एक लाख रुपया और एक हाथी केशव कवि को पुरस्कार रूप में प्रदान किया। फिर पूछा कि- आप इस पुरस्कारको पाकर सन्तुष्ट हुए या नहीं ? केशवदास ने कहा- राजन्। मैं अपने सन्तो से और आपके स्वागत-सत्कार से प्रसन्न हूँ। सम्मानपूर्वक पान ही पर्याप्त है, अन्यथा एक लाख रुपया और एक हाथी तो मेरी एक-एक बात का मुझे मिलता है। इतने विशाल ग्रन्थ में न जाने कितनी बातें हैं। ओरछा नरेश एवं सभी सभासदों ने कहा- आपकी इस बात पर कैसे विश्वास किया जाय। केशव कवि ने कहा- मैं अपनी बात को सत्य प्रमाणिम करूँगा। आप मेरे साथ अपना गुप्तचर भेज दीजिये और मुझे समय दीजिये। राजा ने ऐसा ही किया। केशवदासजी दिल्ली गये और एक बगीचे में ठहर गये। बादशाह को समाचार मिला कि ओरछा के राज कवि पधारे हैं। उसे शीघ्र ही बीरबल को बुलाकर कहा- सम्पूर्ण स्वागत सामग्री के साथ जाओ और उनका स्वागत करो। बीरबल पहुँचे, तो उनके समीप आने पर केशव कवि ने इनकी ओर पीठ कर लिया और पीछे की ओर देखने लगे। बीरबलकी समझ में नहीं आया तो उन्होंने पूछा- मैं तो आपका स्वागत करने आया और आपने मेरी ओर पीठ कर दी, ऐसा क्यों ? केशव कवि ने कहा- मैंने सुना था कि बीरबल के दर्शन से दरिद्रता दूर भाग जाती है। आपका दर्शन करके पीछे मुड़कर यह देख रहा था कि दरिद्रता दूर भाग गई या नहीं ? यह सुनकर बीरबल बहुत ही प्रसन्न हुए। केशव कवि ने कहा- मैं केवल दो घण्टे तक ही यहाँ ठहरूँगा। बीरबल ने जाकर बादशाह से कहा- वे जाने वाले हैं, उनकी विदाई भेंट कर दीजिये। बादशाह ने पूछा- क्या देना चाहिए। बीरबल प्रसन्न थे अत: बोले- कम से कम एक हाथी और एक लाख रुपया उन्हें मिलना चाहिए। केशव कवि एक लाख रुपया और एक हाथी लेकर ओरछा आ गये। गुप्तचर ने बताया कि एक ही बात की यह भेंट है। यदि बात बनाकर बीरबल हो प्रसन्न न करते तो सौ दो सौ रुपये ही भेंट में मिलते।

६०२) पण्डित और बादशाह- एक पण्डितजी धन-मान प्राप्त करने की इच्छा से अकबर बादशाह के दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने पूछा- क्या पढ़े हो ? पण्डितजी ने कहा- चार वेद, छ: शास्त्र, अठारह पुराण और बातों की चतुराई बादशाह ने पूछा- बताओ, सारे शरीर में रोंये हैं और हथेली में क्यों नहीं हैं ? पण्डित ने कहा- दान देते-देते घिस्सा लगता रहता है अत: आपकी हथेली में बाल नहीं जमे। बादशाह ने पूछा- दूसरों की हथेली में रोयें क्यों नहीं हैं। उन्होंने उत्तर दिया- ईर्ष्यावश हाथ मलते-मलते। तुम्हारी हथेली में क्यों नहीं हैं। उन्होंने उत्तर दिया- ईर्ष्यावश हाथ मलते-मलते। तुम्हारी हथेली में क्यों नहीं हैं- दान लेते-लेते। यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गया और बातों की चतुराई से पण्डितजी ने विशेष धन-मान प्राप्त किया। प्रसिद्ध है- कागा काको धन हरै, कोयल काको देय। मीठी बानी बोलिकै जग अपनो करि लेय।।

६०३) रहीमजी- एकबार बादशाहकी आज्ञा पाकर रहीमजी ने दक्षिणके एक हिन्दू राजा पर चढ़ाई की। वह बादशाहके आधिपत्यको स्वीकार नहीं करता था। भयमर संग्रामके बाद जब हिन्दू राजाने देखा कि अब हमारी हार होगी, तब उसने दूत भेजकर सन्धि करनेका प्रस्ताव किया। रहीमजीने उसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद उस राजासे भेंट की, उसने ईश्वरको साक्षी देकर कहा कि अब मैं युद्ध न करके मित्रता चाहता हूँ। इस प्रकार मित्रता हो जाने पर उसने रहीमजीको भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। सरल हृदय रहीमजीने स्वीकार कर लिया। यथा-समय रहीमजी भोजन करने चले तो मार्गमें एक बालकने इन्हें अपने पास बुलाकर धीरेसे कहा कि आप भोजन करने मत जाइये। भोजनमें विष मिला हुआ है। रहीमजीने विशेष दृष्टिसे देखा तो उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। इसके बाद बालक अन्तर्धान हो गया। रहीमजीने युद्ध करके राजा को कैद कर लिया। जाँच करने पर भेद खुल गया। राजा विष खिलाकर इन्हें मार डालना चाहता था। इन्होंने राजाको लज्जित देखकर छोड़ दिया और उसे मित्र ही माना। इनके सद्व्यवहारसे राजा की भी बुद्धि शुद्ध हो गई।

मेघनादने अशोक वाटिकामें श्रीहनुमानजी को ब्रह्मास्त्रमें बाँध लिया। उसके महत्वकी रक्षाके लिए हनुमानजी स्वयं बँध गये पर रावणने अविश्वास किया। अत: लोहेकी मोटी जंजीरसे उन्हें बाँध दिया। इससे ब्रह्मास्त्रने अपना बन्धन ढीला कर दिया। परिणाम कि उस बन्धनको तोड़कर श्रीहनुमानजीने लंकाको जला दिया। रावणको उसके अविश्वासका फल मिला। चातक मेघ पर विश्वास करता है मेघ उसे जीवनरूप स्वाती का जल प्रदान करके सुखी करता है। यह विश्वासका लाभ है। विश्वासके बिना सिद्ध लोग भी अपने स्थित ईश्वरको नहीं देख पाते हैं। श्रीगोविन्ददासजी भक्त और भगवान दोनोंमें श्रद्धा विश्वास करते थे।

६०४) खानखाना की उदारता- अकबर बादशाह की सेना के सेनापति के रूप में अब्दुर्रहीम खानखाना बड़े प्रसिद्ध थे। उन पर सरस्वती और लक्ष्मी की समानरुप से कृपा थी। वे जितने उच्चकोटि के विद्वान थे उतने ही उच्चकोटि के दानी भी थे। वे बड़े काव्यमर्मज्ञ माने जाते थे। एक बार खानखाना पालकी पर बैठकर कहीं जा रहे थे कि रास्ते में सहसा एक ब्राह्मण ने उनकी पालकी रुकवाई और उस पर पांच सेरी का एक बाट रख दिया। खानखाना चुपचाप देखते रहे। उन्हें इससे किसी प्रकार का क्रोध नहीं आया। विपरीत इसके उन्होंने उतने ही भार का सोना उस ब्राह्मण को दे दिया। पालकी ढोनेवाले कहारों तथा साथ चलने वाले सिपाहियों में इस पर भांति-भांति की कानाफूसी होने लगी थी। वे खानखाना साहब की आलोचना तक करने लगे थे कि यों ही सोना लुटा दिया करते हैं। खानखाना सुनते रहे। अन्त में उन्होंने कहा- आप लोग ऐसा क्यों सोचते हैं ? देखते नहीं कि उस ब्राह्मण ने मुझे पारस समझकर मुझे पसेरी पर कसना चाहा था। ऐसी स्थिति में उसे सोने के अलावा दूसरी वस्तु दी ही नहीं जा सकती थी ? पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है। वही काम मैंने किया है।

६०५) रहीम- शहंशाह अकबर के अजेय सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना एक महान कवि एवं कर्ण जैसे दानवीर भी थे। उनके द्वार पर किसी की कामना कभी निष्फल नहीं होती थी। दान देते समय रहीम की आंखें नीचे झुकी रहती थीं।

अहंकार उन्हें छू भी नहीं सका था। उनकी अनोखी दानशीलता को देखकर अकबर के दरबारी कवि गंग ने कवि सुलभ वाणी में उनसे पूछा- सीखी कहां नवाब जू, ऐसी दैनी दैन, ज्यों-ज्यों कर ऊंचौ कियो, त्यों-त्यों नीचे नैन ?

रहीम आकाश की ओर दोनों हाथ उठा कर बोले- देनहार कोई और है, भेजत है दिन-रैन। लोग भरम मुझ पर करें, तातें नीचे नैन।

६०६) बादशाह अकबर दरबार में बैठे थे। उसी वक्त दो लोग लड़ते-झगड़ते हुए दरबार में पहुंचे। दोनों में से एक ने अकबर के सामने अपने झगड़े की वजह रखते हुए कहा- हुजूर, मैं बाजार में तेल का व्यापार करता हूं। मैं अपनी दुकान पर बैठा हिसाब लिख रहा था। कि इतने में इस आदमी ने मेरे पास आकर तेल मांगा। अपना काम छोड़कर मैंने इसे तेल दिया। थोड़ी देर बाद देखता हूं कि मेरे पैसों की थैली गायब हो गई है। मुझे इस आदमी पर शक था। इसलिए मैं उसी वक्त दौड़ता हुआ इसके पास गया और इसके हाथ में वह थैली देखी। जब मैंने इससे थैली मांगी तो इस आदमी ने देने से इन्कार कर दिया और कहा कि यह तो मेरी है। मैं बिल्कुल सच बोल रहा हूं, यदि इसमें जरा सा भी झूठ हो तो ईश्वर साक्षी है। आप अब इंसाफ करके मेरी थैली मुझे दिलवा दीजिए। जब तेल का व्यापारी अपना हाल सुना चुका, तो आरोपी आदमी कहने लगा- हुजूर। थैली तो मेरी है। तेल का व्यापारी झूठ बोल रहा है। इसकी दुकान मेरी दुकान से चार-पांच दुकानों के फासले पर है। यह जिस वक्त मेरे पास आया, उस वक्त पैसों की थैली मेरे पास रखी थी। इसके जाते ही मैंने देखा, तो थैली नहीं। मैंने दौड़कर इसे पकड़ लिया और अपनी थैली इससे छीन ली। यदि इसमें थोड़ा भी झूठ बोला हो, तो खुदा की कसम हुजूर। आप ही अब हमारा इंसाफ करें। दोनों की बात सुनकर बीरबल ने उन्हें दूसरे दिन आने का हुक्म दिया और पैसों की थैली अपने पास रख ली। उनके चले जाने के बाद बीरबल ने उस थैली में से पैसे निकाल कर जब धुलवाए, तो उनमें तेल का अंश दिखाई दिया। पानी के कटोरे में सिक्के डालते ही उनमें लगा तेल तैर आया। बीरबल ने दूसरे दिन दोनों के विवाद पर फैसला देते हुए तेली के पैसे तेली को सौंप दिए और आरोपी को दंडित किया।

६०७) दिल्ली दरबार लगा था। अकबर बादशाह अपने सिंहासन पर बैठे थे। अचानक उन्होंने अपने वजीरों से एक सवाल पूछा- अगर अपने सामने कोई खराब आदमी आ जाए तो क्या करना चाहिए? बादशाह का सवाल उलझा हुआ था। इसलिए उन्होंने खुद ही उनक सफाई पेश करते हुए कहा- मेरा मतलब यह है कि खराब आदमी सही बात नहीं कह सकता, उसका व्यवहार भी सही नहीं होता। ऐसे में उसकी बात का जवाब कैसे दिया जाए, उसके साथ व्यवहार कैसे किया जाए? किसी ने कहा, उसे मार-पीटकर भगा दिया जाए, तो किसी ने कहा, उसे जेलखाने बंद कर दिया जाए। बातचीत चल रही थी कि बीरबल आ गए। बादशाह अपने सवाल उनके सामने भी रख दिया। बीरबल ने कहा- बादशाह सलामत, यह सवाल बहुत गंभीर है, इसलिए मैं इसका जवाब सोच-विचार के कल दूंगा। बादशाह ने उनकी बात मान ली। दूसरे दिन बीरबल दरबार में आए। उनके साथ एक आदमी भी था। नंगे पैर, नंगे सिर और शरीर पर एक मामूली चादर ओढ़े हुए। बीरबल ने कहा- हुजूर ये एक बहुत पहुंचे हुए फकीर हैं, रात-दिन पूजा-प्रार्थना में लगे रहते हैं। आपके सवाल का जवाब देने के लिए मैं इन्हें बड़ी मिन्नतें करके लाया हूं। आप अपना सवाल पूछें। ये उसका ठीक-ठीक जवाब दे देंगे।

६०८) थोड़ा और बहुत- एक दिन बीरबल अपनी छोटी बेटी के साथ बादशाह अकबर के दरबार में पहुंचा। जब बादशाह ने उससे बातें की तो लड़की कम ही बोली। इस पर बादशाह ने पूछा, क्या तुम्हें बातचीत करना पसंद नहीं ? तो लड़की बोली पसंद है, थोड़ा और बहुत। बादशाह ने फिर पूछा, थोड़ा और बहुत का क्या मतलब है ? इस पर लड़की ने जवाब दिया, इसका मतलब है कि बड़ों से थोड़ा बोलो और छोटों से बहुत। बीरबल की तरह उसकी बेटी को भी

हाजिरजवाब पा कर बादशाह बड़े प्रसन्न हुए।

६०९) निजी बदलाव- बात बहुत पुरानी है, यह एक कहानी है, कहीं से सुनी आज आपको सुनाती हूं। बादशाह अकबर था वह अपनी बेटी से बेइंतहा प्यार करता था, उसकी हर इच्छा पूरी करता था। लेकिन बेटी को कभी महल के बाहर नहीं जाने देता था। बेटी महल के बाहर की दुनिया से अपरिचित थी। एक दिन बेटी ने शहर देखने की इच्छा जताई। राजा के मना करने पर बेटी रूठ गई। एक बार अकबर की पुत्री के पाँव में काँटा चुभ गया। राजा चिंता में पड़ गए। फूल-सी बेटी, कभी पैदल ज्यादा चली नहीं। महल की नर्म चटाइयों पर रहने वाले कोमल पैर पथरीली सड़कों पर कैसे चलेंगे? उस समय न तो आज जैसी कोई पक्की सड़क थी, न ही जूतों का जन्म हुआ था। क्या किया जाए ? सोच-विचार के बाद राजा ने मंत्रियों को आदेश दिया कि पूरी शहर की गलियों पर चमड़े की चादर बिछा दी जाए, ताकि राजकुमारी को चलने में तकलीफ न हो। अकबर ने बीरबल को बुलाकर आज्ञा दी कि मेरे साम्राज्य की सारी भूमि को चकड़े से आच्छादित करा दो, जिससे भविष्य में फिर कभी शहजादी के पैर में काँटा न चुभ सके। बीरबल सिर खुजलाने लगा कि चमड़े का इतना बड़ा टुकड़ा कहाँ से लाया जाये, जो सारे साम्राज्य की भूमि को आच्छादित कर दे। राजा कुछ तरंगी से होते हैं। बीरबल ने सुझाव दिया कि सारे शहर में चमड़ा बिछाने के बजाय क्यों न राजकुमारी के पैरों में चमड़ा पहना दिया जाए। इससे राजकुमारी के पैर भी सुरक्षित रहेंगे और काम भी आसान हो जाएगा। बात बड़ी सरल और तर्कपूर्ण है। दुनिया भर को अपने अनुकूल करने से बेहतर व आसान है निजी बदलाव। बीरबल ने जूते बनवाकर राजपुत्री को पहना दिये। तभी से जूते पहनने का चलन शुरू हुआ।

६१०) सबसे प्यारा- मदरसे से बाहर आते बच्चों की भीड़ में अपने शहजादे को देखकर अकबर ने बीरबल से कहा- इन सबमें मेरा शहजादा सबसे सुन्दर व प्यारा है।

बीरबल बोले- हुजूर, अपना बच्चा तो सभी को प्यारा लगता है। आपको यकीन न आए तो स्वयं कल मदरसे में आकर देख लीजिएगा।

अगले दिन बीरबल के कहे अनुसार बादशाह ने एक औरत को कुछ स्वादिष्ट पकवान देते हुए कहा- तुम मदरसे में जाओ और वहां जो बच्चा तुम्हें सबसे सुन्दर व प्यारा लगे, उसे यह पकवान खिला दो। थोड़ी देर बाद जब बादशाह ने मदरसे में झांक कर देखा तो वे दंग रह गए। वह औरत सुन्दर और प्यारे बच्चों को छोड़कर एक बदसूरत बच्चे को गोद में बैठा कर बड़े प्यार से पकवान खिला रही थी। अकबर को बहुत क्रोध आया।

औरत के बाहर निकलते ही अकबर ने क्रोधित होते हुए कहा- तुमने मेरी आज्ञानुसार कार्य क्यों नहीं किया ? मैंने तुम्हें सबसे सुन्दर व प्यारे बच्चे को पकवान खिलाने को कहा था और तुमने सारा का सारा एक बदसूरत बच्चे को खिला दिया।

बादशाह की बातें सुनकर वह औरत बोली- जहांपनाह, आप बेशक मुझे सजा दें, परन्तु मैंने तो आपकी बात पर ही अमल किया है। दरअसल, वह मेरा बेटा था और सारे बच्चों में मुझे अपना बेटा ही सबसे प्यारा और सुन्दर लगा।

६११) मां हंस पड़ी- बीरबल ने अपनी मां से कहा- मेरी प्यारी मां। तूने मुझे गर्भ में धारण किया, तूने मेरी अनगिनत सेवाएं की। मैं किसी अन्य मुहूर्त में पैदा होता तो चपरासी या चौकीदार होता। तू मुझे राजा होने के मुहूर्त में जन्म देना चाहती थी, लेकिन विवशता के कारण तूने मंत्री होने के मुहूर्त में जन्म दिया। कई पीड़ाएं सहते हुए भी तूने मुझको थामा और मेरे इतने ऊंचे पद के लिए क्या-क्या कष्ट सहे। मां। मेरी इच्छा होती है कि मैं अपने शरीर की चमड़ी उतारकर तेरी मोजड़ी बनवा दूं।

मां हंस पड़ी, बेटे। तू अपने शरीर की चमड़ी उतरवाकर मेरी मोजड़ी बनवाना चाहता है, लेकिन यह चमड़ी भी तो मेरे ही शरीर से बनी हुई है।

६१२) मासूम राजा- एक दिन बादशाह अकबर ने दरबार में आते ही दरबारियों से पूछा- किसी ने आज मेरी मूंछ नोचने की जुर्रत की। उसे क्या सजा दी जानी चाहिए। दरबारियों में से किसी ने कहा- उसे सूली पर लटका देना चाहिए। तो किसी ने कहा- उसकी गर्दन धड़ से तत्काल उड़ा देनी चाहिए। बादशाह नाराज हुए। अंत में उन्होंने बीरबल से पूछा- तुमने कोई राय नहीं दी।

जहांपनाह, खता माफ हो, मगर मेरी राय है कि उस गुनहगार को सजा के बजाय उपहार देना चाहिए। बीरबल ने जवाब दिया। बादशाह हौले से मुस्कुराये और बोले तुम्हारा मतलब क्या है? जहांपनाह, जो व्यक्ति आपकी मूंछें नोचने की जुर्रत कर सकता है, वह आपके शहजादे के सिवा कोई और हो ही नहीं सकता। शहजादा ही होगा जिसने आपकी गोद में खेलते खेलते आपकी मूंछें नोच ली होंगी। उस मासूम को उसकी इस जुर्रत के बदले मिठाई खाने की मासूम सजा दी जानी चाहिए। बीरबल ने खुलासा किया। बादशाह ने ठहाका लगाया और दरबारी बगलें झांकने लगे।

६१३) तीरंदाजी- एक बार अकबर का दरबार सजा हुआ था। अकबर बीरबल की तारीफ कर रहे थे। बीरबल की तारीफ सुनकर सारे दरबारी उनसे ईर्ष्या करते थे। एक दरबारी ने बीरबल पर व्यंग्य करते हुए कहा- बीरबल, तुम सिर्फ बातों के तीरंदाज हो, अगर तीर-कमान पकड़ कर तीरंदाजी करनी पड़े तो हाथ-पांव फूल जाएंगे। यह बात सुनकर अकबर ने बीरबल से कहा- बीरबल, तुम दरबारियों को अपनी अचूक तीरंदाजी का कमाल दिखाओ। सबने सोचा आज तो बीरबल फंस गया है। पर बीरबल कहां हार मानने वाला था। बीरबल ने कहा- हुजूर, मैं साबित कर दूंगा कि मैं बातों के साथ-साथ अच्छा तीरंदाज भी हूं। अकबर और उसके दरबारी बीरबल के साथ मैदान में आ पहुंचे। बीरबल के हाथों में तीर-कमान पकड़ा दिया गया और कुछ दूरी पर एक लक्ष्य रखकर निशाना साधने को कहा गया। बीरबल ने पहला तीर चलाया तो निशाना चूक गया। वह तुरमत बोल- यह थी बादशाह के सालेजी की तीरंदाजी। बीरबल दूसरा तीर भी चूक गया। इस पर बीरबल बोला- यह है राजा टोडरमल की तीरंदाजी। संयोग से तीसरा तीर सीधा अपने लक्ष्य पर लगा। बीरबल ने गर्व से कहा- और इसे कहते हैं बीरबल की तीरंदाजी। अकबर खिलखिलाकर हंस पड़े। वे समझ गए कि बीरबल ने यहां भी बातों की तीरंदाजी से सब को हरा दिया।

६१४) लोककथा- दिल्ली दरबार लगा था। अकबर बादशाह अपने सिंहासन पर बैठे थे। अचानक उन्होंने अपने वजीरों से एक सवाल पूछा- अगर अपने सामने कोई खराब आदमी आ जाए तो क्या करना चाहिए? बादशाह का सवाल उलझा हुआ था। इसलिए उन्होंने खुद ही उसकी सफाई पेश करते हुए कहा- मेरा मतलब यह है कि खराब आदमी सही बात नहीं कह सकता, उसका व्यवहार भी सही नहीं होता। ऐसे में उसकी बात का जवाब कैसे दिया जाए, उसके साथ व्यवहार कैसे किया जाए? किसी ने कहा, उसे मार-पीटकर भगा दिया जाए, तो किसी ने कहा, उसे जेलखाने में बंद कर दिया जाए। बातचीत चल रही थी कि बीरबल आ गए। बादशाह ने अपना सवाल उनके सामने भी रख दिया। बीरबल ने कहा- बादशाह सलामत, यह सवाल बहुत गंभीर है, इसलिए मैं इसका जवाब सोच-विचार के कल दूंगा। बादशाह ने उनकी बात मान ली। दूसरे दिन बीरबल दरबार में आए। उनके साथ एक आदमी भी था। नंगे पैर, नंगे सिर और शरीर पर एक मामूली चादर ओढ़े हुए। बीरबल ने कहा- हुजूर ये एक बहुत पहुंचे हुए फकीर हैं, रात-दिन पूजा-प्रार्थना में लगे रहते हैं। आपके सवाल का जावब देने के लिए मैं इन्हें बड़ी मन्नतें करके लाया हूं। आप अपना सवाल पूछें। ये उसका ठीक-ठीक जवाब देंगे। बादशाह अकबर ने अपना सवाल उनके सामने रख दिया- अगर अपने सामने कोई खराब आदमी आ जाए, तो उसे कैसे जवाब देना चाहिए और कैसे व्यवहार करना चाहिए? फकीर ने बादशाह के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप बैठा रहा। बादशाह ने समझा कि फकीर मेरा सवाल नहीं समझ पाया, इसलिए उन्होंने कई बार अपना

सवाल दोहराया। बादशाह हैरान था कि बात क्या है? फकीर चुप क्यों है। उन्होंने बीरबल की तरफ देखा, तो बीरबल ने खड़े होकर कहा- जहांपनाह, फकीर ने आपके सवाल का जवाब दे तो दिया कि जब अपने सामने कोई खराब आदमी खड़ा हो तो चुप रहना चाहिए और उसकी बातों में नहीं उलझना चाहिए। उसके मुंह नहीं लगना चाहिए। बीरबल की बात सुनकर बादशाह बहुत खुश हुए। बीरबल की उन्होंने प्रशंसा की और फकीर को भेंट देकर विदा किया।

६१५) पत्नी की चूडियां- बीरबल की बुद्धि की परिक्षा लेने के लिए बादशाह अकबर अक्सर बेसिर-पैर कि बातें पूछते थे। एक दिन बादशाह ने पूछा- बीरबल। तुम दिन में अपनी पत्नी का हाथ एक या दो बार तो पकड़ते ही होंगे। बीरबल बोले- हां, जहांपनाह, क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारी पत्नी के हाथ में कितनी चूड़ियां हैं? यह बात सुनकर बीरबल एक बार तो असमंजस में पड़ गए। उन्होंने कभी पत्नी के हाथ की चूड़ियों की गिनती नहीं की। थोड़ी दूर सोचने के बाद अचानक बीरबल का बुद्धि दौड़ी और वे बोले- हां, मै इस बात का जवाब दे सकता हूं। इसके पहले मेरी एक बात का जवाब देना होगा। अकबर ने कहा- पूछो-पूछो अपनी बात। बीरबल बोला- जहांपनाह, मैं तो पत्नी के हाथ दिन में एक आध बार ही लगाता हूं। पर आप हर वक्त अपनी मूंछ पर हाथ रखते हो इसलिए पहले आप बताओ की आपकी मूंछ में कितने बाल हैं। अकबर बीरबल की बात सुनकर निरूत्तर हो गए। बीरबल के ठहाके के बीच बात आई-गई हो गई।

६१६) राखपत रखावपत - एक बार बादशाह अकबर ने भरे दरबार में पूछा- सबसे महत्वपूर्ण पत यानी नगर कौन से है? एक दरबारी ने कहा- हुजूर चार पत बड़े, प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण है। अकबर ने पूछा- उनके नाम बताओ? दरबारी ने कहा- जहांपनाह। सबसे बड़े पत हैं- सोनीपत, पानीपत, दलपत और दिल्लीपत।

बादशाह को इस जवाब से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने नजरें बीरबल की ओर घुमाई। बीरबल ने खड़े होकर अर्ज किया- हुजूर पता तो दो ही सबसे बड़े और महत्वपूर्ण है। उत्सुकता से बादशाह ने पूछा- वे कौन से है। बीरबल ने जवाब दिया- राखपत एवं रखावपत यानी मेरी बात आप रखें और आपकी बात मैं रखूं।

इस तरह आपसी प्रेम एवं मेलजोल जिस नगर में हैं वही सबसे बड़ा पत है। बाकी सारे पत महत्वहीन है। इसलिए लोगों को दूसरों की बात काटने की बजाए एक दूसरे की बात को रखने की कला सीखनी चाहिए।

६१७) अपरिग्रह का गुण- परिग्रह आत्मा को कलुषित करता है। उससे वैरवृत्ति पनपती है। परन्तु उस खलीफा को यह बात समझ में नहीं आई, जो अपने महल का विस्तार करने के लिए एक गरीब बुढ़िया की झोंपड़ी की जमीन पर अधिकार कर बैठा बुढ़िया ने न्याय के लिए काजी के द्वार खटखटाए। काजी कुदाली, फावड़ा, और एक थैला लेकर खलीफा के सामने पहुंचा। उनकी आज्ञा लेकर कुछ मिट्टी खोदकर थैले में भरी। थैला उठाने के लिए खलीफा की सहायता मांगी। खलीफा उसे उठवा न सका। काजी ने कहा, हुजूर। इस गांव के काजी के सामने जब आप इतनी सी मिट्टी न उठा सके, तब उस दुनिया के काजी (खुदा) के सामने इस बुढ़िया की पूरी जमीन का भार कैसे उठा सकोगे ? काजी की बात सुनते ही खलीफा को अपनी भूल समझ में आ गई, क्षमा मांगते हुए उन्होंने बुढ़िया को जमीन वापस लौटा दी। दोनों की वैराग्नि शांत हो गई। सूत्र कृतांग सूत्र में लिखा हैं। <u>जो धन का संग्रह करने में लगे रहते हैं, उनमें वैर की भावना बढ़ती रहती हैं</u>।

६१८) जिम्मेदारी- खलीफा हजरत उमर प्रजा हितैषी थे। उनके शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी एवं प्रसन्न थी। एक दिन की बात है खलीफा हजरत उमर वेश बदलकर महल से निकले और प्रजा के सुख-दु:ख जानने के लिए घुमने लगे। एक छोटे से मकान के बगल से जब वह गुजर रहे थे, तो उन्हें उस मकान से बच्चों के रोने की आवाज सुनाई दी। वे तुरन्त वहां रुक गए और पूरी बात जानने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने देखा कि एक गरीब औरत के पास बैठे बच्चे रो रहे हैं।

सामने चूल्हे पर हांडी चढ़ी है और वह औरत अपने बच्चों को बहला रही है कि अभी खाना दूंगी। खलीफा काफी देर वहां रुके, किन्तु औरत ने बच्चों को फुसलाने वाली बातों के अलावा कुछ न दिया। अब खलीफा घर में प्रविष्ट हुए और औरत से पूछा- तुम इन्हें खाना क्यों नहीं देती।

मेरे पास है ही क्या, जो इन्हें दूं ? यदि कुछ होता, तो अब तक इन्हें खिला न देती, उस औरत ने सिसकते हुए कहा। खलीफा यह सुनकर चौके और पूछा तो फिर हांडी में क्या पका रही हो ? यह कहते हुए खलीफा ने स्वयं हांडी का ढक्कन उठा दिया, तो यह देखकर हतप्रभ रह गए कि उस हांडी में सिर्फ पानी है। खलीफा को इससे बेहद दु:ख पहुंचा। उन्होंने औरत से कहा- यदि तुम्हारी स्थिति इतनी खराब है, तो तुम्हें खलीफा के पास सहायता लेने के लिए जाना चाहिए। इस पर औरत बोल उठी- क्या खलीफा की यह जिम्मेदारी नही कि वह लोगों के कष्टों की जानकारी रखे ? लेकिन उनके राज्य में तो बहुत लोग है खलीफा ने कहा। वह औरत बोली- यह आपने खूब कही। अगर खलीफा मेरे पति को लड़ाई पर भेज सकते है तो उनकी जिम्मेदारी है कि वे हमारा ख्याल रखे। यह सुनकर खलीफा को अपनी भूल का अहसास हुआ। उन्होंने तुरन्त शाही भंडार से उस महिला के परिवार के भरण-पोषण की व्यवस्था की।

६१९) अयोग्य- एक बार खलीफा हजरत उमर ने एक आदमी को शाम देश का गवर्नर बनाया और उसे नियुक्ति पत्र दे दिया। वह आदमी नियुक्ति पत्र लेकर अभी गया भी नहीं था कि इतने में पड़ोस का एक बालक वहाँ आ गया। हजरत उमर ने गोद में उठा लिया और अपने बच्चे की तरह प्यार करने लगे। उस आदमी ने जब यह देखा तो कहने लगा, महोदय, मेरे आठ बालक हैं, लेकिन मैंने उन्हें आज तक गोद में नहीं लिया।

यह बात सुनते ही हरजत उमर के चेहरे का रंग बदल गया। उन्होंने उस आदमी से कहा, मैंने तुम्हें नौकरी का जो नियुक्ति पत्र दिया है, जरा उसे दिखाओ। उस आदमी ने नियुक्ति पत्र हजरत उमर के हाथ पर रख दिया तो उमर ने उसे फाड़कर फेंक दिया और उस आदमी से कहा, जब बालकों के लिए तुम्हारे दिल से प्यार नहीं है तो तुम बड़ों के साथ क्या मोहब्बत करोगे ? तुम इस लायक नहीं हो कि तुम्हें गवर्नर बनाया जाये।

६२०) खजाने का रखवाला- बगदाद के खलीफा हजरत अली अपने कुछ खास उसूलों के लिए जाने जाते थे। उनके दिल में प्रजा के लिए बेहद प्यार था। वह कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करते थे। बगदाद के खलीफा उमरजान बहुत ईमानदार इंसान थे। उनका हृदय त्याग की भावना से परिपूर्ण था। वह धन-वैभव से दूर ही रहते थे।

वह भी अन्य कर्मचारियों की तरह राजकाज और प्रजा की सेवा के बदले हर रोज शाम में सिर्फ तीन दिरहम लिया करते थे। दिरहम वहां की मुद्रा थी। उनका यह वेतन दूसरे कर्मचारियों के वेतन से बहुत कम था। अक्सर उनके सलाहकार और दोस्त उनसे कहा करते थे, आप तो राज्य के मालिक हैं और यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। आपको राज्य की सुविधाओं का खुलकर उपभोग करना चाहिए। खूब ऐशोआराम से जीना चाहिए। आप इस तरह अभाव और सादगी से क्यों जीते हैं? इस पर हजरत अली का जवाब होता था, राज्य का खजाना और सुविधाएं मेरे और मेरे परिवार के उपभोग के लिए नहीं हैं, मैं बस इनका रखवाला हूं। प्रजा ने मुझे इनकी हिफाजत की जिम्मेदारी सौंपी है। फिर मै। इनका इस्तेमाल कैसे कर सकता हूँ। खलीफा के इस जवाब से सब निरुत्तर हो जाते थे। खलीफा की बेगम भी अपने शौहर की सिद्धांतप्रियता से भलीभाँति परिचित थी। फिर भी एक बार उसने उनसे प्रार्थना की, अगर आप मुझे तीन दिनों की तनख्वाह पेशगी ला दें, तो मैं ईद पर बच्चों के लिए नए कपड़े बनवा लूं। खलीफा उमरजान ने बेगम से कहा, तुम कैसी विचित्र बात कह रही हो कि खजाने से तीन दिन की तनख्वाह की रकम अग्रिम ले लूं ?

अगर मैं तीन दिन जिंदा न रहा तो यह कर्ज कौन चुकाएगा। तुम खुदा से मेरी जिंदगी के तीन दिनों का पट्टा ला दो, तो मैं खजाने से तीन दिन की तनख्वाह पेशगी उठा लूंगा। बेगम अपने पति की ईमानदारी देखकर हतप्रभ रह गई। बेगम को अपनी भूल का अहसास हुआ।

६२१) परोपकार की सीख- अरब के एक खलीफा बेहद ईमानदार और न्यायप्रिय थे। एक बार वह बीमार हो गए। उनका काफी इलाज कराया गया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। अपना अंत समय जान खलीफा ने खजांची को बुलाया और उससे पूछा, बताओ, खलीफा बनने के बाद मेरी निजी संपत्ति कितनी बढ़ी है? खजांची ने हिसाब लगाया और बोला, हुजूर, आपकी निजी संपत्ति में एक ऊँट, एक दुशाला और एक बकरी की इजाफा हुआ है। खलीफा ने उन्हें गरीबों में बांट देने का हुक्म दिया। इसके बाद उन्हें यह भी पता चला कि उन्होंने राजकोष से पांच हजार दिरहम लिए थे। इस पर वह बोले, मेरा घर बेचकर पांच हजार दिरहम खजाने में जमा कर दिए जाएं और जो बचें उन्हें गरीब लोगों व अनाथ बच्चों में बांट दिया जाए। इसके बाद वह अपने आसपास खड़े सभी लोगों से बोले, मेरी आखिरी यात्रा में सिर्फ तीन कपड़े मेरे जिस्म पर हों, जिनमें से दो तो इस वक्त मेरे शरीर पर हैं ही। तीसरा कपड़ा खरीद कर मुझ पर डाल दिया जाए। यह सुनकर उनके कुछ मित्र बोले, हम तीनों नए कपड़े खरीद ही सकते हैं और फिर अंतिम यात्रा में तो नए कपड़े लिए जाने चाहिए, भला पुरानों से काम क्यों चलाया जाए? उन मित्रों की बात सुनकर खलीफा बोले, अरे भाई, क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि धरती पर नए कपड़ों की जरूरत मुर्दों के बजाय जिंदा लोगों को ज्यादा है। आप लोग कृपया जिंदा लोगों को ही नए कपड़े देने का प्रयास करें। यह सुनकर सभी लोग खलीफा के प्रति श्रद्धा से भर उठे।

६२२) जब अबू बक्र को खलीफा के पद पर नियुक्त किया गया तो लोगों के सामने सबसे बड़ा सवाल था कि उनका वेतन कितना होगा। लोगों ने इस पर बहुत विचार किया, लेकिन वह कोई निर्णय न कर सके। हार कर लोगों ने यह फैसला खलीफा पर ही छोड़ दिया। अबू बक्र से जब पूछा गया कि वह कितना वेतन लेंगे, तो उन्होंने शांत स्वर में कहा, मैं उतना ही वेतन लूंगा जितना मदीना में काम करनेवाले एक मजदूर को मिलता है। लोगों को बेहद आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, लेकिन इतने में आपका गुजारा कैसे होगा हुजूर? अबू बोले, जैसे एक मजदूर का गुजारा होता है इसी प्रकार मैं भी कर लूंगा। इसका फायदा यह होगा कि मैं हमेशा मजदूरों की तनख्वाह बढ़ाने का प्रयास करूंगा, ताकि मेरी भी आमदनी बढ़ सके।

६२३) अनोखा पुरस्कार - खलीफा उमर ईमानदारी और सादगी में यकीन करते थे। उनका हुक्म था कि चोगा बनाने के लिए शाही भंडार से सभी लोगों को एक समान कपड़ा दिया जाए। खुद उन्हें भी उससे अलग न रखा जाए। इस हुक्म का कड़ाई से पालन हो। एक बार वह भाषण दे रहे थे। भाषण के दौरान उन्होंने लोगों से पूछा, क्या आप लोग हमारे सभी हुक्म मानेंगे? सभी लोगों ने हाथ उठाकर सहमति जाहिर की, मगर एक महिला ने हाथ नहीं उठाया। खलीफा ने उससे पूछा, क्या तुम मेरा हुक्म नहीं मानोगी? उस महिला ने कहा, कभी नहीं। खलीफा ने पूछा, क्यों? उसने कहा, मैं आपका हुक्म कैसे मान सकती हूं, जब आपने खुद ही अपने आदेश का उल्लंघन किया है। खलीफा ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। महिला बोली, आप देख लीजिए। आप इतना लंबा चोगा पहने हुए है जबकि मेरे पति का चोगा घुटनों तक ही आता है। इससे जाहिर है कि आपने शाही भंडार सवे अपने हिस्से से ज्यादा कपड़ा लिया है। खलीफा की समझ में कुछ नहीं आया कि क्या कहें। तभी उनके बेटे ने खड़े होकर कहा, इसमें खलीफा दोषी नहीं है। उन्होंने ज्यादा कपड़ा नहीं लिया है। उनका चोगा बड़ा हो, इसलिए मैंने अपने हिस्से का थोड़ा कपड़ा उन्हें दिया है। देखिए मेरा चोगा सबसे छोटा है। यह सुनकर महिला बोली, मुझसे गलती हुई। मुझे माफ किया जाए। लेकिन वहां बैठे लोग कहने लगे कि खलीफा का अपमान करनेवाले को सख्त से सख्त सजा दी जाए। उनकी बातें सुन

खलीफा ने कहा, इस महिला ने कोई गलत काम नहीं किया है। यहां जितने लोग बैठे हैं, उनमें एक यही है जिसमें बेखौफ होकर अपनी बात कहने की हिम्मत है। यह महिला मुल्क की अमूल्य धरोहर है। मैं उसके साहस को सलाम करता हूं। आज ऐसे ही लोगों की जरूरत है। महिला को सजा देने की बात करने वालों के सिर शर्म से झुक गए।

६२४) हिन्दुस्तान की शान- दिल्ली पर मुगलों का शासन था। खुराशान के सम्राट ने मुगल दरबार में एक लोहे का धनुष इस चुनौती के साथ भेजा कि या तो धनुष की डोरी चढ़ाकर मेरे पास भेजे या धनुष सहित दूत के साथ सवा मण सोना भेज दें। यह चुनौती केवल दिल्ली के बादशाह तक ही सीमित नही थी, अपितु सारे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा का सवाल था।

बादशाह ने दरबार लगाया और घोषणा की कि जो इस धनुष की डोरी चढ़ा देगा, उसे मुंह मांगा पुरस्कार दिया जाएगा। यह सुनते ही अनेक वीर और शाही पहलवान लोह-धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए दौड़े। लाख प्रयत्न करने पर भी किसी को इसमें सफलता नहीं मिली। इससे सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। उन्ही दिनों एक भाटी-वंश का सरदार सोनिंगदेव दिल्ली की सड़कों पर काम की तलाश में भटकता फिर रहा था। उसने अनायास ही शाही घोषणा को सुना, शेष बातें लोगों से बातचीत करके जान लीं। वह यह अनुभव करने लगा कि यदि धनुष की डोरी न चढ़ी तो देश कलंकित हो जाएगा। अत: वह तेजी से दरबार की ओर दौड़ा। सोनिंगदेव छ: फु लम्बा सुन्दर युवक था। शरीर मानो फौलाद का बना था। भव्य मुख मण्डल पर शौर्य की दीप्त आभा झलक रही थी। जब वह दरबार में पहुंचा तो सब उसे देखते रह गए। दरबार में जाकर उसने धनुष तोड़ने की इच्छा व्यक्त की तो बादशाह ने आश्चर्यचकित होकर कहा- जहां एक भी शाही पहलवान धनुष की डोर चढ़ाने में सफल नहीं हुआ, वहां तुम क्या कर सकोगे। सोनिंगदेव ने उत्तर दिया- मैं किसी लालच से यहां नही आया हूं। मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि भारत का पौरुष अभी मरा नही, खुराशान के घमण्डी सुल्तान को यह जान लेना चाहिए। इसी बीच सोनिंगदेव धनुष के पास पहुंचा। बीच दरबार में वह खड़ा था और उसकी नजर उस चुनौती पर थी, जो भारत की शौर्यता को परखने आई थी। उसने अपने इष्टदेव को याद कर धनुष को स्पर्श किया। पलक झपकते ही उस विशाल धनुष को सोनिंगदेव ने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से उठा लिया, फिर पूरे दरबार का चक्कर लगाया। इस दृश्य को देखकर सब प्रसन्न हुए। दरबार का चक्कर लगाकर सोनिंगदेव ने दूसरे हाथ से धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी। वीर सोनिंगदेव ने लोह-धनुष के दोनों सिरे पकड़कर जोर लगाया की धनुष के दो टुकड़े हो गए। सोनिंगदेव की जय-जयकार से सारा राजा दरबार गूंज उठा। बादशाह स्वयं सिंहासन से नीचे उतरे और उसे सीने से लगाकर देर तक धन्यवाद देते रहे। उसकी कमर में रत्नजड़ित सुन्दर तलवार बांधकर उसके सामने सेनापति बनाने का प्रस्ताव रखा। बादशाह का प्रस्ताव सुनते ही सोनिंगदेव की भौहें तन गई, क्योंकि उसे कोई लालच नही था। उसने किसी भी प्रकार की सहायता-सुविधा लेने से मना कर दिया।

६२५) बादशाह- एकबार दिल्लीका बादशाह शाहजहाँ विद्वानों और कवियोंके मुखसे श्यामसुन्दरकी बड़ी प्रशंसा सुनकर बोला कि तुम लोग झूठ बोलते हो, श्यामतामें सुन्दरता कहाँ ? काला तो कुरूप होता है। दरबारी प्रवीण विद्वानोंने कहा यह श्याम भी है और सुन्दर भी, तीनों लोकोंमें इससे अधिक और कोई दूसरा सुन्दर नहीं है। यह सुनकर बादशाहने बड़े-बड़े चित्रकारोंको बुलाया और उनसे कहा तुम श्यामसुन्दरका ज्यौंका त्यों एक-एक चित्र बनाओ। चित्रकारोंने उनको देखा तो था नहीं, लोगोंके द्वारा वर्णितका श्रवण करके अनुमान से सभीने चित्र बनाया। बादशाहने सभी चित्रोंको देखा, उनमें एकता नहीं थी और सभी में एक न एक त्रुटि बादशाहको दिखलाई पड़ी। तब उसने सभीको अयोग्य कहकर कारागारमें बन्द कर दिया। बादशाहकी बेगम का नाम नूरजहाँ था, वह अत्यन्त चतुर थी। उसने चतुराई से निरपराध चित्रकारोंके बन्धन से छुड़ाया।

एक दिन बादशाके दरबारमें काश्मीरसे बहुत वेश कीमती इत्र आया। बादशाहने उसे सूंघा तो उसे बहुत अच्छा लगा।

उसने बेगमको भी सूंघनेके लिए दिया। बेगमने सूंघकर नाक सिकोड़ी और इत्रको फेंककर कहा- इसमें तो प्याजकी बदबू आ रही है। आश्चर्यचकित बादशाहने पता लगाया पर प्याजसे इत्रके प्रभावित होनेका पता नहीं लगा। तब बेगमने कहा कि इत्र जहाँ से आया है, वहाँ चतुर गुप्तचर भेजकर पता लगवाओ। बादशाहने ऐसा ही किया तो काश्मीर से समाचार आया कि ठीक है, जिन फूलोंसे इत्र बना, वे फूल जब आये तो प्याज वाली टोकरी में रक्खे गये थे। बादशाह बेगमकी चतुराई पर बहुत प्रसन्न हुआ। अवसर पाकर बेगमने कहा कि आपने चित्रकारों को क्यों बन्दकर रक्खा है, उन्हें छोड़ दीजिये। बादशाहने कहा- ये लोग श्यामसुन्दरका हू-बहू चित्र नहीं बना सके अत: बन्द हैं। बेगमने कहा- उनका चित्र बनाना सहज नहीं है, बहुत कठिन है, या यों कहिये कि असम्भव है। पहले आप वैसा रंग-मँगवाकर दीजिये। जितने रंग हैं, ये सब तदनुरूप नहीं हैं। कैसा रंग चाहिए यह पूछने पर बेगमने कहा- आँख की पुतरीका रंग कुछ-कुछ मिलता है, वैसा रंग मँगाइये तो शायद चित्र बन जाय। बादशाहने सोच-विचार कर कहा ठीक-ठीक वैसा रंग तो नहीं मिलेगा। बेगमने कहा तो फिर चित्र कैसे बनेगा। प्रसन्न होकर बादशाहने चित्रकारोंको मुक्त कर दिया। तात्पर्य यह कि उनके दिव्य-चित्र भक्तके हृदय और नेत्रोंमें बन पाते हैं। करमैतीजीके नेत्रोंमें श्यामसुन्दरकी शोभाका दिव्य प्रकाश था। उसीमें घरसे निकलीं।

६२६) श्री वनवारीदास- दाराशिकोह बादशाहके यहाँ मुन्शी वनवारदासजी लिखा-पढ़ीका काम करते थे। ये बड़े ईमानदार और कार्यकुशल थे। एकबार इनके ऊपर आर्थिक संकट आ गया। तब इन्होंने बादशाहके नाम एक प्रार्थना-पत्र लिखा और उसे लेकर बादशाहके पास गये। ये उसके आगे प्रार्थना-पत्र लिए दो घण्टे तक खड़े रहे बादशाह दूसरी-दूसरी बातोंमें लगा रहा। उसने इन्हें देखकर भी इनकी ओर नहीं देखा। यह नहीं पूछा कि क्यों आये हो, क्या चाहते हो। तब वनवारीदासजीके मनमें बड़ा-भारी दु:ख हुआ। मनमें आया कि यदि इतनी देर ईश्वरकी आराधना करता, उससे प्रार्थना करता तो सभी संकट दूर हो जाते। ये तुरन्त दरबारसे घर पर आ गये और जितना घरका सामान था सब गरीबोंको लुटा दिया और विरक्त होकर चल दिये। यह सुनकर बादशाह आया और इन्हें मनाते हुए बोला कि जितना तुम्हारा सामान था, उससे दूना सामान मैं तुम्हें दे दूंगा। तुम कहीं भी मत जाओ। पर ये न माने, दिल्लीसे निकलकर मेवाड़की ओर चले गये और वहाँ एक पहाड़ पर रहकर भजन करने लगे। एक वर्षके बाद अपनी सेनाके सहित बादशाह वहीं होकर निकला। किसीने उससे बताया कि इस पहाड़ पर एक महान् त्यागी सन्त वनवारीदासजी भजन करते हैं। बादशाह दर्शन करने पहुँचा, इसे देखकर उन्होंने पैर फैला दिये। बादशाहने प्रणाम करते हुए पूछा कि पैर फैलाना कबसे सीखा ? बोले- जबसे हाथ सिकोड़ा। पुन: उसने पूछा- हाथ कबसे सिकोड़े। उत्तर- जबसे पैर फैलाये। पुन: बादशाहने कहा- आप साहिबी छोड़कर अब यहाँ धूलमें पड़े हैं, इससे क्या मिला ? वनवारीदासजीने कहा- इतना तो प्रत्यक्ष है कि हम प्रार्थना-पत्र लेकर तुम्हारे सामने दो घण्टा खड़े रहे पर तुमने मेरी ओर नहीं देखा। वही तुम आज मेरे सामने खड़े हो और हमें तुम्हारी परवाह नहीं है। आगे की ईश्वरके आधीन है। यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हुआ और बोला- अब आप (बली) सच्चे सन्त हैं, मेरे लिए सेवाकी आज्ञा दीजिये।

६२७) छत्रसाल- पन्ना के राजा छत्रसालजी थे। एकबार दिल्ली बादशाह के दरबारमें सभी राजा उपस्थित हुए। छोटे-छोटे राजाओं को सम्बोधित करके उनका तिरस्कार करते हुए बादशाहने कहा- तुम सभी आधीन हो, इस समय कौन-सा पराक्रम दिखा सकते हो, क्या कर सकते हो ? यह सुनकर सभी राजा चुप रहे। पन्ना नरेश में वीरता जग पड़ी, उन्होंने म्यान से तलवार निकाली और कड़क कर बोले कि- मैं सब कुछ कर सकता हूँ और तुम्हें भी अभी मार सकता हूँ। भयभीत बादशाहने पन्ना नरेश की प्रशंसा की और कहा कि तलवार म्यानमें रख लो। इन्होंने कहा कि यह अमोघ है बिना बार किये

म्यानमें नहीं जा सकती है बादशाह ने कहा- तो खम्भे पर मार दो। इन्होंने मारा, तलवार आर-पार गई। बादशाह ने कहा- अब मैं ऐसा कभी न कहूँगा।

६२८) संतोष का पुरस्कार- आसफउद्दौला नेक बादशाह था। जो भी उसके सामने हाथ फैलाता, वह उसकी झोली भर देता था। एक दिन उसने एक फकीर को गाते सुना- जिसको न दे मौला उसे दे आसफउद्दौला। बादशाह खुश हुआ। उसने फकीर को बुलाकर एक बड़ा तरबूज दिया। फकीर ने तरबूज ले लिया, मगर वह दुखी था। उसने सोचा- तरबूज तो कहीं भी मिल जाएगा। बादशाह को कुछ मूल्यवान चीज देनी चाहिए थी। थोड़ी देर बाद एक और फकीर गाता हुआ बादशाह के पास से गुजरा। उसके बोल थे- मौला दिलवाए तो मिल जाए, मौला दिलवाए तो मिल जाए। आसफउद्दौला को अच्छा नहीं लगा। उसने फकीर को बेमन से दो आने दिए। फकीर ने दो आने लिए और झूमता हुआ चल दिया। दोनों फकीरों की रास्ते में भेंट हुई। उन्होंने एक दूसरे से पूछा, बादशाह ने क्या दिया ? पहले ने निराश स्वर में कहा, सिर्फ यह तरबूज मिला है। दूसरे ने खुश होकर बताया, मुझे दो आने मिले हैं। तुम ही फायदे में रहे भाई, पहले फकीर ने कहा।

दूसरा फकीर बोला, जो मौला ने दिया ठीक है। पहले फकीर ने वह तरबूज दूसरे फकीर को दो आने में बेच दिया। दूसरा फकीर तरबूज लेकर बहुत खुश हुआ। वह खुशी-खुशी अपने ठिकाने पहुंचा। उसने तरबूज काटा तो उसकी आंखें फटी रह गईं। उसमें हीरे जवाहरात भरे थे। कुछ दिन बाद पहला फकीर फिर आसफउद्दौला से खैरात मांगने गया। बादशाह ने फकीर को पहचान लिया। वह बोला, तुम अब भी मांगते हो ? उस दिन तरबूज दिया था वह कैसा निकला ? फकीर ने कहा, मैंने उसे दो आने में बेच दिया था। बादशाह ने कहा, भले आदमी उसमें मैंने तुम्हारे लिए हीरे जवाहरात भरे थे, पर तुमने उसे बेच दिया। तुम्हारी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि तुम्हारे पास संतोष नहीं है। अगर तुमने संतोष करना सीखा होता तो तुम्हें वह सब कुछ मिल जाता तो तुमने सोचा भी नहीं था। लेकिन तुम्हें तरबूज से संतोष नहीं हुआ। तुम और की उम्मीद करने लगे। जबकि तुम्हारे बाद आनेवाले फकीर को संतोष करने का पुरस्कार मिला।

६२९) स्वावलम्बन- गुलामवंशीय नसीरुद्दीन बादशाह अत्यंत सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ था। पुस्तकों की हस्तलिपि तैयार करने से उसे जो आय होती थी, उसी से वह अपना जीवन निर्वाह करता था। बादशाह नसीरूद्दीन अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और सादगी के लिए विख्यात था।उसने आजीवन राजकोष से एक भी पैसा न लेकर अपनी हस्तलिखित पुस्तकों से जीवन-निर्वाह किया। बादशाह नसीरुद्दीन अवकाश के समय टोपियां बनाकर और कुरान की हस्तलिखित प्रतियां तैयार कर अपना जीवनयापन करते थे। यहां तक कि वह अपनी बेगम द्वारा बनाया गया भोजन ही करते थे।

भारत का इतना बड़ा बादशाह होने पर भी अन्य मुसलमानों और शासकों के रिवाज के विपरीत उसकी एक ही पत्नी थी। राजकोष से उसने कभी एक पैसा भी अपने या अपने परिवार के खर्च के लिए नहीं लिया था। उस समय के चलन के विपरीत उसकी एक ही पत्नी थी। नौकर कोई भी नहीं था। यहां तक कि खाना भी खुद बेगम को अपने हाथ से बनाना पड़ता था। घरेलू कार्यों के अलावा रसोई भी स्वयं बेगम को ही बनानी पड़ती थी। एक बार रसोई बनाते समय बेगम का हाथ जल गया। बेगम सोचने लगीं, मैं भी कैसी अभागिन हूं कि एक बादशाह की पत्नी होने के बावजूद एक नौकर नहीं मिल सकता, जो कि मेरा हाथ बंटाता। बेगम ने अपने मन की बात बादशाह से कही, उसने बादशाह से कुछ दिनों के लिए रसोई बनाने के लिए एक नौकरानी रख देने की प्रार्थना की। मगर बादशाह ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, राजकोष पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। तो नसीरुद्दीन ने बड़े प्यार से समझाया, बेगम, आपके लिए एक नहीं, कई नौकर रखे जा सकते हैं बशर्ते हम अपने सिद्धांतों से गिर जाएं। यह राज्य, वैभव, धन, संपत्ति सब कुछ प्रजा का है, हम तो उसके संरक्षक मात्र

है, इसमें से लेशमात्र भी उपयोग में लाना बेईमानी होगी।

वह तो प्रजा की ओर से मेरे पास धरोहर मात्र है और धरोहर में अपने कार्यों के लिए व्यय करना अमानत में खयानत है। बादशाह को ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी होना चाहिए। अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए स्वयं ही कमाना चाहिए। मेरे हाथ की कमाई सीमित है, इसलिए तुम्हीं बताओ, हमसे नौकरानी कैसे रखी जा सकती है ? बेगम को बात जंच गई और उसने फिर कभी नौकरानी रखने की बात नहीं कही। बादशाह की सैद्धांतिक निष्ठा के सामने बेगम को झुकना पड़ा।

६३०) बादशाह की सीख- यह घटना उस समय की है, जब दिल्ली के तख्त पर नसरुद्दीन नामक बादशाह बैठा हुआ था। वह बहुत ही भला और सहिष्णु शासक था। वह शाही खजाने का उपयोग केवल प्रजा की भलाई के लिए करता था। वह अपने परिवार का खर्च कुरान शरीफ का अनुवाद करके चलाता था। एक दिन उसके एक नौकर ने कहा, बादशाह सलामत, मेरी बेटी की शादी है। यदि आप इसमें थोड़ी सहायता कर सकें तो बड़ी मेहरबानी होगी। नौकर की बात सुनकर नसरुद्दीन ने कहा, भाई, इस समय तो मेरे पास केवल मेरी कमाई के दो रुपये हैं। नौकर हैरानी से बादशाह की ओर देखने लगा। बादाशाह ने कहा, भइया, ये दो रुपये मेरी नेक कमाई के हैं। कुछ कम जरूर हैं, मगर तुम यह हमेशा याद रखो कि नबेकी की कमाई में हमेशा बढ़ोत्तरी ही होती है। अब इस पर नौकर क्या कहता। उसे लगा बादशाह और पैसे नहीं देना चाहते। वह मायूस होकर अपने गांव चल पड़ा। रास्ते में उसने सोचा कि इन रुपयों से उसकी बेटी की शादी में कोई खास मदद नहीं हो पाएगी, इसलिए उसने उससे अनार की कुछ टोकरियां खरीद लीं। कई दिनों बाद गांव के करीब पहुंचने पर नौकर को पता चला कि नसरुद्दीन की बीवी सख्त बीमार है और हकीम का कहना है कि वह अनार का रस पीने से ही ठीक हो सकती हैं। बादशाह ने घोषणा की थी कि जो कोई भी अनार लेकर आएगा उसे एक अनार के एक हजार रुपए दिए जाएंगे। उस समय राजधानी में अनार नहीं मिल रहे थे। घोषणा सुनकर नौकर तेजी से लौटा और अनार लेकर राजदरबार में पहुंच गया। बादशाह ने खुश होकर सभी अनार खरीद लिए और नौकर को एक लाख रुपये देकर विदा किया। नौकर रुपये लेकर अपने घर लौट आया। उसने धूमधाम से अपनी बेटी शादी की। बादशाह की बात सच निकली कि नेकी की दौलत में बढ़ोतरी होती है।

६३१) एकता- आजाद हिन्द सेना के कैप्टिन शाह नवाज खां पर मुकदमा शुरू हो गया था। भूला भाई देसाई ने उन्हें बचाने का बीड़ा उठा लिया था। इसी दौरान मुहम्मद अली जिन्ना ने कैप्टिन शाह नवाज खां को संदेश भिजवाया- अगर आप अन्य साथियों से अलग हो जाएं तो भाई होने के कारण मैं आपका मुकदमा लडूंगा। शाह नवाज खां ने फौरन ही जवाब भिजवाया, हम सब हिन्दुस्तानी कन्धे से कन्धा मिलाकर आजादी की लड़ाई लड़ रहे है। हमारे कई साथी इसमें शहीद भी हो चुके हैं और हमें उनकी शहादत पर नाज है। आपकी जर्रानवाजी का शुक्रिया। हम सब साथ-साथ ही उठेंगे या गिरेंगे, पर साथ नहीं छोड़ेंगे।

६३२) कपड़ों की दावत- दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह जफर ने एक उत्सव में मशहूर शायर मिर्जा गालिब को निमंत्रण भेजा। उत्सव में जाते समय गालिब के दोस्तों ने कहा, आप बादशाह की दावत में जा रहे हैं। कपड़े तो ठीकठाक पहन लीजिए। गालिब ने कहा, बादशाह ने मुझे दावत दी है कपड़ों की नहीं। यह कहकर वह चल पड़े। जब वह उत्सव स्थल पर पहुंचे तो दरबानों ने उन्हें अंदर घुसने नहीं दिया। उन्होंने अपना परिचय दिया, फिर भी दरबानों पर कोई असर नहीं पड़ा। जब उन्होंने निमंत्रण पत्र दिखाया तो दरबानों ने हंसकर कहा, जरूर किसी का चुरा लिया होगा।

गालिब लौटकर घर आए। उन्होंने मित्रों की लाई शेरवानी, पगड़ी आदि पहनी और फिर दावत में पहुंचे। इस बार उन्हीं दरबानों ने उन्हें झुककर सलाम किया। जब बादशाह ने पास बिठाकर मिठाइयां खाने को कहा तो गालिब मिठाइयों को

उठाकर कभी शेरवानी, कभी टोपी, कभी पाजामा को छुआकर कहने लगे, लो खाओ जलेबी, बर्फी, गुलाब जामुन। खा लो। बादशाह ने आश्चर्यचकित होकर कहा, मिर्जा, यह आप क्या कर रहे हैं ? गालिब बोले, जहांपनाह, मैं तो पहले भी आया था, मगर दरवाजे से दुत्कार कर भगा दिया गया। यह दावत मेरी नहीं, कपड़ों की है। इसलिए मिठाइयों पर पहला हक भी तो इन्हीं का है। बादशाह निरुत्तर हो गए।

६३३) गद्दी की जिम्मेदारी- नौशेखाँ ईरान का बड़ा न्यायप्रिय बादशाह था। एक बार बादशाह जंगल की सैर के लिए निकला। जंगल में घूमते-घूमते बादशाह को भूख लगी। उसने नौकरों से वहीं भोजन की व्यवस्था का आदेश दिया। जब बादशाह खाने बैठा, तब उसे साग-सब्जियों में नमक कम लगा। उसने नौकरों से कहा, जाओ गाँव से नमक ले आओ।

बादशाह ने कहा, देखो, जितना नमक लाओगे, उसके पैसे देते आना। बोला, सरकार नमक जैसी मामूली चीज के लिए कौन पैसा लेगा ? आप उसकी फिक्र क्यों करते हैं ?

बादशाह गंभीर हो गया। तेज आवाज में उसने कहा, यह मत भूलो कि छोटी चीजों से ही बड़ी चीजें बनती हैं, छोटी बुराई, बड़ी बुराई के लिए रास्ता खोलती है। अगर मैं किसी पेड़ से एक फल तोड़ता हूँ, तो मेरे सिपाही उस पेड़ पर एक भी फल नहीं छोड़ेंगे। मुमकिन है, ईंधन के लिए पेड़ को ही काट कर ले आयें। ठीक है कि एक फल की कोई कीमत नहीं है, लेकिन बादशाह की जरा-सी बात से कितना बड़ा अन्याय हो सकता है। जो हुकूमत की गद्दी पर बैठता है, उसे हर घड़ी चौकना रहना चाहिए।

६३४) अखरोट का पेड़- फारस का बादशाह नौशेखां अपनी न्यायप्रियता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। वह उदार हृदय होने से बहुत बड़ा दानी भी था। एक दिन वह अपने मंत्रियों के साथ घूमने निकला। उसने देखा कि एक बगीचे में एक बहुत बूढ़ा माली अखरोट के पेड़ लगा रहा है। बादशाह उस बगीचे में गया। उसने माली से पूछा- तुम यहां माली हो या यह तुम्हारा ही बगीचा है? माली ने कहा- मैं नौकरी नहीं करता। यह बगीचा मेरे ही बाप-दादों का लगाया हुआ है। बादशाह ने कहा- तुम ये अखरोट के पेड़ लगा रहे हो। क्या तुम समझते हो कि इनका फल खाने के लिए तुम तब तक जीवित रहोगे? अखरोट का पेड़ लगाने के बीस बरस बाद फलता है, यह बात जगजाहिर है। बूढ़े माली ने बादशाह का बात सुनकर कहा- मैं अब तक दूसरे के लगाए पेड़ों के बहुत फल खा चुका हूँ। इसलिए मुझे भी दूसरों के लिए पेड़ लगाने चाहिए। अपने फल खाने की आशा से ही पेड़ लगाना तो स्वार्थ है। बादशाह माली के उत्तर में बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसे पुरस्कार में दो सोने की अशर्फियां दीं।

६३५) आलम की बीबी- रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि आलम की पत्नी शेख नाम की रंगरेजिन थी। एक बार मुगल बादशाह बहादुर शाह प्रथम ने मजाक में शेख से पूछ लिया कि क्या आप आलम की बीबी हैं ? (अर्थात् आप संसार की पत्नी)

चतुर शेख ने बादशाह के मजाक को समझ कर तुरन्त कहा, जी हां, जहांपनाद जहान की मां भी मैं ही हूं, (संसार के शरणदाता। संसार की मां भी मैं ही हूं) जहान उनके बेटे का नाम था।

६३६) अमृत- ईरान के बादशाह खुसरो के प्रधानमंत्री बुर्जोई राजचिकित्सक भी थे। उन्होंने किसी ग्रंथ में पढ़ा कि भारतवर्ष में किसी पर्वत पर संजीवनी नाम की बूटी होती है। जिससे मृत जीव जीवित हो जाता है।

बुर्जोई छठी शताब्दी में संजीवनी की खोज में भारत आये, किन्तु बहुत दिनों तक भटकने के बाद भी संजीवनी नहीं मिली।

भारतवर्ष में अमृत कहां है ? बुर्जोई ने किसी भारतीय विद्वान से पूछा।

पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ में। विद्वान् ने उत्तर दिया।

वस्तुत: ज्ञान ही अमृत है। उसी से मृत तुल्य मूर्ख मानव जीवित हो सकता है। विद्वान व्यक्ति ही वह पर्वत है, जिस पर संजीवनी अमृत प्राप्त होता है।

६३७) बादशाह की अंगूठी- बगदाद के बादशाह हजरत उमर बिन आजीज के पास एक बेशकीमती अंगूठी थी। बादशाह को उससे बड़ा लगाव था। कहते हैं कि उसी अंगूठी के कारण ही अजीज की गिनती दुनिया के महान बादशाहों में होती थी। एक बार बगदाद में भयंकर सूखा पड़ा। चारों तरफ त्राहि त्राहि मच गई। बादशाह ने शाही खजाना खोल कर जनता की तकलीफ दूर करने की कोशिश की। पर धीरे-धीरे वह भी खाली हो गया। आखिरकार बादशाह ने राज्य के सभी प्रमुख लोगों की बैठक बुलाई, लेकिन कोई हल नहीं निकला। एक दिन दरबार में बादशाह ने अपनी अंगूठी निकाल कर खजांची को देते हुए कहा, इसे बेच दो। मेरे पास अब सूखा राहत के लिए कुछ नहीं बचा। दरबारियों में हलचल हुई। सब जानते थे कि बादशाह को अंगूठी बहुत प्यारी है। एक दरबारी ने कहा थोड़ा इंतजार कर लीजिए। बारिश होने में अब कुछ ही दिन बाकी है। सब ठीक हो जाएगा। मगर ऐसी अंगूठी फिर नहीं मिलेगी। बादशाह ने कहा, ठीक कहते हो। मगर मैं बारिश के भरोसे लोगों को नहीं छोड़ सकता। मुझसे जितना होगा मैं उनके लिए करूँगा। आम आदमी दुख सहता रहे और मैं अंगूठी का मोह करूं यह ठीक नहीं है। एक बादशाह का फर्ज है कि वह तकलीफ में लोगों का साथ दे। दरबारियों ने मौन होकर बादशाह के निर्णय का स्वागत किया और बादशाह का अनुकरण करते हुए उन्होंने भी अपने कीमती सामान बेच कर उसके पैसे सूखा राहत कोष में जमा करा दिए।

६३८) हाथी की लगाम- नादिरशाह ने तूफानी कर दिल्ली के तख्त पर अपना कब्जा जमा लिया। दिल्ली का शासन हाथ में आते ही उसने आदेश दिया- दिल्ली नगर में उसका भव्य विजय जुलूस निकाला जाए। जुलूसकी तैयारी की गई। शहंशाह नादिरशाह की सवारी के लिए एक प्रशिक्षित हाथी पर सोने का हौदा सजा था। बैठने के लिए सिंहासन लगी हुई पालकी भी हाथी पर बांध दी गई। हाथी के ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी लगाई गई। नादिरशाह सीढ़ी पर चढ़कर छत्रयुक्त पालकी के सिंहासन पर बैठ गया और उसने महावत से कहा- इस भारी भरकम जानवर की लगाम कहा हैं। उसे मुझे सौंप दो। महावत ने अर्ज किया- जहांपनाह, हाथी लगाम से नहीं आपके हुक्म और इकबाल से मेरे अंकुश से चलाए चलता है। नादिरशाह ने कहा- महावत। तुम फौरन मुझे नीचे उतारो। मैं ऐसी किसी सवारी पर बैठने को तैयार नहीं हूं जो मेरे चलाए नहीं किसी दूसरे के चलाए चलती है और जिसकी लगाम नहीं होती है। मैं ऐसे जानवर की सवारी करना नापसन्द करता हूं। नादिरशाह की बात सुनकर सभी लोग उसकी दूरदर्शिता को दाद देने लगे कि शासन एवं शासित की डोरी अपने हाथ में होनी चाहिए।

६३९) सुल्तान होने का रहस्य- बादशाह हसन से एक बार किसी ने पूछा- आपके पास न तो पर्याप्त धन था, ना सेना थी फिर आप सुल्तान कैसे हो गये ? बादशाह हसन ने उत्तर दिया मित्रों के प्रति मेरा सच्चा प्रेम, शत्रुओं के प्रति मेरी उदारता और प्रत्येक मनुष्य के प्रति मेरा सद्भाव, क्या इतनी बातें सुल्तान होने के लिये पर्याप्त नहीं हैं ?

६४०) जन्नत और दोजख- बगदाद में फकीर की धूम थी। लोग उनके ईश्वर संबंधी ज्ञान से अत्यंत प्रभावित थे। उनकी तारीफ बगदाद के खलीफा हारून-उल-रशीद तक भी पहुंची। उनके दिल में फकीर के दर्शन की इच्छा जागी। एक दिन वे अपने एक वजीर के साथ फकीर फलीज के पास पहुंचे। फकीर की असाधारण विद्वता से खलीफा बहुत प्रभावित हुए। ज्ञान चर्चा के बाद जब वे चलने लगे तो उन्होंने एक हजार स्वर्ण मुद्राओं की थैली संत के चरणों में रख दी।

इस पर फकीर ने मुस्कराकर थैली लौटा दी और कहा, वाह। मैंने आपको जन्नत तक जाने का रास्ता बताया, बदले में आप मुझे दोजख की राह पर क्यों धकेल रहे हैं ?

६४१) सच्ची इबादत- एक बार एक बादशाह अपने कुछ साथियों के साथ अपने मुल्क के सरहदी इलाकों का मुआयना करने जा रहा था। चलते-चलते नमाज का वक्त हो गया। अगल-बगल कोई साफ-सुथरी और समतल जमीन नहीं दिखी तो साथियों ने बादशाह के लिए वहीं रास्ते में ही मुसल्ला बिछा दिया। बादशाह ने अभी नमाज पढ़ना शुरू ही किया था कि एक युवती बहुत दिनों बाद आये हुए अपने प्रेमी से मिलने के प्रेम में पागल हुई-सी चली जा रही थी। रास्ते में बादशाह का पड़ाव था। बादशाह उस समय जाजम बिछाकर नमाज पढ़ रहे थे। प्रेमोन्मत्त उस युवती को रास्ते का कोई भान नहीं था, वह जाजम पर पैर रखकर आगे बढ़ गयी। बादशाह को बड़ा क्रोध आया, लेकिन उस समय उसके मंत्री-संतरी वगैरह भी नमाज पढ़ रहे थे, सो वह कुछ नहीं बोला।

पर जब वह युवती उधर से लौटी, तो बादशाह ने डपट कर कहा, मूर्ख स्त्री। अरी पापिनी। इधर से जाते समय तुझे दिखाई नहीं दिया कि मैं नमाज अता कर रहा हूं। तू जाए-नमाज पर पैर रख कर चली गई। उस प्रेम हृदया युवती ने निर्भयता से कहा- जहांपनाह। गुस्ताखी माफ हो। मेरा चित्त अपने स्वामी पर लगा हुआ था। बादशाह ने उसी तरह सख्ती से दरियाफ्त किया, ऐसा क्या हो गया है तुम्हारे स्वामी को ? युवती नम्रता से बोली, मेरे स्वामी काफी दिनों से आ रहे हैं, बस उन्हीं को देखने गई थी। लेकिन वह सूचना झूठी निकली। वहां कोई और आया था। एक मामूली मनुष्य के प्रेम में पागल होने से मुझको आपकी जाजम का पता नहीं लगा।

बादशाह डांट कर बोला, स्वामी के लिए जा रही थी तो क्या रास्ता और जाए-नमाज नहीं दिखाई दे रहा था ? युवती बोली, उस समय मुझे अपने स्वामी के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। न आप दिखे और न ही आप का जाए-नमाज दिखाई पड़ा। लेकिन जहांपनाह, आप तो सर्वशक्तिमान और एकमात्र स्वामी अल्लाह में अपना चित्त लगाए हुए थे, फिर आपने मुझे इधर से जाते हुए कैसे देख लिया ? फिर भगवान् का ध्यान करते हुए आपने मुझको कैसे देखा ? मालूम होता है आप केवल ऊपर से ही नमाज पढ़ रहे थे, आपके मन में भगवान नहीं थे।

बादशाह को अपनी गलती का एहसास हुआ और वह बोला, तुम ठीक कहती हो। खुदा की इबादत करना और खुदा में चित्त लगाना दो अलग-अलग बातें हैं। जिसका चित्त खुदा में लग जाएगा उसे इस नश्वर दुनिया की बाकी चीजों के लिए कहां होश रह जाएगा। उत्तर सुनकर बादशाह ने अपनी भूल समझी और उस युवती को धन्यवाद दिया।

६४२) बादशाह और एक सन्त का- किसी नगर में एक बहुत बड़ी मसजिद थी उसीसे कुछ दूर पर एक हिन्दू सन्त की कुटिया थी। एकदिन वे सन्त कुटिया से आकर मसजिद के निकट बैठकर ध्यान करने लगे। इतनेमें कुछ प्रमादी यवनों ने आकर उन्हें देखा और उनके निकट मसजिद की एक ईंट टूटी देखी। सन्त पर मसजिद को तोड़नेका आरोप लगाया। पकड़कर बादशाहके पास ले गये। उसने मौलवियोंकी सलाह से सन्त को सूली की सजा दे दी। सन्तने कहा- मैं अपनी एक बात कहना चाहता हूँ, अन्तिम बात सुनाने का मुझे अधिकार है। सुनना भी आपका कर्त्तव्य है। बादशाह ने कहा- सुनाओ सन्तने कहा- मसजिद एक भौतिक ईश्वर की उपासना का स्थान है। ईंटा-चूना से उसे मनुष्यके द्वारा बनाया गया है। उसकी केवल एक ईंट के टूटने के सन्देह में मौत की सजा दी जा रही है। मनुष्य का शरीर ईश्वर के द्वारा निर्मित है और ईश्वर का मन्दिर है। इससे पूर्णतया नष्ट कर देना कितना बड़ा अपराध है। एक ईंट टूटने की सजा मौत है तो फिर पूरे ईश्वर मन्दिर को नष्ट कर देने पर तुम लोगों को कौन-सी सजा मिलती चाहिए। बादशाह ने यह सुनकर तौबा किया और सन्तका बड़ा-भारी उपकार माना कि मुझे आपने महापराधसे बचाया। यदि सन्त बात न बनाते तो प्राण जाते अत: बात बचावै प्राण यह सत्य है।

६४३) मदद की मांग- एक दिन एक बादशाह जंगल में शिकार करते हुए भटककर रास्ता भूल गए। उसे भूख-प्यास सताने लगी। तभी उसकी नजर एक किसान पर पड़ी। उसने किसान से पूछा, तुम्हारे पास कुछ खाने को है ? किसान ने बादशाह को अपने पास पड़ी रूखी-सूखी रोटी खिला दी। खा-पीकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। फिर कहा, मैं इस मुल्क का बादशाह हूं। कभी कोई जरूरत पड़े तो निस्संकोच मेरे पास आ जाना। यह कहकर वह वापस राजधानी चला गया।

कई वर्ष बीत गए। एक बार सूखा पड़ा। किसान के सामने भूखों मरने की नौबत आ गई। उसने सोचा, क्यों न बादशाह के पास चला जाए, शायद वह कोई मदद करें। नगर में रास्ते में ही उसने देखा कि बादशाह की सवारी चली आ रही है। किसान ने उन्हें देखते ही आवाज दी, बादशाहे, ओ बादशाहे। सभी आश्चर्य में पड़ गए। एक अधिकारी ने कहा, इस बेवकूफ को कैद में डाल दो। लेकिन बादशाह ने भी वह आवाज सुन ली थी। उसने किसान को पहचान भी लिया। तुरंत अपने सिपाहियों से कहकर उसे पास बुलाया और हाथी पर अपने साथ बिठा लिया। महल में पहुंच कर उसने नौकरों को आदेश दिया, जंगल में मेरी जान इसने बचाई थी। यह हमारे कमरे में ही सोएगा। मेरे कमरे में ही इसके लिए बिछावन लगा दो। खाना भी अपने ही साथ खिलाया। सुबह उठने पर किसान ने देखा, बादशाह हाथ उठाए इबादत कर रहा है। जब बादशाह ने नमाज पढ़ ली तो किसान ने पूछा, यह आप क्या कर रहे थे ? बादशाह ने कहा, आशीर्वाद मांग रहा था। किसान ने पूछा, किससे ? बादशाह ने कहा, खुदा से। यह सुनकर किसान ने अपनी लाठी उठाई और चल पड़ा। बादशाह ने पूछा, अरे तुम कहां चल पड़े ? तुम आए किसलिए थे ? किसान ने कहा, बादशाह, मैं आया था तुमसे मदद मांगने। पर यहां तो देखा कि तुम भी मांगते हो। तब क्यों न मैं भी सीधे उसी से मांग लूं जिससे तुम मांगते हो।

६४४) दुख का अहसास- पुराने जमाने की बात है। किसी राज्य में एक गुलाम रहता था। उसने कभी समुद्र नहीं देखा था। लेकिन एक बार बादशाह के साथ उसे समुद्र की यात्रा पर जाना पड़ा। थोड़ी देर में ही जहाज समुद्र की छाती को चीरने लगा। उस गुलाम के लिए यह एक नया अनुभव था। वह जिधर नजरें दौड़ाता, उसे पानी ही पानी दिखाई देता था। लहरें जब भी जहाज से टकरातीं वह डर कर चीखने लगता। उसके साथियों ने उसका हौसला बंधाया और उसे आश्वस्त करने की कोशिश की है कि जहाज पर कोई खतरा नहीं है, हर शख्स यहां सुरक्षित है, पर गुलाम के ऊपर कोई असर नहीं हुआ। वह पहले की तरह चिल्लाता रहा।

उसकी आवाज सुनकर बादशाह ने अपने कर्मचारियों को हुक्म दिया, इस बेवकूफ को चुप कराओ। इसने तो आसमान सिर पर उठा रखा है। कर्मचारियों ने काफी कोशिश की पर गुलाम पहले जैसी हरकतें करता रहा। बादशाह परेशान हो उठा। उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। वह पछता रहा था कि इसे लाया ही क्यों। लेकिन अब उसे वापस भी नहीं भेजा जा सकता था। एक बूढ़ा चुपचाप बैठा यह सब देख रहा था। उसने बादशाह से कहा, जहांपनाह, मुझे इजाजत दें। मैं इसे चुप करा सकता हूं। बादशाह ने अनुमति दे दी। उस बूढ़े के कहने पर गुलाम को पानी में लटका दिया गया। जब उसने दो-तीन गोते खा लिए और कुछ देर डूबने-उतराने लगा तो बूढ़े ने उसे वापस खींच लेने को कहा। जहाज पर आते ही गुलाम की जान में जान आ गई और वह चुपचाप एक कोने में बैठ गया। सभी दंग रह गए। बादशाह ने पूछा, वह चुपचाप कैसे बैठ गया ? बूढ़ा बोला, हुजूर, पहले वह समुद्र में डूबने का दुख नहीं जानता था। इससे वह जहाज में बैठकर भी अपने को दुखों से घिरा समझ रहा था। अब इसने दुख की झलक पा ली है, इसलिए इसे यहां आराम मिल रहा है। इसके चुप हो जाने का भी यही रहस्य है।

६४५) दामादों को फांसी - एक सम्राट की नींद किसी युवती की सिसकी से उचट गई। उसने सेवक से पता लगाने को कहा। सेवक ने आकर बताया कि एक युवती अपनी ससुराल जा रही है, यह उसी के रुदन का स्वर था। कौन ले जा रहा

है उसे ससुराल ? सम्राट ने पूछा। दामाद आया था। वही ले जा रहा है। सेवक ने उत्तर दिया। राजा क्रोध में लाल-पीला हो रहा था। क्रोध की वजह राजा की अपने दामाद से नाराजगी थी। राजा ने मंत्री से कहा- ये दामाद किसी के सगे नहीं होते है।

तब तो दामाद नाम का प्राणी बहुत निर्दयी होता है। ऐसे प्राणियों को फांसी दे दी जाए। सम्राट ने हुक्म सुनाया।

राजा की बात सुनकर मंत्री हैरान रह गया। मंत्री जानता था कि राजा को गुस्सा जितना जल्दी आता है उतना ही जल्दी शांत भी हो जाता है। चिल्लाते हुए राजा मंत्री से बोला- मैं चाहता हूं कि हमारे राज्य के सभी दामादों को फांसी पर लटका दिया जाए। मंत्री दंग रह गया।

मंत्री ने सुना तो सोचने लगा कि जरूर सम्राट ने यह सब उनींदे में कह दिया होगा। आज्ञा पालन तो जरूरी है, पर अन्याय भी नहीं होना चाहिए। मंत्री ने लोहे, चांदी और सोने की जंजीरें बनाने का हुक्म दे दिया। कुछ समय बाद वह बोला- राजन। आपके आदेश की पालना होगी। दूसरे दिन शाम को वह सम्राट के पास पहुंचा और बोला, दामादों को फांसी देने की तैयारी हो चुकी है। आप चलें और देख लें। सम्राट मंत्री के साथ एक विशाल मैदान में पहुंचा। फांसी की जंजीरों को देख सम्राट ने पूछा, इतने तरह की जंजीरें क्यों लगाई हैं। सब एक जैसी क्यों नहीं हैं ? राजा मंत्री से बोला- ये अलग-अलग तरह के तख्ते क्यों बनाए है। मंत्री बोला- हुजूर। गरीब दामादों के लिए लकड़ी के तख्ते और अमीर दामादों के लिए पीतल का।

मंत्री ने कहा, फांसी देते समय व्यक्ति की गरिमा और उसके पद का ख्याल तो रखना ही पड़ेगा। आप भी तो किसी के दामाद हैं। जब आपको फांसी देने की बारी आएगी तो सोने की जंजीर का प्रयोग किया जाएगा। सम्राट स्तब्ध रह गया। बोला, तो क्या मुझे भी फांसी लगेगी ?

क्यों नहीं लगेगी। आप का आदेश है कि दामादों को फांसी दे दी जाए। आप भी तो किसी के दामाद हैं। लेकिन आपको सोने की जंजीर से फांसी दी जाएगी। आश्चर्य में डूबे सम्राट ने कहा, जंजीर सोने की हो या लोहे की, क्या फर्क पड़ता है। कार्य तो दोनों का एक ही है- व्यक्ति के प्राण लेना। मंत्री बोला, यह तो आप सोचें। हमें तो आदेश का पालन करना है। मंत्री के यह कहते ही राजा का गुस्सा शांत हो गया और चेहरे पर हंसी फैल गई। राजा ने मंत्री से कहा, अगर तुम्हारे जैसा समझदार सलाहकार नहीं होता तो न जाने अभी कितने लोगों का जान जा चुकी होती। मंत्री ने राजा को घणी खम्मा कहकर गुस्सा शांत होने के लिए धन्यवाद दिया।

सम्राट ने अपना आदेश वापस लेते हुए कहा, न्याय करते हुए अपने विवेक का प्रयोग करना जरूरी है। मैं यही नहीं कर सका था।

६४६) शेख सादी के पास एक आदमी पहुंचा और कहने लगा, मेहरबानी करके आप मुझे तालीम दें। मैं कई उस्तादों के पास गया, उनकी सोहबत में रहा, लेकिन अब तक कुछ नहीं सीख पाया। वे मुझे कोई शिक्षा नहीं दे पाए। आगंतुक की बात सुनकर शेख सादी हंसे, फिर उसे एक कहानी सुनाई। एक बादशाह ने अपना बेटा किसी उस्ताद के सुपुर्द किया और कहा, मेरे लड़के को तू अपने लड़कों के साथ ही पढ़ाओ और उन्हीं की तरह काबिल और होशियार बना दो। उस्ताद ने उसे अपने लड़कों के साथ एक साल तक पढ़ाया मगर उसने कुछ भी नहीं सीखा। बाकी बच्चे पढ़-लिखकर खूब होशियार हो गए। बादशाह ने जब ये फर्क देखा तो बहुत नाराज हुआ और उस्ताद से बोला कि तुमने अपना वादा पूरा नहीं किया। बादशाह का यह इल्जाम सुनकर उस्ताद बोला, ऐ मेरे मालिक। तालीम तो मैंने सबको एक सी ही दी है, लेकिन सीख सकने की सबकी क्षमता अलग-अलग है जैसे सोना-चांदी भी मिट्टी और पत्थरों में से ही निकलते हैं, लेकिन हर पत्थर और हर जगह की मिट्टी में से नहीं।

६४७) निकाले तो भेजे कहां- रोम के बादशाह के दरबार में एक मसखरा था। एक दिन उसने बादशाह की तारीफ करते हुए कहा, हुजूर आप तो खुदा से भी बढ़कर है ? आप एक काम ऐसा कर सकते हैं जिसे खुदा नहीं कर सकता।

बादशाह ने पूछा- वह कौन सा काम हैं ?

मसखरा बोला- हुजूर आप किसी को भी देश निकाला दे सकते हैं, लेकिन खुदा ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि यह सारा संसार तो उसी का है। निकाले तो भेजे कहां ? मसखरे की बात सुनकर बादशाह बहुत खुश हुआ।

६४८) समाधि लेख- बेबीलोन की रानी मॉक्रिस की कब्र पर लिखा था- यहां पर अपार धन गढ़ा है, कोई भी व्यक्ति जरूरत पड़ने पर धन प्राप्त कर सकता है।

ईरान के बादशाह डेरियस ने बेबीलोन जीतने पर यह इबारत पढ़ी और कब्र खुदवाने का आदेश दे दिया। खोदने पर उसमें कुछ न मिला, केवल एक पत्थर हाथ लगा। जिस पर लिखा था- नादान इंसान इतना परिश्रम तूने मेरी कब्र खोदने में किया और अपनी इंसानियत पर नाहक लांछन लगाया। अच्छा होता तू मेहनत मशक्कत करता तो तेरा ही नहीं तुझ जैसे कितनों का पेट भरता।

६४९) इंसान का फर्ज- समरकंद के शासक उमर शेख नेकदिल और न्यायप्रिय थे। एक बार चीनी यात्रियों का एक दल उनके राज्य की सीमा में बर्फीले तूफान में फंस गया। किसी की जान न बच पाई। उन यात्रियों का सामान व बहुत सारा धन वहीं दबा रह गया। उमर शेख को जब इसका पता चला तो उन्होंने अपने सैनिकों को सामान व धन की सुरक्षा के लिए तैनात कर दिया। इसके बाद उन्होंने चीन के सम्राट के पास सूचना भिजवाई कि उनके कुछ नागरिकों की यहां मृत्यु हो गई है और उनका काफी सारा धन एवं सामान वहां पर मिला है। उन्होंने चीनी शासक से अनुरोध किया कि वह अपने कर्मचारियों को समरकंद भेजें ताकि मृत यात्रियों की चीजें उनके परिजनों तक पहुंचाई जा सकें। चीनी सम्राट यह जानकर बेहद दुखी हुआ लेकिन उसे यह जानकर प्रसन्नता भी हुई कि समरकंद के शासक में नेकी और परोपकार की भावना कूट-कूट कर भरी है। उसने संदेश मिलते ही अपने सैनिकों को वह सामान व धन वापस लाने के लिए भेजा और बाद में स्वयं भी उमर शेख से मिलने पहुंचा। वह उमर शेख से मिलकर भावुक होकर उनके गले लग गया और बोला, धन्य हैं आप जैसे लोग जिनके दिल में नेकी और परोपकार जीवित है। यह सुनकर उमर शेख बोले, हमने तो सिर्फ इंसानियत निभाई है। ऐसी इंसानियत प्रत्येक इंसान को निभानी चाहिए। यह सुनकर चीनी शासक के मुंह से स्वत: निकला, आप सही कहते हैं। मैं भी आगे से कोशिश करूंगा कि मेरे अंदर भी ऐसी भावनाएं आएं।

६५०) विशिष्टता का अर्थ- बादशाह जमशेद के समय दायें हाथ की उंगली में अंगूठी पहनने की परंपरा थी। उस समय दायें हाथ को बहुत अधिक पवित्र समझा जाता था। एक दिन बादशाह बायें हाथ की उंगली में अंगूठी पहने दरबार में आए। यह देखकर दरबारियों को बहुत आश्चर्य हुआ। एक दरबारी से रहा न गया। वह बोला, जहांपनाह, हमारे यहां तो अंगूठी दायें हाथ की उंगली में पहनी जाती है, क्योंकि यह हाथ पवित्र माना जाता है। यह परंपरा तो वर्षों से चली आ रही है। फिर आपने बायें हाथ की उंगली में अंगूठी क्यों पहन रखी है? आखिर इस हाथ में अंगूठी पहनने के पीछे क्या राज है?

बादशाह मुस्कराकर बोले, यह तो आप सभी को मालूम है कि दायां हाथ बहुत अधिक पवित्र है। फिर इस बात में कौन सी विशिष्ठता है कि पवित्र को ही अधिक पवित्र बनाया जाए? विशिष्टता तो इस बात में है कि अपवित्र और गिरे हुए लोगों को समाज में दायें हाथ जैसा पवित्र और विशिष्ट दर्जा दिलाया जाए, तभी हमारे समाज का भला हो सकता है। बादशाह की बात सुनकर दरबारी निरुत्तर हो गए।

६५१) हीरे का मूल्य - शेख सादी नामी शायर थे। उनकी शायरी के दीवाने सुलतान भी थे। एक बार सुलतान शेख सादी के पास गए और बोले, शेख साहब आप ने अपना पूरा जीवन शायरी कहने और लिखने में गंवा दिया। लेकिन आप जहां पहले थे, वहीं आज भी हैं। आपकी तंगहाली खत्म नहीं हुई। मैं तोहफे के तौर पर आपको एक कीमती हीरा दे रहा हूं। इसे बेच कर आप अपनी आर्थिक तंगी दूर कर सकते हैं। शेख ने हीरे को उलटा-पलटा और फिर सुलतान को लौटाते हुए कहा, यह आप का भ्रम है सुलतान। यह हीरा तो हमारी शायरी के एक शब्द के बराबर भी नहीं है। सुलतान भौचक्के रह गए। बोले, यह असली हीरा है, कोई पत्थर नहीं है। आपको इसकी कीमत का पता नहीं है। शेख ने कहा, हीरा आपके लिए होगा, पर यह समाज को खंडित करता है। आपसी भाईचारे में दरार डालता है। यह खून-खराबे की जड़ है। जब कि शायरी दो दिलों को जोड़ती है और आपसी प्रेम भाव को मजबूत करती है। मेरी शायरी सुन कर लोग चैन की नींद सोते हैं, जबकि हीरा पाकर उनकी नींद गायब हो जाती है। सुलतान ने कहा, इसका सबूत क्या है? शेख सादी ने कहा, चलो मेरे साथ। दोनों एक अनजाने नगर में गए। पहले शेख सादी ने शायरी गाना शुरू किया। उसे सुनने के लिए वहां भारी भीड़ जमा हो गई। सभी मजहब के लोग शांत भाव से उसका आनंद लेने लगे। कोई शोर-शराबा नहीं। अचानक शेख ने उस हीरे को भीड़ के बीच उछाल दिया। अब उसे लूटने के लिए शोर मच गया। धक्का-मुक्की होने लगी। कई लोग घायल हो गए। जिसे हीरा मिला वह चुपके से भाग गया। बचे हुए लोग आपस तब तक लड़ते रहे, जब तक कि शेख ने उन्हें चुप नहीं कराया। लेकिन सुलतान को समझ में आ गया कि शायरी की कीमती की तुलना हीरे-मोती से नहीं की जा सकती।

६५२) सच्ची सेवा - एक बार बगदाद का बादशाह अपने वजीर से नाराज हो गया। उसने वजीर और उसके पुत्र फजल को कैद कर लिया। वजीर को ऐसी बीमारी थी कि ठंडा पानी पीने से उसे नुकसान होता था। लेकिन कैदखाने में गर्म पानी का प्रबंध कैसे हो पाता? तब फजल को एक उपाय सूझा। वह पानी का लोटा एक जलती लालटेन पर रख देता। रात भर में लालटेन की गर्मी से पानी थोड़ा-बहुत गर्म हो जाता। कैदखाने का सिपाही बड़ा निर्दयी था। उसने लालटेन हटवा दी। अब ठंडे पानी से पिता को जो कष्ट होता, वह पुत्र से देखा नहीं जाता था। अब उसने दूसरी युक्ति निकाली। उन दिनों जाड़े का मौसम था। वह कंबल ओढ़कर सोता था। सोने से पहले फजल पानी का लोटा अपने पेट पर रख लेता और ऊपर से कंबल ओढ़ लेता। शरीर और कंबल की गर्मी से पानी थोड़ा-बहुत गर्म हो जाता, लेकिन बेचारा फजल बिल्कुल नहीं सो पाता था क्योंकि सो जाने पर लोटा गिरने का डर बना रहता था। कई दिनों तक जागने के कारण फजल बीमार पड़ गया, लेकिन उसने अपने पिता को कुछ नहीं बताया। एक दिन कैदखाने के एक नौकर ने वजीर को सारी बातें बता दीं। वजीर फजल को गले लगाकर रोने लगा और बोला, तेरे जैसा बेटा मेरे साथ हो तो नरक की भी तकलीफें झेल ले जाऊंगा। तूने अपनी मां की कोख को धन्य कर दिया। यह बात बादशाह तक पहुंच गईं। पिता के प्रति बेटे की भावना ने उसे भी पिघला दिया। उसने बाप-बेटे को आजाद कर दिया।

६५३) कामयाबी का रास्ता - यह घटना खान अब्दुल गफ्फार खां के बचपन की है। काफी कम उम्र से ही उनके भीतर नई-नई बातों को जानने की जिज्ञासा थी। उनके मोहल्ले में एक मौलवी रहते थे। एक दिन खां साहब ने मौलवी से निवेदन किया, मैं जीवन में कामयाबी हासिल करना चाहता हूं। मैं कड़ी मेहनत व संघर्ष से नहीं डरता। मैं केवल आपसे यह जानना चाहता हूं कि कामयाब होने का तरीका क्या है? यह सुनकर मौलवी ने हंसते हुए कहा, बेटा, मैं तुम्हारे इस सवाल का जवाब अभी देता हूं मगर पहले तुम मेरी बकरी को सामनेवाले खूंटे से बांध दो। यह कहते हुए उन्होंने बकरी की रस्सी खां साहब को पकड़ा दी। वह बकरी किसी के काबू में जल्दी न आती थी। बकरी ने तुरंत ही छलांग लगाई और रस्सी खां साहब के हाथ

से छूट गई। रस्सी के छूटते ही खां साहब ने चतुराई से काम लिया और तेजी से भागकर बकरी के पैरों को पकड़ लिया। बकरी पैरों सहित पकड़े जाने से एक कदम भी आगे न जा सकी। यह देखकर मौलवी बोले, शाबास। यही है कामयाबी का तरीका। जड़ पकड़ने से पूरा पेड़ काबू में आ जाता है। अगर हम किसी समस्या की जड़ पकड़ लें, तो उसका हल आसानी से निकाल सकते हैं। जीवन में आगे बढ़ने के लिए किसी बात की जड़ पर पकड़ बनाने की कला बेहद जरूरी है। यही कला मनुष्य को ऊंचाइयों तक पहुंचाती है। खां साहब इसी सूत्र को पकड़कर जीवन में आगे बढ़े और सीमांत गांधी के नाम से जाने गए।

६५४) पानी - करनाल के मैदान में मुहम्मद शाह की सेना को हराकर जब विजयी नादिरशाह दिल्ली पहुँचा तो दोनों बादशाह साथ ही तख्त पर बैठे। नादिरशाह को प्यास लगी। उसने मुहम्मद शाह को पानी मँगाने का संकेत किया। वह पानी आने का इंतजार कर रहा था कि उसे नगाड़े बजने की आवाज सुनाई पड़ी। लगा, जैसे कोई उत्सव होने जा रहा है। वह अभी पूछने ही वाला था कि उसके सामने दस-बारह नौकर हाजिर हुए। किसीके हाथ में रूमाल था तो किसीके हाथ में पानदान। तभी दो-तीन नौकर आगे बढ़े। उनके हाथ में चाँदी का एक थाल था। उसमें बड़े तरतीब से जल भरे हुए गिलास सजे थे। वह थाल बेशकीमती कपड़े से ढका हुआ था। नादिरशाह को जब पता चला कि यह सारा आडंबर उन्हें पानी पिलाने के लिए है तो वह बोला, हम ऐसा पानी नहीं पीते। इसके बाद उसने जोर से आवाज देकर अपने भिश्ती को बुलाया। भिश्ती चमड़े की मशक में पानी लिये तुरंत दौड़ आया। नादिरशाह ने सिर से अपना लोहे का टोप उतारा और उसमें पानी भरकर तुरंत पी गया। फिर उसने मुहम्मद शाह की ओर देखकर कहा, अगर हम भी तुम्हारी तरह पानी पीते तो ईरान से हिंदुस्तान तक न आ पाते। आदमी जितना महान होगा उतना ही नम्र होगा।

६५५) संतोष का धन- आसफउद्दौला एक नेक बादशाह था। जो भी उसके सामने हाथ फैलाता, वह उसकी झोली भर देता। एक दिन उसने एक फकीर को गाते सुना- जिसको न दे मौला उसे दे आसफउद्दौला। बादशाह खुश हुआ। उसने फकीर को एक बड़ा तरबूज दिया। फकीर ने तरबूज ले लिया, मगर वह दुखी था। उसने सोचा कि बादशाह को कुछ बहुमूल्य चीज देनी चाहिए थी। कुछ ही देर बाद एक और फकीर बादशाह के पास से गाता हुआ गुजरा- आसफउद्दौला है कौन भला, देनेवाला तो सिर्फमौला। ये बोल बादशाह को अच्छे नहीं लगे। उसने फकीर को बेमन से दो आने दिए। फकीर दो आने लेकर खुशी से झूमता हुआ वहां से चल दिया। रास्ते में दोनों फकीरों की मुलाकात हुई। पहले फकीर ने दूसरे से पूछा कि उसे बादशाह ने क्या दिया। यह जानकर कि उसे दो आने मिले हैं, वह बोला- तुम्हें तो फिर भी अधिक मिले, मुझे तो सिर्फ तरबूज मिला। फिर पहले फकीर ने दूसरे से दो आने लेकर वह तरबूज उसे बेच दिया। दूसरा फकीर खुशी-खुशी तरबूज लेकर घर लौटा। उसने तरबूज काटा तो उसकी आंखें फटी रह गईं। उसमें अशर्फियां भरी हुई थी। कुछ दिन बाद पहला फकीर फिर आसफउद्दौला के पास खैरात मांगने पहुंचा। आसफउद्दौला ने उसे पहचानकर पूछा- उस दिन जो तरबूज दिया था, वह कैसा निकला? फकीर ने बताया कि उसे तो उसने दो आने में बेच दिया। तब बादशाह ने कहा- तरबूज में अशर्फियां थीं, पर तुमने उसे बेच दिया। तुम्हारे पास संतोष का धन नहीं है, इसलिए दूसरा कोई धन तुम्हारी चाह पूरी नहीं कर सकता।

६५६) मेहनत की कमाई- हातिमताई अपनी दानशीलता के लिए काफी प्रसिद्ध थे। दूर-दूर से लोग उनके पास आते। कोई भी उनके पास से खाली झोली लिए नहीं जाता था। एक दिन हातिम के कुछ मित्रों ने बातचीत के दौरान उनसे पूछा- हातिम, क्या तुम किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हो, जो तुमसे भी श्रेष्ठ हो। हातिम ने सहमति में सिर हिलाया। मित्र चौंक गए। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने जानना चाहा कि वह व्यक्ति आखिर कौन है। हातिम ने उत्तर दिया- एक दिन मैंने बहुत बड़ा भोज दिया और उसमें हजारों लोगों को आमंत्रित किया। दिन भर दावत चलती रही। शाम को मैं जंगल की

ओर घूमने गया। वहां मैंने एक लकड़हारे को देखा, जिसने लकड़ी का एक भारी गट्ठर सिर पर उठा रखा था। मैंने उससे पूछा- तुम आज हातिम के भोज में शामिल क्यों नहीं हुए? कम से कम आज इतनी मेहनत करने की क्या जरूरत थी? तब लकड़हारे ने जवाब दिया- मुझे लगता है कि जो लोग अपने जीविकोपार्जन में स्वयं समर्थ हैं, उन्हें हातिम की दानशीलता पर, उसकी कृपा पर रहने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो अपनी मेहनत से जो कुछ अर्जित करता हूं उसी से अपना पेट भरना चाहता हूँ। यह वृत्तांत सुनाकर हातिमताई ने कहा- मैं उस लकड़हारे को खुद से ज्यादा श्रेष्ठ मानता हूं।

६५७) सादगी का पाठ - ईरानी बादशाह अब्बास शिकार के लिए जंगल में भटक रहे थे। वहां उनकी भेंट एक चरवाहे बालक से हुई, जिसका नाम था मुहम्मद अली बेग। बादशाह उसकी हाजिरजवाबी से बेहद प्रभावित हुए और उसे अपने साथ ले आए। उन्होंने उसे अपनाखजांची बना दिया। अली बेग पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ काम करने लगा। शाह अब्बास की मृत्यु के बाद उनका अल्पवयस्क पोता शाह सफी राजगद्दी पर बैठा। किसी ने शाह के कान भर दिए कि अली बेग राज्य के धन का गलत इस्तेमाल कर रहा है। शाह ने उस प्रकरण की जांच स्वयं अपने पास रखी और एक दिन बिना सूचना के उसकी हवेली का निरीक्षण करने जा पहुंचा। शाह ने हवेली के सब कमरों का निरीक्षण किया। थोड़ी सी वस्तुओं के अतिरिक्त वहां कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा था। शाह निराश लौटने लगा तो खोजियों के संकेत पर शाह की नजर एक बंद कमरे की ओर गई। उसमें तीन मजबूत ताले लटक रहे थे। अब शाह की शंका को कुछ आधार मिला। उन्होंने पूछा, इसमें क्या चीज है, जिसके लिए इतने मजबूत ताले लगाए हैं? ताले खोले गए। शाह ने कमरे के बीच मेज पर एक लाठी, सुराही, कुछ बर्तन, कुछ पोशाक और दो मोटे कंबल देखे। अली बेग ने कहा, जब स्वर्गीय शाह मुझे यहां लाए थे, उस समय मेरे पास यही वस्तुएं थीं और आज भी मेरे पास अपना कहने को यही हैं। मैं इन चीजों से ही प्रेरणा ग्रहण करता हूं और उसी स्तर का जीवन बनाए रखता हूं। युवा बादशाह यह देखकर लज्जित हो गया।

६५८) बुद्धिमान कौन- वजीर के अवकाश लेने के बाद बादशाह ने वजीर के रिक्त पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार बुलवाए। कठिन परीक्षा से गुजर कर ३ उम्मीदवार योग्य पाए गए। तीनों उम्मीदवारों से बादशाह ने एक-एक कर एक ही सवाल किया, मान लो मेरी और तुम्हारी दाढ़ी में एकसाथ आग लग जाए तो तुम क्या करोगे? जहाँपनाह, पहले मैं आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊँगा, पहले ने उत्तर दिया। दूसरा बोला, जहाँपनाह पहले मैं अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊँगा। तीसरे उम्मीदवार ने सहज भाव से कहा, जहाँपनाह, मैं एक हाथ पर से आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊँगा और दूसरे हाथ से अपनी दाढ़ी की। इस पर बादशाह ने फरमाया, अपनी जरूरत नजरंदाज करनेवाला नादान है। सिर्फ अपनी भलाई चाहनेवाला स्वार्थी है। जो व्यक्तिगत जिम्मेदारी निभाते हुए दूसरे की भलाई करता है यही बुद्धिमान है। इस तरह बादशाह ने वजीर के पद पर तीसरे उम्मीदवार की नियुक्ति कर दी।

६५९) लिंकन के दुश्मन- अब्राहम लिंकन अपने मित्रों के प्रति जितने विनम्र एवं मधुर थे, शत्रुओं के प्रति भी उतने ही उदार और सहृदय थे। कई बार अपने विरोधियों को वह मित्र की तरह घर पर बुलाते, उनसे बातचीत करते और बड़ा ही स्नेह दिखाते। लिंकन की यह नीति और व्यवहार उनके कुछ मित्रों को पसंद नहीं आती थी। एक बार उनके एक मित्र ने लिंकन से कहा, आप अपने शत्रुओं के साथ मित्र की तरह व्यवहार क्यों करते हैं, इन्हें तो खत्म कर डालना चाहिए।

इस पर लिंकन ने कहा, मैं तो तुम्हारी ही बात पर चल रहा हूं और शत्रुओं को खत्म करने में लगा हुआ हूं। हां, तुम उन्हें जान से मार डालने की बात सोचते हो और मैं उन्हें मित्र बनाना चाहता हूं।

६६०) सहृदयता का लाभ- उस समय अमेरिका में गृह युद्ध चल रहा था और राष्ट्रपति थे अब्राहम लिंकन एक दिन

लिंकन सैनिकों के शिविर में घायल सैनिकों को देखने गए। उस समय घूमते हुए वह शत्रु सैनिकों के शिबिर में भी चले गए। वहां उन्होंने शत्रु सैनिकों से भी बड़े स्नेह से बात की। जब लिंकन शिबिर से बाहर निकले तो एक वृद्धा ने कहा, आप तो अपने शत्रुओं से भी प्रेमपूर्वक बातें करते हैं, जबकि चाहिए तो यह था कि आप उन्हें खत्म कर देते। वृद्धा की बातें सुनकर लिंकन मुस्कुराए फिर बोले, यह काम मैं उन्हें मित्र बनाकर भी कर सकता हूं। उन्हें दोस्त बनाकर दुश्मनी खत्म करना ज्यादा आसान हैं।

६६१) मित्रता और न्याय- अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के पास उम्र कैद की सजा पाए एक कैदी ने भविष्य में अच्छे नागरिक का जीवन बिताने के संकल्प के साथ सजा माफ किए जाने का प्रार्थनापत्र भेजा। नियमानुसार प्रार्थनापत्र के साथ किसी विशिष्ट व्यक्ति का संस्तुति पत्र नत्थी होना आवश्यक था। प्रार्थनापत्र में कैदी ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा की चर्चा की थी। राष्ट्रपति अब्राहम कैदी के पत्र को पढ़कर प्रभावित हुए, पर उनके कानूनी सलाहकार ने कहा- सर, इस कैदी की माफी की सिफारिश किसी ने नहीं की। नियमानुसार माफी की अर्जी के साथ किसी का संस्तुति पत्र जरूरी है, लगता है यह व्यक्ति मित्रविहीन है।

एक दिन किसी सैनिक का ऐसा ही पत्र लिंकन को मिला। लेकिन पत्र के साथ किसी भी विशिष्ट व्यक्ति की संस्तुति नहीं थी। लिंकन ने सचिव से पूछा- क्या इस सैनिक का कोई बड़ा आदमी परिचित नहीं है, जो इसकी सिफारिश कर सके ?

सलाहकार की बात सुनकर राष्ट्रपति लिंकन ने कागज उठाया और उस पर लिखा- जिसका कोई सिफारिशी नहीं है, उस मित्रविहीन का मैं मित्र बनकर उसकी शेष सजा माफ करने का निवेदन करता हूं। देश के हर असहाय नागरिक को न्याय मिलना चाहिए, इसलिए उसके भविष्य पर विचार करते हुए राष्ट्रपति के रूप में प्रार्थना पत्र स्वीकार करता हूं। दुनिया में मित्रता और न्याय की ऐसी बानगी देने वाले कितने लोग हुए हैं ?

६६२) लिंकन का किताब- अब्राहम लिंकन का बचपन अभावों मे बीता। छोटी उम्र में ही उन्हें कभी नाव चलाकर तो कभी लकड़ी काटकर जीवनयापन करना पड़ता था। उन्हें महापुरुषों की जीवनी पढ़ने में बड़ा आनंद आता था। लेकिन पैसों के अभाव में वह पुस्तकें नहीं खरीद पाते थे। अत: यहां-वहां से मांग लाते, पढ़ते और लौटा आते थे। वह अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन के जीवन से बहुत प्रभावित थे। एक बार उन्हें पता चला कि उनके एक पड़ोसी के पास वाशिंगटन की जीवनी है। उन्होंने पड़ोसी से वह पुस्तक मांगी। एक बार वे दस मील पैदल चल कर पुस्तक मांग कर लाये। पड़ोसी ने पहले तो मना किया मगर बाद में उनकी अत्यधिक रुचि को देखते हुए किताब दे दी। लिंकन ने उसे जल्दी ही लौटाने का वादा किया। लिंकन ने पुस्तक पूरी पढ़ी भी नहीं थी कि एक दिन जोरों की बारिश आई। रात को मूसलाधार वर्षा हुई, छत टपकी और पुस्तक भीग गई। सुरक्षित पुस्तक न लौटाने से चिंतित, शर्मासार नियत समय पर लौटाने गये, नि:संकोच पुस्तक भीगने की बात बता दी। वह भारी मन से पड़ोसी के पास जाकर बोले, मुझसे बड़ा भारी अपराध हो गया है, मेरी लापरवाही से आपकी किताब खराब हो गई है पर मैं आपको नई लाकर दूंगा। पड़ोसी ने उनकी गरीबी देखते हुए प्रश्न किया, नई किस तरह से दोगे? लिंकन बोले, चिंता न करें। मुझे अपनी मेहनत पर पूरा भरोसा है। मैं आपके खेत में पुस्तक के दोगुने दाम के बराबर मजदूरी कर दूंगा। काफी झंझट के बाद फैसला हुआ कि लिंकन उस सज्जन के यहां इतने दिन नौकरी करे, जब तक नई पुस्तक खरीदने जितना पैसा न चुक जाए।

पड़ोसी ने कहा कि लिंकन काम कर दें और किताब अपने पास रख लें। अगले दिन से लिंकन ने खेत में काम शुरू कर दिया। कड़ी मेहनत कर पुस्तक के दाम की भरपाई कर दी और वाशिंगटन की जीवनी उन्हीं की संपत्ति हो गई। इस तरह

लिंकन ने अपनी ग्रंथालय की पहली किताब हासिल की।

६६३) अब्राहम लिंकन बचपन में चाय की दुकान पर नौकरी करते थे। एक दिन एक महिला ने उनसे पाव भर चाय मांगी। लिंकन ने जल्दी-जल्दी तौलकर उसे चाय दी। रात में जब लिंकन ने हिसाब-किताब किया तो उन्हें पता चला कि उन्होंने महिला को आधा पाव ही चाय दी थी। यह सोचते ही लिंकन घबरा गए। पहले तो उन्होंने सोचा कि अगले दिणन जब वह आएगी तो बाकी चाय दे देंगे, मगर फिर ख्याल आया कि अगर वह न आई तो। संभव है वह फिर इधर कदम ही न रखें। लिंकन उसका घर जानते थे। वह तत्काल लालटेन लेकर निकल पड़े। उसका घर तीन मील दूर था। घर पहुंचकर उसने दरवाजा खटखटाया। महिला ने दरवाजा खोला तो लिंकन ने कहा, क्षमा कीजिए, गलती से मैंने आपको आधा पाव चाय ही दी। बाकी चाय ले लीजिए। महिला आश्चर्यचकित रह गई। उसने लिंकन को शाबासी दी और कहा, बेटा तू आगे चलकर जरूर एक महान आदमी बनेगा। उसकी भविष्यवाणी सच साबित हुई।

६६४) सहायक- राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को एक सहायक की आवश्यकता थी। उन्होंने सभी उम्मीदवारों को दफ्तर में बुलाया और दरवाजे के पास रास्ते में पुस्तक डाल दी। सभी उम्मीदवार पुस्तक को कुचलते हुए राष्ट्रपति की मेज तक पहुँचे। एक उम्मीदवार उम्र और ज्ञान दोनों में सबसे कम था। वह सबके बाद दफ्तर में आया। उसने पुस्तक को उठाकर रूमाल से साफ किया और उसे राष्ट्रपति की मेज पर रखकर एक तरफ खड़ा हो गया।

लिंकन ने उसे ही सहायक चुना, दूसरे उम्मीदवारों ने एतराज किया, तो राष्ट्रपति ने कहा- आपकी उम्र, आपके अनुभव और आपके प्रमाण-पत्र लेकर मैं क्या करूँगा ? मुझे तो एक सहायक की आवश्यकता है। इस युवक ने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया है कि इसे अपने से ज्यादा मेरी चिंता है। मैं इस पर पूरी तरह विश्वास कर सकता हूँ।

६६५) बदसूरती- अमरीका के प्रथम राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को यह पूर्वाभास हो गया था कि उन्हें कोई अपनी बंदूक का शिकार बनायेगा। इस विषय में उन्हें कई बार सपना भी आ चुका था और अपने कई मित्रों को उन्होंने यह बात बताई थी।

एक दिन जब वह बाहर गए हुए थे तो एक आदमी उनके सामने बंदूक तान कर खड़ा हो गया और बोला, मरने के लिए तैयार हो जाओ। अब्राहम लिंकन ने उस व्यक्ति को कुछ देर देखा फिर बोले, मुझे सपना तो कई बार आया है कि कोई आदमी मुझे बंदूक से मारेगा परन्तु सपने में जो आदमी मुझे मारने आता है उसका चेहरा तुमसे नहीं मिलता। तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो।

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, मैंने यह सोच रखा था कि जब भी मुझे मुझसे बदसूरत कोई आदमी मिलेगा तो मैं उसे गोली से मार दूंगा।

लिंकन कुछ देर उसे देखते रहे फिर बोले, अगर मैं तुमसे सचमुच ही बदसूरत दिखता हूं तो मैं बदसूरत चेहरा लेकर जीवित भी नहीं रहना चाहता।

यह सुनकर वह आदमी लिंकन को कुछ देर घूरता रहा और फिर अपनी बंदूक नीची करके वहां से चला गया।

६६६) बालिका की सीख- अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन काफी बदसूरत थे लेकिन अपने गुणों के कारण वह देश में अत्यंत लोकप्रिय थे। जनता उन्हें बेहद प्यार करती थी। एक बार एक बालिका ने किसी से लिंकन की प्रशंसा सुनी, तो उसका मन में उनसे मिलने की उत्सुकता जागी। उसने अपने पिता से कहा, पिताजी, मैं राष्ट्रपति को देखना चाहता हूँ क्योंकि सभी उनकी बहुत प्रशंसा करते हैं। मैं देखना चाहती हूँ कि वह कैसे हैं। पिता ने कहा, बेटी, वह अच्छे नहीं हैं। वह बहुत काले और भद्दे हैं। उन्हें देखकर तुम डर सकती हो। इसलिए मैं तुम्हें उनके पास लेकर नहीं जाना चाहता। लेकिन

लड़की अड़ गई। वह बार-बार लिंकन से मिलने की जिद करने लगी। पिता ने टालने की बहुत कोशिश की, तरह-तरह का बहाना बनाया लेकिन अपनी बेटी की जिद के आगे झुकना ही पड़ा। पिता को उसे लिंकन के पास ले जाना पड़ा।

जब वे राष्ट्रपति आवास पर पहुंचे तो लिंकन अपने काम में व्यस्त थे फिर भी उन्होंने बाप-बेटी का भव्य स्वागत किया और आने का कारण पूछा। उस व्यक्ति ने कहा, मेरी बेटी आपकी बहुत बड़ी प्रशंसक है। वह आपसे मिलने के लिए बहुत हठ कर रही थी। इसलिए मैं उसे आपके पास लेकर आया हूं ताकि वह आपको देख सके। इतना सुनते ही लिंकन उठ खड़े हुए और उस बालिका को अपनी गोद में उठाकर अपने छोटे से बगीचे में घूमने लगे। उन्होंने उस बालिका से हंस-हंस कर ढेर सारी बातें की और उसका मनोरंजन किया।

बालिका को खुश देखकर लिंकन भी बेहद खुश हो रहे थे। जब वे लौटकर जाने लगे तो बालिका ने कहा, पिताजी, हमारे राष्ट्रपति तो बहुत सुंदर हैं। बहुत प्यारे हैं। आप तो कहते थे कि वे भद्दे हैं, बदसूरत हैं, मैं उन्हें देखकर डर जाऊंगी। मगर मुझे तो जरा भी डर नहीं लगा। मुझे तो उनके साथ बड़ा मजा आया। यह सुनकर पिता ने लज्जा से नजरें झुका लीं। बालिका ने उसे बहुत बड़ी सीख दी थी।

६६७) मनुष्यता का पाठ- यह उन दिनों की बात है, जब अब्राहम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति थे। अमेरिकी सेना की एक टुकड़ी में एक युवक काम करता था। सेना की उसी टुकड़ी में युवक का एक करीबी मित्र भी काम करता था। एक बार युवक का मित्र बीमार पड़ गया। मित्र के घर में कोई नहीं था। अब युवक को दो-दो काम संभालने पड़ते थे। दिन में वह बीमार मित्र की सेवा-हल में लगा रहता और रात में पहरेदारी करता था। एक दिन जब वह पहरा दे रहा था तो अत्यधिक थकान के कारण उसे नींद आ गई और वह काम पर ही सो गया। कुछ ही देर में वह सोता हुआ पकड़ लिया गया। युवक को गिरफ्तार कर लिया गया और उसके खिलाफ सैन्य अदालत में मुकदमे की कार्यवाही शुरू हो गई। युवक ने किसी तरह अब्राहम लिंकन के पास प्रार्थनापत्र भेजकर निवेदन किया कि उसे क्षमा किया जाए। उसने अपने प्रार्थनापत्र में लिखा कि मित्र की सेवा में लगे होने के कारण ही काम में उदासीनता हुई है। उसके पत्र का लिंकन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उस युवक से मिलने की इच्छा जताई। युवक से मिलकर वह बोले, तुम जानते थे, यदि तुम दिन में मित्र की सेवा करोगे, तो रात में पहरे पर जरूर सो जाओगे। फिर भी तुमने अपने मित्र की सेवा क्यों की? युवक बोला, वह मेरा मित्र था श्रीमान्। घर में उसकी देखभाल के लिए कोई नहीं था। एक मनुष्य का यह परम धर्म है कि जब उसका कोई अपना संकट में पड़े, तब वह उसकी सहायता अवश्य करे। लिंकन युवक के उत्तर से बहुत अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने युवक को क्षमादान देते हुए कहा, देखो जब तक तुम सेना में काम करो, अपनी मनुष्यता को नहीं छोड़ना चाहिए। लिंकन की क्षमाशीलता ने युवक को सच्चा सैनिक बना दिया।

६६८) छोटा और बड़ा काम- अब्राहम लिंकन जब अमेरिका की धारा सभा के सदस्य चुने गए तो उनका अभिनंदन करने के लिए अपार मानव समूह उमड़ पड़ा। उसमें अनेक जाने-माने और धनी लोग थे। जब ये सारे लोग लिंकन के घर पहुँचे तो वे अपनी गाय दुह रहे थे। कुछ समय तक विस्मय का वातावरण बना रहा। आखिर जब एक सज्जन से न रहा गया तो उसने पूछ डाला, अरे, आप देश के अग्रणी नेता होकर अपने हाथ से गाय दुह रहे हैं। लिंकन ने मुसकराकर उत्तर दिया, भाइयो, काम कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। हम लोग श्रम से डरते हैं और अपना काम औरों पर छोड़ देते हैं। यह हमारे भीतर की एक बड़ी कमी है।

६६९) मां की याद - अब्राहम लिंकन ने बहुत गरीब परिवार में जन्म लिया था। अत्यंत निर्धनता की स्थिति में भी उन्होंने किसी तरह मेहनत-मजदूरी करते हुए अपनी पढ़ाई पूरी की और अमेरिका के राष्ट्रपति बने। वह अपने देश की

जनता के बीच काफी लोकप्रिय थे। लोग उनका काफी सम्मान करते थे। इतने ऊंचे पद पर पहुंच कर भी उनमें काफी विनम्रता थी, लेकिन उनके चेहरे पर अकसर उदासी छायी रहती थी। उत्सुकतावश एक महिला ने साहस करके उनसे इसका कारण पूछ ही लिया। लिंकन थोड़ी देर चुप रहे, फिर गहरी सांस लेकर बोले, कितना अच्छा होता कि आप मुझसे यह प्रश्न न पूछतीं। जब मैं छोटा ही था तो मैं अपनी मां के स्नेह से वंचित हो गया। मेरी मां बहुत धर्मपरायण और संस्कारी थीं। यह मेरी मां की सीख थी कि पहले दूसरों के बारे में विचार करो और बाद में अपने बारे में सोचो। मैं यही करता हूं। आज मुझ में जो कुछ अच्छाई नजर आ रही है उसका श्रेय केवल मेरी मां को जाता है। इतनी अच्छी मां को बचपन में खोकर आज तक उसे भुला नहीं पाया हूं और इसी कारण दुखी रहता हूं। लगता है मेरा यह दुख जीवन के समाप्त होने के साथ ही जाएगा। आप नहीं जानतीं कि अमेरिका का सब से अधिक सुखी समझा जानेवाला आदमी अंदर से कितना दुखी है। लिंकन यह कहते-कहते बहुत भावुक हो गए और कुछ अधिक न बोल सके। लिंकन की बात सुनकर वह महिला शांत हो गई और मन ही मन उनकी मां की प्रशंसा करती चली गई।

६७०) लिंकन से कोई पूछ रहा था कि जब आप घंटा भर व्याख्यान देते हैं तो आपको कितना सोचना पड़ता है। लिंकन ने कहा, बिल्कुल नहीं। जब घंटे भर ही बोलना है तो सोचने की जरूरत ही क्या है? उसने पूछा, जब आपको दस मिनट तक बोलना पड़ता है तब? तो लिंकन ने कहा, काफी मेहनत उठानी पड़ती है और जब दो ही मिनट बोलना होता है तब तो मैं रात भर सो नहीं पाता। क्योंकि कचरे को हटाना पड़ता है। हीरे को छांटना पड़ता है। जब वाणी मन में ठहरती है तब टेलीग्रैफिक हो जाती है, तब बिल्कुल संक्षिप्त हो जाती है। ये उपनिषद् ऐसे ही लोगों ने लिखे हैं। इसलिए बहुत छोटे में पूरे हो जाते हैं। सब संक्षिप्त हो जाता है। साराभूत रह जाता है- निचोड़। जो भी अनावश्यक है, वह हट जाता है।

६७१) दयालुता - अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन अपने एक मित्र के साथ सभा में जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक गड्ढे में एक सूअर का बच्चा कीचड़ में फँसकर तड़पता हुआ दिखाई दिया। वे तुरन्त बग्घी से उतरे और उस गड्ढे में उतरकर उन्होंने उस बच्चे को बाहर निकाला। सभा आरंभ होने को कम समय था और उनके कपड़े गंदे हो गये थे। वापस न जाकर उन्होंने हाथ-पैर धोये और सभा में पहुँचे। हर व्यक्ति उनके गंदे कपड़े देखकर उस मित्र से कारण पूछता और सारी घटना जानकर लिंकन के प्रति उसके दिल में आदर का भाव और बढ़ जाता। उनका परिचय कराते हुए सभा के आयोजक ने कहा, हमारे राष्ट्रपति कितने दयालु हैं। एक सूअर के पिल्ले को गड्ढे में तड़पते देखकर उन्होंने अपने कपड़ों की परवाह किये बिना उसे तुरन्त बाहर निकाल लिया। वह वक्ता और आगे बोल ही रहा था कि लिंकन उठ खड़े हुए और बोले, आप लोगों को कुछ गलतफहमी हुई है। वह पिल्ला तड़प रहा था इसलिए नहीं, वरन् उसे तड़पते देखकर मेरा स्वयं का अन्त:करण तड़पने लगा था; अत: उसके लिए नहीं बल्कि अपने लिए गड्ढे में गया और उसे बाहर निकाल लिया।

६७२) गुणी आलोचक को दायित्व- अब्राहम लिंकन अमरीका के लोकप्रिय राष्ट्रपति थे। आज भी उनका नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। अमरीका का ही एक नेता बड़ा खुराफाती था। वह शैतान मस्तिष्क का मालिक था। अब्राहम लिंकन से वह दुश्मनी रखता था और सदैव उनसे कटा-कटा सा रहता था। एक दिन अब्राहम लिंकन ने उस दुष्ट व्यक्ति को रक्षामंत्री जैसा महत्वपूर्ण पद सौंप दिया। जो व्यक्तिगत रूप से उनका बहुत बड़ा आलोचक था। वह हर समय राष्ट्रपति की पीठ पीछे निंदा करता और तरह-तरह की उपाधियां देकर उनका उपहास भी करता।

यह देखकर लिंकन के करीबी मित्र दौड़े-दौड़े उनके पास आए और शिकायत करने लगे कि आपने ये क्या किया वह तो आपके बारे में उल्टा-सीधा बकता रहता है। यहां तक कि वह आपको गोरिल्ला कहता है और भी बहुत-सी बकवास

भरी बातें आपके बारे में करता है, कहां तक सुनाए ? उसके जैसे दुष्ट व्यक्ति को रक्षा मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पद पर नहीं रहना चाहिए। लिंकन ने मुस्कराते हुए कहा- आप लोग चिन्ता न करें। मैं ये बातें अच्छी तरह से जानता हूं। अच्छा। लेकिन वह तो अपने भाषणों में जनता के बीच आपकी कई बार आलोचना कर चुका है। यह भी मुझे मालूम है। लिंकन ने कहा। जब आपको सब कुछ मालूम है तब आपने इतने महत्वपूर्ण पद पर ऐसे गैर जिम्मेदार शख्स को क्यों बैठा दिया ? मित्र तनिक क्रोधपूर्वक बोले। शांत स्वर में लिंकन बोले- तो क्या हुआ ? मित्रगण भौचक्के रह गये। लिंकन के मुख पर स्वाभाविक मुस्कान देखकर वे चिढ़ गए। तब लिंकन ने अपने साथियों को समझाया- आप लोग मेरे इस कदम को समझ नहीं पाए इसलिए आप लोग मेरे इस निर्णय को अनुचित समझ रहे हैं। यह तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं कि मेरा वह आलोचक रक्षा विभाग के लिए एकदम उपयुक्त व्यक्ति है। रक्षामंत्री के रूप में वह सही और सफल है और यह भी सच है कि वह यदा-कदा लिंकन की आलोचना करता रहता है। लेकिन इससे हम उसके अन्य गुणों को अनदेखा नहीं कर सकते। उसके अधिकतर गुण देशहित के उपयुक्त हैं। शायद आप सब का कहना ठीक हो कि वह व्यक्ति मेरा प्रशंसक नहीं है, मुझसे घृणा करता है, परंतु यह मत भूलिए कि देश व्यक्ति से ऊपर है। माना कि वह मेरा भक्त नहीं लेकिन राष्ट्रभक्त तो है ही और नि:संदेह एक अत्यंत योग्य मंत्री भी है। उसे जो दायित्व सौंपा गया है उसका निर्वाह वह कुशलतापूर्वक कर रहा है।

मैं ऐसे सफल और देशभक्त व्यक्ति की अवहेलना कैसे कर दूं ? मुझे लिंकन-भक्त नहीं देशभक्त की आवश्यकता है। और, इसमें कोई शक नहीं कि वह देशभक्त है। मेरा तो मानना है कि ऐसे योग्य रक्षा मंत्री की सेवाओं से अमेरिका को वंचित करना राष्ट्र के प्रति अपराध होगा। लिंकन के मुंह से यह सुनकर उनके प्रशंसक अभिभूत हो उठे। यह सुनकर मित्रगण चकित रह गए। अब वे क्या कहते, चुपचाप लौट गए। उनके मन में लिंकन के प्रति श्रद्धा और बढ़ गई।

६७३) मन के जीते जीत- अमेरिका में रहनेवाला एक व्यक्ति मात्र ३१ वर्ष की आयु में व्यवसाय में हार गया। अगले ही वर्ष यह विधानसभा के चुनावों में भी हार बैठा। ३४ वर्ष की आयु में उसने पुन: व्यापार आरंभ किया और घाटा दे बैठा एक साल बाद वह इस कदर दिवालिया हो गया कि उसकी प्रेमिका ने भी उसका त्याग कर दिया। ३८ वर्ष की आयु में उसे पुन: चुनावों में हार का मुंह देखना पड़ा। ४३ वर्ष की उम्र में हाउस ऑफ रिप्रेजेंटिव्ज के चुनाव में भी हार गया। दुर्भाग्य ने उसका अभी भी पीछा नहीं छोड़ा। अगले ही साल वह फिर इन्हीं चुनावों में और तीन साल बाद सीनेट के चुनाव में हार गया। ५३ वर्ष की आयु में उसने राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ा और परिणाम हार के रूप में आया। किंतु ६० वर्ष की आयु में उसे राष्ट्रपति चुन लिया गया। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत कहावत को अक्षरश: प्रमाणित करनेवाला यह व्यक्ति था अब्राहम लिंकन।

६७४) अपंगों के हितैषी - फ्रेंकलिन डी रुजवेल्ट युवावस्था में ही पोलियो के शिकार हो गए थे। इसके बावजूद वह अमेरिकावासियों के लिए संघर्ष करते रहे। वह वर्ष १९३२ में अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए।

अमेरिका के सर्वोच्च पद पर आरूढ़ व्यक्ति अपंग है, यह जानकर जार्जिया वार्मस्प्रिंग फाउंडेशन नामक एक गैरसरकारी संस्था ने उनके जन्मदिवस पर पोलियो उन्मूलन के लिए अनुसंधान कार्य कराने का संकल्प लिया। राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने स्वयं पोलियोग्रस्त लोगों की सेवा-चिकित्सा में रुचि ली।

उन्होंने अपनी जीवन भर की कमाई अपंगों हेतु अनुसंधान कार्य के लिए समर्पित कर दी।

वर्ष १९३८ में पोलियो के विषाणु का पता लगाया जा सका। वर्षों की खोज व अनुसंधान के बाद पोलियो का टीका भी विकसित किया।

राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने उस समय कहा था, मुझे आज इस बात से अत्यधिक संतोष है कि इस सफल अनुसंधान के कारण हम भविष्य में एक दिन अपंगता की घातक आशंका से मुक्ति पा लेंगे।

६७५) उदारता का पाठ - यह उन दिनों की बात है जब रूजवेल्ट किसी पारिवारिक समारोह में आमंत्रित थे। मेजबान अमेरिका के एक विशिष्ट व्यक्ति थे। निजी समारोह होने के कारण रूजवेल्ट अपनी पत्नी को भी साथ लाए थे। वहां पहुंचकर रूजवेल्ट गणमान्य लोगों के साथ बातचीत में व्यस्त हो गए और उनकी पत्नी विशिष्ट व्यक्तियों के लिए बनाए गए पंडाल में अपने शुभचिंतकों के साथ बैठ गई। उस जगह पर कुछ खास लोग ही जा सकते थे। तभी एक वृद्ध सज्जन श्रीमती रूजवेल्ट के पास आए और बोले, महोदया, मेरी पत्नी आपसे मिलना चाहती है मगर यहां के सुरक्षा कर्मचारी उन्हें आने नहीं दे रहे। क्या आप उन्हें अपने पास बुलवा सकती हैं? इससे मुझे और मेरी पत्नी को बड़ी खुशी होगी। श्रीमती रूजवेल्ट ने पहले कुछ सोचा फिर उस सज्जन से पूछा, आपकी पत्नी की उम्र क्या है? वह सज्जन बोले, यही कोई अस्सी बरस। यह सुनते ही श्रीमती रूजवेल्ट उठकर बोलीं, फिर तो वह मुझसे उम्र में काफी बड़ी हैं और साथ ही सम्माननीय नागरिक भी। बुजुर्ग नागरिकों को आदर देना सभी का कर्त्तव्य होना चाहिए। उन्हें नहीं बल्कि मुझे उनके पास जाना चाहिए। यह कहकर वह सुरक्षाकर्मियों की अनदेखी कर वृद्ध सज्जन के साथ उनकी पत्नी से मिलने चल पड़ीं। फिर वहां से वह उन्हें साथ लेकर आईं। वृद्ध ने उनके प्रति आभार प्रकट किया। बाद में जिसे भी इस घटना की जानकारी मिली, उसने श्रीमती रूजवेल्ट के इस उदार भाव की खूब प्रशंसा की।

६७६) असाधारण सफलता - यह उन दिनों की बात है जब रूजवेल्ट अमेरिका के राष्ट्रपति थे। एक बार एक राजदूत रूजवेल्ट से मिलने आया। वह उनसे मिलकर काफी प्रभावित हुआ। फिर उसने पूछा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपसे एक निजी प्रश्न पूछना चाहता हूं। रूजवेल्ट बोले, आप नि:संकोच पूछ सकते हैं। राजदूत बोला, सर, क्या जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए असाधारण योग्यता का होना अनिवार्य है? क्या आप भी असाधारण योग्यता के कारण इस पद पर पहुंचे हैं या फिर साधारण होने पर भी असाधारण योग्यता हासिल की जा सकती है? रूजवेल्ट राजदूत का यह प्रश्न सुनकर मुस्कराने लगे और बोले, मेरे विचार में जीवन में सफलता प्राप्त करने अथवा महान बनने के पीछे दो प्रमुख बातें महत्व रखती हैं। पहली तो यह कि असाधारण प्रतिभावाले लोग कठिन से कठिन समस्याओं को भी अपनी प्रतिभा व कौशल के बूते हल कर एक महान शख्सियत के रूप में उभरते हैं। साधारण लोगों को ऐसी सफलता नहीं मिल सकती। लेकिन दूसरी तरह से भी सफलता तब मिल सकती है, जब साधारण योग्यतावाला मनुष्य किसी काम को करने में तन-मन व एकाग्रता से जुट जाए। ऊपर से बेहद मुश्किल दिखनेवाला कार्य भी वास्तव में सहज ही होता है। प्रत्येक मनुष्य उसे कर भी सकता है किंतु लोग आलस्य के चलते ऐसा नहीं करते हैं। इसलिए दूसरी तरह से सफलता भी केवल उन्हीं लोगों को मिलती है जो तन्मयता व धैर्य से काम करते हुए अपने लक्ष्य को पाने में लगे रहते हैं। मुझमें भी कोई असाधारण प्रतिभा नहीं है। हां, मुझमें काम करने का जुनून है और मेरे इसी जुनून ने मुझे आज इस पद पर पहुंचाया है। इसलिए लोग साधारण योग्यता होने पर भी असाधारण सफलता हासिल कर सकते हैं। जीवन में सफलता के लिए उन्हीं साधारण गुणों की आवश्यकता है जो हर मनुष्य में है।राजदूत रूजवेल्ट के जवाब से संतुष्ट हो गया।

६७७) मदद- अमेरिका में एक बार बड़ा युद्ध हो रहा था, सेना कहीं बाहर जा रही थी। रास्ते में एक बड़ा शहतीर इस तरह पड़ा हुआ कि उससे निकलने में बड़ी रुकावट होती थी। सैनिक अधिकारी ने सिपाहियों से उसे हटाने का आदेश दिया। सिपाही आज्ञा का पालन करने लगे, परंतु शहतीर बहुत भारी था इसलिए वह उठ नहीं रहा था। अधिकारी दूर खड़ा-

खड़ा आदेश देकर चीख चिल्ला रहा था। इस प्रकार के कटु शब्दों के प्रयोग से सिपाहियों में कोई उत्साह नहीं आ रहा था। इतने में एक मामूली से आदमी ने अधिकारी के पास आकर विनम्र शब्दों में कहा- यदि आप स्वयं भी इन सिपाहियों के साथ जुट जाएँ तो यह काम आसानी से हो सकता है। अधिकारी ने झुंझलाकर कहा- तू देखता नहीं, मैं कमांडर हूँ। मेरा काम हुक्म देना है, कुली का काम करना नहीं। व्यक्ति ने अपनी गलती पर क्षमा माँगी और खुद सिपाहियों के साथ जुट गया। अंतत: शहतीर को उठाकर अलग पटकवा दिया गया। उस मामूली पोशाकवाले आदमी ने फिर जाकर अधिकारी के सम्मुख अभिवादन किया और कहा, यदि कभी फिर ऐसी कठिनाई आए तो आप मुझे बुलवा ले। मैं स्वयं मदद करके कठिन कामों को आसान कर दिया करूँगा। कमांडर ने उपेक्षा से भौहें चढ़ाते हुए कहा, तेरा क्या नाम है और कहाँ रहता है? उस आदमी ने नम्रता से कहा, महोदय। मुझे जॉर्ज वाशिंगटन कहते हैं और इस देश के राष्ट्रपति के पते पर सूचना देने से वह मुझे मिल सकती है। अमेरिका के प्रेसीडेंट जॉर्ज वाशिंगटन को अपने सामने खड़ा देखकर कमांडर के होश गुम हो गए। उसने गिड़गिड़ाकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी और भविष्य में खुद भी सिपाहियों को कामों में मदद देने की प्रतिज्ञा की।

६७८) वक्त की पाबंदी - अमेरिका के पहले राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन को सादगी ही नहीं, वक्त की पाबंदी भी बहुत पसंद थी। वह अपना हर काम नियत समय पर करते और जो ऐसा नहीं करता उसे सही रास्ते पर लाने की कोशिश भी करते थे। उनके नौकर-चाकर भी उनके इस स्वभाव से परिचित थे, इसलिए वे भी ठीक समय पर कार्य करने के आदी थे। उनके राष्ट्रपति बनने के कुछ महीने बीत गए थे, तभी अमेरिकी कांग्रेस के चुनाव हुए। चुने गए नए कांग्रेसी सदस्यों को वॉशिंगटन ने अपने आवास पर भोज के लिए आमंत्रित किया। उद्देश्य यह था कि सभी का परस्पर परिचय भी हो जाए और कर्त्तव्यों का निर्धारण भी कर दिया जाए। लेकिन तय समय पर वे सदस्य नहीं पहुंचे। हालांकि उन्हें आने में कुछ ही देर का विलंब हुआ था। मेहमानों ने आकर देखा कि वाशिंगटन भोजन कर रहे हैं। सदस्य हैरत में पड़ गए। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि अतिथियों के आए बगैर राष्ट्रपति भला कैसे भोजन कर रहे हैं। जॉर्ज वॉशिंगटन ने जब उनके चेहरे पर आश्चर्य का भाव देखा तो बोले, भाइयो, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। मैं सभी कार्य वक्त पर करता हूं। इसलिए मेरा रसोइया कभी यह नहीं देखता कि सब के सब निमंत्रित अतिथि आ गए हैं या नहीं। वह तो निर्धारित समय पर भोजन सामने रख दिया करता है। सदस्यों को अपनी गलती का अहसास हुआ। उन्होंने राष्ट्रपति से क्षमा मांगी। वॉशिंगटन ने उन्हें समझाते हुए कहा, जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है, इसलिए अपने कार्य समय पर करें ताकि अच्छे परिणामों की प्राप्ति हो।

६७९) प्रगति का रास्ता- जॉर्ज वाशिंगटन को अमेरिका का भाग्य निर्माता कहा जाता है। अमेरिका को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जाल से मुक्त कराने का श्रेय उन्हीं को है। ब्रिटेन से युद्ध समाप्त होने तथा पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद उन्होंने सेना भंग करने का निश्चय किया। जॉर्ज वाशिंगटन का यह निर्णय सुनकर अमेरिका के छोटे-बड़े सेनाधिकारी परेशान हो गए और उनके पास पहुंचकर बोले, श्रीमान्, क्या यह सच है कि आप सेना भंग करना चाहते हैं? वाशिंगटन बोले, हां, मैंने ऐसा ही सोचा है। यह सुनकर सेनाधिकारी आश्चर्य से बोले, मगर सेना तो राष्ट्र की रीढ़ होती है। इसके बिना कोई राष्ट्र स्थिर नहीं रह सकता। इस पर वाशिंगटन ने कहा, इस सत्य को मैं भी जानता और मानता हूं। इस पर एक युवा सेनाधिकारी ने कहा, फिर भी आप सेना भंग कर रहे हैं। इससे अमेरिका का क्या भविष्य होगा? इसके बाद अन्य सेनाधिकारियों ने भी अपने-अपने तरीके से चिंता जताई। सबकी बातें सुनकर वाशिंगटन सहज होकर बोले, आप सबको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। अमेरिका का भविष्य बहुत शानदार होगा। सभी सेनाधिकारी हैरत में पड़ गए। उनके भाव को पढ़कर वाशिंगटन मुस्कराते हुए बोले, मित्रों। मैं अपने देश के प्रत्येक नागरिक को सैनिक बनाना चाहता हूं। राष्ट्र

की सुरक्षा का भार केवल सेना के ही कुछ व्यक्तियों पर क्यों डाला जाए, सारी जनता ही सैनिक वेश क्यों न धारण करे? यह जवाब सुनकर एक सेनाधिकारी ने पूछा, पर क्या यह व्यावहारिक रूप से संभव है? वाशिंगटन बोले, क्यों नहीं। हम असंभव को संभव बनाएंगे, तभी महान सफलता हासिल कर सकेंगे और तभी हमारा देश विश्व रंगमंच पर अधिक से अधिक ताकतवर होकर उभरेगा। वाकई उन्होंने प्रत्येक नागरिक में सैनिक की आत्मा भरने की बात कहकर देश को प्रगति की ओर अग्रसर कर दिया। आज पूरा विश्व उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखता है।

६८०) कर भला, हो भला- नदी किनारे खड़ी एक महिला जोर-जोर से चिल्ला रही थी- बचाओ-बचाओ। कोई मेरे बच्चे को बचाओ। उसकी करुण पुकार को सुनकर लोग दौड़े आये, किन्तु कोई भी नदी में कूदने का साहस न कर सका। उसका बच्चा नदी में डूब रहा था। इतने में एक नवयुवक दौड़ता हुआ आया और नदी में कूद गया। लोग एकटक देख रहे थे। वह बच्चा बीच भंवर में फंसा हुआ था। उस बच्चे को बचाते-बचाते कई बार तो वह नवयुवक भी भंवर में डूबता जान पड़ा। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी। अंत में वह नवयुवक उस बालक को अपनी पीठ पर लादे तैरता हुआ किनारे पर आ गया। दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राणों पर खेल जानेवाले उस नवयुवक का नाम था, जॉर्ज वाशिंगटन, जो आगे चलकर अमेरिका का प्रथम राष्ट्रपति बना।

६८१) एक बालक में शिक्षा प्राप्त कर कुछ बनने की तीव्र इच्छा थी पर उसके माता-पिता बहुत ही निर्धन थे। वे उसकी पढ़ाई का खर्च नहीं उठा सकते थे। बालक शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई न कोई तरीका ढूंढने में लगा रहा। एक दिन वह पास के एक स्कूल में सीधा प्राचार्य के पास गया और घर की दयनीय आर्थिक स्थिति के बारे में बताकर पढ़ने की इच्छा जाहिर की।

प्राचार्य बोले, यदि मैं तुम्हारी नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था कर दूं तो तुम बदले में स्कूल की क्या सेवा करोगे ? बालक ने तुरंत उत्तर दिया, सर, मैं रोज सुबह-शाम स्कूल की सफाई कर दिया करूंगा। अगले ही दिन से उसने मन लगाकर स्कूल की सफाई का काम शुरू कर दिया और उसकी नि:शुल्क पढ़ाई शुरू हो गई। यह बालक था जॉर्ज वाशिंगटन जो आगे चलकर अमेरिका का पहला राष्ट्रपति बना।

६८२) संकल्प की स्मृति- आइजन हावर अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए। लोगों की बधाइयां मिलने लगीं। कई लोग उनसे मिलने आए, कई लोगों ने उन्हें संदेश या उपहार भेजे। उनका भवन शुभ कामना संदेश वाले कार्डों, गुलदस्ता और उपहारों को देखने बैठे। उनके बीच एक झाड़ू भी था, जिसके साथ एक लिफाफा लगा था। आइजन हावर ने सारी कीमती सौगातें सरकारी भंडार गृह में जमा करवा दीं। मगर, झाड़ूवाला उपहार अपने कार्यालय में भिजवा दिया। कार्यालय में भी उसे ऐसी जगह रखा गया, जहाँ से वह राष्ट्रपति को हमेशा नजर आता रहे। इससे जब कोई व्यक्ति उनके कक्ष में उनसे मिलने के लिए आता, तो उसकी नजर भी उस झाड़ू पर अवश्य पड़ती थी। किंतु झाड़ू कार्यालय में इस तरह सजाकर सामने क्यों रखा है- यह पूछने की हिम्मत कोई नहीं कर पाता था।

एक बार किसी अन्य देश के राष्ट्रपति अमेरिका के अतिथि हुए। वे आइजन हावर के साथ उनके कार्यालय में बैठे हुए थे। उनकी नजर भी बार-बार उस झाड़ू पर जा रही थी। तब उनकी मनोदशा को भांपते हुए आइजन हावर ने खुद ही मुस्कराते हुए कहा, आप इस झाड़ू को देखते हैं, फिर मेरी ओर देखकर कुछ सोचते हैं। आपकी आंखों से ऐसा लग रहा है कि आपके मन में जिज्ञासा उठ रही है कि राष्ट्रपति भवन के शो केस में यह झाड़ू क्यों रखा है? असल में मैं जब चुनकर आया तब लोगों ने बहुत सारी सौगातें भेजीं। उन्हीं में मुझे यह झाड़ू भी मिला। इसीके साथ एक चिट्ठी भी थी, जिसमें लिखा था- आप चुनाव के दिनों में ढिंढोरा पीटते थे कि मैं भ्रष्टाचार और गंदगी को साफ करूंगा। इसलिए, आपको भेंट में यह

झाडू भेज रहा हूं ताकि आपको सफाई करने की स्मृति बनी रहें।

मुझे और सौगातों ने इतना प्रभावित नहीं किया, जितना इस झाडू ने किया। इसीलिए इसे मैंने ऐसी जगह पर रखा है ताकि मेरी नजर इस पर रोज पड़ती रहे और मैं अपना वादा भूलूं नहीं।

६८३) ब्रिटेन के मशहूर प्रधानमंत्री चर्चिल को एक बार किसी सभा में व्याख्यान देना था। वहाँ काफी लोग उपस्थित थे। जमा भीड़ की ओर इशारा करते हुए उनके एक सहयोगी ने कहा, आप इतने लोकप्रिय हैं मिस्टर चर्चिल कि आपको सुनने के लिए यहाँ पाँच हजार से ज्यादा लोग आए हैं। इस पर चर्चिल ने तटस्थ भाव से कहा, मित्र। ये भाषण सुनने नहीं, तमाशा देखने आए हैं। यदि कल मुझे इसी स्थान पर फांसी देने की घोषणा कर दी जाए तो आप को यहां ५० हजार की भीड़ मिलेगी।

६८४) छुपी हुई प्रतिभा - इंग्लैण्ड के एक गांव में चर्चिल नाम का बालक रहता था। उसका मन स्कूल में बिल्कुल नहीं लगता था। वह ज्यादातर समय अपने घर के अहाते में रेत और पत्थरों से युद्ध का मैदान बनाकर सेना को तैनात करने का चक्रव्यूह रचा करता था। उसके घरवाले इन हरकतों से बहुत परेशान थे। एक दिन इंग्लैंण्ड के सेनापति उसके घर आए। घर के परिसर में चर्चिल के युद्ध का मैदान देखकर वह पूछ बैठे, बेटा, अगर शत्रु ने पूर्व दिशा से आक्रमण कर दिया तो तुम क्या करोगे? चर्चिल बोला, आपने ध्यान से नहीं देखा, इसके बायीं तरफ नदी है। उस पर बने पुल को काट दिया जाएगा तो शत्रु वहीं धरा रह जाएगा। सेनापति ने फिर पूछा, अगर सेना ने उत्तर दिशा से आक्रमण कर दिया तो क्या होगा? बालक बोला, आप समझने की कोशिश कीजिए। इस रास्ते से जैसे ही सेना लौटेगी, यहां पर तैनात तोपें बारुद उगलना शुरू कर देंगी। सेनापति बालक की इस बात से बहुत प्रभावित हुए। वह उसके पिता से बोले, आपके घर हीरे ने जन्म लिया है। मैं इस हीरे को तराश कर मुकुट में लगाने योग्य बना दूंगा। यह मेरा वादा है। बालक के पिता बौखलाकर बोले, जिस बालक को आप हीरा समझकर तराशना चाहते है, वह तो सारे मोहल्ले में झगड़ा करता रहता है। यह किसी योग्य बन पाएगा, मुझे संदेह है। सेनापति ने कहा, आप केवल इसको मेरे सुपुर्द कर दें, बाकी कार्य मेरा है। सेनापति की बात मानकर बालक के पिता ने बालक को उनके संरक्षण में छोड़ दिया। कुछ सालों के बाद सेनापति उसी बालक को लेकर उसके पिता के पास आए और बोले, आपका बेटा आज इंग्लैण्ड की सेना का सर्वश्रेष्ठ सैनिक है। आप उसकी प्रतिभा को पहचान न सके पर मैंने पहचान लिया। अकसर अभिभावक बच्चों की छुपी हुई प्रतिभा का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाते। वही बालक चर्चिल आगे चलकर इंग्लैंड का प्रधानमंत्री बना।

६८५) सफलता का श्रेय- एक पत्रकार सम्मेलन में प्रेस को सम्बोधित करते समय राष्ट्रपति केनेडी से प्रश्न किया गया कि आपकी सफलता का श्रेय किसे दिया जाना चाहिए ? केनेडी ने उत्तर दिया असफल व्यक्ति को। मैं जिस किसी असफल व्यक्ति से मिलता हूँ तो उसकी असफलता के कारणों को जानने की कोशिश करता हूँ तथा उन अनुभवों का लाभ उठाने का प्रयास करता हूँ।

६८६) सादगी का पाठ- इंग्लैंड के प्रधानमंत्री ग्लैडस्टोन किसान के बेटे थे। वे अत्यंत सादा जीनव व्यतीत करते थे। यहां तक कि वे अपने कपड़े भी खुद साफ करते और सुबह-सुबह साइकिल पर झोला लटका कर सब्जी खरीदने निकल जाते थे। एक बार रेल में सफर करने के दौरान एक स्टेशन पर किसी अखबार का संपादक उनसे मिलने आया। उसका ख्याल था कि प्रधानमंत्री को अवश्य ही प्रथम श्रेणी के डिब्बे में होना चाहिए, इसलिए उसने फर्स्ट क्लास के तीनों डिब्बों में उन्हें खोजा पर वह नहीं मिले। तभी प्रथम श्रेणी की खिड़की पर उसने बेशकीमती पोशाक पहने एक नवयुवक को देखा, जिसका चेहरा-मोहरा ग्लैडस्टोन जैसा ही था। उस संपादक ने नवयुवक से प्रधानमंत्री के बारे में पूछा तो उसने कहा, जी,

वे इस डिब्बे में नहीं, पीछे सेकंड क्लास के डिब्बे में हैं। जब संपादक को विश्वास नहीं हुआ तो उस युवक ने कहा, मैं जानता हूं, क्योंकि मैं उनका पुत्र हूं।

इस पर संपादक दूसरी श्रेणी के डिब्बे में गए तो वहां देखा कि ग्लैडस्टोन बैठे अखबार पढ़ रहे हैं। यह देख संपादक ने उनसे पूछा, श्रीमान, आप प्रधानमंत्री होकर भी द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में सफर कर रहे हैं। पर आपका पुत्र प्रथम श्रेणी में सफर कर रहा है। ऐसा क्यों? इस पर ग्लैडस्टोन ने मुस्करा कर कहा, भाई, मैं किसान का पुत्र हूं, पर वह तो एक प्रधानमंत्री का बेटा है।

६८७) राष्ट्र का हित- बात तब की है जब यूनान तुर्की के अधीन था। तुर्की सरकार ने यूनान के लिए एक अपमानजनक कानून बनाने का निर्णय किया। इस पर यूनान का एक प्रतिनिधि मंडल कानून न बनाने की प्रार्थना लेकर तुर्की आया। तुर्की सरकार ने उस प्रतिनिधि मंडल का हार्दिक स्वागत एवं सम्मान किया तथा उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। लेकिन उस प्रतिनिधि मंडल को नगर से दूर एक बंगले में ठहराया गया और उसकी प्रार्थना स्वीकार किए जाने की बात को भी गुप्त रखा गया। यूनानी प्रतिनिधि मंडल के प्रधान ने विदाई के समय तुर्की के प्रधानमंत्री को धन्यवाद देते हुए कहा, आपने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके यूनान को हमेशा के लिए अपना कृतज्ञ बना लिया है। मगर हमें एक बात विचित्र लगी। आखिर आपने हमारे चारों ओर गुप्त पहरा क्यों लगा दिया, जिस कारण हम स्वतंत्रतापूर्वक कहीं आ जा नहीं सके।

तुर्की के प्रधानमंत्री ने कहा, ऐसा हमारी ओर से कुछ नहीं है। आप यूनान जाने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र हैं। प्रतिनिधि मंडल के प्रधान ने कहा, हम अपने देश जाने के लिए स्वतंत्र है। प्रतिनिधि मंडल के प्रधान ने कहा, हम अपने देश जाने के लिए स्वतंत्र हैं किंतु आपके देश में घूमने और नागरिकों से मिलने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं।

प्रधानमंत्री ने विनम्र शब्दों में कहा, केवल इस समय ही आप लोगों से मिलने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। फिर कभी दोबारा आकर तुर्की के कोने-कोने में घूमिए और यहां के सभी नागरिकों से मिलिए। चूंकि इस समय आप एक प्रार्थना लेकर आए जिसे तुर्की सरकार ने स्वीकार कर लिया है।

अभी तक हमारे देश के लोग यह समझते हैं कि अधिकार और न्याय शक्ति से मिलते है। आप लोगों से मिलकर वह सीखेंगे कि इन्हें प्रार्थना से भी पाया जा सकता है इसलिए वह आलसी बन जाएंगे। हम आपको इस समय तुर्की में घूमने की आज्ञा देकर अपने राष्ट्र का अहित नहीं कर सकते। हमारे लिए राष्ट्र सर्वोपरि है। तुर्की के प्रधानमंत्री का यह उत्तर सुनकर यूनानी प्रतिनिधि मंडल ठगा सा रह गया।

६८८) नागरिक का कर्त्तव्य- लीबिया के लिबलिस शहर के एक प्रमुख अस्पताल में अलग-अलग वार्डों में मरीजों को मुख्य डाक्टर के आने का इंतजार था। नर्स, कंपाउंडर आदि बेंचों पर शांति से बैठे थे लेकिन लंबे कद का एक आदमी लंबा चोगा पहने, चहलकदमी करता हुआ प्रत्येक स्थान और वस्तु का गहराई से निरीक्षण कर रहा था, तभी अपनी ओर आते बड़े डॉक्टर को देख कर वह व्यक्ति ठिठका। डॉक्टर ने पूछा, ऐ मिस्टर, कौन हो तुम? यहां क्या कर रहे हो? वह व्यक्ति बोला, डॉक्टर, मेरे पिता बहुत बीमार है। इस पर डॉक्टर बोला, बीमार हैं तो उन्हें यहां भरती कराओ। वह बहुत कमजोर है। उन्हें यहां लाना संभव नहीं है। आप चलिए डॉक्टर, उस व्यक्ति ने आदरपूर्वक कहा। लेकिन डॉक्टर ने उसे झिड़क दिया, क्या बेहूदगी है? मैं तुम्हारे घर कैसे जा सकता हूँ? भले ही रोगी मर जाए, फिर भी आप नहीं जा सकते? वह व्यक्ति बोला। डॉक्टर ने उसे डांटते हुए कहा, ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है। तुम्हें मालूम नहीं कि तुम किस से बात कर रहे हो। चीफ सिविल सर्जन से इस तरह बात की जाती है? यह सुनकर वह व्यक्ति तिलमिला गया। इसका उसने सख्ती से उत्तर दिया, मैंने अभी तक तो बहुत शराफत बरती है, लेकिन मुझे तुम से बात करने का ढंग सीखने की जरूरत नहीं है डॉक्टर। तुम भी नहीं

जानते कि तुम किस से बात कर रहे हो। अब डॉक्टर का पारा चढ़ गया। उसने अस्पताल के वार्ड अटेंडेंट को पुकार कर कहा, इस पागल को पागलखाने भिजवा दो। जैसे ही अटेंडेंट आगे बढ़ा, उस लंबे व्यक्ति ने अपना चोगा उतार फेंका। डॉक्टर ने देखा, सामने कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि सैनिक वरदी में एक रोबदार कर्नल खड़ा था। अब तो डाक्टर भी खुद सकपका गया। अपने देश के राष्ट्रपति कर्नल गद्दाफी को सामने देखकर उसके होश उड़ गए। कर्नल गद्दाफी ने आदेश दिया, डॉक्टर, अब तुम्हारे लिए लीबिया में कोई जगह नहीं है। मैं एक अस्पताल का नहीं, पूरे देश का अनुशासित सेनापति और कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकार हूं। जो लोग अपना कर्त्तव्य निभाना नहीं जानते, उन्हें इस देश में रहने का कोई हक नहीं। राष्ट्रपति के आदेश पर तत्काल अमल हुआ और सबक मिला कि राष्ट्र सेवा प्रत्येक नागरिक का सर्वोच्च कर्त्तव्य है।

६८९) अमेरिका के तृतीय राष्ट्रपति जेफरसन अत्यंत सादगीपूर्ण जीवन जीते थे। एक बार उन्हें होटल में रुकने की जरूरत पड़ी। लेकिन उनकी साधारण वेशभूषा देखकर होटल के मालिक ने उन्हें सामान्य किसान समझा और ठहराने से मना कर दिया। जेफरसन ने कुछ नहीं कहा और चुपचाप आगे बढ़ गए। बाद में किसी ने होटल मालिक को बताया कि वह साधारण आदमी और कोई नहीं, बल्कि अमेरिका के राष्ट्रपति हैं, तो मालिक दौड़ता हुआ आया और उनसे लौटने का अनुरोध करने लगा। उसका अनुरोध ठुकराते हुए जेफरसन ने कहा, जिस होटल में एक अमेरिकी किसान के लिए जगह नहीं, वहां राष्ट्रपति कैसे ठहर सकता है। जिस दिन तुम्हारे होटल में किसान और मजदूर सम्मानपूर्वक ठहरने लगेंगे उस दिन मैं भी ठहरूंगा।

६९०) बाधाओं से संघर्ष- यह घटना इंडोनेशिया की है। एक लड़का एक दिन अचानक हठ कर बैठा, आज मैं स्कूल नहीं जाऊंगा। उसके पिता ने बड़े प्यार से कारण पूछा तो उसने कहा, इस नए स्कूल में सब मेरा मजाक उड़ाते हैं। पिता ने समझाया, इसमें कौन सी नई बात है कुछ समय बाद वे तुमसे घुल-मिल जाएंगे और तुम्हारे दोस्त बन जाएंगे। कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊंगा। यह कहकर लड़के ने किताब पटक दी। मां-बाप ने लाख समझाया पर लड़का अपनी जिद पर अड़ा रहा। पिता ने अपने एक मित्र को यह समस्या बताई तो वह लड़के को एक सोते के पास ले गए। उन्होंने एक बड़ा सा पत्थर सोते के बीच में फेंक दिया और कहा, यह पत्थर पानी के बहाव में रुकावट डाल देगा। कुछ क्षणों के लिए पानी का बहाव रुक गया लेकिन फिर थोड़ी देर में वह अपनी गति से बहने लगा। पत्थर पानी में डूब गया। इस पर वह लड़के से बोले, बेटा, किसी भी प्रकार की रुकावट और बाधाओं से नहीं घबराना चाहिए। देखो, पानी भी रुकावट पर विजय पाकर आगे बढ़ रहा है। फिर तुम मनुष्य होकर बाधाओं से क्यों घबराते हो। लड़के ने अगले दिन से स्कूल जाना आरंभ कर दिया। कुछ दिनों में उसके सहपाठी उसके मित्र बन गए। इस लड़के का नाम था सुकर्णो। आगे चलकर वह अपने देश का राष्ट्रपति बना।

६९१) धन और मित्रता- विश्वविख्यात उद्योगपति हेनरी फोर्ड ने जीवन में वह सब कुछ हासिल किया, जिसकी हर आदमी को तमन्ना होती है। यश, कीर्ति, धन, सुख-सुविधाएं, ऐश्वर्य का साम्राज्य आदि। जब वे अपनी कीर्ति और कमाई के उच्च शिखर पर आरूढ़ थे, तब एक पत्रकार ने उनसे पूछा- महोदय, आपने अपने जीवन में प्रचुर मात्रा में धन संपत्ति के साथ-साथ यश और गौरव कमाया है। आपके सौजन्य से अनेक महान कार्यों का संपादन हुआ है। समूची दुनिया आपके वैभव और आपकी सफलता से परिचित है। क्या आपको अब भी जीवन में किसी कमी का अनुभव होता है।

जैसे किसी दुखती रग पर हाथ रख दिया हो, हेनरी फोर्ड ने तपाक से कहा- यह ठीक है कि मैंने पर्याप्त धन-संपदा और प्रतिष्ठा कमाई है, किंतु मेरी जिंदगी में सच्चे मित्र की रिक्तता मुझे सालती रहती है। यदि मुझे फिर से जीवन शुरू करना पड़े तो मैं सच्चे मित्रों की तलाश करूंगा। इसके लिए भले ही मुझे सारा धन ही क्यों न खोना पड़े। अगर आप ऐसा करें तो आपको जीवन में मित्र ही मित्र मिल सकते हैं, किंतु सच्चा मित्र तब भी नहीं मिलेगा। पत्रकार ने दो टूक जवाद दिया।

वह क्यों ? फोर्ड का प्रश्न था। क्योंकि आप केवल धन के बल पर मित्रों की तलाश करना चाहते हैं। धन से सच्चे मित्र नहीं मिलते, उसके लिए अहंकार को गलाना पड़ता है, स्वयं को मिटाना पड़ता है। धन से संसार की हर चीज खरीदी जा सकती है, किंतु सच्चा हितैषी, सच्चा मित्र नहीं मिल सकता। आप ठीक कहते हैं। मैंने बचपन में जिन मित्रों से हर तरह की सहायता और सहानुभूति पाई, वह मैं धन संपन्न हो जाने पर भी नहीं लोटा पाया। बल्कि धन और वैभव ने तो मेरे और मेरे मित्रों के बीच दीवार ही खड़ी कर दी है। अब बुढ़ापे में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे मैं अपने मन के उद्‌गार, मन का दर्द और अपनी समस्याएं खुलकर कह सकूं। सचमुच मैं तो अत्यंत अभागा हूं। मेरे पास धन तो है, लेकिन मित्र नहीं हैं।

६९२) अंतरात्मा जागी- वर्ष १८५७ की बात है। रिचर्ड विलियम्स ब्रिटेन से सेना में भर्ती होकर भारत आया था। उसे मेरठ छावनी स्थित रिसाले में नियुक्त किया गया। उसे जल्दी ही पता चल गया कि अपने को ईसा का अनुयायी बताने वाले अंग्रेज भारतीयों का उत्पीड़न कर पाप कर्म कर रहे हैं। इसी बीच १० मई १८५७ को मेरठ में हिंदुस्तानी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेजों के रिसाले को आदेश दिया गया कि विद्रोही हिंदुस्तानी सैनिकों को दमन किया जाए।

रिचर्ड विलियम्स ने हिंदुस्तानी सैनिकों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज अधिकारी ने उसे आदेश की अवहेलना के आरोप में गिरफ्तार करना चाहा, तो रिचर्ड ने गोली मारकर उसकी हत्या कर दी तथा भागकर हिंदुस्तानी सैनिकों से जा मिला। वह अंत तक हिन्दुस्तानी सैनिकों की सहायता करता रहा। मृत्यु से पूर्व रिचर्ड ने लिखा- मैंने हिंसा, अन्याय तथा निरपराध लोगों के उत्पीड़न का विरोध करके येशु के आदेशों का ही पालन किया। अत: मैं पूर्ण संतोष के साथ अंतिम सांस लेने का हकदार हूं।

६९३) मूल्यांकन- एक बार बर्नाड शॉ एक व्यक्ति की जमानत देने कोर्ट गए। न्यायाधीश ने पूछा, क्या आप दो सौ पौण्ड के योग्य है ? नहीं, शॉ ने जवाब दिया। मैं स्वयं को इतना कीमती नहीं समझता, किन्तु यदि आपका अर्थ यह है कि मेरे पास दो सौ पौण्ड मुद्रा है या नहीं, तो मेरे पास इतनी मुद्रा है।

६९४) सदुपयोग- महात्मा गांधी जब यरवदा जेल में थे, तो किसी कारणवश उन्हें दातुन मिलनी बंद हो गई। काका कालेलकर ने कहा, बापू यहां नीम के बहुत पेड़ हैं। मैं आपको प्रतिदिन एक दातुन ला दिया करुंगा, आप चिंतित न हों। दूसरे दिन वे दातुन ले आए। उन्होंने उसका एक छोर कूटकर कूंची बनाई। उसे प्रयोग में लाने के बाद गांधीजी बोले, अब इसका कूंची वाला भाग काट डालो और इसकी नई कूंची बना दो।

काका कालेलकर विस्मय से बोले- पर... पर बापू, यहां तो रोज नई दातुन उपलब्ध में है।

गांधीजी ने समझाते हुए कहा- यह मैं भी जानता हूं, लेकिन हमें इसका अधिकार नहीं है। जब तक एक दातून बिल्कुल सूख न जाए हम उसे कैसे फेंक सकते हैं ? और गांधीजी ने उसका कई बार उपयोग किया।

६९५) स्वाभिमान की पराकाष्ठा- गांधी जी गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लेने इंग्लैंड गए थे। ब्रिटेन के पत्रकार स्लोकोब ने इवनिंग स्टेंडर्ड पत्र में गांधी जी को अत्यंत उदार नेता एवं अहिंसा की मूर्ति सिद्ध करने के लिए एक संस्मरण लिखा, गांधी जी भले ही ब्रिटिश सरकार के विरोधी हैं, किंतु जब प्रिंस ऑफवेल्स भारत गए थे, तब गांधी जी ने उन्हें दंडवत अभिनंदन किया था। गांधी जी ने जब यह अतिशयोक्तिपूर्ण संस्मरण पढ़ा, तो उनके स्वाभिमान को आघात लगा। उन्होंने स्लोकोब को देखते ही पास बुलाया तथा बोले, पत्रकार को लिखते समय जिम्मेदारी समझनी चाहिए। आप जान लें कि मैं प्रिंस ऑफवेल्स तो क्या ब्रिटेन के बादशाह के आगे भी अपना सिर नहीं झुका सकता, क्योंकि वह एक उद्दंड सत्ता का प्रतीक है, जिसने मेरे देश को गुलाम बनाया हुआ है। फिर उन्होंने कहा, मैं अहंकार में यह शब्द नहीं कह रहा हूं। वैसे यदि

चींटी को भी मुझसे कोई कष्ट पहुंच जाए, तो मैं उसके आगे झुककर क्षमा मांगने से नहीं चुकूंगा। अंगरेज पत्रकार गांधी जी का स्वाभिमान देखकर हक्का-बक्का रह गया।

६९६) समय की पाबंदी- बात साबरमती आश्रम में गांधीजी के प्रवास के दिनों की है। एक दिन एक गाँव के कुछ लोग बापू के पास आए और उनसे कहने लगे, बापू कल हमारे गाँव में एक सभा हो रही है, यदि आप समय निकला कर जनता को देश की स्थिति व स्वाधीनता के प्रति कुछ शब्द कहें तो आपकी कृपा होगी। गांधीजी ने अपना कल का कार्यक्रम देखा और गाँव के लोगों के मुखिया से पूछा, सभा के कार्यक्रम का समय कब है ? मुखिया ने कहा, हमने चार बजे निश्चित कर रखा है। गांधीजी ने आने की अपनी अनुमति दे दी। महात्मा गांधी समय के बहुत पाबंद थे।

मुखिया बोला, बापू मैं गाड़ी से एक व्यक्ति को भेज दूँगा, जो आपको ले आएगा। आपको अधिक कष्ठ नहीं होगा। गांधीजी मुस्कराते हुए बोले, अच्छी बात है, कल निश्चित समय मैं तैयार रहूँगा। अगल दिन जब पौने चार बजे तक मुखिया का आदमी नही पहुँचा तो गांधीजी चिंतित हो गए। उन्होंने सोचा अगर मैं समय से नहीं पहुँचा तो लोग क्या कहेंगे। उनका समय व्यर्थ नष्ठ होगा। गांधीजी ने एक तरीका सोचा और उसी के अनुसार अमल किया। अत: वे समय पर पहुंच गए थे तथा पैतालिस मिनट से वे उस नेता की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसे उस सभा का संचालन करना था।

कुछ समय पश्चात मुखिया गांधीजी को लेने आश्रम पहुँचा तो गांधीजी को वहाँ नहीं पाकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। लेकिन वह क्या कर सकते थे। वह देर से अए। मुखिया सभा स्थल पर पहुँचा तो उन्हें यह देख कर और अधिक आश्चर्य हुआ कि गांधीजी भाषण दे रहे हैं और सभी लोग तन्मयता से उन्हें सुन रहे हैं।

मंच पर आते ही गांधी जी ने कहा- जिस देश के अग्रगामी नेतागण ही पैतालिस मिनट देर से आएंगे, उस देश में स्वराज भी उतनी ही देर से आएगा।

भाषण के उपरांत मुखिया गांधीजी से मिला और उनसे पूछने लगा, मैं आपको लेने आश्रम गया था लेकिन आप वहाँ नहीं मिले फिर आप यहाँ तक कैसे पहुँचे ? गांधीजी ने कहा, जब आप पौने चार बजे तक नही पहुँचे तो मुझे चिंता हुई कि मेरे कारण इतने लोगों का समय नष्ट हो सकता है इसलिए मैंने साइकिल उठाई और तेजी से चलाते हुए यहाँ पहुँचा। मुखिया बहुत शर्मिंदा हुआ। गांधीजी ने कहा, समय बहुत मूल्यवान होता है। हमें प्रतिदिन समय का सदुपयोग करना चाहिए। किसी भी प्रगति में समय महत्वपूर्ण होता है। अब उस युवक की समझ में मर्म आ चुका था।

६९७) गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने सुना कि यहां ग्वाले अपनी गाय-भैंसों से अधिकाधिक दूध निकालने के लिए कुछ घृणित उपाय काम में लाते हैं। इस बात से गांधीजी को इतनी पीड़ा पहुंची कि उन्होंने गाय और भैंस का दूध कभी न पीने की प्रतिज्ञा कर डाली।

बाद में गांधीजी कई साल तक पेचिश के हमले के शिकार रहे। १९१८ में डॉक्टर इस नतीजे पर पहुंचे कि गांधीजी का शरीर बहुत कमजोर हो गया है और उनके लिए दही का प्रयोग अनिवार्य है। गांधीजी ने गाय-भैंस के दूध से बनी कोई भी चीज लेने से मना कर दिया। तब कस्तूरबा ने बकरी के दूध से निर्मित दही का प्रयोग करने का सुझाव दिया। गांधीजी को बा की बात माननी पड़ी। यह बा की सूझबूझ का ही परिणाम था कि गांधीजी अपने व्रत का पालन भी कर सके और विषम परिस्थितियों में अपने स्वस्थ्य की रक्षा भी।

६९८) तब गांधीजी प्रिटोरिया में थे। एक ईसाई मित्र के बंगले के पास से गुजरते हुए उससे मिलने को रुक गए। जब उन्होंने अंदर प्रवेश किया तो परिवार के लोग मिलकर रात की प्रार्थना कर रहे थे। परिवार वालों ने उन्हें देख उनका स्वागत

किया और प्रार्थना बंद करने लगे। लेकिन महात्मा गांधी उनसे प्रार्थना जारी रखने का निवेदन करते हुए बोले- अपनी प्रार्थना जारी रखिए, इस समय जिससे आप बात कर रहे हैं, वह मुझसे कहीं ज्यादा बड़ा है। सच कहूं तो वही सबसे बड़ा है।

६९९) कुष्ठरोगी की सेवा- सन १९३२ में गांधीजी के साथ महाराष्ट्र में जनसेवा करते हुए संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान दत्तात्रेय वासुदेव परचुरे को कुष्ठ रोग हो गया। अस्वस्थ होने पर भी उन्होंने गांधीजी के साथ स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। यरवदा जेल में परचुरे को कुष्ठ रोगियों के वार्ड में रखा गया। एक सम्पन्न महिला द्वारा प्रेषित आम की टोकरी में से पचास अच्छे आम गांधीजी ने परचुरे व अन्य रोगियों के लिए भिजवाए। कुष्ठ रोगियों की सेवा कर उन्हें आत्मिक शांति मिलती थी। सेवाग्राम में दिसम्बर माह में १९३९ को परचुरे शास्त्री बापू के पास रहने के लिए आ गए। उनके कुष्ठ रोग काफी बढ़ चुका था। बापू ने आश्रम के विषय में जानकारी देते हुए कहा- आश्रम में कुष्ठ रोगी को स्थान दिया जाए अथवा नहीं, इस पर मैं विचार कर रहा हूं। आश्रम में अन्य स्त्री, पुरुष और बच्चे रहते हैं, मुझे उनका भी ध्यान रखना पड़ता है। बापू के विचारों से सहमत वासुदेव परचुरे स्वयं के हाथ से काता हुआ सूत उन्हें भेंट करने जाने लगे। बापू के मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। जहां आश्रम में आए सहयोगी को अस्वस्थता की स्थिती में भेजना अनुचित था वही दूसरी ओर आश्रमवासियों को कुष्ठ रोग होने की भी संभावना थी। गांधीजी ने रात्रि में निर्णय ले लिया और प्रात:कालीन प्रार्थना सभा में आश्रमवासियों से कहा- परचुरे शास्त्री हमारे आश्रम में आए हैं। हमें खतरे को मोल लेकर भी उन्हें अपने आश्रम में रखना चाहिए। रोगियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति और संवेदना गांधीजी के हृदय में कूट-कूट कर भरी थी। कुष्ठ रोगी परचुरे शास्त्री के लिए आश्रम में ही एक कुटिया बनवा दी गई। परचुरे की सेवा करना गांधी के दैनिक कार्यक्रम का अंग बन गया। बापू रोज अपने हाथ से शास्त्रीजी की मालिश करते। उनके भोजन और आराम का पूरा ध्यान रखते। कई आश्रमवासियों ने बापू की इस अनन्य सेवा भावना के सम्बन्ध में आपत्ति उठाई पर बापू ने उन्हें किसी तरह मना लिया। शास्त्रीजी काफी समय गांधीजी के साथ रहे। बापू ने पूर्ण निष्ठा से उनकी सेवा की। वे पूरी तरह ठीक तो नहीं हो पाए किन्तु चलने-फिरने लायक हो गये।

७००) अद्‌भुत प्रायश्चित- एक बार बापू अस्पृश्यता निवारक आंदोलन के सिलसिले में नागपुर गए। रास्ते में कहीं उनका रुमाल गिर गया। बापु को हाथ पोंछने के लिए रुमाल की जरूरत पड़ी तो महादेव भाई ने कहा, बापू रुमाल तो कहीं छूट गया, मैं दूसरा रुमाल ला देता हूं। बापू कुछ देर चुप रहे फिर पूछा, अभी वह रुमाल कितने दिन चलता ? लगभग चार महीने तो अवश्य चलता ? ठीक हैं मैं चार महीने बिना रूमाल के ही काम चला लूंगा। चार माह बाद ही नया रूमाल लूंगा। बापू ने कहा। सुनकर महादेव भाई चुप रह गए। बापू का रुमाल खोने का अद्‌भुत प्रायश्चित था।

७०१) गांधी और हिन्दी- बात उन दिनों की है जब भारत को स्वतंत्रता मिली ही थी। देश-विदेश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पत्रकार इस महत्वपूर्ण घटना के प्रकाशन हेतु भारतीय नेताओं के वक्तव्य, संदेश आदि के लिए आ रहे थे। ऐसे माहौल में एक विदेशी पत्रकार महात्मा गांधी से मिला। उसने बापू से अपना संदेश देने को कहा। किंतु वह इस बात पर अड़ रहा था कि बापू अपना संदेश अंग्रेजी में दें। गांधीजी इसके लिए सहमत नहीं हो रहे थे। मगर पत्रकार था कि लगातार जिद कर रहा था। उसका कहना था कि संदेश भारतीयों के लिए नहीं, पूरी दुनिया के लिए है, इसलिए वह अंग्रेजी में ही बाते कहें। उन दिनों बापू हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार भी कर रहे थे। थोड़ी देर तक वह शांत बने रहे, मगर अंतत: पत्रकार की बात पर महात्मा गांधी ने उसे दो टूक उत्तर देते हुए कहा- दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।

यह महात्मा गांधी की हिंदी के लिए निष्ठा थी कि आखिरकार उस पत्रकार को गांधीजी का संदेश हिन्दी में ही लेना पड़ा।

७०२) गांधीजी की मितव्ययता- गांधीजी के सामने डाक का ढेर लगा था। वह प्रत्येक पत्र को ध्यान से पढ़ते और

कोरे हिस्सों को कैंची से काट लेते। एक सज्जन ने गाँधीजी से ऐसा करने का कारण पूछा तो वे बोले मुझे जब पत्रों के उत्तर देने होते हैं तब मैं इन्हीं कतरनों का उपयोग करता हूं। यदि ऐसा न करूं तो यह कागज बेकार जायेंगे, इससे दो प्रकार की हानियां होगी- एक तो अनावश्यक खर्च हो जायेगी और दूसरी राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट होगी। देश में जितनी वस्तुएं हैं, देश की सम्पत्ति मानी जानी चाहिए। हमारा देश निर्धन है, ऐसी स्थिति में हमें वस्तुओं का सदुपयोग करना चाहिए।

७०३) गांधीजी की मितव्ययता- बापू का जन्म दिन था, नित्य की भांति संध्या समय प्रार्थना सभा हुई। गांधीजी ने परिवार के सभी सदस्यों को जन्मदिन सादगी से मनाने की हिदायत दे रखी थी। खासतौर से तैयार की गई जगह पर आज गांधीजी प्रार्थना के लिए बैठे। प्रार्थना सम्पन्न हुई। प्रार्थना के पश्चात बापू का प्रवचन हुआ। एक बार जन्मदिन के अवसर पर गांधीजी ने देखा कि उनके चित्र के समक्ष घी का दीया जल रहा है। उन्होंने तुरंत फूंक मारकर दीया बुझा दिया।

अंत में बापू ने पूछा- आज यह घी का दीपक किसने जलाया है ? सारी सभा एकदम शान्त हो गई। सब एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। बोले तो कौन बोले? उपस्थित लोगों ने जब इसका कारण पूछा तो गांधीजी ने उत्तर दिया हमारें लाखों गांवों में लोगों को रोटी पर लगाने के लिए घी नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में हमें अकारण घी का दीया जलाना शोभा नहीं देता।

यह देखकर बापू ने कोमल वाणी में कहा- आज यदि कोई सबसे बुरी बात हुई है तो वह यह कि आपने यह घी का दीपक जलाया है। सुनते ही सब स्तब्ध रह गए। सोचने लगे भला इसमें ऐसी क्या बुरी बात हो गई। कुछ देर रुक कर बापू बोले कस्तूरबा। इतने दिनों से तुम मेरी जीवन संगिनी हो, फिर तुम भी कुछ नहीं सीख पाई। अरे, हमारे गावों में लोग कितने निर्धन हैं, कैसे बुरे दिन काट रहे हैं ? उन्हें नमक व तेल नहीं मिलता और हम बिना वजह ही घी जला रहे हैं। बीच-बचाव करते जमनालाल बजाज बोले- आज आपका जन्मदिन है, इसीलिए... बात काटते हुए बापू ने कहा, इसका मतलब तो यह हुआ कि जन्मदिन को मितव्ययता त्याग दी जाए और दुरुपयोग करना प्रारंभ कर दिया जाए। सभी जैसे पत्थर हो गए। नम आखों से पुन: बापू बोले- जो हुआ सो हुआ पर आगे ध्यान रखना। जो वस्तु आम आदमी को उपलब्ध नहीं हो रही हो उसे हमें भी उपयोग में लेने का कोई अधिकार नहीं है। जब तक हर आदमी में यह भावना नहीं आएगी देश में खुशहाली कैसे आ पाएगी ? देश के वर्तमान अर्थसंकट एवं ऊर्जा मितव्ययता के दौर में बापू का यह दृष्टान्त अत्यन्त ही प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय है। सादगी, त्याग एवं नि:स्वार्थता की ऐसी मिसाल केवल गांधीजी के जीवन में ही देखने को मिलती है।

७०४) पैसे का लालच- गांधी जी की दांडी यात्रा चल रही थी। दिन के साथ-साथ वह रात में भी पदयात्रा करते थे। गांवों के रास्ते ऊबड़-खाबड़ थे, इसलिए यात्रा के प्रबंधकों ने रोशनी की व्यवस्था की थी। गैस की बत्ती को सिर पर रखकर आगे-आगे एक मजदूर चलता था। गांधीजी बहुत तेज कदमों से चलते थे, इसलिए मजदूर को भी काफी तेज चलना पड़ता था। चलते-चलते उसे पसीना भी आ जाता था, सांस फूलने लगती थी।

गांधीजी ने उस व्यक्ति की पीड़ा को देखा तो उनका हृदय करुणा से भर उठा। उन्होंने अगले गांव की सभा में कहा, मैं सिर पर गैस बत्ती का बोझ लादे हांफते हुए गरीब गरीब को देखकर लज्जित हूं। मजदूर की जगह क्या कोई कार्यकर्ता बोझा सिर पर रखकर दौड़ सकता है ? गांधी जी के शब्द सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। गांधीजी ने साथी पदयात्रियों से कहा, जो कष्टकारक काम हम नहीं कर सकते, उसे किसी से पैसे के लालच में करवाना अधर्म, अन्याय तथा शोषण है। इस सूत्र को ध्यान में रखना चाहिए।

७०५) वर्ष १९२६ की बात है। गांधीजी गुरुकुल कांगड़ी के रजत जयंती समारोह में भाग लेने के लिए हरिद्वार आए थे। युवा साहित्यकार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर उन दिनों स्वाधीनता अभियान में जोर-शोर से भाग ले रहे थे। हरिद्वार

पहुंचकर उन्हें गांधीजी के दर्शन की इच्छा हुई। गुरुकुल कांगड़ी के समारोह में वह पहुंच गए। स्वयं सेवकों ने उन्हें गांधीजी के पास नहीं पहुंचने दिया। निराश होकर उन्होंने एक कागज पर लिखा, बापू जी १२ रु. उधार लेकर देवबंद (सहारनपुर) से आपसे मिलने आया हूं। यदि आप मुझसे नहीं मिल सकते, तो मेरे १२ रु. मुझे लौटा दें। ज्यों ही गांधी जी मंच से उतर कर मंडप के द्वार पर पहुंचे कि प्रभाकर जी ने उन्हें वह कागज दे दिया। गांधीजी ने कागज पढ़ा, मुस्कराये और कुछ क्षण रुककर बोले, अच्छा तो कल सवेरे ७ बजे आकर खूब दिल खोलकर मिल लेना। दूसरे दिन प्रभाकर जी ने एक घंटे तक गांधी जी का साक्षात्कार किया। वह गांधीजी के प्रियजनों की श्रेणी में आ गए थे।

७०६) सच्चा बहादुर- कुश्ती पुराने जमाने से ही भारतीयों का प्रमुख शौक रहा है। यह एक सम्मानित कला समझी जाती थी, क्योंकि इसका संबंध बहादुरी, ताकत और फुर्ती से रहा है। पौराणिक आख्यानों से पता चलता है कि उस समय मल्ल युद्ध का प्रचलन था जो कि कुश्ती का ही एक रूप है। पुराने राजा-महाराजाओं ने भी कुश्ती को एक कला के रूप में संरक्षण प्रदान किया। मुगल काल में भी कुश्ती को काफी प्रोत्साहन मिला, लेकिन अंग्रेजों का राज स्थापित हो जाने के बाद इसका महत्व लगातार कम होता चला गया। बाद में लोगों ने काफी प्रयास किए, जिससे इसकी पुरानी प्रतिष्ठा लौट आए। एक बार की बात है कि कुश्ती के कुछ प्रेमियों ने फैसला किया कि इसका महत्व बढ़ाने के लिए महात्मा गाँधी को किसी दंगल में बुलाया जाए। गाँधी जी और कुश्ती ? वस्तुत: उन्हें बुलाने का उद्देश्य था लोगों को अधिकाधिक संख्या में बुलाना और उनके मन में कुश्ती के प्रति आकर्षण पैदा करना। लोग ज्यादा संख्या में आएँगे और गाँधी जी भी दर्शकों में होंगे तो कुश्ती की प्रतिष्ठा अवश्य ही बढ़ेगी।

आयोजक गाँधी जी के पास पहुँचे और गाँधीजी को आने के लिए राजी कर लिया। दो नामी पहलवानों के बीच कुश्ती होनी थी और गाँधीजी भी कुश्ती देखने आने वाले थे, अत: खूब भीड़ इकट्ठी हो गई। अखाड़े में उतरने से पहले दोनों पहलवान गाँधी जी के पास आए और पैर छूकर उनका आशीर्वाद लिया। गाँधीजी विनोदप्रिय भी कम नहीं थे। उन्होंने एक पहलवान की पीठ पर हाथ फेरकर कहा, क्यों भाई। हमसे कुश्ती लड़ोगे ? पहलवान ने हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्रतापूर्वक जवाब दिया, नहीं बापू, हम आपसे कुश्ती नहीं लड़ सकते। आपने तो अपनी बहादुरी और ताकत से इतनी ताकतवर ब्रिटिश हुकूमत को हरा दिया जिसके राज में सूरज भी नहीं छिपता था। हम किस खेत की मूली हैं जो आपसे लड़ें ? बापू में जो ताकत थी उसे मल्ल युद्ध करने वाले पहलवान भी समझते थे। उन्होंने अहिंसा और सत्य की ताकत से हर भारतवासी को परिचित करा दिया था।

७०७) मुंबई में कांग्रेस की महासभा हो रही थी। उसमें हाथ बंटाने के लिए काका साहब कालेलकर भी आए हुए थे। एक दिन महात्मा गांधी बहुत परेशान से अपनी मेज के आसपास कुछ ढूंढ रहे थे। काका साहब ने उनसे पूछा- क्या ढूंढ रहे हो, बापू? बापू बोले- एक छोटी सी पेंसिल खो गई है।

काका साहब ने सोचा कि बापू एक नन्हीं सी पेंसिल के लिए अपना समय खराब कर रहे हैं। उन्होंने अपनी पेंसिल बढ़ाते हुए कहा- रहने दो बापू, यह लो आप मेरी पेंसिल से काम कर लो।

बापू जिद करते हुए कहने लगे- नहीं, मुझे तो वही नन्हीं पेंसिल चाहिए। वह छोटी सी पेंसिल मेरे लिए कितनी कीमती है, यह आप नहीं जानते। वह पेंसिल मुझे मद्रास में एक छोटे बच्चे ने भेंट में दी थी। उसका खोना मेरे लिए असह्य है। वह उस छोटे बच्चे के प्यार की निशानी है, इसलिए उसे ढूंढना बहुत जरूरी है।

७०८) बहादुरी और कायरता- गांधीजी के आश्रम में लड़कियां भी रहती थीं। एक दिन वे कहीं से वापस आ रही थीं तो रास्ते में कुछ शरारती लड़कों ने उन्हें परेशान किया। इससे वे घबरा गईं और भागती हुई आश्रम आ गईं। उन्होंने पूरी घटना बापू

को बताई। गांधीजी बोले- तुम लोग भागी क्यों ? तुम्हें हिम्मत से वहीं ठहरना था। एक लड़की बोली- अगर वे हमारी बेइज्जती करते तो ? बापू ने कहा- तो तुम उनके मुंह पर दो-चार तमाचे जमा देतीं। यह सुनकर सारी लड़कियां भौचक्की रह गई। हमेशा अहिंसा के मार्ग पर चलने की बात कहने वाले बापू आज हाथ उठाने की बात कैसे कह रहे हैं ? बापू ने उनकी मानसिक उलझन को भांपते हुए कहा- अहिंसा बहादुरों का हथियार है। अहिंसा के परदे में अपनी कमजोरी नहीं छिपानी चाहिए। तुम लोगों का इस तरह वहां से बिना मुकाबला किए भाग आना अहिंसा नहीं है, यह डर है। हमें डरना नहीं चाहिए।

७०९) धनदान नहीं, श्रमदान- बात उन दिनों की है जब सेवा ग्राम आश्रम बन रहा था। गांधीजी वहां अकेले झोपड़ी डाल कर रहते थे, बाकी लोग रोजाना वर्धा से पांच मील पैदल चल कर आते-जाते थे। वहां जाने का रास्ता बहुत खराब था। ऊबड़-खाबड़ और ऊंचा-नीचा। एक दिन कुछ लोग गांधीजी से बोले, बापू, यदि आप एक चिट्ठी प्रशासन को लिख दें तो यहां का रास्ता ठीक हो जाएगा। गांधीजी बोले, यह काम मैं नहीं करूंगा। कुछ देर बाद फिर बोले, यहां का रास्ता बगैर प्रशासन की मदद के भी ठीक हो सकता है।

वह कैसे किसी ने पूछा। गांधीजी बोले, श्रमदान करने से। कल से सभी लोग वर्धा से आते समय इधर-उधर बिखरे पड़े दो-दो पत्थर उठा कर लेते आएं और रास्ते में बिछाते जाएं। अगले दिन से यह काम शुरू हो गया। लोगबाग पत्थरों को बिछाते और गांधीजी उसे समतल करते। गांधीजी के प्रशंसकों में बृजकृष्ण चांदीवाल भी थे। उनका शरीर बहुत भारी-भरकम था। एक दिन वह भी आश्रम देखने वर्धा पहुंच गए। उन्हें मालूम हुआ कि सेवा ग्राम तक पांच मील का सफर ऊबड़-खाबड़ रास्ते से पैदल ही करना होगा तो उनको पसीना आ गया। किसी तरह वे आश्रम तक पहुंचे। गांधीजी ने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया। चांदीवालजी झुंझला कर बोले, मेरा स्वागत करना छोड़ो। पहले यह बताओ कि क्या दो-दो पत्थरों से रास्ता बन जाएगा। यदि आप प्रशासन से काम नहीं करवा सकते तो बताइए इस काम के लिए आपको कितना धन चहिए। उसे मैं दूंगा।

गांधीजी मुस्करा कर बोले, अरे भाई, गुस्सा क्यों करते हो। मुझे आपके दान की जरूरत तो है, लेकिन धनदान की नहीं श्रमदान की। आप तो जानते ही हैं कि बूंद-बूंद से समुद्र भर जाता है। आइए, आप भी हमारे साथ इस काम में लग जाइए। इसके तीन फायदे होंगे। आश्रम ठीक होगा, आप का धन बचेगा और आप की तोंद पिचक कर अंदर चली जाएगी, जिससे आप हमेशा के लिए निरोग हो जाएंगे। गांधीजी का इतना कहना था कि चांदीवालजी का गुस्सा शांत हो गया।

७१०) सजा भुगत कर खुश हुए- बापू नियम के बड़े पाबन्द थे। वे कोई भी नियम काफी सोच-विचार के बाद ही बनाते थे और उसका स्वयं भी सख्ती से पालन करते थे। उनके साबरमती आश्रम में भोजन के समय भोजनशाला में उपस्थित होने के लिए दो बार घंटी बजती थी। उस घंटी की आवाज सुनकर वहां रहनेवाले सभी लोग भोजन के लिए उपस्थित हो जाते थे। नियमानुसार जो व्यक्ति दूसरी घंटे बजने तक भोजनशाला नहीं पहुंच पाता था, उसे दूसरी पंगत लगने तक बाहर बरामदे में ही खड़े रहना व इंतजार करना पड़ता था। बापू इसे लेट लतीफी की मीठी सजा कहते थे।

नियमानुसार दूसरी घंटी बजते ही रसोई घर के दरवाजे तुरंतबंद कर दिए जाते थे, जिससे लेट आने वाले व्यक्ति अंदर जा ही नहीं सकें। हरेक के लिए इस नियम की पाबंदी रहती थी और सख्ती से इसका पालन किया जाता था।

एक दिन बापू स्वयं लेट हो गए। लेकिन दरवाजा बंद करनेवाले आश्रमवासी ने उन्हें आते देख लिया। वह बड़े धर्म संकट में पड़ा। तभी महादेव भाई ने उससे कहा बापू से सजा पानी है क्या ? नियम तो नियम है। उसकी पाबंदी जरूरी है, दरवाजा बंद कर लो। बापू किसी से बात करते हुए दरवाजे के निकट आ गए थे, पर उस व्यक्तिने दरवाजा बंद कर लिया। दरवाजा बंद देखकर बापू अनुशासित आश्रमवासी की तरह खड़े हो गए। वे प्रसन्न थे कि भोजनशाला में नियमों का पालन

हो रहा है। तभी वहां हरिभाऊ उपाध्याय भी पहुंचे। उन्होंने वहां बापू को खड़े देखकर कहा, आज तो आप स्वयं लेट लतीफी वाले कटघरे में खड़े हो गए। मीठी सजा आज आपको भी भुगतनी पड़ रही है। ठहरिए, मैं आपके बैठने के लिए कुर्सी ले आता हूं। कहकर वे जाने लगे। तब बापू ने उन्हें हाथ पकडकर रोकते हुए कहा, हरिभाऊ। यह क्या करने जा रहे हो तुम ? मैं सजा भुगतने में कमजोर थोड़े ही हूं। और तुम भी तो वही सजा पा रहे हो। फिर कुछ क्षण ठहरकर बोले, हरिभाऊ। गलती हो तो उसे सुधारने के लिए सजा पूरी भुगतनी चाहिए। जीवन में सच्चे आनंद को पाने के लिए यह जरूरी है। नियम तो सभी के लिए एक जैसे हैं, जो नियमों का पालन नहीं करते उन्हें दंड तो भोगना ही पड़ेगा।

७११) मानवता- महात्मा गांधी अस्पृश्यता के निवारण के लिए उड़ीसा के एक कस्बे में ठहरे हुए थे। वहां पंडितों का एक दल उनसे शास्त्रार्थ करने आ गया और वे कहने लगे, शास्त्रों में भी अस्पृश्यता का समर्थन है। गांधीजी ने ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक बैठाया और कहा- मुझे शास्त्र का ज्ञान है नहीं, इसलिए मैं हार मानता हूं। किन्तु मैं यह दावे से कह सकता हूं कि संसार के सभी शास्त्र मिलकर भी मानवीय एकता का विरोध नहीं कर सकते। मानवता एक तरफ और आपके शास्त्र एक तरफ। मेरा तो सबसे बड़ा शास्त्र और धर्म मानवता है, इस मानवता के धर्म पर मैं जीवन के अंतिम समय तक अडिग रहूंगा।

७१२) यह घटना उस समय की है जब गांधी जी ने अहमदाबाद में कोचरब में एक आश्रम खोला। उस आश्रम में एक हरिजन परिवार रहने के लिए आ गया। यह उन लोगों को अच्छा नहीं लगा जो आश्रम को आर्थिक सहयोग प्रदान कर रहे थे। गांधीजी के समतावादी दृष्टिकोण के आगे वैसे तो वे मौन रहे, लेकिन उन्होंने आर्थिक सहयोग देना बंद कर दिया। उन्हें लगता था कि पैसे का संकट आने से खुद ब खुद लोग उस परिवार को बाहर कर देंगे। आर्थिक सहयोग की कमी से आश्रम के संचालन में अवरोध तो उपस्थित हुआ पर गांधीजी विचलित नहीं हुए। वे अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं चाहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों बाद कोई अजनबी गांधीजी के चरणों में हजारों रुपये भेंट कर गया जिससे आश्रम सफलतापूर्वक जनसेवा के लिए निर्बाध गति से चलने लगा।

७१३) गलती- घटना गांधीजी के बचपन की है। बड़े भाई ने उन्हें मार दिया। वे रोते हुए मां के पास शिकायत करने गए। मां ने कहा कि तुम भी उसे मारो। मोहनदास मां पर बिगड़कर बोले जो गलती करता है उसे तो रोकती नहीं। मुझे भी गलती को दोहराने की बात कहती हो। मां ने कहा बेटा। मैं तो तेरी परीक्षा ले रही थी। यदि परिवार के सदस्यों के प्रति तेरी भावना का इसी तरह विकास होता रहा तो आगे चलकर तेरे जीवन में महानता अवतरित होगी। इन्ही संस्कारों के कारण गांधीजी विश्ववन्दनीय हुए।

७१४) दूसरों पर दया- वर्धा सेवाग्राम में गाँधीजी अपना समय समाज सेवा में लगा रहे थे। उनके आश्रम में परचुरेशास्त्री नामक एक कुष्ठ रोगी रहते थे। गाँधीजी स्वयं उनकी सेवा तथा मरहम पट्टी किया करते थे। एक बार एक हकीम उनके आश्रम में आया और कुष्ठरोग की दवा बताते हुए बोला कि यदि साँप को हांडी में बन्दकर आग में धीरे-धीरे पकायें फिर उसके भस्म का सेवन करें तो कुष्ठ रोग दूर हो जाएगा। शास्त्रीजी ने यह सुनकर कहा, इससे अच्छा तो मुझे ही पका दिया जाए बिचारे साँप को क्यों दण्ड दया जाए, उसने क्या गलत कार्य किया है ?

७१५) सेवा और धर्म- एक बार गांधीजी सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने काशी आए। वहां कई विद्वान और संत भी आए हुए थे। उन सबने गांधीजी की चर्चा सुन रखी थी और उनसे मिलने को बेहद उत्सुक थे। वे उनसे अनौपचारिक बातचीत में उनके निजी जीवन के कई पहलुओं को जानना चाहते थे। सम्मेलन खत्म होने के बाद एक संत ने गांधीजी से पूछा, आप कौन सा धर्म मानते हैं और भारत के भावी धर्म का क्या स्वरूप होगा? गांधीजी ने कहा, सेवा करना ही मेरा धर्म

है और मेरा मानना है कि आप लोगों को भी इस धर्म को अपनाना चाहिए। संत ने फिर पूछा, मगर सेवा तो सभी करते हैं। तो क्या यह मान लिया जाए कि पूजा- पाठ, धर्म-कर्म सब मिथ्या है। इसको छोड़ देना चाहिए। गांधीजी ने कहा, मेरा मतलब यह नहीं कि पूजा पाठ छोड़ दिए जाए। मन की शांति के लिए यह सब करना भी जरूरी है। पर यदि मेरे लिए लेटे-लेटे चरखा चलाना संभव हो और मुझे लगे कि इससे ईश्वर पर मेरा चित्त एकाग्र होने में मदद मिलेगी तो मैं जरूर माला छोड़कर चरखा चलाने लगूंगा। चरखा चलाने की शक्ति मुझमें हो और मुझे यह चुनाव करना हो कि माला फेरूं या चरखा चलाऊँ, तो जब तक देश में गरीबी और भुखमरी है, तब तक मेरा निर्णय निश्चित रूप से चरखे के पक्ष में होगा और उसी को मैं अपनी माला बना लूंगा। चरखा, माला और राम नाम सब मेरे लिए एक ही हैं। वे सब एक ही उद्देश्य पूरा करते हैं। वह है मानव की सुरक्षा करना, अपनी रक्षा करना। मैं सेवा का पालन किए बिना अहिंसा का पालन नहीं कर सकता और अहिंसा धर्म का पालन किए बिना मैं सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता और आप तो मानते होंगे कि सत्य के सिवा दूसरा कोई धर्म भी नहीं है। सभी संतों ने गांधीजी के विचारों से सहमति जताई और उसी रास्ते पर चलने का संकल्प किया।

७१६) धर्म की कसौटी- गांधीजी के बेटे मणिलाल एक बार बचपन में बहुत बीमार हो गए। डॉक्टर को बुलाया गया। डॉक्टर ने जांच के बाद कहा- बच्चे को मीट का शोरबा देना पड़ेगा। बापू शाकाहारी थे। इसलिए उन्होंने डॉक्टर से निवेदन किया कि वह बच्चे को शोरबे के बदले कोई और खाद्य बताए। डॉक्टर ने इस पर झुंझलाते हुए कहा- बापू, आपके बच्चे की हालत बहुत खराब है। इस परिस्थिति में बच्चे के साथ आपको ऐसी सख्ती नहीं करनी चाहिए। गांधीजी ने डॉक्टर को उत्तर दिया- डॉक्टर होने के नाते आपने मणिलाल के लिए जो पथ्य बताया है वह सही है। लेकिन मेरी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। अगर मणिलाल वयस्क होता तो इसे आपकी इच्छानुसार करने की आज्ञा दे देता। पर इसके अबोध होने के कारण इसके बारे में मुझे ही विचार करना है। ऐसे ही समय में धर्म की परीक्षा होती है। मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिए, इसे मैंने धर्म माना है। मेरे धर्म की मर्यादा ऐसे ही समय में मांस खाने से रोकती है। अत: मणिलाल को मैं शोरबा नहीं दूँगा। उसकी सिर्फ जल चिकित्सा करूंगा और गांधीजी की जल चिकित्सा से मणिलाल कुछ दिनों में ही स्वस्थ हो गए।

७१७) वसीयत- महात्मा गांधी ने अपने पत्र हरिजन में गोखले की वसीयत के विषय में लिखा था। गोखले ने मृत्यु शैया पर अपने उद्देश्यों के बारे में साफ बताया था। गोखले के अनुसार यदि किसी ने उनके मरणोपरांत जीवनी लिखने की चेष्टा की, स्मृति में इमारत बनवाई अथवा शोक सभाओं का आयोजन किया तो उनकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। उनकी केवल इतनी इच्छा थी कि जिस सच्चाई और ईमानदारी से उन्होंने अपना जीवन बिताया, देशवासी उसका अनुसरण करें। उनके द्वारा स्थापित सर्वेण्ट ऑफ इंडिया सोसाइटी अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त कर निरन्तर प्रगति करती रहे।

७१८) त्याग की भावना- एक बार गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा गांधी बीमार पड़ी तो डाक्टर ने उन्हें नमक खाने से मना कर दिया पर नमक के बिना खाने में क्या स्वाद ? कहकर उन्होंने नमक खाना जारी रखा। उनकी इस आदत पर गांधीजी ने टोकते हुए कहा, जब तुम्हें डाक्टर साहब ने नमक खाने से मना किया है तो फिर क्यों खाती हो ? तब उनकी पत्नी ने पूछा, क्या आप इसके बिना रह सकते हैं ? यह सुनकर गांधीजी बोले, बस इतनी सी बात है। चलो आज से तुम्हारे ठीक होने तक मैंने भी नमक खाना छोड़ा। इस संकल्प के बाद कई सालों तक उन्होंने नमक नहीं खाया। ऐसी थी उनमें त्याग की भावना, जिसका उन्होंने जीवन भर पालन किया।

७१९) नियम- बात उन दिनों की है, जब अंग्रेजों ने गांधी जी को जेल में बंद कर रखा था। बात उन दिनों की है जब गांधीजी जेल में बंद थे। अनेक स्वतंत्रता सेनानी और क्रांतिकारी लोग जेल से भी अपने संगठनों को गुप्त निदेश भेजा करते

थे। इस तरह नेताओं की गिरफ्तारी के बावजूद आंदोलन और क्रांतिकारी गतिविधियाँ चलती रहती थीं और अंग्रेज सरकार उस पर नियंत्रण नहीं कर पाती थी। इसे रोकने के लिए उसने नियम बनाया कि जेल में जब किसी कैदी से कोई मिलता था तो जेल का एक अधिकारी वहां मौजूद रहता था। इस तरह से वे आपस में कोई गुप्त बात नहीं कर सकते थे। एक दिन जेल में गांधी जी से मिलने बा गईं। जेल नियमों के अनुसार, तब जेलर भी उनके साथ गया। लेकिन गांधीजी और बा के प्रति अपने सम्मान भाव के कारण बा को गाँधी जी के पास बिठा कर वह चला गया। उसने सोचा कि उसके वहां रहने से वे दोनों खुलकर बातचीत नहीं कर पाएंगे। मुलाकात का समय पूरा होने पर जब जेलर लौटा तो दोनों को चुपचाप खड़ा देख कर पूछ बैठा, आप दोनों चुपचाप क्यों खड़े हैं ? गांधीजी झट से बोले, मैं जेल के नियम जानता हूं। आप की अनुपस्थिति में हम कैसे बात करते ? गाँधीजी और बा की नियम की पाबंदी देखकर अंग्रेज जेलर हैरान रह गया।

७२०) ग्लानि- गांधीजी को दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान एक बार चर्खादंगल देखने में बहुत रात हो गई। वहां से जब वे लौटे तब वे इतने थक गए थे कि एक चारपाई पर लेटते ही उन्हें नींद आ गई। मध्य रात्रि के पश्चात उनकी आंख खुली तो ध्यान आया कि सोने से पहले वे ध्यान करना भूल गए। गांधीजी रात भर नहीं सो सके। उनके मन पर इस त्रुटि से बड़ा आघात लगा। शरीर थर-थर कांपने लगा। सारा बदन पसीने से लथपथ हो गया। सुबह लोगों ने पूछा तब सारी बात बतलाते हुए उन्होंने कहा- जिसकी कृपा से मैं जीता हूं, उस ईश्वर को ही भूल गया, इससे बढ़कर बड़ी गलती और क्या होगी ? यदि व्यक्ति को अपनी गलती का अहसास हो जाए तो उसे दूर करना चाहिए।

७२१) जब गांधी जी लौटे- एक बार महात्मा गांधी साबरमती आश्रम से रातोंरात गायब हो गए। बिना बताए चले जाने से आश्रमवासी काफी चिंतित थे। काफी खोज-खबर ली गई किंतु कुछ पता नहीं चला। दो दिन बाद गांधीजी लौटे तो आश्रमवासियों में खुशी की लहर दौड़ गई। उन्होंने पूछा- आप बिना बताए कहां चले गए थे ? हम लोग कब से आपके लिए परेशान थे। इसमें परेशान होने की क्या बात है ? गांधीजी ने कहा, विगत रात्रि में निकटवर्ती गांव का एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा- बाबूजी की तबियत बहुत खराब है। आप तुरंत चले आइए। मैं उसी के साथ चला गया था। वहां जाकर मैंने उसकी मरहम पट्टी की। अब वह पहले से स्वस्थ है। वहीं से आज लौटा। संभव है कि मैं तुम लोगों को बताकर जाता तो शायद तुम लोग मुझे जाने नहीं देते। गांधीजी का जवाब सुनकर आश्रमवासी चकित रह गए। उनसे कुछ कहते न बन पड़ा।

७२२) सच्चा समाज सेवक- बरसात के मौसम में गांधीजी कश्मीर जा रहे थे। वह तृतीय श्रेणी के डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। उसमें वर्षा का जल भर गया और डिब्बा लगभग पूरा गीला हो गया। गार्ड यह देखकर गांधीजी के पास जाकर बोला- आप डिब्बा बदल लें, आपके लिए अन्यत्र अच्छी व्यवस्था कर देते हैं। गांधीजी ने सहज भाव से पूछा- फिर इस डिब्बे का क्या होगा ? तो गार्ड ने उत्तर दिया, इस डिब्बे में दूसरे यात्रियों को बैठा दिया जाएगा। अपने आराम के लिए दूसरे लोगों को यहां बैठाने की बात सोचना भी मेरे लिए कठिन है। यह कहकर गांधीजी ने डिब्बा बदलने से इंकार कर दिया।

७२३) जब भगवान हुए नीलाम- अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन के सिलसिले में बापू उड़ीसा का दौरा कर रहे थे। प्रार्थना सभा में लोग कुछ-न-कुछ भेंट करते थे, जिन्हें वह सभा-समाप्ति से पूर्व नीलाम कर देते थे। कटक की सभा में एक कुम्हार ने बापू को श्रीकृष्ण भगवान की दो मूर्तियां भेंट कीं। सभा के अंत में बापू उन मूर्तियों को नीलाम करने खड़े हुए, तो सभी में उपस्थित सेठ भागीरथ कानोडिया हंसकर बोले, बापू आपने तो भगवान को भी नहीं बख्शा। उन्हें भी नीलामी पर चढ़ा रहे हैं ? बापू मानो पहले से ही इसका उत्तर लिये बैठे थे। बोले, अरे भाई, यह तो पहले से ही बिकते आ रहे हैं। बस इन्हें कोई बेचनेवाला और कोई खरीदने वाला चाहिए। क्या तुमने मीरा का यह पद नहीं सुना, माई री मैंने गोविंद लीनों मोल। कोई कहे महंगो, कोई

कहे सस्तो, मैंने लियो तराजू तोल। बापू के इस कथन का ऐसा प्रभाव हुआ कि उस दिन वे मूर्तियां काफी मूल्य में बिकीं।

७२४) सिद्धांत के रक्षक- महात्मा गांधी के दादा उत्तम चंद गांधी, जिन्हें लोग ओता गांधी कहते थे, पोरबंदर राज्य के वरिष्ठ दीवान थे। राजा बहुत सज्जन थे, लेकिन रानी हठी और कान की कच्ची थीं। राजा की मृत्यु के बाद शासन की बागडोर रानी के हाथ में आ गई। उस समय राज्य का खजांची सीमा भंडारी था, जो बेहद ईमानदार और वफादार था। एक बार रानी की सेविका ने भंडारी से कुछ फालतू पैसे मांगे। भंडारी ने मना कर दिया। सेविका ने नमक मिर्च लगाकर इसकी शिकायत रानी से की। रानी ने खजांची की गिरफ्तारी का आदेश दिया। खीमा को इसकी भनक लगी तो वह भागकर ओता गांधी के घर पहुंचा। गांधी ने खीमा को अपने घर में आश्रय दिया, फिर रानी के पास गए और खीमा की ईमानदारी और वफादारी का हवाला देते हुए उसे माफ करने की गुजारिश की। लेकिन रानी अपने हट पर अड़ी रहीं और बोलीं, खजांची को मृत्यु दंड मिलना चाहिए।

गांधी के बहुत समझाने पर भी जब रानी नहीं मानीं तो उन्होंने कहा, खीमा को मैंने आश्रय दिया हुआ है। वह हमारा ईमानदार और वफादार कर्मचारी है। उसे दंड देने से हमारी दीवानगीरी पर यह कलंक लगेगा कि एक दीवान अपने कर्मचारी को नहीं बचा पाया, इसलिए उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। मैं प्राण देकर भी उसकी रक्षा करूंगा। गांधी लौट आए। रानी ने क्रोध में आकर फौज को आदेश दिया कि ओता गांधी का मकान उड़ा दिया जाए। इसकी खबर लगते ही गांधी ने खीमा को चुपके से राज्य के बाहर भेज दिया और घर के दरवाजे पर परिवार सहित बैठ गए। थोड़ी देर में फौज का नायक गुल मुहम्मद आया और बोला, आप खीमा को सौंप दो। उसके लिए अपनी जान क्यों खतरे में डाल रहे हो ? ओता गांधी ने कहा, एक बार जिसे आश्रय दे दिया, उसकी रक्षा के लिए मेरे प्राण का कोई मूल्य नहीं है। आप अपना काम करें। सेनानायक ने कहा, मैं भी एक ईमानदार, देशभक्त दीवान के लिए अपनी जान दे सकता हूं। और वह फौज लेकर लौट गया।

७२५) बापू की उदारता- एक बार साबरमती आश्रम में गांधीजी के रसोईघर में एक चोर घुस आया। वह भूखा था या उसका मकसद कुछ और था, यह कोई नहीं जान सका। आश्रम में अफरा-तफरी मच गई। सभी आश्रमवासी भय से भाग गए। आश्रमवासियों ने उसे पकड़कर एक कोठरी में बंद कर दिया। दूसरे दिन जब प्रात:काल गांधीजी नाश्ता करने बैठे तो चोर को उनके सामने लाया गया। उस युवक ने शर्मसार होकर अपना सिर झुका लिया एवं हाथ जोड़कर बोला, कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए। मुझे पुलिस के हवाले मत कीजिए।

गांधीजी ने पूछा, इसे नाश्ता कराया या नहीं ? पहले इसे नाश्ता कराओ। फिर मेरे पास लाओ। यह सुनकर एक आश्रमवासी ने आश्चर्य से पूछा, चोर को नाश्ता ? गांधीजी ने जवाब दिया, यह चोर है तो क्या हुआ? है तो इंसान ही। भूख तो इसे भी लगी होगी। अभी इस समय यह हमारे बंधन में है इसलिए इसके भरण-पोषण का दायित्व भी हमारे ऊपर है। गांधीजी के आदेश का पालन किया गया। फिर बापू ने चोर को अपने पास प्यार से बिठाया और बोले, यदि तुम सिर्फ भूख के कारण चोरी करते हो तो मुझसे कहो। मैं तुम्हारे लिए यहीं आश्रम में कुछ व्यवस्था कर देता हूं। चोर लज्जित था। वह मुंह लटकाए बैठा रहा। गांधीजी ने उसके मौन को स्वीकृति समझ आश्रम में उसकी आजीविका की व्यवस्था करा दी। बापू की अपार दया भावना देख युवक की आंखों में पश्चाताप के आंसू आ गये।

७२६) अपने को खोजो- वे बंबई में रहते थे और व्यापार के लिए दिल्ली आते रहते थे। एक बार वे हीरे लेकर बंबई से चले तो ठग उनके पीछे लग गये। वे उन्हें घेर कर बैठ गये। रास्ते में व्यापारी गुसलखाने गये तो अपना सारा सामान उन्हें सौंप गये। ठगों ने उनकी एक-एक चीज देख ली, पर कुछ नहीं मिला।

सारे रास्ते ठग प्रयत्न करते रहे, यहां तक कि जब व्यापारी सो गये तो उकनी अंटी भी देख ली, लेकिन कुछ भी हाथ नहीं लगा। जब दिल्ली पहुँचने का समय आ गया तो ठगों ने उनसे कहा, सेठजी, अब तो आप दिल्ली पहुँच रहे हैं। कोई डर नहीं है, पर सच बताइये, क्या आपके पास हीरे हैं ? उन्होंने कहा, हाँ हैं। कहाँ हैं ? ठगों ने विस्मय से पूछा।

उन महानुभाव ने ठगों के सामान में से हीरे निकाल कर दिखाते हुए कहा, याद रखो, जो दूसरों को खोजता है, वह कुछ नहीं पाता। जो अपने को खोजता है, उसी को सब कुछ मिलता है। यह व्यापारी थे रायचन्द्रभाई, जिन्हें गाँधीजी ने अपने तीन गुरुओं में से एक माना था।

७२७) उनके सपनों का स्वराज्य- डाण्डी कूच के दिनों की बात है। कूच दिन में भी होता था और रात में भी। रात में कूच की दृष्टि से प्रबन्धकों ने एक मजदूर की व्यवस्था की उसका काम यह था कि वह रात को गैस की भारी बत्ती लेकर चलता था। गांधीजी की चाल बड़ी तेज थी। नतीजा यह की उस मजदूर को भी उस बोझ को लेकर तेज चलना पड़ता था। कभी-कभी तो दौड़ने तक की नौबत आ जाती थी। यह सब देखकर गांधीजी की आत्मा चीत्कार उठी। वह मर्माहत हो गये। एक दिन एक गांव में भाषण करते हुए उनकी व्यथा फूट पड़ी। उन्होंने कहा, मैंने देखा है कि आप लोगों ने रात के सफर के लिए एक भारी गैस की बत्ती का प्रबंध किया है और उसे एक गरीब मजदूर अपने सिर पर एक तिपाई के ऊपर रखकर चलता है। यह एक लज्जाजनक दृश्य है। उस आदमी को तेज चलने के लिए विवश किया जा रहा है। रात मैं उस दृश्य को सहन नहीं कर सका। इसलिए मैंने चाल तेज की और सारी टोली से आगे निकल गया, पर यह सब बेकार हो गया। उस बेचारे को मेरे पीछे-पीछे दौड़ने के लिए मजबूर किया गया। मेरी लज्जा की हद हो गई। अगर वह बोझा ले जाना ही है तो मैं यह देखना पसंद करता कि हममें से ही कोई उसे लेकर चलता। तब हम तिपाही और बत्ती दोनों को ही धता बता देते। कोई मजदूर ऐसा बोझा अपने सिर पर नहीं ले जायगा। आगे उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा- हम बेगार का विरोध करते हैं, और वह ठीक ही है। परन्तु यह बेगार नहीं तो और क्या है ? अगर हम जल्दी ही अपने तौर-तरीके नहीं सुधार लेंगे तो हमने लोगों के सामने स्वराज्य की जो तस्वीर रखी है, वैसा स्वराज्य संभव नहीं होगा। इस घटना को आज ६० वर्ष हो गये हैं। देश स्वतन्त्र हो गया है, किन्तु क्या दीन-दु:खियों के उस मसीहा के सपनों का स्वराज्य संभव हुआ है?

७२८) कौन किसे सिखाए- जब गांधीजी लंदन में विद्याध्ययन कर रहे थे, तो बहुत सुन्दर ढंग से वस्त्र पहना करते थे। उन दिनों विख्यात लेखक जार्ज बर्नार्ड शॉ से उनकी मैत्री थी। दोनों में इस बात पर समझौता हुआ कि बर्नार्ड शॉ गांधीजी को अंग्रेजी सिखाऐं और गांधीजी बर्नार्ड शॉ को वस्त्र पहनना। गोलमेज परिषद के दिनों में जब गांधी जी केवल लंगोटी बांधे बर्नार्ड शॉ से फिर मिले, तब गांधीजी को सारा विश्व अंग्रेजी में माहिर मानता था। और वस्त्र के नाम पर उन्होंने एक मामूली सी लंगोटी बांध रखी थी। मिलने पर बर्नार्ड शॉ ने मुस्कुराकर पूछा, कहिए, अब कौन किसे अंग्रेजी सिखाए और कौन किसे ढंग से वस्त्र पहनना ?

७२९) सन् १९१४ ई. में गांधीजी श्रीगोपाल कृष्ण गोखले से मिलने दक्षिण अफ्रीका से लंदन गए। वहां गांधीजी एक पुराने मकान में ठहरे। उस समय श्रीमती सरोजिनी नायडू भी लंदन में ही थीं। गांधीजी से मिलने की उनके मन में तीव्र इच्छा थी। पता लेकर सरोजिनी नायडू गांधी जी से मिलने गई। उस भेंट का वर्णन सरोजिनी नायडू ने इस प्रकार किया- एक पुराने ढंग के मकान में सीढ़ियां चढ़कर मैं ऊपर गई, तो एक मामूली आदमी का सजीव चित्र देखा। उसका सिर छिपा हुआ था। वह फर्श पर बैठा जेल के काले कंबल पर बैठा जेल के ही लकड़ी के कटोरे में टमाटर और जैतून के तेल का भोजन कर रहा था। उसके पास भुनी हुई मूंगफली और सूखे केले के आटे से बने बिस्कुटों के चिपके हुए कुछ डिब्बे रखे थे।

गांधीजी को इस रूप में देखकर सरोजिनी नायडू हंस पड़ी। गांधीजी ने अपनी आंखे ऊपर उठाई और सरोजिनी को देखकर हंसते हुए बोले- तुम अवश्य ही श्रीमती नायडू हो और कौन इतना आदर-विहीन हो सकता है।

७३०) गांधी की आंधी- १९२१ में काशी विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर बड़ी सिफारिशों के बाद गांधीजी को पांच मिनट बोलने का समय मिला। गांधीजी उन दिनों ज्यादा प्रसिद्ध नहीं थे और उनके विचारों से राष्ट्रीय नेता भयभीत थे। गोखले आदि ने उन्हें अवसर तो दिया, पर जब वे बोले तो एनी बेसेंट और मदनमोहन मालवीय तक ने उनका विरोध किया। शोर मचा दिया गांधीजी को वक्त से पहले चुप करा दिया। लेकिन गांधीजी ने साहस नहीं खोया और तीन वर्षों के भीतर वे विश्वविख्यात हो गए।

७३१) आलपिन- गांधीजी जोहान्सबर्ग से समुद्री जहाज से स्वदेश आ रहे थे। जहाज में सवार एक अंग्रेज ने चार पृष्ठों में गालियां लिखकर उनको पिन में खोंसा और गांधीजी के पास जाकर बोला- इनमें जो लिखा है, उसे ध्यान से पढ़ो और आदमी बनने की कोशिश करो।

गांधीजी ने उसे पास की कुर्सी पर बिठाया और पृष्ठों को ध्यान से पढ़ने लगे। वे सारे पृष्ठ पढ़ गए, पर उन्हें क्रोध नहीं आया। अंग्रेज उनके शांत स्वभाव पर हैरान था। गांधीजी ने उसे धन्यवाद ज्ञापित किया और पृष्ठों से पिन खोल कर रख लिया और सारे पन्ने सौंपते हुए कहा-

लीजिए, मैं आपके शब्द आपको वापस करता हूं। जहां तक पिन की बात है, तो यह मेरे काम आएगी। कागजों को नत्थी करने में इसका उपयोग हो जाएगा। अंग्रेज मारे लज्जा के गांधीजी से आंखें नहीं मिला पा रहा था।

७३२) पेंसिल का टुकड़ा- गांधीजी के पास पेंसिल का एक छोटा-सा टुकड़ा था, जिससे वे लिखते थे। एक दिन सफाई करते समय मनु बहन ने उस टुकड़े को हटा दिया और उसकी जगह एक बड़ी पेंसिल रख दी। गांधीजी ने जब पेंसिल के टुकड़े के बारे में पूछा तो मनु बहन ने कहा- वह पेंसिल का टुकड़ा इतना छोटा था कि आपको लिखने में कष्ट होता, इसलिए मैंने उसे हटा दिया।

गांधी ने कहा- यदि हम इतना सा कष्ट भी सहन नहीं कर सके तो अहिंसा जैसे आदर्श को कैसे पा सकेंगे ? हमारे देश में इतने गरीब लोग हैं, जिन्हें लिखने के लिए पेंसिल का वह टुकड़ा भी नहीं मिलता। यदि हमारे जैसे लोग भी इस टुकड़े का मूल्य नहीं समझ सके तो यह देश गरीब ही बना रहेगा।

७३३) नमक- गांधी जन उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में थे और फिनिक्स आश्रम में रहते थे। कुछ युवक फिनिक्स आश्रम में भर्ती हुए। उन युवकों ने एक महीने तक बिना नमक का भोजन करने की प्रतिज्ञा की।

कुछ दिन तक तो युवक अपनी प्रतिज्ञा पर अमल करते रहे, लेकिन शीघ्र ही वे सादे भोजन से उकता गए। जब और चलाना मुश्किल हो गया तो एक दिन उन युवकों ने डरबन से खाने की मसालेदार और स्वादिष्ट चीजें मंगवाई और चुपचाप खा लीं।

उन्हीं में से एक युवक ने बापू को यह सब बता दिया। बापू उस समय कुछ नहीं बोले, लेकिन शाम की प्रार्थना में उन्होंने उन सब युवकों को बुलाकर खाने के बारे में पूछा। सबने साफ इनकार कर दिया। उन लोगों ने भेद खोलने वाले को ही झूठा ठहराया।

बापू को यह सहन नहीं हुआ। वे जोरों से अपने गालों को पीटने लगे और बोले- मुझसे सच्चाई छिपाने में कसूर तुम्हारा नहीं, मेरा है। क्योंकि मैंने अभी तक सत्य का गुण प्राप्त नहीं किया है, इसीलिए सत्य मुझसे दूर भागता है।

बापू का यह कार्य देखकर युवकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। वे सब एक-एक करके बापू के चरणों में गिर पड़े और सबने

अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

७३४) वातानुकूलित कमरा- अमरीकी पत्रकार लुई फिशर गांधी जी से मिलने सेवा ग्राम आये। वहां उन्हें असह्य गर्मी लगी। उन्होंने बापू से कहा, ऐसी गर्मी में मेरे लिए काम करना कठिन है।

गांधीजी ने पूछा, तुम्हें वातानुकूलित कमरा चाहिए।

फिशर ने कहा, जी हां।

गांधीजी ने कहा, अच्छा। उन्होंने एक बड़ा टब मंगवाया, उसमें पानी भरवाया और उसके अन्दर दो स्टूल रखवाये, फिर फिशर से कहा, लो भई, तुम्हारा कमरा तैयार है। कपड़े उतार दो, पतलून ऊंची करके पैर पानी में डाल लो और एक स्टूल पर बैठ जाओ, दूसरे स्टूल पर टाइपराइटर रख कर अपना काम करो।

लुई फिशर ने वही किया। उस कमरे में उन्होंने जितना काम किया, उतना शायद अपने अमरीका के वातानुकूलित कमरे में भी नहीं कर पाये होंगे। यह घटना हमारे आज के शासकों को क्या कुछ शिक्षा देगी ?

७३५) हिंसा- रवीन्द्रनाथ टैगोर के यहां गांधी जी ठहरे हुए थे। सांझ को दोनों घूमने चले तो रवीन्द्रनाथ बोले, मैं जरा तैयार हो लूं।

उन्हें तैयार होने में बहुत देर लगी। गांधीजी ने भीतर झांक कर देखा तो पाया कि रवीन्द्रनाथ आदमकद आइने के समझ खड़े स्वयं को सजाने में लीन हैं।

गांधी ने कहा- यह क्या कर रहे हैं, और इस उम्र में।

रवीन्द्रनाथ बोले, जब उम्र कम थी, तो बिना सजे भी चल जाता था, अब नहीं चलता। और मैं किसी को कुरूप दिखूं तो लगता है कि उसके साथ हिंसा कर रहा हूं।

७३६) दिल देखते हैं- बात उन दिनों की है, जब गांधी जी विलायत में अध्यनरत थे। एक बार वे नारायण हेमचन्द्र के साथ मशहूर और प्रभावशाली व्यक्तित्व कार्डिनल मैनिंग से मिलने गये। प्रथा के अनुसार गांधी जी ने तो मुलाकाती पोशाक पहन ली, पर नारायण हेमचन्द्र सादा कपड़ों में ही बने रहे। गांधीजी ने उनका उपहास किया तो वे बोले- तुम सभ्य लोग सब डरपोक हो। महापुरुष किसी की पोशाक नहीं देखते। वे उसका दिल देखते हैं।

७३७) यरवदा जेल की बात है। वहां गांधी जी का उपवास चल रहा था। वह आम के पेड़ के नीचे लेटे थे। गुजरात और काठियावाड़ के हरिजनों के उद्धार के लिए कुछ कार्यक्रम निश्चित होने थे। उसके लिए कुछ विशिष्ट लोग आये हुए थे। वे गांधीजी के पास बैठे थे और चर्चाएं हो रही थीं। जेल का एक अधिकारी भी वहां बैठा था।

एक बंदी वहां गांधी जी के लिए पानी गरम कर रहा था। अंगीठी के कोयले तेजी से जल रहे थे। पानी बड़ी जल्दी गरम हो गया। बंदी ने बर्तन उतारकर नीचे रख दिया और अंगीठी को वैसा ही जलता छोड़ दिया। कोयले अब भी दहक रहे थे।

गांधीजी का ध्यान उस ओर गया। चर्चा को रोकते हुए उन्होंने बंदी से कहा, अंगीठी को बुझा दो।

बंदी ने अधिकारी की ओर देखा। अधिकारी ने कहा, महात्मा जी, आप क्यों चिन्ता करते हैं ? कोयले सरकारी हैं। जलने दीजिए।

गांधीजी गंभीर हो गए। बोले, नहीं, कोयले आम जनता के पैसे के हैं।

७३८) ओता गांधी पोरबन्दर राज्य के दीवान थे। उनकी ईमानदारीं, न्यायप्रियता, बौद्धिक क्षमता व कर्तव्यनिष्ठा के सभी कायल थे। जब उनके दोनों बेटे विवाह योग्य हुए तो उन्होंने अपनी हैसियत से बढ़कर धूमधाम से विवाह किया। पूरे

गांव को खाने पर बुलाया गया। दीवान के बेटे के विवाह में सब आए भी और लोगों ने वर-वधू को उपहार दिए।

दीवान की ईमानदारी का आलम देखिए। विवाह में खर्च हुई रकम से अधिक के उपहार प्राप्त हुए, लेकिन उन्होंने वे सारे उपहार अपने राजा को यह कहते हुए सौंप दिए कि ये आपकी प्रजा ने दिए हैं।

राजा साहब ने गद्‌गद होकर खजांची को आदेश दिया कि दीवान जी के पुत्रों के विवाह का सारा खर्च राज्य की ओर से किया जाए।

ओता गांधी और कोई नहीं हमारे राष्ट्रपिता गांधी के दादा थे।

७३९) भारत की आत्मा- एक बार गांधीजी और ठक्कर बापा उड़ीसा के एक छोटे से स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक वृद्ध आदिवासी आया और घुटने टेककर बापू के चरण छूने लगा। उसने केवल लंगोटी पहन रखी थी। उसकी पसलियां झलक रही थी। उसने कमर से एक पैसा निकाला और बापू के पैरों के पास रख दिया। बापू की आंखे चमक उठी। उन्होंने पूछा, यह पैसा क्यों रखा ? वृद्ध बोला, देव दर्शन को जाते हैं तो कुछ भेंट चढ़ाने ले जाते हैं। बापू बोले, मैं इस पैसे का क्या करूंगा ? किसी गरीब को दे देना। वृद्ध बोला। गांधीजी पास बैठे उड़ीसा के समाज सेवक गोपबंधु दास से बोले, यही भारतवर्ष की आत्मा है। यहां हर व्यक्ति अपने से गरीब की मदद करना अपना धर्म समझता है। इसका शरीर दुर्बल है, पर आत्मा बलवती है।

७४०) खुद्दारी- महात्मा गांधी के पिता करमचन्द गांधी कबा गांधी के नाम से जाने जाते थे। दीवानी और ईमानदारी उन्हें विरासत में मिली थी। उन दिनों वे बीकानेर के ठाकुर बनेसिंह के अमात्य थे। एक बार कबा गांधी ने राजा की अनाज बटाई की नीलामी की। राजा बनेसिंह को लगा कि व्यापारियों को डराया धमकाया जाता तो ऊंची बोली लगती।

इस संबंध में जब उन्होंने कबा गांधी से बात की और दुबारा नीलामी करने के लिए कहा तो उन्होंने न सिर्फ दीवान का पद छोड़ दिया, बल्कि अपने पांच वर्षों का वेतन ३६,००० रुपए और राजा की ओर से दिए जा रहे अतिरिक्त १०,००० रुपए भी ठुकरा दिए।

७४१) सार्वजनिक पैसा- सन १९३३ की बात है। गांधीजी हरिजनों के लिए देशभर में दौरा कर रहे थे। जहां कहीं जाते थे, हरिजन-कोष के लिए पैसा इकट्ठा करते थे। जो भी रकम आती थी, गांधीजी के निजी सचिव महादेव भाई तभी-के-तभी उसे एक कागज पर लिख लेते थे। फिर रात को बैठकर हिसाब करते थे और रोकड़ मिलाते थे। एक दिन रात को जब महादेव भाई हिसाब करने बैठे तो देखा, एक हजार दो रुपये कम हैं। उन्होंने एक बार फिर कागज पर लिखी रकमों का जोड़ लगाया और रुपयों को गिना, लेकिन कमी बरकरार रही। उन्हें पांच सौ एक, पांच सौ एक की दो थैलियां मिली थीं। वे गायब थी। उन्हें कोई उड़ा ले गया था। कौन ले गया, इसका पता लगाना बड़ा कठिन था, एक प्रकार से असंभव था। अब क्या करें ? महादेव भाई बड़े दु:खी थे, पर हो क्या सकता था। किसी भाई ने जाकर गांधीजी को इसकी सूचना दी। सुनकर गांधीजी चुप रहे। तब उन भाई ने पूछा, बापू, इन रूपयों का क्या होगा? बिना झिझके गांधीजी ने उत्तर दिया, होगा क्या। यह रुपया महादेव को अपनी जेब से भरना होगा। उन भाई ने कहा, बापू महादेव भाई ने तो वह रुपया लिया नहीं। तो उससे क्या हुआ। आखिर जिम्मेदारी महादेव की है। यह सार्वजनिक पैसा है। थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। वह भाई आगे क्या कह सकते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस रकम को महादेव भाई ने अपनी निजी आमद में से चुकाया।

७४२) दान का महत्व- सेठ जमनादास गांधीजी के चरखा संघ के अध्यक्ष थे। चरखा संघ का सारा हिसाब-किताब वही रखते थे। एक बार गांधीजी एक सभा में चरखा संघ के महत्व के बारे में लोगों को बता रहे थे और कह रहे थे कि इसका

सारा खर्च चंदे से ही लगता है। उनके बगल में जमनादास बैठे थे। सभा खत्म होने के बाद लोग लाइन लगा कर चरखा संघ के लिए दान पात्र में चंदा डालने लगे। कतार में एक बहुत गरीब बुढ़िया भी थी। वह दान पात्र में चंदा न डालकर गांधीजी के पास आने लगी। स्वयंसेवकों ने उसे गांधीजी के पास जाने से रोक दिया। स्वयंसेवकों को ऐसा करते देख गांधीजी ने कहा, मां को मेरे पास आने दो। बुढ़िया ने गांधीजी के पास पहुंच कर एक पोटली खोली और एक अधेला (आधा पैसा) उनके चरणों में रखते हुए कहा, मेरे पास कुल जमा पूंजी इतनी ही है। गांधीजी ने उस अधेले को माथे से लगाया और बोले, मां हमारे लिए तो आपका दिया हुआ धन सबसे ज्यादा है। सेठ जमनादास सब कुछ देख रहे थे। सभी लोगों के जाने के बाद गांधीजी ने दान पात्र का सारा पैसा जमनादास को दे दिया मगर बुढ़िया द्वारा दिया गया एक अधेला अपने पास रख लिया। जमनादास ने कहा, बापू, आपने एक अधेला नहीं दिया। गांधीजी बोले, उसे मैं अपने पास रखूंगा। जमनादास ने कहा, चराख संघ को मिलनेावले हजारों रुपये मैं ही लेता हूं और इसका हिसाब मैं ही रखता हूँ। पर इस अधेले के लिए आपको मुझ पर विश्वास नहीं है। गांधीजी ने कहा, यदि किसी व्यक्ति के पास हजारों रुपये हों और वह उसमें से सौ रुपये दे दे, तो कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन उस बुढ़िया के लिए यह अधेला ही सारी जमा पूंजी थी जो उसने दान कर दी। कितना बड़ा त्याग किया है उसने। उसका अधेला मेरे लिए करोड़ों से ज्यादा है। जब तक यह मेरे पास रहेगा, मुझे दान के महत्व का अहसास कराता रहेगा।

७४३) सर्वोत्तम ग्रंथ- गांधीजी के साथ उनके आश्रम में कुछ दिन रहे एक व्यक्ति ने देखा कि वे रामचरितमानस की बहुत प्रशंसा करते हैं और अक्सर उसके उद्धरण भी सुनाते रहते हैं। आश्रम से जाने के बाद उसने मानस का मनोयोग से अध्ययन किया, फिर कुछ विद्वानों से भी उस पर बात की। उसके बाद गांधीजी को पत्र लिखा, बापू, रामचरितमानस में स्त्री जाति की निंदा है, बालि के वध और विभीषण के देशद्रोह की प्रशंसा है। काव्य चातुर्य भी उसमें कुछ विशेष नजर नहीं आता। फिर भी आप उसे सर्वोत्तम ग्रंथ क्यों मानते हैं? समझ में नहीं आता कि आपके जैसा व्यक्ति इसके दोषों को नजरअंदाज कैसे कर गया? फिर आप हर समय इसका हवाला देते रहते हैं। आखिर दूसरों को इसके माध्यम से आप क्या संदेश देना चाहते हैं? गांधीजी पत्र पढ़कर मुस्कराए। फिर बाकी काम छोड़कर पहले उसी का जवाब देने बैठ गए। जवाब में गांधीजी ने लिखा, मेरे सामने ऐसे विचार पहले भी कुछ विद्वान लोग व्यक्त कर चुके हैं। वे दुर्भाग्य से अपने ज्ञान की सार्थकता रामचरितमानस को दोषों का पिटारा साबित करने में ही समझते हैं। यूं तो वेद, कुरान और बाइबल के भी आलोचकों का अभाव नहीं हैं, पर जो गुणदर्शी हैं, वे उनमें दोष नहीं देखते। मानस को मैं सर्वोत्तम इसलिए नहीं कहता कि कोई उसमें एक भी दोष नहीं निकाल सकता, बल्कि इसलिए कहता हूं कि उससे करोड़ों लोगों को शांति मिलती है। वह भक्ति और अनुभवजन्य ज्ञान का भंडार है। गांधीजी का जवाब पाकर उस व्यक्ति की आंखे खुल गई।

७४४) सच्चे स्नेह का जादू- घटना उस समय की है, जब महात्मा गांधी को छह वर्ष के लिए यरवदा जेल भेजा गया। जेल सुपरिटेंडेंट अंग्रेज था। वह गांधीजी को ब्रिटिश अंग्रेज साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु मानता था, इसलिए जब बापू के लिए कोई सेवक देने का अवसर आया, तो उसने एक अश्वेत अफ्रीकी को बापू की सेवा में लगा दिया। वह अफ्रीकी न तो हिंदी समझता था और न ही अंग्रेजी। केवल इशारों से ही उससे काम लिया जा सकता था। गांधीजी सुपरिटेंडेंट की धूर्तता को भांप गए। फिर भी उन्होंने कोई ऐतराज नहीं किया। वह उस अफ्रीकी से ही सहयोग लेने लगे। गांधीजी की कोशिश थी कि वह उनके प्रति पूरी तरह सहज हो जाए। एक दिन उस अफ्रीकी को बिच्छू ने कांट लिया तो वह भागा-भागा गांधीजी के पास पहुंचा और बिच्छु के काटे हुए स्थान को दिखाकर उनसे सहायता मांगने लगा। गांधीजी ने तुरंत उसका उपचार

शुरू कर दिया। कुछ ही पलों में उसकी जलन शांत हो गई। फिर गांधीजी ने उसे कुछ दवाएं दीं और उस दिन काम न करने की छूट भी। वह अफ्रीकी गांधीजी से बेहद अभिभूत हुआ। उसे अपने जीवन में किसी भी अन्य व्यक्ति से इतना प्यार कभी नहीं मिला था। उस घटना के बाद वह बापू का भक्त बन गया और बड़े मनोयोग से उनकी सेवा करने लगा। गांधीजी और उसके बीच आत्मीय रिश्ता बन गया, जिसे देखकर जेल अधिकारी आश्चर्य में पड़ गया। उसने तो गांधीजी को परेशानी में डालने के लिए उस अफ्रीकी को उनकी सेवा में रखा था, पर हुआ ठीक उलटा। यह गांधीजी के सच्चे स्नेह का जादू था।

७४५) दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि- यरवडा जेल में गांधीजी का उपवास चल रहा था। जेल के दरवाजे हरिजन-सेवकों के लिए खोल दिये गए थे। जो जब चाहे, आ सकता था। उस पर कोई रोक-थाम नहीं थी। गुजरात तथा काठियावाड़ में हरिजनों के उद्धार के लिए कुछ कार्यक्रम निश्चित होने थे। उस संबंध में बात करने के लिए कुछ विशिष्ट लोग वहां आये हुए थे। गांधीजी आम के पेड़ के नीचे लेटे हुए थे। लोग आकर उनके पास बैठ गये। बातों का सिलसिला चल पड़ा। वहीं पर जेल के एक अधिकारी भी बैठे हुए थे। एक बंदी गांधीजी के लिए अंगीठी पर पानी गरम कर रहा था। अंगीठी बहुत तेजी से जल रही थी। पानी बड़ी जल्दी गरम हो गया। बंदी ने यह देखा तो अंगीठी पर से पानी का बतन उतारकर नीचे रख दिया, पर अंगीठी को वैसा ही जलती छोड़ दिया। कोयले बड़े जोर से दहक रहे थे। वे दहकते रहे। तभी गांधीजी का ध्यान उस ओर गया। वह गुजरात और काठियावाड़ के नेताओं से बात कर रहे थे। एकदम बातचीत को रोककर गांधीजी ने बंदी से कहा, सुनो भाई, अंगठी को बुझा दो। बंदी ने जेल के अधिकारी की ओर देखा। अधिकारी ने मुस्कराकर कहा, गांधीजी, आप क्यों चिन्ता करते हैं? फिर कुछ रुककर बोले, कोयले सरकारी हैं। जलने दीजिये। गांधीजी गंभीर हो गये बोले, नहीं, ये कोयले तो आम जनता के पैसे के हैं। आज जबकि देश की गरीब जनता का पैसा चारों ओर पानी की तरह बह रहा है, देशवासियों की आखें उस मसीहा को खोज रही हैं, जो दरिद्रनारायण का सच्चा प्रतिनिधि था।

७४६) बापू का जवाब- महात्मा गांधी के पास रोज ढेरों पत्र आते थे। लोग उनसे अपने मन की बात कहते, तरह-तरह के सवाल पूछते और अपने लिए सलाह भी मांगते थे। ऐसे पत्रों की भी कमी नहीं थी, जिनमें उन्हें कोई सुझाव दिया जाता था। बापू हर किसी के पत्र को बड़े ध्यान से पढ़ते फिर सबको जवाब देने की कोशिश करते थे। एक बार एक व्यक्ति ने महात्मा गांधी को पत्र में लिखा, बापू, अब आप वृद्ध हो गए हैं, आपको अपना समय भगवान की भक्ति में लगाना चाहिए। राजनीति और सांसारिक द्वंन्द्वों को छोड़कर अब आपको भगवान की शरण ग्रहण करनी चाहिए। आप क्यों बेवजह राजनीति के झंझट में पड़े रहते हैं। इससे आप बहुत परेशान हो जाते होंगे। आपके बारे में सोचकर कष्ट होता है। आप यह सब छोड़ दें। गांधीजी को यह पत्र बड़ा रोचक लगा। उन्होंने उत्तर दिया, बंधु, भगवान के स्मरण के लिए वृद्धावस्था या जीवन का अंतिम समय ही नहीं होता। अब आयु का भरोसा ही नहीं, तो वृद्धावस्था का इंतजार क्यों किया जाए? मेरा तो विश्वास है कि भगवान की भक्ति जीवन भर उसी तरह होनी चाहिए, जैसे शरीर में रक्त प्रवाह होता है। भगवान का भजन तो स्नान की तरह है। ऐसा नहीं हो सकता कि बचपन और यौवन में कोई स्नान ही न करे और वृद्धावस्था में पहुंचकर प्रभु भक्ति के स्नान से स्वयं को पवित्र बनाए। मैं प्रत्येक अवस्था में प्रभु भक्ति को जरूरी समझता हूं और श्रद्धापूर्वक ईश्वर की आराधना करता हूँ। यह उत्तर पाकर उस व्यक्ति की गांधीजी के प्रति आस्था और बढ़ गई।

७४७) उपयोग का तरीका - उन दिनों गांधीजी इलाहाबाद में थे। एक बार सुबह में वह मुंह-हाथ धो रहे थे और जवाहर लाल नेहरू पास खड़े उनसे बातें कर रहे थे। कुल्ला करने के लिए गांधीजी ने जितना पानी लिया, वह समाप्त हो गया तो उन्हें दूसरी बार पानी लेना पड़ा। इस पर गांधीजी खिन्न हो गए और बातचीत का सिलसिला टूट गया। नेहरू जी ने कारण पूछा तो

उन्होंने कहा, मैंने पहला पानी आवश्यक रूप से खर्च कर दिया और अब फिर पानी लेना पड़ रहा है। अफसोस की बात है। नेहरू जी ने हंसते हुए कहा, यहां तो गंगा-यमुना दोनों बहती हैं। रेगिस्तान की तरह पानी कम थोड़े ही है। आप थोड़ा ज्यादा पानी खर्च कर दें तो चिंता की क्या बात है। इस पर गांधीजी बोले, गंगा-यमुना मेरे लिए ही तो नहीं बहतीं। प्रकृति में कोई भी चीज कितनी ही उपलब्ध हो, मनुष्य को उसमें से उतना ही खर्च करना चाहिए जितना उसके लिए आवश्यक है।

७४८) बापू की चटनी- यह घटना उस समय की है जब राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर था। इसमें देश के आम जन ही नहीं, राजा-महाराजा तक अपना योगदान देने को तैयार थे। एक दिन काशी के महाराजा गांधीजी के आश्रम में आए और बोले, बापू, मैं भी राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होना चाहता हूं। इस पर गांधीजी प्रसन्नता से बोले, यह तो बहुत अच्छी बात है कि राजा आगे आए हैं। उनके साथ प्रजा भी आगे आएगी। एक राजा अपने साथ लाखों प्रजा भी लेकर आएगा। इस पर महाराजा ने कुछ नहीं कहा। भोजन का समय होने पर गांधीजी ने महाराजा को खाने के लिए अपने साथ बिठाया। महाराजा को भी वैसा ही सादा भोजन दिया गया जैसा गांधीजी खाते थे। लेकिन गांधीजी के भोजन में एक वस्तु अधिक थी- चटनी। महाराजा को चटनी नहीं दी गई थी। जब महाराजा ने देखा कि गांधीजी चटनी मजे से खा रहे हैं, तो वह बार-बार उनकी ओर देखने लगे। गांधीजी ने पूछा, आपको भी चटनी चाहिए? फिर तुरंत गांधीजी ने चम्मच भर चटनी उनकी थाली में रख दी। महाराजा ने उसका स्वाद लेने की जल्दी में ढेर सारी चटनी अपने मुंह में भर ली। चटनी मुंह में रखते ही उनके मुंह का स्वाद बिगड़ गया। उनसे न निगलते बन रहा था न उगलते। महाराजा ने पूछा, बापू, चटनी बड़ी कड़वी है। नीम की है क्या? गांधीजी बोले, हां नीम की है। मैं तो वर्षों से रोज खा रहा हूं। तुम अगर मुंह का स्वाद नहीं बदलोगे तो आंदोलन के कष्ट कैसे भोगोगे? महाराजा बापू का आशय समझ गए। वह जी कड़ा कर चटनी खाने लगे।

७४९) अर्जुनों का झुंड - बात सन् १९३० की है। उन दिनों गांधीजी जेल में थे। साबरमती आश्रम के छोटे-छोटे बच्चे उन्हें पत्र लिखा करते थे और वह उन्हें नियमित रूप से जवाब दिया करते थे। अपने पत्रों में बच्चे अजीब-अजीब सवाल किया करते थे। गांधीजी अपनी आदत के मुताबिक संक्षेप में उनका जवाब दे देते थे। एक बार एक बच्चे ने शिकायत की, बापू, आप गीता की इतनी चर्चा करते हैं, पर गीता में तो अर्जुन एक-दो पंक्तियों का प्रश्न करते थे और जवाब में कृष्ण पूरा अध्याय कह जाते थे, पर आप हमारे लंबे-लंबे प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दे देते हैं, ऐसा क्यों? इस पर गांधीजी ने जवाब लिखा, भूलते क्यों हो कि कृष्ण के पास एक ही अर्जुन था, जबकि यहां तो अर्जुनों का पूरा झुंड है।

७५०) तसला और कटोरा - गांधीजी बड़ौदा जेल में थे, तब सुपरिटेंडेंट मेजर मार्टिन ने उनके लिए कुछ आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध करवाना आरंभ किया। गांधीजी ने सुपरिटेंडेंट से पूछा, ये सारी वस्तुएँ किसके लिए आ रही हैं? सुपरिटेंडेंट ने उत्तर दिया, आपके लिए। मैंने सरकार को लिखा था कि इतने महान पुरुष पर तीन सौ रुपए महीने खर्च होने चाहिए। गांधीजी ने कहा, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। किंतु मेरा मासिक व्यय पैंतीस रुपए से अधिक नहीं होगा। यदि मैं स्वस्थ होता तो खाना भी सी क्लास का खाता। गांधीजी के आग्रह पर वे सारी वस्तुएँ वापस कर दी गईं। उनके स्थान पर वही तसला और कटोरा आ गया, जो सामान्य कैदी को दिया जाता था।

शिक्षा- महान पुरुष कभी अपने को साधारण लोगों से अलग नहीं समझते।

७५१) योग्य मार्गदर्शक - महात्मा गांधी सायन्स लॅबोरेटरी, अहमदाबाद में कुछ छात्र प्रयोग कर रहे थे। इस दौरान दो विद्यार्थियों से भारी गलती हो गई। उन्हें लगा कि अब उन्हें कड़ी सजा मिलेगी। प्रयोगशाला उन दिनों प्रख्यात वैज्ञानिक क्रिम साराभाई ने कुछ ही दिनों पहले शुरू की थी। दोनों छात्र डरते-डरते उनके पास पहुंचे। साराभाई उनको घबराया देखकर बोले,

क्या बात है? आप दोनों इतना घबरा क्यों रहे हो? इस पर एक छात्र डरते-डरते बोला, सर? इलेक्ट्रिक मीटर बिगड़ गया है। इसलिए उसमें से बहुत ज्यादा करंट पास हो गया है। यह सुनकर साराभाई सन्न रह गए। फिर उन्होंने स्वयं को संभाला और बोले, अरे। बस इतनी सी बात के लिए तुम दोनों इतना परेशान हो। कोई बात नहीं। विद्यार्थी जब अध्ययन और प्रयोग करते हैं तो ऐसी घटनाएं हो ही जाती हैं। यदि विद्यार्थी गलतियां नहीं करेंगे तो सीखेंगे कैसे? भविष्य में प्रयोग करते समय अवश्य सावधानी बरतना जिससे ऐसे नुकसान से बचा जा सके। विद्यार्थी विक्रम साराभाई की बातें सुनकर उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो उठे। दरअसल जो गलती इन दोनों छात्रों से हुई थी उसके कारण एक बहुत महंगा व महत्वपूर्ण यंत्र पूरी तरह जल गया था। वह यंत्र उन दिनों बाजार में भी मौजूद नहीं था। यहां तक कि उस यंत्र के जल जाने के कारण अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग रुक गए थे। लेकिन साराभाई इस नुकसान पर न ही झल्लाए, न ही उन्होंने तनिक भी गुस्सा प्रकट किया बल्कि दोनों विद्यार्थियों के भय को शांत कर उन्हें सामान्य किया। बाद में जिसने भी यह प्रसंग सुना, उसने साराभाई की प्रशंसा की।

७५२) गांधीजी की आस्था - गांधीजी सुबह उठ कर कभी-कभी कुरान का पाठ किया करते थे। सूरा-ए-फातेहा उनको जुबानी याद था। इसको याद रखने के कारण तो एक बार उनकी जान भी बच गई थी। हुआ यूं कि जब बंगाल में सांप्रदायिक दंगों की भड़कती आग को ठंडा करने के लिए गांधीजी सड़कों पर लोगों से शांति का आग्रह कर रहे थे तो नोआखाली के बाबू बाजार में एक कट्टर मुसलमान ने गांधीजी को काफिर पुकार कर उन पर हमला किया। गांधीजी, जो वैसे ही काफी दुबले-पतले थे और आए दिन व्रत-उपवास आदि भी रखते रहे थे, जमीन पर गिर गए और गिरते हुए उन्होंने सूरा-ए-फातेहा को शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ा जिसमें सभी के लिए शांति व सलामती का संदेश है। एक हिंदू को कुरान की आयत पढ़ते देख वह मुसलमान तुरंत उनके पांवों में पड़ गया और तब से उनका शिष्य बन गया। मौलाना आजाद के एक लेख से जो दैनिक वकील में प्रकाशित हुआ था, एक वाकया मिलता है कि नोआखाली में ही दंगा पर उतारू मुसलमानों के एक गुट से गांधी ने कहा, तुम कैसे मुसलमान हो? क्या तुमने हजरत मुहम्मद से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की? आज अगर हजरत मुहम्मद यहां आएं तो तुममें से बहुत से मुसलमानों को वे अपनाने से इनकार कर देंगे। तुमसे तो अच्छा मुसलमान मैं हूं कि मारकाट नहीं कर रहा। वे अवश्य मुझे अपनाएंगे क्योंकि मैं उनके बताए रास्ते पर चल रहा हूं। जिस प्रकार से मौलाना आजाद की धर्म में अटूट आस्था थी, उसी प्रकार गांधीजी की भी थी। गांधीजी ने अपने पत्रों में मौलाना साहब को लिखा कि अपने छात्र जीवन से ही उन्हें गीता पाठ से आत्मिक व मानसिक शांति की प्राप्ति होती थी। हजरत मुहम्मद का चरित्र उन्हें बहुत पसंद था। अपने जीवन में भी वे उनका अनुसरण करते थे। गांधीजी हजरत मुहम्मद के चरित्र से कितना प्रभावित थे यह उनके लेखन से जाहिर है। गांधीजी ने अपने लेखन में हजरत मुहम्मद के विचारों को प्रमुखता से व्यक्त किया।

७५३) सत्य के प्रयोग- इंग्लैंड जाते वक्त मैंने मांस, मदिरा तथा स्त्री संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। जाते हुए जब समुद्री जहाज में मांस खाने का प्रसंग आया तो मैंने कहा, मांस न खाने के लिए मैं अपनी माताजी से वचनबद्ध हूं। मैं मांस नहीं खा सकता। अगर उसके बिना काम ही न चला तो वापस मैं हिन्दुस्तान चला जाऊंगा पर मांस तो कभी नहीं खाऊंगा। लंदन में मुझे निरामिष भोजनालय की खोज करनी थी। मैं रोज दस-बारह मील चलता था। इसी तरह भटकता हुआ एक दिन फेरिंग्डन स्ट्रीट पहुंचा और वहां एक वेजिटेरियन रेस्त्राँ का नाम पढ़कर मुझे वह आनंद हुआ जो किसी बालक को मनचाही चीज मिलने से होता है। जैसे-जैसे मैं जीवन की गहराई में उतरता गया, वैसे-वैसे मुझे बाहर और भीतर के आचरण में फेरफार करने की जरूरत मालूम होती गई। मैंने देखा कि अन्नाहार विषयक अंग्रेजी पुस्तकों में लेखकों ने बहुत सूक्ष्मता से विचार किया था। उन्होंने धार्मिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक और वैद्यक दृष्टि से अन्नाहार की छानबीन की थी। नैतिक दृष्टि से उन्होंने यह सोचा था

कि मनुष्य को पशु-पक्षियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ है, वह उन्हें मारकर खाने के लिए नहीं बल्कि उनकी रक्षा के लिए है। अथवा जिस प्रकार मनुष्य एक-दूसरे को खाते नहीं, उसी प्रकार पशु-पक्षी भी उपयोग के लिए हैं, खाने के लिए नहीं। खाना भोग के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए है। मांसाहार का जैसा विरोध और तिरस्कार गुजरात में और श्रावकों तथा वैष्णवों में पाया जाता है, ये मेरे संस्कार थे। मेरे ख्याल में बकरों के जीवन का मूल्य मनुष्य के जीवन से कम नहीं है। मनुष्य देह को निबाहने के लिए मैं बकरे की देह लेने को तैयार न होऊंगा। मैं यह मानता हूं कि जो जीव जितना अधिक अपंग है, उतना ही उसे मनुष्य की क्रूरता से बचने के लिए मनुष्य का आश्रय पाने का अधिक अधिकार है। नश्वर शरीर को सजाने के लिए, उसकी उमर बढ़ाने के लिए हम अनेक प्राणियों की बलि देते हैं। फिर भी उससे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है।

७५४) बापू की रजाई - गांधीजी रोज अपने आश्रम की हर चीज का बारीकी से मुआयना करते थे। जाड़े के दिनों में एक बार वह आश्रम की गोशाला में पहुंचे। उन्होंने गायों को सहलाया और प्यार से बछड़ों को थपथपाया। उनका प्रेम भरा स्पर्श पाकर जानवरों ने भी गर्दन हिलाकर उनके स्नेह का जवाब दिया। वह वहां से बाहर निकल ही रहे थे कि तभी उनकी नजर पास खड़े एक गरीब लड़के पर गई। उन्होंने पूछा, तू रात को यहीं सोता है? गांधीजी का प्रश्न सुनकर लड़का धीमे से बोला, जी बापू जी। मैं रात यहीं बिताता हूं। गांधीजी बोले, बेटा, इन दिनों तो बहुत ठंड है। ऐसे में क्या तुम्हें सर्दी नहीं सताती? लड़का बोला, सर्दी तो बहुत लगती है। बापू ने कहा, फिर तुम ठंड से बचने के लिए क्या ओढ़ते हो? लड़के ने एक फटी चादर दिखाते हुए कहा, मेरे पास ओढ़ने के लिए बस एक यही चादर है। लड़के की बात सुनकर बापू आश्चर्य से उसे देखते रहे, फिर अपनी कुटिया में लौट आए। उन्होंने उसी समय कस्तूरबा से दो पुरानी साड़ियां मांगी, कुछ पुराने अखबार तथा थोड़ी सी रूई मंगवाई। रूई को अपने हाथों से धुना। साड़ियों की खोली बनाई, अखबार और रूई भरकर एक रजाई तैयार कर दी। जब रजाई पूरी तरह तैयार हो गई तो बापू ने गोशाला से उस लड़के को बुलवाया। लड़का सहमता हुआ उनके पास आया तो गांधीजी ने उसके सिर पर प्यार से हाथ रखा और रजाई उसे देते हुए कहा, इसे ओढ़कर देखना कि रात में ठंड लगती है या नहीं। लड़का खुशी-खुशी रजाई लेकर चला गया। अगले दिन जब गांधीजी गोशाला की ओर गए तो उन्हें वही लड़का नजर आया। बापू ने उससे पूछा, क्या तुझे कल भी ठंड लगी? लड़का तपाक से बोला, नहीं बापूजी, कल तो आपकी दी हुई रजाई ओढ़कर मुझे बहुत गरमाहट महसूस हुई और बड़ी मीठी नींद आई। लड़के का जवाब सुनकर बापू हंस पड़े और बोले, सच, तब तो मैं भी ऐसी ही रजाई ओढ़ूंगा।

७५५) बापू का बड़प्पन - यह उन दिनों की बात है जब महात्मा गांधी आगा खां पैलेस में कैद थे। उस महल को ही कारागृह का रूप दे दिया गया था। एक दिन जब गांधीजी सोकर उठे तो उन्होंने महसूस किया कि आज कुछ ज्यादा ही चहल-पहल है। उन्होंने कस्तूरबा से पूछा- आज क्या बात है? कोई तैयारी चल रही है क्या? कस्तूरबा ने कहा- मुझे तो कुछ पता नहीं, पर कुछ खास बात है जरूर। यह सुनकर गांधीजी हंसे और बोले- तुमको सब पता है। उन सबको समझा दो कि वे अति उत्साह में कोई कार्यक्रम न बना लें। बिल्कुल साधारण ढंग से सब काम होना चाहिए। दरअसल उस दिन दो अक्टूबर था। डॉ. सुशीला नैयर, मीरा बहन आदि बापू का जन्मदिन कुछ अलग अंदाज में मनाने की तैयारी कर रही थीं। तभी गांधीजी को किसी ने बताया कि उन्हें जन्मदिन की बधाई देने के लिए जिले के जिल्हाधीश भी आनेवाले हैं। उन्होंने जेलर से तत्काल एक कुर्सी की व्यवस्था करने का निवेदन किया। डॉ. नैयर ने पूछा, कुर्सी किसलिए? उसकी क्या आवश्यकता है? उस वक्त गांधीजी जमीन पर आसन जमाए बैठे थे। उन्होंने कहा- जमीन पर बैठे रहने से मुझे जिल्हाधीश साहब के सम्मान में खड़े होने में कष्ट होगा। कुर्सी पर बैठा रहूंगा तो उठना सुविधाजनक होगा। इसलिए कुर्सी चाहिए। वहां

खड़े गांधीजी के सहयोगियों ने कहा- बापू, आपके सामने कलेक्टर क्या चीज है? उसके सम्मान में आपको खड़ा होने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। आप आराम से बैठे रहिएगा। वह खड़ा रहेगा। इस पर गांधीजी ने कहा- नहीं यह न्यायसंगत नहीं होगा। इस समय मैं कारागृह में एक मामूली कैदी हूं। राज्य के प्रतिनिधि जिल्हाधीश का सम्मान करना मेरा फर्ज है। बैठकर उनसे बात करना शिष्टाचार नहीं होगा। गांधीजी ने अपने लिए कुर्सी मंगा ली। जब जिल्हाधीश आए तो गांधीजी उठ खड़े हुए। उन्होंने जिल्हाधीश से हाथ मिलाया और उन्हें धन्यवाद दिया।

७५६) असली रक्षक- बहुत पुरानी बात है। गांधीजी उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के दौरे पर थे। खान अब्दुल गफ्फार खान उनकी सारी व्यवस्था कर रहे थे। उन्हें सबसे अधिक चिन्ता गांधीजी की सुरक्षा की थी। जिस समय गांधीजी उनके गांव उत्तमानजई में ठहरे हुए थे, उन्होंने रात को कुछ खुदाई खिदमतगारों को अपने घर की छत पर तैनात कर दिया। वे लोग हथियारों से लैस थे। उन्हें तैनात करने से पहले बादशाह खान ने गांधीजी से पूछा था कि उनको इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है। गांधीजी को पूरी बात का पता न था। मौनवार होने के कारण उन्होंने सर हिला दिया, जिसका मतलब था कि मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बादशाह खान ने समझ लिया कि ठीक है। बाद में गांधीजी को पता चला कि पहरेदारों के पास तो हथियार हैं। उन्होंने बादशाह खान से कहा, यह क्या है? पहरेदार हथियार लेकर चौकसी करें, यह मैं दूसरों के लिए तो किसी तरह सहन कर सकता हूं, लेकिन अपनी सुरक्षा के लिए हर्गिज सहन नहीं कर सकता। जिस बात का मैंने जीवन भर अभ्यास किया है, यह तो उसके एकदम विरुद्ध है। बादशाह खान बड़े समझदार व्यक्ति थे। उन्होंने गांधीजी की भावना को आदर देते हुए तत्काल हथियारबंद पहरेदारों को हटा दिया। लेकिन गांधीजी के न चाहते हुए भी उन्हें इस बात पर राजी कर लिया कि कुछ हद तक बिना हथियार के पहरेदार रह सकते हैं। ईश्वर में अटूट श्रद्धा रखनेवाले गांधीजी मानते थे कि इन्सान की रक्षा ले लिए हथियार का कोई मूल्य नहीं है। जिसे परमात्मा मारना चाहता है, उसे दुनिया की कोई शक्ति नहीं बचा सकती और जिसे परमात्मा बचाना चाहता है, उसे कोई भी शक्ति मार नहीं सकती।

७५७) सच्चा कर्मयोगी - एक बार सेवाग्राम में गांधीजी से एक कार्यकर्ता ने पूछा, आप के जीवन पर किस व्यक्ति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा? गांधीजी ने कहा, भाई रायचन्द्र, टाल्स्टाय और रस्किन से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं, मगर मेरे ऊपर सबसे ज्यादा प्रभाव भाई रायचन्द्र का ही पड़ा है। कार्यकर्ता ने पूछा, वह कैसे? गांधीजी ने कहा, भाई रायचन्द्र का बहुत बड़ा व्यापार था। वह हीरे मोती की परख करते थे और लाखों का कारोबार करते थे। कार्यकर्ता ने गांधीजी को आश्चर्य से देखा। उसे यह बात थोड़ी अटपटी लग रही थी कि गांधीजी आखिर एक व्यापारी से क्यों प्रभावित हुए। गांधीजी ने उसकी मनोदशा को भांपकर कहा, लेकिन वह साधारण कारोबारी नहीं थे। वह एक संत थे। उनकी गद्दी पर कोई और चीज हो या न हो, कोई धार्मिक पुस्तक अवश्य रखी होती थी। बगल में वह एक डायरी भी रखते थे। जब भी उन्हें फुरसत मिलती, वह पढ़ने लगते। पुस्तक में मन को छूने वाली कोई बात होती तो वह उसे डायरी में नोट कर लेते। जो व्यक्ति लाखों की लेन-देन की बात करके फौरन ज्ञान की पुस्तक पढ़ने लगे और आत्मज्ञान की बात लिखने लगे, वह व्यापारी नहीं बल्कि शुद्ध ज्ञानी कहा जाएगा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मगर जब भी मैं उनकी दुकान पर पहुंचता, वह धर्म चर्चा शुरू कर देते थे। उस समय मुझे धर्म चर्चा में रुचि नहीं थी फिर भी मैं भाई रायचन्द्र की बातों को ध्यान से सुनता था। इसके बाद मैं कई संत-महात्माओं से मिला, मगर किसी ने मुझे इतना प्रभावित नहीं किया। मुझसे लोग पूछते हैं कि आखिर रायचन्द्र में क्या खास बात है जिससे मैं इतना प्रभावित हुआ। मुझे उनके कर्मयोग ने प्रभावित किया। आम धारणा यह है कि एक काम करते हुए दूसरा काम करना कठिन है। मगर रायचन्द्र को देख कर लगा कि

मनुष्य सांसारिक जीवन जीते हुए भी संत और ज्ञानी हो सकता है। इसी कारण मुझे रायचन्द्र सच्चे कर्मयोगी नजर आए।

७५८) जापान के गांधी- जापान के युवक कागावा ने पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् अपने जीवन का लक्ष्य दीन-दुखियों तथा पीड़ितों की सेवा के लिए निर्धारित किया। वह पिछड़ें, कुसंग के कारण बिगड़े और बीमार व्यक्तियों के पास जाता एवं उनकी सेवा-सहायता करता। स्वयं की आजीवका चलाने के लिए कागावा ने दो घण्टे का काम तलाश लिया। धीरे-धीरे उसके सेवा कार्य की जगह-जगह चर्चा होने लगी। एक विदुषी युवती को उनका कार्य पसंद आया और उसने कागावा के समक्ष विवाह प्रस्ताव रखा। विवाह की स्वीकृति इस संकल्प के साथ हुई कि सांसारिकता में न उलझकर सेवा क्षेत्र में कार्य करेंगे। युवती ने भी दो घण्टे का काम तलाश लिया ताकि वे समाज पर बोझ न बनें और प्रसन्न मन से सबकी सेवा सहायता कर सके। दोनों के समन्वित प्रयास ने रंग दिखाया और सेवा क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि होती रही। उदार लोग उनके काम में सहयोग करने लगे। सरकार ने भी पूरे जापान में पिछड़ों की सेवा-सहायता के लिए उनका चयन किया। कागावा के प्रति लोगों में अत्यधिक श्रद्धा का विस्तार हुआ। उनका स्थान भी गांधीजी के समकक्ष हो गया।

७५९) हस्ताक्षर- कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पं. मोती लाल नेहरू थे। वहां एक खादी भंडार का उद्घाटन महात्मा गांधी को करना था। गांधीजी वहां प्रोफेसर आचार्य कृपलानी के साथ पधारे।

समाचार था कि खादी-भंडार के उद्घाटन के अवसर पर खरीददारी करने वालों के बिलों पर गांधीजी हस्ताक्षर भी करेंगे। बस फिर क्या था। बहुत बड़ी संख्या में खरीददार उमड़ पड़े। भीड़ लग गई।

महात्मा गांधी खरीददारों की भीड़ देखकर खिल गए। उन्होंने मौके का लाभ उठाते हुए अपने छोटे-से भाषण में कलकत्ता वासियों से कहा- मैं आप सबका बड़ा आभारी हूं। जितनी बड़ी संख्या में आप उपस्थित होते जा रहे हैं, उतनी बड़ी संख्या में बिल तैयार करने में बहुत समय लग जाएगा। समय बचाने के लिए एक रास्ता मेरी समझ में आ रहा है। आप लोगों को जितने-जितने रुपयों की खरीददारी करनी है, मैं उतने रुपये बिलों पर लिख कर अपने हस्ताक्षर किए देता हूं, खादी के सामान का विवरण आप बाद में भरते रहिएगा।

और जनता मान गई। महात्मा जी के हाथ कुछ ही क्षणों में ढ़ाई हजार रुपये आ गए।

प्रोफेसर कृपलानी ने फबती कसी-लिया-दिया कुछ नहीं और बनिये ने जनता से ढ़ाई हजार ऐंठ लिए।

बापू तपाक से बोले- प्रोफेसर कृपलानी, यह बनिये के ही वश की बात है, किसी प्रोफेसर के वश की नहीं।

७६०) सहयोगी स्वभाव- एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरु का कार्यक्रम अहमदनगर की एक सभा में भाषण देने के बाद वहां से मलाया जाने का था। सभा में ही वहां उनको एक मलाया निवासी के हाथ की लिखी चिट्ठी मिली। वह व्यक्ति भारत में युद्धकाल में आया था। उसने अपनी इस चिट्ठी में एक कष्ट देने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए पं. नेहरु को लिखा- महाशय मेरा पुत्र सख्त बीमार है। उसके वास्ते एक खास दवा मलाया से मंगवानी है। अगर आप उसे वापसी में लाने का कष्ट करें तो मैं आपका बहुत आभारी रहूंगा। चिट में उसने अपना नाम तथा पता भी लिखा था।

मलाया में अनेकों कार्यक्रमों में दिन-रात व्यस्त रहने के बाद भी पं. नेहरू ने दवा लानेवाली बात नहीं भूली। वापसी के समय वे दवा खरीद कर लाए और उसे उस व्यक्ति के पास भिजवा दी।

७६१) त्यागमयी कमला- कमला नेहरू अस्वस्थ होने के कारण स्विटजरलैण्ड में थी और नेहरूजी उनके पास थे। एक दिन भारत से तार आया- शीघ्र चले आओ। भारतमाता के लाल, मां की बेडियों को काटनेके लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तार पढ़कर नेहरूजी की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। एक और पत्नी मरणासन्न अवस्था में थी, दूसरी ओर

भारतमाता की पुकार। कमला नेहरु ने पति को चिंतित देख पूछा- चिंतित क्यों हो ? नेहरूजी ने उत्तर दिया- मैं तुम्हारे पास रहता हूं तो दुनिया कहेगी कि कैसा स्वार्थी है जवाहर, चालीस करोड़ जनता की परवाह न कर पत्नी के मोह में फंस गया और जाता हूं तो तुम कहोगी कि अंत समय में भी साथ नहीं दिया। कमला नेहरू ने उत्तर दिया- आप चिन्ता न करो। मैं ठीक हो जाऊंगी। आपका जन्म मेरे लिए नही, अपितु चालीस करोड़ भारतवासियों की पराधीनता की बेड़ियों को विछिन्न करने के लिए हुआ है। आपको अविलम्ब भारत जाना चाहिए। कितनी त्याग की भावना थी कमला नेहरू के इस उत्तर में। इधर जवाहरलाल नेहरू अपने देश को गुलामी से मुक्त कराने आए और उधर उनकी चिरसंगिनी कमला इस दुनिया से सदा के लिए चल बसी। ऐसी त्यागमयी थी कमला नेहरू।

७६२) न डरो, न घृणा करो- भारत के प्रधानमंत्री होने की हैसियत से श्री जवाहर लाल नेहरू १९५० में लन्दन गये हुए थे। वहां एक समारोह में उनकी भेंट ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री श्री चर्चिल से हो गई। चर्चिल भारत के स्वतंत्रता संग्राम के तथा गांधीजी व नेहरू के कटु आलोचक थे। पर यहां दोनों में खुलकर बातें हुई। चर्चिल ने पिछली बातों को याद करते हुए नेहरू जी से पूछा, आपने अंग्रेजों की जेलों में कितने वर्ष बिताएं ? लगभग दस वर्ष। नेहरू जी ने उत्तर दिया। आपके साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए आपको वास्तव में हमसे घृणा करनी चाहिए। चर्चिल ने कहा, बात ऐसी है नहीं, जैसी आप सोच रहे हैं। हमने ऐसे नेता के अधीन काम किया है। जिसने हमें दो बातें सिखाई। एक तो यह कि किसी से डरो मत और दूसरी किसी से घृणा मत करो। हम आपसे कभी डरते भी नहीं थे इसलिए अब घृणा भी नहीं करते है। नेहरू जी ने चर्चिल की बात का जवाब देते हुए कहा।

७६३) कपूरथला के निकट दाहर नामक स्थान पर पंडित जवाहरलाल नेहरू को नहर की खुदाई का उद्घाटन करना था। जब पंडितजी उद्घाटन स्थल पर पहुंचे तो उन्हें खुदाई के लिए फावड़ा दिया गया। पंडित जी ने फावड़े को गौर से देखा और पूछा, यह क्या है? पास ही खड़े अधिकारी ने कहा, यह फावड़ा है पंडित जी।

नेहरू का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने फावड़े को दूर फेंक दिया और बोले, यह तो मैं भी समझ रहा हूं कि यह फावड़ा है, लेकिन यह चांदी का है। देश भूखों मर रहा है, लोगों को पेट भर रोटी और तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं मिल रहा है और आप हैं कि चांदी के फावड़े से उद्घाटन करवाने चले हैं। क्या भारत के सभी किसानों और मजदूरों के पास चांदी के फावड़े हैं? खाने को दाने नहीं हैं, हमें विदेशों के आगे हाथ पसारने पड़ते हैं और फावड़े बनते हैं चांदी के। तब लोहे का फावड़ा मंगवाया गया और उससे नेहरू जी ने उद्घाटन किया।

७६४) जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भारत की राजदूत बनकर मॉस्को पहुंची, तो उन्होंने अपना परिचय पत्र रूस के राष्ट्राध्यक्ष को अंग्रेजी में पेश किया। रूस के राष्ट्राध्यक्ष ने परिचय पत्र देखकर बड़े अदब से राजदूत को वापस करते हुए कहा कि आपका परिचय पत्र न तो आपकी भाषा में है और न ही हमारी। इसे हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने तत्काल भारत के प्रधानमंत्री से संपर्क किया और पत्र का हिंदी रूपांतर कर भिजवाने को कहा। पर इससे भी अचरज की बात तब हुई जब हिंदी के परिचय पत्र को देखकर रूस के एक हिंदी भाषा मर्मज्ञ ने उस पत्र में एक गलती पकड़कर एक शब्द बदलने का सुझाव दिया। पत्र को दोबारा ठीक किया गया। विजयलक्ष्मी पंडित एक रूसी के हिंदी भाषा के ऐसे ज्ञान पर विस्मित ही हो सकती थीं।

७६५) सिद्धांत के विरुद्ध- यह घटना उस समय की है जब लाल बहादुर शास्त्री देश के गृह मंत्री थे। वह अपनी सादगी, सज्जनता, साफगोई और ईमानदारी के लिए देश भर में जाने जाते थे। वह किसी भी कार्य के लिए सिफारिश के

सख्त विरोधी थे। अपने इस गुण के कारण कई बार उन्हें लोगों के विरोध का भी सामना करना पड़ता था।

एक दिन वह अपने कार्यकाल में व्यस्त थे कि तभी उनके सचिव ने उनके एक मित्र के नाम की पर्ची भेजी। शास्त्री जी ने तुरंत अपने मित्र को मिलने के लिए अपने पास बुला लिया। आवभगत के बाद शास्त्रीजी ने मित्र से आने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि उनके पुत्र ने उत्तर प्रदेश पुलिस में दारोगा पद के लिए आवेदन किया है। यदि शास्त्रीजी भर्ती अधिकारी से सिफारिश कर दें तो उनके पुत्र को यह पद मिल सकता है।

शास्त्रीजी ने यह सुनने के बाद अपने मित्र से मुखातिब होते हुए कहा, आप मुझसे मिलने आए इसका मुझे अपार हर्ष है जिसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। पर आपके पुत्र की लंबाई भर्ती मापदंडों के अनुसार काफी कम है। इसलिए उसे यह पद नहीं मिल सकता। इसकी सिफारिश करना मेरे सिद्धांतों के विरुद्ध जाना होगा।

मित्र ने हैरानी भरे शब्दों में कहा, शास्त्रीजी, यह आप क्या कह रहे हैं? आपकी लंबाई भी काफी कम है। फिर अगर आप गृहमंत्री बन सकते हैं तो जरा सी लंबाई कम होने के कारण मेरा पुत्र दारोगा क्यों नहीं बन सकता? शास्त्रीजी भी हंस पड़े- आप ठीक कहते हैं। इस पर शास्त्रीजी बोले, मित्र, छोटा कद होने पर मैं गृहमंत्री अवश्य बन गया हूं पर इसके बावजूद दारोगा तो मैं चाहकर भी नहीं बन सकता। आपका बेटा भी गृहमंत्री बनना चाहे तो जरूर बन सकता है। दारोगा बनने के लिए निश्चित लंबाई जरूरी है, गृहमंत्री बनने के लिए नहीं। आपका बेटा पुलिस निरीक्षक तो नहीं बन सकता परन्तु वह देश का प्रधानमंत्री, गृहमंत्री अवश्य बने। उसके प्रति यही मेरी शुभकामना है। शास्त्री जी की नैतिकता के समक्ष उस सज्जन को अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। शास्त्रीजी की यह बात सुनकर उनके मित्र निरुत्तर हो गए।

७६६) शास्त्रीजी की सहायता - घटना उस समय की है जब लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय गृहमंत्री थे। उनके निवास का एक दरवाजा जनपथ की ओर तथा दूसरा अकबर मार्ग की ओर था। एक बार की बात है। दो स्त्रियाँ सिर पर घास का भारी गट्ठर लेकर उस छोटे रास्ते से जाने का प्रयास कर रही थी। चौकीदार उन्हें इस रास्ते से जाने को मना करके भगा रहा था। शास्त्रीजी बाहर बैठे कुछ काम कर रहे थे। उन्होंने सुना तो बुलाकर कहने लगे- देखते नही उनके सिर पर कितना बोझ है ? वे छोटे रास्ते से जाना चाहें तो जाने दो। जहाँ सहृदयता हो तथा दूसरों के प्रति सम्मान भाव हो वहाँ कभी मतभेद नहीं होता।

७६७) लोकसेवी का हृदय- घटना उस समय की है जब लालबहादुर शास्त्री रेल मन्त्री थे। वे समय के बहुत पाबन्द थे। वे एक बार सरदार नगर के सम्मेलन में जा रहे थे। गाँव से होकर गुजर रहे थे कि रास्ते में कुछ लोगों ने उनकी गाड़ी रुकवाई और हाथ जोड़कर कहने लगे एक महिला का प्रसूति समय निकट है। साधन न होने के कारण उसे सरदार नगर नहीं भेजा जा रहा है। कृपया आप अपनी गाड़ी में उसे ले जाने की आज्ञा दें। साथ के अधिकारीगण ने बताया अनसुनी करते हुए शास्त्री से कहा चलिए श्रीमान् देर हो रही है। आप अभी यही खड़े हैं। शास्त्रीजी ने कहा तुम्हारे सम्मेलन से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है यह बहन। हम जनसेवक कहलाते हैं ऐसी स्थिति में हम ही सहयोग नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? शास्त्रीजी ने उस बहन को सरदार नगर पहुँचा ही दिया।

७६८) शास्त्रीजी की महानता- सन् १९४८ की बात है जब शास्त्री जी उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री थे। एक दिन पी.डब्ल्यू.डी. विभाग के कर्मचारियों ने उनके बंगले में कूलर फिट कर दिया। बच्चे और बड़े सभी प्रसन्न थे कि गर्मियों के दिन यहीं बितायेंगे। रात को जब शास्त्री जी आफिस से बंगले पर लौटे तो पूछा- यह सब क्या है ? बताया गया कि कूलर लग रहा है। उन्होंने सार्वजनिक निर्माण विभाग में फोन कर मना कर दिया। ललिता शास्त्रीजी ने कहा कि यदि बिना मांगे कोई सुविधा मिल रही है तो क्यों नकारा जाए। शास्त्रीजी ने उत्तर दिया कि यह आवश्यक नहीं कि सदैव मंत्री पद पर बना

रहूँ। इससे बच्चों की आदतें बिगड़ जाएंगी।

शास्त्रीजी गंभीर होकर बोले- नहीं जरूरत पड़ने पर लू-धूल में निकलना ही पड़ेगा। लड़कियां शादी के बाद न जाने किस स्थिति में रहें हमें भी कटघरे वाले मकान में इलाहाबाद में ही रहना है। इससे सबकी आदत बिगड़ेगी और उन्होंने तुरन्त पी.डब्ल्यू.डी. वालों को कूलर हटाने की आज्ञा दे दी।

७६९) आत्मग्लानि का बोझ- उसे सब नन्हा कहकर ही पुकारते थे। वह बचपन से ही छोटे कद का कमजोर बालक था। वह पूरे दो साल का भी नहीं हुआ था कि उसके पिता का देहान्त हो गया। वह अपनी मां के साथ ननिहाल में रहने लगा। छह वर्षीय बालक एक बार अपने साथियों के साथ मिलकर एक बाग में फूल तोड़ने पहुंचा। बहुत कोशिश करने के बाद एक फूल पर हाथ पहुंचा ही था कि माली आ पहुंचा। माली ने आव देखा न ताव उसे पीटना शुरू कर दिया। नन्हें ने धीमी आवाज में कहा, मेरे पिता नहीं है इसलिए तुम मुझकों इस तरह मार रहे हो। उसकी बात सुनकर माली का हाथ वहीं रुक गया और गुस्सा न जाने कहां गायब हो गया। वह शान्त होकर बोला, पिता के न होने से तो तुम्हारी जिम्मेदारी और भी अधिक है बेटा। यह सुनकर नन्हा बिलख-बिलख कर रो पड़ा। इतनी मार खाकर भी जिसकी आंखों से एक आंसू न टपका, वही नन्हा इस वाक्य को सुनकर फूट-फूटकर रोने लगा। वह आत्मग्लानि के बोझ से दबने लगा था। यही नन्हा बड़ा होकर लालबहादुर शास्त्री के नाम से विख्यात हुआ और उसने देश के प्रधानमंत्री के रूप में ख्याति प्राप्त की।

७७०) छोटी सलाह- लाल बहादुर शास्त्री अपने सहयोगियों के साथ किसी विषय पर चर्चा करते हुए कई बार अपने किसी नौकर या माली से पूछ बैठते, क्यों भई, तुम्हारी इस पर क्या राय है एक बार उनके मित्र ने पूछज्ञ, मुझे आज तक आपका यह व्यवहार समझ में नहीं आया है। कहाँ राजनीति की पेचीदा बातें और कहाँ यह नौकर।

इस पर शास्त्रीजी मुस्कराते हुए बोले, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज करनेवाले न्यूटन के घर उनकी प्यारी बिल्ली ने बच्चे दिये। रात को जब घर के सारे दरवाजे बन्द हो जाते तो वह बिल्ली और उसके बच्चे बाहर निकलने के लिए मिमियाने लगते। तब न्यूटन ने बिल्ली और बच्चों के लिए दरवाजे में दो छेद, एक छोटा और एक बड़ा, बनाने के लिए अपने नौकर से कहा तो नौकर ने सुझाया कि एक बड़ा छेद ही काफी है, छोटे छेद की जरूरत नहीं, क्योंकि जिस छेद से बिल्ली गुजरेगी उसी छेद से बिल्ली के बच्चे और भी आसानी से गुजर जायेंगे। यह बात सुनकर न्यूटन हैरान रह गये कि इतनी मामूली सी बात उन्हें क्यों नहीं सूझी। मंद-मंद हँसते हुए शास्त्रीजी बोले, हमेशा याद रखो कि कभी-कभी छोटे व्यक्ति की राय भी आड़े वक्त काम दे जाती है।

७७१) स्वावलम्बी- एक बार बालक लाल बहादुर शास्त्री अपने कुछ मित्रों के साथ नाव में बैठकर गंगा नदी के पार मेला देखने गए। वापसी पर उन्होंने देखा कि उनके पास नाव का किराया देने के लिए पैसा नहीं है।

यह बात उन्होंने अपने मित्रों को नहीं बतायी न ही उनसे कुछ पैसों की सहायता मांगी। वे जानबुझकर पीछे रह गए। जब सभी मित्र चले गये तो उन्होंने तैर कर गंगा नदी को पार किया। इस प्रकार वे अपने बल-बूते पर घर पहुंच गए।

७७२) सादगी का संदेश- पूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री सादगीपूर्ण जीवन के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हें किसी भी तरह का दिखावा या आडम्बर पसंद नहीं था। वह मानकर चलते थे कि जनता के लिए काम करनेवाले नेताओं को बिल्कुल उसी तरह रहना चाहिए जिस तरह आम आदमी रहता है। यही नहीं उन्हें यथासंभव अपनी सुविधाओं का त्याग कर देना चाहिए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जेल में भी शास्त्रीजी बिल्कुल सादगी के साथ रहते थे। राजनैतिक कैदी होने के कारण उनको जेल प्रशासन की ओर से कुछ विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती थीं, जिनमें से एक उनकी

भोजन की थाली थी। मगर शास्त्रीजी वह विशिष्ट थाली स्वयं न खाकर अपने अन्य कैदी साथियों में बांट दिया करते थे और स्वयं आम कैदियों को मिलनेवाला साधारण भोजन ही उनके साथ बैठकर किया करते थे। इस दौरान वे उनका हालचाल भी पूछ लेते थे। जेलर को इस बात का पता चला तो वह उनके पास जांच के लिए आया और बोला, महाशय, यह जेल प्रशासन की ओर से आपके लिए बनाया गया भोजन होता है, मगर आप इसे औरों को बांट देते हैं। आखिर आप ऐसा क्यों करते हैं? इस पर शास्त्री जी बोले, मेरे भाई, मुझे यहां सदा के लिए तो रहना नहीं है। आज यहां मिलनेवाला उम्दा भोजन मुझे बाहर तो मिलनेवाला नहीं है, फिर क्यों इसे खाकर मैं अपना स्वाद और आदत खराब करूं। मेरे लिए यह सादा भोजन ही छप्पन भोग के समान है। यह कहकर शास्त्रीजी जेल का साधारण खाना खाने लगे। जेलर भी उनके प्रति नतमस्तक हो गया।

७७३) आदर्श की राह- लालबहादुर शास्त्री ने किशोरावस्था में ही अपना जीवन राष्ट्रीय आंदोलन तथा समाज-सुधार के लिए समर्पित कर दिया था। वह हमेशा लोगों को जागरूक करने व सद्कार्यों के प्रचार-प्रसार में ही लगे रहते थे। एक बार उन्होंने देखा कि वधू पक्ष की ओर से दहेज न मिलने पर वर पक्षवाले वधू पक्षवालों को जलील कर रहे थे और उन्हें खरी-खोटी सुना रहे थे। शास्त्रीजी से रहा न गया, उन्होंने तत्काल हस्तक्षेप किाय और वर पक्षवालों को काफी फटकारा। दहेज जैसी कुरीति को लेकर वह बेहद दु:खी हुए। इस घटना के बाद उन्होंने ठान लिया कि वह जिस युवती से विवाह करेंगे उससे दहेज के नाम पर फूटी कौड़ी भी नहीं लेंगे। उनका मानना था कि ऐसा करने से ही समाज में शिक्षित युवाओं में दहेज का विरोध करने की चेतना जागेगी और इस कुरीति को देश से दूर किया जा सकेगा।

जब उनके विवाह की बातें चल रही थीं, तो उन्होंने अपने अभिभावकों से साफ कह दिया कि वह इसी शर्त पर विवाह करेंगे कि दहेज के नाम पर एक फूटी-कौड़ी भी न ली जाए। अभिभावकों ने उनकी इस बात का समर्थन किया और इस तरह बना दहेज के उनका विवाह सादगी के साथ संपन्न हुआ। जब वधू को विदा किया जाने लगा तो कई लोगों ने कहा कि लड़की का मायके से बिल्कुल खाली हाथ आना शुभ नहीं होता इसलिए शगुन के तौर पर उसे कुछ न कुछ तो दिया ही जाना चाहिए।

शास्त्री जी भी यह बात सुन रहे थे। उन्होंने लोगों से कहा, यदि आप सबका यही कहना है तो मैं आपकी बात का सम्मान करते हुए वधू को चरखा ले जाने की इजाजत दे सकता हूं। उनकी बात मान ली गई और उनकी पत्नी ललिता जी केवल अपने साथ चरखा लेकर विदा हुई। अपने आदर्श के प्रति शास्त्रीजी की इस प्रतिबद्धता को देख लोग दंग रह गए।

७७४) लालबहादुर शास्त्री उन दिनों रेल मंत्री थे। एक बार वह सरदार नगर में होनेवाले सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। रास्ते में जंगल पड़ता था। गौरी नामक गांव के कुछ लोगों ने उनकी कार रोक ली और कहने लगे, एक गरीब किसान औरत की प्रसूति का समय नजदीक है। यदि उसे सरदार नगर पहुंचा दिया जाए तो अच्छा होगा। शास्त्रीजी के एक सहयोगी ने, जो उत्तर प्रदेश के एक मंत्री थे, इस पर आपत्ति प्रकट की। पर तभी शास्त्रीजी गाड़ी से उतरकर बोले, ले आओ, उस बहन को मैं अस्पताल पहुंचा दूंगा। मंत्रीजी ने कहा, सम्मेलन में पहुंचने में देर हो रही है। इस पर शास्त्रीजी बोले, समय से ज्यादा कीमत इंसान की होती है। यदि मैं सम्मेलन में उपस्थित न भी हो सका तो क्या बिगड़ जाएगा?

७७५) सेवा का संदेश - पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री एक बार देश के सुदूर इलाकों के दौरे पर थे। वह आम जनता से मिलने ऐसे क्षेत्रों में जा रहे थे जहां सुविधा के नाम पर कुछ भी नहीं था। पर शास्त्री जी के उत्साह में कोई कमी नहीं आ रही थी। हालांकि उनके साथ चलनेवाले लोग परेशान हो रहे थे। कुछ लोगों ने शास्त्री जी को लौट चलने की भी सलाह दी पर वे नहीं माने। ऐसे ही एक छोटे गांव में बड़ी देर तक पैदल घूमते हुए उनके पैर में थोड़ी चोट लग गई। उनके साथ आए लोगों ने बड़ी मुश्किल से एक डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर ने आते ही उनके जख्म का उपचार किया और कुछ

दवाइयां खाने को दीं। फिर कुछ जरूरी हिदायतें देकर वह जाने लगा, तो शास्त्रीजी ने उसकी फीस उसके हाथ में पकड़ाई। डॉक्टर को इसका अंदाजा नहीं था। वह पैसे देखकर सकपका गया। उसने शास्त्रीजी को पैसे लौटाते हुए कहा- महोदय, इतनी छोटी सेवा के बदले फीस देकर शर्मिंदा न करें। मैं आपके काम आ सका, यही बहुत है। शास्त्रीजी विनम्रतापूर्वक बोले- डॉक्टर साहब, आपको पैसे दे सकता हूँ तो आपको पैसे ले लेने चाहिए। हां, यदि कभी कोई निर्धन और असहाय व्यक्ति आपको मिले, जो फीस न चुका सकता हो तो आप उसका इलाज बिना फीस के करना। अगर आप ऐसा कर सकें तो यह मेरे ऊपर बहुत बड़ा अहसान होगा। यह सुनकर डॉक्टर बेहद प्रभावित हुआ। उसने अपना सारा जीवन गरीबों की सेवा में लगा दिया। शास्त्रीजी ने इसी तरह कई लोगों का जीवन बदला था।

७७६) नींव का पत्थर- यह उन दिनों की बात है जब लाल बहादुर शास्त्री लोक सेवा मंडल के सदस्य बनाए गए। मंडल की स्थापना लाला लाजपत राय ने की थी। इसके माध्यम से वह राष्ट्र निर्माण में युवकों की भागीदारी बढ़ाना चाहते थे। शास्त्री जी मितभाषी और संकोची स्वभाव के थे। वह हर व्यक्ति को सम्मान जरूर देते थे। पर उनका उससे संवाद बेहद संक्षिप्त हुआ करता था। वह पत्र-पत्रिकाओं के संवाददाताओं से भी प्राय: दूरी बनाकर चलते थे। जबकि लोग सेवा मंडल के और सदस्य तथा दूसरे नेता उनसे मिलकर अपने कार्यों का खूब बखान किया करते थे। पर शास्त्री जी नहीं चाहते थे कि उनकी तस्वीरें या साक्षात्कार आदि सिर्फ उनके रुतबे के कारण प्रकाशित होते रहें। उनके एक सहयोगी ने एक बार उन्हें टोकते हुए कहा- शास्त्रीजी और नेता तो प्रचार पाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं, दावतें आदि देते रहते हैं पर आप तो सुनहरा अवसर हाथ में रहते हुए भी उसका लाभ नहीं उठाते। ऐसा क्यों? शास्त्रीजी आपको अखबारों में नाम छपवाने से इतना परहेज क्यों हैं ? इस पर शास्त्री जी गंभीर होकर बोले- भाई, जब लाला लाजपत राय जी ने मुझे लोक सेवा मंडल का सदस्य बनाया था तभी कहा था कि लोग ताजमहल के उजले और सुंदर पत्थरों को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। लाल बहादुर। ताजमहल में दो प्रकार के पत्थर लगे हैं। एक बढ़िया संगमरमर के पत्थर है, जिनको सारी दुनिया देखती है और प्रशंसा करती है। दूसरे वे पत्थर हैं, जो ताजमहल की नीव में लगे हैं, जिनके जीवन में केवल अंधेरा ही अंधेरा है, लेकिन ताजमहल को वे खड़ा रखे हुए हैं।

मगर जिन नींव के मजबूत पत्थरों पर ताजमहल टिका हुआ है वहां किसी की नजर ही नहीं जाती। तुम्हें प्रचार-प्रसार से दूर रहकर दिखनेवाला नहीं, टिकनेवाला पत्थर बनना है। लालाजी के ये शब्द मुझे हर वक्त याद रहते हैं और मैं नींव का पत्थर ही बना रहना चाहता हूं। मैं लाला जी की सीख पर अमल करना चाहता हूं। शास्त्रीजी की बात सुनकर उनका सहयोगी निरुत्तर हो गया।

७७७) साक्षात्कार- मोरारजी देसाई सिविल सर्विस की परीक्षा के लिये साक्षात्कार दे रहे थे। साक्षात्कार के अंत में उनसे पूछा गया, यदि आप चुने नहीं गए तो क्या आप उदास हो जाएंगे ? मोररजी देसाई का उत्तर था, इसमें उदास होने की कोई बात नहीं है। अभी संसार में अनेक कार्य मेरे सम्मुख हैं। मोरारजी देसाई को बिना किसी सिफारिश के चुन लिया गया।

७७८) मन्दिर का अर्थ- मोरारजी बापू कैनेडा की एक सभा में प्रवचन कर रहे थे। सभा का आयोजन टोरेंटो के विख्यात और भव्य देव-स्थान, विष्णु मंदिर ने किया था। प्रवचन के अंत में मोरारजी बापू ने मंदिर के निर्माताओं को संबोधित करते हुए कहा, आपने इतना विशाल मंदिर बनाया है। लेकिन जानते हैं, मंदिर का अर्थ क्या है ? मंदिर में तीन अक्षर हैं म, द, और र (मं) का अर्थ है मन, द का अर्थ है दीक्षित और र का अर्थ है रहता है, अर्थात् मंदिर वह है, जहां मन दीक्षित रहता है। आप में से कितनों का मन यहां दीक्षित है ? पंडाल नर-नारियों से खचाखच भरा था। लेकिन मोरारजी

बापू के प्रश्न के उत्तर में कोई नहीं बोला।

७७९) तुम बड़े महान हो बेटा- भैया मेरा यह गट्ठर मेरे सिर पर रख दो। सड़क के किनारे एक बुढ़िया लकड़ियों के एक गट्ठर के पास खड़ी इधर-उधर से गुजरने वाले लोगों से यह आग्रह कर रही थी, किंतु कुछ लोग तो उसकी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ जाते। सूर्यास्त हो चुका था।

बुढ़िया को घर पहुंचकर अपने छोटे-छोटे बच्चों को भोजन बनाकर खिलाने की चिंता थी, लेकिन उसकी सहायता कोई नहीं कर रहा था। तब उसे सामने से पैंट-कोटे तथा टाई से सुसज्जित एक सज्जन आते हुए दिखे। बुढ़िया कातर दृष्टि से उनकी ओर निहार रही थी। जब ये सामने पहुंचे तो बुढ़िया ने उनसे भी सहायता के लिए कहना चाहा, परंतु संकोच के कारण उसका उठा हुआ हाथ नीचे आ गया और खुला हुआ मुंह बंद हो गया। उन महाशय को लगा कि शायद बुढ़िया उससे कुछ कहना चाहती है। वे पीछे मुडे और बोले- क्या कहना चाहती हो मां ?

उनका यह आत्मीय संबोधन सुनकर बुढ़िया की आंखों में आंसू आ गए। वे सज्जन बोले- मां, रोओ नहीं, पैसों की आवश्यकता हो तो बताओ। इतना कहते ही उनका हाथ पैंट की जेब में चला गया। बुढ़िया तपाक से बोली- नहीं, बाबूजी मुझे पैसे नहीं, मैं तो इन लकड़ियों के गट्ठर को अपने सिर पर रखवाना चाहती थी, किंतु किसी ने सहायता नहीं की। आपने तो मेरे बिना कुछ कहे ही मुझे मां कहकर पूछा, इसलिए आंखों में आंसू आ गए। उन सज्जन का हाथ पैंट की जेब से बाहर आ गया और उन्होंने लकड़ियों का गट्ठर उठाकर बुढ़िया के सिर पर रख दिया। बुढ़िया के रुंधे कंठ से एक ही वाक्य निकला- तुम बड़े महान हो बेटा। भगवान तुम्हारा भला करे। और वह अपने रास्ते चल पड़ी। वे सज्जन थे मुंबई उच्च न्यायालय के प्रतिष्ठित न्यायाधीश महादेव गोविंद रानडे।

७८०) सीखने की चाह- कलकत्ता से पूना के लिए रेल में सफर कर रहे महादेव गोविन्द रानाडे ने बंगला अखबार खरीदा। उनकी पत्नी ने कहा कि आपको बंगला भाषा आती ही नहीं है आपने इसे क्यों खरीदा ? रानाडे बोले दो दिन के सफर में बंगला को आसानी से सीखा जा सकता है। मनोयोग से उन्होंने बंगला लिपि और उसके गठन पर ध्यान दिया। पूना पहुंचकर अपनी पत्नी को पूरा अखबार पढ़कर सुना दिया। ऐसी थी ६० वर्षीय रानाडे की मनोयोगी साधना।

७८१) कर्मफल- एक न्यायाधीश सरकारी कार्य हेतु पैदल ही सतारा जिले की यात्रा कर रहे थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि आप बाद में घोड़ा गाडी से आ जायें। बीच राह में आम का बगीचा था। न्यायाधीश की पत्नी की आज्ञा से गाडीवान ने आम तोड दिया। संयोगवश एक बडा आम उनके हाथ पर गिरा जिससे सोने की चूडी टूट गयी। टूटा स्वर्ण अंश भी उन्हें नहीं मिला। बहुत पश्चाताप हुआ। घर आकर पति को सारी बात बतायी। वे कहने लगे पराया माल लेने का यही परिणाम होता है साथ में मुझे भी तुम्हारे अपराध की थोड़ी सजा मिल गई है। मेरा चाकू कहीं खो गया है नहीं मिला। कहते है पाप की कौड़ी पुण्य का सोना भी खींच लेती है। ये न्यायाधीश थे- श्रीगोविन्द रानाडे।

७८२) सच की राह- यह उस समय की बात है जब महादेव गोविंद रानाडे बालक थे। एक दिन वह घर में अकेले थे। उनका मन नहीं लग रहा था। वह बाहर बरामदे में खड़े-खड़े सोच रहे थे कि क्या करें। तभी उन्हें ख्याल आया कि कोई ऐसा खेल खेलना चाहिए जो अकेले खेला जा सके। उन्होंने मकान के एक खंभे को अपना साथी बनाया। खंभे के लिए अपना दायां हाथ व अपने लिए बायां हाथ निश्चित किया। फिर उन्होंने खेलना आरंभ किया। पहले दाएं हाथ से पासा फेंका। यह था खंभे का दांव। फिर बाएं हाथ से पासा फेंका। यह दांव उनका अपना था। थोड़ी ही देर में रानाडे हार गए। रानाडे को पता नहीं था कि उनका खेल सामने सड़क पर खड़े कुछ लोग देख रहे थे। उन्होंने पूछा, क्या भैया, तुम खंभे से

हार गए? इस पर रानाडे बोले, क्या करूं? बाएं हाथ से पासा फेंकने की आदत नहीं है। खंभे का दाहिना हाथ था, सो वह जीत गया। जब उनसे यह पूछा गया कि उन्होंने दायां हाथ अपने लिए और बांया हाथ खंभे के लिए क्यों नहीं रखा, तो रानाडे बोले, हार गया तो क्या हुआ। कोई मुझे बेईमान तो नहीं कह सकता न। अपने लिए दायां हाथ रखता और बेजान खंम्भे के लिए बायां, तो बेईमान कहलाता। बेचारे खंभे के साथ अन्याय हो जाता। अन्याय करना तो बहुत ही बुरा होता है। रानाडे की बात सुनकर लोग भौंचक रह गए। सच के प्रति रानाडे की यह भावना आजीवन बनी रही।

७८३) ज्ञान की जाति- यह घटना उस समय की है जब प्रसिद्ध न्यायवेत्ता महादेव गोविंद रानाडे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। उन्हें अनेक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं का ज्ञान था। फिर भी वह हमेशा कुछ न कुछ नया सीखने को लालायित रहते थे। वह बंगला सीखने को आतुर थे लेकिन उन्हें अभी तक बंगला सिखाने के लिए कोई व्यक्ति नहीं मिला था। उन्हीं दिनों उन्हें पता चला कि उनके एक पड़ोसी की हजामत बनाने के लिए जो व्यक्ति आता है वह बंगला भाषी है। महादेव गोविंद रानाडे ने उसी से अपनी हजामत बनवाने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि हजामत बनवाने से वह उसके साथ रहकर बंगला भी सीख जाएंगे। हजामत बनाते-बनाते नाई रानाडे को बंगला की जानकारी देता रहता था। उनकी पत्नी यह सब देखती रहती थी। एक दिन वह झुंझला कर बोली, आप एक नाई से बंगला सीख रहे हैं। यदि यह बात किसी को पता चल गई तो वह क्या सोचेगा? इससे आपका मान-सम्मान धूमिल हो जाएगा। यह सुनकर रानाडे बोले, इसमें सम्मान घटने की या धूमिल होने की कोन सी बात है? मैं कोई ऐसा काम नहीं कर रहा हूं जिससे किसी को कोई हानि हो अथवा जो कानून के विरुद्ध हो। मैं ज्ञान का प्यासा हूं और बंगला सीख रहा हूं। फिर ज्ञान की कोई जाति नहीं होती। वह तो जिससे भी जहां से भी मिले तुरंत ले लेना चाहिए। और व्यक्ति अपनी जाति से नहीं ज्ञान से जाना जाता है। चाहे वह कोई भी हो। उनकी पत्नी को अपनी गलती का अहसास हो गया और उन्होंने अपनी गलत सोच के लिए रानाडे से माफी मांगी।

७८४) आदमी और मशीन- गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से एक छात्र ने प्रश्न किया, गुरुदेव गलती न करनेवाली मशीन और गलती करने वाले मनुष्य इन दोनां में से किसी एक को पसंद करना पडा, तो आप किसे पसंद करेंगे ? गुरुदेव ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा- मैं तो गलती करनेवाले मनुष्य को ही पसंद करूंगा। गलती से बहुधा सत्य का जन्म होता है, मनुष्य मशीन बना सकता है परंतु मशीन चाहे कितनी ही परिष्कृत हो, उससे आदमी नहीं निकल सकता।

७८५) प्रकृति से शिक्षण- रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता नौकरी के लिए शिक्षा प्राप्त करने के सख्त विरोधी थे। उन्होंने देखा कि स्कूल में रवीन्द्र को भी ऐसी ही शिक्षा दी जा रही है तो उन्होंने बालक की स्कूली शिक्षा बंद कर दी। वे जो अपने पुत्र को बनाने चाहते थे पिता ने वैसी ही शिक्षा दी। उतने से श्रम से रवीन्द्रनाथ विश्वकवि बन गए तथा उन्होंने नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। उन्होंने अपना सारा शिक्षण प्रकृति से पाया। अपनी उपलब्धियों का सम्पूर्ण श्रेय वे अपने पिता के पश्चात् पद्मा नदी के किनारे पर बिताए अपन किशोरावस्था को देते हैं जहाँ उन्होंने नैसर्गिक साहचर्य से अमूल्य शिक्षण प्राप्त किया।

७८६) निर्भीकता- रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने कमरे में बैठे कविता लिखने में व्यस्त थे कि इतने में छुरा लिए गुंडे ने उनके कमरे में प्रवेश किया। उसे किराये पर हत्या करने के लिए किसी ईर्ष्यालु ने भेजा था।

रवीन्द्र ने एक नजर में सारा मामला भाँप लिया। उन्होंने उँगली का इशारा करके शांत भाव से चुपचाप एक कोने में पड़े स्टूल पर बैठ जाने को कहा तथा बोले, देखते नहीं, मैं कितना जरूरी काम कर रहा हूँ।

हत्यारा सकपका गया। इतना निर्भीक और संतुलित व्यक्ति उसने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। वह कुछ देर तो बैठा रहा, लेकिन कुछ ही देर में उसके पैर उखड़ गये और वह उल्टे पैरों भाग खड़ा हुआ।

७८७) परमात्मा- गीतांजलि लिखी जा चुकी थी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिल चुका तो उनके पड़ोसी एक बूढ़े ने पूछा, रवीन्द्र, क्या तुमने वास्तव में परमात्मा को जान लिया है ? तुमने ईश्वर की प्रशंसा में गीत गाये हैं। प्रश्न सुनकर रवीन्द्रनाथ चौंक पड़े कि मैंने सोचा तक नहीं था कि कभी कोई ऐसा प्रश्न भी पूछ लेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? वे कितनी रात सोये नहीं। पड़ोसी पुन: वह प्रश्न न पूछ ले, इसलिए उन्होंने अपना रास्ता ही बदल दिया। लेकिन प्रश्न का उत्तर खोजे बिना उन्हें चैन नहीं था।

वर्षा के दिन थे, आषाढ़ का महीना। तालाब, पोखर, नदी, डबरे भरे हुए थे। प्रात:कालीन सूर्य की किरणें समुद्र पर बिखरीं। सब में सूरज झलकता था। वह न समुद्र के जल से खारा था, न गँदले पानी से गंदा। बस रवीन्द्रनाथ को परमात्मा समझ में आ गया। वह सर्वशक्तिमान सत्ता, पुण्यात्मा, आकाश, पाताल के प्रत्येक जीव में विद्यमान है। यही उत्तर उन्होंने बूढ़े को दिया।

७८८) मन की निर्धनता- रवीन्द्रनाथ टैगोर जब कभी ग्वालमंडी स्थित अमृत धारा भवन आकर ठहरते, उनके शुभेच्छुओं का तांता लग जाता। लोग उन्हें घेर लेते और तरह-तरह के प्रश्न करते। अपने प्रशंसकों के प्रश्नों का उत्तर टैगोर सहज भाव से देते। वहां एक युवक रोज मुंह लटकाए आता और पीछे बैठ जाता। वह कुछ नहीं बोलता, बस लोगों को देखता रहता था। एक दिन टैगोर ने उससे पूछा, तुम इस तरह उदास क्यों रहते हो?

उस दिन की काव्य-संध्या अपने यौवन पर थी। सहसा किसी सहृदय के नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली। गुरुदेव ने रुदन का कारण पूछा। कुछ कहते क्यों नहीं?

संताप कम होने पर उसने कहा, मुझ जैसा निर्धन व्यक्ति काव्य को कैसे समझ सकता है गुरुदेव।

युवक ने बस इतना ही कहा, मैं बहुत निर्धन हूं गुरुदेव। दो वक्त की रोटी तक नसीब नहीं होती। कुछ पल मौन रहने पर गुरुदेव ने प्रश्न किया, क्या तुम वास्तव में ही निर्धन हो ? जी हां।

टैगोर बोले- तुम मुझे एक आंख दे दो, मैं तुम्हें एक लाख रुपये दे दूंगा। युवक बोला असंभव, यदि मैं एक आंख दे दूं तो में काना हो जाऊंगा। इस पर टैगोर ने कहा, तुम्हारे पास दो हाथ और दो पैर भी हैं। यदि तुम इनमें से कुछ भी दे दो तो मैं तुम्हें मुंहमांगी कीमत दूंगा। युवक बोला, मैं ये चीजें कैसे दे सकता हूं। ये मेरे लिए काफी महत्वपूर्ण हैं। टैगोर मुस्कराए और बोले, जब तुम्हारे पास इतनी महत्वपूर्ण चीजें हैं तब तुम अपने को निर्धन कह कर अपना मजाक क्यों उड़ाते हो? ज्ञान-इंद्रियों, कर्म-इंद्रियों और मन-हृदय जैसी अमूल्य संपदा के स्वामी होने पर भी अपने आप को निर्धन कहते हो। गुरुदेव ने ओजस्वी वाणी में कहा।

युवक उनका आशय समझ गया और एक बार फिर अश्रुधारा फूट पड़ी। पर इस बार का रुदन पश्चात्ताप का था।

७८९) बड़े भाई- गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को आम बहुत पसंद थे। उन दिनों वे चीन की यात्रा पर थे। उनके चीन प्रवास की खबर फिलिपीन्स पहुंची। फिलिपीन्स से उनके लिए एक तार आया। तार में लिखा था, आपको आम बहुत पसंद हैं। आपके लिए हम फिलिपीन्सवासी आम भेज रहे हैं। सप्रेम भेंट स्वीकार कीजिए।

गुरुदेव बड़े चाव से आम खाने बैठे। आमों में रेशे बहुत थे। उन्हें चाकू से काटकर खाना मुश्किल था। अत: गुरुदेव आमों की ढेरी के सामने हाथ जोड़कर बैठ गए। जब उनसे पूछा गया- यह आप क्या कर रहे है ?

तो गुरुदेव बोले- इन्हें नमस्कार कर रहा हूं। इनके रेशे मेरी दाढ़ी के बालों से भी लम्बे हैं, इसलिए ये आम नहीं, बल्कि मेरे बड़े भाई हैं।

७९०) मैं तो डरा हुआ हूं- ठाकुर रवीन्द्रनाथ मृत्यु शैया पर थे। एक बूढ़े मित्र आए उन्होंने कहा- अब आखिरी वक्त

भगवान से प्रार्थना कर लो कि दोबारा इस जीवन में न भेजे। इस आवागमन से छुटकारा मिले। इस ख्वाब, इस गंदगी के चक्कर में पुन: न पड़ो।

रवीन्द्रनाथ ने कहा- क्या कहते हैं आप, मैं और यह प्रार्थना करूं ? मैं तो मन ही मन यह कह रहा हूं, कि हे प्रभु, अगर तूने मुझे योग्य पाया हो, तो बार-बार पृथ्वी पर भेजना। बड़ी रंगीत थी, बड़ी सुन्दर थी। ऐसे फूल नहीं देखे, ऐसा चांद, ऐसे तारे, ऐसी आंखे, ऐसा सुन्दर चेहरा। मैं दंग रह गया हूं, मैं आनन्द से भर गया हूं। परमात्मा अगर तू मुझे योग्य जाने तो बार-बार मुझे इस दुनिया में भेजना। मैं तो यही प्रार्थना कर रहा हूं। मैं तो डरा हुआ हूं कि कहीं अपात्र सिद्ध न कर दिया जाऊं और दोबारा इस दुनिया में नहीं भेजा जाऊं।

७९१) उदारता की राह - कविवर रवींद्रनाथ टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिला। न सिर्फ देश से बल्कि दुनिया के कोने-कोने से बधाई संदेश आने लगे। उनके घर पर अतिथियों का तांता लग गया। उनका एक पड़ोसी यह सब टकटकी लगाकर देखता रहा। उन्हें बधाई देने की बात तो दूर, उसने उन्हें नमस्कार तक नहीं किया। टैगोर को यह व्यवहार अखरा लेकिन उन्होंने इसे भुलाने की कोशिश की। पर भुला नहीं पाए। बार-बार उनके सामने उसका चेहरा सामने आ जाता था। वह जब-जब उसके बारे में सोचते, क्रोध से भर जाते। अगली सुबह वह समुद्र के किनारे टहल रहे थे। सूर्य की किरणें पड़ने से सागर चांदी सा दमक उठा था। टैगोर भाव-विभोर होकर लहरें देखते रहे। तभी उनकी नजर करीब ही पानी से भरे एक गड्ढे पर पड़ी। वहां भी सूर्य की किरणें बराबर पड़ रही थीं। गड्ढे का जल भी चमक रहा था। तभी टैगोर को ख्याल आया कि सूर्य ने तो सब पर बराबर किरणें फैलाई हैं। उसने तो समुद्र और गड्ढे में अंतर नहीं किया। टैगोर को अपनी गलती का अहसास हुआ। वह तो बेकार ही एक छोटी सी बात को लेकर बैठे हुए थे। अगर दूसरा अपनी उदारता छोड़ रहा है तो वो क्यों छोड़ें। वह तत्काल उस पड़ोसी के घर गए। उस समय वह जलपान कर रहा था। टैगोर ने फौरन उसके चरण स्पर्श किए। पड़ोसी की आंखें गीली हो गईं। वह बोला, आप जैसे देवतुल्य व्यक्ति को नोबेल पुरस्कार मिलना ही चाहिए था। यह कहकर उसने टैगोर के चरण स्पर्श किए। दोनों के बीच की दूरी मिट गई।

७९२) छू नहीं सकता - गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की बढ़ती हुई कीर्ति जब कुछ लोगों को सहन नहीं हुई तो वे लोग उनके विषय में उलटी-सीधी बातें फैलाने लगे। लेकिन गुरूदेव समान भाव से सब बरदाश्त करते रहे। शरच्चंद्र चटर्जी से जब ये कटु आलोचनाएँ नहीं सही गई तो उन्होंने गुरुदेव से कहा कि आप इन आलोचकों का मुँह बंद करने के लिए कोई उपाय तो करिए। गुरुदेव फिर भी शांत-सरल भाव से बोले, उपाय क्या है, शरत् बाबू? जिस शस्त्र को लेकर वे लड़ाई करते हैं, उसको तो मैं हाथ भी नहीं लगा सकता।

७९३) राष्ट्र आराधना- एक युवक ने निश्चय किया कि यह बी.ए. करते ही देश सेवा के कार्यों में लगेगा। स्नातक परीक्षा में बहुत अच्छे नम्बर आने के कारण जब विद्यालय जाकर पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति मिली तो घरवाले भी विदेश जाने के लिए उस पर दबाव डालने लगे। उसको अपना वचन याद था। उसने मार्डन रिव्यू नामक अखबार निकाला तथा गुरुदेव रवीन्द्र का सारा साहित्य प्रकाशित कर राष्ट्र की सेवा की। इस युवक का नाम था रामानन्द चटर्जी। उसके साहस और संकल्प को देखकर पिता एवं भाई भी उसका सहयोग करने लगे।

७९४) राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन उन दिनों उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष थे। गेहूं-चावल का अभाव था तथा ये दोनों राशन की दुकान से मिलते थे। टंडनजी के यहां अतिथियों का मेला सा लगा रहता था। अत: महीने का राशन एक सप्ताह में खत्म हो जाता था। गेहूं चावल खत्म हो जाने पर जौ की रोटियां खाई जाती थीं। एक दिन टंडनजी को संदेश

मिला कि कांग्रेस के कुछ नेता बिहार से लखनऊ आ रहे हैं। टंडनजी के यहां दोपहर का भोजन करके वे हवाई जहाज से दिल्ली चले जाएंगे। गेहूं का आटा तथा दाल-चावल समाप्त हो चुके थे। रसोइये ने कहा- आप चिंता न करें। मैं ब्लैक में थोड़ा महंगा आटा-चावल बाजार से ले आता हूं। इस पर टंडनजी ने कहा, मैं ब्लैक में राशन किसी कीमत पर नहीं मंगवाऊंगा। उन्होंने बगीचे से आलू मंगवाए। रसोइये से कहा, इन्हें उबालकर छील लो तथा थाली में रख दो। साथ में नमक और पिसी हुई काली मिर्च रख दो। अतिथि आए। बातचीत के बाद टंडनजी उन्हें भोजन की मेज पर ले गए। वे बोले, आटा, दाल-चावल समाप्त हो गया है। लेकिन मैं पार्टी का पैसा महंगा अन्न खरीदने में नहीं लगा सकता। आज आपको यही भोजन करना पड़ेगा। ऐसे सिद्धांतवादी को देख कौन प्रभावित नहीं होता।

७९५) बिना जात के- काफी पहले की बात है रेल के एक डिब्बे कुछ लोग सफर कर रहे थे। कम्पार्टमेन्ट प्रथम श्रेणी का था, इसलिए भीड़भाड़ भी अधिक नहीं थी। एक सज्जन किताब पढ़ने में व्यस्त थे, जबकि बाकी सभी बातों में मशगूल थे। वे सभी पढ़े-लिखे और उच्च परिवारों के लग रहे थे। उनकी चर्चा का विषय था जातिवाद। बातों-बातों में वे अपनी-अपनी जाति की बढ़ाई का बखान भी करते जा रहे थे तभी उनमें से एक व्यक्ति ने पुस्तक पढ़ने वाले सज्जन से पूछा- श्रीमान, आप किस जाती से हैं ? प्रश्न सुनकर वे सज्जन चुप रहे और पुस्तक पढ़ने में तल्लीन रहे। उन्हें चुप देखकर उस व्यक्ति ने फिर कहा- श्रीमान, आपने बताया नहीं कि आप किस जाति से हैं ?

तब उस सज्जन ने जवाब दिया- मैं किसी एक जाति का होता तो जवाब देता। मेरी तो कोई एक जाति है ही नहीं।

इस अटपटे जवाब पर हैरान होकर सभी व्यक्ति प्रश्नसूचक दृष्टि से सज्जन को देखने लगे। सज्जन बोले- जब मैं सवेरे नित्यकर्म के लिए जाता हूं तो शूद्र बन जाता हूं। जब जीवन जीने के लिए संघर्ष करता हूं तो क्षत्रिय हो जाता हूं। जब कॉलेज में बच्चों को पढ़ाता हूं तो ब्राह्मण बन जाता हूं और जब अपने वेतन तथा खर्च आदि का हिसाब-किताब करता हूं तो वैश्य हो जाता हूं। इसलिए मुझे खुद समझ नहीं आता कि मैं किस जाति से हूं। अगर आप समझ सकते हों तो खुद ही जान लीजिए कि मेरी जाति क्या है।

यह जवाब सुनकर सभी लोग शर्मिंदा से हो गए। आगे चलकर यही सज्जन आचार्य कृपलानी के नाम से विख्यात हुए।

७९६) चोर को प्रमाणपत्र- रफी अहमद किदवई ने एक सज्जन को प्रमाणपत्र दिया कि मैं इन्हें वर्षों से जानता हूँ। ये भले आदमी हैं और इन्हें कोई भी जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। किसी अधिकारी ने उनसे कहा, इसे चोरी के अपराध में तीन बार जेल हो चुकी है। आपके प्रमाणपत्र का दुरुपयोग हो सकता है।

रफी साहब ने जवाब दिया, तो क्या हुआ ? यह शख्स मेरे साथ जेल में रह चुका है। मैं राजनीतिक बंदी था और यह साधारण अपराधी। कई हफ्ते तक यह मेरा खाना लाता रहा। तब न तो इसने एक रोटी चुरायी और न एक आलू। अत: इसे शरीफ आदमी की जिंदगी बिताने का मौका देना क्या बुरा है।

७९७) सादगी- बात तब की है, जब प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस विश्वभारती विश्वविद्यालय के कुलपति थे। डॉ. राधाकृष्णन विश्वभारती में आ रहे थे। प्रो. बोस रिक्शे में बैठकर उनके स्वागत हेतु आयोजित सभा में शामिल होने जा रहे थे। सुरक्षा अधिकारी ने उन्हें पहचाना नहीं और जाने से रोक दिया। मजबूरन वह पैदल ही सभा स्थल की ओर चल पड़े। तभी डॉ. राधाकृष्णन की गाड़ी उधर से गुजरी। उनकी निगाह प्रो. बोस पर पड़ी, वे गाड़ी से उतरे और उनके पास आकर उनके कंधे पर हाथ रखकर सभा स्थल की ओर चलने लगे। सारा नजारा देखकर सुरक्षा अधिकारी पानी-पानी हो गया।

७९८) गोविन्द वल्लभ पंत- पं. गोविन्द वल्लभ पंत के पुत्र कृष्णचन्द्र पंत के यज्ञोपवीत संस्कार पर प्रीतिभोज था।

भोजन शाकाहारी व भारतीय परम्परा के अनुसार था जिसमें पत्तलों व सकोरों का प्रयोग किया गया था। भोज दोपहर को प्रारम्भ हुआ और सायंकाल तक चलता रहा। रफी अहमद किदवई पंत जी के मित्र थे उनका आगमन हुआ। श्री रफी साहब की एक कमजोरी थी कि वह सभा दावत आदि में प्राय: वे विलम्ब से आते थे।

पंत जी व्यंग्यात्मक स्वर में रफी साहब का स्वागत करते हुए बोले आइये लेट लतीफ अहमद साहब, आपका भोजन के लिए स्वागत है।

रफी अहमद साहब ने देखा कि सब लोग भूमि पर बिछी दरी पर बैठे पत्तलों पर भोजन कर रहे हैं तो अपने जूतों की ओर इशारा करके बोले उतारूं क्या ?

पंत जी ने नहले पर दहला मारा, अरे भाई उतारोगे नहीं तो खाओगे क्या ?

७९९) प्यार बाँटें- डॉ. राधाकृष्णन को ज्ञानार्जन की बहुत लालसा थी। वे हमेशा अध्ययन में लगे रहते थे। भारत में वे कई विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा भी उनका सम्मान किया गया। भारत के द्वितीय राष्ट्रपति बनने से पूर्व वे रूस में भारत के राजदूत भी रहे। विदाई के समय जब उन्होंने स्टालिन की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा तो उस जैसा कठोर व्यक्ति भी अपनत्व पाकर रो पड़ा। उन्होंने जीवनभर प्यार बांटा। यही कारण था कि वह सबको अपने लगते थे वे दर्शन और ज्ञान का भण्डार थे।

८००) कच्ची रोटी- एक अंग्रेज ने किसी प्रीतिभोज के अवसर पर कहा- हम अंग्रेज वस्तुत: ईश्वर को बहुत प्यारे हैं। ईश्वर ने हमारा निर्माण बड़े यत्न एवं स्नेह से किया है, तभी तो हम इतने गोरे हैं।

डॉ. राधाकृष्णन भी वहां उपस्थित थे। यह गर्वोक्ति सुनकर वह मुस्कराए और सभी व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए बोले- मित्रों एक बार भगवान को रोटी पकाने की इच्छा हुई। वे रोटी सेकने लगे किन्तु पहली रोटी जरा कम सिकी और परिणामस्वरूप अंग्रेज जाति का जन्म हुआ। दूसरी रोटी वे अधिक देर तक सेकते रहे और इससे नीग्रो लोगों की पैदाइश हुई। अपनी इन दो भूलों से सतर्क होकर भगवान ने जो तीसरी रोटी सेकी, वह बिल्कुल ठीक थी- वह न कम सिकी थी न ज्यादा। फलस्वरूप हम भारतवासियों का जन्म हुआ।

८०१) यह उन दिनों की बात है, जब डॉ. जाकिर हुसैन जामिया मिलिया इस्लामिया की हालत सुधारने में जुटे थे। जाकिर हुसैन बहुत सफाई पसंद थे। वे जिस विद्यालय में अध्यापक थे, वहां के छात्र सदैव गंदे और बिना पालिश किए हुए जूते पहनकर आते थे। एक दिन उन्होंने शिक्षकों से कहा, हम चाहते हैं कि हमारे छात्र अनुशासन का पालन करें। वे साफ-सफाई पर ध्यान दें। उने कपड़े साफ-सुथरे हों। उनके जूतों पर अच्छी तरह पॉलिश हो। इससे विश्वविद्यालय का शैक्षणिक माहौल बेहतर होगा। अगले दिन उन्होंने इसके लिए एक नोटिस जारी किया। फिर छात्रों को मौखिक आदेश भी दिया। किन्तु उन्होंने कुछ समय बाद पाया कि उनके कथन पर अमल नहीं हो रहा है, सो उन्होंने विद्यार्थियों को सबक सिखाने की ठानी।

कुछ दिन बाद अध्यापकों ने उनसे कहा, हम लोगों ने कई बार प्रयास किया, मगर छात्रों पर कोई असर नहीं पड़ा। इसके लिए कठोर कार्रवाई की जरूरत है। जाकिर हुसैन ने कहा, नहीं, कठोर कार्रवाई का छात्रों पर गलत असर पड़ेगा। मगर उन्होंने तय कर लिया कि वह अपना मकसद किसी भी कीमत पर हासिल करके रहेंगे। लेकिन अगले दिन उन्हें बेहद अफसोस हुआ, जब उन्होंने देखा कि पहले की भांति अधिकांश छात्र गंदे और बिना पालिश किए जूते ही पहने हुए हैं।

अगले दिन सुबह-सुबह छात्रों ने विश्वविद्यालय के दरवाजे पर एक व्यक्ति को बैठे देखा, जो सबसे जूते पॉलिश कराने के लिए कह रहा था। कुछ छात्रों ने उससे जूते पॉलिश कराए। उस शख्स ने पैसे नहीं लिए और कहा कि यह विद्यापीठ

की तरफ से कराया जा रहा है। इस पर कुछ और छात्र पॉलिश करवाने लगे।

तभी एक विद्यार्थी ने पॉलिश करनेवाले का चेहरा गौर से देखा तो उसके होश उड़ गए। वह तो जाकिर हुसैन थे। पूरे विश्वविद्यालय में हड़कंप मच गया। बाकी छात्र जहां थे वहीं रुक गए। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि अब किया क्या जाए। उसी समय कुछ वरिष्ठ छात्र, जो विश्वविद्यालय का माहौल खराब करने में सबसे आगे रहते थे, उनके पास आए और कहने लगे, हमसे बहुत बड़ी गलती हुई। आज से आप जैसा कहेंगे हम लोग वैसा ही करेंगे। हमें माफ कर दीजिए। जाकिर हुसैन बोले, तुम लोग अभी से अनुशासन का मखौल उड़ाओगे तो आगे चलकर तुम्हें परेशानी होगी। हम चाहते हैं कि यहां के छात्रों से दूसरे लोग कुछ सीखें। उसके बाद विश्वविद्यालय का माहौल पूरी तरह बदल गया। फिर तो हमेशा विद्यालय के सभी छात्रों को साफ चमचमाते जूते और वस्त्र पहने ही देखा गया।

८०२) जाकिर हुसैन ने नौकर को सिखाया सबक - यह घटना उस समय की है, जब डॉक्टर जाकिर हुसैन राष्ट्रपति नहीं बने थे। उनके घर में एक नौकर था, जो कार्य करने में तो काफी चतुर था, किंतु बड़ा ही आलसी था। घर के सभी लोग उठ जाते, लेकिन वह सोचता रहता। बाद में आराम से उठकर काम करता। इस कारण परिवार के जिन सदस्यों को सुबह अपने कामकाज में उसकी आवश्यकता होती, उन्हें बड़ी परेशानी होती। जाकिर हुसैन के घर के सभी लोग प्राय: उसकी शिकायत करते थे। वे सभी की सुन लेते, किंतु मौन रहते। सभी ने उस नौकर को डांट फटकार लगाई, प्रेम से समझाया, किंतु वह अपनी आदत से बाज नहीं आया। कार्यदक्ष होने के कारण कोई उसे निकालना भी नहीं चाहता था। जब नौकर ने किसी की नहीं सुनी तो एक दिन हुसैन साहब प्रात: जल्दी उठे और उस नौकर के पास जाकर बोले- मालिक। उठिए मैं पानी लाया हूं। आप मुंह धो लीजिए। नौकर को लगा कि वह कोई स्वप्न देख रहा है। इसलिए वह नहीं उठा। थोड़ी देर बाद हुसैन साहब चाय लेकर आए और बोले- मालिक अब तो उठ जाइए। दिन चढ़ गया है। मैं आपके लिए चाय लाया हूं। नौकर ने आंखें खोलीं तो सामने जाकिर हुसैन को चाय का प्याला लिए खड़े देख शर्म से पानी-पानी हो गया। उस दिन के बाद वह आलस छोड़कर जल्दी उठने लगा। यदि हम किसी में कोई सुधार देखना चाहते हैं तो वाणी से अधिक आचरण का सहारा लेना उत्तम होता है। इससे सामनेवाला स्वसुधार हेतु प्रेरित तो होता ही है, दोनों पक्षों के मध्य कोई अप्रिय स्थिति भी निर्मित नहीं होती।

८०३) एकता का सूत्र- एक बार डॉ. राजेंद्र प्रसाद शांतिनिकेतन आश्रम गए तो गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर तथा अपने छात्रों के लिए बनवाए गए नानाविध पकवान देखकर दंग रह गए। राजेंद्र बाबू ने भुने चनों से बनाई गयी मिठाई खाई तो गौरा पंत शिवानी से पूछ बैठे, यह बिहारी मिठाई यहां किसने बनाई ? शिवानी ने उत्तर दिया, यह सब गुरुदेव जी की व्यवस्था का ही कमाल है। उन्होंने शांतिनिकेतन को अखिल भारतीय स्वरूप दिया हुआ है। यहां हर प्रांत का पकवान तैयार किया जाता है और हर प्रांत की भाषा में बातचीत की जाती है। राजेंद्र बाबू एकाएक गंभीर हो उठे, काश। इस पावनधाम से प्रेरणा लेकर मेरा पूरा भारत प्रांतीय, भाषाई तथा धार्मिक एकता का रूप धारण कर ले।

८०४) डॉ. राजेंद्रबाबू और अंग्रेज- एक बार डॉ. राजेन्द्र प्रसाद नौका में बैठकर अपने गांव जा रहे थे, उनके पास ही एक अंग्रेज अधिकारी बैठा हुआ था, जो सिगरेट पी रहा था। काफी देर तक राजेन्द्र बाबू सिगरेट के धुएं की गंध सहते रहे। थोड़ी देर बाद वे अंग्रेज अधिकारी से बोले- ये सिगरेट जो आप पी रहे हैं, क्या आपकी है ? अंग्रेज अधिकारी ने घूरते हुए कहा- मेरी नहीं तो क्या तुम्हारी है? तो फिर यह धुंआ भी आपका ही है, इसे आप अपने पास संभालकर रखो। इसे क्यों दूसरे पर फैंकते हो ? डॉ. राजेन्द्र बाबू बोले। राजेन्द्र बाबू का करारा जवाब सुनकर उस अंग्रेज अधिकारी को आखिर सिगरेट फेंकनी पड़ी और साथ ही लज्जित भी होना पड़ा।

८०५) ईमानदारी का पाठ- देश के प्रथम राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद सादगी और ईमानदारी के लिए शुरू से विख्यात थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधीजी ने उन्हें मीडिया प्रभारी बनाया। कांग्रेस की गतिविधियों की कौन सी खबर प्रकाशित होनी है, कौन नहीं, इसका निर्णय राजेंद्र बाबू को करना होता था। वह अखबारों में खबरें भी खुद ही पहुंचाते थे। एक बार वह इलाहाबाद के लीडर प्रेस गए। उस समय लीडर प्रेस के संपादक सी वाई चिंतामणि थे। उनकी राजेंद्र बाबू से गहरी दोस्ती थी। जब राजेंद्र बाबू प्रेस पहुंचे तो गेट पर बैठे चपरासी ने कहा, इस समय आप उनसे नहीं मिल सकते। उनके पास कई नेता बैठे हुए है। आप को इंतजार करना पड़ेगा। जब राजेंद्र बाबू पहुंचे, तो चिंतामणि जी लिखने में व्यस्त थे। उनके चपरासी ने राजेंद्र प्रसाद से कहा, साहब इस समय लिख रहे हैं। वह किसी से मिल नहीं सकते।

राजेंद्र बाबू ने अपना कार्ड उसे देते हुए कहा, ठीक है, यह उन्हें दे दो। जब वह खाली हो जाएंगे तो मुझे बुला लेंगे। चपरासी ने कार्ड चिंतामणि की मेज पर रख दिया और चला आया। उस समय ठंड ज्यादा थी और हल्की बूंदाबादी भी हो रही थी। राजेंद्र बाबू भीग गए थे। कार्यालय के बाहर कुछ मजदूर अंगीठी जलाकर आग ताप रहे थे। राजेंद्र बाबू भी वहीं बैठ गए। काफी देर के बाद चिंतामणि की नजर उस कार्ड पर पड़ी। वह नंगें पांव हड़बड़ाकर दौड़ते हुए बाहर आए और उन्होंने चपरासी से पूछा, यह कार्ड देनेवाले सज्जन कहां है? चपरासी ने कहा, वहां बैठकर आग ताप रहे हैं। मैंने उन्हें रोक लिया था। चिंतामणि को देखकर राजेंद्र बाबू को रोका क्यों? राजेंद्र बाबू का नाम सुनते ही चपरासी कांपने लगा और माफी मांगते हुए बोला, मैंने आपको पहचाना नहीं साहब। मुझे माफ कर दें। राजेंद्र बाबू बोले, तुमने कोई गलती की ही नहीं तो माफी क्यों मांगते हो। तुमने अपना कर्त्तव्य ईमानदारी से निभाया है और आगे भी इसी तरह निभाते रहना। राजेंद्र बाबू ने चिंतामणि देशमुख से हंसकर कहा, आप लिखने में व्यस्त थे तो मैं यहां चला आया। इनसे बात करके बहुत सी जानकारी मिली।

८०६) राष्ट्रपति का बड़प्पन- यह घटना उस समय की है, जब डॉ. राजेंद्र प्रसाद देश के राष्ट्रपति थे। देश-विदेश के अनेक अतिथि उनके पास आते रहते थे। एक विदेशी ने एक बार उन्हें हाथी दांत की एक कलम भेंट की। वह कलम राजेंद्र बाबू को इतनी अच्छी लगी कि वे हरदम उसी से लिखते थे। एक दिन उनके सेवक तुलसी से काम करते समय वह कलम टूट गई। राजेंद्र बाबू बेहद दुखी हुए। उन्होंने अपने निजी सचिव को बुलाया और कहा, तुलसी को आप यहां से हटाकर बगीचे में अथवा कहीं और काम पर रख दीजिए जहां उसके हाथ से टूट-फूट होने की आशंका न हो। सचिव ने तुलसी को बगीचे में लगा दिया। एक-दो दिन तो किसी तरह बीत गया, लेकिन तीसरे दिन राजेंद्र बाबू को तुलसी के बिना बेचैनी होने लगी। वह सोचने लगे कि तुलसी कौन सा जानबूझकर तोड़-फोड़ करता था। अनजाने में भूल-चूक हो ही जाती है। मैंने उसे यहां से हटाकर उसका अपमान किया है, उसका दिल दुखाया है। मुझे तुरंत अपनी गलती सुधार लेनी चाहिए। यह सोचकर उन्होंने तुलसी को बुलाया। तुलसी डरते-डरते आया और मुंह लटका कर खड़ा हो गया। राजेंद्र बाबू ने उससे कहा, तुम्हें यहां से हटाकर मैंने भूल की है। अब तुम यहीं पर मेरे पास काम करोगे और हां, जो भूल मैंने की है उसके लिए मुझे क्षमा कर दो। कहो कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है। तुलसी यह सुनकर द्रवित हो गया। उसकी आंखें छलछला उठीं। वह उनके पांवों में गिरने के लिए झुका लेकिन राजेंद्र बाबू ने उसे थाम लिया और बोले, अरे यह क्या कर रहे हो? मैं माफी मांग रहा हूं और उलटे तुम मुझे दोषी बना रहे हो। जब तक तुम मुझे माफ नहीं करोगे तब तक मैं यहीं इसी तरह खड़ा रहूंगा। आखिरकार तुलसी को बोलना ही पड़ा, मैंने आपको क्षमा किया। यह सुनकर राजेंद्र बाबू सहज हुए और उन्होंने तुलसी को गले लगाकर फिर से पहले वाले काम पर लगा दिया।

८०७) सेवा ही धर्म है - एक बार राजेंद्र प्रसाद ट्रेन के तीसरे दर्जे में बैठ कर कहीं जा रहे थे। गर्मी का महीना था। गाड़ी में भीड़ बहुत थी। ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी। संयोग से उसी समय प्लैटफॉर्म के दूसरी ओर भी एक गाड़ी आकर रुकी। उसमें भी बहुत भीड़ थी। राजेंद्र बाबू ने देखा कि दूसरी ट्रेन के एक डिब्बे में लोग पानी के लिए चिल्ला रहे हैं। चूंकि भीड़ बहुत ज्यादा थी इसलिए वे डिब्बे से नीचे उतर नहीं सकते थे। कोई उन पर ध्यान नहीं दे रहा था। तभी राजेंद्र बाबू की नजर एक महिला पर गई जो अपने छोटे बच्चे को गोद में लिए खिड़की से पानी-पानी चिल्ला रही थी। प्यास से बच्चा रो रहा था। उसकी तरफ भी किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। राजेंद्र बाबू से रहा नहीं गया। वह अपने डिब्बे के लोगों को धकियाते हुए किसी तरह नीचे उतरे और दौड़ कर नल से अपने लोटे में पानी भरकर उसे दिया। तब तक उनकी गाड़ी खुल गई। लेकिन दौड़ कर किसी तरह उन्होंने अपनी ट्रेन पकड़ ली। उनकी सीट के बगलवाले व्यक्ति ने कहा, आप तो दुबले-पतले कमजोर आदमी हैं। इस तरह जोखिम उठा कर आप को ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। यात्रियों की सुविधा का ध्यान रखना तो सरकार का काम है। राजेंद्र बाबू बोले, भइया, जब हम लोग ही दूसरे की मदद नहीं करेंगे तो सरकार क्या करेगी। उसको क्यों दोष देते हो। वैसे भी प्यासे को पानी पिलाना तो पुण्य का काम है। आप तो हट्टे-कट्टे हो। आपको यह काम सबसे पहले करना चाहिए था। बातचीत में जब उस व्यक्ति को मालूम हुआ कि यह सज्जन कोई और नहीं राजेंद्र बाबू हैं, तो वह शर्मिंदा हो गया और उसने राजेंद्र बाबू से क्षमा मांगी। राजेंद्र बाबू ने कहा, अरे इसमें क्षमा मांगने की क्या बात है। आज से तुम भी प्रण कर लो कि जरूरतमंद की सेवा का कोई अवसर नहीं छोड़ोगे। सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। उस व्यक्ति ने वैसा ही करने का वचन दिया।

८०८) संयम का पाठ- महादेव गोविंद रानाडे के घर एक दिन उनके किसी मित्र ने आम भेजे। रानाडे की पत्नी रमाबाई ने आम धोकर रानाडे के पास खाने के लिए रखे। रानाडे ने एक-दो टुकड़े खाकर उनके स्वाद की प्रशंसा की और कहा, इसे तुम भी खाकर देखो और सेवकों को भी दो। रमाबाई को आश्चर्य हुआ कि उनके पतिदेव ने आम के केवल एक-दो टुकड़े ही खाए। उन्होंने पूछा, आपका स्वास्थ्य तो ठीक है? रानाडे बोले, तुम सोच रही होगी कि आम स्वादिष्ट हैं तो फिर मैंने ज्यादा क्यों नहीं खाए? दरअसल ये मुझे बहुत स्वादिष्ट लगे इसलिए मैं अधिक नहीं ले रहा। पति की यह अजीब बात रमाबाई को समझ में नहीं आई। रानाडे बोले, बचपन में मेरे पड़ोस में एक महिला रहती थी। वह पहले काफी संपन्न थी किंतु दुर्भाग्य से उसकी सारी संपत्ति चली गई। किसी प्रकार उसका और उसके पुत्र का पालन-पोषण हो सके, इतनी ही आय उसके पास बची। वह कई बार जब अकेली होती, तब अपने आप से कहती- मेरी जीभ बहुत चटोरी है। इसे बहुत समझाती हूं कि अब चार-छह साग मिलने के दिन गए। कई प्रकार की मिठाइयां अब दुर्लभ हैं। पकवानों को याद करने से कोई लाभ नहीं, फिर भी मेरी जीभ नहीं मानती, जबकि मेरा बेटा रूखी-सूखी खाकर पेट भर लेता है। उस महिला की बात सुनकर तभी से मैंने नियम बना लिया कि जीभ जिस वस्तु को पसंद करे, उसे थोड़ा ही खाना है। अपनी जरूरतों को कम रखने से जहां सुख के दिनों में आनंद रहता है, वहीं दुख के दिनों में भी कष्ट नहीं होता।

८०९) नियम सबके लिए है- बात सन १८८५ की है। पूना के न्यू इंग्लिश हाईस्कूल में समारोह हो रहा था। प्रमुख द्वार पर एक स्वयंसेवक नियुक्त था, जिसे यह कर्त्तव्य-भार दिया गया था कि आनेवाले अतिथियों के निमंत्रण पत्र देखकर उन्हें सभा स्थल पर यथास्थान बिठा दे। इस समारोह के मुख्य अतिथि थे मुख्य न्यायाधीश महादेव गोविंद रानडे। जैसे ही वह विद्यालय के द्वार पर पहुँचे, वैसे ही स्वयं सेवक ने उन्हें अंदर जाने से शालीनतापूर्वक रोक दिया और निमंत्रण-पत्र की माँग की। बेटे, मेरे पास तो निमंत्रण-पत्र नहीं है, रानडे ने कहा। क्षमा करें, तब आप अंदर प्रवेश न कर सकेंगे, स्वयंसेवक का नम्रतापूर्ण उत्तर था। द्वार पर रानडे को देखकर स्वागत समिति के कई सदस्य आ गए और उन्हें अंदर मंच की ओर ले जाने का प्रयास करने लगे।

HHH(३००)HHH

पर स्वयंसेवक ने आगे बढ़कर कहा, श्रीमान्। मेरे कार्य में यदि स्वागत-समिति के सदस्य ही रोड़ा अटकाएँगे तो फिर मैं अपना कर्त्तव्य कैसे निभा सकूँगा? कोई भी अतिथि हो उसके पास निमंत्रण-पत्र होना ही चाहिए। भेद-भाव की नीति मुझसे नहीं बरती जाएगी। यह स्वयंसेवक आगे चलकर गोपाल कृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ और देश की बड़ी सेवा की।

८१०) कर्म ही पूजा-पाठ- लोकमान्य तिलक कांग्रेस के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए लखनऊ आए हुए थे। उनका नियम था कि प्रात: स्नान के बाद पूजा-उपासना करते तथा गीता के कुछ श्लोकों का पाठ करते। भगवान श्री गणेश की आराधना के बाद ही वह अन्य कार्य शुरू करते थे। वह कांग्रेस के कार्यक्रमों में ऐसे व्यस्त हुए कि उन्हें दोपहर दो बजे तक अवकाश नहीं मिल पाया। उसके बाद वह अन्य नेताओं के साथ भोजन करने बैठ गए। कांग्रेस के एक नेता जानते थे कि तिलक जी पूजा-पाठ के बाद ही भोजन करते हैं। उन्होंने विनम्रता से कहा, तिलक महाराज, आज तो आपको बिना पूजा-पाठ किए ही भोजन करना पड़ रहा है।

तिलक जी मुसकुराकर बोले, गीता में कर्म को ही उपासना बताया गया है। मातृभूमि की स्वाधीनता का चिंतन करना भी तो भगवान की पूजा ही है। आज मैंने उसी चिंतन में व्यस्त रहकर पूजा-अर्चना का दायित्व पूजा कर दिया। तिलक जी के मुख से पूजा-पाठ की व्याख्या सुनकर वहां उपस्थित लोग बहुत प्रभावित हुए।

८११) स्वावलंबन की सीख- एक बार दादाभाई नौरोजी किसी मुकदमे के सिलसिले में लंदन गए थे। उनके साथ लोकमान्य तिलक भी थे। लंदन में ठहरने का खर्च काफी था। इसलिए खर्च कम करने के लिए वे शहर के पास एक गाँव में चले गए। दादाभाई नौरोजी सुबह जल्दी उठ जाते थे और अपना पूरा काम निपटा लेते थे। एक दिन वे सुबह जल्दी उठकर अपने जूतों पर पॉलिश करने बैठ गए। जब अपने जूतों पर पॉलिश कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि तिलक के जूते भी गंदे हैं। उन्हें भी पॉलिश कर दिया जाए। वे अभी तिलक के जूते चमका ही रहे थे कि लोकमान्य की आँख खुल गई। जब उन्होंने देखा कि दादाभाई नौरोजी उनके जूतों पर पॉलिश कर रहे हैं तो वे दौड़कर उनके पास गए और कहा- आप यह क्या कर रहे हैं ? नौकर आएगा तो कर देगा, आप जूते पॉलिश न करें। आप जैसा व्यक्ति मेरे जूतों को हाथ लगाए यह मेरे लिए शर्म की बात होगी। दादाभाई नौरोजी ने कहा- जूते सब एक जैसे होते हैं। जैसा मेरा जूता वैसा आपका। जब मैं अपने जूतों को चमका सकता हूं तो आपके जूते पॉलिश करने में कैसी शर्म ? जहाँ तक नौकर का सवाल है तो मेरा मानना है कि <u>व्यक्ति को जितना संभव हो स्वावलंबी होना चाहिए</u>। इतना सुनना था कि तिलक अपने जूतों पर पॉलिश करने बैठ गए।

८१२) महापुरुषों का आशीर्वाद- सर चिंतामणि देशमुख भारत के माने हुए अर्थशास्त्री थे। जब वे पुणे के फर्ग्यूसन कॉलेज में विद्यार्थी थे, तब लोकमान्य तिलक ने एक दिन कॉलेज के प्राचार्य महोदय से कहा कि मुझे अर्थ संबंधी एक आवश्यक लेख लिखना है, आप अपने किसी होशियार छात्र को भेज दें, मैं जो बोलूं उसे वह ठीक ठीक लिखता रहे।

प्राचार्य महोदय ने इस कार्य के लिए चिंतामणि देशमुख को चुना और कहा कि आज शाम पांच बजे लगभग लोकमान्य तिलक जी के पास चले जाना और वे जो बोलें उसे ठीक-ठीक लिखते रहना।

देशमुख जी ने इसे अपना अहोभाग्य समझा और तिलक जी के पास पहुंच गए। संयोगवश उस समय तिलक जी से मिलने कुछमहानुभाव आ गए और लेख लिखवाने का उनके पास समय नहीं रहा। तिलक जी इससे खिन्न थे। इस पर चिंतामणि देशमुख ने कहा, आप मुझे समझा दीजिए कि आप क्या लिखना चाहते हैं। एक रूपरेखा दे दीजिए। मैं स्वयं लेख तैयार कर लाऊंगा। यह सुनकर तिलक जी मुस्कराए और उनका मन रखने के लिए उन्होंने अपना विषय और मुद्दे उन्हें समझा दिए। अगले दिन देशमुख जी वह लेख तैयार करके उनकी सेवा में पहुंचे। लेख पढ़कर तिलक जी बहुत

प्रसन्न हुए और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले- जाओ हमने तुम्हें आशीर्वाद दिया, तुम एक दिन भारत के वित्त मंत्री बनोगे। तिलक जी का यह आशीर्वाद उन्हें बराबर स्मरण रहा। जब वे रिजर्व बैंक के गवर्नर बने, तो उन्होंने समझ लिया कि अब लोकमान्य का आशीर्वाद पूरा हो गया, क्योंकि रिजर्व बैंक गवर्नर का पद भी अपने आप में वित्त मंत्री जैसा ही प्रतिष्ठित होता है। पर बाद में जब वह सचमुच भारत के वित्त मंत्री बने, तो उन्हें एहसास हुआ कि महापुरुषों का आशीर्वाद साधुओं की भविष्यवाणियों से ज्यादा सटीक होती हैं, क्योंकि वे उन बीजों को पहचानने की क्षमता रखते हैं, जिन्हें भविष्य में खिलना होता है। भविष्यवक्ता आदमी के सितारे देखते हैं, जबकि महापुरुष कर्म के आधार पर बात कहते हैं।

८१३) विपत्ति में भी विनोद- महामान्य तिलक महाराज के विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित है। वे बड़े ही विनोदी स्वभाव के थे। परिस्थिति विशेष का उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता था। सभी परिस्थितियों में उनकी मन:स्थिति समान रहती थी। उनका एक मुकदमा हाई कोर्ट में चल रहा था। उन पर मुकदमें का अभिप्राय है कि किसी जमीन जायदाद का मुकदमा नहीं। वे देशभक्त थे, पत्रकार थे, प्रसिद्ध मराठी दैनिक केसरी के संचालक सम्पादक थे। उसी प्रकरण में अंग्रेज सरकार समय-समय पर उन्हें संकट में डालने के लिए मुकदमे कर दिया करती थी। हाई कोर्ट में जो मुकदमा चल रहा था उसमें श्री तिलक की ओर से जो बैरिस्टर पैरवी कर रहे थे उनके आने में थोड़ा विलम्ब हो रहा था। तिलक जी द्विविधा में थे कि तभी वही के एक युवक बैरिस्टर अपने एक अन्य मित्र बैरिस्टर को साथ लेकर लोकमान्य के समीप गये और कहा- आपके बैरिस्टर साहब को आने में विलम्ब हुआ तो कोई बात नही है, हम लोग आपकी सहायता के लिए तत्पर हैं। तिलक जी ने युवक बैरिस्टरों की ओर देखा। कुछ विचार किया और फिर हंसते हुए कहने लगे- किसी षोडशी कुमारिका के लिए बीस-बाईस वर्ष के पूर्ण युवक के स्थान पर दस-दस वर्ष के दो किशोर वर क्या चल सकते हैं? सुनते ही वहां पर उपस्थित सभी बैरिस्टर ओर अन्य जन यह सुनकर ठहाका मार कर हंस पड़े। दोनों युवक बेचारे अपना सा मुख लेकर अपने स्थान पर जाकर बैठ गये। संकट में धैर्य न खोना और विवेकशील रहना तिलक जी की विशेषता थी।

८१४) निर्लिप्तता की पराकाष्ठा- यह सन् १८९७ की घटना है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक पुणे के दाजी साहेब खरे के बंगले पर किसी कार्य से गये हुए थे। पुलिस को उनकी तलाश थी। वह अंग्रेजों के राज का युग था और तिलक जी अंग्रेजी राज के कट्टर विरोधी थे। रात के साढ़े नौ बजे के करीब एक युरोपियन पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट बंगले पर आया और उसने तिलक जी को बाहर बुलवाया। तिलक जी बाहर आये तो उसने उन को उनकी गिरफ्तारी का वारण्ट दिखाया। तिलक जी ने उसे पांच मिनट तक रुकने का आग्रह किया और स्वयं भीतर जा कर दाजी के साथ उस धारा पर चर्चा करते रहे, जिसके अन्तर्गत उनको बन्दी बनाये जाने का आदेश था। चर्चा पूर्ण होने पर उन्होंने दाजी साहेब से कहा- ठीक है, आप मजिस्ट्रेट के बंगले पर जाकर जमानत के लिए प्रार्थनापत्र दीजिये और फिर जेल में आकर मुझे उसके निर्णय से अवगत कराने का कष्ट कीजिये। यह कहकर वे बाहर आ गये और दस बजे के लगभग उस युरोपियन पुलिस अधिकारी के साथ जेल चले गये। साढ़े दस बजे का समय हुआ कि उन्होंने बिस्तर लगाया और निश्चित होकर सो गये। सोते ही उन्हें गाढ़ी निद्रा आ गई। रात के साढ़े ग्यारह बजे दासी साहेब आये तो देखा कि तिलक गाढ़ी निद्रा पड़ी, तब उनकी नींद खुली। उनके उठने पर दाजी ने उनको आगे की कार्रवाई की जानकारी दी।

८१५) सफलता का राज- लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक सभा में मुख्य अतिथि के रूप में भाषण दे रहे थे ? श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। भाषण समाप्त होने पर एक श्रोता ने उनसे पूछा तिलक जी, आप ओजस्वी वक्ता हैं, प्रकाण्ड विद्वान और देशभक्त हैं, आपकी सफलता का राज क्या है ?

तिलक बोले, निरन्तर ग्रन्थों का अध्ययन करता हूं, राजनीति में होनेवाले प्रत्येक परिवर्तन पर नजर रखता हूं, समयानुसार कार्य करता हूं, किसी से द्वेष-भाव नहीं रखता और हमेशा तनावमुक्त रहकर शक्ति परिश्रम और लगन से काम करता हूं। यही मेरी सफलता का राज है। कोई भी मनुष्य ऐसा करके सफल हो सकता है।

८१६) जीवन का लक्ष्य - एक बार बाल गंगाधर तिलक अपने कुछ मित्रों के साथ बात कर रहे थे। उन दिनों उन्होंने वकालत पास की थी। एक मित्र ने पूछा, वकालत तो तुमने पास कर ली है। आगे के लिए क्या सोचा है? क्या अब सरकारी नौकरी करोगे या किसी कचहरी में वकालत? स्वराज्य होने पर आप क्या बनना पसंद करेंगे प्रधानमंत्री या पर राष्ट्र मंत्री (विदेशी मंत्री) ? लोकमान्य तिलक का पूरा नाम श्री बलवन्तराव गंगाधरराव तिलक था।

मित्र की बात सुनकर तिलक बोले, अब तुमने पूछ ही लिया है तो सुन लो। मुझे ऐसे पैसे की जरूरत नहीं जो मुझे सरकार का गुलाम बनाकर रखे। मैं ऐसी वकालत नहीं करना चाहता, जहां दिन में कई बार झूठ बोलना पड़े। बात आई-गई हो गई। सभी अपने-अपने कामों में लग गए। कुछ समय बाद एक दिन मित्रों को पता चला कि बाल गंगाधर ने एक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया है। तनख्वाह थी तीस रुपये महीना। यह सुनकर उस मित्र को सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ जिसने कुछ समय पहले उनका मन जानना चाहा था। उससे रहा न गया। वह अपना काम-धाम छोड़कर तिलक के पास जा पहुंचा। उनके पास जाकर उसने कहा, यह क्या किया तुमने? वकालत की उपाधि लेकर अध्यापक क्यों बन बैठे? क्या तुम शिक्षकों की आर्थिक स्थिति के बारे में कुछ नहीं जानते? आज एक अध्यापक समाज के सबसे गरीब व असहाय वर्ग में गिना जाता है। दोस्त, जब तुम अंतिम सांस लोगे, तब तुम्हारे दाह संस्कार के लिए भी शायद घर में कुछ नहीं होगा। साधारण लकड़ी खरीदने के लिए भी पैसे नहीं निकलेंगे। अब भी वक्त है संभलने का। सरकारी अधिशासी बनो। वकील बनो या इन सब में मन नहीं है तो व्यापार ही कर लो। मित्र की बात सुनकर तिलक मुस्कुराते हुए बोले, मेरे जीवन का लक्ष्य कुछ और है। मैंने जो पेशा चुना है, यह बहुत ही पवित्र है। ईमानदारीवाला है। रही अंतिम समय की बात, तो मेरे दाह संस्कार का प्रबंध नगरपालिका कर देगी। मैं इसकी चिंता क्यों करूं? तिलक बोले- नहीं भाई। नहीं, स्वराज्य स्थापित हो जाने के बाद न तो मैं प्रधानमंत्री बनूंगा और न पर राष्ट्र मंत्री, मैं तो किसी स्वदेशी विद्यालय में गणित विषय का व्याख्याता (प्रोफेसर) बनूंगा और सार्वजनिक आंदोलन से संन्यास ले लूंगा। देश की स्थिति बुरी है और ज्यादातर लोग इस ओर विशेष ध्यान नहीं देते इसलिए मुझे इस ओर लगना पड़ा है। अन्यथा डिफरेंशीयल कैलकुलस पर एक-आधा पुस्तक लिखने की मेरी अब भी इच्छा है। राजनीति से मेरा जी ऊब गया है। देश की स्थिति बड़ी बुरी है और आप में से कोई कुछ नहीं करता, इसलिए मुझे विद्या-व्यसन छोडकर इस ओर समय लगाना पडता है। राजनीति के क्षेत्र में ऐसा अनन्य उदाहरण शायद ही अन्य किसी ने प्रस्तुत किया हो। अधिकांशतया ने तो भारत के स्वतंत्र होने पर जिसने मात्र एक लाठी खाई थी अथवा एक रात हवालात में बिताई थी, उन सभी ने अपने-अपने भाग की मांग की। तिलक का उत्तर सुनकर मित्र महोदय मुस्कराकर चुप हो गए। वह मन ही मन तिलक के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

८१७) सत्यप्रिय गोखले- स्वतंत्र सेनानी गोपालकृष्ण गोखले के बाल्यकाल की घटना है। उस समय वे पाठशाला में पढ़ते थे। वह बचपन से विलक्षण प्रतिभा संपन्न थे। उन्हीं दिनों एक दिन अध्यापक जी ने सभी विद्यार्थियों को कुछ गणित के प्रश्न घर से कर लाने के लिए दिये। गोखले को उनमें एक प्रश्न आता नहीं था तो उसे उन्होंने एक अन्य विद्यार्थी की सहायता से हल कर लिया। अगले दिन सभी विद्यार्थी पाठशाला पहुंचे और अध्यापक महोदय ने विगत दिन दिये गये प्रश्नों की जांच की। केवल गोपालकृष्ण ही ऐसे थे जिनके सभी प्रश्नों के उत्तर ठीक थे। शिक्षक महोदय ने उनकी प्रशंसा की और कहा, मैं तुम्हें यह पुस्तक पुरस्कार के रूप में दे रहा हूं क्योंकि तुमने सारे सवालों के सही उत्तर दिए हैं। शिक्षक़

महोदय ने उनकी प्रशंसा की और उन्हें कुछ पुरस्कार देने लगे। पुरस्कार का नाम सुनते ही गोखले रो पड़े। जब शिक्षक ने रोने का कारण पूछा, तब गोखले ने रोते-रोते उत्तर दिया, मुझे आप इनाम नहीं दंड दीजिए।

उनको रोते देख कर शिक्षक को बडा आश्चर्य हुआ और वे उनसे पूछने लगे- गोखले। तुम इस प्रकार रो क्यों रहे हो ? क्या बात है, क्या तुम्हें पुरस्कार पसंद नहीं है?

गोखले ने कहा- आप समझ रहे हैं कि सब प्रश्नों को मैंने स्वयं से ही हल किया है। किन्तु एक प्रश्न मैने अपने मित्र की सहायता से हल किया था, इस प्रकार मैने आपको धोखा दिया है। मुझे तो पुरस्कार के स्थान पर दण्ड मिलना चाहिए। ऐसे में मैं इस पुरस्कार का हकदार कैसे हो सकता हूं।

शिक्षक महोदय गोखले की सत्यप्रियता से तो और भी अधिक प्रसन्न हो गये। वे बोले- ठीक है, किन्तु मुझे तुम्हें पुरस्कृत तो करना ही है। अत: अब मैं तुम्हें यह पुरस्कार तुम्हारी सत्यप्रियता के लिए दे रहा हूँ। यह कहकर उन्होंने उन्हें पुरस्कार प्रदान कर दिया। मैं चाहता हूं, तुम इसी तरह सदा सच बोलते रहो।

८१८) गोपाल की समझदारी- एक बार एक सहपाठी ने गोपाल से एक नाटक देखने के लिए साथ चलने को कहा। गोपाल मान गए और नाटक देखकर आ गए। एक-दो दिन के बाद उस सहपाठी ने टिकट के पैसे देने को कहा। गोपाल को आघात-सा लगा। यदि उन्हें पहले से पता होता कि इसमें पैसा लगेगा, तो वह शालीनता से अपने सहपाठी को इन्कार कर देते लेकिन आत्मसम्मान बनाए रखने के लिए उन्होंने दो आने उसे दे दिए। गोपाल को महीने भर का खर्च चलाने के लिए कुल आठ रुपए मिलते थे। उसमें से चार रुपए खाने के तथा शेष चार रुपए विद्यालय फीस, किताबें और कपड़ों पर खर्च हो जाते थे। अब उनके सामने प्रश्न था कि वे अपना बजट कैसे सही करें ? क्या एक बार का खाना छोड़ दें ? तब उन्होंने अपनी लालटेन में डालने वाले तेल में बचत करने की ठानी। वे सड़क पर गए और सड़क की लाइट में किताबें पढ़कर उन्होंने अपना बजट ठीक किया। यह घटना हैं गोपाल कृष्ण गोखले के बचपन की, जिन्होंने बड़े होकर भारत के स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

८१९) सच्ची लगन- उन दिनों की बात है जब पंडित मदनमोहन मालवीय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गठन में लगे थे। इसके लिए वह जगह-जगह जाकर धन इकट्ठा कर रहे थे। हर तरह के लोगों से वह मदद मांग रहे थे। एक बार वह सहायता मांगने हैदराबाद के नवाब के यहां पहुंचे, लेकिन उन्हें वहां से खाली हाथ वापस आना पड़ा। हैदराबाद में घूमते हुए उनकी दृष्टि एक धनी व्यक्ति की शवयात्रा पर पड़ी। परंपरा के अनुसार अर्थी पर पैसे लुटाए जा रहे थे। मालवीय जी शवयात्रा में शामिल होकर पैसे उठाने लगे। मालवीय जी जैसे व्यक्ति को ऐसा करते देख लोगों को आश्चर्य हुआ। कुछ लोगों से रहा नहीं गया। उन्होंने टोका तो मालवीय जी ने पूरी घटना बताई कि किस उद्देश्य से वह हैदराबाद आए थे और कैसे उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ रहा था। उन्होंने कहा, इस पैसे को जोड़कर जो धन प्राप्त होगा उसे मैं हैदराबाद के सहयोग के रूप में विश्वविद्यालय के निर्माण कार्य में लगाऊंगा। उनकी इस बात का उस शवयात्रा में शामिल धनाढ्य लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने आपस में चंदा इकट्ठा करके कई हजार रुपये तत्काल मालवीय जी को दें दिए।

८२०) इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पंडित मदन मोहन मालवीय को दीक्षांत भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। मालवीय जी पधारे। मालवीय जी की वेश-भूषा और व्यक्तित्व को देखकर छात्र आनन्द-विभोर हो उठे। उस समय तक विश्वविद्यालय में दीक्षांत भाषण अंग्रेजी में देने की परिपाटी थी। मालवीय जी ने हिन्दी में बोलना आरम्भ किया। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि एक विद्यार्थी उठ खड़ा हुआ और ऊंची आवाज में अंग्रेजी में बोला, श्रीमानजी, आपकी भाषा बड़ी कठिन

है। समझ में नहीं आती। या तो आसान जुबान में बोलिये या अंग्रेजी में।

मालवीय जी गंभीर हो आये। अंग्रेजी में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, मैं अंग्रेजी में अपनी बात कह सकता हूं, शायद ज्यादा अच्छी तरह कह सकता हूं, लेकिन मैं उस परम्परा का खंडन करना चाहता हूं, जो गुलामी की परम्परा है। धीरज रक्खो, सब समझ में आ जाएगा। इतना कहकर मालवीय जी ने पुन: हिन्दी में धाराप्रवाह बोलना शुरू कर दिया। फिर किसी को भी मुंह खोलने का साहस नहीं हुआ।

८२१) सहयोग की भावना - महामना मदनमोहन मालवीय को काशी हिंदू विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए धन की आवश्यकता थी। इसलिए वह समाज के संपन्न लोगों से मिलकर उनसे इस सत्कार्य में सहयोग की प्रार्थना करते थे। मालवीय जी के एक मित्र उन्हें इसके लिए एक बड़े व्यापारी के घर ले गए। आवाज देने पर सेठजी ने बैठक का दरवाजा खोला और दोनों अतिथियों को बैठाया। उस वक्त शाम हो जाने के कारण अंधेरा छाने लगा था। बैठक में बिजली नहीं थी, इसलिए सेठजी ने अपने छोटे बेटे को लालटेन जलाने को कहा। बेटा लालटेन और दियासलाई लेकर आया। उसने माचिस की एक तीली जलाई, परंतु लालटेन तक आते-आते बुझ गई। इस तरह उसने तीन तीलियां बर्बाद कर दीं। इस पर सेठ जी ने लड़के से नाराज होकर कहा, तुमने माचिस की तीन तीलियां बर्बाद कर दीं, कितने लापरवाह हो। यह कहकर सेठजी जब अंदर गए तो मालवीय जी ने अपने मित्र की ओर देखा, मानो कह रहे हों कि इस सेठ से कुछ पाने की आशा मत करो क्योंकि यह तो इतना कंजूस है कि माचिस की तीन तीलियां नष्ट हो जाने पर लड़के को डांटता है। संकेत में मित्र ने मालवीय जी से सहमति जताई और दोनों बैठक से बाहर निकले। इतने में सेठजी आ गए। वह चकित होकर बोले, अरे। आप चल क्यों दिए? बैठिए, काम तो बताइए। मालवीय जी के मित्र ने आने का प्रयोजन बताया। सेठजी ने पचीस हजार रुपये निकालकर रख दिए। मालवीय जी ने सेठजी से कहा, अभी आपने लड़के को माचिस की तीलियां नष्ट होने की वजह से डांटा, जबकि उनका मूल्य नहीं के बराबर है। लेकिन हमें आपने तुरंत पचीस हजार रुपऐ दे दिए। सेठजी हंसकर बोले, लापरवाही से छोटी से छोटी वस्तु को भी नष्ट नहीं करना चाहिए। लेकिन किसी शुभ कार्य में हजारों रुपये सहर्ष दे देने चाहिए। दोनों बातें अपनी जगह ठीक हैं। इनमें कोई विरोध नहीं।

८२२) उदारता की राह - पंडित मदनमोहन मालवीय का कहना था कि यदि मूक जीवों का कष्ट समझकर हम इंसान उनके हित में कुछ कर सके तो शायद इससे बढ़कर दूसरा कोई पुण्य नहीं होगा। यह बात उनके आचरण में हमेशा दिखती थी। उनके भीतर प्राणी मात्र के लिए दया थी। इससे जुड़ी एक घटना बड़ी चर्चित है। मालवीय जी किसी जरूरी काम से कहीं पैदल जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक कुत्ता छटपटाता दिखाई दिया। उसके कान के पास एक घाव था और वह पीड़ा के मारे इधर-उधर भाग रहा था। उसकी कराह सुनकर मालवीय जी से रहा नहीं गया। सामान्यतया आप-हम लोग तो अधिकांशतया ऐसे दृश्य देखते रहते है किन्तु दया का प्रदर्शन कर पाना सम्भव नही होता।

उन्होंने अपना काम निपटाने का विचार छोड़ा और पशु चिकित्सालय दौड़ते हुए गए। वैद्यजी को कुत्ते की तकलीफ बताकर दवा मांगी। वैद्य जी ने दवा तो दे दी, मगर बोले, मदनमोहन, ऐसे कुत्ते प्राय: पागल हो जाते हैं। छूने पर काट भी लेते हैं। तुम इस खतरे में न पड़ो तो अच्छा है। किंतु मालवीय जी नहीं माने। वह कष्ट में पड़े किसी प्राणी से मुंह नहीं फेर सकते थे। उन्होंने दवा लेकर एक लंबे बांस में कपड़ा लपेटा और कुत्ते को ढूंढने लगे। कुत्ता एक संकरी गली में बैठा था। मालवीय जी उसके पास गये तो वह कुछ डरा, गुर्राया था। किन्तु मालवीय जी निडर होकर उसके घाव पर दवा लगाते रहे। मालवीय जी ने पहले कपड़े पर दवा लगाई फिर बांस की सहायता से कुत्ते को दवा लगाना शुरू किया। कुत्ता गुर्राता,

दांत निकालता और झपटने की भी कोशिश करता रहा, किंतु मालवीय जी बिना डरे उसे दवा लगाते रहे। जब कुत्ते की पीड़ा कम हुई तो वह सो गया। तब मालवीय जी को शांति मिली और वह अपने कार्य के लिए रवाना हुए।

८२३) स्वाभिमान - कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति का एक पत्र पाकर पं. मदन मोहन मालवीय असमंजस में पड़ गए। वे बुदबुदाए- अजीब प्रस्ताव रखा है यह तो उन्होंने, क्या कहूँ, क्या लिखूँ? पास बैठै एक सज्जन ने पूछा, ऐसी क्या अजीब बात लिख है पंडित जी उन्होंने। वे मुसकुराकर बोले, कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय, मेरी सनातन उपाधि छीन कर एक नई उपाधि देना चाहते हैं। वे लिखते हैं- यह कहकर वे पत्र पढ़ने लगे। उस पत्र में लिखा था- कलकत्ता विद्यापीठ आपको डॉक्टरेट की सम्मानित उपाधि से अलंकृत करके अपने आपको गौरवान्वित करना चाहती है। हम भी गौरवान्वित हो सकेंगे। आप अपनी बेशकीमती स्वीकृति से शीघ्र ही सूचित करने की कृपा कीजिए। प्रस्ताव तो उचित ही है। आप ना मत कर दीजिएगा मालवीय जी महाराज, यह तो हम वाराणसी वासियों के लिए विशेष गर्व एवं गौरव की बात होगी। तभी एक अन्य सज्जन ने हाथ जोड़ कर कहा उनसे। अरे बहुत ही भोले हो भैय्ये तुम तो। वाराणसी के गौरव में वृद्धि नहीं होगी। यह तो वाराणसी के पांडित्य को जलील करने का प्रस्ताव है। बनारस के पंडितों को अपमानित करनेवाली तजवीज है यह। बहुत ही व्यथित मन से मालवीय जी बोले। अगले ही क्षण उन्होंने उस पत्र का उत्तर लिखा- मान्य महोदय। आपके प्रस्ताव के लिए धन्यवाद। मेरे उत्तर को अपने प्रस्ताव का अनादर मत मानिएगा। मेरा पक्ष सुनकर आप उस पर पुनर्विचार ही कीजिएगा। मुझको आपका यह उपाधि वितरण प्रस्ताव अर्थहीन लग रहा है। मैं जन्म और कर्म दोनों से ही ब्राह्मण हूँ। किसी भी ब्राह्मण धर्म की मर्यादाओं के अनुरूप जीवन बिताता है। पंडित से बढ़कर अन्य कोई भी उपाधि नहीं हो सकती। मैं डॉक्टर मदन मोहन मालवीय कहलाने की अपेक्षा पंडित मदन मोहन मालवीय कहलवाना अधिक पसंद करूँगा। आशा है आप इस ब्राह्मण के मन की भावना का आदर करते हुए इसे डॉक्टर बनाने का विचार त्याग कर पंडित ही बना रहने देंगे। वृद्धावस्था में भी मालवीय जी तत्कालीन वाइसराय की कौंसिल के वरिष्ठ काउंसलर थे। उनकी गहन और तथ्यपूर्ण आलोचनाओं के बावजूद वाइसराय उनकी मेधा, सौजन्य, सहज पांडित्य आदि के कायल थे। एक बार एक खास भेंट के कार्यक्रम के दौरान वाइसराय ने कहा- पंडित मालवीय, हिज मेजेस्टी की सरकार आपको सर की उपाधि से अलंकृत करना चाहती है। आप इस उपाधि को स्वीकार करके इस उपाधि का गौरव बढ़ाने में हमारी मदद करें। मालवीय जी ने तुरंत मुसकुराकर उत्तर दिया- महामहिम वाइसराय जी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद कि आप मुझे इस योग्य मानते हैं किंतु मैं वंश परंपरा से प्राप्त अपनी सनातन उपाधि नहीं त्यागना चाहता। एक ब्राह्मण के लिए पंडित की उपाधि ही सर्वोपरि उपाधि है। यह मुझे ईश्वर ने प्रदान की है। मैं इसे त्याग कर उसके बंदे की दी गई उपाधि को क्यों कर स्वीकार करूँ? वाइसराय उनके तर्क से खुश होकर बोले- आपका निर्णय सुनकर हमें आपके पांडित्य पर जो गर्व था, वह दुगुना हो गया। आप वाकई सच्चे पंडित हैं जो उसके गौरव गरिमा की रक्षा के लिए कोई भी प्रलोभन त्याग सकते हैं। एक बार काशी के पंडितों की एक सभा ने मालवीय जी महाराज का नागरिक अभिनंदन करके उन्हें उस समारोह के दौरान ही पंडितराज की उपाधि प्रदान किए जाने का प्रस्ताव किया। यह सुनकर सभा के कार्यकर्ताओं के सुझाव का विरोध करते हुए वे बोले- अरे पंडितों, पांडित्य का मखौल क्यों बना रहे हो, पंडित की उपाधि तो स्वत: ही विशेषणातीत है। इसलिए आप मुझको पंडित ही बना रहने दीजिए। फिर वे हँसकर बोले- जानते हो पंडित महापंडित बन जाता है तो उसका एक पर्यायवाची वैशाखनंदन गधा बनकर मुस्कराता है व्याकरणाचार्यों के पांडित्य पर। और पंडित जी के विनोद में बात आई गई हो गई। वे न तो डॉक्टर बने, न सर हुए न ही पंडितराज इस सबसे दूर स्वाभिमान के साथ जीवन भर पांडित्य का गौरव बढ़ाते रहे।

८२४) पटेल की बुद्धिमत्ता- एक बार सरदार पटेल के कमरे में उनके कुछ मित्र बैठे थे। मजाक चल रहा था। एक मित्र ने सरदार पटेल से प्रश्न किया- यदि आपको धन और ज्ञान में से एक चीज लेने को कहा जाये तो आप क्या लेंगे ?

मैं तो धन ही लूंगा। पटेल ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया। पटेल का उत्तर सुनकर मित्र ने कहा- यदि मैं आपकी जगह होता तो मैं ज्ञान लेता। ठीक है, जिस मनुष्य के पास जिस चीज की कमी होती है, वह उसी चीज की माँग करता है- पटेल ने कहा।

सभी मित्र पटेल के बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर को सुनकर कहकहे लगाने लगे।

८२५) आइना- सरदार वल्लभ भाई पटेल वकालत करते थे। देश तब आजाद नहीं था। सरदार पटेल अक्सर क्रांतिकारियों व स्वतंत्रता सेनानियों के मुकदमे लड़ते थे।

एक गोरा मजिस्ट्रेट गवाहों के सामने एक आदमकद शीशा रखवा दिया करता था तथा गवाहों को शर्मिंदा करने के लिए शीशे में देखकर बयान देने के लिए कहता था।

सरदार पटेल के एक मुव्वकिल का मुकदमा उस अदालत में गया और गोरे मजिस्ट्रेट ने गवाह को शीशे में देखकर बयान देने के लिए कहा, तब सरदार पटेल ने फौरन अदालत से निवेदन किया कि इस बात को भी दर्ज कर लिया जाए कि आइने को सामने रखकर बयान दिया गया है।

मजिस्ट्रेट ने गुस्से में कहा- इस बात का उल्लेख करने की कोई जरूरत नहीं है।

इस पर सरदार पटेल ने व्यंग्यपूर्वक कहा- इसलिए जरूरत है कि यह आइना भी शहादत में पेश हुआ माना जाएगा और मुकदमे के कागजात के साथ सेशन कोर्ट में भेजा जाएगा। गोरा मजिस्ट्रेट इस व्यंग्य से पानी पानी हो गया। उसने तुरंत शीशा वहां से हटवा दिया।

८२६) तार- सरदार पटेल अदालत में एक फौजदारी मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। मामला गंभीर था। उनकी जरा-सी असावधानी मुवक्किल को फांसी दिला सकती थी। वे जज के समक्ष अपने तर्क दे रहे थे, तभी एक व्यक्ति ने आकर उन्हें एक तार दिया। उन्होंने तार खोला और पढ़कर जेब में रख लिया। मुकदमे की कार्यवाही समाप्त होने के बाद साथी वकील ने सरदार पटेल से पूछा- किसका तार था ?

उन्होंने कहा- मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसी की सूचना थी।

साथी वकील ने कहा- इतनी बड़ी घटना घट गई और आप जिरह में लगे रहे। पटेल ने उत्तर दिया- और क्या करता ? पत्नी तो चली गई। क्या मुवक्किल को भी जाने देता ?

८२७) कोरा चेक- विख्यात राष्ट्रभक्त देशबंधु चितरंजन दास वकालत छोड़कर राष्ट्रीय जागरण में सक्रिय हो गए थे। उन्हें स्वराज्य आश्रम के संचालन तथा प्रचार कार्य के लिए धन की जरूरत पड़ी। कोलकाता में सेठ रामजस अगरवाल की गद्दी थी। वह स्वाधीनता आंदोलन के लिए धन अर्पित करते रहते थे। एक दिन सबेरे-सबेरे देशबंधु उनकी गद्दी पर जा पहुंचे। उन्हें देखते ही सेठजी खड़े हो गए तथा हाथ जोड़कर बोले, मेरा धन्य भाग है कि आज आपने मेरी गद्दी को पवित्र किया। देशबंधु बोले, लक्ष्मी की आवश्यकता पड़ी, इसलिए आ गया। सेठ ने एक कोरा चेक हस्ताक्षर करके देशबंधु जी को थमा दिया। बोले, आप जो रकम चाहें, इसमें लिख दें। उन्होंने झिझकते हुए २५ हजार रुपये लिख दिए। सेठजी ने उन्हें खुशी-खुशी आदर के साथ विदा किया।

८२८) लाला लाजपतराय- अमेरिका प्रवास के दौरान लाला लाजपत राय ने इंडिया होम रूल लीग की स्थापना की। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य अमेरिका में भारतीय विचारधारा की प्रतिष्ठा को बढ़ाना था। लाला जी इस लीग के अध्यक्ष

बने, डा. हार्डिकर मंत्री। डा. हार्डिकर ने अमेरिका के संस्मरण लिखते हुए एक स्थान पर लिखा है- मैं तथा लाला जी एक ही मकान में रहते थे। लोकमान्य तिलक ने हिन्दुस्तान से श्रीमती एनी बेसन्ट के माध्यम से पांच हजार डालर लाला जी को भेजे। उस समय लालाजी ने कहा- बेटा हार्डिकर विदेशों में प्रचार कार्य की सच्ची कीमत समझनेवाले यह एक ही नेता है। लालाजी ने उन रूपयों में से एक पैसा भी अपने लिए नहीं खर्चा। सब रुपए उन्होंने प्रचार कार्य में खर्च किए। जबकि अमरीका के पांच वर्ष (१८१४-१८१८) लालाजी के लिए कांटों की शैय्या थे।

८२९) सिफारिश- एक बार एक अस्पृश्य विद्यार्थी के एक रिश्तेदार को यह पता चला कि डा. आंबेडकर मुंबई विश्वविद्यालय की परीक्षा के परीक्षक हैं। वह व्यक्ति आंबेडकर के पास गया और उस विद्यार्थी को पास करने के लिए अनुरोध करने लगा। उसे लगा कि अस्पृश्य विद्यार्थी के लिए डा. आंबेडकर अवश्य सुनेंगे। मगर डा. आंबेडकर ने दो टूक जवाब देते हुए कहा- माना कि यदि मैं चाहूं तो यह संभव है, परन्तु मुझे यह शोभा नहीं देता। साथ ही, इस तरह किसी के लिए सिफारिश करना मुझे घृणास्पद लगता है। मेरी तो यह धारणा है कि अस्पृश्य विद्यार्थी की ओर से ऐसा व्यवहार ही नहीं होना चाहिए, जिससे अपनी बुद्धिमानी और योग्यता में अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उसमें किसी प्रकार की कमी प्रकट हो। मैं तो यही चाहता हूं कि वह अन्य विद्यार्थियों की तुलना में एक आदर्श विद्यार्थी के रूप में ही अपना अस्तित्व स्थापित करे। यह जवाब सुनकर वह व्यक्ति चुपचाप लौट गया।

८३०) वीरता की मिसाल- बात उन दिनों की है जब झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की सेना समाप्त हो चुकी थी, अंग्रेजों के हमले से किले की दीवारें टूटने लगीं और लड़ाई के लिए गिने-चुने सैनिक ही शेष रह गए थे। तब मंत्रणा हुई और यह निश्चय किया गया कि रानी को अन्यत्र चले जाना चाहिए, अन्यथा प्राण भी न रहेंगे और अंग्रेजों को जीत का जश्न मनाने का मौका मिल जाएगा। पर सवाल यह था कि यदि इसकी जरा सी भी भनक अंग्रेज अधिकारियों को लग गई, तो रानी के पकड़े जाने का डर है। सभी लोग चिंतित थे कि तभी एक महिला सिपाही बोली कि वह इस काम को कर सकती है।

उस महिला सिपाही की योजना के अनुसार रानी को कुछ सैनिकों के साथ रात के अंधेरे में कालपी की ओर भेज दिया गया और उधर वह महिला रानी का भेष धारण कर अंग्रेज छावनी में जा पहुंची। उसने बाहर से ही ललकार लगाई- मैं हूं झांसी की रानी, किसी में दम है तो मुझे गिरफ्तारी करो। अंग्रेज अधिकार रानी को अपनी छावनी में देखकर स्तब्ध रह गए।

अंग्रेजों ने आपस में विचार-विमर्श किया। इसी बीच एक गद्दार ने बता दिया कि यह रानी नहीं है। उसकी बात सुनकर अंग्रेजों में अफरा-तफरी मच गई। स्थिति बिगड़ते देख उस महिला सिपाही ने म्यान से तलवार बाहर निकाली और उसने फिल ललकार लगाई- मैं ही झांसी की रानी हूं। दम है तो पकड़ो मुझे। तब तक किसी ने खबर दी कि रानी रात के अंधेरे में ही कहीं भाग निकली है। महिला को पकड़कर मार दिया गया। तब अंग्रेज सेनापति ने कहा, यदि भारत की एक प्रतिशत महिलाएं भी इस कदर रानी की रक्षा में आगे आएं तो हमें सात दिन के अंदर ही भारत छोड़ना पड़ जाएगा।

इधर यह सब कुछ होता रहा, उधर रानी सुरक्षित कालपी पहुंच गई। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जिस महिला सिपाही ने प्राण न्यौछावर किए, उसका नाम था- झलकारी बाई, जिसका नाम रानी लक्ष्मीबाई की तरह ही अमर हो गया।

८३१) साहस की प्रतिमूर्ति- महारानी लक्ष्मीबाई का घोड़ा एक नाले को देखकर अचानक अड़ गया। उन्हें पीछा कर रहे अंग्रेज सैनिकों ने घेर लिया। रानी ने घोड़ों की लगाम मुंह में थाम ली तथा दोनों हाथों से वीरतापूर्वक तलवार चलाती हुई शत्रुओं का संहार करने लगी। तब वह साक्षात चंडी लग रही थी। अकस्मात एक गोरे सिपाही ने रानी के सिर पर पीछे से वार किया। वार अचूक था रानी का सिर कट गया। घोड़े से गिरती रानी की अवश देह को उनके अंगरक्षक रघुनाथ ने थाम

लिया परन्तु गिरते-गिरते भी वे शत्रुओं की गर्दन काटना नहीं भूली। अब उनका अंतिम समय था। रघुनाथ बिलड़ते हुए बोला- महारानी जी। आपकी छाती से खून बह रहा है। आपका आधा सिर एक आंख सहित कट गया। अब क्या होगा ? रानी के होंठ हिले-साहस मत छोड़ो, रघुनाथ किसी-न-किसी को तो स्वराज्य के भवन की नींव पत्थर बनना ही था। मैं नींव का पत्थर बन रही हूं। यह तो अच्छा हुआ जो मेरी आंख कट गई, कम से कम मैं अपनी पराजय अपनी दो आंखों से तो नहीं देख पाऊंगी। साहस और वीरता की प्रतिमूर्ति उस रानी ने मरते-मरते भी सिद्ध कर दिया कि औरतें वास्तव में अबला नहीं, सबला भी होती है। ऐसा अनूठा उदाहरण इतिहास में अन्यत्र मिलना असंभव है।

८३२) आजादी की कीमत- किशोर भगतसिंह कक्षा में बैठे विचारों में तल्लीन थे। इसी बीच कक्षा में इंस्पेक्टर ने प्रवेश किया। सभी विद्यार्थी उनके सम्मान में खड़े हो गये लेकिन भगतसिंह उसी विचार मुद्रा में अपने स्थान पर बैठे रहे। उन्हें देखकर इंस्पेक्टर ने पूछा- बेटे। तुम किस विचार में खोये हुए थे ? आजादी के बारे में, भगतसिंह ने कहा। लेकिन बेटे, आजादी इतनी आसानी से नहीं मिल सकती- जितनी आसान तुम समझते हो, इंस्पेक्टर बोले। आसान होता नहीं है जनाब, बल्कि बनाया जाता है। मैं एक ना एक दिन देश को आजाद करवा कर ही दम लूंगा, भगतसिंह ने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया। शाबास बेटे। तुम धन्य हो। तुम्हें आजादी की कीमत मालूम है। यह कहकर इंस्पेक्टर आगे बढ़ गये।

८३३) सरकार भगतसिंह को एसेम्बली बम केस में आजीवन काले पानी का कारावास हो चुका था। इसके साथ ही लाहौर षड्यंत्र में उन्हें फंसाने की तैयारी हो रही थी। इसी बीच उन्हें मियां वाली जेल में भेज दिया गया और उनके साथ उनकी ही बैरक में एक सी.आई.डी. पुलिस का आदमी भी बंद कर दिया गया कि कदाचित कोई भेद की बात मालूम हो सके। किन्तु भगत सिंह से वह आदमी अपनी वास्तविकता नहीं छिपा सका, फलस्वरूप दोनों सौहार्द के साथ रहने लगे।

इस सी.आई.डी. पुलिस के आदमी को हुक्का गुड़गुड़ाने का व्यसन था और दिन का अधिकांश भाव वह हुक्का तैयार करने और गुड़गुड़ाने में व्यतीत कर देता था। इस पर सरदार भगत सिंह उसे कभी-कभी कह देते, भले आदमी। कुछ और काम भी किया कर।

सी.आई.डी. पुलिस का आदमी इस पर गंभीरता से उत्तर देता, हुक्का तैयार करना और गुड़गुड़ाना भी एक कला है जनाब। यह असेम्बली में बम फेंक देने की तरह सरल काम नहीं है कि कहीं से एक बम ले आए, उसे हाथ में लिया और दे मारा। हुक्का तैयार करने में तो मेहनत भी पड़ती है और अक्ल भी लगानी पड़ती है, समझे कुछ ?

८३४) हंसते-हंसते- सन १८३१ की ३ मार्च को भगत सिंह से परिवार के लोग मिले। यह उनकी अंतिम भेंट थी। इस भेंट में सर्वाधिक आतुर थे दादा सरकार अर्जुन सिंह, जिन्होंने इस कुल में क्रान्ति का बीजारोपण किया था और भगत सिंह के रूप में उसका फल सामने था।

वे भगत सिंह के पास आए और स्नेह से उनके सिर पर हाथ फेरा। वे चाहते थे कि बोलें पर उद्वेग की प्रबलता से होंठ कांपते रह गए और वे दूर जाकर खड़े हो गए और फफक-फफक कर रोते रहे।

मां व चाचियां तो मानो पाषाण-सी बनी हुई थीं। उधर भगत सिंह हमेशा की तरह शांत और प्रसन्न थे और वे परिजनों को अपना वजन और बढ़ जाने का समाचार सहर्ष सुना रहे थे।

सब सोचते थे अभी और मुलाकातें होंगी, लेकिन भगत सिंह को यकीन था कि यह आखिरी मुलाकात है। उन्होंने अपनी मां से कहा, बेबेजी, दादाजी अब बहुत बुजुर्ग हो गए हैं। आप बंगा जाकर इनके पास ही रहना।

सबसे उन्होंने अलग-अलग बात की। सब को धैर्य बंधाया, सांत्वना दी। अंत में मां को बुलाकर हंसते-हंसते मस्ती भरे

स्वर में कहा, बेबेजी आप लाश लेने मत आना। कुलवीर को भेज देना। कहीं आप रो पड़ीं तो लोग कहेंगे कि भगत सिंह की मां रो रही है।

इतना कह कर वे इतने जोर से हंसे कि जेल अधिकारी उन्हें फटी आंखों से देखते रह गए।

८३५) क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक थे। एक बार शाहजहांपुर में हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़क उठे। बिस्मिल और अशफाक वहां एक आर्यसमाज मंदिर में बैठे थे, तभी उपद्रवियों की एक टोली वहां विध्वंस के इरादे से आ धमकी। अशफाक ने पिस्तौल तानते हुए ललकारकर कहा, मेरे लिए हर इबादतगाह बराबर है- चाहे मस्जिद हो या मंदिर। यदि किसी ने भी आगे बढ़ने की कोशिश की, तो मैं उसे यमलोक पहुंचा दूंगा। अशफाक की गर्जना सुन दंगाई नौ दो ग्यारह हो गए।

८३६) मां की प्रेरणा- महान क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल को फांसी देने की खबर सुनकर लोग रो पड़े। लोगों को रोते देख बिस्मिल की मां ने क्रांतिवीरों से कहा, मैं अपने पुत्र के इस बलिदान पर दु:खी नहीं हूं। मुझे गर्व है कि मेरा बेटा भारतमाता के लिये अपने प्राणों की बलि दे रहा है। अपनी मां की कोख को लज्जित नहीं कर रहा। तुम भी सत्य मार्ग न त्यागना, वरन् इसके पीछे मर जाना। वीरमाता का अपने पुत्र की शहादत के पश्चात भी इतना धैर्य देखकर देशभक्तों में नयी जान और नये जोश का संचार हुआ और वे सत्य के मार्ग पर चलते हुए एक-एक करके शहीद हो गए।

८३७) बिस्मिल का नियम- रामप्रसाद बिस्मिल निडर इंसान थे। उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई, लेकिन वह कतई विचलित नहीं हुए। फांसी के दिन भी वह रोज की तरह सुबह उठकर वर्जिश कर रहे थे। कुछ ही घंटों बाद उन्हें फांसी होनी थी। लेकिन जेलर ने उन्हें अपनी कोठरी में दंड-बैठक लगाते देखा तो उसे बेहद आश्चर्य हुआ। उसने बिस्मिल से पूछा, रामप्रसाद, कुछ ही घंटों बाद तुम्हें फांसी लगने वाली है, फिर भी तुम कसरत क्यों कर रहे हो ? बिस्मिल ने कसरत करते हुए ही उसकी बात का जवाब दिया मौत अपने समय पर आएगी पर क्या उसके लिए मैं अपने नियम से मुंह मोड़ लूं। उन्होंने नित्य नियम के अनुसार ठीक समय पर स्नान-ध्यान आदि किया। मृत्यु को भी उन्होंने इस तरह ग्रहण किया मानो वह उनके जीवन की एक सामान्य घटना हो।

८३८) मातृ ऋण का महत्व- रामप्रसाद बिस्मिल देश के प्रमुख क्रान्तिकारी थे। एक बार किसी बात पर विवाद हो जाने से रामप्रसाद बिस्मिल की कुछ लोगों ने हत्या करने का प्रयास किया। लेकिन सौभाग्य से बच गए। रामप्रसाद बिस्मिल अपनी हत्या का प्रयास करनेवाले लोगों को भूले नहीं थे। इसका बदला न ले पाए यह बात उन्हें प्रतिपल चुभती रहती थी। वे बदला लेने की ठान चुके थे। एक-दो बार वे इसके लिए गए भी, किन्तु सफलता नहीं मिली। मन में हर समय मन्थन चलता रहता था। इसी चिन्ता में वे बीमार पड़ गए। उन्हें बुखार रहने लगा। कई महीनों तक इलाज किये जाने पर भी ठीक नहीं हुए। उनकी मां इस रोग का कारण समझ गईं। उन्होंने बिस्मिल से इस बारे में पूछा। बिस्मिल ने सच-सच बता दिया। मां समझ चुकी थी कि प्रतिशोध की प्रबल भावना ने रोग का रूप ले लिया है। मां ने आज्ञा दी, प्रतिज्ञा करो कि तुम उन लोगों से बदला नहीं लोगे, जिन्होंने तुम्हारी हत्या का प्रयास किया था। इस पर रामप्रसाद ने आनाकानी की, तो मां पुन: बोली कि इसे तुम मातृ ऋण समझ लो, इसे चुकाने के लिए तुम्हें प्रतिज्ञा करनी ही होगी। बोलो क्या इस ऋण को नहीं चुकाओगे ? इस पर रामप्रसाद बिस्मिल ने कहा, मैं बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं। मां भी अपनी बात पर अड़ गई। रामप्रसाद सच्चे आर्य समाजी थे। मातृऋण से उऋण होना उनका धर्म था। मां स्वयं अपना ऋण चुकाने के लिए उनसे कुछ मांग रही थी। अत: उन्हें बदले का प्रण भंग करना पड़ा और मां के सामने प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वे उन लोगों

से बदला नहीं लेंगे। उसी दिन से उनका ज्वर कम कम होने लगा तथा कुछ ही दिन में वे पूर्ण स्वस्थ हो गए।

८३९) नीति विरुद्ध- पं. रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में चन्द्रशेखर आजाद आदि क्रान्तिकारी मातृभूमि की सेवार्थ धन एकत्र करने के उद्देश्य से प्रतापगढ़ के गांव में एक सूदखोर महाजन के यहां डाका डालने गए। उसके परिवार की महिलाएं बहुत हिम्मतवाली थी, जिनमें से एक ने चन्द्रशेखर आजाद की बाह पकड ली। महिला और बच्चे पर हाथ न उठाने के संकल्पवश वह हाथ छुड़ा भी नहीं पा रहे थे। तब तक उसने पिस्तौल छीन ली और आजाद उसे लौटा देने की विनती करने लगे। अस्त्र-शस्त्रों से लैस ग्रामीण डकैतों के विरुद्ध जुटने लगे। चन्द्रशेखर आजाद को छोड़ अन्य क्रान्तिकारी भाग खड़े हुए। उन पर रोडे-पत्थर बरसाए जाने लगे। ग्रामीणों को डराने के लिए पं. बिस्मिल ने दनादन दो फायर कर दिए। परिणामत: एक ग्रामीण घायल हो गया, इधर आजाद को न देखकर क्रान्तिकारी फिर घर में घुसने की सोच ही रहे थे, उन्होंने आजाद को तेजी से आते देखा। साथियों ने पीछे छूट जाने का कारण जानकर एक ने कहा, क्या उससे पिस्तौल छीन नही सकते थे ? उसे गोली मार देते। चन्द्रशेखर आजाद ने मन मसोसते हुए कहा, स्त्री पर हाथ उठाना नीति विरुद्ध होता है उनका उत्तर सुनकर साथी झेंप गया।

८४०) विश्वास की रक्षा- बात तब की है जब अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल पकड़ लिए गए। उन्हें कोतवाली लाया गया। कोतवाली में निगरानी रखनेवाला सिपाही सो रहा था। बिस्मिल के पास भागने का पूरा मौका था। उन्होंने देखा कि वहां केवल बुजुर्ग मुंशीजी जागे हुए हैं। बूढ़े मुंशी ने भांप लिया कि बिस्मिल भागने की सोच रहे हैं। वह तुरंत बिस्मिल के पैरों पर गिर गए और बोले, ऐसा न करना। नहीं तो मैं बंदी बना लिया जाऊंगा और मेरे बच्चे भूखों मर जाएंगे। बिस्मिल को उन पर दया आ गई और उन्होंने भागने का विचार तत्काल त्याग दिया। संयोगवश दो दिनों के बाद ही ऐसा मौका उन्हें फिर मिला। उन्हें जब शौचालय ले जाया गया तो उनके साथ दो सिपाही थे। एक ने दूसरे से कहा कि इनके हाथों में बंधी रस्सियां हटा दो। मुझे विश्वास है कि ये भागेंगे नहीं। इसके बाद जब बिस्मिल शौचालय गए तो पाया कि शौचालय ले जाया गया तो उनके साथ दो सिपाही थे। एक ने दूसरे से कहा कि इनके हाथों में बंधी रस्सियां हटा दो। मुझे विश्वास है कि ये भागेंगे नहीं। इसके बाद जब बिस्मिल शौचालय गए तो पाया कि शौचालय की दीवार ज्यादा ऊंची नहीं है। बस हाथ बढ़ाते ही वह दीवार के ऊपर हो जाते और क्षणभर में बाहर निकल जाते। उन्होंने देखा कि बाहर सिपाही कुश्ती देखने में मगन हैं। वह भागने ही वाले थे कि उन्हें विचार आया कि जिस सिपाही ने विश्वास कर इतनी स्वतंत्रता दी उससे विश्वासघात कैसे करूं। उन्होंने भागने का विचार तुरंत त्याग दिया। उन्होंने अपनी आत्मकथा में जेलर पंडित चंपालाल की भी काफी बड़ाई की है। उन्हें भागने के कई मौके हासिल हुए लेकिन उन्होंने सोचा कि इससे पंडित चंपालाल के ऊपर आफत आ जाएगी। बिस्मिल के लिए विश्वास की रक्षा सबसे बड़ी चीज थी।

८४१) मातृभूमि की सेवा- चंद्रशेखर आजाद के माता-पिता की आर्थिक स्थिति दयनीय थी, इसलिए यदि कोई उनकी मदद की बात पुत्र चन्द्रशेखर आजाद से करता, तो वे झुंझला जाते थे। एक बार इसी प्रसंग में उन्होंने झल्लाते हुए कहा- जान पर खेल कर क्या मैं माता-पिता के लिए पैसे जमा करता हूं ? अगर उन्हें दे भी दूं तो कोई मेरा क्या बिगाडेगा? किन्तु मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता क्योंकि पैसे मैं भारत माता के लिए एकत्र करता हूं। अगर मेरे माता-पिता कष्ट में रहेंगे, तो उनकी सेवा के लिए पिस्तौल की दो गोलियां ही काफी रहेंगी। उनके विषय में कुछ कह अथवा लिखकर कोई लाभ उठाने की कोशिश किसी को हरगिज नहीं करनी चाहिए।

८४२) ईमानदारी - ऊंचे चरित्र के आदमी को गलत राह कभी नहीं सुहाती। चंद्रशेखर आजाद की ऐसी ही एक कहानी प्रसिद्ध है। बुंदेलखंड में कार चलाने का प्रशिक्षण लेते समय उनकी आर्थिक हालत इतनी खस्ता थी कि उन्हें कभी-कभी बिना खाना खाए ही सोना पड़ता था। एक दिन उनके पास बस एक इकन्नी थी। उन्हें बहुत भूख लगी थी। उन्होंने सोचा कि इस इकन्नी के चने खरीद कर खाए जाएं। उन्होंने इकन्नी के चने खरीदे और घर आकर खाने लगे, तभी उन्हें चने की उस पुड़िया में एक चवन्नी दिखाई दी। उनके एक मन ने कहा रख लो, कई दिनों के खाने का इंतजाम हो गया समझो। लेकिन उनके दूसरे मन ने कहा यह ठीक नहीं होगा। अगर मैं ऐसा करूं तो वह भी एक तरह की चोरी हुई। उन्होंने चने खाकर पानी पिया और चवन्नी लेकर भड़भूंजे की दुकान पर पहुंच बोले- क्यों भैया, आपके यहां इकन्नी के चने खरीदने पर चवन्नी भी दी जाती है क्या। पैसे ऐसे लुटाते रहोगे तो फिर कमाओगे कैसे ? कहकर उन्होंने चवन्नी भड़भूजे को लौटा दी। उस भड़भूजे से आजाद अक्सर चने खरीदते थे, सो वह जानता था कि उनकी माली हालत क्या है। फाकों में भी इतनी ईमानदारी से पेश आए आजाद के सम्मुख वह नतमस्तक हो गया।

८४३) विश्वास की परीक्षा- अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद व उनके अन्य क्रांतिकारी साथियों के बीच आगरा में गुप्त बैठक हो रही थी। आजाद अपने साथियों को बता रहे थे कि गिरफ्तार किये गये क्रांतिकारियों से अंग्रेज बहुत ही अमानवीय व पीड़ादायक व्यवहार करते हैं।

आजाद की बात सुनकर राजगुरु को लगा कि उनका आत्मविश्वास डिगने लगा है और वे अपने साथियों के लिय चाय बनाने के लिए दूसरे कमरे में चले गये जहाँ पर अंगीठी जल रही थी। चाय बनाते समय राजगुरु ने धधकती आग में सँड़ासी डाल दी। जब सँड़ासी लाल हो गयी तो फौरन उसे अपने सीने से लगा डाला। खाल जलने लगी पर उन्होंने उफ तक नहीं की और अपना सीना सात बार छेद डाला। जब काफी देर तक राजगुरु चाय लेकर नहीं आये तो चंद्रशेखर और उनके साथी, जहाँ राजगुरु बैठे थे, वहीं आ गये। कमरे का दृश्य देखकर आजाद स्तब्ध खड़े रह गये। हाय रे। ये तूने क्या कर डाला। यह कहते हुए आजाद व उनके साथी रोने लगे। आजाद ने राजगुरु को अपनी छाती से लगाया। मुझे तुम पर गर्व है राजगुरु, आजाद ने कहा। ऐसे थे अमर शहीद क्रांतिकारी राजगुरु।

८४४) भारतीय संस्कृति-ब्रिटिश न्यायालय में क्रान्तिकारी उधम सिंह अभियुक्त बनाकर कटघरे में पेश किए गए। उन पर गोली मारकर जनरल डायर की हत्या करने का आरोप था।

ब्रिटिश न्यायाधीश उधम सिंह से प्रश्न कर ही रहे थे कि एक अंग्रेज युवती भीड़ को चीरती हुई न्यायालय में उपस्थित हुई। न्यायालय से उसने क्रांतिकारी उधम सिंह से कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी। अनुमति मिलने पर उस युवती ने उधम सिंह से पूछा- तुम्हारी रिवाल्वर में तीन गोलियां शेष थीं। तुमने मुझ पर गोली क्यों नहीं चला दी ? ऐसा करके तुम आसानी से भाग सकते थे। तुम्हारे पास चाकू भी था, तुम उससे भी वार कर सकते थे ? तुमने ऐसा क्यों नहीं किया।

उधम सिंह उस अंग्रेज युवती को पहचान गए। उसी के कारण तो वे गिरफ्तार हुए थे। उन्होंने विनम्रता के साथ उत्तर दिया- बहन हम भारतीय हैं। नारी पर हाथ उठाना हमारी संस्कृति के विरुद्ध है। इसलिए मैंने आप पर कोई वार नहीं किया। उधर सिंह का उत्तर सुनकर अंग्रेज युवती की आंखें छलछला आई। भावावेश के कारण उसका गला रूंध गया। वह कुछ नहीं बोल पाई।

८४५) आजादी के दीवाने- खुदीराम बोस को फांसी होने वाली थी। वह गीत गा रहा था। उसकी अलमस्ती देखकर एक अंग्रेज अफसर ने उसे खाने के लिए आम दे दिया। खुदीराम ने नि:संकोच आम ले लिया। अफसर आगे बढ़ गया।

कुछ देर बाद वापस आया तो उसने देखा कि वही आम खिड़की की चौखट पर रखा है। खुदीराम। तुमने आम नहीं खाया? यह कहते हुए उसने आम को अपने हाथ में उठा लिया। उठाया तो आम उसके हाथ में चिपक गया। तभी खुदीराम ठहाका मारकर हंस पड़ा। वस्तुत: खुदीराम ने आम चूसकर उसे फिर फुलाकर खिड़की की चौखट पर रख दिया था। चंद घंटों बाद जिसे फांसी होने वाली थी, उस खुदीराम की अलमस्ती से विस्मित हो उस अंग्रेज अफसर ने उससे पूछ ही लिया- खुदीराम। तुम्हें मौत से डर नहीं लगता ? खुदीराम ने उसी मस्ती से हंसते हुए उत्तर दिया- आजादी के दीवाने मौत से नहीं डरते, मौत खुद ही ऐसे लोगों से डरती है।

८४६) क्रांतीकारी खुदीराम बोस- वह लड़का अंग्रेजी शासन के खिलाफ बगावत करने के जुर्म में पकड़ लिया गया और उसे मौत की सजा सुनाई गई। लड़के को मुजफ्फरपुर की जेल में भेज दिया। लड़का जेल के डिप्टी जेलर से काफी हिल-मिल गया। डिप्टी जेलर को भी लड़के के भोलेपन के कारण उससे हमदर्दी हो गई। लड़का आदर से जेलर को बाबा कहता था। फांसी का दिन आया। ११ अगस्त की सुबह ४ बजे लड़के को फांसी लगनी थी। १० अगस्त की रात ८ बजे जेलर साहब लड़के के पास आये और कुछ चूसने वाले आम देते हुए बोले, बेटा, ये आम लाया हूं, खा लेना।

लड़के ने आम ले लिये। ११ अगस्त की सुबह जेलर साहब, वार्डर के साथ लड़के को तैयार रहने के लिए कहने आये। उन्होंने देखा लड़का नहा-धोकर तैयार बैठा है।

बेटा तुमने आम नहीं खाये ? आमों को वैसे ही पड़े देखकर जेलर ने कहा। लड़का रूआंसा होकर बोला- मौत सामने नाच रही है। डर के कारण आम खाने की किसे सूझती है ?

जेलर ने वार्डर से कहा, आम उठा लो, किसी और को दे देंगे। वार्डर ने ज्यों ही आमों को उठाने के लिए पकड़ा, वे पिचक गये। लड़का यह देखकर जोर से हंसा। दरअसल उसने आम चूसकर उन्हें मुंह से फुलाकर फिर वैसे ही रख दिया था। मौत के वक्त भी लड़के की जिंदादिली देखकर, डिप्टी जेलर रो पड़ा।

यह लड़का था खुदीराम बोस, जो हाथ में गीता लिये, वंदे मातरम् गाता हुआ फांसी का झूला झूल गया।

८४७) स्वाधीनता की बलिवेदी पर- करतारसिंह सराभा ने अपनी जवानी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए समर्पित करने का संकल्प लेकन विदेश प्रस्थान किया। सन् १९१३ में केवल १९ वर्ष की आयु में अमेरिका से गदर पत्रिका प्रकाशित हुई कि तहलका मच गया था। अमेरिका में क्रांति के इन दीवानों के पीछे पुलिस हाथ धोकर पड़ी तो करतारसिंह कोलंबो जा पहुंचे।

वहां से वेश बदलकर भारत लौट आए। वे सैनिक छावनियों में पहुंचकर हिंदुस्तानी सैनिकों को विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा देने में लगे रहे। एक दिन सरगोधा में पकड़ लिए गए।

अंग्रेज जज ने इस बीस वर्षीय क्रांतिकारी विद्रोही युवक को राजद्रोह के आरोप में फाँसी की सजा सुना दी। करतार के दादा उनसे फाँसी की कोठरी में मिलने आए और समझाया यदि वाइसराय के नाम माफीनामा लिख दोगे तो शायद फाँसी से बच जाओगे। करतार यह सुनकर मुस्कुराया। उसने दादा से पूछा, दादाजी हमारे गांव का अमुक व्यक्ति कहाँ है ?

दादा ने उत्तर दिया, बेटा वह प्लेग से मर गया। अमुक रिश्तेदार कहाँ है ? जवाब मिला, वह हैजे से मन गया। करतार बोला, दादाजी तो क्या आप चाहते हैं कि आपका पौत्र करतार अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए न मर कर किसी बीमारी से, बिस्तर पर पड़-पड़ा मर जाए तो अच्छा रहेगा।

अब दादाजी अपने पौत्र की राष्ट्रभक्ति की भावना से भरे शब्द सुनकर चुप थे और सन १९१६ के नवंबर माह में इस बीस

वर्षीय राष्ट्रभक्त सराभा ने मातृभूमि की आजादी के यज्ञ में फाँसी पर चढ़कर अपने जीवन की आहुति दे डाली।

८४८) अंतिम इच्छा- स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए १९४२ में अंग्रेजों के खिलाफ भारत छोड़ो आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था। हर भारतवासी के दिल में जोश उमड़ रहा था। २० अक्टूबर, १९४२ को सिंध सक्खर से बाहर अंग्रेजों के अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर एक रेलगाड़ी आनेवाली थी। एक क्रांतिकारी युवक ने अपने साथ और दो युवकों को लेकर, अंग्रेजों के इस प्रयास को मटियामेट करने के लिए रेल की पटरियों की फिश-प्लेटें निकाल लीं। ऐन मौके पर वहां धड़धड़ा कर पुलिस आ पहुंची। युवक रंगे हाथों पकड़ लिया गया। उसके दोनों साथी जान बचाकर भाग खड़े हुए। अंग्रेज सरकार ऐसे क्रांतिकारियों को कड़ी सजा देती थी। इस युवक को फांसी की सजा सुनाई गई। फांसी की वह मनहूस घड़ी भी आ पहुंची। युवक ने पौ फटने से पहले ही बिस्तर छोड़ा उसने श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ किया फिर जल्दी से रस्सी ली और अपनी गर्दन में डालकर फांसी के तख्ते पर चढ़ गया। मजिस्ट्रेट अंग्रेज होते हुए भी सहृदय व्यक्ति था। उसने सहानुभूतिपूर्वक प्रश्न किया- तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा है युवक ? फांसी के फन्दे को प्यार से सहलाते हुए युवक मुस्कराकर बोला- सिर्फ एक इच्छा शेष रह गई है- श्रीमान। क्या ? मजिस्ट्रेट ने पूछा। सदा-सदा के लिए इस संसार को छोड़ने से पहले एक बार अपनी जन्म भूमि की जय जयकार करना चाहता हूं। देश भक्त युवक ने रुंधे स्वर में कहा। कैदी की अंतिम इच्छा पूर्ण की गई उसने भारत माता की जय... वन्दे मातरम... इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे लगाए। अगले ही क्षण उस देश-प्रेमी का पवित्र शरीर थोड़ी देर छटपटाकर सदा-सदा के लिए शांत हो गया। भारत माता के उस महान सपूत का नाम हेमू कालाणी था, जिसे निर्मम अंग्रेजी सरकार ने २१ जनवरी, १९४३ को मात्र १९ वर्ष की अल्पायु में फांसी के तख्ते पर लटका दिया था।

८४९) मनुष्यता का पाठ- यह घटना उस समय की है, जब क्रांतिकारी रोशन सिंह को काकोरी कांड में मृत्युदंड दिया गया। उनके शहीद होते ही उनके परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। घर में एक जवान बेटी थी और उसके लिए वर की तलाश चल रही थी। बड़ी मुश्किल से एक जगह बात पक्की हो गई। कन्या का रिश्ता तय होते देखकर वहां के दरोगा ने लड़के वालों को धमकाया और कहा कि क्रांतिकारी की कन्या से विवाह करना राजद्रोह समझा जाएगा और इसके लिए सजा भी हो सकती है। किंतु वर पक्ष वाले दरोगा की धमकियों से नहीं डरे और बोले, यह तो हमारा सौभाग्य होगा कि ऐसी कन्या के कदम हमारे घर पड़ेंगे, जिसके पिता ने अपने शीश भारत माता के चरणों पर रख दिया। वर पक्ष का दृढ़ इरादा देखकर दरोगा वहां से चला आया पर किसी भी तरह इस रिश्ते को तोड़ने का प्रयास करने लगा। जब एक पत्रिका के संपादक को यह पता लगा तो वह आगबबूला हो गए और तुरंत उस दरोगा के पास पहुंचकर बोले, मनुष्य होकर जो मनुष्यता ही न जाने वह भला क्या मनुष्य? तुम जैसे लोग बुरे कर्म कर अपना जीवन सफल मानते हैं किंतु यह नहीं सोचते कि तुमने इन कर्मों से अपने आगे के लिए इतने कांटे बो दिए हैं जिन्हें अभी से उखाड़ना भी शुरू करो तो अपने अंत तक न उखाड़ पाओ। अगर किसी को कुछ दे नहीं सकते तो उससे छीनने का प्रयास भी न करो। संपादक की खरी-खोटी बातों ने दरोगा की आंखें खोल दीं और उसने न सिर्फ कन्या की मां से माफी मांगी, अपितु विवाह का सारा खर्च भी खुद वहन करने को तैयार हो गया। विवाह की तैयारियां होने लगीं। कन्यादान के समय जब वधू के पिता का सवाल उठा तो वह संपादक उठे और बोले, रोशन सिंह के न होने पर मैं कन्या का पिता हूं। कन्यादान मैं करूँगा। वह संपादक थे- महान स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी।

८५०) सात हिन्दुस्तानी- बात ११ अगस्त १९४२ की है। अंग्रेजी फौज की घेरेबंदी तोड़कर अपने हाथों में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा लिए सचिवालय भवन पर उसे फहराने के लिए उन्मत थे वे सात नौजवान हिन्दुस्तानी। किंतु क्रूर विदेशी सरकार ने उनके सीने पर गोलियों की बौछार कर दी। तड़-तड़, धांय-धांय और वे सातों वीर एक-एक करके नीचे आते

गए। मरते मरते वे यही गगनभेदी नारे लगाते रहे अंग्रेजों भारत छोड़ दो, हिन्दुस्तान हमारा है। और राष्ट्रीय ध्वज को सलामी देते हुए छह सपूत तो घटनास्थल पर ही वीरगति को प्राप्त हो गए। सातवें को जब अस्पताल ले जाया गया तो ऑपरेशन कक्ष में मेज पर पड़े हुए उसने डॉक्टर से पूछा- डॉक्टर साहब अंग्रेजों की कोई गोली मेरी पीठ पर तो नहीं लगी है। डॉक्टर के नहीं कहने पर वह सातवां सपूत गौरान्वित हो उठा और उसके चेहरे पर एक अद्‌भुत चमक आ गई जो कुछ पल बाद हमेशा के लिए चली गई। वह सातवां सपूत था- सारण जिलान्तर्गत नरेंद्रपुर का वीर हिंदुस्तानी उमाकांत प्रसाद सिंह।

८५१) महान कौन ? - एक बार की बात है जब कटक के एक सम्पन्न वकील की पत्नी ने यह देखा कि उनका बेटा सुभाष एक धोती लपेटे जमीन पर सो रहा है। सुभाष चंद्र बोस जब बच्चे ही थे कि एक दिन माता प्रभावती की गोद से उतरकर जमीन पर सो गए। माँ के हृदबय में चिंता उत्पन्न हुई कि लड़के को कुछ हो न जाए। प्यार से डांटते हुए कहा- क्या पागल हो गए हो सुभाष। जमीन पर क्यों सो रहे हों ? मां के पूछने पर सुभाष ने बताया- आज अध्यापक कह रहे थे कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनि थे। जमीन पर सोते और कठोर जीवन जीते थे। मैं भी ऋषि बनूंगा, सो कठोर जीवन का अभ्यास कर रहा हूं।

माँ। हमारे पूर्वज ऋषि मुनि भी तो जमीन पर ही सोया करते थे। क्या उन्हें भी पागल समझती हो ? वे कठोर जीवन जीते थे। बालक ने सरलता से जवाब दिया। आज गुरुजी कह रहे थे कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि थे, वे भूमि पर ही सोते थे।

नहीं बेटा। वे पागल थोड़े ही थे- वे तो महान थे। परन्तु तेरी उम्र भी अभी क्या है ? तू जमीन का कड़ापन नहीं सह सकेगा बेटे। मेरी बात मान, आ और पलंग पर सो जा, मां ने कहा और बिस्तर पर सोने का आग्रह करने लगी।

मां बेटे की बातचीत सुनकर पास ही सो रहे पिता जानकी नाथ बोस भी जाग गये। वे पूछने लगे- क्या बात है ?

मां ने कहा- पता नहीं कब से सुभाष पलंग पर से उठकर जमीन पर सो रहा है। मैं उसे पलंग पर सोने के लिए कह रही हूं?

पिता ने पूछा जमीन पर सोना किसने सिखाया बेटा ?

पिताजी। गुरुजी कह रहे थे कि हमारे ऋषि मुनि महापुरुष थे और वे जमीन पर ही सोया करते थे। मैं भी महान बनूंगा इसलिए जमीन पर सो रहा हूं।

जानकीनाथ बोले- ठीक है जमीन पर फिर सोया करना पहले मां का कहना मान ले। बालक सुभाष उठकर मां के आंचल में जाकर सो गया। जानकी नाथ बोस नींद की खुमारी में बालक की कोमल भावनाओं को नहीं पकड़ सके। जब सुबह हुई तो उन्होंने अपने बेटे को समझाया जमीन पर सोने से कोई महान ऋषि नहीं बन जाता, बेटा महान बनने का एक ही मार्ग है कठोर तप साधना और दुखी दरिद्रों की सेवा करना। ऋषि बनने के लिए तुम्हें ज्ञान का अर्जन करना होगा और बड़े होकर सेवा का व्रत-संकल्प भी लेना होगा। पिता के इन वचनों को सुभाष ने अपने जीवन में उतार लिया। एक दिन वह एक सामान्य व्यक्ति से लाखों भारतीय के प्रिय नेताजी बन गए।

बड़े होकर जब भारत की सर्वोच्च प्रशासनिक सेवा की परीक्षा उत्तीर्ण कर उनके ब्रिटिश सरकार का अधिकारी बनने की बात आई तो उन्होंने कहा- मैंने बचपन में ही जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था, मैं अफसर नहीं, मातृभूमि का सेवक बनूंगा। उन्होंने पद ठुकरा दिया और देश की सेवा में लग गए। बचपन का निश्चय उन्होंने मृत्यु पर्यन्त निबाहा।

८५२) मेधावी सुभाष- नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बचपन से ही अत्यन्त मेधावी छात्र थे। किसी भी बात का तुरन्त जवाब देने से वे कभी नहीं चूकते थे। जब वे आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठे तो साक्षात्कार के समय एक अंग्रेज अधिकारी ने अपने हाथ से अंगूठी उतारकर सुभाष बाबू से पूछा- क्या तुम इस अंगूठी में से निकल सकते हो ? सुभाष ने तुरन्त उत्तर दिया- जी हां, निकल सकता हूँ। अंग्रेज अधिकारी ने विस्मय से पूछा- कैसे ? सुभाष बाबू ने तुरन्त कागज की एक परची

पर अपना नाम लिखा और उस कागज को मोड़कर अंगूठी में से सरलता से आरपार निकाल दिया। अधिकारी उनकी इस तत्काल बुद्धि पर दंग रह गया।

८५३) पूरा जीवन- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस भाषण दे रहे थे। उनके गले में ढेर सारे हार थे। आजाद हिन्द फौज के लिए उन हारों की नीलामी की गई। एक हार की नीलामी एक लाख रुपये से बढ़कर पांच लाख रुपये तक पहुंच गई। अचानक एक उत्साही नवयुवक उठा और उसने अपनी सारी जमीन जायदाद बोली में लगा दी।

नेताजी ने उससे कहा- मेरे भाई, तुम ऐसा न करो। अपनी सारी जिन्दगी कैसे गुजारोगे ?

युवक ने जोश में आकर कहा साहब, अगर आप अपना पूरा जीवन राष्ट्र को समर्पित कर सकते हैं तो क्या मुझे जमीन जायदाद तक देश को समर्पित्त करने का अधिकार नहीं है ? देश की आजादी मेरी जमीन जायदाद से कहीं अधिक कीमती है।

८५४) बनो सब फकीर- नेताजी आजाद हिन्द फौज के लिए धन संग्रह अभियान चला रहे थे। उस समय का नारा था करो सब न्योछावर- बनो सब फकीर।

ऐसे जोशपूर्ण आवाहन से लोग देश के लिए फकीर बनने को मचल पड़े। रंगून में जुलाई १८४३ में नेताजी को प्रवासी भारतीयों ने सोने से तोल दिया।

हबीब नाम के व्यापारी ने एक करोड़ रुपये की मदद की। बर्मा के जियावाडी गांव के मालिक सेठ परमानंद ने अपनी रियासत के साठ गांव और दो समूची शुगर फैक्ट्रियां नेताजी के आवाहन पर दे दीं। सेठ परमानंद के कोई पुत्र नहीं था अत: अपनी पत्नी व एकमात्र पुत्री के साथ स्वयं आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए।

८५५) चार दिन बाद- तीन चार दिन से बालक सुभाष घर नहीं लौटा था। माता का रोते-रोते बुरा हाल हो गया था। सुभाष को ढूंढ़ने के लिए चारों ओर व्यक्तियों को दौड़ाया गया, पर उसका कोई पता नहीं चला।

एक दिन बालक सुभाष ने चुपचाप पीछे से आकर अपनी माता की आंखें मूंद लीं। माता ने अपने बेटे का स्पर्श पहचान लिया और पूछा- इतने दिन कहां रहा बेटा ? सुभाष ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया- पास के गांव में हैजा फैला था, इतने दिन बीमारों की सेवा में ही लगा रहा।

८५६) सेवा की भावना बनाती है महान- उड़ीसा के कटक शहर के उड़िया बाजार में एक बार प्लेग फैला। मच्छर और गंदगी के कारण लोग बहुत दुखी थे। केवल बापूपाड़ा मोहल्ला इससे बचा था क्योंकि वहां बहुत सारे वकील और बुद्धिजीवी रहते थे। वे अपने घरों और आसपास गंदगी नहीं रहने देते थे। वहां के कुछ लड़कों ने सफाई अभियान चलाने के लिए एक दल बनाया, जिसमें दस साल के बच्चों से लेकर अठारह साल तक के नौजवान शामिल थे। उस दल का मुखिया था बारह साल का बालक। उड़िया बाजार में हैदर अली नाम का एक कुख्यात व्यक्ति रहता था। बापूपाड़ा के लड़के जब उड़िया बाजार में साफ-सफाई करने आए तो हैदर अली ने उन्हें भगा दिया। असल में बापूपाड़ा के प्रति उसके मन में कटुता भरी हुई थी क्योंकि वहां के वकीलों ने उसे कई बार जेल भिजवाया था। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद हैदर अली की पत्नी और उसके बेटे को भी प्लेग हो गया। यह सुनते ही अभियान दल का मुखिया उनकी तीमारदारी में लग गया। हैदर अली ने उस लड़के से पूछा, तुमको डर नहीं लगता? लड़के ने जवाब दिया, मैं क्यों डरूं? हैदर अली ने कहा, मैं तो बापूवाड़ावालों को गालियां देता हूं। सेवामंडल के लड़कों को तो मैंने अपना शत्रु समझकर भगा दिया और तुम मेरी पत्नी और बच्चे की सेवा कर रहे हो। हम तुम्हारी इस हिम्मत और उदारता से बड़े प्रभावित हैं। बेटा, मुझे माफ कर देना। मैंने तुम्हारी सेवा की कद्र नहीं की। बालक ने कहा, आप तो हमारे पिता तुल्य हैं। माफी देने का अधिकार हमें नहीं है, हमें तो आपसे

आशीर्वाद लेना चाहिए। आपकी पत्नी मेरी मां जैसी हैं और बेटा मेरे भाई जैसा है। हैदर अली उस बच्चे की निष्काम सेवा और मधुर वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि फूट-फूटकर रोने लगा। लड़के ने कहा, चाचा, आप फिक्र न करें। हमें सेवा का मौका देते रहें। वह एक असाधारण बालक था जो आगे चलकर नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नाम से विख्यात हुआ।

८५७) एकता का पाठ - यह घटना उस समय की है, जब नेताजी सुभाषचंद्र बोस आजाद हिंद फौज के लिए नौजवानों की भर्ती कर रहे थे। आजाद हिंद फौज में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सभी धर्मों के सैनिक थे। विभिन्न धर्मों के सैनिक अपने लिए अलग-अलग भोजन बनाते और खाते थे। नेताजी यह सब देख रहे थे, लेकिन उन्होंने अभी तक किसी से कुछ नहीं कहा था। एक दिन उन्होंने अपनी सारी फौज को इकट्ठा करके कहा, आज शाम को आप सभी लोग हॉल में आ जाइएगा। आज मैं आप सबके साथ खाऊंगा। यह सुनकर सभी सैनिक खुश हो गए। सैनिकों ने उस दिन बढ़िया भोजन तैयार किया और अपना-अपना खाना लेकर हॉल में पहुंच गए। कुछ ही देर में नेताजी भी वहां आ गए। नेताजी को देखकर प्रत्येक धर्म के सैनिक उनसे अपना-अपना भोजन खाने का निवेदन करने लगे। नेताजी मुस्कराते हुए बोले, आप सभी अपना-अपना भोजन मेरे पास ले आएं। सभी अपना भोजन नेताजी के पास परोस कर ले गए। नेताजी ने उन व्यंजनों को इकट्ठा किया और उन्हें एक बड़ बर्तन में मिलाकर बोले, अब आप सभी लोग अपना-अपना भोजन इससे निकाल लें। यह सुनकर सभी सैनिक एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे और बोले, जब आपने हम सभी के खाने को मिलाकर एक कर दिया है तो अब उसे अलग-अलग करने का क्या मतलब? सैनिकों की बात सुनकर नेताजी ने कहा, दोस्तों, मैं भी तो आप सभी से यही कहना चाहता हूँ। जब हमारा देश विभिन्न धर्म-संप्रदायों और जातियों को मिलाकर बना है तो फिर धर्म व जाति के आधार पर भेदभाव करने का क्या अर्थ रह जाता है? हम सब एक हैं। आजाद हिंद फौज का मकसद देश को गुलामी से मुक्त करना है। लेकिन ऐसा तभी संभव है जब हम पहले जाति और संप्रदाय के बंधन से मुक्त हों। यह सुनकर सभी सैनिक शर्मिंदा हुए और उन्होंने नेताजी से माफी मांगते हुए हमेशा साथ भोजन करने का वादा किया।

८५८) बलि का विरोध- जगद्गुरू आदि शंकराचार्य जी हिमालय के तीर्थों की यात्रा कर रहे थे। देवप्रयाग, विष्णु प्रयाग आदि के दर्शन के बाद वह श्रीनगर पहुंचे।

महिषमर्दिनी तथा चामुंडा के दर्शन के दौरान उन्हें पंडितों ने बताया कि कुछ पाखंडी तांत्रिकों ने मनमाने ढंग से नरबलि तथा पशुबलि की प्रथा के समर्थन में तर्क देकर भ्रम फैला रखा है। आदि शंकराचार्य ने यह सुना, तो उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्हें लगा कि बलि प्रथा के खिलाफ कुछ करना चाहिए। उन्होंने बलि समर्थक तांत्रिकों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। कुछ पर्वतीय तांत्रिक उनके समक्ष शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हुए।

आदि शंकराचार्य ने उन्हें भागवत पुराण तथा अन्य धर्मशास्त्रों के कई उदाहरण दिए। तांत्रिकों को समझाया और यह सवाल उठाया, देवी तो सकल सृष्टि व प्राणियों की जननी है। वह अपनी ही संतान का रुधिर पान कर संतुष्ट कैसे हो सकती है ?

आदि शंकराचार्य के तर्कों के समक्ष कथित तांत्रिक निरूत्तर हो गए। जिस शिलाखंड पर बलि दी जाती थी, उसे तत्काल उखाड़कर नदी में फेंक दिया गया।

८५९) ईश्वर की पहचान- एक बार आदि शंकराचार्य से किसी जिज्ञासु ने पूछा, महाराज, आप जिस ईश्वर की बात करते हैं, क्या आपने कभी उसे देखा है ? शंकराचार्य ने सहज भाव से कहा, हां, मैं उस परमेश्वर को सदैव देखता हूं। जिज्ञासु बोला, फिर वह मुझे क्यों नहीं दिखाई देता ? शंकराचार्य बोले, क्योंकि तुम अपने आप से अनभिज्ञ हो। अच्छा बताओ क्या तुमने कभी अपनी आत्मा को देखा है ? जिज्ञासु ने कहा, नहीं महाराज।

क्या तुमने अपने मन को देखा है ? नहीं महाराज।

तो तुमने अपनी इच्छाओं को उड़ते हुए जरूर देखा होगा। शंकराचार्य के इन प्रश्नों से विस्मित उस जिज्ञासु व्यक्ति ने कहा, महाराज, कोई व्यक्ति इन अमूर्त चीजों को कैसे देख सकता है। कृपया मुझे स्पष्ट समझाएं। शंकराचार्य बोले, जब तुम अपने आप से इतने अनभिज्ञ हो कि तुमने न अपनी आत्मा अर्थात स्वयं को देखा है और न मन को देखा और छुआ है, न ही अपनी इच्छाओं को जाना-समझा है, फिर तुम उस ईश्वर को कैसे जान सकते हो जो इन सब से भी सूक्ष्म है। जिज्ञासु ने विनती की, देव, मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा। कृपया विस्तार से बताएं। शंकराचार्य ने समझाते हुए कहा, बड़ा सीधा सा अर्थ है। पहले अपने आप को पहचानो, अपना निरीक्षण करो। जिज्ञासु ने पूछा, स्वयं को पहचानने का क्या उपाय है ? शंकराचार्य ने कहा, स्वयं को पहचानने के तीन रास्ते हैं। पहला, अपनी त्रुटियों को स्वीकार करो। यदि तुमसे कोई भूल होती है तो उसके लिए अपने आप को दंडित करो। ऐसा करने से तुम्हारा मन निष्पाप होगा। दूसरा, सबको समान समझो, क्योंकि ईश्वर ने किसी को छोटा या बड़ा बनाकर नहीं भेजा है। तीसरा, प्रतिदिन प्रात: उठकर ईश्वर को प्रणाम करो, जिससे तुम्हारे कार्य ठीक से संपन्न हो सके तथा संध्याकाल होने से पहले उसे धन्यवाद दो। जिज्ञासु व्यक्ति के मुंह से अचानक निकला, अरे, मैं अब तक कितने अंधकार में था। उस दिन से उस व्यक्ति का जीवन बदल गया।

८६०) समय का मोल- जगद्गुरु शंकराचार्य हमेशा लोगों को यही सीख देते थे कि अपने समय को अच्छे कार्यों में लगाओ। एक बार एक धनवान श्रद्धालु ने कहा- जगद्गुरु, अगर कोई व्यक्ति समय की कमी के कारण अपना समय अच्छे कार्यों में न लगा पाए तो वह क्या करे ? शंकराचार्य ने उस व्यक्ति की बात सुनकर बहुत आश्चर्य के साथ कहा- मेरा परिचय आज तक ऐसे व्यति से नहीं हुआ जिसको विधाता के बनाए समय से एक भी क्षण कम या अधिक मिला हो। समय की कमी से तुम्हारा क्या मतलब है ? इतना सुनकर धनवान श्रद्धालु चुप रह गया। जगद्गुरु ने कहा- जिसे तुम समय की कमी कह रहे हो वह वास्तव में समय का अभाव नहीं अव्यवस्था है। यदि कोई व्यक्ति ठान ले कि उसे सदैव व्यवस्थित जीवन ही जीना है। तो उसके पास हर काम को अच्छी तरह करने के लिए पर्याप्त समय निकल आता है। जो व्यक्ति व्यवस्थित जीवन नहीं जीते वे अपने अमूल्य जीवन को भार-स्वरूप ढोते हैं।

८६१) अछूत कौन ? - शंकराचार्य स्नान के लिए गंगाघाट जा रहे थे कि मार्ग में एक अछूत सामने आ गया। उनके शिष्यों ने ललकार कर अछूत से दूर हटने को कहा। अछूत एकदम मुड़ा, शंकराचार्य की ओर उन्मुख होकर दृढ़तापूर्वक़ बोलने लगा- आप तो सर्वात्मैक्य एवं अद्वैतवाद के प्रणेता हैं, सिद्धांताचार्य हैं, व्यवहार में यह भेदभाव कैसा ? यह कौन-सी रीति है ? क्या यह आडम्बर नहीं है ? क्या मैं यही समझूं कि आपका संन्यास दंड और कमंडल सब ढोंग हैं ? किसको दूर हटने के लिए कहा जा रहा है ? शरीर को ? वह तो नश्वर है। मेरे और आपके शरीर में क्या अंतर है ? एक से अवयव हैं। अंतर्बाह्य रचना एक-सी ही है। इस पर भी शरीर सत्य नहीं है, माया है। उसके धोखे में पड़ कर, अभेद का नाम लेकर भेद की सृष्टि कर रहे है ? यदि आत्मा को दूर हटने के लिए कह रहे हो, तो वह सबके शरीर में एक है, और फिर वह तो साक्षी है, निर्लेप है, उसको तो किसी का संग नहीं व्यापता। बतलाइए, क्या वह किसी के छूने से अपवित्र हो सकती है ?

शंकराचार्य ने सब शांत भाव से सुना। फिर उस व्यक्ति को गुरुवत सम्मान दिया। उसके तत्वज्ञान की व्यावहारिकता से प्रेरित होकर मनीष पंचक नाम से विख्यात पांच श्लोकों की तत्काल रचना कर डाली।

८६२) भारती का फैसला - आदि शंकराचार्य और मंडन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ शुरू हुआ। निर्णायक थीं मंडन मिश्र की पत्नी भारती। सोलह दिन तक शास्त्रार्थ चला लेकिन हार जीत का कोई फैसला नहीं हो सका। दोनों में बराबर की

टक्कर थी। भारती के लिए किसी एक के पक्ष में निर्णय करना कठिन हो रहा था। सत्रहवें दिन भारती ने कहा, मुझे आवश्यक कार्य से कुछ दिनों के लिए बाहर जाना है। उन्होंने शंकराचार्य और मंडन मिश्र के गले में फूलों की एक-एक माला डालते हुंए कहा, मेरा दायित्व अब ये मालाएं संभालेंगी। यही अंतिम निर्णय करेंगी। लोग समझ नहीं पाए कि मालाएं हार-जीत का फैसला कैसे कर सकती हैं। लेकिन भारती से किसी ने कुछ नहीं कहा। वह चली गईं। उनकी अनुपस्थिति में दोनों विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ जारी रहा।

कुछ समय बाद भारती लौटीं। उन्होंने ध्यान से दोनों के गले में पड़ी माला को देखा फिर अपना निर्णय सुनाया। शंकराचार्य विजयी हुए। लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि यह कैसा निर्णय है, यहां न रहते हुए भी उन्होंने अपने पति को पराजित घोषित कर दिया। एक विद्वान ने नम्रता से पूछा, देवी, आप यहां नहीं थीं फिर आपको कैसे पता चला कि मंडन मिश्र शास्त्रार्थ में शंकराचार्य का मुकाबला नहीं कर सके?

भारती ने कहा, जब मनुष्य हारने लगता है तो उसे गुस्सा आता है। गुस्सा आने पर शरीर का ताप बढ़ जाता है। क्रोध मनुष्य की आत्मा को जलाता है और उसका असर शरीर के हर अंग पर पड़ता है। आपने गौर किया होगा कि क्रोध के ताप से मेरे पति के गले की माला मुरझा गई थी जबकि शंकराचार्य के गले की माला पहले की तरह खिली हुई थी। भारती के निर्णय का समर्थन मंडन मिश्र ने भी किया। उन्होंने माना कि वह शास्त्रार्थ में कमजोर पड़ रहे थे लेकिन अहंकारवश इस बात को स्वीकार नहीं कर रहे थे। सभी विद्वानों ने भारती के पक्षपात रहित निर्णय की सराहना की।

८६३) मन की जीत - आदि शंकराचार्य जी अपने भक्तों को प्रेम और विश्वास की शिक्षा देते थे। उनके भक्त उनसे अपनी समस्याओं के समाधान पाकर अपना जीवन सुधारते थे और अपनी गलतियों का प्रायश्चित कर नेक राह पर चलते थे। एक दिन उनके पास एक व्यक्ति आया और बोला, महाराज, मैं एक साधारण गृहस्थ हूं। मैं अपने जीवन को बेहद सफल बनाना चाहता हूँ और यह तभी संभव है जब मैं जगत को जीत पाऊं। क्या जगत पर जीत संभव है? उस व्यक्ति की बात सुनकर शंकराचार्य जी बोले, भाई, यह संभव तो है लेकिन बेहद कठिन है। जगत को जीतना अगर सरल ही होता तो प्रत्येक व्यक्ति जगत को जीत लेता। इस पर वह गृहस्थ बोला, पर मुझे तो जगत को जीतना ही है। आप मुझे उपाय बताइए कि मैं इसके लिए क्या करूं? शंकराचार्य जी बोले, जगत को वही जीत सकता है, जो मन को जीत लेता है। यह मन बड़ा चंचल है। संसार की जड़-वस्तुएं इस चंचल मन को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं और व्यक्ति मन के वशीभूत होकर जड़ वस्तुओं की ओर खिंचता चला जाता है। वह जितना ज्यादा जड़-वस्तुओं की ओर आकर्षित होता जाता है उतना ही जगत को जीतने की उसकी कल्पना धूमिल होती जाती है। शंकराचार्य जी की बात सुनकर गृहस्थ बोला, महाराज, मन को नियंत्रण में रखना तो वाकई मुश्किल कार्य है। क्या आप मन को जीतने का कोई उपाय बता सकते हैं? इस पर शंकराचार्य बोले, संसार की निस्सारता के ज्ञान तथा ईश्वर की आराधना के माध्यम से मन को जीता जा सकता है। मन को नियंत्रण में करने के लिए तुम्हें ऐसी वस्तुओं को अपने सामने रखकर अभ्यास करना होगा जिन्हें पाकर तुम्हें लालच आता हो। उन वस्तुओं को सामने रखकर तुम्हें उनसे दूर जाने का अभ्यास करना होगा। यह जटिल अवश्य है, किंतु इस पर विजय पाई जा सकती है। गृहस्थ मन को जीतने का मंत्र पाकर प्रसन्नतापूर्वक चला गया।

८६४) मनुष्य की पहिचान - यह उस समय की बात है, जब कबीर दास की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी थी। लोग बड़ी संख्या में उनसे मिलने आते थे। एक दिन जब वह कपड़ा बुन रहे थे, उनके पास कई सेठ आए और बोले, अब आप साधारण व्यक्ति नहीं रहे। जब साधारण व्यक्ति थे तब तो आपका कपड़ा बुनना ठीक था। पर अब आपकी चर्चा संत

के रूप में होती है। आप को फटे-पुराने कपड़े पहने हुए देख हमें शर्म महसूस होती है। फिर आपको अपने हाथ से कपड़ा बुनने की आवश्यकता ही क्या है। अब हम लोग आपकी हर जरूरत को पूरा करेंगे। आपके लिए एक भव्य आश्रम बना देंगे। कबीर ने कहा, आप लोगों को देखकर मुझे शर्म आती है। पहले मैं अपने लिए कपड़ा बुनता था, मगर अब गरीब लोगों के लिए बुनता हूं। मेरी देखादेखी और लोग भी यह काम करेंगे। मनुष्य को अपनी पहचान नहीं खोनी चाहिए। आज आप उस समय हमारी मदद करने आए हैं जब मुझे आपकी सहायता की जरूरत नहीं है। आप उनकी सहायता करें जिन्हें आपकी जरूरत है। आप देखते होंगे कि काशी के घाट पर कितने लोग भूखे सोते है। उन्हें देखकर आपको शर्म महसूस नहीं होती होगी। क्योंकि आप हमारी मदद करने नहीं अपना प्रचार पाने के लिए यहां आए हैं। यह सुनकर सभी सेठ शर्मिंदा हो गए और उन्होंने माफी मांगी। उन्होंने वचन दिया कि वे हर रोज काशी के घाट पर गरीबों को खाना खिलाएंगे। तब से शुरू हुई वह परंपरा काशी में आज भी जारी है।

८६५) आपसी विश्वास - संत कबीर रोज सत्संग किया करते थे। दूर-दूर से लोग उनकी बात सुनने आते थे। एक दिन सत्संग खत्म होने पर भी एक आदमी बैठा ही रहा। कबीर ने इसका कारण पूछा तो वह बोला, मुझे आपसे कुछ पूछना है। मैं गृहस्थ हूं, घर में सभी लोगों से मेरा झगड़ा होता रहता है। मै जानना चाहता हूं कि मेरे यहां गृह क्लेश क्यों होता है और वह कैसे दूर हो सकता है? कबीर थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, लालटेन जलाकर लाओ। कबीर की पत्नी लालटेन जलाकर ले आई। वह आदमी भौंचक देखता रहा। सोचने लगा इतनी दोपहर में कबीर ने लालटेन क्यों मंगाई। थोड़ी देर बाद कबीर बोले, कुछ मीठा दे जाना। इस बार उनकी पत्नी मीठे के बजाय नमकीन देकर चली गई। उस आदमी ने सोचा कि यह तो शायद पागलों का घर है। मीठा के बदले नमकीन, दिन में लालटेन। वह बोला, कबीर जी मैं चलता हूं। कबीर ने पूछा, आपको अपनी समस्या का समाधान मिला या अभी कुछ संशय बाकी है? वह व्यक्ति बोला, मेरी समझ में कुछ नहीं आया। कबीर ने कहा, जैसे मैंने लालटेन मंगवाई तो मेरी घरवाली कह सकती थी कि तुम क्या सठिया गए हो। इतनी दोपहर में लालटेन की क्या जरूरत। लेकिन नहीं, उसने सोचा कि जरूर किसी काम के लिए लालटेन मंगवाई होगी। मीठा मंगवाया तो नमकीन देकर चली गई। हो सकता है घर में कोई मीठी वस्तु न हो। यह सोचकर मैं चुप रहा। इसमें तकरार क्या? आपसी विश्वास बढ़ाने और तकरार में न फंसने से विषम परिस्थिति अपने आप दूर हो गई। उस आदमी को हैरानी हुई। वह समझ गया कि कबीर ने यह सब उसे बताने के लिए किया था। कबीर ने फिर कहा, गृहस्थी में आपसी विश्वास से ही तालमेल बनता है। आदमी से गलती हो तो औरत संभाल ले और औरत से कोई त्रुटि हो जाए तो पति उसे नजरअंदाज कर दे। यही गृहस्थी का मूल मंत्र है।

८६६) कबीर की सीख- कबीर अपने हाथ में मशाल लेकर घूमा करते थे। लोगों ने कहा, यह आप क्या करते हैं दिन की रोशनी में भी आपके हाथ में मशाल रहती है।

कबीर ने उत्तर दिया, मैं तुम्हें रास्ता दिखाने के लिए ऐसा करता हूं। लोगों ने कहा, यह आप कैसे कहते हैं कि हमें रास्ता दिखाई नहीं देता ? हम तो आपके साथ चलना चाहते हैं।

कबीर बोले, तुम सब मेरे साथ नहीं चल सकते। मेरे साथ वही चल सकता है, जो अपना घर फूंक दे। फिर थोडा रुक कर उन्होंने कहा, यह मशाल मैं इसलिए भी लेकर चलता हूं कि तुम इसमें से थोड़ी आग ले लो और अपना घर फूंक दो। अब लोगों ने समझा कि कबीर के मशाल लेकर चलने और घर फूंकने का रहस्य क्या है।

८६७) संत कबीर की क्षमाशीलता- एक बार कुछ सामन्त सन्त कबीर की कीर्ति सुनकर उनके दर्शन करने के लिए

घर जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक घुटे सिर का व्यक्ति तालाब में नहाते मिला। उसे देख सामन्त बिगड़े और चर्चा करने लगे अरे इस नालायक ने तो सवेरे-सवेरे हमारा अपशकुन कर दिया। पता नहीं कबीर मिलेंगे या नहीं। सभी लोगों ने उसे घुटे सिर वाले व्यक्ति पर पत्थरों की बौछार शुरू कर दी। बेचारे घुटे सिर वाला व्यक्ति शान्त भाव से पत्थर खाता रहा। अन्त में अपना क्रोध शान्त कर सभी सामंत कबीर के घर पहुंचे। कबीर की पत्नी ने सबको बैठाया और बताया आप थोड़ी देर बैठिए। कबीरजी अभी आते ही है। नहाने गए है, तालाब पर। थोड़ी देर बाद संत कबीर स्नान करके आए। सबने देखा और आपस में कानाफूसी करते हुए बोले हमसे तो आज बहुत बड़ा अपराध हो गया। हमने कबीर पर ही पत्थर बरसाए। हमें क्या पता था कि घुटे सिर वाले ये व्यक्ति कबीरदास ही है। शर्म के मारे किसी का साहस कबीर की तरफ देखने का नहीं हुआ। सब की कठिनाई सन्त कबीर ने भांपते हुए कहा, भाई लोगों। वास्तव में तो मैंने आपका अपशकुन ही किया था। यदि मैं वहां आपको न मिलता तो आपको यहां प्रतीक्षा भी न करनी पड़ती। सब सामन्त कबीर के चरणों में गिर पड़े। कहने लगे- हे क्षमावतार। जैसा सुना वैसा ही पाया है आपको।

८६८) कबीर का लोटा- प्रात:काल के समय लोग गंगा स्नान कर रहे थे। पानी काफी गहरा था। अत: ब्राह्मणों को जल में प्रवेश कर स्नान करने का साहस नहीं हो पा रहा था। एक किनारे पर संत कबीर स्नान कर रहे थे। उन्होंने अपना लोटा मिट्टी से मांज धोकर पास खड़े व्यक्ति को दे दिया और कहा कि जाओ ब्राह्मणों को दे आओ, ताकि वे भी सुविधा से स्नान कर ले। कबीर का लोटा देख ब्राह्मण चिल्ला उठे। अरे जुलाहे के लोटे को दूर रखो। इससे स्नान कर हम तो अपवित्र हो जाएंगे। इस लोटे को कई बार मिट्टी से मांजा और गंगा जल से धोया, फिर भी साफ न हुआ तो दुर्भावनाओं से भरा यह मानव शरीर गंगा में स्नान करने से कैसे पवित्र होगा। संत कबीर बोल उठे।

८६९) कबीर की पगड़ी - कबीर अपनी आवश्यकताओं को बहुत सीमित रख जीवन व्यतीत करते थे आर साथ ही चिंतन-साधना में लगे रहते थे। एक बार वह अपने हाथ से बनी पगड़ी लेकर उसे बेचने बाजार गए। बाजार में सुबह से शाम हो गई, परंतु किसी ने पगड़ी नहीं खरीदी। आखिरकार निराश कबीर घर को लौट आए। दूसरे दिन भी बड़ी आशा से बाजार गए किंतु दुर्भाग्य ने उनका साथ नहीं छोड़ा। उस दिन भी गहरी निराशा में वह लौट आए। इसी तरह का वाकया तीसरे दिन भी हुआ। सारी आशा चकनाचूर हो गई। पिता के निराश चेहरे को भांपकर कबीर की बेटी ने उनसे पूछ लिया- पिताजी, क्या बात है ? रोज शाम को आपका चेहरा बहुत उदास लगता है।

बेटी की बात सुनकर कबीर ने कहा कि रोज बड़ी आशा से इस पगड़ी को बेचने जाता हूं पर कोई भी इसे नहीं खरीदता। आज तीसरा दिन है जब मैं खाली हाथ वापस लौटा हूं।

पिता की बात सुनकर बेटी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा- आप बिल्कुल चिंता नहीं करें, कल यह अवश्य बिक जाएगी।

अगले दिन कबीर की लड़की उस पगड़ी को लेकर बाजार गई और थोड़ी ही देर में उसने पांच टके की पगड़ी को सात टके में बेचा और घर लौट आई। कबीर यह देखकर हैरान हो गए और बेटी से पूछने लगे कि उसने यह करिश्मा कैसे दिखाया। बेटी ने कहा कि मैंने पांच टके की पगड़ी की कीमत दस टके बताई एवं ग्राहक के मोलभाव करने पर इसे सात टके में बेच डाला।

यह सुनते ही कबीर बोले- बेटी तूने पांच की पगड़ी को दस का बताकर झूठ क्यों बोला ? वह बोली- पिताजी, आपकी बात सतयुग के लिए ठीक है पर आज कलियुग है। यदि मैंने झूठ नहीं बोला होता तो यह पगड़ी आज भी नहीं बिकती। यह सुनकर कबीरदास को बहुत बुरा लगा। नाराज होकर बेटी से बोले- बेटी, दुनिया में अभी भी अच्छे लोग हैं, मगर इस तरह

अगर हर आदमी दूसरों को ठगने लगे तो सचमुच ही वह नरक बन जाएगी।

८७०) कबीर और प्रभु- संत कबीर सामाजिक क्रांति के दूत थे। वह लोगों को निराकार ईश्वर की भक्ति की शिक्षा देते थे। उनका मानना था कि क्योंकि ईश्वर हर आदमी के भीतर विराजमान है, इसलिए कोई बड़ा छोटा नहीं, हमें सबसे समान व्यवहार करना चाहिए। कबीर का साफ कहना था कि मंदिर मस्जिद में पूजा करने भर से खुदा या प्रभु नहीं मिलते। उन्होंने अपनी बात को दोहे में पिरोते हुए लिखा- पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहार, या ते तो चाकी भली, पूज खाए संसार।

उन्होंने यहां तक लिख दिया- कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद ली बनाय, ता पै मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।

कहते हैं कि एक बार कबीर की ऐसी शिक्षा से कुछ पंडित और मौलवी नाराज हो गए। उन्होंने कबीर को नीचा दिखाने के लिए एक षडयंत्र रचा। उन्होंने काशी में मुनादी करवा दी कि संत कबीर पूर्णिमा के दिन फकीरों, गरीबों, सत्संगियों के लिए अपने घर में भोज देंगे। जब पूर्णिमा का दिन आया तो लोग कबीर के घर पर जमा होने लगे। लेकिन एक जुलाहे के पास इतने लोगों को भोजन कराने लायक धन कहां से होता। कबीर लोक लाज से भयभीत काशी से दूर जाकर एक पेड़ के नीचे ध्यानमग्न हो गए।

उधर उनके घर पर आए लोगों ने आश्चर्य से देखा कि वहां भोज की बाकायदा व्यवस्था थी। हर आदमी ने छककर भोज किया। रात होने पर जब कबीर वापस लौटकर आए तो यह जानकर उन्हें हैरत हुई कि लोग तो भोज करके ही वापस लौटे। पता चला कि कबीर के एक सेठ भक्त को पंडितों, मौलवियों के षडयंत्र का पता चल गया था, सो उसने कबीर को बचाने के लिए अपनी ओर से सारा बंदोबस्त कर दिया। पंडितों और मौलवियों को जब पूरा घटनाक्रम मालूम चला तो उनके सिर शर्म से झुक गए। उधर कबीर के मुंह से निकला- ना कुछ किया न करि सका, ना करने जो सरीर, जो किया प्रभु किया, ता ते भया कबीर।

८७१) धन का सदुपयोग- धरमदास काशी के धनाढ्य व्यक्ति थे। संत कबीरदास जी के सत्संग ने उन्हें भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख किया। वह व्यापार का काम अपने पुत्रों को सौंपकर दिन-रात राम नाम जाप तथा परोपकार के कई कार्यों में जुटे रहने लगे। धरमदास ने अपने हिस्से में आया धन गरीब व संत-महात्माओं की सेवा में लगाना शुरू कर दिया। उनके एक संबंधी ने उनसे कहा, आप इतने बड़े सेठ होकर साधारण कपड़े पहनते हो। साधुओं की पंक्ति में बैठकर दाल-रोटी खा लेते हो। अपने कमाए धन का सुख-सुविधाओं पर भी उपयोग करना चाहिए। धरमदास ने जवाब दिया, मैं कबीरदासजी का अनुयायी हूं। उनका उपदेश है कि प्रत्येक व्यक्ति में भगवान राम के दर्शन करो। मैं जब गरीबों व संत-महात्माओं को अपने हाथों से भोजन कराता हूं तो लगता है कि मैं स्वयं सुस्वादु भोजन कर पूर्ण तृप्त हो रहा हूं।

स्वार्थ, लोभ त्यागकर धरमदास जीवन भर सेवा कार्यों में पूरे मनोयोग से जुटे रहे। आगे चलकर धमरदास की गणना भी संतों में होने लगी।

८७२) दृष्टिकोण- कबीर धीरे-धीरे सिद्ध पुरुष के रूप में पहचाने जाने लगे। दूर-दूर से लोग उनसे मिलने आया करते थे। इतनी प्रसिद्धि पाने के बाद भी वे पहले की भांति कपड़ा बुनते रहते थे और जनसम्पर्क तथा भजनादि का कार्यक्रम चलता रहता था। कबीर के एक शिष्य को यह बात कुछ अटपटी सी लगी। उसने कबीर से पूछा गुरुदेव। जब आप साधारण मनुष्य थे तब भी आप कपड़ा बुनते थे तब कोई बात नहीं थी, लेकिन अब तो आप इतने विख्यात हो गए हैं, निर्वाह में कोई कमी नहीं है, फिर भी आप कपड़ा बुनते हैं, यह शोभा नहीं देता। कबीर ने तर्कसंगत जवाब दिया- वत्स। पहले मैं मात्र अपने पेट का पालन करने के लिए कपडा बुनता था परन्तु अब मैं जन-जन में समाये हुए भगवान के तन को ढकने के लिए पूर्ण मनोयोग से कपडा बुनता हूँ। कार्य वही कर रहा हूँ किन्तु मेरा दृष्टिकोण बदल गया है। शिष्य के प्रश्न का समाधान हो गया था।

८७३) जीवन का आदर्श- संत कबीर के पास लोग अपनी जिज्ञासा लेकर अकसर आया करते थे। एक बार एक व्यक्ति ने कबीर से पूछा, कृपया बताएं कि मैं गृहस्थी बनूं या सन्यासी? कबीर ने उत्तर दिया, जो भी बनो, आदर्श बनो, उसमें पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास करो। कबीर ने अपनी पत्नी को बुलाया। दोपहर का समय था, फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि वह एक दीपक जलाकर लाए। पत्नी दीपक जला कर ले आई और बिना कुछ कहे चली गई। कबीर ने उस व्यक्ति से कहा, अगर गृहस्थी बनाना है तो एक दूसरे पर विश्वास रखना होगा ताकि दूसरे की इच्छा ही अपनी इच्छा बन जाए। उसके बाद कबीर उसे एक टीले पर ले गए, जहां एक वृद्ध महात्मा रहते थे। कबीर ने महात्मा से पूछा, महात्मा जी, आपकी आयु कितनी है? महात्मा बोले, अस्सी वर्ष। थोड़ी देर तक कबीर उनसे बातचीत करते रहे। फिर कहा, महात्मा जी, आप अपनी आयु क्यों नहीं बता रहे महात्मा बोले, बेटा, अभी आपको बताया था, अस्सी वर्ष। शायद आप भूल गए हो। कबीर उस जिज्ञासु व्यक्ति केसाथ टीले से नीचे उतर आए। उन्होंने महात्मा को पुकारा और उन्हें नीचे आने के लिए कहा। वृद्ध महात्मा हांफते-हांफते नीचे आ गए। महात्मा ने नीचे बुलाने का कारण पूछा तो कबीर बोले, आपकी आयु कितनी है? महात्मा के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। उन्होंने बड़े सहज भाव से कहा, अस्सी वर्ष। कबीर ने उस जिज्ञासु से कहा, संन्यासी बनना हो तो ऐसा ही बनना। तुम्हें कभी क्रोध न आए। यदि तुम इन साधु जैसी क्षमा रख सको तो साधु बन जाओ और अगर मेरी जैसी विनीत स्त्री मिल जाय, दिन के उजाले में दीपक जलाने की कहने पर बिना तर्क किये कि दीपक की क्या जरूरत है, जलाकर ले आए, तो गृहस्थ जीवन अच्छा है।

८७४) मैं कौन हूँ- स्वामी विरजानंदजी अपनी कुटिया में साधना कर रहे थे। बाहर दरवाजे पर कुछ आहट हुई। मूलशंकर नामक युवक बाहर खड़ा था। स्वामीजी ने अंदर से पूछा बाहर कौन है। मूलशंकर का उत्तर था महात्मन यही जानने के लिए तो आपके पास आया हूं। स्वामी विरजानंदजी ने कहा वत्स अंदर आ जाओ। मैं तो कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। यह वह मूलशंकर थे जो आगे चलकर महर्षि दयानंद नाम से जगद्विख्यात हुए। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों, पाखण्डों, अनाचार एवं धर्म के नाम पर फैले आडम्बरों को समाज से दूर करने का प्रयास किया। गुरु की शक्ति ही थी जिसने दयाशंकर को महान बनाया।

८७५) पुनर्जन्म- महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रवचनों में अमीरचंद नामक व्यक्ति गाना गाता था। निरन्तर संपर्क में रहने से दयानन्द के मन में उसके प्रति आत्मीयता हो गई थी। समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने महर्षि से अमीरचंद के आचरणों के बारे में शिकायत की। स्वामीजी ने सत्यता की जांच की एवं आरोपों को सत्य पाया।

दूसरे दिन अमीरचंद ने गाना गाया और स्वामीजी से जाने की इजाजत मांगी। दयानन्द ने कहा, मित्र। तुम्हारा गला तो कोयल जैसा है तथा आचरण कौए के समान है। अमीरचंद को यह बात चुभ गई। उसने महर्षि से अच्छा बनकर मिलने का संकल्प लिया। उसने रिश्वत लेना बंद कर दिया। त्यागी हुई पत्नी को बुला लिया। नशा आदि का सेवन बंद कर दिया। तदुपरान्त ऋषि चरणों में मस्तक झुकाया। अमीरचंद की पत्नी ऋषि द्वारा परिवर्तन से प्रसन्न थी। अमीरचंद तथा उसकी पत्नी दोनों अपना पुनर्जन्म अनुभव कर रहे थे।

८७६) पश्चात्ताप- कर्णवास का एक पंडित महर्षि दयानंद सरस्वती को प्रतिदिन गालियाँ दिया करता था, पर महर्षि शांत भाव से उन्हें सुनते रहते और उसे कुछ भी उत्तर न देते। एक दिन जब वह गाली देने नहीं आया तब महर्षि ने लोगों से उसके न आने का कारण पूछा। लोगों ने बताया, वह बीमार है। महर्षि फल और औषध लेकर उसके घर पहुँचे। वह महर्षि को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने असद व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा। इसके बाद उसका गाली

देना सदा के लिए छूट गया।

८७७) पवित्र अन्न- स्वामी दयानंद सरस्वती वैदिक धर्म के कट्टर समर्थक होते हुये भी छुआछूत को कतई नहीं मानते थे। एक बार एक अछूत थाली में कढ़ी भात परोसकर स्वामीजी के लिये लाया। स्वामीजी ने प्रेमपूर्वक उसका लाया भोजन ग्रहण कर सन्तोष की डकार ली।

स्वामीजी के इस कार्य पर कुछ ब्राह्मणों ने नाराजगी प्रकट की। महाराज। आप अछूत के हाथ का भोजन खाकर भ्रष्ट हो गये हैं। आपका ऐसा करना कदापि उचित नहीं है।

स्वामीजी ने मुस्कराकर जवाब दिया, अन्न दो प्रकार से दूषित होता है एक तो तब जब दूसरों को दु:ख देकर प्राप्त किया जाये एवं दूसरे जब उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जाये। इन लोगों का अन्न परिश्रम के पैसे का है, इसलिये पवित्र है। अत: इसे ग्रहण करने में तनिक भी दोष नहीं है।

८७८) दान- एक बार एक वणिक स्वामी दयानंद के पास आया और प्रणाम करके बोला- स्वामीजी, मैं आपका परम भक्त हूं। मैं अपनी दुकान बेचकर दस हजार रुपये प्राप्त कर लेने की स्थिति में हूं। मैं यह राशि आर्य समाज को दान देना चाहता हूं ताकि आर्य समाज का भव्य प्रासाद बन सके।

स्वामी ने पूछा, तुम्हारा परिवार कितना बड़ा है ?

मेरी धर्मपत्नी है, दो बच्चे हैं। कमानेवाला मैं हूं। दुकान ही मेरी आय का स्रोत है। वणिक ने बताया।

स्वामी ने कहा- भले मानस, दुकान बेचकर मिलने वाली राशि दान करके धर-गृहस्थी का भार कौन वहन करेगा ? क्या घर परिवार के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं ? यह गृहस्थ धर्म के प्रति अन्याय होगा। तुम दान धर्म का निर्वाह करने के लिए गृहस्थ धर्म को दांव पर लगाओगे तो धर्म का निर्वाह कैसे हुआ ?

मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूं। दस हजार रुपये दान में नहीं ले सकता। तुमसे मात्र एक हजार रुपया दान लिया जा सकता है। शेष नौ हजार का उपयोग सूझबूझ से करके अपना नया वाणिज्य-व्यापार कीजिए।

८७९) सहनशीलता की सीख- एक बार स्वामी दयानंद सरस्वती नागपुर में धार्मिक कर्मकांड और अंधविश्वास के खिलाफ भाषण दे रहे थे। उनका व्याख्यान कुछ लोगों को बुरा लगा और उन्होंने स्वामी जी को पीटने की योजना बना डाली। एक लठैत को उनके पास भेजा गया। उसने स्वामीजी से कहा, तुम हमारे धार्मिक विश्वासों का खंडन करके भगवान का अपमान करते हो। बोलो, मैं तुम्हारे किस अंग पर पहले प्रहार करूं ?

स्वामीजी ने मुस्कराकर कहा, मेरा मस्तिष्क ही मुझे प्रत्येक कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसी में सभी विचार रहते हैं। इसलिए आप मेरे सिर पर ही पहले प्रहार करें। यह कहकर स्वामीजी ने अपना सिर उसकी ओर झुका दिया। उनकी सहनशीलता देखकर बदमाश आश्चर्यचकित रह गयां वह तत्काल स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा। उसने क्षमा मांगते हुए कहा, स्वामीजी, मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपको ठीक से पहचाना नहीं था। मैं लोगों के बहकावे में आ गया था। आपने मेरी आंखे खोल दी। बाद में वह स्वामीजी का शिष्य हो गया।

८८०) सच्ची गुरुदक्षिणा- अप्रतिम योगी व चिंतक महर्षि दयानंद सरस्वती ने महात्मा विरजानंद से ढाई वर्ष तक अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदांत सूत्र आदि की शिक्षा ग्रहण की। जब विदा की बेला आई तो दयानंद ने कुछ लौंग गुरुदक्षिणा के रूप में गुरु के सम्मुख रखकर चरण स्पर्श करते हुए देशाटन की आज्ञा मांगी। गुरु का मन स्नेह से द्रवित होने लगा। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए उनके जीवन के लिए मंगल कामना करते हुए उनसे गुरु दक्षिणा में अन्य लोगों से भिन्न वस्तु

मांगी। इस पर दयानंद ने निवेदन किया- गुरुदेव। यह सेवक अपने मन सहित अपने तन को आपके चरणों में अर्पण करता है। आप जो भी आदेश देंगे, उसे आजीवन निभाऊंगा, कृपया आज्ञा दें। गुरु विरजानंद ने अपने प्रिय शिष्य से कहा, वत्स, भारत के दीन-हीन जनों का उद्धार करो। कुरीतियों का निवारण करो। ऋषि प्रणाली प्रचलित करके वैदिक ग्रंथों के पठन-पाठन में लोगों को प्रवृत्तिशील बनाओ। अन्य किसी सांसारिक वस्तु की हमें चाह नहीं है। शिष्य दयानंद ने गुरु के प्रत्येक वचन को स्वीकार कर कहा, महाराज देखेंगे कि आपका प्रिय शिष्य इन आज्ञाओं का किस प्रकार प्राणप्रण से पालन करता है। इसके बाद ऋषि दयानंद ने अपना सारा जीवन गुरु को दिए गए वचनों का पालन करने में अर्पित कर दिया। उनका चिंतन शुद्ध वैदिक था। उन्होंने भ्रम, अंधविश्वास व कुरीतियों को दूर करने का सदैव प्रयास किया। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश जैसा अमर ग्रंथ लिखकर अनेक रूढ़ियों व भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास किया। स्त्री शिक्षा पर सदैव बल दिया तथा बाल विवाह का विरोध किया। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उन्होंने गहन अध्ययन व विश्लेषण कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चारों आश्रमों के पालन पर बल दिया। उनका संपूर्ण जीवन व कृतित्व आध्यात्मिकता से परिपूर्ण था। राष्ट्रप्रेम उनके लिए सर्वोपरि था। अपनी पुस्तक आर्याभिनव (१८७४) में उन्होंने लिखा था, अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी भी शासन न करें। हम कभी अधीन न हों।

८८१) महापुरुषों का जीवन - आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती के भक्तों की संख्या अनगिनत थी। वह जहां भी जाते, उनसे प्रभावित होकर अनेक लोग उनके शिष्य बन जाते। उनके शिष्य उनके लिए कुछ न कुछ करना चाहते थे। इससे उन्हें संतोष होता था। उनके निकट शिष्यों में एक थे पंजाब के पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी। पंडित विद्यार्थी काफी लंबे समय तक स्वामी दयानंद के सान्निध्य में रहे और उन्होंने उनसे काफी ज्ञान भी प्राप्त किया। वह स्वामी जी के कई कार्यक्रमों में शामिल हुए। स्वामी जी उनके प्रति काफी स्नेह रखते थे। स्वामी जी के देहावसान के कुछ समय बाद स्वामी जी के ही किसी दूसरे अनुयायी ने पं. विद्यार्थी से कहा, पंडित जी, स्वामीजी महायोगी थे। आपको उनके विषय में विस्तृत जानकारी है। आप स्वामीजी का एक जीवन चरित क्यों नहीं लिखते? पंडित जी बड़ी गंभीरता से बोले, स्वामीजी का जीवन चरित लिखने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं। थोड़ा बहुत आरंभ भी कर चुका हूं। उस अनुयानी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, यह जीवन चरित कब तक पूर्ण होगा? यह कब तक प्रकाशित हो जाएगा? पंडित जी बोले, आप यह मत सोचो कि मैं कागज पर स्वामी जी का जीवन चरित लिख रहा हूं। मेरे विचार से तो महापुरुषों का जीवन चरित मनुष्य के स्वभाव में, आचरण में लिखा जाना चाहिए। मैं इसी प्रकार का प्रयास कर रहा हूं कि मेरा जीवन स्वामी जी के आदर्शों के अनुरूप हो। मैं उनके पदचिन्हों पर चल सकूं। स्वामी जी का दूसरा अनुयायी पंडित जी की बात से सहमत हो गया।

८८२) नैतिक मूल्यों का उच्चतम आदर्श - स्वामी दयानंद उन दिनों अपने गुरुदेव स्वामी विरजानंद से विद्याध्यन कर रहे थे। वह नित्यप्रति ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर पद्मासन लगाकर यमुना जी के तट पर ध्यानस्थ हो जाते थे और सूर्योदय के समय सूर्य की रश्मियां उसके ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त, मनोहर मुखमंडल पर छिटक कर उसके सौंदर्य तथा लावण्य को परम कांतिमय बना देती थीं।

एक महिला जो स्वामी दयानंद को जानती थी। वह भी नित्यप्रति यमुना जी में स्नान करने जाती थी। वह बहुत ही सुंदर थी लेकिन उसके संतान नहीं थी। वह नित्यप्रति यमुना में स्नान करके घर लौटती और उस महामानव के सौंदर्य पर मुग्ध होकर मन ही मन उसे नमस्कार कर चली जाती। विचार करती कि क्या ऐसा ओजस्वी पुरुष मेरे जीवन में भी आ सकता है। एक दिन यमुना स्नान के बाद वह महिला स्वामी दयानंद के पास आकर खड़ी हो गयी और उनकी समाधि खुलने की

प्रतीक्षा करने लगी। स्वामी दयानंद की समाधि की समाप्ति पर, जब स्वामी दयानंद ऊँ शांति कहकर अपने नेत्र खोलने वाले थे कि उस सुंदरी ने स्वामी दयानंद को प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर प्रश्नकर्ता की मुद्रा में खड़ी हो गयी।

स्वामी दयानंद ने पूछा, क्या चाहती हो देवि?

सुंदरी ने कहा, महाराज, आपके जैसा पुत्र? स्वामी दयानंद ने कहा बस, इतना ही देवि, हां, महाराज। स्वामी दयानंद ने कहा यदि आप मेरे जैसा पुत्र ही चाहती हो तो यह छत्तीस वर्षीय दयानंद आज से आपका पुत्र है और आप है उसकी माता। यह सुनकर उस महिला की आंखें छलछला गयीं। वह बोली, धन्य हो यतिश्रेष्ठ। महिला सिर झुकाकर अपने घर चली गयी। उसका जीवन पलट गया। उस महिला ने संतान की कामना का सर्वथा परित्याग कर दिया क्योंकि अब वह बन गयी थी स्वामी दयानंद की माता। महिला ने अपना पूरा जीवन परम पवित्रता के साथ व्यतीत किया। यह था भारतीय संस्कृति और हमारे नैतिक मूल्यों का उच्चतम आदर्श।

८८३) धन का सदुपयोग- संत रविदास जूते बनाने के साथ ईश्वर के भजन में भी लगे रहते थे। उनका विश्वास था कि यदि व्यक्ति सच्चे हृदय से नेक कर्म करे तो उसके पास जीविका हेतु साधन उपलब्ध हो ही जाते हैं। वह प्रतिदिन दो जोड़ी जूते बनाते। उनके बनाए जूते अत्यंत सुंदर, मजबूत और टिकाऊ होते थे इसलिए वे अच्छे दाम में बिक जाते थे। वह केवल एक जोड़ी जूते बेचते जबकि दूसरी जोड़ी किसी जरूरतमंद को दे दते थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके चरणों में स्वर्ण मुद्राओं से भरी थैली रखते हुए बोला, प्रियवर, यह तुच्छ भेंट आपके चरणों में समर्पित है। कुछ समय पहले मैं नि:संतान था। आपकी ख्याति सुनकर मैं यहां आया और आपके सामने हृदय से संतान की कामना करके गया। अब मुझे संतान की प्राप्ति हो गई है। मैं इसके लिए ईश्वर के साथ-साथ आपका भी आभारी हूं क्योंकि आपके दर्शनों के बाद ही मुझे संतान की प्राप्ति हुई। रविदास ने उस व्यक्ति को स्वर्ण मुद्राएं लौटाते हुए कहा, आपने मुझे इतना सम्मान दिया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। लेकिन अपने जीवनयापन लायक धन मैं प्रतिदिन अर्जित कर लेता हूं। इन स्वर्ण मुद्राओं से यदि आप किसी अपंग या निर्धन व्यक्ति की जरूरत पूरी कर देंगे तो मैं समझूंगा स्वर्ण मुद्राएं मुझे प्राप्त हो गई है। रविदास की इन बातों से प्रभावित होकर उस व्यक्ति ने अपना जीवन निर्धनों और अपंगों की सेवा में लगा दिया।

८८४) संत रैदास- काशी में गंगा-घाट पर रैदास की झोंपड़ी थी। उसी के बाहर बैठकर वह जूते गांठते थे। एक दिन साधु उनके पास आया। उनकी दीनदशा देखकर साधु ने झोली में से एक पत्थर निकाला और बोला, रैदास ,लो, यह पारस पत्थर है। लोहे को सोना बना देता है।

यह कहकर उसने लोहे का एक टुकड़ा लिया और उसे सोने का बनाकर दिखा दिया। रैदास ने कहा, महाराज, अपनी यह सौगात अपने पास रखिए। मुझे नहीं चाहिए। अपनी मेहनत-मशक्कत से जो मिल जाता है, वही हमारे लिए काफी है।

साधु ने कहा, रैदास, आदमी को अच्छी तरह से रहना चाहिए। देखो तो। तुम्हारी कुटिया की कैसी हालत है।

रैदास बोले, स्वामीजी, पसीने की कमाई का जो आनन्द होता है, वह और कहां है ? वही असली आनन्द है।

साधु ने बहुत आग्रह किया तो रैदास ने कहा, स्वामीजी, यदि आपको इसे किसी को देना ही है तो राजा को दीजिए। वह बड़ा गरीब है। उसे हर घड़ी पैसे की चाह रहती है। इतना कहकर रैदास जूते गांठने में लग गए। साधु अपना सामान लेकर चला गया।

८८५) कर्म का रास्ता- संत रविदास जूते बनाने का काम करते थे। वे संन्यासियों और महात्माओं से बड़े स्नेह से मिलते और उनकी सेवा किया करते थे।

एक बार उन्होंने एक संत की खूब सेवा की। संत उनसे बहुत खुश हुए। जब वह जाने लगे तो उन्होंने रविदास से कहा, मैं तुम्हें एक पारस पत्थर देना चाहता हूं। अगर कोई लोहे की वस्तु इससे छू जाएगी तो वह सोना बन जाएगी। इतना कहकर उन्होंने पारस को उस लोहे की सूई से छुआ दिया, जिससे रविदास जूते गांठते थे। रविदास ने कहा, अब मैं जूते किससे बनाऊंगा? संत जी ने कहा, अब तुम्हें जूते बनाने की क्या जरूरत है? जब भी तुम्हें पैसे चाहिए हों, इसको किसी लोहे से छुआ देना, वह सोना बन जाएगा। रविदास ने उसे लेने से इनकार कर दिया। लेकिन संत जी नहीं माने, बड़ा जोर डाला और यह कहते हुए पारस पत्थर को उनके आसन के पास रख दिया कि आप इसकी मदद से जो चाहे करो।

एक वर्ष बाद संत जी फिर उस रास्ते से गुजरे और रविदास की कुटिया तक पहुंचे। रविदास ने बड़े आदर भाव से उनकी सेवा की। संत जी नेकहा, तुम अभी तक इसी कुटिया में बैठे हो। मुझे उम्मीद थी कि तुमने पारस पत्थर की मदद से कोई मंदिर बनवाया होगा, जहां बहुत से लोग आते जाते होंगे। पर तुम तो अब भी जूते बना रहे हो।

रविदास ने उत्तर दिया, अगर मैं उस पत्थर का इस्तेमाल करने में लग जाता तो अपने कर्म से विमुक्त हो जाता, जबकि इस संसार में कर्म हर प्राणी के लिए अनिवार्य है। इसके बिना कोई भी व्यक्ति जीवन यात्रा नहीं कर सकता। निठल्ले बैठकर भोग करने से शरीर तो अस्वस्थ होता ही है, व्यक्ति ईश्वर की नजरों में भी गिर जाता है। कर्म से ही मनुष्य अपने चरम लक्ष्य तक पहुंच पाता है और मुझे अपने लक्ष्य तक हर हाल में पहुंचना है।

८८६) सुख का आधार - घटना बहुत पुरानी है। संत रविदास का जन्म मोची परिवार में हुआ था। उनके पिता मोची का काम करते थे। बड़ा होने पर उनको पिता ने अपने पास ही एक दुकान पर बैठा दिया। वह दिन भर जितना कमाते थे, साधु-संतों और गरीबों को दान कर देते। एक दिन तंग आकर उनके पिता ने उन्हें घर से अलग कर दिया।

अलग होने के बाद भी रविदास की आदत में कोई बदलाव नहीं आया। वह दिन भर जूते सिलते और भक्ति के गीत गाते। धीरे-धीरे उनकी ख्याति भक्त कवि के रूप में बढ़ने लगी। उनके गाए भजन मंदिरों में गाए जाते थे। लेकिन रविदास को इस दुनिया से क्या लेना देना। वह अपने काम में मस्त थे। एक दिन वह अपनी दुकान पर बैठे काम में व्यस्त थे, तभी एक साधु उनके पास आया और बोला- रविदास आप इतने बड़े भक्त कवि है। आपके भजन गाकर दूसरे लोग खूब पैसा कमाते हैं और आप हैं कि दिन भर जूते सिलते रहते हैं। आप को यह सब करने की जरूरत क्या है ?

कोई जवाब न पाकर साधु फिर बोला- मैं आपकी गरीबी को देख कर बहुत दुखी हूं। आपको मैं एक पत्थर दे रहा हूं। इसे आप किसी धातु के साथ लगा देंगे तो वह धातु सोने की बन जाएगी। इस पर रविदास बोले- स्वामी जी, इसे मेरी झोपड़ी की छत के किसी भी कोने में फंसा कर रख दो।

कुछ समय बाद वह साधु फिर संत रविदास की कुटिया में आया। उसने देखा कि रविदास जूता सिलने में व्यस्त हैं। वही कुटिया, वही पहले जैसी गरीबी। कुछ नहीं बदला था। साधु ने पूछा- क्यों भई, मैंने तो आपको सोना बनाने का पत्थर दिया था, फिर भी आप वहीं के वहीं हैं। रविदास बोले- हां स्वामी जी, आप जिस पत्थर को दे गए थे, उसे आप वहीं से निकाल लें। मुझे ऐसे किसी धन का लोभ नहीं है जो बिना किसी परिश्रम के मिले। अपने परिश्रम से कमाई गई रूखी सूखी ही मेरे लिए, मेरे परिवार के लिए सुख का आधार है।

८८७) कर्त्तव्य पालन का प्रतिफल- संत रैदास मोची का कार्य करते थे। एक बार की घटना है, एक साधु ने उन्हें सोमवती अमावस्या के दिन गंगा नहाने की बात कही। सन्त रैदास ने उनकी बात स्वीकार कर ली। किन्तु अपना कार्य पूरा न कर पाने के कारण उन्होंने साधु से कहा- हे महात्मन। मेरे भाग्य में गंगा स्नान नहीं है अत: गंगा स्नान के बाद साधु ने रैदास का

नाम लेकर पैसा चढ़ाया। आश्चर्यपूर्वक घटना हुई, गंगा माँ ने दोनों हाथ बाहर निकाल कर सन्त रैदास की भेंट स्वीकार की। वापस लौटने पर साधु ने रैदास को यह बात बताई तब उन्होंने कहा कि यह मेरे कर्त्तव्य पालन के धर्म का ही प्रतिफल है।

८८८) वचनों का चमत्कार- संत दादू के पास अनेक लोग आया करते थे ताकि अपनी विभिन्न समस्याओं का समाधान पा सकें। एक संभ्रांत परिवार की एक महिला संत के पास आई और बोली, कोई ऐसा वशीकरण मंत्र या कवच दें, जिससे मेरा पति पूरी तरह मेरे वश में आ जाए। दादू ने कहा, मेरी ताकत तो केवल ईश्वर के प्रति विश्वास है। मैं कोई तंत्र-मंत्र नहीं जानता और न ही किसी को अंधविश्वास की राह दिखाता हूं। पर वह महिला अड़ी रही। दादू ने उस महिला के परिवार की सारी परिस्थितियां जानीं और एक कागज पर कुछ लिखकर उसे दे दिया और कहा, इसका ताबीज बनाकर गले में पहनना तथा मंत्र की सिद्धि के लिए पति की खूब सेवा तथा सहायता करना। महिला चली गई। उसके बाद से वह अपने पति की खूब सेवा करने लगी। पति का प्रेम उस पर पहले से भी ज्यादा बढ़ गया। एक दिन पत्नी से रहा नहीं गया। उसने उस ताबीज की बात अपने पति से कर ही दी। पति ने उसे खोलकर देखना चाहा। पत्नी बोली, पहले संत को दक्षिणा देंगे, तब ताबीज गले से उतारूंगी। वे दोनों दादू के पास पहुंचे। दादू उन्हें देखकर सोचने लगे कि इस तरह ताबीजों और मंत्रों के अंधविश्वास में फंसकर तो लोग साधना की उपेक्षा करने लगेंगे। दादू ने कहा, देखो भाई। इसमें कोई विशेष कुछ भी नहीं लिखा था। मैंने तुमसे जो कहा था, वही बात उस पुर्जे में लिखी हुई है। संत ने ताबीज खोलकर कागज का पुर्जा पढ़कर सुना दिया। उसमें लिखा था- <u>सेवा और साधना से तो ईश्वर भी वश में हो जाता है फिर मनुष्य की बात ही क्या है</u>। पत्नी समझ गई कि सारा चमत्कार उन वचनों का था।

८८९) सहनशीलता- एक दरोगा संत दादू की ईश्वर भक्ति और सिद्धि से बहुत प्रभावित था। उन्हें गुरु मानने की इच्छा से वह उनकी खोज में निकल पड़ा। लगभग आधा जंगल पार करने के बाद दरोगा को केवल धोती पहने एक साधारण-सा व्यक्ति दिखाई दिया। वह उसके पास जाकर बोला, क्यों बे तुझे मालूम है कि संत दादू का आश्रम कहाँ है? वह व्यक्ति दरोगा की बात अनसुनी कर के अपना काम करता रहा। भला दरोगा को यह सब कैसे सहन होता ? लोग तो उसके नाम से ही थर-थर काँपते थे उसने आव देखा न ताव लगा गरीब की धुनाई करने। इस पर भी जब वह व्यक्ति मौन धारण किए अपना काम करता ही रहा तो दरोगा ने आग बबूला होते हुए एक ठोकर मारी और आगे बढ़ गया। थोड़ा आगे जाने पर दरोगा को एक और आदमी मिला। दरोगा ने उसे भी रोक कर पूछा, क्या तुम्हें मालूम हैं संत दादू कहाँ रहते है ? उन्हें भला कौन नहीं जानता, वे तो उधर ही रहते हैं जिधर से आप आ रहे हैं। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर उनका आश्रम है। मैं भी उनके दर्शन के लिए ही जा रहा था। आप मेरे साथ ही चलिए। वह व्यक्ति बोला। दरोगा मन ही मन प्रसन्न होते हुए साथ चल दिया। राहगीर जिस व्यक्ति के पास दरोगा को ले गया उसे देखकर वह लज्जित हो उठा क्यों संत दादू वही व्यक्ति थे जिसको दरोगा ने मामूली आदमी समझकर अपमानित किया था। वह दादू के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। बोला, महात्मन् मुझे क्षमा कर दीजिए, मुझसे अनजाने में अपराध हो गया। दरोगा की बात सुनकर संत दादू हँसते हुए बोले, भाई, इसमें बुरा मानने की क्या बात ? कोई मिट्टी का एक घड़ा भी खरीदता है तो ठोक बजा कर देख लेता है। फिर तुम तो मुझे गुरु बनाने आए थे। संत दादू की सहिष्णुता के आगे दरोगा नतमस्तक हो गया।

८९०) एक चमत्कारी घटना- दादू दयाल एक बड़े संत हुए हैं। उनकी वाणी ने अनगिनत लोगों को प्रेरणा दी है, आज भी देती है। दादू दयाल संत होने से पहले दुकान करते थें उसीसे उनकी गुजर-बसर होती थी। एक बार एक ऐसी घटना हुई कि उनका जीवन ही बदल गया। एक दिन वह अपनी दुकान पर बैठै हिसाब कर रहे थे। बाहर बड़े जोर की वर्षा हो रही

थी, लेकिन वह हिसाब में इतने लीन थे कि उन्हें इसका पता भी नहीं चल रहा था। वर्षा होती रही। संयोग से एक साधु आ गये और वह उनकी दुकान के सामने पानी में भीगते खड़े हो गये। उस समय बाहर मूसलाधार पानी बरस रहा था। दादू दयाल अपने काम में खोये रहे। जब हिसाब पूरा हो गया तो उन्होंने निगाह उठाकर देखा। वर्षा में साधु को खड़ा देखकर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। वह तत्काल उठकर बाहर आये और खेद प्रकट करते हुए उन्होंने साधु से क्षमा मांगी। पूछा, महाराज, आप कब से खड़े थे ? साधु ने कहा, मुझे आये तो बहुत देर नहीं हुई, लेकिन। उन्हें रुकते देखकर दादू दयाल ने जिज्ञासा से कहा, महाराज, लेकिन क्या ? साधु ने कहा, मेरी तो कोई बात नहीं है। लेकिन तुम्हारे दरवाजे पर एक और खड़ा है। कौन ? दादू दयाल ने पूछा। ईश्वर। साधु ने गद्‌गद् होकर कहा, वह न जाने कब से खड़ा है और तुम्हें पुकार रहा है। अब भी वह तुम्हारी राह देख रहा है। इतना सुनते ही दादू दयाल का शरीर कांप उठा। उन्होंने अनुभव किया कि साधु जो कह रहे थे, वह ठीक था। उस दिन से उनकी जीवन-धारा नई दिशा में मुड़ गई।

८९१) पिता का कर्त्तव्य- एक बार संत तिरुवल्लुवर एक नगर में आए। वे अपने प्रवचनों के माध्यम से लोगों के जीवन की समस्याओं का समाधान सुझाते थे। एक दिन प्रवचन के पश्चात एक सेठ ने हाथ जोड़कर निराशा के साथ कहा, गुरुवर। मैंने पाई-पाई जोड़कर अपने इकलौते पुत्र के लिए अथाह संपत्ति एकत्र की मगर वह इस गाढ़े पसीने की कमाई को बड़ी ही बेदर्दी के साथ कुव्यसनों में लुटा रहा है। मेरे साथ भगवन यह अन्याय क्यों कर रहा है ?

संत ने मुस्करा कर कहा, सेठजी। तुम्हारे पिता ने तुम्हारे लिए कितनी संपत्ति छोड़ी थी ? सेठजी बोले- वे बहुत ही गरीब थे, कुछ भी नहीं छोड़ा था। संत ने कहा- इसके बावजूद तुम इतने धनवान हो, जबकि इतना धन छोड़ने के बावजूद तुम यह समझ गए हो कि तुम्हारा बेटा, तुम्हारे बाद गरीबी में दिन काटेगा। सेठ ने डबडबाई आंखों से कहा, आप सच कह रहे हैं। परन्तु मुझसे गलती कहां हुई? संत ने कहा, तुम यह समझकर धन कमाने में लगे रहे कि अपनी संतान के लिए दौलत का अंबार लगा देना ही एक पिता का कर्त्तव्य है। इस चक्कर में तुमने अपने बेटे की पढ़ाई और अन्य संस्कारों के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया। संत ने आगे कहा, पिता का पुत्र के प्रति प्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह उसे पहली पंक्ति में बैठने योग्य बना दे। बाकी तो सब कुछ वह अपनी योग्यता के बलबूते पर हासिल कर लेगा। संत की वाणी से सेठजी की आंखे खुल गई और उसने अपने बेटे को सही रास्ते पर लाने का निर्णय किया।

८९२) संत तिरुवल्लूवर की शांतिप्रियता- दक्षिण भारत में एक बहुत बड़े संत हैं जिनका नाम था- संत तिरुवल्लूवर। उनकी शांतिप्रियता के किस्से सर्वत्र सुने जाते थे। एक दिन एक आदमी उनके पास उनकी परीक्षा लेने के लिए गया कि उन्हें क्रोध आता है या नहीं ?

संतजी कपड़ा बेचा करते थे। कपडे से जो आय होती थी, उसी से गुजारा कर लेते थे।

वही आदमी उनके कपड़े का मूल्य पूछने लगा। उन्होंने कहा, एक रुपया। उस आदमी ने उस कपड़े के दो टुकड़े कर दिये और एक का दाम पूछा। उन्होंने कहा, ५० पैसे। उस आदमी ने फिर एक टुकड़ा हाथ में लेकर दो टुकड़े कर दिये और उसका दाम पूछा। उन्होंने कहा, २५ पैसे। आगे इसी तरह उस आदमी ने उन कपड़ों को तार-तार कर दिया और फिर दाम पूछा। संत तिरुवल्लूवर उसी शांति से बोले, १ पैसा।

संत का उत्तर सुनकर वह आदमी उनके चरणों पर गिर गया और अपने किये पर क्षमा माँगने लगा। संत जी ने कहा, इसमें क्षमा की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने तो अपने कपड़े का दाम बताया था। यह तो मेरा रोज का काम है।

८९३) संत की उदारता - संत तिरुवल्लुवर अपनी सज्जनता व सद्व्यवहार के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। गांव में उनकी कुटिया के नजदीक एक परिवार रहता था जिसमें एक सुंदर युवती भी थी। एक दिन उस युवती के माता-पिता को पता चला कि उनकी अविवाहित पुत्री गर्भवती है। युवती के माता पिता बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने अपनी पुत्री से उसके होनेवाले बच्चे के पिता का नाम पूछा। युवती ने डर के मारे अपने प्रेमी का नाम नहीं बताया। उसने संत तिरुवल्लुवर को अपने होने वाले बच्चे का पिता बता दिया। उसने सोचा था कि संत बहुत प्रसिद्ध है, इसलिए उनका नाम लेने पर उसके माता-पिता चुप हो जाएंगे, इससे न तो ये बात गांव के लोगों में फैलेगी न ही उसके प्रेमी पर कोई आंच आएगी। परंतु हुआ इसके विपरीत। युवती के माता-पिता ने संत को काफी भला-बुरा कहा। लेकिन संत ने इतना ही कहा- जैसी प्रभु की इच्छा। उस दिन से गांव के लोग संत को हेय दृष्टि से देखने लगे। कुछ दिनों के बाद युवती ने एक बालक को जन्म दिया। गांव के लोग उस बालक को संत की कुटिया के बाहर छोड़ गए। संत ने बिना लोगों की परवाह किए उसका पालन-पोषण प्रारंभ कर दिया। वह उसकी अच्छी तरह देखभाल करते और खूब दुलार करते। वह युवती आते-जाते यह सब देखती रहती। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक दिन बच्चे की रोने की आवाज सुनकर मां की ममता जाग उठी। युवती ने सभी गांव वालों सहित अपने माता-पिता को सब कुछ सच-सच कह दिया कि उस बालक का वास्तविक पिता कौन है। युवती के माता-पिता और गांव के अन्य लोग शर्मिंदा होकर संत के पास गए और उनसे अपने कटु वचनों और दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगी। युवती ने भी संत से अपना बालक वापस करने की प्रार्थना की। संत यह सब देखकर मुस्कुराए और इतना ही बोले- जैसी प्रभु की इच्छा। उन्होंने युवती को उसका बच्चा लौटा दिया। सभी उनकी सहनशीलता के आगे नतमस्तक हो गए।

८९४) जीवन को पवित्र बनाओ- एक बादशाह गुरु हरारायजी के दर्शन के लिए उनके निवास स्थान पर पहुंचा। उसने सत्संग के बाद गुरुजी से पूछा, महाराज हमारी धरती पर अनेक पैगंबर हुए हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि इनमें से किस पैगंबर पर विश्वास करने से हमारा कल्याण हो सकता है ? किस पैगंबर की बातें मानने से हमें ईश्वर की कृपा प्राप्त हो सकती है।

गुरु हरराय जी ने उत्तर दिया, ईश्वर किसी के प्रति श्रद्धा रखने से कैसे मिल सकता है ? ईश्वर तो सब जगह विद्यमान है। मनुष्य किसी भी धर्म या मत, मतांतर में विश्वास करता हुआ यदि अपने कर्म ठीक रखेगा, सद्कार्य करता रहेगा, सेवा-परोपकार के कार्यों में जुटा रहेगा तो उस पर ईश्वर स्वत: कृपा करेंगे। वह मनुष्य स्वत: सुखी हो जाएगा। बादशाह गुरुजी की बेबाक बातों से प्रभावित होकर उनके समक्ष नतमस्तक हो गया।

८९५) सच्चा ज्ञान- संत नान इन एक प्रसिद्ध महात्मा थे। उनके पास एक विद्वान धर्म-ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा लेकर पहुंचे। नान इन ने उन्हें आदर से बिठाया और काफी देर तक वे उनसे कछ नीं बोले। जब चाय आई तो वे चाय केतली से प्याली में डालने लगे। उसे तब तक डालते रहे जब तक चाय प्याले से बाहर नहीं बहने लगी। यह देख विद्वान ने कहा- यह क्या कर रहे हैं ? संत नान इन ने कहा- यही बात मैं आपसे कहना चाहता था। आपमें विद्वता और बाहरी ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है। अगर मैं धर्म के बारे में कुछ कहूंगा तो आपके भीतर वह नहीं जाएगा। आपके लिए व्यर्थ होगा, जैसे प्याले से बाहर चाय व्यर्थ बह रही है। <u>सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए भीतर से खाली होना पड़ेगा। पूर्व प्राप्त ज्ञान के अहंकार से जब तक मुक्त नही होंगे तब तक सच्चा ज्ञान हासिल ही नहीं हो सकता</u>।

८९६) चोर कौन- रात का समय था। विश्व गुरु बसेश्वर सोए हुए थे। एक चोर उनकी पत्नी नीला के गहने उतारने लगा। नीला की नींद खुल गई। वह जोर से चिल्लाने लगी। चोर भागा तो बसेश्वर जाग गए।

उन्होंने पूछा- क्या हुआ नीला। नीला ने बताया कि एक चोर मेरे गहने उतार रहा था। इतने में पहरेदारों ने चोर को पकड़

लिया, बसेश्वर ने नीला से कहा- नीला, मैंने समझा था कि तुम मेरी सहचारिणी और आदर्श पत्नी हो, परंतु तुमने निष्ठा को नहीं निभाया। तुने सारे गहने उतारकर उसे क्यों नहीं दे दिए। नीला पति बसेश्वर का मुंह ताकने लगी। बसेश्वर ने कहा- चोर कौन है ? चोरी करने वाला नहीं। बल्कि आवश्यकता से अधिक रखने वाला ही चोर है।

८९७) सही चिंतन- प्रसिद्ध संत मंसूर अपने साथियों के साथ एक बार कहीं जा रहे थे। अचानक उनके पांव में एक पत्थर से ठोकर लग गई। पांव से खून बहने लगा। उन्होंने पट्टी बांध ली और ईश्वर को हाथ उठाकर धन्यवाद दिया। साथियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कष्ट मिलने पर भी आप धन्यवाद दे रहे हैं। आखिर ऐसा क्यों ?

मसूर ने कहा- ईश्वर सदा अपने भक्तों की भलाई ही करता है। मुझे किसी कर्मफल से बहुत बड़ी चोट लगनेवाली थी। उसे इस छोटी-सी चोट के रूप में बदलकर सचमुच उसने मुझ पर उपकार ही तो किया है। इस मेहरबानी के लिए उसे धन्यवाद तो कहना ही है। अगर चिंतन सही है तो मनुष्य मुसीबतों में भी प्रसन्नता के आधार ढूंढ सकता है।

८९८) झूठी प्रीत- गुजरात के प्रसिद्ध औलिया संत अखा, अपने पूर्व जीवन में स्वर्णकार का धंधा करते थे। अपने जीवन में उन्होंने कभी भी किसी के सोने में बेईमानी नहीं की। एक सद्गृहणी के साथ अखा का बहन जैसा स्नेह था। उसने अखा को तीन सौ रुपये देकर एक सुंदर माला बनाने को कहा। अखा ने आत्मीयता से उसमें सौ रुपये का सोना अपनी ओर से भी मिला दिया और सुंदर कंठमाला तैयार कर उसे दे दी। लेकिन माला का वजन अधिक देखकर बहन के मन में वहम घुस गया। सोचा, हो सकता है अखा ने वजन बढ़ाने के लिए कुछ और चीज मिला दी हो।

उसने दूसरे सुनार से माला की परीक्षा करवाई। उसने परीक्षा करके बताया कि सोना तो बिल्कुल शुद्ध है, कितने में बनवाई? बहन ने कहा, मैंने अखा को तीन सौ रुपये दिए थे। सुनार ने हंसकर कहा- बावली। अखा पर भी वहम करती है? इसमें तो चार सौ रुपये का सोना है, और मजदूरी के रुपये अलग। बहन को अपने झूठे वहम पर पश्चाताप हुआ। वह दौड़कर अखा के पास गई और रोते हुए अपनी बात सुनाई। सुनते ही अखा की आंख खुल गई। उसी दिन अखा घर छोड़ जंगल की ओर चला गया। संसार की झूठी प्रीति तोड़कर उसने प्रभु से सच्ची प्रीति लगाई।

८९९) मृत्यु का रहस्य- ऋषि पिप्पलाद के पास कुछ शिष्य आए और बोले। आचार्य, हमें जीवन और मृत्यु के रहस्य समझाने की कृपा करें। पिप्पलाद ने कहां, जीवन के विषय में जानता हूँ। परन्तु मृत्यु के विषय में कुछ भी कैसे बता सकता हूँ, क्योंकि अभी तक मैं मरा नहीं हूँ। तब क्या किया जाए ? उससे जा कर पूछो, जो मर चुका हो, पिप्पलाद ने गंभीरता से कहा। जो मर चुका है, उससे हम कैसे पूछ पाएंगे ? नहीं पूछ पाओगे। परन्तु जो मरा नहीं है, उससे मृत्यु का रहस्य जानना चाहोगे तो सही उत्तर नही मिलेगा, वह कल्पना की उड़ान ही होगी। कुछ देर रुक पिप्पलाद ने कहा, दूसरा विकल्प यह है कि खुद मर कर देखो। हालांकि तब दूसरे तुम्हारे अनुभव को नहीं जान पाएंगे। मृत्यु के रहस्य पर से इसीलिए अब तक पर्दा नही उठा है। असल में जो मृत्यु को जान लेता है वह बताने के लिए उपलब्ध नहीं होता।

९००) कन्या को जगदंबा मानो- आध्यात्मिक विभूति स्वामी करपात्री जी महाराज काशी में निवास कर रहे थे। एक दिन कल्याण के संपादक राधेश्याम खेमका ने उनसे प्रश्न किया, महाराज श्री, जो गृहस्थ साधनहीन हैं, विधिवत पूजा, उपासना नहीं कर सकते, उनके कल्याण का क्या साधन है ? स्वामी जी ने कहा, यदि परिवारजनों में मोह- ममता की जगह भगवद्बुद्धि कर ली जाए, वृद्ध माता को अन्नपूर्ण तथा पिता को भगवान विश्वनाथ का स्वरूप मानकर उनकी सेवा की जाए, तो मान लेना चाहिए कि भगवान की पूजा उपासना हो रही है। कुमारी कन्या को भगवती जगदंबा तथा पुत्रवधू को राधा रानी स्वरूप में देखने वाला स्वत: पूजा-अर्चना का पुण्य अर्जित कर लेता है। स्वामी जी ने कुछ क्षण रुककर कहा, जब पत्थर

की मूर्तियों में हम भगवान का स्वरूप देख सकते हैं, तो सजल-सजीव स्नेहीजनों में भगवद्भाव हो जाने पर भगवान की पूजा क्यों नहीं हो सकती ? श्री खेमका जी स्वामी की पूजा-अर्चना की यह अनूठी व्याख्या सुनकर उनके समक्ष नतमस्तक हो गए।

९०१) सच्चा धर्म- स्वामी श्रद्धानंद ने गुरुकुल में एक विद्यालय की स्थापना की। वहां वेदांत की शिक्षा दी जाती थी। एक बार रुड़की के अंग्रेज पादरी ने स्वामीजी को पत्र लिखकर गुरुकुल में आकर हिंदी सीखने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने लिखा कि मैं अपने धर्म के प्रचार के लिए हिंदी सीखना चाहता हूं, मगर मैं विश्वास दिलाता हूं कि गुरुकुल में रहते हुए मैं अपने धर्म का जरा भी प्रचार नहीं करूंगा। कुछ दिनों बाद ही अंग्रेज पादरी को स्वामीजी का जवाब मिला। उन्होंने लिखा था- गुरुकुल में आपका स्वागत है, आप यहां हमारे आदरणीय अतिथि के रूप में रहेंगे। परंतु आपको यह भी वचन देना होगा कि आप गुरुकुल में ईसाई धर्म का प्रचार भी करेंगे, ताकि हमारे छात्रों को ईसा के जीवन के बारे में बहुमूल्य जानकारियां मिल सकें। सच्चा धर्म आपस में बैर नहीं, बल्कि प्रेम करना ही सिखाता है।

९०२) संदिपनी श्रेष्ठ गुरु-भक्त था। गुरु की आज्ञा का वह तुरंत पालन करता। गुरु की आज्ञा के औचित्य का ख्याल भी कभी उसके मन में नहीं आता। एक बार संदिपनी के गुरु को उसकी गुरु-भक्ति की परीक्षा लेने का ख्याल आया। एक दिन जब अन्य सभी शिष्य बाहर से लौट रहे थे, गुरु ने संदिपनी से कहा कि वह गहरे कुएं में कूद लगाए। संदिपनी ने तुरंत उनकी आज्ञा का पालन किया। गुरु ने कुएं में घासफूस भरी थी, सो उसे कुछ नहीं हुआ।

अध्ययन पूरा होने पर सभी शिष्य अपने घर लौटे। सब आश्रम छोड़ने से पूर्व गुरु से मिलने के लिए इकट्ठा हुए। गुरु ने सबको आशीर्वाद स्वरूप कुछ न कुछ चीज दी। संदिपनी जब उनके सामने आए तो उन्होंने कहा, मैं तुझे क्या दूं। तेरी श्रेष्ठ गुरु-भक्ति से बढ़कर मेरे पास कुछ नहीं है। मैं तुझे आशीर्वाद देता हूं कि त्रिलोकनाथ श्रीकृष्ण तेरे शिष्य बनेंगे।

उनकी वाणी के अनुसार आगे चलकर भगवान श्रीकृष्ण ने गुरु संदिपनी से ज्ञानार्जन किया।

९०३) तीन आज्ञाएं- राजा गोपीचंद को गुरु गोरखनाथ के उपदेशों को सुनकर वैराग्य हो गया। वे अपनी मां से संन्यास के लिए आज्ञा मांगने गए। मां ने कहा- यदि तेरा मन करता है तो तू कुछ दिन गुरु के साथ रह ले। मन को शांति मिले तो संन्यासी हो जाना।

गोपीचंद राज्य छोड़कर गुरु के साथ चल पड़े। प्रभु भजन में आनंद मिला, संन्यासी हो गए। देश-देश घूमते हुए एक दिन वह अपने ही महल में भिक्षा पात्र लेकर पहुंचे और अलख निरंजन की आवाज लगाई। मां बाहर आई तो गोपीचंद ने भिक्षा का पात्र आगे लाकर कहा- मां, मुझे भिक्षा दे। मां ने भिक्षा पात्र में चावल के तीन दाने डाल दिए। गोपीचंद ने आश्चर्य से इसका अर्थ पूछा तो मां बोली- मैं तेरी मां हूं, इन तीन दानों का अर्थ मेरी तीन आज्ञाएं हैं, जिनका तुम पालन करना। पहली आज्ञा यह कि जैसे सुरक्षित तुम घर में रहते थे, ऐसे ही सुरक्षित बाहर भी रहना है। जितने मन से तुम महल में भोजन करते थे, उसी तरह जंगल में भी खाना और जैसी गहरी नींद यहां सोते थे, ऐसे ही जंगल में भी सोना।

गोपीचंद इन आज्ञाओं का अर्थ सीधे-सीधे नहीं समझे। बोले- मां, अब मैं राजा नहीं, सुरक्षा कैसे होगी ? मां ने कहा- इसके लिए सिपाही की जरूरत नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के शत्रु सदा तेरे आसपास रहते हैं। उनसे बचने के लिए सत्संग, सत् विचार और सत् आहार व सत् आचार रखना होगा। गोपीचंद ने कहा- लेकिन जंगल में मेरे लिए सुस्वादु भोजन कौन बनाएगा ? मां ने कहा- जब तुम सारे दिन परिश्रम करोगे, योगाभ्यास करोगे, तो तुम्हारी भूख चमकेगी, तब तुम जो भी रूखा-सूखा खाओगे स्वादिष्ट लगेगा। स्वाद पकवानों में नहीं भूख में होता है। और जब तेरे विचार अच्छे होंगे, योगाभ्यास से शरीर थक जाएगा, ध्यान से मन एकाग्र होगा, तो तुझे जंगल में भी गहरी नींद आएगी।

नींद तो थकावट के कारण आती है, सुख-सुविधाओं से नहीं।

९०४) सत्य का प्रयोग- ऋषि कौशिक ने जीवन भर सत्य बोलने का संकल्प ले रखा था। एक दिन वह नदी तट पर उपासना कर रहे थे। तभी एक स्त्री और एक पुरुष हांफते हुए पहुंचे और निकट की झाड़ियों में छिप गए। ऋषि समझ गए कि वे दोनों किसी संकट में फंसे हैं। थोड़ी देर बाद तलवार लिए कुछ लोग आए। उन्होंने पूछा, महाराज सच-सच बताओ जो स्त्री-पुरुष इधर आए थे वे कहां हैं ? ऋषि ने उंगली से झाड़ी की ओर इशारा कर दिया। कुछ देर बाद कराहने की आवाज आई। ऋषि समझ गए कि उन लोगों ने स्त्री-पुरुष को मार डाला है। अगले दिन ऋषि की आयु पूरी हो गई। उन्हें नरक में ले जाया गया। ऋषि ने धर्मराज से पूछा, मैंने हमेशा सच बोला, फिर भी मुझे नरक में क्यों भेजा ? धर्मराज ने समझाया, आपके एक इशारे से दो निर्दोष व्यक्तियों को प्राण गंवाने पड़े। आपको सच बोलते समय इतना ज्ञान तो होना चाहिए था कि इस सच से किसी प्राणी का जीवन तो संकट में नहीं पड़ेगा। बिना विचारे सच बोलने के कारण ही आपको नरक में आना पड़ा।

९०५) भिखारी कौन- वैशेषिक दर्शन के सूत्रधार ऋषि कणाद जंगल में रहते थे। वे कंद-मूल खाते या फिर अन्नकण से जीवन निर्वाह करने के कारण ही उनका नाम कणाद पड़ गया था। एक बार किसी ने राजा से कहा, आपके राज्य में ऐसा भी एक भिखारी है जो खेतों से अन्न बीनकर अपनी उदरपूर्ति करता है। यह सुनकर राजा चौंका। राजा ने तत्काल मंत्री को आदेश दिया, भोजन लेकर जाओ और भरपेट खिलाकर उसे तृप्त करो।

मंत्री ऋषि कणाद के पास पहुंचा। उसने कणाद से भोजन करने का आग्रह किया, पर वह निष्फल गया। जब राजा को पता चला तो वह दुविधा में पड़ गया कि आखिर यह कैसा भिखारी है, जो अत्यंत आग्रह करने पर भी कुछ स्वीकार नहीं करता। रानी के कानों में भी यह बात पहुंची। किसी ने उन्हें बताया कि कणाद अलौकिक प्रभाव के सिद्ध पुरुष हैं और सोना बनाने की कला भी जानते हैं।

स्वर्ण सिद्धि के प्रसंग ने राजा को व्याकुल बना दिया। वह उनके पास पहुंचा। कणाद को प्रणाम कर राजा ने कहा, ऋषिवर। मैंने मंत्री को आपकी सेवा में भेजा था। आपने भोजन अस्वीकार क्यों किया ? कितना अच्छा होता, आप अपने इस दास पर अनुग्रह करते। ऋषि कणाद मुस्कराते हुए खड़े रहे। कुछ क्षणों बाद राजा ने पुन: कहा, ऋषिवर। मैंने सुना है आपके पास स्वर्ण विद्या है। कितना अच्छा हो उसे प्रदान कर आप मुझे अनुग्रहीत करें। स्वर्ण की तो राज्य संचालन के लिए आवश्यकता होती है। फकीरों का उससे क्या प्रयोजन। इस पर ऋषि कणाद बोले, राजन। बताओ हम दोनों में भिखारी कौन है ? भीख मांगने मैं आपके पास गया या आप भीख मांगने मेरे पास आए। राजा यह सुनकर मौन हो गया। ऋषि कणाद ने फिर कहा, जिसके पास किसी चीज का अभाव होता है वह भिखारी नहीं होता। भिखारी वह होता है जो सब कुछ होने के बावजूद असंतुष्ट रहता है। इसलिए संतोष धारण करो। धन से आज तक किसी की तृप्ति नहीं हुई। धन सुख का नहीं, पापों और अनर्थों का मूल है। राजा को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने ऋषि से क्षमा मांगी।

९०६) मुक्ति मार्ग- एक मनुष्य संत मेकेरियस के पास आकर विनयपूर्वक बोला- महाराज, मुझे मुक्ति का मार्ग बताएं। संत बोले-तुम कब्रिस्तान जाओ और सब शवों को गाली देकर आओ। उस आदमी ने वैसा ही किया। दूसरे दिन वह फिर संत के पास पहुंचा। संत ने फिर कहा- कब्रिस्तान में फिर से जाओ और उन कब्रों की स्तुति कर आओ। उस आदमी ने इस आज्ञा का भी पालन कियां जब वह वापस संत के पास लौटा तो संत ने उससे पूछा- किसी कब्र ने तेरी गाली या स्तुति के जवाब में तुमसे कुछ कहा ? आदमी बोला कि किसी ने कुछ नहीं कहा। इस पर संत ने समझाया- तू भी मरणशील हैं, तुम्हें भी कब्रों की तरह मान-अपमान से निर्लिप्त रहना चाहिए। मुक्ति का मार्ग यही है।

९०७) जिसको कुछ न चाहिए सोई शहंशाह- मदर टेरेसा को सेवाभावी नि:स्वार्थ कार्यों के लिये भारत तथा विश्व के कई देशों ने, संस्थाओं ने बड़ी-बड़ी धन राशियां दीं, पुरस्कार व सम्मान दिये। जब पत्रकारों ने पूछा कि ये सम्मान तथा पुरस्कार पाकर आपको कैसा लगता है तो मां ने कहा था, ये पुरस्कार मुझे नहीं मिलते, मैं तो एक तरह से माध्यम हूं।

वास्तव में दुखी, पीड़ित, अनाथ, असहाय लोगों को ये पुरस्कार और सम्मान मिलते हैं। दुनिया उन्हें स्वीकारने लगी है और यह महसूस करने लगी है कि उन्हें सम्मान से जीवित रहने का हक है। इन लोगों के प्रति व्यक्ति, समाज, देश संस्थाओं और सरकारों को अपने कर्त्तव्यों का अहसास होने लगा है, यह बड़ी बात है।

९०८) सांसारिक बंधन- पुराने जमाने में आजर कैवां नामक एक मशहूर संत हुए थे। एक बार एक आदमी उनके पास आया और बोला- महात्मन। मैंने देख लिया है कि संसार निस्सार है। इसलिए इसे छोड़कर फकीर बन जाने का विचार किया है, लेकिन उचित माला, कमंडल आसन और गुदड़ी आदि वस्तुएं नहीं मिल पाई हैं। महात्मा आजर कैवां ने कहा, भाई। तुम संसार को छोड़कर भी संसार की वस्तुएं इकट्ठी करना चाहते हो। फकीरी सामान जमा कराने में नहीं, छोड़ने में होती है। तुम अभी संन्यास के योग्य नहीं हो। जाओ, घर-गृहस्थी में रहकर अपने कर्त्तव्य के पालन के साथ भगवान का भजन करो। यही तुम्हारे लिए फकीरी और दरवेशी है। उनकी बात सुनकर फकीरी की इच्छा से आए व्यक्ति की आंखें खुल गईं।

९०९) धूल पर धूल- रांका नाम का एक व्यक्ति भगवान् का बड़ा ही भक्त व निर्लोभी और सदाचारी था। उसके समान ही उसकी पत्नी बांका भी थी। दोनों का परस्पर तालमेल बहुत अच्छा चलता था। परस्पर एक दूसरे की इच्छा की पूर्ति बड़े स्नेह से करते थे। लोभ-लालच उनको छू भी नहीं गया था। एक दिन दोनों लकड़ी लाने के लिए जंगल को जा रहे थे। पति आगे-आगे चल रहा था और पत्नी पीछे-पीछे आ रही थी। राह चलते हुए रांका को किसी चीज की मन्द सी ठोकर लगी। रांका ने नीचे देखा तो आश्चर्य हुआ। सोने की मोहरों से भरी एक खुली थैली मार्ग में पड़ी थी। रांका ने जल्दी-जल्दी इधर-उधर से धूल-मिट्टी एकत्रित की और उसको ढकने के लिए उस पर डाल दिया। तभी बांका उसके समीप तक पहुच गई थी। पति से पूछने लगी- यह क्या कर रहे हो ? बस, यों ही। रांका ने बात टालनी चाही। बस यूं ही ? क्या मतलब है। पत्नी ने फिर जानना चाहा। मतलब तो कुछ भी नहीं। तो फिर बताते क्यों नहीं? रांका को अब बताना ही पड़ा। बोला- सोने की मोहरों की थैली थी। मैंने सोचा कही इनको देखकर तुम्हारा मन विचलित न हो जाये, इसलिए उनको धूल से ढंक रहा था। बांका हंसकर बोली- वाह, आप भी खूब हैं। धूप पर धूल डालने से क्या लाभ ? सोने में और धूल में भेद ही क्या है जो आप इन मोहरों को ढक रहे हैं ? आपका मन नहीं ललचा तो फिर मेरा मन किस प्रकार ललचा सकता था, आपने यह क्यों नहीं सोचा ?

बात समाप्त हो गई और दोनों उसी भाव से अपने काम के लिए आगे बढ़ गये और वन में जाकर लकड़ी काटी फिर लौटते हुए उसी मार्ग से आये। गठरी जिस अवस्था में छोड़कर गये थे, वैसी ही पड़ी थी। रांका जी ने देखा आगे चल दिये। पीछे से बांका आई, उन्होंने भी देखा और आगे बढ़ गई। दोनों सुख-शान्ति से अपने घर पहुंचकर अपने कार्य में प्रवृत्त हो गये।

९१०) रुढ़िवादिता पर प्रहार- शंकरदेव जन्म से कायस्थ थे। उनका जन्म आसाम के नौ गांव जिले में हुआ था। उन्होंने सन्त और ब्राह्मण वाली जीवनचर्या अपनायी। एक ओर संस्कृत का अभ्यास किया तो दूसरी ओर श्रीमद्भागवत को हृदयंगम किया। धर्म प्रचार को लक्ष्य बना वे युवावस्था से ही पदयात्रा पर निकल पड़े। शंकर देव भागवत के माध्यम से धर्म के नाम पर हो रहे आडम्बरों पर प्रहार करते तथा सामाजिक विकृतियों को दूर करने का प्रयास करते। उन्हें पण्डे-पुजारियों का भयंकर विरोध सहना पड़ा। अन्यों की कथाएं दक्षिणा बटोरने के लिए होती थीं वहीं शंकर नि:स्वार्थ भाव से गांव-गांव जाकर कथा सुनाते। प्रारम्भ में तो कायस्थ द्वारा भागवत पारायण का विरोध हुआ किन्तु सन्त वृत्ति के आगे टिक

नहीं पाया। उन्होंने कष्ट सहकर भक्ति को बंद कोठरी तथा गोमुखी थैली से निकालकर जन-जन तक पहुंचाया।

९११) श्रीदेवमुरारीजी- एकदिन श्रीदेवमुरारीजी और मलूकदासजी आपका दर्शन करने आये। ये दोनों ही बड़े प्रसिद्ध सिद्ध थे। श्रीदेवमुरारीजीके सम्बन्धमें कथा आती है कि एकबार ये कहीं विचरते हुए जा रहे थे तो देखे कि एक जगह सरोवरकी खुदाई हो रही है और उसमें एक वैष्णव-सन्त भी मिट्टी ढोने लगे हैं। वहाँके मालिकने श्रीदेवमुरारीजीसे भी मिट्टी निकालनेके लिए कहा तो ये एक जगह बैठकर स्वयं भगवद्ध्यान करने लगे और अपने आप सरोवरकी मिट्टी बाहर निकलने लगी। यह देखकर लोग बड़े ही प्रभावित हुए और चरणोंमें गिरकर धृष्टताके लिए क्षमा-प्रार्थना कीये। आपने उनको संत-सेवाका उपदेश दिया।

९१२) श्रीमलूकदासजी- इन्हीं श्रीदेवमुरारीजीके शिष्य थे मलूकदासजी बाल्यावस्थामें बड़े उद्धत थे। सन्त-महात्माओंसे भी झगड़ जाया करते थे। एकदिन एक सन्तसे विवाद कर बैठे। विषय था भक्ति और कर्म। सन्त कहते थे कि अनन्याश्रयीका समस्त योगक्षेम भगवान वहन करते हैं।

ये कहते थे कि बिना कर्म किये कुछ होनेवाला नहीं है। भगवानके भरोसे बैठे रहेंगे तो भगवान मुंहमें ग्रास नहीं देंगे। सन्तने जोर दिया कि नहीं, अनन्याश्रित होने पर भगवान मुंहमें ग्रास भी देते हैं, नहीं खाने पर जबर्दस्ती भी खिलाते हैं। फिर तो ये परीक्षार्थ घोर जङ्गलमें जाकर एक वृक्ष पर बैठ गये। भूख लगी, प्यास लगी, परन्तु नीचे नहीं उतरे। रात्रिमें डाकुओंके एक दलने उसी वृक्षके नीचे आकर लूटके धनका बँटवारा किया। तत्पश्चात् उन्हें भोजनकी तलाश हुई। देखा, तो वृक्षमूलके पास एक झोला पड़ा था और उसमें रखे थे बेसनी लड्डू। एक डाकूने लपककर लड्डू हाथमें लिया और ज्योंही खानेको उद्यत हुआ कि सरदारने डांटा-खबरदार। हो सकता है, कि हम लोगोंका किसीको पता लग गया हो और विष मिश्रित पदार्थ यहाँ रख गया हो, जिसमें हम सब खाकर मर जायँ और सब धनमाल उसके हाथ लग जाय। (वस्तु-तस्तु वह झोला एक यात्रीका था, जिसे वह जाते समय भूल गया था।) अत: पहले पता लगाओ-आस-पास कोई छिपा तो नहीं है। डाकुओंने अपनी बड़ी बत्ती जलाकर देखा तो वृक्ष पर ये दिखाई पड़े। फिर क्या था- उन सभीने इन्हें उतरनेको ललकारा, परन्तु ये नहीं उतरे। जब उन्होंने उस वृक्ष पर चढ़कर गिरा देनेकी धमकी दी। तब ये डरके मारे उतर आये। सरदारने गरजकर कहा- सब लड्डू इसीको खिलाओ। इसने ही यह षड्यन्त्र रचा है। परन्तु ये खानेको तैयार नहीं हो रहे थे, तब डाकुओंने बन्दूकसे दाग देनेका भय दिया। तब तो इन्हें विवश होकर सब लड्डू खाने पड़े। सन्तकी बात याद आई- अनन्या।

उसी दिनसे ये संसारसे विरक्त होकर ईश्वर पर पूर्ण निर्भर रहते हुए अजगर वृत्तिसे जीवन-यापन करने लगे। इन्हींका यह प्रसिद्ध होता दोहा है।

एकबार प्रयाग कुम्भके अवसर पर श्रीदेवमुरारीदासजीने सम्पूर्ण भेषका भण्डारा देनेका निश्चय किया। उस समय मलूकदासजी प्रयागसे २० कोस दूर कड़ा ग्राममें रहते थे। जब उन्हें श्रीगुरुजीके सत्संकल्पकी जानकारी हुई तो, इच्छा हुई कि इस अवसर पर यदि मेरे पास भी कुछ द्रव्य होता तो श्रीगुरुजीकी सेवामें भेज देता। ठीक उसी समय एक श्रद्धालु सेठने मुहरोंसे भरा एक तोड़ा भेंट किया। इन्होंने तुरन्त ही उस पर अपना नाम लिखकर श्रीगंगाजीमें डाल दिया और प्रार्थना किया कि इसे श्रीगुरुजी तक पहुँचा दीजिये। उधर श्रीदेवमुरारीजी स्नान कर रहे थे तो वह तोड़ा उनके पांवमें जाकर लगा। उन्होंने बिना देखे ही पांव हटा दिया। परन्तु जब बार-बार लगा तो निकालकर देखे तो उस पर मलूकदासका नाम लिखा है और मुहरोंसे भरा है। फिर तो खूब सन्त-सेवा हुई। ये दोनों महापुरुष श्रीगोस्वामीजीका दर्शन और सत्संग कर बड़े ही आनन्दित हुए। इस प्रकार कुछ दिन श्रीअवध रहकर आप काशी चले आये।

९१३) प्रियादासजी एवं एक सेठ- श्री प्रियादासजी श्रीवृन्दावनमें श्रीभक्तमान की कथा कहते। वृन्दावनके भक्तजन बड़े प्रेमसे सुनते। होली एवं झूलनोत्सवके अवसर पर बाहरके प्रेमी भी आकर कथा सुनते। धीरे-धीरे दिल्लीके कई भक्त वृन्दावन एवं कथा के प्रेमी बन गये। नियमसे प्रतिवर्ष आने लगे। दिल्लीके एक सेठ थे, जो अपने गृह कार्योंमें इतने व्यस्त रहते थे कि वे कभी वृन्दावन न आते। उनके साथी धामके उत्सवों का, कथा सत्सङ्गका वर्णन करते, उसे सुनकर वे निश्चय करके सबसे कहते कि अगली बार होलीमें मैं अवश्य चलूंगा। जब चलने का समय आता तब कहते कि इस समय फुरसत नहीं है, श्रावणमें जरूर चलूंगा। इस तरह कहते-कहते उन्हें कई वर्ष हो गये, पर वे वृन्दावन नहीं आ सके। इस बातको दिल्लीके भक्तोंने श्रीप्रियादासजीसे कहा, तब इन्होंने उसे पत्र लिखा कि तुम वृन्दावन अवश्य आओ। यहाँ तुम्हारे रहने एवं खाने-पीने की सब व्यवस्था हो जायगी। तुम्हें कष्ट न होगा। उसने उत्तर दिया कि- अभी मुझे अवकाश नहीं है। जब अवकाश होगा, तब आऊँगा।

९१४) रोजन गाँव के ब्राह्मणका- रोजन गाँवमें एक ब्राह्मण नित्य बात-बात पर पत्नीसे लड़ते और कहते कि- नहीं मानोगी तो सन्तोबाजीके पास जाकर विरक्त बनकर भजन करूँगा। पत्नी इस धमकीसे परेशान हो गई। एकदिन सन्तोबाजी भिक्षार्थ द्वार पर आये। विप्र पत्नीने अपना दु:ख सुनाया। सन्तोबाजीने कहा- अब जब भी वह ऐसा कहे, तो तुम कहना कि अभी जाओ। मेरे पास आयेगा तो मैं उसे ठीक कर दूँगा। सन्तोबाजीके जाने पर ब्राह्मण आया और भोजनमें विलम्ब देखकर बिगड़ा और वही पुराना अस्त्र चलाया कि समयसे भोजन न मिला तो मैं घर छोड़कर वैरागी बकन जाऊँगा। पत्नीने कहा- देर मत करो, अभी चले जाओ। ब्राह्मण चक्करमें पड़ गया। लोटा-धोती ली, कुर्ता-टोपी पहनी और सन्तोबाजीके पास आकर बोला- कि मुझे विरक्त शिष्य बनालो। सन्तोबाजीने स्वीकार कर लिया, ब्राह्मण वहीं रह गया। सन्तोबाजीके आदेशसे वह जल लाने नदी पर गया, इसी बीच उसके सब कपड़े फाडकर सन्तोबाजीने पेड़ पर लटका दिये। आया तो लँगोटी लगानेकी आज्ञा दी, उसने लँगोटी लगाली। अब उसे बड़ी भूख लगी। सायं को सन्तोबाजीने उसे भी कुछ कन्दमूल दिये और स्वयं खाने लगे। तो वह बोला- ये तो कड़बे लगते हैं, कोई मीठी चीज दीजिये। संतोबाजी ने नीमकी पत्ती तोड़कर दे दी। उसे खाकर बोला- यह तो और ज्यादा कड़बी है, इससे मेरा मुख खराब हो गया। दूसरे दिन भी वही भोजन देखकर रोने लगा कि - घर पर सूखी ही सही, देर-सबेर मिल तो जाती थीं। मैं किस आफतमें पड़ गया। सन्तोबाजी ने कहा- जब वैराग्य के पहले पाठ के पढ़ने में ही तुम रोने लगे, तब पूरा पोथा कैसे पढ़ पाओगे। घरमें शान्तिसे क्यों नहीं रहते हो, बार-बार विरक्त सन्त बनने की धमकी क्यों देते हो, विरक्त बनना सहज नहीं है। अब तो उसने सन्तोबाजी के चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी और प्रतिज्ञा की कि- अब वैरागी बननेकी झूठी धमकी कभी न दूँगा। लँगोटी पहने हुए उसे उसके घर लाये, पत्नीसे पहनने के लिए धोती दिलवाई और कहा- अब इसे घर में रहने दो, अब ये झूठी धमकी न देकर शान्ति से रहेगा। ब्राह्मण सुखसे घरमें रहने लगा। भक्ति विजय-सत्कथामसे वैराग्य कठिन है, पर सन्त-भगवन्तकी कृपासे श्रीरत्नावतीजीको सरल हो गया।

९१५) कान्हा फकीर- कान्हा फकीर लाहौर में निवास करते थे। उनकी सेवा तथा उनके सत्सङ्ग में भक्तिमती तुलसा खत्राणी जाया करती थीं। सर्वत्र दोष देखनेवाले किसीने बादशाहसे शिकायत की। बादशाहने कान्हा फकीरको बुलाकर पूछा- तो इन्होंने उत्तर दिया कि हमारा सभी स्त्रियोंमें मातृभाव है और तुलसा खत्राणी का भी सभी साधु-सन्तोंमें वात्सल्य है, वह पुत्रवत् मानकर सेवा करती है। बादशाहने कहा- तो क्या तुम उसका स्तन पान कर लोगे। उसके स्तनोंमें दूध आ जायगा ? कान्हाने कहा- अवश्य। तुलसा खत्राणी बुलाई गई, तो संकटमें सन्तको देखते ही पुत्रभाव उमड़ा, उसके स्तनोंमें दूध आ गया और कान्हाने स्तन पान कर लिया। बादशाहने दोनोंको नमस्कार करके सादर विदा किया। फिर भी किसी द्वेषीने बादशाहके कान भरे और कान्हा फकीर की शिकायत की। बादशाहने मनमें विचार किया कि- प्रात:काल

कान्हा फकीरका मुख काला करके गधे पर बैठाकर उसे नगरसे बाहर करवा दूंगा। बादशाहके मनकी बात जानकर कान्हा फकीर बड़े सबेरे ही स्वयं अपना मुख काला करके और गधे पर सवार होकरके बादशाहके द्वार पर जा खड़े हुए। यह समाचार सुनकर बादशाह बाहर आया और उसने कहा- आप सिद्ध फकीर हैं, इसमें सन्देह नहीं है, फिर आपने ऐसा क्यों किया ? कान्हाने कहा- सिद्ध होने पर भी स्त्रीसे किञ्चित पवित्र सम्पर्क होने पर आपने मेरा मुख काला करनेका विचार कर लिया। मैंने भी उसको उचित प्रमाणित करनेके लिए स्वयं अपना मुख काला कर लिया। ताकि दूसरे विरक्त सावधान हो जायँ। किसी भी प्रकार का स्त्रीसे सम्पर्क न रखें। जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।

९१६) जुगलदास- एकबार महन्त श्रीयुगलदासजी इसी पावन सरोवर पर कीर्तन-भजन करने लगे और तीन दिन भूखे रहे। तब नन्दगाँवके एक ब्रजवासीने आकर कहा- बाबा। आपको तीन दिन हो गये, आप भिक्षार्थ गाँवमें नहीं गये। यदि आप मनमें यह सोचते हो कि हमारे लिए यहीं भोजन आवे। तो ऐसा नहीं होगा। यहाँ लोग गीत गाते हैं कि - लक्ष्मी-सी जहाँ मालिन डोलें। बन्दन माला बाँधत डोलें। लक्ष्मीको भी यहाँ बिना टहल किये भोजन नहीं मिलता है। यहाँ किसीकी सिद्धाई नहीं चलती है अत: आप किसी ब्रजवासीके यहाँ जाकर प्रसाद पा आओ। यह सुनकर बाबाजी हँस गये और उन्होंने गाँवमें जाकर प्रसाद पाया। श्रीनागाजीको तो भूख-प्यास और निद्रा पर विजय प्राप्त थी पर श्रीठाकुरजीने प्यारवश लाकर दूध दिया और भविष्यमें दुग्ध भिक्षाका मार्ग प्रशस्त किया।

९१७) सौंध्याके पटेल- मालवामें रहने वाले सौंध्या जातिके एक भगवद् भक्त थे। गाँवके पटेल थे। उनके यहाँ उत्सव चल रहा था। बहुतसे साधु-सन्तोंकी भीड़ थी। परीक्षार्थ प्रभु प्रेरित एक साधुने एकान्त में पाकर उसके लड़के के गहने उतार लिए और उसको एक पत्थरके नीचे दबा दिया। पटेलको मालूम पड़ गया तो लड़केके शरीर को एक कोठरीमें बन्दकर दिया। उस दिन अन्तिम बड़ा भण्डारा था। वह साधु भी आकर पङ्क्तमें बैठ गया और पटेलसे बोला- लड़केको बुलाओ। पटेलने कहा- कहीं खेलने गया है। पटेलने साधुवेषके कारण न तो उसे चोर कहा और न हत्यारा माना। साधुने कहा- बिना बालकके आये प्रसाद नहीं पाऊँगा। तब पटेलने ले जाकर कमरेमें दिखाया। भगवानने उसे जीवित कर दिया। प्रसाद पाया और अन्तर्धान हो गये। तब पटेलने जाना कि वे सन्तरूपमें भगवान ही थे। सप्रेम सन्त-सेवाके फलस्वरूप स्वयं भगवान पंगत में आ गये। इसी प्रकार कान्हरदासजीके भण्डारे में भक्त-भगवान सम्मिलित होकर सुख मानते थे। पटेलकी एक सौ वर्ष पुरानी बात है। पं. श्री जगन्नाथप्रसादजी भक्तमाली विमल्यौ फिरै- प्रेमकी उमङ्गमें भरे, अश्रुपूरित नैन, प्रसन्न मन, गद्गद कण्ठ होकर भक्त चरण-रजसे विभूषित श्रीकान्हरदासजी सन्तोंकी परिक्रमा करते, उनके इस प्रेमको देखकर दर्शकोंके हृदय प्रेमार्द्र हो जाते। वीठलसुत श्रीविठ्ठलदासजीके पुत्र थे, जिनका चरित्र में कहा गया है। विठ्ठलदास माथुर मुकुट भयौ अमानी मानदा।। रंगीरायके छोटे भ्राता थे। इनके पिताजी भी महोत्सव करते थे, भक्तोंको इष्ट मानते थे। वही संस्कार इनमें थे अत: इनका भाव अलौकिक था।

९१८) श्रीगोपाल- एकबार इनके फोड़ा हो गया, किसीने कहा कि बबूलकी हरी पत्ती तोड़कर लाओ और पीसकर फोड़े पर बाँध दो, तो जल्दी ही ठीक हो जायगा। तब श्रीगोपालदासजीने कहा कि वृक्षोंमें भी प्राण होते हैं, उसके पत्ते तोड़ने में उसे कष्ट होगा। अपने सुखके लिए किसी दूसरेको कष्ट देना अनुचित है। साधु वृक्षादिकोंको भी कष्ट नहीं देते हैं। इसीसे करमैतीजी नित्य पेड़से गिरे पत्तोंके वस्त्र बनाकर धारण करतीं।

९१९) श्रीमाधवसिंह- ये जयपुरके नरेश एवं श्रीगोविन्दजी के परम भक्त थे। महल से गोविद मंदिर तक साष्टांग दण्डवत् करते हुए जाकर दर्शन करते। एकबार एक विदेशी अपराधी आपकी शरणमें आया। रक्षाका आश्वासन देकर आपने उसे अपने

महलमें सुरक्षित रख लिया। ब्रिटिश शासनको पता चला तो उन्होंने कहा कि इस अपराधीको हमें दे दो। आपने अस्वीकार कर दिया। इस पर कुपित होकर उन लोगों ने इन्हें धमकी दी कि आप गिरफ्तार कर लिए जायेंगे और राज्य भी जब्त कर लिया जायगा। भयभीत होकर श्रीमाधवसिंहजीने उस अपराधी को शासन के हवाले कर दिया। इससे श्रीगोविन्दजी रुष्ट हो गये। अब श्रीमूर्तिके दर्शनोंका आनन्द जाता रहा। ध्यान में भी प्रभु की छवि नहीं आती। शरीरमें भयमर रोग हो गया। जब आपने श्रीगोविन्द की बहुत विनती की और शरीर का त्याग करने के लिए तैयार हो गये। तब श्रीगोविंदजीने आदेश दिया कि दूसरा मंदिर बनवाकर उसमें मेरी मूर्त्ति स्थापित करके पूजन करो और नित्य नये पदोंकी रचना करके सुनाओ। आपने इसी अनुष्ठान को आरम्भ किया। कालान्तरमें निरोग होकर भगवत् कृपापात्र हुए। श्रीहरिदासजीने शरणागतका त्याग नहीं किया।

९२०) वंशीदास और कुत्ता अतिथिका- वंशीदास नामक सन्त नर्मदा वन में रहकर भगवद् भजन करते थे भगवत्कृपा से प्राप्त सामग्री से रसोई बनाकर भोग लगाते और पहले किसी सन्तको, अतिथिको प्रसाद पवाते, उसके बाद स्वयं प्रसाद लेते। संयोगवश एकदिन कोई अतिथि नहीं आया तो प्रसाद को सिरसे लगाकर उसे नदीके जल-जीवों को खिला दिया। इस प्रकार जब तीसरे दिन भी कोई अतिथि न आया तब वे बड़ी दीनता के साथ प्रभुसे प्रार्थना करने लगे कि- प्रभो। किसी अतिथि को भेजो। प्रार्थना स्वीकार हुई, एक कुत्ता बड़े गौरव के साथ सामने आकर खड़ा हो गया। सन्तने उसे दुत्कार दिया, वह चुपचाप चला गया। झट सन्त की अन्तरात्मा में आया कि धिक्कार है मुझे, जो मैंने बुलाकर अतिथि भगवान का तिरस्कार किया। अब तो अत्यन्त त्रस्त होकर वे उसी अतिथि कुत्तेको ढूंढने लगे। बहुत देर तक वन में भटके। परन्तु वह नहीं मिला, तब विवश होकर अपने आश्रमको लौट आये और क्षमा प्रार्थना करते हुए पुन: उसी अतिथि के दर्शनार्थ प्रभु से रो-रोकर विनय करने लगे। हृदय के सच्चे भाव को देखकर भगवान उसी कुत्ते के रूपसे पुन: आ गये। अब तो सन्त की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सादर सविधि अर्घ्य पाद्य देकर सामने प्रसाद रख दिया और भगवद् बुद्धिसे पाने की प्रार्थना करने लगे। तब कुत्ते से प्रभु, एक सन्त के रूपमें आ गये। उनके प्रसाद पा चुकने पर अब दृढ़ता से इन्होंने चरण पकड़ लिए। तब भगवानने अपना मधुर मनोहर श्रीरामरूप प्रकट किया। उसका दर्शन करके सन्त की अतिथि-सत्कार साधना सफल हुई।

९२१) मनकोजी बोधला- आप पटवारी थे। परिवार में उनकी पत्नी पुत्र तथा पुत्र वधू थी। घरमें धन-धान्य पर्याप्त था। अचानक धाम गाँव में अकाल पड़ा। वृक्षोंकी छाल और पत्तोंका भी अभाव हो गया। ऐसे अवसर पर इनके यहाँ अतिथियों की भीड़ बढ़ गई। घरका अन्न भण्डार, धन, आभूषण, वर्तन और पशुधन सर्वस्व अतिथि-सेवामें समर्पित हो गया। अतिथियोंका आना बन्द हो गया, इससे इन्हें अपार दु:ख हुआ। एक-दो दिन परिवार सहित भूखे रहे। तीसरे दिन मनकोजी कुल्हाड़ी लेकर जंगल में गये और लकड़ियाँ काटकर लाये। बाजर में बेचनेसे तीन पैसे मिले। एक पैसा एक मन्दिर में भेंट कर आये। एक पैसेका पाव भर आटा लाये और एक पैसे की ठाकुर-सेवा की सामग्री ले आये। घर आते-आते परिवार तथा अपनी क्षुधाका स्मरण नहीं रहा। मनमें उत्सुकता हुई की- कोई अतिथि आ जाय तो सेवाका सौभाय मिले। ऐसे धर्मात्माके अन्नका स्वाद लेनेके लिए ब्राह्मण वेशमें स्वयं नारायण पधारे। प्रसन्नतापूर्वक पटवारीजीने पूरा आटा उन्हें दे दिया और थोड़ा नमक भी। ब्राह्मणने उपले सुलगाकर बाटियाँ बनाईं। इतने में ब्राह्मणी बनी लक्ष्मीजी भी आ गईं और बोली- मैं बहुत भूखी हूँ। दोनोंने बाटियाँ खाई, तृप्त होकर पटवारीसे बोले- अब तुम भी प्रसाद लो। परिवार सहित प्रसाद लेकर सदा-सदा के लिए इनकी आत्मा तृप्त हो गई। प्रसन्नात्मा शोक-सन्तापसे रहित परिवार को जीवन-जन्मका लाभ हो गया। इस परीक्षाके बाद वर्षा हुई और सुकाल हो गया पुन: अतिथि-सत्कार साधना आरम्भ हो गई। भक्तदाम गुण चित्रणी में वर्णित है कि भगवान श्रीरामने दर्शन देकर कहा- जिस सिंहके पैरसे तुमने काँटा निकाल कर उसके दु:खको दूर

किया था, वही कई दिनका भूखा सिंह तुम्हारे पास आया। तुमने लोकोत्तर सत्कार कर मुझे सन्तुष्ट किया। प्रभुके साथ हुए इस संवाद को बाहर एक सेवक सुन रहा था। वह भीतर गुफा में गया तो वहाँ श्रीपयहारीजी के अतिरिक्त कोई भी न था। तब उसने पूछा- महाराज। आपके साथ कौन बातचीत कर रहा था। आपने कहा- कोई तो नहीं था, फिर उसके आग्रह पर स्वामीजीने सब वृत्तान्त बताया। इस प्रकार यह रहस्य सबके सामने आया।

९२२) कान्हे भक्त- एक काशीके शिव भक्त विद्वान थे। एक स्थान पर श्रीमद्भागवतकी कथा कह रहे थे। अभ्यासवश वे शिवपरत्व सिद्ध करनेमें विष्णुकी निन्दा करने लगे। इससे एक काने विष्णु भक्तको रोष आ गया। उसने एक कंकड़ वक्ता के ऊपर फेंक दिया जिससे चोट तो थोड़ी ही लगी पर अपमान अधिक हुआ। उनसे नहीं रहा गया, उन्होंने न्यायाधीशके पास जाकर पुकार की। काने विष्णु भक्तको बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि श्रीमद्भागवत के व्यासासनसे किसी देवी-देवकी निन्दा अनुचित है। इन्होंने विष्णु निन्दा की अत: हमें रोष आ गया और हमने कंकड़ फेंककर मारा। हाकिम ने पूछा कि- श्रोता तो बहुतसे बैठे थे पर तुम्हें ही अधिक रोष क्यों आया। उसने कहा- रामचरितमानसमें लिखा है कि- हरिहर निन्दा सुनने से काने (एक आँख वाले) को गो-हत्या के समान पाप लगता है। मैं काना हूँ इसलिए अधिक रोष आया, पापसे भयभीत होकर मैंने प्रतीकार किया। दूसरे लोग काने न थे अत: उन्हें रोष नहीं आया। वह युक्ति-युक्त उत्तर सुनकर न्यायाधीशने पण्डितजीको समझाया कि आप कथा-प्रवचनमें किसी देवताकी निन्दा अब कभी न कीजियेगा काना निर्दोष है अत: इसे मुक्त किया जाता है। पण्डितजीने काना का कान अर्थ है यह कहकर कुछ कहना चाहा पर न्यायाधीशने उसे नहीं सुना।

९२३) ममि मुनि- ममि नामक ब्राह्मण विविध सुख भोगनेकी कामनासे धन कमानेकी चेष्टा करने लगा पर उसे सफलता न मिली। जिस-जिस व्यापार को करता उसमें घाटा ही होता। इस प्रकार उसका सब धन प्राय: नष्ट हो गया। अन्तमें बचे थोड़ेसे धनसे उसने दो नये बछडे खरीदे। ममि एकदिन उन दोनों बछडोंको परस्पर जोड़कर हल चलानेकी शिक्षा देने के लिए ले जा रहे थे। जब वे दोनों बछडे गाँवसे बाहर निकले तो बैठे हुए एक ऊँटको बीचमें करके सहसा दौड़ पड़े। जब वे उसकी गर्दन के पास पहुँचे तो ऊँटके लिए यह असह्य हो गया। वह रोषमें भरकर खड़ा हो गया। दोनों बछड़े उसकी गर्दनमें लटक गये। तब वह दोनों बछड़ोंको गर्दनमें लटकाये बड़े जोरसे भागने लगा। बलपूर्वक अपहरण करने वाले उस ऊँटके द्वारा उन दोनों बछड़ोंको अपहृत होते और मरते देखकर ममिने कहा- मनुष्य कैसा भी चतुर क्यों न हो, जो उसके भाग्य में नहीं है, उस धनको वह भलीभाँति प्रयत्न करके भी नहीं पा सकता है। मैंने जितने उपाय किये, सभीमें अनर्थ उठ खड़े हुए, फिर भी मैं मूर्ख धनोपार्जनकी चेष्टामें लगा ही रहा। आज यह ऊँट मेरे बछड़ोंको उछाल-उछालकर टेढ़े मार्गसे भाग रहा है। दैवयोग से ऊँटके गलेमें मेरे दोनों प्यारे बछडे दो मणियोंके समान लटक रहे हैं। यह केवल दैव की ही लीला है। हठपूर्वक किये गये पुरुषार्थसे क्या होता है। सुखकी इच्छा रखने वाले पुरुषको धन आदिकी ओरसे वैराग्यका ही आश्रय लेना चाहिए। धन आशासे निराश विरक्त सुखकी नींद सोता है। श्रीशुकदेवजीने ठीक ही कहा है- जो मनुष्य अपनी समस्त कामनाओंको पा लेता है तथा जो इन सबका त्याग कर देता है। इन दोनों के कार्यों में समस्त कामनाओंको प्राप्त करनेकी अपेक्षा उनका त्याग ही श्रेष्ठ है, क्योंकि कामनाओंका अन्त नहीं है।

९२४) तुलाधार की तीर्थयात्रा- तुलाधार वैश्य एक उद्धार विचारधारा वाले व्यक्ति थे। वे व्यर्थ के दिखावे, आडम्बरों आदि में विश्वास नहीं करते थे। प्राणी मात्र की सेवा को वे सर्वोपरि मानते थे। एक दिन साधु उनके पास आए और बोले- पुत्र। तुम कुछ दिन के लिए तीर्थयात्रा पर निकल जाओ। इससे तुम्हें शांति मिलेगी। साधु की बात सुनकर तुलाधार मुस्कराए और बोले- मान्यवर, मेरे गांव में कितने ही लोग भूख से पीडित हैं, कितनों को ही दवा आदि की आवश्यकता है। मैं

अपनी कमाई के चार पैसे इनकी रोटी, कपडे और दवा आदि पर खर्च करना चाहता हूँ। यही मेरी तीर्थयात्रा है और इसी में मुझे शांति भी मिलती है। तुलाधार की बात सुनकर साधु अवाक् रह गए। साधु की अपनी मिथ्या आस्तिकता का अहंकार दूर हो गया था। उस दिन से उन्होंने वैश्य को अपना गुरु मानकर उसी प्रकार का आचरण करना प्रारम्भ कर दिया।

९२५) सबसे बड़ी पूजा- प्रख्यात महिला संत आण्डाल एक बार भगवत प्रार्थना में लीन थीं, तभी कई लोग उनकी कुटिया पर आ पहुंचे। उन्होंने पहले उनकी जय-जयकार की, फिर मदद की गुहार करने लगे। वह चिल्ला रहे थे, रक्षा करो रक्षा करो। आण्डाल के शिष्यों ने उन्हें ऐसा करने से रोका और समझाया कि वे संत आण्डाल की पूजा में विघ्न न डालें। शोर-शराबे से आण्डाल का ध्यान भंग हो गयां वह बाहर आईं। उन्होंने लोगों से इस तरह आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि गांव के मुखिया की हालत बेहद खराब है। अब वही उसे बचा सकती हैं। संत ने यह सुना तो तत्काल उनके साथ चल पड़ीं। उनके शिष्यों के लिए यह आश्चर्य का विषय था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर आण्डाल ने मुखिया के लिए अपनी पूजा अधूरी क्यों छोड़ दी। आज तक अण्डाल ने इस तरह पूजा नहीं छोड़ी थी। शिष्य इस बात पर हैरान थे कि संत ने मुखिया के मामले को इतनी गंभीरता से क्यों लिया। मुखिया की छवि बहुत अच्छी भी नहीं थी।

एक पहर बाद उन्होंने देखा कि आण्डाल बीमार मुखिया को लिए गांव वालों के साथ चली आ रही हैं। उन्होंने उसकी चारपाई एक पेड़ की छाया में डाल दी और गांव वालों को लौट जाने को कहा। फिर वह कुटिया में गईं और कुछ औषधियां निकाल लाईं। उन्होंने शिष्यों को निर्देश दिया कि वे मुखिया को समय-समय पर औषधियां देते रहें और उसकी सेवा करें। शिष्यों ने उनकी आज्ञा का पालन तो किया पर उनका विस्मय बढ़ता ही जा रहा था। आखिरकार एक शिष्य ने पूछ लिया, माते, आज आपने बीच में ही आराधना छोड़कर इस मुखिया की सेवा की। इसमें क्या रहस्य है ?

आण्डाल ने शांत भाव से उत्तर दिया, पुत्र। ईश्वर समस्त प्राणियों में हैं। उनका कोई एक रूप या आकार नहीं है। वे तो कण-कण में वास करते हैं और प्रत्येक कर्म उनकी ही पूजा है। और मनुष्य की सेवा ही सबसे बड़ी पूजा है। आज हम सबको इसका अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिए हमें प्रसन्न होना चाहिए।

९२६) समाज की मुक्ति- कन्फ्यूशियस पदयात्रा पर निकले थे। रास्ते में एक महात्मा को पेड़ की छाया में विश्राम करते देखकर पूछा, महात्मन्, आप नगर छोड़कर यहां एकांत में क्यों पड़े हैं ? महात्मा ने उत्तर दिया, इस राज्य का राजा अत्याचारी, कुटिल और दुष्ट है। प्रजा भी राजा को देखकर वैसी ही बनती जा रही है। ऐसे वातावरण में रहना कठिन हो गया था, इसीलिए मैं यहां आ गया। यहां किसी तरह की चिंता नहीं है। कन्फ्यूशियस मुस्कराए और बोले, थोड़ी सी बुराइयों या बुरे व्यक्तियों के कारण आप नगर छोड़कर चले आए। क्या बुराई के आगे हार मान लेनी चाहिए ? यह तो आपका पलायनवाद है।

महात्मा ने कहा, ठीक है मगर इतने झंझटों की अपेक्षा स्वयं बुराई से हट जाना क्या बेहतर नहीं है ? हम बुराई से हटकर अच्छाई का आनंद क्यों न लें ? इस पर कन्फ्यूशियस ने कहा, आप भूल रहे हैं कि झंझटों से भरा जीवन ही आपका आधार है। आपकी शांति आप के पास है, वह छीनी नहीं जा सकती। फिर आप यहां रहकर भी उसी समाज के आश्रय में पल रहे हैं, जिस समाज को आप बुरा कह रहे हैं। क्या यह कृतघ्नता न होगी कि समाज को सुधारने की बजाय आप मुख मोड़कर जंगल में भाग आए। आप भाग कर साबित कर रहे हैं कि सद्गुण दुर्गुण से दुर्बल है। सत्य असत्य की अपेक्षा निर्बल है, ज्ञान पर अज्ञान ने कब्जा कर लिया है।

महात्मा बोले, मैं यहां सद्गुणों की ही रक्षा कर रहा हूं, बुराइयों की ओर से आंखें मूंद कर। आप ही बताइए क्या मैं भलाई को बुराई का ग्रास होने से नहीं बचा रहा हूँ ? कन्फ्यूशियस ने कहा, आप एकांत में साधना कर अपने को तो बचा लेंगे पर क्या एक

साधक का कर्तव्य इतना ही है ? उसे केवल अपनी मुक्ति की बात नहीं सोचनी चाहिए। उसे समाज की, व्यापक जनमानस की मुक्ति की बात सोचनी चाहिए। इसी में उसकी साधना की सार्थकता है। यह सुनते ही महात्मा जी नगर की ओर लौट गए।

९२७) त्याग की शक्ति- संत परमहंस दयाल को सर्दी के मौसम में एक दानी ने बेशकीमती दोशाला उढ़ाया। उसी वक्त एक फकीर आया और बोला- महाराज। बहुत सर्दी है कुछ ओढ़ने को दो। महाराज ने चोला उतार कर दे दिया। फकीर बोला- भगवान। ऊपर के वस्त्र की जरूरत है। संत ने वह कीमती दुशाला उसे दे दिया। फिर फकीर ने कहा- प्रभु सिर नंगा है। संत ने अपनी टोपी दे दी। अब फकीर बोला- स्वामीजी टांगे नंगी हैं। दयालु संत ने अपनी धोती उतार कर उसे दे दी और स्वयं एक लंगोट में बैठ गये। तभी कुछ भक्त घर भागे गए। कोई चोला कोई धोती, कोई कंबल आदि ले आया। इस प्रकार तत्काल कई वस्त्र आ गए। संत ने कहा- देखा अपने त्याग में कितनी शक्ति है।

९२८) विनाशकारी दम्भ- बंगाल में द्वारका नदी के तट पर तारापीठ नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। वहां तारा देवी का भव्य मंदिर है। किसी समय में एक व्यक्ति तारादेवी के दर्शन करने के लिए आया, दर्शन करने से पूर्व उन्होंने नदी में स्नान कर अपने नित्य नैमित्तिक कार्य सम्पन्न करने का निश्चय किया। इस प्रकार स्नानोपरांत में वे तट पर बैठे आह्निक कर्म कर रहे थे उसी समय प्रसिद्ध अघोरी सन्त मामाक्षेपा नदी में स्नान कर रहे थे। वे हंस-हंस कर उस व्यक्ति के ऊपर जल के छींटे डालने लगे। उस व्यक्ति को पता नहीं था कि जल फैंकने वाला सज्जन सन्त वामाक्षेपा हैं। उनके मुख से निकल गया- क्या अन्धे हो गए हो ? मैं यहां अपना पूजा-पाठ कर रहा हूं और तुम उसमें विघ्न डाल रहे हो। ये दर्शनार्थी समीप के कोई बहुत बड़े जमींदार थे। उनको क्रोध आ रहा था।

वामक्षेपा बोले- तुम पूजा पाठ कर रहे हो या कलकत्ते की मूर कम्पनी में बैठ कर जूते खरीद रहे हो ? कलकत्ते की मूर कम्पनी उन दिनों जूतों की प्रसिद्ध कंपनी थी। इतना कहने के बाद भी वामाक्षेपा उन पर जल डालते रहे। किंतु अब जमींदार का क्रोध शांत हो गया था। उसको लगा कि यह कोइ बहुत बड़े सन्त हैं जो मनुष्य की मन:स्थिति का आकलन करने में समर्थ हैं। वह समझ गया कि ये कोई असाधारण महात्मा हैं। उन्होंने कहा- हां महाराज, मैं यही सोच रहा था कि मूर कंपनी के जूते खरीद कर घर लौटूंगा। कहता हुआ जमींदार उनके चरणों में नतमस्तक हो गया। दैवकार्य में दम्भ नहीं करना चाहिए। यह कहकर महात्मा वामाक्षेपा मंदिर की ओर चल दिए।

९२९) शिक्षा की नींव- पुराने जमाने की बात है। प्रसिद्ध संत बहिणाबाई प्रात:काल पूजा-पाठ से निवृत्त होकर अपनी कुटिया के पास लगे पौधों को सींच रही थीं। तभी चार विद्वान उनके पास आए। संत बहिणाबाई ने उनका स्नेहपूर्वक स्वागत सत्कार किया। विद्वानों ने कहा, हम लोग एक जिज्ञासा लेकर आपके पास आए हैं। बहिणाबाई ने पूछा, कैसी जिज्ञासा ? विद्वानों ने कहा, हमने वेदों का अध्ययन किया है। विभिन्न शास्त्रों से भी ज्ञान अर्जित किया है। किन्तु हम उनका उपयोग करने में असमर्थ हैं। हम देश के अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर काम करना चाहते हैं ताकि राष्ट्र के चारों कोनों से सद्गुणों के प्रसार की नींव पड़े। पर हम समझ नहीं पा रहे कि अपना लक्ष्य हासिल करने के लिए क्या करें।

बहिणाबाई ने चारों विद्वानों से उनके लक्ष्य के बारे में जानना चाहा। पहले विद्वान ने कहा, मैं देश में सबको शिक्षित और सभ्य देखना चाहता हूं। दूसरे ने कहा, मैं सबको सुखी और संपन्न बनाना चाहता हूं। तीसरा सबको एकता के सूत्र में बांधना चाहता था चौथा बोला, मेरी आकांक्षा है कि मेरा देश एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित हो। चारों विद्वानों की राय सुनने के बाद बहिणाबाई ने कहा, अपना लक्ष्य पाने के लिए आप सब मिलकर शिक्षा के प्रसार का कार्य आरंभ करें। यह सुनकर वे विद्वान आश्चर्य में पड़ गए। फिर उन्होंने संकोच के साथ कहा, केवल शिक्षा का प्रसार करके ये सारे

लक्ष्य कैसे हासिल किए जा सकते हैं ? इस पर बहिणाबाई ने कहा, हे विद्वानों, शिक्षा वह माध्यम है जिस पर व्यक्ति का हर लक्ष्य और उसका विवेक टिका है। जब लोग शिक्षित होंगे तो उनमें उद्यमिता विकसित होगी। उद्यम करने से व्यक्ति की आमदनी बढ़ेगी जिससे राष्ट्र आर्थिक रूप से मजबूत होगा। तभी लोगों में एकता भी स्थापित होगी और राष्ट्र शक्तिशाली होगा। अलग-अलग गुण वाले पौधों में एक ही तरह की सिंचाई की जाती है लेकिन उनमें विभिन्न रंगरूप वाले फूल पैदा होते हैं। उसी प्रकार शिक्षित होकर लोग अपनी रुचि के मुताबिक उद्यम करेंगे और उनमें बाकी गुण स्वत: आ जाएंगे।

९३०) संत की सीख- बाबा अनंतराम परोपकारी और सेवाभावी संत थे। लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक चढ़ावा चढ़ाया करते थे। हालांकि उन्होंने श्रद्धालुओं को मना भी किया पर वे नहीं माने। बाबा उस चढ़ावे का समाजसेवा के लिए प्रयोग करने लगे। एक दिन एक सेठ असंख्य हीरे-मोती उनके चरणों में रखते हुए बोला, बाबा, यह भेंट मेरी ओर से स्वीकार करें। बाबा ने उन हीरे-मोतियों की ओर देखा तक नहीं और श्रद्धालुओं की समस्या का निवारण करते रहे। यह देखकर सेठ को क्रोध आ गया। वह बड़बड़ाते हुए बोला, यह बाबा तो ढोंगी किस्म का मालूम होता है। हीरे-मोतियों को देखा तक नहीं लेकिन मेरे जाते ही उन पर ऐसे टूटेगा जैसे कुछ देखा ही नहीं। बाबा ने सेठ की बात सुन ली। उन्होंने बस इतना ही कहा, सेठजी, आप कल आइएगा, कल आपको जवाब मिल जाएगा। अगले दिन सेठ फल व मिठाइयां लेकर वहां पहुंचा तो बाबा अनंतराम हर पल उसकी लाई मिठाइयों एवं फल को ही देखते रहे। यह देखकर सेठ के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह धीरे से बोला, अजीब बात है, कल मैं महंगे हीरे-मोती लाया तो उन्हें देखा तक नहीं और मिठाइयों व फल पर बाबा की ऐसी नजर है जैसे आज तक कुछ देखा ही नहीं। बाबा बोले, सेठजी, लोभी मनुष्य दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है। कल मैंने आपके हीरे-मोती नहीं देखे तब भी आपने मुझे लोभी ठहराया और आज मामूली मिठाई व फल देखने पर भी लालची कहा। मैं तो एक मामूली संत हूं। हीरे-मोती, फल, मिठाई से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं तो बस समाज का दुख दूर करने में ही अपना जीवन सार्थक समझता हूं। आप जैसे लोगों के लाए धन से ही विद्यालय, आश्रम चल रहे हैं। असंख्य निर्धन कन्याओं के विवाह में भी आप ही लोगों का धन लगा है। मैं तो बस इन स्थानों पर आपका धन पहुंचाने का एक माध्यम मात्र हूं। यह सुनकर सेठ की आंखें शर्म से झुक गईं।

९३१) एक महान फकीर संत आलवार ने केवल अपने सोने-बैठने लायक आकार की झोपड़ी बनाई। महान संत आलवार अपनी छोटी सी कुटिया में लेटे हुए थे। एक रात मूसलाधार वर्षा में दूसरा फकीर आया तभी द्वार पर दस्तक देकर उस फकीर ने पनाह मांगी और उसने रात गुजारने के लिए जगह मांगी। झोपड़ी में सिर्फ पति-पत्नी के सोने की जगह थी। फकीर ने पत्नी से द्वार खोलने को कहा तो वह बोली, जगह कहां है यहां ? यहां दो व्यक्ति सो सकते हैं और तीन बैठ सकते हैं। यह कोई महल नहीं जो जगह कम पड़ जाए। फकीर ने कहा। पत्नी ने दरवाजा खोल दिया। यात्री अंदर आया तो तीनों बैठ गए। कुछ समय बाद फिर किसी ने दस्तक दी। फकीर ने यात्री से कहा, दरवाजा खोल दो। वह बोला, अब जगह कहां है।

फकीर ने कहा, तीन के बैठने और चार के खड़े रहने को अब भी काफी स्थान है। जगह बना लेंगे। दिल में जगह चाहिए। झोपड़ी का दरवाजा खुला और चारों ने खड़े रहकर रात बिताई।

कुटिया छोटी होने के कारण संत आलवार पूरी रात खड़े रहे, परन्तु उन्होंने अतिथि सत्कार की परम्परा की मर्यादा रखी। झोपड़ीवाले फकीर की प्रशंसा की और कहा कि अगर हरेक हंसान का दिल इतना बड़ा हो जाए तो सारे दुख और विवाद खत्म हो जाएं। अंदर उदारता और मन में वसुधैव कुटुम्बकम का भाव हो तो कम साधनों में भी अधिक व्यक्तियों का निर्वाह हो सकता है। इस तरह के भावों को जीने वाले समाज में सभी का निर्वाह हो जाता है।

९३२) भक्ति ने ज्ञान को पराजित कर दिया- नर्मदा के तट पर स्वामी परमानन्द जी का एक सुन्दर आश्रम था। एक दिन स्वामी जी अपनी शिष्य मंडली के साथ नर्मदा नदी के तट पर टहल रहे थे। तभी देखा, आश्रम के पास झुरमुट के बीच दो व्यक्ति बैठे हुए हैं। स्वामी जी को संदेह हुआ, कहीं आश्रम से कुछ चुराने तो नहीं आए हैं। शिष्यों ने बताया कि दोनों भक्त हैं, रामकथा सुनने आते हैं।

उनका हुलिया देखकर परमानन्द जी को बात कुछ जँची नहीं, बिल्कुल जंगली की तरह। ये क्या समझेंगे रामकथा का मर्म, कुछ प्रसाद वगैरह के लोभ में आते होंगे। उन्होंने उन दोनों को पकड़वा मंगाया। फिर हंसते हुए बोले, कुछ रामभक्ति का महत्व हमको भी बताओ। दोनों कुछ नहीं बोले तो स्वामी जी ने डपट कर कहा- जाओ भागो, यहां बेकार भीड़ नहीं लगाओ। कल सुबह जब मेरा प्रवचन हो तब आना। प्रसाद भी तभी मिलेगा।

दोनों मान-अपमान की चिन्ता किए बिना सहज भाव से चले गये। स्वामी जी ठहाका मार कर हँसे। वे शिष्यों को जताना चाहते थे कि उन्हें अभी सही-गलत भक्तों की पहचान नहीं है। रामकथा का रस लेना इतना सहज और आसान नहीं है। उसके लिए उनके स्वामी जी की तरह जैसा गहन अध्ययन और विषद चिंतन चाहिए।

तट पर चलते हुए आगे स्वामी जी को अचानक एक छोटा बालक मिल गया। वह गीली रेत का एक छोटा सा तालाब बनाकर उसे अंजुरी में पानी ला-लाकर भर रहा था। खेल देखकर स्वामीजी को बड़ा आनंद हुआ, उनके पूछने पर बालक ने कहा कि वह नदी का सारा पानी अपने तालाब में भरना चाहता है। बालक की बात सुनकर शिष्य गण हंसने लगे, किन्तु स्वामीजी अचानक गंभीर हो गए। उन्हें लगा कि कहीं इसमें कोई संदेश तो नहीं है। कहीं मुझे मेरा गुरु तो नहीं मिल गया। यह बालक मुझे बताना चाहता है कि जैसे हम इस नदी का सारा जल रेत के इस छोटे से कुंड में नहीं भर सकते, ठीक उसी तरह सारा ज्ञान भी अपने छोटे से दिमाग में नहीं भर सकते। भोले बालक के भाव ने स्वामी जी के ज्ञान के अभिमान को पानी के उस कुंड में डुबो दिया।

दूसरे दिन स्वामी जी के आश्रम में संत समागम का वृहद आयोजन था। सैकड़ों विद्वानों और भक्त जनों के बीच स्वामी जी का प्रवचन होनेवाला था। लेकिन रात को भयंकर वर्षा हो गई। नदी का पुल बह गया। आने जाने के सभी मार्ग टूट गये। आने वाले भक्तगण उधर के उधर ही रुक गये। कोई भी आश्रम तक नहीं आ पाया।

स्वामी जी आश्रम की खिड़की से पानी का तेज बहाव देख रहे थे। सहसा देखा कि उसी में गिरते-पड़ते दो व्यक्ति आश्रम की ओर चले आ रहे हैं। थोड़ नजदीक आने पर स्वामी जी ने पहचान लिया, वे दोनों वही राम भक्त थे जिनको कल स्वामी ने अपमानित किया था। वे रामकथा सुनने आज उफनती नदी पार कर के आश्रम में पहुंच गए थे।

वे फिर आश्रम के एक कोने में वृक्ष के नीचे दुबक कर बैठ गए। स्वामीजी धीरे-धीरे उन भक्तों के पास पहुंचे, दोनों विनम्र भाव से खड़े होकर स्वामीजी को प्रणाम करने लगे।

अचानक उन दोनों में स्वामीजी को राम-लक्ष्मण के दिव्य रूप के दर्शन हुए। झुककर स्वामी जी ने दोनों के चरण पकड़ लिए। भावविह्वल हो उठे, ज्ञान का अभिमान छू मन्तर हो गया। भक्ति की एक लहर ने सारा अहंकार बहा दिया। ज्ञान पराजित हो गया।

९३३) सच्चा उत्तराधिकारी- बहुत पुरानी बात है। एक गुरु को अपने उत्तराधिकारी की तलाश थी। वह अपने किसी योग्य शिष्य को यह दायित्व सौंपना चाहते थे। उनके कई शिष्य थे पर वह तय नहीं कर पा रहे थे कि उनमें से किसे यह भार सौंपा जाए। फिर उन्होंने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाया और एक दीवार

बनाने का निर्देश दिया। शिष्य इस काम में जुट गए। दीवार बनकर तैयार भी हो गई लेकिन गुरु ने उसे तोड़ने का आदेश दिया। उन्होने फिर से दीवार बनाने को कहा। दीवार फिर बनने लगी। एक बार फिर गुरु ने उसे तुड़वा दिया। दीवार ज्यों ही तैयार होती, गुरु उसे तोड़ देने को कहते। यह सिलसिला चलता रहा। धीरे-धीरे सभी शिष्य उकता गए और इस कार्य से किनारा करने लगे मगर एक शिष्य चित्रभानु जुटा रहा। वह अकेले ही इस कार्य को करता रहा। बार-बार तोड़े जाने के बावजूद दीवार बनाने के काम से वह नहीं हटा। एक दिन गुरु उसके पास गए और बोले, तुम्हारे सभी साथी काम छोड़कर भाग गए। पर तुम अब तक डटे हुए हो। ऐसा क्यों ?

चित्रभानु हाथ जोड़कर बोला, मैं गुरु की आज्ञा से पीछे कैसे हट सकता हूं। मैं तब तक इस कार्य को करता रहूंगा, जब तक आप मना न कर दें। गुरु बेहद प्रसन्न हुए। वह समझ गए कि उनकी तलाश पूरी हुई। उन्होंने चित्रभानु को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए अपने सभी शिष्यों से कहा, संसार में अधिकतर लोग ऊंची आकांक्षाएं रखते हैं और सर्वोच्च पद पर पहुंचना चाहते हैं। मगर इसके लिए पात्रता भी जरूरी है। लोक आकांक्षा तो रखते हैं पर पात्रता प्राप्त करने के लिए प्रयास नहीं करते या थोड़ा बहुत प्रयास करके पीछे हट जाते हैं। किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मात्र इच्छा ही नहीं दृढ़ता की भी आवश्यकता है। चित्रभानु में दृढ़ता है और धैर्य भी। ऐसा ही व्यक्ति मेरा सच्चा उत्तराधिकारी हो सकता है।

९३४) सबसे बुद्धिमान- मिथिला के राजा वीरेन्द्र सिंह को सवाल पूछने का शौक था। वे रोज मुश्किल से मुश्किल सवाल खोजकर लाते और दरबारियों से जवाब देने को कहते। सही जवाब देने वाले को वे जी खोलकर इनाम देते।

एक दिन राजा ने पूछा, हमारे राज्य में सबसे बुद्धिमान कौन है ? साथ में उन्होंने यह भी जोड़ दिया कि गलत जवाब देने वाले को सजा-ए-मौत दी जाएगी। कई दिन बीत गए। कोई जवाब नहीं मिला। राजा ने ललकार कर कहा, क्या यह सवाल इतना कठिन है कि कोई जवाब नहीं दे सकता ? दरबारी सिर झुकाए खड़े रहे।

एक दिन एक महात्मा दरबार में पधारे। राजा ने उनका स्वागत किया। आशीर्वाद देकर अपना स्थान ग्रहण करने के बाद महात्मा ने कहा, राजन, मैं आपके सवाल का जवाब देने आया हूं। मैं आपकी भेंट राज्य के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति से करा सकता हूं, लेकिन आपको कल तक इंतजार करना होगा। अगले दिन महात्मा लौटे तो उनके साथ एक दरिद्र व्यक्ति था। उन्होंने राजा से कहा, आपके सवाल का जवाब यह है। यह व्यक्ति मिथिला राज्य का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है।

राजा ने हैरान होकर पूछा, क्या सचमुच तुम सबसे बुद्धिमान हो ? उस व्यक्ति ने सिर झुकाकर कहा, हां महाराज, यह सच है।

राजा की हैरानी और बढ़ गई। उसने पूछा, इस बात का क्या प्रमाण है कि यह सबसे बुद्धिमान है ? इस पर महात्मा ने कहा, राजन, आप यह कैसे कह सकते हैं कि यह सबसे बुद्धिमान नहीं है ? क्या आपके पास इसका कोई प्रमाण है ?

राजा इस सवाल पर निरुत्तर रह गया। तब महात्मा ने कहा, राजन, आपके सवाल का सही जवाब कोई नहीं हो सकता, क्योंकि संसार में सबसे बुद्धिमान कोई नहीं है। आपके सवाल का जवाब किसी ने इसलिए भी नहीं दिया कि सभी को अपनी जान प्यारी थी। महात्मा की बात सुनकर राजा की आंख खुल गई और वह महात्मा के चरणों पर गिर पड़ा।

९३५) सुख का स्रोत- एक योगी के पास ४ लोग पहुंचे। चारों ने अपने दुखों का पिटारा खोला और कहा, हमें इच्छित पदार्थों की प्राप्ति का वरदान दें। योगी ने कहा, वास्तविक सुख पदार्थ में नहीं है। पदार्थ प्राप्ति ही सब कुछ नहीं है। योगी के ऐसा कहने के बावजूद चारों ने जिद की, आप हमें यश, पुत्र, धन और स्त्री की मनोकामना पूर्ण होने का वरदान दें। दयालु योगी ने चारों को इच्छित कामनाओं की पूर्ति का वरदान दिया। समय पर वरदान फला और चारों को मनोनुकूल चीजें हासिल हुईं, लेकिन वे पहले से कहीं ज्यादा अशांत और परेशान रहने लगे। वे पुन: योगी के पास पहुंचे। योगी के पूछने पर उन्होंने बताया,

महाराज, यश की प्रतिस्पर्धा ने जीवन को बेबस बना दिया। पुत्र की स्वच्छंदता ने प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। धन की लालसा ने अपनापन उजाड़ दिया। स्त्री के प्रति आसक्ति ने पौरुष को पानी बना दिया। उन्होंने याचना की, योगीराज हमें शांति का वरदान दें। योगी ने कहा, सुख बाहर से नहीं आता। सुख का स्त्रोत तुम्हारे भीतर है। पदार्थों को तुम भोगो, पदार्थ तुम्हें नहीं भोगें। भोग में सुख होता तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपना सब कुछ ठुकराकर संन्यास क्यों लेते ?

९३६) महानंद ने मिथिला में लंबे समय तक साधना की और सिद्ध तपस्वी के रूप में विख्यात हुए। इससे उनके मन में अहंकार आ गया। अहंकार के कारण उनके तप व साधना में बाधा पड़ने लगी। लोग उनसे दूरी बनाने लगे। महानंद का मन अशांत रहने लगा। एक दिन वह भ्रमण के लिए निकले। बस्ती से दूर जंगल में पहुंचे। वहां उन्हें किसी के कराहने की आवाज सुनाई दी।

उन्होंने देखा कि एक झोपड़ी में एक वृद्ध लेटा हुआ भयंकर पीड़ा से कराह रहा है। उसकी पत्नी असहाय हालत में पास बैठी रो रही थी। महानंद ने मिट्टी भिगोकर बूढ़े के पेट पर लेप किया और जड़ी बूटी तोड़कर पानी के साथ उसे खिलाई। रात भर वह उस वृद्ध की सेवा करते रहे। जब बीमार वृद्ध को नींद आ गई, तब वह आश्रम में लौट आए। उन्होंने अपने भीतर एक बदलाव महसूस किया। उनका अहंकार स्वत: गायब हो गया था। उनका अशांत मन शांति से भर गया था।

९३७) पवित्रता का अर्थ- स्वामी सदानंद जी के प्रमुख शिष्यों में एक थे- हरिदर्शन। एक बार हरिदर्शन ने उनसे काशी में गंगास्नान की आज्ञा मांगी। स्वामी जी ने उन्हें नीम की लकड़ी का एक टुकड़ा देते हुए कहा, वत्स, तुम गंगा स्नान करने जा रहे हो तो इसे भी नहला देना ताकि यह मीठा हो जाए। हरिदर्शन गंगा स्नान करके प्रसन्नचित्त लौटे और उन्होंने वह लकड़ी का टुकड़ा स्वामीजी को वापस कर दिया। स्वामीजी ने उसे फिर हरिदर्शन को देते हुए कहा, अब जरा इसे चबाकर इसका स्वाद बताना। हरिदर्शन ने उसे चबाया और तत्काल वहीं थूक दिया। वह अब भी पहले की तरह की कड़वा था। हरिदर्शन ने कहा, इसका स्वाद तो बदला नहीं। स्वामीजी ने समझाया, मैं तुम्हें यही समझाना चाहता था कि मात्र गंगास्नान से कोई पवित्र नहीं हो जाता। पवित्र कर्म करने से ही मन में पवित्रता आती है।

९३८) ज्ञान और चरित्र- नवलपुर के दरबार में एक अत्यंत ज्ञानी महात्मा पधारे। वहां के राजा के अनुरोध पर उन्होंने प्रजा के हितार्थ सात दिनों तक प्रवचन दिया। उनके उपदेश सुनकर सभी बेहद खुश और संतुष्ट हुए। राजा भी बहुत प्रभावित हुआ। उसने दक्षिणास्वरूप महात्मा को ढेरों अशर्फियां दीं और फिर आने का निमंत्रण देकर आदरपूर्वक विदा किया। चलते समय राजा ने महात्मा से पूछा कि इस दुनिया में ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ है या चरित्रवान। महात्मा ने चरित्रवान को श्रेष्ठ बताया। राजा इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा, महाराज ज्ञान ही न हो तो चरित्र लेकर क्या करेंगे। हमने आपको सम्मान आपके ज्ञान के कारण दिया है न कि चरित्र के कारण। फिर ज्ञान श्रेष्ठ हुआ न ? महात्मा मुस्कराए। उन्होंने कहा कि इसका उत्तर वह समय आने पर देंगे। कुछ दिनों बाद राजदरबार में एक चोर को राजा के सामने पेश किया गया। उस पर एक मुद्रा चुराने का आरोप था। जब चोर सामने आया तो राजा दंग रह गया। यह तो वही महात्मा थे जिन्होंने उसे धर्म और जीवन का मर्म समझाया था। राजा को इस तरह आश्चर्यचकित देख महात्मा ने कहा, हे राजन् क्या आप मुझे मेरे ज्ञान के कारण दंड नहीं देंगे ? अब आप बताएं कि ज्ञान श्रेष्ठ है या चरित्र। अगर कोई ज्ञानी अपराध करे तो क्या वह अपने ज्ञान के कारण क्षमा के योग्य है ? नहीं न ? राजा समझ गया कि महात्मा ने उसे समझाने के लिए ही यह सब किया है।

९३९) ज्ञान का मार्ग- एक बार राजा ज्ञानदेव ने विद्वानों की सभा बुलाई। दूर-दूर से विद्वान आए। कई दिनों तक शास्त्रार्थ चला। इसमें भारवि को विजेता घोतिषत किया और परंपरा के अनुसार उन्हें हाथी पर बिठाकर चंवर डोलाते हुए घर छोड़ने गए।

उन्हें देखकर उनके माता-पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन भारवि ने अपनी मां का तो अभिवादन किया पर पिता के प्रति ठंडा रवैया अपनाया। पिता ने सभा के बारे में कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अनमने तरीके से बात की।

उनके इस व्यवहार से उनके मां-पिता को दुख पहुंचा। भारवि को अपनी विद्वता का घमंड हो गया था। राजा ने जिस तरह से उन्हें सम्मानपूर्वक घर पहुंचाया था, उससे वह अपने आप को विशिष्ट समझने लगे थे। उन्हें लगने लगा था कि उनके सामने उनके पिता कुछ भी नहीं हैं। लेकिन उनका यह नशा कुछ दिनों बाद टूट गया। तब उन्होंने पिता से सामान्य दिनों की तरह संवाद करना चाहा पर उनके व्यवहार से आहत पिता ने उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। भारवि ने अपने को उपेक्षित महसूस किया। फिर उन्होंने अपनी मां से इसका कारण जानना चाहा तो मां ने उत्तर दिया, पुत्र तुमने अपने व्यवहार से अपने पिता को अत्यंत दुख पहुंचाया है। तुम यह कैसे भूल गए कि आज तुम जहां तक पहुंचे हो, वहां पहुंचाने में उनकी कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। जब तुम शास्त्रार्थ के लिए गए थे तो उन दिनों में तुम्हारी विजय के लिए तुम्हारे पिताजी ने विशेष साधना की। उन दिनों वह केवल जल पीकर रहे। आज जिस ज्ञान के बल पर तुम सर्वश्रेष्ठ विद्वान घोषित हुए हो, वह उन्हीं का दिया हुआ है। क्या तुम उनका ऋण कभी चुका सकते हो ?

भारवि अत्यंत लज्जित हुए। वह दौड़कर अपने पिता के पास पहुंचे और उनके चरणों में गिर पड़े। पिताजी ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और कहा, पुत्र भारवि, ज्ञान की प्राप्ति में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। अच्छा है तुमने समय रहते इस बाधा को पहचान लिया और इसे दूर भी कर लिया।

९४०) कठिन साधना- यह उन दिनों की बात है जब धन्वंतरि आचार्य भिषगाचार्य के निर्देशन में शोधकार्य में लगे हुए थे। अपने औषधि ज्ञान के लिए वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। एक बार उनकी पीठ पर एक फोड़ा हो गया। पहले तो उन्होंने सोचा कि यह अपने आप ठीक हो जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। फिर उन्होंने अपने पास उपलब्ध जड़ी-बूटियों का सेवन किया, पर उससे भी उन्हें फोड़े से मुक्ति नहीं मिली। फिर वे इसके लिए जड़ी की तलाश में निकल पड़े। वे गुरुकुल की सीमा को छोड़कर हिमालय की मध्यवर्ती उपत्यकाओं तक जा पहुंचे। वहां वे मुसीबतों से घिर गए। न खाने को अन्न था न सोने को बिछावन। वे भूखे-प्यासे इधर-उधर भटकते रहे। वे कभी किसी चट्टान से सिर टिकाकर सो जाते तो कभी किसी पेड़ की छांव के नीचे रात बिताते। उन्होंने अनेक वनस्पतियों को जांचा-परखा पर ऐसी कोई जड़ी नहीं मिली जिससे उन्हें आराम मिल सके। उनका दर्द बढ़ता ही जा रहा था। वे काफी हताश हो गए। आखिरकार उन्होंने गुरुकुल लौट जाने का निश्चय किया। उन्होंने सोच लिया कि अगर उन्हें मरना भी है तो अपने प्रियजनों के बीच ही मरेंगे।

वे एक हारे हुए सैनिक की भांति लौटे। उनके गुरु ने उन्हें इस हाल में देखा तो उनकी आंखें छलक आईं। उन्होंने कहा, वत्स। तुमने बड़ा कष्ट पाया। आओ मेरे साथ। तुम्हारा उपचार तो मेरे पास है। यह कहकर वे धन्वंतरि को आश्रम से दक्षिण दिशा में ले गए। थोड़ी ही दूर पर एक बूटी थी। गुरु ने उसे तोड़ा और एक पत्थर पर पीसकर धन्वंतरि के घाव पर रख दिया। फिर उन्होंने कहा, वत्स, अब दो दिनों के भीतर तुम्हारा घाव ठीक हो जाएगा। धन्वंतरि को राहत तो मिली पर वे अपने गुरु के आचरण से दुखी हो गए। उन्होंने कहा, गुरुदेव जब आपको इस बूटी का पता था तो आपने मुझे जाने से रोका क्यों नहीं ?

गुरु ने कहा, अगर तुम इतनी कठिन साधना नहीं करते तो तुम्हें हजारों औषधियों का ज्ञान कैसे मिल पाता ?

९४१) समाज की सेवा का व्रत- स्वामी केशवानन्द, जिन्होंने शिक्षा का व्यापक प्रचार किया, राज्य सभा के सदस्य थे। एक दिन उनके एक सहकर्मी ने देखा कि स्वामीजी हाथ पर दो-तीन सूखी रोटियाँ रखे दाल से खा रहे थे। रोटियाँ सूखी व ठंडी थीं, उन्हें वे जल्दी-जल्दी चबाकर गले के नीचे उतार रहे थे। सहकर्मी ने इसका कारण पूछा तो बोले, मुझे कई

जगह जाना है और शाम को गाड़ी पकड़नी है, इसलिए तंदूर से यहीं रोटियाँ मँगवा ली हैं।

सहकर्मी बोला, इस आयु में आपको ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए। कुछ नहीं, तो घी, मक्खन व फल तो ले लिया करें। इस पर स्वामीजी मुस्कराते हुए बोले, यह तो ठीक है, परन्तु जब इन्हीं बातों की चिन्ता करनी होती, तो संन्यासी बनकर कुछ समाज सेवा करने का व्रत ही क्यों लेता। सहकर्मी निरुत्तर हो गया।

९४२) दासों का दास- बात सन् १९७५ की है। विदेशों में बड़े पैमाने पर सफल धर्म प्रचार और लगभग ८० कृष्ण मंदिरों की स्थापना कर चुकने के बाद एक दिन, अपने विदेशी शिष्यों से घिरे हुए अंतरराष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ (इस्कान) के संस्थापक अभयचरण भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद के दर्शनार्थ आया एक युवा अमेरिकी उनसे पूछ बैठा, तो ये सब आपके शिष्य हैं और आप इनके गुरु ?

प्रभुपाद विनम्र स्वर में बोले, नहीं भाई। मैं किसी का गुरु नहीं, न कोई मेरा शिष्य। यदि मेरा कोई परिचय है तो केवल इतना कि मैं कृष्ण के दासों का दास हूँ। उनके इस अहंकारशून्य वक्तव्य को सुनकर सभी शिष्य स्तब्ध रह गये।

९४३) अंतर की आवाज- सेना नाम का एक नाई था। वह लोगों की हजामत बनाता था, उनके सिर का मैल दूर करता था। उसका व्यवहार इतना मधुर था कि गाँव के छोटे-बड़े सब उसके पास आते थे। एक दिन वह अपने किसी ग्राहक के सिर की सफाई कर रहा था कि अचानक उसे सुनाई पड़ा, ओ रे सेना, तू सबके सिर का मैल तो दूर करता है, क्या कभी तूने अपने सिर, बुद्धि का मैल भी दूर किया है ? उसने इधर-उधर देखा, कोई नहीं था। वह उसके अंतर की आवाज थी। उस दिन से सेना का मन बदलने लगा। जब कभी कोई उसके पास आता, वह उसका मैल दूर करते-करते अपने बारे में सोचता। भीतर से आवाज आती, यह अच्छा है कि तू दूसरों की सेवा करता है। कुछ अपनी भी सेवा कर। अपना मैल उतार।

सेना का चिंतन गहरा होता गया। उसने काम नहीं छोड़ा, लेकिन उसे प्रेरणा मिलती गई और उसकी बुद्धि निर्मल होती गई। उसके विकार दूर होते गये। फिर एक दिन अंतर की आवाज आई- सेवा दूसरों का भला करने के साथ-साथ अपना भी भला करती है।

९४४) काष्ठ जिह्वा स्वामी- बहुत समय की बात है। वाराणसी में एक संत रहते थे। वह संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने सारे धर्म-ग्रंथों का बड़ी गहराई से अध्ययन किया था। दूर-दूर से लोग उनके पास पढ़ने या अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए आते रहते थे। संत का हृदय प्रेम से छलछलाता रहता था। करुणा की धारा बहती रहती थी। जो भी आता था, उसका वह दिल खोलकर स्वागत करते थे और उसकी सहायता करते थे। उनके चेहरे पर हर घड़ी मुस्कराहट खेलती रहती थी। एक दिन एक युवक संत से मिलने आया। वह संस्कृत का विद्वान था। उसके नाम के साथ संस्कृत की बहुत-सी उपाधियां जुड़ी थीं। उसके चेहरे से विद्वत्ता का दर्प झलक रहा था। वह संत से शास्त्रार्थ करने आया था। उसने संत को सूचना दी और शास्त्रार्थ के लिए संत के समक्ष उपस्थित हुआ। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। युवक, युवक था। उसका ज्ञान संत के समान परिपक्व नहीं था। उसने जी-जान से प्रयत्न किया, किन्तु संत के आगे ठहर नहीं सका, पराभूत हो गया। युवक इसके लिए तैयार नहीं था। उसे तो अपने ज्ञान का इतना अभिमान था कि वह अपने को मान बैठा था। इस पराजय से उसे इतनी चोट लगी कि उसने आत्मघात करने का निश्चय कर लिया। संत को पता चला तो वह आहत हो गये। सोचने लगे कि ऐसी जीत किस काम की, जो दूसरों को प्राण देने के लिए प्रेरित करे ? नहीं-नहीं, यह तो जीत नहीं, हार है। उन्होंने तत्काल युवक को बुलाया और बड़े प्यार से समझाया, मनुष्य को अपने प्राणों का हनन करने का अधिकार नहीं है। वीर पुरुष कभी अपघात नहीं करता। यह तो कायरों का काम है। तुम मरो मत, जाओ। इसके बाद

संत ने जो किया, उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। उन्होंने अपने मुंह पर काष्ठ बांध लिया और सदा के लिए शास्त्रार्थ करने को तिलांजलि दे दी। आगे चलकर वह काष्ठ जिह्वा-स्वामी के नाम से विख्यात हुए।

९४५) अद्भुत मांग- प्रख्यात संत बाबा गुलाब चंद अघोरी अपने अद्भुत चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध थे। उनके चमत्कार देखकर लोग दांतों तले अंगुली दबा लेते थे। लोगों को लगातार चमत्कार दिखाते-दिखाते बाबा ने उनमें महारत हासिल कर ली। इससे उनमें अभिमान आ गया। उन्हें अहसास हो गया कि वह कुछ भी कर सकते हैं। वह जिन लोगों से मिलते, अपने चमत्कारों या अपनी सिद्धियों की चर्चा जरूर करते। एक दिन बाबा गुलाब चंद संत साहित्य के लेखक सुदर्शन सिंह चक्र की एक कविता पढ़कर गदगद हो उठे। चक्रजी की कविता से बेहद प्रभावित होकर उन्होंने उनसे कहा, आज तुम जो मांगोगे वही मिलेगा। मांगो, दिल खोलकर मांगो। बाबा की बात पर चक्रजी साहित्य की साधना करता रहूं। यही मेरी आकांक्षा है। चक्र जी के यह कहने पर भी बाबा बार-बार उनसे आग्रह करते रहे और बोले, आज मैं अपनी ओर से पहली बार आग्रह कर रहा हूं। नहीं मांगोगे तो बाद में पछताओगे। यह सुनकर चक्र जीव ने कहा, बाबा मैं जो मांगूंगा, उसे आप दे भी पाओगे या नहीं, पहले यह विचार कर लीजिए। इस पर बाबा बोले, नहीं तुम जो मांगोगे वह अवश्य मिलेगा, मैं तुमसे वादा करता हूं। इसके बाद चक्रजी बोले, बाबा, तो आप यह आशीर्वाद दीजिए कि भारत में जितने रोगी हैं वे सब निरोगी हो जाएं, जो दरिद्र हैं वे दरिद्र न रहें। चक्रजी की अद्भुत मांग सुनकर बाबा हैरान हो गए और फूट-फूट कर रोने लगे। वह चक्र जी के सामने नतमस्तक होकर बोले, आज तुमने मेरा अभिमान नष्ट कर दिाय। आज मुझे यह पता चल गया है कि मनुष्य सभी कुछ करने की क्षमता नहीं प्राप्त कर सकता। चाहे वह कितनी ही सिद्धियां प्राप्त कर ले, वह अक्षम ही रहेगा। सर्व सक्षम तो केवल ईश्वर है। बाबा की बात सुनकर चक्र जी वहां से चले गए।

९४६) ज्ञान का भंडार- तक्षशिला में एक प्रतिष्ठित गुरुकुल था। एक विद्यार्थी ने वहां काफी दिनों तक शिक्षा प्राप्त की। अपना अध्ययन पूरा कर वह घर जाने लगा। जाने से पहले गुरु के पास पहुंचकर बोला, गुरुदेव, अब तो मेरी शिक्षा पूर्ण हो गई। क्या मैं घर जा सकता हूँ? गुरु बोले, जा सकते हो। लेकिन जाने से पहले आखिरी कार्य करो। सामने की भूमि पर लगे पेड़- पौधों और औषधियों में से जो काम की न हो और जिनका कोई उपयोग संभव न हो, वे चुनकर ले आओ। विद्यार्थी चला गया फिर कई दिनों बाद लौटा और गुरु के चरणों में लेट गया। उसने कहा, अब मैं घर नहीं जाना चाहता। मुझे पता चल गया है कि जिस तरह कोई भी औषधि या पौधा अनुपयोगी नहीं है, उसी तरह जीवन में कोई भी शिक्षा अनुपयोगी नहीं है। एक शिक्षा पूरी होने के बाद दूसरी शुरू हो जाती है। गुरु ने प्रसन्न होकर कहा, व्यक्ति अपने एक जीवन में जितना सीख पाता है, वह ज्ञान के भंडार के शतांश के बराबर भी नहीं होता। सीखने के लिए अनंत विधाएं हैं और अनंत संभावनाएं।

९४७) प्रेम की भाषा- काशी के एक संत अपने आश्रम में शिष्य पारंगत के साथ रहते थे। उसने आश्रम में बीस साल रह कर ढ़ेर सारा ज्ञान अर्जित किया। एक दिन संत ने कहा, वत्स पारंगत, तुमने बहुत समय तक मेरी सेवा की है। इस अवधि में मेरे पास भी जो कुछ न था, वह सब मैंने तुम्हें सिखला दिया है। तुम और ज्ञान अर्जित करो इसलिए मैंने फैसला किया है कि तुम कुछ समय के लिए देशाटन जाओ। देश के तीर्थ स्थलों का भ्रमण करो और देश की अधिकाधिक भाषाएं सीख कर वापस आओ। पारंगत देशाटन पर निकल पड़ा। कई वर्ष बीत गए उसे भ्रमण करते हुए। इस अवधि में उसने विभिन्न प्रदेशों का भ्रमण किया। देश की सभी भाषाएं भी सीखी और कुछ धन भी एकत्रित करे एक दिन आश्रम लौट आया। उसने सोचा कि गुरुजी केा जब पता चलेगा कि उनका शिष्य आश्रम के लिए धन में कमा कर लाया है तो बहुत खुश होंगे। वह आश्रम में गुरुजी के पास गया। गुरुजी रुग्णावस्था में तख्त पर लेटे थे। गुरु को इस हालत में देखकर उसे

एक बार दुख तो हुआ लेकिन उत्साह में उसने गुरु को प्रणाम करके कहा, गुरुवर, मैं देश की सभी भाषाएं सीख ली है और आश्रम के लिए धन कमा कर भी लाया हूं। संत शांत भाव से उसकी बातें सुनते रहे फिर बोले, वत्स, क्या तुम्हें कभी कोई ऐसा व्यक्ति भी मिला जो बेवश, लाचार होकर भी दूसरों की मदद कर रहा हो। क्या तुम्हें कोई ऐसी मां मिली, जो अपने शिशु को भूखा रोता देखकर अपना दूध रहित स्तन उसे पिला रही हो। पारंगत ने कहा, ऐसे लोग तो हर जगह मिले थे। गुरु ने कहा, क्या तुम्हारे मन में उनके लिए किसी तरह की सहानुभूति जगी थी। क्या तुमने प्रेम का एकाध शब्द उनसे कहे। उसने कहा, गुरुवर मैं इस झमेले में पड़ता तो आपके आदेश का पालन कैसे करता। मेरे पास इतनी फुर्सत नहीं थी कि मैं इस ओर ध्यान देता। संत ने कहा, वत्स पारंगत, तुमने बहुत सारी भाषाएं तो सीख ली, धन भी कमाया लेकिन उस अमूल्य भाषा को नहीं सीख पाए जिसके लिए मैंने तुम्हें भेजा था। तुम अब भी प्रेम, करुणा और सहानुभूति की भाषा से वंचित हो। यदि ऐसा नहीं होता तो तुम दुखियों का दुख देखकर भी अनदेखा नहीं करते। यहां तक कि तुमने अपने गुरु को भी रुग्णावस्था में देखकर भी कुशल क्षेम जाने बिना अपनी कहानी सुनाने लगे। पारंगत गुरु का भाव समझ गया और अज्ञानता के लिए क्षमा मांग कर उलटे पांव लौटकर अज्ञात दिशा की तरफ चला गया।

९४८) प्रत्यक्ष ज्ञान- वाग्भट्ट धन्वंतरि के गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करते थे। एक बार उनकी पीठ पर फोड़ा निकल आया। धन्वंतरि ने उस फोड़े के इलाज के लिए उन्हें वन में जाकर कुछ जड़ी-बूटियां लाने को कहा। वाग्भट्ट धन्वंतरि का आदेश पाकर उन बूटियों की खोज करने वन में चले गए। वह कई दिनों तक भटकते रहे। इधर-उधर काफी खोजने के बाद उन्हें कई प्रकार की दूसरी जड़ी-बूटियां मिलीं, लेकिन जो धन्वंतरि ने कहा था, वह कहीं नहीं मिली। फिर वे अन्य बूटियां ही अपने झोले में भरकर ले आए। उन्हें धन्वंतरि के सामने रखते हुए वाग्भट्ट ने कहा, महात्मन्, भरसक प्रयासों के बाद भी मैं आपके द्वारा बताई गई जड़ी-बूटियों को खोजने में असफल रहा। परंतु मैं अपने विवेकानुसार अन्य बूटियां ले आया हूं। इनमें से आप स्वयं देख लें। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं।

धन्वंतरि ने वाग्भट्ट द्वारा लाई गई बूटियों को एक तरफ रख दिया और आश्रम में से एक जड़ी लाकर उसे पीस कर उसका लेप वाग्भट्ट के फोड़े पर लगा दिया। आश्चर्यजनक रूप से वाग्भट्ट का वह फोड़ा तीन दिनों में ही ठीक हो गया। स्वस्थ होने के बाद वाग्भट्ट ने धन्वंतरि से पूछा, गुरुदेव, जो जड़ी आपने मेरे फोड़े पर लगाई वह तो आश्रम में ही उगी हुई थी, फिर आपने मुझे वन में क्यों भेजा? जड़ी-बूटी खोजने में मेरा समय नष्ट हुआ और परिश्रम भी अकारथ चला गया। धन्वंतरि बोले वत्स, तुम्हारा न तो समय ही नष्ट हुआ और न ही परिश्रम व्यर्थ गया, बल्कि तुम्हें इसी कारण नई-नई बूटियों की पहचान हुई। तुमने कई दुर्लभ जड़ी-बूटियों को खोज निकाला जो भविष्य में अनेक रोगों को दूर करने में प्रयोग में लाई जाएंगी। इसलिए तुम्हें तो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ है। अब तुम इसके विशेषज्ञ जाने जाओगे। इसके अलावा तुम्हारे इस प्रयास से यह भी मालूम हुआ कि अपने रोग के निदान के लिए तुम कितने प्रयत्नशील हो। वाग्भट्ट अपने गुरु का आशय समझ उनक प्रति नतमस्तक हो गए।

९४९) गुन अवगुन अन्तर बसहिं- एक बार सन्त पोयेमन के पास एक व्यक्ति आया और उसने कहा, महाशय मेरा भाई दुष्ट प्रकृति का है। वह मुझसे हमेशा जला-भुना रहता है। मैं उसे माफ करता हूँ, मगर इसका उस पर कुछ असर नहीं होता, उल्टा मुझ पर वह और नाराज होता है, ऐसा क्यों? पोयेमन ने उत्तर दिया, सच-सच बताओ, तुम उसे माफ करते हो, तब क्या तुम्हारे मन में ये विचार नहीं आते कि तुमने कोई गुनाह नहीं किया है और यह तुम्हें नाहक ही कोस रहा है? मजहब कहता है कि नासमझों को माफ करो, क्या इसी कारण तुम उसे माफ करते हो? उस व्यक्ति ने हामी भरी, तो सन्त ने कहा, देखो, जब तुम उसे माफ करते हो, तो सच्चे दिल से नहीं करते, बल्कि तुम्हारे दिल में यही खयालात उठते हैं कि

गुनाह मैंने नहीं, भाई ने किये हैं और इस कारण तुम उसे माफ कर देते हो। बस, इसी कारण खुदा तुम्हारे भाई को तुम पर खुश होने की इजाजत नहीं देता।

९५०) संत की सीख- संत श्री रामचंद्र डोंगरे महाराज के पास दूर-दूर से लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते थे। वह लोगों की कठिन से कठिन समस्याओं को पल भर में सुलझा देते थे। एक बार उनका एक भक्त रोते हुए उनके पास पहुंचा और उनसे हाथ जोड़कर बोला, महाराज। मेरे परिवार में पर्याप्त सुख है, अपार धन-संपत्ति है, संतान भी हैं पर मेरे केवल दो पुत्रियां हैं कोई पुत्र नहीं है। बिना पुत्र के मुझे अपना जीवन अधूरा दिखाई देता है। डोंगरे महाराज बोले, तुम पुत्र प्राप्ति के लिए इतना उत्सुक क्यों हो? इस पर वह व्यक्ति बोला, महाराज, पुत्र के बिना मुझे मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? उस भक्त का जवाब सुनकर डोंगरे जी महाराज बोले, तुमने किसी ऐसे पिता को देखा है जिसके पुत्रियां हों और और उसे मोक्ष की प्राप्ति न हुई हो? भक्त बोले, जिस सचाई को तुमने स्वयं नहीं देखा उसे मानते क्यों हो? मैं तो अनेक ऐसे परिवारों को जानता हूं जो कई-कई पुत्रों के होते हुए भी संतुष्ट नहीं हैं। यदि पुत्र होने मात्र से पूर्णता होती तो कुसंस्कारी बेटों से माता-पिता परेशान क्यों होते? पुत्र या पुत्री होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अपनी दोनों पुत्रियों को ही अपना उत्तराधिकारी मानो। उन्हें अच्छे संस्कार, अच्छी शिक्षा दिलाओ। यदि तुम अपनी दोनों पुत्रियों का पालन-पोषण बिना किसी भेदभाव के पूर्ण संतुष्ट होकर करोगे तो शायद एक दिन तुम्हारी बेटियां अपनी प्रतिभा से आसमान छू लेंगी और उनकी ऊंचाई को छूना शायद अनेक पुत्रों के द्वारा भी संभव न हो। किंतु इसके लिए तुम्हें अपने मन से पुत्र-पुत्री में भेदभाव की धारणा को इसी समय उखाड़ फेंकना होगा। उस भक्त ने उसी क्षण संकल्प किया कि वह पुत्र-पुत्री में भेदभाव नहीं करेगा।

९५१) पहली आहुति- यह घटना उस समय की है, जब स्वामी श्रद्धानंद ने हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। गुरुकुल गंगा नदी के पास सुनसान जंगल में बनाया गया था। वहां जंगली जानवर खुले में घुमा करते थे। स्वामी श्रद्धानंद ने आसपास के कई परिवारों से अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजने का अनुरोध किया तो सबने यही कहकर मना कर दिया कि जंगल भयानक जीव-जंतुओं व जहरीले कीड़े-मकोड़ों से भरा हुआ है। यह सुनकर स्वामीजी अत्यन्त दु:खी हुए। उन्होंने फिर हरेक परिवार से जाकर कहा, गुरुकुल में सबसे पहले मेरे दोनों बेटों का प्रवेश होगा और उसके बाद मेरे शुभचिंतकों व परिजनों के बच्चों का। यदि कोई समस्या उत्पन्न होगी तो वह उन बच्चों के माध्यम से ही पता चल जाएगी। किंतु यदि गुरुकुल में सभी सकुशल रहे तो फिर आपको अपने बच्चों का दाखिला कराना होगा। स्वामी श्रद्धानंद की यह बात सुनकर लोग हैरत से उनको देखते रह गए। किंतु स्वामी जी के दृढ़ निश्चय को देखकर उन्होंने इस बात की हामी भर दी कि सब बच्चों के सकुशल रहने पर वे भी अपने बच्चों का दाखिला वहां करा देंगे। कुछ समय बाद वहां अनेक बच्चे पढ़ने लगे। एक दिन स्वामी जी के एक सहयोगी ने उनसे पूछा, आपके व आपके परिजनों के बच्चों के आने के बाद दूसरे बच्चे भी यहां आने लग गए। इसका क्या कारण है? सहयोगी की बात पर स्वामीजी बोले, वेदों में कहा गया है कि जिस कार्य को हम संपन्न कराना चाहते हैं, उसमें सबसे पहले स्वयं आहुति देनी चाहिए इसलिए मैंने गुरुकुल के निर्माण के लिए भी सबसे पहले अपनी कमाई दान में दी और उसके बाद सबसे पहले अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल में रखा ताकि लोग ये जान लें कि सभी बच्चे मेरे अपने बच्चों के समान हैं और उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी मुझ पर अपने बच्चों की तरह ही है। इससे लोगों का भय निकल गया।

९५२) फ्रांस के एक धनाढ्य परिवार में पैदा हुए श्री पायर बचपन से ही संवेदनशील व दयालु थे। केवल उन्नीस वर्ष की उम्र में उन्हें अपने पिता की संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा प्राप्त हुआ। पर उन्हें धन का जरा भी लोभ नहीं था। उन्होंने सारा धन निर्धनों व जरूरतमंदों में बांट दिया। उनकी इस भावना को देखकर कई नवयुवक उनके साथ जुड़ गए। पायर ने उन

नवयुवकों के साथ मिलकर एक नायाब योजना शुरू की। वे सब सड़कों, गलियों में बेकार पड़ी चीजों, चीथड़ों और प्लास्टिक को जमा करते और उसे कबाड़ी को बेच देते। इससे जो रुपये मिलते उन्हें वे गरीबों में बांट देते थे। लोग उन सबको चीथड़ा संप्रदाय कहने लगे। श्री पायर को लोगों ने एक संत का सम्मान दिया।

९५३) राजा की दुविधा- राजा जनश्रुति प्रतिदिन अन्न-वस्त्र, स्वर्ण मुद्राएं आदि दान करके ही भोजन ग्रहण करते थे। वह प्राय: यही सोचते रहते कि उनके जैसा कोई दयालु और दानी नहीं है। फिर भी उनका मन अशांत रहता था। एक बार उन्होंने दो नागरिकों को बात करते सुना। एक कह रहा था, राजा जनश्रुति के राज में हम कितने सुखी हैं। हमें किसी प्रकार की चिंता नहीं है। उनकी दानशीलता का कोई जवाब नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा, हां भाई, तुम्हारी बात तो ठीक है। पर लोगों को सुख-समृद्धि देनेवाला स्वयं कितना अशांत रहता है। राजा से अच्छा तो वह रैक्य है जिसने साधनविहीन होकर भी मन की शांति प्राप्त कर ली है। राजा ढेर सारी स्वर्णमुद्राएं लेकर रैक्य के पास पहुंचे। उन्होंने रैक्य से कहा, यह तुच्छ भेंट आपके लिए लाया हूं। इसे स्वीकार करके कृतार्थ करें। रैक्य ने कहा, राजन् आप ज्ञान पिपासा शांत करने आए हैं फिर इन सब वस्तुओं की क्या आवश्यकता थी? मैं क्या करूंगा इन्हें लेकर। मेरी कुटिया तो बहुत छोटी है। ये चीजें तो इनमें अंटेंगी भी नहीं। जब इन वस्तुओं की व्यर्थता का बोध हो जाए तब मेरे पास आना। राजा ने कहा, मेरा जीवन तो निरर्थक है। इस पर रैक्य ने मुस्कराकर कहा, यह आपने कैसे सोच लिया। आपका जीवन व्यर्थ नहीं गया है। सच्चाई यह है कि अभी तक आपने जो भी दान-पुण्य किए, वे प्रशंसा की आशा में किए और आपको प्रशंसा मिली भी। इस पर जनश्रुति की जिज्ञासा बढ़ी। उन्होंने कहा, मैं राज्य और अपनी समस्त सुख-सुविधाएं छोड़ने के लिए तैयार हूं। इस पर रैक्य बोले, आपको कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। आपके भीतर इन सबके प्रति आसक्ति का जो भाव है उसे छोड़ना होगा। राज कीजिए पर अपने को सेवक समझकर। यह समझकर दान कीजिए कि ये वस्तुएं आपको मिली ही हैं दीन-दुखियों को देने के लिए। आप अपने को कर्ता न समझकर माध्यम मान लें।

९५४) अध्ययन का तरीका- महर्षि रैक्य ने अपने पुत्र यवकीर्ति को ज्ञान की गरिमा का महत्व समझाया। वह इस वचन से पूर्ण आश्वस्त भी हो गया कि सद्ज्ञान से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। फिर भी उसके मन में यह भ्रम बना रहा कि मनोयोगपूर्वक अध्ययन से ही ज्ञान की उपलब्धि संभव है। वह चाहता था कि इसका कोई सरल मार्ग मिल जाए। उसने सोचा कि तप करने से जब बहुत सिद्धियां मिल सकती हैं, तो साधना द्वारा ही उसे क्यों न प्राप्त कर लिया जाए। लंबे समय तक पढ़ते रहने का झंझट क्यों उठाया जाए। वह तपस्या करने लगा। पिता ने उसे समझाया कि ज्ञानार्जन भी तप ही है, लेकिन पिता का वचन पुत्र की समझ में नहीं आया। यवकीर्ति स्नान के लिए नदी के जिस घाट पर जाया करता था, उस पर एक वृद्ध ब्राह्मण भी आने लगे। वह मुट्ठी भर-भर कर पानी में रेत डालते रहे। यवकीर्ति ने कई दिनों तक तो ध्यान नहीं दिया, पर आखिरकार उससे रहा न गया और उसने ऐसा करने का कारण पूछ ही लिया। वृद्ध ने कहा, नदी पार जाने में समय लगता है, इसलिए सोचा, क्यों न नदी में रेत डालकर पार जाने के लिए बांध बना लूं। यवकीर्ति हंसने लगा। उसने कहा, भगवन्, हर काम का एक तरीका होता है। उसकी निश्चित प्रक्रिया होती है। आप पार जाने के लिए दूसरे संभव तरीके अपनाएं और इस बाल क्रीड़ा को छोड़ दें। इस पर ब्राह्मण ने कहा, ठीक कहा आपने। इसी तरह ज्ञान प्राप्त करने की भी निश्चित प्रक्रिया होती है। यवकीर्ति को बात समझ में आ गई।

९५५) शिष्य की निष्ठा- दक्षिण भारत के एक प्रतिष्ठित संत थे- स्वामी वादिराज। उनका शिष्य बनने के लिए लोग लालायित रहते थे। वादिराज अपने सभी शिष्यों से बेहद प्रेम करते थे। लेकिन कनकदास उन्हें सर्वप्रिय थे। कनकदास

निम्न वर्ण के थे इसलिए उच्च वर्ण के शिष्यों को यह बात नहीं पचती थी कि स्वामी वादिराज उन सबको छोड़कर एक निम्न जाति के शिष्य को पसंद करें। वे सभी कनकदास को हर पल नीचा दिखाने का अवसर ढूंढते रहते थे। स्वामी वादिराज इस बात को समझ गए थे। एक दिन उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाया और बोले, मैं तुम सबको एक-एक केला दे रहा हूं। इसे ऐसे स्थान पर खाएं जहां पर तुम्हें कोई भी न देखे। यदि किसी ने तुम्हें फल खाते हुए देख लिया तो यह मेरी आज्ञा का उल्लंघन होगा। सभी शिष्यों ने स्वामी जी की बात ध्यान से सुनी और एक-एक केला लेकर वहां से चले गए। अगले दिन सभी शिष्य उनके पास एकत्रित हुए। सभी शिष्य खाली हाथ थे, केवल कनकदास के हाथ में वह केला ज्यों का त्यों था। कनकदास के हाथ में केला देखकर स्वामी वादिराज बोले, क्यों कनकदास? तुमने केला क्यों नहीं खाया? कनकदास हाथ जोड़कर स्वामी वादिराज से बोले, गुरुजी, आपने कहा था कि इस केले का सेवन एकांत में करना। मगर मुझे भरसक प्रयत्न करने पर भी कहीं एकांत न मिला। हर जगह एकांत ढूंढने पर मुझे लगा कि मैं स्वयं तो वहां मौजूद हूं ही, साथ में ईश्वर भी हर जगह विद्यमान है। ऐसे में एकांत कहां हुआ? मैं किसी भी हालत में आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहता था। इसलिए मैं इसका सेवन नहीं कर पाया। कनकदास की बात सुनकर सभी शिष्यों की नजरें झुक गईं और उन्हें इस बात का अहसास हो गया कि शिष्य कनकदास अपने चरित्र, सोच और आध्यात्मिक उपलब्धि में उनसे कहीं श्रेष्ठ है। इसके बाद उन्होंने उससे ईर्ष्या करना छोड़ दिया और उसके साथ प्रेम और सद्भाव से रहने लगे।

९५६) विद्या की रेखा- बौद्धिक जाने-माने ऋषि थे। उनके आश्रम में कई छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। उन छात्रों में कुछ राजकुमार थे तो कुछ अत्यंत निर्धन परिवारों के बालक भी। एक दिन ऋषि वृक्ष के नीचे बैठकर संस्कृत के रूप पढ़ा रहे थे। अध्याय समाप्त होने के बाद उन्होंने एक निर्धन छात्र को संस्कृत के रूप सुनाने को कहा पर वह बालक उन रूपों को सुनाने में असमर्थ रहा। इससे क्रोधित ऋषि ने डंडा मारने हेतु छात्र को हाथ आगे करने को कहा। छात्र ने डरते-डरते हाथ आगे कर दिए। उस छात्र के हाथ देखकर ऋषि बोले, वत्स, तुम्हें मारना ही व्यर्थ है क्योंकि तुम्हारे हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है। तुम्हारा शिक्षा ग्रहण करना ही निरर्थक है। फिर उन्होंने उसके हाथ की ओर संकेत करते हुए कहा, देखो, विद्या की रेखा यहां होती है। छात्र दुखी मन से उठा और आश्रम के बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद जब वह वापस आया तो उसकी हथेली से खून निकल रहा था।

ऋषि ने पूछा, तुम्हारे हाथ में क्या हुआ? यह घाव कैसे हो गया? छात्र ने अत्यंत सहजता के साथ कहा, ऋषिवर, यह घाव नहीं है बल्कि विद्या की रेखा है जिसे मैंने स्वयं अपनी हथेली पर बना लिया है। ऋषि ने तुरंत छात्र का उपचार किया। वह उसकी इच्छा शक्ति और साहस से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उस दिन से उस पर और अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया। छात्र ने अपने गुरु का अपने प्रति प्रेम देखकर अथक परिश्रम करना प्रारंभ कर दिया।

वह दिन-प्रतिदिन उन्नति करने लगा। उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति, परिश्रम, लगन और ऋषि के अथक लगाव ने उसे संस्कृत का विद्वान बना दिया। इस बालक ने ही आगे चलकर संस्कृत का पहला व्याकरण ग्रंथ लिखा जो संसार भर में बेहद प्रसिद्ध हुआ। यह संस्कृत का बेजोड़ ग्रंथ माना जाता है। वह ज्ञानी बालक आगे चलकर व्याकरणाचार्य पाणिनी के नाम से विख्यात हुआ।

९५७) विनम्रता का पाठ- संत रमन्ना के आश्रम में अनेक लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते थे। एक दिन एक जिज्ञासु व्यक्ति आया और संत के पास शीघ्र पहुंचने के लिए जल्दी से अपने जूते उतारने लगा। जूते आसानी से नहीं उतरे, तो क्रोध में उसने किसी तरह पैर पटककर उन्हें उतारा और तेजी से आश्रम के दरवाजे को धकेल कर संत के

पास पहुंच गया। आते ही उसने कहा, बाबा, मैं आपसे अपनी समस्या का समाधान जानने आया हूं। संत बोले, तुम्हारी समस्या का समाधान असंभव है। वह व्यक्ति आश्चर्य से बोला, भला मेरी समस्या का समाधान क्यों नहीं होगा? संत ने कहा, क्योंकि तुम ठीक से व्यवहार करना ही नहीं जानते। जो विनम्र नहीं हो सकता, उसका काम भी सफल नहीं होता। व्यक्ति ने पूछा, पर मेरे व्यवहार में क्या दोष है? संत बोले, कदम-कदम पर है। तुम अकारण क्रोध में वस्तुओं को नुकसान पहुंचाते हो। तुमने अभी-अभी जूते और दरवाजे पर क्रोध किया। जाओ उनसे माफी मांगो। वह व्यक्ति हैरानी से बोला, मैं बेजान चीजों से माफी मांगू? संत बोले, तुम बेजान वस्तुओं के साथ भी सही ढंग से व्यवहार नहीं कर सकते और चाहते हो कि ईश्वर व संसार तुम्हारे साथ उचित व्यवहार करे। यदि तुमने इन वस्तुओं को वास्तव में बेजान समझा होता तो तुम इन पर क्रोध ही नहीं करते। विनम्रता से सारी समस्याओं के समाधान स्वयं हो जाते है। वह व्यक्ति संत का आशय समझ गया। उसने उन वस्तुओं के साथ-साथ संत से भी माफी मांगी और आगे से हमेशा हर किसी के साथ विनम्रता से पेश आने का वचन दिया।

९५८) योग्य पात्र - चीन में एक विकलांग साधु एक छोटी सी कुटिया में रहता था। वह लोगों द्वारा दान में दी गई वस्तु को फिर किसी को दान में देता था। उसकी दानशीलता के किस्से चीन भर में प्रसिद्ध थे। एक दिन चीन का सम्राट साधु की कुटिया पर पहुंचा। साधु के उपदेश से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने एक कीमती मणि उपहार में दी। साधु ने तत्काल वह मणि एक भिखारी को दे दी। यह देख सम्राट को लगा कि साधु उनका अपमान कर रहा है। उसने क्रोधित होकर कहा, क्या आप उपहारस्वरूप मिली वस्तुओं को यूं ही किसी को दे दिया करते हैं।

हां, साधु ने सहजता से कहा। इस पर सम्राट बोला, तो फिर आप अपनी यह बैसाखी क्यों नहीं किसी को दान कर देते?

दान योग्य पात्र को दिया जाता है और जो योग्य पात्र होता है वह अपने मित्र से उस वस्तु का दान कदापि स्वीकार नहीं कर सकता जिसकी उसे नितांत आवश्यकता हो। साधु ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया। इस पर सम्राट ने शंका व्यक्त की, अगर मांग ले तो। साधु ने मुस्कराते हुए कहा, तो फिर न वह मित्र रहेगा, न योग्य पात्र।

९५९) सबसे बड़ी तपस्या - सत्यनगर का राजा सत्यप्रताप सिंह अत्यंत न्यायप्रिय शासक था। एक बार उसे पता चला कि सौम्यदेव नामक एक ऋषि अनेक वर्षों से लोहे का एक डंडा जमीन में गाड़कर तपस्या कर रहे हैं और उनके तप के प्रभाव से डंडे में कुछ अंकुर फूट कर फूल-पत्ते निकल रहे हैं और जब वह अपनी तपस्या में पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेंगे तो उनका डंडा फूल-पत्तों से भर जाएगा। सत्यप्रताप ने सोचा कि यदि उनके तप में इतना बल है कि लोहे के डंडे में अंकुर फूट कर फूल-पत्ते निकल सकते हैं तो फिर मैं भी क्यों न तप करके अपना जीवन सार्थक बनाऊं। यह सोच कर वह भी ऋषि के समीप लोहे का डंडा गाड़कर तपस्या करने लगा। संयोगवश उसी रात जोर का तूफान आया। मूसलाधार बारिश होने लगी। राजा और ऋषि दोनों ही मौसम की परवाह न कर तपस्या में मगन रहे। कुछ देर बाद एक व्यक्ति बुरी तरह भीगा हुआ ठंड से कांपता आया। उसने ऋषि से कहीं ठहरने की जगह के बारे में पूछा पर ऋषि ने आंख खोलकर भी नहीं देखा। निराश होकर वह राजा सत्यप्रताप के पास पहुंचा और गिर पड़ा। राजा ने उसकी इतनी बुरी हालत देखकर उसे गोद में उठाया। उसे नजदीक ही एक कुटिया नजर आई। उसने उस व्यक्ति को कुटिया में लिटाया और उसके समीप आग जलाकर गर्माहट पैदा की। गर्माहट मिलने से व्यक्ति होश में आ गया। इसके बाद राजा ने उसे कुछ जड़ी-बूटी पीसकर पिलाई। कुछ ही देर बाद वह व्यक्ति बिल्कुल ठीक हो गया। सुबह होने पर राजा जब उस व्यक्ति के साथ कुटिया से बाहर आया तो यह देखकर हैरान रह गया कि जो लोहे का डंडा उसने गाड़ा था वह ताजे फूल-पत्तों से भरकर झुक गया था।

इसके बाद राजा ने ऋषि के डंडे की ओर देखा। ऋषि के थोड़े बहुत निकले फूल-पत्ते भी मुरझा गए थे। राजा समझ गया कि मानव सेवा से बड़ी तपस्या कोई और नहीं है। वह अपने राज्य वापस आकर प्रजा की समुचित देखभाल करने लगा।

९६०) सच्चा गुरु - नैमिषारण्य में एक साधु ने छह साल तक एकांत में रहकर तपस्या की। जब उसे लगा कि वह ज्ञान की प्राप्ति के करीब है, उसने प्रभु से यह प्रार्थना कि उसे एक ऐसे आदर्श गुरु का पता दें जिसका अनुसरण कर वह आगे के साधना पथ पर आगे बढ़े। उसी रात साधु ने सपना देखा। सपने में प्रभु ने उससे कहा कि अगर वह सचमुच ऐसा चाहता है तो उस भिखारी का अनुसरण कर जो कवित्त पढ़-पढ़ कर भीख मांगता रहता है। सुबह उठते ही साधु ऐसे भिखारी की खोज में चल पड़ा। वह उनकी कुटिया से कुछ ही दूर मिला। साधु ने जब उसके द्वारा किए सत्कर्म पूछे तो भिखारी बोला- मुझसे मजाक मत कीजिए। मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न तपस्या की और न प्रार्थना। मैं तो कवित्त गाकर लोगों का मनोरंजन करता हूं और जो रूखी-सूखी मिलती है, खा लेता हूं। तब साधु ने पूछा- तू भिखारी कैसे बना, तूने फिजूलखर्ची में पैसे उड़ा दिए या दुर्व्यसन में? भिखारी ने कहा- नहीं, मुझे जब पता चला कि एक गरीब स्त्री के पति और पुत्र कर्ज के बदले गुलाम बनाकर बेच दिए गए तो मैंने अपनी सारी संपत्ति साहूकार को देकर उसके पति व पुत्र को छुड़वा लिया। मेरी सारी संपत्ति चली जाने से मैं भिखारी हो गया। आजीविका का कोई साधन न रहने से मैं कवित्त गाकर अपना पेट पालता हूं और प्रसन्न रहता हूं। भिखारी की कथा सुनकर साधु उससे बहुत प्रभावित हुआ और बोला- तू सचमुच आदर्श साधु हैं। तेरा अनुसरण करके ही मैं प्रभु का प्रेम पा सकता हूं।

९६१) उन्नति में बाधक - प्रसिद्ध समाज सेवक बाबा आमटे बचपन में बात-बात पर रूठ जाया करते थे। एक बार उनके एक घनिष्ठ मित्र ने उनसे ऐसी बात कह दी जिसका उन्हें बहुत बुरा लगा। नाराज होकर उन्होंने उससे बोलना ही छोड़ दिया। वह मित्र बाबा आमटे के प्रति बेहद स्नेह रखता था। उसने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन जब वह उसके समझाने पर भी नहीं माने तो उसने उनकी मां से यह बात बता दी। रूठनेवाली बात सुनकर बाबा आमटे की मां ने मित्र को आश्वासन दिया कि उनका बेटा ज्यादा दिन तक उससे रूठा नहीं रहेगा और कुछ दिन बाद स्वयं आकर उससे बात करेगा। कुछ ही दिनों बाद बाबा आमटे की मां उन्हें बगीचे में लेकर गई। उस समय पतझड़ का मौसम चल रहा था और पेड़ के गले-सड़े व पीले पत्ते झड़-झड़ कर गिर रहे थे। मां ने उन पत्तों को बाबा आमटे को दिखाते हुए कहा, बेटा, देखो ये पुराने पत्ते किस प्रकार अनायास झड़ रहे हैं। हमारे पुराने मनमुटाव, घृणा, जलन आदि को भी इसी तरह झड़ जाना चाहिए। हमें अपने मन के इन पीले, सड़े-गले पत्तों को भी झटककर फेंक देना चाहिए क्योंकि ये तनाव व दुख का कारण तो बनते ही हैं साथ ही हमारी उन्नति में भी बाधक होते हैं। ममतामयी मां के इन प्रेरक शब्दों ने बाबा आमटे पर गहरा असर किया। वह उसी समय अपने उस मित्र के घर जा पहुंचे जिससे वह रूठ गए थे। उन्होंने उससे बातचीत शुरू कर दी। इसके साथ ही उन्होंने जरा-जरा सी बातों पर रूठने की आदत छोड़ दी।

९६२) सच्चा साधु - किसी गांव के पास एक कुटिया में हरिदास नामक साधु रहते थे। उनके पास कुछ जमीन थी, जिस पर वह खेती करते थे। उससे भी जब कभी खाने लायक नहीं मिल पाता तो वह गांव में मजदूरी भी कर लेते थे। उनके यहां साधु-संतों का आना-जाना लगा रहता था। एक बार जबर्दस्त बारिश हो रही थी। तभी बाहर से आवाज आई, साधु महाराज, क्या सो गए? हरिदास ने द्वार पर आकर देखा कि कुछ साधु बाहर खड़े हैं। हरिदास उन्हें आदरपूर्वक अंदर ले गए, फिर बोले, प्रिय अतिथियों, आज मेरे पास भोजन की व्यवस्था नहीं है। खेत में जो कुछ पैदावार हुई वह खत्म हो गई। बरसात की वजह से कहीं मजदूरी भी नहीं मिली। अतिथि साधुओं ने आश्चर्य से पूछा, महाराज, क्या गांव से कुछ

खाने-पीने को नहीं मिलता? हरिदास ने हंसते हुए कहा, मिलता तो बहुत है, लेकिन मैं नहीं लेता। उन साधुओं ने इसका कारण पूछा तो हरिदास ने कहा, किसान काफी मेहनत करके फसल उगाते हैं, मैं उनकी मेहनत की कमाई मुफ्त में कैसे ले सकता हूं? इस पर अतिथि साधु बोले, पर आप तो साधु हैं फिर आप दान-दान दक्षिणा क्यों नहीं लेते। आपको मेहनत करने की क्या जरूरत है? हरिदास ने कहा, मुझे तो लगता है कि एक साधु को अपनी मेहनत से जीवनयापन करना चाहिए। हम दूसरों मेहनत की कमाई भला क्यों खाएं। हमें अपने आचरण से दूसरों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। मेहनत से भागकर ईश्वरोपासना का कोई अर्थ नहीं है। श्रम में ही साधुता है। अतिथि साधु निरुत्तर हो गए।

९६३) कथा और भक्ति - गदाधर भट्टजी से भागवत कथा सुनने के लिए बड़ी संख्या में भक्त एकत्रित होते थे। गदाधरजी इतनी भावपूर्ण कथा सुनाते थे कि श्रोताओं के नेत्रों से आंसू बह निकलते थे। श्रोताओं में एक महंतजी भी थे। उनकी आंखों में आंसू आते ही नहीं थे। इसलिए उन्हें स्वयं पर लज्जा आती थी। उन्होंने एक उपाय निकाला। वह एक पोटली में लाल मिर्च का चूर्ण बांध लाते थे। कथा में ऐसा प्रसंग आता कि सभी श्रोताओं के नेत्रों से आंसू निकलते, तो महंतजी भी लाल मिर्च की पोटली नेत्रों पर रगड़ लेते। इससे उनके आंसू निकलने लगते। महंतजी के पास बैठे किसी श्रोता ने यह बात जान ली। वह भट्टजी के पास जाकर बोला- महाराज आपकी कथा में जो महंत आता है वह बड़ा ढोंगी है उसमें भक्ति तो है ही नहीं, किंतु दूसरों को दिखाने के लिए आंखों में लाल मिर्च लगाकर आंसू बहाता है। भट्टजी बोले, वे धन्य हैं। मैं उनसे मिलने जाऊंगा। भट्टजी महंतजी से मिलने गए और उन्हें प्रणाम कर बोले- मैंने सुना है कि कथा के दौरान नेत्रों में स्वाभाविक आंसू न आने के कारण आप उनमें लाल मिर्च लगाते हैं। भगवान की लीला को सुनकर यह जरूरी नहीं कि नेत्रों में जल आएं ही। यह तो अपने-अपने भाव और समझ की बात है। आप भागवत कथा सुनते हैं यही पर्याप्त है। वैसे कथा सुनना कोई बाध्यता नहीं है। अगर आपके मन में उसकी स्वाभाविक इच्छा नहीं है तो न सुनें। यह सुनकर महंत जी लज्जित हो गए। वह कथा सुनने आते रहे। लेकिन उसके बाद उन्होंने लाल मिर्च लाना बंद कर दिया।

९६४) संकट के साथी - एक दिन प्रसिद्ध संत श्री उड़िया बाबा के पास एक व्यक्ति आया और बोला, महाराज, मैं इन दिनों बहुत ही विकट परिस्थितियों से गुजर रहा हूं। मेरा व्यापार लगातार घाटे में चल रहा है। कुछ समय पहले तक मेरी स्थिति बिल्कुल अलग थी। सब लोग हर पल मुझे घेरे रहते थे। मेरे सच्चे साथी होने का दम भरते थे। लेकिन आर्थिक संकट के गहराते ही न सिर्फ सबने मुझसे कन्नी काट ली है, बल्कि कोई मेरा दु:ख बांटने को भी तैयार नहीं है। आर्थिक संकट ने मुझे तन और मन दोनों से बीमार कर दिया है। ऐसा लगता है कि यदि मुझे जल्दी ही सही दिशा नहीं मिली तो मैं मौत के मुंह में चला जाऊंगा। उसकी कहानी सुनकर बाबा कुछ देर मौन रहे। फिर उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरकर बोले, यदि मानव सुख को, संपत्ति को निजी वस्तु न मानकर उसे सेवा, परोपकार के रूप में वितरित करने का संकल्प ले ले तो ईश्वर उससे प्रसन्न होकर स्वयं उसे विपत्ति से बचाने का प्रयास करते हैं। वह ऐसे व्यक्ति के सच्चे साथी बनकर आते हैं और उसे कठिनाइयों से उबारते हैं। निर्धन व असहायों की सेवा के बदले मिला आशीर्वाद भी व्यक्ति की विपत्ति व दु:ख को कम करने में मददगार साबित होता है। किंतु कई बार सुख-संपत्ति व्यक्ति की आंखों पर ऐसा पर्दा डालती है कि वह उसे वितरित करने को तैयार नहीं होता। यदि तुम नए सिरे से अपने जीवन का प्रारंभ कर मेहनत व लगन से काम करो और धन-दौलत को गरीबों व भूखों में वितरित करने का प्रण करो तो तुम्हें असीम शांति व आनंद मिलेगा। बाबा की बातें सुनकर उस व्यक्ति ने कहा, आपने मेरी आंखें खोल दीं। अपने विपत्ति के सच्चे साथियों को मैं हर वक्त अपने सीने से लगाकर रखूंगा। इसके बाद वह संतुष्ट मन से वहां से चला गया।

९६५) साधु होने का अर्थ - एक बार संत फ्रांसिस अपने शिष्य लियो के साथ कहीं जा रहे थे। रात हो चली थी और बहुत तेज बारिश भी हो रही थी। वे कच्ची सड़क पर चल रहे थे, इसलिए उनके कपड़े कीचड़ से लथपथ हो गए थे। दोनों कुछ देर तक चुप रहे फिर अचानक संत फ्रांसिस ने पूछा- क्या तुम जानते हो कि सच्चे साधु कौन होते हैं? लियो चुपचाप सोचते रहे। उन्हें मौन देख फ्रांसिस ने ही फिर कहा- सच्चा साधु वह नहीं होता जो किसी रोगी को ठीक कर दे या पशु-पक्षियों की भाषा समझ ले। सच्चा साधु वह भी नहीं होता जिसने घर-परिवार से नाता तोड़ लिया हो या जिसने मानवता के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया हो। लियो को यह सब सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा- तब फिर सच्चा साधु कौन होता है? फ्रांसिस बोले- कल्पना करो, इस अंधेरी रात में हम जब शहर पहुंचे और नगर का द्वार खटखटाएं। चौकीदार पूछे- कौन हो हम कहें- दो साधु। इस पर वह कहे-मुफ्तखोरों। भागों यहां से। न जाने कहां-कहां से चले आते हैं। लियो की हैरानी बढ़ती जा रही थी। फ्रांसिस ने फिर कहा- सोचो, ऐसा ही व्यवहार और जगहों पर भी हो। हमें हर कोई उसी तरह दुत्कारे। अपमानित करे, प्रताड़ित करे। तो भी यदि हम नाराज न हों, उनके प्रति थोड़ी भी कटुता हमारे मन में आए और हम उनमें भी प्रभु के ही दर्शन करते रहें तो यही सच्ची साधुता है। साधु होने का मापदंड है हर परिस्थिति में समानता और सहजता का व्यवहार। इस पर लियो ने सवाल किया- लेकिन इस तरह का भाव तो एक गृहस्थ में भी हो सकता है। तो क्या वह भी साधु है? फ्रांसिस ने मुस्कराते हुए कहा- बिल्कुल। जैसा कि मैंने पहले कहा सिर्फ घर छोड़ देना ही साधु होने का लक्षण नहीं है। साधु के गुणों को धारण करना ही साधु होना है। और ऐसा कोई भी कर सकता है।

९६६) सबसे बड़ी बाधा - एक बार राजा चंद्रगुप्त ने विद्वानों की सभा बुलाई। दूर-दूर से विद्वान आए। कई दिनों तक शास्त्रार्थ चला। इसमें भारवि को विजेता घोषित किया गया। राजा चंद्रगुप्त ने उनका यथोचित सम्मान किया और परंपरा के अनुसार उन्हें हाथी पर बिठाकर चंवर डोलाते हुए घर छोड़ने गए। उन्हें देखकर उनके माता-पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन भारवि ने अपनी मां का तो अभिवादन किया पर पिता के प्रति ठंडा रवैया अपनाया। पिता ने सभा के बारे में कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अनमने तरीके से बात की। उनके इस व्यवहार से उनके माता-पिता को दुख पहुंचा। भारवि को अपनी विद्वता का घमंड हो गया था। राजा ने उन्हें जो सम्मान दिया, उससे वह अपने आप को विशिष्ट समझने लगे थे। उन्हें लगने लगा कि उनके सामने उनके पिता भी कुछ नहीं है। लेकिन उनका यह नशा कुछ दिनों बाद टूट गया। तब उन्होंने पिता से सामान्य दिनों की तरह संवाद करना चाहा पर उनके व्यवहार से आहत पिता ने उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। भारवि ने अपने को उपेक्षित महसूस किया। फिर उन्होंने अपनी मां से कारण जानना चाहा तो मां ने उत्तर दिया, पुत्र तुमने अपने व्यवहार से अपने पिता को दुख पहुंचाया है तुम यह कैसे भूल गए कि आज तुम जहां तक पहुंचे हो, वहां पहुंचने में उनकी कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। जब तुम शास्त्रार्थ के लिए गए थे तो उन दिनों तुम्हारी विजय के लिए तुम्हारे पिताजी ने विशेष साधना की। उन दिनों वह केवल जल पीकर रहे। आज जिस ज्ञान के बल पर तुम सर्वश्रेष्ठ घोषित हुए हो, वह उन्हीं का दिया हुआ है। क्या तुम उनका ऋण कभी चुका सकते हो? भारवि अत्यंत लज्जित हुए। वह दौड़कर अपने पिता के पास गए और चरणों में गिर पड़े। पिताजी ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और कहा, पुत्र भारवि, ज्ञान की प्राप्ति में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। अच्छा है तुमने समय रहते इस बाधा को पहचान लिया और इसे दूर भी कर लिया।

९६७) पाप का बोझ - राजस्थान के पर्वतीय क्षेत्र में डाकू दुर्जन सिंह का बड़ा आतंक था। उस इलाके के लोग उसके नाम से ही कांपते थे। एक दिन उस क्षेत्र में एक जैन मुनि धर्म प्रचार करते हुए पहुंचे। दुर्जन सिंह ने सदाचार व अहिंसा के महत्व पर उनका प्रवचन सुना तो उसे महसूस हुआ कि वह घोर अधम जीवन बिता रहा है। उसे रात भर नींद नहीं आई।

सवेरे वह मुनि के पास पहुंचा और उनके चरण पकड़कर बोला, महाराज, मुझे सुख-शांति कैसे प्राप्त होगी? लगता है कि मैं पापों के बोझ से दबा जा रहा हूं।

मुनि ने कहा, चलो मेरे साथ। पहाड़ी पर घूमने चलते हैं। उन्होंने तीन पत्थर उसके सिर पर रखते हुए कहा, इन्हें ऊपर पहुंचाना है। पत्थर भारी थे। डाकू दुर्जन सिंह अपने सिर पर पत्थर रखकर मुनि के साथ चल पड़ा। कुछ ऊपर चढ़ते ही वह बोला, महाराज, मुझसे इतना भार लिए नहीं चढ़ा जाता। मुनि ने कहा, एक पत्थर गिरा दो। उसने एक पत्थर गिरा दिया। कुछ दूर पार करने के बाद वह फिर रुक कर बोला, महाराज, दो पत्थर लेकर चलना भी भारी पड़ रहा है। मुनि ने दूसरा पत्थर भी सिर से नीचे गिरा देने को कहा। वह कुछ और ऊंचाई पर चढ़ा तो बोला, एक पत्थर का भार भी भारी पड़ रहा है। मुनि ने कहा, इसे भी गिरा दो। अब वह मुनि के साथ आनंदपूर्वक ऊपर चढ़ता चला गया।

ऊपर पहुंचकर मुनि ने उसे समझाते हुए कहा, जिस प्रकार पत्थरों का भार ऊंचाई पर पहुंचने में बाधा डाल रहा था, उसी तरह पापों का बोझ शांति में बाधा डालता है। जब तक तुम एक-एक करके तमाम पापों लोभ-लालच, हिंसा का त्याग न कर दोगे तुम शांति की मंजिल तक कदापि नहीं पहुंच सकोगे। आज ही संकल्प लो कि भविष्य में पाप-कर्म नहीं करोगे। डाकू दुर्जन सिंह ने कान पकड़कर संकल्प लिया। उसके बाद अपराध छोड़कर वह दीन-दुखियों की सेवा में लग गया।

९६८) विश्वास की महिमा - रामदीन नामक एक व्यक्ति अपने जीवन से बेहद परेशान हो गया था। उसका किसी भी काम में मन नहीं लगता था। चाहे व्यवसाय हो या नौकरी, वह कहीं भी महीने भर से ज्यादा नहीं टिकता था। परिवार में सभी उससे नाराज रहते। उसकी पत्नी उसे छोड़कर मायके चली गई थी। एक दिन वह एक संत के पास गया और बोला, महाराज, मेरा किसी भी काम में मन नहीं लगता। मुझे अपना जीवन निरर्थक लगने लगा है। संत ने कहा, तुम्हें अपना जीवन निरर्थक लगने लगा है। संत ने कहा, तुम्हें अपना जीवन निरर्थक इसलिए लगता है क्योंकि तुम कोई भी काम मन लगाकर नहीं करते हो। यदि तुम अपने में यह दृढ़ निश्चय कर लो कि जो काम तुमने अपने हाथ में लिया है उसे हर हाल में एक निश्चित समय में पूरा करना ही है तो तुम्हारी यह समस्या स्वत: सुलक्ष जाएगी। जब भी तुम्हारा मन उकताने लगे तुम मन ही मन यह दोहराओ कि यदि विश्वास हो तो मुश्किल से मुश्किल काम को भी हल किया जा सकता है। धीरे-धीरे तुम ऐसा करके देखो। सब ठीक हो जाएगा। रामदीन संत की यह बात सुनकर वापस आ गया और उसी दिन से उसने कपड़ों पर कढ़ाई का काम शुरू कर दिया। उसने पहले भी एक बार यह काम किया था, किंतु मन न लगने के कारण छोड़ दिया था। इस बार रामदीन का मन जब भी उखड़ता तो वह मन ही मन यह दोहराता कि यदि विश्वास हो तो मुश्किल से मुश्किल काम को भी हल किया जा सकता है। इस प्रकार ऐसा बोलते-बोलते उसने कपड़े की सुंदर कढ़ाई की। कपड़ा बाजार में काफी अच्छी कीमत पर बिक गया। इससे रामदीन का आत्मविश्वास प्रबल हो गया और धीरे-धीरे वह मन लगाकर काम करना सीख गया। एक साल बाद उसका व्यवसाय बहुत बढ़ गया और उसका काफी नाम भी हो गया। उसकी रूठी पत्नी भी घर पर लौट आई और परिवार के साथ-साथ अन्य लोग भी उसके साथ इज्जत से पेश आने लगे।

९६९) महारानी का हार - एक बार वीरगढ़ राज्य की महारानी का हार कहीं खो गया। महारानी को हार बहुत प्रिय था। उन्होंने हार ढूंढने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं मिला। हार के लिए महारानी को बहुत परेशान देखकर राजा ने घोषणा करवा दी कि जिस व्यक्ति को भी हार मिला हो, वह तीन दिनों के भीतर उसे वापस कर दे अन्यथा उसे मृत्युदंड का भागी होना पड़ेगा। यह संयोग था कि हार एक संन्यासी को मिला था। उसके मन में हार के प्रति कोई आकर्षण नहीं था, फिर भी उसने यह सोचकर रख लिया कि कोई ढूंढता हुआ आएगा तो उसे दे देगा। उसने अगले दिन राजा की घोषणा सुनी, पर वह हार

देने नहीं गया। वह अपनी साधना में लीन रहा। तीन दिन बीत गए। चौथे दिन संन्यासी हार लेकर राजा के पास पहुंचा। राजा को जब पता चला कि तीन दिनों से हार उसके पास था, तो उसने क्रोधित होकर पूछा, क्या तुमने मेरी घोषणा नहीं सुनी थी? संन्यासी ने जवाब दिया सुनी थी, पर यदि मैं कल हार लौटाने आ जाता तो लोग कहते कि एक संन्यासी होकर मृत्यु से भयभीत हो गया। इस पर राजा ने पूछा, तो आज चौथे दिन क्यों लाए? इस पर संन्यासी ने कहा, मुझे मौत का भय नहीं है। पर मैं किसी दूसरे की संपत्ति को अपने पास रखना पाप समझता हूं। हार जैसी तुच्छ चीज से मुझे कोई लगाव नहीं। यह उत्तर सुनकर राजा लज्जित हो गया। महारानी को भी अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने हार बेचकर वह राशि गरीबों में बंटवा दी।

९७०) धर्मों की एकता - एक बार हकीम अजमल खां, डॉ. अंसारी तथा उनके कुछ मुस्लिम मित्र स्वामी श्रद्धानंद से मिलने गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार पहुंचे। उस समय गुरुकुल की विशाल यज्ञशाला में हवन हो रहा था। स्वामी श्रद्धानंद के सभी मुस्लिम मित्र उस आयोजन को कौतूहल से देखने लगे। जब हवन समाप्त हो गया तो स्वामी जी ने स्नेहपूर्वक सभी साथियों का स्वागत किया। फिर सब बैठकर बातें करने लगे। कुछ देर बातें करने के बाद स्वामीजी ने अपने मित्रों से कहा, खाने का समय हो रहा है। चलिए भोजन कर लें। बाकी बातें हम खाना खाने के बाद करेंगे। यह सुनकर उन अतिथियों में से एक बोला, स्वामीजी, यह समय हमारी नमाज का है, कृपया आप हमें कोई ऐसा स्थान बताइए जहां पर हम नमाज पढ़ सकें। भोजन हम नमाज पढ़ने के बाद ही करेंगे। यह सुनकर स्वामीजी बोले, हवन समाप्त हो चुका है, यज्ञशाला खाली पड़ी है। आप सब यहां नमाज पढ़ सकते हैं। यह सुनकर उनके मुस्लिम साथियों में से एक बोला, स्वामीजी, पर यह तो आपके हवन और पूजापाठ की जगह है। यहां पर हम कैसे...। स्वामीजी उस व्यक्ति की बात बीच में काटते हुए बोले, भाई, यह यज्ञशाला वंदना के लिए है, वह चाहे पूजा के रूप में हो या नमाज के रूप में। बात तो एक ही है। सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है- एकता, प्रेम एवं शांति बनाए रखना। मेरे विचार में तो आप सब यहां बिना किसी संकोच के नमाज पढ़ सकते हैं। यदि आप ऐसा करेंगे तो इससे सभी धर्मों की एकता बढ़ेगी और हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी एक-दूसरे के भाई-भाई बनकर रहेंगे। यह सुनकर सभी मुसलमान मित्रों ने उस यज्ञशाला में नमाज पढ़ी और स्वामीजी के विचारों की मन ही मन सराहना की। विभिन्न धर्मों में एकता बनाए रखने के लिए ही मुसलमान बंधुओं ने उन्हें बड़े आदर व प्रेम के साथ दिल्ली की जामा मस्जिद में बुलाकर उनका प्रवचन कराया।

९७१) शांति और सुख की खोज- एक टीले पर बैठे हुए संत अनाम डूबते सूर्य को बड़े ध्यान से देख रहे थे। वे देख रहे थे, किस प्रकार एक दिन महाशक्तिओं का वैभव नष्ट हो जाता है। संत अनाम इन्हीं विचारों में डूबे थे कि एक आदमी उनके पास आया और प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। संत अनाम ने पूछा, वत्स। मुझसे कुछ काम है? आगंतुक ने कहा, भगवन्। मैं पुरु देश का धनी सेठ हूं। तीर्थयात्रा के लिए चलने लगा तो मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि आप इतने स्थानों की यात्रा करेंगे। कहीं से मेरे लिए शांति, सुख और प्रसन्नता मोल ले आना। मैंने अनेक स्थानों पर ढूंढा, पर तीनों वस्तुएं कहीं नहीं मिली। आपको अत्यंत शांत, सुखी और प्रसन्न देखकर ही आपके पास आया हूं। संभव है, आपके पास ही वे वस्तुएं उपलब्ध हो जाएं। संत अनाम मुस्कराए और अपनी कुटिया के भीतर चले गए। कुछ क्षणों के बाद ही वह लौटकर आए और एक कागज की पुड़िया देते हुए बोले, यह अपने मित्र को दे देना और हां, तब तक इसे कहीं खोलना मत। आगंतुक पुड़िया लेकर चला गया और मित्र को दे दी। कुछ दिनों बाद जब वह फिर मित्र से मिलने गया तो देखा कि मित्र काफी प्रसन्न दिख रहा है। उसने कहा, मित्र। मुझे भी अपनी औषधि का कुछ अंश दे दो तो मेरा भी कल्याण हो जाए। मित्र ने पुड़िया खोलकर दिखाई।

९७२) भगवताचार्य स्वामी अखंडानंद सरस्वती के शिष्यों ने वृंदावन में आनंद आश्रम की स्थापना की थी। एक वृद्ध महिला, जिसे सब बड़ी बुआ कहते थे, भोजन का दायित्व संभालती थी। एक बार वह सबको भोजन कराकर किसी कार्य से अखंडानंद जी की कुटिया में पहुंची। स्वामीजी ने पूछा, क्या आश्रम में हर किसी ने भोजन कर लिया ? बड़ी बुआ बोली, हां कर लिया। मैं सभी कुटियों में देख आई हूं, सब भोजन कर चुके हैं। मैंने भी खा लिया। इस पर स्वामीजी बोले, आज सवेरे मैं गायों को देखने गया था। जिस कोठरी में गायों का भूसा रहता है, वहां एक कुतिया ने बच्चे दिए हैं। क्या उसे दूध पिलाया गया ? आदि शंकराचार्य ने कहा था कि हर प्राणी में ईश्वर बसता है। बड़ी बुआ कुतिया के बच्चों को दूध पिलाने पहुंच गई।

९७३) मन और कर्म- जाजलि नाम का एक ब्राह्मण था। वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। ज्ञान की खोज में घूमते-घूमते वह एक साधु के पास गया। उस साधु ने उसे एक तुलाधार वैश्य के पास जाने की सलाह दी। ब्राह्मण वहाँ गया। अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए उसने तुलाधार से कहा, मुझे ऐसा ज्ञान दीजिए, जिससे मेरा जीवन सुधर जाये।

तुलाधार बोला, इस तराजू को देखो। इसकी डंडी हमेशा सीधी रखनी है। न ऊँची, न नीची। बस जाजलि ने देखा कि तराजू की डंडी को सीधा रखने के बाह्य कर्म को करते-करते तुलाधार का मन भी सीधा हो गया। उसकी दुकान पर छोटा-बड़ा, धनी-निर्धन, जो भी आता था, उसकी तुला की डंडी सबके लिए एक समान रहती थी।

जाजलि को बोध हुआ। हम जो कुछ भी करते हैं, उसका असर हमारे मन पर पड़ता है। कर्मयोगी का कर्म एक प्रकार का जप होता है। उससे उसकी चित्त-शुद्धि होती है और निर्मल बुद्धि का प्रभाव हमारे कर्म पर पड़ता है।

९७४) सेवा का संदेश- यह घटना उस समय की है जब स्वामी शिवानंद सरस्वती जी महाराज मलाया में रहकर चिकित्सा कार्य करते थे। उन दिनों अंग्रेजों के रबर के बगीचों में अनेक भारतीय भी काम करते थे। अधिकतर भारतीय निर्धन थे। स्वामी जी एक बगीचे के पास स्थित अपने क्लीनिक में रोगियों की चिकित्सा करते थे। एक दिन एक बहुत ही गरीब श्रमिक अपनी पत्नी को साथ लेकर उनके पास पहुंचा। उसकी पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी और बुरी तरह कराह रही थी। यह देखकर स्वामीजी द्रवित हो उठे और तुरंत उसके इलाज में लग गए। जब श्रमिक ने देखा कि स्वामी जी द्रवित हो उठे और तुरंत उसके इलाज में लग गए। जब श्रमिक ने देखा कि स्वामी जी बिना कुछ कहे उसकी पत्नी का इलाज कर रहे हैं तो वह रोता हुआ बोला, स्वामीजी, मेरे पास इस समय आपको देने के लिए एक रूपया तक नहीं है। मैंने तो यह भी नहीं पूछा कि आप मेरी पत्नी के इलाज की कितनी फीस लेंगे। इलाज करने के बाद यदि मैं आपकी फीस न चुका पाया तो क्या होगा? कृपया आप मुझे अपनी फीस बताइए ताकि मैं उसका इंतजाम कर सकूं। श्रमिक की बात सुनकर स्वामीजी बोले, परेशान होने की जरूरत नहीं है। पहले मुझे इसकी जांच तो कर लेने दो। वह ठीक हो जाए फिर फीस भी आ ही जाएगी। स्वामीजी ने श्रमिक की पत्नी की बीमारी का पता लगाकर उसके लिए जड़ी-बूटियां बनाईं और उसे पिलाईं। कुछ देर बाद वह श्रमिक को अनेक दवाइयां और उसके साथ ही कुछ रुपये देते हुए बोले, इस समय तुम्हारी पत्नी को इन दवाइयों के साथ ही पौष्टिक भोजन व फल की भी सख्त जरूरत है। तुम इन दवाइयों के साथ इसे फल, दूध व अन्य पौष्टिक आहार देते रहना। कुछ दिनों में यह स्वस्थ हो जाएगी। जब कभी तुम्हारे पास रुपये आ जाएं तो किसी रोगी व जरूरतमंद की मदद कर देना। समझ लेना मुझे मेरी फीस मिल गई। यह सुनकर श्रमिक स्वामी जी के प्रति नतमस्तक हो गया।

९७५) मनुष्य की सेवा- एक प्रसिद्ध संत मृत्यु के बाद जब स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचे तो चित्रगुप्त उन्हें रोकते हुए बोले, रुकिए संत जी, अंदर जाने से पहले लेखा-जोखा देखना पड़ता है। चित्रगुप्त की बात संत को अच्छी नहीं लगी। वह बोले, आप यह कैसा व्यवहार कर रहे हैं? बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी मुझे जानते हैं। इस पर चित्रगुप्त बोले, आपको कितने

लोग जानते हैं, इसका लेखा-जोखा हमारी बही में नहीं होता, इसमें तो केवल कर्मों का लेखा-जोखा होता है। इसके बाद वह बही लेकर संत के जीवन का पहला हिस्सा देखने लगे। यह देखकर संत बोले, आप मेरे जीवन का दूसरा भाग देखिए क्योंकि जीवन के पहले हिस्से में तो मैंने लोगों की सेवा की है, उनके दु:ख दूर किए हैं। जबकि जीवन के दूसरे हिस्से में मैंने जप-तप और ईश्वर की आराधना की है। दूसरे हिस्से का लेखा-जोखा देखने पर आपको वहां पुण्य की चर्चा अवश्य मिलेगी। संत की बात मानकर चित्रगुप्त ने उनके जीवन का दूसरा हिस्सा देखा तो वहां उन्हें कुछ भी नहीं मिला। सब कुछ कोरा था। वह फिर से उनके जीवन के आरंभ से उनका लेखा जोखा देखने लगे। आरंभ का लेखा-जोखा देखा वह बोले, संतजी, आपका सोचना उल्टा है। आपके अच्छे और पुण्य के कार्यों का लेखा-जोखा जीवन के आरंभ में है। यह सुनकर संत आश्चर्यचकित होकर बोले, यह कैसे संभव है? चित्रगुप्त बोले, संतजी, जीवन के पहले हिस्से में आपने मनुष्य की सेवा की, उनके दु:ख-दर्द कम किए। उन्हीं पुण्य के कार्यों के कारण आपको स्वर्ग में स्थान मिला है, जबकि जप-तप और ईश्वर की आराधना आपने अपनी शांति के लिए की है। इसलिए वे पुण्य के कार्य नहीं है। यदि केवल आपके जीवन के दूसरे हिस्से पर विचार किया जाए तो आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा। संत समझ गए कि जीवन में जप-तप से बड़ा कर्म है सच्चे मन से मनुष्य की सेवा।

९७६) सफल दान- पुराने जमाने की बात है। राजा सुन्दर सिंह के नगर से कुछ दूरी पर एक गांव के मंदिर में संत गौरीबाई रहती थीं। वह ईश्वर की आराधना में व्यस्त रहने के बावजूद समय निकालकर गांव वालों की मदद किया करती थीं। किसी के दु:ख-दर्द को वह अपना दु:ख-दर्द समझती थीं। गांव वाले उनके प्रति अत्यंत श्रद्धा रखते थे और उन्हें प्यार से गौरी माई बुलाते थे। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। जब राजा सुन्दर सिंह ने उनके बारे में सुना तो उनसे मिलने जा पहुंचे। गौरी बाई के दर्शन कर और उनकी बातें सुनकर वह बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि उन्हें संत को कुछ भेंट करना चाहिए सो उन्होंने गौरीबाई को पचास हजार स्वर्ण मुद्राएं दीं। पहले तो संत ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया पर राजा के बार-बार अनुरोध करने पर उन्हें स्वीकार तो कर लिया, मगर गरीबों के बीच बांट देने को कहा। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, ये मुद्राएं आपके लिए हैं। इन पर तो आपका अधिकार है। इस पर संत ने मुस्कराकर कहा, राजन, आप ठीक कहते हैं। इन मुद्राओं पर मेरा अधिकार है, लेकिन मुझ पर तो इन गांव वालों का अधिकार है। मैं तो इनकी सेवक हूं इसलिए मुझसे पहले इन पर गांव वालों का हक बनता है।

इस पर राजा ने कहा आप धन्य हैं। पर आपकी भी तो कुछ आवश्यकताएं हैं। गौरीबाई ने कहा, राजन, आप मेरी चिंता न करें। मैं तो अकेली इन हजारों गांव वालों का ध्यान रखती हूं और ये हजारों गांव वाले मुझ अकिंचन का ख्याल रखते हैं। फिर मुझे भला क्या आवश्यकता होगी जिसकी पूर्ति न हो सके। मैं तो बस गांववालों को सुखी देखना चाहती हूं। इनके सुख में ही मेरा सुख भी है। इसलिए ये मुद्राएं सही जगह जा रही हैं। इससे आपका दान भी सफल हो रहा है। संत गौरीबाई की इस बात का राजा पर इतना असर हुआ कि उन्होंने भी गरीबों की सेवा का व्रत ले लिया।

९७७) महाकवि सूरदास के अलावा एक और सूरदास थे उनका पूरा नाम था सूरदास मदन मोहन। वह संडीला तहसील के अमीन थे। शाही अमानत रखने वाले को अमीन कहते थे। वह अकबर बादशाह के समकालीन थे। इनकी प्रकृति साधुओं की थी। बड़े उदार थे। इन्हें जो कुछ मिलता साधुओं को खिलाने-पिलाने में खर्च कर देते।

एक बार तहसील की मालगुजारी से सरकारी खजाने में कई लाख रुपए आए। सूरदास मदनमोहन ने सारा धन साधु-संतों की सेवा में खिलापिला कर खर्च कर डाला। इतना ही नहीं, बदले में शाही खजाने में कंकड़-पत्थरों से भरे संदूक भिजवा दिए। इन संदूकों के भीतर यह पैगाम लिखकर चिपका दिए।

तेरह साल संडीले आए, सब साधुन मिलि गटके। सूरदास मदनमोहन, आधी रात को ही सटके।

ये आधी रात को ही भाग कर, विरक्त होकर वृन्दावन में जाकर रहने लगे। बादशाह अकबर ने इन्हें क्षमा करके फिर बुलाया पर इन्होंने वैराग्य नहीं त्यागा।

९७८) सही मार्ग अपनाओ- विल्वमंगल वेश्या चिंतामणि पर अत्यंत मुग्ध थे। वे पिता की अंत्येष्टि के बीच में से ही लोगों से आंखें चुराकर वेश्या के यहां चल दिये। रास्ते में नदी पड़ती थी। पार कैसे जाएं, पानी में बहते एक मुर्दे पर सवारी गांठी और पार हो गये। रात्रि को वेश्या के घर पहुंचे। वेश्या ने उन्हें धिक्कारा। सारे धर्म-कर्म छोड़ बैठने के कुकृत्य पर लताड़ा और कहा-जैसी सड़ी लाश पर बैठकर अभी आये हो वैसी यह सड़ी लाश ही सामने पड़ी है। इस मल-मूत्र की गठरी से मोह छोड़ो और सही मार्ग अपनाओ। वेश्या के सदुपदेशों से प्रभावित होकर ही निंदनीय विल्वमंगल महात्मा सूरदास बने थे।

९७९) निर्मल मन- रामानुजाचार्य रोज प्रात: स्नान करने के लिए नदी पर जाया करते थे। जब वे बूढ़े हो गए और उनकी कमर झुक गई, तब भी उन्होंने नदी पर जाकर स्नान करना नहीं छोड़ा। बहुत कमजोर होने पर भी वह नदी तक जाने के लिए ब्राह्मण शिष्य का सहारा लेते थे और वहां से लौटते समय एक शूद्र का। उनके इस व्यवहार पर कुछ रुढ़िवादी तिलमिलाते थे। जो लोग स्वामी रामानुजाचार्य को ऐसा करते देखते उनकी समझ में यह नहीं आता कि स्नान के बाद वह अपनी देह शूद्र से क्यों छुआते हैं ? एक दिन एक व्यक्ति से रहा न गया तो उसने अपने मन का आक्रोश स्वामीजी के समक्ष प्रकट कर दिया। सब कुछ ध्यान से सुनकर रामानुजाचार्य ने हंसते हुए कहा- मैं अहंकार दमन का उपदेश देता हूं, तो मेरे अन्दर अहंकार नहीं रहना चाहिए। यदि अहंकार रहेगा तो मेरे उपदेश व्यर्थ है। स्नान करने से शरीर निर्मल होता है, परन्तु शूद्र के संसर्ग से मरा मन पवित्र हो उठता है। शरीर की शुद्धि के साथ-ासथ मन की शुद्धि भी परम आवश्यक है। अपने उच्च कुल और उच्च जाति का अभिमान धो सकूं, क्योंकि इस अभिमान के मैल को पानी से धोने में असमर्थ हूं।

९८०) गुरु की सीख - बहुत पुरानी कथा है। महर्षि रमण रोज की तरह नदी किनारे साधना में लीन थे। उनका एक शिष्य उनके पास आया, जिसने कुछ ही दिनों पहले उनका शिष्यत्व हासिल किया था। वह राज परिवार से आता था। वह चाहता था कि अपने गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करे। लेकिन इसका उचित तरीका उसे समझ में नहीं आ रहा था। तभी उसे कुछ ख्याल आया। वह दो बड़े-बड़े मोती ले आया। उसने महर्षि के चरणों पर दोनों मोती रख दिए। महर्षि रमण ने आंखें खोलीं और एक मोती उठाया, फिर उसे उलट-पुलट कर देखने लगे। अभी वे मोती को देख ही रहे थे कि वह उनके हाथों से फिसल कर नदी में जा गिरा। महर्षि रमण के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। वे फिर से ध्यान में लीन हो गए। शिष्य एक किनारे पर चुपचाप खड़ा यह सब देख रहा था। उधर महर्षि साधना में लीन हुए इधर शिष्य नदी में कूद पड़ा। शिष्य ने देर तक नदी में कई गोते लगाए किंतु उसे मोती नहीं मिला। अंतत: वह निराश हो गया और उसने गुरुजी को ध्यान से हटाकर पूछा, आपने देखा था कि वह मोती कहां पर गिरा था। आप बताएं तो मैं उसे खोज कर वापस आपको लाकर दूंगा। गुरुजी ने दूसरा मोती उठाया और नदी में फेंकते हुए बोले, वहां। शिष्य अवाक होकर उनका मुंह देखता रह गया। अब शिष्य की आंखें खुल चुकी थीं और उसे अपने मोतियों का मोल मालूम हो चुका था। वह समझ गया कि यह भी एक पाठ है जो उसने सीख लिया है।

९८१) जीवन का उपयोग- महर्षि रमण के आश्रम के पास एक गांव में एक अध्यापक रहता था। रोज-रोज के पारिवारिक तनाव और कलह से ऊबकर उसने आत्महत्या करने का निर्णय किया। यह निर्णय करना उसके लिए आसान नहीं था, क्योंकि परिवार के भविष्य की भी उसे चिंता थी। ऊहापोह की इस स्थिति में वह महर्षि रमण के आश्रम में पहुंचा और उन्हें सारी बात बताकर उनकी राय पूछी। महर्षि उस समय आश्रमवासियों के भोजन के लिए पत्तलें बना रहे थे। वे

चुपचाप उसकी बात सुनते रहे। पत्तल बनाने में महर्षि के परिश्रम और तल्लीनता को देखकर अध्यापक को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, आप इतने परिश्रम से ये पत्तल बना रहे हैं, जबकि भोजन के उपरांत ये कूड़े में फेंक दी जाएंगी। महर्षि मुस्कुराते हुए बोले, आप ठीक कहते हैं, लेकिन किसी वस्तु का पूरा उपयोग हो जाने के बाद उसे फेंकना बुरा नहीं है। बुरा तो तब कहा जाएगा जब उसका उपयोग किए बिना अच्छी अवस्था में ही कोई फेंक दे। मेरे कहने का आशय तो आप समझ ही गए होंगे। अध्यापक की समस्या का समाधान हो गया और वह दुखों से भागने की बजाय उनसे जूझने और संघर्ष करने का संकल्प लेकर वहां से रवाना हुआ।

९८२) सेवा की सीढ़ी - एक दिन महर्षि रमण के पास दो धर्मप्रचारक आए। उन्होंने महर्षि को प्रणाम करके कहा, आप कहते हैं कि आपको प्रभु के दर्शन हो गए हैं। आप हमें भी ईश्वर के दर्शन कराइए। महर्षि तैयार हो गए। वह उन्हें लेकर एक टूटी-फूटी झोपड़ी के पास पहुंचे। वहां रखा पानी का बर्तन खाली था।

जमीन पर कुष्ठरोग से पीड़ित एक वृद्ध सोये थे। महर्षि दोनों को दरवाजे पर खड़े रहने को कहकर अंदर आ गए। उन्होंने वहां सफाई की, फिर घड़े में पानी भरा। इसके बाद वृद्ध के कान में प्रभु के नाम का उच्चारण कर उन्हें जगाया। महर्षि ने कहा, देखो सुबह हो गई है। सूरज कनक-थाल लेकर आपके द्वारा आया है। लेकिन वृद्ध के चेहरे पर प्रसन्नता और बदन में फुर्ती नहीं थी। महर्षि ने उनके घाव धोये। कुछ औषधि लेपन किया। फिर उन्हें नित्य कर्म से फारिग कराकर प्रसाद दिया। इसके बाद महर्षि ने वृद्ध से कहा, आइए। अब प्रभु का ध्यान करें।

कुछ देर तक महर्षि और वृद्ध दोनों ने ध्यान किया। यह सब दोनों धर्मप्रचारक कुछ दूर से देख रहे थे। उनकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। उन्हें लग रहा था शायद अब महर्षि कुछ ऐसा करें जिससे प्रभु का दर्शन संभव हो सके। इधर महर्षि ने वृद्ध से पूछा, क्या आपको प्रभु के दर्शन हुए? वृद्ध ने कहा, हां हो गए। महर्षि ने पूछा, वह कैसे थै? वृद्ध ने मुस्कराकर कहा, बिल्कुल आप जैसे।)

अब वृद्ध की बारी थी। उन्होंने पूछा, क्या आपको प्रभु के दर्शन हुए? महर्षि ने कहा, हां हुए। वृद्ध ने पूछा, वह कैसे थे? महर्षि ने कहा, बिल्कुल आप जैसे। यह कहकर महर्षि दोनों धर्मप्रचारकों की ओर मुड़े और उन्होंने पूछा, क्या आप लोगों को प्रभु के दर्शन हुए? धर्मप्रचारकों ने कहा, हो गए। यह भी पता चल गया कि प्रभु का द्वार चढ़ना हो तो उसका रास्ता सेवा की सीढ़ी से होकर जाता है।

९८३) राम नाम की महिमा- भक्त हरिदास राम नाम के मतवाले थे। प्रभु राम का नाम सदैव उनकी जुबान पर रहता। हरिदास का जन्म एक मुसलमान परिवार में हुआ था, परन्तु उन्हें प्रभु राम का नाम लिए बिना चैन नहीं था। उनके ही गांव में गोराई काजी नामक एक कट्टर मुसलमान भी रहता था, जो हरिदास की भक्ति से बहुत चिढ़ता था।

उसने हरिदास की शिकायत उस समय के मुगल हाकिम से की और कहा, इस काफिर को ऐसी सजा देनी चाहिए जिससे सब डर जाएं और आगे से कोई भी ऐसा नापाक काम करने की हिम्मत न करे। इसे बैंत मारते हुए शहर के बाजारों में घुमाया जाए। बैंत तब तक मारते रहना चाहिए जब तक कि वह मर न जाएं। हाकिम ने काजी की बात पर सहमत होकर हुक्म दे दिया।

बैंत मारनेवाले जल्लाद ने भक्त हरिदास को बांध लिया और उनकी पीठ पर बैंत मारते-मारते उन्हें बाजारों में घुमाने लगा परन्तु हरिदास जी के मुंह से राम नाम की ध्वनि बंद नहीं हुई। जल्लाद कहता, राम नाम बन्द करो।

हरिदास जी कहते, भाई, मुझे एक बैंत और मारो मगर ऐसे ही राम नाम लेते रहो। इसी बहाने तुम्हारे मुंह से मेरे राम का नाम तो निकलेगा। बैंतों की मार से हरिदास की चमड़ी उधड़ गई। खून की धारा बहने लगी परन्तु निर्दयी जल्लाद के हाथ नहीं

रुके। इधर हरिदास की राम नाम धुन भी बन्द नहीं हुई। अन्त में हरिदास जी बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। जल्लाद ने उन्हें मरा समझ कर गंगा में बहा दिया। गंगा के शीतल जलस्पर्श से उन्हें चेतना प्राप्त हो गई और वह बहते-बहते अपने ही गांव के समीप घाट पर आ पहुंचे। लोगों ने उन्हें देखकर बड़ी खुशी प्रकट की। जगह-जगह उनका सम्मान-स्वागत किया गया।

उन्हें जीवित और कुशल देख मुगल हाकिम को भी अपने किए पर पश्चाताप होने लगा परन्तु लोगों में उसके विरुद्ध बहुत रोष था। लोग बगावत की तैयारी करने लगे थे।

इस पर भक्त हरिदास ने कहा, इसमें इनका कोई अपराध नहीं था। मनुष्य अपने कर्मों का ही फल भोगता है। दूसरे तो केवल इसमें सहायक बनते हैं। फिर यहां तो इनको साधन बनाकर मेरे राम ने मेरी परीक्षा ली है। प्रभु राम यह देखना चाहते थे कि राम नाम में मेरी रुचि भी है या मैं ढोंग ही करता हूं। मैं तो कुछ था ही नहीं। उन्हीं की कृपा शक्ति ने मुझे अपनी चेतना के अन्तिम श्वास तक नाम-कीर्तन में दृढ़ रखा। इनका कोई अपराध हो तो भगवान इनको क्षमा करें।

संत की वाणी सुनकर सभी लोग धन्य-धन्य पुकार उठे। मुगल हाकिम और गोराई काजी पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और वह भी प्रभु राम नाम के कीर्तन के प्रेमी बन गए। अब राम नाम की महिमा के साथ पूरे क्षेत्र में शान्ति का साम्राज्य है।

९८४) अमरता- एक युवक के मन में अमर होने का फितूर सवार हुआ। उसने एक महात्मा से पूछा, क्या आप मुझे अमर होने का रहस्य बता सकते हैं ? महात्मा ने कहा, पहले तुम मेरे प्रश्नों का जवाब दो, फिर विचार करूंगा। तुमने क्या राजा हरिश्चंद्र का नाम सुना है ?

युवक ने उत्तर दिया, वह एक सत्यवादी राजा थे।

महात्मा ने फिर पूछा, क्या तुम उनके समय की सबसे खूबसूरत स्त्री का नाम बता सकते हो ? सवाल सुनते ही युवक घबरा गया, बोला- यह बात कोई कैसे बता सकती है ? इतिहास में कितनी ही सुंदर स्त्रियां हुई हैं।

तब महात्मा ने हंसते हुए कहा, यही है अमर होने का रहस्य। अपने अच्छे कर्मों के कारण ही राजा हरिश्चंद्र हजारों वर्ष बाद भी याद किए जाते हैं। शरीर नश्वर होता है। हम अपने नेक कर्मों से ही अमरता को प्राप्त कर सकते हैं।

९८५) यज्ञ का अर्थ- राजस्थान के एक कस्बे में संकीर्तन यज्ञ का आयोजन किया गया। देश के अनेक संत महात्माओं तथा संकीर्तनाचार्यों को उसमें आमंत्रित किया गया। भागवत मर्मज्ञ स्वामी अखंडानंद सरस्वतीजी अनेक संतों के साथ उपस्थित हुए। एक दिन एक व्यक्ति उनके पास आया तथा हाथ जोडकर बोला, महाराज, आपके इस यज्ञ के कारण मुझे गांव छोड़कर जाना होगा। स्वामीजी ने पूछा, यज्ञ के कारण गांव क्यों छोड़ना होगा ? उसने बताया, मैं दर्जी का काम करके रोजी-रोटी चलाता हूं। जमींदार साहब यज्ञ के आायेजक हैं। उनके कारिंदों ने आदेश दिया है कि या तो यज्ञ समारोह के लिए बीस-बीस रुपये चंदा दो, वरना गांव छोड़कर चले जाओ। यह बताकर वह रोने लगा। स्वामीजी ने जमींदार को बुलवाया। बोले, ठाकुर साहब, यज्ञ का अर्थ परोपकार होता है। यदि इस धार्मिक आयोजन के लिए हम गरीबों की सेवा-सहायता के बजाय उनका दिल दुखाकर उगाही करेंगे, तो यह धर्म नही, पाप कर्म होगा। जमींदार ने तत्काल अपने मुनीम को आदेश दिया कि यज्ञ के लिए किसी से भी चंदा न लिया जाए।

९८६) एक बार एक महात्मा के पास एक स्त्री को साथ लेकर पाँच पुरुष आये और उन्होंने कहा कि इस स्त्री का चरित्र खराब है, हम इसे पत्थरोंसे मारना चाहते हैं। इसपर महात्मा ने कहा- जरूर, इसका अपराध भयंकर है, इसे मारना चाहिये, परंतु मारे वही जिसकी आँखे कभी परस्त्रीकी ओर न गयी हों और जिसके मनमें कभी परस्त्रीके प्रति कोई पाप न आया हो। नहीं तो, मारनेवाला ही मर जायगा। महात्माकी इस बातको सुनकर तो सभी एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। महात्माने कहा, मारते क्यों

नहीं ? उन्होंने कहा, भगवन्। कैसे मारें, ऐसी भूल तो हम सभीसे होती है। तब महात्मा बोले-भले-मानसो। तुम स्वयं जो अपराध करते हो, उसीके लिये दूसरेको मारना चाहते हो, तुम्हारे न्यायानुसार पहले तुम्हींको क्यों नहीं मारना चाहिये ?

९८७) समझ का फेर- किसी नगर में एक गुरुकुल था, जिसमें धार्मिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था। इस गुरुकुल के आचार्य सभी ब्रह्मचारियों को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देते थे। एक बार आचार्य ने ब्रह्मज्ञान का पाठ पढ़ाते हुए बताया कि ब्रह्म सभी जीवों में एकसमान समाया हुआ है। इस दुनिया के सभी प्राणी व वस्तुएं वास्तव में नारायण का ही रूप है। उन शिष्यों में से एक ने इस उपदेश का शाब्दिक अर्थ तो समझ लिया, परन्तु उसके मर्म को समझ नहीं पाया।

एक दिन वही शिष्य नगर के बाजार से निकल रहा था। उसने देखा कि सामने एक हाथी चला आ रहा था, जिस पर महावत भी सवार है। महावत दूर से आवाज लगाता आ रहा था- हट जाओ, रास्ते से हट जाओ। उस शिष्य ने भी महावत के इन चेतावनी भरे शब्दों को सुना, पर वह मार्ग से नहीं हटा। उसके मन में आचार्य की बात थी कि सभी प्राणियों में नारायण है। फिर यह हाथी भी तो नारायण हुआ और मैं भी, उसने सोचा। नारायण से कैसा भय। यह सोचते हुए वह शिष्य उसी मार्ग पर चलता रहा, पर जब वह हाथी के सामने पहुंचा तो हाथी ने उसे सूंड से उठाकर पटक दिया। शिष्य को बहुत चोंटें आईं। वह रोते-चिल्लाते गुरुकुल पहुंचा। गुरुकुल पहुंचकर उसने आचार्य को इस घटना का पूरा ब्यौरा दिया। शिष्य ने शिकायत भरे भाव से कहा कि आचार्य आपने जो हमें उपदेश दिया था, मैं तो उसी के अनुसार चल रहा था। जब सभी जीव नारायण हैं, तो हाथी भी तो नारायण है और मैं भी नारायण हूं, फिर नारायण ने नारायण को क्यों पटक दिया। आपके उपदेश ने तो मेरी जान ही ले ली होती।

आचार्य ने शिष्य से कहा- वत्स, मैंने ठीक ही कहा था कि सभी जीवों में नारायण है, पर तुमने उसका अनुचित अर्थ लगा लिया। तुममें नारायण है, हाथी में नारायण है, किन्तु उस महावत में भी तो नारायण है, जो तुम्हें और अन्य पथिकों को मार्ग से हटने की चेतावनी दे रहा था। तुमने उस नारायण की बात क्यों नहीं सुनी ?

९८८) सर्वश्रेष्ठ बुद्धि- गुरु अपने शिष्यों को समझा रहे थे, बुद्धि तीन प्रकार की होती है- कम्बल बुद्धि, पत्थर बुद्धि और बांस बुद्धि। गुरु की बात सुनकर एक जिज्ञासु शिष्य से रहा नहीं गया। उसने गुरु से पूछ ही लिया, गुरुदेव, इन तीन प्रकार की बुद्धियों का अर्थ भी समझाइए। गुरु समझाने लगे- कम्बल में सूई डालिए और फिर निकाल दीजिए। क्या कोई बता सकता है कि कम्बल में सुई कहां डाली गई ? सभी शिष्य एक साथ बोले, कोई नहीं बता सकता। शिष्यों का उत्तर सुन कर गुरु बोले- बात बुद्धि में डाल दी, परंतु बात समाप्त होते ही मैदान साफ। पता ही नहीं चलता कि बात बुद्धि में कहां डाली गई। ऐसी बुद्धि कम्बल बुद्धि कहलाती है। दूसरी होती है, पत्थर बुद्धि। पत्थर में बड़ी कठिनाई से छेद होता है, परंतु अगर छेद हो गया तो वह स्थायी हो गया। वह बंद नहीं हो सकता। इसे हम पत्थर बुद्धि कहते हैं। बात बड़ी मुश्किल से समझ में आती है, लेकिन एक बार समझ लेने के बाद व्यक्ति उसे भूल नहीं सकता। तीसरी होती है बांस बुद्धि। बांस में चाकू डालिए, आगे की ओर-वह स्वयं चिरता चला जाएगा। जरा इशारे में समझा दीजिए, व्यक्ति आगे की बात समझता चला जाएगा। तीन बुद्धियों में यही बांस बुद्धि ही सर्वश्रेष्ठ बुद्धि कहलाती है।

९८९) सोचने का ढंग- आश्रम में गुरु ने प्रवचन के बाद अपने शिष्यों से कहा, आज मैं आप लोगों के सामान्य ज्ञान की परीक्षा लेना चाहता हूं। काम सबको मिलकर करना है। एक छात्र ने कहा, गुरुजी, आप जो भी काम देंगे उसे हम पूरी श्रद्धा से करेंगे। गुरु ने कहा, काम पूरा करने के लिए श्रद्धा आवश्यक है लेकिन उसके साथ दिमाग लगाने की भी जरूरत होती है। खैर, यह छननी ले जाइए और इसमें समंदर का पानी भरिए।

समंदर का किनारा पास ही था और लड़कों में काम पूरा करने का उत्साह। बात पूरी होते न होते वे चल पड़े। लेकिन समंदर किनारे जाने पर यह बात उनके ध्यान में आई कि छननी में पानी भरा ही नहीं जा सकता। उसमें जितनी बार पानी भरेंगे, उतनी बार वह छेदों से रिस जाएगा। अब क्या करें ? दोपहर टल जाने के बाद भी जब छात्र नहीं लौटे तब गुरु समंदर किनारे पहुंचे। देखा सभी छात्र छननी के गिर्द चिंता में लीन बैठे हैं। गुरु को आते देखकर एक छात्र उछलकर उनके पास आया और कहने लगा, आपने तो बड़ा कठिन काम हमें दिया है। छननी में पानी कैसे भरें ? यह हमारी समझ से बाहर हैं।

गुरु ने कहा, काम तो कठिन नहीं है, हां आपने उसे करने का एक तरीका सोच रखा है।

शिष्यों में से एक ने पूछा, आप क्या कह रहे हैं गुरुजी, हमारी समझ में नहीं आ रहा। गुरु ने कहा, लाओ मैं तुम्हें छननी में पानी भर कर दिखाता हूं। सभी छात्र उत्सुकता से गुरु के पीछे चले। गुरु समंदर किनारे से पानी में आगे कुछेक कदम चले। फिर उन्होंने छननी पानी में रख दी। छननी अपने आप पानी के अंदर जाकर बैठी। गुरु ने पूछा, बताओ, छननी में पानी है या नहीं ? सभी छात्रों के चेहरों पर रौनक लौट आई। उन्होंने कहा, हां है। तब गुरु उन्हें समझाते हुए बोले, किसी भी समस्या को सुलझाने का एक तरीका नाकामयाब रहे, तो उसके बारे में दूसरे ढंग से सोच कर देखना चाहिए। छात्र गुरु की इस सीख को कभी नहीं भूले।

९९०) अहंकार- वैदिक काल में सिंधु नदी के किनारे जंगल में किसी महर्षि के आश्रम में दो शिष्य पूरे मनोयोग से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। कई वर्षों तक कड़ी साधना करने के बाद दोनों अपने-अपने विषय के विद्वान बन गए। विद्वत्ता के मद ने धीरे-धीरे दोनों को अहंकारी बना दिया और दोनों एक-दूसरे से ईर्ष्या करने लगे। एक दिन गुरु गंगा स्नान के बाद लौटे तो देखा कि दोनों शिष्य आपस में झगड़ रहे थे। दोनों एक-दूसरे को आश्रम की सफाई के लिए कह रहे थे। महर्षि ने झगड़ने का कारण पूछा तो एक शिष्य बोला, गुरुदेव। मैं इससे श्रेष्ठ व विद्वान हूं और यह मुझे सफाई जैसे छोटे काम के लिए कह रहा है। दूसरे शिष्य का भी यही उत्तर था कि वह श्रेष्ठ होने के कारण सफाई का काम क्यों करे। दोनों की बातचीत और झगड़ने का कारण सुनकर महर्षि बोले कि तुम दोनों ठीक कह रहे हो, अब दोनों इतने विद्वान व श्रेष्ठ हो गए हो कि सफाई जैसा छोटा काम तुम दोनों को शोभा नहीं देता। अत: आज से सफाई का काम मैं किया करूंगा। यह सुनते ही दोनों शिष्यों का अहंकार चूर-चूर हो गया। दोनों ने गुरु के चरणस्पर्श करके बारी-बारी से सफाई का काम बांट लिया।

९९१) स्वर्ग की इच्छा- एक संत अपने कुछ शिष्यों के साथ जंगल में गए। वहां का मनोरम वातावरण देख कर बोले, कितनी अच्छी जगह है। यदि हमेशा यहीं रहने की व्यवस्था हो जाए तो कितना अच्छा हो। उनकी यह बात सुनकर उनके शिष्यों ने पूछा, गुरुजी। हमेशा रहने के लिए स्वर्ग की भूमि श्रेष्ठ है या यह जंगल की जमीन ?

संत ने कहा, शिष्यों जिस भूमि पर हम अपने दोनों पैर रखकर खड़े हैं और जो भूमि हमारा भार वहन कर रही है, वही सबसे श्रेष्ठ भूमि है। यदि इस भूमि को हम स्वर्ग की भूमि से हीन समझते हैं तो हम इस पर पैर रखने के अधिकारी नहीं हो सकते। शिष्यों ने कहा, लेकिन स्वर्ग की श्रेष्ठता की प्रशंसा तो कर सकते हैं ? संत ने कहा, जब हमारा कल्याण इसी धरती से हो रहा है तो फिर स्वर्ग की इच्छा या प्रशंसा की जरूरत क्या है ? <u>असंतुष्ट मनुष्य ही अपने लिए कोई व्यामोह पाल कर रखता है</u>।

९९२) नदी और लोटा- एक जिज्ञासु ने संत से पूछा, जब हमारी और परमात्मा की आत्मा समान है तो ज्ञान ओर बल में इतना अंतर क्यों है ? संत ने जवाब देने के बजाए सामने बह रही गंगा नदी से शिष्य को एक लोटा पानी भरकर लाने के लिए कहा। जिज्ञासु फौरन लेकर आ गया। संत ने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- देखो भाई, नदी और लोटे का पानी एक

है पवित्रता की दृष्टि से समान है, किंतु नौका नदी में ही चल सकती है लोटे में नहीं। हमारा और परमात्मा का मूल स्वरुप समान है, परंतु परमात्मा नदी और हम लोटे हैं। इसलिए हमारा ज्ञान व बल सीमित है।

९९३) यज्ञ में हिंसा- एक बार एक राजा ने यज्ञ का आयोजन किया। पुरोहित ने यज्ञ में बलि का भी विधान बताया तो एक बकरा लाकर यज्ञस्थल पर बांध दिया गया। बकरा बंधा मैं-मैं कर रहा था। उसके शोर से चिंतित होकर राजा ने कहा- यह ऐसा क्यों कर रहा है ? किसी सुपण्डित को उसका उचित उत्तर सूझा तो उन्होंने कहा- महाराज, यह आपसे कुछ प्रार्थना कर रहा है शायद। कैसी प्रार्थना ? शायद यह कह रहा है कि स्वर्ग के उत्तम भोगों की तो मुझे कभी लालसा नहीं रहीं, मैं तो घास चरकर ही संतुष्ट हूं। इसलिए आपने बलि के लिए मुझे जो पकड़ कर मंगवाया है वह उचित नहीं है। यदि यज्ञ में बलि देने से वह प्राणी स्वर्ग जाता है तो आप अपने माता, पिता, पुत्र तथा कुटुम्बियों की बलि देकर पुण्य के भागी क्यों नहीं बनते ? उनको स्वर्ग के अधिकारी क्यों नहीं बनाते ? सुपण्डित की बात सुनकर राजा समझ गया कि यज्ञ जैसे अच्छे कर्म में बलि देना उचित नहीं है। उसने तुरंत बकरे को बन्धन मुक्त करने का आदेश दे दिया। बकरा प्रसन्नचित्त वहां से चारागाह चला गया।

९९४) एक संत मरकर स्वर्ग पहुंचे। वहां एक अप्सरा ने स्वागत में उन्हें हार पहनाया। एक अन्य अप्सरा ने उन्हें ले जाकर एक सोने के सिंहासन पर बैठाया। वह सम्राट की तरह बैठ गए और इस वैभव के लिए भगवान को धन्यवाद देने लगे। पर अगले ही क्षण उनकी खुशी लुप्त हो गई। अपने पास ही उन्होंने एक अन्य व्यक्ति को रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठे देखा। अब अपना सिंहासन उन्हें हल्का लगने लगा। उन्होंने सेवा में लगी अप्सरा से इसका कारण पूछा तो उत्तर सुनकर हैरान हो गए। वह एक साधारण सांसारिक गृहस्थ था, पर समाज का दु:ख-दर्द हमेशा समझा और यथासंभव उसका निराकरण करते रहे। पलायन करके जंगलों में नहीं गए। जबकि संत ने तो सारा जप-तप सिर्फ अपने ही कल्याण के लिए किया था।

९९५) मुक्ति का मार्ग- किसी नगर सेठ के द्वार पर एक संत भिक्षा लेने गए। वहां एक तोता पिंजरे में कैद था। उसने द्वार पर आए संत को देखा, तो बहुत खुश हुआ। भिक्षा ग्रहण कर संत जब बाहर जाने लगे, तब तोते ने कहा, महात्मन्। मैं काफी दिनों से पिंजरे में बंद हूं। मुक्त आकाश में विचरण करते अपने साथियों को देखता हूं, तब मन बड़ा व्यथित होता है। इस पराधीनता से मुक्ति का कोई उपाय आप मुझे अपने गुरु से पूछकर कृपया बताएं।

संत भिक्षाटन के बाद जब अपने गुरु के द्वार पर पहुंचे तो तोते का प्रसंग सुनाया। तोते का प्रश्न सुनते ही गुरुदेव बेहोश होकर गिर पड़े। सभी शिष्य घबरा गए। थोड़ी देर उपचार के बाद उन्हें होश आया। लेकिन संत ने उनके सामने तोते के प्रश्न को दोहराना उचित नहीं समझा।

दूसरे दिन तोता संत की प्रतीक्षा कर रहा था। जब संत पुन: भिक्षा मांगने पहुंचे, तब तोते ने पूछा कि उनके गुरु ने प्रश्न का कोई उत्तर दिया या नहीं ? संत ने कहा, तेरा प्रश्न तो बड़ा अजीब था। पूछते ही गुरुदेव बेहोश होकर गिर पड़े। होश में आने पर प्रश्न दोहराना मुझे उचित मालूम नहीं हुआ। इसलिए उत्तर मिल न सका। तोता बोला, महात्मन्। गुरुदेव ने आपको मेरे प्रश्न का उत्तर दिया हो या नहीं, मुझे अवश्य दे दिया है। आपका यह उपकार मैं कभी नहीं भूलूंगा।

संत को तोते की बात का रहस्य समझ में नहीं आया। अगले दिन तोते ने गुरु के संकेत का प्रयोग किया और पिंजरे में बेहोश होकर गिर पड़ा। सेठ का पूरा परिवार इकट्ठा हो गया, किंतु तोते ने अपनी आंखें नहीं खोलीं। सेठ ने उसे मरा जानकर पिंजरा खुला छोड़ दिया। मौका पाकर तोता मुक्त हो गया और अनंत आकाश में विचरण करने लगा। संतों ने संसार रूपी पिंजरे से मुक्त होने का भी यही उपाय बताया है- जीते हुए मृतवत हो जाना, जिससे ममत्व रूपी बंधन पैदा न हो। आत्मा की मुक्ति का मार्ग भी यही है।

९९६) कोई बड़ा भारी डाकू था उसने अपने जीवनमें बहुत लोगोंका धन अपहरण किया, बहुत से डाके डाले, सत्तर व्यक्तियोंकी हत्याएँ कीं। अन्तमें उसे अपने इस घृणित कार्यसे विराग हुआ। उसने लूट-पाटके कार्यका परित्याग किया और पापोंके शोधनार्थ वह एक सच्चे साधुकी शरणमें गया।

साधुने उसका सम्पूर्ण समाचार सुनकर कहा- भैया। तेरे पाप महान् हैं। सत्तर पुरुषोंकी हत्या करना सामान्य पाप नहीं है।

डाकूने कहा- गुरुदेव। मुझे कठिन-से-कठिन प्रायश्चित बताइये, उसे मैं करूँगा।

साधुने उसे एक काला झंडा देते हुए कहा- तुम इस झंडेको लेकर पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करो। स्वयं स्नान करो और इस झंडेको भी स्नान कराओ। जिस तीर्थमें जाकर यह कालेसे सफेद हो जाय, वहीं समझना तेरे पाप धुल गये।

गुरु-आज्ञा शिरोधार्य करके वह डाकू चल दिया। उसने समस्त पुण्य-सरिताओंमें, समस्त पवित्र तीर्थोंमें स्नान किया, झंडेको भी स्नान कराया; किंतु वह कालेसे सफेद न हुआ। तब तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने समझ लिया- मेरे पापोंका प्रायश्चित असम्भव है। एक हत्या ही कठिनतासे छूटती है, फिर मैंने तो सत्तर हत्याएँ की हैं। गुरुदेवके समीप चलूँ और उनकी आज्ञा लेकर इन प्राणोंका परित्याग कर दूँ। ऐसा सोचकर वह समस्त तीर्थोंमें स्नान करके गुरुके समीप लौट रहा था कि उसे एक सघन वन मार्गमें पड़ा।

उस वनमें उसे एक करुण ध्वनि सुनायी दी। दयावश वह उस ध्वनिका ही अनुगमन करता हुआ वृक्षोंके एक झुरमुटमें पहुँचा। वहाँ उसने देखा, दस डाकू किसी भले घरकी सुन्दरी नारीको पकड़ लाये हैं और उसके साथ बलात्कार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन नर-पशुओंके फंदेमें फँसी वह अबला जलसे पृथक् मछलीकी भाँत बिलबिला रही है, बधिकके फंदेमें फँसी गौके समान काँप रही है, कुररनी पक्षीकी भाँति रुदन कर रही है, व्याधोंके हाथ फँसी मृगीके समान अश्रुविमोचन कर रही है, उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर उस दस्युका हृदय द्रवित हो गया। तीर्थोंकी यात्रासे उसका अन्त:करण शुद्ध हो गया था। शुद्ध अन्त:करणमें ही दयाका संचार होता है, दयावान् पुरुष ही पर-पीड़ाको देखकर उसे मिटानेके लिये प्रयत्न करते हैं।

अपने पूर्वके स्वभावानुसार वह डाकू अपने पास तलवार रखता ही था। उसने सोचा- अच्छी बात है, जैसे सत्तर, वैसे ही अस्सी। यदि पापोंका प्रायश्चित्त नहीं होता तो इस विपत्तिमें फँसी देवीका तो उद्धार करना ही चाहिये। यह सोचकर उसने तलवारसे दसोंके सिर धड़से पृथक् कर दिये। देखते-ही-देखते उसका जो झंडा काला था, वह सफेद हो गया। डाकूके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उस देवीको उसके स्थानपर पहुँचाकर वह दौड़ा-दौड़ा अपने गुरुके पास गया। उसके सफेद झंडेको देखकर गुरु समझ गये कि इसके पापोंका प्रायश्चित हो गया। उसने गुरुके पादपद्मोंमें प्रणाम किया। गुरुने आशीर्वाद देते हुए पूछा- वत्स। किस तीर्थमें स्नान करनेसे तुम्हारा यह काला झंडा सफेद हुआ ?

हाथ जोड़कर डाकूने कहा- गुरुदेव। असितीर्थमें स्नान यह कालेसे सफेद बन गया। यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

गुरुने कहा- असितीर्थ कहाँ है ? उसमें स्नान करनेसे यह सफेद कैसे हुआ ? मुझे पूरा वृत्तान्त सुनाओ।

डाकूने कहा- भगवन्। मैंने पृथ्वीकी परिक्रमा की, सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुण्यतीर्थोंमें जाकर स्नान किया, किंतु कहीं भी यह कालेसे सफेद नहीं हुआ। जब मैंने सत्तरके स्थानमें अस्सी हत्याएँ कर दीं, तब यह कालेसे सफेद हो गया। एक स्त्रीके साथ दस नर-पिशाच बलात्कार करना चाहते थे, मैंने सोचा- जैसे सत्तर, वैसे अस्सी। ज्यों ही मैंने दसोंका सिर काटा, त्योंही यह कालेसे सफेद हो गया। गुरुदेव। इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य है, इसका कारण बताइये।

यह सुनकर हँसते हुए गुरुने कहा- देखो, भैया। वे सत्तर हत्याएँ तो तुमने स्वार्थवश की थीं, बुरे भावसे की थीं। इसलिये वह तो पाप ही था। किंतु ये दस हत्याएँ तो तुमने दयाके वश होकर नारीकी रक्षाके लिये परार्थभावनासे की थीं; इसलिये यह

महान् पुण्य है। इस पुण्यके प्रभावसे तुम्हारे वे सब पाप धुल गये। तुम्हारा काला झंडा सफेद हो गया। काम कोई भी बुरा या भला नहीं होता। बुराई-भलाई भावनाके ही अनुसार होती है। तप करना, अध्ययन करना, वेद-विधिका पालन करना, यहाँतक कि बलपूर्वक दूसरोंके धनका अपहरण करना- ये सब पाप नहीं हैं; किंतु यदि ये ही काम दूषित भावसे किये जायँ तो पाप हैं। आप तप कर रहे हैं, तप करके दूसरोंका अनिष्ट कर रहे हैं, तो वह तप तप नहीं है, दम्भ है, पाप है। वेदाध्ययन करना पुण्यका काम है; किंतु दूसरोंको दिखानेके लिये, तुच्छ स्वार्थके लिये, दम्भके लिये जो अध्ययन किया जाता है, दूसरोंको क्लेश पहुँचानेकी भावनासे, दूसरोंको नीचा दिखानेकी इच्छासे जो अध्ययन और वर्णाश्रम-धर्मका दिखावटी पालन किया जाता है, वह भाव दूषित होनेसे पुण्य नहीं, पाप है। इसी प्रकार यदि भाव शुद्ध हो, अश्वमेधादि यज्ञके लिये स्वेच्छासे कोई धन न देता हो, तो परोपकारके लिये पुण्यकार्यके लिये विशुद्ध भावनासे किसीका धन छीन भी लिया जाय तो पाप नहीं है। यदि स्वार्थबुद्धिसे ऐसा किया जाय तो महापाप है। तुमने तो दयावश अबलाकी रक्षा की। विपत्तिमें पड़ी स्त्रीकी जो आततायियोंके हाथोंसे रक्षा करता है, उससे बढ़कर पुण्यात्मा पुरुष कोई भी नहीं।

९९७) देव और दैत्य-एक व्यक्ति ने संत से पूछा, जीवन को अलंकृत करनेवाले दो देवता मित्र कौन से हैं ? उत्तर मिला, जीभ व हृदय। व्यक्ति ने पुन: पूछा, जीवन को नष्ट करने वाले दो दैत्य शत्रु कौन से हैं ? फिर जवाब मिला, हृदय और जीभ। वह कैसे पूछने पर संत ने कहा- हृदय की निष्ठुरता व अपवित्रता मानव को नष्ट करती है, जबकि हृदय की सहजता व उदारता उसे महान बनाती है। जीभ के अनुचित व असंयमित प्रयोग से मनुष्य स्वास्थ्य व सहयोग खो बैठता है तथा मधुर व उपयुक्त संभाषण से जन समुदाय व परिजनों से श्रेय और स्नेह की भरपूर मात्रा हस्तगत होती है।

९९८) कष्टों का अंत स्वयं करो- एक व्यक्ति एक महात्मा के पास आया और उन्हें अपने कष्टों के बारे में बता कर प्रार्थना करने लगा, महात्मा। मुझे इनसे मुक्ति दिलवाएं। महात्मा कुछ देर मौन रहे, फिर बोले, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं। एक कबूतरी ने अंडे दिये। कुछ समय बाद एक चूजा कबूतर निकला। उसके पंख अभी नन्हे थे। दो-चार दिन के बाद वह ज्यों की ही उड़ने की कोशिश करता, नीचे गिर जाता। इस तरह चूजा कबूतर ने कई बार उड़ने की कोशिश की, किंतु हर बार वह नीचे आ गिरा। यह देखकर कबूतरी को बड़ा दु:ख हुआ। वह उसको चोंच में पकड़ कर उपर उड़ी। चूजे को आकाश में उड़ने का आनंद मिला। लेकिन इसके बाद कबूतर ने उड़ने की कोशिश छोड़ दी। उसे कष्टों से बचाने के लिये कबूतरी हर बार उसे चोंच से उठाकर उड़ने लगती। बाद में कबूतर ने भी उड़ने की कोशिश नहीं की। इस तरह वह पक्षी होकर भी उड़ने के सहज गुण से वंचित रह गया।

कहानी सुनाने के बाद महात्मा बोले, जीवन में कष्टों को सहजता से स्वीकार करना चाहिए। कबूतर को कष्टों से बचाने के लिए कबूतरी ने जो कोशिश की, उसी से कबूतर उड़ने के सहज धर्म से वंचित रह गया। इसलिए हे वत्स। अपने कष्टों के निवारण का उपाय तुम खुद ही ढूंढो।

९९९) क्रोध से दूर- बहुत पुरानी बात है। एक गांव से दूर जंगल में एक महात्मा कुटिया बना कर रहते थे। उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था। दया और क्षमाशीलता के कारण उनकी प्रशंसा दूर-दूर तक फैली थी। एक दिन उस क्षेत्र के कुछ दुष्ट प्रकृति के लोगों ने आपस में सलाह की कि कोई ऐसा काम किया जाए जिससे महात्मा जी को क्रोध आ जाए। एक दिन वे लोग महात्मा जी की कुटिया पर गए। उनमें से एक बोला, महात्मा जी, जरा गांजे की चिलम तो लाइए। महात्मा जी बोले, मैं तो गांजा पीता ही नहीं।

अच्छा तो भांग की पुड़िया ही दे दो।

मैंने तो आज तक भांग देखी ही नहीं। उनके यह कहने पर दूसरा बोला, अरे भाई, क्यों झूठ बोल रहे हो ? मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूं। हम दोनों एक साथ जेल में बंद थे। किसी बात पर हम दोनों में झगड़ा हो गया था तो तुमने मुझे डंडे से पीटा था। इस तरह वे सब मिलकर न जाने कितनी फब्तियां कसते रहे, लेकिन महात्मा जी पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उनकी बातें सुनकर वे मुस्करा भर देते थे। अंत में एक बोला, महात्माजी ढोंगी है। चलो यहां से। तब महात्मा जी चुप्पी तोड़ते हुए बोले, अरे भाई, तुम इतनी देर से कुछ गा रहे थे। थक गए होगे। एक भक्त गुड़ की डली दे गया है। लो, इसे खाकर पानी पिलो। तुम लोगों की थकान दूर हो जाएगी।

महात्मा की बात सुनकर एक ने कहा, महात्मा जी हम लोगों ने आपको इतना भला-बुरा कहा, तब भी आप को क्रोध क्यों नहीं आया? महात्माजी बोले, बेटा, जिसके पास जो माल होता है, वह उसी को दिखाता है। यह तो ग्राहक की इच्छा है कि वह उसको ले या नहीं। तुम्हारे पास जो था, तुमने वही दिखाया। लेकिन मुझे तुम्हारा माल पसंद नहीं था इसलिए नहीं लिया। भैया, कोई आदमी गलती करता है तो इसका मतलब यह नहीं कि सामने वाला भी गलती करे। फिर दोनों में फर्क ही क्या रह जाएगा।

१०००) रास्ता- एक बार एक जिज्ञासु महात्मा के पास गया और बोला- स्वामीजी, मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूं करा दीजिए। सन्त हमेशा यह कहकर टाल देते थे कि समय आने दो बताऊँगा। बहुत आग्रह करने पर वे बोले- सामने पहाड़ की जो ऊँची चोटी है वहाँ तक तुम सिर पर छ: पत्थर लेकर चढ़ो। तब मैं तुम्हें ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताऊँगा।

महात्मा ने उसे चार-पांच किलो के पांच पत्थर देकर कहा, इन्हें सिर पर रख कर सामने की पहाडी पर चढ़ो। जिज्ञासु ने पत्थर उठा लिये और पहाड़ पर चढ़ने लगा। और संत ने अपने पीछे चलने का संकेत किया। लेकिन कुछ ही कदम चलने पर वह थक गया और महात्मा जी से बोला, महाराज, अब नहीं चढ़ा जाता। महात्मा ने कहा, एक पत्थर फेंक दो। एक पत्थर कम हो जाने से बोझ कुछ हल्का हो गया। पर कुछ ही कदम चलते ही वह फिर हांफने लगा।

इस बार महात्मा ने एक पत्थर और फेंकवा दिया। इसके बाद तीसरा, चौथा और अंत में पांचवां पत्थर भी फेंकवा दिया गया। यह क्रम तब तक चलता रहा तब तक उसके सिर से छहों पत्थर न फिकवा दिए गए। जब वह आदमी पहाड़ की चोटी पर चढ़ा तो उसके सिर पर एक भी पत्थर नहीं था। तब जाकर वह ऊपर चोटी तक पहुँचने में सफल हो पाया।

चोटी पर खड़े होकर जिज्ञासु ने महात्मा जी से कहा- महाराज अब ईश्वर के दर्शन कराइए। चोटी पर पहुँचकर सन्त ने उसे समझाया भाई। जिस प्रकार तुम सिर पर भारी पत्थर लेकर चढ़ने में असफल रहे उसी प्रकार जीवन में मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर जैसे मनोविकारों का बोझ ढोकर ईश्वर दर्शन नहीं कर पाता। ईश्वर-दर्शन हेतु इन सभी मनोविकारों का बोझ उतारना अनिवार्य है। उदाहरण से यह बात उसकी समझ में आई।

महात्मा ने कहा- भले आदमी, जब तुम पांच-पांच किलो वजन के पांच पत्थर सिर पर रख कर पहाड़ पर नहीं चढ़ सके तो काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या का भारी बोझ लेकर ईश्वर तक कैसे पहुंच सकोगे ?

१००१) खोटे सिक्के- किसी राजा के पास एक महात्मा बैठे हुए थे। उसी समय महात्मा जी का एक शिष्य वहां आया और कहने लगा, यहां के दुकानदार बहुत खराब हैं। जब मैं एक सिक्का लेकर सामान खरीदने गया तो उन्होंने कहा कि यह खोटा है, इसलिए तुम्हें सामान नहीं मिल सकता। तुम महात्मा जी के शिष्य हो, इसलिए छोड़ देते हैं अन्यथा तुम्हें दंड दिलाते। राजा भी यह सब सुन रहा था। उसने सिक्का लेकर देखा और पूछा, यह आपको किसने दिया है ? क्या आपको मेरे कानून का पता नहीं है। यह खोटा है और खोटा सिक्का चलाने वाले को मैं सख्त दंड देता हूं। मैं जानता हूं कि आपने यह नहीं बनाया होगा, पर आपको यह सिक्का दिया किसने ? इस पर महात्मा ने कहा, यह खोटा है तो क्या हुआ, इस पर राजा की छाप

तो है ही। राजा ने कहा, मेरा सिक्का सच्चा होना चाहिए। मेरी छाप होने पर भी खोटा सिक्का बनाना और चलाना अपराध है। इस पर महात्मा बोले, राजन, आपका शासन अन्याय से पूरी तरह मुक्त नहीं है। आप निरपराध को सजा देते हैं। युद्ध के नाम पर रक्तपात करते हैं। ऐसा करना क्या खोटा सिक्का चलाने के समान अपराध नहीं है ? राजा समझ गया। उसने पूछा, तब क्या करना चाहिए। महात्मा बोले, सुशासन करना चाहिए। बेकसूर व्यक्ति को दंड न मिले इसका ध्यान रखना चाहिए।

१००२) चंदन बनो- एक महात्मा ने अपने शिष्यों को एक ऐसे व्यक्ति को सुधारने का कार्य सौंपा जो जरूरत से ज्यादा नशा करता था। इससे वह स्वयं तो बर्बाद हो ही रहा था, उसका पूरा परिवार भी तबाह हो रहा था। शिष्य उसके पास गए और कुछ ही दिनों में वापस आकर महात्मा से बोले, गुरुजी, हमने पूरा प्रयास कर लिया, मगर वह सुधरने वाला नहीं है। महात्मा ने शिष्यों से कहा, मैंने तुम्हें चंदन बनने की शिक्षा दी है। जो कुल्हाड़ी चंदन को काटती है, वह भी सुगंधित हो जाती है। चंदन अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ता। जब वह व्यक्ति भी बुराई का मार्ग नहीं छोड़ रहा तो तुम भलाई का मार्ग बीच में ही छोड़कर वापस कैसे आ गए ? स्वभाव के मामले में तो वह व्यक्ति तुम से भी अच्छा निकला। लगता है मेरी शिक्षा में कुछ कमी रह गई। शिष्यों को गुरु की बातों से अपनी गलती का अहसास हुआ और वे दोबारा उस व्यक्ति को सुधारने चल दिए। इस बार उन्होंने जी जान से प्रयास किया, जिससे वह व्यक्ति सुधर गया और उसका पूरा जीवन ही बदल गया।

१००३) रोगी ने चिकित्सक से कहा, वैद्य जी, मेरे ऊपर मुर्दनी-सी छाई रहती है और जी उचाट रहता है, कोई दवा दीजिए। वैद्य ने प्रश्न किया, पास पड़ोस में किसी और को भी यह बीमारी है ?

अजी उनकी मत पूछिए। सब टमाटर से लाल हैं। कभी किसी का वैद्य के यहां जाते नहीं देखा। यह तो अपनी ही किस्मत खोटी है जो...। वैद्य ने मुस्कुराते हुए कहा, महोदय, आप पर जलन का रोग हावी है। छुटकारे के लिए विचार शुद्धि आवश्यक है। प्रतिदिन सहनशीलता की पुड़िया खाइए और हृदय को इतना विशाल बनाइए कि उसमें सबका सुख समा सके।

१००४) सच्चा साधु- पुराने जमाने की बात है। एक राजा को उसके जन्मदिन पर अनेक उपहार मिले। न सिर्फ दूसरे राजाओं ने, बल्कि प्रजा ने भी बढ़-चढ़कर तोहफे दिए। राजा ने सोचा कि इतने उपहार रखकर वह क्या करेगा, क्यों न इसी बहाने थोडा पुण्य कमा लिया जाए। उसने अपने मंत्री से कहा, ये उपहार साधुओं को बांट दें। पर हां, ये केवल सच्चे साधुओं को ही दिए जाएं। मंत्री राजा की आज्ञा का पालन करने नगर की ओर चला गया, मगर शाम को जब वह राजमहल लौटा तो सारे उपहार उसके पास थे। राजा ने चकित होकर पूछा, मंत्री जी, आपने एक भी उपहार किसी साधु को नहीं दिया। ऐसा क्यों ? मंत्री ने उत्तर दिया, महाराज, मैं दिन भर सारे नगर में घूमता रहा। मैंने देखा कि जो सच्चे साधु हैं वे इतने संतोषी हैं कि इनमें से एक भी वस्तु लेना नहीं चाहते। कहते हैं, शरीर को जीवित रखने के लिए दो रोटी मिल जाती है, यही काफी है। इसलिए इन वस्तुओं को लेकर हम क्या करेंगे और जो इन वस्तुओं को लेना चाहते थे, वे सच्चे साधु नहीं जान पड़ते। इसलिए मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सका और इन्हें वापस लाना पड़ा।

१००५) एक गुरु अपने कुछ शिष्यों के साथ जंगल से गुजर रहे थे। उनके पास अनाज खत्म हो गया था। कुछ दिन तो उन्हें केवल कंद ही भोजन के लिए मिले थे। उनका भोग लगाने से पूर्व उन्हें धो छील कर पकाना जरूरी था। एक शिष्य ने कहा- मैं कंदों को साफ करता हूं। दूसरे ने कहा- मैं कंदों को धो देता हूं। तीसरे ने कहा- मैं उन्हें काट देता हूं। बाकी शिष्य भी अपनी अपनी जिम्मेदारी उठा रहे थे। तभी गुरु ने कहा- आप लोग यह सब करो तब तक मैं जंगल से लकड़ियां ले आता हूं।

गुरु की बात सुन कर शिष्यों ने कहा- नहीं गुरुजी, आप क्यों तकलीफ करते हैं ? हम लोग हैं। हम कुछ ही देर में भोजन तैयार कर लेंगे। आप निश्चिंत रहिए।

गुरु ने कहा- हम सब एक साथ यात्रा पर निकले हैं। हम सबने उतने ही कष्ट उठाए हैं। ऐसे में आप लोग जब काम करो, तब मैं आराम करूं, मेरा मन इसकी इजाजत नहीं देता।

१००६) चंदन और कोयला - एक बार एक राजा शिकार के लिए जंगल गया। वहां वह रास्ता भूल गया। भूख-प्यास से पीड़ित राजा ने एक वनवासी के घर शरण ली। वनवासी के आतिथ्य से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। अगले रोज जब वह जाने लगा तो उसने वनवासी से कहा- हम इस राज्य के शासक हैं। तुम्हारे आतिथ्य के बदले हम तुम्हें पहाड़ के दूसरी ओर फैला अपना चंदन का जंगल भेंट में देते हैं। यह कहकर राजा ने वनवासी के हाथ अपना फरमान पकड़ा दिया।

वनवासी उस फरमान को लेकर नगर अधिकारी के पास गया और अगले ही दिन से पूरा चंदन वन उसके नाम हो गया। वनवासी का दुर्भाग्य था कि उसे चंदन का महत्व नहीं मालूम था। सो वह चंदन के उन पेड़ों को काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचने लगा। इस तरह धीरे-धीरे चंदन के सारे पेड़ खत्म होते गए। जब चंदन का अंतिम वृक्ष बचा था तो उस रोज बारिश के कारण वनवासी उसे नहीं जला सका। पैसों के लिए इस बार वह चंदन की लकड़ियां काटकर शहर ले गया। लोगों ने चंदन की खुशबू देख उससे मुहमांगे दाम पर लकड़ियां खरीद लीं। उसने एक खरीदार से पूछा कि वह क्यों इतने महंगे दामों में लकड़ी खरीद रहा है। खरीदार ने उसे जब चंदन की लकड़ी का मूल्य बताया तो वनवासी को बहुत पछतावा हुआ। उसने इतनी मूल्यवान लकड़ी कौड़ी के दाम बेच दी।

मन को हलका करने के लिए वनवासी उसी रात एक संत की शरण में जा पहुंचा। तब संत ने उसे समझाया- अब पछताना बंद करो। सारी दुनिया तुम्हारी तरह ही मूर्खता करती है। जीवन का एक क्षण बहुमूल्य है, पर लोग उसे वासनाओं की तृप्ति के बदले कौड़ी के मोल गंवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है, उसी का सदुपयोग कर लो, इसी से तुम्हारी निर्धनता जाती रहेगी। बहुत गंवा चुकने के बावजूद अगर अंत में आदमी संभल जाए तो उसे भी बुद्धिमान ही कहा जाता है।

१००७) सेवा ही पूजा है- एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों शिष्य बहुत पूजा-पाठ करने वाले थे। बाद में दोनों आश्रम में आए रोगियों की सेवा करने में अपने गुरु की मदद किया करते थे। एक बार की बात है शिष्य पूजा कर रहे थे। गुरु ने उन्हें बुलावा भेजा किंतु वे नहीं आए क्योंकि पूजा बाकि थी। दुबारा बुलाने पर नाराज होकर आए। गुरु ने कहा- वत्स, मैंने तुम्हें व्यक्ति की सेवा के लिए बुलाया था। पूजा-प्रार्थना तो भगवान भी कर लेते हैं किंतु सेवा तो मनुष्य ही कर सकता है। सेवा प्रार्थना से ऊंची है।

१००८) एक संत किसी टीले पर बैठे मंत्रमुग्ध सूर्यास्त देख रहे थे कि तभी एक व्यक्ति उनके पास आया और पूछने लगा- स्वामी जी, आपके चेहरे पर बेपनाह प्रसन्नता है। मैं एक धनी व्यक्ति हूं, सब कुछ है, पर मन में खुशी नहीं है। उसी की खोज में घर से निकला हूं। दो साल हो गए, पर प्रसन्नता न हासिल हुई। आप ही बताएं उसे कहां खोजूं ?

संत ने उस आदमी से एक कागज लिया और उस पर कुछ लिखने के बाद उससे कहा कि मैंने इसमें प्रसन्नता का नुस्खा लिख दिया है, लेकिन इसे आप घर जाकर ही पढ़ना। सेठ घर पहुंचा और बहुत जिज्ञासा के साथ उसने कागज खोला। उसमें लिखा था- जहां शांति होती है प्रसन्नता वहां खुद चली आती है, चाहे वह अपना ही मन क्यों न हो।

१००९) हक की रोटी- एक राजा के सौभाग्य से एक दिन उसके यहां एक सन्त महात्मा पधार गए। राजा ने उनका स्वागत-सत्कार किया और जब उनसे विचार-विमर्श होने लगा तो राजा ने उनसे प्रश्न किया- महात्मा जी, हक की रोटी कैसी होती है महात्मा ने कुछ क्षण विचार कर कहा- महाराज, आपके नगर के एक कोने में मंदिर के समीप एक बुढ़िया का छप्पर है। वह बड़ी पुण्यशीला है। उसके पास जाकर आप अपने इस प्रश्न का उत्तर लीजिए और उसी से हक की रोटी

मांगिए। महाराज ने बुढ़िया के स्थान का पता लगवाया। पता लग जाने पर एक दिन राजा उसके पास जाकर बोला माता, मुझे हक की रोटी चाहिए। बुढ़िया पहचान गई कि याचक यहां का महाराज है। उसने कहा- राजन मेरे पास जो रोटी है, उसमें से आधी हक की है और आधी बेहक की है। इस पर राजा ने कहा- मां आधी बेहक की किस प्रकार हो गई। बुढ़िया ने जवाब दिया- मैं बताती हूं। मैं एक दिन चरखा कात रही थी, शाम का समय था। अंधेरा हो चला था। मैंने दिया जलाया कि तभी एक ओर से जुलूस निकल आया। जुलूस में मशाल जल रही थी। उन मशालों का प्रकाश देख कर मैं अपना दिया बुझा दिया और मशालों की रोशनी में काम करती रही। तब तक मैंने आधी पूनी कात ली थी। आधी पूनी पहले से ही कती थी। उस पूनी को बेच कर मैं आटा लाई और उसकी ये रोटियां बनाई हैं। इसलिए इस में आधी रोटी तो हक की है और आधी बेहक की। उस आधी पर जुलूस वाले का हक है। राजा वृद्धा के सम्मुख नतमस्तक हो अपने निवास को चला गया।

१०१०) वेश नहीं स्वभाव बदलें- एकान्त में भगवाधारी धूनी रमाए बैठे थे। उनके संतत्व की परीक्षा लेने एक व्यक्ति आया और बोला- बाबाजी। धूनी में कुछ आग है ? बाबा बोले इसमें आग नहीं हैं। व्यक्ति ने उन्हें उत्तेजित करने के लिए कहा कुरेद कर देखिए शायद कुछ अग्नि हो। बाबाजी ने भौहें तरेरते हुए कहा मैं तुम्हें बतला चुका हूँ कि इसमें अग्नि नहीं है। बाबाजी की प्रामाणिकता जांचने की उत्कंठा से व्यक्ति ने कहा- महाराज। कुछ तो चिनगारियां हैं। संत वेशधारी बोले- अपना रास्ता ले। धूनी में न तो अग्नि है और न चिंगारी। लेकिन मुझे तो लपट उड़ती हुई दिखाई देती हैं, व्यक्ति बोला। वे क्रोध से व्यक्ति को मारने दौड़े। व्यक्ति और तेज दौड़ता हुआ बोला कि महाराज। अब तो पूरी तरह अग्नि भड़क चुकी है। इशारा संत के क्रोध की तरफ था। संत को बोध होने पर पश्चाताप हुआ और उन्होंने विचार किया कि मात्र वेश बदलने से नहीं स्वभाव परिवर्तन से व्यक्ति संत बनता है।

१०११) सत्ताहीन राजा- एक बार एक राजा अपने नगर में भ्रमण के लिए निकला तो उसको मार्ग में एक फकीर पड़ा हुआ दिखाई दिया, राजा को फकीरों के प्रति श्रद्धा थी। अपने रथ से उतरकर वह फकीर के पास गया, उसको प्रणाम किया। कुशल समाचार पूछा और फिर कहा- महात्माजी, किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताईये। फकीर बोला- अच्छा हुआ तू आ गया। ये मक्खियां मुझे तंग कर रही हैं, तनिक इनको तो भगा दे। राजा बोला- महात्मा जी, मक्खियां तो मेरे वश में नहीं हैं, किंतु यदि आप मेरे साथ चलें तो मैं आपको ऐसा सुंदर स्थान दिला सकता हूं जहां मक्खियां... राजा का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि फकीर बोला- बस, बस। तू जा अपना काम कर। जिसका तुच्छ मक्खियों पर भी अधिकार नहीं है, उससे मैं क्या मांगू। जा, बस हो गया। यह कहकर फकीर ने करवट बदल ली।

१०१२) प्रेम और भक्ति में हिसाब- एक पहुंचे हुए संन्यासी का एक शिष्य था। जब भी किसी मंत्र का जाप करने बैठता तो संख्या को खड़िया से दीवार पर लिखता जाता। किसी दिन वह लाख तक की संख्या छू लेता किसी दिन हजारों में सीमित हो जाता। उसके गुरु उसका यह कर्म नित्य देखते और मुस्कुरा देते। एक दिन वे उसे पास के शहर में भिक्षा मांगने ले गए। जब वे थक गये, तो लौटते समय एक बरगद की छांव में बैठे। उसके सामने एक युवा दूधवाली दूध बेच रही थी। जो आता उसे बर्तन में नाप कर देती और गिनकर पैसे रखवाती। वे दोनों ध्यान से उसे देख रहे थे। तभी एक आकर्षक युवक आया और दूधवाली के सामने अपना बर्तन फैला दिया। दूधवाली, मुस्कराई और बिना मापे बहुत सारा दूध उस युवक के बर्तन में डाल दिया, पैसे भी नहीं लिए। गुरु मुस्कुरा दिए, शिष्य हतप्रभ। उन दोनों के जाने के बाद वे दोनों भी उठे और अपनी राह चल पड़े। चलते शिष्य ने दूधवाली के व्यवहार पर अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो गुरु ने उत्तर दिया। प्रेम, वत्स प्रेम। यह प्रेम है और प्रेम में हिसाब कैसा ? उसी प्रकार भक्ति में भी प्रेम है, जिससे आप अनन्य प्रेम करते

हो, उसके स्मरण में या उसकी पूजा में हिसाब-किताब कैसा ? और गुरु वैसे ही मुस्कुराये व्यंग्य से। समझ गया गुरुवर। मैं समझ गया प्रेम और भक्ति के इस प्रदर्शन को।

१०१३) क्रोध का त्याग- किसी गांव में एक फकीर पहुंचा। उसके हाथ में एक डफली थी, जिसे बजाता हुआ वह गा रहा था। उसकी आवाज जो भी सुनता मंत्रमुग्ध हो जाता। इसी गांव में अत्यंत क्रोधी स्वभाव का एक व्यक्ति रहता था। लोगों ने उसका नाम ही गुस्सैल रख दिया था। फकीर को भजन गाते सुन किसी ने कहा, महाराज, आप कृपा करके यहां भजन मत गाइए। अगर उस गुस्सैल ने सुन लिया और उसे अच्छा नहीं लगा तो वह आप पर ही अपना क्रोध उतार बैठेगा। इस पर फकीर ने कहा, थोड़ा सा गुड़ लाकर मेरी पीठ पर लगा दो, मगर इतना ध्यान रखना कि वह दिखे नहीं। फकीर की बात सुनकर उस व्यक्ति को आश्चर्य तो हुआ पर उसने वैसा ही किया। पीठ पर गुड़ लगवाने के बाद फकीर गुस्सैल के घर पर पहुंचा। उसने देखा कि एक व्यक्ति द्वार के पास चारपाई पर बैठा मूंछे ऐंठ रहा है। फकीर ने विनम्रतापूर्वक पूछा, श्रीमान, क्या आप ही गृह स्वामी हैं ? गुस्सैल ने रौब से कहा, नहीं तो क्या आप है ? फकीर ने प्यार से कहा, मैं तो एक फकीर हूं और आपसे सहायता मांगने आया हूं। गुस्सैल बोला, बोलो क्या चाहिए ? फकीर ने कहा, मेरी पीठ पर कुछ मक्खियां बैठ रही हैं, वे मेरे भजन-कीर्तन में बाधा डाल रही है। आप इनसे मेरा पीछा छुड़ा दें। गुस्सैल पहले तो हंसा, फिर फकीर की पीठ की और जाकर मक्खियां उड़ाने की कोशिश करने लगा। जब बार-बार उड़ाने के बाद भी मक्खियां फकीर की पीठ पर बैठती ही रहीं तो उसे गुस्सा आ गया और उसने फकीर को डांटकर कहा, यह क्या मजाक है ? फकीर ने कहा, भैया आप मुझ पर क्रोध क्यों करते हैं ? आपसे जब एक मक्खी भयभीत नहीं होती तो फिर और कौन डरेगा। गुस्सैल को फकीर की बात समझ में आ गई। वह अपने किए पर शर्मिंदा हो फकीर से माफी मांगने लगा। तब फकीर ने समझाया, क्रोध में आदमी अंधा हो जाता है। क्रोधवश व्यक्ति कोई पाप भी कर सकता है, इसलिए क्रोध का त्याग करो।

१०१४) महात्मा की रात - एक महात्मा कहीं से घूमते हुए किसी गांव में पहुंचे। ग्रामीणों ने उनसे आशीर्वाद लिया और अपनी-अपनी समस्याएं बताईं। महात्मा जी ने सबकी समस्या का समाधान किया, फिर वहीं रात बिताने की इच्छा प्रकट की। लोग बड़े प्रसन्न हुए। एक ग्रामीण उन्हें अपने घर ले गया और बोला, आप जैसे महात्मा के चरण पड़ने से मेरा घर पवित्र हुआ। आज मैं धन्य हो गया। उस नगर में महात्मा रात-दिन परमात्मा की भक्ति में रमे रहते थे।

महात्माजीने कमरे के कोने में बैठकर प्रभु का स्मरण व आत्मचिंतन किया फिर अर्धरात्रि को जमीन पर हाथ का तकिया बनाकर सो गए। जब वहां के राजा को यह पता चला कि पास के गांव में एक महात्मा आए हैं तो उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि आदरपूर्वक महात्मा जी को महल में लेकर आओ।

महात्मा जी को आते देख राजा ने कहा, पधारिए महाराज। कहिए, रात कैसी बीती ? इस बर्फीली सर्दी में उनकी रात कैसी गुजरती है।

महात्मा जी ने कहा, आधी रात आप जैसी और आधी आप से अच्छी। राजा को कुछ समझ में नहीं आया। उसने कहा, महात्मा जी, मुझे तो बताया गया कि आप जमीन पर हाथ का तकिया लगाए सो रहे थे। फिर भी आप कह रहे हैं कि आधी रात मुझ जैसी और आधी रात मुझसे अच्छी बीती, वह कैसे ?

महात्मा जी बोले, राजन, अर्धरात्रि के बाद मैं भी सोया और आप भी सोये। हां, दोनों अलग-अलग स्थितियों में सोये लेकिन नींद में आने के बाद जमीन और फूलों की सेज में अंतर ही क्या रह जाता है। राजा ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा, हां, नींद में दोनों एक से हो गए। महात्मा जी ने फिर कहा, राजन, अर्ध रात्रि से पहले आप राज्य संबंधी विचार विमर्श

कर रहे थे जबकि मैं उस भगवान का स्मरण व आत्मचिंतन कर रहा था। आप ने राज्य के झंझट और चिंता में अपना समय बिताया जबकि मैंने शुद्ध भाव में। इसी से मैंने कहा कि आधी रात तो आप जैसी बीती और आधी आपसे अच्छी। महात्मा मुस्कराए फिर बोले, राजन् मेरी रात कुछ आप जैसी ही गुजरती है, पर दिन आपसे अच्छा कटता है। राजा ने कहा, मुनिवर कृपया इस रहस्य को स्पष्ट करें। महात्मा ने समझाया, हे राजन्, जब रात में मैं और आप निद्रा में लीन रहते हैं तो रात आप जैसी ही बीतती है, क्योंकि निद्रा की गोद में सोए हर मानव की स्थिति समान होती है। किंतु जब हम जाग्रत अवस्था में होते हैं तो आप बुरे-भले कामों में व्यस्त रहते हैं, पर मैं परम पिता परमात्मा की आराधना में लगा रहता हूं। मेरा वह समय आपसे ज्यादा फलदायक होता है। यह सुनकर राजा ने कहा, आप महान आत्मसंपत्ति और संतोष और संतोष रूपी धन के मालिक हैं। लेकिन मैं इतनी धन संपत्ति होते हुए भी अत्यंत दुखी हूं।

१०१५) **कर्मफल -** एक बार एक गुरु-शिष्य किसी मार्ग पर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक मार्ग के निकट एक घायल सर्प पीड़ा से तड़प रहा है। उसके घाव पर सैकड़ों चींटियां चढ़कर उसका रक्त चूस रही थीं। सर्प असहाय सा पड़ा था। सर्प की वैसी दयनीय दशा देखकर शिष्य के मुख से निकल गया- गुरुजी देखिए ये प्राणी कितना असहाय है। गुरु बोले- वत्स, कर्मफल तो सब को ही भोगने पड़ते हैं। इस सर्प ने ऐसा क्या कर्म किया होगा कि सर्पयोनि में भी इसको इतना असह्य कष्ट भोगना पड़ रहा है ?

मैं तुम्हें कुछ वर्ष पूर्व का स्मरण दिलाता हूँ। आज ही की भांति हम लोग इस सरोवर के किनारे से जा रहे थे तो तुमने एक मछुआरे को मछली मारने से रोका था स्मरण है ? स्मरण है गुरुदेव, मेरे रोकने पर उसने मेरा ही उपहास किया था। तो देख लो। वही मछुआरा यह सर्प है और उसने जिन मछलियों को मारा था, वे चींटियां बनकर उत्पन्न हुई और आज उनको अपना बदला लेने का अवसर प्राप्त हो गया। शिष्य को कर्मगति के विषय में ज्ञान हो गया।

१०१६) **सृष्टि का सत्य-** किसी गांव में एक ऋषि पधारे। उनसे मिलने गांव का एक किसान पहुंचा। उसने ऋषि के सामने अपने कष्टों की चर्चा की और पूछा, दुख से मुक्ति का उपाय क्या है ? ऋषि ने कहा, चाहो तो तुम इससे पूरी तरह मुक्त हो सकते हो। उसने पूछा वह कैसे ? ऋषि ने कहा, मैं तुम्हें बैकुण्ठ धाम लिए चलता हूँ। किसान सोच में पड़ गया। कुछ देर बाद उसने कहा, स्वामीजी, अभी मेरे बच्चे काफी छोटे हैं। हां, दस साल बाद जब वे बड़े हो जाएंगे और अपने-अपने काम में लग जाएंगे, तब मैं अवश्य आपके साथ चलूंगा।

दस साल बाद ऋषि फिर गांव में आए और उस किसान के पास पहुंचे। उन्होंने कहा, भाई, तुमने दस साल की जो अवधि चाही थी, वह गुजर चुकी है। चलो, अब स्वर्ग चलते हैं। किसान दुविधा में पड़ गया। उसे इस तरह असमंजस में पड़ा देख ऋषि ने कहा, अब क्या अड़चन है ? किसान ने जवाब दिया, प्रभो, पिछले दिनों मेरे लड़के की शादी हुई है। आपके आशीर्वाद से जरा पोते का मुंह देख लूं, फिर अवश्य मैं आपके साथ चल दूंगा।

दस साल और बीत गए। ऋषि किसान के घर पहुंचे तो वह उन्हें कहीं दिखाई नहीं पड़ा। एक कुत्ता जरूर उन्हें वहां दिखाई पड़ा। अपनी योग-शक्ति के बल पर उन्होंने जान लिया कि यह कुत्ता ही पूर्व जन्म में किसान था। फिर योगशक्ति के बल पर ही ऋषि ने कुत्ते को पूर्वजन्म के वादे का ध्यान दिलाया। कुत्ते ने कहा, मेरे पोतों को पता नहीं कि आजकल जमाना बड़ा खराब है। चोर डकैत रातों में घूमते रहते हैं। मुझे इस घर की रखवाली करनी है। हां, दस साल बाद मैं जरूर आपके साथ चलूंगा।

ऋषि ने मुस्कराते हुए कहा, मुझे पता है दस साल बाद फिर तुम कोई बहाना ढूंढ लोगे। एक जीव जीवन के मोह से कभी मुक्त नहीं हो पाता। वह किसी भी हाल में जीना चाहता है। शायद इसीलिए सृष्टि चलती रहती है। मुझे प्रसन्नता है कि इस

जन्म में भी तुम अपने कर्त्तव्य से नहीं डिगे।

१०१७) बड़ा कौन- पुरानी कथा है। यह जानने के लिए कि साधु बड़ा है या गृहस्थ, एक राजा एक साधु के पास पहुंचा। साधु राजा को लेकर दूसरे राज्य गया। वहां का राजा अपनी राजकुमारी के लिए अच्छे वर के चुनाव हेतु स्वयंवर का आयोजन कर रहा था। वहां कई राज्यों के राजकुमार पधारे थे। राजा और संन्यासी भी वहां खड़े होकर तमाशा देखने लगे। राजकुमारी वरमाला हाथ में लेकर एक-एक राजकुमार के पास गई, लेकिन कोई पसंद नहीं आया। इत्तफाक से उसी समय एक युवा मुनि वहां आकर खड़ा हो गया। राजकुमारी उसे देखते ही उस पर मोहित हो गई और उसके गले में वरमाला डाल दी। लेकिन मुनि ने वरमाला निकाल फेंकी और कहा- मैं एक साधु हूं। मैं कैसे विवाह कर सकता हूँ ? इस पर वहां के राजा ने मुनि को आधा राज्य और बहुत सा धन देने की बात की, लेकिन मुनि ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया और तुरंत वहां से चल पड़ा। उसके जाते ही इस दृश्य को देख रहे साधु और राजा भी वहां से चल पड़े। दोनों ने जंगल में एक पेड़ के नीचे रात्रि विश्राम का निर्णय किया। उस पेड़ पर एक चिड़कुला और चिड़िया रहते थे। चिड़कुला ने पेड़ के नीचे ठिठुरते दो मनुष्यों को देख कर चिड़िया से कहा- प्रिये, अब क्या करें, घर में दो भूखे प्यासे मेहमान आए हैं और कुछ खाने को नहीं। दोनों ने लकड़ी इकट्ठा करके चूल्हा जला दिया। तब चिड़कुला बोला- प्रिये, अब इनके खाने का क्या करें ? हमारे घर अन्न का एक दाना तक नहीं ? चिड़िया कुछ कहती, उसके पहले ही चिड़कुला जलती आग में कूद गया, ताकि मेहमान उसका गोश्त खा लें। चिड़िया ने सोचा इतने से इनका क्या होगा और वह भी जलती आग में कूद पड़ी। राजा और संन्यासी यह सब देख रहे थे। तब संन्यासी ने कहा- राजन्, आपने देखा कि अपनी अपनी जगह संन्यासी और गृहस्थ दोनों बड़े हैं। यदि तुम गृहस्थ धर्म का पालन करते हो तो इन पक्षियों की भांति रहो, जिन्होंने दूसरे के लिए अपना शरीर तक दे दिया और यदि संसार से अलग रहना चाहते हो तो उस मुनि की तरह रहो, जिसके लिए एक सुंदर राजकुमारी और सारी धन-दौलत की भी कोई कीमत नहीं।

१०१८) अकर्मण्यता- पिता अपने पुत्र को गुरूकुल में लाया और गुरूजी से अनुनय-विनय करने लगा कि इसे भी अपना शिष्य बनाकर इसका जन्म सुधार दीजिए। गुरुजी ने उसका आग्रह मान लिया और वह निश्चिन्त होकर घर वापस आ गया। थोड़ी देर बाद गुरूजी को ख्याल आया कि नये शिष्य की क्यों न परीक्षा ही ले ली जाए। उन्होंने इस नये शिष्य को एक खाली बाल्टी दी और उसे कहा कि पनघट पर जाकर स्नान कर आये। वह स्नान करने चला गया। गुरूजी उसकी प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद वह स्नान करके वापस लौट आया और उसने खाली बाल्टी गुरूजी को थमा दी। गुरूजी अपने नये शिष्य की अकर्मण्यता देखकर उसके भविष्य की चिन्ता में डूब गए क्योंकि वह तो पहली ही परीक्षा में बुरी तरह चौपट हो गया था।

१०१९) निष्किञ्चन दम्पत्ति भक्त का- एक निर्धन, पर सन्तोषी, भगवानके महान् भक्त थे। यथा लाभ सन्तोष करना उनका स्वभाव था। उनकी पत्नी भी पतिके अनुसार ही भक्त थीं। बहुत दिन गरीबी से भगवत्सेवा करते-करते बीत गये। पत्नी को अपने खान-पान परिधान की चिन्ता न थी परन्तु भगवत्सेवामें सेवा-सामग्री का अभाव उसे बहुत खटकता था। पड़ोसियोंकी सम्पन्नता देखकर उसका मन और मचल गया। उसने अपने पतिसे कहा कि मैं राजोपचारोंसे प्रभुकी सेवा करूँगी। उसके लिए जैसे हो वैसे धनका संग्रह करो। भक्तने पत्नीको बहुत समझाया कि अर्थमें अनन्त अनर्थ भरे हैं अत: उसकी इच्छा मत करो। उससे सेवामें बाधा होगी। इस प्रकार पतिके समझाने से भी उसकी समझमें नहीं आया। वह रूस गई और दो दिन भूखी रही। तीसरे दिन भक्तपति ने कहा- गाँवसे पूर्व वनमें चली जाओ, वहाँ तुम्हें विशाल वटवृक्ष मिलेगा। उसके नीचे बहुत-सा धन गड़ा है, खोदकर ले आओ। प्रसन्न होकर स्त्री गई और जब धन खोदने लगी तब धनके देवताकी आवाज आई कि आज तुमने जो श्रीठाकुरजीको जलकी झारी अर्पणकी है, उसका फल हमें दे दो। तब उसके बदले धन

ले जाओ। स्त्री बोली- कल जो झारी भरूँगी उसका फल ले लेना। तब देवताने कहा- उसका फल वैसा नहीं होगा। यह सुनकर बिना धन लिए ही वह लौट आई कि धनकी कामना मात्रसे सेवा छूटी। धन मिलने पर न जोन कौन-कौन से अनर्थ होंगे। पतिकी बात समझमें आ गई। निष्किञ्चन भावसे ही सेवा करके सन्तुष्ट रहने लगीं।

१०२०) मुगल और सौदागर- ईश्वरमें विश्वास रखने वाले एक मुगल भक्त थे। वे परदेश जाने ले तो इस हजार रुपये एक साहूकार के पास जमा कर गये। बहुत दिनोंके बाद वापस लौटकर घरको आये। तब उन्होंने साहूकारसे रुपये माँगे। साहूकारने बातको भुलवा दिया और कहा- कैसे रुपये और किसके पास आपने कब रक्खे थे। मैं तो आपको पहचानता भी नहीं हूँ। दोनोंमें झगड़ा हुआ और दोनों राज-दरबारमें गये। वहाँ गवाही माँगी गई। कोई गवाह न था अत: राजाकी समझमें नहीं आया कि क्या निर्णय किया जाय। तब शपथको प्रमाण रक्खा गया। राजाने कड़ाहमें घी डलवाया और उसे गर्म करने लगे। मुगल भक्तने कहा कि इसे गर्म क्यों कर रहे हैं। लोगोंने बताया कि यदि यह सौदागर सच्चा होगा तो गर्म घी में इनके हाथ न जलेंगे। इसीलिए घी गर्म किया जा रहा है। सच्चेकी रक्षा ईश्वर करता है। यह सुनकर मुगलने कहा- घी गर्म न करो, यदि यह झूठा है और इसने रुपये लिए हैं, तो इसके हाथ ठण्डे घीमें जल जायेंगे। सौदागरने राजाकी आज्ञासे ठण्डे घीमें हाथ डाले, तो उसके हाथ जल गये। वह रोने लगा। राजाने कहा तुम झूठे हो रुपये दो और जुर्माना भी। इस प्रकार विश्वासके रुपको दिखाया। श्रीमथुरादासजीमें ऐसा ही दृढ़ विश्वास था। अत: इनके सामने चेटकी का चेटक न चला।

१०२१) लालची की दुर्गति- एक राजा को संसार का सबसे अधिक धनवान बनने की चाह थी। एक सिद्ध पुरुष के घर पहुंचने पर उनका भव्य आतिथ्य कर सिद्ध को प्रसन्न कर दिया। वरदान मांगने की बात सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा बोला महात्मन। आप प्रसन्न हैं तो मुझे वरदान दीजिए कि मैं जिस वस्तु को स्पर्श करूं वह सोने की बन जाए। महात्मा ने तथास्तु कहकर अपनी राह पकड़ी। राजा द्वारा मांगा गया वरदान अभिशाप बन गया क्योंकि भोजनादि भी उससे स्पर्श होते ही सोने के बन जाते। अन्त में राजा भूख प्यास से मर गया।

१०२२) प्रायश्चित- एक चोर अपनी चोरी करने की बुरी आदत से परेशान थां वह चोरी की आदत को त्यागकर ईमानदारी और मेहनत से अपनी जीविका चलाना चाहता था लेकिन बहुत प्रयास करने के बाद भी वह जब इस आदत को छुड़ा नहीं पाया तो वह साधु के पास पहुंचा। साधु चोर की परेशानी जानकर मुस्कुराए। वह बोले, तुम अपनी चोरी की आदत को सबको बताना शुरू कर दो।

चोर ने ऐसा करना शुरू कर दिया। अपनी चोरी के बारे में बताते हुए चोर को बहुत शर्म आती, लेकिन उसने हिम्मत न हारी और उसने यह काम जारी रखा। जल्द ही उसने महसूस किया कि जब इस चोरी जैसे कुकर्म के बारे में बताने पर ही इतनी लज्जा आती है तो ऐसा काम करने पर तो अंजुली भर पानी में डूब जाना बेहतर है। उसी दिन से चोर की चोरी करने की आदत छूट गई। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि आपको जब भी अपने किसी बुरे काम पर पछतावा हो तो उसको लोगों के सामने प्रकट करें, तो भविष्य में आप किसी भी कुकर्म से बचे रहेंगे। इससे आपके पापों का प्रायश्चित भी होगा।

१०२३) अमरफल- पिता ने अपने पुत्र को कुछ पैसे देकर बाजार भेजा और कहा कि कुछ फल खरीद कर ले आये। बच्चा बाजार जा रहा था कि उसको मार्ग में कुछ ऐसे लोग दिखाई दिये जिनके शरीर पर ठीक से चिथड़े भी नहीं थे। वे ठण्ड से ठिठुरने के साथ-साथ भूख से भी व्याकुल दीखते थे। उसने अपने हाथ के पैसे दे दिये। उन्होंने भी उसके सामने ही अपनी उदरपूर्ति के लिए कुछ वस्तुएं खरीद कर खा लीं। बालक को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। मन ही मन फूलता हुआ वह खाली हाथ घर लौट आया। बेटे को खाली हाथ देख पिता ने पूछा- बेटा। फल नही लाये ? वह कौन सा फल है, देखूं

तो ? पिताजी। मैंने कुछ अपने जेसे आदमियों को सड़क पर भूखों मरते देखा तो मुझ से रहा नहीं गया। मैंने वे सब पैसे उनको दे दिये। उससे उनकी आज भर की भूख मिट गई। हम लोग फल खाते, दो-चार मिनट के लिए हमारे मुख मीठे हो जाते, परन्तु इसका फल तो अमर है न पिताजी। पिता भी धार्मिक विचारों के ही थे। अपने पुत्र की बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। आगे चल कर यही बालक संत रंगदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१०२४) साधक की कसौटी- एक युवक ने एक महात्मा से कहा, मुझे आत्म साक्षात्कार का मार्ग बताइए। महात्मा ने कहा, आत्म साक्षात्कार का मार्ग बड़ा कठिन है। उस पर चलने के लिए साधक को कई कठिनाइयों से होकर गुजरना पड़ता है। युवक बोला, मैं तैयार हूं। आप बताइए। महात्मा ने कहा, एकांत स्थान में बैठकर एक वर्ष तक गायत्री मंत्र का जाप करो। इस दौरान न किसी से बात करना और न ही कोई मतलब रखना। एक साल पूरा होने पर मुझसे मिलने आना। एक साल बीतने पर महात्मा ने अपनी सफाई करनेवाली से कहा, आज मेरा शिष्य आने वाला है। तुम उसके ऊपर झाडू से खूब धूल उड़ाना। उसने ऐसा ही किया। वह युवक गुस्से से सफाई करनेवाली को मारने दौड़ा पर वह भाग गई। जब युवक नहा-धोकर महात्मा की सेवा में उपस्थित हुआ तो महात्मा ने कहा, तुम तो सांप की तरह काटते हो। जाओ एक साल और साधना करो। युवक बहुत क्रोधित हुआ, मगर उसके पास और कोई रास्ता न था, वह चला गया।

साल बीतने पर महात्मा ने अपनी सफाईवाली से कहा कि उसके आते ही वह उसके शरीर से अपना झाडू सटा दे। उसने ऐसा ही किया। इस बार युवक ने उसे जमकर गालियां दी। स्नान करके जब वह महात्मा के पास पहुंचा तो उन्होंने कहा, अब तुम सांप की तरह काटते तो नहीं, पर फुफकारते जरूर हो। जाओ एक वर्ष और साधना करो। युवक चल दिया। इस तरह तीसरा वर्ष बीत गया। महात्मा ने सफाई करनेवाली से कहा कि वह युवक के आते ही कूड़े से भरी अपनी टोकरी उसके सिर पर डाल दे। उसने ऐसा ही किया, लेकिन इस बार युवक को क्रोध नहीं आया। उसने हाथ जोड़कर कहा, माता तुम महान हो। तीन वर्षों से मेरे दुर्गुणों को निकालने का प्रयत्न कर रही हो। मैं तुम्हारे उपकार को कभी भूल नहीं सकता। इसी तरह तुम मेरे उद्धार का प्रयास करती रहना। यह कहकर वह नहाने चल पड़ा। जब वह नहाकर महात्मा के पास आया तो उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, अब तुम आत्म साक्षात्कार के योग्य हो गए हो।

१०२५) स्वप्न का संदेश - एक संत की साधना और भक्तिमय जीवन की बड़ी ख्याति थी। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि उनकी मृत्यु हो चुकी है और वह एक देवदूत के सामने खड़े हैं। देवदूत सब मृत लोगों से उनके कर्मों का ब्योरा मांग रहा था। काफी देर बाद जब उनकी बारी आई, तो देवदूत ने उनसे पूछा, आप बताएं, आपने जीवन में क्या अच्छे कार्य किए जिनका आपको पुण्य मिला हो? संत सोचने लगे- मेरा तो सारा जीवन ही पुण्य कार्यों में व्यतीत हुआ है, मै कौन सा एक काम बताऊं। वह बोले, मैं पांच बार तीर्थयात्रा कर चुका हूं। देवदूत बोला, आपने तीर्थयात्राएं तो कीं, लेकिन आप अपने इस कार्य की चर्चा हर व्यक्ति से करते रहे। इसके कारण आपके सारे पुण्य नष्ट हो गए। संत को भारी ग्लानि हुई। फिर कुछ हिम्मत कर उन्होंने कहा, मैं प्रतिदिन भगवान का ध्यान और उनके नाम का स्मरण करता था। देवदूत ने कहा, जब आप ध्यान करते और कोई दूसरा व्यक्ति वहां आता, तो आप कुछ अधिक समय तक जप-ध्यान में बैठते थे। चलिए कोई और पुण्य कार्य बताइए। संत को लगा कि उनकी अब तक की सारी तपस्या बेकार चली गई। उनकी आंखों से पश्यातात के आंसू बह निकले। इतने में उनकी नींद खुल गई। वह स्वप्न का संदेश समझ गए। वह समझ गए कि उन्हें अपनी साधना पर गर्व हो गया था। वे अपने त्यागमय जीवन के बदले दूसरों से कुछ अपेक्षाएं रखने लगे थे। उस दिन से उन्होंने अपने को बदलने का फैसला किया और सहज होकर साधना करने लगे।

१०२६) ज्ञान का प्रकाश - एक गुरु अपने सभी शिष्यों को प्रत्यक्ष उदाहरणों से समझा कर उन्हें ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बताया करते थे। एक बार एक प्रिय शिष्य के साथ विचार-विमर्श करते-करते काफी रात हो गई। उस समय रोशनी की सुविधा नहीं थी। शिष्य जब अपने कमरे में जाने के लिए सीढ़ियों से उतरने को हुआ तो गहन अंधकार देखकर घबरा गया। वह गुरु से बोला, गुरुजी, अंधेरे के कारण रास्ता नहीं सूझ रहा है, ऐसे में मैं सीढ़ियां कैसे उतरूंगा? शिष्य की बात सुनकर गुरु ने एक दीपक जलाकर शिष्य के हाथ में रख दिया। शिष्य दीपक लेकर जैसे ही पहली सीढ़ी उतरा, वैसे ही गुरु ने दीपक बुझा दिया। दीपक बुझते ही फिर से अंधकार फैल गया। शिष्य ने कहा, गुरुजी, यह आपने क्या किया? मैं तो पहली सीढ़ी पर ही अटक गया हूं। अब बाकी सीढ़ियां कैसे पार करूंगा? गुरु बोले, पुत्र जब एक सीढ़ी पर पांव रख ही दिया है तो आगे भी सीढ़ियां मिलती जाएंगी। किसी दूसरे के द्वारा प्रदत्त दीपक के सहारे जो प्रकाश मिलता है वह असली प्रकाश नहीं होता अपितु असली प्रकाश वह होता है जो अंधकार में चलने पर तुम्हारे अंदर स्वयं विकसित होता है। वह प्रकाश, प्रदत्त दीपक के प्रकाश से कहीं बेहतर व एक नवीन प्रकाश होता है जो केवल मार्ग ही नहीं दिखाता, अपितु अंतर्मन के सारे चक्षुओं को खोलकर एक नई दिशा देता है। वह दिशा ही ऊंचाइयों तक ले जाती है। इसलिए सफलता की ऊंचाईयों को छूने वाले लोग अपना प्रकाश स्वयं निर्मित करते हैं और जो व्यक्ति अपना प्रकाश निर्मित करना सीख जाता है, वह अपना जीवन सर्वश्रेष्ठ बना लेता है। इसलिए मैंने इस दीपक को बुझा दिया क्योंकि इस दीपक के सहारे तुम सीढ़ियां तो आसानी से पार कर लोगे किंतु अपनी अंतर्मन की सीढ़ियों को पार नहीं कर पाओगे। शिष्य अपने गुरु की बात समझ गया। उसने न सिर्फ सीढ़ियां भयरहित होकर पार कीं, अपितु अपना जीवन भी सर्वश्रेष्ठ बनाया।

१०२७) मन की कमजोरी - एक विद्वान महर्षि ने घोर तप आरंभ किया। आंधी-तूफान और अन्य विघ्न-बाधाएं भी उन्हें तप से नहीं डिगा सकीं। देवराज इंद्र को जब इसकी सूचना मिली तो वह हमेशा की तरह भयग्रस्त हो गए। उन्हें लगा कि यह महर्षि कहीं उनके लिए खतरा न बन जाएं। वह एक शिकारी का रूप धारण कर महर्षि के पास पहुंचे और उनसे हाथ जोड़कर बोले, गुरुजी, मुझे किसी आवश्यक काम से जाना है। मैं अपना धनुषबाण आपके पास रखना चाहता हूं। जब मैं वापस आऊंगा तो आपसे ले लूंगा। इसे संभालकर रख लें। महर्षि शिकारी वेश में इंद्रदेव को नहीं पहचान पाए। उन्होंने धनुष-बाण रखने से साफ मना कर दिया। किंतु इंद्रदेव भला इतनी आसानी से कहां हार माननेवाले थे? उन्होंने महर्षि पर इतना जोर डाला कि उन्हें धनुष-बाण रखना पड़ा लेकिन वह बोले, तुम नहीं मानते तो इसे कुटिया के एक कोने में रख दो। किंतु मैं तप में इतना लीन होता हूं कि मुझे किसी का ध्यान ही नहीं रहता। ऐसे में इसकी रखवाली मुमकिन नहीं है। इस पर शिकारी बने इंद्रदेव बोले, चिंता न करें गुरुजी, इसे कोई लेकर जानेवाला नहीं है। बस आते-जाते एक नजर डाल लिया करें। इसके बाद वह वहां से चले गए। महर्षि तप में लीन हो गए। मगर कई बार उनकी नजर कोने में पड़े धनुष-बाण पर अवश्य पड़ जाती। वे राजपाट छोड़कर संन्यासी बन तप में लगे थे। कई दिनों तक उस पर नजर पड़ते-पड़ते उनके मन में धनुष बाण-चलाने की इच्छा जागने लगी। बस, अब वे तप से समय बचाकर जंगल में निकल जाते। उनका ध्यान बंटने लगा। तप में कमी आ गई। इंद्रदेव यही तो चाहते थे। उन्हें अपना सिंहासन अब सुरक्षित नजर आने लगा था। महर्षि के मन के कोने में दबी उनकी एक कमजोरी ने उनका कठोर तप भंग कर दिया।

१०२८) गुरु की तलाश - बहुत पुरानी कथा है। किसी शहर में एक सेठ थे। उन्हें ऐसे गुरु की तलाश थी, जो पहुंचा हुआ हो, ज्ञानी हो। उन्होंने बहुतों को जांचा-परखा, पर कोई खरा न निकला। तलाश का अंत न हुआ। सेठानी ने कहा, यह काम मेरे ऊपर छोड़ दें। आप जिन्हें भी जांचना चाहें, उन्हें मेरे पास भेज दिया करें। सेठजी सहमत हो गए। एक झंझट

टला। सेठानी ने गुरु की तलाश के लिए एक रोचक योजना बनाई। उन्होंने पिंजरे में एक कौवा पाला। जो भी महात्मा उनके पास आते उनसे वह कहतीं- देखिए, मेरा पाला कबूतर कितना अच्छा है। संत-महात्मा हैरान होकर कहते, यह कबूतर कहां है? यह तो कौवा है। जब सेठानी अपनी बात पर अड़ी ही रहतीं तो वे क्रोध में भर कर उल्टी-सीधी बातें कहते और वापस चले जाते। कुछ ने सेठानी पर यह सोचकर तरस भी खाया कि बेचारी विक्षिप्त हो गई हैं। यह क्रम चलता रहा। बहुतेरे आए और चले गए। कोई खरा उतरा नहीं। मुद्दा यह था कि जो आवेश ग्रस्त हो जाए, वह संत कैसा? जो संत नहीं, वह गुरु योग्य कहां? एक दिन एक वयोवृद्ध संत आए। उनका भरपूर स्वागत-सत्कार करने के बाद सेठानी ने वही कौवा-कबूतर का सिलसिला चला दिया। पर यह संत तो किसी और ही मिट्टी के बने थे। उनके चेहरे पर क्रोध की एक रेखा तक न दिखाई पड़ी। वे कौवे और कबूतर का अंतर समझाते रहे। न समझ पाने पर इतना ही कह कर चले गए- बेटी। हठ मत करना। तथ्य का पता लगाना। कोई सर्वज्ञ नहीं। हमसे-आपसे भूल हो सकती है। सत्य को समझने के लिए मन के द्वार खुलने चाहिए। वे हंसते हुए चल दिए। न आवेश, न मान-अपमान का भाव। सेठानी ने संत को वापस बुलवाया। नमन किया और कहा, जैसा चाहती थी, वैसा आप में पाया। कृपया हमारे परिवार के गुरु का उत्तरदायित्व ग्रहण करें। घर के सभी लोग उनके शिष्य बन गए।

१०२९) आकाश का चांद - एक व्यक्ति एक प्रसिद्ध संत के पास गया और बोला, गुरुदेव, मुझे जीवन के सत्य का पूर्ण ज्ञान है। मैंने शास्त्रों का काफी अध्ययन भी किया है। फिर भी मेरा मन किसी काम में नहीं लगता। जब भी कोई काम करने बैठता हूं तो मन भटकने लगता है और मैं उस काम को छोड़ देता हूं। इस अस्थिरता का कारण क्या हैं? कृपया मेरी इस समस्या का समाधान कीजिए। संत ने उसे रात का इंतजार करने को कहा। रात होने पर वह उसे एक झील के पास ले गए और झील के अंदर चांद के चमचमाते प्रतिबिंब को दिखाकर बोले, एक चांद आकाश में है और एक झील में। तुम्हारा मन इस झील की तरह है। तुम्हारे पास ज्ञान तो है लेकिन तुम उसका उपयोग करने के बजाय सिर्फ उसे अपने मन में लेकर बैठे हो, ठीक उसी तरह जैसे झील असली चांद का प्रतिबिंब लेकर बैठी है। तुम्हारा ज्ञान तभी सार्थक हो सकता है जब तुम उसे व्यवहार में एकाग्रता व संयम के साथ अपनाने की कोशिश करो। झील का चांद तो मात्र एक भ्रम है। भला यह चांद मुक्त आकाश के चंद्रमा की बराबरी कहां कर सकता है? उसी तरह तुम्हें काम में मन लगाने के लिए स्वयं को आकाश के चंद्रमा की तरह बनाना है, झील के चंद्रमा की तरह नहीं। झील का चंद्रमा पानी में कंकड़-पत्थर गिरने पर हिलने लगता है, जिस तरह तुम्हारा मन जरा-जरा सी बात में डोलने लग जाता है। तुम्हें अपने ज्ञान व विवेक को जीवन में नियमपूर्वक प्रयोग में लाना होगा तभी तुम्हारा जीवन सार्थक हो सकेगा और तुम अपना लक्ष्य हासिल कर सकोगे। खुद को आकाश का चांद बनाओ फिर तुम्हें कोई शिकायत नहीं होगी। इसमें, तुम्हें शुरू में थोड़ी परेशानी आएगी किंतु कुछ समय बाद तुम अभ्यस्त हो जाओगे। व्यक्ति संत के इस उदाहरण को भलीभांति समझ गया और अपने जीवन में दृढ़ निश्चय कर एकाग्रता से काम करने लगा।

१०३०) सकारात्मक सोच जरूरी - पुराने जमाने की बात है। दो साधु किसी जंगल के समीप एक कुटिया बनाकर रहते थे। उनमें से एक अधेड़ था, जो हर परिस्थिति में शांत और प्रसन्न रहता था, जबकि दूसरा युवा था। वह थोड़ा तुनकमिजाज था, बात-बात में बिगड़ जाता था। एक बार दोनों यात्रा पर निकले। काफी दिन तक घूमते रहे। लौटने पर उन्होंने देखा कि उनकी कुटिया के बरामदे का छप्पर आंधी-तूफान के कारण उड़ गया है। अपनी टूटी झोपड़ी देखकर युवा साधु ईश्वर को कोसते हुए बोला, हे ईश्वर, हम हमेशा तेरे नाम का जाप करते हैं, फिर भी तूने हम गरीबों का छप्पर तोड़ दिया। यदि तू अपने भक्तों की रक्षा नहीं करेगा, तो फिर कौन करेगा? युवा साधु बोले जा रहा था पर अधेड़ साधु मौन खड़ा था। उसकी आंखें आकाश की ओर टिकी थी और उनसे आंसू बह रहे थे। परमात्मा के प्रति आभार से उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा था।

अधेड़ साधु को मौन देख युवा साधु को बेहद आश्चर्य हुआ। लेकिन अधेड़ साधु ने उसके मन के भाव जान लिए थे। वह आकाश की ओर देखते हुए बोला, वाह ईश्वर, तेरी लीला अपार है। हम जब माता के गर्भ में थे, तब वहां तूने हमारी रक्षा की। मित्रों की प्रीति से हमें पुष्ट किया। फिर संत-महात्माओं का सत्संग दिया ताकि हम सत्य के मार्ग पर चलें। तू हरेक परिस्थिति में हमारी रक्षा करता आया है। इस बार भी आंधी-तूफान का रूख तूने ही बदला होगा, इसलिए आधा छप्पर ही टूटा वरना तो पूरी झोपड़ी ही नष्ट हो जाती। फिर उसने युवा साधु की ओर देखकर कहा, भाई, जो घटना घटी है उसका तू सीधा अर्थ ले। जीवन में विघ्न-बाधाएं आने पर भी जिसने धैर्य नहीं खोया और अपने भीतर जितना अधिक उत्साह पैदा किया, वह उतना ही महान बना। उसकी यह बात सुनकर युवा साधु उसके समक्ष नतमस्तक हो गया।

१०३१) बनिए का बनिया - एक बनिया संत के पास पहुँचा। बोला, भगवान का नाम लेना चाहता हूँ, महाराज। सेवा-पूजा करना चाहता हूँ; किंतु एक दमड़ी का भी खर्चा न हो, इसका खयाल रखिएगा। संत बोला, अरे भाई, भगवान कब तुमसे पैसा-रुपया चाहता है। उसे तो चाहिए सच्ची भक्ति। पैसे के बिना भक्ति हो सकती है, तब बनिए को भक्ति से क्या परहेज। बस, लग गया राम नाम जपने। उठते-बैठते, खाते-पीते, दिन-रात वह ईश्वर का नाम जपता रहता। एक दिन बनिए ने भगवान के सामने दूध से भरा लोटा चढ़ाया। मीठा करने के लिए शक्कर डाली। तभी उसे खयाल आया कि दूध में शक्कर ज्यादा पड़ गई है। सोचा, थोड़ा निकाल ले। मगर जैसे ही लोटे में हाथ डाला तो दंग रह गया। लोटे में शक्कर तो शक्कर, दूध भी गायब था। बनिया समझ गया। भगवान उससे भी ज्यादा उस्ताद निकले। हाथ आया वापस क्यों जाने दें। सच है, भगवान बनियों का बनिया है। भक्ति तो मन में सच्ची थी, अत: भगवान ने प्रसाद ग्रहण कर लिया। यह सोच बनिए की खुशी का ठिकाना न रहा।

१०३२) एक दंभी राजा था- एक दंभी राजा था और दंभी हेकड़ीबाज होता है, वह किसी के विचार को मान्यता दे नहीं सकता। एक दिन इस दंभी राजा के दरबार में एक धर्मप्रिय, ईश्वर पर निष्ठा रखनेवाला व्यक्ति बोल उठा- परमात्मा सबकी रक्षा करता है, किंतु उसकी बात सम्राट को नहीं जंची। उसने उस व्यक्ति को बांधकर बर्फीली नदी में खड़ा कर दिया। सोचा- वह बर्फ में जमकर मर जायेगा, किंतु दूसरे दिन वह योगी सम्राट के सामने स्वस्थ सानन्द आ खड़ा हुआ। सम्राट ने इसके बारे में जिज्ञासा की। पूछने पर एक पहरेदार ने बतलाया कि यह रात भर नदी में खड़ा-खड़ा आपके महल में जलने वाले दिये को निहारता रहा। इस पर सम्राट ने कहा- यह तो सरासर धोखा है, तुम दिये के ताप के सहारे ही नदी में खड़े रहे।

योगी सम्राट के इस तर्क पर हंस पड़ा कुछ दिन बीत गये। उसके मन में ख्याल आया क्यों न एक दिन सम्राट को अपने घर दावत दूं और उनके भय का पर्दाफाश कर दूं। यह सोचकर एक दिन वह सम्राट के पास गया और अपनी मंशा कह सुनायी। सम्राट ने उसका दावतनामा सहर्ष स्वीकार कर लिया। समय दिन के ग्यारह जो तय हुआ सम्राट निश्चित तिथि और समय पर आश्रम पर पहुंच गया।

संत ने तपाक् से स्वागत किया और बताया- आप थोड़ी देर आराम फरमाएं, भोजन अभी तैयार हुआ जाता है। सम्राट थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा, जब भूख का उसे अहसास हुआ तो साधु से बोला- अभी कितनी देर लगेगी।

आप घबड़ायें नहीं, थोड़ा समय और लगेगा- यह सुनकर लेटे-लेटे उसे तंद्रा ने घेर लिया। वह कुछ देर तक सोता रहा फिर झटके से उठा और देखा- सूरज ढलान पर आ चुका है। उसकी भूख आतुरता में बदल गये वह उठकर आश्रम के रसोई घर की ओर चला गया।

संत बोला- महाराज, आप घबड़ाये नहीं, भोजन अब तैयार ही है- किंतु वह रसोई घर में चला गया। वहां जाकर देखा-

चूल्हे पर बड़ा भारी पतीला रखा हुआ है और पतीले में चावल भरा है मगर चूल्हे में आग का एक अंगारा भी नहीं है। यह देखकर सम्राट बोला- मूर्ख यह तू क्या कह रहा है, कहीं ऐसे चावल पकता है? संत ने बतलाया- उस दिन की आग से हम चावल पका रहे हैं, जिसके ताप से हम उस रात बच गये थे, वह आपके राजमहल का दिया उसी दिये से हमारा चावल भी पक जायेगा। सम्राट को अपने दंभ का ज्ञान हो आया। उसे अपनी हेकड़ी पर कहे गये वचनों पर पश्चाताप हो गया। लोग इस बात को जानते ही नहीं कि साधक और साध्य में दूरी कितनी होती है?

१०३३) सुख का सार - एक व्यक्ति अपने जीवन से बहुत परेशान था। हारकर वह एक संत के पास पहुंचा और उन्हें अपनी समस्या बताई। युवक की बात सुनकर संत ने एक कांच का जार मंगवाया और उसमें ढेर सारी खूबसूरत रंग-बिरंगी गेंदे भर दी फिर युवक से पूछा, क्या यह जार भर गया है? युवक बोला, हां महाराज, जार तो गेंदों से भर गया है। युवक की बात सुनकर संत मुस्कराए और उन्होंने उस जार में छोटे-छोटे मोती भरने शुरू कर दिए। मोती जार में उस जगह पर समा गए जहां पर गेंदों के बीच रिक्त स्थान बचा हुआ था। इसके बाद उन्होंने युवक से फिर पूछा, क्या अब जार भर गया है? युवक जार को भलीभांति देखकर बोला, हां, अब तो इसमें कहीं भी जगह शेष नहीं है। फिर संत ने जार में रेत डालना शुरू किया। रेत भी जार में मोती के साथ बचे रिक्त स्थान में समा गई। यह देखकर युवक बहुत हैरान हुआ। संत बोले, बेटा, इस कांच के जार को तुम अपना जीवन समझो। इसमें जो रंग-बिरंगी गेंदे हैं वो तुम्हारे जीवन का आधार यानी परिवार हैं। इसमें जो अनेक मोती हैं वे तुम्हारा रोजगार, आवास, शिक्षा, आदि हैं और जो रेत है वह जीवन में होनेवाले झगड़े, मनमुटाव, तनाव, क्लेश आदि हैं। जीवन ऐसा ही होना चाहिए। अब यदि तुम जार में पहले रेत ही रेत भर दो, तो उसमें गेंदों व मोती के लिए जगह ही नहीं बचेगी। इसलिए पहले अपने जीवन को रंग-बिरंगी गेंदों व मोतियों से भरो। युवक को सुख का सार समझ में आ गया।

१०३४) अच्छा बोलिए पर असत्य नहीं - एक राजा था। उसकी राजधानी में संत पधारे। राजा ने संत के प्रवचन का आयोजन किया। राजा का स्नेह एक वेश्या के संग था। वेश्या ने सोचा- दो अच्छे शब्द सुनकर तरने का यह अवसर मैं क्यों गवाऊं। राजा ने उसे अपने पास ही स्थान दिया। संत पधारें, विराजे और ज्यों ही दृष्टि वेश्या पर पड़ी, क्रोधित हो गरजे- शेर के साथ कुत्ती। वेश्या बोली- मैंने तो सोचा था बड़े संत हो, हर मनुष्य में उसका रूप देखते हो, तुम्हारी तो चमार दृष्टि है। चमड़े का यह शरीर ही देखते हो। असली संत होते तो अपने शब्दों से मेरा जीवन बदलकर दिखाते। दोनों शब्द देने लगे, स्वामीजी अहंकार में, वेश्या द्वेष में। दोनों का विवेक बंद हो गया। रात में वेश्या ने सीसा पीसकर स्वामीजी के दूध में मिला दिया जिससे उनका शरीर त्राहि-त्राहि करने लगा। शब्दों से लगी वेश्या में मन की आग का नतीजा स्वामीजी के शरीर में आग लगाना था।

१०३५) सच्चा धर्म - गुरु अपने कुछ शिष्यों के साथ मेले में गए। उन्होंने देखा कि एक स्थान पर बैठकर कुछ बाबा माला फेर रहे थे। उन्होंने अपने सामने एक चादर भी फैला रखी थी जिस पर आते-जाते लोग सिक्के डाल जाते थे। साधु आंखें बंद करके बैठे रहते जैसे ध्यान में मगन हों। लेकिन बीच-बीच में वे थोड़ी देर के लिए आंखें खोलकर सामने बिछी चादर पर देख लेते कि उस पर कितने पैसे इकट्ठे हुए। उन्हें ऐसा करते देखकर गुरु हंस पड़े। उन्होंने शिष्यों को आगे चलने को कहा। आगे एक तपस्वी शीर्षासन कर रहा था। वहां भी भारी भीड़ा जमा थी। उसे देखकर गुरु ने जोर का ठहाका लगाया। फिर वह अपने शिष्यों को लेकर आगे चल पड़े। आगे एक पंडितजी भागवत कथा सुना रहे थे। उनके सामने चेलों की जमात बैठी थी। बीच-बीच में जयकारे लगते और कीर्तन भी होने लगता। बार-बार कथा के आयोजक लोगों से श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दान देने की अपील करते। कथा के कार्यकर्ता दानपात्र लेकर श्रोताओं के बीच में घूमने भी लगते और कथा सुननेवाले भक्त उस पात्र में कुछ न कुछ डालते। उन्हें देखकर गुरु फिर खिलखिलाकर हंसे। उससे आगे एक कैंप

में एक डॉक्टर रोगियों की सेवा में लगा था। गुरु कुछ देर वहां रुके रहे। उनकी आंखों में आंसू आ गए। आश्रम लौटने पर शिष्यों ने गुरु से पहले तीन स्थानों पर हंसने और चौथे स्थान पर रोने का कारण पूछा, तो गुरु ने उत्तर दिया, आज माला, आसन, प्राणायाम और भागवत कथा को ही धर्म समझकर अधिकतर लोग ढोंग कर रहे हैं। यह देखकर हंसी आ गई, जबकि भगवान का काम करनेवाला बस एक डॉक्टर दिखा। यह देखकर दुख हुआ कि लोग धर्म के वास्तविक अर्थ को न जाने कब समझेंगे? सच्चा धर्म संसार की सेवा करना और उसे सुधारना है, जप तप करना नहीं। गुरु की बातों में सभी शिष्यों को अपने प्रश्न के उत्तर के साथ-साथ धर्म के वास्तविक अर्थ को समझने का सूत्र भी मिला।

१०३६) गुरु-शिष्य वन में टहल रहे थे। सामने से कभी हिरन तो कभी खरगोश तो कभी बंदर उछलकूद मचाते हुए चले जा रहे थे। शिष्य ने पूछा, मानव को सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। लेकिन मनुष्य हमेशा तनाव में रहता है। उससे ज्यादा प्रसन्न तो पशु रहते हैं। गुरु ने उत्तर दिया, पशुओं में मनुष्य की तरह धन या प्रतिष्ठा कमाने की होड़ नहीं होती। अगर मानव भी संकुचित स्वार्थ से ऊपर उठ जाए तो वह भी हमेशा प्रसन्नचित्त रह सकता है।

१०३७) प्रसन्न रहने की कला- एक संत सदा प्रसन्न रहते थे। वह हर बात पर ठहाके लगाते रहते। कुछ चोरों को यह बात अजीब लगती थी। वे समझ नहीं पाते थे कि कोई व्यक्ति हर समय इतना खुश कैसे रह सकता है। चोरों ने यह सोच कर कि संत के पास गए उसके पास अपार धन होगा, उनका अपहरण कर लिया। वे उन्हें दूर जंगल में ले गए और बोले, सुना है संत कि तुम्हारे पास काफी धन है, तभी इतने प्रसन्न रहते हो। सारा धन हमारे हवाले कर दो वरना तुम्हारी जान की खैर नहीं। संत ने एक-एक कर हर चोर को अलग-अलग बुलाया और कहा, मेरे पास सुखदा मणि है मगर मैंने उसे तुम चोरों के डर से जमीन में गाड़ दिया है। यहां से कुछ ही दूर पर वह स्थान है। अपनी खोपड़ी के नीचे चंद्रमा की छाया में खोदना, शायद मिल जाए। यह कहकर संत एक पेड़ के नीचे सो गए। सभी चोर अलग-अलग दिशा में जाकर खोदने लगे। जरा सा उठते चलते तो छाया भी हिल जाती और उन्हें जहां-तहां खुदाई करनी पड़ती। रात भर में सैकड़ों छोटे-बड़े गड्ढे बन गए पर कहीं भी मणि का पता नहीं चला। चोर हताश होकर लौट आए और संत को भला-बुरा कहने लगे। संत हंसकर बोले, मूर्खों, मेरे कहने का अर्थ समझो। खोपड़ी तले सुखदा मणि छिपी है अर्थात उसमें श्रेष्ठ विचारों के कारण मनुष्य प्रसन्न रह सकता है। तुम भी अपना दृष्टिकोण बदलो और जीना सीखो। चोरों को यथार्थ का बोध हुआ। वे भी अपनी आदतें सुधार कर प्रसन्न रहने की कला सीखने लगे।

१०३८) भक्त की परिभाषा- काशी से थोड़ी दूर रामनगर में एक साधु रहता था। उसे विश्वास था कि वह जो कुछ भी करेगा, प्रभु उसे अपना भक्त समझकर माफ कर देंगे। एक दिन प्रात:काल वह गंगा में स्नान करके एक धोबी के कपड़े धोने वाले पत्थर पर बैठकर पूजा करने लगा। थोड़ी देर में धोबी कपड़े धोने के लिए आ गया। साधु को पूजा करते देख वह उसके उठने की प्रतीक्षा करने लगा, लेकिन जब काफी देर हो गई तो पास जाकर बोला, महाराज, आप हमारे पत्थर से उठकर दूसरी जगह पूजा करें, ताकि हम कपड़ा धो सके। मुझे देर हो रही है। साधु ने धोबी की बातें पर कोई ध्यान नहीं दिया। धोबी ने फिर अनुरोध किया लेकिन साधु उठने की बजाय गुस्से में बोला, मैं नहीं उठता, तू कहीं और जाकर कपड़ा धो ले। धोबी ने कहा, मैं कहा जाऊंगा। आप कहें तो मैं पूजा के लिए आसन बना दूं। लेकिन साधु ने धोबी की बात को अनसुना कर दिया। लाचार धोबी ने साधु का हाथ पकड़कर पत्थर से उठा दिया। साधु को गुस्सा आ गया। उसने क्रोध में कहा, तुम नहीं जानते मैं भगवान का भक्त हूं। अभी तुम्हें इसका मजा चखाता हूं और उसने धोबी को एक पत्थर उठा कर मार दिया। चोट लगने पर धोबी को भी गुस्सा आ गया और उसने साधु को पटक दिया। इसके बाद साधु और धोबी

गुत्थमगुत्था हो गए। तभी साधु को भगवान की याद आई और वह बोला, प्रभु, मैं इतनी श्रद्धा-भक्ति से आपकी आराधना करता हूं फिर भी आप मेरी मदद करने को नहीं आ रहे हैं। तभी साधु के कान में आवाज सुनाई पड़ी, तुम्हारी बात तो ठीक है। हम तो अपने भक्तों की मदद के लिए हमेशा उनके साथ रहते हैं लेकिन इस समय हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि तुम दोनों में मेरा भक्त कौन है, क्योंकि मेरा भक्त कभी क्रोध नहीं करता। यह सुनते ही साधु का अभिमान चकनाचूर हो गया और वह धोबी से क्षमायाचना करते हुए वहां से चला गया।

१०३९) शब्द और भावना- एक स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ किसी गांव से गुजर रहे थे। रास्ते में एक व्यक्ति स्वामी जी को देखते ही चिल्लाया, अरे तू कहां जा रहा है? महात्मा बन कर तो तू खूब हट्टा-कट्टा हो गया है। बातों ही बातों में उसने स्वामीजी को शिष्यों के साथ अपने घर चलकर भोजन करने का निमंत्रण दिया। आग्रह इतना प्रबल था कि स्वामी जी ठुकरा न सके। भोजन करने के दौरान वह व्यक्ति फिर महात्मा जी को बात-बात में गाली देता रहा। लौटते समय एक शिष्य ने पूछा, आप तो हमें असभ्य वाणी पर हमेशा टोकते रहते हैं पर उसे क्यों नहीं कुछ कहा? स्वामीजी बोले, तुमने उसके शब्द सुने, पर भावना नहीं देखी। वह मेरे बचपन का मित्र है। वह तब भी मुझसे ऐसे ही बात करता था और आज भी कर रहा है। ऐसी मिठास और आत्मीयता तो अत्यंत श्रद्धावान व्यक्तियों के व्यवहार में भी नहीं होती।

१०४०) एक ऋषि थे। आश्रम में अपने शिष्यों को वे आध्यात्मिक जीवन के बारे में बताया करते थे। वे लोगों का ध्यान प्रभु की ओर लगाया करते थे। जब लोग उनके आश्रम में आते, तो वे उन्हें अध्यात्म के रास्ते पर चलना सिखाते थे। अपने शिष्यों को रूहानियत के बारे में बताया करते थे। जब शिष्यों की शिक्षा पूरी हो जाती थी और वे अपने घरों को वापस जाने लगते थे, तो वे ऋषि से पूछते कि गुरु दक्षिणा में क्या दें? तो ऋषि कहा करते थे कि जो तुमने पाया है, तुम दुनिया में जाकर उस पर अमल करो, अपने पैरों पर खड़े होओ, सच्ची कमाई करो और फिर एक साल के बाद तुम्हारा जो दिल चाहे वह दे जाना। शिष्य जब आश्रम छोड़कर जाते थे, तो उनमें से कोई एक पेशे में जाता था, कोई दूसरे में। अपने पेशे, अपने कामकाज से जिसे जो कमाई होती थी, उसमें से वे शिष्य श्रद्धापूर्वक कुछ हिस्सा उन्हें दे दिया करते थे। एक बार गुरुकुल में एक सीधा-साधा शिष्य आया। वह गड़रिया था, भेड़ों को चराया करता था। लेकिन उसके अंदर प्रभु को पाने की तीव्र इच्छा थी। ऋषि उसे प्रेम से पढ़ाया करते थे। उसको जो भी सबक वे देते थे, उस पर पूरे मनोयोग से अमल करता था। अगले दिन आकर उन्हें वह पूरा सबक सुना देता था। जो कुछ उसे सिखाया जाता था, उस पर पूरे मनोयोग से अमल करता था। जब उसकी शिक्षा पूरी हुई तो उसने भी ऋषि से पूछा, गुरु दक्षिणा में क्या दूं? ऋषि ने उससे भी यही कहा कि दुनिया में जाओ, अपने पैरों पर खड़े होओ, जो तुमने सीखा है, उस पर अमल करो और फिर एक साल बाद जो चाहो, उसे दक्षिणा में दे जाना। गड़रिया चला गया। एक साल बाद गुरु के पास लौटा और श्रद्धा से बोला, दक्षिणा देने आया हूं। ऋषि उसे देखकर बड़े खुश हुए, क्योंकि वह उनको अच्छा लगता था, उसका ध्यान प्रभु में बहुत हुआ करता था। फिर पूछा, क्या लेकर आए हो बेटा?

गड़रिया ने पचास लोगों को खड़ा कर दिया, जो उसके गांव के थे। उसने कहा, मैं गुरु दक्षिणा में ये पचास नए शिष्य आपके लिए ले आया हूं। ऋषि ने पूछा, पचास लोग किसलिए? तो उसने कहा, जो शिक्षा आपने मुझे दी थी, मैंने उसे इन तक पहुंचाया। उतने से ही इनका जीवन संवर गया। अब आप गुरु दक्षिणा में इन सबको अपना शिष्य बना लें, ताकि इतने लोग और आपके बताए रास्ते पर सही तरीके से चल सकें। ऋषि बहुत खुश हुए और कहा, तुमने मुझे सबसे अच्छी गुरु दक्षिणा दी है। गड़रिया जानता था कि उसके गुरु दूसरों में क्या बांटना चाहते हैं। साधारण जन जब सत्संग में जाते हैं तो यह नहीं जानते कि वहाँ संत उन्हें क्या देना चाहते हैं। वे उनसे अपने मन की चीजें पाना चाहते हैं। दोनों में से किसी का मनोरथ पूरा नहीं होता।

१०४१) चार साधु और चोर- चार साधु थे। वे शहरके पास एक जंगलमें रहते थे और भगवान्‌का भजन-स्मरण करते थे। उन चारों साधुओंकी अपनी अलग-अलग एक निष्ठा थी। एक दिन वहाँके राजाने अपनी स्त्रीसे कहा कि हमें अपने लड़केको अच्छा सन्त बनाना है, फिर वह चाहे राज्य करे, चाहे साधु बन जाय। रानी बोली कि महाराज। जो सन्त बनना चाहता है, वही सन्त बन सकता है, दूसरेके बनानेसे कैसे बन जायगा ? आपका और मेरा उद्योग थोड़े ही काम करेगा ? राजाने कहा कि इसका एक उपाय है- सत्संग। सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई।। रानी बोली कि ऐसा कोई अच्छा सन्त है, जिसके पास लड़केको भेजें ? राजा बोला कि यहाँ पासमें ही जंगलमें चार अच्छे सन्त रहते हैं। उनके पास लड़केको भेज देते हैं। इस प्रकार राजा और रानी बातें कर रहे थे। रात्रिका समय था। दैवयोगसे एक चोर, जो चोरी करनेके उद्देश्यसे वहाँ आया था, छिपकर उनकी बातें सुन रहा था। उस चोरके मनमें आया कि चोरी करनेसे तो मैं फँस भी सकता हूं, पर साधु बन जाऊँ तो काम बन जायगा। राजकुँअर आयेगा और मेरा चेला बन जायगा, फिर चोरी करनेकी क्या जरूरत है ?

चोरने गेरुआ वस्त्र पहन लिये और जंगलमें चला गया। उसके मनमें आया कि कोई पूछेगा तो मैं क्या उपदेश दूँगा। ऐसा सोचकर वह चार सन्तोंमेंसे पहले सन्तके पास गया और पूछा कि महाराज। कल्याण कैसे हो ? सन्तने कहा- भाई, किसीका जी मत दुखाओ, किसीको दु:ख मत दो- दिल किसीका मत दु:खा, यह दिल खुदाका नूर है। चोर बोला- और महाराज। सन्त बोले- औरकी जरूरत नहीं, इस एक बातसे ही काम बन जायगा। चोर दूसरे सन्तके पास पहुँचा और बोला कि महाराज। मैं कल्याण चाहता हूँ, कोई उपाय बताओ। सन्त बोले- कभी किंचिन्मात्र भी झूठ नहीं बोलना, सदा सत्य ही बोलना, चाहे गला क्यों न कट जाय। जैसा देखा, जैसा सुना और जैसा समझा, ठीक वैसा-का-वैसा कह देना-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप।।

चोर बोला- और कोई बात ? सन्त बोले- औरकी जरूरत नहीं है। अब वह चोर तीसरे सन्तके पास गया और बोला कि महाराज। मेरा कल्याण कैसे हो ? सन्त बोले- सीधी-सादी बात है, रात-दिन राम-राम करो-

जुगति बताओ जालजी, राम मिलन की बात। मिल जासी ओ मालजी राम रटो दिन रात।।

चोर बोला- और कोई उपाय ? सन्त बोले- और उपायकी जरूरत नहीं है। अब वह चौथे सन्तके पास पहुँचा और बोला कि महाराज। कल्याण कैसे हो ? सन्त बोले- भाई। एक भगवान्‌के शरण हो जाओ। मनमें यह बात अटल रहे कि मैं तो केवल भगवान्‌का हूँ। जैसे विवाह होनेके बाद लड़कीके मनमें यह बात दृढ़ हो जाती है कि मैं कुँआरी नहीं हूँ, मेरा विवाह हो गया है, ऐसे ही मनमें यह बात दृढ़ हो जाय कि मैं भगवान्‌का हो गया, अब मैं और किसीका नहीं हो सकता- मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। चोर बोला- और कोई बात ? सन्त बोले- औरकी जरूरत ही नहीं, इतना ही काम है।

चोरने चारों सन्तोंसे चार बातें सीख लीं और आगे जाकर बैठ गया। अब राजा आया। वह क्रमश: चारों सन्तोंके पास गया। चारोंने एक-एक बात कह दी। राजने देखा कि आगे पाँचवाँ साधु भी बैठा है। राजा उसके पास भी गया और प्रार्थना की कि महाराज। कृपा करके कल्याणकी बात बतायें। वह साधुवेषधारी चोर चुपचाप ध्यानमें बैठा रहा, कुछ बोला नहीं। राजाने ज्यादा प्रार्थना की तो वह बोला- मैं जैसा बताऊँगा, वैसा करोगे ? राजाने कहा कि हाँ महाराज। वैसा ही करूँगा। वह बोला- किसीका जी मत दुखाओ। राजा बोला- और कोई बात ? वह बोला- सदा सत्य बोलो। राजा बोला- दूसरी कोई बात ? वह बोला- भगवान्‌के नामका जप करो। राजा बोला- और कुछ बताइये। वह बोला- भगवान्‌के शरण हो जाओ। राजा बोला- महाराज। और कोई बात ? वह बोला- सन्त जैसा कहे, वैसा कर दो। राजाने मनमें विचार किया कि यह सन्त ज्यादा ऊँचा है। अन्य सन्तोंने तो एक-एक बात कही, पर इन्होंने पाँच बातें कह दीं। राजा बड़े सरल स्वभावका था। उसको

मालूम नहीं था कि सन्तकी पहचान इस तरह नहीं होती। राजा लौटकर महलमें आ गया।

रात होनेपर वह चोर फिर छिपकर महलमें आया। जब राजा रानीके पास गया, तब वह चोर दरवाजेके पीछे छिपकर उनकी बातें सुनने लगा। रानीने पूछा कि क्या बात हुई ? राजाने कहा कि मैं जंगलमें सन्तोंके दर्शन करके आया हूँ। मैं तो चार ही सन्त समझता था, पर वहाँ पाँच सन्त बैठे थे। रानी बोली- वहाँ जाकर आपने क्या कहा ? राजा बोला- मैंने भगवत्प्राप्तिकी बात पूछी तो उनमेंसे एक सन्तने कहा कि किसीका जी मत दुखाओ, दूसरेने कहा कि सदा सत्य बोलो, तीसरेने कहा कि नामजप करो, चौथेने कहा कि भगवान्‌के शरण हो जाओ। परन्तु पाँचवें सन्तने उन चारों सन्तोंकी चार बातें भी बतायीं और साथमें पाँचवीं बात यह बतायी कि सन्तकी आज्ञाका पालन करो। राजा और रानी- दोनों सच्चे और सरल स्वभावके थे। उन्होंने विचार किया कि वह पाँचवाँ सन्त ठीक है, अपने लड़केको उसीके पास भेजो। उनकी बातोंका चोरपर बड़ा असर पड़ा कि अरे। मैंने तो नकली बात कही, उसपर भी राजाने श्रद्धा कर ली। अगर सच्ची बात कहूं तो कितनी मौज हो जाय। राजाके सद्भावके कारण चोरका हृदय बदल गया। वह सच्चा साधु हो गया और जंगलमें निकल गया। उसने विचार किया कि चार बातोंका तो मैं ठीक पालन करूँगा, पर पाँचवीं बातका पालन तब हो, जब कोई अच्छा और सच्चा सन्त मिले। कोई ऐसा भगवत्प्राप्त सन्त मिले, जिनकी आज्ञाका मैं पालन करूँ। वह सन्तको ढूँढ़नेमें लग गया।

पहले चोर होनेसे वह चालाक तो था ही, इसलिये हरेक साधुपर उसका विश्वास नहीं बैठता था। वह कई साधुओंके पास गया, पर किसीपर उसका विश्वास नहीं बैठा। अब अच्छे सन्तको पानेके लिये उसकी लगन लग गयी। उसके मनमें यह बात थी कि जिसमें मेरा चित्त खिंच जाय, मेरा विश्वास हो जाय, उसीको गुरु बनाऊँगा। भगवान्‌ने उसकी सच्ची लगन देखी तो वे सन्त बनकर उसके सामने आ गये। उनको देखते ही उसपर असर पड़ा और वह बोला कि महाराज। मैं आपके शरण हूँ, मेरेको दीक्षा दीजिये। आप जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा। सन्तरूपमें भगवान् बोला- जैसा मैं कहूंगा, वैसा करेगा क्या ? सच्ची बात कहता है न ? वह बोला- हाँ महाराज। बिलकुल सच्ची बात कहता हूँ। भगवान् बोले- तो फिर पहले एक काम करो, पीछे तुम्हें मन्त्र देंगे। तुम यह काम करो कि जो किसीका जी नहीं दुखाता, उसका सिर काटकर लाओ, और जो सत्य बोलता है, उसका सिर काटकर लाओ, और जो नामजप करता है, उसका सिर काटकर लाओ, और जो भगवानके शरण है, उसका सिर काटकर लाओ। ये चार सिर काटकर लाओ, तब तुम्हें दीक्षा देंगे। उसने सोचा कि ये चारों तो एक ही जगह बैठे हैं, काम आसानीसे बन जायगा। वह तलवार लेकर भागा-भागा गया, पर रास्तेमें ही विचार आया कि मैंने यह नियम लिया है कि किसीका जी नहीं दुखाऊँगा, पर जी दुखाना तो दूर रहा, मैं तो गला ही काटने जा रहा हूँ। उसको विचार हुआ कि यह काम मेरेसे नहीं होगा। उसमें सद्‌बुद्धि पैदा हो गयी। वह भागा-भागा पीछे आया। भगवान्‌ने पूछा- ले आया क्या? वह बोला- हाँ, ले आया हूँ। भगवान् बोले- कहाँ है ? वह बोला- मेरे एक सिरमें चारों बातें हैं। मैं कभी किसीका जी नहीं दुखाता, सदा सत्य बोलता हूँ, नाम-जप करता हूँ और भगवान्‌के शरण हूँ। ये चारों बातें मेरेमे हैं; अत: मैं अपना ही सिर काटकर आपको देता हूँ। भगवान्‌ने कहा- बस, अब सिर काटनेकी जरूरत नहीं, मैं तेरेको दीक्षा देता हूँ। भगवानने उसको दीक्षा दी और वह अच्छा सन्त बन गया।

इस प्रकार चालाकीसे पाँच बातें धारण करनेसे भी चोरको भगवान् मिल गये और वह सन्त बन गया। अगर कोई सच्चे हृदयसे पाँचों बातोंको धारण कर ले तो फिर कहना ही क्या है।

१०४२) शुक्रिया- एक साक्षात्कार के दौरान मदर टेरेसा से पूछा गया कि आपके बारे में धारणा है कि आप गरीबों की सहायता कर कोई समस्या हल नहीं कर रहीं बल्कि गरीबों को और बिगाड़ रही हैं।

मदर टेरेसा ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया- परमात्मा का लाख शुक्रिया, कोई तो है, जो गरीबों की सहायता कर उन्हें बिगाड़ रहा है, बाकी सब तो अमीरों को बिगाड़ रहे हैं।

१०४३) पनिहारिन- संत के पास एक युवक आया और बोला, मैं जीवन जीने की कला सीखना चाहता हूं। आप मुझे वह कला सिखाएं। संत युवक को कुएं के पास ले गए। उसे परिहारिनें दिखाईं, जो सिर पर पानी से भरे दो घड़े रखकर चलती है और साथ-साथ अन्य परिहारिनों से बातें करती रहती हैं।

सन्त ने युवक से प्रश्न किया ये परिहारिनें बातों में इतनी मस्त होकर चल रही हैं, फिर भी इनके सिर पर रखे घड़े गिरते क्यों नहीं ? युवक ने कहा- गुरुदेव, ये बातें करती हैं, पर इनका ध्यान निरन्तर अपने घड़ों पर है। घड़ों से एक पल भी इनका ध्यान हटता नहीं है। सन्त ने युवक को समझाया- यही है जीने की कला। तुम संसार के कर्म करते हुए भी अपना ध्यान लक्ष्य पर रखो।

१०४४) दर्पण की सीख- पुराने जमाने की बात है। एक गुरुकुल के आचार्य अपने शिष्य की सेवाभावना से बहुत प्रभावित हुआ। विद्या पूरी होने के बाद शिष्य को विदा करते समय उन्होंने आशीर्वाद के रूप में उसे एक ऐसा दिव्य दर्पण भेंट किया, जिसमें व्यक्ति के मन के भाव को दर्शाने की क्षमता थी। शिष्य उस दिव्य दर्पण को पाकर प्रसन्न हो उठा। उसने परीक्षा लेने की जल्दबाजी में दर्पण का मुंह सबसे पहले गुरुजी के सामने कर दिया। वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि गुरुजी के हृदय में मोह, अहंकार, क्रोध आदि दुर्गुण परिलक्षित हो रहे थे। इससे उसे बड़ा दुख हुआ। वह तो अपने गुरुजी को समस्त दुर्गुणों से रहित सत्पुरुष समझता था।

दर्पण लेकर वह गुरुकुल से रवाना हो गया। उसने अपने कई मित्रों तथा अन्य परिचितों के सामने दर्पण रखकर परीक्षा ली। सब के हृदय में कोई न कोई दुर्गुण अवश्य दिखाई दिया। और तो और अपने माता व पिता की भी वह दर्पण से परीक्षा करने से नहीं चूका। उनके हृदय में भी कोई न कोई दुर्गुण देखा तो वह हतप्रभ हो उठा। एक दिन वह दर्पण लेकर फिर गुरुकुल पहुंचा। उसने गुरुजी से विनम्रतापूर्वक कहा, गुरुदेव, मैंने आपके दिए दर्पण की मदद से देखा कि सबके दिलों में नाना प्रकार के दोष हैं। तब गुरुजी ने दर्पण का रूख शिष्य की ओर कर दिया। शिष्य दंग रह गया क्योंकि उसके मन के प्रत्येक कोने में राग, द्वेष, अहंकार, क्रोध जैसे दुर्गुण विद्यमान थे। गुरुजी बोले, वत्स यह दर्पण मैंने तुम्हें अपने दुर्गुण देखकर जीवन में सुधार लाने के लिए दिया था दूसरों के दुर्गुण देखने के लिए नहीं। जितना समय तुमने दूसरों के दुर्गुण देखने में लगाया उतना समय यदि तुमने स्वयं को सुधारने में लगाया होता तो अब तक तुम्हारा व्यक्तित्व बदल चुका होता। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि वह दूसरों के दुर्गुण जानने में ज्यादा रुचि रखता है। वह स्वयं को सुधारने के बारे में नहीं सोचता। इस दर्पण की यही सीख है जो तुम नहीं समझ सके।

१०४५) आस्था का सही अर्थ- गुरुजी प्रवचन कर रहे थे- ईश्वर में आस्था बनाये रखो। ईश्वर सबकी रक्षा करता है। चेला एकाग्रचित्त होकर एक-एक शब्द को हृदय में उतार रहा था। दूसरे दिन चेला जंगल से गुजर रहा था। सहसा एक आदमी सामने से दौड़ता हुआ आया। वह चिल्ला रहा था- बचो, बचो, पागल हाथी इधर ही आ रहा है।

चेले ने मन ही मन गुरुजी के शब्द दोहराये- ईश्वर सबकी रक्षा करता है। और चेला निर्भीक होकर चलता गया। थोड़ी देर बाद सामने से पागल हाथी चिंघाड़ता हुआ आया और चेले को धक्का देता हुआ भाग गया। चेला बाल-बाल बच गया और चोट खाकर आश्रम में पहुँचा। गुरुजी के समक्ष चेले ने शंका प्रकट की- मैंने ईश्वर में आस्था बनाये रखी, लेकिन ईश्वर ने मेरी रक्षा नहीं की।

गुरुजी ने कहा, ईश्वर में तुम्हारी आस्था का ध्यान रखकर ही एक रक्षक तुम्हें चेतावनी देने के लिए भेजा, लेकिन तुम नहीं चेते और बढ़ते चले गये। फिर भी पागल हाथी ने तुम्हें चोट पहुँचा कर ही छोड़ दिया अन्यथा वह तो तुम्हें कुचलता हुआ चला जाता। ईश्वर में आस्था रखो और उसके द्वारा दी गयी चेतावनी को समझने का प्रयास करो। वह सबकी रक्षा करता है।

१०४६) दिग्विजय का योद्धा- बेटा, बहुत देर हो गयी। स्नान करके जल्दी बाहर आओ। माँ, मगर ने पैर पकड़ रखा है, नदी से बाहर कैसे निकलूँ ? बेटा, भगवान से प्रार्थना करो, वही रक्षा करेगा। माँ, यदि तू मुझे संन्यासी बनने की अनुमति दे दे, तो भगवान् अवश्य मेरी रक्षा करेंगे। बेटा, जैसे भी तेरे प्राण बचें, मैं तैयार हूँ। और माँ की अनुमति मिलते ही बालक बाहर निकल आया।

यही बालक आगे चलकर जगद्गुरु शंकराचार्य के रूप में विख्यात हुआ। मगर वाली घटना में यह तथ्य निहित है कि बालक ने वात्सल्यमयी माँ से किस प्रकार अपने जीवन-लक्ष्य की साधना हेतु अनुमति प्राप्त करने में कुशलता एवं सूझबूझ का परिचय दिया। हाँ, संन्यास ग्रहण करने से पूर्व ममतामयी माँ ने बालक से यह वचन ले लिया था कि माँ का अंतिम संस्कार करने वह जहाँ भी होगा, सूचना मिलने पर अवश्य आयेगा।

१०४७) धैर्य से ही जीवन में सुख आता है- एक बार किसी ने प्रश्न किया, महाराज जी, मुझे इतने बरस हो गए, नियमित मंदिर आता हूं, आपकी कृपा से सत्संग भी हो जाता है, अच्छा भी लगता है, पर जिस वस्तु की तलाश में हम हैं वह तो कहीं दिख नहीं रही। दुख अभी भी घर में डेरा जमाए बैठे हैं, जबकि आप कहते थे कि भगवान पर सब छोड़ दो, वे सब संभालेंगे, पर बात बनती कुछ नजर नहीं आती। मैंने उसे बिठाया और कहा कि पंजाब में एक बात अक्सर बोलते हैं- ठंड रख ठंड। उन्होंने उत्तर दिया कि अभी तक वही तो रख रहे थे महाराज।

एक बार की बात है। बंदरों की सभा हो रही थी। विषय था भोजन। हर कोई अपनी आपबीती सुना रहा था कि कैसे जब वह बगीचे में फल तोड़ने गया तो डंडे पड़ने लगे, कैसे किसी घर से एक सब्जी का टुकड़ा उठाया तो डंडे पड़े, किसी ने पत्थर फेंक कर मारा इत्यादि। अंत में यह फैसला हुआ कि सब मिलकर अपना ही एक बगीचा लगा लेंगे। सबने मिलकर जगह भी निर्धारित कर ली। हर एक को किसी न किसी प्रकार की कलम, बीज, बेल इत्यादि लाने की जिम्मेदारी सौंप दी गई।

जब सब इकट्ठे हुए तो कोई लीची की कलम लाया तो कोई किसी फल की गुठली। सब मिलकर जंगल से बहुत दूर एक स्वच्छ स्थान पर गए। उन्होंने हाथों से खुदाई की व अपनी कलम या बीज या गुठली, जो भी था सब बो दिया। इतने श्रम के उपरान्त सब थक गए और अलग-अलग पेड़ की डालियों पर जाकर सो गए। करीब दो घंटे बाद उनमें से एक बंदर की नींद खुली। उसने अपने साथी को उठाया और कहने लगा, भाई काफी समय हो गया लीची लगाए। कोई उससे फल तोड़ के न ले गया हो। दूसरे साथी ने कहा, हां मुझे अपने आमों की चिन्ता हो रही है। इतनी देर में तो वे पक भी गए होंगे। दोनों ने वहां जाकर देखा, तो मैदान समतल। दोनों रोने लगे, अरे कोई हमारा पेड़ उखाड़ ले गया।

उनकी चीख-पुकार सुनकर बाकी बंदर भी आ पहुंचे। सभी रोने लगे। उनमें से एक कुछ ज्यादा समझदार था, बोला- रो क्यों रहे हो ? हो सकता है पेड़ अभी अंदर ही हो। सबने वापस खोदना शुरू कर दिया। सबने अपने द्वारा बोए गए बीज निकाल कर देखे। अभी कुछ नहीं हुआ था। अब उन्हें कौन समझाए कि बीज बोने के उपरान्त जल देना होता है, फिर बीज अंकुरित होगा, पौधा लगेगा, बढ़ेगा, फिर कच्चे आम आएंगे, अंत में पके आम।

इन सब में सबसे बड़ी कमी थी धैर्य की। व्यावहारिक जीवन में जितने धैर्य की आवश्यकता है, आध्यात्मिक में भी उतनी ही है। धैर्य धरने से ही भगवान सुलभ होते हैं। इसीलिए कहावत बनी है, सब्र का फल मीठा होता है। अगर शबरी

धैर्य न धरती तो क्या भगवान राम आते उसके यहाँ ? शबरी छोटी सी थी जब ऋषि ने उससे कहा था कि भगवान आएंगे तेरे यहां। वृद्ध हो गई पर गुरु की बात पर विश्वास था और धैर्य था। अंतत: भगवान आए उसके द्वार।

१०४८) बहुमूल्य रत्न- एक साधु ने एक नरेश का कोषगार देखने की इच्छा व्यक्त की। श्रद्धालु नरेश साधु को लेकर कोषागार में पहुंचे। साधु ने देखा कि कोषागार हीरे, मोती, पन्ना, माणिक आदि अनेकानेक बहुमूल्य रत्नों तथा मुद्राओं से परिपूर्ण है। साधु ने पूछा- महाराज। इन पत्थरों से आपको कितनी आय होती है ? महात्मन्। इनसे आय नही होती। उलटे इनको सुरक्षित रखने के लिए बराबर व्यय करते रहना पड़ता है। वह कैसे ? क्योंकि ये बहुमूल्य रत्न हैं, अत: इनकी सुरक्षा के लिए पहरेदार रखने पड़ते हैं। साधु ने नरेश से कहा- तनिक आप मेरे साथ चलिये। मैं आपको इनसे बहुत बड़े, भारी और बहुमूल्य पत्थर दिखलाता हूँ, नरेश जाने को उद्यत हुए। साधु उनको एक झोंपड़ी के द्वार पर ले गये। उस झोंपडी में एक विधवा रहती थी। उसके घर में एक गेहूं पीसने की चक्की थी। वह दूसरे लोगों का अन्न पीस-पीस कर अपना पेट पालती थी। साधु महाराज ने चक्की के पाटों की ओर संकेत करके कहा- राजन्। तुम्हारे उन उपयोगहीन पत्थरों से तो ये दो पत्थर बहुमूल्य है। क्योंकि इस विधवा के लिए ये जीविता के आधार है, ये बहुमूल्य है। राजा ने मस्तक झुका लिया। वस्तु का उपयोग उसके सौन्दर्य एवं संग्रह में नही, उसकी उपयोगिता में है। साधु महाराज का तो यही अभिप्राय था, किन्तु राजा की समझ में यह बात आई अथवा कि नही कह पाना कठिन है।

१०४९) एक ऋषि भोजन करने बैठे थे कि एक याचक ने आकर भोजन की मांग की। खाना पर्याप्त न होने के कारण ऋषि ने साफ मना कर दिया। याचक बोला, भोजन न कराएं, आहार न सही, ज्ञान ही सही, उसकी तो आपके पास कोई कमी नहीं है। कृपया भोजन ग्रहण करने के साथ-साथ मेरी कुछ जिज्ञासाओं का समाधान करते चले, तो मुझ अकिंचन पर कृपा होगी।

पर यह तो बताएं कि आप किस देवता की उपासना करते हैं ? ऋषि बोले, मैं प्राण की उपासना करता हूं। याचक ने पूछा, यह प्राण क्या है और आप उसकी कैसे उपासना करते हैं ? ऋषि बोले, प्राण तो सर्वव्यापक है। वह सब में विराजमान है। वह एक ही सबमें प्रतिभाषित होता हैं। हम इसी इष्टदेव के लिए सब कुछ करते हैं।

याचक बोला, आपके कथनानुसार तो आपका इष्टदेव मेरे अंदर भी विद्यमान है और वही आज आपके समक्ष याचक बनकर खड़ा है। फिर आप अपने उपास्य की अवमानना क्यों कर रहे हैं ? ऋषि का ग्रास हाथों में ही रुक गया, वे गंभीर चिंतन में डूब गए। ऋषि को अपनी भूल का अहसास हुआ। वे बोले, आओ, हम मिलकर भोजन करें। तुम्हीं मेरे इष्टदेव हो। <u>विचार और आचरण में एकता न हो, तो ज्ञान पाखण्ड हो जाता है</u>।

१०५०) मृत्यु से साक्षात्कार - तीन व्यक्ति किसी जंगल से गुजर रहे थे। तभी उन्हें एक महात्मा मिले। वे तीनों उनके पास गए और उन्हें प्रणाम कर कहा, हम लोग जीवन में ही मृत्यु का साक्षात्कार करना चाहते हैं। कोई रास्ता दिखाइए। महात्मा ने सामने खड़े पहाड़ की एक गुफा की ओर इशारा करते हुए कहा, तुम लोग उस गुफा में जाओ। वहां तुम्हारा मृत्यु से साक्षात्कार हो जाएगा।

तीनों चलकर तेजी से गुफा में पहुंचे। अंदर झांका तो देखा वहां सोने का ढेर रखा था। उन्होंने कुछ देर विचार-विमर्श करने के बाद सोना घर ले जाने का निश्चय किया। एक ने कहा, तुम दोनों पास के गांव से रोटी और पानी ले आओ। मैं सोने की रखवाली करता हूं। दो साथी चले गए। थोड़ी देर में एक साथी भोजन लेकर लौटा। उसने जैसे ही गुफा में प्रवेश किया वहां सोने की रखवाली के लिए मौजूद साथी ने तलवार से उसकी हत्या कर दी। एक और साथी जब थोड़ी देर बाद पानी लेकर

घुसा तो उसने उसे भी मौत के घाट उतार दिया। उसने उनका लाया भोजन खाकर सोना अकेले ले जाने का निर्णय किया। लेकिन रोटी खाते ही उसे चक्कर आ गया और वह चल बसा। रोटी लाने वाले उसके साथी ने उसमें जहर मिला दिया था।

१०५१) एक राजा हर समय विद्वानों और महात्माओं से घिरे धर्म चर्चा में लगे रहते थे। वह अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए उनसे प्रश्न पूछते, बहस करते। कोई विद्वान कर्मकांड को ही धर्म बताता तो कोई व्रत-उपवास को। कोई पुराणों की कथा सुनाकर राजा को संतुष्ट करने का प्रयास करता तो कोई किसी और तरीके से। पर राजा की जिज्ञासा शांत न होती थी। एक दिन राजा को सूचना मिली कि बाबा कर्णवास आए हैं। राजा उनके पास पहुंचे। राजा ने कहा, बाबा मैं विद्वानों और संतों से घिरा हुआ हर समय धर्म की चर्चा में लीन रहता हूं फिर भी मन अशांत रहता है।

बाबा ने कहा, परोपकार और गरीबों की सेवा ही धर्म है। उसी में मन लगाओ। तभी सच्ची संतुष्टि मिलेगी। सिर्फ धर्म चर्चा करने से कुछ नहीं होगा।

१०५२) बीमार- एक महान संत किसी गांव में पहुंचे। उनके बारे में यह धारणा प्रचलित थी कि वे जिसे भी सच्चे मन से अपना आशीर्वाद दे दें उसके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। सभी लोग दर्शन करने आते तो अपने घर उन्हें ले जाने का निवेदन करते। एक व्यक्ति सबसे पीछे रहता लेकिन फिर चुपचाप चला जाता। लोगों ने संत को बताया कि वह बहुत बुरा व्यक्ति है इसलिए भूलकर भी वे उसके घर कभी न जायें। दूसरे दिन सभी लोग हैरान रह गये जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वे महान संत उसी व्यक्ति के घर जाने की तैयारी कर रहे हैं। सभी संत के पास पहुंचे व इसका कारण जानना चाहा। संत बोले, मुझे यह बताइये कि डाक्टर किसके घर जाता है ? सभी बोले, बीमार के घर। संत मुस्कुराये और बोले कि वह भी हमारी नजर में बीमार ही है और संतों का कार्य ही ऐसे व्यक्ति को ठीक करना होता है। इसलिए तुम सभी से कहीं अधिक उसे मेरी आवश्यकता है। <u>जो दूसरों में बुराई देखता व ढूंढता रहता है उससे बुरा कोई दूसरा हो ही नहीं सकता</u>।

१०५३) शुभारंभ- एक मनुष्य ने किसी महात्मा से पूछा, महात्मन्। मेरी जीभ भी तो भगवान का नाम जपती है, पर मन उस ओर नहीं लगता। महात्मा बोले- भाई। कम से कम भगवान की दी हुई एक विभूति तो तुम्हारे वश में है। इसी पर प्रसन्नता मनाओ। जब एक अंग ने उत्तम मार्ग पकड़ा है तो एक दिन मन भी निश्चित रूप से ठीक रास्ते पर आएगा। शुभारम्भ छोटा हो तो भी धीरे-धीरे मन सत्यपथ पर चलने को राजी हो जाता है।

१०५४) एक भक्त थे, उनके पास धन-घर आदि कुछ भी न था। एकदिन उन्होंने एक टोकरी बहुत अच्छे पके आम देखे। श्रीठाकुरजीके योग्य समझकर उन्होंने उसे एक रुपयेमें खरीद लिया और भोग लग जानेके बाद रुपया देनेका वायदा किया। नदीके जलमें धोकर आम श्रीठाकुर को अर्पण कर दिये। इतनेमें फल वाले ने आकर कहा कि लाओ, रुपया दो। ये उसी क्षण रुपया न दे सके अत: वह आमके फलोंकी टोकरी उठा ले गया और दूसरे किसी भक्त-साहूकारको बेच दिया। उसने जब भोग लगाया तो आमों के भोगको स्वीकार न करके श्रीठाकुरजी बोले- ये आम मेरे खाये हुए हैं। अमुक भक्तने भोग लगाया था उसे मैंने स्वीकार किया। उस भक्त की महिमा जानकर साहूकारने ढूंढकर उसका दर्शन और सत्संग किया।

१०५५) एक वैश्य- एक सड़क पर बैठे एक वैश्य सज्जन रो कर कह रहे थे कि अब मैं घरवालोंका मुख न देखूंगा, तभी एक सन्त वहाँ होकर निकले। रोतेको दु:खी जानकर दया आई। सन्तने समीप जाकर पूछा- आपको क्या कष्ट है बताओ मैं उसे दूर करने का यथा-सम्भव प्रयत्न करूँगा। आप रोइये मत। वैश्यने कहा- हमारी स्त्री और पुत्रोंने हमको मार-पीटकर घरसे निकाल दिया है। मैंने बड़े परिश्रमसे उनके लिए हवेली बनवाई, बहुत-सा सोना-चांदी आदिका खूब संग्रह कर दिया। वे सर्वस्वके ऊपर अपना अधिकार करके अब बुढ़ापे में मुझे घरसे निकाल रहे हैं। सन्तने कहा- तुम मेरे साथ चलो और मेरे

आश्रम में रहना। तुमको कोई कष्ट नहीं होगा, आरामसे भोजन-भजन करना, और कोई काम तुमको नहीं करना पड़ेगा। वैश्यने कहा- आप चुप रहो, अपना रास्ता पकड़ो। हमारा घर, हमारी स्त्री हमारा पुत्र है। अपनेके द्वारा अपमानित होकर भी उसे छोड़ा नहीं जाता है। उन्होंने मारा-पीटा जो भी कुछ किया, वह सहने योग्य है क्योंकि वे अपने हैं। मैं तो ऊपर मनसे रो-रोकर कुछ कह रहा था। यह सुनकर सन्तने मायादेवीको धन्यवाद दिया और चले ये। श्रीकरमैतीजीको मालूम पड़ गया था, कि ससुराल वाले भक्त-भगवानको नहीं मानते वे वैष्णवों-सन्तोंके विरोधी हैं। वहाँ प्यारे श्यामसुन्दरी सेवाका अवसर नहीं मिलेगा। मन और तनको विषयोंमें ही लगाना पड़ेगा। यह सोचकर वे अधीर हो उठीं, भगवत्स्मरणकर रोने और प्रार्थना करने लगीं- प्रभो। इस विपत्तिसे आप ही बचाओ, अपनी दासीको विषय और विषयी लोगोंकी दासी न बनाओ। किसी प्रकार ब्रजधाममें पहुंचा दो। अकस्मात इनके मनमें स्फुरणा हुई और इन्होंने निश्चय किया कि सब कुछ त्यागकर चल देना है। आगे रक्षा करना प्रभुका काम है।

१०५६) शिष्यों की शिक्षा पूरी हुई तो उन्हें आशीर्वाद देते हुए गुरु बोले, शिक्षा के साथ तुम्हें जो सिद्धियां दी हैं उनसे शुभ-अशुभ दोनों किया जा सकता है। इसलिए जीवन क्षेत्र में उनका उपयोग धर्मानुसार करना। उनमें से एक शिष्य ने सोचा, गुरुदेव ने जो कहा है उसका एक बार परीक्षण करके भी देख लिया जाए। कहीं हमें मूर्ख तो नहीं बनाया। उसने मंत्र पढ़ा तो उसके प्रभाव से एक मित्र धनवान बन गया। वह बड़ा खुश हुआ। फिर उसने सिद्धि का प्रयोग अपने एक शत्रु पर किया और उसे गरीब बना दिया। इससे शिष्य का अहंकार चरम पर जा पहुँचा। उसने तपस्या कर कुछ और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और एक दिन आश्रम जाकर गुरु से बोला, मैंने आपकी दी हुई सिद्धियों से आगे की भी सिद्धियाँ पा ली हैं। अब मैं हवा में उड़ सकता हूं और पानी पर चल सकता हूं।

गुरु ने उसे समझाया, हर मनुष्य को सदा अपनी सीमा में ही रहना चाहिए, क्योंकि सीता को भी सीमा रेखा का उल्लंघन करने के कारण ही कष्ट भोगना पड़ा था।

१०५७) एक संत के पास एक आदमी आया और बोला, मेरा मन इस संसार में नहीं लगता। मैं जल्दी ही दुनिया के सारे ऐशोआराम छोड़ दूंगा। संत ने कहा, तुमने ठीक सोचा है। कुछ दिनों बाद फिर वही शख्स आया और कहने लगा, मैं फकीरी पोशाक बनवा रहा हूं। पोशाक तैयार होते ही मैं फकीर हो जाऊंगा। इस पर संत जोर से हंसे और बोले, भाई सरोसामान छोड़ने के लिए ही कोई दरवेश होता है और तू उसी को जुटाने के लिए परेशान है। अपनी दुनिया में लौट जा। तू अभी फकीरी के काबिल नहीं है।

१०५८) सेवाधर्म महान- एक बार एक महात्मा को शास्त्रार्थ हेतु सभा में आमंत्रित किया गया। वे मंच पर पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति के हाथ में दर्द है और वह कराह रहा है। महात्माजी तुरंत उस पीड़ित व्यक्ति के पास गए और उसके कष्टों का निवारण करने का प्रयास करने लगे। उन्हें ऐसा करते देख आलोचकों ने कहना प्रारंभ किया- महात्माजी, आप तो यहां शास्त्रार्थ करने के लिए आए थे। उससे हटकर सेवा करने लग गए। लगता है आप शास्त्रार्थ से घबरा रहे हैं ? महात्माजी ने बहुत ही सौम्य एवं शांत स्वर में कहा- मित्रों, क्या आप लोगों में से कोई ऐसा है जिसका एक ही बेटा हो और वह कुएं में गिर जाए तब भी आप विचलित नहीं होंगे। आलोचक वर्ग शांत हो गया। महात्माजी ने ज्ञान देते हुए कहा- शास्त्रार्थ तो हर कोई कर लेगा लेकिन पीड़ितों की सेवा नहीं। मेरा कर्म ही पीड़ितों की सेवा करना है।

१०५९) अकर्मण्यता- पिता अपने पुत्र को गुरुकुल में लाया और गुरूजी से अनुनय-विनय करने लगा कि इसे भी अपना शिष्य बनाकर इसका जन्म सुधार दीजिए। गुरुजीने उसका आग्रह मान लिया और वह निश्चिन्त होकर घर वापस आ

गया। थोड़ी देर बाद गुरुजी को ख्याल आया कि नये शिष्य की क्यों न परीक्षा ही ले ली जाए। उन्होंने इस नये शिष्य को एक खाली बाल्टी दी और उसे कहा कि पनघट पर जाकर स्नान कर आये। वह स्नान करने चला गया। गुरुजी उसकी प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद वह स्नान करके वापस लौट आया और उसने खाली बाल्टी गुरु जी को थमा दी। गुरुजी अपने नये शिष्य की अकर्मण्यता देखकर उसके भविष्य की चिन्ता में डूब गए क्योंकि वह तो पहली ही परीक्षा में बुरी तरह चौपट हो गया था।

१०६०) यूं खोली आंखें- एक महात्मा जी एक बार चोरों के गांव गये। वहां के लोगों से कहा कि आप चोरी करना छोड़ दें। उन्होंने जवाब दिया कि यह नहीं हो सकता। महात्मा ने कहा, अच्छा चोरी करो लेकिन सूची बनाते जाओ कि इतनी बार चोरी की है। उन्होंने मंजूर कर लिया। अब जब सूची बनती गई तो शर्म आने लगी। कहने लगे कि अब न चोरी करेंगे और न सूची बनेगी। धीरे-धीरे सब ने चोरी छोड़ दी और महात्मा बन गये।

१०६१) जीवन का रखवाला- एक बार एक संन्यासी शहर के बाहर किसी वृक्ष के नीचे बैठा था। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ लग गई। लोग संन्यासी की बातों को ध्यान से सुनने लगे। संन्यासी उन्हें किस्से सुना रहा था और जीवन के गूढ़ रहस्यों से परिचित करा रहा था। लोग उसमें डूबे थे। राजा को जब चला तो वह भी संन्यासी के दर्शन के लिए पहुंचा। संन्यासी के सामने पहुंच कर वह अकड़ से बोला, मैं इस राज्य का शासक हूं, प्रजा का प्रतिपालक। इस राज्य के समस्त प्राणी मेरी कृपा पर जीवित हैं। यह सुनकर संन्यासी ने कोई जवाब नहीं दिया। संन्यासी की चुप्पी राजा को अच्छी नहीं लग रही थी। वह उसके मुंह से अपनी प्रशंसा सुनना चाहता था। संन्यासी ने राजा की मनोदशा भांप ली। उसने कुछ देर बाद पूछा, राजन, आपके राज्य में कितने कौवे और कीट-पतंगे हैं ? राजा को यह प्रश्न बड़ा अटपटा लगा। उसने कहा, महात्मा जी, यह कैसे बताया जा सकता है ? संन्यासी ने कहा, अभी-अभी आपने कहा था कि राज्य के समस्त प्राणी आपकी कृपा पर जीवित हैं। जब आपको यही नहीं पता है कि आपके राज्य में कितने प्राणी हैं तो आप कैसे कह सकते हैं कि सब आपकी कृपा पर जीवित हैं। आप इस भ्रम में न रहें कि आप ही सबका भरण-पोषण करते हैं। देनेवाला तो ईश्वर है। वही हमारे लिए सारी व्यवस्था करता है।

यह सुनकर राजा तिलमिला गया। उसने तत्काल एक कीड़े को एक डिबिया में बंद किया और कहा, देखता हूं इसे कौन जीवित रखता है। दूसरे दिन राजा ने संन्यासी के सामने वह डिबिया खोली। सब लोग यह देखने को उत्सुक थे कि आखिर उस कीड़े का क्या हुआ। डिबिया खोलते ही लोगों ने देखा कि वह कीड़ा चावल का एक टुकड़ा खा रहा था। असल में डिबिया बंद करते समय राजा के माथे पर लगे तिलक से चावल का एक टुकड़ा अंदर गिर गया था। राजा ने कीड़े को देखा तो लज्जित हो गया। उसने संन्यासी के चरणों में झुककर क्षमायाचना की।

१०६२) शिष्य ने अपने गुरु से पूछा- गुरुदेव, आखिर क्यों हर आत्मा को मुक्ति से पहले तरह-तरह की परेशानियों से गुजरना पड़ता है ? गुरु ने उत्तर दिया, वत्स, आत्माएं नमक की पोटलियों के समान हैं और परमात्मा समुद्र के समान। मुख्य रूप से आत्माएं तीन प्रकार की होती हैं- पथरीली नमक की पोटलियां, सख्त नमक की पोटलियां और नरम नमक की पोटलियां। जब इन तीनों प्रकार की पोटलियां परमात्मा रूपी समुद्र में डुबकी लगाती हैं तो नरम पोटलियां तत्काल समुद्र से एकाकार हो जाती हैं, सख्त पोटलियों को थोड़ा समय लगता है, जबकि पथरीले नमक की पोटलियां पूरी तरह डुबकी लगाने के बाद ही एकाकार हो पाती हैं। इसलिए मोक्ष चाहनेवाले हर मनुष्य को विनम्र एवं अहंकार रहित हो जाना चाहिए ताकि उनकी आत्मा की मुक्ति सरलता से हो सके।

१०६३) एक महात्मा थे। वह धर्म संबंधी व्याख्यान देने एक नगर में गए। वहां पहले ही घोषणा कर दी गई थी कि अमुक दिन उनका प्रवचन होगा। नियत तिथि को भीड़ जमा हुई पर महात्मा जी ने घोषणा की कि प्रवचन कल होगा। अगले

दिन भी लोग जमा हुए पर तारीख एक दिन और बढ़ा दी गई। अगले दिन लोग जमा तो हुए पर उनकी संख्या कम हो गई थी। फिर कार्यक्रम एक दिन आगे बढ़ा दिया गया। दूसरे दिन बहुत ही कम लोग इकट्ठा हुए। उस दिन महात्मा जी आए और बोले, भाइयों अब ठीक है। काफी छंटनी हो गई है। अब यहां वही श्रोता उपस्थित हैं जिनकी वास्तव में धर्म में रुचि है।

१०६४) सृष्टि का रहस्य- एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा, गुरुदेव, आप सदैव कहते रहते हैं कि हमें एक क्षण के लिए भी प्रभु की ओर से ध्यान नहीं हटाना चाहिए। हमेशा नाम रूपी डोर को पकड़कर रखना चाहिए। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि हमारा मन एक क्षण के लिए भी प्रभु की ओर से हट न पाए। कभी हमारा ध्यान चूक भी जाए तो क्या फर्क पड़ता है ? जिसे मोक्ष मिलना है उसे किसी भी समय मिल सकता है। गुरु बोले, वत्स, मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं। बहुत पुरानी बात है। किसी राज्य का राजा बेहद अत्याचारी था। वह किसी से मामूली बात पर भी रुष्ठ होता तो उसे गिरफ्तार कर लेता था। वह उन्हें अंधा करके चौरासी कोस के ऐसे जंगल में छोड़ देता था जिसके चारों ओर एक ऊंची और मजबूत गोलाकार दीवार बनी थी। लेकिन इस दीवार में थोड़ी जगह छोड़ दी गई थी। हालांकि किसी को भी इसके बारे में पता नहीं था। अधिकतर लोग उस चौरासी कोस के जंगल में पेड़ों के पत्ते खाकर या पत्थरों से सिर टकराकर मर जाते थे। उन्हीं में एक ऐसा आदमी भी था जो सदैव अपने गुरु के नाम का स्मरण करता रहता था। उसे विश्वास था कि जब प्रभु ने ही सारी मायावी रचनाएं की हैं तो उस माया से निकलने का कोई मार्ग भी उसने बनाया होगा। वह रोज दीवार के सहारे गोल-गोल घूमा करता था। उसने दूसरों को भी ऐसा करने को कहा, पर अक्सर उसके साथ घूमने वाले कैदी बातचीत में रह जाते थे, मगर अपने गुरु का वह सच्चा शिष्य नहीं चूका। उसने स्पर्श करके वह जगह खोज ली और बाहर निकल आया। वत्स, इसी तरह यह सृष्टि भी चौरासी लाख योनियों का जंगल है जिसमें विधाता ने हमें रख दिया है। कुछ लोग इसमें गोल-गोल चक्कर काटकर रह जाते हैं, लेकिन जो प्रभु नाम रूपी दीवार को पकड़े रहते हैं वह इससे बाहर निकल ही आते हैं। जिससे चूक होगी वह भटकता रह जाएगा।

गुरु अपने शिष्य से बोले, वत्स, जब पनिहारिन अपने सिर पर पानी से भरा मटका रखकर घर की ओर जा रही होती है तो अक्सर उसकी सखी-सहेलियां भी साथ होती है। वह उनसे दुनिया-जहान की बातें करती हुई चलती है। रास्ते में परिचित और रिश्तेदार भी मिलते हैं पर उसका ध्यान मटके से नहीं हटता, क्योंकि वह जानती है कि अगर एक क्षण के लिए भी उसका ध्यान हटा तो मटका फूट जाएगा और उसे फिर से पानी भरना होगा। ऊपर से नुकसान भी होगा। इसी तरह साधक को भी अपना ध्यान एक क्षण के लिए भी प्रभु से नहीं हटाना चाहिए। ईश्वर को अपने सिर के ऊपर बिठाकर रखना चाहिए, ताकि ध्यान ऊपर ही रहे।

१०६५) संत की परीक्षा - एक संत का संपूर्ण जीवन परमात्मा के चरणों में समर्पित था। उनका विचार था कि ईश्वर के निरंतर चिंतन से जीवन अमृतमय हो उठता है। संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर है क्षणभंगुर है। इनसे अनुरक्ति हमें कष्ट पहुँचाएगी। एक दिन संत एकांत में बैठकर साधना कर रहे थे कि उनके एक मित्र आए। मित्र उस दिन सोचकर आए थे कि वह संत की परीक्षा लेंगे। उन्होंने कुछ इस तरह की भाव-भंगिमा बनाई जैसे किसी बात को लेकर बहुत चिंताग्रस्त हों। यह देखकर संत ने पूछा, आप बहुत चिंतित दिखाई दे रहे हैं। आखिर बात क्या है? मित्र बोले, कुछ मत पूछो। हम लोगों के भाग्य में ऐसा बुरा दिन देखना लिखा था। क्या आप नहीं जानते कि आज रात को ही संपूर्ण संसार काल के गाल में समा जाएगा। प्रलय उपस्थित है। मित्र की बात सुनते ही संत आनंद से झूम उठे। उन्होंने हंस कर कहा, मित्र यह तो आपने बहुत अच्छी बात बताई। इससे बढ़कर दूसरा सुखद समाचार और हो ही क्या सकता है। इस जीवन के विषय में कुछ भी तय करनेवाले हम तो हैं ही नहीं। इसका रहना या नष्ट होना तो अदृश्य शक्ति के हाथ में है। फिर हम क्यों इसे लेकर चिंतित

हों। मनुष्य इसलिए इतने कष्ट झेलता है क्योंकि वह अपने को ही नियंता मान बैठता है जबकि नियंता तो कोई और है। इसलिए जब तक जीवन है तब तक हम प्रसन्न होकर जीएं और सत्कर्म से दूसरों के जीवन को भी सुखी बनाने का प्रयास करें। संत का मित्र अवाक उन्हें देखता रहा।

१०६६) संकल्प की शक्ति - एक संन्यासी जीवन के रहस्यों को खोजने के लिए कई दिनों तक तपस्या और कठोर साधना में लगे रहे, पर आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। थक हारकर उन्होंने तपस्या छोड़कर घर लौटने का निश्चय किया। दुख और पराजय की भावना ने उन्हें अंदर से तोड़ दिया था। वह लड़खड़ाते कदमों से वापस आ रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। पानी पीने के लिए वह एक नदी के किनारे गए। सामने उन्हें एक अजीब नजारा दिखाई दिया। एक नन्ही गिलहरी नदी के जल में अपनी पूंछ भिगोकर पानी बाहर छिड़क रही थी। गिलहरी बिना थके अविचल भाव से इस कार्य को करती जा रही थी। संन्यासी को उत्सुकता हुई। उन्होंने गिलहरी से पूछा, प्यारी गिलहरी, तुम यह क्या कर रही हो?

गिलहरी ने विनम्रता से उत्तर दिया, इस नदी ने मेरे बच्चों को बहाकर मार डाला। मैं उसी का बदला ले रही हूं। मैं नदी को सुखाकर ही छोडूंगी। संन्यासी ने कहा, तुम्हारी छोटी सी पूंछ में भला कितनी बूंदें आती होंगी। तुम्हारे इतने छोटे बदन, थोड़े से बल और सीमित साधनों से यह नदी कैसे सूख सकेगी? इतना बड़ा काम असंभव है। तुम इसे कभी खाली नहीं कर सकती। गिलहरी बोली, यह नदी कब खाली होगी, यह मैं नहीं जानती। लेकिन मैं अपने काम में निरंतर लगी रहूंगी। मैं श्रम करने और कठिनाइयों से टकराने के लिए तैयार हूं फिर मुझे सफलता क्यों नहीं मिलेगी?

संन्यासी सोचने लगा कि जब यह नन्ही गिलहरी अपने थोड़े से साधनों से इतना बड़ा कार्य करने का स्वप्न देखती है, तब भला मैं उच्च मस्तिष्क और मजबूत बदन वाला विकसित मनुष्य अपनी मंजिल को क्यों नहीं पा सकता। ठीक ही कहा जाता है कि कठिनाइयों से लड़ने के संकल्प से ही मनुष्य में शक्ति का संचार होता है जिसके बूते वह सफलता हासिल करता है। मुसीबतों से लोहा लेकर ही मनुष्य का चरित्र चमकता है और उसमें देवत्व का विकास होता है। यह सोचकर वह फिर साधना के लिए लौट पड़े।

१०६७) दान का मर्म - एक संत थे। अपना निर्वाह टोपियाँ सीकर और बेचकर ही करते थे। नित्य के व्यय के पश्चात एकाध पैसे की बचत भी हो जाती थी, जिसे वे दान कर देते थे। उसी नगर के एक प्रतिष्ठित सेठजी को भी दान देने की प्रेरणा हुई। उन्होंने भी उस दिन से धर्मखाते में एक निश्चित मात्रा में धन जमा करना प्रारंभ कर दिया। जब राशि पाँच सौ रुपए हो गई, तब वे उसे लेकर संत के पास पहुंचे और पूछने लगे कि क्या करूँ? संत ने सहज भाव से कहा, जिसे तुम दीन-हीन समझते हो उसे दान कर दो। सेठजी गए। उन्होंने देखा कि दुबला-पतला, भूख से पीड़ित अंधा मनुष्य जा रहा है। उन्होने उसे सौ रुपए देकर कहा, सूरदासजी। आप इन रुपयों से भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ ले लेना। अंधा आशीर्वाद देता हुआ चला गया, किंतु सेठजी को न जाने क्या सूझा कि वे उसके पीछे-पीछे चले। उन्होंने देखा कि उन रुपयों का सूरदास ने मांस-मदिरा का सेवन करने और जुआ खेलने में उपभोग किया। सेठ को बड़ी ग्लानि हुई। एक क्षण के लिए दान-धर्म से विश्वास ही हट गया, फिर वह साधु के पास गया और सब कुछ कह सुनाया। संत ने अपना बचाया हुआ एक पैसा देकर कहा, आज इसे किसी आवश्यकतावाले को दे देना और जवाब अपने आप मिल जाएगा। सेठ ने एक दीन दरिद्र व्यक्ति को वह पैसा दे दिया और छिपकर उसके पीछे हो लिए। वह व्यक्ति थोड़ी दूर गया। उसने अपनी झोली में से एक चिड़िया निकाली और उड़ा दी। उस पैसे से चने खरीदे और उन्हें खाकर तृप्त होता हुआ आगे चला। सेठ ने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया? तब वह व्यक्ति बोला, मैं भूखा था।

१०६८) वशीकरण मंत्र- एक शिष्य अपने गुरु के पास जाकर विनीत भाव से बोला- गुरुदेव। आप मुझे ऐसा मंत्र दें ताकि देवता मेरे वश में हो जाएं। गुरु ने कहा- जरूर दे दूंगा, पर पहले यह बताओ कि क्या तुम्हारे घर के नौकर-चाकर वश में है। वह बोला- वे तो सब कामचोर हैं। काम न करने का बहाना ढूंढ़ते रहते है। क्या परिवारवाले तुम्हारे वश में हैं? नहीं, सब स्वार्थी हैं। तुम्हारी पत्नी तो तुम्हारे वश में हैं? कहां है गुरुदेव। मैंने अपनी पत्नी से कहा- एक हफ्ते बाद पीहर चली जाना। मगर मेरे मना करने पर भी कल अपनी मां से मिलने चली गई। चलो, सबको जाने दो। मुझे यह बताओ कि तुम्हारा अपना मन तो तुम्हारे वश में होगा ही। नहीं गुरुदेव, मन वश में कहा हैं। यह तो बड़ा चंचल है। एक स्थान पर स्थिर होता ही नहीं है। गुरु ने कहा- अरे भाई, जब परिवार, नोकर, पत्नी तेरे मन भी तेरे वश में नहीं है तो देवता तुम्हारे वश में कैसे होंगे? सबसे पहले तुम अपने मन को वश में करो। मन जिसके वश में हो जाता है, देवता भी उसको नमन करते हैं।

१०६९) जीवन की कुंजी- एक राजा था। बड़ा पुरुषार्थी था। अपने पुरुषार्थ से उसने राज्य को दूर-दूर तक फैला दिया। उसकी प्रजा बड़ी सुखी थी। धीरे-धीरे राजा पर बुढ़ापा छाने लगा। उसे चिन्ता होने लगी कि उसके राज्य को चलाने के लिए योग्य उत्तराधिकारी न हुआ तो उसके किये-कराये पर पानी फिर जायगा। उसके एक लड़का था। उसी को गद्दी पर बैठना था, लेकिन वह बड़ा प्रमादी था। हाथ-पैर हिलाना उसे पसंद न था। बहुत सोच-विचार के बाद राजा उसे लेकर एक साधु के पास गया और उन्हें सारी बात बताकर लड़के को आश्रम में छोड़ आया। साधु बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने राजकुमार से कहा, वत्स, यहां से चार कोस पर एक जंगल है। तुम सवेरे ही वहां जाओ और फूलों के पौधे लाकर आश्रम के अहाते में लगाओ। राजकुमार को बड़ा बुरा लगा। अरे, यह काम तो नौकरों के करने का है, उसका नहीं है। वह तो यहां राज्य-व्यवस्था के बारे में शिक्षा लेने आया है, लेकिन उसके पिता कह गये थे कि साधु जो कहें, वह करना। मन मारकर अगले दिन से वह उस काम में लग गया। उसने जंगल से लाकर पौधे लगाये। साधु के आदेश पर उन्हें सींचा और जानवरों से बचाने के लिए उनकी रात-दिन रखवाली की। फिर क्या था। कुछ ही दिनों में सारा आश्रम तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों से लहलहा उठा। राजकुमार की खुशी का ठिकाना न रहा। साधु ने उसे शाबाशी दी। कहा, वत्स, लाखों की एक बात हमेशा याद रखना। जो सोता है, उसका भाग्य सोता है, जो बैठता है, उसका भाग्य बैठता है और जो चलता है, उसका भाग्य चलता है। इसलिए हमारे धर्मग्रंथों ने कहा है, चलते रहो, चलते रहो। देखो, तुम्हारी सक्रियता से आश्रम का रूप ही बदल गया है। राजकुमार को शासन की ही नहीं, जीवन की भी कुंजी मिल गई।

१०७०) सोने का कटोरा- एक संन्यासी के पास सोने का एक बड़ा खूबसूरत कटोरा था। सन्यासी की बुद्धि बड़ी तेज थी। वह एक बार जो बात सुन लेता था, उसे ज्यों की त्यों याद हो जाती थी। उसको अपनी प्रखर बुद्धि पर बड़ा घमण्ड था। एक बार उसने यह घोषणा कर दी कि यदि कोई मुझे पहले कभी नहीं सुनी हुई बात सुनाएगा, तो मैं उसे यह सुंदर स्वर्ण-कटोरा पुरस्कार में दूंगा। संन्यासी की घोषणा को सुनकर कई लोग उसे नई बात सुनाने के लिए आए, किन्तु कोई भी पुरस्कार को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका। जो भी नई बात सुनाई जाती, वह संन्यासी को याद हो जाती थी और वह उसे जस की तस वापस सुना देता और कह देता कि यह बात तो मेरी सुनी हुई है। संन्यासी की यह बात एक सिद्धपुत्र ने सुनी उसने लोगों से कहा, यदि संन्यासी अपीन बात पर कायम रहे, तो मैं अवश्य उसे नई बात सुनाऊंगा। आखिर वे दोनों राजा के पास पहुंचे। जनता भी इकट्ठी हुई। सभी लोगों की नजर सिद्धपुत्र पर थी। राजा की आज्ञा पाकर सिद्धपुत्र ने परिव्राजक को लक्ष्य करके एक दोहा कहा- मेरा पिता, पिता तेरे में, रूपया मांगे पूरे लाख। जो सुना हो तो दे दे, नहीं तो खोरक आगे राख। अर्थात- मेरे पिता, तुम्हारे पिता में पूरे एक लाख रुपए मांगते हैं। यदि यह बात तुमने पहले सुनी है, तो अपने पिता का कर्ज चुका दो और यदि नहीं

सुनी है, तो खोरक (सोने का बर्तन) मुझे दे दो। सिद्धपुत्र की बात सुनकर संन्यासी बड़े असमंजस में पड़ गया। निरुपाय होकर उसने हार मान ली और प्रतिज्ञा के अनुसार स्वर्ण-पात्र सिद्धपुत्र को दे दिया।

१०७१) एक संत शिष्यों के साथ वन में रहते थे। एक रात उन्होंने विशेष साधना कराई। शिष्यों को पंक्तिबद्ध होकर ध्यान करने बिठा दिया। रात के तीसरे पहर गुरु ने आवाज दी, राम, राम उठा। गुरु ने उसे दुर्लभ सिद्धि प्रदान की। अब गुरु ने दूसरे को पुकारा, श्याम। श्याम सो चुका था। इस बार भी राम ही आया और दूसरी सिद्धि भी लेकर चला गया। शेष सभी शिष्य सो रहे थे। गुरु को उस दिन दस सिद्धियां देनी थीं। सोते को जगाने का निषेध था। इसलिए दसों बार राम ही आया और कृतकृत्य हो गया। सोनेवाले शिष्य दूसरे दिन जागने के बाद अपनी भूल पर पछताने लगे। गुरु ने समझाते हुए कहा, यदि तुम अपनी नींद को खो देते तो बहुत कुछ पा जाते। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है।

१०७२) गीता का रहस्य- एक व्यक्ति एक संत से मिलने गया। संत उस समय अपने आश्रम के पास की जमीन खोद रहे थे। व्यक्ति ने संत को प्रणाम किया और कहा, महात्मा जी, मैं आपसे गीता का रहस्य जानना चाहता हूँ। संत बोले, अच्छा, आप बैठिए। यह कहने के बाद वह फिर अपने काम में लग गए। व्यक्ति चुपचाप उन्हें फावड़ा चलाते हुए देखता रहा। वह सोच रहा था कि पता नहीं कब संत का काम समाप्त होगा और वह उसे गीता का ज्ञान कराएंगे।

जब काफी समय बीत गया तो उस व्यक्ति का धैर्य चुकने लगा। आखिरकार उसने कहा, मैं तो आपकी ख्याति सुनकर बहुत दूर से आपके पास आया था। पर आपके लिए समय की कोई कीमत ही नहीं है। संत ने ठहाका लगाया और कहा, भाई तब से गीता का रहस्य ही तो समझा रहा हूँ मैं। उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, कहां समझा रहे हैं। तब से तो मैं बैठा हुआ हूं और आप फावड़ा चला रहे हैं। आप तो एक शब्द भी नहीं बोले। संत ने कहा, बोलने की आवश्यकता ही कहाँ है। गीता का उपदेश है कि कर्म करो और फल की चिंता न करो। देखो, मैं अपना कर्म कर रहा हूं। उस व्यक्ति ने समझ लिया कि संत का आशय क्या है।

१०७३) एक फूँककी दुनिया- एक बड़े विरक्त, त्यागी सन्त थे। एक व्यक्ति उनका शिष्य हो गया। वह बहुत पढ़ा-लिखा था। उसने व्याख्यान देना शुरू कर दिया। बहुत लोग उसके पास आने लगे। बाबाजीने उसको समझाया कि व्याख्यान देना कोई बढ़िया चीज नहीं है, इसमें फँसना नहीं। उनका शिष्य माना नहीं और दूसरी जगह जाकर व्याख्यान देने लगा। सब लोग वहीं जाने लगे। व्याख्यान सुननेके लिये बड़े-बड़े धनीलोग तथा स्वयं राजा भी आने लगे। बाबाजीको उसपर दया आ गयी कि मेरा शिष्य फँस जायगा।

एक दिन बाबाजी अपने शिष्यके पास पहुँचे। उसने देखा तो कहा- अरे। हमारे गुरु महाराज पधारे हैं। लोगोंने सुना तो सब बड़ी संख्यामें इकट्ठे हुए। उनका बड़ा आदर हुआ, प्रशंसा हुई, महिमा हुई कि हमारे महाराजके गुरुजी हैं। कितने बड़े हैं। सभा बैठी। राजा भी आये हुए थे। बाबाजीके मनमें क्या आयी कि उठकर राजाके पास गये और जोरसे भर्र..... करके अपानवायु छोड़ दी। लोगोंने देखा तो उठ गये कि कुछ नहीं है। चेला तो अच्छा है, पर गुरुमें कुछ नहीं। लोग भी नाराज हुए, राजा भी नाराज हुए। बाबाजीने कहा कि आज हम यहाँसे चले जायँगे। लोग मनमें प्रसन्न हुए कि अच्छी बात है, आफत मिटी। महाराजके गुरुजी हैं, इसलिये थोड़ा आदर तो कर दें- ऐसा समझकर सभ्यताके नाते बहुत-से लोग बाबाजीको पहुँचानेके लिये आये। वहाँ एक मरी हुई चिड़िया पड़ी थी। बाबाजीने उस चिड़ियाको अँगुलियोंसे पकड़कर ऊपर उठा लिया और सबको दिखाने लगे। लोग देखने लगे कि बाबाजी यह क्या करते हैं ? बाबाजीने फूँक मारी तो चिड़िया फुर्र.... करके उड़ गयी। अब लोग वाह-वाह करने लगे कि बाबाजी तो बड़े सिद्ध महात्मा हैं। चारों तरफ बाबाजीकी जय-जयकार होने लगी।

बाबाजीने शिष्यको अपने पास बुलाया और कहा कि तू समझा कि नहीं ? शिष्य बोला- क्या समझना है महाराज। बाबाजी बोले- इस दुनियाकी क्या कीमत समझी है तूने ? यह सब दुनिया एक फूँककी है। एक फूँकमें भाग जाय और एक फूँकमें आ जाय। फूँककी क्या इज्जत है। इसमें कोई तत्त्व नहीं है। इसलिये मान-बड़ाईमें न फँसकर भगवान्‌का भजन करो। ऊँचे आसनपर बैठनेसे, व्याख्यान देनेसे कोई बड़ा नहीं हो जाता।

१०७४) वर्तमान जीवन- एक जिज्ञासु राजा एक महात्मा से मिलने उनकी कुटिया में पहुंचा। उसने महात्मा को प्रणाम कर प्रश्न किया, महात्मन्, जीवन में महत्वपूर्ण क्या है? महात्मा मौन रहे। थोड़ी देर बाद वह अपनी कुटिया के बाहर फूलों की क्यारियां ठीक करने लगे। तभी एक घायल व्यक्ति कराहता हुआ वहां आया। उसके शरीर से खून टपक रहा था। महात्मा जल्दी से जल लेकर आए और उसके घाव धोने लगे। राजा भी इस कार्य में महात्मा का हाथ बंटाने लगे। घायल व्यक्ति बोला, राजन्, मेरा अपराध क्षमा करो। मुझ गरीब पर दया करो। राजा ने पूछा, तुम कौन हो और तुम्हारा अपराध क्या है ? घायल व्यक्ति ने बताया, मेरा भाई युद्ध में आपके हाथों मारा गया था। मैं आपसे बदला लेना चाहता था। मैं मौके की तलाश में था। आज मुझे अवसर मिल गया। आपको अकेला देखकर मैंने आपका पीछा किया। पर आपके सैनिकों ने मुझे देख लिया और मुझे घायल कर दिया। पर आपके दयालुतापूर्ण व्यवहार से मेरा मन बदल गया है। मुझे क्षमा करें। महात्मा बोले, देखो राजन्, आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। जीवन में महत्वपूर्ण वही है जो वर्तमान में उपस्थित है। वर्तमान की सुरक्षा करो तभी भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। जो सामने है उसे ही पूरी तन्मयता से करो।

१०७५) त्यागी कौन - राजा ने योगी को नमस्कार किया। योगी ने पूछा, आपने मेरा इतना सम्मान क्यों किया ? राजा ने कहा, भगवन, आप घर-परिवार का त्याग कर एकांत में साधना करते हैं, इसलिए आप पूज्य हैं। योगी बोला, लेकिन आपका त्याग मुझसे कहीं ज्यादा है। राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा, वह कैसे ? योगी ने कहा, किसी व्यक्ति के पास एक भव्य भवन है। अगर वह रोज झाड़ू लगाकर उसमें से कूड़ा-कचरा बाहर निकालता है तो क्या वह त्यागी कहलाएगा? राजा ने कहा, इसमें त्याग कैसा। कूड़ा तो बाहर निकालने की ही चीज है। योगी ने फिर कहा, राजन, यदि कोई दूसरा व्यक्ति घर की बहुमूल्य वस्तुएं दूसरों को दे देता है तो उसे आप क्या कहेंगे ? राजा ने कहा, निश्चय ही वह महान त्यागी है। योगी ने मुस्कराते हुए कहा, राजन, इसलिए तो मैंने आपको महान त्यागी कहा है। आपने ध्यान, आत्मचिंतन और साधना जैसी महान चीजों का त्याग किया है और सोना-चांदी जैसी बहुमूल्य वस्तुएं अपने पास रखी हैं, जबकि मैंने तो बस परिवार का ही त्याग किया है। फिर आपका त्याग तो ज्यादा बड़ा हुआ न। राजा योगी का आशय समझ गया। उस दिन से वह ईश्वरोपासना और जनकल्याण में जुट गया।

१०७६) बालक का स्वभाव- एक दुकानदार का लड़का बेहद शरारती था। दुकान पर जो भी ग्राहक आता, वह उसकी टोपी या पगड़ी उतारकर फेंक देता। दुकानदार ने उसे बहुत समझाया, डराया-धमकाया और मारा-पीटा भी पर वह सुधरने का नाम नहीं लेता था। धीरे-धीरे ग्राहकों की संख्या कम होने लगी। संयोग से एक दिन दुकान पर एक महात्मा आए। दुकानदार ने महात्मा जी से अनुरोध किया, महात्मा जी, किसी तरह आप मेरे पुत्र को ठीक कर दीजिए। महात्मा ने कहा, मैं आपके बेटे को ठीक कर दूंगा पर इसके लिए जो तरीका मैं अपनाऊंगा आप उसका विरोध नहीं करेंगे। दुकानदार राजी हो गया। अगले दिन महात्मा जी साफा बांधकर आए। लड़के ने पहले की तरह महात्मा का साफा उतारकर सड़क पर फेंक दिया। महात्मा जी ने हंसकर कहा, शाबाश बेटे, जरा दौड़कर साफा ले आओ। लड़के ने छलांग लगाई और साफा ले आया। महात्मा बोले, अब यह साफा बांध दो। लड़के ने किसी तरह उलटा-सीधा कर साफा लपेट दिया। दूसरे दिन

महात्मा जी लकड़ी का एक टुकड़ा और कुल्हाड़ी लेकर आए। उन्होंने लड़के से कहा, जरा उस लकड़ी के टुकड़े तो कर दो। यह सुनकर दुकानदार घबराया और बोला, यह आप क्या करवा रहे हैं। लड़का अपने पैर काट लेगा। लड़के ने कुल्हाड़ी उठाई और लकड़ी काटने लगा। वह थोड़ी देर में थक कर लौट आया और महात्मा के पास बैठ गया। इस तरह कुछ दिन तक महात्मा उससे कुछ न कुछ करवाते रहे। उसके बाद पगड़ी उतारने की उसकी आदत छूट गई। यह देख दुकानदार चकित था। उसने महात्मा से पूछा, आपने यह चमत्कार कैसे कर दिखाया ? इस पर महात्मा बोले, हम लोग दिन भर बच्चों से कहते रहते हैं- यह मत करो वह मत करो लेकिन एक बार भी यह नहीं कहते कि यह काम करो। आपने देखा कि जब-जब मैंने उसे कुछ करने को कहा तो उसने कितने आनंद से उस काम को किया। दुकानदार समझ गया। उस दिन से वह बच्चे को किसी न किसी काम में व्यस्त रखने लगा।

१०७७) चार बातें- एक बड़े बुद्धिमान साधु थे। उनसे शिक्षा लेने के लिए बहुत-से स्त्री-पुरुष आते थे। साधु उन्हें बड़ी उपयोगी बातें बताया करते थे। एक दिन उन्होंने कहा, तुम लोग चार बातें याद रखोगे तो जीवन में बहुत ही आनंद से रहोगे। लोगों ने पूछा, स्वामीजी, वे चार बातें क्या हैं ? स्वामीजी बोले, पहली बात यह है कि तुम जहां भी रहो, अपने को आवश्यक बना दो। इतना काम करो कि लोग समझें कि अगर तुम चले गये तो उनका काम रुक जायेगा। कहने का अर्थ यह है कि तुम किसी पर बोझ मत बनो, दूसरों के बोझ को हल्का करो। लोगों ने कहा, दूसरी बात बताइये। साधु बोले, अपने को खूब स्वस्थ रखो। काम करने के लिए शरीर को तन्दुरुस्त रखना आवश्यक है। और तीसरी बात क्या है? लोगों ने उत्सुकता से पूछा। साधु ने कहा, आलस को अपने पास कभी मत फटकने दो। जो आदमी प्रमाद करता है, वह निकम्मा हो जाता है। आखिरी बात ? लोगों ने बड़ी जिज्ञासा से उनकी ओर देखा। साधु बोले, एक-एक पैसे का उपयोग करो। मौज-शौक पर एक कौड़ी भी खर्च मत करो। याद रखो, तुम्हें जो पैसा मिला है, वह भगवान का दिया हुआ है, और भगवान की दी हुई चीज का किसी को दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

१०७८) एक ऋषि के कई शिष्य थे। सभी प्रतिभावान थे पर उनमें अहंकार भरा था और वे आपस में लड़ते रहते थे। एक बार ऋषि अपने शिष्यों के साथ आग ताप रहे थे। उन्होंने अलाव की ओर इशारा करके कहा, इनमें से यह सबसे तेज दहकता कोयला निकलाकर मुझे दो। मैं उसे तापूंगा। एक शिष्य ने चिमटे से पकड़कर उस कोयले को बाहर निकाला। बाहर आते ही वह फिर काला हो गया। ऋषि ने शिष्यों को समझाया, यह कोयला अलाव के भीतर चमक रहा था पर बाहर आते ही काला हो गया। उसी तरह तुम्हारी क्षमता की चमक परिवार रूपी अलाव के भीतर ही है। इससे अलग होते ही तुम्हारी चमक फीकी पड़ जाएगी।

१०७९) एक युवक घर-गृहस्थी से दुखी होकर अपने परिवार को छोड़कर निकल पड़ा। वह एक महात्मा के पास पहुंचा और बोला, मैं अपना परिवार छोड़कर आ गया हूं। अब मैं माया-मोह के बंधन में नहीं फंसना चाहता। मैं परमात्मा की तलाश करना चाहता हूं। कृपया मुझे मार्गदर्शन दें। इस पर महात्मा क्रोधित होते हुए बोले, मूर्ख, परमात्मा तो तेरे घर में बैठे हुए हैं जिन्हें तू छोड़कर आ गया है। जब तक तू उनकी सेवा नहीं करेगा तेरा कल्याण नहीं हो सकता। जा, पहले परिवार को संभाल, उनके प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा कर। अध्यात्म भगोड़ों की नहीं शूरवीरों की मदद करता है। परिवार में रहते हुए भी तेरी साधना पूरी हो सकती है। यदि त्याग ही करना है तो अपने भीतर के विकारों का त्याग कर बुरे विचारों का त्याग कर।

१०८०) परोपकार का अर्थ - यमराज के पास एक साधु और एक दास को लाया गया। यमराज ने कहा, जिसने पवित्र जीवन बिताया उसी को स्वर्ग मिलेगा। साधु ने कहा, मेरा पूरा जीवन पवित्र रहा है। मैं हमेशा परोपकार में लगा रहा।

दास बोला, मैंने पुण्य कर्म नहीं किया। मुझे इसके लिए समय ही नहीं मिला। मालिक की गुलामी करना ही मेरा कर्म रहा। यमराज ने दोनों के धर्म-अधर्म का लेखा-जोखा देखा। साधु के खाते के पन्ने उसके परोपकारी कार्यों से भरे पड़े थे, जबकि दास के खाते में सभी पन्ने कोरे थे। उसने न अच्छे कार्य किए थे न बुरे। मगर एक जगह एक पन्ने पर मोटे-मोटे अक्षरों में कुछ लिखा था। उसको पढ़ कर यमराज ने दास से पूछा, तुमने बताया कि तुमने कभी कोई पुण्य कार्य किया ही नहीं। दास ने कहा, हां, यह सच है। यमराज ने कहा, तुम्हें याद है। एक बार तुमने जंगल में एक कुत्ते को को पानी पिलाया था। दास ने कहा, हां, एक बार मैं जंगल के रास्ते जा रहा था। रास्ते में एक कुत्ता अंतिम सांसें ले रहा था। उसको देखकर मेरे कदम ठिठक गए। मेरे पास कुछ नहीं था। मैंने इधर-उधर देखा तो पास में एक कुआं दिखा। मैंने अपनी टोपी का डोल बनाया और पगड़ी को रस्सी बना कर टोपी में कुएं से पानी निकाला और उसे पिलाया। पानी पीते ही उसकी सांसें चलने लगी। थोड़ी देर में वह उठकर बैठ गया। यमराज ने कहा, दास को स्वर्ग ले जाओ। यह सुनते ही साधु चिल्लाने लगा। बोला, मेरा पूरा जीवन सत्कर्म में बीता। मुझे भी स्वर्ग मिलना चाहिए। यमराज ने कहा, तुम्हारे परोपकार में स्वार्थ की भावना थी। तुम परोपकार पुण्य कमाने के लिए कर रहे थे। जबकि उस दास के परोपकार में उसका कोई स्वार्थ नहीं था। उसका एक कार्य तुम्हारे सत्कर्मों से बढ़कर है। नि:स्वार्थ भाव से किया गया एक कार्य भी स्वार्थ भाव से किए गए परोपकार के अनेक कार्यों से बढ़कर होता है।

१०८१) स्वर्ग का रास्ता - किसी शहर में धार्मिक प्रवृत्ति का एक व्यक्ति रहता था। उसकी इच्छा थी कि इस जन्म में चाहे जो करना पड़े, लेकिन मरने के बाद उसे स्वर्ग अवश्य मिले, इसलिए वह गरीबों की सेवा करता, दान-दक्षिणा देता, कमाई का अधिकांश भाग परोपकार में ही लगा देता। लेकिन जैसे-जैसे उसकी परोपकार की भावना का विकास हो रहा था वैसे ही उसमें अहंकार भी बढ़ रहा था। कोई उसकी दानशीलता पर टीका-टिप्पणी कर देता तो उसके क्रोध की सीमा न रहती। एक बार एक प्रसिद्ध संत उसके घर के पास आकर रुके तो वह फौरन उनकी सेवा में उपस्थित हो गया और उनसे भी स्वर्ग जाने का उपाय पूछने लगा। संत ने उस व्यक्ति को ध्यानपूर्वक ऊपर से नीचे तक देखा और उपेक्षा से कहा, तुम स्वर्ग जाओगे? तुम तो देखकर ही लंपट मालूम पड़ रहे हो। तुम परोपकारी या दानी व्यक्ति नहीं धर्म के ठेकेदार ज्यादा लग रहे हो। इतना सुनते ही वह व्यक्ति क्रोध से भर उठा और उसने संत को मारने के लिए डंडा उठा लिया। संत ने मुस्कराते हुए कहा, तुम में तो तनिक भी धैर्य नहीं। इतनी अधीरता और अहंकार के होते हुए तुम स्वर्ग कैसे जा पाओगे? व्यक्ति को संत की कही हुई बातें का मर्म समझ में आ गया तो वह संत के चरणों में गिर पड़ा और अपनी गलती के लिए क्षमा मांगने लगा। उसने आगे से कभी क्रोध न करने तथा अहंकार वृत्ति के त्याग का भी प्रण किया। संत ने कहा, जिस दिन तुम सब अवगुणों से मुक्त हो जाओगे, उस दिन स्वर्ग की सृष्टि यही पर हो जाएगी।

१०८२) शिष्यों की परीक्षा - एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों गुरु के पास रहकर शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करते थे। एक दिन गुरु ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने एक शिष्य को बुलाकर पूछा, बताओ, यह जगत कैसा है? शिष्य ने कहा, गुरुदेव, यह तो बहुत बुरा है। चारों तरफ अंधकार ही अंधकार हैं। आप देखें, दिन एक होता है और रातें दो। पहले रात थी। अंधेरा ही अंधेरा छाया था। फिर दिन आया और उजाला हुआ। लेकिन पुन: रात आ गई अंधेरा छा गया। एक बार उजाला, दो बार अंधेरा। अंधेरा अधिक, प्रकाश कम। यह है जगत। गुरु ने उस शिष्य की बात सुनने के बाद दूसरे शिष्य से भी यही प्रश्न पूछा। दूसरा शिष्य बोला, गुरुदेव, यह जगत बहुत ही अच्छा है। यहां चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है। रात बीती उजाला हुआ। सर्वत्र प्रकाश फैल गया। रोशनी आती है तो अंधकार दूर हो जाता है। वह सबकी मुंदी हुई आंखों को खोल देता है, यथार्थ को प्रकट कर देता है। कितना सुंदर और लुभावना है यह जगत कि जिसमें इतना

प्रकाश है। देखता हूं, दिन आया, बीता। रात आई बीती। फिर दिन आ गया। इस प्रकार दो दिनों के बीच एक रात। प्रकाश अधिक, अंधकार कम। गुरु ने फिर दोनों शिष्यों को बुलाकर कहा, यह जगत अपने आप में कुछ नहीं है। यह वैसा ही दिखता है जैसा हम इसे देखते हैं। उन्होंने पहले शिष्य को दूसरे शिष्य की बात बताई और कहा, अगर हम इसे सकारात्मक दृष्टि से देखेंगे तो यह हमें बहुत सुखद लगेगा। इसलिए तुम अपना दृष्टिकोण सकारात्मक बनाओ।

१०८३) जीने का ढंग - एक शिष्य ने गुरु से पूछा, गुरुवर। संसार में किस ढंग से रहना चाहिए? गुरु बहुत ही ज्ञानी थे। पहले तो प्रश्न सुनकर मुस्कराए फिर बोले, अच्छा प्रश्न किया है, एक दो दिन में व्यवहार द्वारा ही उत्तर दूंगा। अगले दिन एक श्रद्धालु मिठाइयां लेकर आए और उन्होंने स्नेहपूर्वक गुरु को मिठाइयां भेंट कीं। संत ने उन्हें ले लिया और पीठ फेरकर सब खा गए। न वहां बैठे लोगों में से किसी को दिया, न भेंट करनेवाले की ओर कोई ध्यान दिया। जब वह चला गया तो गुरु ने शिष्य से पूछा, उस व्यक्ति पर क्या प्रतिक्रिया हुई? शिष्य ने बताया, दुखी होकर भला-बुरा कहता गया है। कहता था ऐसा भी क्या संत। सब खा गया। न मुझे पूछा, न किसी और को। अगले दिन दूसरा व्यक्ति भेंट लाया। संत ने भेंट उठाकर पीछे फेंक दी और लाने वाले से बड़े प्यार से बातें करते रहे। बाद में पता चला कि वह व्यक्ति भी दुखी होकर गया। उसका कहना था, अजीब संत है। मुझसे तो इतना प्यार जताया, मगर मेरी भेंट का अपमान कर दिया। फिर तीसरा व्यक्ति भेंट लाया। संत ने उसे आदर से लिया। कुछ स्वयं खाया, कुछ उसे दिया और कुछ अन्य शिष्यों में वितरित करवा दिया। भेंट देनेवाले से स्नेहपूर्वक चर्चा भी की। शिष्य ने सूचना दी कि यह व्यक्ति प्रसन्न होकर, उनकी सराहना करता हुआ गया। गुरु ने शिष्य को समझाया, बेटे। तीन तरह के व्यवहार में यही ढंग ठीक लगता है। दाता यानी भगवान बड़ी भावना से हमें विभूतियां देता है, हम उन्हें तो भोगते हैं, दाता की ओर ध्यान नहीं देते, यह पहला व्यवहार हुआ। दूसरा व्यवहार यह है कि हमने उसकी दी विभूतियों को तो त्याग दिया और उसकी खूब स्तुतियां करते रहे। तीसरा व्यवहार यह है कि दाता का उपकार मानते हुए उसकी ही विभूतियों का सही ढंग से प्रयोग करें। उनसे परमार्थ करें और दाता के साथ भी सहज संबंध बनाकर रखें। यही ढंग ठीक है।

१०८४) जीवन का सच - एक बार किसी गांव में एक महात्मा पधारे। उनसे मिलने पूरा गांव उमड़ पड़ा। गांव के हरेक व्यक्ति ने अपनी-अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी। एक व्यक्ति ने महात्मा से पूछा, महात्मा जी, ऐसा क्या करें, जिससे जीवन की सभी चिंताओं से मुक्ति मिल जाए और कोई भी काम अधूरा न रहे। यह सुनकर महात्मा जी मुस्कराए, फिर उन्होंने कहा, पहले तुम मुझे कुछ जिंदा मेंढ़क लाकर दो, उसके बाद तुम्हारे इस सवाल का जवाब दूंगा। यह सुनकर लोग चकराए। लेकिन महात्मा जी का आदेश था, सो कुछ लोग जल्दी से तालाब पर पहुंचे और बड़ी मुश्किल से कुछ मेंढ़क पकड़ लाए। फिर महात्मा जी ने तराजू लाने को कहा। एक आदमी तराजू ले आया। महात्मा जी ने लोगों से कहा कि वे मेंढ़कों को तौलें और उनका कुल वजन बताएं। यह कहकर महात्मा जी चले गए। उसी व्यक्ति ने मेंढ़कों को तौलना शुरू किया जिसने प्रश्न किया था। उसने ज्यों ही मेंढ़कों को पलड़े पर रखा, कभी एक मेंढ़क उछलकर भाग निकलता तो कभी दूसरा। फिर लोग उन्हें पकड़कर लाते और तराजू पर रख देते। लेकिन उन्हें स्थिर रख पाना बेहद कठिन था। लोग दिन भर प्रयास करते रहे। शाम होने पर महात्मा जी फिर वहां पहुंचे। उन्होंने लोगों से यह काम बंद करने को कहा। सारे मेंढ़क भाग निकले। महात्मा जी ने कहा, जैसे इतना जिंदा मेंढ़कों को खुले तौर पर तौलना संभव नहीं, उसी प्रकार संसार में सब ठीकठाक करके निश्चिंत रहना संभव नहीं है।

१०८५) भाग्य और पुरुषार्थ - एक बार दो राज्यों के बीच युद्ध की तैयारियां चल रही थीं। दोनों के शासक एक प्रसिद्ध संत के भक्त थे। वे अपनी-अपनी विजय का आशीर्वाद मांगने के लिए अलग-अलग समय पर उनके पास पहुंचे। पहले

शासक को आशीर्वाद देते हुए संत बोले, तुम्हारी विजय निश्चित है। दूसरे शासक को उन्होंने कहा, तुम्हारी विजय संदिग्ध है। दूसरा शासक संत की यह बात सुनकर चला आया किंतु उसने हार नहीं मानी और अपने सेनापति से कहा, हमें मेहनत और पुरुषार्थ पर विश्वास करना चाहिए। इसलिए हमें जोर-शोर से तैयारी करनी होगी। दिन-रात एक कर युद्ध की बारीकियां सीखनी होंगी। अपनी जान तक को झोंकने के लिए तैयार रहना होगा। इधर पहले शासक की प्रसन्नता का ठिकाना न था। उसने अपनी विजय निश्चित जान अपना सारा ध्यान आमोद-प्रमोद व नृत्य-संगीत में लगा दिया। उसके सैनिक भी रंगरेलियां मनाने में लग गए। निश्चित दिन युद्ध आरंभ हो गया। जिस शासक को विजय का आशीर्वाद था, उसे कोई चिंता ही न थी। उसके सैनिकों ने भी युद्ध का अभ्यास नहीं किया था। दूसरी ओर जिस शासक की विजय संदिग्ध बताई गई थी, उसने व उसके सैनिकों ने दिन-रात एक कर युद्ध की अनेक बारीकियां जान ली थीं। उन्होंने युद्ध में इन्हीं बारीकियों का प्रयोग किया और कुछ ही देर बाद पहले शासक की सेना को परास्त कर दिया। अपनी हार पर पहला शासक बौखला गया और संत के पास जाकर बोला, महाराज, आपकी वाणी में कोई दम नहीं है। आप गलत भविष्यवाणी करते हैं। उसकी बात सुनकर संत मुस्कराते हुए बोले, पुत्र, इतना बौखलाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी विजय निश्चित थी किंतु उसके लिए मेहनत और पुरुषार्थ भी तो जरूरी था। भाग्य भी हमेशा कर्मरत और पुरुषार्थी मनुष्यों का साथ देता है और उसने दिया भी है तभी तो वह शासक जीत गया जिसकी पराजय निश्चित थी। संत की बात सुनकर पराजित शासक लज्जित हो गया और संत से क्षमा मांगकर वापस चला आया।

१०८६) गुरु की सीख - किसी नदी के किनारे एक आश्रम था, जिसमें दो शिष्य शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु को दोनों बहुत प्रिय थे। शिष्य भी अपने गुरु से बहुत स्नेह करते थे और उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन भी करते थे। दोनों बहुत गुणी थे, लेकिन उनके विचार एक-दूसरे से भिन्न थे। दोनों अक्सर एक-दूसरे के कार्यों में विघ्न डालते रहते थे, जिससे दोनों मे से किसी का काम कभी पूर्ण नहीं हो पाता था। गुरु उनके इस व्यवहार से बहुत दुखी थे। एक दिन गुरु नदी में स्नान करके आश्रम लौट रहे थे। उन्हें एक मछुआरा मिला। मछुआरे के पास बहुत सी मछलियां और केकड़े थे। गुरु ने मछुआरे से कुछ केकड़े खरीद लिए। जब वह केकड़े लेकर आश्रम पहुंचे तो शिष्य बहुत हैरान हुए। गुरु ने केकड़ों को टोकरी में डाल दिया। लेकिन उन्होंने टोकरी का मुंह खुला ही छोड़ दिया। इस पर शिष्यों ने टोका, गुरुदेव, आपने टोकरी का मुंह तो खुला ही छोड़ दिया है। केकड़े तो टोकरी से बाहर आ जाएंगे। यह सुनकर गुरु कुछ देर शांत रहे फिर बोले, चिंता न करो, मैं इन केकड़ों के स्वभाव से परिचित हूं। यह रात भर उछल-कूद मचाने पर भी इस टोकरी की कैद से छूट नहीं सकते, क्योंकि जो केकड़े ऊपर चढ़ने की कोशिश करेंगे, नीचे वाले केकड़े उनकी टांगें खींचकर उन्हें फिर नीचे ले जाएंगे। ईर्ष्यालु लोग भी इसी तरह एक-दूसरे को आगे बढ़ने से रोकते रहते हैं। शिष्य गुरु का इशारा समझ गए। उन्होंने उस दिन के बाद एक-दूसरे के कार्यों में विघ्न डालना बंद कर दिया। कुछ दिनों के बाद गुरु केकड़ों को तालाब में छोड़ आए।

१०८७) मन का पाप- एक साधु थे। जंगल में रहते थे। एक दिन घूमते हुए वह नदी के किनारे गये। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर प्रकृति का साम्राज्य फैला था। सघन वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। संत ने देखा कि एकान्त स्थान पर एक पेड़ के नीचे एक युवक और युवती बैठे हैं। दोनों बड़े आनंदित थे। दोनों के हाथ में एक-एक गिलास था। संत ने सोचा कि इस निर्जन स्थान पर बैठकर ये लोग निश्चय ही मदिरापान कर रहे होंगे। शराब पीकर आदमी का दिमाग फिर जाता है। वह बुरी बातें ही सोचता है, बुरे काम ही करता है। आदमी का कितना पतन हो गया है। वह यह सब सोच ही रहे थे कि सामने से एक नाव आती दिखाई दी। नदी की धारा बड़ी तीव्र थी। जोर की लहरें उठ रही थीं। अचानक नाव को लहरों का थपेड़ा लगा और

वह उलट गई। संत के मुंह से जोर की चीख निकली। उनकी आंखें बंद हो गई। जैसे ही आंखें खुली कि देखते क्या हैं कि जिस युवक को उन्होंने पापी समझ रखा था, वही युवक छलांग लगाकर पानी में कूदा और पांच आदमियों को निकालकर बाहर ले आया। संत खड़े-खड़े देख रहे थे। युवक पास आकर बोला, महाराज, भगवान की कृपा से पांच आदमियों की तो जान बच गई। अब एक रह गया है। उसके प्राण आप बचा लीजिये। संत को तैरना नहीं आता था। वह कूदने की हिम्मत कैसे कर सकते थे? यह देखकर युवक ने कहा, स्वामीजी, इंसान के लिए इंसान से बढ़कर और कुछ नहीं है। इतना कहकर उसने एक छलांग फिर लगाई और अंतिम व्यक्ति को भी बचाकर बाहर ले आया। साधु का लज्जा से सिर झुक गया। जिसे वह पापी समझ रहे थे, उससे बढ़कर पुण्यात्मा उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखा था।

१०८८) सूखा पत्ता- एक युवक ने शास्त्रों को अच्छी तरह रट लिया था, जिस कारण वह अहंकारी हो गया। एक दिन उसने अपने गुरु से कहा, हमें कुछ और सिखाइए। गुरु बोले, सभी तरफ सिखाया जा रहा है। सीख लो। एक दिन वह एक पेड़ के नीचे बैठा था, तभी एक सूखा पत्ता सामने आ गिरा। उसे देखकर वह खुशी से पागल हो गया। वह आश्रम गया और सभी से कहने लगा, मैं सीख गया, मैं सीख गया। सभी उससे पूछने लगे कि उसने क्या सीखा है, किस धर्मग्रंथ से सीखा है? इस पर उसने कहा, मैंने तो बस पेड़ के एक पत्ते को गिरते देखा और सीख गया। उसकी बात सुनकर दूसरे शिष्य बोले, अरे भाई। हम तो रोज सूखे पत्ते को गिरते देखते हैं हम तो कुछ नहीं सीखते। तुमने ऐसा क्या सीख लिया? वह बोला, सूखा पत्ता गिरा तो मेरे भीतर भी कुछ गिरा। मुझे लगा कि कल मैं भी सूखे पत्ते की तरह गिर जाऊंगा। जब सूखे पत्ते की तरह गिर ही जाना है, तो फिर इतनी अकड़ क्यों। इतना अहंकार क्यों? उसके गुरु भी यह सुन रहे थे। उन्होंने उसे गले से लगा लिया।

१०८९) संत की उदासी - एक संत ने एक रात स्वप्न देखा कि उनके पास एक देवदूत आया है। देवदूत के हाथ में एक सूची है। उसने कहा, यह उन लोगों की सूची है, जो प्रभु से प्रेम करते हैं। संत ने कहा, मैं भी प्रभु से प्रेम करता हूं। मेरा नाम तो इसमें अवश्य होगा। देवदूत बोला, नहीं, इसमें आपका नाम नहीं है। संत उदास हो गए। फिर उन्होंने पूछा, इसमें मेरा नाम क्यों नहीं है। मैं ईश्वर से ही प्रेम नहीं करता बल्कि गरीबों से भी प्रेम करता हूँ। मैं अपना अधिकतर समय गरीबों की सेवा में लगाता हूं। उसके बाद जो समय बचता है उसमें प्रभु का स्मरण करता हूं। तभी संत की आंख खुल गईं।

दिन में वह स्वप्न को याद कर उदास थे। एक शिष्य ने उदासी का कारण पूछा तो संत ने स्वप्न की बात बताई और कहा, वत्स, लगता है सेवा करने में कहीं कोई कमी रह गई है। दूसरे दिन संत ने फिर वही स्वप्न देखा। वही देवदूत फिर उनके सामने खड़ा था। इस बार भी उसके हाथ में कागज था। संत ने बेरूखी से कहा, अब क्यों आए हो मेरे पास। मुझे प्रभु से कुछ नहीं चाहिए। देवदूत ने कहा, आपको प्रभु से कुछ नहीं चाहिए, लेकिन प्रभु का तो आप पर भरोसा है। इस बार मेरे हाथ में दूसरी सूची है। संत ने कहा, तुम उनके पास जाओ जिनके नाम इस सूची में हैं। मेरे पास क्यों आए हो?

देवदूत बोला, इस सूची में आप का नाम सबसे ऊपर है। यह सुनकर संत को आश्चर्य हुआ। बोले, क्या यह भी ईश्वर से प्रेम करनेवालों की सूची है। देवदूत ने कहा, नहीं, यह वह सूची है जिन्हें प्रभु प्रेम करते हैं। ईश्वर से प्रेम करनेवाले तो बहुत हैं, लेकिन प्रभु उसको प्रेम करते हैं जो गरीबों से प्रेम करते हैं। प्रभु उसको प्रेम नहीं करते जो दिन रात कुछ पाने के लिए प्रभु का गुणगान करते है। तभी संत की आंख खुल गई।

१०९०) सिद्धियों का सदुपयोग - एक व्यक्ति पशु-पक्षियों का व्यापार किया करता था। एक दिन उसे पता चला कि उसके गुरु को पशु-पक्षियों की बोली समझ है। उसने सोचा कि यदि उसे भी यह विद्या मिल जाए तो वह उसके लिए फायदेमंद साबित हो सकती है। वह अपने गुरु के पास गया, उनकी खूब सेवा की और उनसे पशु-पक्षियों की बोली

सिखाने का आग्रह किया। गुरु ने उसे यह विद्या सिखा दी। पर यह भी चेतावनी दी कि वह अधिक लोभ न करे और अपने फायदे के लिए किसी का नुकसान न करे।

घर लौटने पर उस व्यक्ति ने अपने दो कबूतरों को बात करते सुना कि उसके घोड़े को कोई अंदरूनी बीमारी हो गई है, वह एक-दो दिन में मर जाएगा। उस व्यक्ति ने तत्काल उसे अच्छे दाम पर बेच दिया। उसे पता चला कि वास्तव में एक-दो दिन के बाद घोड़ा मर गया। अब उसे यकीन हो गया कि पशु-पक्षी एक-दूसरे के बारे में अच्छी तरह जानते हैं। एक दिन उसने अपने कुत्ते को कहते सुना कि उसकी सारी मुर्गियां किसी महामारी से मरनेवाली हैं। उसने तुरंत सारी मुर्गियां इकट्ठी कीं और बाजार में बेच आया। बाद में उसे पता चला कि शहर में किसी बीमारी से एक-एक करके सारी मुर्गियां मरती जा रही हैं। उसे प्रसन्नता हुई कि वह नुकसान से बच गया। कुछ दिनों के बाद उसने अपनी बिल्ली को कहते सुना कि उनका मालिक कुछ ही दिनों का मेहमान है। उसे इस पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन जब उसके गधे ने भी यही बात दोहराई तो वह घबरा गया। वह भागता हुआ अपने गुरु के पास पहुंचा और बोला, गुरुदेव मेरा अंत समय निकट है। कृपया मुझे अंतिम घड़ी में स्मरण योग्य कोई काम बताएं, जिससे मेरी मुक्ति हो जाए।

उसके गुरु ने कहा, अगर तुम मरनेवाले हो तो जाओ अपने आप को भी किसी को बेच दो। अरे मूर्ख, सिद्धियां न किसी की हुई है और न हो सकती हैं। इसीलिए मैंने कहा था कि अपने लाभ और किसी के नुकसान के लिए इसका प्रयोग मत करना।

१०९१) अन्न का असर - एक संत किसी गांव में पहुंचे। गांव के लोगों के आग्रह पर वह वहीं एक कुटिया बनाकर रहने लगे। उनका खाना जमींदार के घर से आता था। एक दिन जमींदार की पत्नी ने उन्हें अपने घर ठहरने को कहा। शाम को संत हवेली पहुंचे।

एक कमरे में उनके लिए विश्राम की व्यवस्था की गई। संत के पलंग के पास एक संदूक था। संत ने ढक्कन उठाकर देखा तो हैरान रह गए। उसमें बेशकीमती आभूषण थे। संत को लालच आ गया। उन्होंने एक कीमती हार निकाल कर अपनी जटा में छिपा लिया और वहां से चले गए। सुबह लोगों ने देखा तो कुटिया बंद पड़ी थी। जमींदार और गांव के लोगों ने देखा तो कुटिया बंद पड़ी थी। जमींदार और गांव के लोगों ने संत को दूर तक खोजा लेकिन वह नहीं मिले। एक महीने बाद अचानक संत जमींदार के पास आए और उन्हें हार सौंपते हुए बोले, इसे मैं चुरा कर ले गया था। वापस करने आया हूं। जमींदार ने पूछा, पर आपने ऐसा क्यों किया? क्या आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी?

संत ने कहा, हां, मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। उसी का कारण जानने आया हूं। यह बताओ तुम्हारी कमाई का साधन क्या है? मुझ जैसे संत से सच-सच बता दो। जमींदार ने कुछ देर चुप रहने के बाद बता दिया कि उसने डकैतों को संरक्षण दे रखा है और उनसे हिस्सा लेता है। संत ने कहा, मेरी बुद्धि इसलिए भ्रष्ट हो गई थी, क्योंकि मैंने नीच कर्म की कमाई का अन्न खाया। उसका मेरे मन पर ऐसा बुरा असर पड़ा और मैं चोरी जैसा पाप करने पर उतारू हो गया।

मगर यहां से जाने के बाद जंगल में कंद-मूल फल खाकर मन का मैल धुल गया और सद्बुद्धि आ गई, तभी मन में हार वापस करने का विचार आया। इसीलिए कहा गया है कि जैसा अन्न खाओगे, बुद्धि भी उसी तरह काम करेगी। जमींदार ने अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी और सुधरने का संकल्प किया।

१०९२) जीने का ढंग- एक शिष्य ने गुरु से पूछा, गुरुवर। संसार में किस ढंग से रहना चाहिए? गुरु बहुत ही ज्ञानी थे। पहले तो प्रश्न सुनकर मुस्कराए फिर बोले, अच्छा प्रश्न किया है, एक दो दिन में व्यवहार द्वारा ही उत्तर दूंगा। अगले दिन एक श्रद्धालु मिठाइयां लेकर आए और उन्होंने स्नेहपूर्वक गुरु को मिठाइयां भेंट कीं। संत ने उन्हें ले लिया और पीठ फेरकर सब खा

गए। न वहां बैठे लोगों में से किसी को दिया, न भेंट करनेवाले की ओर कोई ध्यान दिया। जब वह चला गया तो गुरु ने शिष्य से पूछा, उस व्यक्ति पर क्या प्रतिक्रिया हुई? शिष्य ने बताया, दुखी होकर भला-बुरा कहता गया है। कहता था ऐसा भी क्या संत। सब खा गया। न मुझे पूछा, न किसी और को। अगले दिन दूसरा व्यक्ति भेंट लाया। संत ने भेंट उठाकर पीछे फेंक दी और लानेवाले से बड़े प्यार से बातें करते रहे। बाद में पता चला कि वह व्यक्ति भी दुखी होकर गया। उसका कहना था, अजीब संत हैं। मुझसे तो इतना प्यार जताया, मगर मेरी भेंट का अपमान कर दिया। फिर तीसरा व्यक्ति भेंट लाया। संत ने उसे आदर से लिया। कुछ स्वयं खाया, कुछ उसे दिया और कुछ अन्य शिष्यों में वितरित करवा दिया। भेंट देनेवाले से स्नेहपूर्वक चर्चा भी की। शिष्य ने सूचना दी कि यह व्यक्ति प्रसन्न होकर उनकी सराहना करता हुआ गया। गुरु ने शिष्य को समझाया, बेटे। तीन तरह के व्यवहार में यही ढंग ठीक लगता है। दाता यानी भगवान बड़ी भावना से हमें विभूतियां देता है, हम उन्हें तो भोगते हैं, दाता की ओर ध्यान नहीं देते, यह पहला व्यवहार हुआ। दूसरा व्यवहार यह है कि हमने उसकी दी विभूतियों को तो त्याग दिया और उसकी खूब स्तुतियां करते रहे। तीसरा व्यवहार यह है कि दाता का उपकार मानते हुए उसकी विभूतियों का सही ढंग से प्रयोग करें। उनसे परमार्थ करें और दाता के साथ भी सहज संबंध बनाकर रखें। यही ढंग ठीक है।

१०९३) मनुष्य और ईश्वर - एक महात्मा गंगा तट पर प्रवचन कर रहे थे। भारी भीड़ जमा थी। चर्चा का विषय था- जीव और ब्रह्म की एकता। दोनों के संबंध का विश्लेषण करते हुए महात्मा ने कहा कि जीव ईश्वर का ही अंश है। जो गुण ईश्वर में हैं, वे जीव में भी मौजूद हैं। सुननेवालों में से एक ने पूछा, भगवन्। ईश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है, पर जीव तो अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्यवाला, फिर भिन्नता के रहते एकता कैसी? यह सुनकर महात्मा जी मुस्कराए। फिर उन्होंने उस व्यक्ति से कहा, एक लोटा गंगाजल ले आओ। वह व्यक्ति लोटे में गंगाजल भर लाया। फिर महात्मा जी ने उस व्यक्ति से पूछा, अच्छा यह बताओ कि गंगा के जल और इस लोटे के जल में कोई अंतर तो नहीं है? वह व्यक्ति बोला, बिल्कुल नहीं। महात्मा जी ने कहा, देखो, सामने गंगाजल में नावें चल रही हैं। एक नाव इस लोटे के जल में चलाओ। यह सुनकर वह व्यक्ति भौंचक रह गया और महात्मा जी का मुंह ताकने लगा। फिर उसने साहस करके कहा, भगवन लोटा तो छोटा है और इसमें थोड़ा ही जल है। इतने में भला नाव कैसे चलेगी। महात्मा जी ने गंभीर होकर कहा, जीव एक छोटे दायरे में सीमाबद्ध होने के कारण लोटे के जल के समान अल्पज्ञ और अशक्त बना हुआ है। यदि यह जल फिर गंगा में लौटा दिया जाए तो उस पर नाव चलने लगेगी, इसी प्रकार यदि जीव अपनी संकीर्णता के बंधन काटकर महान बन जाए तो उसे ईश्वर जैसी सर्वज्ञता और शक्ति सहज ही प्राप्त हो सकती है।

१०९४) साधुओं का जीवन - किसी जंगल में दो साधु अपना आश्रम बनाकर रहते थे। निरंतर साधना में लीन रहकर दोनों ने अपने मन की वृत्तियों को साध लिया था। उनके पास नजदीक के गांव-कस्बों के लोग अपनी समस्याएं लेकर आते और उनसे समाधान पूछते। वे ध्यानपूर्वक सबकी बातें सुनते और उन्हें कोई न कोई रास्ता जरूर सुझाते। कई बार उन्होंने लोगों के झगड़े सुलझाए। एक दिन एक साधु ने दूसरे से कहा- लोग न जाने आपस में झगड़ते क्यों हैं? झगड़े का कारण क्या होता होगा? क्यों न एक बार हम भी लड़कर देखें। दूसरा बोला- नहीं भाई, हमारी प्रकृति इस प्रकार की नहीं है। हमारे हृदय में प्रेम और शांति के सिवाय और कुछ नहीं है। फिर भी तुम कहते हो तो झगड़कर देख लेते हैं। यह सुनकर पहले साधु ने फलों की एक टोकरी एक कोने में रखकर कहा- देखो यह टोकरी मेरी है। इसे हाथ भी न लगाना। दूसरा बोला५ नहीं भाई यह टोकरी तो मेरी है मैंने ही फल तोड़कर इसमें जमा किए हैं। तुम अपने फल तोड़कर अपनी टोकरी बना लेना। यह सुनकर पहले ने कहा- अच्छा तो तुम ही यह टोकरी रख लो। इसमें तुम्हारा परिश्रम लगा है। वैसे

भी आज मेरी इच्छा कुछ खाने की नहीं है। इस पर दोनों साधु खिलखिलाकर हंस पड़े। एक झगड़ा शुरू होने से पहले ही समाप्त हो गया। दूसरे साधु ने कहा- हम अपने मन को जीत चुके हैं। हमारे भीतर स्व की भावना समाप्त हो चुकी है इसलिए हम लड़ ही नहीं सकते। ऐसी ही भावना समाज के हर व्यक्ति के भीतर भरनी होगी।

१०९५) असली साधक कौन - पुराने जमाने की बात है। एक शिष्य अपने गुरु के आश्रम में कई वर्षों तक रहा। उसने उनसे शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। एक दिन उसने देखा कि उसके गुरु पानी पर चले आ रहे हैं। यह देखकर उसे बहुत हैरानी हुई। जब गुरु पास में आए तो वह उनके पैरों पर गिरकर बोला, आप तो बड़े चमत्कारी हैं। यह रहस्य आपने अब तक क्यों छिपाए रखा? कृपया मुझे भी यह सूत्र बताइए कि पानी पर किस प्रकार चला जाता है, अन्यथा मैं आपके पैर नहीं छोडूंगा? गुरु ने कहा, उसमें कोई रहस्य नहीं है। बस भरोसा करने की बात है। श्रद्धा चाहिए। श्रद्धा हो तो सब कुछ संभव है। इसके लिए उसका नामस्मरण ही पर्याप्त है जिसके प्रति तुम भक्ति रखते हो। वह शिष्य अपने गुरु का नाम रटने लगा। अनेक बार नाम जपने के बाद उसने पानी पर चलने की बात सोची पर जैसे ही पानी में उतरा कि डुबकी खा गया। मुंह में पानी भर गया। बड़ी मुश्किल से बाहर आया। बाहर आकर वह बड़ा क्रोधित हुआ। गुरु के पास जाकर बोला, आपने तो मुझे धोखा दिया। मैंने कितनी ही बार आपका नाम जपा, फिर भी डुबकी खा गया। यों मैं तैरना भी जानता हूं। मगर मैंने सोचा कि बहुत जप लिया नाम। अब तो पूरी हो गई होगी श्रद्धा वाली शर्त और जैसे ही पानी पर उतरा डूबने लगा। सारे कपड़े खराब हो गए। कुछ बात जंची नहीं। गुरु ने कहा, कितनी बार नाम का जाप किया? शिष्य ने कहा, हजार से भी ऊपर। किनारे पर खड़े-खड़े भी किया। पानी पर उतरते समय भी और डूबते-डूबते भी करता रहा। गुरू ने कहा, बस तुम्हारे डूबने का यही कारण है। मन में सच्ची श्रद्धा होती तो बस एक बार का जाप ही पर्याप्त था। बस एक बार नाम ले लेते तो बात बन जाती। सच्ची श्रद्धा गिनती नहीं अपने इष्ट के प्रति समर्पण मांगती है।

१०९६) क्रोध का स्पर्श- सुबह का समय था। काशी में गंगा के घाट पर स्नान करनेवाले श्रद्धालुओं की भारी भीड़ थी। कुछ गंगा में डुबकी लगाकर आ रहे थे तो कुछ स्नान के लिए जा रहे थे। एक संन्यासी गंगा स्नान करने के उपरांत घाट पर से ऊपर को जा रहे थे। स्नान घाट पर भीड़ तो रहती ही है फिर जब गंगा का घाट हो तो उस पर कुछ अधिक ही भीड़ रहा करती है। एक कर्मकांडी संत भी गंगा में डुबकी लगाने के बाद सीढ़ियों से ऊपर आ रहे थे। संत कर्मकांडी थे, इसलिए चाहते थे कि उनसे किसी का स्पर्श न हो। वह लोगों से बच-बचाकर ऊपर आ रहे थे, संन्यासी जी लोगों के स्पर्श से बचने के लिए सिकुड़ सिमटकर चल रहे थे, लेकिन संयोग से उनका स्पर्श एक चांडाल से हो गया। वह भी स्नान करके लौट रहा था। स्पर्श होते ही संत को क्रोध आ गया। न केवल इतना उन्होंने एक छोटा सा पत्थर सामने दिखा तो उसे उठाकर चाण्डाल को दे मारा। वह चांडाल से बोले, तू अंधा है क्या? देखकर नहीं चलता। अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा। चांडाल बोला, नहीं गुरुवर, मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन भीड़ इतनी ज्यादा है कि न चाहते हुए भी आप से स्पर्श हो गया। लेकिन संत का गुस्सा इससे शांत नहीं हुआ और उन्होंने उसे दो छड़ी जमा दी और बोले, इस चांडाल के छूने से मुझे दोबारा नहाना पड़ेगा। इतना कहकर संत दोबारा स्नान कर रहा है। संन्यासी को चांडाल के नहाने पर आश्चर्य हुआ। दोनों नहा कर जब ऊपर आए तो संत से रहा नहीं गया। उन्होंने कहा, मैं तो तुम्हारे छूने से स्नान करने गया था लेकिन तुम क्यों नहाने गए? चांडाल विनम्र भाव से बोला, गुरुवर, एक बात पूछूं, गंगा में हम दोनों ने एक साथ स्नान किया। स्नान करते समय किसी तरह की छुआछूत नहीं थी। उसी जल से आप भी नहा रहे थे और मैं भी। फिर बाहर आते ही हमारे स्पर्श से आप अपवित्र कैसे हो गए? रही बात दोबारा स्नान करने की, तो बाबा सबसे अपवित्र महाचंडाल तो क्रोध है। मैं

तो चांडाल हूं इसलिए अपवित्र हूं। लेकिन क्रोध तो एक चांडाल से भी ज्यादा अपवित्र है। क्रोध ने आपके भीतर प्रवेश करके मुझे छू दिया, इसलिए मुझे भी पवित्र होने के लिए स्नान करना पड़ा। इतना सुनते ही संत लज्जित हो गए और चुपचाप भीड़ में कहीं गुम हो गए। संत को ज्ञान हो गया कि वास्तव में उन्होंने अपराध किया है।

१०९७) भारत की पहचान- एक बार काशी के एक विद्वान लंदन की यात्रा पर गए हुए थे। सफेद कुर्ता-धोती और पैर में चप्पल पहने और कंधे पर झोला लटकाए वह वहां की सड़क पर चल रहे थे। जब वह एक गली के मोड़ पर पहुंचे तो उन्हें देख कर कुछ बच्चों को शरारत करने की सूझी। कई बच्चे आचार्य जी के पास आकर अंग्रेजी में अपशब्द कह कर उन्हें चिढ़ाने लगे। एकाध बच्चों ने उन पर कंकड़ भी फेंका, लेकिन आचार्य मुस्कराते हुए आगे चले जा रहे थे। बच्चों ने सोचा कि उन्हें तो अंग्रेजी आती नहीं होगी। कुछ दूर चलने पर भी जब बच्चों की शरारत नहीं थमी तो आचार्य जी खड़े हो गए और उन्हीं की भाषा में उन्होंने भारतीय संस्कृति के बारे में समझाया। उनकी जुबान से धारा प्रवाह अंग्रेजी सुन कर बच्चे चकित रह गए। अंत में आचार्य ने उन बच्चों से कहा, इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। तुम्हें भारतीय संस्कृति और सभ्यता के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है इसलिए तुम लोग ऐसा व्यवहार करते हो। आओ मेरे साथ, मैं तुम्हें कॉफी पिलाता हूं।

कॉफी पीने के बाद सभी बच्चे आचार्य जी से क्षमा मांगते हुए कहने लगे, भारतीय इतने विद्वान और सहिष्णु होते हैं, हमें इसकी जानकारी थी ही नहीं। थोड़ी दूरी पर बैठा एक दूसरा भारतीय पूरा तमाशा देख रहा था। वह आचार्य जी के पास आकर बोला, इन बच्चों के इतना परेशान करने पर भी आपको गुस्सा नहीं और उन्हें कुछ कहने की बजाय आपने उनको कॉफी क्यों पिलाई। आचार्य ने कहा, देखो भाई, उन बच्चों का इसमें कोई कसूर नहीं है। भारत के बारे में उन्हें जो बताया गया है, वे उसी तरह का व्यवहार करते हैं। उन्हें यह मालूम ही नहीं है कि भारतीय जैसा सहिष्णु और दुनिया में कोई नहीं होता। यदि मैं उन पर गुस्सा करता या उनकी तरह ही व्यवहार करता तो उनकी सोच और पुख्ता होती। इस समय अपने देश की संस्कृति, सभ्यता और विद्वता को यदि इन बच्चों तक पहुंचाना है तो गुस्सा पीकर इनसे विनम्र बनो, कठोर नहीं। इसलिए मैंने उन्हें कॉफी पिलाई।

१०९८) मेहनत की कमाई- पुराने जमाने की बात है। काशी में एक संत रहते थे। वह रोजाना कुछ देर मेहनत-मजदूरी करते और उसीसे अपने भोजन-पानी की व्यवस्था करते थे। यह खबर धीरे-धीरे काशी नरेश के पास पहुंची तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और दुख भी कि उनके राज्य में एक महात्मा को मजदूरी करनी पड़ती है। काशी नरेश उनसे मिलने चल पड़े। उन्होंने एक जगह संत को काम करते देखा, तो हैरान रह गए। वह शाम को उनकी कुटिया पर पहुंचे। उन्होंने कपड़े, अनाज व धन उनके सामने रखे और कहा, आप जैसे संत-महात्मा को मजदूरी करके पेट भरना पडा यह मेरे लिए लज्जा की बात है। आपके आशीर्वाद से हमारे पास पर्याप्त धन है, सुख समृद्धि है। कृपया मेरी इस तुच्छ सेवा को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। संत ने विनम्रतापूर्वक कहा, राजन्, बिना मेहनत किए दूसरे के धन से अपना काम चलाने वाला कभी हृदय से सच्ची बात कहने की सामर्थ्य नहीं रखता। जिसका दिया अन्न वह खाएगा उसके प्रति पक्षपात की भावना उसे निष्पक्ष नहीं रहने देगी। इसलिए जब तक मेरे हाथ-पैरों में काम करने की शक्ति है, मुझे श्रम करके अपना काम चलाने दें। यह कहकर संत ने सारा सामान वापस कर दिया। काशी नरेश सिर झुकाकर वापस चले आए।

१०९९) धर्म की भूमिका- काशी के एक संत गंगा किनारे कुटी बनाकर रहते थे। एक बार वह प्रवचन करने किसी दूसरे आश्रम में जा रहे थे। रास्ते में एक व्यापारी मिला। संत ने उससे पूछा, क्या पीपल बाबा के आश्रम का रास्ता यही है? व्यापारी बोला, हां मैं भी उधर ही जा रहा हूं। आप भी मेरे साथ चलिए। दोनों चलने लगे। व्यापारी ने पूछा, आप तो विद्वान संत है। एक बात समझ में नहीं आती कि आप जैसे संत के होते हुए भी देश में अराजकता फैली हुई है। कोई धर्म

के रास्ते पर चलता ही नहीं। ऐसे धर्म का क्या फायदा कि लोग अपनी बुराई छोड़ते ही नहीं और ऐसे महात्माओं का क्या फायदा जिनके प्रवचनों का असर लोगों पर पड़ता ही नहीं। संत ने पूछा, आप क्या करते हैं? व्यापारी ने कहा, मेरा साबुन बनाने का कारखाना है। इतने में एक किसान भी आ गया। वह दोनों की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। संत ने उसकी तरफ इशारा करते हुए कहा, तुम्हारे कपड़े तो बहुत गंदे हैं। सफाई क्यों नहीं करते? किसान ने कोई जवाब नहीं दिया। संत ने व्यापारी से कहा, ऐसे साबुन बनाने से क्या फायदा कि लोगों के कपड़े अब भी गंदे हैं। इस पर व्यापारी बोला, महात्मा जी, इसमें साबुन का क्या दोष। साफ-सुथरा रहने के लिए लोगों को स्वयं साबुन से कपड़े धोने चाहिए। कुछ लोगों की आदत ही होती है गंदा रहने की। संत मुस्करा कर बोले, तुम ठीक कहते हो। इसी तरह संतों का काम लोगों को अच्छे गुण सिखाना है और धर्म के बारे में लोगों को जागृत करना है। यह काम तो लोगों का है कि वे संतों की वाणी को अपने जीवन में उतारें। मगर कुछ लोगों के अनसुना करने से न तो धर्म का महत्त्व कम होता है और न ही महात्माओं का। जिस तरह कई लोग साबुन का लाभ उठाते हैं उसी तरह संतों की वाणी का बहुत से लोगों पर गहरा असर पड़ता है।

११००) प्रश्न और उत्तर- काशी के एक संत के पास एक छात्र आया और बोला, गुरुदेव, आप प्रवचन करते समय कहते हैं कि कटु से कटु वचन बोलनेवाले के अंदर भी नरम दिल होता है लेकिन इसका कोई उदाहरण आज तक नहीं मिला। प्रश्न सुनकर संत गंभीर हो गए। बोले, वत्स, इसका जवाब मैं कुछ समय बाद दे पाऊंगा। एक महीना बाद छात्र संत के पास पहुंचा। उस समय संत प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन समाप्त होने के बाद संत ने गरीब का एक सख्त गोला छात्र को दिया और बोले, वत्स, इसे तोड़ कर इसकी गरी निकाल कर सभी भक्तों में बांट दो। छात्र गोला लेकर उसे तोड़ने लगा। गोला बहुत सख्त था। बहुत कोशिश करने के बाद भी नहीं टूटा। छात्र ने कहा, गुरुदेव यह बहुत कड़ा है। कोई औजार हो तो उससे इसे तोड़ दूं। संत बोले, औजार लेकर क्या करेगा। कोशिश करो, टूट जाएगा। वह फिर तोड़ने लगा। इस बार गोला टूट गया। उसने उसमें से गरी निकालकर भक्तों को बांट दिया और एक कोने में बैठ गया। एक-एक करके सभी भक्त चले गए। संत भी उठकर जाने लगे तो छात्र बोला, गुरुदेव, अभी तक हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला कि कठोर आदमी के अंदर नरम दिल कहां होता है। संत मुस्कराकर बोले, वत्स तुम्हें, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल चुका है लेकिन तुमने उसे समझा नहीं। छात्र ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं गुरुदेव। संत ने कहा, वत्स, जिस प्रकार कड़े गोले में नरम गरीब भरी होती है उसी प्रकार कठोर से कठोर व्यक्ति में भी कहीं न कहीं नरम दिल होता है। लेकिन उसे किसी औजार से बाहर नहीं निकाला जा सकता। वह तो बार-बार के प्रयास से ही दिखाई देगा। यदि कोई कटु वचन बोलता है तो उसे भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण करने और उसके प्रति मृदु व्यवहार करने से ही किसी का स्वभाव बदला जा सकता है।

११०१) मेहनत की कमाई - काशी में एक कर्मकांडी पंडित का आश्रम था, जिसके सामने एक जूते गांठनेवाला बैठता था। वह जूतों की मरम्मत करते समय कोई न कोई भजन जरूर गाता था। लेकिन पंडित जी का ध्यान कभी उसके भजन की तरफ नहीं गया था। एक बार पंडित जी बीमार पड़ गए और उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। उस समय उन्हें वे भजन सुनाई पड़े। उनका मन रोग की तरफ से हट कर भजनों की तरफ चला गया। धीरे-धीरे उन्हें महसूस हुआ कि जूते गांठनेवाले के भजन सुनते-सुनते उनका दर्द कम हो रहा है। एक दिन एक शिष्य को भेज कर उन्होंने उसे बुलाया और कहा, भाई तुम तो बहुत अच्छा गाते हो। मेरा रोग बड़े-बड़े वैद्यों के इलाज से ठीक नहीं हो रहा था लेकिन तुम्हारे भजन सुनकर मैं ठीक होने लगा हूं। फिर उन्होंने उसे सौ रुपये देते हुए कहा, तुम इसी तरह गाते रहना। रुपये पाकर जूते गांठने वाला बहुत खुश हुआ। लेकिन पैसा पाने के बाद से उसका मन कामकाज से हटने लगा। वह भजन गाना भूल गया। दिन-

रात यही सोचने लगा कि रुपये को कहां संभालकर रखे। काम में लापरवाही के कारण उसके ग्राहक भी उस पर गुस्सा करने लगे। धीरे-धीरे उसकी दुकानदारी चौपट होने लगी। उधर भजन बंद होने से पंडित जी का ध्यान फिर रोग की तरफ जाने लगा। उनकी हालत फिर बिगड़ने लगी। एक दिन अचानक जूते गांठनेवाला पंडित जी के पास पहुंचकर बोला- आप अपना पैसा रख लीजिए। पंडित जी ने पूछा, क्यों, क्या किसीने कुछ कहा तुमसे? जूते गांठनेवाला बोला, कहा तो नहीं, लेकिन इस पैसे को अपने पास रखूंगा तो आपकी तरह मैं भी बिस्तर पकड़ लूंगा। इसी रुपये ने मेरा जीना हराम कर दिया। मेरा गाना भी छूट गया। काम में मन नहीं लगता, इसलिए कामकाज ठप हो गया। मैं समझ गया कि अपनी मेहनत की कमाई में जो सुख है, वह पराये धन में नहीं है। आपके धन ने तो परमात्मा से भी नाता तुड़वा दिया।

११०२) सच्चा आशीर्वाद - काशी के एक संत उज्जैन पहुंचे। उनकी प्रशंसा सुन उज्जैन के राजा उनका आशीर्वाद लेने आए। संत ने आशीर्वाद देते हुए कहा, सिपाही बन जाओ। यह बात राजा को अच्छी नहीं लगी। वह अनमने भाव से लौट आए। दूसरे दिन राज्य के प्रधान पंडित संत के पास पहुंचे। संत ने कहा, अज्ञानी बन जाओ। पंडित नाराज होकर लौट आए। इसी तरह जब नगर सेठ आया तो संत ने आशीर्वाद दिया, सेवक बन जाओ। संत के आशीर्वाद की चर्चा राज दरबार में हुई। सभी ने एक स्वर से कहा कि यह संत नहीं कोई धूर्त है तभी अनाप-शनाप आशीर्वाद देता है। राजा ने संत को पकड़कर लाने का आदेश दिया। पहरेदार संत को पकड़कर राजा के पास ले आए। राजा ने कहा, तुमने आशीर्वाद के बहाने सभी लोगों का अपमान किया है इसलिए तुम्हें दंड दिया जाएगा। यह सुनकर संत हंस पड़े। राजा ने इसका कारण पूछा तो संत ने कहा, इस राज दरबार में क्या सभी मूर्ख है? ऐसे मूर्खों से राज्य को कौन बचाएगा। राजा ने कहा, क्या बकते हो? संत ने कहा, ठीक कहता हूं राजन्। जिन कारणों से आप मुझे दंड दे रहे हैं, उन्हें किसी ने समझा ही नहीं। राजा का कर्म है, राज्य की सुरक्षा करना। जनता के सुख-दुख की हर वक्त चौकसी करना। सिपाही का काम भी रक्षा करना है इसलिए मैंने आपको कहा था कि सिपाही बन जाओ। प्रधान पंडित ज्ञानी और धनी होता है। जिस व्यक्ति के पास ज्ञान और दौलत दोनों हो, वह अहंकारी हो जाता है। पर यदि वह ज्ञानी होने के अहसास से बचा रहे तो अहंकार से भी बचा रह सकता है इसलिए मैंने पंडित को अज्ञानी बनने को कहा था। नगर सेठ धनवान होता है। उसका कर्म है गरीबों की सेवा, इसलिए मैंने उसे सेवक बनने का आशीर्वाद दिया था। अब आप ही बताइए कि मैं हंसूं या रोऊं। राजा ने संत से क्षमा याचना की।

११०३) सच्चा शिष्य- पुराने जमाने की बात है। एक अत्यंत वृद्ध संन्यासी थे। वह यह सोचकर हमेशा परेशान रहते थे कि उनके बाद कौन उनके कार्य को आगे बढ़ाएगा। उनके कई शिष्य थे पर उनमें से किसी को भी वह अपना उत्तराधिकारी बनाने लायक नहीं समझते थे। एक दिन वह अपने शिष्यों के साथ भ्रमण पर निकले। वे एक नदी किनारे पहुंचे। नदी का पानी उफान पर था। संन्यासी ने कहा, आप लोगों में कौन इतना सक्षम है जो नदी का जल स्तर ज्ञात कर सके। सभी शिष्य चुपचाप एक-दूसरे का मुंह ताक रहे थे। उनकी चुप्पी देख संन्यासी ने कहा, तुम सभी युवक हो पर मैं तो बूढ़ा हो चुका हूं, इसलिए मैं ही नदी का जल स्तर माप लेता हूं। अगर मुझे कुछ हो भी जाए तो मेरी संपत्ति तुम लोग ले लेना और मेरे कार्य को आगे बढ़ाना।

यह सुनकर भी किसी शिष्य के चेहरे पर शिकन तक न आई। वहीं पास में एक खेत में काम कर रहा एक किसान सारी बातें सुन रहा था। उससे रहा नहीं गया। वह हाथ जोड़े आया और बोला, महात्मन, आप तो ज्ञानी हैं। फिर आप नदी का जल स्तर माप कर अपनी जान क्यों खतरे में डाल रहे हैं। आपको तो अभी इस संसार में ज्ञान की ज्योति फैलानी है। आप मुझे आज्ञा दें। मैं आप सबको बारी-बारी से नदी के पार उतार दूंगा।

संन्यासी किसान की बात सुनकर प्रसन्न हुए और बोले, वत्स मुझे इसी घड़ी की प्रतीक्षा थी। आज से तुम मेरे शिष्य हो। तुम ही मेरे कार्य को आगे बढ़ाओगे। किसान ने कहा, पर मैं तो अनपढ़ हूं। मैं कैसे संसार को शिक्षा दे सकता हूं। इस पर संन्यासी मुस्कराए और बोले, गुरु का संन्यासी होना जरूरी नहीं है। वह गृहस्थाश्रम में रहकर भी शिक्षा का प्रसार कर सकता है। जब तुम एक-एक कर सबको नदी पार करा सकते हो तो ज्ञानसागर पार कराने में तुम्हें क्या कठिनाई होगी। इसलिए मेरा पद संभालो। मैं निश्चिंत हो गया, क्योंकि मुझे सच्चा शिष्य मिल गया है।

११०४) संत का स्वभाव- किसी गांव में एक संत रहते थे। वह सबको अपना मित्र समझते और उनकी सहायता करते थे। अगर कोई दुष्ट व्यक्ति उनकी उदारता का अनुचित लाभ उठाने की कोशिश भी करता, तो वह उसे क्षमा कर देते और कहते, कभी जब इसका अच्छा समय आएगा तो यह स्वयं ही सुधर जाएगा। गांव वाले संत से कहते, आप इसे कोई दंड दे दो। वह कहते, मैं अपना मूल स्वभाव कैसे छोड़ दूं। मैंने उसे क्षमा कर दिया। एक बार जब संत काशी गए, तो किसी दुष्ट व्यक्ति ने उनकी कुटिया से सारा सामान गायब कर दिया। संत लौटकर अपनी कुटिया में गए और तत्काल निर्विकार भाव से बाहर आए। फिर उन्होंने बाहर खड़े गांव वालों से कहा, भगवान की मुझ पर असीम कृपा है। धूप में सिर छुपाने के लिए छत अभी बची हुई है। वह मुझे आंधी और वर्षा से भी बचाएगी। भोजन की व्यवस्था तो कहीं न कहीं से हो ही जाएगी। बाकी मुझे क्या चाहिए। जो चीज मेरे उपयोग की न थी, उनका चले जाना ही अच्छा है। गांव वाले उनके विशाल हृदय की प्रशंसा करते हुए उनके लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में लग गए। थोड़ी देर में वह व्यक्ति भी आया जिसने संत का सामान चुराया था। उसने संत के चरणों में गिरकर क्षमा मांगी।

११०५) क्रोध का रूप- एक संत अपने अनुयायी के घर पहुंचे। दोनों में बातचीत होने लगी। तभी एक पागल व्यक्ति आया और संत के अनुयायी को भला-बुरा कहने लगा। अनुयायी सहता रहा, पर शीघ्र ही वह आपा खो बैठा और उस पागल को अपशब्द कहने लगा। संत उठकर जाने लगे। यह देख उनका अनुयायी बोला, जब तक यह पागल मुझे दुर्वचन कहे जा रहा था, तब तक तो आप कुछ न बोले पर जब मैं उसका जवाब देने लगा, तो आप उठकर चल दिए। ऐसी क्या बात हुई ? संत ने बड़े संयत स्वर में कहा, तुम इस व्यक्ति के बारे में अच्छी तरह जानते हो। जब तुम शांति से इसके दुर्वचनों को सह रहे थे तब देवता तुम्हारे पास थे और तुम्हारी ओर से उत्तर दे रहे थे, लेकिन जब तुमने अपना धैर्य त्याग कर उस व्यक्ति के आचरण का अनुगमन किया तो तुम्हारे भीतर देवता के बदले असुर आ गए। यह क्रोध असुर ही है। मैं असुर के संग नहीं रह सकता। अनुयायी बहुत लज्जित हुआ। उसने संत से क्षमा मांगी।

११०६) भगवान का दरवाजा- एक साधक भगवान की पूजा-उपासना तथा स्वाध्याय में लीन रहता था। उनके निवास-स्थान के पास ही एक गरीब वृद्ध रहता था। एक दिन वह बीमार हो गया। उसके कराहने की आवाज आई। साधक ने सोचा चलकर उसकी सेवा सहायता की जाए। फिर सोचा ऐसा करने से पूजा-उपासना में बाधा पहुंचेगी। वह उपासना में लगा रहा। कुछ दिन बाद उसे लगा कि उपासना करते-करते काफी समय बीत चुका है। क्यों न भगवान के दर्शन किए जाएँ। वह गया तथा भगवान का दरवाजा खटखटाने लगा। भगवान ने पूछा, कौन है जो दरवाजा खटखटा रहा है ? भक्त ने कहा, मैं तुम्हारा भक्त हूं। दरवाजा खोलो। भगवान ने उत्तर दिया, अभी तुम दर्शनों के पात्र नहीं बन पाए हो। उपासना अधूरी है, फिर आना। भक्त वापस लौट गया। रात को जैसे ही उसे पड़ोसी के कराहने की आवाज सुनाई दी, वह पूजा छोड़कर उसकी सेवा करने पहुँचा। वह उपासना के साथ-साथ सेवा-सहायता में भी तत्पर रहने लगा। कुछ समय बाद वह पुन: भगवान के द्वार पहुंचा। जैसे ही उसने दरवाजा खटखटाया कि भगवान ने पूछा, कौन है ? भक्त ने कहा, तू ही तो

है जो तेरा दरवाजा खटखटा रहा है। अपने को भी नहीं पहचाना भगवन। अब पहचान लिया है। दरवाजा खुला है, अंदर आ जाओ। भगवान ने उसे अपने पास बुला लिया।

११०७) मनोविकारों से बचें- एक सन्त थे। उनके पास प्रतिदिन एक चोर आया करता और ईश्वर के दर्शन करने के उपाय पूछता। सन्त हमेशा यह कहकर टाल देते थे कि समय आने दो बताऊंगा। एक बार चोर के बहुत आग्रह करने पर वे बोले- सामने पहाड़ की जो ऊँची चोटी है वहाँ तक तुम सिर पर छ: पत्थर लेकर चढ़ो। तब मैं तुम्हें ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताऊँगा। चोर मान गया। सन्त ने उसे अपने पीछे चलने का संकेत किया। सिर पर पत्थर लेकर चढ़ता चोर थक चुका था। उसने कहा- भगवन। अब नहीं चला जाता मैं थक चुका हूँ। सन्त ने कहा ठीक है। एक पत्थर फेंक दो। यह क्रम तब तक चलता रहा जब तक चोर के सिर से छहों पत्थर न फिकवा दिए गए। तब जाकर चोर ऊपर चोटी तक पहुँचने में सफल हो पाया। चोटी पर पहुँचकर सन्त ने उसे समझाया। भाई। जिस प्रकार तुम सिर पर भारी पत्थर लेकर चढ़ने में असफल रहे उसी प्रकार जीवन में मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर जैसे मनोविकारों का बोझ ढोकर ईश्वर दर्शन नहीं कर पाता। ईश्वर-दर्शन हेतु इन सभी मनोविकारों का बोझ उतारना अनिवार्य है। उदाहरण से यह बात चोर की समझ में आई।

११०८) आत्मिक उन्नति- एक महात्मा हिमालय पर रहते थे। एक दिन कुछ लोगों की टोली उनके पास पहुंची। उन्होंने आत्मिक उन्नति का रास्ता पूछा। महात्मा बोले, दुनिया में रहकर आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती। लोग दुनिया की मोह-माया में फंस जाते हैं और उनकी आत्मा पर पर्दा पड़ जाता है। यह कहकर उन्होंने लोगों से पूछा, क्या आप लोग गोमुख जाएंगे। वहां मेरा एक शिष्य रहता है। उससे मिल लेना। पहले वह मेरे साथ ही रहता था पर मुझे छोड़कर चला गया। पता नहीं अब वह कैसा होगा। यह कहते ही महात्मा की आँखों में आंसू आ गए। इस पर उस टोली के एक सदस्य ने कहा, अभी आप हमें मोह छोड़ने का उपदेश दे रहे थे, जबकि आप खुद मोहग्रस्त हैं। इस पर महात्मा बोले, मेरे आंसू मोह के नहीं प्रेम के हैं। मोह बांधता है, जबकि प्रेम उबारता है।

११०९) गुरु की आवश्यकता- पुराने जमाने की बात है। एक संत के पास एक युवक आया। आते ही उसने सवाल किया, मैंने गीता और रामायण का जमकर अध्ययन किया है। मैंने उन्हें कंठस्थ कर लिया है। इसके अलावा भी मैंने शास्त्रों को पढ़ा है। मैं उन पर प्रवचन दे सकता हूं। यह सब मैंने खुद ही किया है। क्या फिर भी मुझे किसी गुरु की आवश्यकता है ?

संत मुस्कराए, फिर बोले, कुछ दिनों बाद इसका उत्तर दूंगा। बाद में आना। युवक को समझ में नहीं आया कि संत ने अभी क्यों नहीं जवाब दिया। कुछ दिनों के बाद वह फिर आया। संत ने उसे एक लिफाफा देते हुए कहा, इसे तुम्हें पास के एक गांव में पहुंचाना है। वह गांव नदी के उस ओर है। तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है। नदी तट पर तुम्हें नाव के साथ नाविक तैयार मिलेंगे। वह युवक लिफाफा लेकर चल पड़ा।

दूसरे दिन वह प्रात:काल नदी के तट पर पहुंचा। वहां नाव तैयार थी। नाव में बैठते ही उसे ध्यान आया कि उसे गांव का रास्ता तो मालूम ही नहीं और उसने संत से इसके बारे में पूछा भी नहीं। उसने नाविक से पूछा तो उसे भी मालूम नहीं था। वह वापस संत के पास आया। उसने संत से गांव तक पहुंचने का सबसे सुगम मार्ग जानना चाहा। इस पर संत ने कहा, यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। तुम्हारे पास साधन है और साध्य भी, पर साध्य तक पहुंचने का मार्ग तुम्हें मालूम नहीं। तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि तुम्हें जाना कहां है, मगर रास्ते का पता न होने के कारण तुम बीच में ही ठिठके हो, इसलिए तुम्हें एक ऐसा मार्गदर्शक चाहिए जो उस रास्ते को जानता हो। ठीक उसी तरह जैसे तुमने शास्त्रों का अध्ययन तो कर

लिया है पर उनकी गहराई में उतरने के लिए तुम्हें गुरु की आवश्यकता है। युवक को उसका उत्तर मिल गया। उसने संत के चरण पकड़ लिए और उनसे ज्ञान देने की प्रार्थना की। संत ने उसे अपना शिष्य बना लिया।

१११०) आत्मा की महत्ता- एक राजा ने किसी महात्मा की बहुत ख्याति सुनी। एक बार अवसर निकाल कर उनसे मिलने वह उनकी कुटिया पर पहुँचा। महात्मा को आदर नमन करने के बाद महात्मा ने पूछा, कहो राजन्। कैसे आना हुआ? राजा ने बताया कि वह आत्मा का महत्व जानना चाहता है। क्योंकि सभी बड़े सयाने उससे अपनी आत्मा को स्वच्छ और महान बनाने की बात कहते हैं। महात्मा राजा को आत्मा की महत्ता समझाने लगे, लेकिन राजा उनकी बात सुने ही नहीं, वह बार-बार अपने राज की महानता बखानने लगे। वह बताने लगे कि हीरे-जवाहरातों का कितना महत्व है, सेना का कितना महत्व है। राजा की ऐसी बातें सुनकर महात्मा ने उनसे पूछा, राजन्। यदि तुम कहीं रेगिस्तान में फँस जाओ और प्यास से तुम्हारे प्राण निकलने लगें, उस समय कोई पानी के बदले यदि तुम्हारा आधा राज्य मांगे तो दोगे या नहीं ? राजा ने कहा, दूंगा। फिर महात्मा ने पूछा, यदि तुम इतने बीमार पड़ जाओ कि बचने की कोई उम्मीद न रहे, तब यदि कोई वैद्य शर्त के साथ इलाज करे और अच्छा करने की कीमत आधे हीरे-जवाहरात मांग ले तो दोगे या नहीं ? राजा ने कहा, दूंगा। महात्मा राजा का उत्तर सुनकर खिलखिला कर हंस पड़े, फिर कहा, जो राज-पाट एक लोटा पानी और एक शीशी दवा के बदले दिया जा सकता है उसका महत्व आत्मा से बढ़कर कैसे हो सकता है ? जिस जीवन की रक्षा के लिए मनुष्य बड़े से बड़ा काम कर सकता है, उस जीवन के उत्कर्ष के लिए उसे राजपाट से बड़ी चीज का त्याग करने को उद्यत होना चाहिए। इसी से आत्मा शुद्ध होती है।

११११) सेवाधर्म महान- एक बार एक महात्मा को शास्त्रार्थ हेतु सभा में आमंत्रित किया गया। वे मंच पर पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति के हाथ में दर्द है और वह कराह रहा है। महात्माजी तुरंत उस पीड़ित व्यक्ति के पास गए और उसके कष्टों का निवारण करने का प्रयास करने लगे। उन्हें ऐसा करते देख आलोचकों ने कहना प्रारंभ किया- महात्माजी, आप तो यहां शास्त्रार्थ करने के लिए आए थे। उससे हटकर सेवा करने लग गए। लगता है आप शास्त्रार्थ से घबरा रहे हैं। महात्माजी ने बहुत ही सौम्य एवं शांत स्वर में कहा- मित्रों, क्या आप लोगों में से कोई ऐसा है जिसका एक ही बेटा हो और वह कुएं में गिर जाए तब भी आप विचलित नहीं होंगे। आलोचक वर्ग शांत हो गया। महात्माजी ने ज्ञान देते हुए कहा शास्त्रार्थ तो हर कोई कर लेगा लेकिन पीड़ितों की सेवा नहीं। मेरा कर्म ही पीड़ितों की सेवा करना है।

१११२) अपने अवगुण की पहचान- एक बार एक व्यक्ति ने किसी संत से कहा कि महाराज मैं बहुत नीच हूं, मुझे कुछ उपदेश दीजिए। संत ने कहा अच्छा जाओ, जो तुम्हें अपने से नीच, तुच्छ और बेकार वस्तु लगे उसे ले आओ। वह व्यक्ति गया और उसने सबसे पहले कुत्ते को देखा। कुत्ते को देखकर उसके मन में विचार आया कि मैं मनुष्य हूं और यह जानवर, इसलिए यह मुझ से जरूर नीच है। लेकिन तभी उसे ख्याल आया कि कुत्ता तो वफादार और स्वामिभक्त जानवर है और मुझसे तो बहुत अच्छा है। फिर उसे एक कांटेदार झाड़ी दिखाई दी और उसमें मन में सोचा कि यह तो अवश्य ही मुझसे तुच्छ और बेकार है परन्तु फिर ख्याल आया कि कांटेदार झाड़ी तो खेत मे बाड लगाने के काम आती है और फसल की रक्षा करती है। मुझसे तो यह भी बेहतर है। आगे उसे गोबर का ढेर दिखाई दिया। उसने सोचा गोबर अवश्य ही मुझसे बेकार है। परन्तु सोचने पर उसे समझमे आया कि गोबर से तो खाद बनती है और वह चौका तथा आंगन लीपने के काम आता है। इसलिए यह मुझसे बेकार नहीं है। उसने जिस जिस चीज को देखा वही उसे खुद से अच्छी लगी। वह निराश होकर खाली हाथ संत के पास गया और बोला महाराज, मुझे अपने से तुच्छ और बेकार वस्तु दूसरी नहीं मिली। संत ने

उस व्यक्ति को शिष्य बना लिया और कहा कि जब तक तुम दूसरों के गुण और अपने अवगुण देखते रहोगे तब तक तुम्हें किसी के उपदेश की जरूरत नहीं।

१११३) आदतों की जड़- एक वयोवृद्ध विद्वान थे जो अपनी समझ-बूझ और विद्वता के लिए प्रसिद्ध थे। एक बार एक धनी व्यक्ति अपने पुत्र को लेकर उस विद्वान के पास आए और निवेदन करते हुए बोले कि किसी भी तरह मेरे इस बालक की बुरी आदतें छुड़वा दीजिए। उसने बालक के बारे में एक-एक बुरी आदत का बखान कर दिया। धनी व्यक्ति ने विद्वान को यह भी बताया कि किस तरह पिछले कुछ सालों से वह उसकी आदतें छुड़ाने का प्रयास करता रहा, लेकिन सफल नहीं हो पाया। विद्वान उस बालक को एक बगीचे में घुमाने ले गए। एक स्थान पर रुके और एक नन्हे पौधे की ओर संकेत करते हुए बोले, बेटा उसे उखाड़ दो। बालक ने पौधे को सहज ही उखाड़ दिया। पौधा बहुत छोटा था, सो उसे ज्यादा ताकत नहीं लगानी पड़ी। फिर विद्वान ने उसे जरा बड़ा पौधा उखाड़ने के लिए कहा। किशोर ने जरा जोर लगाया और उसे भी जड़ के साथ उखाड़ लिया। विद्वान ने एक झाड़ी की ओर संकेत किया, अब इसे उखाड़ो। बालक ने अपनी सारी ताकत लगाकर उसे भी उखाड़ दिया। अन्त में विद्वान ने उसे एक अमरूद का पेड़ उखाड़ने के लिए कहा। किशोर ने पेड़ के तने को पकड़कर अपनी पूरी शक्ति लगा दी परन्तु पेड़ टस से मस नहीं हुआ। उसकी सांस फूल गई, उसने हार मान ली और कहा- श्रीमान, इस पेड़ को उखाड़ना असंभव है। तब विद्वान ने उस बालक को समझाते हुए कहा- बेटा, बुरी आदतों की यही दशा होती है। शुरू में उनको उखाड़ फेंकना सरल होता है, परन्तु जब उनकी जड़ें फैल जाती हैं, तो फिर उन्हें पूरी ताकत से उखाड़ने की कोशिश करने पर भी नहीं उखाड़ा जा सकता। इसलिए तुम अपनी बुरी आदतों को अभी छोड़ दो। बालक के मन में विद्वान की बात पैठ गई और उस दिन से धीरे-धीरे उसकी बुरी आदतें जाती रहीं। श्रेष्ठ जन इसी तरह अपनी कुशाग्र बुद्धि और अनूठे ढंग से हमारी बुरी आदतें दूर करते हैं।

१११४) एक शिष्य सदैव अपने गुरु की आज्ञा का पालन करता, उनकी मन लगाकर सेवा करता तथा अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता। एक दिन वह गुरु से बोला, गुरुदेव आज मैं २५ वर्ष का हो गया हूं। क्या अभी भी मेरी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई ? गुरु ने स्नेहपूर्वक उसे देखा और कहा, पुत्र तुम्हारी शिक्षा तो पूर्ण हो गई है, लेकिन उस शिक्षा की परीक्षा पूरी नहीं हुई है। शिष्य ने आश्चर्य से पूछा, कैसी परीक्षा गुरुदेव ? गुरु ने कहा, तुम इस जंगल से ऐसी वनस्पति ढूंढकर लाओ, जिसका कुछ भी उपयोग न हो। शिष्य तत्काल जंगल चला गया और कुछ समय बाद वापस आकर बोला, गुरुदेव, इस जंगल में तो क्या, संपूर्ण संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो व्यर्थ हो। अत: मुझे जंगल में भी ऐसी कोई वनस्पति नहीं मिली जो उपयोगी न हो। गुरु ने प्रसन्न होकर कहा, पुत्र अब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण हो गई है, क्योंकि तुम प्रत्येक कण का महत्व समझ गए हो।

१११५) असली उपहार - एक संत तीर्थ यात्रा पर निकले हुए थे। एक जगह प्यास बुझाने के लिए जब वे झरने का मीठा पानी पीने पहुंचे तो वहीं एक चमकती हुई चीज ने उनका ध्यान खींचा। पानी पी लेने के बाद वे उस चीज के करीब गए तो देखा कि वह एक सोने की थाली थी। संत ने थाल उठाकर अपने थैले में रख ली और वहीं एक पेड़ के नीचे सुस्ताने लगे।

इतनी ही देर में एक थकामांदा नौजवान वहां पहुंचा। संत को देखकर वह वहीं रुक गया और संत से बोला- मैंने दो दिन से कुछ नहीं खाया और अभी मुझे लंबी यात्रा करनी है, क्या आपके पास इस साथी मुसाफिर के लिए खाने को कुछ है ?

संत ने अपने झोले की ओर इशारा करते हुए कहा कि उसमें खाने का थोड़ा सामान रखा हुआ है, वह खुद निकाल ले। यह सुनकर युवक ने थैले में हाथ डाला। उसके हाथ में वही सोने का थाल आया। एकबारगी उसकी चमक से उसकी

आंखें चौंधिया गईं। उसने फिर थैले में हाथ डाला तो उसके हाथ कुछ लड्डु आ गए। वह फटाफट लड्डु खाने लगा। जाते-जाते वह संत से बोला- आप बड़े सौभाग्यशाली हैं कि ऐसी संपत्ति आपके पास है। संत उसकी बात सुनकर मुस्कराते हुए बोले- चाहों तो इस संपत्ति को मेरी ओर से उपहार समझ ले जाओ। युवक ने थैले से थाल निकल लिया और यह सोचकर कि कहीं संत अपनी बात से पलट न जाएं, उसे लेकर वह सरपट भागा। लेकिन थोड़ी दूर पहुंचकर अचानक युवक रुक गया। उसे इस तरह संत का मुस्कराते हुए सोने का थाल किसी अपरिचित को पकड़ा देना अजीब लगा। वह संत के पास लौट आए। युवक ने थाल को संत के पैरों पर रखते हुए कहा- हे महात्मन्, आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आपके पास इस थाल से भी कीमती चीज है, मैं उसे उपहार में लेना चाहता हूं। संत ने किंचित विस्मय से युवक को देखा। तब युवक बोला- मुझे यह थाल नहीं वह भाव उपहार में दें, जिसने हंसते हुए आपको यह कीमती थाल मुझे देने दिया। मेरे लिए वही असली उपहार होगा।

१११६) ईश्वर की तलाश- एक सेठ था, जिसके पास जीवन की सुख-सुविधाओं की कोई कमी न थी। लेकिन उसके चित्त में शांति नहीं थी। वह सदा अशान्त रहता था। एक बार उसके शहर में एक बहुत बड़े महात्मा आए। उन्होंने प्रवचन में बताया कि परमात्मा को पाने से वास्तविक शांति मिल सकती है, इसलिए उसकी तलाश करो और अपने जीवन को सार्थक करो। सेठ महात्मा की बात से बहुत प्रभावित हुआ, इतना प्रभावित कि एक दिन सचमुच परमात्मा की तलाश में घर से निकल पड़ा। वर्षों एक शहर से दूसरे शहर तक भटकता रहा। उसे जो भी जहां भी ईश्वर के मिलने की संभावना बताता, वह वहां चला जाता। परन्तु उसे ईश्वर के दर्शन नहीं हुए। उसकी व्यग्रता बढ़ती गई। वह अपना घर, अपना शहर सब भूल गया। व्यापार लगभग चौपट हो गया। स्वास्थ्य भी गिरने लगा, लेकिन शांति के लिए परमात्मा से मिलने की उसकी ललक समाप्त नहीं हुई थी। वह दृढ़ निश्चय से आगे ही बढ़ता गया।

इस यात्रा के दौरान सेठ एक नए शहर में पहुंचा। उसे मालूम चला कि शहर में किसी महात्मा का प्रवचन चल रहा है। वह प्रवचन सुनने चला गया। प्रवचन सुनते हुए उसे लगा कि आवाज जानी पहचानी है। वह महात्मा के करीब गया तो देखा कि ये वही महात्मा हैं, जिनका प्रवचन सुनकर उसने घर छोड़ा था। वह महात्मा के पास पहुंचते ही उनके चरणों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। महात्मा ने कारण पूछा तो व्यापारी बोला, आपने मुझे शांति के लिए ईश्वर की तलाश करने को कहा था। तभी से मैं एक शहर से दूसरे शहर सभी धार्मिक स्थलों पर भटक रहा हूं, लेकिन ईश्वर का कहीं पता नहीं है। उसके अभी तक दर्शन नहीं हुए। महात्मा ने सेठ को समझाते हुए कहा, वत्स, शायद तुमने मेरी पूरी बात नहीं सुनी थी। पुत्र, मैंने सही कहा था। यदि तुमने ठीक ढंग से ईश्वर की खोज की होती तो अब तक तुम उन्हें पा चुके होते। यह सुनकर सेठ हैरान रह गया और बोला, कैसे बाबा?

मैंने ईश्वर को खोजने की बात कही थी, लेकिन यह भी कहा था कि वह हमारे भीतर ही मिलेगा। महात्मा बोले, पुत्र, ईश्वर किसी दूर-दराज के क्षेत्र में नहीं तुम्हारे अपने भीतर ही है। तुम अच्छे कर्म करोगे और नेक राह पर चलोगे तो वह स्वयं तुम्हें मिल जाएगा। तुम्हें उसे कहीं खोजने नहीं जाना पड़ेगा। हां, उसे पाने के लिए ईश्वर का नेक बंदा अवश्य बनना होगा। तुम घर लौट जाओ और वहीं अच्छे कर्म करो। ईश्वर एक दिन तुम्हारे भीतर खुद ही प्रकट हो जाएगा। यह सुनकर सेठ महात्मा के प्रति नतमस्तक हो गया और वापस अपने घर चला आया। घर आने के बाद उसने पाठशालाएं खुलवाईं, लोगों को पीने का पानी उपलब्ध कराया, गरीब कन्याओं के विवाह कराए और अपने पास आनेवाले हर जरूरतमंद की समस्या का समाधान किया। कुछ ही समय बाद उसके भीतर की अशांति जाती रही और उसने अपने भीतर नई स्फूर्ति महसूस की।

१११७) एक बार एक जिज्ञासु व्यक्ति ने किसी सिद्ध संत को खोजने तथा उससे प्रभु को जानने का निश्चय किया। अंतत: भूलता-भटकता वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ ऐसे एक बड़े संत रहते थे। जिज्ञासु ने दरवाजा खटखटाया, इस पर भीतर से आवाज आई, कौन? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, मैं हूँ। फिर अन्दर से कोई आवाज नहीं आई। वह व्यक्ति वहीं दरवाजे पर बैठ गया और सोचने लगा, संत ने दरवाजा क्यों नहीं खोला।

इस सवाल पर कुछ देर सोचने के बाद उसको अपने आप उत्तर मिला। उसने फिर दरवाजा खटखटाया। कौन ? फिर दरवाजे के भीतर से आवाज आई। इस बार उस आदमी ने उत्तर दिया, यही तो पता नहीं। दरवाजा खुल गया और संत उस व्यक्ति को अन्दर ले आए। जब तक हमारे अन्दर मैं है, हम किसी के भी नहीं हो सकते। जब मैं का भाव चला जाए, तब सब हमारे अपने हो जाते है। यह कहानी हमें नम्रता का सार बताती है यह हमें रूहानियम के रास्ते पर चलने का मतलब बताती है।

१११८) व्यर्थ चीज- एक ऋषि के पास एक युवक ज्ञान प्राप्ति के लिए पहुंचा। ज्ञान प्राप्ति के बाद शिष्य ने गुरु दक्षिणा देनी चाही। गुरु ने दक्षिणा के रूप में वह चीज मांगी, जो बिल्कुल व्यर्थ हो। शिष्य व्यर्थ चीज की खोज में निकल पड़ा। उसने मिट्टी की ओर हाथ बढ़ाया तो मिट्टी बोल पड़ी, तुम मुझे व्यर्थ समझ रहे हो ? क्या तुम्हें नहीं पता कि इस दुनिया का सारा वैभव मेरे गर्भ से प्रकट होता है। शिष्य आगे बढ़ गया। थोड़ी दूरी पर उसे एक पत्थर मिला। शिष्य ने सोचा, इसे ले चलूं। लेकिन जैसे ही उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो पत्थर से आवाज आई, तुम अपने भवन और अट्टालिकाएं किससे बनाते हो? यह सुनकर शिष्य ने फिर अपना हाथ खींच लिया। वह सोचने लगा, जब मिट्टी और पत्थर इतने उपयोगी हैं तो आखिर व्यर्थ क्या हो सकता है ? उसके मन से आवाज आई कि सृष्टि का हर पदार्थ अपने आप में उपयोगी है। व्यक्ति के भीतर का अहंकार ही ऐसा तत्व है, जिसका कहीं कोई उपयोग नहीं। वह गुरु के पास लौट आया और दक्षिणा में अपना अहंकार गुरु को दे डाला।

१११९) चंचल मन- एक आश्रम में आधी रात को किसी ने स्वामी जी का दरवाजा खटखटाया। स्वामी जी ने दरवाजा खोला, तो देखा सामने उन्हीं का एक शिष्य रुपये से भरी थैली लिए खड़ा है। शिष्य बोला, स्वामी जी। ये रुपये दान में देना चाहता हूं।

स्वामी जी हैरान होकर बोले, लेकिन यह काम तो सुबह भी हो सकता था।

शिष्य बोला, स्वामी जी। आपने ही तो समझाया है कि यह मन बड़ा चंचल है। यदि शुभ विचार मन में आए, तो एक क्षण भी देर मत करो, वह कार्य तत्काल कर ही डालो। लेकिन कभी मन में बुरे विचार आ जाएं, तो वैसा करने पर बार-बार सोचो। मैंने भी यही सोचा कि कहीं सुबह होने तक मेरा मन बदल न जाए, इसी कारण आपके पास अभी ही चला आया।

स्वामी जी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने शिष्य को गले से लगाकार कहा, यदि हर व्यक्ति इस विचार को पूरी तरह अपना ले, तो वह बुराई के रास्ते पर चल ही नहीं सकता, न ही कभी असफल हो सकता है।

११२०) असली सुख- राह चलते किसी सेठ की मुलाकात एक साधु से हुई। बातों ही बातों में सेठ ने कहा, महाराज, मेरे जीवन में उपभोग की सभी वस्तुएं हैं मगर सुख नहीं है। साधु ने मुस्कराकर पूछा, कैसा सुख चाहते हो ? क्या तुम्हें वास्तव में सुख की तलाश है ?

सेठ ने कहा, अगर मुझे कोई सुख दिला दे, तो मैं उसकी कीमत भी दे सकता हूं। साधु ने फिर पूछा, क्या कीमत दोगे? सेठ ने कहा, मेरे पास बहुत धन है। मैं इसका बड़ा हिस्सा दे सकता हूं पर मुझे वास्तविक सुख चहिए ?

साधु ने गौर किया कि सेठ के हाथ में एक पोटली है जिसे वह बार-बार अपने और नजदीक कर रहा है। ऐसा लगता था, उसमें कोई कीमती वस्तु है। साधु ने पलक झपकते ही पोटली छीन ली और भाग खड़ा हुआ। सेठ भी उसके पीछे लपका। पर

सेठ उस मजबूत युवा साधु का मुकाबला करने में असमर्थ था। साधु के पीछे भागता हुआ वह जल्दी ही थककर चूर हो गया और बैठकर हांफने लगा। अपनी पोटली के यूं चले जाने पर वह बेहद दुखी था। उसकी पीड़ा स्वाभाविक थी क्योंकि पोटली में बहुमूल्य रत्न थे। तभी अचानक उसके हाथों पर पोटली गिरी। खोलकर देखा तो सारे रत्न ज्यों के त्यों पड़े थे।

सेठ ने जोर की सांस ली और पोटली को पहले आंखों पर, फिर हृदय से लगा लिया। अगले ही पल साधु की आवाज सुनाई दी, सेठजी, सुख मिला क्या ? सेठ ने कहा, हां, महाराज बहुत सुख मिला।

साधु बोले, सेठ, ये रत्न तो तुम्हारे पास पहले भी थे और तब भी तुम्हें सुख की तलाश थी। बस इनके जरा दूर होने से ही तुम दुखी हो गए यानी तुम्हारा सुख धन से जुड़ा है। यह फिर अलग होगा, तो तुम फिर दुखी हो जाओगे। यह सुख तो नकली है। यदि तुम्हें वास्तविक सुख की तलाश है, तो तुम्हें उसकी वास्तविक कीमत भी अदा करनी होगी। वह कीमत इस धन की तरह न होकर सेवा, त्याग, समर्पण और प्रेम है।

११२१) विश्वास- एक संत अपने शिष्यों के साथ नाव से नदी पार कर रहे थे। अचानक तेज हवाएं बहने लगीं और नदी में पानी उछलने लगा। संत की नाव के साथ जो नावें चल रही थीं, वे बुरी तरह थरथराने लगीं। कुछ ही क्षणों में लहरों का पानी नाव के भीतर आने लगा। शिष्य बुरी तरह डरने लगे। नाव के एक कोने में एक शिष्य बेफिक्र सोया था। उसके साथियों ने उसे झकझोर कर जगाया। उसने पूछा, क्या बात है, मुझे किस कारण से जगाया है? उसके साथियों ने तूफान के बारे में उसे बताया। उस शिष्य ने बहुत शांति से चारों ओर नजरें घुमाकर देखा देखा और कहा, तूफान आते ही हैं और मनुष्य का भी अंत होता ही है। इसमें ऐसी कौन सी आश्चर्यजनक बात है। सभी साथी उसका उत्तर सुनकर सन्न रह गए। भयभीत साथियों के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उस शिष्य ने आंख बंद कर लीं। उसके साथी समझ रहे थे कि उसने संकट को भली-भाँति पहचाना नहीं है। इसी कारण वह स्थिति की गंभीरता को नहीं समझ पा रहा है। उधर अपनी मस्ती में खोए हुए उस शिष्य ने आंखें बंद करके दोनों हाथ ऊपर उठाकर भगवान से प्रार्थना प्रारंभ की। अन्य साथियों ने समझा कि यह अपना अंतिम समय निकट जानकर भगवान से अपनी भूलों के लिए क्षमा मांग रहा है लेकिन शिष्य ने आंखें बंद किए हुए ही कहा, ऐ तूफान, तुम तुरंत शांत हो जाओ ताकि हम सुरक्षित उस पार पहुँच जाएं। तूफान तुरंत शांत हो गया। नाव का हिलना बंद हो गया। शिष्यों ने भी चैन की सांस ली। उसके साथियों ने उस शिष्य से पूछा, आखिर तुमने ऐसा क्या किया कि इस भयंकर तूफान को शांत कर दिया। वह सहजता से बोला मित्रो, <u>विश्वास की शक्ति असीम है। तूफान विश्वास से बड़ा नहीं हो सकता। अपने विश्वास पर सदा अडिग रहना चाहिए</u>।

११२२) शिष्य की सीख- एक आचार्य वैष्णव तथा अन्य संप्रदाय के लोगों के यहां जाकर उनसे अपना मत मान लेने का आग्रह करते थे। उनका दावा था कि वह वाराणसी के हर व्यक्ति को अपने मत की दीक्षा देकर ही चैन से बैठेंगे। उनका एक शिष्य था- कारंडिय। उसे यह अटपटा लगता था कि उसके गुरु अन्य मतों के खंडन-मंडन में लगे रहते हैं। एक दिन आचार्य अपने शिष्यों के साथ एक उद्यान में भ्रमण कर रहे थे। वहां रंग-बिरंगे फूल लगे थे। गुलाब, जूही, गेंदा और चमेली जैसे फूलों की गंध चारों तरफ फैली थी। कारंडिय ने बगिया के माली से कहा, तुमने ये तरह-तरह के फूल क्यों लगाए हैं? एक ही फूल लगाया होता तो कितना अच्छा होता। आचार्य बोले- मूर्ख तरह-तरह के फूलों की अलग ही शोभा होती है। कारंडिय ने कहा, आचार्य, यदि ऐसा है तो आप अन्य सभी मतों-संप्रदायों को समाप्त कर लोगों को अपने मत का अनुगामी बनाने में क्यों लगे हुए हैं ? यह सुनकर आचार्य का विवेक जाग्रत हो गया। उस दिन से उन्होंने अपना मत थोपने का प्रयास बंद कर दिया।

११२३) सुख की परिभाषा- पुराने जमाने की बात है। एक राजा था। उसे अपने विशाल साम्राज्य और धन-संपत्ति पर बहुत अभिमान था। एक दिन एक साधु उसके पास आया। उसने राजा को देखकर ही भांप लिया कि वह धन और सत्ता के मद में चूर है, लेकिन अंदर से खोखला है। राजा ने साधु से पूछा, ऐ भिखारी, बोलो तुम्हें क्या चाहिए ? साधु ने मुस्कराते हुए कहा, राजन्, मैं आपसे कुछ लेने नहीं, आपको कुछ देने आया हूं।

इससे राजा के अहं को ठेस पहुंची। उसने सोचा कि आखिर एक साधु उसे कुछ देने का साहस कैसे कर सकता है। राजा ने उसे डांटते हुए कहा, छोटा मुंह बड़ी बात मत कर। जिसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं वह मुझ जैसे बड़े शासक को क्या दे सकता है। जो स्वयं भीख मांगकर गुजारा करता है उसके पास देने के लिए है ही क्या।

साधु बोला, आप ठीक कहते हैं। आपके पास बहुत कुछ है जो मेरे पास नहीं हैं, लेकिन याद रखें मुझ जैसे लोगों के पास वह होता है जो आप जैसे वैभवशाली लोगों के पास नहीं होता। राजा का क्रोध और बढ़ा। उसने चिल्लाकर कहा, तुम जैसे लोगों के साथ हमारी तुलना कैसे हो सकती है। इस पर साधु ने कहा, महाराज, बिना त्याग के भोग बेस्वाद है। जब वैभव में त्याग जुड़ जाता है तो वैभव महक उठता है। त्याग के आते ही अहंकार मिट जाता है, आसक्ति दूर हो जाती है तथा भीतर की आंखें खुल जाती हैं। इस बात का स्मरण रखें कि धन से सब कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। धन से औषधि खरीद सकते हैं स्वास्थ्य नहीं। पैसे से बिस्तर खरीदा जा सकता है नींद नहीं। धन से सुविधा मिल सकती है शांति नहीं। मैं आपको यही सीख दे रहा हूं, जो आपके पास नहीं है।

साधु की इन बातों का राजा पर गहरा असर हुआ। उसने उससे क्षमा मांगी। उस दिन से उसका व्यवहार बदल गया।

११२४) गरीब- फकीर ने अपना अंत समय आया देख अपने शिष्यों से कहा, मेरे पास जो भी धन-संपत्ति है उसे मैं सबसे गरीब व्यक्ति को दूंगा। अगले दिन उसकी कुटिया के आगे निर्धनों की भीड़ लग गई पर फकीर ने उन्हें कुछ नहीं दिया। तभी उधर से अपने रथ पर राजा निकला। फकीर ने धन की थैली उसकी ओर फेंक दी। राजा ने हंसकर कहा, तुम पागल हो गए हो क्या ? मैं तो यहां का राजा हूं। फकीर बोला, तुम्हारे पास अपार धन-दौलत है पर संतोष नहीं। तुम लालची हो इसलिए मैं तुम्हें सबसे ज्यादा गरीब मानता हूं। राजा शर्मिन्दा हो गया और उस दिन से प्रजा की भलाई में जुट गया।

११२५) सेठ और शांति- सेठ के पास हवेली थी, सम्पत्ति भी, नौकर चाकर थे, पर शान्ति नहीं थी। करोड़ों की संपत्ति होते हुए भी वह अशांत रहता था। किसी ने कहा, अमुक साधु के पास जाओ, वह तुम्हें मनचाही चीज दे देगा। शांति पाने के लिए वह एक संत के पास पहुंचा। उसने उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया, महाराज। मैं अपार संपत्ति का स्वामी हूं, फिर भी मेरा मन अशांत रहता है। कृपया ऐसा कुछ दें जिससे अशांति दूर हो जाए। उसे अपनी परेशानी बताई।

सेठ ने सोचा कि वह कोई ताबीज दे देंगे या और कुछ गंडा, मंत्र दे देंगे, लेकिन साधु ने ऐसा कुछ नहीं किया।

संत मुस्कराए और बोले, जाओ बाहर धूप में बैठो। सेठ ने ऐसा ही किया। संत चैन से कुटिया के भीतर छाया में बैठे रहे, जबकि सेठ बाहर धूप में पसीना पोंछता रहा। अगले दिन सेठ को धूप में बिठा दिया और स्वयं कुटिया की छाया में बैठ गया। गर्मी के दिन थे। सेठ का बुरा हाल हो गया। उसे गुस्सा तो बहुत आया, पर बैठा रहा। दूसरे दिन साधु ने कहा, आज तुम्हें दिन भर खाना नहीं मिलेगा।

सेठ दिन भर भूख से छटपटाता रहा, लेकिन उसने देखा, साधु ने मजे में खाना खाया। दूसरी तरफ संत ने उसे दिखा-दिखाकर भांति-भांति के पकवान खाए। इसी तरह शाम हो गई। सेठ ने सोचा कि अब शायद संत कुछ बताएंगे, पर कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उसने सोचा कि अब यहां से चलना ही उचित है।

तीसरे दिन सेठ ने साधु से कहा, मैं जा रहा हूं। यह सोचकर जैसे ही सेठ जाने लगा, संत उसके सामने खड़े हो गए और बोले, क्या हुआ सेठ ? क्यों ? साधु ने पूछा।

सेठ ने कहा, आपने मुझे दिया तो कुछ नहीं, उल्टे मेरी जान ले ली। सेठ बोला, बड़ी आशाएं लेकर आपके पास आया था पर खाली हाथ लौट रहा हूं। कुछ मिलने की बात तो दूर यहां भारी परेशानी झेलनी पड़ गई।

साधु बोला, मैंने तुझे इतना दिया, पर तूने कुछ लिया नहीं। सेठ ने साधु की ओर खिन्नता से देखा और कहा, आपने मुझे कुछ नहीं दिया। साधु हंसा और बोला, सेठ, जब मैंने तुझे धूप में बिठाया और स्वयं छाया में बैठा तो मैंनें तुझे बताया, मेरी छाया तेरे किसी काम की नहीं। मेरी बात तेरी समझ में नहीं आई तो दूसरे दिन मैंने तुझे भूखा रक्खा और तेरे सामने स्वयं खाया। उसमें मैंने तुझे समझाया कि मेरे खा लेने से तेरा पेट नहीं भरेगा। सेठ, याद रख कि मेरी साधना से तुझे सिद्धि नहीं मिलेगी। तूने अपने पुरुषार्थ से धन कमाया है। शान्ति भी तुझे अपने पुरुषार्थ से ही मिलेगी। सेठ ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए स्वयं साधक बनने का संकल्प किया।

११२६) संन्यासी- एक संन्यासी ने नगर सेठ से भिक्षा मांगी। नगर सेठ बोला, धन के अतिरिक्त जो मांगना है मांग लो। संन्यासी बोला- मुझे अपना खजाना दिखा दो। नगर सेठ कुछ देर सोचकर राजी हो गया। संन्यासी को साथ लेकर सेठ अपने घर गया और अपना खजाना दिखाने लगा। संन्यासी फिर बोला- क्या मैं सबको छूकर देख सकता हूं।

सेठ की अनुमति पाकर संन्यासी ने सभी हीरे जवाहरात छूकर देखे फिर बोला- नगर सेठ अब मैं तुमसे अधिक धनवान हो गया। नगर सेठ बोला- यह कैसे कह सकते हो। संन्यासी बोला- जिस तरह तुम हीरे जवाहरात छूते हो उसी भांति मैंने भी छू लिये। जिस तरह तुम छूकर तिजोरी में रखते हो मैंने भी छूकर रख दिये। मुझे तो बेफिक्री रहती है, लेकिन तुम इन जवाहरात की चौकीदारी भी करते हो। यह सुनकर नगर सेठ भौंचक्का रह गया।

११२७) आत्म-ज्ञान का मार्ग- एक साधक था। उसके अंदर आत्म-साक्षात्कार की आकांक्षा थी। वह एक साधु के पास गया और उनके चरणों में विनत होकर अपनी इच्छा व्यक्त की। साधु ने उसे एक मंत्र दिया और कहा, एकान्त में इस मंत्र का एक वर्ष तक जाप करो और फिर मेरे पास नहा-धोकर आओ। एक वर्ष पूरा होने पर वह साधु के पास आया। साधु ने पहले से ही एक जमादारिन से कह रखा था कि वह जैसे ही आने को हो, उस पर झाड़ू से गर्दा उड़ा दे। जमादारिन ने वैसा ही किया। उसका नहाना-धोना बराबर हो गया। वह गुस्से से लाल-पीला होकर जमादारिन को मारने को झपटा। जमादारिन भाग गई। वह फिर से नहा-धोकर साधु के पास गया। साधु ने कहा, जरा सी बात पर तुम आपे से बाहर हो गये और सांप की तरह काटने दौड़े। जाओ, अभी एक साल और मंत्र का जाप करो। मन मारकर साधक चला गया। एक वर्ष बाद फिर आया। साधु ने इस बार जमादारिन से उसे झाड़ू छूआ देने को कहा। उसने वैसा ही किया। इस बार वह उस पर झपटा नहीं, खड़ा-खड़ा कोसता रहा। उसके बाद फिर से स्नान करके साधु के पास गया। साधु ने कहा, वत्स, तुम सांप की तरह काटने तो नहीं दौड़े, पर फुफकारे बिना नहीं रहे। जाओ, एक साल मंत्र का जाप फिर करो। साधक की आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह पुन: एक वर्ष के लिए साधना करने चला गया। साल बीतने पर आया तो साधु ने जमादारिन से उस पर कूड़े की टोकरी उड़ेल देने को कहा। जमादारिन ने वैसा ही किया। कूड़ा गिरते ही साधक की आंखें खुल गई। वह समझ गया कि ऐसा साधु ने उसकी परीक्षा लेने के लिए किया है। उसने बड़े शान्त भाव से जमादारिन से कहा, माता, तूने मेरा बड़ा उपकार किया। मेरे अंदर के पर्दे को हटा दिया। इसके पश्चात वह साधु के पास गया और उसके चरण पकड़ लिये। बोला, महाराज, मेरे अंदर कूड़ा-कर्कट भरा था। आपने उसे साफ कर दिया। मैं जन्म-

जन्मान्तर तक आपका ऋणी रहूंगा। साधु ने उसे उठाकर सीने से लगा लिया। बोले, बेटे, बिना चित्त की निर्मलता के आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। शुद्ध अंत:करण से ही ब्रह्म के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। साधक की मनोकामना पूर्ण हो गई।

११२८) दरिद्र कौन ?- एक समय की बात है कि एक बहुत बड़े सन्त थे। उनके पास उनका एक शिष्य सोने की मोहरों से भरी थैली लाया और उनके सम्मुख खोलकर बोला- प्रभो, कृपया इसे स्वीकार कीजिए।

जो अत्यंत निर्धन और दरिद्र हो, मैं उसका धन स्वीकार नहीं करता।

प्रभो, पर मैं तो धनवान हूं। मेरे पास लाखों की संपत्ति है। उनके शिष्य ने बड़े गर्व से बताया।

उसकी गर्वोक्ति सुनकर सन्त ने उससे पूछा- तुम्हें धन की कामना है कि नहीं ? वह तो अवश्य है महाराज।

जिन्हें धन की कामना रहती है उन्हें रात-दिन धन संचय की ही चिंता रहती है। धनोपार्जन के लिए नाना प्रकार के उपक्रम करने पड़ते हैं। तब बताओ तुहारे जैसा दरिद्र और कौन हो सकता है ? यह सुनकर शिष्य लज्जित होकर चला गया।

११२९) प्रेम का पाठ- पुराने जमाने की बात है। एक नवयुवक ने किसी संत से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग पूछा। संत ने पहले उसे गौर से देखा, फिर कहा, तुम जाओ और पहले प्रेम करना सीखकर आओ, तब मैं तुमसे बात करूंगा। नवयुवक प्रेम की तलाश में देशभर घूमने लगा। एक दिन वह किसी नगर से गुजर रहा था कि उसे राजमहल के झरोखे में एक अत्यंत सुंदर युवती दिखाई पड़ी। वह उस राज्य की राजकुमारी थी, जो अपने सौंदर्य के लिए दूर-दूर तक विख्यात थी। उस पर नजर पड़ते ही नवयुवक उसके प्रेम में पड़ गया। वह झरोखे की ओर देखते हुए तीन दिन तक वहीं खड़ा रहा। उसकी इस हालत की चर्चा शहर भर में होने लगी। लोग यह समझ गए कि उसकी यह हालत राजकुमारी के प्रति उसके प्रेम के कारण हुई है।

बात राजा तक पहुंची। उसने नवयुवक को दरबार में बुलाया। लोगों को लगा कि शायद राजा उस नवयुवक को मृत्युदंड दें। लेकिन राजा ने ऐसा नहीं किया। उसने नवयुवक के सामने यह शर्त रखी कि अगर वह राजकुमारी से सच्चा प्रेम करता है तो परकोटे से कूदकर दिखाए। यदि वह ऐसा करने में सफल रहता है तो उसकी शादी राजकुमारी से करवा दी जाएगी। नवयुवक प्रेम में डूबा हुआ था, सो कूदने के लिए तैयार हो गया। उसने परकोटे की ओर भागकर छलांग लगा दी। नीचे संत ने कपड़ों से भरी एक झोली लगा रखी थी। नौजवान उसमें ही गिरा और उसकी जान बच गई। सब लोग नीचे उतरे तो राजा ने उसे राजकुमारी से विवाह करने को कहा। पर नवयुवक ने इससे इनकार कर दिया। राजा के साथ सभी लोग हैरत में पड़ गए। वे समझ नहीं पा रहे थे कि विवाह के लिए ही जब इसने इतना कुछ किया तो अब यह इनकार क्यों कर रहा है। नवयुवक ने संत की ओर देखकर कहा, मैं तो बस प्रेम सीखने के लिए आया था और वह मुझे आ गया। यह कहकर वह संत के साथ चला गया।

११३०) मोक्ष की राह - एक गांव के बाहर किसी संन्यासी की कुटिया थी। वह हर समय ईश्वरोपासना में लीन रहते थे। गांव के लोग उनसे बेहद प्रभावित थे। वे उनसे अपनी समस्याओं का समाधान जानने के लिए आते। संन्यासी उनके प्रश्नों का जवाब देते उन्हें संकट से निकलने के रास्ते सुझाते। एक दिन एक जिज्ञासु व्यक्ति ने पूछा, क्या मोक्ष प्राप्ति के लिए घर छोड़ना जरूरी है? संन्यासी ने कहा, कोई जरूरी नहीं है। कई महापुरुष ऐसे हैं जिन्होंने बिना गृह त्याग किए मोक्ष प्राप्त किया है। राजा जनक की मिसाल सामने है। घर-गृहस्थी में रहकर भी वे विदेह कहलाए।

वह व्यक्ति संतुष्ट होकर चला गया। कुछ दिनों बाद एक और जिज्ञासु आया। उसने पूछा, महात्मा जी, क्या मोक्ष प्राप्त करने के लिए घर छोड़ना बहुत आवश्यक है? संन्यासी बोले, अत्यंत आवश्यक है। यदि घर का त्याग किए बगैर ही मोक्ष मिल जाता तो फिर क्यों ढेर सारे महात्माओं ने अपना घर बार छोड़ा, क्यों वन-वन भटके? गृह त्याग के बगैर मोक्ष संभव नहीं। वह व्यक्ति भी संतुष्ट होकर चला गया।

संन्यासी के शिष्य से रहा न गया। उसने पूछा, गुरुदेव, आपने ऐसी विरोधाभासी बातें क्यों कीं? एक को तो आपने घर छोड़ने से मना किया और दूसरे को गृह का त्याग करने को कहा। इस पर संन्यासी बोले, तुम बड़े भोले हो। तुमने मेरा आशय नहीं समझा। मैंने दोनों की मनोवृत्ति को भांपकर ही उन्हें सलाह दी। पहले व्यक्ति के चेहरे के भाव और प्रश्न पूछने के तरीके से ही मुझे समझ में आ गया कि वह घर का त्याग नहीं करना चाहता। इसलिए मैंने उससे कहा कि घर में रहकर भी मोक्ष की प्राप्ति संभव है। जबकि दूसरे व्यक्ति को देखकर मुझे लगा कि वह घर छोड़ सकता है सो मैंने उसे घर छोड़ने को कहा। जिसकी जैसी मनोवृत्ति थी वैसी ही मैंने उसे प्रेरणा दी। इसमें कुछ भी गलत नहीं है। मंजिल तो एक होती है पर उस तक पहुंचने के रास्ते अलग-अलग होते हैं। हमारा उद्देश्य महत्वपूर्ण है। अगर उसे हासिल करने की लगन होगी तो हम उसे हर परिस्थिति में प्राप्त कर सकेंगे।

११३१) स्वर्ग और नरक- बहुत पुरानी कथा है। जापान में झगड़ालू स्वभाव का एक सैनिक था। वह हर किसी से बदतमीजी से बात करता और बहुत मामूली बातों को लेकर भी झगड़ा करता। वह बिना किसी कारण के भी किसी से झगड़ जाता था। उसके इस स्वभाव से उसके मित्र और रिश्तेदार सभी बेहद परेशान रहते थे। उन्होंने सैनिक को कई बार समझाने की कोशिश भी की, मगर उस पर कोई असर नहीं पड़ा। एक बार एक संत उसके पास आए और उन्होंने कहा, बुद्धि सदैव बल से श्रेष्ठ होती है। सैनिक ने कहा, यदि ऐसा होता है तो आप मुझे स्वर्ग और नरक के बीच का अंतर समझाइए। संत शांत हो गए। उन्होंने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर सैनिक उन पर भड़का और बोला, मैं समझाता हूँ। संत की उत्सुकता बढ़ी। सैनिक ने कहा, यदि मैं किसी व्यक्ति को बुरी तरह मारता-पीटता हूं तो वह स्थिति उस व्यक्ति के लिए नरक है और यदि वह अचानक उस स्थिति से आजाद हो जाए तो यह उसके लिए स्वर्ग का अहसास है। इस पर संत कुछ देर शांत रहे, फिर बोले, मैं तुम जैसे बुद्धिहीन से तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। इस पर सैनिक बुरी तरह बौखला गया। अब उसके क्रोध की सीमा नहीं रही। संत बोले, अपने आपको ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों पर क्रोधित होने देना, यह नरक का अनुभव है और इस पर प्रतिक्रिया न देना ही स्वर्ग का अहसास करने जैसा है। यह सुनकर सैनिक निरुत्तर हो गया। संत की बातों का उसपर असर पड़ा और धीरे-धीरे उसके आचरण में सुधार आने लगा।

११३२) स्वर्ग और नरक - मानस त्रिपाठी एक युवक था। वह बंदूक और तलवार चलाना सीख रहा था। इसलिए वह यदा-कदा जंगल जाकर खरगोश, लोमड़ी और पक्षियों आदि का शिकार करता। शिकार करते-करते उसे यह घमंड हो गया कि उसके जैसा निशानेबाज कोई नहीं है और न उसके जैसा कोई तलवार चलानेवाला। आगे चलकर वह इतना घमंडी हो गया कि किसी बड़े के प्रति शिष्टाचार भी भूल गया। उसके गाँव के बाहर कुटिया में एक संत रहते थे। वह एक दिन उनके पास पहुँचा। न उन्हें प्रणाम किया और न ही अपना परिचय दिया। सीधे उनके सामने पड़े आसन पर बैठ गया और कहने लगा, लोग बेकार में स्वर्ग-नरक में विश्वास करते हैं? संत ने उससे पूछा, तुम तलवार साथ में क्यों रखते हो? उसने कहा, मुझे सेना में भर्ती होना है, कर्नल बनना है। इस पर संत ने कहा, तुम्हारे जैसे लोग सेना में भर्ती किए जाते हैं? पहले अपनी शक्ल शीशे में जाकर देख लो। यह सुनते ही युवक गुस्से में आ गया और उसने म्यान से तलवार निकाल ली। तब संत ने फिर कहा, वाह। तुम्हारी तलवार भी कैसी है? इससे तुम किसी भी बहादुर आदमी का सामना नहीं कर सकते, क्योंकि वीरों की तलवार की चमक कुछ और ही होती है। फिर तो युवक गुस्से से आग-बबूला हो गया और संत को मारने के लिए झपटा। तब संत ने शांत स्वर से कहा, अब तुम्हारे लिए नरक का दरवाजा खुल गया। यह सुनते ही युवक की अक्ल खुल गई और उसने तलवार म्यान में रख ली। अब वह सर झुककर संत के सामने खड़ा था और अपराधी

जैसा भाव दिखा रहा था। इस पर संत ने कहा, अब तुम्हारे लिए स्वर्ग का दरवाजा खुल गया।

११३३) स्वर्ग और नरक - एक युवा सैनिक ने धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया था। वह जानना चाहता था कि स्वर्ग और नरक में क्या अंतर है? उसने एक संत से पूछा, बताएं कि क्या स्वर्ग और नरक वास्तव में होते हैं या ये सिर्फ कल्पना है? संत ने उसे अच्छी तरह देखा और पूछा, युवक, तुम्हारा पेशा क्या है? सैनिक ने अपने पेशे के बारे में बताया तो संत ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा, तुम और सैनिक। तुम्हें कौन सैनिक कहेगा। किसने तुम्हारी भर्ती कर दी। देखकर तो तुम कायर लगते हो। भय और आशंका तुम्हारे चेहरे पर स्पष्ट झलक रही है। यह सुनकर उस सैनिक का खून खौल उठा। उसने बंदूक निकाल ली। संत ने कहा, तुम बंदूक भी रखते हो। बहुत अच्छे। तुम क्या इस खिलौने वाली बंदूक से मुझे डराओगे। इस बंदूक से तो बच्चा भी नहीं डरेगा। यह सुनकर सैनिक अपना आपा खो बैठा, उसने झट से बंदूक का घोड़ा दबाने के लिए हाथ बढ़ाया तो संत ने कहा, लो, बस यही है नरक का द्वार। संत की बात का मर्म समझते ही युवक की आंखें खुल गई और अपने किए पर वह ग्लानि से भर गया। वह संत के चरणों में गिर पड़ा। चरणों में गिरते ही संत ने कहा, लो, स्वर्ग का द्वार खुल गया। स्वर्ग एवं नरक, आनंद एवं दु:ख ही वह स्थिति है जो हम शांत रहकर या क्रोध करके उत्पन्न करते हैं। जिस क्षण व्यक्ति को क्रोध आता है उसका संपूर्ण अस्तित्व गहरी अशांति को प्राप्त हो जाता है। यह प्रत्यक्ष नरक के समान दुखदायी होता है। खुद की शांति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं जब हम इस जिम्मेदारी को उठाते हैं, स्वर्ग का निर्माण कर रहे होते हैं। संसार हमारी ही सृष्टि है।

११३४) सबसे आसान रास्ता - एक बार एक डाकू एक संत के पास आया और बोला, महाराज। मैं अपने जीवन से परेशान हो गया हूं। जाने कितनों को मैंने लूटकर दुखी किया है, उनके घरों को तबाह किया है। मुझे कोई रास्ता बताइए, जिससे मैं इस बुराई से बच सकूं। संत ने बड़े प्रेम से कहा, बुराई करना छोड़ दो, उससे बच जाओगे। डाकू ने कहा, अच्छी बात है। मैं कोशिश करूंगा। डाकू चला गया। कुछ दिनों के बाद वह फिर लौटकर आया और संत से बोला, मैंने बुराई को छोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन छोड़ नहीं पाया। अपनी आदत से मैं लाचार हूं। मुझे कोई दूसरा उपाय बताइए। संत ने थोड़ी देर सोचा, फिर बोले, अच्छा, ऐसा करो कि तुम्हारे मन में जो भी बात उठे, उसे कर डालो, लेकिन प्रतिदिन उसे दूसरे लोगों से कह दो। संत की बात सुनकर डाकू को बहुत खुशी हुई। उसने सोचा कि इतने बड़े संत ने जो मन में आए, सो कर डालने की आज्ञा दे दी है। अब वह बेधड़क डाका डालेगा और दूसरों से कह देगा। यह बहुत ही आसान है। वह उनके चरण छूकर लौट गया। कुछ दिनों के बाद वह फिर संत के पास आया और बोला, महाराज। आपने मुझे जो उपाय बताया था, उसे मैंने बहुत आसान समझा था, लेकिन वह निकला बड़ा कठिन। मुझसे यह नहीं हो पाएगा। फिर थोड़ा ठहरकर वह बोला, दोनों में से अब मैंने आसान रास्ता चुना है। डाका डालना ही छोड़ दिया है। यह सुनकर संत बहुत प्रसन्न हुए।

११३५) सबसे अधिक गरीब - किसी साधु को एक पैसा रास्ते में पड़ा मिला। उसने उसे उठा तो लिया पर विचार करने लगा इसका क्या करना चाहिए? बुद्धि ने कहा जो सबसे अधिक गरीब हो उसे दे देना चाहिए।

गरीब तो बहुत मिले पर सबसे अधिक कहे जाने योग्य कोई न मिला। सफलता न मिलने पर वे आगे बढ़ जाते। इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए। पैसा उनकी मुट्ठी में था।

एक दिन देखा कि एक राजा सेना सहित कहीं जा रहा थां साधु ने उसकी इस यात्रा के बारे में जानकारी प्राप्त की तो प्रतीत हुआ कि राजा के पास धन दौलत तो बहुत है पर किसी दूसरे राजा के ऊपर चढ़ाई करके वह उसे जीतना और प्रजा को लूटना चाहता है। साधु सोचने लगे इतनों के प्राण हरण करके जो संपदा बटोरने के फेर में है निश्चय ही वह सबसे अधिक गरीब कहे जाने योग्य है। पैसा इसी को देना चाहिए। राजा की सवारी जब बराबर आई तो प्रतीक्षा में खड़े साधु ने

पैसा फेंककर उसके सिर में मारा। सभी को आश्चर्य हुआ। साधु को पकड़ लिया गया। जहां राजा को ठहरना था वहां उसकी पेशी हुई। साधु ने अपना अभिप्राय पूरी तरह कह सुनाया। राजा सोचने लगा कि क्या साधु की बात गलत है? मैं अनीतिपूर्वक धन बटोरने जा रहा हूं तो सबसे अधिक गरीब ही तो हुआ। लज्जा से उसका सिर झुक गया। साधु को छोड़ दिया और राजा ने सेना को वापस लौट चलने का हुक्म दिया।

११३६) श्रद्धा और अहंकार - एक बार एक शिष्य अपने गुरु के दर्शन के लिए घर से निकला। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। बरसात के दिन थे और खूब तेज बारिश हुई थी, जिससे नदी में बाढ़ आ गई थी। शिष्य सोचने लगा कि नदी कैसे पार की जाए? गुरु के पास जाना आवश्यक था। तभी उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह किसी भी तरह गुरु के पास पहुंच कर रहेगा। इसके बाद उसने अपने भीतर एक शक्ति महसूस की। वह परिणाम की परवाह किए बगैर नदी में उतर पड़ा और किसी तरह उसे पार कर गुरु के पास पहुंच गया। गुरू ने शिष्य को देखा तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। शिष्य चरण स्पर्श के लिए झुका ही था कि उन्होंने बीच में उठाकर उसे गले लगा लिया। क्षणभर में ही उनका ध्यान भंग हुआ। याद आया कि बाहर तो बारिश हो रही है। मन में सवाल उठा कि शिष्य नदी पार कर कैसे आया होगा, क्योंकि दूर-दूर तक किसी नाविक के होने की आशा भी नहीं थी। उन्होंने शिष्य से आखिर पूछ ही लिया, इस उफनती नदी को तुमने पार कैसे किया? शिष्य ने बताया, बस आपके नाम का आश्रय लेकर मैं चला आया। समझ लीजिए नदी ने स्वयं रास्ता दे दिया।

गुरु ने सोचा, मेरे नाम में यदि इतनी शक्ति है इसका अर्थ है कि मैं बहुत ही महान और शक्तिशाली हूं। अगले दिन जब हवा शांत थी, आसमान साफ था और धूप भी खिली हुई थी, वह नदी किनारे गए और नाव का सहारा लिए बिना नदी पार करने लगे। धारा पर पांव रखते हुए उन्होंने अपने आपको संबोधित किया। अपना नाम लेकर जैसे ही उन्होंने कदम बढ़ाया कि पांव धारा में ही लड़खड़ा गए और गुरुजी गिर गए। उनका यह भ्रम दूर हो गया कि उनके नाम में कोई शक्ति है। उन्हें यह भी समझ में आ गया कि श्रद्धा और अहंकार में क्या अंतर है।

११३७) समय का उपयोग - एक दिन एक व्यक्ति किसी महात्मा के पास पहुंचा और कहने लगा, जीवन अल्पकाल का है। इस थोड़े समय में क्या-क्या करूं? बचपन में ज्ञान नहीं होता। युवावस्था में गृहस्थी का बोझ होता है। बुढ़ापा रोगग्रस्त और पीड़ादायक होता है। तब भला ज्ञान कैसे मिले? लोक सेवा कब की जाए? यह कहकर वह रोने लगा। उस रोते देख महात्मा जी भी रोने लगे। उस आदमी ने पूछा, आप क्यों रोते हैं? महात्मा ने कहा, क्या करूं, खाने के लिए अन्न चाहिए। लेकिन अन्न उपजाने के लिए मेरे पास जमीन नहीं है। परमात्मा के एक अंश में माया है। माया के एक अंश में तीन गुण है। गुणों के एक अंश में आकाश है। आकाश में थोड़ी सी वायु है और वायु में बहुत आग है। आग के एक भाग में पानी है। पानी का शतांश पृथ्वी है। पृथ्वी के आधे हिस्से पर पर्वतों का कब्जा है। जमीन पर जहां देखो नदियां बिखरी पड़ी हैं। मेरे लिए भगवान ने जमीन का एक नन्हा सा टुकड़ा भी नहीं छोड़ा। थोड़ी सी जमीन थी उस पर भी दूसरे लोगों ने अधिकार जमा लिया। तब बताओ, मैं भूखा नहीं मरूंगा। उस व्यक्ति ने कहा, यह सब होते हुए भी आप जीवित तो हैं न। फिर रोते क्यों हैं? महात्मा ने तुरंत उत्तर दिया, तुम्हें भी तो समय मिला है, बहुमूल्य जीवन मिला है, फिर समय न मिलने की बात कहकर क्यों हाय-हाय करते हो। अब आगे से समयाभाव का बहाना न करना। जो कुछ भी है, उसका उपयोग करो, उसी में संतोष पाओ। संसार में हर किसी ने सीमित समय का सदुपयोग करके ही सब कुछ हासिल किया है।

११३८) सफलता का नशा - किसी आश्रम में अनेक छात्र रहते थे। उनमें से एक छात्र को अपनी बुद्धि पर काफी अभिमान हो गया था। एक दिन गुरु ने उसे एक कथा सुनाई- घने जंगल में एक बकरी रहती थी। वह अपने को काफी

चतुर मानती थी। उसके शरीर पर घने नर्म लंबे बाल थे, जिस कारण वह बहुत सुंदर दिखती थी। एक दिन वह घास चर रही थी। तभी कुछ शिकारियों की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने उसका पीछा करना शुरू किया। बकरी भागती हुई जंगल में एक ऐसी जगह पहुंची, जहां अंगूर की घनी बेलें थीं। बकरी बेलों के पीछे जाकर छिप गई। जब पीछा करते शिकारी पहुंचे, तो वे बकरी को देख न सके। बड़ी देर तक वहां ढूंढ़ने के बाद वे आगे बढ़ गए। बकरी अपनी चतुराई पर बहुत प्रसन्न हुई। तभी उसका ध्यान अंगूर के कोमल पत्तों पर गया तो उसने अंगूर की बेल को ही चरना आरंभ कर दिया। थोड़ी देर में ही उसने सारी झाड़ी चट कर डाली। तभी शिकारी उसे ढूंढते वापस वहां आ पहुंचे और उन्होंने बकरी को देख लिया और थोड़ी देर पीछा करने के बाद उन्होंने उसका शिकार कर लिया। शिकारी आपस में कह रहे थे कि यदि बकरी ने वह झाड़ी साफ न की होती तो उसे पकड़ना नामुमकिन था। बकरी ने अपना आश्रय स्वयं नष्ट किया और वह शिकार हो गई। गुरु ने कथा यहीं समाप्त कर कहा, सफलता के नशे में मनुष्य अपना विवेक खो देता है और स्वयं को संकट में डाल लेता है। इसलिए अहंकार से बचना चाहिए। शिष्य गुरु का आशय समझ गया।

११३९) प्रार्थना के बीच में - एक सेठ एक साधु से मिलने आया। साधु को प्रणाम करके उसने कहा, बाबा, मैं प्रार्थना करना चाहता हूं, लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद नहीं कर पाता। जब भी मैं ध्यान लगाने की कोशिश करता हूं तभी मेरे आगे दुनियावी चीजें आ खड़ी होती हैं। धन कमाने और पारिवारिक तनाव के बारे में सोचने लग जाता हूं। आप ही बताइए मुझे प्रार्थना में मन लगाने के लिए क्या करना चाहिए? यह सुनकर साधु महाराज सेठ को एक ऐसे कमरे में ले गए जिसकी खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे। साधु ने सेठ को कांच के पार बाहर का नजारा दिखाया। शीशों से पेड़, उस पर चहकते पक्षी व दूसरी कई चीजें नजर आ रही थीं। यह देखकर सेठ प्रसन्न हो गया। उसके बाद साधु उसे एक दूसरे कमरे में लेकर गए। वहां कमरों की खिड़कियों पर चांदी की चमकीली परत लगी हुई थी। साधु बोले, सेठजी, जरा देखो तो इस चांदी की चमकीली परत के पार आप क्या देख पाते हैं? सेठ चांदी की चमकीली परत के पास गया तो उसे अपने चेहरे के सिवाय और कुछ नहीं दिखा। बाहर के मनोरम दृश्य उस परत में खो गए थे। यह देखकर सेठ बोला, बाबा, यहां तो बाहर की दुनिया ही गायब है। चांदी की चमकीली परत में तो मुझे सिवाय अपने चेहरे के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता जबकि कांच में से मुझे बाहर के मनोरम दृश्य दिखाई पड़ रहे थे। सेठ की बात सुनकर साधु बोले, बिल्कुल सही कहा तुमने। इसी तरह तुम भी प्रार्थना करते समय अपने ऊपर चांदी की परत चढ़ाए रखते हो इसलिए उसमें तुम्हें अपनी शक्ल और अहं के अलावा कुछ और नजर नहीं आता। यदि तुम स्वयं को कांच की तरह पारदर्शी और स्वच्छ बनाओगे तो तुम्हारा प्रार्थना में ध्यान सहज ही लग जाएगा। सेठ को अपनी गलती का अहसास हो गया और उसने उसी क्षण निश्चय किया कि अब वह बेमतलब की चीजों को प्रार्थना के बीच में नहीं आने देगा।

११४०) स्वप्न का संदेश - एक संत की साधना और भक्तिमय जीवन की बड़ी ख्याति थी। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि उनकी मृत्यु हो चुकी है और वह एक देवदूत के सामने खड़े हैं। देवदूत सब मृत लोगों से उनके कर्मों का ब्योरा मांग रहा था। काफी देर बाद जब उनकी बारी आई, तो देवदूत ने उनसे पूछा, आप बताएं, आपने जीवन में क्या अच्छे कार्य किए जिनका आपको पुण्य मिला हो? संत सोचने लगे- मेरा तो सारा जीवन ही पुण्य कार्यों में व्यतीत हुआ है, मैं कौन सा एक काम बताऊं। वह बोले, मैं पांच बार तीर्थयात्रा कर चुका हूं। देवदूत बोला, आपने तीर्थयात्राएं तो कीं, लेकिन आप अपने इस कार्य की चर्चा हर व्यक्ति से करते रहे। इसके कारण आपके सारे पुण्य नष्ट हो गए। संत को भारी ग्लानि हुई। फिर कुछ हिम्मत कर उन्होंने कहा, मैं प्रतिदिन भगवान का ध्यान और उनके नाम का स्मरण करता था।

देवदूत ने कहा, जब आप ध्यान करते और कोई दूसरा व्यक्ति वहां आता, तो आप कुछ अधिक समय तक जप-ध्यान में बैठते थे। चलिए कोई और पुण्य कार्य बताइए। संत को लगा कि उनकी अब तक की सारी तपस्या बेकार चली गई। उनकी आंखों से पश्चाताप के आंसू बह निकले। इतने में उनकी नींद खुल गई। वह स्वप्न का संदेश समझ गए। वह समझ गए कि उन्हें अपनी साधना पर गर्व हो गया था। वे अपने त्यागमय जीवन के बदले दूसरों से कुछ अपेक्षाएं रखने लगे थे। उस दिन से उन्होंने स्वयं को बदलने का फैसला किया और सहज होकर साधना करने लगे।

११४१) रोग और उपचार - एक साधु थे। वह नदी के किनारे, वियाबान स्थान में, कुटिया बनाकर रहते थे। उनके चारों ओर हरे-भरे वृक्ष थे। उन पर शाम-सवेरे पक्षी आकर आनंद से चहचहाते थे। कुछ पक्षियों ने तो साधु की कुटिया के घास-फूस में अपने घोंसले बना लिये थे। एक प्रकार से वे साधु के परिवार के अंग बन गये थे। संयत जीवन और प्रकृति के सतत सान्निध्य से साधु के मुख-मण्डल पर ऐसी दीप्ति थी कि दूर-पास के बहुत-से-स्त्री-पुरुष खिंचकर वहां चले आते थे। एक दिन एक सेठ आये। धन उनके पास अपार था, बहुत बड़ा व्यापार था, विशाल परिवार था, किन्तु चैन उनसे कोसों दूर था। चेहरा उनका मुरझाया हुआ था। विवशता की रेखाएं स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। साधु के चरण स्पर्श करके वह सामने बैठ गये। आर्द्र नेत्रों से उन्होंने अपनी व्यथा साधु को बताई। कहा, महाराज, मेरे पास सबकुछ है, पर मुझे चैन नहीं है। रात-रात भर करवटें बदलता हूं, नींद नहीं आती। साधु ने बड़े प्रेम से उनकी ओर देखा। बोले, सेठ, तुम्हारे पास सबकुछ भले ही हो, पर वह नहीं, जो नींद के लिए आवश्यक है। वह क्या है, महाराज? सेठ ने विनय-पूर्वक पूछा। साधु ने गंभीर होकर कहा, सेठ, तुम चारों ओर चिन्ताओं से घिरे हुए है। धन-सम्पत्ति की चिन्ता, व्यापार की चिन्ता, बाल-बच्चों की चिन्ता। चिन्ता और चैन के बीच बड़ी शत्रुता है। सेठ ने कातर स्वर में कहा, स्वामीजी, मैं क्या करूं? मेरा जीवन दूभर हो गया है। साधु बोले, सेठ, तुम प्रकृति से हट गये हो। देखते हो, प्रकृति कितनी सम्पन्न है। चारों ओर उसका साम्राज्य फैला है, लेकिन वह अपनी सम्पदा में लिप्त नहीं है। उसके सिर पर कोई बोझ नहीं है। वह हर घड़ी हंसती-विहंसती रहती है। फिर उसकी उदारता तो बेजोड़ है। अपनी दौलत को भर-भर हाथों बांटती रहती है। सेठ, उसीसे तुम शिक्षा लो। तभी तुम्हारा संकट दूर होगा। साधु की बात सेठ के गले उतर गई। उसके रोग का निदान हो गया। अब उपचार कठिन नहीं था।

११४२) विचित्र आशीर्वाद - राजा संत के पास गया। संत ने राजा को आशीर्वाद दिया, सिपाही बन जाओ। यह बात राजा को अच्छी नहीं लगी। दूसरे दिन राजा ने अपने राज्य के सबसे बड़े विद्वान को संत के पास भेजा। संत ने कहा, अज्ञानी बन जाओ। विद्वान भी नाराज होकर लौट गए। इसी तरह जब नगर सेठ आया तो संत ने आशीर्वाद दिया, सेवक बन जाओ। सेठ भी रुष्ट होकर वापस आ गया। संत के आशीर्वाद की चर्चा राज दरबार में हुई। लोग कहने लगे कि यह संत नहीं, धूत है, तभी अनाप-शनाप आशीर्वाद देता है। किसी ने कहा कि संत जरूर मानसिक संतुलन खो चुके हैं। एक दिन राजा ने अपने सैनिक भेजकर संत को राजदरबार में बुलाया। राजा ने संत से कहा, आपने आशीर्वाद देने के बहाने सभी लोगों का अपमान किया है, इसलिए आपको दंड दिया जाएगा। यह सुनकर संत हंस पड़े। राजा ने जब इसका कारण पूछा तो संत ने कहा, लगता है इस राज दरबार में सब मूर्ख हैं। मैंने जो कहा है, ठीक कहा है। मैंने राजा को कहा कि सिपाही बन जाओ क्योंकि राजा का कर्म है राज्य की सुरक्षा करना। सिपाही का काम भी रक्षा करना होता है। विद्वानको अज्ञानी बन जाने को कहा। इसका तात्पर्य यह है कि विद्वान ज्ञानी होता है। कहीं उसे अपने ज्ञान का अभिमान न हो जाए, इसीलिए मैंने उसे अज्ञानी बनने को कहा था। सेठ का कर्त्तव्य होता है, अपने धन से गरीबों की सेवा करना। इसीलिए मैंने उसे सेवक बनने का आशीर्वाद दिया। यह सुनकर राजा ने संत से क्षमा मांगी।

११४३) प्रभु का वैभव - एक साधु थे। एक बार उनका एक भक्त बहुत बीमार पड़ गया। वह भक्त एक बड़ा अधिकारी था। उसकी बीमारी असाध्य हो गई। चिकित्सकों ने जवाब दे दिया। अपना अंतिम समय जानकर उसने अपने गुरु को याद किया और उनकी दुआ लेने के लिए उन्हें बुलाया। साधु आये। भक्त ने उनकी ओर देखा और उनसे कहा, महाराज, आखिरी समय मुझे दुआ देने की कृपा दीजिये। साधु बोले, वत्स, पहले तुम परमपिता से उन अपराधों के लिए क्षमा मांगो, जो तुमने जाने या अनजाने किये हैं। उस आदमी ने हाथ जोड़कर प्रभु से याचना की कि मुझे मेरे अपराधों के लिए क्षमा करो। साधु ने ईश्वर को संबोधित करके कहा, हे प्रभो। जिस प्रकार तूने इसे इसके अपराधों का भान कराया, उसी प्रकार मेरी प्रार्थना स्वीकार कर और इसे अच्छा कर। अंतर से की गई प्रार्थना में बड़ा बल होता है। साधु की प्रार्थना स्वीकार हुई और वह भक्त धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होने पर कृतज्ञता के नाते उसने एक बड़ी राशि साधु को भेंट में देनी चाही, लेकिन साधुने लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, जिसे ईश्वर ने अपनी शरण प्रदान की है, उसके लिए धन-दौलत का मूल्य क्या है। इस अनन्त निष्कामता में ही ईश्वर ने अपना बाह्य वैभव निहित कर रखा है।

११४४) साधना का मार्ग - एक जिज्ञासु साधक को अपने लिए एक श्रेष्ठ गुरु की तलाश थी। उसके हृदय में कई प्रकार के प्रश्न उठते थे, जिनका समाधान अब तक कोई नहीं कर पाया था। एक दिन वह इसी तलाश में घूमता हुआ एक संत के आश्रम पहुंचा। संत का व्यक्तित्व सहज, सौम्य और तेज से भरा था। साधक ने उन्हें प्रणाम कर उनसे प्रश्न पूछने की आज्ञा दी। वह बोला, मैं कौन-सी साधना करूं? संत ने उत्तर दिया, तुम जोर से दौड़ो। दौड़ने से पहले निश्चित कर लो कि मैं भगवान के लिए दौड़ रहा हूं। बस यही तुम्हारे लिए साधना है। साधक ने पूछा, तो क्या बैठकर करने की कोई साधना नहीं है? संत बोले, है क्यों नहीं, बैठो और निश्चय करो कि तुम भगवान के लिए बैठे हो। साधक ने पुन: प्रश्न किया, कुछ जप नहीं करें क्या? संत ने समझाया, किसी भी नाम का जप करो, तो सोचो भगवान के लिए सोच रहा हूं। साधक ने प्रश्न उठाया, तब क्या क्रिया का कोई महत्व नहीं। केवल भाव ही साधना है? संत ने समझाया, क्रिया की भी महत्ता है। क्रिया से भाव और भाव से ही क्रिया होती है। इसलिए दृष्टि लक्ष्य पर रहनी चाहिए फिर तुम जो कुछ करोगे, वही साधना होगी। भगवान पर यदि लक्ष्य रहे तो वे सभी को सर्वत्र सर्वदा मिल सकते है। संत की बात सुनकर साधक समझ गया कि लक्ष्य यदि सही रखा जाए तो साधना अपने आप ठीक हो जाएगी। पवित्र साध्य की साधना भी पवित्र हो जाती है और उसका फल भी पवित्र होता है।

११४५) तपस्या का रहस्य - एक साधक था। उसने घोर तपस्या की और जब उसको सिद्धि प्राप्त हुई तो उसके बल पर वह जल पर चलने में समर्थ हो गया। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह दौड़ा-दौड़ा अपने गुरु के पास जा पहुंचा। गुरु ने उसे प्रसन्न देख पूछा- आज तो बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हो, क्या बात है? साधक बोला- गुरुदेव, मुझे जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त हो गई है। गुरुदेव बोले- तुमने चौदह वर्ष तक जो कठिनतम तपस्या की वह सब इसलिए थी? यह तो तुम्हारी एक पैसे की भी सिद्धि नहीं हुआ। क्योंकि यह काम तो तुम मल्लाह को एक पैसा देकर भी कर सकते हो। वत्स तपस्या का यह अभिप्राय नहीं है। तपस्या तो भगवत् प्राप्ति के लिए होती है। ऐश्वर्य आदि के लिए तपस्या करने से तो अच्छा है कि कोई व्यापार कर लो। शिष्य लज्जित होकर पुन: तपस्या करने चला गया। उसको ज्ञान हो गया था कि वास्तविक तपस्या का रहस्य क्या है।

११४६) प्रेम की आहुति - किसी नगर में एक विद्वान साधु रहता था। लोग उसके पास अपनी समस्याएं लेकर आते और समाधान पाकर प्रसन्न लौट जाते। एक दिन एक सेठ साधु के पास आकर बोला, महाराज, मेरे पास किसी चीज की कमी नहीं है फिर भी मेरा मन अशांत रहता है। कृपया बताएं कि मैं क्या करूं? यह सुनते ही साधु उठा और चल पड़ा। सेठ भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। आश्रम के एक खाली कोने में जाकर साधु ने आग जलाई और धीरे-धीरे उसमें

एक-एक लकड़ी डालता रहा। हर लकड़ी के साथ आग की लौ तीव्र होती रही। कुछ देर बाद वह वहां से उठकर चल दिया और वापस अपनी जगह पर आकर चुपचाप बैठ गया। सेठ भी साधु के पास आकर दोबारा बैठ गया किंतु जब साधु ने उससे कुछ भी न कहा तो सेठ को बहुत हैरानी हुई। वह हाथ जोड़कर विनम्रता से बोला, महाराज, मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सेठ के ऐसा कहने पर साधु मुस्कराकर बोला, मैं इतनी देर से तुम्हारा उत्तर ही तो दे रहा था और तुम्हारी समस्याका ही समाधान कर रहा था किंतु शायद तुम्हें समझ नहीं आया। अब मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक बताता हूं। हर व्यक्ति के अंदर आग होती है। उसमें प्यार की आहुति डालें तो वह मन को शांति और आनंद देती है और यदि उसमें दिन-रात काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद की लकड़ियां डाली जाती रहें तो वह मन में अशांति उत्पन्न करती है और आग को और भड़काती है। जब तक तुम अशांति फैलाने वाले इन तत्वों को आग में डालना बंद नहीं करोगे तब तक तुम्हारा मन शांत नहीं होगा। यह सुनकर सेठ की आंखें खुल गईं। उसे अपनी समस्या का समाधान मिल गया था। वह साधु को नमस्कार कर प्रसन्नचित्त घर लौट आया। उसने आगे से अपने अंदर की आग में प्रेम की आहुति डालने का संकल्प किया।

११४७) संत की सीख- किसी गांव में एक संत रहते थे। गांव के लोग उनके पास आते और अपनी समस्याओं का समाधान पाते। एक दिन एक व्यक्ति ने संत से पूछा, यह कैसे हो सकता है कि जब लोग प्रभु ईसा को सूली पर तरह-तरह के कष्ट दे रहे है तो वह अपने दुख का अनुभव न कर उन आततायियों के कल्याण की प्रार्थना करते रहे। जब मंसूर के हाथ-पांव काट दिए गए, तब उन्होंने सारे कष्टों को हंसते-हंसते सहा। इस पर तो सहसा विश्वास नहीं होता। संत ने उस व्यक्ति की बात ध्यान से सुनी और उसे एक कच्चा नारियल देते हुए कहा, जाओ इसे फोड़कर इसकी साबुत गिरी लाओ। वह गया और उसने नारियल तोड़ा लेकिन वह गिरी साबुत न निकाल सका। वह नारियल लेकर संत के पास वापस पहुंचा और बोला कि नारियल की साबुत गिरी निकल ही नहीं सकती। संत ने अब उसे एक सूखा नारियल दिया और उसे फोड़कर देखने के लिए कहा। वह व्यक्ति गया और जैसे ही उसने नारियल फोड़ा, उसमें से साबुत गिरी निकल कर अपने आप बाहर निकल आई। वह आदमी दौड़ता हुआ संत के पास आकर बोला कि साबुत गिरि तो बाहर निकल आई। संत ने कहा, यही तुम्हारी शंका का समाधान है। सामान्य आदमी कच्चे नारियल की तरह होता है। आसक्ति के कारण उसमें शरीर के प्रति अपनत्व का भाव रहता है। इस कारण वह शरीर के सुख व दु:ख को अनुभव करता है। ईसा और मंसूर जैसी हस्तियां सूखे नारियल की तरह होती हैं जिनमें आसक्ति का रस नहीं बचा रहता। इस कारण शरीर को कष्ट देने पर भी उन्हें पीड़ा नहीं सताती। अपने आप में मस्त रहकर वे सबके कल्याण की बात सोचते हैं। संत की बात सुनकर उस व्यक्ति को ज्ञात हो गया कि आसक्ति के रहते आदमी परिपक्व नहीं हो पाता। शरीर और अहंकार के बंधन से परे होकर वह सुख और दु:ख के द्वंद्व से पार हो जाता है।

११४८) सत्य का साक्षात्कार- एक व्यक्ति एक साधु के पास आया और बोला, महाराज, मेरे जीवन में दुख ही दुख है। कृपया बताएं कि इन दुखों से छुटकारा कैसे मिलेगा ? साधु ने कहा, भाई, तुम्हारा प्रश्न बडा कठिन है। फिर भी एक उपाय बता देता हूं। जाओ किसी ऐसे आदमी का अंगोछा ले आओ जिसके जीवन में दुख न हो। अंगोछा ले आओगे तो एक अनुष्ठान से मैं तुम्हारा समस्त दुख दूर कर दूंगा। वह व्यक्ति बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे लगा कि यह तो बहुत आसान है। वह उत्साहित होकर घर से निकल पड़ा।

सबसे पहले उसने अपने पड़ोसी से कहा, मैं तुम्हारा अंगोछा लेने आया हूं। लेकिन उससे पहले यह बताओ कि क्या तुम्हारे जीवन में कोई दुख है ? इस पर पड़ोसी ने जवाब दिया, अब तुमसे क्या छिपाना। तुम्हें मुझे देखकर लगता होंगा कि मैं बहुत सुखी हूं, पर भाई मैं तो संतान न होने के कारण हर समय दुख की आग में जलता रहता हूं। वह व्यक्ति दूसरे घर में

गया। उसके गृहस्वामी से भी उसने वही सवाल किया। गृहस्वामी ने कहा, दुख की बात पूछते हो। यह टूटा-फूटा मकान, पुराने बर्तन, पुराने कपड़े- यह सब देख ही रहे हो। फिर भी पूछते हो कि मेरे जीवन में दुख है या नहीं ? वह व्यक्ति वहां से भी निराश लौटा। वह कई और लोगों से मिला। उसने महसूस किया कि हर आदमी किसी न किसी कारण से दुखी है। गरीब भी दुखी है और धनवान भी। नि:संतान भी परेशान है और संतानवाला भी अपनी किसी कमी के कारण भाग्य को कोस रहा है। वह हारकर फिर उसी साधु के पास पहुंचा और बोला, महाराज बहुत कोशिश की मगर ऐसा कोई मनुष्य नहीं मिला जो दुखी न हो। इस पर साधु ने कहा, वत्स कितने भोले हो तुम। तुम इस सत्य को नहीं जानते कि इस संसार में कोई भी दुख से मुक्त नहीं हो सकता। हर किसी को यही लगता है कि मात्र वही दुखी है। संसार को देखोगे तब वस्तुस्थिति का पता चलेगा।

११४९) एक वृद्ध संन्यासी शिष्य के साथ जंगल पार कर रहा था। अंधेरा घिरने लगा। बूढ़े संन्यासी ने शिष्य से पूछा- बेटा। रास्ते में कोई डर तो नहीं, रास्ता बड़ा बीहड़ है।

शिष्य हैरान हुआ। रात और गहरी होने लगी। उस बूढ़े संन्यासी ने फिर पूछा- हम जल्दी दूसरे गांव पहुंच जाएंगे ? कितना फासला होगा ? वे एक कुएं पर हाथ-मुंह धोने को रुके। बूढ़े ने अपने कंधे पर डाली हुई झोली शिष्य को दी और कहा- संभाल कर रखना। बूढ़ा हाथ मुंह धोने लगा। शिष्य ने झोले में हाथ डाला और देखा सोने की एक ईंट उस में थी। उसने ईंट उठाकर जंगल में फेंक दी और उतने ही वजन का एक पत्थर का टुकड़ा झोली में रख दिया।

बूढ़ा जल्दी में आया, झोली का वजन देखा, कंधे पर रखा और चल पड़ा। थोड़ी दूर चलकर वृद्ध संन्यासी फिर कहने लगा, कोई भय तो नहीं है ? युवक संन्यासी ने कहा- अब आप निर्भय हो जाइए, भय को मैं पीछे फेंक आया।

बूढ़ा घबरा गया। उसने झोली मे हाथ डाला और देखा वहां तो एक पत्थर का टुकड़ा था। एक क्षण को तो वह ठगा सा रह गया, फिर हंसने लगा उसने कहा- मैं भी खूब पागल था। इतनी देर से पत्थर के टुकड़े को लिए हुए था, तब भी भयभीत हो रहा था। जीवन में सबसे बड़ी कठिनाई इसी बात से पैदा होती है कि जो चीज जो नहीं है उसको हम वही समझ लेते हैं।

११५०) सच्चा ज्ञान- एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा, गुरुदेव, क्या आपको संसार का समस्त ज्ञान प्राप्त है ? गुरु ने जवाब दिया, नहीं वत्स, ज्ञान तो अपार है। संसार का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना किसी के लिए संभव नहीं है।

लेकिन गुरुदेव, मैं तो संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। आप मुझे वे ग्रंथ दिखा दीजिए जिनसे मैं सारा ज्ञान अर्जित कर सकूं। शिष्य ने कहा। गुरु ने समझाया कि सारे ग्रंथ पढ़ लेने के बाद भी व्यक्ति का ज्ञान अधूरा रह जाता है। मगर शिष्य फिर जिद करने लगा। तब उसके गुरु उसे साथ लेकर ग्रंथों की खोज में निकल पड़े। वे काफी भटके, उन्हें ढेरों ग्रंथ मिले मगर शिष्य संतुष्ट नहीं हुआ। इस बीच गुरु काफी वृद्ध हो गए और उनका अंत समय निकट आ गया। शिष्य चिंतित होकर बोला, गुरुदेव, मुझे शेष ग्रंथों का ज्ञान कौन कराएगा ? इस पर गुरु ने जवाब दिया, तुम ग्रंथों के पीछे क्यों पड़े हो। उनसे कई गुना ज्ञान तो संसार में बिखरा पड़ा है। तुम्हें शायद इस बात का अहसास नहीं है कि इतनी लंबी यात्रा के दौरान तुमने वह सब ज्ञान अर्जित कर लिया है जो ग्रंथों में भी नहीं है। पुस्तकीय ज्ञान का अपना महत्व है पर वास्तविक ज्ञान तो जीवन को करीब से देखने पर ही हासिल होता है। यह कहकर गुरु ने संसार से विदा ली। शिष्य समाज सेवा के कार्य में जुट गया।

११५१) संचय और त्याग- पुराने जमाने की बात है। एक बार एक गुरु और शिष्य कहीं चले जा रहे थे। रास्ते में वे विभिन्न विषयों पर चर्चा कर रहे थे। इसी क्रम में त्याग बनाम संचय पर बहस शुरू हो गई। गुरु का कहना था कि त्याग में सुख और आनंद है, वहीं शिष्य का कहना था कि संचय में ही वास्तविक आनंद की प्राप्ति है। दोनों ही अपने-अपने कथन पर दृढ़ थे। दोनों ही अपनी बात के पक्ष में तर्क पर तर्क प्रस्तुत कर रहे थे।

चलते-चलते सूर्यास्त हो गया और सामने नदी आ गई। गुरु जी त्यागी थे, इसलिए उनके पास नाविक को देने के लिए पैसे न थे। शिष्य संचयी था, उसके पास पैसे तो थे पर देने में वह संकोच कर रहा थां रात होने लगी तो शिष्य घबरा गया कि रात्रि में कहीं जंगली जानवर खा गए तो। डरते हुए अंतत: उसने पैसे निकाले। अपना और गुरुजी का भाड़ा दिया। इस तरह वे दोनों नदी पार कर गए। नौका से उतरने के बाद शिष्य बोला, गुरुजी मैं कहता था न कि संचय में ही सुख है। यदि मेरे पास पैसे संचित न होते तो कैसे नदी पार करते ? गुरु बोले, वत्स, जब तक तुमने पैसे संचित रखे, तब तक नदी के उस पार ही खड़े रहे। जब पैसों का त्याग किया यानी पैसे नाविक को दिए, तभी नदी पार कर सके। यदि त्याग न करते तो यहां तक कैसे पहुंचते ? अत: त्याग में ही सुख है।

११५२) एक गुरु के तीन शिष्य एक साथ उत्तीर्ण हुए। गुरू ने कहा, तुम्हारी अंतिम परीक्षा बची रह गई है। उसे जाते समय ले लूंगा। शिष्यों की विदाई का दिन आ गया, लेकिन गुरु ने कोई परीक्षा नहीं ली। शाम को गुरु ने उनको विदा भी कर दिया। शिष्यों ने सोचा, शायद गुरु अंतिम परीक्षा लेना भूल गए हैं। वे जंगल से होकर गांव की तरफ जा रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि रास्ते में एक झाड़ी के पास कांटे बिखरे हैं। पहला शिष्य उन कांटों को छलांग कर निकल गया, दूसरा बगल से झाड़ी काट कर निकल गया। तीसरे शिष्य ने सारे कांटे साफ किए, फिर उन्हें उठाकर झाड़ी में डाला, तभी एक बड़ी झाड़ी में छिपे हुए गुरु प्रकट हो गए और पहले जाने वाले दोनों शिष्यों से बोले, तुम लोग आश्रम लौट जाओ, तुम्हारी शिक्षा अधूरी है। उन्होंने तीसरे शिष्य से कहा, तुम उत्तीर्ण हो गए हो, इसलिए घर जाओ। यही गुरु की अंतिम परीक्षा थी।

११५३) सात्विकता और निस्पृहता हो तो तीर्थयात्रा का फल घर बैठे भी संभव- एक संत दु:सह तीर्थ यात्रा समाप्त करके गाते-गाते मंदिर की सीढ़ियों पर सो गए। संत ने स्वप्न में सुना- घर बैठे भी तीर्थयात्रा का फल मिल सकता है। यदि व्यक्ति में इतनी सात्विकता और निस्पृहता हो जितनी रामू भक्त में है, जो केरल के एक छोटे-से गांव में जूता गांठकर आजीविका चलाता है। संत मार्ग के कष्ट सहते वे हरि सुमिरन में मग्न, जूते गांठते रामू के घर जा पहुंचे और उससे तीर्थयात्रा न करने का कारण पूछा। संत के चरण छूते हुए विनम्रभाव से वह बोला- मेरे तीर्थ तो यहीं हो गए जो आप जैसे महात्मा मेरे द्वार पर चले आए। वास्तव में मन में बड़ी अभिलाषा थी कि तीर्थयात्रा को जाऊं, कुछ पैसे भी इकट्ठे कर लिए थे, किंतु एक घटना ऐसी घटी कि तीर्थयात्रा पर नहीं जा सका। मेरी पत्नी गर्भवती थी। एक दिन उसे पड़ोस के घर से मेथी के साग की सुबंध आई। उसने मेथी का साग खाने की इच्छा प्रकट की। मैं पड़ोसी के घर गया और थोड़ा-सा साग मांगा। वह सकुचाते हुए बोला- रामू साग इतना अपवित्र है कि देने को मन नहीं करता। बाल-बच्चे चार दिन से भूखे थे, इसलिए आज ही मरघटों से मेथी की पत्तियां बटोरकर साग बनाया है। अब जैसे कहो...। यह बताकर रामू संत से बोला- सो महाराज, उसकी ऐसी अवस्था देखकर मैंने अपनी अंटी से वह सब रुपए-पैसे उसे दे दिए, जो मैंने और मेरी पत्नी ने पेट काटकर तीर्थयात्रा के लिए बचाए थे।

११५४) कल उत्तर दूंगा- एक फकीर गांव से गुजर रहा था। कुछ लोगों ने उसे गालियां दी और अपमान भरे शब्द कहे। फकीर ने उनसे कहा कि मैं कल आकर उत्तर दूंगा। लोग हैरान हुए। उन्होंने कहा, हमने तुम्हारा अपमान किया और तुम हमसे झगड़ने या कुछ कहने की बजाए कल आकर उत्तर देने को कह रहे हो।

फकीर ने कहा, पहले मैं घर जाकर सोचूंगा कि तुम लोगों ने जो अपमान किया है, कहीं वह ठीक तो नहीं है। हो सकता है, तुम लोगों ने जो बुराइयां मुझमें बताई हैं, वे सचमुच मुझमें हो। इसलिए मैं पहले जांच करूंगा। फिर कल आकर उत्तर दूंगा। इसमें झगड़ा कैसा। फकीर की महानता गांव के लोगों को अब समझ में आ गई। अपने व्यवहार से लज्जित वे फकीर के पैरों में गिर पड़े।

११५५) संत की सलाह- एक आदमी एक संत के पास आया और उसने कहा- मुझे कई बुरी आदतों ने जकड़ लिया है। मैं उन्हें छोड़ने की कोशिश करता हूँ, मगर कभी सफल नही हो पाया। अब आप ही बताइए कि मैं उन्हें कैसे छोडूं। संत ने उसकी बात बहुत ध्यान से सुनी, मगर कोई जवाब नहीं दिया। वे उठकर खड़े हो गए और उसके पास के खंभे से लिपटकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे-छुड़ाओ, छुड़ाओं। वह आदमी एकदम भौचक्का रह गया। उसे लगा अचानक यह क्या हो गया। कोई पागलपन का दौरा तो नहीं पड़ गया ? सोचने लगा कि संत ने खुद ही जाकर खंभे को पकड़ा और अब छुड़ाओ चिल्ला रहे हैं। आखिर में जब रहा न गया तो उसने कहा- मैं तो सोचता था कि आप पहुंचे हुए संत है, मगर आप तो विक्षिप्त मालूम होते हैं। संत ने कहा- इसके बारे में बाद में बातें करेंगे, पहले मुझे खंभे से छुड़ाओ। उस आदमी ने कहा- छुड़ाने की कोई जरूरत नही है। आप ने खंभे को पकड़ा हुआ है, खंभे ने आपको नहीं। संत ने कहा- अरे तू तो बड़ा होशियार आदमी है। फिर मुझसे क्यों पूछने आया, अगर तुममें इतनी बुद्धि है कि तुम बता सकते हो कि खंभा को पकड़ा हुआ है, खंभे ने आपको नहीं। तो तुम्हें यह भी पता होना चाहिए कि आदतों ने तुम्हें नहीं, तुमने आदतों को पकड़ा हुआ है।

११५६) निर्धन- एक महात्मा थे। उनके आशीर्वाद से किसी सेठ की कोई बड़ी मनोकामना पूरी हो गई। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वह एक दिन महात्मा के पास पहुंचा और उनकी चरण वंदना की। थोड़ी देर बाद एक थैला निकाल कर महात्मा जी को अर्पित करता हुआ बोला, गुरुवर, मैं श्रद्धावश कुछ धन आपको अर्पित कर रहा हूँ। कृपया मेरी भेंट स्वीकारे करें। महात्मा ने बड़ी शालीनता से कहा, वस्त। मैं यह धन लेकर क्या करूँगा ? मुझे नहीं चाहिए यह, उनके इनकार पर सेठ वह भेंट ले लेने के लिए आग्रह करने लगा। इस पर महात्मा जी बोले, मैं निर्धनों से दान नहीं लेता। किन्तु मैं निर्धन नही हूं। आपके आशीर्वाद से लाखों रुपये और सोने-चांदी से मेरी तिजोरियां भरी हुई हैं। अच्छा, तो क्या तुम अपनी इस धन-सम्पत्ति से अब पूर्णत: संतुष्ट हो ? अब और अधिक धन की इच्छा तुम्हें नहीं है ? महात्मन। अपनी इस सम्पत्ति को मैं दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं रात-दिन मेहनत करता हूं। इस पर महात्मा बोले, अर्थात् तुम अभी अतृप्त हो। अतृप्त व्यक्ति ही तो निर्धन होता है। सेठ को महात्मा जी की बात का मर्म समझ में आ गया।

११५७) सन्त की क्षमा- एक सन्त एक बार अपने मार्ग पर कहीं जा रहे थे। उनके पीछे-पीछे एक व्यक्ति भी चलता जा रहा था। किंतु वह व्यक्ति उन्हें गालियां देता हुआ उनके पीछे चल रहा था। सन्त ने उसकी ओर कोई ध्यान न देकर अपने मार्ग पर चलना यथावत जारी रखी। किंतु कुछ थोड़ी देर बाद कुछ घर नजर आने पर वे वहीं मार्ग में खड़े हो गए। वह व्यक्ति पास में आया तो सन्त कहने लगे- भाई तुम्हें जो कुछ कहना हो वह सब यहीं कह लो, मैं खड़ा हूं। आगे के उन घरों में मेरे प्रति निष्ठा रखनेवाले लोग हैं। उन्होंने यदि तुम्हारी बातें सुन ली तो तुम पर संकट आ सकता है। उस दुष्ट व्यक्ति को होश आ गया। वह तो साधुओं के विषय में फैली अफवाहों के आधार पर उनको गाली दे रहा था। साधु महाराज की बात सुनकर वह लज्जित हो गया और उनसे क्षमा मांग वह अपने मार्ग पर चल दिया।

११५८) संतों की निराली सूझ- किसी जंगल में दो संत रहा करते थे। दुनिया से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। एकान्त में रहते थे और अपना पूरा समय प्रभु की आराधना में व्यतीत करते थे। उनकी अपनी चर्या थी, जिसमें किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उन्हें पसन्द नहीं थी। एक दिन उन्हें पता चला कि वहां का राजा उनसे मिलने आ रहा है। इस समाचार से वे बड़े हैरान हुए। उनका भोला-भाला मन बेचैन हो गया। दोनों मिलकर विचार करने लगे कि आगे क्या हो? उन्होंने सोचा कि अगर राजा को यह मालूम हो गया कि हम अच्छे लोग हैं तो वह बार-बार यहां आवेगा और हमारे ध्यान आदि में बाधा पड़ेगी। इसलिए हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे राजा समझे कि हम सामान्य व्यक्ति हैं। सोचते-सोचते उन्होंने

अपने मार्ग निश्चित कर लिया। जब राजा आने को हुआ तो दोनों संत अपने हाथ में एक-एक डंडा लेकर अपनी कुटिया के बाहर आ खड़े हुए और लगे आपस में झगड़ने। एक ने ऊंचे स्वर में कहा, तू अपने को समझता क्या है। मैंने इतना पढ़ा है कि तू तीन जन्म में भी नहीं पढ़ सकता। दूसरा आंखें तरेरकर बोला, बड़ा आया है अपने ज्ञान की डींग मारनेवाला। तूने जितना पढ़ा है, उससे ज्यादा तो मेरे चेले पढ़ चुके हैं। पहले संत ने और भी तेज होकर कहा, तू पेटू हैं। दिन भर खाता रहता है। दूसरा बोला, तू मुझे पेटू कहता है। अरे, अपनी ओर देख, तेरा पेट नहीं, भट्टी है। राजा थोड़ी दूर पर खड़ा उनकी बातें उनकी बातें सुन रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है। वह जिन्हें ऊंचा संत मानकर आया था, वे तो कुंजड़ों की तरह लड़ रहे थे। राजा को बड़ी निराशा हुई। वह उल्टे पांव लौट गया। राजा के जाने पर संतों ने चैन की सांस ली और अपनी-अपनी साधना में लीन हो गये। संतों की योजना सफल रही। राजा फिर कभी वहां नहीं आया।

११५९) तपस्या का रहस्य- एक साधक था। उसने घोर तपस्या की और जब उसको सिद्धि प्राप्त हुई तो उसके बल पर वह जल पर चलने में समर्थ हो गया। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह दौड़ा-दौड़ा अपने गुरु के पास जा पहुंचा। गुरु ने उसे प्रसन्न देख पूछा- आज तो बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हो, क्या बात है? साधक बोला- गुरुदेव मुझे जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त हो गई है। गुरुदेव बोले- तुमने चौदह वर्ष तक जो कठिनतम तपस्या की क्या वह सब इसलिए थी? यह तो तुम्हारी एक पैसे की भी सिद्धि नहीं हुई। क्योंकि यह काम तो तुम मल्लाह को एक पैसा देकर भी कर सकते हो। वत्स तपस्या का यह अभिप्राय नहीं है। तपस्या तो भगवत् प्राप्ति के लिए होती है। ऐश्वर्य आदि के लिए तपस्या करने से तो अच्छा है कि कोई व्यापार कर लो। शिष्य लज्जित होकर पुन: तपस्या करने चला गया। उसको ज्ञान हो गया था कि वास्तविक तपस्या का रहस्य क्या है।

११६०) एक बार एक साधु अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में वे एक गांव में रुके। गांव वालों ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। अगले दिन जब वे जाने लगे तो गांव वालों ने कहा, स्वामीजी, हमें कुछ आशीर्वाद तो देते जाओ। स्वामीजी बोले, उजड़ जाओ। चलते-चलते स्वामीजी का काफिला एक दूसरे गांव में पहुंचा। वहाँ के लोगों ने साधु को बुरा-भला कहा और पत्थर मार-मार कर गांव से भगा दिया। जाते-जाते साधु ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, यहीं बसे रहो। जब सब लोग कुछ आगे निकल गए तो शिष्यों ने स्वामीजी के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट की, आपने ऐसे उलटे आशीर्वाद क्यों दिए ? स्वामीजी बोले, पहले गांव के लोग सज्जन थे। वे बिखरेंगे तो उनके साथ नेकी भी बाहर जाएगी। इसलिए उन्हें उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया। दूसरे गांव के लोग दुष्ट प्रकृति के हैं, जहां जाएंगे दुष्टता ही फैलाएंगे। इसलिए मैंने उन्हें यहीं बसे रहने का आशीर्वाद दिया, ताकि इनकी दुष्टता भी यहीं तक सीमित रहे।

११६१) समय का उपयोग - एक दिन एक व्यक्ति किसी महात्मा के पास पहुंचा और कहने लगा, जीवन अल्पकाल का है। इस थोड़े समय में क्या-क्या करूं? बचपन में ज्ञान नहीं होता। युवावस्था में गृहस्थी का बोझ होता है। बुढ़ापा रोगग्रस्त और पीड़ादायक होता है। तब भला ज्ञान कैसे मिले? लोक सेवा कब की जाए? यह कहकर वह रोने लगा। उसे रोते देख महात्मा भी रोने लगे। उस आदमी ने पूछा, आप क्यों रोते हैं? महात्मा ने कहा, क्या करूं, खाने के लिए अन्न चाहिए। लेकिन अन्न उपजाने के लिए मेरे पास जमीन नहीं है। परमात्मा के एक अंश में माया है। माया के एक अंश में तीन गुण है। गुणों के एक अंश में आकाश है। आकाश में थोड़ी सी वायु है और वायु में बहुत आग है। आग के एक भाग में पानी है। पानी का शतांश पृथ्वी है। पृथ्वी के आधे हिस्से पर पर्वतों का कब्जा है। जमीन पर जहां देखो नदियां बिखरी पड़ी हैं। मेरे लिए भगवान ने जमीन का एक नन्हा सा टुकड़ा भी नहीं छोड़ा। थोड़ी सी जमीन थी उस पर भी दूसरे लोगों ने अधिकार जमा लिया। तब बताओ, मैं भूखा नहीं मरूंगा। उस व्यक्ति ने कहा, यह सब होते हुए भी आप जीवित तो हैं न।

फिर रोते क्यों हैं? महात्मा ने तुरंत उत्तर दिया, तुम्हें भी तो समय मिला है, बहुमूल्य जीवन मिला है, फिर समय न मिलने की बात कहकर क्यों हाय-हाय करते हो। अब आगे से समयाभाव का बहाना न करना। जो कुछ भी है, उसका उपयोग करो, उसी में संतोष पाओ। संसार में हर किसी ने सीमित समय का सदुपयोग करके ही सब कुछ हासिल किया है।

११६२) सच्ची कथा का सुख- गुजरात के एक गांव में एक प्रसिद्ध संत प्रवचन के लिए आए हुए थे। शहर से अपने गांव आए एक प्रसिद्ध व्यापारी का भी मन हुआ कि खाली समय में कथा का रसास्वादन किया जाए। जब व्यापारी तेज कदमों से मंडप की ओर जा रहा था तभी उसकी चप्पल टूट गई। थोड़ी दूर पर छतरी की छाया तले एक मोची बैठा हुआ था। व्यापारी उसके पास पहुंचा और चप्पल ठीक करने को उसे दे दी। मोची ने जल्द ही चप्पल ठीक कर व्यापारी को दे दी। इस पर व्यापारी ने उसे एक रुपया निकालकर दिया तो मोची ने पैसे लेने से इनकार कर दिया। आश्चर्य से व्यापारी ने कारण पूछा। इस पर प्रेमपूर्वक मोची बोला, आप दूसरे गांव से कथा सुनने आए हैं। मैं निर्धन हूं। इसलिए अपना काम छोड़कर कथा सुनने नहीं जा सकता, लेकिन आप जैसे गृहस्थ की चप्पल में दो टांके लगाकर मैं कथा में अपने को शामिल मानता हूं। मोची की आत्मीयता ने सेठ को एक सच्ची कथा का सुख दे दिया।

११६३) चिदम्बर दीक्षित- कर्नाटक के संत चिदम्बर दीक्षित के पास एक नि:संतान महिला पहुंची और रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाया। संत चिदम्बर ने उसी समय भुने चनों की दो मुट्ठी उसे दे दीं और कहा- जा दूर बैठ, बुलाऊं, तब आना। वह महिला कुछ दूर बैठकर चने खाने लगी। तभी पास में खेलते कुछ बालक उसके पास आए और कौतूहल से देखने लगे। एक-दो ने हाथ भी पसार दिए। उस महिला ने सोचा कि एक को दूंगी तो सबको देना पड़ेगा। इसलिए वह मुंह छिपा कर घूंघट में चने खाने लगी। तभी संत चिदम्बर ने उसे बुलाया और कहा- अरी, जब तू मुफ्त में मिले चनों में से चार दाने भी किसी को देना नहीं चाहती तो भगवान तुझे जीता-जागता, हंसता-खेलता बच्चा कैसे देंगे ? ये ठीक है कि तूने संतान पाने के लिए बहुत से व्रत, उपवास किए हैं। परन्तु प्रेम और दया के बिना उनका कोई महत्व नहीं होता। केवल प्रेम और दया से ही भगवान प्रसन्न होते हैं।

११६४) अंतिम उपदेश- एक संत थे। उनके कई शिष्य थे। जब उन्हें महसूस हुआ कि उनका अंतिम समय आ गया है तो उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाया। जब सभी शिष्य आ गए तो उन्होंने कहा, जरा मेरे मुंह के अंदर ध्यान से देख कर बताओ कि अब कितने दांत शेष रह गए हैं। बारी-बारी से सभी शिष्यों ने संत का मुंह देखा और एक साथ बोले, गुरुजी, आपके सभी दांत टूट गए हैं। एक भी बचा नहीं है। संत ने कहा, जरा ध्यान से देखो कि जीभ है या नहीं। यह सुनकर शिष्यों को हंसी आ गई। वे सोचने लगे कि आज गुरुजी मजाक क्यों कर रहे हैं। एक शिष्य बोला, गुरुजी जीभ तो जन्म से मृत्यु तक साथ रहती है। वह कहां जाएगी। संत हंस कर बोले, यह तो अजीब बात है कि जीभ जन्म से मृत्यु तक साथ रहती है ओर दांत बाद में आते हैं मगर पहले ही साथ छोड़ देते हैं। जबकि बाद में आनेवालों को बाद में जाना चाहिए। क्या तुम लोगों में कोई बता सकता है कि ऐसा क्यों होता है कि दांत बाद में आते हैं और पहले चले जाते हैं।

एक शिष्य बोला, गुरुजी, यह प्रकृति का नियम है कि दांत टूट जाते हैं और जीभ नहीं टूटती। संत बोले, यही बात समझाने के लिए मैंने तुम लोगों को यहां बुलाया है। यह प्रकृति का नियम नहीं है। जीभ इसलिए नहीं टूटती कि उसमें लोच है, वह नरम है। उसमें सहन करने की शक्ति है। उसमें कठोरता बिल्कुल नहीं होती। जबकि दांत बहुत कठोर होते हैं। उन्हें अपनी कठोरता पर अभिमान होता है। लेकिन उनकी कठोरता ही उनकी समाप्ति का कारण बनती है। जीभ और दांत की कोई तुलना नहीं हो सकती, लेकिन यदि तुम्हें समाज के कठोर नियमों का सामना करना है तो तुम लोग जीभ बनो,

दांत नहीं। अपने को हमेशा लचीला बनाए रखो। समाज में नम्रता का व्यवहार करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो दांतों की तरह तुम भी जल्दी टूट जाओगे और समाज तुम्हें तिरस्कृत कर देगा।

११६५) क्रोध पर विजय - स्वामी सदानंद अपनी विद्वता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। उनकी ख्याति राजा प्रसन्नजित तक भी पहुंची। राजा का एकमात्र पुत्र कुलजीत बेहद गुस्से वाला था और अकसर क्रोध में काफी नुकसान कर डालता था। राजा प्रसन्नजीत अपने पुत्र को लेकर स्वामी सदानंद के पास आए और स्वामी जी से अनुरोध किया कि वह इसे सुधारने का प्रयत्न करें। सदानंद ने राजा से कहा कि वह कुलजीत को आश्रम में छह महीने के लिए छोड़ जाएं। राजा ने वैसा ही किया। ठीक छह महीने बाद वह आश्रम आए। सदानंद ने कुलजीत को उनके हवाले करते हुए कहा, आज के बाद यह क्रोध नहीं करेगा। इसने क्रोध पर काबू पाना सीख लिया है। राजा कुलजीत को लेकर महल लौट गए। उसके व्यवहार पर राजा को काफी हैरानी हुई।

युवराज ने न सिर्फ क्रोध पर काबू पा लिया था अपितु उसने लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि पर भी विजय पा ली थी। कुछ ही समय में युवराज के गुणों की जय-जयकार पूरे राज्य में होने लगी। युवराज में ऐसा आकस्मिक परिवर्तन देखकर राजा फिर उसी आश्रम में पहुंचे और सदानंद से इसका रहस्य बताने को कहा। सदानंद बोले, महाराज, मैं अपने शिष्यों के क्रोध को काबू में लाने के लिए उन्हें एक खेल खेलने को कहता था। इस खेल में दूसरे पर नकली क्रोध करना होता था। पर मैं उन्हें यह भी कहता था कि उन्हें अपना क्रोध किसी दूसरे को छुए बिना प्रदर्शित करना होगा। यदि किसी ने क्रोधवश दूसरे को छू लिया तो वह हारा हुआ माना जाएगा और खेल से बाहर हो जाएगा। धीरे-धीरे इस खेल में सबको आनंद आने लगा और उनके भीतर से क्रोध कम होता गया क्योंकि नकली क्रोध को काबू करते-करते वह वास्तविक क्रोध पर काबू पाना भी सीख गए थे। इस तरह खेल का खेल चलता रहा और वे अपने दुर्गुणों से मुक्त भी होते गए। यह सुनकर राजा सदानंद से बेहद प्रभावित हुए।

११६६) उपदेश और व्यवहार - एक जिज्ञासु युवक किसी प्रसिद्ध महात्मा के पास गया और उनसे कुछ उपदेश सुनाने की प्रार्थना करने लगा। महात्मा ने उस युवक को गौर से देखा फिर बोले, मेरा पहला उपदेश तो यही है कि आज के बाद किसी से उपदेश मत मांगना। यह सुनकर युवक हैरानी से बोला, क्यों महाराज, उपदेश सुनना तो अच्छी बात है। उसकी बात पर महात्मा बोले, इसका जवाब अभी मिल जाएगा। कुछ देर सोचने के बाद महात्मा ने उससे पूछा, बताओ, सच बोलना अच्छा है या बुरा? युवक बोला, सच बोलना तो अच्छा है महाराज। महात्मा ने फिर प्रश्न किया, चोरी करना ठीक है या गलत? युवक बोला, गलत है महाराज। महात्मा का अगला सवाल था, कटु वचन व मीठे वचनों में कौन सा वचन बोलना अधिक सार्थक है? युवक बोला, महाराज, मीठे वचन बोलना ही अधिक सार्थक है। इसके बाद महात्मा ने कहा, एक अंतिम बात और बताओ पुत्र कि समय का सदुपयोग करना चाहिए अथवा नहीं युवक ने जवाब दिया समय का सदुपयोग तो अवश्य करना चाहिए क्योंकि गया समय कभी वापस नहीं आता। महात्मा बोले, तुम सब कुछ जानते ही हो तो अब और क्या उपदेश सुनना चाहते हो? तुम्हें क्या लगता है कि कुछ बड़ी-बड़ी गूढ़ बातें ही उपदेश हैं? ऐसी बातें सुनने से क्या फायदा जो सुनने में तो अच्छी लगें पर समझ में ही न आएं और जिनसे हमारे जीवन में कोई अंतर न आए। उपदेश की सार्थकता तभी है जब वह हमारी सोच को, हमारे व्यवहार को बदले। जीवन में छोटी-छोटी बातें ही ज्यादा काम आती हैं। तुम्हें जीवन के मूलभूत गुणों का ज्ञान है, लेकिन मात्र ज्ञान से काम नहीं चलता। उन गुणों को अपने जीवन में भी उतारना चाहिए। युवक महात्मा का जवाब सुनकर दंग रह गया। उसने महात्मा से कहा कि आगे से वह इस बात का ध्यान रखेगा और जिन सार्थक बातों को वह जानता है, उन्हें अपने जीवन में अवश्य उतारेगा।

११६७) युवा भाव- भारत-रत्न से सम्मानित प्रसिद्ध इंजीनियर डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया ने १०० वर्ष से भी अधिक की आयु पाई और आखिरी समय तक अत्यंत सक्रिय जीवन जिया। एक बार किसी परिचित व्यक्ति ने उनसे पूछा, आपके निरंतन युवा, उत्साही और सक्रिय बने रहने का रहस्य क्या है ?

डॉ. विश्वेश्वरैया ने अपनी दीर्घ जीवनकाल में न तो कभी मांस-मदिरा का सेवन किया और न ही कभी धूम्रपान किया। एक बार अपनी स्वीडन यात्रा के दौरान वह कुछ अस्वस्थ हो गए और उन्हें डॉक्टर के पास जाना पड़ा। डॉक्टर ने उन्हें ठंड से बचने और शरीर को गर्म रखने के लिए रात को सोते समय ब्रांडी की कुछ बूंद लेने की सलाह दी। यह सुनकर विश्वेश्वरैया ने कहा, यदि ब्रांडी की बूंदों से ही मेरा जीवन बचता है, तो फिर यह इलाज रहने ही दो।

इसी प्रकार एक बार मैसूर सरकार ने उन्हें एक भोज में आमंत्रित किया। वहां उनकी मेजबानी में लगे मंत्री को लगा कि विश्वेश्वरैया विदेश जा चुके हैं, सो अवश्य ही मांसाहारी भोजन पसंद करते होंगे। लेकिन विश्वेश्वरैया ने बताया कि वे पक्के निरामिष हैं। तब मंत्री ने पूछा- अच्छा, भोजन के पहले मदिरा या बीयर तो लेंगे ? डॉ. विश्वेश्वरैया ने फिर सर हिलाकर मना कर दिया। आतिथ्य के लिए मंत्री ने फिर पूछा- ठीक है, पर सिगरेट तो अवश्य पीते होंगे ? डॉ. विश्वेश्वरैया ने विनोदपूर्ण लहजे में कहा, नहीं, मैं अभी इतना शिष्ट नहीं हुआ हूं।

११६८) विश्वेश्वरैया की संतुष्टि- भारत के जाने-माने इंजीनियर डॉ. विश्वेश्वरैया एक बार किसी गांव से होकर गुजर रहे थे। उस गांव के अध्यापकों ने उनसे बच्चों के सामने एक भाषण देने के लिए निवेदन किया। थोड़ी आनाकानी के बाद वे इसके लिए सहमत हो गए और एक छोटा सा भाषण दे दिया। जब वे वहां से चले तो रास्ते में वे बिना तैयारी के भाषण देने की भूल पर दुखी हुए। अगले सप्ताह उन्होंने उस स्कूल के अध्यापकों को लिखा वे वहां पुन: भाषण देना चाहते हैं। अध्यापकगण विश्वेश्वरैया का पत्र पाकर आश्चर्य में थे कि इतने व्यस्त और विख्यात व्यक्ति बिना बुलाए क्यों आ रहे हैं? विद्यालय में आने पर उन्होंने अपना एक नया लिखा हुआ भाषण अध्यापकों के समक्ष पढ़ा और अंत में उन्हें संबोधित करते हुए कहा, आप लोग बच्चे हैं इससे क्या ? मुझे अपने भाषण का स्तर नहीं गिराना चाहिए था। अच्छी चीज तैयारी के बाद ही बनती हैं। अपने पिछले भाषण से मुझे संतोष नहीं था। इसलिए उस भूल को सुधारने के लिए मुझे आपके पास दोबारा आना पड़ा।

११६९) वैज्ञानिक का नियम पालन- भारत के प्रतिभाशाली इंजीनियर डॉ. विश्वेश्वरैया भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे। वह प्राय: कहा करते थे, अपनी संस्कृति से जुड़े रहकर तथा मातृभूमि की सेवा का संकल्प करके ही कोई व्यक्ति अपने देश का आदर्श नागरिक कहला सकता है।

भारत सरकार ने डॉ. विश्वेश्वरैया को भारत-रत्न की उपाधि से अलंकृत करने की घोषणा की। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद उनकी उपलब्धियों से बहुत प्रभावित थे। उन्हें ऋषि-तुल्य बताकर उनका सम्मान करते थे। डॉ. विश्वेश्वरैया राष्ट्रपति भवन में आयोजित अलंकरण समारोह में शामिल होने दिल्ली आए। ससम्मान राष्ट्रपति भवन में उनके ठहरने की व्यवस्था की गई। तीसरे दिन उन्हें भारत-रत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया। एक दिन प्रात: तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से वह बोले- अब मुझे इजाजत दीजिए।

राजेंद्र बाबू चाहते थे कि डॉ. विश्वेश्वरैया दो-चार दिन और ठहरें तथा उनसे बौद्धिक चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हो। चौथे दिन सबेरे ही उन्होंने अपना सामान समेटा तथा राजेंद्र बाबू से विदा लेने उनके सामने पहुंच गए। राजेंद्र बाबू ने कहा, आप तीन-चार दिन और ठहरें, तो अच्छा रहे। उनका जवाब था, मुझे पता है कि नियम यही है कि कोई भी सरकारी अतिथि तीन दिन से ज्यादा राष्ट्रपति भवन में नहीं ठहर सकता। मैं उस नियम का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकता।

राजेन्द्र बाबू ने जोर दिया, यह नियम पुराना है। इस पर ध्यान नहीं दीजिए और यह आपके ऊपर लागू नहीं होता।

लेकिन डॉ. विश्वेश्वरैया ने राजेन्द्र बाबू की एक भी बात नहीं मानी और उनसे विदा लेकर कहीं और ठहरने चले गए।

जिस तरह डॉ. विश्वेश्वरैया वक्त के पाबंद थे, उसी तरह नियम के बड़े पक्के थे। राजेंद्र बाबू उनके नियम पालन की दृढ़ता देखकर बेहद प्रभावित हुए।

११७०) भारतीय इंजीनियरिंग के पितामह डॉ. विश्वेश्वरैया जब मैसूर रियासत के दीवान थे, तो किसी गांव में उनका कैंप लगा। एक दिन वहां काम करते वक्त उनकी उंगलियों में चोट लग गई। गांव के डॉक्टर ने उचित रूप से मरहम-पट्टी की। विश्वेश्वरैया ने २५ रुपये का चेक फीस के रूप में डॉक्टर को दे दिया। चेक लौटाते हुए डॉक्टर बोला, इसे मैं नहीं ले सकता। यह मेरा सौभाग्य है कि आपकी सेवा करने का मुझे अवसर मिला विश्वेश्वरैया उस डॉक्टर पर बिगड़े और बोले, हर मरीज की सेवा करने का मौका आपका एक सौभाग्य है। जो लोग पैसा दे सकते हैं आपको उनसे पैसा लेना चाहिए, ताकि जो लोग पैसा नहीं दे सकते, उनसे लेने की लालसा आप में न रहे। आपने अपना कर्त्तव्य निभाया, कृपया मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करने दें। यह सुनकर डॉक्टर निरुत्तर हो गया।

११७१) जीवन की कुंजी- हर एक क्षण का हिसाब रखनेवाले डॉ. विश्वेश्वरैया ने १०१ वर्ष का यशस्वी जीवन जिया और आधुनिक भारत के नव निर्माण में अप्रतिम भूमिका निभायी। कृष्णराज सागर बांध, भद्रावती का इस्पात कारखाना और मैसूर विश्वविद्यालय उन्हीं की देन है। अपने पीछे ढेर सारे कार्यों का स्मारक छोड़ जाने वाले डॉ. विश्वेश्वरैया आधुनिक भारत के विश्वकर्मा थे।

पं. जवाहर लाल नेहरू ने नारा दिया था- आराम हराम है। लेकिन डॉ. विश्वेश्वरैया के लिए यह नारा नया नहीं था। उनका जीवन तो काम ही करते करते बीता। आज सारे देश में सड़कों, नहरों, बांधो, भवनों के रूप में उनके कामों के अनगिनत स्मारक विद्यमान हैं। एक बार किसी ने उनसे पूछा- आपके इस लम्बे जीवन का रहस्य क्या है ?

डॉ. विश्वेश्वरैया बोले- सब काम समय पर करना। मैं समय पर काम करता हूं। समय पर खाना खाता हूं, समय पर सोता हूं। समय पर नियमित सैर और कसरत करता हूं। गुस्से से कोसों दूर रहता हूं। यही सुदीर्घ जीवन की कुंजी।

११७२) पहचान- अंग्रेजों के समय की बात है। एक बार अंग्रेजों के साथ ही डॉ. विश्वेश्वरैया बम्बई मेल में सफर कर रहे थे। उनका हुलिया साधारण ग्रामीण की तरह था। अंग्रेज उनको बेवकूफ देहाती समझ उनका मजाक बना रहे थे। अचानक विश्वेश्वरैया ने गाड़ी की चेन खींच दी। आसपास के लोग उन्हें पागल, मूर्ख, अनपढ़ कहकर मारने को तैयार हो गए। तभी गार्ड ने आकर उनसे चैन खींचने का कारण पूछा।

विश्वेश्वरैया ने कहा- गाड़ी की आवाज से लगता है कुछ ही आगे पटरी उखड़ी पड़ी है।

गार्ड उन्हें लेकर कुछ आगे गया तो वाकई वहां रेल की पटरी उखड़ी हुई थी। अंग्रेज जब वहां पहुंचे तो उन्होंने उस व्यक्ति का परिचय पूछा। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया- मैं डॉ. एम. विश्वेश्वरैया एक इंजीनियर हूं। नाम सुनना था कि सभी अंग्रेज अपनी गलती पर शर्मिन्दा हो गए।

११७३) राजऋषि- उड़ीसा प्रांत में एक बार भयानक बाढ़ आई। गांधीजी ने डॉ. विश्वेश्वरैया को लिखा- उड़ीसा जाइए, वहां बाढ़ रोकने की योजना बनाइए।

गांधीजी का पत्र मिलते ही विश्वेश्वरैया उड़ीसा गए। वहां निरीक्षण करके एक योजना बनाई और सरकार को दे दी। फिर वापस लौट आए। कुछ दिनों बाद उड़ीसा सरकार ने उन्हें पारिश्रमिक का चैक भेज दिया। उन्होंने सरकार को चैक वापस

करते हुए लिखा- मैं गांधीजी के कहने पर वहां गया था। सरकार से रुपए लेने का हकदार मैं नहीं। गांधीजी डाक्टर विश्वेश्वरैया को राज-ऋषि कहा करते थे।

११७४) राइट बंधुओं के विमान ने ९ नवम्बर १९०४ में पहली बार ५ मिनट से ज्यादा देर तक उड़ान भरी थी। हवाई जहाज का आविष्कार करनेवाले राइट बंधु बचपन से ही कल्पनाशील थे और अपनी कल्पनाओं की उड़ान में उन्होंने हवाई जहाज बनाने का सपना देखना शुरू कर दिया था। अमेरिका के हर्टिंगटन स्थित यूनाइटेड ब्रेदेन चर्च में बिशप के पद पर कार्यरत उनके पिता ने बचपन में उन्हें एक खिलौना हेलीकॉप्टर दिया था जिसने दोनों भाइयों को असली का उड़न यंत्र बनाने के लिए प्रेरित किया। कागज, रबर और बांस का बना हुआ यह हेलीकॉप्टर फ्रांस के एयरोनॉटिक विज्ञानी अल्फोंसे पेनाउड के एक आविष्कार पर आधारित था। दोनों में इस खिलौने को लेकर जबर्दस्त उत्सुकता थी। दोनों, रात-दिन इससे खेलते रहे। दोनों इससे तब तक खेलते रहे जब तक कि एक दिन यह टूट नहीं गया। १७ दिसम्बर, १९०४ को पहली बार पूर्ण नियंत्रित मानव हवाई उड़ान को सफलतापूर्वक अंजाम देनेवाले ऑरविल और विल्बर राहट साइकिल की संरचना को ध्यान में रखकर अलग-अलग कलपुर्जा जोड़कर हवाई जहाज का विकास करते रहे। उन्होंने कई बार हवा में उड़नेवाले ग्लाइडर बनाए और अंत में जाकर हवाई जहाज बनाने का उनका सपना सच हुआ। दोनों को मशीनी तकनीक की काफी अच्छी समझ थी जिससे उन्हें हेलीकॉप्टर के निर्माण में मदद मिली। यह कौशल उन्होंने प्रिंटिंग प्रेसों, साइकिलों, मोटरों और दूसरी मशीनों पर लगातार काम करते हुए पाया था। दोनों ने १९०० से १९०३ तक लगातार ग्लाइडरों के साथ परीक्षण किया था। आखिरकार ९ नवम्बर १९०४ को पहली बार उनके हवाई जहाज ने हवा में पांच मिनट से ज्यादा समय तक उड़ान भरी।

११७५) समय की कद्र- भारत के महान वैज्ञानिक सी.वी.रमण बहुत कोमल स्वभाव के थे। लोगों से बहुत सहजता से मिलते-जुलते थे, लेकिन खरी बातें कहने से भी हिचकते नहीं थे। एक बार उन्हें एक सभा में मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया। सभा की अध्यक्षता मैसूर राज्य के किसी बहुत बड़े अधिकारी को करनी थी। रमण निश्चित समय से कुछ पहले ही सभा स्थल पर पहुँच गए, पर अध्यक्ष महोदय का कहीं अता-पता नहीं था। ठीक समय पर श्री रमण उठे और उन्होंने सभा को संबोधित करना शुरू कर दिया। अभी तक न पधारने वाले अध्यक्ष जी के संबोधन से उन्होंने अपने भाषण की शुरुआत की। थोड़ी देर बाद अध्यक्ष महोदय पधारे। संकोचवश में मंच के पीछे की तरफ बैठ गए। सी.वी. रमण ने उन्हें सम्मान सहित आगे बिठाया, पर यह भी कहे बिना नहीं रहे कि जो समय को कद्र नहीं करता, समय भी उसकी कद्र नहीं करता।

११७६) अधिकार- सर सी. वी. रामन् जिससे प्रेम करते, उस पर वे अनुग्रह की तरह अधिकार भी चलाते थे। इस सन्दर्भ में रामन् के शिष्य प्रो. जी. एस. परम शिवय्या का एक अनूठा संस्मरण है-

उनसे पढ़ते समय एक बार उत्साह में आकर अन्य चार सहपाठियों के साथ मैंने भी आई.सी.एस. के लिए अर्जी भेज दी। उन्हें पता चल गया। कक्षा समाप्त होते ही मुझे कान पकड़ कर घसीटते हुए अपने कमरे में ले गए और पीठ पर तीन धौल जमा कर बोले- बैठ।

और मेरे बैठते ही गरज उठे- धोखे बाज। जब तू बारह साल का था, तब तूने मुझे क्या-क्या वचन दिया था ? अब वह वचन तोड़ने चला है ? मैंने कहा- गलती हो गई। पहले से टाइप करके रखा हुआ एक पत्र मेरे सामने बढ़ाकर आज्ञा दी- कर इस पर हस्ताक्षर। मैंने वैसा ही किया। उन्होंने तुरन्त उसे लिफाफे में रखकर डाक में डलवा दिया। वह आई.सी.एस. की अर्जी वापस लेने की चिट्ठी थी। मेरे साथ अर्जी भरने वाले शेष चारों साथी आई.सी.एस. की परीक्षा देकर उत्तीर्ण होकर सरकारी यंत्र के पुर्जे बन गए। रामन् की कठोर कृपा केवल मुझ पर रही। और उसके लिए मुझे पछताना नहीं पड़ा।

उनका वरद-हस्त अंत तक मुझ पर रहा।

११७७) गुरु और शिष्य- एक बार एक विदेशी युवा वैज्ञानिक ने शरीर विज्ञान के माध्यम से आंतरिक रंगों का गहन अध्ययन किया। रंगों का अध्ययन करने के बाद उसने कुछ नए तथ्य खोज निकाले। महान वैज्ञानिक डॉ. सी.वी. रमन को इसका पता चला तो उनमें इसके प्रति उत्सुकता पैदा हुई। वह उस युवा वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में जा पहुंचे। तब तक श्री रमन को नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका था। जब युवा वैज्ञानिक ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक को अपनी प्रयोगशाला में देखा तो दंग रह गया। उसने श्री रमन का स्वागत करते हुए संकोच के साथ उन्हें बैठने को कहा। लेकिन डॉ. रमन बैठे नहीं। उन्हें खड़ा देखकर युवा वैज्ञानिक बोला, सर, आप यहां तक आए हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं तो सपने में भी नहीं सोच सकता था कि आप जैसे महान वैज्ञानिक कभी मेरी प्रयोगशाला में आ सकते हैं। कृपया आप बैठिए। श्री रमन बोले, मेरी विवशता है कि मैं आपके सामने बैठ नहीं सकता। युवा वैज्ञानिक ने आश्चर्य से कहा, सर, भला आपके साथ ऐसी क्या विवशता है जो आप मेरे सामने बैठ नहीं सकते? आप तो हर तरह से मुझसे बड़े और सम्मानीय हैं। श्री रमन मुस्कराकर बोले, आपने रंगों के कुछ नए प्रयोग किए हैं और उसी संबंध में मैं आपसे कुछ ज्ञान प्राप्त करने आया हूं। इसलिए मैं आपका शिष्य हूं और आप मेरे गुरु। भला मैं गुरु के सामने कैसे बैठ सकता हूं? क्या आप मुझे रंगों के विषय में कुछ ज्ञान देंगे? युवा वैज्ञानिक रोमांच और प्रसन्नता से बोला, हां सर अवश्य। बताइए मैं कब आपके पास हाजिर हो जाऊं? डॉ. रमन बोले, ज्ञान मुझे प्राप्त करना है। गुरु शिष्य के पास कभी नहीं आता। शिष्य को गुरु के पास जाना चाहिए। आप अपनी सुविधानुसार मुझे समय बता दीजिए। युवा वैज्ञानिक के जीवन का वह स्वर्णिम क्षण था। उसने डॉ. रमन को समय दिया और मन ही मन उनकी विनम्रता व शालीनता का कायल हो गया।

११७८) जब अध्यापक ने त्यागा आत्महत्या का विचार - महर्षि रमण के आश्रम के समीप गांव में एक अध्यापक रहते थे। प्रतिदिन के पारिवारिक कलह से वे बहुत व्यथित हो गए। उन्होंने परिवार में संतुलन बनाने के काफी प्रयास किए किंतु सफल नहीं हुए। रोज-रोज की अशांति से मुक्ति पाने के लिए एक दिन उन्होंने आत्महत्या की सोची, लेकिन यह निर्णय इतना आसान नहीं था। चूंकि वे परिवार के मुखिया थे, इसलिए परिवार के भविष्य के बारे में भी उन्हें सोचना था। वे मार्गदर्शन के लिए महर्षि रमण के आश्रम में पहुंचे। महर्षि को प्रणाम कर उन्होंने अपने आने का कारण बताया। महर्षि रमण उस समय आश्रमवासियों के भोजन के लिए पत्तलें बना रहे थे। अध्यापक महोदय को महर्षि की पत्तल बनाने में तल्लीनता व परिश्रम को देखकर ऐसा लगा कि उन्हें निर्णय लेने में समय लगेगा। उन्होंने साहस करके पूछ ही लिया- भगवन। आप इन पत्तलों को इतने परिश्रम से बना रहे हैं, किंतु भोजनोपरांत यह कूड़े में फेंक दी जाएंगी। महर्षि बोले- आप ठीक कहते हैं, किंतु किसी वस्तु को उपयोग के बाद फेंकना बुरा नहीं है। बुरा तब होगा, जब उपयोग किए बिना ही अच्छी अवस्था में उसे फेंक दें। महर्षि की बात से अध्यापक की समस्या का समाधान हो गया। उन्होंने आत्महत्या का विचार त्याग दिया। अब वे जीने के उत्साह से सराबोर हो गए। सार यह है कि विपरीत परिस्थितियों में जीवन को समाप्त करना उचित नहीं है, बल्कि उनके समक्ष दृढ़ता से खड़े होकर उन पर विजय प्राप्त करने में ही सफलता के बीज निहित होते हैं। पराजित होना आसान है, जीतना कठिन है। लेकिन कठिन कार्य ही हमें शीर्ष पर पहुंचाता है।

अध्यापक ने अपने जीवन के कष्टों से तंग आकर आत्महत्या का रास्ता चुनना चाहा। लेकिन महर्षि ने बताया कि जीवन का अर्थ उसे पूरा जीने और उसका उपयोग करने में है, बिना जिए ही उसे खत्म कर देने में नहीं।

११७९) दक्षिण भारत के प्रवास में घूमते हुए हमारी टोली बैंगलूर पहुंची। हमारे मेजबान वहां के दर्शनीय स्थान दिखाते

हुए हमें नोबुल पुरस्कार विजेता सर सी.वी. रमन के संस्थान ले गए। संयोग से रमन महोदय वहां उपस्थित थे। उन्होंने कहा, आप लोग बिना पूर्व सूचना के आए हैं। मैं आपको केवल दस मिनट दे सकता हूं।

पर जब वह संस्थान की एक-एक चीज दिखाने लगे तो समय की सीमा को भूल गए। चालीस मिनट तक अपनी रंगों की दुनिया को दिखाते रहे। अंत में उनका आभार मानते हुए मैंने कहा, मैं आपका एक चित्र लेना चाहता हूं। अपनी कमीज के कफ और कोट के फटे कालर को दिखाते हुए वह बोले, क्यों दुनिया को दिखाना चाहते हो कि मैं कितना गरीब हूं। मैंने तुरन्त उत्तर दिया, नहीं, मैं दुनिया को बताना चाहता हूं कि हमारा महान वैज्ञानिक कितना सादगी-पसंद और आडम्बरहीन है।

११८०) रोज्देस्तवेंस्की प्रयोग ?- भारत के प्रथम नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक प्रो. चन्द्रशेखर वेंकटरामन (१८८८-१९७०) जर्मन भाषा भी जानते थे। रामन पहली बार सोवियत संघ गए। वहां लेनिनग्राद में एक वैज्ञानिक ने उनके समक्ष एक नए प्रयोग का प्रदर्शन किया। वह वैज्ञानिक अंग्रेजी नहीं जानता था, परन्तु जर्मन अच्छी तरह जानता था। उस वैज्ञानिक का प्रयोग प्रदर्शन देखकर प्रो. रामन जर्मन में बोले- डास इस्ट सेहर शोन, ओबेर इस्ट एस निरूट रोजदेस्तवेंस्की एक्सपेरिमेंट ? (अर्थात् यह प्रयोग प्रदर्शन अति-उत्तम है, लेकिन क्या यह रोज्देस्तवेंस्की प्रयोग नहीं है ?)

उस वैज्ञानिक ने उत्तर दिया कि, या इश बिन रोज्देस्तवेंस्की। (अर्थात् हां मैं ही रोज्देस्तवेंस्की हूं।)

११८१) ईश्वर से साक्षात्कार- एक बार कुछ अंग्रेज पादरी एक पत्रकार को अपने साथ लेकर महर्षि रमण के पास पहुंचे। उन्होंने महर्षि से कहा, कहा जाता है कि आप घंटों ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। आज हम सभी इस बात को स्वयं देखने आए हैं कि आप ईश्वर से कैसे मिलते हैं? यदि आपकी ईश्वर से साक्षात्कार की बात निराधार हुई तो यह पत्रकार आपके चमत्कार का भंडाफोड़ कर देगा।

उनकी बात सुनकर महर्षि रमण मुस्कुराए और बोले, आप सवेरे मेरे साथ चलकर स्वयं भी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकते हैं। पादरी व पत्रकार महर्षि रमण को इतनी सरलता से यह कहते देख हैरान रह गए। वह सुबह उनके पास आने की बात कहकर लौट गए। रात भर उन सभी में से किसी को भी नींद नहीं आई और वे पूरी रात आपस में यही विचार-विमर्श करते रहे कि महर्षि कैसे उनका ईश्वर से साक्षात्कार कराएंगे? अगले दिन सवेरा होते ही वे महर्षि रमण के आश्रम में पहुंच गए। महर्षि रमण पूजा-अर्चना के बाद पादरियों को साथ लेकर जंगल की ओर चल दिए। जंगल में वह नदी किनारे स्थित एक झोपड़ी में पहुंचे। वहां लेटे हुए एक कुष्ठ रोगी को उन्होंने प्रेम से उठाया। उसके शरीर पर औषधि युक्त तेल की मालिश की। मालिश के बाद उसे नहलाया, उसके कपड़े बदले। चूल्हा जलाकर उसके लिए दलिया बनाया। उसके बाद बड़े प्रेम से उसे अपने हाथों से दलिया खिलाया। फिर उन्होंने पास ही चटाई पर बैठे पादरियों व पत्रकार से कहा, मैं इस तरह प्रतिदिन ईश्वर की पूजा करता हूं। उससे बातें करता हूं। क्या आपको लगता है कि मैं कोई पाखंड करता हूँ?

पादरी तथा पत्रकार महर्षि रमण के चरणों में गिर गए। पत्रकार ने इंग्लैंड से प्रकाशित एक समाचार पत्र में अपने संस्मरण में लिखा, उस दिन हम सबको यह लगा कि हम ईसा-मसीह के साक्षात् दर्शन कर रहे हैं।

११८२) मंजिल दूर नहीं- प्रसिद्ध वैज्ञानिक टॉमस अल्वा एडीसन को अपने काम से बड़ा लगाव था। वह हर समय अपने किसी न किसी आविष्कार के बारे में सोचते रहते थे। जब वह अपनी धुन में प्रयोगशाला में घुस जाते तो घंटों बाहर नहीं निकलते थे। बात उस समय की है जब थॉमस अल्वा एडीसन जी-जान से बिजली की खोज में जुटे हुए थे, तीन वर्षों से इसी पर प्रयोग करते-करते उनके सभी सहयोगी थक चुके थे। किंतु एडीसन हर सुबह नयी उमंग व उत्साह से फिर उस प्रयोग में लग जाते। यह देखकर उनके सहयोगी भी मुंह लटकाकर उनके साथ लग जाते। आखिरकार एक दिन सब

सहयोगियों ने एकत्र होकर एडीसन से कहा, सर आप बेकार ही बिजली की खोज में लगे हुए हैं। तीन वर्षों में हमने लगभग सात सौ प्रयोग करके देख लिये हैं किंतु अभी तक आशा की कोई भी किरण नजर नहीं आयी है।

सात सौ बार असफल होना ही इस बात का सबूत है कि हम अपनी मेहनत और समय व्यर्थ खर्च कर रहे हैं।

हमें तो लगता ही नहीं कि इसका आविष्कार हो भी पायेगा। इस पर एडीसन बोले, मुझे पता है कि हम सात सौ बार असफल हो चुके हैं। तभी तो मेरा उत्साह दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है अगर हम मान लें कि एक हजार गलतियां हो सकती हैं तो उनमें से सात सौ हम कर चुके हैं और इसी बीच तीन सौ और हो जाती हैं तो निश्चित तौर पर मंजिल उनमें ही कहीं छिपी हुई है। अब तो हम मंजिल के करीब आते जा रहे हैं। ऐसे में घबराने की नहीं, बल्कि हिम्मत से काम लेने की जरूरत है और ठीक इस घटना के छह माह बाद ही एडीसन व उनके सहयोगी बिजली का आविष्कार करने में सफल हो गये।

११८३) फायदा- बात सन् १९१४ की है। प्रख्यात अमेरिकी आविष्कारक टामस अल्वा एडिसन की प्रयोगशाला तथा कारखाने में आग लग गई। न मालूम कितने जरूरी कागजात जलकर नष्ट हो गए। लगभग २० लाख डालर की कीमत के यंत्र नष्ट हो गए। एडिसन का पुत्र दु:खी मन से एक कोने में खड़ा जलती आग को देख रहा था।

तभी एडिसन बोले- तुम्हारी मां कहा हैं ? उसे भी बुला लाओ। ऐसा दृश्य जीवन में दोबारा देखने को नहीं मिलेगा।

दूसरे दिन अपनी आशाओं और सपनों की राख के बीच घूमते हुए ६७ वर्षीय बूढ़े आविष्कारक ने कहा नुकसान का ही फायदा होता है। हम सबकी भूलें जलकर राख हो गई। ईश्वर को धन्यवाद है कि अब नए सिरे से काम कर सकेंगे।

११८४) इतना बूढ़ा नहीं- वैज्ञानिक टामस अल्वा एडिसन की ८० वीं वर्षगांठ पर उनके किसी मित्र ने सलाह दी, अब तो आपको काम की रफ्तार कम कर देनी चाहिए और मन-बहलाव के लिए कोई शौक अपनानी चाहिए। आप गोल्फ खेलना शुरू क्यों नहीं करते?

एडिसन ने सहज भाव से उत्तर दिया- मैं अभी इतना बूढ़ा नहीं हुआ हूं।

११८५) एडीसन- प्रख्यात अमरीकी वैज्ञानिक टामस अल्वा एडीसन ऊंचा सुनते थे। एक दिन उनके किसी मित्र ने उन्हें सलाह दी- आप ऐसे यंत्र का आविष्कार क्यों नहीं कर लेते, जिससे बहरे भी सुन सकें ?

एडीसन ने बड़ी सादगी से उत्तर दिया- भाई मेरे। दूसरों की आपस की बातें सुनने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। उसमें समय नष्ट होता है। यदि मैं ऐसे यंत्र का आविष्कार कर लेता, तो मेरी पत्नी ही मुझसे बातें करके मेरा बहुत समय नष्ट करती। मैं मितभाषी हूं और इस वृद्धावस्था में भी प्रतिदिन अठारह घंटे काम करता हूं।

११८६) उनकी इस आदत के कारण उनकी पत्नी चिढ़ी सी रहती थी। एक दिन तो हद हो गई। एडीसन काफी देर से प्रयोगशाला में घुसे हुए थे। पत्नी के बार-बार आवाज देने पर बाहर निकले तो पत्नी ने सलाह दी, तुम रात-दिन काम में लगे रहते हो, कभी तो छुट्टी कर लिया करो। लेकिन छुट्टी लेकर मैं जाऊंगा कहां ? एडीसन ने पूछा। कहीं भी जहां तुम्हारा दिल बहल जाए। पत्नी ने जवाब दिया। ठीक है, मैं वैसी ही जगह चला जाता हूं। यह कहकर एडीसन फिर प्रयोगशाला में घुस गए।

११८७) अनूठा वैज्ञानिक- अमेरिकी छात्र जॉर्ज बिरगस समुद्री पानी को पीने योग्य बनाने का परीक्षण कर रहा था। उसी दौरान बिरगस कोई गंभीर अपराध कर बैठा। उसे न्यायालय ने आजीवन कारावास की सजा देकर जेल भेज दिया। जेल में रहकर भी उसने समुद्री पानी पर परीक्षण जारी रखा। एक दिन वह परीक्षण में सफल हो गया। उसने जेल अधिकारी से अपनी खोज की जानकारी देने के लिए एक सप्ताह की छुट्टी मांगी। उसे छुट्टी नहीं दी गई। एक रात बिरगस जेल से फरार हो गया।

फिर एक सप्ताह बाद वह अचानक जेल पहुंच गया। जेल सुपरिंटेंडेंट ने उसे बताया कि जेल से फरार होने के नए अपराध

में उसे तन्हाई कोठरी में डाल दिया जाएगा। बिरगस ने जवाब दिया, बीमार होने के कारण मैं कभी भी दम तोड़ सकता था। जेल से भागकर मैंने मिसौरी विश्वविद्यालय में नई खोज की जानकारी दे दी है। अब संतोष के साथ मौत को गले लगाने के लिए मैं वापस जेल आ गया हूँ। बिरगस को जेल से रिहा कर उस खोज के लिए पुरस्कृत किया गया।

११८८) वैज्ञानिक नील्स की महानता- जर्मनी के महान् वैज्ञानिक नील्स बोर अणु विज्ञान के शोधकार्य में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त कर रहे थे। हिटलर खुश था। जब नील्स के कानों में यह बात पड़ी कि हिटलर इसका इतना बड़ा दुरुपयोग कर सकता है। यह विज्ञान इतना घातक हो सकता है कल्पना मात्र से ही उनके रोंगटे खड़े हो गए। कई रात वे सो नहीं सके। एक दिन रात में वे चुपके से उठे और गैलीलियो की समाधि पर सिर रख कर शपथ ली कि वह ऐसे किसी भी कार्य को नहीं करेंगे जिससे मानवता का विनाश हो। उन्होंने दूसरे दिन से ही अपना शोध कार्य बन्द कर दिया। उन्हें कई प्रकार के प्रलोभन दिए गए और यन्त्रणा दी गई परन्तु वे कार्य करने के लिए वह तैयार नहीं हुए। मछुआरों की सहायता से भाग कर स्वीडन पहुँचे। कहते है कि उनके अन्तिम दिन बड़े कष्टमय थे। मानवता की भलाई के लिए उन्होंने झुकना स्वीकार नहीं किया।

११८९) सफलता का राज - एक बार प्रसिद्ध वैज्ञानिक नील्स बोर सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के भौतिक संस्थान पहुंचे। वहां उनका गर्मजोशी से स्वागत किया गया। बोर उन दिनों फिजिक्स में अपने रिसर्च के लिए जाने जाते थे। उनका इंस्टीट्यूट उस समय के चर्चित युवा वैज्ञानिकों से भरा हुआ था। उसमें काम करने के लिए वैज्ञानिक लालायित रहते थे। वहां काम करनेवालों में फूट डालने की कोशिश भी की गई पर किसी को सफलता नहीं मिली। विज्ञान अकादमी के भौतिक संस्थान के अधिकारी बड़ी देर तक अनेक विषयों पर बातचीत करते रहे। थोड़ी देर बाद वे बोले, सर, यदि आपको बुरा न लगे तो मैं एक निजी बात आपसे पूछना चाहता हूं। नील्स बोर ने कहा, जरूर पूछिए। मैं जवाब देने के लिए हाजिर हूं। इस पर अधिकारी बोले, सर, आपके साथ काम करनेवाले लोग हमेशा खुश रहते हैं। आपका संस्थान दिन-प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर है। आखिर इसका क्या राजा है? प्रश्न सुनने के बाद नील्स बोर मुस्कराते हुए बोले, इसका बहुत छोटा सा राज है और वह यह कि मैं अपने संस्थान में काम करनेवाले छोटे से छोटे व्यक्ति के काम की भी भरपूर तारीफ करता हूं और इसके अलावा मुझे उनके सामने कभी भी अपनी गलती स्वीकार करने में संकोच या झिझक नहीं होती। मुझे लगता है शायद इसीलिए सभी खूब मन लगाकर काम करते हैं और अपनी भरपूर क्षमता दिखाने में लगे रहते हैं। उनमें आपस में एक सकारात्मक होड़ लगी रहती है। इसका फायदा पूरी संस्था को होता है। अधिकारी यह सुनकर दंग रह गए।

११९०) न्यूटन का संयम - एक बार सर आइजक न्यूटन ने लगातार कई दिनों तक दिन-रात मेहनत करके एक शोधपत्र तैयार किया। काम पूरा होने के बाद उन्होंने राहत की सास ली। वह शोधपत्र के पन्नों को एक जगह रखकर कुछ देर के लिए बाहर चले गए। जहां वह शोधपत्र रखा था, वहीं एक मोमबत्ती जल रही थी। उस समय न्यूटन का पालतू कुत्ता जैकी अकेला था। अकेले में मोमबत्ती की परछाई को देखकर जैकी उस पर कूद पड़ा। जैकी के ऐसा करते ही जलती हुई मोमबत्ती मेज पर रखे शोधपत्र पर जा गिरी और देखते ही देखते कागजों ने आग पकड़ ली। कई दिनों की मेहनत पल भर में ही राख हो गई। कुछ ही देर बाद न्यूटन जब वापस लौटे तो यह दुर्घटना देखकर आपा खो बैठे लेकिन उन्होंने तुरंत ही स्वयं को संभाला। उन्होंने मन ही मन सोचा कि जो राख हो चुका वह तो वापस आ नहीं सकता फिर परेशान होने से क्या फायदा। जैकी को नजदीक देखकर वह समझ गए कि उसी के कारण यह सब हुआ है फिर वह जैकी की तरफ देखकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, तुम क्या जानो जैकी कि तुमने मेरी मेहनत को मिट्टी में मिला दिया है। खैर, अब तो जो हो गया सो हो गया। गुस्सा या पश्चाताप करने से कुछ होगा नहीं। इसलिए बेहतर है कि मैं नए सिरे से अपना काम शुरू करूं। न्यूटन उसी समय

शोधपत्र फिर से तैयार करने में जुट गए। बाद में जिसने भी यह वाक्य सुना उसने न्यूटन के धैर्य और लगन की तारीफ की।

११९१) गुरु मंत्र- कहा जाता है कि विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन बचपन में पढ़ाई में बहुत कमजोर थे। साथी उनका सदैव मजाक बनाते थे। एक दिन उन्होंने गम्भीरतापूर्वक अध्यापक से पूछा कि क्या मैं किसी प्रकार सुयोग्य बन सकता हूँ ? अध्यापक ने कहा कि दिलचस्पी और एकाग्रता से निरन्तर अभ्यास द्वारा सुयोग्य बना जा सकता है। आइन्स्टीन ने दृढ़ संकल्प कर एकाग्र मन से पढ़ना चालू किया। कालान्तर में उन्होंने अणु विज्ञान के पुरोधा तथा सापेक्षवाद के जनक के रूप में ख्याति प्राप्त की।

११९२) कोट में छेद- विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन प्रयोगशाला में कार्य कर रहे थे, तभी एक परिचित व्यंग्यकार आ पहुंचा, उसने व्यंग्य करते हुए न्यूटन से कहा कि महोदय, आपके कोट में एक छेद है जिससे आपकी विद्वत्ता झांक रही है।

बड़े शांत भाव से न्यूटन ने उत्तर दिया, महोदय, मेरे कोट से मेरी विद्वत्ता नहीं, बल्कि आपकी मूर्खता झांक रही है। व्यंग्यकार निरुत्तर हो गया।

११९३) इंसानियत का कारखाना- एक बार एक सज्जन महान वैज्ञानिक आइंस्टीन के पास आए। उन्होंने कुछ देर तक उनसे इधर-उधर की चर्चा की फिर बोले, आज विज्ञान ने एक से बढ़कर एक सुख-सुविधाओं के साधन बनाने में सफलता पा ली है। अब पलक झपकते ही दूरियां तय हो जाती हैं, कुछ ही क्षणों में सुविधाओं की सारी चीजें हमारे पास आ जाती हैं, मगर फिर भी जाने क्या बात है कि समाज में अशांति, असंतोष, कलह व बुराई पहले की अपेक्षा ज्यादा पनप रही है। आखिर इसका क्या कारण है? सुविधाएं अधिक होने पर तो इंसान को प्रसन्न होना चाहिए। उसके मन को शांति व संतोष भी मिलना चाहिए। उस सज्जन की बातें सुनकर आइंस्टीन बोले, मित्र, हमने शरीर को सुख पहुंचाने वाले तरह-तरह के साधनों को खोजने में अवश्य सफलता प्राप्त कर ली है किंतु जीवन में असली सुख-शांति मन-मस्तिष्क को आंतरिक आनंद प्राप्त होने से मिलती है। क्या हमने मनुष्यता का ऐसा कोई कारखाना लगाया है, जिससे लोगों के अंदर मर रही संवेदनाओं को जीवित किया जा सके, उनके अंदर त्याग, ममता, करुणा, प्रेम आदि को उत्पन्न किया जा सके? क्या हमने ऐसा कोई कारखाना बनाया है जहां पर मन-मस्तिष्क को आनंद देनेवाले साधनों का निर्माण किया जाता हो? आइंस्टीन की बात सुनकर वह सज्जन चकराए। उन्हें लगा शायद आइंस्टीन ऐसा कोई कारखाना लगाने के बारे में सोच रहे हों, तभी ऐसी बात कर रहे हैं। लेकिन उन्हें लगा कि यह तो मुमकिन नहीं है। इसलिए कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने अपनी जिज्ञासा रखी, भला मनुष्य के कारखाने को निर्माण कैसे संभव है? मनुष्य की भावनाएं तो मनुष्य के अंदर पनपती हैं मशीन के अंदर नहीं। उनकी बात सुनकर आइंस्टीन ने मुस्कराते हुए कहा, जनाब, बिल्कुल ठीक कहा आपने। अशांति-असंतोष दूर करने के लिए हमें लोगों में मनुष्यता की भावना पैदा करने की ओर ध्यान देना होगा। भौतिक साधनों से सुख-शांति कदापि नहीं मिल सकती। वह सज्जन आइंस्टीन की बात से सहमत हो गए।

११९४) प्रसिद्ध वैज्ञानिक रॉबर्ट ओपहहीयर अमरीका में एटम बम निर्माण से संबंधित संस्थान के निदेशक थे। वे श्रीमद् भागवत गीता के प्रेमी थे उन्होंने गीता के अंग्रेजी अनुवाद का पारायण किया था।

उन्होंने एटम बम का पहला परीक्षण किया तो बम के विस्फोट से जो प्रलयंकर महाज्वाला निकली उसे देखकर उनका मन भयभीत हो उठा, और अनायास, गीता का यह श्लोक बिजली का चमक की तरह उनके मन में कौंध गया।

कालोस्मि लोकक्षयकुत्प्रवृद्धो लोकान्स्माहर्तुमिह प्रवृत:, ऋतेपि त्वां न भविष्यन्तिसर्वे येऽवास्थिता: प्रयत्नीकेषु योधा:।

(मैं महाकाल हूं और लोकों के महाविनाश के लिए प्रवृत हुआ हूं। तुम्हारे न चाहने पर अथवा इनके बचाव के प्रयत्न

करने पर भी अभी ये सब नष्ट होने ही वाले हैं।)

इस अनुभूति से उनके मन में यह बात बैठ गयी कि हो न हो ये संसार के विनाश के लिए बने हैं। और उनका मन इतना विरक्त हुआ कि उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। वह एटम बम के निर्माण का विरोध करते रहे।

११९५) मैत्री- प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस १८४४ में दिल्ली में होनेवाले भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए थे। जब वह दिल्ली पहुंचे तो वायसराय लार्ड वैवेल ने उन्हें रात्रि भोज पर आमंत्रित किया। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार भी किया, लेकिन उसे निबाह नहीं सके। कारण यह था कि उसी बीच उनका बचपन का एक दोस्त मिल गया था। बिछुड़े मित्र के इतने दिनों बाद मिलने की खुशी में वह रात उन्होंने मित्र के परिवार के साथ बिताई। कदाचित मित्र का अनुग्रह उन्हें अधिक महत्वपूर्ण लगा तभी तो वह वायसराय के निमंत्रण पर नहीं जा सके।

११९६) मैत्री- आचार्य जगदीश चन्द्र बसु एक वैज्ञानिक के रूप में विख्यात थे, उनकी विविध रुचियां भी थी। साहित्य और ललित कलाओं में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। रवीन्द्र नाथ टैगोर उनके अच्छे मित्र थे। पहली बार जब रवीन्द्र उनसे मिलने उनके घर गए तो बसु कहीं बाहर गये हुए थे। रवीन्द्र उनके यहां चंपक पुष्पों का गुच्छा छोड़ आए। दोनों की सुखद मैत्री का यही शुभारंभ था।

रवीन्द्र ने बसु को कुछ दिन साथ रहने के लिए निमंत्रित किया। बसु एक शर्त पर तैयार हुए। शर्त थी कि रवीन्द्र हर दिन उन्हें एक कहानी सुनाते रहेंगे। रवीन्द्र नाथ की कई कथाओं के जन्म की यही कहानी है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर की प्रसिद्ध कहानी काबुली वाला, जिस पर फिल्म भी बन चुकी है, तभी लिखी गई थी, जब बसु रवीन्द्र के साथ रह रहे थे।

११९७) अन्याय का विरोध- पौधों में जीवन के विश्लेषक सुप्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी जगदीश चन्द्र बसु इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से विज्ञान स्नातक होकर भारत वापस लौटे थे। यहां आते ही कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में भौतिकी के प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हो गई। उस समय कालेजों में अधिकांश अध्यापक अंग्रेज होते थे। बंगाल का शिक्षा संचालक भी अंग्रेज था। अत: भेदभाव की नीति बरती जाती थी। अंग्रेजों की तुलना में भारतीय अध्यापकों को कम वेतन दिया जाता था।

आचार्य बसु ने वेतन लेने से इंकार कर दिया। उन्होंने इस अन्याय का विरोध करते हुए कहा, मैं वेतन लूंगा तो पूरा, अन्यथा लूंगा ही नहीं। पूरे तीन साल तक उन्होंने वेतन लिया ही नहीं। वेतन न लेने के कारण आर्थिक तंगी हो गई। कलकत्ता का महंगा मकान छोड़कर शहर से दूर एक सस्ता मकान लिया। नित्य कलकत्ता आने के लिये वह स्वयं नाव खेकर हुगली नदी पार करते। उनकी पत्नी भी साथ होतीं, जो स्वयं नाव खेकर वापस ले जातीं और शाम को बसु को लेने दुबारा नाव लातीं। परन्तु इन घोर कष्टों के बीच भी आचार्य बसु ने धैर्य नहीं छोड़ा। अंत में विरोधियों ने घुटने टेके। उन्हें अंग्रेजों के बराबर वेतन देना स्वीकार किया गया और नए वेतन क्रम से पूरे तीन साल का वेतन उन्हें एक साथ दिया गया।

११९८) वैज्ञानिक उपकरण निर्माता के रूप में जेम्सवाट उन दिनों ग्लासगो युनिवर्सिटी में काम करते थे। यहां छात्रों को न्यूकोमेन्स के बनाए इंजन का सिद्धान्त पढ़ाया जाता था। लेकिन यह इंजन ठीक से काम नहीं करता था। प्राध्यापक परेशान होकर छात्रों को पढ़ाते थे। एक दिन जेम्स ने उनसे पूछा- यह इंजन ठीक नहीं है। फिर भी आप इसके बारे में पढ़ाते हैं, क्यों ? इसलिए कि अभी तक इससे बेहतर इंजन नहीं बना है। तो इसे ठीक करा लीजिए।

तुम इसे ठीक कर सकते हो ? जी हां, आप कहें तो..... ?

ठीक है, मेरी अनुमति है। उसके ठीक करने के दौरान जेम्स ने न केवल उसकी खराबियों को बल्कि कमियों को भी समझा और उससे प्रेरित होकर स्वयं एक इंजन बना डाला। जब उसका इंजन तैयार हुआ तो लोग आश्चर्यचकित रह गए। यह इंजन न्यूकोमेन के इंजन से दुगुना शक्तिशाली था।

११९९) तड़क-भड़क नहीं- बात उन दिनों की है जब लखनऊ विश्वविद्यालय बन ही रहा था। डॉ. बीरबल साहनी वनस्पति विभाग के अध्यक्ष थे। उस समय केवल तीन ही कमरे बने थे।

कोई विदेशी वैज्ञानिक साहनी से मिलने आया। आते ही उसने किसी से पूछा, प्रो. साहनी कहां बैठते है ?

उसने इशारे से बताया, उधर बरामदे के कोने में।

आगंतुक वहां गया। प्रो. साहनी की मेज पर किताबें, कापियां पड़ी थीं। वे सूक्ष्मदर्शी में आंखें गड़ाए कुछ अध्ययन कर रहे थे। उसने आश्चर्य प्रकट किया, प्रोफेसर, आपका कोई निजी कमरा नहीं है ?

प्रोफेसर साहनी ने बड़े आत्मविश्वास से कहा, हमेशा बड़े काम ऐसे ही किए जाते हैं। बड़े कामों के लिए तड़क-भड़क की नहीं, निष्ठा और लगान की जरूरत होती है।

१२००) बेचारा- भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के जनक डा. बीरबल साहनी विनोदी भी कम नहीं थे। एक बार डा. वोशी सेन उनकी प्रयोगशाला में पधारे। डा. सेन उन दिनों में पाये जानेवाले एजोला पिन्नटा नामक फर्न (पानी में पाया जानेवाला सूक्ष्म पादप) पर काम कर रहे थे। उन्होंने डा. साहनी से पूछा- आपके पास उजोला होंगे ?।

क्यों नहीं ?- डा. साहनी ने कहा और अपने जीवाश्म-नमूना तुरंत ला दिया और बड़ी मायूसी से बोले- बेचारा अभी केवल ६ करोड़ वर्ष का ही हुआ है।

१२०१) पोती- रूस के प्रसिद्ध जीवाणु विशेषज्ञ प्रोफेसर अनातोलो अलग्नेन्द्रोचिव पक्षाघात जैसे घातक रोग के उपचार पर शोध कर रहे थे। प्रयोग और शोध की प्रक्रिया पूरी हुई और इन दवा का सबसे पहले बंदरों पर परीक्षण किया गया। इसके बाद वैज्ञानिकों ने बालकों पर इसके प्रयोग का निर्णय लिया, लेकिन भला कौन मां-बाप अपनी सन्तान इस प्रयोग के लिए देता ? इस पर प्रो. अलग्नेन्द्रोविच ने कहा सबसे पहले परीक्षण मेरी एक मात्र पोती पर होगा। विरोध के बीच उन्होंने कहा अरे भाई। जैसे मेरी पोती है वैसे ही तो दूसरों के बच्चे भी हैं। उन्होंने अपनी पोती पर ही प्रयोग किए और वे सफल भी हुए।

१२०२) दस किलोवाट का दिमाग- भारतीय वैज्ञानक प्रो. चन्द्रशेखर वेंकटरामन (१८८८-१९७०) को अपनी रामन प्रभाव की खोज पर नोबल पुरस्कार मिला था। एक बार प्रो. रामन ने प्रयोगशाला में अपने एक छात्र को बहुत उदास देखा। प्रो. रामन ने छात्र से उसकी उदासी का कारण पूछा कि वह विज्ञान की किस समस्या के कारण उदास हो गया है?

छात्र ने बताया कि जिस प्रयोग में वह एक किलोवाट की ट्यूब से काम कर रहे हो और उसी पर यदि इंग्लैंड का कोई वैज्ञानिक पांच किलोवाट की ट्यूब का इस्तेमाल कर रहा है।

प्रो. रामन बोले कि- जिस प्रयोग में तुम एक किलोवाट की ट्यूब से काम कर रहे हो और उसी पर यदि इंग्लैंड का कोई वैज्ञानिक पांच किलोवाट की ट्यूब का इस्तेमाल कर रहा है, तो तुम उसी प्रयोग में अपना दस किलोवाट का दिमाग लगा दो। यह सुनकर छात्र का चेहरा खिल उठा।

१२०३) किताब की कीमत- प्रख्यात आविष्कारक बेंजामिन फ्रैंकलिन की किताबों की दुकान थी। एक दिन उनकी दुकान पर एक ग्राहक ने एक पुस्तक पसंद की और सैल्समैन से उसकी कीमत पूछी। उसने उत्तर दिया- एक डॉलर।

इससे कम नहीं ? ग्राहक ने पूछा।

सेल्समैन ने साफ मना कर दिया। जब ग्राहक ने देखा कि बात नहीं बनेगी तो वह पूछ बैठा, फ्रैंकलिन नहीं हैं ? फ्रैंकलिन अपना काम छोड़कर बाहर आये, तो ग्राहक ने उनसे पूछा, मिस्टर फ्रैंकलिन, आप इस पुस्तक की कम से कम क्या कीमत लेना चाहेंगे ? सवा डॉलर। फ्रैंकलिन का उत्तर था।

मगर अभी तो आपका आदमी एक ही डॉलर मांग रहा था। ठीक है, लेकिन अपना काम छोड़कर आने में मेरा समय भी तो नष्ट हुआ है। फ्रैंकलिन ने स्पष्ट किया। ग्राहक ने बात खत्म करने के इरादे से कहा, अच्छा, अब बताइये, कम से कम कीमत क्या लेंगे आप ? डेढ़ डॉलर। डेढ़ डॉलर ? अभी तो आप सवा डॉलर कह रहे थे- ग्राहक ने हैरानी जाहिर की।

जी हां, ध्यान रखिये-ज्यों-ज्यों आप मेरा समय नष्ट करते जायेंगे, पुस्तक की कीमत बढ़ती जाएगी। फ्रैंकलिन ने कहा। इतना सुनते ही ग्राहक ने चुपचाप डेढ़ डॉलर निकाल कर उन्हें दिये और पुस्तक लेकर चलता बना।

१२०४) पाणिनी की भाग्य रेखा- संस्कृत पाठशाला में पढ़ रहे बालक को शब्द रूप याद नहीं हो पाते थे। एक दिन जब आचार्य उसे दंडित कर रहे थे, सहसा उसके दांए हाथ की हथेली पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने कहा, तुझे दंडित करना व्यर्थ है, क्योंकि तेरे हाथ में तो विद्या प्राप्त करने की रेखा ही विधाता ने नहीं बनाई। यह बात बालक के हृदय में गहरे तक बैठ गई। उसने पूछा, कृपया मुझे बताएं कि हाथ में किस स्थान पर विधाता विद्या की रेखा बनाते हैं ? आचार्य ने उसकी हथेली पर एक जगह उंगली रख दी और छात्रों को पढ़ाने में व्यस्त हो गए। पर वह बालक व्याकुल मन से बाहर चला गया। कुछ देर बाद जब वह पुन: कक्षा में लौटा तो उसके हाथ से खून बह रहा था। आचार्य ने चकित होकर पूछा, अरे। इतना रक्त क्यों बह रहा है ? बालक ने घायल हथेली दिखाते हुए कहा, गुरुजी। जिसे विधाता ने किसी कारण नहीं बनाया था, मैंने अपनी हथेली में वह रेखा स्वयं चाकू से बना ली है। आचार्य उस छात्र की दृढ़ इच्छाशक्ति देखकर प्रसन्न हुए। बाद में वह बालक पढ़ने में कभी किसी से पीछे नहीं रहा। बड़े होने पर उसी ने संस्कृत का पहला व्याकरण ग्रन्थ लिखा, जो संसार भर में प्रसिद्ध हुआ। उस बालक को व्याकरणाचार्य पाणिनी के नाम से जाना गया।

१२०५) प्रतिदिन अभ्यास- बंगाल के एक गांव में एक बालक प्रतिदिन समय पर पाठशाला जाता था, पर इसके बावजूद पढ़ाई में उसका मन नहीं लग पा रहा था। माता-पिता चाहते थे वह पढ़-लिखकर विद्वान बने, पर उसे जो कुछ पढ़ाया जाता, वह उसे भूल जाता। तमाम कोशिशें की गईं, पर उसका मन अध्ययन में नहीं लग सका। उसे विद्यालय में गुरु की और घर पर पिता से डांट सुननी पड़ती। हर दिन मिलने वाले अपमान और शारीरिक दंड से वह बालक दुखी हो गया। प्राचीनकाल में पण्डित बोपदेव व्याकरण के प्रकाण्ड पंडित माने जाते थे।कहते हैं कि बाल्यकाल में उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी क्षीण थी। बड़ा परिश्रम करने पर भी उन्हें व्याकरण के सूत्र कण्ठस्थ नही होते थे। उनके सहपाठी उन्हें चिढ़ाया करते थे। उनके गुरुजी भी उनको समय-कुसमय डांटा करते थे। इससे दुखी होकर एक दिन वे गुरुगृह से भाग निकले।

उन्होंने सोचा कि उसे अपने जीवन का अंत कर देना चाहिए। ऐसा सोचकर वह गांव से दूर एक कुंए पर गया। उसने देखा कि कुएं से एक महात्मा जल निकालकर अपनी प्यास बुझा रहे थे। उन्होंने उस बालक से भी पानी पीने के लिए कहा, लेकिन उसने मना कर दिया। बच्चे के चेहरे पर चिंता और विषाद के भाव देखकर महात्मा ने प्यार से उसकी पीठ पर हाथ रखा और गांव से दूर इस कुएं पर आने का कारण पूछा।

महात्मा की मीठी वाणी सुनकर बालक ने पूरी बात बता दी। बालक की बात सुनकर महात्मा कुछ देर तक चुप रहे। उसके बाद वे बालक को कुएं की मुंडेर तक लेकर आए। महात्मा ने बालक को दिखाया कि मुंडेर पर गहरे निशान पड़े हुए थे। ये निशान पानी भरते समय रस्सी की रगड़ से पड़ गए थे।

महात्मा ने बच्चे से पूछा कि पत्थर से बनी जो मुंडेर मिट्टी के घड़े से ज्यादा कठोर है, उस पर ये निशान कैसे पड़ गए ? बच्चे ने जवाब दिया कि प्रतिदिन की रगड़ से ऐसा हुआ है। तब महात्मा ने कहा कि वत्स, प्रतिदिन के घर्षण से एक कोमल रस्सी ने बेहद कठोर पत्थर की मुंडेर पर निशान डाल दिए, तो जरा सोचो कि प्रतिदिन का अभ्यास तुम्हें विद्वान कैसे नहीं बना पाएगा ? इसलिए तुम मननशील बनो और जीवन को वरदान मानो, अभिशाप नहीं।

तभी बालक के हृदय में एक नई चेतना जाग्रत हुई। उसने सोचा कि जब घर्षण से पत्थर पर निशान बन सकते है तो क्या सतत परिश्रम से उसकी बुद्धि और स्मरण शक्ति तीक्ष्ण व प्रखर नहीं हो सकती। महात्मा की बातें सुनकर बच्चे का मन बदल गया और वह अध्ययन में मन लगाने लगा।

यह विचार आते ही बोपदेव वही से गुरुगृह के लिए लौट चले। उस दिन के बाद वे अध्ययन में जुट गये। सच्ची लगन और दृढ़ अभ्यास के कारण वे आगे चल कर व्याकरण के प्रकाण्ड और प्रसिद्ध पण्डित कहलाये।

वही छात्र अथक परिश्रम और लगन से महान वैयाकरण बना और पंडित बोपदेव के नाम से विख्यात हुआ।

उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर देवगिरि के यादव नरेश महादेव ने उन्हें अपना सभा-पण्डित नियुक्त किया। पाणिनीय व्याकरण की दुरूहता को उन्होंने अनुभव किया था। इसको ध्यान में रखते हुए उन्होंने भावी पीढ़ी की सुगमता के लिए मुग्धबोध नाम से संस्कृत के सुगम व्याकरण की रचना की।

कालांतर में यही बालक बंगाल के विद्वान भूपदेव (बोपदेव) शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२०६) बोपदेव- गुरुकुल का एक मंदबुद्धि छात्र गुरु की ताड़ना व तिरस्कार से दुखी होकर गुरुकुल को त्यागकर निकल पड़ा। इधर-उधर निरुद्देश्य भटकता हुआ प्यास से व्याकुल वह एक कुएं के पास पहुंचा। वहां एक युवती ने कुएं से जल खींचकर उसकी प्यास बुझाई। छात्र ने उसे मन से धन्यवाद दिया। वह युवती पानी भरकर चली गई। छात्र कुछ देर वहीं पड़ा रहा। कुछ देर बाद अचानक उसकी नजर कुएं के किनारों पर गई। उसने गौर किया कि रस्सी खींचने से किनारों पर गहरे निशान बन गए हैं। तभी उसके हृदय में एक नई चेतना जाग्रत हुई। उसने सोचा कि जब घर्षण से पत्थर पर निशान बन सकते हैं तो क्या सतत परिश्रम से उसकी बुद्धि और स्मरण शक्ति तीक्ष्ण व प्रखर नहीं हो सकती। वह दृढ़ संकल्प कर गुरुकुल लौट आया। वही छात्र अथक परिश्रम और लगन से महान वैयाकरण बना और पंडित बोपदेव के नाम से विख्यात हुआ।

१२०७) दौलत- कश्मीर के प्रकांड पंडित कैयट एक झोपड़ी में रहते थे। संपत्ति के नाम पर उनके पास कुछ किताबें, एक चटाई, कमंडल और कुछ खाने-पीने का सामान था। लेकिन उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। एक बार कैयट की प्रसिद्धि का रहस्य जानने के लिए काशी के कुछ विद्वान पंडित कश्मीर की यात्रा पर गए। कश्मीर के राजा स्वयं उन्हें लेकर कैयट से मिलाने गए। उस समय कैयट कुछ लिखने में व्यस्त थे। उन्होंने उन लोगों की तरफ देखा तक नहीं। अपना लेख पूरा करने के बाद कैयट ने सिर उठाया तो सामने काशी के पंडितों को देखकर बहुत खुश हुए। उन्हें प्रेमपूर्वक बैठाया और पत्नी से कहा, इनके लिए पानी ले आओ। फिर बोले, कहिए किस विषय पर चर्चा होनी है ?

काशी के विद्वानों ने कहा, हम सिर्फ आपसे मिलने आए थे। इस पर कैयट ने तुरंत कहा, तब तो मिल चुके, अब जाइए। हमें भी अपना काम करने दीजिए। राजा ने सोचा कि शायद कैयट में गरीबी के कारण चिड़चिड़ापन आ गया है। इसलिए बोले, पंडित जी। आप तो जानते हैं कि जिस राज्य में विद्वान कष्ट पाते हैं, वहाँ का राजा पाप का भागी होता है। आप बताइए हम आपकी क्या सेवा करें- मकान, धन-दौलत आप जो भी चाहें। कैयट खड़े हो गए। चटाई समेटी, कमंडल हाथ में लिया और पत्नी से बोले, चलो, हमारे यहां रहने से राजा को पाप लगता है। राजा बोले, पंडित जी। आप नाराज क्यों हो रहे हैं। मैं तो

चाहता था कि आप मुझे सेवा करने का अवसर दें।

कैयट ने सामान नीचे रखते हुए कहा, यदि आप मेरी सेवा करना चाहते हैं तो यही सेवा करें कि फिर कभी यहां न आएँ और न ही अपने किसी कर्मचारी को भेजें। मुझे धन का कोई लोभ नहीं है। मेरे अध्ययन में कोई बाधा न पड़े, मेरी यही सबसे बड़ी सेवा आप कर दें। अब काशी के विद्वानों की समझ में आ गया था कि कैयट की विद्वता का राज क्या है।

१२०८) सर्वोत्तम ग्रंथ- गांधीजी के साथ उनके आश्रम में कुछ दिन रहे एक व्यक्ति ने देखा कि वे रामचरितमानस की बहुत प्रशंसा करते हैं और अक्सर उसके उद्धरण भी सुनाते रहते हैं। आश्रम से जाने के बाद उसने मानस का बड़े ही मनोयोग से अध्ययन किया, फिर कुछ विद्वानों से भी उस पर बात की। उसके बाद गांधीजी को एक पत्र लिखा, बापू, रामचरितमानस में स्त्री जाति की निंदा है, बालि के वध और विभीषण के देशद्रोह की प्रशंसा है। काव्य चातुर्य भी उसमें कुछ विशेष नजर नहीं आता। फिर भी आप उसे सर्वोत्तम ग्रंथ क्यों मानते हैं? समझ में नहीं आता कि आपके जैसा व्यक्ति इसके दोषों को नजरअंदाज कैसे कर गया? फिर आप हर समय इसका हवाला देते रहते हैं। आखिर दूसरों को इसके माध्यम से आप क्या संदेश देना चाहते हैं? गांधीजी पत्र पढ़कर मुस्कराए। फिर बाकी काम छोड़कर पहले उसी का जवाब देने बैठ गए। जवाब में गांधीजी ने लिखा, मेरे सामने ऐसे विचार पहले भी कुछ विद्वान लोग व्यक्त कर चुके हैं। वे दुर्भाग्य से अपने ज्ञान की सार्थकता रामचरितमानस को दोषों का पिटारा साबित करने में ही समझते हैं। यूं तो वेद कुरान और बाइबल के भी आलोचकों का अभाव नहीं है, पर जो गुणदर्शी हैं, वे उनमें दोष नहीं देखते। मानस को मैं सर्वोत्तम इसलिए नहीं कहता हूं कि उससे करोड़ो लोगों को शांति मिलती है। वह भक्ति और अनुभवजन्य ज्ञान का भंडार है। गांधीजी का जवाब पाकर उस व्यक्ति की आंखें खुल गईं।

१२०९) सफल साधना- वैयाकरण कैयट दिन में आजीविका के लिए परिश्रम करते और रात में महाभाष्य पर टीका लिखा करते थे। कार्य के बोझ का असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा था। एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे इतना परिश्रम न करने की प्रार्थना की। इस पर कैयट बोले, मेरे पास इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है। परिवार का मुखिया होने के नाते मुझे धनोपार्जन का कार्य करना होगा और एक वैयाकरण होने के नाते मुझे ज्ञान के प्रसार का दायित्व भी निभाना होगा। इस पर पत्नी ने कहा, आप गृहकार्य से मुक्त हो जाएं। मैं अब कुशा की राखियां बनाकर बेचूंगी। आप निश्चिंत होकर टीका लिखिए। कैयट की आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने कहा, जिसकी तुम्हारी जैसी जीवन संगिनी हो उसकी साधना अवश्य सफल होगी

१२१०) उत्साह का पाठ- एक दार्शनिक किसी काम से बाहर जा रहे थे। वह एक टैक्सी में सवार हुए। टैक्सी में बैठने के बाद दार्शनिक ने टैक्सी वाले की उदास शक्ल देखकर पूछा, क्या भाई, तुम बीमार हो? यह सुनकर टैक्सी वाला बोला, सर, क्या आप डॉक्टर हैं? दार्शनिक ने जवाब दिया, नहीं, दरअसल तुम्हारा चेहरा तुम्हें थका हुआ और बीमार बता रहा है। इस पर टैक्सी वाला ठंडी आह भरते हुए बोला, हां आजकल मेरी पीठ में दर्द रहता है। उम्र पूछे जाने पर वह बोला, तीस वर्ष। इस पर दार्शनिक ने कहा, इतनी कम उम्र में पीठ दर्द। यह तो मात्र व्यायाम से बिना दवा के ही ठीक हो सकता है। इसके बाद वह बोले, क्यों भाई, क्या आजकल धंधे में कड़की चल रही है? टैक्सी वाले ने आश्चर्य से कहा, साहब, आपको कैसे पता? क्या आप कोई ज्योतिषी हैं? दार्शनिक मुस्कराते हुए बोले, भैया, मैं ही क्या, कोई भी तुम्हें यही कहेगा। अरे, जब तुम हर वक्त मुझे चेहरे से सवारियों का स्वागत करोगे तो भला कौन तुम्हारी टैक्सी में बैठना चाहेगा? तुम्हारी आमदनी तो कम होगी ही। यह सुनकर टैक्सी वाला जैसे सोते से जागा और बोला, आज आपने मुझे मेरी गलती का अहसास करा दिया। फिर तीन-चार वर्षों के बाद एक दिन एक सज्जन ने उन दार्शनिक की पीठ पर हाथ रखते हुए मुस्करा कर पूछा, सर कैसे हैं? दार्शनिक बोले, ठीक हूं बेटा, पर मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। इस पर वह सज्जन बोले, सर, मैं वही टैक्सी

वाला हूं जिसे आपने उत्साह का पाठ पढ़ाया था। आज आपकी दी हुई शिक्षा के कारण ही मेरी बारह टैक्सियां किराए पर चल रही हैं और मेरा व्यवसाय फल-फूल रहा है। अब मैं भी हर उदास व्यक्ति को उत्साह के साथ मुस्कराते हुए काम करने की सलाह देता हूं। दार्शनिक ने कहा, यह बेहद जरूरी है। फिर उस सज्जन ने दार्शनिक के पैर छूकर उनसे आशीर्वाद लिया।

१२११) एक दिन चीन के प्रख्यात दार्शनिक चवांगत्से सड़क किनारे खड़े होकर हंस रहे थे। यह देखकर लोगों को बेहद आश्चर्य हुआ। एक व्यक्ति से रहा नहीं गया। उसने पूछा, आखिर किस बात को लेकर आप इस तरह सड़क के किनारे खड़े होकर हंस रहे हैं? चवांगत्से ने उसी तरह हंसते हुए कहा, सड़क के बीच में पड़ा वह पत्थर देख रहे हो। उससे न जाने कितने लोगों को ठोकर लग चुकी है। फिर भी लोग पत्थर को कोसते हुए आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन कोई उसे किनारे रखने के बारे में नहीं सोचता ताकि किसी और को ठोकर न लगे। उनकी इस बात पर वहां खड़े सभी लोग लज्जित हो गए। उन्होंने उस पत्थर को हटाकर किनारे कर दिया।

१२१३) दार्शनिक का साहस - यह घटना उस समय की है, जब तैमूरलंग लोगों को पकड़कर अपना गुलाम बनाता फिरता था। वह उन्हें बेचने के लिए खुद ही मोलभाव भी करता था। लोग तैमूरलंग के अत्याचारों से परेशान थे और उससे बचने के लिए इधर-उधर भागते रहते थे। जैसे ही तैमूरलंग बाहर निकलता वैसे ही लोगों में भगदड़ मच जाती। ऐसे ही एक दिन वह लोगों को पकड़कर गुलाम बनाने के लिए निकला। उसे देखते ही हर ओर शोर मच गया। लोग इधर-उधर भागने लगे। तैमूरलंग के सैनिकों ने लूटपाट शुरू कर दी। इसी दौरान उसके सैनिकों ने अनेक लोगों को दबोच लिया और पकड़कर अपने साथ ले आए। उन्हीं लोगों में तुर्किस्तान के दार्शनिक अहमदी भी थे। तैमूरलंग ने दार्शनिक अहमदी की तरफ देखते हुए एक व्यक्ति की ओर इशारा किया और कहा, बताओ, पास में खड़े इस व्यक्ति की क्या कीमत होगी? दार्शनिक अहमदी ने व्यक्ति को देखा और निर्भीकता से तैमूरलंग से बोले, यह शख्स काफी समझदार व शिक्षित मालूम पड़ता है, इसलिए इसकी कीमत चार हजार अशर्फी से कम नहीं हो सकती। यह सुनकर तैमूरलंग ने और भी व्यक्तियों की कीमत अहमदी से पूछी। वे अपने अनुसार व्यक्ति को देखकर उनकी कीमत बताते रहे। तैमूरलंग को तभी न जाने क्या सूझा। उसने अहमदी से पूछा, अच्छा बताओ, मेरी कीमत क्या होगी? तैमूरलंग का यह प्रश्न सुनकर उसके सभी सैनिक चौंक गए। वह सोचने लगे कि आखिर तैमूरलंग ने ऐसा क्यों पूछा। कहीं वह विक्षिप्त तो नहीं हो गया। दार्शनिक अहमदी ने प्रश्न सुनकर तैमूरलंग की ओर देखा और निर्भीकता से बोले, दो अशर्फी। यह सुनकर गुस्से में गरजता हुआ तैमूर बोला, मेरी इतनी बेइज्जती। इतने पैसों की तो मेरी चादर है। इस पर अहमदी बोले, बिल्कुल ठीक। यह कीमत मैंने तुम्हारी चादर की ही बताई है। तुम्हारे जैसे अत्याचारी शासक के लिए कोई एक धेला भी खर्च नहीं करेगा। तैमूरलंग दार्शनिक अहमदी की निर्भीकता देखकर दंग रह गया और उसने उसी क्षण उन्हें बंधन मुक्त कर दिया।

१२१४) प्रेम का संदेश- पोलैंड के दार्शनिक थे- ट्वायिंस्की। वह अपने विचारों के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। लोग उनका बेहद सम्मान करते थे। एक दिन जोरों से बारिश हो रही थी। ट्वायिंस्की को किसी जरूरी काम से जाना था। जब वह घर से निकले, तो एक कुत्ता कहीं से भीगते हुए उनके पास आ पहुंचा और उनके प्रति स्नेह जताने लगा। ट्वायिंस्की ने भी प्रेम का जवाब प्रेम से दिया और उसे दुलारने लगे। इसी समय ट्वायिंस्की के एक मित्र वहां आ पहुंचे। उन्हें भी ट्वायिंस्की के साथ जाना था। वह यह दृश्य देखकर चकित हुए ट्वायिंस्की कुत्ते के साथ खेल रहे हैं और कुत्ता उनकी ओर उछल-उछलकर उनके कपड़े को गंदा कर रहा है। उसने ट्वायिंस्की से थोड़ा खिन्न होकर कहा, भाई, आप भी गजब आदमी हैं। अभी हमें जरूरी काम से निकलना है और आप इस कुत्ते से खेलने में लगे हुए हैं। यह आपके कीमती कपड़ों को गंदा कर

रहा है और आप इसे भगाने के बदले प्यार कर रहे हैं। ट्वायिंस्की ने मुस्कराते हुए कहा, मित्र यह कुत्ता मुझे आज पहली बार मिला और इसने बड़ी आत्मीयता प्रकट की। इसकी भावनाएं प्रशंसनीय हैं। यदि मैं अपने कीमती कपड़ों के मोह में इसे हटा दूं तो इसकी आत्मीयता को बहुत ठेस लगेगी। इसके प्यार के सामने कीमती कपड़ों का कोई मूल्य नहीं। कपड़े फिर मिल जाएंगे। रहा काम तो, वह भी कभी हो ही जाएगा। लेकिन यह आत्मीयता क्या दोबारा हासिल हो सकती है? प्रत्येक प्राणी भगवान की कृति है, इसलिए सभी में ईश्वर का वास मानकर उसके प्रति स्नेह हासिल हो सकती है? प्रत्येक प्राणी भगवान की कृति है, इसलिए सभी में ईश्वर का वास मानकर उसके प्रति स्नेह व्यक्त करना चाहिए।

१२१५) **दार्शनिक का संदेश-** दार्शनिक हिक्री के पास रोज ढेरों लोग परामर्श लेने आते थे। लोग प्राय: उन्हें अपने पारिवारिक जीवन की उलझनें बताते और उनसे उनका कोई समाधान पूछते। हिक्री सबको समान भाव से सलाह दिया करते थे। एक दिन एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ उनके पास आया और पत्नी के आलस्य और कंजूसी की निंदा करने लगा। हिक्री ने उस औरत को स्नेहपूर्वक अपने पास बुलाया। फिर उन्होंने अपने एक हाथ की मुट्ठी बांधकर उसके सामने की और पूछा, यदि यह हमेशा ऐसे ही रहे तो क्या नतीजा निकलेगा? पहले तो वह औरत सकपकाई, पर साहस कर बोली, अगर यह मुट्ठी हमेशा ऐसे ही बंधी रहेगी तो हाथ अकड़कर निकम्मा हो जाएगा। उस औरत का उत्तर सुनकर हिक्री बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने दूसरे हाथ की हथेली बिल्कुल खुली रखकर फिर पूछा, यदि यह हाथ ऐसे ही खुला रहे तो फिर इस हाथ का क्या होगा? स्त्री बोली, ऐसी हालत में ये भी अकड़कर बेकार हो जाएगा। हिक्री ने लोगों से कहा, यह तो बुद्धिमान भी है और दूरदर्शी भी। यह तो अच्छी तरह जानती है कि मुट्ठी बंद रखने और सीधा हाथ रखने से क्या हानि होती है। फिर उन्होंने स्त्री से कहा, बेटी, तुम तो सब कुछ खुद ही समझती हो। इस समझ का उपयोग अपने जीवन में भी करो, तुम्हारा सुख-सौभाग्य बढ़ेगा। किसी भी चीज की अति अच्छी नहीं होती। न खुला हाथ अच्छा, न बंद हाथ। दोनों में संतुलन होना चाहिए। न लापरवाही से खर्च करो न ही कंजूसी से। वह स्त्री हिक्री के संदेश को समझ गई।

१२१६) एक बार फ्रांस के महान दार्शनिक देकार्त को किसी दुष्ट व्यक्ति ने काफी अपशब्द कहे और गालियां दीं लेकिन देकार्त चुपचाप यह सब सुनते रहे। अंत में उनका कोई उत्तर न पाकर वह शख्स चला गया। जब इस बात की जानकारी देकार्त के एक मित्र को हुई तो उसने कहा, मुझे पता चला कि तुम्हें किसी ने बहुत परेशान किया। एक दुष्ट आदमी ने तुम्हें न जाने कितने अपशब्द कहे और गालियां दी पर तुम चुपचाप सुनते रहे। तुमने उसे ऐसे क्यों छोड़ दिया। आखिर क्यों अपमान सहते रहे। तुम्हें उसे कड़ा जवाब देना चाहिए था ताकि वह भविष्य में ऐसी हरकत न करे। देकार्त ने हंसकर कहा, जब कोई व्यक्ति मुझसे दुर्व्यवहार करता है तो मैं अपनी आत्मा को उस ऊंचाई तक ले जाता हूं जहां कोई दुर्व्यवहार को छू न सके। उनका मित्र निरुत्तर हो गया।

१२१७) **तलाश-** एक दार्शनिक थे। वह तात्विक चिन्तन में लीन रहते थे। बोलते थे, तो बात बड़ी गहरी कहते थे। इससे लोग उनका बहुत मान-सम्मान करते थे। लेकिन कभी-कभी उनकी हरकतें इतनी अजीब-सी होती थीं कि वे उन्हें खब्ती मान लेते थे और उन पर अपनी हँसी नहीं रोक पाते थे। पर वह दार्शनिक थे कि न तो लोगों के सम्मान से प्रभावित होते थे, न उनकी हँसी से। एक दिन लोगों ने देखा कि दार्शनिक महोदय हाथ में जलती लालटेन लिये कहीं जा रहे हैं। दोपहर का समय था। धूप निकली थी। चारों ओर प्रकाश फैला था। ऐसे में जलती लालटेन हाथ में लेकर चलने में क्या तुक थी। उस दृश्य को देखकर लोग मारे हँसी के लोट-पोट हो गये। पर दार्शनिक तो गंभीर भाव से आगे बढ़ते जा रहे थे। एक आदमी से न रहा गया, तो उसने उनके पास जाकर पूछा, श्रीमानजी, आप यह क्या कर रहे हैं ? दार्शनिक ने उसकी ओर देखा। बोले, कुछ

खो गया है। उसे खोज रहा हूं। दार्शनिक ने उसी लहजे में कहा, इंसान। मैं उसी की तलाश कर रहा हूं। उस समय तक और भी कई लोग वहां आ गये थे। दार्शनिक की बात सुनकर सब एकसाथ बोल उठे, महोदय, आप यह क्या कर रहे हैं ? क्या हम इंसान नहीं हैं ? नहीं। दार्शनिक ने कठोर होकर कहा, आप इंसान नहीं हैं। तब हम क्या हैं ? उन्होंने सवाल किया। देखो, दार्शनिक ने कहा, तुममें से कोई व्यापारी है, कोई इंजीनियर है, कोई शिक्षक है, कोई बाप है, कोई भाई है। पर अफसोस कि तुममें से कोई भी इंसान नहीं हैं। इंसान तो वह होता है, जो सबको समान समझता है, सबको समान प्यार करता है। जरा अपने दिल को टटोलो और देखो कि मेरी बात में कितनी सच्चाई है। लोगों ने एक-दूसरे के चेहरे को देखा और सिर झुकाकर चले गये।

१२१८) सुखी कौन- सोलन एक महान दार्शनिक थे। एक बार कहीं वे से घूमते हुए राजा कारू के यहां पहुंचे। कारू ने उनके सामने अपनी धन-संपत्ति का खूब बखान किया। उसकी इच्छा थी कि सोलन उसे संसार का सबसे बड़ा व्यक्ति मानें और अपने मुंह से भी यही कहें। लेकिन सोलन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने कहा, इस संसार में सबसे सुखी वही माना जा सकता है जिसका अंत सुखमय हो। कारू को सोलन का यह कथन बहुत बुरा लगा। उसने सोलन की ठीक से आवभगत नहीं की। कुछ दिनों बाद कारू ने राजा साइरस पर आक्रमण किया, मगर वह हार गया और बंदी बना लिया गया। साइरस ने उसे आग में जिंदा झोंके जाने का हुक्म सुनाया। उस समय कारू को सोलन की याद आई और वह सोलन। सोलन। कहकर चिल्लाने लगा। साइरस को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कारू से इसका मतलब पूछा। कारू ने अपनी तथा सोलन की मुलाकात और सोलन की कही हुई बात के बारे में साइरस को बताया। साइरस पर भी सोलन की बात का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने कारू को छोड़ दिया।

१२१९) अहंकार से मुक्ति- एक बार बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन अपने विचारों का प्रचार करने के उद्देश्य से चीन गए। चीन का सम्राट नागार्जुन के शून्यवाद और अन्य विचारों से बेहद प्रभावित था। वह उनके स्वागत के लिए पहुंचा। उनके उपदेश से वह बेहद प्रभावित हुआ। राजा ने कहा, महात्मन्, मैं अहंकार से बुरी तरह जकड़ा हुआ हूं। इसे दूर करने का उपाय सुझाएं। नागार्जुन ने कहा, आधी रात के समय अतिथि गृह में आना पर अकेले नहीं, अहंकार को अवश्य साथ लाना।

आधी रात को सम्राट अतिथि गृह पहुंचा। नागार्जुन ने द्वार पर खड़े-खड़े ही पूछा, अकेले आए हो, अहंकार को साथ क्यों नहीं लाए? सम्राट ने कहा, साथ लाया हूं, पर वह मेरे हृद में बैठा हुआ है। नागार्जुन ने कहा, एकाग्रचित्त होकर बैठो और खोजो कि तुम्हारे हृदय के किस कोने में अहंकार है। फिर कुछ क्षण वह रुककर बोले, मैं और मेरा की भावना ही अहंकार को जन्म देती है। इस भावना से मुक्त होते ही अहंकार स्वत: गायब हो जाता है। जो अंतिम समय जाता है, सिर्फ वही मेरा है। धन-संपदा, परिवार और मान-प्रतिष्ठा सभी क्षणभंगुर हैं। न कोई बड़ा है न कोई छोटा, यह भावना अपने अंदर पैदा करो। अहंकार अपने आप गायब हो जाएगा। नागार्जुन की इन बातों का सम्राट पर गहरा असर पड़ा।

१२२०) व्यावहारिक ज्ञान- एक दार्शनिक थे। वह हर समय अध्ययन-मनन में लगे रहते थे। वे लोगों को समय-समय पर तात्विक ज्ञान देते थे। उनके घर से थोड़ी दूरी पर एक नदी बहती थी। नदी पर बांध बनाकर एक जलाशय का निर्माण किया गया था। उस जलाशय के स्वच्छ जल में वह स्नान किया करते थे। जलाशय में लहरें अठखेलियां किया करती थीं, जिन्हें देख दार्शनिक का मन मचलता था। वह उसमें तैरकर जल क्रीड़ा का पूरा सुख उठाना चाहते थे, पर कठिनाई यह थी कि वह तैरना नहीं जानते थे, इसलिए किनारे पर स्नान कर संतुष्ट हो लेते थे। एक दिन अपने मन की बात उन्होंने अपने एक शिष्य को बताई। उसने उन्हें दूसरे दिन एक पेटी लाकर दी और कहा, इसे आप अपने पेट पर बांध लेंगे तो कितने ही गहरे पानी में चले जाएं, डूबेंगे नहीं।

दार्शनिक महोदय पेटी लेकर जलाशय पर गए और उसे हाथ में पकड़कर बड़े उत्साह से अथाह जल में कूद पड़े। वह ज्यों ही कूदे एकदम पानी के अंदर चले गए। वह घबराहट में कुछ समझ न सके और हाथ पैर मारने लगे। लेकिन उन्हें लगा वह और अंदर ही चले जा रहे हैं। संयोग से एक आदमी उनके पास ही स्नान कर रहा था। वह अच्छा तैराक था। उसने उन्हें डूबते देखा तो वह झट उनके पास पहुंचा और उन्हें खींचकर किनारे पर ले आया।

दार्शनिक की जान में जान आई। वह कुछ देर हांफते रहे, फिर जब थोड़ा स्थिर हुए तो उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा, क्यों भाई, यह पेटी तो आदमी को डूबने नहीं देती, मैं कैसे डूब गया ? यह सुनकर वह आदमी जोर से हंसा फिर बोला, आप तो विद्वान हैं मगर कोरा ज्ञान ही काफी नहीं है। व्यावहारिक पहलुओं को समझना और जानना भी बेहद जरूरी है। यह पेटी तभी मदद करती है जब पेट पर बांधी जाती है। पर आपने इसे हाथ में ले रखा था इसलिए आपने गौर किया होगा कि पेटी और आपके हाथ डूबे नहीं थे, पानी की सतह पर थे।

१२२१) एक दिन एक रईस महान दार्शनिक अबू अली के पास पहुंचा और बोला, मैं आपके कदमों में बैठकर अध्ययन करना चाहता हूं। अबू अली ने कहा, मैं तुम्हें पढ़ाऊंगा जरूर पर मेहनताने के रूप में सौ अशर्फी हर महीने लूंगा। रईस चौंक गया। वह तो अबू अली को त्याग और तपस्या की मूर्ति समझता था। इस तरह अशर्फी मांगे जाने से उसे दुख हुआ फिर भी उसने अबू अली का प्रस्ताव मान लिया। वह उनसे शिक्षा ग्रहण करने लगा। शिक्षा पूरी होने के बाद उसने घर लौटने की आज्ञा मांगी। अबू अली ने उसे ठहरने को कहा। फिर उन्होंने आलमारी से एक थैली निकाली और बोले, ये लो अपनी अशर्फियां। इन्हें अपने साथ लेते जाओ। इस पर रईस ने कहा, जब आपको मेहनताना नहीं लेना था तो अशर्फी देनेवाली शर्त क्यों रखी ? अबू अली ने कहा, मैं यह परखना चाहता था कि तुम ज्ञान की कीमत देने की इच्छा रखते हो या नहीं। जो कीमत नहीं दे सकता उसे किसी से कुछ भी पाने का हक नहीं।

१२२२) माँ की सीख- दार्शनिक गुरजिएफ ने अपनी आत्मकथा में माता द्वारा दी गई अमूल्य सम्पदा का उल्लेख किया है जिसके कारण वे भटकावों से बचे तथा आनन्दमय जवीन व्यतीत करते रहे। माँ ने मरते समय कहा था कि किसी पर क्रोध आए तो उसकी अभिव्यक्ति चौबीस घंटे से पूर्व न करना। गुरजिएफ ने माँ की सलाह गांठ बांध ली और उसे आजन्म निभाया। वे लिखते हैं- ऐसे अनेक प्रसंग जीवन में आए जिनमें मुझे बहुत क्रोध आया था पर बाद में पता चला कि तथ्य कम और भ्रम अधिक था। क्रोध के परिणामों का विचार करने का अवसर मिलते रहने से उसे क्रियान्वित करने की नौबत ही नहीं आई और जो शत्रु लगते थे वे आजीवन मित्र बने रहें।

१२२३) ज्ञान की कीमत- अरब के सुविख्यात दार्शनिक अबू अली त्याग-तपस्या की मूर्ति थे। लोभ-लालच उन्हें छू भी नही पाया था। सहारा रेगिस्तान का एक अमीर उनके पास आया। वह बोला, मैं आपके चरणों में बैठकर अध्ययन करना चाहता हूं। अबू अली बोले, तुम्हें पढ़ाऊंगा, किंतु मेहनताने के रूप में सौ अशर्फी प्रति महीने मुझे देनी पड़ेगी। अमीर उन्हें त्याग और तपस्या की मूर्ति समझता था। अशर्फियां मांगने पर उसे दुख हुआ, किंतु उसने अशर्फी देना स्वीकार कर लिया। वह अबू अली से ज्ञान प्राप्त करने लगा। शिक्षा पूरी करने के बाद अमीर घर लौटने की आज्ञा मांगने पहुंचा। अबू अली ने आलमारी से थैली निकाली और बोले, इसमें तुम्हारी दी गई अशर्फियां है। इन्हें साथ ले जाओ। अमीर ने कहा, जब आपको मेहनताना लेना नही था तो आशर्फी देने वाली शर्त क्यों रखी? उस्ताद बोले, मैं यह परखना चाहता था कि तुम ज्ञान की कीमत देने की इच्छा रखते हो या नहीं। जो कीमत नही दे सकता है, उसे किसी से कुछ पाने का हक नही है। अमीर उस्ताद की विरक्ति देखकर श्रद्धानत हो गया।

१२२४) तनाव की दवा- दार्शनिक च्वांगत्से एक बार रात्रि के समय कब्रिस्तान से होकर गुजर रहे थे। अचानक उनके पैर में ठोकर लगी। टटोल कर देखा तो किसी मुर्दे की खोपडी थी। उठाकर उन्होंने उसे अपने झोले में रख लिया और सदा अपने साथ रखने लगे। इस पर उनके शिष्यों ने उनसे पूछा- यह कितना गन्दा और कुरुप है। इसे आप साथ क्यों रखते हैं? च्वांगत्से ने उत्तर दिया- यह मेरे दिमाग का तनाव दूर करने की अच्छी दवा है। जब अहंकार का आवेश चढ़ता है, लालच सताता है तो इस खोपड़ी को गौर से देखता हूं। कल-परसों ऐसी दुर्गति होनी है तो अहंकार और लालच क्यों किया जाए?

१२२५) एक बार चीन के महान दार्शनिक संत ताओ बू चिन के पास चुंगसिन नामक एक व्यक्ति पहुंचा। उसने उनसे धर्म की शिक्षा देने की प्रार्थना की। संत ताओ बू चिन ने उस व्यक्ति को कुछ समय तक तो अपने पास रखा और फिर उसे दीन-दुखियों की सेवा में लगा दिया। कुछ समय बाद चुंगसिन ने संत से निवेदन किया, महाराज, आपके पास रहते हुए इतने दिन हो गए हैं, लेकिन आपने मुझे धर्म की शिक्षा नहीं दी।

संत ताओ ने थोड़ी देर मौन रहने के बाद कहा, तेरा तो जीवन ही यहां रहते हुए धर्ममय हो गया है, फिर मैं तुझे धर्म के विषय में क्या शिक्षा देता ? तू अपने कर्त्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक करता है। तुझसे बड़ा धार्मिक और कौन होगा ?

१२२६) महान दार्शनिक प्लेटो हर क्षण नया जानने को उत्सुक रहते थे। वह प्राय: आगुंतकों, बुद्धिजीवियों व अन्य जिज्ञासु व्यक्तियों से विचारों का आदान-प्रदान करते रहते थे। एक दिन प्लेटो ने एक व्यक्ति से अध्यात्म संबंधी प्रश्न पूछे। उस व्यक्ति के जाने के बाद प्लेटो के शिष्य ने कहा- सर, आप विश्व के जाने-माने विद्वान और दार्शनिक है। आप आगंतुकों से कुछ पूछते हैं, तो हमें अच्छा नहीं लगता। आप इतने बड़े ज्ञानी होने के बावजूद क्यों अपने प्रश्नों का समाधान पूछते हैं। आप किसी से भी कुछ सीखने लग जाते हैं। आखिर आप कब तक सीखते रहेंगे ?

संत प्लेटो ने उसे समझाते हुए कहा- जब तक दूसरों से सीखने में मुझे शर्म नहीं आएगी तब तक।

वत्स, ज्ञान अथाह होता है। उसकी सीमा नहीं होती। मेरा ज्ञान भी उतना ही सीमित है, जितना समुद्र की एक बूंद। पूर्ण ज्ञानी होने का तो कोई दावा ही नहीं कर सकता। जो करता है, वह झूठा और दंभी है। प्लेटो की महानता व अभिमान रहित असंत के समक्ष शिष्य नतमस्तक हो गया।

१२२७) दयालु प्लेटो- प्रसंग उस समय का है, जब एथेन्स नगर के देव मंदिर में उत्सव मनाया जा रहा था। नगरवासियों ने यूनानी दार्शनिक प्लेटो को भी उसमें आमंत्रित किया। मंदिर में प्लेटो ने देखा कि जो भी नगरवासी मंदिर में आता, वह देवता के सामने पशु या पक्षी की बलि अवश्य देता। पशु-पक्षी पीड़ा से तड़फते और नगरवासी खुशी से नाचने लगते। जीवमातृत्व से सहानुभूति रखने वाले प्लेटो से पशुओं की पीड़ा नहीं देखी गई। दु:खी होकर वे उठकर जाने लगे। तभी मंदिर के पुजारी ने उनको रोका और कहा, मान्यवर अतिथि। आज तो आपको भी बलि देकर ही जाना पडेगा। प्लेटो शांत भाव से उठे और थोडे से पानी में मिट्टी गीली की और एक जानवर की आकृति बनाकर देव प्रतिमा के सामने रखी और तलवार द्वारा उसकी बलि देकर जाने के लिए मुड गए। यह दृश्य देखकर अंध श्रद्धालु मुंह बिचकाते हुए बोले- यह भी कोई बलिदान हुआ ? प्लेटो ने धैर्यपूर्वक कहा- हां, निर्जीव देवता के लिए निर्जीव भेंट ही उपयुक्त थी, जो मैंने चढ़ा दी। प्लेटो के इस जवाब से सभी निरुत्तर हो गए। कहते हैं इसी दिन से यहां बलि प्रथा का अन्त हो गया।

१२२८) प्रमाणप्रेमी प्रोफेसर- दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर साहब ने एक बार एक बिल्ली पाली। उनको देर तक पढ़ने का शौक था और बिल्ली उनकी गोद में पड़ी आराम से सोती रहती। एक रात को जब बारह बज गए और प्रोफेसर साहब की पढ़ाई खत्म नहीं हुई तब उनकी पत्नी दूध का गिलास उनके सामने मेज पर रखकर जाकर सो गईं। घण्टे भर बाद पढ़ाई

खत्म हुई तो प्रोफेसर साहब ने देख कि दूध का गिलास खाली है। उन्हें आश्चर्य हुआ, क्योंकि बिल्ली उनकी गोद में ज्यों की त्यों सो रही थी। कुछ देर वे सोचते रहे और अन्तत: परेशान होकर उन्होंने अपनी पत्नी को जगाया। पत्नी ने झुंझलाकर कहा- मैं क्या जानूं दूध कहां गया, बिल्ली पी गई होगी। मगर प्रमाण तो चाहिए- वे चिन्ता में पड़ गए। थोड़ी देर में उत्साहित होकर बोले- देखो अभी पता लगाता हूं। आधा सेर दूध था न? वे भण्डार घर से तराजू निकालकर लाए और बिल्ली को तोला। वह ठीक आधा सेर निकली, एकदम खुश होकर प्रोफेसर कहने लगे- तुम ठीक ही कहती थी कि दूध बिल्ली पी गई होगी। फिर अकस्मात उन्हें कुछ याद आया- लेकिन दूध भी तो ठीक आधा सेर था। अरे, बिल्ली कहां गई ?

१२२९) व्यावहारिक बनो- चीन के महान दार्शनिक संत कनफ्यूशियस तर्कशास्त्री थे। अनेक जिज्ञासु उनके पास आया करते थे। संतजी से विभिन्न समस्याओं की चर्चा कर उनका मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। अनेक प्रवचनों में वह प्रेम को ही ईश्वर बताया करते थे। प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम कर उसके सुख-दु:ख में सहयोग देने की प्रेरणा दिया करते थे।

एक दिन चीन के कुछ बुद्धिजीवी उनसे विचार-विमर्श कर रहे थे। एक व्यक्ति ने पूछा, मृत्यु के बाद प्राणी का क्या होता है। शरीर त्यागने के बाद आत्मा कहां प्रस्थान कर जाती है ?

कनफ्यूशियस ने उससे प्रति प्रश्न किया, क्या तुम जीवन के बारे में संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर चुके हो ?

उसने उत्तर दिया, जीवन का रहस्य तो अनंत है। उसकी संपूर्ण जानकारी कैसे प्राप्त हो सकती है ?

पहले जीवन को सुखमय बनाने के उपाय खोजो, यदि जीवन व्यावहारिक हो गया, तो मृत्यु स्वयं सुखमय प्रतीत होने लगेगी। जिन लोगों का इहलोक कल्याणमय बन जाता है, वे परलोक की चिंता नहीं करते।

दार्शनिक के चंद शब्दों ने जिज्ञासु की आंखे खोल दीं।

१२३०) दीर्घायु का रहस्य- यह कहानी चीन के सुविख्यात विचारक कन्फ्यूशियस के जीवन, दर्शन एवं उनके अध्यात्म से संबंधित है। एक बार उनसे मिलने एक सज्जन आए। उन दोनों के बीच धर्म और दर्शन के माध्यम से अध्यात्म के अनेक पहलुओं पर चर्चा होती रही। कभी राजनीतिक, कभी दार्शनिक तो कभी सामाजिक विषयों की बातें हो रही थीं। उन सज्जन ने बहुत से सवाल पूछे और कन्फ्यूशियस ने उनके उत्तर दिए। अंत में उन सज्जन ने पूछा- यह बताइए कि दीर्घायु कौन होता है। कन्फ्यूशियस इस सवाल को सुनकर थोड़ा मुस्कराए। कुछ सोचकर बोले- आप जरा उठकर मेरे पास आइए। उनको अंदर ले जाकर बोले- मेरे मुंह में देखिए, जीभ है या नहीं ? कन्फ्यूशियस ने अपना मुंह खोल दिया और उन सज्जन ने झुक कर उनके मुंह के अंदर देखा एवं बोले- जी हां, जीभ है।

कन्फ्यूशियस ने कहा- अच्छा अब देखिए कि दांत हैं या नहीं ? उन्होंने फिर झुक कर कन्फ्यूशियस के मुंह के अंदर देखा और बोले- दांत तो एक भी नहीं है। वे बोले यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। कन्फ्यूशियस ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा, अरे यह क्या हुआ ? जीभ तो है और दांत एक भी नहीं ? जबकि जीभ तो जब से जन्म हुआ तभी से है, अर्थात् जीभ तो दांतों से पहले पैदा हुई थी, अत: उसे तो दांतों से पहले विदा होना चाहिए था।

बड़ी हैरानी की बात है, क्या आप बता सकेंगे कि ऐसा कैसे हुआ ? यह सुनकर वह सज्जन भी विस्मित हो गए। उन्हें सूझा ही नहीं कि क्या जवाब दें। थोड़ी देर चिंतन के बाद उन्होंने कन्फ्यूशियस से ही उसका उत्तर मांगा।

कन्फ्यूशियस बोले- तुम्हारे सवाल का उत्तर भी इसी में है। इसका कारण है कि जीभ कोमल है, जबकि दांत कठोर है। इस कारण वे या तो सब गिर गए या उखाड़ फेंक दिए गए। जीभ कोमल थी, इसलिए बची रही। जीभ लचीली होती है, परंतु दांत अकड़े रहते हैं। किसी ने सही कहा है- झुकता वही है, जिसमें जान होती है। अकड़ तो मुर्दे की पहचान होती है।

अत: तुम भी कोमल बनो। विनम्रता, कोमलता मानव को उदात्त बनाती है। लोकप्रिय बनाती है। यह जीवन का एक सहज स्वाभाविक गुण भी है। अत: विनयशील बनोगे तो तनावरहित रहोगे। सबकी सद्भावना मिलेगी और दीर्घ जीवन जी सकोगे।

जिसमें लचीलापन होता है, वह अधिक समय तक जीता है। जैसे यह नियम हमारे शरीर पर लागू होता है, उसी तरह हमारे मन का भी यही नियम है। जो जितना नम्र और कोमल होगा वह उतना ही उपलब्धि का अधिकारी होगा। गुजराती में एक कहावत है- जो झुकी शके तो ले टकी शके छे, अर्थात जो झुक सकता है वह कायम बना रहता है।

१२३१) तरक्की का रास्ता- चांग हो कन्फ्यूशियस के सबसे विद्वान शिष्यों में गिने जाते थे। एक बार वह विश्व भ्रमण पर निकले। जब वह पड़ोसी देश ताइवान पहुँचे तो वहां एक गांव में उन्होंने एक विशाल हरे-भरे बगीचे में एक किसान को कूएं से पानी भरकर पेड़ों को सींचते देखा। उसके माथे से पसीना टपक रहा था और सांस भी धौंकनी की तरह चल रही थी। चांग हो को उस पर दया आ गई। उन्होंने सोचा कि इसकी मदद की जाए। उन्होंने पास ही मौजूद एक वृक्ष का मोटा सा तना तोड़ा और उससे लकड़ी की घिर्री बनाकर किसान को दी। फिर उन्होंने पानी पेड़ों तक पहुँचाने के लिए मोटे बांसों को काटकर उनकी नालियां बनी दीं। इसके बाद वह किसान को बेहतर जीवन जीने का संदेश देकर वहां से निकल पड़े। संयोग से चार साल बाद फिर उन्हें वहां जाने का अवसर मिला। वह दोबारा वहां पहुंचे तो पाया कि पेड़ सूखे हैं और कुएं के पास कोई मौजूद नहीं है। वह किसान का पता पूछकर उसकी झोपड़ी के पास गए तो देखा कि किसान बीमार खाट पर पड़ा है। चांग हो ने पूछा, मैंने तुम्हें समय और मेहनत बचाने की राह सुझाई थी, पर तुम्हारी यह क्या हालत हो गई है। किसान की पत्नी बोली, महाशय, आपकी सुझाई राह से ही तो यह हालत हुई है, क्योंकि आपने इनका काम आसान कर दिया। मेहनत कम होते ही यह आलस्य से घिर गए। अब ये बैठे-बैठे बेकार की बातें सोचते रहते हैं और बीमार रहते है। इस पर चांग ने कहा, तुमने मेरी मदद को गलत रूप में ले लिया। मैंने तुम्हें मेहनत से मुंह फेरने को नहीं कहा था। मैंने तुम्हारे काम को आसान बनाया था। उससे जो समय बच रहा था उसे तुम किसी और काम में लगा सकते थे। तुम अपनी खेती का विस्तार कर सकते थे, कोई और कारोबार शुरू कर सकते थे। उससे तुम्हारी तरक्की होती। किसान को अपनी भूल का अहसास हो गया।

१२३२) जनता का विश्वास- महान संत कन्फ्यूशियस से परामर्श लेने व उनसे अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाने के लिए अनेक लोग उनके पास आते रहते थे। एक बार कुछ राजनेता राजनीत के संदर्भ में कुछ प्रश्नों का उत्तर जानने व राजनीति पर विचार-विमर्श करने के लिए आए। चर्चा चल ही रही थी कि उनमें से एक राजनेता ने पूछा, कृपया बताएं, सच्चे अर्थों में एक आदर्श व अच्छा शासन कौन हो सकता है? प्रश्न सुनकर कन्फ्यूशियस बोले, महानुभाव, जिसके पास जनता के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त साधन हों, देश की रक्षा के लिए पर्याप्त सेना और शस्त्रास्त्र हों तथा जिस पर जनता का पूर्ण विश्वास हो, वही वास्तव में एक अच्छा व आदर्श शासक साबित हो सकता है। राजनेता बोले, लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण क्या है? इस पर कन्फ्यूशियस बोले, इनमें सबसे महत्वपूर्ण जनता का विश्वास है। शासक या सरकार के प्रति यदि जनता का विश्वास डगमगा गया तो उसका पतन निश्चित है। विश्वास एवं विश्वसनीयता से बढ़कर किसी शासक के लिए सर्वोत्तम तत्त्व और कुछ हो ही नहीं सकता क्योंकि अन्य वस्तुएं जैसे आधुनिक शस्त्र, सर्वोत्तम साधन आदि तो रुपये-पैसों से खरीदे जा सकते हैं किन्तु विश्वास को अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने पर भी नहीं खरीदा जा सकता। विश्वास ही इस संसार में एक ऐसा तत्त्व है जो अपनी दृष्टि और आचरण से प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए आत्मा की शुद्धता आवश्यक है। यदि जनता का विश्वास किसी बड़े राजनेता पर से उठ जाए तो वह उसी क्षण आसमान से जमीन पर आ गिरता है। राजनेता इससे पूर्णतया सहमत हो गए।

१२३३) सत्संग की महिमा- हकीम लुकमान के जीवन की यह अंतिम घटना है। वह एक ख्यातिप्राप्त विद्वान और सदाचारी व्यक्ति थे। जब वे मृत्युशय्या पर अंतिम सांसें ले रहे थे तो उन्होंने इशारे से अपने बेटे को पास बुलाकर कहा- बेटा, मैंने तुझे यूं तो समय-समय पर अनेक शिक्षाएं दी हैं, पर जाते-जाते एक अंतिम शिक्षा देना चाहता हूं।

इतना कहकर लुकमान ने बेटे को पूजा के कक्ष से धूपदान उठाकर लाने को कहा। जब वह धूपदान लेकर हाजिर हुआ तो लुकमान ने उसमें से चुटकी भर चंदन लेकर उसके हाथ में थमाया और इशारे से बताया कि अब वह चूल्हे में से कोयला उठाकर लाए। जब बेटा कोयला लेकर आया तो उन्होंने दूसरी हथेली में कोयले को रखने का आदेश दिया। कुछ देर बाद फिर लुकमान ने कहा- अब इन्हें अपने-अपने स्थान पर वापस रख आओ। बेटे ने वैसा ही किया। उसकी जिस हथेली में चंदन था, वह उसके सुवास से अब भी महक रही थी और जिस हाथ में कोयला था, वह हथेली कोयला छोड़ देने पर भी काली दिखाई पड़ रही थी।

लुकमान ने पुत्र को दोनों हाथ दिखाते हुए समझाया- बेटे, एक बात याद रखना, अच्छे आदमियों का संग चंदन जैसा होता है। जब तक संग रहेगा तब तक तो खुशबू मिलेगी ही, संग छूटने के बाद भी अच्छे विचारों की सुगंध से जिन्दगी तरोताजा हो जाएगी। दुर्जनों का संग कोयले जैसा है। जब तक हाथ में कोयला है तब तक तो हाथ काला है ही, किन्तु छोड़ देने के बाद भी उस पर कालिमा बनी रहती है। अत: बेटा। जीवन में सदैव चंदन जैबसे संस्कारी आदमियों का ही संग करना और कोयले जैसे कुसंग से दूर रहना। शायद इसीलिए कहा गया है- चंदन की चुटकी भली, गाड़ी भरा न काठ अर्थात् चंदन की चुटकी भी मन को आल्हाद से भर देती है, जबकि गाड़ी भर लकड़ी भी इस कार्य को संपन्न नहीं कर सकती। लुकमान का पुत्र अपने पिता की इस अंतिम शिक्षा को जीवन भर नहीं भूला।

१२३४) कड़वी ककड़ी - हकीम लुकमान प्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक थे, लेकिन चिकित्सक बनने से पहले बचपन में उन्होंने एक दास के रूप में जीवन गुजारा था। हकीम लुकमान का बचपन अभावों में बीता था। उन्हें भरण-पोषण के लिए गुलामी भी करनी पड़ी। लुकमान के स्वामी बहुत नेकदिल इंसान थे और उनके प्रति बहुत स्नेह रखते थे। एक दिन लुकमान के स्वामी की ककड़ी खाने की इच्छा हुई। लुकमान ने कहीं से लाकर उनको ककड़ी दे दी। मालिक ने ज्यों ही ककड़ी मुँह से लगाई उसे पता चल गया कि ककड़ी अत्यंत कड़वी है। उन्होंने उसे बिना खाए ही अपने मुंह से निकाल कर लुकमान को देते हुए कहा, ले, इसे तू खा ले। लुकमान ने ककड़ी ले ली और बिना मुंह बिचकाए उसे खा गए। लुकमान पूरी ककड़ी खा गए। लुकमान के स्वामी समझते थे कि ककड़ी बहुत कड़वी है, इसलिए लुकमान भी इसे खाएंगे नहीं और फेंक देंगे। लेकिन जब लुकमान सारी ककड़ी चाव से खा गए तो स्वामी को बहुत आश्चर्य हुआ। वह तो यह मानकर चल रहा था कि इतनी कड़वी ककड़ी कोई खा ही नहीं सकता, इसलिए लुकमान इसे फेंक देंगे। उन्होंने पूछा, यह तो बहुत कड़वी ककड़ी थी, तू इतनी कड़वी ककड़ी को किस तरह खा गया।

लुकमान ने स्वामी को जवाब दिया, हुजूर, आप मुझे इतना ज्यादा मानते हैं। मुझे आपने कभी दास समझा ही नहीं। कोई दुख नहीं दिया, प्रेमपूर्वक अच्छा-अच्छा स्वादिष्ट पकवान खाने को देते हैं। यहां मैं हर प्रकार से सुख भोगता हूँ। तो क्या आपके हाथ की एक कड़वी ककड़ी नहीं खा सकता। यह तो मेरा सौभाग्य था कि आपके हाथ से मुझे ककड़ी खाने को मिली। मैंने उसे भी और चीजों की, तरह ही अच्छा मानकर लिया और खाया। मालिक, आप ही तो हमें बताते हैं कि जो परमात्मा हमेशा सुख देता है, यदि उसी के हाथ से कभी दुख भी आए तो उस दुख को प्रसन्नतापूर्वक सह लेना चाहिए। यह तो एक कड़वी ककड़ी थी, यदि आप के हाथ से मुझे कोई बड़ा कष्ट भी मिले तो मैं उसे हंसी-खुशी स्वीकार करूंगा। लुकमान का मालिक समझदार और दयालु था। उसने लुकमान की इस बात का आदर किया।

लुकमान के स्वामी यह सुनकर काफी प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, लुकमान तुम महान हो। मैं तुम्हारे जवाब से बेहद खुश हूं। आज तुमने मुझे जीवन का सबसे बड़ा सच बताया है। परमात्मा हमें अनेक प्रकार के सुख देता है, उसी के हाथ से यदि कभी दुख भी आए तो उस दुख को हमें खुशी-खुशी स्वीकार करना चाहिए। आज से तुम गुलाम नहीं रहे। जाओ स्वतंत्रता का जीवन जीओ। दासता से मुक्ति पाकर लुकमान ने उसी दिन से कड़ी मेहनत शुरू कर दी। अपने कठोर अध्ययन के बल पर उन्होंने चिकित्सा क्षेत्र में महारत हासिल की। अपने इस हुनर का इस्तेमाल उन्होंने मानवता की सेवा में किया।

१२३५) नकली नौकर- एक साहूकार था। उसका एक नौकर था। साहूकार उससे बहुत ज्यादा काम लेता था। एक दिन नोकर घर से भाग गया। साहूकार उसे खोजने निकला। काफी दौड़ भाग के बाद वह मिल गया। साहूकार ने उसे दो-चार चांटे लगाए और घर ले आया। अब वह उससे पहले से ज्यादा काम लेने लगा। नौकर भी खुशी-खुशी काम कर रहा था।

कुछ महीने बाद एक दिन साहूकार के दरवाजे पर एक लड़का आया और उसके पैर पकड़ कर बोला, मालिक मुझे माफ कर दो। मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई जो आप को बिना बताए यहां से चला गया। मुझे फिर से नौकरी पर रख लीजिए। साहूकार चक्कर में पड़ गया, क्योंकि दोनों की शक्ल-सूरत काफी मिलती-जुलती थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसका असली नौकर कौन है, वह जिसे वह पकड़ कर लाया था या वह जो सामने खड़ा था। गौर से देखने के बाद साहूकार समझ गया कि जिस आदमी को वह पकड़ कर लाया था, वह उसका असली नौकर नहीं था। उसने नकली नौकर से पूछा, मेरा नौकर तो यह है, तुम कौन हो। वह बोला, आप का नौकर। साहूकार गुस्से में बोला, सच बताओ तुम कौन हो। वह फिर बोला, आप का नौकर हूं और मेरा नाम लुकमान है। साहूकार समझ गया कि ये हकीम **लुकमान** हैं। उसने उनके पैर पकड़ कर कहा, मुझे माफ कर दो। मैंने आपको पहचाना नहीं। लुकमान ने कहा, माफ तो मैं कर दूंगा, लेकिन मेरी एक शर्त है। आज से तुम किसी नौकर को सताओगे नहीं।

ठीक है, लेकिन आप यह तो बताइए कि आप इतने दिन तक यहां इतने कष्ट क्यों सहते रहे। चांटा खाने के बाद भी आप ने अपना नाम नहीं बताया। हकीम लुकमान बोले, सेठ, इसमें मेरा नफा था। मुझे यहां रह कर तजुर्बा हुआ कि नौकर के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। मेरे घर में भी एक नौकर है। मैं उससे कई तरह के बेढब काम लेता रहता हूँ। मुझे पता ही नहीं चलता कि उसे कौन सा काम अच्छा लगता है और कौन सा बुरा। अब इसकी समझ हो गई है।

१२३६) ईश्वर की रचना - किर्चनर बहुत बड़े खगोल शास्त्री थे। उनके विषय में एक कहानी प्रचलित है। उनका एक नास्तिक मित्र था। वह हमेशा कहा करता था कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता। दोस्त को समझाने के लिए उन्होंने एक सरल तरीका सोचा। उन्होंने पृथ्वी का एक नमूना (ग्लोब) बनवाया और अपने उस मित्र को अगली सुबह चाय पर आमंत्रित किया। जब उनका मित्र आया, तो उसका ध्यान सर्वप्रथम मेज पर रखे, ग्लोब पर गया। किर्चनर उसे उंगलियों से नचाकर आनंद ले रहे थे। मित्र ने कहा, सुंदर है, किसने बनाया? किर्चनर से कहा, यह अपने आप बन गया। मित्र हंसने लगा। किर्चनर ने कहा, तुम इसलिए हंसे, क्योंकि मैंने बिल्कुल बेतुकी बात कह दी। तुम्हारा हंसना ठीक है। जरा सोचो कि किस बात पर विश्वास करना अधिक सरल होगा, यह छोटा सा ग्लोब स्वयं बन गया होगा या इसे किसी ने बनाया होगा? तुम्हें लगता है कि ग्लोब अपने आप नहीं बन सकता तो फिर यह सोचो कि यह विशाल ग्लोब, जिस पर हम रहते हैं, यह भी अपने आप कैसे बना होगा? जब तक मानव अपनी आंखों से नहीं देख लेता, तब तक उसका विश्वास करना कठिन होता है। चारों ओर चमत्कार भरे पड़े हैं। पर हम किसी प्रकार की उथल-पुथल महसूस नहीं करते। पृथ्वी विश्व का केंद्र है, पर शून्य के महासागर में हमारा ग्रह एक बूंद मात्र है। वैज्ञानिक इस ब्रह्माण्ड के एक छोटे से अंश का भी निरीक्षण

नहीं कर सके हैं। यदि हम पूरे ब्रह्माण्ड की यात्रा करें, तो उसमें छह अरब प्रकाश वर्ष से भी ज्यादा समय लग जाएगा।

१२३७) महान क्रिकेटर- आज देश में क्रिकेट अपार लोकप्रिय हैं, लेकिन यह बात उन दिनों की है जब सन १८९७ में क्रिकेट के जादूगर रणजीत सिंह को ऑस्ट्रेलिया यात्रा के लिए इंग्लैंड टीम में चुन लिया गया। उनकी लोकप्रियता का आलम यह था कि सेनेट में विशेष अधिनियम पारित कर उनकी यात्रा को १०० डॉलर के टैक्स से मुक्त कर दिया गया। उन दिनों हर विदेशी को ऑस्ट्रेलिया में प्रवेश करने पर यह टैक्स देना होता था। एडिलेड के पहले ही टेस्ट मैच में उन्होंने १८९ रन बनाए, लेकिन वे तब विवाद में घिर गए जब उन्होंने ऑस्ट्रेलिया के तेज गेंदबाज अर्नेस्ट जोंस पर गलत गेंद फेंकने का आरोप लगाया। इतना होता तब भी ठीक था, गले के तेज दर्द से पीड़ित जब वे अस्पताल में भर्ती थे, तो आलोचक कहने लगे कि वह जोंस की तूफानी गेंदबाजी से डरे हुए हैं। ऐसी आलोचना सुनकर वह उसी स्थिति में अस्पताल से उठकर मैदान में आए और इंग्लैंड के लिए १९५ रन बनाए और मैच के बाद मैदान से सीधे अस्पताल पहुंचकर बिस्तर पर जा लेटे। सिडनी में हुए तीसरे टेस्ट के दिन सुबह उनके गले का ऑपरेशन हुआ था, लेकिन फिर भी उन्होंने १८६ रन बनाए। आलोचक दंग रह गए। जनता ने उन्हें सिर आंखों पर बिठा लिया। टेस्ट मैच रणजी मैच कहलाए जाने लगे। रणजी नाम हर क्षेत्र में उत्कृष्टता का ब्रैंड नेम बन गया। भारत के इस प्रथम महान खिलाड़ी ने इस यात्रा में २० मैचों में ६०.८९ के औसत से ११५७ रन बनाए थे। एक बार जब वे शतक बनाकर वापस पैवेलियन लौटे तो मित्रों ने उन्हें बधाई दी। बजाय प्रसन्न होने के उन्होंने अपने पैड पर लगे गेंद के तीन धब्बों की ओर इशारा किया जो उनके गेंद चूक जाने के कारण लगे थे। क्रिकेट पर लिखने वाली मशहूर लेखिका नेविला कारडस ने तो उनके बारे में यहां तक लिखा- यह तो प्रकृति की भी क्षमता के बाहर है कि वह एक और रणजीत पैदा कर दे।

१२३८) प्रतिभा की पहचान- यूनान देश के थ्रेस प्रांत में एक निर्धन बालक दिन भर परिश्रम करके जंगल में लकड़ी काटता। फिर उनका गठ्ठर बनाकर शाम को बाजार में बेचता था। एक दिन एक संभ्रांत व्यक्ति उस बाजार से जा रहा था। उसने देखा कि बालक का गठ्ठर बहुत ही कलात्मक रूप से बंधा हुआ है। उस सज्जन को गठ्ठर बांधने के तरीके ने आकर्षित किया। उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि एक अनपढ़ और गरीब बालक ने इतने कलात्मक ढंग से गठ्ठर कैसे तैयार किए है। उन्होंने सोचा जरूर उसके मां-बाप ने इसे गट्ठर दिये होंगे। उनसे रहा नहीं गया और उन्होंने उस लड़के से पूछ लिया, क्या यह गठ्ठर तुमने बांधा है ? लड़के ने जवाब दिया, जी हां श्रीमान जी। मैं दिन भर लकड़ी काटता हूं, स्वयं गठ्ठर बांधता हूं और फिर रोज बाजार में बेचता हूं। उस व्यक्ति ने लड़के से कहा, क्या तुम इसे खोल कर इसी प्रकार वापिस बांध सकते हो ? जी हां, यह देखिये। इतना कहकर उस लडके ने गठ्ठर खोला तथा बड़े ही कलात्मक तरीके से पुन: गठ्ठर बांध दिया। यह कार्य वह बड़े ध्यान, लगन और फुर्ती के साथ कर रहा था। उस व्यक्ति पर इस लड़के की एकाग्रचित्तता, लगन व कलात्मक प्रतिभा का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने देखा कि बालक में छोटे से काम को भी दिलचस्पी, लगन और कलात्मक ढंग से करने का गुण विद्यामान है। ऐसा विचार कर उसने बालक से कहा, क्या तुम मेरे साथ चलोगे ? मैं तुम्हें शिक्षा दिलाऊंगा और सारा व्यय वहन करूंगा। मैंने तुम्हारे भीतर अद्भुत प्रतिभा देखी है। इसका इस्तेमाल केवल लकड़ी काटने में नहीं होना चाहिए। बालक ने कुछ देर इस प्रस्ताव पर सोचा। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस व्यक्ति पर यकीन किया जाए या नहीं। हालांकि उसे पढ़ने का बहुत शौक था। बालक सोच-विचार में मग्न हो गया। आखिरकार वह घरवालों की सहमति लेकर उस सज्जन को अपनी स्वीकृति दे दी और उसके साथ चला गया। उस व्यक्ति ने बालक के रहने और शिक्षा का प्रबंध किया। वह स्वयं भी उसे पढ़ाता था। थोड़े समय में ही उस बालक ने अपनी लगन तथा कुशाग्र बुद्धि से उच्च शिक्षा को आत्मसात कर लिया। बड़ा होने पर यही बालक यूनान के महान दार्शनिक पाइथागोरस के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह भला

आदमी जो बालक की आदतों, बुद्धि व लगन पर मोहित हो गया था, जिसने एक दृष्टि में बालक के अंदर छिपे हुए महानता के बीज को पहचान कर उसे पल्लवित किया था, वह था यूनान का विख्यात तत्वज्ञानी डेमोक्रीटस्। जो व्यक्ति अपने छोटे-छोटे कार्य भी लगन एवं ईमानदारी से करते हैं, उन्हीं में महानता के बीज छिपे रहते हैं।

१२३९) स्मृति मंदिर- जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवताओं का वास होता है- ऐसा हमारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है। परन्तु व्यवहार में हमने समाज में नारी को कई प्रताड़नाएं झेलते देखा है। मगर एक बार सचमुच ऐसी घटना हुई, जब हिन्दी के महान संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पत्नी की मूर्ति की स्थापना कर मंदिर बनवाया। हुआ यूं कि महावीर प्रसाद द्विदेदी की पत्नी ने परिवार द्वारा स्थापित महावीर (हनुमान) की मूर्ति के लिए एक चबूतरा बनवा दिया। जब द्विवेदीजी गांव दौलतपुर, रायबरेली आए तो पत्नी ने यूं ही चुटकी लेते हुए कहा- लो, मैंने तुम्हारा चबूतरा बनवा दिया। गांव के रिवाज के मुताबिक पत्नियां पति का नाम नहीं लेती, इसलिए उन्होंने ऐसा महावीर नाम न लेते हुए कहा।

द्विवेदीजी की पत्नी न तो विदुषी थीं न ही रूपवती, लेकिन अच्छी सहधर्मिणी अवश्य थीं। इस कारण द्विवेदीजी उनसे बहुत स्नेह करते थे। वह जितना स्नेह करते थे उतना ही सम्मान भी करते थे। पत्नी की बात सुनकर उन्होंने भी चुटकी लेने के अंदाज में ही पत्नी से वादा किया- चलो, तुमने मेरा चबूतरा बनवाया है, तो मैं तुम्हारा मंदिर बनवा दूंगा। बात आई गई हो गई। परन्तु जब १९१२ में उनकी पतनी की गंगा में डूब जाने से आकस्मिक मृत्यु हो गई तो द्विवेदीजी को पत्नी को दिया अपना वादा याद हो आया। उन्होंने अपने घर के आंगन में स्थित मंदिर में लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्तियों के बीच उनकी संगमरमर की प्रतिमा स्थापित कर अपना वचन पूरा किया। प्रतिमा स्थापना के समय गांव के लोगों ने बहुत विरोध किया, उन्हें खरी-खोटी सुनाई। कहीं ऐसा भी होता है कि देवियों की मूर्ति के बीच मानवी मूर्ति स्थापित की जाए। लेकिन उन्होंने किसी की न सुनी। आज वह इस दुनिया में नहीं हैं, विरोध करने वाले भी नहीं हैं, परन्तु उनका बनवाया हुआ वह स्मृति मंदिर आज भी महावीरजी की अपनी पत्नी के प्रति श्रद्धा और सम्मान की याद दिलाता हुआ उनके गांव में मौजूद है।

१२४०) सबसे बड़ा धर्म- अपनी खेती बारी की देखभाल कर घर लौट रहे हिन्दी के कर्णधार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को रास्ते में सहसा किसी के चिल्लाने की ध्वनि सुनाई दी। शीघ्र जाकर देखा कि एक स्त्री को सांप ने काटा है। त्वरित बुद्धि आचार्य को लगा कि वहां कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे सर्प-विष को आगे फैलने से रोका जा सके। इसलिए उन्होंने फौरन अपने यज्ञोपवीत (जनेऊ) को तोड़कर सर्प-दंश के ऊपरी हिस्से को मजबूती से बांध दिया। फिर, सर्पदंश स्थल को चाकू से चीरकर विषाक्त रक्त को बलात् बाहर निकाल दिया। उस स्त्री की प्राण रक्षा हो गई।

इसी बीच गांव के बहुत से लोग वहां इकट्ठा हो गए। वह स्त्री अछूत थी, इसलिए गांव के पंडितों ने घोर नाराजगी प्रकट करते हुए कहा- जनेऊ जैसी पवित्र वस्तु का इस्तेमाल उस औरत के लिए करके आपने धर्म की लुटिया डुबो दी। हाय। गजब कर दिया।

विवेकी आचार्य ने कहा- अब तक नहीं मालूम तो अब से जान लीजिए, मनुष्य और मनुष्यता से बड़ा कोई धर्म नहीं होता। इसलिए, मैंने अपनी ओर से सबसे बड़े धर्म का पालन किया है।

१२४१) रचना का सम्मान - यह उस समय की बात है, जब विख्यात बांग्ला लेखक शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने लेखन की शुरूआत ही की थी। उन दिनों कई बार तो उनकी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं से लौटा दी जाती थीं और प्रकाशित होने पर भी उन्हें दूसरे लेखकों की तुलना में कम पारिश्रमिक मिलता था। इसी संकोच के कारण कई बार तो वह कहानी लिखकर भी छपने के लिए कहीं नहीं भेजते थे। एक बार उन्होंने अपनी स्वामी शीर्षक रचना उस समय की चर्चित पत्रिका नारायणा

में छपने के लिए भेजी। पत्रिका के संपादकों को यह रचना इतनी पसंद आई है कि दूसरे ही दिन वह पत्रिका के पहले पेज पर छाप दी गई। उस समय नारायण में प्रकाशित एक कहानी या लेख का पारिश्रमिक कम से कम पचास रुपये हुआ करता था। लेकिन कई बार इससे ज्यादा पारिश्रमिक भी दिया जाता था। इसका निर्णय रचना का स्तर और लेखक की प्रतिष्ठा को देखकर संपादकगण करते थे। लेकिन शरतचंद्र की इस रचना के बारे में संपादक मंडल कोई निर्णय नहीं ले सका। यह तय हुआ कि इसका फैसला शरतचंद्र जी स्वयं करें। दो दिनों के बाद उनके पास पत्रिका के कार्यालय से एक कर्मचारी आया और उन्हें प्रधान संपादक की एक चिट्ठी सौंपी। चिट्ठी के साथ एक हस्ताक्षरित कोरा चेक भी था। पत्र में लिखा था, हस्ताक्षर करके खाली चेक आपको भेज रहा हूँ। एक महान लेखक की इस महान रचना के लिए मुझे बड़ी से बड़ी रकम लिखने में भी संकोच हो रहा है। इसलिए कृपा करके खाली चेक में स्वयं ही अपना पारिश्रमिक डाल लें। मैं आपका आभारी रहूंगा। शरतचंद ने पत्र पढ़ा। फिर राशि की जगह केवल ७५ रुपये भरकर प्रधान संपादक को पत्र लिखा, मान्यवर, आपने मुझे जो सम्मान दिया है उसका कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। आपका यह पत्र मेरे लिए बेशकीमती है। यही मेरा सम्मान है। उनका पत्र पढ़कर संपादकगण बेहद प्रभावित हुए। इसके बाद शरतचंद्र की कई महत्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हुईं और उन्हें अपार लोकप्रियता मिली।

१२४२) शालग्राम- बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के घर की महरी बीमार पड़ गई। चौका-बरतन का काम उनकी बड़ी बहन करने लगी। घर में एक नौकर था, लेकिन वह पूजा-पाठ में ही लगा रहता था।

एक दिन शरद् बाबू की बहन बरतन धो रही थी, तो वह भी हाथ बंटाने लगे। तभी नौकर आया और चौंकते हुए पूछा- मालिक, आप यह क्या कर रहे हैं ?

उन्होंने भी उसी अन्दाज में पूछा- और तुम क्या कर रहे थे ? उसने गर्व से कहा- मैं तो शालग्राम की पूजा कर रहा था।

शरद बाबू ने कहा- मैं भी शालग्राम की ही पूजा कर रहा हूं, बहन ही मेरे शालग्राम हैं।

१२४३) लाचारी- उपन्यास-सम्राट शरद चन्द्र चटर्जी से किसी ने पूछा- आप साहित्य के क्षेत्र में कैसे आए ? शरत बाबू ने मुंह बनाते हुए उत्तर दिया, साहित्य में नहीं आता तो और क्या करता ? पहले रंगून में नौकरी करता था, उससे प्राप्त वेतन में घर खर्च नहीं चल पाता था। फिर परचूनी की दुकान करने की सोची, लेकिन हिसाब-किताब में गोल था। तो बस लाचार होकर साहित्य के क्षेत्र में आ गया।

१२४४) आत्मसम्मान- बंगला के महान उपन्यासकार बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय कलकत्ता विश्व विद्यालय के प्रथम दो स्नातकों में से एक थे। अत: परीक्षा के कुछ समय बाद ही वह डिप्टी मजिस्ट्रेट नियुक्त कर दिये गये। उनके पिता तथा दो बड़े भाई भी डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उन दिनों किसी भी भारतीय को इससे बड़े पद पर नियुक्ति सम्भव नहीं थी। भारतीय अधिकारियों की उपेक्षा होती थी। अंग्रेज अधिकारी अपने से वरिष्ठ भारतीय उनके विरुद्ध कुछ कह नहीं पाते थे। एक मजिस्ट्रेट के रूप में बंकिम बाबू अपनी निष्पक्षता, निडरता, विद्वता तथा कार्य कुशलता के लिए प्रसिद्ध थे। उनको आत्मसम्मान अत्यधिक प्रिय था। सन १८७३ में वह बहरमपुर में डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। एक दिन वह कार्यालय से घर पालकी में जा रहे थे। पालकी का दरवाजा बन्द था। एक भारतीय का यूरोपीय बैरकों के निकट होकर निकलना छावनी के कमांडिंग ऑफिसर कर्नल डफिन को असहनीय लगा। उसने क्रोधित होकर पालकी के बन्द दरवाजे को जोर से खटखटाया। बंकिम बाबू ने पालकी से कूदकर उस कर्नल को ललकारा। कर्नल ने उत्तेजित होकर बंकिम बाबू का हाथ पकड़ कर उनको पीछे धकेल दिया। बंकिम बाबू के लिए यह अपमान असहनीय था। उन दिनों भारतीय अंग्रेज सैनिक

अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की कार्यवाही करने से डरते थे। किन्तु बंकिम बाबू ने उस कर्नल के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया। एक भारतीय डिप्टी मजिस्ट्रेट द्वारा एक अंग्रेज कर्नल के विरुद्ध प्रस्तुत किया जाने वाला यह एक अनूठा मुकदमा था। नगर में सनसनी फैल गयी। मुकदमा दायर होने के बाद जनमत कर्नल डहिफन के विरुद्ध हो गया। अभिभाषकों ने उसकी पैरवी करने से इन्कार कर दिया। उसकी स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि उसको खुले न्यायालय में बंकिम बाबू से माफी मांगनी पड़ी।

१२४५) जनता की राय साहबी - उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर मातकम हेली ने जब उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद को संदेश भिजवाया कि वे उन्हें राय साहब का खिताब देना चाहते हैं तो प्रेमचंद चिंतित हो उठे। सिर्फ खिताब ही देंगे कि और कुछ भी? पत्नी ने पूछा। इशारा कुछ और के लिए भी है। तो फिर इसमें चिंता की क्या बात है? ले लीजिए। इतना सोच-विचार क्यों कर रहे हैं? इसलिए कि अभी तक मैंने जनता के लिए लिखा है। राय साहब बनने के बाद मुझे सरकार के लिए लिखना पड़ेगा। लेकिन तब मैं जनता का आदमी न रहकर सरकार का पिट्ठू बन जाऊंगा। प्रेमचंन्द ने कहा।

ओह, ऐसा। तब गवर्नर को क्या जवाब दीजिएगा? पत्नी ने फिर पूछा। प्रेमचंद बोले, लिख दूँगा, जनता की राय साहबी ले सकता हूँ, सरकार की नहीं। झूठे आदर-सम्मान का कोई अर्थ नहीं होता।

१२४६) अंतिम समय- मुंशी प्रेमचन्द्र अपने अन्तिम दिनों में बनारस के राम कटोरा मोहल्ले में मृत्युशय्या पर पड़ें थे। परिपूर्णानंद वर्मा रात के लगभग दस बजे उनका हालचाल पूछने जा पहुंचे। प्रेमचन्द्र के पूछने पर उन्होंने बताया कि रामलीला देखकर लौट रहा था और इधर चला आया।

प्रेमचन्द्र झट यह कहकर ठहाका लगा बैठे- अगर तुलसीदास न होते तो राम कहां से आ जाते भला ?

परिपूर्णानंद वर्मा ने उन्हें अपनी अन्तिम घड़ियों में प्रभु-स्मरण की सलाह दी और कहा कि इससे शरीर का कष्ट कम हो जाता है। प्रेमचन्द्र बोले- शरीर का कष्ट तो डाक्टर कम करता है।

१२४७) अपने घर का बादशाह- उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद ने जीविकोपार्जन के लिए अध्यापन की राह चुनी। एक बार उनके स्कूल में निरीक्षक मुआयना करने आये थे। मुआयना होने के बाद प्रेमचंद अपने घर चले गये और दरवाजे की चौखट पर बैठकर अखबार पढ़ने लगे। सामने से वही निरीक्षक अपनी मोटर पर जा रहा था, वह आशा करता था कि प्रेमचंद उठकर सलाम करेंगे, लेकिन प्रेमचंद का सलाम करना तो दूर, वे अपने स्थान से उठे तक नहीं।

क्रुद्ध निरीक्षक ने कुछ दूर जाकर अर्दली से प्रेमचंद को बुलवाया। निरीक्षक- तुम बड़े मगरूर हो, तुम्हारा अफसर दरवाजे से निकल जाता है और तुम सलाम भी नहीं करते। प्रेमचंद- मैं जब स्कूल में रहता हूं, तब नौकर हूं, बाद में मैं भी अपने घर का बादशाह हूँ।

१२४८) प्रेमचंद की गाय- उन दिनों प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक मुंशी प्रेमचंद गोरखपुर में अध्यापक थे। उन्होंने अपने यहाँ गाय पाल रखी थी। एक दिन चरते-चरते उनकी गाय वहाँ के अंग्रेज जिलाधीश के आवास के बाहरवाले उद्यान में घुस गई। अभी वह गाय वहाँ जाकर खड़ी ही हुई थी कि वह अंग्रेज बंदूक लेकर बाहर आ गया और उसने गुस्से से आग बबूला होकर बंदूक में गोली भर ली। उसी समय अपनी गाय को खोजते हुए प्रेमचंद वहाँ पहुँच गए। अंग्रेज ने कहा कि यह गाय अब तुम यहाँ से ले नहीं जा सकते। तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुमने अपने जानवर को मेरे उद्यान में घुसा दिया। मैं इसे अभी गोली मार देता हूँ, तभी तुम काले लोगों को यह बात समझ में आएगी कि हम यहाँ हुकूमत कर रहे हैं। और उसने भरी बंदूक गाय की ओर तान दी। प्रेमचंद ने नरमी से उसे समझाने की कोशिश की, महोदय। इस बार गाय पर मेहरबानी करें। दूसरे दिन से इधर नहीं

आएगी। मुझे ले जाने दें साहब। यह गलती से यहाँ आई। फिर भी अंग्रेज झल्लाकर यही कहता रहा, तुम काला आदमी ईडियट हो- हम गाय को गोली मारेगा। और उसने बंदूक से गाय को निशान बनाना चाहा। प्रेमचंद झट से गाय और अंग्रेज जिलाधीश के बीच में आ खड़े हुए और गुस्से से बोले, तो फिर चला गोली। देखूँ तुझमें कितनी हिम्मत है। ले। पहले मुझे गोली मार। फिर तो अंग्रेज की हेकड़ी हिरन हो गई। वह बंदूक की नली नीची कर कहता हुआ अपने बंगले में घुस गया।

१२४९) मेहनत की कमाई- महात्मा टाल्स्टाय एक बार बहुत साधारण से कपड़े पहने स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। एक स्त्री ने उन्हें कुली समझा और बुलाकर कहा, ये पत्र लेकर सामने के होटल में मेरे पति को दे आआ। मैं तुम्हें दो रूबल दूँगी। टाल्स्टाय ने वह पत्र पहुँचा दिया और उन्होंने दो रुबल लिये ही थे कि उनका एक मित्र वहाँ आ पहुँचा और उसने काउंट कहकर उनका अभिवादन किया। यह सुन उस स्त्री को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसने उस नवागन्तुक से पूछा, यह कौन हैं? टाल्स्टाय का परिचय प्राप्तकर वह महिला बेहद लज्जित हुई और उसने क्षमा माँगते हुए अपने रुबल वापस माँगे। इस पर टाल्स्टाय हँसते हुए बोले, देवीजी, क्षमा करना तो परमात्मा का काम है। मैंने काम करके पैसे लिये हैं। अपनी मेहनत की कमाई क्योंकर लौटाऊँ?

१२५०) गुणों का आदर- एक बार रूसी लेखक टालस्टाय से उनके एक मित्र ने कहा, मैंने तुम्हारे पास एक व्यक्ति को भेजा था। उसके पास उसकी प्रतिभा के काफी प्रमाणपत्र थे। लेकिन तुमने उसे नहीं चुना। मैंने सुना है कि तुमने उस पद के लिए जिस व्यक्ति को चुना है, उसके पास ऐसा कोई प्रमाण पत्र नहीं था। आखिर उसमें कौन सा ऐसा गुण था कि तुमने मेरी बात की उपेक्षा कर दी ? लिओ टालस्टाय ने कहा, मैंने जिसे चुना है उसके पास अमूल्य प्रमाणपत्र हैं। उसने मेरे कमरे में आने से पहले इजाजत मांगी थी। अंदर आने से पहले पैरों को दरवाजे पर रखा, ताकि बंद होने पर आवाज न हो। उसके कपड़े साधारण, परन्तु साफ सुथरे थे। उसने बैठने से पूर्व कुरसी साफ कर ली थी, उसमें आत्मविश्वास था। वह मेरे प्रश्न का ठीक और संतुलित जवाब दे रहा था। मेरे प्रश्न समाप्त होने पर वह इजाजत लेकर चुपचाप उठा और चुपचाप चला गया। उसने किसी तरह की चापलूसी या चयन के लिए सिफारिश की कोशिश भी नहीं की। ये ऐसे प्रमाण पत्र थे, जो बहुत कम व्यक्तियों के पास होते हैं। ऐसे गुण संपन्न व्यक्ति के पास यदि लिखित प्रमाण पत्र न भी हों, तो कोई बात नहीं। आप ही बताइए, मैंने ठीक चयन किया या नहीं ?

१२५१) नीली आंखों वाली- काउंटलियो निकोलेविच टॉल्सटाय (१८२८-१९१०) जब किसी कहानी या उपन्यास का सृजन कर रहे होते तो वे पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते, उनको जीते और उनसे मुखातिब हो जाया करते। एक दिन वे मस्क्वा सेतु के पास किसी पुलिस अफसर से टकरा गए। अफसर ने पुलिसिया अंदाज में सवाल दागा, क्या तूने किसी नीली आंखों वाली खूबसूरत-सी लड़की को पुल पर जाते हुए देखा है ?

महान लेखक ने आत्मलीन होकर कहा, जी हुजूर। अभी-अभी अन्ना योपकीना नामक एक सुन्दर सी लड़की ने मस्क्वा नदी में छलांग लगाई है। उसकी आंखें नीली, सागर-सी गहरी, संवेदनशील थीं और उसके बाल सुनहरे नहीं काले.....।

और तूने उसे रोका नहीं ? बदमाश बुद्धा। चलो, थाना चलना पड़ेगा अफसर दहाड़ा।

थाने पर जब पुलिस कप्तान ने टाल्सटाय को देखा तो सकते में आ गया। उठकर सलाम ठोंका और कहा, सर मुझे बुलवा लिया होता। खुद क्यों आने की तकलीफ की ?

टाल्सटाय हंस पड़े और बोले, एक कहानी खत्म करके घूमने निकला था। नायिका अन्ना योपकीना ने प्रेम में निराश होकर आत्महत्या कर ली है। जब इन इंस्पेक्टर साहब ने मुझसे सवाल किया तो मैं अपनी अन्ना के ख्याल में खोया हुआ

था। कित्ती प्यारी लड़की थी अन्ना बेचारी। अब पुलिस इंस्पेक्टर का चेहरा देखने लायक था।

१२५२) तालस्ता की बेटी- महान लेखक तालस्ताय की सात वर्षीय पुत्री पड़ोस के बच्चों के साथ खेल रही थी। खेल-खेल में बच्चे झगड़ पड़े और एक लड़के ने उसको थप्पड़ जमा दिया। लड़की रोती हुई घर गई और पिता से चाबुक मांगा। वस्तुस्थिति जानकर पिता ने पुत्री को समझाना शुरू किया, वह पिटाई के बदले पिटाई की जिद्द करती रही। अंतत: पिता की बात उसकी समझ में आई कि इस तरह बदला लेने से शत्रुता का स्थाई भाव ही प्रबल होगा।

तब पिता की सलाह पर उसने एक गिलास शरबत उस लड़के को जाकर दिया। लड़का इस व्यवहार से चकित रह गया। उसने उसी समय तालस्ताय की पुत्री से क्षमा-याचना की और दोनों में ऐसी मैत्री हुई कि जीवन-पर्यन्त बनी रही। वह लड़का तालस्ताय-परिवार का भक्त हो गया।

१२५३) मन से धनी- प्रसिद्ध उपन्यासकार डा. क्रोनिन बड़े गरीब थे। डॉक्टर बनकर वे धनवान हो गए तथा उनका मन पैसे में पड़ गया। उनकी पत्नी सहृदयता थीं। उनसे यह परिवर्तन सहन नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने क्रोनिन से कहा हम गरीब ठीक थे। कम से कम दिल में दया तो थी। अब उसे खोकर हम कंगाल हो गए। डा. क्रोनिन को आत्मबोध हो गया। वे अपनी पत्नी से बोले तुम सच कहती हो। धन से नहीं व्यक्ति मन से धनी होता है। तुमने सही समय पर सही राह दिखाई अन्यथा हम ऐसी स्थिति में पहुंच जाते जहां पर स्नेह सूत्र भी कमजोर पड़ने लग जाते हैं।

१२५४) अनोखा फैसला - पुरानी कथा है। चीन में एक विचारक की काफी धूम थी। लोग उससे बेहद प्रभावित थे। राजा ने उसकी तारीफ सुन उसे न्यायाधीश बना दिया। उन्हीं दिनों नगर के सबसे धनवान सेठ के घर में चोरी हो गई। सब जानते थे कि सेठ ने इतनी अकूत संपत्ति बेईमानी व लोगों का शोषण करके इकट्ठा की है। किंतु चोरी तो चोरी थी इसलिए चोर को पकड़ने के लिए अभियान छेड़ा गया। चोर पकड़ा गया। उसने अपनी गलती स्वीकार कर ली। न्यायाधीश ने उसे चोरी के जुर्म में एक साल की सजा सुना दी। चोर को सजा सुनाने के बाद न्यायाधीश ने सेठ की संपत्ति की जांच शुरू करवा दी लेकिन सेठ की दलील थी कि उसने सारी कमाई तिजारत से हासिल की है। उसने किसी का शोषण कर या गलत तरीके से धन अर्जित नहीं किया है। लेकिन न्यायाधीश ने इस बात को नहीं माना। उसने फैसला सुनाते हुए कहा, मगर इस संपत्ति का कुछ हिस्सा चुरानेवाले चोर को तो एक वर्ष की सजा दी गई है मगर इस संपत्ति के मालिक को दो वर्ष की सजा दी जाती है। सेठ ने फैसले पर सवाल उठाया तो न्यायाधीश ने कहा, चोर ने तो चोरी की बात मान ली। उसके हृदय परिवर्तन की गुंजाइश है। लेकिन तुमने तो झूठ बोलकर सही रास्ते पर आने के सारे रास्ते बंद कर लिए है। चोर को सजा जरूर मिलनी चाहिए किंतु जब तक केवल चोरों को सजा मिलती रहेगी और आम आदमी का शोषण करनेवाले खुलेआम घूमते रहेंगे तब तक चोरी बंद नहीं होगी। इसलिए तुम्हें सजा सुनाई गई है।

१२५५) ईश्वर की खोज - प्रसिद्ध विचारक जेवियर एक बार बाल कटवा रहे थे। बातों ही बातों में जेवियर और नाई के बीच इस बात पर बहस छिड़ गई कि ईश्वर है कि नहीं। नाई का कहना था कि अगर ईश्वर होता तो दुनिया में शांति और खुशी होती न कि हिंसा और बीमारियां। अगर वह होता तो दिखाई देता। लेकिन ईश्वर तो कहीं दिखता ही नहीं। जेवियर का तर्क था कि ईश्वर तो कण-कण में बसा हुआ है, बस उसे खोजने वाली नजर और साफ नीयत चाहिए। बहस चलती रही और इस बीच नाई जेवियर के बाल भी काटता रहा। लोग भी इस बहस का मजा ले रहे थे। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। बाल कटवा कर जेवियर दुकान के बाहर आ गए और सड़क पर इधर-उधर टहलने लगे। तभी उन्हें बढ़े बाल और खिचड़ी दाढ़ी वाला एक युवक नजर आया। वह उस युवक को पकड़ कर फिर उस नाई की दुकान पर चले गए।

उन्होंने नाई से कहा- लगता है शहर में एक भी ढंग का नाई नहीं बचा है। इस पर उस नाई ने कहा- क्या बात करते हैं। मैं इस शहर का सबसे बढ़िया नाई हूं। चारों ओर मेरे चर्चे होते हैं। इस पर जेवियर बोले- अगर ऐसा है तो इस नौजवान के बाल इतने बेढंगे क्यों हैं? इस पर नाई तपाक से बोला- जब कोई मेरे पास आएगा तभी तो मैं उसके बाल काट पाऊंगा न। मैं खुद ही कैसे समझ जाऊंगा कि किसके बाल बढ़े हुए हैं? इस पर जेवियर मुस्कराकर बोले- ठीक कह रहे हो। अभी कुछ देर पहले तुम कह रहे थे कि ईश्वर है ही नहीं। अरे भाई, कोई उसे खोजने जाएगा, उसका नाम लेगा, उसे पुकारेगा, उसे पाने की कोशिश करेगा तभी तो ईश्वर मिलेगा। बिना कोई कर्म किए ईश्वर थोड़े ही मिलेगा। नाई उनकी इस बात से सहमत हो गया।

१२५६) पत्थर से बातचीत - यूनानी विचारक डायोजिनीज घुमक्कड़ स्वभाव के थे। वे सुकरात के शिष्य थे और उनके विचारों से बेहद प्रभावित थे। वे उन्हीं की तरह लोगों की समस्याओं का समाधान करने की कोशिश भी करते थे। धीरे-धीरे डायोजिनीज की ख्याति भी दूर-दूर तक फैलती जा रही थी। वे अपने व्यक्तित्व में सुधार के लिए लगातार प्रयासरत रहते थे। कभी फूलों के पास जाकर उससे बातें करते तो कभी यों ही समुद्र के किनारे शांत मन से आंखें बंद कर ध्यान में लग जाते और अपने मन को नियंत्रित करने का प्रयास करते थे। एक दिन वह एक पत्थर की मूर्ति के पास गए और उससे बातें करते रहे। एक युवक वहां से गुजर रहा था। डायोजिनीज जैसी हस्ती को एक पत्थर की मूर्ति से बातें करते देख वह हैरान रह गया। वह उनके पास जाकर बोला- महानुभाव, आपसे यह उम्मीद नहीं थी। हम लोग तो आपके व्यक्तित्व से प्रेरणा लेने का प्रयास करते हैं और आप ऐसी ओछी हरकत कर रहे हैं। एक मामूली पत्थर से बातें करने का आखिर क्या मतलब है? भला एक पत्थर क्या जवाब देगा? किसी पत्थर से आप शराफत से बातें करो या बदतमीजी से, वह तो शांत ही रहेगा। युवक की बात सुनकर डायोजिनीज मुस्करा कर बोले- बिल्कुल सही कहा तुमने कि भला एक पत्थर क्या जवाब देगा? वह तो शांत ही रहेगा। तो मैं भी इस पत्थर से यही सीखने का प्रयास कर रहा हूं कि यदि मुझे कोई गालियां दे या अनुचित भाषा में बात करे तो मुझे इस पत्थर की तरह ही शांत रहना है। हर हाल में शांत बने रहना है। एक पत्थर से बेहतर यह सीख और कौन दे सकता है। कोई और हो तो मुझे भी बताओ। मैं उसके पास जाऊंगा। युवक डायोजिनीज की बात सुनकर दंग रह गया और मन ही मन उनकी साधना के प्रति नतमस्तक हो उठा।

१२५७) अनमोल धन - एक विचारक थे। वे नास्तिक थे। न ईश्वर को मानते थे और न आत्मा को, सिर्फ वर्तमान क्षण में विश्वास रखते थे। अपने शिष्यों के साथ वे नगर से बाहर एक बगिया में रहते थे। एक दिन सम्राट की इच्छा हुई कि इस विचारक से मिला जाए, वह उनकी बगिया में पहुंचा। उसने देखा कि वातावरण बेहद शांत है। सब अपने-अपने काम में मगन हैं। खुश और आनंदित। लेकिन भौतिक सुविधाओं का अभाव है- न बैठने की जगह, न सर ढंकने के लिए छत, न पानी के लिए कोई कुआं। रसोई की जगह लगभग फाकाकशी के हालात। फिर भी संत आनंदित थे। सम्राट हैरान हुआ और प्रभावित भी। उसने विचारक से कहा, मैं आपको कुछ भेंट भेजना चाहता हूं। बताइए क्या मंगा दूं, जिस चीज की भी आपको जरूरत हो। यह सुनते ही विचारक के माथे पर बल पड़ गए। उसने मानो दुखी होकर कहा, आपने तो हमें चिंता में डाल दिया, क्योंकि हम भविष्य का तो कोई विचार ही नहीं करते। अभी पास जो है, उसी का आनंद लेते हैं। जो नहीं है, वह आ जाए तो भला हो जाए, उस तरह सोचते ही नहीं। अब आपने दुविधा में डाल दिया है। विचार करना पड़ेगा, सोचना होगा कि आपसे क्या मांगे। फिर बोले, हां एक रास्ता है। आज ही हमारी इस बगिया में एक नया शिष्य आया है। वह अभी तक यहां के वातावरण में घुल-मिल नहीं पाया है। उससे पूछ लेते हैं, शायद उसे किसी चीज की जरूरत हो। शिष्य से पूछा गया। वह थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला, कुछ भेंट ही करना चाहते हैं तो थोड़ा मक्खन भेंट कर दें। यहां

रोटियां बिना मक्खन के बनती हैं। सम्राट स्वयं मक्खन लेकर आया। उसने देखा कि उसका वहां ऐसा स्वागत हुआ, मानो स्वर्ग उतर आया हो। मक्खन खाकर सभी नाचे और आनंदित हुए। सम्राट को तब यह अहसास हुआ कि मेरे पास इतना सब कुछ है, फिर भी मैं आनंद नहीं मनाता। शायद मैंने संतुष्ट होना ही नहीं सीखा।

१२५८) **सफलता का रास्ता-** एक बार प्रसिद्ध विचारक स्वेट मार्डेन के पास एक व्यक्ति आया और बोला, सर, मैं काम करने की इच्छा रखता हूं, लक्ष्य भी मैंने निर्धारित कर लिया है और उसके लिए आवश्यक साधन भी मेरे पास उपलब्ध हैं, फिर भी न जाने क्यों मुझै मेरे कार्य में शत-प्रतिशत सफलता नहीं मिलती। यदि मैं काम न करूं तो असफल होने की बात मेरी समझ में आती हैं, मगर काम करते रहने पर भी नाकामयाब होते रहने की बात मेरी समझ से परे है। उस व्यक्ति की बात सुनकर स्वेट मार्डेन बोले, तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर बेहद सरल है। फिर भी मैं तुम्हें इसका जवाब एक उदाहरण देकर समझाता हूं। उदाहरण से तुम भलीभांति समझ जाओगे कि तुम्हारे काम में क्या कमी रह जाती है। व्यक्ति बोला, हां, आप मुझे अवश्य बताएं ताकि मैं अपने में सुधार कर सकूं। स्वेट मार्डेन बोले, बहुत से लोग अपने जीवन की गाड़ी को गुनगुने पानी में चलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि पानी को जब तक २१२ फारेनहाइट तक गर्म न किया जाए उसमें भाप नहीं बनती है और जब तक पानी में भाप न बने तब तक इंजन गाड़ी को नहीं खींच सकता। उसी तरह जब तक तुम अपने काम में संपूर्ण आत्मशक्ति और एकाग्रता नहीं झोंक देते तब तक सफलता तुमसे दूर रहेगी। सारे साधन उपलब्ध होने पर भी मंद गति से काम करने नी मंजिल तक पहुंचना कठिन है। युवक ने उसी क्षण निश्चय किया कि अब वह अपने उत्साह को गुनगुने पानी की तरह मंद नहीं पड़ने देगा और सफलता पाकर रहेगा।

१२५९) **समय का उपयोग-** एक बार प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार डॉ. जॉन से उनके एक मित्र ने अपनी परेशानियों का बखान करते हुए कहा, देखिए दिन-रात में कुल मिलाकर २४ घंटे होते हैं। इनमें से ८ घंटे सोने में, ८ घंटे दफ्तर में और बाकी ८ घंटों में न जाने कितने काम करने पड़ते हैं। खाना-पीना, हजामत बनाना, भेंट-मुलाकात, पत्र व्यवहार जैसे काम इन्हीं ८ घंटों में निपटाने पड़ते है। मैं तो बेहद परेशान हो जाता हूं। इतनी व्यस्त जिंदगी में लाख इच्छा रहने पर भी मैं न किसी धार्मिक चर्चा में शामिल हो पाता हूं, न धर्मग्रन्थों को पढ़ने के लिए ही अवकाश निकाल पाता हूं। इनसे पीछा छूटे तभी धार्मिक क्रियाकलापों में लगूंगा। डॉ. जॉनसन मुस्कराए और बोले तब तो लगता है मुझे भूखों मरना पड़ेगा। क्यों ? मित्र ने पूछा। डॉ. जॉनसन ने कहा, आप जानते हैं कि मैं अधिक खाने वाला व्यक्ति हूं। लेकिन दुनिया में अन्न उपजाने के लिए सिर्फ एक चौथाई जमीन है। उसमें भी न जाने कितने पहाड़, समुद्र, नदियां और रेगिस्तान है जबकि संसार में मेरे जैसे पेट भरनेवाले करोड़ों है। मित्र बोला आप तो व्यर्थ ही परेशान होते हैं। दुनिया में सदा से करोड़ों लोग रहते आए हैं। उनके भोजन का इंतजाम भी होता आया है। फिर आप किसलिए चिंता कर रहे है। यह सुनकर डॉ. जॉनसन बोले आप ठीक कहते हैं। यदि मेरे जीवन का प्रबंध हो सकता है तो फिर कोई कारण नहीं है कि आपको धार्मिक समारोह में शामिल होने व धर्मग्रन्थ पढ़ने का समय न मिले। मित्र निरुत्तर हो गया।

१२६०) एक दिन प्रसिद्ध ब्रिटिश विचारक जॉन रस्किन अपने मित्र के साथ लंदन की गलियों से गुजर रहे थे। रास्ता गंदा और कीचड़ से सना था। रस्किन का मित्र बार-बार नाक-भौं सिकोड़ता और कहता कि इस गंदगी में चलने में कितना कष्ट हो रहा है। पर रस्किन आराम से चल रहे थे। जब उनके मित्र ने रास्ता बदल लेने को कहा तो रस्किन हंसकर बोले, मित्र इससे बेहतर रास्ता और क्या होगा। यह तो बड़ा ही कीमती मार्ग है। अगर तुम गहराई से सोचो तो पता चलेगा कि हम तो हीरा-पन्ना और जवाहरात पर चल रहे हैं। उनका मित्र यह सुनकर चकित हुआ। उसने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है।

इसमें तो गंदगी के सिवा कुछ है नहीं है। यह काली मिट्टी कितनी खराब है।

रस्किन ने उसे समझाते हुए कहा, तुम्हीं बताओ यह काली मिट्टी है क्या ? क्या यह भी उसी खान से नहीं निकलती है जिसमें से हीरा निकलता है ? इसलिए मैं कहता हूं कि इस संसार में गंदी या नाचीज कहलाने लायक कोई वस्तु नहीं है। जिसे हम लोग नाचीज समझते हैं, वह कभी-कभी सब से बढ़कर उपयोगी निकल जाती है, केवल उसे अपनाने और उसे लेकर आगे बढ़ने का हौसला होना चाहिए। उनका मित्र निरुत्तर हो गया।

१२६१) असली ज्ञानी- मिस्र के विचारक अनस्तेशियस के आश्रम में किताबों का बड़ा संग्रह था। उस संग्रह में कई दुर्लभ और मूल्यवान ग्रंथ थे। एक बार उनके आश्रम में आए एक संन्यासी ने लौटते समय एक अमूल्य ग्रंथ चुरा लिया। उसी दिन इस बारे में अनस्तेशियस को पता चला। किसने वह चुराया होगा इसका अंदाजा लगाना उनके लिए कठिन नहीं था। अनस्तेशियस चाहते तो तुरंत अपने शिष्यों को उसके पीछे भेज सकते थे, लेकिन उन्हें डर था कि संन्यासी इस पर झूठ बोलने का एक और पाप कर सकता है। इसलिए उन्होंने कुछ नहीं किया। कुछ दिनों बाद एक अमीर आदमी वही ग्रंथ लेकर उनके आश्रम पहुंचा। उसने उस ग्रंथ की कीमत पूछी और कहा, मुझे दुर्लभ ग्रंथ इकट्ठे करने का शौक है। आप जानकार हैं। एक संन्यासी इस ग्रंथ के लिए काफी मोटी रकम मांग रहा है।

अनस्तेशियस ने कहा, किताब अमूल्य है।

लौटकर अमीर आदमी ने संन्यासी से कहा कि उसकी मांगी कीमत पर ग्रंथ खरीदने के लिए वह तैयार है। बातों ही बातों में किताब के बारे में अनस्तेशियस से सलाह की जाने की बात भी उसने बताई। संन्यासी दंग रह गया। आज तक उसकी भलाई के बारे में किसी ने इतना सोचा नहीं था और न ही किसी ने उसके साथ इतना प्यार भरा व्यवहार किया था। उसने अमीर आदमी के दोगुनी कीमत देने के लालच को भी ठुकराकर ग्रंथ को वापस ले लिया। मन ही मन वह फैसला ले चुका था। फिर वह सीधे अनस्तेशियस के आश्रम में पहुंचा। आंसू भरी आंखों से उसने ग्रंथ लौटाया तो अनस्तेशियस ने कहा, रख लो, तुम्हें शायद उसकी जरूरत है। तब संन्यासी ने कहा, मैं यह ग्रंथ लौटाना चाहता हूं और यहीं रह कर आपसे ज्ञान की प्राप्ति करना चाहता हूं। उसकी इच्छा अनस्तेशियस ने मानी। अनस्तेशियस के समझदार बर्ताव और प्रेमपूर्ण व्यवहार से संन्यासी का जीवन सुधर गया। असली ज्ञानी वही होते हैं। वे किसी को कोई चोट पहुंचाए बिना ही उसे सन्मार्ग पर ले आते हैं।

१२६२) मन की ताकत- गणेश शंकर विद्यार्थी अपने समय के जाने-माने पत्रकार थे। वह राष्ट्रीय एकता और आम आदमी के हक के लिए हमेशा संघर्षरत रहे। जिन दिनों वह कानपुर में थे, उन दिनों वहां कुछ शरारती तत्व शहर का सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने पर लगे थे। शहर की हालत से गणेश शंकर विद्यार्थी बेहद परेशान थे और किसी तरह शांति स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने दंगा-फसाद करनेवालों को सबक सिखाने की ठान ली। विद्यार्थी जी शरीर से दुबले-पतले थे, मगर आत्मविश्वास और साहस उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। एक दिन वह लोगों को शांत कराते हुए जनरल गंज की ओर निकल गए। वहां पहुंचकर उन्होंने देखा कि पहलवान जैसा दिखने वाला एक आदमी जूते की दुकान को लूट रहा है। वह जूतों को एक बोरे में भर रहा था और दुकानदार उसके सामने हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहा था। यह देखकर विद्यार्थी जी जोर से बोले, ठहरो। वहां कई लोग खड़े थे। वे यह देखकर हैरान रह गए कि एक दुबला-पतला व्यक्ति भीमकाय शरीरवाले बदमाश को ललकार रहा है। बदमाश विद्यार्थी जी की ओर लपका तो वह उसे दुत्कारते हुए बोले, तुम्हें शर्म नहीं आती? दुकान का माल क्या मुफ्त का है? इतने तगड़े होकर भी सेवा या मदद तो कर नहीं रहे, उलटे दूसरों को लूट रहे हो। बदमाश यह सुनकर शर्म से गड़ गया और सारा सामान छोड़कर वहां से चंपत हो गया। उसके जाने के बाद

लोग विद्यार्थी जी से बोले, वह व्यक्ति आपसे तगड़ा था, आपको उससे डर नहीं लगा? विद्यार्थी जी बोले, वह तगड़ा कहां था। सिर्फ शरीर से तगड़े को मैं तगड़ा नहीं मानता। मन से वह दुर्बल था, तभी तो गलत काम कर रहा था। गलत काम करनेवाला शरीर से भले ही मजबूत हो, मन से बहुत कमजोर होता है। यदि हम मनुष्य होकर भी मनुष्यता से दूर भागते हैं तो मनुष्यता का अर्थ ही क्या रह जाता है? विद्यार्थी जी की इस बात पर वहां उपस्थित सभी लोग शर्मिंदा हो गए।

१२६३) अण्डे- वाल्टर हाइन्स पेज सुप्रसिद्ध पत्र दि वर्ल्डस वर्क के सम्पादक थे। सम्पादक होने के नाते उन्हें प्रतिदिन कई कहानियों को स्वीकृत-अस्वीकृत करना पड़ता था।

एक बार एक स्त्री ने उनको लिखा- सम्पादक जी। पिछले सप्ताह आपने मेरी कहानी लौटा दी है। यह मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि आपने मेरी उस कहानी को नहीं पढ़ा। मेरा यह अनुमान था कि आप जैसे सम्पादक अपने काम में कम ईमानदारी रखते हैं। खास इसी बात की जांच के लिए मैंने अपनी कहानी के कुछ पृष्ठों को एक साथ चिपका दिया था और अब, जब मेरी कहानी लौटकर आई, तो वे पृष्ठ उसी तरह चिपके पड़े थे। यह आपकी अयोग्यता नहीं तो और क्या है ?

हाइन्स पेज ने उस महिला को जवाब दिया- आपका ज्ञान अभी कच्चा है मैडम। जब मैं किसी अंडे को फोड़ता हूं तो यह जानने के लिए कि वे अच्छे हैं या खराब मुझे सारे अंडों को फोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती।

१२६४) देशभक्त तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इतिहास प्रसिद्ध जगत सेठ अमीचंद के वंशज थे। ज्ञातव्य है कि इनके बाप-दादे राजभक्त थे। एक पूर्वज ने देश के साथ विश्वासघात कर लार्ड क्लाइव आदि अंग्रेजों का साथ दिया। गदर के समय बनारस रेसीडेंसी की बहुमूल्य वस्तुएं इन्हीं के यहां रखी गई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अत्यन्त दानी और शाहखर्च भी थे। एक बार इन्होंने पंडित सुधाकर द्विवेदी को निम्न दोहे पर एक सौ रुपए प्रदान किए थे- राजघाट पर बंधत पुल जहं कुलीन की ढेर। आज गए कल देखि कै आजहिं लौटे फेर।।

इनकी दानशीलता का बहुत लोग अनुचित लाभ भी उठा लेते थे। एक दिन काशी नरेश ने इस ओर इशारा किया। इन्होंने तपाक से कहा- इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाकर रहूंगा।

१२६५) प्रताप नारायण मिश्र- पं. प्रताप नारायण मिश्र आलसी प्रकृति के जीव थे। वह कई-कई दिन तक नहाते नहीं थे। कुआं, तालाब, नदी आदि से दूर रहते थे। अपनी कर्मस्थली कानपुर में बहनेवाली गंगा में शायद ही उन्होंने कभी डुबकी लगाई हो।

कालाकांकर की बात है। राजा रामपाल सिंह के हिन्दी पत्र हिन्दोस्थान के सम्पादकीय विभाग में मिश्र जी काम करते थे। पास ही गंगा बहती थी, किन्तु यहां भी उन्होंने कभी स्नान नहीं किया। एक बार बाबू बालमुकुंद गुप्त, गोपालराम गहमरी आदि मित्रों ने मिश्र जी को गंगा नहलाने की ठानी। कान में भनक पड़ी तो पंडित जी भाग निकले। पीछा करके मित्र मंडली ने उन्हें धर पकड़ा। कसकर टांग लिया और गंगा की ओर ले चले। मिश्र जी ने बड़े हाथ-पैर मारे, पर छूट नहीं पाए।

मित्र मंडली जैसे ही उन्हें गंगा में फेंकने वाली थी कि वे चिल्ला पड़े- अरे भाई फेंकना ही है तो ऐसे फेंको कि गंगाजी में मेरे पैर पहले नहीं पड़े, मेरा सिर पड़े। मित्रों ने वैसा ही किया।

१२६६) सच की राह- यह उस समय की बात है जब महादेव गोविंद रानाडे बालक थे। एक दिन वह घर में अकेले थे। उनका मन नहीं लग रहा था। वह बाहर बरामदे में खड़े-खड़े सोच रहे थे कि क्या करें। तभी उन्हें ख्याल आया कि कोई ऐसा खेल खेलना चाहिए जो अकेले खेला जा सके। उन्होंने सोचा क्यों न चौपड़ ही खेल लूं। उन्होंने मकान के एक खंभे को अपना साथी बनाया। खंभे के लिए अपना दायां हाथ व अपने लिए बायां हाथ निश्चित किया। फिर उन्होंने खेलना

आरंभ किया। पहले दाएं हाथ से पासा फेका। यह था खंभे का दांव। फिर बाएं हाथ से पासा फेंका। यह दांव उनका अपना था। थोड़ी ही देर में रानाडे हार गए। रानाडे को पता नहीं था कि उनका खेल सामने सड़क पर खड़े कुछ लोग देख रहे थे। उन्होंने पूछा, क्यों भैया, तुम खंभे से हार गए? इस पर रानाडे बोले, क्या करूं? बाएं हाथ से पासा फेंकने की आदत नहीं है। खंभे का दाहिना हाथ था, सो वह जीत गया। जब उनसे यह पूछा गया कि उन्होंने दाया हाथ अपने लिए और बायां हाथ खंभे के लिए क्यों नहीं रखा, तो रानाडे बोले, हार गया तो क्या हुआ। कोई मुझे बेईमान तो नहीं कह सकता न। अपने लिए दायां हाथ रखता और बेजान खंभे के लिए बायां, तो बेईमान कहलाता। बेचारे खंभे के साथ अन्याय हो जाता। अन्याय करना तो बहुत ही बुरा होता है। रानाडे की बात सुनकर लोग भौंचक रह गए। सच के प्रति रानाडे की यह भावना आजीवन बनी रही।

१२६७) आय का उपयोग- धनार्जन में कष्ट होता है, धन के रीत जाने में भी। अर्थ का आना भी दु:ख, जाना भी दु:ख। धिक्कार है- अर्थसंचय। धिगर्था: कष्टसह्या:। फिर ? संस्कृत की महाकाव्य बृहत्त्रयी में से एक शिशुपाल वध के रचयिता कवि माघ नाम से प्रसिद्ध हैं। किरातार्जुनीय के कवि भारवि के माघ समकालीन थे। कहा जाता है कि जैसे सूर्य की तीव्र आभा माघ मास में नहीं रह जाती, वैसे ही कवि भारवि की काव्याभा भी तभी तक ठहर पाती है, जब तक कवि माघ नहीं आ जाते- तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय:। महाकवि माघ को भी उनके काव्य प्रणयन पर काव्यानुरागियों ने बहुत कुछ भेंट किया, पर कवि माघ के पास कभी कुछ रहा नहीं। सदा उन्होंने धन संकट ही झेला। वे सब कुछ दान कर डालते थे। कभी याचक उनके द्वार से खाली हाथ नहीं लौटा। पर सदा ऐसे ही तो नहीं चलता। वे खाली हाथ हो गये। देने को भी कुछ नहीं बचा। याचक अब माघ के द्वार से रिक्तहस्त लौटने लगे। कवि को इसका इतना कष्ट हुआ कि उनके प्राण चले गये। कवि ने बड़े दु:ख से उच्चारा- व्रजत व्रजत प्राणा: अर्थिनि व्यर्थतां गते:। याचक निराश, व्यर्थ लौट गये। प्राणो, तुम भी जाओ।

१२६८) कंगन का दान - संस्कृत के कवियों में माघ का श्रेष्ठ स्थान है। वह साधन-संपन्न तो थे ही, दान देने में भी अग्रणी थे। लोगों को विश्वास था कि उनके घर से कोई भी जरूरतमंद कभी खाली हाथ नहीं लौटता। दान देते-देते एक अवसर ऐसा भी आया कि जब वह खुद ही निर्धन हो गए। लेकिन मदद करने की उनकी भावना में कोई कमी नहीं आई। वह लोगों की सहायता के लिए पहले की तरह ही तत्पर रहते थे। एक रात किसी गरीब पुजारी ने उनका दरवाजा खटखटाया। माघ ने दरवाजा खोला तो पुजारी ने बाहर आने का निवेदन किया और कहा, मेरी बेटी की शादी है। कैसे विवाह कर पाऊंगा, इस बात की चिंता सताती रहती है। मैं आपसे कुछ सहायता मांगने आया हूं। कविवर ने सोचा कि इस समय न घर में धन है, न कोई ऐसी वस्तु जो याचक को दी जा सके। कुछ देर सोचने के बाद वह अपनी सोयी हुई पत्नी के पास गए और धीरे से उसका हाथ उठाकर उससे कंगन उतारा। पत्नी की नींद खुल गई, परंतु पति को सामने देखकर उसने आंखें बंद कर लीं। माघ ने बाहर आकर वह कंगन उस पुजारी को दे दिया और उसे वहां से जल्दी भाग जाने के लिए कहा। किंतु पत्नी ने दरवाजे की दरार से सब कुछ देख लिया कि उसके पतिदेव किसको वह कंगन दे रहे हैं। उस पुजारी ने माघ से कहा, इस सहयोग के लिए मैं आपका आभारी हूं पर एक कंगन मेरे लिए अपर्याप्त है। माघ ने कहा, अभी तुम एक ले जाओ, दूसरा मैं नहीं दे सकता। पत्नी ने तुरंत दूसरा कंगन उतारा और बाहर आकर कविवर को देते हुए कहा, मुझसे क्यों छुपा रहे थे। जरूरतमंदों की मदद के लिए ही तो हमारा जीवन है। इस व्यक्ति को दूसरे कंगन की भी आवश्यकता है। इसे आप यह भी दे दीजिए। अपनी पत्नी के व्यवहार से माघ बहुत खुश हुए और उन्होंने दूसरा कंगन भी पुजारी को देकर उसे प्रसन्नतापूर्वक विदा किया।

१२६९) सच्ची शिक्षा - उन दिनों अमेरिका में दास प्रथा का चलन था। एक धनी व्यक्ति ने बेंकर नामक गुलाम को खरीदा। बेंकर काफी मेहनती था। उसके काम से उसका मालिक काफी प्रसन्न हुआ। एक दिन बेंकर अपने मालिक को गुलामों के बाजार में ले गया। उसने मालिक से आग्रह किया कि वह एक बूढ़े दास को खरीद ले। उसके अनुरोध पर मालिक ने बढ़े को खरीद लिया और अपने घर ले आया। बेंकर काफी खुश हुआ। वह उस बूढ़े दास की खूब सेवा-टहल करता था। यह सब देखकर उसका मालिक हैरान थां उसे लगा कि यह जरूर बेंकर का कोई रिश्तेदार या परिचित है। एक दिन उसने इस बारे में पूछ ही डाला। तब बेंकर ने बताया, यह मेरा कोई संबंधी या मित्र नहीं, बल्कि मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है। बचपन में इसी ने मुझे दास के रूप में बेच दिया था। बाद में खुद पकड़ा गया और गुलाम बना लिया गया। मैंने उसे उस दिन बाजार में पहचान लिया था। मेरी मां ने मुझे सिखाया था कि अगर दुश्मन नंगा हो तो उसे कपड़े दो, भूखा हो तो खाना खिलाओ, प्यासा हो तो पानी पिलाओ। इसी कारण मैं इसकी खूब सेवा करता हूं और इस तरह अपनी मां की शिक्षा पर चलता हूं। यह सुनकर मालिक ने बेंकर को गले लगा लिया और उसको आजाद कर दिया।

१२७०) कवि का संघर्ष- अंग्रेजी के महान कवि ओलिवर गोल्डस्मिथ को लेखन शुरुआती दिनों में काफी संघर्ष झेलना पड़ा था। कई उनके पास था खाने तक के लिए पैसे नहीं होते थे। वे अक्सर ही मकान मालकिन को किराया नहीं दे पाते थे। वैसे तो मकान मालकिन सहृदय महिला थी, इसलिए ज्यादा कुछ नहीं बोलती थी। लेकिन उसको भी तो अपनी रोजी-रोटी चलानी थी। एक बार जब गोल्डस्मिथ मकान मालकिन के बार-बार कहने पर भी किराया नहीं दे पाए उसने गुस्से में गोल्डस्मिथ की एक पांडुलिपि उठा ली और बोले यह पांडुलिपि मैं तुम्हें तभी दूंगी जब तुम मेरा किराया चुका दो और यदि तुम किराया नहीं चुका पाए तो यह पांडुलिपि आग के भेंट चढ़ जाएगी। इसके बाद उसने पांडुलिपि को उठाकर अपनी अलमारी में बंद कर दिया। यह देखकर गोल्डस्मिथ बेहद घबरा गए। उन्होंने तुरंत अपने मित्र डॉ. जानसन को बुलवाया। जॉनसन भागे आए। उन्होंने गोल्डस्मिथ को परेशान देखा तो सारा किस्सा समझ गए। जॉनसन ने मकान-मालकिन से क्षमा मांगी और किराया चुकाकर गोल्डस्मिथ की पांडुलिपि वापिस ली गोल्डस्मिथ पांडुलिपि को देखकर खिल उठे और जॉनसन के गले लग गए। इसके बाद जॉनसन अनेक प्रकाशकों के पास घूमे और उस पांडुलिपि को प्रकाशित करने का अनुरोध किया। आखिरकार एक प्रकाशक ने उस पांडुलिपि को साठ पौंड में खरीद लिया। जब वह पांडुलिपि पुस्तक के रूप में प्रस्तुत हो गयी।

१२७१) स्वाभिमान की रक्षा- राष्ट्रकवि पं. माखनलाल चतुर्वेदी सन् १९३७ में मध्य प्रांत पार्लियामेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष चुने गए। उधर अखिल भारतीय पार्लियामेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष वल्लभ भाई पटेल थे। दोनों के संबंध मित्रतापूर्ण थे। सरदार पटेल चाहते थे कि पं. रविशंकर शुक्ला को एमपी का प्राइम मिनिस्टर (उन दिनों चीफ मिनस्टिर को प्राइम मिनस्टिर कहा जाता था) बनाया जाए। लेकिन पं. माखनलाल जी द्वारिका प्रसाद मिश्र या गोविन्द दास के पक्ष में थे और इसके पीछे उनके अपने तर्क थे। सरदार पटेल ने इस मुद्दे पर मुंबई में ऑपेरा हाउस के सामने एक भवन में सभा बुलाई जिसमें सिर्फ पं. माखनलाल जी को आमंत्रित किया। दादा प्रांतीय कांग्रेस के महासचिव श्री अनोखेलाल अरझरे के साथ वार्ता के लिए पहुंचे। सरदार पटेल अपने स्वभाव के अनुसार कड़क कर बोले, माखनलाल जी, आपको पं. रविशंकर शुक्ला को प्राइम मिनिस्टर बनाना ही होगा। माखनलाल जी बोले, मेरी राय में यह उचित नहीं है। सरदार फिर उसी तरह बोले, लेकिन क्यों ? माखनलाल जी ने कहा, क्योंकि रविशंकर शुक्ला अभी-अभी स्वराज पार्टी छोड़कर कांग्रेस में आए हैं इसलिए अभी उन्हें प्रांत की जनता का विश्वास प्राप्त करना होगा और इसलिए मैं कांग्रेस के प्रति पूर्ण निष्ठावान और तरुण

राजनीतिज्ञ पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र अथवा देशभक्त सेठ गोविन्ददास जी को प्रधान मंत्री बनाने के पक्ष में हूं।

सरदार गरज कर बोले, यह सही नहीं होगा। माखनलालजी ने उत्तर दिया, देश और मेरे प्रांत के हित मेरे निजी हितों से काफी ऊपर हैं और उनकी रक्षा के लिए एक बार क्यों अनेक बार भी माखनलाल को बलिदान करना पड़ेगा, तो वह सहर्ष करेगा। सरदार पटेल गुस्से में तमतमा गए लेकिन माखनलाल जी टस से मस नहीं हुए। इस घटना के बाद माखनलालजी ने अनुशासनबद्ध होकर धारा सभा के चुनावों में अपने नेतृत्व में कांग्रेस को जिताया और इसके बाद अपने स्वाभिमान और विश्वास की रक्षा के लिए पार्लियामेंटरी बोर्ड की अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया।

१२७२) जीवन में अनुवाद- बात सन १९५२-५३ की रही होगी, तब राष्ट्रकवि स्व. माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्य की बहुत धूम थी। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे लोग भी उनके प्रशंसकों में से थे। इसलिए सोचा गया कि उन्हें राज्यसभा में लाया जाए। इस तरह से आजादी की लड़ाई में उनके योगदान का भी सम्मान होगा और संसद में साहित्य का भी प्रतिनिधित्व होगा। लेकिन यह काम हो कैसे ? माखनलाल जी के बारे में मशहूर था कि वे अत्यंत स्वाभिमानी, सम्मान या प्रदर्शन से दूर रहनेवाले और एकांत में रहकर साहित्य की सेवा करनेवाले व्यक्ति हैं। इसलिए पहले उन्हें तैयार करने की जिम्मेदारी प्रदेश कांग्रेस को सौंपी गई। पार्टी के लोग एक स्थानीय प्रतिनिधिमंडल लेकर माखनलाल जी के यहाँ पहुँचे, उनसे निवेदन किया कि यदि वे राज्यसभा की सदस्यता स्वीकार कर लें, तो हिंदी साहित्य का भी प्रतिनिधित्व होगा और मध्य प्रदेश- खासकर खंडवा के लोग बहुत गौरवान्वित महसूस करेंगे। इसलिए अपने लिए नहीं तो कम से कम प्रदेश के लोगों का मन रखने के लिए वे सदस्यता स्वीकार कर लें। लेकिन दादा ने किसी की नहीं सुनी, हंसकर उन्हें लौटा दिया।

तब बहुत सोच-विचार के बाद राजेंद्र बाबू ने इसकी जिम्मेदारी स्व. बनारसीदास चतुर्वेदी को सौंपी कि वही किसी तरह से माखनलाल जी को संसद में आने के लिए मनाएँ। बनारसी दास राष्ट्रपति के दूत बनकर माखनलाल जी के पास पहुँचे। उनसे बहुत आग्रह-अनुग्रह किया, लेकिन तब भी वे नहीं माने और प्रस्ताव को बड़ी विनम्रता से अस्वीकार कर दिया। उन दिनों मैं भी माखनलाल जी के ही पास रहकर अपनी पढ़ाई-लिखाई करता था। एक दिन मौका देखकर उनसे पूछा, दादा। आखिर आप इतनी महत्वपूर्ण सदस्यता क्यों ठुकरा रहे हैं ? उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा, कन्हैया। कला जीवन में अपना अनुवाद मांगती है। साहित्य में तुम त्याग और सादगी का गुणगान करो मगर वास्तविक जीवन में उसका लालच बना रहे, तो वह कला कभी उदात्तता तक नहीं पहुँचती। आज जब सांसद बनने के लिए मारामारी मची रहती है, सोचता हूँ, कितने नि:स्वार्थ थे तब के लोग।

१२७३) हाथ समेटा जब से- दतिया रियासत के कवि अख्तर अनन्य विरक्त होकर पन्ना में जा बसे। वहां महाराजा छत्रसाल ने इन्हें अपना गुरु बना लिया। एक बार इनकी अपने शिष्य छत्रसाल से अनबन हो गई। ये अप्रसन्न होकर जंगलों में घूमने भटकने लगे। महाराजा छत्रसाल को जब इनकी इस दशा का पता चला तो इनकी ढूंढ हुई। इनके ठौर-ठिकाने का पता लगाया गया। महाराजा छत्रसाल ने इनसे क्षमा मांगते हुए कहा- पांव पसारा कब से ?

कवि अख्तर अनन्य ने तपाक से उत्तर दिया, हाथ समेंटा जबसे।

१२७४) सुभान अल्लाह- कवि बोधा को पन्ना-दरबार में सुभान (सुबहान) नामक वेश्या से प्रेम हो गया। बात खुली। नरेश ने इन पर रुष्ट होकर इन्हें छह माह के लिए देश निकाला दे दिया। इन्होंने सुभान के विरह में छह महीने बड़े कष्ट में बिताए और विरह-वारीश नामक ग्रंथ लिख डाला। देश-निकाला-दण्ड का समय बीतने पर कवि बांधा पुन: दरबार में हाजिर हुए और विरह वारीश के कुछ सरस छंद सुनाए। प्रेम-रस से परिपूर्ण छंद सुनकर पन्ना-नरेश बहुत प्रसन्न हुए और

मुंह मांगा इनाम मांगने को कहा। और कवि मुख से झट निकल गया-सुभान अल्लाह। बस फिर क्या था। महाराज ने वेश्या सुभान कवि बोधा को सौंप दी।

१२७५) दो महाकाव्य- एक बार कविगोष्ठी में एक साहित्यकार ने कविवर गया प्रसाद शुक्ल सनेही से कहा, सनेही जी, आपने कोई महाकाव्य क्यों नहीं लिखा ?

सनेही जी ने आक्रोशरंजित स्वर में कहा, कहां हैं अनूप कहां है हितैषी ? दोनों को बुलाओ फौरन।

गुरु की पुकार सुनते ही उस युग के दोनों प्रख्यात कवि सामने खड़े हो गये। दोनों उनके शिष्य थे। सनेही जी ने प्रश्नकर्ता की ओर दृष्डि डाले हुए सगर्व कहा- मैंने ये दो महाकाव्य लिखे हैं।

१२७६) भारवि- महाकवि भारवि संस्कृत के उद्भट कवि। देश विदेश में ख्याति, परन्तु अपने पिता से परेशान एवं क्रुद्ध। कारण, जिन रचनाओं को लोग बड़े सम्मान एवं मंत्रमुग्ध होकर सुन तेथे, उन्हीं रचनाओं में उनके पिता त्रुटि निकालते। विनम्र पुत्र चुपचाप सुन लेते। परन्तु युवा कवि हर काम में मीन मेख से चिढ़ गए।

अचानक उन्होंने एक खतरनाक निश्चय किया। एक दिन अंधेरे में छिपकर पिता को मारने की योजना बनाई तलवार लेकर खड़े हो गए। सहसा उनके कानों में कुछ शब्द गए।

आर्यपुत्र, आपका पुत्र इतना विद्वान कवि। सर्वत्र उसकी ख्याति है। आप पिता होकर, उसकी ख्याति से ईर्ष्या करते हैं। हमेशा उसकी रचनाओं में मीन मेख निकालते रहते हैं।

प्रिये, क्या बात कर रही हो ? मैं और पुत्र से ईर्ष्या। मैं तो ऐसा इसलिए करता हूं कि मेरा पुत्र उत्तरोत्तर महानता की ओर बढ़ता रहे। यह सुनकर भारवि के पांव तले धरती खिसक गई। ऐसे महान पिता और मेरे ये तुच्छ विचार। तलवार हाथ से गिर पड़ी।

१२७७) निकम्मा- एक साहित्य प्रेमी मित्र के घर महाकवि सुमित्रानन्दन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आदि चाय पीने के लिए जुटे थे। सत्कारी मित्र का नौकर चाय लेकर कमरे में आया। पंतजी ने उससे पूछा- तुम्हारा नाम क्या है भाई?

मैकू सरकार। उसने झट से कहा।

आत्मीयता बढ़ाते हुए पंत जी ने पूछा- क्या तुम अकेले हो मैकू ?

नहीं सरकार केतली से चाय उड़ेलते हुए नौकर ने कहा, मां है, एक सयानी उमर की बिटिया है और दो भाई हैं।

कमानेवाले तुम अकेले ही हो क्या ?

बड़ा भाई तो खेती में हाथ बंटाता है, पर छोटा न होने के समान है।

पंत जी ने पूछा- क्यों उस में क्या खराबी है ?

सरकार मैकू सहज भाव से बोला- वह निकम्मा है।

कोई काम नहीं करता है क्या ? पंत जी ने प्रश्न किया।

काम क्या सरकार, वह कवि हो गया है।

निराला जी ने कुरसी से उठकर एक हाथ से अपना सीना तथा दूसरे से मैकू की पीठ ठोंकते हुए कहा- शाबाश बेटा।

१२७८) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपनी कविता की एक पुस्तक की रायल्टी एक हजार रुपए लेकर रिक्शे पर बैठ कर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक वृद्ध स्त्री सड़क के किनारे बैठ कर भीख मांग रही है। रास्ते में बुढ़िया ने उनसे कहा- बेटा। इस अभागन को कुछ भीख दे दे।

निराला जी ने रिक्शा रुकवाया और उसके पास जाकर बोले- आज तुम्हें कितनी भीख मिली ?

सवेरे से कुछ नहीं मिला बेटा।

निराला सोचने लगे, अगर इस स्त्री के मेरी तरह कोई बेटा होता, तो क्या इसे इस तरह भीख मांगनी पड़ती। बोले। तुम्हें कितने पैसे दे दिये जायें जो तुम भीख मांगना छोड़ दोगी ? निराला आहत स्वर में बोले- बेटा भी कहती हो और भीख भी मांगती हो। उन्होंने उसे एक रुपया दिया और बोले, मां। अब तुम्हें कितने दिन भीख नहीं मांगनी पड़ेगी।

तीन दिन बेटे। मान लो यदि मैं तुम्हें दस रुपये दे दूं तो ? बीस या पच्चीस दिन। मान लो मैं तुम्हें एक सौ रुपए दे दूं तो?

चार या पांच महीने। बुढ़िया ने एक निश्चित राशि बताई।

सूरज की भीषण गर्मी में निराला प्रश्न करते रहे और वह बुढ़िया उन्हें उत्तर देती रही। रिक्शा चालक भौंचक्का सा देखता रहा। जब निराला जी ने अपना अन्तिम रुपया भी उस वृद्धा के भिक्षा पात्र में डाल दिया तो वह खुशी से चिल्ला उठी और बोली, बेटा अब मुझे कभी भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। और निराला ने अपने पुरस्कार की सारी रकम उसे दे दी।

निराला जी ने राहत की सांस ली। उन्होंने वृद्धा के पांव छुए और रिक्शे पर बैठकर घर चले गए।

१२७९) हिन्दी प्रेम- एक बार कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला किसी ट्रेन से कहीं जा रहे थे। उसी ट्रेन में पं. जवाहर लाल नेहरू भी सवार थे। निराला जी पंडित जी से मिलना चाहते थे काफी कोशिशों के बाद वे नेहरू जी तक पहुंचने में सफल हुए। वेशभूषा से नेहरू जी उनको बर्मी या बंगाली समझे। उन्होंने यह बताते हुए कि वे उत्तर-प्रदेश के है। कहा- मुझे आप से एक बात कहनी है। आप भारतीय होकर हिन्दी नहीं जानते। आपने अपनी आत्मकथा हिन्दी में न लिखकर अंग्रेजी में लिखी, यह कितनी लज्जा की बात है। निराला जी कुछ रूक कर फिर बोले- आप अपने भाषणों में हिन्दी के सूर, तुलसी, मीरा एवं संस्कृत के कवि कालिदास के उदाहरण न देकर अंग्रेजी भाषा के मिल्टन, कीट्स, शेक्सपीयर आदि की उक्तियाँ प्रस्तुत करते है। स्मरण रहे जब तक हिन्दी भाषा एवं हिन्दू संस्कृति का समुचित संरक्षण न होगा, देश की स्वाधीनता स्वप्नवत रहेगी। इतना कहकर नेहरू जी की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किये बिना निराला जी ट्रेन से उतर गये।

१२८०) महाकवि का बजट - महाकवि निराला हर रक्षाबंधन पर महादेवी वर्मा से राखी बंधवाने जाया करते थे। दारागंज से चलकर रिक्शा महादेवी जी के घर के आगे रुकता। निराला जी पहुंचते ही महादेवी से दो रुपये मांगते थे। महादेवी पूछतीं किसलिए तो निराला कहते- एक रुपया रिक्शे वाले के लिए और एक और रुपया राखी बांधने के ऐवज में तुम्हें देने के लिए। वापस लौटने का किराया महादेवी बिना मांगे ही उन्हें दे देतीं।

निराला जी अपने बजट में रहकर काम नहीं कर पाते थे। एक बार महादेवी ने ऐलान किया कि अब से वह खुद निराला जी का बजट संभालेंगी। इसके लिए खुद उन्होंने अपनी ओर से पैसा मिलाकर एक बड़ी राशि निराला जी के खाते में डाल दी। उन्होंने निराला जी के खर्चों की एक लंबी लिस्ट बनाई। लेकिन महादेवी सारी योजनाएं बनाने के बाद एक सप्ताह भी निराला जी का बजट न चला पाईं। निराला कभी अपने किसी विद्यार्थी की मदद के लिए पचास रुपया मांग लेते तो कभी सड़क चलते किसी गरीब को पैसा दे देते। महादेवी जी का जमा किया हुआ पैसा तीन दिन में ही खत्म हो गया। तब महादेवी निराला से बोलीं- मैं सारे काम कर सकती हूं, पर आपका बजट नहीं संभाल सकती।

१२८१) भोज के राजकवि- गर्मीके दिन थे, प्रचण्ड सूर्य अग्नि बरसा रहे थे। पृथ्वी जल रही थी। ऐसी दोपहरीमें ही राजा भोजके राजकवि किसी कार्यवश बाहर निकले। धारा नगरी की सड़क पर चलते समय आपने देखा कि एक दुर्बल व्यक्ति नंगे पैर लड़खड़ाता हुआ चल रहा है, उसके पैरोंमें छाले पड़ चुके थे। वह बार-बार दौड़नेका प्रयत्न कर रहा था। दयालु-कोमल हृदय राजकविसे यह न देखा गया वे उसके समीप गये और अपने पैरों के जूते उन्होंने उसे दे दिये।

राजकविका सुकुमार शरीर कोमल चरण, किन्तु उन्हें अपने कष्टका ध्यान न रहा। नंगे पैर चलने लगे, पैर जल रहे थे पर मनमें सुख थां कुछ देर बाद उधरसे महावत हाथी को ला रहा था, उसने देखा तो राजकविको हाथी पर चढ़ा लिया। संयोगवश राजा भोज भी रथ पर बैठे हुए उसी समय उधरसे ही निकले। उन्होंने हँसीमें राजकविसे पूछा- आपको यह हाथी कैसे मिल गया। राजकविने उत्तर दिया- मैंने अपना पुराना फटा जूता दान कर दिया। उसी पुण्य से हाथी पर बैठा हूँ। जो धन दान नहीं किया गया उसे व्यर्थ समझो। राजाने प्रसन्न होकर वह हाथी राजकविको दे दिया।

१२८२) सुभद्रा की प्रतिभा का विकास- विख्यात कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म राजपूत परिवार में हुआ किन्तु उन्हें घर में पढ़ने का उचित वातावरण मिला। कुल परम्परा के अनुसार उनका विवाह लक्ष्मण सिंह नामक युवक से हो गया। दोनों पढ़ने लगे। सुभद्रा कुमारी ने कॉलेज में प्रवेश ले लिया तथा लक्ष्मण सिंह वकालत पढ़ने लगे। काँग्रेस आन्दोलन में दोनों झण्डा सत्याग्रह में शामिल होकर जेल गए। माखनलाल चतुर्वेदी के संचालन में खण्डवा से निकलने वाले कर्मवीर साप्ताहिक में लक्ष्मण ने सहायक सम्पादक का कार्य कर लिया। कई वर्षों तक दोनों में से एक जेल में रहता तो दूसरा सम्पादन कार्य कर घर चलाता। इसी मध्य सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रतिभा विकसित हुई। उन्होंने अनेक उच्चकोटि की कहानियां एवं कविताएं लिखीं जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई। खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी कविता ने उन्हें अमर बना दिया।

१२८३) राजकवि ने राजा से कहा, आपके शत्रु चिरंजीव हों। यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। इस पर राजकवि ने कहा, राजन आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यों होते हैं ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए। राजा ने झुंझलाकर कहा, आप मेरे शत्रुओं को मंगलकामना दे रहे हैं। इस पर राजकवि ने समझाया, राजन मैंने यह आशीर्वाद देकर आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेंगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जाग्रत रहेगी। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए। सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आता है। इस प्रकार मैंने आपके शत्रुओं को नहीं, आपको मंगलकामना दी है।

१२८४) हंसी- मलिक मोहम्मद जायसी महान विद्वान तथा अनूठे कवि थे। उनकी लेखनी तथा वाणी इतनी प्रभावी थी कि बड़े-बड़े साहित्य प्रेमी उनके साथ के लिए लालायित रहते थे। साहित्य में उनके योगदान को आज भी बहुत याद किया जाता है। एक बार वह शेरशाह सूरी के दरबार में पहुंचे। शेरशाह ने जैसे ही एक आंख से हीन व कुरूप जायसी को देखा, उसे हँसी आ गयी। जायसी समझ गये कि बादशाह उनके कुरूप चेहरे को देखकर हंसा है। उन्होंने व्यथित होकर बादशाह से पूछ लिया, जहांपनाह, आप मेरे ऊपर हँस रहे हैं या जिसने मुझे बनाया, उसके ऊपर ? शेरशाह यह सुनते ही शर्मसार हो गया तथा बोला, कविवर, कुछ क्षण पहले मैं अपनी नादानी के कारण आपके चेहरे को देखकर हंसा था। अब मैं अपनी गलती का एहसास कर प्रायश्चित के रूप में रो रहा हूं। वास्तव में शेरशाह सूरी की आंखों से आंसू निकल आये। उसने खड़े होकर मलिक मोहम्मद जायसी से क्षमा चायना की।

१२८५) काका पर डाका- लगभग ४५ वर्ष पूर्व की बात है। ग्वालियर के एक कवि सम्मेलन के बाद डाकुओं ने काका हाथरसी का अपहरण कर लिया। डाकुओं ने उनसे हास्य कविता सुनाने को कहा तो काका ने कहा-

हे प्रभो, आनंदमय मुझको यही उपहार दो, सिर्फ मैं जीवित रहूं, तुम और सबको मार दो।

डाकुओं ने उनकी कविताओं का मजा लिया और उन्हें चालीस रुपए पारिश्रमिक देकर वापस छोड आए।

१२८६) शाप- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रेक्टर थे। विद्यार्थियों ने किसी मांग को लेकर उनका घेराव किया और अपनी बात मनवाने के लिए जिद करने लगे। छात्रों ने शोरगुल भी किया।

द्विवेदी जी ने सबको शांत करते हुए संक्षिप्त वक्तव्य दिया और अंत में कहा, तुम सबने मेरी अवमानना की है। अत: मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुममें से हर कोई इस जन्म में या अगले जन्म में किसी न किसी विश्वविद्यालय का वाइस चांसलर जरूर बने।

यह सुनकर सभी छात्र हंस पड़े और देखते ही देखते तनाव खत्म हो गया, तत्पश्चात छात्रों ने अपनी गलती मानी और आचार्य जी ने सभी को क्षमा करके खुशी खुशी विदा किया।

१२८७) सच्चा स्वयं सेवक- दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन चल रहा था। वहां काफी चहल-पहल थी। साफ-सुथरे एवं चमकदार कपड़ों में साहित्य महारथी अपने साहित्यिक राजनीति चलाते, स्वयंसेवकों को बुरा-भला कहते और व्यवस्था में कमी निकालते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। कुछ ही देर में जुलूस निकलनेवाला था किन्तु अध्यक्ष राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का कहीं पता नहीं था। कुछ साहित्यिक महारथी दौड़कर राजर्षि के निवास-स्थान पर पहुँचे। देखा राजर्षि अपने खादी के वस्त्र धो रहे हैं। एक सज्जन ने कहा, बाबूजी। प्रतिनिधियों के कपड़े धोने के लिये धोबी की व्यवस्था है। आप स्वयं यह मामूली काम कर रहे हैं, उधर जुलूस में विलम्ब हो रहा है। राजर्षि ने उत्तर दिया, क्या मेरे बिना जुलूस नहीं निकल सकता ? और हां, जिसे तुम मामूली काम कहते हो, वह मेरे लिये महत्वपूर्ण है। मैं स्वयंसेवक हूँ, दूसरों की सेवा लेकर जुलूस का स्वांग बनाने की अपेक्षा नियत समय पर अपना काम करना अधिक आवश्यक मानता हूँ।

१२८८) सादगी की मिसाल- प्रसिद्ध साहित्यकार एच.जी.वेल्स का तीन मंजिला भव्य मकान था, लेकिन वह स्वयं एक छोटे कमरे में सादगी भरी जिंदगी जीते थे। उन्होंने मकान का सबसे बड़ा और सुंदर हिस्सा अपनी नौकरानी को रहने के लिए दिया हुआ था। एक बार उनके बचपन के एक दोस्त उनसे मिलने आए। महलनुमा मकान के एक छोटे से कमरे में वेल्स को रहते देख उन्हें संदेह हुआ कि यह मकान वाकई उन्हीं का है या किसी और का। उन्होंने सकपकाते हुए पूछा, क्या यह तुम्हारा ही मकान है? वेल्स समझ गए कि उन्हें इस हालत में देखकर दोस्त को शक हुआ है। उन्होंने कहा, हां, यह मेरा ही मकान है। चलो, मैं तुम्हें पूरा मकान दिखाता हूँ। वेल्स अपने दोस्त को लेकर उस हिस्से में गए, जहां उनकी नौकरानी शाही ठाठ-बाट से रह रही थी। दोस्त ने पूछा, इसमें कौन रहता है? वेल्स ने कहा, नौकरानी रहती है। वह मेरी नौकरानी मां है। दोस्त की समझ में कुछ नहीं आया। उसने कहा, लगता है तुम्हें नौकरानी से बहुत प्यार है।

वेल्स ने कहा, हां, बहुत प्यार है। इतना प्यार मैं किसी और को नहीं दे सकता। दोस्त ने कहा, तुम पहेलियां बुझा रहे हो। साफ-साफ बताओ यह कौन है? वेल्स ने कहा, मित्र, एक समय था जब हम बहुत गरीब थे। उस समय मेरी मां घरेलू नौकरानी का काम करके किसी तरह काम चलाती थी। हम लोग एक छोटे से कमरे में रहते थे। मां ने मुझे पढ़ाया-लिखाया और बड़ा किया। आज मेरी मां इस दुनिया में नहीं है लेकिन मैं हर समय अपनी मां का अक्स इस नौकरानी में देखता हूँ, इसलिए मैं उन्हें अपनी सारी सुविधाएं देकर अपनी मां को याद करता हूं। इसके पहले कि तुम यह पूछो कि मैं इतने छोटे और साधारण कमरे में क्यों रहता हूं तो बता दूं कि दोस्त मैं इस तरह इसलिए रहता हूं ताकि मैं अतीत को हमेशा याद रख सकूं। यदि मैं अपने अतीत को भूल जाऊंगा तो सब कुछ गवां दूंगा, साहित्य भी और समाज भी।

१२८९) भाषण और अण्डे- एक बार अंग्रेजी के प्रसिद्ध हास्य लेखक मार्क ट्वेन को एक आम सभा में भाषण देने के लिए निमंत्रण दिया गया।

जब वे उस नगर में निश्चित तिथि को आए तो ऐसा लगा जैसे उनके कार्यक्रम का पूरा विज्ञापन नहीं किया गया है।

नागरिकों को उनके होने वाले भाषण का पता है या नहीं, यह जानने के लिए वे एक दुकान में चले गए।

उन्होंने दुकानदार से पूछा- क्यों भाई, यहां आज क्या कोई मनोरंजक कार्यक्रम नहीं होने वाला है, जिससे एक यात्री

अपना शाम का समय काट सके ? दुकानदार ने उत्तर दिया- हां... हां, मेरा ख्याल है कि आज यहां पर कोई भाषण होनेवाला है। आज तो दिन भर काफी अण्डे बिके।

१२९०) भावना और दुर्भावना- मार्क ट्वेन ने लिखा है, एक बार मैं एक सभा में गया। पुरोहित इतने मर्मस्पर्शी और अद्‌भुत तरीके से अंत:करण को झंझोड़ देने वाले लहजे में बोल रहा था कि पांच मिनट सुनकर मुझे लगा कि मेरे पास जो सौ डॉलर हैं, आज दान कर जाऊंगा। दस मिनट बीतने पर मेरे भीतर विचार उठा कि सौ डॉलर ज्यादा है, पचास से भी काम चल सकता है। मेरे भीतर एक अंतरंग वार्तालाप चलने लगा। आधा घंटा बीतते-बीतते मैं पांच डॉलर पर आ चुका था। तीन-चौथाई व्याख्यान पूरा होते मैंने सोचा, किसे पता है कि मैंने सौ देनेकी सोची थी। कौन देता है सौ? एक डॉलर भी लोग नहीं देते। मैं एक डॉलर दे के काम चला लूंगा। व्याख्यान पूरा होने के बाद जब थाली भेंट के लिए मेरे पास आई, तो वह एक डॉलर भी मेरी जेब से न निकला, बल्कि मैंने एक डॉलर वहां से उठाकर अपनी जेब में रख लिया। भावार्थ कि शुभ भावना जिस क्षण उठे, तत्काल उसे कार्यरूप दे दें। वह क्षण बीत जाए, अपने ऊपर भरोसा करते हुए कि कर लेंगे, तो शिखर से दूसरी तरफ नीचे आते-आते वही भावना दुर्भावना में बदल जाती है। हां, बुरी भावना आए, तो उसे जरूर स्थगित कर दें।

१२९१) डॉ. क्रिश्चियन बर्नार्ड- हृदय का प्रथम प्रतिरोपण करनेवाले विश्वविख्यात दक्षिणी अफ्रीकी शल्य चिकित्सक डॉ. क्रिश्चियन बर्नार्ड जब प्रथम बार भारत की यात्रा पर आये तो एक प्रेस कांफ्रेंस के दौरान उन्हें मजाक करने की सूझी। उन्होंने अपने निजी सहायक को, जो चिकित्सा विज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ था, अपनी वेशभूषा पहिना कर डा. बर्नार्ड के रूप में प्रदर्शित किया। संवाददाताओं द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर में डॉक्टर बना सहायक कहता था- इतना सरल प्रश्न, इसका उत्तर तो मेरा सहायक भी सरलता से दे सकता है। निजी सहायक बने असली डाक्टर बर्नार्ड प्रत्येक जटिल प्रश्न का उत्तर बखूबी देते रहे।

१२९२) अपनी पहचान बनाएं - अंग्रेजी के विश्वविख्यात लेखक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ बेहद हंसमुख और मिलनसार थे। कई बार वह अपनी हाजिरजवाबी और सटीक टिप्पणी से लोगों को चमत्कृत कर देते थे। उनकी लोकप्रियता इतनी ज्यादा थी कि वह जहां भी जाते, लोग उन्हें घेर लेते थे। एक बार वह किसी कॉलेज के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि थे। जब कार्यक्रम समाप्त हुआ तो हमेशा की तरह उनसे ऑटोग्राफ लेनेवालों की भीड़ लग गई। एक नौजवान ने ऑटोग्राफ बुक उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, सर, मुझे साहित्य का बहुत शौक है और मैंने आपकी सभी पुस्तकें पढ़ी हैं। आप मेरे प्रिय लेखक हैं। मैं अपने जीवन में अभी तक अपनी अलग पहचान नहीं बना पाया हूं लेकिन बनाना चाहता हूं। मैं क्या करूं? इसके लिए आप मुझे कोई संदेश देकर अपना हस्ताक्षर करें तो बहुत मेहरबानी होगी। बर्नार्ड शॉ नौजवान की बात पर मुस्कराए फिर उन्होंने उसके हाथ से हस्ताक्षर पुस्तिका ली और उस पर संदेश लिखकर हस्ताक्षर किया और पुस्तिका लौटा दी। नौजवान ने पुस्तिका खोलकर देखा तो हैरान रह गया। बर्नार्ड शॉ ने लिखा था, अपना समय दूसरों के हस्ताक्षर इकट्ठा करने में नष्ट न करें, बल्कि खुद को इस योग्य बनाएं कि दूसरे आपके हस्ताक्षर प्राप्त करने के लिए लालायित रहें। अपनी अलग पहचान बनाने के लिए हर पल मेहनत करना और संघर्षरत रहना आवश्यक है। यह पढ़कर नौजवान ने कहा, सर, मैं आपके इस संदेश को जीवन भर याद रखूंगा और अपनी एक अलग पहचान बनाकर दिखाऊंगा। इस पर जॉर्ज बनार्ड शॉ ने नवयुवक की पीठ थपथपाई और भविष्य के लिए शुभकामनाएं दी।

१२९३) फूल- जार्ज बनार्ड शॉ फूलों के बहुत शौकीन थे। उन्होंने अपनी फुलवारी में विभिन्न प्रकार के फूलों के पौधे लगा रखे थे। जब भी इच्छा होती वह फुलवारी में चले जाते और घंटों वहीं बैठे रहते, लेकिन फूलों को तोड़ने के वह सख्त

विरोधी थे। एक मित्र ने एक दिन पूछ लिया- फूल तो आपको बहुत अच्छे लगते हैं, फिर उन्हें तोड़ते क्यों नहीं ?

बर्नार्ड शॉ ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा- दोस्त, बच्चे तो मुझे और भी अच्छे लगते हें, तो क्यों मैं उनके सिर काट कर रख लूं?

१२९४) हस्ताक्षर- विख्यात लेखक जॉर्ज बर्नाड शॉ ने किसी चित्रकार से अपना चित्र बनवाया। सौ पौण्ड की राशि तय हुई। जब चित्र पूरा हो गया, तो उसे देखकर शॉ बहुत खुश हुए। उन्होंने चित्रकार की प्रशंसा की और उसे पच्चीस-पच्चीस पौण्ड के चार चैक काटकर दिये। चित्रकार को बहुत हैरानी हुई। उसने पूछा, आपने सौ पौण्ड के एक चेक की जगह चार चैक क्यों दिये ?

देखो दोस्त, अगर तुम थोड़ी समझदारी से काम लो, तो हम दोनों का ही फायदा है। वे रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराये।

कैसे ? चित्रकार ने पूछा। बात यह है कि मैं प्रशंसकों को अपने हस्ताक्षर पच्चीस पौण्ड में देता हूँ। सो तुम इन्हें आसानी से पचास-पचास पौण्ड में बेच सकते हो। इस तरह तुम्हें सौ के बजाय दो सौ पौण्ड मिल जायेंगे। लेकिन आपको क्या फायदा हुआ ? जब मेरे प्रशंसक इन्हें खरीदेंगे, तो जाहिर बात है कि वे इन्हें भुनायेंगे ही नहीं। हुआ न दोनों का लाभ। उन्होंने रहस्योद्घाटन किया।

१२९५) पुरुषार्थ- मैक्सिम गोर्की के पिता अत्यन्त क्रूर स्वभाव के थे। वार्तालाप में भी अपनी संतान और पत्नी को पीट दिया करते थे। मैक्सिम गोर्की पढ़ना चाहते थे पर उसके पिता दिन-रात उसे काम में लगाए रखते थे ताकि वह पढ़ ना सके। जब भी वे पढ़ने के लिए कहते उसकी पिटाई करने लग जाते। उस लडके के मन में पढ़ने की उत्कट भावना लहलहा रही थी। पढ़ने की दृष्टि से उसने एक कबाड़ी की दुकान पर नौकरी कर ली। कबाड़ी की दुकान में हजारों पुस्तकें आती और उसका मन पुस्तक पढ़ने के लिए लालायित हो जाता। कार्य करते हुए जब भी उसे समय मिलता, वह पढ़ता रहता। उसने हजारों पुस्तकें पढ़ लीं। यद्यपि उसे पहले अर्थ समझ में नहीं आता था परन्तु बाद में धीरे-धीरे वह समझने लग गया। एक दिन उसने एक कहानी लिखी और समाचार पत्र में छपने के लिए भेज दी। जब कहानी प्रकाशित हुई तो वहां के मूर्धन्य लेखक की ओर से उसे बधाई पत्र पहुंचा, जिसने उसके मन में उत्साह का संचार हुआ। उसने निरन्तर लिखना प्रारम्भ किया। एक बार उसने मां शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। वह पुस्तक उस देश की ही नहीं अपितु विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। <u>पुरुषार्थी मनुष्य जीवन में अवश्य सफल होते हैं</u>।

१२९६) महानता- महान विद्वान डिडेरो के सन्निकट एक युवक आया और बोला मैं एक लेखक हूं। मैंने एक पुस्तक लिखी है, मैं चाहता हूं कि मुद्रण के पूर्व आप उसे एक बार भली प्रकार देख लें। डिडेरो ने कहा- मैं इसे अच्छी तरह से पढ़ लूंगा तुम कल इसे वापस ले जाना। जब दूसरे दिन वह लेखक आया तब डिडेरो ने कहा- मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुमने, मुझे लक्ष्य बनाकर प्रस्तुत पुस्तक में मेरी खूब मखौल की है। मुझे बहुत गालियां दी है, पर जरा यह तो बताओ कि इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ? युवक ने कहा- अभी मुझे अच्छी तरह लिखना नहीं आता है अत: मेरी पुस्तक को कोई प्रकाशक छापने के लिए तैयार नहीं होगा। मुझे ज्ञात है कि इस देश में आपके कई शत्रु है, यदि मैं आपकी मजाक उड़ानेवाली पुस्तक लिखूं तो मुझे अच्छा पैसा मिल सकता है। डिडेरो ने मुस्कराते हुए कहा- यह तुमने बहुत ही अच्छा किया है, पर एक कार्य तुम और करो। चूंकि पुस्तक छपाने के लिए तुम को पैसा भी चाहिए न ? एक उपाय बताता हूं। एक व्यक्ति से मेरा धर्म के सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है। वह मुझसे अत्यधिक नाराज है। तुम यह पुस्तक उसे समर्पित कर दो। वह प्रसन्न होकर तुम्हें अवश्य ही आर्थिक सहयोग करेगा। इसलिए तुम शीघ्र ही शानदार समर्पण पत्र लिख दो। युवक ने कहा- पर, मुझे समर्पण-पत्र लिखना कहां आता है ? डिडेरो ने कहा- ठहरो। मैं ही तुम्हें अच्छा समर्पण पत्र लिख देता हूं जिससे तुम्हें

अच्छी रकम मिल जाएगी। उन्होंने उसी समय उसे समर्पण पत्र लिखकर दे दिया। डिडेरो की इस उदारता पर युवक दंग रह गया। यह थी डिडेरो की महानता।

१२९७) पारिवारिक संवेदना- अमर लेखिका हैरियट एलिजाबेथ स्टो ने टाम काका की कुटिया नामक पुस्तक लिखकर असाधारण ख्याति अर्जित की। अमरीका से दास प्रथा समाप्त करने में इस पुस्तक की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह पुस्तक उन्होंने अनेक कठिन परिस्थितियों में लिखी जिसके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं। अपनी भाभी को पत्रोत्तर देते समय उन्होंने अपनी परेशानियों के विषय में लिखा चूल्हा, चौका, कपड़े धोना, सिलाई, जूते गांठना आदि की व्यवस्था के कारण व्यस्तता बनी रहती है। बच्चों के लिए तैयारी तथा दिन भर सिपाही की तरह ड्यूटी देनी पड़ती है। छोटा बच्चा मेरे पास ही सोता है। वह जब तक नहीं सो जाता मैं कुछ भी नहीं लिख सकती। गरीबी और काम का दबाव बहुत है फिर भी पुस्तक लिखने का समय निकालती हूँ। क्योंकि मुझे लगता है कि गुलाम प्रथा में सताए जानेवाले व्यक्ति भी अपने परिवार के अंग हैं। इस परिवार के लिए १०-१२ घंटे निकालती हूँ तो उस परिवार के लिए घण्टा-दो घण्टा निकलना चाहिए। हैरियट एलिजाबेथ की यही संवेदना ग्रंथ के पृष्ठों पर छायी रही। जिसने भी इसे पढ़ा अपने आपको भावनात्मक रूप से जोड़ता रहा। इसी सम्बद्ध संवेदना ने दास प्रथा से मुक्ति दिलाई।

१२९८) समय का महत्व- नार्वे की विख्यात लेखिका सिग्रिट अनसेट को नोबेल पुरस्कार दिए जाने की घोषणा हुई। अनेक प्रशंसक तथा पत्रकार उनके घर जा पहुंचे। उन्होंने उनके सेवक से कहा, मैडम से कहो, लोग आपको बधाई देने आए हैं। सिग्रिट अनसेट बाहर आईं तथा विनम्रता से बोलीं, मैं आप सबकी आभारी हूं, किंतु इस समय मैं अपने बच्चों को पढ़ा रही हूं। बच्चों को भोजन कराने के बाद उन्हें सुलाऊंगी, उसके बाद ही आपके प्रश्नों के उत्तर दे पाऊंगी। एक पत्रकार ने कहा, यह काम आप कुछ देर बाद भी तो कर सकती हैं। पहले हमसे बात कर लें। श्रीमती अनसेट ने उत्तर दिया, यदि मेरी मां मुझे नियमित जीवन जीने, प्रत्येक काम समय पर करने की प्रेरणा नहीं देती, तो मैं वह सब कुछ नहीं लिख पाती, जिसके कारण मुझे नोबेल पुरस्कार दिया गया है। अत: मैं अपनी दिनचर्या में किंचित भी फेरबदल करना उचित नहीं समझती। श्रीमती अनसेट के अनुशासन को देखकर सब प्रशंसक-पत्रकार हतप्रभ थे।

१२९९) लेखक का जीवन - कल्हण कश्मीर के बड़े विद्वान थे। उन्होंने कई टीकाएं लिखीं और कश्मीर का इतिहास भी। उनका जीवन एक साधक जैसा सहज और साधारण था। एक बार उज्जयिनी से विद्वानों का दल उनसे मिलने आया। अपनी झोपड़ी के बाहर वे सबसे मिले। नदी के किनारे हरी घास पर बैठकर सबने अनेक विषयों पर बातचीत की। सारे मेहमान काफी खुश हुए पर मन ही मन वे राजा से नाराज थे। उन्हें लगा कि कश्मीर के राजा कल्हण का ख्याल नहीं रख रहे हैं। उन्होंने इतने नामी लेखक को उतना सम्मान नहीं दिया जितना उन्हें दिया जाना चाहिए था। राजा कम से कम इतनी व्यवस्था तो करते कि कल्हण का एक ढंग का मकान हो जाता। ये बेचारे झोपड़ी में रह रहे हैं। सब विद्वान राजा के पास गए और उन्होंने शिकायत की कि वे कल्हण पर ध्यान क्यों नहीं दे रहे। राजा बोले, हम तो कह-कह कर थक गए। वे हमसे कुछ लेना ही नहीं चाहते। अब आप लोग कोशिश करके देखें। हमसे धन और सुविधाओं के सामान लेकर उनके पास जाइए। वे पंडित सभी सामग्री के साथ कल्हण के पास पहुंचे। जब कल्हण को इसका पता चला तो वे अपनी पत्नी से बोले, सामान बांध लो। राजा को धन का घमंड हो गया है। हम इस राज्य में अब नहीं रहेंगे। सभी विद्वानों ने उनसे क्षमा याचना की और बोले, हमारे कहने पर राजा ने विवश होकर यह सब भेजा है। हमें क्षमा कर दें। अब समझ में आया आपकी सफलता का राज। संग्रह न करनेवाला ही असाधारण लेखन भी कर सकता है।

१३००) आदर्श नम्रता- कलकत्ता के भूदेव मुखोपाध्याय ने अपनी एक लाख साठ हजार की संपत्ति दान करने के विचार से अपने पिता श्री विश्वनाथ तर्कभूषण की स्मृति में विश्वनाथ फण्ड स्थापित किया था। इस फण्ड से देश के सदाचारी, विद्वान ब्राह्मणों को बिना मांगे प्रतिवर्ष पचास रुपए की सहायता राशि मनीऑर्डर से उनके घर भेजी जाती थी। पण्डितों को इस सहायता के लिए न तो किसी प्रकार के आवेदन करने की जरूरत थी और न हीं फण्ड कार्यालय में आने-जाने की। इस फण्ड के प्रथम वर्ष की वृत्तियों का विवरण एजुकेशनल गजट में देने के लिए एक कर्मचारी ने सूची बनाई। उस सूची में लिखा था- इस वर्ष में जिन-जिन अध्यापकों एवं विद्वानों को विश्वनाथ-वृत्ति दी गई, उनकी नामावली। भूदेव बाबू ने वह सूची देखी तो अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा- यह तुमने क्या लिख दिया ? इसे इस प्रकार लिखो- इस वर्ष जिन-जिन अध्यापकों और विद्वानों ने विश्वनाथ वृत्ति स्वीकार करने की कृपा की उनकी नामावली।

१३०१) आत्मभाव - स्वर्गीय शशिभूषण वन्ध्योपाध्याय हुगली के सरकारी वकील थे। एक दिन मई-जून की तपती दोपहरी में वे एक किराए की गाड़ी करके एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर पर जा पहुंचे। वे वहां आवश्यक कार्य से पहुंचे थे। वहां पर उनका अच्छा स्वागत-सत्कार हुआ। उसके बाद उस व्यक्ति ने पूछा- इस भयंकर दोपहरी में आपने किस प्रकार आने का कष्ट किया? आप यदि किसी कर्मचारी के हाथ पत्र भेज देते तो आपका काम तो तब भी हो जाता? पहले मेरे मन में भी यही विचार आया था कि किसी नौकर के हाथ पत्र भेज देता हूं। इस विचार से पत्र लिख भी लिया था, किंतु बाहर प्रचण्ड गरमी तथा लू देखकर मैं किसी भी नौकर को भेजने का साहस नहीं कर सका। मैं तो गाड़ी किराया करके आया हूं। किंतु यदि कोई कर्मचारी आता तो वह बेचारा तो पैदल ही आता। उसके शरीर में भी तो वही आत्मा है जो मेरे शरीर में है। अत: मैंने किसी को भेजकर कार्य सिद्धि करने का विचार त्याग दिया और स्वयं ही चला आया। कार्य अत्यंत आवश्यक था तथा तत्काल करना था। <u>जो लोग दूसरों में भी अपनी ही जैसी आत्मा का वास मानते हैं वे वास्तव में महान होते हैं</u>।

१३०२) शेक्सपियर का आरंभिक जीवन कष्ट में बीता। जब वह छोटे थे, उनके पिता की मृत्यु हो गई। शेक्सपियर को पढ़ाई छोड़कर नौकरी करनी पड़ी। उन्हें सबसे पहले एक नाटक कंपनी में घोड़ों की देखभाल का काम मिला। लेकिन जब अर्ल ऑफ साउथेम्पटन ने पढ़ाई में उनकी दिलचस्पी देखी, तो उन्हें नाटककारों की रचनाओं की नकल के काम पर लगा दिया। यह काम करते हुए उन्होंने लव्स लेबर्स लॉस्ट नामक नाटक लिखा। उसे पढ़कर अर्ल ने शेक्सपियर को उसमें अभिनय करने को कहा। शेक्सपियर ने प्रभावशाली अभिनय किया। लोगों को यह नाटक काफी अच्छा लगा। इसके हर प्रदर्शन में प्रेक्षागृह खचाखच भरा रहा। इससे शेक्सपियर का उत्साह इतना बढ़ा कि वह नियमित नाट्य लेखन में लग गए। धीरे-धीरे वह विश्व के महान नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

१३०३) सेवा की भावना - जर्मनी का महान समाजसेवी ओबरलीन एक बार अपनी यात्रा के दौरान मुसीबतों से घिर गया। तेज आंधी-तूफान और ओलों ने उसे बुरी तरह परेशान कर दिया। वह मदद के लिए चिल्लाता रहा, लेकिन सबको अपनी जान बचाने की पड़ी थी, सो उसकी पुकार कौन सुनता? वह बेहोशी की हालत में नीचे गिर पड़ा। कुछ देरबाद उसे अहसास हुआ कि किसी व्यक्ति ने उसे थामा हुआ है और उसे सुरक्षित जगह पर ले जाने की कोशिश कर रहा है। होश में आने पर ओबरलीन ने देखा कि एक गरीब किसान उसकी सेवा में जुटा हुआ है। ओबरलीन ने किसान से कहा कि वह उसकी सेवा करने के एवज में उसे इनाम देगा। फिर उसने किसान से उसका नाम जानना चाहा। यह सुनकर किसान मुस्कराया और बोला, मित्र। बताओ, बाइबिल में कहीं किसी परोपकारी का नाम लिखा है। नहीं न। तो फिर मुझे भी अनाम ही रहने दो। आप भी तो नि:स्वार्थ सेवा में विश्वास रखते हो। फिर मुझे इनाम का लालच क्यों दे रहे हो? वैसे भी पुरस्कार का लालच किसी को भी

नि:स्वार्थ सेवा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। सेवा की भावना तो हमारे अंदर से उत्पन्न होती है। इसे न ही पैदा किया जा सकता है और न ही मिटाया जा सकता है। ओबरलीन उस निर्धन किसान की बातें सुनकर दंग रह गया। वह मन ही मन सोचने लगा कि आज उसे इस किसान ने एक पाठ पढ़ाया है। सेवा जैसा भाव तो अनमोल है। उसकी कोई कीमत नहीं लगाई जा सकती और सेवा के लिए कोई भी पुरस्कार अधूरा है। यह किसान कितना महान है जो बिना किसी स्वार्थ के परोपकार करने में विश्वास करता है। आज कितने ऐसे लोग हैं जो इस निर्धन किसान की परोपकार की भावना का मुकाबला कर सकते हैं। ओबरलीन को इस बात के लिए अफसोस हुआ कि उसने किसान को इनाम देने की बात कही। ओबरलीन ने किसान से कहा, अगर आपके जैसे इंसान हर जगह हों तो कहीं पर दुराचार शेष नहीं रहेगा।

१३०४) सेवा का संकल्प - महान जैनाचार्य श्री हेमचंद्र सूरि एक बार सांभर पधारे। वहां गुजरात का सम्राट कुमारपाल अपने अनेक सामंतों और सैकड़ों श्रेष्ठियों के साथ आचार्यश्री की वंदना करने और आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करने आया। वह धार्मिक वृत्ति का कुशल सम्राट था। उस समय आचार्यश्री ने कंधे पर एक मोटी खादी की चादर डाल रखी थी। वह चादर एक गरीब विधवा ने अपने हाथ से सूत कातकर बनाई थी और बड़ी श्रद्धा के साथ आचार्यश्री को भेंट की थी। आचार्यश्री ने उस स्त्री के प्रेम और भक्ति को मान देकर वह चादर ओढ़ ली। पिछले कुछ समय से वह हमेशा उस चादर को अपने साथ रखने लगे थे। राजा कुमारपाल ने आचार्यश्री से निवेदन किया, गुरुदेव। आपके शरीर पर ऐसा मोटा कपड़ा शोभा नहीं देता। आपको ऐसे कपड़े प्रयोग करते देख मुझे शर्म आती है। हमारा संपूर्ण राजपाट आपकी सेवा में तत्पर है। मैं चाहता हूं कि आप सर्वसुविधा में रहते हुए धर्म का उपदेश दें। आचार्यश्री ने कहा राजन्, तू गुजरात का राजा है। तेरे राज्य में तेरे स्वधर्मी भाई इतनी दरिद्र अवस्था में हैं कि उनका जीवन निर्वाह भी बड़ी मुश्किल से होता है। क्या उनके दु:खों को देखकर तुझे शर्म नहीं आती? आचार्यश्री की इस बात से राजा कुमारपाल की आंखें खुल गईं। उसने कहा, गुरुदेव, इस तरफ तो मेरा कभी ध्यान ही नहीं गया।

आचार्यश्री बोले, राजन्। शर्म की तो यही बात है कि तुमने अभी तक अपने स्वधर्मी भाइयों की सेवा के लिए कुछ भी नहीं किया। तुम सदैव बड़ी बातों में ही उलझे रहते हो। बड़े लोगों की यही विडंबना है। राजा कुमारपाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, गुरुदेव। मैं आज ही प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं गरीब, दु:खी स्वधर्मी भाइयों के लिए प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपये खर्च करूंगा। उसके बाद कुमारपाल ने १४ वर्ष तक राज्य किया और अपने प्रण के मुताबिक वास्तव में साधारण जन की सेवा पर १४ करोड़ रुपये खर्च किए।

१३०५) मनुष्यता का पाठ- यह घटना उस समय की है, जब क्रांतिकारी रोशन सिंह को काकोरी कांड में मृत्युदंड दिया गया। उनके शहीद होते ही उनके परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। घर में एक जवान बेटी थी और उसके लिए वर की तलाश चल रही थी। बड़ी मुश्किल से एक जगह बात पक्की हो गई। कन्या का रिश्ता तय होते देखकर वहां के दरोगा ने लड़केवालों को धमकाया और कहा कि क्रांतिकारी की कन्या से विवाह करना राजद्रोह समझा जाएगा और इसके लिए सजा भी हो सकती है। किंतु वर पक्ष वाले दरोगा की धमकियों से नहीं डरे और बोले, यह तो हमारा सौभाग्य होगा कि ऐसी कन्या के कदम हमारे घर पड़ेंगे, जिसके पिता ने अपना शीश भारत माता के चरणों पर रख दिया। वर पक्ष का दृढ़ इरादा देखकर दरोगा वहां से चला आया पर किसी भी तरह इस रिश्ते को तोड़ने के प्रयास करने लगा। जब एक पत्रिका के संपादक को यह पता लगा तो वह आगबबूला हो गए और तुरंत उस दरोगा के पास पहुंचकर बोले, तुम जैसे लोग बुरे कर्म कर अपना जीवन सफल मानते हैं किंतु यह नहीं सोचते कि तुमने इन कर्मों से अपने आगे के लिए इतने कांटे बो दिए हैं जिन्हें अभी

से उखाड़ना भी शुरु करो तो अपने अंत तक न उखाड़ पाओ। संपादक की खरी-खोटी बातों ने दरोगा की आंखें खोल दीं और उसने न सिर्फ कन्या की मां से माफी मांगी, अपितु विवाह का सारा खर्च भी खुद वहन करने को तैयार हो गया। विवाह की तैयारियां होने लगीं। कन्यादान के समय जब वधू के पिता का सवाल उठा तो वह संपादक उठे और बोले, रोशन सिंह के न होने पर मैं कन्या का पिता हूं। कन्यादान मैं करूंगा। वह संपादक थे- महान स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी।

१३०६) न्याय और धर्म- एक न्यायाधीश थे। न्याय के साथ धर्म में भी उनकी गहरी आस्था थी। वह नियमित पूजा-पाठ करते थे और प्रवचनों में भी शामिल होते थे। एक बार एक चोर उनके सामने लाया गया। वह मोहल्लों में छोटी-मोटी चोरी किया करता था। चोर न्यायाधीश महोदय के धर्मपरायण होने की बात को बखूबी जानता था। उसने थोड़ी ही देर में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। फैसला सुनाने से पहले न्यायाधीश ने चोर से पूछा- तुम्हें अपने पक्ष में कुछ कहना है तो नि:संकोच कह सकते हो। इस पर चोर बोला- श्रीमान, आज आपके सामने खड़ा होने में मुझे आनंद आ रहा है। मैंने सुना है कि आप बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं। मुझे सिर्फ यही कहना है कि मैंने अपने लिए चोरी नहीं की। भगवान ने मुझे इसके लिए प्रेरित किया। उनकी इच्छा से मेरे हाथों चोरी हुई। इसलिए मुझे दोषी न ठहराया जाए। यह सुनते ही वहां उपस्थित लोग सन्न रह गए। उनमें से कुछ ने कहा कि यह चोर महा धूर्त है इसने न्यायाधीश महोदय को अपने दांव में फंसा लिया है। लोगों को लगने लगा कि कहीं यह साफ छूट न जाए। लेकिन न्यायाधीश महोदय ने जो कुछ भी कहा उसने सबको चकित कर दिया। वे चोर से बोले- तुम्हारा कहना मुझे पूरी तरह मान्य है। जिस भगवान ने तुम्हें चोरी करने की प्रेरणा दी है वही भगवान अब मुझे तुम्हें सजा देने की प्रेरणा दे रहा है। तुम्हें एक साल की कैद की सजा दी जाती है। इस तरह एक बार फिर न्यायाधीश ने अपने फैसले से लोगों का दिल जीत लिया।

१३०७) न्याय का सम्मान - इंग्लैंड के मुख्य न्यायाधीश के सामने सम्राट एडवर्ड सप्तम अपराधी के रूप में खड़े थे। सम्राट ने स्वयं अपने अपराध का विवरण देते हुए न्यायाधीश से न्याय की मांग की। न्यायाधीश को समझ में नहीं आया कि अपने सम्राट को क्या सजा दी जाए, मगर बिना कुछ व्यवस्था दिए भी स्थिति को टाला नहीं जा सकता था। उसने काफी सोच-विचार के बाद निर्णय दिया, चूंकि मामला सम्राट का है इसलिए इसकी न्याय प्रक्रिया भी विशेष होनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि मामले को उन सब न्यायालयों को भेजा जाए जो सम्राट की शासन-सीमा में आते हैं। फिर सभी न्यायाधीशों के बहुमत को ही उचित ठहराया जाए। सम्राट समझ गए कि न्यायाधीश ने चतुराई से अपनी बला दूसरे के सिर मढ़ दी है, लेकिन मुख्य न्यायाधीश के निर्णय को भला चुनौती कौन देता। जिन-जिन देशों में एडवर्ड सप्तम का शासन फैला था उन-उन देशों के न्यायालयों में वह अभियोग न्याय के लिए भेज दिया गया। एक निश्चित समय के भीतर सब अदालतों ने अपना निर्णय इंग्लैंड भेज दिया किंतु उन सभी फैसलों में सम्राट को क्षमा किया गया था, हालांकि युक्तियां तर्क और दांव-पेच सबके भिन्न थे। हां मद्रास हाई कोर्ट के जस्टिस सर टी. मुथ्थुस्वामी ने अपना निर्णय लिखा, हमें सबसे पहले तो यह बात भूलनी होगी कि फैसला सम्राट के अभियोग का है। क्योंकि कानून की नजर में न कोई सम्राट होता है और न भिखारी। फिर न्यायालय का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि फैसला इस ढंग से दिया जाए कि वह एक उदाहरण बन सके। मेरे विचार से सम्राट का ताज उतार कर एक करोड़ सिक्कों में उन्हें नंगे सिरवाला दिखाया जाए और उन सिक्कों को पूरे साम्राज्य में फैला दिया जाए। मैं समझता हूं कि सम्राट की शोभा भी इसी में है कि वह इस फैसले से स्वयं को अपमानित न महसूस कर इसे सहर्ष शिरोधार्य करें। सम्राट ने सर मुथ्थुस्वामी का फैसला मान लिया।

HHH(४७५)HHH

१३०८) जज का फैसला - पीडब्ल्यू स्मिथ अमेरिका के मशहूर जज थे। एक बार वह अदालत से घर लौट रहे थे। रास्ते में उनकी गाड़ी से टकरा कर एक व्यक्ति घायल हो गया। तत्काल भीड़ इकट्ठा हो गई और जैसा कि होता है, सभी लोग कार चालक को बुरा-भला कहने लगे। लेकिन लोगों को जब पता चला कि कार चालक कोई और नहीं जाने-माने न्यायाधीश स्मिथ हैं, तो लोग घायल व्यक्ति को ही दोषी ठहराने लगे। स्मिथ ने कहा, इस समय कौन दोषी है, इसका फैसला आप लोग नहीं कर सकते। इसका निर्णय तो अदालत करेगी। इस समय तो इस शख्स को इलाज की जरूरत है। जज साहब लोगों की मदद से घायल व्यक्ति को अस्पताल ले गए और उसकी मरहम पट्टी कराई। इसके बाद उन्होंने अस्पताल में तैनात पुलिस से कहा, यह मेरी गाड़ी से घायल हुआ है, मेरे खिलाफ इसका केस दर्ज किया जाए। पहले तो पुलिसवालों ने आनाकानी की, लेकिन स्मिथ के दबाव पर केस दर्ज हो गया। दूसरे दिन पुलिस ने उनके सामने यह केस पेश किया। इससे कुछ दिनों पहले स्मिथ ने इसी तरह के हादसे में एक व्यक्ति को १५ दिन की कैद या १५ डॉलर जुर्माने की सजा सुनाई थी। उसी फैसले को नजीर मान कर उन्होंने अपने उच्चाधिकारियों के आदेश के बिना जज साहब को जेल ले चलो। पुलिसवाले इसकी सूचना मुख्य न्यायाधीश को दी। मुख्य न्यायाधीश कुछ देर बाद स्मिथ की अदालत में पहुंचे और कहा, हमें आप के निर्णय पर गर्व है। यदि सभी जज आपकी तरह इंसाफ करने लगे तो लोगों का इंसाफ पर भरोसा और मजबूत होगा। आपने अपना फैसला सुना दिया। अब मेरा भी फैसला सुन लीजिए। मुख्य न्यायाधीश ने कैद की जगह १५ डॉलर का जुर्माना स्वयं देकर स्मिथ को बरी कराया। स्मिथ ने कहा, इंसाफ सबके लिए बराबर होना चाहिए। यह कहकर उन्होंने १५ डॉलर चीफ जस्टिस को लौटा दिये।

१३०९) अंतिम कसक- बात तब की है, जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था। बंगाल के न्यायाधीश नीलमाधव बैनर्जी अपनी न्यायप्रियता, सत्यनिष्ठा व दयालुता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। अपने जीवन काल में उन्होंने अपने इन्हीं गुणों के कारण बेहद सम्मान व प्रसिद्धि पाई। वृद्धावस्था में उन्हें प्राण घातक रोग ने जकड़ लिया तथा उनका शरीर बेहद कमजोर हो गया। बीमारी के कारण उनके शरीर में असहनीय पीड़ा होने लगी। वे बार-बार ईश्वर से प्रार्थना करते और कहते, हे ईश्वर, अब मुझसे यह पीड़ा सही नहीं जाती। मुझे इस रोगग्रस्त शरीर से मुक्ति देकर अपने पास बुला लो। लेकिन इस तरह मृत्यु को बुलाने से वह थोड़े ही आती है, उन्हें पीड़ा भुगतनी पड़ रही थी। एक दिन वह सोचने लगे कि मुझसे जरूर कुछ न कुछ गलती हुई है, जिसकी मुझे पीड़ा के रूप में सजा भुगतनी पड़ रही है। बहुत सोचने पर उन्हें याद आया कि एक बार बीमा कराते समय उन्होंने अपनी मधुमेह की बीमारी को बेहद सफाई से छिपाकर बीमा करा लिया था। यह याद आते ही उन्हें अपने शरीर में होनेवाली पीड़ा का कारण समझ में आ गया और उन्होंने तभी बीमा अधिकारी को बुलाया और उससे बोले, भैया, मैंने जब आपसे बीमा कराया था, उस समय मैं मधुमेह से ग्रस्त था। किंतु उस समय मैंने यह बात आपको नहीं बताई थी। इसलिए मेरा यह बीमा रद्द कर दिया जाए। मेरे मरने के बाद कोई भी इस बीमा राशि का अधिकारी नहीं होगा। मैंने न्यायाधीश के रूप में हमेशा सत्य का आचरण किया, किंतु व्यक्तिगत जीवन में मैं उस पर टिके रहने से लोभवश चू गया। इसी कारण आज यह कष्ट भोग रहा हूँ। उनके कहने पर बीमा अधिकारी ने उनका बीमा रद्द कर दिया। बीमा रद्द होने के बाद उनके चेहरे पर संतोष व शांति की झलक दिखाई दी। इसके बाद उसी रात उन्होंने प्राण त्याग दिए।

१३१०) अद्‌भुत बलिदान- यह उस समय की बात है जब चीन के महान विद्वान ह्वेनसांग भारत आए हुए थे। वह भारत की शिक्षा व संस्कृति से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने नालंदा विश्वविद्यालय में भारतीय धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन किया। अध्ययन करने के साथ-साथ उन्होंने अनेक धर्मग्रंथों का संग्रह किया ताकि अपने देश वापस लौटने के बाद वह

वहां इनके महत्व बता सकें। जब वह अपने देश की ओर रवाना हुए तो उन्होंने अपने साथ अनेक ग्रंथ और कई कलात्मक मूर्तियां रख लीं। मार्ग में नदी पड़ती थी इसलिए वह नौक़ा में अपनी इस बहुमूल्य संपदा के साथ बैठ गए। पांच भारतीय छात्र भी उनके साथ थे। अभी वे कुछ ही दूर पहुंचे थे कि अचानक नदी में जोर का भंवर आया और नौका डगमगाने लगी। यह देखकर नौका चालक ने कहा, यदि नौका में से कुछ वजन कम कर दिया जाए तो यह डूबने से बच सकती है।

यह सुनकर ह्वेनसांग चिंता में पड़ गए और बोले, अब तो पुस्तकों के गट्ठरों को पानी में फेंकना ही होगा। इनके पानी में बहने के साथ ही मेरा उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। वापस पहुंचने पर मैं अपने देश में भारत के महान धर्मशास्त्रों का प्रचार नहीं कर पाऊंगा। इतने कठोर परिश्रम से एकत्रित किए गए धर्मशास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। विद्वान ह्वेनसांग की बात सुनकर पांचों भारतीय छात्र बोले, आप चिंतित न हों। आपका परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा और न ही आपका उद्देश्य अधूरा रहेगा। ग्रंथों की जगह हम नदी में कूद जाते हैं। यह कहकर वे पांचों तुरंत उफनती नदी में कूद गए। उनमें से तीन तो तैरकर सकुशल नदी पार कर गए लेकिन दो छात्र भारतीय धर्मशास्त्रों की अमूल्य धरोहर को बचाने के लिए नदी की भेंट चढ़ गए।

ह्वेनसांग ने चीन पहुंच कर इन धर्मशास्त्रों का अनुवाद किया और इनकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करनेवाले छात्रों के प्रति जीवन भर कृतज्ञता व्यक्त करते रहे।

१३११) प्रायश्चित का तरीका- यह उन दिनों की बात है जब प्रख्यात शिक्षाविद और समाज सुधारक अश्विनीकुमार दत्त हाईस्कूल में पढ़ते थे। उस समय नियम था कि सोलह वर्ष से कम उम्र के विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा में नहीं बैठ सकते। अश्विनीकुमार १४ वर्ष में ही मैट्रिक में पहुंच गए थे। वह दुविधा में पड़ गए कि आखिर कैसे परीक्षा दें। किंतु जब उन्होंने देखा कि कई कम उम्र के विद्यार्थी अपनी उम्र सोलह वर्ष लिखवाकर परीक्षा में बैठ रहे हैं तो उन्होंने भी ऐसा ही करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने आवेदन में अपनी उम्र सोलह वर्ष लिखवाई और परीक्षा में बैठ गए। इस प्रकार वह मैट्रिक पास हो गए। इसके ठीक एक वर्ष बाद जब वह कॉलेज की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, तब उन्हें अपने आचरण पर बहुत खेद हुआ और वह ग्लानि से भर उठे। उन्होंने अपने कॉलेज के प्राचार्य से बात की और इस गलती को सुधारने की प्रार्थना की। प्राचार्य ने उनकी सत्यनिष्ठा की बड़ी प्रशंसा की, किंतु इसे सुधारने में असमर्थता जाहिर की। अश्विनीकुमार का मन न माना, तो वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के पंजीकरण अधिकारी से मिले, मगर वहां से भी उन्हें यही जवाब मिला। अब कुछ नहीं किया जा सकता था। किंतु अश्विनीकुमार को तो प्रायश्चित करना था। उन्होंने एक उपाय सोचा। उन्होंने दो वर्ष झूठी उम्र बढ़ाकर जो लाभ उठाया था, उसके लिए दो वर्ष पढ़ाई बंद रखी और स्वयं द्वारा की गई उस गलती का प्रायश्चित किया। बाद में उन्होंने इस बात को दोहराया कि सत्य का आचरण कर व्यक्ति नैतिक रूप से मजबूत होता है।

१३१२) मिठाई और जीवन - बेन जॉन नामक एक शिक्षक थे। वह इस बात के लिए हमेशा परेशान रहते थे कि आखिर जीवन में खुशी कैसे आए। वह वास्तविक संतुष्टि की तलाश में थे। इसके लिए उन्होंने काफी अध्ययन भी किया लोगों से विचार-विमर्श किया पर कोई रास्ता न मिला। वह हर समय इसीमें खोये रहते थे। एक दिन वह बाजार से गुजर रहे थे। तभी उनकी नजर मिठाई की एक दुकान पर पड़ी। वहां एक ग्राहक खड़ा था। वह दुकानदार से पूछ रहा था- तुम्हारी दुकान में सबसे अच्छी मिठाई कौन सी है? इस पर दुकानदार ने कहा- मेरी दुकान में हर वस्तु सर्वश्रेष्ठ है। यहां ऐसी कोई मिठाई ही नहीं जो दूसरों से कमतर हो। अब आप यह तय करें कि आपको क्या चाहिए? यह साधारण सी लगनेवाली बात बेन जॉन को बेहद महत्वपूर्ण लगी। वह तुरंत उस दुकानदार के पास पहुंचे और बोले- भाई, आज तक मैं जिस गुरु मंत्र की तलाश में था वह मुझे मिल गया और उसे तुमने अभी-अभी दोहराया है। दुकानदार भौंचक उन्हें देखने लगा। जॉन उसी रौ में कहते रहे- तुमने कहा

कि तुम्हारी हरेक मिठाई सर्वश्रेष्ठ है। सही बात है। यह कहकर बेन जॉन खुशी-खुशी वहां से विदा हुए।

१३१३) सच्चा सम्राट - ज्योतिष विद्या का एक प्रकांड पंडित एवं छाया शास्त्री कहीं से गुजर रहा था। रास्ते में उसे एक जगह पदचिह्न दिखाई पड़े वह यह देखकर दंग रह गया कि ये पदचिन्ह किसी चक्रवर्ती सम्राट के हैं। सामुदिक लक्षण जाननेवाले उस ज्योतिषी ने सोचा- एक चक्रवर्ती सम्राट, इस रास्ते से। वह भी नंगे पैर। सम्राट यदि जाए तो सवारी पर जाए एवं साथ में सेना हो, हजारों आदमियों से घिरा हो, किंतु यह पदचिह्न तो एक ही व्यक्ति के हैं। क्या मेरा ज्योतिष मुझे धोखा दे रहा है? क्या मेरी बुद्धि मारी गई है? उस ज्योतिषी ने उन पदचिन्हों का पीछा किया। इस तरह वह वहां पहुंच गया जहां एक भिक्षुक ध्यान लगाए बैठा था। ज्योतिषी ने थोड़ी देर इंतजार किया। भिक्षुक जब ध्यान से उठा तब ज्योतिषी ने कहा, लगता है आज मेरा ज्योतिष झूठा पड़ गया है। ये पदचिन्ह तो किसी सम्राट के हैं और आप एक भिक्षुक हैं। वह भिक्षुक और कोई नहीं, भगवान महावीर थे। ज्योतिषी की बात सुनकर उन्होंने पूछा, राजा की क्या पहचान है? ज्योतिषी ने उत्तर दिया, राजा अकेला नहीं होता है, लेकिन यहां आपके सिवाय कोई नहीं है। महावीर ने कहा, नहीं, ध्यान रूपी पिता मेरे साथ हैं, अहिंसा रूपी माता और ब्रह्मचर्य रूपी भाई, अनासक्ति रूपी बहन, शांति रूपी पत्नी, विवेक रूपी पुत्र और क्षमा रूपी पुत्री, सभी तो हमारे साथ सदैव रहते हैं। सत्य रूपी मित्रों से मैं घिरा रहता हूँ तो फिर अकेला कैसा? ज्योतिषी ने कहा, अब मुझे समझ में आया कि सामुदिक लक्षण केवल बाहरी चीजों पर ही आधारित नहीं होते। मनुष्य में बहुत सारी संभावनाएं छिपी हुई हैं। वह अगर उनका सदुपयोग करता है तो सच्चा सम्राट बन जाता है। राजा की सेना तो सीमित होती है, लेकिन शुभ तरंगें सेना से भी दूर तक फैली रहती हैं। ज्योतिषी ने नतमस्तक होकर कहा, स्वामी आपका ही वास्तविक राज्य है। मेरा ज्योतिष सार्थक हो गया। मुझे आप जैसे सच्चे सम्राट के दर्शन हो गए।

१३१४) धैर्य का पाठ - भंसाली जी संस्कृत के प्रख्यात विद्वान थे। वह प्राध्यापक के रूप में कार्य भी करते थे। वह संस्कृत के उत्थान के लिए रोज नई योजनाएं बनाते रहते थे। एक दिन इसी संदर्भ में उन्होंने गांधीजी से मिलने का मन बनाया और उनके आश्रम पहुंच गए। आश्रम में पहुंचते ही उनकी नजर एक साधारण से दिखनेवाले कमजोर व्यक्ति पर पड़ी। वह व्यक्ति कुएं से पानी खींच-खींच कर पौधों में डाल रहा था। वह अपने कार्य में मगन था। उसे व्यस्त देखकर भंसाली जी बोले, सुनो भाई। मुझे महात्मा जी से मिलना है। यह सुनकर वह व्यक्ति गर्दन उठाते हुए बोला, उनसे क्या काम है? कहिए। उसकी बात सुनकर भंसाली बोले, तुमसे क्या कहूं। मेरी बातें तुम्हारी समझ में नहीं आएंगी। मुझे उनसे संस्कृत के संबंध में कुछ चर्चा करनी है। वह व्यक्ति बोला, ठीक है, आप मेरे साथ कुएं पर चलिए। वह वही मिलेंगे। दोनों कुएं पर गए। वहां जाते ही वह व्यक्ति जूठे बर्तन मांजने लगा। यह देखकर थोड़ी देर तक तो भंसाली जी इधर-उधर देखते रहे। किंतु जब कुछ देर बाद भी उन्हें उन दोनों के अलावा कोई और नजर नहीं आया तो वह थोड़ा गुस्से से बोले तुम बर्तन बाद में मांज लेना। पहले मुझे महात्मा जी से तो मिला दो। यह सुनकर वह व्यक्ति मुस्कराते हुए बोला, मैं ही गांधी हूं। संस्कृत पर चर्चा करने के लिए थोड़ा धैर्य भी तो चाहिए। पर आपको तो बहुत जल्दी है। भंसाली जी ने गांधीजी से माफी मांगी। वह उनकी सादगी के कायल हो गए।

१३१५) हार और जीत - किसी शहर में बहुत दूर से एक विद्वान पहुंचा। उसने लोगों से कहा कि वह यहां के विद्वानों से शास्त्रार्थ करना चाहता है। कुछ लोग उसे शहर के प्रमुख विद्वानों के पास ले गए जिन्होंने कहा, हमारे यहां तो सनातन गोस्वामी और उनके भतीजे जीव गोस्वामी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। अगर वे आपको विजेता के रूप में स्वीकार कर मान्यता पत्र पर हस्ताक्षर कर देंगे तो हम भी आपको विजेता मान लेंगे। दूर से आया वह विद्वान सनातन गोस्वामी के पास पहुंचा और

बोला, स्वामीजी, या तो आप मुझसे शास्त्रार्थ कीजिए या मुझे मान्यता पत्र प्रदान कीजिए। इस पर सनातन गोस्वामी बोले, भाई। अभी हमने शास्त्रों का मर्म ही कहां समझा है। हम तो विद्वानों के सेवक हैं। यह कहते हुए उन्होंने मान्यता पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। विद्वान मान्यता पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक चला जा रहा था कि जीव गोस्वामी मिल गए। विद्वान ने उनसे भी कहा, आप इस मान्यता पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे या मुझसे शास्त्रार्थ करेंगे? जीव गोस्वामी बोले, मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूँ। दोनों में शास्त्रार्थ शुरू हो गया। शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक यह देख रहे थे। लंबे शास्त्रार्थ में जीव गोस्वामी ने उस विद्वान को पराजित कर दिया। वह विद्वान दुखी होकर नगर से चला गया। जीव गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी को अपनी विजय के बारे में बताया पर सनातन गोस्वामी प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा, एक विद्वान को अपमानित करके तुम्हें थोड़ा यश अवश्य मिल गया लेकिन क्या करोगे यश लेकर? यह केवल तुम्हारे अहंकार को बढ़ाएगा और तुम्हारे जैसा अहंकारी ज्ञान की साधना कैसे कर पाएगा। आखिर उस विद्वान को विजयी मान लेने में तुम्हारा क्या बिगड़ता था। हमारे लिए यश-अपयश, जीवन-मरण, सुख-दुख, मित्र-शत्रु सभी एक समान होते हैं। हमें हार और जीत के फेर में पड़ना ही नहीं चाहिए। जीव गोस्वामी को अपनी भूल का अहसास हो गया। उन्होंने अपने व्यवहार के लिए उनसे क्षमा मांगी।

१३१६) आम आदमी - एक बार प्रसिद्ध विद्वान हजरत अबू बकर सिद्दिकी को मदीना का वजीर नियुक्त किया गया। नियुक्ति के बाद प्रश्न उठा कि इतने बड़े विद्वान की तनख्वाह कितनी हो। वहां के बादशाह भी कोई निर्णय नहीं ले सके। काफी देर माथापच्ची करने के बाद अंत में यह निर्णय हुआ कि उनसे पूछ कर ही उनका वेतन तय किया जाए। बादशाह स्वयं उनके पास गए और उनके सामने अपनी समस्या रखी। अबू बकर ने कहा, जहांपनाह, यह तो कोई समस्या है नहीं। मैं कोई जनता से अलग तो हूं नहीं। बताइए, मदीना का एक औसत मजदूर महीने में कितना कमा लेता है? बादशाह ने कहा, तकरीबन एक दीनार तो कमा ही लेता है। अबू बकर ने कहा, ठीक है। मेरी तनख्वाह एक दीनार रखी जाए। बादशाह हैरत में पड़ गए। बोले, क्या कहा आपने? एक दीनार। इससे ज्यादा तो मेरा नौकर कमाता है। आपकी बराबरी एक नौकर से नहीं हो सकती। अबू बकर ने कहा, आप मेरी बात नहीं समझ रहे हैं। आपने मुझे मुल्क का वजीर इसलिए बनाया है कि मैं यहां की गरीब जनता के हित में काम करूं। देश को तरक्की पर ले जाऊं। लेकिन जब मुझे यहां के आवाम के दर्द का पता ही नहीं चलेगा तो मैं कैसे उनके हित की बात सोचूंगा। एक मजदूर के बराबर तनख्वाह लेने से मुझे इतना तो पता रहेगा कि यहां साधारण लोग किस हाल में रहते हैं। वे अपना गुजर-बसर किस तरह से करते हैं और उनकी भलाई कैसे हो सकती है। हमारी तनख्वाह ज्यादा होगी तो हमें पता ही नहीं चलेगा कि देश में क्या हो रहा है। बादशाह ने फिर जोर देकर कहा, यह नियम के खिलाफ होगा। आप की तनख्वाह एक मजदूर के बराबर नहीं हो सकती। अबू बकर ने मुस्कराकर कहा, फिक्र मत करिए। मैं हमेशा कोशिश करता रहूंगा कि यहां के मजदूरों की आमदनी जल्दी-जल्दी बढ़ती रहे। इससे मेरी तनख्वाह अपने आप बढ़ती जाएगी। यह सुनकर बादशाह निरुत्तर हो गए। उन्होंने शाही खर्च में भारी कटौती कर दी।

१३१७) कल्पनाओं का सागर- एक बार एक नवयुवक नदी के किनारे बैठ कर पास ही पड़े कंकड़ों को उठा-उठा कर नदी में फेंक रहा था। उसके मन में करोड़पति बनने के ख्याल भी आ जा रहे थे। जब फेंकते-फेंकते एक कंकड़ उस के हाथ में रह गया तो उस की तंद्रा भंग हुई। कंकड़ की तरफ उस का ध्यान गया तो वह हीरा निकला। इस पर वह अफसोस करने लगा कि मैंने कल्पना के संसार में हीरों को कंकड़ समझ नदी में फेंक दिया। न जाने मेरी तरह कितने नवयुवक कल्पना के प्रभाव में वर्तमान को खो देते हैं। सहसा वह उठा और संकल्प करने लगा कि अब कल्पनाओं के सागर में गोते लगाकर यथार्थ की उपेक्षा करने के बजाय पुरुषार्थ करूंगा। यही नवयुवक आगे चलकर साहित्य रचनाकर स्वामी

सत्यानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१३१८) कुशल कलाकार- फिल्म जगत के जाने-माने कलाकार बलराज साहनी अपनी विख्यात फिल्म दो बीघा जमीन तैयार कर रहे थे। उसमें उनकी भूमिका एक रिक्शा चालक की थी। वह ठहरे पढ़े-लिखे शहरी, रिक्शा-चालक होता है, बेपढ़ा देहाती। वह सोचने लगे कि उनकी भूमिका कही दर्शकों को बनावटी न लगे। अत: उन्होंने उसकी परीक्षा करने का एक अनोखा ढंग निकाला। उन्होंने रिक्शाचालक के कपड़े पहने और इधर-उधर घूमते हुए एक पान वाले की दुकान पर पहुँचे। थोड़ी देर तक एक ओर को चुपचाप खड़े रहने के बाद उन्होंने पनवाड़ी से देहाती भाव-भंगिमा में कहा, भैया, सिगरेट का एक पैकेट देना। पनवाड़ी ने निगाह उठाकर देखा, सामने एक आदमी खड़ा है, जिसके सिर पर एक अंगोछा लिपटा है और बदन पर देहाती आदमी के कपड़े। उसने उसे दुतकारते हुए कहा, जा-जा, बड़ा आया है सिगरेट लेने वाला। बलराज साहनी को उसके व्यवहार से बड़ी खुशी हुई और उन्हें भरोसा हो गया कि वह बड़ी खूबी से रिक्शा-चालक की भूमिका अदा कर सकेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह फिल्म बड़ी सफल हुई और उसका श्रेय मिला रिक्शा-चालक की भूमिका निभाने के लिए बलराज साहनी को। जो भी काम करें पहले उस काम की आत्मा में उतरें।

१३१९) समारोह- प्रसिद्ध चित्रकार रवि वर्मा उन दिनों बंबई में रहते थे। रवि वर्मा को गवर्नर की ओर से एक समारोह में आने का निमंत्रण मिला। उन्होंने समारोह में-जाने की तैयारी शुरू की ऐन वक्त पर उनका कोचवान बीमार पड़ गया। रवि वर्मा उसे बग्घी में बैठाकर अपने पारिवारिक चिकित्सक के पास ले गए। रवि वर्मा इसी कारण समारोह में नहीं जा सके। पर इसका उन्हें कोई दु:ख नहीं था। उन्हें संतोष था कि उनके कोचवान को सही समय पर दवा मिल गई समारोह तो होते ही रहते हैं पर समारोह में उनकी अनुपस्थिति का बुरा मान लिया गया। गवर्नर के सचिव ने पत्र लिखकर उनसे नहीं आने का स्पष्टीकरण मांगा।

रवि वर्मा ने वस्तुस्थिति लिखकर भेज दी। चार दिन बाद उन्हें सचिव की ओर से फिर एक पत्र मिला। लिखा था- क्या आपको गवर्नर के समारोह की अपेक्षा कोचवान की बीमारी ज्यादा महत्वपूर्ण लगी।

रवि वर्मा ने केवल एक शब्द में उत्तर-भिजवाया- हां।

१३२०) सच्चा कलाकार- प्रख्यात चित्रकार माइकल एंजेलो से कई चित्रकार ईर्ष्या करते थे। उन्हीं में से एक चित्रकार ने सोचा कि मैं एक ऐसा चित्र बनाऊंगा जिसके आगे एंजेलो की कलाकृति फीकी पड़ जाएगी। यह सोचकर उसने काफी मेहनत से एक महिला का चित्र बनाया। उसने उस चित्र को एक ऊंचे स्थान पर रखा ताकि वहां से गुजरते लोग उसे आसानी से देख सकें। यद्यपि चित्र बहुत सुंदर था, फिर भी चित्रकार को अहसास हो रहा था कि इसमें कुछ कमी रह गई है। पर कमी कहां है और क्या है, यह जानने में वह खुद को असमर्थ पा रहा था। एक दिन एंजेलो उस रास्ते से जा रहे थे। उनकी नजर उस चित्र पर पड़ी। उन्हें वह चित्र बड़ा खूबसूरत लगा और उसमें जो कमी थी, वह भी उनके ध्यान में आ गई। एंजेलो चित्रकार के घर पहुंचे। चित्रकार ने एंजेलो को पहले कभी देखा नहीं था। उसने उनका स्वागत किया और आने का कारण पूछा। एंजेलो ने कहा, तुमने चित्र तो बहुत सुंदर बनाया है, पर मुझे इसमें एक कमी लग रही है। चित्रकार बोला, हां मुझे भी आभास हो रहा है कि कुछ कमी रह गई है। एंजेलो ने कहा, जरा तुम अपनी कूची देना, मैं उस कमी को पूरा कर देता हूं। चित्रकार बोला, मैंने उसे बड़ी मेहनत से बनाया है, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे हाथ से मेरा चित्र बिगड़ जाए। एंजेलो ने कहा, विश्वास करो, मैं तुम्हारा चित्र खराब नहीं करूंगा। उस चित्रकार से कूची लेकर एंजेलो ने चित्र की दोनों आंखों में दो बिंदी लगा दी। दरअसल चित्रकार आंखों में दो काली बिंदियां लगाना भूल गया था, जिस

कारण चित्र अपूर्ण लग रहा था। अब वह चित्र सजीव प्रतीत होने लगा। उसका सौंदर्य बढ़ गया। उस चित्रकार के पूछने पर जब एंजेलो ने अपना नाम बताया तो चित्रकार के आश्चर्य का ठिकाना न हरा। उसने एंजेलो को बताया कि वह उनके बारे में क्या सोचता रहता था। उसने एंजेलो से क्षमा मांगी।

१३२१) डॉक्टर की पहचान- रसायनशास्त्री नागार्जुन एक राज्य के राज वैद्य थे। एक दिन उन्होंने राजा से कहा, मुझे एक सहायक की जरूरत है। राजा ने उनके पास दो कुशल युवकों को भेजा और कहा कि उनमें से जो ज्यादा योग्य लगे उसे रख लें। नागार्जुन ने दोनों की कई तरह से परीक्षा ली पर दोनों की योग्यता एक जैसी थी। नागार्जुन दुविधा में पड़ गए कि आखिर किसे रखें। अंत में उन्होंने दोनों युवको को एक पदार्थ दिया और कहा, इसे पहचान कर कोई भी एक रसायन अपनी इच्छानुसार बनाकर ले आओ। हां, तुम दोनों सीधे न जाकर राजमार्ग के रास्ते से जाना। दोनों राजमार्ग से होकर अपने-अपने घर चले गए। दूसरे दिन दोनों युवक आए। उनमें से एक युवक रसायन बनाकर लाया था जबकि दूसरा खाली हाथ आया था। आचार्य ने रसायन की जांच की। उसे बनानेवाले युवक से उसे गुण-दोष पूछे। रसायन में कोई कमी नहीं थी। आचार्य ने दूसरे युवक से पूछा, तुम रसायन क्यों नहीं लाए? उस युवक ने कहा, मैं पहचान तो गया था मगर उसका कोई रसायन मैं तैयार नहीं कर सका। जब मैं राजमार्ग से जा रहा था तो देखा कि एक पेड़ के नीचे एक बीमार और अशक्त आदमी दर्द से तड़प रहा है। मैं उसे अपने घर ले आया और उसी की सेवा में इतना उलझ गया कि रसायन तैयार करने का समय ही नहीं मिला। नागार्जुन ने उसे अपना सहायक रख लिया। दूसरे दिन राजा ने नागार्जुन से पूछा, आचार्य। जिसने रसायन नहीं बनाया उसे ही आपने रख लिया। ऐसा क्यों? नागार्जुन ने कहा, महाराज दोनों एक रास्ते से गए थे। एक ने बीमार को देखा और दूसरे ने उसे अनदेखा कर दिया। रसायन बनाना कोई जटिल नहीं था। मुझे तो यह जानना था कि दोनों में कौन मानव सेवा करने में समर्थ है। बीमार व्यक्ति चिकित्सक की दवा से ज्यादा उसके स्नेह और सेवा भावना से ठीक होता है, इसलिए मेरे काम का व्यक्ति वही है जिसे मैंने चुना है।

१३२२) उचित शुल्क- मथुरा के पास किसी गांव में एक वैद्य रहते थे। उनके पास दूर-दराज से रोगी आते, इसलिए उनका आश्रम हमेशा भरा रहता था। एक बार उनके पास एक ही रोग से पीड़ित दो रोगी उपचार के लिए लाए गए। उनमें से एक धनी व्यापारी का पुत्र था और दूसरा गरीब किसान का बेटा। वैद्याचार्य ने दोनों रोगियों को गंभीरता से देखा फिर व्यापारी से बोले, आपके पुत्र के उपचार में सौ अशर्फियां लगेंगी। यह सुनकर किसान घबरा गया। वह विचार करने लगा कि वह इतना अधिक शुल्क कैसे दे पाएगा? किसान को परेशान देख वैद्याचार्य उससे बोले, तुम्हें यह नहीं देना है। जब तक तुम्हारा पुत्र ठीक नहीं हो जाता तुम आश्रम में रहकर दूसरे मरीजों की सेवा करोगे। यही तुम्हारे पुत्र के उपचार का शुल्क होगा। इससे किसान को तो राहत मिल गई, लेकिन व्यापारी सोचने लगा कि वैद्याचार्य उसे ठग रहे हैं। उसने अपनी आशंका जताई तो वैद्याचार्य बोले, मेरे लिए दोनों रोगी बराबर हैं पर तुम लोगों की क्षमताएं अलग-अलग हैं। मैंने तुम दोनों की क्षमताओं के अनुसार ही शुल्क मांगा है। इस आश्रम को धन और सेवा दोनों की आवश्यकता है। तुम्हारे पास धन है जो औषधि मंगाने के काम आ सकता है, जबकि इस गरीब किसान के पास सेवा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह अपनी सेवा से आश्रम के रोगियों को लाभ पहुंचा सकता है। इसी को ध्यान में रखकर मैंने तुम दोनों के लिए अलग-अलग तरह के शुल्क तय किए।

१३२३) निंदा और प्रशंसा - किसी राज्य में एक मूर्तिकार रहता था। उसकी जीवंत मूर्तियों को देखकर लोग दांतों तले उंगली दबा लेते थे। उसने अनेक राजाओं व महान हस्तियों की ऐसी मूर्तियां बनाई थीं कि वे स्वयं भी धोखा खा जाते थे कि मूर्तियों का अस्तित्व असली है या स्वयं उनका। धीरे-धीरे मूर्तिकार की ख्याति दूर-दूर तक फैलती गई। एक दिन

साधु उसके पास आया और बोला, पुत्र, अब केवल तुम्हारी एक माह की आयु शेष है। तुम चाहे कोई भी युक्ति आजमाओ तुम्हें मौत के मुंह में जाने से कोई नहीं रोक सकता। यह कहकर साधु चला गया। साधु के जाते ही मूर्तिकार सोच में पड़ गया। आखिरकार उसने मौत से बचने की एक तरकीब सोच ही ली। उसने अपनी कई मूर्तियां बनाईं। नियत दिन यमदूत के आते ही वह स्वयं उन मूर्तियों के बीच मूर्तिवत् खड़ा हो गया। यमदूत हैरान रह गया। वह असली मूर्तिकार को मूर्तियों के बीच में से पहचान ही नहीं पा रहा था किंतु मूर्तिकार के प्राण तो लेने ही थे, इसलिए यमदूत ने युक्ति से काम लिया। उसने मूर्तियों के करीब जाकर उनमें दोष न होते हुए भी दोष निकालने शुरू कर दिए। वह तरह-तरह से मूर्तिकार की आलोचना करने लगा। मूर्तियों में कमियां सुनकर असली मूर्तिकार की भौहें टेढ़ी-मेढ़ी होने लगीं। इस तरह यमदूत ने असली मूर्तिकार को पहचान लिया और इसके बाद कुछ मूर्तियों की प्रशंसा शुरू कर दी। अपनी तारीफ सुनकर मूर्तिकार के चेहरे पर चमक व प्रसन्नता के भाव आ गए। इसके बाद यमराज ने असली मूर्तिकार का हाथ पकड़ा और बोला, मानवीय भावों में निंदा और प्रशंसा के कारण ही इंसान मृत्यु को नहीं जीत पाता और जब तक जीवन है तब तक उसमें निंदा और प्रशंसा के भाव आते ही रहेंगे और मृत्यु का सिलसिला भी अनवरत चलता ही रहेगा। यह कहकर यमदूत मूर्तिकार को अपने साथ लेकर चला गया।

१३२४) मूर्तिकार की सीख- एक विख्यात मूर्तिकार ने अपने बेटे को भी मूर्तिकला सिखाई। एक व्यक्ति मूर्तियाँ बनाने का कार्य करता था। यह कला उसने अपने बेटे को भी सिखाई। दोनों बाजार जाते और अपनी-अपनी मूर्तियाँ बेचकर आते। पिता को मूर्तियों की कीमत डेढ़-दो रुपये मिल जाती थी जबकि बेटे को आठ-दस आने।

उसका पुत्र इस कला में जल्दी ही पारंगत हो गया, क्योंकि वह भी अपने पिता के समान ही परिश्रमी और कल्पनाशील था। जल्दी ही वह सुंदर मूर्तियां बनाने लगा। वापस आने पर कालाकार बेटे को मूर्तियों के अवगुण बताकर कार्य की बारीकी समझाता। धीरे-धीरे लड़के को एक मूर्ति की कीमत पाँच रुपये मिलने लगी जबकि पिता को उतने ही रुपये मिलते थे। वह अब भी उसके दोषों को सुधारने का कार्य करता था।

फिर भी मूर्तिकार अपने पुत्र द्वारा बनाई गई मूर्तियों में कोई न कोई नुक्स जरूर निकाला करता था। वह कभी खुलकर उसकी प्रशंसा नहीं करता, बल्कि कई बार तो झिड़क भी देता था। कई सालों तक यही सिलसिला चला। मूर्तिकार का बेटा अपने पिता जैसी ही मूर्तियां बनाने लगा। सब उसकी सराहना करते, उसकी मूर्तियों की मांग बढ़ने लगी, फिर भी उसके पिता के रवैये में कोई तब्दीली नहीं आई। इससे उसका पुत्र चिंतित रहता था, हालांकि उसकी लगन में कोई कमी नहीं आई। एक दिन उसे एक युक्ति सूझी। उसने एक आकर्षक मूर्ति बनाई और अपने एक मित्र के जरिए उसे अपने पिता के पास भिजवाया। उसके पिता ने सोचा कि यह उसी मित्र की बनाई हुई है। उसने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तभी वहां छिपकर बैठा उसका पुत्र निकल आया और गर्व से बोला, यह मूर्ति असल में मैंने बनाई है। आखिरकार मैंने वैसी मूर्ति बना ही दी, जिसमें आप कोई खोट नहीं निकाल सके।

एक दिन बेटे ने नाराज होते हुए कहा, अब तो मुझे ज्यादा पैसे मिलने लग गए हैं आपसे मेरी ही कला अच्छी है।

पिता ने उसे टोकने का कारण बताया बेटे। जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो मुझे भी अपनी कला का अभिमान हो गया था जिसके कारण मैं आज तक दो ही रुपये प्राप्त करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि जिस गलती के कारण आज तक मैं पीड़ित हूं वही गलती तुम न करो। मैं चाहता हूँ कि तुम सर्वश्रेष्ठ कलाकार बनो।

मूर्तिकार ने कहा, बेटा एक बात गांठ बांध लो। अभिमान व्यक्ति की उन्नति के सारे रास्ते बंद कर देता है। आज तक मैंने

तुम्हारी प्रशंसा नहीं की, हर वक्त तुम्हारी मूर्तियों में कमियां निकालता रहा, इसीलिए तुम इतनी अच्छी मूर्तियां बनाते रहे। अगर मैं तुम्हें कह देता कि तुमने बहुत अच्छी मूर्ति बनाई है तो शायद तुम अगली मूर्ति बनाने में पहले से ज्यादा सचेत नहीं रहते, क्योंकि तुम्हें लगता कि तुम पूर्णता को प्राप्त कर चुके हो, जबकि कला के क्षेत्र में पूर्णता की कोई स्थिति ही नहीं होती है। मैं स्वयं अपने को पूर्ण नहीं मानता। लेकिन आज जो तुमने नाटक किया उससे तुम्हारा ही नुकसान होगा। यह सुनते ही पुत्र लज्जित हो गया। बेटे को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने पिता से क्षमा मांगी।

१३२५) त्याग और तप- वाचस्पति मिश्र का विवाह अल्पायु में ही हो गया था। जब वे विद्या अर्जित करके धर वापस लौटे तो उन्होंने अपनी माता से वेदान्त दर्शन पर टीका लिखने की आज्ञा मांगी। जब वे टीका लिखने लगे तो उन्होंने अपनी माता से कहा कि जब तक उनकी टीका पूरी न हो जाए तब तक उनका ध्यान भंग न किया जाए।

माता चूंकि काफी बूढ़ी हो चुकी थी, सो उन्होंने अपने पुत्र की साहित्य साधना में सहयोग करने के लिए अपनी पुत्र वधू भामती को बुला लिया। भामती ने पति गृह में प्रवेश करते ही वाचस्पति मिश्र की सेवा और उनकी समस्त आवश्यकताओं का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। कुछ समय पश्चात माता जी का देहावसान हो गया। भामती तन-मन से पति की सेवा में लीन रहीं। वाचस्पति मिश्र साहित्य साधना में ऐसे लीन रहे कि उन्हें इस बात का बोध ही नहीं हो पाया कि उनकी सेवा कौन कर रहा है। समय बीतता गया और इस तरह तीस वर्ष की अवधि बीत गयी। एक शाम दीपक का तेल खत्म हो गया और वाचस्पति मिश्र का ग्रन्थ भी पूरा हो गया। दीपक के बुझने से भामती को बड़ा दु:ख हुआ, उसने सोचा कि वाचस्पति को लिखने में नाहक बाधा पढ़ी। वह अन्य काम छोड़कर जल्दी-जल्दी दीपक में तेल डालने लगी। अपने रचना कार्य से अभी-अभी मुक्त हुए साहित्यकार ने जब अपनी पुस्तक से सिर ऊपर उठाया तो सामने खड़ी नारी को देखा। यह तो माँ नहीं है, फिर हमारे अध्ययन कक्ष में कौन है। ऐसा सोच कर उन्होंने आदरपूर्वक पूछा, हे देवी आप कौन हैं ? नजरें झुकाकर सामने खड़ी नारी ने कहा, हे देव। मैं आपकी पत्नी हूं। सुनकर वाचस्पति मिश्र जैसे सघन निद्रा से जागे और पूछ बैठे- देवी तुम्हारा नाम क्या है ? उसने उसी तरह से सकुचाते हुए कहा, मेरा नाम भामती है। वाचस्पति मिश्र उसके त्याग और सेवा भाव से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तत्क्षण कलम उठाई और तीस वर्षों तक कठिन मेहनत करके जिस अप्रतिम ग्रन्थ की रचना की थी, उस पर लिख दिया- भामति। लेकिन जगत में वाचस्पति के तप की कीर्ति फैली, भामति का त्याग अनजाना ही रहा।

१३२६) शब्दों के भाव भी ठीक हों- भाषा में सरलता हो, कुटिलता न हो, किसी को भुलावे में न डाला जाए।

सर्दी में ठिठुर रहे एक आदमी को किसी ने रेस्टोरेंट भेज दिया। उसने कहा- वहां नव कम्बल मिलेंगे। वह आदमी रेस्टारेंट में गया। वहां उसे ठहरने को स्थान मिल गया। सोने का समय हुआ तो उसने कहा- हमें नव कम्बल दो। रेस्टोरेंट वाले ने उसे एक कम्बल लाकर दे दिया। उसने कहा- हम चार आदमी हैं। एक कम्बल से क्या होगा? रेस्टोरेंट के कर्मचारी ने कहा- यहा तो एक ही कम्बल मिलता है। उसने कहा- मुझे तो नव कम्बल देने की बात कह कर यहां भेजा गया था।

कर्मचारी ने कहा- आपके समझने में भूल हुई है। जिसने भेजा उसने नव कम्बल की बात कही होगी। हमने आपको जो कम्बल दिया, वह नया कम्बल ही है। नव का तात्पर्य नये से है, नौ की संख्या से नहीं।

यह शब्दों का धोखा है। अर्थ कुछ होता है, समझ कुछ और लिया जाता है। वाणी का यह धोखा व्यवहार में बहुत चलता है। सामान्य अर्थ से इसे गलतफहमी कह कर टाल दिया जाता है। बहुत जरूरी है कि वाणी में भी सत्य हो, उसमें ऋजुता हो। दूसरों को तो पता नहीं लगता, किंतु स्वयं को पता चल जाता है कि मेरा भाव कैसा है? भाव की कुटिलता किसी न किसी रूप में दूसरों तक पहुंच जाती है।

१३२७) सफलता का रहस्य- किसी गांव में रमेश और दीपक नामक दो मूर्तिकार रहते थे। रमेश की बनाई प्रतिमाएं इतनी सुंदर होती थीं कि लोग उन्हें मुंहमांगे दामों पर खरीद लेते थे। दीपक की मूर्तियां कोई नहीं खरीदता था। एक दिन दीपक ने देखा कि रमेश प्रतिमाएं बनाने में व्यस्त है। उस समय पास से एक सेठ की बरात गुजर रही थी। बरात में बहुत सारे लोग शामिल थे। ढोल-नगाड़े बज रहे थे और आतिशबाजी भी हो रही थी। रमेश प्रतिमाएं बनाने में व्यस्त रहा, उसने बरात की ओर देखा तक नहीं। यह देखकर दीपक रमेश के पास पहुंचा और बोला, अभी यहां से बरात गुजरी थी। गांव के सभी लोगों ने अपने-अपने काम छोड़कर बरात को देखा, पर तुमने तो नजर भी नहीं उठाई। दीपक की बात सुनकर रमेश भौंचक रह गया। उसने आश्चर्य से कहा, तुम किस बरात की बात कर रहे हो। मैंने तो किसी बरात के गुजरने की आवाज नहीं सुनी। दीपक ने कहा, अरे भाई कुछ ही देर पहले एक बरात गुजरी है। सभी ने उसे देखा और ढोल-नगाड़ों की आवाज भी सुनी। ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हें पता ही न लगा हो? दीपक की बात सुनकर रमेश बोला, मैं जब अपना कार्य करता हूं तो मेरा संपूर्ण ध्यान सिर्फ उस कार्य पर ही केंद्रित रहता है। यहां तक कि उस समय मुझे अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती। रमेश की बात सुनकर दीपक को उसकी सफलता का कारण समझ में आ गया। वह जान गया कि एक कलाकार के लिए एकाग्रता सबसे बड़ी चीज है। उस दिन से वह भी ध्यान लगाकर काम करने लगा।

१३२८) सच्चा चित्रकार - एक बार यूनान की राजधानी में चित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। राजा-रानी सर्वश्रेष्ठ चित्र का चुनाव करने आए। सर्वश्रेष्ठ चित्र का चुनाव करते समय वह चित्र के विषय, भाव-भंगिमा, रंग-सामंजस्य आदि पर ध्यान दे रहे थे। कुछ चित्रों को देखकर वे हतप्रभ रह गए। अंत में वे यूनान के महान देवता अपोलो के चित्र के पास पहुंचे। इस चित्र ने उनका ही नहीं सबका मन मोह लिया। उसी चित्र को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया। अपोलो का चित्र बनानेवाले चित्रकार को पुरस्कार प्रदान करने के लिए मंच पर बुलाया गया। लेकिन बार-बार पुकारे जाने के बाद भी चित्रकार मंच पर नहीं आया। राजा-रानी को क्रोध आ गया। उन्होंने सैनिकों को आदेश दिया कि वे उस चित्रकार की खोज करें और उसे पकड़ कर उनके सामने हाजिर करें। सैनिक उसे खोजने निकले और कुछ ही देर बाद उन्होंने उस चित्रकार को राजा के सामने पेश कर दिया। चित्रकार सिर झुकाए खड़ा था। राजा ने उसके इस व्यवहार का कारण पूछा तो उसने धीरे-धीरे सिर उठाया। सब उसे देखकर चौंक गए। वह एक गुलाम था और उस समय गुलामों को अपनी मर्जी से चित्रकारी करने की अनुमति नहीं थी। चित्रकार ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज, मुझे क्षमा करें। चित्रकला मेरे तन-मन में बसी हुई है। मैं लाख चाहकर भी अपने हाथों को रोक नहीं पाता। मेरे हाथ अपने आप कूची और रंगों के साथ कागज पर उतरने लगते हैं। इसके लिए आप जो सजा देना चाहें दें।

उस चित्रकार की बातों से राजा अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए कहा, सच्चा चित्रकार वही होता है जो नि:स्वार्थ भाव से कार्य करे और मृत्यु के भय से भी अपनी कला पर काबू न कर पाए। यह युवक ऐसा ही सच्चा चित्रकार है और सही मायने में यही पुरस्कार का सच्चा अधिकारी है। पुरस्कार देने के साथ राजा ने उसे भविष्य में भी चित्र बनाने की छूट दे दी।

१३२९) अनमोल उपहार - उन दिनों प्रसिद्ध चित्रकार पाब्लो पिकासो पेरिस में संघर्ष कर रहे थे। पेरिस उन दिनों कला-संस्कृति का सबसे अव्वल केंद्र था। वहां कई नामी गिरामी चित्रकार पहले से मौजूद थे। पिकासो की गुजर-बसर जैसे-तैसे चल रही थी। एक दिन पिकासो खाली बैठे थे तभी उनके पास गत्रुर्द स्टीन नाम की लड़की आई और पेंटिंग के संबंध में उसने कई तरह की जिज्ञासा जाहिर की। पिकासो ने उसे ढेरों बातें बताई और आखिर में उस लड़की को सामने

स्थिर बैठने को कहा। इसके बाद उन्होंने गत्रुर्द की एक शानदार पेंटिंग बनाई और फिर उसे उपहार में दे दी। इसके बाद गत्रुर्द और पिकासो अच्छे दोस्त बन गए। बाद में जब पिकासो काफी प्रसिद्ध हो गए, तो एक अमेरिकी कला संग्रहकर्ता अलबर्ट बान ने गत्रुर्द से पूछा कि पेंटिंग बनवाने में उसने पिकासो को कितनी रकम दी थी। गत्रुर्द ने कहा, कुछ नहीं, वह पेंटिंग तो पिकासो ने मुझे उपहार में दी है। यह जान अलबर्ट स्तब्ध रह गए। उन्हें यकीन नहीं हुआ किंतु पेंटिंग पर न केवल पिकासो के हस्ताक्षर थे बल्कि उनके द्वारा लिखे संदेश भी अंकित थे। अलबर्ट ने उस पेंटिंग को खरीदना चाहा मगर गत्रुर्द ने इंकार कर दिया, जबकि उसे लाखों डॉलर मिल सकते थे। बाद में एक दिन गत्रुर्द ने पिकासो को इस बारे में बताया। पिकासो ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा, वह नहीं समझ पाएगा कि उन दिनों बिक्री और उपहार में बहुत मामूली फर्क हुआ करता था और कुछ चित्र इतने अनमोल होते हैं कि उसे उपहार में दे दिया जाता है और यह भावना हमेशा बनी रहेगी।

१३३०) निर्णायक की ईमानदारी- राफेल और एंजेलो इटली के महान चित्रकार थे। उनकी चित्रकारी के नमूने जो कोई भी देखता, दांतों तले उंगली दबा लेता था। एक ही क्षेत्र का होने के कारण दोनों में हमेशा प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी और एक समय ऐसा आया, जब दोनों एक-दूसरे के दुश्मन बन गए। एक बार इटली के एक व्यापारी ने देवालय की दीवारों पर चित्र बनाने के लिए राफेल को आमंत्रित किया। व्यापारी ने राफेल को पारिश्रमिक के रूप में सौ सिक्के अग्रिम के रूप में दिए और शेष राशि काम पूरा होने के बाद देने का वादा किया। राफेल ने दिन-रात एक कर चार उत्कृष्ट भित्ति चित्र बनाए। चित्र बन जाने पर व्यापारी शेष राशि देने में आनाकानी करने लगा। राफेल के बार-बार पारिश्रमिक मांगने पर व्यापारी ने कहा, चित्र कुछ खास नहीं हैं। इन चित्रों का वास्तविक मूल्य उतना ही है जितना मैंने पहले ही भुगतान कर दिया है। जब राफेल ने आपत्ति की तो व्यापारी ने कहा कि चित्र की श्रेष्ठता की जांच के लिए वह एक निरीक्षक की नियुक्ति करेगा। निरीक्षक जो फैसला देगा वह उसे मान्य होगा। राफेल ने इस पर अपनी सहमति दे दी। व्यापारी को राफेल और एंजेलो की दुश्मनी के बारे में पता था, सो उसने जानबूझकर एंजेलो को निरीक्षक नियुक्त किया। व्यापारी को उम्मीद थी कि राफेल से दुश्मनी के कारण एंजेलो उन चित्रों को घटिया करार देगा और इस तरह उसके पैसे बच जाएंगे। नियत दिन एंजेलो ने देवालय पर बनाए गए राफेल के चित्रों का निरीक्षण किया। उसने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि ये चित्र वाकई बहुत मेहनत से बनाए गए हैं। इनमें रंगों एवं रेखाओं का तालमेल भी उत्कृष्ट कोटि का है और इन चित्रों को चित्रकला की एक शानदार उपलब्धि के रूप में देखा जाएगा। एंजेलो ने अपने संबंधों की परवाह न करते हुए राफेल के पक्ष में फैसला सुनाया और व्यापारी को शेष पारिश्रमिक के भुगतान का निर्देश दिया।

१३३१) चित्रकार की उदारता- इंग्लैंड की रॉयल अकादमी के हॉल को चित्रों से सजाने की योजना बनाई गई। इसके लिए देश-विदेश के चित्रकारों को अपने श्रेष्ठतम चित्र भेजने को कहा गया। कुछ ही दिनों में अकादमी के पास चित्रों का ढेर लग गया। अकादमी की विशेषज्ञ समिति इन चित्रों का अवलोकन करती और अच्छे चित्र छांटकर हॉल की दीवार पर लगा देती। अंत में चित्र लगाने के सारे स्थान भर गए, लेकिन छांटे गए सुंदर चित्रों में से एक बचा रह गया। इसे एक युवा चित्रकार ने बनाया था। चित्र में नयापन था और रंगों की बेहतरीन इस्तेमाल किया गया था। विशेषज्ञ समिति के एक सदस्य ने चित्र की बारीकियों पर ध्यान देते हुए कहा, चित्र तो वाकई खूबसूरत है, मगर इसे लगाने के लिए हमारे पास कोई जगह ही नहीं बची है, इसलिए इसे ससम्मान वापस कर दिया जाए। इंग्लैंड के विख्यात चित्रकार टर्नर भी विशेषज्ञ समिति के सदस्य थे। उन्होंने कहा, अभी जगह भरी नहीं है। अब भी एक स्थान बचा हुआ है, जहां यह चित्र लगाया जा सकता है। समिति के सदस्य उन्हें आश्चर्य से देखने लगे। टर्नर उठे और उन्होंने अपना चित्र उतार कर उसकी जगह उस युवा

चित्रकार की पेंटिंग लगा दी। हालांकि टर्नर का चित्र उस युवा चित्रकार की पेंटिंग से बहुत अच्छा था। टर्नर ने कहा, युवा चित्रकार को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, क्योंकि इससे दुनिया को एक महान कलाकार मिलने की राह खुलती है। युवा चिकार को इस सचाई का पता बहुत बाद में चला। वह आजीवन अपनी सफलता का श्रेय टर्नर को ही देता रहा।

१३३२) दोष-सुधार- एक कुशल चित्रकार ने एक चित्र प्रदर्शनी में रखा और उसके नीचे लिख दिया- कृपया जहां गलती हो, वहां निशान लगा दीजिए। अगले दिन चित्रकार प्रसन्न मन से पहुंचा तो यह देखकर हैरान रह गया कि उसका चित्र निशानों से भरा पड़ा था। उसने यह सपने में भी नहीं सोचा था कि उसका चित्र लोगों के निकाले दोषों से इतना ढक जाएगा। वह घर आकर दु:खी मन से बैठ गया। चित्रकार की पत्नी उसे परेशान देखकर बोली, क्या बात है? चित्रकार ने पत्नी को चित्र दिखा दिाय। वह मुस्कराकर बोली, तो आप इसलिए परेशान है। लोगों की तो आदत होती है अच्छे कार्य में भी दोष ढूंढ निकालना। अब आप दूसरे चित्र में यह लिख दीजिए कि कृपया इस चित्र के दोष दूर कर दीजिए। चित्रकार ने पत्नी की बात मानकर ऐसा ही किया। अगले दिन जब वह चित्र देखने पहुंचा तो दंग रह गया कि सचमुच चित्र में एक भी निशान नहीं था। न ही किसी ने दोष ढूंढकर उसे दूर करने की कोशिश की थी जबकि इस बार चित्रकार ने सचमुच चित्र में गलती की थी। यह देखकर वह प्रसन्न मन से घर आया और पत्नी से बोला, तुम बिल्कुल ठीक कह रही थीं। लोग दोष ढूंढना तो जानते है किंतु उसमें सुधार करना नहीं। उसकी पत्नी बोली, बिल्कुल सही कहा आपने। आपका यह चित्र पहले वाले चित्र के मुकाबले कुछ भी नहीं है। बुराई पर चर्चा सब करते हैं, पर बुराई को दूर करना कोई नहीं चाहता। तभी तो दुनिया में इतनी बुराई भरी पड़ी है।

१३३३) साधक का जीवन- तर्कशास्त्र के महान पंडित रामनाथ ने नवद्वीप के वन में गुरुकुल स्थापित किया था। उस समय कृष्ण नगर में विद्यानुरागी महाराज शिवचंद्र का शासन था। उन्होंने पं. रामनाथ की चर्चा सुनी। एक दिन वह उनसे मिलने पहुंच गए। पंडित जी ने उनका समुचित स्वागत सत्कार किया। थोड़ी देर बाद महाराज ने उनसे पूछा, मैं आपकी क्या मदद करूं? रामनाथ ने कहा, राजन्, ईश्वर ने मेरे सारे अभाव मिटा दिए हैं, अब मैं पूर्ण हूं। महाराज बोले, मैं घर खर्च के बारे में पूछ रहा हूं। क्या कोई कठिनाई आ रही है? पंडित जी ने मुस्कराकर कहा, अब घर के खर्च आदि के बारे में गृहस्वामिनी मुझसे अधिक जानती हैं। यदि आपको कुछ पूछना हो तो उन्हीं से पूछ लें। महाराज ने पंडित जी के घर पहुंचकर उनकी साध्वी गृहिणी से पूछा, माताजी, घर खर्च के लिए कोई कमी तो नहीं है? इस पर उन परम साध्वी ने कहा, महाराज, भला सर्वसमर्थ परमेश्वर के रहते उनके भक्तों को क्या कमी रह सकती है? महाराज ने कहा, हम आपको कुछ गांवों की जागीर देना चाहते हैं। इससे होनेवाली आय से गुरुकुल भी ठीक तरह से चल सकेगा और आपके जीवन में भी कोई अभाव नहीं रहेगा। उत्तर में वह वृद्धा ब्राह्मणी मुस्कराई और कहने लगी, राजन्, प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा ने जीवन रूपी जागीर पहले से ही दे रखी है। जो जीवन की इस जागीर को भली प्रकार संभालना सीख जाता है, उसे फिर किसी चीज का कोई अभाव नहीं रह जाता। साधक दंपती के चरणों में महाराज का मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

१३३४) कला का सम्मान- यह घटना उस समय की है, जब संगीतकार मार्तण्ड पंडित ओंकारनाथ ठाकुर की प्रसिद्धि चारों ओर फैल रही थी। संगीत के प्रति उनका समर्पण अद्‌भुत था। वे दिनरात साधना में लगे रहते थे। जो कोई भी उनसे मिलता, उनसे प्रभावित होकर लौटता। एक बार अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने वे इंग्लैंड गए। वहां जब उन्होंने अपना कार्यक्रम पेश किया तो उनकी धूम मच गई। हर ओर उनके संगीत की प्रशंसा की जाने लगी। लोग उनकी कला के कायल होने लगे। उन्हीं दिनों उनके एक अंग्रेज प्रशंसक ने उनसे कहा, आप भारत से आए हैं और आपका संगीत वाकई

झूमने को विवश कर देता है। ऐसे में आप चाहें तो अपनी इस कला को विश्व में चारों ओर फैला सकते हैं। आप चाहें तो आपको और ज्यादा प्रसिद्धि मिल सकती है। ओंकारनाथ ठाकुर ने पूछा, वो कैसे? उस अंग्रेज ने कहा, प्रसिद्धि पाने के लिए आपको एक काम करना पड़ेगा। यदि आप जॉर्ज पंचम को पत्र लिखकर उनसे कार्यक्रम में उपस्थित होने की प्रार्थना करें तो वह अवश्य आएंगे। इससे आपका कार्यक्रम भी बेहद सफल होगा और साथ ही जॉर्ज पंचम आपके संगीत से प्रसन्न होकर आपको रायबहादुर की उपाधि से अलंकृत कर देंगे। आप जानते ही हैं कि ऐसा सौभाग्य बहुत कम ही लोगों को नसीब होता है। उस अंग्रेज की बात सुनकर पंडित जी मुस्कराए और बोले, क्या आप मुझे चाटुकार समझते हैं कि मैं प्रशंसा और पदवी के लिए जॉर्ज पंचम के दरबार में अपनी अर्जी लगाऊँगा। मैं संगीत की साधना सरस्वती की उपासना के रूप में करता हूं। विदेशी शासन की किसी पदवी या पुरस्कार की मेरे मन में कभी चाह नहीं रही और वैसे भी असली कला वही होती है जो किसी पुरस्कार या प्रसिद्धि की चाह नहीं रखती। कला तो अंतर्मन से उपजती है। उसे पुरस्कार या पदवी देकर नहीं पैदा किया जा सकता। वह अंग्रेज कला के प्रति पंडित ओंकारनाथ की यह निष्ठा और दुनियावी सम्मान के प्रति विरक्ति का उनका भाव देखकर चकित रह गया।

१३३५) संगीतकार की शर्त- किसी राजा के दरबार में एक संगीतकार आया। उसने अपना संगीत कार्यक्रम करने की अनुमति मांगी। राजा ने अनुमति दे दी। लेकिन संगीतकार ने एक विचित्र शर्त रखी। उसने कहा, मैं वीणा बजाऊंगा लेकिन उसे सुनते हुए किसी का सिर नहीं हिलना चाहिए। इसे वही सुन सकेंगे जो मूर्ति की तरह बैठे रहेंगे। यह सुनकर राजा को हैरानी हुई। पर कुछ सोचकर उसने यह शर्त मंजूर कर ली। यह बात पूरे राज्य भर में प्रचारित कर दी गई। राजा ने घोषणा की कि जो भी वीणावादन के दौरान सिर हिलाएगा उसका सिर काट दिया जाएगा। लोग इस संगीतकार को सुनना चाहते थे पर इस कठिन शर्त के कारण कोई हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। चारों तरफ इस अनोखे आयोजन की चर्चा होने लगी। सब यही कह रहे थे कि इस कार्यक्रम में एक भी व्यक्ति नहीं पहुंचेगा। मगर नियत दिन कुछ लोग वीणावादन सुनने आ ही गए। सबको आश्चर्य जुआ कि आखिर कैसे कौन लोग हैं जो जान जोखिम में डालकर संगीत सुनने पहुंचे हैं। क्या वे पूरे कार्यक्रम के दौरान बुत बने बैठे रह सकते हैं ?

आयोजन स्थल पर नंगी तलवार लिए सैनिक तैनात थे। संगीतकार ने वादन शुरू किया। कुछ देर तक लोग मूर्तिवत बैठे रहे। फिर थोड़ी देर में उनके सिर हिलने लगे। उसके बाद तो वे झूमने लगे और मस्त होकर वाह-वाह करने लगे। आधी रात को वादन समाप्त हुआ। सारे श्रोताओं को पकड़ लिया गया। शर्त के मुताबिक उनके सिर काटे जाने थे। राजा ने उनसे इस तरह जान खतरे में डालकर आने का कारण पूछा तो वे बोले, हम संगीत के दीवाने हैं। हमारा सिर भले ही काट दिया जाए पर हमें इस बात का संतोष है कि हमने जीवन के अंतिम क्षण उच्च स्तरी संगीत सुनते हुए बिताए। राजा दंग रह गया। तभी संगीतकार ने कहा, महाराज, ये संगीत के सच्चे पारखी हैं। असल में मैं ऐसे ही लोगों की तलाश में था। राजा ने संगीतकार के कहने पर उन्हें छोड़ दिया।

१३३६) ओंकार नाथ ठाकुर- संगीत मार्तण्ड पंडित ओंकार नाथ ठाकुर ने सन १९३३ में यूरोप की प्रथम यात्रा की। वहां एक उच्च अधिकारी ने पंडितजी से कहा, आप सम्राट जार्ज पंचम को एक पत्र लिखकर अपना संगीत सुनाने की याचना करें। ऐसा करने से आपको राय बहादुर की पदवी प्राप्त हो जाएगी।

पण्डित ओंकार नाथ ने जवाब में कहा, अरे। भारत का यह कलाकार क्या जार्ज पंचम को अपना संगीत सुनाने की भीख मांगेगा ? नहीं, नहीं। कभी नहीं। यदि उनको स्वयं आवश्यकता नहीं है, तो भला मुझे ही क्या पड़ी है राय बहादुर

जैसी पदवी की मेरे मन में कौड़ी भर की कीमत नहीं है।

१३३७) संगीताचार्य विष्णु दिगम्बर पलुष्कर लाहौर में शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देते थे। अध्यापक पूर्ण सिंह की पत्नी श्रीमती माया देवी उनसे शास्त्रीय संगीत सीखा करती थीं।

एक दिन माया देवी ने अनोखी घटना देखी। विष्णु दिगम्बर पलुष्कर आसन पर बैठे तानपूरा बजा रहे थे। वह संगीत की सुर-लहरी में इतने खो गए कि कुछ सुध ही नहीं थी। माया देवी ने देखा- एक विषधर घर की सीढ़ियां चढ़कर विष्णु जी के सामने फन उठाए खड़ा है। वह हिलता-डुलता नहीं था। पर संगीतज्ञ विष्णु जी ने एक क्षण भर को भी आंख उठाकर उस सांप को नहीं देखा। विष्णु जी संगीत की दुनिया में खोए थे और उनके शिष्य हक्के-बक्के इस दृश्य को देख रहे थे। किसी में भी शोर मचाने या उस विषधर को वहां से हटाने का साहस नहीं हो रहा था।

विष्णु दिगम्बर का आलाप समाप्त हुआ। संगीत की लहरियां थम गई तो सांप चुपचाप सीढ़ियां उतर कर अपनी राह चला गया। सबने राहत की सांस ली।

१३३८) सत्य का स्वभाव- चीन के सुप्रसिद्ध रहस्यदर्शी लाओत्सु ने जब जान लिया कि उनकी देह का अंत निकट है तो वे देहमुक्ति के लिए हिमालय के निर्जन क्षेत्र की ओर निकल पड़े। सीमांत पर उन्हें राजा के अनुचरों ने रोक कर कहा, महाराज की आज्ञा है कि आपसे चुंगी लिए बिना आपको आगे न जाने दिया जाए।

लाओत्सु मुस्कराए, मेरे पास कुछ भी तो नहीं है।

अनुचर दृढ़तापूर्वक बोले, राजा का कहना है कि आपके पास बहुत कुछ है। उसमें से कुछ देते जाइए।

आजीवन अपने मौन और कृत्यों से सत्य की झलक देने वाले लाओत्सु ने उस घड़ी उस चौकी पर जो कुछ कहा, उसी पर चीन व विश्वसाहित्य की रहस्य पुस्तक ताओ तेह किंग की रचना हुई। नन्हीं सी उस पुस्तिका का प्रथम वचन है- सत्य कहा नहीं जा सकता।

१३३९) दो बातें- महात्मा सुकरात के विषपान का समय निकट आ रहा था। किसी ने पूछा- तुम घबरा नहीं रहे हो। मौत करीब आ रही है ?

सुकरात बोले- दो बातें नहीं हो सकतीं। या तो मैं मर ही जाऊंगा, कुछ भी न बचेगा। और अगर मर ही जाऊंगा तो फिर भय कैसा? क्योंकि भय के लिए बचना जरूरी है। फिर दुख कैसा ? क्योंकि दुख के लिए भी मेरा होना जरूरी है। फिर डर क्या है ? अगर मैं मर ही गया, कुछ भी न बचा तो डर नहीं है।

अगर मैं बच गया और नहीं मरा तो फिर भय का कोई प्रश्न नहीं है। जब बच ही गया तो डर कैसा ? वह जो मर गया, वह मैं नहीं था जो जानूंगा और जो बच गया वही मैं हूं।

१३४०) असली हकदार- आयुर्वेद के प्रकांड पंडित नागार्जुन को एक सहायक की आवश्यकता थी। अनेक नवयुवकों ने अपनी सेवा समर्पित करने की इच्छा व्यक्त की। इन युवकों में से नागार्जुन ने दो युवकों का चयन किया और उन्हें परीक्षा के तौर पर दो दिन के अन्दर पदार्थ से औषधि तैयार कर लाने का आदेश दिया। दोनों युवक अपने घर लौट गए और अगले दिन नियत समय पर उनके सम्मुख उपस्थित हुए। उनमें से एक ने औषधि तैयार कर ली थी, मगर दूसरा खाली हाथ ही आया था, उसने नागार्जुन से क्षमा मांगते हुए कहा कि श्रीमानजी मैं निश्चित समय पर औषधि तैयार नहीं कर सका। नागार्जुन के कारण पूछने पर उसने बताया, गुरुवय यहां से लौटकर जाते समय रास्ते में एक वृद्ध की खराब तबीयत देखकर रुक गया और आज तक उस बीमार एवं असहाय की सेवा-सहायता में लगा रहा। अभी वह पूर्णरूपेण

स्वस्थ नहीं हुआ। औषधि निर्माण के लिए मुझे दो दिन का समय और प्रदान करें। दूसरे नवयुवक ने जो औषधि तैयार कर चुका था, प्रतिवाद किया-गुरुवर। अनेक समस्याएं मेरे भी सम्मुख आई। घर में माताजी तेज बुखार से पीडित थी, पिता और छोटे भाई भी अस्वस्थता की दशा में कष्ट झेल रहे थे। मगर उनकी उपेक्षा कर आपकी आज्ञानुसार मैं अपनी साधना में निमग्न रहा। नागार्जुन एकाएक गंभीर हो गए। उन्हें तत्क्षण दूसरे युवक को आदेश दिया, तुम शीघ्र जाओ और अपने बीमार परिजन की देखभाल करो। मैंने इस युवक को अपना सहायत चुन लिया है। फिर उन्होंने कहा, औषधि जीवन रक्षा के लिए होती है यदि उसका निर्माता रोगनाश एवं जीवन रक्षा के अपने कर्तव्य से विमुख होता है तो उसे योग्य कैसे समझा जा सकता है ?

१३४१) एक रोज किसी दुबले-पतले भेड़िये की एक मोटे-ताजे कुत्ते से मुलाकात हो गई। भेडिये ने कुत्ते से उसकी तन्दुरुस्ती और ताजगी का रहस्य पूछा। कुत्ता बोला, मेरा मालिक मुझे अच्छा, पौष्टिक खाना खिलाता है। तुम भी मेरे साथ रहो तो ऐसे ही हो जाओ। भेड़िये ने पूछा, तुम्हें अपने मालिक का क्या काम करना होता है ? कुत्ता बोला, सिर्फ घर की रखवाली। भेड़िये ने इस कार्य के लिए अपने को समर्थ माना और कुत्ते के साथ चलने को राजी हो गया। दोनों शहर की तरफ आ ही रहे थे कि अचानक भेड़िये की नजर कुत्ते की गरदन पर पड़ी। उसने पूछा, यह तुम्हारी गरदन में क्या बँधा है ?

कुत्ते ने बताया, यह पट्टा है। दिन में मेरा मालिक मुझे बाँध देता है, ताकि मैं कहीं और न चला जाऊं या घर के लोगों को तंग न करूँ। फिर रात को घर की रखवाली के लिए खुला छोड़ देता है। तुम रहोगे तो तुम्हें भी ऐसा ही पट्टा पहनना पड़ेगा। यह सुनकर भेड़िया उलटे पैरों लौटने लगा, बोला- मुझे जंगल में आजाद रहकर रूखा-सूखा खाना मंजूर है, पर मालिक का बँधुआ होकर मोटा-ताजा बनना नहीं।

१३४२) सुई-धागा- विख्यात संत स्वामी श्री स्वयंज्योति जी महाराज ऋषिकेश में एक साधारण कुटिया में रहकर साधना किया करते थे। दिन में एक बार भिक्षा प्राप्त कर लेते। कुछ ही समय में भोजन ग्रहण कर शेष समय शास्त्राध्ययन तथा भजन में बिताते। वह केवल दो लंगोटी तथा चादर के अलावा कुछ नहीं रखते थे। एक दिन उनके एक भक्त ने देखा कि बाबा की लंगोटी फट गई है, वह दुकान से सुई-धागा खरीद लाया तथा स्वामी जी से बोला, आपकी लंगोटी सिल देता हूं।

स्वामी जी अपने तमाम काम स्वयं करते थे। उन्होंने सुई-धागा लिया तथा लंगोटी सिल ली। स्वामी जी ने भक्त को सुई-धागा वापस किया, तो वह बोला, बाबा, फिर कभी जरूरत पड़ सकती है, इसलिए पास में सुई-धागा रहना चाहिए। स्वामी जी ने कहा, इस चाहिए को मिटाने के लिए ही तो हम गृहस्थी त्यागकर जंगल में आए हैं। मुझे इस चाहिए के चक्कर में न डालो। सुई-धागे से मोह हो गया, तो फिर चाहत की सीमा न रहेगी। अपना सुई-धागा वापस ले जाओ। वह भक्त स्वामी जी की त्याग-भावना देखकर हतप्रभ रह गया।

१३४३) गाँव और शहर - एक दिन शहर ने गांव से सीना फुलाकर कहा, ऐ गंवार। देखो तो शहर में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, कृषि संस्थान, अभियांत्रिकी संस्थान से लेकर कला-संस्कृति, लोक नाट्य तक हैं। सारे देश-विदेश के दर्शन-चिंतन, अतीत-वर्तमान, भविष्य की गंभीर सोच सब शहर में है। छि... छि। तुझे अपनी जहालत, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, बीमारी इत्यादि पर तनिक भी चिंता नहीं होती क्या ?

अपने गोबर सने हाथों से पैर की बिवाइयों को सहलाता हुआ गांव बोला- ठीक कहते हो भाई, तुम्हारी खूबसूरती, तुम्हारी ऊंचाइयां मुझे नसीब कहां ? मेरे खेतों में उगने वाला अनाज शहर के गोदामों में बंद है। अस्पताल तो है लेकिन डॉक्टर-नर्स-कंपाउंडर सब शहर में जमे रहते हैं। जो रहते हैं वो भी एबार्शन इंजेक्शन, सलाइन की बीमारी फैलाकर लूट रहे हैं।

स्कूल के सारे मास्टर जिला शिक्षा कार्यालय का चक्कर ही काटते रहते हैं। उस पर एक बात और है, कहूं या न कहूं...

कहीं बिगड़ तो नहीं जाओगे ? इतना कहकर गांव शहर का मुंह निहारने लगा।

शहर बोला- बोलो भाई, बोलो... मैं कोई बाघ तो नहीं कि निगल जाऊंगा, तुम नि:संकोच बोलो।

गांव गला खंखार कर बोला- सारा ज्ञान-विज्ञान, कला-संस्कृति, दर्शन-चिंतन तुम्हारे पास है, फिर भी सारे दंगे शहर में ही क्यों पैदा होते हैं ? इसका जवाब दोगे क्या ? सारे भगवान भी तो शहर में ही रहते हैं न।

यह सुनकर शहर का चेहरा स्याह हो गया और गांव वहां से चुपचाप जाकर खेतों की हरियाली में खो गया।

१३४४) विनम्रता- एक नदी के किनारे पर शमी का वृक्ष था। वह प्राय: नदी में खड़े बेंत के झुरमट का उपहास उड़ाता रहता और कहता, तुम्हारी भी कोई जिंदगी है कि जो लहरों की हल्की सी थपेड़ खाकर भी झुक जाते हो और मुझे देखो हर समय कितनी शान से सिर उठाकर जीता हूं। इस प्रकार जब भी शमी का वृक्ष बेंत का उपहास उड़ाता तो बेंत केवल इतना कहता- वृक्षराज मैं तो विनम्रता में विश्वास करता हूं, अभिमान में नहीं। शमी वृक्ष उसकी बात सुनकर काफी देर तक हंसता रहा। एक दिन नदी में भीषण बाढ़ आयी और लोगों ने देखा कि शमी का वृक्ष जड़ से उखड़कर तूफान में बह गया परंतु वहीं पर वह बेंत जल के प्रवाह से लचक कर जमीन के साथ लग गया था, बाढ़ का पानी उतर जाने पर वह बेंत खड़ा होकर सीधा हो गया।

वह बेंत का वृक्ष, शमी के वृक्ष का अंतर देखकर हंसा नहीं, बल्कि ईश्वर को धन्यवाद देते हुए बोला कि, भगवान मैं आपका शुक्रगुजार हूं कि आपने हमें अकड़ा हुआ और अभिमानी न बनाकर नतमस्तक और विनम्र बनाया।

१३४५) उलाहना- आंधी का तेज झोंका आया और वृक्ष को जड़ से उखाड़कर नीचे गिरा गया। वृक्ष को धरती पर बड़ा गुस्सा आया। बड़बड़ाते हुए बोला, आज जो मेरी दुर्गति हुई उसके लिए तुम ही उत्तरदायी हो। तुमने मेरी खुराक बंद कर दी। एक-दो दिन की बात होती तो मैं सहन भी कर लेता। मैं भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर सूख गया और तुमने मेरे साथ यह निर्दयता दिखाई। अब भूमि पर पड़ा देखकर तुम्हारा कलेजा ठंडा हो गया ? वृक्ष की यह जली-कटी बातें सुनकर धरती बड़ी दु:खी हुई और वह सांत्वना देते हुए बोली, भला मां अपने बच्चे की दुर्गति देखकर खुश हो सकती है ? मैं तो तुम सभी के लिए अपने अंदर जल तथा अन्य पौष्टिक तत्वों को समेट-समेट कर रखती हूं। जिस प्रकार तुम जैसे वृक्ष फलों का उपयोग अपने लिए न कर दूसरों को बांटते रहते हो, वैसे ही एकत्रित खुराक को मैं भी तुम सबके लिए ही रखती हूं और आवश्यकतानुसार देती रहती हूं, पर तुम्हारी जड़ें ही खोखली हो गयी थीं, इसके लिए मैं क्या करती ?

१३४६) पूरक- एक बार सूरज ने चांद को धिक्कारते हुए कहा, अरे मूर्ख। हमेशा मेरे पीछे ही क्यों चलते हो, कभी स्वयं भी कुछ करो। पराये को सदा ओढ़ने में तुझे शर्म नहीं आती ? चंद्रमा ने अपनी गंभीर दृष्टी से सूरज की ओर विनम्रता से देखते हुए कहा, इतना घमंड न करो सृष्टि के शासक। मैं जिस दिन तुम्हारे पीछे चलना छोड़ दूंगा, उसी दिन तुम्हारी सत्ता ही समाप्त हो जायेगी, क्योंकि तुम मेरे बिना, अधूरे हो, मैं तुम्हारी पूर्ति हूं। तुम यदि कर्तव्य हो तो मैं प्रेम हूं। दोनों की पूर्ति के बिना शासन दूषित रहता है। कर्तव्य के पवित्र चरणों से तुम जीवन के पथ पर जो घाव छोड़ते जाते हो, मैं पीछे-पीछे चलकर उन पर चंदन छिड़कता हूं। यह सुनते ही सूरज का भ्रम टूट गया।

१३४७) पूर्णता के लिए- पानी से भरे घड़े के ऊपर रखी छोटी सी कटोरी ने घड़े से शिकायत की कि तुम प्रत्येक बर्तन को, जो तुम्हारे पास आता है। अपने शीतल जल से भर देते हो, किसी को खाली नहीं लौटाते, परंतु मुझे कभी नहीं भरते, जबकि मैं सदा तुम्हारे साथ रहती हूं। इतना पक्षपात तो तुम्हें शोभा नहीं देता।

घड़े ने शांत स्वर में उत्तर दिया। इसमें पक्षपात की कोई बात नहीं, अन्य सारे बर्तन मेरे पास आकर विनीत भाव से

झुकते हैं, जिससे मैं उन्हें अपने शीतल जल से भर देता हूं, परंतु तुम तो गर्व से चूर हमेशा मेरे सिर पर सवार रहती हो, इसलिए मैं तुम्हें भर नहीं पाता। यदि तुम भी नम्रता से जरा झुकना सीखो, तो तुम भी खाली नहीं रहोगी।

१३४८) सूरत नहीं, सीरत- एक बाग में बहुत से पेड़-पौधे थे। वसंत की एक सुबह गुलाब के पौधे पर फूल खिला। हर किसी ने उसकी खूबसूरती की तारीफ की। गुलाब ने इठलाकर कहा, मानो या न मानो, मैं इस संसार का सबसे सुंदर फूल हूं। मेरी पड़ोसन कांटों से भरी नागफनी को देखो, कितनी भद्दी लगती है। गुलाब का यह घमंड दूसरों को बुरा लगा। पीपल ने कहा, गुलाब, इस सुंदर फूल के नीचे तुम भी कांटों से भरे हो, इसलिए नागफनी का अपमान करना तुम्हें शोभा नहीं देता। गुलाब ने तीखे स्वर में कहा, पीपल, तुम तो मूर्ख ही निकले। कांटों के कारण मेरी तुलना इस नागफनी से करते हो। तुमने उम्र ही बढ़ाई, ज्ञान नहीं बढ़ाया।

इस विवाद में नागफनी खामोश ही रही, लेकिन हर कोई गुलाब को कोस रहा था। लेकिन गुलाब का घमंड था कि बढ़ता जाता। वह हर रोज नागफनी से कहता, न रंग, न सुगंध, बस कांटे ही कांटे। मुझे खेद है कि तुम मेरी पड़ोसी हो।

जल्द ही वसंत बीत गया और गरमियां शुरू हो गईं। गुलाब के फूल झड़ गए। हर तरफ पानी के लिए हाहाकार मच गया। पेड़-पौधे मुरझाने लगे। गुलाब के लिए भी जिंदा रहना मुश्किल हो गया। तभी एक दिन एक चिड़िया आई। उसने नागफनी के तने में चोंच मारी और पानी पीकर उड़ गई। यह देखकर गुलाब को हैरानी हुई। उसने पूछा, क्या इससे नागफनी को दर्द नहीं होता? जवाब पीपल ने दिया, होता है, लेकिन दूसरों के कष्ट दूर करने के लिए नागफनी इसे चुपचाप सह लेती है। गुलाब ने पूछा, तो क्या मुझे भी पानी मिल सकता है ? पीपल ने कहा, जरूर। नागफनी तो हर किसी की मदद करने के लिए तैयार रहती है, लेकिन तुम्हें इस काम में चिड़िया की मदद लेनी होगी। गुलाब ने चिड़िया से मदद मांगी और चिड़िया ने नागफनी से पानी ला-लाकर गुलाब को सींच दिया। तब गुलाब को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसकी समझ में आ गया कि बाहरी खुबसूरती बहुत सतही होती है। असली सुंदरता सूरत में नहीं, सीरत में होती है।

१३४९) उल्लू और हंस का वार्तालाप- एक वृक्ष पर एक उल्लू बैठा था। उसी पर आकर एक हंस बैठ गया और स्वाभाविक रूप से बोला आज सूर्य प्रचंड रूप से तप रहा है, इससे गर्मी तेज लगती है। उल्लू यह सुनकर बोला- सूर्य कहां है ? गर्मी तो अंधकार बढ़ने से होती है, जो इस समय भी हो रही है। उल्लू की आवाज सुनकर बड़े वटवृक्ष पर बैठे अनेक उल्लू आकर हंस को मूर्ख बनाने लगे और सूर्य के अस्तित्व को स्वीकार न करके हंस पर झपट पड़े। हंस अपने प्राण बचाकर भाग निकला।

महर्षि पैंगल पक्षियों की भाषा जानते थे, वे त्रिकालदर्शी भी थे। यह घटना बताते हुए कहा कि शिष्यों आज की परिस्थिति में जो धार्मिक परंपराएं डाली जा रही हैं, वे कलयुग तक पहुंचते-पहुंचते आडम्बर बन जाएगी और बहुसंख्य समाज जीर्ण परंपराओं को गले लगाए रखेगा। विवेकवानों की स्थिति इस हंस जैसी हो जाएगी।

शिष्यों ने पूछा- तात। फिर धार्मिक परंपराओं का पुन: जीवन कैसे होगा ? पैंगल बोले उसे कोई प्रज्ञाशक्ति ही स्थापित करेगी। उस समय राजहंस अपने हंस समुदाय के साथ इन उल्लुओं को मार भगायेगा और विवेक को स्थापित करेगा। इस प्रतीकात्मक कथा पर यदि आप गौर करें तो आज के दलदल सिद्धातों, कार्य व्यापारों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

एक दल की यथार्थता की क्रियाविधि को विपक्ष ने ऐसे ही नकार कर अपना उल्लू सीधा करना आज का धर्म बना लिया है, भले ही वह कानून जनहिताय, सर्व सुखाय हो। विरोध विरोध के लिए ऐसा ही होता है, क्योंकि विरोध तर्कसंगत न होकर अपना वर्चस्व कुतर्की द्वारा सिद्ध करना हो गया है।

१३५०) पेड़ और लता- एक बगीचे में एक पेड़ के सहारे लिपटी लता फल-फूलकर कोमल, शीतल और छायादार हो गई। पेड़ को यह देखकर घमंड हो गया। वह बोला, यदि मैं नहीं होता तो तू कब की सूख जाती। मेरी आज्ञा का पालन किया कर। यह सुनकर लता बस मुस्करा कर रह गई। एक दिन सूर्य के ताप से व्याकुल दो राहगीर पेड़ के नीचे आ खड़े हुए। कोमल लता से सजे उस वृक्ष को देखकर एक राहगीर बोला, यह वृक्ष इस सुंदर लता के कारण शीतल और छायादार हो गया है। इस पर दूसरे राहगीर ने कहा, हां, अगर यह लता न होती, तो इस पेड़ का कोई उपयोग न था। वृक्ष ने उस राहगीर की बात सुनी तो उसका गर्व चूर-चूर हो गया।

१३५१) पूजा करने में ज्यादा सुख- एक दिन फूलों को लगा कि हमेशा पत्थरों की ही पूजा क्यों होती है। यह भला कहाँ का न्याय है ? पूजा तो हमारी भी की जानी चाहिए। सोचकर वे प्रकृति से रूठ गये तो प्रकृति ने उनसे कहा कि परेशान होने की कोई बात नहीं है। आज से पत्थर तुम्हारी पूजा किया करेंगे।

फूलों ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया, लेकिन जैसे ही एक ऊबड़-खाबड़ और भारी सा पत्थर सैकड़ों फूलों पर चढ़ा, उनकी जान निकलने लगी और वे मुरझाने लगे। तब फूलों ने प्रकृति से प्रार्थना की कि हमें पूजा का सम्मान नहीं चाहिए। सुख पूजा पाने में नहीं, पूजा करने में है। तभी से इस देश में पत्थरों की पूजा होने लगी और आज तक होती चली आ रही है।

१३५२) जहर का भय- एक चूहे और साँप में गहरी दोस्ती थी। चूहे के दोस्तों ने उसको समझाया कि साँप से दोस्ती न करो, क्योंकि साँप के काटने से उसके जहर से मृत्यु हो सकती है। उसने सोचा, यह जहर आखिर है क्या, पता लगाना चाहिए।

एक दिन चूहा और साँप दोनों खेत में छिप गये। कुछ देर बाद किसान अपने पुत्र के साथ वहाँ आया और उसको फसल दिखाने लगा, तभी साँप को एक उपाय सूझा। वह निकला और किसान के बेटे को काट कर शीघ्रता से छिप गया। लेकिन किसान ने चूहे को देखा और सोचने लगा, डरने की कोई बात नहीं, चूहे ने ही तो काटा है और वह इस घटना को भूल गया। कुछ दिन बाद पुन: जब किसान अपने बेटे को लेकर खेत में आया, तो इस बार चूहे ने उसको काट खाया, लेकिन किसान को साँप दिखायी दिया और डर के कारण वह चिल्ला उठा, साँप-साँप, भय से उसका बेटा बेहोश हो गया। इस घटना के बाद दोनों मित्र समझ गये कि जहर वास्तव में और कुछ नहीं, उस किसान के मस्तिष्क की ही उपज थी। दोनों मित्र समझ गये कि मस्तिष्क के द्वारा सर्वगुण सम्पन्न भी बना जा सकता है और दुर्गुणयुक्त भी। यह जहर दुर्गुणों को ही प्रकट करता है, अत: मस्तिष्क का उपयोग ही बुद्धिमानी की पहचान है।

१३५३) और सागर हिलोरें ले रहा था- नाला बहता-बहता झील के पास जा पहुंचा। उसने झील से कहा, बहन। मुझे आश्रय दोगी। दूर से बहता आया हूं।

चल भाग। झील ने कहा, मुझे तुझ-जैसे गन्दे नाले को आश्रय नहीं देना है।

निराशा नाला फिर आगे चल पड़ा। अन्तत: वह सागर के पास पहुंचा। उसने विनीत स्वरों में कहा, आदरणीय, कृपया मुझे आश्रय दें। अपने अंक में ले लें।

सागर ने हाथ बढ़ाते हुए कहा, देर किस बात की है। जल्दी आ जाओ। तुम्हारे भाई-बहन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

औरत्र ऋतु परिवर्तन हुआ। तपती ग्रीष्म में झील का पानी सूख गया। और सागर, वह अभी भी हिलोरें ले रहा था।

१३५४) पेड की पीड़ा- एक बार धरती में दबे बीज को अपने नन्हेंपन पर बड़ी हीनता का अनुभव हुआ। बीज ने धरती मां के सामने इस बात का दु:ख प्रकट करते हुए कहा- मां मुझे अब नन्हा नहीं रहना है। आप मुझे जैसे भी हो बड़ा बना दें। धरती मां ने कहा- पुत्र तुम्हें अपनी शक्ति एवं संभावनाओं का सही ज्ञान नहीं है वर्ना तुम ऐसी जिद नहीं करते। बालहठ

करते हुए बीज ने कहा- जैसे भी हो मेरी तो बस एक ख्वाहिश पूरी कर दो कि मुझे बड़ा बना दो। जब बीज हर तरह से समझाने पर भी नहीं माना तो धरती मां ने उसे एक बड़ा वृक्ष बना दिया। वह बीज बड़ा प्रसन्न हुआ। हवाओं के साथ झूमने लगा। बीज की प्रसन्नता और उल्लास का पार नहीं था। थोड़ी देर में झूमते-नाचते पेड़ ने देखा कि कोई लकड़ी पाने के लिए उनकी डाली काट रहा है, कोई दातुन के लिए उसकी टहनी तोड़-मरोड़ रहा है। आते-जाते जानवरों का वह नाश्ता बन रहा है। कोई चरवाहा चारा प्राप्त करने के लिए उसके पत्ते छांग रहा है। आते-जाते बच्चे फल प्राप्त करने के लिए उस पर पत्थरों की बौछार कर रहे हैं। पक्षियों ने उस पर अपने-अपने घोंसले बना लिए। उन्होंने अपनी बीटों से पेड़ को गंदा भी कर डाला। आंधी-तूफान ने उसे इतनी जोर से झकझोरा कि वह जड़ से उखड़ते-उखड़ते बचा। पतझड़ ने उसकी समस्त पत्तियां गिरा उसे निरा ठूंठ बना डाला। अब पेड़ बने बीज को उसे अपनी विकट स्थिति पर गहरा दु:ख होने लगा। वह काफी पछताया। उसे अपने उस नन्हें बीज स्वरूप की याद आई जब वह पूरी तरह सुरक्षित था। उसने मां धरती से पुन: प्रार्थना की कि उसे पुन: नन्हा बना दे पर धरती मां ने जवाब दिया- अब उसे पेड़ से बीज बनाना संभव नहीं है। बहुत गहन मनन एवं सोच-विचार के बाद उसने अपनी सारी मेहनत भूल को ठीक करने पर केन्द्रित कर दी। काफी समय गुजर जाने पर उसने अगणित नन्हें बीजों को अपनी ऊर्जा से जन्म देकर अपनी भूल मुस्कराते देखकर पेड़ को अपना बचपन याद आ गया। उसने बीजों को प्यार से पुकार कर कहा- बच्चों, हमेशा जिंदगी में छोटे और विनम्र बने रहना ताकि संकट के आंधी और तूफान से बच सको।

१३५५) सफलता का रास्ता- एक गांव में संगमरमर का एक विशाल और भव्य मंदिर था। संगमरमर के अतिरिक्त वहां किसी दूसरे पत्थर का प्रयोग नहीं हुआ था। भगवान की प्रतिमा भी संगमरमर की ही थी। लोग आते, मंदिर के आंगन में जूते उतारते, भीतर जाकर फल-फूल, धूप दीये आदि से भगवान की पूजा करते, श्रद्धा से उनके चरणों में सिर रखते। मंदिर के आंगन में लगा संगमरमर यह सब देखता हुआ दुखी होता। वह सोचता, मैं भी संगमरमर हूं और वह मूर्ति भी संगमरमर की है, पर ईश्वर का यह कैसा अन्याय है कि मेरे मुंह पर तो श्रद्धालु जूते उतारते हैं और भगवान के रूप में स्थापित संगमरमर को श्रद्धा से पूजते हैं। एक रात जब मंदिर में सन्नाटा छा गया और पुजारी आदि चले गए तो आंगन के संगमरमर ने मूर्ति के संगमरमर से कहा, मुझे तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या होती है। मूर्ति के संगमरमर ने मुस्करा कर कहा, तुम व्यर्थ ही मुझसे ईर्ष्या करते हो, हम तो एक ही जाति के हैं। आंगन का संगमरमर बोला, यही तो मेरी ईर्ष्या का कारण है। जब हम एक ही जाति के हैं तो ईश्वर ने क्यों ऐसा भेदभाव किया कि लोग मुझे रौंदते हैं, मेरे मुंह पर जूते रखते हैं और तुम्हें धूप-दीप दिखाकर तुम्हारी पूजा अर्चना करते हैं, तुम्हारे सामने सिर झुकाते हैं। मूर्ति के संगमरमर ने कहा देखो मित्र, इसमें भेदभाव की बात नहीं है। यह संसार का नियम है कि जो जितना दुख पाता है, जो जितने संघर्षों से जूझता है, उसे उतना ही सुख मिलता है। क्या तुम अनुमान लगा सकते हो कि इस स्थिति को पाने के लिए मुझे मूर्तिकार के हथौड़े की कितनी चोटे सहनी पड़ी हैं। महीनों तक छेनी-हथौड़ेसे वह मेरे शरीर को छीलता रहा, तब जाकर मेरी यह सूरत निखरकर सामने आई, जिसकी आज पूजा होती है। यदि तुमने भी मेरी तरह चोटें खा-खाकर कोई सूरत पाई होती तो निस्संदेह आज किसी मंदिर में तुम्हारी पूजा हो रही होती।

१३५६) कश्मीरी पहाड़ियों के बीच एक छोटा सा गांव था। रास्ते में नदी होने से गांववालों को आने-जाने में काफी दिक्कत उठानी पड़ती थी। एक दिन सबने मिल जुलकर श्रमदान से लकड़ियों का एक पुल बनाया। वह बहुत ही संकरा था। पुल से एक ही व्यक्ति आ-जा सकता था। एक बार की बात है कि दो आदमी, एक पूर्व दिशा से और दूसरा पश्चिम दिशा से उस पर आ पहुँचे। दोनों पुल से नदी पार करना चाहते थे। पुल के बीच में दोनों का मिलाप हुआ। बात ही बात में दोनों भिड़ गए। कोई भी मुड़ना नहीं चाहता था। न एक दूसरे को रास्ता देने के लिए तैयार थे। आपस में तनाव बढ़ा।

गाली गलौच की नौबत आई। वाक्युद्ध के बाद हाथापाई भी शुरू हो गई। लड़ते-भिड़ते कुछ ही पलों में दोनों पुल के नीचे गिर पड़े और दोनों ने ही सदा के लिए आंखें मींच ली। कुछ देर बाद दो बकरियां उसी पुल पर पहुंची। एक पूर्व दिशा से आ रही थी और दूसरी पश्चिम दिशा से। पुल के बीच उसी तरह दोनों का मिलन हुआ। दोनों पुल को पार करना चाहती थी। कुछ क्षणों तक दोनों एक दूसरे के मुंह की तरफ झांकने लगीं। पश्चिम दिशा से आनेवाली बकरी पुल पर झट लेट गई। उसकी यह सहानुभूति देखकर पूर्व दिशा से आनेवाली बकरी बहुत ही खुश हुई और धीरे से उस पर पैर रखकर आगे बढ़ गई। दोनों बकरियां पुल को पार करके अपनी मंजिल पर पहुंच गई। वहां पर स्नान करनेवालों ने दोनों दृष्य देखे। सबके मुंह से एक ही स्वर निकला कि आदमी बकरियों से चलना सीख ले, तो उन्हें भी मंजिल मिल सकती है।

१३५७) दुर्जन की संगत- एक हंस और एक कौवे में अच्छी दोस्ती थी। गगन विहार करते हुए दोनों एक वृक्ष पर जा बैठे। प्रेमपूर्वक दोनों बाते करने लगे। स्वभाव से दोनों अलग-अलग थे। हंस की प्रवृत्ति सज्जन जैसी थी और कौवे की दुर्जन जैसी। अचानक उसी वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम लेने के लिए हारा-थका एक मुसाफिर आया। वह अपनी चादर बिछाकर सो गया। उसे गहरी नींद आ गई। वृक्ष पर बैठे हुए हंस ने देखा कि मुसाफिर के बदन पर सूर्य की तेज किरणें पड़ रही हैं। गर्मी से इसकी नींद टूट जाएगी। यह बात सोचकर हंस अपनी पंखों को फैलाकर बैठ गया। सारी धूप उसके पंखों में समाहित हो गई। यह बात कौवे को अच्छी नहीं लगी। उसने सोचा- हंस अनजान मुसाफिर को आराम क्यों पहुंचा रहा है? उसके सुख को पचा नहीं सकने से चिढ़कर कौवे ने मुसाफिर के मुंह पर बीट कर दी और उड़ गया। मुसाफिर ने आंखें खोली। उसने सोचा- यह दुश्मन कौन है? पंख फैलाए हुए हंस को देखते ही वह तो आग बबूला हो गया। उसने हंस को दोषी समझकर एक बड़े पत्थर से निशाना साधा। हंस के प्राण पखेरु उड़ गए। किसी ने सच कहा है- <u>दुर्जन की संगत से सज्जन को बिना मौत मरना पड़ता है</u>।

१३५८) मक्खी और मुर्गा- मक्खी अपने मित्र मुर्गा से कहने लगी बाप रे बाप। आज तो मैं बहुत ही थक गई मेरी भी जिंदगी क्या है। मुर्गा अपने पंजों से जमीन खुरच रहा था। मक्खी की बात सुनकर बोला, क्यों? आज तुम्हें इतनी उदासी और थकावट क्यों मालूम हो रही है? अरे, तुम्हें मेरी मुसीबतों का क्या पता। आज घर से मंडी तक एक ठेले को खींचना पड़ा। मक्खी बताने लगी। क्यों, तुम्हें यह काम कैसे करना पड़ गया? मुर्गे ने पूछा छकड़े पर क्या लदा था? मक्खी ने उत्तर दिया, तुम तो मिट्टी खोदते रहते हो। तुम्हारे लिए ये सब बात समझना कठिन है। फिर भी बताती हूं। सुनो, मैंने एक आदमी को ठेला खींचते हुए देखा। मैं उसकी पीठ पर बैठ गई। उसके साथ मैं भी वह ठेला खींचकर मंडी तक लाई हूं। मुर्गे ने अचरज के साथ पूछा अरे, तुममें इतनी ताकत कहां से आ गई? छकड़ा तो, मैंने सुना है, बहुत भारी होता है। मक्खी कहने लगी- भाई, काम करने के लिए दिल और उमंग चाहिए ताकत तो अपने आप आ जाती है। घर से मंडी तक कई जगह सडे-गले फल दुकानों पर टंगे हुए दिखाई दिए। मुंह में पानी भर आया। कई बार सोचा भी कि रुक जाऊं। लेकिन इस विचार से कि मेरे बिना ये लोग ठेला नहीं खींच पाएंगे, मैं कहीं नहीं रूकी। मुर्गे न कहा- तुम ठीक कहती हो। मुर्गे की आंखों में नींद आने लगी थी। वह बोला, अब मैं सो जाना चाहता हूँ, नहीं तो सुबह जल्दी उठना मुश्किल हो जाएगा। तुम तो जानती ही हो कि यह सूरज कितना आलसी है। मेरी कुकडु-कुं से ही वह जाग पाता है, नहीं तो सोता ही रह जाए।

१३५९) भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान- गंगा और यमुना, दोनों हिमालय से निकलीं। लेकिन गंगा ठहरी कुछ गोरी और यमुना का रंग काला। गंगा को अपनी शुभ्रता का अभिमान हुआ। वह ऊपर-ऊपर चली। बेचारी यमुना अपने श्यामल वर्ण के कारण उससे कुछ दूर-दूर चली। लेकिन गर्वीली गंगा ने आगे चलकर देखा कि बिना यमुना के वह

शतमुख से सागर में नहीं मिल सकेगी। इसलिए नम्रभाव से गंगा रुकी। उधर से यमुना आई। गंगा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत करते हुए कहा, यमुना बहन, तू मेरे पास आ। मैंने तेरा रंग देखकर तुझे हेय माना। पर तेरे किनारे पर कृष्ण भगवान ने भक्ति की वर्षा की, छोटे-बड़ों को एक किया, अपनी वंशी से एकता का गान किया, मिल-बांटकर खाने की प्रेरणा दी। अरे, तेरी महिमा के क्या कहने। यमुना ने गद्‌गद् स्वर में गंगा से यह सुनकर कहा, क्यों बहन, तुम मेरी बड़ाई करती हो, किन्तु तुम्हारी महिमा तो अपरम्पार है। मेरे किनारे पर भक्ति का विकास अवश्य हुआ, पर तुम्हारे किनारे से ज्ञान का प्रकाश फैला। भगवान पशुपतिनाथ तुम्हारे किनारे पर साधना-लीन हुए। असंख्य ऋषि-मुनि तुम्हारे ही तट पर तपस्या करते हैं। राजा-महाराजा अपना राजपाट त्यागकर ब्रह्मचिंतन करते हैं। बहन, तुम पूर्ण ज्ञान हो। तभी गुप्त रहनेवाली सरस्वती बोली, भक्ति और ज्ञान आवश्यक हैं, पर बिना कर्म के वे अधूरे हैं। इसलिए भक्तिका ज्ञान से और भक्ति-ज्ञान का कर्म से मिलन अनिवार्य है। फिर क्या था। ज्ञानमयी गंगा, भक्तिमयी यमुना और कर्ममयी सरस्वती बाहें फैलाकर एक-दूसरे के आलिंगन में बंध गई। तीनों नदियों का संयम ज्ञान, भक्ति और कर्म की धाराओं का संगम है। भारतीय संस्कृति का यही अधिष्ठान है।

१३६०) एक बार रोलेक्स ॲण्ड टाईमेक्स घड़ी में वार्तालाप हो रहा था। टाईमेक्स घड़ी ने कहा- बहन, तुम भी घड़ी हो, मैं भी घड़ी हूं। तुम भी हाथ पर बांधी जाती हो और मैं भी हाथ पर। तुम भी समय बताती हो, मैं भी समय बताती हूं फिर तुम्हारा मान-सम्मान इतना क्यों? रोलेक्स घड़ी ने टाईमेक्स घड़ी को उत्तर दिया- बात तो जो तुमने कही वो ठीक है लेकिन तुम समय का समय बताती हो मैं आदमी का समय बताती हूं।

१३६१) तीन सच्चे दोस्त- ज्ञान, धन और विश्वास तीनों बहुत ही अच्छे घनिष्ठ दोस्त थे उनमें आपस में प्रेम भी बहुत था। एक समय ऐसा आया जब तीनों को आपस में अलग होना पड़ा। तीनों में से एक ने दूसरों से पूछा कि अब हम बिछुड़ रहे है हम फिर कहा मिलेंगे। ज्ञान ने उत्तर दिया मैं तो मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, विद्यालय इत्यादि में मिलूंगा। धन ने उत्तर दिया मैं महलों में और अमीरों के पास में मिलूंगा पर विश्वास चूप रहा। दोनों मित्रों ने विश्वास से पूछा कि तुम चुप क्यों हो? तो विश्वास ने कहा मैं किसी के पास से एक बार चला गया तो फिर कभी नहीं मिलता।

१३६२) एक खरगोश अपनी जिंदगी से परेशान हो गये, उन्हें लगा कि वो दुनिया के सबसे कमजोर जानवर हैं। सारे खरगोशों ने अपना जीवन एक साथ समाप्त करने का सोचा। खरगोश आत्महत्या करने के लिये झुंड बना के तालाब की तरफ बढ़े। हजारों खरगोश जैसे तालाब के किनारे पहुंचे, हजारों मेंढ़क डरकर तालाब में कूद पड़े।

खरगोशों ने मेंढ़कों का डर देखा और उन्हें समझ आ गया कि दुनिया में उनसे भी कमजोर जीव जी रहे हैं और अपने जीवन को खो देना मूर्खता ही है। कभी अपने ऊपर घमंड हो तो अपने से ऊपरवाले की तरफ देखिये, सारा घमंड चूर हो जायेगा और कभी अपने पे हीनता महसूस हो तो अपने से नीचेवाले की तरफ देखिये, आत्मविश्वास आ जायेगा।

१३६३) दुष्टों का भला करने से भी बुरा ही फल मिलता है। इस बात को सब लोग जानते है कि दुष्टों के साथ उपकार करने का फल बुरा होता है। एक मेंढक ने अपने विरोधी कुटुम्बियों का नाश कराने के लिए एक सांप को बुलाया। उसने सोचा कि सांप को पेट भर भोजन मिलेगा तो वह मेरा उपकार मानेगा और विरोधियों का नाश हो जाएगा। सांप ने आकर उसके सब कुटुम्बियों को खा डाला और फिर उस मेंढक को भी खाने के लिए तैयार हो गया। उसने किसी तरह अपनी जान बचाई। एक बंदर की किसी मगर से दोस्ती थी। बंदर अपने दोस्त मगर को जंगल से ला-लाकर मीठे फल खिलाया करता था। एक दिन मगर अपनी स्त्री के कहने से बंदर को पीठ पर चढ़ाकर छल से पानी में ले आया और उसका कलेजा निकालना चाहा। बुद्धिमान बंदर ने उसके कपट को जानकर मगर से कहा कि भाई। मैं तो कलेजा घर छोड़ आया। मगर

ने उससे कहा- अच्छा जाओ, उसे ले आओ। मगर उसे पीठ पर चढ़ाकर किनारे ले गया। बंदन ने पानी से बाहर कूदकर अपनी जान बचाई। एक वणिक की राजा से मित्रता थी, राजा को किसी मंत्रसिद्धि के लिए एक स्त्री की पूजा करनी थी। राजा ने इसके लिए वणिक से उसकी स्त्री को मांगा। वणिक ने विश्वास करके स्त्री को राजा के महल में भेज दिया। राजा के मन में पाप आ गया और उसने स्त्री पर बलात्कार किया। वणिक को इससे बड़ा ही दुख पहुंचा। एक बगुले ने किसी आदमी को धन का खजाना बतलाया, परंतु उसने उपकार न मानकर उल्टे उसी को मार डाला।

१३६४) एक घुड़सवार यात्री ने देखा कि पास ही खेत में रहट चल रही है। उसने सोचा कि लंबी यात्रा के कारण घोड़ा थक गया होगा, उसे पानी पिला दें और खुद भी सुस्ता लें। घोड़ा सचमुच प्यासा था, यात्री रहट के पास पहुंचा। लेकिन रहट की विचित्र आवाज सुनकर घोड़ा बिदक गया। घुड़सवार ने रहटवाले से कहा, भाई जरा देर के लिए यह आवाज बंद कर दे ताकि मेरा घोड़ा पानी पी ले। आवाज से यह बिदक रहा है। रहट बंद कर दिया गया, लेकिन उसके साथ-साथ पानी भी बंद हो गया। घोड़े वाले ने कहा, अरे भाई। मैंने तो आवाज बंद करने के लिए कहा था, पानी बंद करने को नहीं। किसान ने कहा, आवाज बंद करने के लिए रहट तो बंद करना ही पड़ेगा। घोडे को पानी पिलाना है, तो घोड़े की लगाम साधो। उस घोड़े की तरह मनुष्य का मन भी निरर्थक शंकाओं से भयभीत होकर लाभ से वंचित रह जाता है, उसे भी घोड़े की तरह नियंत्रण में लाना पड़ता है।

१३६५) स्वभाव- एक नाविक अपनी बड़ी नाव से बड़ी संख्या में प्रतिदिन लोगों को नदी पार करवाता था। एक दिन एक ऐसा व्यक्ति आया जो पहले तो नाव में बैठ गया लेकिन अगले ही क्षण उतर भी गया। नाविक के कारण पूछने पर वह बोला- मैं नहीं बैठूंगा क्योंकि यह नाव नदी में डूब जायेगी। सभी ने उसे पागल समझा लेकिन कुछ दूर जाकर सचमुच नाव नदी में डूब गई। अब कई लोग उससे पूछने लगे कि उसे कैसे ज्ञात हो गया था। वह बोला नाव में एक ओर काफी लोग थे व दूसरी ओर एक हाथी व बंदर भी थे। इन्हीं के मालिक के पास एक कुत्ता भी था। मुझे पता था कि स्वभाव अनुसार कुत्ता बंदर से व बंदर हाथी से छेड़खानी अवश्य करेंगे। तंग आकर हाथी जैसे ही खड़ा होगा लोग इधर-उधर भागेंगे, नाव का संतुलन बिगड़ जायेगा और वह डूब जायेगी।

इस संसार में भी हर व्यक्ति अपने स्वभाव से बंधा है। यदि दुष्ट प्रवृत्ति के लोग बंदर व कुत्ते के स्वभाव के होते हैं तो महान लोग हाथी से मस्त व शांत स्वभाव के होते हैं।

१३६६) स्वर्ग का अधिकारी- मैं भूखा था, तुमने खाना दिया। मैं प्यासा था, तुमने पानी दिया। मैं निराश्रित था, तुमने आश्रय दिया। मै नंगा था, तुमने कपड़े पहनाए। मैं बीमार था, तुमने सेवा की। मैं संकट में जकड़ा था, तुमने मुझे सहायता पहुंचाई, चलो मेरे स्वर्ग को। धर्मात्माओं ने पूछा, लेकिन हमने कब आपको भोजन, पानी, आश्रय या वस्त्र आदि दिए और कब कोई सेवा की। हम तो अपने गाँव और बस्ती से कभी बाहर ही नहीं निकल पाए। हमने तो अपने पड़ोसियों के अलावा कभी किसी की कोई सहायता नहीं की। यीशु ने कहा, मैं तुमसे सच कहता हूं कि कहीं भी जो कुछ भी दीन-दुखियों के लिए किया गया, वह सब मेरे ही लिए था।

१३६७) रोटी- एक भूखा आदमी एक मकान के बाहर खड़ा गृहिणी से रोटी मांग रहा था। दरवाजा खोलकर गृहिणी बाहर आई और उस आदमी के हाथों में रोटी दे दी। जैसे ही रोटी उसके हाथ में आई, वैसे ही एक कुत्ता वहां आ पहुंचा और रोटी ललचाई निगाहों से देखने लगा। ऐसा लगता था, जैसे वह कुत्ता बहुत भूखा हो।

उस आदमी ने कुत्ते को रोटी दे दी। यह देखकर गृहिणी आश्चर्यचकित रह गई। वह पूछ बैठी- तुम खुद भूखे थे, फिर उस कुत्ते को रोटी क्यों दे दी ? क्या करता, वह मुझसे अधिक भूखा लगता था। मैं तो कहीं जाकर मांग भी सकता हूं, मगर

वह कुत्ता किससे मांगता? कौन देता उसे ? उस आदमी ने कहा।

जब यहां तक तुम्हारी समझ है, तो कहीं कोई काम करके खाने के लिए क्यों नहीं सोचते ? गृहिणी ने पूछा।

रहम खाकर कोई भीख ही दे सकता है, मगर कोई काम नहीं देता। यदि कोई काम ही मिल जाता, तो मेरी यह दशा क्यों होती ? मैं भीख क्यों मांगता ? उस आदमी ने कहा।

१३६८) राजा का चुनाव- एक राजा था। वह बेहद न्यायप्रिय, दयालु और विनम्र था। उसके तीन बेटे थे। जब राजा बूढ़ा हुआ तो उसने किसी एक बेटे को राजगद्दी सौंपने का निर्णय किया। इसके लिए उसने तीनों की परीक्षा लेनी चाही। उसने तीनों राजकुमारों को अपने पास बुलाया और कहा, मैं आप तीनों को एक छोटा सा काम सौंप रहा हूं। उम्मीद करता हूं कि आप सभी इस काम को अपने सर्वश्रेष्ठ तरीके से करने की कोशिश करेंगे। राजा के कहने पर राजकुमारों ने हाथ जोड़कर कहा, पिताजी, आप आदेश दीजिए। हम अपनी ओर से कार्य को सर्वश्रेष्ठ तरीके से करने का भरपूर प्रयास करेंगे। राजा ने प्रसन्न होकर उन तीनों को कुछ स्वर्ण मुद्राएं दीं और कहा कि इन मुद्राओं से कोई ऐसी चीज खरीद कर लाओ जिससे कि पूरा कमरा भर जाए और वह वस्तु काम में आनेवाली भी हो। यह सुनकर तीनों राजकुमार स्वर्ण मुद्राएं लेकर अलग-अलग दिशाओं में चल पड़े। बड़ा राजकुमार बड़ी देर तक माथापच्ची करता रहा। उसने सोचा कि इसके लिए रूई उपयुक्त रहेगी। उसने उन स्वर्ण मुद्राओं से काफी सारी रूई खरीद कर कमरे में भर दी और सोचा कि इससे कमरा भी भर गया और रूई बाद में रजाई भरने के काम आ जाएगी। मंझले राजकुमार ने ढेर सारी घास से कमरा भर दिया। उसे लगा कि बाद में घास गाय व घोड़ों के खाने के काम आ जाएगी। उधर छोटे राजकुमार ने तीन दीये खरीदे। पहला दीया उसने कमरे में जलाकर रख दिया। इससे पूरे कमरे में रोशनी भर गई। दूसरा दीया उसने अंधेरे चौराहे पर रख दिया जिससे वहां भी रोशनी हो गई और तीसरा दीया उसने अंधेरी चौखट पर रख दिया जिससे वह हिस्सा भी जगमगा उठा। बची हुई स्वर्ण मुद्राओं से उसने गरीबों को भोजन करा दिया। राजा ने तीनों राजकुमारों की वस्तुओं का निरीक्षण किया। अंत में छोटे राजकुमार के सूझबूझ भरे निर्णय को देखकर वह बेहद प्रभावित हुआ और उसे ही राजगद्दी सौंप दी।

कमरे में चारों तरफ दीये जल रहे थे। साथ ही कमरे का कोना-कोना इत्र से महक रहा था। राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने निश्चय कर लिया कि राज्याभिषेक इसी राजकुमार का होगा।

राजा ने अपना निर्णय यूं सुनाया, जो कूड़ा-करकट लाया था, उसे भले-बुरे के निर्णय की कोई समझ नहीं है। जो फूल लाया, महल उसके फूलों की सुगंध से भर गया, पर थोड़ी देर बाद फूल मुरझाने लगे और फिर सुगंध भी नहीं रही। इसमें सौंदर्य बोध है, पर दूरदृष्टि व विवेक की कमी है। लेकिन जिसने महल में दीपक जलाए, उसकी रोशनी महल में ही नहीं, बाहर के लोगों को भी रास्ता दिखाती रही। इसने अपनी दूरदृष्टि, विवेक व ज्ञान का परिचय भी दिया। यही राजा बनने योग्य है।

राजा ने राजकुमारों को समझाते हुए कहा, किसी भी साधन का सदुपयोग करने की क्षमता और समझ होनी चाहिए। अकसर लोग उसे नष्ट कर डालते हैं। लेकिन जो इनका सदुपयोग करते हैं, उन्हीं का जीवन सार्थक होता है।

१३६९) मनोबल- एक राजा के पास एक हाथी था, जिससे वह बहुत प्रेम करता था। सारी प्रजा का भी वह प्रिय था। उसकी लोकप्रियता का कारण उसके अनेक गुण थे। वह बुद्धिमान एवं स्वामिभक्त होने के साथ-साथ गजब का योद्धा भी था। अनेक युद्धों में उसने राजा को विजयी बनाया था। अब यही हाथी धीरे-धीरे बूढ़ा हो चला था। उसका शरीर शिथिल हो गया, जिससे वह युद्ध में जाने लायक नहीं रहा।

एक दिन वह तालाब में पानी पीने गया। पानी कम होने से वह तालाब के मध्य दलदल में फंस गया। अपने शिथिल शरीर

को कीचड़ से निकाल पाने में वह असमर्थ था। वह बहुत घबराया और जोर-जोर से चिंघाड़ने लगा, जिसे सुनकर सारे महावत उधर दौड़े। महावत यह दृश्य देखकर सोच में पड़ गए। आखिर उन्होंने उस विशालकाय हाथी के शरीर में बड़े-बड़े भाले भोंके, जिनकी चुभन से वह अपनी शक्ति को इकट्ठी कर बाहर निकल सके। परंतु उन भालों की चुभन से उसे बहुत पीड़ा हुई और उसकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

जब यह समाचार राजा के कानों में पड़ा तो वह भी वहां पहुंच गया। हाथी की दयनीय स्थिति देखकर उसने तत्काल बूढ़े महावत को बुलाया। बूढ़े महावत ने राजा को सलाह दी कि तत्काल युद्ध का नगाड़ा बजाने की तैयारी की जाए एवं सैनिकों की कतार इसके सामने खड़ी कर दी जाए। राजा ने फौरन इस सलाह पर अमल करने का आदेश दिया। कुछ ही देर में सारी तैयारियां हो गईं। जैसे ही नगाड़ा बजा और हाथी ने सैनिकों की लंबी कतार देखी, उसके शरीर में अचानक स्फूर्ति का संचार हुआ और वह एक ही छलांग में बाहर आ गया। नगाड़े की आवाज सुन वह भूल गया कि वह बूढ़ा है, कमजोर है और कीचड़ में फंसा है। नगाड़े की आवाज ने उसके सुप्त मनोबल को जगा दिया। युद्ध के बाजे बज जाएं और वह रुका रह जाए, ऐसा कभी नहीं हुआ था। सच ही कहा गया है कि जीवन में मनोबल ही श्रेष्ठ है। जिसका मनोबल जाग जाए उसे दुनिया की कोई शक्ति नहीं रोक सकतीं।

१३७०) अंतिम पत्थर- एक मछुआरा एकदम तड़के नदी की ओर जाल लेकर जा रहा था। नदी के पास पहुंचने पर उसे आभास हुआ कि सूर्य अभी पूरी तरह बाहर नहीं निकला है और चारों ओर कुछ ज्यादा ही अंधकार फैला हुआ है। घने अंधेरे में वह मस्ती और आनंद से टहल रहा था। टहलते-टहलते उसका पैर एक झोले से टकराया। उत्सुकतापूर्वक उसने झोले में हाथ डाला तो पाया कि उसमें बहुत बड़े-बड़े चमकीले पत्थर भरे हुए थे। समय बिताने के लिए मछुआरे ने झोले में से एक-एक पत्थर निकाला और नदी में फेंकता गया। समय बिताने के लिए हम कोई भी कार्य कर लेते हैं। धीरे-धीरे करके उसने झोले के कई पत्थर नदी में फेंक दिए, जब अंतिम पत्थर उसके हाथ में था कि तभी सूर्य की रोशनी धरती पर फैल गई। सूर्य के प्रकाश में उसने देखा कि उसके हाथ में बचा अंतिम पत्थर बहुत तेज चमक रहा था। उस पत्थर से ऐसी चमक निकलते देखकर वह दंग रह गया। उसकी धड़कने बंद होने को हो गई, क्योंकि वह पत्थर नहीं बल्कि अनमोल हीरा था। उसे अहसास हुआ कि अब तक वह करोड़ों के पत्थर नदी में फेंक चुका था। वह फूट-फूटकर रोने लगा। अपने हाथ में बचे अंतिम पत्थर को देख-देख कर वह अंधेरे को कोस रहा था। उसे भरोसा नहीं हो रहा था कि उसने अपने हाथों से इतने कीमती पत्थर नदी में फेंक दिए थे।

वह नदी के किनारे शोकमग्न बैठा था कि इतने में वहां से एक महात्मा गुजरे। उसका दुख जानकर वह बोले- बेटे रोओ मत, प्रसन्न होओ। तुम अब भी सौभाग्यशाली हो। यह तुम्हारा सौभाग्य ही है कि अंतिम पत्थर फेंकने से पहले ही सूर्य की रोशनी फूट पड़ी, वरना यह पत्थर भी तुम्हारे हाथों से निकल जाता। यह पत्थर भी बड़ा मूल्यवान है। यह एक हीरा भी तुम्हारी जिंदगी संवार सकता है। जो चीज हाथ से निकल गई, उसे लेकर रोने की बजाय जो तुम्हारे हाथ में है, तुम्हें उसका उत्सव मनाना चाहिए। महात्मा की बात सुनकर मछुआरे की आंखे खुल गईं और वह खुशी-खुशी घर लौट आया।

१३७१) ऊंटों का एक काफिला कहीं जा रहा था। शाम के वक्त वह काफिला आराम के लिए एक स्थान पर ठहरा। पास में एक धर्मशाला थी। काफिले के मुखिया ने खूंटियां गाड़ीं और ऊंटों को बांध दिया। एक खूंटी कम रह गई। मुखिया ने धर्मशाला के कर्मचारी से खूंटी मांगी। वह नहीं मिली। कर्मचारी ने कहा कि चलो, खूंटी के बिना ही मैं ऊंट को बांध देता हूं। कर्मचारी मुखिया के साथ आया और हथौड़े से खूंटी गाड़ने का स्वांग रचा। ऊंट खुद को खूंटी से बंधा मानकर बैठ गया।

सुबह हुई। खूंटियां उखड़ने लगी। काफिले को आगे जाना था। शेष ऊंटों के उठकर चल पड़ने पर भी शून्य में गड़ी खूंटी वाला ऊंट बहुत प्रयास करने पर भी टस से मस नहीं हुआ। मुखिया ने धर्मशाला के कर्मचारी को सारी स्थिति बताई। वह आया और खूंटी को उखाड़ने का स्वांग रचा। ऊंट तत्काल खड़ा हुआ और अपने काफिले में जा मिला। यह है संस्कार का असर।

१३७२) ईश्वर से कहो - बतायो नाम का एक फकीर हुआ था। एक बार उसके पांव में फांस पड़ गई। तब वह जोर से चीखा। इधर-उधर लोग खड़े थे, वे इकट्ठे हो गए। उन्होंने पूछा कि क्या हो गया है आपको? तो फकीर ने अपना पांव उनके सामने फैला दिया और कहा कि मेरे पांव में कुछ लग गया है। एक व्यक्ति ने नीचे झुका और उनके पांव में जो फांस लगी थी, उसे निकाल दिया। दूसरा व्यक्ति जो पास ही खड़ा था, उसने देखा कि पैर में छोटी सी ही फांस लगी है। ये संत हैं और इस मामूली फांस के कारण इतनी जोर से चीखे हैं, इसका कारण क्या है? उससे रहा नहीं गया। उसने पूछा, इतनी सी बात पर इतनी जोर से क्यों चीखे? बतायो ने कहा कि देखो, वह जो ऊपरवाला है, इसका स्वभाव विचित्र है। फकीर का संकेत ईश्वर से था। उन्होंने कहा, आदमी ज्यों-ज्यों सहता जाता है, ईश्वर उसे और अधिक कष्ट देता जाता है। मैं यदि यह तकलीफ सह लूंगा, तो संभव है कि कल वह मेरे पांव में भाला चुभो दे। बतायो के कहने का मतलब यह था कि जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह अनजाने में घटित नहीं हो रहा है। एक फांस भी यदि मेरे पांव में लगती है तो उसका मुझे अनुभव होता है। हम यह नहीं मानते कि ईश्वर किसी को कष्ट देता है और व्यक्ति सहन कर लेता है तो फिर उसे दोगुना-चौगुना कष्ट देता है।

१३७३) रोटी चुराने का अपराध- न्यूयार्क के न्यायालय में लोग खचाखच भरे हुए थे, उपस्थित नर-नारी कौतुहलवश मेयर लागाडियों की तरफ देखे जा रहे थे, जो अब मुकदमे का फैसला सुनाने ही वाले थे। अपराधी कठघरे में चुपचाप मुंह लटकाए खड़ा था। उसने चोरी की थी और वह भी किसी सामान, रुपए-पैसे की नहीं, बल्कि पेट की आग को शांत करने के लिए रोटी की। मेयर लागाडियो ने अपने दिए जाने वाले फैसले पर एक बार विचार कर पुन: अपराधी को गौर से देखा, फिर उन्होंने अपना फैसला सुना दिया-

अपराधी को दस डॉलर का अर्थदंड दिया जाता है, क्योंकि इसने रोटी चुराने का अपराध किया है। निर्णय सुनाकर मेयर ने अपनी जेब से दस डॉलर अपराधी की ओर बढ़ाते हुए कहा- यह रही जुर्माने की एक रकम, जो अदालत ने तुम पर लगाई है। सभी लोग अचरज से मेयर की तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगे, तभी मेयर लागाडियों ने न्यायालय में उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए कहा-

धिक्कार है ऐसे समाज पर जिसमें लोगों को पेट की आग को शांत करने के लिए चोरी करनी पड़ती है। समाज में पनपी एक-दूसरे पर ध्यान न देने वाली स्थिति पर रोक लगाने के लिए आप सभी पर आधे-आधे डॉलर का जुर्माना किया जाता है और इस जुर्माने की वजह यह है कि आप लोगों ने एक ऐसे समाज में रहने का जुर्म किया है, जिसमें एक भूखे मनुष्य को रोटी चुराने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

१३७४) अधूरा पाठ- एक बार एक गुरु अपने आश्रम में शिष्यों को समझा रहे थे। तभी कहीं से घूमता हुआ एक चोर उधर से आ निकला। उसने सोचा- चलो देखें गुरुजी अपने शिष्यों को क्या ज्ञान दे रहे हैं। लेकिन कुछ संकोच और कुछ डर से वह वहां रुक नहीं सका। उसके कान में गुरुजी के यही शब्द पड़े- पैसा पैसे को खींचता है। चोर जल्दी में आगे बढ़ गया और आगे गुरुजी ने और क्या कहा उसने नहीं सुना। लेकिन उसने गुरुजी की जो बात सुनी थी, उसी को तुरंत आजमाने की सोची। वह आज राजा के खजाने में चोरी के लिए जा रहा था। सेंध लगाकर आधी रात को जब उसने खजाने में प्रवेश किया तो सामने सोने के सिक्कों का ढेर लगा देखा। बस फिर क्या था वह अपनी जेब से एक सिक्का

निकाल कर खड़ा हो गया कि देखें कैसे पैसा पैसे को खींचता है। लेकिन उसकी अपेक्षा के अनुरूप उसके हाथ के पैसे की ओर कोई पैसा चुंबक की तरह खिंचकर नहीं आया। चोर का मन यह मानने को बिल्कुल भी तैयार नहीं था कि गुरुजी अपने शिष्यों को झूठी शिक्षा दे रहे होंगे। उन पर भरोसा किए वह वहां खड़ा रहा।

अंतत: उसके हाथ का सिक्का ही ढेर में जाकर गिर गया। वह बेहद दुखी हुआ। उधर सिक्के के गिरने से हुई आवाज से पहरेदार आ गए और चोर पकड़ा गया। अगले दिन जब राजा के दरबार में चोर को प्रस्तुत किया गया तो चोर ने गुरुजी की शिक्षा और अपने प्रयोग की बात बताई जब यह सारी बात गुरुजी के सामने पहुंची तो वे बहुत हंसे और उन्होंने राजा से कहा- चोर ने मेरे शब्दों के भावार्थ को नहीं समझा, शब्दार्थ में ही उलझ गया। यद्यपि उसके प्रयोग से मेरी बात ही सत्य सिद्ध हुई, क्योंकि उसके हाथ के पैसे को ढेर के पैसों ने खींच ही तो लिया। दूसरी बात यह राजन, उसने अधूरा पाठ ही सुना था। मैंने आगे कहा था कि ज्यादा पैसा कम पैसे को अपनी ओर खींच लेता है। सो यही हुआ।

१३७५) खजाना कहां है- एक बूढ़े किसान को लगा कि अब वह ज्यादा नहीं जियेगा। बस कुछ ही क्षणों का वह मेहमान है। उसके तीनों बेटे उस वक्त उसके करीब ही खड़े थे। उसने अपने बेटों से कहा, मेरी उम्र भर की कमाई, मेरा सारा खजाना अपने खेतों में है। यह कहते हुए उसके प्राण निकल गये। तभी गांव का एक बूढ़ा वहां आया। उसने तजुरबे की बात बतायी। कहा, अब इस खेत में बीज बो दो। जो फसल तैयार होगी, वह किसी खजाने से कम नहीं होगी।

तीनों बेटों ने वैसा ही किया। फसल लहलहाई तो तीनों को अपनी मेहनत का फल भी मिल गया। अर्थात खजाना मिल गया। जीवन है तो आनंद है और परिश्रम है तो जीवन है।

१३७६) सामर्थ्य- एक बार पांच असमर्थ और अपंग इकट्ठे हुए। अंधा बोला, मेरी आंखें होती तो जो कुछ अनुपयुक्त दिखाई देता, उसे ठीक करता। लंगड़ा बोला, मैं तो दौड़-दौड़ कर भलाई करता। निर्धन बोला, मेरे पास धन होता तो किसी को भूखा न रहने देता। निर्बल बोला, मेरे पास बल होता तो दीन-दुखियों की सेवा करता। मूर्ख बोला, मेरे पास ज्ञान होता तो लोगों को सच्चा ज्ञान देता। वरुणदेव ने उनकी बातें सुनीं तो उनको दया आ गई। उनकी इच्छाएं उन्होंने पूरी कर दीं। पर अब तो अंधा सौंदर्य दर्शन में ही लीन रहने लगा। लंगड़ा-सैर-सपाटे के लिए निकल पड़ा। निर्धन धन के नशे में डूब गया। निर्बल दूसरों को सताने लगा और मूर्ख अपनी ही शेखी बघारने लगा। वरुण देव ने यह देखा तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने अपनी शक्तियां छीन लीं। मनुष्य के लिए उचित है कि वह अपनी गरिमा के अनुरूप सदैव उत्थान की ओर बढ़े। अन्य को भी साथ ले। इस तथ्य को मनुष्य समझ नहीं पाता व अपनी ही रची नरकीय सृष्टि से दूर भागने का विफल प्रयास करता है।

१३७७) कर्मफल- राजा वसुसेन एक पुरुषार्थी और चक्रवर्ती राजा थे, मगर उनके राज ज्योतिषी ने उनकी मति ज्योतिष की ओर फेर रखी थी। हाल यह हो गया था कि वे बिना मुहूर्त जाने कोई काम ही नहीं करते थे। शत्रुओं को पता चला, तो वे ऐसे मुहूर्त में घात लगाने लगे, जिसमें प्रतिकार का मुहूर्त न बने और वसुसेना को परास्त किया जा सके। प्रजा जन और सभासद सभी को राजा के इस कुचक्र में फंस जाने पर बड़ी चिंता होने लगी। संयोगवश राजा एक बार देश के दौरे पर निकले। साथ में राज ज्योतिषी भी थे। रास्ते में एक किसान मिला, जो हल-बैल लेकर खेत जोतने जा रहा था। राज ज्योतिषी ने उसे रोककर कहा, मूर्ख जानता नहीं आज जिस दिशा में दिशाभूल है, उसी में चला जा रहा है। ऐसा करने से भयंकर हानि ठानी पड़ेगी। राज ज्योतिषी राजा के सम्मुख अपना ज्ञान दिखा रहे थे।

किसान दिशाभूल के बारे में कुछ नहीं जानता था, सो उसने सहज ही कहा, मैं तो प्रत्येक दिन इसी दिशा में जाता हूं। आज नहीं पिछले कई सालों से ऐसा ही कर रहा हूं। उनमें दिशाशूल वाले दिन भी आए होंगे। यदि आपकी बात सच होती

तो कब का सर्वनाश हो गया होता। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ, सुख से जी रहा हूं। किसान से ऐसा जवाब सुनकर ज्योतिषी सकपका गए। झेंप मिटाने के लिए बोले, लगता है तेरी कोई हस्तरेखा बहुत प्रबल है, दिखा तो अपना हाथ।

किसान ने हाथ तो बढ़ा दिया, किंतु हथेली नीचे की ओर रखी। ज्योतिषी इस पर और अधिक चिढ़े और बोले, इतना भी नहीं जानता कि हस्तरेखा दिखाने के लिए हथेली ऊपर की ओर रखी जाती है। किसान बोला, हथेली वह फैलाए, जिसे किसी से कुछ मांगना हो, जिन हाथों की कमाई से अपना गुजारा करता हूं, उन्हें क्यों किसी के आगे फैलाऊं। मुहूर्त तो वह देखे, जो कर्महीन और निठल्ला हो, मुझे तो अपने कर्म और कर्मफल पर जरा भी शंका नहीं।

सुनकर वसुसेना समझ गए कि कर्मफल भाग्य से अधिक प्रभावी होता है।

१३७८) क्रोध- एक बार संत बांकेई से उनके एक शिष्य ने कहा, गुरुदेव न मालूम क्यों मुझे क्रोध बहुत आया करता है, आप सुझाव दीजिए कि क्रोध से बचने के लिए मुझे क्या करना चाहिए। अच्छा। संत बांकेई ने कहा, आश्चर्य है, यह तो तुममें अत्यन्त विलक्षण बात है, जरा मुझे दिखाओ। दिखा सकते हो अपना क्रोध ? क्रोध एकाएक आ जाता है शिष्य ने सिर झुकाकर जरा धीरे से कहा। ओह। बेटे तब यह तुम्हारा वास्तविक स्वभाव हो ही नहीं सकता है। संत बांकेई ने सहज मुस्कान बिखेरते हुए कहा, यदि तुम्हें बहुत अधिक क्रोध आता होता, तो तुम इसे मुझे अभी दिखाने में सक्षम होते। जब तुमने जन्म लिया, तब भी क्रोध तुम्हारे साथ नहीं था और जहां तक मुझे पता है, न ही तुम्हें यह अपने माता-पिता से ही मिला है, जाओ पुन: विचार करो।

१३७९) जीवन और मरण- एक बरगद का बहुत पुराना पेड़ था। उसकी शाखाएं चारों ओर दूर-दूर तक फैली हुई थीं। उसके एक छोर पर सरोवर था और दूसरे पर मरघट। सरोवर में बच्चे स्नान करते, खेलते-कूदते और मरघट में मृतकों को जलाया जाता, लोग आंसू लिए दुख में डूबे खड़े रहते। बरगद का पेड़ दोनों दृश्यों को वैराग्य से देखता। इसी तरह साल बीतते रहे और बरगद बूढ़ा होता गया।

एक दिन एक पथिक उसकी छाया में विश्राम कर रहा था। विश्राम करते हुए उसने भी वही दृश्य देखा। एक ओर सरोवर में बच्चों के स्नान क्रीड़ा का मनोरम दृश्य था और दूसरी ओर मरघट में जीवन की चिता जल रही थी। इन विरोधी दृश्यों को देख पथिक उद्विग्न हो उठा। उसे संसार एक अजीब पहेली लगने लगा। जीवन मरघट सा वीभत्स है या सरोवर में खेलते बच्चों जैसा मनोरम- वह जितना ज्यादा इस वषय पर सोचता, उतनी उसकी बेकरारी बढ़ती जाती। वह कभी सरोवर को देखता तो कभी मरघट को और इस तरह वह दोनों दृश्यों में उलझता गया। अंतत: वह थककर बरगद के नीचे लेट गया।

तभी वृक्ष की डाल से एक लहराता हुआ पत्ता उसके चेहरे पर आकर गिरा। पथिक का ध्यान भंग हुआ और उसने नजर ऊपर उठा वृक्ष को देखा। अचानक उसे लगा कि इस घने वृक्ष में पसरा हुआ सन्नाटा उसे पुकार रहा है। उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की। कोई बेहद मंद और कोमल स्वर में उसे कह रहा था- वत्स। यहां जीवन और मरण की अविच्छिन्न संगति है। वे भले ही एक दूसरे के उलट हों, लेकिन इनका अस्तित्व हमेशा साथ बना रहता है। भावुक होने की बजाय तुम जीवन के सार को समझो। मुझे नहीं देखते, शताब्दियों से इन विपरीत दृश्यों के बीच में पथिकों के लिए ठंडी छांव की व्यवस्था करता हूं और संतोष की सांस लेता हूं। यह बरगद की आवाज थी। पथिक को समाधान मिल गया था। उसने मरघट और सरोवर दोनों को नमन किया और अपने रास्ते चल पड़ा।

१३८०) एक राजा ने दरबार में उपस्थित विद्वानों से प्रश्न किया- संसार में सबसे तेज कौन काटता है ? उत्तर में किसी ने कहा- मधुमक्खी सबसे तेज काटती है। किसी ने कहा ततैया, किसी ने बिच्छू तो किसी ने सांप। लेकिन राजा के मन को

समाधान नहीं मिला। जिज्ञासा भरी नजरों से उसने वृद्ध मंत्री की ओर देखा, जो अब तक मौन भाव से सबका उत्तर सुन रहे थे।

अमात्यवर, आप कुछ नहीं कहेंगे ? राजा ने पूछा। महाराज ये सब कह तो रहे हैं।

नहीं, ये तो सब सुने सुनाए उत्तर हैं, हम कुछ अनुभव की बात सुनना चाहते हैं। मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा- राजन सच तो यह है कि संसार में दो ही सबसे तेज काटने वाले हैं- निन्दक और चापलूस। निन्दक पीछे से काटता है, जिसके काटने से आत्मा तिलमिला उठती है तथा चापलूस सामने से काटता है, जिसके काटने से आत्मा अपने होश खो देती है।

१३८१) वाणी का महत्व- एक बार की बात है राजा वन में भ्रमण करने अपने सैनिकों के साथ गए। राजा को बहुत जोर से प्यास लगी। सैनिक पानी की तलाश में गया। निकट ही एक कुआँ था जहाँ एक अन्धा व्यक्ति लोगों को जल पिलाने का कार्य कर रहा था। सैनिक उसके पास गया और बोला- अरे अन्धे। एक लोटा जल मुझे भी दे। अन्धे व्यक्ति ने कहा- मैं तुझ जैसे मुर्ख नौकर को पानी नहीं देता। जा भाग यहाँ से। सिपाही गुस्सा होकर वहाँ से वापस आया। उस सैनिक की बात सुनकर प्रधान सेनापति स्वयं गए और बोले, अन्धे भाई। मुझे एक लोटा जल शीघ्रता से दे दो। अन्धे व्यक्ति ने कहा- लगता है पहले वाले सैनिक का सरदार है। मन में कपट है लेकिन ऊपर से मीठा बोलता है। मैं तुझे भी पानी नहीं दूँगा। सेनापति ने राजा से आकर शिकायत की। अब महाराज स्वयं उस अन्धे व्यक्ति के पास गये और अभिवादन करके बोले- बाबाजी। प्यासा हूँ, गला सूख रहा है थोड़ा जल देने की कृपा करें जिससे प्यास मिटें। अन्धे व्यक्ति ने कहा- महाराज। आप बैठें। अभी आपको जल पिलाता हूँ। जल ग्रहण करने के पश्चात राजा ने पूछा, महात्मन। आप चक्षुहीन होते हुए भी यह कैसे जान गए कि एक सिपाही, एक सेनापति और मैं राजा हूँ। उसने जवाब दिया महाराज। व्यक्ति की वाणी ही उसके व्यक्तित्व का ज्ञान कराती है।

१३८२) इंसान की पहचान- एक गुरु अपने शिष्यों के लिए औषधि खोजने जंगल में गए। एक शिकारी भी शिकार के लिए वहां गया और एक सैनिक भी जंगल का रास्ता भटक गया। तीनों को प्यास लगी। दूर कहीं झोपड़ी दिखाई दी, जिसमें एक दृष्टिहीन व्यक्ति बैठा था। शिकारी वहां पहुंचा और बोला, ए अंधे। मुझे पानी पिला दे, वरना तीर से तेरा जलपात्र फोड़ दूंगा।

दृष्टिहीन व्यक्ति ने कहा, चल भाग शिकारी कहीं का, नहीं दूंगा पानी। उसी के पीछे सैनिक आया और बोला, अंधे, पानी पिलाकर मेरी प्यास बुझा। चाहे तो धन और वस्त्र ले ले। उस व्यक्ति ने चिढ़कर कहा, राजा का सैनिक है, मुझे लोभ दिखाता है, जा नहीं मिलेगा पानी। तब तक गुरुजी भी वहां पहुंच गए थे। उन्होंने कहा, सूरदास जी, थोड़ा-सा जल प्रदान करें, बड़ी कृपा होगी। दृष्टिहीन व्यक्ति बोला, गुरुदेव, मेरा सौभाग्य है कि आप मेरी कुटिया में पधारे। उसने गुरुजी को पानी पिलाया। पानी पीकर गुरुजी ने कहा, आप देख नहीं सकते, फिर यह कैसे जान गए कि पहले आया व्यक्ति शिकारी, दूसरा सैनिक और तीसरा मैं, एक अध्यापक हूं ? वह बोला, गुरुजी बोलचाल से ही इंसान की पहचान हो जाती है। यह सुनकर गुरुजी ने उससे विनती की कि वह शिकारी और सैनिक को भी पानी पिला दे ताकि इनके मन की आंखें भी खुल जाएं।

१३८३) मंत्री बना खरगोश- एक बार जंगल के राजा शेर को अपने लिए एक मंत्री की जरूरत पड़ी। उसने जंगल में खबर करवा दी कि जो जंगल में सबसे ज्यादा चतुर, चालाक और बुद्धिमान होगा उसे वह अपना मंत्री बनाएगा। खबर सुनकर तीन उम्मीदवार साक्षात्कार के लिए आए, सूअर, बंदर और खरगोश। शेर ने उन तीनों को अपने पास बुलाया। सबसे पहले उसने सूअर से पूछा मेरा मुंह सूंघ कर बताओ कि इसमें बदबू आ रही थी, पर सूअर ने उसे खुश करने के लिए कहा, आप के मुंह से फूलों की खूशबू आ रही है। यह सुनकर शेर गुर्राया और बोला, तुम्हारे जैसे चापलूस बहुत खतरनाक होते हैं। इतना कह कर

वह सूअर पर झपट पड़ा और उसे मार डाला।

फिर उसने यही प्रश्न बंदर से किया। बंदर ने उसका मुंह सूंघ कर निडरता से कहा, आपके मुंह से बदबू आ रही है। ये सुनकर शेर को बहुत गुस्सा आया। बोला- तुम्हारे जैसी कड़वी बात करने वाले लोग ही औरों का दिल दुखाते हैं और उसने बंदर का भी सूअर जैसा हाल किया।

अब खरगोश की बारी आई। खरगोश ने शेर का मुंह सूंघा और अपनी नाक हिलाई पर कुछ बोला नहीं। शेर के दुबारा पूछने पर खरगोश ने कहा, महाराज, मुझे जुकाम हो गया है, इसलिए मैं कुछ बता नहीं सकता।

शेर उसकी इस चालाकी भरे जवाब पर मुस्कुराया और उसे मंत्री चुन लिया।

१३८४) लगन - दक्षिण भारत की घटना है। एक बहुत ही निर्धन बालक था। उसे अपनी स्वाध्याय की इच्छा को पूरा करने के लिए अन्य निर्धन बालकों की भाँति सड़क पर जलने वाली बिजली के खम्बों के नीचे ही बैठकर पढ़ना पड़ता था। पढ़ने की लगन की पूर्ति के लिए उसे पुस्तकालय जाना पड़ता था। इस बालक ने अपनी ज्ञान साधना को निरन्तर जारी रखा और इतना प्रतिभावान् बना कि ब्रिटिश सरकार ने उसे हाईकोर्ट के न्यायाधीश पद पर आसीन किया।

१३८५) पाप का प्रायश्चित - गुजरात के रविशंकर महाराज ने अपराध करनेवालों से उनकी गलती कबुलवाई और प्रायश्चित करने को कहा। एक अपराधी के मन पर महाराज के विचारों का अधिक असर पड़ा। अत: वह रात भर सो नही पाया। सुबह बोला- मान्यवर। मैंने अपने पड़ौसी के यहां शराब की बोतल रखवाकर उसे झूठे ही पकड़वा दिया था अब वह जेल में है। मैं इस अपराध का प्रायश्चित कैसे करूँ ? रविशंकर बोले कि जब तक वह जेल से छूट कर न आए तब तक उसके घर का खर्च तुम उठाओ और बच्चों की देखभाल करो। व्यक्ति ने महाराज के परामर्श अनुसार परिवार की देखभाल की। जेल से आने पर दोनों मित्र बन गए।

१३८६) उपासना का सही अर्थ - दो आदमियों के सामने दो पत्थर रखे थे। एक आदमी ने पत्थर के सामने हाथ जोड़कर ध्यान के लिए आँखे बन्द कर ली। परन्तु दूसरे आदमी ने मन में कुछ सोचकर छैनी-हथौड़ी लेकर पत्थर की प्रतिमा बनाने में जुट गया। शीघ्र ही मूर्ति बनकर तैयार हो गयी। उसकी सुन्दरता को तथा कलाकार की कला को सबने खूब सराहा। एक श्रद्धालु व्यक्ति ने मूर्ति खरीद कर विशाल मन्दिर बनाया तथा उसमें प्रतिष्ठित कर दिया। पहला आदमी और वह पत्थर उसी प्रकार बने रहे। एक दिन दोनों व्यक्ति मिले अपने-अपने आराध्य देव की बातें करने लगे। एक ने दु:ख प्रकट किया। दूसरे ने प्रगति एवं प्रसन्नता का समाचार सुनाया। उसी रात पत्थरों की आत्मायें भी आपस में मिली एक ने भक्त की मूर्खता पर दु:ख प्रकट किया, एक ने उसकी क्रियाशील श्रद्धा की प्रशंसा की।

१३८७) स्वावलम्बन के संस्कार - घटना फ्रांस की है। एक बालक सड़क के किनारे बैठा जूता गांठ रहा था। एक व्यक्ति ने उससे जूते ठीक करवाए तथा एक रुपया देकर जाने लगा। लड़के ने रोककर कहा कि मैं उचित पारिश्रमिक ही लूंगा। मेरी माता ने श्रम से अधिक पारिश्रमिक लेने की मनाई की है। बालक ने व्यक्ति को बचे पैसे लौटा दिए। आगे चलकर वह फ्रांस का राष्ट्रपति बना।

१३८८) पुण्य की महत्ता- एक धनवान व्यक्ति प्रतिदिन एक मंदिर में घी का दीपक जलाता था और एक निर्धन प्रतिदिन तेल का एक दीपक अंधेरी गली में जलाता था। दैवयोग से दोनों का एक साथ देहावसान हो गया। दोनों यमराज के पास पहुंचे। यमराज ने धनी व्यक्ति को निम्न श्रेणी की तथा निधन को उच्च श्रेणी की सुविधाएं प्रदान कीं। धनी व्यक्ति ने आपत्ति जताते हुए यमराज से कहा, श्रीमान यह भेदभाव क्यों ? मैंने जीवन भर भगवान के मंदिर में घी का दीपक था

कि उसके स्वामी को सिकुड़ा हुआ बिस्तर तनिक भी अच्छा नहीं लगता है। उसने उस रात को उसका बिस्तर संभाला ही नहीं। प्रात:काल होने पर स्वामी ने सेवक से केवल इतना ही कहा। कल बिछौना ठीक था। सेवक ने बहाना कर दिया और कहा- मैं ठीक करना भूल गया था। भूल तो सेवक ने की नहीं थी वह सुधरती कैसे ? इसलिए दूसरे दिन भी बिछौना ठीक नहीं बिछा और न तीसरे तथा चौथे दिन। मालिक ने सेवक से कहा- लगता है कि तुम बिछौना ठीक करने के काम से ऊब गए हो और चाहते हो कि मेरा यह स्वभाव छूट जाए। कोई बात नहीं मुझे अब सिकुड़े हुए बिस्तर पर सोने की आदत पड़ती जा रही है। अब नौकर ने ही नहीं उन धूर्तों ने भी हार मान ली।

१३९७) मेहनत व ईमानदारी- पिता की अंतिम सांस चल रही थी। पिता ने अपने बेटे को नसीहत दी कि बेटा हमेशा मेहनत व ईमानदारी की खाना। बेटा बड़े ही अदब से पिता के सिरहाने खड़ा था। पिता की बात सुनकर, सर झुकाकर बोला, अब्बा आपने यह नसीहत क्यों दी कि मेहनत व ईमानदारी की खाना। आपने यह क्यों न कहा कि मेरे जाने के बाद अपनी मां का ख्याल रखना। छोटे भाई-बहनों को उनका हक देना। बड़ेबुजुर्गों की इज्जत करना। अपने कौमोंमुल्क के प्रति वफादार रहना। बाप ने बेटे की बात सुनी। एक हिचकी ली और कहा, बेटा जब तू मेहनत व ईमानदारी की खाएगा तो यह सब अपने आप आ जाएगा वह बताने की जरूरत नहीं। बेटा लाजवाब हो गया और पिता के कदमों में गिर गया। पिता ने एक आखिरी हिचकी व सांस ली और सदासदा के लिए सो गए।

१३९८) मुझे सदुपयोग की कला सीखनी है- कागज तो दोनों को कोरे ही दिये गये थे, एक ने उस पर गालियां लिखी तो दूसरे ने स्तुतियां। पत्थर तो दोनों के हाथ में एक जैसे ही दिये गये थे, एक ने उससे किसी का सर फोड़ा तो दूसरे ने उससे प्रभु की प्रतिमा बनायी। आंखें तो दोनों को अच्छी मिली थी, एक ने उसका उपयोग चकाचौंध देखने में किया तो दूसरे ने प्रभु के दर्शन में किया। संपत्ति तो दोनों को काफी मिली थी, एक ने उसका उपयोग विलासिता में तो दूसरे ने उसका उपयोग आंसू पोंछने में किया। मन तो दोनों को एक जैसा ही मिला था, एक चढ़ा हनन में तो दूसरा चढ़ा मनन में।

१३९९) लोभ पर जीत- कपिल नामक गरीब ब्राह्मण अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता था। वह उसकी हर इच्छा पूरी करना चाहता था लेकिन निर्धनता के कारण ऐसा नहीं कर पाता था। एक बार त्योहार के मौके पर पत्नी ने आभूषण पहनने की इच्छा जतायी तो वह परेशान हो उठा। उसने सुना था कि राजा बहुत दानवीर है। जो ब्राह्मण सुबह-सुबह सबसे पहले उसके द्वार पर जाता है उसे वह दो तोला सोना देता है। कपिल राजा के यहां सबसे पहले पहुंचने के लिए आधी रात को ही घर से चल पड़ा। सिपाहियों ने उसे चोर समझकर पकड़ लिया और सुबह होने पर राजा के सामने पेश कर दिया।

राजा के पूछने पर कपिल ने पूरी बात सच-सच बता दी। राजा ने उसकी सरलता से प्रभावित होकर मनचाही वस्तु मांगने के लिए कहा। कपिल सोचने लगा कि दो तोला सोना क्या मांगूं, दो सौ अशर्फी मांग लेता हूं, फिर अचानक खयाल आया कि दो हजार मोहरें मांग लेता हूं ताकि रोज- रोज मांगने से छुटकारा मिले। आखिर में उसकी सोच लाखों-करोड़ों तक पहुंच गई। अंत में वह आधा राज्य ही मांगने जा रहा था कि उसे कुछ बोध हुआ और अपने लोभ से उसे घृणा हो गई। राजा ने फिर पूछा तो उसने कहा, महाराज मुझे जो चाहिए था वह मिल गया।

राजा ने आश्चर्य से पूछा, लेकिन आपको तो मैंने कुछ दिया ही नहीं।

महाराज आज मैंने लोभ पर जीत हासिल कर ली। इससे बड़ी चीज और क्या होगी।

१४००) विवेक- एक गांव में एक किसान रहता था। एक बार उसे कुछ पैसों की जरूरत पड़ी। उसने अपने पड़ोसी से उधार मांगा तो पड़ोसी ने कहा, तुम्हारे पास इतना सुंदर घोड़ा है, उसे बेच दो। किसी के आगे हाथ क्यों पसार रहे हो।

किसान ने उसकी सलाह मान ली। अगले दिन वह अपने लड़के के साथ घोड़ा बेचने निकला।

पिता घोड़े पर बैठा और बेटा साथ-साथ चल रहा था। रास्ते में कुछ लोग आ रहे थे। उनमें से एक ने कहा, देखो कैसा बाप है, खुद तो घोड़े पर सवार होकर मजे से जा रहा है और बालक पैदल चल रहा है। यह सुनकर किसान घोड़े से उतर गया और बेटे को घोड़े पर बैठाकर स्वयं पैदल चलने लगा। कुछ दूर जाने पर कुछ महिलाएं आ रही थीं। उनमें से एक कहने लगी, कैसा कलयुग आ गया। बेटा घोड़े पर और बूढ़ा बाप पैदल। उसकी बात सुनकर पिता बोला, शायद हम गलती कर रहे हैं, अब दोनों पैदल ही चलेंगे। वे घोड़े की लगाम पकड़े पैदल चलने लगे। इतने में एक राहगीर बोला, इन मूर्खों को देखो, घोड़ा होने पर भी दोनों पैदल चल रहे हैं। उसकी बात सुनकर अब दोनों घोड़े पर सवार हो गए। कुछ दूर जाने पर भारी वजन के कारण घोड़ा खड़ा हो गया। इतने में एक मुसाफिर ने कहा, कितने निर्दयी हैं कि एक ही घोड़े पर दोनों सवार हैं। दोनों के पीछे-पीछे एक महात्मा जी भी आ रहे थे, जो शुरू से सारा तमाशा देख रहे थे। उन्होंने किसान के पास जाकर कहा, भाई। इस दुनिया में कोई भी सबको संतुष्ट नहीं कर सकता, इसलिए तुम्हें जो करना है, अपने मन से करो। इसीलिए कहा गया है कि सुनो सबकी, पर करो अपने मन की। यह सुनकर किसान बेटे से बोला, बेटा। महात्मा जी ठीक कह रहे हैं। चलो वापस गांव चलते हैं। अब घोड़ा नहीं बिकेगा। हम दोनों मेहनत करके धन का जुगाड़ करेंगे। दोनों घोड़ा लेकर अपने गांव चले आए।

१४०१) जंगलमें एक पारधीके पीछे व्याघ्र पड़ गया। पारधी घबड़ाया। वह एक वृक्षके ऊपर चढ़ गया। बाघको वृक्षके ऊपर चढ़ना आता नहीं, इसलिए वह वृक्षके नीचे बैठ गया। उस वृक्षके ऊपर एक रीछ बैठा था। बाघको बहुत भूख लगी थी। उस बाघने निश्चय किया कि इन दोनोंमें-से कोई नीचे आवे, तभी उसे मारकर खा जाऊँगा। बाघ तो पेड़के नीचे बैठा रहा परन्तु न तो पारधी नीचे उतरा, न रीछ ही नीचे आया। सायंकाल हुआ, अन्धेरा हो गया, रात्रि होनेको आयी। बाघको बहुत भूख लगी थी, इसलिए उसने रीछसे पशु-भाषामें कहा कि यह मनुष्य तेरा और मेरा शत्रु है। यह एक दिन तुमको भी मारेगा और मुझको भी मारेगा। यह वृक्षके ऊपर बैठा है। तू इसको धक्का मारकर नीचे फेंक दे और मैं इसे मारकर खा जाऊँ। हम दोनोंके शत्रुका नाश हो जायेगा।

रीछने कहा- नहीं, यह मेरा धर्म नहीं। हम दोनों एक ही वृक्षके आधारपर स्थित हैं। परमात्माकी धरतीमें सभीको रहना चाहिए। सबका आधार, सबका घर तो एक ही है। यह मेरा भाई है। मैं इसको धक्का नहीं मारूँगा।

मध्य रात्रिका समय हुआ। रीछकी आँख मिच गयीं और उसको नींद आ गयी। बाघने पारधीसे कहा- मैं बहुत भूखा हूँ, तुझे खानेके लिए मैं यहीं बैठा हूँ। तू रीछ-को धक्का मारकर नीचे फेंक दे जिससे मैं मारकर इसको खा जाऊँ और फिर यहाँसे चला जाऊँ। तू बच जाएगा।

पारधी कृतघ्नी निकला। जिस रीछने उसका रक्षण किया था, उसके साथ धोखा किया और मध्य रात्रिके समय सोते हुए रीछको उसने धक्का मार दिया परन्तु परमात्मा जिसकी रक्षा करता है, उसे कोई मार नहीं सकता। रीछ गिरा परन्तु गिरते-गिरते वृक्षकी डाल उसके हाथमें आ गई और उसके सहारे वापस वह वृक्षके ऊपर जाकर बैठ गया।

बाघने रीछने कहा- देखा ? यह मनुष्य कितना दुष्ट है, कृतघ्नी है। जिसकी रक्षा तूने की, उसने तेरे साथ कैसा वैर किया। तुझे मारनेको तैयार हो गया। अब तू इसको धक्का मार।

परन्तु रीछने कहा- मानव भले ही अपने धर्मको छोड़े परन्तु मैं अपने धर्मको नहीं छोड़ूंगा।

१४०२) शिकारी सँकरे मुँहकी हाँड़ी जमीनमें गाड़ देता है। हाँड़ीका मुँह खुला रखता हैं हाँड़ीमें थोड़ा चना रखता है। वानर जल्दी में चनेके लिए दोनों हाथ हाँड़ीमें डाल देता है और चनेकी मुट्ठी भर लेता है। मुट्ठीमें चना आनेके कारण मुट्ठी

फूल जाती है। इससे वह हाथ बाहर निकाल सकता नहीं। वानरको ऐसा लगता है कि अन्दरसे इसका हाथ किसीने पकड़ रखा है। वानरको किसीने पकड़ा नहीं। वानरको चना अतिप्रिय है। इसलिए चना अपनी मुट्ठीमें-से छोड़ देनेकी उसकी इच्छा होती नहीं। चना हाथमेंसे छोड़ दे तो तुरन्त उसके हाथ बाहर निकल सकते हैं। अपने हाथके कारण ही बन्धनमें पड़ता है, उसपर भी ऐसा मानता है कि किसीने इसको पकड़ रखा है।

उसी प्रकार ही यह संसार, हाँड़ी है। विषय-वासना ही चने हैं। मन बन्दर जैसा है। मनने विषय-वासनाओंको पकड़ रखा है, उससे वह बन्धनमें पड़ जाता है। मानवका बन्धन इस वानरके बन्धन जैसा है। मानवको किसने बाँधा है ? वासनाओंके अधीन होकर स्वयंने स्वयंको बाँध रखा है।

१४०३) भेड़िए की चाल - एक भेड़िया बीमारी की वजह से कुछ कमजोर हो गया। जंगल में शिकार कर अपने लिए भोजन जुटाना अब उसके लिए संभव न रहा। उसने एक चाल चली। भेड़ की खाल ओढ़कर वह भेड़ों के एक झुंड़ में घुस गया। किसीको पता न चला। चरवाहे को भी नहीं। बस, अब क्या था। मौज-ही-मौज। भेड़िया रोज चुपके से एक भेड़ के बच्चे को अलग ले जाता और मिनटों में गड़प कर जाता। कुछ रोज यह युक्ति चलती रही। एक दिन चरवाहे के घर पर कुछ मेहमान आनेवाले थे। उसने एक बड़ी सी भेड़ को काटकर उसका सालन बनाने का निश्चय किया। अचानक उसकी दृष्टि भेड़ की खाल ओढ़कर भेड़ बने भेड़िए पर गई। चरवाहे ने फौरन उसकी गरदन धड़ से अलग कर दी। <u>जैसी करनी वैसी भरनी</u>।

१४०४) सच्चा वीर- माता-पिता को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि अधिकार के कारण बच्चों में बिगड़ने की संभावनाएं तो जन्म नहीं लें रहीं। राजपुत्र को एक बार मंत्री के पुत्र ने परस्पर खेलते हुए गाली दे दी। राजकुमार ने अपने पिता से शिकायत की। चाटूकारों ने अवसर का फायदा उठाते हुए मंत्री पुत्र को दण्डित करने की सलाह दी। राजा ने राजकुमार से कहा कि खेल-खेल में हुई लड़ाई को तूल नहीं देना चाहिए। तुम्हें अपराधी साथी को क्षमा कर देना चाहिए। क्रोध और दण्ड का कारण होने पर भी जो क्षमाशील को अपनाता है, वही सच्चा वीर होता है। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो जाओ तुम भी उसे गाली दे आओ। पर क्या तुम्हें ऐसा करना शोभा देगा ?

१४०५) त्याग की भावना- महाकवि माघ उन दिनों आर्थिक संकट से गुजर रहे थे। परिवार का पालन-पोषण मुश्किल से हो पा रहा था। एक दिन वह काव्य रचना में जुटे थे कि एक निर्धन ब्राह्मण उनके पास आया और अपनी पुत्री के विवाह के लिए आर्थिक सहायता की याचना करने लगा। माघ ने घर में चारों तरफ नजर दौड़ाई, पर ऐसी कोई वस्तु नजर नहीं आई जो ब्राह्मण को दी जा सके। वह यह सोच ही रहे थे कि उनकी नजर चारपाई पर सो रही अपनी पत्नी पर पड़ीं पत्नी के हाथों में सोने के कंगन थे। माघ ने चुपचाप पत्नी के एक हाथ से कंगन निकाल लिया और ब्राह्मण को देने ही वाले थे कि पत्नी का आंख खुल गई। पत्नी भी बहुत बुद्धिमान थी। उसे स्थिति समझने में देर नहीं लगी। उसने तुरंत दूसरे हाथ का कंगन उतारा और पति को देकर बोली, स्वामी, निर्धन ब्राह्मण का काम केवल एक कंगन से नही चलेगा, उसे ये दोनों कंगन दे दो। माघ त्याग की इस भावना पर प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनों कंगन ब्राह्मण को दे दिए।

१४०६) सबसे सुन्दर क्या ? - एक कलाकार था। उसको विश्व की सबसे सुंदर वस्तु की चित्र बनाने की इच्छा हुई। उसने धर्मगुरु से पूछा- जगत में सबसे सुंदर वस्तु कौन सी ? धर्मगुरु ने कहा- श्रद्धा, श्रद्धा के दर्शन आपको हर धर्मस्थान में होंगे। कलाकार को इससे संतोष नहीं हुआ।

एक नवपरिणीता को उसने प्रश्न किया, सब में सुंदर कौन सी वस्तु ? नवपरिणीता ने कहा, प्रेम ही दुनिया की सबसे सुंदर वस्तु है, प्रेम से निर्धनता में समृद्धि दिखती है। खारे अश्रु को मीठा बनाता है। प्रेम जैसा सुंदर इस जगत में कुछ भी नहीं।

सैनिक से पूछने पर उसने कहा शांति जगत की सुंदर वस्तु है। युद्ध जगत की सबसे कुरूप वस्तु है।

कलाकार ने तीन वस्तु समझ लीं- श्रद्धा, प्रेम, शांति। सोचते-सोचते वह घर पहुंचा। उसको देखकर ही घर के दरवाजे पर उसके पुत्र व पत्नी दौड़कर आ गए। पुत्र उससे लिपट गया, पत्नी स्मित मुस्कान बरसाती रही।

कलाकार के मन में विचार आया- मैं किसकी शोध करने गया था ? मैं जिस चीज को ढूंढने निकला वह तो मेरे घर में ही है। मेरी संतानों की आखों में श्रद्धा है। पत्नी की आखों से प्रेम बरस रहा है और यह मेरा घर तो शांति की दिव्यभूमि है।

कलाकार तुरंत काम पर लग गया उसने विश्व की सबसे सुंदर वस्तु का चित्र बनाया उसको नाम दिया घर।

१४०७) भाई भार नहीं होता- संत दुर्गम पहाड़ी पर चढ़ाई कर रहे थे। दस वर्ष की कन्या अपने दो वर्ष के भाई को गोदी में लिए पहाड़ पर धीरे-धीरे चढ़ रही थी। महात्मा बोले बेटा। तू अपनी गोद में इतना भारी बोझ लिए कैसे चढ़ पाएगी? लड़की ने चिढ़कर तपाक से उत्तर दिया महाराज यह मेरा प्यारा भाई है, बोझ नहीं। प्रेम भावना जहां निवास करती है वहां कष्ट में भी कोई बोझ या कठिनाई अनुभव नहीं होती।

१४०८) जीने का रास्ता- पुराने जमाने की बात है। किसी गांव में एक किसान रहता था। वह कड़ी मेहनत करता था और अच्छी-खासी फसल उपजाता था। फिर भी वह अपने जीवन से संतुष्ट नहीं था। वह अक्सर उद्विग्न और परेशान रहता थां एक दिन उस गांव में एक साधु आया। सारे लोग उसके पास अपनी-अपनी समस्याएं लेकर पहुंचे। वह किसान भी गया। उसने साधु को प्रणाम किया, फिर बोला, महाराज, मुझे बुरी इच्छाएं बार-बार सताती हैं और मैं बार-बार गलतियां कर बैठता हूं। बताइए, मैं क्या करूं ? इस पर साधु मुस्कुराया, फिर कुछ सोचने के बाद उसने प्रश्न किया, क्या तुम घुड़सवारी करते हो ? किसान बोला, हां महाराज।

अगर कभी घोड़े से गिर पड़ते हो तो क्या करते हो ? साधु ने पूछा।

फिर उस पर चढ़ जाता हूं। किसान ने जवाब दिया। यही तुम्हारी समस्या का हल है। बुरी इच्छाओं को घोड़ा समझो। जब गिर पड़ो, तो उठकर फिर चढ़ जाओ। ऐसा करते-करते अंतत: घोड़ा तुम्हारे काबू में आ जाएगा। साधु ने सलाह दी। किसान खुशी-खुशी घर लौट आया। उसे लगा जीने का एक नया रास्ता मिल गया है। उसकी परेशानियां जाती रहीं।

१४०९) मेरा पड़ोसी कौन ?- जी. के. चेस्टर्टन ने लिखा है, बाइबिल हमें अपने पडौसी के प्रति प्रेम करने की शिक्षा देती है। शायद इसलिए कि वे एक ही लोग होते हैं। उनका यह लिखना महज मजाक नहीं है, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। कभी-कभी जब हम यह सुनते हैं कि संचार और यातायात के आधुनिक साधनों ने लोगों को एक-दूसरे के निकट ला दिया है तो हम यह भूल जाते हैं कि इतिहास में सबसे भयानक युद्ध उच्चतम संपर्क की इसी मुद्दत में हुए हैं। लोगों को केवल शारीरिक और मानसिक दृष्टियों से एक दूसरे के ज्यादा निकट लाने से सामंजस्य नही हो जाएगा। सबसे पहले तो आध्यात्मिक संपर्क होना चाहिए और समान रूप से हमें यह अनुभव होना चाहिए कि हम सभी एक ही पिता के बनाए हुए हैं, और हम सबका एक ही उद्देश्य है। मैं तुमसे कहता हूं कि अपने शत्रु को प्यार करो। जो तुमसे नफरत करते हैं उनकी भलाई करो। जो तुम्हें दंडित और निंदित करते हैं उनके लिए प्रार्थना करो। ऐसा करने पर तुम अपने उस पिता की सन्तान बन सकोगे, जो अपने सूरज से, भले और बुरे, सब पर प्रकाश डलवाता है और जो न्यायी और अन्यायी सबके लिए पानी बरसाता है।

१४१०) मेहनत की कमाई- एक सेठ थे। उनकी कोठी के बाहर सड़क के किनारे एक मोची बैठता था जो जूते मरम्मत करने के दौरान बीच-बीच में भजन या कोई गीत गुनगुनाता रहता था, लेकिन सेठजी का ध्यान कभी मोची के गानों पर नहीं गया। एक बार सेठजी बीमार पड़ गए। बिस्तर पकड़ लिया। घर में अकेले पड़े थे तो उन्हें मोची के भजन

सुनाई पड़े। भजन सुनते-सुनते उनका मन अपने रोग की तरफ से हटकर मोची के गाने की तरफ चला गया। इससे सेठ जी को बहुत आराम मिला। उन्हें महसूस हुआ कि उनका दर्द कम हो रहा है।

एक दिन उन्होंने मोची को बुलाकर कहा, भाई, तुम तो बहुत अच्छा गाते हो। मेरा रोग बड़े-बड़े डॉक्टरों से ठीक नहीं हो रहा था, लेकिन तुम्हारा भजन सुनकर ठीक होने लगा है। उन्होंने मोची को पचास रुपये दिए। रुपये पाकर मोची बहुत खुश हुआ। लेकिन उसका मन काम में नहीं लगा। भजन गाना वह भूल ही गया। रात को घर गया तो उसे नींद नहीं आई। वह सोचने लगा कि इस पचास रुपये का क्या करूं, कहां संभाल कर रखूं। मोची की दशा देख कर उसके ग्राहक भी उस पर नाराज होने लगे, क्योंकि वह ठीक से काम नहीं करता था। उधर भजन बंद होने से सेठ जी की हालत फिर बिगड़ने लगी। उनका पूरा ध्यान रोग की तरफ चला गया।

एक दिन सेठजी ने सोचा कि मोची को बुलाकर पूछेंगे कि उसने गाना बंद क्यों कर दिया। अगले ही दिन मोची आ पहुंचा और बोला, सेठजी, आप अपना पैसा रख लीजिए। मैं इसे नहीं लूंगा। सेठजी ने पूछा, क्यों, क्या किसी ने कुछ कहा तुमसे ? मोची बोला, किसी ने कुछ नहीं कहा, लेकिन इस रुपये ने मेरा जीना हराम कर दिया। न रात को नींद आती है और न दिन को चैन रहता है। मेरा भजन गाना भी छूट गया। अपनी मेहनत की कमाई में जो सुख है वह पराये धन में नहीं है। आपके रुपये ने तो परमात्मा से भी नाता तुड़वा दिया इसलिए इसे वापस कर रहा हूं।

१४११) भगवान का दरवाजा- एक साधक भगवान की पूजा-उपासना तथा स्वाध्याय में लीन रहता था। उनके निवास-स्थान के पास ही एक गरीब वृद्ध रहता था। एक दिन वह बीमार हो गया। उसके कराहने की आवाज आई। साधक ने सोचा चलकर उसकी सेवा सहायता की जाए। फिर सोचा ऐसा करने से पूजा-उपासना में बाधा पहुँचेगी। वह उपासना में लगा रहा। कुछ दिन बाद उसे लगा कि उपासना करते-करते काफी समय बीत चुका है। क्यों न भगवान के दर्शन किए जाएँ। वह गया तथा भगवान का दरवाजा खटखटाने लगा। भगवान ने पूछा, कौन है जो दरवाजा खटखटा रहा है ? भक्त ने कहा, मैं तुम्हारा भक्त हूं। दरवाजा खोलो। भगवान ने उत्तर दिया, अभी तुम दर्शनों के पात्र नहीं बन पाए हो। उपासना अधूरी है। फिर आना। भक्त वापस लौट गया। रात को जैसे ही उसे पड़ोसी के कराहने की आवाज सुनाई दी, वह पूजा छोड़कर उसकी सेवा की भावना घर कर गई थी। वह उपासना के साथ-साथ सेवा-सहायता में भी तत्पर रहने लगा। कुछ समय बाद वह पुन: भगवान के द्वार पहुंचा। जैसे ही उसने दरवाजा खटखटाया कि भगवान ने पूछा, कौन है ? भक्त ने कहा, तू ही तो है जो तेरा दरवाजा खटखटा रहा है। अपने को भी नहीं पहचाना भगवन। अब पहचान लिया है। दरवाजा खुला है, अंदर आ जाओ। भगवान ने उसे अपने पास बुला लिया।

१४१२) प्रेरणास्रोत- एक नन्हा बालक प्रतिदिन रात को सितारों की गिनती किया करता था। एक दिन उसकी माँ ने उससे पूछ ही लिया, बेटा। तुम रोज रात को क्या गिनते हो ? तुम रातभर आकाश की ओर मुंह किये क्या गिना करते हो? बेटे ने कहा, माँ तारे कितने ज्यादा है कि गिनती में पूरे ही नहीं होते। आकाश के तारे मां। बहुत प्रयत्न करता हूं, किन्तु आकाश इतना विराट और नक्षत्र इतने अधिक हैं कि वे गिनने में नहीं आते।

माँ ने कहा, बेटा। सो जा, देर हो गई है। यह तारे गिनने के लिए नहीं है, बल्कि इसलिए बनाये गए है कि इन्हें देखकर शिक्षा लें कि हम भी प्रकाशपूर्ण जीवन जिए।

१४१३) कल्पवृक्ष- एक आदमी कहीं जा रहा था। जंगल आ गया। भयंकर गर्मी थी। थक गया। एक वृक्ष की छाया में जाकर बैठ गया। प्यास था। उसने मन ही मन सोचा, क्या ही अच्छा हो कि एक गिलास ठंडा पानी मिल जाए। देखते

ही देखते एक गिलास ठंडा पानी आ गया। उसने आस-पास देखा। कहीं कोई नहीं था। वह आश्चर्यचकित रह गया। पानी पीकर प्यास बुझाई। थोड़ी देर बैठा रहा। भूख लगी। उसने सोचा, क्या ही अच्छा हो कि एक थाली भोजन आ जाए। उसके सोचते ही भोजन की थाली उसके पास आ गई। विस्मित होकर उसने भोजन कर लिया। ठंडी हवा चल रही थी। नींद आने लगी। सोचा, पलंग हो तो अच्छा हो। अचानक सामने पलंग बिछ गया। वह उस पर सो गया। खूब सोया। दिन ढलने पर उठा। सोचा, यह क्या तमाशा है। कहीं इस पेड़ पर कोई प्रेत तो नहीं है ? उसके यह सोचते ही एक प्रेत आकर खड़ा हो गया। वह डरा कि कहीं प्रेत उसकी जान न ले ले। यह सोचते ही प्रेत ने उसकी जान ले ली। असल में जिसके नीचे वह आदमी बैठा था वह कल्पवृक्ष था। कल्पवृक्ष वह सब कुछ देता है जो मनुष्य अपने मन में सोचता है। मनुष्य की बुद्धि कल्प वृक्ष के समान है। उससे चाहे तो वह पानी, रोटी और पलंग भी ले सकता है और चाहे तो उसे प्रेत और मौत भी मिल सकती है।

१४१४) संगति का फल- पिता अपने पुत्रों के कुसंग से परेशान था। उसने उन्हें रोकने की कोशिश की किन्तु सफलता नहीं मिली। उन्हें उदाहरण द्वारा समझाने के लिए एक दिन वह टमाटर की टोकरी लेकर आया। उसने टोकरी में से अच्छे-बुरे टमाटर छांटने का कार्य बच्चों को दिया तथा अच्छे टमाटरों में कुछ गल-सड़े टमाटर भी रख दिए और टोकरी को बंद कर दिया। दूसरे दिन टोकरी उठाई तो देखा कि सारे टमाटर सड़ गए हैं। पिता ने उन्हें संगति का फल बताया।

१४१५) दो बातें- एक चिड़ीमार ने बाज पकड़ा। राह चलते समय बाज ने चिड़ीमार से कहा, मैं तुम्हें दो बातों की शिक्षा देता हूं। ध्यान देकर सुनो, पहली बात यह कि बिना सोच-विचार के किसी की बातों पर विश्वास मत करना और दूसरी यह कि जो वस्तु हाथ से निकल जाये उसके लिए खेद प्रकट मत करना। कुछ दूर आगे जाने पर बाज ने चिड़ीमार से कहा, जानते हो मेरे पेट में हीरा है। यदि तुम अपनी कैद से मुझे आजाद कर दो तो वह हीरा मैं तुम्हारा अहसान मानकर इनाम में दे दूंगा। चिड़ीमार लोभवश बाज की शिक्षा भूल गया। उसने उस पर विश्वास किया और उसे छोड़ दिया। बाज चिड़ीमार की कैद से मुक्त होकर एक वृक्ष की ऊंची डाल पर जा बैठा।

उसने चिड़ीमार से कहा- मूर्खे। तुम्हें सोचना चाहिए कि हीरा जहरीला होता है। वास्तव में हीरा यदि मेरे पेट में होता तो मैं मर नहीं जाता। तुमने लोभ में आकर मेरी पहली शिक्षा भुला दी। बाज की बात सुनकर चिड़ीमार सिर धुनने लगा। उसे उदास होते देखकर बाज ने कहा- तुम मेरी दूसरी शिक्षा को भी भूल गये। यह कहकर बाज उड़ गया।

१४१६) फकीर की दौलत- जापान के एक सम्राट रात में शहर के चक्कर लगाते और पता लगाने की कोशिश करते कि कहां क्या हो रहा है। एक फकीर उन्हें हमेशा जागता मिलता। उसके पास कुछ भी नहीं था, लेकिन वह अपनी कुटिया के बाहर जोर-जोर से कहता रहता, जागते रहो, जागते रहो। सो मत जाना, नहीं तो लुट जाओगे। अकेला बैठा-बैठा अपने आप से भी वह यही कहता रहता। सम्राट को लगा कि फकीर पागल है। लेकिन उनसे रहा नहीं गया और एक दिन उन्होंने फकीर से पूछ ही लिया, आप के पास धन दौलत तो है नहीं, फिर आप किसके डर से इतना सावधान रहते हैं ? किसको हमेशा जगाते रहते हैं ?

फकीर ने कहा, राजन, आपने तो बहुत सारा कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर लिया है। आप सो भी गए तो फिर जनता से छीन कर इकट्ठा कर लेंगे। लेकिन हमारे पास वह दौलत है, जिसको कोई एक बार लूट ले गया तो फिर वह कभी नहीं मिलेगी। इसलिए मैं हमेशा सावधान रहता हूँ और लोगों से कहता हूं कि तुम भी जागते रहो। राजा ने कहा, मेरे पास हीरे-जवाहरात, सोना-चांदी, हाथी-घोड़ा सब कुछ है। तुम उसे कूड़ा-कचरा कहते हो। तुम जरूर पागल हो गए हो।

फकीर बोला, आप सम्राट जरूर हैं, लेकिन आपकी बुद्धि बहुत छोटी है। जिसे आप अमूल्य दौलत कह रहे हैं उसे तो

कोई भी छीन सकता है। मेरे लिए तो वह कूड़े के समान है। आपकी दौलत मोह, लोभ, क्रोध और अहंकार के आवरण से सुरक्षित है, लेकिन मेरे धन को किसी आवरण की जरूरत ही नहीं है। मेरी संपत्ति ईश्वर की दी हुई है। मैं हमेशा अपने आप को सावधान करता रहता हूँ कि मेरे मन में मोह, लोभ, क्रोध और अहंकार का बसेरा न बनने पाए। इसलिए मैं अपनी आत्मा से कहता हूं कि सो मत जाना, जागते रहना। फकीर की बातों का सम्राट पर गहरा असर हुआ। उन्होंने अपना राजपाट छोड़ कर संन्यास धारण कर लिया।

१४१७) क्रोध पर विजय- पुराने जमाने की बात है। किसी राज्य के राजा के पास एक संन्यासी आया। राजा ने उसका खूब स्वागत-सत्कार किया और कुछ दिन ठहरने को कहा। संन्यासी मान गया। अपने राजकाज से समय निकालकर राजा रोज संन्यासी से धर्म संबंधी चर्चा किया करता था। उसने अपनी सभी जिज्ञासाएं उस संन्यासे के समक्ष रखीं। संन्यासी ने सबका यथोचित उत्तर दिया। कुछ दिनों के बाद जब वह जाने लगा तो राजा बोला, महाराज, जाते-जाते आप कोई ऐसा संदेश देते जाइए जो मेरे लिए काफी उपयोगी साबित हो। संन्यासी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, एक बात का अभ्यास करना कि किसी भी स्थिति में क्रोध न आए और अगर आ भी जाए तो वह काम मत करना जो उस अवस्था में मन कहे। राजा ने सोचा कि यह कोई महत्वपूर्ण संदेश नहीं है, यह तो साधारण सी बात है। फिर भी उसने इस शिक्षा को गंभीरता से लिया।

राजा के कोई पुत्र नहीं था। समस्या थी कि राजगद्दी किसे सौंपी जाए। उस समय आम तौर पर पुत्रियों को सत्ता नहीं दी जाती थी। फिर भी चलन के विरुद्ध जाकर राजा ने अपनी बेटी को राजगद्दी सौंपने का निश्चय किया। साथ ही उसने यह भी तय किया कि जब उसका विवाह होगा तो उसका पति राजा बन जाएगा। राजकुमारी ने शासन कार्य संभाला। अब वह पुरुष वेश में रहने लगी।

एक बार राजा कहीं गया हुआ था। जब वह लौटा तो उसने देखा कि महारानी एक पुरुष का आलिंगन किए लेटी हुई है। देखते ही राजा तिलमिला उठा। उसने तत्काल तलवार निकाल ली। लेकिन उसी समय मुनि का उपदेश याद आ गया कि क्रोध में जो मन कहे वह काम मत करना। उसकी इच्छा हो रही थी कि दोनों का वध कर दे पर उसने मन पर काबू किया। तलवार म्यान में चली गई। राजा आगे बढ़ा। वह बिछावन के निकट आया। देखा कि पुरुष वेशधारी उसकी पुत्री अपनी मां के साथ निद्रा में लीन हैं। राजा ग्लानि से भर उठा। पर उसे इस बात का संतोष भी हुआ कि उसने क्रोध पर विजय पाने में सफलता पाई है।

१४१८) सबसे बड़ा धर्म- पौराणिक कथा है, सत्यव्रत राजा अपने विचारों और आचरण में आदर्श माने जाते थे। एक दिन उन्होंने ब्रह्म मुहूर्त में सिंहद्वार की ओर से एक अत्यंत सुंदर स्त्री को बाहर जाते देखा। बड़े आदर से उन्होंने पूछा कि माँ आप कौन हो, यहाँ राजभवन से क्यों जा रही हो ? महाराज, मैं धनलक्ष्मी हूं। यहां बहुत समय से रह रही हूं। अब जाना चाहती हूं। सत्यव्रत ने कहा, जैसी आपकी मर्जी। थोड़ी देर बाद उन्होंने एक सुंदर पुरुष को भी बाहर जाते हुए देखा। तब उससे भी पूछा, तुम कौन हो ? महाराज, मैं दान हूं। धन लक्ष्मी चली गईं, उसके बिना मैं यहाँ क्या कर सकता हूं। कुछ ही समय बाद एक और सुंदर पुरुष राजभवन से जाता दिखाई दिया। सत्यव्रत ने उससे भी पूछा, कौन हो तुम और क्यों जा रहे हो ? महाराज, मेरा नाम सदाचार है। धन और दान के बिना सदाचार क्या कर सकता है ? इसलिए मुझे भी जाने दीजिए। वो भी चला गया। इतने में महाराज ने एक और दिव्य पुरुष को जाते हुए देखा। उन्होंने उससे भी प्रश्न किया, तुम कौन हो और क्यों जा रहे हो ? महाराज। मेरा नाम यश है। जहाँ धन, दान और सदाचार नहीं रहते, वहाँ मैं भी नहीं रहता। महाराज ने उसे भी अनुमति दे दी। थोड़ी ही देर बाद एक गंभीर दिव्य पुरुष दिखाई दिया। महाराज ने उससे पूछा, कौन हैं आप? कहां जा रहे हैं ? महाराज, धन, दान, सदाचार और यश चले गए। मेरा नाम सत्य है। मैं इनके बिना अकेला नहीं रह सकता।

अब मुझे भी जाने की आज्ञा दीजिए। राजा ने उस दिव्य पुरुष के पैर पकड़ लिए और कहा, आप मुझे छोड़ कर नहीं जाएँ। मुझे धन, दान, सदाचार और यश की कोई परवाह नहीं है, लेकिन आपके बिना नहीं रह सकता। आप ही जीवन के धर्म हैं। इस पर दिव्य पुरुष सत्य राजभवन में वापस चला गया। सत्य के राजभवन में वापस जाते ही कुछ ही क्षणों में धन लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश कहते हुए वापस आ गए कि सत्य के बिना हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिए हम सब भी वापस आ गए।

१४१९) नदी और समुद्र- प्रवचन के दौरान एक गुरु ने अपने शिष्यों से पूछा, एक नदी समुद्र में समाने को बेताब है, पर रास्ते में एक रेगिस्तान है। वह बड़े उद्दाम वेग से बहती हुई रेगिस्तान को पार कर समुद्र में समाना चाहती है, पर कुछ ही दूरी के बाद वह सूखकर रह जाती है, रेत उसे सुखा देती है। ऐसी कई नदियां उस रेगिस्तान में सूखकर रह गई हैं और सूख रही है। आप में से कोई बताए कि नदियों का उद्धार कैसे होगा ? उत्तर में किसी शिष्य ने कहा कि नदी के रास्ते में नहर बना देनी चाहिए। किसी अन्य शिष्य ने सुझाया कि नदी को गहराई में चले जाना चाहिए। किसी और ने कुछ दूसरे उपाय सुझाए। लेकिन गुरुजी किसी भी जवाब से संतुष्ट नहीं हुए। अंत में उन्होंने ही उत्तर दिया, प्रिय शिष्यों, हम और आप नदियों के समान हैं और यह संसार रेगिस्तान है। हम संसार को जितना जानें, इससे पार नहीं पा सकते। इसलिए हमारी जीवन-नदी को चाहिए कि वह हवा रूपी समय की धारा के साथ मिल जाए और संसार से ऊपर उठ जाए। ऊपर उठकर हवा और गर्मी से नदी वाष्प में बदलकर एक न एक दिन अपने आप परमात्मा रूपी समुद्र में जा मिलेगी।

१४२०) परामर्शदाता ऐसा हो जो सन्मार्ग पर ले जाए- संस्कृत ग्रंथ सम्यक्त्वकौमुदी में एक कथा है। एक निर्धन ब्राह्मण था। उसकी पत्नी उसे रोज कहती थी कि कहीं से तो कुछ धन लाओ। एक दिन वह पत्नी के उलाहनों से तंग होकर जंगल में चला गया। सोचा, धन कहाँ से लाऊँ ? रोज-रोज ताने सुनने से तो अच्छा है कि मर ही जाऊँ।

संयोग से तभी जंगल में उसका सामना एक शेर से हो गया, जो उसे मारकर खाने के लिए झपटने ही वाला था। लेकिन वहीं एक वृक्ष पर एक हंस बैठा था। शेर को घात लगाते देखकर वह बोल पड़ा, अरे वनराज। यह तुम क्या कर रहे हो ? जानते नहीं ये कौन हैं ? अरे, ये तो ब्राह्मण देवता हैं। तुम्हारे भाग्य का उदय हुआ है जो तुम्हें इनके दर्शन हुए हैं। मेरा कहा मानो तो इन्हें मत मारो, पेट भरने के लिए जंगल में जानवरों की कमी नहीं है। इनको मारने से तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप लगेगा और इनके दुबले-पतले शरीर से तुम्हारा पेट भी नहीं भरेगा। अवसर का लाभ उठाओ और इनको कुछ भेंट आदि चढ़ाकर प्रणाम करो। यदि इनका आशीर्वाद मिला तो तुम इस पशु योनि से तिर जाओगे।

सिंह को हंस की सलाह पसंद आई। उसने ब्राह्मण को मारने का इरादा छोड़ दिया और उसके पास जो गजमोती जमीन में छुपे हुए रखे थे, उन्हें अपने पंजे से निकाल कर ब्राह्मण देवता को अर्घ्यस्वरूप चढ़ा दिया। ब्राह्मण प्रसन्न हो गया और आशीर्वाद देकर अपने घर लौट गया।

घर में खुशियाँ छा गईं। नए-नए वस्त्राभूषण आ गए और नित्य अच्छा-अच्छा भोजन बनने लगा। लेकिन वह ब्राह्मण निरुद्यमी था, अत: थोड़े दिन बाद पुन: निर्धन हो गया। जो लोग निरुद्यमी होते हैं उनके पास कितनी भी संपत्ति हो, एक दिन सब समाप्त हो जाती है। पत्नी के आग्रह से या लोभवश ब्राह्मण पुन: जंगल में गया। संयोग से उसे उसी स्थान पर वही सिंह पुन: मिल गया। सिंह ने उसे दूर से ही आते हुए देख लिया, अत: खड़े होकर विनयपूर्वक बोला- आइए, आइए ब्राह्मण देवता। पधारिए। मैं धन्य हूँ जो आज आपके पुन: दर्शन हुए। आप जरा विराजिए, इस बार आप के लिए और गजमोती इकट्ठे कर रखे हैं। आप स्वीकार कीजिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए।

किन्तु आज बाहरी स्थिति में थोड़ा अंतर था। समीप के वृक्ष पर जहां पहले हंस बैठा था, आज उसके स्थान पर एक

कौवा बैठा था। सिंह जैसे ही ब्राह्मण को गजमोती चढ़ा कर प्रणाम करने को उठा, ऊपर वृक्ष की शाखा से वह कौवा बोला- अरे ओ नादान सिंह। ये क्या हो गया है आपको ?

सिंह ने उसे हंस से प्राप्त शिक्षा की बात बताई। कौवा उसकी हँसी उड़ाता हुआ बोला, उसने तुम्हें उलटी पट्टी पढ़ा दी है। तुम भोले हो, इसलिए उसकी बातों में आ गए। अरे सब मनुष्य एक जैसे ही होतेहैं, सब का मांस एक जैसा ही स्वादिष्ट होता है। यदि ब्राह्मण होने से कोई महान हो जाता तो उसे गजमोती लेने जंगल क्यों आना पड़ता ? मेरा कहा मानो तो इसका काम तमाम करो। अपना पेट भरो और प्रसन्न रहो।

सिंह के पास स्वविवेक की कमी थी। वह कौए की बातों में आ गया और ब्राह्मण को मार कर खा गया। थोड़ा प्रसाद कौए को भी मिल गया, जैसा कि वह चाहता था। इसी के लिए तो उसने सिंह को वैसी शिक्षा दी थी। संसार में दो प्रकार के परामर्शदाता पाए जाते हैं। एक हंस जैसे और दूसरे कौए जैसे। हंस जैसे परामर्शदाता सभी का भला करते हैं और कौए जैसे परामर्शदाता सब का बुरा करते हैं। प्राय: देखा जाता है कि कौए जैसे परामर्शदाता तो गली-गली में मिल जाते हैं।

१४२१) ईश्वर कहाँ है ? - एक विद्यालय में विभिन्न धर्मों के छात्रों के बीच एक संत प्रवचन करने पहुंचे। उन्होंने प्रश्न किया, ईश्वर कहां निवास करता है ? हिंदू छात्र ने जवाब दिया, मंदिर में। मुस्लिम छात्र ने कहा, मस्जिद में। ईसाई छात्र ने कहा, गिरजाघर में। सिख छात्र ने कहा, गुरूद्वारे में।

अब पाँचवे छात्र की बारी आई तो उसने खड़े होकर स्वामीजी से प्रश्न किया, महाराज, मुझे यह बताएँ कि ईश्वर कहाँ नहीं हैं ? स्वामीजी समझ गए कि यही छात्र ईश्वर के तत्व को पहचानने वाला सच्चा तत्वज्ञानी है। उन्होंने कहा, वत्स वास्तव में ईश्वर घट-घट में व्याप्त है। यदि हम इस तथ्य को हृदय से स्वीकार कर लें तो ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए सदैव सद्कार्यों में ही लगे रहेंगे।

१४२२) परमात्मा कहां नहीं है ? - सिक्खों के गुरु नानकदेव जी का अधिकांश जीवन यात्राओं में ही बीता। एक बार वे कराची, बिलोचिस्तान के थलमार्ग से होते हुए मक्का पहुंच गये। जब रात हुई तो वे काबा की परिक्रमा में काबा की ओर पैर करके ही सो गये। प्रात:काल होने पर अब मौलवियों ने उन्हें इस प्रकार सोते देखा तो क्रोध से लाल-पीले होने लगे और उनसे कहा- अरे, तू कौन है जो खुदा की ओर पैर करके सो रहा है, तुझे शरम नहीं आई। इस तरह सोते हुए ? नानकदेव ने आंखे खोलीं और धीरे से कहा- मैं तो थका हुआ मुसाफिर हूं, आप लोग मेहरबानी करके मेरे पैर उस ओर कर दीजिये जिधर आप समझें कि खुदा नहीं है। यह सुनकर तो मौलवी लोगों का क्रोध और भी बढ़ गया। फिर भी उनमें से एक ने नानकदेव का एक पैर पकड़ा और झटका देते हुए उसे एक ओर किया तो स्वाभाविक ही दूसरा पैर भी उस ओर को हो गया। किन्तु उसने आश्चर्य से देखा कि जिस ओर उसने उनका पैर किया था, उस ओर ही काबा भी दिखाई देने लगा। उसने फिर क्रोध से उनका पैर दूसरी ओर को खींचा। तब भी देखा तो उधर ही काबा दिखाई दे रहा है। उसके साथ के अन्य मुल्ला-मौलवी भी हैरान से दिखाई दे रहे थे। एक दो बार फिर उसी प्रकार गुरुनानक को परेशान किया गया किन्तु परिणाम वही। अन्त में मौलवी लोग हार गये और लज्जित होकर उन्होंने नानकदेव जी से क्षमा याचना की। नानकदेव जी ने उन्हें समझाते हुए कहा- आप लोगों को पता होना चाहिए कि परमात्मा तो सर्वव्यापक है। उसका घर किसी एक ही स्थान पर है, यह मानना अज्ञान की निशानी है। उसके बाद मक्का में नानकदेव जी को फिर किसी प्रकार की कोई परेशानी नही हुई और उनकी वह यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

१४२३) मन की आवाज- एक बुढ़िया बड़ी सी गठरी लिए चली जा रही थी। चलते-चलते वह थक गई थी। तभी उसने देखा कि एक घुड़सवार चला आ रहा है। उसे देख बुढ़िया ने आवाज दी, अरे बेटा, एक बात तो सुन। घुड़सवार रुक

गया। उसने पूछा, क्या बात है माई ? बुढ़िया ने कहा, बेटा, मुझे उस सामने वाले गांव में जाना है। बहुत थक गई हूं। यह गठरी उठाई नहीं जाती। तू भी शायद उधर ही जा रहा है। यह गठरी घोड़े पर रख ले। मुझे चलने में आसानी हो जाएगी।

उस व्यक्ति ने कहा, माई तू पैदल है। मैं घोड़े पर हूं। गांव अभी बहुत दूर है। पता नहीं तू कब तक वहां पहुंचेगी। मैं तो थोड़ी ही देर में पहुंच जाऊंगा। वहां पहुंचकर क्या तेरी प्रतीक्षा करता रहूंगा ? यह कहकर वह चल पड़ा। कुछ ही दूर जाने के बाद उसने अपने आप से कहा, तू भी कितना मूर्ख है। वह वृद्धा है, ठीक से चल भी नहीं सकती। क्या पता उसे ठीक से दिखाई भी देता हो या नहीं। तुझे गठरी दे रही थी। संभव है उस गठरी में कोई कीमती सामान हो। तू उसे लेकर भाग जाता तो कौन पूछता। चल वापस, गठरी ले ले।

वह घूमकर वापस आ गया और बुढ़िया से बोला, माई, ला अपनी गठरी। मैं ले चलता हूं। गांव में रुककर तेरी राह देखूंगा। बुढ़िया ने कहा, न बेटा, अब तू जा, मुझे गठरी नहीं देनी। घुड़सवार ने कहा, अभी तो तू कह रही थी कि ले चल। अब ले चलने को तैयार हुआ तो गठरी दे नहीं रही। ऐसा क्यों ? यह उलटी बात तुझे किसने समझाई है ?

बुढ़िया मुस्कराकर बोली, उसी ने समझाई है जिसने तुझे यह समझाया कि माई की गठरी ले ले। जो तेरे भीतर बैठा है वही मेरे भीतर भी बैठा है। तुझे उसने कहा कि गठरी ले और भाग जा। मुझे उसने समझाया कि गठरी न दे, नहीं तो वह भाग जाएगा। तूने भी अपने मन की आवाज सुनी और मैंने भी सुनी।

१४२४) रामायण का पाठ- इलाहाबाद में उच्च न्यायालय के एक वकील के निवास स्थान पर किसी नगर से एक व्यक्ति आया। वह अदालत में कोई मामला दायर करना चाहता था। वकील साहब ने उसे कमरे में ठहरा लिया। सवेरे उस व्यक्ति ने त्रिवेणी स्नान किया तथा लौटकर पूजा में बैठ गया। राम चरित मानस का पाठ करते देखकर वकील साहब उसके पास कुर्सी पर आ बैठे। राम-भरत मिलाप का प्रसंग पढ़ते हुए वह व्यक्ति भावविभोर हो उठा। उसका गला रूँद गया। आंखों से अश्रु बहने लगे। वकील साहब उसकी इस भावना से बहुत प्रभावित हुए उनकी आंखें भी सजल हो उठीं।

रामायण पाठ समाप्त हुआ तो वकील साहब ने कहा- अब अपनी समस्या बताइए, आपको किस तरह का मामला अदालत में दायर करना है। उसने बताया- मेरे पिता ने हम दो भाइयों के बीच जमीन का बंटवारा कर दिया था। मेरे बड़े भाई ने मेरे हिस्से की भूमि में से एक गज ज्यादा भूमि पर कब्जा कर रखा है। उसी के विरुद्ध मामला दायर करने आया हूं। वकील साहब ने उसे समझाया- कुछ ही देर पहले तुम राम-भरत मिलाप का वर्णन पढ़ कर आंसू बहा रहे थे। अब थोड़ी सी जमीन के लिए भाई पर मुकदमा करने अदालत में जाने की तैयारी कर रहे हो। क्या रामचरित मानस के पाठ से भरत जी के राज्य ठुकराने की घटना से तुमने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की।

वकील साहब के इन वाक्यों ने छोटे भाई के हृदय को झकझोर डाला। उसने साथ लाए दस्तावेजों को अंगीठी में डाला तथा बोला- अब तक मैं रामायण का पाठ ही करता रहा हूँ, आज से उस पर अमल भी करूँगा।

१४२५) प्रभु की रोटी- एक महात्मा जी प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन सुन रहे एक युवक को उनकी यह बात जंच गई कि प्रभु सबको रोटी देते हैं। उसने दूसरे दिन से काम पर जाना बंद कर दिया। जो भी उससे पूछता कि वह काम पर क्यों नहीं जा रहा है, तो वह कहता कि भगवान जब रोटी देने ही वाले हैं तो परिश्रम क्यों करूं ? एक रोज महात्मा उसी गाँव से निकले, जिधर उस युवक का घर था। गाँव-घर वालों से उसके बारे में सुनकर महात्मा उसकी हालत को समझ गए। उन्होंने उसे दूसरे दिन बुलवाया और कहा कि वह उसे कोई उपहार देंगे।

युवक यह सुन खुश हुआ। वह सवेरे ही पहुंच गया। ज्ञानी ने पूछा, कैसे आए भाई ? युवक ने उत्तर दिया पैरों से

चलकर। ज्ञानी ने उसे मिठाई उपहार में दी और कहा, तुम पैरों से चलकर मेरे पास आए, तभी मिठाई पा सके। ईश्वर रोटी अवश्य देता है पर वह देता उसी को है, जो कमाने या कुछ पाने के लिए प्रयास करता है। जब मेरा उपहार तुम बिना पैरों से चले प्राप्त नहीं कर सके, तो भगवान द्वारा दी जानेवाली रोटी कैसे पा सकोगे। युवक को बात समझ में आ गई और अगले दिन से वह फिर काम पर जाने लगा।

१४२६) ऊंचा स्थान- वट वृक्ष के नीचे एक दार्शनिक अपने एक शिष्य के साथ बैठा था। शिष्य ने कहा, यह वृक्ष कितना पक्षपाती है। देखिए, नीचे की टहनियां मोटी हैं और ऊपर की पतली। इसका अर्थ यह है कि वृक्ष पोषक तत्वों का वितरण समान रूप से नहीं करता। दार्शनिक ने जवाब दिया, वत्स, तुम्हारा विचार सही नहीं है। यह सत्य है कि जड़ें पोषक तत्वों को एकत्रित करती हैं और अन्य जितनी भी शाखाएं हैं वे उनसे पोषक तत्व ग्रहण करती हैं। जो मोटी शाखाएं हैं वे पोषक तत्व अधिक मात्रा में ग्रहण करती हैं पर वे शाखाएं अधिक ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं कर पातीं। ऊंचा स्थान उन्हीं को प्राप्त होता है जो कम से कम में संतुष्ट होना जानता है। पेड़ के बहाने शिष्य को जीवन के एक महत्वपूर्ण रहस्य का ज्ञान मिल गया।

१४२७) रक्षक- एक राजा का राज्य दूर-दूर तक फैला था। उसके राज्य में काफी समृद्धि थी और शिक्षा का प्रसार भी। प्रजा बहुत सुखी थी। उसी के राज्य से सटा एक छोटा-सा राज्य था। उसमें आए दिन झगड़े होते थे। यह देखकर उसका राजा परेशान रहता था। एक दिन वह बड़े राज्य के राजा के पास आया। बातचीत में उसने कहा, मेरा छोटा-सा राज्य है, मगर उसमें प्रतिदिन उत्पात होते रहते हैं, प्रजा परेशान है। आपका राज्य इतना विशाल है, फिर भी यहां पूर्ण शांति है, इसका कारण क्या है। राजा बोला, आप सही कहते हैं। मेरे राज्य में बड़ा सुख-चैन है। प्रजा भी संतुष्ट है। इसका कारण है कि मैंने चौकीदार तैनात कर रखे हैं जो हर समय मेरी रक्षा करते रहते हैं। दूसरे राजा ने कहा, मेरे यहां तो चौकीदारों की फौज है। आपका काम केवल चार से कैसे चल जाता है ? पहले राजा ने कहा, मेरे रक्षक दूसरी तरह के हैं। पहला रक्षक है सत्य, वह मुझे असत्य नहीं बोलने देता। दूसरा रक्षक है प्रेम, वह मुझे घृणा से बचाता है। तीसरा रक्षक है न्याय, वह मुझे अन्याय नहीं करने देता और चौथा रक्षक है त्याग, त्याग की भावना मुझे स्वार्थी नहीं बनने देती।

१४२८) कुत्ता श्रेष्ठ या मनुष्य ? - एक महात्मा एक बार एक स्थान पर बैठे थे कि उन्हें चुपचाप बैठे देखकर एक कुत्ता उनके पास आकर बैठ गया। कुछ दूरी पर बैठे एक मनुष्य ने जब यह देखा को उसने महात्मा से पूछा- महात्माजी, आप दोनों में श्रेष्ठ कौन है ? वास्तव में यह पूछकर उसने महात्माजी की खिल्ली उड़ाई थी। महात्माजी बोले- यदि मैं प्रभुसेवा के लिए सत्कर्म करता हूं तब तो मैं श्रेष्ठ हूं और यदि मैं भोग विलास में जीवन व्यतीत करता हूं तो मेरे जैसे सैकड़ों मनुष्यों से यह कुत्ता श्रेष्ठ है। प्रश्नकर्ता लज्जित सा होकर दूसरी ओर चला गया।

१४२९) लालच- रेलवे स्टेशन पर मालगाड़ी से शीरे के बड़े-बड़े ड्रम उतारे जा रहे थे। उन ड्रमों से थोड़ा-थोड़ा शीरा मालगाड़ी के पास नीचे जमीन पर गिर रहा था। जहाँ शीरा गिरा था मक्खियां आकर बैठ गई और शीरा चाटने लगीं। ऐसा करने से उनके छोटे-छोटे मुलायम पंख उस शीरे में ही चिपक गए, फिर भी मक्खियों ने उधर ध्यान न देकर शीरे का लालच न छोड़ा और काफी देर तक शीरा चाटने में ही मगन रही। कुछ समय बाद वहाँ एक कुत्ता भी आ गया। कुत्ते को देखकर वे मक्खियां डरीं और वहां से उड़ने की कोशिश करने लगी, परंतु पंख शीरे में चिपक जाने के कारण वे उड़ नहीं सकीं और शीरे के साथ-साथ वे सब भी कुत्ते का भोजन बनती गई। उसी समय उड़ते-उड़ते और कई मक्खियां भी उस शीरे पर आकर बैठती गई। उन सबके पंख भी शीरे में चिपक गए और वे भी उस कुत्ते का भोजन बन गई। उन्होंने पहले से पड़ी मक्खियों की दुर्गति और विनाश देखकर भी उनसे कोई सीख नहीं ली, जबकि वही विनाश उनकी भी प्रतीक्षा कर रहा था। यही दशा इस संसार की

है। मनुष्य देखता है कि लोभ-मोह किस तरह आदमी को दुर्गति में, संकट में डालता है, फिर भी वह दुनिया के इन दुर्गुणों से बचने की कोशिश कम ही करता है। परिणामत: अनेक मनुष्यों की भी वही दुर्गति होती है, जो उन लोभी मक्खियों की हुई।

१४३०) अपने आपको जानो- एक भेड़ पालक को एक बार जंगल में एक शेर का छोटा बच्चा मिला। उसे वह अपनी कुटिया में ले आया और बड़े ही प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगा। कुछ ही हफ्तों में वह शेर का बच्चा भेड़ के बच्चों के साथ घुलमिल गया और उन मेमनों की टोली के साथ जंगल में जाने लगा। एक दिन अचानक जंगल में एक शेर आ गया। उसकी दहाड़ सुन कर सभी मेमने अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर छिप गए। उन्हें छिपते देखकर शेर का बच्चा भी घबड़ाया हुआ इधर-उधर छिपने का प्रयास करने लगा। शेर ने देखा तो सोचने लगा कि यह शेर का बच्चा क्यों भयभीत हो रहा है ? उसने उस बच्चे को पकड़ा और ले गया एक छोटे से तालाब के पास। फिर बोला- तुम क्यों डर रहे हो ? तुम शेर हो, न कि भेड़। देखो, अपनी परछाई इस तालाब के पानी में और जोर से जैसे मैं दहाड़ लगाता हूं, वैसे ही तुम भी दहाड़ो। शेर के बच्चे ने जब अपना प्रतिबिम्ब देखा तो वह हूबहू उस शेर से मिल रहा था और उसे विश्वास हो गया कि मैं भी शेर ही हूं, भेड़ नहीं। वह जोर से दहाड़ा, आवाज भी बिल्कुल वैसी ही थी। वह खुद के वास्तविक परिचय से वाकिफ हुआ, जिसे वह नहीं जान पाया था। हम मनुष्य भी अपना असली परिचय भूल चुके हैं। आज किसी से पूछो कि तुम कौन हो ? तो वह कहेगा मैं व्यापारी हूं, मैं डॉक्टर हूं, इंजीनियर हूं, शिक्षक हूं वगैरहा-वगैरहा। इसलिए यह बहुत जरूरी हो जाता है कि हम अपने आपको जानें कि सचमुच में हमारा असली स्वरूप क्या है ? एथेंस के एक गार्डन में सुकरात का एक वाक्य लिखा है, अपने आप को जानो। यह आज भी उतना ही सच है जितना कि सुकरात के समय में था। संसार का प्रत्येक प्राणी मैं और मेरा में फंसा हुआ है, लेकिन मैं कौन हूं यह नहीं पहचान रहा। इसलिए संत-महात्माओं ने कहा है कि मैं क्या हूं- पहले इसको जानो, समझो।

१४३१) जिंदगी अहमियत- दीपक का तेल खत्म हो गया था। सिर्फ रुई की बाती जल कर हलकी रोशनी बिखेर रही थी। उसका आखिरी वक्त पास आते देख एक आदमी ने पूछा, तुम जीवन भर रोशनी देकर दूसरों को राह दिखाते रहते हो। इतनी भलाई करते हो। तुम्हारा यह दुखद अंत देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है। बुझते हुए दीपक ने आखिरी बार अपनी रोशनी को बिखेरते हुए कहा, भाई, इस दुनिया में जिसका जन्म होता है, उसका अंत भी होता है। हम कोशिश करने पर भी उससे बच नहीं सकते। इतना जरूर कर सकते हैं कि अपने जीवन की कीमती घड़ियों को बेकार बरबाद न होने दें।

१४३२) दीपों की बातें- एक बार की बात है, दीपावली की शाम थी, मैं दिये सजा ही रहा था कि एक ओर से दीपों के बात करने की आवाज सुनाई दी। मैंने ध्यान लगाकर सुना। चार दीपक आपस में बात कर रहे थे। कुछ अपनी सुना रहे थे कुछ दूसरों की सुन रहे थे। पहला दीपक बोला, मैं हमेशा बड़ा बनना चाहता था, सुंदर, आकर्षक और चिकना घड़ा बनना चाहता था पर क्या करूँ जरा-सा दिया बन गया। दूसरा दीपक बोला, मैं भी अच्छी भव्य मूर्ति बनकर किसी अमीर के घर जाना चाहता था। पर क्या करूँ मुझे कुम्हार ने छोटा-सा दिया बना दिया। तीसरा दीपक बोला, मुझे बचपन से ही पैसों से बहुत प्यार है काश मैं गुल्लक बनता तो हर समय पैसों में रहता। चौथा दीपक चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। अपनी बारी आने पर मुस्कराकर अत्यंत विनम्र स्वर में कहने लगा, एक राज की बात मैं आपको बताता हूँ, कुछ उद्देश्य रखकर आगे पूर्ण मेहनत से उसे हासिल करने के लिए प्रयास करना सही है लेकिन यदि हम असफल हुए तो भाग्य को कोसने में कही भी समझदारी नहीं है। यदि हम एक जगह असफल हो भी जाते हैं तो और द्वार खुलेंगे। जीवन में अवसरों की कमी नहीं है, एक गया तो आगे अनेक मिलेंगे। अब यही सोचो, दीपों का पर्व- दिवाली आ रहा है, हमें सब लोग खरीद लेंगे, हमें पूजा घर में जगह मिलेगी, कितने घरों की हम शोभा बढ़ाएँगे। इसलिए दोस्तों जहाँ भी रहो, जैसे भी रहो, हर हाल में खुश

रहो, द्वेष मिटाओ। खुद जलकर भी दूसरों में प्रकाश फैलाओ, नाचो गाओ और खुशी-खुशी दिवाली मनाओ।

१४३३) बुद्धि का प्रयोग- एक दिन एक शिकारी अपने परिवार के लिए भोजन का प्रबंध करने जंगल में गया। उसे एक हिरनी दिखी तो वह उसे मारने दौड़ा। हिरनी प्राण रक्षा के लिए दौड़ी जा रही थी और शिकारी भी पूरी रफ्तार के साथ उसके पीछे भाग रहा था। रास्ते में एक पेड़ के नीचे एक तपस्वी मिला। शिकारी ने उसे देख अत्यंत क्रोध में पूछा, ऐ बूढ़े, सच-सच बताना। क्या इधर से कोई हिरनी जाती हुई दिखी है। मैं उसे मारने के लिए उसका पीछा कर रहा हूं। उसे मारकर मैं अपने परिवार की भूख मिटाऊंगा। तपस्वी ने कहा, जिस आंख ने देखा है वह बोल नहीं सकती और जो मुख बोल सकता है उसने कुछ देखा ही नहीं। यह उत्तर सुन शिकारी सोच में पड़ गया। उसका क्रोध जाता रहा। तब तपस्वी ने उसे समझाते हुए कहा, बुद्धिपूर्वक कर्म करने से दूसरे के प्राणों की रक्षा की जा सकती है। मैंने बुद्धिपूर्वक उत्तर देकर सत्य का पथ भी नहीं छोड़ा और हिरनी की जान भी बचाई। तुम भी बुद्धि का प्रयोग कर अपने परिवार का भरण-पोषण करो। हिंसा का रास्ता त्याग दो। शिकारी ने वैसा ही करने का वचन दिया।

१४३४) राग का बंधन- एक साधु था। वह एक कुटिया बनाकर जंगल में रहता था। एक दिन एक आचार्य उधर आये। साधु उन्हें अपनी कुटिया में ले गया। थोड़ी देर रुककर आचार्य आगे बढ़ गये। साधु भी उनके साथ चला। उसने कहा, महाराज, आपने मेरी कुटिया देखी। कितनी सुन्दर है। और सुरक्षित तो इतनी है कि उसमें एक भी जगली जानवर नहीं घुस सकता। आचार्य ने उसकी बात सुनी, पर कोई उत्तर नहीं दिया। तब साधु ने पूछा, कुटिया आपको कैसी लगी ? आचार्य बोले, स्वामीजी, जब आप घर-परिवार में रहते थे तो उसके गीत गाते रहे होंगे। जब घर-परिवार त्याग कर झोंपड़ी बनाकर रहने लगे तो उसके गुण गाने लगे। आपने छोड़ा क्या था? साधु ने सोचा, आचार्य सोचते होंगे कि मैं वैरागी बनकर रहता हूं, पर हूं रागी। इस विचार के आते ही वह झटपट लौटकर अपनी कुटिया पर पहुंचा और उसमें आग लगाकर वापस आ गया। बोला, आचार्यजी, यह मत सोचिये कि मैं रागी आदमी हूं। देखिये, अपनी कुटिया में आग लगा आया हूं। पर सच मानिये। कुटिया थी बड़ी अच्छी। आपने तो देखी ही थी। साधु की बात सुनकर आचार्य बड़ी हैरानी से बोले, स्वामीजी, आपकी घास-फूंस की झोंपड़ी नष्ट कहां हुई है, वह तो आपके मन पर जमी बैठी है। मन का राग मिटेगा तभी सम्यक ज्ञान प्राप्त होगा।

१४३५) अवसर का उपयोग- एक बार एक धोबी गधे पर बाजार से सामान लाद कर आ रहा था। रास्ते में उसे एक चमकदार पत्थर दिखाई पड़ा। उसने पत्थर को उठाकर गधे के गले में बांध दिया। तभी दूसरी तरफ से एक जौहरी घोड़े पर सवार होकर पहुंचा। उसमे समझ लिया कि यह पत्थर हीरा है, लेकिन धोबी को यह मालूम नहीं है। उसने धोबी से कहा, भई यह पत्थर हमें दे दो। मैं अपने घोड़े के गले में बांध दूंगा। इसका क्या लोगे ? धोबी ने संकोच के साथ कहा, आठ आने दे दो। जौहरी बहुत कंजूस था। उसने सोचा कि धोबी को कुछ पता तो है नहीं। इसलिए कहा, इस पत्थर के आठ आने तो बहुत ज्यादा हैं। चार आने ले लो। धोबी ने कहा, चार आने में नहीं बेचना। जौहरी यह सोचकर आगे बढ़ गया कि उसके लिए तो यह साधारण पत्थर है इसलिए अभी स्वयं बुला कर चार आने में दे देगा।

वह थोड़ी दूर बढ़ा ही था कि एक दूसरा जौहरी आ गया। उसने भी गधे के गले में बंधा पत्थर देखा। बोला, क्या लोगे इसका ? धोबी ने कहा, आगे वाले जौहरी से आठ आना मांगा था। आठ आना दे दो। उसने बिना समय गंवाए आठ आना देकर पत्थर ले लिया। कुछ दूर जाकर पहले जौहरी ने विचार बदला और यह सोच कर लौट आया कि आठ आना देकर हीरा खरीद लेगा। लेकिन तब तक पत्थर बिक चुका था। दूसरे जौहरी के चले जाने के बाद उसने धोबी से कहा, तुमने लाखों का हीरा आठ आने में बेच दिया। धोबी ने कहा, मैं तो मूर्ख था, तभी तो इसकी कीमत नहीं समझ पाया। लेकिन तुम तो महामूर्ख

हो। यह जानते हुए भी कि यह लाखों का हीरा है, तुम इसे चार आने में खरीदना चाहते थे। जौहरी अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। उसी समय एक संत आ गए। उन्होंने सारी बातें सुनी, तो जौहरी से कहा, जो व्यक्ति सही समय पर, सही सोच से सही निर्णय नहीं लेता उसका हश्र तुम्हारी ही तरह होता है। जौहरी के सामने पछताने के सिवाय कुछ नहीं बचा था।

१४३६) दृष्टि का भ्रम- सूर्य बादल के पीछे छिप गया। ऐसा प्राय: होता है। बरसात में तो अक्सर। हम देखते हैं कि- छोटे-से बादल ने सूर्य को ढक लिया। पर क्या सचमुच ऐसा होता है ? यह कहीं दृष्टि का भ्रममात्र तो नहीं है ? कहीं छोटा-सा बादल धरती से आकर बड़े सूरज को ढक सकता है ? निश्चय ही यह भ्रम है। शास्त्र में कहा गया है- घनच्छन्नदृष्टि: घनच्छन्नमर्कम्। जिसकी दृष्टि-निगाह-आँख को बादल ने ढक लिया है, वह सूरज को बादल से ढका कह रहा है। है न भ्रम? भारी भ्रम। ऐसे ही अनेक भ्रम जीवन में रम-बस गये हैं। होता कुछ है, हम देखते-समझते कुछ हैं।

संस्कृत के प्रसिद्ध न्यायशास्त्री उदयनाचार्य ने एक गर्वोक्ति की है कि सच वह नहीं है, जो दुनिया मानती है। सच वह है, जो उदयन कहता है। उदयन ही सत्य का वक्ता अनुसन्धाता है। उदाहरण के लिए, लोग कहा करते हैं कि सूर्य का उदय पूर्व दिशा में होता है, सच नहीं है। सच यह है कि जिधर सूर्योदय होता है, वही दिशा पूर्व होती है- उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा। पूर्व दिशा सूर्योदय का आधार नहीं है। सूर्य ही पूर्व दिशा का निर्धारण करता है।

१४३७) कष्ट में भी क्रोध नहीं- पुरुष के जीवन में तो कष्ट आते ही रहते हैं। परंतु वह पुरुष महान् है, जो कष्ट सहकर भी कभी कष्ट का तनाव अपने मन पर हावी नहीं होने देता। यह बात इटली के एक पादरी की है। लोग उन्हें गालियाँ बकते थे, फिर भी वे लोगों से मीठा बोलते व कभी किसी का निरादर नहीं किया करते थे। किसी ने उनसे पूछा, आप में इतनी सहनशक्ति कहाँ से आयी ? तब पादरी ने कहा, मैं आकाश की ओर देखता हूँ और सोचता हूँ कि मुझे तो वहाँ जाना है जहाँ ईश्वर रहते हैं। अगर कभी ईश्वर से मुलाकात में, ईश्वर ने पूछा कि तुम में तो कष्टों के सहने की क्षमता भी नहीं है। तो क्या मैं उन्हें जवाब दे पाऊँगा ?

एक क्षण रुककर फिर वे बोले, कभी तुमने संसार का भ्रमण किया है ? मैंने जब भी संसार में देखा, मुझे सभी व्यक्ति अपने से ज्यादा दु:खी दिखायी पड़े। वे व्यक्ति कष्ट सहते हैं पर उसका विरोध भी नहीं करते। बस, इन्हीं कारणों को सोचकर मेरा मस्तिष्क शीतल हो जाता है और मैं किसी भी दु:ख या कष्ट को मन पर हावी नहीं होने देता हूँ।

१४३८) समय की उड़ान- एक कलादीर्घा में चित्र प्रदर्शनी चल रही थी। अनेक प्रसिद्ध कलाकारों के चित्र प्रदर्शित किये गये थे। कलाकार भी वहीं उपस्थित थे। एक चित्र को दर्शक बड़े कौतूहल से देख रहे थे। चित्र में एक मानव के चेहरे को घने बालों ने ढक रखा था और उसके पैरों में पंख लगे हुए थे। एक प्रबुद्ध दर्शक ने कलाकार से पूछा, यह किसका चित्र है ? कलाकार- समय (अवसर) का।

इसका मुँह क्यों छिपा हुआ है ? कलाकार ने उत्तर दिया, इसलिए कि जब अवसर (समय) हमारे पास आता है तो हम पहचान नहीं पाते। और इसके पैरों में पंख क्यों लगे हैं ? मधुर मुस्कान के साथ कलाकार ने उत्तर दिया, इसलिए कि हाथ आया (अवसर) समय उड़ जाता है और कभी लौट कर नहीं आता।

१४३९) जान अजान- किसी जंगल में एक भीलनी थी। उसे लाल नामक कीमती रत्न पड़ा हुआ मिला। उसने लाल को ठोकर मारकर आगे को लुढ़का दिया, पर कुछ चमकीला-सा देखकर उठा लिया। वह उसे जौहरी के पास ले गयी। उसने भीलनी से कहा कि बोलो, इसकी कीमत कितने रुपये लेगी ? तभी दूसरे दुकानदार ने कुछ भाँप लिया। वह पास आया और बोला- क्या है, दिखाओ, क्या माँगती हो ? पहले जौहरी ने उस लाल को इस दुकानदार की दृष्टि से बचाने के

लिए अपने पैर के नीचे दबा लिया। तभी यह क्या हुआ। वह लाल टुकड़े-टुकड़े होकर फट गया। जौहरी चकित होकर देखने लगा, तब लाल ने कहा- अजान जान ठोकर दई तब न चीन्ह अपमान। तैने जान बूझकर ठोकर दई यों फाट्यो पाषाण।। भीलनी तो मेरे गुण-मूल्य से अजान थी। उसने ठोकर दी तो मैंने अपमान नहीं माना। तू तो जौहरी मेरे गुण और मूल्य को जानता है, फिर भी पैर के नीचे दबाने का अपमानजनक कार्य किया। इसलिए यह पत्थर (मैं) फट गया।

१४४०) जड़ की बात- आँगन में एक पौधा उग गया। धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ और उस पर फल लगे। एक फल पककर नीचे गिरा। उसे कुत्ते ने मुँह में ले लिया। देखते-देखते कुत्ता मर गया। कुछ समय बाद पड़ोसी का लड़का आया। बढ़िया फल देखकर उसका मन ललचाया। उसने एक फल तोड़ा और जैसे ही दाँत से काटा कि उसके प्राण निकल गये।

तब आदमी ने समझा कि वह विष-वृक्ष है। उसने कुल्हाड़ी लेकर सारे फल काटकर गिरा दिये। कुछ दिन बात फिर फल आ गये। आदमी ने इस बार पेड़ के तने को काट दिया। लेकिन थोड़े दिन में फिर शाखें निकल आयीं। आदमी ने सिर पकड़ लिया। अब वह क्या करे ? आदमी ने एक साधू को अपनी हैरानी बतायी। साधू ने हंसकर कहा, जब तक जड़ रहेगी, पेड़ रहेगा। बुराई की जड़ काटो, शाखा काटने से क्या होगा।

१४४१) मानव व पशु- जंगल में एक पारधी के पीछे एक व्याघ्र पड़ गया। घबराकर पारधी एक वृक्ष पर चढ़ गया। उसी वृक्ष पर एक रीछ भी बैठा था। बाघ को पेड़ पर चढ़ना आता नहीं था। इसलिए वह उसी पेड़ के नीचे बैठकर इन्तजार करने लगा कि दोनों में से कोई भी नीचे उतरे और मैं खाकर अपनी भूख मिटाऊँ। काफी समय बीत जाने पर भी जब दोनों में से कोई नीचे न उतरा तो बाघ ने पशु-भाषा में रीछ से कहा- वह मनुष्य हम दोनों का शत्रु है। तू इसे धक्का मार, मैं इसे खाकर चला जाऊँगा और तेरा जीवन बच जायेगा। रीछ ने कहा- नहीं, यह मेरा धर्म नहीं।

मध्य रात्रि में रीछ की आँखें लग गयीं। अब बाघ ने पारधी से कहा कि यदि वह रीछ को धक्का मार दे तो उसकी जान बच जायेगी। पारधी ने रीछ को धक्का मार दिया। किन्तु संयोग से गिरते-गिरते वृक्ष की एक डाल रीछ की पकड़ में आ गयी। बाघ ने रीछ से कहा- देखा ? जिस मनुष्य की तू रक्षा की, वही तुझे मारने को तैयार हो गया। अब तू इसे धक्का मार।

रीछ ने उत्तर दिया- मानव भले ही अपने धर्म से विमुख हो जाये, किन्तु मैं ऐसा नहीं करूँगा। पापाचरण करनेवाले पापियों का अपकार सन्त-पुरुष नहीं देखते। सज्जन पुरुषों को स्वयं के शील-सदाचार का रक्षण करना चाहिए।

१४४२) संसारी मनुष्य की तपस्या सचमुच बड़ी होती है, परन्तु वह होती है क्षुद्र फलों के खातिर। जैसी वासना, वैसा ही फल। अपनी चीज की जो कीमत हम आंकते हैं, उससे ज्यादा कीमत संसार में नहीं आंकी जाती। सुदामा चिउड़ा लेकर भगावन के पास गए। उस मुट्टीभर चिउड़े की कीमत का एक थैला भी शायद न हो। परन्तु सुदामा को वे अमोल मालूम होते हैं, क्योंकि उसमं भक्तिभाव था। वे अभिमंत्रित थे। उनके कण-कण में भावना भरी थी। चीज भले ही क्षुद्र क्यों न हो, मंत्र से उसका मोल, उसकी सामर्थ्य बढ़ जाती है। नोट का वजन भला कितना होगा ? उसे सुलगाएं, तो एक बूंद पानी भी शायद ही गरम हो। पर उस पर एक मुहर लगी रहती है। उसी से उसकी कीमत होती है।

१४४३) वास्तविक सौंदर्य- पांचाल देश के किसी नगर में एक राजा राज करता था। एक दिन जब राजा अपने सिंहासन पर विराजमान था, एक चारण आया और उसने राजा का जय-जयकार किया। राजा ने कहा, मेरी राजसभा में सबकुछ है। मुझे प्रशंसा नहीं चाहिए। कोई कमी हो तो बताओ। चारण ने राजसभा पर दृष्टि डाली और कहा, आपकी राजसभा बड़ी सुन्दर है, पर इसमें एक चित्रशाला का अभाव खटकता है। राजा ने उसी समय आदेश दिया कि एक चित्रशाला बनाई जाय। चित्रशाला बनाने का काम आरंभ हुआ और कुछ ही समय में अद्वितीय चित्रशाला बनकर तैयार

हो गई। तब समारोह किया गया। चित्रशाला के मध्य में इंद्रध्वज की स्थापना की गई। बहुत-सी ध्वजाओं के कारण वह इन्द्रध्वज बड़ा मोहक लग रहा था। समारोह समाप्त होने पर साज-सज्जा की सारी सामग्री एक ओर पटक दी गई। इंद्रध्वज को भी उस ढेर में डाल दिया गया। जिस सामग्री ने चित्रशाला की शोभा में चार चांद लगाये थे, उस पर धूल-मिट्टी पड़ने से वह विरूप हो गई। एक दिन राजा की निगाह अकस्मात उस इंद्रध्वज तथा अन्य सामग्री पर पड़ी। पूछने पर लोगों ने राजा को बताया कि ये सब वही चीजें हैं, जिनसे चित्रशाला को पहले दिन सजाया गया था। यह सुनते ही राजा का चिन्तन नई दिशा में चल पड़ा। उसने मन-ही-मन कहा, संसार में सुंदरता कुछ नहीं है। उसकी शोभा पर-वस्तुओं से है। सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से है। सारी चमक-चमक उधार ली हुई है। ऐसी मोहकता किस काम की। वह मुझे नहीं चाहिए। आखिर पराये पूतों से किसका घर बसा है ? मुझे वह सौंदर्य चाहिए, जो अपना है। वह सौंदर्य अपने भीतर है। मुझे आत्म-लीन होकर वास्तविक सौंदर्य प्राप्त करना चाहिए। सारे राज-वैभव से विमुख होकर राजा-आत्म-साधना के पथ पर चल पड़ा। अपने कठोर संयम और तप से केवल-ज्ञान की उपलब्धि की और मोक्ष-पद पर आसीन हुआ।

१४४४) अन्तर्दृष्टि- मुसाफिर को नये शहर में पहुंचकर पहले रात बिताने के लिए किसी सुरक्षित डेरे का बन्दोबस्त कर लेना चाहिए। डेरे में अपना सामान रखकर वह निश्चिंत होकर शहर देखते हुए घूम सकता है। परन्तु यदि रहने का बंदोबस्त न हो तो रात के समय अंधेरे में विश्राम के लिए जगह खोजने में उसे बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। उसी प्रकार, इस संसाररूपी विदेश में आकर मनुष्य को पहले ईश्वररूपी चिर विश्रामधाम प्राप्त कर लेना चाहिए, फिर वह निर्भय होकर अपने नित्य कर्त्तव्यों को करते हुए संसार में भ्रमण कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हो तो जब मृत्यु की घोर अंधकारपूर्ण भयंकर रात्रि आएगी तब उसे अत्यंत क्लेश और दु:ख भोगना पड़ेगा।

१४४५) आज- जान रस्किन की मेज पर एक सुन्दर पत्थर का टुकड़ा सदैव रखा रहता था। उस पर अंकित था एक शब्द-आज। एक दिन एक मित्र ने रस्किन से पूछा- इसका क्या अर्थ है, रस्किन ने उत्तर दिया- मेरे हाथ से कहीं वर्तमान यों ही न निकल जाए, इसलिए मैं यह पत्थर, अपने पास रखता हूं। इस शब्द को देखकर मुझे सदा यह याद रहता है कि हर क्षण कीमती है। मेरा एक क्षण भी बेकार न जाए।

१४४६) दौड़- एक सम्राट के कान में सहसा कोई अदृश्य शक्ति फुसफुसाई- मैं मृत्यु हूं। आज सांझ तुम्हें मरना है। मैं लेने आऊंगी। सम्राट पसीने से नहा गया। वह अपने सबसे फुर्तीले घोड़े पर सवार हुआ और दूर भागता चला गया। सांझ तक वह सैकड़ों कोस दूर जा पहुंचा। घोड़े के साथ वह भी थक गया था, किन्तु अब वह निश्चित था कि वह मृत्यु से बहुत दूर चला आया है। तभी मृत्यु ने सामने आकर कहा, तुम्हारा और तुम्हारे घोड़े का धन्यवाद। सुबह मुझे संदेह था कि जहां तुम्हारी मृत्यु होनी है, वहां तक तुम पहुंच भी सकोगे अथवा नहीं।

१४४७) ठण्डी रोटी- एक लड़का था। माँ ने उसका विवाह कर दिया। परन्तु वह कुछ कमाता नहीं था। माँ जब भी उसको रोटी परोसती थी, तब वह कहती कि बेटा, ठण्डी रोटी खा लो। लड़केकी समझमें नहीं आया कि माँ ऐसा क्यों कहती है। फिर भी वह चुप रहा। एक दिन माँ किसी कामसे बाहर गयी तो जाते समय अपनी बहू (उस लड़केकी स्त्री) - को कह गयी कि जब लड़का आये तो उसको रोटी परोस देना। रोटी परोसकर कह देना कि ठण्डी रोटी खा लो। उसने अपने पतिसे वैसा ही कह दिया तो वह चिढ़ गया कि माँ तो कहती ही है, यह भी कहना सीख गयी। वह अपनी स्त्रीसे बोला कि बता, रोटी ठण्डी कैसे हुई ? रोटी भी गरम है, दाल-साग भी गरम हैं, फिर तू ठण्डी रोटी कैसे कहती है ? वह बोली कि यह तो आपकी माँ जाने। आपकी माँने मेरेको ऐसा कहनेके लिये कहा था, इसलिये मैंने कह दिया। वह बोला कि मैं रोटी

नहीं खाऊँगा। माँ तो कहती ही थी। तू भी सीख गयी।

माँ घर आयी तो उसने बहूसे पूछा कि क्या लड़केने भोजन कर लिया ? वह बोली कि उन्होंने तो भोजन किया ही नहीं, उलटा नाराज हो गये। माँने लड़केसे पूछा तो वह बोला कि माँ, तू तो रोजाना कहती थी कि ठण्डी रोटी खा ले और मैं सह लेता था, अब यह भी कहना सीख गयी। रोटी तो गरम होती है, तू बता कि रोटी ठण्डी कैसे है ? माँने पूछा कि ठण्डी रोटी किसको कहते हैं ? वह बोला- सुबहकी बनायी हुई रोटी शामको ठण्डी होती है। ऐसे ही एक दिनकी बतायी हुई रोटी दूसरे दिन ठण्डी होती है। बासी रोटी ठण्डी और ताजी रोटी गरम होती है। माँने कहा- बेटा, अब तू विचार करके देख। तेरे बापकी जो कमाई है, वह ठण्डी, बासी रोटी है। गरम, ताजी रोटी तो तब होगी, जब तू खुद कमाकर लायेगा। लड़का समझ गया और माँसे बोला कि अब मैं खुद कमाऊँगा और गरम रोटी खाऊँगा।

इस कहानीसे यह शिक्षा मिलती है कि विवाह होनेके बाद ठण्डी रोटी नहीं खानी चाहिये, अपनी कमाईकी रोटी खानी चाहिये। जब भगवान राम वनवासमें गये, तब रावण सीताजीको ले गया। किसी भी रामायणमें यह सुननेमें नहीं आया कि रामजीने भरतको समाचार दिया हो कि रावण मेरी स्त्रीको ले गया है, तुम मेरी सहायता करो। कारण कि रामजी इस बातको समझते थे कि विवाह किया है तो स्त्रीकी रक्षा करना, उसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। उन्होंने अपनी भुजाओंके बलसे पहले सुग्रीवकी सहायता की, पीछे उससे सहायता ली। सुग्रीवको राज्य, कोष, पुर और नारी- ये चार चीजें दिलाकर अपनी एक स्त्रीके लिये सहायता ली। इसलिये विवाह तभी करना चाहिये, जब स्त्रीका और बच्चोंका पालन-पोषण करनेकी ताकत हो। यह ताकत न हो तो विवाह नहीं करना चाहिये।

१४४८) सन्तोंकी शरण- एक गाँवमें एक ठाकुर थे। उनके कुटुम्बमें कोई आदमी नहीं बचा, केवल एक लड़का रह गया। वह ठाकुरके घर काम करने लग गया। रोजाना सुबह वह बछड़े चराने जाता था और लौटकर आता तो रोटी खा लेता था। ऐसे समय बीतता गया। एक दिन दोपहरके समय वह बछड़े चराकर आया तो ठाकुरकी नौकरानीने उसको ठण्डी रोटी खानेके लिये दे दी। उसने कहा कि थोड़ी-सी छाछ या राबड़ी मिल जाय तो ठीक है। नौकरानीने कहा कि जा-जा, तेरे लिये बनायी है राबड़ी। जा, ऐसे ही खा ले, नहीं तो तेरी मरजी। उस लड़केके मनमें गुस्सा आया कि मैं धूपमें बछड़े चराकर आया हूँ, भूखा हूँ, पर मेरेको बाजरेकी रूखी रोटी दे दी, राबड़ी माँगी तो तिरस्कार कर दिया। वह भूखा ही वहाँसे चला गया। गाँवके पासमें एक शहर था। उस शहरमें सन्तोंकी एक मण्डली आयी हुई थी। वह लड़का वहाँ चला गया। सन्तोंने उसको भोजन कराया और पूछा कि तेरे परिवारमें कौन है ? उसने कहा कि कोई नहीं है तो सन्तोंने कहा कि तू साधु बन जा। लड़का साधु बन गया। फिर वह पढ़नेके लिये काशी चला गया। वहाँ पढ़कर वह विद्वान हो गया। फिर समय पाकर वह मण्डलेश्वर (महन्त) बन गया। मण्डलेश्वर बननेके बाद एक दिन उनको उसी शहरमें आनेका निमन्त्रण मिला। वे अपनी मण्डलीको लेकर वहाँ आये। जिनके यहाँ वे बचपनमें काम करते थे, वे ठाकुर बूढ़े हो गये थे। ठाकुर उनके पास गये, उनका सत्संग किया और प्रार्थना की कि महाराज। एक बार हमारी कुटियामें पधारो, जिससे हमारी कुटिया पवित्र हो जाये। मण्डलेश्वरजीने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

मण्डलेश्वरजी अपनी मण्डलीके साथ ठाकुरके घर पधारे। भोजनके लिये पंक्ति बैठी। फिर सबने भोजन करना आरम्भ किया। महाराजके सामने तख्ता लगा हुआ था और उसपर तरह-तरहके भोजनके पदार्थ रखे हुए थे। अब ठाकुर महाराजके पास आये। साथमें नौकर था, जिसके हाथमें हलवेका पात्र था। ठाकुर प्रार्थना करने लगे कि महाराज। कृपा करके थोड़ा-सा हलवा मेरे हाथसे ले लो। महाराजको हँसी आ गयी। ठाकुरने पूछा कि आप हँसे कैसे ? महाराज बोले कि मेरेको पुरानी

बात याद आ गयी, इसलिये हँसा। ठाकुर बोले कि बताओ, वह बात क्या है ? महाराजने सब सन्तोंसे कहा कि भाई, थोड़ा ठहर जाओ, बैठे रहो, ठाकुर बात पूछते हैं तो बताता हूँ। महाराजने ठाकुरसे पूछा कि आपके कुटुम्बमें वह परिवार रहता था, उस परिवारमें अब कोई है क्या ? ठाकुर बोले कि केवल एक लड़का था। उसने कई दिन बछड़े चराये, फिर न जाने कहाँ चला गया। बहुत दिन हो गये, फिर कभी उसको देखा नहीं। महाराज बोले कि वही मैं हूँ। पासमें सन्त-मण्डली ठहरी हुई थी, मैं वहाँ चला गया। पीछे काशी चला गया, वहाँ पढ़ाई की और फिर मण्डलेश्वर बन गया। यही वह आँगन है, जहाँ आपकी नौकरानीने मेरेको थोड़ी-सी राबड़ी देनेसे भी मना कर दिया था। अब मैं भी वहीं हूँ, आँगन भी वही है और आप भी वही हैं, पर अब आप अपने हाथसे मोहनभोग दे रहे हो कि महाराज, कृपा करके थोड़ा मेरे हाथसे ले लो।

माँगे मिले न राबड़ी, करूँ कहाँ लगि वरण। मोहनभोग गले में अटक्या, आ सन्तों की शरण।।

सन्तोंकी शरण लेनेमात्रसे इतना हो गया कि जहाँ राबड़ी नहीं मिलती थी, वहाँ मोहनभोग भी गलेमें अटक रहा है। अगर कोई भगवान्‌की शरण ले ले तो वह सन्तोंका भी आरदणीय हो जाय। लखपति-करोड़पति बननेमें सब स्वतन्त्र नहीं हैं, पर भगवान्‌के शरण होनेमें, भगवान्‌का भक्त बननेमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं और ऐसा मौका इस मनुष्यजन्ममें ही है।

१४४९) पाप की जड़- एक राजा ने एक दिन अपने पुरोहित से अचानक पूछा, मान्यवर, कृपया बताएं कि दुनिया में हो रहे इतने पाप का असली कारण क्या है? क्यों करते हैं लोग पाप? सवाल सुनकर पुरोहित सोच में पड़ गए। बोले- राजन्, इस सवाल का उत्तर देने में कुछ समय लगेगा। इसके लिए मुझे दो दिन चाहिए। राजा ने कहा, ठीक है, आप दो दिन ले लीजिए। अगर आपने इसका सही उत्तर दिया तो मैं आपको बहुत सा इनाम दूंगा। पुरोहित इनाम के लोभ में और अपनी प्रतिष्ठा की खातिर सावल का जवाब ढूंढने घर से निकल पड़े। उन्हें यह आशंका भी सता रही थी कि अगर वह उत्तर नहीं ढूंढ पाए तो राजा की नजर में गिर जाएंगे। पुराहित दिन-रात चलते रहे और रास्ते में मिलने वाले हर साधु-मनीषी से यह सवाल पूछते रहे। लेकिन किसी का जवाब उन्हें अच्छा नहीं लगा। अंतत: वह नगर की सरहद पर पहुंचे। वहां एक गड़रिया अपनी भेड़ें चरा रहा था। पुरोहित ने जब गड़रिए से यह सवाल पूछा तो वह हंसने लगा। वह हंसते हुए बोला, मैं आपको इसका जवाब नहीं बता सकता। आप इस लायक हैं ही नही। यह सोचकर कि वह गड़रिया वास्तव में इस सवाल का उत्तर जानता है, पुरोहित बोले, मैं आपके लिए कुछ भी कर सकता हूं। मेहरबानी कर इसका जवाब बता दीजिए। तब गड़रिए ने कहा, उत्तर जानने के लिए क्या आप मेरा जूठा दूध पी सकते हैं? पुरोहित इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए। तब गड़रिए ने फिर हंसते हुए कहा, यही आपके प्रश्न का उत्तर है। आप पद, प्रतिष्ठा और इनाम के लोभ में कुछ भी करने को तैयार हो गए। ऐसे तो आप मेरा जूठा दूध कभी नहीं पीते लेकिन स्वार्थवश आप इसके लिए मान गए। लोभ के लिए व्यक्ति कुछ भी कर सकता है। इसी लोभ और तृष्णा के कारण दुनिया में सारे पाप होते हैं। यह लोभ ही पाप का सबसे बड़ा कारण है।

१४५०) परिवार और प्रेम- एक दिन एक व्यक्ति के घर के बाहर बरामदे में चार लोग आकर बैठे। ये चार लोग थे- प्रेम, वैभव, सफलता और नीति। घर में रहनेवाले दंपती ने बाहर आकर उन्हें प्रणाम किया और परिचय पूछा। चारों ने बारी-बारी से अपना परिचय दिया। तब दंपती ने आदरपूर्वक उन्हें भीतर आने के लिए आमंत्रित किया। इस पर आगंतुक बोले, हम सबको एक साथ अंदर आने की क्या जरूरत है, आप किसी एक को बुला लें। दंपती असमंजस में पड़ गया, किसे बुलाएं, किसे छोड़ें। उन्होंने आगंतुकों से थोड़ा समय मांगा और आपस में सलाह करने के लिए वापस घर में आ गए। पूरा परिवार अंदर बैठकर सलाह करने लगा। स्त्री बोली, हमें वैभव को ही अंदर बुलाना चाहिए। उसके आने से बाकियों की कमी भी पूरी हो सकती है। लेकिन उसकी बात काट कर पति ने कहा, वैभव सफलता का मोहताज है।

इसलिए सफलता को ही बुलाओ। उसके साथ होने से वैभव अपने आप साथ आ जाएगा। इस पर बेटे ने सलाह दी, नहीं पिताजी, आप सबसे पहले नीति को बुलाएं। जहां नीति होती है, वहीं सफलता मिलती है और जहां सफलता मिलती हैं, वहां वैभव अपने आप आता है। इसके बाद सभी बहू की राय जानने के लिए उसकी ओर देखने लगे। वह धीरे से बोली, मेरी मानिए तो आप लोग सबसे पहले प्रेम को ही बुलाइए। बाकी सभी पात्र बाहरी जीवन के मददगार हैं, लेकिन घर-परिवार में सबसे बड़ा मित्र प्रेम ही होता है। प्रेम बना रहे तो अन्य आगंतुकों का साहचर्य किसी न किसी उद्यम से हासिल हो ही जाएगा। बहू की सलाह पर दंपती ने बाहर आकर प्रेम को निमंत्रित किया। आश्चर्य कि जब प्रेम भीतर आया तो उसके पीछे-पीछे बाकी तीनों भी आ गए। अंदर आकर वे बोले, आपने हम तीनों में से किसी एक को बुलाया होता, तो हम अकेले ही आते। पर प्रेम जहां जाता है, वहां हम अवश्य साथ होते हैं।

१४५१) असली गरीब- एक भिक्षुक को दिनभर में जो कुछ मिलता था, उसे वह खा-पीकर समाप्त कर देता था। प्राय: उसे आवश्यक के अनुसार भिक्षा मिल जाया करती थी। एक दिन उसे उसकी जरूरत से ज्यादा एक पैसा मिल गया। वह सोचने लगा- इसका क्या उपयोग करूं? उसने उस एक पैसे को अपने चीथड़े के कोने में बांध लिया और एक पंडित के पास गया। उसने उनसे पूछा, महाराज, मैं अपनी संपत्ति का क्या सदुपयोग करूं? पंडितजी ने पूछा, तुम्हारे पास कितनी संपत्ति है? उसने कहा, एक पैसा। इस पर पंडित जी चिढ़ गए। उन्होंने कहा, जा-जा, तू एक पैसे के लिए मुझे परेशान करने आया है। वह भिक्षुक निराश नहीं हुआ। वह कई पंडितों के पास गया। कहीं हंसी मिली तो कहीं दुत्कार। किसी सज्जन ने सलाह दी कि पैसा किसी गरीब को दे दो। अब भिक्षुक गरीब की तलाश में चल पड़ा। उसने अनेक भिखारियों से प्रश्न किया कि तुम गरीब हो? परंतु एक पैसे के लिए किसी ने गरीब बनना स्वीकार नहीं किया। तभी भिक्षुक को पता चला कि किसी देश का राजा अपने पड़ोसी राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा है। उसने लोगों से पूछा, राजा चढ़ाई क्यों कर रहे हैं? लोगों ने बताया धन-संपत्ति प्राप्त करने के लिए। भिक्षुक को लगा कि राजा बहुत गरीब होगा। तभी तो धन-संपत्ति के लिए मारकाट करने पर आमादा है। क्यों न उसे ही पैसा दे दिया जाए। जब राजा की सवारी उसके पास से गुजरने लगी, तो वह खड़ा हो गया और झटपट अपने चीथड़े में से पैसा निकालकर उसने राजा के हाथ पर डाल दिया। उसने कहा, मुझे बहुत दिनों से एक गरीब की तलाश थी। आज आपको पाकर मेरा मनोरथ पूरा हो गया, आप मेरी पूंजी संभालिए। राजा रुक गया। भिक्षुक ने उसे अपनी कहानी सुनाई तो उसने धावा बोलने का इरादा बदल दिया और सारी फौज के सामने यह बात कबूल की- असली गरीब वह है, जिसके लालच का कोई अंत नहीं।

१४५२) असली अपराधी- एक बार एक राजा की राजसभा में एक लकड़हारे को सिपाहियों ने पेश किया। लकड़हारे पर आरोप था कि उसने रानी का कंकण चोरी किया और उसे बेच डाला। कंकण पर राजमुद्रा अंकित थी। इसलिए चोर का अपराध अपने आप प्रमाणित हो रहा था। लकड़हारे से राजा ने पूछा तो लकड़हारे ने कहा- उसे यह कंकण रास्ते में मिला था। लकड़हारे ने अपनी सफाई में यह भी कहा कि वह पढ़ा लिखा नहीं है अत: उसे लिखी हुई इबारत के बारे में कुछ नहीं मालूम है। राजा ने कंकण खरीदनेवाले व्यक्ति को बुलाया और उससे पूछताछ की। पूछताछ से पता चला कि कंकण खरीदने वाला पढ़ा-लिखा था। राजा ने लकड़हारे को माफ कर दिया क्योंकि उसे मार्ग में पड़ा हुआ कंकण मिला था। पर पढ़-लिखे खरीददार ने राजमुद्रा पढ़ने के बावजूद भी उसे खरीदा इसलिए पढ़े-लिखे को अपराधी माना गया क्योंकि उसने राज्य की वस्तु को लौटाने के बजाए उसे औने-पौने दामों में खरीद लिया था।

१४५३) सुनो सबका करो अपना- एक बार बहुत से मेंढ़क जंगल से जा रहे थे। वे सभी आपसी बातचीत में कुछ ज्यादा ही व्यस्त थे। तभी उनमें से दो मेंढ़क एक जगह एक गड्ढे में गिर पड़े। बाकी मेंढ़कों ने देखा कि इनके दो साथी गहरे गड्ढे में गिर गए है। गड्ढा गहरा था और इसलिए बाकी साथियों को लगा कि अब उन दोनों को गड्ढे से बाहर निकल पाना मुश्किल है। साथियों ने गड्ढे में गिरे उन दो मेढ़कों को आवाज लगाकर कहा कि अब तुम खुद को मरा हुआ मानो। इतने बहुत गहरे गड्ढे से बाहर निकल पाना असंभव है। दोनों मेंढ़कों ने बात को अनसुना कर दिया और बाहर निकलने के लिए कूदने लगे। बाहर झुंड में खड़े मेंढ़क उनसे चीखकर कहने लगे कि बाहर निकलने की कोशिश करना बेकार है। तब तुम बाहर नहीं आ पाओगे। थोड़ी ही देर तक कूदा फांसी करने के बाद भी जब गड्ढे से बाहर नहीं निकाल पाया तो एक मेंढ़क ने आस छोड़ दी और गड्ढे में नीचे की तरफ लुढ़क गया।

नीचे लुढ़कते ही वह मर गया। दूसरे मेंढ़क ने कोशिश जारी रखी और अंतत: पूरा जोर लगाकर एक छलांग लगाने के बाद वह गड्ढे से बाहर आ गया। जैसे ही दूसरा मेंढ़क गड्ढे से बाहर आया तो बाकी मेंढ़क साथियों ने उससे पूछा- जब तुम्हें हम कह रहे थे कि गड्ढे से बाहर आना संभव नहीं है तो भी तुम छलांग मारते रहे। क्यों? इस पर उस मेंढ़क ने जवाब दिया- दरअसल मैं थोड़ासा ऊंचा सुनता हूं और जब मैं छलांग लगा रहा था तो मुझे लगा कि आप मेरा हौसला बढ़ा रहे हैं और इसलिए मैंने कोशिश जारी रखी और देखिए मैं बाहर आ गया। यह छोटी कहानी कई बातें कहती हैं। पहली यह कि हमें हमेशा दूसरों का हौसला बढ़ाने वाली बात ही करनी चाहिए। दूसरी यह कि जब हमें अपने आप पर भरोसा हो तो दूसरे क्या कह रहे हैं इसकी कोई परवाह नहीं करनी चाहिए।

१४५४) व्यक्ति का भय- एक ऋषि अपने आश्रम के बाहर टहल रहा था। सहसा उसने देखा कि एक काली सी भयाकृति वहां चली आ रही है। उन्होंने उसे रोका और पूछा, कौन हो तुम? वह बोली, मुनिवर मैं मौत हूं। यह सुनकर ऋषि हैरानी से बोले, तुम्हें अचानक इस गांव में आने की क्या जरूरत पड़ गई? मौत बोली, मुनिवर मैं कभी भी बिना बुलाए नहीं आती। इस गांव में पचास लोगों का अंत समय निकट आ गया है और मैं उन्हें लेने आई हूं। यह सुनकर ऋषि चिंतित हो गए और हाथ जोड़कर उससे बोले, तुम यहां से वापिस चली जाओ। इतने लोगों को मारकर तुम्हें क्या मिलेगा? मौत बोली, मुनिवर, मुझे रोकने का प्रयास न करें। मैं तो शाश्वत सत्य हूं। जिनका अंत समय निकट है, उन्हें मैं कैसे छोड़ दूं। यह कहकर वह वहां से आगे बढ़ चली और चलते-चलते बोली, मुनिवर, वापसी में भी मैं आपसे मिलते हुए जाऊंगी। कुछ समय बाद वह ऋषि के पास लौटी तो चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। ऋषि ने उसे तुरंत पहचान लिया और उसके समीप आकर गुस्से से बोले, मुझे नहीं पता था कि तुम झूठ भी बोलती हो। अरे तुमने तो कहा था कि तुम्हें पचास लोगों के प्राण लेने हं लेकिन तुमने तो पांच सौ लोगों के प्राण हर लिए। तुमने ऐसा अन्याय क्यों किया? मौत मुस्कुराते हुए बोली, मुनिवर, न ही मैंनें झूठ बोला और न ही कोई अधर्म किया है। मैं तो वास्तव में पचास लोगों की जान लेने गई थी। साढ़े चार सौ लोग तो व्यर्थ ही अपने समय से पहले भयभीत होकर मेरे पास चले आए। मैंने उन्हें छुआ भी नहीं था। भयभीत प्राणी किसी भी क्षेत्र में नहीं जीत सकता। हां निडर व दृढ़ इच्छाशक्ति वाला व्यक्ति अवश्य मुझे पराजित कर सकता है। आपके ही गांव के एक किसान ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से मुझे हरा दिया। मैं उसके प्राण नहीं ले सकी। आप ही बताइए भला मेरा कहां दोष है? दोष तो व्यक्ति के अंदर छिपे भय का है।

१४५५) कर्त्तव्य की रक्षा- बात सोलहवीं सदी की है। फ्रांसीसी शहर तूलोन के पास एक टापू के प्रकाश गृह (लाइट हाउस) में काम करनेवाला व्यक्ति अचानक बीमार हो गया। सवाल उठा कि जब जहाजों को रोशनी दिखाने का काम कौन

करे। रात के केवल नौ ही बजे थे। रोशनी दिखानवाले की पत्नी ने अपने कर्त्तव्य का महत्व समझ खुद ही लैम्प जला दिया। लैम्प जलाकर वह लौटी ही थी कि उसने पाया उसका पति मरणासन्न है। वह चिंतित हो गई। इतने में उसके सात साल के बेटे और नौ साल की बेटी ने आकर बताया कि लैम्प घूम नहीं रहा है। दरअसल प्रकाश गृह का लैम्प चारों ओर घूमकर अपना प्रकाश फैलाता था। यदि वह एक ही दिशा को प्रकाशित करता तो जहाजों के टकराने और डूबने की आशंका थी। पत्नी पति को मृत्यु शय्या पर छोड़ बच्चों के साथ लैम्प ठीक करने चली गई, पर वह ठीक नहीं हुआ। उसने अपने बच्चों को वहीं बैठाते हुए कहा, तुम लोग रातभर लैम्प को चारों ओर घुमाते रहना। आज बादलों के कारण चांद की रोशनी भी नहीं है। यह कहकर वह अपने पति के पास चली गई। दोनों बच्चे सुबह के छह बजे तक लैम्प घुमाते रहे। इस तरह उन्होंने कई जहाजों को रोशनी दिखाई और उन्हें दुर्घटना से बचाया। सुबह तक उन बच्चों के पिता का निधन हो चुका था। उनकी मां रो रही थी लेकिन उसके चेहरे पर कर्त्तव्य निभाने का संतोष झलक रहा था। वह जानती थी कि उसने और दोनों बच्चों ने एक महान काम को अंजाम दिया है और यही उसके पति के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

१४५६) प्रेम की दासी - लक्ष्मी ने आधी रात में नगर सेठ के सपने में आकर कहा- श्रेष्ठिन, मुझे आपके घर में निवास करते हुए काफी समय हो गया है। अब मैं यहां से जाना चाहती हूं। जाते हुए मैं आपको एक वरदान देना चाहती हूं। आप चाहे जो वरदान मांग सकते हैं।

यह बात सुनते ही सेठ ने नम्र शब्द में कहा- देवी, आपको जाना हैं तो खुशी से जाएं मै क्या मांगू? मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है। लक्ष्मी ने कहा- खैर, आज नहीं तो कल सोच-समझकर वरदान मांग लेना। इतना कहकर लक्ष्मी अंतर्धान हो गई।

सुबह होते ही सेठ ने अपने पूरे परिवार को इकट्ठा किया। लक्ष्मी ने एक रात्रिकालीन वार्तालाप पर सबके सुझाव मांगे। सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार रखे।

आखिर में सेठ की पुत्र वधू ने कहा- पिताजी, अपने को न तो धन चाहिए और न गाड़ी-घोड़े चाहिए। अपने को चाहिए प्रेम, मित्रता, सद्व्यवहार और आपसी कलह से छुटकारा। लक्ष्मी से आप आपस में प्रेमाचार बना रहे बस यही आशीर्वाद मांगें।

दूसरे दिन लक्ष्मी का आगमन होते ही सेठ ने कहा- हे जगदंबे। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मुझे तो पूरे परिवार में प्रेम, शांति और सद्भावना का वरदान चाहिए। यह सुनते ही लक्ष्मी के मुंह से सहसा ये शब्द निकले- सेठ। आज तुम्हारे बहुत बड़ी जीत हुई है। तुमने प्रेम का वरदान मांगा है। अब तो मुझे अपना वचन निभाना ही पड़ेगा, क्योंकि मैं भी प्रेम की दासी हूं। जिस घर में प्रेम और आपसी सद्भावना होती है मैं वहां से कभी नहीं जा सकती। इसलिए तुम्हारे घर में ही रहूंगी। यह कहकर लक्ष्मी अंतर्धान हो गई।

१४५७) सन्त स्वभाव- एक बार एक साधु गंगा में स्नान कर रहे थे कि तभी उनकी दृष्टि पास से बहते हुए एक जीवित बिच्छु पर पड़ी। उनको उस पर दया आ गयी और उन्होंने उसे अपने हाथ पर उठा लिया। बिच्छु तो बिच्छु ही होता है। उसकी पीठ पर पानी गिरा कि उसने तुरंत हाथ पर डंक मार दिया। साधु का हाथ कांप गया और बिच्छु फिर पानी में। डंक से साधु के हाथ में भयंकर पीड़ा होने लगी। किंतु दयासागर साधु महाराज ने आगे बढ़कर फिर उस डूबते बिच्छु को उठा लिया और उसे लेकर तट की ओर आने लगे कि उसने फिर डंक मार दिया। हाथ फिर कांपा और बिच्छु फिर पानी में गिरा। वे फिर उसको उबराने के लिए प्रवाह की ओर बढ़े। पास खड़े अन्य स्नानार्थी यह सब देख रहे थे। तब किसी ने कहा- महाराज, यह दुष्ट प्राणी तो वैसे भी मार देने योग्य है। अपनी दुष्टता से ही यह मर रहा है तो आप इसे बचाने का निरर्थक प्रयत्न क्यों कर रहे है, मरने दीजिए इसे? साधु ने तीसरी बार बिच्छु को हाथ पर उठाते हुए कहा- यह क्षुद्र प्राणी अपना डंक मारने का

स्वभाव नहीं छोड़ता है तो मनुष्य होकर मैं अपना दया करने का स्वभाव कैसे छोड़ दूँ? पशुता से यदि मानवता श्रेष्ठ है तो मेरी मानवता अवश्य इसकी पशुता पर विजय पाएगी। वही हुआ इस बार बिच्छु ने अपना डंक सीधा कर लिया मानो वह डंक चलाना ही भूल गया हो। साधु महाराज ने उसे जल से निकालकर नदी के तट पर डाल दिया और फिर स्नान करने लगे।

१४५८) आँखों का तारा- पनघट पर चार औरतें पानी भरने आईं। बातों ही बातों में उन्होंने अपने बेटों की प्रशंसा शुरू कर दी। एक ने कहा, मेरा बेटा बहुत सुरीली बांसुरी बजाता है। दूसरी ने कहा, मेरा बेटा बहुत बड़ा पहलवान है। तीसरी बोली, मेरा पुत्र पढ़ने-लिखने में बहुत तेज है। चौथी औरत ने कुछ नहीं कहा। तीनों ने उससे कहा, तुम भी कुछ कहो न। उसने उत्तर दिया, मेरे बेटे में कोई विशेष गुण नहीं है। तभी पहली औरत का बेटा आया। उसकी मां पानी से भरा घड़ा नहीं उठा पा रही थी। बेटे ने एक निगाह अपनी मां पर डाली और बांसुरी बजाता हुआ आगे निकल गया। दूसरी औरत का पहलवान बेटा कुछ दूरी पर खड़ा मुद्गर घुमा रहा था। उसमी मां घड़ा लेकर कुएं से उतर ही रही थी कि उसका पैर फिसल गया। पहलवान ने एक बार अपनी मां की तरफ देखा और फिर अपने काम में लग गया। तीसरी औरत का बेटा किताब पढ़ता हुआ जा रहा था। उसकी मां ने कहा, मैं दोनों हाथों से घड़ा पकड़े हुए हूँ। रस्सी मेरे कंधे पर डाल दे। बेटे ने किताब से निगाह हटाए बिना चलते-चलते कहा, पढ़ने दो मुझे। इसके बाद चौथी औरत का बेटा आया। उसने अपनी मां के सिर से घड़ा उतारकर अपने सिर पर रख लिया और घर की ओर चल पड़ा। एक बुढ़िया सब देख-सुन रही थी। वह बोली, मुझे तो एक ही आंखों का तारा दिखाई पड़ रहा है- वही जो अपने सिर पर घड़ा लिए जा रहा है।

१४५९) सदुपयोग की महत्ता- एक राजा आखेट के लिए वन की ओर निकला। शिकार की खोज में भटकता हुआ काफी दूर निकल गया। उसके सैनिक और अंगरक्षक काफी पीछे छूट गए। वह काफी थक गया था, उसे जोरों की प्यास भी लगी थी। भूख-प्यास से पीड़ित वह एक वनवासी के द्वार पर पहुंचा। वहां उसे आतिथ्य मिला तो उसकी जान बची। उसके सेवाभाव से राजा बड़ा खुश हुआ। चलते समय राजा ने वनवासी से कहा, मैं इस राज्य का शासक हूँ। तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित होकर तुम्हें चंदन का वन प्रदान करता हूँ ताकि तुम्हारा आगे का जीवन सुखमय बीते। चंदन का क्या महत्व है और उसका किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, उसकी जानकारी वनवासी को नही थी। जानकारी के अभाव में वह चंदन के वृक्ष काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचने लगा। इस प्रकार किसी तरह उसकी जीविका चलने लगी। धीरे-धीरे सारे वृक्ष समाप्त हो गए। एक अंतिम वृक्ष बचा। वर्षा होने के कारण कोयला न बन सका तो उसने लकड़ी को ही बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठर लेकर जब वह बाजार पहुँचा तो सुगंध से प्रभावित लोगों ने उन लकड़ियों का बड़ा भारी मूल्य लगाया। विस्मय से भरे वनवासी ने इसका कारण उन लोगों से पूछा तो लोगों ने बताया- यह चंदन की लकड़ी है, बहुत मूल्यवान है। यदि तुम्हारे पास ऐसी ही और लकड़ी हो तो उसका बहुत मूल्य प्राप्त कर सकते हो। वनवासी अपनी नासमझी पर पश्चाताप करने लगा। इतना मूल्यवान चंदन वन उसने कौड़ी के मोल कोयले के रूप में बेच डाला। उसे पछताते देख एक विवेकशील व्यक्ति ने कहा- मित्र, पछताओ मत, यह सारी दुनिया तुम्हारी ही तरह नासमझ है। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है, पर लोग उसे वासना और तृष्णा के लिए कौड़ी के मोल गंवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है उसी का सदुपयोग कर लो तो कम नहीं। बहुत कुछ गंवाकर भी अंत में यदि कोई मनुष्य संभल जाए तो वह बुद्धिमान ही माना जाता है।

१४६०) मनुष्य का चरित्र - किसी जिज्ञासु ने एक ज्ञानी से पूछा, हर मनुष्य की बनावट तो एक जैसी होती है, फिर कुछ लोग पतन के गर्त में क्यों डूब जाते हैं? ज्ञानी ने उसे अगले दिन एक तालाब के पास आने को कहा। जिज्ञासु समय पर वहां पहुंच गया। ज्ञानी वहां दोनों हाथों में एक कमंडल लिए मौजूद था। उसने दोनों कमंडल जिज्ञासु को दिखाए। एक

कमंडल तो ठीक था, पर दूसरे के पेंदे में छेद था। ज्ञानी ने पहले कमंडल को तालाब में फेंका। वह पानी में तैरने लगा। फिर उसने दूसरा कमंडल फेंका। वह कुछ देर तक तो तैरा, पर जैसे-जैसे उसमें पेंदे के छेद से पानी भरता गया वह डूबता गया और तालाब में विलीन हो गया। ज्ञानी ने जिज्ञासु से पूछा कि दोनों कमंडलों की ऐसी दशा क्यों हुई? जिज्ञासु ने सहज भाव से बता दिया कि ऐसा एक कमंडल के छेद के कारण हुआ। इस पर ज्ञानी ने कहा, यदि इसकी तुलना मनुष्य से करो तो तुम्हें पता चलेगा कि आदमी में भी दोषरूपी अनेक छिद्र होते हैं। इन्हीं छिद्रों से दुष्प्रवृत्तियां उसके भीतर घुस जाती हैं और उसका पतन हो जाता है। जिनमें ये छिद्र नहीं होते वे इन दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहते हुए भवसागर पार कर जाते हैं। लोग बाहर से एक जैसे दिखते हैं पर उनके चरित्र अलग-अलग होते हैं।

१४६१) मनुष्यता में विश्वास - एक बौद्ध भिक्षुक किसी गांव से गुजर रहे थे। उनसे किसी व्यक्ति ने पूछा, आप जा तो रहे हैं, पर क्या आपके पास खाने-पीने का प्रबंध है? कुछ रुपये-पैसे पास में हैं क्या? भिक्षुक ने सहज भाव से कहा, रुपये-पैसे तो पास में हैं नहीं और रखकर भी करना क्या है? सिक्के तो संसार में बिखरे पड़े हैं। जहां पहुंचेंगे वहीं बिखरे मिलेंगे। वह व्यक्ति बोला, सिक्के कैसे मिलेंगे? भिक्षुक ने कहा, मुझे मनुष्य की पवित्रता में, उसकी उदारता में विश्वास है और इसी भरोसे के बल पर मैं दुनिया भर में घूमूंगा और जहां भी जाऊंगा मनुष्य रूपी सिक्के बिखरे मिलेंगे। उस व्यक्ति ने कहा, क्या सचमुच आपको ऐसा विश्वास है? भिक्षुक बोले, हां, नि:संदेह मुझे विश्वास है कि मनुष्य अपने विचारों में पवित्र और उदार होता है और मैं जहां भी जाऊंगा मुझे मनुष्य की उदारता का वरदान मिलेगा। किसी भी धर्म का मूलाधार है मनुष्यता में विश्वास। मैं इसी भावना के साथ निकला हूं और इसका निरंतर प्रसार करना चाहता हूं।

१४६२) एक संत बड़े विद्वान, पढ़े-लिखे थे। एक बार वो महात्मा मार्ग में जा रहे थे। संत ने मार्ग में फूटी कौड़ी पड़ी देखी। एक पैसा को पहले कौड़ी बोलते थे। संत ने वो पैसा उठाकर अपने कमण्डलु में रख लिया।

लोगों ने पूछ लिया- बाबा, इस कौड़ी का क्या करोगे? तुम तो त्यागी संत हो।

महात्मा बोले- मेरे तो किसी काम की नहीं, पर कोई दरिद्र मिलेगा उसे दे दूँगा, उसके काम आयेगी। कितने ही मंदिरों के बाहर संत ने देखा,कोई दरिद्र नहीं मिला। कितनी ही झोंपड़पट्टियों में संत गये, कोई दरिद्र नहीं मिला। एक बार महात्मा जी मार्ग में जा रहे थे। मार्ग में साने से बड़ी भारी सेना आ रही थी। मारो-मारो, काटो, लूटो-ऐसे वो बोल रहे थे। भगदड़ मची थी। लोगों ने कहा- बाबा, रास्ता छोड़ दो। महात्मा जी तो मग्न होकर जा रहे थे। जब लोगों ने कहा- रास्ता छोड़ दो, पश्चिम दिशा के राजा ने पूर्व दिशा के राजा पर चढ़ाई कर दी है। कत्ले आम होगा। लाखों नर-नारी मर जायेंगे। रास्ता छोड़ दो, नहीं तो हाथी के पैर के नीचे तुम भी कुचल जाओगे।

संत बोले- क्यों? पश्चिम के राजा ने पूर्व के राजा पर चढ़ाई क्यों की? लोग बोले- पूर्व का राजा थोड़ा कमजोर पड़ गया। पश्चिम का राजा बलशाली है, इसलिए चढ़ाई कर दी।

संत बोले- ऐसा करके वो करेगा क्या?

बोले- पश्चिम का राजा पूर्व के राजा के खजाने को लूट कर ले जायेगा। संत बोले- क्या उसके पास खजाना कम है? लोग बोले- नहीं, लेकिन ये खजाना लूटकर अपने खजाने को और बढ़ायेगा।

महात्मा जी बोले- मिल गया और बीच रास्ते में खड़े हो गये। राजा ने कहा- महात्मा जी मार्ग छोड़िये।

बोले- क्यों? हमें जल्दी जाना है महाराज, हमें चढ़ाई करनी है।

महात्मा जी मुस्कराकर बोले- मैं रास्ता तो छोड़ दूँगा लेकिन तुम पहले हाथ को, अपनी हथेली को मेरे सामने फैलाओ।

राजा ने सोचा- पता नहीं क्या देंगे महात्मा जी? सो हाथ सामने फैला दिया। महात्मा ने कमण्डल से उस कौड़ी को निकाल कर राजा के हाथ में देते हुए कहा- तुमसे बड़ा दरिद्र मैंने दुनियाँ में नहीं देखा। दरिद्र वही है जो असंतोषी है।

१४६३) एक सज्जन ने जिज्ञासा की यह चार साधु बैठे हुए है ये किस-किस वर्ण के है? वे सज्जन एक बुद्धिमान व्यक्ति के साथ पहले साधु के पास गये। बड़ी देर तक बैठे रहे। जब उनके दर्शनार्थी चले गये तो उन्होंने कहा- महाराज, हमें भी कुछ उपदेश दो।

हँसते हुए महात्मा बोले- अरे भाई, उपदेश क्या देना-

राम नाम लड्डू, गोपाल नाम घी। हरि नाम मिश्री, तू घोर घोर पी।।

यह सुनकर वे दोनों उठ गये। विज्ञ व्यक्ति ने कहा- निश्चय ही ये ब्राह्मण जाति के हैं। ब्राह्मण मधुर प्रिय होते हैं लड्डू पीड़ी, घी, मिश्री की बात उन्हीं को स्मरण रहती है।

अब वे दूसरे साधु के पास गये। दूसरा साधु गरजकर बोला- ढिलाई से काम नहीं चलेगा कमर कसकर खड़े हो जाओ।

राम नाम की ढाल बनाई, कृष्ण कटारा बाँध लिया। हरी नाम को कवच पहिन के यम का द्वारा जीत लिया।।

बुद्धिमान व्यक्ति यह तो क्षत्रिय मालूम पड़ता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अब तीसरे साधु के पास गये। उसने कहा-

ग्राहक सब संसार है, राम नाम को हाट। मोदीमाधव बेचते, चढ़े जो जितनो बाट।।

बुद्धिमान व्यक्ति बोला यह तो सेठजी लगते हैं। लगते कोई वैश्य, बनिये है। अब वे चौथे साधु के पास गये उससे भी उपदेश करने के लिये बोले।

वह साधु बोला- **राम झरोखे बैठकें सबका मुजरा लेहिँ। जैसे जाकी चाकरी, तैसो ताकूँ देहिँ।।**

बुद्धिमान व्यक्ति अपने साथी के साथ निकल आये और बोले- ये कोई चतुर्थ वर्ण के संत है।

१४६४) दीन-दुखियों की मदद हो हमारा लक्ष्य - उन्नीस सौ सत्तासी की बात है। मैं घर जाने के लिए सादुलपुर रेलवे स्टेशन पर ट्रेन का इंतजार कर रहा था। इसी समय मेरी नजर एक वृद्ध भिखारी पर पड़ी। वह अपने थैले से मांगी हुई भीख निकालकर रोटियों को अलग-अलग कर रहा था। इतने में उसके पास एक कुत्ता आकर दुम हिलाने लगा, उस भिखारी ने फटाक से दो-तीन रोटियां उसकी ओर फेंक दीं। यह दृश्य देख मैं बैंच से उठा और भिखारी से जाकर बोला, बाबा। मांगी हुई इस सामग्री से अभी तक तूने तो कुछ खाया नहीं और इस कुत्तों को झट से रोटियां डाल दीं। उसने ऊपर नजर उठाकर मुझसे कहा, बाबूजी। मुझै घर-गृहस्थियों की तरह यह कहने की आदत नहीं है कि आगे वाले घर जा। फिर यह कुत्ता भी तो नहीं जानता कि यह मेरे द्वारा भीख में मांगी हुई रोटिया हैं, सो पहले इसका अधिकार है। और जब मैं भी गरीबी-अमीरी के बारे में सोचने लग जाऊंगा तो फिर मुझमें और पैसे वालों में क्या फर्क रह जाएगा? भिखारी के जज्बातों को सुन मेरे जेहन में कई प्रश्न घूमने लगे और मस्तिष्क पर सार्थक सोच की लकीरें खिंच गईं। मैंने संकल्प लिया कि कभी भी द्वार पर आए किसी भी जरूरतमंद को दुत्कारूंगा नहीं, बल्कि उसकी यथायोग्य मदद करूंगा। कभी भी थाली में झूठन नहीं छोडूंगा और न ही घर में बची रोटियों को फेंकने दूंगा। तब से मैं इस संकल्प को निभाते आ रहा हूं। जरूरतमंदों की यथायोग्य मदद करता हूं। यदि इस संकल्प को हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना संकल्प मानकर जीवन में उतारे तो कोई भी बच्चा, बड़ा-बूढ़ा भूखे पेट नहीं सोए। न ही किसी को पेट के लिए द्वार-द्वार जाकर भीख के लिए याचना करनी पड़े। न हमारे देश में गरीबी और भुखमरी रहे और न ही इसकी वजह से कोई बच्चा कुपोषण का शिकार होकर मरे।

१४६५) कोयल - गरमियों की एक सुबह घनिष्ठ मित्र तोताराम और कल्लू एक जंगल में गए। सहसा उन्हें कोयल की कुहूक सुनाई पड़ी। यह एक पक्षी की आवाज है जो किसी मंगल की सूचना देती है। अंधविश्वासी तोताराम ने कहा, मैंने इसकी आवाज सुबह-सुबह सुनी है। मुझे विश्वास है कि आज का दिन बड़ा भाग्यशाली होगा। अवश्य ही मुझे रूपयों से भरा थैला मिलेगा। नहीं। कल्लू ने तोताराम की बात का प्रतिवाद किया, जो उससे भी अधिक वहमी था, तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली नहीं हो। मुझे विश्वास है, यह आवाज मेरे लिए अधिक भाग्यशाली साबित होगी। तुम देखना, जरूर मुझे अच्छी-खासी रकम प्राप्त होगी। खूबसूरत मौसम का मजा लेने के बजाय वे दोनों इसी बात पर लड़ने लगे। तू-तू, मैं-मैं के बाद हाथापाई पर उतारू हो गए। कुछ ही समय में ले बुरी तरह जख्मी हो गए। दोनों डॉक्टर के पास पहुँचे। डॉक्टर ने उनसे पूछा कि वे आखिर इस स्थिति में पहुँचे कैसे? सारी घटना बयान करने के बाद उन दोनों ने डॉक्टर से पूछा, आप बताएँ कि कोयल ने किसके भाग्यशाली होने की सूचना दी थी? डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, कोयल ने मेरे भाग्यशाली होने की सूचना दी थी। अगर तुम दोनों इसी तरह लड़-झगड़कर हाथ-पैर तोड़ते रहे तो मुझे रुपयों का ढेर तुम्हारे इलाज के एवज में मिलता रहेगा।

१४६६) सफलता का नशा - किसी आश्रम में अनेक छात्र रहते थे। उनमें से एक छात्र को अपनी बुद्धि पर काफी अभिमान हो गया था। एक दिन गुरु ने उसे एक कथा सुनाई-घने जंगल में एक बकरी रहती थी। वह अपने को काफी चतुर मानती थी। उसके शरीर पर घने नर्म लंबे बाल थे, जिस कारण वह बहुत सुंदर दिखती थी। एक दिन वह घास चर रही थी। तभी कुछ शिकारियों की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने उसका पीछा करना शुरू किया। बकरी भागती हुई जंगल में एक ऐसी जगह पहुंची, जहां अंगूर की घनी बेलें थीं। बकरी बेलों के पीछे जाकर छिप गई। जब पीछा करते शिकारी पहुंचे, तो वे बकरी को देख न सके। बड़ी देर तक वहां ढूंढने के बाद वे आगे बढ़ गए। बकरी अपनी चतुराई पर बहुत प्रसन्न हुई। तभी उसका ध्यान अंगूर के कोमल पत्तों पर गया तो उसने अंगूर की बेल को ही चरना आरंभ कर दिया। थोड़ी देर में ही उसने सारी झाड़ी चट कर डाली। तभी शिकारी उसे ढूंढते वापस वहां आ पहुंचे और उन्होंने बकरी को देख लिया और थोड़ी देर पीछा करने के बाद उन्होंने उसका शिकार कर लिया। शिकारी आपस में कह रहे थे कि यदि बकरी ने वह झाड़ी साफ न की होती तो उसे पकड़ना नामुमकिन था। बकरी ने अपना आश्रय स्वयं नष्ट किया और वह शिकार हो गई। इसलिए अहंकार से बचना चाहिए। शिष्य गुरु का आशय समझ गया।

१४६७) दुख के साथ - एक व्यक्ति हर समय परेशान रहता था। उसे लगता था कि वह दुनिया का सबसे दुखी इंसान है। बाकी सारे लोग सुखी है, एक अकेला वही दुखी है। एक दिन उसने परमात्मा से प्रार्थना की, मेरे सिवा सभी खुश नजर आते हैं। यह तो नहीं कहता कि तू मुझे दुख मत दे, पर इतना तो मत दे कि सह ही न सकूं। एक कृपा कर, तू मुझे किसी और का दुख दे दे। मेरा दुख किसी और को दे दे। रात में उसने एक स्वप्न देखा। देखा कि एक बहुत बड़े कमरे में हर जगह खूटियां ही खूटियां लगी हैं। उस कमरे में जो भी आता है उसकी पीठ पर दुखों की गठरी बंधी है। सभी आकर अपनी गठरी वहां किसी खूंटी पर टांग देते हैं और बैठ जाते हैं। उसे कमरे में जो भी दिखा वह उसका परिचित था। थोड़ी देर में वह खुद भी अपने दुख की गठरी लेकर पहुंचा और उसने भी अपनी गठरी एक खूंटी पर टांग दी। देखने में सभी गठरियां बराबर थीं। थोड़ी देर बाद एक आवाज गूंजी, जिसे भी अपनी गठरी बदलनी है बदल सकता है। चलो एक-एक गठरी उठा लो। सभी गठरियां उठाने दौड़े। पर सभी ने अपनी-अपनी गठरी ही उठाई। किसी ने दूसरे की गठरी को हाथ नहीं लगाया। उसी समय उस व्यक्ति की नींद टूट गई। वह स्वप्न का आशय समझ गया। उसे समझ में आ गया कि दुखी रहने का कोई अर्थ नहीं है।

१४६८) नजरों का फर्क - एक गुरुकुल में दो राजकुमार पढ़ते थे। दोनों में गहरी मित्रता थी। एक दिन उनके आचार्य दोनों को घुमाने ले गए। घूमते हुए वे काफी दूर निकल गए। तीनों प्राकृतिक शोभा का आनंद ले रहे थे। तभी आचार्य की नजर आम के एक पेड़ पर पड़ी। एक बालक आया और पेड़ के तने पर डंडा मारकर फल तोड़ने लगा। आचार्य ने राजकुमारों से पूछा, क्या तुम दोनों ने यह दृश्य देखा?

हां गुरुदेव, राजकुमारों ने उत्तर दिया। गुरु ने पूछा, इस दृश्य के बारे में तुम दोनों की क्या राय है? पहले राजकुमार ने कहा, गुरुदेव मैं सोच रहा हूं कि जब वृक्ष भी बगैर डंडा खाए फल नहीं देता, तब किसी मनुष्य से कैसे काम निकाला जा सकता है। यह दृश्य एक महत्वपूर्ण सामाजिक सत्य की ओर इशारा करता है। यह दुनिया राजी-खुशी नहीं माननेवाली है। दबाव डालकर ही समाज से कोई काम निकाला जा सकता है। दूसरा राजकुमार बोला, गुरुजी मुझे कुछ और ही लग रहा है। जिस प्रकार यह पेड़ डंडे खाकर भी मधुर आम दे रहा है उसी प्रकार व्यक्ति को भी स्वयं दुख सहकर दूसरों को सुख देना चाहिए। कोई अगर हमारा अपमान भी करे तो उसके बदले हमें उसका उपकार करना चाहिए। यही सज्जन व्यक्तियों का धर्म है। यह कहकर वह गुरुदेव का चेहरा देखने लगा। गुरुदेव मुस्कराए और बोले, देखो, जीवन में दृष्टि ही महत्वपूर्ण है। घटना एक है लेकिन तुम दोनों ने उसे अलग-अलग रूप में ग्रहण किया क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में भिन्नता है। गुरु ने पहले राजकुमार से कहा, तुम सब कुछ अधिकार से हासिल करना चाहते हो जबकि तुम्हारा मित्र प्रेम से सब कुछ प्राप्त करना चाहता है।

१४६९) गलती का अहसास - जंगल में इतिहास दोहराया जा रहा था। एक बार फिर कछुए और खरगोश की दौड़ होने जा रही थी। इसे देखने के लिए जंगल के सभी जानवर आए थे। राजा शेरसिंह ने विजेता को पुरस्कार देने की घोषणा भी कर दी थी। दौड़ शुरू होने से पहले कछुए ने खरगोश से कहा, मेरे पूर्वज ने तुम्हारे पूर्वज को हराया था। आज भी कुछ ऐसा ही होगा। आज भी तुम्हें हार का मुंह देखना पड़ेगा। कुछ ही देर में दौड़ शुरू हो गई। दोनों अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार दौड़ने लगे। खरगोश दौड़ते-दौड़ते काफी आगे निकल गया। वह थक गया था। इसलिए एक पेड़ के नीचे आराम करने लगा। कुछ ही देर में उसकी आंख लग गई। कछुआ भी उसके पीछे आ पहुंचा। रास्ते में जब उसने खरगोश को सोते देखा तो सोचा- यह भी अपने पूर्वज की तरह ही आलसी है। यह सोता ही रहेगा और हार जाएगा। आखिर जीतना तो मुझे ही है इसलिए क्यों न मैं भी कुछ देर आराम कर लूं। कछुआ भी पेड़ की छाया में आराम करने लगा। उसे भी नींद आ गई। खरगोश की नींद टूटी तो काफी समय बीत चुका था। उसे याद आई अपने पूर्वज की वह गलती, जिस कारण उन्हें हार का मुंह देखना पड़ा था। वह तुरंत दौड़ पड़ा। कुछ ही देर में वह अपनी मंजिल तक पहुंच गया। उधर जब कछुए की नींद टूटी तो वह भी मंजिल तक पहुंचने के लिए निकल पड़ा। पर जब तक वह पहुंचा तब तक काफी देर हो चुकी थी। वह हार चुका था। खरगोश को शेरसिंह ने पुरस्कार दिया। जानवरों ने खरगोश को विजेता बनने पर उसे खूब बधाइयां दी। राजा शेरसिंह ने पुरस्कार दिया। कछुए को अपनी गलती का अहसास हो चुका था। लेकिन अब कुछ नहीं किया जा सकता था।

१४७०) उपदेश और व्यवहार - एक जिज्ञासु युवक किसी प्रसिद्ध महात्मा के पास गया और उनसे कुछ उपदेश सुनाने की प्रार्थना करने लगा। महात्मा ने उस युवक को गौर से देखा फिर बोले, मेरा पहला उपदेश तो यही है कि आज के बाद किसी से उपदेश मत मांगना। यह सुनकर युवक हैरानी से बोला, क्यों महाराज, उपदेश सुनना तो अच्छी बात है। उसकी बात पर महात्मा बोले, इसका जवाब अभी मिल जाएगा। कुछ देर सोचने के बाद महात्मा ने उससे पूछा, बताओ, सच बोलना अच्छा है या बुरा? युवक बोला, सच बोलना तो अच्छा है महाराज। महात्मा ने फिर प्रश्न किया, चोरी करना ठीक है या गलत? युवक बोला, गलत है महाराज। महात्मा का अगला सवाल था, कटु वचन व मीठे वचनों में कौन सा

वचन बोलना अधिक सार्थक है। युवक बोला- महाराज मीठे वचन बोलना ही अधिक सार्थक है? इसके बाद महात्मा ने कहा, एक अंतिम बात और बताओ पुत्र कि समय का सदुपयोग करना चाहिए अथवा नहीं। युवक ने जवाब दिया, समय का सदुपयोग तो अवश्य करना चाहिए क्योंकि गया समय कभी वापस नहीं आता। महात्मा बोले, तुम सब कुछ जानते ही हो तो अब और क्या उपदेश सुनना चाहते हो? तुम्हें क्या लगता है कि कुछ बड़ी-बड़ी गूढ़ बातें ही उपदेश हैं? ऐसी बातें सुनने से क्या फायदा जो सुनने में तो अच्छी लगें पर समझ में ही न आएं और जिनसे हमारे जीवन में कोई अंतर न आए। उपदेश की सार्थकता तभी है जब वह हमारी सोच को, हमारे व्यवहार को बदले। जीवन में छोटी-छोटी बातें ही ज्यादा काम आती हैं। आपको जीवन के मूलभूत गुणों का ज्ञान है, लेकिन मात्र ज्ञान से काम नहीं चलता। उन गुणों को अपने जीवन में भी उतारना चाहिए। युवक महात्मा का जवाब सुनकर दंग रह गया। उसने महात्मा से कहा कि आगे से वह इस बात का ध्यान रखेगा और जिन सार्थक बातों को वह जानता है, उन्हें अपने जीवन में अवश्य उतारेगा।

१४७१) संस्कार - पति का तबादला बड़े शहर में हो जाने के कारण मीरा अपने पति और दो बेटियों के साथ गांव छोड़कर शहर में बस गई थी। शहर के लड़के-लड़कियों का फैशन और उनका उन्मुक्त व्यवहार देखकर मीरा बहुत विचलित हो गई। उसने मन ही मन निर्णय किया कि वह अपनी दोनों बेटियों को न केवल फैशन और आधुनिकता की आंच से बचाएगी अपितु उन्हें परंपरागत रीतियों व संस्कारों की प्रणेता भी बनाएगी। दिन-महीने-साल बीतने पर मीरा की दोनों बेटियां अब जवान हो चली थीं। आखिरकार अपने पति से विचार-विमर्श करके मीरा ने अपनी बड़ी बेटी की शादी की बात उसी शहर में रहनेवाले उच्चवर्गीय शिक्षित परिवार में चलाई। आज उनकी बेटी को लड़केवाले देखने आ रहे थे। पति-पत्नी दोनों को यह विश्वास था कि उनकी सुंदर, सुशिक्षित व संस्कारी बेटी लड़के वालों को अवश्य पसंद आ जाएगी। देखने-दिखाने की रस्म अदा होने पर लड़के की मां मीरा से बोली, बहनजी, बाकी तो सब ठीक है पर आपकी लड़की काफी सीधी और घरेलू तरह की है पर हमें तो अपने बेटे के लिए आधुनिक व फैशनेबल लड़की चाहिए। अपनी बेटी के बारे में लड़के वालों की यह प्रतिक्रिया जानकर मीरा के मन को गहरी ठेस लगी। वह सोचने लगी अच्छे संस्कार व रीतियों का गहना जो बरसों पहले उसने अपनी बेटियों को पहनाया था आज शायद उसे उतारने का वक्त आ गया है।

१४७२) एक सड़ा सेब - एक होनहार युवक था, मगर उसकी संगति बहुत खराब थी। युवक के पिता ने उसे बुरे मित्रों का साथ छोड़ने को कई बार कहा पर युवक को खुद पर बहुत भरोसा था। उसका कहना था कि वह अपने मित्रों की बुरी आदतों को कभी नहीं अपनाएगा। युवक के पिता अनुभवी थे। वे जानते थे कि बुरी संगत का असर पड़ना तो तय है, सो एक दिन उन्होंने अपने बेटे को समझाने का फैसला किया। वह बाजार गए और कुछ उम्दा नस्ल के सेब ले आए। उन्होंने सेब की टोकरी आलमारी में रख दी। उन्हीं सेबों के बीच उन्होंने एक सड़ा हुआ सेब भी रख दिया। उन्हें आलमारी में सड़ा सेब रखता देख पुत्र बोला- पिताजी, यह सड़ा हुआ सेब तो फेंकने लायक है, इसे क्यों आप आलमारी में रख रहे हैं। पिता ने कहा- अभी रहने दो। बाद में फेंक देंगे। दूसरे दिन पिता ने बेटे को आलमारी से सेब निकालकर लाने को कहा। बेटा सेबों की टोकरी ले आया लेकिन जब सेबों पर उसकी नजर गई तो उसने देखा कि सभी सेब सड़ने लगे हैं। वह अपने पिता से बोला- पिताजी, कल तक तो सारे सेब ठीक थे पर एक ही दिन में ये सड़ने कैसे लगे तब पिता ने जवाब दिया- बेटा, मैंने तुम्हें यही दिखाने के लिए इन सेबों के बीच वह सड़ा हुआ सेब रख दिया था। यही कुसंगति का प्रभाव है। एक सड़े सेब के कारण सारे अच्छे सेब भी खराब हो गए। इसी तरह बुरी संगति में अच्छे लड़के भी बिगड़ जाते हैं। बेटा पिता की बात समझ गया।

१४७३) बसंतपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा न्यायप्रिय था। एक दिन राजा के हृदय में

शास्त्र-श्रवण की इच्छा जगी। राजसभा में चार विद्वान पंडित बुलाए गए। वे ललाट पर तिलक छापें लगाए हुए थे। चारो ही अलग-अलग विषय के जानकार थे। उन्होंने अपने बुद्धि-कौशल से चार महान ग्रंथ बनाए। प्रत्येक ग्रंथ में एक-एक लाख श्लोक थे। पंडितों ने कहा- राजन्, इन चारों ही ग्रंथों में बहुत ही विस्तार से विभिन्न विषयों पर विश्लेषण किया गया है। कृपया इन चारों ग्रंथों का आप गहराई से अध्ययन करें। इससे देश की प्रजा को बड़ा लाभ मिलेगा। राजा ने जवाब दिया- आपका कथन ठीक है, पर इतने महान ग्रंथों का सार थोड़े शब्दों में बताने का प्रयास करें। तब चारों पंडितों ने साररूप एक श्लोक बनाकर राजा के सामने पेश किया। उन्होंने कहा- राजन् एक श्लोक में सभी ग्रंथों का सार समा गया है। कृपया ध्यान से सुनें और गुनें- जीर्णे भोजन मात्रेय: कपिल- प्राणिनां दया। बृहस्पति रविश्वास: पंचाल: स्त्रीषु मार्दवं। पहले आग्नेय नाम के विद्वान ने कहा- भोजन पच जाने के बाद फिर दूसरी बार भोजन करना चाहिए। यह पाकशास्त्र का सारभूत तत्व है। दूसरे कपिल नाम के पंडित ने कहा- सम्राट जगत् के समस्त प्राणियों के प्रति दया भाव रखना यह धर्मशास्त्र का सार तत्व है। तीसरा बृहस्पति नाम का विद्वान बोला- किसी भी हालत में किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए, यह राजनीतिशास्त्र का सार है। चौथे पंचाल नाम के विद्वान ने कहा- राजन्, महिलाओं के साथ मीठा व्यवहार करना चाहिए और उनसे फालतू बहस नहीं करनी चाहिए, यह सौन्दर्यशास्त्र का रहस्य है। इतने कम शब्दों में शास्त्रों का सार सुनकर राजा बहुत ही खुश हुआ चारों ही पंडितों को पारितोषिक दिया और मुक्तकंठ से दरबारियों ने चारों के गुण गाए।

१४७४) अवसर का उपयोग - एक बार पांच असमर्थ और अपंग लोग एक जगह इकट्ठे हुए और कहने लगे, यदि भगवान ने हमें समर्थ बनाया होता तो हम परोपकार के बहुत सारे कार्य करते। अंधे ने कहा, यदि मेरे आंखें होतीं तो जहां कहीं भी कुछ अनुचित देखता, उसे सुधार देता। लंगड़ा कहने लगा, भगवान ने अगर मुझे पैर दिए होते तो दौड़-दौड़ कर भलाई के कार्य करता। निर्बल ने कहा, अगर मेरे पास बल होता तो अत्याचारियों से मुकाबला करता। निर्धन ने कहा, धनी होता तो मैं सभी दीन-दुखियों की सेवा करता। अनपढ़ ने कहा, मैं अगर विद्वान होता तो संसार में ज्ञान की गंगा बहाता। धर्म का प्रचार-प्रसार करता।

भगवान उन पांचों की बातें सुन रहे थे। उन्होंने पांचों को आशीर्वाद दिया और देखते ही देखते अंधे ने आंखें, लंगड़े ने पैर, निर्बल ने बल, निर्धन ने धन और मूर्ख ने विद्या पा ली। वे फूले न समाए। लेकिन परिस्थिति बदलते ही उनके विचार भी बदल गए। अंधा सुंदर वस्तुएं देखने में ही लगा रहता और अपनी अतृप्ति बुझाता। लंगड़े को सैर-सपाटे से फुर्सत न थी। धनी और सुख-सुविधा जमा करने में लगा रहता। निर्बल ने अपने बल से दूसरों को आतंकित करना शुरू कर दिया और विद्वान ने अपनी चतुराई से समाज को मूर्ख बनाना प्रारंभ कर दिया।

एक दिन भगवान उन पांच असमर्थ लोगों का हाल देखने आए। उन्होंने देखा कि पांचों अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्ध में लगे हुए हैं। अपने आशीर्वाद का दुरुपयोग होते देखकर उन्होंने अपने सभी वरदान वापस ले लिए। पांचों फिर जैसे के तैसे हो गए। अब उन सबको अपनी पुरानी प्रतिज्ञाएं याद आईं और वे पछताने लगे। अब उन्हें पता चला कि उन्होंने भगवान से पाए हुए आशीर्वाद और अवसर को प्रमाद में गंवा दिया। लेकिन अब पछताने से क्या होना था। सच है कि जो अवसर का उपयोग करने से पहले चूक जाते हैं, वे खाली हाथ ही रहते हैं।

१४७५) विश्वास की शक्ति - एक राजा अपनी नव विवाहिता रानी के साथ शाम के समय भ्रमण को निकला। रथ वह स्वयं हांक रहा था। अचानक काले-काले बादल उड़ाए। आंधी-तूफान के लक्षण दिखने लगे। यह देख रानी भयभीत हो उठी, पर राजा इन सबसे बेपरवाह रथ हांकता रहा। रानी ने पूछा, आंधी-तूफान की आशंका के बावजूद आप इतने

निश्चिंत क्यों हैं? राजा ने उत्तर दिया, यह कोई विशेष बात नहीं हैं रानी ने कहा, कुछ ही देर में हमारे प्राण संकट में पड़ सकते हैं, फिर भी आप कहते है कि यह कोई विशेष बात नहीं है। यह सुनते ही राजा ने तलवार निकालकर उसकी नोक रानी के सीने से लगा दी। रानी ने मुस्कराकर पूछा, यह क्या? राजा ने कहा, अपने सीने पर तलवार देखकर भी तुम भयभीत क्यों नहीं हुई? रानी ने जवाब दिया, जब आपके जैसा पति मेरे साथ है तो मुझे डर किस बात का? इस पर राजा ने कहा, तुम्हें जिस तरह अपने पति पर विश्वास है, उसी तरह मुझे परमात्मा पर विश्वास है। फिर मैं आंधी-तूफान से क्यों डरूं? मुझे विश्वास है कि विपरीत परिस्थिति आने पर ईश्वर मेरी सहायता करेगा।

१४७६) विश्वास -अविश्वास - एक बार एक चिड़िया शिकारी के जाल में फंस गईं। चिड़िया शिकारी से बोली, मुझे छोड़ दो। शिकारी उसे छोड़ने को तैयार नहीं था। चिड़िया ने फिर विनती की कि मुझ जैसी छोटी चिड़िया को मार कर तुम्हें क्या मिलेगा। अगर तुम मुझे छोड़ दोगे तो मैं तुम्हें राज की तीन ऐसी बात बताऊंगी कि तुम मालामाल हो जाओगे। शिकारी बोला, अगर मैंने छोड़ दिया तो तुम उड़ जाओगी। चिड़िया बोली, नहीं। मुझ पर विश्वास करो। पहली बात तो मैं तुम्हारे बाएं हाथ पर बैठ कर बताऊंगी, दूसरी बात तुम्हारे दाहिने हाथ पर बैठकर बताऊंगी और तीसरी अनमोल बात दीवार पर बैठकर बताऊंगी। अगर मेरी तीनों बातें मानोगे तो तुम्हें कभी परेशानी नहीं होगी। शिकारी राजी हो गया। उसने उसे जाल से निकालकर अपने बाएं हाथ पर रख लिया। चिड़िया बोली, जीवन में किसी भी ऐसी बात पर विश्वास न करो जो असंभव हो। फिर चाहे वह बात किसी ने भी कही हो। इतना कहकर चिड़िया शिकारी के दाहिने हाथ पर आकर बैठ गई और बोली, दूसरी बात यह कि कभी भी कोई चीज तुम्हारे हाथ से निकल जाए तो उसके लिए पछतावा नहीं करना। समझ लो कि वह तुम्हारी थी ही नहीं। यह कह कर चिड़िया उड़कर दीवार पर बैठ गई। शिकारी ने कहा, अब तीसरी बात बताओ। चिड़िया बोली, तीसरी बात सुनाने से पहले एक मजेदार बात सुनाती हूं। वह बोली, मेरे पेट में आधा किलो वजन का एक हीरा है। यदि तुम मुझे मार देते तो तुम मालामाल हो जाते। इतना सुनना था कि शिकारी रोने चिल्लाने लगा। उसका रोना धोना सुनकर चिड़िया बोली, अरे मूर्ख, मेरा वजन तो पचास ग्राम भी नहीं है, फिर मेरे पेट में आधा किलो का हीरा कहां से होगा। शिकारी बोला, अब तीसरी बात बताओ। चिड़िया बोली, तुमने मेरी दो बातों पर ही विश्वास नहीं किया तो तीसरी बात पर क्या करोगे। बोलनेवाले को यह देख लेना चाहिए कि सुनने वाला उसकी बात समझ भी रहा है कि नहीं।

१४७७) इच्छाओं का जाल - एक गरीब एक महात्मा के पास गया और बोला, महाराज, मेरा अधिकतर जीवन गरीबी में गुजर गया। मैं भी वैभव व अमीरी में जीवन गुजारना चाहता हूं। कृपया मेरी मदद करें। व्यक्ति की बात सुनकर महात्मा मुस्करा दिए और बोले, कल तुम इसी समय मेरे पास आना और अपनी कोई भी एक इच्छा बताना। मैं उसे अवश्य पूराकर दूंगा। यह सुनकर व्यक्ति खुश होते हुए अपनी झोपड़ी में आ गया। रात भर वह विचार करता रहा कि मैं महात्मा से कौन सी इच्छा पूरी करने को कहूं? कभी वह सोचता कि वह महात्मा से कहेगा कि वह उसकी महल में रहने की इच्छा पूरी कर दें। महल में रहने से वह खुद ही सेठ बन जाएगा। फिर उसने सोचा, इससे अच्छा तो वह राजा बन जाए। उसे कोई कमी नहीं रहेगी। किंतु तभी उसके मन में विचार आया कि राजा तो स्वयं प्रजा पर आश्रित होता है। यदि उसे प्रजा पसंद न करे तो वह रातोंरात जमीन पर आ जाता है। इसी उधेड़बुन में सुबह हो गई। सुबह वह महात्मा के पास पहुंचा। महात्मा मुस्कराते हुए बोले, हां भाई, बोलो, तुम्हारी कौन सी इच्छा पूरी की जाए? महात्मा की बात सुनकर वह बोला, महाराज, रात भर मैं इसी उधेड़बुन में लगा रहा कि कौन सी इच्छा पूरी करूं? लेकिन मुझे लगा कि एक इच्छा अनेक इच्छाओं को जन्म दे देती है। इसलिए सबसे अच्छी व मन को संतोष देनेवाली इच्छा तो आत्मसंतुष्टि है। इसलिए यही इच्छा पूरी कर दीजिए कि आत्मसंतोष रहे और कभी भी असंतोष

की भावना मुझे गलत मार्ग पर चलने को प्रेरित न करे। व्यक्ति की बात सुनकर महात्मा मुस्करा कर बोले, तथास्तु। इसके बाद वह व्यक्ति संतुष्ट होकर अपने घर चला गया और मेहनत-मजदूरी करके जीवन बिताने लगा।

१४७८) आत्मविश्वास की शक्ति - तक्षशिला पर शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया। शत्रु सेना इतनी विशालकाय थी कि सेनापति की हिम्मत टूट गई। उसने तक्षशिला नरेश से कहा, राजन्। इतनी विशाल सेना पहले कभी नहीं देखी। शत्रु की सेना अस्त्र-शस्त्रों में सुसज्जित है पर हमारी सेना के पास अस्त्र-शस्त्र बहुत कम हैं। भलाई इसी में है कि हम संधि कर लें। सेनापति की बात सुनकर राजा चिंतित हो उठे। यह बात राज्य के एक संत तक पहुंची। वह राजा के पास पहुंचकर बोले, अविलंब सेनापति को निकाल बाहर किया जाए। मैं सेना का नेतृत्व करूंगा। राजा थोड़ी देर असमंजस में पड़ा रहा, पर संत के परामर्श समय-समय पर उसके लिए लाभकारी सिद्ध हो चुके थे। आत्मसमर्पण करने की तुलना में लड़ना कहीं श्रेयस्कर है, यह सोचकर उसने संत के हाथों में सेना का नेतृत्व दे दिया। शत्रु सेना का पड़ाव ज्यादा दूर नहीं था। मार्ग में एक मंदिर था। संत ने कहा, पहले देवता से पूछ लेना चाहिए कि विजय किसकी होगी? फिर सेना के समक्ष मंदिर के प्रांगण में सिक्का उछालते हुए वह बोले, यदि सिक्का पट गिरता है तो विजयश्री हमें हासिल होगी। संयोग से सिक्का पट गिरा। दैवी कृपा अनुकूल जानकर तक्षशिला के सिपाही पूरी वीरता के साथ लड़े और विजयी हुए। सैनिकों ने संत से कहा, यह सब उस मंदिर के देवता की कृपा का प्रतिफल है। संत मुस्कराए। उन्होंने सिक्का दिखाया। सिक्के के दोनों ओर आकृति एक जैसी थी। संत बोले, यह सब आत्मविश्वास का प्रतिफल है। जो पहले सोया हुआ था वह भी जाग पड़ा।

१४७९) लोककथा - एक बार शरीर के सभी अंगों में आपस में झगड़ा हो गया। दो गुट बन गए। हाथ, पैर, मुंह, दांत आदि सभी अंग एक तरफ थे। पेट बेचारा अकेला दूसरी तरफ था। सभी अंग पेट को जली-कटी सुना रहे थे। जबान ने कहा- महाआलसी है। कुछ करता धरता भी नहीं, खाली बैठे-बैठे अपनी तोंद बढ़ा रहा है। हाथों ने कहा- हम सारा दिन मेहनत करते हैं, यह नालायक आराम से अच्छी-अच्छी चीजें खाता है। सच बात है। पैरों ने कहा- हमारी मेहनत देखो, दिनभर पेट के लिए दौड़-धूप करते हैं पर इसे तो किसी की चिंता ही नहीं है। जीभ बोली- इससे परेशान तो मैं भी हूं। खाता यह है। परेशानी मुझे उठानी पड़ती है। यह कभी मिर्च मांगता है, तो कभी नमक, मुझे कितनी जलन होती है, मैं ही जानती हूं, पर इसे अपने आगे किसी की चिंता नहीं है। पेट ने कहा- यह तुम लोग कैसी बातें कर रहे हो? यह मत समझो कि मैं कुछ नहीं करता। मैं भी बहुत काम करता हूं। चुप रह आलसी। पैरों ने कहा- बातें बनाना जानता है। कल से हम तेरे लिए खाने की खोज में नहीं जाएंगे। तब देखेंगे कि तू क्या करता है। मैं भी हड़ताल कर देता हूं। मुंह ने कहा, अब यदि एक कौर भी निगलूं तो कहना। हम भी एक दाना नहीं चबाएंगे। दांतों ने मुंह की बात का समर्थन किया। हड़ताल हो गई। पैरों ने चलना-फिरना छोड़ दिया। हाथों ने हिलना बंद कर दिया। मुंह ने कौर निगलना और दांतों ने चबाना छोड़ दिया। पेट को परेशानी हो रही थी, परन्तु वह चुपचाप रहा। हड़ताल का परिणाम यह निकला कि सारे अंग कुछ ही दिनों में कमजोर हो गए। सबने फिर मिलकर विचार किया। मित्र यह क्या हुआ? पैरों ने दुखी होकर कहा- हमारे तो प्राण निकले जा रहे हैं। मेरा रंग तो पीला पड़ रहा है- हाथों ने कहा। यह सब हड़ताल का परिणाम है। मुंह ने धीमी आवाज में कहा। जीभ लड़खड़ाती हुई बोली- सही बात है। मेरे तो कांटे से उग आए हैं। सांस भी तीर की तरह चुभती है। इन समस्याओं से निबटने का एक ही तरीका है- मुंह बोला। क्या? सभी ने एक साथ पूछा- हमें अपना-अपना काम करना चाहिए, इसी में आनंद है। हड़ताल को लात मारो। अपना-अपना काम देखो। पेट उनकी बात सुनकर मुस्काया। उन सबकी अक्ल ठिकाने आ चुकी थी। हड़ताल खत्म हो गई। सभी अंग अपना-अपना काम करने लगे। कुछ ही दिनों में सब स्वस्थ हो

गए। अब सब बड़े खुश थे। पेट ने एक दिन कहा- क्या समझे भाइयो। क्या अब कहोगे कि मैं निठल्ला बैठा रहता हूं? नहीं भाई, हमारी समझ में एक बात नहीं आ रही। तुम कुछ करते नजर तो नहीं आते, सभी ने कहा। मैं बताता हूं। पेट ने कहा- पैर तो भोजन की खोज में जाते हैं। हाथ उस भोजन को पाने के लिए श्रम करते हैं। मैं उसे अच्छी तरह पचाता हूं। उससे एक रस बनता है। वह रस मैं वापस तुम सबको सौंप देता हूं। इससे तुम लोग मजबूत बने रहते हो।

१४८०) धन, कुटुम्ब और धर्म - किसी आश्रम में अनेक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। एक दिन कुछ छात्रों ने अपने गुरु से प्रश्न किया, गुरुजी, धन, कुटुंब और धर्म में कौन सच्चा सहायक होता है? गुरु ने प्रश्न का सीधा उत्तर न देते हुए एक कथा सुनाई- एक व्यक्ति के तीन मित्र थे। जिनमें एक सबसे प्रिय था, जिसके साथ वह अधिक समय बिताता था। कहीं भी जाना होता तो उसी के साथ जाता। दूसरे मित्र से उसकी कम घनिष्ठता थी और तीसरा मित्र बिल्कुल उपेक्षित था। वह उससे बहुत कम मिलता था। एक बार वह व्यक्ति किसी मुसीबत में फंस गया जिसके कारण उसे राज दरबार में बुलाया गया। वह थोड़ा घबरा गया। उसे अकेले जाने में डर लगा, इसलिए उसने अपने किसी मित्र को साथ ले जाने की सोची। वह अपने सबसे प्रिय मित्र के पास गया, लेकिन उसने उसके साथ जाने से इनकार कर दिया। फिर वह दूसरे मित्र के पास गया। उसने व्यस्तता के कारण साथ जाने से इनकार कर दिया। यह जरूर कहा कि और कोई मदद हो तो कर दूंगा। वह व्यक्ति निराश हो गया। फिर वह तीसरे मित्र के पास पहुंचा। तीसरे मित्र ने उसकी पूरी बात सुनी और सहायता करने का वचन देकर उसके साथ राजदरबार गया। राजदरबार में उसने अपने मित्र का पक्ष रखा और उसे संकट से बचाकर ले आया। कथा पूरी होने पर गुरुजी ने अपने शिष्यों को तीनों मित्रों के प्रतीकात्मक अर्थ बताए, पहला मित्र धन है जिसे परमप्रिय समझा जाता है लेकिन वह मृत्यु के बाद घर से बाहर एक कदम नहीं निकालता। दूसरा मित्र कुटुंब है जो यथासंभव सहायता तो करता है लेकिन उसका सहयोग भी शरीर रहने तक ही रहता है। हालांकि हम इसके प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। सभी शिष्यों को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

१४८१) संपत्ति बनाम सुख - बहुत पुरानी कथा है। एक बड़ा व्यापारी था। उसका नाम था माइडाज। वह बेहद लालची था। उसके पास किसी चीज की कमी नहीं थी लेकिन दिन-प्रतिदिन कुछ और पाने की उसकी ललक बढ़ती ही जाती थी। सोने के लिए उसके भीतर खास कमजोरी थी। वह दिन-रात सोने के ख्यालों में खोया रहता। वह कल्पना किया करता कि उसका विशाल घर सोने से भर जाए। उसने धन कमाने के साथ-साथ देवता की आराधना की। उसकी साधना से प्रसन्न होकर देवता ने उससे कोई वर मांगने को कहा। सोने के लालची माइडाज को और तो कुछ सूझा नहीं। उसने कहा, प्रभो, आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि मैं जो भी छुऊं, वह सोने का हो जाए। देवता ने कहा, ऐसा ही होगा। यह कहकर वह चले गए। माइडाज ने सबसे पहले अपने महल के खम्भे छुए। वे एकदम सोने के हो गए। फिर तो उसने एक-एक करके अपने घर की सारी चीजें छूं डालीं। सब सोने की हो गईं। उसे भूख लगी। उसने खाना मंगवाया। जैसे ही उसने खाने को छुआ वह सोने का हो गया। यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। वह सोना खाकर पेट नहीं भर सकता था और भूखा रहकर जी नहीं सकता था। उसका सारा आनंद विषाद में परिणत हो गया। उसकी एक लड़की थी। वह पिता के वरदान से बड़ी खुश थी पर पिता की व्यथा से बहुत दुखी हुई। वह दौड़ी-दौड़ी पिता के पास आई। उसका पिता तो शोक-सागर में डूबा था। बेटी के सामने आते ही वह बिलखते हुए उसकी ओर बढ़ा। जैसे ही उसके कंधे पर हाथ रखा लड़की सोने की हो गई। माइडाज की दुनिया लुट गई। वह समझ गया कि आदमी को धन-दौलत जीवित नहीं रखती। वह जीवित रहता है प्यार के लिए, वह जीवित रहता है सुख के लिए। लेकिन वह प्यार, वह आनंद, वह सुख धन-संपत्ति में नहीं है।

१४८२) विचारों की उपयोगिता- एक राजा इस बात से परेशान रहता था कि धर्म और दर्शन को लेकर विचारकों में आपसी सहमति क्यों नहीं बनती। उसने विभिन्न धर्मों के उपदेशकों को बुलाया और सबको कारागार में डालते हुए कहा, जब तक आप सब एकमत नहीं हो जाते, एक विचारवाले नहीं हो जाते, तब तक यहीं रहना पड़ेगा। जब यह बात एक विद्वान आचार्य ने सुनी तो वह राजा के पास गए। राजा ने आचार्य से पूछा, महाराज, आपने मेरा नगर देखा है? आचार्य बोले, हां राजन्, मैंने नगर का अवलोकन किया है। राजा ने फिर पूछा, वह कैसा लगा? आचार्य ने कहा, नगर सुंदर है, किंतु अव्यवस्थित है। राजा ने आश्चर्य से पूछा, कैसी अव्यवस्था आचार्य बोले, बाजार अच्छे नहीं हैं। उसमें सैकड़ों दुकानें हैं। क्या आवश्यकता है इतनी दुकानों की? क्या सब दुकानों को एक कर बड़ी दुकान नहीं बनाई जा सकती थी? जब एक ही बड़ी दुकान होगी तो वह बाजार सुंदर दिखने लगेगा। इस पर राजा ने कहा, यह बात अव्यावहारिक है। आप व्यवहार की दुनिया को नहीं जानते। मनुष्य के जीवन को चलाने के लिए सैकड़ों चीजें चाहिए। किसी को आटा चहिए, किसी को नमक और किसी को चावल। किसी को सोना चाहिए तो किसी को चांदी। फिर भला सबकी आवश्यकताएं एक ही दुकान पूरी कर सके, यह कैसे संभव है? एक दुकान में इतनी चीजें कैसी रखी जा सकती हैं? कैसे इन्हें बेचा जा सकता है? दुकानें अलग-अलग होने से यह दुविधा नहीं रहती। सबकी आवश्यकताएं पूरी होती हैं और कोई अव्यवस्था नहीं होती। इस पर आचार्य बोले, राजन, आपका कथन बिल्कुल सही है। आप सर्वशक्तिसंपन्न हैं, फिर भी जब आप सभी दुकानों को एक नहीं कर सकते और उन्हें एक करने की आवश्यकता नहीं मानते तो विभिन्न विचारों की दुकान एक कैसे हो सकती है? वे अलग-अलग हैं और उन सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है। राजा को बात समझ में आ गई। उसने तत्काल सभी धर्म उपदेशकों को मुक्त कर दिया।

१४८३) एक और झूठ - किसी गांव में एक गुरुजी रहते थे। उनसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे। गुरुजी बच्चों को बहुत मेहनत से पढ़ाते थे और चाहते थे कि उनके पढ़ाए हुए छात्र अच्छे इंसान बनें। एक दिन वह अपने एक प्रिय शिष्य के साथ विद्यालय जा रहे थे। विद्यालय जाने का रास्ता खेतों में पगडंडी से होकर गुजरता था। थोड़ी दूर जाने पर सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। उसे देखकर गुरुजी रुक गए और अचानक खेतों से हट गये दूसरे रास्ते से जाने लगे। वह रास्ता बहुत ही लंबा था। उनके इस तरह रास्ता बदलने पर शिष्य ने पूछा , गुरुजी, आपने एकाएक रास्ता क्यों बदल दिया। यह रास्ता तो बहुत लंबा और ऊबाड़-खाबड़ है, हमें चलने में बहुत दिक्कत होगी। गुरुजी बोले, सामने से जो आदमी आ रहा था, उसे जानते हो। वह गांव का सरपंच है। उसे देखकर ही मैंने रास्ता बदल लिया है। शिष्य ने पूछा, क्या आप उससे डरते है? नहीं बिल्कुल नहीं। गुरुजी ने जवाब दिया। फिर आप उससे बचना क्यों चाहते हैं? शिष्य ने फिर प्रश्न किया। इस पर गुरुजी ने कहा, सरपंच को झूठ बोलने की आदत है। कई साल पहले एक बार वह मुझसे झूठ बोल कर कुछ रुपये उधार ले गया था। आज तक उसने पैसे लौटाए नहीं, लेकिन जब भी कभी उसका मुझसे इस प्रकार अचानक मिलना होता है तो आदतन वह झूठ बोलता है और कहने लता है, गुरुजी, बस एक-दो दिन में जरूर पैसे लौटा दूंगा। हालांकि मैं जानता हूं कि यह आदमी इतनी जल्दी पैसे वापस नहीं करेगा। आज भी वह मुझसे मिलता तो एक बार फिर झूठ बोलता, इसलिए मैने सोचा कि इससे अच्छा है कि मैं अपना रास्ता बदल दूं उस आदमी को एक बार बदलने से मुझे थोड़ी तकलीफ तो होगी, लेकिन मेरी वजह से उस आदमी को एक बार और झूठ तो नहीं बोलना पड़ेगा।

१४८४) बेहतर भविष्य का संकरा मुहाना- एक शिक्षण संस्थान की यह परंपरा थी- अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों में जो योग्यतम आठ-दस होते थे, उन्हें देश की औद्योगिक संस्थाएँ नियुक्त कर लेती थीं। उस साल भी वही हुआ। ऊपर के नौ लड़के ऊँची पद-प्रतिष्ठा वाली नौकरियाँ पाकर खुशी-खुशी चले गए। लेकिन उनके बीच का एक लड़का जो चुने गए

साथियों से कम नहीं था, रह गया। चूँकि वह बहुत परिश्रमी था और अपने संस्थान को उसकी सेवा से लाभ ही होता इसलिए उसे अस्थायी तौर पर कुछ भत्ता देकर काम पर लगा लिया गया। फिर भी अपने साथियों की तुलना में उसकी यह नियुक्ति आर्थिक दृष्टि से बड़ी मामूली थी। वह उदास रहने लगा। लोग भी उसके भाग्य को दोष देने लगे थे। लेकिन यह स्थिति अधिक दिन नहीं रही। एक बहुत नामी औद्योगिक संस्था ने अचानक उस शिक्षण संस्थान से संपर्क कर जैसे व्यक्ति की माँग की, यह युवक पूरी तरह उसके अनुकूल सिद्ध हुआ। उसे अपनी योग्यता के अनुरूप काम और वेतन मिला, बात इतनी ही नहीं थी, उसकी यह नियुक्ति अपने साथियों की तुलना में बहुत ऊँची भी थी। अर्थ और सामाजिक प्रतिष्ठा- दोनों ही दृष्टि से वह उन सबसे श्रेष्ठ हो गया था। इसी तरह कभी-कभी अनुकूल समय के लिए प्रतीक्षा की घड़ियाँ आया करती हैं। अक्सर ही जिसे लोग भाग्य का दोष मान बैठते हैं, वह होता है एक बेहतर भविष्य का संकरा मुहाना।

१४८५) अमेरिकी उद्योगपति मिस्टर कारनेगी अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध थे। एक दिन एक जापानी इंजीनियर उनके पास पहुंचा। उसने पूछा, आपने इतना बड़ा औद्योगिक साम्राज्य इतने कम समय में ही कैसे स्थापित कर लिया। आपकी सफलता का रहस्य क्या है? कारनेगी बोले, सही समय पर सही निर्णय लेना। निर्णय अनुभव के आधार पर लिए जाते हैं। गलतियां न दोहराने का संकल्प ही अनुभव को आगे बढ़ाता है तथा अनुभव और कठोर परिश्रम ही सफलता पर पहुंचने का मार्ग सुनिश्चित करते है।

१४८६) सर्वश्रेष्ठ पंथ- एक राजा ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो संसार का सर्वश्रेष्ठ पंथ होगा, उसे ही मैं राजधर्म के रूप में स्वीकार करूंगा। वह राजा हर संत और पंथ के पास जाने लगा। पर ऐसा कोई पंथ और संत नहीं मिला जो एकदम दोषमुक्त हो। राजा कोई न कोई कमी बताकर संत और पंथ की अवहेलना कर देता था। एक दिन राजसभा में एक संत आए। बोले, मैं दुनिया सर्वश्रेष्ठ संत बता सकता हूं। उसके लिए नदी के दूसरे किनारे चलना होगा। राजा ने हां, भरी तो संत ने कहा आपके राज्य की सर्वश्रेष्ठ नाव मंगाओ। राजा जो भी नाव मंगवाते, वे संत उसमें कोई न कोई दोष निकाल देते थे। राजा ने कहा- महाराज, एक छोटी सी नदी पार करनी है, इस काम के लिए इन नावों में से कोई भी एक नाव ही पर्याप्त है। संत ने कहा- राजन्, यह संसार भी एक छोटी सी नदी की तरह है। इसको पार करने के लिए कोई भी पंथ पर्याप्त है। किसी भी पंथ से आगे बढ़िए। बस चल पड़ें। जिस रास्ते पर हम चलते हैं वही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। किसी भी छोटे-बड़े पंथ के आदर्शों का आचरण करो तो वही संसार के सभी कष्टों के पार पहुंचा देता है। संत की वाणी से राजा के ज्ञान चक्षु खुल गए। अब राजा किसी भी संत और पंथ में कोई कमी नहीं निकाल कर हर पंथ की अच्छी बातें ग्रहण करने लगा।

१४८७) वह विचित्र गांव- एक व्यक्ति एक गांव में गया। वहां की श्मशान भूमि से जब वह गुजरा तो एक विचित्र बात देखी। वहां पत्थर की पट्टियों पर मृतक की आयु लिखी थी। किसी पर छह महीने, तो किसी पर दस वर्ष तो किसी पर इक्कीस वर्ष लिखा था। उसे लगा कि इस गांव के लोग जरूर अल्पायु होते हैं। जब वह गांव के भीतर गया तो लोगों ने उसका खूब सत्कार किया। वह वहीं रहने लगा लेकिन उसके भीतर यह डर भी समा गया कि यहां रहने पर उसकी भी जल्दी ही मौत हो जाएगी क्योंकि यहां के लोग कम जीते हैं। इसलिए उसने वहां से जाने का फैसला किया। जब गांव वालों को पता चला तो वे दुखी हुए। उन्हें लगा कि जरूर उन लोगों से कोई गलती हो गई है। जब उस व्यक्ति ने उन्हें अपने मन की बात बताई तो सब हंस पड़े। उन्होंने कहा- आप देख नहीं रहे कि हमारे बीच ही साठ से असी साल तक के लोग है, फिर आपने कैसे सोच लिया कि यहां लोग जल्दी मर जाते हैं। तब उस व्यक्ति ने श्मशान भूमि की पट्टियों के बारे में बताया। इस पर एक गांववासी ने कहा- हमारे गांव में एक नियम है। जब कोई व्यक्ति सोने के लिए जाता है तो सबसे पहले

वह हिसाब लगाता है कि उसने कितना समय सत्संग में बिताया, कितना अच्छे कार्यों में बिताया। उसे वह डायरी में लिख लेता है। गांव में किसी भी मरनेवाले की वह डायरी निकाली जाती है फिर उसके जीवन के उन सभी घंटों को जोड़ा जाता है। उन घंटों के आधार पर ही उसकी उम्र निकाली जाती है और उसे अंकित किया जाता है। व्यक्ति का जितना समय सत्संग में बीता, वही तो उसका सार्थक समय है। वही उसकी उम्र है।

१४८८) कैसा अभिमान- एक घर के मुखिया को यह अभिमान हो गया कि उसके बिना उसके परिवार का काम नहीं चल सकता। उसकी छोटी सी दुकान थी। उससे जो आय होती थी, उसी से उसके परिवार का गुजारा चलता था। चूंकि कमानेवाला वह अकेला ही था इसलिए उसे लगता था कि उसके बगैर कुछ नहीं हो सकता। वह लोगों के सामने डींग हांका करता था। एक दिन वह एक संत के सत्संग में पहुंचा। संत कह रहे थे, दुनिया में किसी के बिना किसी का काम नहीं रुकता। यह अभिमान व्यर्थ है कि मेरे बिना परिवार या समाज ठहर जाएगा। सभी को अपने भाग्य के अनुसार प्राप्त होता है। सत्संग समाप्त होने के बाद मुखिया ने संत से कहा, मैं दिन भर कमाकर जो पैसे लाता हूं उसी से मेरे घर का खर्च चलता है। मेरे बिना तो मेरे परिवार के लोग भूखे मर जाएंगे। संत बोले, यह तुम्हारा भ्रम है। हर कोई अपने भाग्य का खाता है। इस पर मुखिया ने कहा, आप इसे प्रमाणित करके दिखाइए। संत ने कहा, ठीक है। तुम बिना किसी को बताए घर से एक महीने के लिए गायब हो जाओ। उसने ऐसा ही किया। संत ने यह बात फैला दी कि उसे बाघ ने खा लिया है। मुखिया के परिवार वालों ने कई दिनों तक शोक मनाया। गांव वाले आखिरकार उनकी मदद के लिए सामने आए। एक सेठ ने उसके बड़े लड़के को अपने यहां नौकरी दे दी। गांव वालों ने मिलकर लड़की की शादी कर दी। एक व्यक्ति छोटे बेटे की पढ़ाई का खर्च देने को तैयार हो गया। एक महीने बाद मुखिया छिपता-छिपाता रात के वक्त अपने घर आया। घर वालों ने भूत समझकर दरवाजा नहीं खोला। जब वह बहुत गिड़गिड़ाया और उसने सारी बातें बताईं तो उसकी पत्नी ने दरवजो के भीतर से ही उत्तर दिया, हमें तुम्हारी जरूरत नहीं है। अब हम पहले से ज्यादा सुखी हैं। उस व्यक्ति का सारा अभिमान उतर गया।

१४८९) सफलता की कुंजी - फोर्ड मोटर के मालिक हेनरी फोर्ड दुनिया के चुनिंदा धनी व्यक्तियों में शुमार किए जाते थे। उनकी गाड़ी की प्रशंसा दुनिया भर में होती थी। एक बार एक भारतीय उद्योगपति भारत में मोटर कारखाना लगाने से पहले फोर्ड से सलाह मशविरा करने अमेरिका गए। भारतीय उद्योगपति ने अमेरिका पहुंच कर हेनरी फोर्ड से मिलने का समय मांगा। फोर्ड ने कहा, दिन में आपके लिए मैं ज्यादा समय नहीं निकाल पाऊंगा, इसलिए आप शाम छह बजे आ जाइए। भारतीय उद्योगपति उनके घर पहुंचे। वहां एक आदमी बर्तन साफ कर रहा था। उन्होंने उससे कहा, मुझे हेनरी साहब से मिलना है। वह आदमी उन्हें बैठक में बैठा कर अंदर चला गया। थोड़ी देर बाद उसने उनके सामने आकर कहा, तो आप हैं वह भारतीय उद्योगपति। मुझे हेनरी कहते हैं।

भारतीय उद्योगपति को असमंजस में देख कर हेनरी ने कहा, लगता है आपको मेरे हेनरी होने पर संदेह हो रहा है। भारतीय उद्योगपति ने सकपका कर कहा, हां सर, अभी आपको एक नौकर का काम करते देख कर ताज्जुब हुआ। इतनी बड़ी कंपनी के मालिक को बर्तन साफ करते हुए देख कर किसी को भी भ्रम पैदा हो सकता है। यह काम तो नौकरों का है।

हेनरी ने कहा, आरंभ में मैं एक साधारण इंसान था। अपना काम स्वयं करता था। अपने हाथ से किए गए कठोर परिश्रम का फल है कि आज मैं फोर्ड मोटर का मालिक बना हूं। मैं अपने अतीत को भूल न जाऊं और मुझे लोग बड़ा आदमी न समझने लगें, इसलिए मैं अपने सभी काम अपने हाथ से करता हूं। अपना काम करने में मुझे किसी तरह की शर्मिन्दगी और झिझक महसूस नहीं होती। भारतीय उद्योगपति उठकर खड़े हो गए और बोले, सर, अब मैं चलता हूं। मैं जिस

मकसद से आपके पास आया था, वह एक मिनट में ही पूरा हो गया। मेरी समझ में आ गया कि सफलता की कुंजी दूसरों पर भरोसा करने में नहीं अपने पर भरोसा करने में है।

१४९०) एक बार एक जंगल में आग लग गई। थोड़ी देर में पास के गांवों से लोग इकट्ठा हो गए। जिसके हाथ में जो बर्तन आया उसमें पानी भर-भरकर आग पर उंड़ेलने लगा। सभी को आग बुझाने में जुटा देख एक नन्ही गौरैया भी अपनी चोंच में एक-एक बूंद भर-भरकर आग में डालने लगी। एक कौआ दूर एक सुरक्षित डाल पर बैठा यह सब देख रहा था। वह गौरैया के पास आकर बोला, नन्ही गौरैया, तुम क्या समझती हो, तुम्हारी चोंच का थोड़ा सा पानी इस भयंकर आग को बुझा सकेगा? गौरैया ने जवाब दिया, यह तो मैं नहीं जानती, पर एक बात जरूर जानती हूं कि यदि कभी इस आग के बारे में बात होगी तो मेरा नाम आग लगानेवालों या तमाशा देखनेवालों में नहीं लिया जाएगा। यह सुनकर कौआ शर्मिंदा हो गया।

१४९१) सच्ची उपासना- एक बार राजा चोल और एक गरीब व्यक्ति हरिदास में इस बात को लेकर ठन गई कि भगवान विष्णु को पहले कौन खुश करता है। राजा चोल ने भगवान की आराधना के लिए आचार्य मुद्गल को पुरोहित नियुक्त किया और फिर एक बड़ा विष्णु यज्ञ भी कराया। हरिदास जल और तुलसीदल लेकर मंदिर जाता और पूजा करता। कई वर्ष बीत गए, लेकिन विष्णु भगवान के दर्शन किसी को नहीं हुए। एक बार रोज की तरह हरिदास भोजन बना कर और भगवान को भोग लगाकर घर लौटा तो देखा कि उसका भोजन वहां नहीं है। उसने सोचा कि कोई उसकी रोटी चुरा ले गया है। वह भूखा ही सो गया। दूसरे दिन भी वैसा ही हुआ। इस तरह सात दिन तक उसका भोजन गायब होता रहा और हरिदास भूखा सोता रहा।

आठवें दिन उसने भोजन बनाया और यह देखने के लिए कि उसे कौन ले जाता है, वहीं छिप गया। थोड़ी देर में एक दुबला-पतला भिखारी आया। भिखारी ज्यों ही रोटी उठाकर जाने लगा तो हरिदास ने कहा, अरे भाई, सूखी रोटी क्यों ले जा रहा है। यह रहा घी, इसे भी लेते जा। भिखारी थर-थर कांपने लगा और बोला, माफ करना, मैं ही सात दिन से आपकी रोटियां चुरा कर खाता रहा। हरिदास ने कहा, तू अच्छा करता रहा। यदि ऐसा नहीं करता, तो अब तक मर गया होता। अब तुम्हें चोरी करके रोटी खाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। आज से हम दोनों मिल बांट कर खाया करेंगे।

उधर राजा हरिदास के घर यह देखने पहुंचा कि पता नहीं अब वह किस विधि से भगवान को प्रसन्न करने में लगा है। राजा ने देखा कि हरिदास अपने हिस्से की रोटी भिखारी को खिला रहा है। उसने चुटकी ली, हरिदास, भिखारी को रोटी खिलाने से भगवान प्रसन्न नहीं होते। तभी आकाशवाणी हुई, राजा, मूर्ति की पूजा करने से भी भगवान प्रसन्न नहीं होते। भगवान तो उससे प्रसन्न होते हैं जो अहंकार और क्रोध से दूर रहकर सच्चे मन से असहाय लोगों की सेवा करता है। यह गुण हरिदास में ही है।

१४९२) मीठी बोली- मधुप नामक एक व्यक्ति शहद बेचा करता था। उससे कोई शहद खरीदे या नहीं पर वह सभी से बड़े प्रेम से और मधुर वाणी में बात करता था। उसके स्वर में इतनी मिठास थी कि कई बार लोग उसकी बोली से ही प्रभावित होकर शहद खरीद लेते थे। इस प्रकार उसकी दिन-दूनी, रात चौगुनी तरक्की होती जा रही थी। कुछ ही समय में वह इतना संपन्न हो गया कि उसने अपनी एक दुकान खोल ली। दुकान खोलने पर भी उसका व्यवहार पहले की तरह मधुर बना रहा। उसके साथ वाली दुकान पर एक व्यक्ति फल बेचा करता था। मधुप के आने के बाद उसे ऐसा महसूस होने लगा कि उसके व्यापार में घाटा हो रहा है। वह मधुप से ईर्ष्या करने लगा। उसने मधुप को सबक सिखाने का निश्चय किया। उसने भी फलों के बजाय शहद बेचना आरंभ कर दिया। फिर भी सभी ग्राहक मधुप की दुकान पर ही जाते और उसकी दुकान पर केवल मक्खियां भिनभिनाती रहतीं। यह देखकर वह चिड़चिड़ा रहने लगा। उसकी इस स्थिति से उसकी

पत्नी बहुत दुखी रहती थी। एक दिन उसने अपने पति को समझाया, तुमने मधुप की देखादेखी शहद तो रखना शुरू कर दिया मगर उसके जैसी मिठास अपनी बोली में क्यों नहीं डाली? यदि वाणी मधुर न हो तो अच्छे से अच्छा व्यवसाय भी ठप हो जाता है। व्यवसाय क्या, जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्ति असफल हो जाता है। तुम अपना पुराना फलों का व्यापार ही करो। बस अपने अंदर परिवर्तन लाओ। अपनी कर्कश वाणी को तिलांजलि देकर मधुर वाणी से नाता जोड़ो, तुम्हारा व्यापार भी आगे बढ़ेगा और तुम्हारी किसी से दुश्मनी भी नहीं होगी। पत्नी की बात दुकानदार की समझ में आ गई। अगले ही दिन से उसने अपना पुराना कारोबार शुरू कर दिया और अपनी बोली में मिठास डाली। उसके फलों की बिक्री तेजी से होने लगी। इस बीच उसकी मधुप से भी दोस्ती हो गई। उसका व्यवसाय भी मधुप के कारोबार की तरह आगे बढ़ने लगा

१४९३) जैसी जिसकी भावना होगी वैसा ही उसे लाभ होगा। भगवान मानो कोई कल्पवृक्ष हैं, उनसे जो कोई जो भी मांगता है, उसे वही प्राप्त होता है। गरीब का लड़का पढ़-लिखकर तथा बड़ी मेहनत कर हाईकोर्ट का जज बन जाता है और मन ही मन सोचता है, अब मैं मजे में हूँ। मैं उन्नति के शिखर पर आ पहुँचा हूँ। अब मुझे बहुत आनंद हे। भगवान भी तब कहते हैं, तुम मजे में ही रहो। किन्तु जब वह जज सेवानिवृत्त होकर पेंशन लेते हुए अपने विगत जीवन की ओर देखता है तो उसे लगता है कि उसने अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गुजार दिया। तब वह कहता है, हाय। इस जीवन में मैंने कौन-सा उल्लेखनीय काम किया ? भगवान भी तब कहते हैं, ठीक ही तो, तुमने किया ही क्या ?

१४९४) गुलाम की इच्छा? - जरत इब्राहिम बलख के बादशाह थे। उन्होंने एक बार गुलाम खरीदा। अपनी स्वाभाविक उदारता से उन्होंने प्रश्न किया- तेरा नाम क्या है ?

जिस नाम से मुझे पुकारेंगे, वही मेरा नाम होगा, गुलाम ने उत्तर दिया।

तू क्या खाएगा ? हजरत ने पुन: पूछा ?

जो आप खिलाएं ? - उत्तर मिला।

तुझे किस प्रकार के वस्त्र पसंद हैं ?

जिन्हें आप पहनने को दें।

तू कौनसा काम करेगा ?

जो आप कहें।

तेरी कोई इच्छा है ?

भला गुलाम की भी कोई इच्छा होती है हुजूर।

बादशाह उसके उत्तरों को सुन बेहद प्रसन्न हुए। तख्त से फौरन उठकर उससे बोले- तुम सचमुच मेरे उस्ताद हो, क्योंकि तुमने मुझे सिखा दिया कि प्रभु के सेवक को कैसा होना चाहिए।

१४९५) शुभ-अशुभ के लक्षण - ज्योतिष विद्या में पारंगत एक गुरु के पास अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद दो छात्र जीविका की तलाश में आश्रम से बाहर निकले। दोनों ने इस विद्या में महारत हासिल की थी और गुरु ने उन्हें घर लौटकर गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने की अनुमति दे दी थी। लौटते समय वे एक गांव में ठहरे। गांव के कुछ लोग उनसे मिलने आए। वे अपने भविष्य के बारे में जानना चाहते थे। एक बुढ़िया ने पूछा, मेरा पुत्र कई वर्षों से विदेश गया है। उसके बारे में कोई खबर नहीं मिल रही है। उससे मेरी कब मुलाकात होगी ? बात करते समय बेध्यानी के कारण बुढ़िया के सिर पर रखा पानी से भरा घड़ा नीचे गिरा और टूट गया। पहले शिष्य ने कहा, आपके पुत्र के साथ शायद कोई हादसा हुआ है। अब वह नहीं

लौटेगा और न आपकी उससे मुलाकात होगी। सुनकर बुढ़िया रोने लगी। गांव के मुखिया ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा, हो सकता है, यह युवक ठीक नहीं बता पाया हो। आखिर दूसरा युवक भी ज्योतिष में उतना ही पारंगत है। चलो उससे पूछें। मुखिया ने दूसरे शिष्य से कहा, आप भी अपने गणित के अनुसार अम्माजी के प्रश्न का उत्तर दीजिए। मुस्कुराकर दूसरे छात्र ने कहा, माताजी, आप घर लौटिए। आपका बेटा वहां आपकी राह देख रहा है। बुढ़िया को सहसा विश्वास नहीं हुआ लेकिन घर जाकर उसने देखा तो सच में उसका बेटा उसकी राह देख रहा था। पहला छात्र बड़े असमंजस में पड़ गया। उसने दूसरे से पूछा, बुढ़िया की निराशा, टूटा घड़ा, फैला पानी, सब अशुभ संकेत दे रहे थे। इसलिए मैंने वह भविष्यवाणी की। तुमने किन लक्षणों पर अपनी गणना की ? दूसरे छात्र ने कहा, मैंने देखा, बुढ़िया की अपने पुत्र से मिलने की चाह चरम तक पहुंच चुकी है, घड़ा टूटने से जल निर्बंध हुआ और घड़े का भूमि से मिलन हुआ। ये लक्षण मुझे पुत्र से पुनर्मिलन का संकेत देनेवाले लगे। लक्षण वही होते हैं, उनकी तरफ देखने का हमारा अंदाज उन्हें शुभ-अशुभ बना देता है।

१४९६) सच्चाई में छिपी भलाई-एक राजा ने एक बंदी को मारने का आदेश दिया। बंदी ने सोचा अब मरना ही है तो डरना क्या ? वह राजा को गालियाँ देने लगा। राजा कुछ समझ नहीं पाया। उसने मंत्री से पूछा कि बंदी क्या कर रहा है ? मंत्री बोला, महाराज, यह कह रहा है कि जो क्षमा करना जानता है वह प्रभु का प्यारा होता है। राजा तुरंत बोला अरे, ऐसी बात है तो इसे तत्काल मुक्त कर दो। एक दूसरा मंत्री भी वही बैठा था। वह पहले मंत्री से द्वेष रखता था। उसने कहा, राजन मंत्री ने झूठ कहा है। यह बंदी तो आपको गालियां बक रहा था। राजा ने कहा, मंत्रिवर आपकी सच्चाई से कहीं अधिक आपके सहयोगी मंत्री के झूठ में छिपी है, जो किसी का भला चाहता है। लेकिन तुम्हारे सच में तो द्वेष का पहाड़ दिखाई दे रहा है। ईर्ष्या की नदी बह रही है।

१४९७) बदलाव- शाम का वक्त, एक सरकारी पार्क में दो बूढ़े बैठे वक्त को कोस रहे थे। कांपती आवाज में एक बूढ़ा कह रहा था, यार कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि एक दिन वक्त का इतना घिनौना रूप भी देखना पड़ेगा। क्या पता था कि हमें यहां इस वृद्धाश्रम में निर्वासितों का-सा जीवन बिताना पड़ेगा।

दूसरा भी बोला- हां यार, तुम बिल्कुल ठीक कह रहे हो। ये तो वक्त ही है जो बदल गया है। सोच-सोचकर आंसू आते हैं कि कभी हमारी भी एक सल्तनत थी, हमारा भी सिक्का चला करता था। दोनों बूढ़ों की बातचीत वक्त ने भी सुनी। यूं तो वक्त दुनियादारी की बातों पर कभी ध्यान नहीं धरता है पर चूंकि बात उससे ही संबंधित थी तो उसने ध्यानपूर्वक दोनों की बातें सुनीं। सुनकर उसे हंसी आ गयी। गहराई से सोचा तो उसे दोनों पर दया भी आयी। अब इन बेचारों का भी क्या दोष? इनकी आंखों पर तो मोह ममता का आवरण पड़ा हुआ है। यह आवरण हटे तो इन्हें असलियत दिखाई भी दे। अब दोष तो इनकी अपनी लालची, स्वार्थी औलादों का है और तोहमत का ठिकरा मेरे सिर फोड़ रहे हैं। भला वक्त भी कभी बदलता है। मैं तो जैसा कल था वैसा ही आज भी हूं। यह तो आदमी ही है जो बदल गया है।

१४९८) असली सेवा- एक बार मेरा दोस्त चर्च से निकलकर मेरी ओर आ रहा था। चर्च के दरवाजे पर ही उसे धर्म के प्रचारक ने रोक लिया। उसने मेरे दोस्त को गले लगाया और एक तरफ ले जाकर बोला, धर्म गुरु ने तुम्हें आदेश दिया है कि तुम्हें भगवान की सेना में शामिल होकर सेवा करने की जरूरत है।

मेरे दोस्त ने जवाब दिया मैं तो पहले से ही भगवान की सेना में शामिल हूं। धर्म प्रचारक ने मेरे दोस्त से प्रश्न किया ये कैसे हो सकता है ? मैंने तो तुम्हें कभी क्रिसमस व ईस्टर के अलावा यहां कभी नहीं देखा। दोस्त उसके पास जाकर फुसफुसाया मैं गुप्तचर सेवा में हूं और लगातार तुम्हारे काम पर मेरी नजर है। भगवान ने ही मुझे ये काम करने का आदेश दिया है।

१४९९) मौत का भय- एक राजा को हर समय मौत का डर सताता रहता था। उसे लगता था कि कहीं कोई हमला करके उसे मार न डाले। उसने सुरक्षा के ढेरों उपाय सोचे, लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आया। आखिरकार एक दिन एक रास्ता उसे सूझा। उसने सोचा क्यों न एक ऐसा महल बनवाया जाए, जो चारों ओर से बंद हो। न उसमें रोशनदान हो, न खिड़कियां, बस आने-जाने के लिए एक दरवाजा हो। ऐसे महल पर किसी का भी हमला कारगर नहीं होगा। तब कोई कैसे अन्दर आ सकेगा ? उसका जीवन रक्षित हो जाएगा।

इस विचार के आते ही राजा ने काम शुरू करवा दिया और कुछ ही दिनों में मनचाहा महल बनकर तैयार हो गया। जिसने भी उस महल को देखा, चकित रह गया। बड़ी सराहना करता। ऐसा महल तो किसी ने अब तक नहीं देखा था। उसमें दुश्मन तो क्या, परिंदा तक नहीं आ सकता था। सब ने राजा की बुद्धि की प्रशंसा की। अब राजा को पूरा भरोसा हो गया कि उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

संयोग से एक दिन एक वृद्ध आदमी उस महल को देखने आया। राजा ने बड़े उत्साह से उसे महल दिखाया, लेकिन वृद्ध के चेहरे पर खुशी नहीं दिखाई दी। राजा ने पूछा, कहो महल कैसा लगा ? वृद्ध ने गंभीर होकर कहा, राजन, महल तो अच्छा है लेकिन आपने एक भूल की है।

राजा ने आश्चर्य से पूछा, क्या ?

वृद्ध ने कहा, आपने इसमें बस एक दरवाजा रखा है। इस दरवाजे से दुश्मन तो नहीं आ सकता, लेकिन अगर मौत आ गई, तब क्या करेंगे आप ? इस दरवाजे को भी बंद करके भीतर बैठ जाएं, तभी आप पूरी तरह सुरक्षित हो पाएंगे। वृद्ध की इस बात से राजा की आंखें खुल गईं। उसने समझ लिया कि इस महल का कोई अर्थ नहीं है। वह महल के भीतर दुश्मनों से तो बच सकता है, मौत से नहीं। राजा समझ गया कि सुरक्षा के लिए इस तरह परेशान होने का कोई मतलब नहीं है। उस दिन से उसने खतरों के बारे में सोचना छोड़ दिया और राजकाज में रम गया।

१५००) प्रायश्चित- लंदन में रहनेवाला जॉन कैमडेन नीलड सुनार था। उसके पिता ने बादशाह जॉर्ज चतुर्थ के लिए आभूषण बनाए। इसका पारिश्रमिक अत्याधिक ले लिया। बादशाह तो बादशाह ही होता है। दे दिया जितना माँगा। मगर इसका असर उसके बेटे नीलड पर ऐसा पड़ा कि वह अपने स्वर्गिय पिता को राजा का गुनहगार मानने लगा। उसने पिता द्वारा कमाए इस धन को प्रयोग न करने का निर्णय ले लिया। इस सुख को न भोगने का फैसला कर दिया।

अब वह सदा कंजूसी से काम लेने लगा। अधिक से अधिक कमाता। कम से कम खर्च करता मित्र समझाते। सम्बन्धी ठीक से खाने पीने और शरीर की देखभाल की सलाह देते। वह अपने मन पर बोझ लिए जीता रहा। कभी सहज न हो पाया। वह अपने पिता के गुनाह का प्रायश्चित कर रहा था। अन्त समय आने से बहुत पहले नीलड ने अपनी वसीयत लिख कर अपनी सारी चल अचल जायदाद महारानी विक्टोरिया के नाम कर दी। इसे मरने तक राज रखा। जब महारानी को पता चला तो उसे स्वर्गीय जॉन कैमडेन नीलड पर बहुत तरस आया। महारानी को भला किस चीज की कमी थी। फिर भी उसने वसीयत का मान रखते हुए जायदाद का कुछ भाग रखकर शेष को जरूरत मन्दों में बाँट दिया।

महारानी ने नीलड के मन की शांति व उसके प्रति सम्मान जताते हुए एक चर्च बनवा दिया जो स्वर्गीय जॉन कैमडेन नीलड को समर्पित कर दिया।

१५०१) रोशनी की किरण- लुई ब्रेल बचपन में एक दुर्घटना में अपनी दोनों आंखों की रोशनी खो बैठे। उनके पिता साइमन ब्रेल चमड़े से घोड़े की काठियां बनाने का काम करते थे। एक दिन पिता जब कहीं बाहर गए हुए थे, तो तीन वर्षीय

लुई उनकी कार्यशाला में घुस गए और चमड़ा काटने और छेद करने वाले औजारों से खेलने लगे। अचानक चमड़े में छेद करनेवाला एक तेज सूजा फिसलकर लुई की दाईं आंख में जा लगा। वह घाव बड़ा हो गया। उस समय इलाज की भी कोई विशेष सुविधा नहीं थी। उस घाव का नतीजा यह हुआ कि दाईं आंख की रोशनी तो गई ही, इन्फेक्शन के कारण बाईं की भी रोशनी चली गई। इस तरह बचपन में पूरी तरह दृष्टिहीन हो चुके लुई पहले अपने शहर कूपरवे के एक स्कूल में पढ़े और फिर बाद में पेरिस के नेत्रहीनों के स्कूल रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ ब्लाइंड में प्रवेश ले लिया। अपने अध्ययन के दौरान लुई को नई किताबों के पाठ के लिए दूसरों पर निर्भर रहना होता था, तब वे हमेशा सोचते रहते कि काश कोई ऐसी पद्धति होती, जिससे दृष्टिहीन भी आम लोगों की तरह पढ़ पाते। इसके लिए वे निरंतर नई-नई तरकीबें सोचते। अंत में उसी सूजे ने, जिसने बचपन में उनकी आँखों की रोशनी छीनी थी, उन्हें समस्या का समाधान सुझाया और उन्होंने दृष्टिहीनों के लिए एक लिपि का आविष्कार कर डाला। एक दिन उन्होंने एक मोटे कागज पर सूजे से सुराख किया तो नीचे के उभरे हुए भाग को महसूस कर उनके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उन उभरे हुए हिस्सों की सहायता से उन्होंने हर वर्ण (लेटर) के लिए एक निश्चित नमूना बनाया। उस उभरे हुए भाग को छूकर वर्ण और वर्णों से शब्द तथा शब्दों से वाक्य आसानी से पढ़े जा सकते थे।

अपनी लगन, मेहनत और निरंतर प्रयास से मनुष्य चाहे तो जीवन की सबसे दुखदायी घटना को भी अपने और समाज के हित के लिए उपयोगी बना सकता है।

१५०२) जीवन के शत्रु- राजा नमि राजर्षि अपना राजकाज छोड़कर योग साधना में मगन हो जाना चाहते थे। लेकिन एक देवदूत ने उन्हें राजा के कर्त्तव्यों का हवाला देते हुए कहने लगा, हे राजन। तुम्हें अपने महल की रक्षा के लिए मजबूत दरवाजे, बुर्ज, खाई और तोपखाना आदि बनवाकर ही साधु बनना चाहिए। इस पर नमि राजर्षि मुस्कुराए और कहा, हे देवपुरुष। मैंने एक नगर बनाया है। उसके चारों ओर श्रद्धा तप और संयम की दीवार बनाई है। रक्षा के लिए मन, वचन और काया की एकरूपता की खाई भी बनाई है। जिस तरह शत्रु जमीन की खाई को पारकर नगर में प्रवेश नहीं कर सकता, उसी तरह बाहर के दोष, वैमनस्य, छल-कपट, काम, क्रोध, माया और लोभ भी मेरी बनाई खाइयों को लांघकर आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो सकते। मेरा पराक्रम ही मेरा धनुष है। उसमें धैर्य की मूठ लगाई है और सत्य की प्रत्यंचा चढ़ाई है। भौतिक संग्राम से मुझे क्या लेना-देना। मैंने तो आध्यात्मिक संग्राम के लिए सामग्री इकट्ठी की है। मेरे जीवन की दिशा बदलने के साथ ही मेरे संग्राम का रूप भी बदल गया है।

देवपुरुष उनकी बात से संतुष्ट नहीं हुआ, पुन: प्रश्न किया, राजा का कर्त्तव्य है कि आसपास के सभी राज्यों को अपने अधीन करे। आप इस कार्य को पूरा करके ही साधु बनो। ऐसा करना आपके हित में रहेगा। राजर्षि बोले, जो रणभूमि में १० हजार योद्धाओं को जीतता है, वह बलवान माना जाता है, किंतु उससे भी अधिक बलवान वह है, जो अपने मन को जीत लेता है। इसलिए दूसरों को अपने अधीन करने की बजाय मन को अपने अधीन करना अधिक श्रेयस्कर है। साधु को बाहर के शत्रुओं से लड़ने-झगड़ने की कोई जरूरत नहीं रहती। यह तो संसार मार्ग है। मैं अब ऋषि बन चुका हूं, अब मेरी बाहर की लड़ाई समाप्त हो गई है। मैं अपने मन के विकारों से युद्ध करके आत्म विजयी बनना चाहता हूं। मन के विकार ही जीवन के सबसे बड़े शत्रु हैं, जिनसे बाहर के शत्रु पैदा होते हैं।

१५०३) अच्छा स्कूल- एक बच्चा अपने पिता के साथ किसी नए स्कूल में दाखिले के लिए पहुंचा। शिक्षिका ने बच्चे से पूछा, बेटा। तुम अपना पुराना स्कूल क्यों छोड़ना चाहते हो ? बच्चे ने मुंह बनाकर कहा, वहां के बच्चे बहुत गंदे हैं, वे हमेशा शैतानी करते हैं। न खुद पढ़ते हैं, न दूसरों को पढ़ने देते हैं। शिक्षिका ने बड़े प्यार से बताया, बेटा। इस स्कूल

के बच्चे भी कुछ ऐसे ही हैं। फिर पिताजी से कहा, महाशय। इसे किसी अन्य पाठशाला में दाखिला दिलवाइए। कुछ समय बाद एक अन्य बालक दाखिले के लिए आया। शिक्षिका ने वही प्रश्न दोहराया, वह विद्यालय क्यों छोड़ना चाहते हो? बच्चे ने उदास होकर कहा, टीचर। वहां सभी मेरे दोस्त थे, मेरी हर परेशानी में सहायता करते थे। परंतु विद्यालय मेरे घर से काफी दूर है, आने-जाने में बहुत परेशानी होती है, इसीलिए स्कूल बदलना पड़ रहा है। शिक्षिका ने कहा, यहां के बच्चे भी खूब मेहनती हैं, तुम्हें वैसा ही प्यार व सहयोग देंगे। शिक्षिका ने उसे अपने विद्यालय में दाखिल कर लिया।

१५०४) अवाक- सभी आश्चर्यचकित थे कि यह क्या हो गया जनरल को ? मरणोपरांत जो पदक किसी-किसी भाग्यशाली को नसीब हो पाता है, वह पदक महज एक रसोइया को ? किन्तु अब किया क्या जा सकता था ? लोगों ने अपनी कल्पना से नाना प्रकार की कहानियां गढ़ लीं कि किस प्रकार एक रसोइया होते हुए भी उन्होंने कितनी बार जान पर खेलकर जनरल की रक्षा की, देश को बर्बाद होने से बचाया। जो काम अरब-खरब खर्च कर सेना नहीं कर सकी, उसे महज कुछ पल में इस रसोइए ने कर दिखाया। पदक-वितरण समारोह के बाद पत्रकारों ने रसोइए को घेर लिया। प्रश्नों की बौछार कर दी गई और रसोइया फफक-फफककर रो उठा, हुजूर। उस दिन जल्दबाजी में आमलेट का नक्शा गोल नहीं बनकर टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था। जनरल साहब ने मुझे बुलाकर पूछा- यह किसी मुल्क का नक्शा है ? मैं तो डर के मारे कांपने लगा कि वे हंसकर-हंसकर खाने लगे। बोले- यह पड़ोसी मुल्क का नक्शा है। हम जिसे इतने वर्षों से अथक प्रयास कर भी कुछ नहीं कर सके, उसे तुमने एक पल में परोस दिया।

१५०५) सौवां दरवाजा- दो राजाओं में युद्ध हुआ। एक जीता, दूसरा हारा। विजयी राजा ने हारे हुए राजा के किले को घेर कर उसके सभी विश्वासपात्र अधिकारियों को कैद कर लिया। उन कैदियों में पराजित राजा का युवा मंत्री और उसकी पत्नी भी थे। दोनों पति-पत्नी को किले के एक विशेष हिस्से में कैद कर रखा गया। कैदखाने के दरोगा ने उन्हें आकर समझाया कि या तो हमारे राजा की गुलामी स्वीकार कर लो, नहीं तो खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिलेगा और कैद में ही भूखे-प्यासे तड़प-तड़पकर मर जाओगे। मंत्री को जिस भवन में रखा गया था, उसमें सौ दरवाजे थे। सभी दरवाजों पर बड़े-बड़े ताले पड़े हुए थे। मंत्री की पत्नी बहुत घबरा रही थी, किंतु मंत्री शांत था। उसने पत्नी को दिलासा देते हुए कहा, निराश मत होओ प्रिये, गहन अंधकार में भी रोशनी की कोई किरण अवश्य होती है।

ऐसा कहकर वह एक-एक दरवाजे को धकेलकर देखने लगा। पहला दरवाजा नहीं खुला। दूसरा भी नहीं खुला। लगभग बीस-पच्चीस दरवाजे देखे, पर कोई टस से मस नहीं हुआ। मंत्री को थकान होने लगी और उसकी पत्नी की निराशा बढ़ती जा रही थी। वह बोली, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है ? इतने बड़े-बड़े ताले लगे हैं, इतनी मोटी-मोटी जंजीरें पड़ी हैं, भला तुम्हारे धक्कों से वे दरवाजे कैसे खुलेंगे ? पर मंत्री हताश नहीं हुआ और वह उसी लगन और हिम्मत से एक-एक दरवाजे को धकेलता रहा। निन्यानवे दरवाजे धकेले, परंतु एक भी टस से मस नहीं हुआ। सौवें दरवाजे के सामने खड़ा मंत्री अब भयभीत और पसीना-पसीना हो रहा था। पर सांस बटोर कर उसने सौवें दरवाजे पर भी धक्का मारा और उसकी चूलें चरमराईं। मंत्री का उत्साह वापस आ गया। उसे अनुमान हो गया कि यह दरवाजा खुल सकता है। उसने दोगुने जोश से धक्के मारने शुरू किए और दो-चार कोशिशों के बाद वह सचमुच खुल गया।

अरे, यह कैसे खुल गया ? दूर बैठी उसकी पत्नी बोली। इसलिए कि जिंदगी में कभी सारे दरवाजे बंद नहीं हुआ करते, मंत्री ने उसी तरह शांत भाव से कहा।

१५०६) परिश्रम की कसौटी- बहुत पुरानी बात है। किसी गांव में एक व्यक्ति रहता था जो मेहनत मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पौषण करता था। उसका एक बेटा था जो उसके ठीक विपरीत आलसी और निकम्मा था। परिश्रम और ईमानदारी से उसका कोई नाता न था। कुछ कमाता भी तो बेईमानी और ठगी से।

एक दिन उस व्यक्ति ने अपने बेटे को बुलाकर उसे समझाया, अब मैं काम करने लायक नहीं रहा। तुम कुछ मेहनत-मजदूरी करके पैसा कमाओ और घर चलाओ। बहुत समझाने-बुझाने पर बेटा किसी तरह अगले दिन काम पर जाने को तैयार हो गया। शाम को जब वह घर लौटा तो उसने दिन भर की अपनी कमाई पिता के हाथ पर रख दी। पिता ने सारे पैसे सामने जल रहे चूलें में डाल दिए। बेटा यह देखकर लापरवाही से अंदर चला गया और कुछ नहीं बोला। अगले दिन यही घटना दोहराई गई। बेटे ने जैसे ही पैसे बाप की हथेली पर रखे बाप ने सारे पैसे आग के हवाले कर दिए लेकिन बेटा अब भी कुछ नहीं बोला। तीसरे दिन जब बेटा काम करके लौटा और पैसे बाप को दिए तो बाप ने फिर पैसे आग में डालने की कोशिश की, मगर इस बार बेटे ने पिता का हाथ पकड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा, आप क्यों मेरी कमाई आग में झोंकना चाहते हैं ? आज मैंने सारे दिन जी तोड़ मेहनत की है। यह देखो काम करके मेरे हाथों में छाले पड़ गए हैं।

हाथों के छाले और उसे चेहरे पर सच्चाई के भाव देखकर पिता ने कहा, आज तुमने वास्तव में मेहनत की है। कल तक पैसों को आग में डालते समय तुम्हारे चेहरे पर कोई शिकन दिखाई नहीं पड़ी थी, क्योंकि वह तुम्हारी मेहनत और ईमानदारी की कमाई नहीं थी। आज तुम्हारी पीड़ा बता रही है कि तुमने वास्तव में परिश्रम किया है। अब मुझे कोई चिंता नहीं है क्योंकि तुमने मेहनत और ईमानदारी से कमाना सीख लिया है और इसी में जीवन की सार्थकता भी है।

१५०७) पुत्र का प्रश्न- राष्ट्र और समाज के लिए समर्पित प्रो. राजेंद्र रज्जू भैया के नाम से विख्यात थे। उनके पिता कुंवर बलवीर सिंह अंग्रेजों के शासनकाल में उच्चकोटि के इंजीनियर थे। इलाहाबाद में उनका निवास स्थान था। रज्जू भैया ने अपने एक मित्र को अपने साथ रखा था, जिसे अचानक तपेदिक ने घेर लिया।

रज्जू भैया ने उसे एक अलग कमरे में रखकर इलाज शुरू कर दिया। डॉक्टरों के परामर्श के अनुसार उसके बर्तन आदि अलग करा दिए गए। दवाएं दी जाने लगीं। एक दिन कुंवर बलवीर सिंह ने पुत्र रज्जू भैया से कहा, इसे परिवार में रखना उपयुक्त नहीं। तपेदिक बहुत घातक रोग है। मैं इसे अपने खर्चे से भवाली (अल्मोडा) सैनिटोरियम भेज देता हूं। रज्जू भैया ने दुखी मन से पूछा, पिताजी, यदि अचानक यह रोग मुझे हो जाता, तो क्या आप मुझे भी घर से बाहर भवाली भेज देते ?

पुत्र के शब्द सुनते ही कुंवर साहब की आंखें सजल हो उठीं। उन्होंने कहा, तुम्हारा मित्र यहीं रहकर इलाज करवाएगा। वह स्वयं उसकी देखभाल करने लगे।

१५०८) पादरी का बलिदान- तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान की सीमा के एक भारतीय गांव पर कुछ पाकिस्तानी जंगाइयों ने रात के समय प्रवेश कर कुछ भारतीय युवतियों के अपहरण का प्रयास किया।

बोरोदोकुनी गांव में स्थित चर्च के पादरी को जब युवतियों की चीख-पुकार सुनाई दी, तो वह उन्हें बचाने के लिए निर्भीकतापूर्वक सामने आए। एक तेरह वर्ष की लड़की को उन्होंने एक दंगाई से छुड़ाने का प्रयास किया। दंगाई ने क्रोधित होकर पादरी को छुरा भोंक दिया। घायल होने के बावजूद पादरी ने लड़की को नहीं ले जाने दिया। तब तक चर्च के अन्य सेवक वहां पहुंच गए।

पादरी ने उनसे कहा- मैं तो शायद बच नहीं पाऊंगा, किंतु इस अबोध लड़की की रक्षा करना आप सबका फर्ज है। यदि मैं इसका अपहरण होता देखकर भी मूकदर्शक बना रहता तो शायद ईश्वर मुझे कदापि क्षमा नहीं करते।

कुछ ही देर बाद पादरी ने प्राण त्याग दिए जब अटलबिहारी वाजपेयी ने ४ मार्च १९६४ को लोकसभा में इस घटना का वर्णन किया था, तब अनेक सांसदों की आंखों में आसू आ गए थे।

१५०९) एक खेत में कुछ मजदूर निराई-गुड़ाई का काम कर रहे थे। कुछ देर काम करने के बाद वे सब बैठकर सुस्ताने और गप हांकने लगे। खेत के मालिक ने उनसे कहा कुछ नहीं, खुद खुरपी लेकर काम करने लगा। मजदूरों ने स्वामी को काम करते देखा तो शरमा गए और थोड़ा सा आराम करने के बाद शीघ्र ही फिर से काम में जुट गए। पड़ोस वाले खेत का मालिक यह सारा दृश्य देख रहा था। शाम को छुट्टी के समय उसने देखा कि उसके खेत में काम कम हुआ है, जबकि पड़ोसी के खेत में उससे दोगुना काम हुआ है। वह पड़ोसी से बोला, भाई। तुम मजदूरों को छुट्टी भी देते हो और डांटते-फटकारते भी नहीं, तब भी तुम्हारा काम मुझसे ज्यादा होता है, जबकि मैं मजदूरों से ज्यादा देर तक काम लेता हूँ और पर्याप्त सख्ती भी बरतता हूँ, तब भी उतना काम नहीं होता, ऐसा क्यों ?

साधु स्वामी बोला, भैया। काम लेने की नीति में मैं सख्ती से अधिक प्यार और सहानुभूति को पहला स्थान देता हूँ। इसीलिए मजदूर भी पूरा जी लगाकर काम करते हैं। इससे काम भी ज्यादा होता है और वे भी खुश रहते हैं।

१५१०) धर्म और मानवता- एक राजा बहुत धार्मिक प्रवृत्ति का था। धर्म के प्रचार के लिए उसने एक नियम बना रखा था। उसके महल के सामने उपवन में हर रोज शाम को धर्मसभाओं का आयोजन होता था। नागरिकों के लिए आदेश था कि वे अपना खाली समय इन सभाओं में आकर धर्म प्रवचन सुनने में लगाएं और यदि समय न हो, तब भी आरती-वंदना के समय जरूर उपस्थित हों। एक दिन राजा के सिपाहियों ने राजा को सूचना दी कि धर्मसभा शुरू होने से पहले ही शहर के कुछ युवक कहीं और चले जाते हैं। राजा ने सिपाहियों को उन युवकों का पता लगाने के लिए कहा। एक दिन शाम को राजा का एक सिपाही घूमता हुआ शहर के बाहर एक आश्रम के पास जा पहुंचा। आश्रम के किवाड़ खुले थे। भीतर से कई तरह की आवाजें सुनाई दे रही थी। पता लगाने के लिए सिपाही भीतर जाकर एक कोने में छिपकर खड़ा हो गया। वहां कुछ युवक लाचार तथा बेसहारा वृद्ध जनों को खाना खिला रहे थे। कुछ लोग दूसरे तरह की तीमारदारी में लगे थे। सिपाही समझ गया कि वे वही युवक थे, जो धर्मसभा में न जाकर इस आश्रम में चले आते थे। वह तुरंत राजा के पास आया और सारा किस्सा सुनाया।

राजा धर्मसभा छोड़ सिपाही के साथ उस आश्रम में पहुंचा। वहां रह रहे उन वृद्धजनों की दीनहीन हालत देख राजा स्तब्ध रह गया। वह नहीं जानता था कि उसके राज्य में कई बेसहारा व लाचार वृद्ध भी हैं। राजा को ज्ञान हो गया कि खाली धर्म का प्रचार-प्रसार एवं प्रवचन सुनना-सुनाना ही धर्म कर्म नहीं है। लाचार और कमजोर लोगों की सहायता सबसे बड़ा धर्म है। वह जल्दी से महल में वापस लौटा और अपने सिपाहियों को कहा कि शीघ्र ही उस आश्रम में सहायता सामग्री पहुंचाई जाए। उस दिन से राजा के यहां धर्मसभा बंद हो गई और उसकी जगह भूखों के लिए लंगर और बीमारों के लिए अस्पताल चलने लगे।

१५११) कल्पना- एक फकीर किस्म का आदमी बहुत भूखा था, मगर उसे कुछ खाने को नहीं मिल रहा था। आखिर उसे एक तदबीर सूझी। वह एक जगह आंखे बंद करके बैठ गया और कल्पना करने लगा कि उसके सामने गरमागरम चटपटी मसालेदार कढ़ी रखी है और वह उसे अत्यंत चाव से खाए जा रहा है। लेकिन कढ़ी चूँकि गरम है और वह भूख के कारण जल्दी-जल्दी खा रहा है, इसलिए उसका मुँह भी जलता जा रहा है। इस कल्पना में कढ़ी खाने से मुंह जलने के कारण वह सी-सी भी करता जा रहा था। इतने में एक गृहस्थ उधर से गुजरा। उसे इस फकीर की हरकत कुछ विचित्र सी लगी। उसने पूछा, भाई, यह सी-सी-क्यों कर रहे हो ? कल्पना की गरम-गरम कढ़ी खा रहा हूं। फकीर जैसे दिखने वाले आदमी ने बताया। जवाब सुन कर गृहस्थ बोला, अगर कल्पना का ही आहार लेना है तो कढ़ी सरीखी मामूली चीज क्यों

खाते हो, बढ़िया-बढ़िया मिठाइयां क्यों नहीं खाते ? फकीर को आगे कोई जवाब नहीं सूझा।

१५१२) खुदा की कुदरत- एक किसान अपने गधे को हांकते हुए तरबूज के एक खेत में पहुंच गया। वो थका हुआ और प्यासा था। वो अखरोट के एक पेड़ के साये में आराम करने के लिए बैठ गया। वो बड़े-बड़े तरबूज की फैलती हुई बेलों को देखकर लुत्फ (मजा) लेने लगा।

ऊपर नजर गई तो उसने देखा के इस ऊंचे दरख्त (पेड़) की शाखों (टहनियों) में कुछ अखरोट लगे हैं। कुदरत के इस कमाल को देखकर वो हैरान हुआ। इसको ताज्जुब हुआ के छोटा-सा अखरोट तो इतने ऊंचे दरख्त पर पैदा होता है, जब के बड़े-बड़े तरबूज पतली और नाजुक-सी बेल से लटकते हैं

हैरान किसान अपने खयालों में खोया हुआ था के इसके सिर पर एक अखरोट आकर लगा। उसने अपने हाथों को आसमान की तरफ फैलाया और शुक्रिया अदा करते हुए कहा, ऐ खुदा। ये तेरी हिकमत (लीला) है के तूने तरबूज को ऊंचे पेड़ों पर नहीं उगने दिया वर्ना मैं मर चुका होता।

१५१३) यह राजस्थान की एक लोककथा है। एक राजा और रानी में बड़ा प्रेम था। मरने के बाद वे अलग-अलग योनियों में जन्मे। रानी को तो पुन: राजकुमारी का शरीर मिला, लेकिन राजा को उसी घर में ऊंट का। पर दोनों को ही पूर्वजन्म का स्मरण बना रहा और वे एक-दूसरे को स्नेह भी करते रहे। राजकुमारी का विवाह हुआ तो उसी ऊंट पर दहेज का सामान लाद कर भेजा गया। ससुराल में राजकुमारी तो महलों में रहने लगी, लेकिन ऊंट अस्तबल में बांध दिया गया। दोनों को एक-दूसरे के दर्शन तक दुर्लभ हो गए। राजकुमारी ने अपना मन संभाल लिया, पर ऊंट निरंतर क्षुब्ध रहने लगा। उसने खाना-पीना बंद कर दिया और अंतत: मरणासन्न स्थिति में जा पहुंचा। राजकुमारी को समाचार मिला तो वह ऊंट के पास गई और उसके कान में कहा, <u>भावना से कर्त्तव्य बड़ा है, भावना में बहकर कभी अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ना चाहिए</u>। हम परस्पर सद्भाव रखें, पर परिस्थितियों के अनुरूप कर्त्तव्यपालन में आनाकानी न करें। ऊंट को बात समझ में आ गई और अगले रोज से उसने वस्तुस्थिति को समझा और खाना-पीना तथा लदान आरंभ कर दिया।

१५१४) फल का प्रतिफल - एक बादशाह अपने इंसाफ के लिए प्रसिद्ध था। एक बार वह जंगल में घूम कर अपने महल लौट रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी राह किनारे आम का पौधा लगा रहा हैं। बादशाह ने घोड़े से उतर कर पूछा- क्या आप जानते हो इस पौधे को बड़े होने औ इसमें आम लगने में कई वर्ष लगेंगे। तब तक तुम शायद ही जीवित रह पाओगे। फिर क्यों व्यर्थ ही मेहनत कर रहे हो? वृद्ध बोला- राजन्, मैं अब तक दूसरों के लगाए पेड़ों के बहुत फल खा चुका हूं। मेरा भी फर्ज बनता है कि मुझे दूसरों के लिए पेड़ लगाने चाहिए। फल खाने की आशा से ही पेड़ लगाना तो स्वार्थ है। मैं आनेवाली पीढ़ी के लिए फल के प्रतिफल के रूप में इस पौधे को रोप रहा हूं। बादशाह उसका जवाब सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे दरबार में सलाहकार के पद पर नियुक्त किया।

१५१५) बहू- सुनीता मौसी और उनके पति प्रेमपाल खेती से लौटकर आए। बरामदे में सुस्ताने बैठे थे। बहू को घर में न पाकर बहुत निराश हुए थे। थके-हारे दोनों सोच रहे थे कि कोई उन्हें इस समय गर्म-गर्म दूध पिला दे। कुछ देर ठंडी आहें भरने के बाद इकट्ठे रसोई में चले गए थे। सोच-विचार कर दोनों ने मिलकर बहू को सही रास्ते पर लाने की पहली और अंतिम योजना बना डाली थी। अधेड़ अवस्था को पार कर चुके प्रेमपाल और सुनीता मौसी की बहू बहुत आराम परस्त निकली थी। प्रात: देर से उठना और दिनभर सजने संवरने से फुर्सत पाकर पड़ोसियों से गप्पे लड़ाने चली जाती थी। घर और खेती-किसानी का कार्यभार दोनों को ही संभालना पड़ता था। बड़े अरमानों और मधुर सपनों को लेकर उन्होंने अपने इकलौते बेटे की

शादी की थी। बहू के आने पर काम में बंटवारा होने से कुछ आराम के दिन काटने की उनकी उम्मीद पर पानी फिर गया था। योजना के अनुसार सुबह-सुबह दोनों बहू के कमरे के पास बरामदे में बहस करने लग गए थे। दिनेश की अम्मा, मैं झाडू लगता हूं। तुम और काम-काज निपटाओ। झाडू को बरामदे में पटकते हुए प्रेमलाल ने अपनी बहू को सुनाते पत्नी से कहा।

नहीं जी, आप रहने दो। घर में दो-दो औरतें हैं। दीजिए, झाडू मुझे दो। मैं लगाती हूं। आप कुछ और देख लीजिए। दीजिए बुहारी मेरे पास दो।

सुनीता मौसी ने थोड़ा ऊंचे स्वर में कहा, नहीं, रहने दो अभी तो तुम्हें और भी बहुत सारे काम करने हैं। मुझे ही झाडू दे देने दो दीनू की अम्मा।

ऊं SS आं SSS और ऊबासी लेने के साथ बहू जागी। वह लेटे-लेटे बोली- आप लोग बहस में न पड़िए। ससुरजी को आज झाडू ले लेने दो। मां जी आप कल झाडू लगा देना। बहू ने कुछ ऊंचे स्वर में कहा और जोर की जम्हाई ली। करवट बदल कर चादर ओढ़ी और फिर सो गई।

१५१६) बीवी की शादी- अर्से से शिवलोचनबाबू गांव जाने के लिए छुट्टी की अर्जी भर रहे थे, पर साहब जो थे, छुट्टी के नाम पर उनकी नानी मरती थी। अंत में हारकर एक दिन शिवलोचन बाबू ने ऐसी दरखास्त दागी कि साहब चारों खाने चित्त।

उन्होंने आव देखा न ताव, तपाक से शिवलोचन बाबू को बुलाया और चटाक से पूछा- यह क्या बदतमीजी है ?

हुजूर, छुट्टी की दरखास्त है।

सो तो मुझे मालूम है, पर इसका मजमून क्या है ?

ठीक ही तो है, सर।

ठीक है ? - साहब गुस्से से कांप उठे- इसे आप ठीक कहते हैं ? आपकी बीवी की शादी है और आप उसमें शरीक होने के लिए गांव जाना चाहते हैं। इतनी घटिया मजाक ?

साहब उबल रहे थे और उस उबाल में कांप रहे थे। पर शिवलोचन बाबू गंभीर थे। उन्होंने निवेदन किया- यह कोई मजाक नहीं है, सर। हकीकत है.... असल में मेरी प्रतीक्षा करते-करते बीवी ना-उम्मीद हो चली है और इसलिए अब दूसरी शादी करने जा रही है।

१५१७) डाकू और संत- डाकुओं का एक सरदार साधु का वेश बनाकर रहता था, किंतु काम डाका डालने का करता था। उसके कई शागिर्द थे। एक बार व्यापारियों की एक टोली उसी रास्ते से गुजरी जहां डाकू रहते थे। डाकुओं ने सोचा कि आज तो घर बैठे ही शिकार मिल गया। डाकू घेरा डालकर उन्हें लूटने लगे।

डाकुओं का सरदार उस वक्त अपने तंबू में बैठा माला जप रहा था। इतने में एक व्यापारी बाहर डाकुओं को चकमा देकर अपनी अशर्फियों की थैली लेकर तंबू के भीतर आ गया। साधु वेशधारी डाकू के पास जाकर बोला- महात्मन्। कृपया थैली ले लीजिए। यहां डाकुओं ने घेरा डाल दिया है। थोड़ी देर के लिए आप यह अशर्फियां संभाल लीजिए। डाकू चले जाएंगे तो मैं आकर इसे ले जाऊंगा।

साधु वेशधारी डाकू ने उसे थैली एक कोने में रखने का संकेत किया। सेठ ने वह थैली कोने में रख दी। जब डाका डल चुका तो सारे डाकू उसी तंबू में अपने माल के बंटवारे के लिए आए। संयोगवश वह सेठ भी उसी समय वहां पहुंच गया। वहां डाकुओं को देखकर वह चौंक गया। उसे समझ आ गया कि जिसे वह महात्मा मान रहा था वही डाकुओं का सरदार था। सेठ ने वहां से निकल जाना ही उचित समझा। मगर जैसे ही वह चलने को हुआ सरदार ने आवाज लगाई- सेठजी,

वापस कहां जा रहे हैं। अपनी थैली तो लेते जाइए। कोई आपको कुछ नहीं कहेगा। सेठ थैली लेकर चला गया तो सरदार की इस हरकत पर दूसरे डाकुओं ने कहा- यह आपने क्या किया ? घर आए मुर्गे को छोड़ दिया ? अगर हम भी दया करने लगें तो जिंदा कैसे रहेंगे ? तब सरदार ने कहा- साथियों। इस सेठ ने मुझे महात्मा समझकर थैली रखी थी, क्योंकि मैं संत का वेश धारण किए रहता हूं। संत का वेश परमात्मा की याद दिलानेवाला वेश है। इस वेश को कहीं कलंक न लग जाए, इसलिए मैंने उसे उसकी थैली लौटा दी।

१५१८) राजा और प्रजा- काशी नरेश बड़े धर्मात्मा, सत्यप्रिय एवं न्यायप्रिय थे। उनके पास कई विद्वान पंडित आते-जाते रहते थे। एक बार उनके ज्येष्ठ पुत्र को कार्तिक मास में नदी में तैराकी करने की इच्छा हुई। वह ज्येष्ठ राजकुमार था, अत: उसके लिए पूरे बंदोबस्त किए गए। उसके साथ कई अंगरक्षक और नौकर-चाकर भी गए। नदी तट के आसपास जो झोपड़े थे, उनमें रहने वाले गरीबों को भी अंगरक्षकों ने भगा दिया।

जब राजकुमार तैराकी करके बाहर आया तो उसे ठंड लगने लगी। उसने एक अंगरक्षक को हुक्म दिया, सामने जो झोपड़ियां हैं उनमें से एक को जला दो, ताकि मैं जरा हाथ सेंक लूं। अंगरक्षक के आनाकानी करने पर उसने दूसरे अंगरक्षक को कह जबरन झोपड़ी जलवा दी। एक झोपड़ी से आग दूसरी झोपड़ी में लगी और देखते-देखते सभी झोपड़ियां जल गईं। राजकुमार झोपड़ियों की होली जलती देखकर बहुत खुश हुआ और आग तापकर राजमहल में वापस लौट आया।

उधर, अपने घरों के जलने से नाराज गरीब राजा के पास शिकायत करने पहुंचे। लोगों की शिकायत सुनकर राजा महल में गए और उन्होंने अपने पुत्र से सच जानना चाहा। राजकुमार ने सहज ही बता दिया कि उसे ठंड लग रही थी सो उसने झोपड़ियां जलवा दीं। राजकुमार की बात सुन राजा को बहुत अफसोस हुआ। वह राजकुमार से बोला- जो व्यक्ति सदैव सुखों में ही पला हो, उसे दूसरों के दुख का पता नहीं चलता। जो महलों में रहता है, उसे झोपड़ी वालों के आसुओं का ख्याल नहीं रहता। लेकिन मैं नहीं चाहता कि मेरी प्रजा को ऐसे व्यक्ति के कारण दुख भोगने पड़े। उन्होंने अपने सेनापति को आदेश दिया- इस अभागे के राजसी वस्त्र-अलंकार तुरंत उतारकर इसे झोपड़ी में रहने वाले गरीबों के फटे वस्त्र पहना दो और नदी किनारे छोड़ आओ। जब तक यह खुद मेहनत-मजदूरी करके सारे झोपड़े दोबारा नहीं बना देता, इसे महल में न आने दिया जाए। राजकुमार को अपनी गलती का अहसास हो गया था। प्रजा का ऐसा खयाल रखने वाले कितने कम राजा हुए हैं।

१५१९) वास्तविक सुरक्षा- कौवों का एक जोड़ा कहीं से उड़ता हुआ आया और एक ऊंचे पेड़ पर घोंसला बनाने में जुट गया। कौवों को इस पेड़ पर घोंसला बनाते देख एक चुहिया ने उनसे कहा, देखो भाई, इस पेड़ पर घोंसला बनाना सुरक्षित नहीं है। कौवों ने कहा कि घोंसला बनाने के लिए इस ऊंचे पेड़ से ज्यादा सुरक्षित स्थान कौन सा होगा ? चुहिया ने फिर कहा, देखो भाई ऊंचा होते हुए भी यह पेड सुरक्षित नहीं है, इसकी। चुहिया अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि कौवों ने बीच में ही चुहिया को रोककर डांटते हुए कहा, हमारे काम में दखल मत दो और अपना काम देखो। हम दिन भर जंगलों के ऊपर उड़ते रहते हैं और सारे जंगल को अच्छी तरह जानते हैं। तुम जमीन के अंदर रहने वाली नन्ही सी चुहिया पेड़ों के बारे में क्या जानो। ये कहकर कौवे पुन: घोंसला बनाने में व्यस्त हो गए।

कुछ दिनों के परिश्रम से कौवों ने एक अच्छा सा घोंसला तैयार कर लिया और मादा कौवे ने उसमें अंडे भी दे दिए। अभी अंडों से बच्चे निकले भी न थे कि एक दिन अचानक आंधी चलने लगी। पेड़ हवा में जोर-जोर से झूलने लगा। आंधी का वेग थोड़ा और तेज हो गया और देखते-देखते पेड़ जड़ समेत उखड़कर धराशायी हो गया। कौवों का घोंसला दूर जा गिरा और उसमें से अंडे छिटककर चकनाचूर हो गए। कौवों का पूरा संसार पल भर में उजड़ गया। वे रोने-पीटने लगे।

यह सब देखकर चुहिया को भी बड़ा दुख हुआ। वह कौवों के पास आकर बोली, तुम कहते थे कि पूरे जंगल को जानते हो, लेकिन तुमने पेड़ को केवल बाहर से देखा था। पेड़ की ऊंचाई देखी थी जड़ों की गहराई और स्वास्थ्य नहीं देखा। मैंने पेड़ को अंदर से देखा था। पेड़ की जड़ें सड़कर धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही थीं, लेकिन तुम मेरी बात सुनने को तैयार ही न थे। हमें चीजों को बाहर से ही नहीं, भीतर से भी जांचना चाहिए। ऐसा करते तो तुम्हें यह दिन न देखना पड़ता।

१५२०) सुप्रसिद्ध समाजसेवी रविशंकर महाराज एक गांव में गरीबों को गुड़ दे रहे थे। उधर से एक लड़की गुजरी जिसके वस्त्र फटे हुए थे। रविशंकर महाराज ने कहा- इधर आओ, गुड़ लेती जाओ। बालिक बोली- मुझे गुड़ नहीं चाहिए। मेरी मां ने मुझे मुफ्त की चीजें खाने से मना किया हुआ है। लड़की की बात सुनकर रविशंकर महाराज बहुत प्रभावित हुए। वे उस बाला के घर पहुंचे। उसकी मां से पूछा- तुम्हारी आर्थिक स्थिति तो बहुत खराब लगती है। फिर तुम अपना जीवन निर्वाह कैसे करती हो ? उस महिला ने कहा- मैं चक्की पीसती हूं और जंगल से लकड़ी काटकर लाती हूं। उससे अपना जीवन निर्वाह कर रही हूं। जब इसके पिता परलोकवासी हुए उस समय मेरे पास तीस बीघा जमीन थी। पर गांव में पानी न था। इसलिए मैंने अपनी जमीन और बैल बेचकर कुआं बनवाया। अब लोगों को पानी की दिक्कत नहीं है। मुझे दो वक्त की रोटी मिल जाती है और मेरा जीवन आनंद से चल रहा है। उसकी बात सुनकर रविशंकर महाराज ने मन ही मन सोचा- शायद ऐसे ही प्रबुद्ध और परोपकारी लोगों से यह संसार गतिशील है।

१५२१) कुरूपता को गुणों से ढंका- ओलिवर क्रॉमवेल एक शक्तिशाली शासक था। राज्य के सभी नागरिक उसकी उदारता, शासन प्रबंध तथा मानवीय भावना की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। क्रॉमवेल के चेहरे पर एक भद्दा मस्सा था। इस मस्से के कारण उसका चेहरा कुरूप तथा भयानक दिखाई देता था। ओलिवर क्रॉमवेल की वीरता से प्रभावित होकर एक चित्रकार उसके पास आया और बोला, मैं आपका एक चित्र बनाना चाहता हूँ। क्रॉमवेल ने उसे अपना चित्र बनाने की स्वीकृति दे दी। चित्रकार बहुत प्रसन्न हुआ। पर उसके सामने एक समस्या थी। क्रॉमवेल जितना साहसी व वीर था, उतना ही कुरूप भी। उसके चेहरे पर एक बड़ा सा मस्सा था, जिसके कारण वह बहुत ही भद्दा दिखता था।

चित्रकार ने मेहनत से क्रॉमवेल का सुंदर चित्र बनाया। उसके चेहरे के काले मस्से का चित्रण उसने चित्र में नहीं किया। उस चित्र को लेकर वह क्रॉमवेल के महल पहुंचा। तस्वीर में क्रॉमवेल बहुत सुंदर लग रहा था।

चित्रकार समझ रहा था कि अपना भव्य चित्र देखते ही शासक उसे भरपूर इनाम से पुरस्कृत करेगा। क्रॉमवेल बोला- तुम्हारी कलाकृति तो बेहद खूबसूरत है, लेकिन यह चित्र मेरा नहीं है। क्रॉमवेल ने चित्र देखा, तो गंभीर होकर बोला, खुश करने के लिए मेरी कुरूपता पर परदा डालकर तुमने चापलूसी का परिचय दिया है। एक चित्रकार को चापलूस न बनकर जैसे का तैसा चित्रित करना चाहिए। कुछ क्षण मौन रहने के बाद क्रॉमवेल ने कहा, मैंने अपने कुरूप चेहरे को अपने शालीन स्वभाव तथा अन्य गुणों से ढकने का प्रयास किया है। चित्रकार उसका आशय समझ गया। उसने एक और चित्र बनाया जिसके चेहरे पर बड़ा सा मस्सा था। चित्रकार उस दूसरे चित्र को लेकर फिर क्रॉमवेल के पास पहुंचा। नई तस्वीर को देखकर क्रॉमवेल प्रसन्न हुआ और बोला, हां, यह चित्र मेरा है। एक व्यक्ति में अपनी कमियों को देखने और स्वीकार करने का साहस होना चाहिए। शरीर की कुरूपता को किसी बाह्य आवरण से नहीं, सद्गुणों से ही ढका जा सकता है।

१५२२) वानप्रस्थ की सार्थकता- सेवानिवृत्ति के समय मास्टर दीनदयाल पूर्ण स्वस्थ थे। घर बैठकर मृत्यु की प्रतीक्षा करना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने वानप्रस्थ लेकर अपने पूर्णिया जिले में विद्या विस्तार का संकल्प लिया। आम व्यक्ति इस महान लक्ष्य से जुड़े इसके लिए मास्टर साहब ने प्रत्येक घर में एक घड़ा रखवाया तथा प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज डालने का

लोगों से आग्रह किया। मुट्ठी अन्न संग्रह से अध्यापक का खर्च निकल जाता तथा किसी पर आर्थिक दबाव भी नहीं आता। जो मुट्ठी अनाज प्रतिदिन देते वे अपने बच्चों को पढ़ने भी भेजते। इस तरह उनका सौ विद्यालयों की स्थापना का लक्ष्य पूरा हो गया। उनके वानप्रस्थ संस्कार की सर्वत्र सराहना हुई।

१५२३) सलाह- एक बीमार व्यक्ति ने डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर मोटे थे, अत: लिफ्ट खराब होने की वजह से बीमार व्यक्ति के कमरे तक पहुंचते-पहुंचते वे हांफने लगे। बीमार व्यक्ति बर्नार्ड शॉ थे। उन्होंने डॉक्टर को सबसे आरामदेह कुर्सी पर बैठने को कहा और बिस्तर से उठकर थकान दूर करने के लिए एक गोली देते हुए बोले- यह तुम्हें फौरन आराम पहुंचाएगी। तुम्हारे कष्ट का असली कारण अधिक भोजन है। गरिष्ठ भोजन बन्द कर दो, साग-सब्जी और फल खाओ। मैं तुमसे उम्र में दुगुना बड़ा हूं फिर भी सौ गुना चुस्त हूं। तुमने देखा कि मैं किस तेजी से खाट से उठ बैठा हूं। डॉक्टर ने शॉ की चुस्ती की प्रशंसा की। फिर शॉ ने डॉक्टर से पूछा कि क्या वे नृत्य कर सकते हैं ? वह डाक्टर नृत्य से अनभिज्ञ थे। तब शॉ ने संगीत रेडियो पर चला दिया और नाचने लगे। उन्होंने डॉक्टर को सलाह दी- प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह मिनट तक नाचा करो, तब तुम मेरे समान पतले और चुस्त हो जाओगे। तुम डाक्टर लोग ऐसी सलाह बहुत देते हो जो मरीज के लिए अनुपयुक्त होती है। तुम एक डाकिये से अधिक घूमने-फिरने को कहोगे, जबकि वह तो घूमने-फिरने में ही अपनी शक्ति व्यय करता है। ऐसे ही तुम मुझसे लिखने को मना करोगे जबकि मैं लिखने से ही स्वस्थ रहता हूं। अच्छा, अब अनुभवी सलाह देने के लिए तुम मुझे पांच शिलिंग दो। डॉक्टर मुस्कराकर बोले, हां. हां. उन्हें काटकर आप मुझे दो पौंड दे दें। शॉ ने पूछा, ये क्यों ? क्योंकि मैंने आपको अच्छा कर दिया है। मुझे मरीज समझकर आप अपने कष्ट भूल गए। आपने नृत्य किया और अपने को चुस्त बतलाया। डॉक्टर बोले- डॉक्टर की बात सुनकर शॉ खूब खुलकर हंसे।

१५२४) आप करे सो होए- एक बार एक किसान के खेत की फसल में एक चिड़िया ने अपना घोंसला बना लिया। समय के साथ फसल बढ़ने लगी और चिड़िया ने घोंसले में अंडे दिए। एक समय आया जब अंडे फूटे और नन्हे-नन्हे बच्चों ने जन्म लिया। बच्चे धीरे-धीरे बड़े होने लगे। अब चिड़िया सुबह होते ही उड़ जाती और दाना खोजती और शाम ढले घोंसले में वापस आती। जब बच्चे अपनी चीं-चीं की आवाज से अपनी चिड़िया मां का स्वागत करते तो चिड़िया की थकान उड़न-छू हो जाती। चिड़िया भी दिन भर की सैर की कहानियां बच्चों को सुनाती। बच्चे पूरी जिज्ञासा से सुनते और अगले दिन की आतुरता से प्रतीक्षा करते जब उनकी मां नई-नई रोचक बातें और किस्से सुनाती। उनके दिन हंसी-खुशी से गुजर रहे थे। एक दिन शाम को जब चिड़िया लौट कर घोंसले में आई तो बच्चे व्यग्रता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे सारे बोले- मां, अब क्या होगा ? अभी तो हमें उड़ना नहीं आाय। आज खेत का मालिक आया और उसने कहा- फसल पक गई है। मजदूरों से कहकर कल खेत कटवा दूंगा।

चिड़िया ने उन्हें शांत किया और कहा- बच्चों, चिंता न करो, खेत अभी नहीं कटेगा, अभी समय है। तब तक तुम उड़ना सीख लोगे। इस घटना के कुछ दिन बाद जब शाम को चिड़िया घोंसले में लौटी तो बच्चों को बेहद परेशान पाया। उन्होंने पूछने से पहले ही बताया- आज किसान फिर आया था और कह रहा था कि मजदूर नहीं मिले तो क्या, कल अपने लड़कों को भेजकर फसल कटवा ही लूंगा।

चिड़िया बोली- बच्चो, अभी भी फसल कटने में समय है तब तक तुम उड़ना सीखो। इसे कुछ दिन बाद जब चिड़िया घोंसले में लौटी तो बच्चों ने बताया- मां, आज इस खेत का मालिक किसान फिर से आया था। बोल रहा था कि मेर बेटे भी आलसी हो गए हैं, सुनते ही नहीं, कल मैं खुद ही फसल काटूंगा।

चिड़िया बोली- आज रात ही हम सब नए ठिकाने की तलाश में चल देंगे, क्योंकि अब किसान ने दूसरों के भरोसे न रहकर खुद पर भरोसा किया है। कल खेत कट जाएगा।

१५२५) शांति का रहस्य- राजा अश्वघोष वैराग्य लेकर ईश्वर दर्शन की लालसा से देश देशांतरों में भ्रमण करते रहे। न तीर्थयात्रा से शांति मिली, न देव दर्शन से। कथा प्रवचन सुनते रहे, पर उससे भी कोई बात नहीं बनी। घूमते-घूमते वह एक किसान के खलिहान में जा पहुंचे। वह बहुत प्रसन्न और संतुष्ट दिख रहा था। राजा को लगा कि वह एक तृप्त व्यक्ति है और उसके मन में कोई अशांति नहीं। वह मस्ती के गीत गा रहा था और हल चला रहा था। अश्वघोष वहीं बैठ गए। किसान ने जब काम खत्म किया तो राजा ने किसान को अपने मन की लालसा बताई। किसान ने राजा की बातें सुनकर उनकी कठिनाई समझी। उसने राजा के रूप में अपने पास आए वैरागी को पेड़ तले बिठा लिया। उसने उसे चावल परोसे, जिन्हें वह सुबह अपने साथ पोटली में बांधकर लाया था। दोनों ने आधा-आधा बांटकर खाया। पेट भर गया तो दोनों को गहरी नींद आ गई और उसी छांव में देर तक सोते रहे। दोनों एक साथ साथ जागे। किसान ने कहा- परिश्रमपूर्वक कमाया और मिल-बांटकर खाया जाए तो वैसी ही शांति मिल सकती है, जैसी ज्ञानी वैरागी चाहते हैं। किसान की बात सुनकर राजा की आंखें खुल गई और वह राजमहल वापस लौट गया। उसकी शंकाओं का समाधान हो चुका था।

१५२६) कलिंग देश का राजा राह चलते मधुपर्क खा रहा था। उसके प्याले में से असावधानी से थोड़ा सा शहद टपककर जमीन पर गिर पड़ा। राजा तो राजमहल चला गया, मगर उस शहद को चाटने मक्खियां आ गई मक्खियों को इकट्ठी देख छिपकली ललचाई और उन्हें खाने के लिए आ पहुंची। छिपकली को मारने बिल्ली पहुंची। बिल्ली पर दो-तीन कुत्ते टूटे। बिल्ली भाग गई और कुत्ते आपस में लड़कर घायल हो गए। कुत्तों के मालिक अपने-अपने कुत्तों के पक्ष का समर्थन करने लगे और एक दूसरे का दोष बताने लगे। उनमें लड़ाई ठन गई। लड़ाई में दोनों ओर की भीड़ बढ़ी और आखिर सारे शहर में बलवा हो गया। दंगाइयों को मौका मिला तो सरकारी खजाना लूटा और राजमहल में आग लगा दी। राजा ने इतने बड़े उपद्रव का कारण पूछा तो मंत्री ने जांच कर बताया कि राजन आपके द्वारा असावधानी से गिराया हुआ थोड़ा सा शहद ही इतने बड़े दंगे का कारण बन गया। तब राजा ने समझा कि <u>छोटी सी असावधानी भी मनुष्य के लिए कितना बड़ा संकट उत्पन्न कर सकती है</u>।

१५२७) सार्थक आयु- शतायुध राजा प्रजा की खैर-खबर लेने निकले। उन्हें झोपड़ी में जरा-जीर्ण वृद्ध दिखा। राजा ने रुक कर शतायु लगने वाले वृद्ध से पूछा कि उनकी उम्र कितनी है ? वृद्ध ने राजा को देखकर कहा कि मेरी उम्र पांच वर्ष है। राजा के आश्चर्य भावों को पढ़ते हुए वे बोले कि शेष जीवन तो पशु तुल्य व्यतीत हुआ है। पांच वर्षों से परमार्थ के कार्य में संलग्न हुआ हूं अत: अपनी आयु मैं पांच वर्ष ही मानता हूं।

१५२८) नजीर की निर्भिकता- विख्यात शायर नजीर अकबराबादी आगरा के काल भैरव मंदिर में प्रतिदिन जाकर पुजारी बाबा से ज्ञान की चर्चा किया करते थे। वह मंदिर की गोशाला में गायों को हरा चारा खिलाकर बहुत प्रसन्न होते थे। श्यामा बछिया तो प्राय: उनके साथ घूमने लगी थी। एक दिन कुछ दुष्टों ने नजीर अकबराबादी के मकान को लूटने की नीयत से उस पर हमला किया। अचानक मंदिर के पुजारी उधर आ निकले। वह खड़े हो गए तथा बोले, मेरे जिंदा रहते तुम एक शायर के मकान में लूटपाट नहीं कर सकते।

नजीर भी वहां आ पहुंचे। उन्होंने एक आततायी को पुजारी पर छुरा ताने देखा, तो तुरंत बोले, मैं लुट जाऊं तो कोई बात नहीं, लेकिन मेरी खातिर मेरे गुरु समान पुजारी मारे जाएं, यह मैं नहीं देख सकता। उन्होंने आततायियों के सामने सीना तान कर कहा, इन्हें हाथ मत लगाना, मेरे घर को लूट लो और मुझे मार डालो। आततायी एक मुसलमान की हिंदू पुजारी

के प्रति श्रद्धाभावना देखकर पानी-पानी हो गए।

१५२९) पत्रकार का दायित्व- हिंदी के यशस्वी पत्रकार बालमुकुंद गुप्त कलकत्ता के हिंदी दैनिक भारत मित्र के संपादक थे। एक दिन एक व्यक्ति उनके घर उनसे मिलने पहुंचा। उसने देखा कि गुप्त जी अपने पुत्र को महंगी कमीज खरीद कर लाने पर समझा रहे थे, चार रुपये की कमीज लाए हो। इतने रुपये का कपड़ा खरीदते, तो उससे हम सबके कपड़े बन जाते। उस व्यक्ति ने विनम्र भाव से मिलने आने का कारण बताते हुए कहा, कलकत्ता के दो व्यापारिक घरानों के सदस्यों के बीच विवाद चल रहा है। आजकल यहां के अखबारों में इसके समाचार छप रहे हैं। आप अमुकसेठ के पक्ष में कुछ खबरें भारत मित्र में छाप दें। उन्होंने भेंट के रूप में ये रुपये भेजे हैं। उस व्यक्ति ने कुछ हजार रुपये के नोटों से भरा लिफाफा सामने रख दिया।

गुप्त जी का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने कहा, एक तो पत्रकार का दायित्व सत्य को उजागर करना है। दूसरे हमारे पत्र का ध्येय वाक्य है, प्रतिष्ठान रत्नम् अर्थात प्रतिष्ठा सर्वोत्तम रत्न है। क्या वह सेठ हमें धन देकर हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिलाना चाहते है। उन्होंने नोटों से भरा लिफाफा मेज से उठाकर फेंक दिया।

१५३०) अनूठा धैर्य- मार्टिन लूथर महान समाज सुधारक थे। उन्होंने धर्म की आड़ में फैलाए जाने वाले पाखंड तथा कुरीतियों के विरुद्ध अभियान चलाया। धर्म के ठेकेदारों में उनके प्रति आक्रोश व्याप्त हो गया। उन्हें नास्तिक होने का फतवा देकर बहिष्कार करने की अपीलें जारी की जाने लगीं। मार्टिन लूथर स्वयं महान ईश्वर विश्वासी संत थे। वह झूठे चमत्कारों का विरोध करते थे। ईश्वर की प्रार्थना को बहुत शक्तिशाली बताते थे। कहा करते थे, निश्छल हृदय से की गई प्रार्थना को भगवान अवश्य सुनते हैं तथा सहायता के लिए तत्पर होते हैं। एक दिन उनके शिष्यों ने कहा, ये दुष्ट लोग आप पर तरह-तरह के आरोप लगा रहे हैं। आप कब तक सहन करते रहेंगे। भगवान से प्रार्थना करें कि इनकी जबान पर बिजली गिरा दें। लूथर हंसते हुए बोले, भइया, मैं किसी के अकल्याण की कल्पना भी नहीं कर सकता। ईसा ने दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति से भी प्रेम करने की शिक्षा दी है। क्या मैं घृणा कर पाप का भागी बनूं ? मैं असत्य और पाखंड के विरुद्ध अपने काम में लगा रहूं, यही प्रभु से प्रार्थना करता हूं।

१५३१) बराबर का हक- इटली के प्रमुख उद्योगपति मेवार्डो एक दिन अपने कारखाने के कर्मचारियों के घरों का अवलोकन करने पहुंचे। उन्होंने देखा कि जिन श्रमिकों के खून-पसीने से कारखाने में उत्पादन होता है, उन्हीं को अनेक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। मेवार्डो को यह अच्छा नहीं लगा।

दूसरे ही दिन मेवार्डो ने अपने महलनुमा मकान को छोड़कर छोटे-से दो कमरों वाले मकान में रहना शुरू कर दिया। बड़े मकान में एक अनाथालय खोल दिया गया। मेवार्डो ने अर्जित आय का आधा भाग मजदूरों के लिए अच्छे मकान बनवाने पर खर्च कर दिया। उनके एक पुत्र ने एक दिन कहा, पिता जी, हमारे पास पर्याप्त धन है, लेकिन आप हमें अपने मजदूरों की तरह सादा जीवन बिताने को क्यों मजबूर करते हैं ? आपका अर्जित धन हमारे काम क्यों नहीं आता है ? मेवार्डो ने उत्तर दिया, यह धन मेरे परिश्रम से अर्जित नहीं होता। इसे अर्जित करने में हमारे कर्मचारियों का खून-पसीना लगता है। अत: इस पर उनका भी उतना ही अधिकार है, जितना हमारे परिवार का।

१५३२) परिणाम- बड़ी मुश्किल से वह अपने इकलौते बेटे से मिलने का समय निकाल सका था। प्रिंसिपल की दूसरी चिट्ठी कुछ अधिक ही सख्त थी इसीलिए वह छुट्टी लेकर चल दिया था कि छुट्टी मिलने में कोई दिक्कत हो लेकिन ऊपरी आमदनी का लालच ड्यूटी छोड़ने नहीं देता। तस्कर हजारों रुपए की मादक वस्तुएं रोज ले जाते हैं और प्रत्येक चक्कर में दस हजार दे जाते हैं जो पूरे ड्यूटी स्टाफ में बंट जाता है। लगभग हजार रुपए रोज की आमदनी के सहारे वह अपने बेटे

को इतने महंगे पब्लिक स्कूल में पढ़ा रहा है।

स्टेशन पर उतरते समय उसके मन में बेटे से मिलने की उमंग और अधिक तीव्र हो उठी थी लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि प्रिंसिपल साहब ने उसे क्यों बुलाया है। पत्नी तो गत दो वर्ष पूर्व मस्तिष्क ज्वर में चल बसी थी।

उसे मालूम है कि लड़के से मिलने के लिए उसे प्रिंसिपल साहब का अनुमति पत्र भी लेना होगा। वह सीधे प्रिंसिपल के दफ्तर जो पहुंचा। उसकी पर्चा देखते ही प्रिंसिपल ने उसे अंदर बुला लिया, मैं आपकी प्रतीक्षा काफी दिनों से कर रहा हूं। आप अपने लड़के को ले जाएं, उसे छात्रवास से निकाल दिया गया है। उसके चार साथी पहले ही निकाले जा चुके हैं क्योंकि सब नशे के आदी हो चुके हैं, इससे दूसरे लड़के भी बर्बाद हो जाएंगे। प्रिंसिपल उसे देखते ही बोले।

जो नशीली वस्तुएं वह हिस्सा लेकर आने दे रहा था वह देश में ही खप रही हैं यह तो उसे भी पता था, लेकिन उसी के घर में आ जाएंगी यह उसने सोचा न था।

प्रिंसिपल उसे लेकर एक कमरे में पहुंचे तो उसने देखा उसका बेटा नशे में बेसुध पड़ा था।

१५३३) शिक्षा कैसी- समाजसेवी रामलाल पारीख गुजरात से अमेरिका गये हुए थे। वह एक अमीर अमेरिकी के यहां ठहरे। अमेरिकी परिवार उनकी सेवा में जुट गया। श्री पारीख ने अमेरिकी मेजबान से पूछा, आपके देश में बच्चों को किसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है ? जवाब मिला हम बच्चों को आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा देते हैं। दूसरे दिन अमेरिकी सज्जन पारीख जी को कार में घुमाने ले गये। कुछ दूर पहुंचे थे कि ड्राइवर ने कार रोक दी। तभी एक युवक हाथ में झाड़ू लिए वहां पहुंचा। वह बोला, पापा गुड मॉर्निंग, आप अपने अतिथि महोदय के साथ कहां जा रहे हैं ? उन्होंने जवाब दिया मैं इन्हें यह दिखाने निकला हूं कि अमेरिकी युवकों को कैसी शिक्षा दी जाती है। श्री पारीख यह देखकर हतप्रभ रह गये कि एक अमीर पिता के पुत्र अपने हाथों से चर्च का रास्ता साफ कर रहा था। अमेरिकी सज्जन ने बताया कि हमारे देश में किसी भी काम को छोटा नहीं समझा जाता। सड़क पर झाड़ू लगाने से युवकों का यह अहंकार स्वयं दूर हो जाता है कि वे बड़े बाप के बेटे हैं।

१५३४) असली नेम-प्लेट- गली में एक व्यक्ति आवाजें लगा रहा था- नेम प्लेट बनवा लो नेम प्लेट। राजू दौड़ता हुआ अंदर आया और अपनी मम्मीजी से बोला- मम्मीजी बाहर गली में नेम-प्लेट बनानेवाला घूम रहा है। उसे बुलवाकर पापा के नाम की नेम-प्लेट बनवा लो। फिर मैं उस नेमप्लेट को अपने घर के मेन गेट पर लटका दूंगा, शाम को जब पापाजी घर आएंगे तब अपनी नेमप्लेट को देखकर खुश हो जाएंगे।

इस पर रेखा देवी ने अपने बेटे राजू को समझाते हुए कहा- बेटे, यदि तुम अपने पापा को खुश करना चाहते हो तो पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनो और अपने अच्छे कर्मों से अपने पापा का नाम रोशन करके दिखाओ। क्योंकि हर मां-बाप की असली नेमप्लेट तो उनकी औलाद होती है। अत: मां-बाप की नेमप्लेट बनना तो उनकी औलाद के हाथ में होता है।

राजू अपनी मम्मी के मुंह को एक टक देखे जा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि मानो मां सरस्वती उसे स्वयं शिक्षा दे रही हो। उसने मन ही मन अच्छा बन अपने मां-बाप की असली नेम-प्लेट बनने की प्रतिज्ञा की।

१५३५) हुक्कू बंदर- चिड़िया घर के एक पिंजरे में कैद विदेशी प्रजाति के उस विशेष बंदर को देखने रोजाना हजारों लोग आते थे। हुक्कू बंदर के नाम से महशूर इस बौने प्राणी की विशेषता हुक्कू-हुक्कू की ध्वनियां लगाना था। रोज ऐसी आवाजों से वह चिड़िया घर घूमने आए लोगों को आकर्षित करता था। अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण हुक्कू बंदर लोगों के चिढ़ाने पर और जोर-जोर से हुक्कू-हुक्कू की आवाजें लगाता था।

उसके पिंजरे के बाहर चिड़ियाघर के प्रबंधक ने एक तख्ती लगा रखी थी जिसमें हिदायत थी कि कृपया इस बंदर को

हुक्कू-हुक्कू की आवाजें देकर न चिढ़ाएं, इससे बंदर के जोश में आकर चिल्लाने से उसके फेफड़ों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और उसका जीवन कम होता है। लोग आते, तख्ती पढ़ते, लेकिन हुक्कू-हुक्कू की आवाजें निकालने से बाज न आते।

इसी तरह से बरसों बीत गए। दिनों दिन दुर्बल होता हुक्कू बंदर चिड़िया घर के लिए चिंता का विषय बनता जा रहा था। एक दिन हुक्कू बंदर के पिंजरे के बाहर नई तख्ती लगा दी गई- कृपया इस बंदर को देखकर ऐसी आवाजें न लगाएं। चिकित्सकों के अनुसार इससे आपके फेंफड़ों को नुकसान पहुंच सकता है और इससे आपके जीवन की अवधि भी कम हो सकती है। इस तख्ती को लगाने के बाद लोगों की हुक्कू-हुक्कू की आवाजें लगाने और चिढ़ाने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई।

१५३६) बहुरुपिया- एक बहुरुपिया राजा को रोज नये वेश बदलकर दिखाता। राजा खुश होते, उसे इनाम देते, वह उसका खूब मनोरंजन करता यह क्रम बहुत दिनों से चल रहा था।

एक दिन राजा ने बहुरुपिया से कहा, ऐसा स्वांग दिखाओ, जिससे तुम पकड़े न जा सको एवं तुम्हारे असली रूप का किसी को पता न चल सके और तुम्हारी बेवकूफी पर खुश होते रहें।

बहुरुपिया चला गया। पांच वर्षों तक उसका कुछ पता नहीं लगा। राजा ने सोचा, बहुरुपिये के लिए ऐसा स्वांग संभव नहीं था। इसलिए वह अब तक मुंह चुराता फिर रहा है। कुछ दिनों के बाद राजा यह बात भूल गया।

एक दिन राजा के महल के सामने अचानक चमचमाती कारों को काफिला झटके के साथ रुका। पहले कुछ हड़बड़ाते हुए लोग उतरे और लपककर कार का दरवाजा खोले। कार में से एक व्यक्ति उतरा और राजा के पास बढ़ा, वे भौंचके होकर उसे देखते रहे। खादी का लम्बा कुर्ता, पायजमा एवं नयी जाकेट पहने एक व्यक्ति कुटिल मुस्कान के साथ उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा था। राजा लाख कोशिश करने के बाद भी पहचान नहीं सका। बढ़कर पूछ, कौन हैं आप, इस तरह किसकी इजाजत से घुसे चले आ रहे हो ?

हार गये राजन, मुझे नहीं पहचाना, मैं वही बहुरुपिया हूं। आपने ही तो कहा था न, ऐसा स्वांग दिखाओ जिसमें तुम्हारे असली रूप का किसी को पता न चल सके। देखिये मैं आप ही की कैबिनेट में मंत्री बन गया हूँ।

१५३७) कृतज्ञता ज्ञापन- जामनगर रियासत के राजवैद्य झंडु भट्ट राजकोष से मिलने वाले वेतन से परिवार का गुजार करते एवं शेष समय में रोगियों की नि:शुल्क सेवा-चिकित्सा किया करते थे। एक दिन एक मुस्लिम महिला अपने इकलौते बेटे को लेकर वैद्य जी के पास आई। उसे कोई घातक रोग था। वैद्य जी ने तीन महीने तक बच्चे की चिकित्सा की। वह बिल्कुल स्वस्थ होकर घर लौट गया।

जामनगर नरेश विभाजी जाम का स्वर्गवास हो गया। उनकी स्मृति में अस्पताल बनाने की घोषणा की गई। राज्य के धनाढ्य लोगों से धन इकट्ठा किया जाने लगा। एक दिन सेठ अब्दुल्ला नामक धनाढ्य वैद्य जी के पास पहुंचे और बोले, वैद्य जी, मैं वही बालक हूं, जिसे आपने बीस वर्ष पूर्व घातक रोग से मुक्ति दिलाकर जीवन-दान दिया था। उसके बाद मैं अफ्रीका चला गया। वहां मैंने खूब धन कमाया। आजकल वापस आया हुआ हूं। सुना यहां अस्पताल बनाया जा रहा है। आपके नाम से मैं एक लाख रुपये दान देना चाहता हूं। राजवैद्य उनका मुंह देखते रह गए। अस्पताल के कोष में उनकी ओर से धन जमा कर दिया गया।

१५३८) बेटी का बाप- वो हमारे दूर के रिश्तेदार हैं। कल सुबह उनका फोन आया था। दुआ-सलाम के बाद कहने लगे-बेटी की शादी जल्दी से जल्दी करनी है। अपनी सुंदर नखराली बेटी से उन्हें कितना प्यार है, सभी जानते हैं।

एक-दो महिने पहले तो कह रहे थे कि विदेश भेजकर एम.बी.ए. करवाएंगे, फिर अचानक बेटी की शादी का ख्याल

कैसे आया ? कहीं बेटी ने ही तो किसी को पसंद नहीं कर लिया ?

अरे नहीं, बेटी तो बहुत समझदार है पर जमाना खराब है। कोई भी उसे बहका देगा।

अपने जमाने में आपने कइयों से इश्क लड़ाया है और कईयों का दिल तोड़ा है। जब याद दिलाया तो उत्तर मिला- इसीलिए तो बेटी के लिए डर लगता है, बेटी का बाप जो ठहरा।

१५३९) वचन का मूल्य- युद्ध में भयंकर तबाही मचाने वाले शत्रु दल के सेनापति को पकड़ लिया गया और उसे राजा के सामने प्रस्तुत किया गया। चारों तरफ से तलवारों में घिरे हथकड़ियों से जकड़े सेनापति को सामने देखकर राजा क्रोध से भरा हुआ था। जब उसके कारनामों का खुलासा किया गया तो राजा की आंखों से मानो आग बरसने लगी। फिर भी उसने नीति का ध्यान रखते हुए कैदी सेनापति से उसकी अंतिम इच्छा पूछी।

कैदी सेनापति की आखों के आगे मौत नाच रही थी। उसके होंठ सूख रहे थे। वह जानता था कि राजा का जरा सा इशारा और उसका सिर धड़ से अलग होना था। अचानक सूखते होठों पर जीभ फिराते हुए उसने एक गिलास पानी की याचना की। उसे पानी दिया गया। पानी का गिलास हाथ में पकड़े कैदी मृत्यु के भय से उसे पी नहीं पा रहा था। उसे पता था कि उसने पानी पिया नहीं कि मौत का फरमान जारी हो जाएगा। इसी पसोपेश में पड़े कैदी सेनापति को देख राजा ने कहा- ऐ सेनापति। तू आराम से पानी पी ले। मैं तुझे वचन देता हूं कि जब तक तू इस गिलास का पानी नहीं पी लेता, तुझे मारा नहीं जाएगा।

इतना सुनते ही सेनापति ने एक पल न जाने क्या सोचा और सारा पानी जमीन पर फेंक दिया और राजा की ओर मुखातिब होकर बोला- महाराज। अब इस गिलास का पानी तो मैं नहीं पी सकता, क्योंकि मैं इसे अगर पीऊंगा तो तुरंत मार दिया जाऊंगा। हां, आप यदि अपना वचन भंग करना चाहें तो बेशक मुझे मरवा डालें।

सेनापति के इस कृत्य से एक पल को भौचक्के राजा ने थोड़ी देर सोचा और फिर फैसला करते हुए बोला- यद्यपि तेरे अपराध क्षमा करने योग्य नहीं हैं, परन्तु यदि तूने वास्तव में मेरे वचन पर विश्वास कर ऐसा किया है तो जा मैं तुझे नहीं मारता। मेरे वचन का मूल्य तेरे प्राणों से अधिक है। राजा ने इस तरह कैदी सेनापति को छोड़ दिया। मगर कैदी सेनापति जीवन पर्यंत राजा के इस व्यवहार को नहीं भूल पाया और उसके गुणगान करता रहा।

१५४०) संयम की सीख- यह तब की बात है जब भारत की आजादी का संग्राम चल रहा था। उन्हीं दिनों काशी नरेश ने हिन्दू समाज की समस्याओं पर एक सम्मेलन बुलाया। उसमें कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह भी सम्मिलित हुए। वे हिन्दी का एक पत्र निकालते थे। बड़े ही रौबदार व्यक्तित्व के धनी थे। राजा साहब ने अपने भाषण में उपस्थित श्रोताओं का मजाक उड़ाते हुए अपनी बात शुरू की। एक युवक को यह बात अच्छी नहीं लगी। युवक ने राजा साहब के कान में जनता के लिए अशिष्ट भाषा प्रयोग न करने के लिए कहा। लेकिन राजा साहब उत्तेजना में और आगबबूला हो गए। उन्हें मंच की गरिमा का ध्यान न रहा और फिर भाषण के दौरान उन्होंने और भी ज्यादा अपशब्दों की झड़ी लगा दी। उन्हें आज तक भाषण के बीच इस तरह टोकने का कोई दुस्साहस नहीं कर सका था। लेकिन युवक भी कम न था। वह बार-बार राजा साहब को ऐसा न करने के लिए टोकता रहा। अंत में जब राजा साहब की शब्दों की शैली और तीखी हो गई तो युवक से रहा न गया। उसने जाकर राजा साहब को सख्त लहजे में और पूरी आवाज में कहा कि यदि आप खुले मंच से शिष्टतापूर्वक नहीं बोल सकते, तो कृपया बैठ जाएगा। यह सुनना था कि सारी सभा में सन्नाटा छा गया। सभी लोगों को लगा कि अब यह युवक राजा के कोप का भाजक बनेगा।

लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि राजा साहब चुपचाप सभा से लौट गए। उन्हें भाषण देने से रोकने वाले उस युवक

को कुछ समय पश्चात् उनका एक पत्र मिला। उस पत्र में लिखा था- प्रिय मित्र, जो आज तक किसी ने नहीं किया, वह आपने किया। उस समय मुझे बहुत बुरा लगा था, मगर आज महसूस हुआ कि आपने अनुचित कुछ नहीं किया, बल्कि मुझे अनुचित करने से रोका था। मैं आपको अपने अखबार के सम्पादक का पद सम्भालने के लिए सहर्ष सादर, सस्नेह आमंत्रित करता हूं। इस पद पर कोई निष्पक्ष व्यक्ति ही रह सकता है और आप में वे गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं।

१५४१) सच्चा दान- राजस्थान में भीषण अकाल पड़ा। देखते-देखते भोजन-पानी व चारे के अभाव में असंख्य लोग तथा पशु मरने लगे। गीता प्रेस (गोरखपुर) के संस्थापक भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार स्वयंसेवकों को साथ लेकर गोरखपुर से राजस्थान पहुंचे और पीड़ितों की सेवा में जुट गए।

एक दिन वह रतनगढ़ के अपने पुराने मकान में चिंतित बैठे थे कि अनाज तथा चारा खरीदने के लिए तुरंत दस हजार रुपये चाहिए। अचानक सिर पर पगड़ी धारण किए व घुटनों तक धोती पहने एक सज्जन उसके पास पहुंचे। पोद्दार जी ने पास आते ही उन्हें पहचान लिया कि ये उनके रिश्ते के मामा हैं तथा बंगाल में कारोबार करते हैं। पोद्दार जी ने उठकर उन्हें प्रणाम किया और आदर से बैठाया। उन्होंने कुरते के जेब से नोटों की गड्डी निकाली तथा बोले कि बेटा हनुमान, ये दस हजार रुपये हैं। इनसे अनाज व चारा मंगा लेना। बस इतना ध्यान रखना, मेरे इस दान का किसी को पता न चल पाए, अन्यथा मेरा दान देना निरर्थक हो जाएगा। भाईजी ख्याति से दूर रहने की उनकी प्रवृत्ति को देखते ही रह गए।

१५४२) राजा, संत का अंतर- राजा विक्रम सिंह धर्मशास्त्रों के अध्येता थे। पचास वर्ष की आयु होते ही उन्होंने अपने राज्य की बागडोर अपने राजकुमार पुत्र को सौंप दी। स्वयं अपने बगीचे में रहकर पूजा- पाठ में समय लगाने लगे। अचानक संत रामसेवक दास उनके बगीचे में पहुंचे। राजा उनके तेजस्वी व्यक्तित्व तथा विरक्त भावना से आकर्षित हुए और बगीचे में ही उनके लिए भी एक कुटिया बनवा दी। वह राजा के समक्ष प्रवचन करते। भगवद्भक्ति तथा अन्य विषयों पर चर्चा होती। प्राय: राजा कहते, स्वामी जी, मैं भी राजकाज का मोह त्यागकर सादर जीवन व्यतीत करना चाहता हूं। अब आपमें और मुझमें कोई अंतर नहीं। स्वामीजी यह बात सुनकर मुस्करा देते। एक दिन स्वामीजी को धर्मशास्त्र का एक वचन याद आया कि संन्यासी को अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। वह राजा से बोले, मैं यह नगर छोड़कर जा रहा हूं। आप भी मेरे साथ चलें। राजा बोले, मैं अपने राज्य तथा परिवारजनों को छोड़कर कैसे जा सकता हूं? स्वामीजी बोले, आप में तथा मुझमें यही तो अंतर है।

१५४३) सच्ची उदारता- प्रसिद्ध व्यवसायी रायचन्द को भाई श्रीमद्जी के नाम से अधिक जाना जाता था। कहा जाता है कि महात्मा गांधी भी उनकी उदार वृत्ति के प्रशंसक थे। उनके सद्गुणों की छाप गुजरात में आज भी अमिट है। रायचन्द बम्बई में हीरे-जवाहरात का व्यापार करते थे। उनका एक जौहरी से हीरे खरीदने का सौदा हुआ। इसी बीच, भाव बहुत बढ़ गए। सो, श्रीमद्जी को लगभग पचास हजार रुपए का लाभ तय था। उधर बेचारे देनदार के तो गले में फांसी थी ही। श्रीमद्जी उसकी हालत से भली-भांति परिचित थे। वे समझते थे कि उस पर क्या बीतती होगी ? श्रीमद्जी तुरन्त उस जौहरी के घर गए। लेनदार को अपने घर देखकर देनदार बुरी तरह सकपका गया। फिर भी, साहस बटोर कर बोला, मेरी नीयत खराब नहीं है। लेकिन स्थिति काबू से बाहर हो गई है। अत: आप धैर्य रखें। मैं सारे हीरे कुछ ही दिनों बाद अवश्य दे दूंगा। श्रीमद्जी ने आव देखा न ताव। कारोबारी समझौते के कागजात को फाड़ दिया और बोले- मेरे लिए व्यवसाय ही सब कुछ नहीं है। मानवीय उदारता भी कोई चीज होती है। परिस्थितियों के कारण कीमत में आई उछाल का फायदा उठाना मेरे उसुल के खिलाफ है। देनदार रायचंद को विस्मित होकर देखता रह गया।

१५४४) नाम नहीं बदलूंगा- आचार्य बोधिसत्व का पापक नामक एक युवा शिष्य था। एक दिन शास्त्रों में पाप-पुण्य का प्रकरण पढ़ते-पढ़ते उसे आभास हुआ कि उसका नाम बहुत खराब है। लोग कहीं उसे पापी मानकर घृणा न करने लगें। वह गुरु के पास पहुंचा तथा विनम्रता से नाम बदलने की प्रार्थना की। आचार्य ने उससे कहा, तुम नगर में जाओ। जो नाम अच्छा लगे, ढूंढकर ले आओ। तुम्हारा नया नामकरण संस्कार कर दिया जाएगा।

पापक शहर पहुंचा ही था कि उसने कुछ लोगों को एक अर्थी उठाए आते देखा। पता चला कि जीवक नामक व्यापारी की मृत्यु हो गई है। उसने पूछा, क्या जीवक की भी मृत्यु होती है ? उसे उत्तर मिला, जीवक हो या आजीवक, सभी को एक न एक दिन मरना पड़ता है। वह दूसरे गांव में पहुंचा। वहां उसने धनपाली नामक महिला तथा उसके पति के बीच मारपीट होते देखी। गरीबी के कारण दोनों में कलह रहता था। वह यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गया कि धनपाली नाम होते हुए भी महिला दरिद्र है। वह दूसरे गांव की ओर रवाना हुआ। एक व्यक्ति ने पास आकर कहा, भैया, मेरा नाम पंथक है। रास्ता भटक गया हूं। ठीक रास्ता बताने की कृपा करो। पापक की आंखें खुल गईं। वह आचार्य बोधिसत्व के पास जाकर बोला, मैं नतीजे पर पहुंचा हूं कि नाम पहचान मात्र के लिए है। मैं अपने इसी नाम के साथ धर्म-कर्म करता रहूंगा।

१५४५) भूख और तृप्ति- निर्धनों के प्रति उदारता बरतनेवाली मुदिता ने हर्ष व गर्व मिश्रित भाव लिए देने की नियत से एक पैकेट कामवाली बाई की ओर बढ़ाते हुए कहा- कमला। ये पैकेट रख लो इसमें पचक आंवले हैं। इससे खाना बहुत जल्दी पच जाता है। इसे तुम भी खाना और बच्चों को भी खिलाना, देखना बच्चे कितने खुश हो जाएंगे।

मुदिता को आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास था कि पाचक आंवला पाकर कमला का मन खुशी से झूम उठेगा। लेकिन मुदिता का विश्वास पल में धूमिल हो गया। कमला ने यह कहते हुए पैकेट लेने से इंकार कर दिया कि- बाईजी। बुरा मत मानना हम गरीबों को पचाने की नहीं केवल खाने की चिंता होती है और आपका यह पाचक आँवला मेरी चिंता को और अधिक बढ़ाने वाला है, पहले ही दो वक्त की रोटी जुटाने में पसीना आ जाता है यदि बच्चे ये आंवले खाने लग जाएंगे तो...।

कमला का स्पष्टीकरण सुन मुदिता भावविहल हो गई। अब उसे आंवले में तृप्ति नहीं, बल्कि गरीबों की भूख नजर आ रही थी।

१५४६) अपना मार्ग देखें- एक ज्योतिषी मार्ग में चल रहा था। उसके पैर धरती पर थे पर भटकती नजरें आसमान पर टिकी हुई थीं। वह ग्रहों और तारों की गति का हिसाब लगा रहा था। वह ग्रहों व तारों की दूरी आंखों से मापता चला जा रहा था। ग्रहों व नक्षत्रों की गति जानने में ज्योतिषी ऐसे उलझे कि उन्हें अपने मार्ग का भान भी न रहा, चलते-चलते अचानक गड्ढे में गिर पड़े। ज्योतिषी के पीछे-पीछे एक मुसाफिर चला आ रहा था। ज्योतिषी को गिरते देख वह बोल पड़ा, महाशय अच्छा होता आकाश के ग्रहों का मार्ग देखने से पहले अपना ही मार्ग देख लेते।

१५४७) श्रम की महत्ता- एक माली के लड़के बड़े आलसी थे। वे कामकाज से जी चुराते और व्यर्थ की बातों में अपना समय नष्ट करते रहते। जब वह मरने लगा तो उसने लड़कों को बुलाया और कहा- तुम आलस्य में पड़े होकर घर में जो कुछ है, उन सबको बरबाद कर दोगे, पर मैंने तुम्हारे भविष्य का ध्यान रखा है और बाग में प्रत्येक पेड़ के नीचे थोड़ा-थोड़ा सोना गाड़ रखा है। जब जरूरत हो तब निकाल लेना। यह कहकर माली मर गया।

घर में जो थोड़ी-सी पूंजी बची थी, वह समाप्त हो गयी। लड़के भूखों मरने लगे। उन्होंने सोचा- चलो पेड़ों के नीचे से सोना निकालें। वे जुट गये और एक-एक करके सभी पेड़ों को खोदते गये, पर किसी के नीचे कुछ न मिला। लड़के जानते थे कि हमारा बाप कभी झूठ नहीं बोलता था, फिर उसकी वह सोनेवाली बात कैसे झूठ निकली ? इसका उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ दिन बाद वर्षा हुई, पेड़ों के नीचे मिट्टी खुद जाने से जड़ों में काफी पानी पहुंचा और हर पेड़ ने भारी तादाद में फल दिए ।

आमदनी इतनी हुई कि हर पेड़ के नीचे सोना निकलनेवाली बात सच हो गयी। लड़कों को श्रम की महत्ता का भान हुआ और भविष्य में परिश्रमी जीवन जीने लगे।

१५४८) आंख मिचौली- मां खरगोशिनी घर के काम में लगी थी। सभी छहों बच्चों ने तय किया कि वे आंखमिचौली खेलेंगे। सबसे छोटे भाई बंटी को आंख मूंदने को कहकर सब भागकर अलग-अलग जगह छिप गये।

नन्हा खरगोश दोपहर तक हर एक को खोजने में लगा रहा, पर उनमें एक भी उसे नहीं मिला।

धीरे-धीरे शाम होने लगी। वह मजे से अपने बिल में घुसकर बैठ गया। उसके पांचों भाई इंतजार करते-करते थक गये कि नन्हा बंटी उन्हें आकर पकड़ेगा। मगर बंटी का कहीं पता न था। शाम घिर आयी और वे ठंड से कांपने लगे। कोई चारा नहीं था। छुपने की जगह से निकलकर वे थरथर कांपते मां के पास आये और नन्हें बंटी के बारे में पूछने लगे।

मैं जानती हूं, वह कहां है। मां ने इत्मीनान से कहा, वह अपने बिल में आराम में बैठा सलाद के पत्ते खा रहा है।

हमें फंसाकर वह आराम से बैठा है। क्या करेगा वह, नन्हा ? तुम लोग ऐसी-ऐसी जगह छुपोगे तो वह कैसे खोज सकेगा? उसके साथ खेलना है तो उसकी बुद्धि के मुताबिक खेलो। केवल भले न बनो, कुछ भलाई भी करो।

१५४९) जियाफत- भेड़ियों के सरदार ने भेड़-बकरियों को संदेश भेजा। संदेश में लिखा गया था कि कई साल से हमारे बीच दुश्मनी चली आ रही है। हम यह नहीं चाहते कि हमारे बीच यह दुश्मनी जारी रहे। वास्तव में हमारे और आपके बीच दुश्मनी की वजह वह चरवाहा है जो अपना डंडा पछाड़कर हमें ललकारता रहता है। अगर हमारे बीच से उसे हटा दिया जाय तो हम लोग अच्छे दोस्त की तरह रह सकते हैं।

यह संदेश पढ़कर मूर्ख भेड़-बकरियों ने सींग मार-मारकर चरवाहे को खदेड़ दिया। भेड़िये तो यही चाहते थे। जैसे ही उन्हें इस बात का पता चला, वे भेड़-बकरियों पर टूट पड़े।

मित्र की बुराई सुनकर उससे रिश्ता तोड़ने से पहले सौ बार सोचना चाहिए।

१५५०) लोटा मांज-गाना सुन- उस्ताद रहमत खां महान संगीतज्ञ तथा गायक थे। जब वह संगीत समारोहों में गाते, तो श्रोता मंत्रमुग्ध होकर शरीर की सुध-बुध खो बैठते थे। परिस्थितिवश उस्ताद को बड़ौदा रियासत में रहना पड़ा। कला पारखी विष्णु पंत छभे भी उनके साथ रहते थे। एक दिन बड़ौदा के राजा ने विष्णु पंत छभे को दरबार में बुलाकर कहा, कभी हमें उस्ताद रहमत खां का गायन सुनवाइए। छभे ने कहा, महाराज, वे बड़े सनकी गवैये हैं। कहने से कभी नहीं गाते। सनक सवार हो जाए, तो रात-रात भर गाते रहते हैं। राजा ने कहा, जब उन्हें सनक सवार हो और गा रहे हों, हमें तुरंत बुलावा लेना। छभे घर लौटे, तो उस्ताद नल के नीचे बैठे भैरवी अलाप रहे थे। स्वर-ताल के लिए वह लोटा बजा रहे थे। राजा को तुरंत खबर भेजी गई, तो वह साधारण वेश में आए और गाना सुनकर मुग्ध हो उठे। उस्ताद ने पूछा, तुझे गाना अच्छा लग रहा है ? राजा ने हामी भरी। उस्ताद ने लोटा राजा के हाथ में थमाया और बोले, तू लोटा मांज, मैं तुझे गाना सुनाता हूं। गाने का यह दौर घंटों तक चलता रहा।

१५५१) बुरे का फल- एक राजा बहुत क्रूर था। वह प्रजा पर मनमाने अत्याचार करता था। इसलिए प्रजा हमेशा उसका अहित चाहती थी। प्रजा को लगता कि राजा या तो मर जाए या फिर उससे उसका राज्य छिन जाए। वह किसी भी हाल में राजा से मुक्ति पाना चाहती थी। लेकिन एक दिन अचानक लोगों ने देखा कि राजा में परिवर्तन आ गया। प्रजा के प्रति उसका बर्ताव बदल गया। अब वह प्रजा के हित की बातें सोचने लगा, प्रजा के हित में काम करने लगा। उसमें आया परिवर्तन मंत्रियों के ध्यान में आया, प्रजा ने भी अनुभव किया। सबको अचरज हुआ। आखिर एक बुजुर्ग मंत्री ने साहस

बटोर कर राजा से इस परिवर्तन की वजह पूछी।

राजा ने बताया, एक बार मैं जब जंगल में गया था तो मैंने देखा कि एक लोमड़ी खरगोश को खा गई। थोड़ी दूर जाने के बाद मैंने देखा कि लोमड़ी पर एक कुत्ते ने हमला किया और उसके पैर में काट खाया। कुत्ता जब गांव में लौटा तो वह एक आदमी पर भौंका। उस आदमी ने पत्थर उठा कर कुत्ते को मारा। कुत्ते का पैर जख्मी हुआ। आदमी आगे चला तो रास्ते में खड़े एक घोड़े ने उस पर दुलत्ती झाड़ी। वह जमीन पर गिरा, उसकी दोनों टांगें बेकार हुई। वह जीवन भर के लिए अपाहिज हो गया। घोड़ा जब दौड़ने लगा, तो एक खड्डे में जा गिरा और उसकी टांग भी टूट गई। यह सब देख कर मेरे मन में ख्याल आया कि बुरा काम करो तो उसका फल बुरा ही मिलता है। मुझे यह भी लगा कि बुरे कर्म का फल हमें इसी जीवन में मिल जाता है। मैंने अब तक सिर्फ बुरा किया, लेकिन अबसे पहले मुझे इस बात का पता नहीं था। अब पता चलने के बाद भी अगर मैं बुरा बर्ताव ही करता रहूं, तो मुझे उसका फल भी बुरा ही मिलेगा। इस खयाल ने मेरी जिंदगी बदल दी और मैंने फैसला किया कि अब से मैं किसी पर कोई अनाचार नहीं करूंगा। अपनी प्रजा की मैं पूरी देखभाल करूंगा।

१५५२) क्रोध पहला शत्रु- एक समय था जब राजा-महाराजाओं को पक्षी पालने का शौक होता था। ऐसे ही एक राजा के पास कई सुन्दर पक्षी थे। उनमें से एक चकोर राजा को अति प्रिय था और वह जहां भी जाता उसे जरूर साथ ले जाता था। एक दिन जब वह आखेट के लिए वन में गया तो रास्ता भटक गया। राजा का प्यास से गला सूखने लगा। वह पानी की तलाश में इधर-उधर भटकने लगा। अचानक राजा की नजर दो चट्टानों के बीच से बूंद-बूंद रिसते पानी पर पड़ी। राजा ने एक प्याला निकाला और वहां रख दिया। थोड़ी देर में प्याला भर गया। जैसे ही राजा ने उस प्याले को पीने के लिए उठाया, चकोर ने पंख मार कर उसे गिरा दिया। राजा को चकोर पर बहुत क्रोध आया, परन्तु उस प्याले को भरने के लिए फिर से चट्टानों के पास रख दिया। जब पुन: राजा पानी पीने का प्रयास करने लगा तो चकोर ने उसे फिर गिरा दिया।

अब तो राजा इतना आग-बबूला हो गया कि उसने चकोर की गर्दन मरोड़ दी। चकोर देखते ही देखते मर गया। राजा प्यास से इतना व्याकुल था कि उसने फिर चट्टान की ओर देख तो हैरान रह गया। जिन चट्टानों से पानी आ रहा था वहां एक मरा हुआ सांप पड़ा था और पानी सांप के मुंह से छूकर आ रहा था। राजा डर से कांप उठा। तब उसे खयाल आया कि चकोर उसे बचाने के लिए ही बार-बार पानी गिरा रहा था। राजा ने बहुत पश्चाताप किया। पर अब उसके हाथों मारा गया उसका प्रिय चकोर जीवित तो नहीं हो सकता था। कहने वाले ठीक ही कह गए हैं कि क्रोध यमराज के समान होता है, उसका फल भुगतना ही पड़ता है। <u>क्रोध मनुष्य का पहला शत्रु है। दूसरे शत्रु तो बाहर से ही वार करते हैं, किन्तु यह तो शरीर में रहते हुए भी देह का दहन करता है। जिस प्रकार लकड़ी में रहने वाली आग लकड़ी को भस्म कर देती है, उसी तरह क्रोध भी इंसान को भस्म कर देता है</u>।

१५५३) शाश्वत प्रश्न- एक विद्यालय में अध्यापक ने ब्लैकबोर्ड पर तीन केलों के चित्र बनाए और विद्यार्थियों से पूछा कि यदि हमारे पास तीन केले हों और तीन विद्यार्थी हों, तो प्रत्येक बच्चे के हिस्से में कितने केले आएंगे ?

सभी बच्चों ने तपाक से उत्तर दिया, प्रत्येक विद्यार्थी को एक केला मिलेगा।

अध्यापक ने कहा, बिल्कुल ठीक। जब अध्यापक भाग देने की क्रिया को आगे समझाने लगे, तभी एक कोने में बैठे एक बच्चे ने प्रश्न किया, सर, यदि कोई भी केला किसी को न बांटा जाए, तो क्या तब भी प्रत्येक विद्यार्थी को एक केला मिल सकेगा ? इस बात पर सभी विद्यार्थी ठहाका मार कर हंस पड़े और कहने लगे कि क्या मूर्खतापूर्ण प्रश्न है।

इस बात पर अध्यापक ने अपनी मेज जोरों से थपथपाई और बच्चों से कहा कि इसमें हंसने की कोई बात नहीं है। मैं

आप लोगों को बताऊंगा कि यह विद्यार्थी क्या पूछ रहा है। अध्यापक ने कहा कि बच्चा यह जानना चाहता है कि यदि शून्य को शून्य से विभाजित किया जाए, तो भी क्या परिणाम एक ही होगा। इस प्रश्न को समझाते हुए अध्यापक ने कहा कि इसका उत्तर शून्य ही होगा।

विद्यार्थी ने जो शाश्वत प्रश्न पूछा था, इसका उत्तर ढूंढने में विश्व के महानतम गणितज्ञों को नाकों चने चबाने पड़ गए थे। एक भारतीय गणितज्ञ ने ही इसका उत्तर खोजा था। उसने बताया कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर परिणाम अनंत होगा। यह प्रश्न और इसका उत्तर भारत की ओर से गणित के क्षेत्र को एक अनमोल तोहफा साबित हुआ। इस प्रश्न को पूछने वाले व्यक्ति थे- श्रीनिवास रामानुजन आयंगार, जिनके नाम पर रामानुजन इंस्टिट्यूट बनाया गया, जो आज भी देश के लिए गणितज्ञ पैदा कर रहा है। उनकी स्मृति में भारत में गणित के लिए रामानुजन पुरस्कार की स्थापना की गई है।

१५५४) समय का दर्पण- इरा, देखती हूं दिन भर पड़ोसिनों के बीच बैठ, बे सिर पैर की गप्पे मारने की आदत गयी है तुम्हारी। कुछ अपनी गृहस्थी की ओर भी ध्यान किया करो।

वर्षों बाद मिली इला ने टोका तो इरा नाराजगी भरे स्वर में बोली- तुम तो नौकरी करती हो दीदी, तुम्हारा तो काम के साथ-साथ दूसरों से मिलना-जुलना, हंसना-बोलना हो जाता है, पर मैं कहां तक घर में ही घुसी रहूं खटने के लिए। मुझे भी तो आराम और चैन चाहिए। अब तो जब मेरे साहिल की बहू आ जाएगी तभी आराम मिल पाएगा।

तब भी कहां मां, मेरी बहू भी तो साग-सब्जी काटने, आटा गूंथने, कपड़े धोने जैसे ढेरों काम आपसे करवाएगी, जैसे आप मेरी दादी से करवाती हैं। पास बैठे उसके बारह वर्षीय पुत्र ने कहा तो इरा की दृष्टि लाल मिर्चें कुटती, आंख-नाक से पानी पोंछती अपनी वयोवृद्ध सास पर टिक गयी और आनेवाले समय के दर्पण में अपनी भी वैसी ही बेबस और असहाय छवि देख सिहर उठी वह।

१५५५) आत्मसंयम से क्रोध पर नियंत्रण- अरविन्द आश्रम में मां को एक बालक के विषय में जानकारी मिली कि वह बड़ा क्रोधी, उद्दण्डी और अनियंत्रित है, श्रीमां ने उसे अपने पास बुलाया और कहा- तुम क्या-क्या काम कर सकते हो? वह बोला- मैं किसी को भी मार सकता हूं। मैं कठिन कार्य भी सरलता से कर सकता हूं। इस पर मां ने उससे पूछा- तुमसे कोई अप्रिय बात कहे तो उसे सुनकर तुम क्या करोगे ? बालक ने तुरन्त उत्तर दिया- वह मेरे हाथों बिना पिटे बच नहीं सकता। श्रीमां बोली- बेटा, यह तो कोई बात नहीं हुई। क्या तब उस समय तुम अपने दोनों हाथ अपने कोट या पैंट के जेब में नहीं डाल सकते ? बालक ने कुछ सोचकर कहा- मां, मेरे लिए यह कठिन काम है। मां ने कहा- अभी तो तुमने कहा था कि मैं कठिन से कठिन काम कर सकता हूं। तनिक शांत रहने के बाद बालक बोला- मैं वैसा ही करूंगा। कुछ समय बाद ही किसी बालक ने कुछ तीखी बात उससे कह दी। वह बालक कहने को कह गया, परन्तु शीघ्र ही उसे अपनी भूल समझ में आ गयी। अब वह मुझे मारे बिना नहीं रहेगा। पर उसे उस समय महान आश्चर्य हुआ, जब उस बालक ने अपने दोनों हाथ कोट के जेब में डाल लिये। वह बोला- जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूंगा। जब वह बालक मां के पास पुन: आया और सारी घटना बतायी तो मां ने कहा- बेटा, मुझे तुमसे यही आशा थी। अब तुम आत्मसंयम की प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हो। मैं चाहती हूं कि तुम पूर्ण सिद्ध एवं सफल आत्मसंयमी बनो।

१५५६) एक आठ वर्षीय बालक अपने घर के एकांत कोने में बैठा छोटे-छोटे छंदों की तुकबंदियां कर रहा था। उसका पिता यह नहीं चाहता था कि उसका छोटा सा बेटा पढ़ाई-लिखाई से ध्यान हटाकर कविता के चक्कर में पड़े। वह इस काम के लिए पहले भी एक-दो बार उसे डांट चुका था। जब उसने उस दिन उसे चोरी छिपे कविता करते देखा तो वह

उत्तेजित हो उठा और छडी उठाकर उसे पीटने लगा। पहली छडी पडते ही बच्चे के मुख से कविता फूट पड़ी- फादर-फादर पिटी टेक। नो मोर शैल आई वर्सेज मेक। अर्थात पिताजी मुझे मारिए मत, अब भविष्य में मैं कविता नहीं करूंगा। बिना प्रयास ही अपने पुत्र की इतनी प्यारी कविता सुनी तो पिता का क्रोध शांत हो गया। उसने प्रसन्न होकर बेटे को गोद में उठा लिया और चूमते हुए बोला- बेटे, तुम अद्‌भुत प्रतिभाशाली हो। तुम खूब कविता किया करो, भविष्य में तुम महान कवि बनोगे। पिता द्वारा प्रशंसा और कविता की छूट पाकर बच्चा खिल उठा। उसने मन लगाकर कविता का अभ्यास किया और एक दिन अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि बना। उस बच्चे का नाम था अलेक्जेंडर पोप।

१५५७) गडरिये की निस्पृहता- एक गड़रिये की सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता से प्रभावित होकर एक राजा ने उसे अपना मंत्री बनाया। मंत्री के रूप में उसे जो घर दिया गया था, उसमें से एक कमरा वह हमेशा बन्द रखता और प्रतिदिन कुछ देर के लिए वह उस कमरे में जाता और फिर बाहर आकर ताला लगा देता। मंत्रियों ने राजा से कहा- महाराज। यह मंत्री अपने घर के एक कमरे में रोज जाता है। लगता है उसमें इसने काफी धन छिपा रखा है। बार-बार शिकायतें सुनते-सुनते राजा को भी उसके प्रति संदेह होने लगा। एक दिन राजा अचानक मंत्री के घर पहुंचा और उसने मंत्री से उस कमरे को खोलने के लिए कहा, जिसमें उसने ताला लगा रखा था। राजा जब कमरे में गया तो चकित रह गया क्योंकि कमरे में पुराने कपड़ों को इतनी सुरक्षा में रखने का कारण पूछा। मंत्री ने उत्तर दिया- महाराज। मैं जानता था कि किसी दिन दूसरों की शिकायतों को सुनकर आप मेरे प्रति संदेह करेंगे और तब मैं अपने इन्हीं कपड़ों को पहनकर वापस चला जाऊंगा। यह कहकर वह गड़रिया चला गया। कितना अच्छा हो कि सत्ता, पद और प्रतिष्ठा के बाद हम भी इतने निस्पृह रह पाएं।

१५५८) चमत्कार- विख्यात पाश्चात्य साहित्यकार चॉर्ल्स डिकेन्स की मां एक बार सख्त बीमार हो गई। बुखार, खांसी और खूनी उल्टी के मारे उनकी दुर्दशा हो गई। डिकेंस ने हर प्रकार का सस्ता-महंगा इलाज करवाया। झाड़-फूंक जेसे टोटके भी आजमाए। मगर मां की हालक दिन-ब-दिन खराब होती चली गई। आखिर एक रात चार्ल्स डिकेंस ने अर्द्ध-मृत मां के बिस्तर पर बैठकर, अश्रु मलते हुए बड़बड़ाना शुरू किया- प्रभु। तुमने मुझे विश्व की सबसे भली, सुन्दर और ममतामयी मां दी। मगर मैं उस दुर्लभ मां को सच्चा स्नेह, आदर और सेवा न दे पाया। इसीलिए तुमने मेरी मां को बीमार किया और वापस ले जाने का मंसूबा बनाया है ? रोते-रोते डिकेंस ने मां का तकिया भिगो दिया। अचानक मां का दुर्बल हाथ चॉर्ल्स, डिकेंस के तपते माथे पर पडा। वह काफी स्वस्थ होकर बैठने योग्य हो गई थी।

१५५९) आस का पंछी- राहुल की नींद खुली तो उसने स्वयं से पूछा- दिन इतना चढ़ आया है, पापा ने रोजाना की तरह गाल सहलाकर मुझे जगाया क्यों नहीं ? घर में खामोशी- सी क्यों है ? बिस्तर से उठकर उसके मम्मी के पैर छुए। आशीर्वाद मिला परंतु आवाज में वह खनक नहीं थी। आंगन में पापा को देखा- उदास चेहरा, आंखें सुजी हुईं। उसका कलेजा कांप गया। दादी मां से कारण जानना चाहा। माथे पर घिरी दर्द की लकीरों को समेटते हुए खुलासा किया- पुत्र। हमारे खेतों में चहकनेवाला एक पंछी मर गया है।

अरे दादी मां, एक पंछी के लिए इतना झमेला ? पंछी तो मरते ही रहते हैं। बेटा, वह हमारी आस का पंछी था। वह जिंदा रहता तो मेरी आंखों का आपरेशन होता, कमली बुआ के हाथ पीले होते, तुम्हारे दादाजी तीर्थ पर जाते... पर अब सब ठहर-सा गया है। दादी मां, एक बात बताओ तो सही किसने मारा है उस पंछी को ? राहुल ने आंखें तरेरते हुए कहा। ओलों ने।

१५६०) खोना और पाना- उस दिन उनके घर में हर्षोल्लास बहा था। उन्होंने गत वर्ष जो मकान खरीदा था, उसको तोड़ने पर दीवारों में से अपार अनार्जित सम्पदा उन्हें प्राप्त हुई थी।

और उस मकान का पूर्वकालिक स्वामी, कभी जिसके ऐश्वर्य और विलास की सीमा नहीं थी, सरकारी अस्पताल के एक छोटे-से कमरे में पड़ा था। वह अभी-अभी मृत्यु के मुंह से लौटा था। सभी मित्र-परिजन यहां तक कि उसके पुत्र भी उसे छोड़ के गये थे। केवल उसकी पत्नी किसी स्कूल में पढ़ाकर किसी तरह उसकी देखभाल कर रही थी। घर लौटते समय उसने अपार सम्पदा पाए जाने का यह समाचार सुना और पति से कहा- काश। दीवारों में सम्पदा छिपी है- यह बात हम जान पाते। पति ने धीरे से कहा- अच्छा हुआ जो मैं न जान पाया। मैं अब जान पाया हूं कि मैंने मकान बेचकर सुख पाया है। उसने मकान खरीदकर सुख खोया है। पसीना बहाकर जो तुम कमाकर लाती हो उसी ने मुझे जीवन दिया है। इससे बड़ा ऐश्वर्य कुछ हो सकता है, मैं नहीं जानता। मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए पत्नी ने पति की आंखों में झांका और उसका माथा सहलाते हुए प्यार भरे स्वर में कहा- मैं यही सुनना चाहती थी।

१५६१) बहादुर किसान पत्नी- पटियाला राज्यकी बात है। एक तरुणी किसान-बहू पतिके लिये भोजन लिये घरसे खेत जा रही थी। बरसातके दिन थे। इसलिये उसने छाता लगा रखा था। दैवयोगसे उसी रास्ते एक डाकका हरकारा जा रहा था। उसने युवतीको अकेली देखकर छाता छीन लिया और लगा दौड़ने। युवती पीछे दौड़ी और एक ही मीलके अंदर उसके पास जा पहुँची। पहुँचते ही उसने छाता छुड़ाकर इतने चपत-घूसे जमाये कि डाकियाजीके होश गुम हो गये। उसने उसका डाकका थैला छीनकर शहरमें पहुँचाया। इस वीर-कार्यके पुरस्कारमें उसे १६ बीघा जमीन मिली।

१५६२) देवपत्तन नगरमें सगुरी और निगुरी नामकी दो स्त्रियाँ रहती थी। एक दिनकी बात है कि सगुरीका शिशु पालनेमें लेटा हुआ था। माता पास बैठी काम कर रही थी। इसी अवसरमें निगुरी आकर बच्चेको उठाकर ले गयी। सगुरीने तत्क्षण उसके पास जाकर अपना बच्चा माँगा, किंतु निगुरीने उत्तर दिया कि बच्चा तो मेरा है, तेरा कहाँसे आया ? इसपर झगड़ा बढ़ा, यहाँतक कि सगुरीने अपने पुत्रको पानेके लिये नगरके अधिपतिसे निवेदन किया। अधिपतिने वादी-प्रतिवादीको बुलाकर पूछा कि बच्चा किसका है ? उत्तरमें दोनोंने ही अपना-अपना बताया। इससे अधिपति पहले तो कुछ असमंजसमें पड़ा, परंतु पीछे कुछ विचारकर उसने अपना मत यों प्रकट किया- महाभागाओ। हमने तुम्हारा विवाद सुनकर यह निर्णय किया है कि इस बच्चेके बीचसे दो टुकड़े कर दिये जायँ और एक-एक टुकड़ा तुम दोनोंको दे दिया जाय। बोलो, इसमें तुम दोनों सम्मत हो न? इस निर्णयको सुनकर निगुरी तो कुछ न बोली और चुपचाप खड़ी सुनती रही; पर सगुरी फूट-फूटकर रोने लगी और अधिपतसे प्रार्थना करती हुई बोली कि महोदय। यह बच्चा कृपा-कर निगुरीको ही दे दीजिये, यह इसीका है; इसके टुकड़े न कराइये। सगुरीकी विकलतासे अधिपति तथा अन्य सभ्योंके चित्त द्रवीभूत हो गये और उनको निश्चय हो गया कि बच्चा दयावती सगुरीका ही है, निगुरीका नहीं। इसलिये अधिपतिके आज्ञानुसार बच्चा सगुरीको मिल गया, जिसको पाकर वह प्रसन्न हो अपने घर गयी और निगुरीको उसके झूठ और परधनलोलुपताके फलस्वरूप कारागारवास भोगना पड़ा।

१५६३) सद्गुणों की खोज- एक मूर्तिकार एक पत्थर को तोड़ रहा था। रास्ते से गुजरते हुए एक व्यक्ति यह देखने गया कि मूर्ति बनती कैसे है ? उसने देखा कि मूर्ति मो बिल्कुल नहीं बनाई जा रही है, बल्कि सिर्फ छेनी और हथौड़े से पत्थर को तोड़ा जा रहा है। उसने मूर्तिकार से पूछा, यह आप क्या कर रहे हैं। मूर्ति नहीं बनाएंगे ? मैं तो मूर्ति बनते देखने आया हूं और देख रहा हूं कि आप सिर्फ पत्थर तोड़ रहे हैं। मूर्तिकार ने जवाब दिया, मूर्ति तो पत्थर के भीतर छिपी है, उसे बनाने की जरूरत नहीं है। उसके बाहर व्यर्थ पत्थर जुड़ा है, उसे अलग कर देना है और सिर्फ इतने से मूर्ति प्रकट हो जाएगी। उसने कहा, दरअसल मूर्ति बनाई नहीं जाती है। वह सिर्फ अविष्कृत होती है, उघाड़ी जाती है, ठीक उसी तरह मनुष्य के भीतर भी गुण छिपे हैं, सिर्फ उन्हें बाहर लाने की जरूरत है। उन्हें पैदा करने का सवाल नहीं, अनावृत्त करने की जरूरत है।

दरअसल, हमने अपने ऊपर इतना बनावटीपन ओढ़ रखा है कि वह उन्हें प्रकट नहीं होने देता।

पौराणिक वार्ता- ब्रह्माजी ने मनुष्य लोक में रहनेवाले मनुष्य, गधा, कुत्ते और बंदर सबको ३०-३० वर्ष की जिंदगी दे दी। ब्रह्माजी ने गधे को पूछा- क्यों ठीक है न ? गधे ने कहा- ३० वर्ष तक बोझा लाद-लादकर मैं परेशान हो जाऊंगा। कुत्ते ने कहा- ३० वर्ष तक मुझे पत्थर की मार सहन करनी पडेगी। बंदर ने कहा- ३० वर्ष तक मुझे इधर की उधर ताकते रहना पड़ेगा। तभी मनुष्य ने कहा- मुझे तो बहुत कम उम्र मिली है, ३० वर्ष से क्या होगा ? आप मेरा आयुष्य बढ़ा दे। ब्रह्माजी ने सबकी बात मानते हुए कहा- मैं गधे, कुत्ते और बंदर की २०-२० वर्ष की उम्र कम कर देता हूं। और यह उम्र मनुष्य को देता हूं। इस प्रकार मनुष्य की उम्र ३०+२०+२०+२० = ९० वर्ष की हो गई। वह ३० वर्ष तक मनुष्य की तरह जीता है। फिर उसके जीवन में गधे की उम्र चालू होती है। वह ३१ वर्ष से ५० वर्ष तक गधा मजूरी करता है। खूब कष्ट करता है। उसके बाद कुत्ते की उम्र चालू होती है। वह ५१ वर्ष से ७० वर्ष तक कुत्ते की तरह जिंदगी जीता है। कुत्ते की तरह घर की, पौत्र-पौत्री की रखवाली, सेवा करता है, चौकीदारी करता है। ७१ वर्ष से ९० वर्ष तक बंदर की तरह जिंदगी चालू हो जाती है। बेटे उसकी बात सुनते नहीं। वह हर वस्तु के लिए बंदर की तरह इधर-उधर ताकता रहता है।

१५६४) गृहक्लेश का परिणाम- एक धनी सेठ था। उसके कई बेटे थे। परिवार बहुत बड़ा था किन्तु उनके घर में शांति नहीं थी। हमेशा लड़ाई-झगड़ा होता था। एक रात सेठजी ने स्वप्न में देखा कि लक्ष्मीजी उससे कह रही हैं कि मैं तुम्हारा घर हमेशा के लिए छोड़कर जा रही हूं, किंतु तुम्हारे घर इतने दिन रही हूं इसलिए जाते समय तुम मुझसे एक वरदान मांग लो। सेठजी ने कहा देवी यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वरदान दीजिए कि मेरे घर का कलह दूर हो जाए। तब लक्ष्मीजी ने कहा, तुमने जब गृहशांति का ही वरदान मुझसे मांग लिया है तो मैं अब यहीं रहूंगी। मेरा तुम्हारे घर से जाने का कारण गृहक्लेश ही था।

१५६५) पुत्र को श्रद्धांजलि- स्टेन फोर्ड कैलिफोर्निया के धनपतियों में से एक थे। उनके एक ही बच्चा था। रिश्तेदार चाहते थे कि वह कैसे भी मर जाए तो उसकी सम्पत्ति हथिया ली जाए। अपनी योजना के अन्तर्गत उन्होंने स्टेन फोर्ड के पुत्र को मार दिया। पुत्र शोक में वे कुछ समय तो डूबे रहे। उनके मन में पुत्र को अमर करने का विचार आया। उनके पास हजारों एकड़ उपजाऊ भूमि थी। उन्होंने एक विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह भूमि अध्यापकों और निर्धन छात्रों का खर्च भली प्रकार चला सकती थी। उन्होंने पुत्र लीलेण्ड की स्मृति में स्वावलम्बन विद्यालय स्थापित किया।

१५६६) एक सहृदय सेठ की दुकान पर एक चोर भिखारी बनकर पहुंचा। सेठ ने उसे थोड़ी देर बाद घर आने को कहा। चोर को सेठ का घर मालूम था। वह सेठ के आने से पहले उसके घर पहुंचा और उसने घर से एक कटोरा चुरा लिया। सेठ ने उसे चोरी करते देख लिया, मगर चुप रहे। उन्होंने उसे भिक्षा के रूप में आटा देने के बाद कहा- भैया, घी भी लेते जाओ क्योंकि रूखी रोटी स्वाद न देगी। भिखारी नादान बनकर बोला- घी किस में ले जाऊं, मेरे पास कोई बर्तन नहीं। तब सेठ ने उसकी झोली में हाथ डालकर कटोरा निकाल लिया और घी से भरकर उसे लौटा दिया।

सेठ की इस दया का चोर के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने फिर कभी चोरी न करने की प्रतिज्ञा कर ली।

१५६७) असली तीर्थयात्रा- लक्ष्मी की पुत्री माधवी उसके जीवन का अकेला आधार थी। माधवी के पिता की मृत्यु उसकी बाल्यावस्था में ही हो गई थी। लक्ष्मी ने बेटी की परवरिश और पढ़ाई-लिखाई के लिए क्या नहीं किया। समय गुजरते देर नहीं लगती। माधवी पंद्रह वर्ष की हो गई। एक दिन स्कूल से लौटते समय वह बारिश में भीग गई। भीगने के कारण उसको बुखार हो गया और बुखार उतरने की बजाय उसकी तबीयत दिन ब दिन बिगड़ती चली गई। मां ने माधवी

का इलाज करवाने में कोई कसर नहीं रख छोड़ी, लेकिन माधवी की बीमारी जाने का नाम ही नहीं लेती थी। चिंतातुर मां मंदिर गई और भगवान से प्रार्थना की कि मेरी बेटी को जल्दी अच्छा कर दो, मैं प्रसाद चढ़ाऊंगी और तीर्थयात्रा करूंगी। माधवी दो-चार रोज में भली-चंगी हो गई और स्कूल भी जाने लगी।

उधर लक्ष्मी भी अपने वचनानुसार तीर्थयात्रा पर जाने की तैयारी में लग गई। तीर्थयात्रा की सारी तैयारियां हो चुकी थीं। तीर्थयात्रा पर जाने के पहले दिन रात को लक्ष्मी को सामने के घर से किसी के सिसकने की आवाज सुनाई दी। लक्ष्मी वहां गई तो देखा कि उसकी पड़ोसन राधा रो रही थी। लक्ष्मी ने राधा से उसके रोने का कारण पूछा, तो राधा ने बताया कि उसके पति कई दिनों से बीमार हैं। डॉक्टर ने कई परीक्षण और एक्सरे कराने को कहा है, मगर घर में फूटी कौड़ी भी नहीं है। लक्ष्मी ने राधा की सारी बात सुनकर कहा कि बहन घबराओ नहीं, भगवान सब ठीक कर देंगे। लक्ष्मी घर गई और तीर्थयात्रा पर जाने के लिए जो पैसे रखे थे, लाकर राधा के हाथ में दे दिए।

राधा लक्ष्मी का हाथ पकड़कर बोलने लगी- बहन, तीर्थयात्रा तो बड़े पुण्य का काम है और तुम तीर्थयात्रा पर न जाकर ये पैसे मुझे दे रही हो। लक्ष्मी ने इतना ही कहा कि राधा बहन तीर्थयात्रा तो फिर हो जाएगी। इस समय तुम अपने पति का इलाज करवाओ। किसी की मदद या सेवा से बढ़कर कोई तीर्थयात्रा नहीं है और जिसने इस तथ्य को जान लिया उसका मन ही सबसे बड़ा तीर्थ बन जाता है।

१५६८) असली पागल- कीच से भरी आंखें... फटे कपड़े... नंगे पांव... ऐसा ही दिखता था वह, जिसे लोग पागल कहते थे। मगर वह दूसरों की तरह नियमित उस सेवा-सत्संग में पहुंच जाता था, जहां शहर के हजारों नर-नारी महान संतों के उपदेशों का लाभ लेने पहुंचा करते।

मैदान में लगे शामियाने के नुक्कड़ पर बैठ वह पागल उन महान संतों के विचारों को सुनता रहता। जब सत्संग खत्म हो जाता तो वह भी वहां से उठकर चला जाता। एक बार हुआ यह कि उपदेश देते हुए एक प्रख्यात संत की उस पर नजर पड़ी। फिर वह रोज उसे एक ही जगह बैठकर ध्यान से अपने उपदेश सुनते देखने लगा। एक दिन उसने देखा कि पागल दिखने वाला आदमी अपनी जगह नहीं था। उसे वहां न देख संत को बेचैनी होने लगी। कुछ दिनों बाद पागल फिर लौट आया। सत्संग समाप्त होने के बाद इससे पहले कि वह उठकर जाता, संत ने उसके पास आकर पूछा, कहां चले गए थे इतने दिन ?

भगवान से वार्ता करने और आपके भक्तों को देखने गया था, पागल ने जवाब दिया। भक्तों में क्या देखा और भगवान से क्या बातें कीं, संत ने जिज्ञासावश पूछा। भक्तजन तो सत्संग से उठते ही आपकी बातें भूल गए और घर जाकर सांसारिक बातों को लेकर झगड़ने लगे और भगवान मिले तो उन्होंने कहा कि मैं आपसे पूछूं कि पागल किसे कहते हैं, क्या आप बता सकेंगे ?

पागल। जो खुद को साफ नहीं रखता, जिसके पास दिमाग नहीं होता, जो कोई भी तर्कसंगत काम नहीं करता, उसे पागल कहते हैं, संत ने अपने ज्ञान पर मुग्ध होते हुए कहा।

नहीं, भगवान ने मुझे पागल के बारे में कुछ और ही बताया था। उन्होंने कहा था- एक कान से श्रेष्ठ विचारों को सुनकर दूसरे ही क्षण उन्हें भुलाकर ओछे काम करने वाले और यह सब करते हुए यह समझने वाले कि भगवान उनकी करतूतों को देख नहीं रहा, या कि वे सत्संग में बैठकर अपने पापों से मुक्त हो जाएंगे, ऐसे लोग ही असली पागल होते हैं।

संत उस कथित पागल का मुंह ताक रहा था।

१५६९) सहज होता है वैराग्य- एक बार की बात है कि एक स्त्री अपने पिता के घर से लौटी थी और अपने पति को वहां का हाल-समाचार सुना रही थी। अन्त में उसने बताया- सुनिए मेरा भाई विरक्त हो गया है। आनेवाली दीपावली पर

वह दीक्षा लेकर साधु होने वाला है। उसने उसकी तैयारियां आरम्भ कर दी हैं। क्या तैयारियां हो रही हैं ? पति ने पूछा।

यही, कि वह अपनी सारी संपत्ति की उचित व्यवस्था करने में लगा हुआ है, जिससे भविष्य में किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न न हो। यह सुनकर पति मुस्कुरा दिया। पत्नीको उसका मुस्कुराना अटपटा लगा तो उसने पूछा- क्यों क्या बात हैं, तुम्हें हंसी क्यों आ रही है?

यही कि तुम्हारे भाई की विरक्ति मेरी समझ में नहीं आ रही है। वैराग्य हो गया है, दीक्षा की तिथि भी निश्चित हो गई है और वह संपत्ति की व्यवस्था में लगा हुआ है। भौतिक संपत्ति से अभी भी लगाव है और इस उत्तम काम में भी दूर रहने की योजना बना ली। इसे तुम त्याग कहती हो ? अरे, त्याग तो सहज होता है। वैराग्य हुआ नहीं कि सब कुछ छोड़ा और चल दिए।

कोई भी बहन अपने भाई की निंदा नहीं सुन पाती है। उसको रोष आ गया और बोली- ऐसे ज्ञानी हो तो तुम्हीं कुछ क्यों नहीं कर दिखा देते ? पति बोला- मैं तो तुम्हारी अनुमति की प्रतीक्षा में ही था।

यह कहकर उसने वस्त्र उतारे और केवल एक धोती धारण कर वह घर से बाहर निकल गया। स्त्री ने समझा पति परिहास कर रहा है। थोड़ी देर बाद वापस आ जाएगा, किंतु पतिदेव जो गए तो फिर न आए वे तो लौटने के लिए गए ही नहीं थे, पत्नी की अनुमति की प्रतीक्षा थी, वह प्राप्त हो गई त्याग अथवा संन्यास का दिखावा नहीं किया जाता।

१५७०) भीतर की देखभाल- माओत्से तुंग ने अपनी जीवनी में लिखा है कि मेरी मां के पास एक बगीचा था। वह इतना सुंदर था कि लोग उसे दूर-दूर से देखने आते थे। एक बार मां बीमार पड़ गई और इस बीमारी में भी उसे अपने से ज्यादा बगीचे की चिंता थी कि बगीचे में खिले फूल मुरझा न जायें। माओत्से तुंग ने मां से कहा- तू फिक्र मत कर मैं बगीचे की देखभाल कर लूंगा। माओ ने मां के ठीक होने तक प्रतिदिन एक-एक पत्ते की धूल झाड़ी। फूलों की फिक्र की, लेकिन न जाने क्यों फूल मुरझाते गये और सारा बगीचा सूखता गया। १५ दिन बाद बूढ़ी मां बाहर आई और उसने देखा कि सारा बाग उजड़ गया है। मां ने पूछा- सुबह से रात तक तू सोता भी नहीं था, पर यह क्या हुआ ? माओत्से तुंग ने कहा- मां मैंने बहुत फिक्र की। एक-एक फूल पर पानी छिड़का। फिर भी न जाने कैसे... माओत्से ने लिखा है कि तब मां ने प्यार से मुझे गले लगाकर कहा कि पागल, फूलों के प्राण फूलों में नहीं उनकी जड़ों में होते हैं। फिक्र पत्तियों और शाखाओं की नहीं, जड़ों की करनी पड़ती है। मनुष्य को अपने भीतर की देखभाल करनी चाहिए न कि बाहर की झाड़-पोंछ पर लगे रहना चाहिए।

१५७१) सत्संग- नगर के एक मंदिर के समीप रहनेवाला एक बहरा नित्यप्रति उस मंदिर में होनेवाली कथा में आया करता था। एक दिन कथावाचक ने उससे पूछा आप को तो सुनाई नहीं देता, फिर आप यहां किस निमित्त आते हैं। बहरा बोला- यहां भगवान की कथा होती है। मैं सुन पाऊं अथवा न सुन पाऊं किंतु मेरे यहां नियमपूर्वक आने से मेरे बच्चों पर इसका कुछ तो प्रभाव पड़ेगा और वे भी मेरी देखा-देखी कथा सुनने के लिए आएंगे। मेरे आचरण से उनको प्रेरणा प्राप्त होगी तो स्वाभाविक ही उनका जीवन सन्मार्ग पर चलेगा। दूसरी बात यह है कि मैं भले ही सुन न पाऊं किंतु कथा के शब्दों का मेरे अंगों से तो स्पर्श होता है। उस स्पर्श से जो तरंगे निकलती हैं वे मुझे प्रभु के निकट ले जाती हैं। कथावाचक को यह उत्तम बात सुनने को मिली तो उसने भी अपनी कथा को धन्य माना।

१५७२) बढ़ई का काम- कर्मनिष्ठा में विश्वास रखने वाले आयु के बंधन में नहीं बंधते। वे सतत उत्साह से भरे कर्त्तव्यपालन में लगे रहते हैं। उन्हें देखकर दूसरों में भी उत्साह पैदा होता है। अमेरिका के प्रसिद्ध न्यायाधीश होम्स जब सेवानिवृत्त हुए, तो उस अवसर पर एक पार्टी का आयोजन किया गया। इस पार्टी में विभिन्न अधिकारी, उनके मित्र, पत्रकार और विदेशी संवाददाता सम्मिलित हुए थे। न्यायाधीश के पद से निवृत्त होने के बावजूद, होम्स के चेहरे पर बुढ़ापा

नहीं झलक रहा था। बल्कि वह अभी भी युवा ही लग रहे थे। पार्टी के दौरान ही एक संवाददाता ने उनसे पूछा- अब इस वृद्धावस्था में तो आप आराम ही करेंगे या कुछ और करने का मन है। भावी जीवन का क्या कोई कार्यक्रम बनाया है ?

वृद्धावस्था। बड़े आश्चर्य से होम्स ने कहा, क्या मैं वृद्ध दिखाई दे रहा हूं ? वस्तुत: मेरी पारी तो अब शुरू होनी है, क्योंकि लंबे समय से जिन कार्यो को मैं टालता रहा था, उन्हें अब प्रारंभ करने का समय आ गया है।

कौन से काम टालते आ रहे थे आप जिन्हें अब पूरा करेंगे ? संवाददाता ने पूछा।

पहला काम तो यह कि बहुत समय से मैं बढ़ई का काम सीखना चाहा रहा था, लेकिन अब तक इसके लिए कभी फुर्सत ही नहीं मिल पाई। अब बढ़ई का काम सीखने के साथ-साथ मैं विज्ञान का अध्ययन करूंगा। होम्स बोले।

उनकी बात सुन संवाददाता के चेहरे पर आश्चर्य के भाव तैरने लगे। होम्स ने तब मुस्कराकर आगे कहा- मैं बूढ़ा हो भी जाऊं तो क्या, काम करना मैं मरते दम तक नहीं छोडूंगा। विज्ञान का अध्ययन मेरा शौक रहा है, जबकि बढ़ई का काम अब मेरा नया पेशा होगा। दो-चार महीने की बात है, आपको यदि अपने घर के लिए कोई फर्नीचर बनाना पड़े तो कृपया मुझे ही ऑर्डर दीजिएगा। मैं अपने काम की गुणवत्ता से आपको निराश नहीं करूंगा। संवाददाता उनका मुंह ताक रहा था।

१५७३) फोर्ड की सादगी- हेनरी फोर्ड अमेरिका के प्रमुख उद्योगपति थे। यद्यपि वह बेहद धनी थे, पर सादगी से रहते थे। एक बार हुआ यह कि उनका सूट बहुत पुराना हो गया और कई जगहों से फटने भी लगा। यह देखकर एक दिन उनका निजी सचिव बोला- आपका सूट फटने लगा है। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे, आप एक नया सूट क्यों नहीं सिलवा लेते ? सुनकर हेनरी फोर्ड मुस्कराकर बोले- अभी इस सूट की मरम्मत से काम चल जाएगा, क्योंकि मुझसे मिलने वाले सभी लोग जानते हैं कि मैं हेनरी फोर्ड हूं। मेरे सूट बदलने न बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला।

इसी तरह कुछ समय और बीत गया। हेनरी फोर्ड पुराने सूट से ही काम चलाते रहे। लेकिन कुछ दिनों बाद हेनरी फोर्ड को इंग्लैंड जाना पड़ा। तब उनके सचिव ने फिर उनसे कहा- सर, आप विदेश जा रहे हैं, अब तो नया सूट सिलवा लीजिए। फोर्ड एक बार फिर मुस्कराकर बोले- अरे भाई, मुझे उस देश में जानता ही कौन है। वहां मुझे जानने वाले लोग होते तो उन पर रौब गांठने के लिए ही सही, मैं नया सूट सिलवा लेता, लेकिन वे अजनबियों पर भला क्यों ध्यान देंगे, इसलिए नया सूट रहने ही दो।

१५७४) हिन्दी प्रेम- सन १९६२ की घटना है। प्रत्येक भारतीय चीनी आक्रमण के कारण भयाक्रांत था। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित होना था, इसलिए प्रभारी अधिकारी मोहनदास सेंगर प्रधानमंत्री के आवास पर ध्वन्यांकन के लिए गए। विचारनुसार प्रधानमंत्री को पहले मूल अंग्रेजी में राष्ट्र को सम्बोधित करने के पश्चात उसका हिन्दी अनुवाद पढ़ना था। सेंगर साहब को यह नहीं जंचा कि अंग्रेजी को अहमियत देकर उसे मूल पाठ के रूप में पढ़ा जाए और राष्ट्रभाषा हिन्दी को अनुवाद की भाषा बनाकर उसके साथ सौतेला व्यवहार किया जाए। नेहरूजी प्रधानमंत्री थे जबकि सेंगर साहब एक सरकारी अधिकारी। बोले- सर। आपातकाल के इस समय में भारत का प्रधानमंत्री हिन्दी अनुवादक हो, यह ठीक नहीं लगता। ऐसे समय में आप यदि मूल हिन्दी में ही बोलें तो प्रभावी रहेगा। एक क्षण को नेहरूजी सेंगर साहब को देखते ही रह गए। कुछ सोचकर बोले- हां, तुम ठीक कहते हो। मूल हिन्दी में सम्बोधित करना ज्यादा ठीक रहेगा। नेहरूजी का जवाब सुनकर सेंगरजी गदगद हो उठे।

१५७५) विख्यात साहित्यकार श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय कांचीपुरम में कामाक्षी देवी के दर्शन के लिए पहुंचे। इला डालमिया उनके साथ थीं। एक ब्राह्मण युवक गाइड के नाते कांची मठ के शंकराचार्य तथा कामाक्षी देवी के विषय में अंगरेजी भाषा में उन्हें जानकारी देने लगा। अज्ञेय जी ने विनम्रता से पूछा, तुम शंकराचार्य मठ के छात्र रहे होगे? संस्कृत

तथा हिंदी अवश्य पढ़ी होंगी ? उसने उत्तर दिया, संस्कृत-निष्ठ हिंदी खूब जानता हूं। फिर तुम हमें अंगरेजी में जानकारी क्यों दे रहे हो ? हिंदी में समझाओ। युवक ने संस्कृत गर्भित हिंदी में कामाक्षी का महत्व समझाना शुरू किया, तो अज्ञेय जी उसके हिंदी ज्ञान को देखकर भावविभोर हो उठे। बोले, अंगरेजी भाषा में देवी की उत्पत्ति, दिव्य स्वरूप तथा शंकराचार्य जी आदि के उपदेशों का रहस्य कदापि नहीं समझाया जा सकता। हिंदी ही इसके लिए सक्षम है। उन्होंने प्रसन्न होकर ब्राह्मण युवक को २५ रुपये के बजाय ५० रुपये इनाम में दिए तथा कहा, भविष्य में हिंदी में ही दर्शनार्थियों का मार्गदर्शन करना।

१५७६) उदार स्वामी- गुजरात के धौलनगर के नरेश वीरधवल एक दिन भोजन करके पलंग पर लेटे थे। उनका एक सेवक उनके पांव दबा रहा था। राजा ने नेत्र बंद कर लिए थे। सेवक ने समझ लिया कि महाराज गहरी नींद में सो रहे हैं अत: उसे अच्छा अवसर जानकर उनके पैर की एक अंगुली में पड़ी रत्नजड़ित अंगूठी को निकाल लिया और उसे अपने मुख में छिपा लिया। वह दिन निकल गया। नरेश ने अंगूठी की कोई चर्चा नहीं की। यद्यपि उनको विदित था कि अंगूठी का क्या हुआ और वह किसके पास है। विपरीत इसके उन्होंने उसी अंगुली में वैसी ही एक अन्य अंगुठी पहन ली। दूसरे दिन भी उसी प्रकार नरेश खाना खाकर आराम कर रहे थे और वही सेवक उनके पैर दबा रहा था। राजा ने फिर निद्रा का बहाना किया और सेवक ने समझा अवसर अच्छा है। जब कल की अंगुठी का पता नहीं चला तो आज की अंगुठी का भी पता नहीं चलेगा। यह विचार कर सेवक ने फिर बड़ी सावधानी उस अंगुठी को निकालने का यत्न किया तो नरेश ने सचेत होकर कहा- अब यह अंगुठी तो रहने दो। कल तुमने जो अंगुठी ली है, वह तो मैं तुम्हें दे ही चुका हूं। चोरी पकड़ी गई। सेवक भय से थर-थर कांपता हुआ नरेश के पैरों पर माथा रगड़ने लगा। वह बार-बार क्षमा मांग रहा था। नरेश ने कहा- डरो मत। दोष मेरा ही है। थोड़े वेतन से तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती, इसलिए तुम चोरी करने पर विवश हुए हो। मुझे तुम्हारी आवश्यकता को पहले ही समझ लेना चाहिए था। आज से तुम्हारा वेतन दुगुना किया जाता है। सेवक के जाते हुए प्राण लौट आए। उसने राजा को बारम्बार प्रणाम किया। इतना ही नहीं उसी दिन राजा ने उन सब सेवकों के वेतन में भी यथोचित वृद्धि कर दी, जिनके विषय में वे समझते थे कि उनका वेतन कम है।

१५७७) सुधारक की धैर्य परीक्षा- गीताप्रेस गोरखपुर के आदि संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार किसी कार्य से कलकत्ता गए। गोविन्द भवन तथा गीताप्रेस की दुकान से वापस लौटते समय एक किशोर उनके पास आया और भीख मांगते हुए बोला- भूखा हूं, कुछ पैसा दे दो बाबू। पोद्दारजी को उसकी गिड़गिड़ाहट और दयनीय अवस्था देखकर दया आ गई। उन्होंने जेब में से कुछ रुपए निकालकर उस किशोर को दे दिए। बाकी रुपए उन्होंने जेब में रख लिए। अपने साथियों से बातें करते हुए हनुमान प्रसाद आगे बढ़ने लगे। अचानक उन्हें लगा कि कोई उनकी जेब छू रहा है। उन्होंने शीघ्रता से जेब टटोलते हुए हाथ पकड़ लिया। वह हाथ उसी किशोर का था, जिसे कुछ मिनट पूर्व उन्होंने दया करके कुछ रुपये दिये थे। किशोर डर गया कि अब तो उसकी अच्छी पिटाई होगी। पोद्दारजी ने उसे एक ओर ले जाकर कहा कि तुम्हें और रुपए चाहिए थे तो पहले ही मांग लेते। चुराने का प्रयास क्यों कर रहे थे ? ऐसा कहकर उन्होंने बचे हुए रुपए जेब से निकालकर दे दिए। उस किशोर को यह भी समझाया कि बुरी आदतें आसानी से नहीं छुटती, भूखा हूं कहकर, पैसों का पता लगाकर जेब काटना बहुत गलत है। ऐसा करने से लोगों का विश्वास भूखों पर से उठ जाएगा। भूखे को कोई सहयोग भी नहीं देगा, अपितु जेबकतरा समझकर लोग सजा और देने लगेंगे। तुम मेरी इतनी बात अवश्य मान लो कि भविष्य में भूखा कहकर भीख नहीं मांगोगे।

हनुमान प्रसादजी के इस व्यवहार को देखकर युवक को ग्लानि हुई। दूसरे दिन पोद्दार के गोविन्द-भवन में प्रवचन के बाद वह किशोर उनसे मिला। दयनीय शब्दों में उसने बताया कि वह बहुत गरीब है। घर में वृद्ध मां है। कमाई का कोई और

साधन न होने के कारण उसे जेब काटकर रुपए प्राप्त करने की आदत पड़ गई है। पुलिस भी जेबकतरे के रूप में पहचानती है। वैसे भी कोई काम नहीं देता। यदि कहीं काम मिलता है तो पुलिस वाले उसकी आदत को बताकर काम छुड़वा देते हैं। वह काम देने के लिए प्रार्थना करने लगा।

दो चार दिन बाद पोद्दार उस किशोर को अपने साथ गोरखपुर ले आए तथा काम पर रख लिया। उसकी आदत के बारे में उन्होंने किसी को भी नहीं बताया। कुछ दिन तक सब ठीक चलता रहा। एक दिन किशोर ने पुरानी आदत के अनुसार अपने साथियों में से एक के रुपए चुरा लिए। शीघ्रही चोरी का पता लग गया तथा सभी की तलाशी ली जाने लगी।

हनुमान प्रसाद समझ गए कि यह उसी किशोर का कार्य है। वे तुरन्त घटना स्थल पर पहुंचे। उसका पर्दाफाश हो, उससे पहले उन्होंने एक पत्र गीताप्रेस ले जाने के बहाने उसे वहां से भेज दिया। विरोध के बावजूद भी उसे वहां से हटा दिया। वह किशोर हनुमान प्रसाद की महानता को देख-समझकर बहुत शर्मिन्दा हुआ। आधी रात को समय पाकर वह उनके पास गया और रोते हुए क्षमा मांगने लगा। कहने लगा कि उसी ने रुपये चुराए थे।

पोद्दार ने फिर उसे प्यार से समझाया कि वह रुपए अपने पास ही रखे। आवश्यकता होगी तभी उसने लिए होंगे। यदि वह उनसे मांग लेता तो क्या वह उसे नहीं देते ? भविष्य में ऐसा मत करना। उनके व्यवहार से किशोर का हृदय परिवर्तन हो गया तथा वह सम्मानित जीवन जीने लगा।

१५७८) एक और झूठ- कलकत्ता में श्रीरामतनु लाहिरी नामक गुरुजी रहते थे। सुधारक के रूप में उनका बड़ा आदर किया जाता था। पूरे शहर में एक सदाचारी व्यक्ति के रूप में भी उनकी प्रतिष्ठा थी। उनसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे। वे उन दिनों कृष्णनगर कालिजियेट स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। गुरुजी बच्चों को बहुत मेहनत से पढ़ाते थे और चाहते थे कि उनके पढ़ाए हुए छात्र अच्छे इंसान बनें। सहकर्मी शिक्षक और छात्र भी उनसे काफी प्रभावित थे, क्योंकि वह अत्यंत सहजता से जीवनोपयोगी बातें समझा दिया करते थे। साथ ही उनका व्यवहार अत्यंत मधुर और अपनत्व से भरा था।

एक दिन वह अपने एक प्रिय शिष्य मित्र अश्विनीकुमार के साथ विद्यालय जा रहे थे। विद्यालय जाने का रास्ता खेतों में पगडंडी से होकर गुजरता था। थोड़ी दूर जाने पर सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। उसे देखकर गुरुजी रुक गए और अचानक खेतों से हटकर दूसरे रास्ते से जाने लगे ताकि वह व्यक्ति इन्हें न देख सके। वह रास्ता बहुत ही लंबा था। अश्विनी कुमार को उनका यह व्यवहार थोड़ा विचित्र लगा। जब वह व्यक्ति चला गया तो लाहिड़ी बाबू फिर इस ओर लौटकर आए। उनके इस तरह रास्ता बदलने पर शिष्य ने पूछा, गुरुजी, आपने एकाएक रास्ता क्यों बदल दिया। जा तो आप अब भी उसी रहे हैं, जिधर पहले जा रहे थे ?

यह रास्ता तो बहुत लंबा और ऊबड़-खाबड़ है, हमें चलने में बहुत दिक्कत होगी। गुरुजी बोले, सामने से जो आदमी आ रहा था, उसे जानते हो। लाहिरी बाबू ने उस दूसरी पटरी पर विपरीत दिशा में जाते हुए एक व्यक्ति की ओर संकेत किया और बोले- देखिए उन्हें देखते हैं ? हां देख रहा हूं।

वह गांव का सरपंच है। उसे देखकर ही मैंने रास्ता बदल लिया है। शिष्य ने पूछा, क्या आप उससे डरते हैं ? नहीं बिल्कुल नहीं। गुरुजी ने जवाब दिया। फिर आप उससे बचना क्यों चाहते हैं ? शिष्य ने फिर प्रश्न किया। इस पर गुरुजी ने कहा, सरपंच को झूठ बोलने की आदत है। कई साल पहले एक बार वह मुझसे झूठ बोल कर कुछ रुपये उधार ले गया था। आज तक उसने पैसे लौटाए नहीं, लेकिन जब भी कभी उसका मुझसे इस प्रकार अचानक मिलना होता है तो आदतन वह झूठ बोलता है और

कहने लगता है, गुरुजी, बस एक-दो दिन में जरूर पैसे लौटा दूंगा। हालांकि मैं जानता हूं कि यह आदमी इतनी जल्दी पैसे वापस नहीं करेगा। आज भी वह मुझसे मिलता तो एक बार फिर झूठ बोलता, इसलिए मैंने सोचा कि इससे अच्छा है कि मैं अपना रास्ता ही बदल दूं। रास्ता बदलने से मुझे थोड़ी तकलीफ तो होगी, लेकिन मेरी वजह से उस आदमी को एक बार और झूठ तो नहीं बोलना पड़ेगा। किसी व्यक्ति को दुर्गुणों से दूर रखने के लिए हमें हर संभव उपाय करने चाहिए। इस तरह कुछ देर के लिए उन्हें गलत कार्य करने से रोकता हूं। इन बातों से अश्विनीकुमार बड़े प्रभावित हुए। समझ गए कि दूसरों द्वारा की जानेवाली अनीति को रोकना मनुष्यता की सच्ची पहचान है।

१५७९) म्यांमार का हास्यास्पद पात्र था जेगाटुंगजार। वह बातचीत में माहिर था। राजा का न्यायालय जिस इमारत में था, उसकी देखभाल का काम एक अधिकारी को सौंपा गया। वह सपरिवार वहां रहता था। उसने शाही क्लर्क से रीति-रिवाज और दरबारी अदब-कायदे सीखे। वह बाहर के काम भी करता था। एक दिन अधिकारी की पत्नी ने घर में ताजा बिस्कुट बनाए। जेगाटुंगजार को भेजा कि मालिक से कह दे कि आकर ताजा बिस्कुट खाए। जेगाटुंगजार ने सीढ़ी के ऊपर से ही चिल्लाना शुरू किया, मालिक, मालकिन घर बुला रही है ताजा बिस्कुट खाने के लिए। वह बराबर पुकारता गया, जब तक कि वह उनके कमरे में नहीं पहुंच गया। कमरे में जो लोग बैठे थे वे सभी हंसने लगे। अधिकारी को बड़ा गुस्सा आया। उसने जेगाटुंगजार को एक चपत लगा कर कहा, तुमने मुझे सबके सामने लज्जित कर दिया। अगली बार कोई संदेश लाओ तो सबके सामने इस तरह गला फाड़ कर मत चिल्लाना। सिर्फ आंख से इशारा कर देना। मैं समझ जाऊंगा कि तुम घर से कोई संदेश लाए हो। एक दिन की बात है, घर में आग लग गई। घर का सामान जल्दी-जल्दी हटाया जाने लगा। घर की मालकिन ने जेगाटुंगजार से कहा कि सिर्फ हल्की चीजें हटाओ। हल्की चीजों से उसका मतलब कीमती चीजों से था। जेगाटुंगजार भूसी के बोरे उठा कर ले आया। झल्लाते हुए मालकिन ने उसे मालिक को बुलाने भेजा। मालिक अधिकारियों के साथ व्यस्त था। जेगाटुंगजार सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर बैठ गया और सारे दिन इशारे करता रहा। आखिर बातचीत खत्म हुई तो मालिक ने पूछा कि वह क्यों इशारे कर रहा था। जेगाटुंगजार ने कहा- घर में आग लग गई है। पूरा घर धू-धू कर जल रहा है। मालिक चिल्लाया, तुमने मुझे कहा क्यों नहीं। मैं कहता कैसे मालिक, आपने ही तो कहा था कि सिर्फ आंख से इशारा करना। मालिक ने और समय नहीं गंवाया। वह घर भागा तब तक काफी कुछ नुकसान हो चुका था। मालिक और मालकिन ने उस दिन के बाद जेगाटुंगजार को निकाल दिया।

१५८०) विश्वास- एक बार प्रसिद्ध विभूति हातिम कार्यवश अन्यत्र जा रहे थे। उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा तुम्हारे खाने-पीने की कितनी सामग्री एकत्रित कर जाऊं ? पत्नी ने हंसते हुए उत्तर दिया- जितनी मेरी आयु हो। उन्होंने कहा, मुझे तुम्हारी आयु के विषय में क्या पता ? तब पत्नी ने पुन: कहा जब आपको मेरी उम्र का ही पता नहीं लग पाएगा तब मैं भोजनादि का कैसे सही अनुमान बता सकूंगी ? यह काम आपके बस का नहीं है, जिस सत्ता का है उसे ही करने दीजिए। हातिम चले गए। पड़ौस की महिला ने पूछा- बेटी, तुम्हारे पति जाने से पूर्व क्या व्यवस्था करके गए हैं ? हातिम की पत्नी बहुत ही विश्वासपूर्वक बोली- मां, मेरे पति मेरे लिए क्या व्यवस्था करेंगे ? जो देनेवाला है वह अब भी मेरे पास है, उसकी सत्ता हमेशा मेरे पास विद्यमान रहती है।

१५८१) अभिमान का परिणाम- एक व्यक्ति मूर्तियाँ बनाने का कार्य करता था। यह कला उसने अपने बेटे को भी सिखाई। दोनों बाजार जाते और अपनी-अपनी मूर्तियाँ बेचकर आते। पिता को मूर्तियों की कीमत डेढ़-दो रुपये मिल जाती थी जबकि बेटे को आठ-दस आने। वापस आने पर कलाकार बेटे को मूर्तियों के अवगुण बताकर कार्य की बारीकी

समझाता। धीरे-धीरे लड़के को एक मूर्ति की कीमत पाँच रुपये मिलने लगी जबकि पिता को उतने ही रुपये मिलते थे। वह अब भी उसके दोषों को सुधारने का कार्य करता था। एक दिन बेटे ने नाराज होते हुए कहा अब तो मुझे ज्यादा पैसे मिलने लग गए हैं आपसे से मेरी ही कला अच्छी है। पिता ने उसे टोकने का कारण बताया बेटे। जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो मुझे भी अपनी कला का अभिमान हो गया था जिसके कारण मैं आज तक दो ही रुपये प्राप्त करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि जिस गलती के कारण आज तक मैं पीड़ित हूँ वही गलती तुम न करो। मैं चाहता हूँ कि तुम सर्वश्रेष्ठ कलाकार बनो। बेटे को अपनी गलती का अहसास हो गया। बेटे को महान कलाकार बनने का रहस्य समझ में आ गया।

१५८२) समर्पण- उस रात राजा ने मुझे भरे दरबार में बुलाया और कहा, वैसा ही होगा, जैसा तू कहेगा। मैं भौंचका राजा को देख रहा था। हां, वैसा ही होगा। तू अगर कहेगा, राजा मुर्दाबाद, तो मुर्दाबाद। तू अगर कहेगा, सरकार निकम्मी है, तो निकम्मी है। तू अगर कहेगा, व्यवस्था भ्रष्ट है। तू जो कह दे। इस दरबार में निर्भय होकर कह, वही हमारी आवाज। बोल तू। भाषा तेरी, आवाज तेरी, अभिलाषा तेरी। पूरे दरबार में चुप्पी छा गई। मैंने द्वार से लेकर सिंहासन तक देखा। द्वार के कोने में खड़ा बूढ़ा बाप मेरी तरफ बेबसी से देख रहा था। ऊपर घरोखों में मेरी औरत चार सिपाहियों से घिरी, अपनी चूड़ियां रिखा रही थी। मेरे बच्चे एक बड़े-से फूलदान में कांटों के बीच चुपचाप खड़े थे। बस्ती के लोग सीखचों के दूसरी तरफ। राजा ने फिर बड़े प्यार से कहा, लोकतंत्र है। अभिव्यक्ति की आजादी का पूरा फायदा उठा। डर मत, निर्भय होकर बोल। मैंने हाथ उठा लिए। उस रात दरबार में, ऊपर खुला आकाश, चांद-सितारों को निहारा और चीख पड़ा जोर से, जब तक सूरज-चांद रहेगा... राजा सहित पूरा दरबार अट्टाहास से फूट पड़ा और हम सब अपनी भीगी आंखों के साथ लौट पड़े उस सूने रास्ते पर, चुपचाप, जो मुल्क से घर की ओर जाता था।

१५८३) कलाकार की जीत- यह कहानी तब की है जब ग्रीस में गुलाम प्रथा का प्रचलन था। गुलामों की दशा अत्यंत दयनीय थी। उनसे कठिन से कठिन काम करने को कहा जाता और न कर पाने पर कोड़े मारे जाते। गुलामों को कला के क्षेत्र में भी अध्ययन का अधिकार न था। न तो कोई गुलाम कोई कलाकृति बना सकता था न ही कला के प्रति अपने प्रेम को दर्शा सकता था।

क्रियो नामक एक गुलाम को कलाकृतियां बनाने का बेहद शौक था। वह संगमरमर के टुकड़ों को तराश कर उनमें मानो जान फूंक देता था। मगर वह ग्रीस में प्रचलित तत्कालीन कानून से बहुत निराश था। कानून का उल्लंघन करने पर कठोर सजा हो सकती थी। अत: उसने कला के प्रति अपने प्रेम को त्याग देना ही श्रेयस्कर समझा। क्रियों की बहन को अपने भाई की मनोदशा पर बहुत दु:ख होता। एक दिन उसने अपने भाई को सुझाव दिया कि वह अपने औजार और संगमरमर के पत्थर एक तहखाने में रखे और जब भी समय मिले तब गुपचुप रूप से अपना शौक पूरा करता रहे।

क्रिया को अपनी बहन का सुझाव पसंद आ गया। उसने एक तहखाने में कलाकृतियां बनाने का काम शुरू कर दिया। उसकी बहन उसे समय पर खाना बनाकर दे आती और हर तरह से उसकी मदद करती थी। वह चाहती थी कि एक दिन उसका भाई बहुत बड़ा मूर्तिकार बने और ग्रीस का सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त करे।

तभी एथेंस में कलाकृतियों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। महान कलाप्रेमी पेरीक्लीज को इस उत्सव का सभापति नियुक्त किया गया। फैसले के दिन निर्णायकों के मंच पर पेरीक्लोज के साथ उसकी पत्नी ऐस्पेसिया तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति, फीसडियस, सुकरात, साफोक्लिज आदि भी उपस्थित थे। कई उच्चकोटि के नमूने वहां रखे हुए थे, मगर एक मूर्ति समूह सबको बरबस ही अपनी ओर खींच रहा था। इस मूर्ति समूह की मूर्तियां देखकर मालूम होता था मानो ये

मूर्तियां अभी बोल पड़ेंगी। दर्शक भी उन मूर्तियों को दिलचस्पी से निहार रहे थे तभी किसी ने पूछा- इनका मूर्तिकार कौन है ? मगर जवाब किसी के पास न था। लोग कृति बनानेवाले को देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे।

तभी एक सिपाही किसी लड़की को घसीटते हुए वहां लाया। सिपाही कह रहा था- यह इन मूर्तियों के कलाकार को जानती है, परंतु उसका नाम नहीं बता रही है।

पेरीक्लीज को गुस्सा आ गया। बोले- लड़की को कैदखाने में डाल दो।

उनके ऐसा कहते ही भीड़ में से एक युवक आकर पेरीक्लीज के पैरों पर गिर पड़ा और बोला- असली अपराधी मैं हूं। ये कृतियां मुझ गुलाम की ही हैं। इस लड़की को क्षमा कर दें। जो भी दंड देना है मुझे दें।

भीड़ में कुछ लोग चिल्लाने लगे- गुलाम और कला ? कानून तोड़ने के लिए इसे बंदी बनाया जाये। तभी पेरीक्लीज बोले- नहीं। जब तक मैं जीवित हूं, कलाकार का अपमान नहीं होने दूंगा। एक बार गौर से तो देखो। मानो स्वयं, कला के जनक अपोलो कह रहे हों कि ग्रीस का यह कानून कितना जालिम है ? कानून को कला के विकास में सहायक होना चाहिए न कि बाधक। इस युवक का स्थान हमारे बगल में होगा न कि कैदखाने में।

पेरीक्लीज की पत्नी ऐस्पेसिया ने भरी भीड़ के सामने क्रियों के सिरपर मुकुट रख दिया और क्रियों की बहन को चूमकर सीने से लगा लिया। आखिर ग्रीस के काले कानून के सामने एक कलाकार की जीत हुई।

१५८४) नसीहत - यह एक लोककथा है। एक गांव में एक किसान रहता था। उसके दो बेटे थे। किसान कड़ी मेहनत करके खेती करता था। वह चाहता था कि उसके बेटे पढ़-लिखकर बड़े आदमी बनें। लेकिन दोनों बेटे उसकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर रहे थे। वे साल भर मटरगश्ती करते रहते और परीक्षा के दिनों में ही किताबें खोलते। वे परीक्षाओं से पहले जरूर बहुत मेहनत करते, लेकिन साल भर की लापरवाही के चलते उनके कभी अच्छे अंक नहीं आ पाते। किसान ने अपने बेटों को कई बार समझाया लेकिन वे नालायक ही रहे। वे उलटा अपने पिता को उलाहना देते- आप तो खेती करते हो, आपको क्या मालूम पढ़ाई के बारे में।

किसान अपने बच्चों के इस बर्ताव से बहुत दुखी था। एक दिन उसने मन में ठाना कि वह बच्चों को सबक सिखाएगा। उसने अचानक अपने खेतों में जाना बंद कर दिया। एक दिन, दो दिन, एक हफ्ता, दो हफ्ता इस तरह कई महीने गुजर गए। एक दिन उसकी पत्नी ने पूछा- क्या हुआ, आजकल आप खेतों में नहीं जा रहे।

किसान ने अपनी पत्नी को बताया कि बच्चों को सबक सिखाने के लिए उसे ऐसा करना पड़ रहा है, वह चिंता न करे। आखिर जब बुआई का समय आया तो किसान ने अपने बच्चों से अपने साथ खेतों में आने को कहा। दोनों बेटों को लेकर किसान खेत में पहुंचा। खेत में चारों ओर खरपतवार फैली हुई थी। जमीन सख्त होकर फटने लगी थी। खरपतवार काटने में ही सुबह से शाम हो गई। अगले दिन जमीन खोदनी थी। जमीन इतनी सख्त हो चुकी थी कि दोनों बेटों के हाथों में छाले पड़ गए। परेशान होकर वे किसान से बोले- बापू, आपने पहले खेत की ओर ध्यान दिया होता तो यह नौबत नहीं आती। अब तो इस साल फसल चौपट हो जाएगी।

किसान मुस्करा कर बोला- मैं तो अनपढ़ गंवार किसान हूं। मैंने भी तुम्हारी तरह यही सोचा कि साल भर मेहनत करके क्या लाभ, जब फसल का समय होगा, मैं तभी बुआई कर लूंगा। बेटों को पिता का सबक समझ आ गया था।

१५८५) स्वावलंबी बालक - बहुत पुरानी बात है। किलेन्थिस नामक एक गरीब बालक एथेंस के तत्ववेत्ता जीनो की पाठशाला में पढ़ता था। अभावग्रस्त होने पर भी वह अपनी पाठशाला की फीस नियमित रूप से दिया करता था। पढ़ाई में

वह बेहद होशियार था, इसलिए अनेक विद्यार्थी उससे ईर्ष्या करते थे। कुछ ईर्ष्यालु लड़कों ने उस पर आरोप लगाया कि वह फीस के पैसे चोरी करके जमा कराता है क्योंकि उसके पास तो पहनने के लिए ढंग के कपड़े तक नहीं हैं।

यह मामला काफी बढ़ा और अदालत तक जा पहुंचा। अदालत में किलेन्थिस ने निर्भयता के साथ कहा, मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ। मैं अपनी बात के समर्थन में दो गवाह पेश करना चाहता हूं। किलेन्थिस के अनुरोध पर उन दो गवाहों को पेश करने की इजाजत दी गई। उनमें एक गवाह एक माली था और दूसरा एक बुढ़िया। पहले माली को बुलाया गया। माली ने कहा, यह बालक प्रतिदिन मेरे बगीचे में आकर कुएं से पानी खींचता है और इसके लिए मैं इसे नियमित रूप से मजदूरी देता हूं। इसके बाद बुढ़िया ने कहा, मैं अकेली हूं। मेरे घर में कोई गेहूं पीसनेवाला नहीं है। यह बालक प्रतिदिन मेरे घर गेहूं पीस जाता है और अपनी मजदूरी के पैसे ले जाता है। इन्हीं पैसों से यह अपने स्कूल की फीस भी भरता है। यह मुझे अपनी पाठशाला के किस्से भी सुनाता रहता है। माली व बुढ़िया के बयानों से यह साबित हो गया कि किलेन्थिस निर्दोष है। किलेन्थिस की नेक कमाई की बात जानकर जज साहब अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसकी शिक्षा के लिए सहायता भी देनी चाही, जिसे किलेन्थिस ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उसके माता-पिता ने उसे मुसीबतों से लड़ना सिखाया है। उसे किसी की मदद नहीं चाहिए। वह स्वावलंबी बनकर जीना चाहता है। बालक के इन शब्दों को सुनकर जज के साथ-साथ अन्य व्यक्ति भी उसके प्रति नतमस्तक हो गए।

१५८६) धन की सुरक्षा - राजा भोज एक दिन सोचने लगे कि लक्ष्मी जब चंचला है तब उसका सदुपयोग करना चाहिए, पता नहीं कब चली जाए। अत: दूसरे दिन प्रात: उन्होंने प्रार्थियों को बुलाकर दान देना शुरू कर दिया। राजा भोज के इस औघड़दान को देखकर मंत्री का दिमाग चकरा गया। इस तरह दान करने से लक्ष्मी कितने दिन रहेगी। मंत्री ने दानशालार की दीवार पर, जहां राजा की दृष्टि जरूर पड़ती, लिख दिया- आपातकाल के लिए धन की सुरक्षा करना मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।

दूसरे दिन राजा ने पढ़ा और सभी से पूछा किसने लिखा ? पर इसका उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। तब राजा ने उसके नीचे लिख दिया- भाग्यशाली आपत्ति में नहीं पड़ते। मंत्री ने फिर लिख दिया- यदि भाग्य कुपित हो जाए तो ? राजा ने इसके प्रत्युत्तर में नीचे लिखा- तब तो संचित धन भी नष्ट हो सकता है।

इस कथन पर मंत्री ने राजा के सम्मुख समर्पण कर दिया। लेकिन राजा ने मंत्री की हिताकांक्षा से अभिभूत होकर उसे ही इस काम का जिम्मा दे दिया।

१५८७) मुंज और राजा भोज - अमरावती के राजा सिंदुल अपने छोटे भाई मुंज का राजतिलक करवाकर अपने बेटे राजकुमार भोज को उसकी गोद में बैठाकर स्वर्ग सिधार गए। राजा मुंज राजकुमार भोज का पुत्रवत पालन पोषण करने लगे।

एक दिन राजा मुंज की पत्नी ने उनसे कहा- महाराज, इस सपोले को क्यों दूध पिला रहे हो ? बड़ा होकर एक दिन यही आपको मारकर राजगद्दी हथिया लेगा। यद्यपि राजा मुंज राजकुमार भोज को बहुत प्यार करते थे, पर पत्नी के बार-बार बहकाने पर उन्होंने जल्लाद को बुलाकर आदेश दिया कि इस बालक को जंगल में मारकर इसकी आंखें रानी को सौंप दी जाएं।

जब जल्लाद भोज को जंगल ले जाकर मारने लगा तो भोज ने भोजपत्र पर एक पत्र लिखने की इच्छा व्यक्त की। उसने अपने चाचा राजा मुंज को अपने रक्त से पत्र लिखा- संसार में समुद्रतट बांधने वाले राम चले गए, कैसे कैसे चक्रवती सम्राट नहीं रहे, महाराज युधिष्ठिर भी चले गए, किंतु यह पृथ्वी यहीं रही। कोई कुछ अपने साथ न ले जा सका। लेकिन मुझे लगता है मेरे चाचा अपने साथ जरूर अपना राजपाट ले जाएंगे।

राजकुमार भोज ने जब रक्त से लिखा पत्र जल्लाद को दिया तो जल्लाद का दिल पिघल गया। उसने भोज को जंगल में ही छिपा दिया और एक हिरन की आंखें निकालकर रानी को सौंप दीं। कपटी रानी ने आंखें देखकर चैन की सांस ली।

राजा मुंज ने जब पत्र पढ़ा तो उनकी आंख से स्वार्थ का पर्दा उठ गया। वह मूर्छित हो गए। उनकी हालत देखकर जल्लाद ने उनके सम्मुख सत्य उगल दिया। राजा मुंज ने जल्लाद को पुरस्कृत कर राजकुमार भोज को वापस बुलवा लिया। उन्होंने भोज को अस्त्र-शस्त्र, धार्मिक, राजनैतिक, हर विषय की उत्तम शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की। बाद में राजा भोज एक सर्वगुण संपन्न राजा बने और इतिहास पुरुष बनकर अमर हो गए।

१५८८) सोने की खेती - एक बार एक राज्य में राजा ने एक छोटी सी चोरी के आरोप में एक व्यक्ति को फांसी की सजा सुना दी। फांसी से ठीक पहले जब उससे अंतिम इच्छा पूछी गई तो उसने कहा- महाराज मैं एक अनूठी विद्या जानता हूं। मैं चाहता हूं मेरे मरने के बाद भी यह विद्या दुनिया में बनी रहे।

राजा ने जब पूछा कि वह अनोखी विद्या क्या है, तो चोर बोला- मैं सोने की खेती करना जानता हूं। राजा को यह सुनकर भरोसा नहीं हुआ। बोला- तू फांसी से बचने के लिए कहीं झूठ तो नहीं बोल रहा। चोर ने जब भरोसा दिलाया तो राजा ने उसे कड़े पहरे के बीच सोने की खेती करने की इजाजत दे दी। राजमहल के ही एक कोने में मिट्टी खोदी गई, क्यारियां बनाई गईं और सरसों के दाने के समान सोने के छोटे-छोटे दाने तैयार किए गए। नियत तिथि पर जब बीज बोने का समय आया तो चोर ने आगे बढ़कर राजा से कहा- महाराज, अब बीज बोए जाएंगे। लेकिन यह बीज वही बो सकता है, जिसने जीवन में कभी चोरी न की हो, अन्यथा ये बीज नहीं उगेंगे।

उसकी बात सुन राजा ने मंत्री से बीज बोने को कहा, लेकिन मंत्री बोला कि उससे यह काम न हो सकेगा, क्योंकि बचपन में एक बार उसने अपने पिता की जेब से एक आना चुराया था। तब राजा ने सेनापति को बीज बोने को कहा। सेनापति ने भी असमर्थता जाहिर करते हुए बताया कि एक बार मैं अपने दोस्त का घोड़ा चुराकर शिकार पर गया था। तब मंत्री ने कहा- महाराज यह शुभ काम आपके हाथों से ही हो तो अच्छा है। राजा बोला- सच यह है कि मैंने भी बचपन में अपने दोस्तों को देने के लिए घर से लड्डू चुराए थे। तभी चोर हंसा और बोला- साफ है कि यहां मौजूद सभी ने कभी न कभी कोई न कोई चोरी की है, सजा के सभी भागी हैं, तो अकेले मुझे ही सजा क्यों दी जा रही है। राजा ने चोर की बुद्धिमानी की सराहना की और उसकी सजा माफ कर दी।

१५८९) प्रेत और किसान - एक गरीब किसान था। वह चाहता था कि उसके पास बहुत सारा धन हो, लेकिन वह निकम्मा था। उसे किसी ने बताया कि यदि वह किसी तरह प्रेत को अपने वश में कर ले तो रातोंरात मालामाल हो जाएगा, क्योंकि तब वह प्रेत से कुछ भी करवा सकेगा। किसान प्रेत को वश में करने की विधि सीखने एक योगी के पास गया। योगी ने किसान की मंशा जानकर उसे समझाया कि तुम इन झंझटों में मत पड़ो। अपना कर्म करो। लेकिन वह नहीं माना। अंत में योगी बोले, मंत्र तो मैं बता दूंगा और प्रेत तुम्हारे वश में भी हो जाएगा, लेकिन प्रेत को कभी खाली मत बैठने देना, नहीं तो वह तुम्हारा वैरी हो जाएगा। योगी ने उसे मंत्र जाप के लिए जंगल में भेज दिया। कुछ समय के बाद प्रेत प्रकट हो गया। उसने कहा, मैं तुम्हारे वश में हूं। अब मुझे काम बताओ। किसान ने कहा एक महल बना दो। क्षण भर में महल तैयार हो गया। किसान ने कहा मुझे खूब धन लाकर दो। देखते-देखते वह मालामाल हो गया। अब किसान सोचने लगा कि इसे और क्या काम बताऊं। यह तो पलक झपकते ही सारे काम कर डालता है। उधर प्रेत बोला मैं खाली नहीं बैठ सकता। काम बताओ, नहीं तो तुम्हारी जान ले लूंगा।

किसान अपनी जान बचाने के लिए वहां से भागा और सीधे योगी के पास गया और बोला- महात्मन, मेरी रक्षा कीजिए। उसे जो भी काम बताता हूं वह क्षण भर में कर देता है। अब उसके लिए मेरे पास कोई काम नहीं है। महात्मा बोले, उधर देखो, वहां एक कुत्ता है, प्रेत से कहो कि वह उसकी दुम सीधी कर दे। किसान ने वही किया। प्रेत उसे सीधा करने लगा, लेकिन ज्यों ही पूंछ छोड़ता, वह फिर पहले जैसी टेढ़ी हो जाती। प्रेत ने हार मान ली। तब योगी ने उसे हमेशा के लिए चले जाने को कहा। उसके जाते ही उसका दिया सब गायब हो गया। लेकिन किसान बहुत खुश था। योगी ने उसे समझाते हुए कहा- तुम्हारा कर्म मेहनत से खेती करना है, जाओ तुम वही काम करो।

१५९०) बात १९५४ की है। लखनऊ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के खुले अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए डॉ. बाबूराम सक्सेना ने वृंदावन लाल वर्मा का नाम प्रस्तावित किया तो वर्मा जी बोले- पुरुषोत्तम दास टंडन इस सम्मेलन के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। वे हिंदी को उचित स्थान दिलाने में सक्रिय भूमिका निभाते रहे हैं, अत: आज के अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए वे ही सबसे उपयुक्त हैं। उनकी बात सुनकर टंडन जी बोले- यह साहित्य का अधिवेशन है, इसलिए बेहतर होगा इसकी अध्यक्षता कोई साहित्यकार करे। मैं तो हिंदी का सेवक हूं और एक सेवक को यह शोभा नहीं देता कि पूज्यजनों के होते हुए वह मंच की जगह बर्बाद करे। इतने विनयशील थे पुरुषोत्तम दास टंडन।

१५९१) दुख न दो - दो व्यापारी जंगल से गुजर रहे थे। उनके पास काफी धन था और उन्हें डर था कि लुटेरे उन्हें लूट न लें। तभी कुछ उचक्के उनके पीछे पड़ गए। व्यापारी जंगल की ओर दौड़ पड़े। जंगल में उन्हें एक खोह दिखाई दी। वे उसमें छिपने के लिए आगे बढ़े तो मकड़ी का जाल दिखाई दिया। मकड़ी का जाल खोह के इस पार से उस पार तक फैला हुआ था।

एक व्यापारी उसे तोड़ने जा ही रहा था कि दूसरे ने कहा- नहीं मत तोड़ो उसे, बेचारी मकड़ी ने कितना परिश्रम कर बनाया होगा यह जाल। खोह के एक तरफ से एक आदमी के अंदर जाने जितनी जगह बची थी। वहीं से दोनों अंदर चले गए। अंदर काफी बड़ी जगह थी, जहां दोनों छिपकर बैठ गए। उचक्के उन्हें ढूंढते हुए खोह तक आए, लेकिन ऊपर लगे जाले की वजह से उन्हें लगा कि अंदर कोई नहीं और वे चले गए। दूसरे को दुख न देने का फायदा व्यापारियों को मिला।

१५९२) जुबान - बस में अभी कई सीटें खाली थीं। बस यहां से पांच मिनट बाद चलनेवाली थी। एक सुंदर युवक खूबसूरत और कीमती लिबास पहने हुए आगेवाली खिड़की से चढ़ा। बस में बैठे सब यात्री उसे अपलक निहार रहे थे। सुन्दरता ईश्वर की अनुपम देन है। वह बस में चढ़ने के बाद जैसे ही एक सीट की तरफ बढ़ा, उसके रेशमी बाल हवा के हलके झोंके से लहरा उठे। उसके सीट पर बैठ जाने के उपक्रम ने सबका मन मोह लिया था। कुछ ही क्षणों बाद एक प्रौढ़ महिला, जो वृद्धावस्था को छू रही थी, पिछली खिड़की से बस में चढ़ी। उस सुंदर युवक के पास जाकर बोली, तुम किसी अन्य सीट पर बैठ जाओ। यह सीट महिलाओं के लिए है। देखो, लिखा हुआ भी है।

लिखने से क्या होता है। तुम औरतें भी तो कितनी बार उन सीटों पर बैठ जाती हो, जो तुम्हारे लिए आरक्षित नहीं होती।

एक सन्नाटा पूरी बस में छा चुका था। वह महिला कुछ पल खामोश रही। फिर उस युवक को नीचे से ऊपर देखते हुए बोली, बेटे। तुम्हारे कपड़े बहुत सुंदर है। तुम उनसे भी ज्यादा सुंदर हो। अगर तुम्हारे कपड़ों और चेहरे की तरह तुम्हारी जुबान भी मीठी होती तो क्या बात होती।

१५९३) संगीत का सौंदर्य - उन दिनों फ्रांस के प्रसिद्ध संगीतकार गाल्फर्ड के पास उनकी एक शिष्या संगीत सीखने आया करती थी। वह देखने में अत्यंत कुरूप थी। एक दिन उसने महान संगीतकार बनने की अपनी इच्छा के साथ अपने मन की व्यथा भी उनके सामने व्यक्त की। उसने कहा कि वह जानती है कि वह बेहद कुरूप है। इसलिए जब कभी भी मंच

पर जाती है, यह सोचने लगती है कि अन्य लड़कियां तो बहुत ही आकर्षक हैं और उनकी तुलना में लोग कहीं उसकी हंसी तो नहीं उड़ाएंगे। यह सोचकर वह सकपका जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि गाने की जो भी तैयारी वह घर से करके ले जाती है, वह सब गड़बड़ा जाती है। लेकिन घर पर अपने लोगों के बीच वह ठीक से गाती है और वहाँ सभी उसके गायन की प्रशंसा करते हैं। बस मंच पर जाने के समय ही वह अपनी सारी प्रतिभा गंवा बैठती है।

गाल्फर्ड ने उसकी बातें बहुत ध्यान से सुनीं, फिर अत्यंत स्नेह से बोले, बेटी। संगीत का अपना सौंदर्य होता है। जो उस सौंदर्य का रस पीने आते हैं, वे गायक या गायिका का रूप नहीं देखते। फिर भी तुम ऐसा करो कि रोजाना एक बड़े शीशे के सामने खड़े होकर अपनी छवि निहारो और ऐसा करते हुए गीत गाओ। इससे तुम्हारी झिझक अपने आप खत्म हो जाएगी और यह भी समझ में आ जाएगा कि संगीत की मधुरता और संगीतकार के रूप का आपस में कोई संबंध नहीं है। दर्पण के सामने तुम खुद महसूस करोगी कि जब तुम भाव विभोर होकर गाओगी तो तुम्हारा आकर्षण बहुत बढ़ जाएगा और तुम्हारी कुरूपता की बात कोई सोच भी नहीं सकेगा।

लड़की ने अपने गुरु गाल्फर्ड की सलाह पर अमल करना प्रारम्भ किया। इससे उसमें नया साहस और उत्साह उत्पन्न हुआ और बड़े आत्मविश्वास के साथ धीरे-धीरे उसने संगीत के क्षेत्र में इतनी प्रगति की कि वह फ्रांस की प्रख्यात गायिका मेरी वुडलनाल्ड के नाम से विश्वविख्यात हुई।

१५९४) बदला - सन १९३३ की बात है। पंजाब रेजीमेंट तथा सैपर्स एंड माइनर्स की टीमों के बीच हॉकी का मैच चल रहा था। पंजाब रेजीमेंट का एक खिलाड़ी अपने आकर्षक खेल से सब दर्शकों की आंखों का तारा बना हुआ था। इससे विपक्षी टीम के एक खिलाड़ी के मन में ईर्ष्या की भावना आ गई और उसने मौका पाकर उस खिलाड़ी के सिर पर प्रहार कर दिया। उस घायल खिलाड़ी को बाहर ले जाया गया। मगर अगले ही कुछ मिनटों में सिर पर पट्टी बांधे वह खिलाड़ी मैदान में हाजिर था। आमना-सामना होने पर उसने प्रहार करने वाले खिलाड़ी से कहा- तुम देख लेना, मैं बदला लिये बिना नहीं रहूंगा। यह सुनकर उस खिलाड़ी के मन में यह डर बन गया कि वह खिलाड़ी भी उस पर हॉकी से चोट करेगा, अत: वह संभलकर खेलने लगा। उस खिलाड़ी का सामना होने पर इसी बात का ध्यान रखता कि उस पर कहीं उसका प्रहार न हो जाए। इधर उस घायल खिलाड़ी के चेहरे पर एक दृढ़ निश्चय का भाव झलक रहा था। उसके खेल में और भी निखार तथा पैनापन आ गया। देखते-देखते उसने विपक्षी टीम पर एक के बाद एक करके छ: गोल कर दिए। खेल समाप्त होने पर वह घायल खिलाड़ी विपक्षी खिलाड़ी के पास जाकर बोला- तुमने मुझ पर वार करके मुझे बदला लेने के लिए मजबूर कर दिया। इसी बदले की भावना से मैंने छ: गोल किये और इस तरह अपना बदला पूरा किया। यदि तुमने मुझ पर प्रहार न किया होता तो शायद मैं दो गोल से ज्यादा न करता। उसका लज्जा से सिर झुक गया। वह घायल खिलाड़ी ध्यानचन्द आगे चलकर हॉकी के जादूगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१५९५) असफलता में सफलता - सदियों तक किसी को मालूम ही न था कि कालीसियम के उस अति सुन्दर और टिकाऊ प्राचीन भवन को किसने बनाया था। फिर एक दिन सत्रहवी सदी में, खुदाई करने वालों ने रोम के खंडहरों को खोदते हुए, एक संगमरमर का स्तम्भ पाया। उससे सदियों का भेद खुल गया। इस पर खजूर और ताड़ की खुदाई थी-जो शहादत के चिन्ह थे। शीर्षक में एक आदमी की, जिसका नाम गोडेन्टियस था, प्रशंसा की गयी थी और उल्लेख किया गया था कि कालीसियम का वही निर्माता था और दर्दभरा कमाल यह था कि वही इसका पहला शहीद था। इसमें लिखा था- सीजर ने तीन बड़े पुरस्कार देने का वादा किया था, किन्तु वह मूर्तिपूजक, झूठा और अकृतज्ञ था। वह जो स्वर्गे का महान कृतिकार है और जिसका कोई वादा झूठा नहीं होता उसने तुम्हारे सद्गुणों के पुरस्कार स्वरूप दिव्य नगर की अमर

रंग-शाला में तुम्हारे लिए जगह बना रखी है। संसार की आंखों में एक बार का सफल गोडेन्टियस असफल साबित हो गया था, मगर ईश्वर की निगाह में ऐसा नहीं है। उसने अपने जीवन में अपने एक बड़े उद्देश्य को सिद्ध कर दिया- ईश्वर के लिए जीना और मरना असली असफलता तभी आती है, जब हम अपने आदर्श उद्देश्य और सिद्धान्त भूल जाते हैं, और उस रास्ते से भटकने लगते हैं जिससे उनकी प्राप्ति की मंजिल तक पहुंच सकते हैं।

१५९६) प्राइवेसी- सुनोजी, अपना बेटा मोहित अब बड़ा हो गया है। अब वह सब कुछ समझने लगा है। आप तो जानते हैं कि आजकल दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम बच्चों के साथ बैठकर नहीं देखे जा सकते। इसी वजह से मैं इन दिनों अपने मनपसंद कार्यक्रम नहीं देख पाती हूं। मेरी मानो तो मोहित के कमरे में अलग दूरदर्शन लगवा दो ताकि हम अपने पसंदीदा कार्यक्रमों का लुत्फ उठा सकें। मीरा अपने पति रमेश को समझाते हुए बोली। तुम ठीक कहती हो मीरा, बड़े होते बच्चों से गोपनीयता बनाए रखना बहुत जरूरी है। रमेश ने अपनी पत्नी का समर्थन करते हुए कहा। अगले ही दिन रमेश ने अपने बड़े बेटे के कमरे में नया दूरदर्शन सेट लगवा दिया। अब पति-पत्नी बड़े इत्मिनान से देर रात तक अपने पसंदीदा कार्यक्रम का लुत्फ उठाते। एक रात जब दूरदर्शन देखने के बाद मीरा सोने की तैयारी कर रही थी कि अचानक उसने मोहित के कमरे से कुछ आवाजें सुनी। जिज्ञासावश मीरा दबे पांव उसने कमरे की ओर गई। कमरे के अंदर झांका तो अंदर का नजारा देखकर उसके पांवों तले से जमीन निकल गई। मोहित दूरदर्शन पर अश्लील फिल्म देखने में मग्न था। मोहित तुम? मीरा के मुंह से केवल इतना ही निकला। सहसा मां को अपने सामने देख मोहित का चेहरा भय और शर्म से पीला पड़ गया। शर्म से उसकी नजरें जमीन में गड़ी जा रही थी। अब मां-बेटा एक दूसरे से नजरें नहीं मिला पा रहे थे। गोपनीयता के आधुनिक विचार ने उनकी पलकों को भारी कर दिया था।

१५९७) दुर्भाग्य से टक्कर- जापान में आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व हवाना होकीची नामक एक बालक का जन्म हुआ था। सात वर्ष की आयु में चेचक के कारण उसकी आँखों की रोशनी चली गई। होकोची ने हिम्मत नही हारी। ६३ इंच शरीर में से दो इंच की दो आँखें चली गईं तो क्या हुआ इकसठ इंच का शरीर तो है। होकोची एक सौ एक वर्ष तक जिन्दा रहा। किशोरावस्था तक वह केवल पढ़ता रहा इसके बाद पढ़ाने का कार्य करने लगा। बदले में अपनी पुस्तक पढ़वा कर ज्ञान अर्जित करता था। आजीवन उसने इस अध्ययन को जारी रखा। उसके मस्तिष्क में संगृहीत अति उपयोगी ज्ञान को एक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था ने लिखाया और उसके आधार पर एक विश्वज्ञान कोश दो हजार आठ सौ बीस खण्डों में प्रकाशित किया गया। विश्व के इतिहास में इससे बड़ी और इससे अधिक तथ्यपूर्ण पुस्तक सम्भवत: कोई भी नहीं छपी।

१५९८) तीन से चार भले- एक संन्यासी थे, जो बड़े ही दयालु, विनम्र और परोपकारी थे। वे भगवान राम के भक्त थे तथा हर वक्त मेरे राम, करो कल्याण गुनगुनाते रहते थे। एक बार वह भूल से आधी रात को ही सुबह समझकर स्नान करने चल दिये। संयोगवश उसी समय तीन चोर भी चोरी करने निकले थे। उन चोरों ने जब स्नान करके लौट रहे संन्यासी को देखा तो समझै कि वह भी कोई चोर है।

तीन से चार भले की सोचकर उन्होंने संन्यासी को घेर लिया। संन्यासी का हुलिया देखकर एक ने कहा- वाह भाई, क्या बढ़िया स्वांग रचाकर धंधे पर निकले हो। तुम पर तो किसी को शक भी नहीं होगा।

शक कैसा, भाई ? मैं तो राम भक्त संन्यासी हूं। मेरे राम करो कल्याण।

अच्छा नाटक कर लेते हो। हम मानते हैं कि तुम हम सबके उस्ताद हो, तभी तो अकेले चोरी करने निकले हो। क्यों न तुम हमारे साथ मिलकर काम करो ? दूसरे चोर ने कहा।

मेरे राम करो कल्याण। अरे भाई मैं चोर नहीं संन्यासी हूं। संन्यासी ने काफी समझाने की कोशि की। पर वे चोर तो उन्हें संन्यासी मानने को तैयार ही नहीं थे। मजबूर होकर संन्यासी को भी उनके साथ चलना पड़ा।

उन चोरों ने एक सेठ के घर सेंध लगाई और संन्यासी को साथ लेकर घर में घुस गये। दो चोर तिजोरी तोड़ने एक अलग कमरे में गये और तीसरा चोर संन्यासी के साथ एक अन्य कमरे में चला गया। वहां पर रेशम और मखमल के ढेरों कीमती वस्त्र पड़े थे। वह चोर उन्हें समेटने में जुट गया। इधर संन्यासी की नजर भी अपने मतलब की चीज पर गई। वह चीज थी एक कोने में स्थापित भगवान राम की मूर्ति। संन्यासी ने शीश झुकाया और पालथी जमाकर मूर्ति के आगे बैठ गया।

जब उनके साथ आये चोर ने उन्हें वहां बैठा देखा तो फुसफुसाया- अरे वहां क्यों बैठ गया ? इधर आकर मेरा हाथ तो बंटा।

पर संन्यासी को तो राम धुन लग चुकी थी। उन्होंने चंदन घिसा तिलक लगाया। धूप-दीप जलाकर राम जी को जगाने के लिए वहां रखा शंख उठाया और जोरों से बजाया। पूंहू-हू की आवाज उस घर में ही नहीं, सारे मोहल्ले में फैल गई। उनके साथ आया चोर अपनी गठरी छोड़, दूसरे कमरे में अपने बाकी दोनों साथियों के पास पहुंच गया। वे तीनों घबरा गये कि अब क्या होगा ? तभी उन्हें संन्यासी का स्वर सुनाई दिया- मेरे राम, करो कल्याण।

संन्यासी चिमटा बजाते हुए जोरों से गुनगुना रहे थे। आवाजें सुनते ही घर के लोग तथा सेवक जाग गये। सबसे पहले वे उस कमरे में पहुंचे, जहां संन्यासी जी बैठे गुनगुना रहे थे।

अरे आप यहां कैसे ? सेठ जी ने पूछा तो संन्यासीजी बोले- सब रामजी की महिमा है। साथवाले कमरे में तीन चोर साथी है। उनसे कहो कि मैं पूजा शुरू करनेवाला हूं। यहां आकर मेरा साथ दें।

अब सबको माजरा समझ में आया। उन चोरों को तुरंत पकड़ कर बांध दिया गया। घर के लोग खुशी-खुशी संन्यासी के साथ पूजा में शामिल हुए। चोर बेचारे सिर पटक रहे थे और इधर संन्यासी मजे से गा रहे थे- मेरे राम करो कल्याण।

१५९९) जहां चाह वहां राह- विक्रमगढ़ में राजा विराट राज्य करते थे। वे बहुत ही दयालु एवं न्यायप्रिय राजा थे। प्रजा के हर सुख-दु:ख का पूरा ख्याल रखते। प्रजा के कष्टों को जानने के लिए वे अपने प्रधानमंत्री हिमांशु के साथ रात्रि में भेष बदलकर घूमने निकला करते थे।

एक दिन अपने नियम के अनुसार राजा विराट अपने प्रधानमंत्री के साथ घूम रहे थे। वे घूमते-घूमते राजधानी से दूर एक गांव में पहुंचे। वहां उन्हें एक झोपड़ी दिखाई दी, जिसके अंदर से दो लोगों के बीच बातचीत होने की आवाज आ रही थी। राजा विराट वहीं पर ठिठक गए। फिर वे दोनों आगे बढ़कर अंदर का दृश्य देखने की कोशिश करने लगे। धार के पिछवाड़े की तरफ एक खिड़की थी, जो खुली हुई थी। उससे अंदर का दृश्य साफ-साफ नजर आ रहा था। दीपक की टिमटिमाती लौ में ही राजा एवं प्रधानमंत्री ने उस खिड़की के सहारे पूरे घर का मुआयना कर लिया। वे अब तक समझ चुके थे कि ये दोनों मां-बेटा हैं और इनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही जर्जर है।

बेटा, शहर जाकर तुम पढ़ाई करना चाहते हो। यह तो मेरे लिए खुशी की बात है, पर बेटा।

पर क्या मां, यही न कि हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं।

हां बेटा। तुम तो जानते ही हो कि मैं दाई का काम गांव के लोगों के घर में कर तुम्हें हर संभव पढ़ाई-लिखाई करने में सहायता की पर, शहर में पढ़ाई करना बहुत खर्चीला है। हम बदनसीब-गरीबों के भाग्य में पढ़ाई नहीं लिखी है, बेटा। मैं यह मानती हूं कि तुम्हें पढ़ने का बहुत शौक है। पढ़ाई के प्रति असीम लगन है और इसी के कारण तुमने हर परीक्षा में अव्वल स्थान प्राप्त किया। तुम्हें अपने प्रधानाध्यापक जगदीश बाबू का सहयोग मिला पर, हर जगह जगदीश बाबू जैसे लोग तो

नहीं होते। बेचारे मास्टर जी का पुत्र जिये हजारों साल, जिन्होंने तुम्हें हर संभव सहायता की। परंतु, मां उन्होंने ही तो हमें आगे पढ़ने करने की सलाह दी है और मां, अब मैंने भी ठान लिया है कि शहर जाकर मैं पढ़ाई करूंगा, जरूर करूंगा। इसके लिए मुझे कठिन मेहनत ही क्यों न करनी पड़े।

अरे हां, मैं तो बताना ही भूल गया कि मास्टर साहब के एक रिश्तेदार शहर में रहते हैं। उनका राज-दरबार में आना-जाना रहता है। वे हमें सरकारी कोष से पढ़ने के लिए मदद दिलवाने की कोशिश करने के लिए कहेंगे। मास्टर साहब कह रहे थे कि हमारे राजा बहुत ही दयालु हैं। वे हमारी सहायता अवश्य करेंगे।

हां रामू बेटा, उन्होंने ठीक ही कहा है। लगता है, हमारा भाग्योदय एक दिन जरूर होगा। अच्छा बेटा, अब सो जा।

अच्छा मां, तुम्हें भी तो जल्द ही उठना होता है। अगले दिन कुछ सैनिक उस बुढ़िया के घर पहुंचे। एक सैनिक ने कहा- बुढ़ियां मां, तुम्हें अपने बेटे के साथ राजा साहब ने राजदरबार में हाजिर होने को कहा है। लेकिन बेटा राजा ने हमें क्यों बुलाया है। कहीं मुझसे अनजाने में कोई अपराध तो नहीं हो गया। हम लोगों को यह सब मालूम नहीं। आपको अभी चलना होगा, हमारे साथ चलिए। सैनिक उन दोनों को ले राज दरबार में हाजिर हुए।

राजा ने कहा- रामू, तुम आगे पढ़ाई करना चाहते हो। हां राजा साहब। तो ठीक है। तुम्हें सरकारी सहायता जरूर मिलेगी परन्तु, तुम्हें अपनी पढ़ाई पूरी लगन एवं निष्ठा से करनी होगी। तब तक तुम्हारी मां इस राजदरबार में ही नौकरानी का काम करेगी। हमें मंजूर है मां-बेटा ने एक साथ कहा। और रामू ने मेहनत व लगन से हर परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। शिक्षा पूरी होने के बाद राजा ने उसे अपना मंत्री नियुक्त कर लिया। सच ही कहा गया है- जहां चाह, वहां राह।

१६००) दान- एक सेठ दान पुण्य के लिए हर रोज भंडारे का आयोजन करता था। उसमें गरीबों को खाना खिलाया जाता था। सेठ का अनाज का व्यापार था। हर साल अनाज के गोदामों की सफाई होती थी। उस समय घुन लगे हुए, बेकार, बिन बिके अनाज को इकट्ठा करके सेठ उसे पिसवाता था और उसी आटे का भंडारा साल भर चलता था। लेकिन इसकी जानकारी किसी को नहीं थी।

सेठ का एक बेटा था। उसकी शादी हुई। बहू आई। वह ईमानदार और समझदार थी। जब उसे मालूम हुआ कि उसके ससुर सड़े हुए गेहूं के आटे की रोटियों का भंडारा करके गरीबों को खिलाते हैं तो उसे बहुत दुख पहुंचा। उसने निश्चय किया कि वह इस पाप की भागीदार नहीं बनेगी। एक दिन जब सेठ भोजन करने बैठा तो बहू ने उनकी थाली में भी उसी आटे की रोटियाँ परोस दीं। सेठ ने समझा कि बहू ने कोई नया पकवान बनाया है, लेकिन जैसे ही मुंह में पहला कौर डाला, मिचली आने लगी। उसने उस कौर को थूक दिया और बहू से बोला, यह आटा कहां से आया। क्या घर में और आटा नहीं था ?

बहू विनम्रता से बोली, आटा तो बहुत है बाबूजी, लेकिन मैंने सोचा कि आप के अन्न सत्र में जिस आटे की रोटी बनती है उसी से घर में भी रोटी बनाई जाए। लेकिन बहू, वह आटा तो गरीबों के खाने के लिए होता है। तुम्हें उसकी रोटी बनाने की क्या जरूरत पड़ गई? सेठ ने पूछा। इस पर बहू ने कहा- पिताजी, मुझे बताया गया है कि परलोक में प्राणी को वही खाना मिलता है जो वह यहां भंडारे में गरीबों को खिलाता है। इसलिए विचार आया कि जब वहां आपको यही रोटियाँ मिलनी हैं, तो क्यों न अभी से आप को इसे खाने की आदत हो जाए। सेठ समझ गया कि बहू क्या समझाना चाहती है। उन्होंने उसी दिन अन्न सत्र का सारा बेकार आटा पशुओं को खिला दिया और गरीबों के खाने के लिए अच्छे गेहूं का आटा पिसवा दिया।

१६०१) चोरी का कारण- एक गांव के एक अमीर इंसान के घर में चोरी हुई। चोर उसके घर के सारे गहने लेकर भागा। गांव के सारे लोग चोर को पकड़ने में लग गए और उन्होंने चोर को धर दबोचा। चोर अपनी सफाई देता रहा, लेकिन

कोई उसकी बात सुनने को तैयार नहीं था। आखिर तय हुआ कि फैसले के लिए शाम के समय पंचायत बैठेगी। चोर को पंचायत के सामने एक पेड़ से बांध दिया गया और सब अपने काम के लिए निकल गए। शाम को पंचायत बैठी। चोर को लाया गया। अमीर आदमी भी आया। उसने अपनी शिकायत सबके सामने रखी कि इस आदमी ने मेरे घर में घुस कर गहनों की चोरी की। पूरे गांव की सहानुभूति अमीर के साथ थी।

चोर से जब अपना पक्ष रखने के लिए कहा गया तो उसने बुझे दिल से कहा- मैं क्या कहूं ? मैंने इनके घर चोरी की, क्योंकि मेरे घर में बच्चे भूख से तड़प रहे थे। कई दिनों से मुझे कोई काम नहीं मिला और आज भी मिलने के आसार नहीं थे। काम मांगने के लिए ही मैं इनके यहां गया था, लेकिन इन्होंने मुझे दुत्कार दिया। तभी इनकी पत्नी कहीं बाहर से आई। उन्होंने कई गहने पहने हुए थे। मेरे मन में ख्याल आया, काश। मेरे पास गहने होते तो उन्हें बेचकर मैं अपने बच्चों को भरपेट खाना खिलाता। काम नहीं मिला तो यही खयाल मेरे मन में बार-बार उठता रहा और आखिर मैंने चोरी की।

पंचायत ने जो फैसला सुनाया उसकी किसी को अपेक्षा नहीं थी। पंचों ने चोर को छह महीने की सजा दी और साहूकार को भी छह महीने की सजा दे दी। साहूकार हैरान हुआ। उसने पंचों से सवाल किया, इसने मेरी संपत्ति चुराई और आप मुझे ही सजा दे रहे हैं ? पंचों ने कहा, तुम्हारे पास इतनी संपत्ति जमा होना ही चोरी का बुनियादी कारण है। सजा तुम्हें इसी कारण दी जा रही है। तुम्हारे पास इतनी संपत्ति इकट्ठा हो गई है कि इस गाँव के बाकी लोग चोरी नहीं कर रहे हैं, यही आश्चर्य की बात है।

१६०२) खेल- किसी ने नाली पर एक बड़ा-सा पत्थर रख दिया था, जिसके कारण चार-पांच पड़ौसियों के बीच झगड़ा शुरू हो गया था। देखते ही देखते बात तू-तू, मैं-मैं से बढ़कर गाली-गलौज तक पहुंच गयी। तमाशा देखने के लिए भी कई लोग इकट्ठे हो गये। उस समय एक नेतानुमा आदमी वहां से गुजर रहा था। पड़ोसियों को इस तरह लड़ते-झगड़ते देखकर वह आगे आया। पूछा- क्या बात है ? आप लोग लड़ क्यों रहे हैं ? अजी जनाब, यह तो इस बेईमान से पूछिए। एक ने तिलमिलाते हुए कहा। बेईमान तू है कि मैं ? अपनी जीभ को काबू में रख। दूसरा भी उसी अंदाज में बोला।

अरे साहब, यह पत्थर आप देख रहे हैं न ? यही जड़ है इस झगड़े की। तीसरा बोला- इस पत्थर के कारण देखिए न, गंदे पानी का प्रवाह रुक गया है। अब सभी कह रहे हैं कि पत्थर उन्होंने नहीं रखा तो वे उसे उठाएं क्यों ? चौथा बोला।

अच्छा। तो यह बात है। आप लोग भी कैसे हैं कि एक छोटी-सी बात पर आपस में लड़ रहे हैं। उस नेतानुमा आदमी ने कहा। फिर उसने दो-चार मिनट तक लड़ाई-झगड़े से होनेवाली हानियों के बारे में एक छोटा-सा भाषण झाड़ दिया। लोग उसकी बात ध्यान से सुनने लगे। तब उसने नाली में पडे हुए पत्थर को वहां से हटा दिया। पत्थर हटने से झगड़ा समाप्त हो गया। लोग अपने-अपने घर चले गए। तब वह आदमी आगे बढ़ा। उसके चेहरे पर आत्मसंतोष की मुस्कान दिखाई दे रही थी। उसका खेल सफल हो रहा था। आगे जाकर उसने इधर-उधर देखा और चुपके से एक बड़ा-सा पत्थर लेकर दूसरी गली की नाली में रख दिया।

१६०३) बेटी का बाप- वो हमारे दूर के रिश्तेदार हैं। कल सुबह उनका फोन आया था। दुआ-सलाम के बाद कहने लगे- बेटी की शादी जल्दी से जल्दी करनी है। अपनी सुंदर नखराली बेटी से उन्हें कितना प्यार है, सभी जानते हैं।

एक-दो महिने पहले तो कह रहे थे कि विदेश भेजकर एम.बी.ए. करवाएंगे, फिर अचानक बेटी की शादी का ख्याल कैसे आया ? कहीं बेटी ने ही तो किसी को पसंद नही कर लिया ? अरे नहीं, बेटी तो बहुत समझदार है पर जमाना खराब है। कोई भी उसे बहका देगा। अपने जमाने में आपने कइयों से इश्क लड़ाया है और कईयों का दिल तोड़ा है। जब याद दिलाया तो उत्तर मिला- इसीलिए तो बेटी के लिए डर लगता है, बेटी का बाप जो ठहरा।

१६०४) आप तो देवता हैं - जबलपुर सांप्रदायिक दंगे की आग में झुलस रहा था। रात होते ही नगर में कर्फ्यू लगा दिया जाता था। नगर के एक मुसलमान सज्जन ए. एच. खान अपने एक रिश्तेदार को ट्रेन में बैठाने के लिए रेलवे स्टेशन गए। लौटने तक कर्फ्यू का समय हो गया। सड़कें सुनसान हो गईं। खान साहब भयग्रस्त होकर एक गली में मुड़ गए। वह एक महल का पिछवाड़ा था। वहां माथे पर तिलक धारण किए गले में कंठी डाले एक सज्जन टहलते दिखाई दिए। सज्जन ने खान साहब को बुलाया और बोले, मैं तुम्हारी चिंता समझ रहा हूं। तुम रात भर मेरे घर विश्राम करो। सबेरे कर्फ्यू उठते ही घर लौट जाना।

खान साहब झिझकते हुए रुक गए भोजन के बाद उन्हें शैया उपलब्ध कराई गई। सबेरे उठने पर उन्हें मकान मालिक ने जलपान कराया। खान साहब विदा होते समय बोले, आप तो साक्षात देव पुरुष हैं। मैं आपका कृतज्ञ हूं। वह गृहस्वामी जाने माने हिंदी साहित्यकार तथा सांसद सेठ गोविंददास थे। उन्होंने कहा, इस कृतज्ञता ज्ञापन की कोई बात नहीं है। हमारी सनातन संस्कृति में मेहमान को देवता कहा गया है।

१६०५) एनीबेसेन्ट की संस्कृति सेवा- एनीबेसेन्ट का जन्म आयरलैण्ड में हुआ। उनका बचपन इंग्लैंड में व्यतीत हुआ। सेवामय जीवन जीने के लिये उन्होंने भारत का चयन किया। ईसाई परिवार में जन्मी एनीबेसेंट को भारतीय संस्कृति भा गई तथा उन्होंने विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चलाकर जनसेवा की। उनके द्वारा स्थापित अडियार मद्रास (चैन्नई) में थियोसोफिकल सोसाइटी ने जहां जन चेतना जगाई वहीं काशी में सेंट्रल हिन्दू कॉलेज आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय में परिवर्तित हो गया। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जनजागरण किया। उन्होंने लम्बे समय तक अंग्रेजी में पत्र का प्रकाशन भी किया। शताधिक वर्षीया एनीबेसेन्ट की जीवनपर्यंत देश सेवा हमें भी वैसा ही बनने की प्रेरणा देती है।

१६०६) अनीति प्रोत्साहन का फल- बकुमार नामक एक दुर्दान्त दस्यु था। सिन्धुराज के राज्य में उसने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया था। हजारों निर्दोष लोगों की हत्या कर उसने अपार धन-सम्पदा लूटी। पकडे जाने पर राजा ने उसे मृत्युदण्ड दिया। दस्यु से मिलने उसके रिश्तेदार आए। माता को छोड़कर वह सबसे मिला। लोगों ने कारण जानना चाहा तो वह बोला बचपन में सबसे पहले जब मैंने स्वर्ण मुद्रा चुराकर माँ को लाकर दी तो उसने मेरी प्रशंसा की तथा पीठ थपथपाई। यदि उसी दिन मां मुझे डांटती तो आज मुझे यह दिन नहीं देखना पड़ता।

१६०७) अतीत की याद - किसी गांव में एक पुजारी रहता था। पूजा-पाठ से उसके घर का खर्च चलता था। लेकिन कुछ समय से उसकी जजमानी कम होने लगी थी क्योंकि गांव के ज्यादातर लोग शहर में नौकरी करने चले गए। जब घर का खर्च चलना कठिन हो गया तो एक दिन पुजारी ने भी शहर का रुख किया। वहां एक सेठ ने उसे अपना मुनीम बना लिया। सेठ के यहां पहले से दो और मुनीम काम कर रहे थे। पुजारी की ईमानदारी से प्रभावित होकर सेठ ने पुजारी को प्रधान मुनीम बना दिया। यह दूसरे मुनीमों को अच्छा नहीं लगा। वे पुजारी के खिलाफ षडयंत्र रचने लगे।

पुजारी रोज शाम को घर लौटने पर एक घंटा अपने कमरे में बंद रहता था। इस दौरान वह किसी को अंदर नहीं आने देता था। इसकी जानकारी जब दूसरे मुनीमों को हुई तो उन्हें लगा कि जरूर दाल में कुछ काला है। एक दिन उन्होंने सेठ से कहा, सेठजी, हम लोगों ने पुजारी को कमरे में बंद होकर रुपये गिनते देखा है। पहले तो सेठ को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन बार-बार यही शिकायत मिलने पर सेठ को भी शक हुआ। एक दिन दोनों मुनीमों को साथ लेकर शाम के समय सेठ पुजारी के कमरे पर पहुंचा। कमरा अंदर से बंद था।

सेठ ने आवाज दी लेकिन कमरा नहीं खुला। अंत में सेठ के कहने पर धक्का देकर किवाड़ खोला गया। सब लोगों ने अंदर पहुंचकर देखा कि पुजारी कमरे में ट्रंक खोल कर बैठा था। उसमें कुछ कपड़े और थोड़े पैसे थे। फर्श पर पुस्तकें पड़ी

थीं। अगरबत्ती जल रही थी। सेठ सब कुछ समझ गया। उसने अपने पुराने मुनीमों को नौकरी से निकाल देने का आदेश सुनाया। पुजारी बोला, इनका कोई दोष नहीं है। यह तो आपके कान का दोष है कि आप शिकायत की जांच किए बगैर यहां आ गए। मैं कमरे में बंद होकर अपने अतीत को याद कर लेता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूं कि मेरे अंदर गलत भाव पैदा न होने दें। जो अपने अतीत को बिसरा देता है, वही गलत रास्ते पर चलता है।

१६०८) समान व्यवस्था - बात उस समय की है जब संयुक्त प्रान्त के राज्यपाल सर हारकोर्ट बटलर थे। वह बहुत ही आरामतलबी थे जिसके कारण वे नवाब कहलाते थे। लखनऊ से प्रयाग आने पर राजभवन में ठहरते थे। उन दिनों पानी की थोड़ी कमी हो गई थी। पीने के पानी की कमी जनता में थी तो उनके नहाने के लिए कुण्ड कैसे भरते ? उस समय नगरपालिका अध्यक्ष पद पर टण्डन जी थे। अंगरक्षक उनके घर गए। वे छोटे से घर में टाट पर बैठे काम कर रहे थे। उन्होंने अंगरक्षकों की बात ध्यान से सुनी और निडर होकर बोले- जब मैं नगर निवासियों के लिए ही पीने के पानी की समुचित व्यवस्था नहीं कर पा रहा हूँ तब नवाब साहब के लिए नहाने के पानी की व्यवस्था कहाँ से करूँ ? व्यवस्था होगी तो सबके लिए होगी, मेरे लिए तो सभी समान है।

१६०९) पेशानी पे जो लिखा है वो पेश आयेगा- कह दो जिस मौत से तुम भाग रहे हो वो तुम्हें आकर रहेगी, फिर तुम हाजिर व गायब को जाननेवाले के पास लौटाये जाओगे, ईश्वर ने बिलकुल साफ कर दिया है कि मौत से बचने के लिए चाहे जितने ऊपाय किये जायें सब असफल हो जायेंगे, एक अखबार में आया था कि दमिश्क के एक नवजवान ने सफर के लिए टिकट बुक कराया, अपनी मां को बता दिया कि हवाई जहाज इतने बजे उड़ाने भरेगा इसलिए उस समय के मुताबिक नींद से जगा दे। फिर वो सो गया। मां ने खबरों में मौसम का हाल सुना कि हवाएं तेज हैं, और बादल घिरे हुए हैं, रेतीली आंधियाँ चल रही हैं, उसे अपने इकलौते बेटे पर तरस आया कि कहीं जहाज के सफर में कोई खतरा न हो इसलिए उस वक्त पर बेटे को उठाया ही नहीं, जब ये यकीन हो गया कि जहाज उड़ चुका होगा तब बेटे को जगाने आई लेकिन उसे बिस्तर पर मुर्दा पाया। कहावत है बचने वाला होता है उसे समन्दर में भी रस्ता मिल जाता है और जब मौत आ जाये तो कोई भी चीज मौत का कारण बन सकती है।

१६१०) नर्सिंग आंदोलन का जन्म - फ्लोरेंस नाइटिंगेल करुणा की प्रतिमूर्ति थी। उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य दीन दु:खियों की सेवा में निहित किया। उन्होंने नर्स का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहा। पहले पुरुष भी इस क्षेत्र में कम जाना चाहते थे तो महिलाओं का इस क्षेत्र में प्रवेश अकल्पनीय था। घरवाले भी उसकी शादी करना चाहते थे किन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रही। तैंतीस वर्ष की आयु में उन्हें अनुमति मिली। वह क्रीमिया के युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा करने चली गईं। उनके नेतृत्व में कई अन्य भावनाशील महिलाएं सेवा करने के लिए आगे आईं। अस्पतालों में महिला दल के सेवा करने से आशाजनक सुधार हुआ। मरने वालों की संख्या अस्सी प्रतिशत से घटकर पच्चीस प्रतिशत पहुंच गई। युद्ध समाप्त होने पर फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने नर्सों को शिक्षण देने के लिए एक विद्यालय खोला। नर्सिंग सेवा के क्षेत्र में उनके अविस्मरणीय योगदान को श्रद्धापूर्वक याद किया जाता है।

१६११) एक छोटी सी प्रार्थना - प्रख्यात कवि यूजीन फील्ड एक दिन रेस्त्रां में पहुंचे वह बहुत थके और ऊबे हुए थे। एक व्यस्त बेयरा ने जो देर न होने के लिए बेचैन था, जितनी जल्दी हो सका, भोजन सूची उनके सामने ला दी। फील्ड दु:खी होकर उसे देखते रहे और बोले, दोस्त मैं इनमें से कोई भी चीज नहीं चाहता। मुझे बस एक प्याला काफी और हमदर्दी के कुछ शब्द चाहिए। हर आदमी उस आनन्द के देने का माध्यम बन सकता है जिसकी मांग येसु हमारे दैनिक

जीवन में करते हैं। कोई आदमी चाहे तो अपने एक शब्द से, एक मुस्कान से, या एक जरा सा इशारे से दूसरे की जिन्दगी को रौशन कर उसे बदल सकता है। जरूरत है अपने दिल को बड़ा बनाने और सबको अपना समझने की। मेरे अन्दर कुछ थोड़ी दया होने दो, मेरी आँखें कुछ थोड़ी बन्द होने दो, ताकि अपने चारों तरफ के लोगों के दोष न देख पाऊं।

१६१२) गीतामय देवदत्त - देवदत्त शास्त्री काशी से अध्ययन कर अपने राज्य लौटे। लोगों ने परामर्श दिया कि अपने राजा विद्वानों का सम्मान करते हैं। उन्हें अपनी योग्यता का परिचय देकर राज्याश्रय प्राप्त करना चाहिए। राजा से देवदत्त ने कहा कि मैं आपको गीता भाष्य सुनाना चाहता हूँ। नरेश ने नम्रतापूर्वक कहा कि आप सात बार गीता पढ़कर आएं मैं फिर आपसे गीता सुनूंगा। शास्त्रीजी को बुरा लगा। पत्नी ने उन्हें समझाया कि राजा विद्वान है। उन्होंने कुछ सोचकर ही यह सलाह दी होगी। सात बार अध्ययन करके वे फिर राजा के पास आए। राजा ने फिर निवेदन किया कि आप पुन: गीता का सात बार चिन्तन करें। शुभचिन्तकों ने वैसा ही करने की सलाह दी। वे एकान्त में गीता पढ़ने लगे। धीरे-धीरे वे गीता के तत्त्वज्ञान से जुड़ने लगे। गीता-बोध होने पर हृदय में आनन्द प्रवाह उमड़ने लगा। वे अपने गीता-विक्रय के विचार पर पश्चाताप करने लगे। कुछ दिनों बाद राजा उन्हें ढूंढते हुए आए और बोले कि अब आप गीतामय हो गए हैं। मुझे गीता सुनाइए।

१६१३) कुसंग- रोम का एक चित्रकार एक ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाना चाहता था कि जिसके मुख से भोलेपन, सरलता और दीनता के भाव स्पष्ट प्रकट होते हों। वर्षों की खोज के बाद उसको एक ऐसा बालक मिल ही गया। चित्रकार ने उस बालक को बैठा कर उसका चित्र बनाया। उस चित्र की इतनी प्रतियां बिकीं कि चित्रकार मालामाल हो गया।

उसी चित्रकार के मन में उसके दस-पन्द्रह वर्ष बाद यह विचार आया कि किसी ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाया जाये कि जिसके मुख पर दुष्टता, क्रूरता और अपराधवृत्ति तथा स्वार्थलिप्सा फूटी पडती दिखाई दे। उसने ऐसे व्यक्ति की तलाश की तो वह कही नहीं पा सकता। अन्त में उसने कारागार में जाकर इस प्रकार के व्यक्ति की तलाश करने का निश्चय किया। चित्रकार ने कारागार में जाने की आज्ञा प्राप्त की और वह कारागार में जा पहुंचा। संयोग से उसको शीघ्र ही एक ऐसा व्यक्ति दिखाई भी दे गया। चित्रकार ने उससे कहा- मैं तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूं। मेरा चित्र ? क्यों ? बन्दी को कुछ भय सा लगने लगा। चित्रकार ने उसे अपना पहला चित्र दिखाया और फिर उसने उसका चित्र क्यों बनाना चाहता है यह बात भी स्पष्ट बताई। पहले चित्र को देखकर वह बन्दी फूट-फूट कर रो पडा। चित्रकार ने उसका कारण जानना चाहा तो बन्दी बोला- यह चित्र तो मेरा ही है। तो तुम इस दशा मे किस प्रकार पहुंच गये ? कुसंग मे पड़कर। बन्दी के पश्चात्ताप के अश्रु रुकते ही नहीं थे।

१६१४) सहनशीलता- आज से सौ वर्ष पूर्व तक अपने मत की पुष्टि के लिए अथवा किसी अन्य मत के खण्डन के लिए परस्पर शास्त्रार्थ हुआ करते थे। शास्त्रार्थ का अभिप्राय है, कि वे प्रतिद्वन्द्वी परस्पर शास्त्रों में से प्रमाण प्रस्तुत करके मतों का खण्डन किया करते थे, केवल जोर-जोर से बोल कर नही। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित विश्वनाथ शास्त्री अपनी विद्या में पारंगत थे। एक बार वे अन्य विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ में संलग्न थे। सभी लोग भले ही नही होते। शास्त्रीजी के विपक्षी जब पराजय का अनुभव करने लगे तो उनमें से उनके किसी साथी ने सूंघनी तमाखू की डिबिया खोली और उसे श्रीविश्वनाथ शास्त्री जी के मुख पर उंडेल दिया। शास्त्रीजी ने अपने मुख पर लगी सारी तमाखू को अंगोछे से भली प्रकार पोंछा और फिर बोले- यह तो कुछ क्षण के लिए प्रसंग के बाहर की बात हो गई, अब हम लोग अपने मूल विषय पर विचार करें। उन्होंने न क्रोध का प्रदर्शन किया और न किसी प्रकार का दुर्व्यवहार ही किया। यहां तक कि उन्होंने प्रतिरोध भी नहीं दिया। उसे सामान्य विषयेतर प्रसंग बताकर बात को आई गई कर दिया। जैसा कि ऊपर लिखा है, विपक्ष पराजित होने लगा था अत: प्रतिक्रिया में उनमें से एक ऐसा दुष्कर्म कर बैठा। परिणाम जो भी होता, किन्तु शास्त्रीजी की सहनशीलता ने विपक्ष को

तत्काल ही पराजित कर दिया। दूसरे पक्ष में जो वास्तव में विद्वान थे, उन्होंने नितान्त लज्जा का अनुभव किया और उन्होंने शास्त्रीजी से बार-बार क्षमा याचना की शास्त्रीजी ने भी बात को आई गई कर दिया, उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया। उस काल के लोगों में इतनी सहनशीलता और दानशीलता हुआ करती थी, किन्तु आज का वातावरण इसके सर्वथा विपरीत हो गया है।

१६१५) याद- ऊपर बालकनी में पहुंचकर उसने पश्चिम की तरफ नजर डाली। एक उदास शाम फिर रही थी। सूरज दूर पेड़ों के पीछे छिपने की तैयारी कर रहा था। उसे अपने पति अमित की याद आ गई, जो पिछले महीने एक साधारण सड़क दुर्घटना में मृत्यु का शिकार हो गया था। उसकी आंखों में नमी थी। उसे लगा जैसे अमित अभी आकर कहेगा, अरे पुष्पा, यहां क्यों खड़ी हो ? मैं कितनी देर से तुम्हारा नीचे इंतजार कर रहा हूं। किसी ने पीछे से पुष्पा को छुआ, उसने मुड़कर देखा। उसका सात वर्षीय पुत्र टिंकू था। मम्मी मुझसे याद नहीं होता। तुम्हीं कोई तरकीब बताओ। कल मेरा टेस्ट है। मैं जो भी याद करता हूं भूल जाता हूं। और मैं भूल नहीं पाती। मन ही मन पुष्पाने कहा और टिंकू को उदास मन से बाहों में भर लिया।

१६१६) नौकर का जवाब- एक राजा ने अपने न्यायाधीश की परीक्षा लेने के लिए उससे तीन प्रश्न पूछे- ईश्वर कहां है, वह किस दिशा में मुंह रखता है और क्या करता है ? न्यायाधीश उन उत्तरों की खोज में लग गया जिनसे राजा संतुष्ट हो सके। उसके बुद्धिमान नौकर ने उसकी परेशानी का कारण पूछा। न्यायाधीश से कारण जानकर उसने कहा, चिंता न करें। मैं राजा को संतुष्ट कर दूंगा। न्यायाधीश ने अपनी बीमारी का बहाना बनाकर नौकर को उत्तर देने के लिए भेजा। नौकर ने दरबार में जाकर राजा से कहा, प्रश्न पूछनेवाला शिष्य होता है और जवाब देनेवाला गुरू। मुझे गुरु का सम्मानित स्थान दिया जाए। राजा ने उसे अच्छे वस्त्र पहनाकर अपने सिंहासन पर बिठाया और स्वयं नीचे बैठते हुए बोला, अगर उत्तर संतोषजनक न हुए तो तुम्हें फांसी होगी। नौकर ने कहा, मंजूर है। पहले प्रश्न के जवाब में नौकर ने गाय मंगवाई और राजा से पूछा, गाय में दूध है ? राजा ने कहा, है। कहां- नौकर के यह पूछने पर राजा बोला, थन में। नौकर बोला, गलत, दूध गाय के सारे शरीर में है। फिर नौकर ने दूध मंगवाया और राजा से पूछा, क्या दूध में मक्खन है ? है, राजा ने कहा। कहां है ? इस सवाल पर राजा चुप रहा। नौकर ने कहा, परमात्मा मक्खन की तरह सारे संसार में व्याप्त है। जिस तरह दूध पाने के लिए भी गाय को दुहना पड़ता है इसी तरह ईश्वर को पाने के लिए भी हृदय को दुहना पड़ेगा। राजा संतुष्ट हो गया। दूसरे प्रश्न के जवाब में नौकर ने एक मोमबत्ती मंगाकर जलाई और पूछा, इसका प्रकाश किस दिशा में है ? जवाब न आने पर नौकर ने कहा, जिस प्रकार मोमबत्ती का यह प्रकाश प्रत्येक दिशा में समान है उसी प्रकार परमात्मा भी सभी दिशाओं में समान देखता है। तीसरे प्रश्न के जवाब में नौकर ने न्यायाधीश को बुलवाया। नौकर को सिंहासन पर बैठा देख न्यायाधीश चकित रह गया। तब नौकर ने कहा, ईश्वर निरंतर इसी तरह परिवर्तन करता रहता है वह नौकर को राजा बना देता है, राजा को भिखारी। राजा ने खुश होकर नौकर को ही न्यायाधीश बना दिया।

१६१७) यात्रियों से भरा एक जहाज समुद्र में जा रहा था। तभी उसके तल में छेद हो गया और उसमें पानी भरने लगा। उन यात्रियों में एक विद्वान भी था। वह शांत भाव से अपनी जगह पर बैठा रहा। यह देखकर एक यात्री ने उससे कहा, श्रीमान, आप अपनी आवश्यक वस्तुएं क्यों नहीं बांध लेते ? विद्वान ने कहा, मेरी आवश्यक वस्तु मेरे पास है। थोड़ी देर बाद जहाज डूबने लगा तो सभी यात्री समुद्र में कूद पड़े और तैरने लगे, मगर बोझ के कारण अधिक देर तक तैर न सके और एक-एक करके डूब गए। विद्वान अच्छा तैराक था और उसने कोई भी वस्तु अपने शरीर से नहीं बांधी थी। वह तट पर पहुंच गया। उसका आवश्यक सामान उसके साथ था, उसके भीतर। वह था उसका ज्ञान।

१६१८) अपना-पराया - हमारे सामने के बिस्तर पर एक मरीज आया। उसकी आंखों का ऑपरेशन हुआ था। साथ में उसकी देख-रेख करनेवाला कोई नहीं था।

नर्स तंग आकर खीझकर बोली- तुम्हारा कोई बेटा नहीं बाबा ?

आने को कहा था उसने।

कोई बेटी

बेटी ब्याह दी हमने। मेरी बहुत सेवा करती थी वह।

तब कौन तुम्हारे काम आएगा अभी ? मेरा बेटा। वह जरूर आ रहा होगा। उसका बेटा तो नहीं आया। हां उसके बेटे की जगह पर उसकी बेटी दौड़ी-दौड़ी पूछती-ढूंढती जरूर चली आई थी। उस मरीज को जब यह पता चला, तो खुशी से सहज ही बोल उठा- अब मैं समझा बेटी तू पराई नहीं, मेरी अपनी है और अपनी रहेगी। पराया तो मेरा बेटा हो गया है बेटी, मेरा बेटा।

१६१९) अनमोल रत्न- किसी शहर में एक गरीब विधवा रहती थी। उसके चार बेटे थे। वह छोटा-मोटा काम करके अपना और बच्चों का पेट पालती थी। उस समय राजा भेस बदलकर प्रजा की दशा जानने के लिए घर-घर घूमते थे। जब राजा को विधवा की निर्धनता का पता चला, तो वह उसके घर पहुंचे। उस समय घर पर वह अकेली थी, बच्चे गुरु के यहां पढ़ने गए थे। राजा ने उसे धन देना चाहा तो उसने कहा, मैं इतनी गरीब नहीं हूं। मेहनत-मजदूरी करके गुजारा कर ही लेती हूं, फिर मेरे पास तो चार अनमोल रत्न है। राजा ने आग्रह किया कि वह रत्न दिखाओ। उसने कहा, कुछ समय प्रतीक्षा करें, मैं आपको चारों अनमोल रत्न दिखा दूंगी। कुछ देर बाद चारों बालक हंसते हुए घर आए और मां के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया मां ने उन्हें रूखा-सूखा कुछ खाने को दिया। उन्हें दिखाकर उसने कहा, यही वे चारों अनमोल रत्न हैं। यह कहते हुए विधवा के चेहरे पर मुस्कान खिल गई। राजा ने उसके स्वाभिमान की मुक्त कंठ से सराहना की और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया।

१६२०) क्षमा कर दो- हारूण रशीद का पुत्र एक दिन क्रोध से तमतमाते हुए अपने पिता के पास आया। उसने कहा, आपकी सेना के एक अधिकारी के पुत्र ने झगड़ा हो जाने पर मुझे बहुत बुरी गाली दी है। आप उसे तुरंत दंड दिए जाने का आदेश दीजिए। हारूण रशीद के मंत्री तथा अन्य अधिकारी यह सुनकर संतुलन खो बैठे। किसी ने कहा, उस लड़के को तुरंत पकड़कर बुलवाया जाए तथा सरेआम फांसी पर लटका दिया जाए। दूसरे ने कहा कि उसे कोड़े लगाने के बाद देश से निर्वासित कर दिया जाए। वहां तरह-तरह के दंड सुझाए गए।

हारूण रशीद ने सबकी बात सुनी और पुत्र की ओर देखकर बोले, बेटा, अच्छा तो यह है कि तू उसे बेवकूफ समझकर क्षमा कर दे। किंतु यदि तुझमें इतनी उदारता न हो, तो तू भी उसे बदले में गाली दे दे, किंतु गाली देते हुए यह ध्यान रखना कि तेरी गाली उसकी गाली से बड़ी न हो। पिता की बात को सुनते ही पुत्र के चेहरे पर मुस्कान आ गई और मामला वहीं शांत हो गया।

१६२१) कल्याणकारी- एक बार एक राजा ने एक बंदी को फांसी की सजा सुनायी। बंदी सोचने लगा- जब मरना ही है तो डरना क्या? उसने महाराज पर गालियों की बौछार कर दी। राजा जानकर भी अंजान बन गया। उसने मंत्री से पूछा- बंदी क्या कह रहा है ? मंत्री ने विनम्रता से जवाब दिया- महाराज, यह कह रहा है कि जो क्षमा करना जानता है वह भगवान का प्रिय होता है। राजा ने तुरंत आदेश दिया- अरे। ऐसी बात है तो इसे तत्काल बाइज्जत रिहा कर दो। इसी दौरान पूर्व मंत्री से द्वेष रखनेवाले एक दूसरे मंत्री ने ऐन वक्त पर कहा- राजन। उसने सरासर झूठ कहा है। दरअसल, यह बंदी तो आपको भद्दी गालियां दे रहा था। राजा ने हैरानी से कहा- मंत्रिवर, आपकी सच्चाई से मुझे आपके सहयोगी मंत्री का झूठ

ज्यादा पसंद आया। चूंकि उसके झूठ में किसी का कल्याण छिपा है अर्थात् जीवनदान का आग्रह है, परंतु तुम्हारे सच में तो द्वेष का पहाड़ दिखायी दे रहा है, ईर्ष्या की नदी बह रही है।

१६२२) एक गांव में एक वृद्धा रहती थी। कहने को तो उसके दो पुत्र थे, लेकिन दोनों ही उसे गांव में अकेली मरने के लिए छोड़कर दूर शहर में जा बसे थे। वृद्धा दिन भर घूम-फिर कर इधर-उधर से भोजन इकट्ठा करती और किसी तरह अपना पेट भर लेती। उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगा था। वृद्धा जिस गली में रहती थी, उसके नुक्कड़ पर एक छोटा सा नाला था, जिसकी वजह से वहां कीचड़ हो जाता था। बरसात में तो और भी बुरा हाल हो जाता। एक रात वहां एक राहगीर का पैर फिसल गया। उसे काफी चोट लगी। वृद्धा ने देखा तो वह राहगीर को सहारा देकर घर ले आई और उसकी देखभाल करने लगी। वह ठीक हो गया। उस दिन से वृद्धा एक दीपक जलाकर नुक्कड़ पर रखने लगी जिससे वहां रोशनी हो जाती और राहगीर बचकर निकल जाते। वृद्धा रोजाना ऐसा करने लगी। उसे जीने की एक राह मिल गई। यही उसके जीवन का मकसद बन गया।

१६२३) अहंकार का दान - धार्मिक विचारों वाले एक राजा के पास कोई तपस्वी मिलने आए। राजा का मन मुदित हो गया। भाव विभोर होकर राजा ने तपस्वी से कहा; मेरी इच्छा है कि मैं आपके मन की कोई मुराद पूरी करूं। बतलाइए क्या उपहार दूं। तपस्वी ने द्वंद्व में पड़े बिना कहा- राजन, आप स्वयं अपने मन से अपनी कोई प्रिय वस्तु का उपहार मुझे दे सकते हैं, मैं क्या मांगू। राजा ने कुछ विकल्प तपस्वी के समक्ष पेश किए। अपने राज्य के समर्पण की इच्छा जाहिर की तो तपस्वी ने बताया कि वह तो जनता का है, आप तो उसके संरक्षक मात्र है। राजा को तपस्वी की बात जंची और उन्होंने दूसरा विकल्प रखा कि महल, सवारी इत्यादि तो मेरे ही हैं। आप इन्हें स्वीकार कर लें। तपस्वी ने हंसते हुए कहा कि ये भी जनता के ही हैं और आपको राजकाज चलाने में सुविधा के लिए उपलब्ध पेशकश रखी। अब तपस्वी ने कहा कि शरीर भी आपका कहां है, वह तो आपके बाल-बच्चों का है, इसे आप कैसे दे पाएंगे। राजा का असमंजस बढ़ गया था। फिर तपस्वी ने ही मार्ग सुझाया कि आप अपने मन का अहंकार दान कर दें। अहंकार ही सबसे सख्त बंधन है। अगले दिन से राजा ने अहंकार त्याग दिया उसे बाद उसने पाया कि उसे गहरी मानसिक शांति प्राप्त हुई है।

१६२४) दहेज की तैयारी- खुशी का उत्सव है आज। दरअसल बड़े भैया के घर लड़का जन्मा। दुनिया भर की खुशियां हमारी भाभी के आंचल में सिमट आईं। तमाम उपहार दिए जा रहे थे, दुआएं दी जा रही थीं। खुशी के इस माहौल को कतई अनदेखा नहीं किया जा सकता था। धीरे-धीरे रात ढलती चली गई। महफिल खाली होती गई। कमरे के एक कोने में उपहारों की भीड़ लगी थी। सोने का हार, सोने की अंगूठी, कपड़ा-लत्ता, खिलौने, खाने-पीने के लिए बर्तन। नेग में हजारों रुपये एकत्रित हो गए। मेरी गोद में मेरा छोटा भतीजा हंसते हुए हाथ-पांव फेंक रहा था। उसके होठों पर मासूम हंसी थी। उसे इतने सारे उपहार न भी मिलते, तब भी उसकी खुशी में कोई कमी नहीं आती शायद। हां, उसके मां-बाप को यह जरूर लगता कि उनका लड़का ठीक नक्षत्र में पैदा नहीं हुआ है। अपने भतीजे को गोद में लिए मैं मुस्करा रहा था, तभी दो वाक्यों ने मेरे मन को अशान्त कर दिया, अरे वाह रे मेरे लाल। देख तो इतने सारे रुपये और उपहार तुम्हें मिले हैं। जन्मा तो दहेज लेकर। अभी तो तेरी जवानी का दहेज बाकी ही है। मुझे लगा, लड़के के जन्मते ही दहेज की तैयारी शुरू हो गई है ? लड़के का महत्व पौरुष या आदमीयत से नहीं, उसके दहेज गुण से है। तब मैं कितना महत्वहीन हो गया था, क्योंकि दहेज नहीं लिया था मैंने।

१६२५) भजन गायक ग्वारिया बाबा- ब्रज के विख्यात संत ग्वारिया बाबा को एक वयोवृद्ध तपस्वी साधु ने प्रेरणा दी थी कि तुम संगीत की साधना करो। संगीत का अर्थ है नाद ब्रह्म की साधना। संगीत के माध्यम से ही तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होगी। कुछ ही दिनों में ग्वारिया बाबा संगीत शास्त्र में निष्णात हो गए। जब वह हारमोनियम बजाते

हुए भक्ति पद गाते, तो श्रोतागण सुध-बुध खो बैठते थे। एक दिन बुंदेलखंड के राजा ने बाबा से प्रार्थना की कि एक बार उनके दरबार को अपने चरणों से पावन करें।

कुछ दिन बाद बाबा राजमहल जा पहुंचे। राजा ने उन्हें स्वर्ण सिंहासन पर बैठाना चाहा, तो बाबा बोले, राजन, हम साधु हैं। सिंहासन पर आप ही शोभायमान होते हैं। बाबा जमीन पर पालथी मारकर बैठ गए। राजा भी उनके पास जमीन पर बैठ गए। बाबा ने हारमोनियम बजाते हुए एक भजन सुनाया। उपस्थित लोगों की आंखें कृष्ण प्रेम में सजल हो गईं। राजा ने बाबा को सोने की मुद्राएं भेंट करनी चाहीं। बाबा बोले, इन्हें श्री कृष्ण के सखा गरीब गोपों में बांट दीजिए। मैं इनका क्या करूंगा ? ग्वारिया बाबा के समक्ष सभी नतमस्तक हो गए।

१६२६) ... और वे तृप्त जीवन बिताने लगे- एक नगर में दो भिखारी आमने-सामने रहते थे। एक दिन दोनों एक दुर्घटना का शिकार हो गए, जिससे एक की आंखों की रोशनी चली गई और दूसरे की टांग काटनी पड़ी। अब एक अंधा तो दूसरा लंगड़ा।

दोनों असहाय, अधिक घूम-फिर नहीं पाते। परिणामस्वरूप बहुत कम भीख मिल पाती और प्राय: भूखे रहना पड़ता। एक दिन उन्हें एक युक्ति सूझी, लंगड़े ने अंधे से कहा- बंधु। तुम मुझे अपनी पीठ पर बिठा लेना। मैं तुम्हें रास्ता दिखाता चलूंगा और हम घर-घर जाकर अपना दुखड़ा सुनाएंगे।

अंधा मान गया। इस युक्ति से उनकी प्रारब्ध संवरने लगी और वे तृप्त जीवन बिताने लगे।

१६२७) भाषा की महिमा- रेलगाड़ी में चार यात्री यात्रा कर रहे थे। उनमें बंगाली, तमिल, एंग्लो-इंडियन तथा हिंदी भाषी थे तथा वे अपनी-अपनी बोली की विशेषता बता रहे थे। बंगाली महोदय, बांग्ला को सबसे मीठी बोली कह कर इसकी मधुरता का गुणगान करने लगे। तमिलनाडु के व्यक्ति ने तमिल की भाषा को बहुत प्राचीन बताया। एंग्लो-इंडियन भला कैसे चुप रह सकते थे। वह अंग्रेजी को सबसे अच्छी एवं सरल भाषा मानते थे। चौथे यात्री ने सबकी बातें सुनकर कहा, आप लोगों की बातें सही हैं, मगर आप बातें तो हिन्दी में कर रहे हैं। यह सुनकर वे तीनों एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

१६२८) सौजन्य की महिमा- एक बार की बात है कि काशिराज और कोसलराज अपने रथों में बैठ कर विपरीत दिशाओं से आ रहे थे कि सहसा मार्ग में दोनों के रथ आमने सामने आ गये। मार्ग संकरा था। जब तक कि कोई एक रथ मार्ग से इधर-उधर न हो तब तक कोई भी रथ आगे नहीं बढ़ सकता था। काशिराज के सारथी ने दूसरे रथवाले से कहा- देखों, मेरे रथ पर महाराज काशीनरेश हैं, तुम हमें रास्ता दो तो हम आगे निकल जायें। दूसरा सारथि बोला- नहीं, नहीं तुम मुझे रास्ता दो। तुम्हें ही मार्ग छोड़ना होगा, क्योंकि मेरे रथ पर कोसल के महाराज विराजमान है। दोनों असमंजस में। अन्त में एक ने कहा- जो राजा आयु में छोटा हो वह रास्ता छोड़ दे। यह बात दोनों को पसन्द आई। किन्तु फिर भी हल नही निकला। क्योंकि दोनों राजाओं की आयु समान ही थी। जिसका राज्य बडा हो, से प्रथम निकलने का अधिकार होना चाहिए। दोनों सारथियों ने इस बात पर समझौता किया। किन्तु इससे भी हल नहीं निकला। क्योंकि दोनों राजाओं का राज्य समान रूप से तीन सौ योजन ही था। दोनों ने फिर मार्ग ढूंढा कि जो अधिक सदाचारी हो, उसे प्रथम निकलने का अधिकार होना चाहिए।

तब कोसल नरेश के सारथी ने बतलाया- हमारे महाराज सज्जन के साथ सज्जनता का और शठ के साथ शठता का व्यवहार करते हैं। यह उनका महान् गुण है। काशिराज का सारथी बोला- तब तो मेरा रथ ही पहले निकलेगा। क्योंकि हमारे महाराज तो सद् व्यवहार से ही दूसरों के दुर्गुणों को दूर करते हैं। यह सुनकर कोसलराज ने स्वयं काशिराज के रथ के लिए मार्ग छोड़ने के लिए कह दिया। कोसलराज पर काशिराज की सुजनता का बड़ा प्रभाव पडा था।

१६२९) अनीति प्रोत्साहन का फल- बकुमार नामक एक दुर्दान्त दस्यु था। सिन्धुराज के राज्य में उसने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया था। हजारों निर्दोष लोगों की हत्या कर उसने अपार धन-सम्पदा लूटी। पकड़े जाने पर राजा ने उसे मृत्युदण्ड दिया। दस्यु से मिलने उसके रिश्तेदार आए। माता को छोड़कर वह सबसे मिला। लोगों ने कारण जानना चाहा तो वह बोला बचपन में सबसे पहले जब मैंने स्वर्ण मुद्रा चुराकर माँ को लाकर दी तो उसने मेरी प्रशंसा की तथा पीठ थपथपाई। यदि उसी दिन मां मुझे डांटती तो आज मुझे यह दिन नहीं देखना पड़ता।

१६३०) स्वाभिमान- बलीराम एक राजा के दीवान थे। वह भगवान कृष्ण की पूजा-उपासना करते थे और राजभवन पहुंचकर राजकाज देखते थे। राजा उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। राज दरबार का नियम था कि जब तक कोई अधिकारी या कर्मचारी राजा को प्रणाम न कर ले तथा राजा उसकी ओर देखकर बैठने का संकेत न कर दें, वह खड़ा ही रहता था। एक दिन दीवान बलीराम की ओर राजा ने देखा ही नही। उनके स्वाभिमान को चोट लगी। वह त्यागपत्र देकर घर लौट गए। उन्होंने अपनी तमाम संपत्ति गरीबों में बांट दी और स्वयं ब्रजभूमि की ओर प्रस्थान कर गए। राजा को पता लगा, तो उन्हें पश्चाताप हुआ। राजा उन्हें खोजते-खोजते वृंदावन पहुंचे। उन्होंने देखा कि बलीराम श्रीकृष्ण स्मरण में डूबे हुए हैं। राजा ने कहा, उस दिन तनाव में होने के कारण मैं आपकी ओर नहीं देख पाया। मुझे खेद है। आप मेरे साथ लौट चलिए। बलीराम ने उत्तर दिया, राजन, उस दिन आपका मेरी ओर न देखना मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ। अब श्रीकृष्ण ने मेरी ओर देख लिया है। अब मैं किसी दूसरे के आश्रय में कैसे रह सकता हूं ?

१६३१) ज्ञान मार्ग - सिकन्दरिया देश का राजा था टालेमी। वह यूक्लिड से भूमिती सीख रहा था। वह कठिन विद्या उसकी समझ नहीं आ रही थी। एक दिन वह परेशान होकर अपने गुरु यूक्लिड से पूछ बैठा क्या भूमिती सीखने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है ? यूक्लिड ने निर्भय होकर कहा राजन्। आपके राज्य में विशेष नागरिकों और आम नागरिकों के लिए राह भिन्न-भिन्न होंगी किन्तु ज्ञान मार्ग सबके लिए एक समान है। इसमें विशेष नागरिकों हेतु राजमार्ग की भांति अलग सुविधा नहीं है। एकाग्रता का अभ्यास का मार्ग। यह बात टामेली की समझ में आ गई। कठोर परिश्रम कर उसने भूमिती में निपुणता प्राप्त की। आगे चलकर टालेमी भी, अपने गुरु की भाँति ही, गणित का प्रकाण्ड विद्वान बना।

१६३२) सत्य की राह- बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. बिधान राय को बाल्यकाल से ही मानवीय सद्गुणों को अपनाने के संस्कार परिवार से मिले थे। एक अध्यापक मोटर दुर्घटना के सम्बन्ध में स्वयं को निर्दोष साबित करने के लिए बिधान से झूठी गवाही दिलवाना चाहते थे। उन्होंने झूठ बोलने से मना कर दिया। जो देखा वही कहा। अध्यापक ने नाराज होकर उन्हें अनुत्तीर्ण कर दिया। उन्हें चिकित्सा विज्ञान में एक वर्ष का समय खराब होना, झूठ बोलने की तुलना में कम लगा। अपनी प्रामाणिकता के कारण ही उनमें निखार आया।

१६३३) ईमानदारी की शक्ति- एक बार राजस्थान में भारी अकाल पड़ा। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची थी। लोग अन्न के लिए तरस कर रह गए थे। वर्षा का मौसम खत्म होने को था, लेकिन बारिश की एक बूंद जमीन पर नहीं गिरी। जमीन सूख कर पत्थर हो गई थी। वहां का राजा बहुत परेशान था। उसने कई तरह के अनुष्ठान और यज्ञ कराए, दान दिए, लेकिन वर्षा नहीं हुई। एक दिन किसी ने राजा से कहा, महाराज, इस नगर में एक व्यापारी रहता है। यदि वह चाहे तो वर्षा हो सकती है। राजा उस व्यापारी के पास गया और बोला, भाई, आप कोई उपाय कीजिए जिससे वर्षा हो जाए। व्यापारी हाथ जोड़कर बोला, महाराज, मैं एक साधारण आदमी हूं। भला मैं कैसे वर्षा करा सकता हूं। लेकिन राजा नहीं माना और वहीं अनशन पर बैठ गया और बोला, मैं यहां से तब तक नहीं जाऊंगा जब तक वर्षा नहीं हो जाती।

अंत में व्यापारी ने अपना तराजू उठाया। आंगन में खड़ा होकर आकाश की तरफ मुंह करके बोला, हे देवता, आप साक्षी हैं कि मैंने इस तराजू से कभी कम या ज्यादा नहीं तौला है। हमेशा ईमानदारी बरती है। यदि यह तराजू हमेशा सत्य और ईमान का सौदा ही तौलता रहा है तो हे देवराज इंद्र, मेरी और इस तराजू की ईमानदारी की रक्षा करो। वर्षा कराओ प्रभु। कुछ ही देर बाद आकाश में बादल मंडराने लगे और देखते ही देखते वर्षा शुरू हो गई। बहुत तेज बारिश हुई। यह देख कर राजा चकित हो गया और बोला, सेठ, मैंने न जाने कितने अनुष्ठान कराए, लेकिन इंद्र भगवान खुश नहीं हुए और वर्षा नहीं हुई। तुम्हारे एक शब्द में वह कौन सा जादू था कि देखते ही देखते धरती वर्षा से लबालब हो गई। व्यापारी बोला, महाराज हमारे अंदर वर्षा कराने की कोई शक्ति नहीं है। यह तो इस तराजू की ईमानदारी की शक्ति है। ईमानदारी के आगे भगवान भी झुक जाते हैं। महाराज आज लोगबाग अपने स्वार्थ के लिए सत्कर्म करना भूल गए हैं। ईमानदारी भूल गए हैं। यही समस्त दुखों और कष्टों का कारण है। इन सबका निवारण ईमानदारी है।

१६३४) सहयोग की भावना- देवताओं और असुरों में संघर्ष चलता रहता था। पहले दानव हावी होते, पर अंतत: देवता ही जीतते। एक बार दानवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया, हमें समझ में नहीं आता कि हमारे साथ यह पक्षतापूर्ण व्यवहार क्यों हो रहा है। हम दोनों आपकी संतान हैं। पिता पुत्रों पर सदा समभाव रखता है। पर आप तो पिता होकर भी हमारे प्रति सद्भाव नहीं रखते। आप सदा देवों का ही पक्ष लेते हैं।

ब्रह्मा ने एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने दानवों को समझाने के लिए एक विराट भोज का आयोजन किया। उसमें देव और दानव दोनों ही आमंत्रित थे। भोज में स्वादिष्ट व्यंजन परोसे गए। ब्रह्मा के आदेश से देवों और दानवों के हाथों में खपच्चियां बंधवा दी गईं जिससे कि उनके हाथ मुड़ न सकें। देवों और दानवों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार की गई कि वे एक दूसरे को देख न सकें। स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों को देखकर दानवों का मन ललचाने लगा, पर खपच्चियां बंधी होने के कारण वे खा नहीं सके, क्योंकि हाथ मुड़ते ही नहीं थे। बिना हाथ मोड़े वे मुंह में निवाले कैसे रख सकते थे। वे मन ही मन ब्रह्मा को कोस रहे थे। दूसरी तरफ देवताओं ने जब हाथ से खाने में खुद को असमर्थ पाया तो वे आमने-सामने बैठ गए और एक दूसरे के मुंह में भोजन डालते गए। इनका यह प्रयोग पूर्णरूपेण सफल रहा। सभी ने छककर खाया। असुर भूखे उठ खड़े हुए। क्रोध से भरे जब वे देवताओं की ओर आए तो उन्हें खाते देखकर हैरान रह गए।

ब्रह्मा ने असुरों से कहा, तुम सभी भूखे रह गए और देवताओं ने अच्छी तरह भोजन कर लिया। देवताओं और तुम में यही अंतर है। देवता एक दूसरे को सहयोग करते हैं। उन्हें केवल अपने पेट की नहीं, दूसरों के पेट की भी चिंता है, इसलिए वे सदा तुम लोगों से जीतते रहे हैं। तुम में देवताओं से अधिक शक्ति है, मगर सहयोग की भावना न रहने से तुम्हारी पराजय होती है। यदि तुम भी जीतना चाहते हो तो एक दूसरे का सहयोग करना सीखो। तुम्हारी विजय होगी।

१६३५) नास्तिक को शिक्षण- दो मित्र विपरीत विचारधारा के थे। एक मित्र आस्तिक था। उसका जीवन सादा, व्यक्तित्व में संवेदनशीलता का समावेश तथा कर्त्तव्य के प्रति समर्पण उसके विशेष गुण थे। उसके विपरीत नास्तिक विचारों वाले मित्र ने अपने जीवन का लक्ष्य अधिकाधिक धनार्जन कर भौतिक सुविधाओं को एकत्र करना बनाया। एक दिन नास्तिक ने अपने मित्र से कहा कि तुम्हारे त्याग की जितनी सराहना की जाए उतनी कम है। तुमने भगवान की भक्ति में सारी दुनियादारी छोड़ दी। आस्तिक बोला कि मित्र तुम्हारा त्याग तो और भी बड़ा है कि तुमने दुनिया के लिए ईश्वर को छोड़ दिया है। मित्र की बात का नास्तिक पर असर हुआ और उसने जीवन दिशा को बदलने का संकल्प किया।

१६३६) धीमी आवाज ही सुन सके, ऐसे कान चाहिये- पप्पा की आवाज में बच्चे की आवाज दबकर रह गयी और

बच्चा जीवन में मुरझाता चला गया। घंटे की आवाज में घंटी की आवाज दब गयी और धीरे-धीरे घंटी की आवाज बन्द हो गयी। पैसों की आवाज में प्रेम की आवाज दब गयी और दुनिया में प्रेम शक्तिहीन साबित होता गया। सफलता के कोलाहल में श्रेष्ठता की धीमी आवाज दबती चली गयी और श्रेष्ठता अपनी गुडविल खोती चली गयी। बुद्धि के पॉप संगीत में हृदय का शास्त्रीय संगीत आऊट ऑफ डेट हो गया। मुझे मेरे कानों को धीमी ही सुन सके, ऐसा बनाना है। है कोई उपाय?

१६३७) भूल का अहसास- एक बार एक राजा को किसी विदेशी राज्य से उपहार में कांच की तीन सुंदर मूर्तियां प्राप्त हुईं। ये मूर्तियां अपने आप में नायाब थीं। राजा ने उनकी देखभाल के लिए एक नौकर नियुक्त कर दिया। नौकर रोज उसकी सफाई करता और उन्हें चमका कर रखता। राजा का स्पष्ट आदेश था कि मूर्तियों की देखभाल में कोई कोताही न बरती जाए, इसमें जरा भी लापरवाही हुई तो कठोर दंड दिया जाएगा। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है। एक दिन सफाई के दौरान नौकर के हाथ से एक मूर्ति गिरकर टूट गई। राजा के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तत्काल नौकर को मृत्युदंड देने की घोषणा की।

नौकर को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। अगले दिन उसे फांसी होनी थी। नौकर बुद्धिमान था। वह बचने के उपाय ढूंढ रहा था। आखिरकार उसने रास्ता खोज ही लिया। उसने राजा से प्रार्थना की कि मरने से पहले उसकी अंतिम इच्छा पूरी की जाए। राजा ने पूछा, बताओ तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है। उसने कहा, मरने से पहले मैं उन दो मूर्तियों को हाथ में लेकर जी भर कर देखना चाहता हूं। राजा ने इसकी अनुमति दे दी। उसे उन मूर्तियों के पास ले जाया गया। उसने मूर्तियां हाथ में लीं और उन्हें फर्श पर जोर से पटक डाला। मूर्तियां चूर-चूर हो गईं। राजा ने जब यह सुना तो आपे से बाहर हो गया। उसने नौकर को बुलाकर उसकी इस हरकत के बारे में पूछा। नौकर ने बड़ी विनम्रता के साथ जवाब दिया, महाराज, इसके पीछे कोई दुर्भावना नहीं है। मैंने तो ऐसा करके दो लोगों की जान बचाने का काम किया है। आप किसी न किसी को इनकी देखभाल के लिए रखते और देखभाल के क्रम में उससे भी मूर्ति टूट सकती है। आप फिर उसे मृत्युदंड दे देंगे। लेकिन अब मूर्तियां ही नहीं रहीं इसलिए दो लोगों की जान बच गई। मैंने जीवन के अंतिम क्षणों में एक पुण्य कार्य करने की कोशिश की है। नौकर की इन बातों से राजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने नौकर को क्षमा कर दिया।

१६३८) हम ही नहीं पहचान पाते प्यार- मैं तब चार-पांच साल की थी। एक दिन खेलते-खेलते घर से दूर निकल आई और भटक गई। किसी ने मुझे अकेले रोते देखा, तो घर तक पहुंचाया। वहां ढूंढ-खोज मची थी। सब पूछने लगे- कहां चली गई थी ? बिना मम्मी से पूछे क्यों गई ? भालू पकड़ कर ले जाता तो ? तब यह सब तो समझ नहीं आया, लेकिन पिता का चेहरा देखकर डर गई। गुस्से में तमतमाया हुआ। मैं सहम गई। मम्मी की गोद में बैठी-बैठी सोचने लगी, पापा तुम इतने डरावने क्यों हो ?

तब स्कूल में पढ़ती थी। एक दिन अपनी एक सहेली के घर गई। पहले पढ़ाई की, फिर दूरदर्शन पर कार्टून फिल्म देखने बैठ गई, बस शाम हो गई। अचानक ध्यान आया, अरे घर में तो किसी को बताया ही नहीं। मैं भागी-भागी घर पहुंची। पर वही हुआ, जिससे डर रही थी। पिता का चेहरा आज और डरावना लगा। किसी तरह मां ने उन्हें शांत किया। दूसरे दिन स्कूल जाते समय पूरे रास्ते यही सोचती रही, पापा तुम इतने कठोर क्यों हो ? बच्चों की तनिक हंसीखुशी बर्दाश्त नहीं कर पाते।

पांच-सात साल और बीते, मैं कॉलेज में पढ़ने लगी। अब पहले की तरह डांट की ज्यादा परवाह नहीं करती थी। वही करूंगी, जो मन होगा। अपना अच्छा-बुरा समझ सकती हूं। कॉलेज से सब पिकनिक पर जा रहे हैं, शाम तक आ जाएंगे। सोचा, क्या जा पाऊंगी? जरूर जाऊंगी। मां को मनाया, पिता को भी आश्वस्त किया, शाम तक आ जाएंगे, अपना ध्यान रखूंगी, सब कहा। पर लौटते हुए बस खराब हो गई। ऐसी जगह कि फोन की भी कोई सुविधा नहीं। किसी तरह रात में ९

बजे बस ठीक हुई, तो घर पहुंची। लेकिन पिता का चेहरा कुछ ज्यादा ही विचित्र लगा-गुस्से में लाल नहीं, स्याह। मुझे बचपन का दृश्य याद आ गया। इसमें इतनी नाराजगी की क्या बात है ? बस खराब हो गई थी, कभी-कभी ऐसा हो जाता है। और सभी को देर हुई है, सिर्फ मैं ही तो देर से नहीं लौटी। बिस्तर पर लेटने के बाद बहुत देर तक यही सोचती रही, पापा तुम इतने तानाशाह जैसे क्यों हो। दूसरों की आजादी बर्दाश्त नहीं कर पाते।

कुछ साल बाद शादी हो गई। मैं पति के साथ हनीमून के लिए पहलगाम चली गई। मम्मी-पापा से रोज ही बात होती रहती थी, लेकिन बाद के दो-तीन दिन मौका नहीं मिला। सोचा, वैसे भी अब तो लौटना ही है। हंसते-खिलखिलाते जब वापस घर पहुंचे तो पिता का चेहरा फूल कर कुप्पा। फिर बचपन की याद आ गई। उनके व्यवहार पर हंसी भी आई और दया भी। हुंह कितने पॉजेसिव हैं, मेरी शादी हो गई, अब तो इन्हें शासन चलाने से बाज आना चाहिए। समय आगे बढ़ा। मैं मां बनी। वे मानों जीवन के सर्वोत्तम साल थे- बेटी का गोद में खेलना, फिर एक दिन गोद से जमीन पर उतरना, फिर घुटनों चलना, फिर पांव-पांव। बेइंतिहा खुशी होती थी उसे बड़े होते देखकर। जब थोड़ी बड़ी हो गई, पहले कुछ दिनों तक पार्क ले जाना पड़ता था, फिर खुद ही जाने लगी, जिस साल उसका स्कूल में दाखिला कराया, उसी साल से।

एक दिन खेलने गई तो बहुत देर तक नहीं लौटी। थोड़ी देर इंतजार करती रही, फिर खुद पार्क में गई। ज्यादातर बच्चे घर लौट चुके थे। पार्क सूना, कहां गई मेरी बेटी, कहीं दिख नहीं रही। मैं डर गई। मेरी रुलाई छूटने लगी। भागती हुई घर पहुंची, पति दफ्तर से आ चुके थे। दोनों खोजने निकले। तभी सामने से पड़ोस के एक सज्जन मेरी और अपनी बेटी को साथ लिए चले आ रहे थे। नजदीक आने पर बोले, माफ कीजिएगा, शायद यह बिना बताए ही मेरी बेटी के साथ चली आई थी।

हमने उन्हें धन्यवाद दिया। बेटी को लेकर घर लौटे। अचानक मेरी नजर बरामदे में लगे शीशे पर पड़ी और उसमें अपना चेहरा देख कर मैं चौक पड़ी। बिल्कुल, बिल्कुल वैसा ही काला, विकृत जैसे पच्चीस-तीस साल पहले पिता का देखा था। जैसे कुछ कौंधा हो दिमाग में, तो वह प्यार था उनका-अपने बच्चे की फिक्र, अकुलाहट। उस रात बेटी को सुलाते समय यही सोचती रही, पापा तुम हमें इतना प्यार करते थे। क्या-क्या सोचते रहे तुम्हारे बारे में, इतने साल हम ही नहीं पहचान पाए थे उसे।

१६३९) परमात्मा का भरोसा- रामलाल एक मंदिर के पुजारी थे। उनको परमात्मा पर पूरा भरोसा था। हर रोज मंदिर में दिन भर जो भी चढ़ावा आता, उसमें से अपनी जरूरत लायक सामग्री निकाल कर बाकी सब वह बांट देते थे। रात पूरा परिवार संग्रह मुक्त बनकर सोता था। दूसरे दिन फिर नए सिरे से दान-दक्षिणा प्राप्त हो जाती थी। सालों साल ऐसे ही चलता रहा। रामलाल को कभी किसी चीज की कमी नहीं हुई। ईश्वर पर उन्हें पूरा भरोसा था। लेकिन सब दिन एक से नहीं होते। एक दिन रामलाल बीमार हो गए। उस दिन भी जो कुछ प्राप्ति हुई उसे उनकी पत्नी ने नियमानुसार बांट दिया। लेकिन पति की चिंता थी। सोचा रात-बिरात अगर रामलाल को दवा की जरूरत पड़ी तो किसके पास मांगने जाएंगे। सो पांच रुपये बचाकर रख लिए।

रात गहराने के साथ-साथ रामलाल की बेचैनी भी बढ़ने लगी। आखिर उन्होंने अपनी पत्नी को बुला कर पूछ ही लिया। कहीं तुमने कुछ बचाकर रख तो नहीं लिया है ? मेरी सांस अटक रही है। मेरे और परमात्मा के बीच कुछ बाधा मालूम पड़ रही है। पत्नी पहले से ही बहुत घबराई हुई थी, उसने तुरंत बता दिया। कहा, मुझे क्षमा करना, मैंने पाँच रुपये बचा लिए हैं। रामलाल ने कहा, जीवन भर मेरे साथ रहकर भी यह नहीं समझ पाई कि जो भरी दोपहरी में देता है, वह आधी रात में क्यों नहीं दे सकता ? उसके लिए क्या कठिनाई है ? बाहर जाकर देखो, एक भिखारी द्वार पर खड़ा है।

रामलाल की पत्नी ने देखा, सचमुच आधी रात के समय द्वार पर एक भिखारी खड़ा था। उसने कहा, मैं रास्ता भटक

गया हूँ। रास्ते में डाकुओं ने मेरा सामान भी छीन लिया। अगर मुझे पाँच रुपये मिल जाएँ तो मैं अपने गाँव तक पहुँच जाऊं। रामलाल की पत्नी ने बचाकर रखे हुए पांच रुपये उसे दे दिए। रामलाल ने चादर ओढ़ी और सांस छोड़ दी, मानो परमात्मा और उनके बीच अब कोई बाधा न रही हो।

१६४०) कार्नेगी का समाज प्रेम- कार्नेगी के जीवन पर माता-पिता के परस्पर व्यवहार का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। पिता जुलाहे थे और उनकी माता धोबी तथा मोची की दुकान पर काम करने जाती थीं तब मुश्किल से घर-खर्च चलता था। माता-पिता दोनों में अगाध प्रेम के कारण अभाव उनके व्यक्तित्व विकास में आड़े नहीं आया। पढ़ने का अधिक सुयोग न बनने पर उसने तारघर में हकरारे की नौकरी कर ली। तार देने और ग्रहण करने की विद्या में भी पारंगत हो गया। परीक्षा में सफल होकर तार बाबू बन गया। कुछ दिनों बाद उसने एक जमीन कृषि फार्म के लिए खरीदी। सौभाग्य से कृषि फार्म की जमीन में तेल का कुआ निकल आया। अन्य व्यवसायों से भी उसकी आमदनी बढ़ी। उस आमदनी को वह एकाकी बच्चों के परिवार रूपी संगठनों को पल्लवित करने तथा साधनहीनों के विद्याध्ययन के लिए दान देता रहा। मरते समय कर्जदारों के कागजात जलाकर सबको ऋण मुक्त किया। उसने लगभग १५० करोड़ रुपये की राशि जनसेवा में खर्च की।

१६४१) जननी का स्वाभिमान- कवि डेनियल स्कूल से निर्धन छात्रों का मिलने वाली पुस्तकें लेकर घर आया। वह प्रसन्न नजर आ रहा था। घर आकर उसने उत्साह से माता को नि:शुल्क पुस्तकों के विषय में जानकारी दी। मां ने कहा पहले स्कूल जाकर पुस्तकें लौटाकर आओ। मैं मेहनत-मजदूरी करके तुम्हारी फीस और पुस्तकों का खर्च वहन कर सकती हूं। यह सुविधा उन विद्यार्थियों के लिए है जो सर्वथा असमर्थ है। हमें गरीबों का हक नहीं मारना चाहिए।

१६४२) अपना-अपना हिस्सा- स्टेशन की बेंच पर बैठा मैं भुजिया-रोटी खा रहा था। मुझे बड़ी शान से बैठ, खाता हुआ देख एक भूखा कुत्ता दुम हिलाता हुआ मेरे पैरों के पास आ बैठा और अपनी जीभ निकालकर भूख से हांफने लगा।

देखते ही देखते दो-तीन कुत्ते मेरी ओर आ जमे। मैं जितनी जल्दी-जल्दी रोटी का कोर मुंह में डालता जा रहा था, कुत्ता अपनी भूखी आंखें दिखाकर और भयभीत कर रहा था। लगा, अब या तब वह मेरे ऊपर कूद पड़ेगा और मेरे हिस्से की रोटियां अपने मुंह में डाल लेगा। भयभीत होता हुआ मैं जल्दी-जल्दी रोटियां तोड़ने लगा। मुझे ऐसा करता देख कुत्ता गुर्राने लगा। मेरी तो जान निकलने लगी। लगा, जान बचाने के लिए रोटी के कुछ टुकड़े उसके सामने फेंकने ही पड़ेंगे। विवश होकर मैंने दो-चार टुकड़े उसके सामने अलग-अलग फेंके ताकि सामने बैठा कोई भी भूखा कुत्ता मेरे ऊपर कूद न पड़े। अपने-अपने हिस्से के टुकड़े खाकर कुत्ते तृप्त भाव से चले गए।

मुझे उस समय ऐसा लगा कि मैं देश का पूंजीपति हूं और भूखे कुत्ते आम गरीब जनता। शायद मेरे हिस्से में कुछ हिस्से उनके भी थे, जिन्हें मैं हड़पता जा रहा था।

१६४३) भीख नही चंदा- एक कविता लिख रहा होता हूं मैं, तभी एक बुढ़िया भीख मांगने दरवाजे पर खड़ी हो जाती है। उसका एक छोटा-सा बच्चा भूख से रो रहा है। मेरे भैया दरवाजे पर खड़े हैं। बोलते हैं- मेरे पास देने को अभी कुछ भी नहीं है। बुढ़िया आगे बढ़ जाती है। थोड़ी ही देर बाद एक हसीन युवती सुंदर लिबास में हाजिर होती है और मनचले अंदाज में बोलती है- भैया, दो-चार रुपये चंदा दीजिए।

चंदा किस बात का ?

यह देखिए कागज, कई लोगों ने चंदा दिया है। यह चंदा हम बाढ़ में तबाह लोगों की राहत के लिए जुटा रही हैं।

भैया चंदे के नाम पर दो रुपये दे देते हैं। वह मुस्कुराती हुई आगे बढ़ जाती हैं।

HHH(५९१)HHH

भीख मांगने की अपेक्षा इस तरह झूठ बोलकर अपना धंधा कायम रखती है वह। और मैं उसे हर दरवाजे पर मुस्कुराते हुए पाता हूं। उसे देखकर कई लोगों की तन्हाई दूर हो गई है अब।

१६४४) कर्त्तव्य बोध- देव शर्मा नामक युवक को उसकी माता ने कठिनाइयों से पाला। वैधव्य के कारण माता-पिता दोनों की भूमिका माँ ने ही निभाई। सिद्धि पाने के लिए देव शर्मा माता को निराश्रित छोड़कर चला गया। उसका चीवर ले जाते दो कौए श्रापवश जलकर भस्म हो गए। यह देखकर उसमें साधना का घमण्ड आ गया। वह एक सद्गृहिणी के घर भिक्षा मांगने गया। भिक्षा देने में विलम्ब होनेपर वह क्रोध से भर उठा। गृहिणी बोली महाराज आप श्राप देना जानते है किन्तु मैं कौआ नहीं हूं जो भस्म हो जाऊं। जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया, कठिनाइयों से पाला उसे त्यागकर मुक्ति के लिए भटकनेवाले आप मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। यह सुन देव शर्मा को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा कि आप कौनसी साधना करती हैं। महिला बोली कर्त्तव्य साधना। देव शर्मा माँ की सेवा करने तुरन्त चल पड़ा।

१६४५) राष्ट्र की रक्षा राष्ट्र धर्म- वर्ष- १८५७ के स्वतंत्रता समर के दिन थे। रायबरेली के सलोन नामक स्थान पर रहनेवाले अंगरेज परिवार को पीछा कर रहे क्रांतिकारियों से खतरा अनुभव हुआ। अंगरेज अफसर अपने परिवार के साथ क्वालाकांचल के राजा हनुमंत सिंह की शरण में पहुंचा। राजा ने उस परिवार को शरण दे दिया। कुछ दिन बाद अंगरेज अफसर उनसे विदा लेने पहुंचा। उसने कहा, राजा साहब, जिस प्रकार आपने हमारे प्राणों की रक्षा की है, उसी प्रकार आप इन चोर, डाकुओं की बगावत को दबाने में हमारे शासन की मदद करें। राजा हनुमंत सिंह का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उन्होंने उत्तर दिया, शरणागतों की रक्षा हम भारतीयों का धर्म है। अपने देश की रक्षा करना हमारा राष्ट्र धर्म है। आप सकुशल चले जाएं। कुछ देर बाद मेरा पुत्र लाल प्रताप सिंह सेना लेकर अंगरेजों को लखनऊ जाने से रोकने के लिए अभियान पर जानेवाला है।

१६४६) तीन सखियाँ- बहुत समय पहले की बात है। एक हरा-भरा जंगल था। उसके बीच से कल-कल करती हुई नदी बहती थी। नदी के किनारे झाड़ियों के हरे घनेरे झुरमुट में तीन सखियां रहती थीं। जब तीनों इकट्ठा होतीं तो अपना-अपना रोना रोने लगतीं। उन्हें अपने शरीर को लेकर विधाता से शिकायत थी।

मुर्गी कहती- सखी देखो न, विधाता ने मुझे रूप रंग तो दिया परंतु उसके साथ आवाज ऐसी दी कि उसमें न तो मिठास है, न ही आकर्षण। कूकडूं कूं- कूकडूं कूं की आवाज बिल्कुल उज्जड़ और गंवारों जैसी लगती है। अगर कहीं मुझे विधाता मिल जायें तो मैं उसके साथ झगड़ा करूं और खूब खरी-खोटी सुनाऊं।

बत्तख भी रुआंसी होकर कहती- अरी सखियों, क्या बताऊँ तुम्हें, मेरे बनाने में तो विधाता ने अधूरा और अनाड़ीपन दिखाया है। शरीर तो दूध-सा उजला, साफ और चमकदार बना दिया लेकिन पैरों का बिल्कुल नास पीट दिया। मैं तेजी से जौड़ फिर भी नहीं सकती, छोटे-छोटे पैर और चपटे झिल्लीदार पंजे कितने भद्दे दिखाई पड़ते हैं। अगर विधाता ने मेरे पैरों को भी बगुले जैसी लंबाई और सुंदरता दी होती तो उसका क्या चला जाता ?

निराश हंसिनी कहती- तुम मानो न मानो पर मेरे साथ तो विधाता ने तुमसे भी ज्यादा अन्याय किया है। देखो न, उसने मेरी देह को कितने रोओं से भर दिया है। पता नहीं क्या सोचकर उसने ऐसा किया है। कोई उससे पूछे कि इस असह्य बोझ को लादने से क्या लाभ। इससे तो मुझे तकलीफ होती है। कोई भी शरीर से रोयें नोंचकर पीड़ा दे जाता है।

जब भी तीनों सखियां इकट्ठी होतीं, सबसे पहले अपनी यही राम कहानी दोहरातीं और विधाता को कोसती रहती थीं।

एक दिन विधाता अचानक पृथ्वी पर आये। जब वे उस जंगल से होकर गुजर रहे थे तो उन्होंने तीनों सखियों की बातें सुनी। विधाता ने हंसकर कहा- मेरे पास एक उपाय है तुम्हारी मुसीबत दूर करने का। तुम तीनों कल सवेरे उगते सूरज की

ओर मुंह करके खड़ी हो जाना और आंख मूंद कर अपनी जो इच्छा हो, कह देना। वह पूरी हो जायेगी।

अपने-अपने झुरमुटों में जाकर सुनकर तीनों बड़ी खुश हुईं और बेसब्री से सवेरा होने का इंतजार करने लगीं। जैसे ही सवेरे की किरणें फूटी, तीनों सखियां आंख मूंदकर पूरब की ओर मुंह करके खड़ी हो गईं और अपनी-अपनी इच्छा प्रकट करने लगीं। जब उन्होंने आंखें खोलीं तो देखा कि सबकी इच्छाएं पूरी हो गई थीं। मुर्गी अपनी बदली मीठी आवाज पर रीझ उठी। हंसिनी अपने शरीर से सारे रोएं गायब देखकर खुशी से फूली नहीं समाई। बत्तख तो अपने पतले लंबे पैरों को देखकर नाचने ही लगी।

हंसिनी छांव में खड़ी थी। उसे अचानक ठंड लगने लगी। ठंड से बचने के लिए वह धूप में आ गई, कुछ ही देर में गर्मी से उसका बुरा हाल होने लगा। हंसिनी सकपका गई। इससे पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। वास्तव में रोएं न रहने के कारण अब हंसिनी का शरीर गर्मी-सर्दी सहन करने के लायक नहीं रहा था। वह परेशान हो गई। उसे पता लग गया कि रोएं तो उसके शरीर की अहम् आवश्यकता थे। अब वह पछता रही थी।

मुर्गी ने बाहर खेलते बच्चों को नाश्ता पानी करने के लिए आवाज लगाई। बच्चों ने मां की आवाज पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि कूकडूं कू के स्थान पर टूं टूं ट्रिन ट्रिन - टूं टूं ट्रिन टू बोल रही थी परंतु जब उन्होंने अपनी मुर्गी मां को अजीब आवाज में बोलते हुए देखा तो घबरा गये। वे डरकर भागने लगे। यह देखकर मुर्गी परेशान हो उठी। उसे नहीं सूझ रहा था कि बच्चों को कैसे समझाये कि यह उसकी नई आवाज है। मुर्गी को अब एहसास हो गया था कि उसकी पहली आवाज में प्यार और स्नेह था जिसे बच्चे समझते और दौड़े चले आते थे। वह एक ओर खड़ी होकर पश्चाताप करने लगी।

उधर बत्तख कूदती-फांदती हुई नदी की ओर चल पड़ी। जैसे ही वह नदी में कूदी तो सन्न रह गई। तैरने में तो वह बिल्कुल ही असमर्थ थी। बहुतेरे पैर चलाये परंतु व्यर्थ। अब उसे समझ में आया कि अपने चपटे झिल्लीदार चौड़े पंजों के कारण ही वह तेजी से तैर पाती थी। अब तो वे रहे ही नहीं। जब शाम को तीनों सखियां इकट्ठी हुईं, बड़ी दु:खी थीं और पछता रही थीं।

हंसिनी ने आंखों में आंसू भरकर कहा- मेरे शरीर से रोएं क्या गायब हुए, मेरी तो जान पर ही बन आई हे। अब तो लगता है कि या तो मै ठंड से ठिठुर कर मर जाऊंगी या फिर गर्मी से झुलस जाऊंगी। काश, किसी तरह मुझे मेरे रोएं वापस मिल जायें।

मुर्गी भी कम दु:खी नहीं थी, बोली- मैं तो अपनी मनचाही आवाज पाकर पछता रही हूं। मेरे बच्चे तो मेरी बात ही नहीं समझते और मुझे बोलते देखकर डरे हुए हैं। कितना अच्छा होता तुझे मेरी वही आवाज वापस मिल जाती।

बत्तख बोली- मेरा भी बुरा हाल है। मेरे नये पैरों ने तो मुझे तैरने के आनंद से भी वंचित कर दिया। मेरे तो पुराने पैर ही भले थे। बेकार में ही बुद्धि फिर गई थी। काश। किसी तरह मुझे मेरे पैर वापस मिल जाते।

जब तीनों की बातें समाप्त हुई तो कहीं से आवाज आई- प्रकृति ने जो कुछ तुम्हें दिया है, सोच-समझकर दिया है। अब तुम्हें उसकी अहमियत का पता लग ही गया होगा। खैर, कल सवेरे तुम फिर से पूरब की ओर मुंह करके इच्छित फल मांग लेना।

अगले दिन तीनों सखियों ने आंख मूंदकर पूरब की ओर मुंह करके अपनी इच्छा प्रकट की। इच्छा पूरी हो गई।

हंसिनी अपने रोयेंदार शरीर को देखकर खुशी से नाचने लगी। मुर्गी कूकडूं-कूं, कूंकडूं-कूं चिल्लाकर बच्चों को बुलाने लगी और बत्तख पहले जैसे झिल्लीदार पंजोंवाले पैर देखकर नदी की ओर दौड़ पड़ी।

१६४७) मेहनत का संकल्प- स्कूल की छुट्टी होने के बाद मोनू खरगोश घर लौट रहा था। रास्ते में एक पेड़ के नीचे साधु के वेश में टोनू भेड़िया बैठा था। उसके आगे कुछ किताबें पड़ी थीं और कुछ अगरबत्तियां जल रही थीं।

टोनू भेड़िये ने जब मोनू खरगोश को देखा तो बोला, आओ-आओ लगता है तुम स्कूल से आ रहे हो ?

हां महाराज... मोनू खरगोश साधु को प्रणाम करता हुआ बोला।

बैठो, मैं तुम्हें परीक्षा में अच्छे नंबर लाने का ताबीज देता हूं। टोनू भेड़िया बोला।

मोनू खरगोश वहां रखे एक आसन पर बैठ गया। टोनू ने अपने झोले में से एक ताबीज निकाला और उसे मुट्ठी में लेकर कोई मंत्र बुदबुदाने लगा। फिर वह ताबीज मोनू खरगोश की बाजू पर बांधते हुए बोला, रोज सुबह-शाम इस ताबीज को अपने सामने रखकर अगरबत्ती जलाकर बैठ जाना, तुम पूरी कक्षा में ही नहीं, पूरे स्कूल में प्रथम आओगे।

मोनू, साधु को प्रणाम करके जाने लगा तो टोनू भेड़िया बोला, अरे तुमने दक्षिणा तो दी ही नहीं, ऐसे यह ताबीज काम नहीं करेगा। अच्छा-अच्छा मोनू ने अपने जेब में से दो रुपए का सिक्का निकाला और साधु के आगे रख दिया।

इतने से काम नहीं चलेगा, कम से कम इक्कीस रुपए दो।

लेकिन मेरे पास तो यही है।

कोई बात नहीं, बाकी के कल ले आना, मैं यही मिलूंगा। टोनी भेड़िया बोला।

ठीक है महाराज। मोनू खरगोश बोला ओर घर चला गया।

मोनू खरगोश रोज सुबह-शाम अपना कमरा बंद कर लेता और वह ताबीज सामने रखकर अगरबत्ती जलाकर बैठ जाता। तंत्र-मंत्र से पास होने के चक्कर में उसने पढ़ाई भी छोड़ दी थी।

कक्षा में जब अध्यापक जी उससे कोई प्रश्न पूछते तो वह उनका उत्तर नहीं दे पाता क्लास परीक्षा में भी उसके बहुत कम क्रमांक आते। मोनू के अध्यापकों ने उसे पढ़ाई में ध्यान देने के लिए कहा किन्तु मोनू पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

अर्द्धवार्षिक परीक्षाएं होनेवाली थीं। अब मोनू खरगोश दिन में ही वह ताबीज लेकर अगरबत्ती जलाकर बैठ जाता।

परीक्षाओं के बाद परिणाम सामने आया तो मोनू के सभी विषयों में बहुत कम अंक थे। मोनू के पिताजी बोले, तुम तो कमरा बंद करके खूब पढ़ाई किया करते थे, फिर इतने कम नंबर कैसे आए।

मोनू खरगोश की आंखों में आंसू आ गए। उसने साधु और ताबीजवाली पूरी बात पिताजी को बतला दी।

पिताजी बोले, बेटा जादू-टोना ताबीज सब व्यर्थ की बातें हैं। मेहनत करने से ही सफलता मिलती है।

मुझे माफ कर दीजिए पिताजी, इस ताबीज के चक्कर में मैंने उसे २१ रुपए भी दे दिये थे। मोनू खरगोश बोला।

कोई बात नहीं, वार्षिक परीक्षाओं में अभी समय है। तुम नये सिरे से पढ़ाई शुरू कर दो। मोनू के पिताजी बोले।

मोनू खरगोश ने कड़ी मेहनत करने का संकल्प लिया और उसी दिन से पढ़ाई में जुट गया।

१६४८) मेहनत का फल- पुराने जमाने की बात है। किसी गांव में एक धनी किसान रहता था। उसके पास बहुत जमीन थी। उसने अपने खेतों के लिए कई मजदूर रखे हुए थे। वह उन्हें नियमित मजदूरी देता था, इसके साथ ही उसने उन मजदूरों को अपनी कुछ जमीन भी दे रखी थी, ताकि उनमें वे अपनी मर्जी से अपने लिए कुछ भी उगा सकें। एक मजदूर ने अंगूर की बेल लगाई। उसमें बड़े मीठे अंगूर फलते थे। मजदूर बहुत मेहनती और ईमानदार भी था। उसने सोचा कि बगीचा तो मेरे परिश्रम की देन है लेकिन जमीन तो किसान की है इसलिए वह एक टोकरा अंगूर किसान के घर ले गया।

मीठा अंगूर खाकर किसान के मन में लोभ आ गया। उसने सोचा कि अंगूर की बेल तो मेरी जमीन पर है, क्यों न उस मजदूर को दूसरी जमीन देकर वह बगीचा मैं ले लूं। इससे मुझे मीठे अंगूर हमेशा खाने को मिलते रहेंगे। दूसरे दिन उसने अपनी मंशा मजदूर को बता दी और कहा कि वह उस बगीचे को छोड़ दे और उससे कहीं ज्यादा जमीन ले ले। मजदूर को बहुत दुख हुआ लेकिन वह करता क्या। उसने बगीचा छोड़ दिया। अब उस बगीचे की देखभाल किसान के दूसरे आदमी करने

लगे। बगीचे में खूब खाद पानी दिया जाने लगा लेकिन अंगूर की बेल मुरझाने लगी। किसान ने अलग से एक माली रख दिया, लेकिन तब भी कोई फायदा नहीं हुआ। किसान ने सोचा कि जरूर उस मजदूर ने टोना कर दिया है इसलिए बेलें मुरझा रही है। उसके कई अनुष्ठान किए, ओझा-पंडितों से झाड़ फूंक कराई। इसके बाद भी बेलें नहीं बढ़ीं। एक दिन उस रास्ते से एक महात्मा जी जा रहे थे। किसान ने महात्मा जी को रोक पूरा किस्सा बताया और बोला, स्वामी जी कोई उपाय बताइए। महात्मा जी बोले, भइया, इन बेलों में लोभ का कीड़ा लग गया है। इसमें चाहे कितना भी खाद पानी दे लो, कुछ नहीं होगा। किसान को सारी बात समझ में आ गई और उसने तत्काल वह बगीचा उसी मजदूर को दे दिया जिसकी मेहनत से मीठे अंगूर फलते थे।

१६४९) एक ओझा का- किसी गाँव में एक ओझा-तान्त्रिक रहते थे, वे भूत-प्रेत आदि बाधाओं को बात ही बात में भगा देते थे। एकबार इनके पास एक मनुष्य ने आकर प्रार्थना की- मेरे लड़के को भयंकर भूत लगा है, किसी प्रकार भी नहीं छोड़ रहा है लड़का मरनेवाला है। वह भूत कई लड़कों को मार चुका है। जङ्गल में एक नदी के किनारे पीपल के वृक्ष पर अपना निवास बताता है। ओझा ने कहा- चिन्ता मत करो, घरको चलो, जब मैं तुम्हारे घर पर जाऊँ, तब तुम मुझसे कहना कि महाराज। मेरे घर में दो-तीन दिन से बड़े-बड़े भारी भयमर राक्षसों ने आकर अड्डा जमा लिया है। वे कहते हैं कि अब हम लोग इस गाँव में किसी प्राणी या भूत-प्रेत को नहीं रहने देंगे। अब केवल लड़के के मरने का भय हमें नहीं है। उन राक्षसों से इस गाँव की रक्षा कीजिये। वह मनुष्य घर आया और ओझा के आने पर वही ओझा की सिखाई हुई बात कही। जिसे सुनकर भूत भयभीत हो गया और तुरन्त लड़केको छोड़कर भाग गया। इस प्रकार ओझा ने केवल बात बनाकर भूतका भगा दिया। बात बचावै प्राण इस पर-

१६५०) गुनी और पण्डित- सभी वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके एक पण्डित घर को आ रहे थे। वन मार्ग में उन्हें एक चतुर-गुणी का साथ मिल गया। परस्पर वार्तालाप में पण्डित ने अपनी प्रशंसा की। मैं सभी वेद-पुराण-यन्त्र-मन्त्र एवं तन्त्रों का विद्वान् हूँ। मृतक की हड्डी पड़ी हो तो भी मैं उसे जीवित कर सकता हूँ। इतने में कुछ सिंह की हड्डियाँ पड़ी मिलीं। पण्डितजी ने उन्हें एकत्र किया। जल को अभिमन्त्रित किया। उस जल में से थोड़ा-सा जल लेकर चतुर-गुणी पेड़ पर चढ़ गया। पण्डितजी ने हड्डियों पर जल छिड़का, सिंह जीवित हो गया और उसने झपटकर पण्डितजी को ही मार डाला। मांस खाकर रक्त पान कर दहाड़ता हुआ जंगल में चला गया। तब पेड़ पर से उतरकर उस गुणी पुरुष ने हड्डियों पर जल छिड़ककर पण्डितजी को जीवित कर दिया। पण्डितजी ने अपनी भूल स्वीकार की। चतुर ने चातुरी से स्वयं अपने और पण्डित के प्राण बचाये, अन्यथा दोनों मारे जाते। सत्य ही कहा गया है- एक ओर चार वेद एक ओर चातुरी।

१६५१) एक राजा और वैष्णव- एक राजा था, उसने किसी दिन कथा में श्रीमद्भागवतकी महिमा सुनी तो उसे पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई। उसने घोषणा की कि- जो विद्वान मुझे श्रीभागवत पढ़ा देगा उसे मैं आधा राज्य दे दूंगा। यह सुनकर एक बहुत बड़े विद्वानने आकर राजाको पहले व्याकरण पढ़ाया और फिर भागवत पढ़ाया। पुन: राजासे बोला कि अब आप आधा राज्य दीजिये। राजा ने कहा- मेरी समझ में नहीं आया। उस पण्डितने पुन: पुन: पढ़ाया पर राजा यही कहता रहा कि मेरी समझमें नहीं आया। अभी मुझे भागवत नहीं लगी। पण्डितजी ने कहा आपको राज्य का लोभ है। अत: आप देना नहीं चाहते हो। सभी श्लोकों का शुद्ध अर्थ करना तुम्हें आ गया है, फिर कैसे कहते हो कि भागवत नहीं लगी। राजा ने कहा- लगनेका अर्थ यह है कि मुझे ज्ञान-वैराग्य और भक्ति हो जाय। राज्य आदि की आसक्ति मिट जाय पर ऐसा नहीं हुआ। अन्तमें राजा ने अपनी जिज्ञासा एक वैष्णव-सन्त के सामने प्रकट की। उन्होंने कहा कि पण्डितली लोभवश पढ़ा रहे थे। दूसरे आपने हरि-शरणागत होकर वैष्णवता नहीं धारण की अत: आपको भागवत नहीं लगी। विष्णुदीक्षा विहीनानां

नाधिकार: कथाश्रवे। विष्णु-दीक्षाहीन को कथा सुनानेका अधिकार नहीं है। यह रहस्य जानकर राजाने सन्तसे दीक्षा ली और सन्तने निष्काम भावसे पढ़ाया। तब राजाको विशुद्ध-भक्ति प्राप्त हो गई। राजाने सम्पूर्ण राज्य सन्तके चरणोंमें समर्पित्त कर दिया, पर वे तो विरक्त थे अत: उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सन्तके साथ वनमें जाकर राजा भक्ति-परायण हो गया। श्रोता-वक्ता एवं पढ़ने-पढ़ने वालोंका एक-सा भाव होने पर सिद्धि प्राप्त होती है।

१६५२) एक वणिक- एक वणिक सज्जन थे, उनके कोई सन्तान न थी। किसी भैरव भक्तने कहा कि भैरवजीको बलिदान की मनौती मानो, तो तुम्हारे सन्तान होगी। वणिक ने मनौती मानी कि यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं भैंसे की बलि दूंगा। कालान्तर में पुत्र होने पर एक भैंसा लेकर वह भैरवजीके पास पहुँचा और बोला- लीजिये, अपनी बलि। जीव हिंसा हमारे कुलमें नहीं होती है। ऐसा कहकर भैंसेको भैरवजीकी पिण्डीमें कसकर बाँध दिया और प्रणाम करके घर चला आया। दोपहरको जब कड़ी धूप लगी तो एक ही झटकेमें भैंसेने भैरवकी पिण्डी उखाड़ ली और तालाबकी ओर भागा। तब हँसकर शीतलाजीने पूछा- भैरवजी। आज यह कौन-सी लीला कर रहे हो। भैरवजीने कहा- अभी आप किसी वणिकके पाले नहीं पड़ी हो अत: हँस रही हो। मेरी चाहे जैसी हालत हो, उस चतुर अहिंसक वणिक पर मैं क्रोध भी तो नहीं कर सकता हूँ। उसने अपना काम बना लिया, मुझे बलि भी दे दी और स्वयं हिंसासे भी बच गया। भक्तके भावसे आज निर्बल देवी जबर बकरा यह कहावत सच्ची हो गई। बलि बलिवान और बलिका भोक्ता मैं निर्बल हो गया। रातको भैरवजीने गाँवके मुखियाको स्वप्न दिया कि मैं तालाबमें हूँ, यहाँसे निकालकर यथा-स्थान मेरी पुन: स्थापना करो। आजसे मेरे यहाँ कोई किसी जीव की बलि नहीं देगा। इस प्रकार वणिक भक्तके द्वारा अहिंसा परमोधर्म: का प्रचार हो गया। हिंसा बन्द हो गयी, ऐसे होते हैं बनिया भगत।

१६५३) एक किसान- एक किसान रस्सी बनानेके लिए पलाशकी जड़ खोदने लगा तो उसे एक मोहरों से भरी हँड़िया मिल गई। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। काई और मिट्टी लगने से मुहरें चमक नहीं रही थीं। उसने सोचा कि नदीमें धोकर साफ कर लूं, उसके बाद बाजार में बेचकर पक्की हबेली बनवाऊँगा। दैवयोग से धोते समय हँड़िया हाथसे छूट गई और अथाह नदी में डूब गई तो उसे महान् दु:ख हुआ। पागल हो गया, घरको आया। स्त्रीने पूछा- ढाककी जड़ नहीं लाये। तो बोला- हाय। मेरी धोवतमें गई। इसी वाक्यको रटता हुआ इतस्तत: घूमने लगा। एकदिन उसका एक मित्र मिला। उसके पूछने पर सारी बात बताकर कहा- हाय मेरी धोवत में गई। मित्र को दु:ख हुआ कि इसे पास मुहरें रहतीं तो उसमें से सौ-पचास हमको भी मिल जातीं। उसने कहा- पाई तो धोई क्यों। वह भी उसीकी तरह पागल हो गया। दूसरे की न सुनकर अपनी ही धुनमें दोनों मतवाले रहते। इसी तरह जिसे प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है, वह प्रसन्नता से मतवाला हो जाता है, अपनी ही धुनमें मस्त रहता है, जो कोई उससे वार्तालाप करता है, उसकी भी वही दशा हो जाती है। इस छप्पयमें आये सभी भक्त प्रेमरंगमें रंग थे।

१६५४) एक राजा और कलाकार- एक कलाकारने एक राजा के दरबार में जाकर बहुत अच्छा राग गाया। सभी दरबारी वाह-वाह कह उठे। राजाने रीझकर कहा- मंत्रीजी। इन्हें एक हजार रुपये देना। बहुत अच्छा, कहकर कलाकार से बोला कल ले लेना। दूसरे दिन भी उस गायकने दरबारमें जाकर गाया और रुपये माँगे। उत्तर मिला कि रुपये तैयार हैं चाहे जब ले लेना। इस प्रकार वह गायक कई दिन तक गाता रहा पर उसे एक हजार रुपये नहीं मिले। तब उसने राजा से कहा। राजा बोला- कैसे रुपये ? तुमने गाकर मुझे क्षण-भरके लिए खुश कर दिया और मैंने तुम्हें एक हजार की बात कहकर खुश कर दिया था। इसलिए अब लेना-देना किस बात का। यह असज्जन की झूठी रीझ है।

१६५५) मिथ्या ब्रह्मज्ञानी का- एक ब्रह्मज्ञानी थे वे जहाँ भी जाते वहाँ ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते, अपनेमें तथा सभीमें ब्रह्मको देखनेका उपदेश देते। बातचीतमें बार-बार सर्वं खल्विदं ब्रह्म सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा कहते रहते। एकबार कहीं

जा रहे थे, किसी आदमीने उनसे कहा- आप रास्ते से हट जाइये। मारू बैल आ रहा है। इन्होंने कहा- सर्वं खल्विदं ब्रह्म रास्ते से नहीं हटे। बैलने आकर मार दिया। घायल हो गये, लोगोंने दौड़कर बचाया। फिर उन्हें किसी सज्जनने समझाया कि बैलमें ब्रह्म है, यह तो आपका मानना ठीक था पर जो बचने को कह रहा था उसमें भी तो ब्रह्म था, आपने उसकी नहीं मानी। इसीसे आपको यह कष्ट हुआ। यह ज्ञान जब तक परिपक्व न हो तब तक मिथ्या हठ नहीं करना चाहिए। श्रीनारायणदासजी का सच्चा भाव था अत: कहते हैं कि ऐसौ धीरज को सार है। --- दुष्टने दुष्टता की पर आपने उसे अपना गुण-सुगन्ध प्रभु प्रेम प्रदान किया।

१६५६) बिल्ली- बिल्ली जब चूहेको पकड़ती है, तो चूहेका शरीर चूर-चूर हो जाता है, मर जाता है। उसी मुखसे उन्हीं दाँतोंसे बिल्ली अपने बच्चेको पकड़ती है, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाती है, तो उस समय बिल्लीके बालकको नाममात्रका भी क्लेश नहीं होता है क्योंकि बालकके प्रति उसका वात्सल्य है। इसी तरह काल भगवान विमुखोंको ग्रस करके शुभ-अशुभ कर्मोंका फल देते हैं और भक्त पर कृपा करके उसकी रक्षा करते हैं। भक्तका शरीर त्याग क्रीड़ामात्र है। जैसे भानुमतीके तमाशेमें नट सूत्र द्वारा आकाशमें चढ़ता है, कटकर गिरता है, भानुमतीके सती हो जाने पर नट आता है, उसके बुलाने पर महलसे भानुमती आ जाती है। इसी प्रकार भक्तका जन्म लेना और शरीर छोड़ना भी एक क्रीड़ामात्र है, मरण नहीं है। अत: चरणोदक लेना उचित है। यह बात ब्राह्मणोंकी समझमें नहीं आई, तो भगवानने लीला रची, एकबार ब्रह्मभोज हुआ। उसमें गिरिधरग्वालका बहिष्कार किया गया, निमन्त्रण नहीं दिया गया। तब- द्विज भोजन में कीट दिखाना। भक्त हेतु हरि लीला ठाना। भोजनमें कीड़े दीखे, तब एकने कहा- गिरिधर ग्वालहिं क्यों तुम टारा। वह प्रेमीजन हरि को प्यारा। शीघ्र चलकर उनके चरण पकड़ो। ऐसा ही हुआ, आपके आते ही सबकी दृष्टि शुद्ध हो गई। अब भोजनमें कीट नहीं दिखे। सभीने सानन्द भोजन किया। भक्त भक्ति दृढ़ हो गई। सभी भक्त भगवानके सेवक बन गये। विविध पक्वान्न, मालपुवा आदि अति मात्रामें भक्त-भगवन्तको समर्पित हुए तथा ये मल्ल थे। इन्हीं कारणोंसे इनके गाँवका नाम भालपुरा पड़ गया।

धनकी तृष्णासे ग्रस्त मनुष्य तरह-तरहके उपाय करने पर भी जब धन नहीं पाता है, तब वह पछताता है, तब यदि प्रभु कृपा हो तो वैराग्य हो जाता है।

१६५७) ऊँट और महापुरुष- ऊँटकी ग्रीवाका- दो सन्त एक साथ विचर रहे थे। किसी वन में उन्होंने चरता हुआ एक ऊँट देखा, तो एक सन्त ने कटु व्यङ्ग कहा- यदि तुम्हें ऊँटकी-सी लम्बी गर्दन मिल जाय तो क्या करोगे। दूसरे सन्त ने मधुर उत्तर दिया कि मनुष्य देह में परमात्माने गर्दन छोटी बनाई है अत: सन्त-भगवन्तके उच्छिष्ट का अनुभव थोड़ी देर ही होता है। यदि ऊँटकी-सी गर्दन मिल जायगी तो प्रसादके स्वादका अनुभव देर तक मिला करेगा। श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने उस राजसी महन्त को अपना-सा गुणातीत बना दिया। सन्तने अनुकूल भाव ग्रहण किया। कोई असन्त होता तो रुष्ट हो जाता।

१६५८) दो बालक- हिन्दू-मुसलमान दो बालक एक टीले पर बैठे थे। परस्पर वार्ता होते-होते अपने-अपने इष्टको बड़ा बताने लगे। अन्तिम निश्चय हुआ कि इस टीले से कूदने पर जो बचेगा, वही बड़ा माना जायगा। मुसलमान ने कहा- पहले तुम कूदो, तुमने चर्चा चलाई है। हिन्दू बालक श्रीराम कहकर कूद पड़ा, उसमें विश्वास था अत: बिल्कुल चोट न लगी। उसने कहा- अब तुम कूदो। मुसलमान ने सोचा- इसे चोट नहीं लगी है, इसीका इष्ट बड़ा मालूम पडता है। वह राम और खुदा दोनों नामोंको लेकर कूदा। उसे चोट आ गई। तब समझमें आया कि जिसमें पूर्ण विश्वास हो, उन एक का नाम लेना चाहिए था। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और समुद्रादिको देखकर ईश्वरमें विश्वास सुदृढ़ करना चाहिए। सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि ईश्वरकी सत्ता-महत्ताका बोध कराती है। कुतर्क से भक्ति का नाश होता है। वक्ताने कहा- अग्निमें प्रल्हादजी नामके प्रभाव

से नहीं जले। कुतर्कीने कहा- वक्ताको अग्निमें डालकर देखो, यदि न जलें तो सत्य और जलें तो झूठ। ऐसे कुतर्क न करके सन्त-गुरुदेवके वाक्योंमें विश्वास करना चाहिए।

१६५९) प्रेत और श्रीयादवप्रकाश- काञ्ची नरेश की राजकुमारी प्रेतबाधा से पीड़ित हुई। अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये पर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्तमें यादवप्रकाशजी को बुलाया गया। शिष्योंके सहित पहुँचकर इन्होंने जैसे ही मन्त्र प्रयोग आरम्भ किया राजकुमारी के मुखसे प्रेत बोला- तू जीवन-भर मन्त्रपाठ करे तो भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। मैं चाहूँ तो अभी तुझे धर पटकूं। तू तो पूर्वजन्म का विषखोपड़ा है, सन्तने जूठा पत्तल तेरे बिल पर डाल दिया, सन्त सीत-प्रसाद खाने से तुझे मनुष्य शरीर मिला। मैं तो कई जन्मोंका याज्ञिक ब्राह्मण हूँ। भयभीत यादवप्रकाश पीछे हट गये। तब उनके विद्यार्थी श्रीरामानुजने आगे आकर पूछा- ब्रह्मन। आपने यह दुःखद योनि क्यों पाई। आप समर्थ हैं, मेरे सिर पर हाथ रखकर अभयदान दें तो मैं इस योनि से छूट जाऊँ। श्रीरामानुजजीने उसके सिर पर हाथ रक्खा। प्रेम मुक्त हो गया राजकुमारी स्वस्थ हो गई।

१६६०) ईर्ष्या- एक प्रेमी-प्रेमिका, चांदनी रात में, यमुना नदी के किनारे बैठे, यमुना के जल में पड़ रही ताजमहल की परछाई को मुग्ध होकर देख रहे थे। उस परछाई को देखकर प्रेमी के मन में शायर की ये पंक्तियां याद आ गईं। फिर वह सोचने लगा कि, एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल सारी दुनिया को मोहब्बत की निशानी दी है या एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक। देखने के क्रम में सोचने का क्रम भी अचानक जुड़ गया, सोचते-सोचते वह असमंजस में पड़ने लगा और विचारों के द्वंद्व में घिरने लगा। जब कोई हल निकल नहीं पाया, तो उसने एक कंकड़ उठाकर शांत यमुना में फेंक दिया, नदी में तरंगों की हलचल बिखर गई, उस हलचल को देखकर वह नाच-नाचकर, गाने लगा कि- मैंने ताजमहल को हिला दिया, यमुना के जल में एक कंकड़ फेंककर।

१६६१) पाखण्डी सेठ- एक सेठ था। उसने संकल्प लिया कि बारह वर्ष तक वह प्रतिदिन कथा सुनेगा। एक सदाचारी ईश्वरनिष्ठ ब्राह्मण उन्हें प्रतिदिन आकर कथा सुनाया करते थे। समय चक्र चलता रहा। बारह वर्ष पूरे होने वाले थे कि अचानक उन्हें किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाने की जरूरत पड़ी। सेठ ने ब्राह्मण को बताया। ब्राह्मण ने कहा, पिता की जगह पुत्र से काम चल जायेगा। आपका बेटा कथा सुन लेगा। सेठ ने कहा, ब्राह्मण देव। कहीं कथा सुनकर मेरा पुत्र वैरागी तो नहीं हो जायेगा ? ब्राह्मण बोले, आप इतने वर्षों से कथा सुन रहे हैं परन्तु आप तो सन्यासी नहीं बने, पुत्र कैसे बन जायेगा ? सेठ ने अपना भेद खोला ब्राह्मण देव। मैं तो मन में लालसा लेकर कथा सुनता था कि धार्मिकता का पुण्य तो मिले, पर कथा के प्रभाव से मैं वैरागी न बनूं।

१६६२) अहंकार का दान- धार्मिक विचारोंवाले एक राजा के पास कोई तपस्वी मिलने आए। राजा का मन मुदित हो गया। भाव विभोर होकर राजा ने तपस्वी से कहा, मेरी इच्छा है कि मैं आपके मन की कोई मुराद पूरी करूं। बतलाइए क्या उपहार दूं। तपस्वी ने द्वंद्व में पडे बिना कहा- राजन, आप स्वयं अपने मन से अपनी कोई प्रिय वस्तु का उपहार मुझे दे सकते हैं, मैं क्या मांगू। राजा ने कुछ विकल्प तपस्वी के समक्ष पेश किए। अपने राज्य के समर्पण की इच्छा जाहिर की तो तपस्वी ने बताया कि वह तो जनता का है, आप तो उसके संरक्षक मात्र है। राजा को तपस्वी की बात जंची और उन्होंने दूसरा विकल्प रखा कि महल, सवारी इत्यादि तो मेरे ही है। आप इन्हें स्वीकार कर लें। तपस्वी ने हंसते हुए कहा कि ये भी जनता के ही है और आपको राजकाज चलाने में सुविधा के लिए उपलब्ध कराए गए हैं। राजा ने तीसरे विकल्प के तौर पर अपना शरीर दान में देने की पेशकश रखी। अब तपस्वी ने कहा कि शरीर भी आपका कहां है, वह तो आपके बाल-बच्चों का है, इसे आप कैसे दे पाएंगे। राजा का असमंजस बढ़ गया था। फिर तपस्वी ने ही मार्ग सुझाया कि आप

अपने मन का अहंकार दान कर दें। अहंकार ही सबसे सख्त बंधन है। अगले दिन से राजा ने अहंकार त्याग दिया। उसके बाद उसने पाया कि उसे गहरी मानसिक शांति प्राप्त हुई है।

१६६३) तीर्थयात्रा का उद्देश्य- एक योद्धा को चार धाम की यात्रा करने की इच्छा थी अत: उसने धीरे-धीरे पैसा एकत्र करना शुरु कर दिया। जब जाने योग्य राशि एकत्र हो गई तब घोर अकाल पड़ा। लोग भूख से मरने लगे। वृद्धा ने अपना धन राहत कार्य में लगा दिया। स्वयं परलोक सिधार गई। परलोक में तीर्थयात्रा के पुण्यों का लेखा-जोखा शुरु हुआ। वृद्धा का सबसे ज्यादा पुण्य था। देवदूतों को आश्चर्य हुआ कि जिसने जीवन में एक कदम भी तीर्थयात्रा के लिए नहीं बढाया उसे सबसे ऊँचा पद क्यों मिला ? धर्मराज ने समाधान किया जिस भावना की अभिव्यक्ति के लिए तीर्थयात्रा की जाती है उस भावना को वृद्धा ने पूरी तरह निभाया है।

१६६४) अग्रणी का दायित्व- सम्यवादी दल की एक लड़की ने लेनिन पर पिस्तौल चला दी। गोली तो निकल गई किन्तु छर्रे गले और गर्दन मे फंस गए। उसी समय एक पुल टूट गया। आपातकालीन स्थिति में युद्ध स्तर पर सुधारने का कार्य किया गया। देश भक्त नागरिकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया गया। काम समाप्त होने पर पता चला कि लेनिन घायल होने पर भी मजदूरों के साथ बीस-बीस घंटे काम करते रहे। पूछने पर बोले कि <u>अग्रणी कहलाने वाले पीछे रहें तो जन उत्साह में वह प्रखरता नहीं आ सकती जो आनी चाहिए</u>।

१६६५) मर्यादा- एक राजा ने दूसरे देश पर आक्रमण कर दिया और युद्ध रोकने की शर्त के रूप में दो प्रदेशों की मांग की। दूसरे देश के राजा ने अपनी मंत्री परिषद की बैठक बुलाई और हमलावर की शर्त बताते हुए कहा, शत्रु ने हमारी मर्यादा को ललकारा है, इसलिए हमें स्वतंत्रता और मर्यादा की रक्षा के लिए लडना होगा या फिर दो प्रदेश देकर गुलाम बनना होगा। पर फैसला करने से पूर्व हम विचार जानना चाहते हैं। राजा की बात सुनकर राजगुरु बोले, संसार में मर्यादा से प्रिय कोई वस्तु नहीं। मर्यादा के लिए प्राण तक दिये जा सकते हैं। जब मर्यादा ही नहीं रही तो क्या रहा ? सेनापति ने भी राजगुरु की बात का समर्थन करते हुए कहा, महाराज, हमे मर्यादा की रक्षा करने के लिए लड़ना ही चाहिए। <u>गुलामी के जीवन से स्वाभिमान की मौत बेहतर है</u>। सभी ने मिलकर अंतिम सांस तक मर्यादा की रक्षा करने का प्रण लिया और शत्रु पर टूट पड़े तथा अंतत: विजय भी प्राप्त की।

१६६६) स्वार्थ की भाषा- घटना उस समय की है जब यातायात के साधन आज की तरह विकसित नहीं हुए थे। तब सौराष्ट्र के गावों में सेठ साहूकारों के यहां कहीं आने-जाने के लिए घोड़ा रखने की प्रथा थी। लोग दूसरे गांव या पास के नगर में घोड़े पर चढ़ कर जाने में अपनी शान समझते थे।

किसी गांव में एक साहूकार की घोड़ी बीमार हो गई लेकिन उसे जरूरी काम से पड़ोस के गांव जाना था। वह अपने बड़े भाई के घर गया और बोला, भाई कुछ जरूरी काम के लिए पड़ोसी के गांव में जाना है। मेरी घोड़ी बीमार है, अपनी घोड़ी दे दो, दोपहर तक लौट आऊंगा। बड़े भाई ने छूटते ही कहा, भाई, घोड़ी घर पर नहीं है, खेतों में गई है। छोटा भाई निराश तो हुआ पर वह दूसरी जगह से घोड़ी के इंतजाम के बारे में सोचने लगा। यह सोचते हुए वह लौटने के लिए पलटा कि तभी अंदर से घोड़ी की हिनहिनाहट सुनाई पड़ी। वह बोला, भइया, घोड़ी तो अंदर बंधी है, आप झूठ क्यों बोलते हो। भीतर तो घोड़ी बोल रही है।

बड़े भाई ने गुस्से में कहा, तू बड़ा बेवकूफ है, बेजुबान घोड़ी की भाषा तो तुझे तुरंत समझ में आ गई लेकिन बड़े भाई की भाषा तुझे समझ में नहीं आई।

छोटे भाई ने कहा, भाई इस घोड़ी की आवाज ने मेरी आंखें खोल दीं। जानवर इंसान की तरह स्वार्थ की भाषा नहीं

बोलता, इसलिए उनकी भाषा कोई भी समझ सकता है, पर इंसान को समझ पाना वाकई बड़ा मुश्किल है।

यह कहकर छोटा भाई चुपचाच चल पड़ा। इधर बड़े भाई को अपनी गलती का अहसास हुआ। वह दौड़ा हुआ आया और छोटे भाई का हाथ पकड़कर बोला, आज इस घोड़ी ने मुझे भी बहुत बड़ी सीख दी है। मैं वास्तव में स्वार्थ में अंधा हो गया था। मैंने सोचा था कि अभी यह घोड़ी किसी को भाड़े पर दूंगा और पैसे कमाऊंगा। मैं लालच में रिश्ते-नाते भी भूल गया। मुझे माफ कर दे और घोड़ी ले जा। यह कहकर उसने अंदर से घोड़ी लाकर छोटे भाई को पकड़ा दी।

१६६७) नौकर में बदलाव- सेठजी का एक नौकर आलसी, कामचोर तथा लापरवाह था। घर के लोगों ने तंग आकर उसे निकालने का निर्णय लिया। सेठजी की पत्नी बोली कि इसे हम निकालेंगे नहीं, सुधारेंगे। दूसरे दिन सेठानीजी गरम पानी और तोलिया लेकर ठीक समय पर उपस्थित हुई और जगाते हुए नौकर से बोली स्नान कर लो तब तक मैं चाय बनाकर लाती हूं। नौकर शर्म से पानी पानी हो गया। मालकिन की सज्जनता से प्रभावित हो दूसरे दिन से सारे कार्य समय पर करने लग गया।

१६६८) असफलता में सफलता- सदियों तक किसी को मालूम ही न था कि कालीसियम के उस अति सुन्दर और टिकाऊ प्राचीन भवन को किसने बनाया था। फिर एक दिन सत्रहवी सदी में, खुदाई करने वालों ने रोम के खंडहरों को खोदते हुए, एक संगमरमर का स्तम्भ पाया। उससे सदियों का भेद खुल गया। इस पर खजुर और ताड़ की खुदाई थी- जो शहादत के चिन्ह थे। शीर्षक में एक आदमी की, जिसका नाम गोडेन्टियस था, प्रशंसा की गयी थी और उल्लेख किया गया था कि कालीसियम का वही निर्माता था और दर्दभरा कमाल यह था कि वही इसका पहला शहीद था। इसमें लिखा था: सीजर ने तीन बड़े पुरस्कार देने का वादा किया था, किन्तु वह मूर्तिपूजक, झूठा और अकृतज्ञ था। वह जो स्वर्ग का महान कृतिकार है और जिसका कोई वादा झूठा नहीं होता उसने तुम्हारे सद्गुणों के पुरस्कार स्वरूप दिव्य नगर की अमर रंग-शाला में तुम्हारे लिए जगह बना रखी है। संसार की आंखों में एक बार का सफल गोडेन्टियस असफल साबित हो गया था, मगर ईश्वर की निगाह में ऐसा नही है। उसने अपने जीवन में अपने एक बडे उद्देश्य को सिद्ध कर दिया- ईश्वर के लिए जीना और मरना असली असफलता तभी आती है, जब हम अपने आदर्श उद्देश्य और सिद्धान्त भूल जाते हैं, और उस रास्ते से भटकने लगते हैं जिससे उनकी प्राप्ति की मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

१६६९) साक्षात्कार- मोरारजी देसाई सिविल सर्विस की परीक्षा के लिये साक्षात्कार दे रहे थे। साक्षात्कार के अंत में उनसे पूछा गया, यदि आप चुने नहीं गए तो क्या आप उदास हो जाएंगे ? मोरारजी देसाई का उत्तर था, इसमें उदास होने की कोई बात नहीं है। अभी संसार में अनेक कार्य मेरे सम्मुख है। मोरारजी को बिना किसी सिफारिश के चुन लिया गया।

१६७०) निस्पृह पिता- मिथिला में गंगाधर शास्त्री नामक पंडित विद्यालय में पढ़ाते थे। उनकी कर्त्तव्यपरायणता की चर्चा मिथिला की गली गली में होती थी। शास्त्रीजी के गोविन्द नामक पुत्र था। वह बालक पिता के विद्यालय में अध्ययन करता था। पिता के समान गोविन्द भी शिष्ट और अनुशासन प्रिय था। सहपाठी उससे बहुत स्नेह करते थे। एक दिन शास्त्रीजी के साथ गोविन्द स्कूल नहीं आया। साथियों को सारा दिन अटपटा लगा। स्कूल बंद करके पंडितजी जाने लगे तो बच्चों ने पूछा कि गुरुदेव। आज गोविन्द क्यों नहीं आया? गुरुजी ने भारी मन से कहा गोविन्द को अचानक दौरा पड़ा और वह अब कभी वापस नहीं आएगा। विद्यार्थी तो स्तब्ध रह गए। मित्र के निधन के समाचार सुनकर उनकी आखों में आंसू छलछला आए। उन्हें इस बात का आश्चर्य अधिक हुआ कि ऐसी भयंकर दुर्घटना के बावजूद भी शास्त्रीजी पढ़ाने कैसे आ सके तथा सारी कक्षाएं दैनिक क्रम के अनुसार चलाते रहे। उन्होंने अपने मन की बात गुरुजी के सामने भी रख दी। पंडितजी बोले मेरे दो

परिवार हैं। उस परिवार के बालक का विछोह तो असहनीय है पर इस परिवार के बालकों का हक मारता तो एक दु:ख और बढ़ जाता। उसके लिए जो कर सकता था पूर्ण मनोयोग से किया, तुम्हारे लिए जो कर सकता हूं उसे क्यों न करता ?

१६७१) मोह भंग- दिनभर गपशप करने तथा इधर-उधर घूमकर समय नष्ट करनेवाले वृद्ध को एक महात्मा ने सलाह दी कि अब तुम्हें घर का मोह त्याग कर लोक सेवा में जुट जाना चाहिये। समाज को अपने अनुभवों का लाभ देकर स्वयं लोकसेवा का आनंद उठाना चाहिये। उस वृद्ध को अपने बेटे-बहू, नाती पोतों के बड़ा लगाव था, बोला- भगवान। मेरे बिना बच्चे कैसे रहेंगे और उनके बिना कैसे जीऊंगा। वृद्ध घर लौटा। वृद्ध शरीर था उसकी नींद जल्दी टूट गई। उसे लगा कि उसके बगल वाले कमरे में कोई है। गौर से सुना तो पता चला कि उसके बहू-बेटे परस्पर बातें कर रहे थे- ये बुढ्ढा रात भर खांसता रहता है, न सोता है न सोने देता है, मरता भी नहीं है। बच्चों को भी बिगाड़ कर या बीमार करके छोड़ेगा। अपमान सह कर उसका बच्चों से मोह भंग हो गया और दूसरे दिन घर त्याग दिया।

१६७२) महारानी- महारानी श्यामा सुन्दरी का जन्म बंगाल के वर्धमान जिले की देहाती झोंपड़ी में हुआ था। उसने माता-पिता से ही थोड़ा बहुत अध्ययन किया। कन्या के रूप-रंग पर मोहित होकर बड़े जमींदार पुत्र ने उससे विवाह कर लिया। अल्पायु में ही लड़के ने अंग्रेजी ठाठ के सारे दुर्गुण सीख लिए और कुसंग के कारण उसने आत्महत्या कर ली। श्यामा अठारह वर्ष में ही विधवा हो गई। इंग्लैण्ड सरकार ने मात्र पन्द्रह सौ रुपए वार्षिक पेंशन बांधकर जमींदारी जप्त कर ली। वे सुप्रीम कोर्ट तक लड़ीं तथा अपनी रियासत प्राप्त करके ही दम लिया। परिवार वाले भी उनसे जलते थे पर उन्होंने निजी सूझबूझ से राज कार्य चलाया। पति द्वारा छोड़े गए कर्ज का लाखों रुपया चुकाया तथा रियासत का पिछड़ापन दूर करने में लगी रहीं। उनका निजी जीवन सादा था। अंग्रेज सरकार ने उनकी कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर उन्हें महारानी की उपाधि दी।

१६७३) हमारे युवक बेरोजगार क्यों ? - यौवन तो अनंत संभावनाओं को लेकर जीवन में उतरता है। शरीर में अपार स्फूर्ति, मन में असीम उमंग, दिमाग में अदम्य तेजस्विता, कठिन से कठिन परिस्थितियों से भी जूझने का साहस।

मानव समाज की प्रगति का इतिहास तो मुख्यत: समय-समय की युवा पीढ़ी की विजय गाथा का ही इतिहास रहा है लेकिन वर्तमान भारत की युवा पीढ़ी के लाखों करोड़ों सदस्य अपने यौवन की इन संभावनाओं का उपयोग नहीं कर पाते।

अशिक्षितों का क्या कहना जब शिक्षित युवक ही लाखों की संख्या में बेरोजगार की खोज में दर-दर भट रहे हैं, अपनी क्षमताओं को पहचाने बिना। यहां मैं केवल शिक्षित युवकों की बेरोजगारी पर विचार करना चाहूंगा, अपने एक व्यक्तित्व अनुभव के आधार पर।

कोवलम का समुद्रतट अपनी सुन्दरता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यह केरल में तिरुवनन्तपुरम शहर से करीब पन्द्रह किलोमीटर दूरी पर है। यहां हर मौसम में पर्यटकों का आना-जाना लगा रहता है, खास कर विदेशी पर्यटकों का। इसलिए पर्यटन संबंधी कई प्रकार के व्यवसाय यहां पनप रहे हैं। विशेषकर होटलों; आयुर्वेद चिकित्सालयों आदि का कारोबार।

हाल ही की बात है। रात के आठ बज चुके थे। मैं कोवलम् बस स्टॉप पर खड़ा था शहर जाने वाली बस के इंतजार में। मेरे पास एक युवक खड़ा था। स्वच्छ वेशभूषा। ऊंचा कद। गेहुंआ रंग। करीब चौबीस साल की आयु। उसने मुझ से अगली बस के आने का टाइम पूछा तो मुझे वार्तालाप करने का बहाना मिल गया। चुपचाप खड़े होने से जो बोरियत होती है वह अपरिचित से ही सही, वार्तालाप में लग जाने पर मिट जाती है। वार्तालाप के बीच मैंने पूछा कहां रहते हो ?

शहर में।

यहां काम करते हो ?

यहां काम करता था एक होटल में। अब वहां से हट गया हूँ। सुना कि एक नया होटल खुला है। वहां काम ढूँढ़ता हुआ गया था। पता चला कि कोई जगह नहीं है।

पहले किस होटल में थे ?

यहां एक विदेशी महिला का होटल है। उसमें एक साल तक काम किया। अच्छा वेतन मिलता था। दो-तीन कमरों का कार्यभार मुझे सौंपा गया था। विदेशी पर्यटक जब आते तब अच्छी रक्कम बख्शीश के रूप में मिल जाती। किसी-किसी महीने में दस हजार रुपए तक मिल जाते थे।

फिर वहां से क्यों हट गए ?

ऐसा है कि वह मालकिन बात-बात पर नाराज होती है। उसके साथ निपटना बहुत मुश्किल है।

पीटती है नौकरों को ?

पीटती नहीं। पर गरज पड़ती है। जोर-जोर से फटकारती है। मैं तो ग्रेजुएट हूं। उसकी फटकार क्यों सुनूं ?

किस विषय में ग्रेजुएट हो ?

इतिहास में।

कोई काम करना आता है ? कोई हुनर सीखा है ?

कोई विशेष कम नहीं सीखा हैं। बड़े-बड़े होटलों में ऐसे युवकों को ही लेतें हैं जो होटलियरिंग की कोई परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं। तुम्हारे पास ऐसी कोई योग्यता नहीं है तो बड़े-बड़े होटलों में कैसे काम मिल सकेगा ? जब तक कोई बेहतर रोजगार नहीं मिलता तब तुम्हें पुरानी नौकरी पर लगे रहना चाहिए था न ? अब तो तुम न इधर के रहे, न उधर के।

आप का कहना ठीक है। अब मैं उस मालकिन के पास कैसे जाऊं। मैं उससे झगड़कर निकल आया था।

यह एक उदाहरण है। यथार्थ उदाहरण। इससे दो बाते स्पष्ट हों जाती हैं। एक तो यह कि हमारी सामान्य शिक्षा व्यवस्था युवकों को कोई रोजगार पाने लायक नहीं बनाती। दूसरी बात यह है कि हमारे युवक प्राप्त अवसरों का पूरा-पूरा लाभ उठाना नहीं जानते। वे अपनी गलतियों को सुधारने के लिए तैयार नहीं हैं। सहिष्णुता का अभाव है।

१६७४) सत्य को झुठलाने वाला हमेशा घाटे में रहता है- एक बार की बात है। विदेश कमाने गये पुत्र ने पिता को एक अंगूठी भेजी। पत्र में उसे लिखा, पिताजी, आपको मैं एक अंगूठी भेज रहा हूं। उसका मूल्य है पांच हजार रुपया। सस्ते में मिल गई थी, इसलिए खरीद ली। अंगूठी पाकर पिता प्रसन्न हो गये। पिता ने अंगूठी पहन ली। अंगूठी बहुत चमकदार और सुंदर थी। बाजार में मित्र मिले। नई अंगूठी को देखकर पूछा, यह कहां से आई? उसने कहा, लड़के ने भेजी है। पांच हजार रुपये लगे हैं। मित्र बोला, क्या इसे बेचोगे? मैं पचास हजार दूंगा। उसने सोचा, पांच हजार की अंगूठी के पचास हजार मिल रहे हैं। इतने रुपयों में ऐसी दस आ जायेंगी। उसने अंगूठी निकालकर दे दी और पचास हजार ले लिए। पुत्र को पत्र लिखा, तुमने शुभ मुहूर्त में अंगूठी भेजी। उसको मैंने पचास हजार रुपये में बेचकर पैंतालीस हजार रुपये कमा लिए। लौटती डाक से पत्र आया, पिताजी। संकोच और भयवश मैंने सच्चाई नहीं लिखी थी। वह अंगूठी एक लाख की थी। यह सत्य को झुठलाने का परिणाम था।

१६७५) अकेला एक भिक्षुक- पुराने समय की बात है। उज्जैन के राजकुमार शातवाहन की बुरी संगति को छुड़ाने के लिए आश्रम में उनके गुरु शिवदास ने उन्हें बहुत पीटा। शिवदास अपने प्रयास में सफल रहे और शातवाहन ने कुसंगति छोड़ दी। कुछ समय बाद जब शातवाहन राजा बने तब तक गुरु शिवदास की स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। एक

दिन वे भिक्षाटन करते हुए राजा के पास तक जा पहुंचे। गुरु शिवदास को याचक के रूप में आया देख कर राजा बोले, आपने मुझे बहुत पीटा है, इसलिए आपकी दशा पर मुझे बिलकुल तरस नहीं आता इसपर गुरु शिवदास बोले, लेकिन मुझे तो यह देखकर बड़ा आनंद मिला कि तुम्हें ठीक करने से तुम्हारे राज्य में आज सभी लोग सुखी और संपन्न है। अकेला एक मैं ही तो भीख मांगने वाला हूँ।

१६७६) मन के जीते जीत- एक अमेरिकी बालिका विल्मा के बायें पांव को लकवे ने बेकार कर दिया। डॉक्टरों का कहना था कि वह कभी अपने पावों पर चल नही सकेगी। विल्मा ने इसे ठंडे मन से सुना और इसे बदलने का विचार मन में बना लिया। उसका बालमन इसे स्वीकार भी कैसे कर सकता था ? वह तो चलना ही नहीं दौड़ना चाहती थी। विल्मा ने एक संकल्प कर लिया कि वह एक तेज धाविका बनेगी। अपने मनोबल से वह चलने-फिरने लायक हुई और फिर स्कूल की दौड़ प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगी। जाहिर है कि उसे दौड़ में सबसे आखिरी स्थान मिल पाता लेकिन विल्मा ने दौड़ प्रतियोगिताओं में भाग लेना नहीं छोड़ा। विल्मा के उत्साह में कोई कमी नहीं आई। फिर एक दौड़ में विल्मा होने के पांच वर्ष के बाद विल्मा ने अमेरिका की प्रथम महिला धावक बनने का सम्मान पाने के साथ-साथ ओलम्पिक में तीन-तीन स्वर्ण पदक भी जीत लिये है न मन के जीते जीत।

१६७७) क्योंकि मैं मां हूं- महारानी विक्टोरिया की पुत्री ऐलिस का बेटा संक्रामक रोग से ग्रसित हो गया। चिकित्सकों का कहना था कि बच्चे की सांस से दूर रहा जाए अन्यथा संपर्क में आनेवाले को भी यह बीमारी लग सकती है। परामर्श के अनुसार सभी बच्चे से दूर रहते पर माँ उसे अपनी गोद में रखती। एक बार बच्चे के कहने पर कि उसे प्यार किए बहुत समय हो गया है, मां ने दस वर्षीय बालक का चुम्बन लिया। छूत की बीमारी मां को भी लग गई। लोगों के पूछने पर कि उसने सब कुछ पता होने पर भी ऐसा क्यों किया? उसका उत्तम होता था क्योंकि मैं माँ हूँ। पुत्र के साथ माता का निधन भी हो गया। ऐलिस की समाधि पर अंतिम वाक्य लिखा गया क्योंकि मैं माँ हूं।

१६७८) सबसे दुर्लभ क्या- एक राजा की ३ रानियां थीं। एक बार राजा के मन में उनकी परीक्षा लेने का विचार आया। उसने अपनी पहली रानी को बुलाया और पूछा, बताओ इस संसार में सबसे दुर्लभ क्या है ? रानी ने कुछ देर इधर-उधर आंखे घुमाईं। जब कुछ न सूझा तो बोली, जी, धन।

राजा ने फिर दूसरी रानी को बुलाया और उससे भी सवाल पूछा, दूसरी रानी ने सबसे दुर्लभ मनुष्य जीवन को बताया। फिर राजा ने तीसरी रानी को भी बुलाकर अपना वही प्रश्न दोहराया। रानी ने कहा, इस संसार में सब से दुर्लभ है निस्वार्थ प्रेम और मानवता की भावना। मानव जन्म लेकर इस संसार में आना तो संभव है, पर किसी दूसरे के लिए अपना सारा जीवन निस्वार्थ भाव से समर्पित करना सबके लिए संभव नहीं होता। ऐसे लोग भी बहुत कम हैं जो अपने से ज्यादा दूसरों के लिए सोचते हैं। यह सुनकर राजा ने रानी की बुद्धिमत्ता पर गर्व महसूस किया।

१६७९) गायिका की दरियादिली- एक बार फ्रांसीसी गायिका मेलिथान के पास एक गरीब फटेहाल लड़का आया बालक गायिका के पास आकर खड़ा हो गया। उसके पास देखकर मेलिथान बोली, बच्चे, तुम्हें क्या चाहिए? तुम मेरे पास क्यों आए हो? बालक बोला, मैडम, मेरा नाम पियरे है। मैं आपके पास बहुत आशा से आया हूं। क्या आप मेरी मदद करेंगी? मेलिथान बोली, हां बेटे, मैं तुम्हारी मदद करने की कोशिश अवश्य करूंगी। बताओ तुम्हारी समस्या क्या है? इस पर बालक बोला, मेरी मां बहुत बीमार है मगर मेरे पास उनका इलाज कराने के लिए पैसे नहीं हैं। यह सुनकर मेलिथान बोली, अच्छा तो तुम्हें मुझसे आर्थिक मदद चाहिए। बोलो मैं तुम्हारी मदद के लिए कितने पैसे दूँ? मेलिथान अपनी बात

पूरी भी न कर पाई थी कि बालक बीच में ही बोला, क्षमा कीजिएगा मैडम, मैं आपसे मुफ्त में मदद नहीं लेना चाहता। मैं तो आपसे अलग तरह की सहायता चाहता हूँ। नन्हें से बालक की यह बात सुनकर मेलिथान हैरान हो गई और बोली, कैसी सहायता चाहते हो? पियरे बोला, मैडम मैं आपसे यह निवेदन करने आया था कि मैंने एक कविता लिखी है। आप मुझे उसे अपने साथ संगीत सभा में गाने का अवसर प्रदान करें और आप जो उचित समझें वह पारिश्रमिक मुझे दे दें। नन्हे से बालक की इस बात से मेलिथान बेहद प्रभावित हुई और उसने पियरे को अपने ही कार्यक्रम में अकेले गाने का अवसर दिया। बालक पियरे की करुण स्वर में गाई गई कविता वहां उपस्थित जनसमूह को छू गई। सभी दर्शकों की आंखें भीग गईं। वह कार्यक्रम बेहद सफल हुआ और उस कार्यक्रम में गायिका पर पैसे की बरसात हो गई। लेकिन मेलिथान ने दरियादिली दिखाते हुए वे सारे पैसे पियरे की मां को सौंप दिए और बोली, आपका बेटा बेहद काबिल है और वही इन पैसों का असली हकदार है। अब न सिर्फ आपकी बीमारी भाग जाएगी बल्कि आपका जीवन भी संवर जाएगा। पियरे की मां ने मेलिथान के प्रति आभार प्रकट किया।

१६८०) स्वच्छ मन- गांव की कीचड़ भरी सड़क पर २ ब्रह्मचारी जा रहे थे। तभी उन्होंने एक खूबसूरत लड़की को देखा। वह लड़की कुछ परेशान लग रही थी। उसे परेशान देखकर दोनों वहां पहुंचे और पूछने लगे, तुम परेशान क्यों हो? लड़की ने कहा, मैं सड़क पार करना चाहती हूँ लेकिन इतना कीचड़ देखकर मेरी हिम्मत नहीं हो रही। यह सुनकर एक ब्रह्मचारी तो सोचता रहा पर दूसरे ब्रह्मचारी ने लड़की को गोद में उठाया और सड़क पार करा दी। अपने साथी की यह हरकत दूसरे ब्रह्मचारी को अच्छी नहीं लगी। वह रास्ते भर उससे नहीं बोला। दोनों जब सोने के लिए बिस्तर पर आए तो दूसरा ब्रह्मचारी गुस्से से बोला, ब्रह्मचारी होते हुए तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था।

तब पहले ने जवाब दिया, मैं तो उस लड़की को वही छोड़ आया लेकिन तुम तो उसे अभी तक अपने जेहन में उठाए घूम रहे हों। कर्म से ब्रह्मचारी होना ही काफी नहीं है, मन का स्वच्छ होना भी जरूरी है।

१६८१) उपासना का सही अर्थ- दो आदमियों के सामने दो पत्थर रखे थे। एक आदमी ने पत्थर के सामने हाथ जोडकर ध्यान के लिए आँखें बन्द कर लीं। परन्तु दूसरे आदमी ने मन में कुछ सोचकर छैनी-हथौड़ी लेकर पत्थर की प्रतिमा बनाने में जुट गया। शीघ्र ही मूर्ति बनकर तैयार हो गयी। उसकी सुन्दरता को तथा कलाकार की कला को सबने खूब सराहा। एक श्रद्धालु व्यक्ति ने मूर्ति खरीद कर विशाल मन्दिर बनाया तथा उसमें प्रतिष्ठित कर दिया। पहला आदमी और वह पत्थर उसी प्रकार बने रहे। एक दिन दोनों व्यक्ति मिले अपने-अपने आराध्य देव की बातें करने लगे। एक ने दु:ख प्रकट किया। दूसरे ने प्रगति एवं प्रसन्नता का समाचार सुनाया। उसी रात पत्थरों की आत्मायें भी आपस में मिली एक ने भक्त की मूर्खता पर दु:ख प्रकट किया, एक ने उसकी क्रियाशील श्रद्धा की प्रशंसा की।

१६८२) फर्क पड़ता है- एक आदमी सुबह के समय समुद्र के किनारे टहलने निकला। उसने देखा कि लहरों के साथ सैकड़ों मछलियां तट पर आ जाती हैं और किनारे पर ही रह जाने के कारण मर जाती हैं। यह देख वह आगे बढ़ा और एक मछली को उठाकर वापस पानी में फेंक दिया। ऐसा वह बारबार करता रहा। पीछे खड़े एक आदमी ने यह सब देख उससे पूछा, यहां तो सैकड़ों मछलियां हैं। तुम कितनों को बचा सकोगे और इससे क्या फर्क पड़ेगा ? इस पर उस व्यक्ति ने कुछ नहीं कहा। उसने आगे बढ़कर एक और मछली उठाकर पानी में फेंक दी। उसके बाद वह बोला, इससे एक मछली को फर्क पड़ता है।

१६८३) परम्परा- एक राजा अपनी जनता के दु:ख-सुख को जानने के लिए वेश बदलकर अकेला निकलता था। एक दिन साधु के रूप में लोगों से मिलता हुआ वह एक बगीचे में जा पहुंचा। माली पौधा लगा रहा था। राजा ने कहा कि यह तो अखरोट का पौधा लगता है। माली बोला कि भाई तुमने सही पहचाना। राजा ने कहा कि इसको बड़ा होने तथा

फलने में बाईस-तेईस वर्ष लग जायेंगे, क्या तब तक तुम अखरोट खाने के लिए जिन्दा रहोगे जो यह पौधा लगा रहे हो। माली बोला कि हमारे पूर्वजनों ने यह बगीचा लगाया था उसका उपभोग आज हम कर रहे हैं। नई पीढ़ी के लिए कुछ सार्थक करके जाना हमारी परम्परा है। अखरोट खाते समय मेरे पोते यह तो कहेंगे कि यह पेड़ मेरे दादाजी ने लगाया था।

१६८४) पाप का प्रायश्चित- गुजरात के रविशंकर महाराज ने अपराध करने वालों से उनकी गलती कबुलवाई और प्रायश्चित करने को कहा। एक अपराधी के मन पर महाराज के विचारों का अधिक असर पडा। अत: वह रात भर सो नहीं पाया। सुबह बोला- मान्यवर। मैंने अपने पड़ौसी के यहां शराब की बोतल रखवाकर उसे झूठे ही पकड़वा दिया था अब वह जेल में है। मैं इस अपराध का प्रायश्चित कैसे करूँ ? रविशंकर बोले कि जब तक वह जेल से छूट कर न आए तब तक उसके घर का खर्च तुम उठाओ और बच्चों की देखभाल करो। व्यक्ति ने महाराज के परामर्श अनुसार परिवार की देखभाल की, जेल से आने पर दोनों मित्र बन गए।

१६८५) प्रशंसा से बचो- विख्यात उद्योगपति जमशेद मेहता उन दिनों कराची में रहते थे। समाज-कल्याण और धर्म के कार्यों के प्रति उनकी गहरी रुचि थी। वह बिना प्रचार के गरीबों व असहायों को मुक्त हस्त से दान देते थे। कराची में एक अस्पताल के निर्माण की योजना बनाई गई। घोषणा की गई कि जो व्यक्ति कम से कम दस हजार रुपये दान देगा, उसका नाम अस्पताल के शिलापट पर अंकित किया जाएगा। कराची के अनेक अमीरों ने धन देना शुरू कर दिया। अस्पताल की समिति के संयोजक मेहता जी के घर पहुंचे। मेहता जी ने उन्हें ९९९१ रुपये दिए। संयोजन के कहा, नौ रुपये और दे दीजिए, जिससे संगमरमर की शिला पर आपका शुभ नाम अंकित किया जा सके। मेहता जी ने कहा, मैंने संकल्प ले रखा है कि परोपकारी कार्यों से यश अर्जित करने का प्रयास कदापि नहीं करूँगा। इसलिए मैंने दस हजार रुपये से कुछ कम रुपये दिए हैं। उन्होंने रसीद प्राप्त करने के बाद ९९९१ रुपये और दे दिए तथा बोले, गुप्तदान के रूप में इस धन को अस्पताल निर्माण में लगा देना।

१६८६) सम्बन्ध: खून का नहीं, पैसे का- बेरोजगार था वह इसलिए दो रोटी के लिए मुंहताज था। तब उसकी थोड़ी-सी गलती पर भी उसके बाबूजी झिड़क दिया करते थे, डांटा-फटकारा करते थे। यानी बाबूजी डांटते थे ओर वह दो-चार बातें कह कर चुप रह जाता था। वक्त ठहरता नहीं। तकदीर ने साथ दिया। काफी कोशिशों के बाद बेगूसराय में उनकी नियुक्ति सिविल कोर्ट में हो गई। अब कमाने लगा था वह। इसलिए एक शाम खाना विलम्ब से मिलने पर चीख उठा। खाने के बर्तन फेंककर बाबूजी को फटकारने लगा- आप लोग मजे से खाइए। सुबह हमें भूखा रहना पड़ा। ऐसे खाने पर तो पेशाब कर देंगे।

बाबूजी ऐसी बातें सुनकर, अनजाने में झटका खाकर तड़प उठे थे। वे भी चीखना चाह रहे थे। लेकिन अब वे रिटायर हो चुके थे। अपने बेटे की नौकरी से ही कुछ उम्मीद कर बैठे थे वे। शायद इसलिए दो-चार बातें बोलकर चुप हो गये थे।

अब उसके बाबूजी चुप रहते थे और वह बाबाूजी को डांटा-फटकारा, दुत्कारा करता था। इस बदलाव का कारण रिश्ते या खून का बदलाव नही, सिर्फ अपनी जेब में पैसा होने का अहसास था, शायद।

१६८७) राजा का क्रोध- श्रेणिक नामक एक राजा था। उसकी रानी थी चेलना। एक बार राजा-रानी भगवान महावीर का दर्शन कर लौट रहे थे, तभी रास्ते में रानी ने देखा कि भयंकर सर्दी के बावजूद एक मुनि तप में लीन हैं। उसने उनकी कठोर साधना के लिए उन्हें मन ही मन बार-बार प्रणाम किया। महल में लौटकर रानी सो गई। संयोग से रानी का हाथ बिस्तर से नीचे लटक गया और ठंड से अकड़ गया। जब उसकी आंखे खुलीं तो उसकी बांह में बहुत दर्द था। चूंकि सर्दी के कारण ऐसा हुआ था, इसलिए आग से उसे सेंक दिया गया। जब उसे सेंका जा रहा था तो रानी को अचानक उस

तपस्वी का ध्यान हो आया जो जंगल में अविचलित भाव से बैठा तपस्या कर रहा था। रानी के मुंह से अनायास निकला, हाय। उस बेचारे का क्या हाल होगा ?

रानी के मुंह से ये शब्द सुनकर राजा के मन में अचानक संदेह पैदा हो गया। उसने सोचा कि हो न हो, चेलना का किसी व्यक्ति से प्रेम है। उसने क्रोध में पागल होकर मंत्री को आदेश दिया कि अंत:पुर को जला दो। लेकिन आदेश देने के बाद राजा व्यग्र हो उठा। अपने मन को शांत करने के लिए वह भगवान महावीर के पास गया और उन्हें अपनी व्यथा कह सुनाई। महावीर ने कहा, चेलना पतिव्रता है, पवित्र है।

अब तो श्रेणिक का बुरा हाल हो गया। वह अपने क्रोध पर पछता रहा था। उसे अनिष्ट की आशंका सता रही थी। महल लौटते ही उसने मंत्री को बुलाकर पूछा कि क्या उसने अंत:पुर को आग लगवा दिया ? मंत्री ने कहा, जी हां, आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करना आवश्यक था। सुनकर राजा के होश उड़ गए। तभी मंत्री ने फिर कहा, दुखी न हों, मैं जानता था कि आप तब क्रोध में थे। इसलिए शुरुआत मैंने हस्तिशाला से की, अभी वही जला है, अंत:पुर सुरक्षित है। राजा को राहत मिली। फिर उसने क्रोध में कोई निर्णय नहीं किया।

१६८८) पाप और लोभ- एक बार गांव के एक कर्मकांडी पंडित शास्त्रों का अध्ययन करने काशी गए। जब वह घर लौटकर आए तो अपने अध्ययन के बारे में गांव वालों को बताने लगे। तभी एक किसान ने पूछा, पाप का गुरु कौन है पंडित जी ? पंडित जी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने मन में सोचा कि उनका अध्ययन अधूरा रह गया है, इसलिए वह फिर अध्ययन के लिए काशी आ गए।

उन्होंने काफी अध्ययन किया, विद्वानों से पूछा, लेकिन किसान के प्रश्न का जवाब उन्हें नहीं मिल रहा था। एक दिन संयोग से उनकी मुलाकात एक वेश्या से हो गई। पंडित जी ने अपना प्रश्न उसे भी बताया। वेश्या बोली, यह तो बहुत आसान सा सवाल है पंडित जी। किंतु इसके लिए आपको कुछ दिन यहां रुकना पड़ेगा। पंडित जी तैयार हो गए। उसने उनके रहने की अलग से व्यवस्था कर दी। पंडित जी कर्मकांडी थे। स्वयं पानी लाते और अपने हाथ से खाना बनाते थे। एक दिन वेश्या ने कहा, पंडित जी, आप कहें तो मैं प्रतिदिन आपका भोजन बना दिया करूंगी। यहां देखनेवाला कोई नहीं है। यदि आप मुझे सेवा का अवसर देते हैं तो मैं आप को प्रतिदिन पांच स्वर्ण मुद्राएं बतौर दक्षिणा दूंगी। इससे मुझ अपवित्र पापिनी का उद्धार हो जाएगा। पंडित जी ने सोचा इसमें हर्ज ही क्या है। वह तैयार हो गए। पहले दिन वेश्या ने कई प्रकार के व्यंजन बनाए। पर ज्यों ही पंडित जी ने थाली में हाथ डालना चाहा, वेश्या ने थाली को अपनी ओर खींच लिया और बोली, पंडित जी आप कर्मकांडी ब्राह्मण है। मैं आपको बेधर्म नहीं करना चाहती। मैं तो आप के प्रश्न का उत्तर देना चाहती थी। वह आप को मिल गया है। आप दूसरों का लाया हुआ जल तक नहीं पीते थे। हमारी जैसी वेश्या को छूना पाप समझते थे। लेकिन लोभ में आकर आप मेरे हाथ का बनाया हुआ भोजन करने को तैयार हो गए। यह लोभ ही पाप का गुरु है। सारी बुराइयों की जड़ यही है। पंडित जी को किसान के प्रश्न का उत्तर मिल गया था।

१६८९) फकीर की बात- किसी समय मालवा में एक जमींदार था, बड़ा ही कंजूस और क्रूर। उसके बारे में मशहूर था कि वह दान-पुण्य नहीं करता और न कभी किसी की मदद ही करता है। एक दिन एक फकीर ने उसके दरवाजे पर पहुंचकर फरियाद की, मगर जमींदार ने उसे खाली हाथ लौटा दिया। दूसरे दिन फिर फकीर उसके दरवाजे पर पहुंचा, लेकिन वह खाली हाथ लौटा दिया गया। एक दिन जब जमींदार खेतों में काम कर रहा था, तब फकीर वहीं पहुंच गया और बोला, मुझे तुझसे कुछ नहीं चाहिए, पर मैं तुझसे कुछ कहना चाहता हूँ, सुन तो ले। मगर जमींदार कुछ सुनने को तैयार

नहीं था। फकीर यही कहते-कहते जमींदार के पीछे हो लिया। जमींदार को बड़ा गुस्सा आया। उसके हाथ में जो छड़ी थी उसने वही खींचकर फकीर पर दे मारी। फकीर पतला-दुबला और कमजोर था। चोट लगते ही बेहोश हो गया।

फकीर के बेहोश हो जाने पर जमींदार कुछ नरम पड़ा। पानी के छींटे देकर वह फकीर को होश में लाया और बोला, कहो बाबा क्या कहना चाहते हो। फकीर बोला, कुछ नहीं। अब कुछ नहीं कहना है। यह कहकर फकीर चला गया। पर जमींदार के हृदय में तो यह जानने की इच्छा जाग चुकी थी। उसके बाद से वह फकीर की बात के बारे में सोचने लगा। उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएं आने लगीं। अब उसका मन जमींदारी के काम से ऊबने लगा। धीरे-धीरे धन का लोभ भी जाता रहा। उसका दिल सदा आत्मग्लानि से भरा रहता। अपनी कुंठा दूर करने के लिए वह परमार्थ के कार्यों में लगा रहने लगा। गरीबों और जरूरतमंदों की मदद करने लगा। उसकी दानवीरता और सेवाभाव की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। लोग अब उससे डरते नहीं थे, बल्कि और इज्जत करने लगे। कई वर्षों बाद वही फकीर जमींदार के दरवाजे पर पहुंचा। इस बार नजारा बदला हुआ था। जमींदार ने देखते ही उसके पांव पकड़ लिए और बोला, बाबा। अब तो बता दो क्या कहना चाहते थे। फकीर बोला, अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। जो कहना था तुमने कर दिखाया।

१६९०) फिशर की लगन- फ्रांसीसी पादरी महिला फिशर ने भारत में निरक्षरता को मिटाने का संकल्प लिया। वह लोगों से बच्चों को पढ़ाने के लिए कहती तों लोग मुंह फेर लेते। उसने अपना निश्चय नहीं छोड़ा। कुछ वर्षों में लोगों के मन में उसके प्रति श्रद्धा जाग्रत हो गई और बच्चे पढ़ने लगे। शैक्षणिक स्तर चालीस प्रतिशत पहुंच गया। शिक्षा विस्तार कार्यक्रम के तहत उस इलाके में १५० स्कूलों में १५०० बच्चे बढ़ने लगे। उन्होंने बच्चों को सुसंस्कृत बनाने का प्रयास भी किया ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें।

१६९१) पुण्य की चाह- एक बार काशी की राजमाता अपने लाव-लश्कर के साथ सोमनाथ मंदिर पहुंची। उन्होंने मंदिर में सवा करोड़ सोने की मोहरों का चढ़ावा चढ़ाया, गरीबों को दान दिया और कई दिन तक भंडारा किया। रानी मां ने सोचा कि उनके जैसा दानी और पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है। उसी रात उन्होंने स्वप्न में देखा कि भगवान सोमनाथ उनसे कह रहे हैं, हे रानी, तुम अपना अगला जन्म सुधारने के लिए अभी तक जो कुछ कर रही हो, वह पर्याप्त नहीं है। इस मंदिर में एक गरीब महिला दर्शन करने के लिए आई हुई है। उसे पैसों की आवश्यकता है। यदि तुम अपनी धन-दौलत से उसका पुण्य खरीद लोगी तो निश्चित रूप से तुम्हारा अगला जन्म सुधर जाएगा। सुबह उठते ही राजमाता ने स्वप्न की बात अपने मंत्री को बताई। मंत्री ने उस महिला को खोजने के लिए अपने आदमियों को भेजा। काफी खोजबीन के बाद एक गरीब बुढ़िया मिली। उसे राजमाता के पास लाया गया। राजमाता ने उससे कहा, माई, तुम अपना पुण्य मुझे दे दो तो मैं तुम्हें सोने की मोहरों से लाद लूंगी। तुम जिंदगी भर मौज करोगी।

बुढ़िया बोली, मैं धन-दौलत लेकर क्या करूंगी। मैं तो इसी हाल में खुश हूं। मैंने ऐसा कोई काम किया ही नहीं कि मेरे पास पुण्य हो। यदि होता तो आप के चरणों में अर्पित कर देती। राजमाता सोच में पड़ गई कि भगवान सोमनाथ ने इस बुढ़िया में कौन सा पुण्य देखा कि उसे कीमत देकर लेने के लिए कहा है। राजमाता ने पूछा, आप करती क्या हो माई ?

बुढ़िया बोली, मेरे पास कुछ नहीं है। मैं सोमनाथ बाबा के दर्शन करने के लिए घर से सैकड़ों कोस पैदल चल कर भीख मांगती हुई पहुंची हूं। कल उपवास था। आज एक दयालु ने थोड़ा सत्तू दिया। उसके आधे से मैंने भगवान सोमनाथ की पूजा की। बचे हिस्से का आधा एक भिखारी को दिया। जो शेष बच गया उससे मैंने अपनी भूख मिटाई। राजमाता ने समझ लिया कि पुण्य कमाने के लिए धन-दौलत के दिखावे की नहीं बुढ़िया की तरह तपस्विनी बनने की जरूरत है।

१६९२) अनाथ कौन- राज श्रेणिक को जब पता चला कि उसके राज्य में अनाथी नामक एक मुनि पधारे हैं, तो वह उनके दर्शन के लिए पहुंचे। राजा ने मुनिवर को प्रणाम कर पूछा, मुनिवर, आपका नाम अनाथी थोड़ा विचित्र लगता है। क्या आप अनाथ हैं ? क्या आपके मां-बाप, भाई-बहन कोई नहीं हैं ? मुनि ने उत्तर दिया, वास्तव में मेरा कोई नाथ नहीं था, इसलिए गुरु ने दीक्षा देते समय मेर नाम अनाथी रखा। वैसे मेरे माता-पिता, भाई-बहन सब हैं। मुझे एक बार गंभीर बीमारी हो गई। किसी ने भी मेरी सेवा नहीं की। अचानक मुझे आभास हुआ कि यदि मैं दूसरों पर निर्भरता छोड़कर समाज व धर्म के लिए समर्पित हो जाऊं तो मैं रोगमुक्त हो जाऊंगा। ऐसा ही हुआ। मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। अब मैं हर समय सत्य-अहिंसा के प्रचार-प्रसार में लगा रहता हूं। राजा ने श्रद्धापूर्वक कहा, मुनिवर आप अपने को अनाथ न समझें। मैं आपको हर प्रकार से संरक्षण देने के लिए तैयार हूं। इस पर मुनि ने हंसकर कहा, राजन, आप तो स्वयं सेना पर निर्भर है। आप मेरे नाथ कैसे बन सकते हैं। यह सुनकर राजा ने भी राजपाट छोड़कर मुनि का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

१६९३) हिन्दी की जीत- कॉंग्रेस के पूर्व अध्यक्ष व गांधीवादी नेता डॉ. पट्टाभि सीतारामैया अपने सभी पत्रों पर हिन्दी में ही अपना पता लिखते थे। इस वजह से दक्षिण भारत के डाक कर्मियों को मुश्किलें पैदा हो जाती थी। एक बार सबने श्रीमान सीतारामैया को कहला भेजा कि आप अपना पता अंग्रेजी में लिखा करें ताकि डाक बांटने में आसानी हो. डॉ. सीतारामैया ने उनसे कहा, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है, अत: मैं अपने पत्र व्यवहार में हिंदी का ही प्रयोग करूंगा। इस पर डाक कर्मियों ने उन्हें धमकी दी, यदि आप अपनी हरकतों से बाज नहीं आये तो हम आपके सारे पत्र डेड लेटर ऑफिस को भेज देंगे। डॉ. सीतारामैया पर इस धमकी का कोई असर नहीं हुआ। दोनों पक्षों के बीच लंबे समय तक शीतयुद्ध जारी रहा। अंत में डाक कर्मियों को झुकना पड़ा और उन्हें मछलीपत्तनम के डाकघर में हिंदी जाननेवाले की नियुक्ति करनी पड़ी। इस तरह दक्षिण भारत में हिंदी की यह शानदार जीत थी।

१६९४) भूल का ज्ञान- एक सेठ था। दिल का उदार और दिल का राजा भी। उसके पास सभी-कुछ था। एक सेठ ने एक संन्यासी से निवेदन किया, स्वामी जी, आप कृपया मेरे घर भोजन के लिए पधारें। आप आएंगे तो कुछ धर्म चर्चा भी होगी। मेरे ज्ञान में थोड़ी वृद्धि होगी। संन्यासी ने सोचा अगर इसे कुछ लाभ हो जाए तो उनका जाना ही उचित है। वह भोजन के लिए सेठ के घर पहुंचे।

सेठ ने संन्यासी के सामने स्वादिष्ट व्यंजन परोसे और फिर अपनी उपलब्धियों की चर्चा करने लगा। उसने कहा, मेरे पास सैकड़ों एकड़ जमीन है। मेरा कारोबार देश भर में फैला है। मैंने धर्म के प्रचार के लिए क्या-क्या नहीं किए हैं। मैंने एक नहीं सैंकड़ों धर्मशालाएं बनवाई हैं। मैने शहर में कई जगहों पर ऐसी व्यवस्था की है कि वहां पहुंचने वाले हर भिखारी को एक-एक किलो खिचड़ी अवश्य मिले। मेरे लड़के भी मेरी ही तरह योग्य हैं। उनका भी व्यापार चारों तरफ फैला है। एक दिन वह एक संत को अपना बंगला दिखाने लाया। संत अलमस्त थे और सेठ अपने बड़प्पन की डींगें हांकने में व्यस्त था। संत को उसकी बातों में अहम की बू आ रही थी।

संन्यासी ने देखा कि सेठ का चेहरा घमंड से फूला हुआ है। वह अपनी हर बात पर गदगद हो रहा था। संन्यासी ने उसका ध्यान दीवार पर टंगे एक नक्शे की ओर आकृष्ट करते हुए कहा, यह विश्व का नक्शा है। इसमें पूरा संसार समाहित है। अब बताओ इसमें हमारा देश कहां है ?

सेठ ने तुरंत उंगली रखकर भारत को दर्शाया। संन्यासी ने कहा, अब अपना राज्य और गांव ढूंढकर दिखाओ। सेठ ने राज्य तो खोज लिया पर गांव न खोज सका। संत ने उसके अहम को मिटाने के उद्देश्य से दीवार पर टंगे मानचित्र को

दिखाते हुए पूछा, इसमें तुम्हारा शहर कौनसा है ?

सेठ ने मानचित्र में एक बिंदु पर उंगली रखी। संत ने विस्मय से पूछा- इतने बड़े मानचित्र पर तुम्हारा शहर बस इतना सा ही है। और क्या तुम इसमें अपना बंगला बता सकते हो ? सेठ ने जवाब दिया, मेरा बंगला इस पर कहां दिखता है ? वह तो ऊंट के मुंह में जीरे के समान है।

संन्यासी ने कहा, जब तेरे गांव का पता नहीं है तो तेरी उस जमीन का पता कैसे लगेगा जिस पर तू इतना घमंड कर रहा है। संसार में तेरे से अधिक धनवान हैं और उनसे भी अधिक धनवान हैं। उनके सामने तेरा वैभव कुछ भी नहीं है। फिर इतना अभिमान क्यों ? जिस समृद्धि पर तू इतना फूल रहा है वह स्थायी नहीं है। नश्वर वैभव की चकाचौंध में तू आत्मा को भूल गया है। तूने मुझे बुलाया था धर्म चर्चा के लिए पर तू तो केवल अपनी चर्चा में लगा रहा। संभल जा। अपने को पहचान। तो फिर अभिमान क्यों ? संत ने पूछा- शर्मिंदगी के मारे सेठ का सिर झुक गया। वह समझ गया कि नक्शे में उसका नामोनिशान नहीं है, फिर वह क्यों फूला फिर रहा है ? सेठ को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने संन्यासी से क्षमा मांगी।

१६९५) अभिमान- यूनान देश के एक जागीरदार अल्सिबाइड्स नामक एक सेठ को अपनी जमीन-जायदाद तथा धन का काफी घमंड हो गया था। एक दिन वह सुकरात के पास पहुंचकर अपने धन तथा संपत्ति का बखान करने लगा। देर तक सुकरात उसकी बात को सुनते रहे। फिर उठकर भीतर से विश्व का मानचित्र उठा लाये और उस मानचित्र को जमीन पर फैलाकर उस धनी से पूछा- अपने यूनान देश को इस मानचित्र में दिखाना? यह है हमारा यूनान देश, उस धनी ने यूनान देश पर अंगुली रखकर दिखाया। वह प्रांत नक्शे पर मटर के दाने से भी कम जगह घेरता था।

सुकरात ने फिर पूछा- अब जरा अपना एटिका प्रदेश दिखाओ ? सुकरात ने आगे कहा, बड़ी कठिनाई से वह अपने प्रदेश को दिखा पाया। सुकरात ने पुन: कहा- जरा अपने प्रदेश में जमीन-जायदाद को दिखाना ?

अबकी बार उस घमंडी धनी ने उत्तर दिया- महोदय, इतनी छोटी-सी जमीन को इस मानचित्र में दिखाना असंभव है।

तब सुकरात ने कहा- जिस भूमि के लिए तुम मानचित्र में एक बूंद भी नहीं रख सकते तब उस भूमि के लिए तुम इतना अभिमान क्यों करते हो ? यह तो पूरा प्रांत हुआ, तुम्हारी जमीन तो सुई की नोक बराबर भी नहीं होगी। तब सुकरात मुस्कराते हुए बोले- तो सोचो समस्त ब्रह्मांड में वह कितनी उपेक्षणीय है, फिर भी तुम उसे लेकर डींगे क्यों हांकते रहते हो?

सुकरात की इस बात से उस धनी का अभिमान जाता रहा और उसने अपने किये हुए कार्य पर सुकरात से क्षमा मांगी

१६९६) वे तीन- एक बार एक बुढ़िया को उसके बेटे का पत्र मिला। बेटा दूर देश में रहता था। बुढ़िया को पत्र पढ़ना नहीं आता था। वह अपने घर के सामने प्रतीक्षा कर रही थी कि कोई आए, तो पत्र पढ़कर उसको सुना दे। आखिर एक सैनिक आया। उसने पत्र देखा तो उसकी आंखों में आंसू भर आए। थोड़ी देर बाद वह फूट-फूट कर रोने लगा। बुढ़िया ने घबराकर पूछा, मेरे बेटे को कुछ हो गया क्या? लेकिन सैनिक ने कोई जवाब नहीं दिया। बस, रोता ही रहा। बेचारी बुढ़िया ने सोचा कि उसके बेटे पर कोई भयंकर मुसीबत आ गई है। वह भी सैनिक के साथ रोने लगी। कुछ देर बाद एक व्यापारी आया। उसने उन दोनों को रोते देखा तो वह भी उनके साथ रोने लगा। वे तीनों रो रहे थे इतने में एक और आदमी आया। उन तीनों को रोते देखकर उसने पूछा कि मामला क्या है? पहले व्यापारी बोला, साल भर पहले मैं मिठ्ठी के कुछ बर्तन बेचने निकला था। मेरी किस्मत खराब थी। सारे बर्तन टूट गए। मैं तब रोना चाहता था लेकिन मुझे समय नहीं मिला क्योंकि मैं अपने नुकसान को पूरा करने में लगा था। इन दोनों को रोते देखकर मुझे याद आया कि तब मैं रोया ही नहीं। मैंने सोचा चलो अभी रो लेता हूं। इसीलिए मैं रो रहा था। जब बुढ़िया से पूछा तो उसने कहा- मुझे मेरे बेटे का पत्र मिला था।

मुझे पढ़ना नहीं आता। मैंने इस सैनिक से पढ़ने को कहा और वह पत्र देखते ही रोने लगा। पत्र में जरूर कोई बुरी खबर लिखी है। यह सोचकर मैं रोने लगी। आखिर में सैनिक से पूछा तो वह बोला- सच तो यह है कि बचपन में मैंने थोड़ी भी पढ़ाई नहीं की। अपने अनाड़ीपन पर मुझे दुख हुआ कि इस पत्र को मैं पढ़ नहीं सकता। मुझे इतनी शर्म आई कि मैं रोने लगा। तीनों की बात सुनकर वह आदमी समझ गया कि इनके रोने का कारण इनकी बेवकूफी है। उसने पत्र पढ़ा और बुढ़िया को बताया कि उसका बेटा बिल्कुल ठीक-ठाक है। सभी को समझाकर उसने अपना रास्ता पकड़ा।

१६९७) रक्तबीज को करे रक्तहीन - मिथकों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण करके जल-संसाधनों की रक्षा के लिए असुरों का सृजन किया, इसलिए वे राक्षस कहलाए। कालांतर में विकारग्रस्त होकर वे तीन प्रकार के असुर बने। पहले यक्ष- जो कुबेर के रक्षक थे, दूसरे देवताओं का साम्राज्य हथियाने के लिए निरंतर युद्ध करनेवाले, तीसरे श्मशानवासी, शव को भोजन बनाने वाले, यज्ञों के विध्वंसक और मनुष्यों को यातना देनेवाले। इस वर्ग का नायक पुलस्त्य का वंशज रावण था। इन अत्याचारियों के विनाश के लिए देवताओं ने देवी की शरण ली थी। शुम्भ और निशुम्भ नामक दो राक्षस भाइयों का सेनापति रक्तबीज था। देवी उस पर जितनी बार वार करतीं धरती पर गिरते उसके रक्त की बूंदों से उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाते। देवी के लिए उसको समाप्त करना चुनौती बन गया। रक्तबीज पर मारक प्रहार करके, रक्त की एक धारा बहा दी गई। धरती पर गिरने से पहले ही, देवी उसके रक्त का पान करती गई और रक्तहीन होकर रक्तबीज मारा गया। यह रक्तपान एक प्रतीक है, दुष्टों के समूह को नष्ट करने का। आज लगता है वही राक्षस फिर से प्रकट हो गए हैं। एक को नष्ट करो तो अनेक जन्म ले रहे हैं। मनुष्य की तामसिकता उसे असुरत्व की ओर धकेल रही है। ऐसे राक्षस घर, परिवार और आसपास मिल जाते हैं। इनके बीज किन परिस्थितियों में पनप रहे हैं, उनका निदान करना होगा। संस्कार, शिक्षा और प्रशासन की दंड व्यवस्था को कारगार बनाकर ही असुरत्व से मुक्त एक स्वस्थ समाज की रचना हो पाएगी।

१६९८) समझ की परीक्षा- नाक किसान था। उसके चार पुत्र थे। अपने पुत्रों की योग्यता-परीक्षा लेने के लिए उसने चारों बेटों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी धान देकर कहा कि इस अनाज का अपनी इच्छानुसार उपयोग करो। एक पुत्र धान को उबालकर खा गया। दूसरे पुत्र ने सुरक्षित रख दिया कि कभी पिताजी मांगेंगे तो दे दूँगा। तीसरे ने तुच्छ वस्तु समझकर चिड़ियों को फैंक दिया चौथे ने धान को खेत में बो दिया। फसल पकने पर चौथे पुत्र ने एक टोकरा धान का लाकर पिता के सामने रख दिया। अन्य पुत्रों ने पिता द्वारा पूछे जाने पर अनाज के उपयोग के बारे में जानकारी दी। पिता ने चौथे पुत्र को जिम्मेदारी के सभी काम सौंपे।

१६९९) फैसला- मुनिया और संतोष खेलते-खेलते आपस में लड़ पड़े। लड़ाई गाली-गलौज, मारपीट तक पहुंच कर उनके पिताओं तक जा पहुंची। सिर फुटौव्वल के बाद भी दोनों पक्षों में समझौता नहीं हो सका। दिलों में रंजिश उत्पन्न होकर बढ़ती ही गयी। मगर ठंडक नहीं पड़ सकी, दोनों परिवारों में पनपी गरमा-गरमी में मामला अदालत जा पहुंचा। पेशकार, दलाल, वकील को नजराना व फीस भरने में उनकी जमापूंजी खर्च होने लगी। फैसले के नाम पर हर बार तारीख पर तारीख मिलती चली गयी। वे बच्चे जवान हो गए। मुकदमे का निपटारा अभी तक नहीं हुआ था। दोनों पक्षों के खेत बिकने की नौबत आ गयी। खेतों का सौदा तय हो गया। कागजातों पर हस्ताक्षर किए जाने वाले थे कि मुनिया और संतोष ने अपने-अपने पिताओं के हाथ थाम लिए और कहने लगे।

पिताजी अब बस करो गलती हमारी थी हम उनसे क्षमा मांग लेते हैं। वर्षों से चला आ रहा मुकदमा खत्म करो। परिवार

का आखिरी सहारा ये खेत मत बेचो दोनों के पिताओं के मन भी अदालती चक्कर काटते-काटते, धन लुटाते-लुटाते न्याय पाने की तमन्ना दम तोड़ चुकी थी।

उनके दिलों में बसे नफरत के वृक्षों के सूखते जाने से उन्हें बच्चों की बात ही उचित प्रतीत होने लगी और वे दूसरे के सामने खड़े क्षमा मांगते हुए अदालत जाने के लिए पछता रहे थे।

१७००) अध्ययन के बल पर करोड़पति- माता-पिता के स्वर्गवास होने के कारण अनाथ बच्चों को आजीविका की तलाश में गांव छोड़ना पड़ा। वे जहां रुकते, मजदूरी करके निर्वाह योग्य पैसा कमाते और फिर आगे निकल जाते। ऐसा करते हुए वे मुम्बई पहुंच गए। वहां रोजगार तलाशा। अनजान शहर में निरक्षर बालकों को कौन रोजगार देता ? उन्होंने हिम्मत न हारकर कठिन परिस्थितियों का डटकर मुकाबला किया। सस्ती धार्मिक किताबें उधार में खरीदीं और फेरी लगाकर बेचने लगे। साथ ही रात्रिकालीन स्कूल में भी जाने लगे। पुस्तकें बेचने का कार्य इतना बढ़ा कि धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए उन्हें अपना प्रेस लगाना पड़ा। साहित्य प्रकाशन से संस्कारों का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। क्रमश: नई मशीनें आती गईं और वे प्रकाशन के उच्च शिखर पर पहुंच गए। निर्णय सागर प्रेस इन्हीं के द्वारा स्थापित किया हुआ है।

१७०१) महारानी का हार - एक बार वीरगढ़ राज्य की महारानी का हार कहीं खो गया। महारानी को हार बहुत प्रिय था। उन्होंने हार ढूंढने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं मिला। हार के लिए महारानी को बहुत परेशान देखकर राजा ने घोषणा करवा दी कि जिस व्यक्ति को भी हार मिला हो, वह तीन दिनों के भीतर उसे वापस कर दे अन्यथा उसे मृत्युदंड का भागी होना पड़ेगा। यह संयोग था कि हार एक संन्यासी को मिला था। उसके मन में हार के प्रति कोई आकर्षण नहीं था, फिर भी उसने यह सोचकर रख लिया कि कोई ढूंढता हुआ आएगा तो उसे दे देगा। उसने अगले दिन राजा की घोषणा सुनी, पर वह हार देने नहीं गया। वह अपनी साधना में लीन रहा। तीन दिन बीत गए। चौथे दिन संन्यासी हार लेकर राजा के पास पहुंचा। राजा को जब पता चला कि तीन दिनों से हार उसके पास था, तो उसने क्रोधित होकर पूछा, क्या तुमने मेरी घोषणा नहीं सुनी थी? संन्यासी ने जवाब दिया, सुनी थी, पर यदि मैं कल हार लौटाने आ जाता तो लोग कहते कि एक संन्यासी होकर मृत्यु से भयभीत हो गया। इस पर राजा ने पूछा, तो आज चौथे दिन क्यों लाए? इस पर संन्यासी ने कहा, मुझे मौत का भय नहीं है। पर मैं किसी दूसरे की संपत्ति को अपने पास रखना पाप समझता हूँ। हार जैसी तुच्छ चीज से मुझे कोई लगाव नहीं। यह उत्तर सुनकर राजा लज्जित हो गया। महारानी को भी अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने हार बेचकर वह राशि गरीबों में बंटवा दी।

१७०२) हृदय परिवर्तन- बड़ी देर से चल रही चर्चा के पश्चात जब अशोक उठकर जाने लगा तो चाचाजी बोले- बेटा, अपने मकान के लिए कोई किराएदार नजर में हो तो बताना। शादीशुदा, बाल-बच्चेदार हो, तो नौकरी-पेशे वाला हो, शाकाहारी हो, शराब को तो देखता तक न हो, ना ही ज्यादा लोगों का उसके घर तांता लगा रहे और हां, बेटा किराया भी अच्छा-खासा चार-पांच सौ रुपए तक दे दें।

ऐसा कहते हुए चाचाजी ने सांस भरी। अशोक बोला- मकान तो मेरे दोस्त को भी चाहिए, किसी कंपनी में अच्छे ओहदे पर है, इसलिए किराया तो हजार-बारह सौ तक दे सकता है। लेकिन वह अभी तक तो कुंवारा ही है, मांसाहारी भी हे और कंपनी में बड़े पद पर है। इसलिए, आए दिन पार्टियां देता रहता है। जिनमें शराब तो चलती है।

चाचाजी बोले, ठीक है बेटा। तुम तुम्हारे दोस्त से बात पक्की कर लेना। वैसे वो जो कुछ भी करेगा, अपने घर में करेगा। हमें तो वह किराया देगा ही। हम इतनी पूछताछ करें भी क्यों ? हमें कहां उससे अपनी बेटी की शादी करनी है। चाचाजी ने अशोक को या स्वयं को संतुष्ट किया।

HHH(६११)HHH

१७०३) असली कमाई- काशी में एक सेठ रहते थे। वह अपने नौकरों का बहुत ध्यान रखते थे। सभी नौकरों को दिन का भोजन सेठ जी के यहां मुफ्त मिलता था। इसके लिए सेठजी ने अपने यहां एक रसोइये को रखा हुआ था जो सेठजी के परिवार और नौकरों का खाना एक साथ बनाता था। रसोइये का नाम था रामू। कुछ समय से रामू की पत्नी बीमार चल रही थी लेकिन उसने कभी छुट्टी नहीं मांगी। एक दिन सेठजी को खाते वक्त सब्जी मीठी लगी। वह समझ गए कि आज रामू ने सब्जी में नमक की जगह चीनी डाल दी है। उन्होंने रसोइसे से कहा, लगता है तुम रात भर जगे हो। रामू बोला, जी हुजूर, पत्नी कुछ ज्यादा बीमार हो गई है इसलिए उसकी देखभाल के लिए रात को जगना पड़ता है। सेठजी ने कहा, तुम्हारी पत्नी जब इतनी बीमार है तो तुम्हें काम पर नहीं आना चाहिए था। तुम्हें उसकी सेवा करनी चाहिए और उन्होंने उसे जेब से कुछ रुपये निकाल कर देते हुए कहा, तुम अभी घर चले जाओ और पहले अपनी पत्नी का ठीक से इलाज कराओ और पैसे की जरूरत पड़े तो आकर ले जाना।

रामू खुश होकर घर चला गया। उसके जाने के बाद सेठजी सेठानी से बोले, रसोइया बहुत परेशान है। उसने आज सब्जी में नमक की जगह चीनी डाल दी है। मैं उसके सामने आराम से सब्जी खाता रहा ताकि उसे इस बात का पता न चले। उसे घर भेज दिया है। है तो बहुत छोटी बात लेकिन यह सब्जी यदि हमारे नौकर खाएंगे तो उसके आने पर उसकी खिल्ली उडाएंगे, इससे वह बेचारा लज्जित होगा, इसलिए सारी तरकारी जानवरों को खिला दो और किसी को पता चले इससे पहले जल्दी से उन सबके लिए दूसरी सब्जी बना दो।

सेठ की पत्नी बोली, आप इतना कमाते हो फिर भी रसोइये और नौकरों को लेकर इतना क्यों परेशान हो ? इस पर सेठजी बोले, मैंने पैसे कमाये हों या नहीं, रिश्ते जरूर कमाये हैं। मैं रिश्तों की कमाई खोना नहीं चाहता। असली कमाई तो वही है।

१७०४) नई भूमिका- पुराने जमाने की बात है। राजा बालीक ने किसी छोटी सी बात पर नाराज होकर अपने प्रधानमंत्री भद्रजित को उनके पद से हटा दिया। उन्होंने क्रोध में भद्रजित से कहा, तुम अपने आप को बहुत श्रेष्ठ समझते थे न। जब तुम इधर-उधर भटकोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि पद का क्या महत्व होता है। भद्रजित शांति व शालीनता से राजा को प्रणाम कर दरबार से चले गए। उन्होंने पद से हटाए जाने को ईश्वर का वरदान माना और मन में किसी तरह का द्वेष भाव नहीं रखा। उन्होंने अपना समय इश्वरोपासना, स्वाध्याय तथा जनसेवा में लगाना शुरू कर दिया। जल्दी ही वह लोकप्रिय हो गए। भद्रजित अधिक से अधिक समय सत्संग और सद्कार्यों को देने लगे। एक दिन राजा बालीक को भद्रजित की याद आई। राजा ने सोचा कि भद्रजित की हालत निश्चय ही दयनीय हो गई होगी। क्यों न चल कर देखा जाए। राजा वेश बदल कर नगर में जा पहुंचे। राजा को देखकर आश्चर्य हुआ कि भद्रजित श्रेष्ठ लोगों से घिरे थे। भद्रजित ने वेश बदले राजा को पहचान लिया। उन्होंने खड़े होकर राजा का अभिनंदन किया और कहा, राजन। यदि आप मुझे मेरे पद से हटाते नहीं तो मुझे लोगों की सेवा का अवसर भला कहां मिलता? यह तो मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे पद से हटा दिया। इससे मुझे जीवन के एक अलग अध्याय को जानने और एक नई भूमिका निभाने का अवसर मिला। मैं आपका आजीवन आभारी रहूंगा। राजा बालीक भद्रजित की विनम्रता और धैर्य को देखकर हैरान रह गए। उनसे कुछ बोलते न बना।

१७०५) वीरों के प्रति श्रद्धा- एक बार प्रिंस ऑफ वेल्स एडवर्ड अष्टम प्रथम विश्वयुद्ध में घायल कैदियों को देखने गए। एक निजी अस्पताल में उनका इलाज हो रहा था। वहां तैनात सैनिक अधिकारी और अस्पताल के अधिकारियों ने घायल सैनिकों से उनकी भेंट करवाई। अधिकारियों ने जब कार्यक्रम पूरा होने की बात कही तब प्रिंस ने कहा- आपने तो कहा था कि ३६ सैनिक घायल है, मगर यहां तो २९ ही दिखाई दिए। बाकी सैनिक कहां है ? अधिकारियों ने कहा- सर

अन्य सैनिक भी इसी अस्पताल में भर्ती हैं, लेकिन उनकी हालत नाजुक है। उनके शरीर पर जगह-जगह चोटें आई हुई हैं। आप उन्हें देखे, वे ऐसी स्थिति में नहीं हैं।

अधिकारियों की बात सुनकर प्रिंस बोले- जिन सैनिकों ने देश के लिए इतना बड़ा बलिदान किया, उनसे क्या मैं सिर्फ इसलिए नहीं मिलूं कि वे बुरी तरह घायल हैं ? उनसे तो मुझे सबसे पहले मुलाकात करनी चाहिए थी।

अधिकारियों के पास कोई चारा न था। उन्हें प्रिंस को घायलों से मिलाने ले जाना पड़ा। प्रिंस ने सबसे प्यार से बातचीत कर उनका दुख बांटने की कोशिश की। उस विभाग का दौरा खत्म हुआ, तो अधिकारी उन्हें अस्पताल से बाहर ले आए। प्रिंस अपनी गाड़ी में बैठने ही वाले थे कि अचानक उन्होंने पूछा- यह तो ६ सैनिक ही हुए सातवां कहा हैं ?

एक वरिष्ठ अधिकारी बोला- सर उस सैनिक की हालत बहुत चिंताजनक है। उसका पूरा चेहरा खराब हो गया है, सीने फट गया है, आप उसे देख न सकेंगे।

मैं उससे मिले बगैर यहां से नहीं जाऊंगा। प्रिंस ने गाड़ी से उतरते हुए कहा। अधिकारियों ने बहुत कहा कि वह सैनिक ऐसी हालत में है कि न कुछ सुन सकता है, न देख सकता है और न बोल सकता है। प्रिंस फिर भी उससे मिलने गए। उन्होंने उस सैनिक के हाथ पर अपना हाथ रखा। जो बात वे मुंह से कहते, उसे उन्होंने उसके जख्मी हाथ को चूमा और गीली आंखें लिए अस्पताल से बाहर आ गए।

१७०६) गुरु की शिक्षा- पुराने जमाने की बात है। एक राजा ने अपने राजकुमार को शिक्षा पाने के लिए गुरु के आश्रम में भेजा। राजकुमार ने आश्रम के नियम और कायदे का पालन करते हुए मेहनत से शिक्षा पूरी की। शिक्षा पूरी होने के बाद जब राजकुमार के घर जाने का समय आया तो राजा अपने बेटे को लेने आश्रम पहुंचे। गुरु ने राजा का पूरा सम्मान किया और राजकुमार की खूब प्रशंसा की। आश्रम के सभी शिष्य उस समय वहां उपस्थित थे। राजकुमार ने गुरु के चरणों में प्रणाम करके विदा मांगी। गुरु बोले, बेटा, जाने से पहले मेरी छड़ी लाकर दे दो। राजकुमार ने गुरु की छड़ी लाकर उन्हें दी। गुरु छड़ी लेकर खड़े हुए फिर सबके सामने उन्हें राजकुमार को दो छड़ी कस कर जमाईं।

गुरु के इस व्यवहार से आश्रम के सभी शिष्य आश्चर्य में पड़ गए, क्योंकि आज तक गुरु ने किसी शिष्य को छड़ी से मारने की बात तो दूर, किसी को डांटा तक नहीं था। वह सभी शिष्यों को बेटे की तरह मानते थे। मार खाकर भी राजकुमार निर्विकार भाव से खड़ा था, जैसे कुछ हुआ ही न हो। लेकिन राजा को क्रोध आ गया। वह बोले, आचार्यवर, आपने मेरे बेटे को किस अपराध के लिए दंडित किया है। मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ा। गुरु मुस्करा कर बोले, राजन, आप इसे नहीं समझेंगे। राजकुमार सभी शिष्यों में सर्वोत्तम है। बहुत विनम्र है, आज्ञाकारी है। लेकिन उसकी शिक्षा का अंतिम पाठ अभी पूरा नहीं हुआ था। अब पूरा हो गया है। अब वह घर जा सकता है। मैं कुछ समझा नहीं आचार्यवर। राजा ने कहा। आचार्य बोले, महाराज, आप राज्य के शासक हैं। अपनी प्रजा को आप कठोर दंड देने में जरा भी संकोच नहीं करते। कल को आप का बेटा आपका उत्तराधिकारी होगा। आप की तरह इसे भी दूसरों को दंड देना पड़ेगा। उस समय इसको इतना अनुभव तो होना ही चाहिए कि किसी को दंड देते समय उसके मन की दशा क्या होती है। राजन, सफल शासक वही होता है जो दूसरों की वेदना की अनुभूति करने में सक्षम हो। मैंने राजकुमार को उसी का अनुभव कराया है।

१७०७) वाणी है पहचान- एक राजा शिकार का पीछा करते हुए जंगल में काफी दूर निकल गया। उसके सैनिक पीछे छूट गए। उसके साथ मंत्री, सेनापति और एक नौकर रह गया। राजा को प्यास लगी। उनके पास का पानी खत्म हो चुका था। पानी की खोज में भटकते-भटकते उन्हें एक झोपड़ी दिखाई दी। उन्होंने देखा कि एक नेत्रहीन व्यक्ति वहां बैठा हुआ है। सैनिक

पानी की तलाश में गया। निकट ही एक कुआँ था जहाँ एक अन्धा व्यक्ति लोगों को जल पिलाने का कार्य कर रहा था। झोपड़ी के पास एक पेड़ के नीचे अपने घोड़े खड़े कर राजा, मंत्री और सेनापति ने नौकर को पानी लाने के लिए भेजां इतने बड़े-बड़े लोगों के साथ होने के कारण नौकर अकड़ता हुआ गया और बोला, तो अंधे, तेरी झोपड़ी में पानी-वानी है क्या ?

नेत्रहीन व्यक्ति ने कहा, तुम नौकर हो। तुम्हें पानी नहीं मिलेगा। जाओ किसी और को भेजो। नौकर लौट आया और बोला, वह मुझे पानी नहीं देता। सैनिक उसके पास गया और बोला- अरे अन्धे। एक लोटा जल मुझे भी दे। अन्धे व्यक्ति ने कहा- मैं तुझ जैसे मूर्ख नौकर को पानी नहीं देता। जा भाग यहाँ से। सिपाही गुस्सा होकर वहाँ से वापस आया। अब राजा ने सेनापति को पानी के लिए भेजा। सेनापति भी अकड़ता हुआ गया और बोला, ऐ सूरदास, पानी है तेरी झोपड़ी में। उस व्यक्ति ने जवाब दिया सेनापति जी, पानी तो है लेकिन आपको नहीं मिलेगा। किसी और को भेजिए। उस सैनिक की बात सुनकर प्रधान सेनापति स्वयं गए और बोले अन्धे भाई। मुझे एक लोटा जल शीघ्रता से दे दो। अन्धे व्यक्ति ने कहा लगता है पहले वाले सैनिक का सरदार है। मन में कपट है लेकिन ऊपर से मीठा बोलता है। मैं तुझे भी पानी नहीं दूँगा। सेनापति ने राजा से आकर शिकायत की।

सेनापति भी मुंह लटका कर जब वापस आ गया तो राजा ने मंत्री को भेजा। मंत्री ने जाकर कहा, सुनो तुम्हारी झोपड़ी में पानी मिलेगा क्या ? उसने कहा, मंत्री जी किसी और को भेजिए। अब राजा ने स्वयं आगे बढ़कर पानी लाने की ठानी और उस व्यक्ति से कहा, बाबा हम जंगल में रास्ता भटक गए हैं। प्यास लगी है। क्या आपसे हमें पीने के लिए पानी मिल जाएगा ? अब महाराज स्वयं उस अन्धे व्यक्ति के पास गये और अभिवादन करके बोले- बाबाजी। प्यासा हूँ, गला सूख रहा है थोड़ा जल देने की कृपा करें जिससे प्यास मिटे।

नेत्रहीन व्यक्ति ने कहा, क्यों नहीं राजन, अंदर झोपड़ी के बाएं कोने में रखे घड़े में शीतल जल है। उसमें से लेकर अपनी और अपने साथियों की प्यास बुझाइए। राजा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, बाबा आपने नेत्रहीन होते हुए भी सभी को कैसे पहचान लिया ? जल ग्रहण करने के पश्चात राजा ने पूछा महात्मन। आप चक्षुहीन होते हुए भी यह कैसे जान गए कि एक सिपाही, एक सेनापति और मैं राजा हूँ। उस व्यक्ति ने जवाब दिया, इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है क्योंकि किसी भी व्यक्ति की वाणी से उसके व्यक्तित्व की पहचान होती है। व्यक्ति अपनी भाषा और लहजे से पहचाना जाता है। व्यक्ति की वाणी ही उसके व्यक्तित्व का ज्ञान कराती है। यही कारण है कि नेत्रहीन होते हुए भी मैंने आप सब को पहचान लिया।

१७०८) बात जो चुभ गई- जर्मनी के जोसफ बर्नार्ड की किशोरवय जड़ता में व्यतीत हुई। स्कूल में तथा ट्यूशन करवाने पर भी कोई परिणाम नहीं निकला तो पिता ने एक दिन खीजते हुए कहा तेरी जैसी बुद्ध औलाद से कुत्ते का पिल्ला पालना अच्छा था। बात चुभ गई। बर्नार्ड ने पूर्ण मनोयोग से अपना अध्ययन प्रारम्भ किया। मन से की गई पढ़ाई के कारण असाधारण परिणाम सामने आए जिसे लोग चमत्कार की उपमा देने लगे। बाइबिल उसने कंठाग्र कर ली। कुछ ही वर्षों में वह नौ भाषाओं का मूर्धन्य विद्वान बन गया। प्रतिभा विकास तथा सेवा कार्यों से उसने लोगों का मन जीता। अपने विभाग के नौ-नौ अधिकारियों को एक साथ बिठाकर कितने ही आदेश लिखवा देता। जर्मनी के इतिहास में उन्हें मेधा का धनी माना जाता है जबकि बाल्यावस्था में वे मूर्ख कहलाते थे। संकल्पित होकर लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास व्यक्ति के जीवन में असाधारण परिवर्तन ला देते हैं।

१७०९) दहेज- मुख्याध्यापक महोदय, आपके विद्यालय में केवल पचास प्रतिशत अध्यापक ही ईमानदारी से पढ़ाते हैं। बाकी सिर्फ मटरगश्ती करते रहते हैं। आपका अनुमान गलत है श्रीमान। आपको स्थिति की सही जानकारी नहीं है।

मतलब। मतलब यह है श्रीमान कि मेरे विद्यालय में, ईमानदारी से पढ़ानेवाले अध्यापकों का प्रतिशत मात्र बीस है।

विद्यालय की परीक्षाओं के जो भी परिणाम आप देखते हैं वह इन बीस प्रतिशत अध्यापकों की बदौलत ही है। फिर शेष अस्सी प्रतिशत अध्यापकों से आप अध्यापन-कार्य के लिए कहते क्यों नहीं ? इसलिए श्रीमान कि इनका चयन इनकी योग्यता के आधार पर नहीं, अपितु इनके द्वारा प्रबंधकों को दिए गए दहेज के आधार पर हुआ है और जो बहू मुंह-मांगा दहेज लेकर आएगी वह तो राज ही करेगी न श्रीमान। उसे काम करने को भला कौन कहेगा।

१७१०) सच्चा वीर- माता-पिता को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि अधिका के कारण बच्चों में बिगड़ने की संभावनाएं तो जन्म नहीं लें रहीं। राजपुत्र को एक बार मंत्री के पुत्र ने परस्पर खेलते हुए गाली दे दी। राजकुमार ने अपने पिता से शिकायत की। चाटूकारों ने अवसर का फायदा उठाते हुए मंत्री पुत्र को दण्डित करने की सलाह दी। राजा ने राजकुमार से कहा कि खेल-खेल में हुई लड़ाई को तूल नहीं देना चाहिए। तुम्हें अपराधी साथी को क्षमा कर देना चाहिए। क्रोध और दण्ड का कारण होने पर भी जो क्षमाशीलता को अपनाता है, वही सच्चा वीर होता है। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो जाओ तुम भी उसे गाली दे आओ। पर क्या तुम्हें ऐसा करना शोभा देगा ?

१७११) सच्ची खुशी- एक स्वामी भिक्षा के लिए एक किसान के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने खिड़की से झांका तो देखा कि पूरा परिवार चिंताग्रस्त बैठा है। स्वामीजी ने उनकी चिंता का कारण पूछा। किसान ने कहा, हमारे यहां इस बार फसल कम हुई है, अन्न इतना भर है कि आठ माह गुजारा चल सकता है। पता नहीं, अगले चार महीने हम कैसे गुजारा करेंगे ? स्वामीजी ने कहा, मेरे साथ चलो, प्रबंध करा देता हूँ। स्वामीजी उसे अपने एक शिष्य के पास ले गए, जो अन्न का व्यापारी था। स्वामीजी ने उससे किसान को दो-चार बोरियां दिलवा दीं। वह प्रसन्नतापूर्वक गाड़ी में अनाज लादकर चल पड़ा। गांव के बाहर एक प्याऊ थी। एक वृद्धा अपनी नातिन के साथ वह प्याऊ चलाती थी। जल पिलाकर उसे जो प्राप्त होता था उसी से वह गुजारा करती थी। जब पानी पीकर किसान ने उसे कुछ अन्न देना चाहा तो उसने कहा, अभी तो हमारे पास सात-आठ दिनों के लिए पर्याप्त अन्न है। किसान ने सोचा कि एक यह है जो सात-आठ दिनों का अन्न होने पर भी संतुष्ट है और मैं आठ महीने का अनाज होने पर भी दुखी हूं। सच्ची खुशी संग्रह में नहीं, संतोष में है।

१७१२) छत्रसाल की सच्चरित्रता- महाराज छत्रसाल समय-समय पर रात्रि में स्वयं नगर परिभ्रमण किया करते थे। कभी-कभी वह दिन में भी इसी प्रकार निकल जाया करते थे। उन दिनों ब्लैक कमाण्डों का युग नहीं था। राजा-महाराजा ज्यों ही निकल जाया करते थे। बीसवी शती के नौंवे दशक की ही घटना है कि नार्वे के प्रधानमंत्री ओलेफ पामले अपनी पत्नी के साथ सिनेमा देखने गये थे कि सिनेमा हाल के द्वार पर किसी हत्यारे ने उन पर गोली चला कर उनकी हत्या कर दी। किन्तु अब बिना कमाण्डो के कोई नहीं चलता। महाराजा छत्रसाल की धारणा थी- जिस राजा के राज्य में प्रजा के लोग दु:ख पाते है, वह नरेश नरकगामी होता है। शास्त्र भी यही कहते हैं। छत्रसाल न केवल युवक थे, अपितु उनका शरीर भी बड़ा ही सुगठित था, लोचन विशाल थे और भव्य भाल था। इस प्रकार उनको भ्रमण करते देख कर एक नारी उन पर मुग्ध हो गई। सब प्रकार की लज्जा त्याग कर वह महाराज के समीप आई और हाथ जोड़कर कहने लगी- महाराज। मैं अत्यन्त दु:खिनी हूँ। महाराज ने पूछा- क्या दु:ख है आपको देवी। उसने छलपूर्वक उत्तर दिया- महाराज यदि मेरा दु:ख दूर करने का वचन दें तो मैं निवेदन करूं। मुझ से सम्भव होगा तो मैं आपका दु:ख अवश्य दूर करूंगा। महाराज ने सहज भाव से आश्वासन दिया। नारी ने विचित्र भावभंगिमा से कहा- मैं सन्तानहीन हूँ, मुझे आप जैसा एक पुत्र चाहिए। छत्रसाल यह सुनकर क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गये। किन्तु तुरन्त ही उस नारी के चरणों में झुककर उन्होंने कहा- आपको मेरे समान पुत्र चाहिए ? माता। यह छत्रसाल आपका ही पुत्र है। इतना ही नहीं छत्रसाल ने उसे राजमाता की भांति ही स्वीकार किया।

१७१३) चार सवाल- एक बार एक राजा ने अपने मंत्री से कहा, मुझे इन चार प्रश्नों के जवाब दो। जो यहां हो वहां नहीं, दूसरा- वहां हो यहां नहीं, तीसरा- जो यहां भी नहीं हो और वहां भी न हो, चौथा- जो यहां भी हो और वहां भी।

मंत्री ने उत्तर देने के लिए दो दिन का समय मांगा। दो दिनों के बाद वह चार व्यक्तियों को लेकर राज दरबार में हाजिर हुआ और बोला, राजन। हमारे धर्मग्रन्थों में अच्छे-बुरे कर्मों और उनके फलों के अनुसार स्वर्ग और नरक की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। यह पहला व्यक्ति भ्रष्टाचारी है, यह गलत कार्य करके यद्यपि यहां तो सुखी और संपन्न दिखाई देता है, पर इसकी जगह वहां यानी स्वर्ग में नहीं होगी। दूसरा व्यक्ति सद्गृहस्थ है। यह यहां ईनामदारी से रहते हुए कष्ट जरूर भोग रहा है, पर इसकी जगह वहां जरूर होगी। तीसरा व्यक्ति भिखारी है, यह पराश्रित है। यह न तो यहां सुखी है और न वहां सुखी रहेगा। यह चौथा व्यक्ति दानवीर सेठ है जो अपने धन का सदुपयोग करते हुए दूसरों की भलाई भी कर रहा है और सुखी सम्पन्न है। अपने उदार व्यवहार के कारण यह यहां भी सुखी है और अच्छे कर्म करने से इसका स्थान वहां भी सुरक्षित है।

१७१४) समाजसेवा का भूत- वर्माजी के दिल में महीनों से समाजसेवा करने का जज्बा उफान मार रहा था, वर्माजी बोले, भई महलोत्राजी। मैं चाहता हूं कि मैं इस मुहल्ले से समाजसेवा का कार्य शुरू करूं वाह क्या बात है। यह तो बड़ी अच्छी बात है। दूसरे दिन से लोग अपनी समस्या वर्माजी के पास ऐसे देने लगे मानो वर्माजी ने उनकी हर समस्या का पूरा ठेका ही ले रखा हो। कोई कहता- वर्माजी मेरा इलेक्ट्रिक बिल कारपोरेशन वाले नहीं ठीक कर रहे, उसे करा दीजिए। कोई कहता- वर्माजी मेरे यहां गैसवाला समय से गैस नहीं देता। कोई कहता- कारपोरेशन वाले मेरे घर के सामने ही कूड़ादान रखे हैं। इसे हटवा दें। अब वर्माजी सबके काम लेकर इस कार्यालय से उस कार्यालय भटकने लगे। दूसरी तरफ अपने दफ्तर लेट से पहुंचने लगे। जब लोगों के काम नहीं होते तो लोग कहते, अरे क्या वर्माजी एक काम के लिए आपका सहयोग लिया वो भी पूरा नहीं करा सके। कब तक होगा ? इधर दफ्तर में लेट-लतीफी के कारण वर्माजी को अपने बॉस से रोज चार बातें सुननी पड़ती थीं। घर में जो किच-किच होता सो अलग। आखिर वर्माजी को दफ्तर से निलंबित कर दिया गया। करीब ३ माह वे घर बैठे रहे। इधर वर्माजी घर खर्च से परेशान रहने लगे। उन्होंने जिन लोगों की समाजसेवा के धुन में सेवा की, वे ही लोग उन्हें कुछ रुपये उधार देने में कतराने लगे। अब लोग समस्या बताना तो दूर, उनसे नजरें चुराकर कन्नी काटने लगे। घर में बीवी-बच्चे भी ताने मारने लगे। वर्माजी के सिर से समाजसेवा का भूत उतर चुका था। जैसे-तैसे उनकी पुन: बहाली तो हो गई, लेकिन उन्हें यह समझ में आ गया था कि पहले अपना आधार मजबूत रखो फिर समाजसेवा की बात सोचो। अपना गंवा कर दूसरों की सेवा करना आ बैल मुझे मार की कहावत चरितार्थ कर देता है।

१७१५) निजी बदलाव- एक राजा था। वह अपनी बेटी से बेइंतहा प्यार करता था, उसकी हर इच्छा पूरी करता था। लेकिन बेटी को कभी महल के बाहर नहीं जाने देता था। बेटी महल के बाहर की दुनिया से अपरिचित थी। एक दिन बेटी ने शहर देखने की इच्छा जताई। राजा के मना करने पर बेटी रूठ गई। राजा चिंता में पड़ गए। फूल-सी बेटी, कभी पैदल ज्यादा चली नहीं। महल की नर्म चटाइयों पर रहनेवाले कोमल पैर पथरीली सड़कों पर कैसे चलेंगे? उस समय न तो आज जैसी कोई पक्की सड़क थी, न ही जूतों का जनम हुआ था। क्या किया जाए? सोच-विचार के बाद राजा ने मंत्रियों को आदेश दिया की पूरी शहर की गलियों पर चमड़े की चादर बिछा दी जाए, ताकि राजकुमारी को चलने में तकलीफ न हो। तभी एक दरबारी ने सुझाव दिया कि सारे शहर में चमड़ा बिछाने के बजाय क्यों न राजकुमारी के पैरों में चमड़ा पहना दिया जाए। इससे राजकुमारी के पैर भी सुरक्षित रहेंगे और काम भी आसान हो जाएगा। बात बड़ी सरल और तर्कपूर्ण है। दुनिया भर को अपने अनुकूल करने से बेहतर व आसान है निजी बदलाव। सुनते हैं तभी से जूते पहनने का चलन शुरू हुआ।

१७१६) संस्कार और शांति - मोहन ने हमेशा सच्चाई का साथ दिया था। उसका पूरा जीवन गरीबी में कटा था, वह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी था। अगर वह दुनियादारी वाले स्वभाव का होता तो, आजादी के बाद कम से कम नेता तो बन ही गया होता, पर उसने अपने ईमान से कभी समझौता नहीं किया, अब उसका अंतिम वक्त था। श्वास साथ छोड़नेवाली थी, उसका मन अशांत था, वह बड़बड़ा रहा था, मेरा जीवन निरर्थक हो गया प्रभु, मैंने अपने बाद अपने वारिसों के लिए कुछ नहीं छोड़ा, कैसे जिएंगे इस गरीबी में यह सब। तभी उसके फौजी बेटे ने कमरे में प्रवेश किया और बोला- बाबूजी। यह क्या आपने तो वो जंग जीती है, जो किसी ने नहीं जीती। आपने तो हमें वो संस्कार दिये हैं, जो किसी ने नहीं दिये। बाबूजी अगर ईमान बेचकर आप नेता भी बन जाते तो विरासत में हमें चोरी, बेईमानी और मक्कारी मिलती, शांति नहीं मिलती। मोहन का सीना तन गया था और आंखों में ऐसे भाव थे जैसे कह रहे हों कि मैंने दुनिया की सबसे बड़ी दौलत संस्कार और शांति विरासत में अपने बच्चों के लिए छोड़ी है।

१७१७) पोजीशन - प्रमोद आईएएस आफिसर बन गया था। सो अपनी नौकरी पर लगने की सूचना लेकर अपने ट्यूशन टीचर रामलाल के पास तुरंत पहुंचने को उतावला हो रहा था। सेठ करोड़ीमल ने टोकते हुए कहा बेटा तेरी नौकरी लगने की खुशी में हम पार्टी तो दे रहे हैं, तब ही दावतनामा और सूचना साथ-साथ दे दी जाएगी।

लेकिन डैड मैं.....

जैसा कहा है, वैसा मानो बेटा, मैं स्वयं रामलाल के पास जाऊँगा। वैसे भी वे आजकल गांव गए हुए हैं।

ओ.के. डैड प्रमोद निराश होकर बोला। करोड़ीमल एक दिन पहले मिठाई का डिब्बा लेकर रामलाल के पास जा पहुंचे। दुआसलाम के बाद निमंत्रण पत्र देते हुए कहा मास्टर साहब कल प्रमोद की नौकरी लगने की खुशी में हम होटल गेलार्ड में पार्टी दे रहे हैं। आप जरूर आइएगा, आखिर आपकी शिक्षा और मेहनत की बदौलत ही प्रमोद आज इस पोजीशन पर है।

बहुत अच्छा। कितने बजे पहुंचना है ? गद्‌गद् हुए रामलाल ने पूछा।

रात्रि नौ बजे।

अवश्य... अवश्य नौ बजे तक पहुंच जाऊंगा अपने विद्यार्थी की खुशी में शामिल होने।

वो मास्टर, एक गुजारिश है। गेलार्ड होटल में बड़ेबड़े लोग आएंगे..., प्लीज आते समय मेरी पोजीशन का ध्यान रखिएगा। परिधान और आशीर्वाद का स्तर हमारे स्तर के अनुरूप रहेगा... तो.... रामलाल का खिला हुआ चेहरा भक् से सफेद पड़ गया। उन्हें अपनी पोजीशन और औकात दोनों का एहसास एक ही साथ जो करा दिया गया था।

१७१८) मजा- गिल्ली-डंडा खेल रहे दो लड़के आपस में गुत्थमगुत्था हो झगड़ने लगे। अपने कार्यालय के सामने खड़े दो बाबू उन लड़कों को आपस में मारामारी करने के लिए उकसा रहे थे। पहला बाबू- हां पीले बुशर्ट वाले गला पकड़ मुक्का मार।

दूसरा बाबू- अरे ओ लाल बुशर्ट वाले टंगड़ी मार और नीचे पटक। उधर से एक शिक्षक साइकिल से निकल रहे थे कि दो बच्चों को झगड़ते देख शीघ्र साइकिल से उतरे और झगड़ते बच्चों को छुड़ाया, झगड़ा शांत कर उन्हें अपने-अपने घर की ओर भेजा। यह देख दोनों बाबू एक साथ बोल पड़े- अरे। मास्टरजी क्यों छुड़ाया इनको लड़ने देते। फाइटिंग देखने में बड़ा मजा आ रहा था। शिक्षक ने कहा- आपको लड़ाने में मजा आता है और मुझे छुड़ाने में, शांत करने में। यह कह वे साइकिल पर सवार होकर पुन: अपने पथ की ओर चल पड़े।

१७१९) जल्दबाजी का अनर्थ- एक राजा था। वह जल्दी से जल्दी संसार का सबसे धनवान राजा बनने की लालसा रखता था। एक दिन एक सिद्ध महात्मा उसके पास आये। महात्मा ने राजा की आवभगत से प्रसन्न होकर एक वरदान

मांगने को कहा। राजा ने आनन-फानन में मांग लिया कि जो वस्तु मैं हाथ से छू लूं वह तत्काल सोना बन जाये। वरदान मिल गया। राजा प्रसन्न था कि अब तो जिस वस्तु को चाहूं, सोना बना लूंगा पर उसके भोज्य पदार्थ, अन्न, जल, फल, आदि सभी हाथ में आते ही सोना बनने लगे, भूख-प्यास से मृत तुल्य राजा सोचने लगा कि संसार का सबसे धनी व्यक्ति बनने की जल्दबाजी में मैंने स्वयं अनर्थ व मृत्यु मोल ले ली।

१७२०) सुंदर हाथ- पुराने जमाने की बात है। कुछ स्त्रियां एक नदी के तट पर बैठी थीं। वे सभी धनवान होने के साथ-साथ अत्यंत सुंदर भी थीं। वे नदी के शीतल एवं स्वच्छ जल में अपने हाथ-पैर धो रही थीं तथा पानी में अपनी परछाई देख-देख कर अपने सौंदर्य पर स्वयं ही मुग्ध हो रही थीं। तभी उनमें से एकने अपने हाथ की प्रशंसा करते हुए कहा, देखो, मेरे हाथ कितने सुंदर हैं। लेकिन दूसरी स्त्री ने दावा किया कि उसके हाथ ज्यादा खूबसूरत हैं। तीसरी स्त्री ने भी यही दावा दोहराया। उनमें इस पर बहस छिड़ गई। तभी एक वृद्धा लाठी टेकती हुई वहां से निकली। उसके कपड़े मैले-कुचैले थे। वह देखने से अत्यंत निर्धन लग रही थी। उन स्त्रियों ने उसे देखते ही कहा, व्यर्थ की तकरार छोड़ो, इस बुढ़िया से पूछते हैं कि हम में से किसके हाथ सबसे अधिक सुंदर हैं।

उन्होंने पुकारा, ए बुढ़िया, जरा इधर आकर ये तो बता कि हम में से किसके हाथ सबसे अधिक सुंदर हैं ? वृद्धा किसी तरह लाठी टेकती हुई उनके पास पहुंची और बोली, मैं बहुत भूखी-प्यासी हूं। पहले मुझे कुछ खाने को दो। चैन पड़ने पर ही कुछ बता पाऊंगी। वे सब हंस पड़ीं और एक स्वर में बोलीं, जा भाग, हमारे पास कोई खाना-वाना नहीं है। ये भला हमारी सुंदरता को क्या पहचानेगी।

वहीं थोड़ी ही दूर पर एक मजदूर स्त्री बैठी थी। वह देखने में सामान्य लेकिन मेहनती और विनम्र थी। उसने वृद्धा को अपने पास बुलाकर प्रेम से बैठाया और अपनी पोटली खोलकर अपने खाने में से आधा खाना उसे दिया। फिर नदी से लाकर ठंडा पानी पिलाया। फिर उस मजदूर स्त्री ने उसके हाथ-पैर धोये और अपनी फटी धोती से पोंछकर साफ कर दिए। इससे वृद्धा को बड़ा आराम मिला। जाते समय वह वृद्धा उन सुंदर स्त्रियों के पास जाकर बोली, सुंदर हाथ उसी के होते हैं, जो अच्छे कर्म करें तथा जरूरतमंदों की सेवा करें। अच्छे कार्यों से हाथों का सौंदर्य बढ़ता है, आभूषणों से नहीं।

१७२१) सम्मान- चीन के राजा क्वांग का प्रधानमंत्री था सुन शू। एक बार राजा ने उसे पद से हटा दिया। कुछ दिनों बाद उसे फिर प्रधानमंत्री बना दिया। उसे हटाने और वापस बुलाने का यह क्रम तीन बार चला। लेकिन राजा ने अनुभव किया कि इसका सुन शू पर कोई खास असर नहीं पड़ा। वह न प्रसन्न हुआ, न दुखी। जब राजा ने इसका कारण पूछा तो सुन शू ने कहा, जब मुझे प्रधानमंत्री का पद दिया गया तब मैंने सोचा कि सम्मान को अस्वीकार करना उचित नहीं है। जब मैं पदच्युत किया गया तब मैंने सोचा कि जहां आवश्यकता नहीं है वहां चिपके रहना बेकार है। फिर प्रश्न उठा कि यह सम्मान किसका है, मेरा या पद का। यदि पद का है तो उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है और यदि मेरा है तो चाहे पद रहे या नहीं, उससे क्या फर्क पड़ता है।

१७२२) अहंकार का भूत- एक राजा के दो बेटे थे। बड़ा भाई अहंकारी और लालची था, जबकि छोटा भाई मेहनती और परोपकारी। राजा की मौत के बाद बड़ा भाई गद्दी पर बैठा। उसके अत्याचारों से जनता परेशान हो गई। लेकिन छोटा भाई चुपके-चुपके जनता की मदद करता रहता था। लोग उसकी प्रशंसा करते। इसका पता जब बड़े भाई को लगा तो उसने छोटे भाई को बुला कर कहा, मैं इस राज्य का राजा हूं। मेरी इजाजत के बगैर तुम किसी की मदद नहीं करोगे और न ही जनता से बराबर का रिश्ता रखोगे।

इस पर छोटे भाई ने कहा, भइया, जनता की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। वह मैं करता रहूंगा। नाराज होकर बड़े भाई ने छोटे भाई को थोड़ी जमीन देकर अलग कर दिया। छोटे भाई ने उस जमीन पर आम का बगीचा लगाया। बगीचे की देखभाल वह स्वयं करता था। जल्दी ही पेड़ों में फल आने लगे। उस रास्ते जो भी मुसाफिर जाता, बगीचे के मीठे फल खाकर खुश होता और दुआएं देता। छोटे भाई की शोहरत पहले से ज्यादा होने लगी।

अहंकारी बड़े भाई ने सोचा कि यदि वह अपनी जमीन पर भी आम का बगीचा लगाए तो उसे खाकर लोगबाग उसकी प्रशंसा करने लगेंगे और छोटे भाई को भूल जाएंगे। यह सोच कर उसने भी आम के पेड़ लगवाए और उनकी देखभाल के लिए दर्जनों मजदूर रखे। पेड़ बड़े हो गए, लेकिन उनमें फल नहीं आ रहे हैं ? बड़े भाई ने माली से पूछा, इनमें फल क्यों नहीं आए। माली बोला, पेड़ों की देखभाल में तो कोई कमी नहीं हुई। शायद किसी ने टोना-टोटका कर दिया है। बड़े भाई ने झाड़-फूंक भी करवाई, तब भी फल नहीं आए। एक दिन उधर से एक संत आ रहे थे। सारा वृत्तांत सुनकर उन्होंने कहा, इनमें फल नहीं आएंगे, क्योंकि इन पेड़ों पर अहंकार के भूत की छाया पड़ी हुई है। जब तक अहंकार रूपी भूत नहीं भागेगा, तब तक सारे पेड़ ऐसे ही रहेंगे। संत का मर्म समझकर बड़ा भाई शर्मिंदा हो गया।

१७२३) पुरुषार्थ की परीक्षा- पुराने जमाने की बात है। एक राजा प्रधानमंत्री पद के लिए किसी योग्य व्यक्ति की तलाश में था। उसे अपने दरबारियों पर ज्यादा विश्वास नहीं था। वह चाहता था कि प्रजा के बीच से ही किसी प्रतिभावान व्यक्ति को चुना जाए, जो आम आदमी के हितों का ध्यान रख सके। उसने एक अजीबोगरीब घोषणा करवाई। कहा गया कि जो भी व्यक्ति प्रधानमंत्री बनने को इच्छुक हो, वह राजदरबार पहुंचे, राजा स्वयं उसकी परीक्षा लेंगे। अगर वह परीक्षा में सफल हुआ तो उसे प्रधानमंत्री का पद दिया जाएगा। ज्यादातर लोगों ने इस पद के लिए दावेदारी जताने की हिम्मत नहीं दिखाई फिर भी तीन युवक साहस करके पहुंचे।

राजा उन तीनों को एक छोटी सी कोठरी के पास ले गया और बोला, देखो, इस कोठरी को। इसमें तीनों लोग आ जाएंगे। तीनों इसमें रहेंगे और कोठरी का दरवाजा बंद करके उसमें ताला लगा दिया जाएगा। जो कोई भी ताले को अंदर से खोलकर बाहर आ जाएगा उसे प्रधानमंत्री का पद दिया जाएगा। तीनों उम्मीदवार अंदर चले गए। दरवाजा बंद कर दिया गया। तीनों उम्मीदवारों को यह शर्त बड़ी कठिन लग रही थी। पहले युवक ने सोचा कि ताला खोलकर बाहर निकलना कठिन है, इसलिए कोई भी प्रयत्न करना बेकार है। वह यहां आने के अपने निर्णय पर पछताने लगा। दूसरा युवक भी कुछ सोचकर उठा, फिर उसे लगा कि यह राजा सनकी है। बेकार ही उसने सबको फंसाया है। फिर वह बैठ गया। तीसरे युवक ने सोचा कि इसमें कोई न कोई रहस्य जरूर है। राजा ने सब कुछ सोच-समझकर ही किया होगा। वह कोई मजाक तो करेगा नहीं। वह उठा। उसने देखा कि दोनों सो चुके हैं। वह आगे बढ़ा। उसने दरवाजे को जोर से धक्का दिया। दरवाजा खुल गया। दरवाजे पर ताला लटकाया जरूर गया था, पर उसे चाबी से बंद नहीं किया गया था। तीसरे युवक को प्रधानमंत्री का पद दे दिया गया। इसकी घोषणा करते हुए राजा ने कहा, जो पुरुषार्थ से समस्या दूर करने की कोशिश करता है, वही सफल होता है।

१७२४) श्रम और स्वास्थ्य- एक राजा था। उसके खजाने में अकूत धन था, फिर भी उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। कई वैद्यों ने उसका इलाज किया, फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। यह बात प्रजा में फैल गई। तब एक बूढ़े ने राजा के पास आकर उसका इलाज करने की इच्छा प्रकट की। राजा से अनुमति पाकर वह बोला, आप किसी सुखी मनुष्य का कुर्ता पहनिए, स्वस्थ हो जाएंगे। बूढ़े की बात सुनकर सभी हंसने लगे, लेकिन राजा ने सोचा कि इतने सारे इलाज किए हैं तो एक और सही। राजा के सेवकों ने सुखी मनुष्य की बहुत खोज की, लेकिन उन्हें पूर्ण सुखी कोई नहीं मिला। हर किसी

को किसी न किसी बात का दुख था। अब राजा स्वयं सुखी मनुष्य की खोज में निकल पड़ा। वह एक खेत में जा पहुंचा। तपती दोपहर में एक किसान अपने काम में लगा हुआ था। राजा ने उससे पूछा, क्यों जी, तुम सुखी हो? किसान की आंखें चमक उठीं। वह मुस्करा कर बोला, ईश्वर की कृपा से मुझे कोई दुख नहीं है। यह सुनकर तभी उसका ध्यान इस बात पर गया कि किसान सिर्फ धोती पहने हुए है और उसकी सारी देह पसीने से तर है। राजा समझ गया कि श्रम करने के कारण ही यह किसान सुखी है। उसने आराम-चैन छोड़कर परिश्रम करने का संकल्प लिया। थोड़े ही दिनों में राजा की बीमारी दूर हो गई।

१७२५) व्यक्ति की पहचान- एक गुरु के दो शिष्य थे- धर्म सिंह और कर्म सिंह। धर्म सिंह एक राजकुमार था, पर कर्म सिंह किसान का पुत्र। धर्म सिंह घोर आलसी और अहंकारी था, जबकि कर्म सिंह परिश्रमी और विनम्र। धर्म सिंह के पिता राजा पृथ्वी सिंह प्रति वर्ष एक प्रतियोगिता आयोजित करते थे, जिसमें हिस्सा लेने दूर-दूर से राजकुमार आते थे। उनकी बुद्धि की परीक्षा ली जाती थी और विजेता को पुरस्कृत किया जाता था। एक बार जब प्रतियोगिता आयोजित हुई तो गुरुजी अपने दोनों शिष्यों के साथ पहुंचे। जब कर्म सिंह प्रतियोगी राजकुमारों के बीच बैठने लगा तो सभी राजपुत्र अपनी जगह से उठ खड़े हुए और बोले, राजकुमारों के बीच निर्धन किसान का बेटा नहीं बैठ सकता। राजा पृथ्वी सिंह बोले, अभी तुम राजकुमार नहीं शिक्षार्थी हो। इस दृष्टि से तुममें और इसमें कोई भेद नहीं है। लेकिन राजकुमारों पर इसका कोई असर नहीं हुआ। अंतत: कर्म सिंह उनसे अलग हटकर बैठ गया। राजा ने प्रश्न पूछा, अगर तुम्हारे समक्ष एक घायल शेर आ जाए जिसे तीर लगा हो, तो तुम उसे तड़पता छोड़ दोगे या उसका उपचार करोगे ?

प्रश्न सुनते ही राजकुमारों ने एक स्वर से उत्तर दिया कि वे सिंह को छोड़ देंगे, अपनी जान संकट में नहीं डालेंगे। लेकिन कर्म सिंह चुप ही बैठा रहा। राजा ने उससे पूछा, क्या तुम्हारा भी यही उत्तर है जो इन राजकुमारों का है ? कर्म सिंह ने कहा, नहीं, यदि मेरे समक्ष एक घायल शेर आ जाए तो मैं उसका भी तीर निकाल कर उसका उपचार करूंगा, क्योंकि उस समय उस घायल जीव की जान बचाना मेरा कर्त्तव्य होगा। मनुष्य का यही कर्म है। शेर का कर्म है मांस खाना। अगर स्वस्थ होने के बाद वह मुझे मारकर खा गया तो वह उसका कर्म है, दोष नहीं।

उत्तर सुनकर राजा पृथ्वी सिंह अपने स्थान से उठ खड़े हुए और बोले, धन्य है वह पिता जिसके तुम पुत्र हो। धन्य है वह गुरु जिसके तुम शिष्य हो। तब गुरु ने राजकुमारों से कहा, व्यक्ति की पहचान उसके विचारों और कर्म से होती है वेशभूषा से नहीं।

१७२६) रूखा-सूखा ही भला- यह एक लोक कथा है। पुराने जमाने में किसी गाँव में एक धनवान जमींदार ने अपने घर में तीन पालतू पशु पाल रखे थे। एक गाय, एक उसका बछड़ा और एक बकरा। वहाँ गाय और बछड़े की अपेक्षा बकरे को बेहतर खुराक मिलती थी, दिन भर वह हरी-भरी पत्तियाँ और दूब वगैरह चबाता ही रहता था। बेचारा बछड़ा प्रतिदिन यह सब देखता और मन ही मन ललचाता रहता था। कई बार सोचता कि आखिर खाने के लिए जो बकरे को दिया जाता है, वह मुझे भी क्यों नहीं दिया जाता ? इस प्रकार बछड़ा उदास हो जाता था। उसकी उदासी को देखकर एक दिन गाय ने पूछा, तू इतना चिंतित और उदास क्यों रहता है। दूसरे बछड़ों की तरह तू भी उछल-कूद क्यों नहीं करता ?

बछड़े ने कहां, मां। इस बकरे का लालन-पालन तो पुत्र की तरह हो रहा है, इसे उत्तम भोजन दिया जाता है। पर हमें सूखी घास ही दी जाती है। समय पर पानी तक नहीं पिलाया जाता। आखिर इसका कारण क्या है ? मैं इसी चिंता में डूबा रहता हूं।

गाय ने उसे स्नेह से कहा, जब दूसरों से ज्यादा सुख अकारण निकट आ जाए और भोग के लिए उपलब्ध हो जाए, तो सावधान हो जाना चाहिए। उसके पीछे अवश्य ही उससे बड़ा आघात छुपा होता है। मालिक किसी विशेष कारण से ही उसे इतना सुख दे रहा है। हमें ऐसा सुख नहीं मिले, तभी अच्छा है।

बात आई-गई हो गई। कुछ दिन बीते, वह दिन भी आया, जिस दिन की प्रतीक्षा महीनों से की जा रही थी। उस धनवान के घर कुछ मेहमान आए। बछड़े के सामने ही मालिक बकरे को पकड़ कर बाहर ले गया और उसके मोटे गले पर छुरी चला दी। उसका मांस पकाकर मेहमानों को परोसा गया। यह दृश्य देखकर बछड़ा भयभीत हो गया, उसने खाना-पीना छोड़ दिया। उसने माँ से पूछा, क्या मैं भी उस बकरे की ही तरह मारा जाऊँगा ? मां ने कहा- नहीं, तू सूखी घास खाकर जीता है।

१७२७) राम जी की इच्छा- एक महात्मा जी किसी जुर्म में पकड़े गए। उन्हें न्यायाधीश के सामने पेश किया गया। न्यायाधीश ने उनसे पूछा कि क्या आप अपना अपराध स्वीकार करते है ? महात्मा जी ने कहा, हां। न्यायाधीश ने फिर पूछा, आप तो संत है, ऐसा क्यों किया ? महात्मा जी ने सुन रखा था कि न्यायाधीश धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति है। सो अपने वाक्जाल में उसे फंसाने के लिए कहा, प्रेरक तो परमात्मा है। अगर हमसे ऐसा कार्य हुआ तो राम जी की यही इच्छा थी। हम तो निमित्त मात्र थे। न्यायाधीश ने महात्मा जी की चतुराई समझ ली। उसने फैसला सुनाया, हम भी उसी राम जी की इच्छा से आपको छह महीने की सजा देते हैं। सजा सुनकर महात्मा जी चिल्लाने लगे, यह तो बड़ा अनर्थ है। धर्म-कर्म में लगे साधु जन को भी आप साधारण लोगों की तरह सजा सुनाते हैं। न्यायाधीश ने बिना विचलित हुए कहा, जैसे आप निमित्त हैं, वैसे ही मैं भी निमित्त ही हूँ। इसमें नाराज होने की क्या बात है ? सुनकर महात्मा जी का मुंह लटक गया।

१७२८) गुलाब और कांटे- अंग्रेजी भाषा के विश्वविख्यात कवि मिल्टन अत्यधिक रूपवान थे। एक बार अपने कॉलेज में उन्हें लेडी ऑफ द कॉलेज के नाम से विभूषित किया गया था। परन्तु आगे चलकर उस रूपवान किशोर का जीवन संकटमय हो गया। हुआ यों की पहली स्त्री की मृत्यु के पश्चात जब मिल्टन का दूसरा विवाह हुआ तो सौभाग्य से उन्हें ऐसी पत्नी मिली, जो रूप-लावण्य की दृष्टि से सौन्दर्य की साक्षात प्रतिमा थी। लोग मिल्टन के भाग्य की सराहना करते थे परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। उनकी पत्नी का व्यवहार उनके प्रति अत्यन्त अशोभनीय हो चला था और मिल्टन का दाम्पत्य जीवन निरंतर दु:खमय होता जा रहा था। उनकी पत्नी का मिजाज बेहद तेज था। वह अक्सर मिल्टन से लड़ती झगड़ती रहती थी।

फिर मिल्टन पर एक और विपदा आन पड़ी। अत्यधिक अध्ययन के कारण मिल्टन की आंखों की रोशनी अत्यन्त क्षीण होती गई और अन्तत: एक दिन मिल्टन अंधे हो गए। एक बार उनके एक मित्र ने उनकी रूपवान पत्नी की प्रशंसा करते हुए उसे गुलाब जैसी सुन्दर बतलाया। मिल्टन के दु:खी मन ने उत्तर दिया- तुम शायद ठीक कहते हो। मेरी पत्नी गुलाब की तरह ही सुन्दर है परन्तु अंधा होने के कारण मुझे उस गुलाब के सौन्दर्य का नहीं, वरन कांटों का ही अनुभव होता है।

१७२९) सच्चा सहयोगी- किसी राजा ने एक दिन अचानक यह घोषणा की कि वह अपने राजकुमार को देशनिकाला दे रहा है और जो कोई भी उसका साथ देगा उसे प्राणदंड दिया जाएगा। राजाज्ञा सुनकर सभी सन्न रह गए। राजकुमार को समझ में नहीं आया कि उसके पिता ऐसा क्यों कर रहे हैं। उसने तो अपने जानते कोई गलती नहीं की थी, न ही उनका दिल दुखाया था। फिर भी राजाज्ञा तो राजाज्ञा थी। राजकुमार के तीन करीबी मित्र थे। वह उनसे इस संबंध में सलाह करने गया। पहले मित्र ने जैसे ही उसे देखा, घर का दरवाजा बंद कर लिया। राजकुमार दूसरे मित्र के पास गया। राजकुमार की बात सुन मित्र ने कहा, मैं तुम्हारा साथ नहीं दे सकता। तुम चाहो तो मेरा घोड़ा ले जाओ। यह तुम्हारे काम आएगा। भला घोड़े से क्या लाभ होना था। राजकुमार निराश होकर अपने तीसरे मित्र के पास गया। उसने राजकुमार का स्वागत किया और बोला, मैं तुम्हारे साथ देश छोड़ने के लिए तैयार हूं। पर ऐसा करने से पहले महाराज से मिलकर यह जानना चाहूंगा कि उन्होंने तुम्हें इतना कठोर दंड क्यों दिया ? दोनों राजा के पास पहुंचे। राजकुमार के मित्र ने साहस करके पूछा, राजन, राजकुमार का क्या अपराध है जो आपने उसे ऐसा दंड दिया ? राजा ने कड़े शब्दों में कहा, तुम्हें यह पूछने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें

मालूम होना चाहिए कि उसका साथ देने पर तुम्हें क्या दंड मिलेगा ? मित्र दृढ़ स्वर में बोला, कोई भी दंड मिले। मैं हर हाल में राजकुमार का साथ दूंगा। यह सुनते ही राजा मुस्कुराया और बोला, मुझे खुशी है कि मेरे पुत्र को तुम्हारे जैसा कोई मित्र मिला। असल में मैं उसे राजगद्दी सौंपना चाहता हूं। पर इस बात से चिंतित था कि उसे कोई विश्वस्त सहयोगी मिलेगा कि नहीं। किसी शासक को एक भी सच्चा मित्र मिल जाए तो वह सफल हो सकता है। इसी की परीक्षा के लिए मैंने यह सब किया। अब मैं आश्वस्त होकर अपना राजपाट राजकुमार को सौंप सकता हूं। तुम उसके सहायक होंगे।

१७३०) डॉ. प्रफुल्ल चंद्र राय को धन का अपव्यय बिल्कुल पसंद न था। एक बार उनका एक शिष्य दो आने के केले ले आया जबकि और दिन वह एक आने के केले लेकर आता था। अधिक पैसे खर्च करने के लिए डॉ. राय ने अपने शिष्य को फटकार लगाई। तभी एक अनाथ व्यक्ति सहायता के लिए आ पहुंचा। डॉ. राय ने उसी शिष्य से पूछा कि बैंक में कितना धन जमा है। उसने बताया कि तीन हजार रूपये जमा हैं। डॉ. राय ने दो हजार नौ सौ रूपये उस व्यक्ति को देने को कहा। उनका शिष्य यह देखकर हैरान रह गया कि एक आने के लिए डांटने वाले डॉ. राय ने किसी जरूरतमंद इंसान की सहायता के लिए इतने सारे पैसे देने में तनिक भी देर न लगाई। उन्होंने सिर्फ सौ रुपये अपने खर्च के लिए रखे।

१७३१) मितव्ययिता- किसी सेठ से एक युवक ने कहा, आप आखिर किस तरह संपन्न हुए। जरा मुझे भी बताइए। सेठ ने कहा, यह एक लंबी कहानी है। सुनाते हुए काफी समय लगेगा। क्यों न हमलोग बत्ती बुझाकर शांति से बैठकर बात करें। आखिर सुनना तो कान से है न। युवक तत्काल कह उठा, बस अब आपको कुछ कहने की जरूरत नहीं है। मैं सब कुछ समझ गया। संपन्न होने के लिए जरूरी है मितव्ययिता।

१७३२) लोभियों का अंत- काफी पुराना किस्सा है। एक जंगल में दो योद्धा अलग-अलग दिशाओं से एक स्वर्ण शिला के पास एक साथ पहुंचे। दोनों ने एक साथ उस शिला पर अधिकार जमाया। पहली बार उस किसकी नजर पड़ी, इसे लेकर पहले तो वाक् युद्ध हुआ फिर तलवारें खिंच गईं। घमासान युद्ध हुआ और अंतत: लड़ते-लड़ते दोनों ढेर हो गए। कुछ देर बाद एक महात्मा वहां पहुंचे। स्वर्ण शिला को देख उन्हें भी लालच आ गया। वह भूल गए कि वह एक तपस्वी हैं। उन्होंने सोचा कि इतना सारा सोना लेकर वह एक नई जिंदगी शुरू करेंगे, उन्हें भटकने से तो मुक्ति मिल जाएगी। वह इस ख्याल में इस तरह खोए कि उन्हें पास में पड़े शव भी नहीं दिखाई पड़े। वह यह सोच रहे थे कि किस तरह शिला को उठाकर अपनी झोपड़ी में ले जाएं। वह यह सोच ही रहे थे कि छह चोर आ पहुंचे। महात्मा ने उनसे अनुरोध किया कि अगर वे इस शिला को उनकी झोपड़ी में पहुंचा दें, तो वह उन्हें ढेरों इनाम देंगे। अब चोर तो चोर थे। कहां इतनी बड़ी स्वर्ण शिला और थोड़ा सा इनाम। चोरों पर भी लालच हावी हो गया। उन्होंने महात्मा जी की हत्या कर दी।

चोरों ने तय किया कि वे किसी स्वर्णकार को बुलवाकर इस शिला के छह टुकड़े करवा लेते हैं। वे एक स्वर्णकार को जंगल में लेकर आए। स्वर्णकार शिला देख उसे हथियाने की योजना बनाने लगा। अगले दिन वह विष मिले छह लड्डू लेकर आया और चोरों से खाने का आग्रह करने लगा। चोरों ने कहा कि वह पहले शिला के टुकड़े करे फिर सब मिलकर खाएंगे। स्वर्णकार ने जैसे ही शिला के टुकड़े किए, चोरों ने मिलकर उसकी हत्या कर दी। अब चोर यह सोचकर निश्चिंत हो गए कि शिला पर उनका अधिकार हो गया। उन्हें भूख लगी तो वे सब आराम से बैठकर लड्डू खाने बैठे। लड्डू खाते ही सब वहीं ढेर हो गए। शिला वहीं की वहीं पड़ी रही। धन का लोभ किसी का कल्याण नहीं करता।

१७३३) उद्यम का पाठ- किसी नगर में एक व्यापारी रहता था। उसके व्यापार का लगातार प्रसार हो रहा था, जिससे उसकी संपत्ति में वृद्धि हो रही थी। एक दिन व्यापारी ने सोचा कि अपनी संपत्ति का आकलन किया जाए। उसने हिसाब

लगाया तो उसे पता चला कि उसके पास करोड़ों की राशि जमा हो चुकी है। उसने सोचा कि कुछ पैसे दान-पुण्य में लगाए जाएं। लेकिन वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसके धन का सदुपयोग हो और उसे पुण्य प्राप्त हो। काफी सोचकर उसने तय किया कि वह नगर में धर्मशालाएं, मंदिर और अनाथालय बनवाएगा। यह निर्णय कर वह शुभ मुहूर्त निकलवाने एक महात्मा के पास पहुंचा और उन्हें अपनी योजना कह सुनाई। व्यापारी को लगा कि महात्मा जी यह सुन प्रसन्न होंगे और उसे शाबाशी देंगे लेकिन इसके विपरीत वह गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, भाई तुम्हारे पास जितनी संपत्ति है करीब उतने ही लोग देश में ऐसे हैं जो अपाहिज, अनाथ हैं या निठल्ले हैं। ये लोग या तो भीख मांगकर गुजारा करते हैं या मंदिरों, अनाथालयों और धर्मशालाओं की शरण लेते हैं या फिर चोरी करते हैं इसलिए तुम्हारा धन कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाएगा और तुम्हें पुण्य भी नहीं मिलेगा।

व्यापारी दुविधा में पड़ गया। उसने हाथ जोड़कर कहा, फिर आप ही कोई रास्ता निकालें। महात्मा ने कहा, सेठ, मेरी समझ से तुम अपने सोचे गए तरीके में थोड़ा परिवर्तन कर दो, तो निश्चय ही तुम्हारा ध्येय सफल हो जाएगा। व्यापारी ने उत्सुकता से पूछा, वह कैसे महाराज ? महात्मा ने मुस्कराते हुए कहा, तुम धर्मशालाओं, मंदिरों और अनाथालयों के स्थान पर विद्यालय, उद्योग और चिकित्सालय खुलवाओ क्योंकि जब लोग स्वस्थ होंगे शिक्षित होंगे तभी वे उद्यमी होंगे। जब वे उद्यम करेंगे तो भिक्षावृत्ति, चोरी और लूटपाट का अंत होगा। लोगों को दया-दान देने से ज्यादा उन्हें उद्यमी बनाने की आवश्यकता है।

१७३४) सफलता का मार्ग- एक युवक था। उसने एक दिन किसी धनी व्यक्ति को देखा। वह उसकी शानो-शौकत देखकर प्रभावित हो गया। उसने धनी बनने की ठान ली और धन कमाने में जुट गया। इसी बीच उसकी मुलाकात एक विद्वान से हुई। उससे बात कर युवक को बहुत अच्छा लगा। लोग बता रहे थे कि उस विद्वान की प्रसिद्धि दुनिया भर में फैली हुई है। बस फिर क्या था। उस युवक ने विद्वान बनने की ठान ली। वह अध्ययन में लग गया। पर उसका पढ़ने में मन नहीं लगता था। फिर भी वह अपनी ओर से लगा रहा। लेकिन तभी एक दिन उसे एक संगीतज्ञ से मिलने का मौका मिला। उसने युवक को तरह-तरह के वाद्य सुनाए। युवक ने महसूस किया कि यह संगीतज्ञ लोगों में काफी लोकप्रिय है। बस युवक ने तत्काल संगीत सीखने का निर्णय किया। वह उसी संगीतज्ञ जैसा बनना चाहता था। बड़ी मुश्किल से उसे एक गुरु मिला। वह संगीत सीखने तो लगा पर पूरी तरह सीख नहीं पाया। अंतत: वह हताश हो गया। उसे लगा कि न तो वह धनवान बन सका, न विद्वान, न संगीतज्ञ। उसे अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। एक दिन उसे एक महात्मा मिले। उसने महात्मा जी से अपनी व्यथा कह सुनाई। उसकी कहानी सुनने के बाद महात्मा जी ने कहा, बेटा यह दुनिया विशाल है। इसमें न जाने कितने तरह के लोग हैं। किसकी-किसकी नकल करोगे तुम। अगर सफल होना चाहते हो तो किसी एक रास्ते को चुनो। सबसे पहले अपने को पहचानो कि तुम क्या कर सकते हो। जो रास्ता चुनो उस पर एकाग्र होकर आगे बढ़ो। सफलता जरूर मिलेगी।

१७३५) खोटे सिक्के- काशी में एक पंडित जी रहते थे। उनकी धार्मिक पुस्तकों की एक छोटी सी दुकान थी। उसी की कमाई से परिवार का खर्च चलता था। जिस जगह पंडित जी रहते थे, वहां एक ऐसा व्यक्ति था जो पंडित जी से सबसे ज्यादा पुस्तकें खरीदता था। वह उधार भी नहीं करता था। किताबों का मूल्य वह उसी समय चुका देता था। एक बार पंडित जी किसी काम से बाहर गए हुए थे। उस दिन दुकान पर उनका नौकर था। उस व्यक्ति ने हमेशा की तरह उस दिन भी कुछ किताबें खरीदीं और जब कीमत देने लगा तो उसमें कुछ सिक्के खोटे थे। नौकर ने उस आदमी को भला-बुरा कहते हुए खोटे सिक्कों को वापस कर दिया। दूसरे दिन पंडित जी जब वापस लौटे तो नौकर ने उन्हें खोटे सिक्कों की बात बताई और कहा कि उसने उस व्यक्ति को वे सिक्के वापस कर दिए हैं। पंडित जी बोले, तुमने ठीक नहीं किया। तुम्हें उन

सिक्कों को वापस नहीं करना चाहिए था। नौकर बोला, मालिक, आप क्या कह रहे हैं। मैंने तो आपके भले के लिए ही नकली सिक्कों को वापस किया था। यदि मैंने रख लिया होता तो आप मुझ पर नाराज होते। पंडित जी मुस्करा कर बोले, बेटा, तुम्हारी वफादारी पर मुझे कोई शक नहीं है। लेकिन तुम नहीं जानते कि वह आदमी मुझे हमेशा ही कुछ खोटे सिक्के देता रहता है। मैं उन्हें लेकर जमीन में गाड़ देता हूं। नौकर ने आश्चर्य से पूछा, लेकिन आप ऐसा क्यों करते हैं ? पंडित जी बोले, यह उसका स्वभाव है। अपनी आदत से वह बाज तो आएगा नहीं। यदि मैं उन खोटे सिक्कों को नहीं लूंगा तो वह कही दूसरी जगह देगा। जमीन में इसलिए गाड़ देता हूं ताकि किसी अन्य के हाथ लगकर वे सिक्के फिर उसी प्रकार चलन में न आ जाएं। नौकर बोला, मालिक आपके अकेले ऐसा करने से क्या खोटे सिक्कों का चलन बंद हो जाएगा ? बंद हो या न हो। पर किसी भी गलत चीज के खिलाफ कोशिश हर समय जारी रहनी चाहिए। पंडितजी ने जवाब दिया।

१७३६) एक सज्जन बड़े ही दानी थे, उनका हाथ सदा ही ऊंचा रहता था, परंन्तु वे किसी को नजर उठाकर नहीं देखते थे। एक दिन किसी ने उनसे कहा- आप इतना दान देते हैं, पर आंखे नीची क्यों रखते हैं ? चेहरा न देखने से आप किसी को पहचान नहीं पाते, इसलिए कुछ लोग दुबारा भी ले जाते है। इस पर उन्होंने कहा- देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन, लोग भरम हम पर धरै ताते नीचे नैन। अर्थात देनेवाला तो कोई दूसरा भगवान ही है। मैं तो निमित्त मात्र हूं। लोग मुझे दाता कहते हैं। इस शर्म के मारे मैं आंखें ऊंची नहीं कर सकता।

१७३७) उपयोगिता- एक राजा था। उसने आज्ञा दी कि संसार में इस बात की खोज की जाय कि कौन से जीव-जंतु निरुपयोगी है। बहुत दिनों तक खोज बीन करने के बाद उसे जानकारी मिली कि संसार में दो जीव जंगली मक्खी और मकड़ी बिल्कुल बेकार हैं। राजा ने सोचा, क्यों न जंगली मक्खियों और मकड़ियों को खत्म कर दिया जाए। इसी बीच उस राजा पर एक अन्य शक्तिशाली राजा ने आक्रमण कर दिया, जिसमें राजा हार गया और जान बचाने के लिए राजपाट छोड़कर जंगल में चला गया। शत्रु के सैनिक उसका पीछा करने लगे। काफी दौड़-भाग के बाद राजा ने अपनी जान बचाई और थक कर एक पेड़ के नीचे सो गया। तभी एक जंगली मक्खी ने उसकी नाक पर डंक मारा जिससे राजा की नींद खुल गई। उसे ख्याल आया कि खुले में ऐसे सोना सुरक्षित नही और वह एक गुफा में जा छिपा। राजा के गुफा में जाने के बाद मकड़ियों ने गुफा के द्वार पर जाला बुन दिया। शत्रु के सैनिक उसे ढूँढ़ ही रहे थे। जब वे गुफा के पास पहुँचे तो द्वार पर घना जाला देखकर आपस में कहने लगे, अरे। चलो आगे। इस गुफा में वह आया होता तो द्वार पर बना यह जाला क्या नष्ठ न हो जाता। गुफा में छिपा बैठा राजा ये बातें सुन रहा था। शत्रु के सैनिक आगे निकल गए। उस समय राजा की समझ में यह बात आई कि संसार में कोई भी प्राणी या चीज बेकार नहीं। अगर जंगली मक्खी और मकड़ी न होती तो उसकी जान न बच पाती। इस संसार में कोई भी चीज या प्राणी बेकार नहीं। हर एक की कहीं न कही उपयोगिता है।

१७३८) किसान का जादू- पुराने जमाने की बात है। किसी गांव में एक किसान रहता था। हर साल उसके खेतों में अन्य लोगों के मुकाबले ज्यादा फसल होती थी। यह सिलसिला कई सालों से चल रहा था। गांव वालों को यह बात नागवार गुजरती थी। वे ईर्ष्या से भरे हुए थे, पर समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें। एक बार उन्होंने राजा से शिकायत की और कहा कि इस किसान ने जरूर कोई जादू किया है तभी इसकी पैदावार इतनी ज्यादा होती है।

राजा को यह मामला बड़ा रोचक लगा। उसने किसान को दरबार में बुलवा भेजा। राजा ने गांव वालों को फिर से अपनी बात रखने को कहा। उन्होंने वही बात दोहराई। फिर उस किसान से उसका पक्ष रखने को कहा गया। किसान ने राजा से बाहर चलने को कहा। सभी की उत्सुकता बढ़ गई। राजा के साथ सभी लोग बाहर आए। वहां किसान की बेटी खड़ी थी।

पास में उसके बैल थे और हल तथा दूसरे औजार भी। किसान ने उन्हें दिखाकर कहा, महाराज, यही है मेरा जादू। मैं अपने बैलों के साथ खेतों की खूब जुताई करता हूं। मेरी बेटी बैलों का परिवार के सदस्यों की तरह ध्यान रखती है। वह उन्हें जमकर खिलाती-पिलाती है और उन पर स्नेह लुटाती है। आप देखिए इसी कारण मेरे बैल पूरे गांव में सबसे ज्यादा स्वस्थ हैं। मेरा सारा परिवार फसलों की कीट-पतंगों से रक्षा करता है। बस यही सब कर मैं ज्यादा फसल उपजाता हूं। इसके अलावा मैं और कोई जादू नहीं जानता।

यह सुनकर राजा बेहद प्रसन्न हुआ। उसने वहां उपस्थित दूसरे किसानों से कहा, यह ठीक कहता है। बेहतर होगा कि आप भी इससे यह सब सीखें। लेकिन दूसरे की प्रगति से दुखी होना ठीक नहीं। अच्छा तो यह होता कि आप सब मेरे पास आने की बजाय इससे इसकी सफलता का राज पूछते और इसका अनुसरण करते। इस किसान ने हमें बहुत बड़ी सीख दी है। जादुई ताकत तो हम सब के भीतर है। आवश्यकता है उसे पहचानने की।

१७३९) चोट सही जाती है, कही नहीं जाती- केदारनाथ का मार्ग सौंदर्य की दृष्टि से जितना प्राकृतिक है, चढ़ाई की दृष्टि से उतना ही बीहड़। सौंदर्य सदा काँटों के बीच ही सुरक्षित रहता है। मार्ग बीहड़ है तो चोट भी बहुत लगती है। वह स्वयं अपनी चोटें देखकर चकित हुआ है। कैसे पैदा होता है अमिट साहस और विश्वास, यह वह उस दिन जान सका जब उसने एक वृद्धा को देखा। एक चट्टान पर से लुढ़क जाने के कारण काफी चोटें आई थी। पैदल चलना असंभव था। उनके साथ कई आदमी थे, सहारा दिया। उनके जख्म साफ किए, दवा लगाई, खाने की दवा दी और उसके बाद उन्हें एक कंडी पर बैठाया। पट्टियाँ बँधी थीं। पीड़ा कभी-कभार कसक उठती थी, पर वह सदा की तरह शांत और हँसमुख बनी रही। सबसे उसी तरह प्यार से बातें करती रही। अपने साथियों के साथ वह भी उनके पास गया। शिष्टाचारवश बड़ी विनम्रता से उसने कहा, माताजी, आपको तो बहुत चोट लगी है, फिर भी आप... बात काटकर वे प्यार से बोलीं, बेटे। तीर्थों में चोट सही जाती है, कही नहीं जाती।

१७४०) एक मुट्ठी धान- धन्य नाम के एक व्यापारी की चार बहुएं थी। व्यापारी बूढ़ा हो गया था। एक दिन उसने सोचा कि मेरे मरने के बाद घर को कौन सी बहू अच्छी तरह से संभाल सकती है- इसकी परीक्षा होनी चाहिए। धन्य ने एक संक्षिप्त भोज का आयोजन किया। उसमें सभी सगे संबंधियों को बुलाया। भोजन के बाद जब सब एक जगह बैठे, तब व्यापारी ने अपनी चारों बहुओं को बुलाया और कहा, देखो बेटियो, मैं तुम सबको एक एक मुट्ठी धान देता हूं। इन्हें संभालकर रखना और जब मैं मांगूं, तो लौटा देना। सबसे बड़ी बहू ने सोचा कि बाबूजी सठिया गए हैं, इसलिए ऐसा कह रहे हैं। उसने धान फेंक दिया। दूसरी बहू ने सोचा कि घर में धान के बोरे पड़े ही रहते हैं। जब बाबूजी मांगेंगे, तो उसमें से निकाल कर दे दूंगी और वह एक मुट्ठी धान के छिलके उतारकर धान खा गई। तीसरी बहू ने कपड़े में बांध कर धान को अपने गहनों के साथ संभाल कर रख दिया और चौथी बहू ने मकान के बाहर कई क्यारियां बनाई और बरसात होने पर वह मुट्ठी भर धान उसमें बो दिया। जब अंकुर बड़े हुए तो उन्हें उखाड़ कर दूसरी क्यारी में लगा दिया। पकने पर धान को अच्छी तरह साफ करके घड़े में बंद करके रख दिया। उसने यही काम दूसरे, तीसरे और चौथे साल भी किया। चार साल में एक मुट्ठी धान से मिली फसल से सैकड़ों घड़े भर गए। चौथे साल धन्य ने उसी तरह भोज का आयोजन दोबारा किया और सभी सगे संबंधियों को बुलाया। सभी के सामने धन्य ने बहुओं से कहा, वह धान ले आओ जो तुम्हें चार साल पहले दिया था। पहली बहू बोली, हमने सोचा कि आप मजाक कर रहे हैं, इसलिए धान तो उसी समय फेंक दिया था। दूसरी बहू ने घर में रखे धान में से एक मुट्ठी धान निकाल कर सामने रख दिया। तीसरी ने कपड़े की पोटली खोल कर धान के वही दाने दे दिए और चौथी ने कहा, बाबूजी

आपके एक मुट्ठी धान के सैकड़ों घड़े धान हो गए हैं। धान से भरे सैकड़ों धड़े मंगाए गए। धन्य ने कहा, अब हमें कोई चिंता नहीं है। मेरी सबसे छोटी बहू अपनी बुद्धि, मेहनत और ईमानदारी से संचित धन में और वृद्धि कर सकती है और इस घर को अच्छी तरह संभाल सकती है। उसने छोटी बहू को घर की चाबी देकर कहा, बहू अब से तुम ही इस घर की मालकिन हो।

१७४१) पूर्णता का रहस्य- एक चित्रकार चित्र बना रहा था। उसके पास उसका शिष्य खड़ा था, यह बताने के लिए कि चित्र पूर्ण हुआ या नहीं। चित्रकार बार-बार प्रयास करता और फिर उसे मिटा देता। शिष्य इस बात को समझ नहीं पा रहा था क्योंकि आज तक उसके गुरु ने कभी कोई अपूर्ण कार्य किया ही नहीं। गुरु को पसीना आने लगा था। वह जब भी कोशिश करता कोई गड़बड़ हो जाती जिसे देखकर शिष्य नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाता था। एक बार चित्र ने आकार ग्रहण कर लिया तो गुरु ने शिष्य की ओर देखा पर शिष्य ने कहा, नहीं, अभी भी यह पूर्ण नहीं हुआ है। इसके बाद गुरु से और ज्यादा गलतियां होने लगीं। थोड़ी देर बाद एक रंग खत्म हो गया। गुरु ने शिष्य से कहा, तुम जाओ और यह रंग तैयार करके ले आओ। शिष्य चला गया। इस बीच गुरु कार्य करता रहा और तस्वीर तैयार भी हो गई। शिष्य रंग लेकर पहुंचा तो चित्र देखकर भौंचक रह गया। वह बोला, यह तो परिपूर्ण है। लेकिन ऐसा कैसे संभव हुआ। अब तो आपको इस रंग की आवश्यकता भी नहीं है।

गुरु हंसा और बोला, मैं तुम्हारी उपस्थिति को लेकर सचेत था। मुझे लगता था कि कोई मेरे साथ है जो मेरी प्रशंसा या बुराई करेगा इसलिए मुझे श्रेष्ठ कार्य करना चाहिए। इस भाव ने मुझे विचलित कर रखा था। चूंकि मैं परिपूर्ण बनाने का प्रयास कर रहा था और यह प्रयास ही उसे परिपूर्ण नहीं होने दे रहा था।

१७४२) अहिंसा का पाठ- जयपुर के महाराज के दीवान अमर चन्द जैन की गिनती अत्यंत कुशल प्रशासकों और कर्तव्यपरायण राजनीतिज्ञों में होती थी। वे अहिंसा के घोर समर्थक और मानवता के पुजारी थे। उन्हें राजपरिवार का विशेष स्नेह प्राप्त था, जिस कारण दूसरे दरबारी उनसे ईर्ष्या करते थे। वे समय-समय पर उनके खिलाफ महाराज के कान भरते रहते थे। एक बार महाराज शिकार खेलने के लिए जाने लगे तो उन्होंने दीवान जी को भी साथ ले लिया। दीवान जी को थोड़ा अजीब लगा, लेकिन महाराज का आदेश वह टाल नहीं सकते थे। दोनों जंगल में बड़ी दूर निकल गए। जब महाराज ने हिरनों का झुण्ड देखा तो अपना घोड़ा उनके पीछे दौड़ा दिया। आगे-आगे भयभीत हिरन थे, उनके पीछे महाराज का घोड़ा और उनके पीछे दीवान अमर चन्द का घोड़ा दौड़ रहा था। दीवान जी सोच रहे थे- क्या बिगाड़ा हैं इन निरीह, मूक पशुओं ने मनुष्य का ? आखिर क्यों इंसान इन्हें अब तक मारता फिरता है और कैसा अविवेकी है। यह मनुष्य निर्बल पशुओं को मारकर अपनी वीरता पर घमंड करता है। ये बेचारे भागकर कहां जाएंगे। जब राजा ही इनके प्राण लेने को आतुर है तो ये अपनी जान कैसे बचाएंगे। तभी दीवान जी को एक युक्ति सूझी। उन्होंने जोर से पुकार कर कहा, हिरनों, मैं कहता हूं जहां हो वहीं रुक जाओ। जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो बचकर कहां जाओगे। असल में दीवान जी ने यह बात महाराज की आंखें खोलने के लिए कही थी, पर संयोगवश हिरन अपने आप रुक गए। इस पर दीवानजी ने कहा, महाराज ये खड़े है आपके सामने, जितने चाहिए ले लो। महाराज कभी दीवान जी को देखते, तो कभी हिरनों को। वह जो कुछ देख रहे थे वैसा जीवन में कभी नहीं देखा था। अद्‌भुत और अपूर्व दृश्य था यह। महाराज के हृदय में एक हिलोर सी उठी। वह बोले, दीवानजी आपने मेरी आंखें खोल दी। मैं आज से शिकार का त्याग करता हूं। मैं अब हर तरह की हिंसा पर रोक लगाने की कोशिश करूंगा।

१७४३) त्यागी कौन- राजा ने योगी को नमस्कार किया। योगी ने पूछा, आपने मेरा इतना सम्मान क्यों किया ? राजा ने कहा- भगवन, आप घर-परिवार का त्याग कर एकांत में साधना करते हैं, इसलिए आप पूज्य है। योगी बोला, लेकिन आपका त्याग मुझसे कही ज्यादा है। राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा, वह कैसे ? योगी ने कहा, किसी व्यक्ति के पास

एक भव्य भवन है। अगर वह रोज झाडू लगाकर उसमें से कूड़ा-कचरा बाहर निकालता है तो क्या वह त्यागी कहलाएगा? राजा ने कहा, इसमें त्याग कैसा। कूड़ा तो बाहर निकालने की ही चीज है। योगी ने फिर कहा, राजन, यदि कोई दूसरा व्यक्ति घर की बहुमूल्य वस्तुएं दूसरों को दे देता है तो उसे आप क्या कहेंगे ? राजा ने कहा, निश्चय ही वह महान त्यागी है। योगीने मुस्कुराते हुए कहा- राजन, इसलिए तो मैंने आपको महान त्यागी कहा है। आपने ध्यान, आत्मचिंतन और साधना जैसी महान चीजों का त्याग किया है और सोना-चांदी जैसी बहुमूल्य वस्तुएं अपने पास रखी हैं, जबकि मैंने तो बस परिवार का ही त्याग किया है। फिर आपका त्याग तो ज्यादा बड़ा हुआ न। राजा योगी का आशय समझ गया। उस दिन से वह ईश्वरोपासना और जनकल्याण में जुट गया।

१७४४) सार्थक जीवन- एक उत्साही युवक ने जनसेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। वह कहता था कि पीड़ितों का दुख दूर करने और उन्हें खुश करने में जो संतुष्टि मिलती है वह अपने स्वार्थ को पूरा करने में नहीं मिलती। एक बार वह युवक सख्त बीमार पड़ गया। जांच के बाद डॉक्टरों ने बताया कि वह छह महीने से ज्यादा जीवित नहीं रह पाएगा। इस पर वह युवक दुखी होने की बजाय और प्रसन्न होता हुआ बोला, मुझे छह महीने तक जीने की जो मोहलत मिली है, उसका सदुपयोग करते समय मुझे कम से कम यह संतोष तो होगा कि मैंने सार्थक जिंदगी जी। उसने एक आश्रम में रहकर विकलांग बच्चों की सेवा शुरू कर दी। वह उन्हें पढ़ाने-लिखाने में जुट गया। इस काम में छह महीने बीत गए और उसे पता भी न चला। जब लोगों ने उसके जीवन की अवधि बीत जाने की बात कही तो वह बोला, मैंने इन बच्चों के लिए अपनी जिंदगी लगा दी। मैं अपनी उम्र के महीने नहीं गिनता। वह युवक जेम्स एडम्स था, जो बाद में अस्सी वर्षों तक जीवित रहा। वह आश्रम आज भी जेन एडम्स आश्रम के नाम से मशहूर है।

१७४५) मातृत्व- एक दिन की बात है कि एक भंगिन जब एक शौचालय को साफ करके वहां से चलने लगी तो किसी भले आदमी ने कौतूहल-वश उससे पूछ लिया- क्या तुम्हें यह काम करने में घृणा नहीं लगती ? तुम इतनी दुर्गंध किस प्रकार सह लेती हो ? यह विचित्र प्रश्न सुनकर भंगिन को बड़ा आश्चर्य हुआ। तदपि वह समझदार थी और उसे लगा कि इस नादान को इसका उत्तर मिलना ही चाहिए। उसने सहजता से उत्तर देते हुए कहा- हमारे बड़े लोग हमें बताते रहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने हमें मनुष्यमात्र की माता का पद दिया है। अपनी सन्तान का मल स्वच्छ करने में माता को कभी घृणा लगी ? या उसने कभी दुर्घन्ध का अनुभव किया ? ठीक यही स्थिति हमारी है। इसमें घृणा कैसी और दुर्गन्ध कैसी ? यह सुनकर उस व्यक्ति का मस्तक श्रद्धा से उस माता की ओर झुक गया।

१७४६) साझा दर्द- वृद्धाश्रम में गए व्यक्ति ने वहां बरामदे में बैठी एक बुजुर्ग औरत से पूछा, मां जी, आपके कितने बेटे हैं? औरत बोली, न बेटा न बेटी। मेरी तो कोई औलाद नहीं।

व्यक्ति बोला, आपको बेटा न होने का गम तो होगा। बेटा होता तो आज आप इस वृद्धाश्रम में न होकर अपने घर होती। बुजुर्ग औरत ने उत्तर में थोड़ी दूर बैठी एक अन्य वृद्धा की ओर इशारा करते हुए कहा, वह बैठी मेरे से भी ज्यादा दुखी। उसके तीन बेटे हैं, उससे पूछ ले। व्यक्ति उस दूसरी बुढ़िया की ओर जाने लगा तो पास ही बैठा एक वृद्ध बोल पड़ा, बेटा, इस आश्रम में हम जितने भी लोग हैं, उनमें से इस बहन को छोड़कर, बाकी सभी के दो से पांच तक बेटे हैं, परंतु एक बात हम सब में साझी है... वह क्या ? व्यक्ति ने उत्सुकता से पूछा। वह यह कि हममें से किसी के बेटी नहीं है। बेटी होती तो शायद हम यहां नहीं होते। वृद्ध ने दर्द भरी आवाज में कहा।

१७४७) सबसे सुंदर फूल- किशनगढ़ के राजा के मुख्य सलाहकार का निधन हो चुका था। राजा अत्यंत चिंतित था। उसे एक प्रजा-वत्सल सलाहकार की जरूरत थी। बहुत सोच-विचार के बाद उसने अपने दरबार से ही किसी योग्य व्यक्ति के चयन का निश्चय किया। निश्चित दिन राजा का दरबार लगा तो राजा ने सभासदों से सवाल किया, संसार में सबसे सुंदर फूल कौन है ? एक मंत्री ने तत्काल कहा, गुलाब सबसे सुंदर है क्योंकि वह फूलों का राजा है। राजकवि ने कहा, सबसे सुंदर फूल तो कमल का होता है। एक चापलूस मंत्री को पता था कि राजा को चंपा की सुगंध पसंद है, सो उसने चंपा का नाम लिया। किसी दरबारी ने मोगरे को सुंदर बताया तो किसी ने रात की रानी को अच्छा कहा। बादशाह किसी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ। अंत में एक बूढ़े दरबारी ने अत्यंत विनम्रता से कहा, महाराज, संसार में सबसे सुंदर फूल कपास का है। राजा ने पूछा, क्यों ? बूढ़े दरबारी ने कहा, यही ऐसा फूल है, जो सबके लिए समान रूप से काम आता है। इसके कपड़ों से राजा-रंग सभी अपना तन ढकते हैं। यह उत्तर सुन सभी वाह-वाह कर उठे। राजा को लगा कि यही वह व्यक्ति है जो सबके हित के बारे में सोचेगा। राजा ने उसे ही अपना सलाहकार नियुक्त किया।

१७४८) पूर्वजों का श्रम- एक बूढ़ा बगीचे में काम कर रहा था। तभी उधर से गुजरता हुआ एक नौजवान वहां आया। उसने बूढ़े से पूछा, आप क्या कर रहे हैं ? बूढ़े ने जवाब दिया, आम लगा रहा हूं। इस पर नौजवान को हंसी आ गई। उसने कहा, ये पेड़ आपके किस काम आएंगे ? कौन खाएगा इनके फल। आप फालतू मेहनत कर रहे हैं। इस पर बूढ़े ने कहा, बेटे। यही बात मेरे बड़े-बूढ़े सोचते तो भला मैं आज कैसे आम खाता ? यह बगीचा जो इतने फलों से लदा है, हमारे पूर्वजों के श्रम की कहानी कहता है। यह सुनकर नौजवान का सिर शर्म से झुक गया। उसने बूढ़े से क्षमा मांगी और उसके काम में हाथ बंटाने लगा।

१७४९) सही कीमत- पुराने जमाने की बात है। एक किसान अपने खेत में हल चला रहा था। कुछ दूर चलने के बाद उसका हल एक पत्थर से अटक गया। जब किसान ने जोर लगाया तो वह पत्थर अपनी जगह से हट गया। किसान थोड़ा सुस्ताने के लिए रुका। उसके पैरों में उसके जूते की कील चुभी तो उसने उसी पत्थर से उसे ठोंकना शुरू किया। तभी उधर से गुजर रहे एक राहगीर की नजर उस पत्थर पर पड़ी। वह एक जौहरी था। उसने पहचान लिया कि यह पत्थर दरअसल हीरा है। वह ठहर गया। उसने किसान को बातों में लगाकर पत्थर खरीदने की इच्छा प्रकट की। किसान आश्चर्य में पड़ गया। उसे समझ में नही आया कि यह आदमी इस अनगढ़ पत्थर को क्यों खरीदना चाहता है। पर उसे इससे क्या मतलब था। उसने सोचा पत्थर के बदले जो मिल जाए बहुत है। किसान ने पांच रुपये में वह पत्थर उस जौहरी को दे दिया। पांच रुपये में ही लाखों का हीरा पाकर वह जौहरी तेजी से घर की ओर चला। वह उसे देखने के लिए उतावला था। घर पहुंचकर उसने उसे देखने के लिए थैली से निकाला तो वह हाथ से छिटककर दूर जा गिरा और टुकड़े-टुकड़े हो गया। हैरान-परेशान जौहरी के मुंह से आह निकल गई। फिर वह खुद से बोला, अभी कुछ ही देर पहले वह किसान इसे अपने जूते पर जोर-जोर से पटक रहा था तो कुछ नहीं हुआ मगर यहां इस कोमल जमीन से टकरा कर ही यह टूट गया। ऐसा कैसे हो सकता है ? तभी हीरे के बिखरे टुकड़ों से आवाज आई, जौहरी, तूने मेरा अपमान किया है इसलिए मेरा दिल टूट गया है। जौहरी बोला, अपमान मैंने किया है या उस मूर्ख किसान ने जो इतने कीमती हीरे से अपने जूते की कील ठोंक रहा था। हीरा दुखी होकर बोला, वह किसान मेरी कीमत नहीं जानता था पर तुम तो जानते थे, फिर भी तुमने मेरा मूल्य केवल पांच रुपये आंका। इस अपमान के बाद मेरे जीवन का कोई मोल नहीं रह गया था। जौहरी सिर पीटकर रह गया।

१७५०) सच्चा धर्मात्मा- एक राजा के चार बेटे थे। एक दिन राजा ने उन्हें बुलाकर कहा, जाओ किसी धर्मात्मा को खोजकर लाओ। जो सबसे बड़े धर्मात्मा को खोजकर लाएगा, उसी को गद्दी पर बिठाऊंगा। कुछ दिन बाद बड़ा लड़का

एक सेठ को लेकर आया जो खूब दान-पुण्य करते थे। राजा ने सेठ का स्वागत-सत्कार किया। सेठ चले गए। दूसरा लड़का एक दुबले-पतले पंडित को ले आया। पंडितजी ने चारों धाम की पैदल यात्रा की थी। राजा ने उन्हें दक्षिणा देकर विदा किया। तीसरा लड़का एक साधु को लेकर आया। आते ही साधु ने आसन लगाया और ध्यान करने लगे। वे बड़े तपस्वी थे, सप्ताह में एक बार ही खाते थे। राजा ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार करके वापस भेज दिया। चौथा लड़का अपने साथ एक देहाती व्यक्ति को लेकर आया। उसने राजा से कहा, ये एक कुत्ते के घाव धो रहे थे। आप स्वयं पूछ लीजिए ये धर्मात्मा हैं या नही। राजा ने पूछा, तुम धर्म-कर्म करते हो ? उस व्यक्ति ने कहा, मैं अनपढ़ हूं, धर्म-कर्म क्या होता है, नहीं जानता। कोई बीमार होता है तो सेवा कर देता हूं। कोई मांगता है तो अन्न दे देता हूं। राजा ने कहा, यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सबसे बड़ा धर्म असहायों की मदद करना है।

१७५१) प्रार्थना के बीच में- एक सेठ एक साधु से मिलने आया। साधु को प्रणाम करके उसने कहा, बाबा, मैं प्रार्थना करना चाहता हूं, लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद नहीं कर पाता। जब भी मैं ध्यान लगाने की कोशिश करता हूं तभी मेरे आगे दुनियावी चीजें आ खड़ी होती हैं। धन कमाने और पारिवारिक तनाव के बारे में सोचने लग जाता हूं। आप ही बताइए मुझे प्रार्थना में मन लगाने के लिए क्या करना चाहिए? यह सुनकर साधु महाराज सेठ को एक ऐसे कमरे में ले गए जिसकी खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे। साधु ने सेठ को कांच के पार बाहर का नजारा दिखाया। शीशों से पेड़, उस पर चहकते पक्षी व दूसरी कई चीजें नजर आ रही थीं। यह देखकर सेठ प्रसन्न हो गया। उसके बाद साधु उसे एक दूसरे कमरे में लेकर गए। वहां कमरों की खिड़कियों पर चांदी की चमकीली परत लगी हुई थी। साधु बोले, सेठजी, जरा देखो तो इस चांदी की चमकीली परत के पार आप क्या देख पाते हैं? सेठ चांदी की चमकीली परत के पास गया तो उसे अपने चेहरे के सिवाय और कुछ नहीं दिखा। बाहर के मनोरम दृश्य उस परत में खो गए थे। यह देखकर सेठ बोला, बाबा, यहां तो बाहर की दुनिया ही गायब है। चांदी की चमकीली परत में तो मुझे सिवाय अपने चेहरे के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता जबकि कांच में से मुझे बाहर के मनोरम दृश्य दिखाई पड़ रहे थे। सेठ की बात सुनकर साधु बोले, बिल्कुल सही कहा तुमने। इसी तरह तुम भी प्रार्थना करते समय अपने ऊपर चांदी की परत चढ़ाए रखते हो इसलिए उसमें तुम्हें अपनी शक्ल और अहं के अलावा कुछ और नजर नहीं आता। यदि तुम स्वयं को कांच की तरह पारदर्शी और स्वच्छ बनाओगे तो तुम्हारा प्रार्थना में ध्यान सहज ही लग जाएगा। सेठ को अपनी गलती का अहसास हो गया और उसने उसी क्षण निश्चय किया कि अब वह बेमतलब की चीजों को प्रार्थना के बीच में नहीं आने देगा।

१७५२) सच्ची शिक्षा- उन दिनों अमेरिका में दास प्रथा का चलन था। एक धनी व्यक्ति ने बेंकर नामक गुलाम को खरीदा। बेंकर काफी मेहनती था। उसके काम से उसका मालिक काफी प्रसन्न हुआ। एक दिन बेंकर अपने मालिक को गुलामों के बाजार में ले गया। उसने मालिक से आग्रह किया कि वह एक बूढ़े दास को खरीद ले। उसके अनुरोध पर मालिक ने बूढ़े को खरीद लिया और अपने घर ले आया। बेंकर काफी खुश हुआ। वह उस बूढ़े दास की खूब सेवा टहल करता था। यह सब देखकर उसका मालिक हैरान था। उसे लगा कि यह जरूर बेंकर का कोई रिश्तेदार या परिचित है। एक दिन उसने इस बारे में पूछ ही डाला। तब बेंकर ने बताया, यह मेरा कोई संबंधी या मित्र नहीं, बल्कि मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है। बचपन में इसी ने मुझे दास के रूप में बेच दिया था। बाद में खुद पकड़ा गया और गुलाम बना लिया गया। मैंने उसे उस दिन बाजार में पहचान लिया था। मेरी मां ने मुझे सिखाया था कि अगर दुश्मन नंगा हो तो उसे कपड़े दो, भूखा हो तो खाना खिलाओ, प्यासा हो तो पानी पिलाओ। इसी कारण मैं इसकी खूब सेवा करता हूं और इस तरह अपनी मां की शिक्षा पर चलता हूं। यह सुनकर मालिक ने बेंकर को गले लगा लिया ओर उसको आजाद कर दिया।

१७५३) एक राजा के मन में दरबार में बैठे-बैठे अचानक ये शंका उत्पन्न हुई कि क्या शिक्षा वाकई मनुष्य के लिए इतनी जरूरी है, जितना कि इसे प्रचारित किया जाता है। उत्तर जानने के लिए उसने अपने साथ बैठे सभी लोगों से पूछा कि शिक्षा इंसान के लिए क्यों जरूरी है। सब ने अपने-अपने ढंग से उत्तर दिए। किसी का कहना था कि यह इंसान को बुद्धिमान और सभ्य बनाती है, किसी का कहना था कि यह उसे अपने लिए रोजगार पाने में मदद करती है तो किसी का कहना था कि इससे उसे सारी दुनिया के बारे में जानने में आसानी हो जाती है। लेकिन राजा किसी के भी उत्तर से संतुष्ट नहीं हो पा रहा था। सबसे अंत में एक विदूषक खड़ा हुआ। राजा बोला कि जब इतने बड़े विद्वान मेरी शंका का समाधान नहीं कर पाए तो तुम कैसे कर सकते हो? विदूषक बोला कि यदि आप नाराज न होने का वचन दें तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं। राजा से अभयदान पाकर विदूषक ने कहा कि शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे पाकर मन में ऐसे फिजूल सवाल नहीं आते और दूसरा यह है कि ऐसी शंका करनेवाला दूसरों को ऐसे सवालों का जवाब मांगकर परेशान नहीं करता। सुनकर राजा और वहां मौजूद सभी लोग उसकी हाजिरजवाबी के कायल हो गए।

१७५४) अपने आदमी- यह तीसरी बार हो रहा था। मैंने नकल करते हुए तीसरी बार एक छात्र को पकड़ा था और बदकिस्मती से वह भी किसी मास्टर का अपना आदमी निकल आया था। मुझे फिर ठंडी चेतावनी को झेलना पड़ा था। पहली बार अपने हैड का लड़का ही मेरी पकड़ में आ गया था। जब मैं उसे विजयी मुस्कान फैलाये ले जा रहा था, मेरी पीठ पीछे सभी साथी कुटिलतापूर्वक देखते मुस्कुरा रहे थे। नये होने की वजह से मुझे किसी छात्र के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था और वे जानते-बूझते मुस्कुरा रहे थे। हैड ने उसे यह कहकर छोड़ दिया था कि यह अपना शरारती बेटा है। दूसरी दफा मैंने फिर ईमानदारी का सबूत देते हुए एक लड़के को रंगे हाथों लपका था। उसकी वजह से मुझे मैनेजर साहब का सामना करना पड़ा। वह उनका सुपुत्र था और मुझे नौकरी करनी थी। तीसरी बात खेलों के प्रशिक्षक भागे चले आए और मेरे कंधों पर आत्मीयता का भार डालते हुए बता गये थे कि यह स्कूल का श्रेष्ठ खिलाड़ी है। तब से मैं कातर दृष्टि से अपने आसपास इस ढंग से देख रहा हूं जिससे मालूम हो जाए कि अपने आदमी कहां नहीं हैं ? एक भी आदमी पर अभी तक उंगली नहीं रख सका।

१७५५) ईश्वर की दया- बगदाद में एक धनी व्यापारी रहता था। वह अपना ज्यादा वक्त प्रार्थना और धर्म-कर्म में बिताता था। उसने तय कर रखा था कि अपनी इक लौती बेटी का विवाह किसी धर्मात्मा से करेगा। वह ऐसे ही वर की तलाश में जुटा हुआ था, पर उसे मनोनुकूल व्यक्ति नहीं मिल पा रहा था। एक शुक्रवार को उसने मस्जिद में देखा कि सब लोगों के जाने के बाद एक गौरवर्ण युवक अपने घुटने टेक कर अति श्रद्धापूर्वक सच्चे हृदय से अल्लाह को पुकार रहा है। व्यापारी ने उसके पास जाकर पूछा कि क्या वह उसकी बेटी से विवाह करेगा। उसने कहा, मैं तो बेहद गरीब हूं। मेरे पास सिर छिपाने को बस एक टूटी-फूटी छत है। मैं कब्रिस्तान में रहता हूं और किसी तरह जीवनयापन करता हूं। ऐसे भिखारी से भला कौन विवाह करेगा ? मैं उसी से विवाह करूंगा जो मेरी आध्यात्मिक साधना में बाधक नहीं होगी और मेरी निर्धनता को बांटने के लिए तैयार होगी।

व्यापारी ने सोचा कि यही वह योग्य व्यक्ति है जिसकी वह तलाश कर रहा था। उसने अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर दिया। उसकी कन्या उस फकीर के घर आ गई। वह अति प्रसन्न थी कि उसका पति भी उसी के जैसे विचार रखता है और ईश्वरोपासना में लीन रहता है। वह स्वयं भी आध्यात्मिक साधनाओं की अभ्यस्त थी। एक दिन फर्श साफ करते समय उसे एक थाली और उसमें रोटी के कुछ टुकड़े मिले। उसने पति से पूछा कि वह क्यों रखे हैं तो उस फकीर ने उत्तर दिया, ये इसलिए रखे हैं कि यदि कल मुझे भीख में पर्याप्त भोजन न मिला तो इसे खा लेंगे। इस पर पत्नी ने उत्तर दिया, आपके लिए यह अति लज्जास्पद है। आपको अल्लाह में इतना कम विश्वास है ? जो हमें भूख देता है, क्या वह हमें रोटी

भी नहीं प्रदान करेगा ? मैं आपके साथ नहीं रहूंगी। आपको ईश्वर तथा उसकी दया में विश्वास नहीं है। ऐसा व्यक्ति मेरा पति बनने लायक नहीं। यह कहते हुए वह फकीर को छोड़कर चली गई।

१७५६) एक राजा को अध्ययन का बहुत शौक था, लेकिन राजकाज की व्यस्तता के कारण वह पढ़ाई के लिए ज्यादा वक्त नहीं निकाल पाता था। धीरे-धीरे वह अधेड़ हो गया। एक दिन उसने अपने मंत्री को बुलाकर कहा कि वह अध्ययन करना चाहता है, लेकिन बढ़ती उम्र के कारण यह संभव प्रतीत नहीं होता। मंत्री ने कहा कि तब तो आपको दीपक बन जाना चाहिए। राजा को लगा कि मंत्री उसका उपहास कर रहा है। उसने जब नाराजगी जाहिर की तो मंत्री ने स्पष्ट किया कि वह मजाक नहीं कर रहा। उसने राजा को समझाया कि यदि कोई युवावस्था में अध्ययन में रुचि लेता है तो उसका भविष्य सुबह के सूरज की तरह होता है, यदि वह अधेड़ावस्था में रुचि लेता है तो उसका भविष्य दीपक की ज्योति जैसा होता है। यदि कोई सूरज न बन पाया हो तो उसका दीपक बनना भी अच्छा है। क्योंकि घने अंधेरे में भटकने से थोड़ा प्रकाश भी बेहतर होता है। सार- अच्छे कार्य के आरंभ के लिए कोई आयु कम या अधिक नहीं होती।

१७५७) आस्था- एक आदमी के गाँव के पास एक बहुत ऊँचा पहाड़ था। उसके ऊपर हमेशा बर्फ जमी रहती थी और बादल मंडराते रहते थे। नीचे से उसका दृश्य बहुत ही मनोरम नजर आता था। बहुत दिनों से उसकी इच्छा थी कि एक बार वह उसकी चोटी पर जाए। अंतत: एक दिन उसने दृढ़ निश्चय किया और चढ़ाई के लिए निकल पड़ा। पीठ पर उसने सारा जरूरी सामान लाद लिया और हिम्मत के साथ चढ़ना शुरू किया। चढ़ते-चढ़ते रात हो गई। बिल्कुल अंधेरा और खून जमा देने वाली ठिठुरन। पर उसने हार नहीं मानी, साहस नहीं छोड़ा- वह चढ़ता ही रहा। लेकिन जब वह बिल्कुल चोटी पर पहुंचने ही वाला था तो अचानक उसका पैर फिसल गया और वह चोटी से नीचे गिरने लगा। वह अपने संकल्प, अपनी ताकत, अपने साहस के साथ वहाँ तक चढ़ा था, पर गहरी खाई में गिरता हुआ वह भगवान से प्रार्थना करने लगा, हे भगवान बचा लो।

अचानक एक जगह उसके हाथों को रस्सी का स्पर्श मिला। उसने उसे झपट कर पकड़ा। फिर भी तेज गति से गिरने के कारण वह फिसलता हुआ काफी नीचे तक पहुँच गया और हवा में झूलने लगा। चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा था, उसकी प्रार्थना चलती रही- हे प्रभु। किसी तरह बचा लो। अचानक तभी आवाज आई, तू क्या चाहता है ? वह चौंका, फिर बोला, कौन ? मैं भगवान। सुनते ही वह फिर करुण स्वर में याचना करने लगा, ओ दुनिया के मालिक। मेरी जिंदगी की रक्षा करो। ठीक है, तू रस्सी छोड़ दे, बच जाएगा। अंधेरे में वही स्वर फिर सुनाई पड़ा। अब तो वह आदमी घबराया, बड़ी मुश्किल से तो यह रस्सी हाथ लगी है, इसे कैसे छोड़ दूँ। वह डर गया, उसने रस्सी और जोर से पकड़ ली। वह रस्सी से रात भर लटका हुआ ठंड से अकड़ कर मर गया। लेकिन वह जमीन से मात्र १० फीट ही ऊपर लटका हुआ था। अगर वह रस्सी छोड़ देता तो बच जाता।

आस्था और विवेक एक साथ नहीं फलीभूत होते, हमें दोनों में से किसी एक को चुनना पड़ता है।

१७५८) अहंकार का अंत- गुजरात में एक लोककथा प्रचलित है कि बहुत पहले अहमदाबाद का नाम कर्णावती था, जहां का राजा था- अहमदशाह। उसी राज्य में साबरमती नदी के किनारे माणिकनाथ का आश्रम था। वे सिद्ध पुरुष थे। एक दिन घूमते हुए राजा आश्रम आया। उसे वह जगह बहुत पसंद आई। उसने मंत्री को आदेश दिया कि उसके लिए यहां एक विश्रामगृह बनाया जाए। जल्द ही माणिकनाथ के आश्रम के पास निर्माण कार्य शुरू हो गया। इस पर माणिकनाथ को गुस्सा आया। उन्होंने कहा, बादशाह की इतनी हिम्मत कि वह बिना मुझसे पूछे आश्रम में दखल दे। उसे मेरी ताकत का पता नहीं है।

मजदूर दिन भर दीवार चुनने का काम करते और रात को माणिकनाथ मंत्र बल से दीवार गिरा देते। कई दिनों तक यह सिलसिला जारी रहा। राजा को पता चला तो वह परेशान हो गया। बादशाह को चिंतित देख उसके वजीर ने कहा, आप

चिंता मत करें। मैं इसका हल खोज लूंगा। वजीर माणिकनाथ के आश्रम में गया और बोला, गुरुजी मैं आपकी सेवा करना चाहता हूं। माणिकनाथ ने उसे आश्रम में रख लिया। कुछ दिनों के बाद वजीर ने माणिकनाथ से कहा, गुरुवर, मैंने सुना है आपने कई सिद्धियां हासिल कर रखी हैं। कोई चमत्कार तो दिखाइए। बार-बार कहने पर माणिकनाथ ने अपना शरीर छोटा किया और एक लोटे में प्रविष्ट हो गए। वजीर यही चाहता था। वह बोला, बाहर तो निकलिए। मंत्रोचार करते-करते योगी थक गए, लेकिन लोटे से बाहर नहीं निकल सके। तभी आकाशवाणी हुई। योगी के गुरु महाराज कह रहे थे, माणिक, अब तुम्हारे सिद्धि मंत्र का असर खत्म हो गया है। तुम्हारे अंदर अहंकार पैदा हो गया है। तुम्हें परोपकार के लिए सिद्धियां मिली थीं। पर तुमने प्रजा की भलाई के लिए नहीं, बल्कि अहंकारवश बादशाह के काम में बाधा डाली। जाओ, बादशाह से क्षमा मांग कर मेरे पास आ जाओ। माणिकनाथ ने पश्चाताप करते हुए गुरु से क्षमा मांगी और प्राण त्याग दिए। बाद में अहमदशाह के नाम पर कर्णावती का नाम अहमदाबाद पड़ा और उसमें माणिकनाथ के नाम पर एक माणिक चौक बना।

१७५९) चिकित्सा- एक राजा को कोढ़ का रोग लग गया था। वैद्य ने निदान किया और कहा कि यदि मानसरोवर के हंस पकड़ कर लाए जाएं और उनके कलेजे से दवाई बनाकर दी जाए तो राजा का कोढ़ ठीक हो सकता है। राजा को किस बात की कमी। उसने मंत्रियों को आदेश दिया कि व्याध भेजकर मानसरोवर से हंस पकड़ कर लाए जाएं। आदेश पाते ही व्याधों ने मानसरोवर के लिए प्रस्थान किया। व्याध वहां पहुंचे कि उनको देखकर हंसों ने मानसरोवर से प्रस्थान कर दिया। यह देखकर व्याध एक बार तो निराश हो गए, किंतु थे तो वे व्याध ही। उन्होंने साधु संन्यासी का वेश धारण कर जटाएं धारण की और कमण्डल हाथ में लेकर सरोवर पर विचरण करने लगे। साधुओं को देखकर हंस डरे नहीं वे वहीं विचरण करते रहें। व्याधों को अवसर मिल गया और वे हंसों को पकड़कर राजा के पास ले आए। राजा ने जब हंसों के पकड़े जाने की कथा सुनी तो उसको अच्छा नहीं लगा, उसने उन हंसों को मुक्त करवा दिया। अपनी चिकित्सा के लिए किसी अन्य वैद्य को बुलवाया और उसकी चिकित्सा से वह स्वस्थ हो गया। उधर उन व्याधों ने भी प्रायश्चित स्वरूप पक्षीवध का नृशंस कार्य त्याग दिया।

१७६०) अमानत- सारा सामान ट्रक में लादा जा चुका था। कवि शिवा आज नए मकान में जा रहे थे, अरी गुड़िया। मां ने ऊंची आवाज में पुकारा, चल, सारा सामान लद चुका है। चार साल की गुड़िया धीरे-धीरे चलकर बाहर आ रही थी। उसके फ्राक की झोली में कंकड़-पत्थर का बोझा लदा था।

देखते ही मम्मी झल्लाई। यह क्या ? पत्थरों का क्या करेगी ? फेंक यहीं। मम्मी ने गुड़िया के सारे पत्थर बिखेर दिए। दो क्षण गुड़िया पत्थर बनी बिखरे पत्थरों को देखती रही और फिर फूट-फूटकर रो पड़ी।

क्या हुआ, बेटे ? पापा ने गोद में उठाते हुए गुड़िया से पूछा। गुड़िया रोए जा रही थी। मम्मी ने आगे बढ़कर कहा। देखो, आपकी लाड़ली ये पत्थर फ्राक में भरकर ले जा रही थी। नया फ्राक भी बिगाड़ दिया।

ओहो सरिता। कुछ तो सोचती उसके पत्थर फेंकने से पहले। ये उसके बचपन की अमानत है। तुम्हारे ट्रक-भर सामान से ज्यादा कीमत है गुड़िया के लिए इन पत्थरों की।

सरिता ने गुड़िया को गले से लिपटाते हुए कहा, मुझे माफ कर दे बेटी, मैंने तुझे दु:ख पहुंचाया। और तीनों मिलकर बिखरे पत्थर उठाने लगे। गुड़िया खुशी से नाच रही थी।

१७६१) रास्ते की रुकावट- विद्यार्थियों की एक टोली पढ़ने के लिए रोजाना अपने गाँव से ६-७ मील दूर दूसरे गाँव जाती थी। एक दिन जाते-जाते अचानक विद्यार्थियों को लगा कि उन में एक विद्यार्थी कम है। ढूँढ़ने पर पता चला कि वह पीछे रह गया है। उसे एक विद्यार्थी ने पुकारा, तुम वहाँ क्या कर रहे हो ? उस विद्यार्थी ने वही से उत्तर दिया, ठहरो, मैं अभी आता

हूँ। यह कह कर उसने धरती में गड़े एक खूँटे को पकड़ा। जोर से हिलाया, उखाड़ा और एक ओर फेंक दिया फिर टोली में आ मिला। उसके एक साथी ने पूछा, तुम ने वह खूँटा क्यों उखाड़ा ? इसे तो किसी ने खेत की हद जताने के लिए गाड़ा था। इस पर विद्यार्थी बोला, लेकिन वह बीच रास्ते में गड़ा हुआ था। चलने में रुकावट डालता था। जो खूँटा रास्ते की रुकावट बने, उस खूँटे को उखाड़ फेंकना चाहिए। वह विद्यार्थी और कोई नहीं, बल्कि लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे।

१७६२) अन्न महाराज- गत दिनों विवाह समारोह में सपरिवार जाना हुआ। कई प्रकार के व्यंजनों को देखकर मुंह में पानी आ रहा था, सो हमने भी औरों की तरह पहले स्टॉल्स पर जाकर चटखोर लिए और फिर प्लेट भी पूरी भर ली। लेकिन पेट भर चुका था अत: प्लेट में से थोड़ा सा खाकर हमने प्लेट डस्टबिन में डालने का मन बनाया। काफी ढूँढ़ने पर भी जब ड़स्टबिन नहीं मिला तो हम पांड़ाल के पीछे जहां बर्तन साफ हो रहे थे वहाँ प्लेट रखने पहुँच गए। वहाँ एक बुजुर्ग महिला बर्तन साफ कर रही थी। वह बर्तनों को साफ करने के पहले उसकी जूठन कुछ अन्य बर्तनों में निकालकर अलग कर रही थी। मैंने उत्सुकतावश पूछ लिया- माई इसका क्या करोगी ? वह हंसते हुए बोली बेटा ये अन्न महाराज है। नाले में फेंकने से इनका अपमान होता है। इनमें से कुछ तो मेरे बच्चे खा लेंगे और बाकी गाय और कुत्तों को खिला दूँगी। इससे अन्न महाराज का अपमान भी नहीं होगा और भूखों का पेट भी भर जाएगा। उस अनपढ़ माई की अन्न के प्रति आस्था देखकर मैं दंग रह गया। हमारे द्वारा छोड़ी गई जूठन अब हमें मुँह चिढ़ा रही थी। वह वृद्ध मुझे सबक दे गई कि जूठा छोड़ देना विलासिता की निशानी नहीं, हमारे संस्कारों का पतन है।

१७६३) बच्चे की सीख- बचपन से ही मुझे अध्यापिका बनने तथा बच्चों को मारने का बड़ा शौक था। अभी मैं पाँच साल की ही थी कि छोटे-छोटे बच्चों का स्कूल लगा कर बैठ जाती। उन्हें लिखाती पढ़ाती और जब उन्हें कुछ न आता तो खूब मारती। मैं बड़ी होकर अध्यापिका बन गई। स्कूल जाने लगी। मैं बहुत प्रसन्न थी कि अब मेरी पढ़ाने और बच्चों को मारने की इच्छा पूरी हो जाएगी। जल्दी ही स्कूल में मैं मारनेवाली अध्यापिका के नाम से प्रसिद्ध हो गई। एक दिन श्रेणी में एक नया बच्चा आया। मैंने बच्चों को सुलेख लिखने के लिए दिया था। बच्चे लिख रहे थे। अचानक ही मेरा ध्यान एक बच्चे पर गया जो उल्टे हाथ से बड़ा ही गंदा हस्तलेख लिख रहा था। मैंने आव देखा न ताव, झट उसके एक चाँटा रसीद कर दिया और कहा, उल्टे हाथ से लिखना तुम्हें किसने सिखाया है और उस पर इतनी गंदी लिखाई। इससे पहले कि बच्चा कुछ जवाब दे, मेरा ध्यान उसके सीधे हाथ की ओर गया, जिसे देखकर मैं वही खड़ी की खड़ी रह गयी क्योंकि उस बच्चे का दायाँ हाथ था ही नहीं। किसी दुर्घटना में कट गया था। यह देखकर मेरी आँखों में बरबस ही आँसू आ गए। मैं उस बच्चे के सामने अपना मुँह न उठा सकी। अपनी इस गलती पर मैंने सारी कक्षा के सामने उस बच्चे से माफी माँगी और यह प्रतिज्ञा की कि कभी भी बच्चों को नहीं मारूँगी। इस घटना ने मुझे ऐसा सबक सिखाया कि मेरा सारा जीवन ही बदल गया।

१७६४) सच्चा मित्र- एक वृक्ष पर गौरेये का जोड़ा रहता था। मादा गौरैया ने अंडे दिये तो दोनों बड़े खुश हुए। एक दिन जैसे शाम को वापस अपने घोसले में आए तो क्या देखते हैं कि एक हाथी ने मस्ती में आकर वह सारी टहनियां ही तोड़ डाली हैं, जिन पर उनका घोसला था। सारे अंडे टूटे-फूटे धरती पर पड़े थे। गौरैया का जोड़ा वहीं पर बैठकर रोने लगे। उन्हें इस प्रकार रोते देखकर उनका मित्र कठफोड़वा वहां आ गया और उनसे कहने लगा- मित्रों। अब रोने से क्या लाभ। जो होना था वह हो चुका। बुद्धिमान कहते हैं- पंडित और बुद्धिमान बीते हुए समय को याद करके नहीं सोचते और न रोते हैं। बुद्धिमान और मूर्ख में यही तो अंतर है भैया। हम तो आपकी हर बात मानते हैं। तुम ही तो हमारे सच्चे मित्र हो, परंतु अब उस हाथी से जब तक हम बदला नहीं लेंगे, हमारे मन को शांति नहीं मिलेंगी। अब कठफोड़वा उस हाथी से बदला चुकाने

के बारे में सोचने लगा। उसे एक मक्खी की याद आयी। कठफोड़वा उड़ता हुआ अपनी मित्र मक्खी के पास गया। मक्खी बोली- तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। संकट के समय सदा सच्चा मित्र ही काम आता है। हाथी को बुद्धि से ही मारा जा सकता है। हम पहले अपने उस मेढ़क मित्र के पास चलते हैं जो हमारी पूरी सहायता करेगा। गोरेया, मक्खी, कठफोड़वा तीनों मिलकर मेढ़क के पास पहुंचे। मक्खी बोली, यह अपनी मित्र गौरेया है। एक हाथी ने इनके सारे अंडे फोड़ दिए। घोसला तोड़कर इन्हें बर्बाद कर दिया। यह उस हाथी से बदला लेना चाहती है, इसलिए हम तीनों तुम्हारी सहायता प्राप्त करने आए हैं। मेढ़क कहने लगा तुम चिंता मत करो। सुनो उस हाथी से बदला लेने का तरीका दोपहर के समय जब हाथी मस्ती में सो रहा होगा तो मक्खी उसके कान के पास जाकर अपना राग सुनाएगी, जिससे वह मस्त होकर अपनी आंखें बंद कर लेगा। ऐसे में कठफोड़वा उसकी आंखें फोड़ देगा। वह अंधा हो जाएगा। जैसे ही उसे प्यास लगेगी, वह पानी की तलाश में भटकेगा। उसी समय मैं अपनी आवाज में टर्र-टर्र करूंगा। हाथी यह सोचकर मेरी आवाज की ओर चला आएगा, क्योंकि उसे पता होगा कि मेढ़क सदा पानी में ही होता है। मैं उसे गहरे कीचड़ में ले जाकर फंसा दूंगा, जिससे वह कभी नहीं निकल सकेगा। इस प्रकार से योजना बनाकर उन छोटे-छोटे मित्रों ने हाथी जैसे बड़े जानवर को मार डाला था।

१७६५) जीव दया- श्रीदुर्गाचरण नाग महाशय की दया के अनेक प्रसंग प्रचलित हैं। उनके घर के सामने से मछुए यदि मछली पकड़ कर ले जाते दिखाई देते तो वे उन सब मछलियों को खरीद लेते और उठाकर तालाब में छोड़ आते, उनमें से कुछ तो बच ही जातीं। एक दिन की बात है कि इनके बगीचे में एक सर्प कहीं से आ गया। पत्नी ने देखा तो डर गई और चिल्ला कर नाग बाबू से कहने लगी- सुनते हो, काला सांप निकल आया है, लाठी तो ले आओ। नाग महाशय बगीचे में तो आए किंतु खाली हाथ। पत्नी को समझाते हुए कहने लगे- यह जंगल का सर्प है, यह कहां किसी को हानि पहुंचाता है ? यह तो मन का सर्प है जो मनुष्य को मारे डालता है। इतना ही नहीं सांप के पास जाकर कहने लगे- सर्प देवता, आपको देखकर लोग डर रहे हैं। कृपा करके आप यहां से बाहर निकल जाइए। न जाने क्या बात हुई कि नाग महाशय की प्रार्थना पूर्ण होते ही सांप ने बगीचे के बाहर का मार्ग पकड़ा और जंगल में जाकर अदृश्य हो गया।

१७६६) बेहतर भविष्य का संकल्प मुहाना- एक शिक्षण संस्थान की यह परंपरा थी- अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों में जो योग्यतम आठ-दस होते थे, उन्हें देश की औद्योगिक संस्थाएँ नियुक्त कर लेती थी। उस साल भी वही हुआ। ऊपर के नौ लड़के ऊँची पद-प्रतिष्ठा वाली नौकरियाँ पाकर खुशी-खुशी चले गए। लेकिन उनके बीच का एक लड़का जो चुने गए साथियों से कम नहीं था, रह गया। चूँकि वह बहुत परिश्रमी था और अपने संस्थान को उसकी सेवा से लाभ ही होता इसलिए उसे अस्थायी तौर पर कुछ भत्ता देकर काम पर लगा लिया गया। फिर भी आपने साथियों की तुलना में उसकी यह नियुक्ति आर्थिक दृष्टि से बड़ी मामूली थी। वह उदास रहने लगा। लोग भी उसके भाग्य को दोष देने लगे थे। लेकिन यह स्थिति अधिक दिन नहीं रही। एक बहुत नामी औद्योगिक संस्था ने अचानक उस शिक्षण संस्थान से संपर्क कर जैसे व्यक्ति की माँग की, यह युवक पूरी तरह उसके अनुकूल सिद्ध हुआ। उसे अपनी योग्यता के अनुरूप काम और वेतन मिला, बात इतनी ही नहीं थी, उसकी यह नियुक्ति अपने साथियों की तुलना में बहुत ऊँची भी थी। अर्थ और सामाजिक प्रतिष्ठा- दोनों ही दृष्टि से वह उन सबसे श्रेष्ठ हो गया था। इसी तरह कभी-कभी अनुकूल समय के लिए प्रतीक्षा की घड़ियाँ आया करती है। अक्सर ही जिसे लोग भाग्य का दोष मान बैठते है ? वह होता है एक बेहतर भविष्य का संकरा मुहाना।

१७६७) दाग- पुत्र किसी के घर में डाका डालकर आ जाता तो मां कमरे में एक कील गाड़ देती किसी का खून करता, तो एक और कील गाड़ देती, यह सिलसिला न जाने कब तक चलता रहा। एक दिन पुत्र ने मां से पूछा- मां, तुमने यह

सारा कमरा कीलों से भर दिया। यह सब क्या है ? पुत्र ये तुम्हारे बुरे काम हैं, तू कोई बुरा काम करता तो मैं एक कील गाड़ देती थी। अब तो पूरा कमरा कीलों से भर गया है पर...

पुत्र का पाषाण हृदय पानी-पानी हो गया। उस दिन से वह अच्छे काम करने लगा। हर रोज जब वह घर आता मां को अपने अच्छे काम बताता। मां एक कील उखाड़ देती। कई वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहा। एक दिन सभी कीलें उखड़ गयीं, तब पुत्र ने बड़ी शांति से पूछा मां अब तो कोई पाप नहीं रहा ?

पुत्र। देख कीलें तो सभी निकल गयी हैं, पर कीलों के न मिटनेवाले दाग दीवार पर रह गये हैं। मुझे यह निशान तुम्हारे बुरे कामों की हमेशा याद दिलाते रहेंगे।

१७६८) लालच का कलश- एक घुड़सवार ने यह आवाज सुनी, जिस पेड़ के नीचे से तुम अभी-अभी गुजरे हो, उसकी जड़ के पास सात कलश रखे हैं। उनमें से छह में सोना भरा है और सातवां आधा खाली है। यदि तुम इस कलश को सोने से भर दोगे तो तुम अन्य सभी कलशों के स्वर्ण के स्वामी बन जाओगे। यह सुनकर घुड़सवार फूला न समाया। वह सातों कलश लेकर घर पहुंचा। अपनी पत्नी के साथ मिलकर घर में रखे सारे सोने को मिलाकर वह उस कलश को भरने लगा, पर कलश नहीं भरा। हारकर वह घुड़सवार सातों कलशों को लेकर उसी वृक्ष के निकट पहुंचा और पेड़ पर निवास करने वाले यक्ष को पुकारकर उसे सारी बात बता दी। यक्ष हंसकर बोला, अरे मूर्ख, यदि इन कलशों का स्वर्ण पाना इतना आसान होता तो ये कलश यहां कैसे रह सकते थे। खोलकर देख, इनमें सोना नहीं पीतल भरा है। और जिस आधे कलश को तू भरना चाहता था वह लालच का कलश है जो कभी नहीं भरता। यह सुनकर घुड़सवार शर्मिंदा हो गया।

१७६९) प्रदर्शन- एक गरीब किसान ने अपनी पुत्रवधू के आग्रह पर उसे कानों के कुंडल बनवा दिए। कानों में कुंडल पहनकर सबको दिखाने की उसे जल्दी मची थी क्योंकि वह गहने की प्रशंसा लोगों के मुख से सुनना चाहती थी। वह सबसे पहले मंदिर के पुजारी के पास गई तथा उन्हें चरण छूकर प्रणाम किया। पुजारी दोपहर में उसके द्वारा आकर पांव छूने का कारण समझ गए। वे बोले बेटी। कुंडल देनेवाले को तो धन्यवाद दे परंतु कभी-कभी उसे भी याद कर लिया कर जिसने कान दिए है।

१७७०) मोह से मुक्ति- एक व्यक्ति का इकलौता पुत्र बीमार पड़ गया। सभी तरह के उपचार के पश्चात् भी उसे नहीं बचाया जा सका। पिता पर तो वज्रपात हो गया। व्यथा के आंसू रुकते नहीं थे। संसार की विरक्ति ने उसे एकान्तवासी बना दिया। एक दिन बच्चे का स्मरण कर वह देर तक रोता रहा और उसकी आँख लग गई। स्वप्न में वह देवलोक जा पहुँचा। उसने देखा कि छोटे बच्चों का लम्बा जुलूस निकल रहा है। सब बच्चों के हाथ में जलती हुई मोमबत्तियाँ है। उसी पंक्ति में उसे अपना लाड़ला दिख गया। वह उससे लिपटकर खूब रोया। धैर्य धारण करने पर उसने बच्चे से पूछा कि तुम्हारे सभी मित्रों की मोमबत्तियाँ जल रही है। तुम्हारी क्यों बुझ गई? बच्चा बोला पापा। आप मुझे याद करके रोते हैं अत: आपके आसुओं से मेरी मोमबत्ती बुझ जाती है। व्यक्ति की नींद खुलने पर उसने बच्चे के लिए रोने की अपेक्षा स्मृति में दान-पुण्य देना तथा अनाथ बच्चों का जीवन सुखमय बनाने का प्रयास किया।

१७७१) विश्वास की जीत- यह वैशाली की लोककथा है। प्राचीन समय में वहाँ सुनयना नामक एक अत्यंत रूपवती युवती रहती थी। उसके रूप-गुण की चर्चा सुन दो युवक उदयभान और चंद्रभान उससे विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुंचे। देखने में दोनों आकर्षक और तेजस्वी लग रहे थे पर उनकी पोशाकों में अंतर था। चंद्रभान महंगे मगर उदयभान साधारण कपड़े पहने था। सुनयना के पिता असंमजस में पड़ गए। उन्होंने मामला अपनी बेटी पर छोड़ दिया। सुनयना ने दोनों से उनके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की फिर पूछा, अभी तुम दोनों के पास कितनी स्वर्ण मुद्राएं हैं ? चंद्रभान के पास नब्बे

तथा उदयभान के पास दस स्वर्ण मुद्राएं थी। सुनयना ने कहा कि जो शाम तक सौ स्वर्ण मुद्राएं ले आएगा उसी से वह विवाह करेगी। दोनों युवक सायंकाल वापस आए। संयोग से अब दोनों के पास ही सौ स्वर्ण मुद्राए थीं। सुनयना ने कहा, तुम दोनों ने किस तरह शेष मुद्राएं जुटाईं। चंद्रभान ने कहा, मैंने अपने जानने वालों से मदद मांगी पर किसी ने मदद नहीं की। आखिरकार मैंने अपना हार बेचकर स्वर्ण मुदाएं हासिल की। उदयभान ने बताया, जब मैंने अपने परिचितों से सहायता मांगी तो सबने अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक मुझे कुछ न कुछ दिया। इस तरह अब मेरे पास सौ स्वर्ण मुद्राएं है। तब युवती ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा, मैं उदयभान से विवाह करूंगी। इस पर चंद्रभान ने आपत्ति करते हुए कहा, मैं उदयभान से ज्यादा अमीर हूं, फिर इसने तो उधार मांगकर स्वर्ण मुद्राएं जुटाई हैं। फिर भी तुम इससे क्यों विवाह करना चाहती हो? सुनयना बोली, तुम धनी परिवार से जरूर हो पर तुम्हारी अपनी कोई पहचान नहीं है, इसीलिए तुम्हें मांगने पर भी स्वण मुद्राएं नहीं मिलीं। उदयभान गरीब अवश्य है, पर उसकी एक पहचान है, तभी तो लोगों ने उस पर विश्वास किया और मुद्राएं दे दीं। मैं ऐसा जीवन साथी चाहती हूं जो भरोसे के लायक हो, जिसकी खुद की पहचान हो और जो लोगों का विश्वास जीत सके। विश्वास के सहारे ही व्यक्ति इस समाज में खुश रह सकता है।

१७७२) आराधना का समय- एक धर्मपरायण स्त्री थी। वह कोई भी काम करते हुए भगवान का नाम जरूर लेती थी। वह गरीबों की सेवा में भी लगी रहती थी। समय-समय पर उन्हें खाना खिलाती और हरसंभव मदद करती। उसका पति धर्म विरोधी तो नहीं था, पर उसका कहना था कि घर की जिम्मेदारियां पूरी हो जाने के बाद वह बुढ़ापे में फुर्सत से भगवान का ध्यान करेगा और दान-दक्षिणा देगा। इस बात पर पति-पत्नी में बहस भी हो जाती थी।

एक दिन उस स्त्री ने कहा, हम नहीं जानते कि हमें कितने दिन जीवित रहना है, इसलिए भगवान की पूजा बुढ़ापे तक स्थगित कर देने में बुद्धिमानी नहीं। जब भी आपको समय मिले धर्म-कर्म कीजिए। इस पर उसके पति ने कहा, भगवान की पूजा करूंगा तो घर कौन चलाएगा ? पेट कैसे भरेगा ? यदि हमारे पास संपत्ति नहीं होगी तो हमें कोई नहीं पूछेगा। जीने के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। दिन भर बैठकर तुम भगवान का नाम जपती रहोगी तो क्या भगवान थाली परोस कर तुम्हारे सामने रख देगा ? कुछ दिनों बाद पति अचानक बीमार पड़ गया। दोनों वैद्य के पास पहुंचे। वैद्य ने सुबह, दोपहर और शाम को पीने के लिए एक औषधि दी। पत्नी ने औषधि आलमारी में बंद करके रख दी। सुबह बीत गई, दोपहर भी गुजर गई, रात हो गई, पति को लगा कि उसकी पत्नी दवा देना भूल गई है। उसने दवा मांगी तो पत्नी ने कहा कि कोई बात नहीं, तीनों समय की दवा इकट्ठी पी लो। इस पर नाराज होते हुए पति ने कहा, औषधि लेने का एक तरीका होता है। एक साथ पीने से बीमारी ठीक नहीं हेाती। वह धीरे-धीरे पीने से ही ठीक होती है। इस पर पत्नी ने कहा, ठीक कहा आपने। हम सब जन्म से ही भवरोग से पीड़ित है। इसके उपचार के लिए हमें भगवान के नाम या सुकर्म की औषधि लेते रहनी चाहिए। रोग बढ़ जाने या मृत्यु निकट आ जाने पर इकट्ठी औषधि लेने से कोई लाभ नहीं होगा। पति की आंखें खुल गईं। वह भी भगवान की आराधना और गरीबों की सेवा में जुट गया।

१७७३) तूसी ईरान के रहने वाले एक बुजुर्ग थे। सब उनकी इज्जत करते थे। उनकी यह आदत थी कि जब भी कोई खाने पीने की चीज आती तो वह उसे उपस्थित लोगों में बांट देते। लेकिन एक उल्टी बात हो गई। एक किसान बड़ा सा खरबूजा लेकर तूसी से भेंट करने आया। तूसी ने खरबूजा काटा, चखा और सारा का सारा खरबूजा स्वयं ही खा गए। इस पर उपस्थित लोगों को बड़ी हैरानी हुई। किसान के जाने के बाद किसी ने उनसे वजह पूछी तो बोले, भई खरबूजा बिल्कुल फीका था। अगर उसे मैं बांट कर खाता तो हो सकता था, कोई कह देता कि यह फीका है। तो फिर उस गरीब किसान का दिल टूट जाता।

१७७४) एक बार चित्रकार जंगल में बैठकर एक चित्र बना रहा था। उसके ब्रश से रंग की कुछ बूंदें रास्तें में पड़े एक बड़े से पत्थर पर गिर गई। उसके जाने के बाद वहां से एक राहगीर गुजरा, उसे पत्थर से ठोकर लगी तो उसने पत्थर पर लगे रंग को देखकर सोचा कि किसी ने उस पत्थर की तिलक लगाकर पूजा की है। श्रद्धावश उसने पत्थर को उठाकर एक पेड़ के नीचे रख दिया। उसके बाद वहां लोग आते तो कोई पत्थर को देखकर शीश झुकाता, कोई फूल चढ़ाता, कोई अगरबत्तियां जलाता और कोई मन्नतें मांगता। धीरे-धीरे वहां पत्थर के भक्तों की भीड़ लगने लगी। पत्थर की बढ़ती कद्र देख पेड़ को बहुत ईर्ष्या होने लगी और उसने एक दिन पत्थरको लात मारकर नीचे खाई में गिरा दिया। अगले दिन जब लोग उसके दर्शन के लिए वहां पहुंचे तो पत्थर गायब दिखा। आग की तरह यह खबर सारे इलाके में फैल गई। सबने मिलकर सभा की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पत्थर का गायब होना अपशकुन है। इस पेड़ पर दुष्टात्माओं का वास हो सकता है, इसलिए इसे आग के हवाले कर देना चाहिए। इसके बाद उस पेड़ को आग लगा दी गई। सार- किसी का अनिष्ट करके कोई अपना कल्याण नहीं कर सकता।

१७७५) ईश्वर का प्रमाण- एक दिन एक राजाने अपने सभासदों से कहा, क्या तुम लोगों में कोई ईश्वर के होने का प्रमाण दे सकता है ? सभासद सोचने लगे, अंत में एक मंत्री ने कहा, महाराज, मैं कल इस प्रश्न का उत्तर लाने का प्रयास करूंगा। सभा समाप्त होने के बाद उत्तर की तलाश में वह मंत्री अपने गुरु के पास जा रहा था। रास्ते में उसे गुरुकुल का एक विद्यार्थी मिला। मंत्री को चिंतित देख उसने पूछा, सब कुशल मंगल तो है ? इतना तेजी से कहां चले जा रहे हैं ?

मंत्री ने कहा, गुरुजी से ईश्वर की उपस्थिति का प्रमाण पूछने जा रहा हूं। विद्यार्थी ने कहा, इसके लिए गुरुजी को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है। इसका जवाब तो मैं ही दे दूंगा। अगले दिन मंत्री उस विद्यार्थी को लेकर राजसभा में उपस्थित हुआ और बोला, महाराज यह विद्यार्थी आपके प्रश्न का उत्तर देगा। विद्यार्थी ने पीने के लिए एक कटोरा दूध मांगा। दूध मिलने पर वह उसमें उंगली डालकर खड़ा हो गया। थोड़ी-थोड़ी देर में वह उंगली निकालकर कुछ देखता, फिर उसे कटोरे में डालकर खड़ा हो जाता। जब काफी देर हो गई तो राजा नाराज होकर बोला, दूध पीते क्यों नहीं ? उसमं उंगली डालकर क्या देख रहे हो ? विद्यार्थी ने कहा, सुना है, दूध में मक्खन होता है, वही खोज रहा हूं। राजा ने कहा, क्या इतना भी नहीं जानते कि दूध उबालकर उसे बिलोने से मक्खन मिलता है। विद्यार्थी ने मुस्कराकर कहा, हे राजन, इसी तरह संसार में ईश्वर चारों ओर व्याप्त है, लेकिन वह मक्खन की भांति अदृश्य है। उसे तप से प्राप्त किया जाता है। राजा ने संतुष्ट होकर पूछा, अच्छा बताओ कि ईश्वर करता क्या है ?

विद्यार्थी ने प्रश्न किया, गुरु बनकर पूछ रहे हैं या शिष्य बनकर ? राजा ने कहा, शिष्य बनकर। विद्यार्थी बोला, यह कौन सा आचरण है। शिष्य सिंहासन पर है और गुरु जमीन पर। राजा ने झट विद्यार्थी को सिंहासन पर बिठा दिया और स्वयं नीचे खड़ा हो गया। तब विद्यार्थी बोला, ईश्वर राजा को रंक और रंक को राजा बनाता है।

१७७६) मन के भूत- एक बार एक न्यायाधीश की अदालत में एक मामला पेश हुआ। एक आदमी की ओर संकेत करते हुए कहा, इसने मेरा सिर फोड़ दिया है। दूसरे ने पहले की ओर इशारा करके कहा, इसने मेरा सिर फोड़ दिया है। न्यायाधीश ने दोनों की बात सुनी और पूछा, तुम दोनों ने एक-दूसरे के सिर फोड़ डाले, आखिर इसका कारण क्या है ? एक ने कहा, हम दोनों दोस्त थे। मैंने इसे एक दिन बताया कि मैं एक खेत खरीद रहा हूं। इसने कहा, मैं एक भैस खरीद रहा हूं। मैंने इसे समझाया कि तू भैंस मत खरीद। पर यह नहीं माना। बोला, मैं तो खरीदूंगा और जरूर खरीदूंगा। इस पर दूसरे ने कहा, मैंने इससे आग्रह किया कि तू खेत मत खरीद, मैं भैंस खरीदने का तय कर चुका हूं। पर इसने मेरी भैंस

खरीदने को क्यों रोका ? न्यायाधीश ने पहले आदमी से पूछा, तुमने इसे भैंस खरीदने को क्यों रोका ? वह बोला, देखिये, साहब, मैं अपने खेत में अनाज बोता, फसल उगती और तभी इसकी भैंस खेत में घुस आती और फसल को खा जाती। मेरा कितना नुकसान हो जाता। न्यायाधीश ने दूसरे से पूछा, तुमने इसे खेत न खरीदने को क्यों कहा ? उसने जवाब दिया, खेत में फसल उगती तो मेरी भैंस उसे देखकर ललचाती और खाने पहुंच जाती। जानवर जानवर है। साहब, मैं हर घड़ी उसके सिर पर थोड़े खड़ा रहता। न्यायाधीश ने पूछा, तुम्हारा खेत कहां है ? और तुम्हारी भैंस कहां है ? न कहीं खेत था, न कहीं भैंस थी। न्यायाधीश ने हँसकर कहा, भले आदमियों, तुमने एक-दूसरे के सिर फोड़ डाले उन चीजों के लिए, जो थीं ही नहीं। इसमें कहां की बुद्धिमानी है ? थोड़ा रुककर न्यायाधीश ने आगे कहा, दुनिया में बहुत-से झगड़े इसी प्रकार बेबुनियाद होते हैं। हम अपने भीतर मन के भूतों को बिठा लेते हैं ये भूत हमें आपस में लड़ाते हैं। तुम्हारे भीतर भी वे भूत बैठे हैं। जाओ, उन्हें भगाओ और चैन से रहो। दोनों ने अपनी भूल अनुभव की और फिर दोस्त बन गये।

१७७७) दूसरों का दुख-काशी नरेश का पुत्र एक बार गंगा में तैरने गया। जब तैरकर वह बाहर निकला तो उसे ठंड लग रही थी। सेवकों को हुक्म दिया, सामने जो झोपड़ियां हैं उनमें से एक को जला दो, ताकि मैं हाथ सेंक सकूं। बाद में लोग काशी नरेश के पास शिकायत लेकर पहुंचे। काशी नरेश ने सेनापति से कहा, जो सुख-सुविधाओं में पलता है वह दूसरों के दुखों को नहीं समझता। राजकुमार के सारे राजसी वस्त्र उतार दो और कहो कि वह मेहनत-मजदूरी कर झोपड़ी बनाए। राजकुमार को अपनी गलती का अहसास हो गया।

१७७८) सक्षम- इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स द्वितीय स्वयं को बहुत बड़ा कवि समझते थे। एक बार उन्होंने अपनी कुछ कविताएं बर्नार्ड शॉ को दिखाकर, उनकी राय मांगी। शॉ अपनी स्पष्टवादिता के लिए विख्यात थे, साथ ही वे यह भी जानते थे कि राजा की नजरों में बुरे बन जाने के क्या मायने है ? बड़ी देर तक उन कविताओं में दिमाग खपाने के बाद उन्होंने प्रशंसापूर्ण शब्दों में कहा, मैं यही कहूंगा कि आपके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। यदि आप एक बुरी सी कविता लिखना चाहते हैं तो उसमें भी सफल हो जाते हैं।

१७७९) अकेला एक भिक्षुक- पुराने समय की बात है। उज्जैन के राजकुमार शातवाहन की बुरी संगति को छुड़ाने के लिए आश्रम में उनके गुरु शिवदास ने उन्हें बहुत पीटा। शिवदास अपने प्रयास में सफल रहे और शातवाहन ने कुसंगति छोड़ दी। कुछ समय बाद जब शातवाहन राजा बने तब तक गुरु शिवदास की स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। एक दिन वे भिक्षाटन करते हुए राजा के पास तक जा पहुंचे। गुरु शिवदास को याचक के रूप में आया देख कर राजा बोले, आपने मुझे बहुत पीटा है, इसलिए आपकी दशा पर मुझे बिलकुल तरस नहीं आता। इस पर गुरु शिवदास बोले, लेकिन मुझे तो यह देखकर बड़ा आनंद मिला कि तुम्हें ठीक करने से तुम्हारे राज्य में आज सभी लोग सुखी और संपन्न है। अकेला एक मैं ही तो भीख मांगनेवाला हूँ।

१७८०) एक घोड़े की कहानी- एक धर्मगुरु सराय में आकर ठहरा। उसने अपना घोड़ा झाड़ के नीचे बांधा। मुल्ला नसरुद्दीन यह देख रहा था। घोड़ा बड़ा प्यारा और कीमती था। नसरुद्दीन पास जाकर उसे सहलाने लगा। तभी घोड़े का एक खरीददार पास से गुजरा। उसने नसरुद्दीन से पूछा, तुम्हारा घोड़ा है ? घोड़ा इतना प्यारा था कि यह कहना मुश्किल हो गया कि अपना नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा, हां, अपना ही है। खरीददार ने पूछा, बेचोगे ? नसरुद्दीन ने कहा, खरीदने की हिम्मत है ? हजार रुपये का घोड़ा था, नसरुद्दीन ने दो हजार मांगे। उसने सोचा खरीददार मना कर देगा पर वह दो हजार में भी तैयार हो गया। नसरुद्दीन ने घोड़ा बेच दिया। वह पैसे गिनकर रखने ही जा रहा था कि धर्मगुरु आ गया। नसरुद्दीन को भागने का मौका भी नहीं

मिला। उसने घोड़े की रस्सी अपने गले में डाल ली और घास का एक टुकड़ा मुंह में डालकर खड़ा हो गया। यह देखकर धर्मगुरु के हाथ-पैर फूल गए। उसने कहा, मेरा घोड़ा कहां है ? नसरुद्दीन बोला, अब आपसे क्या छिपाना। मैं ही आपका घोड़ा हूं। धर्मगुरु भड़ककर बोला, तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब है ? तुम होश में हो या नहीं? सच-सच बताओ माजरा क्या है ?

नसरुद्दीन ने कहा, आप पहले पूरी कहानी सुन लें। बीस साल पहले मैंने एक स्त्री के साथ व्यभिचार किया था। परमात्मा मेरे इस पाप पर नाराज हो गया। उसने मुझे आपका घोड़ा बना दिया। ऐसा मालूम होता है कि मेरा दंड पूरा हो चुका है और मैं फिर से आदमी बन गया हूं। मेरा नाम नसरुद्दीन है। यह कहानी सुनकर धर्मगुरु घबरा गया। वह तत्काल घुटने पर बैठकर परमात्मा से प्रार्थना करने लगा, क्षमा कर, पाप तो मैंने भी बहुत किए हैं। मगर दया कर। फिर उसने नसरुद्दीन से कहा, अब जो हुआ सो हुआ। तुम घर जाओ। मैं दूसरा घोड़ा खरीद लूंगा।

वह बाजार पहुंचा तो वहां उसने अपने घोड़े को खड़ा पाया। उसकी छाती धड़कने लगी। वह घोड़े के पास गया और उसके कान में बोला, नसरुद्दीन, फिर से, इतनी जल्दी ?

१७८१) सेवक और स्वामी- एक सेठ अपनी परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए मंदिर गए। वह किसी भी कीमत पर देवता को प्रसन्न करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने सोने के थाल में पूजन सामग्री ली। उन्होंने देखा कि फटे-पुराने वस्त्र पहने एक आदमी वहां बैठा कह रहा था, हे भगवान तेरा लाख-लाख शुक्र है। तेरी कृपाओं का अंत नहीं है। मैं तेरे कारण ही चैन की नींद सोता हूं। मुझसे कोई ईर्ष्या नहीं करता। मुझ पर ऐसी ही कृपा बनाए रखना। सेठ पूजा करके लौट आए। लेकिन वह उस व्यक्ति को भूल नहीं सके। उन्हें बार-बार उसका चेहरा याद आ रहा था। उसकी बातें उनके कानों में गूंज रही थीं। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वह तो भगवान को ढेरों बहुमूल्य उपहार रोज चढ़ाते हैं, फिर भी उनसे ईर्ष्या करने वाले बढ़ते जा रहे हैं, वह कभी चैन की नींद नहीं सो पाते, मगर वह फटेहाल व्यक्ति जो भगवान को कुछ भी देने में असमर्थ है इतना सुखी कैसे है। उससे ईर्ष्या करनेवाला भी कोई नहीं और वह चैन की नींद भी सोता है। आखिर भगवान उस दरिद्र पर इतने कृपालु क्यों हैं ?

सेठजी ने पहले तो इसका हल स्वयं खोजने की कोशिश की, पर कोई नतीजा न निकला तो एक विद्वान पंडित के पास पहुंचे। उन्होंने पंडितजी को नमस्कार करके अपनी जिज्ञासा बताई। पंडितजी ने उनकी बातें गौर से सुनीं फिर कहा, सेठ जी यह तो अपनी-अपनी दृष्टि की बात है। आप देवता पर अपने सेवक की तरह काम करने का दबाव डालते हैं। आप जिस तरह मनुष्य को प्रसन्न करते हैं उसी तरह ईश्वर को भी खुश करना चाहते हैं। आप अपने बहुमूल्य उपहारों से भगवान को झुकाना चाहते हैं। जबकि उस गरीब आदमी ने भगवान को अपने हृदय में बसा रखा है और उन्हें अपना स्वामी माना है। वह उनके पास कोई अपेक्षा लेकर नहीं जाता, इसलिए भगवान ने उसे अपना स्नेह दिया। जिस दिन ईश्वर के प्रति आपका यह भाव बदल जाएगा आपके मन का द्वंद्व अपने आप खत्म हो जाएगा।

१७८२) सच्चा दान- पुराने जमाने की बात है। किसी राज्य का राजा खूब दान करता था। उसके महल के दरवाजे पर हर समय भीड़ लगी रहती थी। एक बार दूर से एक संत उस राज्य में पधारे। उन्होंने राजा की दानशीलता के बारे में सुना तो राजमहल पहुंचे। राजा ने दान देने के लिए दो कर्मचारी नियुक्त कर रखे थे। जब संत की बारी आई तो उन्होंने कहा, भाई, मैं आपके हाथ से दान नहीं ले सकता। मुझे राजा के हाथ से ही दान चाहिए, नहीं तो मैं चला जाऊंगा।

राजा का आदेश था कि कोई भी व्यक्ति खाली हाथ वापस न जाए। इसलिए संत को राजा से मिलवाया गया। राजा ने संत को प्रणाम किया और कहा, हे देव, कहिए क्या आज्ञा है मेरे लिए ? संत ने राजा से पूछा, महाराज, क्या आप मुझे कुछ दान दे सकते हैं ? राजा ने हाथ जोड़कर विनम्रता के साथ कहा, आप जो भी कहें। अगर मेरे लिए संभव हुआ तो मैं जरूर दूंगा। इस

पर संत बोले, राजन, मुझे बस इतना धन चाहिए जिससे मैं स्वर्ग जा सकूं। राजा हैरत में पड़ गया। उसने कहा, देव, धन से आप स्वर्ग कैसे जा सकते हैं ? मैं आपकी बात समझ नहीं पा रहा हूं। कृपया स्पष्ट करें। संत ने समझाया, महाराज, मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि केवल दान देने से ही न तो आप सुखी हो पाएंगे और न ही भिक्षा मांगने वालों के जीवन में कोई परिवर्तन हो पाएगा। आप दान देते रहेंगे तो एक दिन राजकोष खाली हो जाएगा, लेकिन भिक्षा मांगने वालों की कतार कम नहीं होगी।

फिर मैं क्या करूं ? राजा ने पूछा। संत ने कहा, आप जो धन दान पर खर्च करते हैं उससे रोजगार के साधन उपलब्ध कराएं। इससे उन लोगों को काम मिलेगा जो आज भिक्षावृत्ति पर पलने के अभ्यस्त हो चुके हैं। आपने जो उन्हें सुविधा दी है उससे वे आलसी हो गए हैं और श्रम से विमुख हो गए हैं। आप उन्हें मेहनत करना सिखाएं। यही सच्चा दान होगा।

१७८३) सेवा का तरीका- पुरानी लोककथा है। गंगा के किनारे हरे-भरे वृक्षों के बीच गुरु अभेन्द्र का विख्यात आश्रम था। दूर-दूर के नगरों से लोग उनके आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने आते थे। एक बार भयंकर अकाल पड़ा। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। अभेन्द्र ने अपने तीन वरिष्ठ शिष्यों को बुलाया और कहा, संकट की घड़ी में हमें अकाल पीड़ितों की सहायता करनी चाहिए। मेरी इच्छा है कि तुम लोग अलग-अलग इलाकों में जाओ और भूखों को भोजन कराओ। उनकी बात सुनकर शिष्य बोले, गुरुदेव, हम इतने सारे लोगों को भोजन किस प्रकार कराएंगे ? न तो हमारे पास अन्न का भंडार है और न ही अनाज खरीदने के लिए धन।

यह सुनकर अभेन्द्र ने शिष्यों को एक-एक थाली देते हुए कहा, यह साधारण थाली नहीं है। तुम जितना भोजन मांगोगे, यह थाली उतना भोजन प्रदान करेगी। तीनों शिष्य थाली लेकर निकल पड़े। दो शिष्यों ने तो अपने लिए एक जगह चुन ली और वहीं बैठ गए। उधर से जो गुजरता उसे वे भरपेट भोजन कराते। लेकिन तीसरा शिष्य गोपाल बैठा नहीं बल्कि घूम-घूमकर लोगों को खाना बांटता रहा। कुछ दिनों के बाद तीनों आश्रम में लौट आए। अभेन्द्र ने उन सब से उनके अनुभव के बारे में पूछा। सबने बताया कि किस तरह उन्होंने लोगों की सेवा की। लेकिन अभेन्द्र ने सिर्फ गोपाल की प्रशंसा की। कई दिनों तक वह गोपाल की भूमिका की सराहना करते रहे। यह बाकी दो शिष्यों को अटपटा लगा। उन्हें अहसास हुआ कि अभेन्द्र पक्षपात कर रहे हैं। आखिर एक दिन उन्होंने अपनी शंका रख ही दी और कहा, गुरुदेव हमने भी तो पीड़ितों की सेवा की। पर गोपाल अधिक प्रशंसा का पात्र क्यों बना ? इस पर अभेन्द्र बोले, तुमने एक निश्चित स्थान पर बैठकर लोगों की सहायता की। तुम्हारे ऐसा करने से वे लोग तुम्हारी मदद से वंचित रह गए जो चलकर तुम्हारे पास नहीं आ सकते थे। जबकि गोपाल ने घूम-घूमकर लोगों को भोजन कराया। उसकी सहायता से कोई भी वंचित नहीं रहा। उसका प्रयास ज्यादा महत्वपूर्ण है।

१७८४) पुरानी नाक- एक गरीब मनुष्य ने देवता से वर प्राप्त किया था। देवता संतुष्ट होकर बोले तुम ये पासा लो। इस पाँसे को जिन किन्ही तीन कामनाओं से तीन बार फेंकोगे वे तीनों पूरी हो जाएँगी। वह आनंदोल्लासित हो घर जाकर अपनी स्त्री के साथ परामर्श करने लगा क्या वर माँगना चाहिए। स्त्री ने कहा धन दौलत माँगो किंतु पति ने कहा देखो हम दोनों की नाक चपटी है उसे देख कर लोग हमारी बड़ी हँसी करते हैं। अत: प्रथम बार पाँसा फेंककर सुंदर नाक की प्रार्थना करनी चाहिए। किंतु स्त्री का मत वैसा नहीं था। अंत में दोनों में खूब तर्क प्रारंभ हुआ। आखिर पति ने क्रोध में आकर यह कहकर पाँसा फेंक दिया- हमें सुंदर नाक मिले, सुंदर नाक मिले, सुंदर नाक मिले। आश्चर्य। जैसे ही उसने पासा फेंका वैसे ही उसके शरीर में तीन नाकें उत्पन्न हो गईं। तब उसने देखा यह तो विपत्ति आ पड़ी। फिर उसने दूसरी बार पासा फेंककर कहा नाक चली जाएँ। इस बार सभी नाकें चली गईं। साथ ही अपनी नाक भी चली गई। अब शेष रहा एक वर, तब उन्होंने सोचा यदि इस बार पासा फेंककर चपटी नाक के बदले में सुंदर नाक प्राप्त करें तो लोग अवश्य ही चपटी नाक के स्थान पर

अच्छी नाक देख कर उसके बारे में पूछताछ करेंगे। फिर तो हमें सभी बातें बतानी पड़ेगी। तब वे हमें मूर्ख समझकर हमारी और भी हँसी उड़ाएँगे। कहेंगे कि ये लोग ऐसे तीन वरों को प्राप्त करके भी अपनी अवस्था की उन्नति नहीं कर सके। यह सोच कर उन्होंने पासा फेंक कर अपनी पुरानी चपटी नाक ही माँग ली। ठीक ही है समझबूझ कर काम न करनेवाले लोग अवसरों को अपने हाथ से यों ही गँवा देते हैं। उनका लाभ नहीं उठा पाते।

१७८५) निर्धन कौन- पुराने जमाने की बात है। एक राजा अपनी सेना के साथ पड़ोसी राज्य पर हमला करने जा रहा था। वह अपने राज्य की सीमा पर स्थित बर्फीली चोटियों से होकर गुजर रहा था कि उसकी नजर एक योगी पर पड़ी, जो ठंड से बचने के लिए अपने दोनों घुटनों के बीच में सिर रखकर चट्टान पर बैठा हुआ था। उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। राजा को उस पर दया आ गई। वह रुक गया। उसने अपनी दुशाला और कोट उतारकर उस योगी को भेंट किया। योगी ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, राजन, परमात्मा ने मुझे सर्दी और गर्मी से बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र दिए हैं। वह मेरी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। कृपया यह किसी निर्धन को दें।

यह सुनकर राजा चकित हो गया। उसने योगी से पूछा कि उसके वस्त्र कहां हैं। योगी ने बताया, ईश्वर ने स्वयं मेरे लिए वस्त्र बुने हैं। मैंने इन्हें जन्म से ही पहना है और मृत्यु तक पहनूंगा। मेरी त्वचा ही मेरा वस्त्र है। यह दुशाला और कोट किसी भिखारी को दे दीजिए। राजा यह सोचकर मुस्कराया कि उस योगी से अधिक निर्धन कौन हो सकता है। उसने योगी से कहा, आप ही बताएं कि मुझे निर्धन व्यक्ति कहां मिलेगा ? योगी ने उससे पूछा कि वह कहां और किस उद्देश्य से जा रहा था। राजा ने उत्तर दिया, मैं अपने शत्रु के राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा हूं ताकि मैं उसके राज्य को भी अपने साम्राज्य में मिला लूं। इस पर योगी मुस्कराया और बोला, यदि आप अपने राज्य से ही संतुष्ट नहीं है और कुछ मील भूमि के लिए अपना तथा इन हजारों सैनिकों का जीवन बलिदान करने को तैयार हैं तो आप नि:संदेह मुझ से भी कहीं अधिक निर्धन हैं। इन वस्त्रों को स्वयं को ही भेंट करें। मुझसे ज्यादा आपको इन वस्त्रों की आवश्यकता है। इस पर राजा बहुत लज्जित हुआ। वह तत्काल ही अपनी सेना के साथ वापस लौट गया। वह समझ गया था कि संतोष ही अमूल्य निधि है।

१७८६) गरीबों के पैसे- उड़िया बाबा एक प्रसिद्ध संत थे। उनकी त्याग-तपस्या अद्‌भुत थी। वह संसार की मोह-माया से ऊपर उठ गये थे। उदारता उनका विशेष गुण था। वह दीन-दुखियों की सहायता करने में बड़े आनंद का अनुभव करते थे। उनके आश्रम में एक कहार रहता था। जैसा गुरु, वैसा शिष्य। एक दिन वह साग-सब्जी खरीदने बाजार गया। थोड़ी देर में वह खाली हाथ लौट आया। बाबा ने पूछा, अरे, सब्जी नहीं लाया ? वह बोला, महाराज, आज दाल से ही काम चला लीजिये। क्यों ? बाबा ने उत्सुकता से पूछा। कहार बोला, मैं बाजार जा रहा था कि रास्ते में एक भूखा, नंगा और गरीब आदमी मिल गया। मेरा दिल नहीं माना। सोचा, आज का हमारा काम तो बिना सब्जी के चल जायगा, लेकिन इस भूखे-नंगे को थोड़ा सहारा मिल जायगा। सेवक के मुंह से यह सुनकर बाबा बड़े खुश हुए। बोले, तूने ठीक किया। आखिर पैसे गरीब को देने के लिए ही तो हैं।

१७८७) ईश्वर की दी हुई शक्ति- एक बार एक आदमी घोड़े पर कहीं जा रहा था। अचानक उसके हाथ का चाबुक बिर गया। उसके साथ और भी कुछ आदमी चल रहे थे। वे चाबुक उठाकर उसे देने के लिए आगे बढ़े कि उस आदमी ने उन्हें रोक दिया। वह स्वयं घोड़े से नीचे उतरा और चाबुक उठाकर फिर घोड़े पर सवार हो गया। एक आदमी ने उसे रोककर कहा, भाई साहब, यह आपने क्या किया? चाबुक उठाकर हम आपको दे देते। उसके लिए आपको घोड़े से उतरने की क्या जरूरत थी ? उस आदमी ने गंभीर होकर कहा, जब मेरे हाथ-पैर चलते हैं तो मैं किसी का अहसान क्यों लूं ? उस आदमी ने कहा; इसमें अहसान की बात है ? यह तो इंसन का फर्ज है कि वह दूसरों की मदद करें। घुड़सवार ने कहा,

आपने तो इसे फर्ज माना, लेकिन मेरा भी तो कोई फर्ज था ? वह क्या ? उस आदमी ने कौतूहल से पूछा। घुड़सवार ने उत्तर दिया, मेरा फर्ज यह था कि मैं भगवान की दी हुई शक्ति का उपयोग करूं। आदमी एक बार दूसरों का सहारा ले लेता है तो फिर दूसरों पर निर्भर करने की आदत पड़ जाने का खतरा रहता है। इतना कहकर वह अपने रास्ते पर बढ़ गया।

१७८८) प्रकृति का चक्र- एक बार प्रशिया राज्य के नागरिक बहुत परेशान हो गए। हुआ यह कि ढेरों पक्षी आते और खेत खलिहान का अनाज खा जाते। बहुत नुकसान होने लगा। परेशान नागरिक अपना दुखड़ा लेकर राजा फ्रेडरिक के पास गए। राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने तत्काल ऐलान कर दिया कि राज्य के सारे पक्षियों को मार दिया जाए। उसने यह भी कहा कि जो कोई उन्हें मारेगा उसे पुरस्कृत किया जाएगा। कुछ तो परेशानी और कुछ इनाम के लालच में लोगों ने पक्षियों को मारना शुरू कर दिया। यह एक राष्ट्रीय अभियान बन गया। धीरे-धीरे राज्य के सारे पक्षी समाप्त हो गए। लोगों ने चैन की सांस ली। राज्य में उत्सव मनाया गया। राजा ने कहा, चलो यह समस्या सदा के लिए समाप्त हो गई। अब अनाज का नुकसान नहीं होगा। लेकिन अगले ही वर्ष जब लोगों ने खेतों में अनाज बोया तो एक दाना भी न उगा। इसका कारण यह था कि मिट्टी में जो कीड़े थे उन्होंने बीज को ही खा लिया। पहले ऐसे कीड़ों को पक्षी खा जाते थे और फसल की रक्षा करते थे। लेकिन इस बार राज्य में कोई पक्षी ही नहीं बचा था, जो इन कीड़ों से फसल को बचाता। फसल पैदा न होने से राज्य में त्राहि-त्राहि मच गई। पहले तो लोगों को समझ में ही नहीं आया कि आखिर ऐसा हुआ क्यों, लेकिन जब उन्हें वस्तुस्थिति का पता चला तो उन्होंने अपना सिर पकड़ लिया। वे अपनी नादानी पर पछताने लगे। एक बार फिर सब राजा के पास पहुंचे। सर्वसम्मति से तय हुआ कि दूसरे राज्य से पक्षी मंगवाए जाएं। बड़ी संख्या में पक्षियों के आने के बाद स्थिति संभली। इस घटना से लोगों ने समझा कि सभी जीव इस सृष्टि में एक दूसरे पर निर्भर है। किसी भी चीज को कम करना एक चक्र को तोड़ना होगा। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वह बेकार नहीं है और कही न कही एक चक्र से जुड़ा है। इसे नष्ट करने की कोशिश हमारे लिए खतरनाक हो सकती है।

१७८९) चापलूस सहायक- पुराने जमाने की बात है। एक राजा अपने चापलूस दरबारियों से परेशान रहता था। योग्य और ईमानदार सहायकों की तलाश के लिए उसने एक योजना बनाई। उसने सभी दरबारियों को बुलाकर कहा, मैं चाहता हूं कि आप लोग मेरे लिए एक पौधा लगाएं। जिसका पौधा सबसे सुन्दर और पुष्ट होगा उसे मुहमांगा इनाम दूंगा। आप सबको बीज और गमले दिए जाएंगे। बस आपको मात्र इनकी देखभाल करनी है और खाद-पानी देना है। एक महीने बाद इनका निरीक्षण किया जाएगा।

दरबारी प्रसन्न हो गए। उन्हें लगा कि यह तो बड़ा आसान काम है। मेहनत तो करनी नहीं है, बस खाद-पानी ही तो डालना है। अगर अच्छा पौधा निकल आया तो इनाम पक्का। सबको राज्य की ओर से बीज और गमले दिए गए। सब खुशी-खुशी उन्हें लेकर चले गए। वे जब भी मिलते पौधे की बढ़ोतरी के बारे में बात करते। हर कोई इस बात को लेकर चिंतित था कि कहीं दूसरे का पौधा उसके पौधे से बेहतर न हो जाए। सब बढ़-चढ़कर अपने पौधे की प्रशंसा करते और यह दावा करते कि इनाम उन्हें ही मिलेगा। पूरे राज्य में यह चर्चा का विषय बन गया। आखिरकार वह दिन भी आ गया जब सब लोग अपना-अपना गमला लेकर दरबार में पहुंचे। सबके गमले सुंदर पौधों से सजे हुए थे। पर उन्में से एक गमला खाली था।

राजा ने सभी के पौधे देखे और उनकी प्रशंसा भी की, लेकिन पुरस्कार खाली गमले वाले को दिया गया। सभी हैरान रह गए। राजा ने मुस्कराते हुए कहा, मैंने तुम सब को जो बीज दिए थे वे उबले हुए थे और उग ही नहीं सकते थे। तुम सब में यही एक ईमानदार है, जिसकी मुझे तलाश थी। तुम सबने मुझे खुश करने के चक्कर में बीज बदल दिए। पर मैं इससे प्रसन्न नहीं, बल्कि दुखी हूं। वह राज्य कभी तरक्की नहीं कर सकता जिसके दरबारी किसी भी तरीके से बस राजा को

खुश करना चाहते हैं। उन्हें तो प्रजा की खुशहाली के बारे में सोचना चाहिए।

१७९०) स्वयं पर विश्वास- दारापुर के राजा की अकाल मृत्यु के बाद उसके पुत्र को राजगद्दी मिली। युवा राजा बेहद परेशान था। वह समझ नहीं पा रहा था कि किसका विश्वास करे, किसका नहीं। उसे राजकाज चलाने में काफी परेशानी हो रही थी। एक बार वह अपने महल की ऊंची अटारी पर खड़ा था कि अचानक उसकी नजर महल के मार्ग पर पड़ी। उसने देखा कि लोगों का एक झुंड एक ही दिशा की ओर चला जा रहा है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि एक संत नगर के बाहर आध्यात्मिक प्रवचन देने वाले हैं। सब उन्हीं का उपदेश सुनने जा रहे हैं। राजा के भीतर उत्सुकता जगी। वह भी वेश बदलकर सभा में शामिल हो गया। महात्मा जी की बातों को राजा ने ध्यानपूर्वक सुना और असीम आनंद का अनुभव किया। सभा समाप्त हुई और सभी अपने-अपने घरों को चले गए, लेकिन राजा अपने स्थान पर बैठा रहा। संत अपनी कुटिया में जाने के लिए आसन से ज्यों ही उठे कि उनका दुशाला कुर्सी की कील में फंसकर फट गया। महात्मा अंदर गए और हाथ में सूई-धागा लेकर बाहर आए और दुशाले की सिलाई के लिए सूई में धागा डालने का प्रयत्न करने लगे। यह देखकर राजा ने पास जाकर विनम्र भाव से कहा, महाराज, आपकी यह दुशाला पुरानी हो चुकी है। यह मुझे दे दीजिए और आप मेरी नई दुशाला ले लीजिए। संत ने उत्तर दिया, श्रीमान, मुझे आपकी नई दुशाला नहीं चाहिए, यदि आप मेरी सहायता करना ही चाहे हैं तो सूई में धागा डाल दें। राजा ने सूई में धागा पिरोकर उन्हें दे दिया। संत ने अपनी दुशाला में टांके लगाने के बाद कहा मनुष्य को किसीपर निर्भर नहीं रहना चाहिए मैं किसी भी कार्य कै लिये दूसरों पर आश्रित नहीं रहता हूं। वही व्यक्ति जीवन में सफल हो सकता है जो सबसे ज्यादा अपने ऊपर विश्वास करता हो। संत के ये शब्द सुनकर राजा के मन के सारे संशय दूर हो गए। उस दिन के बाद उसने एक नए आत्मविश्वास के ासथ राजकाज संभालना शुरू कर दिया।

१७९१) यहूदी धर्मगुरु वूल्फ शांतिप्रियता तथा न्यायप्रियता के लिए विख्यात थे। एक बार उनके घर से चांदी का बर्तन चोरी हो गया। वूल्फ की पत्नी को नौकरानी पर शक था पर नौकरानी अपने को निर्दोष बता रही थी। वूल्फ की पत्नी धर्म न्यायालय से न्याय पाने के लिए घर से निकली। वूल्फ भी धर्माचार्य का चोगा पहनने लगे। उनकी पत्नी ने कहा, आपको मेरे साथ चलने की जरूरत नहीं है। न्यायालय में कैसे बोला जाता है, यह मुझे मालूम है।

तुम्हें मालूम है न पर वह अनपढ़, भोलीभाली नौकरानी कुछ नहीं जानती। मैं उसी को न्याय दिलाने जा रहा हूं। वूल्फ ने जवाब दिया।

१७९२) राजा वज्रबाहु अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने बड़ी संख्या में कुएं और तालाब खुदवाए, धर्मशाला और औषधालय आदि बनवाए। फिर भी उनका मन हर समय अशांत रहता था। एक बार उनके राज्य में एक संत पधारे उनके आगमन की सूचना मिलते ही वज्रबाहु उनसे मिलने पहुंच गए। उन्होंने संत को प्रणाम कर कहा, मैं हर समय प्रजा की भलाई में लगा रहता हूं फिर भी मेरे मन में अशांति रहती है। क्यों ?

संत बोले, राजन, मैं भिक्षा लेने शहर गया तो पाया कि हर जगह तुम्हारे नाम का डंका बज रहा है। शिलापट्टों पर तुम्हारी कीर्ति अंकित है। तुमने सात्विक कार्य तो किए किंतु उनसे बंधे रह गए। दानवीर वज्रबाहु नाम की आकांक्षा के बंधन ने तुम्हें शांति की अनुभूति नहीं होने दी। राजा ने सारे नामपट्ट तुडवा डाले, तब जाकर उसे शांति मिली।

१७९३) सर्वव्यापी ईश्वर- एक किसान था। उसके एक लड़का था। वह पाठशाला में पढ़ने जाता था। एक दिन उसके गुरु ने पढ़ाया- भगवान सर्वव्यापी हे। नीचे-ऊपर, इधर-उधर, धरती-आकाश, जल-स्थल, घर-बाहर सब जगह मौजूद रहता है और हम जो कुछ करते हैं, देखता रहता है। पढ़ाई करके लड़का घर आया तो बाप ने कहा, तू मेरे साथ

चल। हमें एक काम करना है। दोनों घर चल दिये। खेत पर पहुंचे तो बाप ने कहा, देख, हमें शाम के लिए घास चाहिए। यहां कोई देखनेवाला तो है नहीं। मैं पड़ोसी के खेत से थोड़ी घास काटे लेता हूं तू यहां खड़े रहकर देखते रहना कि कोई आता हो नहीं है। लड़का खड़ा हो गया और बाप हंसिया लेकर घास काटने लगा। कुछ देर बाद उसने लड़के से पूछा, क्यों, कोई देख तो नहीं रहा है ? लड़के ने कहा, पिताजी, हमारे गुरुजी ने आज पढ़ाया था कि ईश्वर सब जगह रहता है और वह हम जो कुछ करते हैं, उसे देखता रहता है। यहां देखनेवाला आदमी तो कोई नहीं है, लेकिन ईश्वर तो देख ही रहा है। इतना सुनते ही बाप को काटो तो खून नहीं। उसने कटी हुई घास वहीं छोड़ दी और लड़के से कहा, बेटे, चलो, घर चलें।

१७९४) आंतरिक मूल्य- एक बार एक तटबन्ध के अधिकार को लेकर दो राज्यों में युद्ध की स्थिति आ गई। दोनों की सेनाएं निकल पड़ीं। तभी बुद्ध वहां पहुंचे। उन्होंने दोनों राजाओं से झगड़े का कारण पूछा। दोनों ने अपना-अपना पक्ष रखा। बुद्ध बोले, मुझे लगता है कि इस तटबन्ध की तुम्हारे कुछ लोगों के लिए ही उपयोगिता है। इसके अतिरिक्त इसका क्या कोई आंतरिक मूल्य भी है ?

इसका आंतरिक मूल्य कुछ भी नहीं है। दोनों राजाओं ने उत्तर दिया। बुद्ध ने कहा, अब जब तुम युद्ध करोगे तो यह निश्चित नहीं कि उसमें कितनी जानें जाएंगी। तुम स्वयं भी अपना जीवन खो सकते हो। राजाओं ने इस पर सहमति जताई। बुद्ध ने पूछा, क्या लोगों का रक्त मिट्टी के टीले से कम आंतरिक मूल्य रखता है ? राजाओं ने कहा, नहीं ऐसा नहीं है। मनुष्य का जीवन तो अमूल्य है। फिर बुद्ध बोले, तो क्या तुम उस अमूल्य को उस वस्तु के लिए दांव पर लगाना चाहते हो जिसका कोई आंतरिक मूल्य नहीं। राजाओं का क्रोध शांत हो गया और उन्होंने समझौता कर लिया।

१७९५) गहन अभ्यास- सर्कस में एक युगल एक खेल दिखाया करते थे। पति अपनी पत्नी को तख्त के आगे खड़े कर तीर चलाता था। तीर ऐसे चलाता कि वह पत्नी की शरीर को छूते-छूते तख्ते पर जाकर चुभ जाता। वर्षों से यह खेल दिखाते-दिखाते उसे गहन अभ्यास हो गया था कि तीर उसके शरीर को छू भी नहीं पाता था। एक बार पति का पत्नी से इतना झगड़ा हुआ कि उसने खेल दिखाने से पूर्व सोचा कि आज इस झगड़े का अंत मैं पत्नी के सीने में तीर मारकर कर दूंगा। मंच पर खड़े होकर उसने दृढ़ निश्चय किया और पत्नी के सीने पर निशाना करके एक के बाद अनेक तीर छोड़े, किंतु आश्चर्य। कोई भी तीर पत्नी को छू भी न पाया। वर्षों का गहन अभ्यास उसके संस्कार में समा गया था। वह चाहकर भी निशाने से चूक गया। इस प्रकार किसी भी अच्छी चीज का गहन अभ्यास हमें बुराई करने से अंतत: रोक ही देता है।

१७९६) बँटवारे का समय- एक गाँव में दो भाई रहते थे। बड़ा भाई हाट-बाजार, कोर्ट-कचहरी का काम करता था। छोटा भाई उतने ही मनोयोग से खेतीबाड़ी के काम में जुटा रहता। दोनों के एक-एक बेटा था। प्रतिदिन शाम को बाजार से लौटकर बडा भाई बच्चों के लिए कुछ खाने-पीने की चीज ले आता। दोनों बच्चों को बराबर बाट कर देता। दोनों भाई के बीच काम का बँटवारा और प्रेम देखकर गाँव वालों को बड़ा आश्चर्य होता था। वे लोग छोटे भाई के मन में बँटवारे का बीज डालने की कोशिश करते थे- तुम दिन भर कुदाल और हल चलाते हो। तुम्हारा बड़ा भाई कुछ नहीं करता। तुम बाँट क्यों नहीं लेते ? वह किसी की भी नहीं सुनता। कहता- अभी बँटवारे का समय नहीं आया।

एक दिन बड़ा भाई बाजार से आया। सदा की भाँति दोनों बच्चे दौड़कर उसके पास आ गये। उसके दाहिने हाथ में बड़ा लड्डू था, बाये में छोटा। दाहिने हाथ की तरफ छोटे भाई का लड़का और बायें हाथ की तरफ अपना लड़का आ गया। बड़े भाई ने बच्चों को देखा और दोनों हाथ के लड्डुओं में फेरबदल कर दिया। छोटा भाई पास ही बैठा देख रहा था। उसने कहा- भैया, अब बँटवारे का समय आ गया। कल ही हम लोग जमीन बाँट लेंगे। और दूसरे दिन बँटवारा हो गया।

१७९७) न्याय- संन्यासी तथा वेश्या साथ-साथ मरे। दोनों रहते भी आमने-सामने थे। देवदूत संन्यासी को नरक की ओर तथा वेश्या को स्वर्ग की ओर ले चले। संन्यासी ने कहा- रुको। तुमसे भूल हो रही है। स्वर्ग में मुझे जाना चाहिए और नरक में वेश्या को।

देवदूतों ने कहा- हम कोई भूल नहीं कर रहे हैं। न्याय यही है। संन्यासी ने कारण जानने की जिद की तो देवदूतों ने बताया- तुम रहते तो मंदिर में थे, पर सोचते वेश्या तथा उसकी मौजमस्ती के बारे में थे, जबकि वेश रहती मौजमस्ती में थी, पर चाहती सदा मंदिर तथा वहाँ की सुख-शांति को थी।

१७९८) धर्म का द्वीप- समुद्र में एक विशाल जहाज चल रहा था। वर्षा का मौसम था। अचानक भीषण तूफान शुरू हो गया। तूफानी लहरों से जहाज डगमगाने लगा।

एक कोने में बैठे हुए कुछ लोग तत्त्व चर्चा कर रहे थे। किन्तु उस समय उनका भी ध्यान विचलित हो गया। जीवन और मृत्यु के संघर्ष में सबके चित्त की स्थिति अस्त-व्यस्त हो गयी, किन्तु एक ज्ञानी आँख बन्द किये समाधि में लीन था। उसके चेहरे पर तनिक भी घबराहट नहीं थी।

कुछ देर के पश्चात् तूफान शान्त हो गया। सभी लोग शान्ति से बैठे हुए उस ज्ञानी मनुष्य से पूछने लगे, क्या तुम्हें तूफान का भय नहीं लगा ? उसने कहा, पहले मेरे मन में बहुत तूफान उठा करते थे। किन्तु अब जब भी तूफान आता है, मैं भीतर के विशाल द्वीप में प्रविष्ट हो जाता हूँ, जहाँ बड़ी से बड़ी लहर भी मेरा स्पर्श नहीं कर सकती। द्वीप को मैं धर्म के नाम से संबोधित करता हूँ।

१७९९) कर्म से भाग्य बदलता है- रामगंगा नदी के तट पर स्थित शिव मन्दिर में एक पंडित जी और एक चोर प्रतिदिन आते थे। पंडित जी शिवलिंग पर दूध, फूल चढ़ाकर पाठ-पूजा करते थे, जबकि चोर शिवलिंग पर डण्डे मारते हुए अपने भाग्य को कोसता था। पंडितजी चोर के इस कार्य पर शिव से उसे माफ करने की प्रार्थना करते।

एक दिन पंडित जी और चोर मंदिर से साथ-साथ बाहर आये, तभी चोर को द्वार पर सोने की अशर्फियों से भरी थैली मिली और पंडित जी के पैर में लोहे की कील ने गहरा घाव कर दिया। अशर्फियाँ मिलने से चोर प्रसन्न था और पैर में घाव होने से पंडित जी इसे अपनी पूजा का फल मानकर रोने लगे, तभी भगवान शिव प्रकट हुए और बोले, पंडित, आज के दिन आपके भाग्य में फाँसी लगना लिखा था, लेकिन आपने मेरी आराधना करके अपने कर्म से फाँसी को कील के घाव में बदल दिया और इस चोर को आज के दिन राजतिलक होना था, लेकिन इसने जो कर्म किये, उसका यह परिणाम है कि इसे केवल स्वर्ण मुद्रा प्राप्त होने पर प्रसन्नता हो रही है। भाग्य का बनना- बिगड़ना कर्म पर निर्भर है और कर्म से भाग्य बदला जा सकता है।

१८००) चालाक दादी माँ- यह घटना रामपुर गाँव की है। उस गाँव में कलुआ, उसकी तीन बेटियाँ, पत्नी तथा उसकी अन्धी, चालाक माँ रहती थी। वह प्रतिदिन मन्दिर जाती और पूजा-पाठ करती थी।

एक दिन भगवान् ने उसे दर्शन दिया और कहा, माँग, मैं तुझे एक वरदान देता हूँ, तब कलुआ की माँ ने मन में विचार कर सोचा- मैं गरीब हूँ, मेरा कोई पोता भी नहीं है और मैं अन्धी भी हूँ तो क्या माँगू। काफी देर देर विचार करने के बाद उसने भगवान से कहा, भगवान्, मुझे वे आँखें दो, जिनसे मैं अपने पोते को देखकर, उस पर आनेवाला सारा धन लूट सकूँ। भगवान ने मुस्कराकर कलुआ की माँ से कहा, तुम बहुत चालाक हो। मैंने तुम्हें एक वरदान दिया और तुमने उस एक वरदान में तीन वरदान माँग लिये। भगवान तथास्तु कहकर चले गये। कलुआ की मां खुशी-खुशी अपने घर लौट आयी।

१८०१) असली ज्ञान- एक युवा संन्यासी एक आश्रम में ठहरा हुआ था। वह एक बूढ़े संन्यासी के निकट सान्निध्य को आया था। लेकिन दो-चार दिन में ही उसे लगा कि वह बूढ़ा अज्ञानी है। सोचा, छोड़ दूँ इस आश्रम को, कहीं और खोजूँ, किसी और गुरु को। लेकिन जिस दिन वह आश्रम छोड़ने को था उसी दिन एक और संन्यासी का उस आश्रम में आगमन हुआ। रात को आश्रम में अन्त:वासी एकत्र हुए। नये संन्यसी ने इतनी ज्ञान की बातें कीं कि छोड़ने वाले युवा संन्यास को लगा कि गुरु हो तो ऐसा हो।

जब चर्चा समाप्त हुई तो उस आये हुए संन्यासी ने बूढ़े गुरु से पूछा- आपको मेरी बातें कैसी लगीं ? बूढ़े गुरु ने कहा- तुम्हारी बातें तो तुम करते थे लेकिन वे तुम्हारी नहीं थीं। मैं तो बहुत ध्यान से सुनता था कि जो तुमने इकट्ठा कर लिया था उसी को बाहर निकालते रहे। उसमें तो वमन की दुर्गन्ध ही आती थी। तुम्हारे भीतर से किताबें बोलती थीं। शास्त्र बोलते थे, लेकिन तुम जरा भी नहीं बोले।

युवा संन्यासी, जो आश्रम छोड़कर जाना चाहता था, रुक गया। उसे पता चला कि जानने-जानने में बहुत फर्क है। जानना वह है कि जिसका जन्म भीतर से होता है। बाहर से जो इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा बन्धन हो जाता है, उससे हमारी जिन्दगी में कोई परिवर्तन होनेवाला नहीं। वह हमें मुक्त नहीं करता, जो भीतर से आता है वही हमें मुक्त करता है।

१८०२) अमानत- रबी मेहर प्रख्यात् पारसी धर्मगुरु थे। एक दिन जब वे पाठशाला में बच्चों को पढ़ा रहे थे तो अकस्मात उनके दोनों पुत्रों की मृत्यु हो गयी। उनकी पत्नी ने मृत पुत्रों को शयनागर में लिटाकर चादर से ढक दिये। रबी मेहर शाम को घर लौटे। पत्नी ने एक गिलास शर्बत लाकर दिया। शर्बत पीते हुए रबी ने पूछा, प्रिये, आज दोनों बच्चे दिखायी नहीं दे रहे।

धर्मपत्नी ने सन्तोष की मुद्रा में उत्तर दिया, यहीं कहीं होंगे, लीजिए भोजन कर लीजिए। यह कहकर उसने भोजन का थाल सामने रख दिया। रबी मेहर भोजन करने लगे तो पत्नी ने धीरे से पूछा, कल पड़ोसिन के गहने माँगे थे, आज वह माँगने आयी थी। आप कहें तो उन्हें वापस कर दूँ। यह भी कोई पूछने की बात है, रबी ने उत्तर दिया- जिसकी वस्तु है, वह लेना चाहता है तो देनेवाले को दु:ख और संकोच क्यों हो ?

१८०३) शास्त्री जी की सहनशीलता- विश्वनाथ शास्त्री जी बंगाल के प्रसिद्ध पंडित थे। एक बार किसी विषय को लेकर उनका कुछ पंडितों से शास्त्रार्थ हो रहा था। विरुद्ध पक्ष की हार होने लगी, तब उस पक्ष के एक पंडित ने नाक छिनककर शास्त्रीजी के मुँह पर फेंक दिया। शास्त्रीजी ने तुरंत मुँह साफ करके हँसते हुए कहा- यह तो क्षण भर के लिए अप्रासंगिक विषयांतर की बात हो गयी। अब इसे भूलकर चलिये, अपने मूल विषय पर ध्यान दीजिये। शास्त्रीजी की इस सहनशीलता और क्षमा को देखकर विरुद्ध पक्षवालों ने लज्जित होकर अपनी हार स्वीकार कर ली।

१८०४) राजधर्म- चोड़ देश में गोवर्धन नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा न्यायप्रिय था। उसने अपने दरबार में सभा-मंडप के सामने लोहे के स्तम्भ पर एक घंटा बँधवा दिया था, जिसका नाम न्याय घंटा था। न्याय चाहनेवाला उस घंटे को बजा दिया करता। राजा घंटे की आवाज सुनकर समझ जाता। वह सब हाल पूछकर ठीक न्याय भी करता।

एक बार उसके इकलौते पुत्र ने जान-बूझकर एक बछड़े को रथ के पहिए से कुचल दिया। जब गाय ने अपना बछड़ा मरा हुआ देखा तो वह डकराती हुई राज दरबार में चली गयी। वहाँ पर पहुँचकर उसने सींग अड़ाकर न्याय-घंटा जोर से बजाया। राजा को सारी बात का पता चल गया।

राजा ने अपने राज्य में घोषणा कर दी कि वह अपने इकलौते पुत्र को कल प्रात: ही रथ से कुचल देगा। राजा की इस

प्रकार की घोषणा से सभी प्रजाजन दु:खी और भयभीत होने लगे। राजा ने दूसरे दिन प्रात: ही रथ मँगवाया। पुत्र को सड़क पर लिटा दिया। उसके बाद राजा ने रथ से अपने पुत्र को कुचल कर कहा, वाणी, शरीर और कर्म से प्रजाजन की रक्षा करना और यदि राजा का पुत्र भी प्रजाजनों को वाणी तथा कर्म द्वारा पीडित करता है तो उसे भी सहन न करके पुत्र को उचित दंड देना राजधर्म है।

१८०५) सही अर्थ- एक दिन सवेरे तीन यात्री जब एक झरने के पास पहुँचे तो उन्होंने वहाँ पर एक वाक्य लिखा देखा, मुझे आदर्श समझो। तीनों ही एक दूसरे से पूछने लगे कि इस वाक्य का अर्थ क्या है ? पहले यात्री ने अपना विचार व्यक्त किया, यह झरना एक लम्बी घाटी से होकर बहता है। इसमें कई नदी-नाले मिलते हैं फिर अंत में यह एक बड़ी नदी बन जाती है। यह वाक्य हमें शिक्षा देता है कि लगातार काम करते रहने से ही लाभ होता है।

दूसरा यात्री बोला, यह झरना बिना किसी इनाम के लालच के, या बिना किसी पारिश्रमिक की इच्छा के, सबकी प्यास बुझाता है। हमें यह शिक्षा देता है कि हम अपने लोगों के लिए उपयोगी बनें।

तीसरा यात्री सबकी बातें चुपचाप सुनता रहा। जब दूसरों ने उससे निवेदन किया कि वह अपना विचार भी बताये तो वह सहज भाव से, बिना किसी की आलोचना किये, बोला, हम सब झरने का पानी तभी पीते हैं जब वह बहुत साफ होता है। अगर यह गंदा है तो इसे जानकर भी नहीं पीते। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी इज्जत हो तो तुम भी निर्मल व साफ बनो।

१८०६) सब भले के लिए- किसी समय एक राजा अपने एक राजदरबारी के साथ शिकार के लिए जंगल में गया हुआ था। शिकार खेलते समय राजा के हाथ की एक अंगुली कट गयी। साथी दरबारी ने राजा क्रोध में आ गया और साथी दरबारी से तुरन्त राजमहल छोड़कर अपने घर लौट जाने के लिए कह दिया।

राजा अब अकेले ही शिकार खेलते एक घनघोर जंगल में पहुँच गया। वहाँ दूसरे राज्य के कुछ लोग अपनी देवी को खुश करने के लिए नरबलि चढ़ाने की तैयारी कर रहे थे। इसके लिए उन्हें एक नजर की जरूरत थी। राजा को जब उन्होंने देखा तो पकड़ लिया। पर ज्यों ही उसकी बलि चढ़ाने के लिए वे आगे बढ़े, उनकी नजर राजा की कटी हुई अंगुली पर गयी। उन्होंने राजा को छोड़ दिया।

राजा प्रसन्न होकर राजमहल में लौटा और अपने किये पर साथी दरबारी से माफी माँगी। लेकिन राजा यह पूछना न भूला कि मेरी अँगुली कट जाने से तो मैं बच गया परन्तु मैंने जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार किया उससे तुम्हें क्या फायदा हुआ।

राजदरबारी ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, महाराज, आप मुझे लौटने के लिए नहीं कहते तो मैं आपके साथ होता तो वे मेरी ही बलि दे देते। यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे ढेर सारा इनाम दिया।

१८०७) सबसे बड़ा मूर्ख- एक था व्यापारी। अपार धनी परन्तु पहले दर्जे का कंजूस। शम्भु नामक उसका एक सेवक जो वेतन पाता उसमें से आधा गरीबों में बाँट देता। व्यापारी हमेशा कहता- अरे मूर्ख, कुछ जोड़कर भी रख। एक बार व्यापारी ने शम्भु को एक डंडा देते हुए कहा, शम्भु, अगर तुझे अपने से बड़ा कोई मूर्ख मिले तो उसे यह डंडा दे देना। फिर तो व्यापारी अक्सर शम्भु से पूछता, क्यों, मिला कोई अपने से बड़ा मूर्ख ? शम्भु कहता, हुजूर, अभी तलाश कर रहा हूँ।

कुछ वर्षों पश्चात् व्यापारी बहुत बीमार पड़ा। वह बोला, शम्भु, अब मैं बचूँगा नहीं। मुझे यह संसार छोड़कर कुछ ही दिन में चल देना है। निपट भोला शम्भु बोला, सेठजी, मैं भी आपके साथ चलूँगा। अरे मूर्ख, वहाँ कोई साथ नहीं जाता, व्यापारी ने कहा। चलो, कोई बात नहीं, आप अपनी धन-सम्पत्ति व घोड़ागाड़ी तो साथ लेकर ही जायें, शम्भु बोला। अरे गँवार, वहाँ तो खाली हाथ ही जाना पड़ता है, शम्भु पर खीझते हुए व्यापारी बोला।

शम्भु ने डंडा व्यापारी को देते हुए कहा, तब तो इस जीवन भर कमाते रहे। न दान किया, न पुण्य। जब कुछ साथ नहीं जाता है तो जोड़-जोड़कर रखने का लाभ ?

१८०८) पर दु:ख कातरता- भाईजी श्री हनुमान प्रसाद जी के यहाँ रसोई बनाने का काम एक ब्राह्मणी किया करती थी। पू. भाईजी की तबियत अस्वस्थ रहने के कारण उन्हें तोरई की सब्जी लेनी होती थी। एक दिन सब्जी उन्हें परोसी गयी। सब्जी संयोगवश बिल्कुल खारी व कड़वी थी, किन्तु इस बात के प्रकट होने पर ब्राह्मणी को बहुत कुछ सुनना पड़ेगा एवं उसे कष्ट होगा, यह समझकर पू. भाईजीने सारी सब्जी स्वयं ही खाकर समाप्त करने का मन ही मन निर्णय लिया। कड़वी सब्जी को गले से उतारने के लिए ग्रास के साथ पानी भी बार-बार पीना पड़ा। भोजन करने के पश्चात् लोगों के प्रश्न करने पर भाईजी ने उत्तर दिया कि आज तोरई की सब्जी बहुत स्वादिष्ट लगी। किन्तु यह बात भाभीजी के गले नहीं उतरी। थाली में किनारे पर तोरई की सब्जी का थोड़ा-सा झोल बचा रह गया था। पू. भाभीजी ने जैसे ही अंगुली से झोल उठाकर जीभ पर लगाया तो सारा भेद तरंत खुल गया एवं ब्राह्मणी को उल्टा-सीधा कहना प्रारंभ कर दिया।

यह बात जब पू. भाईजी तक पहुँची तो उन्होंने सन्तप्त मन से कहा कि जिस बात को मैं छिपाना चाहता था, उसी बात को प्रकट करके तुमने अच्छा नहीं किया। सब्जी खारी थी, इसमें ब्राह्मणी का कोई दोष नहीं है एवं सब्जी को खा लेने से मुझे किसी प्रकार की तकलीफ नहीं। अब तुमने ब्राह्मणी को उल्टा-सीधा कहकर उसको तो कष्ट पहुँचाया ही, इस व्यवहार से मुझे भी कष्ट पहुँच रहा है।

१८०९) चतुर पत्नी- एक सेठ था। हद हर्जे का लालची और कंजूस। नगर से दूर छोटे से गांव में दुकान थी उसकी। अंधेरा रहते घर से चल देता दुकान पर। अंधेरा पड़े घर लौट आता। खा-पीकर सो जाता। अंधेरा रहते फिर चल पड़ता। वह पत्नी की रसोई के लिए भी तौलकर सामान देता था। छोटी-छोटी बात का हिसाब रखता। वस्तु का बराबर ब्यौरा नहीं मिलता तो पत्नी से झगड़ पड़ता था। पत्नी समझदार होने के साथ ही चतुर थी। एक दिन सेठ बीमार हो गया। दुकान नहीं गया। किसी तरह खांसते-हांफते दिन बीता। शाम को जब पत्नी ने देखा, सेठ कुछ प्रसन्न हैं। मैं कोई बात कहूंगी तो सुनेंगे। वह बोली- आप रसोई के लिए नाप तौलकर सब चीजें देते हैं। घर पर कब कोई मेहमान आ जाएगा तो मैं क्या करूंगी। तब ऐसी सेठाई भी भला किस काम की ? मेहमान को सत्कारपूर्वक दो पकवान भी बनाकर न खिला सकें। गृहिणी की बात तर्क संगत थी। सेठ के लोभी स्वभाव पर प्रहार भी था। पर सेठ ने सेठानी की बात सुनी अनसुनी कर चुप्पी साध ली। एक दिन मुंह अंधेरे सेठ दुकान जाने की तैयारी कर रहा था कि तभी दो निकट के रिश्तेदार आ गए। रिश्तेदारों ने कहा पड़ोस के गांव में रिश्ता देखने जा रहे हैं। ठहरने का आग्रह मत करना। फिर भी सेठ को औपचारिकता वश कहना पड़ा जब आप घर आ ही गए है तो भोजन तो करके ही जाना होगा। उधर गृहिणी ने अपनी बात कहने का उचित अवसर जानकर कहा, अब मेहमानों को क्या खिलाऊ ? रिश्तेदारों का मामला है। बदनामी होगी कि नहीं ? सेठ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। अब क्या जवाब दे। सेठ ने कहा, भागवान आज किसी तरह इज्जत रख दे। अब ऐसा मौका नहीं आने दूंगा। गृहिणी सेठ द्वारा नपी-तुली चीजों में से थोड़ा-थोड़ा बचाकर अलग से जोड़ संजोकर रखती रहती थी। उसी सामग्री में से रिश्तेदारों के लिए पकवान बनाये। उन्हें समय पर भोजन खिला कर विदा कर दिया। मेहमान चले गये तब सेठ ने पत्नी से पूछा, तुमने पकवान कैसे बना दिये। घर में सामग्री तो थी नहीं। तब गृहिणी ने रहस्य खोला कि तुम कंजूसी से नाप-तौलकर जो देते थे, उसमें से चुटकी-चुटकी बचाकर मैं रखती जाती थी। उसी का परिणाम है कि घर आए मेहमानों का समय पर यथोचित स्वागत सत्कार कर सकी। सेठ गृहिणी की चतुराई पर मुग्ध हो गया। बोला तुम सचमुच गृहस्वामिनी हो। आज के बाद नाप तौलकर देना खत्म। इस तरह कंजूस सेठ

को पत्नी की चतुराई ने अपमानित होने से बचा लिया।

१८१०) सर सैयद अहमद खां रेल की प्रथम श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। उसी कूपे में एक अंग्रेज भी यात्रा कर रहा था। थोड़ी देर बाद अंग्रेज ने अपना परिचय देने के साथ उनका परिचय पूछा कि मैं जज हूं और आप ?

मैं जज का बाप हूं। सर सैयद अहमद बोले, इतना सुनना था कि अंग्रेज आग बबूला हो गया, बोला- क्या ?

भाई मैं सच कहता हूं जस्टिस महमूद मेरा बेटा है। सर सैयद ने जवाब दिया।

१८११) मूल्यांकन- महापंडित राहुल सांकृत्यायन की पत्नी की घड़ी खो गई। वह रो पड़ी। अच्छा, घड़ी कितने की थी ?

अस्सी रुपए की। पत्नी ने सुबकते हुए कहा।

राहुल जी ने पत्नी को समझाया- यह तो जानती ही हो कि खरीदने के बाद चीज आधी कीमत की रह जाती है, इसलिए मेरा कहा मानो इस हिसाब से तुम आधा दुख मनाओ और मेरे ख्याल से वह तुम मना चुकी हो। राहुल जी की पत्नी खिलखिलाकर हंस पड़ी।

१८१२) गुजरात नरेश थे जाधव राणा। उनके दरबार में पारसी शरणार्थियों का एक प्रतिनिधि उपस्थित हुआ। राजा ने उनसे आने का कारण पूछा। शरणार्थियों का प्रतिनिधि एक वृद्ध पुजारी था। बोला- हम पूजा की स्वतंत्रता चाहते हैं। अपनी परम्पराओं और रीति रिवाजों के अनुसार अपने बच्चों का पालन करने का अधिकार हमें मिले। हमें आप जमीन का एक टुकड़ा दीजिए, जिस पर खेती कर अपना पेट भर सकें।

राजा ने कहा- आप को सब कुछ मिलेगा लेकिन इसके बदले में आप देश को क्या देंगे ?

यह सुनकर पारसी ने एक खाली पात्र मंगाया। उसे दूध से भरा फिर उसमें शक्कर मिलाकर बोला- देखिए दूध में कहीं शक्कर नजर आ रही है। हम भी देश में आपकी मानवीय करुणारूपी दूध में न दिखाई देनेवाली शक्कर की तरह महत्वहीन बनकर रहेंगे और जन जीवन में मिठाास प्रवाहित करने की चेष्टा करेंगे।

१८१३) वह सबको देखता है- एक भला आदमी अपनी बेरोजगारी से बड़ा दुखी था। वह वीराने में बैठा अपनी गरीबी पर आंसू बहा रहा था। एक चोर को उसके प्रति सहानुभूति हुई। वह उस भले आदमी से बोला, तुम्हारे पास कोई काम नहीं है बस इसलिए ही दु:खी हो ? मेरे दोस्त। अब तुमको दु:खी होने की जरूरत नहीं। मैं चोरी करता हूं। तुम मेरे साथ चलो। तुम्हें पैसे की कमी नहीं पड़ेगी।

भला आदमी चोर का साथी बनने को तैयार हो गया, लेकिन चोरी करना उसे आता नहीं था।

चोर किसी किसान का पका हुआ खेत काटने गया। रात का समय था। चोर ने अपने साथी से कहा कि तुम इस खेत की मेढ़ पर खड़े रहो। खेत का मालिक आ जाये तो तुम मुझे खबर कर देना।

भला आदमी खड़ा-खड़ा इधर-उधर देखता रहा। थोड़ी देर बाद वह जोर से बोला।

ओ मेरे भाई। खेत से बाहर आ जाओ। भगवान देख रहा है।

अपने साथी की बातों को सुनकर चोर बड़े जोर से हंस पड़ा और बोला।

भगवान सबको देखता है, लेकिन हमारी बेरोजगारी नहीं देखता है।

भला आदमी चल पड़ा। चोर ने उसे कई बार बुलाया। भला आदमी थोड़ा रुका और बोला- अरे बेरोजगारी में दु:ख है, लेकिन इसमें तो डर भी है और फिर उसने मुड़कर भी नहीं देखा।

१८१४) अमीर खुसरो- अमीर खुसरो कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। एक जगह कुआं देखकर ठहर गए। उस कुएं पर चार लड़कियां पानी भर रहीं थीं। खुसरो ने पानी मांगा। उनमें से एक लड़की उन्हें पहचानती थी। उसने सबको बता दिया कि अमीर खुसरो हैं। पहेलियां और मुकरियां कहते हैं। तब उनमें से एक ने कहा कि पहले मुकरी पहेली सुनाओ तब हम पानी देंगे। एक ने चरखे का नाम लिया, दूसरी ने खीर का, तीसरी ने ढोल का और चौथी ने कुत्ते का। खुसरो प्यास से व्याकुल थे, तब उन्होंने उन्हें एक कविता सुनाई, जिसमें चारो नाम थे- खीर पकाई जतन से और चरखा दिया चलाय आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय।। ला पानी पिला।।

१८१५) एकदा- एक भिखारी घर-घर घूम रहा था। भिक्षा लेने से पहले वह एक शर्त रख देता- मैं उसी से भिक्षा लूंगा जो मेरे पात्र को भर देगा। अनेक धनी लोगों ने इस विश्वास से भिक्षा दी कि वे उसे भर देंगे।

लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि यह छोटा सा भिक्षा पात्र भरता ही नहीं है। भिखारी आखिर राजा के महल में गया। राजा का खजांची पात्र को भरने लगा, पर वह पात्र भरता ही नहीं था। राजा स्वयं आया। दान दिया। राजा का भंडार खाली होने लगा। राजा यह देखकर स्तब्ध था कि छोटे से इस भिक्षा पात्र में कितना ही डालो, वह खाली का खाली ही रहता है, पूरा भरता ही नहीं।

ऐसा विचित्र भिक्षा पात्र तुम कहां से ले आएं। हैरान होकर राजा ने पूछा भिखारी ने कहा मालिक, मैं तो इसे श्मशान से उठाकर लाया था। पात्र को हाथ में लेकर राजा ने ध्यानसे देखा और पूछा क्या है यह ?

हुजूर। यह मनुष्य की खोपड़ी है, इसमें कितना ही डालो, यह भरती नहीं है।

१८१६) मां जाया भाई- एक स्त्री अपने पुत्र, पति और भाई के साथ पीहर जा रही थी। रास्ते में उसे प्यास लगी तो एक सरोवर पर पानी भरने के लिए उसका पुत्र गया। वह सरोवर एक यक्ष का था। यक्ष ने पुत्र को रोका कि वह जल का स्पर्श न करे, परन्तु वह नहीं माना और जल का स्पर्श करते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

इसके बाद स्त्री का भाई सरोवर पर पहुंचा। तदुपरान्त पति भी सरोवर पर गया तथा उन दोनों की भी वही गति हुई।

अंत में वह स्त्री आई। स्त्री को भी यक्ष ने रोका और स्त्री रुक गई।

इस पर प्रसन्न होकर यक्ष ने कहा, तू इन तीनों में से किसी एक को जीवित करवा ले, मैं एक को ही जीवन दे सकता हूं।

स्त्री ने कहा, मेरे मां जाए भाई को जीवित कर दो।

यक्ष ने कहा, तुमने अपने प्राणों प्यारे पुत्र तथा पति को जीवित करने के लिए क्यों नहीं कहा ?

स्त्री बोली, खसम कर लूंगी, पूत जन लूंगी, लेकिन मां जाया भाई कहां मिलेगा ?

इस पर यक्ष ने तीनों पुरुषों (पुत्र, भाई, पति) को जीवन दान दे दिया।

१८१७) यात्री- एक यात्री गांवों की पैदल यात्रा पर था, एक गांव से गुजरते हुए शाम होने को आई, उसे ख्याल आया कि अगले गांव तक पहुंचने से पहले रात हो सकती है, न जाने कितनी दूर होगा अगला गांव। उसने खेत में काम कर रहे एक बुजुर्ग किसान से पूछा- मुझे अगले गांव तक पहुंचने में कितना वक्त लगेगा ?

उत्तर में किसान बोला- चलो।

हां, चलूंगा, पर वक्त कितना लगेगा ?

चलो। किसान का फिर वही उत्तर।

चलना तो है, पर समय कितना लगेगा वहां पहुंचने में ?

चलो। फिर वही उत्तर सुन कर यात्री ने समझा, किसान या तो बहरा है या पागल है। झुंझलाकर यात्री अपने रास्ते चल दिया,

उसे कुछ दूर तक चलता देखकर किसान ने पीछे से चिल्लाकर कहा- अगले गांव पहुंचने में करीब डेढ़ घंटा लगेगा, तुम्हें।

तुमने पहले क्यों नहीं बतलाया ?

पहले कैसे बतलाता, जब तक कि तुम्हारी चाल की रफ्तार न देख लेता, इसीलिए तो कह रहा था कि चलो।

१८१८) निर्वासन- महापंडित गुणाढ्य राज्य से निर्वाचित होकर उस वन में रहने लगे, जहां पिशाच रहते थे। पिशाचों के बीच रहकर उन्होंने पैशाची भाषा सीखी और पिशाचों की कहानियों का संकलन किया। कागज और स्याही की जगह पिशाचों ने खाल और खून की व्यवस्था कर दी। ग्रंथ तैयार हुआ तो गुणाढ्य ने वह ग्रंथ राजदरबार में भेजा। पर राजा निशाच जाति के काले लोगों के हाथों, चमड़े पर खून से लिखा पैशाची का ग्रंथ कैसे लेता ? छि:।

गुणाढ्य यह तिरस्कार नहीं सह सके। उन्होंने परिश्रमपूर्वक लिखा गया वह ग्रंथ जलाने का निश्चय कर लिया। पिशाचों ने आग्रह किया कि जलाने से पहले वे इसे एक बार सुना दें। गुणाढ्य सुनाने लगे तो पिशाच कबीले के बाल-वृद्ध नर-नारी ही नहीं, पशु-पक्षी भी खाना-पीना भूलकर कथा रस में डूब गये। न बहेलियों को शिकार मिला और न राजा की पाकशाला में वह सामग्री पहुंची। राजा ने पूछा तो ज्ञात हुआ कि वन में कथा समारोह चल रहा है। राजा कौतूहल पूर्वक वन में पहुंचा तो उसने महापंडित गुणाढ्य को प्रणाम किया और इस ग्रंथ को सिर माथे ले आया, जो जलने से बच गया था। उस ग्रंथ का नाम है- वृहत्कथामंजरी।

१८१९) प्रतिष्ठा की रक्षा- आचार्य-प्रफुल्ल चन्द्रराय ने बंगाल केमिकल्स की स्थापना की थी। उस समय लोगों की आम धारणा थी कि विदेशी दवाओं के सामने देशी दवाएं टिक नहीं सकेगी। मगर आचार्य राय थे संकल्पी पुरुष। उन्होंने दृढ़ निश्चय किया था कि इस प्रतिष्ठान में बनी कोई भी दवा किसी विदेशी दवा से किसी भी मामले में कम नहीं होगी।

एक बार कई सौ बोतलों का आसव किसी कारणवश बिगड़ गया। कारखाने के एक कर्मचारी ने कहा- आसव थोड़ा ही बिगड़ा है, किसी को पता भी नहीं चलेगा। बाजार में आसानी से बिक जायेगा, अन्यथा कंपनी को बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा।

आचार्य राय उस पर बिगड़े और दृढ़ता से इसका विरोध किया- जरा से नुकसान से हमारी प्रतिष्ठा पर आंच आए, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता।

बिगड़ी हुई औषधि की सारी बोतलों के आसव फेंकवा देने में आचार्य राय को कतई दु:ख नहीं हुआ।

१८२०) परोपकार की भावना- पुराने जमाने की बात है। एक राजा ने दूसरे राजा के पास एक पत्र और सुरमे की एक छोटी सी डिबिया भेजी। पत्र में लिखा था कि जो सुरमा भिजवा रहा हूं, वह अत्यंत मूल्यवान है। इसे लगाने से अंधापन दूर हो जाता है। राजा सोच में पड़ गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि इसे किस-किस को दे। उसके राज्य में नेत्रहीनों की संख्या अच्छी-खासी थी, पर सुरमे की मात्रा बस इतनी थी जिससे दो आंखों की रोशनी लौट सके। राजा इसे अपने किसी अत्यंत प्रिय व्यक्ति को देना चाहता था। तभी राजा को अचानक अपने एक वृद्ध मंत्री की स्मृति हो आई। वह मंत्री बहुत ही बुद्धिमान था, मगर आंखों की रोशनी चले जाने के कारण उसने राजकीय कामकाज से छुट्टी ले ली थी और घर पर ही रहता था। राजा ने सोचा कि अगर उसकी आंखों की ज्योति वापस आ गई तो उसे उस योग्य मंत्री की सेवाएं फिर से मिलने लगेंगी। राजा ने मंत्री को बुलावा भेजा और उसे सुरमे की डिबिया देते हुए कहा, इस सुरमे को आंखों में डालें। आप पुन: देखने लग जाएंगे। ध्यान रहे यह केवल दो आंखों के लिए है। मंत्री ने एक आंख में सुरमा डाला। उसकी रोशनी आ गई। उस आंख से मंत्री को सब कुछ दिखने लगा। फिर उसने बचा-खुचा सुरमा अपनी जीभ पर डाल लिया।

यह देखकर राजा चकित रह गया। उसने पूछा, यह आपने क्या किया ? अब तो आपकी एक ही आंख में रोशनी आ

पाएगी। लोग आपको काना कहेंगे। मंत्री ने जवाब दिया, राजन, चिंता न करें। मैं काना नहीं रहूंगा। मैं आंख वाला बनकर हजारों नेत्रहीनों का रोशनी दूंगा। मैंने चखकर यह जान लिया है कि सुरमा किस चीज से बना है। मैं अब स्वयं सुरमा बनाकर नेत्रहीनों को बाटूंगा।

राजा ने मंत्री को गले लगा लिया और कहा, यह हमारा सौभाग्य है कि मुझे आप जैसा मंत्री मिला। अगर हर राज्य के मंत्री आप जैसे हो जाएं तो किसी को कोई दुख नहीं होगा।

१८२१) सर आशुतोष एक बार बहुत ही सीधे सादे वेश में रेल की प्रथम श्रेणी के डिब्बे में सफर कर रहे थे। उसी डिब्बे में एक अंग्रेज भी था और उसे अपने साथ ही एक भारतीय का सफर करना बड़ा बुरा लग रहा था। सर आशुतोष से उसने कई बार डिब्बा बदलने के लिए कहा, पर उन्होंने उसे अनसुना कर दिया। भला वे डिब्बा बदलते भी क्यों ? अंग्रेज का गुस्सा बढ़ता ही गया और रात्रि में जब सर आशुतोष सो गए, तब उसने उनका जूता उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। इधर जब सुबह सर आशुतोष की नींद खुली तब उन्हें अपना जूता कहीं नजर नहीं आया। अंग्रेज यात्री बड़े आराम से खर्राटे भर रहा था, पर आशुतोष को समझते देर न लगी, यह शरारत किसकी थी। उन्होंने पास ही टंगा उस अंग्रेज का कोट उठाया और खिड़की से बाहर फेंकर आराम से बैठ गए। थोड़ी देर के बाद ही अंगेज की नींद खुली। अपना कोट कहीं नहीं देखकर उसने पूछा- मेरा कोट कहां है ?

आपका कोट ? सर आशुतोष ने मुस्कराते हुए जवाब दिया- आपका कोट मेरा जूता लेने गया है।

१८२२) नमक- एक गुस्सैल राजा की तीन बेटियां थीं। एक दिन राजा ने बड़ी बेटी से पूछा- तुम मुझे कितना प्यार करती हो ? बेटी ने कहा- दुनिया भर के हीरा जवाहरात को मिलाकर जितना वजन होगा, मैं उससे भी अधिक आपको प्यार करती हूं। राजा खुश हुआ दूसरी बेटी से वही प्रश्न दुहराया। उसने सितारों, सूरज चंदा के वजन से अधिक प्यार का विश्वास जताया। राजा का हृदय गर्व से फूल गया। उसने तीसरी बेटी से वही सवाल किया। छोटी ने चुटकी में नमक लेकर कहा- मैं आपको इससे भी ज्यादा प्यार करती हूं।

राजा भिन्ना उठा। लड़की को दूसरे दिन सुबह जंगल भेजने की आज्ञा दे दी। छोटी नहीं घबराई। उसने उस रात रसोइए से कहा- पिताजी का खाना आज मैं बनाऊंगी।

खाना खाते हुए राजा चिल्लाए- क्या हो गया है आज। इतना बेस्वाद खाना क्यों बनाया ? रसोइए को कल फांसी।

तभी छोटी बेटी सामने आ गई। बोली- पिताजी। व्यंजनों में सारे मसाले डाले हैं। केवल नमक नहीं है। आपको भोजन बेस्वाद लग रहा है क्या। राजा के दिमाग का दरवाजा खुल गया। उसने छोटी बेटी को गले लगा लिया।

१८२३) चोर का स्वागत- बंगाल के सुप्रसिद्ध ब्रह्म समाजी अघोरनाथ के पिता यादव चन्द्र परम विद्वान थे। वह परम त्यागी और दयालु व्यक्ति थे।

एक रात उनके घर चोर घुस आया। चोर ने घर का कोना कोना छान डाला। लेकिन चोरी करने योग्य कोई भी वस्तु प्राप्त न कर सका। निराश चोर की गतिविधि यादव चन्द्र देख रहे थे। वह धीरे से उठे। चिलम में तम्बाकू भरा और हुक्का चोर के सामने जा खड़े हुए। मधुरता से बोले, भाई तुमने बहुत परिश्रम किया, किन्तु कुछ भी नहीं मिला। अब कृपा कर तम्बाकू तो पी जाओ। बेचारा चोर ग्लानि से यादव चन्द्र के पैरों में गिर पड़ा।

१८२४) सम्भ्रान्त- डॉ. अलबर्ल्ट श्वाइत्जर लेमबार्ने (अफ्रीका) में अपना आश्रम बनवा रहे थे वे स्वयं सारे काम की देखभाल कर रहे थे। तभी अचानक तूफान आने से पूर्व की कुछ सामान सुरक्षित स्थान पर पहुंचाना आवश्यक था। पास

ही एक युवक बैठा था। जो पढ़ा-लिखा कारीगर लगता था। समय कम था इसलिये डॉ. श्वाइत्जर ने उसे अपनी सहायता के लिए कहा, पर वह युवक अपनी जगह से टस से मस न हुआ। और दर्प के साथ बोला, मैं पढ़ा-लिखा सम्भ्रान्त व्यक्ति हूं, मजदूर नहीं। मैं बोझा उठाने का काम नहीं कर सकता।

डॉ. शाइत्जर के पास डॉक्टरेट की तीन उपाधियां थीं और उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका था। डॉ. श्वाइत्जर बिना हिचकिचाए अकेले ही सामान सुरक्षित जगह पहुंचाने में जुट गये। सारा काम पूरा कर चुकने के बाद उस युवक के पास आए और बड़े प्यार से बोले, भाई, मैं भी सम्भ्रान्त व्यक्ति बनना चाहता था, लेकिन अफसोस कि मुझे सफलता नहीं मिल सकी।

१८२५) अहिंसा- सांप एक दिन ऋषि के पास जा बैठा। ऋषि ने उसे अहिंसा का उपदेश दिया। सांप ने व्रत ले लिया कि अब वह नहीं काटेगा। ऋषि यात्रा पर चले गए और सांप के व्रत की बात सबको मालूम हो गई। लड़के उसे उठाते और घण्टों तोड़ते-मरोड़ते। एक दिन एक ग्वाले ने उसे अपनी गाय के सींगों में बांध दिया। दिन भर गाय झाड़ियों में सींग मारती रही। बेचारा लहू-लुहान होकर शाम को बड़ी मुश्किल से छूटा। दूसरे दिन लड़के ने उसकी आंखों में सींक देकर उसे अन्धा करनेवाले थे ऋषि उधर आ निकले।

मोटा सांप लट कर रस्सी हो गया था और रूप बदरूप। खिन्न होकर ऋषि ने पूछा- अरे यह क्या हुआ तुझे ?

महाराज। आपने ही तो अहिंसा का उपदेश दिया था।- सांप ने भक्ति-भाव से कातर स्वर में कहा। ऋषि समझ गए, बोले- अरे मूर्ख, मैंने यही तो कहा था कि काटना मत, पर ये कहां कहा कि फुंफकारना भी मत।

सांप समझ गया और आज बहुत दिन बाद उसने फन उठाकर फुंकार मारी। बस, सारे खिलाड़ी नौ-दो ग्यारह, सांप अब व्रती भी है और मौज में भी।

१८२६) टांग की मरम्मत- रायल सोयायटी की एक बैठक के सम पोर्टस्मथ स्थान से आये एक पत्र पर अनेक चिकित्सा-विज्ञानियों ने माथापची की, क्योंकि उस पत्र में लिखा था मि मस्तूल के शिखर से गिरने के कारण एक नाविक की टांग टूट गई थी, परन्तु प्रचुर तारकोल सत लगाकर पट्टियां बांधने पर तीन दिन में अंदर उसकी टांग पहले जैसी हो गई।

चिकित्सा विज्ञानी इस घटना को आश्चर्यजनक मान रहे थे, क्योंकि यह संभव नहीं हो सकता, लेकिन पत्र की सूचना के अनुसार ऐसा हो चुका है इस पर बैठक के वाद-विवाद छिड़ गया।

अचानक एक व्यक्ति बैठक में एक पत्र लेकर आया। इसमें लिखा था कि पूर्व पत्र लेखक अपने पत्र में यह लिखना भूल गया था कि जिस नाविक की टांग प्रचुर तारकोल सत से जोड़ी गई है वह टांग वास्तव में लकड़ी की टांग थी, न कि हाड़-मांस की थी। इस घटना के बाद लेटिन की एक कहावत- कूर सीटू, एन सीटू के आधार पर यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि- किसी घटना के कारणों पर विचार करने से पूर्व इस तथ्य की पुष्टि कर लेनी आवश्यक है कि वास्तव में वह घटना घटित भी हुई है अथवा नहीं ?

१८२७) नाव- एक पहुंचा हुआ फकीर नाव से यात्रा कर रहा था। नांव में बहुत से नौजवान भी थे जो कि बराबर फकीर का मखौल उड़ा रहे थे। फकीर दुखी होकर ईश्वर को याद करने लगा। फकीर की दुआओं का असर यह हुआ कि कुछ देर बाद आकाशवाणर हुई- तू कहे तो नाव उलट दूं।

यह सुनकर फकीर को गहरा धक्का लगा और उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर दुआ की- हे ईश्वर यह तुम क्या कर रहे हो ? यदि उलटना ही है तो इनके मन उलट दो ताकि इन्हें सद्बुद्धि आ जाए।

१८२८) संगति का प्रभाव- एक बार एक राजा वन में शिकार खेलने गया और एक हिरन का पीछा करते हुए सैनिकों से बिछड़ कर निर्जन वन में भटक गया। भटकते भटकते उसे एक बस्ती दिखाई पड़ी तो राजा ने अपना घोड़ा उस ओर दौड़ाया। राजा को देखकर एक दरवाजे पर पिंजरे में बंद तोता चिल्ला उठा-दौड़ो। पकड़ो। घोड़ा, कपड़े, गहने छीन लो। इन्हें मार डालो। यह सुनते ही राजा समझ गया कि यह बस्ती डाकुओं की है और उसने अपना घोड़ा तीव्र गति से दौड़ाया जिससे डाकू पीछे तो भागे परन्तु पकड़ न पाये।

जब राजा का घोड़ा काफी आगे निकल गया तो फिर एक तोते की आवाज उसके कानों से टकराई-आइए राजन। आपका स्वागत है। अरे अतिथि पधारे हैं। आसन लाओ। यह सुनकर राजा ने एकाएक घोड़ा रोका तो देखा कि वह एक मुनि के आश्रम के सामने खड़े हैं।

इतने में मुनि बाहर आए और राजा का स्वागत कर भीतर ले गए। तब राजा ने वन के पहले तोते की बात सुनाते हुए मुनि से पूछा, मुनिवर। एक ही जाति के पक्षियों के स्वभाव में इतना अंतर क्यों होता है।

राजा का प्रश्न सुनकर मुनि के स्थान पर तोते ने जवाब दिया, राजन। हम दोनों एक ही माता-पिता की संतान हैं परन्तु उसे डाकू उठा कर ले गए और मुझे मुनि ले आए। वह डाकुओं की हिंसक बातें सुनता है और मैं मुनि के सद्वचन सुनता हूं। परिणाम आपने स्वयं ही देख लिया है कि किस प्रकार संगति के प्रभाव से प्राणियों में गुण या दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

१८२९) सच्ची लगन- नदी के उस पार एक मंदिर था, जिसमें एक पंडित प्रतिदिन पूजा करने जाता था। उसी मंदिर में एक दुष्ट व्यक्ति भी जाता था, जो भगवान को गालियां देकर आता था। तेज वर्षा के कारण नदी में बाढ़ आ गयी तो पंडित ने नदी पार करने की अपेक्षा तट पर खड़े होकर पूजा कर ली और घर चला गया। किन्तु दुष्ट व्यक्ति बाढ़ग्रस्त नदी को पार करके मन्दिर गया और भगवान को गालियां देकर आया। ऐसा लगातार तीन दिन चलता रहा।

तीसरे दिन भगवान ने प्रकट होकर दुष्ट व्यक्ति से कहा कि मैं तुम्हारी सच्ची लगन से प्रसन्न हूं, तुमने अपने प्राणों की परवाह नहीं करते हुए भी अपना काम जारी रखा, भगवान ने उसके सारे पाप क्षमा कर दिये और खुशहाल रहने का वरदान देकर अदृश्य हो गये। अब पंडित को समझ में आ गया कि जो कुछ भी किया जाये उसे सच्ची श्रद्धा और लगन से करना चाहिए तभी ईश्वर कृपा होती है।

१८३०) सच्चे मोती- स्वीडन की एक राजकुमारी को जब अपनी संपत्ति में ढेर सारे हीरे मोती प्राप्त हुए तो उन्होंने अपनी सहेलियों और शुभचिन्तकों के मना करने पर भी अधिकांश हीरे मोती एक अस्पताल बनाने में लगा दिए।

एक दिन वह अपनी कुछ सहेलियों के साथ अस्पताल में मरीजों को देखने गई। राजकुमारी को अपने बीच पाकर रोगियों की आंखों से कृतज्ञता के आंसू निकलने लगे।

राजकुमारी अपने सहेलियों की ओर देखकर बोली, यह देखो, मेरे सारे मोती इन आंसुओं में मुझे वापस मिल रहे हैं। इनकी कीमत क्या कोई आंक सहता है ?

१८३१) खुदा से सौदेबाजी- अरब में एक मुसलमान नारियल के पेड़ पर चढ़ तो गया परन्तु उतरते समय डरने लगा। वह घबराया और उसने मनौती मांगी- या अल्लाह। अगर मैं सही सलामत नीचे उतर जाऊं तो आपके नाम पर एक ऊंट चढ़ा दूंगा। फिर पेड़ से और कुछ नीचे उतर आने पर उसने कहा- एक मुर्गी चढ़ा दूंगा। जब जमीन पर वह सही सलामत नीचे उतर आया तो उसने कपड़े से जूं निकाली और उसे मारते हुए कहा- या अल्लाह। जीव के बदले जीव, क्या छोटा, क्या बड़ा।

१८३२) मोह का नतीजा- एक नदी के किनारे दो मित्र घूम रहे थे। नदी में बाढ़ आ रही थीं। अचानक एक कम्बल बहता हुआ उधर आया। वह बीच धारा में था। मित्रों में से एक को लालच हो आया। अपने साथी के रोकते-रोकते वह पानी में कूद पड़ा। वह अच्छा तैराक था। जरासी देर में कम्बल के पास पहुंच गया। कम्बल पानी में भीगकर बहुत भारी हो गया था। बाढ़ के कारण नदी का बहाव बहुत तेज था। उसमें तैरना बड़ा कठिन था। फिर उस भारी कम्बल को लेकर तैरना तो और भी मुश्किल था। वह आदमी जोर लगाकर किनारे की ओर आने की कोशिश करता कि बड़ी-बड़ी लहरें उसे उठाकर तीव्र धारा में पटक देतीं। किनारे पर खड़े मित्र ने यह देखा तो वह घबरा गया। उसने चिल्लाकर कहा, अरे, कम्बल को छोड़ दो। लेकिन मित्र का कम्बल के प्रति मोह पैदा हो गया था। मित्र की बात सुनकर उसने कहा, मैं क्या करूं। मैं तो कम्बल को छोड़ रहा हूं, पर यह कम्बल मुझे नहीं छोड़ रहा है। पानी के तेज बहाव में संघर्ष करते-करते वह थक गया, फिर भी उसने कम्बल को नहीं छोड़ा। उस मोह का नतीजा जो होना था, वही हुआ। उसने कम्बल को नहीं छोड़ा और वह कम्बल के साथ लहरों में समा गया। मित्र को डूबते देखकर साथी को बड़ा दु:ख हुआ। उसके मुंह से निकाला, मोह आदमी को डुबोकर ही चैन लेता है।

१८३३) शान्ति का रहस्य- इटली के एक पादरी थे। उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था। बड़े शान्त स्वभाव के थे। लोग उन्हें चिढ़ाते, पर उनके माथे पर शिकन तक न आती। लोग उन्हें बुरा-भला कहते, पर वह हँसते रहते। लोग उनके बारे में तरह-तरह की बातें उड़ाते, पर वह किसी के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से न निकालते। उनकी सहनशीलता को देखकर लोगों को बड़ी हैरानी होती है। वे बार-बार प्रयत्न करते कि कैसे ही उन्हें गुस्सा आ जाय, किन्तु उन्हें हर बार मुंह की खानी पड़ती। अंत में लोग उनके पास आये। बोले, श्रीमानजी, सहन करने की इतनी शक्ति आपको कहां से मिली है ? पादरी ने उनकी ओर देखा। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट खेल रही थी। बोले, जिसे ऊंचाई पर जाना होता है, वह छोटी-छोटी बातों में नहीं फंसता। मैं हमेशा ऊपर की ओर देखता हूं और मुझे लगता है कि कहनेवाले कुछ भी कहें, मैं अपने मन को क्यों बिगाडूं। फिर थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, मैं नीचे देखता हूं तो मुझे लगता है कि आखिर उठने-बैठने और सोने के लिए आदमी को कितनी जमीन चाहिए। पादरी की आंखें चमक आई। आगे बोले, अपने चारों ओर देखता हूं तो मुझे बहुत-से ऐसे लोग दिखाई देते हैं, जो घोर कष्ट का जीवन बिता रहे हैं। यह देखकर मेरे दिल में करूणा पैदा होती है। याद रक्खो, जिसके हृदय में करूणा होती है, वह कभी क्रोध नहीं कर सकता। उसका मन सदा शान्त रहता है। मेरी शान्ति का यही रहस्य है।

१८३४) भैया का मूल्य- ब हुत पहले कहीं पढ़ा था कि एक सज्जन पुरुष से किसी भिखारी ने भीख मांगी। जेंटिलमैन असमंजस में पड़ गया। पहले ही से जेब मेंडाला हुआ हाथ उसने बाहर निकाला और सामने फैले भिखारी के हाथ को अपनी हथेलियों में बड़ी आत्मीयता से भर लिया। भैया, तुम्हे देने के लिए मेरे पास इस वक्त कुछ भी नहीं है। भिखारी ने भी उस सज्जन पुरुष की हथेलियों को उसी आत्मीयता से अपने सीने में लगा लिया और गदगद हो बोला, मुझे भैया सम्बोधित कर जो चीज आपने मुझे दी है इतनी बड़ी और मूल्यवान चीज आज तक मुझे किसी ने भी नहीं दी। भिखारी की आंखें कृतज्ञता से डबडबा आई थीं।

१८३५) बदलती नीति- एक राजा शिकार के लिए निकला लेकिन रास्ते में भटक गया। भटकता हुआ वह एक गांव में पहुंचा। प्यास से उसका बुरा हाल था। पास ही गन्ने का खेत था। उसमें काम करती हुई एक बुढ़िया को उसने पानी लाने का इशारा किया। राजा की दशा देखकर बुढ़िया दौड़ी चली आई। उसने राजा को कुछ देर इंतजार करने को कहा। फिर वह चली गई। उसने एक गन्ने को पेरा और रस का कटोरा लेकर आई। राजा ने एक सांस में कटोरा खाली कर दिया। बुढ़िया ने राजा को गौर से देखा। वह समझ गई कि उसकी प्यास ठीक से बुझी नहीं है। बुढ़िया एक कटोरा रस और ले

आई। इस बार राजा को नई स्फूर्ति मिली। खोई हुई ऊर्जा लौट आई। राजा ने कहा, अम्माजी, यह तो अमृत जैसा है। यह तो मरते को जिलानेवाला तत्व है। तुम्हारा खेत तो इस अमूल्य सुधा से भरा पडा है। राजा तो इसका खूब लगान लेता होगा। इस पर बुढ़िया ने कहा, बेटा, हमारा राजा बड़ा नेक और दयालु हैं। साल में एक बार बहुत मामूली लगान लेता है। बुढ़िया ने फिर कहा, क्यों बेटा। लगता है प्यास अभी पूरी तरह बुझी नहीं। थोड़ा और रस लाऊं ? राजा ने सहमति दे दी। जब बुढ़िया गई तो राजा मन ही मन सोचने लगा कि इस सोना उगलने वाली भूमि से और ज्यादा लगान वसूलना चाहिए। बुढ़िया कई गन्ने लेकर पेरने चली गई। बार-बार पेरने के बावजूद कटोरा नहीं भरा। वह आधा-अधूरा कटोरा लेकर राजा के पास चली आई। राजा को यह देखकर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, अम्माजी, इतने गन्ने पेरने के बावजूद कटोरा खाली क्यों है ? बुढ़िया ने गहरी सांस लेकर कहा, लगता है हमारे राजा की नीति बदल गई है। यह उसी का परिणाम है। राजा सन्न रह गया। वह समझ नहीं पाया कि बुढ़िया आखिर ऐसा क्यों कह रही थी। क्या उसने उसे पहचान लिया है या वह कोई चमत्कारी महिला है जो मन की बात समझ लेती है। वह वहां से चल पड़ा। उसने लगान बढ़ाने का इरादा त्याग दिया।

१८३६) स्वर्ग का द्वार- स्वर्ग के द्वार पर तीन आदमी खड़े थे। वे द्वार खुलने का इंतजार कर रहे थे। थोड़ी देर के बाद द्वाररक्षक ने द्वार खोला, लेकिन उन्हें भीतर नहीं जाने दिया।

उनमें से दो ने कहा- हम भीतर जाना चाहते हैं क्योंकि हमने बहुत दान-पुण्य किए हैं। तीसरे ने कहा- मैं सिर्फ स्वर्ग में झांकना चाहता हूं। मैं इसमें रहने के योग्य नहीं हूं। क्योंकि मैंने कोई दान-पुण्य नहीं किया है।

रक्षक ने पहले आदमी से उसके दान-पुण्य के विषय में पूछा। वह बोला- मैं राजा हूं। मैंने लड़ाइयां जीत कर कई देशों पर अधिकार किया। मैंने प्रजा के लिए सड़कें बनवाई, नहरें खुदवाई, ब्राम्हणों को दान दिए।

रक्षक ने उसे यह कहकर चले जाने को कहा कि तुमने जो लड़ाइयां लड़ीं, उसमें तुम्हारा नहीं, सैनिकों का खून बहा। उन लड़ाइयों में तुम्हारे परिवारजन नहीं, दोनों तरफ की प्रजा मरी। तुमने जो दान किए, सड़कें बनवाई, नहरें खुदवाई, वे जनता पर लगाए गए कर से बने।

दूसरा बोला- मैं नगर सेठ हूं। मेंने अन्न और कपड़े के व्यापार में खूब लाभ कमाए, सारे तीर्थ घूमे और खूब दान किया।

रक्षक ने उसे भी लौट जाने को कहा।

तीसरे ने लज्जित होते हुए कहा- मैं एक मजदूर हूं। मैं जीवन भर पैसे के लिए तरसता रहा। मैंने कोई दान-पुण्य नहीं किया। हां, एक रोज मैं जैसे ही खाने को बैठा कि एक भूखा सामने आकर खड़ा हो गया। मुझे दया आ गई। मैंने अपना भोजन उसे दे दिया, बस।

रक्षक ने कहा- आओ, स्वर्ग तुम्हारे ही जैसे लोगों के लिए है।

१८३७) पूर्वाभ्यास- फ्रेंच की अच्छी जानकारी होने के कारण ही प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस ने मैडम क्यूरी से पेरिस में उनकी प्रयोगशाला में काम करने का अनुरोध किया। मैडम क्यूरी उनके सांख्यिकी संबंधी कार्यों से परिचित थी और उनको अपने यहां लेना चाहती थीं। उन्हें यह नहीं मालूम था कि वे फ्रेंच अच्छी तरह जानते हैं।

अत: उन्होंने बिना उनकी बात सुने उनसे कहा- जाओ, पहले कुछ समय फ्रेंच भाषा का अभ्यास करो।

तुरन्त बोस ने विशुद्ध फ्रेंच में कहा- हां, मादाम फ्रेंच भली भांति आती है।

मैडम क्यूरी आश्चर्य से सत्येन बोस को निहारती रह गई।

१८३८) एक बार काशी नरेश पड़ोसी राज्य से युद्ध में पराजित होकर प्राण बचाते हुए जंगल में पहुंचे। वहां उन्हें भिक्षु निरीटवच्छ कुमार की कुटिया मिली। उन्होंने भिक्षु से अनुरोध किया, मेरे शत्रु मुझे तलाश रहे हैं। जैसे ही मैं उनके हाथ लगूंगा वे मेरी हत्या कर देंगे। मैं कुछ दिन यहां रहना चाहता हूं। भिक्षु ने उन्हें कुटिया में शरण दे दी। भिक्षु के सान्निध्य में रहकर राजा में वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। मृत्यु के भय से मुक्त होकर उन्होंने पड़ोसी राजा के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्णय किया। भिक्षु काशी नरेश को लेकर उनके पड़ोसी राजा के पास पहुंचे। भिक्षु ने कहा, तुम जिसे ढूंढ रहे थे, उसे लेकर मैं उपस्थित हूं। तुम इसकी हत्या कर प्रतिशोध की अग्नि शांत करो। भिक्षु की यह बात सुनते ही राजा के भीतर से शत्रुता की भावना समाप्त हो गई। उसने काशी नरेश को गले लगाया और स्वयं भिक्षु बन गया।

१८३९) राजकुमारों की परीक्षा- एक राजा के कई पुत्र थे। वह उनकी योग्यता की परख कर उनमें से एक को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। राजा ने उनकी परीक्षा लेने की योजना बनाई। उसने उन्हें बुलाकर कहा, कल सामूहिक भोज है। तुम सब साथ भोजन करना। दूसरे दिन भव्य भोज का आयोजन किया गया। जैसे ही राजकुमारों ने भोजन शुरू किया, कुत्तों का एक झुण्ड वहां आ पहुंचा। उन्हें भोजन पर झपटते देख राजकुमारों में खलबली मच गई। सब इधर-उधर दौड़ पड़े मगर एक राजकुमार बैठा रहा। उसने कुत्तों को अपनी ओर आता देख उनकी ओर थोड़ा भोजन उछाल दिया। कुत्ते खाने लगे। राजकुमार भी निश्चिंततापूर्वक खाता रहा। अंत में कुत्ते उसके सामने पूंछ हिलाने लगे। राजा देख रहा था। उसे राजकुमार ने बताया, पिताजी, मैंने अपना कुछ खाना कुत्तों को देकर उन्हें अपना मित्र बना लिया। उन्होंने भी भरपेट खाया और मैंने भी डटकर भोजन किया। राजा प्रसन्न होकर बोला, तुम में विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की क्षमता है। तुम मेरे योग्य उत्तराधिकारी साबित होंगे।

१८४०) एक राजा ने अद्‌भुत स्वप्न देखा। उसने देखा कि उसके दरबार में एक भिखारी आया, जिसके हाथ में एक पात्र था। राजा ने दया दिखाते हुए दरबारियों को आदेश दिया कि उसे कीमती रत्नों से भरा जाए। आदेश पाते ही दरबारियों ने उसमें रत्न डाले लेकिन पात्र आधा ही भरा। दरबारी उसे भरने के लिए और हीरे-जवाहरात ले आए। लेकिन फिर भी पात्र पूरा नहीं भरा। दरबारी चिंतित हो उठे। उन्हें लगा कि कहीं इस कारण पूरा खजाना ही खाली न हो जाए। आखिरकार राजा को पूछना पड़ा कि यह पात्र किस चीज का बना है ? भिखारी ने कहा, यह मनुष्य के हृदय का बना हुआ है। राजा भिखारी का आशय समझ गया। वह बताना चाहता था कि हमारे हृदय की आकांक्षाएं अनंत हैं, इसलिए संतोष आवश्यक है।

१८४१) नगर सेठ की ओर से मंदिर में ठाकुर जी को भोग लगाया जा रहा था। मंदिर के बाहर भारी भीड़ लगी हुई थी। उस समय उस भीड़ में एक बूढ़ा भी था। वह बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा था कि कब उसकी बारी आएगी, कब उसे प्रसाद मिलेगा जिससे उसकी भूख शांत हो सके। मंदिर में आने वाले भक्त-श्रद्धालु और पंडित सब आते और निकल जाते, उसे कोई देखता भी न था। अंत में वह नगर सेठ भी चला गया। रात में सेठ ने एक स्वप्न देखा। भगवान उससे कह रहे थे, वाह रे सेठ, तूने कैसा और किसे भोग लगाया ? मैं तो भूखा ही रह गया। सेठ नींद से जागकर ग्लानि से भर गया।

१८४२) शिखर पर नाम- चक्रवर्ती सम्राट भरत की धारणा थी कि वह समस्त भूमंडल के प्रथम चक्रवर्ती हैं, जो वृषभांचल पर्वत पर पहुंच सके हैं। वह उस पर्वत के शिखर पर अपना नाम अंकित करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि यहां उनका ही पहला नाम होगा। शिखर पर पहुंच कर भरत के पैर ठिठक गए। उन्हेंने ऊपर से नीचे तक पर्वत शिखर को देखा। जहां तक वह जा सकते थे, शिखर पर इधर-उधर गए। शिखर पर इतने नाम थे कि अब किसी नए नाम के लिए जगह ही नहीं बची थी। लिखे हुए सभी नाम चक्रवर्ती सम्राटों के थे। भरत खिन्न हो गए। उनका अभिमान कितना मिथ्या

था। उन्होंने आखिरकार एक नाममिटवा कर अपना नाम अंकित करवा दिया। लौटते समय राजपुरोहित ने कहा, राजन, नाम को अमर रखने का आधार ही आपने नष्ट कर दिया। अब तो आपने नाम मिटाकर नाम लिखने की परंपरा आरंभ कर दी। क्या ठिकाना वहां आपका नाम कौन कब मिटा दे।

१८४३) दीनबंधु की प्रार्थना- रविवार का दिन था। सवेरे-सवेरे एक ईसाई सज्जन दीनबंधु एंड्रयूज से मिलने आए। बातें होने लगीं और इस तरह ९ बज गए। दीनबंधु ने घड़ी देखी और हड़बड़ाकर कहा- माफ कीजिए, मुझे चर्च जाना है। उस सज्जन ने कहा- चर्च तो मुझे भी जाना है। चलिए मैं भी आपके साथ चलता हूं। रास्ते में और बातें होंगी। इस पर दीनबंधु बोले- लेकिन मैं आपके वाले चर्च में नहीं जा रहा। सज्जन ने आश्चर्य से पूछा- तो फिर आप प्रार्थना कहां करेंगे? दीनबंधु मुस्कराए फिर उन्होंने पूछा- क्या आप भी वहां चलेंगे जहां मैं प्रार्थना करता हूं? सज्जन ने सहमति जताई तो दीनबंधु उन्हें अपने साथ ले चले। वह उन्हें शहर की गलियों से दूर गरीबों की एक बस्ती में ले गए। वहां चारों ओर झोपड़ियां थीं। दीनबंधु भी एक झोपड़ी में घुस गए। वह सज्जन भी थोड़े संकोच के साथ उसमें दाखिल हुए। उसमें एक बूढ़ा खाट पर लेटे १०-१२ साल के बच्चे को पंखा झल रहा था। दीनबंधु ने बूढ़े के हाथ से पंखा ले लिया और कहा- बाबा, अब आप जाओ। बूढ़े के जाने के बाद दीनबंधु उस सज्जन से बोले- यह बच्चा अनाथ है। इसे क्षयरोग हो गया है। पड़ोस के ये बुजुर्ग ही इसकी देखभाल करते हैं। लेकिन उन्हें १० से २ बजे के बीज काम पर जाना होता है। इस बीच मे इसके साथ रहता हूं। इसकी सेवा करता हूं। चार घंटे बाद वह बुजुर्ग वापस आ जाते हैं और मैं चला जाता हूं। यही मेरी प्रार्थना है और यह झोपड़ी ही मेरी चर्च है। वह सज्जन अवाक रह गए।

१८४४) सहाबी- एक दस साल का लड़का कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ता था। एक दिन उसकी टीचर ने बच्चों से पूछा कि बड़े होकर तुम क्या बनोगे। एक लड़के ने कहा इंजीनियर, दूसरे ने कहा डॉक्टर, किसी ने कहा टीचर। जब उस लड़के की बारी आई तो वह बोला, मैं बड़ा होकर सहाबी बनूंगा। अध्यापिका ने पूछा कि सहाबी कौन होते है ? बच्चा छोटा था, वह जवाब नहीं दे पाया। लेकिन अध्यापिका के मन में उत्सुकता बनी रही। वह उस लड़के के घर पहुंच गई और उसके माता-पिता से यही प्रश्न दोहराया कि सहाबी कौन होते हैं ? लड़के के पिता ने कहा कि मैं आपको एक उदाहरण देता हूं, आप उससे समझ सकेंगी कि सहाबी कौन और कैसे होते हैं। बात उस समय की है जब इस्लाम समर्थकों और इस्लाम विरोधियों के बीच युद्ध हो रहा था। जब शाम होने पर युद्ध बन्द हुआ तो कुछ लोग घायलों को देखने युद्ध मैदान में पहुंचे और घायलों की देखभाल और सेवा में लग गए।

तभी उन्हें एक घायल के कराहने की आवाज आई। वे जब उस घायल के पास पहुंचे, तो उसने पीने के लिए पानी मांगा। लेकिन तभी एक दूसरे घायल की आवाज सुनाई पड़ी। तब वह घायल बोला, पहले उसे पानी पिला आओ, फिर मुझे पिलाना। वे सब दूसरे घायल के पास पहुंचे तो एक और घायल के चिल्लाने की आवाज आई। वह पानी-पानी चिल्ला रहा था। तब दूसरा घायल बोला, पहले उसे पानी पिला आओ। सेवादार बोले, पहले तुम पानी पी लो, फिर उसे पिला देंगे। तब वह घायल बोला, नहीं, उसे शायद मुझ से ज्यादा पानी की जरूरत होगी। इसलिए पहले उसे पानी पिला दो, फिर आकर मुझे पिलाना। सेवादार तीसरे घायल को ढूँढते हुए उसके पास पहुंचे तो देखा कि वह स्वर्ग सिधार गया है। तब वे दूसरे घायल के पास लौटे। लेकिन उसके भी प्राण-पखेरु उड़ चुके थे। इसके बाद वे सभी पहले वाले घायल के पास पहुंचे। तब तक प्यास से उसका भी प्राणांत हो चुका था। अपने अन्तिम समय में भी उन्होंने अपनी परवाह न करते हुए दूसरों की चिन्ता की और अपने प्राण गंवा दिए। ऐसे ही पुण्यात्मा और रूहानी लोगों को सहाबी कहते हैं।

१८४५) बुद्धिमान बनजारा- एक बनजारा था। वह बैलोंपर मेट (मुल्तानी मिट्टी) लादकर दिल्लीकी तरफ आ रहा था। रास्तेमें कई गाँवोंसे गुजरते समय उसकी बहुत-सी मेट बिक गयी। बैलोंकी पीठपर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलोंकी पीठपर टिकें कैसे ? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरोंने पूछा कि क्या करें? बनजारा बोला- अरे सोचते क्या हो, बोरोंके एक तरफ रेत (बालू) भर लो। यह राजस्थानकी जमीन है, यहाँ रेत बहुत है। नौकरोंने वैसा ही किया। बैलोंकी पीठपर एक तरफ आधे बोरेमें मेट हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरेमें रेत हो गयी।

दिल्लीसे एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलोंपर लदे बोरोंमेंसे एक तरफ झरते हुए देखी तो वे बोले कि बोरोंमें एक तरफ रेत क्यों भरी है ? नौकरोंने कहा- सन्तुलन करनेके लिये। वे सज्जन बोले- अरे। यह तुम क्या मूर्खता करते हो ? तुम्हारा मालिक और तुम एक-से ही हो। बैलोंपर मुफ्तमें ही भार ढोकर उनको मार रहे हो। मेटके आधे-आधे दो बोरोंको एक ही जगह बाँध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भारके खुले चलेंगे। नौकरोंने कहा कि आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। आप जाकर हमारे मालिकसे यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बनजारे)- से मिला और उससे बात कही। बनजारेने पूछा कि आप कहाँके हैं ? कहाँ जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं भिवानीका रहनेवाला हूँ। रुपये कमानेके लिये दिल्ली गया था। कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। व्यापारमें घाटा लग गया। पासमें कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिये। उसकी बात सुनकर बनजारा नौकरोंसे बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चलते हैं, वैसे ही चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दीखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता। अगर ठीक निकलता तो ये धनवान् हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दीखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काममें घाटा नहीं खाया।

बनजारा अपने बैलोंको लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने जमीन खरीदकर मेट और रेत दोनोंका अलग-अलग ढेर लगा दिया और नौकरोंसे कहा कि बैलोंको जंगलमें ले जाओ और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे ? मेट बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्लीका बादशाह बीमार हो गया। वैद्यने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थानके धोरे (रेतके टीले)- पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेतमें शरीरको नीरोग करनेकी शक्ति होती है। अत: बादशाहको राजस्थान भेजो।

राजस्थान क्यों भेजें ? वहाँकी रेत यहीं मँगा लो। ठीक बात है। रेत लानेके लिये ऊँटको भेजो।

ऊँट क्यों भेजें ? यहीं बाजारमें रेत मिल जायगी। बाजारमें कैसे मिल जायगी ?

अरे। दिल्लीका बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेतका ढेर लगा हुआ देखा है।

अच्छा। तो फिर जल्दी रेत मँगवा लो।

बादशाहके आदमी बनजारेके पास गये और उससे पूछा कि रेत क्या भाव है ? बनजारा बोला कि चाहे मेट खरीदो, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलोंपर बराबर तुलकर आये हैं। बादशाहके आदमियोंने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बनजारा दिल्लीसे आये उस सज्जनकी बात मानता तो ये मुफ्तके रुपये कैसे मिलते ? इससे सिद्ध हुआ कि बनजारेकी बुद्धि ठीक काम करती थी।

१८४६) मरकर आदमी कहाँ गया ?- एक साधारण ब्राह्मण थे। वे काशी पढ़कर आये। सिरपर पुस्तकें लदी हुई थीं। शहरसे होकर निकले तो वर्षा आ गयी। पासमें छाता था नहीं। अत: एक मकानके दरवाजेके पास जगह देखकर खड़े हो गये। उसके ऊपर एक वेश्या रहती थी। कुछ आदमी रामनाम सत्य है कहते हुए एक मुर्देको लेकर वहाँसे निकले। उस वेश्याने

आवाज देकर एक लड़कीसे कहा कि जा, पता लगाकर आ कि यह स्वर्गमें गया या नरकमें गया ? लड़की चली गयी। पण्डितजीने सुना तो वहीं ठहर गये कि ऐसी कौन-सी विद्या है, जिससे मरनेवालेका पता लग जाय कि वह कहाँ गया ? थोड़ी देरमें वह लड़की आयी और वेश्यासे बोली कि यह तो नरकोंमें गया। इतनेमें दूसरा मुर्दा आया तो वेश्याने फिर लड़कीको भेजा। लड़कीने आकर कहा कि यह तो स्वर्गमें गया। पण्डितजीने विचार किया कि मैं इतने वर्ष काशी रहा, वहाँ कितनी पुस्तकें पढ़ीं, पर यह पता नहीं लगता कि मरनेवाला कहाँ गया ? यह विद्या तो मेरेको सीखनी चाहिये।

पण्डितजी मकानके ऊपर चले गये। वेश्याने देखा तो पहचान लिया कि यह मेरा ग्राहक तो है नहीं। उसने पूछा कि यहाँ कैसे आये? पण्डितजी बोले- माताजी। मैं....। वेश्या बोली- मेरेको माताजी मत कहो, मैं तो एक वेश्या हूँ। पण्डितजी बोले- हमारे लिये तो माँ, बहन या बेटी ही हो। वेश्या बोली- क्या बात है ? पण्डितजीने कहा- तुमने लड़कीसे कहा कि पता लगाकर आओ, मरनेवाला कहाँ गया तो उसने आकर कहा कि एक नरकमें गया, एक स्वर्गमें गया, यह क्या विद्या है? मैं जानना चाहता हूँ। वेश्याने उस लड़कीको बुलाया और कहा कि महाराजको बता, तूने कैसे परीक्षा की कि यह नरकमें गया, यह स्वर्गमें गया। वह कहने लगी कि महाराज। वे मुर्दा लिये जा रहे थे तो मैंने उनसे पूछा कि यह कहाँसे आया है, किस मोहल्लेका है ? फिर मैं पता लगाकर उस मोहल्लेमें पहुँची तो लोगोंको रोते देखकर पता लगा कि इस घरका आदमी मर गया। उनके पड़ोसियोंके घर जाकर सुना तो लोग कह रहे थे कि वह आदमी मर गया तो हम निहाल हो गये। वह सबकी चुगली करता था, चोरी करा देता था, लड़ाई करा देता था, झूठी गवाही देकर फँसा देता था, बहुत दु:ख देता था। मर गया तो बहुत अच्छा हुआ, आफत मिटी। ऐसी बातें मैंने कई घरोंमें सुनीं तो आकर कहा कि वह नरकोंमें गया। दूसरा मुर्दा आया तो उसका भी पता लगाकर मैं उसके मोहल्लेमें गयी। वहाँ लोग बातें कर रहे थे कि राम-राम, गजब हो गया। वह आदमी तो हमारे मोहल्लेका एक प्रकाश था। वह सन्त-महात्माओंको बुलाया करता था, सत्संग कराता था, कोई बीमार हो जाय तो रातों जगता था, किसीपर कोई आफत आयी तो उसकी तन-मन-धनसे सहायता करता था। वह चला गया तो हमारे मोहल्लेमें अँधेरा हो गया। ऐसी बातें मैंने सुनीं तो आकर कहा कि वह स्वर्गमें गया।

पण्डितजी बोले- अरे, ये बातें तो हमारी पुस्तकोंमें भी लिखी हैं कि अच्छे काम करनेवालेकी सद्गति होती है और बुरे काम करनेवालेकी दुर्गति होती है, पर यह बात हमारी अक्लमें ही नहीं आयी।

१८४७) स्थायी इलाज- जर्मनी के सम्राट जॉर्ज जोसेफ अपने राज्य के लोगों के दुख-दर्द का पता लगाने के लिए रात में वेश बदलकर घूमा करते थे। एक दिन वह एक गली से गुजर रहे थे कि एक फटेहाल युवक ने उनका रास्ता रोका और गिड़गिड़ाते हुए कहा, मेरी बूढ़ी मां कुछ समय से बीमार है। मैंने उसे अनेक डॉक्टरों को दिखाया। कोई भी उसके रोग को पहचान नहीं सका। उसका शरीर जर्जर हो चुका है। यदि मुझे कुछ रुपये मिल जाएं तो अंतिम बार उसका इलाज करा सकूंगा। क्या आप मेरी कुछ मदद कर सकेंगे ? सम्राट ने जेब से कुछ पैसे निकाले और उसे देते हुए कहा, तुम जाओ डॉक्टर को बुलाकर लाओ। मैं तुम्हारी कुछ और भी मदद करने का प्रयास करूंगा। तुम अपने घर का पता बताओ। जोसेफ उसके घर जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा चारपाई पर लेटी हुई है। एक बालक पास बैठा रो रहा है। उन्होंने अपने को डॉक्टर बताकर महिला से बीमारी के बारे में पूछा। महिला ने बताया, मेरे पति ही हमारे घर का खर्च चलाते थे। हाल में उनकी मृत्यु हो गई है। उनके बाद कोई कमानेवाला नहीं रहा। मेरे मरने के बाद मेरे बच्चों का क्या होगा, यही चिंता मुझे बीमार बनाए हुए है। सम्राट ने एक कागज पर कुछ लिखा और उसे देते हुए कहा, मैंने दवा लिख दी है। मंगवा लेना।

कुछ देर बाद उस वृद्धा का बेटा डॉक्टर को साथ लेकर आया। वृद्धा ने कहा बेटा, अभी थोड़ी देर पहले एक डॉक्टर आया

था। वह पर्चे पर कोई दवा लिखकर दे गया है। पुत्र के साथ आए डॉक्टर ने पर्चा देखा तो कहा, माताजी आपके पास एक अनूठा डॉक्टर आया था। वह आपका बीमारी का स्थायी इलाज कर गया है। वह कोई साधारण डॉक्टर नहीं था, वह तो हमारे देश का राजा है। उसने लिख दिया है कि राजकोष से आपके परिवार को नियमित धन मिलता रहेगा। तीनों राजा के प्रति श्रद्धा से भर उठे। कुछ दिनों बाद वृद्धा स्वस्थ हो गई।

१८४८) सच्चा धर्म- शिक्षाविद मिस्टर बूथ रिटायर होने के बाद पादरी बन ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार का काम करने लगे। एक बार वह व्याख्यान देने कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक छोटे बच्चे को भागते देखा। कुछ लोग चोर-चोर चिल्लाते हुए उसे खदेड़ रहे थे। बच्चा थक कर गिर पड़ा। पीछे करनेवाले लोग उसके पास आ गए और उसकी पिटाई कर चले गए। बच्चे के पास रोटी के कुछ टुकड़े थे। बूथ ने बच्चे से पूछा, तुमने चोरी क्यों की ? बच्चे ने कहा, मैं चोर नहीं हूं। मैं अनाथ हूं। कई दिन से भूखा था। भूख बर्दाश्त नहीं हुई तो ढाबे से यह रोटी उठा ली। मिस्टर बूथ सोच में पड़ गए। क्या धर्म के प्रचार-प्रसार से दुनिया की भूख मिटाई जा सकती है ? उन्हें अपने भीतर से जवाब मिला, नहीं।

बूथ उस बच्चे को ढाबे में ले गए और उसे खाना खिलाया। उसके बाद वह वहीं से वापस चले आए। उन्हें वापस आया देख चर्च के पादरी ने कहा, मिस्टर बूथ, आप लौट क्यों आए ? आपका वहां जाना बहुत जरूरी था। बूथ ने कहा, जरूरी था, अब नहीं है। जब तक मैंने सच्चे धर्म को नहीं समझा था तब तक धर्म प्रचार का अधूरा काम कर रहा था। आज मुझे सच्चे धर्म की समझ आ गई। फादर क्या आप बता सकते हैं कि धर्म के प्रचार-प्रसार से किसी अनाथ बच्चे का पेट भर सकता है ? उन्होंने रास्ते में बच्चे के साथ घटित घटना के बारे में फादर को बताया। फादर ने कहा, आपकी बात में सचाई है कि धर्म के प्रचार-प्रसार से बच्चे की भूख नहीं मिट सकती लेकिन धर्म के प्रचार-प्रसार का भी अपना महत्व है। इससे जनता को जागृत किया जा सकता है। बूथ ने कहा, मैं धर्म के प्रचार से उत्तम धर्म उसे मानता हूं जिसके करने से लोगों की भूख मिटाई जा सके। आज से मैं दुनिया के लोगों को यह संदेश पहुंचाना चाहता हूं कि वे वह काम करें जिससे अनाथ, असहाय और गरीबों को रोटी मिले।

१८४९) सदुपयोग की महत्ता- एक राजा आखेट के लिए वन की ओर निकला। शिकार की खोज में भटकता हुआ काफी दूर निकल गया। उसके सैनिक और अंगरक्षक काफी पीछे छूट गए। वह काफी थक गया था, उसे जोरों की प्यास भी लगी थी। भूख-प्यास से पीडित वह एक वनवासी के द्वार पर पहुंचा। वहां उसे आतिथ्य मिला तो उसकी जान बची। उसके सेवाभाव से राजा बड़ा खुश हुआ। चलते समय राजा ने वनवासी से कहा, मैं इस राज्य का शासक हूं। तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित होकर तुम्हें चंदन का वन प्रदान करता हूं ताकि तुम्हारा आगे का जीवन सुखमय बीते। चंदन का क्या महत्व है और उसका किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, उसकी जानकारी वनवासी को नहीं थी। जानकारी के अभाव में वह चंदन के वृक्ष काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचने लगा। इस प्रकार किसी तरह उसकी जीविका चलने लगी। धीरे-धीरे सारे वृक्ष समाप्त हो गए। एक अंतिम वृक्ष बचा। वर्षा होने के कारण कोयला न बन सका तो उसने लकड़ी को ही बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठर लेकर जब वह बाजार पहुँचा तो सुगंध से प्रभावित लोगों ने उन लकड़ियों का बड़ा भारी मूल्य लगाया। विस्मय से भरे वनवासी ने इसका कारण उन लोगों से पूछा तो लोगों ने बताया- यह चंदन की लकड़ी है, बहुत मूल्यवान है। यदि तुम्हारे पास ऐसी ही और लकड़ी हो तो उसका बहुत मूल्य प्राप्त कर सकते हो। वनवासी अपनी नासमझी पर पश्चाताप करने लगा। इतना मूल्यवान चंदन वन उसने काड़ी के मोल कोयले के रूप में बेच डाला। उसे पछताते देख एक विवेकशील व्यक्ति ने कहा- मित्र। पछताओ मत, यह सारी दुनिया तुम्हारी ही तरह

नासमझ है। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है, पर लोग उसे वासना और तृष्णा के लिए काड़ी के मोल गंवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है उसी का सदुपयोग कर लो तो कम नहीं। बहुत कुछ गंवाकर भी अंत में यदि कोई मनुष्य संभल जाए तो वह बुद्धिमान ही माना जाता है।

१८५०) मुझे एक रात बड़ा ही अजीब सपना आया। मैंने देखा कि मैं स्वर्ग में पहुंच गया हूं और एक इंजिल मुझे पूरे स्वर्ग की सैर करा रहा है। वह मुझे स्वर्गलोक के एक-एक कमरे में ले जा रहा था। हम दोनों सबसे पहले एक बहुत बड़े हॉल में पहुंचे। वहाँ बहुत सारे देवदूत अपने-अपने सामने पड़ी फाइलें निबटा रहे थे। मेरे गाइड एंजिल ने बताया कि यह रिसीविंग रूम है। यहां भगवान से की जानेवाली सारी प्रार्थनाएं रिसीव की जाती हैं। मैंने पूरे कमरे को गौर से देखा। वहां कई एंजिल बहुत सारे कागजों के ढेर में से प्रार्थना और ख्वाहिशों वाली चिट्ठियां निकाल कर अलग जमा कर रहे थे।

इसके बाद हम नीचे की तरफ एक बड़े बरामदे में पहुंचे। कुछ और आगे इसका दूसरा हिस्सा था। वहां एंजिल ने मुझे बताया, यह पैकेजिंग और डिलिवरिंग सेक्शन है। यहां भगवान के वरदान और उनके आशीर्वाद की पैकेजिंग होती है और इसके बाद संबंधित व्यक्ति को पृथ्वी पर भेज दी जाती है। मैंने एक बार फिर इस बात को नोटिस किया कि यहां देवदूत कितनी तन्मयता से अपना काम कर रहे हैं। मैंने गौर किया कि रोजाना भगवान के पास कितने लोगों की ख्वाहिशें आती होंगी और उन सबकी पैकेजिंग और डिलिवरी में कितनी मेहनत लगती होगी?

इसके बाद हम फिर आगे बढ़े। इस कॉरिडोर के सबसे अंत में एक कमरे के पास पहुंचकर मेरे कमरे के पास पहुंचकर मेरे कदम अचानक ठिठक गए। मैंने देखा कि इस कमरे में केवल एक ही एंजिल मौजूद है। पहले दो कमरों में लोग बड़ी व्यस्तता और तल्लीनता से काम कर रहे थे,ख जबकि यहां बहुत कम काम हो रहा था। यह देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। मेरा एंजिल दोस्त तुरंत मेरी परेशानी का कारण समझ गया और बोला यहां पर लोगों के आभार पत्र आते हैं। ऐसा कहते-कहते एंजिल काफी दुखी हो गया। उसने कहा वरदान पाने और इच्छा पूरी हो जाने के बाद केवल कुछ ही लोग आभार जताते हैं। मेरे मन में तुरंत एक सवाल आया कि कोई कैसे भगवान का आभार जता सकता है? एंजिल ने कहा इसका रास्ता बहुत ही आसान है। आपको केवल कहना होगा शुक्रिया भगवान। आखिरकार भगवान की किन सौगातों के कारण लोग उनका आभार जताएं?

१८५१) बोस्टन में एक गरीब लड़का घर-घर जाकर सामान बेचता था, ताकि वह अपनी पढ़ाई के लिए फीस जुटा सके। एक दिन वह इसी तरह काम पर निकला था कि उसे बहुत जोर से भूख लगी, उसने अपनी जेब को टटोला तो पाया कि उसके पास थोड़े से ही पैसे हैं। उसने मन में निश्चय किया कि अगले घर के दरवाजे से वह अपने लिए भोजन मांगेगा, लेकिन जब वह अगले दरवाजे पर पहुंचा और आवाज लगाई तो सामने एक बेहद खूबसुरत युवती प्रकट हुई, जिसे देखकर वह अपना आपा खो बैठा और उसका गला सुखने लगा। उसने हड़बड़ी में खाने के बजाए पानी मांगा, युवती ने उसके सुर्ख चेहरे के हाव-भाव देखकर सोचा कि लड़का भुखा है और उसके लिए दूध लेकर आयी। लड़के ने पूरे सुकून के साथ आहिस्ता-आहिस्ता दूध पिया और ग्लास खाली करने के बाद उसने भावपूर्ण नजरों से युवती को निहारा और पूछा मैं आपका कितने का कर्जदार हुआ, युवती ने इस पर कहा कि मुझपर आपको कोई कर्ज नहीं है। मैं आपका तहे-दिल से शुक्रिया अदा करता हूं- यह कहते हुए वह लड़का हॉवर्ड केली युवती से विदा लेकर चला गया। इस घटना के बाद उसका ईश्वर की मानवता में विश्वास बढ़ गया।

कई साल यूं ही गुजर गए, एक बार उक्त युवती बुरी तरह बीमार पड़ गई। स्थानीय डॉक्टरों को कुछ समझ नहीं आया उन्होंने उस महिला को शहर के एक बड़े हॉस्पिटल में जाने का सुझाव दिया। यहां पर महिला की बीमारी के लिए विशेष

डॉक्टरों को बुलाया गया इसके लिये परामर्शदाता के रूप में डॉ. हाबर्ड केली वह गरीब लड़के को बुलाया गया।

जब डॉ. केली को बीमार महिला के शहर का नाम पता चला तो उनकी आंखों में अजीब-सी चमक आ गई, वे तुरंत उस महिला से मिलने उसके कक्ष में पहुंचे और वहां उसको तुरंत पहचान लिया। उसके बाद से डॉ. केली ने उस महिला को स्वस्थ करना अपना मकसद बना लिया और पूरा ध्यान उस पर लगा दिया और कोशिश में वे सफल भी रहे। डॉ. केली ने महिला के हॉस्पिटल बिल को अपने पास मंगाया, उसके कॉर्नर में कुछ लिखकर उसे उस महिला के पास वापस भेज दिया गया। महिला बिल देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी।

उसको इस बात का डर था कि कहीं यह बिल उसकी जिन्दगी भर की कमाई को न निगल जाए, आखिर उसने हिम्मत करके बिल पर नजर दौड़ाई और कोने में लिखे लफ्ज पढ़ने शुरू किए, उसमें लिखा था कि एक ग्लास दूध के साथ बिल का पूरा भुगतान हो गया है नीचे लिखा था हस्ताक्षण डॉ. हावर्ड केली। हिला की आंखों से खुली अश्रुधारा फूट पड़ी, उसने ईश्वर से प्रार्थना की, हे भगवान। आपका लाख-लाख शुक्र है आपका प्रेम मानव हृदय और हाथों से इस तरह प्रवाहित हो रहा है। इस कहावत में आदर्श यह है कि अच्छे कर्म जो आप आज करते हैं कि उसका प्रतिफल आप पर या आपके किसी प्रियजन पर ऐसे समय प्रकट होता है, जिसकी आप कल्पना तक नहीं करते हैं।

१८५२) मौलवी के साथ चादर- कोई मौलवी साहब नमाज अदा कर रहे थे। पढ़े-लिखे सज्जन थे मौलवी जी। सामने से कोई नारी जा रही थी, उसने मौलवी जी की चादर पर पाँव रख दिया। मौलवी जी को गुस्सा आ गया कि खुदा की इबादत में लगा था मैं और वो स्त्री चादर पर पाँव धर के चली गयी। वो लौटकर आयेगी, तब देखूँगा उसे। वो लौटकर आ रही थी, उसे रोककर कहा, शर्म नहीं आयी तुम्हें, मैं नमाज अदा कर रहा था, उस चादर पर पैर रखकर चली गयीं। उस बालिका ने जवाब दिया- बाबा, तुम्हारी चादर पर मेरा पैर कब रख गया, मुझे नहीं मालूम। मेरी दाढ़ी सफेद हो गयी है, मैं झूठ बोल रहा हूँ। उस बालिका ने जवाब दिया-

मैं नर राचि ना लखि, और तुम कति लख्या सुजान। पढ़ि कुरान बौरा भयां, तैने राच्यौ नहीं रहमान।।

बाबा, मैंने अपने प्रेमी को समय दिया था मिलने का, सो मेरा मन तो जुड़ा था प्रेमी से। मैं जल्दी में थी, कहीं देर न हो जाये। इसलिए मुझे ध्यान नहीं रहा कि किसकी चादर नीचे बिछी है। क्योंकि मेरा मन मेरे प्रेमी से जुड़ा था। परन्तु क्षमा करना- तुम खुदा की कैसी इबादत कर रहे थे कि मेरी पैर रखने की बात तुम्हें ध्यान है? यदि वास्तव में तुम्हारा मन खुदा में लगा होता, तो सामने से कौन गुजरा, तुम्हें पता ही नहीं चलता। इसका मतलब मन खुदा में नहीं खुटका में लगा हुआ है। इतना सुनते ही मौलवी के हाथ से माला छूट गयी और उस बालिका के चरणों में गिरकर बोले- बेटी, तुमने मेरी आँख खोल दीं। इबादत का मतलब है सब कुछ भूलकर उसमें लग जाना। मन जब इधर-उधर हुआ तो इबादत कैसी? मौलवी का जीवन बदल गया।

१८५३) प्रतिभा का सम्मान- एक राजा को चित्रकारी का बहुत शौक था। वह अपने राज्य के योग्य चित्रकारों को समय-समय पर सम्मानित भी करता रहता था। एक बार राजा ने एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन रखा और दूर-दूर से मशहूर चित्रकारों को आमंत्रित किया। अनेक चित्रकार निर्धारित स्थल पर पहुंचने लगे। राजा ने सभी चित्रकारों को यथोचित सम्मान व स्थान देकर उन्हें ठहराया। एक चित्रकार बेहद गरीब सा दिख रहा था। वह फटे-पुराने मगर स्वच्छ वस्त्र पहने था। राजा ने उसे एक नजर देखा, फिर अनदेखा कर दिया- नियत समय पर प्रतियोगिता आरंभ हो गई। निर्णय करते समय तीन श्रेष्ठ चित्रों को चुना गया। अंत में निर्णायकों द्वारा उन तीन में से सर्वश्रेष्ठ चित्र को पुरस्कार देने की घोषणा की गई। पुरस्कृत चित्र के चित्रकार का नाम पुकारे जाने पर वही गरीब चित्रकार मंच पर आया। उसे देखकर राजा

ने पुरस्कार दिया और कुछ दिन के लिए राजमहल में ठहरने का निवेदन किया। कुछ दिन राजमहल में बिता कर जब चित्रकार लौटने लगा तो राजा ने उसे बहुमूल्य उपहार दिए और उससे बहुत ही विनम्रता से पेश आया। यह देखकर चित्रकार बोला, महाराज, जब मैं प्रारंभ में आपके पास आया था तो आपने मुझे देखकर भी अनदेखा कर दिया था, किंतु आज आप मेरे साथ बहुत ही सम्मानपूर्वक पेश आ रहे हैं। आखिर आपके व्यवहार में यह बदलाव क्यों? उसकी बात पर राजा मुस्कुराया फिर बोला, जब आप प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए आए थे तो आप मेरे लिए अनजान थे और साथ ही मैं आपकी प्रतिभा से भी अनजान था। तो आपकी वेश-भूषा और रूप-रंग के आधार पर ही अपना व्यवहार तय किया। अब मुझे आपकी प्रतिभा की भी जानकारी हो गई, इसलिए मेरे व्यवहार में आपके साथ आपकी प्रतिभा के प्रति भी सम्मान झलक रही है। व्यक्ति की पहचान उसके काम से ही होती है। मेरे लिए नहीं है। मैं आपकी प्रतिभा को तराशकर उसे चेटी पर पहुंचाने का प्रयास कर रहा हूँ। सुनकर चित्रकार संतुष्ट हो गया।

१८५४) पुण्य का असली फल- महाकुंभ से जुड़ी एक पुरानी कथा है। सभी तीर्थ इस पर विचार कर रहे हैं कि स्नान का सबसे अधिक पुण्य किसे मिला है। देवप्रयाग ने कहा, सबसे अधिक पुण्य रामू के हिस्से गया है। वह केरल के एक गांव में रहता है। गंगा ने कहा, मेरे किसी घाट पर तो वह आया नहीं। अन्य तीर्थों ने कहा, वह स्नान करने तो नहीं आया, लेकिन पुण्य उसे ही मिला है। वह जूते गांठता है बेचारा। कुंभ के लिए दो-दो पैसे बचाता था। इतने में संत की आंख खुल गई। वह खोजबीन के लिए चल पड़े केरल की ओर। अंतत: स्वप्न में दिखे स्थान पर पहुंचे तो बात सच निकली। एक जूते गांठने वाले को बुलाकर पूछा, तेरा नाम रामू है? उस व्यक्ति ने कहा, हां महाराज। कुंभ के बारे में पूछने पर वह बोला, मैं जूते बनाकर बेचता हूं। कुंभ जाना चाह रहा था किंतु मेरी पत्नी मां बननेवाली है। उसको मेथी की सब्जी की सुगंध आई तो खाने की बड़ी ईच्छा हुई। मैं पड़ोस में, जहां से सब्जी की सुगंध आ रही थी, पहुंचा। पड़ोसन ने कहा कि सब्जी तो ले जाओ, पर यह आपके खाने लायक नहीं है क्योंकि एक सप्ताह से पति गरीबी के कारण कुछ भी लाने में असमर्थ हैं। कहीं कुछ मिल जाए, इस चक्कर में वह इधर-उधर घूमते हुए श्मशान की तरफ गए। किसी ने अपने पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए मेथी की सब्जी और थोड़ा आटा रखा था। वह चुपचाप उठाकर ले आए। उनकी वह हालत देखकर मेरी अंतरात्मा पिघल गई। पड़ोस में लोग भूख से छटपटा रहे हैं, फिर मैं तीर्थ करने क्या जाऊं। मेरे पास जो रुपये थे, उससे कुछ जरूरी सामान लाकर मैं उस पड़ोसी के घर में चुपके से रख आया। रामू की यह बात सुनकर संत समझ गए कि उसे कुंभ का पुण्य क्यों मिला है।

१८५५) महारानी का हार- एक बार वीरगढ़ राज्य की महारानी का हार कहीं खो गया। महारानी को हार बहुत प्रिय था। उन्होंने हार ढूंढने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं मिला। हार के लिए महारानी को बहुत परेशान देखकर राजा ने घोषणा करवा दी कि जिस व्यक्ति को भी हार मिला हो, वह तीन दिनों के भीतर उसे वापस कर दे अन्यथा उसे मृत्युदंड का भागी होना पड़ेगा। यह संयोग था कि हार एक संन्यासी को मिला था। उसके मन में हार के प्रति कोई आकर्षण नहीं था, फिर भी उसने यह सोचकर रख लिया किं कोई ढूंढता हुआ आएगा तो उसे दे देगा। उसने अगले दिन राजा की घोषणा सुनी, पर वह हार देने नहीं गया। वह अपनी साधना में लीन रहा। तीन दिन बीत गए। चौथे दिन संन्यासी हार लेकर राजा के पास पहुंचा। राजा को जब पता चला कि तीन दिनों से हार उसके पास था, तो उसने क्रोधित होकर पूछा, क्या तुमने मेरी घोषणा नहीं सुनी थी? संन्यासी ने जवाब दिया, सुनी थी पर यदि मैं कल हार लौटाने आ जाता तो लोग कहते कि एक संन्यासी होकर मृत्यु से भयभीत हो गया। इस पर राजा ने पूछा, तो आज चौथे दिन क्यों लाए? इस पर संन्यासी ने कहा, मुझे मौत का भय नहीं है। पर मैं किसी दूसरे की संपत्ति को अपने पास रखना पाप समझता हूँ। हार जैसी तुच्छ चीज से मुझे कोई लगाव नहीं। यह उत्तर सुनकर राजा लज्जित

हो गया। महारानी को भी अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने हार बेचकर वह राशि गरीबों में बंटवा दी।

१८५६) लक्ष्य की तलाश- बहुत पुरानी कथा है। एक राजा अपने राजसी दायित्वों से ऊब गए थे। वह जो भी करते, बेमन से करते। वह चाहते थे कि किसी तरह राजपाट त्याग दें और ईश्वर का साक्षात्कार करें। एक दिन उन्होंने राजसिंहासन अपने उत्तराधिकारी को सौंपा और राजमहल छोड़कर जंगल की ओर चल पड़े। उन्होंने रास्ते में कई विद्वानों के साथ सत्संग किया, कुछ दिनों तक तपस्या की किंतु उनके भीतर अतृप्ति बनी रही। मन में खिन्नता का भाव लिए वह तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। एक दिन चलते-चलते वह काफी थक गए और भूख के कारण निढाल से होने लगे। वह पगडंडी से उतर एक खेत में रुके और एक पेड़ के नीचे बैठ सुस्ताने लगे। उन्हें देख एक किसान उनके पास जा पहुंचा। वह उनका चेहरा देखकर ही समझ गया वह थके होने के साथ भूखे भी हैं। किसान ने हांडी में उबालने के लिए चावल डाले। चावल की हांडी को आग पर चढ़ाकर उसने राजा से कहा, उठो, यह चावल पकाओ, जब चावल पक जाएं तब मुझे आवाज दे देना। हम दोनों इससे पेट भर लेंगे। राजा मंत्रमुग्ध होकर किसान की बात सुनते रहे। किसान के वहां से जाने के बाद उन्होंने चावल पकाने शुरू कर दिए। जब चावल पक गए, तो उन्होंने किसान को बुलाया और दोनों ने भरपेट चावल खाए। भोजन करने के बाद किसान काम में लग गया और राजा को ठंडी छांव में गहरी नींद आ गई। उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक दिव्य पुरुष खड़ा होकर कह रहा है, मैं कर्म हूँ और मेरा आश्रय पाए बगैर किसी को शांति नहीं मिलती। राजन्, तुम भी पुरुषार्थ करो और अपना लक्ष्य प्राप्त करो। नींद खुलने पर राजा ने सपने पर विचार किया तब उन्हें कर्म में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिली। वह वापस अपने राज्य लौट गए। उन्होंने जनकल्याण को अपना लक्ष्य बना लिया और उसी में रम गए। इससे उन्हें आत्मिक शांति मिली। उन्हें लगा कि यही वह लक्ष्य था जिसे वह अब तक ढूंढ रहे थे।

१८५७) आंखें होते हुए भी अंधा- एक आदमी कहीं जा रहा था। उसे वहां पहुंचने की जल्दी थी। इसलिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था। सोच रहा था कि समय पर वहां पहुंच नहीं पायगा और उसका जाना बेकार हो जायगा। वह अपने विचारों में खोया था। अचानक उसे किसी चीज की ठोकर लगी, उसका संतुलन बिगड़ गया और वह गिर पड़ा। निगाह उठाकर उसने देखा, एक खोपड़ी पड़ी थी। उस आदमी को बड़ा गुस्सा आया। देर हो जाने से वैसे ही उसका मन खिन्न हो रहा था। अब गिर जाने से उसके पैर में चोट आ गई और चलना उसके लिए मुश्किल हो गाय। उसने दांत पीसते हुए कहा, अरी, दुष्ट, सताने के लिए क्या मैं ही रह गया था? उसी समय कहीं से आवाज आई, अरे ओ नादान, तू इसे क्यों दोष दे रहा है? क्यों इस पर क्रोधित हो रहा है? इसके तो आंखें नहीं हैं, जो तुझे देख लेतीं, लेकिन तेरे तो आंखें हैं? तू ही बता कि जिसकी आंखें हैं, उसको देखना चाहिए, या जिसके आंखें नहीं हैं, उसे?

१८५८) पाप का कारण- राजा सत्यप्रिय एक धर्मपरायण शासक थे। एक दिन उनके मन में सवाल उठा कि आखिर क्या कारण है कि लोग पाप करने को विवश होते हैं? यह प्रश्न उन्होने अपने गुरु से किया। गुरु मुस्कुरा कर बोले, राजन्, इसका जवाब तुम्हें विद्यामती नामक एक युवती दे सकती है। गुरु ने राजा को विद्यामती का पता बताया। राजा उन्हें प्रणाम कर उस युवती के पास पहुंचे। विद्यामती अति रूपवान एवं गुणवान थीं। राजा ने उसे अपनी शंका बताई तो विद्यामती ने कहा, इसका जवाब पाने के लिए आपको कुछ दिन मेरे यहां अतिथि बनकर रहना होगा। राजा बोले, मगर मैं तो राजा हूं। यहां कैसे रह सकता हूं। मेरी प्रजा दिन-रात मुझे अपनी समस्याएं बताती रहती है। राजा की बात बीच में काटकर विद्यामती बोली, पर प्रश्न का उत्तर आपको तभी मिल पाएगा। यह सुनकर राजा वहां रुक गए और अपने राज्य में यह सूचना भिजवा दी कि वह एक अति आवश्यक कार्य से बाहर गए हुए हैं। विद्यामती राजा की दिन-रात सेवा करती, उन्हें

स्वादिष्ट भोजन खिलाती और उनसे ज्ञान-विज्ञान व वेदों आदि के बारे में बात भी करती। राजा विद्यामती पर मोहित हो गए और एक दिन उन्होंने प्रणय निवेदन कर डाला। इस पर विद्यामती बोली, बस महाराज, आज आपको आपका जवाब मिल गया। अब आप जा सकते हैं। राजा ने हैरानी से कहा, यह मेरा उत्तर नहीं। इस पर विद्यामती बोली, महाराज पाप की जड़ लोभ है जिसकी चपेट में आज आप भी आ ही गए। कहां पहले आप यहां रुकने तक को राजी नहीं थे और कहां आज आप मुझे अपनी रानी बनाने को तैयार हैं। यह लोभ ही तो है, जो मनुष्य को गलत मार्ग की तरफ ले जाता है और उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। विद्यामती का वह जवाब सुनकर राजा लज्जित होकर बोले, आप सत्य कह रही हैं। लोभ ही मनुष्य से गलतियां कराता है, जैसे आज मुसे करा रहा था। वह विद्यामती को नमस्कार कर लौट गए।

१८५९) ऑस्ट्रिया में पैस्टोला नामक एक छात्र डॉक्टरी पढ़ रहा था। एक दिन जब वह कहीं जा रहा था, तो रास्ते में उसे एक बच्चा मिला। एक छोटे से बच्चे को अकेला देखकर पैस्टोला ने उसे अपने साथ ले लिया। उसने उसके अभिभावकों का कुछ पता न चला तो पैस्टोला ने उसे एक अनाथालय में रखवा दिया। पर उसे उस बालक से बेहद लगाव हो गया था, इसलिए वह अक्सर उसे अनाथालय में देखने आता और उसे लिए कुछ उपहार भी लाता। धीरे-धीरे पैस्टोला ने नोट किया कि अनाथालय में बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था तो है, लेकिन वहां के कर्मचारियों में दयाभाव नहीं है। इसलिए बच्चे उन कर्मचारियों के संरक्षण में ढंग से विकसित नहीं हो पा रहे हैं। पैस्टोला ने अपनी पढ़ाई खत्म होते ही एक आंदोलन चलाया और नि:संतान तथा छोटी गृहस्थी वाले लोगों से अनुरोध किया कि वे अनाथ बच्चों को अपने परिवार में सम्मिलित कर लें और उन्हें लाड़-प्यार से पालें। ऐसा करने से बच्चों का समुचित विकास हो पाएगा और उन्हें जीने की राह मिल पाएगी। पैस्टोला के इस आंदोलन का लोगोंपर सकारात्मक असर हुआ। अनेक उदार, धनी व शिक्षित लोगों ने ऐसे असहाय बच्चों को अपने परिवार में शामिल कर लिया। आत्मीयता एवं अपनत्व भरे माहौल में उन बच्चों का विकास होने लगा। पैस्टोला ने उन अनाथ बच्चों की देख-रेख में अपना जीवन लगा दिया। वह आजीवन अविवाहित रहा। पैस्टोला ने अनाथ बच्चों का पालन-पोषण करने के अलावा विधवाओं व वृद्धाओं की भी नि:स्वार्थ मदद की। अपनी पूरी आमदनी उसने जरूरतमंदों पर लगाई। पैस्टोला की प्रेरणा से अनक उदार लोगों ने भी अपने परिवार में निराश्रितों को सम्मिलित किया। धीरे-धीरे यह आंदोलन दूर-दूर तक फैल गया। पैस्टोला के काम कई लोगों ने हाथ में ले लिया। आज भी ऑस्ट्रिया के अनेक लोग पैस्टोला के बताए रास्ते पर चल रहे है और असहायों की मदद कर रहे हैं।

१८६०) प्रार्थना का अर्थ- याहूदी गुरु रब्बी बार्डिक्टेव हर व्यक्ति की समस्या का समाधान करते और उन्हें सुख-शांति के उपाय बताया करते थे। एक बार उनके पास एक व्यक्ति आया और हाथ जोड़कर बोला, महाराज, मैं एक गरीब गाड़ीवान हूं। गाड़ी चलाकर अपना व परिवार का भरण-पोषण करता हूं। मेरा सारा दिन काम करने में ही बीत जाता है और प्रभु का स्मरण करने का जरा भी वक्त नहीं मिलता। कुछ दिनों से यही सोच-सोचकर मैं परेशान हूं। ऐसे में मेरा कल्याण कैसे हो पाएगा? कृपया आप मुझे कोई रास्ता बताएं। उस गरीब गाड़ीवान की बात सुनकर बार्डिक्टेव बोले, क्या तुम अपनी गाड़ी से ऐसे लोगों को भी गंतव्य तक पहुंचाते हो जो अक्षम व विकलांग हैं और जो तुम्हारा किराया देने में असमर्थ हैं? गाड़ीवान ने कहा, हां, मैं विकलांगों व गरीब लोगों से किराया नहीं लेता और उन्हें सकुशल उनके गंतव्य तक पहुंचाता हूं। इसके अतिरिक्त मैं अपनी कमाई के कुछ हिस्से से बेजुबान पशु-पक्षियों के लिए दया भावना है और यह भावना किसी प्रार्थना से कम नहीं है। प्रार्थना का उद्देश्य भी अपने जीवन को सार्थक करना है और यह सार्थकता दूसरे रास्तों से भी पाई जा सकती है। ऐसे लोग जो झूठ बोलते हैं, बेईमानी करते हैं, दुराचारी हैं, वे चाहे दिन भर प्रभु का स्मरण करते रहें किंतु प्रभु

ऐसे दुराचारी लोगों की प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं करते। वे ऐसे लोगों की प्रार्थना स्वीकार करते हैं जो मन, वचन व कर्म से नेक होते हैं और मानवीय गुणों की रक्षा करते हैं। तुम भी प्रभु के ऐसे ही बंदों में से एक हो। इसलिए तुम चिंतामुक्त होकर ऐसे ही अपने कार्य में लगे रहो जैसे अभी लगे हुए हो। तुम्हारा कल्याण स्वत: हो जाएगा। गुरु बार्डिक्टेव की बातें सुनकर गाड़ीवान संतुष्ट हुआ और अपने काम पर निकल गया।

१८६१) पाप का बोझ- राजस्थान के पर्वतीय क्षेत्र में डाकू दुर्जन सिंह का बड़ा आतंक था। उस इलाके के लोग उसके नाम से ही कांपते थे। एक दिन उस क्षेत्र में एक जैन मुनि धर्म प्रचार करते हुए पहुंचे। दुर्जन सिंह ने सदाचार व अहिंसा के महत्व पर उनका प्रवचन सुना तो उसे महसूस हुआ कि वह घोर अधम जीवन बिता रहा है। उसे रात भर नींद नहीं आई। सवेरे वह मुनि के पास पहुंचा और उनके चरण पकड़कर बोला, महाराज, मुझे सुख-शांति कैसे प्राप्त होगी? लगता है कि मैं पापों के बोझ से दबा जा रहा हूं। मुनि ने कहा, चलो मेरे साथ। पहाड़ी पर घूमने चलते हैं। उन्होंने तीन पत्थर उसके सिर पर रखते हुए कहा, इन्हें ऊपर पहुंचाना है। पत्थर भारी थे। डाकू दुर्जन सिंह अपने सिर पर पत्थर रखकर मुनि के साथ चल पड़ा। कुछ ऊपर चढ़ते ही वह बोला, महाराज, मुझसे इतना भार लिए नहीं चढ़ा जाता। मुनि ने कहा, एक पत्थर गिरा दो। उसने एक पत्थर गिरा दिया। कुछ दूर पार करने के बाद वह फिर रुक कर बोला, महाराज, दो पत्थर लेकर चलना भी भारी पड़ रहा है। मुनि ने दूसरा पत्थर भी सिर से नीचे गिरा देने को कहा। वह कुछ और ऊंचाई पर चढ़ा तो बोला, एक पत्थर का भार भी भारी पड़ रहा है। मुनि ने कहा, इसे भी गिरा दो। अब वह मुनि के साथ आनंदपूर्वक ऊपर चढ़ता चला गया। ऊपर पहुंचकर मुनि ने उसे समझाते हुए कहा, जिस प्रकार पत्थरों का भार ऊंचाई पर पहुंचने में बाधा डाल रहा था उसी तरह पापों का बोझ शांति में बाधा डालता है। जब तक तुम एक-एक करके तमाम पापों लोभ-लालच, हिंसा का त्याग न कर दोगे तुम शांति की मंजिल तक कदापि नहीं पहुंच सकोगे। आज ही संकल्प लो कि भविष्य में पाप-कर्म नहीं करोगे। डाकू दुर्जन सिंह ने कान पकड़कर संकल्प लिया। उसके बाद अपराध छोड़कर वह दीन-दुखियों की सेवा में लग गया।

१८६२) मन का पाप- एक साधु थे। जंगल में रहते थे। एक दिन घूमते हुए वह नदी के किनारे गये। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर प्रकृति की साम्राज्य फैला था। सघन वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। संत ने देखा कि एकान्त स्थान पर एक पेड़ के नीचे एक युवक और युवती बैठे हैं। दोनों बड़े आनंदित थे। दोनों के हाथ में एक-एक गिलास था। संत ने सोचा कि इस निर्जन स्थान पर बैठकर ये लोग निश्चय ही मदिरापान कर रहे होंगे और गंदी बातें ही सोचता है, बुरे काम ही करता है। आदमी का कितना पतन हो गया है। वह यह सब सोच ही रहे थे कि सामने से एक नाव आती दिखाई दी। नदी की धारा बड़ी तीव्र था। जोर की लहरें उठ रही थीं। अचानक नाव को लहरों का थपेड़ा लगा और वह उलट गई। संत के मुंह से जोर की चीख निकली। उनकी आंखें बंद हो गई। जैसे ही आंखें खुली कि देखते क्या हैं कि जिस युवक को उन्होंने पापी समझ रखा था, वही युवक छलांग लगाकर पानी में कूदा और पांच आदमियों को निकालकर बाहर ले आया। संत खड़े-खड़े देख रहे थे। युवक पास आकर बोला, महाराज, भगवान की कृपा से पांच आदमियों की तो जान बच गई। अब एक रह गया है। उसके प्राण आप बचा लीजिये। संत को तैरना नहीं आता था। वह कूदने की हिम्मत कैसे कर सकते थे? यह देखकर युवक ने कहा, स्वामीजी, इंसान के लिए इंसान से बढ़कर और कुछ नहीं है। इतना कहकर उसने एक छलांग फिर लगाई और अंतिम व्यक्ति को भी बचाकर बाहर ले आया। साधु का लज्जा से सिर झुक गया। जिसे वह पापी समझ रहे थे, उससे बढ़कर पुण्यात्मा उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखा था।

१८६३) सही चुनाव- एक राजा को अपने दरबार के किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिए योग्य और विश्वसनीय व्यक्ति की तलाश थी। उसने अपने आस-पास के युवकों को परखना शुरू किया। लेकिन वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया। तभी एक महात्मा का पदार्पण हुआ, जो इसी तरह यदा-कदा अतिथि बनकर सम्मानित हुआ करते थे। युवा राजा ने वयोवृद्ध संन्यासी के सम्मुख अपने मन की बात प्रकट की- मैं तय नहीं कर पा रहा हूँ। अनेक लोगों पर मैंने विचार किया। अब मेरी दृष्टि में दो हैं, इन्हीं दोनों में से एक को रखना चाहता हूँ। कौन हैं ये दोनों? एक तो राज परिवार से ही संबंधित हैं, पर दूसरा बाहर का है। उसका पिता पहले हमारा सेवक हुआ करता था, उसका देहांत हो गया है। उसका यह बेटा पढ़ा-लिखा सुयोग्य है। और राज परिवार से संबंधित युवक? उसकी योग्यता मामूली है। आपका मन किसके पक्ष में है? मेरे मन में द्वंद्व है, स्वामी। किस बात को लेकर? राज परिवार का रिश्तेदार कम योग्य होने पर भी अपना है, और.. राजन्। रोग शरीर में उपजता है तो वह भी अपना ही होता है, पर उसका उपचार जंगलों और पहाड़ों पर उगनेवाली जड़ी-बूटियों से किया जाता है। ये चीजें अपनी नहीं होकर भी हितकर होती हैं। राजा की आँखों के आगे से धुंध छँट गई। उसने निरपेक्ष होकर सही आदमी को चुन लिया।

१८६४) सबसे बड़ा धर्म- हीरे जवाहरात के एक बड़े व्यापारी थे- देवीदीन। व्यापार में वह किसी प्रकार की अनीति नहीं करते थे। वह दूसरे व्यापारियों के हितों का भी ध्यान रखते थे। एक बार उन्होंने किसी व्यापारी से जवाहरातों का सौदा किया। भाव तय हो गया और यह भी निर्धारित हो गया कि अमुक समय के भीतर वह व्यापारी देवीदीन को जवाहरात दे देगा। दस्तावेज पर दोनों पार्टियों के हस्ताक्षर हो गए। संयोग से इस अवधि में जवाहरातों का भाव बढ़ गया। इस भाव पर यदि वह माल देता तो उसे भारी हानि हो जाने की आशंका थी। बेचारा व्यापारी संकट में पड़ गाय, पर उसे तो अपना वचन तो निभाना ही था। देवीदीन को मूल्य बढ़ जाने की बात मालूम हुई तो वह उस व्यापारी की दुकान पर गए। देवीदीन कुछ कहें, उससे पहले ही व्यापारी ने कहा, सेठजी, विश्वास रखिए, मैं अपने वादे को हर हाल में पूरा कर दूंगा। आप चिंता न करें। देवीदीन ने कहा, मैं जानता हूं कि आप अपने वादे को हर हालत में पूरा कर देंगे, लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि आप बेहद चिंतित है। देखिए, हमारी चिंता का मुख्य कारण वह दस्तावेज है, जिस पर हमारे हस्ताक्षर हैं। यदि दस्तावेज को नष्ट कर दिया जाए तो चिंता का अपने आप अंत हो जाएगा। व्यापारी ने कहा, नहीं, नहीं, सेठजी ऐसा करने की जरूरत नहीं है, मुझे केवल दो दिन का समय दीजिए। पर देवीदीन ने दस्तावेज निकाला और उसे टुकड़े-टुकड़े करके फेंकते हुए बोले, यह करार हमारे हाथ-पैर बांधता था। इस सौदे में भाव बढ़ जाने से मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये आपकी ओर निकलते हैं। आपकी स्थिति मैं जानता हूं। आप कहां से देंगे इतनी बड़ी राशि? व्यापारी अवाक् रह गया। उसने देवीदीन के चरण पकड़ लिए। देवीदीन ने उसे उठाकर सीने से लगाते हुए कहा, आड़े समय में एक दूसरे की सहायता करना मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

१८६५) योग्यता की पहचान- एक बार लंदन में मूसलाधार बारिश हो रही थी। ठंड इतनी ज्यादा थी कि लोग-बाग ठिठुर रहे थे। रात में एक होटेल में कांपते हुए पति-पत्नी पहुंचे और उन्होंने एक कमरा मांगा। मैनेजर ने कहा, माफ कीजिए, इस समय तो कोई कमरा खाली नहीं है। इस पर औरत बोली, हम कई होटलों के चक्कर काट चुके हैं। सबने यही जवाब दिया कि कमरा खाली नहीं है। इस वक्त हम कहां जाए? लेकिन मैनेजर ने उनकी सहायता करने से इनकार कर दिया। यह बातचीत एक वेटर सुन रहा था। उसने कहा, बुरा न मानें तो मैं एक बात कहूं। मेरा एक छोटा सा कमरा है। आज रात आप लोग मेरे कमरे में ठहर सकते हैं। महिला ने पूछा, फिर तुम कहां रहोगे? उसने कहा, इस होटेल में ही रात गुजार लूंगा। वेटर ने उस दंपती को अपने कमरे में ठहरा दिया। इस घटना के कई साल बाद उस वेटर को एक पत्र और न्यूयॉर्क आने का टिकट मिला। यह सब वहां के किसी होटेल के मालिक ने भेजा था। पत्र में लिखा था कि आप तुरंत आकर

मिलें। वेटर न्यूयार्क़ में उस पते पर पहुंचा, तो हैरत में पड़ गया। सामने बैठे आदमी को देखकर उसे याद आया कि यह तो वही सज्जन हैं, जिन्हें उसने एक बार अपने कमरे में ठहराया था। उस सज्जन ने वेटर से कहा, मुझे विलियम कहते हैं। यह मेरा ही होटेल हैं। फिर विलियम ने होटेल की चाबी उसे देते हुए कहा, आज से तुम मेरे होटेल के मैनेजर हो। वेटर घबराकर बोला, यह मुझसे नहीं होगा। मैंने हमेशा वेटर का काम किया है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी संभालने की मुझमें योग्यता नहीं है। विलियम ने कहा, मैंने उसी दिन तुम्हें परख लिया था, जब तुमने सर्दी की रात में हमें शरण दी थी। मुसीबत में किसी के साथ सहानुभूति रखना और उसकी मदद करना एक मैनेजर की सबसे बड़ी योग्यता होती है। यह योग्यता तुम्हारे पास है।

१८६६) नागरिक का कर्त्तव्य- लीबिया के लिबलिस शहर के एक प्रमुख अस्पताल में अलग-अलग वार्डों में मरीजों को मुख्य डाक्टर के आने का इंतजार था। नर्स, कंपाउंडर आदि बेंचों पर शांति से बैठे थे लेकिन लंबे कद का एक आदमी लंबा चोगा पहने, चहलकदमी करता हुआ प्रत्येक स्थान और वस्तु का गहराई से निरीक्षण कर रहा था, तभी अपनी ओर आते बड़े डॉक्टर को देखकर वह व्यक्ति ठिठका। डॉक्टर ने पूछा, ऐ मिस्टर, कौन हो तुम? यहां क्या कर रहे हो? वह व्यक्ति बोला- डॉक्टर, मेरे पिता बहुत बीमार है। इस पर डॉक्टर बोला, बीमार है तो उन्हें यहां भरती कराओ। वह बहुत कमजोर हैं। उन्हें यहां लाना संभव नहीं है। आप चलिए डॉक्टर, उस व्यक्ति ने आदरपूर्वक कहा। लेकिन डॉक्टर ने उसे झिझक दिया, क्या बेहूदगी है? मैं तुम्हारे घर कैसे जा सकता हूँ? भले ही रोगी मर जाए, फिर भी आप नहीं जा सकते? वह व्यक्ति बोला। डॉक्टर ने उसे डांटते हुए कहा, ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है। तुम्हें मालूम नही कि तुम किस से बात कर रहे हो। चीफ सिविल सर्जन से इस तरह बात की जाती है? यह सुनकर वह व्यक्ति तिलमिला गया। इसका उसने सख्ती से उत्तर दिया, मैंने अभी तक तो बहुत शराफत बरती है, लेकिन मुझे तुमसे बात करने का ढंग सीखने की जरूरत नहीं है डॉक्टर। तुम भी नहीं जानते कि तुम किससे बात कर रहे हो। अब डॉक्टर का पारा चढ़ गया। उसने अस्पताल के वार्ड अटेंडेंट को पुकार कर कहा, इस पागल को पागलखाने भिजवा दो। जैसे ही अटेंडेंट आगे बढ़ा, उस लंबे व्यक्ति ने अपना चोगा उतार फेंका। डॉक्टर ने देखा, सामने कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि सैनिक वरदी में एक रोबदार कर्नल खड़ा था। अब तो डॉक्टर भी खुद सकपका गया। अपने देश के राष्ट्रपति कर्नल गद्दाफी को सामने देखकर उसके होश उड़ गए। कर्नल गद्दाफी ने आदेश दिया, डॉक्टर, अब तुम्हारे लिए लीबिया में कोई जगह नहीं है। मैं एक अस्पताल का नहीं, पूरे देश का अनुशासित सेनापति और कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी हूं। जो लोग अपना कर्त्तव्य निभाना नहीं जानते, उन्हें इस देश में रहने का कोई हक नहीं। राष्ट्रपति के आदेश पर तत्काल अमल हुआ और सबक मिला कि राष्ट्रसेवा प्रत्येक नागरिक का सर्वोच्च कर्तव्य है।

१८६७) अनोखा दंड- बहुत पुरानी बात है। दक्षिण भारत में वीरसेन नामक एक राजा राज्य करते थे। वीरसेन थे तो बहुत प्रतापी पर उन्हें अपनी प्रशंसा सुनना काफी अच्छा लगता था। चापलूस दरबारी उनकी तथा राज्य के शासन-व्यवस्था की हमेशा प्रशंसा करते रहते थे, जिससे राजा को राज्य की वास्तविक स्थिति का पता नहीं चल पाता था। राज्य में पंडित विष्णुदेव नामक एक निर्धन ब्राह्मण थे, जो भिक्षा मांगकर किसी तरह अपने परिवार का पेट पालते थे। एक बार अकाल पड़ा और भिक्षा भी बंद हो गई। बच्चों के पेट में अन्न गए तीन दिन बीत गए। पंडितजी जब तीसरे दिन भी खाली हाथ लौटे तो पत्नी रोते हुए बोली, अब मुझसे बच्चों की हालत देखी नहीं जाती। कोई भी मां अपने बच्चों को इस तरह मरते हुए नहीं देख सकती। तुम्हें कुछ-न-कुछ करना ही होगा। पंडितजी ने झल्लाकर कहा, क्या करूं? चोरी करूँ? पत्नी ने कहा हां, चोरी करो क्योंकि इसके सिवा और कोई चारा नहीं बचा है। पंडितजी ने अनेक तर्कों द्वारा पत्नी को मनाने का प्रयास किया पर वह पत्नी की जिद के आगे नतमस्तक हो गए। रात को वह राजमहल के भंडार गृह में पहुंचे। उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी

और उसमें अनाज रखकर गट्ठर बांधा और तेजी से बाहर आ गए। लेकिन घर लौटकर पंडितजी को नींद नहीं आई। रात भर करवटें बदलते रहे और सुबह होते ही सीधे राजदरबार जा पहुंचे। अपना अपराध सुनाने के बाद उन्होंने राजा से अनुरोध किया कि वह उन्हें चोरी की सजा दें। सारी कथा सुनकर राजा उदास हो गए। थोड़ी देर सोचने के बाद उन्होंने कहा, सजा तो मैं अवश्य दूंगा पर आपको नहीं बल्कि स्वयं को। आज से मैं घूम-घूमकर प्रजा के सुख-दु:ख की जानकारी लूंगा जिससे फिर किसी को चोरी करने की आवश्यकता ही न पड़े। चूंकि आपने अपनी ईमानदारी प्रमाणित कर दी है इसलिए आपको दंड मुक्त किया जाता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति के कारण पूरे राज्य की प्रजा सुखी हो गई।

१८६८) लालच का राक्षस- एक बार दो भाई कारोबार के लिए दूसरे नगर जा रहे थे। यात्रा के लिए एक ऊंट था, सामान के लिए कुछ थैले थे व सुरक्षा के लिए एक बंदूक भी थी। रास्ते में जंगल पड़ता था, जिसमें एक जगह तीन रास्ते निकलते थे। दोनों भाई उनमें से एक रास्ते पर आगे बढ़े कि अचानक सामने एक फकीर हाथ फैलाए खड़ा हो गया। व्यापारी भाइयों को जिस रास्ते जाना था, उधर जाने से उसने रोकने की कोशिश की।

कहा, इस रास्ते में लालच का राक्षस बैठा है, तुम्हें खा जाएगा। भाइयों ने फकीर की बात हंसी में उड़ा दी औ वह उसी रास्ते चल दिए। वे अभी कुछ दूर ही चले थे कि उन्हें मार्ग पर एक खजाना पड़ा दिखा। उनकी आंखें चमक गईं। उसे देखकर बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा, फकीर हमें मूर्ख बना रहा था। इस रास्ते से आने पर तो हमें बहुत लाभ हुआ। तुम ऐसा करो कि वापस जाओ और खजाना समेटने के लिए दस-बारह ऊंट ले आओ। मैं बंदूक लेकर खजाने की हिफाजत करता हूँ।

छोटा भाई नगर पहुंचा। साथ में ऊंट और रास्ते के लिए भोजन लिया। फिर सोचा कि यदि इस भोजन में जहर मिला दूं तो सारा खजाना मेरा हो जाएगा और उसने भोजन में जहर मिला दिया।

इधर बड़े भाई के मन में भी लोभ जागा। जैसे ही छोटा भाई पहुंचा, पेड़ के पीछे से बड़े भाई ने गोली चला दी। छोटा भाई वहीं ढेर हो गया। बड़े ने सोचा पहले भोजन करें फिर खजाना समेटें। उसने पहला कौर मुंह में रखा ही था कि एक हिचकी आई और वह भी मर गया। कुछ देर बाद जब फकीर उधर से गुजरा तो दोनों भाइयों की मृत्यु पर हंसने लगा और बोला, आखिर लालच के राक्षस ने दोनों को खा ही लिया। यदि बात मान लेते तो दोनों भाई जीवित रहते। धनसंपदा का लालच बहुत बुरा होता है। जो इसमें उलझा वह कहीं का नहीं रहता है।

१८६९) एक गांव में ठाकुर साहब रहते थे। ठकुरानी ठाकुर साहब से खूब प्रेम भाव का प्रदर्शन करती थी। एक दिन किसी काम से ठाकुर साहब को दूसरे गांव जाने का अवसर आया। उन्होंने ठकुरानी से कहा- मुझे आज बाहर जाना है। यह बात सुनते ही ठकुरानी ने कहा- पतिदेव, आपके बाहर जाने से मेरा मन नहीं लगेगा, न नींद आएगी और न भोजन भाएगा। ठाकुर साहब ठकुरानी की आदत से परिचित थे। इसलिए उन्होंने इस बार परीक्षा करने का फैसला किया। वे एक बंद पड़े कमरे में छुप गए। ठकुरानी ने अपने नौकर को बुलाया और कहा- ठाकुर गया गांव, मनै न भावै धान नौकर ने कहा- तो फिर क्या लाऊं। ठकुरानी ने कहा- भोजन तो गले उतरेगा नहीं इसलिए तुम गन्ना ले आओ। खूब मजे से ठकुरान ने गन्ने चूसे और रट लगाई- ठाकुर गया गांव, मनै न भावै धान। थोड़ी देर बात उसने घी खिचड़ी खाई। फिर शाम होते ही दाल बाटी बनवाई और वही रट दोहराई- ठाकुर गया गांव, मनै न भावै धान। रात को मक्की के फूलके खाए और आराम से सो गई। ठाकुर साहब सारी बातें सुन रहे थे। सुबह कमरे से जल्दी बाहर निकले और ठकुरानी को जगाया। ठकुरानी ने जल्दी लौट आने का कारण पूछा। ठाकुर साहब ने जवाब देते हुए कहा- ठकुरानी, तुम्हारे सौभाग्य से आज मेरी

जान बच गई। नाटक करते हुए ठकुरानी जोर से चिल्लाई- पतिदेव, ऐसी क्या बात हो गई। ठाकुर साहब ने कहा- रास्ते में एक गन्ने जैसा लंबा सांप इस तरह चल रहा था जैसे खिचड़ी में घी चलता है। सांप का फन बाटी की तरह गोल-मटोल था। वो ऐसे फुंकार रहा था जैसे भाड़ में मक्की के फूलियों की तड़तड़ाहट हो रही थी। ठकुरानी सारी बात समझ गई और उसने झुठे प्रेम प्रदर्शन के लिए माफी मांगी। भविष्य में ऐसा नहीं करने की कसम भी खाई।

१८७०) जापान के सम्राट यामातो के राज्य में एक चतुर मंत्री था। उसका नाम था- ओ-चो-सान। उसका परिवार अपने प्रेम भाव के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। उसके परिवार में लगभग एक हजार सदस्य थे। पर उनके बीच एकता का अटूट संबंध था। सभी सदस्य साथ-साथ रहते और साथ-साथ ही खाना खाते थे। ओ-चो-सान के परिवार की सौहार्द्रता की बात सम्राट यामातो के कानों तक पहुंची। इस बात की जांच करने के लिए एक दिन वे स्वयं वृद्ध मंत्री के घर तक आ पहुंचे। स्वागत सत्कार और शिष्टाचार की साधारण रस्में समाप्त हो जाने पर उन्होंने पूछा, महाशय। मंने आपके परिवार की एकता और मिलनसारिता की कई कहानियां सुनी हैं। क्या आप बताएंगे कि एक हजार से भी अधिक व्यक्तियोंवाले आपके परिवार में यह सौहार्द्रता और स्नेह संबंध कैसे बना हुआ है? इस बात का राज मैं जानना चाहता हूं। ओ-चो-सान वृद्धावस्था की वजह से अधिक देर तक बातें नहीं कर सकता था। इसलिए उसने अपने पौत्र का संकेत से कलम दवात और कागज लाने के लिए कहा। मांगी गई चीजों के आ जाने पर उसने अपने कांपते हाथों से कोई सौ शब्द लिखकर वह कागज सम्राट यामातो की ओर बढ़ा दिया। सम्राट ने उत्सुकतावश कागज पर नजर डाली, तो चकित रह गए। कागज में एक ही शब्द को सौ बार लिखा गया था- सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता। सम्राट को चकित और अवाक् देखकर ओ-चो, सान ने अपनी कांपती हुई आवाज में कहा, महाराज। मेरे परिवार की सौहार्द्रता का रहस्य बस इसी एक शब्द में निहित है। सहनशीलता का यह महामंत्र ही हमारे बीच एकता का धागा अब तक पिरोए है। इस महामंत्र को जितनी बार दुहराया जाए, कम ही है।

१८७१) देह अमर नहीं- एक राजा को फूलों का शौक था। उसने सुंदर, सुगंधित फूलों के पचीस गमले अपने शयनखंड के प्रांगण में रखवा रखे थे। उनकी देखभाल के लिए एक नौकर रखा गया था। एक दिन नौकर से एक गमला टूट गया। राजा को पता चला तो वह आगबबूला हो गया। उसने आदेश दिया कि दो महीने के बाद नौकर को फांसी दे दी जाए। मंत्री ने राजा को बहुत समझाया, लेकिन राजा ने एक न मानी। फिर राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई टूटे हुए गमले की मरम्मत करके उसे ज्यों का त्यों बना देगा, उसे मुंहमांगा पुरस्कार दिया जाएगा। कई लोग अपना भाग्य आजमाने के लिए आए लेकिन असफल रहे। एक दिन एक महात्मा नगर में पधारे। उनके कान तक भी गमलेवाली बात पहुंची। वह राजदरबार में गए और बोले, राजन तेरे टूटे गमले को जोड़ने की जिम्मेदारी मैं लेता हूं। लेकिन मैं तुम्हें समझाना चाहता हूं कि यह देह अमर नहीं तो मिट्टी के गमले कैसे अमर हो सकते हैं। ये तो फूटेंगे, गलेंगे, मिटेंगे। पौधा भी सूखेगा। लेकिन राजा अपनी बात पर अडिग रहा।

आखिर राजा उन्हें वहां ले गया जहां गमले रखे हुए थे। महात्मा ने एक डंडा उठाया और एक-एक करके प्रहार करते हुए सभी गमले तोड़ दिए। थोड़ी देर तक तो राजा चकित होकर देखता रहा। उसे लगा यह गमले जोड़ने का कोई नया विज्ञान होगा। लेकिन महात्मा को उसी तरह खड़ा देख उसने आश्चर्य से पूछा, ये आपने क्या किया? महात्मा बोले, मैंने चौबीस आदमियों की जान बचाई है। एक गमला टूटने से एक को फांसी लग रही है। चौबीस गमले भी किसी न किसी के हाथ से ऐसे ही टूटेंगे तो उन चौबीसों को भी फांसी लगेगी। सो मैंने गमले तोड़कर उन लोगों की जान बचाई है। राजा महात्मा की बात समझ गया। उसने हाथ जोड़कर उनसे क्षमा मांगी और नौकर की फांसी का हुक्म वापस ले लिया।

१८७२) एक बार आचार्य हेमचंद्र को एक गरीब विधवा ने अपने हाथों से बुनी चादर भेंट की। आचार्य इसे ओढ़कर अपने शिष्य राजा कुमारपाल के पास पहुंचे। राजा ने चादर देखकर कहा, गुरुदेव यह आपने क्या ओढ़ लिया है। लोग क्या सोचेंगे कि कुमारपाल के गुरु ने कैसी भद्दी चादर ओढ़ रखी है। मुझे तो यह देखकर लज्जा आ रही है। हेमचंद्र ने कहा, यह एक गरीब विधवा ने अपने हाथों से बुनकर दिया है जिसमें श्रद्धा और पवित्रता जुड़ी है। लज्जा तो आपको इस बात पर आनी चाहिए कि आपके राज्य में कुछ लोग अभावग्रस्त जीवन जी रहे हैं। राजा निरुत्तर हो गए।

१८७३) कड़वे बोल- एक युवक शिक्षित व गुणवान था मगर वह बात-बात में लोगों से बड़े ही कड़वे शब्द बोलता था। अनेक बड़े-बूढ़े उसे हर तरह से समझा-समझा कर हार गए थे पर उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। उस युवक का एक बहुत ही प्रिय मित्र था। मित्र भी युवक के कड़वे बोल से परिचित था। वह युवक जब-तब अपने मित्र को भी छोटी-मोटी बात पर तीाख बोल देता था, किंतु मित्र उसकी बातों का बुरा नहीं मानता था क्योंकि वह जानता था कि युवक अंदर से होनहार और साफ मन का है। पर जब मित्र को अहसास हुआ कि युवक के कड़वे बोल के कारण अधिकतर लोग उसे घृणा की नजरों से देखन लगे हैं। तो उसने उसे सुधारने की सोची। इसके लिए मित्र ने युवक को अपने घर पर आमंत्रित किया।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद उसने युवक को एक पेय पदार्थ दिया। यह अत्यंत मीठा था। इसे पीते ही युवक खुश हो गया और मित्र से बोला, वाह। इसे पीते ही मन आनंदित हो गया। थोड़ी देर बाद मित्र एक और पेय लेकर आया और बोला, यह एक खास चीज है। इसे पीकर देखो। एक घूंट पीते ही युवक का चेहरा विकृत हो गया। वह नाक-भौं सिकोड़ते हुए बोला, यह तो बहुत ही कड़वा है। युवक की इस बात पर मुस्कराता हुआ मित्र बोला, अच्छा, क्या तुम्हारी जुबान जानती है कि कड़वा क्या होता है।

इस पर युवक बोला, कड़वी और खराब चीजें तो जुबान पर आते ही पता चल जाती है। मित्र ने कहा, नहीं, कड़वी चीजें जुबान पर आते ही पता नहीं चलतीं। अगर ऐसा होता तो लोग अपनी जुबान से कड़वी बातें क्यों निकालते? यह सुनकर युवक लज्जित हो गया। मित्र ने समझाया, जो व्यक्ति कटु वचन बोलता है वह किसी व्यक्ति को दुख पहुंचाने से पहले अपनी जुबान को ऐसे ही गंदा करता है जैसे इस कड़वे पेय ने तुम्हारी जुबान को कर दिया है।

१८७४) सबक- मां उम्रदराज हो चली हैं, ज्यादा चलते फिरते बनता नहीं। नौकरानी काम कर दे, बातें कर ले वरना एकाकी बैठी रहती हैं। अपने जमाने में घूमने-फिरने के, हाट-बाजार के सारे शौक पूरे किए। अब बेटी की बहू आ गई तो एक दिन कहने लगी- अब तो तुझे फुरसत है आकर रह मेरे पास, अकेले बैठे समय कटता नहीं। अभी नई बहू है मां, आपके जवाई साहब और बेटा यात्रा पर जाते हैं, उसे अकेली छोड़कर कैसे आ जाऊँ? हमें देखो, छोटे की बहू आते ही घर उसके सुपुर्द कर आराम से घूमने निकल जाते थे उन्होंने पुराने दिन याद किए। बेटी को याद आया कि भाभी बच्चों के साथ घर और स्कूल की नौकरी संभालते कितना परेशान होती थी। कुछ समय बाद बेटी के पोती हो गई, जिम्मेदारियां बढ़ गई। मां की फरमाइश वैसी ही रही तू तो घर से ही बंध गई है, बेटा-बहू जाने उनका काम जाने, अब तो घर का झंझट छोड़। बेटी देख रही है इतने बरसों से कि मां ने जरूरत के वक्त घर की जिम्मेदारी नहीं संभाली। बस अपने काम और सैर करने से मतलब रखा। आज कर्त्तव्य के भाव से उनके सारे काम पूरे हो जाते हैं, पर जिस स्नेह और साथ की उन्हें जरूरत है, वह नहीं मिलता। बेटी ने मां का कहा मानने के बजाय उसके जीवन से सबक लिया है।

१८७५) सफलता और सादगी- हेनरी फोर्ड संसार के अग्रणी उद्योगपति थे। उन्होंने अपनी लगन व मेहनत से विश्व में एक अलग पहचान बनाई और अमेरिका में फोर्ड मोटर कंपनी की स्थापना की। उनके नाम पर बनी फोर्ड कार को

अभूतपूर्व लोकप्रियता मिली। एक भारतीय उद्योगपति भारत में मोटरकार का कारखाना लगाना चाहते थे। वह हेनरी फोर्ड को इतने कम समय में मिली सफलता से बेहद प्रभावित थे इसलिए वह कारखाना खोलने से पहले एक बार उनसे मिलकर उनकी कामयाबी का राज जानना चाहते थे। इसके लिए वह अमेरिका पहुंचे और हेनरी फोर्ड से मिलने के लिए समय लिया। हेनरी फोर्ड ने उन्हें कहा कि वह शाम छह बजे उनके निवास पर आकर उनसे मिल सकते हैं। इतनी जल्दी समय मिलने पर उद्योगपति बेहद खुश हुए और वह निश्चित समय पर उनके घर पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति अपने खाने के बर्तन साफ कर रहा था। बर्तन साफ करने के बाद वह भारतीय उद्योगपति की तरफ देखकर बोला, बैठिए, मुझे ही हेनरी फोर्ड कहते हैं। यह सुनकर उद्योगपति आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने कहा, आप इतने बड़े व्यक्ति होकर बर्तन स्वयं साफ कर रहे थे। यह काम तो एक नौकर भी कर सकता है। उद्योगपति की बात सुनकर हेनरी फोर्ड मुस्कुराते हुए बोले, मैं शुरू में साधारण आदमी था। अपना काम स्वयं करता था। अपने कठोर परिश्रम के कारण ही मैं आज कारखाना का मालिक बन पाया हूं। मैं उन दिनों को भूलकर खुद पर गर्व न करूं इसलिए अपना काम स्वयं करता हूं और सही मायने में यही मेरी सफलता का राज है। सफल होने के लिए सादगी व ईमानदारी का होना बहुत जरूरी है। भारतीय उद्योगपति हेनरी फोर्ड की कामयाबी का राज समझ गए और उनके सामने नतमस्तक होकर वापस आ गए। रास्ते में उन्होंने संकल्प लिया कि वह भी अपने कार्य में पूर्ण ईमानदारी बरतेंगे तथा सादगीपूर्ण जीवन गुजारेंगे। जल्दी ही उद्योगपति ने भारत में अपनी अलग पहचान बना ली।

१८७६) एक मंदिर के बाहर बैठा एक भिखारी तानपूरे पर भगवान का भजन गा रहा था। उसकी मीठी तान से विभोर होकर एक सज्जन ने उसके सामने रखे रुमाल पर पांच रूपए की रेजगी जिसमें रुपैया, अद्दनी और चवन्नी सभी तरह के सिक्के थे, फैलाकर कहा- भाई तुम इन सिक्कों में से जो सिक्का चाहो ले लो। चाहो तो पूरे सिक्के ले सकते हो। भिखारी ने मुस्कराते हुए महज एक चवन्नी का सिक्का उठाया। उस सज्जन ने कहा- भैय्या ऐसा क्यों? भिखारी ने कहा, सेठजी। हम भिखमंगे हैं लुटेरे नहीं। भिखारी का जवाब सुनकर उस सज्जन समेत सभी आते जाते लोग भिखारी की तारीफ करने लगे कि भिखारी होते हुए भी वह अपने पेशे के प्रति बहुत ईमानदार है।

१८७७) राजा का उपहार- एक राजा बहुत दयालु था। लेकिन राज्य में एक व्यक्ति ऐसा भी था जो राजा को बिल्कुल पसंद नहीं करता था। वह हमेशा राजा के खिलाफ जहर उगलता रहता था। जब राजा को इसका पता चला तो उसने अपने एक सैनिक के जरिए एक बोरी आटा, चीनी और साबुन उसके घर भिजवाया। इतना सामान मिलने पर वह व्यक्ति काफी खुश हुआ। दूसरे दिन वह मंदिर के पुजारी के पास पहुंचा और बोला, देख लिया न आपने, राजा मेरी प्रसन्नता और सद्भाव पाने के लिए कितना बेचैन है। उसकी बात सुनकर पुजारी मुस्कराया और बोला, राजा कितना समझदार है और तुम कितने मूर्ख। राजा तुम्हें जो समझाना चाहता है, वह तुम समझ नहीं रहे हो और व्यर्थ ही खुश हो रहे हो। असल में आटा तुम्हारे भूखे पेट के लिए है। साबुन तुम्हारे चीकट कपड़ों और मैले जिस्म की सफाई के लिए है। चीनी तुम्हारी कड़वी जुबान को मीठी बनाने के लिए है। पुजारी की बात सुनकर वह व्यक्ति शर्मिंदा हो गया और धीरे-धीरे उसके भीतर राजा के प्रति घृणा कम हो गई।

१८७८) समर्पण- उस रात राजा ने मुझे भरे दरबार में बुलाया और कहा, वैसा ही होगा, जैसा तू कहेगा। मैं भौंचक राजा को देख रहा था। हां, वैसा ही होगा। तू अगर कहेगा, राजा मुर्दाबाद, मुर्दाबाद। तू अगर कहेगा, सरकार निकम्मी है, तो निकम्मी है। तू अगर कहेगा, व्यवस्था भ्रष्ट है, तो भ्रष्ट है। तू जो कह दे। इस दरबार में निर्भय होकर कह, वही हमारी आवाज। बोल तू। भाषा तेरी, आवाज तेरी, अभिलाषा तेरी। पूरे दरबार में चुप्पी छा गई।

मैंने द्वार से लेकर सिंहासन तक देखा। द्वार के कोने में खड़ा बूढ़ा बाप मेरी तरफ बेबसी से देख रहा था। ऊपर झरोखों में

मेरी औरत चार सिपाहियों से घिरी, अपनी चूड़ियां दिखा रही थी। मेरे बच्चे एक बड़े-से फूलदान में कांटों के बीच चुपचाप खड़े थे। बस्ती के लोग सीखचों के दूसरी तरफ।

राजा ने फिर बड़े प्यार से कहा, लोकतंत्र है। अभिव्यक्ति की आजादी का पूरा फायदा उठा। डर मत निर्भय होकर बोल। मैंने हाथ उठा लिया। उस रात दरबार में। ऊपर खुला आकाश। चांद-सितारों को निहारा और चीख पड़ा जोर से- जब तक सूरज-चांद रहेगा। राजा सहित पूरा दरबार अट्टहास से फूट पड़ा और हम सब अपनी भीगी आंखों के साथ लौट पड़े उस सूने रास्ते पर चुपचाप, जो मुल्क से घर की ओर जाता था।

१८७९) श्रम और स्वास्थ्य- एक राजा था। उसके खजाने में अकूत धन था, फिर भी उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। कई वैद्यों ने उसका इलाज किया, फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। यह बात प्रजा में फैल गई। तब एक बूढ़े ने राजा के पास आकर उसका इलाज करने की इच्छा प्रकट की। राजा से अनुमति पाकर वह बोला, आप किसी सुखी मनुष्य का कुर्ता पहनिए, स्वस्थ हो जाएंगे। बूढ़े की बात सुनकर सभी हंसने लगे, लेकिन राजा ने सोचा कि इतने सारे इलाज किए हैं तो एक और सही। राजा के सेवकों ने सुखी मनुष्य की बहुत खोज की, लेकिन उन्हें पूर्ण सुखी कोई नहीं मिला। हर किसी को किसी न किसी बात का दु:ख था। अब राजा स्वयं सुखी मनुष्य की खोज में निकल पड़ा। वह एक खेत में जा पहुंचा। तपती दोपहर में एक किसान अपने काम में लगा हुआ था। राजा ने उससे पूछा, क्यों जी, तुम सुखी हो? किसान की आंखें चमक उठीं। वह मुस्करा कर बोली, ईश्वर की कृपा से मुझे कोई दुख नहीं है। यह सुनकर राजा खुश हो गया। उसने सोचा कि किसान का कुर्ता मांग लिया जाए। पर तभी उसका ध्यान इस बात पर गया कि किसान सिर्फ धोती पहने हुए है और उसकी सारी देह पसीने से तर है। राजा समझ गया कि श्रम करने के कारण ही यह किसान सुखी है। उसने आराम-चैन छोड़कर परिश्रम करने का संकल्प लिया। थोड़े ही दिनों में राजा की बीमारी दूर हो गई।

१८८०) ईमानदारी- ट्रेन तेज रफ्तार से चल रही थी। मिस्टर वर्मा सपरिवार हरिद्वार जा रहे थे। उनके सामने वाली बर्थ पर बैठे कुछ यात्री देश में फैले भ्रष्टाचार पर चर्चा करने में लगे हुए थे। मिस्टर वर्मा ने भी उस चर्चा में हिस्सा लेते हुए कहा- भाई आजकल तो जिधर देखो उधर घोटाले पर घोटाला हो रहा है।

क्या नेता, क्या व्यापारी, क्या सरकारी, कर्मचारी, क्या डॉक्टर। सभी देश को खोखला करने और जनता को लूटने में लगे हुए हैं। एक हम और आप हैं जो गांधी जी के बताए हुए रास्ते पर आज भी चल रहे हैं और ईमानदारी का दामन थामे बैठे हैं। अभी मिस्टर वर्मा की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि ट्रेन एक स्टेशन पर रूक गई। ट्रेन के रुकते ही एक टी.टी.ई. डिब्बे में चढ़ा जिसे देखकर मिस्टर वर्मा ने बीच में ही चर्चा अधूरी छोड़कर, अपने पास बैठे पुत्र को धीरे से समझाते हुए कहा- राजू टी.टी.ई. आ रहा है। तुम उसे अपनी उम्र तेरह वर्ष नहीं ग्यारह वर्ष बताना, नहीं तो दंड भरना पड़ेगा, समझे राजू ने हाँ में सिर हिला दिया, तथा मिस्टर वर्मा दोबारा भ्रष्टाचार पर चर्चा करने में मशगूल हो गए।

१८८१) अनूठा डॉक्टर- जर्मनी के सम्राट जॉर्ज जोसेफ प्रजा का दुख-दर्द जानने के लिए वेश बदलकर घूमा करते थे। एक दिन वह एक गली से गुजर रहे थे कि एक फटेहाल युवक ने उनका रास्ता रोककर कहा, मेरी मां कुछ समय से बीमार है। मैंने उसे कई डॉक्टरों को दिखाया, कोई भी उसके रोग को पहचान नहीं पाया। उसका शरीर जर्जर हो चुका है। यदि मुझे कुछ रूपये मिल जाएं तो मैं अंतिम बार उसका इलाज करना चाहता हूं। क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे?

सम्राट ने जेब से रुपये निकाले और उसे देते हुए कहा, तुम डॉक्टर को बुलाकर लाओ। मैं तुम्हारी कुछ और भी मदद करने की कोशिश करूंगा। तुम मुझे अपना पता बता दो। जॉर्ज जोसेफ तुरंत उस व्यक्ति के घर पहुंचे। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा

चारपाई पर लेटी हुई है। एक बालक पास बेठा रो रहा है। सम्राट ने अपने को डॉक्टर बताकर महिला से उसकी बीमार के बारे में पूछा। महिला ने कहा, मेरे पति ही घर का खर्च चलाते थे। हाल में उनकी मृत्यु हो गई। कमानेवाला कोई नहीं रहा। मेरे मरने के बाद मेरे अनाथ बच्चों का क्या होगा, यही चिंता मुझे बीमार बनाए हुए है। सम्राट ने कागज पर कुछ लिखा और वृद्धा को देते हुए कहा, इस पर मैंने दवा लिख दी है। अपने बेटे को भेजकर मंगा लेना। यह कहकर वह चले गए।

कुछ देर बाद वृद्धा का बेटा डॉक्टर को लेकर आया। वृद्धा ने उससे कहा, बेटा, अभी थोड़ी देर पहले एक डॉक्टर आया था। वह पर्चे पर कोई दवा लिखकर गया है। बेटे के साथ आए डॉक्टर ने उसे देखने के बाद कहा, माताजी, आपके पास एक अनूठा डॉक्टर आया था। वह आपकी बीमारी का स्थायी इलाज कर गया है। वह कोई साधारण डॉक्टर नहीं था, वह तो हमारे देश का राजा था। सम्राट जोसेफ ने उस कागज पर लिखा था कि वृद्धा तथा इसके परिवार को राजकोष से नियमित धन देने की व्यवस्था की जाए।

१८८२) काकी की कसम- कंकु काकी गांव में धर्म-कर्म करनेवाली भक्त महिला मानी जाती थी। एक दिन गांव में एक संत आए। संत ने मंदिर के बाहर बैठकर कथावाचन शुरू किया। कंकु काकी भी कथा में बैठी थी। संत ने कहा- बैंगन तामसी शाक है इससे शरीर में वायु बढ़ती है, वायु से शरीर अस्वस्थ होता है और अस्वस्थ शरीर से धर्म की साधना नहीं हो सकती। इसलिए बैंगन का त्याग करना चाहिए। कंकु काकी ने सबके सामने खड़े होकर कहा- महाराज, आपका उपदेश मेरे गले उतर गया। आज मैं कभी जिन्दगी में बैंगन नहीं खाऊंगी। मुझे बैंगन नहीं खाने की प्रतिज्ञा दिला दें। संत ने सब श्रोताओं के सामने कंकु काकी को बैंगन नहीं खाने की कसम दिला दी। कंकु काकी कथा सुनकर घर पहुंची। बहू से पूछा- आज सब्जी क्या बनाई है। बहू ने कहा- बैंगन। कंकु काकी काफी लाल पीली हुई और बोली- मैंने तो आज बैंगन नहीं खाने की कसम खा ली है। अब मैं कैसे रोटी खाऊं। बहू ने कहा- दही, छाछ, गुड़ और अचार-चटनी घर में है। आप कहो तो दाल बना दूं। कंकु काकी कुछ नहीं बोली। बैंगन की सब्जी में पड़े मसालों की खुशबू से उसका मन मचल रहा था। कंकु काकी ने एक तरकीब निकालते हुए कहा- मैंने बैंगन की कसम खाई है उसके शोरबे की नहीं। तुम बैंगन की सब्जी का शोरबा (रसा) परोस दो उससे खाना खा लूंगी।

बहू ने मन ही मन सोचा- सासूजी, जग दिखावे के लिए त्याग तो कर आए पर मन से अभी त्याग नहीं हो रहा है। बहू ने भगोनी से शोरबा थाली में परोसना शुरू किया तो बैंगन के कुछ टुकड़े भी थाली में आने लगे। बहू ने चम्मच से उन्हें रोकने की कोशिश की। कंकु काकी बोली- आने दे बेटी, इन्हें भी आने दे। आखिर बारात आई है तो बींद (दूल्हा) आएगा ही। यह कहकर कंकु काकी ने बैंगन की सब्जी का चटखारा लिया। बहू की समझ में आ गया कि ऐसे त्याग के ढोंग से त्याग नहीं करना ज्यादा अच्छा है।

१८८३) राजा का त्याग- एक बार काशी नरेश ने कोसल पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। कोसल के राजा ने आत्मसमर्पण नहीं किया और वहां से पलायन कर गए। कोसल की प्रजा अपने राजा के जाने से अत्यंत दुखी थी और उन्हें हमेशा याद करती रहती थी।

काशी नरेश को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने घोषणा की कि जो कोई भी कोसल के पराजित राजा को जीवित पकड़कर उनके सामने लाएगा, उसे पर्याप्त धन दिया जाएगा और कोसल का मंत्री नियुक्त कर दिया जाएगा। इस घोषणा का प्रजा पर कोई असर नहीं पड़ा। उधर कोसल के राजा जंगलों में भटक रहे थे। एक दिन उनकी मुलाकात एक भिखारी जैसे व्यक्ति से हुई। राजा ने उसका परिचय पूछा तो वह बोला, मैं बहुत बड़ा व्यापारी था मगर मेरा जहाज पानी में डूब गया,

जिससे मेरा सारा माल बह गया और मैं दाने-दाने को मोहताज हो गया हूं। अब मैं कोसल के राजा के पास मदद मांगने जा रहा हूँ। यह सुनकर राजा अत्यंत द्रवित हो गए। उन्हें काशी नरेश की घोषणा का पता चल गया था, सो उन्होंने इस व्यक्ति की सहायता की एक योजना बनाई।

वह उसे लेकर कोसल पहुंचे और वहां काशी नरेश से बोले, मैं कोसल का राजा तुम्हारे सामने हूं। अब तुम मुझे पकड़ लो और अपनी घोषणा के अनुसार इस व्यक्ति को मंत्री पद और धनराशि दे दो। काशी नरेश कोसल के राजा को हतप्रभ देखते रह गए। कुछ देर बाद वह सिंहासन से उतर कर राजा के चरणों में गिरकर क्षमा मांगते हुए बोले, महाराज मुझे क्षमा करें, जो राजा प्रजा के बीच लोकप्रिय हो, अत्यंत निर्भय हो, मौत से भी न डरे और अपनी जान पर खेलकर दूसरों की मदद के लिए सदैव तैयार रहे उसे मैं तो क्या, कोई भी पराजित नहीं कर सकता। यह कहकर उन्होंने कोसल के राजा का हाथ पकड़कर उन्हें ससम्मान सिंहासन पर बिठा दिया और चले गए।

कौशल देश के राजा दीनों के रक्षक और निराधारों के आधार थे। काशी के राजा ने जब अपने नागरिकों से कौशलराज की प्रशंसा सुनी तो वे जल-भुन गए। उन्होंने एक बड़ी सेना के साथ कौशल पर चढ़ाई की। युद्ध में कौशल नरेश हार गए और जंगल में चले गए। कौशल देश में किसी ने काशीराज का स्वागत नहीं किया। कौशल नरेश की पराजय से वहां की प्रजा दिन-रात रोने लगी। काशीराज ने देखा कि कहीं कौशल राज फिर प्रजा और सेना को संगठित कर कहीं विद्रोह न कर बैठे, इसलिए कौशलराज के लिए उन्होंने घोषणा की- जो नागरिक कौशलराज को जिंदा या मूर्दा पकड़ कर लाएगा, उसे हजार मोहरें दी जाएंगी। जिसने भी यह घोषणा सुनी आंख, कान बंद कर जीभ दबा ली। यह खबर कौशलराज तक भी जंगल में पहुंच गई। कौशलराज जंगल में भटक रहे थे। एक दिन एक राहगीर उनके सामने आया और पूछने लगा- वनवासी। इस जंगल का कहां अंत होता है और कौशल देश का मार्ग कौन-सा है? वनवासी राजा ने पूछा- तुम्हारे वहां जाने की वजह क्या है? राहगीर बोला- मैं व्यापारी हूं। मेरी नौका डूब गई है। अब द्वार-द्वार कहां भीख मांगता फिरूं। सुना था कि कौशल का राजा बड़ा उदार है, इसलिए उसी के दरवाजे जा रहा हूं। कौशलराज अपनी प्रशंसा सुनकर दुखी हो गए। व्यापारी उन्हें जानता था। थोड़ी देर बाद वनवासी राजा ने कहा, चलो तुम्हें कौशल देश तक पहुंचा ही आऊं। तुम बहुत दूर से हैरान और परेशान होकर आए हो। काशीराज की सभा में एक राहगीर के साथ जटाधारी व्यक्ति आया। काशी नरेश ने साधु समझकर पूछा- कहिए किसलिए आए? जटाधारी ने कहा- मैं कौशलराज हूं। आपने मुझे पकड़ लानेवाले को हजार स्वर्ण मुद्राएं देने की घोषणा की है। मेरे इस साथी को वह धन दे दें बदले में जो सजा देनी है वह मुझे दें। यह व्यापारी कौशलराज को दानी समझकर राज दरबार में आया है। मान लो इसी ने मुझे पकड़कर आपके पास उपस्थित किया है। इसलिए इसे हजार स्वर्ण मुद्राएं दे दें। इससे आपकी भी बात रह जाएगी और मेरा वचन पूरा हो जाएगा। सभा सन्न रह गई। काशीराज की आंखों में आंसू आ गए। क्षणभर के बाद वे बोले- महाराज, मैं आज से आपका राज्य भी लौटा देता हूं, साथ ही आपसे अपनी करनी की माफी भी मांगता हूं। काशीराज ने कौशलराज का हाथ पकड़कर सिंहासन पर बिठाया। सारी सभा धन्य-धन्य कह उठी। व्यापारी को मुंह मांगी मुद्राएं भी मिल गई।

१८८४) दूध का कुंड - एक राजा ने विचार किया कि मेरे नगर में एक दूध का कुंड हो, जिसमें दूध भरा रहे। पूर्णिमा की रात में जब चंद्रमा की रश्मियां उस पर गिरेंगी तो उसके सौंदर्य का आनंद सभी नगर-निवासी उठाएंगे। राजा ने पूरे नगर में घोषणा करवा दी कि नगर का प्रत्येक नागरिक आज शाम को एक-एक लोटा दूध लाकर नव-निर्मित कुंड में डालें? राजाज्ञा का पालन तो सभी को करना ही था। एक व्यक्ति ने सोचा कि नगर के सारे लोग दूध लाएंगे ही यदि मैं दूध नहीं ले जाकर उसमें पानी का

लोटा डाल दूं तो किसको पता चलेगा? वह शाम ढलने के बाद जल से भरा हुआ लोटा लेकर कुंड में डाल आया। यही विचार अन्य लोगों के मन में भी पैदा हुआ। सबने यही किया। सवेरे जब राजा उस कुंड के पास पहुंचा तो वह हैरान रह गया कि मैंने इस कुंड में दूध डालने की राजाज्ञा प्रसारित की थी। मगर इसमें तो जल भरा हुआ है। राजा ने अपने प्रधानमंत्री से बात की और इसका कारण पूछा तो वह बोला- महाराज, नगर के एक व्यक्ति के मन में बेईमानी का भाव जागा तो उसके भावों के परमाणु धीरे-धीरे पूरे गांव तक पहुंच गए और दूध के स्थान पर जल का कुंड बन गया।

१८८५) लोककथा- एक नगर में बहुत बड़े सेठ रहते थे। उनका एक पुत्र था। बड़े प्यार-दुलार के साथ उसका लालन-पालन किया गया। बड़े होने पर भी उसने कोई काम-काज नहीं सीखा। वह निठल्ला बैठा रहता था। एक दिन सेठजी ने विचार किया कि परिवार का दीपक निठल्ला जीवन जिए इससे बड़ा और कष्ट क्या होगा? उसने विद्वान और संतों की शरण ली। एक सीख के अनुसार उसने अपने प्रिय पुत्र में सद्संस्कारों को जगाने के लिए एक प्रयोग किया।

एक दिन सेठजी ने पुत्र को बुलाकर कड़े शब्दों में कहा कि आप को नित्य चार बजे दस रुपए लेकर दुकान पर हाजिर होना है। आदेश पाकर बालक चिंतित हुआ। उदास देखकर उसकी बहन ने पूछा कि क्या कारण है तुम्हारी उदासी का? बालक ने सारी घटना कह सुनाई। बहन ने कहा कि लो दस रुपए और उदासीनता का त्याग करो मेरे प्यारे भाई। नियत समय पर वह दुकान पर पहुंचा। सेठजी ने पूछा कहिए, बरखुरदार दस रुपए लाए है क्या? उसने दस रुपए दिखाते हुए कहा, लाया हूं। सेठजी ने कहा कि उन्हें अंगीठी में जला दीजिए। बालक ने तुरंत रुपए जला दिए। सेठजी ने विचार किया की शायद बहन ने यह सहायता की होगी। सेठ ने दूसरे दिन फिर दस रुपए लाने को कहा। अब बालक के सामने समस्या आ खड़ी हुई। माताजी ने लाड़ले को उदासीन देखकर कारण पूछा, जिसे उत्तर देते हुए लाड़ले ने बताया कि पिताजी के पास दस रुपए लेकर पहुंचना है। माता ने नाहक परेशान होने के बाद दुहराई और राजा बेटे को तुरंत दस रुपए लाकर दे दिए। जाना बेटा निश्चित समय पर दस रुपए लेकर पिताजी के पास हाजिर हुआ। पहले की तरह उन्होंने पूछा- दस रुपए लाए हो? उसने कहा दस रुपए लाया हूं। इन्हें भी अग्नि में जला दीजिए। उसने ऐसा ही किया। पिता ने फिर दस रुपए लाने को कहा। इस बार बेटे के सामने बड़ी समस्या खड़ी हुई। बहुत कुछ विचारने के बाद उसने सोचा कि अब खेत में जाकर मजदूरी करनी चाहिए। वह पूरे दिन मजदूरी करके कठिनाई पूर्वक केवल दो रुपए ही कमा सका। वह पिताजी के सामने हाजिर हुआ। पिताजी ने बेटे से पूछा, रुपए लाए है। उसने कहा आज बड़ी मुश्किल से दो रुपए ही ला पाया हूं। उसने कारण पूछे बिना उन्हें अंगीठी में जलाने का आदेश दिया। उसे सुनकर अब की बार वह जरा गरम हो गया और झल्ला कर बोला कि बड़ी मुश्किल से सारे दिन परिश्रम करने के बाद दो रुपए कमा पाया हूं और आपने कह दिया कि जला दीजिए। यह सुनकर सेठजी बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा कि आज रुपए का सही मूल्य आंका गया है। हर रोज दस रुपए को अंगीठी में जलाने में कोई कष्ट नहीं होता था। आज रुपए के उपयोग का ज्ञान उदय हुआ है। कारण स्पष्ट है कि आज परिश्रम किया गया है रुपयों के अर्जन करने में। श्रम के साथ उपयोग शक्ति का संचार होने लगता है। उन्होंने कहा- बेटे, मुझे भारी प्रसन्नता हो गई है कि अब तुम में श्रम के संस्कार पैदा हो गए है।

१८८६) लकड़ी और रस्सी- संत तिरुवल्लुवर अपने आश्रम में बैठे थे। आसपास सारे शिष्य अपने-अपने कार्यों में लगे हुए थे। कहीं कोई फर्श की सफाई में जुटा था तो कोई कपड़े धो रहा था। कोई भोजन बनाने में व्यस्त था तो कोई लकड़ियां काट रहा था। तभी संत से मिलने एक गृहस्थ और संत के साथ धर्मचर्या में लग गया। लेकिन उसके हाव-भाव और बातों से लग गया कि उसे कोई खास परेशानी है। संत ने उसकी परेशानी का कारण पूछा तो वह बोला- प्रभु, भरा-

पूरा परिवार है मेरा। बेटे-बेटियां, बहुएं और पोते पोतियां सब हैं। मगर दिक्कत यह है कि कोई मेरी बात नहीं सुनता। यहां तक कि पोते-पोतियां भी मेरी बातों पर ध्यान नहीं देते। सबने मुझे उपेक्षित कर दिया है। जमाने को देखते हुए मैं किसी को कुछ कहता नहीं। सब को पूरी स्वतंत्रता मिली हुइ है। तभी एक शिष्य वहां आया और संत से लकड़ियां बांधने के लिए रस्सी मांगने लगा। संत ने गृहस्थ से कहा- जरा पीछे से सुतली उठाकर मेरे उस शिष्य को पकड़ा देना। सुतली देखकर गृहस्थ हंसता हुआ बोला- महाराज, अगर कमजोर रस्सी से लकड़ियां बांधी जाएंगी तो गट्ठर बंधेगा नहीं, बिखर जाएगा। संत ने कहा- बिल्कुल ठीक। एकदम यही बात तुम्हारी गृहस्थी पर भी सटीक बैठती है। घर के मुखिया का नेतृत्व और अनुशासन ही अगर ढुलमुल रहेगा तो परिवार भी बिखरेगा ही। परिवार को एकजुट और अनुशासित रखने के लिए तुम्हारा दृढ़ और मजबूत होना जरूरी है। बात गृहस्थ की समझ में आ गई।

१८८७) कपटी दोस्त- दो मित्र थे। एक सरल हृदय और दूसरा चालाक। दोनों ने एक जगह खजाना देखा किंतु दिन के उजाले में कोई निकालते देख न ले इसलिए खजाना वही छोड़कर आ गए। चालाक मित्र ने रात्रि में जाकर खजाना निकाल लिया और वहां कोयले भर दिए। खजाना घर में छुपा दिया। दूसरे दिन खजाना लेने गए तो वहां कोयले थे। कपटी जोर-जोर से रोने लगा- हाय, अपना भाग्य फूटा जो सोना कोयले में बदल गया। सरल मित्र समझ गया कि यह इस मित्र की ही बुराई है। खजाना यह ले गया और कोयले भर दिए, किन्तु उस समय वह कुछ नहीं बोला और दोनों घर आ गए। सरल मित्र ने अपनी बुद्धि से एक योजना बनाई। उसने मित्र के जैसा हूबहू पुतला बनाया और कहीं से दो पालतू बन्दर ले आया। उन बन्दरों को उस पुतले से बहुत परिचित करा दिए। पुतले के अंगों पर फल रख दिए जाते और बंदर प्रेम से उससे लिपटते और फल खाते। इस तरह वे उस पुतले से हिलमिल गए। एक दिन सज्जन मित्र ने उस कपटी के दोनों बच्चों को बुलाया और उन्हें छिपा दिया। कपटी मित्र बच्चों को ढूंढ़ने मित्र के घर आया। मित्र ने कहा- बच्चे तो यहां आते ही बंदर हो गए। दोनों बन्दरों को सामने कर दिया। बंदर तो उस आकृति से परिचित थे, वे उससे लिपटने लगे। मित्र ने कहा- देखो, तुमसे कैसे प्यारपूर्वक लिपट रहे हैं? कपटी मित्र ने कहा- ऐसा कैसे हो सकता है, बच्चे बंदर कैसे हो सकते हैं? यह तो कपट है। सज्जन मित्र ने कहा- एक रात में ही खजाना कोयले का डेर हो सकता है तो बच्चे भी बंदर बन सकते हैं। यह सुनते ही कपटी समझ गया कि उसके मित्र को पता चल गया है कि मैंने कपट किया है, तभी इसने भी यह जाल रचा है। उसने कहा- खजाना मैं घर ले आया हूं। तुमको आधा देने को तैयार हूं। सज्जन मित्र आधा खजाना लेकर उसके पुत्रों को प्रेमपूर्वक सामने ले आया। कपटी मित्र ने फिर कभी ऐसा कपट नहीं करने की कसम खाई।

१८८८) न्याय- एक राजा था। उसने अपने रहने के लिए एक विशाल महल तैयार करवाया। बड़ा सुन्दर महल था। जो भी देखता, उसकी प्रशंसा करता। महल के साथ तालाब बनवाया, जिसमें रंग-बिरंगी मछलियां आनंद से दौड़ती, कमल के फूल खिलते। बाग-बगीचे लगवाये। उनमें पुष्पों की बहार देखते ही बनती थी। राजा उस सबसे बड़ा प्रसन्न होता। लेकिन एक दिन राजा ने देखा कि महल की बगल से धुआं उठकर आ रहा है। राजा ने नाक-भौं सिकोड़कर अपने चौकीदारों से पूछा, यह धुंआ कहां से आ रहा है? चौकीदारों ने कहा, सरकार, पड़ोसी में एक बुढ़िया की झोंपडी है। धुंआ उसी में से उठकर आ रहा है। राजा ने क्रुद्ध होकर कहा, जाओ, बुढ़िया से कहो कि वह अपनी झोंपड़ी को यहां से हटा ले। चौकीदार बुढ़िया के पास गये और राजा की आज्ञा सुनाकर कहा, तुम अपनी झोंपडी को फौरन यहां से हटा लो। बुढ़िया ने राजा की आज्ञा सुनी। बोली, मैं नहीं हटाऊँगी। जाओ, अपने राजा से कह दो। चौकीदारों ने बुढ़िया की बात राजा को कह सुनाई। राजा आग-बबूला हो गया। बोला, बुढ़िया को मेरे सामने पेश करो। चौकीदार बुढ़िया को ले आये। राजा ने क्रुद्ध

होकर पूछा, बुढ़िया, तू अपनी झोंपड़ी क्यों नहीं हटाती? मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानती? बुढ़िया ने बड़ी नम्रता से कहा, महाराज, आपकी आज्ञा सिर-माथे पर है। पर मेरी एक बात का जवाब दे दीजिये। राजा ने उत्सुकता से पूछा, क्या? बुढ़िया बोली, राजन्, मैं आपके इतने बड़े महल को, उसके बाग-बगीचों को देख सकता हूं, पर आप मेरी इस छोटी-सी, टूटी-फूटी झोंपड़ी को नहीं देख सकते। आप समर्थ हैं। चाहें तो उसे तुड़वाकर फिंकवा सकते हैं। पर क्या वह न्याय होगा? लज्जा से राजा का सिर झुक गया। बुलाया था बुढ़िया को गुस्से से, लेकिन विदा किया प्रेम से।

१८८९) कर्जदार शासक- पेरिस के एक प्रसिद्ध होटल में एक दिन एक व्यक्ति आया और उसने भरपेट भोजन किया। खाने के बाद वह कुछ देर दुविधा में खड़ा सोचता रहा, फिर उसने बैरे को इशारे से बुलाया और कोने में ले जाकर विनम्रतापूर्वक कहा, भाई, मेरे साथ एक समस्या है। मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। मैं एक राजनीतिक कार्यकर्ता हूं और इन दिनों राजनीतिक निर्वासन भोग रहा हूं। न खाने का कोई ठिकाना है न रहने का। बहुत ज्यादा भूख लग गई थी, इसलिए अपने को रोक न सका। तुम मुझे बिल अदा करने के लिए कुछ पैसे दे दो। मैं तुम्हें वापस कर दूंगा। मुझे तुम भले आदमी नजर आते हो। उम्मीद है तुम इनकार नहीं करोगे। बैरा सचमुच दयालु स्वभाव का था। उसे उस व्यक्ति की बातों में सचाई नजर आई। पहले तो उसने कुछ सोचा फिर उसे कुछ पैसे दिए और वह व्यक्ति बिल चुकाकर होटल से चला गया। दरअसल वह व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि रूसी क्रांति के जनक लेनिन थे। रूसी क्रांति के बाद जारशाही का अंत होने पर वह अपने देश के शासनाध्यक्ष बने। अपने मुल्क का सर्वोच्च पद हासिल करने के बाद भी उन्हें पेरिस के उस बैरे से लिया कर्ज याद था। उन्होंने बैरे के पास न सिर्फ कर्ज भिजवाया, बल्कि उसके साथ कई उपहार भी भिजवाए। लेकिन उस बैरे ने रकम व उपहार लौटाते हुए कहा, यह कर्ज मैंने एक भूखे-प्यासे और बेहाल व्यक्ति को दिया था, न कि एक शक्तिशाली राष्ट्र के महान शासक को। यह जानकर लेनिन उस बैरे के प्रति मन ही मन नतमस्तक हो गए।

१८९०) दो पत्नियां- एक अधेड़ आदमी अपनी पत्नी से खुश नहीं था इसलिए वह एक और औरत ले आया। दोनों पत्नियां एक-दूसरे को फूटी आंख नहीं देख सकती थीं। वे हमेशा झगड़ती रहती थीं। इससे परेशान होकर उनके पति ने शहर के अलग-अलग मोहल्लों में दो शानदार मकान बनवाए। बड़ी तकरार के बाद दोनों पत्नियां इस बात पर राजी हुई कि पति बारी-बारी से एक-एक दिन उनके साथ रहेगा। जब पति छोटी पत्नी के साथ रहता तो वह पति के सर से जुएं निकालने के बहाने उसके सारे सफेद बाल उखाड़ देती। वह चाहती थी कि उसका पति जवान दिखे और उसके सर पर एक भी सफेद बाल न हो। वह आदमी अपीन बड़ी उम्रदराज पत्नी के पास रुकता तो वह उसके काले-बाल उखाड़े देती। बड़ी पत्नी को यह अच्छा नहीं लगता था कि उसका पति उससे छोटा दिखे। नतीजा यह हुआ कि कुछ समय बाद उस आदमी के सर पर एक भी बाल नही बचा। वह गंजा था। लोग उसके लिए कहने लगे- दो पत्नियों का भरतार बिन मारे मरता करतार।

१८९१) कर्त्तव्य की भावना- यह काफी पुरानी घटना है। मद्रास प्रांत के एक स्टेशन के निकट एक प्वाइंटमैन अपना प्वाइंट (वह उपकरण जिससे गाड़ियों का टैक बदला जाता है) पकड़े खड़ा था। दोनों ओर से दो गाड़ियां अपनी पूरी गति से दौड़ी चली आ रही थीं। उस दिन मौसम खराब था वह आंधी-तूफान का संकेत दे रहा था। ऐसे भयावह मौसम में रोशनी के भी भरपूर साधन नहीं थे। प्वाइंट मैन अपने काम के लिए मुस्तैदी से तैयार था। तभी उसे अपने पैरों पर कुछ रेंगता हुआ महसूस हुआ। उसने देखा तो दंग रह गया। एक सांप उसके पैरों से लिपट रहा था। प्वाइंट उसके हाथ में था। डर के कारण उसकी घिग्घी बंध गई। किंतु तभी उसने सोचा कि यदि वह प्वाइंट हाथ से छोड़ देगा तो ऐसे में दोनों गाड़ियां परस्पर भिड़ जाएंगी और असंख्य लोगों की मृत्यु हो जाएगी। सांप के काटने से तो अकेले सिर्फ उसकी जान जाएगी लेकिन असंख्य

लोगों की जान बच जाएगी। कम से कम मरते-मरते वह असंख्य लोगों की जान बचाने का पुण्य तो अर्जित कर ही लेगा। यह सोचकर वह बिना हिला-डुले प्वाइंट को पकड़े खड़ा रहा। कुछ ही देर में दोनों रेलगाड़ियों की घड़घड़ाहट तेज हुई और रेलगाड़ियां आराम से प्वाइंट मैन के द्वारा पकड़े गए प्वाइंट की सहायता से अलग-अलग ट्रैक पर निकल गईं। उधर सांप रेलगाड़ियों की घड़घड़ाहट सुनकर प्वाइंटमैन का पैर छोड़कर चला गया। रेलगाड़ियों के जाने के बाद जब प्वाइंटमैन का ध्यान अपने पैरों की ओर गया तो वह यह देखकर दंग रह गया कि वहां कुछ न था। यह देखकर उसके मन से स्वत: ही निकला, सच ही है, जो इंसान सच्चे मन से लोगों की मदद करते हैं उनकी सहायता ईश्वर स्वयं करते हैं। बाद में जब इस घटना का पता अधिकारियों को चला तो उन्होंने न सिर्फ प्वाइंट मैन को शाबासी दी अपितु उसे पुरस्कार देकर सम्मानित भी किया।

१८९२) राजा का आदर्श- किसी छोटी सी बात पर नाराज होकर महाराज प्रसिचेत ने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया। उनके इस अहंकारपूर्ण कृत्य से दुखी होकर राज पुरोहित ने उनका साथ छोड़ दिया। धीरे-धीरे यह बात पूरे राज्य में फैल गई। यह बात प्रजा के कानों तक पहुंची। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कहने लगे, जो राजा अपने सौम्य, सरल, स्वजन संबंधी की रक्षा नहीं कर सकता, वह प्रजा की रक्षा क्या करेगा? लोग राजा की आज्ञाओं का उल्लंघन करने लगे। इस स्थिति का लाभ उठाकर पड़ोसी राजा ने आक्रमण कर दिया। प्रसिचेत सेना लेकर शत्रु का मुकाबला करने के लिए चल पड़े। मार्ग में महर्षि अंगिरा का आश्रम पड़ता था। वह महर्षि से मिलने के लिए रुके। पहले तो महर्षि ने शासकोचित स्वागत की तैयारी की, पर तभी उन्हें पता चला कि महाराज ने रानी का परित्याग कर दिया है, तो उन्होंने स्वागत की सारी तैयारियां स्थगित कर दीं और उनकी आवभगत एक साधारण नागरिक की तरह की। राजा ने साधारण स्वागत का कारण पूछा, तो महर्षि ने कहा, राजन्। पत्नी का परित्याग करना अधर्म है और यह अधर्म करने से पति की मर्यादा वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे आपकी। एक राजा के नाते आपको गृहस्थ और पारिवारिक जीवन में भी उच्च आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। इसलिए आप प्रजा की नजर में भी गिर गए। वैसे देर अब भी नहीं हुई है। आप इसे सुधार सकते हैं। महर्षि की बात सुनकर राजा को अपने किए पर पछतावा हुआ। उसने रानी को वापस बुलाया और अपने व्यवहार के लिए उससे क्षमा मांगी।

१८९३) मनुष्यता का पाठ- पंजाब के राय साहब लालचंद एक नेक और ईमानदार समाज सुधारक थे। एक बार उन्हें पता चला कि देहरादून के प्रसिद्ध कन्या गुरुकुल में छात्राओं के बौद्धिक विकास के लिए अनेक तरह के आयोजन किए जाते हैं। उन्होंने सोचा कि क्यों न वह पुस्तकों का अपना भंडार गुरुकुल को सौंप दें। इससे कन्याओं का भला होगा। उन्होंने गुरुकुल के प्रमुख को पुस्तकें ले जाने के संदर्भ में एक पत्र लिख दिया। पत्र पढ़कर गुरुकुल के प्रमुख ने स्वयं राय साहब के पास जाने का निश्चय किया। राय साहब के घर पहुंचकर उन्होंने दो-तीन बार दरवाजा खटखटाया, लेकिन हर ओर सन्नाटा छाया हुआ था। उन्होंने दरवाजे को हाथ लगाया तो वह खुल गया। अंदर पहुंचकर उन्होंने देखा कि एक वृद्ध बीमार व्यक्ति पलंग पर लेटा हुआ है और दूसरा वृद्ध सेवक उनके पैर दबा रहा है। गुरुकुल प्रमुख वृद्ध सेवक से बोले, राय साहब सो रहे हैं क्या? पैर दबाने वाला व्यक्ति बोला, कहिए क्या बात है? गुरुकुल प्रमुख बोले, राय साहब ने अपनी पुस्तकें गुरुकुल में दान करने के लिए हमें पत्र लिखा है। मैं गुरुकुल का प्रमुख हूं। प्रमुख का परिचय जानकर वृद्ध व्यक्ति बोले, आइए-आइए। मैं ही लालचंद हूं। वृद्ध सेवक से लगनेवाले व्यक्ति का परिचय जानकर गुरुकुल प्रमुख दंग रह गए। वह हैरानी से बोले, जिनके आप पैर दबा रहे थे, वह कौन हैं? राय साहब बोले, वह मेरा सेवक है। बेचारा दो दिन से बीमार है। यह जानकर गुरुकुल प्रमुख बुरी तरह चौंक गए और बोले, अरे, तो आप अपने सेवक के पैर दबा रहे थे। राय साहब बोले,

तो क्या हुआ, वह पिछले ४१ वर्षों से मेरे साथ है। आज वह अस्वस्थ है तो क्या एक दिन मैं उसकी सेवा नहं कर सकता? सेवक हो या मालिक, लेकिन हम हैं तो मनुष्य ही। एक मनुष्य होने के नाते मैं बुरे वक्त में दूसरे मनुष्य को कैसे छोड़ दूँ? यह सुनकर गुरुकुल प्रमुख उनके प्रति नतमस्तक हो गए।

१८९४) नागरिकों का महत्व- एक बार मगध की सेना ने कौशल राज्य पर चढ़ाई कर दी और कौशल नरेश को उनके अंगरक्षकों तथा कुछ और व्यक्तियों के साथ एक स्थान पर घेर लिया। यह देखकर कौशल नरेश ने मगध के सेनानायक से कहा कि वह उनके सामने बिना किसी प्रतिरोध के समर्पण कर देंगे यदि उनके साथ आए हुए दस व्यक्तियों को यहां से सकुशल जाने दिया जाए। सेनानायक ने यह शर्त मान ली और दस व्यक्तियों को सकुशल छोड़ दिया। फिर उसने कौशल नरेश को बंदी बनाकर मगध सम्राट के सामने प्रस्तुत किया और उन्हें सारा विवरण भी सुनाया। यह सुनकर मगध सम्राट भी हैरान हो गए। उन्होंने कौशल नरेश से पूछा, जिन व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए आपने स्वयं को कैद करवा दिया, वे कौन थे? कौशल नरेश बोले- राजन्, वे हमारे राज्य के महत्वपूर्ण विद्वान और संत थे। मैं भले मारा जाऊं मगर उनका जीवित रहना जरूरी है। वे रहेंगे तो राज्य में आदर्श, कर्त्तव्य, दया, परोपकार, सत्यनिष्ठा आदि की परंपाएं व भावनाएं जीवित रहेंगी। ऐसा होने से कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिकों के निर्माण का कार्य बराबर होता रहेगा तथा उपयुक्त शासक भी पुन: पैदा हो जाएंगे। राष्ट्र की सच्ची संपत्ति उसके श्रेष्ठ नागरिक ही होते हैं और उन्हें बनानेवाले होते हैं ये विद्वान और संत। मगध के राजा कौशल नरेश की ये बातें सुनकर दंग रह गए। उन्होंने कहा, जिस राज्य में जनकल्याण में लगे सत्पुरुषों को इतना महत्त्व दिया जाता है, वहां की शासन-व्यवस्था में परिवर्तन की कोई जरूरत नहीं है। उससे तो हमें भी प्रेरणा लेनी चाहिए। यह कहकर उन्होंने कौशल नरेश को मुक्त कर दिया।

१८९५) मंत्री की उदारता- बहुत पुरानी कथा है। चीन के एक सम्राट का मंत्री था- शाहचांग। वह बड़ा ही मेहनती और उदार था। सभ उसका आदर करते थे। एक बार सम्राट ने उसे एक महत्वपूर्ण मामले पर दूसरे दिन सवेरे एक रपट पेश करने की आज्ञा दी। मंत्री अपने एक सहायक कर्मचारी के साथ रपट तैयार करने में जुट गया। मंत्री अपने एक सहायक कर्मचारी के साथ रपट तैयार करने में जुट गया। मंत्री दिन भर रपट तैयार करता रहा। जब दिन भर काम करने के बाद भी रपट तैयार नहीं हुई, तो वह रात में भी अपने काम में लग गया। आखिरकार देर रात में बड़े परिश्रम के बाद रिपोर्ट तैयार हुई। शाहचांग दिन-रात काम करके थक गया था, फिर भी उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसने समय पर अपना काम पूरा कर लिया है। वह उठकर सोने के लिए जाने लगा मंत्री के जाने के बाद ही उसका सहायक कर्मचारी भी उठकर जाने लगा। मेज पर लैंप जल रहा था। लैंप में मिट्टी का तेल भरा हुआ था। कर्मचारी के उठते ही अचानक दीपक में धक्का लगा और वह गिर पड़ा। दीपक का सारा तेल मेज पर रखे कागज पर फैल गया। उसी मेज पर रपट भी रखी हुई थी। रपट के कागज तेल में भीग गए देखकर कर्मचारी थर-थर कांपने लगा। यह सोचकर उसके प्राण निकलने को हो गए कि उसे न जाने इस गलती की क्या सजा मिले? शाह चांग को जब पता चला तो वह दौड़ा हुआ आया। उसने जली हुई रिपोर्ट की परवाह न करते हुए कर्मचारी के कंधे पर हाथ रखकर कहा, अरे रपट ही तो जली है, किसी की जान का नुकसान तो नहीं हुआ न। फिर इसमें इतना घबराने की क्या बात है? हम तुम दोबारा बैठकर अभी यह रपट फिर तैयार कर लेते हैं। कर्मचारी शाह चांग की उदारता से मन ही मन उसके प्रति नतमस्तक हो गया।

१८९६) अनपढ़ बहू- एक सेठजी थे। सेठजी का बड़ा लंबा चौड़ा कारोबार था। उनका इकलौता बेटा पढ़ लिखकर होशियार हो गया। दुकान पर बैठने लगा। व्यापार भी बड़ी होशियारी से करने लगा। दूर-दूर से लोग अपनी बेटी के रिश्ते

लेकर सेठजी के घर आने लगे। सेठजी ने कई लड़कियां देखीं। आखिर उन्हें एक बहुत बड़े सेठ की लड़की पसंद आई। लड़की सुंदर थी पर पढ़ी-लिखी नहीं थी। सेठजी ने भी सोचा हमें कौनसी नौकरी करानी है। घर ही तो संभालेगी। इतने बड़े सेठ की बेटी घर लाना अपने आप में किसी सौभाग्य से कम नहीं है। बेटे ने अनपढ़ बहू के बारे में जाना तो ना-नुकर किया। पिता नहीं माने आखिरकार धूमधाम से शादी हो गई। नई बहू बनकर वह लड़की जब ससुराल आई तो पढ़ी-लिखी नहीं होने से हरेक से तू तड़ाके से बात करती थी। एक दिन सासू मां ने समझाया- बेटी, घर में सभी से आप कहकर बात किया करो। तू कहकर बात करना सम्मानजनक नहीं है। बहु ने हां भर ली। एक दिन की बात है- घर के पीछे पशुओं के बाड़े से भैंस का पाड़ा जंजीर तोड़कर घर के आंगन में आ गया। बहुत जोर से चिल्लाई- ओ सासजी। भैंसजी का पाड़ाजी खुल गया जी। सास आई पाड़े को पकड़ा और बोली- बहुजी भैंस और पाड़े के आगे जी लगाने की जरूरत नहीं है। बहू ने झटपट जवाब दिया। जिस्यो सासुजी रो लाड़ोजी बिस्यों भैंसजी रो पाड़ोजी। बहुत समझाने के बाद अनपढ़ बहू को बात समझ में आई। इसके बाद सासू मां ने कहा- बहूजी, कोई भी बात हो तो धीमे स्वर में कहा करो। चिल्लाकर बोलना बहु-बेटी को अच्छा नहीं लगता है। एक दिन की बात है- घर के एक कमरे में आग लग गई। अनपढ़ बहू चुपचाप खड़ी-खड़ी तलाशा देखती रही। धुआं उठते देख सासू आई और बोली- तुमने चिल्लाकर हम सबको क्यों नहीं बुलाया कि आग लग गई है। बहू बोली सासुजी, आप ही ने तो कहा था धीरे-धीरे बोला करो। मैं धीरे-धीरे कह रही थी कि आग लगी है आप सब बुझाने आओ। सास ने अपने नसीब को कोसते हुए कहा- मूर्ख को टका दे देना चाहिए, पर अक्ल नहीं देनी चाहिए।

१८९७) नजीर की दयालुता- महान कवि नजीर अकबराबादी आगरा में राजा विलास राय के बच्चों को पढ़ाते थे। एक दिन बच्चों को पढ़ाते समय उन्हें राजा का तेज स्वर सुनाई दिया। वह बाहर आए। राजा अपने एक घोड़े की ओर इशारा कर कह रहे थे, इस उपद्रवी घोड़े को गोली मार दो। हम इंतजार कर रहे थे कि कुछ समय बाद यह खुद सुधर जाएगा मगर इसने तो उत्पात मचा कर रख दिया है। जैसे ही कोई इस पर सवारी करने को होता है यह वैसे ही उसे जोर की पटकनी देकर घायल कर देता है। कई लोग इसकी बदसलूकी का शिकार हो चुके हैं। अब इस खुराफाती घोड़े का जीवित रहना बेकार है।

नजीर साहब बेकसूर घोड़े को मौत के मुंह में जाते देख द्रवित हो गए और बोले, महाराज, इस घोड़े को आप मारिए नहीं, हमें दे दीजिए। यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गए और बोले, महाराज, इस घोड़े को आप मारिए नहीं, हमें दे दीजिए। यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गए और बोले, नजीर साहब, यदि आप इस घोड़े पर बैठेंगे तो फिर हमारे बच्चों को कौन पढ़ाएगा? राजा के यह कहने पर नजीर साहब बोले, महाराज, आप घबराइए मत, हमें कुछ नहीं होगा। हम आपको इस बात का भरोसा दिलाते हैं। नजीर साहब के अनेक बार ऐसा कहने पर राजा ने घोड़ा उन्हें दे दिया। घोड़ा शांत भाव से उनके साथ चला गया। दूसरे दिन राजा समेत उनके सभी कारिंदे यह देखकर हैरान रह गए कि नजीर साहब उसी घोड़े पर आराम से बैठकर बच्चों को पढ़ाने के लिए आए हैं। उन्हें हैरान देख नजीर साहब मुस्कराते हुए बोले, इसमें इतनी हैरानी न करिए। इस मूक प्राणी को भी मुहब्बत समझने की अक्ल खुदा ने दी है। यह सुनकर राजा अत्यंत शर्मिंदा हुए और जान गए कि हर प्राणी प्रेम का भूखा होता है। फर्क यह है कि कई लोग मूक प्रेम की भाषा नहीं समझ पाते। वह घोड़ा लंबे समय तक नजीर साहब के साथ रहा।

१८९८) पुजारी की सीख- कांगड़ा जनपद के भगवती मंदिर के पुजारी रुद्रप्रताप समाज-सुधारक, वैद्य और अध्यापक थे। साधारण लोगों के साथ-साथ वहां के राजा सूर्यभानु भी उनका बहुत सम्मान करते थे। सूर्यभानु का पुत्र उदयभानु बेहद उद्दंड था। वह न केवल अपनी प्रजा पर अत्याचार करता था। राजा सूर्यभानु इससे बेहद दुखी रहते थे। उन्होंने उदयभानु को समझाने के अनेक प्रयत्न किए, पर कोई नतीजा नहीं निकला। हारकर सूर्यभानु ने अपने पुत्र के

व्यवहार के बारे में पुजारी रुद्रप्रताप को बताया और उन्हें उसे सुधारने के लिए कहा। सारी बात जानकर रुद्रप्रताप ने सूर्यभानु से कहा, महाराज, आप चिंता न करें। उसे कल सवेरे भगवती के दर्शन करने मंदिर में भेज दीजिएगा। राजा सूर्यभानु उन्हें प्रणाम करके लौट आए। अगले दिन सुबह उदयभानु पुजारी रुद्रप्रताप के पास पहुंच गया। रुद्रप्रताप ने बड़े प्रेम से उदयभानु का स्वागत किया, फिर उसके हाथों भगवती को प्रसाद चढ़वाया, फिर उसे अपने साथ विश्राम कक्ष में लेकर आ गए। उदयभानु ने चलने की आज्ञा मांगी। इस पर पुजारी रुद्रप्रताप बोले, बेटा, मैंने तुम्हारे भोजन की व्यवस्था भी करवाई है। आओ, भोजन तैयार होने तक हम शतरंज की एक-एक बाजी खेलते हैं। उदयभानु को शतरंज का बेहद शौक था। वह शतरंज खेलने बैठ गया। खेलते-खेलते रुद्रप्रताप ने चाल चली, लेकिन फिर अपना मोहरा हटा लिया और बोले, क्षमा करना, भूल हो गई। ऐसा रुद्रप्रताप ने दो-तीन बार किाय। चौथी बार भी जब वह चाल चलकर अपना मोहरा हटाने लगे तो उदयभानु बोला, पंडितजी, एक-दो बार की गलती तो क्षमा हो सकती है लेकिन बार-बार की गलती क्षमा नहीं होगी। आप कई बार ऐसा कर चुके है। इस पर रुद्रप्रताप ने मुस्कराकर कहा, बेटा, अगर आप खेल में भी मेरी गलतियां क्षमा नहीं कर सकते तो जो गलतियां आप जीवन में कर रहे हैं, उन्हें कोई क्षमा करेगा? उदयभानु उनका इशारा समझ गया। उसी दिन से उसमें सुधार आने लगा।

१८९९) सर्वव्यापक ईश्वर- एक व्यक्ति अपनी बेकारी से परेशान था। वह लगातार प्रयास कर रहा था पर उसे कोई काम नहीं मिल पा रहा था। उसकी इस हालत में उसके दोस्तों-रिश्तेदारों ने भी उसका साथ छोड़ दिया था। हालांकि इसके बावजूद वह व्यक्ति निराश नहीं था। उसकी यह दशा देखकर एक चोर को दया आ गई। चोर ने उस व्यक्ति से कहा, तुम मेरे साथ चलो, चोरी में मेरी मदद करो, बहुत धन मिलेगा। तुम्हारी हालत सुधर जाएगी। काफी सोच-विचार के बाद वह बेकार व्यक्ति इसके लिए तैयार हो गया। उसने चोर साथी से कहा, मुझे चोरी करने की कला तो आती नहीं है, करूँगा कैसे? चोर ने कहा, इसकी चिंता न करो, मैं अब सिखा दूंगा। दोनों गांव से दूर खेतों की ओर चल दिए। चोर ने वहीं एक खेत से पके हुए अनाज काटने का मन बनाया। वैसे तो रात में उधर कोई रखवाली नहीं थी, तो भी चोर ने अपने नए साथी को खेत की मेड़ पर खड़ा कर दिया ताकि वह निगरानी करता रहे कि कोई देख तो नहीं रहा है। चोर स्वयं खेत काटने लगा। नए चोर ने थोड़ी ही देर बाद आवाज लगा दी, भाई जल्दी करो, यहां से भाग चलो, खेत का मालिक पास ही खड़ा देख रहा है, मैं तो भागता हूं। चोर खेत छोड़कर भागने लगा। कुछ दूर जाकर दोनों खड़े हुए तो चोर ने साथी से पूछा, मालिक कहां था, केसे देख रहा था? साथी ने कहा, ईश्वर हम सबका मालिक है। इस संसार में जो कुछ है, उसी का है। वह हर स्थान पर मौजूद है और सब कुछ देखता है। मेरी आत्मा ने कहा कि ईश्वर यहां भी मौजूद है। ऐसे में हमारा भागना ही उचित था। चोर पर इस बात का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसने सदा के लिए चोरी छोड़ दी। जल्दी ही दोनों को मन लायक काम भी मिल गया।

१९००) चालाक कौआ इर्दगिर्द- कौओं के एक झुंड को जब जंगल में कहीं भी सूखे के कारण पीने के लिए जल नहीं मिला तो वे चिंतित होकर अकुलता उठे। तभी उनमें से एक बुजुर्ग कौए ने सभी से कहा, आओ, हम सब शहर की बस्ती में चलें। बस्ती-बस्ती, घर-घर जाकर कौए परेशान और थककर प्यास के मारे और भी व्याकुल होने लगे। वहां तो घर-घर फिल्टर और फ्रिज ही दिखाई दिए। अंत में हारकर वे दूर नदी की तरफ सारे के सारे उड़ चले। वे परस्पर बतियाते-कुरकुराते जा रहे थे। व्यर्थ ही मनुष्य हमें चालाक बनाता है। इक्कीसवीं सदी में जा रहे हम कौए तो न जाने कितने पीछे रह जाएंगे। इस चालाक मानव से। वे फिर तेज-तेज उड़ने लगे और उड़ते चले गए।

१९०१) लोककथा- पट्टन-साम्राज्य के महामंत्री उदयन के पुत्र बाहड़ शत्रुंजतीर्थ का पुनरुद्धार करके दिवंगत पिता की आखिरी इच्छा पूरी करना चाहते थे। तीर्थ में निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ तो लोगों ने मंत्री महोदय से प्रार्थना की- आप समर्थ

और सम्पन्न है; किन्तु हमें भी इस पुण्य कार्य में यथायोग्य दान देने का अवसर प्रदान करें। लोगों की प्रार्थना स्वीकार हो गई। जिसकी जितनी शक्ति और श्रद्धा थी, उसने उतना धन दिया। तीर्थ का उद्धार हो गया और दान देनेवालों की नामावली घोषित की गई। लाखों स्वर्ण मुद्राएं देनेवाले भी चकित रह गए। सबसे पहला नाम था भीम नामक एक मजदूर का और उसने दान दिया था महज सात पैसे का। मंत्री महोदय ने सम्पन्न लोगों को गुस्से होते देखा तो वे बोले- भाइयों। स्वयं मैंने और आप सबने तीर्थ के उद्धार में जो कुछ दिया है, वह अपने धन का एक भाग ही दिया है। लेकिन भीम ने पता नहीं कितने दिनों के परिश्रम के बाद सात पैसे बचाए। उसने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है। उसका दान ही सबसे बड़ा दान है, यह निर्णय करने में मेरे से भूल तो नहीं हुई। सबने सिर झुका लिए। अब एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो मंत्रीवर की बात का विरोध कर सके। मंत्री ने शिलालेख में सबसे ऊपर श्रमिक भीम का नाम लिखवाया और दुनिया को यह संदेश दिया कि सच्चा दान पसीने की कमाई का होना चाहिए।

१९०२) बहन- सभी महाविद्यालयों में दाखिले चल रहे थे। प्रत्येक चौराहे एवं गलियों पर लड़कों के झुंड नजर आ रहे थे। राज भी अपने दोस्तों के साथ कॉलेज के पास घूम रहा था। राह चलती लड़कियों को देखकर खिल-खिलाकर हंसना, इशारे करना व फैशनपसंद लड़की के साथ कुछ दूर चलकर फब्तियां कसना और फिर खुश होकर दूसरी तरफ चल देना उनका रोज का काम था। एक दिन राज ने दूर से कुछ लड़कियों को कालेज की तरफ आते देखा। उन्हें देखकर वह वहां से खिसकने लगा तो उसके दोस्त तरफ चल देना उनका रोज का काम था। एक दिन राज ने दूर से कुछ लड़कियों को कालेज की तरफ आते देखा। उन्हें देखकर वह वहां से खिसकने लगा तो उसके दोस्त उसे अपनी तरफ बुलाने लगे।

राज कहां जा रहे हो? किसान गजब का माल आ रहा है, बिल्कुल नया फैशन। एक ने तो कितने छोटे कपड़े पहन रखे हैं जैसे साबुन का विज्ञापन दे रही हो। राज उनकी बातें सुनकर शर्मिन्दा हो गया। नहीं दोस्तो। उसे कुछ मत कहना। वह मेरी बहन है। कहते-कहते उसने नजरें झुका ली। राज की बात सुनकर सब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे और साथ से गुजर रही लड़कियों को देखकर नजरों ही नजरों में मुस्कराने लगे।

१९०३) लोककथा- गुजरात में सदियों पहले भयंकर अकाल पड़ा। लोग दाने-दाने के लिए मोहताज हो गए। सेठ जगडूशाह ने गांव-गांव में अन्नशालाएं खोलीं। अन्नशालाओं में हजारों गरीब लोग रोज भोजन करते थे। गुजरात के राजा ने जब यह सुना तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि एक वणिक जाति के व्यक्ति ने अपने अन्न भंडारों को प्रजाहित में खोल दिया। राजा ने उनको सम्मानित करने के लिए राज-दरबार में बुलाया। राजा के सामने अभी भी हजारों लोगों की भूखमरी की समस्या मुंहबाए खड़ी थी। राजा ने बड़ी विनम्रता से जगडूशाह को कहा- सेठजी, आपने तो सैकड़ों जगह अन्य क्षेत्र खोल कर भूखों को भोजन उपलब्ध कराया है। फिर भी मैं प्रजा के लिए आपके अन्न कोठारों से अनाज की मांग करता हूं। इसके लिए जितना धन चाहें आप राजकोष से ले सकते हैं। मैं प्रजा को जीवित रखने के लिए चाहे जितना धन आपको दे सकता हूं पर आपके सैकड़ों अन्न भंडार मुझे चाहिए। सेठ जगडूशाह ने कहा- राजन्, मेरे पास जो अनाज के कठोर है, उनमें से एक भी मेरा अपना नहीं है, फिर किसे बेचूं? यह सुनकर राजा को सेठजी की बात पर भरोसा नहीं हुआ। उसने अन्न के कोठारों की जांच की। जांच में पता चला कि कुल सात सौ अन्न के कोठार हैं और उन कोठारों के ऊपर एक शिलालेख खुदा है- यह अन्न गरीबों के लिए है, बेचने के लिए नहीं। जगडूशाह की उदारता और गरीबों के प्रति उनके नजरिए की महाराज ने बड़ी प्रशंसा की और कहा- जिस अनाज भण्डारों को मैं खरीदना चाहता था वे तो प्रजा के लिए वैसे ही खुले हैं।

१९०४) **लोककथा-** एक वृद्ध महाशय अपने बचपन के दिवंगत साथी के घर गए। उन्होंने साथी के बेटे से कहा- बेटा, मैं तुम्हारी खोज-खबर लेने आया हूं। वृद्ध महाशय बेटे के चाल चलन से परिचित थे। उन्हें मालूम था कि वह बाप का पैसा पानी की तरह मौज-मस्ती और मित्र मंडली में बहा रहा है। बेटे ने कहा- अब आप ही मेरे लिए पिताजी की जगह है। बड़ा अच्छा हुआ जो आप आए। चार दिन अब यही बिताएं। वृद्ध महाशय को गुजिया पसंद थीं। इसलिए घर में गुजियां बनीं। वृद्ध महाशय की थाली में घी से तली हुई ताजा गुजिया परोसी गईं। मुंह में रखते ही वृद्ध महाशय ने कहा- बेटा। गुजिया तो बासी है। बेटे ने कहा- चाचाजी। गुजिया तो अभी-अभी तलकर झरने से उतारा है। घी निथरने पर आपकी थाली में परोसा है। फिर आप बासी कैसे कह रहे हैं। यह बहुत बासी है। मेरे साथी ने कितने कष्ट से पैसा कमाया। उन्हें गुजरे एक ही साल हुआ, इसी बीच तुमने आधी संपत्ति उड़ा दी; तब आगे क्या करोगे। तुम अपने परिश्रम से कमाए धन से गुजिया बनाते तो मैं उसे ताजा कहता। ताजा गुजिया मुझे बहुत पसंद है, पर लगता है कि वह मेरे नसीब में नहीं लिखी है। वृद्ध महाशय की बातें सुन बेटा सकपकाया। उसने उनके चरण छुए और कसम खाई कि अब से वह बासी कमाई की रोटी नहीं खाएगा और न पिता संपत्ति को मौज-शौक में उड़ाएगा।

१९०५) **किताबी ज्ञान-** पुराने जमाने की बात है। एक व्यक्ति अध्ययन करने काशी गया। विभिन्न शास्त्रों की जानकारी प्राप्त करने में उसे बारह वर्ष लग गए। जब वह लौटा तो घर के लोग काफी प्रसन्न हुए। पत्नी ने उसके स्नान के लिए गर्म पानी तैयार किया। वह उस बर्तन को लेकर स्नान गृह गई। उसने देखा कि वहां हजारों चींटियां हैं। उसने सोचा कि कहीं वे बेचारी बेमौत न मर जाएं, इसलिए उसने गर्म पानी के बर्तन को दूसरे स्थान पर रख दिया। पति आया और बर्तन को उठाकर फिर पहलेवाले स्थान पर ले गया और वहीं स्नान करने लगा। पत्नी ने देखा तो वह परेशान हो गई। उसने कहा, मैंने गर्म पानी का यह बर्तन वहां रखा था, यहां कैसे आ गया? पति ने कहा, तुम भी अजीब बात करती हो। स्नान का स्थान यही है। मैं यहीं नहाऊँगा न। मैं ही उस बर्तन को यहां उठा लाया। इस पर पत्नी बोली, मैं भी पहले यहीं रखना चाह रही थी, लेकिन यहां चींटियां बहुत हैं। आपके स्नान के पानी से वे सब मर जाएंगी। इसलिए मैंने इसे दूसरे स्थान पर रखा था। पति बोला, यह तो अजीब मूर्खतापूर्ण बात है। क्या मैं चींटियों को जिलाने के लिए ही जनमा हूं? अगर मैं इसी तरह हर किसी की चिंता करता रहा तो जीना मुश्किल हो जाएगा। इस बात से पत्नी दुखी हो गई। उसने कहा, बारह वर्ष तक आपने विद्याध्ययन किया। काशी में रहे। लेकिन समझ में नहीं आता कि आपने क्या हासिल किया। ऐसे किताबी ज्ञान से क्या लाभ, जो आपके भीतर संवेदना न पैदा कर सके। क्या आप इतना भी नहीं समझ सके कि किसी प्राणी को अकारण पीड़ा नहीं पहुंचानी चाहिए। ज्ञान का सार तो संवेदनशीलता है। यदि हमारे मन में दूसरों के प्रति सहानुभूति नहीं जागी तो बहुत बड़ा बौद्धिक ज्ञान भी उपयोगी नहीं है। यह सुनकर पति लज्जित हो गया और वहां से निकलकर दूसरी जगह नहाने लगा।

१९०६) **पुरस्कार-** पुराने जमाने में एक राजा था। उसे सुंदर इमारतें बनवाने का शौक था। उसने दूर-दूर से कुशल शिल्पियों को अपने राज्य में बुला रखा था ताकि वे राज्य में और सुंदर-सुंदर इमारतों व विशाल प्रासादों और भवनों का निर्माण कर सकें। राजा शिल्पियों का आदर भी करता था और उन्हें उचित पारिश्रमिक के अलावा पुरस्कार भी देता था। इन्हीं शिल्पियों में एक अत्यन्त अनुभवी शिल्पी भी था जो अब वृद्ध हो गया था। उसने वर्षों तक राज्य की सेवा करते हुए अनेक उत्कृष्ट भवनों का निर्माण किया था। एक दिन वृद्ध शिल्पी ने राजा से कहा, महाराज मैंने जीवन भर राज्य की सेवा की है लेकिन अब मैं वृद्ध हो गया हूँ इसलिए मुझे राज्य की सेवा से मुक्त करने की कृपा करें। राजा ने वृद्ध शिल्पी की बात बड़े ध्यानपूर्वक सुनी और उससे कहा, महान शिल्पी आपकी सेवाओं के लिए मैं ही नहीं, पूरा राज्य आपका कृतज्ञ है। आपको

सेवानिवृत्त होने का पूरा अधिकार है लेकिन मेरी ख्वाहिश है कि सेवानिवृत्ति से पहले आप मेरे लिए एक भवन और बनाओ जो आज तक बने सभी भवनों से श्रेष्ठ व उत्कृष्ट हो। शिल्पी राजा की ख्वाहिश को कैसे टाल सकता था। वह भवन बनाने में जुट गया लेकिन बेमन से। उसने उस श्रेष्ठता व उत्कृष्टता का परिचय नहीं दिया जिसकी उससे उपेक्षा थी। बस किसी तरह भवन पूरा कर दिया और राजा से पुन: सेवामुक्ति की प्रार्थना की। राजा ने कहा, मैं आपकी कला से अत्यन्त प्रभावित हूं और इसीलिए मैंने आपसे इस उत्कृष्ट भवन का निर्माण करवाया है ताकि आपको पुरस्कार स्वरूप यह भवन दे सकूं।

१९०७) बुद्धिमान कौन- वजीर के अवकाश लेने के बाद बादशाह ने वजीर के रिक्त पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार बुलवाए। कठिन परीक्षा से गुजर कर ३ उम्मीदवार योग्य पाए गए। तीनों उम्मीदवारों से बादशाह ने एक-एक कर एक ही सवाल किया, मान लो मेरी और तुम्हारी दाढ़ी में एकसाथ आग लग जाए तो तुम क्या करोगे? जहाँपनाह, पहले मैं आप की दाढ़ी की आग बुझाऊँगा, पहले ने उत्तर दिया। दूसरा बोला, जहाँपनाह पहले मैं अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊँगा। तीसरे उम्मीदवार ने सहज भाव से कहा, जहाँपनाह, मैं एक हाथ से आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊँगा और दूसरे हाथ से अपनी दाढ़ी की। इस पर बादशाह ने फरमाया, अपनी जरूरत नजरंदाज करने वाला नादान है। सिर्फ अपनी भलाई चाहनेवाला स्वार्थी है। जो व्यक्तिगत जिम्मेदारी निभाते हुए दूसरे की भलाई करता है। यही बुद्धिमान है। इस तरह बादशाह ने वजीर के पद पर तीसरे उम्मीदवार की नियुक्ति कर दी।

१९०८) साहस का इनाम - एक राजा का प्रधानमंत्री ईमानदार, साहसी और निष्ठावान था। वह बूढ़ा हो गया था और उसके बचने की उम्मीद नहीं रह गई थी। राजा को चिंता हुई कि उसके बाद राज्य की देखभाल कौन करेगा। दूसरे मंत्री उतने योग्य नहीं थे। उन्हीं दिनों राजा का एक प्रिय घोड़ा भी बीमार था। तरह-तरह के इलाज के बाद भी वह ठीक नहीं हो रहा था। राजा ने आदेश जारी कर दिया कि जो मंत्री घोड़े के ठीक होने का समाचार लेकर आएगा, उसी को प्रधानमंत्री बनाया जाएगा। परंतु जो उसकी मौत की खबर लेकर आएगा उसे फांसी दी जाएगी। इस आदेश से सभी मंत्री मुसीबत में फंस गए। सभी जानते थे कि घोड़ा ठीक नहीं होगा लेकिन राजा के पास जाकर हर मंत्री यही कहता, महाराज, वह ठीक हो रहा है। एक दिन घोड़ा मर गया। राजा को यह खबर कौन दे, इसको लेकर मंत्रियों में झगड़ा शुरू हो गया। झगड़ा बढ़ता देख अस्तबल का एक नौकर आया। उसने कहा कि वह यह खबर देगा। एक मंत्री ने कहा, तुम जानते हो, घोड़े की मृत्यु की खबर देनेवाले को मौत की सजा मिलेगी। उसने कहा, आप की जान के सामने हमारी जान की कीमत ही क्या है। नौकर राजा के पास जाकर बोला, राजन मैं मंत्रियों की तरफ से आया हूं। राजा ने पूछा, घोड़े की हालत कैसी है? नौकर ने कहा, अब उसे कोई दुख-दर्द नहीं है। ऐसी गहरी नींद में सोया है कि हिलता-डुलता तक नहीं। राजा ने पूछा, क्या वह मर गया? नौकर ने कहा, हां राजन्। राजा ने कहा, तुम जानते हो न घोड़े की मौत की खबर सुनानेवाले को मौत की सजा मिलेगी। इस पर नौकर ने जवाब दिया, मेरा सिर हाजिर है। आखिर घोड़े की लीद उठानेवाले की कीमत ही क्या है। राजा ने कहा तुम निर्भीक, ईमानदार और निष्ठावान हो। हमें तुम्हारे जैसे व्यक्ति की तलाश थी। राजा ने उसे प्रधानमंत्री बना दिया।

१९०९) उसका मरद - रात को करीब ९ बजे परिवार में कपड़े धोनेवाली कमलाबाई अपने दो छोटे-छोटे बच्चों के साथ हमारे घर पर आ गई। वह बुरी हालात में थी। चेहरे व हाथ-पांव पर जगह-जगह चोट के निशान थे। पूछने पर मालूम पड़ा कि उसके पति ने मारा और उसे घर से निकाल दिया है।

हमें बहुत दया आई और हमने उसकी मलहम पट्टी की, खाने-पीने और रात को सोने का प्रबंध किया। सुबह कमलाबाई आभार प्रकट करने आई। कमलाबाई की रात की हालत की बात करते-करते मैंने गुस्से में, उसके पति के बारे में कुछ अपशब्द

कह दिए। यह सुनते ही अभी तक बार-बार आभार प्रकट करती कमलाबाई ने अचानक रौद्र रूप धारण कर लिया और गुस्से में बोली- साहब, हमारे मरद को गाली नहीं देना हां। यह कह गुस्से में पांव पटकती वह कमरे से बाहर चली गई।

१९१०) असली हीरा - शूरवीर नामक एक राजा बहुत ही ईमानदार, नेक दिल व कुशल शासक था। शूरवीर अपनी प्रजा की संतुष्टि के लिए हर संभव कोशिश करता था। वह प्राय: रोज वेश बदलकर अपनी प्रजा के दुख-दर्द को समझता और उन्हें दूर करने का प्रयास करता। एक दिन वह ऐसे ही वेश बदलकर घूम रहा था। घूमते-घूमते वह घने जंगलों तक पहुंच गया।

जंगल में उसने देखा कि एक बूढ़ा लकड़हारा पसीने से लथपथ लकड़ियां काट रहा है। तभी उसक नजर लकड़हारे के पास एक चट्टान से फूटती तेज रोशनी पर पड़ी। राजा की उत्सुकता जागी। वह रोशनी के करीब पहुंचा। वहां पहुंच कर वह दंग रह गया। उसने देखा कि जहां से रोशनी फूट रही थी वहां बेशुमार हीरे दबे हुए थे। पर लकड़हारे को उनसे कोई मतलब नहीं था। वह उनसे बेखबर अपने काम में लगा हुआ था।

राजा लकड़हारे के पास जाकर बोला, बाबा, आपके नजदीक ही एक चट्टान में असंख्य हीरे धंस पड़े हैं और उनकी रोशनी यहां तक पहुंच रही है। क्या आपको उन हीरों की जानकारी नहीं है? यदि आप इनमें से एक हीरा भी निकालकर बेच दें तो आप आजीवन बिना मेहनत किए अच्छे से अच्छा खा-पीकर अपना जीवन गुजार सकते हैं। राजा की बात पर लकड़हारे ने विनम्रतापूर्वक कहा, बेटा, ये हीरे मैं बरसों से यहां देख रहा हूं। पर जब ईश्वर ने मुझे हाथ-पैर रूपी सजीव हीरे दिए हैं तो मैं बिना मेहनत किए इन बेजान हीरों की मदद से अपना जीवनयापन क्यों करूं? इन हीरों के कारण मैं आलसी हो जाऊंगा, जिससे मेरे हाथ-पैर बेकार हो जाएंगे, मुझे कई बीमारियां घेर लेंगी। ऐसे में लाखों बेजार हीरे भी मेरी बीमारी को दूर नहीं कर पाएंगे। बीमारी को दूर भगाने की सबसे सरल व उत्तम तरीका कड़ी मेहनत है। पुरुषार्थ ही मनुष्य को स्वास्थ्य, खुशी व लंबी आयु प्रदान करता है। वास्तव में पुरुषार्थ ही असली हीरा है। यह सुनकर राजा लकड़हारे के सामने नतमस्तक हो गया।

१९११) एक बादशाह बहुत उदार प्रवृत्ति के थे। पूरे राज्य में उनका जन्मदिन धूमधाम के साथ मनाया जा रहा था। राज्यभर से लोग उनके लिए कीमती उपहार लेकर आ रहे थे। उत्सव देर रात तक चला। समारोह की समाप्ति के बाद जब बादशाह आराम के लिए जाने लगे तो किसी गांव से एक वृद्ध व्यक्ति बधाई देने आ पहुंचा। वह मिट्टी के छोटे से बर्तन में थोडी घरकी मिठाई लेकर गांव से पैदल चलकर आया था और उसके चेहरे पर थकान साफ नजर आ रही थी। बादशाह ने रुककर बड़े प्रेम से उसका वह उपहार स्वीकार किया। थोड़ी मिठाई खुद खाई और बाकी उस वृद्ध को खिलाई। वृद्ध की आंखों में आंसू आ गए। बादशाह ने कहा, बाबा, प्यार से लाई गई आपकी यह मिठाई मेरे जन्मदिन का सर्वोत्तम उपहार है क्योंकि इसमें शुद्ध प्यार की भावना है। आपकी इस भावना ने ही इस उपहार को इतना अमूल्य बना दिया है।

१९१२) तलवार की हार - एक फकीर बहुत शांत और शालीन स्वभाव का था। एक बार वह सफर के लिए कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे एक डाकू मिला। उसने लूटपाट के इरादे से फकीर को पकड़ लिया।

फकीर ने बड़े शांत भाव से उसे समझाया कि उसके पास लूटने के लायक कोई सामान नहीं है। सारी जामा तलाशी लेने के बाद डाकू ने जब फकीर के पास कुछ भी नहीं हासिल किया तो उसका पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। डाकू ने फकीर के सामने म्यान से तलवार निकाल दी। फकीर मुस्कराया। डाकू ने कहा- बाबाजी, मौत सामने खड़ी है और तुम हंस रहे हो। फकीर ने जवाब दिया- जहां मुस्कान फैलती है, वहां तलवार हार जाती है। बाबा की निडरता भरी हंसी के आगे डाकू के हाथ से तलवार छूट गई।

१९१३) एक दिन की बात है। एक शातिर चोर को कुछ गांव वालों ने रात के समय पकड़ लिया और पेड़ से बांध दिया। फिर सोचने लगे कि उसे क्या सजा दें। हर कोई चोर के लिए अलग-अलग सजा का सुझाव दे रहा था। आखिर तय यह किया गया कि गांव के मुखिया से जाकर पूछा जाये। चोर को वहीं बंधा हुआ छोड़कर वे उसकी सजा पूछने मुखिया के पास चले गये। चोर अपनी मुक्ति का उपाय सोच रहा था। तभी वहां भेड़ों का रेवड़ (झुंड) लिये एक चरवाहा आया। उसने चोर से पूछा, तुम कौन हो? यहां किसने तुम्हें बांध दिया है? तुम्हारा अपराध क्या है? चोर ने बुद्धि का प्रयोग करते हुए कहा, यहां कुछ डाकू हैं, जो लोगों को लूट खसोट कर ढेरों पैसा इकट्ठा कर लेते हैं। पाप से बचने के लिए वे अक्सर काफी पैसा दान करते हैं। इधर कई दिन से वे लोग सोने की मोहरें दान करना चाहते थे पर लेनेवाला नहीं मिल रहा था। मैं एक सच्चा दरवेश हूं। वे मुझे मोहरें जबर्दस्ती दान देना चाहते हैं, इसलिए पकड़कर बांध गये। मैं उनसे और उनकी पाप की कमाई से दूर भागना चाहता हूं। चरवाहे की आंखें खुली रह गयीं। कहने लगा, अभी अंधेरा हो रहा हैं। मैं आपको खोल देता हूं, आप अपनी जगह मुझे बांध दीजिये। इसके बाद आप उन पापियों से दूर भाग जाइये और मैं गरीब उनकी मोहरें ले लूंगा। आपका भी भला और मेरा भी भला। अंधेरे में किसी को पता नहीं चलेगा कि यह आप नहीं, मैं हूं। चोर, चरवाहे को बांधकर उसका रेवड़ हांककर चलता बना। सचमुच अंधेरे में चोर और चरवाहे में भेद न कर पाने के कारण गांव वालों ने रात में चरवाहे को उठाकर समुद्र में फेंक दिया, क्योंकि चोर की यही सजा उनके मुखिया ने बतायी थी। अगले दिन चोर शान से बड़ा सा रेवड़ हांकता गांव में घुसा। उसे देखकर सबको आश्चर्य हुआ। यह कहां से आया? इसे तो कल समुद्र में डुबो दिया था। यह रेवड़ किसका है? चोर ने सबको बताया, समुद्र के देवता बहुत दयालु हैं। जो भी उन पर कुरबान होता है, गहराई में डुबकी लगाता है, उससे प्रसन्न होकर वे उसे ये सब जानवर और सम्पत्ति बख्शाते हैं। अब क्या था। गांव का गांव चल दिया समुद्र में डूबने और चोर आराम से गांव भर की सम्पत्ति पर हाथ साफ करता रहा।

१९१४) मां और शिक्षक- एक गरीब मां चाहती थी कि उसका बेटा पियानो सीख कर एक बड़ा कलाकार बने। वह उसे हर रोज संगीत शिक्षक के पास ले जाती; किंतु बच्चा चाहकर भी सीख नहीं पाता। सिखानेवाले शिक्षक काफी प्रसिद्ध थे। वे भी बच्चे को सिखाने की कोशिश करते, पर कई बार झल्ला कर मना कर देते। फिर भी मां हर रोज उसे लेकर आती और पूरे क्लास के दौरान बाहर बैठी रहती। एक दिन मास्टर ने कहा कि आपका बेटा नहीं सीख सकता, इसे ले जाओ। यह तो मेरी भी बदनामी करा देगा कि किसने सिखाया है, जो इतना बेसुरा बजाता है। वह लड़का मां के साथ वापस चला गया और फिर दोबारा क्लास के लिए नहीं आया। कुछ समय बाद स्कूल के वार्षिक उत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें पुराने छात्र भी आमंत्रित किए गए। समारोह में वह बालक भी आया। उसने मैले-कुचले कपड़े पहन रखे थे। टीचर ने उसे देखा, तो उन्हें दया आ गई। उन्होंने कहा कि आज तुम्हें भी बजाने का मौका दूंगा, लेकिन जरा बाद में। वह लड़का पीछे जाकर बैठ गया। काफी बच्चे आए और उन्होंने बहुत अच्छा बजाया। आखिर में इसकी बारी आई। लेकिन उसने इतना अच्छा पियानो बजाया कि सभी मंत्रमुग्ध हो गए। टीचर ने जाकर उसे गले लगा लिया। फिर पूछा, इतना अच्छा कैसे सीखा, तुम तो बिल्कुल नहीं बजा पाते थे। लड़के ने बताया, मेरी मां चाहती थी कि मैं अच्छा पियानो बजाना सीखूं, किंतु उन्हें कैंसर था। इसकी वजह से वह सुन नहीं सकती थीं। अब वह सुन सकती है। मैंने उसी को सुनाने के लिए बजाया था। संगीत शिक्षक श्रोताओं की ओर देखने लगा, क्या वो आई हैं? कहां बैठी हैं? बच्चे ने धीरे से कहा, वे जिंदगी की इस लड़ाई में आज हार गईं। लेकिन स्वर्ग से शायद वे मेरा पियानो सुन सकें। सुन कर सबकी आंखें भींग गईं। और टीचर ने उस बच्चे से माफी मांगी। सच्चा शिक्षक वह नहीं, मां थी जिसके पास इतना धैर्य था।

१९१५) प्यार की पुचकार- एक राजा घोड़ों का बड़ा शौकीन था। एक बार उसने एक व्यापारी से घोड़े मंगवाए। राजा ने अपने दोनों पुत्रों को बुलवाया और कहा, इनको दौड़ाकार इनका गुण-दोष परखो। वे लाखों रुपयों के मूल्यवान घोड़े थे। राजा को श्रेष्ठ घोड़े खरीदने थे। राजकुमारों ने घोड़ों पर बैठकर कुछ दूर जाकर उन्हें जांचा। राजा ने राजकुमारों से पूछा, बोलो, कैसे हैं ये? क्या हम इन्हें खरीद लें? बड़ा राजकुमार बोला, महाराज, बिल्कुल खराब घोड़े हैं। ये हमारे किसी काम के नहीं है। छोटे राजकुमार से पूछा गया तो वह कहने लगा, महाराज, बहुत बढ़िया घोड़े हैं। इन्हें बिना कुछ सोचे खरीद लीजिए। राजा के सामने दुविधा खड़ी हो गई। एक राजकुमार घोड़ों को अयोग्य कह रहा था, जबकि दूसरा राजकुमार उन्हें योग्य और उपयोगी बता रहा था। आखिर किसकी राय को महत्व दें। राजा ने छोटे राजकुमार से कहा, बेटा, तुम्हारा भाई तो तुम्हारे विपरीत मत प्रकट कर रहा है। आखिर तुमने इनमें क्या अच्छाई देखी? छोटे राजकुमार ने कहा, महाराज, भैया की राय भी ठीक है और मैं जो कह रहा हूं, वह भी ठीक है। वास्तव में भैया ने घोड़ों को अपनाया नहीं, बल्कि सीधे उन पर सवारी गांठनी चाही तो घोड़ों ने उन्हें गिरा दिया और मैंने पहले घोड़ों को प्यार दिया, फिर उन पर सवारी की इसलिए मेरे सामने कोई समस्या नहीं आई। मुझे लगता है अपरिचित घोड़े पर सीधे सवारी नहीं करनी चाहिए, पहले उसे प्यार से पुचकारना चाहिए। इंसान हो या जानवर, सब प्यार के भूखे होते हैं। यह सुनकर राजा ने छोटे राजकुमार को गले लगा लिया।

१९१६) कोयल- गरमियों की एक सुबह घनिष्ठ मित्र तोताराम और कल्लू एक जंगल में गए। सहसा उन्हें कोयल की कुहूक सुनाई पड़ी। यह एक पक्षी की आवाज है जो किसी मंगल की सूचना देती है। अंधविश्वासी तोताराम ने कहा, मैंने इसकी आवाज सुबह-सुबह सुनी है। मुझे विश्वास है कि आज का दिन बड़ा भाग्यशाली होगा। अवश्य ही मुझे रूपयों से भरा थैला मिलेगा। नहीं। कल्लू ने तोताराम की बात का प्रतिवाद किया, जो उससे भी अधिक वहमी था, तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली नहीं हो। मुझे विश्वास है, यह आवाज मेरे लिए अधिक भाग्यशाली साबित होगी। तुम देखना, जरूर मुझे अच्छी-खासी रकम प्राप्त होगी। खूबसूरत मौसम का मजा लेने के बजाय वे दोनों इसी बात पर लड़ने लगे। तू-तू, मैं-मैं के बाद हाथापाई पर उतारू हो गए। कुछ ही समय में वे बुरी तरह जख्मी हो गए। दोनों डॉक्टर के पास पहुँचे। डॉक्टर ने उनसे पूछा कि वे आखिर इस स्थिति में पहुँचे कैसे? सारी घटना बयान करने के बाद उन दोनों ने डॉक्टर से पूछा, आप बताएँ कि कोयल ने किसके भाग्यशाली होने की सूचना दी थी? डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, कोयल ने मेरे भाग्यशाली होने की सूचना दी थी। अगर तुम दोनों इसी तरह लड़-झगड़कर हाथ-पैर तोड़ते रहे तो मुझे रूपयों का ढेर तुम्हारे इलाज के एवज में मिलता रहेगा। शिक्षा- बेकार के झगड़े से दूसरों का ही फायदा होता है।

१९१७) एक व्यवसायी के पांच पुत्र थे। सभी मिलजुल कर रहते थे। व्यवसायी की मृत्यु के बाद पुत्र अलग-अलग हो गए और अपना अलग-अलग व्यवसाय करने लगे। पांचों भाई अलग-अलग थे, लेकिन जब भी किसी संयुक्त पारिवारिक दायित्व को पूरा करने का अवसर आता, सभी मिलजुल कर उस पूरा करते। सभी भाइयों का व्यवसाय अच्छा चल रहा था, लेकिन बड़े भाई का व्यवसाय सबसे ज्यादा अच्छा था। अलग होने के कुछ दिनों बाद ही बड़े भाई ने कहना शुरू कर दिया कि उसकी आय कम है और खर्च ज्यादा। कहता था, हमारी आय में तो हमारा अपना खर्च ही मुश्किल से चल पाता है। ऐसा वह संयुक्त पारिवारिक दायित्वों से बचने के लिए कहता था। धीरे-धीरे उसका कथन वास्तविकता में बदलने लगा।

बाकी सभी भाइयों के परिवार सीमित थे, लेकिन बड़े भाई का परिवार लगातार बढ़ता गया। एक बेटे की चाह में पहले ही पांच बेटियां हो चुकीं थीं। अब एक और बेटे की चाह में दो और बेटियों ने आकर परिवार के आकार को अच्छा-खासा विस्तृत कर दिया। समय बीतता गया और सचमुच ऐसे हालात बन गए कि परिवार का खर्च चलना मुश्किल हो गया।

समृद्धि का धीरे-धीरे लोप होता चला गया।

ऐसा हुआ बड़े भाई की सोच के कारण। बड़ा भाई स्वार्थी हो गया था। उसकी सोच विकृत हो गई थी। विकृत सोच के कारण परिवार इतना बढ़ गया और समृद्धि का भी लोप हो गया।

१९१८) खजाने का रखवाला- बगदाद के खलीफा हजरत अली अपने कुछ खास उसुलों के लिए जाने जाते थे। उनके दिल में प्रजा के लिए बेहद प्यार था। वह कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करते थे। वह भी अन्य कर्मचारियों की तरह राजकाज और प्रजा की सेवा के बदले हर रोज शाम में सिर्फ तीन दिरहम लिया करते थे। दिरहम वहां की मुद्रा थी। उनका यह वेतन दूसरे कर्मचारियों के वेतन से बहुत कम था। अक्सर उनके सलाहकार और दोस्त उनसे कहा करते थे, आप तो राज्य के मालिक हैं और यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। आपको राज्य की सुविधाओं का खुलकर उपभोग करना चाहिए। खूब ऐशोआराम से जीना चाहिए। आप इस तरह अभाव और सादगी से क्यों जीते हैं? इस पर हजरत अली का जवाब होता था, राज्य का खजाना और सुविधाएं मेरे और मेरे परिवार के उपभोग के लिए नहीं है, मैं बस इनका रखवाला हूं। प्रजा ने मुझे इनकी हिफाजत की जिम्मेदारी सौंपी है। फिर मैं इनका इस्तेमाल कैसे कर सकता हूं। खलीफा के इस जवाब से सब निरुत्तर हो जाते थे। खलीफा की बेगम भी अपने शौहर की सिद्धांतप्रियता से भलीभांति परिचित थी। फिर भी एक बार उसने उनसे प्रार्थना की, अगर आप मुझे तीन दिनों की तनख्वाह पेशगी ला दें, तो मैं ईद पर बच्चों के लिए नए कपड़े बनवा लूं। खलीफा बोले, अगर मैं तीन दिन जिंदा न रहा तो यह कर्ज कौन चुकाएगा। तुम खुदा से मेरी जिंदगी के तीन दिनों का पट्टा ला दो, तो मैं खजाने से तीन दिन की तनख्वाह पेशगी उठा लूंगा। बेगम को अपनी भूल का अहसास हुआ।

१९१९) असली धन- एक सेठ के यहां कई नौकर काम करते थे। उनमें शंभु नामक एक रसोइया भी था। वह सेठजी के परिवार और सभी नौकरों का भोजन एक साथ बनाता था। एक दिन सेठजी जब खाना खाने लगे तो उन्हें सब्जी मीठी लगी। वह समझ गए कि शंभु ने भूल से सब्जी में नमक की जगह चीनी डाल दी है। मगर सेठजी ने उसके सामने बड़े चाव से सारी सब्जी खाई। शंभू को कुछ पता नहीं चला। खाने के बाद सेठजी ने शंभु से कहा, शायद तुम परेशान हो। क्या बात है? शंभू ने कहा, पत्नी कई दिनों से बीमार है। यहां से जाने के बाद उसकी देखभाल करने में ही सारी रात बीत जाती है। सेठ ने उसे कुछ पैसे देते हुए कहा, तुम अभी घर चले जाओ और पत्नी जब पूरी तरह स्वस्थ हो जाए तभी आना। और पैसे की जरूरत पड़े तो आकर ले जाना। शंभु चला गया। उसके जाने के बाद सेठानी ने कहा, आपने उसे जाने क्यों दिया। अभी तो और लोगों ने खाना तक नहीं खाया है। सारा काम पड़ा है। सेठ जी बोले, उसके मन में अपने से ज्यादा हमारी चिंता है तभी उसने एक दिन छुट्टी नहीं की। आज उसने सब्जी में नमक की जगह चीनी डाल दी है। मैं उसके सामने सब्जी खा गया ताकि उसे कुछ पता न चले। है तो बहुत छोटी बात, लेकिन यदि यह सब्जी दूसरे नौकर खाएंगे तो शंभु के आने पर सब उसका मजाक उड़ाएंगे। वह लज्जित होगा। इसलिए तुम इसे जानवरों को खिला दो और दूसरी सब्जी बना कर सभी को खिलाओ। पत्नी बोली, आप भी कमाल करते हैं। हमारे पास संपत्ति है, सम्मान है फिर भी नौकरों को लेकर इतनी चिंता क्यों? सेठजी ने कहा, आज हमारे पास जो कुछ भी है, वह इन्हीं लोगों की मेहनत और ईमानदारी का फल है। मैंने अभी तक जो रिश्ते कमाए हैं उन्हें खोना नहीं चाहता। असली धन तो यही है।

१९२०) वैद्यजी का बेटा- राज वैद्य के दिवंगत होने से राजा ने वैद्य के पुत्र से कहा- बेटे, आप कुछ पढ़े-लिखे हो तो हम आपको आपके पिता के स्थान पर राज वैद्य नियुक्त कर दें। वैद्यपुत्र की खुशी की तरंगें उछलने लगीं। वह अपने अज्ञान को छुपाने के लिए पढ़ने के बहाने परदेश चला गया।

वैद्य पुत्र ने एक मशहूर वैद्य के पास रहकर पढ़ना प्रारंभ किया। एक दिन की बात है, एक बकरी के गले में चरते-चरते ककड़ी अटक गई। बकरी का मालिक अपनी बकरी को वैद्यराज के पास लाया और बोला- मेरी बकरी को ठीक कर दो। वैद्यजी ने पूछा- तुम्हारी बकरी कहां चरती थी? उसने कहा- पास के खेत में चरती थी। वैद्यजी ने बकरी के गले में एक कपड़ा बांधकर उसे खूब जोर से खींचा। ककड़ी टूटकर गले के बाहर आ गई। वैद्य पुत्र भी यह सारा नजारा देख रहा था। उसने सोचा- यह कोई वैद्यक प्रक्रिया होनी चाहिए, जो इतनी जल्दी बकरी के गले की ककड़ी टूटकर बाहर आ गई।

थोड़े दिनों वह वैद्य पुत्र बनकर अपने नगर में आ गया। राजा ने वैद्य पुत्र को सम्मानित कर राजवैद्य के पद पर नियुक्त कर दिया। एक दिन रानी के गले में एक फोड़ा निकल आया। राजवैद्य को बुलाकर कहा गया कि रानी की बीमारी को जल्दी से दूर करें। राजवैद्य ने महल के कर्मचारियों से पूछा- बताओ, महारानी कहां चरती थीं? कर्मचारियों को लगा वैद्यजी ऐसे कैसे पूछ रहे हैं, बात कुछ समझ में नहीं आ रही है। जवाब दें, तो क्या दें? वे लोग सोच ही रहे थे कि इतने में वैद्यराजजी ने एक कपड़ा लेकर उसे रानी के गले में लपेटकर खूब जोर से खीचा कि रानी सांस घूटने लगी। देखते-देखते रानी बेहोश हो गई और परलोक सिधार गई। राजा ने वैद्य को पूछा- यह तुमने क्या किया। उसने सारा घटनाक्रम दोहराया। राजा समझ गया कि वैद्य पुत्र पढ़ा तो है पर गुना नहीं। अब राजा भी पछताने लगा कि उसने बिना विचारे कुपात्र को क्यों राज वैद्य बना दिया।

१९२१) एक बड़े अमीर घर का लड़का था। धनमद के कारण उच्छृंखल बन गया था, मदिरापान की आदत पड़ गयी थी। एक रात नशा करके होश-हवास खोकर गन्दे नाले में गिर पड़ा। सुबह लोगों ने उसे देखा, तो नाले से बाहर निकालकर उसके घर तक ले गये। रातभर लड़का घर न लौटा था तो उसकी माँ भी चिन्तित थी। बेटे को देख बड़े दुलार से घर में लेने लगी। किन्तु बेटा तो अब भी नशे में था। चिल्लाने लगा, यह मेरा घर नहीं, यह मेरी माँ नहीं, मेरे साथ धोखा किया गया है, मुझे गलत ठिकाने इन लोगों ने पहुँचाया है। माँ ने, लोगों ने बहुत समझाया, यही तेरी माँ है, यही तेरा घर है किन्तु लड़का मानने को तैयार ही न था। अब क्या करना चाहिए? इतने में एक अनुभवी व्यक्ति बैलगाड़ी अपने हाथ में ले ली। लड़के से कहा, तुम्हारी बात बिलकुल सही है, चलो बैलगाड़ी में बैठ जाओ। तुम्हारे सच्चे घर तक मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा। लड़का मान गया, गाड़ी में बैठ गया। गाड़ीवाले अनुभवी व्यक्ति ने दो-चार घण्टे गाड़ी को गाँव के बाहर घुमायी। इतने समय में लड़के का नशा उतर गया था। तब वही पुराने ठिकाने घर के सामने गाड़ी खड़ी कर दी और कहा, आ गया न तुम्हारा घर? लड़के ने कहा, हाँ, हाँ यही है मेरा घर। आपने मुझे सही ठिकाने पहुँचा दिया।

१९२२) प्रयत्न का फल - एक बालक ईश्वर का परम भक्त था। एक रात उसने स्वप्न में देखा कि उसके कमरे में अचानक अत्यधिक प्रकाश फैल गया और स्वयं ईश्वर उसके सम्मुख खड़े हैं। ईश्वर ने कहा, तुम मेरे भक्त हो इसलिए मैं तुम्हें एक कार्य सौंप रहा हूं। सुबह अपने घर के बाहर तुम्हें एक बड़ी चट्टान नजर आएगी। तुम्हें उसे धकेलने का कार्य करना है।

वह बालक ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखता था, इसलिए उसने सोच-विचार किए बिना उनके आदेश को माना। सुबह जब उठा तो उसने देखा कि उसके घर के बाहर वास्तव में एक बड़ी सी चट्टान थी। वह पूजा-पाठ करने के बाद चट्टान को धकेलने में जुट गया। आते-जाते लोग उसे आश्चर्य से देख रहे थे और समझा रहे थे, चट्टान नहीं खिसकेगी, तुम व्यर्थ प्रयास मत करो। पर वह बालक प्रभु के आदेश को मानकर नियमित यत्न करते हुए वर्षों तक इस कार्य में लगा रहा। इस दौरान उसका शरीर मजबूत हो गया, भुजाएं भी बलिष्ठ हो गईं लेकिन वह निराश होने लगा कि इतने प्रयासों के बावजूद चट्टान तो रत्ती भर भी नहीं खिसकी। उसे लगा कि अब उसे यह कार्य बंद कर देना चाहिए। वह पछता रहा था कि बेकार ही स्वप्न की बात सच मान ली।

HHH(६९१)HHH

संयोग से उसी रात उसे फिर ईश्वर के दर्शन हुए। बालक ने ईश्वर से पूछा कि उन्होंने उसे किस कार्य में लगा दिया है, चट्टान तो खिसक नहीं रही है, तो उसे इतने परिश्रम का क्या फल मिला? इस पर ईश्वर मुस्कराए और बोले, कोई भी कार्य कभी व्यर्थ नहीं होता। तुम यह क्यों नहीं देखते कि पहले तुम शारीरिक रूप से कमजोर थे, पर अब ताकतवर बन चुके हो। तुम्हारे जीवन से आलस्य जाता रहा और तुम परिश्रमी हो गए। हम अपने हर प्रयत्न से प्रत्यक्ष लाभ की कामना करने लगते हैं लेकिन हम भूल जाते हैं कि हरेक प्रयास में कई परोक्ष लाभ भी छिपे होते हैं।

१९२३) सहारा- गांव में अकेली रह रही मां से मिलने बेटा अभी-अभी शहर से आया था। वह अगले साल सेवानिवृत्त होने वाला था। बड़े चाव से बोला- मां, गाव में मुश्किल से दो घण्टे बिजली आती है, पानी की कितनी किल्लत है और ढंग की सब्जी व फल भी नहीं मिलते। इतना ही नहीं यदि बीमार पड़ जाओ तो समझो नरक भोगना पड़ेगा। दस किलोमीटर पर एक ही डॉक्टर है और वह भी नीम हकीम खतरा- ए जान। बेटे ने फिर अपनी बात को शुरू किया- मां, तुम कहती हो कि सेवानिवृत्ति के बाद मैं भी गांव में आकर बस जाऊं। किसके सहारे पड़ी हो तुम यहां। मैं तो कहता हूं कि तुम भी मेरे साथ शहर चल पड़ो। एक बड़ा सा प्लैट मैंने खरीद लिया है।

वहां मजे से रहेंगे। मां ने सूझबूझ भर उत्तर दिया, बेटे, तुम बीस-बाइस बरस शहर में क्या रहे। वहां के गुण गाने थकते नहीं हो। मैंने तो सत्तर साल गांव में गुजारे हैं। मुझे भी तो यहां की मिट्टी से लगाव है। क्या मुझे अब किसी के सहारे की जरूरत है? यहां बिजली-पानी, सब्जी-फल या डॉक्टर न हों मगर एक बिरादरी तो है। यहां लोगों के पास एक दूसरे के लिए फुर्सत तो है। देखा नहीं दिनभर औरतें आकर मेरे पास बैठी रहती हैं।

मां फिर बोली, वहां शहर में तुम्हारी चमक-दमक वाली कोठियों में लोग एक दूसरे से सीधे मुंह बात तक तो करते नहीं, वहां शहर में तुम किसके भरोसे अपना बुढ़ापा काटोगे? मां की सच्ची बात सुनकर बेटा निरुत्तर हो गया।

१९२४) मछलियाँ और साँप- बुद्धूराम बड़ा नासमझ लड़का था। एक दिन वह नजदीक के एक तालाब में मछलियाँ चुराने गया। किनारे पर औंधे लेटकर उसने एक बाँह पानी के भीतर डाल दी और मछलियों के हाथ में आने का इंतजार करता रहा। तभी उसे महसूस हुआ कि हाथ में कोई मछली फँसी है। वह प्रसन्न हो गया। चट उसने अपना हाथ पानी के बाहर निकाला। पर जैसे ही दृष्टि हाथों की तरफ गई, वह सन्न रह गया। पानी वाला साँप उसके हाथों से लिपटा था। चीखकर उसने साँप को वापस पानी में झटक दिया और सिर पर पैर रखकर भागा। रास्ते में मछुआरे ने उसे रोका और डाँटने लगा, अगर यह सांप जहरीला होता तो आज तुम्हारी खैर नहीं थी।

शिक्षा- हर काम तरीके से करना चाहिए।

१९२५) कड़वा घूंट- तुम्हारे घर के सामनेवाले मकान की बालकनी में खड़ी यह लड़की कौन है? बहुत ही खूबसूरत है। उसने अपने मित्र से पूछा। निगाहें युवती पर टिकी थीं।

ओह ये, यह तो आरजू है। इससे पहले कि मित्र कुछ और बोलता, वह तेजी से बोला, जिस घर भी जाएगी, घर उजाले से भर देगी। काश। यह लड़की मेरी जिंदगी में आ जाए? कहते हुए उसने एक ठंडी सांस भरी।

कहो तो तुम्हारी बात चलाऊं? मित्र ने उसकी ओर देखकर पूछा। नेकी और पूछ-पूछ। वह ऐसे खुश हो रहा था मानो दुनिया भर की दौलत उसे मिल गई हो। लेकिन इसके बारे में एक बात जानते हो? मित्र ने रहस्य झलकाते हुए पूछा। कौन-सी बात? वह उलझन में पड़ गया। इस लड़की को ब्रेस्ट कैंसर है। मित्र ने दुखी होकर बताया। क्या? लेकिन तुम्हें कैसे पता? शंकित नजरों से देखते हुए उसने पूछा। जहां इसका इलाज हो रहा है वह डॉक्टर मेरा मित्र है। उसका मुंह खुला का खुला रह गया। वह

शीघ्रता से उठा और फिर मित्र के घर की सीढ़ियां उतरता चला गया। उसकी चाहत सच का कड़वा घूंट पी नहीं सकी।

१९२६) फूल की डाली - मिस्र में नकिवेन नाम का एक बुद्धिमान राजा राज करता था। नकिवेन बहुत बड़ा ज्ञानी राजा भी माना जाता था। उसके राज में प्रजा बहुत खुश थी। एक बार राजा की श्रद्धा भक्ति पर प्रसन्न होकर आकाश देव ने राजा को दर्शन दिए। आकाश देव को सामने देखकर राजा ने सर झुका लिया। आकाश देव ने राजा के भक्ति भाव से प्रसन्न होकर कहा- राजन्, यह दिव्य तलवार लो।

इसे लेकर मैं क्या करूँगा? जिज्ञासावश राजा ने पूछा। आकाश देव ने कहा- इसे लेकर तुम विश्वविजेता बन सकते हो। यह तलवार अजेय और अचूक है।

राजा ने विनम्रतापूर्वक जवाब दिया- नहीं देव। मुझे विश्वविजयी नहीं बनना है। जिस विजय को पाने के लिए हजारों लोगों को मारना पड़े ऐसी तलवार मुझे नहीं चाहिए। आकाश देव ने राजा की बात को सराहते हुए कहा- तुम्हारे, विचार बहुत अच्छे हैं। अच्छा, लो यह पारसमणि मैं तुम्हें देता हूँ। राजा ने शांत भाव से कहा- नहीं। नहीं पारसमणि लेकर मुझे कौन सी लालसाएं पूरी करनी हैं। मुझे अतुल धन-सामग्री एकत्रित नहीं करनी है। यह धन सम्पत्ति कौन सी मेरे साथ जाएगी। हार कर आकाश देव ने कहा- लो मैं तुम्हें स्वर्ग की अप्सरा देता हूं। ताकि तुम उसके साथ शौक से मौज कर सको। आकाश देव के इस प्रस्ताव को भी ठुकराते हुए राजा ने कहा- नहीं देव, मुझे सांसारिक भोग-विलास की किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। आप देना चाहते हैं तो कोई ऐसी चीज दें जिससे सभी लोगों में आपस में प्रेम, स्नेह भाईचारा और दोस्ती बढ़ सके। दुनिया में उस वस्तु को पाकर सभी वैर-भाव भूल जाएं। दुनिया में शांति बहाल हो सके। आकाश देव ने कहा- ठीक है वत्स। यह लो फूल की डाली। इसे जहां बोओगे वहीं यह प्रेम की सुगन्ध फैलाएगी। इस डाली को जिसे भी दोगे उसका मन प्रसन्न होगा। दुनिया में प्रीति भाव का विस्तार होगा। राजा ने फूल की डाली लेकर आकाश देव के प्रति आभार प्रकट किया।

१९२७) किसान की सीख - राजा राजराजेश्वर ने सप्तद्वीप नवखंड पर कई दशकों तक राज्य किया। राज करते-करते वह अचानक वैभवशाली जीवन से उकता गए और अपने अल्पायु पुत्र को सिंहासन सौंप कर जंगल चले गए और वहां तपस्या करने लगे। वह केवल एक समय फलाहार करते और कई बार तो उन्हें उसका भी ध्यान न रहता। इस तरह काफी समय बीत गया किंतु उन्हें आत्मिक शांति प्राप्त नहीं हुई। उन्हें किसी न किसी से यह पता चलता रहता था कि उनके वन में आने के बाद से उनकी प्रजा बेहद परेशान हो गई है। राजकाज काफी गड़बड़ा रहा है। इससे वह दुखी हो जाते। एक दिन वह टहलते हुए एक खेत के पास पहुंच गए, जहां एक किसान हल चला रहा था। साधु वेश में राजराजेश्वर को देखकर किसान ने उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया और कहा, बाबा आप किस चीज की तलाश में इतने व्याकुल हैं? राजराजेश्वर को कुछ और न सूझा। वह बोले, इस समय तो मुझे भूख ने बेहद व्याकुल किया हुआ है। इस पर किसान बोला- बाबा, मेरी झोपड़ी में खाने की सामग्री रखी हुई है। आप उसे पकाकर खा लीजिए। मैं अपना काम बीच में नहीं छोड़ सकता। कर्म अधूरा छोड़ना मेरे स्वभाव में नहीं है। किसान की बात सुनकर राजराजेश्वर उसे हैरानी से देखते रहे। उसने उन्हें एक बड़ी सीख दी थी। उन्होंने खाना पकाया और किसान के साथ मिलकर खाया। फिर उसी समय वह अपने राज्य लौट गए और प्रजा की सेवा में पहले की तरह लग गए।

१९२८) सच्ची कथा का सुख- गुजरात के एक गांव में एक प्रसिद्ध संत प्रवचन के लिए आए हुए थे। शहर से अपने गांव आए एक प्रसिद्ध व्यापारी का भी मन हुआ कि खाली समय में कथा का रसास्वादन किया जाए। जब व्यापारी तेज कदमों से मंडप की ओर जा रहा था तभी उसकी चप्पल टूट गई। थोड़ी दूर पर छतरी की छाया तले एक मोची बैठा हुआ

था। व्यापारी उसके पास पहुंचा और चप्पल ठीक करने को उसे दे दी। मोची ने जल्द ही चप्पल ठीक करके व्यापारी को दे दी। इस पर व्यापारी ने उसे एक रुपया निकालकर दिया तो मोची ने पैसे लेने से इनकार कर दिया। आश्चर्य से व्यापारी ने कारण पूछा। इस पर प्रेमपूर्वक मोची बोला, आप दूसरे गांव से कथा सुनने आए हैं। मैं निर्धन हूँ। इसलिए अपना काम छोड़कर कथा सुनने नहीं जा सकता, लेकिन आप जैसे गृहस्थ की चप्पल में दो टांके लगाकर मैं कथा में अपने को शामिल मानता हूं। मोची की आत्मीयता ने सेठ को एक सच्ची कथा सुख दे दिया।

१९२९) बुढ़िया की सीख - एक राजा ने एक बड़ा यज्ञ करने का निश्चय किया। उसने सोचा कि इस अवसर पर राज्य के सारे गांवों से दूध इकट्ठा करके ब्रह्मभोज किया जाए। उसने आदेश दिया कि निर्धारित तिथि को सभी किसान अपने घरों से दूध लाकर महल के बाहर रखे बर्तन में डालें। राजा ने यह भी हुक्म दिया कि उस दिन जिसके घर जितना दूध हो वह सारा का सारा लाया जाए। राजा के हुक्म का पालन हुआ। किसी ने एक बूंद भी दूध अपने घर नहीं रखा। सारा दूध महल के बाहर रखे बर्तन में डाल दिया। राजा दूध देखने आया तो उसे यह जानकर हैरानी हुई कि राज्य का सारा दूध आने पर बर्तन आधा भी नहीं भरा। उसने सिपाहियों को गांव-गांव जाकर हर घर से दूध लाने को कहा। उन्होंने घर-घर देख डाला पर किसी के यहां दूध नहीं मिला। सिपाही निराश लौट आए। राजा भी अचंभे में था। तभी एक बुढ़िया छोटे से लोटे में दूध लेकर आई। उसने जैसे ही बर्तन में दूध डाला बर्तन लबालब भर गया। सभी आश्चर्यचकित होकर यह अजीब दृश्य देख रहे थे। राजा ने उस बुढ़िया से पूछा, क्या तुम्हें कोई जादू आता है? बुढ़िया बोली, जादू क्या होता है महाराज। मैंने आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया। मैंने सुबह उठकर गाय को दुहा। पहले उसके बछड़े ने आधा दूध पिया, बाकी बचे आधे दूध में थोड़ा-थोड़ा कुत्ते और बिल्ली ने पिया। बचा हुआ दूध मैंने आपके बर्तन में डाल दिया। राजा ने क्रोधित होकर कहा, मगर तूने ऐसा क्यों किया? तूने भगवान को बचा हुआ दूध दिया। इस पर बुढ़िया ने कहा, महाराज, भगवान का पेट भरना है तो उसके बनाए हुए जीवों का पेट भरना चाहिए। आपने घर-घर का सारा दूध मंगवा लिया। आज कितने बच्चे दूध के बगैर भूखे होंगे। क्या भगवान ऐसा दूध पिएंगे? शायद इसी से यह बर्तन खाली था। बुढ़िया की बात सुनकर राजा की आंखें खुल गई। उसने सारा दूध घर-घर बंटवा दिया।

१९३०) समझदार न्यायाधीश - पेशवा माधवराज के शासन में लोगों से बेगार लेकर सरकारी कार्य करवाए जाते थे, जिन्हें श्रमदान कहा जाता था। लोगों से प्राय: जबरदस्ती काम करवाए जाते थे। राम शास्त्री उस समय प्रधान न्यायाधीश थे। एक दिन वह कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक सिपाही किसी नौजवान किसान को पीट रहा था। उसकी मां रो-रोकर उसे छोड़ देने की प्रार्थना कर रही थी। वह किसान अपनी मां का इकलौता बेटा था और अपने खेत का काम कर रहा था। यदि वह बेगार निपटाने जाता तो उसके खेत का काम अधूरा रह जाता। यह दृश्य देखकर राम शास्त्री सिपाही के पास गए और नवयुवक को छोड़ देने को कहा। सिपाही ने प्रधान न्यायाधीश की बात नहीं मानी बल्कि उन्हें सरकारी कार्य में बाधा डालने के आरोप में पेशवा के सम्मुख पेश कर दिया। उन्हें देखकर पेशवा माधवराव बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने कहा कि प्रधान न्यायाधीश भी सरकारी कार्य में बाधा डालने के आरोप में दंड का हकदार है। यह सुनकर राम शास्त्री बेहद विनम्र स्वर में पेशवा से बोले, सरकार, आप मुझे जो भी दंड देंगे वह स्वीकार है। मगर इन दिनों खेतों में काम बहुत है। अगर ये मजदूर अपना काम छोड़कर आपकी सेवा में आते हैं तो इनके खेत बेकार पड़े रहेंगे। इससे इनका तो नुकसान होगा ही, साथ ही राज्य को भी हानि होगी। इनसे उस समय काम लेना चाहिए जब इनके पास खेतों का कोई विशेष कार्य न हो। फिर वह पकड़े गए किसानों की ओर देखकर बोले, बोलो, तुम क्या चाहते हो? इस पर सभी किसान एक स्वर में बोले, यही, जो आपने कहा। हमें अपने

राजा के लिए काम करने से इनकार नहीं है पर समय उचित होना चाहिए। किसानों की बात सुनकर पेशवा को अपना निर्णय बदलना पड़ा। उन्होंने सबको सकुशल घर लौट जाने की आज्ञा दे दी। साथ ही बेगार की प्रथा को भी समाप्त कर दिया। इसके लिए किसानों ने रामशास्त्री के प्रति आभार प्रकट किया।

१९३१) दिशाओं की पूजा - एक बार एक गृहस्थ व्यक्ति सभी दिशाओं को नमस्कार कर रहा था। उसकी इस गतिविधि को एक संत और उनके शिष्य देख रहे थे। एक शिष्य ने संत से पूछा, यह व्यक्ति दिशाओं की पूजा क्यों कर रहा है? संत बोले, चलो, उसी से पूछ लेते हैं। प्रश्न सुनकर वह व्यक्ति असमंजस में पड़ गया और बोला, यह तो मुझे भी नहीं पता। आप ही बताइए न। संत बोले, पूजा करने की दिशाएं भिन्न होती हैं माता-पिता और गृहपति पूर्व दिशा है। आचार्य दक्षिण, स्त्री-पुत्र-पुत्री पश्चिम और मित्र आदि उत्तर दिशा है। सेवक और श्रमण-ब्राह्मणों के लिए भी दिशाएं निर्धारित हैं। इसलिए सभी दिशाओं का पूजन किया जाता है। इन सभी दिशाओं का सच्चे हृदय से पूजन करने से लाभ होता है। संत का जवाब सुनकर वह व्यक्ति बोला, और तो सब ठीक है महाराज। मैं सबकी पूजा सच्चे हृदय से कर सकता हूं, परंतु सेवकों की पूजा कैसे की जा सकती है? सेवक तो स्वयं मेरी सेवा करते हैं। यह सुनकर संत बोले, पूजा का अर्थ केवल हाथ जोड़ना अथवा सिर झुकाना नहीं है, सेवकों की सेवा का स्वरूप उनके प्रति स्नेह और वात्सल्य दर्शाने में है, उनकी हर संभव मदद करने में है और उनसे प्रेम से बात करने में है। यह सुनकर वह व्यक्ति बोला, आपने मुझे सही ज्ञान कराया है। अभी तक तो मैं मात्र हाथ जोड़कर सिर नवाने को ही पूजन समझता था किंतु आज आपने मुझे असली दिशा पूजन की विधि समझाई है और मैं भविष्य में इसी तरह से पूजन कर अपने जीवन को सफल बनाऊंगा।

१९३२) राजा का त्याग - एक राजा रोज सुबह घूमने निकलता और जो भी पहला याचक दिखाई देता, उसकी मुंहमांगी मदद करता। एक दिन महल से निकलते ही उसे एक ब्राह्मण मिल गया। राजा ने पूछा, कहिए क्या सेवा करूं? ब्राह्मण संकोचवश बोला, जो भी उचित समझें। राजा ने कहा, आप ही बताइए, क्या चाहिए? ब्राह्मण में लोभ जाग उठा। उसने कहा, महाराज, आप सैर कर आएं तब तक मैं सोच लूंगा कि मुझे क्या चाहिए। राजा चला गया। ब्राह्मण ने सोचा कि ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता, इसलिए क्यों न कुछ ऐसा मांगा जाए कि फिर मांगने की जरूरत ही न रहे। राजा ने वापस आकर ब्राह्मण की इच्छा पूछी। ब्राह्मण ने पूरा राज्य मांग लिया। राजा तुरंत इसके लिए तैयार हो गया। उसने कहा, प्रियवर, मैं तो बहुत दिनों से प्रतीक्षा में था कि इस राज्य के भार से कब मुक्त हो जाऊं। आप यहीं ठहरें, मैं राज्य सौंपने का प्रबंध करता हूं। इतना कहकर राजा महल में अंदर चला गया। लेकिन इधर ब्राह्मण चिंता में डूब गया। उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि राजा इतनी आसानी से राजपाट सौंप देगा। ब्राह्मण में एक ईश्वरीय किरण सी जागी और उसने सोचा, राजा तो वास्तविक वीतरागी है। मैं तो कोरा दिखावा करता रहता हूं। यह तो सचमुच निर्लिप्त है। सर्वस्व त्याग का आदर्श लेकर चलने वाले ब्राह्मण को इस घटना से वास्तविकता का बोध हुआ। उसे अपने लोभ को लेकर पश्चाताप होने लगा। जब तक राजा मंत्री को लेकर आया, तब तक ब्राह्मण वहां से जा चुका था।

१९३३) मन की शांति - पुराने जमाने की बात है। एक राजा थे। एक बार उनसे मिलने एक भिक्षु आए। भिक्षु के उपदेश से राजा बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने भिक्षु से कहा, आपके चेहरे पर तो दिव्य शांति दिखाई दे रही है, क्या वह मुझे भी प्राप्त हो सकती है? यदि हो सकती है तो इसके लिए क्या करना होगा? मैं राजा होकर भी हमेशा अशांत रहता हूं। भिक्षु ने जवाब दिया, हां, बिल्कुल प्राप्त हो सकती है। मगर इसके लिए आपको अकेले बैठकर चिंतन करना होगा। दूसरे दिन सुबह ही राजा राजमहल के एक कमरे में अपना आसन जमाकर बैठ गए। कुछ देर बैठे रहे। पर अकेले परेशान होने लगे।

तभी एक कर्मचारी उधर सफाई के लिए आया। राजा ने उसका हालचाल पूछा तो कर्मचारी अपनी तकलीफों के बारे में बताने लगा। यह सुनकर राजा को दुख हुआ। कुछ समय बाद राजा चिंतन करते हुए राजमहल में घूमने लग गए। इस तरह घूमते हुए पहली बार उन्होंने अपने छोटे कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की और उन्हें कपड़े बांटे। शाम को वह भिक्षु से मिलने गए। भिक्षु ने पूछा, आपको कुछ शांति मिली? राजा ने कहा, नहीं महात्मन्, मुझे शांति तो प्राप्त नहीं हुई मगर अशांति थोड़ी-थोड़ी जाती रही है, जब मैंने लोगों के दुखों को जाना है। भिक्षु ने कहा, वास्तव में आपने शांति का मार्ग खोज लिया है, बस अब उस पर आगे बढ़ जाएं। राजा तभी प्रसन्न और शांत रह सकता है जब उसकी प्रजा प्रसन्न हो।

१९३४) उदारता की जीत- राजा चंद्रसेन एक न्यायप्रिय शासक था। वह कभी किसी के साथ अन्याय नहीं होने देता था। एक बार पड़ोसी राजा ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। चंद्रसेन स्वयं पड़ोसी राजा से भिड़ गया। थोड़ी ही देर में चंद्रसेन ने उसे जमीन पर गिरा दिया और उसके सिर पर तलवार का वार करने ही वाला था कि दूसरे राजा के मुंह से कुछ अपशब्द निकल गए। अपशब्द सुनकर चंद्रसेन ने अपनी तलवार रोक ली और कुछ सोचते हुए उसे म्यान में रख लिया। वहां उपस्थित सभी सैनिक आश्चर्य में पड़ गए। वे चंद्रसेन से बोले, आपने अपना हाथ क्यों रोक लिया। इसे मार डालिए। इसे जिंदा छोड़ना ठीक नहीं होगा। सैनिकों की बात सुनकर चंद्रसेन ने कहा, मैं युद्ध अपने देश की रक्षा के लिए लड़ रहा हूं। यदि मैं इसी समय इसे मार देता हूं तो मुझे अफसोस नहीं होगा मगर इसने मुझे अपशब्द कहे, जिसके कारण मेरी लड़ाई हमारे राष्ट्र की न होकर व्यक्तिगत हो गई। देश रक्षा के लिए मैं अपने पूरे युद्ध कौशल से लड़ रहा था, किंतु व्यक्तिगत होने पर मैं गुस्से में आ गया। यदि मैं इसे मार देता तो मैं स्वार्थी कहलाता। इतना कहकर चंद्रसेन ने दूसरे राजा को तलवार दी और युद्ध करने को कहा। लेकिन उस राजा ने लड़ने से इनकार कर दिया और उसके आगे सिर झुकाकर कहा, आपने अपने उच्च विचारों से मुझे जीत लिया है। अब आप चाहे तो मुझे मार दें। चंद्रसेन ने उस पर वार नहीं किया और उसे क्षमा कर दिया। वह राजा सेना सहित लौट गया।

१९३५) संगीत का सौंदर्य- फ्रांस के प्रसिद्ध संगीतकार गाल्फर्ड के पास एक लड़की संगीत सीखने आया करती थी जो अत्यंत कुरूप थी। एक दिन लड़की ने गाल्फर्ड को बताया कि जब कभी वह मंच पर जाती है तो सोचने लगती है कि अन्य लड़कियां तो बहुत ही आकर्षक हैं। कहीं लोग उसकी हंसी तो नहीं उड़ाएंगे। इस आशंका से वह ढंग से नहीं गा पाती। लेकिन घर पर अपने लोगों के बीच वह ठीक से गाती है और वहां सभी उसके गायन की प्रशंसा करते हैं। बस मंच पर जाने के समय ही वह अपनी सारी क्षमता गंवा बैठती है। गाल्फर्ड ने उसकी बातें ध्यान से सुनी। फिर अत्यंत स्नेहपूर्वक़ बोले, बेटी, संगीत का अपना सौंदर्य होता है। जो उस सौंदर्य का रस पीने आते हैं, वे गायक व गायिका का रूप नहीं देखते। फिर भी तुम ऐसा करो कि रोजाना एक बड़े शीशे के सामने खड़े होकर अपनी छवि निहारो और ऐसा करते हुए गीत गाओ। इससे तुम्हारे झिझक अपने आप खत्म हो जाएगी और यह भी समझ में आ जाएगा कि संगीत की मधुरता और संगीतकार के रूप का आपस में कोई संबंध नहीं है। दर्पण के सामने जब तुम भाव विभोर होकर गाओगी तो तुम्हारे मन से हर तरह का डर निकल जाएगा। फिर धीरे-धीरे तुम मंच पर बेफिक्र होकर गा सकोगी। लड़की ने अपने गुरु की सलाह पर उसी दिन से अमर करना शुरू कर दिया। इससे उसके भीतर आत्मविश्वास आने लगा। फिर जब वह मंच पर उतरी तो उसकी झिझक पूरी तरह खत्म हो गई। संगीत के क्षेत्र में उसने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। उसका नाम था मेरी वुडलनाल्ड।

१९३६) प्रेम का बल- एक मां अपने बेटे की शरारतों से बहुत परेशान रहती थी। वह अपने बेटे को समझाने के लिए उस पर बहुत गुस्सा करती थी लेकिन बच्चा कोई बात नहीं समझता था। बच्चे की हरकतों से वह परेशान रहने लगी। एक दिन

वह अपने बेटे को लेकर एक फकीर के पास गई। उसने फकीर से कहा, मेरा बेटा बहुत शरारतें करता है। यह उपद्रवी है, आप अगर इसे थोड़ा डरा दें तो हो सकता है, यह ठीक हो जाए। फकीर ने जब यह सुना तो वह खड़ा होकर अपनी आंखे निकाल कर इतनी जोर से चिल्लाया कि वह बच्चा तो भय के मारे भाग ही गया, उसकी मां भी घबराकर बेहोश हो गई। थोड़ी देर बाद बच्चा अपनी मां के पास लौटा। तब तक मां को भी होश आ गया था। मां ने होश में आने पर फकीर से कहा, आपने तो हद ही कर दी। मैंने आपसे इतना डराने के लिए तो नहीं कहा था। फकीर ने कहा, भय का कोई पैमाना नहीं होता। भय तो भय होता है। जब भय दिखाया जाता है तो पता ही नहीं चलता कि उसे कहां रोका जाए। मां बोली, मैंने तो बच्चे को डराने के लिए कहा था, आपने तो मुझे भी डरा दिया। फकीर बोला, भय जब प्रकट होता है तो ऐसा नहीं हो सकता कि वह एक को डराए, दूसरे को न डराए। तुम्हारी क्या बात करें, मैं तो स्वयं भयभीत हो गया था। देखो, जहां भय है वहां प्रेम पैदा नहीं हो सकता। इसलिए अब कभी भी अपने बच्चे को भयभीत करने की कोशिश न करना। बच्चे को सही रास्ते पर लाना है तो उसके प्रति स्नेह का व्यवहार करो। उस दिन के बाद मां ने बच्चे पर कभी गुस्सा नहीं किया। अब वह उसे सभी बातें प्यार से समझाने लगी।

१९३७) काम का महत्व- न्यूयॉर्क की एक संकरी गली में हर्बर्ट नाम का एक गरीब बच्चा रहता था। गरीबी के कारण तेरह वर्ष की उम्र में उसने बर्फ की गाड़ी चलाने का काम किया। थोड़ा बड़ा होने पर उसे एक प्राइवेट रेलवे कंपनी में रोड़ी लादने का अस्थायी काम मिला। उसकी मेहनत और लगन को देख उसे पक्की नौकरी पर रख लिया गया और उसे स्लीपरों की देखभाल का काम दिया गया। जहां वह काम करता था, वह एक छोटा स्टेशन था। उसकी सभी लोगों से जान पहचान हो गई। उसने लोगों से कहा, मैं छुट्टी पर भी रहूं अथवा मेरी ड्यूटी न भी हो तब भी आप लोग मुझे अपनी सहायता के लिए बुला सकते हैं। इस तरह वह अपने काम के अलावा दूसरे कार्यों में भी मन लगाने लगा। एक बार एक अधिकारी ने कहा, हर्बर्ट, तुम इतनी मेहनत क्यों करते हो। तुम्हें फालतू के काम का कोई पैसा नहीं मिलेगा। हर्बर्ट ने कहा, मैं कोई काम पैसे के लिये नहीं संतोष के लिए करता हूँ। इससे मुझे ज्ञान मिलता है। एक बार उसकी नजर एक विज्ञापन पर पड़ी। न्यूयॉर्क की विशाल परिवहन व्यवस्था दुरुस्त करने के लिए एक परिवहन व्यवस्थापक की जगह खाली थी। उसने भी अप्लाई कर दिया। उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। इंटरव्यू लेनेवाले अफसर उस समय अवाक रह गए, जब उन्हें आभास हुआ कि हर्बर्ट की जानकारी तो उनसे भी ज्यादा है। एक अधिकारी ने इस संबंध में पूछा तो हर्बर्ट ने कहा, सर। मैंने अपनी जिज्ञासा के कारण इतनी सारी जानकारी प्राप्त की है। मैं हमेशा इस बात के लिए उत्सुक रहा कि कितनी जल्दी ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त कर लूं। मैंने किसी काम को कभी छोटा नहीं समझा। जिस व्यक्ति में काम करने की क्षमता और ईमानदारी होगी, उसके रास्ते में कभी कोई बाधा आ ही नहीं सकती। कुछ समय बाद हर्बर्ट को न्यूयॉर्क के बेहद भीड़भाड़ वाले रास्ते पर सबसे अच्छी यातायात व्यवस्था कायम करने के लिए पुरस्कृत किया गया।

१९३८) भक्ति और सेवा - एक बार काशी के राजा सुशर्मा से उनके दरबार में एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, राजन्, मनुष्य के जीवन में भक्ति का महत्व अधिक है या सेवा का? काशी नरेश असमंजस में पड़ गए। उन्होंने उसका कोई जवाब नहीं दिया लेकिन वह इस पर लगातार सोचते रहे। कुछ समय बाद राजा शिकार के लिए जंगल में अकेले गए। घने जंगल में वह रास्ता भटक गए। शाम हो गई। उन्हें न तो शिकार मिला और न ही जंगल से निकलने का रास्ता सूझा। प्यास से उनका बुरा हाल हो गया था। काफी देर भटकने के बाद उन्हें एक कुटिया दिखाई पड़ी। वह किसी संत की कुटिया थी। राजा किसी तरह कुटिया में गए और पानी-पानी चिल्लाते हुए मूर्छित हो गए। कुटिया में संत समाधि में लीन थे। वह अपना आसन छोड़ राजा के पास गए और उन्हें पानी पिलाया। पानी पीकर राजा की चेतना लौट आई। राजा को जब मालूम हुआ कि संत समाधिस्थ थे

तो उन्होंने कहा, मुनिवर, मेरी वजह से आपके ध्यान में खलल पड़ी। मैं दोषी हूँ। मुझे प्रायश्चित करना होगा।

संत ने कहा, राजन्, आप दोषी नहीं है इसलिए प्रायश्चित करने का प्रश्न ही नहीं है। प्यासा पानी मांगता है और प्यास बुझानेवाला पानी देता है। आपने अपना कर्म किया है और मैंने अपना। यदि आप पानी की पुकार नहीं करते तो आपका जीवन खतरे में पड़ जाता और यदि मैं समाधि छोड़ कर आप को पानी नहीं पिलाता, तब भी आप का जीवन खतरे में पड़ता। इस समय मुझे आपको पानी पिलाकर जो संतुष्टि मिल रही है वह कभी समाधि की अवस्था में नहीं मिलती। भक्ति और सेवा दोनों ही मोक्ष के रास्ते हैं। यदि आप आज प्यासे रह जाते तो मेरी अब तक की सारी साधना व्यर्थ हो जाती। राजा को उस प्रश्न का उत्तर स्वत: मिल गया कि भक्ति का महत्व अधिक है या सेवा का।

१९३९) भूख और हवन - विंध्य प्रदेश का राजा धार्मिक और दयालु प्रवृत्ति का था। एक बार सूखे के कारण राज्य में अकाल पड़ गया। आदमी और जानवर भूख से तड़पने लगे। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। दरबार के आचार्यों ने सुझाव दिया, राजन् इस अकाल से छुटकारा पाने के लिए राज्य भर में हवन करना होगा। राजा ने आचार्यों की बात मान ली। राजमहल से लेकर गली-गांव तक हवन होने लगे। हजारों टन गेहूं और देसी घी हवन कुंड में जला दिए गए, लेकिन न देवता प्रसन्न हुए और न ही अकाल दूर हुआ। जब राजा की मृत्यु हुई तो यमदूतों ने उसे धर्मराज के सामने पेश किया। उसी समय राजा का एक पुराना नौकर भी धर्मराज के सामने लाया गया था। धर्मराज ने बही खाता देखा और राजा को नरक में तथा नौकर को स्वर्ग में भेजने का आदेश दिया। राजा ने कहा, मैंने हमेशा धर्म का काम किया, फिर मुझे नरक और इस नौकर ने कभी कोई धर्म नहीं किया, फिर भी इसे स्वर्ग यह तो अन्याय है। धर्मराज ने कहा, तुम ठीक कहते हो, लेकिन तुम्हारे एक अकर्म ने सभी अच्छे कर्मों को निष्फल कर दिया। सूखे के समय जब जनता को अनाज की सख्त जरूरत थी, तब उस अनाज को जनता में न बांट कर, तुमने उसे कर्मकांड के लिए जला दिया। तुम्हारे अन्न के भंडार भूखों के लिए बंद थे, लेकिन हवन के लिए खोल लिए गए। इससे बड़ा पाप कोई और नहीं हो सकता। इसी अधर्म के कारण तुम्हें नरक मिला है। रही बात नौकर की। उसने कभी पूजा पाठ नहीं किया लेकिन वह भूखा-प्यासा सात दिन तक आपके हवन कुंड के पास इस आशा में बैठा रहा कि हवन के बाद अनाज के जो दाने बिखरे मिल जाएंगे, उससे वह अपनी भूख मिटा लेगा। लेकिन उसे एक दाना नहीं मिला और वह वहीं भूख से मर गया। उसने जब तक तुम्हारे यहां काम किया पूरी मेहनत और ईमानदारी से किया, इसलिए उसको स्वर्ग मिला।

१९४०) ईमानदारी का पुरस्कार - बात पुरानी है। सिंगापुर में अंग्रेज डॉक्टर सिसिल ब्राउन एक बड़े मकान में अकेले रहते थे। उन्होंने कई जानवर पाले हुए थे, जिनसे वह बच्चों की तरह प्यार करते थे। चौदह साल का एक बालक मिग डॉक्टर ब्राउन के कपड़े धोता और प्रेस करता था। वह भी अकेला रहता था। उसी समय अंग्रेजों और जापानियों में युद्ध छिड़ गया। युद्ध के दौरान मिग घायल हो गया। वह डॉक्टर के पास आया। डॉक्टर ने उसकी मरहम-पट्टी की और कुछ दवा देकर कहा, तुम मेरे कुछ कपड़े लेते जाओ और उन्हें धो कर प्रेस करके दे जाना। दो दिन बाद सिंगापुर पर जापानियों का कब्जा हो गया। अन्य कैदियों के साथ मिग को भी जेल में बंद कर दिया गया। जापानी सेना ने डॉक्टर ब्राउन को भी कैद करके जेल में डाल दिया।

तीन साल बाद सिंगापुर पर फिर से अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया। जापानियों द्वारा बंदी बनाए गए सभी कैदी छूट गए। डॉक्टर ब्राउन और मिग भी जेल से छूटकर अपने घर लौट आए। मिग ने घर पहुंचकर सबसे पहले डॉक्टर ब्राउन के कपड़े धोए और उन्हें सुखा कर प्रेस किया। कपड़ों का पैकेट लेकर वह डॉक्टर के घर पहुंचा। पहले उसने सलाम किया फिर

कपड़ों का बंडल उन्हें दे दिया। डॉक्टर ब्राउन ने पूछा, इसमें क्याहै। उसने मायूसी से कहा, सर, इस बार मुझे बहुत देर हो गई। जापानियों ने मुझे बंदी बना कर जेल में डाल दिया था। याद है न आपको, तीन साल पहले आपने नये कपड़े मुझे धोने के लिए दिए थे। ये वही आप के कपड़े हैं। मैं परसो ही जेल से छूटा हूं।

उसकी ईमानदारी देख कर डॉक्टर ब्राउन की आंखें नम हो गईं। उन्होंने कहा, मेरे बच्चे मैं भी जेल से कल ही छूट कर आया हूं। तुम्हारी ईमानदारी देख कर मैं अपना सारा दर्द भूल गया। मिग, अब तुम अनाथ नहीं हो। आज से तुम मेरे साथ रहोगे और कपड़े नहीं धोओगे। कल से तुम स्कूल जाना। यही है तुम्हारी ईमानदारी का पुरस्कार।

१९४१) सेवक का बड़प्पन - मेवाड़ के महाराणा अपने एक नौकर को हमेशा अपने साथ रखते थे, चाहे युद्ध का मैदान हो, मंदिर हो या शिकार पर जाना हो। एक बार वह अपने इष्टदेव एकलिंग जी के दर्शन करने गए। उन्होंने हमेशा की तरह उस नौकर को भी साथ ले लिया। दर्शन कर वे तालाब के किनारे घूमने निकल गए। उन्हें एक पेड़ पर ढेर सारे पके आम दिखाई दिए। उन्होंने एक आम लेकर चार फांके बनाईं। एक फांक नौकर को देते हुए कहा, बताओ, इसका कैसा स्वाद है?

आम खाकर नौकर ने कहा महाराज। बहुत मीठा है। ऐसा मीठा आम तो मैंने कभी खाया ही नहीं। कृपया एक और देनेकी कृपा करें।

महाराणा ने एक फांक और दे दी। नौकर ने उसे भी पहले की तरह मजे लेकर खाया और कहा, वाह। क्या स्वाद है। मजा आ गया। मेहरबानी करके एक और दे दीजिए। महाराणा को हैरत हुई। उन्हें उसके व्यवहार में थोड़ी अस्वाभाविकता नजर आई। लेकिन वह उनका प्रिय सेवक था जिससे वह काफी स्नेह करते थे। इसलिए उसकी इस मांग को पूरा करने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ। उन्होंने तीसरी फांक भी दे दी। उसे खाते ही नौकर बोला, यह तो बिल्कुल अमृत फल है। यह भी दे दीजिए। उसने अंतिम फांक भी मांग ली। लेकिन इस बार महाराणा को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा, तुम्हें शर्म नहीं आती। तुम्हें सब कुछ पहले मिलता है तब भी तुम इतनी हिम्मत कर रहे हो मेरे सामने? यह कहते हुए महाराणा ने वह फांक अपने मुंह में रख ली लेकिन तुरंत उगल दिया। वह बोले, इतना खट्टा आम खाकर भी तुम कहते रहे कि यह मीठा है, अमृत तुल्य है, क्या स्वाद है। क्यों कहा ऐसा? नौकर बोला, महाराज। जीवन भर आप मीठे आम देते रहे हैं। आज खट्टा आम आ गया तो कैसे कहूं कि यह खट्टा है, ऐसा कहना, मेरी कृतघ्नता नहीं होती? महाराणा ने उसे गले से लगा लिया और उसे पुरस्कृत किया।

१९४२) अनासक्ति- अश्वघोष को वैराग्य हो गया। भोग-विलास से अरुचि और संसार से विरक्ति हो जाने के कारण उसने गृह त्याग कर दिया। जंगल में जाकर रहने लगे। कंद-मूल खाकर गुजारा करते, पेड़ों की छाया में रहते और अपने इष्ट देवता का स्मरण करते। इस तरह समय बीतने लगा, लेकिन एक खालीपन निरंतर महसूस होता था। ईश्वर दर्शन की अभिलाषा से वह जहाँ-तहाँ भटका, पर शांति न मिली। समय बीतने पर उन्हें नई दिनचर्या से भी परेशानी होने लगी। भाँति-भाँति के व्यंजन खाने और नियत समय पर भोजन करने का अभ्यास था। अब वह अभ्यास टूट गया था, क्योंकि समय पर शायद ही कभी भोजन मिलता हो। कई दिन से अन्न के दर्शन न होने से क्षुधार्त और थके हुए अश्वघोष एक बार एक खलिहान के पास पहुँचे। वहाँ एक किसान शांति व प्रसन्ना मुद्रा में अपने काम में लगा था। उसे देखकर अश्वघोष ने पूछा- मित्र, आपकी प्रसन्नता का रहस्य क्या है? ईश्वर दर्शन, उसने संक्षिप्त उत्तर दिया। उसका उत्तर सुनकर अश्वघोष ने किसान से प्रार्थना की कि मुझे भी उस परमात्मा के दर्शन कराइए? मैं भी उसी की तलाश में हूँ। अच्छा कहकर किसान ने थोड़े चावल निकाले। उन्हें पकाया, दो भाग किए, एक भाग स्वयं के लिए, दूसरा अश्वघोष के लिए। दोनों ने चावल खाए, खाकर किसान अपने काम में लग गया। कई दिन का थका होने के कारण अश्वघोष सो गया। प्रचंड भूख में भोजन

और कई दिन के थकान के कारण गहरी नींद आ गई। जब वह सोकर उठा तो उस दिन जैसी शांति, हल्का-फुल्का, उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। किसान जा चुका था और अश्वघोष का क्षणिक वैराग्य भी मिट गया था। उसने अनुभव किया अनासक्त कर्म ही ईश्वर दर्शन का सच्चा मार्ग है।

१९४३) यज्ञ में हिंसा - एक बार एक राजा ने यज्ञ का आयोजन किया। पुरोहित ने यज्ञ में बलि का भी विधान बताया तो एक बकरा लाकर यज्ञस्थल पर बांध दिया गया। बकरा बंधा मैं-मैं कर रहा था। उसके शोर से चिंतित होकर राजा ने कहा- यह ऐसा क्यों कर रहा है? किसी सुपण्डित को उसका उचित उत्तर सूझा तो उन्होंने कहा- महाराज, यह आपसे कुछ प्रार्थना कर रहा है शायद। कैसी प्रार्थना? शायद यह कह रहा है कि स्वर्ग के उत्तम भोगों की तो मुझे कभी लालसा नहीं रही, मैं तो घास चरकर ही संतुष्ट हूं। इसलिए आपने बलि के लिए मुझे जो पकड़कर मंगवाया है वह उचित नहीं है। यदि यज्ञ में बलि देने से वह प्राणी स्वर्ग जाता है तो आप अपने माता, पिता, पुत्र तथा कुटुम्बियों की बलि देकर पुण्य के भागी क्यों नहीं बनते? उनको स्वर्ग के अधिकारी क्यों नहीं बनाते? सुपण्डित की बात सुनकर राजा समझ गया कि यज्ञ जैसे अच्छे कर्म में बलि देना उचित नहीं है। उसने तुरंत बकरे को बन्धन मुक्त करने का आदेश दे दिया। बकरा प्रसन्नचित्त वहां से चारागाह चला गया।

१९४४) जीवन और मृत्यु - मगध में एक संन्यासी आया। वह हमेशा अपनी धुन में मस्त रहता। उसके तप और तेज का प्रभाव चारों दिशाओं में फैलने लगा। उसके व्यक्तित्व पर राजकुमारी मोहित हो गई। उसने संन्यासी से विवाह करने का निश्चय किया। जब राजा को पता चला तो उसने संन्यासी को राजकुमारी के साथ विवाह करने को कहा। संन्यासी बोला, मैं तो हूं ही नहीं। विवाह कौन करेगा? इस उत्तर से राजा ने अपने आपको अपमानित महसूस किया। उसने आदेश दिया कि तलवार से संन्यासी का वध कर दिया जाए। संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा, शरीर के साथ मेरा आरंभ से ही कोई संबंध नहीं रहा। जो अलग ही है, आपकी तलवार उन्हें और क्या अलग करेगी? मैं तैयार हूं। आप जिसे मेरा सिर कहते हैं, उसे काटने के लिए उसी प्रकार तलवार को आमंत्रित करता हूं, जैसे वसंत की वायु पेड़ों से उनके फूलों को गिरा रही है। वह मौसम सचमुच वसंत का था। राजा ने एक बार उन फूलों को देखा, फिर संन्यासी की आनंदित आंखों को। उसने सोचा, जो मृत्यु को भी जीवन की भांति स्वीकार करता है, उसे मारना व्यर्थ है। उसने अपना आदेश तुरंत वापस ले लिया।

१९४५) सत्ताहीन राजा - एक बार एक राजा अपने नगर में भ्रमण के लिए निकला तो उसको मार्ग में एक फकीर पड़ा हुआ दिखाई दिया। राजा को फकीरों के प्रति श्रद्धा थी। अपने रथ से उतरकर वह फकीर के पास गया, उसको प्रणाम किया। कुशल समाचार पूछा और फिर कहा- महात्माजी, किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताईये। फकीर बोला- अच्छा हुआ तू आ गया। ये मक्खियां मुझे तंग कर रही हैं, तनिक इनको तो भगा दे। राजा बोला- महात्मा जी, मक्खियां तो मेरे वश में नहीं हैं, किंतु यदि आप मेरे साथ चलें तो मैं आपको ऐसा सुंदर स्थान दिला सकता हूं जहां मक्खियां... राजा का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि फकीर बोला- बस, बस तू जा अपना काम कर। जिसका तुच्छ मक्खियों पर भी अधिकार नहीं है, उससे मैं क्या मांगू। जा, बस हो गया। यह कहकर फकीर ने करवट बदल ली।

१९४६) फल का प्रतिफल - एक बादशाह अपने इंसाफ के लिए प्रसिद्ध था। एक बार वह जंगल में घूम कर अपने महल लौट रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी राह किनारे आम का पौधा लगा रहा है। बादशाह ने घोड़े से उतर कर पूछा- क्या आप जानते हो इस पौधे को बड़े होने और इसमें आम लगने में कई वर्ष लगेंगे। तब तक तुम शायद ही जीवित रह पाओगे। फिर क्यों व्यर्थ ही मेहनत कर रहे हो? वृद्ध बोला- राजन्। मैं अब तक दूसरों के लगाए पेड़ों के बहुत

फल खा चुका हूं। मेरा भी फर्ज बनता है कि मुझे दूसरों के लिए पेड़ लगाने चाहिए। फल खाने की आशा से ही पेड़ लगाना तो स्वार्थ है। मैं आनेवाली पीढ़ी के लिए फल के प्रतिफल के रूप में इस पौधे को रोप रहा हूं। बादशाह उसका जवाब सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे दरबार में सलाहकार के पद पर नियुक्त किया।

१९४७) प्रजा का हित - पुराने जमाने की बात है। रायपुर में एक राजा राज्य करता था। उसकी प्रजा करों के बोझ से परेशान थी। एक दिन स्वामी हरिदास उसके दरबार में पधारे। राजा ने उन्हें प्रणाम करते हुए पूछा, महाराज। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? हरिदास ने कहा, राजन्। आपसे भला मैं क्या अपेक्षा करूं। राजा ने सिर झुकाकर लेकिन अभिमान भरे लहजे में कहा, महाराज। आप आदेश तो कीजिए। मेरे लिए कुछ भी असंभव नहीं है। हरिदास जी बोले, फिर भी एक बार विचार कर लेते तो उचित रहता। राजा ने हरिदास जी को आश्वासन देते हुए कहा, मैंने जो वचन दिया है, वह पत्थर की लकीर है। आप निश्चिंत होकर अपने मन की बात कहिए। हरिदास बोले, हे राजन्। आपने वचन दे ही दिया है तो अपने राज्य की गरीब जनता का कर माफ कर दीजिए। राजा बोला, महाराज। आप मुझसे सारी उम्र के गुजारे भर के लिए धन ले लीजिए, किंतु ऐसा न कहिए। आप तो राज्य के खर्च का स्रोत ही बंद करने की बात कह रहे हैं, यह कैसे संभव होगा? हरिदास जी ने कहा, राजन्। जनता से कर वसूल करना अन्याय नहीं है, मगर गरीबों से कर वसूलना अवश्य अन्याय है। आप जिन लोगों से कर बसूलते हैं उनमें से कितनों के पास खाने तक के लाले पड़े हैं। राजन्, कहीं ऐसा न हो कि आपकी प्रजा एक दिन कर देने के लायक ही न रह जाए। यह सुनकर राजा का सिर लज्जा से झुक गया। उसने तत्काल गरीबों को कर में छूट देने की घोषणा की।

१९४८) अनाड़ी जवाई - एक अनाड़ी जवाई अपने ससुराल गया। सास ने बड़ी मान-मनुहार के साथ भोजन परोसा। शाम का समय था। थाली में बाफला-बाटी परोसी गई। जवाई ने पहली बार बाफला-बाटी देखी थी इसलिए मूर्खतापूर्ण ढंग से पूछ बैठा- सासूजी, यह क्या है? सास ने जवाई की नादानी का मजाक उड़ाते हुए कहा- बोफे (मूर्ख), तुम्हें इतना भी समझ में नहीं आता। अनाड़ी जवाई ने समझा। शायद इन्हें बोफा कहते होंगे। थोड़ी देर बाद चावल परोसे गए। तो फिर जवाई राजा पूछ बैठे- सासूजी, यह क्या है? सासू बोली- धोली धोली धुप्प। इतने में साली ने घी परोसा। जवाई को घी समझ में आ गया। जैसे ही चीनी लेकर छोटा साला आया तो फिर मूर्ख जवाई ने सवाल पूछा, यह क्या है? सामने खड़ी उसकी घरवाली ने मुंह पर अंगुली लगाकर इशारे से समझाया-चुप। अनाड़ी जवाई ने समझा- शायद इसे चुप कहते होंगे। लौटकर जब वह अपने गांव आया तो मां ने पूछा- बेटा। तुम्हारे ससुराल में तुम्हें क्या खिलाया-पिलाया। मूर्ख बेटा अपनी मां से बोला- दो खाए बोफे और धोली धोली धुप्प। घी आपने देस का और मीठी लगी चुप्प। मां समझ गई अनपढ़ अनाड़ी बेटे ने घर की सारी इज्जत आबरू अपने ससुराल में दांव पर लगा दी।

१९४९) सर्वश्रेष्ठ पंथ - एक राजा ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो संसार का सर्वश्रेष्ठ पंथ होगा, उसे ही मैं राजधर्म के रूप में स्वीकार करूंगा। वह राजा हर संत और पंथ के पास जाने लगा। पर ऐसा कोई पंथ और संत नहीं मिला जो एकदम दोषमुक्त हो। राजा कोई न कोई कमी बताकर हर संत और पंथ की अवहेलना कर देता था। एक दिन राजसभा में एक संत आए। बोले, मैं दुनिया का सर्वश्रेष्ठ पंथ बता सकता हूं। उसके लिए नदी के दूसरे किनारे चलना होगा। राजा ने हां, भरी तो संत ने कहा आपके राज्य की सर्वश्रेष्ठ नाव मंगाओ। राजा जो भी नाव मंगवाते, वे संत उसमें कोई न कोई दोष निकाल देते थे। राजा ने कहा- महाराज, एक छोटी सी नदी पार करनी है, इस काम के लिए इन नावों में से कोई भी एक नाव ही पर्याप्त है। संत ने कहा- राजन्, यह संसार भी एक छोटी सी नदी की तरह है। इसको पार करने के लिए कोई भी पंथ

पर्याप्त है। किसी भी पंथ से आगे बढ़िए। छोटी-छोटी पगडंडियां भी राजपथ पर पहुंचा देती है और मनुष्य अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच जाते है। बस चल पड़ों। जिस रास्ते पर हम चलते हैं वही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। किसी भी छोटे-बड़े पंथ के आदर्शों का आचरण करो तो वही संसार के सभी कष्टों के पार पहुंचा देता है। संत की वाणी से राजा के ज्ञान चक्षु खुल गए। अब राजा किसी भी संत और पंथ में कोई कमी नहीं निकाल कर हर पंथ की अच्छी बातें ग्रहण करने लगा।

१९५०) मृत्यु और चंद्रमा - एक बूढ़ा व्यक्ति सड़क के किनारे-किनारे चला जा रहा था। तभी उसने देखा कि किसी मरे हुए आदमी का शरीर और मरा हुआ चंद्रमा एक तरफ पड़े हुए हैं। उसने तमाम पशुओं को अपने आसपास इकट्ठा किया और उन्हें ललकारा, तुममें से है कोई वीर चंद्रमा और इस मरे हुए आदमी की लाश को नदी के पार पहुँचा दे? दो कछुओं ने कहा कि वे इस काम को अंजाम दे सकते हैं। पहले कछुए के पंजे काफी बड़े थे। उसने मजबूती से चंद्रमा को उठाया और नदी के पार सुरक्षित जा पहुँचा। दूसरा, जिसके पंजे छोटे थे, भार उठा न सका और लाश समेत नदी में डूब गया। इसी वजह से चंद्रमा मरने के बाद भी अगली रात को फिर से आता है, पर आदमी मरने के बाद कभी नहीं लौटता।

शिक्षा- कायर लोग बार-बार मरते हैं। वीरों की मौत सिर्फ एक बार ही होती है।

१९५१) निंदा और प्रशंसा - बहुत पुरानी कथा है। किसी राज्य में एक मूर्तिकार रहता था। उसकी जीवंत मूर्तियों को देखकर लोग दांतों तले उंगली दबा लेते थे। उसने अनेक राजाओं व महान हस्तियों की ऐसी मूर्तियां बनाई थीं कि वे स्वयं भी धोखा खा जाते थे कि मूर्तियों का अस्तित्व असली है या स्वयं उनका। धीरे-धीरे मूर्तिकार की ख्यात दूर-दूर तक फैलती गई। एक दिन एक साधु उसके पास आया और बोला, पुत्र, अब केवल तुम्हारी एक माह की आयु शेष है। तुम चाहे कोई भी युक्ति आजमाओ तुम्हें मौत के मुंह में जाने से कोई नहीं रोक सकता। यह कहकर साधु चला गया। साधु के जाते ही मूर्तिकार सोच में पड़ गया। आखिरकार उसने मौत से बचने की एक तरकीब सोच ही ली। उसने अपनी कई मूर्तियां बनाई। नियत दिन यमदूत के आते ही वह स्वयं उन मूर्तियों के बीच मूर्तिवत खड़ा हो गया। यमदूत हैरान रह गया। वह असली मूर्तिकार को मूर्तियों के बीच में से पहचान ही नहीं पा रहा था किंतु मूर्तिकार के प्राण तो लेने ही थे, इसलिए यमदूत ने युक्ति से काम लिया। उसने मूर्तियों के करीब जाकर उनमें दोष न होते हुए भी दोष निकालने शुरू कर दिए। वह तरह-तरह से मूर्तिकार की आलोचना करने लगा। मूर्तियों में कमियां सुनकर असली मूर्तिकार की भौहें टेढ़ी-मेढ़ी होने लगीं। इस तरह यमदूत ने असली मूर्तिकार को पहचान लिया और इसके बाद कुछ मूर्तियों की प्रशंसा शुरू कर दी। अपनी तारीफ सुनकर मूर्तिकार के चेहरे पर चमक व प्रसन्नता के भाव आ गए। इसके बाद यमराज ने असली मूर्तिकार का हाथ पकड़ा और बोला, मानवीय भावों में निंदा और प्रशंसा के कारण ही इंसान मृत्यु को नहीं जीत पाता और जब तक जीवन है तब तक उसमें निंदा और प्रशंसा के भाव आते ही रहेंगे और मृत्यु का सिलसिला भी अनवरत चलता ही रहेगा। यह कहकर यमदूत मूर्तिकार को अपने साथ लेकर चला गया।

१९५२) आदर्शवादी शिक्षक - प्रसिद्ध क्रांतिकारी सूर्यसेन बंगाल के एक स्कूल में अध्यापक थे। उन दिनों स्कूल में वार्षिक परीक्षा चल रही थी। जिस कमरे में सूर्यसेन की ड्यूटी लगी थी उसमें प्रधानाध्यापक का बेटा भी परीक्षा दे रहा था। सूर्यसेन ने उसे नकल करते हुए पकड़ लिया और परीक्षा से बाहर कर दिया। जब परिणाम आया तो वह विद्यार्थी फेल था। स्कूल के सभी शिक्षकों को लगा कि अब सूर्यसेन की नौकरी चली जाएगी। एक दिन अचानक सूर्यसेन को प्रधानाध्यापक का बुलावा आया। प्रधानाध्यापक ने सूर्यसेन से स्नेहपूर्वक कहा, मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि मेरे विद्यालय में आप जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ और आदर्शवादी अध्यापक भी हैं, जिन्होंने मेरे बेटे को भी दंड देने में संकोच नहीं किया। यदि आपने उसे

नकल करने के बाद भी पास कर दिया होता तो मैं आपको बर्खास्त कर देता। इस पर सूर्यसेन तपाक से बोले और यदि आप उसे पास करने को मजबूर करते तो मैं इस्तीफा दे देता। उन्होंने अपनी जेब से त्यागपत्र निकाला और उन्हें दिखाते हुए कहा, मैं तो आज इसे लेकर आया था। उस दिन से प्रधानाध्यापक महोदय सूर्यसेन के प्रशंसक बन गए।

१९५३) लोककथा - मणिचूड़ और चंद्रचूड़ नाम के दो देवता थे। दोनों में बड़ा अच्छा प्रेम था। एक दिन देवताओं की शक्ति की बात चली। मणिचूड ने कहा- देव शक्ति सदैव किस्मत के पीछे रहती है। चंद्रचूड़ ने कहा- मित्र। तुम गलत कह रहे हो। देव-शक्ति चाहे जो कर सकती है। इस बात की परीक्षा करने के लिए दोनों मृत्युलोक में आए। मणिचूड़ बोला - ये जो तीन लोग खेत में जा रहे हैं, इनको धनवान बनाओ। चंद्रचूड़ ने उन तीनों के आगे सोने और रत्नों के ढेर लगा दिए। इधर तीनों लोगों ने सोचा- यदि हम कभी अंधे हो जाएंगे तो कैसे चलेंगे? इसका अभी से अभ्यास करना चाहिए। तीनों आंखें बंद करके चलने लगे। धन का ढेर पीछे रह गया। इस असफलता के बाद देवताओं ने सोचा- वरदान देकर इन्हें धनी बना दें। दोनों देवता तालाब की पाल पर बैठ गए। इतने में एक किसान की औरत पानी लेने के लिए आई और पूछा- तुम कौन हो? उन्होंने कहा- हम सिद्ध पुरुष हैं। चाहे जो वरदान मांग लो हम देने को तैयार हैं। किसान पत्नी ने रूप मांगा। वह अप्सरा सी रूपवती बन खेत में आ गई। किसान देखते ही चमका और बोला- हे देवी मां। कहां से आई हो? मैं तो पेमे की मां हूं। यों कह किसान की पत्नी ने सारा राज उगल दिया। किसान लाल-पीला होकर बोला- घर में तो खाने के लिए अनाज के लाले पड़ रहे हैं और तुम्हें सुंदर रूप अच्छा लगता है। वह दौड़ा-दौड़ा तालाब पर गया और सिद्ध पुरुषों से वर मांगा- मेरी स्त्री को कौआ बना दो। देव के वरदान देते ही वह बेचारी कौआ बन गई। वह जोर-जोर से कांव-कांव करने लगी। इधर-उधर उड़ने लगी। किसान गुस्से में लाल होकर कंकर मारकर उसे उड़ाने लगा। आखिर किसान का बेटा पेमा दौड़ा-दौड़ा सिद्ध पुरुष के पास गया और पूछा- क्या मुझे भी कोई वरदान मिलेगा? देवों ने कहा- हां, जो भी तुम मांगोगे। पेमे ने कहा- महाराज। न मुझे धन चाहिए न और कुछ। कृपया मेरी मां को कौआ से औरत बना दो। रोटी पकाने की भी समस्या खड़ी हो गई। तत्काल देवता ने उसे औरत बनाया दिया। मणिचूड़ हंसकर बोला- मित्र। भाग्य के बिना इन तीनों को हम कुछ भी नहीं दे सके। अब चलो भाग्यवान के पास। दोनों एक नगर में आए। सिद्ध पुरुष का नाम सुनकर एक अंधा आया और बोला- कृपया मुझे एक वरदान दीजिए। देवों ने कहा- तुम जो चाहो एक वर मांग लो। अंधे ने कहा- स्वर्ण के थाल में पकवान खाते हुए पोते को देखूं। देव द्वारा अंधे की आशा पूर्ण करते ही उसकी आंखों की रोशनी आई गई। धन के भंडार भर गए और उसको पोता भी हो गया। यह देखते ही उस देव को मानना पड़ा कि वास्तव में किस्मत का चमत्कार है। किस्मत के बिना एक कौड़ी भी कोई किसी को नहीं दे सकता।

१९५४) अपनी ही आंख समयपर काम आती है - एक आदमी था, बूढ़ा हो गया- उसकी आंखें चली गईं। चिकित्सकों ने कहा, आंखें ठीक हो सकती हैं, शल्यक्रिया करवाना होगा, तीन महीने विश्राम करना होगा। उस बूढ़े ने कहा, सार क्या? अस्सी साल का तो हो गया। फिर आंखों की मेरे घर में कमी क्या है? आठ मेरे लड़के हैं, सोलह उनकी आंखें; आठ उनकी बहुएं हैं, सोलह उनकी आंखें; मेरी पत्नी भी अभी जिंदा है, दो उसकी आंखें- ऐसे चौंतीस आंखें मेरे घर में हैं। दो आंखें न हुई, क्या फर्क पड़ता है? दलील तो जंचती है। लड़कों की आंखें, बहुओं की आंखें, पत्नी की आंखें- चौंतीस आंखें घर में हैं। न हुई छत्तीस, चौंतीस हुईं, क्या फर्क पड़ता है? दो आंख के कम होने से क्या बिगड़ता है? इतने तो सहारे हैं।

नहीं, वह राजी न हुआ ऑपरेशन को और कहते हैं, उसी रात उस घर में आग लग गई। चौंतीस आंखें बाहर निकल गईं;

बूढ़ा, अंधा बूढ़ा टटोलता, आग में झुलसता, चीखता-चिल्लाता रह गया। लड़के भाग गए, पत्नी भाग गई, बहुएं भाग गईं। जब घर में आग लगी हो तो याद किसे रह जाती है किसी और की? याद आती है बाहर जाकर। बाहर जाकर वे सब सोचने लगे, अब क्या करें? बूढ़े पिता को कैसे बचाएं? लेकिन जब आग लगी तो आंखें अपने पैरों को लेकर बाहर भाग गईं। दूसरे की याद कहां ऐसे संकट के क्षण में। समय कहां, सुविधा कहां कि दूसरे की याद कर लें। दूसरा तो सुविधा में, समय हो तो हम सोच पाते हैं। जब अपने प्राणों पर बनी हो तो कौन किसकी सोच पाता है?

वह बूढ़ा चीखने-चिल्लाने लगा और तब उसे याद आई कि मैंने बड़ा गलत तर्क दिया। आंख अपनी ही हो तो ही समय पर काम आती है और इस जीवन के भवन में आग लगी है। यहां हम रोज जल रहे हैं। यहां अपनी ही आंख काम आएगी। यहां दूसरे की आंख काम नहीं आ सकती और भीतर की दुनिया में तो अपनी ही आंख काम आती है।

१९५५) आंखों की गलती - एक राहगीर यात्रा पर जा रहा था। उसने रास्ते में आम के पेड़ से आम को गिरते हुए देखा। वह पेड़ के नीचे गया और आम खाने लगा। उसे आम खाते देख पेड़ का मालिक वहां आ गया। उसने राहगीर को दो चपत मारते हुए कहा- मेरी बिना इजाजत के आम कैसे खा रहे हो? राहगीर की आंखों से आंसू टपकने लगे। रोते हुए राहगीर बोला- यानी पेड़ से गिरते हुए आम को दो आंखों ने देखा पर देखने वाली आंखें नहीं दौड़ी बल्कि दो पैर दौड़े। दौड़नेवाले पांव ने आम नहीं उठाया बल्कि उसे दो हाथों ने उठाया। उठानेवालें हाथों ने आम नहीं खाया बल्कि कई दातोंवाले मुंह ने खाया। खाने वाले दातों को आम का रस नहीं मिला बल्कि जीभ को रस मिला। इस बीच अचानक आप आ गए। रस ग्रहण करनेवाली जीभ को आपने नहीं पकड़ा बल्कि मेरे कंधे पकड़े गए। पकड़े गए कंधों को मार नहीं खानी पड़ी, बल्कि दो गालों को मार खाकर भी रोना नहीं पड़ा, बल्कि आंखों को ही रोना पड़ा। इस तरह जो गलती की शुरूआत करता है उसे ही रोना पड़ता है।

१९५६) क्रोध का त्याग - किसी गांव में एक फकीर पहुंचा। उसके हाथ में एक डफली थी, जिसे बजाता हुआ वह गा रहा था। उसकी आवाज जो भी सुनता मंत्रमुग्ध हो जाता। इसी गांव में अत्यंत क्रोधी स्वभाव का एक व्यक्ति रहता था। लोगों ने उसका नाम ही गुस्सैल रख दिया था। फकीर को भजन गाते सुन किसी ने कहा, महाराज। आप कृपा करके यहां भजन मत गाइए। अगर उस गुस्सैल ने सुन लिया और उसे अच्छा नहीं लगा तो वह आप पर ही अपना क्रोध उतार बैठेगा। इस पर फकीर ने कहा, थोड़ा सा आप पर ही अपना क्रोध उतार बैठेगा। इस पर फकीर ने कहा, थोड़ा सा गुड़ लाकर मेरी पीठ पर लगा दो, मगर इतना ध्यान रखना कि वह दिखे नहीं। फकीर की बात सुनकर उस व्यक्ति को आश्चर्य तो हुआ पर उसने वैसा ही किया। पीठ पर गुड़ लगवाने के बाद फकीर गुस्सैल के घर पर पहुंचा। उसने देखा कि एक व्यक्ति द्वार के पास चारपाई पर बैठा मूंछें ऐंठ रहा है। फकीर ने विनम्रतापूर्वक पूछा- श्रीमान, क्या आप ही गृह स्वामी हैं? गुस्सैल ने रौब से कहा, नहीं तो क्या आप हैं? फकीर ने प्यार से कहा, मैं तो एक फकीर हूं और आपसे सहायता मांगने आया हूं। गुस्सैल बोला, बोलो क्या चाहिए? फकीर ने कहा, मेरी पीठ पर कुछ मक्खियां बैठ रही हैं, वे मेरे भजन-कीर्तन में बाधा डाल रही हैं। आप इनसे मेरा पीछा छुड़ा दें। गुस्सैल पहले तो हंसा, फिर फकीर की पीठ की ओर जाकर मक्खियां उड़ाने की कोशिश करने लगा। जब बार-बार उड़ाने के बाद भी मक्खियां फकीर की पीठ पर बैठती ही रही तो उसे गुस्सा आ गया और उसने फकीर को डांटकर कहा- यह क्या मजाक है? फकीर ने कहा, भैया आप मुझ पर क्रोध क्यों करते हैं? आपसे जब एक मक्खी भयभीत नहीं होती तो फिर और कौन डरेगा? गुस्सैल को फकीर की बात समझ में आ गई। वह अपने किए पर शर्मिंदा हो फकीर से माफी मांगने लगा। तब फकीर ने समझाया, क्रोध में आदमी अंधा हो जाता है।

क्रोधवश व्यक्ति कोई पाप भी कर सकता है इसलिए क्रोध का त्याग करो।

१९५७) राजा का सपना - एक राजा को शिकार का नशा था। वह राजकाज छोड़कर हर समय शिकार में लगा रहता था। वह जिससे मिलता उससे शिकार के किसी प्रसंग पर ही बात करता। एक बार जब वह शिकार करने पहुंचा तो एक हिरन उसके सामने आ खड़ा हुआ। राजा उसे देखकर चकित रह गया। तभी कोमल वाणी में हिरन ने कहा, राजन्, आप प्रतिदिन वन में जाकर जीवों का शिकार करते हैं। कुछ जीव आपके हाथी-घोड़ों द्वारा कुचल दिए जाते हैं। मेरे शरीर के भीतर कस्तूरी का भंडार है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस भंडार को ले लें और वन के प्राणियों का शिकार करना छोड़ दें। हिरन की बात सुन राजा विस्मय से बोला, क्या तुम उन्हें बचाने के लिए अपने प्राण देना चाहते हो? तुम जानते हो कस्तूरी पाने के लिए मुझे तुम्हारा वध करना होगा। हिरन बोला, राजन, आप मुझे मारकर कस्तूरी का भंडार ले लीजिए, पर निरपराध जीवों को मारना छोड़ दीजिए। राजा ने पुन: कहा, तुम्हारा शरीर बहुत सुंदर है। तुम्हारे भीतर कस्तूरी का भंडार है। हिरन ने जवाब दिया, राजन् यह शरीर तो नश्वर है। मैं दूसरों के प्राण बचाने के लिए मर जाऊं इससे अच्छी बात क्या हो सकती है। मृग की ज्ञान भरी वाणी ने राजा के मन में प्रकाश पैदा कर दिया। वह सोचने लगा, यह जानवर होकर दूसरों के लिए अपने प्राण दे रहा है और मैं मनुष्य होकर रोज जीवों को मारता हूं। धिक्कार है मुझ पर। तभी उसकी नींद टूट गई। इस सपने ने उसकी आंखें खोल दी थीं। उस दिन से राजा हिंसा छोड़कर सब पर दया करने लगा।

१९५८) सच्ची निष्ठा - विश्वबंधु शवर आखेट की खोज में भटकता हुआ नील पर्वत की एक गुफा में जा पहुंचा। वहां भगवान नीलमाधव की मूर्ति के दर्शन पाते ही शवर के हृदय में भक्ति-भावना का स्रोत उमड़ पड़ा। वह हिंसा छोड़कर भगवान नील माधव की पूजा करने लगा। उन्हीं दिनों मालवराज इंद्र प्रद्युम्न किसी अपरिचित तीर्थ में मंदिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने स्थान की खोज के लिए मंत्री विद्यापति को भेजा। उसने लौटकर राजा के नील पर्वत पर विश्वबंधु शवर द्वारा पूजित भगवान नील माधव की मूर्ति की सूचना दी। राजा तुरंत मंदिर बनवाने के लिए चल दिया। विद्यापति राजा इंद्र प्रद्युम्न को उस गुफा के पास लाया, किंतु आश्चर्य। मूर्ति वहां नहीं थी। राजा ने क्रोधित होकर कहा, विद्यापति। तुमने व्यर्थ ही कष्ट दिया है। यहां तो मूर्ति नहीं है। विद्यापति ने कहा, महाराज मैंने अपनी आंखों से इसी गुफा में भगवान नीलमाधव की मूर्ति देखी है। जरूर कोई ऐसी बात हुई है, जिससे मूर्ति अंतर्धान हो गई है। राजन्, आते समय आप क्या सोचते आए हैं? राजा इंद्र प्रद्युम्न ने बताया, मैं केवल इतना ही सोचता आया हूं कि अपने स्पर्श से भगवान की मूर्ति को अपवित्र करनेवाले शवर को भगा दूंगा और कोई अच्छा पुजारी नियुक्त कर दूंगा। फिर मंदिर बनवाने का आयोजन करूंगा। विद्यापति ने कहा आपकी इसी मंद भावना के कारण भगवान रुष्ट होकर चले गए हैं। समदर्शी भगवान जात-पात नहीं हृदय की सच्ची निष्ठा ही देखते हैं। राजा ने अपनी भूल सुधारी। भगवान से क्षमा मांगी, उनकी वस्तुति की और उसी स्थान पर जाकर जगन्नाथ जी के प्रसिद्ध मंदिर की स्थापना कराई।

१९५९) संपूर्ण सुंदरता - एक बार कुदरत के सातों रंगों के बीच बहस छिड़ गई। प्रत्येक रंग यह साबित करने में लगा था कि वही सबसे श्रेष्ठ है। सबसे पहले हरे रंग ने कहा कि वह जीवन और हरियाली का प्रतीक है, इसलिए ईश्वर ने उसका चयन खास तौर पर पत्तों के रंग के लिए किया है। धरती का एक बड़ा भाग हरियाली से ढका हुआ है। नीले रंग ने उसकी बात काटते हुए कहा, आकाश व समुद्र का रंग नीला है। जल ही जीवन है। नीला जल नीले आकाश के बादलों से होकर नीले समुद्र में समा जाता है। बिना इस चक्र के विकास संभव नहीं, इसलिए मैं तुम सबसे श्रेष्ठ हूं। तब पीला रंग बोला,

पीला खुशहाली का प्रतीक है। सूरज पीला है। पीली सूरजमुखी सारी दुनिया में हंसी व खुशी देती है। इसलिए मैं ही सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी हूं। तभी नारंगी रंग ने कहा, मैं मिठास और स्वास्थ्य का प्रतीक हूं। सभी मीठे व लाभकारी फलों पपीता, गाजर, आम व संतरा की छटा नारंगी है। तभी जामुनी रंग ने कहा, श्रेष्ठ तो मैं हूं क्योंकि मैं पानी की गहराई व मन की शांति का प्रतीक हूं। वर्षा ऋतु रंगों की इस सारी बहस को ध्यान से सुन रही थी। वह पास आकर बोली, तुम सभी श्रेष्ठ हो। सभी को ईश्वर ने किसी न किसी खास कारण से बनाया है। लेकिन सर्वश्रेष्ठ है तुम सबका एक साथ होना। रंगों को यह उपदेश जैसी बात अच्छी नहीं लगी, वे तो सिर्फ अपनी तारीफ सुनना चाहते थे। तभी आकाश में जोर से बिजली कड़की। सभी रंगों ने डर कर एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया और आकाश में बड़ा-सा इंद्रधनुष दिखाई देने लगा। रंगों ने देखा, सभी उनकी छटा निहार रहे थे। वर्षा ऋतु ने हंस कर समझाया, तुम सबके अलग-अलग प्रशंसक हैं, लेकिन तुम्हारा एक साथ होना संपूर्ण जगत के लिए सुंदरता और जीवन का संदर्श है। इसके बाद रंगों ने कभी एक-दूसरे से झगड़ा नहीं किया।

१९६०) असली उत्तराधिकारी - एक व्यापारी था। वह चाहता था कि उसका पुत्र अशोक उच्च शिक्षा प्राप्त करे। उसने अपने पुत्र को पढ़ने के लिए दूर किसी शहर में भेजा। कुछ दिनों बाद व्यापारी की पत्नी की मृत्यु हो गई। पत्नी की मृत्यु का गहरा झटका व्यापारी को लगा। वह बीमार रहने लगा। उसे इस बात का आभास हो गया कि वह ज्यादा दिन जीवित नहीं रह पाएगा। उसने अपनी सारी संपत्ति अशोक के नाम कर दी और उसके पास समाचार भेज दिया। उसने संपत्ति संबंधी तात्कालिक व्यवस्था अपने शहर के एक पुजारी को सौंप दी। उसके कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। इधर समाचार प्राप्त होते ही अशोक व्याकुल होकर घर चला। रास्ते में उसे एक अन्य बालक मिला जिसने सहानुभूति दिखाते हुए उसके उत्तराधिकारी होने तथा परिवार में अकेला होने का सारा भेद मालूम कर लिया और उसके साथ हो लिया। दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई, किंतु घर पहुंचते ही अशोक के साथ वह भी रोने लगा और अपने को व्यापारी का उत्तराधिकारी कहने लगा। पुजारी चकराया। फिर उसने एक युक्ति निकाली। उसने व्यापारी का एक चित्र मंगवाकर, उसकी छाती की ओर इशारा करते हुए एक-एक तीर कमान उनके हाथ में देकर निशाना लगाने को कहा। यह भी कहा कि जो ठीक निशाना लगाएगा, वही उत्तराधिकारी माना जाएगा। अशोक के साथी ने तो तीर ठीक निशाने पर छोड़ दिया, परंतु अशोक उन्हें फेंक कर चित्र से लिपट गया। उसने पुजारी से कहा कि उसे अपने पिता की संपत्ति नहीं चाहिए। वे सारी संपत्ति उसके मित्र को दे दें। पुजारी मुस्कराया। उसने कहा, अशोक, मैं समझ गया कि तुम ही असली उत्तराधिकारी हो। तुम्हारे लिए पिता के प्रति स्नेह और श्रद्धा महत्वपूर्ण है, संपत्ति नहीं। यह लड़का ठग है। यह तुम्हारी संपत्ति पर कब्जा जमाना चाहता है। इस लालची को तो सजा मिलनी चाहिए। पुजारी ने अशोक को उसके पिता की सारी संपत्ति सौंप दी और उस लड़के को बंदी बना लिया गया।

१९६१) लोककथा- एक ब्राह्मण आया वह दक्षिण भारत में गोमती तट का निवासी था। ब्राह्मण को धन की आवश्यकता हुई। अब दक्षिण से वह ब्राह्मण आया और उसने यहाँ आकर मथुरा में किसी से कुछ उधार धन लेना चाहा। गोमती तट वासी उस ब्राह्मण ने ऋण लेने के लिए जब मथुरा में प्रवेश किया और वहाँ किसी से ऋण लिया। ऋण लेने के बाद जब वह वापिस जा रहा था। उस समय उसको सामने से एक राक्षस आता हुई दिखाई दिया। उस राक्षस के तीन पैर थे, छ: हाथ थे और उसका सिर अन्दर छाती में धँसा हुआ था। एक हाथ लम्बी उसकी नाक थी और सात हाथ लम्बी उसकी जीभ थी। ब्राह्मण के हाथ में गिरिराज जी की छोटी सी शिला थी। राक्षस ने दिव्य प्रकाश से प्रकाशित एक गिरिराज शिला देखी थी। ब्राह्मण ने गिरिराज जी की वह शिला, भय के कारण राक्षस के ऊपर मारी। इतना विशालकाय राक्षस था

अगर कोई बड़ा भारी पत्थर भी होता तो उससे उसका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं था, लेकिन उस शिला का ऐसा प्रभाव था कि उस शिला के स्पर्श होते ही उसका आसुरी शरीर छूट गया और वह दिव्य शरीर धारण करके कहने लगा, मैं पूर्व जन्म में एक धनी बाप का बिगड़ा हुआ बेटा था। मैंने माता-पिता को सताया था। हर बुरा काम किया। धन की चोरी करना, शराब पीना, जुआ खेलना, वैश्या गमन करना आदि ये सब मेरी आम चीजें थी। छोटे-छोटे बच्चों को उठाकर गर्दन मरोड़ देता और मैं उन्हें कूँए में फेंक देता था। मेरा दुष्ट आचरण था। एक दिन माँ-बाप ने मुझे बहुत डांटा तो मैं बाहर से विष लाया। विष लाकर उसको दूध में मिलया और मीठे-मीठे शब्दों से माँ-बाप को बोला अब मैं सुधर गया हूँ, अब मैं सेवा करूँगा, मीठे-मीठे शब्दों से, अपने माँ-बाप को वह जहर मिला हुआ दूध पिला दिया। विष देकर दोनों को मैंने मार दिया। मेरी पत्नी चिल्लाई। हाय-हाय आपने यह क्या कर दिया। माता-पिता की हत्या कर दी। यह तो घोर पाप हो गया। इस बात को सुनकर मैंने तलवार निकाली कहीं ये पुलिस को न बता दे और मुझको पकड़वा न दे? तलवार से उसकी भी गर्दन काट दी और मुझे भी एक विषधर साँप ने काटा जिससे मेरी मृत्यु हो गई। लम्बे समय तक मैं नरक के अन्दर हा। फिर मैं ब्रज के बाहर राक्षस बना। जैसे ही मैं ब्रज की सीमा के अन्दर प्रवेश करता था तो यहाँ के जो देवगण हैं वे मुझे मार लगाते थे। परन्तु अब मैं गिरिराज शिला के स्पर्श से मुक्त होकर भगवान के धाम में जा रहा हूँ।

१९६२) सेठ की उदारता- एक सेठ के पास बहुत धन-दौलत थी। वे अवसर आने पर लाखों खर्च कर देते पर वैसे एक पैसा भी फालतू खर्च नहीं करते थे। उनके पुत्र की शादी हुई, पुत्रवधू आई। दूसरे-तीसरे दिन की घटना होगी, सेठजी के हाथ से कुछ तेल जमीन पर गिर गया। तुरंत ही सेठजी तेल लेकर अपने चमड़े के जूतों पर चुपड़ने लगे। नववधू ने जब यह दृश्य आंखों से देखा तो वह सोचने लगी- ओ हो। मेरे ससुर इतने कंजूस हैं तो मुझे घर में रहने में कितनी तकलीफें उठानी होंगी। मुझे इस बात की परीक्षा करनी चाहिए।

दूसरे दिन पुत्रवधू बीमारी का बहाना कर सोती रही। सास के पूछने पर उसने कहा- मेरे सिर में भयंकर दर्द हो रहा है। बहू की अस्वस्थता की जानकारी मिलते ही सेठजी आए और बोले- बेटी। चिंता मत करना, अभी डॉक्टर बुलवाता हूं।

बहू ने कहा- पिताजी, डॉक्टर की दवाई से यह दर्द कम न होगा।

सेठ ने पूछा- तो फिर कोई दूसरा इलाज। बहू ने कहा- पिताजी, इलाज तो जानती हूं लेकिन। सेठ ने वात्सल्यपूर्वक पूछा- बेटी तू घबरा क्यों रही है? बहू बोली- पिताजी, जब-जब मेरें पीहर में ऐसी पीड़ा होती थी तब-तब वहां मेरे पिताजी सच्चे मोती पीसकर उसका लेप लगाते, जिससे मेरी पीड़ा दूर हो जाती थी। सेठ बोले- ओ हो। बस यही बात है न। मैं अभी मोती निकालता हूं।

पर जब सेठजी मोती निकाल कर पीसने की तैयारी करने लगे तो बहू एकदम खड़ी होकर कहने लगी- पिताजी रहने दीजिए, मेरा सिर दर्द दूर हो गया। सेठ ने पूछा- वह कैसे?

पिताजी, वास्तव में मुझे सिरदर्द था ही नहीं। मैंने आपकी उदारता की परीक्षा ली है। जब मैंने आपका भूमि पर गिरे हुए तेल को जूते पर लगाते हुए देखा तब मेरे दिमाग में यह शंका पैदा हो गई कि मेरे ससुर इतने कृपण हैं, तो मैं यहां कैसे रह सकूंगी? किंतु पिताजी। अब मेरी यह शंका दूर हो गई है। सेठ ने कहा- कृपणता दोष है, किंतु वस्तु का पूर्ण सदुपयोग करना दोष नहीं है। धन का अनावश्यक व्यय न करना भी गुण है तो अवसर आने पर जरूरत की जगह लाख रूपए खर्च कर देना भी गुण ही है। सेठ के इन वचनों को सुनकर पुत्रवधू लज्जित हुई।

HHH(७०७)HHH

१९६३) रोटी का बंटवारा - दो भूखी बिल्लियां थीं। उन्हें एक दिन एक रोटी का टुकड़ा मिला। दोनों उस टुकड़े पर अपना-अपना हक जमाने लगीं। एक बिल्ली ने उसे उठा लिया। दूसरी बिल्ली बोली- चलो, मिल बांटकर खाते हैं। पहली बिल्ली चालाक थी। वह सारी रोटी खुद खाना चाहती थी। उसने साफ इंकार कर दिया। दोनों में झगड़ा होने लगा।

उसी समय वहां से एक बंदर जा रहा था। दोनों बिल्लियों ने उससे प्रार्थना की, भाई, तुम्हीं हमारा फैसला करो। हमने रोटी का टुकड़ा पाया है। मैं कहती हूं मिल बांटकर खा लें, यह सारा खाना चाहती है।

बंदर ने कहा, जब तुम दोनों साथ थीं तो रोटी पर किसी एक का हक कैसे हो सकता है। इसका तो बंटवारा होना चाहिए, यही न्याय है। लाओ, यह रोटी मुझे दो। मैं इसके दो बराबर हिस्से दे दूंगा।

बंदर ने रोटी के दो टुकड़े किये। उसने दोनों टुकड़ों को बारी-बारी देखा, फिर सिर हिलाते हुए बोला, दोनों टुकड़े बराबर नहीं हुए। यह टुकड़ा दूसरे टुकड़े से बड़ा है। उसने बड़े टुकड़े में से थोड़ा-सा हिस्सा खा लिया। फिर भी दोनों हिस्से बराबर नहीं हुए। बंदर ने फिर एक टुकड़े में से थोड़ा-सा हिस्सा खा लिया। बंदर इसी तरह हर बार बड़े टुकड़े में से थोड़ा-थोड़ा खाता रहा। अंत में रोटी के केवल दो छोटे-छोटे टुकड़े ही बचे।

यह देखकर बिल्लियां बोलीं- बंदर भाई, हमारी रोटी वापस कर दो, हमें फैसला नहीं कराना। उनकी बात सुनकर बंदर हंस पड़ा और बोला- ओ-हो-हो। अब भला इतने छोटे-छोटे टुकड़े मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूं? यह तो मेरी मेहनत के हैं। ऐसा कहकर बंदर रोटी के वे दोनों टुकड़े भी अपने मुंह में डालकर चलता बना।

१९६४) राजा का न्याय - राजा फिलिप अपने दरबार में एक मुकदमे पर निर्णय दे रहे थे। मुकदमा दो व्यक्तियों के बीच था। दोनों अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे। उनमेंसे एक व्यक्ति जब अपना पक्ष रख रहा था तो फिलिप को हल्की झपकी आ गई जिस कारण वह उसकी पूरी बात नहीं सुन पाए। जब उनकी नींद टूटी तो दूसरे पक्ष का बयान शुरू हो चुका था। राजा ने दूसरे के जोरदार ढंग से रखी गई बात को सत्य मानकर उसके पक्ष में फैसला दे दिया। उन्होंने पहले व्यक्ति को सजा सुना दी। पहले व्यक्ति ने निर्णय सुनते ही कहा, राजन्, मैं आपके निर्णय से सहमत नहीं हूँ और आपसे पुनर्विचार की प्रार्थना करता हूँ। यह सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। पहली बार किसी ने राजा के फैसले को चुनौती दी थी। वहां उपस्थित लोगों को लग रहा था कि फिलिप क्रोधित होंगे पर ऐसा न हुआ। उन्होंने शांत भाव से उस व्यक्ति से पूछा, तुम्हें पुनर्विचार की आवश्यकता क्यों है? वह व्यक्ति बोला, महाराज, मैं सोए हुए राजा के निर्णय के विरुद्ध आपसे पुनर्विचार के लिए कह रहा हूं। जब मैं अपनी बात कह रहा था तब आपको हल्की नींद आ गई थी, जिससे आप मेरी पूरी बात नहीं सुन पाए। अब आप जाग गए हैं इसलिए मैं आपको बयान सुनाना चाहता हूं। उस व्यक्ति का बयान फिर से सुनकर राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसका पक्ष वाकई दमदार था। फिलिप ने उसे आरोपमुक्त कर दिया और दूसरे व्यक्ति को सजा सुनाई। फिलिप ने पहले व्यक्ति के साहस की तारीफ की।

१९६५) सबसे बड़ा पुरस्कार - बात रूस के साइबेरिया प्रांत की है। जाड़े के दिन थे। जबर्दस्त बर्फबारी हो रही थी। एक निर्धन वृद्धा, जो छोटे-मोटे काम कर गुजारा करती थी, अपनी झोपड़ी में सो रही थी। एकाएक उसने एक जोरदार आवाज सुनी। वह उठी और तेजी से पास की नदी की ओर दौड़ी। उसका अनुमान था कि आवाज उधर से ही आई है। नदी किनारे पहुंच कर उसने देखा कि भयंकर हिमपात से उस पर बना पुल टूट गया है। तभी उसे ध्यान आया कि यह समय एक रेलगाड़ी के आने का है। वह परेशान हो उठी। वह रेलगाड़ी को दूर से ही रोकने का उपाय सोचने लगी। वह

जिस इलाके में रहती थी, वहां दूर-दूर तक और चारों ओर उजाड़ था। बस्ती उस स्थान से कोसों दूर थी। वृद्धा ने सोचा कि प्रकाश द्वारा ड्राइवर को सूचना दी जा सकती है। वह दौड़ती हुई अपनी झोपड़ी पहुंची और उसने अपनी बेटी को किसी भी तरह प्रकाश की व्यवस्था करने को कहा। लेकिन गरीबी के कारण घर में कोई दूसरा सामान नहीं था, जिसे जलाकर वह रोशनी करे और ड्राइवर को सावधान करे। अचानक वृद्धा की नजर अपनी चारपाई पर गई। उसने जल्दी से अपनी बेटी की मदद से चारपाई को तोड़ डाला और रेलवे लाइन पर रख दिया। फिर दियासलाई से आग लगाई कि तभी रेलगाड़ी की सीटी सुनाई दी। ड्राइवर ने प्रकाश देखकर दूर से ही रेलगाड़ी को धीमा कर दिया। जब गाड़ी रुकी और ड्राइवर ने टूटा पुल देखा तो वह उस निर्धन वृद्धा के प्रति सम्मान में झुक गया। ट्रेन के मुसाफिरों के बीच यह बात फैल गई कि उस वृद्धा ने अपने घर की एकमात्र चारपाई को तोड़कर सैकड़ों जानें बचाई हैं। वृद्धा को कई यात्रियों ने इनाम में कुछ पैसे देने चाहे तो उसने कहा, मैं इतना छोटा इनाम नहीं लेती। आप लोग कभी किसी की मदद कर देना। वह मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार होगा।

१९६६) एक बुद्धिमान व्यक्ति लिखने का शौकीन था। वह लिखने के लिए समुद्र के किनारे जाकर बैठ जाता था और वहीं उसे कई प्रेरणाएं प्राप्त होती थीं और वह अपना मनचाहा लिख पाता था। लेकिन लिखने के लिए बैठने से पहले वह समुद्र के तट पर कुछ क्षण टहलता अवश्य था। एक दिन वह समुद्र के तट पर टहल रहा था कि तभी उसे एक व्यक्ति तट से उठा कर कुछ समुद्र में फेंकता हुआ दिखा। जब उसने निकट जाकर देखा तो पाया कि वह व्यक्ति समुद्र के तट से छोटी-छोटी मछलियां एक-एक करके उठा रहा था और समुद्र में फेंक रहा था। ध्यान से अवलोकन करने पर उसने पाया कि समुद्र तटपर तो लाखों की तादाद में छोटी-छोटी मछलियां पड़ी थीं जो थोड़ी ही देर में दम तोड़नेवाली थीं। अंतत: उससे न रहा गया और उस बुद्धिमान मनुष्य ने उस व्यक्ति से पूछ ही लिया- तट पर तो लाखों मछलियां हैं। इस प्रकार तुम चंद मछलियों को एक-एक करके समुद्र में फेंक रहा था, बोला- देखिए, सूर्य निकल चुका है और समुद्र की लहरें अब शांत होकर वापस होने की तैयारी में हैं। ऐसे में मैं तट पर बची सारी मछलियों को तो जीवन दान नहीं दे पाऊंगा और फिर वह झुका और एक और मछली को समुद्र में फेंकते हुए बोला- किंतु इस मछली के जीवन में तो मैंने अंतर ला ही दिया। इस कार्य से मुझे बहुत संतोष हो रहा है।

१९६७) अहिंसा का पाठ- जयपुर के महाराज के दीवान अमर चन्द जैन की गिनती अत्यंत कुशल प्रशासकों और कर्त्तव्यपरायण राजनीतिज्ञों में होती थीं। वे अहिंसा के घोर समर्थक और मानवता के पुजारी थे। उन्हें राजपरिवार का विशेष स्नेह प्राप्त था, जिस कारण दूसरे दरबारी उनसे ईर्ष्या करते थे। वे समय-समय पर उनके खिलाफ महाराज के कान भरते रहते थे। एक बार महाराज शिकार खेलने के लिए जाने लगे तो उन्होंने दीवान जी को भी साथ ले लिया। दीवान जी को थोड़ा अजीब लगा, लेकिन महाराज का आदेश वह टाल नहीं सकते थे। दोनों जंगल में बड़ी दूर निकल गए। जब महाराज ने हिरनों का झुण्ड देखा तो अपना घोड़ा उनके पीछे दौड़ा दिया। आगे-आगे भयभीत हिरन थे, उनके पीछे महाराज का घाड़ा और उनके पीछे दीवान अमर चन्द का घोड़ा दौड़ रहा था। दीवान जी सोच रहे थे- क्या बिगाड़ा है इन निरीह, मूक पशुओं ने अविवेकी है यह मनुष्य जो इन निर्बल पशुओं को मारकर अपनी वीरता पर घमंड करता है। ये बेचारे भागकर कहां जाएंगे। जब राजा ही इनके प्राण लेने को आतुर है तो ये अपनी जान कैसे बचाएंगे। तभी दीवान जी को एक युक्ति सूझी। उन्होंने जोर से पुकार कर कहा, हिरनों, मैं कहता हूं जहां हो वही रुक जाओ। जब रक्षक ही भक्षक ही बन जाए तो बचकर कहां जाओगे। असल में दीवान जी ने यह बात महाराज की आंखें खोलने के लिए कही थी, पर संयोगवश हिरन अपने आप रुक गए। इस पर दीवान जी ने कहा, महाराज ये खड़े हैं आपके सामने, जितने चाहिए ले लो। महाराज कभी

दीवान जी को देखते, तो कभी हिरनों को। वह जो कुछ देख रहे थे वैसा जीवन में कभी नहीं देखा था। अद्‌भुत और अपूर्व दृश्य था यह। महाराज के हृदय में एक हिलोर सी उठी। वह बोले, दीवान जी आपने मेरी आंखें खोल दी। मैं आज से शिकार का त्याग करता हूं। मैं अब हर तरह की हिंसा पर रोक लगाने की कोशिश करूंगा।

१९६८) सही नजरिया- पेपे अपनी बड़ी बहन के साथ अमेरिका की एक गंदी बस्ती में रहता था। उसकी बहन एक धनी अमेरिकी के यहां नौकरी करती थी। एक दिन पेपे ने पूछा, क्या तुम्हारा मालिक बहुत अमीर है? बहन बोली, हां बहुत अमीर। पेपे ने कहा, तुम्हारे मालिक के पास तो बहुत सारे पतलून होंगे। क्या तुम अपने मालिक की पतलूनों में से एक ला सकती हो जो बहुत बड़ी न हो।

इस पर बहन बोली, यह तो चोरी हुई। मालिक मुझे नौकरी से हटा देंगे। पेपे ने कहा, जिसके पास बहुत ज्यादा हो, उससे थोड़ा ले लेने को चोरी नहीं कहते। इसे आपस में बांट लेना कहते हैं। एक दिन उसकी बहन ने मालिक की एक बढ़िया पतलून निकाल ली। पतलून थोड़ी बड़ी थी, इसलिए दोनों मिल कर उसे मालिक के घर में ही काट-छांट कर ठीक करने लगे। उसी समय मालिक आ गया। अपनी पतलून की दुर्दशा देख वह आगबबूला हो गया और बोला, अरे छोकरे, तुमने चोरी की है। अभी पुलिस को बुलाता हूं।

पेपे ने कहा, आप बेशक पुलिस को बुलाइए, लेकिन पहले मेरी बात तो सुन लीजिए। मालिक बोला, क्या कहना चाहते हो? पेपे ने कहा, यदि आप सोचते हैं कि मैंने आप की आखिरी पतलून चोरी की है तो ऐसी बात नहीं है। आपके पास बहुत पतलून हैं और आप आसानी से दूसरी पतलून खरीद भी सकते हैं, लेकिन मेरे पास एक भी नहीं है और मैं खरीद भी नहीं सकता, इसलिए इसे चोरी नहीं मिल बांट कर रहने की उम्मीद कहते हैं।

मालिक बोला, लेकिन तुम्हें जेल तो जाना ही होगा। पेपे ने कहा, अगर आपको जेल भिजवाने में समस्या का हल दिखाई देता है तो भिजवाइए, मगर मैं आपकी जगह होता तो इस जुर्म में आपको जेल नहीं भिजवाता, बल्कि एक पतलून और दे देता क्योंकि मैंने गरीबी देखी है। आपने गरीबी नहीं देखी है। मालिक का गुस्सा शांत हो गया। उसने कहा, तुम ठीक कहते हो। मैंने गरीबी नहीं देखी है, इसलिए गरीबी के दर्द को महसूस नहीं कर सकता।

१९६९) परमार्थ की सीख - एक जमींदार ने अपनी बहुत सारी जमीन पर धान की फसल रोप दी। उसकी रखवाली के लिए उसने चारों ओर मचान बनाकर अनेक नौकर तैनात कर दिए। वे रात-दिन रखवाली करते लेकिन फिर भी पक्षी आते और फसल खा जाते। इससे जमींदार को काफी नुकसान हो रहा था। परेशान होकर जमींदार ने रखवालों को जाल फैलाने का आदेश दिया, ताकि पक्षियों को पकड़ा जा सके। एक दिन उसमें एक सुंदर पक्षी फंस गया। नौकरों ने उसे पकड़ा और जमींदार के पास ले गए। उन्होंने कहा, मालिक, यह पक्षी रोज हमारे खेतों से भर पेट धान खाता है और खाने के बाद कुछ धान की बालियों को मुंह में दबाकर उड़ जाता है। जमींदार ने कहा, अच्छा ठीक है। अब हम इसे सजा देंगे। तभी पक्षी बोल पड़ा, सजा देने से पहले आप मेरी भी सुन लें। जमींदार ने कहा, ठीक है कहो। पक्षी ने अपना पक्ष रखते हुए कहा, आपके इतने बड़े खेत से मेरे चोंच भर हिस्सा लेने से आपका कुछ विशेष नहीं घट जाएगा। मैं अपने खाने के बाद सिर्फ छह बालियां लेकर जाता हूं। जमींदार ने पूछा, किसलिए?

पक्षी ने कहा, मैं दो बालियां अपने वृद्ध माता-पिता के लिए लेकर जाता हूं। उन्हें अब दिखाई नहीं देता है। जब तक वे युवा व स्वस्थ थे, उन्होंने तन-मन से मेरा पालन-पोषण किया। उन्होंने कभी मुझे भूखा नहीं रखा। लेकिन अब वह

अस्वस्थ और बूढ़े हो गए हैं। तो मेरा भी यह कर्त्तव्य बनता है कि मैं भी उनका पालन-पोषण करूं और कभी उन्हें भूखा नहीं रखूं। दो बालियां मैं अपने नन्हे-मुन्ने बच्चों के लिए ले जाता हूं और दो बालियां अपने बीमार पड़ोसी पक्षियों के लिए। यह परमार्थ के लिए है। यदि मैं अपने जीवन में इतना भी परमार्थ न कर सकूं तो मेरा यह जीवन कैसा जीवन? तभी जमींदार की नींद टूट गई। इस सपने से उसे बहुत बड़ी सीख मिली थी।

१९७०) सम्राट का ताज- एक बार इंग्लैंड के सम्राट को भी अनजाने में हुए एक अपराध के लिए कानून के कठघरे में खड़ा होना पड़ा। न्यायाधीश के सामने बड़ी बिकट स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि वह सम्राट का साथ दे या न्याय का सम्मान करे। सम्राट स्वयं भी यही चाहते थे कि न्यायाधीश सारे भेदभाव भुलाकर उचित न्याय करें ताकि प्रजा के सामने एक मिसाल पेश की जा सके। न्यायाधीश ने सोच-समझकर एक सुझाव रखा- मैं इस मुकदमे का एकतरफा फैसला न करके इसका निर्णय सम्राट के शासन क्षेत्र में आने वाले दुनिया के सभी न्यायाधीशों पर छोड़ता हूं। सर्वसम्मति से जो वे तय करेंगे, वही मान्य होगा। लोगों में इस बात की उत्सुकता थी कि आखिर क्या फैसला आता है। क्या कोई सम्राट के खिलाफ जाने की हिम्मत जुटा पाएगा? सभी न्यायाधीशों ने सम्राट के हक में फैसला सुना दिया, मगर उस समय के मद्रास हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस टी.एस. मुत्थुस्वामी का फैसला इन सबसे अलग था। उन्होंने फैसला देते हुए लिखा था- कानून की नजर में सब समान हैं इसलिए सम्राट भी इससे अलग नहीं हैं। उन्हें सजा भुगतनी होगी। उनके सिर का ताज उतारकर उनकी नंगे सिर वाली तस्वीर की एक लाख मुद्राएं ढाली जाएं ताकि उनकी प्रजा को उनकी न्यायप्रियता और न्याय के प्रति सम्मान की भावना मालूम रहे। आशा है सम्राट इसे समझकर सहयोग करेंगे। आखिरकार सभी न्यायाधीशों की सहमति से यही फैसला मान्य हुआ और सम्राट ने भी इसे स्वीकार किया।

१९७१) विनम्रता का पाठ - एक गांव में श्रीचंद नामक विद्वान व साधक प्रतिदिन कथा सुनाते थे। उसी गांव में राजशेखर नाम के विद्वान सज्जन भी रहते थे। वह श्रीचंद से मन ही मन ईर्ष्या करते थे। उन्हें यह बात अखरती थी कि सभी लोग श्रीचंद के पास ही कथा सुनने क्यों जाते हैं? एक दिन शाम को राजशेखर थके हुए घर आए। उन्हें तेज भूख लगी थी। उनकी पत्नी कहीं बाहर गई हुई थी। थोड़ी देर तक उन्होंने पत्नी की प्रतीक्षा की, फिर मन में आया कि कहीं वह श्रीचंद की कथा सुनने तो नहीं गई? आखिर वे वहां पहुंच ही गए, जहां श्रीचंद की कथा चल रही थी। उनकी पत्नी वास्तव में वहीं कथा सुन रही थी। यह देखकर राजशेखर का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुंच गया। वे चिल्लाकर बोले, तुम मूर्ख हो श्रीचंद, तुम कथा सुनाना क्या जानते हो? ये सारे लोग जो कथा सुनने आए हैं तुमसे भी बड़े मूर्ख है। श्रीचंद ने राजशेखर की बात पर ध्यान न देते हुए कथा जारी रखी। राजशेखर भी जब अपने घर पहुंचे तो उन्हें अपने व्यवहार पर पश्चाताप हुआ और सुबह उन्होंने श्रीचंद से मिलने का निश्चय कर लिया। सुबह होते ही राजशेखर श्रीचंद से मिलने घर से निकलने लगे तो दरवाजे पर श्रीचंद खड़े थे। इससे पहले कि राजशेखर कुछ कहते श्रीचंद बोले, आपने मुझे मेरा दोष दिखा दिया, इसका मुझे संतोष है किंतु मुझे मेरा अपराध समझ में नहीं आया। मुझे क्षमा करें। श्रीचंद की विनम्रता से राजशेखर ग्लानि से भर गए। उन्होंने श्रीचंद से अपने अनुचित व्यवहार के लिए क्षमा मांगी। उसके बाद दोनों मित्र बए गए।

१९७२) मंत्री की सीख - जितशत्रु नामक राजा भोजन करते हुए अपने मंत्री से कहता, आज सब्जी बड़ी स्वादिष्ट बनी है। कभी कहता, आज सब कुछ बड़ा ही सरस बना है। राजा सदैव हर वस्तु की तारीफ ही करता। इस पर विद्वान मंत्री कहता, इसमें प्रशंसा की क्या बात है। अच्छा और बुरा होना तो वस्तु का स्वभाव है। कभी एक वस्तु अच्छी लगती है, तो

कभी वही बुरी लगने लगती है। आज किसी में गुण दिखाई देता है तो कभी उसी में दोष दिखाई देने लगता है। संसार में सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं। कभी शत्रु मित्र बन जाता है तो कभी मित्र शत्रु। पर इस बात से राजा सहमत नहीं होता था। एक दिन राजा और मंत्री कहीं जा रहे थे। रास्ते में वे गंदे पानी की एक खाई से निकले। राजा ने नाक बंद करके कहा, देखो, इसमें से कितनी दुर्गंध, बदबू आ रही है। कितना गंदा है यह पानी। राजा ने इस बात को कई बार दोहराया तो मंत्री बोला, राजन्, इसमें खिन्न होने की क्या बात है। यह तो पदार्थ का स्वभाव है। मंत्री ने खाई का थोड़ा पानी एक बर्तन में ले लिया और घर लाकर उसे खूब उबाला, फिर उसमें सुगंधित पदार्थ डाले। मंत्री एक दिन वही पानी लेकर राजा के पास गया। भोजन के समय उसने वही पानी राजा को पीने के लिए दिया। राजा पानी पीकर बोला, अरे, यह पानी कितना साफ और सुगंधित है। इतना स्वादिष्ट जल तुम कहां से लाए? इस पर मंत्री बोला, यह तो प्रकृति का स्वभाव है कि गुण कभी दुर्गुण बन जाते हैं और दुर्गुण कभी गुण। अब इस पानी को ही देखिए, यह उसी खाई का है जो बहुत दुर्गंधित था। उसे देखकर अपने नाक बंद कर ली थी। लेकिन आज इसका एक नया रूप आपके सामने है जिसने आपको प्रसन्न कर दिया है। यही बात दूसरे पदार्थों और व्यक्तियों तक पर लागू होती है। राजा अपने मंत्री की इस बात से सहमत हो गया।

१९७३) भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान - गंगा और यमुना, दोनों हिमालय से निकलीं। लेकिन गंगा ठहरी कुछ गोरी और यमुना का रंग काला। गंगा को अपनी शुभ्रता का अभिमान हुआ। वह ऊपर-ऊपर चली। बेचारी यमुना अपने श्यामल वर्ण के कारण उससे कुछ दूर-दूर चली। लेकिन गर्वीली गंगा ने आगे चलकर देखा कि बिना यमुना के वह शतमुख से सागर में नहीं मिल सकेगी। इसलिए नम्रभाव से गंगा रुकी। उधर से यमुना आई। गंगा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत करते हुए कहा, यमुना बहन, तू मेरे पास आ। मैंने तेरा रंग देखकर तुझे हेय माना। पर तेरे किनारे पर कृष्णा भगवान ने भक्ति की वर्षा की। छोटे-बड़ों को एक किया, अपनी वंशी से एकता का गान किया, मिल-बांटकर खाने की प्रेरणा दी। अरे, तेरी महिमा के क्या कहने। यमुना ने गद्‌गद् स्वर में गंगा से यह सुनकर कहा, क्यों बहन, तुम मेरी बड़ाई करती हो, किन्तु तुम्हारी महिमा तो अपरम्पार है। मेरे किनारे पर भक्ति का विकास अवश्य हुआ, पर तुम्हारे किनारे से ज्ञान का प्रकाश फैला। भगवान पशुपतिनाथ तुम्हारे किनारे पर साधना-लीन हुए। असंख्य ऋषि-मुनि तुम्हारे ही तट पर तपस्या करते हैं। राजा-महाराजा अपना राजपाट त्यागकर ब्रह्मचिंतन करते हैं। बहन, तुम पूर्ण ज्ञान हो। तभी गुप्त रहनेवाली सरस्वती बोली, भक्ति और ज्ञान आवश्यक हैं, पर बिना कर्म के वे अधूरे हैं। इसलिए भक्ति का ज्ञान से और भक्ति-ज्ञान का कर्म से मिलन अनिवार्य है। फिर क्या था। ज्ञानमयी गंगा, भक्तिमयी यमुना और कर्ममयी सरस्वती बाहें फैलाकर एक-दूसरे के आलिंगन में बंध गई। तीनों नदियों का संयम ज्ञान, भक्ति और कर्म की धाराओं का संगम है। भारतीय संस्कृति का यही अधिष्ठान है।

१९७४) अधूरा ज्ञान - काशी के एक आश्रम में शिक्षा पूरी करने के बाद एक शिष्य वहां के राजा के पास गया और कहा, राजन् मैंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है और अब मैं समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हूं। आप मुझे अपना गुरु बना लें। मैं आपको भागवत सहित सभी धर्मशास्त्रों की दीक्षा दूंगा। राजा ने कहा, वत्स, मैं भागवत के रहस्यों का मर्म तो समझना चाहता हूं लेकिन मेरे विचार से आप अभी इतने पारंगत नहीं हुए हैं कि आप मुझे दीक्षा दे सकें। मेरी राय में आपको अभी और अध्ययन की आवश्यकता है। उसके बाद आपको गुरु बना कर मुझे खुशी होगी। यह सुनकर विद्वान ब्राह्मण को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि राजा ने बिना परीक्षा किए ही मेरी विद्वता पर उंगली उठाई है। निराश होकर वह लौट आया। उसने यह बात अपने गुरु से कही। गुरु ने कहा, राजा ने अवश्य कोई कमी देखी होगी, तभी ऐसा कहा है। वह

आश्रम में रहकर फिर से अध्ययन करने लगा। थोड़े दिन के बाद पुन: राजा के पास जाकर उसने गुरु बनने की इच्छा जताई। इस बार भी राजा ने कहा, वत्स अभी आपका ज्ञान अधूरा है। इस बार भी विद्वान ब्राह्मण निराश होकर लौट आया और फिर से धर्म ग्रंथों का अध्ययन करने लगा। इस बार उसे भागवत तथा अन्य शास्त्रों का गूढ़ अर्थ समझ में आ गया। अब उसके मन से राजा का गुरु बनने की इच्छा खत्म हो गई। वह फिर राजा के पास नहीं गया। थोड़े दिन के बाद राजा स्वयं ब्राह्मण के पास आए और कहा, मुनिवर, मेरा विचार है कि अब आप भागवत का गूढ़ अर्थ समझ गए हैं। अब मुझे आपका शिष्य बनकर खुशी होगी। शिष्य ने कहा, राजन्, आपकी बात सच थी। मैं हर बार अधूरा ज्ञान लेकर आपको अपना शिष्य बनाने की इच्छा करता था। अब मुझे शास्त्रों का गूढ़ अर्थ समझ में आ गया है। इसलिए अब आपका गुरु बनने की मेरी इच्छा भी खत्म हो गई है। अब तक अधूरा ज्ञान लेकर स्वार्थवश आपके पास आता था। अब मुझे ज्ञान हो गया है कि ज्ञान बेचने की वस्तु नहीं है। वह लोगों तक पहुंचाने की चीज है।

१९७५) दो घड़ी धर्म की - एक नगर में एक धनवान सेठ रहता था। अपने व्यापार के सिलसिले में उसका बाहर आना-जाना लगा रहता था। एक बार वह परदेस से लौट रहा था। साथ में धन था, इसलिए तीन-चार पहरेदार भी साथ ले लिए। लेकिन जब वह अपने नगर के नजदीक पहुंचा, तो सोचा कि अब क्या डर। इन पहरेदारों को यदि घर ले जाऊंगा तो भोजन कराना पड़ेगा। अच्छा होगा, यहीं से विदा कर दूं। उसने पहरेदारों को वापस भेज दिया। दुर्भाग्य देखिए कि वह कुछ ही कदम आगे बढ़ा कि अचानक डाकुओं ने उसे घेर लिया। डाकुओं को देखकर सेठ का कलेजा हाथ में आ गया। सोचने लगा, ऐसा अंदेशा होता तो पहरेदारों को क्यों छोड़ता? आज तो बिना मौत मरना पड़ेगा। डाकू सेठ से उसका माल-असबाब छीनने लगे। तभी उन डाकुओं में से दो को सेठ ने पहचान लिया। वे दोनों कभी सेठ की दुकान पर काम कर चुके थे। उनका नाम लेकर सेठ बोला, अरे। तुम फलां-फलां हो क्या? अपना नाम सुनकर उन दोनों ने भी सेठ को ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने भी सेठ को पहचान लिया। उन्हें लगा, इनके यहां पहले नौकरी की थी, इनका नमक खाया है। इनको लूटना ठीक नहीं है। उन्होंने अपने बाकी साथियों से कहा, भाई इन्हें मत लूटो, ये हमारे पुराने सेठजी हैं। यह सुनकर डाकुओं ने सेठ को लूटना बंद कर दिया। दोनों डाकुओं ने कहा, सेठजी, अब आप आराम से घर जाइए, आप पर कोई हाथ नहीं डालेगा। सेठ सुरक्षित घर पहुंच गया। लेकिन मन ही मन सोचने लगा, दो लोगों की पहचान से साठ डाकुओं का खतरा टल गया। धन भी बच गया, जान भी बच गई। इस रात और दिन में भी साठ घड़ी होती हैं, अगर दो घड़ी भी अच्छे काम किए जाएं, तो अठावन घड़ियों का दुष्प्रभाव दूर हो सकता है। इसलिए अठावन घड़ी कर्म की और दो धर्म की। इस कहावत को ध्यान में रखते हुए अब मैं हर रोज दो घड़ी भले का काम अवश्य करूंगा।

१९७६) ईश्वर की लीला होती है अजब-गजब- उसकी मां बिस्तर पर पड़ी मौत से संघर्ष कर रही थी। उसने मां को बचाने के क्या-क्या प्रयास न किये लेकिन लाख प्रयास करने पर भी मां के बचने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। संकट की उस घड़ी में जो भी घर में आ टपकता उसे वह देवदूत ही मानता। एक दिन मां बरामदे में लेटी हुई थी। वह मां पर पंखा झल रहा था कि साधुओं का एक दल उसके द्वार पर पहुंचा। वे सब के सब आमंत्रित मेहमानों की तरह घर के अंदर आ घुसे। उनमें से एक साधु ने कहा- पुत्र। ईश्वर ने हमें भेजा है। संगत वैष्णोदेवी जा रही है। दाता ने आदेश दिया कि मेरा एक अजीत भक्त कष्ट में है। उसका दुख दूर करो। वह मनचाही सेवा करेगा। आपके पास आने की हड़बड़ाहट में रास्ते में हमारा बैग कहीं गिर गया है। मदद करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तीन दिन के भीतर। मां की बीमारी ने सब

कुछ खाली कर दिया है विलंब न करो वत्स। इक्कीस हजार रुपयों का प्रबंध करो तुरंत। इस हाथ से पैसे दो और हमारे ओझल होते ही अपनी बीमार मां की तबीयत में सुधार देखो। वह उधार के लिए कई जगह गया लेकिन ग्यारह हजार रुपये का ही प्रबंध हो सका। भोजन व वस्त्रों के साथ उसने उन्हें ग्यारह हजार रुपये दिये। वे प्रसन्न हो विदा हो गये। अब वह मां के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा करने लगा लेकिन मां की हालत और गंभीर होती गई। दूसरे दिन उसने अखबार खोला तो दंग रह गया। वे साधु नहीं बल्कि साधु भेसधारी चोर थे जो पुलिस द्वारा बहुत बड़ी चोरी के जुर्म में पकड़े गये यह सुनकर मां का निधन हो गया और वह फिर से पुनर्जन्म के हिसाब किताब में जुट गया।

१९७७) बच्चे की ईमानदारी - उन दिनों द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था। जर्मन सेना पोलैंड पर हमला कर चुकी थी। सेना के एक अधिकारी पोलैंड के एक सुदूर गांव में बने अपने शिबिर से कुछ सैनिकों के साथ घोड़ों के लिए चारा इकट्ठा करने निकले। अधिकारी ने गांव के एक बच्चे को पकड़कर कहा, चलकर बताओ कि यहां किस खेत में अच्छी फसल है? बच्चा उनके साथ चल पड़ा। चारों ओर खेत लहलहा रहे थे। सभी की फसल बहुत शानदार दिखाई दे रही थी। सैनिक चाहते थे कि उन खेतों में से ही किसी एक की फसल काट लें, किंतु बच्चा बार-बार कहता था, कुछ और आगे चलिए, बहुत अच्छी फसल आप लोगों को बताऊंगा। सैनिकों को पोलैंड की सेना के जाल में फंस जाने की आशंका भी सता रही थी किंतु वे चलते रहे। धीरे-धीरे वह बच्चा सैनिकों को लगभग गांव की सीमा पर स्थित खेतों पर ले गया। वहां उसने एक खेत बताया। सैनिकों ने उस खेत से फसल काटकर गट्ठर बांधे और घोड़ों पर रख लिए। सैनिक अधिकारी बड़ी ही नाराजगी से बच्चे से बोले, तू हमें बेकार इतनी दूर ले आया। ऐसी फसल तो पास के खेतों में भी थी। बच्चे ने कहा, मैं जानता हूं कि आप लोग खेत के स्वामी को फसल का मूल्य तो देनेवाले हैं नहीं। तो फिर किसी दूसरे किसान का नुकसान कैसे कराता। यह मेरा अपना खेत है और मेरे लिए तो इसी की फसल सबसे अच्छी है। यह सुन अधिकारी ने लज्जित होकर उस बच्चे को फसल के मूल्य के साथ-साथ पुरस्कार देकर भी सम्मानित किया।

१९७८) मदद का तरीका - भावनगर रियासत के दीवान प्रभाशंकर पट्टनी संत प्रकृति के व्यक्ति थे। रियासत का कामकाज करते हुए भी वह निजी तौर पर अनेक लोगों की मदद करते रहते थे। एक दिन उनके सहायक ने उन्हें बताया कि एक नवनियुक्त न्यायाधीश उनसे मिलना चाहते हैं। दीवान साहब ने कहा- न्यायाधीश महोदय को सत्कारपूर्वक मेरे पास ले आओ। न्यायाधीश के आने पर प्रभाशंकर पट्टनी ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बैठाया, नाश्ते की उचित व्यवस्था की। यह सब शिष्टाचार निबट जाने पर न्यायाधीश महोदय ने अपनी जेब से रुपयों की गड्डी निकाली और दीवान साहब की ओर बढ़ाते हुए बोले- ये दस हजार रुपये आपसे लिए गए ऋण के हैं। इन्हें स्वीकार कर आप मुझे ऋणमुक्त करने की कृपा करें। थोड़ा हैरान होते हुए प्रभाशंकर पट्टनी ने कहा- लेकिन मैं तो आपसे पहले कभी नहीं मिला हूं। मैंने भला आपको कब ऋण दे दिया। उस न्यायाधीश ने जवाब दिया- मैं आपके गांव की एक विधवा का बेटा हूं। मेरी मां ने मेरी पढ़ाई के लिए आपसे कुछ रुपये लिए थे। मरने से पहले उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि जब मैं कमाने लायक हो जाऊं तो आपका धन आपको वापस कर दूं। मैं वही लौटाने के लिए आया हूं। यह सुनकर दीवान साहब एक पल के लिए मौन हुए फिर बोले- ये तो ठीक है पर ऋण चुकाने का यह तरीका ठीक नहीं है। आप ऐसा करें कि इन रुपयों में कुछ और रुपये मिलाकर गरीब छात्रों की मदद करें और फिर उन्हें प्रेरित करें कि वे भी समर्थ होकर कुछ ऐसा ही लोकोपकारी कार्य करें। लोकसेवा को एक परंपरा के रूप में ढाल कर आप ऋणमुक्त हो सकेंगे। वह युवा न्यायाधीश दीवान साहब की सद्प्रवृत्ति देखकर श्रद्धा से

झुक गए। उन्होंने ठीक वैसा ही किया जैसा कि दीवान साहब ने कहा था।

१९८०) आशा और निराशा - एक दूधवाले ने दो मेंढ़क पाल रखे थे। दोनों में घनी मित्रता थी। परंतु दोनों विपरीत स्वभाव के थे। एक बेहद आशावादी था तो दूसरा निराशा से भरपूर। आशावादी मेंढ़क अपने मित्र को जीवन में आशा का महत्व समझाता, परंतु उसकी मित्र उसकी बात को हंसकर टाल देता था। उसका मानना था कि जो होना है वह होकर रहेगा। इसलिए अपनी ओर से किसी तरह का कोई प्रयत्न अनुचित है। एक रात दोनों खेल रहे थे। वे खूब-उछल कूद मचा रहे थे। इसी क्रम में वे अचानक छाछ के बर्तन में जा गिरे। रात होने के कारण किसी की भी नजर उन पर नहीं पड़ी। बाहर निकलने के लिए वे जितना हाथ-पैर मार रहे थे, उतना ही गाढ़ी-गाढ़ी छाछ में फंसते जा रहे थे। निराशावादी मेंढ़क बोला, हम कितना भी प्रयत्न कर लें, परंतु इसमें से बाहर नहीं निकल पाएंगे, इसलिए शरीर को ढीला छोड़ देते हैं और मृत्यु को शांति से गले लगा लेते हैं। अंत समय में व्यर्थ ही शरीर को थका-थका कर अपनी मृत्यु को कष्टदायक न बनाएं। इस पर आशावादी मेंढक बोला, हमें आखिरी सांस तक प्रयत्न करना चाहिए। शायद सचमुच बाहर निकलने में हम कामयाब हो जाएं। इतना कहकर वह लगातार हाथ-पैर मारता रहा। इस दौरान वह थककर बेहोश हो गया। उसके होश में आने पर सवेरा हो चुका था। उसने अपने आपको छाछ के ऊपर मक्खन की सतह पर पाया। उस मेंढक के लगातार हाथ-पैर मारने से छाछ में मक्खन बन आया था, उसी से मेंढक की जान बच गई। उसने हर तरफ गौर से देखा कि उसका मित्र कहां है। परंतु उसका मित्र तो छाछ में नीचे मरा पड़ा था। उसने बिना कोई प्रयत्न किए शरीर को ढीला छोड़कर बच पाने की आशा भी छोड़ दी थी और मृत्यु का ग्रास बन गया। आशावादी मेंढक को अपने मित्र की मृत्यु पर काफी दुख हुआ। अब उसके जीवन में आशावादी दृष्टि का महत्व और भी बढ़ गया।

१९८१) शिष्य का अभिमान - एक युवा पहलवान को अपनी कुश्ती कला पर अभिमान हो गया। उसके गुरु, जिन्होंने उसे कुश्ती सिखाई थी, अब वृद्ध हो चले थे जबकि शिष्य दिन-दूरी रात चौगुनी सफलता के परचम लहरा रहा था। कुछ ही समय के बाद शिष्य अपने आगे सबको तुच्छ समझने लगा। एक दिन उसके गुरु ने समझाया कि विनम्रता और मदद की भावना ही व्यक्ति को सफलता की ऊंचाइयों पर जीवित रख सकती है। इस पर शिष्य क्रोधित होकर बोला, आप मेरी सफलता से जलते हो। ईर्ष्यावश आप ऐसा कह रहे हैं। गुरु ने कहा, आखिर तुम मेरे शार्गिद हो। मेरे द्वारा सिखाई गई युक्तियों को ही कुश्तियों में प्रयोग करते हो। भला मैं तुमसे क्यों ईर्ष्या करूंगा? शिष्य ने कहा, आपने तो मुझे कुछ तकनीकें ही सिखाई थीं, किंतु बार-बार यह कहकर मेरा अपमान क्यों करते हो कि आपने मुझे कुश्ती की बारीकियों की जानकारी दी है। मैं आपको भी हरा सकता हूं। चाहो तो मुकाबला करके देख लो। गुरुजी शिष्य की बातें सुनकर दंग रह गए, फिर भी उन्होंने मुकाबले की बात स्वीकार कर ली। निश्चित दिन मुकाबला शुरू हो गया। लोग दंगल में एक वृद्ध व जवान व्यक्ति के बीच मुकाबले को देखकर हैरान थे। सभी को वृद्ध गुरु पर बेहद दया आ रही थी और वे आंखें बंद कर उनके जीवन की सलामती की दुआएं कर रहे थे। कुछ ही देर बाद जोर की चीख सुनाई दी। लोग यह देखकर हैरान रह गए कि शिष्य चारों खाने चित पड़ा था और गुरु सामने खड़े मंद-मंद मुस्करा रहे थे। गुरु शिष्य के पास जाकर बोले, पुत्र, यही एक दांव मैंने तुम्हें नहीं सिखाया था और तुम्हारा घमंड तोड़ने के लिए सुरक्षित रखा था। पुरानी पीढ़ी को नकारो मत। उसे साथ लेकर चलोगे तो सफल रहोगे। शिष्य का अभिमान चूर-चूर हो गया। वह गुरु के पैरों पर गिर पड़ा।

१९८२) अतिथि की जगह - संत अलवार गांव से दूर छोटी सी कुटिया में रहते थे। कुटिया में बस एक आदमी के सोने की जगह थी। एक रात संत कुटिया में सो रहे थे। ठंड का मौसम था। हल्की बूंदाबांदी हो रही थी। आधी रात को किसी ने

दरवाजा खटखटाया। संत ने दरवाजा खोला। बाहर एक आदमी ठंड से कांप रहा था। उसने कहा, रास्ता भटक गया हूं। रात भर के लिए अपनी कुटिया में जगह दे दीजिए। संत ने कहा, इस कुटिया को अपना ही समझो। अंदर आ जाओ। आगंतुक कुटिया में आ गया। अंदर आकर उसने महसूस किया कि कुटिया में तो केवल एक आदमी के सोने की जगह है। उसकी दुविधाको समझ कर संत ने कहा, जगह कम है तो क्या हुआ। हम दोनों आराम से बैठकर रात गुजार लेंगे। इतना कहकर संत ने दरवाजा बंद कर लिया और दोनों बैठकर झपकी लेने लगे। थोड़ी देर में फिर किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। संत ने फिर दरवाजा खोला। एक और आदमी को सामने ठंड से कांपते देख कर संत ने कहा, बाहर क्यों खड़े हो भाई, अंदर आ जाओ। वह अंदर आ गया। वह भी कम जगह देखकर असमंजस में पड़ गया। संत ने पूछा, आखिर क्या सोच रहे हो भाई? उसने कहा, यही सोच रहा हूं कि कुटिया में सोने की तो दूर, बैठने की जगह भी नहीं है। संत ने कहा, चिंता मत करो। हम तीनों बड़े आराम से खड़े-खड़े गप्पें मारते रात गुजार लेंगे। सुबह जब दोनों आगंतुक जाने लगे तो एक ने कहा, मुनिवर, आप की कुटिया में जब जगह नहीं थी तो हम लोगों को शरण क्यों दिया? हमारे कारण आपको भी कष्ट पहुंचा। संत ने कहा, अतिथि सेवा से बढ़ कर कोई सुख नहीं होता। यह ठीक है कि मनुष्य की बनाई कुटी में जगह की कमी है मगर ईश्वर के बनाए विशाल हृदय में जगह की कमी नहीं है। मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।

१९८३) धर्म और अधर्म - किसी शहर में एक सेठ ने अनुचित कार्यों से बहुत सारा धन एकत्र किया था। वह रोज मंदिर जाया करता था। उसका विचार था कि यदि ईश्वर प्रसन्न हो जाएं तो सारे पाप कट जाते हैं। सेठ जिस मंदिर पर जाता वहां एक संत नियमित आते थे। वह वहां लोगों को धर्म व ज्ञान की बातें बताते थे। सेठ जब भी मंदिर जाता, कुछ देर बैठकर उनकी बातें जरूर सुनता। एक दिन संत ने बताया कि चीटियों को आटा खिलाने से पुण्य मिलता है। पुण्य कमाने का इतना सस्ता नुस्खा पाकर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। अब वह प्रतिदिन मंदिर के आसपास चीटियों के बिलों पर आटा बिखेरने लगा। उसने इतना अधिक आटा बिखेरा कि महीने भर में चीटियों के हजारों नए बिल तैयार हो गए और इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए करोड़ों चीटियां उस क्षेत्र में जमा होने लगीं। उनकी संख्या इतनी बढ़ी कि मंदिर के आसपास रहने वाले लोग परेशान हो गए। वे इलाका छोड़कर भागने लगे। परंतु सेठ ने आटा डालना नहीं छोड़ा। जब संत को इसका पता चला तो उन्होंने सेठ को बुलाया और कहा, धर्म के कार्य में विवेक का भी ध्यान रखना चाहिए। यह सोचना चाहिए कि कहीं धर्म मे साथ अधर्म तो नहीं हो रहा। तुमने चीटियों को तो लाभ पहुंचाया पर मनुष्य को तकलीफ में डाल दिया। असल में तुम्हें न तो चीटियों की परवाह है न मनुष्य की। तुम्हें तो बस पुण्य बटोरना है। सेठ संत का आशय समझ गया। उसने उस दिन से गलत कार्य छोड़ दिए।

१९८४) अच्छे और बुरे लोग - एक अजनबी मुसाफिर किसी गांव में पहुंचा। वहां उसने एक बुजुर्ग से सवाल किया, इस गांव के लोग कैसे है? क्या वे अच्छे है? बुजुर्ग ने अजनबी के सवाल का सीधे जवाब नहीं दिया, उलटे एक सवाल कर दिया, तुम जहां से आए हो, वहां के लोग कैसे हैं? अजनबी अत्यंत दुखी होकर बोला, मैं क्या बताऊं। मेरे गांव के लोग अत्यंत दुष्ट हैं, इसलिए मैं वह गांव छोड़कर आया हूं। लेकिन आप यह क्यों पूछ रहे हैं? बुजुर्ग बोला, मैं भी दुखी हूं। इस गांव के लोग भी तुम्हारे ही गांव वालों जैसे हैं बल्कि उससे भी ज्यादा बुरे। तभी एक और राहगीर आ गया। उसने भी बुजुर्ग से वही सवाल किया कि इस गांव के लोग कैसे हैं? बुजुर्ग ने फिर उलटा सवाल दाग दिया, तुम बताओ कि जहां से आए हो वहां के लोग कैसे है।? राहगीर के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। उसने कहा, मेरे गांव के लोग इतने अच्छे हैं कि

उन्हें याद करके ही सुख मिल रहा है। उसकी आंखें गीली हो गईं। उसने कहा, मुझे गांव छोड़ने का दुख है। लेकिन रोजगार की तलाश यहां तक ले आई है। इसलिए पूछ रहा हूं कि यह गांव कैसा है? बुजुर्ग ने कहा, दोस्त यह गांव भी वैसा ही है। यहां के लोग भी बहुत अच्छे हैं। वास्तव में मनुष्यों में भेद नहीं होता। जिनके संपर्क में हम आते हैं वे हमारी ही तरह हो जाते हैं। अच्छे के लिए अच्छे और बुरे के लिए बुरे। यह संसार एक दर्पण है जिसमें हमें अपनी ही छाया दिखाई देती है।

१९८५) सर्वव्यापक ईश्वर - एक व्यक्ति अपनी बेकारी से परेशान था। वह लगातार प्रयास कर रहा था पर उसे कोई काम नहीं मिल पा रहा था। उसकी इस हालत में उसके दोस्तों-रिश्तेदारों ने भी उसका साथ छोड़ दिया था। हालांकि इसके बावजूद वह व्यक्ति निराश नहीं था। उसकी यह दशा देखकर एक चोर को दया आ गई। चोर ने उस व्यक्ति से कहा, तुम मेरे साथ चलो, चोरी में मेरी मदद करो, बहुत धन मिलेगा। तुम्हारी हालत सुधर जाएगी। काफी सोच-विचार के बाद वह बेकार व्यक्ति इसके लिए तैयार हो गया। उसने चोर साथी से कहा, मुझे चोरी करने की कला तो आती नहीं है, करूंगा कैसे? चोर ने कहा, इसकी चिंता न करो, मैं सब सिखा दूंगा। दोनों गांव से दूर खेतों की ओर चल दिए। चोर ने वहीं एक खेत से पके हुए अनाज काटने का मन बनाया। वैसे तो रात में उधर कोई रखवाली नहीं थी, तो भी चोर ने अपने नए साथी को खेत की मेड़ पर खड़ा कर दिया ताकि वह निगरानी करता रहे कि कोई देख तो नहीं रहा है। चोर स्वयं खेत काटने लगा। नए चोर ने थोड़ी ही देर बाद आवाज लगा दी, भाई, जल्दी करो, यहां से भाग चलो, खेत का मालिक पास ही खड़ा देख रहा है, मैं तो भागता हूं। चोर खेत छोड़कर उठ खड़ा हुआ और भागने लगा। कुछ दूर जाकर दोनों खड़े हुए तो चोर ने साथी से पूछा, मालिक कहां था, कैसे देख रहा था? साथी ने कहा, ईश्वर हम सबका मालिक है। इस संसार में जो कुछ है, उसी का है। वह हर स्थान पर मौजूद है और सब कुछ देखता है। मेरी आत्मा ने कहा कि ईश्वर यहां भी मौजूद है और हमारी चोरी को देख रहा है। ऐसी दशा में हमारा भागना ही उचित था। चोर पर इस बात का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसने सदा के लिए चोरी करना छोड़ दिया। जल्दी ही दोनों को मन लायक काम भी मिल गया।

१९८६) दो होशियार - क्ले और पिआ मंदिर के अहाते में रहनेवाले दो मित्र थे। एक दिन क्ले की मां उससे मिलने आई। उसने जेब खर्च के लिए अपने बेटे को पांच भाट (थाइलैंड की मुद्रा) किए। क्ले ने बहुत सोचा कि उसे कहां रखा जाए। आखिर उसने उसे जमीन में गाड़ दिए और उस जगह पर निशानी के लिए एक तख्ती लिखकर लगा दी। तख्ती पर लिखा था- यह वह जगह नहीं है जहां पांच भाट गड़े हुए हैं। शाम को काम से निबट कर पिआ उधर सैर करने निकला। उसे तख्ती देखकर आश्चर्य हुआ। उसने जमीन खोदकर पैसे निकाले और उन्हें लेकर चलता बना। लेकिन पिआ भी यह दिखना चाहता था कि उसको भी लिखना आता है, उसने क्ले की तख्ती पर जो लिखा था उसे मिटा कर लिख दिया, पैसे पिआ ने नहीं लिए। कुछ देर सैर करने के बाद क्ले को अपने पैसे की चिंता हुई। वह उस जगह वापस गया जहां पैसे गड़े थे। जमीन खोदी, पर पैसा नदारद था। परेशान क्ले रोता हुआ मंदिर के पुजारी के पास गया उसने सारी बात सुनी और वह तख्ती भी देखी। पुजारी ने पिआ को पकड़ बुलाया और सारा पैसा वसूल कर लिया। इस तरह क्ले और पिआ अपने को होशियार दिखाने के चक्कर में खुद ही मूर्ख बन गए।

१९८७) लालची हकीम - जापान के टोकियो शहर में एक हकीमजी रहते थे। वे बड़े मशहूर थे। उनकी दवाएं रामबाण होती थीं। हकीमजी अपनी विशेषज्ञता के साथ लालची स्वभाव के कारण बड़े ही बदनाम थे। एक बार एक बच्चे को जिसे कोई असाध्य बीमारी थी, उसे हकीमजी के पास लाया गया। हकीमजी ने उसे बिल्कुल ठीक कर दिया। बच्चे का मां ने

अपनी कृतज्ञता जताने के लिए रेशम का एक बटुआ हकीमजी को भेंट में देने के लिए उनकी ओर बढ़ाया। बच्चे की मां ने कहा- हकीमजी, यह बटुआ मैंने अपने हाथों से बड़ी मेहनत और कारीगरी से बनाया है। कृपया इसे स्वीकार करें। सिर हिलाते हुए रूखाई से हकीमजी बोले- मैं कोई चीज-वीज नहीं लेता। सिर्फ रूपया लेता हूं। नकद रूपया। इस अपमान से बच्चे की मां के दिल को ठेस लगी। उसने हकीमजी से पूछा- कितना पैसा देना है आपको? हकीमजी ने कहा- सिर्फ पांच न्यांग (जापानी मुद्रा का नाम)। बिना कुछ कहे बच्चे की मां ने रेशम के बटुए से पांच न्यांग निकाल कर हकीमजी को दे दिए। बटुआ और उसमें रखे दस और न्यांग लेकर वह चली गई। हकीमजी अगर रेशम का बटुआ ले लेते तो उन्हें बटुए के साथ पन्द्रह न्यांग मिलते। अब महज पांच न्यांग ही हकीमजी के हाथ लगे।

१९८८) गुरु सेर, चेला सवा सेर - एक पाठशाला के गुरुजी अपने आलस्य के लिए इतने मशहूर थे, कि कोई भी अपना बच्चा उनके पास नहीं भेजना चाहता था। लेकिन एक दिन एक पिता अपने लड़के को पढ़ाने के लिए आलसी गुरुजी के पास लाए। पिता ने पुत्र को गुरुजी को सौंपते हुए कहा- इसे अच्छे तरीके से पढ़ाना। अच्छी बात है- आलसी गुरुजी ने चिढ़कर कहा। आलसी गुरूजी को यह अच्छा नहीं लग रहा था कि काम करना पड़ेगा। फिर भी वे बोले- तुम मुझसे ही पढ़ना चाहते हो तो जाओ, अपने लिए एक मेज ले आओ। किसलिए? लड़के ने पूछा। उसके ऊपर पान के पत्ते रखने हैं न और अपने गुरुदेव की प्रार्थना करनी है। यह मेरी पाठशाला का कायदा है। अपना सर खुजाते हुए नए शिष्य ने कहा- तो मैं घुटनों और पंजों के बल खड़ा हो जाता हूँ। मेरी पीठ पर पान के पत्ते रखे जा सकते हैं। इस तरह हम दोनों मेहनत से बच जाएंगे। यह सुनकर गुरुजी शिष्य के चरणों पर गिर पड़े और बोले- शाबाश, बेटों। तुमको मुझसे कुछ भी सीखने की जरूरत नहीं है। मुझको जो विद्या सबसे अच्छी आती हैं, वह है काम करने से बचना। इसमें तुम तो मेरे भी गुरु है।

१९८९) रेत का पुल - भारद्वाज ऋषि के पुत्र यवक्रीत को विद्यार्जन में रुचि नहीं थी। इसलिए वह अध्ययन से दूर रहे पर बाद में उन्हें अहसास हुआ कि अशिक्षित होने और शास्त्रों का ज्ञान नहीं होने के कारण समाज में उनका सम्मान नहीं होता। लेकिन चूंकि उनकी उम्र ज्यादा हो चुकी थी, विधिवत शिक्षा ग्रहण करने का समय निकल चुका था, इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों न देवताओं की तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया जाए और वरदान मांग कर सारी विद्याएं प्राप्त कर ली जाएं। वह गंगा किनारे भगवान को खुश करने के लिए ध्यानमग्न हो गए। भगवान इंद्र उनके मन की बात समझ गए। एक दिन वह साधु का वेश धारण करके वहां आए और दोनों हाथों से रेत उठाकर पानी में डालने लगे। थोड़ी देर में यवक्रीत की आंखें खुलीं। उन्होंने साधु को पानी में बालू डालते देख कर पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं। साधु ने कहा- गंगा के ऊपर पुल बना रहा हूँ। यवक्रीत ने कहां आप तो बड़े ज्ञानी लगते हैं लेकिन यह मूर्खता वाला काम क्यों कर रहे हैं। कहीं बालू से पुल बनता है। बालू तो पानी में गिरते ही उसमें घुल जाता है। यह सुन कर साधु ने कहा, यदि बिना पढ़े-लिखे ज्ञान मिल सकता है तो बालू से पुल क्यों नहीं बन सकता। अगर तपस्या करने से ही ज्ञान मिलता तो फिर पढ़ने-लिखने का कष्ट कौन उठाता। सभी आप की तरह तपस्या करके भगवान को खुश करके ज्ञान का वर मांग लेते। यह सुनकर यवक्रीत सोच में पड़ गए। उन्होंने कहा, पर इतनी ज्यादा उम्र में पढ़ाई कौन करता है। साधु ने कहा, वत्स, ज्ञान प्राप्त करने की कोई उम्र सीमा नहीं होती। यदि आप संकल्प कर लोगे तो अब भी अपने पिता के समान महान ज्ञानी बन सकते हो। यवक्रीत ने कहा, आप ठीक कह रहे हैं। अब मैं अध्ययन करूंगा। बाद में यवक्रीत महान विद्वान बने और तपोदत्त के नाम से जाने गए।

१९९०) धन की माया - किसी शहर में एक धनवान सेठ रहता था। वह बेहद कंजूस था। दिन-रात उसे बस अपने धन की सुरक्षा की चिंता सताती रहती थी। इस चिंता के कारण उसे नींद न आने की बीमारी लग गई। उसका एक नौकर

था। वह भी अपने मालिक की तरह धनवान बनना चाहता था। लेकिन वह अपने मालिक की बीमारी से दुखी रहता था। सेठ की बीमारी बढ़ती गई और आखिरकार उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले सेठ अपना सारा धन अपने नौकर को दे गया। लेकिन धन पाते ही नौकर को भी अनिद्रा का रोग लग गया। नौकर बहुत परेशान रहने लगा।

१९९१) माली की ईमानदारी - एक बार एक व्यक्ति को बेमतलब घूमते-फिरते देख एक व्यापारी ने उसे अपने बाग की रखवाली करने का काम सौंप दिया। वह अनेक वर्षों तक मेहनत व ईमानदारी से यह कार्य करता रहा। व्यापारी उससे बहुत प्रसन्न था। एक बार उसके घर कुछ मेहमान आए। व्यापारी ने माली को बाग से कुछ मीठे आम लाने के लिए कहा। माली ने तत्काल बाग में जाकर कुछ आम तोड़े और उन्हें मेहमानों के सामने रख दिया। व्यापारी ने अपने बाग के मीठे आमों की मेहमानों से खूब तारीफ की और उन्हें खाने का आग्रह किया। जब मेहमानों ने आम खाए तो सारे खट्टे निकले। तब वह व्यापारी माली पर बहुत नाराज हुआ और बोला- क्या तुम्हें खट्टे और मीठे आमों की पहचान नहीं है? माली ने कहा- मुझे इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। व्यापारी ने जब इसका कारण पूछा तो वह बोला- मैंने आज तक एक भी आम नहीं चखा। तब व्यापारी ने कहा- तुम सारा दिन बाग में रहते हो, तुम जब चाहते आम खा सकते थे। तब माली बोला- आपने मुझे आज तक आम खाने को नहीं कहा, फिर मैं अपनी मर्जी से कैसे खा लेता? बिना आपकी आज्ञा के यह चोरी कहलाती। आपने मुझे रखवाली के लिए रखा है। मैं दूसरों को बाग में चोरी नहीं करने देता तो खुद कैसे करता? यह सुनकर व्यापारी का गुस्सा उतर गया। यही माली आगे चलकर महात्मा इब्राहिम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१९९२) सहजता का संदेश - मर्लिन दीत्रिच अंग्रेजी और फ्रेंच फिल्मों की प्रख्यात पार्श्वगायिका थीं। अनेक शहरों में उनके कार्यक्रम होते रहते थे। दुनिया भर में उनके प्रशंसक थे। इतनी लोकप्रियता के बावजूद मर्लिन को अभिमान छू भी नहीं गया था। वह बहुत ही मिलनसार और सहज स्वभाव की थीं। इस कारण से भी लोग उन्हें ज्यादा पसंद करते थे। उनके मधुर व्यवहार और मानवीय गुणों की हर जगह तारीफ होती। एक बार मर्लिन अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने पेरिस गईं। एक नामी हॉल में उनका कार्यक्रम था। संक्षिप्त भूमिका व स्वागत के बाद मर्लिन को मंच सौंप दिया गया। तभी हॉल में किसी बच्चे के रोने का स्वर गूंज उठा। श्रोताओं को गायन सुनने में बाधा होने से बड़ी खीझ हुई। स्वयं मर्लिन ने भी थोड़ी देर बाद गाना बंद कर दिया। बच्चे की मां ने बच्चे को चुप कराने का काफी प्रयास किया, मगर बच्चा चुप नहीं हुआ। आखिर शर्मिंदगी के कारण वह महिला उठकर बाहर जाने लगी। तभी माइक पर मर्लिन का मधुर स्वर गूंज उठा- कृपया बाहर मत जाइए, बच्चे को यों ही छोड़ दीजिए। महिला वहीं रुक गई। फिर मर्लिन ने माइक पर जो गीत गाया, वह एक अत्यंत भावपूर्ण व मधुर लोरी थी, जिसे सुनकर बच्चा सो गया। उसके बाद मर्लिन ने उपस्थित श्रोताओं के लिए कई गाने गाए। कार्यक्रम खत्म होने के बाद उनसे अखबार के संवाददाताओं ने इस प्रकरण के बारे में पूछा। उन्होंने हंसकर कहा- बच्चों की गतिविधियों से कभी परेशान नहीं होना चाहिए। ऐसी बाधाओं का तो आनंद लेना चाहिए। इस घटना के बारे में जिसने सुना उसने मर्लिन की तारीफ की।

१९९३) बुद्धि की परीक्षा - एक बार एक राजा ने अपने मंत्री और दरबारियों की बुद्धि की परीक्षा लेने का फैसला किया। उसने सभी को एक जगह बुलाया और हरेक को अशर्फियों से भरी एक थैली भेंट की। फिर उसने कहा- आप सब इन अशर्फियों को मेरा मुंह देखकर ही खर्च करें। बिना मेरा मुंह देखे इन्हें खर्च नहीं किया जा सकता। एक सप्ताह बाद सबको बताना होगा कि आप लोगों ने इन अशर्फियों से क्या खरीदारी की है। एक हफ्ता बीत जाने के बाद राजा ने अपने सभी कर्मचारियों को बुलाकर पूछा कि उन लोगों ने अशर्फियों से क्या-क्या खरीदारी की है। सभी दरबारी एक दूसरे की शक्ल

देखने लगे। वे अपने को ठगा सा महसूस कर रहे थे। उन्हें लग रहा था कि राजा ने उनके साथ मजाक किया है। सभी को चुप देखकर राज पुरोहित बोले- महाराज, आपकी आज्ञा थी कि अशर्फियों को आपका चेहरा देखने के बाद ही खर्च किया जाए। अब बाजार में तो आपके दर्शन हो नहीं सकते थे, इसलिए हमने अशर्फियों को खर्च ही नहीं किया। अन्य दरबारियों ने भी राज पुरोहित की हां में हां मिलाई। उन सबने यही कहा कि वे अशर्फी खर्च नहीं कर पाए। लेकिन उन सबके बीच एक ओर खड़ा राजा का मंत्री मंद-मंद मुस्करा रहा था। राजा ने जब उससे अशर्फियों के बारे में पूछा तो उसने कहा कि उसने खरीदारी कर ली है। सब लोग मंत्री को आश्चर्य से देखने लगे। मंत्री ने कहा- महाराज आपने ही कहा था न कि आपको देखकर ही खरीदारी करूं। इन अशर्फियों पर आपका चित्र अंकित है इसलिए आपकी शर्त के मुताबिक मैंने इन पर आपको चेहरा देखकर आपको प्रणाम करके सारी खरीददारी कर ली है। राजा ने मंत्री की पीठ ठोंकी और सबसे कहा- आप लकीर का फकीर न बनें। कोई भी काम करने में अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इससे आपको सफलता मिलेगी।

१९९४) चमत्कारी पौधा - एक थका-हारा भिखारी एक गांव में आया। उसने दो दिन से कुछ नहीं खाया था। पेट में बैठी भूख ने उसको एक सुझाव दिया। भिखारी को जो भी आदमी मिलता उसके कान में कहता- मैं एक ऐसे चमत्कारी पौधे के बारे में जानता हूं जो ऐसे आदमी में भी जान डाल सकता है तो कब्र में जाने ही वाला हो। मैं उसका रहस्य आपको बता सकता हूं। एक अमीर आदमी से जब उसने यह बात कही तो उसने उसे अपने घर पर बुलाया। उसको बढ़िया खाना खिलाया। जब खाना पूरा हो गया तो अमीर आदमी ने उसको वायदे की याद दिलाई। मेहमान बने भिखारी ने कहा, आइए मेरे साथ। वह पौधा आपके इस गांव में ही है। वे दोनों साथ-साथ निकले। जब गांव के कुछ ही बाहर निकले तो भिखारी ने उस आदमी को धान के खेत की ओर इशारा किया- यह रहा वह चमत्कारी पौधा। अमीर आदमी ने पूछा- क्या? धान? तुम मजाक कर रहे हो क्या? नहीं, बिल्कुल नहीं। अगर आपके घर मैंने अभी धान नहीं खाया होता तो मैं अब तक मर गया होता। भिखारी ने अपनी बात समझाई। अमीर आदमी उसकी चालाकी पर गुस्साया तो वह धूर्त भाग खड़ा हुआ।

१९९५) बुराई को दूर करने का उपाय - एक राजा था। उसके एक लड़का था। राजा जितना अच्छा था, लड़का उतना ही बुरा था। वह राजा को सताता था। राजा ने उसे बहुत समझाया, लेकिन वह नहीं माना। राजा के एक गुरु थे। दु:खी होकर राजा उनके पास गया और उन्हें अपनी परेशानी बताई। गुरु ने कहा, तुम उसे मेरे पास भेज दो। राजा ने वैसा ही किया। उसने लड़के को गुरू के पास भेज दिया। गुरु ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और फिर उसे साथ लेकर एक बाग में गये। वहां उन्होंने उसको विभिन्न प्रकार के चार पौधे दिखाये। उनमें एक पौधा एक फुट का था, दूसरा तीन फुट का। तीसरा छ: फुट का और चौथा बारह फुट का। गुरु ने कहा, बेटे, तुम पहले पौधे को उखाड़ दो। लड़के ने उस पौधे को पकड़कर सहज ही उखाड़ दिया। गुरू बोले, अब तुम दूसरे पौधे को उखाड़ो। लड़के ने उस पौधे को भी थोड़ा जोर लगाकर उखाड़ डाला। गुरू ने कहा, वाह। अब तीसरे को उखाड़ो। लड़के ने पहले दो पौधों को एक हाथ से उखाड़ डाला था। अब तीसरे पौधे को उखाड़ने में उसे दोनों हाथ लगाने पड़े और काफी खींच-तान भी करनी पड़ी। शाबाश, गुरु ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा, अब चौथे को भी उखाड़ डालो। लड़के ने पौधे को दोनों हाथों से कसकर पकड़ा, जोर लगाया, लेकिन पौधा नहीं उखड़ा। लड़का बोला, महाराज, यह तो मुझसे उखड़ता नहीं है। गुरू ने उसे समझाकर कहा, बेटे। जब हम किसी बुरी आदत में पड़ते हैं तो शुरू-शुरू में उसे दूर करना आसान होता है, लेकिन जब हम उस आदत को छोड़ते नहीं तो उसकी जड़ें बहुत गहरी हो जाती हैं और उसे इस चौथे पौधे की तरह उखाड़ना कठिन होता है। अब लड़के ने समझा कि गुरूजी का इन सबसे तात्पर्य क्या था। उस दिन से उसका स्वभाव बदल गया और राजा का कष्ट दूर हो गया।

१९९६) राजा की उदारता - राजा भोज के नगर में एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। एक दिन गरीबी से परेशान होकर उन्होंने राजभवन में चोरी करने का निश्चय किया। रात में वे राजभवन पहुंचे। सभी लोग सो रहे थे। सिपाहियों की नजरों से बचते हुए वह राजा के कक्ष तक पहुंच गए। स्वर्ण, रत्न, बहुमूल्य पात्र इधर-उधर पड़े थे। किंतु वे जो भी वस्तु उठाने का विचार करते, उनका शास्त्र ज्ञान उन्हें उठाने से रोक देता। ब्राह्मण ने जैसे ही स्वर्ण राशि उठाने का विचार किया, मन में स्थित शास्त्र ने कहा- स्वर्ण चोर नर्कगामी होता है। इस तरह जो भी वे वहां से लेना चाहते, उसी की चोरी को पाप बताने वाले शास्त्रीय वाक्य उनकी स्मृति में जाग उठते। रात बीत गई पर वे चोरी नहीं कर पाए। सुबह पकड़े जाने के भय से ब्राह्मण राजा के पलंग के नीचे छिप गए। महाराज के जागने पर रानियां व दासियां उनके अभिवादन हेतु प्रस्तुत हुई राजा भोज के मुंह से किसी श्लोक की तीन पंक्तियां निकली। फिर अचानक वे रुक गए। शायद चौथी पंक्ति उन्हें याद नहीं आ रही थी। विद्वान ब्राह्मण से रहा नहीं गया। चौथी पंक्ति उन्होंने पूर्ण की। महाराज चौंके और ब्राह्मण को बाहर निकलने को कहा। जब ब्राह्मण से भोज ने चोरी न करने का कारण पूछा तो वे बोले- राजन्, मेरा शास्त्र ज्ञान मुझे रोकता रहा। उसी ने मेरी धर्म रक्षा की। राजा बोले- सत्य है कि ज्ञान उचित-अनुचित का बोध कराता है, जिसका धर्म संकट के क्षणों में उपयोग कर उचित राह पाई जा सकती है। राजा ने ब्राह्मण को प्रचुर धन देकर सदा के लिए उनकी निर्धनता दूर की।

१९९७) सनातन सत्य - एक राज था। उसे अपने सौंदर्य पर, अपने ऐश्वर्य पर और अपने राजपाट पर बड़ा गर्व था। वह हर घड़ी अभिमान के नशे में चूर रहता था। दूर-दूर तक लोग जानते थे कि उसके बराबर घमंडी राजा और कोई नहीं है। वह सबको अपने से छोटा और हेय मानता था। एक दिन एक साधु राजा के दरबार में आया। बड़े दर्प से राजा ने पूछा, तुम्हें क्या चाहिए। साधु को पता था कि वह राजा बड़ा अभिमानी है। उसने मुस्कराते हुए कहा, तेरे पास है क्या, जो मुझे देगा। साधु के ये शब्द सुनते ही राजा आग बबूला हो गया। इस साधु की इतनी मजाल कि उसके वैभव को, उसी के मुंह पर, इस प्रकार चुनौती दे। भरे दरबार में उसका अपमान करे। पर साधु के चेहरे पर इतना तेज था कि राजा अपने क्रोध को प्रकट नहीं कर सका। साधु ने राजा की भाव-भंगिमा को देखा, पर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अत्यन्त धीरे-गंभीर वाणी में बोला, मैंने जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। जरा ठण्डे दिमाग से सोच। देख, तुझे जो सौंदर्य मिला है, वह तेरा नहीं है, तेरे माता-पिता का दिया हुआ है। क्यों, है न? राजा एक साथ इसका उत्तर नहीं दे सका। साधु ने आगे कहा, तेरे भण्डार धान्य से परिपूर्ण हैं। रख वे तेरे कहाँ है? वे तो तुझे धरती माता ने दिये हैं। क्यों है न? राजा चुप। साधु ने फिर कहा, जिसे तू अपना राजपाट कहता है, वह भी तेरा कहाँ है? वह तो तुझे प्रजा ने दिया है। तेरे शरीर में जो प्राण हैं, उनका भी नियंता और कोई है, तू नहीं। अपना वह होता है, जो अपने साथ जाता है। इस दुनिया में न कोई साथ आया है, न कोई साथ जायगा। इतना कहकर साधु वहां से चला गया और राजा की जीवन-धारा बदल गयी।

१९९८) स्वार्थ का नतीजा - किसी जंगल में कुटिया बनाकर एक साधु रहते थे। बड़ा रमणीक स्थान था। पास में नदी बहती थी। घना वन था। पक्षी कलरव करते थे। जंगल में मंगल की कहावत चरितार्थ होती थी। एक दिन कुछ लोग वहां आये। वे आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। इधर-उधर देख रहे थे। साधु ने उन पर एक निगाह डाली और अपने काम में लग गये। कुछ दिन बीतते-बीतते वे लोग फिर आ गये। इस बार वे अपने साथ बहुत-सा सामान लाये थे। साधु ने यह सब देखा, पर माजरा क्या है, उनकी समझ में नहीं आया। अगले दिन उन्होंने देखा, पेड़ों पर कुल्हाड़ी चल रही है। साधु का हृदय वेदना से भर उठा। वृक्ष तो उनके जीवन के अंग थे। उनके विशाल परिवार के सदस्य थे। उन्होंने उन लोगों को बड़े प्यार से समझाया

फिर भी वे नहीं माने उन्होंने क्रोधित होकर कहा, तुम्हारी कुल्हाड़ी पेड़ों पर नहीं, लोगों के दिलों पर चल रही है। अरे, हत्यारो, तुम्हारी इस हरकत से धरती वीरान हो जायगी। तुम्हें शाप देगी। उसके शाप से तुम तो मरोगे ही, तुम्हारे साथ न जाने कितने मासूम लोगों की भी हत्या होगी। अभी भी समय है, मान जाओ और नीचता छोड़ दो। पर वे कहां माननेवाले थे। स्वार्थ ने उनके विवेक पर पर्दा डाल दिया था। बेचारे साधु को इतना सदमा पहुंचा कि वे बिस्तर पर पड़ गये और कुछ ही समय में उनके प्राण पखेरू उड़ गये। धरती वृक्ष-विहीन हो गई। प्रकृति के संहार से वह शस्य श्यामला भूमि शमशान बन गई। प्रकृति बड़ी क्षमाशील है, पर जब कोई हद से ज्यादा सताता है, तो वह बदला लिये बिना नहीं मानती। उस वर्ष भयंकर सूखा पड़ा। मेघ आये, किन्तु उनका स्वागत करनेवाले वृक्ष तो रहे नहीं थे। वे चुपचाप आगे बढ़ गये। प्रकृति के इस प्रकोप से वहां मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी बड़ी संख्या में चल बसे। मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ ने जो तबाही की, उसका दुष्परिणाम आज भी उस क्षेत्र के ही नहीं, दूर-दूर तक के लोग भुगत रहे हैं। उन्होंने अपने देवता-स्वरूप साधु की एक प्रतिमा नदी के किनारे लगवा दी है, जो हर घड़ी कहती रहती है, जीवन के लिए वृक्ष वरदान हैं। उन्हें नष्ट करना अपने को नष्ट करना है।

१९९९) पूजा और भक्ति - एक साधु एक राजा के अतिथि बने। राजा ने साधु से पूछा, बताएं, पूजा और भक्ति में क्या अंतर है? साधु ने राजा को कुछ दिन प्रतीक्षा करने के लिए कहा। एक दिन जब राजा और साधु एक साथ भोजन कर रहे थे तब राजा ने रसोइए को बुलाया और कहा, आज सभी सब्जियां स्वादिष्ट हैं लेकिन बैंगन की सब्जी लाजवाब है। रसोइए ने प्रसन्न होकर कहा, महाराज, बैंगन तो है ही शाही सब्जी। जैसे आप शहंशाह है वैसे ही बैंगन भी सब्जियों का शहंशाह है। रसोइए ने अगले दिन फिर से बैंगन की सब्जी बनाई। अब वह रोज बैंगन बनाने लगा। एक दिन राजा ने भोजन की थाली परे सरकाते हुए रसोइए को बुलाकर फटकार लगाई। रसोइया हाथ जोड़कर बोला, महाराज गलती हो गई। बैंगन तो घटिया सब्जी है। इसमें तो कोई गुण नहीं होता तभी तो इसका नाम बैंगन पड़ा। आदमी तो क्या, इसे जानवर भी नहीं खाते। अब मैं कभी इसकी सब्जी नहीं बनाऊँगा। राजा रसोइए की बात सुनकर हैरान था। उसने कहा, अभी कुछ दिन पहले तो तुम बैंगन की तारीफ कर रहे थे और आज इसे घटिया कह रहे हो। रसोइया तपाक से बोला, महाराज, मैं नौकर आपका हूं। बैंगन का नहीं। तभी साधु ने बीच में टोकते हुए राजा से कहा, रसोइए ने ऐसा मेरे कहने पर किया है। यही आपके प्रश्न का उत्तर है। हम मंदिर जाकर पूजा करते हैं, करवाते हैं, पुजारी को दक्षिणा देते हैं। यह भक्ति नहीं है। पुजारी तो ठहरा दक्षिणा का भोगी। जैसी दक्षिणा वैसी पूजा, वैसा ही आशीर्वाद। पूजा में हमें परमात्मा की भक्ति कहां याद रहती है। राजा को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

२०००) दो थैले - हमारे गांवों में अक्सर एक कथा सुनने को मिलती है। ईश्वर ने जब मनुष्य की रचना की तो उसे अपनी अन्य सभी कृतियों से श्रेष्ठ बनाया। सुघड़ और सुंदर बनाने के साथ उसे बुद्धि भी दी। जब मनुष्य इस पृथ्वी पर पहुंचा तो ब्रह्मा ने उससे पूछा, अब यहां आकर तुम क्या चाहते हो? मनुष्य ने कहा- प्रभु, मैं तीन बातें चाहता हूं। एक, मैं सदा प्रसन्न रहूं। दूसरा, सभी मेरा सम्मान करें और तीसरा, मैं सदा उन्नति के पथ पर चलता रहूं। मनुष्य की ये इच्छाएं जान कर ब्रह्मा जी ने उसे दो थैले दिए और कहा, एक थैले में तुम अपनी सभी कमजोरियां डाल दो, और दूसरे थैले में दूसरे लोगों की कमियां डालते रहो। साथ ही यह भी कहा कि इन दोनों थैलों को हमेशा अपने कंधों पर लेकर चलना। लेकिन एक बात का ध्यान और रखना कि जिस थैले में तुम्हारी अपनी खामियां हैं, उसे तो अगली तरफ रखना और जिस थैले में दूसरों की कमजोरियां रखी हैं, उन्हें पीछे की तरफ यानी पीठ पर रखना। समय-समय पर सामनेवाला थैला खोलकर निरीक्षण भी करते रहना, ताकि अपनी त्रुटियां दूर कर सको। परंतु दूसरे लोगों के अवगुणों का थैला, जो पीठ पर डाला होगा, उसे कभी न खोलना

और न ही दूसरों के ऐब देखना या कहना। यदि तुम इस परामर्श पर ठीक से आचरण करोगे, तो तुम्हारी तीनों इच्छाएं पूरी होंगी- तुम सदा प्रसन्न रहोगे, सबसे सम्मान पाओगे और सदा उन्नति करोगे। मनुष्य ने ब्रह्मा जी को नमस्कार किया और अपने दुनियावी कामकाज में लग गया। लेकिन इस बीच उसे थैलों की पहचान भूल गई। जो थैला पीछे डालना था उसे तो आगे टांग लिया और जिस थैले को आगे रखकर देखते रहने को कहा था, वह पीछे की तरफ कर दिया। तब से मनुष्य दूसरों के अवगुण ही देखता है, अपनी कमजोरियों पर ध्यान नहीं देता। इसी वजह से उसे फल भी उलटा ही मिलता है।

२००१) राजा का सपना - एक राजा को शिकार का नशा था। वह राजकाज छोड़कर हर समय शिकार में लगा रहता था। वह जिससे मिलता उससे शिकार के किसी प्रसंग पर ही बात करता। एक बार जब वह शिकार करने पहुंचा तो एक हिरन उसके सामने आ खड़ा हुआ। राजा उसे देखकर चकित रह गया। तभी कोमल वाणी में हिरन ने कहा, राजन्, आप प्रतिदिन वन में जाकर जीवों का शिकार करते हैं। कुछ जीव आपके हाथी घोड़ों द्वारा कुचल दिए जाते है। मेरे शरीर के भीतर कस्तूरी का भंडार है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस भंडार को ले लें और वन के प्राणियों का शिकार करना छोड़ दें। हिरन की बात सुन राजा विस्मय से बोला, क्या तुम उन्हें बचाने के लिए अपने प्राण देना चाहते हो? तुम जानते हो कस्तूरी पान के लिए मुझे तुम्हारा वध करना होगा। हिरन बोला, राजन्, आप मुझे मारकर कस्तूरी का भंडार ले लीजिए, पर निरपराध जीवों को मारना छोड़ दीजिए। राजा ने पुन: कहा, तुम्हारा शरीर बहुत सुंदर है। तुम्हारे भीतर कस्तूरी का भंडार है। हिरन ने जवाब दिया, राजन् यह शरीर तो नश्वर है। मैं दूसरों के प्राण बचाने के लिए मर जाऊं इससे अच्छी बात क्या हो सकती है। मृग की ज्ञान भरी वाणी ने राजा के मन में प्रकाश पैदा कर दिया। वह सोचने लगा, यह जानवर होकर दूसरों के लिए अपने प्राण दे रहा है और मैं मनुष्य होकर रोज जीवों को मारता हूं। धिक्कार है मुझ पर। तभी उसकी नींद टूट गई। इस सपने ने उसकी आंखें खोल दी थी। उस दिन से राजा हिंसा छोड़कर सब पर दया करने लगा।

२००२) सूरज - एक औरत बेहद मेहनती थी। एक शाम अँधेरा होते ही वह अपने दोनों बच्चों के साथ घर लौटी तो उसने पाया कि मेज पर रखा हुआ दीया जल रहा है। बड़ा लड़का सत्तार आश्चर्य से चिल्लाया, घर में तो कोई नहीं था, फिर यह दीया किसने जलाया? कौन जलाएगा? जरूर तुम्हारे पिताजी शहर से लौट आए होंगे। औरत बोली। दोनों बच्चे उछाह से कूदते हुए घर के भीतर घुसे तो अगले कमरे में पिताजी को सचमुच बैठा पाया। दूसरे दिन सुबह दोनों बच्चे माँ-बाप के साथ खेत पर गए। उस दिन सूरज अधिक चमकीला था। बच्चे धूप देख बहुत खुश हुए। तब पिता ने बच्चों से कहा, बच्चों, घर में रोशनी की उजाला देखकर तुमने तुरंत अनुमान लगा लिया था कि दीया मैंने ही जलाया होगा। क्या तुम इस सुहानी धूप के बारे में बता सकते हो कि इसको चमकानेवाला कौन है? क्यों नहीं। सकीना ने उत्तर दिया, खुदा चमकाता है। अगर एक छोटा सा दीया अपने आप नहीं जल सकता तो सूरज को भी कोई-न-कोई चमकाता ही होगा। बच्चों के पिता बेटी का उत्तर सुन बेहद प्रसन्न हुए।

२००३) अपवित्र हाथ - सन १८५७ के विद्रोह के अग्रणियों में बिहार के महाराजा कुँवर सिंह का नाम सदा बड़े सम्मान के साथ लिया जाएगा। वे जब तक जीवित रहे, अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा किए रहे। एक दिन शाहाबाद जाने के लिए कुँवर साहब नाव द्वारा गंगा पार कर रहे थे कि अंग्रेज सेना को इसका पता चल गया। सेनापति लुंगर्ड ने किनारे से गोली चलाई। गोली कुँवर सिंह के दाहिने हाथ की कलाई में लगी। उन्होंने चट दाहिने हाथ के तलवार से काटकर गंगा माता को समर्पित करते हुए कहा, जो हाथ फिरंगी की गोली से अपवित्र हो गया हो वह अब किस काम का। अत: मैं यह तुम्हें भेंट करता हूँ।

HHH(७२३)HHH

२००४) जीवन का रहस्य- पुराने जमाने की बात है। एक मजदूर बिल्कुल अकेला था। कभी आवश्यकता होती तो मजदूरी कर लेता तो कभी यूं ही रह जाता। एक बार उसके पास खाने को कुछ नहीं था। वह घर से मजदूरी ढूंढने के लिए निकल पड़ा। गर्मी का मौसम था और धूप बहुत तेज थी। उसे एक व्यक्ति दिखा जिसने एक भारी संदूक उठा रखा था। उसने उस व्यक्ति से पूछा- क्या आपको मजदूर चाहिए? उस व्यक्ति को मजदूर की आवश्यकता भी थी, इसलिए उसने संदूक मजदूर को उठाने के लिए दे दिया। संदूक को कंधे पर रखकर मजदूर चलने लगा। गरीबी के कारण उसके पैरों में जूते नहीं थे। सड़क की जलन से बचने के लिए कभी-कभी वह किसी पेड़ की छाया में थोड़ी देर खड़ा हो जाता था। पैर जलने से वह मन-ही-मन झुंझला उठा और उस व्यक्ति से बोला- ईश्वर भी कैसा अन्यायी है। हम गरीबों को जूते पहनने लायक पैसे भी नहीं दिए। मजदूर की बात सुनकर व्यक्ति खामोश रहा। दोनों थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि तभी उन्हें एक ऐसा व्यक्ति दिखा जिसके पैर नहीं थे और वह जमीन पर घिसटते हुए चल रहा था। यह देखकर वह व्यक्ति मजदूर से बोला- तुम्हारे पास तो जूते नहीं है, परंतु इसके तो पैर ही नहीं है। जितना कष्ट तुम्हें हो रहा है, उससे कहीं अधिक कष्ट इस समय इस व्यक्ति को हो रहा होगा। तुमसे भी छोटे और दुखी लोग संसार में हैं। तुम्हें जूते चाहिए तो अधिक मेहनत करो। हिम्मत हार कर ईश्वर को दोष देने की जरूरत नहीं। ईश्वर ने नकद पैसे तो आज तक किसी को भी नहीं दिए, परंतु मौके सभी को बराबर दिए हैं। उस व्यक्ति की बातों का मजदूर पर गहरा असर हुआ। वह उस दिन से अपनी कमियों को दूर कर अपनी योग्यता व मेहनत के बल पर बेहतर जीवन जीने का प्रयास करने लगा। उसका जीवन पूरी तरह बदल गया।

२००५) आम आदमी की इज्जत - रोजगार की तलाश में हाशिम नाम युवक बगदाद जा रहा था। रास्ते में उसे एक सुंदर झरना मिला। वहां पहुंचने पर पता चला कि यह कोई मामूली झरना नहीं है। इसके पानी में कई तरह की खासियत है। कुछ लोग उसे चमत्कारी बता रहे थे। हाशिम ने मशक में पानी भर लिया। उसने सोचा कि बगदाद पहुंचकर खलीफा को इसें भेंट करेगा। खलीफा खुश होकर उसे कोई काम दे सकते हैं। लंबी यात्रा के बाद हाशिम बगदाद पहुंचा। कई दिनों के बाद खलीफा से उसकी मुलाकात हो सकी। खलीफा के सामने उसने उस झरने की चर्चा की। खलीफा बड़े खुश हुए। वहां मौजूद दरबारियों में भी पानी को लेकर दिलचस्पी जाग उठी। हाशिम ने अपना मशक खलीफा की ओर बढ़ाया। खलीफा ने दो बूंद पिया और मुस्कराए। दरबारियों को लगा कि अब उन्हें भी वह पानी पीने को मिलेगा मगर खलीफा ने वह मशक अपने घर भिजवा दिया और हाशिम को भरपूर इनाम देकर भेज दिया। हाशिम को इतना धन मिल गया कि वह कोई कारोबार शुरू कर सके। इधर दरबारी मायूस थे। उन्हें खलीफा का व्यवहार पसंद नहीं आया था। वजीर ने नाखुशी जताते हुए कुछ कहा तो खलीफा बोले- मशक में कई दिनों से रखा होने के कारण पानी बदबूदार हो गया था। वह पीने के लायक नहीं रह गया था। लेकिन यह मैं हाशिम के सामने कहता तो उसका दिल टूट जाता। मैंने उसकी जज्बात का ख्याल रखते हुए ही पनी घर भिजवा दिया। दरबारियों ने आम आदमी को इज्जत देने की इस कोशिश को सलाम किया।

२००६) जीवन का रहस्य - राजा सुषेण के मन में कुछ प्रश्न थे, जिनके उत्तर की तलाश में वह एक महात्मा के पास पहुंचे। महात्मा ने कहा, अभी मेरे पास समय नहीं है। मुझे अपनी वाटिका बनानी है। राजा भी उनकी मदद करने में जुट गए। इतने में एक घायल आदमी भागता-भागता आया और गिरकर बेहोश हो गया। महात्मा जी ने उसके घाव पर औषधि लगाई। राजा भी उसकी सेवा में लग गए। जब वह आदमी होश में आया तो राजा को देखकर चौंक उठा। वह राज से क्षमा मांगने लगा। जब राजा ने इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि वह राजा को मारने के इरादे से निकला था, लेकिन

सैनिकों ने उसके मंसूबों को भांप लिया और उस पर हमला कर दिया। वह किसी तरह जान बचाकर भागता हुआ इधर पहुंचा है। महात्मा जी के कहने पर राजा ने उसे क्षमा कर दिया। लेकिन तब राजा ने महात्मा से प्रश्न किया, मेरे तीन प्रश्न हैं। सबसे उत्तम समय कौन-सा है, सबसे बढ़िया काम कौन सा है और सबसे अच्छा व्यक्ति कौन है। महात्मा बोले, हे राजन, इन तीनों प्रश्नों का उत्तर तो तुमने पा लिया है। फिर भी सुनो। सबसे उत्तम समय है वर्तमान। आज तुमने वर्तमान समय का सदुपयोग करते हुए मेरे काम में हाथ बंटाया और वापस जाने को टाला, जिससे तुम बच गए। अन्यथा वह व्यक्ति बाहर तुम्हारी जान ले सकता था और जो सामने आ जाए, वही सबसे बढ़िया काम है। आज तुम्हारे सामने बगीचे का कार्य आया और तुम उसमें लग गए। वर्तमान को संवार कर उसका सदुपयोग किया। इसी कर्म ने तुम्हें दुर्घटना से बचाया। और बढ़िया व्यक्ति वह है, जो प्रत्यक्ष हो। उस आदमी के लिए अपने दिल में सद्भाव लाकर तुमने उसकी सेवा की, इससे उसका हृदय परिवर्तित हो गया और तुम्हारे प्रति उसका वैर भाव धुल गया। इस प्रकार तुम्हारे सामने आया व्यक्ति, शास्त्रानुकूल कार्य व वर्तमान समय उत्तम है। जीवन के इस रहस्य को जान कर राजा महात्मा के सामने नतमस्तक हो गए।

२००७) सन्यासी का उपहार- एक सन्यासी एक राजा के पास पहुंचे। राजा ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। सन्यासी कुछ दिन वहीं रुक गए। राजा ने उनसे कई विषयों पर चर्चा की और अपनी जिज्ञासा सामने रखी। सन्यासी ने विस्तार से उनका उत्तर दिया। जाते समय सन्यासी ने राजा से अपने लिए उपहार मांगा। राजा ने एक पल सोचा और कहा, जो कुछ भी खजाने में है, आप ले सकते हैं। सन्यासी ने उत्तर दिया, लेकिन खजाना तुम्हारी संपत्ति नहीं है, वह तो राज्य का है और तुम मात्र उसके संरक्षक हो। राजा बोले, तो यह महल ले लीजिए। इस पर सन्यासी ने कहा यह भी तो प्रजा का है। इस पर राजा ने कहा, तो मेरा यह शरीर ले लीजिए। सन्यासी ने उत्तर दिया, शरीर तो तुम्हारी संतान का है। मैं इसे कैसे ले सकता हूँ? राजा ने हथियार डालते हुए कहा, तो महाराज आप ही बताएं कि ऐसा क्या है जो मेरा हो और आपको देने लायक हो? सन्यासी ने उत्तर दिया, हे राजा, यदि तुम सच में मुझे कुछ देना चाहते हो, तो अपना अहं दे दो। अहंकार पराजय का द्वार है। यह यश का नाश करता है। यह खोखलेपन का परिचायक है। अहंकार का फल क्रोध है। अहंकार वह पाप है जिसमें व्यक्ति अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है। वह जिस किसी को अपने से सुखी-संपन्न देखता है, ईर्ष्या कर बैठता है। अहंकार वह विचार है कि मैं ही हूं इस पूरे ब्रह्मांड का केन्द्र अहंकार हमें सभी से अलग कर देता है। हम अपनी कल्पना में पूरे संसार से अलग हो जाते हैं। वह हमें यह विचार देता है कि हम पूर्ण स्वतंत्र एक द्वीप की भांति हैं, जो हम हैं ही नहीं। हम न किसी से अलग हैं और न स्वतंत्र। यहां सभी एक-दूसरे पर निर्भर रहते हुए सह-अस्तित्व और सहभागिता में जीते हैं। राजा संन्यासी का आशय समझ गए। उन्होंने वचन दिया कि वह अपने भीतर से अहंकार को निकाल कर रहेंगे।

२००८) कर्म का पाठ - दो भाई एक ज्योतिषी के पास गए। ज्योतिषी बड़ा अनुभवी था। उसने छोटे भाई से कहा, तुम्हें जल्दी ही राजगद्दी मिलनेवाली है। तुम राजा बनोगे। बड़े भाई से ज्योतिषी ने कहा, सावधान रहना। कोई बड़ी आफत आनेवाली है। एक बहुत खुश हुआ, दूसरा उदास हो गया। दोनों घर आ गए। बड़े भाई ने सोचा कि अगर विपत्ति आनेवाली है तो क्यों न मैं पहले से ही संभल जाऊं। वह पूरी तरह जागरूक हो गया। छोटे भाई नेसोचा, अब चिंता की क्या बात है। राजगद्दी मिलनेवाली है। जिंदगी में जितने व्यसन थे, उसने उसमें और इजाफ कर दिया। बुरे कामों पर धन लुटाना शुरू कर दिया। वह दिन-रात नशे में धुत रहने लगा। अचानक एक दिन उस राज्य के राजा का पुत्र चल बसा। उसका कोई वारिस नहीं था। राजा ने सोचा कि वह चूंकि बूढ़ा हो चुका है, इसलिए भविष्य की कोई व्यवस्था करनी

चाहिए। राजा ने योग्य उत्तराधिकारी की परीक्षा करने के लिए ढिंढोरा पिटवाया। दोनों भाई भी परीक्षा में शामिल हुए। परीक्षा में बड़ा भाई उत्तीर्ण हो गया। जब बड़ा भाई राजा बना तो छोटे को यह बात बड़ी अजीब लगी। वह भागा-भागा ज्योतिषी के पास आया। उसने कहा, आपने तो उलटी बात बता दी। ज्योतिषी ने कहा, मैंने उलटी बात नहीं बताई थी। ठीक बताई थी। मुझे बताओ कि मेरी भविष्यवाणी के बाद तुम दोनों ने क्या-क्या किया? बड़े भाई ने दोनों की राम कहानी सुनाई। ज्योतिषी ने कहा, अब बताओ इसमें मेरी भविष्यवाणी का क्या दोष? मैंने अपने आकलन के आधार पर जो ठीक समझा वह बताया। तुमने बुरा आचरण किया। तुम्हें राज्य मिलनेवाला था, किंतु बुरे आचरण के कारण स्थितियां बदल गईं। तुम्हारे बड़े भाई पर विपत्ति आनेवाली थी किंतु इसने इतना अच्छा आचरण किया तो विपत्ति समाप्त हो गई और इसने राजा का पद प्राप्त किया। जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे। भाग्य उन्हीं का साथ देता है जो अच्छे कर्म करते हैं।

२००९) घंटा की कीमत- रामदास एक ग्वाले का बेटा था। रोज सुबह वह अपनी गायों को चराने जंगल में ले जाता। हर गाय के गले में एक-एक घंटी बँधी थी। जो गाय सबसे अधिक सुंदर थी उसके गले में घंटी भी अधिक कीमती बँधी थी। एक दिन एक अजनबी जंगल से गुजर रहा था। वह उस गाय को देखकर रामदास के पास आया, यह घंटी बड़ी प्यारी है। क्या कीमत है इसकी? बीस रुपए। रामदास ने उत्तर दिया। बस, सिर्फ बीस रूपए। मैं तुम्हें इस घंटी के चालीस रुपए दे सकता हूँ। सुनकर रामदास प्रसन्न हो उठा। झट उसने घंटी उतारकर उस अजनबी के हाथ में थमा दी और पैसे अपनी जेब में रख लिये। अब गाय के गले में कोई घंटी नहीं थी। घंटी की टुनक से उसे अंदाजा हो जाया करता था। अत: अब इसका अंदाजा लगाना रामदास के लिए मुश्किल हो गया कि गाय इस वक्त कहाँ चर रही है। जब चरते-चरते गाय दूर निकल आई तो अजनबी को मौका मिल गया। वह गाय को अपने साथ लेकर चल पड़ा। तभी रामदास ने उसे देखा। वह रोता हुआ घर पहुँचा और सारी घटना अपने पिता को सुनाई। उसने कहा, मुझे तनिक भी अनुमान नहीं था कि वह अजनबी मुझे घंटी के इतने अच्छे पैसे देकर ठग ले जाएगा। पिता ने कहा, ठगी का सुख बड़ा खतरनाक होता है। पहले वह हमें प्रसन्नता देता है, फिर दु:ख। अत: हमें पहले ही उसका सुख नहीं उठाना चाहिए।

२०१०) दिन और रात - बहुत समय पहले की बात है जब सृष्टि की शुरुआत ही हुई थी। दिन और रात नाम के दो प्रेमी थे। दोनों में खूब गहरी पटती पर दोनों का स्वभाव बिल्कुल ही अलग-अलग था। रात सौंदर्य-प्रिय और आराम-पसंद थी तो दिन कर्मठ और व्यावहारिक, रात को ज्यादा काम करने से सख्त नफरत थी और दिन काम करते न थकता था। रात आराम करना, सजना-सँवरना पसंद करती थी तो दिन हरदम दौड़ते भागते रहना। रात आराम से धीरे-धीरे बादलों की लटों को कभी मुँह पर से हटाती तो कभी वापस उन्हें फिर से अपने चेहरे पर डाल लेती। कभी आसमान के सारे तारों को पिरोकर अपनी पायल बना लेती तो कभी उन्हें वापस अपनी चूनर पर टाँक लेती। लेटी-लेटी घंटों बहती नदी में चुपचाप अपनी परछाई देखती रहती। कभी चंदा-सी पूरी खिल जाती तो कभी सिकुड़कर आधी हो जाती। दूसरी तरफ बौखलाया दिन लाल चेहरा लिए हाँफता पसीना बहाता, हर काम जल्दी-जल्दी निपटाने की फिक्र में लगा रहता। आमने-सामने पड़ते ही दिन और रात में हमेशा बहस शुरू हो जाती। दिन कहता काम ज्यादा जरूरी है और रात कहती आराम। दोनों अपनी-अपनी दलीलें रखते, समझने और समझाने की कोशिश करते पर किसी भी नतीजे पर न पहुँच पाते। जान नहीं पाते कि उन दोनों में आखिर कौन बड़ा है, गुणी है। सही है या ज्यादा महत्वपूर्ण है। हारकर दोनों अपने रचयिता के पास पहुँचे। भगवान ने दोनों की बातें बड़े ध्यान से सुनीं और कहा कि मुझे तो तुम दोनों का महत्व बिल्कुल बराबर का लगता है तभी

तो मैंने तुम दोनों को ही बनाया और अपनी सृष्टि में बराबर का आधा-आधा समय दिया। गुण-अवगुण कुछ नहीं, एक ही पहलू के दो दृष्टिकोण हैं। हर अवगुण में गुण बनने की क्षमता होती है। पर रात और दिन को उनकी बात समझ में न आई और वहीं पर फिर से उनमें वही तू-तू, मैं-मैं शुरू हो गई। हारकर भगवान ने समझाने की बजाय, थोड़े समय के लिए रात को दिन के उजाले वाली चादर दे दी और दिन को रात की अँधेरे वाली, ताकि दोनों रात और दिन बनकर खुद ही फैसला कर सकें। एक दूसरे के मन में जाकर दूसरे का स्वभाव और जरूरतें समझ सकें। तकलीफ और खुशियाँ महसूस कर पाएँ और उस दिन से आजतक सुबह बनी रात जल्दी-जल्दी अपने सारे काम निपटाती है और रात बने दिन को आराम का महत्व समझ में आने लगा है। अब वह रात को निठल्ली और आलसी नहीं कहता बल्कि थकने पर खुद भी आराम करता है। सुनते हैं अब तो दोनों में कोई बहस भी नहीं होती। दोनों ही जान जो गए हैं कि अपनों में छोटा या बड़ा कुछ नहीं होता। इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति कम या ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं। सबके अपने-अपने काम हैं, अपनी-अपनी योग्यता और जरूरतें हैं। जीवन सुचारू और शांतिमय हो इसके लिए काम और आराम, दोनों का ही होना जरूरी है। आराम के बिना काम थक जाएगा और काम के बिना आराम परेशान हो जाएगा। अब दिन खुश-खुश सूरज के संग आराम से कर्मठता का संदेश देता है। जीवन पथ को उजागर करता है और रात चंदा की चाँदनी लेकर घर-घर जाती है, थकी-हारी दुनिया को सुख-शांति की नींद सुलाती है। हर शाम-सुबह वे दोनों आज भी अपनी-अपनी चादर बदल लेते हैं। प्यार से गले मिलते हैं इसीलिए तो शायद दिन और रात के वह संधिपल जिन्हें हम सुबह और शाम के नाम से जानते हैं आज भी सबसे ज्यादा सुखद और सुहाने लगते हैं। कौन जाने यह विवेक का जादू है या संधि और सद्भाव का। या फिर उस संयम का जिसे हम प्यार से परिवार कहते हैं। शायद सच में अच्छा बुरा कुछ नहीं होता प्यार और नफरत बस हमारी निजी जरूरतों का ही नाम है। बस हमारी अपनी परछाइयाँ हैं। पर अगर कोण बदल लो तो परछाइयाँ भी तो घट और बढ़ जाती हैं। तभी तो हम आप उनके बच्चे जो यह मर्म समझ पाए, अपने पूर्वजों की बनाई राह पर आजतक खुश-खुश चलते हैं।

२०११) सबसे सुंदर कौन- एक व्यक्ति जिज्ञासु प्रवृत्ति का था। एक बार उसके मन में सवाल उठा कि सर्वोत्तम सौंदर्य क्या है? वह इसके उत्तर की खोज में चल पड़ा। उसने एक तपस्वी के सामने अपनी जिज्ञासा रखी। तपस्वी बोले, श्रद्धा ही सबसे सुंदर है, जो मिट्टी को भी ईश्वर में परिवर्तित कर देती है। वह व्यक्ति इस जवाब से संतुष्ट नहीं हुआ और आगे बढ़ गया। आगे उसे एक प्रेमी मिला जिसने कहा, इस दुनिया में सबसे सर्वोत्तम सौंदर्य सिर्फ प्रेम है। प्रेम के बल पर इंसान दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत को पराजित कर सकता है। व्यक्ति को इससे भी संतुष्टि नहीं हुई। उस समय एक योद्धा रक्तरंजित, हताश लौट रहा था। उस व्यक्ति ने योद्धा से वह प्रश्न पूछा तो योद्धा बोला, शांति ही सबसे सर्वोत्तम है, क्योंकि युद्ध की विनाश लीला मैं स्वयं देखकर आ रहा हूं। मैंने देखा कि किस कदर ईर्ष्या और लोभ के वशीभूत लड़ा गया युद्ध अनेक जिंदगियां बरबाद कर देता है, कई घर उजाड़ देता है। तभी एक स्त्री विलाप करती नजर आई। उस व्यक्ति ने उस स्त्री से इसका कारण जानना चाहा तो वह बोली, मेरी बेटी खेलते-खेलते जाने कहां चली गई है। मैं उसे ढूंढ रही हूं। तभी स्त्री की पुत्री खेलते-खेलते उसके पास पहुंच गई। स्त्री ने उसे बांहों में भर लिया। युवक ने उससे भी वही प्रश्न किया। स्त्री बोली, मेरी नजर में तो ममता में ही सर्वोत्तम सौंदर्य छिपा हुआ है। स्त्री की बातों से उस व्यक्ति को अपने घर की याद आ गई। उसे अहसास हुआ कि कि पिछले कई दिनों से वह अपने घर से बाहर है। वह घर के लिए चल पड़ा। घर पहुंचने पर उसकी पत्नी और उसके बच्चे उससे लिपट गए। उन्हें देखकर उसे असीम शांति की प्राप्ति हुई। उसे लगा उसका परिवार

ही सर्वोत्तम सौंदर्य है। लेकिन फिर उसने सोचा कि वास्तव में सर्वोत्तम सौंदर्य के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग अर्थ हैं और जिसके पास उनमें से जो अर्थ मौजूद है उसकी नजरों में वही सबसे महत्वपूर्ण है।

२०१२) खजाने का खर्च - एक सेठ ने किसी समझदार आदमी को अपने रत्नों का खजाना दिखाया। उसने सेठ के खजाने की प्रशंसा नहीं की और पूछा- सेठजी, आपको इन हीरे-पन्ने और माणक-मोती से सालाना कितनी आमदनी हो जाती है? सेठ ने कहा- एक पैसा भी नहीं उल्टे इस खजाने की सुरक्षा के लिए पहरेदार रखे गए हैं। इस पर हजारों रुपयों का सालाना सुरक्षा खर्च है।

इस बात पर समझदार आदमी ने कहा- मेरे पड़ोस में एक बुढ़िया रहती है। उसने दो पत्थर खरीद कर चक्की बनाई है। उसकी आमदनी से वह पूरी जिन्दगी अपना पेट भरती है और अपने बाल-बच्चों का पेट पालन भी करती है।

आपके खजाने से तो बुढ़िया की चक्की अच्छी है। करोड़ों रुपयों से आपने जो पत्थर खरीदे हैं, उनसे आपको कोई आमदनी नहीं, तो आप ही बताइए कि आपकी समझ ज्यादा हैं या बुढ़िया की? सेठ को समझदार आदमी की बात चुभ गई और उसने रत्नों का खजाना बेचकर उससे प्राप्त धन को जनहित में लगा दिया।

२०१३) इन्सान का साथ - सन्त खय्याम एक बार अपने एक शिष्य के साथ बीहड़ वन से जा रहे थे कि उनके नामज पढ़ने का समय हुआ। वे दोनों नमाज पढ़ने के लिए बैठी ही थे कि इतने में उन्हें एक शेर की गर्जना सुनाई दी और वह थोड़ी ही देर में आता हुआ दिखाई दिया। शिष्य बेहद घबरा गया और तुरन्त समीप के एक वृक्ष पर चढ़ गया, किन्तु खय्याम खामोशी से नमाज पढ़ते रहे। शेर वहाँ आया और चुपचाप आगे निकल गया। उसके जा चुकने पर शिष्य वृक्ष से उतरा और नमाज खत्म होने पर वे दोनों आगे बढ़े। थोड़ी ही देर में सन्त खय्याम को जब एक मच्छर ने काटा, तो उसे मारने के लिए उन्होंने अपने गाल पर चपत लगाई। यह देख वह शिष्य बोला, गुरूदेव, क्षमा करें, एक शंका है उसका समाधान करें। अभी-अभी थोड़ी देर पूर्व जब शेर आपके समीप आया था, तब आप बिलकुल न घबराये, किन्तु एक मच्छर के काटे जाने पर आपको गुस्सा आ गया। खय्याम ने जवाब दिया, तुम ठीक कहते हो। किन्तु तुम यह भूल रहे हो कि जब शेर आया था, तब मैं खुदा के साथ था, जबकि मच्छर के काटते वक्त एक इन्सान के साथ। यही वजह है कि मुझे शेर के आगमन की खबर तक न हुई।

२०१४) घास की सलाह - एक जंगल में नदी किनारे कई पेड़ थे। उनमें एक बरगद था। उसे अपनी ऊंचाई का बड़ा घमंड था। वह दूसरे पेड़-पौधों को कुछ नहीं समझता था। नदी के किनारे हरी घास भी थी। भूखे जानवर घास चरकर अपना पेट भरते थे। घास को अपनी नरमाई का बिल्कुल घमंड नहीं था। एक दिन बरगद ने घास को अपमानित करते हुए कहा- तुम्हारा कोई मान नहीं है। लोगों के पैरों के नीचे आकर कुचली जाती हो। इतनी कमजोर हो कि बच्चे भी तुम्हें उखाड़कर फेंक देते हैं। बरगद की बात सुनकर घास दुखी हो गई और सोचने लगी- क्या मैं इतनी बेकार चीज हूं। इस बीच जंगल में भयंकर आंधी आई। आंधी बरगद के पेड़ को नदी में गिरा गई। पर घास का कुछ नहीं बिगाड़ पाई। घास आंधी में भी लहराती रही। वह बरगद को नदी में गिरा देख दुखी होकर बरगद से कहती है- तुमने अपनी विशालता का घमंड किया, इसलिए तुम्हें यह सजा मिली और मैं जमीन से जुड़कर नरम और विनम्र रही। इसलिए आज भी सुरक्षित हूं। बरगद ने फिर पश्चाताप किया। पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

२०१५) पर्वत कैसे बने - संसार की शुरूआत में पृथ्वी एकदम समतल थी। पर एक दिन वह आकाश से बातें करने के लिए बेचैन हो उठी और धीरे-धीरे ऊँचा उठने लगी। इतना ऊँचे कि बड़ी देर तक वह आकाश से बतियाती रही। किंतु

जब वह वापस लौटी तो उसके कुछ हिस्से अपनी जगह पर नहीं लौट सके। थकान से चूर वे जितनी ऊँचाई पर थे, वहीं जड़ हो गए और समतल पृथ्वी का रूप बदल गया। वही हिस्से अब जगह-जगह पर्वत बन गए थे।

२०१६) ईर्ष्या की आग - दो विद्वान एक सेठ के घर भोजन के लिए आमंत्रित थे। ये दोनों विद्वान एक-दूसरे को देखना नहीं पसंद करते थे और मौका मिलते ही एक-दूसरे की बुराई करने लगते थे। दोनों नियम समय पर सेठ के घर पहुंचे और एक-दूसरे को देखकर मुंह बनाने लगे। सेठ ने दोनों से स्नान करने का निवेदन किया। जब एक विद्वान नहाने चला गया तो सेठजी दूसरे के पास आकर बैठ गए और बातें करने लगे। वह बोले, महाराज, लगता है आपके ये साथी पहुंचे हुए विद्वान हैं। उन्हें काफी गूढ़ बातें मालूम है। दूसरा विद्वान भला यह कैसे सुन सकता था? वह तपाक से बोला, अरे नहीं सेठजी, इसका तो विद्वता से दूर-दूर तक का कोई रिश्ता नहीं है। यह तो निरा बैल है। पता नहीं इसे लोग अपने यहां क्या सोचकर आमंत्रित कर लेते हैं। तभी उसका साथी नहाकर बाहर आता दिखाई दिया तो वह चुप हो गया। कुछ देर बाद वह स्वयं स्नान के लिए चला गया तो सेठजी पहले विद्वान से बातें करने लगे और दूसरे विद्वान के बारे में बोले, अभी मैं आपके साथी से ही बातें कर रहा था। मुझे तो वह वेदों के बहुत बड़े ज्ञाता लगे। सेठजी की बात पर वह विद्वान हंसते हुए बोला, क्या सेठजी, वह और विद्वान। अरे विद्वान आपने देखे ही कहां है। वह तो निरा गधा है। अपने साथी के वापस आते ही वह भी चुप हो गया। कुछ देर बाद दोनों को भोजन के लिए बुलाया गया। दो थालियां रखी गईं, जिनमें से एक में घास और दूसरे में भूसा रखा था। दोनों विद्वान बिदक कर सेठजी से बोले, यह क्या। आपने हमारा अपमान करने के लिए यहां बुलाया है? उनकी बातें सुनकर सेठजी बोले, महाराज। आप दोनों ने ही तो एक-दूसरे को गधा और बैल बताया है। गधा और बैल ऐसी ही खुराक तो खाते हैं। अब इसमें मेरा क्या दोष? यह सुनकर दोनों शर्मिंदा हो गए। उन्होंने ईर्ष्या की आग अपने भीतर से निकाल दी।

२०१७) मन का पाप- एक साधु थे। जंगल में रहते थे। एक दिन घूमते हुए वह नदी के किनारे गये। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर प्रकृति की साम्राज्य फैला था। सघन वृक्षों पर चहचहा रहे थे। संत ने देखा कि एकान्त स्थान पर एक पेड़ के नीचे एक युवक और युवती बैठे हैं। दोनों बड़े आनंदित थे। दोनों के हाथ में एक-एक गिलास था। संत ने सोचा कि इस निर्जन स्थान पर बैठकर ये लोग निश्चय ही मदिरापान कर रहे होंगे और गंदी बातें कर रहे होंगे। शराब पीकर आदमी का दिमाग फिर जाता है। वह बुरी बातें ही सोचता है, बुरे काम ही करता है। आदमी का कितना पतन हो गया है। वह यह सब सोच ही रहे थे कि सामने से एक नाव आती दिखाई दी। नदी की धारा बड़ी तीव्र थी। जोर की लहरें उठ रही थीं। अचानक नाव को लहरों का थपेड़ा लगा और वह उलट गई। संत के मुंह से जोर की चीख निकली। उनकी आंखें बंद हो गई। जैसे ही आंखें खुली कि देखते क्या हैं कि जिस युवक को उन्होंने पापी समझ रखा था, वही युवक छलांग लगाकर पानी में कूदा और पांच आदमियों को निकालकर बाहर ले आया। संत खड़े-खड़े देख रहे थे। युवक पास आकर बोला, महाराज, भगवान की कृपा से पांच आदमियों की तो जान बच गई। अब एक रह गया है। उसके प्राण आप बचा लीजिये। संत को तैरना नहीं आता था। वह कूदने की हिम्मत कैसे कर सकते थे? यह देखकर युवक ने कहा, स्वामीजी, इंसान के लिए इंसान से बढ़कर और कुछ नहीं है। इतना कहकर उसने एक छलांग फिर लगाई और अंतिम व्यक्ति को भी बचाकर बाहर ले आया। साधु का लज्जा से सिर झुक गया। जिसे वह पापी समझ रहे थे, उससे बढ़कर पुण्यात्मा उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखा था।

२०१८) तुष माश - एक सामान्य गृहस्थ था। उसकी धर्म-ध्यान में बड़ा रुचि थी। अपने परिवार का भरण-पोषण करने के साथ-साथ वह संतों का सत्संग किया करता था। अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ा करता था। एक दिन वह कहीं जा

रहा था कि रास्ते में एक ओर को लोगों की भीड़ देखकर वहां चला गया। एक मुनि उपदेश दे रहे थे। वह खड़े होकर उनका प्रवचन सुनने लगा। वह शरीर और आत्मा के संबंध में बोल रहे थे। कह रहे थे- बहुत-से लोग समझते हैं कि आदमी मर जाता है तो शरीर के साथ आत्मा भी मर जाती है। ऐसा नहीं है। आत्मा अमर है। जिस प्रकार पुरानी हो जाने पर सर्प अपनी केंचुली उतारकर नई केंचुली धारण कर लेता है, उसी प्रकार शरीर के पुराने और जीर्ण हो जाने पर आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है। यह शरीर मंदिर है और आत्मा उसमें ईश्वर है। आत्मा की आराधना के लिए शरीर अनिवार्य है। पर दोनों को मिलाओ मत। दोनों अलग-अलग हैं। गृहस्थ ने यह सब सुना और आगे बढ़ गया। तरह-तरह के विचार उसके मन में उठ रहे थे। वह उनमें एकदम खो गया। अचानक उसे ठोकर लगी वह गिर गया। उसकी विचार-धारा टूट गई। उठकर चलने लगा। उसे ध्यान आया कि रास्ते में एक साधु मिले थे, लेकिन उसका मस्तिष्क कुछ ऐसा हो गया कि उसे याद नहीं आया कि उन्होंने क्या कहा था। उसने याद करने की बहुतेरी कोशिश की, लेकिन विस्मरण इतना हो गया कि वह उसका सूत्र नहीं पकड़ पाया। कुछ देर चलने पर एक गांव आया। वहां किसी घर के बाहर बैठी एक स्त्री कुछ कर रही थी। उसने पूछा, बहन, तुम क्या कर रही हो। वह बोली, तुष-माश। (मैं उड़द की दाल के छिलके उतार रही हूं) स्त्री का इतना कहना था कि उसे साधु का उपदेश याद आ गया। स्त्री ने उसे बोध दिया कि शरीर और आत्मा एक नहीं हैं, भिन्न हैं। उसे यह भी याद आया कि साधु ने मैं और तू का गुर बताया था, जिस प्रकार मैं और तू दो हैं, उसी प्रकार शरीर और आत्मा हैं। स्त्री का वचन उसके भीतर इतना प्रवेश कर गया कि वह उसे जीवन भर नहीं भूला।

२०१९) कड़वा सच - एक फकीर कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक सौदागर मिला, जो पांच गधों पर बड़ी-बड़ी गठरियां लादे हुए जा रहा था। गठरियां बहुत भारी थीं, जिसे गधे बड़ी मुश्किल से ढो पा रहे थे। फकीर ने सौदागर से प्रश्न किया, इन गठरियों में तुमने ऐसी कौन-सी चीजें रखी हैं, जिन्हें ये बेचारे गधे ढो नहीं पा रहे हैं? सौदागर ने जवाब दिया, इनमें इंसान के इस्तेमाल की चीजें भरी हैं। उन्हें बेचने मैं बाजार जा रहा हूं। फकीर ने पूछा, अच्छा। कौन-कौन सी चीजें हैं, जरा मैं भी तो जानूं। सौदागर ने कहा, यह जो पहला गधा आप देख रहे हैं इस पर अत्याचार की गठरी लदी है। फकीर ने पूछा, भला अत्याचार कौन खरीदेगा? सौदागर ने कहा, इसके खरीदार हैं राजा-महाराजा और सत्ताधारी लोग। काफी ऊंची दर पर बिक्री होती है इसकी। फकीर ने पूछा, इस दूसरी गठरी में क्या है? सौदागर बोला, यह गठरी अहंकार से लबालब भरी है और इसके खरीदार है पंडित और विद्वान। तीसरे गधे पर ईर्ष्या की गठरी लदी है और इसके ग्राहक हैं वे धनवान लोग, जो एक दूसरे की प्रगति को बर्दाश्त नहीं कर पाते। इसे खरीदने के लिए तो लोगों का तांता लगा रहता है। फकीर ने पूछा, अच्छा। चौथी गठरी में क्या है भाई? सौदागर ने कहा, इसमें बेईमानी भरी है और इसके ग्राहक हैं वे कारोबारी, जो बाजार में धोखे से की गई बिक्री से काफी फायदा उठाते हैं। इसलिए बाजार में इसके भी खरीदार तैयार खड़े हैं। फकीर ने पूछा, अंतिम गधे पर क्या लदा है? सौदागर ने जवाब दिया, इस गधे पर छल-कपट से भरी गठरी रखी है और इसकी मांग उन औरतों में बहुत ज्यादा है जिनके पास घर में कोई काम-धंधा नहीं हैं और जो छल-कपट का सहारा लेकर दूसरों की लकीर छोटी कर अपनी लकीर बड़ी करने की कोशिश करती रहती हैं। वे ही इसकी खरीदार हैं। तभी महात्मा की नींद खुल गई। इस सपने में उनके कई प्रश्नों का उत्तर मिल गया था।

२०२०) तीन पथिक पहाड़ की ऊपरी चोटी पर लंबा रास्ता पार कर रहे थे। धूप और थकान से उनका गला सूखने लगा। प्यास से व्याकुल होकर उन्होंने चारों ओर देखा पर वहां कहीं पानी न था। एक झरना बहुत गहराई में नीचे बहता

दिखा। एक पथिक ने आवाज लगाई, ईश्वर, सहायता कर, हम तक पानी पहुंचा। दूसरे ने पुकारा- हे इंद्र, बादल ला और जल बरसा। तीसरे पथिक ने किसी से कुछ नहीं मांगा। चोटी से नीचे उतर तलहटी में बह रहे झरने तक पहुचां और प्यास बुझाई। दो प्यासों की आवाजें अब भी सहायता के लिए पुकारती हुई पहाड़ी को प्रतिध्वनित कर रही थी, परंतु जिसने स्वावलंबन का साहस किया, वह तृप्त होकर फिर आगे बढ़ चलने में समर्थ हो गया।

२०२१) मेहनत की कमाई - एक शहर में नट मंडली आई हुई थी। लोगों की भीड़ में दो चोर भी नट के करतब देखने लगे। उन्होंने देखा कि एक नट पतली रस्सी पर आराम से चल रहा था। चोरों ने सोचा कि यदि इसे अपने साथ रख लिया जाए तो हम घरों में आसानी से चोरी कर पाएंगे। खेल खत्म होने पर चोरों ने उससे बात की। नट ने उनका साथ देने से मना कर दिया। चोर उसे बांधकर ले गए और रात में एक सेठ के घर के नीचे पहुंचे। हवेली पर पतली सी मुंडेर थी जिस पर इंसान तो क्या, किसी छोटे जानवर का चलना मुश्किल था। चोरों ने नट को चाकू दिखाते हुए कहा, तुम जब रस्सी पर चल सकते हो तो इस पतली मुंडेर पर चलना तुम्हारे लिए मुश्किल नहीं है। जल्दी से चढ़कर अंदर का दरवाजा खोलो। नट मुंडेर पर चढ़ गया लेकिन थोड़ा आगे जाते ही धड़ाम से गिर पड़ा। दोनों चोर गुस्से से बोले, तुम तो रस्सी पर भी आराम से चल पड़ते हो। फिर यहां कैसे गिर गए? नट मासूमियत से बोला, अरे ढोल बजाओगे तभी तो मैं इस पर चल पाऊंगा। बिना ढोल की आवाज के मैं रस्सी पर एक कदम भी नहीं चल सकता। यह सुनकर चोरों ने माथा पीट लिया। उन्हें परेशान देखकर नट बोला, तुम चोरी के लिए इतना जोखिम उठाते हो। क्यों नहीं मेरी तरह रस्सी पर चलना सीख लेते हो? मेरी तरह खेल दिखाओ और मेहनत की कमाई खाओ। दोनों चोरों ने नट की बात मान ली और फिर उससे रस्सी पर चलने की कला सीखने लगे।

२०२२) वह छोटी लड़की - एक शहर में अकाल पड़ा। भूखमरी की नौबत आ गई। एक नेकदिल सेठ ने घोषणा की कि वह रोज बच्चों को रोटियां बांटेगा। अगले दिन हजारों बच्चे उसके घर के बाहर पहुंच गए। वे एक-दूसरे को धक्का मारते, गिरते-पड़ते रोटियों की टोकरी तक पहुंचने की कोशिश कर रहे थे। रोटियां छोटी-बड़ी सभी तरह की थीं। हर बच्चा बड़ी रोटी पाने की फिराक में था। इन सबसे दूर एक छोटी लड़की चुपचाप कोने में खड़ी थी। जब सब बच्चों को रोटियां मिल गई तो वह आगे बढ़ी। तब तक टोकरी में बस एक रोटी बची थी। उसने खुश होकर वह रोटी ली और घर चली आई। अगले दिन फिर रोटियां बंटने लगीं। आज भी पिछले दिन की तरह ही धक्कामुक्की हो रही थी। आज भी वह लड़की उसी तरह खड़ी रही। अंत में उसे सबसे छोटी रोटी मिली। घर आकर जब उसने रोटी तोड़ी तो उसमें से सोने का एक सिक्का निकला। लड़की की मां ने उसे वह सिक्का सेठजी को लौटा आने को कहा। लड़की जब सिक्का लेकर सेठ के पास पहुंची तो सेठ ने कहा- मैंने वह सिक्का जानबूझकर सबसे छोटी रोटी में डाला था। मैं सबसे ज्यादा सब्र रखनेवाले बच्चे को पुरस्कार देना चाहता था। इसलिए इसे तुम अपने पास ही रखो। इस पर लड़की मासूमियत से बोली- मेरे सब्र का पुरस्कार यही था कि औरों की तरह मुझे धक्के नहीं खाने पड़े। इसे लेकर मैं लोभी हो सकती हूं और सबसे छोटी रोटी पाने के लिए धक्कामुक्की कर सकती हूं। इसे आप ही रखें। सेठ ने लड़की से प्रभावित होकर उसे अपनी धर्म पुत्री बना लिया।

२०२३) अफ्रीका का दयालु सेठ - अफ्रीका में एक भारतीय कारोबारी परिवार रहता था। वह बहुत अमीर और उदार था। उसके दरवाजे से कोई भी जरूरतमंद कभी खाली हाथ नहीं जाता था। समय बीतने के साथ उसका व्यवसाय घाटे में जाने लगा। उस पर काफी कर्ज हो गया। आखिरकार पत्नी के गहने बेचकर कर्ज चुकाया गया। उस पर से सेठजी बीमार पड़ गए। बड़ी ही दयनीय स्थिति हो गई। रही-सही रकम डाक्टरों की जेब में चली गई। सेठजी एक-एक पैसे के लिए

परेशान रहने लगे। इतना होने पर भी एक पुराना मुनीम बिना वेतन के सेवाभाव से कार्य करता रहा। उसी शहर में एक भारतीय ब्राह्मण परिवार भी रहता था, जिसके पास भारत लौटने के लिए जहाज का किराया तक न था। उसे किसी ने उस सेठ के बारे में बताया। ब्राह्मण ने सेठजी के पास पहुंचकर मदद मांगी। सेठ जी धर्मसंकट में पड़ गए। वह समझ नहीं पा रहे थे कि उसकी मदद कैसे करें। तभी उनकी नजर सामने खड़ी अपनी पत्नी पर पड़ी। वह सोचने लगे कि उसके सारे जेवर तो कर्ज चुकाने में बिक चुके थे, अब कुछ भी नहीं है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, तुम जानती हो कि मैं थोड़े दिनों का मेहमान हूं। मेरे जाने के बाद तुम्हें अपनी नाक की हीरे की लौंग निकालनी ही पड़ेगी। यदि उसे थोड़ा पहले ही निकाल लो, तो मेरी इच्छा पूरी हो जाएगी और घर आए मेहमान को खाली हाथ विदा भी न करना पड़ेगा। पत्नी ने बिना किसी आना-कानी के वह लौंग निकालकर दे दी। मुनीम ने उसे बेचकर उस ब्राह्मण के किराये का इंतजाम कर दिया।

२०२४) अपना वतन - कुछ देर तक शहर की सूनी सड़कों पर दौड़ने के बाद बस-स्टैण्ड पर बस थम गई। इसी के साथ सवारियों में हलचल हुई। सफेद दाढ़ीवाले एक वृद्ध अपनी सामान की गठरी को खींचकर बस के द्वार की ओर ले जाने का प्रयास कर रहे थे। कई अन्य सवारियां भी चेहरे पर सन्नाट पोते हुए बस के नीचे उतरने का प्रयास कर रही थी। इसी दौरान बस द्वार खोल कर एक पुलिस अधिकारी बस में चढ़ा। सवारियों की ओर मुखातिब होकर उसने कहा- देखिए श्रीमान, शहर में दंगा हो गया है। आप लोग लंबा सफर तय करके यहां पहुंचे हैं। परंतु ऐसी हालत में आपका यहां उतरना सुरक्षित नहीं है। यदि आप चाहें तो यहां से आगे किसी सुरक्षित स्थान तक अपनी यात्रा जारी रख सकते हैं। अफसर ने कहा- हमारे पास इतना फोर्स भी नहीं है कि हम आप लोगों को आपके घरों तक सुरक्षित पहुंचा सकें। सफेद कुर्ता और चारखाना की लुंगी बांधे दाढ़ीवाले वृद्ध जिनके जिस्म की हरकत पुलिस अफसर की चेतावनी के बाद रुक गई थी, पुन: अपनी गठरी को द्वार की और सरकाने लगे। सभी सवारियां उन्हें अचरज से देख रही थी। पुलिस अफसर ने उनकी ओर देखकर कहा- बड़े मियां आप... अरे जनाब, चार साल परदेस में बिताने के बाद अपने बच्चों के पास अपने वतन लौट रहा हूं। यदि अपना वतन ही अपने लिए सुरक्षित नहीं है तो और कौन सी जगह सुरक्षित हो सकती है। फिर जान का क्या है? कहीं भी जा सकती है। यहां मरेंगे तो कम से कम अपने वतन की मिट्टी तो नसीब होगी। इतना कहकर वृद्ध ने अपने सामान की गठरी को बस के नीचे उतार लिया। उनके चेहरे पर सुकून की रेखायें साफ दिख रही थीं।

२०२५) राजा का यज्ञ - एक बार महाराजा पुरंजय ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें दूर-दूर से राजा और ऋषि-मुनि आए। यज्ञ मंडप में राजा-रानी और राजकुमार विधि-विधान से आहुतियां दे रहे थे कि तभी एक किसान के रोने की आवाज सुनाई पड़ी। रोने की आवाज से राजा की एकाग्रता में बाधा आने लगी। राज पुरोहित ने कहा, राजन्, इस समय आप मन लगाकर आहुति के कार्य को पूरा करें। लेकिन राजा का मन स्थिर नहीं हो रहा था। किसान कह रहा था, डाकू मेरी संपत्ति लूट कर भाग गए हैं। अभी वे बहुत दूर नहीं गए होंगे। मेरी संपत्ति वापस दिलाएं। राज पुरोहित ने किसान से कहा, देखता नहीं, अभी राजा आहुति कर रहे हैं। यज्ञ में विघ्न डालने वाले को कड़ी सजा मिलेगी। किसान बोला, पंडित जी, राजा का कर्त्तव्य है जनता की रक्षा करना। आहुति तो बाद में भी दी जा सकती है, लेकिन डाकुओं को अभी पकड़ा नहीं गया तो मेरी संपत्ति कभी वापस नहीं मिलेगी। राजा आहुति छोड़ कर खड़े हो गए और बोले, किसान ठीक कह रहा है पुरोहित जी। इस समय वह संकट में है। मेरा पहला कर्त्तव्य है कि मैं उसकी रक्षा करूं। राज पुरोहित ने कहा, राजन् अभी यज्ञ पूरा नहीं हुआ है। पूर्णाहुति दिए बिना आप यहां से चले गए तो देवता कुपित हो जाएंगे और आप पर संकट आ

सकता है। राजा ने कहा, यज्ञ से बड़ा धर्म है संकट में फंसे लोगों की मदद करना। यज्ञ तो फिर हो सकता है लेकिन किसान की संपत्ति दोबारा नहीं मिलेगी। इतना कहकर राजा मंडप छोड़कर डाकुओं को पकड़ने के लिए चले गए। राजा के जाने के बाद ऋषि-मुनियों ने कहा, राजा को आहुति छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। यह काम अच्छा नहीं हुआ। तभी नारद जी ने अचानक प्रकट होकर कहा, मुनियों, राजा ने सही किया। जो राजा अपनी जनता की सेवा और रक्षा मन से करता है, उसे एक नहीं सौ यज्ञ के बराबर का फल मिलता है। यज्ञ भी प्रजा की भलाई के लिए होते हैं।

२०२६) मालिक और गुलाम - यह उन दिनों की बात है जब दास प्रथा का चलन था। तब इंसान को खुलेआम खरीदा-बेचा जाता था। उनके बड़े-बड़े बाजार लगते थे। उनके साथ जानवरों जैसा सलूक किया जाता था। किसी देश में एक जागीरदार के पास अनेक दास थे जिनसे वह बड़ा ही क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता था। न ही उन्हें पेट भर खाना देता था, न ही आराम करने देता था। ऊपर से जब-तब कोड़ों से मारता भी था। जागीरदार ने दासों की देखभाल के लिए एक व्यक्ति को रख लिया। वह व्यक्ति स्वभाव से बड़ा ही नरम, दयालु और मेहनती था। वह गुलामों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था। वह उन्हें समय पर खाना देता और आराम करने के पर्याप्त मौके भी उपलब्ध कराता था। एक दिन जागीरदार ने उस व्यक्ति से कहा- जाओ, खेतों में गेहूं बो कर आओ। जब वह खेतों में बुवाई करके लौटा तो जागीरदार ने उससे पूछा- क्या ठीक से गेहूं बोकर आ गए? इस पर उस व्यक्ति ने कहा- जी हां। बहुत अच्छे ढंग से बोया है। जौ की बड़ी अच्छी फसल आएगी। इस पर जागीरदार हैरत में पड़ गया। उसने उससे गुस्से में कहा- क्या बक रहे हो? मुझे नहीं पता था कि तू इतना बड़ा बेवकूफ निकलेगा। मैंने तुम्हें गेहूं बोने के लिए भेजा था। अगर तुमने गेहूं बोए हैं तो जौ की फसल भला क्यों आएगी? इस पर उस व्यक्ति ने कहा- ठीक कह रहे हैं आप। जब मैंने गेहूं बोये हैं तो जौ की फसल क्यों आएगी? आदमी जो बोता है, वही काटता है। जैसे आप इन गुलामों के साथ बेहद क्रूरतापूर्ण व्यवहार कर रहे हैं फिर भी आप चाहते हैं कि आपके जीवन में खुशी और समृद्धि आए। ऐसा कैसे हो सकता है भला। दूसरों को दुख-तकलीफ पहुंचाकर कोई भी कभी संतुष्ट नहीं रह सकता। जागीरदार को यह बात समझ में आ गई। वह उस दिन से गुलामों के साथ अच्छा व्यवहार करने लगा।

२०२७) भाग्य की महिमा - एक यात्री रेगिस्तान में रास्ता भूल गया। कई दिनों तक वह बिना भोजन और पानी के लिए भटकता रहा। बस मरने-मरने को हो रहा था। तभी उसे एक खजूर का पेड़ दिखाई दिया। वह उसकी ठंडी छाया में बैठ गया। पेड़ पर खजूर तो नहीं थे, पर सामने रेत पर एक थैला जरूर पड़ा था। यात्री ने सोचा, अवश्य इसमें कुछ खाने का सामान होगा- और वह मरने से बच जाएगा। बड़ी उत्सुकता से उसने थैला खोला। पर तुरंत उसका चेहरा फक पड़ गया। ओह, इसमें तो हीरे भरे हैं। वह बुदबुदाया। यात्री भूख से मर रहा था और उसकी बगल में कीमती हीरों का थैला पड़ा था। वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगा। तभी उसने देखा कि एक ऊँट उसकी तरफ चला आ रहा है। जैसे ही ऊँट निकट आया, उसने देखा कि ऊँट की पीठ पर एक व्यापारी बैठा है। यह व्यापारी कुछ समय पूर्व उसी रास्ते से गुजरते हुए खजूर के पेड़ के नीचे आराम करने के लिए बैठा था और अपना हीरों का थैला भूल गया था। उसी थैले की खोज में वह उस जगह वापस लौटा था। थैला वापस पाकर व्यापारी बेहद खुश हुआ। उसने यात्री की ढेर सारी खाने की सामग्री दी और उसे अपने ऊँट की पीठ पर बैठाकर साथ ले गया।

शिक्षा- कभी ढेर सारे हीरों से कीमती एक रोटी होती है।

२०२८) दूध - कल्लू काफी धनी लड़का था। एक बार वह शहर से घूमने गाँव की तरफ आया। कड़ी दोपहरी थी। उसे भूख लगी। एक किसान से उसने दूध व रोटी खरीदी और एक पेड़ की छाया में आराम से बैठकर खाने लगा। बल्लू एक

गरीब बच्चा था। कल्लू को जब उसने पेड़ की छाया में बैठकर दूध और रोटी खाते देखा तो उसकी भी इच्छा हुई कि उससे थोड़ा सा अपने लिए माँग ले; पर वह कह न सका। कल्लू ने बल्लू को देख लिया था और उसका इरादा भी भाँप लिया था। अत: उसने गिलास में थोड़ा सा दूध बल्लू के लिए छोड़ने का निश्चय किया। किंतु अपनी भूख की वजह से वह पूरा दूध पी गया। जैसे ही उसने अपना दूध खत्म किया, गिलास की तली में उसने कुछ लिखा हुआ पढ़ा। मारे शर्म के उसका चेहरा झुक गया। वह फौरन किसान के पास गया। दूध का एक और बड़ा गिलास व रोटी खरीदी और बल्लू को पास बुलाकर उससे खाने का आग्रह किया। पंक्तियाँ जो उसने गिलास की तली में पढ़ी थीं, वे इस तरह थीं।

२०२९) बंद आँखें, खुला मुँह - एक छोटे से गाँव में रहनेवाले एक मुरगे को अपनी आवाज पर बड़ा नाज था। एक दिन एक चालाक लोमड़ी उसके पास आई और बोली, मुरगे महाशय। सुना है, आपकी आवाज बड़ी प्यारी और बुलंद है। मुरगे ने गदगद होकर अपनी आँखें मीचीं और ऊँची आवाज में चिल्लाया- कु कु डू... कूँ। कुकुडू कूँ... पर तभी लोमड़ी ने फरती से उसे अपने मुँह में दबोच लिया और जंगल की तरफ भाग चली। गाँववालों की नजर उसपर पड़ी तो वे चिल्लाए, पकड़ो, मारो। यह तो हमारा मुरगा दबोचे लिये जा रही है। लोमड़ी ने उनकी चिल्लाहट पर ध्यान नहीं दिया। यह देखकर मुरगा बोला, लोमड़ी बहन, ये गाँववाले चिल्ला रहे हैं कि मेरा मुरगा दबोचे लिये जा रही है। आप इन्हें जवाब क्यों नहीं दे देतीं कि यह मुरगा आपका है, उनका नहीं? लोमड़ी को मुरगे की बात जम गई। उसने फौरन मुँह खोला और गाँववालों की ओर देखकर कहा, भूल जाओ अपने मुरगे को। यह तो अब मेरा निवाला है। पर यह कहने के साथ जैसे ही लोमड़ी का मुँह खुला, मुरगा उसके मुँह से छूट गया। वह सरपट भागा और गाँववालों के पास पहुँच गया। प्रयत्नशील लोगों के लिए सदा आशा है।

२०३०) स्वर्ग का रास्ता - एक साधु एक गली से गुजर रहा था कि अचानक उसके कानों में ये शब्द पड़े, जा, पता लगाकर आ कि सेठ धर्मपाल स्वर्ग गया है या नरक? एक बुढ़िया अपने पंद्रह वर्षीय पोते से यह बात कह रही थी। साधु सोचने लगा, यह रहस्य तो मैं भी नहीं जानता। यह बुढ़िया कैसे जानती है। फिर इसका पोता यह पता कैसे लगाएगा? कहीं यह बुढ़िया कोई पहुंची हुई फकीर तो नहीं।

इसे जानने के लिए साधु वहीं ठहर गया। थोड़ी देर में लड़के ने आकर बताया, सेठ नरक गया है। साधु ने बुढ़िया के चरण पकड़ लिए। बुढ़िया ने पैर छुड़ाते हुए कहा, यह क्या कर रहे हैं महाराज? आप तो पहुंचे हुए महात्मा लगते हैं फिर आप मेरे पैर क्यों पकड़ रहे हैं। साधु ने कहा, मैं सब समझता हूं। आप कोई साधारण मनुष्य नहीं। आपके पास तो बहुत बड़ी सिद्धि है। बुढ़िया ने हैरान होकर पूछा, कैसी सिद्धि? साधु ने कहा, बड़े-बड़े ऋषि और ज्ञानी भी यह नहीं जानते कि मरकर कौन नरक गया है और कौन स्वर्ग लेकिन आपकी बात तो दूर, आपका पोता भी यह जानता है।

बुढ़िया ने हंसते हुए कहा, अरे इसमें जानने की कौन सी बात है। जिसके मरने पर लोग रोएं, जिसके गुणों को याद करके दुख प्रकट करें उसे निश्चय ही स्वर्ग मिलेगा और जिसके मरने पर लोग घी के दीये जलाएं, राहत महसूस करें, वह नरक का भागी बनेगा। जो व्यक्ति लोगों की दृष्टि में अच्छा नहीं है, जो समाज को, संसार को प्रसन्न नहीं कर सका, वह ईश्वर की दृष्टि में कैसे अच्छा हो सकता है? ईश्वर या स्वर्ग की प्राप्ति उसी को हो सकती है जो अपने शुद्ध, स्वच्छ व पावन चरित्र से जनता-जनार्दन को मुग्ध कर ले। यह सुनकर साधु नतमस्तक हो गया और सोचने लगा, साधारण सी दिखनेवाली बुढ़िया कितनी समझदार है। इसकी समता मैं तो क्या, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और दिग्गज विद्वान भी नहीं कर सकते।

२०३१) भेड़िए की चाल - एक भेड़िया बीमारी की वजह से कुछ कमजोर हो गया। जंगल में शिकार कर अपने लिए भोजन जुटाना अब उसके लिए संभव न रहा। उसने एक चाल चली। भेड़ की खाल ओढ़कर वह भेड़ों के एक झुंड में घुस गया।

किसीको पता न चला। चरवाहे को भी नहीं। बस, अब क्या था। मौज-ही-मौज। भेड़िया रोज चुपके से एक भेड़ के बच्चे को अलग ले जाता और मिनटों में गड़प कर जाता। कुछ रोज यह युक्ति चलती रही। एक दिन चरवाहे के घर पर कुछ मेहमान आनेवाले थे। उसने एक बड़ी सी भेड़ को काटकर उसका सालन बनाने का निश्चय किया। अचानक उसकी दृष्टि भेड़ की खाल ओढ़कर भेड़ बने भेड़िए पर गई। चरवाहे ने फौरन उसकी गरदन धड़ से अलग कर दी। जैसी करनी वैसी भरनी।

२०३२) नहले पर दहला - कल्लूमल को परेशान देखकर उसके दोस्त ने बड़ी सहानुभूति से पूछा, क्यों दोस्त, क्या बात है, बड़े परेशान नजर आ रहे हो? कल्लूमल का गला भर्रा उठा। बोला, क्या बताऊँ, दोस्त, मेरे घर के सामनेवाले जो दर्जी है न, वह कमबख्त भाग गया। साथ ही टेरालीन की तीन पतलूनें और दो कमीजों का मेरा कपड़ा भी लेता गया। दोस्त सुनकर मायूस हो उठा। उसकी संजीदगी देखकर कल्लूमल ने पूछा, मगर तुम इतने क्यों उदास हो गए? उदास इसलिए हो रहा हूँ कि वह कमबख्त तेरी तो तीन पतलून और दो कमीजों का कपड़ा ही लेकर भागा है, पर मेरी तो ऐसी-तैसी कर दी उसने। चार कुरते, चार पायजामों का नाप लेकर रफू-चक्कर हो गया। बेवकूफ हमेशा उलटी बातें करते हैं।

२०३३) बदकिस्मत - बेटे तुम्हारा पत्र आया था। बिस्तर के नीचे रखा है। मां ने रसोई घर से आवाज दी। उसने पत्र खोलकर देखा और दौड़कर मां से लिपट गया।

क्या हुआ बेटे? मां मेरी भरती बैंक में हो गयी है। पर ये तेरी आंखों में आंसू... क्या हुआ? यह तो खुशी की बात है।

मां पिताजी की याद आ गई थी... उनका सपना था कि मैं किसी अच्छी-सी नौकरी पर लग जाऊं... आज वे होते तो कितना खुश होते कितना बदकिस्मत हूं मैं उसकी आवाज में कंपन थी।

शाम को वह बिजली की दुकान पर सामान ले रहा था कि एक बुजुर्ग आया और पानी गर्म करने की राड रिपेयर करने के लिए कहने लगा। राड की जांच करके दुकानदार ने कहा कि इसे ठीक कराने की अपेक्षा नई लेना बेहतर रहेगा। बुजुर्ग रुआंसा होकर बोला, वृद्धाश्रम में रहता हूं कापी-पेंसिल बेचकर खाने का जुगाड़ कर लेता हूं। तीन लड़के हैं जिन्हें उंगली पकड़कर चलना सिखाया और उन्होंने ही मुझे वृद्धाश्रम का रास्ता दिखाया। मैं नई राडके लिए पैसे कहां से लाऊं? भाई साहब, इन्हें नई राड दे दीजिए और पैसे मेरे बिल में जोड़ दीजिए। उसने दुकानदार से कहा।

२०३४) कुत्ता घर का और गाँव का - एक बार घर का कुत्ता और गाँव का कुत्ता रास्ते में टकरा गए। गाँव के कुत्ते ने देखा कि उसका मित्र काफी तंदुरुस्त और हट्टा-कट्टा है। जबकि उसकी अपनी हालत बड़ी नाजुक थी। पूरे-पूरे दिन उसे खाने को नहीं मिलता था। तभी घर के कुत्ते ने सहानुभूति से भरकर उसे बताया, अगर तुम चाहो तो तुम्हें भी पेट भरकर खाना मिल सकता है। गाँव के कुत्ते ने पूछा, वह कैसे? घर के कुत्ते ने जवाब दिया, तुम्हें हमारे मालिक के घर की चौकीदारी करनी होगी। मैं तैयार हूँ। गाँव का कुत्ता बोला, पर तुम्हारे गले में यह क्या है? पट्टा। घर के कुत्ते ने बताया, रात में मैं पहरेदारी करता हूँ। दिन में हमारा मालिक मुझे बाँधकर एक कोने में बिठा देता है। यह सुनकर गाँव का कुत्ता चलता बना। यशस्वी होने का सबसे छोटा रास्ता अंतरात्मा के अनुसार चलना है।

२०३५) चमत्कारी भोजन - एक दिन एक राजा आँधी और तूफान में फँस गया। उसने एक झोंपड़े में शरण ली। उसने देखा, बच्चे जमीन पर बैठे हुए खाना खा रहे हैं। खाने में सिर्फ पतली खिचड़ी ही थी, पर बच्चे काफी स्वस्थ दिख रहे थे। उनके गालों पर हलकी ललाई थी। राजा ने बच्चों की माँ से इसका राज जानना चाहा। उनकी माँ ने कहा, यह सब उन तीन बातों की वजह से है जो बतौर घुट्टी मैं इन्हें खाने के साथ देती हूँ। पहली चीज, बच्चे अपने खाने भर का पैदा करने

के लिए स्वयं मेहनत करें। दूसरी, मैं कोई चीज उन्हें बाहर की नहीं देती। तीसरी, मैंने उन्हें अंधाधुंध खाने से दूर रखा है। जितनी भूख हो उतना ही खाना। नियम और सादगी स्वास्थ्य की निशानी है।

२०३६) नजरिया - हमारे घर के पास कुल्फी बेचनेवाला एक लड़का रहता है। मेरा तीन वर्षीय बेटा आयुष उसके साथ काफी हिलमिल गया था। वह लड़का भी आयुष से स्नेह रखने लगा था। मुझे उन दोनों का मेलजोल कतई पसंद नहीं था। उस लड़के से दूर रहने के लिए कई बार आयुष को डांटा भी लेकिन आयुष्य माना नहीं। बच्चा क्या जाने ऊंच-नीच और अमीर-गरीब का भेदभाव। एक दिन दोपहर को जब मैं रसोईघर में व्यस्त थी। तब वह लड़का आयुष का हाथ पकड़े हुए मेरे पास आया। वह लड़का कांपते हुए बोला, यह घर से दूर कहीं जा रहा था, मैंने इसे देख लिया और पकड़कर यहां ले आया हूं। आयुष घर के सामने खेलते-खेलते कब इतनी दूर निकल गया, इसका मुझे पता नहीं चला। उस लड़के का शुक्रिया अदा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं थे। उस दिन के बाद मैंने आयुष को उस लड़के के साथ खेलने के लिए मना नहीं किया। लड़का वही था लेकिन मेरे देखने और सोचने का नजरिया बिल्कुल बदल चुका था।

२०३७) कालिया कुत्ता - एक सेठजी को गुस्सा बहुत आता था। उनका दिल भी बहुत कमजोर था। इसलिए उनके घर परिवार वाले और नौकर-चाकर उनसे बात करते समय चिंतित रहते थे कि कोई नुकसान या हादसे की बात कहें तो कैसे कहें। एक बार जब सेठजी शहर गए हुए थे तो उसे कुछ समाचार देने के लिए एक नौकर को भेजा गया। सेठजी ने उससे पूछा, घर से आ रहे हो? सब ठीक तो है न? नौकर ने कहा, सब ठीक है मालिक। बस, आपका कालिया कुत्ता मर गया। लेकिन कैसे? मैं आया तब तो वह बिलकुल ठीक-ठाक था। सेठ ने पूछा। दस्तें लगने से मर गया हुजूर। घोड़ों का इतना मांस खाकर कोई बचता भला। घोड़ों का मांस? घोड़ों का मासं उसे कहां मिला? और कहां, अपनी ही घुड़साल में मालिक। क्या? मेरे घोड़े मर गए? कैसे बचते मालिक, जब उन्हें दाना-पानी देने वाला ही नहीं रहा। क्यों, नालायक सईस क्या कर रहे हैं। उन्हें वेतन कौन देता? बेचारे भूख से मर गए। नौकर ने जवाब दिया। क्या बकवास करते हौ? उन्हें तनख्वाह क्यों नहीं मिली? तुम्हारी मालकिन को क्या हुआ? सेठ ने सवाल दागा। रसोइया ही नहीं रहा तो मालकिन को खाना कौन देता? बिना खाने के वे मर गई सेठजी। रसोईए को क्या हुआ? वह तो अच्छा-भला तो था। रसोई में आग लग गई तो वह कैसे बचता मालिक? तो फिर मेरी हवेली का क्या हुआ। आग में समूची हवेली जलकर भस्म हो गई और कोई भी जिंदा नहीं बचा। इस तरह सेठजी का दिल संभालते हुए नौकर ने सारी बात बता दी।

२०३८) चालाक भेड़िया - एक चरवाहा जंगल में जब भी अपनी भेड़-बकरियाँ चराने जाता तो पाता कि एक भेड़िया चुपचाप उसकी भेड़-बकरियों के करीब आकर खड़ा हो जाता है। उसे देखकर वह अकसर भयभीत हो जाता। पर फिर उसने पाया कि उसका भय निर्मूल है- भेड़िया बिना किसी भेड़-बकरी को छेड़े उनकी रखवाली करता रहता है। चरवाहे को विश्वास हो गया कि वह भेड़िया जमाने के साथ बदल चुका है। इसने अपनी मांसाहारी प्रवृत्ति त्याग दी है। खुश होकर उसने अपनी भेड़-बकरियों की देख-रेख भेड़िए को सौंप दी और खुद आँखें मूँदकर हरी-हरी घास पर सो गया। घंटे भर बाद जब उसकी आँख खुली तो उसे चक्कर आ गया। भेड़िया उसकी सब भेड़-बकरियों का खात्मा कर जंगल में गायब हो गया था। उन धोखेबाजों से दूर रहो जो मित्र होने का दावा करते हैं।

२०३९) जिद - मक्के के खेत के करीब एक जंगल में दो लड़कों ने तीतर का एक घोंसला देखा। किसी तरह वह घोंसला उनके कब्जे में आ गया, जिसमें मादा तीतर अपने अंडों सहित बैठी थी। बड़ेवाले लड़के ने कहा, तुम अंड़े ले लो, मैं

तीतर रखता हूँ। दोनों का मूल्य बराबर ही है। जैसाकि तुम कह रहे हो, अगर यह सच है तो तुम अंडे ले लो, मैं तीतर लूँगा। छोटेवाले लड़के ने जवाब दिया। उनका तर्क-वितर्क लगातार चलता रहा और वे अपनी-अपनी जिद पर डटे रहे। अंत में उनकी इस तू-तू, मैं-मैं में अंडे गिरकर फूट गए और तीतर उड़ गई। दोनों हाथ मलते रह गए। लालच का अंत बुरा होता है।

२०४०) स्वयं पर विश्वास - दारापुर के राजा की अकाल मृत्यु के बाद उसके पुत्र को राजगद्दी मिली। युवा राजा बेहद परेशान था। वह समझ नहीं पा रहा था कि किसका विश्वास करे, किसका नहीं। उसे राजकाज चलाने में काफी परेशानी हो रही थी। एक बार वह अपने महल की ऊंची अटारी पर खड़ा था कि अचानक उसकी नजर महल के मार्ग पर पड़ी। उसने देखा कि लोगों का एक झुंड एक ही दिशा की ओर चला जा रहा है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि एक संत नगर के बाहर आध्यात्मिक प्रवचन देनेवाले हैं। सब उन्हीं का उपदेश सुनने जा रहे है। राजा के भीतर उत्सुकता जगी। वह भी वेश बदलकर सभा में शामिल हो गया। महात्मा की बातों को राजा ने ध्यानपूर्वक सुना और असीम आनंद का अनुभव किया। सभा समाप्त हुई और सभी अपने-अपने घरों को चले गए, लेकिन राजा अपने स्थान पर बैठा रहा। संत अपनी कुटिया में जाने के लिए आसन से ज्यों ही उठे कि उनका दुशाला कुर्सी की कील में फंस कर फट गया। महात्मा अंदर गए और हाथ में सुई-धागा लेकर बाहर आए और दुशाले की सिलाई के लिए सूई में धागा डालने का प्रयत्न करने लगे। यह देखकर राजा ने पास जाकर विनम्र भाव से कहा, महाराज, आपकी यह दुशाला पुरानी हो चुकी है। यह मुझे दे दीजिए और आप मेरी नई दुशाला ले लीजिए। संत ने उत्तर दिया, श्रीमान, मुझे आपकी नई दुशाला नहीं चाहिए, यदि आप मेरी सहायता करना ही चाहते हैं तो सूई में धागा डाल दें। राजा ने सूई में धागा पिरोकर उन्हें दे दिया। संत ने अपनी दुशाला में टांके लगाने के बाद कहा, मनुष्य को किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। मैं किसी भी कार्य के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहता हूं। वही व्यक्ति जीवन में सफल हो सकता है जो सबसे ज्यादा अपने ऊपर विश्वास करता हो। संत के ये शब्द सुनकर राजा के मन के सारे संशय दूर हो गए। उस दिन के बाद उसने एक नए आत्मविश्वास के साथ राजकाज संभालना शुरू कर दिया।

२०४१) मुंह से निकले शब्द - एक किसान की एक दिन अपने पड़ोसी से खूब जमकर लड़ाई हुई। बाद में जब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ, तो उसे खुद पर शर्म आई। वह इतना शर्मसार हुआ कि एक साधु के पास पहुंचा और कहा- मैं अपनी गलती का प्रायश्चित करना चाहता हूं।

साधु ने कहा कि पंखों से भरा एक थैला लाओ और उसे शहर के बीचोबीच उड़ा दो। किसान ने ठीक वैसा ही किया जैसा कि साधु ने उससे कहा था।

फिर साधु ने उससे कहा- अब जाओ और जितने भी पंख उड़े हैं, उन्हें बटोर कर थैले में भर लो।

बेवकूफ किसान जब वैसा करने पहुंचा, तो उसे मालूम हुआ कि यह काम मुश्किल नहीं, बल्कि नामुमकिन है। खैर, खाली थैला ले, वह वापस साधु के पास आ गया। यह देख साधु ने उससे कहा- ऐसा ही मुंह से निकले शब्दों के साथ ही होता है।

२०४२) दीपक की रौशनी - एक शहर में एक बहुत ही धनिक व्यक्ति रहता था। वह अत्यंत दयालु व मेहनती भी था। नियमित रूप से वह मंदिर में जाता और वहां पर घी का दीया जलाता। उसी के पड़ोस में एक निर्धन व्यक्ति भी रहता था। वह दिन रात अपनी जीविका के कार्य में ही लगा रहता था। गरीब था, इसलिए कड़ा परिश्रम करता, लेकिन रात्रि के समय सोने के पहले भगवान का स्मरण कर समीप ही अंधेरे मार्ग पर तेल का एक दीपक जला देता था। यह क्रम नियमित रूप से तब तक चलता रहा जब तक दोनों की मृत्यु नहीं हो गई।

मृत्यु के बाद दोनों को धर्मराज के सामने पेश किया गया। दोनों का लेखा जोखा जानने के बाद यमलोक में दोनों को स्वर्ग में ही भेजा गया। किंतु स्वर्ग में निर्धन व्यक्ति को धनिक से ज्यादा सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं। यह देखकर धनिक से न रहा गया और वह धर्मराज के पास इस जिज्ञासा के समाधान के लिए गया। धनिक की बात सुनकर यमराज मंद-मंद मुस्कुराए और बोले, वत्स तुम्हारी जिज्ञासा तुम्हारे लिए उचित है। इसके पीछे रहस्य यह है कि तुम मंदिर में ईश्वर को स्मरण कर वहां पर नियमित घी का दीपक जलाते तो अवश्य थे, किंतु मंदिर तो स्वयं ही प्रकाश का पुंज है। उसे भला उस रोशनी क्या जरूरत। यह निर्धन व्यक्ति दिन रात कड़ा परिश्रम करके अपने खून-पसीने की कमाई से तेल खरीदकर नियमित एक दीपक अंधेरे मार्ग पर जलाता था, जिससे वह दीपक अनेक पथिकों को रोशनी दिखाने के साथ-साथ उन्हें मार्ग में भटकने व ठोकर लगने से भी बचाता था। इसलिए उसके मन में परोपकार की भावना तुमसे अधिक थी। निर्धनता में उसके लिए नियमित रूप से तेल खरीदकर दीपक जलाकर औरों को मार्ग दिखाना कठिन था, किंतु फिर भी उसने परोपकार के लिए ऐसा किया। इसलिए वह यहां पर तुमसे अधिक सुविधाएं पाने का अधिकारी है। जिज्ञासा का समाधान मिलने पर धनिक लज्जित हो गया।

२०४३) राजा का अहंकार - उज्जैन के युवराज एक गुरुकुल में पढ़ते थे। वह वहां खूब शरारत करते थे। एक बार उनके गुरु शिवदान ने शरारत करने पर उनकी पिटाई की और चेतावनी दी कि अगर भविष्य में फिर उद्दंडता की तो उन्हें गुरुकुल से निकाल दिया जाएगा। उसके बाद वह विद्याध्ययन में मन लगाने लगे। अध्ययन पूरा होने पर युवराज उज्जैन लौट गए। बाद में वह राजा बने। गुरु शिवदान एक बार अपने शिष्य का राजकाज देखने के लिए उज्जैन पहुंचे। राजमहल के दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने भिक्षा मांगने के लिए पुकार लगाई। अपने गुरु की आवाज पहचान कर राजा राजमहल से बाहर आए। उन्हें भिक्षा मांगते देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने गुरु का चरण स्पर्श करते हुए कहा, गुरुवर, आपकी यह दशा देखकर मुझे बहुत दुख हो रहा है। आपने मुझे मार-पीट कर राजा बनने के योग्य बनाया। आपने अच्छा मनुष्य नहीं बनाया होता तो मैं राजा की जगह अपराधी होता। आज मेरे पास अपार संपत्ति है आपको जितनी चाहिए, ले लीजिए लेकिन भिक्षा मांगना छोड़ दीजिए।

गुरु शिवदान ने कहा, वत्स, शिक्षक होने के नाते मैंने तुम्हें अच्छा मनुष्य तो बना दिया लेकिन राजा बनने के लिए सबसे जरूरी शिक्षा मैं तुम्हें नहीं दे सका। इसका दुख है। राजा ने पूछा, कौन सी शिक्षा आप नहीं दे पाए गुरुवर? शिवदान बोले, आज भी तुम्हारे अंदर अहंकार भरा हुआ है। यह तुम्हारी नहीं मेरी शिक्षा की कमी है।

राजा ने कहा, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं गुरुवर। मैं राजपाठ ईमानदारी से चला रहा हूं। जनता की भलाई के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। गुरु ने कहा, वत्स जो चीज तुम्हारी है ही नहीं, उसे तुम मुझे दे रहे हो। यह अहंकार नहीं तो क्या है। राजा तो राज्य का प्रहरी होता है स्वामी नहीं। फिर सारी संपत्ति तुम्हारी कैसे हो गई? यह सुनकर राजा लज्जित हो गए। उन्होंने अपने गुरु से क्षमा मांगी।

२०४४) दोस्ती का हाथ - पुराने जमाने की बात है। किसी राज्य के राजा के कुछ कर्मचारियों ने एक दिन उससे कहा, हमारे दुष्ट पड़ोसी राज्य ने हम पर अनेक अत्याचार किए हैं। उनका स्मरण करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अब हमें बदला लेने का एक सुंदर अवसर प्राप्त हुआ है। यदि आप आज्ञा दें तो हम इसका लाभ उठाएं। राजा ने पूछा, यह सुनहरा अवसर क्या है? एक कर्मचारी ने कहा, पड़ोसी राज्य के नागरिक दूर की यात्रा पर निकलने वाले हैं। उनके पास धन-संपत्ति और ढेरों टट्टू हैं। बस आप इशारा करें। हम उन्हें लूट लेंगे। इसके लिए हमारी योजना तैयार है।

इस पर राजा ने कहा, लेकिन इससे तो हमारा अपयश होगा। क्या नीति की दृष्टि से ऐसा करना उचित होगा? दूसरा कर्मचारी बोला, नीति तो कहती है कि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए। जब उन्होंने हम पर अत्याचार किए थे तो उनकी सज्जनता कहां चली गई थी। उन्हें नीति का विचार क्यों नहीं आया? राजा को यह बात पसंद नहीं आई। उसने कुछ सोचकर कहा, मेरी दृष्टि से यात्रियों को लूटना सर्वथा अनुचित होगा। कर्मचारियों ने कहा, वे भी हमारे यात्रियों को लूटते हैं। हम यह कैसे भूल जाएं। इस पर राजा ने कहा, जिन व्यक्तियों ने कोई अपराध नहीं किया है उन्हें दंड क्यों दिया जाए? यदि हमारी सीमा पर मुसाफिर लूटे जाएं तो फिर एक राजा और डाकू में क्या अंतर रह जाएगा। मेरे विचार से इस तरह की सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है उनकी रक्षा करना और उनकी हर तरह की सहायता करना।

राजा ने कर्मचारियों को उन यात्रियों का अच्छी तरह स्वागत करने का निर्देश दिया। जब इस बात का पता पड़ोसी राजा को चला तो उसने इस राजा की सहिष्णुता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। कुछ दिनों बाद वह स्वयं अपने मंत्री के साथ राजा के दरबार में उपस्थित हुआ। फिर दोनों राजा हमेशा के लिए एक-दूसरे के मित्र बन गए।

२०४५) लोभ का फल - एक किसान के बगीचे में फलों के अनेक पेड़ लगे हुए थे। प्रत्येक वर्ष उनमें रसीले मीठे-मीठे फल लगते थे। किसान बड़ा सीधा-साधा था। उसने सोचा कि यह बगीचा तो मेरे श्रम की देन है किंतु जिस भूमि पर मेरा बगीचा है वह तो जमींदार की है। इस तरह इन फूलों पर उसका भी हक बनता है। एक दिन वह रसीले फलों की टोकरी भरकर जमींदार को दे आया। जमींदार ने जब किसान के बगीचे के फल चखे तो वह दंग रह गया। इतने मीठे व स्वादिष्ट फलों का सेवन उसने आज तक नहीं किया था। उसने सोचा कि ऐसे मीठे फलों के पेड़ किसान के यहां नहीं, मेरे यहां होने चाहिए। उसी क्षण उसने अपने सेवकों को आदेश दिया कि किसान के यहां से पेड़ों की जड़ें उखाड़ लाएं। सभी ने जमींदार को समझाने का प्रयास किया किंतु उस पर लोभ का नशा चढ़ चुका था। उसने किसी की एक न सुनी। उसके सेवक भी कड़े मन से बेचारे किसान के यहां से जड़ें उखाड़ लाए और जमींदार के बगीचे में रोप दीं। जमींदार ने माली को सख्त आदेश दिया कि उनका रखरखाव ध्यान से करे। अगली बार वह खुद इन फलों को तोड़कर इनका रसास्वादन करेगा। एक दिन उन्होंने देखा कि किसान के यहां से उखड़वाई जड़ें लाख प्रयत्नों के बावजूद मुरझाती जा रही थीं। उन्होंने माली से इसका कारण पूछा तो वह डरते-डरते बोला, मालिक क्षमा कीजिएगा, किंतु यह लोभ का फल है। आपने लोभवश किसान के मीठे फलों की जड़ों को यहां लगवा तो लिया किंतु जो जड़ें प्रेम, सद्भावना व नि:स्वार्थ भावना से वहां पनप रही थीं वे अब स्वार्थ के वशीभूत सड़ चुकी हैं। माली की बात सुनकर जमींदार को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने किसान को बुलाकर क्षमा मांगी। कुछ ही समय बाद किसान ने अपनी मेहनत से दोबारा मीठे फल उगाकर जमींदार को भेंट किए।

२०४६) एक बहुत बड़ा नगर था। नगर के राजा की अकस्मात मृत्यु हो जाने से राजधानी में सन्नाटा छा गया। राजा संतानहीन था। राज्याभिषेक किसका किया जाए? राज्य के अधिकारियों ने चिंतन किया मंत्री ने अपने बुद्धि बल से कहा- मेरे पास एक प्रशिक्षित बाज है। आप सबको उचित लगे तो उसे उड़ा दें। वह जिसके सिर पर बैठेगा, उसे ही राजा बना देंगे। सभी सभासदों ने एक स्वर में कहा- मंत्रीवर, आपका कथन ठीक है, आप जैसा उचित समझें वैसा करें। सबकी सहमति पाकर बाज उड़ाया गया। वह बाज उड़ता-उड़ता शहर के बाहर नदी के किनारे बैठे एक लकड़हारे के सिर पर जा बैठा। सबके हृदय में प्रसन्नता का पार न रहा। नए राजा की जय-जयकार से गगन गूंजने लगा। मंत्री ने कहा- यह लकड़हारा ही हमारे नगर का राजा होगा। इसे महल में ले जाकर स्नान कराएं। सुंदर राजसी कपड़े पहनाएं। मंत्री के निर्देशानुसार उसका राज्याभिषेक कर दिया गया।

थोड़ी देर बाद राजा जब सिंहासन से उठने लगा, उसने वयोवृद्ध मंत्री के कंधे का सहारा लिया। यह अनोखा दृश्य देखकर दरबारी हंसने लगे। स्वयं मंत्री भी जोर से हंसा। इस बात पर राजा ने मंत्री से पूछा- मंत्रीवर, मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आप सबको हंसी क्यों आई? मंत्री ने कहा- मुझे हंसी इसलिए आई कि कल तक तो आप भारी-भरकम लकड़ी के लट्ठों को उठाकर लाते थे और आज उठने में भी मेरे जैसे बूढ़े के कंधों का सहारा ले रहे हैं। नए राजा ने कहा- मैं कंधों का सहारा इसलिए ले रहा था कि मैं तो अनपढ़ हूं। इन कंधों के सहारे राज्य के शासन को चलाऊंगा। इसलिए मैंने आपके कंधों का सहारा लिया। राजा की इस समझ पर मंत्री के हृदय में विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। मंत्री ने सोचा यह राजगद्दी का प्रभाव है कि गद्दी पर बैठते ही दूसरों से काम लेने की अक्ल आ ही जाती है।

२०४७) सनातन सत्य - एक राजा था। उसे अपने सौंदर्य पर, अपने ऐश्वर्य पर और अपने राजपाट पर बड़ा गर्व था। वह हर घड़ी अभिमान के नशे में चूर रहता था। दूर-दूर तक लोग जानते थे कि उसके बराबर घमंडी राजा और कोई नहीं है। वह सबको अपने से छोटा और हेय मानता था। एक दिन एक साधु राजा के दरबार में आया। बड़े दर्प से राजा ने पूछा, तुम्हें क्या चाहिए। साधु को पता था कि वह राजा बड़ा अभिमानी है। उसने मुस्कराते हुए कहा, तेरे पास है क्या, जो मुझे देगा। साधु के ये शब्द सुनते ही राजा आग बबूला हो गया। इस साधु की इतनी मजाल कि उसके वैभव को, उसी के मुंह पर, इस प्रकार चुनौती दे। भरे दरबार में उसका अपमान करे। पर साधु के चेहरे पर इतना तेज था कि राजा अपने क्रोध को प्रकट नहीं कर सका। साधु ने राजा की भाव-भंगिमा को देखा, पर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अत्यन्त धीरे-गंभीर वाणी में बोला, मैंने जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। जरा ठण्डे दिमाग से सोच। देख, तुझे जो सौंदर्य मिला है, वह तेरा नहीं है, तेरे माता-पिता का दिया हुआ है। क्यों, है न? राजा एक साथ इसका उत्तर नहीं दे सका। साधु ने आगे कहा, तेरे भण्डार धान्य से परिपूर्ण हैं। वे तेरे कहाँ हैं? वे तो तुझे धरती माता ने दिये हैं। क्यों है न? राजा चुप। साधु ने फिर कहा, जिसे तू अपना राजपाट कहता है, वह भी तेरा कहां है? वह तो तुझे प्रजा ने दिया है। तेरे शरीर में जो प्राण हैं, उनका भी नियंता और कोई है, तू नहीं। ओ पगले, याद रख। अपना वह होता है, जो अपने साथ जाता है। इस दुनिया में न कोई साथ आया है, न कोई साथ जायगा। इतना कहकर साधु वहां से चला गया और राजा की जीवन-धारा बदल गयी।

२०४८) एक जंगल में एक पेड़ की डाल पर दो तोते रहते थे। दोनों सगे भाई थे। दोनों में बड़ा प्रेम और सौहार्द था। एक साथ दोनों पले और बड़े हुए थे। दोनों का स्वभाव बहुत ही शालीन था। दोनों मुक्त गगन में विचरण करते हुए आनंद के सागर में डुबकियां लगा रहे थे। अचानक वहां एक दिन डाकू आ गए। एक तोते को पिंजरे में बंद कर ले उड़े। दूसरे दिन एक ऋषि आए और दूसरे तोते को अपने आश्रम में ले गए। एक तोता तो डाकुओं की कुसंगति में था। वह डाकुओं-सा व्यवहार करने लगा। कोई भी व्यक्ति उस रास्ते से जाता, वह तोता बोलता- इसे पकड़ो, इसे लूटो और इसे मारो।

एक दिन उसी मार्ग से नगर के सम्राट का आगमन हुआ। वह तोता जोर से बोल पड़ा- चोर जा रहा है, पकड़ो। लूटो, ऐसा अवसर बार-बार नहीं आएगा। वहीं दूसरा तोता ऋषियों की देख-रेख में पल रहा था। अत: ऋषियों की भांति ही शालीन एवं शिष्ट शब्दों का व्यवहार करने लगा। कोई भी मुसाफिर तथा मेहमान उस मार्ग से जाता, तो वह उनका सम्मान एवं सत्कार करता। उच्च स्वर में पुकारता और मीठी भाषा में बोलता- आओ सा, पधारो सा, भाग्यशाली पुरुषों के घर पर ही मेहमान पधारते हैं। आइए, विराजिए।

एक दिन उसी मार्ग से उन्हीं राजाजी का आगमन हो गया। राजा ने तोते की मीठी वाणी सुनकर बहुत ही आश्चर्य प्रकट

किया। यह क्या बात। उस तोते की भाषा में कर्कशता और इस तोते की भाषा में इतनी कोमलता। यह अंतर क्यों पड़ा? आखिर राजा ने पूछ ही लिया। तोता अपनी भाषा में बोला-

माताप्येको पिताप्येको, मम तस्य च पक्षिण: । अहं मुनिभिरानीतो, सोत्रानीतो गवाशनै: ।।

हम दोनों के माता-पिता एक हैं। मुझे मुनिवर ले गए और मेरे सहोदर को डाकू ले गए। उसने चोरों के शब्द सुने और मैंने मुनिजनों के। आपने देख ही लिया।

२०४९) मेहनत का फल - किसी शहर में एक नौजवान रहता था, जो मेहनत करने से बहुत घबराता था। वह रोज भीख मांगने के नए-नए तरीके खोज निकालता। एक दिन एक महात्मा उसके शहर आए। वह जहां-जहां पांव रखते, वहां-वहां सोने के सिक्के जमीन से निकलते जाते। उनके इन चमत्कारी गुणों के कारण उनकी चर्चा चारों ओर होने लगी। उस नौजवान तक भी उनकी चर्चा पहुंची। उसने सोचा यदि महात्मा जी मुझे अपना शिष्य बना लें तो मजा आ जाएगा। वह नौजवान महात्मा जी के पीछे-पीछे चलने लगा। उसे रोज सोने के सिक्के मिलने लगे, लेकिन इसमें काफी मेहनत करनी पड़ती थी। महात्मा जी हमेशा दुर्गत और उबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते थे। नौजवान को चलने पर बहुत तकलीफ होती थी, लेकिन वह लालचवश उनका साथ नहीं छोड़ पा रहा था। एक दिन वह बोला, बाबा, आप थोड़े से सोने के सिक्कों के लिए मुझसे इतनी मेहनत क्यों करवाते हो? महात्मा बोले, बेटा, मैं तुमसे मेहनत नहीं करवाता, तुम स्वयं मेहनत करते हो। यही मेहनत तो प्राप्ति का मूल है। अब तुम समझ गए होगे कि बिना मेहनत के फल नहीं मिलता।

२०५०) कामयाबी का राज - प्रसिद्ध उद्योगपति सिएटल एक बार एक जनसभा को संबोधित करने के लिए आमंत्रित थे। उपस्थित जनसमुदाय उनसे उनकी संघर्षगाथा और सफलता की कहानियां सुनने के लिए उत्सुक था। वहां सभी वर्ग के लोग थे क्योंकि सिएटल के जीवन और व्यक्तित्व ने हर तबके का ध्यान खींचा था। भाषण देते हुए सिएटल ने अचानक ही जेब से पांच सौ रुपये का एक नोट निकाला और पूछा कि अगर मैं इसे गिरा दूं तो कितने लोग इसे उठाने के लिए आगे बढ़ेंगे? लगभग सारे श्रोताओं ने ही अपने हाथ खड़े कर दिए। अब उन्होंने नोट को दोनों हाथों से मोड़कर मेज पर खड़ा कर दिया और फिर अपना वही सवाल दोहराया। सभी ने फिर अपने हाथ खड़े किए। अब सिएटल ने नोट को मुट्ठी में भींचकर बुरी तरह मसल दिया और कहा- अब तो शायद इसे कोई भी लेना नहीं चाहेगा। मगर आश्चर्य, फिर सभी वे नोट लेने के लिए तैयार थे। इस पर सिएटल ने लोगों से कहा- जिस तरह यह नोट दबकर, कुचलकर भी अपनी कीमत नहीं खो पाया है, इसी प्रकार सफल होने के लिए आपको भी तैयार होना पड़ेगा। सफलता की राह में ऐसे भी मौके आएंगे जब आप पर लांछन लगे। आप दबाए जा सकते हैं और हतोत्साहित भी किए जा सकते हैं। मगर यदि आप भीतर से मजबूत और ईमानदार हैं तो इसी नोट की तरह हमेशा कीमती बने रहेंगे। जिसका चरित्र मजबूत है, वह जीवन में कुछ भी हासिल कर सकता है और यही मेरी कामयाबी का भी राज है। लोग इस बात से बेहद प्रभावित हुए।

२०५१) सफलता का रास्ता - यह उन दिनों की बात है जब अमेरिकी कारोबारी किंग सी जिलेट आर्थिक तंगी से गुजर रहे थै। अक्सर उनके पास खाने को पैसे तक नहीं रहते थे। वह जैसे-तैसे गुजारा कर रहे थे। शुरू में कुछ दोस्तों ने उनकी मदद की पर बाद में उन्होंने भी मुंह फेरना शुरू कर दिया। जिलेट अपने लिए कोई काम ढूंढ रहे थे। काम की तलाश में वह सुबह निकल जाते और थके-मांदे देर रात को वापस आते। आखिरकार एक दिन उन्हें एक कंपनी में क्लर्क का काम मिल गया। वे मन लगाकर अपना काम करने लगे। एक दिन उस्तरे से दाढ़ी बनाते समय उन्हें बहुत परेशानी का

सामना करना पड़ा। उस्तरे की धार निकल चुकी थी और वह बमुश्किल ही काम करता था। उस दिन जिलेट ने सोचा कि दाढ़ी बनाने की परेशानी दूर करने के लिए क्या कोई तकनीक नहीं ईजाद की जा सकती है? उसी समय उन्हें ब्लेड बनाने का ख्याल आया मगर उस समय पैसों की कमी के कारण वह उसके लिए जरूरी मशीन खरीदने में असमर्थ थे। लेकिन जिलेट पर ब्लेड बनाने की धुन सवार हो चुकी थी, इसलिए उन्होंने कर्ज लेकर मशीन खरीदी। फिर वे ब्लेड बनाने में जुट गए। उन्हें सफलता नहीं मिली और वे पूरी तरह कर्ज में डूब गए। लोग उन पर हंसते थे। मगर इतने मुश्किल समय में भी जिलेट ने हिम्मत नहीं हारी और अपने काम में पूरी तन्मयता से लगे रहे। उन्हें अपने ऊपर भरोसा था। आखिरकार उन्होंने ब्लेड बनाने में सफलता हासिल कर ही ली। कुछ ही समय में उनके द्वारा बनाए गए ब्लेडों को पूरे विश्व में धूम मच गई। उनके पास दौलत और शोहरत दोनों आ गई। आज भी उनके बनाए जिलेट ब्लेड की पूरी दुनिया में जबर्दस्त मांग है। उनकी ब्लेड के कारण उन्हें आज भी लोग याद करते हैं।

२०५२) अनुभव - एक गाँव में बहुत से गडरिए थे। सरकार ने बच्चों के लिए स्कूल खोला। स्कूल चल निकला। एक दिन स्कूल में गणित की कक्षा में अध्यापक ने छात्रों से प्रश्न किया। एक भेड़ों के एक बाड़े में २० भेड़ें हैं। रात को बाड़े से कूदकर १० भेड़ें बाहर चली गईं। बताओ बाड़े में कितनी भेड़ें शेष रहीं?

कोई भी छात्र इस साधारण से प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहा था। तभी सबसे पीछे बैठे एक छोटे से बच्चे ने अपना हाथ उठाया। बोला मास्टर जी मैं बताऊँ? मास्टर बच्चे को देखकर थोड़ा हैरान हुआ। बच्चा बहुत छोटा था। आज तक उसने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था। आज बच्चे ने हाथ उठाकर प्रश्न का उत्तर देने का साहस दिखाया था।

मास्टरजी बोले हाँ, हाँ, तुम्हीं बताओ बाड़े में कितनी भेड़े शेष बचीं? बच्चे ने सहजता और भोलेपन से उत्तर दिया- मास्टरजी बाड़े में एक भी भेड़ नहीं बचेगी। मास्टरजी बच्चों को गणित समझाने लगे बोले- इतना भी नहीं समझ सके अरे २० भेड़ों में से यदि १० भेड़ें भाग कर जाएँगी तो बाड़े में १० भेड़ें बचेंगी?

बच्चे ने उसी सहजता और भोलेपन से फिर उत्तर दिया- मास्टरजी गणित को तो आप जानो। मैं तो बचपन से भेड़ों के साथ रहा हूँ। मैं भेड़ों को अच्छी तरह से जानता हूँ। यदि बाड़े से १० भेड़ें कूद गई हैं तो बाकी भेड़ें भी उनके पीछे-पीछे इसी तरह से कूद जाएँगी। बाड़े में एक भी भेड़ नहीं बचेगी। यह मेरा अनुभव है।

मास्टरजी आप जो चाहे कहें। भेड़ें तो ऐसा ही करती हैं। मास्टरजी आश्चर्यचकित हो उस बच्चे की ओर देख रहे थे। उसकी सहजता और उसके अनुभव के आगे वे और कह भी क्या सकते थे।

२०५३) सर्वश्रेष्ठ धर्म- एक बार एक राजा ने घोषणा की कि जो भी श्रेष्ठ धर्म होगा, मैं उसे स्वीकार करूंगा। उसके पास एक से बढ़कर एक विद्वान आने लगे। वे सब अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता का बखान करते हुए दूसरे धर्मों के दोष गिनाते। फिर भी श्रेष्ठ धर्म का फैसला न हो सका। राजा अपनी दुविधा दूर करने के लिए एक संत के पास पहुंचा। राजा ने कहा- मैं श्रेष्ठ धर्म की खोज में हूं, लेकिन आज तक वैसा श्रेष्ठ धर्म मुझे मिला नहीं। संत ने कहा- श्रेष्ठ धर्म। क्या संसार में बहुत से धर्म होते हैं कि श्रेष्ठ और कम श्रेष्ठ की बात उठे। धर्म तो एक ही है।

धर्म वही होता है, जो मनुष्य को उदार और निष्पक्ष बनाए। राजा संत की बातों से प्रभावित होकर बोला- तो मैं क्या करूं। आप ही बताएं। संत ने राजा से कहा- आओ नदी के किनारे चलते हैं। वहीं बताऊंगा। नदी तट पर पहुंचकर संत ने कहा- जो सर्वश्रेष्ठ नाव हो हम उसी पर बैठकर उस पार चलेंगे। तुरंत सुंदर नावें मंगाई गईं, मगर संत हर नाव में कोई न

कोई नुक्स निकालकर उसमें बैठने से इनकार कर देते। इस तरह सुबह हो गई। राजा परेशान हो गया। उसने कहा- आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? अरे पार ही तो जाना है। कोई भी नाव हमें पार करा देगी। इस पर संत ने मुस्कराते हुए कहा- यही तो मैं तुमको समझाना चाहता हूं। धर्म की कोई नाव नहीं होती। उसमें तो स्वयं तैर कर ही पार करना होता है। कोई किसी दूसरे को पार नहीं करा सकता, इसलिए श्रेष्ठ धर्म की तलाश का चक्कर छोड़ो।

२०५४) संगीत और संगीतकार - उस्ताद अलाउद्दीन खां के पास दूर-दूर से लोग संगीत सीखने और विचार-विमर्श के लिए आते थे। उनमें अमीर भी होते और गरीब भी। वह सभी को समान भाव से शिक्षा देते थे। एक बार वह अपने बगीचे में अत्यंत साधारण कपड़े पहने हुए काम कर रहे थे। हाथ-पांव मिट्टी से सने थे। उसी समय एक व्यक्ति बढ़िया सूट-बूट पहने आया और खां साबह से बोला, ऐ माली, उस्ताद कहां हैं। मुझे उनसे मिलना है। खां साहब ने पूछा, क्या काम है? उस व्यक्ति ने कहा, मुझे उनसे संगीत सीखना है। खां साहब ने कहा, वह अभी आराम कर रहे हैं। उस व्यक्ति ने कहा, जाकर उस्ताद से कहो कि कोई बड़ा आदमी आया है। जल्दी जा। खां साहब बोले, आप इतना गुस्सा क्यों होते हैं हुजूर। अभी जाता हूं। वह चले गए। वह पिछले दरवाजे से घर में गए थे और थोड़ी देर में अगले दरवाजे से बाहर निकल रहे थे कि तभी एक कार आकर रुकी। उसमें रामपुर के राजा और कुछ लोग थे। वे लोग दरवाजे पर पहुंचे ही थे कि खां साहब बाहर आ गए। राजा ने खां साहब के पैर छुए। यह देखकर उस व्यक्ति को समझ में आ गया कि यही उस्ताद अलाउद्दीन खां हैं। वह परेशान हो गया। उसने खां साहब से कहा, हुजूर, मुझे आप को पहचानने में भूल हुई। मुझे माफ कर दें। खां साहब ने कहा, तुमसे कोई भूल नहीं हुई है। जिनके पास दो पैसे आ जाते हैं वे गरीबों को इसी निगाह से देखते हैं। जहां तक रही संगीत सीखने की बात तो मैं तुम्हें संगीत सिखा नहीं सकता क्योंकि जिस आदमी के दिल में गरीबों के लिए कोई दर्द नहीं है, उसमें संगीत कभी जन्म नहीं ले सकता। उस व्यक्ति ने खां साहब को प्रलोभन भी दिया पर उन्होंने साफ इनकार करते हुए कहा, संगीत रुपये-पैसे से नहीं खरीदा जाता। घमंड छोड़कर कड़ी मेहनत से ही उसे हासिल किया जा सकता है।

२०५५) सबसे बड़ी बाधा- एक बार राजा चंद्रगुप्त ने विद्वानों की सभा बुलाई। दूर-दूर से विद्वान आए। कई दिनों तक शास्त्रार्थ चला। इसमें भारवि को विजेता घोषित किया गया। राजा चंद्रगुप्त ने उनका यथोचित सम्मान किया और परंपरा के अनुसार उन्हें हाथी पर बिठाकर चंवर डोलाते हुए घर छोड़ने गए। उन्हें देखकर उनके माता-पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन भारवि ने अपनी मां का तो अभिवादन किया पर पिता के प्रति ठंडा रवैया अपनाया। पिता ने सभा के बारे में कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अनमने तरीके से बात की। उनके इस व्यवहार से उनके माता-पिता को दुख पहुंचा। भारवि को अपनी विद्वता का घमंड हो गया था। राजा ने उन्हें जो सम्मान दिया, उससे वह अपने आप को विशिष्ट समझने लगे थे। उन्हें लगने लगा कि उनके सामने उनके पिता भी कुछ नहीं हैं। लेकिन उनका यह नशा कुछ दिनों बाद टूट गया। तब उन्होंने पिता से सामान्य दिनों की तरह संवाद करना चाहा पर उनके व्यवहार से आहत पिता ने उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। भारवि ने अपने को उपेक्षित महसूस किया। फिर उन्होंने अपनी मां से कारण जानना चाहा तो मां ने उत्तर दिया, पुत्र तुमने अपने व्यवहार से अपने पिता को दुख पहुंचाया है तुम यह कैसे भूल गए कि आज तुम जहां तक पहुंचे हो, वहां पहुंचने में उनकी कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। जब तुम शास्त्रार्थ के लिए गए थे तो उन दिनों तुम्हारी विजय के लिए तुम्हारे पिताजी ने विशेष साधना की। उन दिनों वह केवल जल पीकर रहे। आज जिस ज्ञान के बल पर तुम सर्वश्रेष्ठ घोषित हुए हो, वह उन्हीं का दिया हुआ हैं। क्या तुम उनका ऋण कभी चुका सकते हो? भारवि अत्यंत लज्जित हुए। वह दौड़कर अपने पिता के पास गए

और चरणों में गिर पड़े। पिताजी ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और कहा, पुत्र भारवि, ज्ञान की प्राप्ति में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। अच्छा है तुमने समय रहते इस बाधा को पहचान लिया और इसे दूर भी कर लिया।

२०५६) कोहिनूर की कहानी - जिस आदमी ने कोहिनूर खोजा था, तब वह अनगढ़ हीरा था। उसे पता भी नहीं था कि यह कोहिनूर है। बहुत दिन तक उसके बच्चे उससे खेलते रहे। उसका खेत था नदी के किनारे। नदी उसके खेत से होकर बहती थी। रेत में पड़ा मिल गया था। चमकदार, सुंदर व रंगीन पत्थर लगा; वह उठा लाया था बच्चों के खेलने के लिए। कहानी बड़ी अद्भुत है। यह पहला हीरा था, जो गोलकुंडा में मिला। एक रात एक संन्यासी इस आदमी के घर में मेहमान बनकर आया और उस संन्यासी ने कहा कि, तू कब तक इस ऊबड़-खाबड़ जमीन में मेहनत करता रहेगा? मैं ऐसी जमीन जानता हूं, जो सोना उगलती है, हीरे उगलती है। वह तो प्रतीक की भाषा बोल रहा था। लेकिन उस रात किसान सो न सका, तो उस जमीन को उसने बेच दिया और गया खोज में ऐसी जमीन की जो हीरे उगलती है। बहुत भटका, थका-हारा बरबाद होकर घर वापस लौटा, लेकिन इन हीरों की तलाश में कई जौहरियों से मिलना हो गया था रास्ते में तो धीरे-धीरे थोड़ी हीरे की परख भी आ गयी। घर लौटकर आया देखा बच्चे हीरे से खेल रहे थे, वह तो नाचने लगा। वह तो पागल हो गया उसने कहा, हद हो गयी। यह पत्थर तो मैं ही लाया था, जो सबसे बड़ा हीरा है। जिस खेत को उसने बेचा था वहीं गोलकुंडा की पहली खदान बनी।

२०५७) धर्म की परिभाषा - एक राजा ने विद्वानों की सभा बुलाई। विद्वानों के बीच विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर हो रहे थे। राजा ने पूछा- मेरी एक जिज्ञासा है- आप लोगों में से सबसे बड़ा धार्मिक कौन है? एक विद्वान ने जवाब दिया- मेरे जीवन की विशेषता रही है कि मैंने कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ा। सभी के कान उसकी बात सुनने को लालायित थे। एक जिज्ञासु ने पूछा- उदाहरण देकर अपनी बात साबित करें। वह बोला- मैंने जरूरत पड़ने पर भले ही शराब पी, जुआ खेला, पर धर्म को नहीं छोड़ा। दूसरे विद्वान ने भी अपनी धार्मिकता के बारे में बखान किया- भूख की समस्या बड़ी जटिल होती है। भूखे आदमी को सब कुछ करना पड़ता है। मैंने जीवन-निर्वाह के लिए चोरी भले ही की पर अपने धर्म को नहीं छोड़ा। तीसरे विद्वान ने अपना तर्क रखते हुए कहा- मन की दुर्बलता हर आदमी में होती है। जवानी दीवानी है। इन्द्रियों के वश में होकर मैंने दुराचरण भले ही किया पर मैंने कभी धर्म नहीं छोड़ा। चौथा धार्मिक बोला- प्रतिकूल परिस्थिति में मैं क्रोध कर लेता हूं। कभी-कभी तो पारा इतना चढ़ जाता है कि मैं किसी पर हाथ भी उठा देता हूं। पर मैंने कभी अपना धर्म नहीं छोड़ा। एक सभासद से यह सब कुछ सहा नहीं गया तो उसने पूछ लिया- महाशय। आप सब के विचार सुने। आपके तर्क बड़े विचित्र लगे। कृपा कर बताएं तो सही, आखिर आपका धर्म क्या है?

एक विद्वान ने खड़े होकर कहा- मैंने कभी अछूत के हाथ का नहीं खाया। भले ही विपत्तियों का सामना करना पड़ा हो फिर भी मैं अपने धर्म पर अटल रहा। राजा ने सारे तर्क और सभासदों की जिज्ञासाएं सुनी और फैसला दिया कि ये सब लोग पाखण्डी हैं। धर्म के नाम पर ये अधर्म फैला रहे हैं। सच्चा धार्मिक तो ईमानदारी, सेवाभाव और समभाव में विश्वास करता है।

२०५८) आस्था का प्रश्न - एक राजा हर समय ईश्वर की भक्ति में डूबा रहता था। उसकी इकलौती लड़की भी उसी की तरह धर्मानुरागी थी। राजा की इच्छा थी कि वह अपनी पुत्री का विवाह ऐसे युवक के साथ करे, जो उसी की तरह धार्मिक प्रवृत्ति का हो।

एक दिन राजा को एक ध्यानमग्न युवक मिला। राजा ने उससे पूछा, तुम्हारा घर कहां है? युवक ने उत्तर दिया, ईश्वर जहां रखता है, वहीं मेरा घर है। राजा ने प्रश्न किया, तुम्हारे पास कुछ सामान है? युवक ने कहा, प्रभु की कृपा के अलावा

मेरे पास कुछ नहीं है। उससे प्रभावित होकर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। विवाह के बाद राजा की बेटी पति के साथ जंगल में गई और एक पेड़ के नीचे डेरा डाला। उसने देखा कि पेड़ के कोटर में रोटी का टुकड़ा रखा है। उसने पति से पूछा, यह क्या है? पति ने जवाब दिया, आज रात इससे काम चलेगा, इसलिए इसे कल बचाकर छोड़ा था।

यह सुनकर राजकन्या रोने लगी और अपने पिता के घर लौटने की तैयारी करने लग गई। पति ने कहा, मैं जानता था कि यही होगा। तुम्हारा लालन-पालन महल में हुआ है, तुम मुझ जैसे गरीब के साथ निभा नहीं सकोगी। राजा की बेटी ने उत्तर दिया, मैं गरीबी से नहीं डरती। मुझे दुख इस बात का है कि ईश्वर के प्रति आपका पूर्ण विश्वास नहीं है। इसी से आपने सोचा कि कल क्या खाएंगे और रोटी का टुकड़ा बचाकर रख लिया। ईश्वर को देना होगा तो वह स्वयं देगा, हम इसकी चिंता क्यों करें। मैंने सोचा था कि मुझे ऐसा पति मिले जिसकी प्रभु भक्ति में कोई कमी न हो। इसी से मैंने आपका वरण किया पर मैं संभवत: गलत हूं। युवक बहुत पछताने लगा।

राजकन्या ने कहा, आप कान खोलकर सुन लीजिए कि आपके साथ रोटी का यह टुकड़ा रहेगा या मैं। यह सुनकर युवक की आंखें खुल गईं। उसने रोटी का टुकड़ा फेंक दिया।

२०५९) फरिश्ते - एक व्यापारी था। वह व्यापार करने के लिए किसी दूर देश में जा रहा था। रास्ते में रात हो गई तो वह एक गांव में एक गरीब आदमी की झोंपड़ी में ठहर गया। रात बिताकर बड़े तड़के आगे बढ़ गया। उसके चले जाने के बाद गरीब की स्त्री ने देखा कि एक तरफ को कुछ पड़ा है तो उसने उसे उठा लिया। एक चीख उसके मुंह से निकल गई। उसका आदमी बाहर कुछ काम कर रहा था। दौड़कर अंदर आया। स्त्री ने कहा, देखो तो, यह क्या गजब हो गया है। वह अशर्फियों की थैली थी। स्त्री-पुरुष दोनों परेशानी में पड़ गये। व्यापारी तो बहुत पहले जा चुका था। उन्होंने तो यह भी नहीं पूछा था कि वह कहां से आया है और कहां जायगा? अब क्या होगा? स्त्री ने कहा। आदमी बोला, अब हम कर भी क्या सकते हैं। थैली उन्होंने रख ली और उस आदमी के आने की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें विश्वास था कि इतनी बड़ी रकम जो जाने पर वह ढूंढता हुआ अवश्य आवेगा। पर दिन-पर-दिन बीतते गये और वह आदमी नहीं आया। जब थैली के गुम होने का उसे पता चला तो उसने समझ लिया कि कहीं रास्ते में गिर गई और कोई लेकर चम्पत हो गया। व्यापारियों के जीवन में ऐसी घटनाएं होना तो मामूली बात है। काफी दिनों के बाद एक दिन वे लोग देखते क्या हैं कि वहीं व्यापारी लौटकर आया है। वह आगे बढ़ रहा था कि उन्होंने उसे रोका और झोंपड़ी में अंतर ले जाकर वह थैली उसके सामने रख दी। व्यापारी को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, आप आदमी नहीं, फरिश्ता हैं। आप लोगों ने जो किया है, वह फरिश्ते ही कर सकते थे। पैसे का लालच बहुत बड़ा और बुरा होता है, वह आदमी को शैतान बना देता है। इतना कहकर उसने कुछ अशर्फियां उन्हें देनी चाहीं, लेकिन उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। कहा, आपकी थैली आपके पास पहुंच गई, इससे बड़ा इनाम हमारे लिए और क्या हो सकता है।

२०६०) मंत्री की परीक्षा - रामगढ़ के राजा ने रुपल नामक व्यक्ति की बुद्धिमानी की काफी चर्चा सुन रखी थी। उसने एक दिन आनन-फानन में अपने यहां मंत्री के रिक्त पद पर उसकी नियुक्ति कर दी। रुपल पूरी निष्ठा से अपने कार्य में जुट गया। लेकिन एक दिन राजा को अचानक लगा कि कहीं उनसे इस संबंध में कोई भूल तो नहीं हो गई है। आखिर उन्होंने केवल सुनी-सुनाई बात पर रुपल को मंत्री बना दिया। इसके बाद राजा ने सोचा कि क्यों न रुपल की बुद्धिमत्ता की परीक्षा ली जाए। उन्होंने अगले ही दिन रुपल से नगर के बाहर साथ-साथ भ्रमण करने की बात कही। फिर दोनों रथ पर सवार

बाहर घूमने निकल पड़े। नगर से ठीक बाहर राजा को एक बगीचा दिखाई दिया। उन्होंने रथ रुकवाया और दोनों बगीचे में टहलने लगे। तभी राजा ने एक व्यक्ति की ओर संकेत कर पूछा, रुपल, क्या तुम बता सकते हो कि इस व्यक्ति का नाम और व्यवसाय क्या है? रुपल ने कुछ सोचा और फिर बताया, महाराज, इस व्यक्ति का नाम भी रुपल है और यह बढ़ई का काम करता है। राजा ने पता लगाया तो बात बिलकुल सच निकली। आश्चर्यचकित राजा ने इतनी जल्दी सही उत्तर बताने का कारण पूछा तो उसने कहा, महाराज, जब आपने मुझे नाम लेकर पुकारा तो वह चौंक पड़ा। इससे मैं समझ गया कि उसका भी वही नाम है जो मेरा। इसी तरह मैंने देखा कि बगीचे के सुंदर फूलों पर उसकी दृष्टि न होकर पेड़ के तने पर है। दरअसल हर व्यक्ति का ध्यान अपने व्यवसाय से जुड़ी चीजों पर होता है इसलिए मैं समझ गया कि वह बढ़ई है।

२०६१) आराधना का अर्थ - ईश्वर के प्रति गहरी श्रद्धा रखनेवाला एक व्यक्ति गंगा तट पर नियम से पूजा करता था। चाहे कितनी भी विघ्न-बाधाएं आएं, वह अपना नियम कभी नहीं भूलता था। लेकिन फिर भी उसके मन में बेचैनी सी रहती थी। एक दिन तेज आंधी-तूफान आया हुआ था, लेकिन उसका नियम नहीं टूटा और वह आंधी-तूफान में भी ईश्वर की आराधना करता रहा। परंतु उस दिन भी उसके मन को शांति नहीं मिली। इसी तरह कुछ दिन बीत गए। एक दिन वह अपने समयानुसार पूजा करने जा रहा था तो देखा कि एक छोटा सा बच्चा खेल-खेल में नदी के अंदर जा रहा है। अचानक एक तेज लहर आई और उसे बहाकर ले गई। वह चिल्ला-चिल्ला कर हाथ-पैर मारने लगा। यह देखते ही वह भक्त भी तुरंत पानी में कूद गया। काफी मशक्कत के बाद आखिरकार वह बच्चे को सकुशल बाहर निकाल लाया। उसने देखा कि उसकी पूजा का समय बीत चुका था। पर उसे इस बात की हैरानी हो रही थी कि पूजा का समय निकलने पर भी आज उसका मन विचलित नहीं है। बल्कि आज उसके भीतर संतोष का भाव था। कुछ देर उसने इस पर विचार किया फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संकटग्रस्त व्यक्ति की मदद करना ही भक्ति है। आज तक वह इसलिए परेशान रहता था कि वह समाज से कटा हुआ था। वह अपने सुख के बारे में सोचता था पर दूसरों की सहायता का ख्याल उसे न आता था। अगर नियमित पूजा न कर सच्चे मन से मनुष्य की मदद की जाए तो वह गंगा नहाने से भी बढ़कर है।

२०६२) दस जुलाहे जा रहे थे। रास्ते में उनको एक नदी पड़ी जिसमें जल बहुत ही थोड़ा था, इसलिये बिना नाव के सब पार हो गए। पार जाकर बोले कि अपने दसों की जाँच तो करलें कि कोई बह तो नहीं गया। तिनमें से एक गिनने लगा। वह अपने से भिन्न नौ को तो गिनता था परन्तु अपने को नहीं। ऐसे ही सब करते भए। तब निश्चय हुआ कि एक आदमी बह गया है। उसी चिन्ता में सभी रोने लगे। उनको रोता हुआ देखकर उधर आते हुए एक विवेकी पुरुष ने उन सबसे रोने का कारण पूछा। जब उन लोगों ने अपना दुखड़ा बताया कि उनका एक साथी नदी में बह गया है, जिसके कारण वे दु:खी हो रहे हैं। उस विवेकी पुरुष ने उन सबको गिना तो संख्या दस की पूर्ण थी। केवल गिनते समय गिनने वाला जुलाहा औरों को तो गिन लेता था किन्तु अपने आपको नहीं गिनता था, जिसके कारण एक संख्या न्यून हो जाती थी। उस विवेकी पुरुष ने गिननेवाले को समझाया कि तुम्हारे नौ साथी तो सामने हैं और इनको गिननेवाला दसवाँ वस्तुत: तुम ही हो। अपने दसों साथियों को पाकर जुलाहे प्रसन्न हो गये। समझना यह है कि यहाँ दसवें पुरुष के बह जाने का दु:ख केवल गिनने वाले के अज्ञान के कारण है। विवेकी पुरुष ने आकर उन्हें कुछ दिया नहीं केवल उसके इस भ्रान्तिजन्य अज्ञान को दूर कर दिया, जिससे उनका कष्ट दूर हो गया। तैसे ही अपने स्वरूप के अज्ञान से आपको अपने से भिन्न मानकर यह जीव दु:ख पाता है।

२०६३) उपासना का सही अर्थ - दो आदमियों के सामने दो पत्थर रखे थे। एक आदमी ने पत्थर के सामने हाथ जोड़कर ध्यान के लिए आँखे बन्द कर ली। परन्तु दूसरे आदमी मन में कुछ सोचकर छैनी-हथौड़ी लेकर पत्थर की प्रतिमा

बनाने में जुट गया। शीघ्र ही मूर्ति बनकर तैयार हो गयी। उसी सुन्दरता को तथा कलाकार की कला को सबने खूब सराहा। एक श्रद्धालु व्यक्ति ने मूर्ति खरीद कर विशाल मन्दिर बनाया तथा उसमें प्रतिष्ठित कर दिया। पहला आदमी और वह पत्थर उसी प्रकार बने रहे। एक दिन दोनों व्यक्ति मिले अपने आप आराध्य देव की बातें करने लगे। एक ने दु:ख प्रकट किया, दूसरे ने प्रसन्नता का समाचार सुनाया। उसी रात पत्थरों की आत्मायें भी आपस में मिली एक ने भक्त की मूर्खता पर दु:ख प्रकट किया, एक ने उसकी क्रियाशील श्रद्धा की प्रशंसा की।

२०६४) भिक्षु और नर्तकी - किसी नगर में एक भिक्षु आया। वह भजन गाता हुआ अपनी धुन में चला जा रहा था। तभी नगर की सबसे सुंदर नर्तकी ने उसे देखा। वह उस पर मोहित हो गई। वह दौड़कर उसके पास पहुंची। उसने उसे अपने घर आने का निमंत्रण दिया। भिक्षु ने कहा, जरूर आऊंगा, पर अभी नहीं। अभी तुम समर्थ हों, तुम्हारे पास सब कुछ है। तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है। लेकिन इतना भरोसा रखना कि जिस दिन तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी, उस दिन मैं तुम्हारे पास जरूर आऊंगा। यह सुनकर नर्तकी नाराज हो गई। पहली बार किसी ने उसकी बात को नकारा था। उसने कहा, यह कहकर तुमने मेरा अपमान किया है। मेरे हजारों चाहने वाले हैं। मुझे तुम्हारी जरूरत कभी नहीं पड़ेगी। भिक्षु मुस्कराकर वहां से चला गया। बीस साल गुजर गए। नर्तकी का धन और यौवन दोनों खत्म हो गया। उसे कोढ़ हो गया। उसका शरीर गलने लगा। लोगों ने उसे शहर से बाहर निकाल दिया। एक दिन वह भूखी-प्यासी एक पेड़ के पास बैठी अपनी किस्मत को कोस रही थी कि अचानक किसी ने उसके सामने ठंडे जल से भरा बर्तन रख दिया। पानी पीकर उसके जाते प्राण लौट आए। नर्तकी ने पूछा, तुम कौन हो? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, मैं वही भिक्षु हूं, जिसे तुमने बीस साल पहले अपने घर आने का निमंत्रण दिया था। उस समय तुम्हें मेरी जरूरत नहीं थी। लेकिन आज जब कोई तुम्हें पहचानने को तैयार नहीं है, मैं तुम्हें पहचानता हूं। नर्तकी को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने भिक्षु से हाथ जोड़कर क्षमा मांगी।

२०६५) मिट्टी और सोना - काशी के निकट एक गांव में एक किसान अपनी पत्नी के साथ रहता था। दोनों त्यागी, परोपकारी और संयमी थे। मगर पत्नी अपने सत्कर्मों का बखान नहीं करती थी जबकि उसका पति अपने गुणों का खूब बखान करता था। थोड़ी खेती में दोनों परिश्रम करके सुख-शांति से अपना जीवन गुजार रहे थे। एक दिन वे खेत में काम करके लौट रहे थे। पति आगे था और पत्नी थोड़ा पीछे। पति को रास्ते में एक थैली में कुछ स्वर्ण मुद्राएं मिलीं। पति ने सोचा कि अगर इसे पत्नी ने देख लिया तो उसे लालच आ जाएगा और वह उसे लेने की जिद करेगी। इसलिए उसने थैली को जल्दी से रेत में छुपा दिया। पत्नी यह देख रही थी। नजदीक आकर उसने कहा, वहां क्या कर रहे थे? पहले तो पति ने टालने की कोशिश की लेकिन उसके ज्यादा जोर देने पर उसने कहा, इस जगह पर एक थैली में कुछ स्वर्ण मुद्राएं मिली हैं। मैंने सोचा कि अगर तुम देख लोगी तो तुम्हें लोभ आ जाएगा इसलिए उसे छुपा रहा था। पत्नी ने हंसकर कहा, तुम्हें अब भी सोना और मिट्टी में भेद दिखाई पड़ रहा है। तुम तो बार-बार मुझसे कहते थे कि सोना मिट्टी है। शायद वह बात सच नहीं थी। सच होती तो तुम मिट्टी को सोना मानकर मिट्टी में क्यों दबाते। अगर सोना मिट्टी नहीं है तो दबाने से क्या होगा। मैं तो बहुत पहले ही सोना और मिट्टी के अंतर को भूल चुकी हूँ। मगर तुमने मेरे डर से ऊपर से लोभ छोड़ा है, लेकिन मन में लोभ छुपा कर रखा हुआ है, तभी तो सोना देख कर तुम्हें लालच आ गया। अभी तो हम अपने खेत में परिश्रम करके हंसी खुशी एक साथ रहते हैं। जिस दिन हमारे अंदर लोभ आ जाएगा, हमारी यह खुशी भी हमसे छिन जाएगी। पति को अपनी भूल का अहसास हो गया।

२०६६) बैलों के चित्र की कीमत - प्रसिद्ध चित्रकार हैदर अली रजा का जन्म भारत के एक छोटे गांव में हुआ था। बाद में वह पैरिस में जाकर बस गए। जब भी वह भारत आते, अपने गांव अवश्य जाते थे। एक बार वह गांव आए तो पड़ोस

के किसान के बैलों की जोड़ी देख कर बहुत प्रसन्न हुए। बैल स्वस्थ और सुंदर थे। रजा ने किसान से पूछा, भाई तुम अपने बैलों की परवरिश किस तरह करते हो कि वे इतने आकर्षक है। किसान ने कहा, इनकी परवरिश मैं अपने बेटों की तरह करता हूं। बैलों की सुंदरता को देखकर रजा के मन का कलाकार जाग उठा। उन्होंने एक छात्र से चित्रकला की कूची, कागज और रंग मंगाए और उसी समय बैलों की जोड़ी का एक सुंदर चित्र बना दिया। कई साल बाद वह फिर गांव आए। किसान के बैल उसी तरह स्वस्थ और सुंदर थे। उन्होंने किसान को दस हजार रुपये देते हुए कहा कि यह तुम्हारे दोनों सुंदर बैलों के लिए उपहार है। किसान कुछ समझा नहीं। उसने पैसा लेने से मना कर दिया। रजा ने कहा, यह धन मैं अपनी जेब से नहीं दे रहा हूं। यह तो तुम्हारे बैलों की सुंदरता का इनाम है। तुम्हें मालूम है कि पिछली बार मैंने तुम्हारे बैलों की जोड़ी का चित्र बनाया था। वह चित्र पैरिस के लोगों को बहुत पसंद आया और एक कला प्रेमी ने उसे दस हजार रुपये में खरीद लिया था। इस पैसे पर हक तो इन बैलों का ही है। किसान ने कहा, आप तो अजीब मूर्खों के देश में रहते हो। इतने से आधे दाम में तो मैं बैलगाड़ी समेत उन बैलों को बेच सकता था। रजा ने कहा, तुम ठीक कहते हो। लेकिन जिस दिन सुंदरता का मूल्यांकन खरीद-फरोख्त तक सीमित रह जाएगा, उस दिन कला मर जाएगी, उसके साथ कला का भी अंत हो जाएगा। कला का उद्गम ही सुंदरता में है। चाहे वह बैलों की जोड़ी हो या फकीर की दाढ़ी या हल जोतते गरीब किसान। किसान रजा के मन का मर्म समझ गया। उसने रजा से एक और चित्र बनवा कर उसे अपने कमरे में टंगा दिया।

२०६७) प्रेम की फसल - बहुत पुरानी कथा है। किसी गांव में दो भाई रहते थे। बड़े की शादी हो गई थी। उसके दो बच्चे भी थे। लेकिन छोटा भाई अभी कुंवारा था। दोनों साझा खेती करते थे। एक बार उनके खेत में गेहूं की फसल पककर तैयार हो गई। दोनों ने मिलकर फसल काटी और गेहूं तैयार किया। इसके बाद दोनों ने आधा-आधा गेहूं बांट लिया। अब उन्हें ढोकर घर ले जाना बचा था। रात हो गई थी इसलिए यह काम अगले दिन ही हो पाता। रात में दोनों को फसल की रखवाली के लिए खलिहान पर ही रुकना था। दोनों को भूख भी लगी थी। दोनों ने बारी-बारी से खाने की सोची। पहले बड़ा भाई खाना खाने घर चला गया। छोटा भाई खलिहान पर ही रुक गया। वह सोचने लगा- भैया की शादी हो गई है, उनका परिवार है इसलिए उन्हें ज्यादा अनाज की जरूरत होगी। यह सोचकर उसने अपने ढेर से कई टोकरी गेहूं निकालकर बड़े भाईवाले ढेर में मिला दिया। बड़ा भाई थोड़ी देर में खाना खाकर लौटा। उसके बाद छोटा भाई खाना खाने घर चला गया। बड़ा भाई सोचने लगा- मेरा तो परिवार है, बच्चे हैं, वे मेरा ध्यान रख सकते हैं। लेकिन मेरा छोटा भाई तो एकदम अकेला है, इसे देखनेवाला कोई नहीं है। इसे मुझसे ज्यादा गेहूं की जरूरत है। उसने अपने ढेर से उठाकर कई टोकरी गेहूं छोटे भाई वाले गेहूं के ढेर में मिला दिया। इस तरह दोनों के गेहूं की कुल मात्रा में कोई कमी नहीं आई। दोनों के हिस्से में उतना ही अनाज रहा। दोनों के आपसी प्रेम और भाईचारे में थोड़ी और वृद्धि जरूर हो गई।

२०६८) पुण्य का असली फल - महाकुंभ से जुड़ी एक पुरानी कथा है। सभी मुख्य स्नान संपन्न हो गए तो एक संत ने सपना देखा कि प्रयागराज, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, गंगा एवं अन्य सभी तीर्थ इस पर विचार कर रहे हैं कि स्नान का सबसे अधिक पुण्य किसे मिला है। देवप्रयाग ने कहा, सबसे अधिक पुण्य रामू के हिस्से गया है। वह केरल के एक गांव में रहता है। गंगा ने कहा, मेरे किसी घाट पर तो वह आया नहीं। अन्य तीर्थों ने कहा, वह स्नान करने तो नहीं आया, लेकिन पुण्य उसे ही मिला है। वह जूते गांठता है बेचारा। कुंभ के लिए दो-दो पैसे बचाता था। इतने में संत की आंख खुल गई। वह खोजबीन के लिए चल पड़े केरल की ओर। अंतत: स्वप्न में दिखे स्थान पर पहुंचे तो बात सच निकली। एक जूते

गांठनेवाले को बुलाकर पूछा, तेरा नाम रामू है? उस व्यक्ति ने कहा, हां महाराज। कुंभ के बारे में पूछने पर वह बोला, मैं जूते बनाकर बेचता हूं। कुंभ जाना चाह रहा था। किंतु मेरी पत्नी मां बननेवाली है। उसको मेथी की सब्जी की सुगंध आई तो खाने की बड़ी इच्छा हुई। मैं पड़ोस में, जहां से सब्जी की सुगंध आ रही थी, पहुंचा। पड़ोसन ने कहा कि सब्जी तो ले जाओ, पर यह आपके खाने लायक नहीं है क्योंकि एक सप्ताह से पति गरीबी के कारण कुछ भी लाने में असमर्थ हैं। कहीं कुछ मिल जाए, इस चक्कर में वह इधर-उधर घूमते हुए श्मशान की तरफ गए। किसी ने अपने पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए मेथी की सब्जी और थोड़ा आटा रखा था। वह चुपचाप उठाकर ले आए। उनकी वह हालत देखकर मेरी अंतरात्मा पिघल गई। पड़ोस में लोग भूख से छटपटा रहे हैं, फिर मैं तीर्थ करने क्या जाऊं। मेरे पास जो रुपये थे, उससे कुछ जरूरी सामान लाकर मैं उस पड़ोसी के घर में चुपके से रख आया। रामू की यह बात सुनकर संत समझ गए कि उसे कुंभ का पुण्य क्यों मिला है।

२०६९) सादगी का पाठ - काशी के एक सेठ अकीर्ति बचपन से ही विरक्त स्वभाव के थे। उनकी ईश्वर में गहरी आस्था और भक्ति थी। वह बहुत ही विनम्र थे और सादगीपूर्ण जीवन जीते थे। उनका अधिकतर समय माता-पिता की सेवा में गुजरता था। गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी वह अकिंचन और अपरिग्रही थे। माता-पिता की मृत्यु के बाद उनकी संसार से पूरी तरह विरक्ति हो गई। अकीर्ति ने अपना समस्त धन गरीबों और वंचितों के बीच बांट दिया और एक महात्मा की तरह वन में कुटिया बनाकर रहने लगे। एक सच्चे महात्मा की भांति उनका जीवन था लेकिन उन्हें भक्तिमय जीवन जीने में अनेक तरह की बाधाएं भी आती रहीं, फिर भी वह अपनी साधना में लगे रहे। कुछ ही दिनों में उनके त्याग, तप और ज्ञान से प्रभावित होकर लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे। लोग उनकी प्रशंसा करते तो उन्हें लगता कि उनका पुण्य नष्ट हो रहा है। जिस मंजिल की ओर वह जाना चाहते है, वहां पहुंचने में ये सारी स्थितियां बाधा हैं। इन्हीं स्थितियों के कारण वह एक दिन कुटिया त्याग कर एकांत साधना करने लगे। पर कुछ दिनों बाद वहां भी आदर-सत्कार करने वाले पहुंचने लगे। फिर वह नागद्वीप जाकर रहने लगे। अकीर्ति की घोर तपस्या से शुक्र देवता का आसन हिल गया। शुक्र एक दिन अकीर्ति की परीक्षा लेने के लिए नागद्वीप पहुंचे। ब्राह्मण वेश में पहुंच कर उन्होंने अकीर्ति से भोजन की याचना की। अकीर्ति ने वृक्ष के नीचे जमीन पर गिरे पत्ते उबाले और एक कटोरा भर कर उनके सामने रख दिया। फिर वह विनम्रतापूर्वक बोले, आइए, हम दोनों क्षुधा मिटाने के लिए भोजन ग्रहण करें। अकीर्ति ने ईश्वर का स्मरण कर उबले पत्तों के रस को पूर्ण संतोष के साथ पी लिया। जबकि, शुक्र उस बेस्वाद रस को बड़ी मुश्किल से हलके से नीचे उतार पाए। शुक्र बेहद लज्जित हुए। उन्होंने मन-ही-मन अकीर्ति के सादगीपूर्ण जीवन को नमन किया और लौट गए।

२०७०) जीवन की कुंजी - एक राजा था। पुरुषार्थी था। अपने पुरुषार्थ से उसने राज्य को दूर-दूर तक फैला दिया। उसकी प्रजा बड़ी सुखी थी। धीरे-धीरे राजा पर बुढ़ापा छाने लगा। उसे चिन्ता होने लगी कि उसके राज्य को चलाने के लिए योग्य उत्तराधिकारी न हुआ तो उसके किये-कराये पर पानी फिर जायगा। उसके एक लड़का था। उसी को गद्दी पर बैठना था, लेकिन वह बड़ा प्रमादी था। हाथ-पैर हिलाना उसे पसंद न था। बहुत सोच-विचार के बाद राजा उसे लेकर एक साधु के पास गया और उन्हें सारी बात बताकर लड़के को आश्रम में छोड़ आया। साधु बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने राजकुमार से कहा, वत्स, यहां से चार कोस पर एक जंगल है। तुम सवेरे ही वहां जाओ और फूलों के पौधे लाकर आश्रम के अहाते में लगाओ। राजकुमार को बड़ा बुरा लगा। अरे, यह काम तो नौकरों के करने का है, उसका नहीं है। वह तो यहां राज्य-व्यवस्था के बारे में शिक्षा लेने आया है, लेकिन उसके पिता कह गये थे कि साधु जो कहें, वह करना। मन मारकर अगले दिन से वह उस काम में लग गया।

उसने जंगल से लाकर पौधे लगाये, साधु के आदेश पर उन्हें सींचा और जानवरों से बचाने के लिए उनकी रात-दिन रखवाली की। फिर क्या था। कुछ ही दिनों में सारा आश्रम तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों से लहलहा उठा। राजकुमार की खुशी का ठिकाना न रहा। साधु ने उसे शाबाशी दी। कहा, वत्स, लाखों की एक बात हमेशा याद रखना। चलते रहो, चलते रहो। देखो, तुम्हारी सक्रियता से आश्रम का रूप ही बदल गया है। राजकुमार को शासन की ही नहीं, जीवन की भी कुंजी मिल गई।

२०७१) फरिश्ते - एक व्यापारी था। वह व्यापार करने के लिए किसी दूर देश में जा रहा था। रास्ते में रात हो गई तो वह एक गांव में एक गरीब आदमी की झोपड़ी में ठहर गया। रात बिताकर बड़े तड़के आगे बढ़ गया। उसके चले जाने के बाद गरीब की स्त्री ने देखा कि एक तरफ को कुछ पड़ा है तो उसने उसे उठा लिया। एक चीख उसके मुंह से निकल गई। उसका आदमी बाहर कुछ काम कर रहा था। दौड़कर अंदर आया। स्त्री ने कहा, देखो तो, यह क्या गजब हो गया है। वह अशर्फियों की थैली थी। स्त्री-पुरुष दोनों परेशानी में पड़ गये। व्यापारी तो बहुत पहले जा चुका था। उन्होंने तो यह भी नहीं पूछा था कि वह कहां से आया है और कहां जायगा? अब क्या होगा? स्त्री ने कहा, आदमी बोला, अब हम कर भी क्या सकते हैं। थैली उन्होंने रख ली और उस आदमी के आने की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें विश्वास था कि इतनी बड़ी रकम खो जाने पर वह ढूंढता हुआ अवश्य आवेगा। पर दिन-पर-दिन बीतये गये और वह आदमी नहीं आया। जब थैली के गुम होने का उसे पता चला तो उसने समझ लिया कि कहीं रास्ते में गिर गई और कोई लेकर चम्पत हो गया। व्यापारियों के जीवन में ऐसी घटनाएं होना तो मामूली बात है। काफी दिनों के बाद एक दिन वे लोग देखते क्या हैं कि वहीं व्यापारी लौटकर आया है। वह आगे बढ़ रहा था कि उन्होंने उसे रोका और झोंपडी में अंदर ले जाकर वह थैली उसके सामने रख दी। व्यापारी को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, आप आदमी नहीं, फरिश्ता हैं। आप लोगों ने जो किया है, वह फरिश्ते ही कर सकते थे। पैसे का लालच बहुत बड़ा और बुरा होता है, वह आदमी को शैतान बना देता है। इतना कहकर उसने कुछ अशर्फियां उन्हें देनी चाहीं, लेकिन उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। कहा, आपकी थैली आपके पास पहुँच गईं, इससे बड़ा इनाम हमारे लिए और क्या हो सकता है।

२०७२) संकुचित दृष्टि - काशी में गंगा के किनारे पंडित रामशास्त्री सपरिवार साथ रहते थे। भिक्षाटन उनका पेशा था। भिक्षाटन के बाद जो समय मिलता, उसमें वह भगवान विष्णु की आराधना करते। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर एक दिन भगवान विष्णु प्रकट हुए और उनसे वरदान मांगने को कहा। रामशास्त्री ने कहा कि वह अपनी पत्नी से सलाह लेकर ही कुछ मांगेंगे। पंडितजी ने पत्नी को सारी बात बताई। पत्नी बोली, अपना एक ही बेटा है। पता नहीं उसके भाग्य में क्या लिखा है। पंडित जी ने पूछा, मैं अपने बेटे का भाग्य स्वयं लिखने का अधिकार मांग लूं? पत्नी बोलीं, नहीं, संसार के सभी बच्चों के भाग्य लिखने का अधिकार मांग लो। अपने बेटे के भाग्य में हम सुख-सम्पदा लिख देंगे और दूसरे बच्चों की किस्मत में निर्धनता। पंडितजी को बात सही लगी। उन्होंने भगवान विष्णु से समस्त बच्चों का भाग्य लिखने का अधिकार मांग लिया। उनके पास कई बच्चे भाग्य लिखवाने पहुंचे। पंडितजी दुविधा में पड़ गए। सभी एक से थे। वह अपने बच्चे को पहचान नहीं पा रहे थे। काफी देर हो गई। बच्चों का दूसरा झुंड भी आ गया। तभी विष्णु भगवान ने प्रकट होकर कहा, पंडितजी, जल्दी कीजिए। पंडितजी बोले, प्रभु, मैं इन बच्चों में अपने बेटे को पहचान नहीं पा रहा हूं जिसके भाग्य में सारी सुख-सुविधाएं लिखनी हैं। भगवान विष्णु ने कहा, भाग्य लिखनेवाले अपने-पराये में अंतर नहीं करते। वे हर किसी को समान दृष्टि से देखते हैं। तभी तीसरा झुंड भी आ गया और धक्का-मुक्की में कुचले जाने के डर से पहले आए बच्चे अपना

भाग्य लिखाए बिना ही लौट गए। विष्णु भगवान को क्रोध आ गया। उन्होंने पंडितजी से भाग्य लिखने का अधिकार छीन लिया। जो बच्चे भाग्य लिखाए बिना लौट गए थे, वे भाग्यहीन कहलाए। उन्ही में पंडितजी का बेटा भी था। पंडितजी ने अपने लालच और संकुचित दृष्टि के कारण एक अवसर खो दिया और पुन: भिक्षाटन करने पर विवश हुए।

२०७३) विश्वास की महिमा - रामदीन नामक एक व्यक्ति अपने जीवन से बेहद परेशान हो गया था। उसका किसी भी काम में मन नहीं लगता था। चाहे व्यवसाय हो या नौकरी, वह कहीं भी महीने भर से ज्यादा नहीं टिकता था। परिवार में सभी उससे नाराज रहते। उसकी पत्नी उसे छोड़कर मायके चली गई थी। एक दिन वह एक संत के पास गया और बोला, महाराज, मेरा किसी भी काम में मन नहीं लगता। मुझे अपना जीवन निरर्थक लगने लगा है। संत ने कहा, तुम्हें अपना जीवन निरर्थक इसलिए लगता है क्योंकि तुम कोई भी काम मन लगाकर नहीं करते हो। यदि तुम अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लो कि जो काम तुमने अपने हाथ में लिया है उसे हर हाल में एक निश्चित समय में पूरा करना ही है तो तुम्हारी यह समस्या स्वत: सुलझ जाएगी। जब भी तुम्हारा मन उकताने लगे तुम मन ही मन यह दोहराओ कि यदि विश्वास हो तो मुश्किल से मुश्किल काम को भी हल किया जा सकता है। धीरे-धीरे तुम ऐसा करके देखो। सब ठीक हो जाएगा। रामदीन संत की यह बात सुनकर वापस आ गया और उसी दिन से उसने कपड़ों पर कढ़ाई का काम शुरू कर दिया। उसने पहले भी एक बार यह काम किया था, किंतु मन न लगने के कारण छोड़ दिया था। इस बार रामदीन का मन जब भी उखड़ता तो वह मन ही मन यह दोहराता कि यदि विश्वास हो तो मुश्किल से मुश्किल काम को भी हल किया जा सकता है। इस प्रकार ऐसा बोलते-बोलते उसने कपड़े की सुंदर कढ़ाई की। कपड़ा बाजार में काफी अच्छी कीमत पर बिक गया। इससे रामदीन का आत्मविश्वास प्रबल हो गया और धीरे-धीरे वह मन लगाकर काम करना सीख गया। एक साल बाद उसका व्यवसाय बहुत बढ़ गया और उसका काफी नाम भी हो गया। उसकी रूठी पत्नी भी घर पर लौट आई और परिवार के साथ-साथ अन्य लोग भी उसके साथ इज्जत से पेश आने लगे।

२०७४) जनकल्याण की राह - एक बार अयोध्या के राजा रघु के दरबार में इस प्रश्न पर बहस चल रही थी कि राजकोष का उपयोग किन प्रयोजनों के लिए किया जाए? एक पक्ष का मत था कि सैन्य शक्ति बढ़ाई जाए ताकि न केवल अपनी सुरक्षा हो बल्कि राज्य के बिस्तार की योजना भी आगे बढ़े। इस अभियान पर जो खर्च होगा उसकी भरपाई पराजित देशों से मिलनेवाले संसाधनों से की जा सकेगी। दूसरे पक्ष का कहना था कि राजकोष प्रजा जन के हित में खर्च किया जाए ताकि उनका जीवन स्तर बढ़ सके। अगर सुखी, संतुष्ट, साहसी और सुहृदय नागरिक हों तो देश समृद्ध होता है। इस प्रकार युद्ध करके नए क्षेत्र जीतने की अपेक्षा मैत्री का विस्तार कहीं अधिक लाभदायक है। उससे स्वेच्छया सहयोग और अपनत्व की ऐसी उपलब्धियां प्राप्त होती हैं, जिनके कारण छोटा देश भी चक्रवर्ती स्तर का बन सकता है। दोनों पक्षों के तर्क चलते रहे। सबके मन में उत्सुकता थी कि आखिर राजा रघु क्या निर्णय देते हैं। जब सबने अपनी बात समाप्त की तब उन्होंने कहा, युद्ध पीढ़ियों से लड़े जाते रहे हैं। उनके कड़वे-मीठे परिणाम भी स्मृति पटल पर अंकित हैं। लेकिन इस बार युद्ध छोड़ दिया जाए और लोकमंगल को अपनाया जाए। देखते हैं क्या होता है। समस्त संपत्ति जनकल्याण की योजनाओं पर खर्च कर दी जाए। कुछ सभासद दबे-छुपे इस निर्णय की आलोचना करने लगे। उन्हें अनिष्ट की आशंका सताने लगी। उधर रघु के निर्णय के मुताबिक विकास योजनाएं तेज कर दी गईं। धीरे-धीरे प्रजाजन हर दृष्टि से समुन्नत हो गए। आक्रमण की चर्चाएं समाप्त हो गई। सुख-शांति के समाचार पाकर अन्य देशों के समर्थ लोग वहां आकर बसने लगे। बंजर भूमि सोना उगलने लगी और अयोध्या में खुशहाली फैल गई।

HHH(७५१)HHH

२०७५) तीर्थयात्रा का फल - किसी गांव में एक जुलाहा रहता था। वह तीर्थयात्रा पर जाना चाहता था। अपनी इस इच्छा को पूरा करने के लिए दिन-रात वह पैसा इकट्ठा करने की जुगत में लगा रहता था। लेकिन बहुत समय बीत जाने पर भी वह पैसे इकट्ठे नहीं कर पाया। एक दिन वह पास के गांव में गया। वहां उसकी भेंट एक निर्धन किसान से हुई। किसान ने उससे कहा कि उसने घर बैठे ही तीर्थयात्रा का पुण्य कमा लिया है। जुलाहे के पूछने पर किसान ने बताय, मैं भी तुम्हारी तरह तीर्थयात्रा पर जाना चाहता था। इसके लिए मेरे पास धन भी एकत्रित हो गया था। लेकिन एक घटना ऐसी घटी कि मैंने तीर्थयात्रा पर जाने का विचार ही त्याग दिया। मेरी पत्नी गर्भवती थी। एक दिन उसे पड़ोस से मेथी के साग की सुगंध आई। उसे यह साग खाने की इच्छा हुई। मैंने पड़ोसी के घर जाकर उससे पत्नी के लिए थोड़ा-सा साग मांगा। वह सकुचाते हुए बोला- चार दिनों से मेरे बच्चे भूखे थे, इसलिए आज ही श्मशान से मेथी की पत्तियां तोड़कर साग बनाया है। साग अपवित्र है, फिर जैसी तुम्हारी इच्छा। उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर वह सारा धन, जो मैंने तीर्थयात्रा पर जाने के लिए एकत्रित किया था, उसे दे दिया। पड़ोसी को कुछ सुख मिलने से मेरी तीर्थयात्रा की कामना भी पूर्ण हो गई। यह सुनकर जुलाहा समझ गया कि जरूरतमंद की मदद करने से तीर्थयात्रा का वह पुण्य मिल जाता है, जो चारों धाम की यात्रा से भी प्राप्त नहीं होता। अब जुलाहा तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा त्याग कर जरूरतमंदों की मदद करने लगा।

२०७६) रोग और उपचार - एक साधु थे। वह नदी के किनारे, वियाबान स्थान में, कुटिया बनाकर रहते थे। उनके चारों ओर हरे-भरे वृक्ष थे। उन पर शाम-सबेरे पक्षी आकर आनंद से चहचहाते थे। कुछ पक्षियों ने तो साधु की कुटिया के घास-फूस में अपने घोंसले बना लिये थे। एक प्रकार से वे साधु के परिवार के अंग बन गये थे। संयत जीवन और प्रकृति के सतत सान्निध्य से साधु के मुख-मण्डल पर ऐसी दीप्ति थी कि दूर-पास के बहुत-से-स्त्री पुरुष खिंचकर वहां चले आते थे। एक दिन एक सेठ आये। धन उनके पास अपार था, बहुत बड़ा व्यापार था, विशाल परिवार था, किन्तु चैन उनसे कोसों दूर था। चेहरा उनका मुरझाया हुआ था। विवशता की रेखाएं स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। साधु के चरण स्पर्श करके वह सामने बैठ गये। आर्द्र नेत्रों से उन्होंने अपनी व्यथा साधु को बताई। कहा, महाराज, मेरे पास सबकुछ है, पर मुझे चैन नहीं है। रात-रात भर करवटें बदलता हूं, नींद नहीं आती। साधु ने बड़े प्रेम से उनकी ओर देखा। बोले, सेठ, तुम्हारे पास सबकुछ भले ही हो, पर वह नहीं, जो नींद के लिए आवश्यक है। वह क्या है, महाराज? सेठ ने विनय-पूर्वक पूछा। साधु ने गंभीर होकर कहा, सेठ, तुम चारों ओर चिन्ताओं से घिरे है। धन-सम्पत्ति की चिन्ता, व्यापार की चिन्ता, बाल-बच्चों की चिन्ता, याद रखो, चिन्ता और चैन के बीच बड़ी शत्रुता है। सेठ ने कातर स्वर में कहा, स्वामीजी, मैं क्या करूँ? मेरा जीवन दूभर हो गया है। साधु बोले, सेठ, तुम प्रकृति से हट गये हो। देखते हो, प्रकृति कितनी सम्पन्न है। चारों ओर उसका साम्राज्य फैला है, लेकिन वह अपनी सम्पदा में लिप्त नहीं है। उसके सिर पर कोई बोझ नहीं है। वह हर घड़ी हंसती-विहंसती रहती है। फिर उसकी उदारता तो बेजोड़ है। अपनी दौलत को भर-भर हाथों बांटती रहती है। सेठ, उसी से तुम शिक्षा लो। तभी तुम्हारा संकट दूर होगा। साधु की बात सेठ के गले उतर गई। उसके रोग का निदान हो गया। अब उपचार कठिन नहीं था।

२०७७) समाधान - एक कार्यालय में दो सहयोगी काम कर रहे थे। एक को लग रहा था तरक्की उसकी तय है पर ऊपरवाले अफसर के निर्णय नहीं लेने के कारण तरक्की रुक रही है। पहले उसने राह देखी, फिर कोशिश की। नतीजा न निकलते देख हताश हो गया व घर में बाहर, दफ्तर में अफसर के खिलाफ उपजी खटास निकालने लगा। कार्यालय में सब मुस्करा कर रह जाते। मालिक के खिलाफ बोलकर कौन शामत मोल लेना चाहता है। एक दिन सहसा उसने हथियार

डाल दिये व प्रभु की इच्छा सोचकर पूरी क्षमता के साथ काम में जुट गया। चार महीने बाद अचानक तरक्की का आदेश हाथ में आया जिसमें उसके अफसर ने उसके काम की प्रशंसा में टिप्पणी भी लिख रखी थी। बाद में मालूम हुआ कि अधिकारी तय नहीं कर पा रहा था कि दोनों सहयोगियों में से किसे तरक्की दें। ये चार महीने के अथक परिश्रम ने उसे सहयोगी से ऊपर पहुंचा दिया। प्रसन्नता के साथ उस व्यक्ति को ग्लानि भी हुई कि उच्च अधिकारी की आलोचना उसने क्यों की? जिस अधिकारी को उसने बाधा समझा, उसके खिलाफ गांठ बांधी, उसके दृष्टिकोण से कभी समझने की कोशिश ही नहीं की। घर, बाहर, जीवन के किसी भी क्षेत्र में हमारे मार्ग में जब बाधा आती है तो हम उस बाधा का जिम्मेदार जिसको भी मान लेते हैं उसके खिलाफ मन में गांठ हो जाती है। यानी मार्ग का एक पत्थर तो वो हो गया जो मार्ग में आया और कुंठित मन से दूससरा पत्थर हम खुद हो जाते हैं। दो पत्थर टकराये तो घर्षण होगा, आवाज होगी या आग निकलेगी। पत्थर के पास जब पानी बहता है तो चारों ओर से बहते हुए पत्थर को घेर लेता है। पत्थर को मालूम ही नहीं पड़ता कि वह कब नरम हो गया और हल्के से धक्के से टूट गया। पानी को कुछ नहीं होता। तो हम पत्थर नहीं, पानी क्यूं ना बनें।

२०७८) नौकरी तो लगने दे - रात को पति-पत्नी घर में बैठे बातें कर रहे थे। पत्नी उलाहना देते हुए कह रही थी, इतने दिन हुए, यों ही ठठोलदास बने फिर रहे हो। कुछ कमाई तो करते नहीं, घर का काम ऐसे कैसे चलेगा?

अभी ऐसे ही चल रहा है। छोटी-मोटी नौकरी लग जाने दे, तुझे सोने से जड़ दूंगा। पत्नी ने कहा- नौकरी लगने से ही क्या होगा, वह अच्छी लगे तब न। अच्छी-वच्छी की जरूरत नहीं है। बस, नौकरी लगनी चाहिए। यह सब बातें बाहर खड़े राजा ने सुनीं। वह भी आश्चर्य में पड़ गया। दूसरे दिन उसे बुलाया और घोड़ों के अस्तबल का दरोगा बना दिया। वह वहां कुर्सी लगाकर जा जमा। जब घोड़े लीद करते तो वहज उस लीद को सूंघता। दस-पांच बार जब ऐसा किया गया, तब लोगों में खुस-पुस शुरू हुई। पूछे जाने पर उसने कहा- महाराज के पास शिकायत पहुंची है। घोड़ों के लिए यहां से धान दिया जाता है। वह उन्हें पूरा नहीं खिलाया जाता। कुछ अधिकारी लोग बीच में ही गबन कर जाते हैं इसलिए मुझे यहां बैठाया गया है।

सुननेवालें के दिल में खलबली मची, कहीं हमारी चोरी की शिकायत न हो जाए। इसके लिए वे लुक-छिपकर आने लगे और कोई सौ की तो कोई दो सौ की भेंट चढ़ाने लगे। सायंकाल होते-होते वह चार-पाच हजार रुपये घर ले आया और पत्नी से सारी रामकहानी कही। बाहर खड़ा राजा भी यह सब कुछ सुन रहा था। राजा ने सोचा, वहां तो इसने आमदनी का रास्ता निकाल लिया जो वास्तव में निकल भी सकता था। खैर, कल इसे एक ऐसे जगह नियुक्त कर दूंगा, जहां से यह कोई रास्ता न निकाल पायेगा। यही सोचकर दूसरे दिन राजा ने उसे वहां से हटाकर समुद्र के किनारे बैठा दिया और कहा- समुद्र की लहरें गिनते रहो। वह वहां भी कुर्सी लगाकर जा जमा। आने-जानेवाले सारे जहाजों को रोकने लगा। रोकने का कारण स्पष्ट करते हुए वह बोला- मुझे महाराजा ने लहरें गिनने को कहा है। आपके होने से मेरे लहर गिनने में अन्तर आता है। जहाज वालों ने घण्टों खड़े रहने की अपेक्षा कुछ देर में निपटना ही अच्छा समझा। यों दस-बीस जहाज रोककर, शाम तक बीस-तीस हजार रुपये लेकर घर आया। सारी बात बता, थैलियां पटककर कहा, मैंने कहा था कि मुझे कुर्सी तो मिलने दे। देख, दो दिन में ही तुझे मालामाल बना दिया। बाहर खड़े राजा ने सारी बात सुनकर सोचा, मैं जहां भी इसकी नियुक्ति करता हूं, यह कुछ-न-कुछ कमाई का मार्ग निकाल ही लेता है। लगता है सरकारी नौकरी चीज ही ऐसी है। यहां आकर सभी अपनी रोटियां सेकने लग जाते हैं।

२०७९) आपकी इज्जत कहां? - इज्जत रहती मनुज की, सन्तानों के हाथ। तभी कहा था एक ने, मेरी मेरे साथ।।

दो-चार समझदार आदमी मिलकर आमोद-प्रमोद की बातें करते हुए कहीं जा रहे थे। उधर से एक सेठ को आते देखा।

उन्होंने उससे पूछा, आपकी इज्जत कहां है? वह तमका और बोला, इज्जत कहां है? यह कैसा प्रश्न? मेरी इज्जत मेरे साथ है। इज्जत भी क्या कोई छोड़ने जैसी चीज है, जो कहीं छोड़कर आ जाऊं?

उन्होंने उसका नाम-पता पूछ लिया और आगे चल पड़े। आगे चलते ही एक और सेठ मिला, उससे भी वही प्रश्न पूछा गया। वह बोला, मेरी इज्जत? वह मेरे घर पर है, क्या मैं उसका भार लादे-लादे फिरूं?

उसका भी नाम-पता पूछ लिया गया। वे सारे गांव में आये और पहले सेठ के यहां गये। वहां उनका लड़का बैठा था। उससे पूछा, सेठजी कहां गये है? रुखासा उत्तर दिया, कहीं बाहर गये होंगे। पता नहीं कहां गये। क्या वे मेरे को पूछकर ही जाते हैं? आगत-स्वागत तो दूर रहा, मुंह से मीठा बोलना भी उसे पसन्द नहीं था। तब उन्होंने सोचा कि वह सेठ को ठीक कह रहा था। मेरी इज्जत मेरे साथ है। वास्तव में ही उसकी इज्जत उसके साथ ही थी। अब दूसरे सेठ के यहां आकर वही प्रश्न पूछा, तब उसका लड़का बहुत ही विनम्रता से उन्हें अन्दर लाया, आदर-सत्कार पूर्वक बिठाया, खाना खिलाया और समुचित स्वागत करके कहा, वे बाहर पधारे है। लौटने में दो-चार दिन लग सकते हैं। फरमाइये, क्या काम है? आगन्तुकों ने कहा- यह बात तो भाई हमें तू पहले भी कह सकता था। फिर हमें रोका क्यों? लड़के ने कहा- वह तो इसलिए कि अपने प्रश्न का उत्तर पाकर आप रुकते नहीं, भोजन भी नहीं करते। घर आया मेहमान भूखा जाए, यह कैसे हो सकता है? उसकी बातों और व्यवहार से सभी बहुत प्रभावित हुए और सोचने लगे कि वास्तव में इस सेठ की इज्जत इसके घर पर ही है।

२०८०) सेल्समैन की सफलता - फर्नीचर कंपनी ने एक सेल्समैन को जमींदार के घर आर्डर लाने के लिए कहा। जमींदार के फर्नीचर अत्यंत कलात्मक, नक्काशीदार और लकड़ी के बने थे पर वे काफी पुराने थे। सेल्समैन चीजों से लगाव की बात नहीं समझ पाया। अपने फर्नीचर की तारीफ करने के बाद बोला, आपके घर में यह फर्नीचर शोभा नहीं देता। इसे किसी कोने में डाल दीजिए और आधुनिक फर्नीचर से शोभा बढ़ाइए। जमींदार आगबबूला हो गया। उसने सेल्समैन को भगा दिया। वह मुंह लटकाए लौटा। उसने मैनेजर को सारी बात बताई। वहीं एक युवा खड़ा था। वह मैनेजर से बोला, सर, यदि आप कहें तो मैं वहां जाऊं। मैनेजर की आज्ञा पाकर सेल्समैन वहां पहुंचा। जमींदार गुस्से में था। दूसरे सेल्समैन को देखकर वह उसे निकालने लगा। तभी वह हाथ जोड़कर बोला, सर, मैं अपने साथी के व्यवहार की माफी मांगने आया हूं। मैं तो आपके कलात्मक फर्नीचर के बारे में सुनकर दंग हूं। मुझे इस फर्नीचर के डिजाइन देखने की अनुमति प्रदान करें। ताकि हमारी कंपनी उससे सबक ले। जमींदार खुश हो गया। सेल्समैन बोला, हमारी सरकार ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं को धरोहर के रूप में सहेज रही है। आपके फर्नीचर का उपयोग इसकी कला को कम कर रहा है। इसे विशेष कक्ष में सजाकर प्रेरणा के लिए रखना चाहिए और दैनिक प्रयोग के लिए हमारी कंपनी का फर्नीचर उपयोग में लाना चाहिए। प्रभावित हो जमींदार ने सेल्समैन को ऑर्डर देकर विदा किया।

२०८१) शिक्षा की विदाई - छात्रों ने जब सुना कि उनके प्रिय शिक्षक नौकरी छोड़कर जा रहे हैं, तो उनके बीच खलबली मच गई। छात्र उन्हें बहुत चाहते थे। वह शिक्षक महोदय छात्रों को न केवल अपने विषय का समुचित ज्ञान देते थे बल्कि अन्य विषयों में भी कोई परेशानी आने पर उसे हल कर देते थे। निर्धन विद्यार्थियों के तो वह मसीहा थे। वह उन बच्चों की फीस नियत समय पर जमा कर उन्हें स्कूल से निकाले जाने से बचा लेते थे। वे बच्चों के बीच किताबें भी बांटा करते थे। ऐसे शिक्षक का स्कूल छोड़ना छात्रों के लिए बहुत कष्टदायक था। छात्र यह जानने के लिए उनके कमरे में पहुंचे कि वे क्यों जा रहे हैं? छात्रों ने एक साथ उनसे पूछा- सर, हमने सुना है कि आप किसी दूसरे विद्यालय में जा रहे है। क्या यह सच है? शिक्षक

के हां कहने पर छात्रों ने प्रश्न किया- क्या वह स्कूल से अधिक वेतन मिलेगा? शिक्षक ने कहा- वहां पढ़ाने के लिए मुझे जेल की सजा भी मिल सकती है। छात्रों ने प्रश्न किया- वहां आप कौन सा विषय पढ़ाएंगे? शिक्षक ने उत्तर दिया- मैं सबको अपने देश के लिए मर मिटने का पाठ पढ़ाऊंगा। छात्र अपने शिक्षक की देशभक्ति देखकर श्रद्धा से झुक गए। यह शिक्षक और कोई नहीं, प्रसिद्ध क्रांतिकारी और बाद में महान योगी बने अरविंद घोष थे। उन्होंने स्कूल की नौकरी छोड़कर पूरी तरह देश सेवा में समय बिताने का फैसला किया था। बाद में उनके कई छात्र उनसे प्रभावित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए।

२०८२) सच्चा गुरु - एक व्यक्ति श्रेष्ठ गुरु की तलाश में था। एक दिन उसने अपनी यह समस्या अपने मित्र को बताई। मित्र ने कहा, यह कौन सी बड़ी बात है। इसकी पहचान मैं करा दूंगा। तुम्हें जिस व्यक्ति को गुरु बनाना हो उसके पास मुझे ले चलो। मैं उसकी परीक्षा लेकर बता दूंगा कि वह गुरु बनने योग्य है या नहीं।

मित्र ने इसके लिए एक नायाब तरीका अपनाया। वह जिस किसी के पास जाता, अपने साथ पिंजरे में एक कौवा ले जाता। मित्र महात्मा से पूछता, महाराज, यह पिंजरे में कबूतर ही है न? इस बात को सुनकर कुछ लोग हंस पड़ते और उसका उपहास करने लग जाते। कई नाराज हो जाते और कहते, तुम जैसे मूर्खों से तो बात करना ही बेकार है।

कई साधु-संन्यासियों से मिलने के बाद आखिर दोनों मित्र एक महात्मा के पास पहुंचे। उसने फिर पहले की तरह ही कहा, महात्मा जी, यह कबूतर ही है न। इस पर महात्मा जी तनिक भी क्रोधित नहीं हुए। वह शांत भाव से बोले, नहीं बेटे, यह कबूतर नहीं कौवा है। मित्र पूर्ववत उसे कबूतर साबित करने पर तुल गया। लेकिन तब भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया।

फिर उन्होंने उसे प्यार से समझाया, कौवे और कबूतर के लक्षण बताए और कहा, देखो कि पिंजरे में बंद पक्षी के लक्षण किससे मिलते हैं। अब तुम ही तय करो कि यह क्या है? अगर फिर भी समझ में नहीं आए तो चलो मैं तुम्हें जंगल में ले चलता हूँ और विभिन्न पक्षियों की पहचान करवाता हूँ।

दूसरे मित्र ने पहले मित्र को कोने में ले जाकर कहा, यही तुम्हारे गुरु हो सकते हैं। जो व्यक्ति दूसरों को सिखाने में रुचि ले और इस क्रम में अपना धैर्य न खोये, वही सच्चा गुरु हो सकता है। इन्होंने मेरा उपहास नहीं किया, न ही मुझ पर क्रोधित हुए क्योंकि इनके भीतर अपार धैर्य तो है ही, किसी व्यक्ति की गलती को सुधारने की सदिच्छा भी है।

२०८३) तीन मित्र थे। तीनों में परस्पर बड़ा प्रेम था। तीनों में एक राजकुमार था और दो वणिकपुत्र। एक दिन तीनों मित्र विद्यालय से घर आ रहे थे। मार्ग में वणिकपुत्रों ने राजकुमार से कहा- मित्र, अभी तो तुम घनिष्ठ मित्रता का परिचय दे रहे हो, लेकिन जब राज सिंहासन पर आरूढ़ हो जाओगे तब क्या हमारे साथ अभी जैसा व्यवहार करोगे? हमको कुछ बख्शीश दोगे। राजकुमार ने कहा- दोस्त, आपस का प्रेम भी कभी भुलाया जाता है? दोस्ती की निशानी के रूप में राजकुमार ने यह लिखकर दे दिया- मैं राजा बनने के बाद तुम्हें एक-एक वरदान दूँगा, जो भी तुम मांगोगे वह मिल जाएगा। कुछ समय बाद वह राजकुमार सिंहासन पर बैठा और वे दोनों मित्र अच्छा समय देखकर नए राजा से कुछ मांगने के लिए गए। पहले मित्र ने कहा- मित्र। मुझे न तो धन चाहिए तथा न कोई जमीन-जायदाद। मुझे तो एक दिन का राज चाहिए। राजकुमार ने हां भर ली। दूसरे दिन सारे शहर में आज्ञा प्रसारित कर दी गई राज्यासन पर बैठते ही पहले वणिक पुत्र ने समस्त राज्य कर्मचारियों के लिए यह आदेश जारी कर दिया कि जिसको जितना वेतन मिलता है अब उसे आधा मिलेगा। राज्य भंडार भरने के लिए उसने जनता पर कर दुगने कर दिए। सारे राज्य में हाहाकार मच गया। चारों तरफ से राजा को धिक्कार मिलने लगी। सारा दिन स्नान, भोजन आराम आदि कामों में लगा रहा। पूरी रात नृत्य संगीत व नींद में बीत

गई। सुबह होते ही सेवक ने कहा- श्रीमान्। आपका समय समाप्त हो गया है। एक दिन के लिए आपको जो राज मिला था, वह अब नहीं है। वह हक्का-बक्का रह गया। हाय? मैं तो कुछ कर ही नही सका पहरेदारों ने हाथ पकड़कर उसको बाहर निकाल दिया। जैसे ही वह राजमहल से बाहर आया वैसे ही हजारों लोग चारों तरफ से उसके पीछे पड़ गए। उसे बुरी गालियां देने लगे। एक ही दिन में उसने सबके साथ दुश्मनी मोल ले ली। दूसरे मित्र ने भी एक दिन के राज की याचना की। राजकुमार ने सहर्ष उसके लिए भी घोषणा करवा दी। जैसे ही उसने राज्यभार संभाला वैसे ही समस्त राज्य कर्मचारियों के वेतन दुगने-तिगुने कर दिए। जनता को समस्त करों से मुक्त कर दिया। धर्मशालाओं में खुले हाथ दान देना शुरू कर दिया। दीन-हीन कोई भी आए उनकी आशा को फलवान बनाना उसने अपना नियम बना लिया। सायंकाल होते ही राज्य का भार मंत्री को संभालकर वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग में कर्मचारियों, विद्वानों व व्यापारियों ने उसका स्वागत किया। घर-घर में उसकी कीर्ति-ध्वजा फहराने लगी। समस्त जन-मानस के लिए वह श्रद्धा का पात्र बन गया। इस तरह जो व्यक्ति हाथ में आए अवसर को खो देता है, वह पश्चाताप करता है। जो अवसर का उपयोग कर लेता है उसकी चारों ओर जय-जयकार होती है।

२०८४) खजांची का चुनाव- नवलगढ़ के राजा भीमसिंह जब गद्दी पर बैठे तो उन्हें राजा होने के साथ-साथ खजांची का काम भी देखना पड़ा। उनके यहां पर परंपरा चली आ रही थी कि राजा ही खजांची होगा। कुछ ही दिनों बाद भीम सिंह खजांची का कार्यभार संभालते-संभालते थक गए और अपने मंत्री से बोले, मंत्री जी, हमने तो ऐसा कहीं नहीं देखा कि राजा ही अपने राज्य के खजांची का कार्यभार संभाले। आखिर हमारे यहां यह नियम क्यों है? इस पर मंत्री बोला, महाराज, आपके पिताश्री भी खजांची का कार्यभार स्वयं संभालते थे। इसका कारण यह है कि उनके समय में जो खजांची था, उसने राजकोष से बहुत सा धन चुराया और जब उसकी चोरी का पता लगा तो वह मर गया। इसलिए किसी को भी यह पता नहीं चला कि चोरी का वह धन कहां गया? बस तभी से आपके पिताजी ने अपना खजाना स्वयं संभालना शुरू कर दिया। भीम सिंह बोले, लेकिन हमारे राज्य में केवल चोर नहीं, ईमानदार लोग भी तो होते होंगे। आप शीघ्र एक ईमानदार खजांची की नियुक्ति कराइए। इस पर मंत्री बोला, महाराज, आपके आदेश का पालन किया जाएगा किंतु उसके लिए बाहर के किसी व्यक्ति को न रखकर दरबार में से ही किसी योग्य कर्मचारी को रख लिया जाए तो बेहतर है। राजा ने मंत्री की बात मान ली। पचीस दरबारियों ने खजांची के लिए आवेदन कर दिया। राजा बोले, हमारे यहां छब्बीस दरबारी हैं। फिर एक दरबारी ने आवेदन क्यों नहीं किया? मंत्री बोला, महाराज खजांची का वेतन दरबारी के वेतन से कम है। इसलिए उसने आवेदन नहीं किया। इस पर राजा ने कहा, इसका अर्थ यह हुआ कि बाकी दरबारी जानते हैं कि खजांची बनने पर वे अनुचित फायदा उठाकर धनोपार्जन कर सकते हैं जबकि छब्बीसवें दरबारी के मन में ऐसा कुछ नहीं है क्योंकि वह ईमानदार है। उन्होंने छब्बीसवें दरबारी को खजांची नियुक्त कर दिया।

२०८५) नवलगढ़ के राजा वीर चन्द्र बड़े ही उदार भाव के थे। वे हमेशा साधु सन्तों की सेवा करते रहते थे। वीर चन्द्र दूर-दूर से साधुओं को लाकर उनकी सेवा करते एवं अपार सम्पदा देकर विदा करते थे। इस प्रकार से उनकी प्रसिद्धि आस पास के राज्यों में भी हो गयी। बगल के राज्य के राजा ने सोचा कि वीर चन्द्र कितना मूर्ख है जो सन्तों को इतना धन देता है। उसने सोचा क्यों न वीर चन्द्र को ठगा जाय। उस राजा ने एक मंत्री को बहुरूपिया बनाकर साधु के वेश में उसे नवलगढ़ में भेज दिया। जब वीर चन्द्र को पता चला कि राज्य में एक साधु आया है तो वह नंगे पैर चलकर गये। उस बहुरूपिये साधु को बड़े ही आदर-सत्कार से ले आये। राज्य के अतिथि शाला में उन्होंने साधु को ठहरा कर दिन रात

उसकी सेवा करने लगे। वीर चन्द ने खूब मन लगाकर साधु की सेवा की। दो दिन बाद उस बहुरूपिये साधु ने जाने की इच्छा प्रकट की। राजा ने कुछ नहीं कहा। अगले दिन राजा बहुरूपिये साधु से बोला- महाराज अब तो आप चले जा रहे हैं। बहुरूपिये साधु ने कहा राजन्, आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आपको इतना बड़ा राज्य धन मिला है। आपकी स्त्री, पुत्र, नौकर सब आपके अनुकूल हैं। भगवान की बड़ी कृपा है आप पर। यह सुनकर वीर चन्द्र कुछ नहीं बोले। अगले दिन जब बहुरूपिया साधु जाने लगा तो वीर चन्द्र उसे अपने खजाने वाले घर में ले गये एवं कहा- महाराज आप जो चाहते है जितना चाहते हैं ले लें। बहुरूपिया साधु ने हीरे, जेवरात, मोती, माणिक, सोना, चांदी इत्यादि से अनेकों बोरों को भर कर घोड़े पर लाद दिया। जाते समय राजा ने कहा- अभी तो आप अपनी इच्छा से लिये हैं। अब यह मेरी तरफ से चांद का बक्सा भेंट के स्वरूप में। बहुरूपिया साधु सब लेकर चल दिया। जब साधु अपने राज्य में पहुंचा तो सारा खजाना राजा के सामने रख कर कहा- महाराज यह मैंने अपनी इच्छा से लिया है और सन्दूक दिखाते हुए कहा- यह मुझें भेंट मिला। राजा बोला- लाओ मैं ही सन्दूक खोलूं। जब राजा ने सन्दूक खोला तो एक पीतल का बक्सा रखा मिला। जब राजा ने पीतल का सन्दूक खोला तो देखा एक लोहा का रखा बक्सा मिला। राजा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसने कहा कि बहुरूपिये तूने क्या कहा था। राजा को विस्तारपूर्वक सुनाओ। बहुरूपिये ने कहा कि वीर चन्द्र एक दिन उससे कुछ कहने के लिए बोले तो मैंने उन्हें कहा आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपके पास इतना धन है, सब आपके अनुकूल हैं। यह सुनकर राजा समझ गया कि वीर चन्द्र राजा मूर्ख नहीं बल्कि बहुत पहुँचा हुआ बुद्धिमान है। साधु वेश की उसकी निष्ठा आदरणीय है। उस राजा ने समझा कि तीन बातों का तात्पर्य था स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर। इनके भीतर क्या है। भीतर तो फूटी कौड़ी भी नहीं है। राजा किसी प्रकार से वीर चन्द्र को धन लौटा देना चाहते थे क्योंकि राजा को समझ में आ गया था कि वीर चन्द्र क्यों प्रसिद्ध हैं।

२०८६) एक सेठजी थे। उनका कपड़े का व्यापार था। कारोबार में बेईमानी एवं अनीति से वे हमेशा दूर रहते थे। बाजार में सेठ का अच्छा-खासा विश्वास था। एकदिन राजा को रेशमी कपड़े की जरूरत पड़ी। उसने सेठ को बुलाकर पूछा- क्या आपकी दुकान में रेशमी कपड़ा है? अचानक सेठ के मुंह से निकल गया कि रेशमी कपड़ा तो नहीं है। फिर वह अपनी दुकान में आ गया। पीछे से एक चुगलखोर राजा के पास पहुंचा और बोला- राजन्, सेठ बिलकुल झूठ बोलता है। हम अभी-अभी देखकर आए हैं। उनकी दुकान में रेशमी कपड़े का ढेर लगा हुआ है।

राजा बोला सेठ बड़ा सत्यवादी है, नीतिज्ञ है। मुझे उनपर पूर्ण विश्वास है कि वह कभी भी झूठ नहीं बोलते। चुगलखोर बोले- आप हमारे साथ सेठ की दुकान पर पधारें। आपको पता लग जाएगा कि हम झूठे हैं या सेठ। राजा बोला- अच्छा कल सुबह चलेंगे। इधर सेठ के चेहरे पर उदासी छा गई। उसने अपने पुत्र को बुलाकर कहा- बेटा। आज तो गजब हो गया। मैं राजा के सामने सुब-बुध खो बैठा और राजा को गलती से कह दिया कि दुकान में रेशम का कपड़ा नहीं है। अब इस वचन को निभाने के लिए दुकान का सारा माल जला दो। पुत्र बोला- पिताजी, दुकान में लाख रुपए का माल है। कैसे जलाया जाए? सेठ बोले- पुत्र, लाख की चिन्ता नहीं है, मुझे अपनी साख की चिंता है। नीति में कहा गया है- लाख गया साख रहयां, फिर भी लाख होय। साख गया लाखज रहयां, बात न पूछे कोय। लाख चले जाने पर भी यदि साख रह गई तो लाख फिर हो जाएंगे, किन्तु साख चली गई तो फिर लाख का क्या मतलब। आखिर पिता के आदेशानुसार पुत्र ने सारा माल जला दिया। राजा सेठ की दुकान में आया, घर और गोदाम को भी सम्भाला, किन्तु रेशम का एक भी तार नही मिलने से राजा सेठ की सच्चाई पर बड़ा खुश हुआ। राजभवन में आकर राजा ने क्रुद्ध होकर आदेश दिया- उन चुगलखोरों की जीभ निकाल ली जाए। जो झूठ बोलते हैं। सेठ को

इस आदेश का पता लगते ही दौड़ा-दौड़ा राजा के पास आया और हाथ जोड़कर बोला- चुगलखोर झूठा नही, सच्चा है। कल तक माल था। पर कल मैंने गलती से आपको कह दिया था कि रेशम का कपड़ा नहीं है। इस वचन को निभाने के लिए रात में सारा कपड़ा जला दिया गया। इसलिए किसी को दंड न दिया जाए। राजा ने पूछा- माल कितना था? सेठ बोला- एक लाख का। राजा ने सेठ की नेक नीति पर प्रसन्न होकर उसी समय सेठ को एक लाख दिलवा दिए। सेठ ने घर जाकर पुत्र से कहा- बेटा, साख रखने से लाख वापस हो गए। पर साख चली जाती, तो लाख का क्या मतलब होता।

२०८७) हिन्दी के वक्ता- बात उन दिनों की है जब अंगरेजों की असेंबली में कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में ही चलती थी। किसी भारतीय भाषा में बोलना निषिद्ध था। सन १९२६ में जब सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली का चुनाव हुआ तो नारायण प्रसाद सिंह सारण-दरभंगा के गैरमुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से स्वराज पार्टी से उम्मीदवार बने और भारी मतों से विजय प्राप्त करके आए। नारायण बाबू लोकमान्य तिलक की बातों से बहुत प्रभावित थे और गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के नेता थे। हिंदी के प्रति उनका विशेष अनुराग था। उन दिनों सरदार वल्लभ भाई पटेल के अग्रज विट्ठल भाई पटेल असेंबली के अध्यक्ष थे। नारायण बाबू ने पब्लिक सेफ्टी बिल पर हिंदी में बोलने के लिए अध्यक्ष से अनुमति मांगी। अध्यक्ष उन्हें बिल पर बोलने की इजाजत देने के लिए तैयार थे, किंतु हिंदी में बोलने के लिए सहमत नहीं थे। उन्होंने नारायण बाबू को अपने कक्ष में बुलाया और हिंदी में न बोलने के लिए समझाने लगे। रोचक बात यह थी कि समझाने के क्रम में अध्यक्ष पटेल साहब अंग्रेजी में बोल रहे थे और नारायण बाबू उसका जवाब हिंदी में दे रहे थे। आखिर झुंझलाकर विट्ठल भाई पटेल ने कहा, आप हिंदी में बोलने के लिए क्यों हठ कर रहे हैं? नारायण बाबू बोले, क्योंकि मुझे अंग्रेजी नहीं आती और मेरी मातृ भाषा हिंदी है। पटेल जी ने पूछा, तो फिर आप मेरी अंग्रेजी में कही बात कैसे समझ पा रहे हैं? नारायण बाबू ने कहा, जैसे आप मेरी कही बात को समझ रहे हैं। आवेश में आकर पटेल जी ने कहा, आप यहां लड़ने आए हैं या मुझसे बहस करने? नारायण बाबू ने गंभीर मुद्रा में कहा, अध्यक्ष महोदय, आया तो मैं काम करने हूं किंतु आवश्यकता पड़ी तो बहस करने में भी पीछे नहीं रहूंगा। नारायण बाबू के पूरे आत्मविश्वास से दिए गए इस उत्तर से पटेल जी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने नारायण बाबू को हिंदी में बोलने की आज्ञा दी। नारायण बाबू असेंबली में पूरे जोश से हिंदी में बोले। इसी के साथ नारायण बाबू को भारतीय संसदीय इतिहास में हिंदी का प्रथम वक्ता होने का गौरव प्राप्त हो गया।

२०८८) अनूठा इंसाफ- एक नगर में एक सेठ रहता था। वह बहुत धनवान था। उसने अपना बहुत-सा पैसा इधर-उधर लोगों को ब्याज पर कर्ज दे रखा था। अचानक सेठ का निधन हो गया। सेठनी लोगों से रूपया वसूल नहीं कर सकती थी। इसलिए उसने अपने पति के एक मित्र से पैसे वसूल करने को कहा। मित्र ने कहा, मेरा हिस्सा रखो तो मैं कोशिश करूंगा। सेठानी ने कहा, तुम रुपए वसूल करो फिर जो चाहो सो मुझे दे देना। सेठानी की बात सुनकर वह प्रसन्न हो गया। उसने लोगों से रुपया वसूल करना शुरू किया और थोड़े ही समय में उसने सेठ के सभी रूपए वसूल कर लिए। जब सेठानी ने रूपए मांगे, तो वह थोड़ा हिस्सा सेठानी को देने लगा। सेठानी इस पर राजी नहीं हुई। उसने पंचायत में फरियाद की। गांव के मुखिया ने रूपए वसूल करनेवाले को बुलाया और पूछा- तुम दोनों में क्या शर्त थी? उसने उत्तर दिया- सेठानी ने मुझ से कहा था कि जो तुम चाहो, सो मुझै दे देना। उसकी बात सुनकर मुखिया ने वसूल किया हुआ सारा धन मंगवाया और उसके दो भाग करवाए- एक बड़ा और दूसरा छोटा। फिर रूपए वसूल करने वाले से पूछा- तुम कौन सा भाग लेना चाहते हो? उसने कहा- मैं यह बड़ा लेना चाहता हूँ। मुखिया ने कहा- तुम्हारी शर्त के अनुसार यह बड़ा भाग सेठानी को

दिया जाएगा और छोटा भाग तुम्हें। सेठानी ने यही कहा था कि जो तुम चाहे, वह मुझे देना। तुम बड़ा भाग चाहते हो, इसलिए तुम्हारी शर्त के अनुसार यह बड़ा भाग सेठानी को मिलेगा। जिस शर्त में वह बेईमान दोस्त सेठानी को उलझा रहा था। उस विश्वासघाती मित्र को चतुर मुखिया ने उसी की बात में उलझा दिया और सेठानी को सुलझा दिया।

२०८९) दोस्त की परख- एक सेठ था। उसके इकलौता बेटा था। सेठ अपने व्यापार में व्यस्त रहता था। सेठ का पुत्र बड़ा हुआ। व्यापार में हाथ बंटाने लगा। सेठ के पुत्र का एक मित्र था। वह बहुत चतुर था। रोज दुकान पर आता था। एक दिन सेठ ने बात ही बात में बेटे से पूछा- मित्र का स्वभाव कैसा है? बेटा बोला- पिताजी, बहुत अच्छा है।

सेठ बोला- पुत्र, मेरी एक शिक्षा है कि यदि किसी को मित्र बनाना है, तो सबसे पहले उसके बारे में पूरी परीक्षा लेनी चाहिए। बेटा बोला- पिताजी, मैं अपने मित्र को अच्छी तरह जानता हूं। मेरा मित्र बड़ा ईमानदार है, प्रामाणिक है।

समय बीता। सेठ ने दूर देश में जाकर व्यापार करने की सोची। सेठ ने पुत्र से कहा कि- पुत्र, मैं परदेश जा रहा हूं। पीछे से चोरी का खतरा है। सोचता हूं तिजोरी किसी ईमानदार के पास में रख दूं, लेकिन ऐसा व्यक्ति कौन है? पुत्र बोला- पिताजी, चिंता की क्या बात है, मेरा मित्र हर लिहाज से योग्य है। यह तिजोरी मैं उसके पास रख आता हूं। सेठ ने तिजोरी दे दी। उसका बेटा अपने मित्र के धर पर तिजोरी रख आया। पिता-पुत्र दोनों परदेश के लिए रवाना हो गए। सेठ ने खूब धन कमाया। फिर अपने घर के लिए रवाना हुआ। घर पहुंच कर सेठ ने बेटे से कहा- मित्र के यहां से तिजोरी ले आओ। देख लेना उसका वजन उतना ही है जितना पहले था। सेठ का बेटा मित्र के यहां गया। वापस खाली हाथ आया और बोला- पिताजी, आपने मेरे मित्र के साथ धोखा क्यों किया? आपने तिजोरी में धन रखने के बजाय पत्थर रखे थे? मेरा मित्र बहुत नाराज है। कह रहा था कि क्या मुझे चोर समझा है? सेठ ने शांत भाव से कहा- बेटा, परीक्षा हो गई। तेरे मित्र को धोखा मैंने नहीं दिया, धोखा दिया है तुम्हारे मित्र ने। उसने बिना पूछे ताला तोड़ा है। धन को साफ करने का प्रयास किया है। उसने तिजोरी नहीं खोली, तो उसे कैसे पता चला कि अन्दर माल नहीं होकर पत्थर हैं। मित्र ईमानदार नहीं है धोखेबाज है। इस परीक्षा से तुम समझ गए होंगे कि तुम्हारा मित्र कैसा है? इसलिए मैंने कहा था कि <u>किसी को मित्र बनाने से पहले उसे परख लेना चाहिए</u>।

२०९०) अपने लिए दूसरों को दुखी न करो - एक बार कुछ सिपाहियों ने मुहम्मद साहब का पीछा किया। उस समय उनके साथ केवल एक साथी था। उसने कहा, हजरत, वे समीप आ रहे हैं, अत: हमें सामने की खाई में छिप जाना चाहिए। वे दोनों जब उस खाई के पास पहुँचे, तो उन्हें वहाँ एक मकड़ी का जाला दिखाई दिया। वह साथी उसे तोड़ते हुए खाई में घुसने ही वाला था कि मुहम्मद साहब ने उसे रोका और बोले, दोस्त, खुदा के वास्ते इस जाले को न तोड़ो। बेचारी मकड़ी ने इस जाले को बनाने में काफी मेहनत की है। अत: इसे तोड़ना ठीक नहीं। किन्तु उस मित्र को यह बात जँची नहीं। वह बोला, समय कम है और अपनी जान बचाने के लिए इसे तोड़ना ही ठीक है, ऐसे समय पर दया तनिक भी नहीं बरतनी चाहिए। मुहम्मद साहब बोले, तुम्हारा कहना तो ठीक है। किन्तु अपनी जान बचाने के लिए दूसरे को दु:ख देना ठीक नहीं। ऐसे वक्त यदि हम दया न करें, तो कब करें? बात उसको जँच गयी और वे दोनों उस जाले को तनिक भी धक्का दिये बिना उस जाले के नीचे जा छिपे। सिपाही जल्दी ही वहाँ आये। उस खोह के ऊपर जाला देखकर उन्होंने सोचा कि यदि वे दोनों खोह में घुसे होते तो वह जाला टूट गया होता और वे आगे बढ़ गये।

२०९१) बिजली और तूफान की कहानी - बहुत समय पहले बिजली और तूफान धरती पर मनुष्यों के बीच रहा करते थे। राजा ने उन्हें मनुष्यों की बस्ती से दूर रखा था। बिजली तूफान की बेटी थी। जब कभी किसी बात पर बिजली नाराज हो उठती, वह तड़ककर किसी घर पर गिरती और उसे जला देती या किसी पेड़ को राख कर देती, या खेत की फसल

नष्ट कर देती। मनुष्य को भी वह अपनी आग से जला देती थी। जब-जब बिजली ऐसा करती, उसके पिता तूफान गरज-गरजकर उसे रोकने की चेष्टा करते। किंतु बिजली बड़ी ढीठ थी। वह पिता का कहना बिलकुल नहीं मानती थी। यहाँ तक कि तूफान का लगातार गरजना मनुष्य के लिए सिरदर्द हो उठा। उसने जाकर राजा से इसकी शिकायत की। राजा को उसकी शिकायत वाजिब लगी। उन्होंने तूफान और उसकी बेटी बिजली को तुरंत शहर छोड़ देने की आज्ञा दी और बहुत दूर जंगलों में जाकर रहने को कहा। किंतु इससे भी समस्या का समाधान नहीं हुआ। बिजली जब नाराज होती, जंगल के पेड़ जला डालती। कभी-कभी पास के खेतों का भी नुकसान कर डालती। मनुष्य को यह भी सहन न हुआ। उसने फिर राजा से शिकायत की। राजा बेहद नाराज हो उठा। उसने तूफान और बिजली को धरती से निकाल दिया और उन्हें आकाश में रहने की आज्ञा दी, जहाँ से वे मनुष्य का उतना नुकसान नहीं कर सकते थे जितना कि धरती पर रहकर करते थे। क्रोध का फल बुरा होता है।

२०९२) शांति की तलाश - किसी नगर में एक सेठ रहता था। करोड़ों रुपए की संपत्ति होते हुए भी वह अशांत रहता था। शांति पाने के लिए वह संत के पास पहुंचा। उसने उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया, महाराज। मैं अपार संपत्ति का स्वामी हूं। फिर भी मेरा मन अशांत रहता है। कृपया ऐसा कुछ दें, जिससे अशांति दूर हो जाए। सेठ ने सोचा कि संत उसे गंडा, ताबीज मंत्र आदि देंगे, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। संत मुस्कुराए और बोले, जाओ, बाहर धूप में बैठो। सेठ ने ऐसा ही किया। संत चैन से कुटिया के भीतर छाया में बैठे रहे, जबकि सेठ बाहर धूप में पसीना पोंछता रहा। सेठ को क्रोध तो आया पर वह चुपचाप बैठा रहा। तुम्हें खाना नहीं मिलेगा संत ने कहा। सेठ चुपचाप बैठा रहा। दिन भर भूख से वह तड़पता रहा। दूसरी तरफ संत ने उसे दिखा-दिखा कर भांति-भांति के पकवान खाए। इसी तरह शाम हो गई। सेठ ने सोचा कि अब शायद संत कुछ बताएंगे पर कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उसने सोचा कि अब यहां से चलना ही उचित है। यह सोचकर जैसे ही सेठ जाने लगा, संत उसके सामने खड़े हो गए और बोले, क्या हुआ सेठ? सेठ बोला, बड़ी आशाएं लेकर आपके पास आया था पर खाली हाथ लौट रहा हूं। कुछ मिलने की बात तो दूर, यहां भारी परेशानी झेलनी पड़ गई। संत ने कहा, मैंने तुझे इतना दिया, पर तूने कुछ नहीं लिया। जब मैं छाया में बैठा रहा और तुझे धूप में बैठाया, तो मैं तुझे बताना चाहता था कि मेरी छाया तेरे काम नहीं आ सकती। मगर मेरी बात तेरी समझ में न आई। जब मैंने स्वयं पकवान खाएं और तुझे भूखा रखा तो मैंने समझाना चाहा कि मेरे खा लेने से तेरा पेट नहीं भर सकता।

इसी प्रकार मेरी साधना से तुझे सिद्धि भी नहीं मिल सकती। इसके लिए तुझे स्वयं प्रयत्न करना होगा। अपनी अशांति तुम स्वयं ही दूर कर सकते हो। सेठ ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए स्वयं साधक बनने का संकल्प किया।

२०९३) परोपकार का रास्ता- बहुत पुरानी बात है। फिलाडेल्फिया में फ्रैंकलिन नामक एक गरीब युवक रहता था। उसके मोहल्ले में हमेशा अंधेरा रहता था। वह रोज यह देखता था कि अंधेरे में आने-जाने में लोगों को बहुत दिक्कत होती है। एक दिन उसने अपने घर के सामने एक बांस गाड़ दिया और शाम को उस पर एक लालटेन जला कर टांग दिया। लालटेन से उसके घर के सामने उजाला हो गया। लेकिन मोहल्ले के लोगों ने इसके लिए उसका मजाक उड़ाया। एक व्यक्ति बोला- फ्रैंकलिन, तुम्हारे एक लालटेन जला देने से कुछ नहीं होगा। पूरे मोहल्ले में तो अंधेरा ही रहेगा। उसके घरवालों ने भी उसके इस कदम का विरोध किया और कहा, तुम्हारे इस काम से फालतू में पैसा खर्च होगा। फ्रैंकलिन ने कहा, मानता हूं कि एक लालटेन जलाने से ज्यादा लोगों को फायदा नहीं होगा मगर कुछ लोगों को तो इसका लाभ मिलेगा ही। कुछ ही दिनों में इसकी चर्चा शुरू हो गई और फ्रैंकलिन के प्रयास की सराहना भी होने लगी। उसकी देखादेखी कुछ और लोग भी अपने-अपने घरों के सामने लालटेन जलाकर टांगने लगे। एक दिन पूरे मोहल्ले में उजाला हो गया। यह बात शहर भर में फैल गई और म्युनिसिपल कमेटी पर चारों

तरफ से यह दबाव पड़ने लगा कि वह उस मोहल्ले में रोशनी का इंतजाम अपने हाथ में ले। कमेटी ने ऐसा ही किया। इस तरह फ्रैंकलिन की शोहरत चारों तरफ फैल गई। एक दिन म्युनिसिपल कमेटी ने फ्रैंकलिन का सम्मान किया। इस मौके पर जब उससे पूछा गया कि उसके मन में यह खयाल कैसे आया, तो फ्रैंकलिन ने कहा, मेरे घर के सामने रोज कई लोग अंधेरे में ठोकर खाकर गिरते थे। मैंने सोचा कि मैं ज्यादा तो नहीं लेकिन अपने घर के सामने थोड़ा तो उजाला कर ही सकता हूं।

२०९४) काशी की सड़क- काशी की एक व्यस्त सड़क पर शाम के समय एक घायल महिला कराह रही थी। साथ में पड़ा उसका शिशु भी भूख से बिलख रहा था। राह चलते लोग उसे देखते, रुकते और फिर आगे बढ़ जाते। कुछ आपस में बड़बड़ाते- पता नहीं यह कौन है, कहां से आई है। हर किसी के चेहरे पर उसके प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव था। कोई उसकी मदद कर झंझट में नहीं पड़ता चाहता था। थोड़ी देर बाद वहां से दो घोड़ों वाली एक बग्घी गुजरी। घायल औरत और उसके बिलखते शिशु को देखकर उस पर सवार सज्जन ने बग्घी रुकवाई। कोचवान की सहायता से औरत और बच्चे को बग्घी में लिटाया। फिर कोचवान को आदेश दिया- सिविल अस्पताल चलो। कोचवान ने उन्हें टोकते हुए कहा- मगर साहब, अभी तो आपको एक जरूरी सभा में जाना है। अस्पताल जाएंगे तो वहां पहुंचने में देरी हो सकती है। इस पर उस सज्जन ने कहा- वहां के लोग तो मेरी प्रतीक्षा कर सकते हैं पर इन दोनों के लिए तो एक-एक पल भारी है। फिर वहां भी तो मुझे मानव परोपकार पर ही बोलना है। व्यवहार में मैं परोपकार न करूं और वहां इस पर भाषण दूं, क्या यह ठीक है? जल्दी अस्पताल चलो। कोचवान ने बग्घी अस्पताल की ओर मोड़ दी। बग्घी में मां-बेटा दोनों बड़ी राहत महसूस कर रहे थे। अस्पताल में जब दोनों का उपचार शुरू हो गया तब उस सज्जन ने कोचवान से कहा- चलो अब सभा में चलते हैं। वह सज्जन थे- पंडित मदनमोहन मालवीय। वह जरूरतमंद की सहायता करने का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे।

२०९५) पश्चाताप की आग - स्टॉकहोम में पैदा हुए अल्फ्रेड नोबेल बचपन से ही अत्यंत जिज्ञासु व प्रतिभाशाली थे। उन्होंने डाइनामाइट नामक विस्फोटक का आविष्कार किया, जो चट्टानें तोड़ने और बंदूक आदि की गोलियां बनाने के काम आया। नोबल ने इस विस्फोटक को बनाने में बहुत मेहनत की थी। इस विस्फोटक के उत्पादन के लिए उन्होंने एक कारखाना लगाया था। अचानक एक दिन उस कारखाने में भयंकर विस्फोट हुआ और पूरा कारखाना उड़ गया। इस दुर्घटना में नोबेल के भाई की मृत्यु हो गई। नोबेल को अपने भाई से गहरा लगाव था। वह उसके बिना अपने जीवन कल्पना भी नहीं कर सकते थे। भाई की मृत्यु ने उन्हें बुरी तरह झकझोर दिया था। कई दिनों तक वह पागलों की सी स्थिति में बैठे रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने स्वयं को संभाला। एक दिन वह अपने एक मित्र से बोले, काश, मैं विध्वंस के साधन की जगह किसी रोग या महामारी से बचानेवाले जीवनरक्षक साधन का आविष्कार करता। ऐसे में मेरे भाई के साथ-साथ अनगिनत निर्दोष लोग असमय ही मौत का शिकार नहीं बनते। मित्र ने उन्हें समझाया और आगे बढ़ने को प्रेतिरत किया। किंतु वे कारखाने में हुई मौतों का जिम्मेदार स्वयं को समझने लगे थे। उन्होंने अपने जीवन में लगभग १० लाख डॉलर की राशि अर्जित की थी। मृत्यु से पहले उन्होंने इस राशि से शांति के क्षेत्र में कार्य करनेवालों के लिए अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार शुरू करने की घोषणा की। इस तरह विश्व के सबसे बड़े सम्मान नोबेल पुरस्कारों की शुरुआत हुई।

२०९६) चित्र का रहस्य - एक बार एक कलाकार ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। उसे देखने के लिए शहर के सभी वर्गों के सैकड़ों लोग पहुंचे। सब घूम-घूमकर तस्वीरें देख रहे थे। एक लड़की भी उस प्रदर्शनी को देखने आई। उसने देखा कि सब चित्रों के अंत में एक ऐसे मनुष्य का चित्र टंगा है जिसके मुंह को बालों से ढक दिया गया है। और पैरों पर पंख लगे हैं। चित्र के नीचे बड़े अक्षरों में लिखा था- अवसर। चित्र कुछ भद्दा सा था, इसलिए लोग उस पर थोड़ी देर के

लिए नजर डालते और आगे बढ़ जाते। लड़की का ध्यान शुरू से ही इस चित्र की ओर था। जब वह उसके पास पहुंची तो उसने पास में बैठे कलाकार से पूछ ही लिया, श्रीमान्। यह चित्र किसका है? कलाकार ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया, अवसर का। लड़की की उत्सुकता बढ़ी। उसने पूछा, आपने इसका मुंह क्यों ढक दिया है? इस बार कलाकार ने विस्तार से बताया, लड़की ने फिर पूछा, और इसके पैरों में पंखों का क्या रहस्य है? कलाकार बोला, लड़की ने इस बात का मर्म समझ लिया और उसी क्षण से वह अपनी उनति के लिए मेहनत करने में जुट गई।

२०९७) तपस्या - एक योगी, जो अपनी सिद्धियों के लिए बहुत विख्यात था, एक गांव में पहुंचा। लोगों ने बहुत आवभगत की। एक बुजुर्ग ने पूछा, क्या-क्या सिद्धियां हैं आपके पास? योगी ने कहा, मैंने चौदह साल जंगल में रहकर योगाभ्यास किया है, जिससे मैंने पानी के ऊपर चलने की विद्या हासिल की है। मेरे ईश्वर का आशीर्वाद है यह। मेरी तपस्या सफल है। बुजुर्ग ने कहा, तुमने बिना वजह चौदह साल क्यों तकलीफ झेली? तुम्हें पानी पर खुद चलने की क्या जरूरत है? किसी भी मांझी को तुम दो रुपए दे दो, तो वह तुम्हें नदी पार करा देगा। इस तरह देखो, तो जो सिद्धि तुमने पाई है, उसकी कीमत केवल दो रुपए ही तो हैं। किसी मुर्दे में जान फूंकनी आती हो, तो समाज का भला भी हो।

२०९८) धनवान कौन - एक महात्मा को एक बार रास्ते में पड़ा धन मिल गया। उन्होंने निश्चय किया कि वह इसे सबसे गरीब आदमी को दान कर देंगे। निर्धन आदमी की तलाश में वह खूब घूमे। उन्हें कोई सुपात्र नहीं मिला। एक दिन उन्होंने देखा राजमार्ग पर राजा के साथ अस्त्र-शस्त्रों से सजी विशाल सेना चली आ रही है। राजा महात्मा को पहचानता था। हाथी से उतरकर उसने महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा ने अपनी झोली से धन निकाला और राजा को थमा दिया। राजा ने विनीत स्वर में कहा, महाराज। आपके आशीर्वाद से मेरे खजाने में हीरे-जवाहरात का भंडार है। महात्मा ने उत्तर दिया, राजन्, मैं गरीब आदमी की तलाश में था। तुम सबसे गरीब हो। यदि तुम्हारे खजाने में धन का अंबार है, तो सेना लेकर कहां जा रहे हो? अगर तुम्हें किसी बात की कमी नहीं, तो यह सब किसलिए? राज्य के विस्तार और धन के लिए। महात्मा की बातों ने असर किया। राजा ने तत्काल अपनी सेना को लौटने का आदेश दिया। वह ऐसे जा रहा था, मानो अनमोल खजाना जीतकर लौट रहा हो।

२०९९) उचित शुल्क - मथुरा के पास किसी गांव में एक वैद्य रहते थे। उनके पास दूर-दराज से रोगी आते, इसलिए उनका आश्रम हमेशा भरा रहता था। एक बार उनके पास एक ही रोगे से पीड़ित दो रोगी उपचार के लिए लाए गए। उनमें से एक धनी व्यापारी का पुत्र था और दूसरा गरीब किसान का बेटा। वैद्याचार्य ने दोनों रोगियों को गंभीरता से देखा फिर व्यापारी से बोले, आपके पुत्र के उपचार में सौ अशर्फियां लगेंगी। यह सुनकर किसान घबरा गया। वह विचार करने लगा कि वह इतना अधिक शुल्क कैसे दे पाएगा? किसान को परेशान देख वैद्याचार्य उससे बोले, तुम्हें यह नहीं देना है। जब तक तुम्हारा पुत्र ठीक नहीं हो जाता तुम आश्रम में रहकर दूसरे मरीजों की सेवा करोगे। यही तुम्हारे पुत्र के उपचार का शुल्क होगा। इससे किसान को तो राहत मिल गई, लेकिन व्यापारी सोचने लगा कि वैद्याचार्य उसे ठग रहे हैं। उसने अपनी आशंका जताई तो वैद्याचार्य बोले, मेरे लिए दोनों रोगी बराबर हैं पर तुम लोगों की क्षमताएं अलग-अलग हैं। मैंने तुम दोनों की क्षमताओं के अनुसार ही शुल्क मांगा है। इस आश्रम को धन और सेवा दोनों की आवश्यकता है। तुम्हारे पास धन है जो औषधि मंगाने के काम आ सकता है, जबकि इस गरीब किसान के पास सेवा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह अपनी सेवा से आश्रम के रोगियों को लाभ पहुंचा सकता है। इसी को ध्यान में रखकर मैंने तुम दोनों के लिए अलग-अलग तरह के शुल्क तय किए।

२१००) कछुए की चतुराई - एक कछुए ने राजा का कोई अपराध किया। राजा उसको कड़ी से कड़ी सजा देना चाहता था। राजा ने कछुए को उल्टा लटकाने का हुक्म दिया। सुनकर कछुए ने कहा- उल्टे लटकने से तो मुझे बड़ा मजा आएगा। मैं चाहता ही था कि सर्दी में मेरे पेट पर धूप लगे। कछुए का बात सुनकर राजा सोच में पड़ गया कि अगर उल्टे लटकने से कछुए को अच्छा लगता है तो यह सजा कैसे हुई? उसने हुक्म दिया कि कछुए का पीठ पर दनादन कोड़े बरसाए जाएं। यह हुक्म सुनकर कछुआ और भी खुश होकर बोला- वाह, यह तो और बहुत अच्छा होगा। इससे तो मेरी पीठ और मजबूत हो जाएगी। कछुए की बात सुनकर राजा ने अपना इरादा बदल दिया उसने कछुए को पानी में फिंकवाने का फैसला किया। कछुआ चिल्लाया- नहीं, नहीं। कुछ भी करो, लेकिन मुझको पानी में मत फेंको। पानी तो बहुत ठंड है। सर्दी के मारे मेरी जान ही निकल जाएगी। राजा ने कछुए की एक नहीं सुनी। कछुआ पानी में फेंक दिया गया। राजा खुश था कि आखिर उसने कछुए को सही सजा दी। कछुआ भी खुश था कि वह अपने घर वापस पहुंच गया।

२१०१) ऐसा गुस्सा क्यों - राजा शूरसेन को क्रोध बहुत आता था और वह गुस्से में कई बार अनुचित फैसले भी ले लेते थे, जिससे भारी परेशानी होती थी। हालांकि क्रोध उतरने पर वह माफी भी मांग लेते थे। एक दिन राजा अपने मंत्री से बातचीत कर रहे थे। उसी समय मंत्री के मुंह से कुछ गलत बात निकल गई, जिसे सुनकर राजा का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया। उन्होंने आव देखा न ताव तुरंत मंत्री को फांसी की सजा सुना दी। मंत्री को फांसी के लिए ले जाया जाने लगा। उससे आखिरी इच्छा पूछी गई। मंत्री राजा के क्रोध को समझता था। वह बोला, महाराज, मैंने हाल ही में एक कला सीखी है। मैं पशुओं की बोली समझ सकता हूं और उनसे बात भी कर सकता हूं। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं वह कला आप को सिखाऊं। राजा ने पूछा, उस कला को सीखने में कितना समय लगेगा? मंत्री बोला, कम से कम तीन महीने। मंत्री की आखिरी इच्छा का सम्मान कर राजा ने फांसी को तीन माह के लिए टलवा दिया। इतने दिनों में राजा का गुस्सा शांत हो गया। वह समझ गए कि पशुओं की भाषा वाली बात मंत्री ने जानबूझकर गढ़ी है ताकि फांसी को टाला जा सके। उन्हें इस बात का भी अहसास हो गया कि बिना मतलब ही उन्होंने मंत्री को फांसी की सजा सुना दी थी। वह मंत्री से बोले, मंत्री जी, हमें माफ कर दीजिए, उस दिन हम गुस्से में बहुत गलत फैसला ले बैठे थे। अगर उस दिन आप चतुराई से पशुओं से बात करनेवाली कला के बारे में नहीं कहते तो शायद हम आज पछता रहे होते। मंत्री बोला, मैंने तो अपनी चतुराई से जान बचा ली लेकिन उनका क्या जो आपके क्रोध का आए दिन शिकार होते हैं। आप क्रोध पर नियंत्रण रखने का प्रयास करें। इससे आप प्रजा के बीच अलोकप्रिय होते जा रहे हैं। राजा ने उस दिन से गुस्से पर काबू करना शुरू कर दिया।

२१०२) पत्थर और सोना - बर्मिंघम के निवासी जेफरसन अपनी कंजूसी के लिए शहर भर में प्रसिद्ध थे। काफी संपन्न होने के बावजूद वह हर चीज में कटौती किया करते थे। उन्होंने धन जोड़-जोड़कर काफी सोना इकट्ठा कर लिया था। सारा सोना उन्होंने अपने बंगले के बगीचे में एक गड्ढा खोदकर गाड़ दिया। वह रोज नियम से दो बार बगीचे में आते और अपना सोना देखकर राहत महसूस करते। इस चक्कर में तो वह कई बार खाना-पीना तक भूल जाते थे। एक दिन जब वह अपना सोना देखने गए तो उन्होंने वह गड्ढा खुदा हुआ पाया। यह देखते ही वह जोर-जोर से रोने लगे। रोने की आवाज सुनकर पड़ोसी पीटर भागा-भागा आया। उसने जेफरसन से रोने का कारण पूछा। जेफरसन ने रोते हुए बताया- भाई यहां सोना दबा हुआ था, जिसे देखकर मैं जी रहा था। कोई उसे ले गया। पीटर ने पूछा- यह बताओ, उस सोने का तुम क्या करते थे? जेफरसन ने कहा- कुछ नहीं। वह तो बस यहीं दबा पड़ा था। पीटर ने फिर पूछा- तुम उसका क्या करने वाले थे?

जेफरसन ने कहा- कुछ नहीं। यह सोचकर खुशी मिलती थी कि मेरे पास इतना सोना है। इसलिए मैं उसे रोज निहारा करता था। पीटर वहां पास से दो-चार पत्थर उठा लाया। फिर उसने जेफरसन से कहा- अगर वह सोने का भंडार सिर्फ निहारने के लिए था तो लो ये पत्थर, इन्हें सोना समझकर निहारते रहना और जीते रहना। इन्हें कोई चुराएगा भी नहीं सो तुम चिंतामुक्त भी रहोगे। पीटर की इस बात ने जेफरसन की आंखें खोल दी। उसने धन-संपत्ति का मोह छोड़ दिया।

२१०३) जैसी होगी दृष्टि वैसी होगी सृष्टि - एक राजा था, बहुत प्रभावशाली, बुद्धि और वैभव से संपन्न। आस-पास के राजा भी समय-समय पर उससे परामर्श लिया करते थे। एक दिन राजा अपनी शैया पर लेटे-लेटे सोचने लगा, मैं कितना भाग्यशाली हूँ। कितना विशाल है मेरा परिवार, कितना समृद्ध है मेरा अंत:पुर, कितनी मजबूत है मेरी सेना, कितना बड़ा है मेरा राजकोष। मेरे राजनिवास की शोभा को देखकर अप्सराएं भी ईर्ष्या करती होंगी। मेरा हर वचन आदेश होता है।

राजा कवि हृदय था और संस्कृत का विद्वान था। अपने भावों को उसने शब्दों में पिरोना शुरू किया। तीन चरण बन गए, चौथी लाइन पूरी नहीं हो रही थी। राजा बार-बार गुनगुना रहा था-

चेतोहरा: युवतय: स्वजनाऽनुकूला:, सद्बान्धवा: प्रणयगर्भनिरश्च भृत्या:, गर्जन्ति दन्तिनिवहास्विरलास्तुरंगा: |

मेरी चित्ताकर्षक रानियां हैं, अनुकूल स्वजन वर्ग है, श्रेष्ठ कुटुंबी जन हैं। कर्मकार विनम्र और आज्ञापालक हैं, हाथी, घोड़ों के रूप में विशाल सेना हैं। लेकिन बार-बार गुनगुनाने पर भी चौथी-चरण बन नहीं रहा था। संयोग की बात है कि उसी रात एक चोर राजमहल में चोरी करने के लिए आया था। मौका पाकर वह राजा के शयनकक्ष में घुस गया और पलंग के नीचे दुबक कर बैठ गया। चोर भी संस्कृत भाषा का विज्ञ और आशु कवि था। समस्यापूर्ति का उसे अभ्यास था।

राजा द्वारा गुनगुनाए जाते श्लोक के तीन चरण चोर ने सुन लिए। राजा के दिमाग में चौथी लाइन नहीं बन रही है, यह भी वह जान गया। लेकिन तीन लाइनें सुनकर उस चोर का कवि मन भी उसे पूरा करने के लिए मचलने लगा। वह भूल गया कि वह चोर है और राजा के कक्ष में चोरी करने घुसा है। अगली बार राजा ने जैसे ही वे तीन लाइनें पूरी कीं, चोर के मुंह से चौथी लाइन निकल पड़ी, **सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ||**

राज्य, वैभव आदि सब तभी तक है, जब तक आंख खुली है। आंख बंद होने के बाद कुछ नहीं है। अत: किस पर गर्व कर रहे हो? चोर की इस एक पंक्ति ने राजा की आंखें खोल दीं। उसे सम्यक् दृष्टि मिल गई। वह चारों ओर विस्फारित नेत्रों से देखने लगा- ऐसी ज्ञान की बात किसने कही? कैसे कही? उसने आवाज दी, पलंग के नीचे जो भी है, वह मेरे सामने उपस्थित हो। चोर सामने आकर खड़ा हुआ। फिर हाथ जोड़ कर राजा से बोला, हे राजन्। मैं आया तो चोरी करने था, पर आपके द्वारा पढ़ा जा रहा श्लोक सुनकर यह भूल गया कि मैं चोर हूं। मेरा काव्य प्रेम उमड़ पड़ा और मैं चौथे चरण की पूर्ति करने का दुस्साहस कर बैठा। हे राजन्, मैं अपराधी हूं। मुझे क्षमा कर दें।

राजा ने कहा, तुम अपने जीवन में चाहे जो कुछ भी करते हो, इस क्षण तो तुम मेरे गुरु हो। तुमने मुझे जीवन के यथार्थ का परिचय कराया है। आंख बंद होने के बाद कुछ भी नहीं रहता- यह कहकर तुमने मेरा सत्य से साक्षात्कार करवा दिया। तुम मुझसे जो चाहो मांग सकते हो। राजा ने आगे कहा, आज मेरे ज्ञान की आंखें खुल गईं। इसलिए शुभस्य शीघ्रम्- इस सूक्त को आत्मसात करते हुए मैं शीघ्र ही संन्यास लेना चाहता हूं। राज्य अब तृण के समान प्रतीत हो रहा है। तुम यदि मेरा राज्य चाहो तो मैं उसे सहर्ष देने के लिए तैयार हूँ। चोर बोला, राजन्, आपको जैसे इस वाक्य से बोध पाठ मिला है, वैसे ही मेरा मन भी बदल गया है। मैं भी संन्यास स्वीकार करना चाहता हूं। राजा और चोर दोनों संन्यासी बन गए। एक ही पंक्ति ने दोनों को स्पंदित

कर दिया। यह है सम्यक् दृष्टि का परिणाम। जब तक राजा की दृष्टि सम्यक नहीं थी, वह धन-वैभव, भोग-विलास को ही सब कुछ समझ रहा था। ज्यों ही आंखों से रंगीन चश्मा उतरा, दृष्टि सम्यक् बनी कि पदार्थ पदार्थ हो गया और आत्मा आत्मा।

२१०४) एक कहानी - एक राजा था। वह अपनी बेटी से बहुत प्यार करता था, उसकी हर इच्छा पूरी करता था। लेकिन बेटी को कभी महल के बाहर नहीं जाने देता था। बेटी महल के बाहर की दुनिया से अपरिचित थी। एक दिन बेटी ने शहर देखने की इच्छा जताई। राजा के मना करने पर बेटी रूठ गई। राजा चिंता में पड़ गए। फूल-सी बेटी, कभी पैदल ज्यादा चली नहीं। महल की नर्म चटाइयों पर रहने वाले कोमल पैर पथरीली सड़कों पर कैसे चलेंगे? उस समय न तो आज जैसी कोई पक्की सड़क थी, न ही जूतों का जन्म हुआ था। क्या किया जाए?

सोच-विचार के बाद राजा ने मंत्रियों को आदेश दिया की पूरी शहर की गलियों पर चमड़े की चादर बिछा दी जाए, ताकि राजकुमारी को चलने में तकलीफ न हो। तभी एक दरबारी ने सुझाव दिया कि सारे शहर में चमड़ा बिछाने के बजाय क्यों न राजकुमारी के पैरों में चमड़ा पहना दिया जाए। इससे राजकुमारी के पैर भी सुरक्षित रहेंगे और काम भी आसान हो जाएगा। बात बड़ी सरल और तर्कपूर्ण है। सुनते हैं तभी से जूते पहनने का चलन शुरू हुआ।

२१०५) राजकुमार ने त्यागी उद्दंडता - एक राजकुमार स्वभाव से बहुत उद्दंड और दुष्ट प्रवृत्ति का था। एक बार उसके राज्य में गौतम बुद्ध धर्मोपदेश के लिये आए। राजा ने बुद्ध से राजकुमार को सुधारने के लिये कोई उपाय पूछा।

बुद्ध ने राजकुमार को अपने पास बुलाया और पास ही लगे पौधे से कुछ पत्तियां तोड़कर खाने को दी। राजकुमार ने पत्ती खायी थी वे बहुत कड़वी थीं। अब उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। गुस्से में उसने पौधे को ही उखाड़कर फेंक दिया। तब मुस्कराकर बुद्ध ने राजकुमार से पूछा- क्यों उखाड़ फेंका?

राजकुमार ने जवाब दिया- यह पौधा बहुत कड़वा था, आगे चलकर विषाक्त पेड़ हो जाता, इसलिये इसे आज ही उखाड़ देना चाहिये। बुद्ध ने कहा और तुम सब लोगों से कड़वा व्यवहार करते हो उसे देखकर वे तुम्हारे साथ वहीं करें तो। राजकुमार को बहुत ग्लानि हुई। वह विनम्रता की प्रतिमूर्ति बन गया।

२१०६) नकल करना बुरा है - एक पहाड़ की ऊंची चोटी पर एक बाज रहता था। पहाड़ की तराई में बरगद के पेड़ पर एक कौआ अपना घोंसला बनाकर रहता था। वह बड़ा चालाक और धूर्त था। उसकी कोशिश सदा यही रहती थी कि बिना मेहनत किए खाने को मिल जाए। पेड़ के आसपास खोह में खरगोश रहते थे। जब भी खरगोश बाहर आते तो बाज ऊंची उड़ान भरते और एकाध खरगोश को उठाकर ले जाते।

एक दिन कौए ने सोचा, वैसे तो ये चालाक खरगोश मेरे हाथ आएंगे नहीं, अगर इनका नर्म मांस खाना है तो मुझे भी बाज की तरह करना होगा। एकाएक झपट्टा मारकर पकड़ लूंगा। दूसरे दिन कौए ने भी एक खरगोश को दबोचने की बात सोचकर ऊंची उड़ान भरी। फिर उसने खरगोश को पकड़ने के लिए बाज की तरह जोर से झपट्टा मारा। अब भला कौआ बाज का क्या मुकाबला करता। खरगोश ने उसे देख लिया और झट वहां से भागकर चट्टान के पीछे छिप गया। कौआ अपनी ही झोंक में उस चट्टान से जा टकराया। नतीजा, उसकी चोंच और गरदन टूट गई और उसने वहीं तड़प कर दम तोड़ दिया।

२१०७) राजा और अपराधी - बहुत पुरानी कथा है। एक बार एक लड़का अपने पिता के साथ कहीं जा रहा था। तभी उन्हें शोरगुल सुनाई पड़ा। कुछ देर बाद वहां का राजा पांच-छह सिपाहियों के साथ उधर से निकला। जब वह चला गया तो लड़के ने अपने पिता से पूछा- यह कौन जा रहा था? पिता ने उत्तर दिया- यह यहां के राजा हैं। थोड़ी देर बाद बालक

ने देखा कि एक व्यक्ति को पांच-छह सिपाही घेरकर चले जा रहे हैं। बालक ने फिर सवाल किया- पिताजी, यह कौन है? पिता ने जवाब दिया- यह अपराधी है। इसने जरूर कोई बुरा काम किया होगा। इस पर उस लड़के को काफी आश्चर्य हुआ। उसने कहा- यह कैसी बात है। सिपाहियों के साथ जानेवाला एक राजा और दूसरा अपराधी। इस पर पिता हंसे फिर उन्होंने कहा- पुत्र, बात तो ठीक है पर इन दोनों में बड़ा अंतर है। राजा के साथ पांच-छह सिपाही थे। वे सिपाही राजा के अधीन थे। लेकिन वह अपराधी सिपाहियों के अधीन था। राजा ने ही अपराधी को दंड दिया होगा। राजा उसके भाग्य का निर्धारक है पर अपराधी राजा का भाग्य तय नहीं कर सकता। बल्कि वह अपने बारे में भी कुछ तय नहीं कर सकता। उसे अपने बुरे कार्य का दंड भोगना पड़ेगा। एक तरह से देखें तो इन दोनों में एक शासक है दूसरा दास। राजा शासक है और अपराधी गुलाम। इसलिए हमें अच्छे कार्य करने चाहिए।

२१०८) ईर्ष्या की आग - दो विद्वान एक सेठ के घर भोजन के लिए आमंत्रित थे। ये दोनों विद्वान एक-दूसरे को देखना नहीं पसंद करते थे और मौका मिलते ही एक-दूसरे की बुराई करने लगते थे। दोनों नियत समय पर सेठ के घर पहुंचे और एक-दूसरे को देखकर मुंह बनाने लगे। सेठ ने दोनों से स्नान करने का निवेदन किया। जब एक विद्वान नहाने चला गया तो सेठजी दूसरे के पास आकर बैठ गए और बातें करने लगे। वह बोले, महाराज, लगता है आपके ये साथी पहुंचे हुए विद्वान हैं। उन्हें काफी गूढ़ बातें मालूम है। दूसरा विद्वान भला यह कैसे सुन सकता था? वह तपाक से बोला, अरे नहीं सेठजी, इसका तो विद्वता से दूर-दूर तक का कोई रिश्ता नहीं है। यह तो निरा बैल है। पता नहीं इसे लोग अपने यहां क्या सोचकर आमंत्रित कर लेते हैं। तभी उसका साथी नहाकर बाहर आता दिखाई दिया तो वह चुप हो गया। कुछ देर बाद वह स्वयं स्नान के लिए चला गया तो सेठजी पहले विद्वान से बातें करने लगे और दूसरे विद्वान के बारे में बोले, अभी मैं आपके साथी से ही बातें कर रहा था। मुझे तो वह वेदों के बहुत बड़े ज्ञाता लगे। सेठजी की बात पर वह विद्वान हंसते हुए बोला, क्या सेठजी, वह और विद्वान। अरे विद्वान आपने देखे ही कहां हैं। वह तो निरा गधा है। अपने साथी के वापस आते ही वह भी चुप हो गया। कुछ देर बाद दोनों को भोजन के लिए बुलाया गया। दो थालियां रखी गईं, जिनमें से एक में घास और दूसरे में भूसा रखा था। दोनों विद्वान बिदक कर सेठजी से बोले, यह क्या। आपने हमारा अपमान करने के लिए यहां बुलाया है? उनकी बातें सुनकर सेठजी बोले, महाराज। आप दोनों ने ही तो एक-दूसरे को गधा और बैल बताया है। गधा और बैल ऐसी ही खुराक खाते हैं। अब इसमें मेरा क्या दोष? यह सुनकर दोनों शर्मिंदा हो गए। उन्होंने ईर्ष्या की आग अपने भीतर से निकाल दी।

२१०९) चूक गए पुरस्कार से - पुराने जमाने में एक राजा था। उसे सुंदर इमारतें बनवाने का शौक था। उसने दूर-दूर से कुशल शिल्पियों को अपने राज्य में बुला रखा था ताकि वे राज्य में और सुंदर-सुंदर इमारतों व विशाल प्रासादों और भवनों का निर्माण कर सकें। राजा शिल्पियों का आदर भी करता था और उन्हें उचित पारिश्रमिक के अलावा पुरस्कार भी देता था। इन्हीं शिल्पियों में एक अत्यंत अनुभवी शिल्पी भी था जो अब वृद्ध हो गया था। उसने वर्षों तक राज्य की सेवा करते हुए अनेक उत्कृष्ट भवनों का निर्माण किया था। एक दिन वृद्ध शिल्पी ने राजा से कहा, महाराज मैंने जीवन भर राज्य की सेवा की है लेकिन अब मैं वृद्ध हो गया हूं इसलिए मुझे राज्य की सेवा से मुक्त करने की कृपा करें। राजा ने वृद्ध शिल्पी की बात बड़े ध्यानपूर्वक सुनी और उससे कहा, ध्यानपूर्वक सुनी और उससे कहा, महान शिल्पी आपकी सेवाओं के लिए मैं ही नहीं पूरा राज्य आपका कृतज्ञ है। आपको सेवानिवृत्त होने का पूरा अधिकार है लेकिन मेरी ख्वाहिश है कि सेवानिवृत्ति से पहले आप मेरे लिए एक भवन और बनाओ जो आज तक बने सभी भवनों से श्रेष्ठ व उत्कृष्ट हो। शिल्पी राजा की ख्वाहिश को कैसे टाल सकता

था। वह भवन बनाने के काम में जुट गया लेकिन बेमन से। उसने उस श्रेष्ठता व उत्कृष्टता का परिचय नहीं दिया जिसकी उससे अपेक्षा थी। बस किसी तरह भवन पूरा कर दिया और राजा से पुन: सेवामुक्ति की प्रार्थना की। राजा ने कहा, मैं आपकी कला से अत्यंत प्रभावित हूं और इसीलिए मैंने आपसे इस उत्कृष्ट भवन का निर्माण करवाया है ताकि आपको पुरस्कार स्वरूप ये भवन दे सकूं। शिल्पी प्रसन्न तो हुआ लेकिन उसे इस बात का बेहद अफसोस हुआ कि उसने इस भवन का निर्माण पूरे मन से नहीं किया और उसमें अनेक कमियां रह गईं। हमारी सेवानिवृत्ति के बाद की अवस्था भी प्राय: कुछ ऐसी ही होती है, जहां हम अपनी श्रेष्ठता को नजरअंदाज कर अनमने ढंग से काम करने लगते हैं और अपना वास्तविक पुरस्कार खो बैठते हैं।

२११०) समय का मूल्य - राजदरबार में एक आदमी आया। उसने राजा से प्रार्थना की, महाराज, मैं बहुत गरीब हूं, कृपया मुझे सोने के कुछ सिक्के दे दीजिए। राजा ने पूछा, तुम कोई काम क्यों नहीं करते? वह बोला, मुझे कोई काम नहीं देता। लोग मुझे आलसी कहते हैं। राजा ने कहा, ठीक है, खजाने से तुम जितना सोना ले जाना चाहो, ले जाओ। परंतु ध्यान रखना, सूरज ढलने के बाद खजाना बंद हो जाता है, इसलिए समय पर आ जाना। वह आदमी बहुत खुश हुआ। अगले दिन नाश्ता कर वह खजाने की ओर चल दिया। रास्ते में उसे एक छायादार पेड़ मिला। घनी छाया देखकर वह वहीं सो गया। दोपहर में जब नींद खुली तो उसने सोचा, शायद मैं ज्यादा देर सो गया। खैर कोई बात नहीं, शाम होने में अभी काफी समय बाकी है। वह उठकर आगे बढ़ा। रास्ते में मेला लगा हुआ था। उसने सोचा, क्यों न कुछ देर मेला देख लिया जाए, फिर खजांची के पास चला जाऊंग। काफी देर तक वह मेरे का आनंद लेता रहा। जब उसने देखा कि अब सूरज डूबने ही वाला है तो उसे राजा की चेतावनी याद आई। वह भागकर खजाने के पास पहुंचा लेकिन तब तक सूरज डूब चुका था। सैनिकों ने उसे अंदर जाने से रोक दिया। उन्होंने कहा, तुमने देर करके अमीर बनने का एक बढ़िया मौका खो दिया। वह अपने घर लौट गया। उसे बेहद पछतावा हो रहा था। उसने तय किया कि जीवन में वह कभी आलस्य नहीं करेगा।

२१११) डींगबाज - एक गांव में एक डींगबाज इंसान रहता था। वह बड़ी लंबी-लंबी डींगें हाकता था। लोगों ने उसका नाम फां फूं रख दिया। एक दिन चौपाल में बैठे-बैठे फां फूं ने लंबी हांकी- हमारे घर में सात पीढ़ी से गांव के लोग आते हैं। किसी के घर में कोई सामान नहीं होता है तो हमारे यहां से मांगकर ले जाते हैं। सुननेवाले लोगों ने भी सोचा शायद ऐसा होता होगा। एक दिन गांव में एक गरीब आदमी के घर एक मेहमान आ गया। गरीब के पास उसे सुलाने के लिए खाट नहीं थी। वह गरीब आदमी पड़ोसी के पास गया। पड़ोसी ने फां फूं की बाते सुन रखी थी। उसने कहा- भाई, तुन्हें खाट चाहिए तो फां फूं के पास जाओ। उसने वैसा ही किया। फां फूं गरीब आदमी के खाट मांगने पर उलझन में पड़ गया क्योंकि उसके पास खाट के नाम पर एक पाया (खाट का पांव) था। फां फूं ने एक पाया देते हुए कहा- यह ले जाओ खाट। आश्चर्यचकित गरीब आदमी ने पूछा, यह खाट कहां है? फां फूं ने कहा- दो ईस घटै, दो उप घटै और तीन घटै छै पाया। बीच में झाबकझोल यो माचौ ले जा भाया। यानी इस खाट में दो ईसा और दो उप नाम की लकड़ियां घट रही हैं। तीन पाए घट रहे हैं और बीच की झाबकझोल यानी निवार नहीं है। बाकी तो पूरी खाट तुम्हें दे रहा हूं न। गरीब आदमी समझ गया कि फां फूं तो कोरा गपोडी है। उसने चुपचाप अपने घर जाने में अपनी भलाई समझी।

२११२) लड़ाई की जड़ - एक बार एक बूढ़ा शहद से भरी मटकी लेकर जा रहा था। रास्ते में उसका पांव एक छोटे से पत्थर पर पड़ा तो वह लड़खड़ाया और थोड़ा शहद जमीन पर टपक गया। बूढ़ा तो संभल कर आगे चल दिया, मगर शहद पर कई मक्खियां आकर बैठ गई। मक्खियों को एक गिलहरी ने देखा तो वह फौरन उन पर झपटी। मक्खियां उड़ गई। तभी

एक बिल्ली ने गिलहरी पर झपट्टा मारा। गिलहरी भी भाग गई। उसी समय एक कुत्ता गुर्राता हुआ बिल्ली की तरफ बढ़ा। बिल्ली तो भाग गई मगर अचानक एक और कुत्ता वहां आ गया। दोनों आपस में लड़ने लगे। इतने में इन कुत्तों के मालिक भी आ गए। वे अपने कुत्तों को बचाने में लग गए। जब कुत्ते शांत नहीं हुए तो वे एक दूसरे के कुत्ते को पीटने लगे, फिर आपस में ही झगड़ पड़े। बात बढ़ गई तो उनके घरवाले और दोस्त भी आ पहुंचे। कुछ देर बाद दोनों तरफ के मोहल्ले वाले भी लाठियां लेकर मैदान में आ डटे। दोनों गुटों में जमकर मारपीट होने लगी। कई लोग जख्मी हो गए। एक साधु ने उधर से गुजर रही एक बुढ़िया से पूछा, यह लड़ाई किसलिए हो रही है? बुढ़िया कोई उत्तर नहीं दे सकी। साधु ने एक लड़के से पूछा तो उसने भी कोई जवाब नहीं दिया। खैर किसी तरह साधु को लड़ाई की असली वजह का पता चला तो उसने भीड़ को शांत होने का इशारा किया। लड़ाई रुक गई। साधु ने पूछा, बिना बात समझे लड़नेवाले को आप क्या कहेंगे? सभी मौन थे। साधु ने फिर कहा, हमारे यहां लड़ाई की जड़ ही यही है कि लोग जानते ही नहीं कि वे किस बात पर झगड़ रहे हैं।

२११३) किसान की सीख - राजा राजराजेश्वर ने सप्तद्वीप नवखंड पर कई दशकों तक राज्य किया। राज करते-करते वह अचानक वैभवशाली जीवन से उकता गए और अपने अल्पायु पुत्र को सिंहासन सौंप कर जंगल चले गए और वहां तपस्या करने लगे। वह केवल एक समय फलाहार करते और कई बार तो उन्हें उसका भी ध्यान न रहता। इस तरह काफी समय बीत गया किंतु उन्हें आत्मिक शांति प्राप्त नहीं हुई। उन्हें किसी न किसी से यह पता चलता रहता था कि उनके वन में आने के बाद से उनकी प्रजा बेहद परेशान हो गई है। राजकाज काफी गड़बड़ा रहा है। इससे वह दुखी हो जाते। एक दिन वह टहलते हुए एक खेत के पास पहुंच गए, जहां एक किसान हल चला रहा था। साधु वेश में राजराजेश्वर को देखकर किसान ने उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया और कहा, बाबा, आप किस चीज की तलाश में इतने व्याकुल हैं? राजराजेश्वर को कुछ और न सूझा। वह बोले, इस समय तो मुझे भूख ने बेहद व्याकुल किया हुआ है। इस पर किसान बोला, बाबा, मेरी झोपड़ी में खाने की सामग्री रखी हुई है। आप उसे पका कर खा लीजिए। मैं अपना काम बीच में नहीं छोड़ सकता। कर्म अधूरा छोड़ना मेरे स्वभाव में नहीं है। किसान की बात सुनकर राजराजेश्वर उसे हैरानी से देखते रहे। उसने उन्हें एक बड़ी सीख दी थी। उन्होंने खाना पकाया और किसान के साथ मिलकर खाया। फिर उसी समय वह अपने राज्य लौट गए और प्रजा की सेवा में पहले की तरह लग गए।

२११४) गाड़ी और पत्थर - प्रसिद्ध उद्योगपति जॉनसन एक बार किसी कस्बे से होकर गुजर रहे थे। उनकी तेज रफ्तार कार जब उस कस्बे से निकलकर खुले में आई तभी अचानक एक तेज आवाज के साथ एक बड़ा पत्थर उनकी कार से आ टकराया और कार में खरोंच का एक बड़ा निशान छोड़ गया। जॉनसन ने तत्काल ब्रेक लगाया और कार से उतरकर उधर देखने लगे जिधर से पत्थर आया था वह गुस्से से थर-थर कांपने लगे थे। तभी उनकी नजर एक लड़के पर पड़ी जो वहीं सहमा सा खड़ा था। वह उसे थप्पड़ जड़ने ही वाले थे कि लड़का रूआंसा होकर बोला- पत्थर फेंकने के लिए माफी चाहता हूं। मगर यहां से गुजर रही सभी गाड़ियां इतनी तेज दौड़ रही हैं कि मेरे चिल्लाने की आवाज किसी के कानों में नहीं पड़ रही। पिछली गली के कोने में मेरा बड़ा भाई अपने व्हील-चेयर से गिरकर जमीन पर पड़ा है। मैं उसे खुद नहीं उठा पाऊंगा इसलिए मदद के लिए बड़ी देर से चिल्ला रहा हूँ। जब किसी ने भी नहीं रोका तो मुझे मजबूरन आपकी गाड़ी पर पत्थर मारना पड़ा। आप ही बताइए मैं क्या करता। क्या मैं अपने भाई को उसके हाल पर छोड़ दूं? लड़के की मासूमियत भरी बात सुनते ही जॉनसन का गुस्सा उतर गया। वह ग्लानि से भर उठे। वह उस लड़के के साथ उसके भाई के पास पहुंचे और

उन्होंने उसे सहारा देकर व्हील चेयर पर बिठाया। दोनों भाइयों ने जॉनसन के प्रति आभार व्यक्त किया। जॉनसन इस घटना को भुला नहीं पाए। काफी दिनों बाद जब उन्होंने अपनी जीवनी लिखी तो उसमें एक खास वाक्य लिखा जो काफी मशहूर हुआ। जीवन में कभी इतना तेज मत दौड़ो कि किसी को तुम्हें रोकने के लिए पत्थर उठाना पड़े। जाहिर है उस घटना ने उनके ऊपर गहरा असर डाला था। उनका यह वाक्य जीवन के लिए जरूरी सूत्र बन गया।

२११५) कौन बनेगा वारिस - किसी गांव में एक विद्वान रहता था। उसके पास काफी धन-संपत्ति थी, मगर उसका कोई वारिस नहीं था। उसकी स्त्री पहले ही परलोक सिधार चुकी थी। एक दिन उसके मन में सवाल उठा कि जब वह बूढ़ा हो जाएगा तो न जाने कौन उसकी सेवा करेगा। उसने गांव में घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति दिन-रात उसका गुणगान करेगा, उसे वह अपनी सारी संपत्ति दे देगा। यह सुनते ही गांव में हर जगह उसकी चर्चा होने लगी। लोग उसकी तारीफों के पुल बांधने लगे। लोग बिना सोचे-समझे यह कर रहे थे। इस मामले में हर कोई एक-दूसरे को मात देने में लगा था। लेकिन एक नौजवान ऐसा भी था जिसे इन सबसे कोई मतलब नहीं था। जब उस विद्वान को उसके बारे में पता चला तो उसने उस नवयुवक को अपने पास बुलाया, पर उसने आने से यह कहकर इनकार कर दिया कि उसके पास समय नहीं है। इससे विद्वान के भीतर उस नौजवान से मिलने की उत्सुकता और बढ़ गई। वह खुद ही उसके पास चला गया। नौजवान एक झोपड़ी में रहता था। जब विद्वान झोपड़ी में पहुंचा तो वह फटे-पुराने कपड़े पहने खिलौने बना रहा था। विद्वान ने उससे पूछा- क्या तुम्हें मालूम नहीं कि जो मेरा गुणगान करेगा उसे मैं अपना वारिस बनाऊंगा। नौजवान ने थोड़ा कड़े स्वर में कहा- तो मैं क्या करूं? विद्वान बोला- अगर तुम मेरा गुणगान करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ निकले तो मैं तुम्हें अपनी सारी संपत्ति दे दूंगा। नौजवान बोला- क्षमा करें, आपकी संपत्ति का मेरे लिए कोई मोल नहीं है। मुझे ईश्वर की कृपा से अब तक जो भी मिला है वह काफी है। जब उसे देना होगा तो देगा। वैसे मैं अपने जीवन से बेहद संतुष्ट हूँ। मैं आपका झूठा गुणगान क्यों करूं? विद्वान उससे बेहद प्रभावित हुआ। उसने कहा- पूरे गांव में तुम ही ऐसे हो जिसके भीतर थोड़ा भी लालच नहीं है। मैं ऐसे ही व्यक्ति की तलाश में था। तुम ही मेरे वारिस बनोगे।

२११६) वित्त मंत्री का चुनाव- एक राजा को वित्त मंत्री की जरूरत थी। वह इस पद पर ऐसे व्यक्ति को रखना चाहते थे, जो ईमानदार और कर्मठ हो। वह इसके लिए अनेक उम्मीदवारों की परीक्षा ले चुके थे पर अभी तक कोई भी नौजवान उनकी परीक्षा पर खरा नहीं उतरा था। एक दिन एक युवक उनके दरबार में आया और बोला, महाराज, मैं काम की तलाश में हूं। आप मुझे काम पर लगा दीजिए। राजा बोले, फिलहाल तो मेरे यहां एक ही पद रिक्त है और वह है हमारे रद्दीखाने की चौकीदारी का। तुम करोगे? युवक शिक्षित था किंतु यह कार्य स्वीकार करने के अलावा कोई रास्ता न था। वह रद्दीखाने का चौकीदार नियुक्त कर दिया गया। इस पर प्रधानमंत्री राजा से बोला, यह क्या महाराज, हमें तो वित्त मंत्री चाहिए था। फिर आपने इस शिक्षित युवक को भला इतना छोटा काम क्यों सौंपा? इस पर राजा बोले, वित्त मंत्री का पद बहुत जिम्मेदारी भरा है। किसी को बिना जांचे-परखे वह काम नहीं सौंपा जा सकता। युवक राजकीय रद्दीखाने की चौकीदारी करने लगा। वहां जाकर सबसे पहले उसने रद्दी का निरीक्षण किया। सामान बिखरा पड़ा था। मकड़ी के जाले और धूल से कमरे की हालत बदतर हो चुकी थी। युवक ने स्वयं उस भवन की सफाई की फिर रद्दी छांटी। युवक ने रद्दी एकत्रित करके बाजार में बेच दी। फिर कमरे में रंग-रोगन करवाया, पर्दे लगवाए और कमरा व्यवस्थित कर दिया। राजा को सूचना मिली तो वह रद्दीखाना देखने आए। कायापलट देखकर वह दंग रह गए। युवक को शबाशी देते हुए राजा बोले, अभी से तुम्हें

राज्य का वित्त मंत्री नियुक्त किया जाता है। तुम्हारी निष्ठा व ईमानदारी ने यह साबित कर दिया है कि तुम ही वित्त मंत्री पद के हकदार हो। इस प्रकार अपनी कार्यकुशलता व ईमानदारी से वह युवक वित्त मंत्री बन गया।

२११७) पेड़ की पीड़ा- नामू नाम का बालक लकड़ियां काटने में व्यस्त था। थोड़ी दूर पर उसकी मां भी लकड़ियां काटने में जुटी थी। कुछ ही देर में मां की नजर नामू पर पड़ी तो वह चिल्ला उठी। उसने देखा कि उसके बेटे के पैर से खून की धारा बह रही है। उसने घबराकर पूछा, बेटा, यह क्या हो गया? तुम्हें यह चोट कहां लगी? खून की परवाह न करते हुए बेटा मासूमियत से बोला, मां, मैंने अपनी कुल्हाड़ी से स्वयं अपने पैर पर वार किया है। यह सुनकर मां दंग रह गई। उसने नामू की धोती उठाई तो देखा कि उसके पैर की पूरी चमड़ी छिली हुई थी। मां गुस्से से बोली, भला कोई अपने पैर पर भी घाव करता है? क्या तुम्हें इससे पीड़ा नहीं हो रही? अरे, यदि यह घाव पक गया तो तुम्हारा पैर काटने की भी नौबत आ सकती है। बालक पीड़ा में तड़पते हुए बोला, मां, मैं यह जानने की कोशिश कर रहा था कि जब हम पेड़ पर कुल्हाड़ी से वार करते हैं तो वह पीड़ा से कितना तड़पता है? लेकिन मैं पेड़ की पीड़ा का अंदाजा नहीं लगा पा रहा था। इसकी पीड़ा का अंदाजा लगाने के लिए ही मैंने अपने पैर पर कुल्हाड़ी से वार किया। यह सुनते ही मां रो पड़ी। उसने उसे सीने से लगाते हुए कहा, बेटा, तू जरूर असाधारण कार्य करेगा। जिसके हृदय में एक पेड़ के लिए इतनी पीड़ा है वह साधारण कैसे हो सकता है। नामू की मां के ये शब्द सच निकले। यह बालक आगे चलकर संत नामदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

२११८) सच झूठ का अंतर - एक दिन अकबर का दरबार लगा था। तभी उन्होंने अपने दरबारियों से पूछा कि तीन या उससे भी कम शब्दों में बताओ कि सच और झूठ में क्या फर्क होता है।

दरबारी एक दूसरे का मुंह ताकने लगे किसी को कुछ भी नहीं सूझा। तभी अकबर ने बीरबल से पूछा- बीरबल तुम तो बताओ। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम अभी तक चुप क्यों हो? मैं इसलिए चुप था कि मैं दूसरों को बोलने का मौका देना चाहता था। बीरबल ने जवाब दिया। किसी के पास उत्तर नहीं है इसलिए हमें बताओ कि सच और झूठ में क्या अंतर होता है। हां लेकिन जवाब बस तीन या इससे कम शब्दों में होना चाहिए। चार उंगलियां बीरबल ने जवाब दिया।

चार उंगलियां? बादशाह ने आश्चर्य से पूछा। हां यही सच और झूठ में अंतर है बीरबल ने कहा।

जो आप अपनी आंखों से देखते हैं वह सच है और जो आप सुनते हैं वह जरूरी नहीं है कि सच ही हो। वह झूठ भी हो सकता है। हां बात तो ठीक है लेकिन चार उंगलियों का क्या मामला है? बादशाह ने पूछा। बादशाह सलामत हमारे काम और आंखों के बीच चार उंगलियों का ही तो अंतर है। बीरबल ने उत्तर दिया तो अकबर वाह-वाह कर उठे।

२११९) सबसे बड़ी साधना - नगर सेठ का पुत्र था मेघ। बुद्ध के प्रवचनों से प्रभावित होकर उसने भी प्रवज्या ग्रहण करने का फैसला किया। बुद्ध ने उसे अपने निर्णय पर ठीक से सोच लेने को कहा, लेकिन वह अपने फैसले पर दृढ़ रहा। वह बौद्ध विहार में रहने लगा। वह अपने साथ सुख-सुविधाओं की चीजें लेता आया था। बुद्ध ने एक दिन विहार के वरिष्ठ भिक्षु को मेघ की सुख-सुविधाएं कम करने को कहा। मेघ को अब मोटा भोजन और मोटा बिस्तर दिया जाने लगा। उसे सेवा के कड़े काम भी दिए गए। धीरे-धीरे मेघ की प्रसन्नता को ग्रहण लगने लगा। वह खिन्न सा रहने लगा। उसने इससे पहले कभी रूखा-सूखा अन्न नहीं खाया था। वह हमेशा आरामदेह बिस्तर पर सोता था। जब से वह इन सुविधाओं से वंचित हुआ, उसका उत्साह कम होने लगा। उसे लगा कि उसकी शांति छिन गई है। उसके मन में विचार उठना लगा कि कहीं मैंने गलत मार्ग का चुनाव तो नहीं कर लिया। ऐसा तो नहीं कि बाद में मुझे पछताना पड़ेगा। उसने बुद्ध के पास जाकर कहा, भगवन्, मेरे मन में भौतिक इच्छाएं फिर से पैदा हो रही हैं, आप मुझे विशेष साधना बताएं। इस पर बुद्ध ने

कहा, मन को स्थिर रखना ही सबसे बड़ी साधना है। बेहतर यही है कि तुम अपने चित्त को वश में करने का प्रयत्न करो। यह स्थिरता आराम की स्थिति में उपलब्ध होने वाली जड़ता नहीं है। इसमें जीवन का प्रवाह है। हर परिस्थिति के साथ सामंजस्य बनाने की क्षमता है। बुद्ध की बात सुनकर मेघ उनके समक्ष नतमस्तक हो गया।

२१२०) मन का पाप - एक साधु थे। जंगल में रहते थे। एक दिन घूमते हुए वह नदी के किनारे गये। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर प्रकृति का साम्राज्य फैला था। सघन वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। संत ने देखा कि एकान्त स्थान पर एक पेड़ के नीचे एक युवक और युवती बैठे हैं। दोनों बड़े आनंदित थे। दोनों के हाथ में एक-एक गिलास था। संत ने सोचा कि इस निर्जन स्थान पर बैठकर ये लोग निश्चय ही मदिरापान कर रहे होंगे और गंदी बातें कर रहे होंगे। शराब पीकर आदमी का दिमाग फिर जाता है। वह बुरी बातें ही सोचता है, बुरे काम ही करता है। आदमी का कितना पतन हो गया है। वह यह सब सोच ही रहे थे कि सामने से एक नाव आती दिखाई दी। नदी की धारा बड़ी तीव्र था। जोर की लहरें उठ रही थीं। अचानक नाव को लहरों का थपेड़ा लगा और वह उलट गई। संत के मुंह से जोर की चीख निकली। उनकी आंखें बंद हो गई जैसे ही आंखें खुली कि देखते क्या हैं कि जिस युवक को उन्होंने पापी समझ रखा था, वही युवक छलांग लगाकर पानी में कूदा और पांच आदमियों को निकालकर बाहर ले आया। संत खड़े-खड़े देख रहे थे। युवक पास आकर बोला, महाराज, भगवान की कृपा से पांच आदमियों की तो जान बच गई। अब एक रह गया है। उसके प्राण आप बचा लीजिये। संत को तैरना नहीं आता था। वह कूदने की हिम्मत कैसे कर सकते थे? यह देखकर युवक ने कहा, स्वामीजी, इंसान के लिए इंसान से बढ़कर और कुछ नहीं है। इतना कहकर उसने एक छलांग फिर लगाई और अंतिम व्यक्ति को भी बचाकर बाहर ले आया। साधु का लज्जा से सिर झुक गया। जिसे वह पापी समझ रहे थे, उससे बढ़कर पुण्यात्मा उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखा था।

२१२१) लालच का जाल - एक लालची व्यक्ति था। वह हमेशा धनवान होने के सपने देखता था। एक दिन वह मंदिर गया। वहां एक महात्मा एक घड़े से स्वर्ण मुद्राएं निकालकर भिखारियों को बांट रहे थे। जब महात्मा जाने लगे तो वह व्यक्ति उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसे देखकर महात्मा बोले- पुत्र, क्या तुझे भी स्वर्ण मुद्रा चाहिए? जितनी चाहेगा उतनी मिल जाएगी। यह घड़ा स्वर्ण मुद्राओं से कभी खाली नहीं होता। वह लालची व्यक्ति बोला- आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। महात्मा ने उसे अपना शिष्य बना लिया। वह दिन-रात महात्मा की सेवा करने लगा। कई दिन बीत गए। एक दिन महात्मा ने उससे कहा- तू बहुत दिनों से मेरी सेवा कर रहा है। मैं तुझे कुछ देना चाहता हूं। वह व्यक्ति तुरंत बोला- मुझे वह घड़ा चाहिए। महात्मा बोले- घड़ा तो मैं तुझे नहीं दे सकता। मगर उसमें से जितना चाहे धन तू ले सकता है। वह व्यक्ति उसमें से मुद्राएं निकालने लगा पर उसका लालच खत्म नहीं हुआ। उसे भविष्य की चिंता सताने लगी। उसके मन में विचार आया कि यदि महात्मा ने उसे कभी मना कर दिया तब क्या होगा। उसने महात्मा की हत्या की योजना बनाई। एक रात वह मंदिर में घुसा। उसने देखा कि महात्मा अंधेरे में चादर ओढ़कर सोये हैं। उसने लाठी से उनके सिर पर जोर से मारा। लेकिन हुआ उलटा। उसने जिसे महात्मा का सिर समझा था वह वही घड़ा था, जो लाठी के प्रहार से टूट गया। इस तरह उस व्यक्ति ने अपने लोभ के कारण अपने हाथ में आया स्वर्ण भंडार गंवा दिया।

२१२२) नई भूमिका - पुराने जमाने की बात है। राजा बालीक ने किसी छोटी सी बात पर नाराज होकर अपने प्रधानमंत्री भद्रजित को उनके पद से हटा दिया। उन्होंने क्रोध में भद्रजित से कहा, तुम अपने आपको बहुत श्रेष्ठ समझते थे न। जब तुम इधर-उधर भटकोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि पद का क्या महत्व होता है। भद्रजित शांति व शालीनता से राजा को प्रणाम कर दरबार से चले गए। उन्होंने पद से हटाए जाने को ईश्वर का वरदान माना और मन में किसी तरह का

द्वेष भाव नहीं रखा। उन्होंने अपना समय ईश्वरोपासना, स्वाध्याय तथा जनसेवा में लगाना शुरू कर दिया। जल्दी ही वह लोकप्रिय हो गए। भद्रजित अधिक से अधिक समय सत्संग और सदकार्यों को देने लगे। एक दिन राजा बालीक को भद्रजित की याद आई। राजा ने सोचा कि भद्रजित की हालत निश्चय ही दयनीय हो गई होगी। क्यों न चलकर देखा जाए। राजा वेश बदल कर नगर में जा पहुंचे। राजा को देखकर आश्चर्य हुआ कि भद्रजित श्रेष्ठ लोगों से घिरे थे। भद्रजित ने वेश बदले राजा को पहचान लिया। उन्होंने खड़े होकर राजा का अभिनंदन किया और कहा, राजन्। यदि आप मुझे मेरे पद से हटाते नहीं तो मुझे लोगों की सेवा का अवसर भला कहां मिलता? यह तो मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे पद से हटा दिया। इससे मुझे जीवन के एक अलग अध्याय को जानने और एक नई भूमिका निभाने का अवसर मिला। मैं आपका आजीवन आभारी रहूंगा। राजा बालीक भद्रजित की विनम्रता और धैर्य को देखकर हैरान रह गए। उनसे कुछ बोलते न बना।

२१२३) अद्‌भुत बलिदान - यह उस समय की बात है जब चीन के महान विद्वान ह्वेनसांग भारत आए हुए थे। वह भारत की शिक्षा व संस्कृति से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने नालंदा विश्वविद्यालय में भारतीय धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन किया। अध्ययन करने के साथ-साथ उन्होंने अनेक धर्मग्रंथों का संग्रह किया ताकि अपने देश वापस लौटने के बाद वह वहां इनके महत्व बता सकें। जब वह अपने देश की ओर रवाना हुए तो उन्होंने अपने साथ अनेक ग्रंथ और कई कलात्मक मूर्तियां रख लीं। मार्ग में नदी पड़ती थी इसलिए वह नौका में अपनी इस बहुमूल्य संपदा के साथ बैठ गए। पांच भारतीय छात्र भी उनके साथ थे। अभी वे कुछ ही दूर पहुंचे थे कि अचानक नदी में जोर का भंवर आया और नौका डगमगाने लगी। यह देखकर नौका चालक ने कहा, यदि नौका में से कुछ वजन कम कर दिया जाए तो यह डूबने से बच सकती है। यह सुनकर ह्वेनसांग चिंता में पड़ गए और बोले, अब तो पुस्तकों के गट्ठरों को पानी में फेंकना ही होगा। इनके पानी में बहने के साथ ही मेरा उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। वापस पहुंचने पर मैं अपने देश में भारत के महान धर्मशास्त्रों का प्रचार नहीं कर पाऊंगा। इतने कठोर परिश्रम से एकत्रित किए गए धर्मशास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। विद्वान ह्वेनसांग की बात सुनकर पांचों भारतीय छात्र बोले, आप चिंतित न हों। आपका परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा और न ही आपका उद्देश्य अधूरा रहेगा। ग्रंथों की जगह हम नदी में कूद जाते हैं। यह कहकर वे पांचों तुरंत उफनती नदी में कूद गए। उनमें से तीन तो तैरकर सकुशल नदी पार कर गए लेकिन दो छात्र भारतीय धर्मशास्त्रों की अमूल्य धरोहर को बचाने के लिए नदी की भेंट चढ़ गए। ह्वेनसांग ने चीन पहुंच कर इन धर्मशास्त्रों का अनुवाद किया और इनकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करनेवाले छात्रों के प्रति जीवन भर कृतज्ञता व्यक्त करते रहे।

२१२४) शिखर का सच- गुरु ज्ञानानंद के गुरुकुल में कई शिष्य शिक्षा प्राप्त करते थे। एक दिन ज्ञानानंद के एक प्रिय शिष्य विक्रांत ने कहा, गुरुजी, मैंने गुरुकुल में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया है। लेकिन मुझे पेड़ पर चढ़ना नहीं आता। मेरा पेड़ पर चढ़ने का बहुत मन करता है लेकिन मुझे लगता है कि यदि चढ़ने का प्रयास करूँगा तो गिर जाऊंगा। गुरु बोले, यदि तुम पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करोगे तो मेरा विश्वास है कि नहीं गिरोगे। इसके बाद उन्होंने विक्रांत को एक बड़े पेड़ के आखिरी सिरे तक चढ़ने के लिए कहा। विक्रांत संभल-संभल कर पेड़ पर चढ़ने लगा। गुरु ने उसे कुछ भी नहीं कहा। आखिर वह संभल-संभल कर चढ़ गया। जैसे वह पेड़ से उतरने लगा तो गुरु बार-बार जोर से कहने लगे, बेटा, सम्भलकर उतरो। विक्रांत उतरते समय निर्देशों को सुनकर हैरान रह गया। उतरकर पूछा, गुरुजी, जब पेड़ पर चढ़ रहा था तब मुझे निर्देशों की आवश्यकता थी लेकिन तब आप कुछ नहीं बोले जबकि उतरते समय मार्गदर्शन करने लगे जिसकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। इस पर गुरु मुस्कुराते हुए बोले, पेड़ पर चढ़ते समय तुम स्वयं सावधान थे इसलिए मुझे कुछ कहने की आवश्यकता

महसूस नहीं हुई। लेकिन चढ़ जाने के बाद तुम अति आत्मविश्वास से भर गए इसलिए मैंने तुम्हें सावधान किया।

२१२५) पेशे की इज्जत - यह घटना उन दिनों की है जब फ्रांस में विद्रोही काफी उत्पात मचा रहे थे। सरकार अपने तरीकों से विद्रोहियों से निपटने में जुटी हुई थी। काफी हद तक सेना ने विद्रोह को कुचल दिया था, फिर भी कुछ शहरों में स्थिति खराब थी। इन्हीं में से एक शहर था लिथोस। लिथोस में विद्रोह पूर्णतया दबाया नहीं जा सका था, लिहाजा जनरल कास्तलेन जैसे कड़े अफसर को वहां नियंत्रण के लिए भेजा गया। कास्तलेन विद्रोहियों के साथ काफी सख्ती से पेश आते थे। इसलिए उनका खौफ भी था और विद्रोही उनसे चिढ़ते भी थे। इन्हीं विद्रोहियों में एक नाई भी था, जो प्राय: कहता फिरता- जनरल मेरे सामने आ जाए तो मैं उस्तरे से उसका सफाया कर दूं। जब कास्तलेन ने यह बात सुनी तो वह अकेले ही एक दिन उसकी दुकान पर पहुंच गया और उसे अपनी हजामत बनाने के लिए कहा। वह नाई जनरल को पहचानता था। उसे अपनी दुकान पर देखकर वह बुरी तरह घबरा गया और कांपते हाथों से उस्तरा उठाकर जैसे-तैसे उसकी हजामत बनाई। काम हो जाने के बाद जनरल कास्तलेन ने उसे पैसे दिए और कहा- मैंने तुम्हें अपना गला काटने का पूरा मौका दिया। तुम्हारे हाथ में उस्तरा था, मगर तुम उसका फायदा नहीं उठा सके। इस पर नाई ने कहा- ऐसा करके मैं अपने पेशे के साथ धोखा नहीं कर सकता था। मेरा उस्तरा किसी की हजामत बनाने के लिए है किसी की जान लेने के लिए नहीं। वैसे मैं आपसे निपट लूंगा जब आप हथियारबंद होंगे। लेकिन अभी आप मेरे ग्राहक हैं। कास्तलेन मुंह लटकाकर चला गया।

२१२६) ईमानदारी का सबूत - एक राजा अपनी प्रजा के हितों का बहुत ध्यान रखता था। वह गुप्तचरों से अपने राजकाज को लेकर, प्रजा की दशा को लेकर जानकारी लेता रहता था। एक दिन उसके गुप्तचर ने उसे बताया- आपके कर्मचारी कर वसूल करके उसमें से कुछ हिस्सा स्वयं रख लेते हैं, जिस कारण कर वसूली से प्राप्त सारा धन राज्य तक नहीं पहुंच पाता। जब राजा ने उन कर्मचारियों से इस बारे में पूछा तो वे बोले, महाराज। जनता पूरे कर ही नहीं देती। राजा को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने मंत्री से कहा- ढिंढोरा पिटवा दीजिए कि कर वसूल करने के लिए एक योग्य अधिकारी की आवश्यकता है। जो स्वयं को इस योग्य समझते हैं वे राजमहल आएं और परीक्षा दें। राजा की आज्ञा का पालन किया गया। जब आवेदक निश्चित समय पर राजमहल के सामने एकत्र हो गए तो राजा एक कमरे में जाकर बैठ गए। उस कमरे का रास्ता एक गलियारे से होकर जाता था। राजा ने मंत्री से कहा कि एक-एक करके लोगों को उस गलियारे में से राजा के सामने भेजें। जो भी राजा के सामने आता राजा उसे नाचने को कहते। लेकिन एक व्यक्ति को छोड़कर शेष सभी झिझक गए और बिना नाचे ही बाहर चले गए। बस एक व्यक्ति ने राजा के सामने जमकर नृत्य किया। राजा ने मंत्री से कहा- यही ईमानदार व्यक्ति है क्योंकि यह निर्भयतापूर्वक नाचा है। राजा की बात सुनकर मंत्री को हंसी आ गई। किसी तरह हंसी रोककर उसने पूछा- आपने यह कैसे पता लगा लिया कि यह ईमानदार है? राजा बोला- मैंने गलियारे में स्वर्ण मुद्राओं से भरे थाल रखवा दिए थे। इसको छोड़कर सभी ने अपनी जेबें स्वर्ण मुद्राओं से भर ली थी। यदि वे मेरे सामने नाचते तो उनकी जेबों से वे मुद्राएं गिर जातीं। इसलिए वे बिना नाचे ही चले गए। राजा ने उस ईमानदार व्यक्ति को कर वसूली की जवाबदेही सौंप दी।

२१२७) दान का महत्व- धनीराम नामक एक सेठ बेहद कंजूस था। वह भिखारी तक को कभी एक पैसा नहीं देता था। उसकी इस आदत के कारण लोग उसे नापसंद करते थे। सेठ जिससे भी बात करने की कोशिश करता, वही उससे दूर चला जाता। उसे लगता कि शायद लोग उसकी धन-दौलत से जलते हैं, इसलिए उससे बातें करना पसंद नहीं करते। एक दिन मंदिर के निर्माण कार्य के लिए सभी से चंदा वसूला जा रहा था। न जाने उस दिन धनीराम के मन में क्या आया

कि उसने रुपयों से भरी थैली पुजारी को दे दी। यह देखकर वहां उपस्थित सभी लोग हैरान रह गए। उस दिन के बाद धनीराम जहां भी निकलता, लोग उसका हालचाल पूछते और आदर देते। यह देखकर एक दिन सेठ फिर पुजारी के पास पहुंचा और बोला, पुजारी जी, देखा लोगों में धन का कितना मोह है। पहले वे मुझसे सीधे मुंह बात नहीं करते थे किंतु उस दिन मैंने रूपयों से भरी थैली क्या दी कि अब सब मुझसे बात करने को आतुर रहते हैं। दौलत देखते ही सब बदल गए। इस पर पुजारी ने मुस्कराते हुए कहा, सेठजी, आपका सोचना गलत है। लोग आपका धन देखकर नहीं बदल गए हैं। उन्हें यह लगने लगा है कि आप बदल गए हैं। आपके भीतर दान की भावना आ गई है। धन तो आपके पास पहले भी इतना ही था किंतु आपके अंदर दान करने की भावना नहीं थी। वास्तव में यह महत्व दान का है। यह सुनकर धनीराम दंग रह गया। उसने संकल्प किया था कि अब वह हर जरूरतमंद की मदद करेगा।

२१२८) सबसे बड़ी कला- बहुत पुरानी कथा है। किसी गांव में एक बड़ा ही होशियार लड़का रहता था। वह नई-नई चीजें सीखने में लगा रहता था। उसने एक तीर बनानेवाले से तीर बनाना सीखा, नाव बनानेवाले से नाव बनाने की कला सीखी। मूर्तिकार से मूर्तिकला की जानकारी हासिल की। इस तरह धीरे-धीरे वह एक के बाद एक बहुत सी कलाएं सीख गया। लेकिन उसे इस बात का अहंकार हो गया। वह हमेशा सबसे कहता फिरता, मेरे बराबर दुनिया में कोई गुणवान नहीं है। संयोग से उन्हीं दिनों गौतम बुद्ध घूमते हुए वहां आ पहुंचे। उन्हें जब उस लड़के के बारे में पता चला तो वह भिक्षापात्र लेकर उसके पास पहुंच गए। लड़के ने उन्हें देखकर पूछा, आप कौन हैं? बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं अपने शरीर को काबू में रखनेवाला एक आदमी हूं। लड़का उनकी बात समझ नहीं पाया और बोला, मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझा। कृपा करके विस्तारपूर्वक समझाएं। इस पर बुद्ध ने कहा, देखो, जो तीर चलाना जानता है, वह तीर चलाता है, जो नाव चलाना जानता है, वह नाव चलाता है और जो मूर्ति बनाना जानता है वह मूर्ति बनाता है। लेकिन जो ज्ञानी है, वह अपने ऊपर शासन करता है। लड़के ने पूछा वह कैसे? बुद्ध ने जवाब दिया, अगर कोई उसकी प्रशंसा करता है तो उसका मन चंचल नहीं होता। अगर कोई उसकी निंदा करता है तो भी वह शांत रहता है। ऐसा आदमी हमेशा सुखी रहता है। यह सबसे बड़ी कला है। लड़का उनका आशय समझ गया। उसने वचन दिया कि वह अपने भीतर से अपना अहंकार निकाल बाहर करेगा।

२१२९) मंत्री की बुद्धिमानी- एक बार एक राजा ने सोचा कि उसके राज्य की सबसे बड़ी नदी पड़ोस के राज्य में चली जाती है, इसलिए क्यों न इसके पानी को रोककर उसका उपयोग अपनी प्रजा के हित में किया जाए। उसने अपने मंत्री के सामने यह विचार रखा तो मंत्री ने कहा, महाराज, न जाने कितनी सदियों से यह पानी बहकर उधर जाता है और लाखों लोग इसका उपयोग करते हैं। हम इस जल को रोककर बेवजह पड़ोस के राज्य से शत्रुता क्यों मोल लें। किंतु राजा ने मंत्री की एक न सुनी और बोला, हमारा आदेश है कि नदी को आगे से भर दिया जाए ताकि इसका जल उस ओर जा ही न सके। ऐसा ही किया गया। गर्मी के दिनों में जब नदी में जल बहुत कम रह गया तो उस जल का सभी ने प्रयोग किया, लेकिन जैसे ही वर्षा आरंभ हुई, नदी में जल बढ़ गया। जल के आगे जाने का मार्ग दीवार बनाकर रोक दिया गया था। लेकिन इससे नदी का पानी नगर में प्रवेश कर लोगों के घरों में घुस गया। अब तो समूची प्रजा इधर-उधर भागने लगी। धीरे-धीरे पानी राजमहल तक जा पहुंचा। राजा चिंतित हो उठा। यह देखकर मंत्री बोला, महाराज, मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि दूसरों का अहित करने से पहले मनुष्य अपना ही अहित करता है। इस पर भी राजा ने नदी की दीवार को तोड़ने के लिए नहीं कहा। मंत्री सोचने लगा कि आखिर राजा को कैसे समझाया जाए। अगले दिन राजा देरतक सोता

रहा। बादल के कारण सूर्य नहीं निकला था। जब राजा ने अंधेरा होने का कारण जानना चाहा तो मंत्री बोला, महाराज, सूर्य की दिशा हमारे पड़ोसी राज्य में है। उन लोगों ने भी ठान लिया है कि सूर्य का केवल अपने लिए ही प्रयोग करेंगे। यह सुनकर राजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने उसी क्षण नदी की दीवार तुड़वाने का आदेश दिया।

२१३०) हार में छुपी जीत - एक बार राजा कृष्णदेव राय महल में रानी के साथ बैठे थे। तेनालीराम की बात चली, तो बोले- हमारे दरबार में उस जैसा चतुर कोई और नहीं है। इसलिए अभी तक तो कोई उसे हरा नहीं पाया है। सुनकर रानी बोली- आप कल तेनालीराम को भोजन के लिए महल में आमंत्रित करें। मैं उसे जरूर हरा दूंगी। राजा ने मुस्कराकर हामी भर ली। अगले दिन रानी ने अपने हाथों से स्वादिष्ट छप्पन भोग बनाए। राजा के साथ बैठा तेनालीराम पकवानों की जी भर कर प्रशंसा करता हुआ, खा रहा था। खाने के बाद रानी ने उस बढ़िया सुगंधित पान का बीड़ा भी दिया। तेनालीराम मुस्करा कर बोला- सचमुच, आज जैसा खाने का आनंद तो मुझे कभी नहीं आया। तभी रानी ने पूछ लिया- अच्छा, तेनालीराम एक बात बताओ। राजा बड़े हैं या मैं? थोड़ी सी देर तो तेनालीराम चकराया। राजा-रानी दोनों ही उत्सुकता से देख रहे थे कि तेनालीराम क्या जवाब देता है। अचानक तेनालीराम को जाने क्या सूझा, उसने दोनों हाथ जोड़कर पहले धरती को प्रणाम किया, फिर आसमान को। फिर एकाएक जमीन पर गिर पड़ा। रानी घबराकर बोली- अरे-अरे, क्या हो गया तुम्हें तेनालीराम? तेनालीराम बोला- महारानी जी, मेरे लिए तो आप धरती हैं, राजा आसमान, दोनों में से किसे छोटा, किसे बड़ा कहूं, समझ में नहीं आ रहा, वैसे आज महारानी के हाथों का बना भोजन इतना स्वादिष्ट था कि उन्हीं को बड़ा कहना होगा। इसलिए मैं धरती को ही दंडवत प्रणाम कर रहा था। सुनकर राजा-रानी दोनों झूम उठे। रानी बोली- सचमुच तुम चतुर हो तेनालीराम, मुझे जिता दिया, पर हारकर भी तुम नहीं हारे।

२१३१) आत्मिक उन्नति - एक महात्मा हिमालय पर रहते थे। एक दिन कुछ लोगों की टोली उनके पास पहुंची। उन्होंने आत्मिक उन्नति का रास्ता पूछा। महात्मा बोले, दुनिया में रहकर आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती। लोग दुनिया की मोह-माया में फंस जाते है और उनकी आत्मा पर पर्दा पड़ जाता है। यह कहकर उन्होंने लोगों से पूछा, क्या आप लोग गोमुख जाएंगे। वहां मेरा एक शिष्य रहता है। उससे मिल लेना। पहले वह मेरे साथ ही रहता था पर मुझे छोड़कर चला गया। पता नहीं अब वह कैसा होगा। यह कहते ही महात्मा की आँखों में आंसू आ गए। इस पर उस टोली के एक सदस्य ने कहा, अभी आप हमें मोह छोड़ने का उपदेश दे रहे थे, जबकि आप खुद मोहग्रस्त है। इस पर महात्मा बोले, मेरे आंसू मोह के नहीं प्रेम के हैं। मोह बांधता है, जबकि प्रेम उबारता है।

२१३२) यही जीवन है - एक राजा वृद्ध था और बीमार भी। उसने राजकाज में रुचि लेना बंद कर दिया था। इस बीच एक ज्योतिष ने उसे बताया कि उसका बस एक माह का जीवन शेष है। इससे राजा की चिंता और बढ़ गई। तभी एक महात्मा राजमहल में पधारे। उन्होंने राजा को देखा। राजा ने उनसे कहा- मैं बस कुछ ही दिनों का मेहमान हूं। इस पर महात्मा मुस्कराए और बोले- यह आपसे किसने कह दिया। आप तो अमर हैं। इस बात से राजा को राहत मिली पर आश्चर्य भी हुआ। उन्होंने महात्मा से कहा- आपके ऐसा कहने का आधार क्या है? इस पर महात्मा ने उन्हें अपने साथ एक जगह चलने को कहा। महात्मा उन्हें शहर से दूर एक गांव में एक जुलाहे के पास ले गए। महात्मा ने जुलाहे से पूछा- तुम कपड़ा तो बनाते हो पर बेचारी रूई के अस्तित्व क्यों मिटाते हो? उसको भी जीने दो। जुलाने ने कहा- यदि समय रहते रूई का उपयोग न किया गया तो वायु और रेत उसको नष्ट कर देंगे। मैं तो इसे कपड़े में बदल इसे समाज के लिए और उपयोगी बना रहा हूं। इसको एक

बेहतर जीवन दे रहा हूं। राजा गौर से उसकी बातें सुन रहे थे। महात्मा ने राजा को समझाते हुए कहा- राजन्, रूई का चरम रूप कपड़ा है। जुलाहे ने रूई को नष्ट न कर उसको चरम और सार्थक रूप प्रदान किया है। पर एक शरीर के जर्जर होने पर व्यक्ति यानी उसकी आत्मा दूसरे जन्म के माध्यम से दूसरा शरीर धारण करती है ताकि वह बेहतर ढंग से तप कर सके और मोक्ष प्राप्त कर सके। इसलिए मृत्यु के भय से मुक्त होकर व्यक्ति को अपने जीवन का सर्वोत्तम उपयोग करना चाहिए। राजा पर इन बातों का गहरा असर पड़ा। उस दिन से वह जन कल्याण में जुट गया। उसका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा।

२१३३) देश के लिए दान- नेताजी सुभाषचंद्र बोस एक सभा को संबोधित कर रहे थे। अचानक मंच पर चढ़ने का प्रयास करती हुई एक स्त्री पर उनकी नजर पड़ी। वह बिल्कुल फटेहाल थी। आजाद हिंद फौज के अधिकारी भी अचरज में थे। सभी के भीतर उत्सुकता थी कि आखिर यह चाहती क्या है? तभी उस स्त्री ने अपनी मैली-कुचैली साड़ी की खूंट में बंधे तीन रुपये निकाले और नेताजी के पांवों के पास रख दिए। नेताजी हैरान होकर उसे देख रहे थे। फिर उस महिला ने हाथ जोड़कर कहा, नेताजी, इसे स्वीकार कर लीजिए। आपने राष्ट्रदेवता के लिए सर्वस्व दान करने के लिए कहा हे। मेरा यही सर्वस्व है। इसके अलावा मेरे पास कुछ नहीं। सभा में उपस्थित जनसमुदाय भी चकित था। नेताजी मौन रहे। कुछ देर बाद वह औरत कुछ निराश सी बोली, क्या आप मुझ गरीब के इस तुच्छ से दान को स्वीकार करेंगे? क्या भारत मां की सेवा करने का गरीबों को अधिकार नहीं है? इतना कहकर वह नेताजी के पैरों पर गिर गई। नेताजी की आंखों में आंसू आ गए। बिना कुछ कहे उन्होंने रुपये उठा लिए। उस स्त्री की खुशी का ठिकाना न रहा। वह उन्हें प्रणाम कर चली गई। उसके जाने के बाद पास खड़े एक अधिकारी ने पूछा, नेताजी, उस गरीब महिला से तीन रुपये लेते हुए आपकी आंखों में आंसू क्यों आ गए थे? नेताजी ने कहा, मैं सचमुच बहुत असमंजस में पड़ गया था। उस गरीब महिला के पास कुछ भी नहीं होगा। यदि मैं इन्हें भी नहीं ले लूं तो इसकी भावनाएं आहत होंगी। देश की स्वाधीनता के लिए यह अपना सब कुछ देने आई है। इसे इंकार करने पर पता नहीं, वह क्या-क्या सोचती। हो सकता है, वह यही सोचने लगती कि मैं केवल अमीरों का ही सहयोग स्वीकार करता हूं। यही सब सोच-विचार करके मैंने यह महादान स्वीकार कर लिया।

२१३४) सुख की कमीज - बहुत समय पहले उत्तरी अफ्रीका में एक राजा था। उसके पास सब कुछ था- सोना-चांदी, पत्नी-बच्चे, नौकर-चाकर लेकिन वह सुखी नहीं था। वह समझ नहीं पाता था कि कैसे खुश रहा जाए? एक दिन वह नौकरों पर ही चिल्ला पड़ा, मैं खुश क्यों नहीं रहता हूँ? मुझे सुख पाने के लिए क्या करना चाहिए? एक नौकर ने कहा, आकाश में चांद और तारे कितने सुंदर दिखते हैं। आप उन्हें देखेंगे तो लगेगा कि जिंदगी कितनी अच्छी है। राजा गुस्से में बोला, मैं उन्हें देखता हूं तो मुझे और गुस्सा आता है। मैं उन्हें पा नहीं सकता इसलिए। दूसरे नौकर ने कहा, संगीत मनुष्य को सुख देता है। आप सुबह से शाम तक संगीत में डूबे रहें। राजा ने कहा, मैं मानता हूँ कि संगीत अच्छी चीज है लेकिन सुबह से रात तक संगीत सुनना... नहीं नहीं। नौकर चले गए। राजा अपने कमरे में खामोश बैठ गया। थोड़ी देर बाद एक और नौकर आया। उसने कहा, हुजूर, मैं आपको सुखी होने का एक उपाय बताता हूँ। आपको ऐसा आदमी ढूंढना चाहिए जो खूब सुखी हो। उस की कमीज उतारकर अगर आप पहन लेंगे तो सुख अपने-आप आपके शरीर के अंदर चला जाएगा। राजा को सलाह पसंद आई। उसने अपने सिपाहियों को सुखी आदमी की तलाश में भेज दिया। सिपाही भटकते रहे पर वैसा आदमी मिल नहीं रहा था। एक दिन एक छोटे से गांव के एक आदमी ने दावा किया कि वह दुनिया का सबसे सुखी आदमी है। सिपाही उसे राजा के पास ले आए। राजा ने स्वागत करते हुए कहा, इधर आओ मेरे दोस्त, अपनी

कमीज उतारकर मुझे दे दो। ठिगना आदमी राजा के पास आया। राजा ने उसकी ओर देखा तो आश्चर्य से देखता रह गया। दुनिया के उस सबसे सुखी आदमी ने कोई कमीज ही नहीं पहन रखी थी।

२१३५) भावना और दुर्भावना - मार्क ट्वेन ने लिखा है, एक बार मैं एक सभा में गया। पुरोहित इतने मर्मस्पर्शी और अद्‌भुत तरीके से अंत:करण को झंझोड़ दनेवाले लहजे में बोल रहा था कि पांच मिनट सुनकर मुझे लगा कि मेरे पास जो सौ डॉलर हैं, आज दान कर जाऊंगा। दस मिनट बीतने पर मेरे भीतर विचार उठा कि सौ डॉलर ज्यादा है, पचास से भी काम चल सकता है। मेरे भीतर एक अंतरंग वार्तालाप चलने लगा। आधा घंटा बीतते-बीतते मैं पांच डॉलर पर आ चुका था। तीन-चौथाई व्याख्यान पूरा होते मैंने सोचा, किसे पता है कि मैंने सौ देने की सोची थी। कौन देता है सौ? एक डॉलर भी लोग नहीं देते। मैं एक डॉलर दे के काम चला लूंगा। व्याख्यान पूरा होने के बाद जब थाली भेंट के लिए मेरे पास आई, तो वह एक डॉलर भी मेरी जेब से न निकला, बल्कि मैंने एक डॉलर वहां से उठाकर अपनी जेब में रख लिया।

२१३६) योग्य उम्मीदवार कौन- ग्रीस के स्पार्टा राज्य में पिडार्टस नाम का एक नौजवान रहता था। बचपन से ही उसे पढ़ने और नई चीजें सीखने का बड़ा शौक था। अपनी मेहनत और बुद्धि के बल पर वह कम उम्र में ही बड़ा विद्वान बन गया। एक बार उसे पता चला कि राज्य में प्रशासनिक कार्य करने के लिए तीन सौ जगहें खाली हैं। वह नौकरी की तलाश में था, इसलिए उसने तुरंत अर्जी भेज दी। योग्य तो वह था ही। उसका साक्षात्कार भी संतोषजनक हुआ था। लेकिन जब नतीजा निकला तो मालूम पड़ा कि पिडार्टस को नौकरी के लिए नहीं चुना गया था। जब उसके मित्रों को इसका पता लगा तो उन्होंने सोचा कि इससे पिडार्टस बहुत दुखी हो गया होगा, इसलिए वे सब मिलकर उसे सांत्वना देने उसके घर पहुंचे। सभी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुरूप उसे दिलासा दे रहे थे। पिडार्टस ने मित्रों की बात सुनी और हंसते-हंसते कहने लगा- मित्रों, इसमें दुखी होने की क्या बात है? मुझे तो यह जानकर खुशी हुई है और गर्व भी कि अपने राज्य में मुझसे अधिक योग्यता वाले तीन सौ मनुष्य हैं। मेरा राज्य विद्वानों एवं योग्य पुरुषों से भरा पड़ा है। इसके बाद भी उसके कई दोस्त शांत नहीं हुए। वे कहने लगे कि जरूर कोई गड़बड़ी हुई है। पिडार्टस का चयन होना चाहिए था। तब पिडार्टस ने उन्हें समझाते हुए कहा- इस संसार में अनगिनत विशिष्ट लोग भरे पड़े हैं। पर हम औरों को नीचा व अपने को ऊंचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। हमें संतोष रखना चाहिए लेकिन आगे बढ़ने का प्रयास भी करते रहना चाहिए।

२१३७) साधन को साध्य न समझें- एक गांव के कुछ लोग नदी पार कर शहर जाने के लए नाव पर सवार हुए। वे सभी धार्मिक प्रवृत्ति के थे और धर्मयात्रा पर ही निकले थे। जब वे नदी पार कर किनारे पर पहुंच गए, तो उन्होंने निश्चय किया कि जिस नाव ने हमें नदी पार कराई है, अब वह हम पर सवार हो जाए। आखिर उस नाव ने हम पर नदी पार कराने का उपकार जो किया है। उससे उऋण होने का इससे बेहतर दूसरा उपाय नहीं हो सकता। सो उन सभी ने नाव को अपने सिर पर उठा लिया और अपनी धर्मयात्रा पर चल दिए। वे जहां भी जाते, नाव उनके सिर पर रहती। देखनेवाले उनकी मूर्खता पर हंसते और कहते कि हमने नाव पर सवार कई लोगों को देखा है, लेकिन नाव को लोगों पर सवार कभी नहीं देखा। ये लोग कैसे बुद्धिहीन हैं, जो नाव को सिर पर ढो रहे हैं। मगर वे लोग सगर्व कहते- हमें बुद्धिहीन कहनेवाले तुम सभी लोग कृतघ्न हो। तुम क्या जानो कि आभार प्रदर्शन कैसे किया जाता है? इसे तो हम ही बेहतर जानते हैं। अरे, किसी ने हमारी मदद की, तो प्रत्युत्तर में हम उसकी मदद नहीं करेंगे? इस नाव ने हमें नदी पार कराई है, अब हम इसे धर्मयात्रा कराकर संसार पार करवाएंगे। अंत में आखिरकार हुआ यूं कि इन कृतज्ञ धार्मिक, किंतु मूढ़ व्यक्तियों की धर्मयात्रा अधूरी ही रह गई क्योंकि इतनी भारी नाव ढोते-ढोते सभी लोगों के शरीर थक चुके थे और कई तो बीमार भी हो गए थे। इस प्रकार उनकी यात्रा का लक्ष्य भी पूर्ण न हो सका।

HHH(७७७)HHH

२१३८) किसान की सीख - राजा राजराजेश्वर ने सप्तद्वीप नवखंड पर कई दशकों तक राज्य किया। राज करते-करते वह अचानक वैभवशाली जीवन से उकता गए और अपने अल्पायु पुत्र को सिंहासन सौंप कर जंगल चले गए और वहां तपस्या करने लगे। वह केवल एक समय फलाहार करते और कई बार तो उन्हें उसका भी ध्यान न रहता। इस तरह काफी समय बीत गया किंतु उन्हें आत्मिक शांति प्राप्त नहीं हुई। उन्हें किसी न किसी से यह पता चलता रहता था कि उनके वन में आने के बाद से उनकी प्रजा बेहद परेशान हो गई है। राजकाज काफी गड़बड़ा रहा है। इससे वह दुखी हो जाते। एक दिन वह टहलते हुए एक खेत के पास पहुंच गए, जहां एक किसान हल चला रहा था। साधु वेश में राजराजेश्वर को देखकर किसान ने उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और कहा, बाबा, आप किस चीज की तलाश में इतने व्याकुल हैं? राजराजेश्वर को कुछ और न सूझा। वह बोले, इस समय तो मुझे भूख ने बेहद व्याकुल किया हुआ है। इस पर किसान बोला, बाबा, मेरी झोपड़ी में खाने की सामग्री रखी हुई है। आप उसे पका कर खा लीजिए। मैं अपना काम बीच में नहीं छोड़ सकता। कर्म अधूरा छोड़ना मेरे स्वभाव में नहीं है। किसान की बात सुनकर राजराजेश्वर उसे हैरानी से दखते रहे। उसने उन्हें एक बड़ी सीख दी थी। उन्होंने खाना पकाया और किसान के साथ मिलकर खाया। फिर उसी समय वह अपने राज्य लौट गए और प्रजा की सेवा में पहले की तरह लग गए।

२१३९) सफलता का मंत्र - पुराने जमाने की बात है। आचार्य भद्रबाहु एक बहुत बड़े आचार्य हुए हैं। संघ के सामने कोई कठिनाई आने पर उन्होंने एक मंत्र की रचना की। संघ का संकट दूर हो गया। पर वह मंत्र संघ से जुड़े लोगों के बीच प्रचलित हो गया। एक दिन एक स्त्री रसोई बना रही थी। उसका बछड़ा भाग गया। स्त्री ने सोचा बछड़े को पकड़ लाऊं। फिर सोचा, क्यों जाऊं? मुझे मंत्र याद है। उसने मंत्र का पाठ किया और देवी उपस्थित हो गई। स्त्री ने कहा, देवी। कोई संकट तो नहीं है, किंतु मेरा बछड़ा भाग गया है। तुम उसे लाकर खूंटे से बांध दो। देवी को आश्चर्य हुआ। वह भद्रबाहु के पास जाकर बोली, महाराज आपने क्या कर दिया है? यह मंत्र आपने सार्वजनिक क्यों कर दिया? आज तो हमें बछड़ा बांधना पड़ रहा है, कल पता नहीं क्या करना पड़ेगा? यह तो अकर्मण्यता है।

२१४०) खुलकर कहें अपने मन की बात - एक मां-बेटी थीं। बेटी युवा हो गई थी मगर अब तक उसका विवाह नहीं हो पाया था। दिनरात चिंतित रहती। बेटी को वह कड़ी चौकसी में रखती और उसे घर से बाहर भी नहीं जाने देती। बेटी के प्रत्येक क्रियाकलाप पर मां की पैनी निगाह हरदम रहती। बेटी को इतना प्रतिबंध अच्छा नहीं लगता था। वह मन ही मन मां पर बहुत गुस्सा होती पर मर्यादावश कुछ बोल नहीं पाती। संयोग से दोनों को सपने देखने और नींद में बोलने की आदत थी। एक रात दोनों एक साथ नींद में बोलने लगी। मां ने बेटी को नींद में बहुत अपशब्द कहे और कहा- यह दुष्ट जवान हो गई है और मैं बूढ़ी। इसकी कहां तक चौकीदारी करूं? बाहर जाने से रोकूं तो इसे बुरा लगता है। इसकी वजह से मेरा दिन का चैन और रातों की नींद हराम हो गई है। इधर, बेटी भी बड़बड़ा रही थी यह बुढ़िया पल-पल मेरी चौकसी करती है। क्या मैं अपना भला-बुरा नहीं समझती? क्या मुझे अपनी इच्छा से जीने का अधिकार नहीं है? तभी घड़ी का अलार्म बजा और दोनों जाग गईं। स्थिति यह थी कि नींद खुलते-खुलते तक दोनों अपशब्द बरसा रही थीं और अब एक-दूसरे के प्रति शर्मसार थीं क्योंकि आखिर थीं तो मां-बेटी। कितना अच्छा होता कि दोनों परस्पर स्थितियों को समझकर, आपस में खुली बातचीत कर तदनुरूप आचरण करती। इससे मां-बेटी के स्नेहिल रिश्ते तो प्रभावित न होते। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि सुप्तावस्था में हम जो कुछ बोलते, देखते व करते हैं वह हमारे अंतर्मन के दबे विचार ही होते हैं। यदि इन विचारों को दबाने के

बजाय खुलकर व्यक्त किया जाए, तो मन शुद्ध हो जाता है और फिर कभी गलत चीजें सपने में भी नहीं दिखाई देती। जो लोग यह बात नहीं समझते, वे ग्रंथियों का शिकार होकर परस्पर संबंधों को प्रतिकूल कर लेते हैं।

२१४१) वास्तविक पहचान - अभयकुमार को वन में एक नवजात शिशु पड़ा मिला। उसे देखकर उसके भीतर करुणा उमड़ आई। वह शिशु को उठाकर घर ले आया। बच्चे का नाम रखा- जीवक। उसे खूब पढ़ाया-लिखाया। जब जीवक बड़ा हुआ तो एक दिन अचानक उसने अभय कुमार से पूछा, मेरे माता-पिता कौन है? अभय कुमार को उसके इस प्रश्न पर आश्चर्य हुआ लेकिन उसने सोचा कि जीवक से कुछ भी छिपाना ठीक नहीं होगा। उसने उसे सारी बात बता दी कि किस तरह वह उसे जंगल में पड़ा मिला था। इस पर जीवक ने कहा, मैं आत्महीनता का भार लेकर कहां जाऊं? इस पर अभय कुमार ने उसे ढांढस बंधाते हुए कहा, वत्स, इस बात को लेकर दुखी होने की बजाय तक्षशिला जाओ और वहां एकाग्रचित्त होकर अध्ययन करो और अपने ज्ञान का प्रकाश समाज को दो। जीवक विद्याध्ययन के लिए तक्षशिला चल पड़ा। प्रवेश के समय आचार्य ने नाम, पिता का नाम कुल और गोत्र पूछा तो उसने साफ-साफ सब कुछ बता दिया। आचार्य ने उसकी स्पष्टवादिता से प्रभावित होकर उसे प्रवेश दे दिया। जीवक ने वहां कठोर परिश्रम किया और आयुर्वेदाचार्य की उपाधि हासिल की। उसके आचार्य चाहते थे कि वह मगध जाए और वहां रहकर लोगों की सेवा करे। जीवक उसी पुराने प्रश्न से लगातार उद्विग्न था। उसे परेशान देखकर आचार्य ने पूछा, वत्स तुम इस तरह उदास क्यों हो? इस पर जीवक ने उत्तर दिया, आचार्य आप जानते हैं कि मेरा कोई कुल और गोत्र नहीं है। मैं जहां भी जाऊंगा, लोग मुझ पर उंगलियां उठाएंगे। क्या आप मुझे यहां अपने पास नहीं रख सकते, ताकि मैं आपकी सेवा करता रहूं। आचार्य बोले, वत्स तुम्हारी योग्यता क्षमता, प्रतिभा और ज्ञान ही तुम्हारा कुल और गोत्र है। तुम जहां भी जाओगे, वही तुम्हें सम्मान मिलेगा। अभावग्रस्त प्राणियों की सेवा में अपने को समर्पित्त करना ही तुम्हारा धर्म है। इसीसे तुम्हारी पहचान बनेगी। इस तरह जीवक को आत्मविश्वास का प्रकाश मिला। वह आयुर्वेदाचार्य के रूप में मगध में प्रसिद्ध हो गया।

२१४२) भक्त की परिभाषा - काशी से थोड़ी दूर रामनगर में एक साधु रहता था। उसे विश्वास था कि वह जो कुछ भी करेगा, प्रभु उसे अपना भक्त समझकर माफ कर देंगे। एक दिन प्रात:काल वह गंगा में स्नान करके एक धोबी के कपड़े धोनेवाले पत्थर पर बैठकर पूजा करने लगा। थोड़ी देर में धोबी कपड़े धोने के लिए आ गया। साधु को पूजा करते देख वह उसके उठने की प्रतीक्षा करने लगा, लेकिन जब काफी देर हो गई तो पास जाकर बोला, महाराज, आप हमारे पत्थर से उठकर दूसरी जगह पूजा करें, ताकि हम कपड़ा धो सकें। मुझे देर हो रही है। साधु ने धोबी की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। धोबी ने फिर अनुरोध किया लेकिन साधु उठने की बजाय गुस्से में बोला, मैं नहीं उठता, तू कहीं और जाकर कपड़ा धो ले। धोबी ने कहा, मैं कहां जाऊंगा। आप कहें तो मैं पूजा के लिए आसन बना दूं। लेकिन साधु ने धोबी की बात को अनसुना कर दिया। लाचार धोबी ने साधु का हाथ पकड़ कर पत्थर से उठा दिया। साधु को गुस्सा आ गया। उसने क्रोध में कहा, तुम नहीं जानते मैं भगवान का भक्त हूं। अभी तुम्हें इसका मजा चखाता हूं। और उसने धोबी को एक पत्थर उठा कर मार दिया। चोट लगने पर धोबी को भी गुस्सा आ गया और उसने साधु को पटक दिया। इसके बाद साधु और धोबी गुत्थमगुत्था हो गए। तभी साधु को भगवान की याद आई और वह बोला, प्रभु, मैं इतनी श्रद्धा-भक्ति से आपकी आराधना करता हूं फिर भी आप मेरी मदद करने को नहीं आ रहे हैं। तभी साधु के कान में आवाज सुनाई पड़ी, तुम्हारी बात तो ठीक है। हम तो अपने भक्तों की मदद के लिए हमेशा उनके साथ रहते हैं लेकिन इस समय हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि तुम दोनों में मेरा भक्त कौन है, क्योंकि मेरा भक्त कभी क्रोध

नहीं करता। यह सुनते ही साधु का अभिमान चकनाचूर हो गया और वह धोबी से क्षमायाचना करते हुए वहां से चला गया।

२१४३) संत की सीख - मोहन बड़ा आलसी था। बचपन से ही उसने कोई भी परिश्रम वाला कार्य नहीं किया था। किसी प्रकार उसकी शादी हुई। पत्नी सुशीला काफी समझदार थी। उसे अपने पति के आचरण की जानकारी हुई तो वह बहुत दुखी हुई। उसने मोहन को मेहनत करने की सलाह दी पर उसका कोई लाभ नहीं हुआ। अब मोहन ने चोरी करना शुरू कर दिया। परेशान सुशीला एक संत के पास गई और उसने अपने पति के उद्धार का उपाय पूछा। संत ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा- चिंता मत करो। सब ठीक हो जाएगा। तुम्हें मेरे द्वारा बताई गई तरकीब से काम करना होगा। इसी दौरान मोहन ने एक सेठ के घर हाथ साफ किया था। मोहन अच्छा-खासा माल घर ले आया था। सुशीला ने संत की सिखाई तरकीब के अनुसार चोरी का सारा सामान गायब कर दिया। दो दिन बाद मोहन को सामान के गायब होने का पता चला। वह जोर जोर से रोने लगा। तब सुशीला ने कहा- तुम इतना परेशान क्यों हो रहे हो? तुमने वह सामान चोरी करके इकट्ठा किया था कोई परिश्रम करके तो जमा नहीं किया था। अब जरा सोचो कि जिस प्रकार तुम दूसरों का परिश्रम से जमा किया हुआ सामान चुराते रहे हो तो वे लोग कितना रोये होंगे। उन्हें कितनी परेशानी होती होगी। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हें भी जीवन की खुशियां मिले तो यह कठिन परिश्रम से ही संभव है। इन बातों का मोहन पर गहरा असर पड़ा। वह चोरी छोड़कर मेहनत करके कमाने लगा।

२१४४) आपकी उम्र क्या है - किसी कस्बे की नगरपालिका के अध्यक्ष को सूचना मिली कि कहीं से एक संत वहां आए हैं। उनका बड़ा ही दिव्य रूप है। अध्यक्ष ने उनसे मिलने का फैसला किया। संत एक मंदिर में ठहरे थे। लोग बड़ी संख्या में वहां पहुंच रहे थे। वे संत के लिए फूल-फल लेकर आए थे पर संत उन चीजों की ओर देख भी नहीं रहे थे। अध्यक्ष से रहा नहीं गया। वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। विनम्र भाव से बोला- हमारा मार्गदर्शन कीजिए। संत ने बिना किसी भूमिका के बोलना शुरू किया। लोग मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे। उनका प्रवचन प्रभावशाली था। अंत में अध्यक्ष ने निवेदन किया- कृपया मेरे घर चलकर भोजन लीजिए। संत यह सुन विचारमग्न हो गए। फिर बोले- भाई, मैंने यह व्रत ले रखा है कि मैं उसी गृहस्थ के घर भोजन करूंगा जो सदा सत्य बोलता हो। अब आप बताएं कि भोजन कहां करूं? अचानक वहां सन्नाटा छा गया। अध्यक्ष ने कहा- महाराज मैं गृहस्थ हूं, मुझे कभी-कभी झूठ का सहारा लेना पड़ता है। मैं खोजता हूं इस कस्बे में ऐसा कोई है या नहीं? वहां उपस्थित लोग परेशान हो गए। सब विचार करने लगे कि आखिर उनके बीच ऐसा कौन है। तभी एक सेठ का नाम सामने आया। सेठ को संदेश भेजा गया। वह सहर्ष तैयार हो गए। सब लोग संत को सेठ के घर छोड़ने आए। सेठ और संत में वार्ता शुरू हो गई। संत ने पूछा- आपकी उम्र क्या है? सेठ ने उत्तर दिया- दस वर्ष। इस पर संत बोले- लेकिन आप तो पचास के आसपास के दिखाई देते हैं। इस पर सेठ ने कहा- मेरी उम्र पचास है। लेकिन मैं दस वर्ष पहले तक अपने व्यापार के हित में खूब झूठ बोला करता था। पर दस वर्ष से मैं सत्य व्रत का पालन कर रहा हूं। इसलिए इसे ही मैं अपनी वास्तविक उम्र मानता हूं। यह सुनकर संत प्रसन्न हुए।

२१४५) सुधार का रास्ता - अयोध्या में सरयू के किनारे एक बड़े मंदिर में एक संत और उनके कुछ शिष्य रहते थे। मंदिर के पास कई बीघा जमीन थी। संत और उनके शिष्य उसमें खेती करते थे। नवंबर का महीना था। सर्दी पड़ रही थी। धान की फसल तैयार हो गई थी। संत ने अपने शिष्यों से कहा कि कल सुबह फसल काटी जाएगी। लेकिन उसी रात एक घटना घट गई। कुछ लोग आए और फसल काटकर उसकी गड्डियां बनाकर जाने लगे। लेकिन कोहरे के कारण उन्हें रास्ता दिखाई नहीं दिया। लगता था वे अंधे हो गए है। अंतत: वे खेत में ही भटककर रह गए। सुबह होने पर संत ने अपने एक

शिष्य से कहा, रात में धान कट गए है। काटनेवाले रात से भूखे हैं। तुम उन्हें कुछ खाने को दे आओ। शिष्य खेत पर पहुंचा तो उसने फसल काटनेवालों की खूब प्रशंसा की क्योंकि रात के अंधेरे में भी धान की कटाई ठीक से हुई थी। शिष्य ने उन्हें खाने को दिया। कुछ देर बाद संत अपने शिष्यों के साथ आए और बोले, कटाई करेनवालों को मजदूरी दे दो। शिष्य ने एक-एक बंडल धान काटनेवालों को दे दिया। तब मजदूरी फसल के रूप में ही दी जाती थी। धान काटनेवालों ने संत के पैर पकड़कर कहा, बाबा हमें मजदूरी नहीं चाहिए। आपने हमें जो रास्ता दिखाया है वह जिंदगी भर की कमाई से भी ज्यादा है। और वे लोग बिना मजदूरी लिए चले गए। एक शिष्य बोला, बाबा मजदूरों ने मजदूरी क्यों नहीं ली? बाबा ने बताया, धान काटनेवाले कोई मजदूर नहीं थे। वे सभी चोर थे। मैंने उन्हें रात में ही धान काटते देख लिया था। एक शिष्य बोला, बाबा, आपने उन चोरों को जाने क्यों दिया। उन्हें सजा मिलनी चाहिए थी। बाबा बोले, वत्स कोई जन्म से चोरी सीख कर नहीं आता। तुमने देखा कि क्षमा करने से उनमें अपनी गलती का अहसास हुआ है।

२१४६) अनोखा आदेश - एक राजा था। सुबह-सुबह दरबार में उसका मंत्री पहुंचा तो उसने देखा कि राजा क्रोध में लाल-पीली हो रहा था। क्रोध की वजह राजा की अपने दामाद ने नाराजगी थी। राजा ने मंत्री से कहा- ये दामाद किसी के सगे नहीं होते है। राजा की बात सुनकर मंत्री हैरान रह गया। मंत्री जानता था कि राजा को गुस्सा जितना जल्दी आता है उतना ही जल्दी शांत भी हो जाता है। चिल्लाते हुए राजा मंत्री से बोला- मैं चाहता हूं कि हमारे राज्य के सभी दामादों को फांसी पर लटका दिया जाए। मंत्री दंग रह गया। कुछ समय बाद वह बोली- राजन्। आपके आदेश का पालन होगा। दूसरे दिन राजा ने मंत्री से पूछा- क्या मेरे आदेश की पालना हो गई? मंत्री ने कहा- हां, महाराज। चलकर देखिए। मैंने सारे इंतजाम करवा दिए हैं। वह राजा को खुले मैदान में ले गया, जहां सैकड़ों फांसी के तख्ते सजे थे। इनमें से कुछ लकड़ी के थे और कुछ कीमती धातुओं के। जब राजा ने फांसी के तख्तों को देखा तो उनमें कुछ तख्ते बहुत ही घटिया लकड़ी से बने थे। कुछ तख्ते सोने-चांदी, पीतल के बने हुए थे। राजा मंत्री से बोला- ये अलग-अलग तरह के तख्ते क्यों बनाए है। मंत्री बोला- हुजूर। गरीब दामादों के लिए लकड़ी के तख्ते और अमीर दामादों के लिए पीतल का। चांदी के तख्ते उन दरबारी दामादों लिए हैं जो राजा की हां में हां मिलाते हैं। पर ये सोने का तख्ता? राजा ने पूछा। राजन्, यह सोने का तख्ता आपके लिए हैं क्योंकि आप भी तो किसी के दामाद हैं मंत्री के यह कहते ही राजा का गुस्सा शांत हो गया और चेहरे पर हंसी फैल गई। राजा ने मंत्री से कहा, अगर तुम्हारे जैसा समझदार सलाहकार नहीं होता तो न जाने अभी कितने लोगों का जान जा चुकी होती। मंत्री ने राजा को घणी खम्मा कहकर गुस्सा शांत होने के लिए धन्यवाद दिया।

२१४७) विनय का घड़ा - अहं नाम का एक धनिक पुत्र विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में गया। वहां वह अध्ययन पर कम ध्यान देता, उपद्रव करने में सबसे आगे रहता। धनवान होने के अहंकार के कारण उसमें थोड़ी भी विनम्रता नहीं थी। उसकी उद्दंडता को देखकर उसके अन्य साथी उससे कहते, विनय से ही विद्या की शोभा है। तुम विनय और प्रेम से ही विद्या प्राप्त कर सकते हो। अहं ने उन्हें झिड़कते हुए कहा, बड़े आए विनयवाले। आचार्य जी हमें मुफ्त में पढ़ाते हैं क्या? उनको हम शुल्क देते हैं। सहपाठी चुप हो गए लेकिन यह बात आचार्य तक जा पहुंची। एक दिन आचार्य सभी विद्यार्थियों को उद्यान में ले जाकर बागबानी के बारे में कुछ समझा रहे थे। वहीं कुएं से खींचा गया जल मिट्टी की नाली से होकर नीचे गिर रहा था। उसी नाली के नीचे एक घड़ा रखा था। ऊपर से काफी सारा पानी गिरने पर भी घड़ा भर नहीं रहा था। यह देखकर आचार्य अहं से बोले, देखो तो, घड़ा भर गया क्या? अहं ने जाकर देखा तो पाया कि घड़ा खाली है। यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह

बोला, घड़ा तो खाली है। कुछ देर बाद आचार्य फिर अहं से बोले, देखो, अब भर गया होगा। अहं ने फिर घड़ा देखा तो पाया कि अभी भी वह खाली था। यह देखकर उत्सुकतावश उसने घड़ा उठाकर देखा तो पाया कि वह पेंदी से फूटा हुआ था। अहं ने आचार्य से कहा, अभी नहीं भरा। यह सुनकर आचार्य फिर बोले- कोई बात नहीं, कुछ देर में भर जाएगा। इस पर अहं गुस्से से बोला, वह कभी भी नहीं भरेगा क्योंकि वह नीचे से फूटा हुआ है। अहं की बात सुनकर आचार्य बोले, बालकों, इसी तरह तुम सब विद्यार्थी घड़े हो और मैं बहता हुआ पानी हूं। मेरे मस्तिष्क से निकला हुआ ज्ञान रूपी पानी उस घड़े में ही ठहरेगा जिसमें अविनय का छेद नहीं होगा। यह सुनकर अहं को अपनी भूल का अहसास हो गया।

२१४८) उलटी गंगा - एक बनिया था। भला था। नीम पागल था। एक छोटी सी दुकान चलाता था। दाल, मुरमुरे रेवड़ी जैसी चीजें बेचता था और शाम तक दाल-रोटी का जुगाड़ कर लेता था। एक रोज दुकान बंद कर देर रात वह अपने घर जा रहा था, तभी रास्ते में उसे कुछ चोर मिले। बनिये ने चोरों से पूछा, इस वक्त अँधेरे में आप लोग कहाँ जा रहे हैं? चोर बोले, भैया, हम तो सौदागर हैं। आप हमें क्यों टोक रहे हैं? बनिये ने कहा, लेकिन एक पहर रात बीतने के बाद आप जा कहाँ रहे हैं? चोर बोले, माल खरीदने। बनिये ने पूछा, माल नकद खरीदोगे या उधार? चोर बोले, न नकद, न उधार। पैसे तो देने ही नहीं है। बनिये ने कहा, आपका यह पेशा तो बहुत बढ़िया है। क्या आप मुझे भी अपने साथ ले चलेंगे? चोर बोले, चलिए। आपको फायदा ही होगा। बनिये ने कहा, बात तो ठीक है। लेकिन पहने यह तो बताओ कि यह धंधा कैसे किया जाता है? चोर बोले, लिखो-किसीके घर के पिछवाड़े... बनिये ने कहा, लिखा। चोर बोले, चुपचाप सेंध लगाना। बनिये ने कहा, लिखा। चोर बोले, फिर दबे पाँव घर में घुसना... बनिये ने कहा, लिखा। चोर बोले, जो भी लेना हो, सो इकट्ठा करना। बनिये ने कहा, लिखा। चोर बोले, न तो मकान मालिक से पूछना और न उसे लेकर घर लौट जाना। बनिये ने सारी बाते कागज पर लिख लीं और लिखा हुआ कागज जेब में डाल लिया। बाद में सब चोरी करने निकले। चोर एक घर में चोरी करने घुसे और बनिया दूसरे घर में चोरी करने पहुँचा। वहाँ उसने ठीक वही किया जो कागज में लिखा था। पहले पिछवाड़े सेंध लगाई। दबे पाँव घर में घुसा। दियासलाई जलाकर दीया जलाया। एक बोरा खोजकर उसमें पीतल के छोटे-बड़े बरतन बेफिक्री से भरने लगा। तभी एक बड़ा तसला उसके हाथ से गिरा और सारा घर उसकी आवाज से गूँज उठा। घर के लोग जाग गए। सबने चोर-चोर चिल्लाकर बनिये को घेर लिया और मारने-पीटने लगे। बनिये को ताज्जुब हुआ। मार खाते-खाते उसने अपनी जेब में रखा कागज निकाला और उसे एक नजर पढ़ डाला। फिर तो वह जोश में आ गया। जब सब लोग उसकी मरम्मत कर रहे थे, तब बनिया बोला- भाइयो, यह तो लिखा-पढ़ी से बिलकुल उलटा हो रहा है। यहाँ तो उलटी गंगा बह रही है। बनिये की बात सुनकर सब सोच में पड़ गए। मारना-पीटना रोककर सबने पूछा, यह तुम क्या बक रहे हो? बनिये ने कहा, लीजिए, यह कागज देख लीजिए। इसमें कहीं पिटाई का जिक्र है? घर के लोग तुरंत समझ गए। उन्होंने बनिये को घर से बाहर धकेल दिया। सोच-विचारकर किया कार्य कभी कष्टदायक नहीं होता।

२१४९) आत्मविश्वास है विजय- घटना वर्ष १९६० की है। यूरोप का भव्य ऐतिहासिक नगर तथा इटली की राजधानी रोम पर सारे विश्व की निगाहें २५ अगस्त से ११ सितंबर तक होनेवाले ओलंपिक खेलों पर टिकी हुई थीं। इन्हीं ओलंपिक खेलों में एक बीस वर्षीय अश्वेत बालिका भी भाग ले रही थी। वह इतनी तेज दौड़ी, इतनी तेज दौड़ी कि १९६० के ओलंपिक मुकाबलों में तीन स्वर्ण पदक जीत कर दुनिया की सबसे तेज धाविका बन गई।

रोम ओलंपिक में लोग ८३ देशों के ५३४६ खिलाड़ियों में इस बीस वर्षीय बालिका का असाधारण पराक्रम देखने के लिए

इसलिए उत्सुक नहीं थे कि विल्मा रुडोल्फ नामक यह बालिका अश्वेत थी अपितु यह वह बालिका थी जिसे चार वर्ष की आयु में डबल निमोनिया और काला बुखार होने से पोलियो हो गया और फलस्वरूप उसे पैरों में ब्रेस पहननी पड़ी। विल्मा रुडोल्फ ग्यारह वर्ष की उम्र तक चल-फिर भी नहीं सकती थी लेकिन उसने एक सपना पाल रखा था कि उसे दुनिया की सबसे तेज धाविका बनना है। उस सपने को यथार्थ में परिवर्तित होता देखने के लिए इतने उत्सुक थे पूरी दुनिया वे लोग और खेल प्रेमी।

डॉक्टर के मना करने के बावजूद विल्मा रुडोल्फ ने अपने पैरों की ब्रेस उतार फेंकी और स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर अभ्यास में जुट गई। अपने सपने को मन में प्रगाढ़ किए हुए वह निरंतर अभ्यास करती रही। उसने अपने आत्मविश्वास को इतना ऊंचा कर लिया कि असंभव-सी बात पूरी कर दिखलाई। एक साथ तीन स्वर्ण पदक हासिल कर दिखाए।

२१५०) प्रसन्नता का मंत्र - एक सेठ के पास लाखों की संपत्ति थी और भरा-पूरा परिवार था, फिर भी उसका मन अशांत रहता था। जब उसकी परेशानी बहुत बढ़ गई तो वह एक साधु के पास गया और अपना कष्ट बताकर प्रार्थना की, महाराज, जैसे भी हो, मेरी अशांति दूर कीजिए। साधु ने उसकी बात ध्यान से सुनी और कहा, तुम्हारे कष्ट का एकमात्र कारण यह है कि तुम जिंदगी को सहजता से नहीं लेते। अगर सुख या दुख को समान भाव से लेने लगोगे तो कोई कष्ट नहीं होगा। सेठ को यह बात समझ में नहीं आई। साधु इस चीज को भांप गए। उन्होंने कुछ सोचकर कहा, यहां से थोड़ी दूर पर तुम्हारी तरह ही एक अमीर कारोबारी रहता है, उसके पास जाओ वह तुम्हें रास्ता बता देगा। सेठ ने सोचा कि साधु उसे बहका रहे है। उसने साधु से कहा, स्वामीजी, मैं तो आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूं। आप ही मेरा उद्धार कीजिए। मैंने सोचा था कि आप मुझे कोई मंत्र वगैरह बताएंगे। साधु ने हंसकर कहा, जाओ उसी कारोबारी के पास तुम्हें प्रसन्नता का मंत्र मिल जाएगा। लाचार होकर सेठ उस कारोबारी के पास पहुंचा। पहुंचते ही वह समझ गया कि उस कारोबारी का लाखों का व्यापार है। सेठ एक ओर बैठ गया। इतने में एक आदमी आ गया। उसका मुंह उतरा हुआ था। वह कारोबारी से बोला, मालिक हमारा जहाज समुद्र में डूब गया। लाखों का नुकसान हो गया। कारोबारी ने मुस्कराकर कहा, इसमें परेशान होने की क्या बात है? व्यापार में ऐसा होता ही रहता है। इतना कहकर वह अपने साथी से बात करने लगा। थोड़ी देर में दूसरा आदमी आया और बोला, सरकार रूई का दाम चढ़ गया है। हमें लाखों का फायदा हो गया। कारोबारी ने कहा, मुनीमजी, इसमें ज्यादा खुश होने की क्या बात है? व्यापार में तो ऐसा होता ही रहता है। सेठ सब कुछ समझ गया। उसे प्रसन्नता का मंत्र मिल गया।

२१५१) क्रोध का जाल - चंडकौशिक ने तप तो बहुत किया, पर वे अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं कर सके। यह दुर्गुण उनमें ज्यों का त्यों बना रहा। एक दिन उनके पैर से एक मेंढक कुचल कर मर गया। उनके साथी तपस्वी ने इस ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। तो चंडकौशिक आगबबूला हो गए। वे उसे मारने दौड़े। उन्हें बीच में खड़ा खंभा भी न दिखा। वे उसी से टकरा गए। यही चोट उनकी मृत्यु का कारण बन गई। उन्होंने उसी आश्रम में फिर जन्म लिया और साधना के द्वारा उसी के संचालक बने, फिर भी उनका क्रोध गया नहीं। एक बार कुछ भक्तजन उपहार और पूजा उपकरण लेकर उपस्थित हुए। भक्तों के व्यवहार और उपहार में उन्हें कुछ दोष दिखा तो वे क्रुद्ध होकर उन्हें मारने दौड़े। भक्त भागे, वे पीछे दौड़े। क्रोधावेश ने चंडकौशिक को एकदम पागल बना दिया था। रास्ते के व्यवधान भी उन्हें सूझ न पड़े। एक कुएं में उनका पैर पड़ा और उनकी मृत्यु हो गई। उनका जन्म तीसरी बार उसी आश्रम में हुआ। इस बार वे भयंकर विषधर सर्प की देह लेकर जन्मे। जो कोई उधर से निकलता उसी का पीछा करते और जो पकड़ में आ जाता उसे डस कर उसका प्राण हरण कर लेते। एक बार भगवान महावीर उस आश्रम में पधारे, तो चंडकौशिक ने उन्हें भी डस लिया। दंश से भगवान का पैर

क्षत-विक्षत हो गया, फिर भी करुणा की उस प्रतिमूर्ति के चेहरे पर तनिक भी क्रोध न आया। वे मुस्कराते रहे और उस क्षुद्र प्राणी को अपनी अनंत क्षमा का पात्र बनाए रहे। आश्रमवासी उस दुष्ट जीव को मारने आए, तो उन्होंने रोक दिया। भगवान की दिव्य सत्ता को पहचानकर सर्प योनि में बैठे चंडकौशिक ने पश्चाताप व्यक्त किया। उन्हें भगवान के उपदेश सुनने के बाद मुक्ति मिली। फिर मानव देह में जन्म लेकर उन्होंने क्रोध शमन हेतु तप किया और सिद्ध पुरुष बने।

२१५२) स्वर्ग और नरक - लाओत्से के पास एक युवा सैनिक, जिसने धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया था, पहुंचा। उसने सुन रखा था कि लाओत्से के पास सभी समस्याओं का समाधान है। युवा सैनिक लाओत्से से जानना चाहता था कि स्वर्ग और नरक में क्या अंतर है? लाओत्से ने उसे अच्छी तरह देखा और पूछा, युवक तुम्हारा पेशा क्या है? सैनिक ने अपने पेशे के बारे में बताया तो लाओत्से ने उसका उपहास करते हुए कहा, तुम और सैनिक। तुम्हें तो देखकर पता चलता है कि तुम बड़े डरपोक हो। तुम्हें तो बंदूक भी ठीक से उठाना नहीं आता होगा। तुमने तो शायद ही आज तक कोई वीरता का काम किया हो। यह कहकर लाओत्से ने ठहाका लगाया। इस पर सैनिक की भौंहें तन गई। उसका खून खौल उठा। उसने बंदूक निकाल ली और ज्यों ही घोड़ा दबाने को हुआ कि तभी लाओत्से बोल पड़े, बस यही है नरक का द्वार। तुम इससे आगे बढ़े नहीं कि नरक में पहुंच जाओगे। इसके बाद लाओत्से ने विस्तार से क्रोध, उससे होनेवाले नुकसान और क्रोध पर नियंत्रण की जरूरत पर चर्चा की। उन्होंने इस क्रम में उसे समझाते हुए कहा, स्वर्ग और नरक कहीं बाहर नहीं हैं। वे हमारे भीतर हैं। वे हमारी सोच और व्यवहार में प्रकट होते हैं। लाओत्से की बात का मर्म समझते ही युवक की आंखें खुल गई। वह अपने किए पर ग्लानि से भर गया और लाओत्से के चरणों में गिर पड़ा। लाओत्से ने कहा, लो, अब तुम्हारे लिए खुल गया स्वर्ग का द्वार। आगे बढ़ती ही तुम्हारा दुनिया की हर खुशियों से सामना होगा।

२१५३) स्वर्ग और नरक- एक युवक था। वह बंदूक और तलवार चलाना सीख रहा था। इसलिए वह यदा-कदा जंगल जाकर खरगोश, लोमड़ी और पक्षियों आदि का शिकार करता। शिकार करते-करते उसे यह घमंड हो गया कि उसके जैसा निशानेबाज कोई नहीं है और न उसके जैसा कोई तलवार चलानेवाला। आगे चलकर वह इतना घमंडी हो गया कि किसी बड़े के प्रति शिष्टाचार भी भूल गया। उसके गाँव के बाहर कुटिया में एक संत रहते थे। वह एक दिन उनके पास पहुँचा। न उन्हें प्रणाम किया और न ही अपना परिचय दिया। सीधे उनके सामने पड़े आसन पर बैठ गया और कहने लगा, लोग बेकार में स्वर्ग-नरक में विश्वास करते हैं? संत ने उससे पूछा, तुम तलवार साथ में क्यों रखते हो? उसने कहा, मुझे सेना में भर्ती होना है, कर्नल बनना है। इस पर संत ने कहा, तुम्हारे जैसे लोग सेना में भर्ती किए जाते हैं? पहले अपनी शक्ल शीशे में जाकर देख लो। यह सुनते ही युवक गुस्से में आ गया और उसने म्यान से तलवार निकाल ली। तब संत ने फिर कहा, वाह। तुम्हारी तलवार भी कैसी है? इससे तुम किसी भी बहादुर आदमी का सामना नहीं कर सकते, क्योंकि वीरों की तलवार की चमक कुछ और ही होती है। फिर तो युवक गुस्से से आग-बबूला हो गया और संत को मारने के लिए झपटा। तब संत ने शांत स्वर से कहा, अब तुम्हारे लिए नरक का दरवाजा खुल गया। यह सुनते ही युवक की अक्ल खुल गई और उसने तलवार म्यान में रख ली। अब वह सर झुककर संत के सामने खड़ा था और अपराधी जैसा भाव दिखा रहा था। इस पर संत ने कहा, अब तुम्हारे लिए स्वर्ग का दरवाजा खुल गया।

२१५४) त्यागी कौन- राजा ने योगी को नमस्कार किया। योगी ने पूछा, आपने मेरा इतना सम्मान क्यों किया? राजा ने कहा, भगवन, आप घर-परिवार का त्याग कर एकांत में साधना करते है, इसलिए आप पूज्य हैं। योगी बोला, लेकिन

आपका त्याग मुझसे कही ज्यादा है। राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा, वह कैसे? योगी ने कहा, किसी व्यक्ति के पास एक भव्य भवन है। अगर वह रोज झाड़ू लगाकर उसमें से कूड़ा-कचरा बाहर निकालता है तो क्या वह त्यागी कहलाएगा? राजा ने कहा, इसमें त्याग कैसा। कूड़ा तो बाहर निकालने की ही चीज है। योगी ने फिर कहा, राजन्, यदि कोई दूसरा व्यक्ति घर की बहुमूल्य वस्तुएं दूसरों को दे देता है तो उसे आप क्या कहेंगे? राजा ने कहा, निश्चय ही वह महान त्यागी है। आपने ध्यान, आत्मचिंतन और साधना जैसी महान चीजों का त्याग किया है और सोना-चांदी जैसी बहुमूल्य वस्तुएं अपने पास रखी है, जबकि मैंने तो बस परिवार का ही त्याग किया है। फिर आपका त्याग तो ज्यादा बड़ा हुआ न। राजा योगी का आशय समझ गया। उस दिन से वह ईश्वरोपासना और जनकल्याण में जुट गया।

२१५५) सच्ची सेवा- एक थी बिल्ली। मुरगी के बच्चे उसे बहुत ही भाते थे। रोजाना दो-चार बच्चों को वह कहीं न कहीं से खोज-खाजकर खा जाती थी। एक दिन उसे भनक मिली कि एक मुरगी बीमार है। वह हमदर्द जताने मुरगी के दरबे के पास आई और कहा, कहो बहन, कैसी हो? क्या मैं तुम्हारी ऐसी हालत में तुम्हारे कुछ काम आ सकती हूँ? तुम्हारी सेवा करना मेरा फर्ज भी तो हैं। बीमार मुरगी क्षण भर सोचती रही। फिर बोली, अगर तुम सचमुच मेरी सेवा करना चाहती हो तो मेरे परिवार से दूर रहो- और अपनी जमातवालों से भी ऐसा ही करने को कहो।

२१५६) ईश्वर की सत्ता- एक बार काशी नरेश ने अपने गुरु को दरबार में बुलाया और आवभगत करने के बाद कहा, गुरुदेव, एक लंबे अर्से से मुझे आपके धर्मोपदेश सुनने का सुअवसर प्राप्त होता रहा है। आप ईश्वर की सत्ता और उसके न्याय की बातें बताते रहे हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं ईश्वर को साक्षात देखूं।

गुरु ने उत्तर दिया, जिस प्रकार आपको इस बात का अहसास है कि जो कपड़े आपने पहन रखे हैं, वे किसी और के बनाए हुए हैं, उसी प्रकार यह दिन-रात आकाश, धरती आदि का बनानेवाला, हजारों प्रकार के जीव जंतुओं का निर्माण करनेवाला भी कोई सर्वशक्तिमान है। धर्मगुरु का उत्तर काशी नरेश को आश्वस्त नहीं कर सका। वह ईश्वर के दर्शन कराने का आग्रह करते रहे। आखिरकार गुरु ने सम्राट को यह विश्वास दिलाया कि वह इसके लिए प्रयत्न करेंगे। दूसरे दिन दोपहर में, जब सूर्य तप रहा था गुरु ने सम्राट के महल में जाकर कहा, आपको शायद याद होगा कि कल आपने ईश्वर के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की थी। कृपया मेरे साथ चलिए। सम्राट तुरंत अपने गुरु के साथ बाहर आ गए।

कुछ क्षण वे दोनों धूप में चलते रहे। फिर गुरु ने कहा, सम्राट, आकाश में तपते हुए सूर्य की ओर देखें, सीधे सूर्य की ओर। और कहीं ध्यान न दें। यदि आपके मन में कोई भय हो तो उसे भी त्याग दें। सम्राट ने सूर्य की ओर देखने के लिए अपनी नजर आकाश की ओर उठाई। सूर्य के तेज प्रकाश से उनकी आंखें चुंधियां गईं और वह सूर्य की ओर एक क्षण भी नहीं देख सके। काशी नरेश ने कहा, मैं सूर्य को नहीं देख सकता। गुरु बोले, ठीक कहा, ईश्वर के साक्षात रूप को देखने का साहस हमारे अंदर नहीं है। जब आप ईश्वर की सत्ता के एक छोटे से निर्माण को, एक छोटी सी कृति को नहीं देख सके तो उसके विराट स्वरूप को कैसे देख पाएंगे।

२१५७) नुकसान- एक गाँव था, जिसके चारों ओर जंगल था। जंगल में तरह-तरह के फलों के वृक्ष थे। वसंत ऋतु में वे फूलों से भर जाते। उनकी महक हवा में तैरती रहती। शाखाओं पर तरह-तरह के पक्षी अपना घोंसला बनाते और अपनी चहचहाहट का संगीत बिखेरते। सर्दियों में डालें सेब-नाशपतियों से लद जातीं। कुछ शरारती लड़कों ने जंगल में घूम-घूमकर घोंसले खोजे और उन्हें नष्ट कर डाला। बेचारी चिड़ियाँ फिर किसी दूसरी जगह जाकर अपना घोंसला बनाने लगीं।

अब हुआ यह कि फलों और पत्तियों को चाट जानेवाले कीड़े-मकोड़ो, जो पहले चिड़ियों द्वारा खा लिये जाते थे, फिर से पनपने लगे और सारे फलों का नष्ट करने लगे। सर्दियों में बच्चों को जो मीठे और अच्छे फल खाने को मिलते थे, अब तोड़ने पर कीड़ेवाले निकलते थे। जो लोग पेड़-पौधों और पक्षियों को स्नेह देते हैं वे उनसे बदले में उतना ही स्नेह पाते हैं।

२१५८) भाग्य और कर्म- किसी गांव में एक गरीब पंडित जी रहते थे। वह घोर भाग्यवादी थे और कोई नियमित कामकाज नहीं करते थे। उनका एक बेटा था उपमन्यु। वह जब भी अपने पिता से अपनी गरीबी के बारे में पूछता तो वह यही कहते कि यह सब भाग्य का खेल है। एक दिन उपमन्यु ने यह सवाल गांव के एक पुजारी से किया। पुजारी ने उसे दूसरे दिन अपने पिता के साथ आने को कहा। जब अगले दिन बाप-बेटे पुजारी के पास पहुंचे तो पुजारी ने उपमन्यु के हाथ की रेखाएं देख कर पंडित जी से कहा, आप का बेटा बड़ा भाग्यशाली है, लेकिन उस पर एक ग्रह का असर है। मगर एक अनुष्ठान करने से यह प्रभाव समाप्त हो जाएगा। पंडित जी ने पूछा, मुझे क्या करना होगा? पुजारी ने कहा, यदि आप दोनों मिलकर आश्रम के प्रांगण में एक कुआं खोदो तो ग्रह का असर भी समाप्त हो जाएगा और लोगों को पीने का पानी भी मिलेगा। दूसरे दिन से दोनों ने कुआं खोदना आरंभ कर दिया। कई दिनों तक कड़ी मेहनत के बाद पानी का सोता दिखाई दिया। अंतिम दिन खुदाई के समय उन्हें एक घड़ा मिला। पंडित जी उस घड़े को पुजारी के पास ले गए। पुजारी ने घड़े के ऊपर बंधे कपड़े को हटाया। घड़ा मुद्राओं से भरा था। उसमें एक पुर्जा भी था। पुजारी ने वह पुर्जा हाथ में ले लिया और घड़े की मुद्राएं पंडित जी को देते हुए बोला, लीजिए यह आपके भाग्य का फल है। उपमन्यु बोला, पर आपने यह तो बताया ही नहीं कि भाग्य क्या होता है। पुजारी ने कहा, बेटा इस पुर्जे को पढ़ो। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इसमें मिलेगा। पुर्जे में लिखा था- भाग्य का दूसरा नाम कर्म है। पुजारी ने बताया, भाग्य अपने आप में कुछ नहीं होता। कर्म करोगे तभी भाग्य भी साथ देगा। तुम दोनों ने मेहनत की, ती तुम्हें घड़ा मिला। यदि कुआं खोदते ही नहीं तो धन कहां से मिलता। इस तरह पुजारी की इस तरकीब से पंडित जी ने मेहनत के मार्ग पर चलना सीखा।

२१५९) ऐसा कोई हथियार - चीन के हुनान राज्य में चेनचिंग नाम का एक लुहार रहता था। वह तलवार, भाला, बरछी, ढाल आदि बनाया करता था। चीजों को बेचने का भी उसका नायाब तरीका था। वह दुकान के आगे खड़ा हो जाता और अपने हथियारों की बढ़-चढ़कर तारीफ करने लग जाता। एक दिन उसने हाथ में एक बरछा लेकर उसका बखान शुरू कर दिया- अहा क्या बरछा है यह। इतना लंबा होने पर भी फूल जैसा हल्का और इस बरछे का फल, उसका तो कहना ही क्या। ऐसी मजबूत और पैनी धार है कि हर ढाल को छेदकर आर-पार निकल जाए। इतना कहकर चेनचिंग ने मजमे में नजर दौड़ाई। उसे एक व्यक्ति चेहरे से उत्सुक दिखा। चेनचिंग ने उससे पूछा- तुम्हें लेना है यह बरछा? उस व्यक्ति ने कहा कि वह बरछा नहीं ढाल खरीदना चाहता है। चेनचिंग ने एक ढाल निकालकर कहना शुरू किया- ऐसी ढाल न अब तक बनी है न बनेगी। दुनिया में कोई ऐसा भाला, बल्लम, बरछा, तीर या तलवार नहीं है जो इस पर खरोंच भी ला सके। यह सुनकर भीड़ में से एक बच्चा आगे आया और बोला- एक ओर तो तुम कहते हो कि दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जिसे छेदकर तुम्हारा बरछा आर-पार न जा सके। दूसरी तरफ कहते हो कि ऐसा कोई हथियार नहीं जो तुम्हारी ढाल पर खरोंच भी कर सके। अपनी ढाल पर अपना बरछा चलाकर दिखालाओ तभी पता चलेगा कि सच क्या है। यह सुनकर चेनचिंग कोई बहाना बनाकर अपने घर में घुस गया। उसने प्रण किया कि वह अपने कारोबार के लिए झूठ का सहारा नहीं लेगा।

२१६०) सबसे ताकतवर के साथ - एक बिल्ली थी, स्वभाव से डरपोक। वह चाहती थी कि उसकी दोस्ती सबसे ताकतवर के साथ हो जाए जिससे उसे किसी से डर नहीं लगे। उसकी नजर में शेर सबसे ताकतवर था। वह शेर के पास

चली गई। वह किसी तरह शेर से दोस्ती गांठ कर उसके साथ रहने लगी। काफी दिनों के बाद जंगल में घूमता हुआ एक हाथी शेर के सामने आ गया। शेर उससे लड़ने लगा। अंतत: हाथी ने शेर को मार दिया। बिल्ली सोचने लगी- यह हाथी तो शेर से भी अधिक ताकतवर है। क्यों न वह हाथी से ही दोस्ती कर ले। इस तरह हाथी से दोस्ती कर वह उसके साथ रहने लगी। बिल्ली हाथी के साथ बहुत दिनों तक रही। एक दिन एक शिकारी कहीं से आया और उसने हाथी को पकड़ कर बेच दिया। बिल्ली को हाथी के जाने का दुख तो हुआ लेकिन उस दिन उसे लगा कि आदमी हाथी से भी ज्यादा ताकतवर होता है। वह शिकारी के साथ उसके घर चली आई। घर पहुंचने पर शिकारी की पत्नी बाहर निकली और उसने शिकारी से उसकी बंदूक ले ली। इस पर बिल्ली सोचने लगी कि यह औरत तो शिकारी से भी अधिक ताकतवर है। इसके पास शिकारी से ज्यादा ताकत है तभी तो इसके सामने उतना खतरनाक शिकारी कुछ बोल भी नहीं पाया। तब बिल्ली ने तय किया कि वह इस औरत के साथ ही रहेगी। वह उस औरत के पीछे-पीछे रसोई में चली गई। कहा जाता है कि औरतों को सबसे ताकतवर मानकर ही तब से बिल्लीयां रसोई में या उसके आसपास रहती चली आ रही हैं।

२१६१) मिठाई की दुकान - एक युवा हलवाई ने मिठाइयों की एक छोटी सी दुकान खोली। कभी-कभी उसकी दुकान में ग्राहक आते और कभी नहीं। चाहे ग्राहक ज्यादा आए या कम, किंतु इससे हलवाई की प्रसन्नता में कोई फर्क नहीं पड़ता था। वह ईमानदारी व मेहनत से अपना काम करता रहता था। कुछ ही दिनों में उसकी दुकान पूरे शहर में मशहूर हो गई। उसकी मिठाइयों की घर-घर में चर्चा होने लगी। फिर भी उसने दाम नहीं बढ़ाए। एक ग्राहक प्रतिदिन उससे रसगुल्ले खरीदता। कुछ ही दिनों में उसकी हलवाई से घनिष्ठता हो गई। मिठाईवाला अब भी पहले की तरह ही शांत व खुश रहता था। एक दिन वह ग्राहक बोला, तुम्हारी दुकान कुछ ही समय में अच्छी चल निकली है। तुम इसकी नई शाखा क्यों नहीं खोल लेते? ग्राहक की बात पर हलवाई मुस्करा कर बोला, उससे क्या होगा? ग्राहक बोला, अरे भई यदि तुम इस दुकान की एक और शाखा खोल लेते हो तो दूर-दूर तक तुम्हारा नाम होगा और इस तरह तुम्हारी मिठाइयों की मांग सब जगह होने लगेगी। हलवाई ने मासूमियत से पूछा, उससे क्या होगा? ग्राहक बोला, उससे तुम्हारे पास धन-दौलत की बरसात होने लगेगी और तुम धनवान हो जाओगे। हलवाई ने कहा, उससे क्या होगा? यह सुनकर ग्राहक को गुस्सा आ गया और वह खीझकर बोला, अरे भैया, तुम तो निरे बेवकूफ मालूम होते हो। जब तुम्हारा व्यापार दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करेगा, तुम पर रूपयों की बरसात होगी तो तुम अपने जीवन में अधिक खुश रह सकोगे। हलवाई ने कहा, वो तो मैं अब भी हूं। ग्राहक हलवाई का जवाब सुनकर दंग रह गया। हलवाई की बात से ग्राहक सहमत हो गया।

२१६२) सीढ़ीं - तुम तो सठिया गई हो। हर समय बेवकूफों जैसी बातें करती हो। एमबीए पास सुशील ने अपनी विद्यापीठ की कक्षाएं लेने वाली मां से तुनक कर कहा। बात बढ़ने के डर से मां आंसू पीकर चुप रह गई, मगर यह एक दिन की ही बात तो थी नहीं। रोज का किस्सा बन गया था। कुछ तो सुशील फितरत से ही कड़वा बोलने वाला था। रही सही कमी बीवी ने आकर पूरी कर दी। सास सुंदर, शिक्षित, सलीका पसंद, उम्र से कम दिखनेवाली आकर्षक स्त्री थी।

बहू उसमें अपनी प्रतिद्वंद्वी देखती, इसीलिए वह पति को हर समय सास के खिलाफ भड़काती रहती। सास पर हर तरफ से वार करने में जुटी बहू ने अपनी तीन-चार साल की मासूम बच्ची को भी मोहरा बना रखा था। दादी मां कहने के बजाए वो उसे उन्हें बूढ़ी माई कहना सिखाती। पिता दर्शनशास्त्र के प्राचार्य थे। पत्नी से रो-रोकर शिकायत करने पर बोले, अपने बेटे- बहू में भविष्य की सुरक्षा देखते हुए हम उनसे दबे रहते हैं। मात्र बेजान सीढ़ी बनकर जब हम अपने ऊपर पैर रखकर उन्हें ऊपर चढ़ने

लेते हैं- कितनी बड़ी गलती करते हैं। ऊंचाइयों पर पहुंचकर सीढ़ी व्यर्थ हो जाती है, क्या तुम नहीं जानतीं।

२१६३) किसान और कुत्ते - अकाल का मारा एक किसान भूखों मरने लगा। घर में खाने को कुछ था नहीं। अचानक उसे एक उपाय सूझा, क्यों न मैं अपनी भेड़ों को अपना भोजन बनाऊँ? दूसरे दिन से उसने भेड़ मारकर खानी शुरू कर दीं। कुछ दिनों में वह सारी भेड़ें मारकर खा गया। तब उसकी नजर अपनी बकरियों पर गई। महीने भर में सारी बकरियाँ भी खत्म हो गइ। तब उसने अपनी गाय को भी कत्ल कर डालने का फैसला किया। तभी उसके दो कुत्ते चौंक उठे। वे समझ गए कि अब उनकी भी खैर नहीं। गाय के बाद उनका ही नंबर है। जब तक जान में जान है, यहाँ से भाग निकलो-और वे उस किसान के घर से भाग खड़े हुए।

२१६४) स्वयं पर विश्वास - दारापुर के राजा की अकाल मृत्यु के बाद उसके पुत्र को राजगद्दी मिली। युवा राजा बेहद परेशान था। वह समझ नही पा रहा था कि किसका विश्वास करे, किसका नही। उसे राजकाज चलाने में काफी परेशानी हो रही थी। एक बार वह अपने महल की ऊंची अटारी पर खड़ा था कि अचानक उसकी नजर महल के मार्ग पर पड़ी। उसने देखा कि लोगों का एक झुंड एक ही दिशा की ओर चला जा रहा है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि एक संत नगर के बाहर आध्यात्मिक प्रवचन देनेवाले हैं। सब उन्ही का उपदेश सुनने जा रहे है। राजा के भीतर उत्सुकता जगी। वह भी वेश बदलकर सभा में शामिल हो गया। महात्मा जी की बातों को राजा ने ध्यानपूर्वक सुना और असीम आनंद का अनुभव किया। सभा समाप्त हुई और सभी अपने-अपने घरों को चले गए, लेकिन राजा अपने स्थान पर बैठा रहा। संत अपनी कुटिया में जाने के लिए आसन से ज्यों ही उठे कि उनका दुशाला कुर्सी की कील में फंसकर फट गया। महात्मा अंदर गए और हाथ में सूई-धागा लेकर बाहर आए और दुशाले की सिलाई के लिए सूई में धागा डालने का प्रयत्न करने लगे। यह देखकर राजा ने पास जाकर विनम्र भाव से कहा, महाराज, आपकी यह दुशाला पुरानी हो चुकी है। यह मुझे दे दीजिए और आप मेरी नई दुशाला ले लीजिए। संत ने उत्तर दिया, श्रीमान, मुझे आपकी नई दुशाला नहीं चाहिए, यदि आप मेरी सहायता करना ही चाहते हैं तो सूई में धागा डाल दें। राजा ने सूई में धागा पिरोकर उन्हें दे दिया। संत ने अपनी दुशाला में टांके लगाने के बाद कहा, मैं किसी भी कार्य के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहता हूं। संत के ये शब्द सुनकर राजा के मन के सारे संशय दूर हो गए। उस दिन के बाद उसने एक नए आत्मविश्वास के साथ राजकाम संभालना शुरू कर दिया।

२१६५) रे. क्राक के बर्गर - रे. क्राक जो भी काम करने बैठते उसमें असफल हो जाते। सबसे पहले उन्होंने फ्लोरिडा में रीयल एस्टेट बेचने की कोशिश की, किंतु उसमें उन्हें घाटा हो गया। उन्होंने उस काम को छोड़ दिया और एक बैंड में पियानो बजाने लगे। लेकिन वहां भी उन्हें कोई खास सफलता नहीं मिला। उसके बाद वे कार ड्राईवर बन गए। लेकिन इसमें भी उनका मन नहीं लगा। फिर वे सेल्समैन बन गए। उन्हें समझ ही नहीं आ रहा था कि आखिर उनका काम में मन क्यों नहीं लगता है? तरह-तरह के धंधे आजमाने के बाद उन्होंने अपनी एक कंपनी बनाई और तेरह वर्ष तक मल्टी मिक्सर्स बेचते रहे। इसी तरह समय के साथ-साथ उनकी आयु बढ़ती रही और उन्हें सबसे बड़ी सफलता अपने जीवन के बावन वर्ष बिताने के बाद मिली। उन्होंने देखा कि उनके मल्टी मिक्सर्स का सबसे बड़ा खरीददार एक ऐसा रेस्तरां है, जिसे दो भाई मिलकर चलाते हैं। एक दिन रे. क्राक उस रेस्तरां में गए। वहां उन्होंने देखा कि लोग लाइन में खड़े होकर हैमबर्गर के लिए हल्ला मचा रहे हैं। वहां से वापस आने के बाद उन्होंने काफी सोच-विचार कर मैक डोनल्ड बंधुओं के फ्रेंचाइजी अधिकार खरीद लिए। इसके बाद धीरे-धीरे उन्होंने मैक डोनल्ड फ्रेंचाइजी चेन बनाकर पूरे विश्व में अपना व्यापार फैलाना शुरू किया और

आज दुनिया के हर शहर में उनके बर्गर बिक रहे हैं। इस प्रकार रे. क्राक ने जीवन के उस समय में सफलता प्राप्त की, जब लोग कार्य करके और असफलता मिलने पर हार कर बैठ जाते हैं और अपना जीवन समाप्त समझते हैं।

२१६६) पाप की जड़ - एक राजा ने एक दिन अपने पुरोहित से अचानक पूछा, मान्यवर, कृपया बताएं कि दुनिया में हो रहे इतने पाप का असली कारण क्या है? क्यों करते हैं लोग पाप? सवाल सुनकर पुरोहित सोच में पड़ गए। बोले, राजन्, इस सवाल का उत्तर देने में कुछ समय लगेगा। इसके लिए मुझे दो दिन चाहिए। राजा ने कहा, ठीक है, आप दो दिन ले लीजिए। अगर आपने इसका सही उत्तर दिया तो मैं आपको बहुत सा इनाम दूंगा। पुरोहित इनाम के लोभ में और अपनी प्रतिष्ठा की खातिर सवाल का जवाब ढूंढने घर से निकल पड़े। उन्हें यह आशंका भी सता रही थी कि अगर वह उत्तर नहीं ढूंढ पाए तो राजा की नजरों में गिर जाएंगे। पुरोहित दिन-रात चलते रहे और रास्ते में मिलने वाले हर साधु-मनीषी से यह सवाल पूछते रहे। लेकिन किसी का जवाब उन्हें अच्छा नहीं लगा। अंतत: वह नगर की सरहद पर पहुंचे। वहां एक गड़रिया अपनी भेड़ें चरा रहा था। पुरोहित ने जब गड़रिए से यह सवाल पूछा तो वह हंसने लगा। वह हंसते हुए बोला, मैं आपको इसका जवाब नहीं बता सकता। आप इस लायक है ही नहीं। यह सोचकर कि वह गड़रिया वास्तव में इस सवाल का उत्तर जानता है, पुरोहित बोले, मैं आपके लिए कुछ भी कर सकता हूं। मेहरबानी कर इसका जवाब बता दीजिए। तब गड़रिए ने कहा, उत्तर जानने के लिए क्या आप मेरा जूठा दूध पी सकते हैं? पुरोहित इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए। तब गड़रिए ने फिर हंसते हुए कहा, यही आपके प्रश्न का उत्तर है। आप पद, प्रतिष्ठा और इनाम के लोभ में कुछ भी करने को तैयार हो गए। ऐसे तो आप मेरा जूठा दूध कभी नहीं पीते लेकिन स्वार्थवश आप इसके लिए मान गए।

२१६७) दूज का चांद- एक बार का बात है। एक देश के राजा के वजीर को घूमने-फिरने का बहुत शौक था। घूमते-फिरते वजीर दूसरे राजा के राज्य की सीमा में पहुंच गया। सैनिकों ने वजीर को गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार वजीर उसे देश के राजा के दरबार में पेश किया गया। राजा ने गिरफ्तार पड़ोसी राज्य के मंत्री से पूछा- तुम हमारी सीमा में क्यों घुस आए? वजीर ने कहा- हुजूर, मैं घूमने-फिरने का शौकीन हूं इसलिए भूलवश आपके राज्य की हद में चला आया। राजा ने पूछा- अच्छा तुम देस-दिसावर घूमते-फिरते हो तो यह बताओ कि तुमने मेरे जैसा कोई राजा देखा या नहीं। उसने थोड़ा सोचा और विचारा और जवाब दिया- हुजूर, आप तो पूनम के चांद जैसे हो और हमारा राजा दूज के चांद जैसे है। वजीर का जवाब सुनकर पड़ोसी राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। गिरफ्तार वजीर को रिहा कर दिया गया। यह बात वजीर ने अपनी पत्नी को बताई। पत्नी ने रानी को बताई। रानी ने यह बात राजा को बताई। राजा ने सुना तो वह आग बबूला हो गया। उसने सोचा वजीर ने मुझे तो दूज का चांद बताया और मेरे पड़ोसी शत्रु राजा को पूनम का चांद। सुबह होते ही वजीर को दरबार में तलब किया गया। वजीर से पूनम के चांद और दूज के चांद की बात के बारे में सफाई देने का हुक्म दिया। वजीर ने कहा- हुजूर, मैंने पड़ोसी राजा को पूनम का चन्द्रमा कहा। पूनम का चांद चाहे कितना ही बड़ा हो, दिन-दिन घटता जाता है। हर दिन अपने आकाश से छोटा होता है। जबकि दूज का चांद भले दिखने में छोटा होता है पर हर रोज बढ़ता रहता है। इसलिए मेरे मन में यह उपाय देते हुए यह कामना थी कि हमारे राजा दूज के चांद की तरह बढ़ते रहे और शत्रु राजा पूनम के चांद की तरह घटता रहे। वजीर की बात सुनकर राजा बहुत खुश हुए और सोने की मोहरों का थाल भर कर उपहार दिया।

२१६८) चहेता शासक- लिच्छवी गणराज्य में प्रत्येक शासक को पांच वर्ष के लिए चुना जाता था। ये चुनाव प्रजा तथा उच्च अधिकारियों की सहमति से होते थे। चुनाव में योग्य व्यक्ति को ही शासक बनाया जाता था। निधिवत्स नामक

एक शासक पांच वर्ष तक शासक रहने के बाद पदच्युत होने पर अपने कटु अनुभव आगामी प्रत्याशी आदित्य को सुनाते हुए बोला, तुम चुन भी लिए गए तो तुम्हें क्या मिलेगा? मात्र पांच वर्ष का शासन। पांच वर्ष तक सुख-सुविधा भोगने के बाद का समय बेहद दुखद होता है। निधिवत्स की बात सुनकर आदित्य मुस्कराते हुए बोला, नहीं विधिवत्स, मेरे साथ ऐसा नहीं होगा। शासक बनने में तुम्हारा लक्ष्य केवल सुख भोगना था, जो कि गलत था। यदि वह न होता तो तुम्हें आज इतनी पीड़ा न होती। आदित्य की बात निधिवत्स को बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। वह मुंह बनाकर बोला, देखते हैं कि तुम चुनाव में जीतने पर सुख से कैसे दूर होते हो? चुनाव में आदित्य विजयी हुआ। सत्ता हाथ में आते ही उसने ऐसी व्यवस्था की कि राज्य में कोई भी नंगा, भूखा व निर्धन नहीं रहा। उसने सभी के लिए मकान और जीविका के साधन उपलब्ध कराए। योग्य तथा सम्मानीय व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार पद उपलब्ध कराए। अशांति उत्पन्न करनेवालों को दंडित किया। सभी को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की। पांच वर्ष पूरे होने पर जब आदित्य के पद त्यागने की बारी आई तो प्रतिनिधियों व प्रजा ने उसे ऐसा करने ही नहीं दिया और सर्वसम्मति से उसे अगले पांच वर्षों के लिए फिर से शासक बना दिया। यह देखकर निधिवत्स उसके पास आया और उससे क्षमा मांगते हुए बोला, आदित्य तुम्हारा कहना ठीक था। आदित्य अपनी सेवा और परोपकार की भावना से लिच्छवी की प्रजा का चहेता शासक बन गया।

२१६९) कम में भी है दम - किसी गांव के अखाड़े में दंगल चल रहा था। आसपास के इलाकों से भी नामी पहलवान आए हुए थे। भारी भीड़ जमा थी। सब लोग अपने-अपने पसंदीदा पहलवान का उत्साह बढ़ा रहे थे। तरह-तरह के दांव-पेच आजमाता हुआ नामचीन पहलवान भीमा अपने प्रतिद्वंद्वी सल्लू पहलवान से हार गया, तो वह दुखी होकर अपने गुरु गजराज सिंह के पास जा पहुंचा। वह अपनी हार का विश्लेषण करने लगा। वह बोला- गुरुजी, ऐसा कैसे हो गया? आपने तो मुझे लगभग सभी दांव सिखा रखे हैं, लेकिन जिस दांव से सल्लू ने आज मुझे पटखनी दी है, वह तो मुझे आता ही नहीं था। सल्लू तो बहुत कमजोर पहलवान है। उसे वह दांव कैसे आता था? गुरुजी कुछ देर तक चुप रहे फिर उन्होंने कहा- देखो भीमा, यहीं तुमसे भारी चूक हो गई है। सामनेवाले को कभी अपने से कम नहीं समझना चाहिए। तुमने सल्लू को हल्के में लिया जिससे वह तुम पर हावी हो गया और एक बहुत मामूली दांव से उसने तुम्हें मात दे दी। तुमने ज्यों ही उसे कम आंका तुम्हारी चुस्ती कम हो गई, इसी का उसे लाभ मिल गया। जिस तरह रात का अंधियारा छोटे से दीपक से मिट जाता है, वहां सूरज का कोई काम नहीं है। पैर में कांटा चुभा हो तो वह भी छोटे से कांटे या सूई से ही निकाला जाता है, वह तलवार से तो निकलता नहीं। ऐसे ही तुमने बड़े-बड़े दांवों पर भरोसा किया और छोटे दांवों को भुला दिया। नतीजा तुम्हारे सामने है।

२१७०) हार या जीत - ओलंपिक में नावों की रेस होनेवाली थी। सभी प्रतिद्वंद्वी अपनी-अपनी जीत के लिए आतुर थे। नियत समय पर प्रतियोगिता शुरू हो गई। सभी एक-दूसरे से आगे बढ़ने के लिए दौड़ पड़े। अचानक एक प्रतियोगी की नाव अटक गई और उसकी जान जोखिम में पड़ गई। पर यह तो प्रतियोगिता थी। सभी प्रतियोगियों पर अपनी-अपनी जीत की धुन सवार थी। वे अपने साथी प्रतियोगी को मुसीबत में देख उसे दरकिनार कर आगे बढ़ते रहे। रेस देख रहे लोग भी समझ नहीं पा रहे थे कि उस तक मदद कैसे पहुंचाई जाए। तभी एक प्रतियोगी लारेंस लेमिएक्स भी वहां से गुजरा। वह नौका दौड़ में बहुत कुशल था। उसके जीतने की पूरी उम्मीद थी। लेकिन वह दर्दनाक दृश्य देखकर उसका दिल दहल गया। उसे किसी की जान या जीत, दोनों में से एक के पक्ष में निर्णय लेना था। एक सेकंड में उसने जीत को महत्व न देकर किसी की जान बचाने का फैसला किया। वह मुसीबत में फंसे प्रतियोगी को देखकर रुक गया। लारेंस लेमिएक्स

प्रतियोगी के पास पहुंचा। कुछ देर तक अनेक प्रयासों के बाद वह प्रतियोगी की जान बचाने में कामयाब हो गया। लारेंस नौका दौड़ तो नहीं जीत सका लेकिन उसने लाखों-करोड़ों लोगों का दिल जीत लिया। उसके बाद अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने उसका सम्मान किया क्योंकि उसने केवल जीत की भावना को जीवित न रखते हुए पूरी मानवता की भावना को जीवित रखा था। लारेंस की यह हार उसकी ओलंपिक से भी बड़ी जीत बन कर लोगों के सामने आई।

२१७१) नहीं चाहिए हीरा-मोती - यह घटना अठारहवीं सदी की है। उन दिनों मालाबार के समुद्र-तट पर काहनोजी आंग्रे के नाम का डंका बजता था। समुद्र तट पर व समुद्र व्यापारियों में उनकी धाक थी। एक बार पुर्तगालियों का जहाज आंग्रे के गढ़ में आया। पुर्तगीज सरदार आंग्रे के सामने उपस्थित हुआ। आंग्रे ने उसे उचित आदर व सम्मान दिया। कुछ देर बाद पुर्तगीज सरदार के साथियों ने अनेक संदूक आंग्रे के सामने रख दिए। आंग्रे ने उन पर एक नजर डाली, फिर उनके सरदार से पूछा, इनमें क्या है? सरदार बोला, कुछ खास नहीं। बस आपके लिए कुछ तुच्छ भेंट है। आंग्रे ने अपने सेवकों से कहकर संदूकों को खुलवाया तो यह देखकर दंग रह गए कि वे संदूक बेशकीमती हीरे-मोतियों से अटे पड़े थे। आंग्रे के क्रोध का ठिकाना न रहा, लेकिन गुस्से पर काबू करते हुए उन्होंने कहा, मैं देश-द्वार का प्रहरी हूं, मुझे रिश्वत देने का प्रयत्न तुम्हारे लिए घातक होगा। मुझे हीरे मोती नहीं तुम्हारे हथियार चाहिए। नि:शस्त्र होकर ही तुम भारत की सीमा में प्रवेश कर सकते हो। यह सुन पुर्तगीज सरदार दंग रह गया। उसने अपनी भेंट के औचित्य को तथा अपने पक्ष को स्पष्ट करने की कोशिश की, किंतु आंग्रे उसकी बातों में नहीं आए। आखिरकार सरदार को हार कर संदूक उठाकर वापस पुर्तगीज की ओर लौटना पड़ा। उसने सोचा, जिस देश के सिपाहियों की आंखें हीरे-मोतियों की चमक से भी चकाचौंध नहीं हो सकतीं, उन्हें प्रलोभन नहीं दिया जा सकता। आज उन्हीं आंग्रे को इतिहास में भारतीय नेल्सन के नाम से जाना जाता है।

२१७२) बड़ी बहू और छोटा वर- एक गांव में एक चौधरी रहता था। चौधरी के चतुर और हाजिर जवाब होने से गांव के लोग छोटी बड़ी बात के लिए उसके पास राय मशविरा करने आते थे। एक दिन की बात है, गांव का साहूकार चौधरी से बोला- चौधरीजी, मैं तो लुट गया चौधरी बोला- सेठजी, परेशान मत होओ और पूरी बात बताओ ऐसा कौनसा पहाड़ गिर गया है। पहाड़ भी गिर जाए तो भी परेशान होने से क्या होगा? साहूकार ने राहत की सांस ली। चौधरी ने पूछा- अब बताओ आखिर हुआ क्या है। अभी तो धूमधाम से बेटे का ब्याह करके आए हो। साहूकार ने कहा- बेटे की बारात के साथ ही समस्या आई है। बहू बेटे से उम्र में बड़ी है। चौधरी ने साहूकार की चिंता को हवा में उड़ाते हुए कहा- बड़ी बीनणी बड़ो भाग। सास के काम में भी फटाफट हाथ बटाएगी। बड़ी है तो ज्यादा समझदार होगी। बातचीत चल ही रही थी कि एक पंडितजी भी अपनी समस्या लेकर हाजिर हो गए। वे बोले- चौधरी, मैं तो भरी दोपहरी में लुट गया हूं। चौधरी ने पूछा- बात क्या है। पंडित बोला- पटेल, मेरी लड़की का हाल ही ब्याह किया है। हाय राम, किससे कहूं बनड़ा बेटी से उम्र में छोटा है। सेठजी भी सारी बात सुन रहे थे। वे मन ही मन विचारने लगे कि मेरी समस्या से उल्टी समस्या पंडित की है। देखें चौधरी इसे क्या जवाब देता है। थोड़ी देर चुप रहने के बाद चौधरी बोला- पंडितजी छोटो बनड़ो बड़ो सुहाग यानी वर छोटा है तो बेटी लंबे समय तक सुहागन रहेगी। इस तरह चतुर चौधरी ने दोनों को एकसाथ समझाते हुए का- बड़ी बहू को बड़ो भाग, छोटो बनड़ो बड़ो सुहाग। साहूकार और पंडित चतुर चौधरी के चमत्कारी फैसले से संतुष्ट होकर अपने-अपने घर लौट गए।

२१७३) सबक - किसी गाँव में एक महिला सराय की मालिक थी। एक दिन उसकी एक सहेली उससे मिलने आई। उसने पूछा, कैसा चल रहा है तुम्हारा धंधा? एकदम मंदा। आजकल सारे-के-सारे ग्राहक उस सामनेवाली सराय में जाते

हैं। हालाँकि चाय मेरे यहाँ ज्यादा अच्छी बनती है। वह बोली। सहेली ने कहा, मैं तुम्हें इसका कारण बताती हूं, अगर तुम बुरा न मानो तो। हरगिज नहीं। तो सुनो। सहेली ने कहा, इसमें शक नहीं कि उस सराय की चाय की बनिस्बत तुम्हारे यहाँ की चाय अधिक अच्छी होती है; पर तुम्हारे यहाँ सफाई नहीं है। कप और प्लेट बेहद गंदे होते हैं। इसमें चाय पीते हुए ग्राहकों को मतली आने लगती है। ऊपर से नौकर तुम्हारे यहाँ टेबल और कुरसियाँ तथा फर्श तक ठीक से साफ नहीं करते। अगर तुम अपने यहाँ साफ-सफाई का खयाल रखो तो कुछ ही दिनों के भीतर तुम पाओगी कि तुम्हारे पुराने ग्राहक फिर से तुम्हारे यहाँ चाय पीने आने लगे है। उसने अपनी सहेली की सलाह मानकर सारा सामान साफ रखना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि खिड़की, दरवाजे तक लकदक-लकदक करने लगे। धीरे-धीरे शहर में उस सराय की स्वच्छता की चर्चा होने लगी और लोगों ने फिर से वहाँ बैठकर चाय पीना शुरु कर दिया।

२१७४) आदर्श राज्य - उस समय इंग्लैंड में हेनरी का शासन था। हेनरी का बेटा काफी उद्दंड और जिद्दी स्वभाव का था। एक बार उसका नौकर किसी अपराध में पकड़ा गया। राजकुमार ने उसे छुड़ाने की कोशिश की पर न्यायाधीश श्री गैस्की ने उसकी बात नहीं सुनी और उसे उचित सजा सुनाई। राजकुमार गुस्से में अदालत पहुंचा और गैस्की से अपने नौकर को छोड़ देने के लिए कहा। गैस्की ने राजकुमार को कानून की मर्यादा समझाई और सलाह दी, यदि आप इसे छुड़ाना चाहते हैं तो सम्राट हेनरी से प्रार्थना कीजिए। अब इसे क्षमादान करने का अधिकार केवल उन्हें ही है। पर राजकुमार को यह बात अच्छी नहीं लगी। वह जबर्दस्ती अपने नौकर को ले जाने लगा। गैस्की ने दृढ़तापूर्वक राजकुमार को बाहर निकलने का आदेश दिया। इस पर राजकुमार आग-बबूला हो गया और गैस्की की कुर्सी की ओर झपटा। वहां मौजूद लोगों ने समझा कि वह उन्हें मारने जा रहा है। लेकिन राजकुमार गैस्की को नुकसान पहुंचाने की हिम्मत न जुटा सका और उसने अपने कदम पीछे खींच लिए। गैस्की ने कहा, युवराज, मैं न्याय के इस आसन पर बैठकर राजा के सम्मान की रक्षा कर रहा हूं। आपको भी अदालत की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। आप स्वयं भविष्य में शासन संभालनेवाले हैं। आपको तो न्याय का सम्मान कर प्रजा के सामने एक मिसाल पेश करनी चाहिए थी पर आपने तो न्याय का मजाक उड़ाया है। मैं आपको इसके लिए कैद की सजा सुनाता हूं।

राजकुमार अपने किए पर शर्मिंदा हुआ। वह इसके लिए पश्चाताप करता हुआ चुपचाप सजा भुगतने चला गया। जब राजा हेनरी को इस घटना का पता चला तो उन्होंने गर्वपूर्वक कहा, कानून की मर्यादा की रक्षा करनेवाला ऐसा न्यायाधीश जिस राज्य में होगा, वह काफी सुखी रहेगा और कानून के उल्लंघन करने पर जिस राजा का पुत्र सिर झुकाकर सजा स्वीकार कर लेता है वह राजा भी निश्चय ही सुखी रहेगा। मुझे खुशी है कि मेरा राज्य एक आदर्श राज्य है।

२१७५) स्वावलंबन- स्वामी सत्यदेव परिव्राजक अपने नाम के अनुरूप घुमक्कड़ प्रकृति के एक मस्तमौला व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पास पर्याप्त पैसा न होने पर भी अमेरिका की यात्रा करने का निश्चय किया और वहां जा रहे जलयान में सवार हो गए। खर्च चलाने के लिए जलयान में बर्तन मांजने की नौकरी कर ली और जा पहुंचे अमेरिका। अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर की बात है। एक दिन सुबह-सुबह स्वामी जी सैर करने निकले तो एक अखबार बेचने वाला लड़का उनके पास आया और बोला, महाशय, क्या आज का अखबार खरीदना पसंद करेंगे ? स्वामी जी के यह कहने पर कि मुझे अखबार की जरूरत नहीं है, अखबार बेचने वाले लड़के ने पुन: कहा, महाशय, इसमें बहुत अच्छी-अच्छी खबरें हैं और दाम भी कम हैं। स्वामी जी ने भी फिर नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाते हुए कहा कि उन्हें अखबार नहीं खरीदना है। इस पर

लड़के ने अपना अंतिम अस्त्र इस्तेमाल करते हुए कहा, महाशय अखबार ले लीजिए, वरना जानकारी में दुनिया जहान से एक दिन पीछे छूट जाएंगे। स्वामीजी को लड़के की बातें बड़ी दिलचस्प लगीं और उन्होंने यह सोचकर कि न जाने किस मजबूरी में इस छोटे-से लड़के को अखबार बेचने का काम करना पड़ रहा है, लड़के की मदद करने के उद्देश्य से उससे एक अखबार खरीद लिया। फिर उत्सुकतावश स्वामीजी ने उस लड़के से पूछा, क्या तुम्हारे माता-पिता बहुत गरीब हैं, जो तुम्हें इतनी छोटी-सी उम्र में अखबार बेचने पड़ रहे हैं ? स्वामी जी की बात सुनकर लड़का किंचित रोष में आकर बोला, मेरे माता-पिता गरीब नहीं है। मेरे पिता तो नगरपालिका के अध्यक्ष हैं।

फिर तुम अखबार क्यों बेचते हो ? स्वामीजी ने जानना चाहा। लड़का बोला, मैं अपने माता-पिता पर बोझ नहीं बनना चाहता। मैं चाहता हूं कि मुझे अभी से काम करने की आदत पड़ जाए और भविष्य में किसी तरह की कठिनाई न हो। फिर अखबार बेचना क्या कोई बुरी बात है ?

नहीं, हरगिज नहीं, बल्कि मैंने तो इससे शानदार बात कहीं नहीं देखी। स्वामीजी मुस्कुराते हुए बोले।

२१७६) नकल बिन अकल - एक कौआ था। वह रोज नदी किनारे जाता और बगुले को नमस्कार करता। धीरे-धीरे दोनों में दोस्ती हो गई। बगुला मछलियाँ पकड़ता और कौए को खिलाता। बगुला अपने अनोखे ढंग से रोज नई-नई मछलियाँ पकड़ता। कौए को हर दिन नया भोजन मिलता। बगुला आसमान में उड़ता, लेकिन निगाह उसकी बराबर नीचे रहती। मछली दिखाई देते ही वह सरसराता हुआ नीचे आता, अपनी लंबी चोंच पानी में डालता और पैर ऊँचे रख झट से मछली पकड़कर किनारे पर आ बैठता। कौआ यह सब देखता। उसका मन होता कि वह भी ऐसे ही मछलियाँ पकड़े। वह मन-ही-मन सोचा करता, इसमें कौन सी बड़ी बात है? ऊपर उड़ना, निगाह नीचे की ओर रखना, मछली दिखते ही फौरन नीचे आना, चोंच खोलकर पानी में डालना, औंधा सिर करके पाँव ऊपर की तरह उठाना। मछली चोंच में नहीं आएगी, तो आखिर जाएगी कहाँ? सबकुछ सोच-विचारकर एक रोज कौआ आसमान में उड़ा। बहुत ऊँचा उड़ा। आखिर उसे पानी में एक मछली दिखाई पड़ी। कौआ सरसराता हुआ नीचे आया। पाँव ऊँचे रख, चोंच नीची कर फुरती के साथ मछली पर टूटा; लेकिन मछली वहाँ से खिसक गई। कौए की चोंच काई और जालों में उलझ गई। पाँव ऊँचे रह गए। कौआ छटपटाने लगा। ऊपर आने की उसने बहुत कोशिश की, पर सिर तो पानी में डूबता चला गया। तभी बगुला वहाँ आ पहुँचा। उसको दया आ गई। उसने बड़ी मुश्किल से कौए को पानी से बाहर खींच निकाला। फिर कौए से कहा- करते हो सो कीजिए नकल न कीजे काग। चोंच फँसेगी जालों में पाँव रहेंगे काठ। उस दिन से कौआ समझ गया और किसीकी भी नकल करना छोड़ दिया। <u>इसीलिए कहते हैं कि कभी किसीकी नकल नहीं करनी चाहिए</u>।

२१७७) सबसे बुद्धिमान - मिथिला के राजा वीरेन्द्र सिंह को सवाल पूछने का शौक था। वे रोज मुश्किल से मुश्किल सवाल खोजकर लाते और दरबारियों से जवाब देने को कहते। सही जवाब देनेवाले को वे जी खोलकर इनाम देते। एक दिन राजा ने पूछा, हमारे राज्य में सबसे बुद्धिमान कौन है? साथ में उन्होंने यह भी जोड़ दिया कि गलत जवाब देनेवाले को सजा-ए-मौत दी जाएगी। कई दिन बीत गए। कोई जवाब नहीं मिला। राजा ने ललकार कर कहा, क्या यह सवाल इतना कठिन है कि कोई जवाब नही दे सकता? दरबारी सिर झुकाए खड़े रहे। एक दिन एक महात्मा दरबार में पधारे। राजा ने उनका स्वागत किया। आशीर्वाद देकर अपना स्थान ग्रहण करने के बाद महात्मा ने कहा, राजन मैं आपके सवाल का जवाब देने आया हूं। मैं आपकी भेंट राज्य के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति से करा सकता हूं, लेकिन आपको कल तक इंतजार करना होगा। अगले दिन

महात्मा लौटे तो उनके साथ एक दरिद्र व्यक्ति था। उन्होंने राजा से कहा, आपके सवाल का जवाब यह है। यह व्यक्ति मिथिला राज्य का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है। राजा ने हैरान होकर पूछा, क्या सचमुच तुम सबसे बुद्धिमान हो? उस व्यक्ति ने सिर झुकाकर कहा, हां महाराज, यह सच है। राजा की हैरानी और बढ़ गई। उसने पूछा, इस बात का क्या प्रमाण है कि यह सबसे बुद्धिमान है? इस पर महात्मा ने कहा, राजन्, आप यह कैसे कह सकते हैं कि यह सबसे बुद्धिमान नहीं है? क्या आपके पास इसका कोई प्रमाण है? राजा इस सवाल पर निरुत्तर रह गया। तब महात्मा ने कहा, राजन्, आपके सवाल का सही जवाब कोई नहीं हो सकता, क्योंकि संसार में सबसे बुद्धिमान कोई नहीं है। आपके सवाल का जवाब किसी ने इसलिए भी नहीं दिया कि सभी को अपनी जान प्यारी थी। महात्मा की बात सुनकर राजा की आंख खुल गई और वह महात्मा के चरणों में गिर पड़ा।

२१७८) सबसे अच्छा मौसम- एक सेठ ने निश्चय किया कि वह अपने पुत्र के लिए ऐसी समझदार वधू लाएंगे जिसके पास हर समस्या का समाधान हो। सेठ जब भी किसी लड़की को देखने जाते तो प्रश्न करते कि जाड़ा, गर्मी और बरसात में सबसे अच्छा मौसम कौनसा है? एक लड़की ने उत्तर दिया- गर्मी का मौसम सबसे अच्छा है। उसमें हमलोग पहाड़ पर घूमने जाया करते हैं। सुबह-सुबह टहलने में काफी सुख मिलता है। दूसरी लड़की ने कहा- मुझे तो जाड़े का मौसम पसंद है। इस मौसम में तरह-तरह के पकवान बनते हैं। हम जो भी खाते हैं, सब आसानी से पच जाता है। इस मौसम में गर्म कपड़ों का अपना ही सुख है। तीसरी लड़की ने कहा- मुझे तो वर्षा ऋतु सबसे ज्यादा पसंद है। इस मौसम में पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली होती है। खेतों-खलिहानों से मिट्टी की सोंधी-सोंधी खुशबू आती है। कभी-कभी तो उसमें इतनी महक होती है कि उसे खाने की इच्छा होती है। आसमान में इंद्रधनुष देखकर मन आनंदित हो जाता है। बारिश में भीगने का अपना ही मजा है। सेठ को ये बातें अच्छी तो लगीं पर वह संतुष्ट नहीं हुए। वह थोड़ा निराश भी हो गए। उन्होंने लड़कियां देखने का काम बंद कर दिया। तभी एक दिन एक रिश्तेदार के घर उनकी मुलाकात एक लड़की से हुई जिससे उन्होंने वही सवाल दोहराया। लड़की ने जवाब दिया- अगर हमारा मन और शरीर स्वस्थ है तो सभी मौसम अच्छे हैं। अगर तन-मन स्वस्थ नहीं है तो हर मौसम बेकार है। सेठ इस उत्तर से बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने उस लड़की को बहू बना लिया।

२१७९) पुण्यात्मा- राजा इंद्रद्युम्न हर समय लोगों की भलाई के कार्य में लगे रहते थे। सेवा और परोपकार के गुणों के कारण उन्हें स्वर्ग में स्थान मिला। कुछ समय बाद धर्मराज ने उनसे कहा कि उनके पुण्य क्षीण होने लगे हैं, इसलिए वह थोड़े समय ही स्वर्ग में रह सकेंगे। राजा ने कहा, धर्मराज मैंने जीवन भर लोगों की भलाई के कार्य किए, इतने पुण्य अर्जित किए, फिर वे क्षीण कैसे हो सकते है? धर्मराज ने कहा, तुम्हारी संतानें तुम्हारे पुण्य क्षीण कर रही हैं। तुमने जो धर्मशालाएं, तालाब, गौ शालाएं आदि बनवाई थी, उन्हें तुम्हारे पुत्र-पौत्र लोभ के कारण तुड़वाकर बेच रहे हैं। वे भोग विलास में लीन रहते हैं। राजा ने कहा, लेकिन इससे मेरे पुण्य कैसे कम हो गए? धर्मराज ने समझाया, पुण्यात्मा वह है जो स्वयं संस्कारवान हो और अपनी संतानों को भी संस्कारवान बना सके। यानी वह भावी पीढ़ी को ऐसा बनाए कि वे उसके अच्छे कार्यों को आगे बढ़ाएं। पर तुम इसमें चूक गए।

२१८०) वह अनोखा कॉलेज- यह घटना उस समय की है, जब स्वतंत्रता आंदोलन में तेजी आ रही थी। सरकारी शिक्षा- संस्थाओं का बहिष्कार इसका एक हिस्सा था। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों के लिए अच्छी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबंध भी आवश्यक हो गया था। लेकिन बंगाल के आंदोलनकारियों के पास न तो इतना धन था और न ही सुविधाएं,

जिससे कि विद्यालय चलाया जा सके। निर्णय हुआ कि आपसी सहयोग से ही ऐसा कॉलेज खोला जाए। किसी तरह चंदा जमा किया गया। आम लोगों से जितना कुछ बन सका, सबने सहयोग किया। फिर भी चंदे से जो राशि मिली वह काफी नहीं थी। आखिरकार जैसे-तैसे एक कॉलेज खोला गया। लेकिन इसके लिए संचालक की आवश्यकता थी। उसकी नियुक्ति के लिए विज्ञापन दे दिए गए। संचालक का वेतन कुल पचहत्तर रुपये मासिक तय किया गया। एक संचालक के लिए उस समय यह वेतन काफी कम था किंतु प्रबंध समिति संचालक को इससे अधिक वेतन देने की स्थिति में नहीं थी। खुद प्रबंध समिति के सदस्यों ने इस बात को स्वीकार किया कि शायद इस वेतन पर कोई भी काम करना स्वीकार न करे। विज्ञापन के जवाब में बहुत दिनों तक कहीं से भी कोई आवेदन नहीं आया तो प्रबंध समिति निराश हो गई। मगर एक दिन अचानक ऐसे व्यक्ति का आवेदन पत्र आया, जिसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। बड़ौदा कॉलेज के अध्यक्ष अरविन्द घोष ने, जिन्हें उस समय अनेक सुविधाओं के साथ सात सात सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था, मात्र पचहत्तर रुपये मासिक वेतन पर राष्ट्रीय महाविद्यालय का संचालक बनना स्वीकार कर लिया था। यह खबर सुनकर तत्कालीन सभी शिक्षाशास्त्रियों ने स्वीकार किया और ऐसा ही हुआ। बाद में इस कॉलेज से अनेक चोटी के देशभक्त राजनेता निकले जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और दूसरों को भी प्रेरित किया।

२१८१) पतन- बात पुरानी है। किसी समय एक राज्य में मूर्ख राजा राज्य करता था। उसके मंत्री तथा सभी सभासद मूर्ख और चापलूस थे। पता चला कि विद्वान ऋषि उसके राज्य में से होकर अन्यत्र तीर्थाटन पर जा रहे हैं। मंत्री ने सलाह दी कि ऋषि को राजधानी में आमंत्रित करना चाहिए। यदि ऋषि विद्वान हुआ, तो उसका अपमान कर आननदित होंगे। मूर्ख होने पर उसका सम्मान करेंगे, ताकि प्रजा को यह विश्वास हो जाए कि राजा अन्य मूर्खों का सम्मान करना भी जानता है। राजा ने आज्ञा प्रदान कर दी। मंत्री ऋषि को लाने के लिए दौड़ पड़ा। राजा नगर के द्वार पर खड़ा हो गया। ऋषि अपने शिष्यों के साथ पधारे, किन्तु नगर-द्वार के बाहर जीर्ण-शीर्ण झोपड़ियों को देखकर ठहर गए। उन्होंने पूछा कि यह झोपड़ियां किनकी हैं ? राजा ने उत्तर दिया कि ये बुद्धिमानों के लिए बनाई गई हैं। जो यह समझते हैं कि बिना बुद्धि के शासन नहीं किया जा सकता, उन्हें मैंने उनके पदों से हटाकर नगर के बाहर निकाल दिया है। उत्तर सुनकर ऋषि मुड़ गए। राजा ने कहा, हे साधु। नगर द्वार इधर हैं। आप कहां जा रहे हों ? राजन। तुम्हारी राजधानी में प्रवेश करके मैं अपवित्र नहीं होना चाहता। जिस राज्य में विद्वानों का आदर नहीं होता, उसका पतन सुनिश्चित है। ऐसा कहकर ऋषि लौट गए।

२१८२) काम की लगन- संयुक्त राज्य अमेरिका के एक नौजवान ने परिश्रमपूर्वक इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद उसने एक अच्छी नौकरी की तलाश आरंभ की। उसकी नजर में कई संस्थाएं थीं, लेकिन उसने केवल ऐसी जगह आवेदन किया, जहां उसे काम सीखने और नई चीजें जानने का अच्छा मौका मिलने की उम्मीद थी। जब वह उस संस्था के कार्यालय में गया तो उसे बताया गया कि वहां तो मात्र एक टाइपिस्ट की जगह खाली है। नौजवान के पास थी तो इंजीनियरिंग की उपाधि, किंतु उसने भविष्य में टाइपिस्ट की नौकरी करने के लिए तत्काल स्वीकृति कर दी। उसे उसी दिन से काम करने को कहा गया, मग वह चार दिन बाद आने का वादा कर चला गया। चार दिन बाद जब उसने काम संभाला तो संस्था के प्रबंधक ने पूछा, आप पहले तो तत्काल काम करने को आतुर थे, फिर चार दिन बाद क्यों आए? नौजवान ने उत्तर दिया, मुझे टाइप करना अच्छी तरह नहीं आता था। इसलिए इन चार दिनों में मैंने टाइपिंग का अच्छा अभ्यास किया और मुझे विश्वास है कि अब मैं यह काम करने में पूरी तरह सक्षम हूं। अपने काम को पूरी तन्मयता व दक्षता से करने की इस आदत ने ही उस नौजवान को अंतत: संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर पहुँचाया। उसका

नाम था- हर्बर्ट क्लार्क हूवर। हूवर का कहना था, सौंपे गए किसी भी कार्य को मन की संपूर्ण लगन से करने पर उसके बेहतर परिणाम सामने आते हैं। इसलिए जो भी काम हाथ में लें, उसे पूरी दक्षता के साथ करें।

२१८३) अहंकार से हमेशा दूर रहें, घमंड कभी भी न करें- विनम्र बनें- एक मूर्तिकार सजीव मूर्तियां बनाने में सिद्धहस्त था। उसकी बनाई मूर्तियों को देखकर ऐसा लगता था कि वे अब तुरन्त ही बोल पड़ेगी। इतना बड़ा शिल्पकार होने के बावजूद उसमें एक दोष यह था कि वह अहंकारी था। अपनी कला पर उसे बहुत घमण्ड था। जब उसका आखिरी समय आने लगा, तो उसने सोचा कि यमदूत को तो आना ही है। उसने यमदूतों को भ्रमित करने के लिए अपनी जैसी दस मूर्तियां बना डालीं। अन्तिम समय में उन मूर्तियों के बीच जाकर बैठ गया। यमदूत आए। एक जैसे इतने आदमी को देखकर वह भ्रमित हो गए कि किसको ले जाना है। सही आदमी को न ले जाकर गलत आदमी को ले जाते हैं तो विधि का विधान टूटेगा और मूर्तियों को तोड़ने की उन्हें आज्ञा नहीं मिली हुई थी। अचानक एक यमदूत को उसके एक बड़े दुर्गुण अहंकार की याद आ गई। उसने कहा, काश, इन मूर्तियों को बनाने वाला मुझे मिलता तो उसे बताता कि एक गलती कहाँ रह गई। एक छोटी-सी चूक मूर्तिकार की मेहनत पर पानी फेर रही है। इतना सुनना था कि मूर्तिकार का अहं जाग उठा। वह तुरन्त बोल उठा, कैसी त्रुटि। कहां रह गई गलती। उसके मुंह से इतना ही निकलना था कि यमदूत ने उसकी चोटी पकड़ ली। बोला, यही है त्रुटि। तुम अपने अहं पर नियंत्रण नहीं रख पाए। तुम्हें मालूम होना चाहिए था कि बेजान मूर्तियां बोला नहीं करती।

२१८४) किसान का संदेश- एक राजा अपने सभी कार्य राज ज्योतिषी की सलाह पर करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में अराजकता फैल गई। कोई काम समय पर पूरा नहीं हो पा रहा था। लोग परेशान थे लेकिन राजा जनता की बात नहीं सुनता था और ज्योतिषी की सलाह पर आंख मूंदकर विश्वास करता था। राज्य की समस्या का निराकरण करने के लिए एक बार वह ज्योतिषी की सलाह पर एक संत से मिलने जा रहा था। साथ में ज्योतिषी भी था। रास्ते में एक किसान मिला, जो हल-बैल के साथ खेत जोतने के लिए जा रहा था। ज्योतिषी ने उससे सशंक भाव से कहा, आज तुम इस दिशा में काम करने क्यों जा रहे हो। आज तो दिशा भूल है। इस तरफ आज जो भी काम करोगे, उसका परिणाम उलटा होगा और लाभ के स्थान पर नुकसान होगा। लौट जाओ।

किसान बोला, ज्योतिषी महाराज, मेरे खेत इसी दिशा में हैं। मैं साल भर हर रोज इसी दिशा में काम करने जाता हूं। इसी परिश्रम के कारण मैं आराम से अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं। मुझे आज तक कोई नुकसान नहीं हुआ। मेरे खेतों की पैदावार सबसे अच्छी होती है। यदि मैं आप की सलाहपर काम करने लगूं तो भूखों मर जाऊंगा। खेत बंजर हो जाएंगे। ज्योतिषी ने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा, अपना हाथ तो दिखाओ कि तुम्हारे भाग्य की रेखाएं क्या कहती हैं। किसान बोला, किसी के आगे हाथ वह फैलाता है जो कामचोर होता है। जिसको अपने बाहुबल और मेहनत पर भरोसा नहीं होता। मैं मेहनत करके अपना भाग्य खुद बनाता हूं। मैं आपके सामने हाथ क्यों फैलाऊं। किसान हल-बैल लेकर आगे चला गया। किसान की बात सुनकर राजा बोला, ज्योतिषी जी, अब मुझे आप की सलाह की जरूरत नहीं है और न ही संत के पास जाना है। वह वहीं से लौट आया। उसके बाद वह अपने विवेक से निर्णय करने लगा। राज्य में खुशहाली आ गई।

२१८५) अनोखा फैसला - पुरानी कथा है। चीन में एक विचारक की काफी धूम थी। लोग उससे बेहद प्रभावित थे। राजा ने उसकी तारीफ सुन उसे न्यायाधीश बना दिया। उन्हीं दिनों नगर के सबसे धनवान सेठ के घर में चोरी हो गई। सब जानते थे कि सेठ ने इतनी अकूत संपत्ति बेईमानी व लोगों का शोषण करके इकट्ठा की है। किंतु चोरी तो चोरी थी इसलिए चोर को पकड़ने के लिए अभियान छेड़ा गया। चोर पकड़ा गया। उसने अपनी गलती स्वीकार कर ली। न्यायाधीश ने उसे

चोरी के जुर्म में एक साल की सजा सुना दी। चोर को सजा सुनाने के बाद न्यायाधीश ने सेठ की संपत्ति की जांच शुरू करवा दी लेकिन सेठ की दलील थी कि उसने सारी कमाई तिजारत से हासिल की है। उसने किसी का शोषण कर या गलत तरीके से धन अर्जित नहीं किया है। लेकिन न्यायाधीश ने इस बात को नहीं माना। उसने फैसला सुनाते हुए कहा, इस संपत्ति का कुछ हिस्सा चुरानेवाले चोर को तो एक वर्ष की सजा दी गई है मगर इस संपत्ति के मालिक को दो वर्ष की सजा दी जाती है। सेठ ने फैसले पर सवाल उठाया तो न्यायाधीश ने कहा, चोर ने तो चोरी की बात मान ली। उसके हृदय परिवर्तन की गुंजाइश है। लेकिन तुमने तो झूठ बोलकर सही रास्ते पर आने के सारे रास्ते बंद कर लिए हैं। चोर को सजा जरूर मिलनी चाहिए किंतु जब तक केवल चोरों को सजा मिलती रहेगी और आम आदमी का शोषण करनेवाले खुलेआम घूमते रहेंगे तब तक चोरी बंद नहीं होगी। इसलिए तुम्हें सजा सुनाई गई है।

२१८६) उन्नति में बाधक - प्रसिद्ध समाज सेवक बाबा आमटे बचपन में बात-बात पर रूठ जाया करते थे। एक बार उनके एक घनिष्ठ मित्र ने उनसे ऐसी बात कह दी जिसका उन्हें बहुत बुरा लगा। नाराज होकर उन्होंने उससे बोलना ही छोड़ दिया। वह मित्र बाबा आमटे के प्रति बेहद स्नेह रखता था। उसने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन जब वह उसके समझाने पर भी नहीं माने तो उसने उनकी मां से यह बात बता दी। रूठनेवाली बात सुनकर बाबा आमटे की मां ने मित्र को आश्वासन दिया कि उनका बेटा ज्यादा दिन तक उससे रूठा नहीं रहेगा और कुछ दिन बाद स्वयं आकर उससे बात करेगा। कुछ ही दिनों बाद बाबा आमटे की मां उन्हें बगीचे में लेकर गई। उस समय पतझड़ का मौसम चल रहा था और पेड़ के गले-सड़े व पीले पत्ते झड़-झड़कर गिर रहे थे। मां ने उन पत्तों को बाबा आमटे को दिखाते हुए कहा, बेटा, देखो ये पुराने पत्ते किस प्रकार अनायास झड़ रहे हैं। हमारे पुराने मनमुटाव, घृणा, जलन आदि को भी इसी तरह झड़ जाना चाहिए। हमें अपने मन के इन पीले, सड़े-गले पत्तों को भी झटककर फेंक देना चाहिए क्योंकि ये तनाव व दुख का कारण तो बनते ही हैं साथ ही हमारी उन्नति में भी बाधक होते हैं। ममतामयी मां के इन प्रेरक शब्दों ने बाबा आमटे पर गहरा असर किया। वह उसी समय अपने उस मित्र के घर जा पहुंचे जिससे वह रूठ गए थे। उन्होंने उससे बातचीत शुरू कर दी। इसके साथ ही उन्होंने जरा-जरा सी बातों पर रूठने का आदत छोड़ दी।

२१८७) दो बीज उपजाऊ मिट्टी में आसपास पड़े थे। पहले बीज ने कहा, मैं उगना चाहता हूं। मैं अपनी जड़ें जमीन की गहराई में भेजना चाहता हूं और अपने अंकुरों को जमीन की परत के ऊपर धकेलना चाहता हूं। वह बीज उग गया। दूसरे बीज ने कहा, मुझे डर लग रहा है, अगर मैंने अपनी जड़ें जमीन के नीचे भेजीं, तो न जाने अंधेरे में वहां क्या मिलेगा? अगर मैंने अपने ऊपर की कठोर जमीन में अपने अंकुर गड़ाये तो हो सकता है कि मेरे नाजुक अंकुरों को नुकसान हो जाए। अच्छा यही रहेगा कि मैं सब कुछ सुरक्षित होने तक यहीं इंतजार करूं। वह बीज इंतजार करता रहा। एक दिन एक चिड़िया ने उसे खा लिया। सुरक्षित होने की चाहत में उसने अपना जीवन गंवा दिया।

२१८८) सुख का स्रोत- एक योगी के पास ४ लोग पहुंचे। चारों ने अपने दुखों का पिटारा खोला और कहा, हमें इच्छित पदार्थों की प्राप्ति का वरदान दें। योगी ने कहा, वास्तविक सुख पदार्थ में नहीं है। पदार्थ प्राप्ति ही सब कुछ नहीं है। योगी के ऐसा कहने के बावजूद चारों ने जिद की, आप हमें यश, पुत्र, धन और स्त्री की मनोकामना पूर्ण होने का वरदान दें। दयालु योगी ने चारों को इच्छित कामनाओं की पूर्ति का वरदान दिया। समय पर वरदान फला और चारों को मनोनुकूल चीजें हासिल हुईं, लेकिन वे पहले से कही ज्यादा अशांत और परेशान रहने लगे। वे पुन: योगी के पास पहुंचे। योगी के पूछने पर उन्होंने बताया, महाराज, यश की प्रतिस्पर्धा ने जीवन को बेबस बना दिया। पुत्र की स्वच्छंदता ने प्रतिष्ठा धूल में मिला दी।

धन की लालसा ने अपनापन उजाड़ दिया। स्त्री के प्रति आसक्ति ने पौरुष को पानी बना दिया। उन्होंने याचना की, योगीराज हमें शांति का वरदान दें। योगी ने कहा, सुख बाहर से नहीं आता। सुख का स्त्रोत तुम्हारे भीतर है। पदार्थों को तुम भोगो, पदार्थ तुम्हें नहीं भोगें। भोग में सुख होता तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपना सब कुछ ठुकराकर सन्यास क्यों लेते?

२१८९) मन से भय निकालें- एक पिंजरे में बाज, बिल्ली और चूहा तीनों को बंद कर दिया गया और उसी पिंजरे में मांस का एक बड़ा टुकड़ा रख दिया गया। तीनों प्राणी उस पिंजरे में बंद हैं। तीनों भूखे हैं, किंतु तीनों ही मांस को खा नहीं रहे हैं। सबके साथ कन्फ्युशियस भी इस दृश्य को देख रहे हैं। वह ज्ञानी थे, इसीलिए लोगों से उसने पूछा-

ये प्राणी सामने भोजन होने पर भी उसका उपभोग क्यों नहीं कर रहे हैं? एक-दूसरे को देख क्यों रहे हैं? कन्फ्युशियस ने कहा- चूहा बिल्ली से डर रहा है। बिल्ली बाज से डर रही है, इसलिए दोनों मांस की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे हैं, किंतु उसे खा नहीं रहा है? बाज इसलिए नहीं खा रहा है, क्योंकि वह असमंजस में है। वह यह सोच रहा है कि चूहे को खाऊं या बिल्ली को खाऊं? इसी ऊहापोह में वह कोई निर्णय नहीं ले पा रहा है। ये तीनों ही भूख से मर जाएंगे, किंतु सामने रखे आहार का उपभोग नहीं कर सकेंगे। भय के कारण आदमी सामने रखे आहार का भी भोग नहीं कर सकता। <u>अभय सुख का सबसे बड़ा कारण है। अहिंसा का सबसे पहला सूत्र है अभय</u>।

२१९०) मक्कार बंदर - एक जहाज कलकत्ता जा रहा था। उसमें मुसाफिरों के साथ एक बंदर भी यात्रा कर रहा था। अचानक समुद्र में तूफान उठा। जहाज डाँवाँडोल होने लगा। कुछ देर बाद डूब भी गया। ज्यादातर मुसाफिर डूब गए। कुछ, जो बच गए थे, किसी-न-किसीके सहारे किनारे तक पहुँचने की कोशिश करने लगे। तभी एक बड़ी सी मछली पानी में दिखाई पड़ी। बंदर उसीकी पीठ बैठ गया। मछली बड़ी भली थी। वह बंदर को लेकर किनारे की ओर बढ़ने लगी। रास्ते में उसने बंदर से पूछा, तुम भारत देश के वासी हो? बंदर ने हौले से जवाब दिया, हाँ। मछली ने दुबारा प्रश्न किया, तब तो तुम कलकत्ता से परिचित होगे। बंदर सोच में पड़ गया। कुछ क्षणों के बाद बोला, हाँ-हाँ, क्यों नहीं। कलकत्ता तो मेरा लँगोटिया यार हे। मछली समझ गई कि उसकी पीठ पर कोई मक्कार बैठा है। उसने तुरंत गोता मारा और बंदर को अपने हाल पर छोड़कर चलती बनी। <u>दोस्तों से ईमानदारी बरकनी चाहिए</u>।

२१९१) चिड़िया की बोली- एक पेड़ की छाया में चार राहगीर बैठे थे। इनमें पहला पंडित था, दूसरा शेख, तीसरा बुनकर और चौथा परचून का व्यापारी था। वे चारों छाया में बैठें सुस्ता रहे थे। इतने में पेड़ पर बैठी चिड़िया चीं-चीं करने लगी। चारों ने चिड़िया की चीं-चीं की बात सुनकर कहा चीड़िया क्या बोल रही है। पंडित ने सबसे पहले कहा- चिड़िया राम, लक्ष्मण, दशरथ बोल रही। शेख ने उसकी बात पलटते हुए कहा- नहीं- नहीं, चिड़िया तो कह रही है, सुभान तेरी कुदरत। बुनकर ने कहा- तुम दोनों झूठ बोल रहे हो। चिड़िया तो बोल रही है- चरखा, पूनी, चमरस। परचून के व्यापारी ने उसकी बात काटते हुए कहा- चिड़िया तो हल्दी, मिर्च, अदरक मांग रही है। चारों पाहगीर अपनी बात पर अड़ गए। इतने में एक बुजुर्ग सज्जन उधर से आए। उन्होंने उन चारों से झगड़े का कारण जानना चाहा। उन चारों की बात सुनकर वह सज्जन हंसा और बोला- चिड़िया तो अपनी बोली में चीं-चीं कर अपने बच्चों को बुला रही है और तुम चारों जिद्दी बेवकूफ अपने-अपने मतलब की बात समझ कर बेमतलब झगड़ रहे हो। उस सज्जन ने चारों को नसीहत देकर अपने-अपने रास्ते रवाना किया।

२१९२) शेर और सवा शेर - एक बूढ़े शेर में अब शिकार करने की ताकत नहीं बची थी। उसने एक उपाय सोच निकाला। सारे जंगल में उसने यह बात फैला दी कि अब वह चंद दिनों का मेहमान है। जो उससे मिलना चाहे, बेखौफ मिल सकता है; क्योंकि अब उसने मांसाहारी भोजन भी लेना बंद कर दिया है। यह सुनकर एक के बाद एक भोलेभाले जानवर उससे

मिलने गुफा में आने लगे। भूखा शेर आराम से उनको मारकर खा जाता। आखिर में एक लोमड़ी ने सोचा, मैं भी शेर से मिल आऊँ। लोमड़ी बड़ी सयानी थी। जैसे ही वह गुफा के निकट पहुँची, उसने पाया कि जमीन पर सभी जानवरों के पैरों के निशान अंदर की ओर जा रहे थे, पर एक भी पाँव का निशान बाहर की ओर आता हुआ नहीं दिखाई पड़ता था। वह माजरा समझ गई और गुफा के दरवाजे से ही वापस लौट आई। जालिमों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

२१९३) हाजिरजवाबी - शायर आलम हाजिरजवाब थे, तो उनकी बीवी भी उनसे कम हाजिरजवाब नहीं थी। एक बार वह बादशाह के दरबार में किसी काम से गई। बादशाह ने हंसी हंसी में पूछा- क्या आलम (संसार) की बीवी आप ही हैं? शायर का बीवी बादशाह के मजाकिया स्वभाव से परिचित थी, उसने भी नहले पर दहला मारते हुए कहा- जी हां, जहांपनाह, जहान की मां भी मैं ही हूं। क्योंकि मेरे बेटे का नाम जहान है। बादशाह शायर आलम की बीवी की बात सुनकर बोले- वास्तव में तुम आलम की बीवी होने के साथ जहान की मां भी हो। सारा दरबार दोनों की बात सुनकर खिलखिला उठा।

२१९४) शांतिपूर्ण जीवन - विश्वविजय पर निकलने से पूर्व सिकंदर संत डायोजनीज के दर्शन के लिए गुफा में पहुंचा। सदा मस्त रहनेवाले संत ने सिकंदर की योजना के बारे में पूछा तो सिकंदर ने कहा, मैं ईरान को जीतने जा रहा हूं। फिर मैं भारत पर विजय प्राप्त करूंगा। उसके बाद अन्य देशों पर भी झंडा फहराऊंगा। संत ने कहा, इसके बाद क्या करोगे? सिकंदर ने फिर जवाब दिया, विश्वविजय प्राप्त करने के बाद शांति से जीवन बिताऊंगा। यह जवाब सुनकर संत चुप हो गये। फिर थोड़ी देर बाद जोर से हंसे और बोले, शांतिपूर्ण जीवन प्राप्त करने का जो सपना तुम देख रहे हो, वह तो मुझे बिना किसी प्रपंच के प्राप्त है। यह याद रखना कि खून-खराबे के बाद किसी को भी शांति प्राप्त नहीं हुई है। संत का यह जवाब सुनकर सिकंदर का सिर शर्म से झुक गया।

२१९५) एक व्यक्ति को चूहे बहुत परेशान कर रहे थे। एक दिन वह बाजार से एक पुस्तक खरीदकर लाया, जिसमें चूहों से छुटकारा पाने के एक सौ एक तरीके समझाए गए थे। उसने पुस्तक लाकर मेज पर रख दी और स्वयं हाथ-मुंह धोने चलीा गया। इतने में चूहों की नजर उस पर पुस्तक पर पड़ी। पुस्तक का रंगीन कवर देखकर वे आकर्षित हो, उसके पास जा पहुंचे और उस पर चढ़कर उछलकूद मचाने लगे। उनका दुस्साहस देख पुस्तक का पारा चढ़ गया। उसने हिकारत से उन्हें फटकारते हुए कहा कि तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझे छूने की। जानते नहीं, मैं तुम्हारा काल हूं और मेरे भीतर लिखे एक सौ एक तरीकों में से कोई भी तुम्हारा अंत करने के लिए काफी है। इस पर चूहे ठहाका मारकर हंस पड़े और पुस्तक पर टूट पड़े। कुछ ही पल में पुस्तक चिंदियों के ढेर में तब्दील हो चुकी थी। जब तक अमल में न लाया जाए, हर उपाय निरर्थक है।

२१९६) एक मुर्गा अपने दड़बे के बाहर भोजन की तलाश में भटक रहा था। उसे बहुत तेज भूख लगी थी, लेकिन खाने को कुछ हाथ ही नहीं आ रहा था। वह भगवान से प्रार्थना करने लगा कि हे भगवान, जल्दी से मुझे कुछ खाने को दो वर्ना मैं भूख से मर जाऊंगा। इसके बाद वह फिर से भोजन की तलाश में लग गया। कुछ ही दूर पर उसे रेत में एक चमकती हुई चीज दिखाई दी। वह एक बेशकीमती मोती था। उसने जल्दी से उसे अपनी चोंच में उठा लिया, लेकिन उसका कोई स्वाद न पाकर उसे वापस थूक दिया। तभी मोती का मालिक वहां आ पहुंचा। उसने मुर्गे को धन्यवाद दिया और कहा कि अगर तुम इस बेशकीमती मोती को निगल जाते तो आज मेरा काफी नुकसान हो जाता। मुर्गे ने बुरा सा मुंह बनाया कि यह तुम्हारे लिए बेशकीमती होगा। लेकिन मेरे लिए इस वक्त मक्का का एक दाना, इस मोती से ज्यादा कीमती है। मोती मालिक ने उसे तसल्ली दी और कहा कि तुम चिंता मत करो, तुम्हारी वजह से मुझे मेरा मोती वापस मिला है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें पेट भरकर मक्का के दाने खिलाऊंगा।

HHH(७९९)HHH

२१९७) सामंजस्य न बिगड़े - परिवार का मुखिया कहीं से चार आम लेकर आया। दो आम अपने पुत्रों को दिए, दो भाई के पुत्रों को दिए। भाई के बच्चों नें आम प्रसन्नता से लिए और खा लिए, किंतु भाई की पत्नी ने शाम को यह बात अपने पति से बताई और कहा कि अब इस परिवार का विभाजन तय है। हम बड़े भाईजी के साथ नहीं रह सकते। पति ने कहा- उनका हम पर बड़ा स्नेह है। फिर ऐसी बात तुम क्यों सोच रही हो? पत्नी बोली- स्नेह रहा होगा कभी, आज जो देखा, वह साफ-साफ इस बात का संकेत था कि भाई की दृष्टि में अब सब कुछ बराबर नहीं रहा। उन्होंने बड़े और अच्छे आम अपने बच्चों को दिए, छोटे और कम अच्छे आम हमारे बच्चों को दिए। साफ बात है कि उनकी निगाह में अब फर्क आ गया है। पति की समझ में भी बात आ गई। परिवार का कुछ दिन बाद ही विभाजन हो गया। ऐसा क्यों होता है? चेतना का ऊर्ध्वारोहण कैसे हो? जिससे समस्या सुलझ सके। परिवार में झगड़ा, सभा-संस्थाओं में झगड़ा, सब जगह कलह और झगड़ा ही चल रहा है। हर तरफ ऐसा ही दृश्य है। तब समाज अच्छा कैसे बनेगा?

२१९८) मूर्ति के सामने- एक संत रोज एक मूर्ति के आगे खड़े होकर भिक्षा की याचना करते थे। उन्हें ऐसा करते कई लोगों ने देखा पर किसी को उनसे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी। एक दिन एक युवा साधु ने आखिरकार उनसे पूछ ही लिया- गुरुदेव एक जिज्ञासा है। आप प्रत्येक दिन मूर्ति के आगे हाथ फैलाते हैं। आप तो जानते होंगे कि इस तरह हाथ पसारने से कुछ नहीं मिल सकता। फिर आप व्यर्थ कष्ट क्यों करते हैं? इस पर उस संत ने कहा- तुम्हारी जिज्ञासा एकदम उचित है। मैं जानता हूं कि यह प्रतिमा मुझे कुछ नहीं देनेवाली है फिर भी मैं उससे कुछ मांगता रहता हूं। मैं किसी आशा से उससे कुछ नहीं मांगता। यह मेरा नित्य का अभ्यास कर्म है। मांगने से कुछ नहीं मिलता, यह सोचकर मेरे भीतर धैर्य पैदा होता है। मैं किसी घर में याचना करूं और मुट्ठी भर अन्न न मिले तो मेरे मन में निराशा नहीं पैदा होगी। मेरे मन की शांति भंग न हो, इसका प्रयास कर रहा हूं। युवा साधु ने कहा- आपने मुझे साधना का एक और तरीका बता दिया। मैं भी अब इस तरह से अभ्यास करूंगा। यह कहकर वह चला गया।

२१९९) जीवन के अंतिम दिनों में रामकृष्ण परमहंस काफी बीमार रहते थे। वह अक्सर दर्द से छटपटाते रहते। यह देखकर उनके भक्त बहुत दुखी रहते थे। एक बार उनके कुछ प्रिय भक्तों ने कहा, हमें एक बात समझ में नहीं आती। आपने काली माता से प्राप्त शक्तियों से सैकड़ों रोगियों को पीड़ा से मुक्त किया है। फिर उनका प्रयोग अपने लिए क्यों नहीं करते? परमहंस बोले, मुझे जो कष्ट मिला है वह कर्मानुसार है। किसलिए मिला है, यह भी मैं जानता हूं। जो शक्ति काली मां ने मुझे दी है वह परमार्थ के लिए है, जिसका मैं अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग नहीं कर सकता। उनका अपने लिए प्रयोग करके मैं उनकी नजरों में अप्रामाणिक नहीं बनना चाहता।

२२००) एक संत के बारे में प्रसिद्ध था कि जो भी उनके पास जाता है, आनंदित होकर लौटता है। एक सेठ ने जब यह बात सुनी तो वह उनसे मिलने पहुंच गया। उसने सोचा था कि संत कोई सूत्र या मंत्र बताएंगे। इसलिए पहुंचते ही उसने संत से आनंदित रहने की विधि पूछी। संत उसकी बात को अनसुनी कर पक्षियों को दाना खिलाने लगे। सेठ को हैरानी हुई। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर आनंदित रहने का उपाय पूछा। संत पर कोई असर नहीं पड़ा। वह चिड़ियों में खोये रहे। सेठ का धैर्य जवाब देने लगा। उसने बार-बार आग्रह किया तो संत बोले, दुनिया में प्रसन्न रहने का एक ही तरीका है- दूसरे को देना। देने में जो सुख है वह किसी और चीज में नहीं है। तुम चाहो तो अपनी संपत्ति जरूरतमंदों में लुटाकर आनंदित हो सकते हो।

HHH(८००)HHH